

आदर्श पुस्तकों का नामोल्लेख

००

[प्रस्तुत अक्षररूप की पाद-टिप्पणी में जिन महाग्रन्थों की पुस्तकों से 'क' 'ख' आदि सकेतों में पाठभेद दिये गये हैं उनके नाम तथा सकेत इस प्रकार हैं—]

क. सकेत वाली पुस्तक जनम्याननिवासी वे० जा० स० साठे नारायण शास्त्री की है और पूर्ण है।

ख. सकेत वाली पुस्तक आष्टे ग्रामनिवासी लिंगदे महोदय की है जो गीतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

ग. सकेतवाली पुस्तक दक्षिणापयवर्ती विशालय के पुस्तकालय की है। यह भी गीतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

घ. सकेत वाली पुस्तक रा० रा० भाऊसाहेब नगरकर की है। इसमें केवल गीतमी माहात्म्य है।

ङ. सकेत वाली पुस्तक श्री 'पतसचिव सत्यान भोर' की है। इसमें भी केवल गीतमी माहात्म्य है।

च. सकेत वाली पुस्तक चोपडे ग्रामनिवासी वे० रा० रा० 'वामनबुआ अयाचित' की है। इसमें भी केवल गीतमी-माहात्म्य है।

भूमिका

००

यो विद्याच्चतुरो वदान् सागोपनिषदो द्विज ।

न चेत्पुराणं सविद्यानैव स स्याद्विचक्षण ॥

(ब्रह्माण्डपुराण अ० १)

अर्थात् जा० कि० मागापाग चारा वदा और उपनिषदा को जानना है पर पुराणा को नहीं जानता वह विद्वान् नही हो सकता।

उपधुना कथन सत्य प्रतीत होता है कारण पुराण सब क एहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-सम्पदा के अक्षय भाण्डार हैं। ज्ञान वराग्य भक्ति प्रेम श्रद्धा विश्वास वगैरे दान तप सयम यम नियम सेवा भक्त दया वणधन आश्रमधर्म राजधर्म मानवधर्म व्यक्तिधर्म स्त्र धर्म सदाचार अर नाना धर्मिया के पुराणा के विभिन्न कल्याणकार उपदेश सुन्दर सरल अर उपादेश भाषा में इनमें मिले गये हैं। एतदतिरिक्त पुरुष प्रकृति महत्त्व प्रकृति विकृति भूगोल खगोल ऋषिवंश तथा राजवंश का वर्णन अर स्वावर्ग-जगम सृष्टि का बहुत सुन्दर रति स सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कौन दण्डन व्याकरण छन्द ज्योतिष निरुक्त शिक्षा कला आपुवद गचववेद स्थापयवद राजन ति समाजनीति योग तत्र आदि शास्त्रों का भी परिचय हमें इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एव आधिदैविक विषया के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद क भा प्रचुर सामग्र पुराणा में पाये जाते हैं।

हरिदत्त शास्त्र क गान्धा म पुराणा से ह अनुशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके वगैरे दण्डन व प्रवर्तक मर्त्य वपाद ने आकाश में तिष्ठत परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों क उत्पत्ति का सिद्धान्त स्व वारा है इस समय अनुशास्त्र पर भौतिक अनुसन्धान के विशेषज्ञ ने सत्कारक अनुशास्त्र का पता लगाया है किन्तु अभी प्रजनन अर पालन अनुशास्त्र का पता उनका नही है १६ विज्ञान पुराणादि में उल्लिखित है। इस पर ध्यान दनर पत्रा द्वारा अनुसन्धान करके प्रत्यक्षीकरण किया जाये तो समार का महान् उपकार हो सकता है। दक्षिण शकशास्त्रविधि सैद्धयन्त्र में महाशक्ति स अनु क उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार बताया गया है—

द्वितीयात् पात्सु तव चरणपकेदहभयम्
विरञ्चि सञ्चिचन विरचयति ल कानविकल्पम् ।
वह्नयव शीरि कपमपि सहलग्न शिरसा
हर सक्षुम्भन भजति भक्ति दलनविधिम् ॥

अर्थात् आशाकरुणि अथवा महाशक्ति से अनुओं की वट्टि हुई। उन अनुओं में से सज्जात्मक अनुओं को सचिन् वरके सत्कार के रचना क गई। इसे ब्राह्मा अनुशास्त्र कहते हैं। दूसरे प्रकार के अनुओं को सचिन्

करके वैष्णव अणु स सत्ता की पालनात्मक सामर्थ्य बन है। फिर सहासरात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र करके रौद्र अणुओं का पिण्डीकरण से सत्ता के विनाश की शक्ति बनती है। इस प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्रा अणुसन्निधि—य तीन प्रकार के अणु बनाये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपरक्षण समिति सर्वोत्तम वैज्ञानिक उपलब्ध साधना से इनका गम्भीर परीक्षण करे तो वर्तमान काल भी पुराण-काल के समान वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणा म सिद्धरीठस्थली भूमण्डल के विभाग पुण्यसंस्थायें महानन्द सरोवर प्रस्थलान् और शस्त्र-श्यामल भूभाग—इत्यादि का वर्णन आया है। इनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्रा अणुसन्निधि के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्वन्दुराण म एक कथा आती है कि चक्र नाम का एक राजकुमार था, जिसका मुख बकर के मुख के समान था। वह शारीरिक निर्माण के कारण का ज्ञान प्राप्त करके अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा उसी शरीर में बकरी के मुख से सुन्दर मानवमुख के रूप में बदलकर चन्द्रमुखी हो गई। उस राजकुमारी के आठ भाई और एक बहन थी। उसके पिता ने सम्पूर्ण देश को नौ भागों में विभक्त करके प्रत्येक को एक एक राज्य दे दिया। तब स भारनवर्य नवलखंड नाम से कहा जाने लगा। उन पुत्र-पुत्रक खंडों में अनेक प्रकार के भूधर्मगत घातुआ का वर्णन है। इससे अनिर्विज पुराणा म आकाशवाणी घटनधरा की धूरी और उनकी गति, सिंगुमारचक्र भूवस्थान उत्तरायण दक्षिणायण ऋतु मास आदि का विज्ञान भी निर्मित है।

पुराणा का प्रमुख उद्देश्य बंद के उत्था का जन्म साधारण तब पहुँचाना है। वेद म सूत्ररूप में जो बातें बनी गई हैं उन्हीं का व्याख्या पुराणा म भाष्यरूप से क की गई है। यह ज्ञान पुराण-रचयिता व्यास जी के स्वयं बनी है—‘इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुन्मूलहेतु’ अर्थात् इतिहास (रामायण महाभारत) और पुराणा की सहायता से वेदा का अर्थ समझना चाहिए। महाकाव्य है कि वेदा म जिन बातों की सूचना मात्र है पुराणा म उपाख्याता के द्वारा उन्हीं का विस्तार है। जैव ऋग्वेद के ‘इदं जितुं विचक्रमे श्रेया नित्यं परम्’ विष्णु क अवतार की सूचना मात्र है पर रामचरितमानस म विभिन्न नामक कामनावनार के प्रसंग म तथा अन्य पुराणा म भी विष्णु क कामना बनार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (क० ८० सू० प्र० ३।४।५) म राजा पृथु का पूर्वदाह संघात म वर्णन है पर श्रमवदभागवत म उसी का विस्तृत रूप में वर्णन है।

पुराणा म जितनी सरलता से घम अथ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणा म पराशरार का सब धर्मों का मारभूत पुण्य बताया गया है और परशुराम का महापात। यह पाप-पुण्य का परिभाषा मानवता का चितना सुन्दर और मौलिक भाषण होता रह है।

पुराणा म गत्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से, मयवादी हरिश्चन्द्र आदि के उपाख्यान म ज्ञान होना है कि उन्हीं गत्य की मूल्यवत्ता का चितना वास्तव्यता किया था। सती अनयूया मीना भाविर्ष मुक्त्या आदि दैवियों के ज्ञान, निष्ठा और शत्रु से अलौकिक समतार की सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् राम की अवनतचर्या से उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादा-पालन की मर्यादापुण्य एक दृढ-ब्राह्मण गिना मिलती है। राम न जनमन का सम्मान कर जानती धर्मार्थी मत्त। मीना का छाप दिया था। चैतन्य अनुग्राम और जाना का आदा स्थिर करने के लिए राम का भी स्थापन किया एवं अत्याचार का समन करने के लिए एक स्वेच्छाकारी अपिनायक का विषय किया। यो राम के चरित्र म जो आदर्श हैं तथा जिन उच्च भूमिका पर समाज के जवन का चरित्र सामाजिक चारित्रिक धार्मिक व्यावहारिक आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय लक्ष्य है उसका दर्शन

अन्यत्र कुलम् है। रामराज्य के सम्बन्ध में व्यास जी ने लिखा है—‘न पुत्रवरणं केचिन्नामे राज्यं प्रयासति।’ इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रवरणं केचिद्रक्ष्यन्ति पुरुषा वचजित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति वतिव्रताः॥

अर्थात् राम के राज्य में कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नहीं देखना चाहे, कोई स्त्री विधवा नहीं होती। श्री और सभी पतिव्रता होतीं थीं।

पुष्पदासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अनिरिक्त सत्कार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दीर्घा, सिद्धि आदि के धरित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणा के द्वारा ही मिलता है। इसलिए पुराण अन्य भारतवर्ष की बहुत बड़ी निधि है।

पुराणों का आविर्भाव

महर्षि वाल्मीकिन ने अपने न्यायदर्शनभाष्य में लिखा है कि वेदों और पुराणा का आविर्भावकाल समान ही है। जैन वेद अर्थात्त्रये हैं, गौतम, वसिष्ठ अत्रि वश्यप, भारद्वाज, वामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रों के द्रष्टा मात्र हैं वरतों नहीं, बैसे ही पुराणों की मौलिक सामग्रियों का वरतों कोई भी नहीं है, किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणा के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और ब्रह्मा अनेक ऋषि हैं। नास्त्यं यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणा के स्मर्ता एवं वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है उसी प्रकार पुराणा का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषता इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा परित्र का ज्ञान भी अत्यावश्यक है। अब पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकना है, अन्यथा नहीं। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टितण्ड के अध्याय १०४ में निम्न किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने मृग से पुराणा का ही स्मरण हुआ, परन्तु उनके मुँह से वेदमन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तर च वचनैर्मयो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

इस सम्बन्ध में अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्र-ब्राह्मणारम्भक वेद-ग्रन्थों के आविर्भाव से पहले या उनके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमें सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए सत्त्वयज्ञाद्वारा के ऋग्वेदों प्रभुर्ब्रह्म सामवेदोऽथर्वांगिरस इति-इति-पुराणं विद्या उपनिषद् इत्यादि सूत्राचरणव्याख्यानानि व्याख्यानानिश्चि वाक्य में ‘पुराण’ शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करने हैं —

पुराणमेवमेवास्तस्य ब्रह्मन्तत्प्रेक्षणम्।
त्रिर्गोत्रायनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥१॥
कालेनाग्रहम् दृष्ट्वा पुराणाय तदा नृपः।
तद्व्याख्यां कृत्वा भूतलेश्वरस्य प्रकृतस्य॥२॥

पद्मपुराण एवं बृहदारण्यकपुराण में भी इस तरह के उक्त पाये जाते हैं। इसमें सिद्ध होता है कि पहले के प्रसिद्ध पुराण ग्रंथ का आधार पर ही अठारह पुराणों का उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मात्रा योग्यागा आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यान को लेकर महर्षि ने ब्राह्मणग्रंथों में सन्निविष्ट कर दिया। इस लिए एतरेय ब्राह्मण का निम्नलिखित मंत्र में सिद्ध आख्यान के वक्तव्यों का ही प्रतिपादन किया गया है—

सामो य राजाऽमुनिश्च लोके आसीत्तदवसत् ऋषयश्चाम्यव्यायन—कथमयश्चमान सः स राजा गच्छदिति ते ऋक्न छन्दसि श्रया म इम सीम राजानमाहुरति तथति ते सुपर्णा भूबोदयतन त यत सपर्णा भूबोदयतन तदतत शीघ्रमिति आख्यातविद आचक्षत ।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथों में महापरा ने ही आख्यानों को कहा है किन्तु वे आख्यान ब्राह्मणप्रवक्ता महर्षियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं क्योंकि मन्त्रों के उपाख्यान में उन आख्यानों का उपादान होने से उन्हें मन्त्र रचना के बाद की कल्पना का विषय नहीं माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरान्त ब्रह्माण्डपुराण सह ये आख्यान संकलित किये गए हैं ऐसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रंथों में उल्लिखित पुराणार्थ—आख्यानों को ब्रह्मवृत्त मानकर ही पद्मपुराण का सन्निविष्टन म किया गया है—

सूतेतानकमेणद पुराण सत्प्रकाशितम् ।

ब्राह्मणेषु पुरा षण्च ब्रह्मणोक्त सविस्तरम् ॥

इन ब्राह्मणग्रंथों में प्रायः सभी विद्याओं का उल्लेख है किन्तु वे कमबड्ढा में रहित सूत्ररूप में अस्पष्ट हैं। अतएव उन्हें बुद्धिपात्र बनाने के लिए विगिण्ठबड्ढाला मन्त्रियों ने अपने प्रतिमा के चल पर उन ब्राह्मण ग्रंथों से उन विद्याओं को अलग करके युक्ति प्रसूक्ति अर सिद्धि का द्वारा बिगड़ करके लोच-कल्याणाय प्रसारित किया। उस कथित आर पञ्चमूर्ति आदि ने साम्य अर मान का बाल्यायन आदि ने कामसूत्र का मनु आदि ने धर्मसूत्र को धन्वन्तरि आदि ने आयुर्वेद को याज्ञिक आदि ने निरुक्त का और ह् पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तित किया इसी प्रकार कसिष्ठ ने प्रार्थन गति का पात्र और परात्मा के पुत्र सत्यवत का राम से उत्पन्न भगवान् कृष्णउपायन ने ठाकुरकार का लिए समस्त ब्राह्मणग्रंथों से समा उपाख्यानों एवं गाथाओं का संकलन करके कथा प्रमग में जोषा हुई कापुष्टिया को भी ठाकुर-ठाकुर जोड़कर याज्ञिक आख्यानों में मिश्रित तथा सगनिबद्ध करके पूर्वोक्त ब्रह्माण्डपुराण में कहे गये जगत्पुष्टि-प्रत्यक्ष रूप कथ्यों का आख्यान 'उपाख्यान' गाथा' और कलागुडि' में सुश्लिष्ट करके अठारह बड्ढा में विभक्त एक पुराण-संहिता का निर्माण किया। उस पुराण संहिता इसलिए कहे हैं कि उसमें पुराण पत्र में अभिलिखित तथा ब्राह्मण आदि ग्रंथों में उल्लिखित किंच सन्निविष्ट विद्याओं का एक जगह सफर करके समाहित किया गया है। फिर कृष्णउपायन ने अपने गिण्ठ सूत्रात्मक कामहृषण को वह संहिता पढ़ायी। कामहृषण ने श्री सत्पूज संहिता का पत्रवर १ सप्त (सन्निविष्ट) २ प्रतिषप्त (प्रलप) ३ का (द्वारा एवं पत्रां का वगावत्) ४ मन्त्रर (विम मन्त्र का कव त्व अधिकार रहता है) तथा ५ कापुष्टिरित (मूत्र चन्द्र प्रसूति राजकाय में उत्पन्न होने वाले राजाओं का मन्त्रान्तर वचन)—इन पाँच विषयों में विभक्त करके एक सीमन्त नाम का संहिता बनाया। उह अपने छह गिण्ठों—१ सुमति २ अभिबचन ३ मित्रयु ४

१ स्वयं दम मर विद्या का वचन। २ कण-परम्परा द्वारा मुन गये विषयों का वचन। ३ विदरगण परमाक अवस्था अवस्थ विभिन्न विषयों का मन्त्र का अनुसूचन। ४ आद्यकर्म आदि का निगम।

मुद्रा ५ अष्टमत्रय आर ६ सामदत्ति को पदा दिया। यह छह अक्षर मात्र-नाम व क्रम से १ आनय २ भार-
 डात्र ३ वसिष्ठा ४ गाणपायन ५ वासिष्ठा आर ६ सावर्णि कहे जाते हैं। इन छह ने भा पूर्वोक्त संहिताद्वय
 के आधार पर स्वच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निर्माण किया। उन छह संहिताओं में जिहाता आभ्यास
 मन्त्र एव प्रवृत्ति व अनुराग स प्रमग्न सन्निध और विष्णु अन्त कथानक जान दिये गये। जिससे उनके
 आधार में भिन्नता आ गयी, परसग प्रतिपत्ता आनि सामान्य घम उनमें बराबर हो बने रहे। इस प्रकार पुराणों
 का आठ संहिताओं बन गई यह निष्ठा आचार्यों का मत है। वैम वायुपुराण आर विष्णुपुराण के मन से चार हो
 संहिताओं हैं—१ कामहर्षिका वासिष्ठा सावर्णि आर गाणपायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर
 ह वेदव्यास ने ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध अठारह पुराणों का रचना का आर उनमें उपश्रवा प्रभृति सूता ने
 सत्रुद्धि व ।

आगे चलकर उन चार संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में भिन्नता आ गई। इसका कारण यह है कि
 समय-समय पर मुनियों का गच्छित्य में उन पर चर्चा होता रहा जिसमें सात्त्विक रास और तामस उपासना
 के भेद से उनका भिन्न भिन्न प्रकार से निरूपित किया गया फलतः मुख्य उद्देश्य में भिन्नता आ जान से इतिहास
 आर प्रवचन में भा भेद हो गया। बाद में उन उन पुराणों में आर द्वय पुनस्तव एव भाष्य और परापर एव मन्त्र
 आदि के मन्त्रों का प्रकार करने के लिए कथा कामहर्षणमूल नमिपारण्य में जाकर वेदव्यास हो के द्वारा विवक्षित
 किय गये अठारह पुराणों का गीतक आदि त्रिंशत् मुनियों का सुनाते लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यक्त किये गये
 पुराणों का पूर्वोक्त क्रम दूसरे प्रकार में निर्धारित था किन्तु कामहर्षण सूत ने त्रिंशत्मुना के अनुरोध से निर्धारित
 क्रम की उपेक्षा करते क्रम ब्रह्मपुराण पद्मपुराण विष्णुपुराण कूर्मपुराण मत्स्यपुराण वामनपुराण वाराहपुराण
 ब्रह्मवैवर्तपुराण भारद्वाजपुराण तथा मत्स्यपुराण—इन दस पुराणों का पूर्ण रूप से सुनाकर अग्निपुराण को आधा
 हो सुनाया। इसा वाच मयाग से नमिपारण्य में आये हुए कल्मष ने अवशिष्ट अग्निपुराण को सुनाते हुए हा सूत
 का यह बिना मन्त्र अभिवादन किये गइ हकर पुराण सुना रहा है—एसा सचकर कथावत्त में मार डाला। ठव
 कामहर्षण व विवक्षित हो जान पर गावाकुलित्र गीतक आदि मुनियों ने कामहर्षण के पुत्र उपश्रवा नामक सूत
 का बुलाकर योग गइ। पर वडाकर उसमें अग्निपुराण व अवशिष्ट आध भाग के साथ और भी सात पुराण सुन
 किय। यह बात पद्मपुराण व उत्तरव्यास में आयी है। कामहर्षण का जिवितावस्था में भा किय वे हा मुनियों
 का पुराण नहीं सुनाते थे अपितु उनका आना में उपश्रवा व नमिपारण्य में जाकर मुनियों का पुराण सुनाया
 करत था। यह बात भी पद्मपुराण से ह विनि हता है।

पहला पुराण

पूर्वोक्त चार संहिताओं पर आधारित अठारह पुराणों में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण है। इस वाच को भग
 वान परापर ने मन्त्र से कहा है—

चतुष्पदाप्यतन संहितानामि मू।

आद्य सप्तपुराणाना पुराण ब्राह्ममूक्यत ॥

(विष्णुपुराण)

इस दशक में ब्रह्मपुराण को आद्य मानकर इन पुराणों का उत्तरवर्ती एव संहिताचतुष्पदमूलक प्रतिपादन

किया गया है। केवल देवाभागवत को छोड़कर अन्य पुराणों में भी इस बात का पुष्टि का गई है। इसका स्पष्टकरण आगे किया गया है।

पुराणों का क्रम

विष्णुपुराण के अनुसार पुराणों का रचना (सृष्टि) का क्रम इस प्रकार है —

१ ब्रह्म	७ माकण्ड्य	१३ स्वन्द
२ पथ	८ अग्नि	१४ वामन
३ विष्णु	९ मत्स्य	१५ कूर्म
४ बामु (सिद्ध)	१० ब्रह्मवैवर्त	१६ मत्स्य
५ भागवत	११ रिग	१७ गरुड
६ नारदाय	१२ वाराह	१८ ब्रह्माण्ड

इन्हीं अष्टादह पुराणों का आद्य अष्ट लेकर निम्नलिखित श्लोक में सात सूच्य प्रस्तुत की गई है—

महर्षे महर्षे च व प्रमर्षे वचसुत्तमम् ।
अनापहस्तकल्पानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

दा म	दा म	तान म	चार व अ० ना० प० क० स्व० लि० ग०
७	५	१	३ ८ ६ २ १५ १३ ११ १७
१६	९	१०	१२
		१८	१४

४ (सप्तमद स)

पुराणों का क्रम रहस्य

य कृष्णमणि विराट् का दासदा में पुराणों का सृष्टि प्रक्रिया का वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जा तो क्षरमय में शेषनाथ भगवान् विष्णु का ध्यान का लिए। क्षरसागर में शेषनाथ का गह्वरा बनाकर भगवान् विष्णु लेटे हुए हैं। जगज्जनन। लक्ष्मी उनका पर दायाँ हैं और मन्त्रि नारद पाद में सह हाथ स्तुति कर रहे हैं। जब विष्णु का सृष्टि रचना का इच्छा होती है तब उनका नाभि से एक कमल निकलता है। उसमें ब्रह्मा का प्रादुर्भाव होता है। उस पर अष्टादह अनुमूल ब्रह्मा का पाठ करते हैं। यही सृष्टि का रचयिता है। इस चित्र का ध्यान में रखकर पुराणों का क्रम पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले यह विज्ञाना उत्पन्न होता है कि इस वर्तमान ब्रह्माण्ड के रचयिता कौन हैं? इसका उत्तर प्रथम ब्रह्मपुराण देता है। इसमें यह सूचित होता है कि ब्रह्मा ब्रह्मात्मस्वरूप इस तत्त्विराम श्रुति के अनुसार ब्रह्मा है। ब्रह्मा का रूप सृष्टि का रचयिता है। अर्थात् स्थावर-जगमायव द्रव्यत्रय का निर्माता ब्रह्मा का सर्व प्रथम ब्रह्मपुराण बोलता है। क्योंकि दूसरा ग्रन्थ उपस्थित होता है कि ब्रह्मा क्यों स पैदा हुए? इसका उत्तर पथपुराण देता है कि ब्रह्मा ब्रह्मा के नाभिचक्र से उत्पन्न हुए। अब तीसरा ग्रन्थ उपस्थित होता है कि पथ कहाँ से निकला? इसका का समाधान करने के लिए सारा विष्णुपुराण आता है। इसमें बताया गया है।

की सृष्टि, प्रत्येक आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव विकास को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक एक कल्प में एक एक पुराण की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणा की अष्टादश सम्ख्या के रहस्य का उद्घाटन होता है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणा की तरह उपपुराण और औपपुराण भी सख्या में अष्टादश ही है। यथा—उपपुराण—(१) सनत्कुमारकृत आदिपुराण (२) नरसिंहपुराण (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वास-पुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) औशनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) वाल्मीकिपुराण (१२) बह्मपुराण (१३) माहेश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण (२) बृहदारखीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) सूर्यपुराण (५) नन्दिश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) कसिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गगल पुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) बृहद्वर्मपुराण (१५) परानन्द पुराण (१६) कल्लिङ्गपुराण (१७) पशुपतिपुराण और (१८) रुद्रिस्तपुराण हैं।

इन उपपुराणा और औपपुराणा की रचना पुराणा के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराण को छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथाय सूक्ष्म कर दी गई हैं वहीं-कहीं पर विलक्षण कथाओं का भी समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं कथाओं में नवीन नये साने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इनका अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रधान शिष्य नीलकण्ठ ने दर्शनभागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत भी किया है—

अष्टादशसंख्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रचल्यते।
विज्ञानीष्व द्विअष्टोत्तास्तथा तस्मै विनिर्गतम् ॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

मरमात्पुरा ह्यनन्तोद पुराणं तेन तत्संभूतम्।
निष्कलमस्य यः वेद सर्वपापं प्रमुच्यते ॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने व कारण इसका 'पुराण' मन्त्रा हुई। इसकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानने हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—पुरा नं यते इति पुराणम् पुरा+नो +इ(अ) ईकार का सोप जन्व। अथवा पुरा भवम इति पुराणम् पुरा+ट्यु (यु) सामयिप्रभाहूणप्रभेज्ज्येष्ठ्यट्पट्पुनी तुट् च' इस मूल से। अनन्तर य के स्थान में भुवार्त्तात्' मूल से अन आदेश नकार को 'अट्पु'त्वाद्भुम्बवायजि' मूल से गत्व। यही 'सामयि'—इत्यादि मूल से ट्यु प्रत्यय का हाना है पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है कारण, 'पूर्व

काव्यमयजुस्तुपुराणतत्त्वबला समानाधिकरणेन इमं सूत्रं य पाणिनि न पुराणं गच्छेत् का निर्णय किया है। यदि तुष्ट हो जायगा तो उक्त सूत्र में पठित पुराण गच्छेत् कसे बनेगा? अथवा पुराणप्राक्तन्य ब्राह्मणतत्त्व इमं सूत्रं निर्देशं न निपातनं करणं पुराणं गच्छेत् बन सकता है।

निश्चय में पुराण गच्छेत् का निवेदन इस प्रकार आया है—पुराण नव भवति जिसका नव घटित सब्ब प्रथम प्रवृत्त दुष्ट वह पुराण है। इसलिये भगवान् का भा पुराणरूप बन्ने है। पुराण का अर्थ जगत् नष्टा है अपि तु जाति विकास है। गाथा में भगवान् का प्राप्ति में आया है—वर्ति पुराणमनुशासितार अथात भगवान् ज्ञानार्थी तथा पुराण होत स सब्ब अनुशासक हैं। अतः पुराण गच्छेत् स जाति साहित्य का तात्पर्य है। जाति साहित्य वह है जिसमें आदिभ्य आत्मा का प्रकाश है। इस आदि विद्या का वेदव्यास ज न जगत्तत्त्वान् व लिये सर्वादि पात्र लक्षणा में प्रथित कर दिया। इस का पुराण कहत हैं। पुराण गच्छेत् को मुनयः ह व्यासकृत अष्टांग पुराण कं स्मृति हो जाता है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणम् न ह्य पुराणं कर्तुं शक्यं नित्यं गच्छेत् । काव्याराधनं । अनुसार उसका मवाधिक प्रचलित लक्षण यह है—

सगच्छेत् प्रतिसगच्छेत् यन्त्रो न वत्तराणि च ।

वदन्नुच्चरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थात् जिसमें सग ईश्वरजन सष्टि (कारणमष्टि) प्रतिसग पुन (बाप) सष्टि अर लक्ष्य ब्रह्मात्मा एवं विवरा का बगवान्। समस्त भवत्तर (जिस मनु का वत्त तक अविकार रता है) तथा वदन्नुच्चरित (सूय चर प्रमति राजकाय में उत्तरन होत बाल राजाभा क सक्षिप्य वगन) पुराण का यह पञ्च लक्षण हैं। इस लक्षण स सर्वांगक पठित होत वाले प्रायः अविकार्य म्हापुराण हैं पर कुछ ऐसे भा हैं जिनमें सब लक्षण पठित नष्टा होत। पुराण गच्छेत् का व्यवहार अवयवद गतपञ्चब्राह्मण छात्राय बहदारण्यक तत्तिरधारण्यक आर्वाग्यनगद्यमूत्र आगम्यन उममूत्र मनुसंहिता रामायण महाभारत प्रमति हिन्दू जाति व प्राक्जनम एवं सम्प्रति प्रया म विद्या गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भा पुराण का यह लक्षण था। अवयवमहिता के श्रुत सामानि छ्वांसि पुराण प्रमुषा सह (अथवा ११ ७ २४) इस मत का श्रुत साम छन्द अर पुराण य साथ उत्तरन हुए यत्त स्फुट अर है। बृहदारण्यक अर गतपञ्चब्राह्मण में एक स्थान पर यह वगन किया गया है कि जिस प्रकार गले बाण्ड ग उत्तरन अग्नि म पुष्पक-पुष्प पुत्र निकला ह उस प्रकार इस भाग्य भूत व निश्चय म क्रमवद यनुवत् साम व अवयवद इतिहास पुराण विद्या उपनियत इहाक सूत्र व्याख्या अर अनुव्याख्यान निकल है। य सर्वा दना निश्चय हैं। इसमें भा पुराण का इतिहासादि स पक्व वचन किया गया है। छात्रायननियत के स हावाव श्रुतेद भगवच्छेपेति यजुषदमाथवण चतुर्विंशतिहास पुराण पञ्चम वेदाना वेदम् । (छात्राय ३० ७ १ १) इस वचन द्वारा पुराण भा वन्मसू म पाचर्वा वन् माना गया है। इस प्रकार महाभारत और रामायण में भी पुराण गच्छेत् का अनेक स्थान पर प्रयोग हुआ है। अथवा नृकलाबाध न न दारण्यक क भाष्य में पुराण गच्छेत् व्याख्या क है। जन्म कर्त्ता है कि वत्त म उक्त अर पुरुषवा न वयागवचन जाति ब्राह्मणभाग का नाम इतिहास अर मन्त्रे य ल एकमात्र अमन् या इति मूर्ति प्रक्रिया व पठित पुनान का नाम पुराण है। इस प्रकार आचार्य

सायण ने भी वेदों में आये हुए पुराण गण को निरुक्ति करते हुए सृष्टि-प्रक्रिया घटित वृत्तान्त को पुरा माना है। 'गव'राधाय एवं सायण का परिभाषा के अतिरिक्त महाभारत एवं रामायण में पुराणा का जो परिचय दिया गया है उसमें सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्त के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदिपर्व में महर्षि गौतम ने कहा है—

पुराण हि कथा दिव्या आदिवशाच्च धीमताम्।

कथ्यते य पुराणस्यभि भूतपूज्य पितृस्तव॥

(महाभारत आदिपर्व ५२)

अर्थात् पुराणा में दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवशात् वर्णन हैं। यहाँ नहीं महाभारत व आदिपर्व में उन समस्त राजाओं का नामावली है जिनके वर्णन पुराणा में है। इसी प्रकार रामायण में बालकाण्ड में जबमग में केवल चारों ओर सगल वर्णित कथाओं को भी पुराण सत्ता दी गई है। इन बातों पर विचार करने से पता लगता है कि वर्णन से लेकर रामायण एवं महाभारत काल तक जो पुराण प्रचलित थे उनमें सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्तों दिया कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवशों का वर्णन था। पुराण व अनुदा प्रचलित सगल प्रसिद्धिपूर्ण इत उपयुक्त लक्षण से इसका समानता है। अस्तु

उपयुक्त सवमाय गण्य प्रसिद्धिपूर्ण इत्यादि लक्षण व अनरिक्त ब्रह्मवर्णपुराण में महापुराण में दूसरे लक्षण भी बताये गए और उस सवमाय लक्षण का उपपुराणों का लक्षण बतलाया गया—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तथाञ्च पालनम्।

कर्मणा वासनावातेत्यनुशास्त्रं कर्मण च॥

वर्णन प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।

उदकोत्त हरेरेव दक्षानाञ्च पयस्य युषम्।

द्वैताधिक लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम्॥

(१३२ ३५ ३७)

इस प्रकार यदि ब्रह्मवर्णपुराण का मत माना जाय तो महापुराण में उपयुक्त दस लक्षण होते चाहिये और उपपुराणों में पाँच। किन्तु हमने भी अनुरोधों में वर्णित उक्त सवममाय लक्षण का ही मानना सिद्ध होती है। क्योंकि उपपुराणों में उक्त पाँच लक्षण भी नहीं मिलते।

कथा पुराण इतिहास ह ?

यस्मिन् पुराणमतिष्ठ पुराणं तेन तत् स्मृतम् अर्थात् पुराण में इतिवृत्त होते हैं इसलिए यह पुराण कह्ये है। इसमें स्पष्ट है कि पुराण इतिहास में भिन्न नहीं है। फिर हमारे परिकल्पना है। मनुष्यानुसार मनुष्य व विचार तथा अभिप्रायों परिवर्तित होती रहती हैं। जो बात आज हमें ज्ञान रूप में लगती है वह प्राचीन काल में भी वही हो थी या नहीं और आज भी वही हो जाय या नहीं यह कोई नहीं कह सकता। अतएव इतिहास व आ परिभाषा भिन्न है वहीं प्राचीन काल में भी थी वह निश्चयपूर्वक नहीं बता जा सकता पर ऐतिहासिक पुष्पक का जो उपयोग आज हमें प्राचीन काल में पुराणों का था। इतिहास व जो लक्षण उस समय बताये गए हैं वे सब पुराणों में पाये जाते हैं। यथा देशावस्थान में किया है—

अर्थात् जो यम अर्थ काम और मोक्ष के उपदेशों से युक्त तथा पुरावृत्त कथाओं से संचालित हो, उसे इतिहास कहते हैं।

जैम आखिल इतिहास में सन् सबत् सहित घटनायें रहती हैं अर्थात् सन् सबत् युक्त घटना-समूह या सूची का इतिहास कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल में भी था। किन्तु अतीत काल का इतिहास आधुनिक काल के इतिहास से पूर्णतया भिन्न था अर्थात् अतीत काल में इतिहास की वह परिभाषा न थी जो आज है। पूर्वकालीन इतिहास की व्युत्पत्त्यात्मक व्याख्या से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। देखिए विष्णुपुराण में इतिहास की व्याख्या—

‘इतिहृष्ययम् पारम्पर्योपदेशाभ्यायो, सत्यासतम् आस. अवस्थितरेतेष्विति।’ अर्थात् ‘इतिह’ अर्थात्, जिसका अर्थ है परम्परागत उपदेशयुक्त कथायें और ‘आस’ का अर्थ है—अवस्थिति। अर्थात् जिसमें परम्परागत उपदेशपूर्ण कथाएँ हैं, वह ‘इतिहास’ है। अमरकाल में भी ‘इतिहास’ का यही लक्षण दिया गया है। यथा, ‘पारम्पर्योपदेशो स्यादितिहासिहास्यम्। इतिहास पुरावृत्त’ अर्थात् परम्परागत प्राचीन घटनाओं का विवरण ही इतिहास है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्वाचीन तथा प्राचीन इतिहास में भेद केवल काल या समय का है। आरम्भ के इतिहास का तात्पर्य मनु, सवत्, तिथि सहित बहुन-सी घटनाओं के वृत्तान्त से है, परन्तु प्राचीन काल में सन्, सबत् आदि की उनकी आवश्यकता नहीं थी केवल मनु के समय में व्यक्ति तथा घटना-काल का अनुमान लगा लिया जाता था। अतः पुराण निरं धार्मिक ग्रन्थ हैं नही हैं अपितु उनमें भारत के अतीत का इतिहास भरा पड़ा है। वे प्रागैतिहासिक काल के महत्वपूर्ण इतिहास हैं।

पुराणों का वर्गों में विभाजन

उन अष्टादश पुराणों का वर्गों में भी विभक्त किया गया है। स्वन्दपुराण के वेदाखण्ड में यह वर्णन आया है कि अष्टादश महापुराणों में दस गीत चार ब्राह्मण दो शास्त्र और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण के शिवखण्ड-पञ्चाध्याय में सम्मन्वयखण्ड में लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, सत्य, वृष, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण गीत हैं। इन सब की श्लोक संख्या ३ लाख है। विष्णु भागवत नारदीय और गण्ड—ये चार वैष्णव हैं इनमें भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और वरुण—ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा में पूर्ण हैं। चारों वैष्णव पुराणों में अधिपति शिव और विष्णु का माहात्म्य वर्णित किया गया है। ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का साम्य प्रतिपादित करने हुए भी ब्रह्मा का श्रेष्ठ और सूर्य का त्रिदेवात्मक मित्र किया गया है। इसी प्रकार गीत पुराणों में शिव का सभी देवताओं में अधिपति शक्तिशाली माना गया है। स्कन्दपुराण में यद्यपि विष्णु के भक्त्यात्मकता का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतार एवं कार्यों का भी इसमें वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वाराह, वाहन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनन्त शक्ति का वर्णन किया गया है जिसमें सम्पूर्ण विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवा एवं शक्तियों का कई बार प्रभावहीन होने दिखाया गया है। गीत मन की प्राचीनता एवं उमरे उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अधिकांश पुराणों में उमरों चर्चा की गई है। ऋत् यजु माय आर अथवा चारों वैदिक महिमाओं में ऋत् की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायी का मात्र भी बहुत प्रचार है। यद्यपि इस बात में विवाद उठाया गया

है कि बर्दित रहूँ। प राशिक निब अववा रह है पर यह परम्परा इतना प्रचलित हुआ गई है कि व० तक नहीं स्वीकार करता। वाजसनेया संहिता में वाचवाच में निब गिरण पशुपति न लघव गिनिकण्ड भव शव महात्मा इत्यादि नामा का दम्बने स रह आर निब क एकव म अविश्वास नहीं रह जाता। अववसंहिता में भी महादेव भव पशुपति आदि नामा का उत्पन्न हुआ है। अस्तु शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपयुक्त नामा व परिभाषता मनोहर कथाओं रूप में बर मई है। इनके अनिरुद्ध सात्त्विक राजस एव तामस—इन तीन गुणा व आधार पर भ पुराणा का वग विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक संख्या और अध्यायों का विवरण

उपयुक्त अठारह पुराणा में आए हुए दशका एवं अध्यायों का संख्या नाट्यीय पुराण एवं मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या व अनुसार प्रस्तुत का जा रहा है—

	नाट्यीय पुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	मत्स्यपुराण व अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय संख्या)
१ ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२ परमपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३ विष्णुपुराण	२००००	२३०००	१२७
४ निबपुराण	२४०००	२४०००	४६४
५ भागवत	१८०००	१८०००	५३२
६ नाट्यीयपुराण	२५०००	२५०००	७७७
७ भागवतपुराण	९०००	९०००	१०४
८ अग्निपुराण	१५०००	१६०००	७८३
९ भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१० ब्रह्मवर्णपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११ त्रिगपुराण	११०००	११०००	१६०
१२ वाराणसीपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३ स्वर्गपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४ वामनपुराण	१००००	१००००	२५
१५ कथपुराण	१७०००	१८०००	७९
१६ मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७ गण्डपुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८ ब्रह्माण्डपुराण	१००००	१२२००	१६१

इन पुराणों का जो सम्बरण आश्रित मिल रहे हैं उनमें सबसे भागवत विष्णुपुराण मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उपयुक्त "राज-महा-टीका" है पर साथ पुराणा का "राज-गणना" में पर्याप्त अंतर है।

ब्रह्मपुराण

यह पुनः ब्रह्मपुराण विष्णुपुराण व अनुसार अठारह पुराणा में गणना का पुराण है—

आद्य राघवपुराणों पुराण ब्रह्मपुराण में।

अष्टादश पुराणानि पुराणना प्रचलने॥

किन्तु दस भागवन व अनुसार ब्रह्मपुराण पञ्चवा पुराण ह। नगर पुराण व अनुसार ब्रह्मपुराण म दस हजार मन्त्र हान पाणि किन्तु मन्त्रपुराण म ब्रह्मपुराण व तरह हजार मन्त्र का व मन्त्रा उल्लिखित है। यन्। मन्त्रा लिखित वारा पुराण कमपुराण अ पद्यपुराण म न उल्लिखित है। किन्तु प्रस्तुत मन्त्राण म तरह हजार मन्त्र मा विरामा मन्त्र उल्लिखित हैं। यह मन्त्राण ओम्काराग्रम पूना म प्रवाहित प्रवि व आधार पर तवार किया गया है।

ब्रह्मपुराण व दस भाग है—पूबभाग अर उत्तरभाग। दाना भाग म द्विपञ्चरकुल २४६ अध्याय है। त्रिमय पूबभाग म दस अर अमुरा प्रजापतिवा तथा दस आदि व उत्पत्ति का वणन है। फिर भगवान् मूय व वी का वणन तथा भगवान् राम व अनुषङ्गावतार का उल्लेख है। तदनन्तर पद्मका का वणन एव जगन्नाथर कृष्ण का चरित्र चित्रित है। तत्पश्चात् देवा मरिया वषी पात्रा स्वर्ग अर नरक का वणन मिलता है। फिर मूय व हनुमि एव पावनी का जन्म अर विवाह वणन है। इसके बाद द व आश्वान और एकादशत का वणन मिलता है। वग सगर म पूबभाग म इतना ह विषय आया है।

उत्तरभाग म पुरुषात्मन्त्र का विचार म वणन तथा तापयाज्ञा का विधान निम्नित है। पन पत्रा भा कृष्ण चरित्र पर प्रमाण डाला गया है। अनन्तर ब्रह्मलोक का वणन किन्त्याड का विधान वषाधमयम का निर्माण मुगा का आश्वान तथा प्रलम्ब का वणन किया गया है। नक्षत्रा पत्र तथा गान्ध का मन्त्रा ब्रह्मवाद का निर्माण और ब्रह्मपुराण व पल्लवुति का कातन किया गया है।

वग मा मय प्रतिसम का मन्त्रा अर वानुचरित—य सभी पुराणा म प्राय गमान ए। हैं। किन्तु ब्रह्मपुराण व आदि पुराण हान म इसके मन्त्र भा कुछ पुराणा म ज्यादा मन्त्रा एन गि गए हैं। जय ब्रह्मपुराण क निम्नलिखित मन्त्रा विष्णुपुराण एव नारदपुराण म अविष्कृत म जा गए हैं—

गायीपरिवृता रात्रि गरुडभद्रनोरमास।
मानवामास गाविदी रासारम्भरत्नस्तुक् ॥
गन्धर्व वरुण कृष्णवर्णास्वायनमृत्यु।
अथर्व गन कृष्ण चन्द्रदावनातरय ॥
ब्रह्ममस्तास्तनी गोप्यो निरागा कृष्णरगन।
कृष्णस्य चरमं रत्नी दुष्टा वृदावन द्विजा ॥
एवं मानवशरासु कृष्णवष्टासु तासु च।

(ब्रह्मपुराण अध्याय १८)

गायीपरिवृता रात्रि गरुडभद्रनोरमास।
मानवामास गाविदी रासारम्भरत्नस्तुक् ॥
गन्धर्व वरुण कृष्णवर्णास्वायनमृत्यु।
अथर्व गन कृष्ण चन्द्रदावनातरय ॥

एवं मानवशरासु कृष्णवष्टासु तासु च। (विष्णुपुराण अध्याय १३)
धूम्राग्रजं तस्य विष्णुसमा गुणमृण।
तन्मन्त्रास्वायन प्रतिमा शुभमग्राणा।

प्रथमं शुक्लवर्णम् शारवेन्दुसमप्रभम् ।
 आरवताक्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 नीलाम्बरधरं चोपं बलं बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकधरं दिव्यं गवामुत्तलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजामूतसमिभम् ।
 अतसोपुष्पसकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 पोतवाससमरयुधं शुभ्रं धीवत्सलक्षणम् ।
 खड्गपूर्वकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णायां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
 विविन्नवस्त्रसल्लभां हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विविन्नभरणोपेतां रत्नहारविलम्बिताम् ।
 पीनोन्नतकुक्षां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥
 धूर्त्यतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत् ।
 तत्क्षणात् कारयामास प्रतिमाम् शुभलक्षणां ॥
 कुण्डलाभ्यां विशिष्टाभ्यां कर्णाभ्यां मुविराजिता ।
 चकलाङ्गुलबिम्बासहस्रताम्यां सायुषश्ममताः ॥
 प्रथमं शुक्लवर्णम् शारवेन्दुसमप्रभम् ।
 सुरकाङ्कु महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 नीलाम्बरधरं चोपं बलं बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकधरं दिव्यं महामुत्तलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजामूतसमिभम् ।
 अतसोपुष्पसकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 धीवत्सलक्षणं धीवत्पूर्ववाससमरयुधम् ।
 खड्गपूर्वकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णायां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
 विविन्नवस्त्रसल्लभां हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विविन्नभरणोपेतां रत्नमालाविलम्बिताम् ।
 पीनोन्नतकुक्षां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥

(ब्रह्मपुष्पाङ्ग, ५०, ४८-५९)

यह भूमिका लिखने में मुझ जिन विद्वानों की इतिहास से सहायता मिली है, उनमें प्रति तथा विशेष
 रूप से १० श्री श्री इण्डियन मिनीस्ट्री के प्रति में अस्सी हादिव कृतज्ञता प्रकट करना है ।

सन् २०३३ दि०

रामनरमो

—तारणीश भा

विषय सूची

००

[ब्रह्मपुराण के अन्वता जन्माया के क्रम से विषय व अनुक्रमणिका]

अध्याय १

भगलाचरण तथा नदिपारण्य-वर्णन

भगलाचरण के दृष्टांक नदिपारण्य का वर्णन मुनिया का शुभाग्रमन नदिपारण्य में मृत्यु का जाना तथा ऋषिया का उनसे पुराण सुनने के लिए निवर्तन करना लोमट्पण (मृत) जे द्वारा पुनर्जन्म का आरम्भ। सृष्टि के सम्प्रदाय में विवरण जल के उत्पत्ति ब्रह्मा का आविर्भाव ब्रह्मा द्वारा अण्ड का दो भाग करना ब्रह्मा से मर वि आदि ऋषिया के उत्पत्ति रत्न आदि का उदभव पदस्वन मनु का उत्पत्ति आदि सब के सुनने का फल। १-६

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु का वर्णन

स्वायम्भुव मनु के साथ गिरिका का विवाह गिरिका से प्रियव्र उत्तानपादा पुत्र एवं काम्या नामक कन्या के जन्म का आश्वासन उत्तानपादा के का का वर्णन प्रसंग से पशु का जन्म प्रसंग आ का उत्पत्ति प्रसंग आ व मुरास्ति सवक्षा का जन्म। उनका वक्ष-पुत्र मारिया से विवाह मारिया मे दक्ष उत्पत्ति एवं दक्ष का वर्णन इस कथा के सुनने का फल। ६-११

अध्याय ३

देव-दानव उत्पत्ति-वर्णन

देवात्पत्ति का वर्णन मवप्रथम दक्ष के मानव सन्तान का वर्णन पुत्र मयुन प्रथम में अमिन्त नामक पत्नी में हयवा का जन्म। पिता व आमा से वंश वर्णन ५ इन्द्रक हयवा का नारद का उत्पत्ति और उनका वंश म जाना। फिर गन्धर्वा नामक पुत्र का जन्म उनका न नारद के उत्पत्ति से पूर्ववत् पुत्र वंश म जाना। अनन्तर दक्ष द्वारा पुत्र मात कन्या का जन्म दत्ता विवा एवं उनका अज्ञान का वर्णन। महर्षि व उत्पत्ति। भूत सृष्टि सुनने का फल। ११-२१

अध्याय ४

देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

पितामह द्वारा उन उन स्थानों में किए गए दत्ताना का राज्याभिषेक-वर्णन। पृथु-वरिष्ठ का आरम्भ। वंश का धरित। वंश व दुर्धरिता का देव-ऋषिया द्वारा धारणा। ऋषिया व गाण से मरे हुए वंश व धातु व

मन्यन से पूष का जन्म, पूष का राज्याभिषेक, पूष के राज्य की स्थिति का वर्णन, सूत, भागध एव दन्दी जन द्वारा पूष की स्तुति। देवताओं के साथ पूष द्वारा पृथ्वी का दोहन, जिसमें बछड़े, पात्र, दूध आदि का वर्णन है। २१-३१

अध्याय ५

मन्यन्तरी का वर्णन

मन्यन्तरा में देवर्षि, इन्द्र आदि का निरूपण। महाप्रलय एव अल्प प्रलय का वर्णन।

३१-३६

अध्याय ६

सूर्योत्पत्ति का वर्णन

सूर्य के पुत्र एव कन्या का वर्णन छाया एव सत्ता का सबाद और उनका चरित्र-वर्णन। सूर्य एव यम का सबाद। छाया का धार्ष्टी रूप धारण करना सूर्य का अन्व रूप से छाया के साथ सगम। देव-वैद्य अश्विन-कुमार की उत्पत्ति। सक्षेप से सूर्य-सन्तान यमुना दानेश्वर तथा सार्वणि का वर्णन। देव-सृष्टि के सुनने का माहात्म्य।

३६-४०

अध्याय ७

सूर्य-वंश का वर्णन

सूर्य-वंश में इला की उत्पत्ति इला एव मैत्रावरुण का सबाद। इला का बुध के साथ समागम। सुद्युम्न आदि का जन्म, उनका वंश-वर्णन, इक्ष्वाकु आदि मनु-पुत्रा का वंश-वर्णन। कुश-स्वली का निर्माण। बलदेव और रेवती का विवाह। कुवलयाश्व के चरित्र का वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का चरित्र-वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का राज्याभिषेक एव कुवलयाश्व के घर में उत्तक मुनि का आगमन और उनसे द्वारा धुन्धु राक्षस के चरित्र का वर्णन। पिता की आज्ञा से कुवलयाश्व का उत्तक के साथ धुन्धु राक्षस को मारने के लिए जाना। धुन्धु राक्षस का वध। धुन्धुमार को उत्तक का वरदान। धुन्धुमार के वध में होने वाले राजाज्ञा का सक्षेप से चरित्र-वर्णन। सत्यत्रन राजा का चरित्र-वर्णन एव गालव का चरित्र-वर्णन।

४१-५०

अध्याय ८

सूर्य-वंश का वर्णन

सत्यत्रन का त्रिगु नाम पहना त्रिगु का सचर्यर स्वर्ग जाना। हरिश्चन्द्र का जन्म-वचन। राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना। घोड़े का प्यासे के लिए पृथ्वी को खादते हुए साठ हजार सगर-पुत्रों को क्षणिक मुनि का दाप। अवशिष्ट पार पुत्रा को क्षणिक का वरदान। साठ हजार पुत्रा का जन्म-वचन। भगीरथ की उत्पत्ति, गंगा का भार्गीरथी नाम पहना।

५०-५७

अध्याय ९

चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन

अग्नि ऋषि का तप एव अग्नि के नेत्रों से दत्त प्रकार की सृष्टि। चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्र का बीज एव ओगयिषा का स्वार्थ, बनना। रात्रमूष यज्ञ का आरम्भ। चन्द्र द्वारा वृक्षपति की स्त्री तारा का हरण, उसके निमित्त

देव-दानवा का युद्ध। बृहस्पति का तारा की प्राप्ति, गर्भ-न्यास के लिए तारा से बृहस्पति वा सक्काय कथन, इषीका-स्तम्भ में तारा द्वारा गर्भ-न्यास एवं बुध का प्राधुमन्य।

५७-६०

अध्याय १०

चन्द्रवश का वर्णन

साम-पुत्र बुध के अश्व में पुरूरवा की उत्पत्ति। पुरूरवा के पुत्र वा आख्यान-वर्णन। गाधि-राज का जन्म। गाधि-कन्या सत्यवती का ऋचीक ऋषि के साथ विवाह। ऋचीक द्वारा सत्यवती को दा वर देना—एक उसके लिए और दूसरा उसकी माना के लिए। चरु के बदल आने से उसके प्रभाव से उत्पन्न पुत्रा वैशुग-स्वभाव में व्यस्य्य होगा—ऐसा ऋचीक द्वारा सत्यवती के प्रति कथन। सत्यवती का ऋचीव से वरदान की प्राप्ति। जमदग्नि की उत्पत्ति। रेणुका एवं जमदग्नि का विवाह। परशुराम की उत्पत्ति। विश्वामित्र का जन्म एवं तप आदि का वर्णन।

६०-६६

अध्याय ११

चन्द्र-वश-वर्णन

आयु के पाँच पुत्रों की उत्पत्ति। रजि का चरित्र-वर्णन। रजि से पाँच सौ पुत्रों की उत्पत्ति। देव-दानवा का युद्ध। दैत्या को जीतने के लिए देवताओं द्वारा रजि से प्रार्थना। रजि द्वारा इन्द्र पद की माँग। पदचातु रजि से दैत्या का पराजय और रजि को इन्द्र-पद की प्राप्ति। रजि और इन्द्र का प्रमालाप। रजि के पुत्रों द्वारा इन्द्र पद का हरण एवं इन्द्र द्वारा उनका वध। इन्द्र को पुन अपने पद की प्राप्ति। राजा अनना की सन्तान का वर्णन। यमु नामक राजा से घन्धस्तदि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति। आयुर्वेद के आठ भाग कर के अपने शिष्या का वितरण करना। काशी को निकुम्भ का शापदान तथा शाप के अन्त में अलकं द्वारा पुन स्थापन।

६६-७१

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

नहुष से ययाति आदि पुत्रा का जन्म। ययाति के वध का वर्णन। ययाति से ५ पुत्रा का उत्पत्ति। यदु के प्रति ययाति की अपन वृद्धावस्था ग्रहण करने की आज्ञा। वृद्धत्व का ग्रहण न करने पर यदु का ययाति का शाप। पुष्ट से ययाति को युवावस्था का दान और भोग करने के बाद ययाति का ज्ञान।

७१-७५

अध्याय १३

पुष्ट के वध का वर्णन

पुष्ट-वश का वर्णन। पुष्ट-वश के अनर्घत वध-वश का कथन। दुष्यन्त का जन्म। दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति। भरत के वंशजा की भारत उपाधि। जहनु के द्वारा मगार्ज का शाप। मुष्ट से निमित्त मुष्टशेख का वर्णन। सोम-वश में प्रसिद्ध राजाओं—शानु से जनमजय तक—का वर्णन। पुष्टवश की समाप्ति। कार्तवीर्यार्जुन का वर्णन, कार्तवीर्य का आपव मुनि का शाप।

७६-९२

विषय सूची

अध्याय १४

यइ पुत्र कऋ के वंश का वर्णन

यइ के पुत्र श्रेष्ठ के वंश का वर्णन। वसुदेव का जन्म। वसुदेव के चौदह पत्नियाँ के नामावली। सक्षप मे
कृष्ण जन्म-वर्णन। कालवर्णन के अर्थ से कृष्ण सहित वादवा का भाग जाना। ९२-९७

अध्याय १५

वृष्णि के वंश का वर्णन

वृष्णि-वंश का वर्णन। वसन्तकार्यकुब्ज राजा प्रथम का चरित्र वर्णन। बभ्रु एवं दवावध के महिमा का
वर्णन। देव के सात कन्याओं का उपन होना एवं कंस का जन्म। ९७-१०२

अध्याय १६

सत्राजित का उपाख्यान

सत्राजित के चरित्र का वर्णन। स्वमतक मणि का आख्यान। कृष्ण का जन्मवत्स। साथ विवाह।
शुद्धराज जन्मवत्स से स्वमतक मणि का लाना। कृष्ण और सत्यभामा का विवाह-वर्णन। १०२-१०७

अध्याय १७

स्वमतक मणि का कथा

स्वमतक के लिए गतघन्टा कहारा सत्राजित के मृत्यु। अकर के पास स्वमतक मणि का मिलना। १०७-११०

अध्याय १८

भुवनकाश का वर्णन

भुवनकाश-वर्णन। मुनिया का लामहर्षण के साथ सवाण। भूषाल का वर्णन। सात ह पा का वर्णन।
जम्बूद्वीप का वर्णन एवं मरु परत का वर्णन। भरत आदि राजा का वर्णन। मयदिग्भवता का वर्णन। १११-११६

अध्याय १९

जम्बूद्वीप का वर्णन

जम्बूद्वीप का वर्णन। भारतवर्ष का वर्णन। नंद एवं उपनिषा के नामावली का वर्णन। जम्बूद्वीप का
प्रमाणा। ११६-११८

अध्याय २०

जम्बूद्वीप-वर्णन

जम्बूद्वीप का वर्णन। प्ल इला का वर्णन तथा कर्ण पर रत्न का अनुपमा की आयु का प्रमाण। शाकल
द्वीप गुण्डाक्ष श्रीचन्द्राक्ष सावर्द्धाण पुण्डरीक्ष और रासाशकपवन का वर्णन। ११९-१२६

अध्याय २१

पाताल के प्रदाण का वर्णन

पाताल आदि सात लोकों का वर्णन तथा जन्म का पराक्रम-वर्णन।

१२६-१२८

अध्याय २२

नरक का वर्णन

नरक वर्णन—रौरव आदि नरकों की नामावली। पाप का वर्णन। पाप से नरक-प्राप्ति। पापी पुरुषों के पापों का नाश करने के लिए हरि-स्मरण ही प्रायश्चित्त है।

१२९-१३३

अध्याय २३

भू, भुवर् आदि लोकों का वर्णन

आकाश और पृथ्वी का वर्णन। सौरादि मण्डलों का तथा भूर्भुवादि सात लोकों का प्रमाण-वर्णन। महादेव की उत्पत्ति का वर्णन।

१३३-१३७

अध्याय २४

भुव की स्थिति का वर्णन

विशुमारचक का वर्णन, भुवस्थिति का वर्णन।

१३७-१३९

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

शारंगतीर्थ का वर्णन। त्रिनिद्रिय पुरुष की प्रशंसा। सक्षप से तीर्थों का नामवचन। तीर्थों के माहात्म्य पढ़ने का फल-वर्णन।

१३९-१४५

अध्याय २६

ब्रह्मा और महर्षि का सवाद-वर्णन

वेदव्यास से मुनियों का सवाद। मंड के विषय में ब्रह्मा से मुनियों का प्रश्न।

१४५-१४८

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

भरत-मण्ड की प्रशंसा। भरत-मण्ड में होने वाले पर्वत और नदियों का वर्णन और वहाँ पर होने वाले नाशों का वर्णन। भरत-मण्ड के माहात्म्य का पठन एवं श्रवण का फल।

१४८-१५५

अध्याय २८

काणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ओङ्क (उडीमा) का वर्णन तथा वहाँ पर रहने वाले काणादित्य की प्रशंसा। काणादित्य नामक सूर्य की महिमा

का वर्णन। सूर्य की पूजा विधि का वर्णन। मदनभञ्जिका नामक यात्रा का प्रशंसा। रामेश्वरम् नामक सिर्वालिंग की महिमा का वर्णन। १५५-१६०

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

सूर्य के ध्यान, पूजा और भक्ति के माहात्म्य का वर्णन। भाव भास में सप्तमी के दिन सूर्य की आराधना से विशेष फल प्राप्ति का वर्णन। १६१-१६६

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति सूर्य से ही है, ऐसा वर्णन। इन्द्र पाता आदि बारह सूर्यों से शत्रुनाश एवं त्रिविध प्रजा की उत्पत्ति, आदित्याख्यान का फल-कथन। १६६-१७४

अध्याय ३१

आदित्य का नाम-माहात्म्य

त्रिलोकी का मूल एवं परम देव सूर्य ही है। आदित्य के सामान्यतः द्वादश नामा का वर्णन। विष्णु आदि बारह आदित्यों का चैत्र आदि द्वादश मासा में तपन-कथन। सूर्य के विकर्तनादि २१ नामों का वर्णन एवं फल-कथन। १७४-१७७

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

दैत्यो से पीड़ित देवों के दुःख-नाश के लिए आदिति द्वारा सूर्य की आराधना एवं स्तुति। अदिति को सूर्य का दर्शन। अदिति की प्रार्थना से प्रसन्न सूर्य का वरदान मांगने के लिए प्रेरित करना। 'मेरे पुत्रों को यमनायी बनाइए'—ऐसा अदिति का वर मांगना। मैं तुमसे जन्म लेकर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा—ऐसा कहते हुए सूर्य का अलक्षित होता। देवमाना अदिति के गर्भ में सूर्य की स्थिति। कृच्छ्र एवं चाण्डालादि व्रता में गर्भ धारण करती हुई अदिति से 'तुम इनने कठिन व्रतों के द्वारा गर्भ को क्या नष्ट कर रही हो'—इस प्रकार ब्रह्मण का कहना। तदनन्तर पति के कथना से कुप्ति अदिति का गर्भ-त्याग। गर्भाण्ड से प्रसूत हुए आदित्य की ब्रह्मण द्वारा स्तुति। यह गर्भाण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा—यह आत्मसाक्षात्कारी का कथन। आत्मसाक्षात्कारी मूल कर देवताओं का आगमन। गर्भाण्ड की सहायता में देवताओं का दैत्या के साथ युद्ध। युद्ध में दैत्या की पराजय। प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्य की स्तुति। सूर्य का सजा के साथ विवाह। सूर्य की सन्तान का वर्णन। सजा और छाया का संवाद। सजा का पिता के घर जाना। अनन्तर छाया की सन्तान का वर्णन। छाया का सजा की सन्तान के साथ विषम प्रारंभ। खण्ड और सजा के मन्त्रों में सूर्य-स्तुति-वर्णन। देवदत्त सूर्यस्तुति। सूर्य के तेज का स्तुति-वर्णन। १७७-१८८

अध्याय ३३

सूर्य के नामों का माहात्म्य

अन्धकार से विमल ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा सूर्य की स्तुति । देवताओं को सूर्यदेव का वरदान । सूर्य के १०८ नामों का माहात्म्य और उसका फल । १८८-१९२

अध्याय ३४

चक्र का आस्थान-वर्णन

चक्र की, महिमा का वर्णन । सक्षेप से दक्षकन्या, सती आदि दक्ष-पुत्रियों का यज्ञोत्सव देखने के लिए पिता के घर जाना । दक्ष और सती का संवाद । क्रोधयुक्त सती का योगान्ति से शरीर-दाह । शक्र और दक्ष का परस्पर घाप-दान । ब्रह्मा और मुनियों का संवाद । पार्वती के आस्थान का आरम्भ । हिमालय से उमा की उत्पत्ति । कश्यप और हिमालय का संवाद । तप करने हुए हिमालय को ब्रह्मा का वरदान । हिमालय से मेना से तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नामकरण । तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का वरदान । १९३-२०३

अध्याय ३५

पार्वती का उपास्थान-वर्णन

उमा का देवताओं के साथ संवाद । विकृतरूपधारी महादेव का पावता के पास जाना । विकृत रूप का वर्णन । शिव-पार्वती का संवाद । विकृतरूपधारी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप । ये शिव हैं ऐसा जानकर पार्वती द्वारा शिव का वरण । अशोक वृक्ष की प्रति शिव का वरदान । शिव का अन्वेषण करना । श्राद्ध से प्रसन्न बालक का राखन एवं पार्वती तथा शक्र का संवाद । 'मेरा तप नष्ट हो गया' यह जानकर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती का शक्र का वरदान । २०३-२१०

अध्याय ३६

पार्वती का स्वयंवर-वर्णन

पार्वती के स्वयंवर में सम्पूर्ण देवताओं का आगमन । देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा । शिशुरूप से शक्र का पार्वती की गोद में साना । काष्यपुक्त इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव पर शस्त्र प्रहार । शिव द्वारा समस्त देवों का सम्मन । सम्पूर्ण देवताओं को छुड़ाने के लिए ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति । स्तुति सुनकर शक्र का प्रादुर्भाव । पार्वती द्वारा शक्र के चरणों में माला का अर्पण । ब्रह्मा द्वारा हिमालय की प्रशंसा । शिव के विवाह के लिए ब्रह्मा ने द्वारा नगर का निर्माण । देव गन्धर्व आदि का आगमन एवं वसन्त आदि छह ऋतुओं का समागम । पार्वती और शक्र का विधिपूर्वक विवाह होना । २१०-२२३

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

देवहूत महेश्वर की स्तुति । शिव के सम्मुख देवताओं का वर के लिए जाना । अपने गणों के साथ शक्र का अपने स्थान पर गमन । २२४-२२७

अध्याय ३८

मदन-दीह का वणन

महेश्वर की मयामि से कामदेव का जलना। रति को महेश्वर का वरदान। पावत और गकरक का डा। पावत का माना के घर जाना। माना मेना के द्वारा पावत का उपहास। शिव के आगे माना के उपहास का वणन। पावता के क्रोध को गान्त करने के लिए महादेव का सुन्दर हास्यालप। २२७-२३२

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का विवक्षित

इन्द्र आदि देवताओं का दक्ष के पास जाना। देवताओं का साथ श्रुति दक्ष का सवाद। दक्ष का दक्ष के साथ सवाद। पावत और महेश्वर का सवाद-वणन। वरभद्र के उत्पत्ति और शिव का आना से वरभद्र का दक्ष के यज्ञ में जाना एवं यज्ञ का विवक्षित। इन्द्र आदि का वरभद्र से प्रार्थना करना और वरभद्र का शिव का आना से यज्ञ मष्ट करने के लिए आगमन रूप उत्तर देना। मगल्य धारण कर के दक्ष का आकाश में जाना। क्रुद्ध गणगज के ललाट के स्वेद विषु से अग्नि के उत्पत्ति। बह्म पर उत्पन्न हुए पुत्र के द्वारा यज्ञ का विवक्षित। यज्ञ-कर्म में देवताओं को भाग देंगे—इस प्रकार ब्रह्मा का गकर के प्रति कथन। गकर से दक्ष का वर प्राप्ति। २३२-२४२

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव को स्तुति

दक्ष द्वारा शिव-सहस्र नाम का वणन तथा प्रसन्न होकर गकर का दक्ष को वरदान। सम्पूर्ण वस्तुओं में गकर के द्वारा शिव को विवक्षित करना। ज्योतिष के पठन और श्रवण का फल। दक्षस्तोत्र का फल-कथन। २४२-२५३

अध्याय ४१

एकान्नक्षत्र-वणन

एकान्नक्षत्र का माहात्म्य-कथन।

२५३-२६०

अध्याय ४२

उत्कलक्षत्र का वणन

बिरजा देव वरुणा और कपिला आदि अष्ट तथों का वणन। उत्कलक्षत्र का वणन और बह्म पर पुण्यात्मन दक्ष का माहात्म्य तथा छद्म आदि देवी के स्वर्ण का वणन। २६०-२६४

अध्याय ४३

अवन्ति-वणन

ब्रह्मा के प्रति भुनिया का प्रश्न और अवन्ति-वणन का वणन। महाबल नामक शिव का महिमा का वणन तथा क्षिप्रा नाम का वणन। बह्म पर गोविन्द स्वामी नामक विष्णु का महिमा का वणन। २६५-२७१

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिण-समुद्र के तट पर जाना

अवनि-देश के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन और सम्पूर्ण नगरवासियों के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर जाना।

२७२-२७७

अध्याय ४५

पुरपोत-क्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा के प्रति मुनिना का प्रश्न। मुनिना का सबेह दूर करने के लिए इतिहास-कथन। सुमेरुपर्वत पर बैठ हुए ऋषी और विष्णु का संवाद। विष्णु के द्वारा पुरपोतम नामक तीर्थवर्णन के प्रसंग में सृष्टि का वर्णन। ब्रह्मा और विष्णु का वातालाप। पुरपोतम क्षेत्र में स्थित बट वृक्ष का वर्णन। बट वृक्ष के दक्षिण की तरफ मन्दिर में विष्णु-मूर्ति के दर्शन से सन मनुष्या का वैकुण्ठ-गमन। तदनन्तर यम के द्वारा विष्णु की स्तुति। मूर्ति को डकने के लिए यम की प्रार्थना। तत्पश्चात् यमराज का अपनी नगरी सयमनी का जाना।

२७८-२८५

अध्याय ४६

पुरपोत-क्षेत्र का वर्णन

पुरपोतमक्षेत्र का वर्णन और वहाँ पर त्विन्नोत्पला नामक नदी का माहात्म्य। नदी के दोनों तरफ में गाँवों वहाँ पर रहने वाले एक वर्णाश्रम धर्म को धारण करने वाले पुरपा और स्त्रिया का वर्णन। राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा रमणीय स्थान दक्ष बट भवन नामका पूजा करने का सकल्प।

२८५-२८८

अध्याय ४७

मन्दिर बनवाने के लिए राजाओं का आह्वान

राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा वारी-गरी को शुभ मूर्त में मन्दिर का निर्माण आरम्भ करने के लिए आज्ञा प्रदान। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उत्तम शिला लान के लिए कलिगादि माण्डलिक राजाओं का विन्वाक्य के प्रति प्रस्थान। इन्द्रद्युम्न के दूत द्वारा सप्ताह के समस्त राजाओं को सूचना देने पर उस क्षत्र मयाने का वर्णन। इन्द्रद्युम्न का राजाओं के साथ संवाद। राजा के द्वारा यज्ञ निर्दिष्ट किए सब सामग्रियों को जुटाना। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उसके पुराहिण द्वारा यज्ञस्थल-निर्माण और वहाँ सब लोगों के प्रवेश का वर्णन। यज्ञ का आरम्भ नया यज्ञ के समारंभ का दसहरा राजा का हर्ष की प्राप्ति। यज्ञ के पीछे आदि मय पदार्थ लाने के लिए राजा का आदेश। वाद्ययंत्रों, वस्त्र आभूषण आदि अनेक दान देने का वर्णन। सबकी श्रम के द्वारा पूर्ण। यज्ञ और प्रसाद की समाप्ति।

२८८-२९६

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिवा का निषीध

प्रतिवा प्राप्ति के लिए दिन रात पिन्ना से व्याकुल राजा द्वारा सब भोगों का परित्याग।

२९६-२९७

अध्याय ४९

इन्द्रसुम्न द्वारा भगवान् को स्तुति

राजा के द्वारा भगवान् की स्तुति। स्तुति-पाठ का फल।

२९८-३०३

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

चिन्ताग्रस्त राजा को स्वप्न में भगवान् का दर्शन। प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बताया। शान बाल उठ कर निरवकर्म करने के बाद असहाय राजा का मूर्ति दूढ़ने के लिए जाना। बड़ बूढ़ का बाटते हुए राजा के प्रति बाह्य-वैश्यादी विष्णु एवं विश्वकर्मा का प्रश्न। प्रतिमा निर्माण के लिए यत्न कर रहा हूँ—ऐसा राजा के कहने पर भगवान् का प्रसन्न होना और विश्वकर्मा को तीन प्रतिमा बनाने की आज्ञा देना। विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्तियों का निर्माण। 'बोधु' व 'साध' मूर्ति को देखने हुए राजा का 'आप बौन है यह प्रश्न।

३०४-३०९

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रसुम्न का संवाद

सर्वगगनियन्त्रक आदि गुणा से युक्त मैं ही पुरुषोत्तम हूँ—ऐसा भगवान् का वचन। राजा का निर्गुण आदि गुण विविष्ट भगवत्पद प्राप्ति के लिए स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना। भगवान् का 'तथास्तु' कहकर वरदान देना और अन्तर्धान हो जाना। पुरुषोत्तमज्ञान में तैला मूर्ति का धूम मुहूर्त में स्थापन। इस प्रकार राजा के मनोरथ की पूर्ति एवं विष्णुपद की प्राप्ति। ब्रह्मा द्वारा पुरुषोत्तम क्षण में आए हुए पंच तीर्थों का वचन।

३१०-३१६

अध्याय ५२

मार्कण्डेय मुनि का वटवृक्ष-दर्शन

मार्कण्डेय ब्राह्मण का आरम्भ—वल्गव्यस म अन्तः प्रकार के बटगा में व्याकुलित मार्कण्डेय का वटवृक्ष का दर्शन।

३१७-३१८

अध्याय ५३

अध्याय ५६

विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद

विस्तार से विष्णु एवं मार्कण्डेय का संवाद-वर्णन और भगवान् का अन्तर्धान ।

३२९-३३६

अध्याय ५७

पञ्चतीर्थों की विधि का वर्णन

पञ्चतीर्थों का वर्णन तथा मार्कण्डेय नामक तालाब की प्रशंसा । षट्पुल की पूजा-विधि विशेष रूप से पञ्चतीर्थों का वर्णन तथा कृष्णदर्शन का माहात्म्य ।

३३६-३४१

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा और मुनियों के संवाद में नरसिंह-पूजा का विधान तथा नरसिंह-माहात्म्य का वर्णन ।

३४२-३४८

अध्याय ५९

इवेतमाधव का माहात्म्य-वर्णन

कपाल गौतम ऋषि के मृतपुत्र की जिलाने के लिए इवेत राजा की प्रतिज्ञा । ब्रह्मा के प्रति इवेतमाधव की स्थापना के लिए मुनियों का प्रश्न । वैष्णव पद की प्राप्ति के लिए इवेतकृत विष्णु-स्तुति । इवेत राजा की विष्णु का वरदान ।

३४९-३५७

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

नारायण के अष्टाक्षर मंत्र की प्रशंसा एवं नारायण-कवच का वर्णन । समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन । जल में ही स्नान के अंग सध्या आदि नित्यकर्म एवं देवता ऋषि और पिता का तर्पण करना ।

३५७-३६२

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

शरीर-गुण्डि का वर्णन । पादशोषचार सहित पूजन-विधि का वर्णन ।

३६३-३६९

अध्याय ६२

समुद्र स्नान का माहात्म्य

समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य-वर्णन ।

३६९-३७१

अध्याय ६३

पञ्चतीर्थों का माहात्म्य-वर्णन

पञ्चतीर्थों के माहात्म्य का निरूपण ।

३७१-३७३

अध्याय ६४

महाज्योती की प्रशंसा

महाज्योती (ज्योत्स्ना नक्षत्रयुक्त चिह्न) की प्रशंसा का वर्णन । प्रयागादि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियों में मूर्त और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान-दान करने से प्राप्त होने वाले फल के समान महाज्योती में राम, कृष्ण और सुभद्रा का दान करने से फल की प्राप्ति ।

३७४-३७५

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का माहात्म्य-वर्णन

कृष्ण के स्नान का विधि तथा स्नान का माहात्म्य। दशनाभा का कृष्ण का स्तुति करना। कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल-प्राप्ति। ३७६-३८४

अध्याय ६६

गुडिनाथात्रा का माहात्म्य-कथन

हूँ भगवन् ! मेरे तालाब के निकट आपका यात्रा साल दिना तक हार्न। चाहिए—इस प्रकार राजा इन्द्रधम्म द्वारा भगवान् से प्रार्थना करने पर भगवान् का स्वर्गोत्तराविन का नाम गुडिनाथात्रा पड़ना। ३८५-३८७

अध्याय ६७

बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

प्रत्येक यात्रा का फल-कथन। यात्रा के प्रसंग से पूजा विधि का वर्णन। द्वादश यात्राओं का फल-वर्णन। ३८७-३९४

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

विष्णुमन्दिर विष्णुस्वरूप और विष्णुलोक के महत्त्व का वर्णन। वहाँ पर जाने वाला का निर्णय। ३९४-४००

अध्याय ६९

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-वर्णन

पुरुषोत्तमसूत्र का माहात्म्य-वर्णन।

४०१-४०४

अध्याय ७०

तीर्थसंस्थाविषयक प्रश्न

ब्रह्मा से नारद का सातों की सन्ख्या के सबब में प्रश्न करना।

४०४-४०८

अध्याय ७१

यगा की उत्पत्ति की कथा

यगा का उत्पत्ति का वर्णन। तारकामुर ने भय से देवताओं का विष्णु की स्तुति करना। विष्णु की आज्ञा से दशनाभा का हिमाश्रम के निवृत्त भवन। वृत्तर्त्त की आज्ञा से कामदेव का शहर के पास जाना और शहर के नेत्रान्ति से कामदेव का दाह। ४०९-४१३

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

हिमालय का वर्णन। त्रिव के विवाह का वर्णन। गौरी के रूप-दान में राजा का वीर्यपात तथा उसी वीर्य से बालिल्या की उत्पत्ति। ४१४-४१७

अध्याय ७३

यज्ञ की प्रशंसा का वर्णन

राजा बलि की प्रशंसा। राजा बलि के एश्वय का सहज नगर दशनाभा का विष्णु के पास जाना। देवताओं

द्वाग विष्णु की स्तुति। माना अदिनि के गम से वामन की उत्पत्ति। राजा बलि के यज्ञ में वामन का गमन। राजा बलि और दुराधर्म का सखाद। वामन का भूमिदान तथा बलि और वामन का परस्पर सखाद। भगवान् वामन से राजा बलि का वन्दन की प्राप्ति। गंगा का महेश्वर की जटा में समा जाना। ४१७-४२४

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदा का कथन

गंगा का दो रूप का कथन। शकर का जटा से गंगा का अलग करने के लिए पार्वती और गणेश का बोली। गान्धर्वा की प्रणसा तथा आश्रम का वर्णन। स्वामी कातिकेय के साथ गणेश का गतिम के आश्रम में जाना। गणेश की आज्ञा से गारुड धारण करके जथा का गतिम का आश्रम में जाना गतिम के रोकन पर जथा का गिरना। गावर्ध्व के पाप का दूर करने के लिए गतिम का उपाय बतलाना। अपने सकल्य की सिद्धि के लिए गतिम की प्रार्थना। सबका अपने अपने स्थान में जाना। शकर का प्रसन्न करने के लिए गतिम का कैलास पर्वत पर गमन। ४२५-४३४

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

गौतम का उमा-महेश्वर की स्तुति करना। गौतम का उमा-महेश्वर का दर्शन। सबन्तर गंगा प्राप्ति के लिए गतिम की प्रार्थना। गंगा की प्रणसा और गतिम की लाजा। ४३४-४४०

अध्याय ७६

स्वर्ग आदि में गंगा का गमन

स्वर्ग मत्स्य और पानाल में विभक्त होकर १५ आकृतियां से गंगा का गमन। गादाधरी तीर्थ की स्तान-निधि। ४४१-४४३

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

गौ. म. का महत्त्व वर्णन करके सब नदियां में गौतमी का श्रेष्ठ सिद्ध करना। ४४३-४४५

अध्याय ७८

सगर का आस्थान

पुत्रहन् राजा सगर का वशिष्ठ से सन्तान विषयक प्रश्न पूछना। वशिष्ठ ने बताया स सगर का पुत्रा की प्राप्ति। इंद्र द्वारा चुराये गए पोडे की खोज के लिए सगर-पुत्रा का इषट-उत्तर जाना। निद्रा-मुक्त के अनुन्ध के लिए देवताओं की आज्ञा से कपिल मुनि का रसातल में गमन। कपिल ने प्रति सगर-पुत्रा का दुर्वचन। कपिल के श्रेष्ठ से सगर का पुत्रा का भस्म होना। सगर का नारद में अपन पुत्रा के नष्ट होना का वृत्तान्त सुनना। असमञ्जस का स्वधर्म से निवृत्तना। कपिल की आज्ञा से पुत्रा को उद्धार के लिए भर्गोरथ का रथान्वय व प्रति गमन। भर्गोरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर सगर का वर देना। कपिल ने शाप से मृत पुत्रा का पवित्र करने के लिए गंगा के साथ भर्गोरथ का रसान्त में जाना। ४४५-४५२

अध्याय ७९

वराहतीय का वचन

वराहतीय का माहात्म्य-वचन।

४५३-४५४

अध्याय ८०

कपोततीय का वचन

लुब्धन-वरिय का वचन। कपाता के विरह से दुःख कपोत का विलाप। कपात के विलाप को सुनकर पति के प्रति कपोत का वचन। वचन द्वारा अनिधि का प्रस्ता। लुब्धक के लिए कपोत का अग्नि प्रवर्ण। लुब्धक से कपोत की मुक्ति। कपातीकृत पतिव्रता धर्म को प्रस्ता। कपाती का दह-याग। कपात और कपाता का स्वर्ग-गमन। पाप दूर करने के लिए लुब्धक का प्राचना। तदनन्तर मातमा-स्नान से तथा पाप-कर्म से स्वर्ग प्राप्ति का वचन।

४५५-४६३

अध्याय ८१

कुमारतीय का वचन

स्वामी कार्तिकेय का विषयो न आसक्ति। कुमारता का वचन।

४६३-४६५

अध्याय ८२

कृतिकतीय का वचन

मार के वचन से कृतिकावा का पञ्चुल के पास जाना। कृतिकाव-वचन का उपसहार।

४६६-४६७

अध्याय ८३

दशाश्वमयणीय का वचन

भौवन का वक्ष्य व प्रति जिस देश में पा व सफलता प्राप्त होगा यह प्रश्न। गुरु और गौतमा व प्रसाद से भौवन का एक अवधेय से दस अवधेयों के फल का प्राप्ति। आकाशवाणी का वचन। दशाश्वमयत य का विधान।

४६७-४७०

अध्याय ८४

पद्माक्षतीय का वचन

विमर। वानर का दक्षिण समुद्र व प्रति गमन। अञ्जन पत्र का ऊपर अक्षय का जाना। अक्षय से अञ्जना और अक्षिका का पुत्र प्राप्ति का वचन। निहन्ति और वायु व सम्बन्ध से अञ्जना और अक्षिका का पुत्र प्राप्ति। पद्माक्ष ताय का विधान एवं प्रमाणन।

४७१-४७२

अध्याय ८५

सुधातय का वचन

गौतम के एश्वय का न म न करन हुए वक्ष्य का सम्पत्ति उत्पन्न के लिए गमन। वक्ष्य द्वारा गया एक सुधा व। सुनि और उना सनिधि म दा कराना व प्राचना। सुधातय का प्रमाणन-वचन।

४७३-४७५

अध्याय ८६

शक्रताय और गनिका के सामक वचन

शिवपरवक्ष्य का पुत्र क मरने पर गौतमपुत्र हला। शक्रताय का शशमला से गौतम व प्रति गमन। पुत्रका

वा इन्द्र के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का संवाद । इन्द्र की आज्ञा से सिद्धिकित्रो का वैवस्वतपुर से यमराज को लाने के लिए जाना । यम कहाँ है ?—इस प्रकार इन्द्र का सूर्य के प्रति प्रश्न । सूर्य से यह पता चलने पर कि यम गौतमी-तट पर तप करने के लिए गया है इन्द्र द्वारा अम्बराओ से पूछना कि यमराज के तप की नष्ट करने के लिए उन (अम्बराओ) में से कौन समर्थ है । चरुतीर्थ का कारण-वर्णन । तप भग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन । प्रजाओं का नाश करने वाला कम करने लिए यमराज से सूर्य का वचन । यमराज द्वारा अस्वीकार । अनन्तर दोनों का अपन-अपन स्थान पर गमन । ४७६-४८१

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

अहल्या की पौषण प्राप्ति पश्चात् रक्षा करने के लिए गौतम को ब्रह्मा का आदेश । जो पुरुष पृथिवी की परिजमा करके सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुँच जाएगा उसी का अहल्या दी जाएगी—ऐसी ब्रह्मा की प्रतिज्ञा । अनन्तर अहल्या का प्राप्ति के लिए देवताओं का पृथ्वी की परिजमा करना । फिर ब्रह्मा द्वारा समस्त देवा का छाडकर गौतम को अहल्या-प्राप्ति का उपाय-कथन । विवाह के पश्चात् ब्रह्मा के पास देवताओं का आगमन । विप्र देश में इन्द्र का अहल्या के लिए गौतम के आश्रम में जाना । तत्पश्चात् गौतम का इन्द्र को शाप पुन इन्द्र की गौतम से शापोद्धार के लिए प्रार्थना । गौतमी-स्नान से पापा को दूर करने का गौतम द्वारा उपाय-कथन । इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन । ४८२-४८८

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

राजा जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से सुख से मुक्ति कैसे होगी यह प्रश्न पूछना । वरुण से पूछने के लिए याज्ञवल्क्य के कहने पर जनक और याज्ञवल्क्य का वरुण के पास जाकर वहीं प्रश्न दुहराना । गृह्य धर्म पालन से ही भुक्ति और मुक्ति मिलनी है—ऐसा वरुण का मत-दर्शन । जनक और याज्ञवल्क्य के यह पूछने पर कि भुक्ति मुक्ति-दाना कौन द्या और काल तीर्थ है वरुण द्वारा गौतमी को ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ घोषित करना । अनन्तर जनक और याज्ञवल्क्य का अपने अपने स्थानों पर जाना । जनस्थानतीर्थ का प्रयोगन । ४८९-४९१

अध्याय ८९

अरुणा-वरुण-सगम और अरुणान्तु तीर्थ का वर्णन

छाया से यह कह कर कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे जीटने तक बच्चा की देख रेख करो सूर्य-पत्नी उषा का पिता के घर जाना । त्वष्टा का पुत्र पनि के घर जाने का आदेश । उषा का उत्तर कुक्षेत्र देश में तप करने के लिए जाना । छाया की सन्तान का जन्म-वचन । छाया द्वारा यमराज को शाप । यमराज का पिता से यह कहना कि यह मुझे तप का दृष्टि से देवर्षी है अब मेरी माता बड़ा है । उत्तरकुक्षेत्र मघाडी का रूप धारण कर उषा रक्षी है—ऐसा जानकर घोड़े का रूप बनाकर सूर्य का बहाना जाना । आलम्बरा के लिए गौतमी पर बडवा का जाना और उसके पीछे सूर्य का भी बहाना जाना । ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप-कथन । पुन अश्विनाशुमारा की उत्पत्ति । उषा के निमित्त तेज का समन करने के लिए सूर्य से त्वष्टा का कहना । ४९२-४९६

अध्याय ९०

गङ्गातीर्थ का वर्णन

गङ्गा से अवयदान प्राप्ति के लिए मणिनाम नामक गेय-युग द्वारा निव की स्तुति । गङ्गा से वरदान प्राप्त

अध्याय ९७

पीलस्यतीथ का वनन

माता के वचन से राक्षस कुम्भवण और विभीषण का तन करने के लिए वन में जाना। रावण द्वारा कुबेर की पराजय। रावण को पुष्पवादि की प्राप्ति। भाई द्वारा निकाले गये बन्धवण का पुलस्त्य के पास जाना। पुलस्त्य की आज्ञा से स्त्री सहित गौतमी पर गमन और वहाँ कुबेर द्वारा शंकर की स्तुति। पश्चात् आकाशवाणी। शंकर का अपने स्थान पर गमन। पीलस्य तीर्थ का माहात्म्य।

५२३-५२६

अध्याय ९८

अग्नितीथ का वनन

मधुदैत्य द्वारा जातवेदा और दक्ष का वध। भाई के मरने पर अग्नि का गवा में प्रवेश। अग्नि के पास देवताओं का जाना। अग्नितीथ का माहात्म्य वनन।

५२७-५२८

अध्याय ९९

ऋषभप्रचनताय का वनन

ऋषभय से मुक्त होने के लिए विवाह करना आवश्यक है—एसा कक्षीवान् का अपने पुत्र से कहना। पुत्रों को विवाह के लिए उत्तमस्त्री देवकर स्नान के लिए गौतमी पर जान की आज्ञा प्रदान करना। ऋषभोचन तीथ का माहात्म्य।

५२९-५३०

अध्याय १००

कङ्कु-मुष्णा-सपक्षताय का वनन

कश्यप से बालिल्या का यह कहना कि हमारे लिये हुए आध तप से इन्द्र का गर्व चूर करने वाला पुत्र उत्पन्न करना। पुत्र प्रजापति कायप द्वारा अध तप को ग्रहण कर मुष्णा एवं कङ्कु में गम की स्थापना करने काही की न जाने की आज्ञा प्रदान करना। कङ्कु और मुष्णा का ऋषियग में जाना। वहाँ पर दोनों को नदी हान का शाप। गौतमी पर जाकर घण्टर की स्तुति करने से फिर स्त्री होगी—यह वक्ष्य त्त बालिल्या को कथन। स्तुति करने पर कायप की स्त्रियों की प्राप्ति। कङ्कु को ऋषि का शाप।

५३१-५३४

अध्याय १०१

सरस्वती-सपथ आदि तार्यों का वनन

ब्रह्मा की समा में पुरुषवा का जाना। उवशी और पुरुषवा का सम्भाषण। पुरुषवा के पास सरस्वती का गमन। ब्रह्मा के शाप से मयमीत सरस्वती का गौतमी पर गमन। सरस्वती के शाप को दूर करने के लिए ब्रह्मा के प्रति गया का वचन। स्त्रिया के स्वभाव का वर्णन।

१३५-५३६

अध्याय १०२

पञ्चनीय का माहात्म्य-वनन

हरिण रूप पारो ब्रह्मा से व्याघ्र रूप पारो निव का वचन। सावित्री ज्ञानि पाँच नर्तियों का ब्रह्मा के पास जाना। पञ्चनीयों का माहात्म्य।

५३६-५३७

पर बुध के आश्रम में जाना। इला का बुध के साथ सवाद और दोनों का विवाह। बुध से इला में पुनोत्पत्ति तथा देवताओं का वहाँ आना। वाल्म्य का पुष्ट्या नामकरण। इला के साथ उसका सवाद। पुष्ट्या से इक्ष्वाकु-कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त-वर्णन। बुध और ऐल का सवाद। इला को पुस्त्य की प्राप्ति के लिए पुष्ट्या का प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना और वहाँ पर श्वर की स्तुति। देवी से पुस्त्य की याचना। शक्र और पार्वती के अनुग्रह से पुस्त्य की प्राप्ति। ऐल का अभिषेक। ५६५-५७८

अध्याय १०९

चक्षुर्तोष का वर्णन

पार्वती का दक्ष के यज्ञ में जाना। वहाँ पर शिव-निन्दा सुनकर पार्वती का देहत्याग। महेश्वर का दक्ष के यज्ञ में आना। यज्ञ का वर्णन। वीरमद द्वारा यज्ञ-विध्वंस। देवताओं द्वारा शिव-स्तुति। दक्षहृत शिव-स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। दैत्या से उत्पन्न भय को जानकर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र-प्राप्ति के लिए शिव की आराधना। विष्णु को शक्र का वरदान और चक्र का होना। ५७९-५८४

अध्याय ११०

पिप्पलीतोष का वर्णन

पिप्पलीतोष का वर्णन। दधीचि ऋषि एव छात्रामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओं का आगमन। अस्त्रा को रखने के लिए देवताओं का दधीचि से प्रश्न। छात्रामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्र रखना। दैत्यों के डर से दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पाना। दैत्यों से देवताओं को मद-प्राप्ति। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों के लिए जाना। देवों के लिए दधीचि का अस्थि-दान। देवताओं का अस्त्र निर्माण। दधीचि ऋषि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ सवाद। तदनन्तर अग्निहोम समाधान। प्रातिघेयी के द्वारा नृसिंस्थ पुत्र का निजालना। प्रातिघेयी का अग्नि प्रवेश, आश्रम में स्थित बृक्षों का विलाप। दधीचि के पुत्र की अमृत-प्राप्ति तथा पिणलाद नाम की प्राप्ति। पिणलाद के साथ बृक्षों का सवाद और अपने माता-पिता का पूर्ववृत्तान्त-ध्वनन। सोम से पिणलाद को विद्या की प्राप्ति और सोम की आज्ञा से शहर की स्तुति में प्रवृत्त होना। प्रसन्न हुए शहर से देवताओं का नाश करने के लिए वर मांगना। पिणलाद के तप का वर्णन और शहर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न कन्या को देवताओं के सहार के लिए आदेश। कृत्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डर से देवताओं का शहर के पास जाना। देवताओं द्वारा शहर की स्तुति। शहर एव देवताओं का सवाद। देवताओं का पिणलाद के साथ सवाद। अपने माता-पिता को दिसलाने के लिए पिणलाद का देवताओं से अनुरोध। पिणलाद का स्वर्गलाप में जाना। वहाँ पर माता-पिता का दर्शन। विवाह करने के लिए दधीचि और पिणलाद का सवाद। देवताओं के सहार के लिए उत्पन्न कृत्या का समाधान। कृत्या को नदीरूप की प्राप्ति। शहर के साथ देवताओं का सवाद। दधीचि की अस्थिया, देवताओं तथा गायों का पवित्र होना। देवताओं का अपने अपने स्थानों पर जाना एव मृत्यु का वृद्धि रहना। पिणलाद का यौनेम की पुत्री के साथ विवाह। पिणलादकीर्ण पर पिणलेश्वरनाम की प्राप्ति। ५८५-६१२

अध्याय १११

नागनीर्य का वर्णन

नागनीर्य का वर्णन। सामवतोत्पन्न पुरसेन के चरित्र का वर्णन। पुरसेन से शर्प की उत्पत्ति। शर्प एव भूमेन

अध्याय १२०

धाम्यतीर्थ का वर्णन

धाम्यतीर्थ का वर्णन। गया तट पर दान का महात्म्य।

६४६-६४८

अध्याय १२१

विदमा-सवन आदि तीर्थों का वर्णन

विदमा और रेवती का गया व साथ सवन। रेवती व साथ बठ का विवाह।

६४८-६५१

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन। ब्रह्मा के साथ राजा धन्वन्तरि का सन्वाह। धन्वन्तरि का तरामग। धन्वन्तरि-
कृष्ण विष्णु स्तुति और उसको देवराज्य की प्राप्ति। ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र का सन्वाह। इन्द्र द्वारा हरिहर
की स्तुति। हरिहर के साथ इन्द्र का सन्वाह। बृहस्पति व द्वारा इन्द्र का अभिषेक।

६५१-६६२

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

रामतीर्थ का वर्णन। राजा दशरथ का वर्णन। देव दानवा का युद्ध। देव-दानवा का दशरथ के पास
आना। दशरथ द्वारा देवताओं की सहायता। युद्ध में कैवली का वर्णन। दशरथ के द्वारा मुनि-बाल्य की मृत्यु।
पुत्र का मृत्यु से माता-पिता का विलाप और उसी सात म मृत्यु। राम आदि का जन्म वर्णन। विरधासिन का
पुत्र मर्माण। अहल्या का उद्धार और राक्षस का वध। सीता का विवाह। दशरथ की मृत्यु और मरणा की
प्राप्ति तथा नरका से मुक्ति। दशरथ का यम विचरों व साथ सन्वाह। राम, लक्ष्मण और दशरथ का सन्वाह।
दशरथ का दुःख भोग करना। शाक-निवृत्ति से णि सीता का वर्णन। देवताओं व साथ राम का सन्वाह। राम
के द्वारा शरणा की स्तुति।

६६३-६८४

अध्याय १२४

गुप्ततीर्थ का वर्णन

गुप्ततीर्थ का वर्णन। वन्द्य व साथ दिति का सन्वाह। दिति और दनु का सन्वाह। मय के साथ इन्द्र का
सन्वाह और मरणा का जन्म।

६८५-६९९

अध्याय १२५

यमनीय का वर्णन

गंगा और उज्ज्व का युद्ध। हवि नामक कपान का अग्नि की स्तुति करना और उज्ज्वी व द्वारा यम
की स्तुति। उज्ज्वी व साथ यम का सन्वाह। यमनीय का वर्णन।

७००-७०६

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

अग्नि का वर्णन। दक्ष, ब्रह्मा और मुनिवर्ग का सन्वाह। तपस्तीर्थ का वर्णन।

७०६-७१०

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

आष्टिवेण राजा का आस्थान एव हयमेघ का वर्णन। मिथ नामक दैत्य के द्वारा पुरोहित सहित दीक्षित राजा को रसातल में ले जाना। पुरोहित-पुत्र देवापि के द्वारा पिता के बारे में भाता से पूछना। माता द्वारा पुत्र को सारे वृत्तान्त से अवगत कराना। देवापि की प्रतिज्ञा। नन्दि द्वारा मिथ का वध। रसातल से देवापि के पिता का आगमन। हयमेघ की समाप्ति। अनेक तीर्थों का वर्णन। ७११-७१८

अध्याय १२८

सप्तचन आदि तीर्थों का वर्णन

सक्षेप में कार्तिवेय का आस्थान। सन्तान के विषय में अग्नि और इवाहा का सवाद। तारकासुर के मय से दुहिते देवी द्वारा अग्नि की प्रार्थना। शुक्लप से अग्नि का शिव के पास जाना। शिव-पार्वती का सवाद। अग्नि-पत्नी इवाहा के गर्भ से मिथुन (युम) की उत्पत्ति और उनका नामकरण (सुवर्ण-सुवर्णा) एव विवाह। सुवर्णा और सुवर्ण को सुरासुर का शाप। शाप-विमोचन के लिए ब्रह्मा के वचन से अग्नि का गौतमी के पास जाना। वहाँ पर अग्नि द्वारा शिव की स्तुति। शाप-मुक्ति के लिए शंकर का धरदान। गौतमी-तट पर शिवलिंग की स्थापना। तपोवनादि तीर्थों का वर्णन। ७१८-७२६

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

गंगा और फेन का सन्ध्या। इन्द्र द्वारा भृगुचि दैत्य का वध। हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि से इन्द्र को पराजय। इन्द्र की पाताल में स्थिति। वरुण को पराजित करने के लिए महाशनि का प्रस्थान। वाक्णी और महाशनि का विवाह। इन्द्र की मुक्ति के लिए देव और विष्णु का सवाद। विष्णु की आज्ञा से महाशनि के पास वरुण का जाना। वरुण के वचन से इन्द्र की मुक्ति। इन्द्र और इन्द्राणी का सवाद। इन्द्राणी के वचन से इन्द्र का गौतमी के प्रति जाना। इन्द्र द्वारा शंकर की स्तुति। शिव और इन्द्र का सवाद। शिव के वचन से इन्द्र द्वारा विष्णु की आराधना। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु द्वारा महाशनि दैत्य का वध। ७२६-७३९

अध्याय १३०

आपस्तम्बनीर्थ का वर्णन

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उनके आश्रम में अगस्त्य मुनि का गमन। आपस्तम्ब द्वारा अगस्त्य का पूजन और तीनों देवों में वृत्ति श्रेष्ठ है, यह प्रश्न। तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सब सिद्धियों के दाता है—ऐसा अगस्त्य का उत्तर। अगस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहाँ शंकर की स्तुति करना। तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का धरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा का वर्णन। ७३९-७४३

अध्याय १३१

यतीर्थ का वर्णन

यमतीर्थ के प्रसंग में सरमा के आस्थान का वर्णन। देव-गाथा की रक्षा करने वाली सरमा को लोभ देकर दैत्या द्वारा गाथों का हरण। 'मुझे बौधकर दैत्य थायीं ने ले गये—ऐसा इन्द्र के प्रति सरमा का कथन।' परन्तु 'सरमा मिथ्या बोलती है' ऐसा बृहस्पति द्वारा इन्द्र के प्रति वचन। तब इन्द्र द्वारा सरमा पर पाद प्रहार और

गापदान। गाया को लाने के लिए इंद्र द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु और देवता का युद्ध तथा देवता की पराजय। देवताओं को गाया की प्राप्ति। अपनी माता को शाप से छड़ाने के लिए सरमा के पुत्र का यम से प्रश्न। सूर्य और यम का संवाद। सूर्य के वचन से यम का गौतमी धर जाना। गौतमीतटवर्ती वसिष्ठ तीर्थों का वणन। वहाँ स्नान करने वाला का अनेक फल की प्राप्ति।

७४४-७४९

अध्याय १३२

यक्षिणी-सगम का माहात्म्य-वचन

यज्ञ करने वाले ऋषियों का विवाहसु की बहन पिप्पला को शाप। विवाहसु की प्रायना से गाप का निवारण। दुर्गातीर्थ का वणन और यक्षिणी सगम तीर्थ का माहात्म्य।

७५०

अध्याय १३३

गुह्यतीर्थ का वणन

मुकुलीय म मरद्वाज का यज्ञ वणन। यज्ञ में पुरोडाश भक्षण करते हुए हव्यघ्न नामक राक्षस को मुनि का वचन। मरद्वाज और हव्यघ्न का संवाद। सम्पूर्ण अमृता (जल) में गौतमी जल की विशेषता। गौतमी जल से हव्यघ्न का अमिषक और कृष्ण रूप से गुह्यत्व की प्राप्ति एवं यज्ञ की समाप्ति। शुरुगणि तीर्थों का वणन।

७५१-७५३

अध्याय १३४

चक्रताय का वणन

चक्रतीर्थ म वशिष्ठादि सप्तर्षियों का मन्त्रार्थ। राक्षसी के विघ्न करने पर ब्रह्मा के पास जाना। ब्रह्मा की आज्ञा से माया द्वारा विघ्न का निवारण फिर यज्ञारम्भ। गम्बर देव्य द्वारा माया का भक्षण कर लिये जाने पर ऋषिया द्वारा विष्णु की प्रायना। पश्चात् उनकी रक्षा के लिए विष्णु द्वारा चक्र प्रदान और उस चक्र से राक्षसी का वध एवं यज्ञ की समाप्ति। गवाजल में चक्र का प्रक्षालन। चक्रतीय आदि पाँच तीर्थों का वणन।

७५४-७५५

अध्याय १३५

वाणी-सगम-ताय का वणन

ब्रह्मा और विष्णु का अपने अपने महत्त्व पर संवाद। ब्रह्मा और विष्णु के प्रति आकाशवाणी की उक्ति उत्तरवात् उपनिमृत्तिसंज्ञक शिवलिंग के अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा विष्णु का प्रश्नार्थ। अन्त को न देखते हुए विष्णु और ब्रह्मा का गिरव के पास क्रम से सत्य और असत्य कहना। ब्रह्मा के मुख से निचली हुई वाणी को हरिहर का शाप। पुनः गाप का निवारण। गौतमी और वाणी सगम का अनेक प्रकार से वणन। दोनों के तटों पर स्थित एवं सौ उत्तम तीर्थों का माहात्म्य।

७५५-७५८

अध्याय १३६

विष्णुताय का वणन

मादगल्य चरित्र का वर्णन। मोक्षल्य द्वारा सदाचार का वणन। विष्णु और मोक्षल्य का संवाद। मोक्षल्य द्वारा दान की प्रशंसा। विष्णुतीय की प्रशंसा।

७५८-७६२

अध्याय १४४

परुष्णोत्तम-तौर्य का वर्णन

अत्रि ऋषि का उपाख्यान। अत्रि को चार पुत्ररत्ना की प्राप्ति। अत्रि ऋषि को बन्धा आश्रय का चरित्र। आश्रय और उद्वलन का आख्यान। परुष्ण सुगम ने निकटवर्ती तौर्य हजार तौर्यों का वर्णन। ७८८-७९१

अध्याय १४५

भार्कण्डेयतीव का वर्णन

भार्कण्डेय आदि मुनियों का ब्रह्मा के साथ सवाद। भार्कण्डेयतीव का महिमा का निरूपण। उसके निकट वता अद्वैतान्वे तौर्यों का वर्णन। ७९२-७९३

अध्याय १४६

कासञ्ज्वरतीर्थ का वर्णन

ययानि का आख्यान। कासञ्ज्वर के निकटवर्ती एक सौ आठ तौर्यों का वर्णन। ७९३-७९८

अध्याय १४७

अप्सरसममतीर्थ का वर्णन

दो अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र ऋषि के तपोमग का वर्णन। विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं का नदीत्व की प्राप्ति। ७९९-८०१

अध्याय १४८

कादितौर्य का वर्णन

प्रसगनुसार कण्व के पुत्र बाल्लोकि का आख्यान। कण्वनथ के निकट पचास तौर्यों का वर्णन। ८०१-८०३

अध्याय १४९

नारसिंहतीर्थ का वर्णन

द्विरण्वदितु की प्रशंसा। नरसिंह द्वारा द्विरण्वकशितु का वध। नरसिंह का गीतम। के प्रति आगमन तथा अम्बय सन्नत दैत्य का हवन। नारसिंह का म स्नान दान आदि करने वाला का नामा फलों की प्राप्ति का वर्णन। नारसिंहादि आठ तौर्यों का वर्णन। ८०४-८०५

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

पैशाचनीय का वर्णन। अजीमन का आख्यान। अजीमन द्वारा गुनशेष नामक अपने पुत्र का वेषना। पुत्र का वेषने का पाप से अज गत का नरक की प्राप्ति। रते हुए पिशाच के प्रति गुनशेष का प्रसन्न। पिशाच की मोहि में पड़े हुए अपने पिता का वचन श्रुतकर दुःखित अन्नकरण वाले गुनशेष द्वारा पिशाच के ऊपर मोतया का जल छिड़कना। मोतमी-जल का स्पर्श होते ही अजीमन का विष्णुपद की प्राप्ति। पैशाचनीय की महिमा पैशाच आदि तान सौ तौर्यों का वर्णन। ८०६-८०८

अध्याय १५१

निम्नभेदतोर्य का वर्णन

उर्वशीगमन से दुःखित पुरूरवा ने प्रति वशिष्ठ का उपदेश। निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८०८-८११

अध्याय १५२

आनन्दतार्य का वर्णन

चन्द्र द्वारा तार्य का हरण। गुरु के पास गुरु का जाना। गुरु के लिए स्त्री-हरण कथन। तार्य का लाने के लिए गुरु की प्रतिज्ञा। चन्द्र का गुरु का शपथ। तार्य की मुक्ति के लिए देवताओं ने प्रति शुक्र का प्रश्न। गंगा के गुरु का कथन आनन्दतार्य का वर्णन।

८११-८१५

अध्याय १५३

भावतार्य का वर्णन

भावतीय आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८१५-८१७

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नावक तीर्थ का वर्णन

रावण आदि को मारकर अयोध्या के प्रति परिवार सहित राम का गमन। लोकापवाद के कारण राम की आज्ञा से वाल्मीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण द्वारा सीता का स्थापन। राम के अवमेष में लव-कुश का जाना। सहस्रकुण्ड आदि दस सौ तीर्थों का वर्णन।

८१७-८२०

अध्याय १५५

कपिनातोर्य का वर्णन

अगिरा को दक्षिण में आदित्य द्वारा भूमिदान। कपिला सममादि १०० तीर्थों का वर्णन।

८२०-८२१

अध्याय १५६

शालग्रह नावक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा का लाने के लिए आते हुए राक्षसा का विष्णु-चक्र द्वारा वध। शालग्रह आदि अमृत तीर्थों का वर्णन।

८२२-८२३

अध्याय १५७

विष्णिङ्ग्यातीर्थ का वर्णन

रावण-वध के उपरान्त सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का गौतमी पर जाना। रामकृत गौतमी में प्रशंसा। राम एवं वानरों का गौतमी पर स्नान और शिवलिंगपूजादि वर्णन। राम के प्रति विनीषण का वर्णन। विष्णिङ्ग्यातीर्थ का महत्त्व।

८२३-८२७

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

अगिरसा का उत्पत्ति। माता की आज्ञा के बिना तप करने के लिये गये हुए अगिरसों को विघ्न होना।

अगस्त्य के आश्रम में अगिरसा का गमन व संवाद। अगस्त्य की आज्ञा से उनका गौतमी पर जाना। व्यासजी की महिमा।

८२७-८३१

अध्याय १५९

वज्र-समम नामक तार्य का वर्णन

दानपात्र का प्राप्ति हुए गृह्य का अपनी माता विन्ता के प्रति प्रश्न। 'मैं अपने हा अपराध से दार्शनिक का प्राप्त हुई हूँ—एसा माना का उत्तर। ब्रह्म के वचन से गृह्य का सपों का मूर्खताक म के जाना और उनका अघ-पतन। तदर्थ ब्रह्म का विन्ता के प्रति दुर्बचन। सपों की अघ दूर करने के लिए गृह्य का दमासल से जल लाना। उस जल के प्राप्ति से सपों की अघ का दूर करना और उसी से वज्र की उत्पत्ति। वज्र-सममादि सवा हाड तीर्थों का वर्णन।

८३१-८३७

अध्याय १६०

देवायम नामक तीर्थ का वर्णन

घन के निमित्त दध-दानों की ईर्ष्या। ब्रह्म की आज्ञा से देवताया का असुरा व साय युद्धारम्भ। युद्ध के आरम्भ में गौतमी-उद पर देवताया का विष्णु एक शक्ति की स्तुति करना। गौतमी, हरि एक शक्ति की कृपा से देवताओं की विजय।

८३७-८३९

अध्याय १६१

कुञ्जतपनतीर्थ का वर्णन

कुञ्जतपनतीर्थ का वर्णन। ब्रह्म की उत्पत्ति और सृष्टि का क्रम। यज्ञ-सामग्री का वर्णन। विराट् पुरुष की उत्पत्ति। प्रणीता-समम कुञ्जतप आदि डिमासी हजार तीर्थों का वर्णन।

८४०-८४६

अध्याय १६२

मन्युतार्य का वर्णन

अपन। विजय के लिए और शूरकार पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताया द्वारा महत्कर का स्तुति। शक्ति की कृपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्य-परीक्षा के लिए देवताया का वचन। मन्यु व स्वर्ण का वर्णन। एवीं द्वारा मन्यु की स्तुति। मन्यु के आश्रम से देवताया का विजय प्राप्ति।

८४७-८५०

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्राह्मण का रूप धारण करने परशु नामक राक्षस के द्वारा साक्ष्य मुनि से भाजन माँगना। भाजन के समय 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें मारने के लिए आया हूँ—एसा परशु का साक्ष्य से कहना। परशु साक्ष्य द्वारा अपना अपूर्व शक्ति दिखाना। परशुराक्षम द्वारा साक्ष्य की स्तुति। साक्ष्य की आज्ञा से परशु द्वारा सारस्वती की स्तुति और उसका स्वर्ण की प्राप्ति।

८५०-८५५

अध्याय १६४

चिञ्चिकतीर्थ का वर्णन

पवमान राजा का चिञ्चिक नामक पर्व से संवाद। पवमान राजा के प्रति चिञ्चिक पर्वों का पूर्वज-मनुत्त

वयन। ब्रह्मरूपा सदा पापा का वधन। चिन्मित्र का मुक्ति व नष्ट राजा का प्रश्न। अपन भुक्ति के लिए श्वेतपवन स्थित भगवान् महाधर के पास ले चलन के लिए चिन्मित्र द्वारा राजा से प्रार्थना। राजा के साथ गया और महाधर के दान के लिए चिन्मित्र का गमन। चिन्मित्र द्वारा गया का स्तवन एवं स्वर्ग की प्राप्ति। राजा पद्मान का अपने सबका के साथ अपने नगर में आना। ८५५-८६०

अध्याय १६५

भद्रतीय का वधन

कन्या के विवाह के विषय में सूर्य का विचार। विवाह की अवधि का कथन। वंशदान के लिए कुल आदि का विचार। वंश का प्रशंसा। कन्या आदि का विषय में विषय। विवाह-काल के उत्सव में दास-वधन। विश्व रूप और विष्टि का विवाह। भद्रतीय का वधन। ८६१-८६५

अध्याय १६६

पतन्वितोय-वधन

सूर्य का किरणों से जलते हुए जटायु और सपाति को विष्णु द्वारा आश्वासन। पतन्वितोय का वर्णन। ८६६-८६७

अध्याय १६७

विप्रतीष का वधन

साले हुए ब्राह्मण पुत्र आसदिब का लेकर राजस का भागना। आसदिब और राजस का संवाद। कित्ता ब्राह्मण-कन्या के साथ आसदिब का विवाह। नारायण द्वारा राजस का वध। विप्रतीष का वधन। ८६७-८७१

अध्याय १६८

भानुतीय का वधन

राजा अभिष्टुत का हवमेध आरम्भ। याचना का लघुत्व-वधन। ब्राह्मणवेश्याय दायो का यज्ञ में जाना। भावादि सी सीधों का वधन। ८७१-८७४

अध्याय १६९

भिल्लताय का वर्णन

बद नामक ब्राह्मण का शिवपूजा के अनन्तर भिक्षाटन के लिए गमन। व्याघ्र का शिवपूजा प्रकार। विधान से का हुई पूजा का विवस करने वाले के प्रति वेद के धन में श्रद्धा का उत्पत्ति। आदिके और वेदों का स्याद। व्याघ्र की भक्ति का वधन। व्याघ्र का वर का प्राप्ति। ८७५-८७९

अध्याय १७०

वसुन्तीय का वधन

वसुन्तीय का वधन। वसुन्तीय का कुण्डल का धन उपायन विषयक संवाद। पुत्र धर्म का वर्णन। धर्म का प्रशंसा। धर्म का प्रशंसा करने वाले कुण्डल का नेत्रों का नाश। विमर्षण का पुत्र का साथ संवाद। कुण्डल वर्य को नेत्रादि का प्राप्ति। महाराजा नामक राजा का पुत्र का नेत्रों का प्राप्ति। कुण्डल का राजकन्या का प्राप्ति। ८७९-८८९

अध्याय १७१

उवशीतीथ का वणन

इंद्र अर प्रमिति का सवाण। इंद्र भीर प्रमिति का वाहन-वणन। प्रमिति और विवसन का काहन वणन। मयुच्छन्द क साथ प्रमिति-युव सुमिति क द्वारा प्रमिति का वन बड़ा स विनष्ट राज्य की प्राप्ति। अछ पुररा क लिय दिना छल क वृत्ति का विधान। ८८९-८९४

अध्याय १७२

सामुद्रतीथ का वणन

गंगा अर सागर का सवाण। गंगा के सप्त रूप का वणन। ८९५-८९७

अध्याय १७३

सौमश्वरतीथ का वणन

गंगा के सात नामा का वणन। ऋषि-यन मे देव गन्तु विस्वरूप का आगमन। विवहप और ऋषि का सवाण। ८९७-९०१

अध्याय १७४

गंगा और सागर के सगम का वणन

गंगा-सागर-सगम-वणन। देवतात्रा द्वारा हरि-हर का स्तवन। साम-ताप का माहात्म्य। नारद-हून साम स्तुति। आदित्य और वाहस्पत्यदि तथ्यों का वणन। ९०१-९०५

अध्याय १७५

तीथ आदि के चार प्रकार के होने का वणन

ब्रह्मा के कमण्डलु म विष्णु के करण म शिव के गटावट म ब्रह्मगिरि म आर पूव समुद्र म क्रमन गंगा क म्पिति का वणन। चार प्रकार के तथ्यों का निरूपण। तथ्यों का सत्ययुगानि म क्रम से त्रिनेत्रत्वभाव होने स कल्पियुग म भ दव भाव का निरूपण। तथ्यों का युगक्रम से दव आसुर आप अर मनुष्यत्व प्राप्ति का वणन। गणन गवर का जटा स गमावनरण का पावत द्वारा वणन। पावत अर गणन के सवाण म ब्रह्मगिरि पवत स सम पवन ग म के दना सटा क स्थिति का वणन। गौतम के प्रति ह्यपुलकित तिव का वचन। तिव द्वारा वणन गौतम क यात्रा का वणन। विस्तारमहित गौतमा माहात्म्य का पल-वचन। ९०५-९१३

अध्याय १७६

अनंत वासुदेव का माहात्म्य निरूपण

अनंत वासुदेव भगवान् का माहात्म्य। ब्रह्मा क विव-वर्मा का वासुदेव भगवान् क मति बनाने क लिए आना। देवतात्रा के साथ रावण का सग्राय। रावण स इंद्र क पराजय। रावण का इंद्रपुरी म गमन। वहाँ पर स्थित भगवान् वासुदेव की मात का पुष्पक विमान द्वारा लका मे ले जाना। रावण से विभीषण का मान का प्राप्ति। राम अर रावण का यद्ध। यद्ध म रावण क मृयु। भगवान राम का अयाध्या क प्रति गमन। ९१३-९१८

अध्याय १७७

पुरुषोत्तमक्षत्र का माहात्म्य-वणन

पुरुष समक्षत्र क महिमा का वणन। ९१९-९२१

अध्याय १७८

वण्ड ऋषि के चरित्र का वर्णन

वण्ड व आर्यम म मुनि का तप भग करने व ऋषि प्रश्लोका का जाना। वण्ड आर प्रश्लोका का सवाण। तप नष्ट होने स वण्ड का पुस्पास्तम क्षत्र म जाना और विष्णु व स्तुति एव वरदान व प्राप्ति तदनन्तर मुक्ति। वण्ड व आख्यायिका का पठन एव श्रवण का फल आर पुण्य तम क्षत्र क मर्त्तिमा का वर्णन। ९२२-९३८

अध्याय १७९

कृष्णाक्षर के सम्बन्ध मे व्यास से मुनियों का प्रश्न
सामाधिष्ठ मुनियों द्वारा व्यास स कृष्णाक्षर व सम्बन्ध म प्रश्न करना। ९३९-९४४

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरंभ

मुनियों व प्रश्नात्तर म व्यासकृत भगवत्स्तुति व नामावतारा का वर्णन। चतुर्व्यह-वर्णन। ९४५-९४८

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

भगवान् व अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन। भार से पीड़ित पृथिवी का ब्रह्मा के पास जाना आर अपने दुःख का निवेदन। भगवान् का प्रसन्न से गंविन दत्तात्रेय व प्रति ब्रह्मा का वचन। ब्रह्मा द्वारा विष्णु का स्तुति। स्तुति-श्रवण क अनन्तर ब्रह्मा का विष्णु द्वारा स्वतः अर कृष्ण को या वसो का दान। विष्णु का सहायता के लिए ब्रह्मा आदि दत्तात्रेय का अवतार। मारुत के मुख से यह सुनकर कि दत्तात्रेय के आठव गर्भ से कस का माय हग कुविपत्त कस द्वारा वासुदेव तथा दत्तात्रेय को कारागार मे डालना। दत्तात्रेय के छत् पुत्रा का वर द्वारा वच। विष्णु आर माया के संबाद मे माया क प्रति भगवान् का आज्ञा। ९४८-९५३

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

भगवान् का आज्ञा से माया द्वारा देवकी के गम का आकषण और रोहिणी के गम मे स्थापन। यशोदा व उदर मे माया क स्थिति। दत्तात्रेय व उदर मे भगवान् का प्रवेश। भगवान् के अवतार के समय दत्तात्रेय द्वारा पुण्य-वर्षिष्ठ वासुदेव दत्तात्रेय द्वारा भगवान् का स्तुति। दत्तात्रेय के प्रति भगवान् का वचन। गांधार मे जाकर वासुदेव द्वारा दत्तात्रेय का गह मे पुत्र का स्थापना कर कन्या को लाना। बालक का राधा सुनकर दत्तात्रेय व पुत्रजन्म का वृत्ता द्वारा वर्णन। कारागार म कस का आगमन। कस द्वारा रात हुई दत्तात्रेय से हठपूर्वक कन्या का छत्र लेना अर पश्चात् माया का स्वयं-वर्णन। ९५३-९५७

अध्याय १८३

कस का अपना विचार ब्रह्मा

अशान्त कस द्वारा प्रलम्ब आदि दत्तात्रेय का कन्या का वृत्तान्त कथन। कस द्वारा दत्तात्रेय को बालकी को मारने का आदेश। ९५७-९५८

अध्याय १८४

शोकृष्ण का बाल-चरित्र-वर्णन

मथुरा में ही नन्द के पास बमुदेव का जाना। बमुदेव और नन्द का प्रेम-मवाद। बमुदेव की आज्ञा से नन्द यदि गोपों का गोष्ठुठ में आना। कृष्ण के द्वारा पूजना का वच। गोष्ठुच्छादि से कृष्ण की रक्षा। नन्द द्वारा कृष्ण का स्वस्ति-वाचन करवाना। बालक के चरण-श्रद्धार से शवट का मिटना। उसने गोपियों का आश्चर्य। तदनन्तर यगोदा द्वारा शवट की पूजा। बमुदेव से प्रेरित गर्भ द्वारा गुप्त रूप से बालकों का नामकरण। बाललीला का वर्णन। यम-लार्जुन का उद्धार। उत्पत्तों के भय से गोप-गोपियों का बुन्दावन में प्रवेश। बुन्दावन की मोमा का वर्णन। बालकों की क्रीड़ा का वर्णन।...

१५९-१६४

अध्याय १८५

कालीय-धमन का मास्थान

बलराम के विना गोपों के साथ कृष्ण का शालीयहृद पर जागमग। उसको विप्लव देखकर कृष्ण का शालीयहृद में बूढ़ता। वह! सपरिवार-कालीय का आ घमकना एवं कृष्ण को डँसना। गोपियों का विलाप। नन्द आदि के दुःख को मिटाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्पर्दीकरण। नागपत्नी द्वारा कृष्ण की स्तुति। कालीय द्वारा कृष्ण की स्तुति। समुद्र में जाने के लिए कालीय के प्रति कृष्ण की आज्ञा। सपरिवार कालीय का समुद्र के प्रति गमन। कृष्ण का हृद से बाहर आना।...

१६४-१६९

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

गोपों के साथ बलराम और कृष्ण का तालफल के प्रति जाना। ताल-फल की इच्छा से गोपों का रामकृष्ण के प्रति विज्ञापन। रामकृष्ण द्वारा तालफल को मिटाना। धेनुकासुर के द्वारा राम-कृष्ण के वक्षस्थल पर दाहन। कृष्ण द्वारा धेनुकासुर का वध।

१७०-१७१

अध्याय १८७

राव और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

बाह्यबाहूक नामक तैल के बहने बलदेव द्वारा प्रलम्बामुर का वध। गोपों द्वारा बलराम की प्रशंसा। वज्र के प्रति गमन। घट्ट का वर्णन। गोवर्धनलीला का वर्णन।...

१७१-१७६

अध्याय १८८

गोवर्धन का मास्थान

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उद्धार और इन्द्र का मान-भग। इन्द्र द्वारा कृष्ण-स्तुति। कृष्ण को गोविन्द नाम की प्राप्ति। इन्द्र द्वारा बर्जुन के विषय में प्रार्थना। इन्द्र और कृष्ण का अपने-अपने स्थान में जाना।...

१७७-१८१

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

रासक्रीडा का वर्णन और अरिष्टासुर का वध।...

१८१-१८६

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

इन्द्र के साथ श्व कृष्ण का संवाद। द्वारका में भगवान् का आगमन। कल्पवृक्ष का वर्णन। १०४२ १०४४

अध्याय २०५

अनिष्ट का चरित्र-वर्णन

हस्तिना। आदि स्थिता व पुत्र एवं पत्नी व गोमा का वर्णन। उपा और अनिष्ट के विवाद का वर्णन। बाणामुर का पुत्र। उपा का गायर से संवाद। चित्रलेखा का खेलन-वृत्त व चतुर्धा का वर्णन। १०४४ १०४७

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

भगवान् गकर के साथ बाणामुर का संवाद और युद्ध के लिए प्रायश्चित्त। उपा के अन्ध-पुत्र में चित्रलेखा द्वारा अनिष्ट का लाना। बाणामुर और अनिष्ट का युद्ध। अनिष्ट का वर्णन। कृष्ण और बलदेव का युद्ध के लिए आना। बाणामुर के साथ भगवान् का युद्ध। भगवान् और गकर का युद्ध। हरिहर-संवाद। भगवान् का सपत्नीक अनिष्ट के साथ द्वारका में आना। १०४७-१०५१

अध्याय २०७

गोपक-वध-वर्णन

कानियाज पीपलूक के दूत का द्वारका में आगमन। दूत के साथ कृष्ण का संवाद। श्व कृष्ण के साथ पण्डित का युद्ध। पण्डित का वध। गकर के वरदान से कानियाज व पुत्र द्वारा कृष्ण का उत्पादन। सुदाम चक्र के भय से कृष्ण का वाराणसी में प्रवेश। चक्रद्वारा वाराणसी का दाह पश्चात् चक्र का कृष्ण के हाथ में वापिस आना। १०५२ १०५६

अध्याय २०८

बलदेव का गृह-वध-वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में बलदेव के पराक्रम का वर्णन। साम्ब द्वारा दुर्योधन की नृप का हर्षण। दुर्योधनादिका द्वारा साम्ब का वधन। बलदेव का हस्तिनापुर में आगमन। कौरवों के साथ बलदेव का संवाद। बलदेवकृत हस्तिनापुर का अक्षयण। कर्मा द्वारा बलदेव की प्रायश्चित्त। १०५६ १०६०

अध्याय २०९

द्विविध नाम्नी वानर का वध-वर्णन

व्यास और ऋषियों का संवाद। बलदेवकृत द्विविध वानर का वध। १०६० १०६२

अध्याय २१०

पञ्चों के भार उतारने का वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में भूमि के मायव-वर्णन का वर्णन। यादव-कुल के उपसर्ग का वर्णन। भगवान् का द्वारका स्थाय तथा निजघाम-वर्णन। यादवा व शाप का हेतु-वर्णन। देवताओं द्वारा भेजे हुए वृत्त का अक्षय्य रूप कृष्ण के साथ संवाद। शशीस्तोत्र के गायन के लिए यक्ष-वध का प्रस्ताव के अन्तर्गत। यक्ष-वध का उद्देश्य के साथ संवाद। यादवा का नाश-वर्णन। १०६३ १०६८

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

भगवान् का कृपा से व्याघ्र का स्वयं-गमन।

१०६८ १०६९

अध्याय २१२

हस्तिनयो आदि का परलोक-गमन

हस्तिनयो आदि रानिया का स्वयं-गमन। आनार और अजुन का सवाद एव युद्ध। अजुन का पराजय। श्रेष्ठों द्वारा श्रेष्ठ स्त्रिया का हरण। अजुन के विवाद का वधन। आस और अजुन के सवाद में व्याम द्वारा अजुन का समाधान। अष्टावक्र के अस्थान का वधन। अष्टावक्र के तप का वधन। त्रिशोक्तमा रमा आदि अष्टराभा द्वारा अष्टावक्र के प्रशंसा। रमा का पुरुषात्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का धर प्रदान। जल से बाहर भाये मुनि के गरार का टेणपन हलकर रमा द्वारा होस्व। रमा के हास्य से कुपित मुनि का गाय पशुचान् प्रसन्न हावर धर प्रदान। सवायव पाण्डवा का महाप्रस्थान। परानिन का चय-दान तदुपरास वन-गमन। कृष्ण चरित्र का समाप्ति का कथन।

१०७० १०७८

अध्याय २१३

वाराह-अवनार का वधन

वाराह अवनार का वधन। वाराहरूपा परमेश्वर के गरार के अगा का वधन। दानवराहृत पुष्पा का उद्धरण। नृसिंह अवनार का वधन। हिरण्यवर्णिगु के मय का वधन एव वरप्रदान। ब्रह्मा के साथ देवताका का भगवान् के समाप गमन। देवताका द्वारा भगवान् का स्तुति। भगवान् का नृसिंहका म अवनार हाना। नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यवर्णिगु का वध। वामन अवनार का वधन। दया के नामावली का वधन। दत्तात्रय के अवतार का वधन। परापुरास के अवनार का वधन। मणय म अरामचरित्र का वधन। श्री कृष्णावनार का वधन। शक्ति अवनार का वधन। भगवान् के अवतार के चरित्रा का वधन एव वधन का फल।

१०७८ १०९२

अध्याय २१४

नरका का वधन

नरका के नाम तथा वधन। देहत्याग का वधन। समद्वैता का वधन। धार्मिक एव पाप-जना का वधन। यमपुरा का वधन एव पुर के द्वारा का वधन।

१०९२ ११०२

अध्याय २१५

दक्षिण भाग का वधन

दक्षिण भाग से जान लोक प्राणिया के दुःखा का वधन। विजगुप्त द्वारा पाप्मिया का वधन। मयकर नरका का वधन। अनेक प्रकार के पापा का वधन। पापा के अनुसार नरका प्राप्ति का वधन।

११०२ १११३

अध्याय २१६

नारक य कुत्सितार के धर्मावरण का वधन

नरका के दुःख-निवारण के लिए मुनिया द्वारा व्याम के प्रति प्रार्थना। व्यास द्वारा धर्म के आवरण से मुक्ति प्राप्ति का वधन।

१११४ ११२०

अध्याय १९०

बेसी नामक असुर का वध

कस और नारद का संवाद। बलराम और कृष्ण को खाने के लिए कस का अकूर को भेजना। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए कस की मल्लयुद्ध योजना। कृष्ण के वध के लिए बेसिका का बुद्धावन जाना। बेसि के शब्दों से गोपी को भय। कृष्ण द्वारा बेसी का वध। नारदहृत कृष्ण-वधन। ९८७-९९१

अध्याय १९१

अकूर के जाने का वर्णन

अकूर का गोडुल गमन। अकूर द्वारा कृष्ण का वधन।

९९१-९९४

अध्याय १९२

अकूर के लौटने का वर्णन

अकूर द्वारा कृष्ण का नमस्कार। अकूर द्वारा कस को उक्ति का वधन। कस के वध के लिए कृष्ण की इक्ति। मधुरा के लिए राम कृष्ण और अकूर का गमन। कृष्ण के गमन से दुःखित गारिया का परस्पर सभाषण। मधुना-जल में अकूर का भगवान् का दर्शन। अकूर द्वारा कृष्ण का स्तुति। कृष्ण और अकूर का संवाद। मधुरा में बलराम और कृष्ण-पराक्रम-वधन। ९९५-१००२

अध्याय १९३

कुम्भा का उद्धार-वर्णन

कुम्भा के प्रति कृष्ण का कथन। कृष्णहृत अनुग्रह का वधन। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए चाणूर और मुष्टिक को कस की आज्ञा। नागरिका द्वारा बलराम और कृष्ण का वधन। कृष्ण और चाणूर का युद्ध। मुष्टिक और बलराम का युद्ध। चाणूर और मुष्टिक का वध। वसन्ध। वसुदेव द्वारा भगवत्स्तुति। १००२-१०१०

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद। कृष्ण द्वारा कस की पत्नी का समाधान। कृष्ण द्वारा उग्र सेन का राक्षसिक। उग्रसेन को सुयमी नामक सभा की प्राप्ति। बलदेव और कृष्ण को गृह सादीपनि द्वारा अस्त्रप्रदान। सान्दीपनि को पुत्र प्राप्ति। १०१०-१०१३

अध्याय १९५

जरासन्ध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

जरासन्ध के साथ राम जनादन का युद्ध। जरासन्ध का विरस्कार। जरासन्ध का युद्ध के लिए फिर आना। जरासन्ध की पराजय। १०१३-१०१५

अध्याय १९६

कालभवन का उपाख्यान

कालभवन की उत्पत्ति का वर्णन। कालभवन द्वारा यादवों का नाश। यादवों की रक्षा के लिए कृष्ण द्वारा दारुका का निर्माण। मुनुकुन्द द्वारा कालभवन का नाश। मुचुकुन्द द्वारा भगवत्स्वरूप का वर्णन। १०१५-१०१९

अध्याय १९७

मेकुन्त मे यन्त्राद्वा का लंटना

मुकुन्द को भगवान् का वर प्रदान। तब के लिए मुकुन्द का वधसादन व प्रति गमन। बलदेव का गायुड
म आना। १०१९ १०२१

अध्याय १९८

बलदेव को चोडा का धनन

पठन और वाणों का सहाद। यमुना और बलदेव का सहाद। बलदेव का मयुर म गमन।

१०२१ १०२३

अध्याय १९९

रविमणी के विवाह का धनन

कृष्ण द्वारा रविमणी का हरण। कृष्ण से हवन को पटात्रय। रविमणी विवाह ०० प्रद्युम्न की उत्पत्ति।

१०२३ १०२४

अध्याय २००

प्रद्युम्न का अस्थान-वर्णन

शम्बरपुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण। शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र म फेंकना। मत्स्य के उदर से शम्बर का
रुद्र का प्रद्युम्न का प्राप्ति। शम्बर को रुद्र से नारद का सहाद। शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध। शम्बर का वध।
शरणा म प्रद्युम्न का भागमन। म कृष्ण नारद सहाद। १०२५-१०२८

अध्याय २०१

अनिष्ट के विवाह से हवन का वध

रविमणी के पुत्र का नाम। कृष्ण व विष्णु का नाम। अनिष्ट का विवाह। रुद्र और बलदेव का युद्ध
गमन। बलदेव द्वारा हवन का वध। १०२८ १०३१

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वधन

इन्द्र का शरणा म आना। इन्द्र द्वारा नरकासुर की वध का वधन। श्यामिन्द्र के प्रति कृष्ण का गमन।
कृष्ण द्वारा मूर्धन्य का वध। कृष्ण द्वारा नरकासुर का वध। पुत्र द्वारा कृष्ण का कुण्डल दान। अग्नि को
कुण्डल देने के लिए भगवान् का स्वयममन। १०३१ १०३४

अध्याय २०३

अग्नि द्वारा भगवान् का मृत्ति

मूर्तिरहित भगवत्स्वरूप। कृष्ण और अग्नि का सहाद। मत्स्यमाया के वधन म कृष्ण द्वारा बलदेव का लाता।
बलदेव का साथ श्रीकृष्ण का सहाद। बलदेव का साथ मत्स्यमाया का गवोक्षित। देवनागा के साथ श्रीकृष्ण का
पुत्र। इन्द्र के साथ मत्स्यमाया का सहाद। इन्द्र द्वारा भगवत्स्वरूपन। १०३५-१०४२

अध्याय २१७

धर्म की श्रद्धा का वर्णन

धर्म का श्रद्धा का वर्णन। "१२२२" उत्पत्ति का वर्णन। पुण्य एवं पाप का अनुरोध से अनन्त मानिया
म जन्म होने का वर्णन। अनन्तर पाप पुण्य का वर्णन। ११२१ ११३०

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

शुभप्राप्तिविषयक मुनियों का वाक्य का प्रति प्रश्न अन्न का प्रशंसा। अन्नदान से शुभ प्राप्ति का वर्णन।
११३० ११३३

अध्याय २१९

आर्द्धविधि का वर्णन

आर्द्धविधि का निरूपण पितरा के साथ चन्द्र-कन्या का सवाह। चन्द्रमा का पितरा को शाप। सामन्त
का कोका नामक नंद वर्णन। पितरा द्वारा भगवान का स्तुति। पिता का उद्धार का वर्णन। अग्निकरण और
पिण्डदान का विधि। ११३३ ११४४

अध्याय २२०

आर्द्धकल्प का वर्णन

आर्द्धकल्प का वर्णन। प्रतिष्ठा आदि विधि क्रम से आर्द्ध करने का फल वर्णन। सपिण्डकरण का
विधान आर्द्ध में ब्राह्मण विचार। ११४४-११३२

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

सदाचार का वर्णन धर्म वर्णन। भालादि उत्तम एवं आचमन का विधि का वर्णन। अनन्तकाल निरु
पण। कथा-वर्णन तथा शत्रु-काल में यज्ञ प्रकार। देव पूजा वर्णन। देवता तथा पितरा के स्तुति का वर्णन।
वन्देदेव का विधान। विष्णु के निवासस्थान देशों का वर्णन। सूतक का विचार। ११६२ ११७७

अध्याय २२२

वनाश्रम का वर्णन

वनाश्रम और मुनियों के सवाह में वर्णन का वर्णन। ११७७ ११८१

अध्याय २२३

सकल जाति का लक्षण-वर्णन

उमा अर महीश्वर के सवाह में ब्राह्मणों का भद्रत्व प्राप्ति का वर्णन। शूद्र आदि को उत्तम-वर्ति की प्राप्ति
का वर्णन। ११८२ ११८७

अध्याय २२४

मनुष्यों के उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा और महेश्वर के सवाद में मनुष्या को उत्तम गति मिलने का वर्णन। स्वर्ग-प्राप्ति के हेतुभूत धर्म का वर्णन। धर्म के फल का वर्णन। ११८८-११९३

अध्याय २२५

देवलोक की प्राप्ति का कारण बताया

उमा और महेश्वर के सवाद में देवलोक की प्राप्ति का वर्णन। कृपण आदि के नरक में जाने का वर्णन। स्वधर्मरत प्राणियों का वर्णन। पापिष्ठ प्राणियों की नरक-प्राप्ति का वर्णन। ११९३-११९८

अध्याय २२६

वासुदेव की महिमा का वर्णन

मुनि और महेश्वर के सवाद में वासुदेव भगवान् की महिमा एवं भगवत्स्वरूप का वर्णन। मनु के वरा का वर्णन। आसक्तों और मुनियों के सवाद में कृष्णपूजा के फल का वर्णन। ११९९-१२०४

अध्याय २२७

मुनिया और ब्यास के सवाद में विष्णु-पूजकों की गति का निरूपण

विष्णु की उपासना करने वालों का दिव्य लोकों की प्राप्ति एवं उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति की पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति। १२०४-१२०८

अध्याय २२८

विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

पाण्डाल और राक्षस के सवाद का वर्णन। उर्वरी और मूर्ख ब्राह्मण का सवाद। विष्णु भगवान् के जागरण में भगवद्भजन का फल। पाण्डाल और राक्षस का सवाद। जागरण के पुण्य प्राप्ति के लिए राक्षस द्वारा मानव की प्रार्थना। ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का वर्णन एवं राक्षसत्व की प्राप्ति। पाण्डाल के पूर्वजन्म का वर्णन। मूर्ख ब्राह्मण और उर्वरी का सवाद। शकटदान का महत्त्व। १२०८-१२२२

अध्याय २२९

विष्णु-भक्ति का कारण-वर्णन

ब्यास और मुनिया के सवाद में विष्णुभक्ति का हेतु-वर्णन। मूर्ख आदि दवा के आराधना का वर्णन। अर्ध-पुनश्चर की प्राप्ति का कारण-वर्णन। भगवान् की भाषा का वर्णन। कामदेव का आख्यायन। कथानुवाचनार्थ के उत्पत्ति का वर्णन। कामदेव का स्वर्ग-गमन। १२२३-१२३६

अध्याय २३०

महाप्रलय का वर्णन

ब्यास और मुनिया के सवाद में महाप्रलय का वर्णन। बलि के स्वरूप का वर्णन। कल्पियुग में भविष्य का वर्णन। १२३६-१२४०

अध्याय २३१

द्वारयुग के अन्त का वर्णन

मष्ट धर्म के निमित्त का वर्णन। भविष्य का वर्णन। १२४०-१२४८

अध्याय २३२

सहार के लक्षण का वर्णन

आत्म और मूर्ति का व सत्ता में सहार-लक्षण का वर्णन। स्वयं का मान-वर्णन। नम्रित्य एवं व
स्वरूप वर्णन। १२४८ १२५१

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

प्राकृत लय का स्वरूप-वर्णन।

१२५२ १२५५

अध्याय २३४

आध्यात्मिक लय का निरूपण

आध्यात्मिक आदि तानों तीनों का वर्णन। गीत-जबाम मौन आदि आध्यात्मिक लय का निरूपण।
काम क्राय आदि मानसिक लय का निरूपण। मृग पक्ष आदि से हाने वाले आध्यात्मिक लय का वर्णन। गग
जल बद्धावस्था आदि से उत्पन्न आध्यात्मिक लय का वर्णन। एवं म स्थित प्राणा का दुःखावस्था का निरूपण।
बाल अवस्था बृद्धावस्था और मरणावस्था का वर्णन। पाप कर्मों से नरक प्राप्ति का वर्णन एवं मुक्ति और ज्ञान
का महिमा का वर्णन। १२५६ १२६२

अध्याय २३५

योगाभ्यास निरूपण

योगाभ्यास का वर्णन।

१२६२ १२६५

अध्याय २३६

साधन-य-निरूपण

विस्तारपूर्वक भग और साधन का निरूपण।

१२६५ १२७१

अध्याय २३७

मानियों की मोक्ष प्राप्ति का निरूपण

मानियों का मोक्षप्राप्ति का निरूपण एवं कम करने वाला व बर्णानुसार स्वर्गादि लोकों का प्राप्ति का
वर्णन। आकाश आदि पञ्च मन्त्रों के गुणों का वर्णन। १२७१ १२७९

अध्याय २३८

गुणों की सृष्टि का प्रतिपादन

गणों का रचना का वर्णन। विद्वान् को ज्ञान और मूख का ज्ञान का प्राप्ति का वर्णन। सर्व धर्मों में विनिष्ट
धर्म का वर्णन। क्षमा आदि के द्वारा कोषों का नाश-वर्णन। १२८० १२८५

अध्याय २३९

य-वर्णन का निरूपण

योग और साधन के विद्वान् के द्वारा आचरण का समता का वर्णन। योग का विशेष प्रस्ता।
योग के विहित और निषिद्ध आहारा का वर्णन। काम आदि सम्पूर्ण शत्रुता का वर्णन। योग व अभ्यास
से नारायण-पद की प्राप्ति। १२८५ १२९०

अध्याय २४०

सांख्य-विधि का निरूपण

सांख्यविधि का निरूपण। मनुष्य आदि के विषय-ज्ञान का कथन। सत्त्व आदि गुण और सांख्य के ज्ञान का निरूपण। दृष्टि आदि के रूप आदि में सत्त्व होने का कथन। मोक्ष को दुर्लभता का निरूपण। सांख्य-ज्ञान की महिमा का वर्णन। सांख्य-योग से भ्रष्ट जनों की उत्तम कुल में उत्पत्ति।... १२९१-१३००

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

क्षर (नागवान्) और अक्षर (ध्रुव) का वर्णन। मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। वसिष्ठ और कराल-जनक का संवाद। ससार का क्षरत्व से प्रतिपादन और ईश्वर का अक्षरत्व से प्रतिपादन। चौबीस तत्त्वों का वर्णन तथा सामसादिकों की नरकप्राप्ति और निर्गुण की मोक्ष-प्राप्ति का कथन।... १३००-१३०४

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद। क्षर और अक्षर का ज्ञान न होने से बहुविध जन्मों की प्राप्ति। अभिमानों पुरुषों के बहुल-से साधनों का कथन।... १३०४-१३०९

अध्याय २४३

शिक्षणार्थ के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

वसिष्ठ के प्रति मोक्ष-धर्म के विषय में जनक का प्रश्न। श्रम्य का अर्थ जाने बिना श्रम्य का धारण करना केवल भार है—यह कथन। श्रम्य के तत्त्व को न जानकर लोग से विवाद करने वाले को नरक की प्राप्ति। अक्षर और क्षर का लक्षण। योगलक्षण का वर्णन। सांख्यज्ञानकथन। शेष-शेषज्ञ का लक्षण।... १३०९-१३१६

१

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

विद्या और अविद्या का स्वरूप-कथन। क्षर और अक्षर का विस्तार से वर्णन। ब्रह्म के त्याग से विमुक्ति का कथन। भेद से सांख्ययोग का कथन।... १३१७-१३२१

अध्याय २४५

ब्रह्म का अनेक हीनता

अथ परमात्मा भी विकारों से अनेक रूपों में भासित होता है। एतत्त्व और तात्मात्त्व का लक्षण। ज्ञान और निज्ञान से सज्जन मोक्ष का वर्णन। इन ज्ञान के दानार्थ अस्विकारि का निर्णय। जनक के प्रति वसिष्ठ का यह कथन कि उन्हें यह ज्ञान ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था। ज्ञान-प्राप्ति की परम्परा का कथन।... १३२१-१३२७

अध्याय २४६

इस पुराण के अथर्व और पाठ का कथन-वर्णन

पुराण-श्रवण के उपरान्त मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। अनन्तर समस्त मुनियों का अपने-अपने आश्रमों में जाना। ब्रह्मपुराण के शेष एवम् अन्तेज को मिलने वाली फल का कथन। धर्म की प्रशंसा।... १३२७-१३३१

○
ब्रह्मपुराणम्
(हिन्दी-अनुवाद सहितम्)
○

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य-वर्णनम् ,

यस्मात् सत्त्वमिदं 'प्रपञ्चरहितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति' याति, चान्तसमये, कल्पान्कल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः, प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ब्रुवन्, तं वन्दे पुरयोत्तमाख्यममलं गिर्यं विभुं' निश्चलम् ॥१॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये दृढं विद्यत्सन्निभं, नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सत्त्वैश्वरं निर्गुणम् ।
अथ तावन्मन्त्रपरं प्रपञ्चरहितं 'ध्यानैकगम्यं' विभु, तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुनिसदम् ॥२॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे । नानामुनिजनाकीर्णे मानापुण्योपशोभिते ॥३॥
सरलः कर्णिकारंश्च पनसंघं वृक्षादिरे । आग्नजम्बूकपिर्यंश्च न्यग्रोधैर्देवदारभिः ॥४॥
अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरपाटलैः । बकुलैः सप्तपर्णैश्च पुद्गारगणकेशरैः ॥५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च आरिक्लेशैस्तथाजुनैः । अन्यैश्च बहुभिर्बृक्षैश्चैकपाद्यैश्च शोभिते ॥६॥
मानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगमण्युते । नानाजलाशयैः 'पुण्यैर्दोषिकाक्षैरलङ्कृतैः ॥७॥

अध्याय १

जिससे यह विस्तार के साथ रचा हुआ मामामय सम्पूर्ण सत्त्वर उत्पन्न होता है, जिसमें स्थित रहता है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त में लीन हो जाता है और जिसका ध्यान करने मुनिगण प्रपञ्चरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं उस निर्मल, नित्य, व्यापक, अबल, पुण्योत्तमसम्पन्न ऋद्ध का प्रणाम करता हूँ ॥१॥ यमाधि की अवस्था में विद्वान् (साधक) जिसका ध्यान करते हैं, उस आवास के समान स्वच्छ, आनन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सर्वेश्वर, निर्गुण, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से परे, सृष्टि से रहित, केवल ध्यानयोग से प्राप्त करने योग्य, व्यापक, सत्त्वर के प्रलय के कारण, अजर और मोक्षदायक हरि को प्रणाम करता हूँ ॥२॥ मुनिगणों से व्यापक, अनेक प्रकार के पुण्या से सुशोभित, पुष्करूप, पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्पती सरल (सहज), आम्रातक (अमरताप), कटहल, पत्र, खदिर (खैर), आम, जामुन, कटेरुल, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, पाटला, मोलसिरी, छातला, पुत्राय, नागवैशर, शाल (साधु), ताल, तमाल, नारिंजल, अर्जुन और चम्पा आदि नानाविध वृक्षों से भी सुशोभित की ॥३-६॥ वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, पवित्र बावली आदि अनेक जलाशयों से

१. य. ०ञ्चपरित मा। २. ०नि लीयते तु स०। ३. ०ति लीयते च स०। ३. निष्पन्न०।
४. शानैकगम्य। ५. प्रमू। ६. ०म् ॥२॥ ये पु०। ७. ०लं। स०। ८. ०नार्गं पञ्चार्ग०।
९. क. ड. नालिंदरैस्त०। १०. क. पुण्ये वैदिरा०।

ब्राह्मणः क्षत्रियेर्वैश्येः शूद्रेश्चान्यैश्च जातिभिः। वानप्रस्थ्यगृहस्थैश्च यतिभिर्ग्रन्थचारिभिः॥८॥
 सम्पन्नैर्गोदुल्लेखैश्च सर्वत्र समदृष्टकृते। यवगोधूमचणकेर्माममुदगतिलेक्षुभिः॥९॥
 चीनकाष्ठैस्तथा मेघैः शरयैश्चान्यैश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हृतबहे हृयमाने महामखे॥१०॥
 यजतां नैमियेयाणां सत्रे द्वादशवर्षिके। आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽप्येऽपि द्विजातयः॥११॥
 तानायतात् द्विजांस्ते तु पूजा चक्र्य्ययोचिताम्। तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च॥१२॥
 तत्राजगाम सूतस्तु यतिमांस्लोमहर्षणः॥ तं दृष्ट्वा ते मुनिवरा। पूजां चपुमं दान्विताः॥१३॥
 सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने। कथा चपुस्तद्वान्योग्यं सूतेन सहिता द्विजाः॥१४॥
 कथाल्ते व्यासशिष्यं ते॥ पप्रच्छुः॥ संज्ञायं मुवा। ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सवर्ष्यः सह बीक्षिताः॥१५॥

मुनय ऊचुः ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम। जानासि देवदेत्यानां चरितं जन्म कर्म च॥१६॥
 न तेऽस्त्यविवितं किञ्चिद्देवे॥ शास्त्रे च भारते। पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्व्वमोऽसि महामते॥१७॥

अलंकृतं वा ॥७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—चागे वर्ण और आश्रम के लागे वही निवास करते थे ॥८॥ पर्याप्त पशुपक्ष एवं जौ, गेहूँ, घना, उडद, मूँग, तिल ईल और चीन आदि पवित्र अन्नो से वह क्षेत्र सज्जत था ॥९॥ उस क्षेत्र में नैमिषारण्यवासी ब्राह्मण वर्णों में समाप्त होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी पड़ रही थी। उस यज्ञ में ब्रह्म से मुनि और दूसरे ब्राह्मण लोग भी आए हुए थे ॥१०-११॥ उन आगन्तुकों का नैमिषारण्यवासियों ने यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया। ऋत्विगों के सहित आए हुए ब्राह्मणों, मुनियों के बैठ जाने पर सुप्रसिद्ध मेधावी सूत लोमहर्षण वहाँ उपस्थित हुए ॥१२॥ उन्हें देखते ही आनन्दित मुनिगण ने यथोचित सत्कार किया। तदनंतर लोमहर्षण सूतजी भी उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए व्यासपीठ पर आसीन हो गये। फिर सूतजी सहित उपस्थित विप्रबृद्ध परस्पर कथा वार्ता करने लगे ॥१३-१४॥ कथा के समाप्त होने पर सदस्यी सहित बीक्षित हुए ऋत्विग् और मुनिबृद्ध अपनी शकाओं के समाधान हेतु सूतजी से नम्रतत्पूर्वक प्रश्न करने लगे ॥१५॥

मुनियों ने कहा—मगवन्। पुराण, अगम, शास्त्र और इतिहास एवं देवता राक्षसों के जन्म, कर्म और चरित्र के अल्प विज्ञाता हैं ॥१६॥ वेद, शास्त्र, महाभारत, पुराण, मोक्षशास्त्र—इनमें से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हो। महाधीमन्! आप सर्वज्ञ हैं ॥१७॥ हे सूतजी! शारद में देवता, राक्षस, गन्धर्व,

१क ०मि। समवेयो०। ख. ०मि। सपृद्धयो०। २ग ०मि। शालिषिश्च तथा। ३क ०न्ये च द्वि। ४क स ०योदितो०। ५क ०मात्रोम०। ६ग ०पि ता प्रतिगृह्येव। ७क ०स्तथाऽप्यो। ८ग सह ते द्वि०। ९ख। ०न्ते च व्या०। १०क. तु। ११क. ०प्रच्युस्तेऽप्यय मु०। १२क. ०देवशास्त्रेषु मा०।

यथापूर्वमिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् । ससुरासुरगन्धर्वं सेयक्षोरगराक्षसम् ॥१८॥
 धोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्वं यथा । जगत् । बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥१९॥
 यतश्चैव जगत् । सूत यतश्चैव चराचरम् । लीनमासीत्तथा यत्र लयमेव्यति यत्र च ॥२०॥

लोकहर्षण उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैवरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥२१॥
 नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥२२॥
 एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने । नमः । मध्यवर्ताव्यवतभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥२३॥
 सर्गस्थितिविनाशाय जगतो षोडशरामर । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥२४॥
 आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयासमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्यमच्युतं पुरतोत्तमम् ॥२५॥
 ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्मलं परमार्थतः । तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥२६॥
 विष्णुं प्रतिष्णुं विश्वस्य स्थितौ । सर्गे तथा प्रभुम् । सर्वज्ञं जगतामीशमजमक्षयमम्यम् ॥२७॥
 आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च । इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२८॥
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसूतं प्रभुम् । गुहं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥२९॥

यस्य, सर्ग, वैश्य आदि योनियो सहित यह चराचर जगत् जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उस प्रक्रिया को हम लोग भुतना कहात है इत्यादि मुनाइए ॥१८॥ महाभाग सूतजी । जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और प्रलय के बाद जिस प्रकार फिर उत्पन्न होगी तथा चराचर सहित जगत् जिसमे लीन रहकर उत्पन्न हुआ और फिर जिसमे लीन होगा उसका समस्त उत्पत्ति एवं लयवम इस बतलाइये ॥१९-२०॥

लोकहर्षण बोले—निविहार तद्ध दृष्ट, नित्य सर्वात्मा, सारवत, सर्वव्यापक सर्वजयी हिरण्यगर्भ, हरि, तार, वासुदेव—नामधारी अनिल उदारव सृष्टि स्थिति प्रलय के कारणभूत एक और अनेक स्वरूप धारण करने वाले, स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, व्यवत और अव्यवत तथा मोक्ष के कारण सगवान् विष्णु को नमस्कार है । ॥२१-२३॥ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत अजर, अमर, नित्य परब्रह्म विष्णु को नमस्कार है । ॥२४॥ विद्य के आधार मूलमातिमूलक एक सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत को प्रणाम है । ॥२५॥ तत्त्वन ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निर्मल होत हुए भी भ्रम से पदार्थरूप से माहित सबको प्रचनेवाले विश्व की उत्पत्ति स्थिति करन में समर्थ सबज्ञ सशर के स्वामी जम मरण ह्रास से रहित सब के आदि और अन्त मूलम ब्रह्मापनायक विष्णु को तथा ब्रह्मा आदि देवो को प्रणाम है । ॥२६-२७॥ वेद और वेदाङ्ग में निष्ठाव इतिहास, पुराण तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वन पराशर मुनि के पुत्र परमगुरु व्यासजी को प्रणाम है । मैं जो कुछ

१८ अथापनम् । य० २९ अत्यर्थे य० । ३० भविष्यति । ३१ वा । ३२ त गुरुणम् ।
 ३३ अथमाय त न० । ३४ अत्यन्तहेतवे । अथ न अज्ञाना ज० । ३५ न या जगन्मय । सू० ।
 ३६ अतोऽव्यवतर्गः । ३७ अमुत्तम० । ३८ तमेव स्वरूप० । ३९ अवाप्यमस्व० । ४० स्थितिगर्भ ।
 ग स्थितिगर्भे । ४१ अथ अथ सू० । ४२ अथ अथ वि० । ४३ अथ वि० ।

कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टं प्रोवाच भगवानग्नयोनिः पितामहं ॥३०॥
 शृणुष्व सम्प्रत्यक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । कथ्यमानां मया तन्निष्ठा बहूनां श्रुतिविस्तराम् ॥३१॥
 यस्त्विवमा धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभोऽणशः । स्ववशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥
 अव्यक्त कारणं यत्तन्निष्ठं सदसदात्मकम् । प्रधानं पुरुषस्तस्माद्भिन्ने विद्यमोऽक्षरः ॥३३॥
 स धुष्यद्ब मुनिश्रेष्ठो ब्रह्माणममितीजसम् । स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४॥
 अहङ्कारस्तु महत्तस्तस्माद्भूतानि जग्निरे । भूतभदाश्च भूतेभ्य इति सर्गं सनातनं ॥३५॥
 विस्तरावयव चैव यथाप्रज्ञं ध्यायश्रुतिः । कीर्त्यमानं शृणुष्व यः सर्वेषां कीर्तिवद्धनम् ॥३६॥
 कीर्तितं स्थिरकीर्त्तितं सर्वेषां पुण्यवद्धनम् । तत् स्वयम्भूभगवान् सिसृक्षुर्विधिया प्रजा ॥३७॥
 अप एव सप्तज्जादौ तासु धीर्यमयासृजतः । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो घं नरसूतवः ॥३८॥
 भयनं तस्य तां पूर्वं तेन नारायणं स्मृतम् । हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥३९॥
 तत्र जले स्थप्य ब्रह्मा स्वयम्भूरिति न भूतम् । हिरण्यवर्णो भगवानुत्पित्वा परितस्तत्परम् ॥४०॥

क्यों वेदों के अनुकूल कहेंगे। ॥२८ २९॥ पूर्वकाल में दक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछ जाने पर उन्हें पितामह ब्रह्मा ने जिस प्रकार बताया था वैसीही मैं बयान करता हूँ मुनिगण । मैं पापनाशिनी कथा बतलाऊँ ॥३०॥ अधिक रहस्यवाद एवं श्लेष-युक्त कथा को जो व्यक्ति बार-बार सुनेगा या धारण करेगा वह अपने बंध का बाधक बनकर स्वर्गलोक में पूजित होगा ॥३१ ३२॥ जो अव्यक्त कारण है वह सत-असत नियम प्रकृति और पुरुष है। उसी से ईश्वर ने विश्व की रचना की है ॥३३॥ मुनिश्रेष्ठ ! उस ईश्वर को आप सब प्राणियों का स्रष्टा तथा नारायण का अभित अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा समझिये । ॥३४॥ महत्-तत्त्व में अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकार से पंचमहाभूत और उनसे उनके मंद उपग्रह हुए। यही सनातन सृष्टि है ॥३५॥ अब जसा मैं न बता रहा हूँ और जसी मेरी गति मति है तदनुसार सत्वा विस्मय वणन करता हूँ आप लोग सुन। यशः शरीर से अमर व्यक्तियों का स्मरण पुण्यप्रद होता है यह सृष्टि तथा आप लोगों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली है ॥३६३॥ स्वयम्भू भगवान् ने अनक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा रखकर पहले जल की ही सृष्टि की। उसमें बीज डाला। नारं नाम जल राशि और नर-पुत्र इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है ॥३७ ३८॥ उस परम पुरुष का आश्रय पहले जल राशि ही थी। इसलिए उसको नारायण कहा गया। जल में सोये हुए परम पुरुष की नाभि से एक सुवर्णमय अंडा उत्पन्न हुआ ॥३९॥ उससे स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुए —एधा हमने सुना है।

१क ०नजो नियम पि०। २क ०प्रमोचिनी०। ३य तिसमिताम। ४य ०मोदशम। त।
 ५क व। ६क्ष ग ०व्यकमनाम। ७स ०मवास०। ८क ०ति विध०।

१ नार शब्द तस्य अर्थात् स्थान नारायण —इस व्यक्तित्व के अनुसार ज्ञान के धारण को नारायण कहा जाता है। नार का तात्पर्य ज्ञान से है अर्थात् भौतिक सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा न ज्ञान-सृष्टि की। २ ब्रह्म में अन्तर्निहित पञ्चतन्त्र का रहस्य होता सुवर्णमय अंडा है। इस प्रकार इस कथा के श्लेष का भी ध्यान रखना चाहिए।

तदण्डमकरोद्दधं दिवं भुवमयापि च। तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥
 अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे। तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमयो रतिम् ॥४२॥
 ससर्जं सृष्टिं तद्रूपी स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्। सरोचिमग्न्यङ्गिरसोः पुलस्त्यं पुलहं ऋतुम् ॥४३॥
 यसिष्ठं महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्। सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥
 नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्। ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा र्हं रोयात्मसम्भवम् ॥४५॥
 सनत्कुमारं च विभुं पृथ्व्यामपि पृथ्व्यंजम्। सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥४६॥
 स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य निष्ठतः। तेषां सप्त महावंशा द्विधा देवगणान्विताः ॥४७॥
 क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः। विद्युतोऽग्निमेधाश्च रोहितेन्द्रघ्नं वि च ॥४८॥
 घर्षांसि च ससर्जादौ यज्ञं यश्च ससर्ज ह। ऋचो यजूंषि सामानि निम्ममे यत्सिद्धये ॥४९॥
 साम्यान्जनयद् देवानित्येवमनुसञ्जगुः। उच्चायचानि भूतानि गार्ग्येभ्यस्तस्य जनिरे ॥५०॥
 आपयस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापते। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विद्विधाः प्रजाः ॥५२॥
 दिवश्च पृथिवीं चैव महिम्ना ध्याप्य तिष्ठति। विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरं विराट् ॥५३॥

हिरण्यगर्भे भगवान् ने वर्षों तक वास करने उग्र अडे की स्वर्ग और पृथ्वी इन दो दुर्बलियों में विभक्त कर दिया ॥४०॥ परमात्मा ने उन दोनों दुर्बलों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथ्वी तथा दमो दिशाओं को धारण किया ॥४१॥ तदनन्तर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति की रचना की और फिर प्रजापतियों की सृष्टि की। दृष्टा रचकर मरीचि, अग्नि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह ऋतु, और यमिष्ठ—इन छत ऋषियों की माननी सृष्टि की ॥४२-४३॥ पुराणा में ये छान ब्रह्मा निश्चित हैं। नारायणने अथ ने उत्पन्न हुए इन छान प्रजापतियों से पहले ब्रह्मा ने क्रोध से यद्र का उत्पन्न किया ॥४४-४५॥ फिर पूर्वजों के भी पूर्वज तथा गर्वभ व्यापन सनत्कुमार को भी उत्पन्न किया। इन सप्तपिमा से, ब्राह्मणों। प्रजाओं और रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ स्कन्द और सनत्कुमार अपने अपने तेज को समेट कर स्थित हैं। उनके दिव्य और देवगणों में युक्त छान महावंश विद्यावान् प्रजा-वान् और महर्षियों से अङ्कृत हैं ॥४७॥ आदि में बिजली, वय, लाल इन्द्रघ्न जल और नेत्र की रचकर दश-विष्टि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण ब्रह्मा ने किया ॥४८-४९॥ परवान उन्हाल छाव्यों और देवताओं को भी उत्पन्न किया। फिर छोटे-बड़े सब प्राणी ब्रह्माजी के अग से उत्पन्न हुए ॥५०॥ 'आयव' नामक प्रजापति जब सृष्टि करते हैं, सब सर्जन की जाने वाली प्रजा जब-तब नहीं बन्ती है ॥५१॥ ब्रह्मा ने अपनी देह के दो भाग किए। आधे भाग से पुरुष बना और आधे भाग से स्त्री बनी। उग्र स्त्री ने उर्दोने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥ अपनी महिमा से स्वर्ग और पृथिवी को ध्यापन करने के निमित्त है। विष्णु ने विराट् की सृष्टि की। विराट् ने पुरुष की उत्पन्न किया ॥५३॥ उस पुरुष को मनु ममणिय। उगी का

१४. दधी। २४. यति। ३०। ३१ न ०२१ पु०। ४४ च। ५१ ०मुनंरं। १४ ०म्।
 तारपंथा। ७१. ०७ खेपा अ०। ८१ रद्वच। ९४ तिष्ठति। १० ०नक्ति। १११ ०ध्यानान्याया
 देश०। १२ ॥ ०नुपुयम्। ३०। ३ ०नुपुयम्। १३०। १३१ नय्य च प्र०। १४१ न निष्ठ।

पुरुष स मनु विद्यास्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् । द्वितीय मानसस्येतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥५४॥
 स वैराज प्रजासर्गं ससर्जं पुरुषं प्रभु । नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याध्ययीनिजा ॥५५॥
 आयुष्मान् कीर्तिमान् पुण्यप्रजावाश्च भवेन्नर । आदिसर्गं विदित्वेभ्य मयेष्टा चाऽनुयाद् गतिम् ॥५६॥
 इति श्रीब्रह्म महापुराणे आदिसर्गवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

तत्रादौ स्वायम्भुवमनुवशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

स 'सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वं प्रजापति । लेभे वं पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥
 आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठत । धर्मैर्न मुनिषेष्टा शतरूपा व्यजायत ॥२॥
 सा तु वर्णयुत सृष्ट्वा तप परमदुश्चरम् । भर्तार शीघ्रतपस पुरुषं प्ररययत् ॥३॥
 स वै स्वायम्भुवो विप्रा पुरुषो मनुश्च्यते । तस्यैकसप्ततिभुव मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

मन्वन्तर (वृक्ष) होता है और मानस मनु का वह दूसरा अन्तर कहा जाता है ॥५४॥ विराट् से उत्पन्न शक्तिशाली पुरुष ने प्रजा की सृष्टि की । नारायण के अश से उत्पन्न हुए उस पुरुष की भी प्रजाई अयोनिज हुई ॥५५॥ जो व्यक्ति इस प्रकार आदि सृष्टि की रचना की सम्मना, वह आयुष्मान् कीर्तिमान् तथा पुण्यप्रजावान् होगा और मयाभि-
 लषित गति की प्राप्ति करेगा ॥५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आदिसर्गवर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु का वशवर्णन

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार आपव नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ॥१॥ मुनिवर्गवृन्द ! अपनी महिमा से स्वयं को ढककर स्थित हुए आपव के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी ॥२॥ उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके अतिशयस्वी पुरुष को पति के रूप में प्राप्त किया था ॥३॥ ब्राह्मण ! वही पुरुष स्वायम्भुव मनु कहलता है । इनहत्तर युग का उसका एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥४॥ उस पुरुष से शतरूपा ने वीर नामक पुत्र को उत्पन्न किया । वीर की स्त्री काम्या से प्रियव्रत

वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतस्था व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादो धीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥
 काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः। काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्प्रष्टु कुक्षिविराट्प्रभुः ॥६॥
 उत्तानपादं जग्राह पुत्रमग्निः प्रजापतिः। उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥७॥
 पर्म्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता। उत्पन्ना धाजिमयेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८॥
 ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च आयुष्मन्तं वसुं तथा। उत्तानपादोजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥९॥
 ध्रुवो धर्यसहस्राणि श्रोणि विष्मन्नि भो द्विजाः। तपस्तेषु महाभागः प्रार्ययन् सुमहद्यज्ञः ॥१०॥
 तप्तं ब्रह्मा इदं प्रेतः स्थानमस्मत्समं प्रभुः। अचलश्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११॥
 तस्याभिमानमुद्विज्च महिमानं निरीक्ष्य च। देवासुराणामाचार्यः इलोकं प्रागुदना जगौ ॥१२॥
 महोजय तपसो धीर्यमहा श्रुतमहोद्भूतम्। यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥
 तस्माच्छिल्पितं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुष्यं जायत। दिल्पदेराधत्त सुच्छाया पञ्चपुत्रानवल्मयान् ॥१४॥
 रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सव्यतेजसम् ॥१५॥
 भोजीजन्तु पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम्। प्रजापतेरारभजायां वीरणस्य महात्मनः ॥१६॥
 मनोरजायन्त दश नड्वलायां महोजसः। कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

वीर उत्तानपाद उत्पन्न हुए ॥५॥ काम्या कर्दम नामक प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या थी। काम्या ने चार पुत्र हुए—
 सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु ॥६॥ पुत्र उत्तानपाद को अग्नि प्रजापति ने ग्रहण किया। उत्तानपाद से सूनृता
 ने चार पुत्रों को प्रमथ किया ॥७॥ अश्वमेध यज्ञ से उत्पन्न और सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर बटि वाली धम की
 कन्या ध्रुव की कल्याणी माता हुई ॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्त्तिमान्, आयुष्मान् और वसु नामक पुत्र।
 जो सूनृता से उत्पन्न किया ॥९॥ विप्रबन्धु! ध्रुव ने महान् यज्ञ की इच्छा से तीन हजार देवर्षय पर्यन्त
 तपस्या की ॥१०॥ ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अचल स्थान दिया ॥११॥
 ध्रुव ने अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य को देखकर देवता और दैत्यो के आचार गुञ्ज उसकी प्रशंसा
 करने लगे—॥१२॥ महो! ध्रुव की तपस्या शक्ति आश्चर्य है! इसका श्रुत (शास्त्र-ज्ञान या कीर्त्ति) आश्चर्य
 है। आज इसी ध्रुव को आगे करने सत्ताधि अवस्थित हैं ॥१३॥ ध्रुव से शिल्पित और वय्य को राम ने उत्पन्न किया।
 शिल्पित से मुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया—॥१४॥ रिपु, रिपुञ्जय, वीर, वृकल और
 वृकलेजया। रिपु से बृहती ने बड़े तेजस्वी चक्षुष को उत्पन्न किया ॥१५॥ चक्षुष से वैरिणो पुष्करिणी
 ने चाक्षुष मनु को जन्म दिया। पुष्करिणी महत्मा प्रजापति वीरण की कन्या थी ॥१६॥ नड्वला से
 चाक्षुष मनु के बड़े तेजस्वी दश पुत्र हुए। मुनिषेष्ठ! नड्वला वैराज प्रजापति को पुत्रों थी ॥१७॥ अपने

कुत्स १ १७ शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि । अग्निष्टुतिरात्रश्च १ सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥
 अभिम-युश्च १ दशमो नड्वलाया १ महोजस १ । पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाम्नेयो महाप्रभान् ॥१९॥
 अङ्ग सुमनस १ स्वाति क्रतुमङ्गिरस १ भयम् । अङ्गात् सुनीयापस्य च वेनमेक व्यजायत ॥२०॥
 अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् । प्रजार्थमूषयो यस्य समन्वुर्दक्षिण करम् ॥२१॥
 वेनस्य मयिते पाणौ सबभूव १ महानुप । त दृष्ट्वा मुनय प्राहुरेय वै मुदिता प्रजा ॥२२॥
 करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् । स धन्वी कवचो जातो १ ज्वलज्वलनसन्निभ ॥२३॥
 पृथुर्वैनस्तथा १ चेषो ररक्ष १ क्षत्रपूर्वज । राजसूयाभिषिक्तानामाद्य १ वसुधाधिप ॥२४॥
 तस्माच्चैव समुत्पन्नो निपुणो सूतमागधो १ तेनेय गौर्मुनिधेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥
 प्रजाना वृत्तिकामेन १ देवं सपिगणं सह । पितृभिर्दानवैश्चैव १ धन्वर्वरपरोमणं १ ॥२६॥
 सपै पुण्ड्रजनेश्चैव धीरिह्नु पृथ्वतरतथा । तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुधरा ॥२७॥
 प्रादाव्ययेस्तित क्षीर तेन प्राणानधारयन् । पृथोस्तु पुत्रो धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धियातिनो ॥२८॥
 शिल्पिञ्जनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत । हविर्धानात् षडाम्नेयो १ धियणाजनयत् सुतान् ॥२९॥
 प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृष्ण गजाजिनो । प्राचीनवर्हिर्भंगवान्महानासीत्प्रजापति ॥३०॥

पुत्र । क नाम गुरुः पुर शतद्युम्न तपस्वी सत्यवाक् कवि अग्निष्टुति अतिरात्र मुद्युम्न और अभिम-यु ये ॥१८॥
 पुत्र ते आग्नेया ने छह महातपस्वी पुत्री को उत्पन्न किया । वे अग सुमनस् स्वाति नव अगिरस और
 मय नाम के रयात हुए ॥१९॥ अग स शुनीय म वन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥२०॥ वेन के अनाचार से मुनिगण
 अत्यन्त क्रुपित हुए और उनको सन्तान के लिए उसका दाहिने हाथ का मणन किया ॥२१॥ उसने एक महान् राजा उत्पन्न
 हुआ । उसे देखकर मुनिया ने कहा— वह प्रजा को आनन्दित करेगा महान् तपस्वी होगा और बड़ी प्रतिष्ठा
 प्राप्त करेगा ॥ २२॥ उसन धनुष और कवच धारण कियेये । वह अग्नि ने समान वांन्तिमान् था ॥२३॥ उसका नाम पृ
 थुः । उस राजा न पृथ्वी की रक्षा की । वह राजसूय यज्ञ करन काले राजाओं म पहला राजा हुआ ॥२४॥ उसी के
 प्रथीण सूत और मागध उत्पन्न हुए । मुनिभट्ट । राजा पृथु ने प्रजाओं को जीविका देन की इच्छा ने इस पृथिवी
 स भस्मा का दाहन किया ॥२५॥ उसका साथ देवता ऋषिगण पितर रामस बधव अप्सराएँ, सपगण पुण्ड्रजन,
 रक्षा और पवत मी (इह न म लगे हुए) थे ॥२६॥ उन जन पात्रा म दही गई पृथिवी ने बधच्छ दूष दिया । उसने
 प्रजाओं न प्राण धारण किए । मग क अन्त म पृथु के अन्तर्धि और पार्तिन् नामक दो धर्मज्ञात पुत्र हुए ॥२७-२८॥
 शिल्पिञ्जनी म अन्तर्धान छ हविर्धान को उत्पन्न किया । अग्नि की पुत्री धियणा ने हविर्धान ने छह पुत्र पैदा
 किये ॥२९॥ प्राचातवर्हिष् शुक्र गय कृष्ण यज्ञ और अजिन । उनम अगवान् प्राचीनवर्हिष् महान् प्रजापति

१ न २८ । ॥ ऊ८ । २१ गुरु । ३४ अष्टुजिनः । ४४ अमन्स्वाति ते । ५५
 अभिमः । ६५ नड्वलाया । ७५ अगः । ८५ स्वाति । ९५ ग मयम् । १०५ हानुपि ।
 ११५ राजा । १२५ वेना । १३५ दशमूषजः । १४५ तन पृथ्वी मुनिः । १५५ देवैः ऋषिगः ।
 १६५ अचारेणः । १७५ अक्षरं यः । १८५ अथी पुण्यानवः ।

ततः सोमस्य वचनाञ्जगृह्णते प्रचेतसः^१। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः^२ पत्नीं धम्मणे^३ मारिषाम् ॥४५॥
 वदाम्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महतेजाः सोमस्याशेन भो द्विजाः ॥४६॥
 अचराश्च चराश्चैव द्विपदोऽप्य चतुष्पदः। स सप्तधा^४ मनसा^५ दक्षः षड्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥
 ददौ^६ दश त धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। शिष्टाः सोमाय राज्ञे च^७ नक्षत्राह्वया ददौ प्रभुः ॥४८॥
 ताम् देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥
 ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मेयुनसंभवाः। सङ्कल्पाद्दशनात्सप्तशतपूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजा ॥५०॥

भुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। सभैवस्तु भुताः प्रमाभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥
 'अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो' जज्ञे दक्षः किल शुभव्रतः। वामाङ्गुष्ठात्तया चर्वं तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥
 कथं प्राचेतसत्वं स^८ पुनर्लभे महातपाः। 'एतन्नः संशयं सूत ध्याह्वयतुं' त्वमिहार्हसि ॥
 दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥५३॥

लोमहर्षण उवाच

'उत्पत्तिश्च निरोधश्च' नित्यं भूतेषु भो द्विजाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ॥५४॥

तेजस्वी दक्ष आपरे तेजरूप जनि से दण्ड हुई इस पृथिवी पर फिर प्रजा की ब्रह्मणा ॥४५॥ तब सोम के वचन से प्रचेतागण ने कोप (यागकर वृक्ष) से मारिषा की धर्मपूर्व्व पत्नी रूप में ग्रहण किया। ॥४५॥ विप्रवृन्द ! दक्षो प्रचेताओ से मारिषा ने महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष की सोम के अश से उत्पन्न किया ॥४६॥ उस दक्ष ने स्थावरों और दौ पीर वाले तथा चार पीर वाले जगमा की मानसी सृष्टि कर पीठे स्त्रियों की रचना की ॥४७॥ उस प्रभु ने दश न्यायों धर्म की और तेरह कश्यप की दी। अवशिष्ट नक्षत्ररूपी न्यायों साम राजा की दी ॥४८॥ उन न्यायों से देव, परी, गी, नाग, बँस्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और दूसरी जातियाँ उत्पन्न हुई ॥४९॥ विप्रवन्दवृन्द ! तभी से मेयुनी सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। पहले सबल्य, दर्शन और स्वयं से प्रजा उत्पन्न हुआ करती थी ॥५०॥

मुनिगण बोले—देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनियों और महारमा दक्ष की भी उत्पत्ति हम ने सुनी ॥५१॥ ब्रह्मा के अंगूठे से दुर्मादय दक्ष का जन्म हुआ। उसी प्रकार बायें अंगूठे से उसकी पत्नी की उत्पत्ति हुई ॥५२॥ फिर उस महान् तपस्वी ने प्रचेताओ का पुत्रत्व कैसे प्राप्त किया ? सूतजी ! आप हमारी इस दावा का समाधान करें कि ऋद्धमा का दौहित्र (दक्ष) ऋद्धमा का छगुर कैसे बना ? ॥५३॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध (मरण) नित्य होत रहन हैं। मृनि और बिना मृग इष्टम माहित नहीं हुआ करत ॥५४॥ ये दक्ष आदि राजा लोग हर युग में उत्पन्न हात हैं और फिर नष्ट

१। स। तपोयता। २। वृक्षेषु। ३। ०। मत्स्याः प्रमत्तयो द्विः। ४। ०। पृथा मानसादयः।

५। ०। मृग मृगः। ६। स। ०। बालावृत्तिः। ७। स। ०। दी स दक्षः। ८। स। तु। ९। स। ऋषयः।

१०। ०। पृथाः सिपाग्राता दः। ११। ०। णो जाता दः। १२। स। च। १३। स। एव। स। एव ॥ स०।

१४। ०। वृक्षे ब्रह्मणो। १५। स। विपत्तिः।

युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपा । पुनश्चैव निरध्वन्ते विद्यास्तत्र न मुह्यति ॥५५॥
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नासीद्विजोत्तमा । तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥
इमा विस्मृष्टि दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् । प्रजावानामुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥
इति ब्राह्महपुराणे सृष्टिकथन नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

देवदानवोत्पत्ति-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥

लोमहर्षण उवाच

प्रजा सृजति व्यादिष्टं पूर्व्वं दक्ष स्वयम्भुवा । यथा तसर्जं भूतानि तथा भृशुत भो द्विजा ॥२॥

हो जाते हैं । विद्वान् इक्षम मोहित नहीं होता ॥५५॥ द्विजगण । पहले इनम ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता का भेद नहीं था प्रत्युत तप और तप का प्रभाव ही मुख्य कारण माना जाता था ॥५६॥ दक्ष की इस चराचर सृष्टि को जो जानता है वह प्रजाकान् और आयुष्मान् होकर स्वर्ग में पूजित होता है ॥५७॥

श्री ब्रह्महपुराणे मे सृष्टि कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

देवो और दानवो की उत्पत्ति का वर्णन

मुनिगण बोले—आय लोमहर्षण । देवता दानव गन्धर्व्व नाग और राक्षसों की उत्पत्ति तथा विनाश पूर्व्वक मुनान की व्या कर ॥१॥

लोमहर्षण बोले—विप्रगण! ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त कर दक्ष ने जिस प्रकार प्रजापति की सृष्टि की वह (रचना विधान पहले) सुनिषे ॥२॥ प्रारम्भ में प्रभु ने जानसी सृष्टि की रचना की,

१ व रा ० त सर्वे दशा ० । २ व विपचन्ते । ३ व ० ति । जम पर्व विपतिपच पू ० । ४ व ० मा पु सू ॥ ५ व ग ० चरम् । ६ व सूत । ७ व पुनद ० ।

मानसान्धय भूतानि^१ पूर्वमेवासुजत् प्रभुः। ऋषीन्देवान् सगन्धर्वान्सुरान्धक्षराक्षसान् ॥३॥
 यदास्य मानसी विप्रा न ग्यवर्द्धत ये प्रजा। तदा सञ्चित्य धर्मात्मा प्रजाहेनोः प्रजापतिः ॥४॥
 ॥ मैयुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिकनीमावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापतेः ॥५॥
 सुतां सुतपसा द्युक्ता महतीं लोकधारिणीम्। अय पुत्रसहस्राणि वरेण्या^२ पञ्च धीर्यवान् ॥६॥
 असिकन्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविद्वर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७॥
 देवर्षिः प्रियसंब्राह्मो नारदः प्राब्रवीद्विदम्। नाशाय वृक्षन् तेषां शापार्थमात्मनस्तथा ॥८॥
 यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठीं प्यजीजनत्। दक्षस्य च कुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९॥
 पूर्व ॥ हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिकन्यामय वरेण्या^३ भूयो देवर्षिसत्तमः ॥१०॥
 तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य ये पुत्रा हर्षंश्वा इति विभ्रुता ॥११॥
 निर्म्मम्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संक्षयः। तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२॥
 ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिश्चक्रे च दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३॥
 कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रावात् प्रियां च परमेष्ठिने ॥
 ॥ तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापमयादृधिः ॥१४॥

फिर मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष और राक्षस योनियो की रचना की ॥३॥ किन्तु जब मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी, तब धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के कारण पर अच्छी तरह विचार किया और मैयुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं के रचने की इच्छा की ॥४॥ फिर वीरण प्रजापति की अत्यन्त तपस्विनी और लोकधारिणी कन्या असिकनी की पत्नी बनाया। ॥५॥ सवित्ताली दक्ष प्रजापति ने वीरण-पुत्री असिकनी से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥६॥ प्रजाओं की बढ़ती की इच्छा करने वाले उन महाभागों को देखकर प्रियमापी देवर्षि नारद ने उनसे नाश के लिये और अपने शाप के लिये यह बात कही ॥७-८॥ पितामह कश्यप ने जिस पुत्र-श्रेष्ठ को उत्पन्न किया, वह मुनि नारद दक्ष शाप के भय से कश्यप से दक्ष की कन्या से पहले उत्पन्न हो गया था ॥९॥ फिर देवर्षियों के श्रेष्ठ कश्यप ने उस मुनिश्रेष्ठ नारद को वीरण-प्रजापति की कन्या असिकनी से पिता की तरह उत्पन्न किया ॥१०॥ नारद ने हर्षंश्च नाम से विष्णुवत् दक्ष के पुत्रों को मथकर निःसन्देह विनष्ट किया था। तब अत्यन्त पराक्रमी दक्ष नारद का नाश करने के लिये तैयार हो गया ॥११-१२॥ कश्यप ने ब्रह्मर्षियों को आगे बढ़ते दक्ष से याचना की। इससे बाद कश्यप ने दक्ष से प्रतिज्ञा की—॥१३॥ 'आपकी कन्या से मेरा पुत्र नारद उत्पन्न होगा।' तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप को दे दी। वह मुनि नारद शाप के भय से फिर उससे उत्पन्न हुआ ॥१४॥

१ग ०ति प्रजापतिस्वामुखम्। २क ०र्षीरान्यशांस्व रा०। ३ग ०तान। ४ग ०मुतां।
 ५क ०वीरण्या न वीरिण्या। ६क ०वीरण्या। ७क ०वीरणी। ८क ०मुनिपुङ्गव। ९ग ०मपि चक्रे।
 १०क ०शोभय त०।

मृत्यु ऊचुः

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा । प्रजापतेः सृतवर्ग्यं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५॥

लोमहर्षण उवाच

इक्षस्य पुत्रा ह्ययं दवा विवर्द्धयिषवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६॥

नारद उवाच

बालिशा वत ययं वै मास्या जानीत वै भुवः । प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥१७॥
अन्तरुद्ध्वंमघश्चैव कथं सृजय वै प्रजाः । ते तु स्रष्टुचर्चं श्रुत्वा प्रयाताः सध्वंतो दिशः ॥१८॥
अद्यापि न नियतन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः । ह्ययं श्वेदवय नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९॥
वैरण्यामय पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः । विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०॥
पूर्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः । अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्भगाह महानृपिः ॥२१॥
भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः । ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्वाश्च सुखं श्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥२२॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सध्वंतो दिशम् । अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥

मुनिगण बोले—आयं सृतजी । महर्षि नारद ने प्रजापति के पुत्रों का कैसे नाश किया—यह बात हम लोग यथार्थ रूप से सुनना चाहते हैं ॥१५॥

लोमहर्षण बोले—प्रजाओं को बहाने की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्र महाबली हयंश्व नारद के पास आये । नारद ने उनसे कहा—॥१६॥

नारद बोले—दक्ष-पुत्रों ! तुम लोग मूर्ख हो । प्रजा की सृष्टि करना चाहते हो, किन्तु इस पृथिवी के प्रमाण—ऊपर, नीचे और मध्य—को नहीं जानते । कैसे प्रजाओं की सृष्टि-रचना कर सकोगे ? ॥१७॥
मुनि की ऐसी बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटती उसी प्रकार वे आज तक अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे ॥१८॥ हयंश्व ने मट्ट हो जाने पर प्रचेता के पुत्र समर्थ दक्ष ने फिर वैरणी से हजार पुत्रों की उत्पन्न किया । उनकी शबलाश्व सभा पड़ी । उन्होंने प्रजाओं को बहाना चाहा ॥१९-२०॥ उनसे भी नारद ने वही बात कही । वे परस्पर कहने लगे—‘मुनि ने ठीक कहा ॥२१॥ भाइयों का मार्ग जानने के लिये जाना चाहिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथिवी का प्रमाण जानकर हम लोग सुख से प्रजाओं की सृष्टि करेंगे ॥२२॥ वे भी उसी मार्ग से विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थित हुए और समुद्र से नदियों की तरह आज तक नहीं लौटे हैं ॥२३॥ तब से माई की सोच में क्या हुआ भाई भीत्र नष्ट हो जाता

१क. ऋषयः । २क. स्रष्टुस्तु मघवज्योतुः । ३. ज्ञास्ते सर्वे वि० । ४क. मूयो । ५क. रक्षय ।
६क. दिशम् । ७क. न । वीरिण्याः । ८क. चनात्ते तु । ९क. स्रष्टुर्नैव वि० । १०क. हामुनि । आ० ।

तदा प्रभृति वै ग्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः^१। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२४॥
 तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। यष्टिं ततोऽज्ञाज् कन्या^२ वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५॥
 तास्तदा प्रतिजग्राह 'आर्यार्यं कश्यपः प्रभुः। सोमो धर्मश्च भो विप्रास्तयेवाग्ये महर्षयः ॥२६॥
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने^३ ॥२७॥
 ॥ चैव बहुपुत्राय चेवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि^४ मे श्रुणु ॥२८॥
 अरुण्यती वसुर्यमि^५ लम्बा^६ भानुमरत्वती^७। सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९॥
 धम्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्न्यानि^८ बोधत। विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् ध्यजयात् ॥३०॥
 मरत्वस्या मरत्वन्तो वसोस्तु वसवः^९ सुता^{१०}। भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः ॥३१॥
 लम्बायाश्चैव^{११} 'घोषोऽथ नागवीथी च^{१२} 'यामिजा। 'पृथिवीविषयं सध्वमरुण्यया^{१३} ध्यजयात् ॥३२॥
 'सङ्कल्पायास्तु^{१४} 'विश्वामा जने सङ्कल्प एव हि। 'नागवीथ्याञ्च^{१५} 'यामिग्या वृषलश्च ध्यजयात् ॥३३॥
 परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्वान् नक्षत्रनाम्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तता ॥३४॥
 ये स्यन्त्ये ह्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्युरोगमा^{१६}। वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५॥
 आपो ध्रुवश्च^{१७} 'सोमश्च^{१८} 'ध्रुवश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो मामभिः स्मृताः ॥३६॥
 आपस्त्य पुत्रो वैतण्ड्य^{१९}। 'श्रमः^{२०} 'श्रान्तो भुनिस्तथा। ध्रुवस्त्य पुत्रो भगवान् कालो 'लोकप्रकालनः ॥३७॥

हे। विद्वान् को ऐसा नहीं करना चाहिए ॥२४॥ दक्ष प्रजापति ने उन पुत्री को नष्ट जानकर वैरणी से साठ कन्यायें उत्पन्न की—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उन कन्याओं को प्रभु कश्यप, सोम, धर्म तथा हमारे महर्षियों ने पत्नी बनाने के निमित्त ग्रहण किया ॥२६॥ दक्ष ने दश कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्तारह सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दी। अब उनके नाम मूलसे सुनिये—॥२७-२८॥ विप्रवृद्ध! अरुण्यती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरत्वली, सक्त्वा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दश कन्याएँ धर्म की पत्नी हुईं, उनहीं युक्ताओं के नाम सुनें—॥२९,३०॥ विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्य, मरत्वती से मरत्वान्, वसु से वसु भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्त और लम्बा से घोष उत्पन्न हुए। यामि से नागवीथी उत्पन्न हुई ॥३१-३२॥ पृथिवी के सब विषय अरुण्यती से उत्पन्न हुए। सद्यार के सब सक्त्व सक्त्वा ॥ उत्पन्न हुए। नागवीथी यामिनी से वृषल उत्पन्न हुआ ॥३२-३३॥ प्रचेता-पुत्र दक्ष ने बाद में जो कन्यायें सोम को दीं, वे सब नक्षत्र नाम से ज्यातिष में बड़ी गयी हैं ॥३४॥ जो दूसरे ख्यातिप्राप्त तथा ज्योति के आगे चलने वाले देव हैं, वे साठ वसु कहलाये। उनका मैं यहाँ पर विलुप्त-वर्णन करूँगा ॥३५॥ वे वसु आप, ध्रुव, सोम, ध्रुव, अग्निल, अनन, प्रत्यूष और प्रभास—इन नामों से ख्यात हुए ॥३६॥ आपने वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त और भुनि नामक पुत्र हुए।

१क-ग रा। २क-न्या वैरिण्याः। ३क-न्या वैरिण्याः। ३क-भार्यायै। ग-भार्यायै।
 ४-रिषनः। ५स-ञि बोधत। ६-। ६न-भुनिमी। ७स-नद्या। ८स-नि यानि च। ९-।
 ११-सकन्याया। १२-। १३-स्मृता। १४-स घापदव। १५-जामिजा। १६-। १७-विषया विषये सः।
 १८-न्यायां तु सर्वामा। १९-सर्वारिया। २०-वीथी च जामिः। २१-न्या विद्वान्-
 न्यायाः। २२-सक वसवैः। २३-सक वसवैः। २४-वैतण्ड्य। २५-सालो। २६-सकान्तः।

सोमस्य भगवान् वचर्च वचर्चस्वी येन जायते । घवस्य पुत्रो द्रविणो हृतहव्यवहस्तया ॥३८॥
मनोहराया शिशिर प्राणोऽय रमणस्तस्या । अनिलस्य शिवा भार्या तस्या पुत्रो मनोजव ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९॥
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बेभिया वृत । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठज ॥४०॥
अपत्य कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृत । प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाय देवलम् ॥४१॥
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तो मनोमिणौ । बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनौ ॥४२॥
योगसिद्धा जगत् कृतस्नमसवता विचचार ह । प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३॥
विदवकर्म महाभागो यस्या जते प्रजापति । कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशामाञ्च बाह्विकि ॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्व्वेया कर्ता शिल्पवतां वर । य सर्व्वेया विमानानि दवतानां चकार ह ॥४५॥
मानुषाद्यधोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन । सुरभौ कश्यपाद्ब्रानेकावश विनिम्नमे ॥४६॥
महादेवप्रसवेन तपसा भाविता सती । अजंकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ॥४७॥
हरश्च बहुरूपश्च श्रम्बकश्चापराजित । वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥
मृगव्याधश्च शर्व्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा । एकवाञ्छे विद्यमाता ददास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥
शत स्वेव समाख्यात रुद्राणाममितीजसाम् । पुराणे मुनिशादूर्ध्वा यं ध्यायि स चराचरम् ॥५०॥

पुत्र का पुत्र लोक-संहारक तथा शक्ति सम्पन्न काल हुआ ॥३७॥ सोम का (पुत्र) भगवान् वचस् हुआ जिससे लोग तेजस्वी बनते हैं । घव के पुत्र द्रविण और हृतहव्यवह हुए । मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण हुए । अनिल की स्त्री शिवा थी । उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति हुए । वरपत के वृच्छो मे सुषमा सम्पन्न अग्नि का पुत्र कुमार उत्पन्न हुआ । उसने शाख विनाख (नामक) पुत्रों के अलावा गीठ से उत्पन्न नैगमेय (नामक पुत्र) हुआ ॥३८-४०॥ कृत्तिका से उत्पन्न होनेवाली सतान कातिकेय कहलायी । प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि हुआ ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् और मनोमी दो पुत्र हुए । त्रिगो मे श्रुत ब्रह्मवादिनी बाण से सिद्ध भार आशक्ति से रहित बृहस्पति का बहन सपुत्र ससार मे विचरने लगी ॥४२॥ वह प्रभास नामक आठव वसु की स्त्री हुई जिससे महामाग प्रजापति विदवकर्मा की उत्पत्ति हुई जो हजारों शिल्पो का निर्माता देवताओं का किल्ली सब आभरणों का विमाता और सर्व्वश्रेष्ठ शिल्पी हुआ ॥४३-४४॥ उसने देवताओं के सारे विमान बनाये और उस महामा की शिल्पविद्या से मनुष्य भीविका उपजाव करते हैं ॥४५॥ महादेव जी की प्रसन्नता से तप सिद्धा सती सुरभी ने कश्यप से ग्यारह रुद्रों की रचना की ॥४६॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो । अजंकपाद अहिर्बुध्न्य त्वष्टा शक्तिशाली रुद्र हर, बहुरूप श्रम्बक अपराजित वृषाकपि धाम कपर्दी रैवत मृगव्याध शर्व्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र तीनों लोक के ईश्वर कहलाये ॥४७-४९॥ मुनिवचन । इस तरह पुराण मे अत्यन्त तेजस्वी एक ही रुद्र प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने चराचर सहित ससार को व्याप्त किया ॥५०॥

१क बलस्य । ख वरस्य । रघ तु । ३ख ०म्बेव यो घृत । ४ग ०ह्यचारिणी । यो० । ५ कतप विदा । ६क ०मयान्ता वि० । ७ख ०सन्त वि० । ८ख हि । ९क यस्या । १०ख जात । ११ख पुत्रपति । १२ सुरभि । १३ ०बुध्नस्त्व० । १४ख ०देशेति वि० ।

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः । अदितिदितिदंनुदं च अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥
 सुरभिर्धनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा । कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तस्त्वपत्यानि बोधत ॥५२॥
 पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः । तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३॥
 उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । हितायै सव्यलोकाना समागम्य परस्परम् ॥५४॥
 आगच्छत द्रुत देवा अदिति सम्प्रविश्य चै । मन्वन्तरे प्रसूयामस्तत्रः श्रेयो भविष्यति ॥५५॥

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ता तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या वसकन्यया ॥५६॥
 तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञते पुनरेव हि । अयमा चैव घाता च त्वष्टा पूषा तयैव च ॥५७॥
 विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च । जंशो भगश्चास्ति तेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥
 सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महान्रताः । तासामपत्यान्यभवन् 'दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९॥
 अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश । बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो 'विद्युतः स्मृताः' ॥६०॥
 चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्यं ऋषो 'ब्रह्मर्षिसंस्कृताः । कृशाश्चस्य च देवर्षेदेवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१॥
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि । सर्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत् कामजाः ॥६२॥
 तेषामपि च भो विप्रा निरोधोऽपसिद्यन्ते । यथा भूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह' ॥६३॥
 एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे । दित्याः पुत्रद्वयं जने कश्यपादिति नः धृतम् ॥६४॥

टिप्पण्येष्टो । प्रजापति कश्यप की पत्नियो के नाम मुनिये—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, वितता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि । विप्रगण । उनकी संतानों के सम्बन्ध में मुनि लीजिये ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर में तुषिता नामक बारह उत्तम देवता हुए । वे वैवस्वत मन्वन्तर में एव-दूसरे से कहने लगे—॥५३॥ 'देव-ताम्रो ! चाक्षुष मन्वन्तर आने पर सब लोगों के कल्याण के लिये परस्पर एकत्रित होकर सोच आओ । अदिति में प्रवेश कर मन्वन्तर में हम लोग जन्म लें । इससे हमारा कल्याण होगा ॥५४-५५॥

लोमहर्षण बोले—ये सब इस तरह कहकर चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से दस की कन्या अदिति में उत्पन्न हुए ॥५६॥ कश्यप से फिर विष्णु और इंद्र की उत्पत्ति हुई । अयमा, घाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अश और महातेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाये ॥५७-५८॥ सोम की छत्तारह महासत्री पत्नियों की संतानें अत्यन्त तेजस्वी हुई ॥५९॥ अरिष्टनेमि की स्त्रियों के सोलह संतानें हुई । विदन् बहुपुत्र के चार विद्युत संतान हुई ॥६०॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्मर्षियों से समानित ऋचाये प्रवर्णित हुई । देवर्षि कृशाश्च से देवप्रहरण नामक गण उत्पन्न हुए ॥६१॥ ये देवगण हजार युगों के अन्त में फिर जन्म ग्रहण करते हैं । इनमें तीर्थाय नाम से उत्पन्न होते हैं ॥६२॥ ब्राह्मणों ! उनकी भी उत्पत्ति और लय होता है । जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होता है, उसी तरह देव-समूह युग-युग में होते हैं ॥६३॥ हमने सुना है कि

१ग. ०प्तानामतितः । २ग. वंशता । ३ग. ०ता । प्रत्यङ्गिरसवाः श्रेष्ठा ऋ० । ४ग. पूर्वमूचवा वीतिषः । ५ग. ०मने विह । ६ग. ०मने इह । ६ग. दित्या ।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च धीर्यवान् । सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥
 सिंहिकेया इति श्रुता यस्याः पुत्रा महाबलाः । हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रयितो जसः ॥६६॥
 ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव धीर्यवान् । संह्लादश्च चतुर्योऽभूद् ह्लादपुत्रो हृदस्तया ॥६७॥
 हृदस्य पुत्रो द्वौ वीरो शिवः कालस्तथैव च । विरोचनस्तु प्राह्लादिवर्लिजं विरोचनात् ॥६८॥
 बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं तपोधनाः । धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९॥
 कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरूपेष्वालयः । बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०॥
 पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्यो मापतिं प्रभुम् । पार्श्वतो विहरिस्थामि इत्येवं याचितो वरः ॥७१॥
 'हिरण्याक्षस्तु तच्चैव विद्वांसश्च महाबलाः । अभरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२॥
 'महानाभश्च विज्रान्तः कालनाभस्तथैव च । अभवन् दनुपुत्राश्च शतं सौम्यपराक्रमाः ॥७३॥
 तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन यवीमि तान् । द्विमूर्धा शंकुकर्णश्च तथा हृयशिरा विभुः ॥७४॥
 अधोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा । मारीचिर्मयवर्षाश्चैव इल्वलः स्वसुमस्तथा ॥७५॥
 विशोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतहृदौ । इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६॥
 'एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः । वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥
 स्वभानुर्बृषपर्वो च विप्रचित्सिश्च धीर्यवान् । सध्वं एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजतिरे ॥७८॥

कश्यप से इति के दो शक्तिशाली पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष । तथा सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जो विप्रचित के नाम से ही बड़ी, और जिनके महाबली पुत्र सिंहिकेय (राहु) गण के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६४-६५॥
 हिरण्यकशिपु के महातेजस्वी चार पुत्र—ह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी प्रह्लाद और चौथा संह्लाद हुए । उसी तरह ह्लाद का पुत्र हृद हुआ ॥६६-६७॥ हृद के दो वीर पुत्र हुए—शिव और काल । प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ । विरोचन के बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ मुनिवृन्द । बलि के धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि नाम से विख्यात सी पुत्र हुए ॥६९॥ उन सब में ज्येष्ठ बाण अत्यन्त बलवान् और शिव का प्रिय पान था ॥७०॥ पहले कल्प में बाण ने उमापति मगवान् शिव को प्रसन्न कर मैं 'आपके पाम ही विहार करें' ऐसा वरदान उमने मागा ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र मरुत, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, विज्रान्त और कालनाभ यष्ट वज्रान् और विद्वां हुए ॥७२॥ दनु के अत्यन्त पराक्रमी, तपस्वी और महाशक्तिशाली सी पुत्र हुए । उनमें से प्रमुखा के नाम बताता हूँ—॥७३॥ द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शक्तिशाली हृयशिरा, अधोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मयवान्, इल्वल, स्वसुम, विशोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एवचक्र, महाबाहु, महावक्रान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वभानु बृषपर्वी, शक्तिशाली विप्रचित्ति । ये सब दनु के पुत्र कश्यप में उत्पन्न हुए ॥७४-७८॥ इन सब महाबली दानवा में विप्रचिति प्रधान था ।

१ ख पुत्रोऽप्यायुर्वे शि० । २ ख गर्दभश्च । ३ ख मुता पञ्च वि० । ४ ख ऊर्जरा । ग. हर्षवि ।

५ ख ०ह्लादश्च । ६ ख य शङ्खुशिरा । ७ ख द्विजा । ८ ख एवचक्रो । ९ ग ०हृत्पावराश्च ।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः^१ सुमहाबलाः। एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छब्दं द्विजोत्तमाः ॥७९॥
 प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोमस्तु शची सुता ॥८०॥
 'उपदीप्तिर्हृषिशराः शर्मिष्ठा वार्यपद्वर्णी। पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥८१॥
 बह्वपत्ये 'महापत्ये' मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवमन्दनाः ॥८२॥
 चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः^२। मारीचिर्जनयामास महता तपसाग्नितः ॥८३॥
 योलोमा कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८४॥
 पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्ववतिदारणाः ॥८५॥
 सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा। दैत्यदानवसंयोगाज्जातारतोऽपराजमाः ॥८६॥
 'संहिकेया इति स्यातास्त्रयोदश महाबलाः'। वंशः शल्पश्च^३ बलिनी नलश्चैव तयाबलः ॥८७॥
 'दातापिर्नमुचिश्चैव' 'इन्वलः स्वसूमस्तया'। 'अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८८॥
 'सरमानस्तया चैव स्वरकल्पश्च वीर्यवान्'। एते वं^४ दानवाः^५ श्रेष्ठा दनोर्यशविधर्माः ॥८९॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः। संहारस्त्वेषु दैत्यस्य निवासकवचां कुले ॥९०॥
 समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भाक्षितात्मनः। तिलः कोट्यः सुतास्तेषां मणिवर्या निवासिनः ॥९१॥
 अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः। षट्सुताः सुमहाभागास्ताभ्यामाः परिकीर्तिताः ॥९२॥

द्विजवर्षः। बहुत और जनत होने के कारण इनके पुत्र-पौत्रों की नहीं गिना जाता है ॥७९॥ स्वर्मानु की कन्या प्रभा हुई। पुत्रीमा की शची हुई। उपदानवी ह्यमिरा की और शर्मिष्ठा कुपवर्षा की (कन्या) हुई ॥८०॥ वैश्वानर की पुलोमा और कालिका—ये दो कन्यायें बहुत-सी सतान वाली हुईं। उनका ब्रिवाह मरीचि से हुआ। शत हजार दानव पुत्र इनसे उत्पन्न हुए ॥८१-८२॥ महान् तपस्वी मरीचि ने दूसरे पीढ़ी से हिरण्यपुर वासिदा की उत्पन्न किया ॥८३॥ वे हिरण्यपुरवासी महाबलवान् दानव वीर्यम और बालकेय नाम से क्यात हुए, जो ब्रह्माजी की कृपा से देवताओं से अवध्य (न मारने योग्य) होने हुए भी अर्जुन के द्वारा मारे गये ॥८४॥ उनके अनिरित्त बटन से महामात्सिलायी ममरर दानव विप्रचित्ति से सिंहिका से उत्पन्न हुए। विप्रचित्ति के तेरह पुत्र दैत्य और दानव के गणों से बड़े पराक्रमी और सिंहिकेय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८५-८६॥ उनके नाम ये हैं—यनीचद और साय, नल, बल, दातापि, नमुचि, इन्वल, स्वसूम, अञ्जि, नरक, बालनाभ, सरमान और सविन-शाही स्वरत्नल। वे श्रेष्ठ दानव दनु के बंध की ब्राह्मि बाले हुए ॥८७-८८॥ उनके तीसरे और हजारों पुत्र और पौत्र हुए। संहार नामक दैत्य के कुल में निवासकवच नामक बड़े तपस्वी पुत्रगण उत्पन्न हुए ॥९०॥ उनके मणिवरी से निवास करने वाले तीस करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। वे भी देवताओं से न मारने योग्य हुए और अर्जुन के द्वारा मारे गये।

१ वं दानवा वं म०। २ वं ०वां यदप्य सु। ३ वं व ०पदान्ती ह्य०। ४ वं व मरुगुपि। ५ वं ०वे मारी०। ६ ०ष्टिश्च द्विज०। ७ व ०न। मारी०। ८ बालकेया। ९ व ०ता। रिता स्वानव। १० ०ता। शत सामन्व०। १० व वन्वी। ११ वं व ०तापी नमु०। १२ व ०व्येय-सुता०। १३ व अजित०। १४ व ०दानावमन्दन०। १५ वं व १६ व ०नवधे०।

'श्रीऋची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृधिका । 'श्रीऋची' तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९३॥
 श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासानृगधाश्च गृध्यापि । शुचिरोदकान्पक्षिणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९४॥
 अश्वानुष्टान् गदर्दभाश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः । विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गृध्वाटणौ ॥९५॥
 'गृध्वाः पततां ध्येष्ठो दाहणः स्वेन कर्मणा । सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥९६॥
 अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम् । कद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥९७॥
 सृपण्वशगा मत्स्य जलिरे नैकमस्तकाः । येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥९८॥
 ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्चतुराबुधौ । एलापनश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयो ॥९९॥
 महानीलमहाकर्णो धृतराष्ट्रबलाहको । कुहरः पुष्पबन्धुश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥
 शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा । नट्टपः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥१०१॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । चतुर्दशसहस्राणि कूराणामनिलाशिताम् ॥१०२॥
 गणं श्रीधरां विप्रास्तस्य सर्वेष्वं च धृष्टिगणः । स्थलजाः पक्षिणोऽप्याश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३॥
 पास्तु वै जनयामास 'सुरभिर्महियोस्तथा । इरां वृक्षता वल्कीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः' ॥१०४॥
 खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरस्तथा । अरिष्टा तु महासिद्धा गंधर्व्वानिमितौजसः ॥१०५॥

ताम्रा के छह भाग्यशालिनी कन्याय हुई ॥९१-९२॥ श्रीऋची, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका । ब्राह्मण-
 त्तिरोमणि । श्रीऋची ने उलूको (उलूक पक्षी) और प्रत्यलूकका को, श्येनी ने श्येनी (शजो) को, भासी ने भासी को,
 सुग्री ने गिद्धो को, शुचि ने जल पक्षियों को और सुग्रीवी ने मोहो, जैटो और गधो को उत्पन्न किया । यह ताम्रा-
 वश कहलाया ॥९३-९४॥ विनता क दो प्रसिद्ध पुत्र हुए—गृध्व और अश्व ॥९५॥ पक्षियों में ध्येष्ठ गृध्व अपन
 कम से सफर करता हुआ । द्विजवृन्द । सुरसा से उत्पन्न तेजस्वी, आकाशचारी, मनस्वी और अनेक फल वाले हजार
 सृप हुए । कद्र के महान् शक्तिशाली किन्तु गम्भ के अधीनस्थ और अनेक शिरवाले नाम हुए, जिनमें सदा शेष,
 धार्मुक और तक्षक प्रधान रहे ॥९६-९७॥ ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वत्तर, एलापन, शङ्ख, कर्कोटक, धनञ्जय,
 महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पबन्धु दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नट्टप, शङ्खरोमा,
 मणि इत्यादि नामों के नाम हैं ॥९९-१००॥ उनके सैकड़ो हजारों पुत्र-पौत्र हुए । द्विजगण । उन कूर सर्पों की
 सख्या चौदह हजार थी ॥१०१॥ ये सब श्रीऋची और वृद्धे वृद्धे दाँतो वाले थे । अल और स्थल में उत्पन्न पक्षी पृथिवी की
 सत्ता मान गये हैं ॥१०२॥ सुरभि ने गायों और भैरवों का उत्पन्न किया । इरां वृक्षों, लताओं और सृपों तृण जाति
 को उत्पन्न किया ॥१०४॥ खसा वेष्यक्ष और राक्षसों की एवम् मुनि सेज-सरा की उत्पत्ति हुई । महासिद्ध अरिष्टा ने
 अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वों का उत्पन्न किया ॥१०५॥ ये स्थावर और जगम कश्यपजी ने वक्षज कहाता है, जिनका

१ ख ऋची । २ ख ऋची । ३ ग ०ऋची श्रीऋचानजनयदुलू । ४ ख ग ०वशा प्र० ।
 ५ ग ग ०तिता । वि० ६ क ख ०गार्ध पुत्री द्वावरणी गरुडस्तथा । ७ ख ग सुपर्ण । ८ क ०ट्टमहाबली । कु० ।
 ९ ख ०लो मानस्त० । १० क ०णि सर्पाणा० । ११ ग ०हियास्त० । १२ क ०श । शरमा य० ।
 १३ क. ख महासत्ता ।

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तितः स्वाणुजङ्गमाः। येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥
 एषः मन्वन्तरे विप्राः सर्गः। स्वारोचिषे स्मृतः। वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे दितते क्रतौ ॥१०७॥
 जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्गं इहोच्यते। पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥
 पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः। ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥
 दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोययामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नतरमा सम्यगाराधितस्तथा ॥११०॥
 घरेण कृच्छ्रयामास सा च वधे वर तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११॥
 स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहात्मता। दृष्ट्वा च ऋरमत्युग्रो नारोच समभाषत ॥११२॥
 इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदो जतम्। यदि धारयसे क्षौचित्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥
 तथेदमभिहितो भर्ता तया देव्या महात्मता। धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥
 ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः। रोधयन् वै गण धेष्टं देवानाममितौजसम् ॥११५॥
 तेजः संहृत्य कुर्धंयमवध्यममरेरपि। जपाम पर्वतायैव तपसे सशितव्रता ॥११६॥
 तस्मादघंवात्तरम्रेःसुरभयत् पाकशासनः। ऋजते वर्षशते चास्या ब्रह्मर्षीतरमध्युतः ॥११७॥
 अहुरवा पावयोः शीघ्रं दितिः क्षयनमाविशत्। निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥११८॥
 यत्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं म्यकृन्तयत्। स पाटघमानो गर्भोऽप्य वज्रेण प्रररोह ह ॥११९॥

सैवर्षी-हजारों पुत्र-जीन हैं ॥१०६॥ द्विजगण! स्वारोचिष नामक मन्वन्तर में यह मृष्ट हुई। अब धैवरवन नामक अयन्त महान् मन्वन्तर में वरुण के विष्णु यज्ञ में आहुति देते हुए ब्रह्माग्नी की प्रजा-मृष्टि के बारे में मैं कहूँगा ॥१०७॥ ब्रह्मा न पट्टे सात महर्षियों की मांगनी मृष्टि की थी ॥१०८॥ द्विजन्त! देव-दानव-मुंड में अपने वैश्य-पुत्रों के मर जाने पर दिति ने कश्यप का मनुष्य किया ॥१०९॥ दिति द्वारा सम्पूजित प्रसन्न ऋषि कश्यप ने उसमें वर मांगने के लिए कहा। जब उसने इन्द्र के वध के लिये अयन्त मेजरवी समर्थ पुत्र की वर-दान रूप में मांगा तो उस महान् तपस्वी ने उसे अभीष्ट वरदान दे दिया। वर देने के बाद अति उग्र होकर कश्यप ने दिति में कहा—॥११०—११२॥ 'तुम्हारा पुत्र इन्द्र हन्ता होगा, यदि तुम पवित्रतापूर्वक व्रत करते हुए ही क्यों तब गर्भ पारण कर। ॥११३॥ मुनिधेष्ट! उस देवी में महान् तपस्वी स्वामी ने 'ऐसा ही करेगी' कहकर पवित्रतापूर्वक गर्भ पारण किया ॥११४॥ जब कश्यप अयन्त मेजरवी और धेष्ट देवमूक की रीति से हुए देवताओं से भी अवश्य अपने उद्भूत पुत्र की दिति के गर्भ में स्थापित करने लग्यो के लिये पर्वत पर चले गये ॥११५-११६॥ इन्द्र दिति के गर्भ में प्रवेश करने का अवसर लायने लगा। तीर्थ धीन जाते पर इन्द्र की अवसर मिला ॥११७॥ (एक दिन) दिति बिना पैर धोये राग्य पर जाकर सा गर्द। राग्य में बस गए हुए इन्द्र ने उससे वेष्ट में बैठ कर (बस में) उस गर्भ के छान टुकड़े कर दिए ॥११८॥ वध में मर्त्य विज जाते माता गर्भ (स्थित

१ क. सप्त। २ क. एव। ३ क. सर्वे। ४ क. स्मृता। ५ क. स। विजाया। ६ क. मन्वन्तरे।
 ७ क. रीतिपानाम। ८ क. पायमापय स्मन्नामाय वायन। ९ क. ०३५। १० क. ऊन।
 ११ क. ह।

मा रोदीरिति तं शक्रं पुनः पुनरथाश्वीत् । सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रपितः पुनः ॥१२०॥
 एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रैर्गैवारिकर्षणः । मरुतो नाम ते देवा बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥१२१॥
 ययोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् । देवाश्चेकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२॥
 तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः । रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममिताजसाम् ॥१२३॥
 निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् । व्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपृथ्वीणि भो द्विजा ॥१२४॥
 स हरिः पुरयो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः । पर्जन्यस्तपनोऽभ्यन्तस्तस्य सध्वमिदं जगत् ॥१२५॥
 भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः । नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं क्लृप्तः ॥१२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेक-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

‘अभिविष्टाधिराजेन्द्रं’ पृथुं धन्यं पितामहः । ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेदुमुपक्रमे ॥१॥

विष्णु) रोने लगा ॥११९॥ इन्द्र ने उगमे कहा—‘मन शोभो!’ उस गर्म के सात मय हो गये। शत्रु को दमन करने वाले इन्द्र ने नीध करके धन्य ही से एक एक के सान सान दुःख कर दिये ॥१२०॥ विप्रवर्ग के मरुत् (धाम) नामक देवता हुए ॥१२१॥ जैसे इन्द्र ने कहा, वैसे ही वे उनवासी बापु देवता इन्द्र के सहायक बन गये ॥१२२॥ द्विजवर्ग । इस प्रकार उत्पन्न हुए प्राणिमो तथा अत्यन्त तेजस्वी देवताओ के समूह का प्रसन करने वाले हरि न राजा पृथु के बाद के राज्यापी प्रत्येक समूह में प्रजापतिया को दे दिया ॥१२३-१२४॥ द्विजवर । वही हरि पुरण, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति मघ, सूर्य और अनन्त (विष) कहलाता है। उससे यह सपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१२५॥ जो व्यक्ति इस प्राणि-सृष्टि को जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता, परलोक का भी उस भय ही क्या है ? ॥१२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में देवता और राक्षस का उत्पत्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पृथु से लेकर सभी देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

लोमहर्षण बोले—वेन के पुत्र पृथु का राज्याभिषेक कर ब्रह्मा त्रम से राज्यों का वितरण करने लगे ॥१॥

१ क अनरवाच ह । २ स वाच । ३ क हरि । ग हवि । ४ क अपनिम् । ५ क म अपनि । ६ क ५ व
 ७ पदा स्यन्त कृष्ण स० । ८ क ओ व्यक्तात् । ९ क म च । ८ क अध्यापयन्व रा० । ९ ग अद्याः दित्ता० ।

द्विजानां वीरथा चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा । यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥
 'अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्वपथं' पतिम् । आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामप्यपावकम् ॥३॥
 प्रजापतीनां दक्षं तु भरतामथ वासवम् । दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममृतोजसम् ॥४॥
 वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां तथैव च ॥५॥
 सर्वभूतपिशाचना गिरीश शूलपाणिनम् । शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामप्यसागरम् ॥६॥
 गंधर्वाणां तपस्विपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् । भार्गवाणां वासुकिं चक्रे सर्पाणामप्यतक्षकम् ॥७॥
 वारणानां तु राजानमैरावतमथादिशत् । उच्चैः श्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥८॥
 मृगाणामप्यशार्दूलं गोष्वप्यश्वान् पतिम् । वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाम्भषेचयत् ॥९॥
 एवं विभज्य राज्यानि 'ऋमेणैव' पितामहः । दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः ॥१०॥
 पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः । दिशः पालं सुघन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥११॥
 दक्षिणस्यां दिशि तथा बर्द्धमस्य प्रजापतेः । पुत्रं 'अश्वपथं' नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१२॥
 पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमभ्युतम् । केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥
 तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः । उदीच्यां दिशि दुर्द्वयं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
 तैरियं पृथिवी सर्वार्थं सप्तद्वीपा सप्ततना । यथाप्रदेशमद्यापि धर्मणं प्रतिपाल्यते ॥१५॥
 'राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतेनराधिपैः । वेदवृष्टेन विधिना 'राजा राज्ये नराधिपः ॥१६॥

ब्राह्मण, रत्ना, नक्षत्र, ग्रह यत् और तपस्या का राज्य में उन्होंने सोम को अभिषिक्त किया ॥२॥ जल का राज्य वरुण को दिया और कुबेर को राजा का स्वामी बनाया । विष्णु को आदित्या का राजा, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतो का और अश्वत्थ सेजस्वी प्रह्लाद को दैत्यों और दानवों का, सूर्यपुत्र यम को पितरों का तथा यक्ष, राक्षस राजा, सम्पूर्ण मृत और पिशाचों का स्वामी शूलपाणि महादेव जी को बनाया ॥३॥ हिमालय को पहाड़ों का राजा, समुद्र को नदियों का, चित्ररथ को गन्धर्वों का, वासुकि को नागों का, तक्षक को साँपों का, ऐरावत हाथियों का, उच्चैः श्रव को घोड़ों का, गरुड को पक्षियों का, वाघ को मृगों का, बिल को गीधों का और वरगद को वनस्पतियों का राजा बनाया ॥४॥ इस प्रकार ऋषयः राज्या को बाँटकर प्रभु ब्रह्मा ने दिशाओं को स्थापना की ॥१०॥ पूर्व दिशा का राजा वैराज प्रजापति के पुत्र सुघन्वा को बनाया ॥११॥ दक्षिण दिशा में बर्द्धम प्रजापति के पुत्र राजस्य को राजा बनाया ॥१२॥ पश्चिम दिशा का राजा रजसू के पुत्र महात्मा केतुमान् को बनाया ॥१३॥ और उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र प्रचण्ड तजरी हिरण्यरोमा को राजा बनाया ॥१४॥ उन राजाओं द्वारा अब तब सातों द्वीप, नगर और प्रदेश सहित इस पृथिवी पर धर्मपूर्वक पालन हो रहा है ॥१५॥ इन राजाओं ने राजसूय धार्य अभिषिक्त पृथु को वेद में वृत्तलाये हुए विधान के अनुसार राजा बनाया ॥१६॥

१ ग अपि। २ क प्रभुम्। ३ क ग ऋमेण प्रपि०। ४ क ए ऽस्या महात्मानं क०। ५ क दस्यप्रद। ६ ऽभ्युपगम०। ७ क. ए राजरा०।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां^१ राज्यमादिशत् ॥१७॥
तस्य विस्तरमाह्वयस्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहच्छस्य।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम् ॥१८॥

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोजन्म लोमहर्षण कीर्तय। यथा महात्मना तेन दुग्धा^२ वेयं वसुधरा ॥१९॥
यथा^३ चापि नृभिर्दुग्धा यथा देवैर्महर्षिभिः^४। यथा दैत्यैश्च नागैश्च ग्रन्था यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥२०॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गंधर्वैश्च द्विजोत्तमैः^५। राक्षसैश्च भूमास्त्वंर्यया दुग्धा वसुधरा ॥२१॥
तेषां पात्रविशेषांश्च यत्नतुमर्हसि सुव्रत। अस्तसीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्व्वशा^६ ॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वैणस्य मयितः पुरा। द्रुद्धर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्छ कीर्तय ॥२३॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुष्व कीर्तयिष्यामि पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। एकाप्रा^७ प्रयताश्चैव पुण्यार्थं वै^८ 'द्विजर्वभा' ॥२४॥
नाशुवे^९ क्षुब्रमनसो नाक्षिप्यस्याव्रतस्य च^{१०}। कीर्तयेयमिव विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥२५॥
स्वार्थं^{११} यशस्यमायुष्य धन्यं वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुष्व वै दयातयम् ॥२६॥
यद्वै^{१२} कीर्तयेत्तिष्ठं पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचरेकृताकृतम् ॥२७॥

इत्येव अनंतर अत्यंत तेजस्वी चाक्षुष भवन्तर गीत जाने पर वैवस्वत मनु कीपृथिवी का राज्य चलाने के लिए प्रह्ला ने आदेश दिया ॥१७॥ यदि आप मुनना चाहेंगे तो उस वैवस्वत मनु का विस्तृत वर्णन मैं आप लोगों के कल्याण के लिये कहूँगा। यह महान् चरित्र पुराण में चित्रित किया गया है ॥१८॥

मुनियो ने कहा—आर्थ लोमहर्षण! पृथु की जन्म क्या का विस्तृत वर्णन कीजिये। जिस प्रकार उस महामा ने इस पृथिवी का शोहन किया, या जैम राजाभा ने दत्तात्री ने महर्षिया ने दैत्या ने, नागा ने यक्षा ने, वृक्षा ने, पहाड़ों के, पिशाचा के गणकों के, द्विजवर्गों और प्रह्लापरक्षी राक्षस न पृथिवी का दुग्धा उनको मित्र मित्र पात्रा की, बछड़ों तथा दूध की और दुहने वाला का जमना बतलाइये ॥१९२०॥ भगवन! पहले जिस कारण द्रुद्ध होकर महर्षिया ने वेण के हाथ का मचन किया था वह कारण भी बतलाइये ॥२३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! वेण के पुत्र दूध का वर्णन मैं विस्तार से कहूँगा। धर्म के लिये आप लोग एकाग्र और सावधान होकर सुनिये ॥२४॥ ब्राह्मणों! अपवित्र हृदयहीन, अशाय अत्रती, कृतघ्न और घनू की यह नहीं सुनाऊँगा ॥२५॥ ऋषिया ने इस रहस्य को स्वर्गप्रद यथ, धन और आयु देने वाला तथा वेद-सम्मत कहा है। इसे यथार्थ रूप से सुनिये ॥२६॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणा को नमस्कार करे वेण के पुत्र दूध की कथा का विस्तृत वर्णन प्रतिदिन करेगा, वह विहित और अविहित नर्यों से दुखी नहीं होगा ॥२७॥

१ ग पृथिवीरा०। २ ग वतमानु०। ३ छ मृता। ४ स ष्या च पितृभिः०। ५ क स ष्वैर्ययि०।
६ स वत्सानीर०। ७ क उत्पत्ती०। ८ क मून। ९ स प्रणता०। १० क स निबोत्तमा। ११ ग वा।
१२ स ष्यं परममा०। १३ स षम वषय०।

आसीद्धर्मस्य संगोप्ता पूर्वमग्रिसमः प्रभुः। अत्रिंशो समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥२८॥
 तस्य पुत्रोऽभवद्बेणो नात्यर्थं धर्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२९॥
 'स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्मं पृच्छतः कृत्वा कामलोभेत्त्ववर्त्तत ॥३०॥
 मर्यादां भेदयामास धर्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्मान्नतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥३१॥
 नि.स्वाध्यायव्यपट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापते। प्रवृत्तं न षण्णु सोमं हृत यज्ञेषु देवताः ॥३२॥
 न यष्टव्यं ॥ होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेय विनाशं प्रत्युपस्थिते ॥३३॥
 अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगुब्रूह^१। मयि यज्ञो विघातयो मयि होतव्यमिदमपि ॥३४॥
 तमतिक्रान्तमर्थविभाददानमसामप्रतम् । ऊचुर्महर्षय सध्वं मरीचिप्रमुखास्तवा ॥३५॥
 ययं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्। अधर्मं कुरु मा वेण एव धर्मः सनातनः ॥३६॥
 निधनेऽग्रे प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितिह^२ समयः कृतः ॥३७॥
 तांस्तथा ब्रुवतः सर्वान्महर्षोन्नववीक्षदा। वेण. प्ररथ शुश्रुद्धिरिदमर्थमनर्थदित् ॥३८॥

वेण उवाच

“यष्टा धर्मस्य कश्चान्य. श्रुतव्यं कस्य वा मया। श्रुतवीर्यतप सत्यैर्मया वा वः समो भुवि ॥३९॥

पूर्वजाल मे धर्मनरक्षक श्रीर अत्रिस्तुष्टा ऐदरगमागी अब नामक प्रजापति अत्रिंश म उत्पन्न हुआ।
 ॥२८॥ उमरा पुत्र वेण नामक परम प्रजापति, मृत्यु की पुत्री सुनीचा से उत्पन्न हुआ ॥२९॥ वह मृत्युवत्यापुत्र
 अपने मातामह के दोष से स्वधर्म का छाड़कर काम और लोभ म प्रवृत्त हुआ ॥३०॥ और पार्थिव सीमाओं
 का तोड़-तारकर, वेद धर्मों का उल्लंघन कर पापाचरण मे अनुरक्त हो गया ॥३१॥ उस प्रजापति के बात मे प्रजा
 वेदाध्ययन और मय-जप से बचिन ह। गई थी। यज्ञ मे आहुति दिव् हुआ सीम का पालन देवगण नहीं करते थे ॥३२॥
 सर्वनाग उगमित होने पर उस प्रजापति की यह क्रूर आज्ञा थी—“बोई याग न करे, बर्ष इवन न करे” ॥३३॥
 भृगुश्रेष्ठ । उमरी घोषणा थी कि—“मैं ही यज्ञ हूँ, यज्ञ करने याग्य और यागिन हूँ। मुझे ही त्वय्यर यज्ञ और
 इवन करे” ॥३४॥ मर्यादा का उल्लंघन करने काटे और यज्ञ म अनुचित क्रम लेन जाने उस प्रजापति मे मरीचि-
 आदि गुणिय उगे समझाये हुए बहू—॥३५॥ वेण । हम लोग अभी बहुत वर्षों तक यज्ञ कीजा प्राप्त करते।
 तुम अपने मन करो। यह यज्ञान धर्म है ॥३६॥ निर्विद्व मुम अगि मे उत्पन्न प्रजापति ह। अगि मे देवता होने
 पर अपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजा का पालन करूँगा ॥३७॥ मर्त्ययो ज्ञान इस प्रकार बड़े ज्ञान पर अर्थ मे
 अनभिज्ञ दुर्बुद्धि वेण न हँसकर कहा ॥३८॥

वेण ने कहा—मुझे छोड़ धर्म का निर्माता कृष्ण कौन है ? मैं किसी उपदेश मुन ? धनि, दानि,
 तपस्या और गृह्य म करार कर सारा मे कौन है ? ॥३९॥ उस प्राणिक का विरोधकर धर्मो का उन्नाशनधान

१ म म रिता०। २ म म कामान्ते०। ३ व म ०दा स्थानयो०। ४ व म धर्मि०। ५, म अत्रुह^१।
 ६ म यज्ञा। ७ म विपाप्या। ८ म मीन। ९ व ०मिदि इ य०। म ०मिदि मे य०। १० व म वर्ता।

प्रभव सर्वभूताना धर्माणां च विदोषत । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवतो मा विचेतस ॥४०॥
 इच्छन् दहेयं पृथिवीं रात्रवयेयं तलैस्तथा । चा वै भुव चरुयेयं नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
 यदा न शक्नोते मोहादबलेषाञ्च पायिव । अपनेतु तदा वेणस्ततः क्रुद्धा महर्षय ॥४२॥
 त निगूह्य महात्मानो विस्फुरन्त महाबलम् । ततोऽस्य सव्यमूरं ते ममन्युर्जातमन्यव ॥४३॥
 तस्मिन्निर्मम्यमाने धे रान् क्रूरो तु जज्ञिधान । हूरयोऽतिमात्रं पुरुषं कृष्णश्चेति बभूव ह ॥४४॥
 स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा सस्यवान् द्विजसत्तमा । तमन्निर्विह्वलं दृष्ट्वा निपीदेत्यस्त्रवत्तवा ॥४५॥
 निपादवशकत्तसौ बभूव धवता घरा । धीवरानसृजन्नापि वेणकल्मषसम्भवान् ॥४६॥
 ये चाप्ये दिग्घनिलयास्तथा पश्वन्तसश्चया । अधर्मरुचयो विप्रास्ते तु धे वेणकल्मषा ॥४७॥
 ततः पुनर्महात्मान पाणि वेणस्य वक्षिणम् । अरणीमिव शरणा ममन्युर्जातमन्यव ॥४८॥
 पुपुस्तस्मात् समुत्पन्नं कराञ्ज्वलनसन्निभम् । क्षीप्यमानं स्ववपुषा शस्त्रावग्निरिव उवलन ॥४९॥
 अथ सोऽजगव नाम धनुर्गूह्यं महारदम् । शराश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥५०॥
 तस्मिन् जातेऽस्य भूतानि सम्प्रहृष्टानि सध्वज । समापेतुर्महाभागा वेणस्तु त्रिविधं ययौ ॥५१॥
 समुत्पन्नेन भो विप्रा सप्तयुगेन महात्मा । त्रात स दुष्टपट्याद्य पुक्ष्माग्नौ नरदात्तवा ॥५२॥
 स समुद्राश्च नद्यश्च रत्नाग्यावाय सध्वज । तोयानि क्षात्रियेकाय सध्व एवोपतिस्थिरे ॥५३॥

मैं हूँ। आप लोग मूल और हृदयगम्य हैं निश्चय ही मय नहीं पड़वान्त हैं ॥४०॥ मैं चाहूँ तो पृथिवी को जला दूँ जल से वहाँ पृथिवी और आकाश को रोक दूँ इसमें सन्देह न काजिये ॥४१॥ जब भीन लोग राजा वेण को अज्ञान और अज्ञान के अलग नष्ट कर सकें तब उसी कोष आ गया ॥४२॥ और उस तजस्वी महाबली को दृष्टता से पकड़ कर रोष से उसकी वाया आप का मथन किया ॥४३॥ मयन पर उसकी जघा से एक बहुत छोटा और कृष्णवर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४४॥ द्विजवर ! वह नवजन्त पुरुष बड़ा हुआ मा हाथ जोड़ कर लडा हो गया । उसे व्याकुल देकर अग्नि न बँठ जान को कहा ॥४५॥ अनिवार्य वह निपादवश का बर्ता हुआ तथा वेण के पाप से उत्पन्न धीवः (मलाहो) का भा म्पाटा हुआ ॥४६॥ विप्रबृध वेण के पाप से उत्पन्न अधमपरायण व धीवर विमपवत एव अथ पहाण के नाशय म रहने लगे ॥४७॥ उसके बाद शूद्रमनिगण वेण ने दाहिन हाथ को अरणी (यज्ञीय अग्नि मथन काष्ठ) की तरह मथन लगे ॥४८॥ उस हाथ से शस्त्रात अग्नि ने समान नोपिमानवध उत्पन्न हुआ ॥४९॥ प्रजा की रक्षा के लिये उसने मयनर अग्नि वारक अजगय नामक धनुष तथा दिय बाण और धनिमम कवच को धारण किया ॥५०॥ महानुभावमण । पशु के उत्पन्न होने पर मय प्रणः हृष्टि होकर उसके पास पहुँचे । वेण तो स्वयं चला गया था ॥५१॥ द्विजवर ! महाभा सप्तयुग के जम लेन से वः पुरुष काष्ठ वण पनामक नरक से बच गया ॥५२॥ एव शर के समूह और नित्यी पशु के अनिपत्र के लिये रान और जन लकर उपस्थित हुई ॥५३॥ दवताज और अगिरा-मुत्रा न साथ

१ स ०न्तो मामच० । २ व ०तोपस० । ३ व स ०स्मिस्तु म० । ४ स वरः । ५ स ०यास्तुपारास्तपुस्तथा ।
 अ० । ॥ यास्तुपारास्तुसस्तथा । अ० । ६ स ए सवदा । ७ व ०स्मिपर । अ० । ८ व ०न् । अत्रमज० ।
 ९ ग ०प्रहृष्टा० ।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह। स्यावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ॥५४॥
 समागम्य तदा वैष्णवम्ययिञ्चक्षराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥५५॥
 सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिबद्धर्मकोविदः। आचिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैष्णवः प्रतापवान् ॥५६॥
 पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्तत्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥५७॥
 आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पञ्चताश्च ददुर्मर्षिं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥५८॥
 अकृष्टपक्ष्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात्। सर्वकामदुघा नावः पृष्ठके पृष्ठके मघु ॥५९॥
 एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे ज्ञेये। सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥६०॥
 तस्मिन्नेव महायज्ञे यज्ञे प्राज्ञोऽय मागधः। पृथोः स्तवार्थं सौ तत्र समाहूतो महर्षिभिः ॥६१॥
 तावदुत्तुष्टयः सर्वं स्तूयतामेव पार्थिवः। कर्मतदनुक्यं वा पात्रं चायं भराधिपः ॥६२॥
 तावदुत्तुष्टवा सर्वोऽस्तानुपीन् सूतमागधो। आवां देवानुर्पादिवं प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥६३॥
 न चास्य विद्वानो वै कर्म नाम वा लक्षणं यथाः। स्तोत्रं येनास्य कुर्व्याव राजस्तेजस्विनो द्विजाः ॥६४॥
 ऋषिभिस्तौ निपुणतौ तु भविष्यः स्तूयतामिति। यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पञ्चाम्महाबलः ॥६५॥
 ततः प्रभृतिं च लोके स्तवेषु भुनिसत्तमा। आशीर्वादाः प्रयूयन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥६६॥
 तयोः स्तवान्ते सुप्रीत पृथुः प्रादात्प्रजेदधरः। अनूपवेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥६७॥

ग्रहा, स्यावर और अजम प्राणी सब तरफ से अम्बर वेणु-पुत्र (पृथु) का राज्याभिषेक करने लगे ॥५४॥ महाराज पृथु ने प्रजावर्ग को हर जीति से प्रसन्न किया ॥५५॥ तब धर्मज्ञो ने महान् तेजस्वी पृथु का सविधि राज्याभिषेक किया ॥५६॥ (आचरण से) जो प्रजा उनके पिता से विरक्त थी, उसे उन्होंने पुनः अनुरक्त बना लिया। प्रजा द्वारा अनुराग किये जाने के कारण पृथु का नाम राजा पड गया। ॥५७॥ महाप्रतापी राजा पृथु जब समुद्र की तरफ गमन करता था तो समुद्र का जल तस्मिन्ही जाता था और जबतक उसे रास्ता दे देते थे। उसकी पताका बनी नहीं मुकी ॥५८॥ बिना बीज बोये ही केवल चिन्तन से ही पृथिवी अन्न उत्पन्न करती थी। शायें इन्द्रानुसार रूप देती थी। दोना मर मर बाहद मिलती थी ॥५९॥ इसी समय ग्रहा के मंगलमय यज्ञ में भूती से महामति सूत सौत्य नामक दिन में उत्पन्न हुआ ॥६०॥ और उसी महायज्ञ में विद्वान् मागध भी उत्पन्न हुआ। महर्षियो ने गूत और मागध को पृथु की स्तुति करने के लिये वही आमन्त्रित किया ॥६१॥ ऋषियो ने गूत और मागध से पृथु की स्तुति करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा— 'महर्षय आपने योग्य है और यह राजा भी गुणान है' ॥६२॥ तब गूत और मागध ने ऋषियो से कहा— 'द्विजगण! हम दोना अपन बर्गों में देवनाम्ना और ऋषियो को समुष्ट करेंगे ॥६३॥ निष्ठु तेजस्वी राजा के धर्म, नाम, लक्षण, और यज्ञ से आश्चर्यचकित होन के कारण हम वैसे स्तुति करें' ॥६४॥ ऋषिया ने उनसे कहा— 'भविष्यत् बर्गों से आप स्तुति करिये' भुनिये'। तब से लेकर महाकल्पान् पृथु ने जितने जो कर्म किये, उन सब का प्रयोग गूत, मागध और बरी जन आशीर्वाद के रूप में करने लगे ॥६५-६६॥ उसकी स्तुति के अन्त में प्रजा ने स्वामी पृथु ने प्रसन्न

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः । वृत्तीनामेव वो दाता भविष्यति नराधिप ॥६८॥
 ततो वैष्णं महात्मानं प्रजा समभिदुद्रुवुः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥६९॥
 सोऽभिद्वृतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया । घनगुंह्य पृथक्काश्च पृथिवीमाद्रवद्बली ॥७०॥
 ततो वैष्णभयत्रस्ता गोभूत्वा प्राद्रवन्महो । तां पृथुर्नुरादाय द्रवन्तीमन्वधाधत ॥७१॥
 सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैष्णभयात्तदा । प्रददर्शप्रतो वैष्णं प्रगृहीतशरासनम् ॥७२॥
 इवलब्धभिर्निशितैर्वर्णदोस्ततेजसमन्ततः । महायोगं महात्मानं दुर्द्वर्षममरैरपि ॥७३॥
 अलभन्तो तु सा प्राणं वैष्णमेवान्वपद्यत । कृताञ्जलिमुदा भूत्वा पूज्या लोकेऽस्त्रिभिरतवा ॥७४॥
 'उवाच वैष्णं' नाथम्मं स्त्रीवधे परिपश्यति । कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् बिना मया ॥७५॥
 मयि लोकाः स्थिताः राजन्मयेदं धाम्यंते जगत् । मद्धिमासे विनश्येयः प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥७६॥
 न मामहंसि हन्तुं वै । श्येयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेवं वक्तो मम ॥७७॥
 उपायतः । समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमा । उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजामिभाम् ॥७८॥
 हृत्वापि । मां न शततत्त्वं प्रजानां पोषणं नृप । अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं । महामते ॥७९॥
 अवध्या च स्त्रियं । प्राहुस्तिथ्यंग्योनिगतैष्वपि । श्येयं पृथिवीपाल । न धम्मं त्यक्तुमहंसि ॥८०॥

होकर अनूप देश सूत को दिया और मगध देश मागध को ॥६८॥ पुषु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न विद्वानो ने प्रजाओं से कहा—'यह राजा तुम्हें जीविका प्रदान करेगा' ॥६८॥ तब महारत्ना पुषु के पास जाकर प्रजा कहने लगी—'आप हमें जीविका दें' तब महर्षियों के वचन से प्रजाओं से घिरे हुए बली पुषु ने प्रजा कल्याण की इच्छा से धनुष और बाण लेकर पृथिवी को छेदेगा ॥६९-७०॥ पुषु के मय से कोपती हुई पृथ्वी गाय का रूप धारण कर मागध लगी । मागधी हुई पृथ्वी के पीछे धनुष लेकर पुषु भी दौड़ने लगा ॥७१॥ यथगीत पृथिवी ब्रह्म-लोक आदि सभी लोकों में गई, किन्तु उसने अन्त तक भ्रमवत्ते हुए तीक्ष्ण बाणों से कान्तिमान्, महायोगी, महात्मा और देवताओं से भी अजेय पुषु को अपने घामने धनुष लिए हुए देखा ॥७२-७३॥ वही प्राण न पाकर (अन्ततः) पुषु की ही शरण में जाकर वह त्रिभुवन-पूण्या पृथ्वी हाथ जोड़कर उससे कहने लगी—॥७४॥ 'स्त्री के मारने में अधर्म को आप नहीं देखते? राजन् । मेरे बिना प्रजाओं का धारण आप कैसे करेंगे? ॥७५॥ सब लोक मुझमें स्थित है । मैं सत्सारा को धारण करती हूँ । राजन् । मेरा भाता हो जाने पर प्रजाओं का भी नाश ही समझिये ॥७६॥ यदि आप प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हैं, तो मुझे न मारें । पृथ्वीपति । मेरी बात सुनिये ॥७७॥ उपाय करन से सब काम सिद्ध हो जाते हैं । इसलिये आप उपाय कीजिए, जिससे प्रजाओं का धारण कर सकेंगे ॥७८॥ राजन् । मुझे मारकर भी प्रजाओं के पालन में आप समय नहीं हो सकते । महामतिमान् । श्रेय त्यागिये । मैं आपका कहना मानूँगी ॥७९॥ पत्नी-योनि में जाने पर भी स्त्रियाँ अवध्य नहीं गई हैं । राजन् । यदि ऐसा है, तो आपने लिए धर्म का परित्याग करना

१ व स ०जा प्राहुर्म । २ व वृत्ति तामे ० । ३ स ०मार्दद्व ० । ४ व वैष्णादपत्र ० । ५ व ०दा । ६ व ०नापि ततो वै ० । ७ व स ०मच्युतम् । म ० । ८ व धैन । ९ व ०ण माज्य ० । १० स स्थिरा । ११ व श्रेया यत्न । १२ व ०यसहिता रम्या स ० । १३ व ०पि मामध ० । १४ स ०महीपते । म ० महायुत । १५ क ०यता अपि । १६ स पि । सपश्यन्पि ० । १७ क ०सपश्य । १८ क ०ल जप ।

एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना । कोप निगूह्य घर्म्मर्त्ता वसुधाभिदमब्रवीत् ॥८१॥

पृथुस्वाच

एकस्यायै^१ तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा । दहन् वा प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे । तस्मिन् हते नास्ति भद्रे^२ पातकं चोपपातकम् ॥८३॥
सोऽहं प्रजानिमित्तं^३ त्वा हनिष्यामि वसुधरे । यदि मे ध्वजनाश करिष्यसि जगद्धितम् ॥८४॥
त्वा निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखोम् । आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता स्थयम् ॥८५॥
सा त्वं शासनमास्याय मम धर्मभृता वरे । सञ्जीव्य प्रजा सर्वा समर्था ह्यसि धारणे ॥८६॥
दुहितृत्वं च मे पच्छ तत एनमहं शरम् । नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥८७॥

यसुधोवाच

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न सशय ।^४ जस तु मम^५ सम्पदय क्षरेय येन वत्सला ॥८८॥
सनाञ्च कुर्व सर्वत्र मा त्वं धर्मभृता वर । यथा^६ वित्पन्दमान मे वीर सर्वत्र भावयेत् ॥८९॥

लोमहर्षण उवाच

तत उत्तारयामास शैलाञ्जलसहस्रश । धनुःकोट्या तदा वैष्णवस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥९०॥
न हि पूर्व्वं विसर्गे^७ च विषमे पृथिवीतले^८ । सविभारपुराणा वा ग्रामाणा बाभ्रवत्ता ॥९१॥

उचित नहीं है ॥८०॥ इस तरह की बहुत सी बात मुनवर महामना धर्मात्मा राजा शान्त हो पृथ्वी से कहन लगा ॥८१॥

पृथु ने कहा—मद्र^१ एक अपन लिए अथवा दूसरे के लिए बहुत प्राणिया को अथवा एक को ओ मारता है, उसको अनन्त पाप लगता है ॥८२॥ जिन पापी के मरने में बन्दरे सुख हो उगव मारने में पाप और उपपाप नहीं लगता ॥८३॥ पृथ्वी^२ मेरी जाग मैं यदि तुम ससार का कल्याण नहीं करती हो तो प्रजा के कारण मैं तुम्हें मार दूँगा ॥८४॥ शासन को मैं मानन चाँह तुमको आज मार कर मैं प्रजा को धारण करने के लिए अपना विस्तार करूँगा ॥८५॥ अतः हे धर्मधरण तुम मेरा गारन स्वाकार कर प्राता का पान्न पोषण करो। प्राज्ञ को धारण करने में तुम पूण समर्थ हो ॥८६॥ यदि तुम्हें मेरी पुत्री यन्त्रा स्वीकार है तो तुम्हारे वध के लिये तैयार इस मयवर बाण को मैं रोज दूँ ॥८७॥

पृथिवी न कहा—वीर^३ ! निर्वन्देह मजरा सब स्वाकार है। पर आप मेरे बलडे को देखिये जिससे मैं नास्त्यपुत्र होकर दूष दू ॥८८॥ धर्मधरीण^४ ! आप मुन गव और स उमन्त बना दें जिससे मेरा मारा हुआ दूष सब जगह पहुँच सब ॥८९॥

लोमहर्षण न कहा—नव पूष न धनुष न गिर न तैट्टा हजारा पवता को उखाड दिया। इससे पहाड बड़ गव ॥९०॥ पहली सृष्टि में जब पृथ्वी पर साह उबन्ता-गाड को नव गाँवा या नगर का विभाग नहीं

१ क ०त् । ए० । २ ग ० स्पर्धायि यो । ग ० स्पर्धायन यो । ३ न ० नी मदे मः । ४ रा सुभे । ५ क ० मित त्वा । ६ रा ० वन नाश । ७ रा ० त्वं त्वममृत यः । ८ क ० म त यः । ९ क चत्या । १० म ० ले । प्रवि० ।

म शस्यानि न योरक्ष्यं न कृषिर्न धनिकपयः । नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः ॥९२॥
 वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते । वैष्णवात्प्रभृति वै विप्राः सर्व्वस्यैतस्य सम्भवः ॥९३॥
 यत्र यत्र सप्तं त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः । तत्र तत्र प्रजाः सर्वा विदासं समरोचयन् ॥९४॥
 आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा । कृच्छ्रेण महता य्वत इत्येवमनुशुधुम् ॥९५॥
 साकल्पयित्वा वत्सं तु भन्तुं स्यायम्भुवं प्रभुम् । स्वपाणी पुरुषध्याप्तो दुदोहं पृथिवीं ततः ॥९६॥
 शस्यजातानि सर्वाणि पृथर्व्वेयः प्रतापवान् । तेनाक्षेण प्रजाः सर्वा वतन्तेऽप्यपि सर्व्वशः ॥९७॥
 ऋषयश्च तदा देवाः पितरोऽप्य सरोसृपाः । दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्वाः पद्मवन्त नगाः ॥९८॥
 एते पुरा द्विजधेष्टा दुवुहधरणीं किल । क्षीरं यत्सञ्च पात्रं, च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक् ॥९९॥
 ऋषोणामभवत्तोमो यत्तो दोग्धा दूहस्पतिः । क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दासि भो द्विजाः ॥१००॥
 देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतश्रुतुः । क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च भगवान् रविः ॥१०१॥
 पितॄणां राजतं पात्रं धर्मो वत्सः प्रतापवान् । अन्तर्कक्षामवद्दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता ॥१०२॥
 नागानां तक्षको वत्स पात्रं चालाबुततकम् । दोग्धा त्वैराद्यतो नागस्तेषां क्षीरं विप स्मृतम् ॥१०३॥
 असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम् । विरोचनश्रुतु वत्सोऽभूदायस पात्रमेव च ॥१०४॥
 यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभु । दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥१०५॥
 सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम् । दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च ॥१०६॥

हुता था ॥९१॥ अत्र गौरक्षा, सेती वाणिज्य सत्य मिथ्या, लोभ, डाह—ये सब नहीं थे ॥९२॥ द्विजवर्ग ।
 वैवस्वत मन्वन्तर होने पर पृथु-नाल भ ही इनकी उत्पत्ति हुई ॥९३॥ विप्रबुद्ध । जहाँ-जहाँ पृथ्वी बराबर थी, वहाँ
 सर्वत्र प्रजा बसने लगी ॥९४॥ उस समय की जनता परिश्रम और कष्ट से फल-मूल श्रोजन प्राप्त करती थी—
 ऐसा हमने सुना है ॥९५॥ पुरुष-युगव पृथु ने ममर्थ स्वायम्भु मनु की बछड़ा बनाकर अपन हाथ से पृथ्वी को
 जय दुहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए । उन्हीं माग्यपदार्थों से जनता का पोषण अब भी हो रहा है ॥९६-९७॥ द्विजवर ।
 ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य यक्ष राक्षस गन्धर्व पहाड़, वृक्ष—इन्होंने पहले पृथिवी को दुहा ॥९८॥ विप्रबुद्ध ।
 जगत्के दूध, बछड़ा, पात्र, दुहने वाला—ये सब अलग अलग स्थिति हुए ॥९९॥ ऋषिया न सोम को बछड़ा वृहस्पति
 को दुहनेवाला, और वेदों को दोहन । बनाकर तपस्या रूप दूध को दुहा ॥१००॥ देवताओं न स्वर्ग की दोहती मद्भद्र
 को बछड़ा और भगवान् सूर्य को दुहने वाला बनाकर तेजस्वर दूध को दुहा ॥१०१॥ पितरा ने चाँदी को पात्र, प्रलापी
 यम को बछड़ा, अन्तर् (नाल) को दुहने वाला बनाकर अभूत रूप दूध वा दोहन किया ॥१०२॥ नागों ने तक्षक की
 बछड़ा, तुलसी की पात्र, ऐरावत नाग को दुहनेवाला बनाकर विष रूप दूध को दुहा ॥१०३॥ दैत्या ने मधु (दैत्य)
 को दुहनेवाला, विरोचन (प्रह्लाद-पुत्र) को बछड़ा और लोहा को पात्र बनाकर मथिा रूप दूध को दुहा ॥१०४॥ यक्षों न
 चाँच की पात्र, कुबेर को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला बना कर अन्तर्धान (छिप जान की विद्या) रूप दूध को
 दुहा ॥१०५॥ राक्षसों ने सुमाली को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला और कपाल को पात्र बनाकर शोणित रूप

१ ग गौरक्षा । २ ल कृच्छ्र । ३ य ० म । सक० । ४ व ० यिचितलम् । स ० । ५ स सर्वत । ६ व ० त्र । सप्त० व
 ० तरोऽपि स ० । ७ छ । ० र्मुञ्च ० ८ क ० नाक्चि । ९ ग स्वधा । १० थ सुमता ।

गन्धर्वाणां त्रिप्ररयो वत्सः पात्रं च पञ्चजम् । दोग्धा च सुहृदि क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥१०७॥
 शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं शतोषधीस्तथा । वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुमहागिरिः ॥१०८॥
 प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः । पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥१०९॥
 तेषां घात्रो विघात्रो च पावनी च वसुन्धरा । चराचरस्य सत्त्वंस्य प्रतिष्ठा धोनिरेव च ॥११०॥
 सर्वकामदुधा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी । आसीदिय समुद्रान्ता मेदिनी परिविभ्रुता ॥१११॥
 मधुकटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता । तेनेय मेदिनी देवो उच्यते बह्मवादिभिः ॥११२॥
 ततोऽभ्युपगमाद्राजः पृथोवैष्णवस्य भो द्विजाः । बुद्धित्वमनुप्राप्ता देवो पृथ्वीति चोच्यते ॥११३॥
 पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा । शस्याकरवती स्कीता पुरपत्तनशालिनी ॥११४॥
 एवमप्रभावो वैष्णवः स राजासीद्राजसत्तमः । नमस्त्वयैव पूजयिष्ये भूतप्रार्थनं संशयः ॥११५॥
 श्राह्मणैश्च महाभार्गवैश्चैवाङ्गपारंगः । पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥११६॥
 पार्थिवैश्च महाभार्गः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः । आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैष्णवः प्रतापवान् ॥११७॥
 योर्धरपि च विक्रान्तः प्राप्तुकामैर्जयं युधि । आदिराजो नमस्कार्यो योषाणां प्रथमो नृपः ॥११८॥
 यो हि योद्धारणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् । स घोररूपसंप्रामात् क्षेमी भवति कीर्त्तमान् ॥११९॥
 वैश्यैरपि च विस्तार्यैवैदमवृत्तिविधायिभिः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशः ॥१२०॥

दूध को दुहा ॥१०६॥ तन्मयों ने चित्ररथ को बछड़ा कमल को पात्र, सुहृदि को दुहनेवाला बनाकर पवित्र गन्ध रूप
 दूध को दुहा ॥१०७॥ पहाड़ों ने शिला को पात्र, हिमालय को बछड़ा और मुखे को दुहनेवाला बनाकर पल और
 ओषधि रूप दूध दुहा ॥१०८॥ वृक्षों ने पाकर को बछड़ा, पुष्पित शाख को दुहनेवाला पलास को पात्र बनाकर कटे-
 जले हुए वृक्षों से निकल कर पलरूप दूध दुहा ॥१०९॥ वहीं पृथ्वी विघात्री, पावनी वसुधरा, जननी, सर्वकामदोग्ध्री,
 सर्वशस्यप्ररोहणी और मेदिनी नाम से विख्यात है और समुद्र तक फैली हुई है ॥११०॥ १११॥ मधु-कटभ के मेद से व्याप्त
 होने के कारण बह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥११२॥ विप्रगण । राजा पृथु द्वारा पृथ्वीरूप में स्वीकार की जाने से यह
 पृथ्वी कहलाई ॥११३॥ पृथु ने पृथ्वी को विभक्त कर उसका तत्कार किया, जिससे यह धन, धान्य, गोव, नगर
 आदि से समृद्ध हुई ॥११४॥ इस तरह प्रतापी और नृपधेय राजा पृथु प्राणियों में पूज्य और प्रथम्य बन, इससे
 गदय नहीं ॥११५॥ वेद-वेदान्तों में पारम्य महाभाग ब्राह्मणों को चाहिए कि सनातन और ब्रह्मयानि पृथु को ही नमस्कार
 करें ॥११६॥ राजत्व चाहने वाले महाभाग राजाओं को भी परम प्रतापी आदिराजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये ।
 ॥११७॥ मुद्र में जय की इच्छा रखने वाले पराक्रमी योद्धाओं को भी आदि राजा पृथु को नमस्कार करना
 चाहिये ॥११८॥ जो सैनिक राजा पृथु का स्मरण करने में मुद्र में जाता है, वह घोर सत्राण में भी विजयी होता है ।
 ॥११९॥ महायजनान् वैश्य भी जोविका देनेवाले महायज्ञस्वी पृथु को ही नमस्कार करें ॥१२०॥ उर्मा तपह

१ न. वित्तस्य । २ न. सा च परिप्लु । ३ न. रथावली च सा । ए० १४ ग. ०२५ नमस्कार्यो म ० १५ ग. ० १
 फलेपुमि । १ ० नानैरापु ० १३ म. ० यो वृत्तिदाता महायशः । या । ८ ग. ० मातरि बह्वी ० १९ न. ० ताय
 वैश्य ० ।

तथैव शूद्रेः^१ शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च। पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं

नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर-वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि सख्याणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्ववदिसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥
मावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

लोमहर्षण उवाच

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्णशतैरपि। मन्वन्तराणां सख्येषां सप्तोपाच्छृणुत द्विजा^२॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा^३। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥

तीनों वर्णों की सेवा करने वाले पवित्र ब्रूह भी परम कल्याण के लिए पृथु को ही नमस्कार करे॥१२१॥ ये विशेष बछड़े, दुहने वाले, दूध बीर पात्र मेंने बतला दिये। अब बीर क्या वर्णन करूँ, कहिये॥१२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पृथु का जन्म माहात्म्य-वचन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मुनियों ने कहा—महाप्राज्ञ लोमहर्षण, सभी मन्वन्तरो और उनकी पूर्व्वसृष्टि का वर्णन विस्तार से कीजिये ॥१॥
महाभाग सूत! जितने मनु, जितने काल और जितने मन्वन्तर हुए हैं, उनको तत्त्वतः हम सुनना चाहते हैं॥२॥

लोमहर्षण बोले—विप्रबन्ध! सभी मन्वन्तरो का विस्तार पूर्व्वक वर्णन मैं सारे वर्णों में भी नहीं कर सकता। इसलिये संक्षेपतः श्रवण कीजिए॥३॥

सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ। उसके बाद ऋषभ स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये मनु हुए॥४॥

वेवस्वतश्च भो विप्रा साम्प्रत मनुर्हृष्यते। सार्वणिश्च मनुस्तद्वर्ग्यो^१ रौच्यस्तथैव च॥५॥
 तथैव मेहस्तावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता। अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा॥६॥
 कीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवंते ययाधृता। ऋषीस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा॥७॥
 मरीचिरत्रिभंगवानङ्गिरा पुत्रह क्तु। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते द्रष्टव्य सुता॥८॥
 उत्तरस्या दिशि तया द्विजा सप्तर्षयस्तथा। अग्निधरश्चाग्निबाहूश्च मेधो^२ मेधातिथिर्वसु^३॥९॥
 ज्योतिष्मान्द्युतिमान्^४ हव्य^५ सबल पुत्रस्रजक। मनो स्वायम्बुवर्यंते दश पुत्रा महोजस॥१०॥
 एतदे प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्भ^६ ऋषय एव च॥११॥
 प्राणो बृहस्पतिश्चैव दक्षोऽग्निश्चयवनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता महामता॥१२॥
 देवाश्च तुषिता नाम स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे। हविष्^७ सृष्टिर्ज्योतिरापोमूर्तिरपि स्मृत॥१३॥
 प्रतीतश्च नभस्यश्च गन्ध^८ ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महामन॥१४॥
 कीर्त्तिता मुषिषीषाला महायौर्व्यपराक्रमा। द्वितीयमेतत्कथित विप्रा मन्वन्तर मया॥१५॥
 इव तृतीय वक्ष्यामि तद्वृध्यध्य द्विजोत्तमा। वसिष्ठपुत्रा सप्तासन् वासिष्ठा इति विभ्रुता॥१६॥
 हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाता^९ सुतेजस। ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्त्यमानाभिधीयते॥१७॥
 औत्तमेमा मुनिधेष्ठा दक्षा पुत्रान्मनोरिगान्। इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥१८॥
 शुषि शुक्र सहदेव नभस्यो नभ एव च। भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥१९॥

द्विजवृन्दः इति गम्य वैदम्यन् मनु है। सार्वणि रैभ्य रच्य अर मरगावण्य—य चरि मा मनु बहलात हैं॥५॥
 द्विजवृन्दः अतल वनमात्र अर मयिष्य म हान वाल मनुआ को मैन अनुपुनि के अनुधार आप लाया म बनला दिया,
 अत्र इनके कपि पुत्र अर दवताआ का वणन कहेंगा॥६॥ मर रि अत्र भवतान् अगिरा पुत्रह क्तु पुत्रस्य
 अर वशिष्ठ—य सता ब्रह्मा के पुत्र कहेंगा॥८॥ ब्राह्मणवृन्द उत्तर दिशा म य सता सप्तर्षि कहेंगा हैं।
 आग्नीध्र अग्निबाहू मभ्य मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य रव अर पुष्य—ये महापराजमी दद्या
 पुत्र स्वायम्बु मनु व हुए॥९॥ १०॥ ब्रह्मण्यमा^१ यह पहल मन्तर का वणन मैन किया है। वसिष्ठ का पुत्र और्व,
 स्तम्भ बन्द्यप प्राण द्युग्गपि दत्त अत्र अत्र यवन—य वायु स नह गए महाव्रती महर्षि और तुषिति नामक
 देवता स्वाराचिष मन्वन्तर म हुए॥११॥ १२॥ हविष् सृष्टि ज्योति अपि मुनि प्रतीत नमग्य नभ और ऊर्ज—
 य महात्मा स्वाराचिष म व पुत्र व वगत्रमा गत्रा हुए॥१३॥ १४॥ यह द्रुमर मन्वन्तर का वणन मैन किया॥१५॥
 विप्रवरः अत्र तयार मन्वन्तर का दणा म वक्ष्या मुनिय। वशिष्ठ व माता पुत्र वासिष्ठा नाम म प्रशिद्ध
 हुए॥१६॥ निष्पन्ना व नम्रय दक्ष ऊर्ज नाम म स्थान हुए। मुनिय। ऋषिया व वार म मैन बनला गिया॥१७॥
 अत्र आनिमि व दक्ष पुत्रा व नाम मुनिय—य उत्र ननुत्र मधु माधव गुवि शुक्र सह नभस्य अर नभ। उग (मन्त्र
 मर) म आनु देवता हुए। यह मन्वन्तर मैन बट दिया॥१८॥ १९॥ अत्र वायु मन्वन्तर व विषय म मै आपन बहेंगा।

१ ग ऋक्षम्पार ०। २ ग म वरा। ३ व ऋषिभु। ज्या०। ४ ग ० च्या मनुवृन्दथैव च। ५ ०।
 ६ ग वचना। ७ व त्रिभिः ॥ ८ महाव्रता ॥ ९ व हविष्य म हविष् ०। ८ व मन्तर ०। १ ग नाम।

मन्वन्तरं चतुर्थं यः कथयिष्यामि साम्प्रतम् । काव्यं पृथुस्तयंवाग्निर्जहन्नुर्धता द्विजोत्तमा ॥२८॥
 'रूपोवानरूपोवाश्च तत्र सप्तपथो द्विजा । पुराणे कीर्तिता विप्रा पुत्रा पोत्राश्च भो द्विजा ॥२९॥
 'तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो' । द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोभूत' सनातन ॥२९॥
 तपोरतिरकल्माषस्तन्वी' धन्वी' परन्तप' । तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा प्रकीर्तिता ॥२३॥
 बापुप्रोक्ता' मुनिष्येष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम् । देवबाहुर्वयुश्च मुनिर्देवशिरास्तथा ॥२४॥
 हिरण्यरोमा पञ्चैत्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमज' । सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तपथोऽपरे ॥२५॥
 'वेवाइवाभूतरजस्तस्या प्रकृत्य स्मृता' । वारिण्यश्च रम्यश्च' मनोरन्तरमुच्यते ॥२६॥
 'अथ पुत्रानिमास्तस्य द्रुप्यश्च यत्तो मम । घृतिमानव्ययो युवतस्तत्त्वदर्शो निरस्तुक ॥२७॥
 आरण्यश्च प्रकाशश्च 'निर्मोह' सत्यवाक्कृती । रैवतस्य मनो पुत्रा पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥२८॥
 पृष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तद्वयस्य द्विजोत्तमा । भृगुर्नभो विवस्वाश्च सुधामा विरजास्तथा ॥२९॥
 'प्रतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते' । च महर्षयः । चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा' 'मनोर्देवास्त्वमे स्मृता' ॥३०॥
 आबालप्रणितास्ते ये पृथक्त्वेन दिवौकसः । लेखाश्च नामतो विप्रा' पञ्च देवगणा' स्मृता ॥३१॥
 शृपेरङ्गिरस पुत्रा महात्मा भौजसः । नाडवलेय' मुनिष्येष्ठा दश पुत्रास्तु विभृता' ॥३२॥
 रहप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो । पृष्ठं मन्वन्तरं प्रोक्तं सप्तमं तु निबोधत ॥३३॥

ब्राह्मणग्रन्थो । काव्यं पृथु अग्निं जहन्नु धृता नृपीवान् अर अरथावान्—ये सातो ऋषि चतुर्थ मन्वन्तरं मे हूए । तामस
 मन्वन्तरं मन के पुत्र पात्र तथा देवसमूह का भी वर्णन पुराण में किया गया है ॥२०-२१॥ द्युति तपस्य सुतपस तपो
 मन सनातन तप अतिफलदाय तन्वी धन्वी आर परतप—ये दत्ता पुत्र तामस मनु के कहलाये—एसा बापु का कहना
 है । यह बापा मन्वन्तर के दत्ता वतला दिया ॥२२-२३॥ (पाचव मन्वन्तर म) देवबाहु यदुध्र मनि वदशिरा हिरण्य
 रोमा पञ्चम सोम से उत्पन्न ऊर्ध्वबाहु अर अग्नि-पुत्र सत्यनेत्र—ये सातो ऋषि हूए ॥२४-२५॥ रजोविह न प्रहृतिर्यो
 देवता हूए । वारिण्य आर रम्य भी मनु के अन्तर कहलाते हैं ॥२६॥ अब मनु के पुत्रों के नाम मुनिये । घृतिमान
 व्यय युक्त तत्त्वदर्शी निरस्तुक आरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक् कृती—ये रवत मन के पुत्र हूए । यह पाँचवा
 मन्वन्तर मैं वर्णन किया ॥२७-२८॥ ब्राह्मणग्रन्थो । अब छठ के बारे में कहूँगा मुनिये । भग नम विवस्वान्
 सुधामा विरजा अतिनामा आर सहिष्णु—ये साता महर्षि चाक्षुष मन्वन्तर मे हूए ॥२९-३०॥ लेखा नाम से प्रसिद्ध
 पाच देवता हूए जिनके नाम पृथक् रूप से बालन तक भी जानत हैं ॥३१॥ मुनिवर' अगिरा मुनि के महा
 पराक्रमी यह प्रमति दश पुत्र नाडवलेय नाम से प्रसिद्ध हूए ॥३२॥ चाक्षुष मन्वन्तर नामक छठा मन्वन्तर मैं वर्णन

१ क तु । ए चा २ व नक्ष बं कर्षिवावच ० । ३ ख सत्या । ४ व ० नो । घृतिस्तप सुतरमस्तपोमूल स ० ।
 ५ ख । ० पोमल २० । ६ व ० स्तविप ० । ७ क ० विविप ० । ८ क ० ० पा । ० ० । ९ स ० क्षत्रिज भो विप्रश्च ० ।
 १० व मोनप । ११ व वाच भू ० । १२ स ० ता । पारि ० । १३ व वैद्यश्च । १४ ख व अरण्य ० । १५ क
 निर्मो' । १६ व ० तिप मा । १७ व ० प्तप्रतिम ० । १८ स ० पते । १९ क ० ता । अग्रमन्त्रश्च नृपय पृथुगज्या
 निवाकस । २० ख नाडवले ० । २१ क ० ता । शु ० ।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृपिः। गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव ॥३४॥
 तथैव पुत्रो भगवान्चोक्तस्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि ॥३५॥
 साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा। आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवौ धैवस्वतौ स्मृतौ ॥३६॥
 मनोर्वैवस्वतस्म्यन्ते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः ॥३७॥
 एतेषां कीर्तितानान्तु महर्षीणां महोजसाम्। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वसु भो द्विजाः ॥३८॥
 मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु प्रागासन् सप्त सप्तकाः। लोके धर्ममव्यवस्थार्यं लोकसंरक्षणाय च ॥३९॥
 मन्वन्तरे ध्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः। कृत्वा कर्म दिवं घान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥४०॥
 ततोऽन्ये तपसा मुक्ताः स्थानं तत्पूरयन्पुनः। अतीता वर्तमानाश्च ऋषेणैतेन भो द्विजाः ॥४१॥
 अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह भो द्विजाः ॥४२॥
 रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो ब्रह्मभुताः। भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥४३॥
 गौतमश्चाजगरश्चैव शरद्धानाम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्व्यः काश्यप एव च ॥४४॥
 एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा। वंद्यो चैवाध्वरीषाश्च शमनो धृतिमान् वसुः ॥४५॥
 अरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमा ॥४६॥
 एतेषां कल्पमुत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदापुत्माश्च भवेन्नरः ॥४७॥

कर दिया। अब सातवें के विषय में सुनिये। ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, भगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋषीक महात्मा का सातवां पुत्र जमदग्नि—ये सब ऋषि इस समय स्वर्ग में हैं ॥३४-३५॥ साध्या, रुद्र, विश्वे-देव, वसु, मरु आदिय और अश्विनीकुमार—ये सब देवता वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के हैं ॥३६॥ इस मनु के इन्द्राकु आदि दस पुत्र हैं ॥३७॥ ब्राह्मणवृन्द। पहले सभी मन्वन्तरो में लोक में धर्म व्यवस्था तथा लोक-संरक्षण के लिए इन वरियत महान् तेजस्वी महर्षियों ने तथा इनके पुत्र-पौत्रों ने सब दिशाओं में सात सप्तक अर्थात् विभिन्न घात घात दल थे ॥३८-३९॥ मन्वन्तर बीत जाने पर चार सप्तक-गण कार्य समाप्त करके रोगादि से रहित ब्रह्मलोक को चले जाते थे ॥४०॥ तब दूसरे तपस्वी उस स्थान की पूर्ति करते थे। विप्रवृन्द। अतीत, वर्तमान और भविष्यत् इस त्रय से ये सात महर्षि स्वर्ग में बहे गये हैं ॥४१॥ विप्रवृन्द। सावर्ण मन्वन्तर में राम, व्यास, अत्रि-पुत्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य के पुत्र महाशक्तवी अवस्थामा, गौतम, अजर, शरद्धाना नामक गौतम, कौशिक, गालव, और्व्व्य, काश्यप—य सात महात्मा होंगे ॥४२-४३॥ मुनियेष्टो। वंद्य, अध्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, वाजी, सुमति—ये सात महर्षि सावर्ण मनु के पुत्र होंगे ॥४४-४६॥ प्रातर्वास उठकर इनके नाम लेने से मनुष्य सुख, धन और पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥४७॥ विप्रवृन्द। य सप्तक गण मैंने सत्त्वना बतला दिये। अब जाने वाले मन्वन्तरा

१ क ऋषियस्माच्च जज्ञिरे। छा०। २ ख. ०पु प्रथिता सप्त। ३ क. ०श्च ऋषयाणि च मो। ४ क ०म्याऽदितो दि०। म णरयादितो दि०। ५ क ०सा। मर०। क. म. ०मस्याऽद्वजश्चै०। ७ क ०व भरद्वाजोऽथ गो०। ८ ख ब्राह्म्य। ९ क सुमन्तो। १० ख. ०वैसदा। ए०।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः । मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतान्यपि ॥४८॥
 सावर्णा मनवो विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत । एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४९॥
 परमेष्ठिसुता विप्रा मेरुसावर्ण्यतां गताः । दक्षस्येते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः ॥५०॥
 महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महोजसः । रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥५१॥
 भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भोदयो नाम रुचेः सुतः । अनागताश्च सप्तंते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥५२॥
 तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सप्ततनः । पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 प्रजापति (ते) इह तपसा संहारं तेषु नित्यशः । युगानि सप्ततिस्तानि साप्ताणि कथितानि च ॥५४॥
 कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते । चतुर्दशंते मनवः कथिताः कीर्त्तित्वर्द्धनाः ॥५५॥
 वैवेपु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविवर्णवः । प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेपां प्रकीर्त्तनम् ॥५६॥
 मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः । न श्रव्यतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्पशतैरपि ॥५७॥
 विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः । मन्वन्तरेषु संहाराः ध्रुयन्ते द्विजसत्तमाः ॥५८॥
 सद्योपास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तार्षिभिः सह । तपसा ब्रह्मचर्य्येण धृतेन च समन्विताः ॥५९॥
 पूर्णं युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते । तत्र भूतानि सर्वाणि इष्टान्यादित्यरदिभिः ॥६०॥
 ब्रह्माणमप्रतः कृत्या सहादित्यर्णोद्विजाः । प्रविशन्ति सुरभ्रेष्ठं हरिनारायणं प्रभुम् ॥६१॥
 स्रष्टारं सर्वभूतानां कल्पांतेषु पुन पुनः । अव्यक्तं शश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥६२॥

के बारे में भी संक्षेप से सुन लीजिये ॥४८॥ ब्रह्माणवृन्द । सावर्ण मनु पर्व है, उन्हें सुनिये । उनमें से एक तो वैवस्वत मनु है और चार प्रजापति परमेष्ठी के पुत्र कहलाते हैं, जो मेरुसावर्ण्यभाव को प्राप्त हो गये हैं ॥४९॥ ये महतेजस्वी राजा, जिन्होंने सुमेरुपर्वत पर वही तपस्या की है, प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और प्रिया से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥५०॥ प्रजापति रुचि का पुत्र रौच्य नामक मनु कहलाया ॥५१॥ रुचि का वह पुत्र, जो भूति नामक देवी से उत्पन्न हुआ था, भीत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस रूप में ये सती मनु होने वाले हैं ॥५२॥ ब्रह्माणवर । इनसे साता द्वीप और नगरी सहित यह सम्पूर्ण पृथिवी पूरे हजार युग तक पाली जायी है । प्रजापति की तपस्या से इनका नाश भी नित्य होता रहता है ॥५३॥ सत्ययुग, त्रेता आदि सत्तर युग मन्वन्तर कहलाते हैं । वेदों और पुराणों में कीर्त्तित-वर्ण्य ये ऋषिहा मनु प्रजा के स्वामी माने गये हैं । ब्रह्माणवृन्द । इनका वर्णन कल्याण-दायक है ॥५४॥ मन्वन्तरी का संहार हुआ करता है और संहार के बाद फिर मन्वन्तर होते हैं । इनके अन्त को वर्णन संक्षेप से वर्णों में भी नहीं किया जा सकता ॥५५॥ विप्रवर । मन्वन्तरी में प्रजा की सृष्टि तथा संहार सुने जाते हैं ॥५६॥ वहाँ सप्तार्षियों के साथ देवता लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और वेदों के प्रभाव से बच जाते हैं ॥५७॥ हजार युग पूर्ण हो जाने पर निःशेष नामक नश्य होता है, जिसमें सूर्य की चिरगो से सब प्राणी दम्भ हो जाते हैं ॥५८॥ ब्रह्माणवृन्द । तब समस्त प्राणी आदित्य-गणों के साथ ब्रह्मा को आगे करके कल्याण के अन्त में पुन पुन प्राणियों की सृष्टि-वर्त्ता, देव-भ्रेष्ठ तथा व्यापक हरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं ॥५९॥ हरि भगवान् अव्यक्त और सनातन हैं । उन्हीं के अधीन यह सम्पूर्ण ससार

१ क. ० नवस्तोत्रपञ्च । ख. नवस्तोत्र पं० । २ क. ० प्रा मनुसां । ३ ग. द्विजा । ४ क. ० म मनु स्मृत । ५ क. ० सप्तमुदा । ६ ख. पूर्णवर्षसं० । ७ क. ग. ० अयमन्तर तेषां व० । ८ भरतर्षसं० । ९ ग. ० वर्षसं० ।

अत्र व.¹ कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै। विसर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतस्य महाद्युतेः॥६३॥
 अत्र यंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा ॥ हरिवृष्णिकुले¹ प्रभुः॥६४॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्तनं नाम
 पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

आदित्योत्पत्ति-कथनम्

लोमहर्षण उवाच

विवस्वान् कश्यपोज्जसो दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः। तस्य भार्याभक्तसंज्ञा स्वाष्ट्री देवी विवस्वतः॥१॥
 सुरेश्वरीति¹ विषयाता त्रिषु लोकेषु भाविनी¹। सा च भार्या भगवतो मत्संण्डस्य महात्मनः॥२॥
 भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम¹ सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता॥३॥
 आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा¹। गात्रेषु परिवर्धं वै नातिफाग्नमिवाभवत्॥४॥
 न खल्वर्धं मृतोऽण्डस्य इति स्नेहादभायत। अजानन् काश्यपस्तस्मान्मात्संण्ड इति खोद्यते॥५॥
 तेजस्त्रयधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः। येनातितापयाभास त्रीँल्लोकान् कश्यपात्मजः॥६॥

है॥६२॥ मुनिवयं¹। अत्र मैं वर्तमान महातेजस्वी वैवस्वत मनु की सृष्टि का वर्णन आपसे करूँगा॥६३॥ वरा ने प्रसंग से मैं उस प्राचीन वृष्णि-कुल की वर्णन करूँगा, जिसमें वे सर्वशक्तिमान भगवान् हरि उत्पन्न हुए थे॥६४॥

श्री ब्रह्म महापुराण में मन्वन्तर-कीर्तन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

अध्याय ६

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—विश्वर¹। कश्यप और दक्ष की पुत्री के संयोग से विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुआ। उस विवस्वान् की पत्नी त्वष्टा की पुत्री सज्ञा हुई॥१॥ भगवान् सूर्य की स्त्री (सज्ञा) तीनों लोक में सुरेश्वरी नाम से विख्यात है॥२॥ तपस्या और कान्ति से युक्त सज्ञा सौन्दर्य और रीति से परिपूर्ण थी। स्वामी का रूप उसे पसन्द न था॥३॥ जगो में जलन पैदा करने वाला सूर्यमण्डल का वह तेजस्वी रूप उसे नहीं मालूम था॥४॥ उसने स्नेह से कहा कि यह अण्डस्थ मरना नहीं है। इसलिए कश्यप पुत्र (सूर्य) की नाम मात्संण्ड पड़ा॥५॥ उस विवस्वान् में अत्यन्त तेज होने के कारण वह तीनों लोकों को तपाने लगा॥६॥ विश्ववृन्द¹ अतितेजस्वी सूर्य ने

१ क ते। २ क ख ऋकुलोद्भव। ३ क उरेणुरित। ख. सुरेणुरित। ४ क, मात्निनी। ५ ख

• म स्वतः। ६ क ख सुतेजय।

श्रीण्यपदानि' भो विप्राः 'संज्ञायां तपतां वरः। आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्वं धाद्वदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजो सम्बभूवतुः ॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः। असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्म्ममे ततः ॥९॥
मायामयो नु सा संज्ञा तस्यां छायासमुत्थिताम्। प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां द्विजोत्तमाः ॥१०॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते। स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिन ॥११॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते इवमेव' भवन्नं पितुः। त्वर्यव' भवने मह्यं' वस्तव्यं निर्विशङ्कया ॥१२॥
इमौ न बालकौ मह्यं कन्या चैवं सुमध्यमा। सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिवं भगवते क्वचित् ॥१३॥

सवर्णोवाच

आ कवप्रहणाद्देवि आ शापार्प्रव कर्हिचित्। आस्थास्यामि' नमस्तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥१४॥

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तयेत्युक्ता तया' च सा। त्वष्टुः' 'समीपमगमद्ग्रीडितेव तपस्विनी ॥१५॥
पितुः समीपना सा नु पित्रा निर्मत्सिंता शुभा'। भर्तुः' 'समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥
आगच्छद्ब्रजया भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्विता। कुरुनयोत्तरान् गत्वा लूणान्यय चचार ह ॥१७॥

सज्ञा से एक कन्या और दो प्रजापतिया को उत्पन्न किया। ॥७॥ पहले प्रजापति धाद्वदेव मनु विवस्वान् से उत्पन्न हुए। फिर यम और यमुना दोनों यमज (जुड़वा) उत्पन्न हुए। ॥८॥ विवस्वान् के श्यामवर्ण रूप को न सहती हुई सज्ञा ने अमन। छाया सवर्णा को रचा ॥९॥ प्राहणवर्ग। माया से रची हुई वह छाया अजलि बौधकर सज्ञा के सामन खड़ी हो गई थीर बोली—हे गुहरी। मैं आपके अधीन हूँ आपने लिए मुझे क्या करना है? आज्ञा दीजिए ॥१०-११॥

सज्ञा बोली—तैरा बल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तू मेरे घर में निराश होकर रह ॥१२॥
इन दोनों बालक तथा इस सुन्दरी कन्या का पालन-पोषण करता। विन्तु यह रहस्य सभी यगवान् सूर्य से नहीं कहना ॥१३॥

सवर्णा बोली—जब तक मेरी चीटी नहीं पकड़ी जायगी और शाप नहीं पड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को प्रकट नहीं करूँगी। देवि, सादर प्रणाम। आप आनन्द से जाइये ॥१४॥

लोमहर्षण ने कहा— इस तरह सवर्णा के कहने पर उसको आज्ञा देकर तपस्विनी सज्ञा एजित-सी होती हुई लपटा के पास गई ॥१५॥ पिता के समीप जाने पर पिता ने शिङ्कित हुए, उस साध्वी से कहा—'तू अपने पति के पास जा।' और बार-बार इसके लिए प्रेरित किया ॥१६॥ तब वह अपने रूप को छिपा कर छोड़ी वा स्वरूप धारण कर उत्तर दिशा में कुरदेश में जाकर घास चरने लगी ॥१७॥ 'यह सज्ञा है' ऐसा समझते हुए सूर्य ने दूसरी सज्ञा से

१ स ० नि कंरव्य स०। २ क ० या यगवास्तत। आ०। ३ स ० सा ततो द्विजा। उ०। ४ स त्वयेद् म०। ५ स मन्वे। ६ क स शुभे। ७ क ग ० मिमत तुभ्य। ८ स त्वर्य स। ९ क पितु। १० क ० मद्मतिव च त०। ११ क स पुष्ट। १२ ग. खे।

द्वितीयाया तु सजायां सज्जेयमिति चितयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥१८॥
 पूर्वजस्य मनोविप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु। मनुरेवाभवद्व्राम्ना सावण' इति चोच्यते ॥१९॥
 द्वितीयो य सुतस्तस्या स विज्ञेय शनंदधर। सजा तु पाथिवी दिप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥२०॥
 चक्षुराम्पथिक स्नेह न तया पूर्वजेषु वै। मनुस्तस्या क्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे ॥२१॥
 स वै रोयाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयस्य वानघ। पदा स तज्जयामास सजा वयस्यतो दम ॥२२॥
 त स दशाप तत क्रोधात सायर्जननी तदा। चरण पततामिष तवेति भृशदु खिता ॥२३॥
 यमस्तु तलपितु सख्यं प्राञ्जलि प्रत्यवेदयत। भृश द्वापभयोद्विग्न सजावायर्धवर्शज्जुत ॥२४॥
 द्वापोऽय विनिवर्त्तत प्रोवाच पितर द्विजा। माया स्नेहेन सख्येषु वर्त्तितय्य सुतेषु य ॥२५॥
 'सेयमस्मानपास्येह' विवस्वन सम्बभूयति। तस्या भयोघात पादो न तु देहे निपातित ॥२६॥
 बाल्याद्वा यदि वा लोल्यामोहात्तत्क्षन्तुमहसि। शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनमा तपता वर।
 तव प्रसादाचरणो न पतेन्मम गोपते ॥२७॥

विवस्वानुवाच

असंशय पुत्र महवभविष्यस्य कारणम। येन स्वामाविशत क्रोधो धम्मज्ञ सत्यवादिनम ॥२८॥
 न शयमेतस्मिण्या तु कर्त्त मातृयचस्तथ। कृमयो मासमादाय यास्यन्त्यवननिमेव च ॥२९॥

अपन समान पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥ ब्राह्मणो यह (बालक) अपने पूर्वज मनु न समान था। इसलिए मनु ही इसका नाम पड़ा। यह सावण भी कहलाता है ॥१९॥ उस (सवर्णा) के दूसरे पुत्र को शनश्चर समझिये। निम्नवर्ण। सवर्णा सजा के पुत्रों की अपेक्षा अपन पुत्रों से अधिक स्नेह करता थी ॥२०॥ मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सह लिया पर यम नहीं सह सका ॥२१॥ उस सून-पुत्र यम न काय व कारण या वधपन के कारण या होनहार के बल से सवर्णा को पैर से ताड़न किया ॥२२॥ तब अत्यन्त दुःखी होकर धीरे से सवर्णा न उसकी गाप लिया—
 तदा यह पर गिर जाए ॥२३॥ ब्राह्मणो। शाप के क्रय से अत्यंत चंचल होकर छाया के वचनों से शक्ति होत हुए यम ने हाथ जोड़कर अपने पिता से निवेदन किया— ॥२४॥ मेरा शाप दूर कीजिये। माता को सब पुत्रों में समान भाव से बतना चाहिये। पर यह हमको छोड़कर छोटी पर अधिक स्नेह करती है। इसलिए बालमाव से या मूलता से मैंने उसपर पर तो उठाया पर देह पर गिराया नहीं ॥२५ २६॥ यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये। लोक-पति महातजस्विन माता न मुझ शाप दिया है आप कृपा कर जिससे कि मेरा पर न गिरे पाये ॥२७॥

सून ने कहा—पुत्र। निस्संदेह इसमें कोई महान कारण होगा जिससे कि तुम जैसे धर्मिन्मा अर सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तुम्हारी माता के वचन को मैं मिथ्या नहीं कर सकता। कृमि (छोटे कीड़े) तुम्हारे पर से मांस ले लेकर पृथ्वी पर जायेंगे ॥२९॥ इस तरह तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा। शाप का

१ क ग सावण्य। २ ख अस्तस्या स। ३ ख सताड्यामास। ४ ख सा। ५ क ग वयस्यज०। ६ ख स्वपितु ७ ग अति प्रो०। ८ क ख तदा। ९ ख अन्प्राप्य यवायास। १० ग अह यवायास। ११ ख वा मोहात्तद भवान् क्षन्तु०। १२ ख अहति। ख०।

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमयं तनयेषु वै। तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् त्रियते त्वया॥३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचक्षते विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत्॥३२॥
तां शप्नुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥३३॥
ततः सध्वं यथावत्तमाचक्षते विवस्वते। विदस्वानय तच्छ्रुत्वा मुदस्त्वष्टारमभ्यगात्॥३४॥
दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम्। निर्दम्बुकाम शोषेण सान्त्वयामास वै तवा॥३५॥

स्वष्टोवाच

तयातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाबले॥३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वा भाव्यां शुभचारिणीम्। इलाध्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥३७॥
अनुकूलं तु ते वेष यदि स्थान्यम' सम्मतम्। रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्वम॥३८॥
ततोऽभ्युपागमस्वष्टा मासंष्टस्य विवस्वतः। भूमिमारोप्य तत्तेजः सातयामास भी द्विजाः॥३९॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा सहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तवा॥४०॥
ददर्श योगमास्थाय स्वा' भाव्यां वडवा ततः। अपृष्या सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च॥४१॥
वडवावपुषा विप्राद्वरन्तीभक्तुतोभयाम्। सोऽद्वयरूपेण भगवास्ता मुखे समभावयत्॥४२॥

निवारण करके तुम भी सुरक्षित हो जाओगे' ॥३०॥ सूर्य ने छाया से कहा—'क्यों तुम समान पुत्रों में से एक पर अधिक स्नेह करती हो?' ॥३१॥ उसने उस रहस्य को गुप्त करती हुई सूर्य को उत्तर नहीं दिया। सूर्य ने भी योग से समाधि लगाकर सत्य का पता लगा लिया। ॥३२॥ मुनिश्रेष्ठो! भगवान् सूर्य ने उसको शाप देने की इच्छा रखते हुए भी शाप नहीं दिया, बल्कि उसका वेष पकड़ लिया ॥३३॥ तब छाया ने सूर्य से सब वृत्तान्त कह दिया। सूर्य यह सुनकर क्रोध से स्वष्टा के पास गया ॥३४॥ जलान की इच्छा रखने वाले क्रुपित सूर्य को देखकर स्वष्टा ने समयाचित मत्कार करते उसको शान्त किया ॥३५॥

स्वष्टा ने कहा—'आपने इस अत्यन्त तेजस्वी रूप को न सहती हुई संज्ञा छोड़ी बनकर वन की हरियाली में जाती है ॥३६॥ हे सूर्य! आज आप कल्याणमयी, प्रसन्न के योग्य और योगबल से युक्त अपनी पत्नी को देखोगे ॥३७॥ हे शत्रु-नाशन! हे देव! यदि मेरी सलाह को आप अनुकूल समझें तो आज मैं आपके रूप की सुन्दर बना दूँ ॥३८॥ ब्राह्मणों! तब सूर्य की स्वीकृति पाकर स्वष्टा ने भ्रामण-यन्त्र के द्वारा सूर्य के तज को छिन्न भिन्न अर्थात् सूक्ष्म कर दिया ॥३९॥ इससे (अर्थात् तज के सक्षिप्त हो जाने से) अत्यन्त मध्य रूप हो गया। तब वह सुन्दर से सुन्दर रूप पहने से अधिक मुशोभित होने लगा ॥४०॥ ब्राह्मणों! तत्पश्चात् सूर्य ने समाधि लगाकर अपनी पत्नी छोड़ी को देखा। वह तेज और नियमों में सब प्राणियों से बढकर थी ॥४१॥ छोड़ी का शरीर धारण कर निर्भय होकर वह चर रही थी। भगवान् सूर्य ने अब न स्वर्ण बनाकर मैयुन के लिए चेष्टा करती हुई अपनी पत्नी के मूँह में

सप्तमोऽध्यायः ।

सूर्यवश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

मनोर्व्वस्वतस्यासन पुत्रा वै नव तत्समा १। इक्ष्वाकुश्चैव नाभासो घृष्ट शर्यातिरेव च ॥१॥
नरिष्यन्तश्च १ पाण्डो १ वै प्राज्ञ रिष्टश्च सप्तम १ कल्पश्च १ पृथग्धश्च नवमे मुनिसत्तमा ॥२॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु १ मनुरिष्टि प्रजापति १ मित्रावरुणयोर्विप्रा पृथग्मेव महामति ॥३॥
अनुत्पन्नेषु बह्वेषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजा १ तस्या च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमा ॥४॥
मित्रावरुणयोरशो १ अनुराहुतिमावहत् १ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५॥
विध्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुति १ तामिलेयेव १ होवाच मनुर्वणधरस्तदा ॥६॥
अनुगच्छस्व मा भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह १ धर्ममुक्तमिदं वाक्य पुत्रकाम प्रजापतिम् ॥७॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरशो जातास्मि वदता वर १ तयो सकाश यास्यामि न मा धर्महता कुह ॥८॥
संबन्धत्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला १ गत्वान्तिक वरादोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय ७

सूर्यवशका वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—वैवस्वत मनु के अपन ही समान इक्ष्वाकु नाभास घृष्ट शर्याति नरिष्यन्त प्राज्ञ, रिष्ट कल्प अरूपध—ये न, पुत्र ये ॥१॥ २॥ विप्रवृद्ध १ इन पुत्रो की उत्पत्ति से पहले बुद्धिमान् प्रजापति मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रावरुण का यज्ञ किया ॥३॥ द्विजवय १ उस वर्तमान यज्ञ में मनु १ मित्रावरुण के अश से अग्नि में बहुत-सी आहुतियाँ दी ॥४॥ उस यज्ञ में दिव्य वस्त्राभरण से अलङ्कृत तथा दिव्यरूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥५॥ दण्डधारी मनु १ उसका नाम इला रखकर कहा—पुत्रि १ तुम मेरे साथ चलो १ तब पुत्रार्थी प्रजापति से इला १ यह धर्म-युक्त वाक्य कहा ॥६॥ ७॥

इला बोली—हृ श्रुत वक्ता १ मैं मित्रावरुण के अश से जनमी हूँ १ इसलिये उन्हीं के पास जाऊँगी १ आप मुझ धर्म से च्युत न कर ॥८॥ ऐसा कहकर वह सुन्दरी इला मित्रावरुण के पास चली गई और अञ्जलि वापकर कहने लगी ॥९॥

१ क स सत्तमा । २ स ० तस्तु ५० । ३ स ० ६० नाम रिष्टश्च सप्तमा । ४ ० । ५ ॥ पुरयश्च
५ व ० त्सु मुनिरि ० । ६ क ० मात्रोहोत् । ७ स ० वपत् । ८ व स ० ऐतीति हो ० ।

इलोवाच

अंशेऽस्मि' युवयोरजाता देवो किं करवाणि धाम्। मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्य मामिति ॥१०॥
तो तथावादिनां साध्वीमिलो धर्मंपरायणाम्। मित्रदच वरणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

मित्रावरणावूचतुः

अनेन तव धर्मेण प्रथयेण दमेन च। सत्येन जय सुभोगि प्रीतो ह्यो वरवर्णिनि ॥१२॥
आवयोस्त्व महाभागे ह्याति कथ्येति वास्यसि। मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भद्रिधर्मसि ॥१३॥
सुद्युम्न इति विहयातस्त्रिषु लोकेषु शोभने। जगत्प्रियो धर्मंशोलो मनोर्व्वंशविघट्टनः ॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५॥
धुधेनान्तरमासाद्य मयुनाधोपमन्त्रिता। सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जते पुरुरवाः ॥१६॥
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता। सुद्युम्नस्य तु दयादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्चदच भो द्विजाः। उत्कलस्योरकला विप्रा विनताश्चदच पश्चिमाः ॥१८॥
विक्रमूर्च्छा भूमिशाद्बुला गयस्य तु गया स्मृता। प्रविष्टे तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९॥
दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्। ब्रह्माकुण्डलैश्चदयादौ मध्यदेशेनवाप्तवान् ॥२०॥
कन्याभावात् सुद्युम्नो नैतद्वाज्यमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनात्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१॥

इला ने कहा—हे देवताओ! आप दोनों के अंश से मैं उत्पन्न हुई हूँ। विन्दु मनु न मुझे अपन साथ चलने के लिए कहा था ॥१०॥ अब आप मुझे आदेश दे, क्या करूँ? द्विजवर्ष! उस धर्म-परायण साध्वी इला के ऐसा कहने पर मित्रा-वरण ने उससे कहा ॥११॥

मित्रावरण बोले—हे सुन्दर कटि काली! हे महाभागे! तुम्हारे इस धर्म, विनय, शान्ति और सत्य से हम प्रसन्न हैं ॥१२॥ तुम हमारी पुत्री रूप में सद्यार में स्थात होगी। हे शोभने! मनु का वंश-वर्षक पुत्र तुम्हीं होगी ॥१३॥ जगत् प्रिय, धर्ममाता और मनु-वंश-वर्षक सुद्युम्न—इस नाम से तीनों लोक में विख्यात होगी। यह सुनकर वह पिता ने यहाँ से लौट पड़ी ॥१४॥ १५॥ तो अबसर पाकर चन्द्रमा ने पुत्र वृष ने उससे रति की प्रार्थना की। और वृष से इला ने पुत्ररत्ना नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ उसको उत्पन्न कर इला सुद्युम्न बन गई। विप्रवृद्ध सुद्युम्न ने परम धार्मिक तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्च ॥१७॥ मुनिप्रेष्ठो! उत्कल की उत्कला, विनताश्च की दिक्पश्चिमा और गय की गया नामक नगरी बनायी ॥१८॥ द्विजवृद्ध! जब मनुने शत्रुमुदन सूर्य में प्रवेश किया, तब उसके पुत्रों न इस पृथिवी को फिर दस भागों में बाँट दिया ॥१९॥ ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्माकु को मध्यदेश मिला ॥२०॥ कन्याभाव होने के कारण सुद्युम्न को यह राज्य नहीं मिला। ब्राह्मणवर! वसिष्ठ के वचन से धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा महात्मा पुरुषों के समान होने लगी ॥२१॥

१ ख ० स्मि युव ० २ क मनुवश ० ३ क ० परासिता ४ ख ० धाद्राज्ञा तस्माज्जसे ५ क ० विजिता ० ६ क ० विजिता ० ७ क ० धातदमूक्षत्र ० ग ० धा तु कुक्षेत्रम ० ८ ख ० कुण्डलैश्चदया ० ९ ग ० तदगुण म ० १० ख ० नान्चाज्जती ०

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुत्रवरसे प्रादाद्वाज्यं प्राप्य महायशः॥२२॥
 मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। धृतवांस्तामिलेयेवं सुद्युम्नेति च विवृतः॥२३॥
 नरिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः। अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४॥
 घृष्टस्य धार्ष्टिकं क्षत्रं रणदुप्तं बभूव ह। करुणस्य च फाल्गवाः क्षत्रिया युद्धहुर्मदाः॥२५॥
 नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः। प्राञ्चोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
 नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः। क्षयतिमियुनं त्वासीदानर्तो नाम विवृतः॥२७॥
 पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी द्यवन्तस्य ह। आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महावृत्तिः॥२८॥
 आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली। रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः॥२९॥
 ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्वाज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥
 मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्यो बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवापि स्वां पुरीं यादवैर्वृताम्॥३१॥
 कृतां द्वारवतीं नाम धृष्टद्वारी मनोरमां। भोजवृष्णयन्धर्कं पुतां वसुदेवपुरोगमं॥३२॥
 तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा यथातथ्यं द्विजोत्तमाः। कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रैवतीम्॥३३॥
 दृष्ट्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः॥ रमे रामोऽपि धर्म्मात्मा रैवत्या सहितः सुखी॥३४॥

महान् यशस्वी सुद्युम्न ने राज्य प्राप्त कर पुत्ररत्ना को दे दिया॥२२॥ मुनिवर । स्त्री-पुरुष उभय लक्षणों से युक्त सुद्युम्न को देखकर लोग उसे इला और सुद्युम्न दोनों नाम से पुकारने लगे॥२३॥ विप्रवृद्ध । नरिष्यन्त के शक जाति वाले पुत्र हुए। नामाग के राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष पुत्र हुआ॥२४॥ घृष्ट के युद्ध-गर्वी धार्ष्टिक नामक क्षत्रिय-पुत्र हुआ। करुण के युद्धाभिमानी फाल्ग नामक क्षत्रिय-पुत्र थे॥२५॥ नामाग और घृष्ट के क्षत्रिय-पुत्र वैश्य बन गये। प्राञ्च के एक पुत्र हुआ जो प्रजापति कहलाया॥२६॥ नरिष्यन्त का पुत्र यम दण्डकारी राजा हुआ। क्षयति के आनर्त्त नामक पुत्र और सुकन्या नामक पुत्री हुई। सुकन्या जीवन मुनि की पत्नी बनी। आनर्त्त का पुत्र महातेजस्वी रैव हुआ॥२७-२८॥ आनर्त्त देव ने इसका राज्य था और कुशस्थली (द्वारका) राजधानी थी। रैव का धर्म्मात्मा पुत्र रैवत और ककुद्मी दोनों नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२९॥ वह ज्येष्ठ पुत्र था और उसी को द्वारका का राज्य मिला। गान्धर्व्व वेद की सुनकर वह अपनी कन्या सहित ब्रह्मा के पास चला गया॥३०॥ वही वह देवताओं की दी भद्रों के बराबर बहुत युगों तक उनके पास रह गया। फिर यादवों से व्याप्त अपनी नगरी द्वारका पुरी नामक लौट आया॥३१॥ नगरी बहुत द्वारों वाली और मनोहर थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशवाले, जिनमें वसुदेव प्रधान थे, उसकी रक्षा करते थे॥३२॥ विप्रवर । उसी नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम ने यथायं तत्त्व की जानकारी रैवत रैवती नामक अपनी सुन्दरी कन्या बलदेव की सपरिपत कर तपस्या करने के लिए मुनेश पर्वत पर चला गया। धर्म्मात्मा बलराम भी रैवती के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे॥३३-३४॥

१ छ ०त्येव मु०। २ ग विवृति । ३ ख. ०वस्तुविप्रतमा । घृ०। ४ ग रैवो। ५ ख ग. पुत्रगत०। ६ छ ०री पादर्व०। ७ छ ०ता द्वारवती नाम्ना व०। ८ छ ततस्तद्वैव०। ९ क यापानध्य । १० ग. सभित ।

मुनय उचुः

वथं बहुयुगे काले रमतीते महामते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रवतं च ककुद्मिनम् ॥३५॥
मेरं गतस्य वा तस्य शर्यातिः सन्ततिः कथम्। स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मनिसत्तमाः। ऋतुजकं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानयाः।
ककुद्मिनः स्वर्लोकं तु रेवतस्य गतस्य ह ॥३७॥
हुता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुक्षस्थली। तस्य भ्रातृशतं स्वासीर्द्धाम्मवस्य महारमनः ॥३८॥
तद्बध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्रापामदध्युतः। विद्वतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
अवधायस्तु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः। तेषां ह्येते मुनिधेष्ठाः शर्याता इति विभृताः ॥४०॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना विभु सर्व्यासु विभृताः। सर्व्यशः सर्व्यगहनं प्रदिष्टारसे महोजसः ॥४१॥
नाभारिष्टपुत्रो द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणता गतौ। वरुणस्य तु कारपाः क्षत्रिया युधुमुर्मन्वाः ॥४२॥
पुष्यघ्नो हिंसयित्वा तु गुरोरां द्विजसत्तमाः। क्षापाच्छ्रद्धात्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः ॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेष्वं मुनिसत्तमाः। क्षुत्तस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥
तस्य पुत्रशतं स्वासीविक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्। तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षिरवादयोपतान् ॥४५॥

मुनिपौ ने पूछ—महाप्रज! बहुत युग बीत जाने पर रेवती और ककुषी रेवत को बूढ़ता क्यों नहीं प्राप्त हुई? ॥३५॥ या मेरु पर्वत पर उनके चले जाने पर शर्याति राजा की सन्तान आज भी पृथ्वी पर कैसे अवस्थित है? यह बात हम लोग तत्त्वत मुनना चाहते हैं ॥३६॥

लोमहर्षण बोले—निष्पाप मुनिवृन्द! बुढ़ापा, नूख, प्यास, मृत्यु और ऋतु-परिवर्तन आदि ब्रह्मलोक में नहीं हुआ करते हैं। ककुषी रेवत के देव-लोक चले जागे पर राक्षसों ने द्वारका पर अधिकार कर लिया ॥३७॥ उस घामिक राजा के सौ भाई थे, जो राक्षसों से पीड़ित होकर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥३८॥ ब्राह्मणधेष्ठो! उन भागे हुए भाइयों का वध बहुत बढ़ा था। उसी वध के लोग मर दिशाओं में शर्याति नाम से विख्यात नवगुण संपन्न क्षत्रिय थे। वे महान् तजस्वी धन और से सब बलों में प्रसिद्ध हुए ॥३९-४१॥ नामागारिष्ट के वैश्य जाति वाले दो पुत्र ब्रह्मण धन गये। वरुण के वैश्य नाम से प्रसिद्ध युद्धामिनी क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥४२॥ विप्रवर! पुष्य गुरु की शाय को मारने के कारण क्षाप से शूद्र हो गया। मुनिधेष्ठो! वे नौ पुत्र वैवस्वत मनु के कहलाये ॥४३॥ ब्राह्मणो! मनु की छीक से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इक्ष्वाकु के बहुत-सी दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे ज्येष्ठ था। वह पेट की गड़बड़ी के कारण युद्ध करने में अयोग्य रहा ॥४५॥ परम घमश

१ क ०ति तत्र लो०। २ स ०दिमनवच स्व०। ३ क ग हता। ४ स ०त चाऽऽसी०। ५ स. ०दध्युत।
वि०। ६ क ०मा। एव ते तु मु०। ७ क ०पामेते। ८ क ०ष्टाश्च म०। ९ ग ०क्षिण'। १०। १० क. ०कुक्षि
धेष्ठ०। ११ क विकुक्षि रत्नमिति। स विक्षणेण समन्वित। प्रा०।

प्राप्तः परमधम्मन्तः। सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः॥४६॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशदशष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि॥४७॥
वशातिप्रमुखादचान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि वा अष्टकायामयादिशत्॥४८॥
मांसमानय आढ्यायं मृगान् हत्वा महाबलः। आढ्यकर्मणि चोद्दिष्टो अकृते आढ्यकर्मणि॥४९॥
भक्षयित्वा शशं विप्राः शशादो मृगयां गतः। इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः॥५०॥
इक्ष्वाको संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्। शशादस्य तु दायादः वकुत्स्यो नाम वीर्यवान्॥५१॥
अनेनास्तु। ककुत्स्यस्य पृथुश्चानेन स स्मृतः। विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादाद्रस्तवजायत॥५२॥
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु आवस्तस्तत्सुतो द्विजाः। उजे आवस्तको राजा आवस्तो येन निर्मिता॥५३॥
आवस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महोपतिः। कुबलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः॥५४॥
यः स धुन्धुदधाप्राजा धुन्धुमारस्वमागतः॥५५॥

मृगय उचुः

धुन्धोर्ध्वं महाप्राज्ञ ओतुमिच्छाम तत्कृतः। दृढधातुबलाश्वोऽसौ धुन्धुमारस्वमागतः॥५६॥

लोमहर्षण उवाच

कुबलाश्वस्य पुत्राणां क्षतमुत्तमधन्विनाम्। सत्त्वं विद्यासु निष्णाता बलवन्तो वुरासवाः॥५७॥

विकुक्षि अयोध्या का शासक था। उसके शकुनि आदिपौत्र सा पुत्र हुए॥४६॥ जिनमे से चालीस उत्तरापथ के और
अठारह दक्षिणापथ के महाबली रक्षक थे॥४७॥ ब्राह्मणघेड़ो। वशाति आदि दूसरे भी रक्षक थे। एक समय
अष्टका (पितर और देवताओं के कर्म के दिन) में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से कहा—'महाबली! आढ्य के लिए मृगा
को मारकर मांस ले आजा'॥४८॥ ब्राह्मणों! आढ्यकर्म में निपुण विकुक्षि आढ्यकर्म के सम्पन्न हुए बिना
ही खरगोश को खाकर शिकार खेलने के लिए चला गया। तब वसिष्ठ के आदेश से राजा इक्ष्वाकु ने (खरगोश खान
थाले) शशाद विकुक्षि का परित्याग कर दिया॥४९॥ इक्ष्वाकु के बाद शशाद राजा हुआ। शशाद का पुत्र
अतिशक्तिशाली वकुत्स्य हुआ।॥५१॥ वकुत्स्य से अनेनस् और अनेनस् से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु से विष्टराश्व
और उममे आर्द्र हुए।॥५२॥ विप्रबृन्द! आर्द्र का पुत्र युवनाश्व और उसका पुत्र आश्व हुआ। आश्व के पुत्र
आवस्तक ने आवस्त नाम की नगरी बनायी।॥५३॥ आवस्तक का पुत्र राजा बृहदश्व हुआ। उमका पुत्र परम
धर्मात्मा राजा कुबलाश्व हुआ, जिसका नाम धुन्धु नामक दैत्य का मारने से धुन्धुमार पड़ गया॥५४-५५॥

मुनियों ने कहा—हे महाविद्वन्! हम धुन्धु के मारने का आख्यान तत्त्वपूर्ण सुनना चाहते हैं, जिसके
मारने से कुबलाश्व धुन्धुमार बहलाया॥५६॥

लोमहर्षण बोले—कुबलाश्व के उत्तम अनुधर, सब विद्या-विशारद, बलवान्, सुन्दर, धर्मात्मा, यज्ञ-वर्ता और

१ न० भंज पृथिव्याधि०। २ ख० शिः। इन्द्र०। ३ ख० अनस क०। ४ ख० न्तः। दायाश्वस्तु प०।
५ क० विष्टारास प०। ६ क०. ख० यस्तु धु०। ७ क०. ०ध नय ब्रह्मज्यातु०।

बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिवक्षिणाः। कुबलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वोः प्रयोजयत् ॥५८॥
पुत्रसंक्रामितधीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रपिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तच्च कर्तुं त्वमर्हसि। निरुद्भिन्मस्तपश्चतुं नहि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वं समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥६१॥
देवतानामवध्यदश्च महाकायो महाबल। अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तहितो महान् ॥६२॥
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुग्धुर्नाम महासुरः। शेते लोकरविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३॥
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति। यदा तदा महीं तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्गूयते महत्। आविश्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५॥
सविस्फुलिङ्ग साज्जारं सधूमयसिदारुणम्। तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया। लोका स्वस्या भवन्पथ तस्मिन् विनिहते स्वया ॥६७॥
त्वं हि तस्य वधार्थकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च बरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगे नृप ॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाख्यापयिष्यसि ॥६९॥
न हि धुग्धुर्महातेजास्तेजसात्पेन शक्यते। निर्बन्धु पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०॥

बहु-वक्षिणा-वाता सी पुत्र हुए ॥५७३॥ पिता बृहदश्व ने कुबलाश्व को राज्य प्रदान किया। इस प्रकार राज्य-जन्मी पुत्र के अधीन कर राजा ने वन में प्रवेश किया। पर उत्तङ्क नामक ब्रह्मर्षि ने उसको जाने से रोक दिया ॥५८-५९॥

उत्तङ्क ने कहा—राजन्। तुम्हें रक्षा करनी चाहिये तुम उसके योग्य हो, मैं निश्चिन्ततापूर्वक तपस्या नहीं कर पाता ॥६०॥ क्योंकि मेरे आश्रम के समीप मरुधन्वा नामक देश में बालू से भरा हुआ समुद्र उद्दालक नाम से स्थात है ॥६१॥ वहाँ पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर रेत से आच्छादित, देवताओं से भी अवध्य, महाकाय और महाबली गधु नामक राक्षस का पुत्र घुघु नामक महाराक्षस कठिन तपस्या करके लोक विनाश के लिए शयन करता है ॥६२-६३॥ पृथिवी-पाल। बर्षों के अन्त में जब वह साँस छाड़ता है तब वहाँ भू-कम्प हो जाता है ॥६४॥ उसकी साँस में घाम से छड़कर घूल सूर्य के मार्ग को आच्छादित कर देती है। सात दिन तक पृथ्वी काँपती रहती है ॥६५॥ घूर्ण से युक्त अग्नि से अमानक चित्तगारियाँ निकलने लगती हैं। तात। इसी कारण मैं अपने आश्रम में नहीं ठहर पाता हूँ ॥६६॥ जन-वत्प्राण की कामना से तुम उस महाकाय राक्षस को मारो। तुम्हारे द्वारा उक्ता वचन हो जाने पर जनता स्वस्थ, सन्तुष्ट हो जायगी ॥६७॥ राजन्। उसका वध करने में तुम्ही समर्थ हो। पूर्व युग में विष्णु ने मुझे वरदान दिया था कि जो उस भयंकर महाराक्षस को मारेगा, उसने जेब की वरदान से तुम बड़ाशक्ति ॥६८-६९॥ पृथिवीपते। महातेजस्वी घुघु अल्प तेज से सैकड़ों युगों तक वध नहीं किया जा सकता ॥७०॥ उसका महापराक्रम

१ क म सुग। २ क ख ऽवोऽम्भवेचय०। ३ ग प्रयात। ४ क ख चर्त्तमिदार्ह०। ५ ख ऽमुद्रवा०।

६ ख उज्जानक०। ७ ख ऽत। दैव०। ८ ख अन्तर्भूमि०। ९ ख ऽसस्तु म०। १० ख ऽर। मस्तु को०।

११ क लोकाश्च मुक्षयेयन्ते त०।

वीर्यञ्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् । स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्व स तु प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥७१॥

बृहदश्व उवाच

भगवन्त्यस्तशस्त्रोऽहमप्य तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥७२॥
स ॥ इयादिश्य तनय राजर्षिर्धुन्धुमारणे । जगाम पर्वतार्थं नृपति सशितप्रत ॥७३॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणा शतेन सह भो द्विजा । प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्योस्तस्य निबर्हणे ॥७४॥
समाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभु । उत्तङ्कस्य नियोगादं लोकानां हितकाम्यया ॥७५॥
तस्मिन् प्रयाते दुर्दुष्ये दिवि शब्दो महानभूत् । एष श्रीमानधुन्योऽस्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
दिव्यैरगंधैश्च माल्यैश्च त देवा समवाकिरन् । देवदुग्धुभयदत्तं प्रणेदुर्द्विजसत्तमा ॥७७॥
स गत्वा जयता श्रेष्ठस्तनयं सह वीर्यवान् । समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमध्ययम् ॥७८॥
तस्य पुत्रं जनिद्विद्वश्च बालुकान्तरहितस्तदा । धुधुरासावितो विप्रा विशमावृत्य पश्चिमान् ॥७९॥
मुखजेनाग्निना क्रोधात्लोकानुद्घसंयन्निव । वारि सुव्रात येन महोदधिरिवोद्ये ॥८०॥
सोमस्य मुनिशावर्बूला वरोन्मिकलिलो महान् । तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरननु रक्षसा ॥८१॥

देवतात्रा से मा अजय है। महात्मा उत्तङ्क क एसा कहन पर राजर्षि न अपन पुत्र कुवलाश्व को धुन्धुनध क निमित्त उस मुनि को दे दिया ॥७१॥

बृहदश्व ने कहा—भगवन ! मैं तता सत्त्व का ध्याय कर दिया है। किन्तु मरा यह पुत्र निसन्नेह धुधु को मारता ॥७२॥ इसक बाद अपन पुत्र को धुधुनध का आदेश देकर वह राजर्षि तपस्या करने क लिए पर्वत पर चला गया ॥७३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो ! स पुत्रा को संग ले कुवलाश्व ने उत्तङ्क के साथ धुधु का मारने के लिए प्रस्थान किया तो लोकहित के लिए उत्तङ्क की आज्ञा से भगवान् विष्णु उस कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए ॥७४॥ ७५॥ राजा के प्रस्थान करते ही आवागवाणा का महानाद हुआ कि यह राजा अवध्य है अर धुधु का मारेगा ॥७६॥ देवतात्रा न उसक ऊपर दिव्य मुग्धित पुण्या की दृष्टि की। दुग्धुमा वजन लगा ॥७७॥ जय गीला में धष्ट यह पराक्रमी राजा अपन पुत्रा के साथ जाकर बालू से परिपूर्ण समुद्र को नुनवान लगा ॥७८॥ ब्राह्मणो ! राजा-पुत्रा के सामन के समय बालू के भीतर छिपा धुधु पश्चिम दिशा को दक कर खड़ा हो गया ॥७९॥ अर त्रोज से विषय का सहार करन के लिए मुख से अग्नि निकलत हुए चन्द्रोदय में अत्यन्त तरंगित महासागर की तरह वेग से जल बढ़ान लगा ॥८०॥ मुनिवन्द ! राक्षस न तान को छोड़ कर सब पुत्रा को जला दिया ॥८१॥

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम् । आससाद महतेजा धुम्धुं धुम्धुविनाशनः ॥८२॥
 तस्य वारिमयं वेगमापीय ॥ नराधिपः । योगी 'योगेन वल्लिञ्च शमयामास वारिणा ॥८३॥
 निहत्य' तं महाशायं बल्लेनोदकराक्षसम् । उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्म नराधिपः ॥८४॥
 उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने । ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५॥
 धर्म्मं रतिञ्च सततं स्वर्गं वासं तयाक्षयम् । पुत्राणां चाक्षयांल्लोकान् स्वर्गं ये रक्षसा हताः ॥८६॥
 तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टाः । द्वादशवो ज्येष्ठ उच्यते । चन्द्राश्वकपिलाश्वौ च कनोयांती कुमारकी ॥८७॥
 धौन्धुमारवृंदाश्वस्य हर्म्यश्वश्चात्मजः स्मृतः । हर्म्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः 'तदा ॥८८॥
 संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः । अक्रुशाश्वकृशाश्वौ च संहताश्वसुतो द्विजाः ॥८९॥
 तस्य हंसवती चत्या सतां मता द्युपद्रवी । विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रशवास्याः प्रसेनजित् ॥९०॥
 लेभे प्रसेनजिद्भाय्यी गौरी नाम पतिप्रताम् । अभिजास्ता तु सा भर्त्रा नदी च बाह्वश्वभवत् ॥९१॥
 तस्य पुत्रो महानासीधुवनाश्वो नराधिपः । मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥९२॥
 तस्य चैत्ररथो भार्म्यी शशविन्दोः सुताभवत् । साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥९३॥
 पतिव्रता च अयेष्टा च ग्रातृणामयुतस्य वै । तस्यापुत्रपादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ॥९४॥
 पुरकुरसं च धर्म्मज्ञं मुचुक्षुर्धं च पायिवम् । पुरकुत्ससुतस्त्रबासीरक्षसदस्युर्महीपतिः ॥९५॥

तब बालिमान् एव महानेश्वरी यह धुम्धुनाम राजा उस महाबली धुम्धु के पास पहुँचा ॥८२॥ उस योगी राजा ने
 बाणविद्या के बल से उससे जन्ममय वेग को पीकर जन से अग्नि को घाल्न किया ॥८३॥ उस महाशाय जन्म-राक्षस
 को बल से मारकर इन रूप राजा ने उसका कोटिनाया ॥८४॥ उसका ने उस राजपति का यह बरदान दिया—
 'अश्व धन मुझसे पाय होगा, धनुओं से पराजय नहीं होगा, धर्म से सदा अनुराग रहेगा, अश्व रूप से स्वर्ग से
 प्राप्त होगा और त्रिषु लोको में राजसर्व से मार, उन्हें स्वर्ग से अश्व लोभ मिले' ॥८५-८६॥ उस राजा के भवविष्ट
 तीन पुत्रों में द्वादश ज्येष्ठ था । कुमार चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे ॥८७॥ धुम्धुमारपुत्र द्वादश के हर्म्यश्व
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । हर्म्यश्व का गदा क्षत्रिय-धर्म से तत्पर निकुम्भ नामक पुत्र हुआ ॥८८॥ निकुम्भ के पुत्र-
 कुमार मण्डाश्व पुत्र हुआ । विषुवत् । मण्डाश्व के दो पुत्र हुए—अक्रुशाश्व और कृशाश्व ॥८९॥ मण्डाश्व के
 धौन्धुमाश्व और कनोयाश्व नाम से विख्यात हेमवती मानव चत्या हुई । इनसे प्रसेनजित्
 नामक पुत्र हुआ ॥९०॥ प्रसेनजित् की पतिव्रता चत्या का नाम गौरी था । चत्या के साथ से बही गौरी बहूना
 नामक नदी बन ॥९१॥ प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व मण्डाश्व राजा हुआ । युवनाश्व के त्रिलोक विजयी मांघाता
 पुत्र हुआ ॥९२॥ चैत्ररथ की चत्या चैत्ररथी उसकी भार्या हुई । वह अनुक्रम मुन्दरी, विन्दुमती नाम से प्रसन्न,
 पतिव्रता और दस हजार मनुष्य से सख्त बही थी ॥९३॥ अयेष्टा । मांघाता ने उससे दो पुत्र उत्पन्न किए—
 पुरकुरस और राजा मुचुक्षुर्ध । पुरकुरस का पुत्र पुरकुरसु नामक राजा था ॥९४-९५॥ उनसे नदी से उत्पन्न

नम्मंदायामधोत्पन्नः 'सम्भूतस्तस्य चात्मजः। सम्भूतस्य तु वामादस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥
 राजस्त्रिधन्वनस्तवासीद्विद्वान्त्रय्यारुणः' प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभूमहाबलः॥९७॥
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः। येन भार्या कृतोद्वाहा हता' चैव परस्य ह॥९८॥
 बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसोन्मादपलेन च। जहार कन्यां कामार्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
 अधर्मशङ्कुना तेन तं त्रय्यारुणोऽप्यजत्। अपयस्वसि बहुशो यदन् कोधसमन्वितः॥१००॥
 सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मूढः। पिता च तमयोवाच श्वपार्कः सह यत्तम॥१०१॥
 माहं पुत्रेण पुत्रार्थं त्वया च कुलपासन। इत्युक्तः स निराकाममराद्वचनात् पितुः॥१०२॥
 न च तं धारयामास वसिष्ठो भगवान्पुनः। स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
 पिता त्यक्तोऽवसत्परीरः पिताप्यस्य वनं ययौ। ततस्तस्मिंस्तु विषये नावयत् पाकवासिनः॥१०४॥
 समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्येण वै तदा। दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
 संन्यस्य सागराग्रे तु चकार विपुलं तपः। तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥
 शेषस्य भरणार्थाय ध्यक्रोणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले बद्ध्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
 महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः। सत्यव्रतो महाबलभरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥
 विश्वामित्रस्य दुष्टदयमनुकम्पार्थमेव च। सोऽभयद्वगालवो नाम गले बन्धान्महातपाः।

समूत नामक पुत्र हुआ। समूत का पुत्र विघ्नवा शत्रु का मर्दन करनेवाला था॥९६॥ राजा विघ्नवा के त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसने सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ॥९७॥ वह बड़ा दुष्टबुद्धि था, लोगों के विवाहों में विघ्न करता था, दूसरे की विवाहिता पत्नी का अपहरण कर लेता था॥९८॥ उसने बचपन, काम, मोह, साहस तथा चबलता के कारण काम से प्रेरित हो किसी नगरवासी की कन्या चुरा ली।॥९९॥ उसके अधर्माचरण के कारण त्रय्यारुण ने क्रोध से बहुत गालियाँ बकते हुए उसका परिखाप कर दिया। परित्यक्त पुत्र पिता से बारम्बार कहने लगा—'मैं कहाँ जाऊँगा?' तब पिता ने कहा—'बाबालो के साथ रह। रे कुलागार! आज तुम जैसे पुत्र से मुझें कोई प्रयोजन नहीं है।'॥१००-१०१॥ इस प्रकार पिता के बचन से वह नगर से निकल गया॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ने भी उसे जाने से नहीं रोका। विप्रगण! वह वीर सत्यव्रत पिता से त्यक्त होकर बाडाल के घर रहने लगा। उसका पिता भी वन चला गया॥१०३॥ बाह्याणो! तब इन्द्र ने बाण्ड धर्यो तब उसने राज्य में दृष्टि नहीं की। महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसके राज्य में छोड़कर समुद्र-तट पर धोर तपस्या करने लगे॥१०४-१०५॥ उनकी स्त्री अपने मसले धुव के गले को बाँध कर शेष दुष्टत्व के पालन के लिए उसे सी गायों के मूत्र में डेबने को चली॥१०६॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार बेधे हुए महर्षिपुत्र को देखकर धर्मात्मा सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया और विश्वामित्र की प्रसन्नता तथा अनुकम्पा के निमित्त उसका भरण-पोषण भी किया॥१०७-

महर्षिः कौशिको धीमन्स्तेन॥ वीरेण मोक्षितः ।

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सूर्यवंशनिर्गुण नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

सत्यव्रतस्तु भवत्या च कृपया च प्रतिपत्तया । विद्वामित्रकसत्र तु बभारु दिनये स्थितः ॥१॥
हत्वा मुगान् वराहान् च महिषान् च धनञ्चरान् । विद्वामित्राश्रमाभ्यासे मासं युक्ते बबन्ध च ॥२॥
उषानुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकाम् । पितृनिर्योगादवसत्तस्मिन् धनगते नृपे ॥३॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तयैवात पुरं मुनिः । याग्योपाध्यायसयोगाद्बसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥
सत्यव्रतस्तु धात्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् । वसिष्ठोऽभ्यधिकं मयुः पारयामास निरयदाः ॥५॥
पित्रा हि त तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम् । निवारयामास मुनिबहुना कारणेन च ॥६॥

१०८॥ गले में बधन पट्ट के कारण यह मुनि पुत्र गालव नाम से विख्यात महातपस्वी हुआ । विद्वान् महर्षि कौशिक
वीर धर्यजन के द्वारा जन्मक विषे गये ॥१०९॥

श्री ब्रह्म-महापुराण में सूर्यवंश निरूपण नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

सूर्यवंश का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—एकव्रत जसि कृपा, विदय तथा प्रतिज्ञा से विद्वामित्र की पत्नी का पालन करने
लगा ॥१॥ यह मुग मूँकर भैंस और जलो जानवरों को मारकर मांस को विद्वामित्र के आश्रम में मुग पर बांध देता
था ॥२॥ राजा के बन् बने जाने के बाद यह उषानुव्रत (अथ कोई नहीं जान सब एसा नियम) सर्वकार पर बाध्य
होती की दीक्षा लहर निगा की आशा के अनुसार रहने लगा ॥३॥ यज्ञमान-पुरोहित के सम्मुख से बसिष्ठ जी अपाय्यापुरी,
राज्य तथा अन्तपुर (उनिशष्ट) की देण मन्त्र करने लग ॥४॥ एकव्रत बबान तथा मासी के कारण बसिष्ठ जी
के प्रति अप्रियापि नय कारण करते लग ॥५॥ जब निगा में प्रिय पुत्र का राज्य से निवृत्त किया या तब
बसिष्ठ जी ने अनेक कारणों से उद्यत निवारण नहीं किया था ॥६॥ विवाह-मन्त्र की विष्टा (अर्थात् विवाह का

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे । न च सत्यव्रतस्तस्माद्भुतवान् सप्तमे पदे ॥७॥
 जानन् धर्मं वसिष्ठस्तु न भावतीति भो द्विजा । सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसा करोत् ॥८॥
 गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठं कृतधांस्तथा । न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥
 तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासौन्महात्मनः । तेन द्वादश वर्षाणि नावर्पत् पाकशासनम् ॥१०॥
 तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहं भुवि । कुलस्य निष्कृतिविप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
 न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् । अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२॥
 स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्वहली । अदिक्षमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३॥
 सर्वकामबुद्ध्या दोग्ध्रीं च ददशं नृपात्मजः । तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च धमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४॥
 देशधर्मगतो राजा जघान् भुनिसत्तमा । तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चारमजान् ॥१५॥
 भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चक्षुषे ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम् । यदि ते द्वाविमौ शङ्कु न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७॥
 पितुश्चापरितोषेण शूद्रद्वौ त्रीण्यधेन च । अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८॥
 एवं त्रीण्यस्य शङ्कुनि तानि दृष्ट्वा महातपा । त्रिशङ्कुरितिशोबाच्च त्रिशङ्कुस्तेन सस्मृतः ॥१९॥
 विश्वामित्रस्य चारामागतेन भरणं कृतम् । तेन तस्मै चरं प्रावान्मुनिः प्रीतिस्त्रिशङ्कुवे ॥२०॥

पर्यवसान) सप्तपदी मे जाकर होती है। इसलिए सत्यव्रत ने सप्तपदी मे कन्या का अपहरण नहीं किया ॥७॥
 विप्रवृन्द । 'वसिष्ठ धर्म को जानते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं' ऐसा सोचकर सत्यव्रत ने वसिष्ठ के प्रति मन मे क्रोध किया ॥८॥ भगवान् वसिष्ठ ने तो उसका हित समझ करके ऐसा किया था। पर सत्यव्रत ने उनका आशय नहीं समझा ॥९॥ उसके ऊपर महात्मा पिता का पूर्ण असंतोष था। इसलिए बारह वर्षों तक इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥१०॥ द्विजगण । 'बारह वर्ष की कठिन दीक्षा से इसके कुल का परिशोध (अर्थात् प्रायश्चित्त) हो जायगा। तब इसके पुत्र का अभिषेक मैं कर दूँगा।' ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ ने उसे नहीं रोका था, जब पिता ने उसका परित्याग कर दिया था ॥११॥१२॥ वह बारह वर्ष तक दीक्षा धारण किए रहा। (एकदिन) मांस मिलने पर महात्मा वसिष्ठ की कामधेनु गाय को राजपुत्र (सत्यव्रत) ने देखा ॥१३॥ मुनिभेष्टो । नृसे राजा ने क्रोध, मोह, और भ्रम के कारण देशधर्म के अनुसार उस गाय को मार डाला ॥१४॥ उसके मांस को स्वयं भी खाया और विश्वामित्र ने पुत्रों को भी खिलाया। यह सुनकर वसिष्ठ जी आग बबूला हो गये ॥१५-१६॥

वसिष्ठ ने कहा—'दुष्ट । मैं तेरे शङ्कु (पाप या अपराध) को दूर कर देता, यदि तूने ये दो शङ्कु नहीं चिपे होते ॥१७॥ पिता का असंतोष, गुरु की गाय का वध और असंस्कृत मांस का भक्षण—ये तीन प्रतिकूल कार्य तूने चिपे हैं ॥१८॥ इस प्रकार उसने तीन शङ्कुओं को देखकर मुनि ने उसे 'त्रिशङ्कु' कहा। इसी से उसका नाम त्रिशङ्कु पड़ा ॥१९॥ विश्वामित्र ने स्त्री-बच्चों का पालन उसने किया था। इससे मुनि (विश्वामित्र) ने प्रसन्न होकर त्रिशङ्कु को

१ श ०त । हत्वा भेनु ततो रा० । २ ख जयाम । ३ ख तु । ४ ख शङ्कुन सशयः । य० । ५ क ख गुरो-
 दोग्ध्री० । ६ ख ख ०अस्तु दा० । ७ ख ख ०यामागती भरणे इते । ततस्तस्मै ।

छन्दमानो वरेणाय वर वध्रे नृपात्मज । सशरीरो ब्रजे स्वर्गमित्येव याचितो वर ॥२१॥
 अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके । पित्र्ये राज्येऽभिषिष्याथ याजयामास पार्थिवम् ॥२२॥
 मिपता देयताना च वसिष्ठस्य च कौशिक । दिवमारोपयामास सशरीरं महातपा ॥२३॥
 तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कंकयवन्जा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥
 ॥ यं राजा हरिश्चन्द्रस्यैशकुव इति स्मृत । आहर्ता राजसूयस्य सम्पादिति ह विभ्रुत ॥२५॥
 हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६॥
 विजयश्च 'मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह । जेता स सत्त्वपूयिषीं विजयरतेन स स्मृत ॥२७॥
 'दक्षस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविद । दक्षस्य पुत्रो युवादबाहुस्तु जज्ञियान् ॥२८॥
 'हंह्यास्तालद्रघादय निरस्यति स्म स नृपम् । तत्पत्नी गभमादाय औष्वस्याश्रममाविशत् ॥२९॥
 'नासयो धार्मिकश्चैव स हि धर्मपुण्ड्रभवत् । सगरस्तु सुतो आहोयज्ञे सह गरेण वै ॥३०॥
 औष्वस्याश्रममासाद्य भागवेणाभिरक्षित । आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृप ॥३१॥
 जिगाप पूयिषीं हत्यां तालजद्रघान सहह्यान । शकानां पङ्क्तवाना च धर्मं निरसदधुत ॥
 क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठा पारदानां च धम्मवित् ॥३२॥

मुनय ऊचुः

अथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत । क्रिमर्यं च नवादीनां क्षत्रियाणां महोजसान् ॥३३॥

धर्मान्नुलोचितान राजा क्रुद्धो निरसदच्युत । एतन्न सत्त्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४॥

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिन पूर्वं हृत राज्यमभूत किल । हैहयस्तालजघर्षश्च शकं सार्द्धं द्विजोत्तमा ॥३५॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पल्लवास्तथा । एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्यं पराक्रमम ॥३६॥
हूतराज्यस्तदा राजा ॥ धे द्याहृवा ययो । पत्न्या चानुगतो दुखी तत्र प्राणानवासृजत ॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽज्यगात । सपत्न्या च गरस्तस्य दत्त पूर्वं विलापा ॥३८॥
सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा यने तामम्परोहृत । और्वंस्तां भार्गवो विप्रा कारण्यात समवारयत ॥३९॥
तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाध्युत । ध्यजायत महाबाहु सगरो नाम पार्थिव ॥४०॥
और्वंस्तु जातकर्मर्षिस्तस्य कृत्वा महात्मन । लघ्याप्य वेवशास्त्राणि ततोऽन्य प्रत्यपादयत ॥४१॥
आनेय तु महाभागा अमरैरपि दुसहम् । स तेनास्त्रबलेनाजो बलेन च समन्वित ॥४२॥
हैहयान विजयानां क्रुद्धो ह्यशनिव । आजहार च लोकेषु कीर्तिं वीर्यसमता वर ॥४३॥
ततः शकाश्च यवनान काम्बोजान पारदास्तथा । पहलबाश्चैव नि श्रेयान् कर्त्तव्यसितो नृप ॥४४॥
ते वध्यमाना धीरेण सगरेण महात्मना । वसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतमनीषिणम् ॥४५॥
वसिष्ठस्त्वय तान दृष्ट्वा समयेन महाद्युति । सगर वारयामास तेषा इस्वामय तदा ॥४६॥
सगरः स्वा प्रतिज्ञा तु गुरोर्वीर्य निशम्य च । धर्म्मं जघान तेषा वं वेशानयाद्यदार ह ॥४७॥

राजाओ को उनका कुल पत्नी से च्युत किया ? हे महाविद्वान् ! यह सब विस्तार से हमलोगों का बतलाये ॥३३॥ ३४॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणपटो ! पहिले हैहय तालजघ आर 'ग' न दव्यसनी बाह्र के साथ का अपहरण कर लिया था ॥३५॥ शक्र धवन पारद काम्बोज आर पहलब—ये भी पांच गण हैहय के सहायक थे ॥३६॥ तब राज्य से वंचित बाहु बन चला गया । पत्नी भी पीछे से गई । दुखी होकर बाहु न बही पर प्राण त्याग कर दिया ॥३७॥ राजा की गमिणी पत्नी यादवी (यदवश में उत्पन्न) को सत न विप दे दिया ॥३८॥ वह बन में पति की चिता पर जलन लगी । पर मनुष्यी आव न दयावान उसको जलन नहीं दिया ॥३९॥ मनि के आश्रम में विप के साथ ही उसने गम से राजा मगर उत्पन्न हुआ ॥४०॥ आव न बालक का जितवम आदि संस्कार करके उसे वेद शास्त्र पढ़ाया । महाभाग ! तब मनि न देवताओं से भी सहन न करने योग्य आग्रहवास्त्र उसको दिया ॥४१॥ सेना से यत्न ही सगर मनि प्रदत्त अस्त्र से हैह्या को उर्वी तरह मारन लगा जिस तरह कष्ट हुए हन न पाओ को भार था । मगस्थिया में श्रेष्ठ वह राजा ससार में अपनी काति फैलान लगा ॥४२॥ पञ्चात शको यवना काम्बोज पारदा आर पहलबा को निनेष वरन में राजा प्रवत्त हुआ ॥४३॥ महाभा वीर सगर के द्वारा विनष्ट हान हुए वे सब विद्वान वसिष्ठ की शरण में गये आर उनकी दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥४४॥ तब महातजस्वी वसिष्ठ न उनसे प्रतिज्ञा कराकर सगर को रोव दिया आर उहे जमयदान दिया ॥४५॥ सगर न अपनी प्रतिज्ञा याद कर आर गर के वाक्य सुनकर उनके धर्मों का नाश किया आर उनसे वेशा को बदल दिया ॥४६॥ शक्र का आप शिर को आर

१ स ० मध्यरो ० । २ स ० व । नेम सुदा स ० ० । ३ स यश ० । ४ स तदा स य ० । ५ स ० नाभ्राजा काम्बो ० । ६ स ० गस्ता प्र ० ।

अद्वं शत्रूनां शिरसो भुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥
 पारदा मुवत्केशाश्च पल्लवाः शमश्रुधारिणः । निःस्वाध्यायव्यटकाराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥
 शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः^१ । कोणिसर्पा माहिषका द्यूधन्विचोलाः सकेरलाः ॥५०॥
 सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनाद्राज्ञा श्मशरेण महात्मना ॥५१॥
 स धर्मविजयी राजा विजित्येषां वसुन्धराम् । अद्वं प्रचारयामास वाजिमेघाय दीक्षितः ॥५२॥
 तस्य क्षारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वं दक्षिणे । घेलासमीपेऽपहतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥५३॥
 स तं वेशं तदा पुत्रेः खानयामास पायिवः । असेदुस्ते तदा तत्र खग्यमाने महर्णवे ॥५४॥
 तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण श्वपन्नं पुरुषं तदा ॥५५॥
 तस्य शशुः समुत्प्रेन तेजसा प्रतिबुध्यतः । दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्तथवशेषिताः ॥५६॥
 शर्वाह्नेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः । शूरः पञ्चनदश्चैव^२ तस्य वंशकरा^३ नृपाः ॥५७॥
 प्रावाच च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् । अक्षयं वंशमिच्छाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिर्व्वर्त्तनीम् ॥५८॥
 पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गं वासं तथासयम् । समुद्रश्चाध्वर्मावाय बबन्वे तं महीपतिम् ॥५९॥
 सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह । तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०॥
 आजहार श्वमेधानां^४ क्षतं स मुमहातपाः^५ । पुत्राणां च सहस्राणि घटिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥६१॥

यवनो तपा काम्बोजो वै सम्पूर्णं शिर को मुंडवा कर छोड़ दिया । ॥४८॥ पारदो को मुक्तवेश (बिखरे बालो वाले) और पहल्वो को दाढ़ी-मूँछ-मुक्त बनाकर छोड़ दिया । विप्रवर ! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषक, द्यूधन्वि, चोला, केरल—ये सब क्षत्रिय वेदाध्ययन, जप आदि से बन्धित कर दिये गये । वसिष्ठ ने वचन से राजा शगर ने इनके धर्मों का नाश कर दिया ॥४९-५१॥ धर्म-विजयी राजा ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ की बीसा लेकर अश्व को छोड़ दिया ॥५२॥ वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहत होकर पृथिवी में प्रविष्ट हुआ तो राजा ने अपने पुत्रों के द्वारा उस प्रदेश को सुदबाया ॥५३॥ महासमुद्र को खोदते हुए वे राजपुत्र वहाँ पहुँचे, जहाँ आदि पुरय, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति—संज्ञक विष्णु भगवान् कपिल मुनि के रूप में शयन कर रहे थे ॥५४-५५॥ मुनिवर ! भगवान् ने जगन पर उनकी आँखों ने तेज से शगर के सब पुत्र दग्ध हो गये । केवल बर्हिनेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ, वीर पञ्चनद—ये चार राजपुत्र बच बचने के लिए बच गये ॥५६-५७॥ परचात् भगवान् नारायण ने शगर को वरदान दिया—‘इत्यादि का अण्य वरा रहेगा, तुम्हारी कीर्त्ति बढेगी, तुम्हें समुद्र पुत्र होगा और तुम अक्षय स्वर्गवाश प्राप्त करोगे’ ॥५८॥ समुद्र भी अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना करने लगा ॥५९॥ उसी वरम ॥ समुद्र सागर कहलाया । उस अश्व को राजा ने समुद्र से प्राप्त किया और सौ अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न किया । उसने साठ हजार पुत्र हुए—ऐसा हमने सुना है ॥६०-६१॥

१ न ०मा । केत्सिर्णा महाणीका और्वीरचोडा स० । स ०मा । केत्सिर्णा माहिषका द्यूधन्विचोलाश्च स० ।
 २ न ग वृनाश्रेण । ३ न ग स्वयम् । ४ न ग बर्हिने० । ५ न बर्हिने० । स बर्हिने० । ६ स ग. खर । ७ न
 श्वपन्नरथे० । ८ स ०नरोमकम् । प्रा० । ९ न स ०हयज्ञ । पु० ।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताः पट्टिसाहस्रा विधिना केन सत्तमः ॥६२॥

लोमहर्षण उवाच

हे भाग्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकित्वये । ज्येष्ठा विद्वन्बुद्धिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥
 कनोपसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥
 भ्रौर्व्वंस्तार्म्या वरं प्रादात्तद्वृष्यध्वं द्विजोत्तमाः । पट्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णारवेका नितम्बिनी ॥६५॥
 एकं वंशपरं त्वेका ययेष्टं वरयस्त्विति । तत्रैका जगृहे पुत्रान् पट्टिसाहस्रसम्मिताम् ॥६६॥
 एकं वंशपरं त्वेका तपेत्याह ततो मुनिः । राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७॥
 इतरा सुपुत्रे तुम्बी बीजपूर्णमिति श्रुतिः । तत्र पट्टिसहस्राणि गर्भस्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥
 संवभृव्ययाकाल वद्वद्वच यथासुखम् । घृतपूर्णं कुम्भेषु तान् गर्भाग्निवधे ततः ॥६९॥
 धात्रीधर्चकैकशः प्रादात्तावती । पोषणे नृपः । ततो वंशसु भासेषु समुत्सूर्ययाक्रमम् ॥७०॥
 कुमारस्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्दनाः । पट्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥
 गर्भदिलाबुमध्याह्ने जातानि पृथिवीपतेः । तेषां नारायण तेजः प्रविष्टाना महात्मनान् ॥७२॥
 एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह । शूरः पञ्चजनस्यासीदशुभाश्रमः धीर्मयवान् ॥७३॥

मुनियो ने पूछा—हे सूरजी ! सगर के वीर, महाबली क्या पराक्रमी साठ हजार पुत्र कैसे हुए ? ॥६२॥

लोमहर्षण बोले—तपस्या से निष्पाप हुई दो भार्यायें सगर की थी । केशिनी नामक विद्वन्-राजकुमारी उनमें ज्येष्ठ थी ॥६३॥ छोटी पत्नी अरिष्टनेमि की कन्या थी । जो अनुपम सुन्दरी शूर परम धर्मात्मा थी ॥६४॥ विप्रवृन्द ! जीवें मुनि ने उन्हें जो वरदान दिया था, उसे सुनिये ।

मुनि ने कहा—‘एक स्त्री साठ हजार पुत्रों को उत्पन्न करेगी और दूसरी वंश का धारण करने वाले एक ही पुत्र को । जिसको जो पचन्द हो, वह माँग ले’ ॥६५॥ तब मुनि की स्वीकृति के अनुसार एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रों को और दूसरी ने एक ही वंशधर पुत्र की याचना की । वंशधर पुत्र पञ्चजन नामक महातेजस्वी राजा हुआ ॥६६-६७॥ ऐसी प्रसिद्धि है कि दूसरी स्त्री ने बीज से भरी हुई एक तुम्बी (तुम्बी) का प्रसव किया । उसमें से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ (पुत्र) उत्पन्न हुए ॥६८॥ समय और सुख के अनुसार वे सब बढ़ने लगे । उनको भी वे भरे हुए घड़ों में रख दिया गया ॥६९॥ राजा ने, प्रत्येक बच्चों के लिए एक एक दाई नियुक्त की । दस महीने बीत जाने पर वे कुमार कमल खड़े होने लगे ॥७०॥ यथासमय वे सभी राजकुमार सगर के लिए प्रीतिवर्चक हुए । द्विजगण ! इस प्रकार उस राजा के साठ हजार पुत्र हुए ॥७१॥ उन बच्चों की उत्पत्ति तुम्बी के मीतर से हुई थी । उन मनस्वी बालकों ने नारायण का तेज निहित था ॥७२॥ पञ्चजन नामक पुत्र राजा हुआ । पञ्चजन का पुत्र अत्यन्त वीर अशुमान् था ॥७३॥ उसका पुत्र दिलीप था, जिसका नाम खट्वाण भी था,

दिलीपस्तस्य तनयः सद्वाङ्म इति विद्युतः । येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य 'जोदितम् ॥७४॥
 त्रयोभिः स्थिता 'लोका ब्रूया सत्येन चानघा । दिलीपस्य तु दायदो 'महाराजो भगीरथ' ॥७५॥
 य स गङ्गा सरिच्छेष्टामवातारयत प्रभु । समुद्रमानयच्चैना दुहितृत्वेऽप्यवत्पयत् ॥७६॥
 तस्माद्भगीरथो गङ्गा कथ्यते 'वशचिन्तक' । भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविद्युतः ॥७७॥
 नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्र परमधार्म्मिक । अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥
 अयुताजित् दायद सिन्धुद्वीपस्य धीर्यवान् । अयुताजित्सुतस्स्वासीदृतुपर्णो महायशः ॥७९॥
 दिव्याक्षहृदयजो वै राजा नलसखो बली । ऋतुपर्णसुतस्स्वासीदात्तपर्णिर्महायशः ॥८०॥
 सुवासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सोदासो नाम पाथिवः ॥८१॥
 क्त्वापपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत् । कल्पापपादस्य सुतः सर्ववर्म्ममिति विद्युतः ॥८२॥
 अनरण्यस्तु पुन्रोऽभिविद्युतः सर्ववर्म्मणः । अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नसो द्वौ बभूवुः ॥८३॥
 अनमित्रो रघुश्चैव पाथिववर्म्मभक्तसौ । अनमित्रसुतो राजा विद्वान् 'बुलिबुहोऽभवत् ॥८४॥
 दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः । दीर्घबाहुदिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥
 अयोध्याया महाराजो यः पुरासोऽन्महाबलः । अजस्तु राघवो जज्ञे 'तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥
 रामो दशरथाजसो धर्म्मार्त्ता सुमहायशः । रामस्य तनयो जज्ञे बुध इत्यभिसंज्ञितः ॥८७॥

अरजिन्ने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर दोषणी भर जीवित रहकर बुद्धि और सत्य से सीनो लोक को जीव दिया ॥७४॥
 विगीत के महाराज भगीरथ पुत्र हुआ, जिस नदियो मे अष्ट गंगाजी को इस लोक मे अवतरित किया अर पुत्री-
 भाव से उस मानत हुए समुद्र मे मिला दिया ॥७५॥ ७६॥ इसलिये वश को समझने वाले लोग गंगा को भगीरथी
 कहते हैं । भगीरथ के श्रुत नामक परम विख्यात पुत्र हुआ ॥७७॥ श्रुत का पुत्र नाभाग परम धर्मात्मा था ।
 नाभाग का पुत्र अम्बरीष सिन्धुद्वीप का पिता हुआ ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताजित् क्षत्रियशाली हुआ । अयुता-
 जित् का पुत्र महायशस्वी ऋतुपर्ण था ॥७९॥ वह राजा पासी के खेतन मे अतिचतुर (या दूरदर्शी तथा हृदयतः)
 अर नल नामक राजा का मित्र था । ऋतुपर्ण का पुत्र आत्तपर्णि महायशस्वी था ॥८०॥ उसका सुदास नामक
 पुत्र इन्द्र का मित्र था । सुदास का पुत्र सुदास नामक राजा था ॥८१॥ यही कल्पापपाद अर मित्रसह नामा से भी
 प्रसिद्ध हुआ । कल्पापपाद का पुत्र का नाम सर्ववर्मा था ॥८२॥ सर्ववर्मा के अनरण्य नामक पुत्र हुआ । अनरण्य
 के निघ्न नामक पुत्र हुआ । निघ्न का दोनूपश्च पुत्र हुए— ॥८३॥ अनमित्र अर रघु । अनमित्र का पुत्र बुलिबुहू हुआ,
 जो राजा अर विद्वान् दोनों था ॥८४॥ उसके पुत्र दिलीप हुआ, जो राम का प्रपितामह (परदादा) था । दिलीप
 का लम्बी बाहुआ वाला रघु नामक पुत्र हुआ ॥८५॥ जो पूवकाल मे अयोध्या का महाराज था । रघु से अज
 उत्पन्न हुआ अर अज से दशरथः ॥८६॥ दशरथ से अत्यन्त धनस्वी अर धर्मात्मा राम को उत्पत्ति हुई । राम के बुध
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८७॥ बुध से अति यशस्वा अर धर्मात्मा अतिथि उत्पन्न हुआ । अतिथि के निषध

१ क ०म् । ततो मि० । २ ख ०मित्रादिना । ३ ग महारथो । ४ क ०य । स्वर्गादिभुसु० । ५ क धर्मावन्तः ।
 ६ ख ०गत्य तस्याऽप्या० । ७ ग ०दासमूत्रान्ता मि० । ८ क ०बुलिबुहो० । ९ ख ०जो रघुरासी० ।
 १० ख तस्मादप्यसोऽभवत् ।

अतिथिस्तु कुशाज्जने धर्मात्मा सुमहायशः। अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम धीर्यवान् ॥८८॥
 निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु। नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ॥८९॥
 क्षेमघन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्। आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०॥
 अहीनगोस्तु दायदः सुघन्वा नाम पार्थिवः। सुघन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१॥
 उवयो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥
 नलो द्वायेव विद्यमानो पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यद्वक्ष्याकुलोल्लङ्घः ॥९३॥
 इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४॥
 पठन् सम्पत्तिनां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। आदित्यस्य प्रजापतिं पुष्टिदस्य च।
 प्रजावानेति सायुष्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्तनं
 नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽग्निभंगवानुविः। ब्रह्मणो मानसाः पूर्वं प्रजासर्गं विधिरसतः ॥१॥

नामक पुराणमी पुत्र हुआ। ॥८८॥ निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुआ। नभ से पुण्डरीक और उससे क्षेमघन्वा उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमघन्वा का पुत्र प्रताप देवानीक था। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनगु था ॥९०॥ अहीनगु का पुत्र सुघन्वा नामक राजा हुआ। सुघन्वा से राजा शल की उत्पत्ति हुई ॥९१॥ शल के उवय नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ। वज्रनाभ उससे पुत्र हुआ। उस महात्मा के नल नामक पुत्र हुआ ॥९२॥ मुनिवर पुराणों में बौद्धी नल प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेना का पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकु-वंश में समुद्भूत ॥९३॥ इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न प्रमुख राजा का वर्णन कर दिया गया। ये सभी परम तेजस्वी राजा सूर्यवंशी हैं ॥९४॥ प्रजा के पोषक और भाद्र के देव भगवान् सूर्य की इस सृष्टि का पढ़ने वाला मनुष्य सूर्य की भयानकता प्रत्यक्ष करता है ॥९५॥

धी ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-वंश-कीर्तन नामक बाठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ६

चन्द्रवश-वर्णनम्

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! पूर्वकाल में प्रजा-सृष्टि के इच्छुक ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा के पिता

अनुत्तर नाम तपो येन तप्तः हि तत्पुरा । त्रेणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि न श्रुतम् ॥२॥
 ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेत सोमत्वमीयिवान् । नेत्राम्या वारि सुखाव दक्षधा द्योतयन् दिशः ॥३॥
 त गर्भं विधिनादिष्टा दक्ष देव्यो दधुस्ततः । समेत्य धारयामासुनं च ता समशवनुवन ॥४॥
 यदा न धारणे श्रवतास्तस्य गर्भस्य ता दिशः । ततस्ताभि स त्वयतस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
 पतित सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह । रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥६॥
 तस्मिन्निपतिते वेवा पुत्रेऽग्रे परमात्मनि । तुष्टुब्रह्मण पुत्रारतथान्ये मुनिसत्तमा ॥७॥
 तस्य सस्तूपमानस्य तेज सोमस्य भास्वत । आप्यायनाय लोकाना भावयामास सध्वत ॥८॥
 स तेन रथमुत्थेन सागरान्ता वसुन्धराम् । त्रि सप्तकृत्वोऽस्तिवशाद्वक्त्राभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
 तस्य यच्चरित तेज पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ता समुद्भूता याभि सन्धार्यते जगत् ॥१०॥
 स लब्धतेजा भगवान् सस्तवैश्च स्वकर्मभि । तपस्तप्ते महाभाग पद्माना दर्शनाय स ॥११॥
 ततस्तस्मै वदौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदावर । योजीषधीना विप्राणामपा च मुनिसत्तमा ॥१२॥
 स तत्प्राप्य महाराज्य सोम सौम्यवतावर । समाजह्ने राजसूय सहृदशतवक्षिणम् ॥१३॥
 दक्षिणामदवात् सोमस्त्रील्लोकानिति न श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मपिमुष्येभ्य सवस्येभ्यश्च भो द्विजा ॥१४॥
 हिरण्यगर्भो ब्रह्मानभिगुणश्च श्रृग्विजोऽभवत् । सवस्योऽभूद्वरिस्तन मुनिभिर्बहुभिद्युत ॥१५॥

भगवान् अग्नि मुनि उत्पन्न हुए ॥१॥ मुनि १ हजार देव वष तक रथ तपस्या का—एसा हमन मुना है ॥२॥ उनका वीं शरीर के ऊर्ध्वभाग में जाकर अमृत बन गया । दशो दिशाओ को प्रकाशित करत हुए जल धीनो जो स बहने लगा ॥३॥ ब्रह्मा की आज्ञा स उस ० ज समुक्त जल रूप गम को दशो दिशाओ १ पिलकर धारण किया । पर वे धारण करन में समर्थ नहीं हुए ॥४॥ तब उन्होंने गम को त्याग दिया । गम पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥५॥ गिरे हुए अमृत सपा गम को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा १ लोको के कल्याण के लिये गम को रथ पर स्थापित कर दिया ॥६॥ मुनिवर ! अग्नि के उस परमात्मा पुत्र का गिर जान पर देवता अ ब्रह्मा के दूसरे पुत्र उसकी स्तुति करने लगे ॥७॥ स्तुति वि य जान वाले उस प्रशंगमान सोम (चन्द्रमा) का तब लोको की बुद्धि के लिए सब तरफ फैल गया ॥८॥ चन्द्रमा उस रथ स समुद्र पयस्त पृथिवी की इक्क स बार परिक्रमा का ॥९॥ चन्द्रमा का जो तब पृथ्वी म व्याप्त हुआ उससे सब ओषधिया उत्पन्न हुई । जिनसे स सार का पापण होता है ॥१०॥ अपन कर्मों से तब प्राप्त कर भगवान् चन्द्रमा १ पपा का दान के लिए (पप सख्या वाले क्यों तक ?) तपस्या की ॥११॥ तब ब्रह्मवैताजा म गेष्ट ब्रह्मा १ चन्द्रमा को बीज अथवा ब्रह्मण अर जल का राज्य दिया ॥१२॥ उस महाराज्य को प्राप्त कर चन्द्रमा १ एव लाख दिग्गा वाले राजसूय गम को धन्यस्त दिया ॥१३॥ द्विजगण ! ब्रह्मपि आदि सद्यस्या को सोम १ दक्षिणा म तना लोक दिय एसा हमन मुना है ॥१४॥ गम म साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्मा हुए । अग्नि आर मृग क त्विज हुए । बहुत मुनिया से युक्त साक्षात्

१ ल ० प्त महत्पु० । २ स ० क ॥ स्ता गमस्य दिग्गा दान । त० । ३ ग सहस्रवा ऽऽपुनि० । ४ स देवे । ५ स ० य च सुमदा म० । ६ स ० यत्तमि० । ७ क यत्तमि० । ८ स ० यिषी समप० । ९ ग दाना दान । १० । १० ० ना राजान निमये मु० ।

तं सिनीवच कुहूश्चैव धृतिः पुष्टिः प्रभा वसुः । कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सियेविरे ॥१६॥
 प्राणायवभूयमप्यग्र्यं सध्वंदेवर्षिपूजितः । विरराजाधिराजेन्द्रो दशपा भासयन् दिशः ॥१७॥
 तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमेश्वर्यमप्यसिक्तम् । विबन्धाम मतिस्ताताविनयादनयाहृता ॥१८॥
 बृहस्पतेः स धे भार्यामिदम्यमदमोहितः । जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९॥
 स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्भुहुः । नैव व्यसज्जयन्तारां तस्मा अङ्गिरसे तदा ॥२०॥
 उशना तस्य जप्राह पाणिमङ्गिरसस्तथा । चन्द्रश्च पाणिं जप्राह गृहीत्वाजगत्वं धनुः ॥२१॥
 तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना । उद्दिश्य देवानामुत्सृष्टं येनैवां नाशितं यशः ॥२२॥
 तत्र तद्वपुद्धमभयत् प्रत्यातं तारकामयम् । देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३॥
 तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥२४॥
 तवा निवार्योशनसं तं वै रुद्रञ्च क्षाञ्जुरम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५॥
 तामन्त प्रसवां बृध्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः । मदोमायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥२६॥
 द्वयोकास्तम्बमास्ताद्य गर्भं सा चोत्ससज्जं ह । जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥२७॥
 तत संशयमापन्नास्ताराम्बुः सुरोत्तमा । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याय बृहस्पते ॥२८॥
 पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल । तदा तां शप्नुमाश्च्यः कुमारो ब्रह्मदुहन्तमः ॥२९॥

हरि सदस्य हृष्ट ॥१५॥ सिनीवाली (पूर्व अमावास्या), कुहू (उत्तर अमावास्या) धृति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी—ये नौ देवियां चन्द्रमा की सेवा करती थी ॥१६॥ यश को समाप्त कर देवता और कवियों से पूजित हो राजाओं में प्रधान चन्द्रमा दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होने लगा ॥१७॥ ऋषियों से सहित उस अलम्ब ऐश्वर्य को प्राप्त कर चन्द्रमा की बुद्धि अनीति से उच्छृंखल हो उठी ॥१८॥ ऐश्वर्य के मय से मत्त चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी वा अपहरण कर लिया ॥१९॥ देवताओं और मुनियों द्वारा बारबार भमसाया जाने पर भी उसने बृहस्पति को तारा नहीं लौटायी ॥२०॥ तब चन्द्रमा का पक्ष शुक्राचार्य ने लिया और बृहस्पति का पक्ष भजगव नामक धनुष धारण कर महादेवजी ने लिया ॥२१॥ महात्मा शिव ने ब्रह्मशिर नामक एक महास्त्र दैत्यो के ऊपर फेंका, जिससे दैत्यो का यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर लोकक्षय करने के लिए तारकामय नाम से विख्यात देव-दानव युद्ध हुआ ॥२३॥ द्विजगण उस युद्ध में जो तुपित नामक देवता बच गये, वे सब आदिदेव और सनातन ब्रह्मा की शरण में गये ॥२४॥ तब शुक्राचार्य और महादेव जी का हठावर स्वयं ब्रह्मा ने बृहस्पति का साथ लौटा दी ॥२५॥ गर्भवती तारा को देखकर बृहस्पति ने क्रोध से कहा—'यज्ञसे सर्वन्वित योनि में तुम कभी गर्भ धारण नहीं कर सकती ॥२६॥ तब मूँज के गुच्छों पर तारा ने गर्भ का त्याग कर दिया । जन्म लेते ही वह बालक दिव्यस्पर्शकारी हो गया ॥२७॥ देवताओं ने सदेह करने लगे तारा से पूछा—'सत्य बोलो कि यह पुत्र चन्द्रमा का है या बृहस्पति का ?' ॥२८॥ देवताओं से पूछी जाने पर जब वह नहीं बोली, तब चोरो का नाश करने वाला बालक उसको

१ ग तदा । २ क ग ०पि सह । नं० । ३ ख तस्यैवानिरस्तदा । ४ ख ०ष्ट तथा नाशाय धनुना । त० । ५ ख स मुनिसत्तमा ।

तं निवार्यं ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम् । यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे वस्य सुतस्त्वयम् ॥३०॥
 उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम् । तदा तं मुनिं चाध्याय सोमो 'राजासुते' प्रति ॥३१॥
 बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः । प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२॥
 उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकम् । तस्यापत्यं महातेजा बभूवैल । पुरुरवाः ॥३३॥
 उर्व्वक्ष्यां जजिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः । एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
 वंशमस्य मुनिश्रेष्ठा कीर्त्त्यमानं निबोधत । धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥३५॥
 सोमस्य जन्म श्रुत्वेव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम

मधमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरुरवा । तेजस्वी दानशीलश्च यज्या विपुलदक्षिणः ॥१॥

पाप देने के लिए तैयार हो गया ॥२९॥ उसको निवृत्त कर ब्रह्मा ने तारा से सवेह पूछा—'तारे' सत्य बतलाना । यह किछका पुत्र है?' ॥३०॥ उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—'चन्द्रमा वा।' तब राजा सोम ने बालक के मस्तक को सूँघ कर उस बुद्धिमान् बालक का नाम 'बुध' रखा । अतएव बुध का आकाश में प्रतिकूल उदय होता है ॥३१-३२॥ वैराज मनु भी कन्या से बुध ने पुत्र उत्पन्न किया । उसका इला से उत्पन्न पुरुरवा नामक पुत्र महातेजस्वी हुआ ॥३३॥ पुरुरवा से उर्व्वक्षी में सात पुत्र उत्पन्न हुए । मुनिश्रेष्ठो । चन्द्रमा की यह कीर्त्ति बढ़ाने वाली उत्पत्ति मैंने आपसे बही ॥३४॥ अब इसके बंध का वर्णन मुनिये । धन्यवाद के पात्र, आयु और आरोग्य के साधक तथा अमिलाया की पूर्ण करने वाले चन्द्रमा के जन्म की सुनने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥३५-३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमोत्पत्तिकथन नामक त्रयो अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

लोमहर्षण बोले—मुनिवर ! बुध के विद्वान्, तेजस्वी दानी, यज्ञ करनेवाला, बहुत दक्षिणा देने वाला,

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्मुग्धि दुर्दमः। आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः॥२॥
 सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृत्तमैयुनः। अतोव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः सदा॥३॥
 तं ब्रह्मवादिनं द्रान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्व्वशी वरयाभास हित्वा मानं यशस्विनो॥४॥
 तथा सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च। षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश वाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
 वने चैत्ररये रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
 उत्तरान् स कुलन् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥
 एतेषु वनमृक्षेषु सुरैराचरितेषु च। उर्व्वश्या सहितो राजा रमे परमया मुदा॥८॥
 देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
 एवमप्रभावो राजासीद्वैलस्तु नरसत्तमः॥१०॥

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः। गन्धर्व्वलोके विविक्ता आयुर्धोमानमावसुः॥११॥
 विश्वायुश्चैव धर्म्मार्त्मा श्रुतायुश्च तथापरः। द्वायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः॥१२॥
 अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाध राजराट्। भीमान् भीमस्य दायादो राजासीदकाञ्चनप्रभः॥१३॥

ब्रह्म-वेत्ता, युद्ध मे शत्रुओं से अजेय, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवक्ता, पवित्र विचार वाला मैयुन मे समयी और तीनों लोकों मे सदा अनुपमेष यशस्वी पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१-३॥ उस ब्रह्मवादी, सत्यवादी, शान्त और धर्मज्ञ पुरुरवा को यशस्विनी उर्वशी ने मान त्याग कर करण किया ॥४॥ विप्रवृन्द! राजा ने उर्वशी के साथ चैत्ररथ नामक सुन्दर वन मे दस वर्ष, मन्दाकिनी नदी के तट पर पाँच वर्ष, अलकापुरी मे छह वर्ष, बदरी पुरी मे पाँच वर्ष नन्दन वन मे सात वर्ष, मनोरम फल-द्रुकों से युक्त उत्तर कुशों के देश मे आठ वर्ष, गन्धमादन पर्वत पर दस वर्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग मे आठ वर्ष तक वास किया ॥५-७॥ इन प्रयाग वनों मे और देवताओं के क्रीडा-स्थानों मे उर्वशी के संग राजा परम हर्ष से रमण करता रहा ॥८॥ राजा ने पवित्रतम और महर्षियों से स्तुत प्रयाग-क्षेत्र मे अपनी राजधानी बनायी ॥९॥ इस प्रकार प्रभावशाली, महामानव और महायशस्वी पुरुरवा गंगाजी के उत्तर तट पर रहता था ॥१०॥

लोमहर्षण ने कहा—देव-पुत्रों ने समान पुरुरवा के सात पुत्र हुए। आयु विद्वान अमावसु विश्वायु धर्म्मार्त्मा श्रुतायु, द्वायु, वनायु और बह्वायु—ये उर्वशी ने पुत्र थे ॥१२-१२॥ अमावसुके, राजाभा का भी राजा भीम नामक पुत्र हुआ। भीम के श्रीमान् वाचनप्रभ पुत्र हुआ ॥१३॥ वाचनप्रभ के महाबली मुहोत्र पुत्र हुआ। मुहोत्र का पुत्र जह्नु,

१ स शत्रूना मुधि दुर्बेय । २ स सुमकया । ३ क ०म्यनिमृत० । ४ क ०तिमो मुधि । त । ५ स ०दा ।
 विरव हि ब्रह्मस्तत्तस्य कर्माणि विलय गतम् । उर्वशी व० । ६ स. ०नीम् । त० । ७ स वा ष्टौ । ८ स ०ऽष्टौ ।
 ९ क देशे । त तदः । १० ग ०रथक० । ११ न ०स्पृष्टान्तरेषु च । ए० । १२ स ०स्ते स्मरदे० । १३ क सर्वे । १४
 स ०गा । दिवि जाता महत्मान् वा० । १५ स ०गान्धिभाव० ।

विद्वास्तु काञ्चनस्यापि सहोत्रोऽभून्महाबलः । सहोत्रस्याभवज्जहनु केशिया गर्भसम्भव ॥१४॥
 धाजह्ने यो महत् सत्र संप्रमेधं महामखम । पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥
 नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद । स तया प्लावित दष्टवा यज्ञवाट समतत ॥१६॥
 सोहोत्रिरशपदगङ्गाः क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा । एष ते विफल यत्नः पिबन्नम्भ करोम्यहम् ॥१७॥
 अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फल्मवाप्नुहि । जह्नुराजपिपा पीता गङ्गा दृष्टवा मर्त्यय ॥१८॥
 उपनि यमहाभागाः दुहितृत्वेन जाह्नवीम । युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुराचवत् ॥१९॥
 युवनाश्वस्य नापेन गङ्गाद्धेन विनिगता । कावेरीं सरिता श्रुत्वा जह्नीर्भास्यामिनिविताम् ॥२०॥
 जह्नुस्त दयित पुत्र सनद्यः नाम धार्मिकम् । कावेर्यां जनयामास अज्यस्तस्य चात्मज ॥२१॥
 "अज्यस्य स दायादो घलाकाश्वो महोपति । बभूव भृगुयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२॥
 कुशपुत्रा बभूवर्हि चत्वारो देववर्चस । कुशिक कुशनाभश्च कुशाग्रो मूर्त्तिमास्तथा ॥२३॥
 बह्वै सह सपुटो राजा वनचर सदा । कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिद्वसम् प्रभुः ॥२४॥
 लभेयमिति त शत्रुनासादग्येय जमिवान् । पूर्णं वर्षसहस्रे वै तत् शत्रो ह्यपश्यत् ॥२५॥
 भयप्रतपस दृष्टवा सहस्राक्ष पुरन्दर । समथ पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६॥

कनिजी ब गम स उत्पन्न हुआ जितन संप्रमेध अर महामग सत्र मग्ययन बिय अर जितने पास पति बनाने के लोभ से गगाजी गई थी ॥१४॥१५॥ गगाजी से विरक्त जह्नु ब यज्ञ-स्थल को गगा डरो दिया । चारों तरफ यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर राजा जह्नु ने क्रोध में आकर गगा को घास दिया कि गम ! मैं जल पीकर तुम्हारे यज्ञ को विध्वंस करता हूँ । तूम अपने यज्ञ अभिमान को पत्र सत्कार प्राप्त करो । ॥१६॥१७॥ राजपि जह्नु ने दायादियी गई गगा को देखकर महोपति ने अपनी जन्म की पुत्रा बना लिया ॥१८॥ पत्नी जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया ॥१९॥ युवनाश्व के नाप से गगा आध आध से मदिया में अथवा तथा अनिर्णय जह्नु का पत्नी कावेरी में मिला गई ॥२०॥ जह्नु ने युवध नामक धर्ममा पुत्र को कावेरी से उत्पन्न किया । २१॥ उसने अज्य नामक पुत्र हुआ । अज्य का पुत्र राजा बभूवर्हि गिहार नेत्र में बना था । उसने कुश नामक पुत्र हुआ । २२॥ कुश के देवता के समान तक्षशी गार पुत्र हुए—कुशिक कुशनाभ कुशाग्र अर मूर्तिमान् ॥२३॥ राजा कनिज गम ही में अगिरा के साथ पाग गया । मैं हूँ के समान य प्राण कर ह्य स्थान ग दूँ तप करने लगा यज्ञ आकर भयवर्धन उग्रर पागु गा । हजार वग बाल जान पर गङ्गा न उग गया । गम अथवा उग्र तपस्वी का दण्ड पर पुत्रापात्रन में समथ मुग्धत इन्द्र स्वय उग्रर पुत्र बन । कुशिक

१ ग ०१५ चमत् ॥ २ ब ०२५५५० ॥ ३ ब ० त्रिप ओषध गनिप्याय पिब म्य ० ॥ ४ ग जम । ५ ग ०० जयपारिग ० ६ ग म ० माया ० ॥ ७ ब ० न । गगापेन गग्य नदी पचाडिनिमः ॥ ८ ग निमि ॥ ९ ० ॥ १० ब गगा ॥ १० ब जह्नु ॥ ११ ब जह्नु ॥ १२ ग गात्रासूनि ॥ १३ ग गात्रासूनि ॥ १४ ग प्रभु ।

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम । स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिक स्वयम् ॥२७॥
 पीरा यस्याभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत । गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८॥
 ता गाधि काव्यपुत्राय ऋचोकाय ददौ प्रभु । तस्या प्रीत स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दन ॥२९॥
 पुत्रार्थं साधयामास चरु गाधेस्तथैव च । उवाचाहूय ता भार्यामृचोको भार्गवस्तदा ॥३०॥
 उपयोज्यश्चरय त्वया मात्रा स्वयं शुभे । तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमानृक्षत्रिदपम ॥३१॥
 अजेय क्षत्रियैर्लोकैः क्षत्रियैर्भक्तूदन । तवापि पुत्र कल्याणि धृतिमत तपोधनम् ॥३२॥
 क्षमात्मक द्विजश्रेष्ठ चरये विधास्यसि । एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचोको भृगुनन्दन ॥३३॥
 तपस्यभिरतो निस्पृगरूप्य प्रविशेश ह । गाधि सदारस्तु तदा ऋचीकाश्वमम्यनात् ॥३४॥
 तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टुं नरेश्वर । चरद्वय गृहीत्वा सा ऋषे सत्यवती तदा ॥३५॥
 चरमावाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् । माता तु तस्या दैवेन बुद्धिर्न स्व चर ददौ ॥३६॥
 तस्याश्चरमयाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह । अयं सत्यवती सत्त्वं क्षत्रियान्तकर तदा ॥३७॥
 धारयामास दीप्तेन ययुषा घोरदर्शना । तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८॥
 सतोऽप्रवीद्विजश्रेष्ठ स्वा भार्या वरवर्णिनीम् । मात्रासि बन्धिता भद्रे चरव्यत्योसहेतुना ॥३९॥
 जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मोत्तिदारुण । माता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधन ॥४०॥

पुत्र इन्द्र गाधि नामक राजा हुए ॥२४२७॥ कुशिक की पत्नी पुरा से गाधिक उत्पत्ति हुई था । गाधि ने महामाग्य भार्गवी सत्यवती नामक कन्या हुई । ॥२८॥ गाधि १ उस पुत्री को भृगु-पुत्र ऋचक को समर्पित किया । ऋचक १ गाधि का कन्या से प्रसन्न होकर अपना अरु गाधि ने पुत्र होने १ लिए वह बनाया और अपना पत्नी को सुलाकर कहा—॥२९३०॥ प्रिये ! यह वह तुम अपनी माता को देना । इस खान से तुम्हारी माता अत्यन्त तजस्वी क्षत्रिय-अष्ट पुत्र को उत्पन्न करेगी जो इस लोक में राजाओं से अजय तथा नृप-अष्टा का सत्पति होगा ॥३१॥ कल्याण । तुम्हें भा । इस दूसरे चर १ खान से भीरु, तपस्वी शान्त और द्विजवर पुत्र उत्पन्न होगा । ॥३२३३॥ इस प्रकार पत्नी से कहकर भृगु-पुत्र ऋचीक तपस्या में निरत हो वन में प्रविष्ट हुआ । तदुपरान्त तीर्थयात्रा व प्रसंग से पुत्री को देकर १ लिए राजा गाधि अपनी माया सहित ऋचक १ आश्रम में गया ॥३३३४॥ सत्यवती १ ऋषि १ वीणा चरुआ को लाकर माता को समर्पित किया ॥३५३६॥ परन्तु दैवयोग से माता १ पुत्रा का अपना चर दे दिया और अपानता से उसका चर स्वयं खा लिया ॥३६३७॥ इसका बाद सत्यवती १ सब क्षत्रिया का नाश करने वाला गम धारण किया । शरीर में तज रहत हुए मा वह देखन में भयकर लगता थी ॥३७३८॥ ऋचक उस देखत ही योग-बल से सब कुछ समझ गया और बोला—भद्र ! माता १ तुम्हें ठग लिया । चर बदल जान के कारण तुम्हें अत्यन्त भयकर और क्रूर कम करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा पर तुम्हारा माइ ब्रह्मपत्ता तपस्या होगा ॥३८४०॥

१ सा अभ्यस्यत् । २ क चर विद्या गृहीत तमुप । ३ क उदा । विषयवात्तदा त वै सा । ४ क स त्रभेदेन ।
 ५ क ० मात्या आत्म० ।

विश्व' हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् । एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् । ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२॥

ऋचीक उवाच

नैव सकल्पत कामो मया भद्रे तथास्त्विति । उपक्रम्मा भवेत् पुत्रं पितुर्भर्मातुश्च कारणात् ॥४३॥
पुत्रं सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् । इच्छस्त्यलोकानपि मुने सृजेथा किं पुन सुतम् ॥४४॥
शमात्मकमूजु स्व मे पुत्रं दातुमिहार्हसि । काममेवविध पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्य वै कस्तुमेतद्विजोत्तम । तत् प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६॥
पुत्रे' नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा चरवर्णिनि । त्वया ययोक्त वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७॥
तत् सत्यवती पुत्रं जनयामास भागवम् । तपस्यभिरसं दातुं जमवग्निं शमात्मकम् ॥४८॥
'भृगुर्जगत्या ब्रह्मोऽस्मिञ्जमवग्निरजायत । सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तये महानदी । इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिप ॥५०॥
तस्य कन्या महाभागा कामलो नाम रेणुका । रेणुकाया तु कामत्या तपोविद्यासमन्विता ॥५१॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्य सुदारणम् । सत्यविद्यास्ततः श्वेत्तं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

ययावि' उस चर मे मैं तपस्या के बल से विश्वरूपी ब्रह्म को निहित कर दिया था।' पति' से यह बात सुनकर सीताम्पवती सत्यवती ने उनसे यह प्रश्नना की कि आप जैसे ब्राह्मण-श्रेष्ठ से मुझे इस तरह का पुत्र न हो ऐसी कृपा करें। तब मुनि ने कहा ॥४१-४२॥

ऋचीक बोला—भद्रे' तुम्हें इस तरह का पुत्र हो—ऐसा स्वल्प मैंने नहीं किया था। पिता माता के कारण उपक्रम करनेवाला पुत्र होगा ॥४३॥ फिर सत्यवती बोली—'पुन' आप चाहें, तो सीता लोक की सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र की ता बात ही क्या ॥४४॥ प्रभो' शान्त तथा कोमल स्वभाव वाला पुत्र मुझे दीजिये। द्विज-वर्ग' यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना कीजिये कि मेरा पौत्र ऐसा (प्रापित पुत्र की तरह) हो। ॥४५॥ तब मुनि ने तपस्या के बल से उसका ऊपर कृपा की और कहा—'मुन्दरि' मैं पुन और पौत्र मकोई भेद नहीं मानता। भद्रे' तुमने जैसा कहा वैसा ही होगा ॥४६-४७॥ तब सत्यवती ने तपस्या में निरत, इन्द्रिया को दमन करने वाले जमदग्नि नामक भृगुवर्गी पुत्र को उत्पन्न किया ॥४८॥ संसार में भृगु के इस वंश में जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए। सत्य तथा धर्म में परायण और पवित्र यह सत्यवती कीर्ति की नाम ॥ विख्यात महानदी हुई ॥४९॥ इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या, काम्यी और रेणुका नाम से प्रसिद्ध थी ॥५०॥ उस रेणुका में तपस्वी मार विद्वान् जमदग्नि के अतिप्रयत्न से सब विद्याओं में निष्णात, धनुर्वेद में पारंगत, क्षत्रियो के विनाश करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी राम (परगुराम) नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१-५२॥ इस

१ रा हि तपसा ब्रह्म म०। २ व० ॥ ३ न संस०। ३ य सुतो। ४ व० स भद्रे। ५ व० भृगोश्चरविपर्यति जम०। ६ ग० भद्रवर्णविपक्षि रोदधण्वक्या पुरा। यजनार्हण्यवशात् जम०। ६ क स० धानुगये०।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदोषतमिव पाचकम् । ओर्वस्यैवमुचोक्तस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥५३॥
जमदग्निस्तपोदीप्यग्निजज्ञे ब्रह्मविदांवरः । मध्यमश्च शूनशेषः शूनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः । जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योज्यं ब्रह्मर्षितां गतः । विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६॥
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकहंशवर्द्धनः । विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्वयतः परम् । देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः ॥५८॥
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुजंशेऽप्य रेणुकः । सांक्रुतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चैव विधृतः ॥५९॥
भृगुच्छन्दो जयश्चैव देवतश्च तथाष्टमः । कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०॥
तेषां ह्यात्मनि गोध्राणि कौशिकानां महात्मनाम् । पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१॥
शर्यावा देवराताश्च शालङ् कायनवाचकलाः । लोहिता यमदूतश्च तथा कारुणकाः स्मृताः ॥६२॥
धौरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च । सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥६३॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शूनःशेषोऽभजः स्मृतः । भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शूनःशेषोऽभवत् किल । हरिदिवस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनिर्गोजितः ॥६५॥
देवदंतः शूनःशेषो विश्वामित्राय वै पुनः । देवदंतः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६॥

प्रकारतः शक्ति से ब्रह्मदेवताओं में श्रेष्ठ और महायज्ञस्य जमदग्नि मुनि स्वयंकी से उत्पन्न हुए । मन्त्रके पुत्र का नाम शूनः शेष और छोटे पुत्र का नाम शूनः पुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक के पुत्र गाधि ने तपस्वी, विद्वान् और धान्त विश्वामित्र नामक पुत्र की उत्पत्ति किया ॥५५॥ धर्मात्मा विश्वामित्र, जिसका नाम विश्वरथ भी था, ब्रह्मर्षियों की समानता को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गया ॥५६॥ भृगु की कृपा से कौशिक के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र हुआ । विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि नाम से विख्यात हुए ॥५७॥ तीनों लोकों में प्रख्यात उन पुत्रों के नाम मुनि—देवरात और बलि, जिसमें कति के कात्यायन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥५८॥ शालावती नामक स्त्री से हिरण्यक्ष उत्पन्न हुआ । रेणु, रेणुक, सांक्रुति, गालव, मुद्गल, भृगुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, बच्छप, हारिज—ये विश्वामित्र के पुत्र बहलाये । ५९-६०॥ उन महात्मा नौसिकी के योत्र प्रसिद्ध हैं । मुनिश्रेष्ठों । पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पायिव, देवरात, शालनायन, वाचक, लोहित, यमदूत, वारुण्य—ये सब ब्रह्मर्षि नौशिक के वंशज बहलाते हैं ॥६१-६२॥ इस वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय का सम्बन्ध प्रसिद्ध है । विश्वामित्र के पुत्रों में शूनशेष श्रेष्ठ था । मुनि-श्रेष्ठ भार्गव कौशिकत्व को प्राप्त हुआ ॥६३६४॥ विश्वामित्र का पुत्र शूनशेष हुआ । हरिदिव (हरिदिवन्) के यज्ञ में शूनः शेष पशु की जगह नियुक्त किया गया था ॥६५॥ देवताओं ने फिर शूनः शेष को विश्वामित्र को दे दिया । देवताओं के द्वारा दिया जाने के कारण उसका नाम 'देवरात' पड़ा ॥६६॥ विश्वामित्र के

१ घ ० व श्चनी ० । २ ख ० वासमन्वितम् । ३ व ख ० व दे ० । ४ व तेषामास्यामि गो ० । ५ क ० तादन-
शरीतावष्टकायाजना स्मृ ० । ६ व याम-भूतावच । ७ व कारीर्यम् ।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतश्चापि। वैश्वामित्रस्तथाष्टकः॥६७॥
 अष्टकस्य सुतो लोहिः प्रोक्तो जहनुगणो मया। अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमापोर्महात्मनः॥६८॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशोऽभावसुवंशानुकीर्तनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

आयोः पुत्रादध से षष्ठ सत्त्वं घोरा। महारथाः। स्वर्भानुतनपायां च प्रभायां जजिरे नृपाः॥१॥
 नहुयः प्रथमं जते बृद्धशर्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥२॥
 रजिः पुत्रशतानीह जनयामास षष्ठ वं। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयाबहम्॥३॥
 यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारणे। देवादचेवासुराश्चैव पितामहमयाम्बुवन्॥४॥

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति। ब्रूहि नः सत्त्वंभूतेश्च श्रोतुमिच्छाम सत्त्वतः॥५॥

देवरात आदि सप्त पुत्र थे। विश्वामित्र के दृषद्वती से अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६७॥ अष्टक के लोहि नामक पुत्र हुआ। मैंने जह्नु-परिवार को बतला दिया। अब इसके बाद महात्मा आयु नामक राजा के वंश का वर्णन करेगा॥६८॥

श्री ब्रह्मपुराण के सोमवंश के वर्णन-प्रसंग में अभावसु-वंशानुकीर्तन नामक दशवीं अध्याय समाप्त॥१०॥

अध्याय ११

लोमहर्षण बोले—आयु के वीर और महारथी पाँच पुत्र स्वर्भानु की प्रमा नामक बन्धा से उत्पन्न हुए॥१॥
 पहले नहुय उत्पन्न हुआ। इसके पदबान् वंशो राजा मरिष्यान् बृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना उत्पन्न हुए॥२॥
 रजि ने पाँचवाँ पुत्र उत्पन्न किया, जो इन्द्र को हरा देने वाले राजेय नामसे प्रसिद्ध साधित हुए॥३॥ एन बार मयनर देवागुरु-समूहम जिह्र जान पर देवराजा और राजाग ने ब्रह्मा के पाँच जानर यह निवेदन किया॥४॥

देवागुरों ने कहा—मयनू! आप सभी शाश्वत के स्वामी हैं, हम सर्वका यह जानना चाहते हैं कि हम राजा में मे वंश पर विजयी होगा? कृपया बताइए?॥५॥

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संप्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रीँल्लोकाश्चात्र संशयः॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥७॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजि तदा। अग्न्ययुर्जयमिच्छन्तो वृष्वानास्तं नरर्यभम्॥८॥
स हि स्वर्भानुदोहित्रः प्रभायां सम्पद्यत। राजा परमतेजेस्वी सोमवंशधिवर्द्धनः॥९॥
ते हृष्टमनसः सख्यं रजिं च देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकाम्मुक्म॥१०॥
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदेवयोः। अयंजः स्वार्थमुद्दिश्य यशः त्वं च प्रकाशयन्॥११॥

रजिस्त्वाच

यदि दैत्यगणान् सख्यान् जित्वा धीर्य्येण वासवः। इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥१२॥
देवाः प्रयमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः। एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥१३॥
धृत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुखास्तु यथा देवानपुच्छत॥१४॥
दानवा इयंसम्पूर्णः स्वार्थमेवावागम्य ह। प्रत्युषुस्तं नृपवरं सन्निभानमिदं वचः॥१५॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यायं विजयामहे। अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—युद्ध मे जिसके पक्ष से वात्स्य धारण कर रजि युद्ध करेगा निश्चय ही वही त्रैलोक्य विजयी होगा
॥१॥ क्योंकि जहाँ रजि होगा वहाँ धैर्य, जहाँ धैर्य वहाँ लक्ष्मी, जहाँ लक्ष्मी वहाँ धर्म और जहाँ धर्म होगा वहाँ विजय
निश्चित होगी॥७॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर देवता और दानव प्रसन्न हो विजय की अभिलाषा करते हुए रजि को
बरण करने के लिए उसके पास गये॥८॥ स्वर्गानु का नाती रजि, जो सोमवश को बढ़ाने वाला परम तेजस्वी राजा
था, प्रभा से उत्पन्न हुआ था॥९॥ प्रसन्नचित्त देवता और राक्षस रजि से कहने लगे कि आप हमारी जय के लिये
मनुष्य धारण कीजिये॥१०॥ तब अभिप्राय को जाननेवाले रजि ने स्वार्थ का उद्देश्य सम्मुख रखकर अपनी बीजि को
प्रकाशित करते हुए देव-दानवों से कहा॥११॥

रजि ने कहा—‘यदि मैं शक्ति से दैत्यगणों को जीत कर धर्म से इन्द्र ही जाऊँ तो मैं संप्राम म युद्ध करूँगा’
॥१२॥ देवताओं ने प्रयमन प्रसन्न होकर कहा—‘मन्त्र’ आपकी इच्छा पूरी होगी॥१३॥ देवताओं की बात
सुनकर राजा रजि ने प्रमुख राक्षसों से भी वही बात पूछी जो देवताओं से पूछी थी॥१४॥ तब धर्म से पूर्ण दानवों
ने केवल अपने ही स्वार्थ को जानकर राजा से अभिमानपूर्वक यह कहा॥१५॥

दानवों ने कहा—‘हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, जिनके लिए हम विजय चाहते हैं। राजन्! यदि आप
हमारे इन्द्र होने की इच्छा रखते हैं तो आप इस युद्ध में हमारे विपरीत बनिये’॥१६॥ राजा ने कहा—

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैस्ततस्तु पार्थिवः॥१७॥
 जघान दानवान् सर्वान् येऽवध्या चक्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रोः श्रियं वशी॥१८॥
 निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः॥१९॥
 रजिपुत्रोऽहमित्यूकत्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः॥२०॥
 यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते स्यातिं यास्यामि कर्मभिः। स तु शत्रुवचः श्रुत्वा बड्धितस्तेन मायया॥२१॥
 तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतशतम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे विभं प्राप्ते महीपतौ॥२२॥
 द्वायाद्यमिन्द्रावाजहः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः॥२३॥
 समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकां त्रिविष्टपम्। ते यदा तु स्वसम्भूदा रागोन्मत्ता विधर्मिणः॥२४॥
 ब्रह्मद्विपश्च संबृता हतवीर्य्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्॥२५॥
 हत्वा रजिमुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान्। य इदं ज्यायनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
 शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दोगंत्यमानुषात्॥२६॥

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपरयस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेमसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिसत्रो महायशः॥२७॥
 'प्रतिसत्रसुतश्चासीत्' सञ्जयो नाम विभ्रतः। सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥२८॥

‘एषमस्तु’। तब देवताओं ने राजा से कहा—‘आप इनको मार कर इन्द्र हो जायेंगे’॥१७॥
 राजा ने उन सब दैत्यों को, जो इन्द्र से अवध्य थे, मार कर चिरकाल से नष्ट देवताओं की श्री की राक्षसों से ग्रहण किया॥१८॥ तदुपरान्त इन्द्र ने देवताओं के साथ आकर रजि से कहा—‘मैं रजि का पुत्र हूँ। तात।
 निःसंदेह आप सब देवताओं से इन्द्र हैं। जिन आप का पुत्र मैं इन्द्र हूँ—इस स्याति को मैं बर्षों से प्राप्त करूँगा’॥१९-
 २०॥ वह राजा इन्द्र की बात सुनकर माया से मोहित हो सतुष्ट हो गया और इन्द्र से बोला—‘ऐसा ही सही।’
 ॥२१॥ तब देवताओं के समान उस राजा के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रों ने इन्द्र से राज्य छीन लिया। उनके
 पश्चात् पुत्रों ने अनेक बार स्वर्गलोक पर आक्रमण किया॥२२-२३॥ जब उन भूत, रागोन्मत्त, विषमों और ब्रह्म-
 द्रोही रजि-पुत्रों का पराक्रम नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने काम क्रोध से रत इन सब रजिपुत्रों को मारकर अपने ऐश्वर्य्य
 और उत्तम स्थान को प्राप्त किया॥२४-२५॥ जो आदमी इन्द्र के इस उत्थान-पतन को सुनेगा या पारण करेगा,
 उसकी अपोगति बर्षों नहीं होगी॥२६॥

लोमहर्षण बोले—रम्भ तो सन्तानहीन था, इसलिये अनेक के बच्चा का वर्णन मैं करूँगा। अनेक का
 पुत्र प्रसिद्ध महान् यशस्वी राजा हुआ॥२७॥ प्रतिसत्र का सजय नामक पुत्र बड़ा प्रसिद्ध था। सजय का पुत्र

१ क तावद्देवा०। २ ख सुगपुष्टा। ३ ग. प्रतिश्रेयो। ४ ग. विधोत्रसु०। ५ क ख ०वीत्सञ्जयो०।

६ क ख ०त। सञ्जय०।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्ष्यत्वतः^१ सुतः। हर्ष्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥२९॥
 सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन^२ इति विश्रुतः। नदीनस्य^३ जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः॥३०॥
 सङ्कृतेरपि^४ धर्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशः। अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः॥३१॥
 क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशः। सुनहोत्रस्य दाय्यादास्तत्रयः पमधामिकाः॥३२॥
 काशः शालश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥३३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैद्याः शूद्रास्तयैव च। शालात्मज^५ आष्टित्सेनस्तनयस्तस्य काश्यपः॥३४॥
 काशस्य काशिपो राजा पुत्रो धीर्यतपास्तथा। धनुस्तु^६ धीर्यतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः॥३५॥
 तपसोऽन्ते सुमहसो जातो वृद्धस्य धीमतः। पुनर्धन्वन्तरिर्देवो भानुपेत्विह जन्मनि॥३६॥
 यस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः॥३७॥
 ताम्रध्वं भरद्वाजात् प्राप्येह स भियक्कियः। समष्टया पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥३८॥
 धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरयः स्मृतः॥३९॥
 पुत्रो भीमरयस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः। दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्पथिपोऽभवत्॥४०॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः। शून्यां निवेशयामास क्षेमकौ नाम राक्षसः॥४१॥

अथ और उसका पुत्र विजय हुआ॥२९॥ विजय के कृति नामक पुत्र और उसके हर्ष्यत्वत नामक पुत्र हुआ। हर्ष्यत्वत का पुत्र सहदेव प्रतापी राजा हुआ॥२९॥ सहदेव का धर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन के जयत्सेन नामक पुत्र और जयत्सेन के संकृति नामक पुत्र हुआ॥३०॥ संकृति के भी महायशस्वी और धर्मात्मा क्षत्रवृद्ध नामक पुत्र हुआ। अनेना का वश बतला दिया, अब क्षत्रवृद्ध का सुनिये॥३१॥ क्षत्रवृद्ध के सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। सुनहोत्र के काश, शाल और गृत्समद नामक तीन धर्मात्मा पुत्र थे॥३२॥ गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका शौनक था। उसी से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए। आष्टित्सेन शाल का पुत्र था। उसका पुत्र काश्यप था॥३३-३४॥ काश के पुत्र राजा काशिप और धीर्यतपा थे। धीर्यतपा के धनु नामक पुत्र हुआ और उससे विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुए॥३५॥ वृद्ध और धीमान् धनु के कटिन तप के अन्त में देवता धन्वन्तरि मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए॥३६॥ इस जन्म में उसके घर में उत्पन्न देव धन्वन्तरि ने, जो सर्वरोग-विनाशक तथा महाराज काशिराज कहलाते थे मरद्वाज युनि से आमुर्वेदको प्राप्त कर उसके आठ भाग करके शिष्यों को पढ़ा दिया॥३७-३८॥ धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध था। केतुमान् का पुत्र भीमरय तथा वीर हुआ॥३९॥ भीमरय का पुत्र दिवोदास प्रजापति का स्वामी हुआ। धर्मात्मा दिवोदास काशी-नरेश हुआ।॥४०॥ निप्रवृत्त^७ इसी समय क्षेमक नामक राक्षस ने नून्य काशीपुरी में प्रवेश किया॥४१॥ क्योंकि महात्मा

१ क हर्ष्यत्वत। २ न हर्ष्यत्वन। ३ क धर्ष्यत्वसु०। ४ क धर्ष्यत्वसु०। ५ क नदीन। ६ क न दीजस्य। ७ ग सहति। ८ ग सहते०। ९ ग इत्यर्था। १० ग अत्यस्त०। ११ ग अत्यस्त०। १२ ग मगिराजो। १३ क अन्तरे सुतो नन्म के०।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥४२॥
 तस्यां हि शप्तमात्रायां विबोदासः प्रजेश्वरः । विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥
 भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥
 हत्वा निवेशयामास विबोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य तद्वाज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्वमो नाम विधुतः । विबोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥
 हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् यं महोपतिः । आजह्ने पितृदायाद्यं विबोदासहृतं बलात् ॥४७॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्वमेन महात्मना । वैरस्यान्तो महाभागा, कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥
 विबोदासाद्ब्रूयद्वाप्यो योरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सभयोः सुविभ्रुतौ । वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥
 अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः । अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनः ॥५१॥
 पण्डितवर्षसहस्राणि पण्डितवर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्भवः ॥५२॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परभायुरवाप्तवान् । तस्यासीत् सुमहद्वाज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥५४॥
 सन्नतेरपि दायादः सुनीयो नाम धार्मिकः । सुनीयस्य तु दायादः क्षेमो नाम महावशाः ॥५५॥
 क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः । सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

निकुम्भ ने काशी पुरी को शाप दिया था कि 'तुम हजार वर्ष तक नि सदेह धून् रहोगी। ॥४२॥ जब काशीपुरी
 शापप्रस्त हो गयी तब राजा विबोदास ने गोमती नदी के तट पर सुन्दर नगर रचकर राजा की बसाया ॥४३॥
 पहले भद्रश्रेण्य की काशीपुरी हो गई थी। भद्रश्रेण्य के ही उत्तम धनुर्धारी पुत्रों को मारकर राजा विबोदास ने
 बलपूर्वक भद्रश्रेण्य की राज्य-हरण कर अपना बना लिया ॥४४-४५॥ भद्रश्रेण्य के दुर्वम नाम से विख्यात पुत्र की विबो-
 दास ने बालक समझ कर दयावश छोड़ दिया ॥४६॥ राजा ने हैहय की पितृ-सपत्ति छीन ली। महाभाग भद्र-
 श्रेण्य के पुत्र महात्मा दुर्वम ने विबोदास से बलपूर्वक हरण किये गये पितृ-धन पर अपना प्रभुत्व फिर स्थापित कर
 लिया और अपने पराक्रम से शत्रु का जन्त कर दिया ॥४७-४८॥ विबोदास की दुष्टपत्नी से और प्रतर्दन उत्पन्न हुआ।
 प्रतर्दन ने फिर उस राज्य को अपने अधीन कर लिया ॥४९॥ प्रतर्दन से वत्स और सत्य नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति
 हुई। वत्स के पुत्र का नाम अलर्क और उसके पुत्र का नाम सनति था ॥५०॥ अलर्क ब्रह्मप्रादी तथा सत्यवादी था।
 राजर्षि अलर्क के विषय में ऐसा मुना जाता है कि छोट्ट हजार वर्षों तक वह युवक ही बना रहा ॥५१-५२॥ लोप-
 मुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी। रूपयौवनशाली प्रतर्दन का राज्य बहुत बिलुप्त था ॥५३॥ शाप के
 अन्त में प्रतर्दन ने क्षेमक राजश्वर को मारकर रमणीय काशी पुरी को फिर से बसाया ॥५४॥ सनति का भी मुनीय
 नामक पुत्र प्राप्त हुआ। मुनीय के क्षेम नामक महावशस्वी पुत्र हुआ ॥५५॥ क्षेम के पुत्र केतुमान् से सुकेतु उत्पन्न
 हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु कहलाया ॥५६॥ धर्मकेतु का पुत्र महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतुने किम्

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुस्तुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥५७॥
 आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु घृष्टकेतुः सुधार्मिकः॥५८॥
 घृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रस्तुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः॥५९॥
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः। एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽय भार्गवे॥६०॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्च पुत्राः सहस्रशः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुपस्य निबोधत॥६१॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे बृहक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णन आयुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महोजसः। नहुपस्य तु दायादाः षडङ्गोपमतेजसः॥१॥
 यतिर्ययातिः सयातिरायातिर्यातिरेव च। सुयातिः घष्टस्तेपां च ययातिः पार्थिवोऽभवत्॥२॥

नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ॥५७॥ विभु के पुत्र का नाम आनर्त और उसके पुत्र का नाम सुकुमार था। सुकुमार का पुत्र घृष्टकेतु बड़ा धार्मिक था॥५८॥ घृष्टकेतु का पुत्र वेणुहोत्र प्रजाओं का स्वामी हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र भार्ग नामक प्रजेश्वर हुआ॥५९॥ वत्स के वत्सभूमि नामक पुत्र हुआ। भार्ग के पुत्र का नाम भार्गभूमि था। ये अगिरा के पुत्र सगुणश में उत्पन्न हुए॥६०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन पुत्र हजारों की संख्या में काश्यप-वंश में उद्भूत हुए। अब नहुप के वंश की सुनि॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोम-वंश के वर्णन-अंश में बृहक्षत्र-प्रसूति-निरूपण नामक प्यारहवां अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—महातेजस्वी नहुप के इन्द्र के समान तेजस्वी बड़े पुत्र विरजा नामक पितृकन्या से उत्पन्न हुए—यति, ययाति, सयाति, अयाति याति और छठा सुयाति। उनमें से ययाति राजा हुआ॥१२-२॥ परम धार्मिक ययाति ने ऋतुस्थ की गो नामक कन्या को प्राप्त किया। यति मोक्ष भवित् लप्सकर ब्रह्मनिष्ठ मुनि बन

१ ग ०८। स्वविभुस्तु २ स यर्गो। ३ स ०स्तु यर्गो। ४ क प्रीतिस्तु। ५ ग भार्गवात्। ६ क ०श्या आयो पुत्रा। ७ स. ०न्द्रोपेन्द्रते०।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लभ परमधार्मिकः। यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवत् मुनिः॥३॥
 तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्। देवयानीमुशनसः सुतो भार्यामवाप सः॥४॥
 शर्मिष्ठाभासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः। यदुञ्च तुल्यं सञ्जैव देवयानी व्यजयित॥५॥
 द्रुह्यं चानुं च पुत्रं च शर्मिष्ठा वार्यपर्वणो। तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्॥६॥
 अङ्गदं काञ्चनं दिव्यं दिव्यं परमधार्जिभिः। युधत् मनोजवं शुभ्रपेनं कार्यं समुद्रहन्॥७॥
 स तेन रथमुत्थेन पद्माश्रेणाजयन्महोम्। ययातिर्मुधि दुर्धर्पस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
 स रथः कोरवाणां तु सध्वेषामभवत्तदा। संवत्सवसुनामस्तु कीरवाज्जनमेजयात्॥९॥
 क्रूरो पुत्रस्य राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह। जगाम राथो नाशं शापाद्वर्गस्य धीमतः॥१०॥
 गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन हिसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः॥११॥
 स लोहगन्धो राजर्षिः परिषावप्रितस्ततः। पौरजानपदेस्तथतो न लेभे शर्मं कर्हिचित्॥१२॥
 ततः शक्रोऽसन्तप्तो नातभस्संविदं क्वचित्। विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥
 याजयामास च शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥१४॥
 स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृषमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञी वशाश्चेद्विपत्तस्तदा॥१५॥
 वत्सः शक्रेण सुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथात्प्रमेजयं गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥

गया। ययाति ने पाँचों भार्या की रूखी की जीतकर पुत्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया॥३-४॥
 पश्चात् उसने वृषपर्वा नामक राक्षस की धर्मिष्ठा नामक पुत्री को पत्नी बनाया। यदुञ्चर्युर्वसु नामक दो पुत्र देवयानी से उत्पन्न हुए॥५॥ धर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनुञ्चर्युर्वसु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ययाति को द्रुह्य ने प्रथम होकर मन के वेग के समान वेग वाले तथा सदैव रग वाले दिव्य घोड़े से युक्त और परम प्रकाश से सुसोमित सुवर्ण-निर्मित रथ दिया॥६-७॥ उस रथ से युद्ध में अथर्व ययाति ने छह रात्रि में देवता और राक्षस उहित करूँ पुष्पी की जीत किया॥८॥ सवर्षवसु नामक बृह रथ कुद्विषयो के पास रहा। परन्तु पहाड़ परीक्षित के पुत्र—जनमेजय के समग्र बृह रथ महारथ गण के साथ से नष्ट हो गया॥९-१०॥ कदाचित् राजा जनमेजय द्वारा गण के पुत्र की हत्या हो जाने से उसे ब्रह्महत्या का दोष लग गया॥११॥ तब लोहगन्ध से युक्त राजा जनमेजय ऊपर-ऊपर भागने लगा। जनता ने उसका परित्याग कर दिया। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥१२॥ अतएव अपान्त, शन्तस्त राजा विप्रवर्ष शौनक के पास गया॥१३॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ शौनक ने राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ कराया॥१४॥ यज्ञान्ति में राजा का लोहगन्ध नष्ट हो गया। उस समय द्रुह्य ने सतुष्ट होकर यही दिव्यरथ राजा पश्चिमिदि (सिन्धु-यात्र) को दे दिया। उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया॥१५॥ अतएव बृह रथ बृहद्रथ के हाथ से बार्हद्रथ (जउधप) नामक राजा के हाथ में पड़ा॥१६॥ तब कुद्विषयी जीम ने जउधप को भारकर यही उत्तम रथ

१ ग य पू० २ ग ०म्। मत्स्यपुराण ३०। ३ ग ० न च दिव्यं। ४ ग मनोरथं। ५ ग ० न दिग्गवेन
 ७०। ६ ग नैर्विदेमहत्याकर०। ७ ग न कीरवाणी। ८ ग ० स्य विप्रेन्द्रः। ९ ग आक्रूर। ग आक्रूरः। १० ग.
 स। दुर्विषयपुत्री रा०। ११ ग होतार। ग इन्द्रावत्। १२ ग ० स केन्द्रेण यो०। १३ ग. यज्ञोत्तरे०।

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् । प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७॥
 सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् । विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥१८॥
 ययातिर्दिशि पूर्व्वस्यां यदं ज्येष्ठं न्ययोजयत् । मध्ये भुवं च राजानमभ्यदिञ्चत् ॥ नाहुपः ॥१९॥
 दिशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं सतिमाद्भुपः । तैरियं पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां सप्ततना ॥२०॥
 ययाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपात्यते । प्रजातयेया पुरस्तात् वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥२१॥
 धनुर्न्यस्य पुषकांश्च पञ्चभिः पुरुषपंभैः । जरावानभघट्टाजा भारमाधेय बन्धुपु ॥२२॥
 विशिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः । प्रीतिमानभवद्वाजा ययातिरपराजितः ॥२३॥
 एवं विभज्य पृथिवीं ययातियं द्रुमबन्धुत् । जरां मे प्रतिगृणीष्व पुत्र हृत्वाग्नरेण वै ॥२४॥
 तद्वत्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् । जरां त्वयि समापाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५॥

यदुक्त्वाच

अनिर्दिष्टा भया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिभृता । अनपाकृत्य तां राजस्र ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥
 जरायां बहवो दोषाः धानभोजनकारिताः । तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुक्तहे ॥२७॥
 सन्ति ते बहवः पुत्रा भक्तः प्रियतरा नृप । प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२८॥
 स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः । उवाच बर्ता श्रेष्ठो ययातिर्गर्ह्यन् सुतम् ॥२९॥

प्रीतिपूर्व्वकं वासुदेव (कृष्ण) को दिया ॥१६-१७॥ ययाति ने समूह सहित सप्तद्वीप वाली इस पृथिवी को जीतकर
 इसके पाँच भाग करने पुत्रों में बाँट दिया ॥१८॥ नहुप-पुत्र ययाति ने पूर्वे दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को निपुक्त किया,
 मध्य देश में राजा पुत्र का अभिषेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्व्वसु को दिया ॥१९॥ वे भाज भी
 नगर सहित इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का अपन-अपन प्रदेश में धर्मपूर्व्वक प्रतिपालन कर रहे हैं। मुनिवर । उनकी
 प्रजाओं का धर्म आगे चलकर बहेगा ॥२०-२१॥ धनुष और बाणों का त्याग कर पाँचों पुरुष-ज्येष्ठ पुत्रों को
 सब मार डाल कर राजा ययाति बुढ़ावस्था को प्राप्त हुआ ॥२२॥ उसको का त्याग कर अजेय राजा ययाति प्रव्रजता
 ॥ पृथ्वी का परिभ्रमण करना लगा ॥२३॥ इस प्रकार पृथिवी का विभाग करने ययाति ने अपने पुत्र यदु से कहा—
 'पुत्र ! मेरी बुढ़ावस्था को ग्रहण करो । मैं अपना बुढ़ावा तुम्हें देकर तुम्हारी युवावस्था को स्वयं लेकर वायस्विर से
 इस पृथिवी पर विचरण बहेगा।' पिता की बात सुनकर यदु ने उत्तर दिया ॥२४-२५॥

यदु बोला—मैंने अप्रवास्य भिक्षा देने के लिए एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी। राजन् ! उसकी पूर्ति किए बिना
 मैं अपना बुढ़ावा ग्रहण नहीं कर सकता ॥२६॥ राजन् ! खान-पान से उत्पन्न अन्न प्रकार के रोग बुढ़ावस्था में
 होते हैं। इसलिए मैं उसे ग्रहण करने का उत्साह नहीं दिखा सकता ॥२७॥ मुझसे बड़कर प्रिय भाइयों अन्न पुत्र हैं। हे
 धर्मज्ञ ! उनमें से किसी को आप उसकी जवानी लेने के लिए चुन लें ॥२८॥ यदु ने इस प्रकार बहने पर राजा क्रुपित
 हुआ। यकाजो में ज्येष्ठ ययाति ने पुत्र की शर्तना करते हुए कहा ॥२९॥

ययातिरुवाच

‘कञ्जाश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्वृद्धे यदहं तव देशिकः॥३०॥
 एवमुक्त्वा यदं विप्राः शशापेन स मन्यमान्। अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न’ संशयः॥३१॥
 द्रुह्यं च तुर्वंसं चेवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥३२॥
 शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। ययावत् कथितं सर्वं मयास्य द्विजसत्तमाः॥३३॥
 एवं शप्त्वा सुतान् सर्वाश्चतुरः पुरुषूर्ध्वजान्। तदेव वचनं राजा पुरुषस्याह भो द्विजाः॥३४॥
 तद्वनस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे॥३५॥
 स जरां प्रतिजग्राह पितुः पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पद्वं चरन् महीम्॥३६॥
 ‘स मार्गमाणः’ कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विश्वाध्या सहितो रेमे वने चंभरये प्रभुः॥३७॥
 यदा स तूतः कामेषु भोगेषु च नराधिपः। तदा पुरोः सकाशाद्धि रथां जरां प्रत्यपद्यत॥३८॥
 यत्र गायामुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वशोऽङ्गानि कूर्मवत्॥३९॥
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवत्संब भूय एवाभिवर्द्धते॥४०॥
 यत्पुत्रिभ्यां श्रीह्रियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नाल्मेकस्य तत्सर्वमिति कृत्वा न मुह्यति॥४१॥

ययाति बोला—दुर्वृद्धे! मेरा अनादर करने काँन ऐसा आधम या धर्म है, जिसका तुम आचरण करोगे? ‘क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूँ॥३०॥ विप्रवृन्द! ऐसा बहुर कोवी राजा ने यहु को शाप दिया—“मूर्ख! तेरी प्रजा, राज्यरहित होगी, इसमे कोई संदेह नहीं॥३१॥ द्विजवर! राजा ने इसी प्रकार द्रुह्य, तुर्वंसु और अनु से भी कहा और उन लोगों ने भी स्पष्ट अस्वीकार कर दिया॥३२॥ द्विजश्रेष्ठ! अनेक ययाति ने अत्यन्त जोष में आकर उन को भी वही शाप दिया। इनके बारे में मैंने सब कुछ धर्मार्थ कहा॥३३॥ पुरु से ज्येष्ठ चार पुरों को इस तरह शाप देकर राजा ने पुरु से भी कहा—“पुरु! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपनी बुढ़ाई तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण कर पृथिवी-मण्डल का चक्कर लगाऊँ॥३४-३५॥ प्रभाषी पुरु ने पिता की बुढ़ाई से ली। ययाति भी पुरु का रूप लेकर पृथ्वी पर बिचलने लगा॥३६॥ बामो का अन्त करने के विचार से राजा ययाति विरवाची के सम चैदर्य नामक वन में रमण करने लगा॥३७॥ पतलु जब बामो के योग से बह गुप्त नहीं हुआ, तब उसने पुरु से अपनी बुढ़ावस्था को लेकर उसकी जबानी ढीटा दी॥३८॥ मुनिश्रेष्ठो! उस समय राजा ययाति ने गाथाएँ, गानें, त्रिनारो सुनकर मनुष्य बामो को उगी प्रकार समुचित कर के जिस प्रकार बद्धूआ अपने अगा को सब आर से घेरेट लेता है॥३९॥ “बामो का उपभोग करने खूने से काम नहीं मिलता, बल्कि यी बालने से आप की तपह बह और भी बढ़ जाता है॥४०॥ पृथ्वी पर जिनन अन्न, सारा, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक आदमी के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए मनुष्य को मोह में नहीं पड़ना चाहिए॥४१॥ जिस व्यक्ति का मनका वाचा-कर्मणा प्राणिमान में

१ ग ग नराधिप। २ ग पुरुषूर्ध्वजान्। ३ स ०६ पुरु पुरुष०। ४ ग ०माणस्तदानीं मुपतो नृपत०।
 ५ ग स पुरो।

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥
 यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मात्त्र बिभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥
 यादुस्त्यजा दुर्मन्तिभिर्धानजीव्यन्ति जीव्यन्तः । योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुप्तम् ॥४४॥
 जीव्यन्ति जीव्यन्तः केशा दन्ता जीव्यन्ति जीव्यन्तः । घनाशाजीविताशा च जीव्यन्तोऽपि न जीव्यन्ति ॥४५॥
 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्येते नाहन्ति षोडशीं बलाम् ॥४६॥
 एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् । कालेन महता चार्यं चचार विपुलं तपः ॥४७॥
 भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः । अननन्दन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्सवान् ॥४८॥
 तस्य वंशे मुनिप्रेष्ठाः परञ्च राजर्षिसत्तमाः । यय्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्य्यस्मेव गमस्तिभिः ॥४९॥
 यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुष्वं राजसत्कृतम् । यत्र नारायणो भजे हरिर्धृष्णिगुलोद्बहः ॥५०॥
 सुख्यः प्रजावानामुत्मान् कौत्तिमाश्च भवेन्नरः । ययातिचरितं निरूपयिष्ये शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पाप-नाशना नदी होती, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है । ॥४२॥ जो न बिभी से डरता है, न वमी से कोई डरता है, न कुछ चाहता है और न बिभी से ड्रोह करता है, वही ब्रह्म में लीन होता है ॥४३॥ जो तृष्णा बुध्दिबानों से दुस्त्या-
 ण है, बुद्धावस्था के साथ बुद्ध नहीं होती और प्राणी का नाश करने वाला रोग है, उस तृष्णा को त्यागन में मुक्त
 मिला है ॥४४॥ शरीर के जीर्ण होने पर वेन और दौन जीर्ण हो जाते हैं, पर वन और प्राणा की आशा (शरीर
 के जीर्ण हो जाने पर भी) जीर्ण नहीं होती । ॥४५॥ लज्ज के जो काम-मुक्त है और जो स्वर्गीय महान् मुक्त है,
 के यह मुक्त तृष्णाक्षयसुख मुक्त के सोपानों हिस्से के बराबर भी नहीं है ॥४६॥ इस प्रकार बहुरात्र रात्रि ययाति
 वन में प्रविष्ट हुआ । दीर्घकाल तक उसने महान् तपस्या की ॥४७॥ तप के अन्त में पवन के गिरन
 पर निराहार पहर उठने शरीर को त्याग दिया । उस महायशस्वी राजाने पत्नी सहित स्वर्ग को प्राप्त किया ॥४८॥
 मुनिवर ! उसने वंश में राजर्षि-प्रेष्ठ हुए, जिनसे यह सूर्य्य पृथ्वी वैश्व ही ध्याष्ट हुई जैसे सूर्य्य
 की गिरणों से वह व्याप्त रह्यो है ॥४९॥ राजाओं से सहित यह वंश का नाम मैं बूँहा, जहाँ धृष्णिगुलु में रामानुज नाश-
 ण अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ आप लोग मुझे द्विजवर ! जो व्यक्ति इस ययाति-चरित का नियम यथन करेगा,
 वह स्वस्थ, प्रजावान्, आमुत्मान् और कौत्तिमान् होगा ॥-१॥

श्री ब्रह्मपुराण के चन्द्रवधवर्णन प्रथम म ययाति चरित निरूपण नामक द्वादशोऽध्याय समाप्त ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरवंश-वर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोवंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्थानोर्यदोदधेव तुवंसोऽथ पृथक् पृथक्॥१॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनिशादूजाः पुरोवंशं महात्मनः। विस्तरणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥

पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य^१ चात्मजः। राजा चाभयदो नाम^२ अनरयोरभवत् सुतः॥३॥

तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा^३ नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः॥४॥

रौद्राश्वस्य दशार्णवः^४ कृकण्येयुस्तत्तैव^५ च। कक्षेयुश्चष्टिलेयुश्च स्रस्तेयुस्तथैव च॥५॥

ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः^६। धनेयुश्च धनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥

भद्रा^७ शूद्रा च मद्रा च शलवा मलदा तया^८। शलवा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च॥७॥

तया गोविपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽग्निर्वशो च सासां भर्ता प्रभाकरः॥८॥

भद्रायां^९ जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्यं पतमाने दिवो महीम्॥९॥

अध्याय १३

पुर के वंश का वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा—सूतजी। पुर, द्रुह्य, अनु, यदु और तुवंसु के वंशों को हमलोग तरवपूर्वक पृथक्-पृथक् सुनता चाहते हैं॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिश्रेष्ठी। पहले आप पुरवंश का प्रथम विस्तृत वर्णन सुनिए, मैं वह रहा हूँ॥२॥ पुर के सुवीर नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र मनस्यु और मनस्यु का पुत्र अभयद नामक राजा हुआ॥३॥ इसी तरह अभयद का पुत्र सुधन्वा नाम का राजा हुआ। सुधन्वा का पुत्र सुबाहु और उसका पुत्र रौद्राश्व था॥४॥ रौद्राश्व के दशार्णव, कृकण्येयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, स्रस्तेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाबली स्थलेयु, धनेयु वनेयु—ये दश पुत्र थे। उरुकी कन्याएँ भी दस थी—॥५॥ भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलवा, मलदा, शलदा, नलदा, सुरसा, गोविपला और स्त्रीरत्नकूटा॥६॥ अग्नि-वश में उत्पन्न प्रभाकर नामक ऋषि इनका पति था॥८॥ भद्रा से यशस्वी सोम की उत्पत्ति हुई। राहु ने जब सूर्य को प्रथम लिटा और सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिराने लगे तब प्रभाकर ने ही अनेक से युक्त लोहा में प्रकाश डाला और

१ य मनस्यस्य०। २ य अनस्यस्यस्य०। ३ य न्वा च महीपति। सु०। ४ य दशार्णव। ग. दशार्णव। ५ क कृकणापु०। ६ य सनुते०। ७ य महायगा। ८ क ग वननित्यो। ९ क धनेयुश्च। १० ग द्रुहा। ११ य० पा। पान्गवलात०। १२ क शलदा। १३ क य वरदा। १४ ग रद्राया।

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता । स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः ॥१०॥
 वचनात्तस्य विप्रयेन पपात दिवो महोम् । अत्रिभ्योऽष्टानि गोत्राणि यद्वचकार महातपा ॥११॥
 'यज्ञेष्वग्नेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम् । स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान्' ॥१२॥
 दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युषे रतांस्तथा । ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगा ॥१३॥
 स्वस्त्याग्नेया इति ख्याता किञ्च त्रिघनवर्जिताः । वस्योस्तनवास्त्वातंस्त्रय एव गृह्यारयाः ॥१४॥
 सभानरद्वालुपद्वय परमन्यस्तयेव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५॥
 कालानलस्य धर्मजः सृञ्जयो नाम वै सुत । सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६॥
 जनमेजयो मुनिभ्योऽष्टा पुरञ्जयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राज्यमहाशालोऽभवत् सुत ॥१७॥
 रैवेयु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयज्ञा भुवि । महामना नाम सुतो महाशालस्य विभ्रुतः ॥१८॥
 जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामना । महामनास्तु पुत्रो द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९॥
 उशीनरञ्च धर्मजं तिसिञ्च महाबलम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजपिबंशजाः ॥२०॥
 नृगा कृमिर्नवा र्वर्वा पञ्चमी च दृषद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्भवाः ॥२१॥
 तपसा च महता ज्ञाता दृष्टस्य चात्मजा । नृगायास्तु नृग पुत्रः कृम्या कृमिरजायत ॥२२॥
 मवायास्तु नवः पुत्रो र्वर्वाया सुप्रतोऽभवत् । दृषद्वयास्तु सञ्जज्ञे शिविरीशीनरी नृप ॥२३॥

सूर्य से कहा—“तुम्हारा बत्थाण हो” ॥१-१०॥ उस विप्रिय के वचन से सूर्य पृथ्वी पर नहीं गिरे । उशी तपस्वी ने अत्रि के आश्रय नाम से विख्यात गोत्रों को बताया और यज्ञों में देवताओं के साथ अत्रि को भाग दिलाया ॥११॥
 उसने उन बत्थाओं से महाशरत्त्वशाही और तपस्या में निरत दस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे पुत्र वेदपारंगत, स्व-
 स्त्याग्नेय नाम से विख्यात, तीन प्रकार के यज्ञों से वर्जित और गोत्रवर्धक हुए ॥१२-१३॥ वस्यु के तीन ही
 गृह्यारयी पुत्र थे—सभानर चायुष और परमन्यु । सभानर का पुत्र कालानल विद्वान् तथा राजा था ॥१४-
 १५॥ कालानल का सृञ्जय नामक पुत्र धर्मज था । सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय वीर राजा हुआ ॥१६॥
 मुनिवर । पुरञ्जय के जनमेजय नामक पुत्र हुआ । राजपि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ ॥१७॥
 वह देवताओं में विख्यात और सत्कार में महाशरत्त्वशी हुआ । महाशाल के महामना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो
 देवताओं से पूजित तथा महावीर था ॥१८॥ विप्रवृन्द । महामना ने दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज उशीनर
 और महाबली तिसिञ्च । उशीनर की राजपिबंश में समुत्पन्न पाँच पत्नियाँ थी—॥१९-२०॥ नृगा कृमि, नवा,
 र्वर्वा और दृषद्वती । उशीनर ने उनसे वंश की कारण करन वाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ वरी तपस्या करने
 में बाद दृष्ट उशीनर के ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा से नृग कृमि से कृमि, नवा से नव और र्वर्वा से सुव्रत
 उत्पन्न हुए ॥२२॥ दृषद्वती से शिवि नामक औशीनर राजा की उत्पत्ति हुई । शिवि के शिवि नामक और दृष के मवाय

१ क. यज्ञे ह्यग्नेयेन च ० । २ क. अत्यजान्त्वहान् । ३ क. षवा । पुत्रयो ० । ४ क. षवाश्चामस्ते वपश्च
 म ० । ५ क. मनुज ० । ६ क. जन्मेज ० । ७ क. मना सुतो जने म ० । ८ क. स धामिक । ९ क. र्वर्वा । १० क. कृम्या ।
 ११ क. र्वर्वाया

शिवेस्तु शिवयो विप्रा योधेयास्तु नृगस्य ह। नवस्य 'नवराष्ट्रन्तु क्रमेस्तु 'क्रमिला पुरी ॥२१॥
 सुप्रतस्य 'तथाभ्यष्टा' शिविपुत्राशिवोद्यत। शिवेस्तु शिवय' पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥२५॥
 नृपदर्भ' सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥
 वृषदर्भा 'सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा'। नितिसुरभवंद्राजा पूर्वस्यां दिशि भो द्विजा ॥२७॥
 उपद्रयो महावीर्यं' फेनस्तस्य सुतोऽभवत्। फेनस्य' सुतया जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥
 जातो मानुषयोनि तु स राजा काञ्चनेपुवि'। महायोगी स तु बलिवंभूव नृपतिः पुरा ॥२९॥
 पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्ग प्रथमतो जज्ञे बङ्गः सहास्तयेव च ॥३०॥
 पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं' क्षत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा' भुवि ॥३१॥
 बलेश्च ब्रह्मणा वत्सो वर' प्रीतेन भो द्विजा। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणत ॥३२॥
 'यत्ने चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वायं दर्शनम्। संप्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मं चैव प्रधानताम् ॥३३॥
 त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं' प्रसवे तथा। चतुरो नियतान् घर्णास्त्वञ्च स्थापयितेति ॥३४॥
 इत्पुत्रो विभुना राजा बलिः क्षान्तिं परां ययौ। कालेन सहता विप्राः' स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

नामक पुत्र उत्पन्न हुए। नव वन राष्ट्र नव नामक वा और क्रम की राजधानी क्रमिला पुरी नाम से
 विख्यात थी ॥२१-२५॥ सुप्रत के अभ्यष्ट नाम से ख्यात पुत्र हुए। अब शिव के पुत्रों के नाम सुनिधे।
 शिवि के शिवि सभा वाले चार पुत्र लोक में प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ जिनका नाम वृषदर्भ, सुवीर, केकय और
 मद्रक है। उनके धन पाय-मपन्न देश केकय, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रजायें तितिक्षु
 की हैं ॥२६॥ विप्रवृद्ध। तितिक्षु पूर्व दिशा का राजा हुआ। उसका पुत्र महाशक्तिशाली उपद्रव हुआ। उपद्रव
 के फेन नामक पुत्र हुआ। फेन के सुतपसा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपसा से बलि की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥
 सुवर्ण का तरुका धारण करने वाला राजा बलि अनुष्य-योनि में उत्पन्न हुआ। वह राजा बलि महायोगी था ॥२९॥
 उग्रने भग, वग गृह्य, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामक वंश की बढ़ाने वाले पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। यह प्रसिद्ध क्षत्रिय-
 वंश बालिय नाम से कहा जाता है। बलि के वंश में बालिय नाम से ख्यात ब्राह्मण भी पुत्र हुए ॥३०-३१॥ द्विजगण।
 ब्रह्मा न प्रभुम होकर बलि को वरदान दिया—'राजन्। तुम महायोगी होगे, एक कल्प की तुम्हारी आयु होगी ॥३२॥
 बल म तुम्हारे समान कोई नहीं होगा, तुम धर्म के तत्व को आगे बढ़ाने वाले होगे, युद्ध में तुम्हें कोई नहीं जीत देगा
 धर्म में तुम्हारी प्रधानता रहेगी ॥३३॥ तुम तीनों लोक के दर्शन करोगे। तुम्हारे पुत्रों की स्थापति दैवी और
 तुम चारों घर्णों की स्थापना करोगे ॥३४॥ इस प्रकार ब्रह्मा ने कहने पर राजा बलि परम क्षान्ति को प्राप्त हुआ।
 विप्रवृद्ध। चिरकाल के बाद राजा अपने स्थान पर आया ॥३५॥ उससे पुत्रों के देश भग, वग, गृह्य, कलिङ्ग और

१ क ०राष्ट्रान्तु ह०। २ क इधिया। ३ स ०या त्सेष्टा दि०। ४ क वृषदर्भ। ५ क वृषदर्भा।
 ६ स ०या। तितिक्षु। ७ ०या। तितिक्षुवोद्य०। ८ क ०यं द्यास्त०। ९ क बली। १० क बालेय।
 ११ क ०गगुद्रवा। ब०। १२ क व' चाप्रतिम तस्य तथा धर्मायचितनम्। १३ क ०यं सर्वतन्मता।
 १४ स विप्रा वंशका०।

तेषां जनपदाः पञ्चभङ्गा बङ्गाः ससुहाकाः । कालिङ्गाः पुण्ड्रकादृचं प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥
 भङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः । दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरयोऽभवत् ॥३७॥
 पुत्रो दिविरयस्यासीच्छयस्तुत्यपराक्रमः । विद्वान् धम्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥३८॥
 तेन धम्मरथेनाय तदा कालञ्जरे गिरौ । यजता सह क्षत्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥३९॥
 अयं चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् । लोमपादः इति ह्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥४०॥
 तस्य बाशरथिर्वारश्चतुरङ्गो महायशः । ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वशविवर्द्धन ॥४१॥
 चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः । पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशः ॥४२॥
 चम्पस्य तु पुरो चम्पा या मालिन्ध्रभवत् पुरा । पूर्णभद्रप्रसादेन हर्ष्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४३॥
 ततो वैभाण्डकिस्तस्य धारण शक्रधारणम् । अवतारयामास महौ मन्त्रं ब्राह्मणमुत्तमम् ॥४४॥
 'हर्ष्यङ्गस्य' सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः । पुत्रो भद्ररथस्यासीद्वृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥४५॥
 वृहद्वर्धनः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मना । बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥४६॥
 नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्वृहदरथो नृपः । आसीद्वृहदरथस्यापि विद्वज्जिज्जमनेधो ॥४७॥
 दामादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः । तस्य पुत्रशतं स्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥४८॥
 एतेऽङ्गवशजा सप्ये राजानः कीर्तिता भवा । सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥४९॥

पुण्ड्रक नाम ते विश्वात है । जब अग की सतान का वर्णन सुनिये ॥३६॥ अग का पुत्र महान् राजा दधिवाहन
 मः । दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरथ हुआ ॥३७॥ दिविरथ का पुत्र इन्द्र के सुपुत्र पराक्रमी था ।
 'वधवा' पुत्र विद्वान् धर्मरथ था । धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ था ॥३८॥ कालञ्जर नामक पहाड़ पर इन्द्र के धाम
 यम के रहने हुए धर्मरथ ने सोम (अमृत) का पान किया ॥३९॥ चित्ररथ का पुत्र दशरथ हुआ, जिसकी स्वाति
 लोमपाद नाम से थी, और जिससे शान्ता नामक बच्चा हुई ॥४०॥ ऋष्यशृङ्ग मुनि की कृपा से दशरथ के
 चतुराग नामक महायशस्वी और वध-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ चतुराग के पृथुलाक्ष नामक पुत्र
 हुआ । पृथुलाक्ष का पुत्र महायशस्वी चम्प हुआ ॥४२॥ चम्प ने मालिनी पुरी का नाम चम्पा रख दिया ।
 पूर्णभद्र मुनि की कृपा से चम्प के हर्ष्य नामक पुत्र हुआ ॥४३॥ उसी के समय वैशम्पति (ऋष्यशृङ्ग मुनि) ने
 मन्त्रा के बल से इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी को पृथ्वी पर उतारा था ॥४४॥ हर्ष्य का पुत्र राजा मद्रथ हुआ ।
 मद्रथ का पुत्र प्रजापति का स्वामी बृहत्कर्मा था ॥४५॥ बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्वर्धन और उनका पुत्र बृहन्मना
 था । रामेश्वर बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे वृहद्वर्धन नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥४६॥
 इन्द्र के पुत्र विद्वज्जिन् का नाम सुवन्दन रोग कापने से । उसका पुत्र वैकर्ण और वैकर्ण का पुत्र विकर्ण था ।
 उदरु तो पुत्र से, ओ अग-वध की बढ़ाने वाले हुए ॥४७-४८॥ अग-वध य उत्पन्न सत्यवर्ती, महात्मा, प्रजावान्

ऋचेषोस्तु मुनिधेष्ठा रोद्रादवतनयस्य वै । शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो, द्विजाः ॥५०॥
 ऋचेषोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः । मतिनारसुतारत्वात्सरश्चः परमधार्मिकः ॥५१॥
 वसुरोधः । प्रतिरथः । सुबाहुश्चैव धार्मिकः । सध्वं वेदविदश्चैव ब्रह्मण्या । सत्यवादिनः ॥५२॥
 इला नाम तु यस्यासौत् बन्धा वै मुनिसत्तमाः । ब्रह्मवादिन्यधिरात्री सा तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥५३॥
 तंसोः सुतोऽयं राजर्षिर्धर्मनेत्रः प्रतापवान् । ब्रह्मवादी पराश्रान्तस्तस्य भार्योपदानधी ॥५४॥
 उपदानयो ततः पुत्राश्चतुरोऽज्जनयच्छुभान् । दुष्यन्तमथ सुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५॥
 दुष्यन्तस्य तु बायादो भरतो नाम धीर्यवान् । स सध्वं दमनो नाम नागायुतदलो महान् ॥५६॥
 धर्मवर्त्तो सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः । शत्रुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७॥
 भरतस्य विमरटेषु तनयेषु महीपतेः । मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥५८॥
 बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विश्वो महामुनिः । अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः यत्तुभिर्विभुः ॥५९॥
 पूर्व्वं तु वितथे तस्य हृते वै पुत्रजन्मनि । ततोऽयं दितयो नाम भरद्वाजासुतोऽभवत् ॥६०॥
 तथोऽयं वितथे जाते भरतस्तु दिवं दधौ । वितथं चाभियिध्याय भरद्वाजो धनं दधौ ॥६१॥
 स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास दध्व वै । सुहोत्रश्च सुहोतारं गर्भं तर्पय च ॥६२॥

कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् । काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥६३॥
 तथा गृत्समतेः पुत्रो ब्राह्मणः क्षत्रिया विशः । काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
 बभूव दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिः सुतः । घन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विभ्रुतः ॥६५॥
 तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः । पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
 दिवोदास इति क्वातः । सत्वंशत्रुप्रणाशनः । दिवोदासस्य पुत्रस्तु । वीरो राजा प्रतर्दनः ॥६७॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वो वत्सो । भार्गव एव च । अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् । भुवि ॥६८॥
 हृह्यस्य तु । दायाद्यं । हृतवान् वै महोपतिः । आजह्मे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं ब्रह्मात् ॥६९॥
 भद्रश्रेष्ठस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०॥
 अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै । तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
 वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधितस्ता । अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
 पटिं वर्षसहस्राणि पटिं वर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्बहः ॥७३॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप । सः । वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
 रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः । अलर्कस्य तु दायाद्व क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
 क्षेमकस्य तु पुत्रो वै । अर्षकेतुस्ततोऽभवत् । वर्षकेतोश्च दायादो विभ्रुर्नाम प्रजेदवरः ॥७६॥

वे दो पुत्र हुए—सत्यवादी काशिक और राजा गृत्समति ॥६१-६३॥ गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हुए । काशिक के दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ दीर्घतपा के विद्वान् घन्वन्तरि पुत्र हुआ । घन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६५॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ । भीमरथ का पुत्र काशीपुरी का स्वामी हुआ, जो दिवादास नाम से प्रख्यात और सब शत्रुओं का विनाशक था ॥६६॥ दिवोदास का पुत्र राजा प्रतर्दन था । प्रतर्दन के दो पुत्र थे—यत्स और भार्गव ॥६७॥ यत्स का पुत्र अलर्क बहुत बुद्धिमान् राजा हुआ । राजा (दिवोदास) ने हृह्य की पितृ-सपत्ति छीन ली ॥६८॥ भद्रश्रेष्ठ के दुर्दम नाम से क्वात पुत्र ने, जिसको दिवोदास ने बालक जानकर वधवाश छोड़ दिया था, दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये अपने पितृ घन पर फिर अविचार कर दिया ॥६९-७०॥ भीमरथ के पुत्र का नाम अष्टारथ भी था । उसके पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश करते हुए फिर अपना पितृ-धन प्राप्त कर लिया ॥७१॥ काशिराज अलर्क, जो ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था, छान्छ हजार वर्ष तक युवक ही बना रहा ॥७२-७३॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी । मुनिवर ! आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने क्षेमक नामक राजसूय को मास्कर रमणीय काशीपुरी को फिर से वधायी ॥७४॥ अलर्क का पुत्र क्षेमक नामक राजा हुआ । क्षेमक का पुत्र वर्षकेतु हुआ । वर्षकेतु का पुत्र विभ्रु नामक प्रजापति

१ व काशिक । २ व गृत्समति । ३ क गृत्समते । ४ व काशिकस्य । ५ व यत्स । ६ क्वातो रोगदुष्टनिवर्हण । ७ क सत्वंशत्रुप्रणाशनः । ८ क पुत्रोऽमूदीरो । ९ क केतु सत्यवादी प्र० । १० क वत्सो । ११ क मानसि । १२ क व दायादो । १३ क च कृत० । १४ क वाप्तवान् । १५ क पुन । १६ क तु दायादो व० । १७ क केतुर्महोपतिः व० ।

आनतस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत् । सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथ ॥७७॥
 सुतोऽभवमहातेजा राजा परमधार्मिक । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु^१ भार्गवात् ॥७८॥
 एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वशेऽथ भार्गवे । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तमा ॥७९॥
 आजमीढोऽपरो वश धृतता द्विजसत्तमा । सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहत्स्तनधास्त्रय^२ ॥८०॥
 अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् । अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो^३ वै वशसन्विता ॥८१॥
 नीलो^४ च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना । अजमीढस्य^५ केशिया जने जह्नु प्रतापवान् ॥८२॥
 आजह्ने यो महासन्न श्वत्वमेधमल्ल विभुम् । पतिलोभेन य गङ्गा विनीतेष ससार ह् ॥८३॥
 नेच्छत प्लावगामास तस्य यङ्गा च सरसः । ततया प्लावित वृष्टवा पञ्चवाट समन्तत ॥८४॥
 जह्नुष्यबबोदगङ्गा कुट्टो विप्रास्तदा नृप । एष ते त्रिषु लोकेषु सक्षिप्याप पिबाम्यहम् ॥८५॥
 अस्य गङ्गोऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि । तत पीता महारमानो वृष्टवा गङ्गा महवय ॥८६॥
 उपनिष्पुमहाभागा कुहितृवन जाह्नुबोम् । युवनाश्वस्य पुत्रीं तु काचेरीं जह्नुराग्रयहत ॥८७॥
 गङ्गाशापेन बेहाई^६ यस्या पश्चात्तद्वीकृतम् । जह्नुस्तु दयित पुत्रो अजको नाम वीर्यवान् ॥
 अजकस्य तु बापादो घलाकाशवो महोपति ॥८८॥
 शबूव मुगधानील^७ कुशिकस्तस्य चात्मज । पल्लवं सह सवृद्धो राजा यनचरं सह ॥८९॥

हुआ ॥७५ ७६॥ विभु वा पुत्र आनत अर् उत्तम पुत्र सुकुमार हुआ । सुकुमार वा पुत्र महारथी महातजस्वी अर् परमधर्मी राजा सत्यकेतु हुआ ॥७७॥ वत्सभूमि से वत्स अर् भार्गव स भर्गभूमि उत्पन्न हुआ ॥७८॥ मुनिश्रेष्ठो । भार्गव-जन म य सब अगिर के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए ॥७९॥ द्विजश्रेष्ठो ! अब आजमीढ नामक दूसरे वा के विषय मे आप लोग सुनिये । सुहोत्र न यहत नामक पुत्र हुआ । बहू न तीन पुत्र थे—अजमीढ द्विमीढ अर् क्षत्रिसम्पन्न पुरुमीढ ॥८०॥ अजमीढ की तीन शक्तिवती एव सुदरी पत्नियाँ थीं—नीला बैगिनी और धूमिनी ॥८१॥ बैगिनी से प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ जिसने सबसभ सामन मन्त्रण किया अर् जिसने पाद पति के लोभ से (अर्थात् स्वामी बना के लिए) गंगा मानो विनीत होकर गई य ॥८२ ८३॥ गंगा न पत्नी रूप म न स्वीकार करन पर गंगा ने जह्नु के श्वत्त्व-मेल की दुबो लिया । विप्रवृत् । चार। तरफ म यज्ञ-मयल की जलमय देतकर ज न गंगा से बहा—अभी मैं तीना लोको म तरे जह्नु की बध करन पी जाता हूँ । गये । ॥ अपन इस बम का तत्वांश फल पा ॥ तदुपराय महामा महोपति न विप्री हुई गंगा की देवदर उसने जह्नु की पुत्री बना लिया । जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री काचेरी स विवाह किया जिसका माया शरीर गंगा न पाप से नष्ट बन गया था । जह्नु न अजक नामक शक्तिमय पुत्र हुआ । अजक वा पुत्र राजा बलाशिव गिरार मेल्न म आसक्त था । उग्ररा पुत्र राजा कृतिह हुआ जो पल्लव गणत बनकरा क साथ पाला-मोछा गया था ॥८८ ८९॥ कृतिह न दंड न समन पराजयो पुत्र को प्राप्न करन के

१ न ०म्बु प्यवनो नाम भार्गव । ए० । २ न ०यास्त । अ० । ३ न ०श्री रूपगणान्वि० । ४ न ०नीलिनी के० । ५ न ०श्वय पत्नस्तु जह्नु-जन प्र० । ६ न ०मेव महारथ । प० । ७ य तस्य । ८ न ०हाषादाय प० । ९ न ०हुता । अ० । १० क निपा ।

कुशिकस्तु तपस्तेपे। पुत्रमिन्द्रसमं विभुम्। लभेयमिति तं—शक्रस्त्रासादभ्यस्य जनिवान्॥९०॥
 स गाधिरभवद्राजा मधवा कौशिकः स्वयम्। चिद्वामित्रस्तु माधयो विश्वामित्रात्तयाष्टकः॥९१॥
 अष्टकस्य सुतो लोहिः प्रोक्तो ज गणो मया। अजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः॥९२॥
 अजमीढात् नौल्यां धं सुशान्तिरुदपद्यत। पुरुजातिः सुशान्तश्च बाह्यादवः पुरुजातितः॥९३॥
 बाह्यादवतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः। मुद्गलः सूञ्जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तया॥९४॥
 यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्चैव पञ्चमः। पञ्चैते रसणायालं देशानामिति विश्रुताः॥९५॥
 पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः। अलं संरक्षणं तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः॥९६॥
 मुद्गलस्य तु बायादो मोद्गलस्यः सुमहायशाः। इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्च प्रत्यपद्यत॥९७॥
 आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सूञ्जयस्य महात्मनः। सुतः पञ्चजनस्यापि सोमवत्तो महीपतिः॥९८॥
 सोमवत्तस्य बायादः सहदेवो महायशः। सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः॥९९॥
 अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः। सोमकस्य सुतो जन्तुस्य पुत्रशतं जम्भो॥१००॥
 तेषां पवीयान् पृथतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः। अजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मास्तु सोमकाः॥१०१॥
 महिषो त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रपुद्गिनी। पतिव्रता महाभावा कुलजा मुनिसत्तमाः॥१०२॥
 सा च पुनायिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता। ततो धर्यायुतं तपसा तपः परमबुधचरम्॥१०३॥

लिए तपस्या की। इन्द्र डर कर स्वयं उसका पुत्र बन गये और गाधि नाम से प्रख्यात हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के अष्टक नामक पुत्र हुआ॥९०-९१॥ अष्टक का पुत्र लोहि नाम से ख्यात हुआ। मुनिप्रेम्हो! मैंने अङ्गु-गण को बतला दिया। अब अजमीढ का वंश-वर्णन मुनिये॥९२॥ अजमीढ से नीली में सुरान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुरान्ति से पुरुजाति और पुदजाति से बाह्यादव की उत्पत्ति हुई॥९३॥ बाह्यादव के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, सूञ्जय राजा बृहदिपु, पराक्रमी यवीनर और पाँचवाँ कृमिलाश्च॥९४॥ ये पाँचो देशो की रक्षा करने में समर्थ थे। उन पाँचों के पञ्चाल देश जनपदो से आवृत तथा समृद्ध थे। उनकी रक्षा करने में समर्थ होने के कारण ये देश पञ्चाल नाम से प्रसिद्ध हुए॥९५-९६॥ मुद्गल का पुत्र महायशस्वी मोद्गल्य हुआ, जिससे इन्द्रसेना में ब्रध्नद्व नामक पुत्र की उत्पत्ति बिया (?)॥९७॥ महात्मा सूञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ। पञ्चजन का पुत्र राजा सोमवत् और उसका पुत्र महामयशस्वी सहदेव हुआ॥९८॥ सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रख्यात हुआ। वंश के क्षीण होने पर अजमीढ के सोमक नामक पुत्र हुआ॥९९॥ सोमक के जन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे॥१००-१०१॥ उनमें मुक्क पृथत केद्रुपद नामक पुत्र हुआ। ये सब महात्मा सोमक के पुत्र अजमीढ-वंश के कहलाये॥१०१॥ मुनिवर! अजमीढ की धूमिनी नामक पत्नी पतिव्रता, कुलीन और महाभाग्यशालिनी थी॥१०२॥ पुत्र की आकांक्षा से धूमिनी न व्रत-विषमार्थ से समन्वित होकर दस हजार वर्षों तक उग्र तपस्या की॥१०३॥ वह

१ क ० पे रम्भमिन्द्रपद प्रभु। ७०। २ क यो राजा विश्वरथस्तथा। ३ ख अलकस्य। ४ स ग ण्या। अज०। ५ क ख नीलिन्या सु०। ६ क ० जानिसु०। ख ० जातिमुशान्ते च बा०। ७ क बाह्यादव। ८ ख ० हास्य पुरजातिजा। बाह्यादव तनया पश्च बभ्रुमुरमरीमा। म०। ९ क बाह्यस्य त०। १० क ०ञ्च बभ्रुमुरमरीमा। म०।

हृत्त्वानिं विधिवत्सा तु पवित्रामितभोजना । अग्निहोत्रकुशोद्येव सुध्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४॥
 धूमिन्या ॥ तथा देव्या त्वजमोढः समीयिवान् । ऋक्षं सञ्जनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम् ॥१०५॥
 ऋक्षात् संवरणो जने कुरुः संवरणात्तया । यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥१०६॥
 पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निर्पेषितम् । तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाय कौरवाः ॥१०७॥
 कुरोश्च पुत्रादचत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा । परीक्षितश्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८॥
 परीक्षितस्तु दायदो धार्मिको जनमेजयः । श्रुतसेनोऽप्सेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥१०९॥
 एते सर्वे महाभागा विश्रान्ता बलशालिनः । जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरयो मतिमांस्तथा ॥११०॥
 सुरयस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जने विदूरयः । विदूरयस्य दायद ऋक्ष एव महारयः ॥१११॥
 द्वितीयस्तु भरद्वाजात्मा तेनेव विभूतः । द्वावृक्षौ सोमवंशोऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥११२॥
 भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयो । ऋक्षश्च तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३॥
 प्रतीपो भीमसेनात् प्रतीपस्य तु शान्तनुः । देवापिर्बाहिलकश्चैव त्रय एव महारयाः ॥११४॥
 शान्तनोरवभवद्भीष्मस्तस्मिन्वंशे द्विजोत्तमाः । बाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंश श्रुणुत भो द्विजाः ॥११५॥
 बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशः । जमिरे सोमदत्तात् भूरिभूरिभवा शलः ॥११६॥
 उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभयन्मुनि । ऋष्यवनपुत्र कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७॥

अग्निं म हवनं कर्त्ता, पवित्रता से रहती परिमित भोजन करती और अग्निहोत्र के कुशोपर ही सीती थी । एक समय राजा न धूमिनी से रागम विद्या, जिससे सुन्दर धूमवर्ण वाला ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१०४॥ १०५॥ राजा के संवरण नामक पुत्र हुआ और संवरण से कुरु की उत्पत्ति हुई । कुरु ने प्रयाग से जाकर पवित्र, सुन्दर तथा धर्मरत्ना व्यक्तिद्वों से श्रुतेवित कुशोत्र का निर्माण किया ॥१०६॥ उसने महान् बल म उत्पन्न लीक और व नाम से विख्यात हुए ॥१०७॥ कुरु के चार पुत्र थे—सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित और अरिषजय ॥१०८॥ परीक्षित का धर्मरत्ना पुत्र जनमेजय था, श्रुतु श्रुतसेन अप्सेन और भीमसेन भी (उनके) पुत्र थे ॥१०९॥ ये सब बड़े क्षत्रिय, य—यान् तथा पराक्रमी थे । जनमेजय का पुत्र बुद्धिमान् सुरय था ॥११०॥ सुरय के विदूरय नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ । विदूरय के महारवी पुत्र का नाम ऋक्ष था ॥१११॥ ऋक्ष नाम से ही प्रशिद्ध दूधरा अर्थात् मरुद्वाज से उत्पन्न हुआ था । सोमदत्त म द का ऋक्ष और दो परीक्षित उत्पन्न हुए थे ॥११२॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय भी हुए थे । द्वितीय क्रम के भीमसेन नामक पुत्र हुआ ॥११३॥ भीमसेन से प्रतीप और प्रतीप से धान्तनु दायिप और बाह्लिक—ये तीन ही महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११४॥ विप्रवर । उद्य बध ॥ धान्तनु से भीम उत्पन्न हुआ । द्विजगण । अब राजा बाह्लिक का वध-वधन सुनिय ॥११५॥ बाह्लिक का पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुआ । सोमदत्त से भूरि भूरियका और शल की उत्पत्ति हुई ॥११६॥ मुनि देवापि देवाभा का उपाध्याय हुआ ।

१ क ० विप्रवा ५० । २ क ० विप्रवि ० । ३ ग सुदर्शन । ४ क ग ० तन । ५ । ५ क परीक्षितो । ग परीक्षित । ६ ग जनमेजय । ७ ग पुत्रो समुत्पन्नः । ग पुत्रो तु मु० । ८ ग धन । ९ ग ग महायशः । १० क ग ० यस्तव इन्द्रात् नाम्ना । ११ क ० ग्मिन्विश्वानी द्विजमतीया । भी० । १२ क ग पात । १३ क ० नद्वार्गीनाम० । १४ क ० तु हविर्भूरि । १५ ग ० वन पुत्रः । १६ ग इन्द्रात् अर्थात् महात्मनि । दा० ।

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः। शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८॥
 गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः। स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥११९॥
 काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भो द्विजाः। शान्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मतिमानमकल्मषम् ॥१२०॥
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव शत्रे धैवित्रवीर्यके। धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजो जनतु ॥१२१॥
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्या पुत्रानुत्पादयच्छतम्। तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः शत्रुर्वैरवामपि स प्रभुः ॥१२२॥
 पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः। अभिमन्युः परीक्षितस्तु पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३॥
 पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्भववतु। चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्यपीडश्च भोक्षवित् ॥१२४॥
 चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि पतिश्रुतम् ॥१२५॥
 तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसाह्वये। सत्यकर्णो महाबाहुर्धनश्च विपुलदक्षिणः ॥१२६॥
 सत्यकर्णस्य दायाद इवेतर्कः प्रतापवान्। अपुनः स तु धर्मतिमा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७॥
 तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत। सुचारोर्द्वहिता सुधूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८॥
 सम्भूते स च गर्भे य इवेतर्कः प्रजेदवरः। अन्वगच्छत् दृष्ट पृथ्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९॥
 सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च ललिनीपृच्छतोऽज्यगात्। सुचारोर्द्वहिता साध्वी धने राजीवलोचना ॥१३०॥
 पयि सा सुपुत्रे बाला सुकुमार कुमारकम्। तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत ॥१३१॥

अथ वन मुनि के कृतक नामक पुत्र के साथ इसकी निजता थी ॥११७॥ कौरवा में राजा शान्तनु बड़ा प्रतापी हुआ। उसने त्रैलोक्य में प्रयात वंश का वर्णन मैं कर्षणा ॥११८॥ उसने देवव्रत नामक पुत्र को गंगा में उत्पन्न किया। देवव्रत पाण्डवों का पितामह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥११९॥ द्विजगण। काली न धर्मतिमा, निष्पाप तथा प्रियपुत्र विचित्रवीर्य को शांतनु से उत्पन्न किया ॥१२०॥ वैदव्यास न विचित्रवीर्य की पत्नी में धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया ॥१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी में सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ॥१२२॥ पाण्डु का पुत्र धनञ्जय (अर्जुन) हुआ और उसका पुत्र साम्ब (अभिमन्यु)। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित और पारिक्षित का पुत्र पारिक्षित (जन्मेजय) हुआ ॥१२३॥ पारीक्षित न काश्या से दो पुत्र उत्पन्न किये—राजा चन्द्रापीड और मोक्षक सूर्यपीड ॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनूर्धारी सा पुत्र हुए जिनका जन्मेजय नाम से प्रसिद्ध क्षत्रियवध सक्षार में प्रचलित हुआ ॥१२५॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ सत्यकर्ण, जो बहुत दक्षिणा देन वाला, यज्ञ करने वाला और पराक्रमी था वाराणसी पुरी में नास करता था ॥१२६॥ सत्यकर्ण के इवेतर्क नामक प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मतिमा सत्यकर्ण पुत्र की अभिलाषा से तपोवन में पत्नी सहित प्रविष्ट हुआ ॥१२७॥ वन में यदुवंशी सुभाम की मालिनी नामक सुन्दरी कन्या ने उससे गर्भ धारण किया ॥१२८॥ गर्भ प्रकाशित होने पर राजा इवेतर्क स्वर्ग गे। मात्रा करने लगा ॥१२९॥ मालिनी न भी पति का अनुगमन किया। वन में (जाती हुई) कमलनयना पतिव्रता मालिनी ने मार्ग में सुगोमल बालक को प्रयत्न किया ॥१३०॥ बालक को वही पर छोड़कर वह महामाया मालिनी राजा के पीछे-पीछे उसी प्रकार चलने लगी जिस प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने अपने पतियों के

पतिव्रता महाभागा 'द्रौपदीव' पुरा सती। कुमारः^१ सुकुमारोऽसौ 'मिरिपृष्ठे' रुरोद ह^२॥१३२॥
 दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः। श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ 'वैष्णवादि' और कौशिकः॥१३३॥
 दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्यती प्राशस्त्ययतां जले। निघृष्टौ तस्य पार्वो^३ तु शिलायां रुधिरप्लुतो^४॥१३४॥
 अजश्यामः^५ स पार्वाम्यां^६ घृष्टाम्यां सुतामाहितः। अजश्यामौ तु तत्पार्श्वो^७ देवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥
 अयाजपारवं इति वे चक्राते नाम तस्य तौ। स तु रेमकशालाया द्विजाम्यामभिर्वाद्धतः॥१३६॥
 रेमकस्य ॥ भार्या तमुद्रहत् पुत्रकारणात्। रेमत्या स तु पुनोऽभूद्राहाणौ सचिवौ तु तौ॥१३७॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्सुखजीविनः। स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥
 इलोकौघि चान्न गौतोऽयं नाहुयेन ययातिना। जरासंक्रमणे पूर्व्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
 अजन्मार्कप्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम्। अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥
 एष च पौरवो वंशो विलघातः कथितो मया। तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि ब्रुहोदवानोर्म्योस्तथा॥१४१॥
 तुर्व्वसोऽस्तु सुतो बह्निर्गोभानुस्तस्य घात्मजः। गोभानोस्तु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
 कर्ण्यमस्तु ऐशानोर्म्यस्तस्य घात्मजः। अग्न्यस्तवाविकितो राजा भरतः कथितो मया॥१४३॥
 अनरपोऽभवद्वाजा यज्वा विपुलदक्षिणः। बुहिता संयता नाम तस्यासौत् पमिदीपते॥१४४॥

पीछे-पीछे स्वर्ग का प्रस्थान किया था॥१३१३॥ वह सुकोमल बालक पर्वत-गुप्त पर रोने लगा। उसके ऊपर दया करने के लिये मेघ बहनें प्रादुर्भूत हुए॥१३२३॥ श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—वैष्णवादि और कौशिक॥१३३॥ दोनों व्यक्तिपौ ने सब प्रभूत बालक को देखकर दया से द्रवित हो उसे जल से धो डाला। बालक के दोनों पार्वं दिला पर जिस जाने के कारण शोणित से रक्त-मय हो गये॥१३४॥ पार्वं के जिस जाने पर देव सयोग से पार्वंस्तहित उसका शरीर बकरे के समान बाला पड़ गया॥१३५॥ इसलिए उन दोनों व्यक्तिपौ ने उसका नाम 'अजपारवं' रख दिया। रेमक मुनि के आश्रम मे उन दोनों ब्राह्मणों ने उसका पालन-पोषण किया॥१३६॥ रेमक की पत्नी ने अपना पुत्र बनाने के लिए उसे पाला। अत रेमकी का वह पुत्र कहलाया और वाना ब्राह्मण उसने मंत्री बने॥१३७॥ उनके पुत्र और पौत्र भी एक जैसे जीवन धारण करने वाले हुए। यही महात्मा पाण्डव का पौरव वंश है॥१३८॥ इस वंश के बारे मे बृहन्नल्या से पूर्व नहुप-मुत्र ययाति ने एक शापा बही थी कि "कदाचित् पुष्पी सूर्य-वन्धमा से रहित होगी सती है, पर पौरव वंश से रहित नहीं हो सकती"॥१३९-१४०॥ यह प्रसिद्ध पौरव वंश मैंन कहा, अत्र तुर्व्वमु, द्रुह्यु, अग्न और यदु का वंश-वर्णन करेगा॥१४१॥ तुर्व्वमु का पुत्र बह्नि और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र ऐशानु नामक अजय राजा हुआ॥१४२॥ ऐशानु का पुत्र कर्ण्यम और उसका पुत्र भरत हुआ। दूसरे अवस्थित के पुत्र राजा भरत का वंशन पटले ही किया जा चुका है॥१४३॥ यज्वा के तालान न पर। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किये, बहुत सी दक्षिणा दी। यज्वात् उसने सयना नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे उसने सवर्न नामक महात्मा

१ ग ०पती च पु०। २ स ०दी च पुरातनी। ३ उ ३स कुमार। ४ स विरिजुम्भे। ५ क ह। पारवं-
 तस्तस्य। ६ स ०पन्यादि। ७ क ख त। ८ क रुधिरौक्षी। ९ ग ०श्यामस्य पा०। १० क ०श्याम्या-
 मुमाभ्या।

दक्षिणायं तु सा दत्ता सवर्त्तयि महात्मने । दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥
 एव यथातिशयेन जरासकमणे तदा । पौरव तुर्वंसोर्वश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥
 दुष्यन्तस्य तु दायारु करारोम प्रजेश्वर । कर्ारोमादयाह्नीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥१४७॥
 पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कात्स्त्र्योलश्च पाण्ड्य । द्रुह्योलश्च तनयो राजन बभूवसेतुश्च पाण्ड्य ॥१४८॥
 अङ्गारसेतुस्तपुत्रो मरुता पतिरुच्यते । यौवनाययेन समरे कुच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
 युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परिचतुर्वंश । अङ्गारसेतोर्दयादो गान्धारो नाम पाण्ड्य ॥१५०॥
 ख्यायते । यस्य नात्मना ये गान्धारविषयो महान् । गान्धारवेशजाश्चैव सुरया वाजिना वरा ॥१५१॥
 अनोस्तु पुत्रो धर्म्मोऽभूदद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत् । घृताद्वनद्रुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
 प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्तुर्वंसोर्मया । बभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च वैवसुतोपमा ॥१५३॥
 सहस्राव पयोदश्च श्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा । सहस्रावस्य दायारुदाश्च परमधार्म्मिका ॥१५४॥
 हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा । हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म्मनेत्र इति श्रुत ॥१५५॥
 धर्म्मनेत्रस्य कात्स्त्र्युः साहज्यस्तस्य चात्मज । साहज्यनी नाम पुरीतेन राजा निवेशिता ॥१५६॥
 आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् । भद्रश्रेण्यस्य दायारुो दुर्वमो नाम विश्रुत ॥१५७॥
 दुर्वमस्य सुतो धीमान्कनको नाम नामत । कनकस्य तु दायारुदाश्चत्वारो लोकविभूता ॥१५८॥
 कृतवीर्यः कृताज्ञाश्च कृतधन्वा तथैव च । कृताग्निस्तु चतुर्योऽभूत् कृतवीर्यविषाणुर्जुन ॥१५९॥

को दक्षिणा मे दे दिमा ॥१५४॥ सयता से दप्यत नामक पौरव बली निष्पाप पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५५॥
 द्विजवर । इस प्रकार बटावस्था मे राजा यथाति के शाप से तुवसु का वंश पौरव वंश मे मिल गया ॥१५६॥
 दप्यत का पुत्र करारोम प्रजाजो का स्वामी हुआ । करारोम का पुत्र अयाह्नाद अर उरुके चार पुत्र हुए—
 पाण्ड्य करल काल अर बोल ॥१५७॥ द्रुह्य का पुत्र राजा बभूवसेतु हुआ ॥१५८॥ बभूवसेतु व अंगारसत नामक पुत्र
 हुआ जो मरुतो का स्वामी कहा गया है अर जिसे युद्ध म यौवनायव न बड़ी कठिनाई से मारा था ॥१५९॥ चावह
 मास तक उन दोनों म यमाशान युद्ध हुआ था । अंगारसेतु का पुत्र गांधार नामक राजा हुआ जिसका नाम से गांधार
 देश प्रसिद्ध है ॥१५०॥ गांधार देश के धोर् अहुत अच्छे होते हैं । अनु का पुत्र धम अर उसका पुत्र द्यत हुआ । द्यत से
 वनद्रुह उत्पन्न हुआ अर उसका प्रचेता ॥१५१॥ प्रचेता के मुखेता नामक पुत्र हुआ । मुखस का वंश घणन मने
 कर दिया । द्यत के देव-पुत्र के समान पाण्ड्य पुत्र उत्पन्न हुए—॥१५२॥ सहस्राव पयोद श्रोष्टा नील तथा अञ्जिक ।
 सहस्राव के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय हय अर वेणुहय ॥१५३॥ हैहय का पुत्र धमनेत्र हुआ ॥१५४॥
 धमनेत्र का वार्त्ता अर उसका साहज्य । उस राजा न साहज्यनी नामक नगर बसाया ॥१५५॥ महिष्मान् का पुत्र
 मद्रश्रेण्य प्रतापी था । मद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्वम नाम से विख्यात था ॥१५६॥ दुर्वम का विद्वान् पुत्र कनक नाम से प्रसिद्ध
 था । कनक के लोक प्रसिद्ध चार पुत्र थे—॥१५७॥ कृतवीर्य कृताज्ञा कृतधन्वा अर वीर्य कृताग्नि ॥१५८॥

१ ग ० ह्यामा ० । २ क ० परिचरह्य ३ स ख्यातस्तु । ४ स ० भूदभूत ० । ५ ख ० तु । घृता
 च्छतद्रुहो । ६ ख ० ष्टा ५ मिलो ५० । ७ ख ० हयव हैहयश्चैव । ८ ग ० स्तु कात्स्त्र्युतास्तथा ५ मवन् । कृ० ।
 ९ ख ० कृतकर्मा । १० क ० कृताग्निश्चतुः ।

योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेऽवरोऽभवत् । जिगाय पृथिवीमेको रवेनादित्यवर्चसा ॥१६०॥
 स हि वर्णायुत तप्तवा तप परमदुश्चरम । दत्तमाराधयामास कात्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६१॥
 तस्मै दत्तो वरान प्रादाञ्चतुरो भूरिजेस । पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्राप्तं सुमहद्वरम् ॥१६२॥
 अघर्म्मोऽधोयमानसः सद्भिस्तत्र निवारणम् । उप्रेण पृथिवीं जित्वा घर्म्मणेयानुरुज्जनम् ॥१६३॥
 सप्रामाण सुबहून् जित्वा हत्वा चारोन् सहस्रशः । सप्रामे वर्तमानस्य वधं चाभ्यधिकाद्रेणे ॥१६४॥
 तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यत क्रिन्ना भा द्विजा । योगादयोगोऽवरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५॥
 तनेय पृथिवी सध्वा सप्तद्वीपा सप्तना । सप्तमुद्रा सनगरा उप्रेण विधिना जिता ॥१६६॥
 तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञक्षतानि वै । प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 सध्वं यज्ञा मुनिश्रेष्ठा सहस्रक्षतदक्षिणा । सध्वं काञ्चनयूपाश्च सध्वं पाञ्चजनवेदय ॥१६८॥
 सध्वं देवर्म्मन्निश्रेष्ठा विमानस्यैरलङ्कृतं । गन्धर्व्वरसरोभिश्च नित्यमेवापशोभिता ॥१६९॥
 यस्य यज्ञो जगौ गार्वा गन्धर्वा नारदस्तथा । वरोदासात्मजो विष्णुर्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥१७०॥

नारद उवाच

म नूनं कातवीर्यस्य गतिं मास्यग्निं पाथिवा । यज्ञोदन्तिस्सपोभिश्च विक्रमेण धुतेन च ॥१७१॥
 स हि सप्तसु द्वीपेषु धर्म्मो पङ्क्तो दारासनी । रथो द्वीपाननुचरन् योगी सवृद्धयते नृभिः ॥१७२॥

कृतवाय स अजून की उत्पत्ति हुई जो हजार मुजाश का प्रनाप से साता द्वीपा का अप-वर बन गया था । उसने
 ग्य ५ समान तज्ज्वा रय स अपेले मपूण पुष्पा को जल लिया ॥१६०॥ अ र उसने दस हजार वर्षों तक कटित
 तपस्या करके अग्नि मुनि के पुत्र दत्त का प्रसन्न किया ॥१६१॥ तत्त न उस चार अयत तज्ज्वा करदान दिया ।
 अर्जुन न प्रायता का—मृग हजार मुजाएँ हो जाएँ सलुरुप मुझ अपम स यचार अपन उप कसध्य स पुष्पी की
 जीन कर मन्चात घम स मैं प्रजाश का अनुरज्जन कहे ॥१६२ १६३॥ अन् बहूत स प्राप्ता की जीतकर हजारों
 सपुष्पा को मार कर युद्ध म अपन स अग्नि दत्तात्ता पूरप व हाथ स धने ॥१६४॥ द्विजवृन् । जिस प्रकार
 दाव माया व वन स योगीकर का घम कृत गति हो जाती है उस प्रकार युद्ध करने समय उसका हजार मुजाएँ
 प्रकट हो जाता था ॥१६५॥ एता मुना जाता है कि उसने अपन उप कसध्य स भान द्वीप पवन गन्धर्व्व नगर तन्ति
 इम पुष्पी की जल दिया मार मना द्रपा म धान म यज्ञ विध ॥१६६ १६७॥ उम्न एक-एक रात दक्षिणा दी
 था । रात यज्ञा म मुचण व यज्ञमन्त्र अ र मुचण की हो गयी यज्ञा गई था ॥१६८॥ अलङ्कृत विमानों पर स्थित
 खम्बा दवना गन्धर्व्व अर अमराण यज्ञमन्त्र का सुगोभित करण थी ॥१६९॥ अजून व यज्ञ म गन्धर्व्व अर वरदाय
 के पुत्र विद्वान् नारद न उमरी मन्त्रिया स विस्मिय हावर माया मार ॥१७०॥

नारद ने कहा— यज्ञ दात तप पण्डित और शास्त्र जान म कृतवाय व पुत्र (अजून) का गति को कई राजा
 नहीं प्राप्त कर सक्ता है ॥१७१॥ बाल तज्ज्वा व पुत्र बाण को घाटा कर और रय म स्थित हो द्वीपद्वीपान्तर म

१ रा ऋगायिता ५०० । २ रा ऋता स्वधर्मोपानु । ३ रा ऋत मारत । यो० । ४ रा दण्ड० ।
 ५ रा मिर्वा वि० ।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विग्रहः। प्रभावेण भया राज्ञः प्रजा धर्म्मण रक्षत ॥१७३॥
 'स सधर्वतरभाक्' सग्राह्य चक्रवर्ती बभूव ह। स एव पद्मपालोभूत क्षेत्रपाल स एव च ॥१७४॥
 स एव वृद्ध्या पञ्चन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत्। स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातपठितवचा ॥१७५॥
 भाति रश्मिसहस्रेण शरदोद्य च भास्करः। स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाद्युति ॥१७६॥
 'कर्कोटकसुनान् जित्वा पुण्यां तस्या न्यवेक्षयत्। स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षण ॥१७७॥
 कोटत्रिव भूर्जोऽग्न प्रतिस्तोतदचकार ह। लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८॥
 चन्द्रमिसहस्रेण शङ्खिताम्येति मन्मथा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१७९॥
 भयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्या महासुरा। चूर्णाकृतमहावीचि चल्मनीमहासिमम् ॥१८०॥
 'भावताद्विष्कनोपमावत्क्षोभसङ्कुलम्'। प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण ॥१८१॥
 देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दर ॥ मन्दरक्षोभचकिता ॥ अमृतोत्पादशङ्किता ॥१८२॥
 सहस्रोत्पत्तिना भीता भीम इष्ट्या नृपोत्तमम्। नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३॥
 सायान्ने कदलीलङ्का कम्पिता इव वायुना। स वै ब्रह्मवा यनुर्गर्भान्निष्ठसिक्त पञ्चभि शरै ॥१८४॥

पिचरण करता हुआ वह यानी अर्जुन साताहीपी म मनुष्यो से देखा जाता है ॥१७२॥ प्रजाआ का धमपूवक पालन करे। हुए महाराज अर्जुन का द्रव्य-क्षय बन्ना नहीं होता भाक् अर भ्रम सी नहीं हात ॥१७३॥ उक्त पात सब प्रकार के रत्न थे। वह चक्रवर्ती राजा था। वह पद्मपाल अर क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ योग के प्रताप से अग्नी मेघ रूप होकर वर्षा भी करता था। वही शरद ऋतु म सूर्य की सहस्र किरणों से समान द्युत न आयात के कठिन त्वचा वाली हजार गुजाओ स सुशोभित था ॥१७५॥ उसी न कर्कोटक के पुत्रो को जीतकर माहिष्मती परी मे मनुष्यो का बीच नागो को बसाया अर वर्षाकाल मे समुद्र के वेग म वर्त्ता करत हुए अपनी गुजाओ से समुद्र के बहुत-से स्रोत बना दिये ॥१७६-१७७॥ उसी की जीवा के समय नमदा नदी जिसमे हजारो तरंग उठ रही थी शक्ति होकर सम्मुख आई ॥१७८॥ जब उस हजार बाहुआ से समुद्र को क्षोभित किया सब पातालवासी महाराक्षम मय से निश्चेष्ट होकर छिप गये ॥१७९॥ पून काल मे जैसे देवता अर असुरा न मन्दराचल स समुद्र का मथन किया था उसी प्रकार उस राजा न हजार गुजाओ स समुद्र मथन किया। समुद्र की महातरंग बुर-बुर कर रही गई मच्छ और महामच्छ कौपन लगे, पवन के वेग से यथा का समुद्र उत्पन्न हो गया, आवत (मैवर) फैलन लगे ॥१८०-१८१॥ मन्दराचल के सचालन से शक्ति अर अमृत की उत्पत्ति से शक्ति के समुद्रवासी महासर्प हठात् उठकर वारा और निहारने लगे। उस मथानक राज्य-शक्त को देखकर डर से उनके सिर निश्चल हो गये आर सायकाल मे वायु से कपित केले न पत नी तट्ट वे घरघरान लगे ॥१८२-१८३॥ उर्मी राजा न धनुष की डोरी से मुक्त पाँच बाणो से सेनासहित स्नापित रावण को मोहित कर अपने वश म करके माहिष्मती

१ क सट्टत । ग रक्षित । २ क स तु सर्वत्र भोगादयश्चक्रः । ३ ख मरुतोमोदयश्चक्रः । ४ ख ऽकसुताक्षिप्त्वा पुः । ५ ग ऽन फेनचोदाम् । ६ ग ऽनी । वलः । ७ ग ऽद्विक्ता स्येः । ८ ग ऽचि वलः । ९ क ऽस्तोदिमनः । १० ग ऽमनुसहम् । ११ क ऽसेनैव वाः । १२ मर । तत्सक्षोमेणाऽऽ चवितास्ताड्यमिनशः । १३ क तास्ताड्यमिनशः ।

लङ्घेत् मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् । निजित्य वशमानीय माहिम्नतया बबन्ध तम् ॥ १८५ ॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पोलस्त्यं रावणं त्वज्जुनेन च । ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं ददौ स्वयम् ॥ १८६ ॥
 मुमोच रक्षः पोलस्त्यं पुलस्त्येनाभिधातितः । यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥ १८७ ॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव । अहो बत भूधे चौर्यं भागंवस्य यदच्छिनत् ॥ १८८ ॥
 राज्ञो बाहुसहस्रस्य ह्येवं क्षालवनं यथा । तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
 स भिक्षामदवाद्दीरः सप्त द्वीपान् विभावतोः । पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सत्त्वशः ॥ १९० ॥
 जग्वाल तस्य सर्वानि चित्रभानुद्वलया । स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥ १९१ ॥
 दवाह कार्तवीर्यस्तु शलांश्चैव वनानि च । सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
 दवाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहेह्यः । ग्रं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भारुवन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः श्यात आपव इत्युत । तजापवस्तु सं क्रोधाच्छ्रुतवानज्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्मात्प्र वज्जितमिदं वनं ते मम हेह्य । तस्मात्ते वृष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १९५ ॥
 रानो नाम महाबाहुर्जामदग्नयः प्रतापवान् । छित्त्वा बाहुसहस्रान्ते प्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भागवः । अनष्टद्वयता यस्य बभूवामित्रकपिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरोग्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः । प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुने ॥ १९८ ॥

पुत्री मे धापा या ॥ १८४-१८५ ॥ परन्तु अजुन के द्वारा बोधे गये पुलस्त्य-युध रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अजुन के पास गये ॥ १८६ ॥ पुलस्त्य की माचना करने पर अजुन ने, जिसके हजार मुञ्जाओ के घनुष की टहकर प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा निजली की कटक के समान होती थी, रावण का मुक्त कर दिया ॥ १८७ ॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परमुराम न सप्राप्त में उसी राजा की हजार मुञ्जाओ को ताल्यन के समान बाट दिया ॥ १८८ ॥ किसी समय अग्नि ने लूणा से मुक्त हो अजुन से मिला मार्गी । उस बीर ने अग्नि को सार्ती द्वीप मित्रा मे दे दिये ॥ १८९ ॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देगों को सब ओर से जलाने लगे ॥ १९० ॥ उस महारामा पुरोन्द्र अजुन के प्रभाव से अग्नि न पर्वती और वनों को जला डाला । उसी ईह्य (अजुन) के साथ होकर अत्यन्त प्रयत्नीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला ॥ १९१-१९२ ॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था, वह वसिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था ॥ १९३ ॥ उस शक्तिमत्तर आपव ने क्रोध से अजुन को शाप दिया— ईह्य । जिस उद्देश्य से तुम मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उगे और तुम्हारे दुष्टों को कोई दूसरा नष्ट करेगा ॥ १९४-१९५ ॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-युध परमुराम तुम्हारी हजार मुञ्जाओ को कटक-वर से मग कर तुमको मारेगा ॥ १९६ ॥ जिस राजा के इच्छा का साथ नहीं होता था, जो सन्तुष्टा का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

१ ग सपथ । २ ग तेजस्वी । ३ ग वधिष्यति । ४ क तस्य । ५ क ग प्रभाव । ६ क ग.

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव द्यूतः पुरा । तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च वंशा महात्मनः ॥१९९॥
 कृतास्त्रा धलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः । शूरसेनश्च शूरश्च धृपणो मधुपध्वजः ॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासोदावन्यो नृपतिर्महान् । कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः ॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः । तस्य पुत्रशतं ह्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हेह्यानां महात्मनाम् । वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजश्चावन्तयः स्मृताः ॥२०३॥
 शोण्डिकेराश्च विद्यातास्तालजङ्घास्तथैव च । भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्तिताः ॥२०४॥
 धृपप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः । द्यूषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासीद्द्वृषणस्तस्य वंशकृत् । द्यूषणाद्वृषणयः सध्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६॥
 यादवा यवुनाम्ना ते निरुध्यन्ते च हेह्याः । न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७॥
 कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः । एते ययातिपुत्रार्णा पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥२०८॥
 कीर्तिता लोकवीर्याणां ये लोकान् धारयन्ति वै । भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान् ॥२०९॥
 धृत्वा पञ्च वितर्गस्तु राजा धर्मार्यकोविदः । वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभाणिह लोकिकान् । आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूतिमेव च ॥२११॥

के शाप से हो गई ॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द । उसने स्वयं ही ऐसा बरदान पहले माया था । उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बली, अस्त्र-शास्त्रों से सुवर्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे; जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, द्यूषण, मधुपध्वज और जयध्वज । जयध्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ ॥१९९-२००॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसम्पन्न थे ॥२०१॥ जयध्वज के तालजघ नामक महाबली पुत्र हुआ । उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजघ नाम से प्रसिद्ध थे ॥२०२॥ मुनिवर । उन महात्मा हेह्यों के वंश में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, शोण्डिकेरा तथा तालजघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं ॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द । द्यूष नामक राजा से लेकर द्यूषणी धर्मात्मा हुए । वह वंशधर हुआ । उसके मधु नामक पुत्र हुआ ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे । उसका वंशधर द्यूषण हुआ । द्यूषण के वंशज द्यूषि कहलाये और मधु के माधव ॥२०६॥ द्यूष के वंश में उत्पन्न वे हेह्य यादव नाम से प्रख्यात हैं । जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनः मिल जायगा ॥२०७॥ द्विजवर । ये पाँचो वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पञ्चमहाभूतों की तरह स्थावर-जगम सहित वैलीनय को धारण करते हैं ॥२०८-२०९॥ इन पाँचो वंशों को सुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचो वंशों अर्थात् प्रियपात्र तथा विभूतिमान् हो जाता है ॥२१०॥ द्विजगण । इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य ससार में दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभूतिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है ॥२११॥ मुनिश्रेष्ठ । शव

१ क ख ०शतान्यासन्पञ्च । २ क धन्विन । ३ ग ०श्च द्यूषोत्त कृष्ण एव च । ४ ज ० ४ ख महावीर्या । ५ ग ०जात्याश्च । ६ क तौदिके । ७ ख तौण्डिके । ८ क ख । शार । ८ ख ०यमष्टतपो वि । ९ क ०णा लोकधारणहेतव । मू । १० ख लोनास्तार । ११ ख या ।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् । निजित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ १८५ ॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वज्जुनेन च । ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं ददौ स्वयम् ॥ १८६ ॥
 मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः । यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥ १८७ ॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव । जहो बत मूढे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥ १८८ ॥
 राज्ञी बाहुसहस्रस्य हेमं तालवनं यया । तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
 स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः । पुराणि ग्रामघोषाश्च विपर्ययिष्व सत्त्वशः ॥ १९० ॥
 जङ्गवाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्वदक्षया । स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥ १९१ ॥
 दबाह कार्तवीर्यस्तु शलांश्चैव वनानि च । सङ्गमनाथमं रम्यं यदणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
 दबाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहैहयः । यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः हयात् आपव इत्युत । तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानज्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्मान्न वज्जितमिदं वनं ते मम हंहय । तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १९५ ॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्नयः प्रतापवान् । छित्त्वा बाहुसहस्रान्ते प्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वांस्तु हनिष्यति स भार्गव । अनष्टदृश्यता यस्य बभूवामिन्द्रकपिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः । प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य ज्ञापान्महामुनेः ॥ १९८ ॥

पुरी में बाँधा था ॥ १८४-१८५ ॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये ॥ १८६ ॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हथार भुजाओं के समुप की टकार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया ॥ १८७ ॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परगुराम न सगरा में उसी राजा की हथार भुजाओं को तालवन के समान बाँध दिया ॥ १८८ ॥ किसी समय अग्नि ने तुष्ठा से मुक्त हो अर्जुन से मित्रा माँगी । उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप मित्रा में दे दिए ॥ १९१ ॥ तब अग्नि उसी नगर, याम और देवों को सब और से जलाने लगे ॥ १९० ॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और वनों को जला डाला । उसी दृष्ट्य (अर्जुन) के साथ होकर अपना सभ्यता अग्नि न वरुण के पुत्र के साथ तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला ॥ १९१-१९२ ॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था ॥ १९३ ॥ उस शक्तिमय आपव ने क्रोध से अर्जुन का साथ दिया—‘हैह्य’ जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम को रक्षा नहीं की उगे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा ॥ १९४-१९५ ॥ प्रतापी तथा दानिवाली जमदग्नि-पुत्र परगुराम तुम्हारी हथार भुजाओं को बाँटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा ॥ १९६ ॥ जिस राजा के श्व्या का शय नहीं होता था, जो शत्रुओं का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का धारण करता था, उसी मृत्यु महामुनि

१ ग सगण । २ ग तेजस्वी । ३ रा ग वशिष्पति । ४ क तस्य । ५ क ॥ प्रभावेण । ६ क ग.

वरस्तयैव भो विप्रा स्वयमेव द्यूतः पुरा। तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शपा महात्मनः॥१९९॥
 कृतास्त्रा बलिनः। शूरा धर्म्मत्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च। द्यूणो मधुपध्वजः॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं स्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
 तेषां कुले मुनियेष्टाः हेह्यानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः॥२०३॥
 तोण्डिकेराश्च विद्यातास्तालजङ्घास्तयैव च। भरताश्च सुजाताश्च बहूवाभ्रानुकीर्त्तिताः॥२०४॥
 द्यूप्रभृतयो विप्रा यादवा पुण्यकर्मिणः। द्यूपो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। द्यूणाद्वृष्णयः सध्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हेह्याः। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
 कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेविह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
 कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान्। धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गवान्॥२०९॥
 श्रुत्वा पञ्च वितर्गस्तु राजा धर्म्मायंकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तयैश्वरः॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूतिमेव च॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द। उसन स्वय ही ऐसा वरदान पहले माया था। उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बनी, अश्व-नास्रो से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, द्यूण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अबन्तीपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००३॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसंपन्न थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजय नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजय नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर। उन महात्मा हेह्या के वंश में वीतिहोत्र, सुजात भोज, ध्वनि, तोण्डिकेर, तालजय और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनाने जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द। द्यू नामक राजा से लेकर यदुवशी धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसके मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर द्यूण हुआ। द्यूण के वंशज द्यूणि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न थे हेह्य यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-स्था नित्यप्रति पत्रेण, मुनिरा, वरेण, उद्यत वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्यपुनर्मिल जायगा॥२०७३॥ द्विजवर। ये पाँच वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहाभूतों की तट्ट स्यावर-जगम सहित प्रैलोक्य को पारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँच वंशों को मुनिकर धर्म-अर्थ की जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अर्थात् अर्णव प्रियंशत तथा विमुनिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजवर्ण। इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य सगार में दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विमूनिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता ॥२११३॥ मुनियेष्टो। अब

१ क स ० पातायास्तयञ्च। २ क यन्विन। ३ ग ० द्य द्यूटोक्ता ह्य एव च। ज०। ४ स महावीर्या। ५ ग ० जययादव। ६ क तोण्डिके०। ग तोण्डिके०। ७ क. च.। भार०। ८ स ० यमप्यतपो वि०। ९ क ० नां लातपारणहृत्वा। मू०। १० य लोतास्तर०। ११ स वा।

धारणाच्छ्रवणाच्चेव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः। क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिध्रेष्ठा शृणुष्वं गदतो मम ॥२१२॥
 यदोर्व्वंशधरस्याय यज्विनः पुण्यकम्मिणः। क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वेव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३॥
 यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णि कुलोद्बहः।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययातिवंशानुकीर्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

तत्रादौ यदुपुत्र-क्रोष्टुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चं व माद्री च क्रोष्टोर्भाष्यं बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥१॥
 माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीदृशम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो बृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२॥
 माद्व्याः पुत्री तु जज्ञाते 'भुतौवृष्ण्यन्धकावभो'। जज्ञाते तनयौ बृष्णे श्वफल्कश्चित्रकरतथा ॥३॥
 'श्वफल्कस्तु मुनिध्रेष्ठा धर्मात्मा' यत्र वर्तते। नास्ति ध्याधिभयं तत्र नावर्पस्तपमेव च ॥४॥

नोट—का वंश-वर्णनं मुनिसे मुनिसे, जिस वंश में बृष्णि-वंश-उद्धारक साक्षात् विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए। यज्ञवर्ती, धर्मात्मा तथा 'गान्धार' यदु और क्रोष्टु के वंश-अवध से ही मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं ॥२१२-२१३॥

धी ब्रह्ममहापुराण में ययाति-वंशानुकीर्तन नामक चतुर्दशोऽध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

यदु-पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु की दो पत्नियाँ थी—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली

पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ माद्री ने युधाजित् और देवमीदृश नामक दो पुत्र हुए। उनके तीन प्रकार के वंश चले, जो बृष्णियों के वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥२॥ माद्री ने बृष्णि और अन्धक नामक और दो पुत्रों को उत्पन्न किया। बृष्णि ने श्वफल्क और चित्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥३॥ मुनिवर! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहता है, वहाँ ध्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं होता ॥४॥ मुनिगण! ऐसा सुना है कि किसी समय याज्ञिकराज ने राज्य में

१ क्रोष्टुवंश। २ स य श्रुत्वेन। ३ स च पुत्री। ४ स श्वफल्कात् मु० १५ धर्मो नैवात्यवर्तन। ना०।

५ स ०३ न चावृष्टिभय तथा। क०।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः१। त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावयत् पाकशासनः॥५॥
 स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमाञ्चितम्॥ श्वफल्कपरिवर्त्तनं वर्षं हरिवाहनः॥६॥
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भाष्यमिविन्दत॥ गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः॥७॥
 दाता यज्ञा च घोरदच श्रुतवानतिथिप्रियः॥ अकूरः सुपुत्रे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरदक्षिण॥८॥
 उपमद्वुस्तथा मद्गुम्फुदरश्चारिमेजयः॥ अविक्षितस्तयाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्दन॥९॥
 धम्मं धूय यतिधर्मा च॥ धर्म्मोक्षान्धकस्तथा॥ आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च वराङ्गना॥१०॥
 अकूरेणोप्रसेनाया सुगाभ्यां द्विजसत्तमाः॥ प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ॥११॥
 विश्वकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपुत्रेव च॥ अश्वप्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपाश्वकगवेपणौ॥१२॥
 अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धम्मभूतया॥ सुबाहुश्चबहुबाहुश्च अविष्ठाश्वणे स्त्रियो॥१३॥
 अतिवत्या जनयामास शूरं वै देवमोदुपम्॥ महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोग्यायां पुरुषा वरा॥१४॥
 वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः॥ जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् विवि॥१५॥
 आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्विद्वि॥ यथात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जननी महान्॥१६॥
 मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि॥ यस्यासौतुष्याम्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा॥१७॥

लगातारतीन वर्ष तक अनावृष्टि रही ॥५॥ तो काशिराज श्वफल्क को सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आए। उनके बाद ही वृष्टि प्रारम्भ हो गई ॥६॥ प्रसेन काशिराज ने अपनी कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ कर दिया। गान्दिनी नित्यप्रति ब्राह्मणों को गोदान दिया करती थी ॥७॥ श्वफल्क ने अकूर नामक दाता, यज्ञकर्त्री, विश्व, अतिथि-पूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८॥ उपमद्वु मद्गु, मेदुद, अरिमेजय, और, विद्वन्, अतिथि-पूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुए ॥९॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१२॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१४॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१६॥ चित्रक के पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१७॥

१ क ०मा। पुरा द्वादशवर्षाणि ना०। २ ग वर्षसहस्राणि ना०। ३ ख ०व वासथा०। ग ०य याजया०। ४ ग परमाचित। ५ क ०रिवारेण व०। ६ ख ०मवाप ह। ग०। ७ क ०श। जाता यज्ञप्रिया दत्ता श्रुतज्ञा चातिथिप्रिया। अ०। ८ क ०मन्युस्तथा मन्युर्मे०। ९ ख ०दुर्मुदर०। ग ०दुर्मुदरश्वा०। १ ग ०य। परिधिपस्तथा ३ त्थल दा०। १० ख अरिधिपस्तपोपेश दा०। ११ ग च धूम्रो जातवस्त०। १२ क वरानना। १३ ख कुम्भन्दी। १४ क. ख मुनिवर्चसौ। १५ ग ०रव्यश्च। १६ ख ०दुरवाश्वा०।

‘देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः। अनापृष्टिः^१ कनवको^२ वत्सवानय^३ गूञ्जमः॥१८॥
 श्यामः शमीको गण्डूयः पञ्च चास्य वराङ्गनाः। पृथुकीर्ति^४ पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा॥१९॥
 राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु^५ शिशुपालोऽभवद्रूपः॥२०॥
 हिरण्यकशिपुर्गोप्तो^६ दैत्यराजोऽभवत्पुरा। पृथुकीर्त्या तु सञ्जज्ञे तनयो बृद्धशर्मणः^७॥२१॥
 कल्प्याधिपतिर्वीरो दन्तवको महाबलः। पृथां दुहितर चक्रे कुन्तिरतां पाण्डुरावहत्॥२२॥
 यस्यां^८ धर्मविद्राजा धर्मो जज्ञे युधिष्ठिरः। भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः॥२३॥
 लोकेऽप्रतिरथो वीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः। अनभिज्जाच्छिनिर्जने^९ कनिष्ठावृष्णिमन्वनात्॥२४॥
 शौनेयः सप्तप्रकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः। उद्धयो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्॥२५॥
 पण्डितानां परं प्राहृद्वैश्वस्यमुत्तमम्^{१०}। अश्मक्यं^{११} प्राप्तवान् पुत्रमनापृष्टियं शस्विनम्॥२६॥
 निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं^{१२} श्रुतदेवा स्वजायत^{१३}। श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैपादिर्यः परिश्रुतः॥२७॥
 एकलव्यो मुनिभ्रेष्ठा निषादेः परिबर्द्धितः। वत्सवते^{१४} स्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्॥
 अद्विर्वदी सुतं वीरं शौरिः कौशिकनौरसम्^{१५}॥२८॥
 गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्णुक्सेनो बर्दो सुतान्। चारुदेण्यं सुदेण्यञ्च^{१६} पञ्चालं कुतलक्षणम्॥२९॥
 असंप्राप्तेण यो वीरो नावर्त्तत^{१७} कदाचन। रौक्मिणेयो महाबाहुः फनीमान् द्विजसत्तमाः॥३०॥

बभूवैश्वस्यं पदवात्, देवभाग, देवश्रवा, अनापृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गूञ्जम, श्याम, शमीक और गण्डूय नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामक पाँच पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं। ये पाँचो कल्पार्थे वीर-माताएँ थीं॥१८-१९॥ पूर्व जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात देविराज शिशुपाल की उत्पत्ति श्रुत-श्रवा से हुई॥२०॥ पृथुकीर्ति से बृद्धशर्मा के महाबली, वीर तथा कल्पदेव का स्वामी दणवन् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२१॥ कुन्ति नामक राजा न पृथा की अपनी पुत्री बनाया। पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ, जिसने धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर, दायु से भीमसेन तथा द्रुप से द्रुप तुल्य पराक्रमी अद्वितीय योद्धा अर्जुन को पैदा किया। सबसे छोटे वृष्णि-पुत्र अनमिन् से शिनि उत्पन्न हुआ॥२२-२३॥ सिनि से सत्वा और सत्यन से महारथी सात्यकि की उत्पत्ति हुई। देवभाग का पुत्र महामाग्यशाली उद्धव हुआ॥२४-२५॥ देवश्रवा महापटित था। उसने अश्मक्य नामक पुत्र को प्राप्त किया। अनापृष्टि न निवृत्तशत्रु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। और श्रुतदेवा से शत्रुघ्न पैदा हुआ॥२६॥ मुनिभ्रेष्ठ श्रुतदेवा के एकलव्य नाम का पुत्र हुआ, जो निषादे के निषादे नाम के कारण नैपादि नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२७॥ वत्सवान् के बर्दो पुत्र न था अन प्रभाषी दूर-पुत्र वसुदेव न अपने वीर पुत्र कौशिक की जल से उत्पन्न करते उसे दे दिया॥२८॥ पुनरहित गण्डूय का विष्णुक्सेन के चारुदेण्य, सुदेण्य, पञ्चाल और कुतलक्षण नामक पुत्रों को दे दिया॥२९॥ विप्रवर्त्त चारुदेण्य रक्मिणी का छोटा पुत्र था, जो निरन्तर युद्ध-रत रहता

१ क ०वनापृष्टि। २ क ०नापृष्टि। ३ क ०वो वने तस्य वसुव ह। श्या०। ४ ग ०नममुञ्जय। श्या०। ५ ग ०सत्यमि०। ६ ग ०शौर्षेरा०। ७ क ०विश्वकर्मणा। ८ क ०यस्या। ९ ग ०नाच्छिनिर्जने०। १० ग ०प्राहृद्वैश्वस्य०। ११ ग ०मुद्रकम्। १२ ग ०अस्याया। १३ क ० न ०नापृष्टिय०। १४ क ०विमि-
 श्रु। १५ ग ०निरतशत्रु। १६ ग ०अन नै०। १७ ग ०अन सापादेव श्या०। १८ ग ०न। धाष्टदेवाप्रजातस्तु नै०। १९ क ०वत्सवतस्य वीरय शी०। २० क ०वीर०। २१ क ०मुद्रक। २२ ग ०वत्सव।

यायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृथ्ठतोऽन्वयुः। चाहन्वोपभोक्ष्यामश्चास्वदेष्णहतानिति ॥३१॥
तन्निजस्तन्निपालश्च सुतो कनवरुस्य तो। वीर्यवाश्वहनुश्चैव वीरो तावय गृज्जिमा ॥३२॥
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्। जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः। वसुदेवसुतान् धीरान् कीर्तयिष्याम्यतः परम् ॥३४॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवंगु बह्वशास्त्रं महोजसम्। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य अनुद्देशं वराङ्गना। पौरवी रोहिणी नाम मदिरास्ति या परा ॥३६॥
यैशास्त्री च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवशक्ति ॥३७॥
वृक्षदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुबडवा चैव द्वे एते परिवारिके ॥३८॥
पौरवी रोहिणी नाम बह्विक्त्यात्मजाभवत्। ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानककुटुम्भे ॥३९॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शारण्यं शठमेव च। दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनम् ॥४०॥
विप्रा नाम कुमारी च 'रोहिणीतनया नव'। चित्रा 'सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमा ॥४१॥
वसुदेवाच्च देवययां जज्ञे शौरिर्महायशा। रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥४२॥
सुभद्राया रथो पार्यावभिमन्युरजायत। अक्रूरस्तकशिक्षण्याया सत्यकोतुरजायत ॥४३॥
वसुदेवस्य भाव्यासि महाभागस्तु सप्तसु। ये पुत्रा जग्निरे शूरा समस्तास्तान्निबोधत ॥४४॥

या और जिसके पीछे-पीछे 'आज चास्वदेष्ण के द्वारा मारे गए वीरों के' मास का स्वादिष्ट भोजन करेंगे, ऐसा सोचते हुए
हजारों काँपे चला करस ये ॥३०-३१॥ कनवरु के दो पुत्र थे—तन्निज और तन्निपालः गृज्जिम के बौक और
श्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३२॥ श्याम वा पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-प्राप्ति की और भोज-राजा से अपने
को निश्चित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३३॥ उसके अजातशत्रु नामक पुत्र विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अथ वसुदेव
को निश्चित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३३॥ उसके अजातशत्रु नामक पुत्र विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अथ वसुदेव
के वीर पुत्रों का वर्णन करनेगा ॥३४॥ इस प्रकार अनेक शास्त्राचार्य विस्तृत एवं शुक्ति अक्षर भाषा—इन तीन वर्णों
में विमल महापराक्रमी वंश का कारण बतते हुए वसुदेव किसी प्रकार के अनर्थ के माली नहीं हुए ॥३५॥ पूर वंशी
रोहिणी, मदिरा, वैशादी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवी देवशक्ति, वृक्षदेवी, उपदेवी और देवकी
ये चौदह पत्नियाँ थीं और सुतनु और बडवा—उनकी दो सेविकाएँ थीं ॥३६-३८॥ पुत्रवती रोहिणी, बह्विक्त्य की पुत्री
पौरवी। मुनिवर। वसुदेव की प्रिय ज्येष्ठा पत्नी से राम तथा शारण्य, शठ दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर
नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९-४०॥ और रोहिणी से चित्रा सुभद्रा आदि प्रख्यात नौ कन्याएँ पैदा हुईं ॥४१॥ मुनिवर।
वसुदेव की छोटी पत्नी देवकी से महायशस्वी शौरि (वृष्ण) उत्पन्न हुए। राम की पत्नी रेवती से निशठ नामक
पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४२॥ दुर्दम की पत्नी सुभद्रा से रथो अभिमन्यू की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिराया से
सत्यकोतुरा हुआ ॥४३॥ वसुदेव की महाभाग्यवती सान पत्नियों से मूर नाम वाले जो पुत्र पैदा हुए, उन सबके नाम

१ क ०जिहनी। धर्मपत्नी तयोविप्रा अमीको राजमस्तमः। जुगुप्समानो भोजस्तु राजः। २ ग
महीरमः। ३ स शारणः। ग शारणः। ४ स शवमेः। ५ ग दमनः। ६ क ०पीदयिता दसः। वि०।
७ ग दसः। ८ क मित्रा। ९ क पिपयो। ग निपयो। १० क ल रोहिण्या। ११ क हम्नः। १२ पुनः।
१३ क ०राजाजः। १३ क ०सु तामु सप्तसु भो द्विजाः ये। १४ स शूरा नामवस्तः०।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुताबुभौ। द्रुकदेवः सुनामायां गदश्चासतां सुताबुभौ॥४५॥
 अगावहं महात्मानं द्रुकदेवो व्यजायत। कन्या त्रिगर्तराजस्य भार्या धीः शिशिरायणे॥४६॥
 जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्दे च पौरुषम्॥ कृष्णायसप्तमप्रस्थो धर्मे द्वादशमे तथा॥४७॥
 मिथ्याभिज्ञस्तो गार्ग्यस्तु भन्यूनातिसमोरितः॥ धोयकन्यामुपादाय मंथुनायोपचक्रमे॥४८॥
 गोपालो चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रोवेशधारिणो। धारयामास गार्ग्यस्य॥ गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥
 मानुष्यां गर्गभार्यायां नियोगाच्छूत्रपाणिनः। स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
 धृत्तपूर्वद्विंशकायस्तु सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राजस्तु बधूधेज्जतपुरे शिशुः॥५१॥
 यवनस्य मुनिधेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्। आयुष्यमानो नृपतिः पर्ययपृच्छद्विजोत्तमम्॥५२॥
 धृष्ण्यन्धककुलः तस्य नारदोऽकथयद्विभुः। असौहिण्या तु संन्यस्य मयुरामन्ययात्तदा॥५३॥
 दूतं सम्प्रेषयामास धृष्ण्यन्धकनिवेशनम्। ततो धृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
 समेता मन्त्रयामासुर्ग्रन्थनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सर्वे पलायनमरोचयन्॥५५॥
 बिहाय मयुरा रम्यां मानप्रन्तः पितृकिन्तम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमोत्सवः॥५६॥

सुनिये॥४४॥ शान्तिदेवा के दो पुत्र हुए—भोज और विजय। सुनामा से द्रुकदेव और गद पैदा हुए। द्रुकदेव ने महात्मा अगावह को उत्पन्न किया॥४५॥ विज्ञां समय त्रिगर्तराज की कन्या ने, जो शिशिरायण की भार्या थी, गार्ग्य मुनि का वीर्य की परीक्षा की। पर मुनि का वीर्य-स्खलन नहीं हुआ। ता यावकी ने नपुंसक वह कर उनकी हँसी उड़ाई। जिससे क्रुद्ध हुए मुनि व. शरीर लोहे के तवे के समान काला पड़ गया। बारह धर्म धीत जाने पर मुनि ने किसी गोप-कन्या के साथ मैथुन करने का निश्चय किया॥४६-४८॥ गोपी-वेष धारण किए हुए गोपाली नाम की अप्सरा न, गार्ग्य से समागम किया और नष्ट न होन वाले प्रवण्ड गर्भ को धारण कर लिया॥४९॥ शक्र की प्रेरणा से गर्गमुनि की मानुषी भार्या न कालयवन नामक महाबलवान् राजा को उत्पन्न किया, जिसका शरीर सिंह का जैसा था और देह का पूर्वार्ध वृत्ताकार था॥५०॥ पुत्र-विहीन यवनराज के अन्तपुर में पालन-पोषण होने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ गया॥५१॥ युद्ध की कामता रखते हुए कालयवन ने मुनिधेष्ठ नारद से पूछा कि किससे युद्ध करें? नारद ने उसे दृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं से लड़ने का सुझाव दिया॥५२॥ तदनुसार कालयवन एक असौहिणी सेना लेकर मयुरा की ओर चल पड़ा॥५३॥ पहले उसने दृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं के पास अपना दूत भेजा। उसका युद्ध-नवश पाकर दृष्णि-अन्धक-वर्षिणी न नीति-निपुण दृष्णि को अगुवा बना कर परामर्श किया। और फिर कालयवन के भय से मयुरा छोड़ देने का निश्चय किया॥५४-५५॥ शक्र को मानने वाले उन सब लोगों ने मुरम्य मयुरा पुरी को

१ ग भर्ता। २ क वैरपायणा। त्रि०। ३ ग न्यणा। त्रि०। ४ ग पौरवे। ५ क नस्तदास्य
 पी०। ६ स न्म। स्तन्द,य०। ७ क प्रस्थेव०। ग प्रस्थैर्वेषे। ८ क तदः। मिशस्तो गार्ग्यं शालेन
 म०। ९ क न्ना समुदीरि०। रा न्नामिस०। १० ग न्तः। गोपक०। ११ ०ली तस्य मद्रा तु गो०।
 १२ क गर्गस्य। १३ ग गर्दमा०। १४ स ग वृषपू०। १५ ग न्स्तुमवत्त्वात्रिनो रणे। अ०। १६ क
 भुप्यमानो। ग अयुष्यमानो। १७ स ग न्तामान्। वृ०। १८ क न्कुले त०। १९ स न्यद्विजा।
 अ०। २० स भावयन्तः।

इति कृष्णस्य जन्मेदं य शुचिनिवृत्तेन्द्रियः पर्वसु श्रावयेद्विद्वाननुष स सुखी भवेत् ॥५७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्तन नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वृष्णिवश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

कोष्ठोरथाभङ्गत् पुनो वृजिनीशान्महायशः । वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृता वरम् ॥१॥
स्वाहपुत्रोऽभयद्राजाः उपदगुर्धस्ताः वरः । महाकनुभिरीजे यो विविधैर्मूर्तिवर्णिने ॥२॥
तत प्रसूतिमिच्छन् वैः 'उपदगु सोऽयमामरजम् । जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्मभिरन्यितः ॥३॥
आसीच्छत्ररथिर्बोरो यज्वा विपुन्दक्षिणः । शशविन्दु पर वृत्तः' राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४॥
पृथुथवा पृथुयशा 'राजासीच्छशविन्दवः' । शसन्ति च पुराणज्ञा पार्यश्रवसमन्तरम् ॥५॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभङ्गत् । उपतो' यज्ञमखिल स्वधर्म्मः' च कृतावरः ॥६॥
शिनेयुरभङ्गत् पुन उपतः' शत्रुतापन । मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नूपः ॥७॥

छात्र कर द्वारका पुरी में हा रहने का निश्चय कर लिया ॥५६॥ जो पवित्र अर जितद्विष होकर कृष्ण व इस
जन्म चरित्र को पद ने दिन सुनाएगा वह सब प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सुखी होगा ॥५७॥

श्री महामहापुराण में कृष्ण जन्मानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

वृष्णि-वश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—कोष्ठ का पुत्र वृजिनीवान परम यशस्वी हुआ । वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि सर्वोच्च यज्ञवर्ती
प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ स्वाहि का पुत्र यवराजा मेघेष्ठ राजा उपदगु था, जिसने भूरि वर्णिना सम्पन्न अनेक महयज्ञ किये ॥२॥
पुत्री रति की कामना से उपदगु ने चित्ररथ नामक अपने प्रथम पुत्र को उत्पन्न किया, जो वरमत्त ल था ॥३॥ चित्ररथ का
पुत्र शशविन्दु यज्ञकर्ता विपुलदक्षिणादाता, नमिष्ठ तथा राजर्षि श्रेष्ठ था ॥४॥ शशविन्दु का पुत्र महायशस्व
पृथुथवा था । पुराणज्ञा का कहना है कि पृथुथवा का पुत्र अन्तर अन्तर का पुत्र सुयज्ञ अर सुयज्ञ का पुत्र उपन् हुआ
जो निमित्त-यज्ञ-वर्ती तथा निष्ठावान् धार्मिक था ॥५-६॥ उपत् से परतप शिनेयु उत्पन्न हुआ । अर शिनेयु का

१ व ०मेहय । २ क जा पडवाँ वद०- ३ स पगुर्व० । ४ क नै पडवाँ आप चाऽम० । ५ स उपगु ।
६ स ०रञ्जित । ७ क कृत्य । ८ स ०सीच्छश० । ९ स ०विदुज । १० । १० क उपितो । ११ स धममुवता वर ।
० ग धर्ममुवता वर । १२ क ०र । शिनेयुर० । १३ उपित ।

लोमहर्षण उवाच

उप्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत। पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥२०॥
 'राजपुत्र्यां तु विद्वांसो स्नुषायां ऋषिकैशिकी। पञ्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरो रणविशारदो ॥२१॥
 भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्। कुन्तेर्घुष्टः सुतो जज्ञे रणघुष्टः प्रतापवान् ॥२२॥
 घुष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः। 'जावन्तश्च दशार्हश्च बली विपहरश्च' सः ॥२३॥
 दशार्हस्य सुतो द्योमा द्योम्नो जीमूत उच्यते। जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः ॥२४॥
 अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा। तस्य चासीद्दशरथः 'शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२५॥
 'तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभयघ्नपः। देवक्षत्रोऽभयस्तस्य' बृद्धक्षत्रो महायशः ॥२६॥
 देवर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्वनः। मधूनां वंशकुद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥२७॥
 मधोर्जतोऽयं घेदन्मा' पुरुहान्पुरुषोत्तमः। ऐश्याकी क्षामवद्भार्या' मधोस्तस्यां व्यजायत ॥२८॥
 'सत्यान् सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः। इमा' विसृष्टिं विज्ञाय 'ज्यामघस्य महात्मनः ॥
 युज्यते 'परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत्' सदा ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच"

सत्त्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या' सुपुत्रे सुतान्। भगिनं' भजमानं च दिव्यं 'देवावुधं नृपम् ॥३०॥

लोमहर्षण बोले—उस कन्या की उग्र तपस्या से सीमागवती पतिव्रता शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥२०॥ पश्चात् विदर्भ ने उसी राजपुत्री मे विद्वान्, वीर तथा युद्धविशारद ऋष और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ विदर्भ का पुत्र भीम और उसका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्ति के घुष्ट नामक प्रतापी तथा युद्ध-नुशल पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२२॥ घुष्ट के तीन वीर तथा परम धर्मात्मा पुत्र हुए—जावन्त, दशार्ह और बली विपहर ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र द्योमा और द्योमा का जीमूत कहा जाता है। जीमूत का पुत्र विकृति और उसका पुत्र भीमरथ कहा जाता है ॥२४॥ भीमरथ का पुत्र नवरथ था। नवरथ का दशरथ और उसका पुत्र शकुनि था ॥२५॥ शकुनि से करम्भ और करम्भ से राजा देवरात की उत्पत्ति हुई। देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र महायशस्वी तथा देवपुत्र के समान तेजस्वी बृद्धक्षत्र था ॥२६॥ बृद्धक्षत्र के देवपुत्र के समान मधु नामक मधुरत्वंता तथा मनु-वश वर्ता पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२७॥ मधु से वैदर्भी म पुरुषोत्तम पुरुहान् की उत्पत्ति हुई। पुरुहान् की ऐश्याकी नामक भार्या मे सब गुणो से युक्त सात्वतो का यशोवर्धक सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२८॥ महात्मा ज्यामघ की इस सृष्टि की जानकर मनुष्य अत्यन्त प्रसन्न तथा सदा प्रजावान् होता है ॥२९॥

लोमहर्षण बोले—सत्त्वान् से कौशल्या ने सत्त्वसपन भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवावुध, महाशक्तिशाली

१ क राजपुत्री। २ ग ऋषिकैशिकम्। ५०। ३ ग ऋतेवृष्णिमु०। ४ व अचरश्च। ५ व षपधर०। ६ क स य। ७ क स ऋषी बृहतिस्त०। ८ य सुत। ९ ग नरर०। १० य तथा। ११ व शक्रतुल्योऽस्य। १२ व तत कारम्भिस्तस्माच्च देव०। १३ स ग ऋय देवक्षत्रिर्महा०। १४ व. शा। हेमण०। १५ व ऋमिस्तस्य च प्रियपूर्वह०। ऐश्याकिमवद्वाराजासत्त्वस्तस्य व्य०। १६ स ऋषी सावस्त०। १७ स ऋत्वास्तत्त्वमु०। १८ व ऋषा च मु०। १९ ग ज्यामघस्य। २० स रम प्रि०। २१ व मवेद्विज। २२ स ऋच। सात्वतां सत्त्व०। २३ व ऋषीशिकी मु०। २४ व. भगिन। स. भजिन। २५ ग देववुध।

अन्वयं च 'महाप्राहुं धृष्टि' च धनुन्वनम् । तेषां विसर्गाद्वत्तवारी विस्तरेणेह कीर्तिताः ॥३१॥
 भजमानस्य सुञ्जयो बाह्यबायोपबाह्यः । आस्तां भाग्यं तयोस्तस्माज्जितरे गृह्यः सुताः ॥३२॥
 क्रिमिद्व 'श्रमणश्चैव' धृष्टः दूरः पुरञ्जयः । एते बाह्यसुञ्जयो भजमानाद्विजितरे ॥३३॥
 'अयुताजित्' 'सहस्राजित्' चानाजित्यव दास्यः । उपबाह्यसुञ्जयो भजमानाद्विजितरे ॥३४॥
 यज्ञा देवायुषो राजा घचार विपुलं तपः । पुत्रः सत्यगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥३५॥
 'संयुज्यमानस्तपसा' पर्णाशया जलं स्पृशन् । 'सदोपस्पृशतस्तपस्य' चचार प्रियमापन् ॥३६॥
 'चिन्तयामिपरोता' सा न जगामेव' निश्चयम् । वस्यापत्वात्तरपतेस्तस्य सा निम्नगोक्षमा ॥३७॥
 नाप्यगच्छतु तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । भवेत्तस्मात् स्वयं गरया भवाम्भस्य सहानुगा ॥३८॥
 अयं भूत्वा कुमारी सा विष्मतो परमं वपुः । वरयामास नृपतिं तामिषेयं च स प्रभुः ॥३९॥
 'वस्यामापत्त' गर्भं स तेजस्विनमुदारयोः । अयं सा वशमे मासि सुपुत्रे सतितां वरा ॥४०॥
 पुत्रः सत्यगुणोपेतं यधुं देवायुषं द्विजाः । अग्नं वन्दे पुराणजा गायत्रीति परिश्रुतम् ॥४१॥
 गुणान् देवायुषस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः । ययंवापे तथा दूरात्पद्मागस्तावद्विजात् ॥४२॥
 वधूः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावुषः समः । पण्डितश्च 'धृष्ट' च पुत्रयोः सहस्राणि च सप्त च' ॥४३॥
 एतेऽमृतत्वं प्राप्ता ये बभ्रुर्देवायुषादपि । यज्ञा 'वानपतिर्धोमान्' गृह्यः सुवृद्धायुषः ॥४४॥

अन्वयः आरयधुं इति धृष्टि की उत्पन्न किया ॥३०३॥ उन्ने चार वसो वा विस्तृत-वर्षन में वर दिया ॥३१॥ भजमान की मूञ्जय-पुत्री बाह्यरा और उपबाह्यरा नामक दो भाग्यें थीं । उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये ॥३२॥ भजमान से बाह्यरा ने विनि, वमण, धृष्ट, दूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए । उपबाह्यरा ने भजमान से अयुताजित् सहस्राजित्, चानाजित् और दास्य नामक पुत्रों को उत्पन्न किया ॥३३-३४॥ 'संयुज्यमानस्तपसा' से भजमान ने पुत्र पुत्र मुने हों' ऐसा निश्चय कर मगवर्ता राजा देवायुष उस तप करने लगा ॥३५॥ तपस्या से सप्तमी होकर वह पर्णाश्रम नदी के जल का स्नान करता था । उदा स्नान करने से नदी उससे प्रेम करने लगी ॥३६॥ वर राजा ने' विषय मे सीवर्ता हुई वह वाई निश्चय नष्टा कर पती । तब उस राजा का वरमाण बाह्यने वाली उस उत्तम नदी ने सोचा—'राजा की जो स्त्री है उसम इत तर्ह का पुत्र ही नहीं सस्ता । इसलिए मैं स्वयं जाकर उसकी पत्नी बन जाती हूँ' ॥३७-३८॥ तदनन्तर उन्ने परम सुन्दरी कुमारी का रूप धारण कर राजा का वरण किया । राजा ने भी स्वीकृति दे दी ॥३९॥ उन्ने राजा से उस नदी, धेष्ट न तेजस्वी गर्भ का धारण किया और दसवें मास मे बभ्रुदेवायुष नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया ॥४०३॥ त्रिप्रवृत्त । दस वस के बारे मे पुराणजो का कहना है कि—'महात्मा देवायुष ने गुणों का गान करते हुए हम लोग जैसे उसकी सामने देखते हैं वैसे दूर से भी बिलकुल पास ही मे देखते हैं' ॥४१-४२॥ मनुष्य-धेष्ट वध्रुदेवायुष देवता के समान है । सप्त हजार छाछठ परपी ने वध्रुदेवायुष से अमृत प्राप्त किया ॥४३३॥ वध्रु का विशाल वंश यज्ञ वर्ता महादानी, ब्रह्मादी और महायोद्धा हुआ, जिसमे सतिवाक्य आदि भोज हुए ।

१ क ० ह्रस्वपितय ० । २ ख वृजि । ३ क ० ता । इमि ० । ४ व वमिण । ५ ख चूय । ६ क ० पट् मुरसुतोपम । ए ० । ७ ख ० यतजि ० । ८ ख ० ह्रस्वजि ० । ९ क सजुष्टकायस्त ० । १० क ० दोषप्रतपसस्त ० । ११ क चितेन परिताप सा । १२ ख ० ताज्जमा ज ० । १३ क ० मैका विनि ० । ख ० मैक विनि ० । १४ ख सहस्रता ० अ । १५ क तस्मादागत्य सा गर्भं वधार परया मुदा । अ ० । १६ क पण्डित पु ० । ख पण्डित पु ० । १७ ख च । १८ क ख ० तिबिद्वान् ० ।

तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये सात्त्विकावताः । अन्वकात्काश्यदुहिता चतुराङ्गलभतात्पजान् ॥४५॥
 कुकुरं भजमानं च तसकं बलबलहियम् । कुकुरस्य सतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥
 कपोतरोमा तस्यायः तिलिरिस्तनयोऽभवत् । ज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिच्च पुनर्व्वसोः ॥४७॥
 तथा वे पुत्रमियुनं बभूवाभिजितः किल । आहुकः आहुकश्चैव स्यातौ स्यातिमतां वरौ ॥४८॥
 इमां चोदाहरन्त्यत्र गायं प्रति तमाहुकम् । ज्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९॥
 'अशीतिवर्षेणा युक्त आहुकः प्रथमं वनेत् । नापुत्रवात्ताशतदो नासहस्रशतायुयः ॥५०॥
 नागुद्धर्म्मसां तापज्वा यो भोजमभितो वनेत् । पुर्व्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥५१॥
 सोमास्तङ्गात्कर्पाणां प्वजिनां सवर्णयिनाम् । रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥५२॥
 रौप्यकाञ्चनरत्नाणां सहस्राण्येकैवशतिः । तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्मां तथा दिशि ॥५३॥
 आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्कुषीकिनः । आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं बहुरन्धकाः ॥५४॥
 आहुकस्य तु काश्यायाः द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु । देवकश्चोपसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ॥५५॥
 देवकस्याभवन् पुत्रादक्षत्वारस्त्रिदशोपमाः । देववानुपदेवश्च संदेवो देवरक्षितः ॥५६॥
 शुमार्यः सप्तः चास्याय वसुदेवाय ता ददौ । देवकी शास्तिदेवा व सुदेवा देवरक्षिता ॥५७॥
 वृकदेव्युपदेवी च सुताम्नी चैव सप्तमी । नवोपसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पृथ्वज ॥५८॥

काश्य की कस्या ने अन्वव मे कुकुर, भजमान, ससक और बलबलहिय नामक चार पुत्र उत्पन्न किए ॥४५॥ ४५॥ कुकुर
 का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का पुत्र कपोतरोमा था । कपोतरोमा का पुत्र तिलिरि हुआ । उसके पुनर्वसु की उत्पत्ति
 हुई । पुनर्वसु से अभिजित उत्पन्न हुआ ॥४६॥ ४६॥ अभिजित के आहुक और आहुक नामक महाप्रसिद्ध दो पुत्र
 हुए ॥४७॥ आहुक के विषय में यह गाय प्रसिद्ध है कि 'वह स्वेत परिवार से युक्त बिषोर के समान था ॥४८॥
 अर्सी कक्षी से युक्त वह अग्रणी बनकर चलता था और उसके चारों तरफ पुत्रवान् यक्षर्षा, सैकड़ों दानवाता,
 सैकड़ों हजारों वर्ष खीन धाले और गुद्ध कर्म करने धाले लोग घमन करते थे ॥४९॥ भोज के साथ पूर्व दिशा में
 दक्ष हजार हाथी, दस हजार सेना, मेघ के समान शब्द करने वाले दस हजार रथ और दशतीस हजार सोने-चाँदी के बल
 रहते थे । उत्तर दिशा में भी उसने साथ उत्तरी ही सत्वा में उक्त चीजें रहती थी ॥५०॥ ५०॥ भोजवश से सभी
 राजा प्रणम्य के हाथ से युक्त रहते थे । और भी कहा जाता है कि अन्वका ने अवन्तियों को अपनी वधू बनाई ॥५१॥
 आहुक की पत्नी काश्या से देवक और उपसेन नामक देवसदृश तेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५२॥ देवक के देवता के
 समान चार पुत्र—देववान्, उपदेव, सदा और देवरक्षित उत्पन्न हुए ॥५३॥ इसकी शाति कपार्य देवकी, शास्तिदेवा,
 मुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुताम्नी वसुदेव के साथ ब्याही गई ॥५४॥ ५४॥ उपसेन के कंस, न्यग्रोप,

१ व जानामार्गिकावताम् । अ० । १० जावेमार्गिकारता । अ० । २ क आहुकस्य दु० । ख० काश्यस्य दु० ।
 ३ स समक दल० । ४ क वृष्णवृष्णेतु । ५ क श्वेततिरि० । ६ क अदितिश्च । ७ क अहुक आहुकी च । ८ क
 मतिमता । ९ ख अहुकम् । १० क निचर्म० । ख० तिचर्म० । ११ ख भजन् । १२ ग कल्पाना स० । १३ क अश्वि
 स । ख० अजाते सातिठनिङ्कुषी किल । अ० । १४ क ग आहुकी चा० । १५ स अरज्वर । १६ ग काश्याया ।
 १७ स अमुतावु० । १८ ग अरानु० । १९ ग श्व सदे० । २० ख० अत्तास्या० । २१ क शदेवी ।

न्यग्रोधश्च सुतामा चतया कडकः सुभूषण । राष्ट्रपालोऽयं सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९॥
 तेषां स्वसारं पञ्चासन् कसा कसवती तथा । सुतनू राष्ट्रपात्री च कडका चैव वराङ्गना ॥६०॥
 उपसेन सहायस्यो व्याख्यात कुकुरोद्भव । कुकुराणामिमं वशं धारयन्प्रमितोजसाम् ॥६१॥
 आत्मनो विपुलं वशं प्रजावानापनुयाध्वरः ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे वृष्णिवशनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

सत्रादौ सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽयं रथमुल्लो विदूरथ । राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१॥
 राजाधिदेवस्य सुता जतिरे धीव्यवत्तरा । रक्षातिदत्तौ वल्लिौ शोणाश्व श्वेतवाहा ॥२॥
 शमी च दण्डशर्मा च रश्मिशनुश्च शत्रुजितः । धवणा १ व विष्टा च स्वसारौ सम्भूभवतु ॥३॥
 शमिपुत्रं प्रतिक्षत्रं प्रतिक्षत्रस्य पात्मजः । स्वयम्भोजः स्वयम्भोजवन्निदिवः १ सम्भूभव ॥४॥

सुताया कक सुभूषण राष्ट्रपाल सुतनु जनानृष्टि और पुष्टिमान् नामक नी पुत्र हुए जि मे वस सबसे ज्येष्ठ था ॥५८५९॥ उनको कसा कसवती सुतनु राष्ट्रपाली अ कडा नामक पाच रूपवती रहन थी ॥६०॥ इन सतानो क सहित उपसेन कुकुर का वगन कहलाया। कुकुरो ५ अयत्त तजस्वी वश को सुनने से मनुष्य महान प्रजावान होता है ॥६१६२॥

अ। ब्रह्ममहापुराण में वृष्णि वश निरूपण नामक पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

सत्राजित् का उपारयान

लोमहर्षण ने कहा—भजमान क विदूरथ नामक महारथी पुत्र हुआ और विदूरथ ने राजाधिदेव नामक पुत्र हुआ ॥१॥ राजाधिदेव के दत्त अतिदत्त धोणाश्व श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दन्तशत्रु अ र शत्रुजित् ५ व अयत्त शक्तिशाली पुत्र एवं धवणा वार १ विष्टा नाम की दो कन्याएं उत्पन्न हुई ॥२३॥ शमी का पुत्र प्रति ॥ और प्रतिक्षत्र का स्वयम्भोज था। स्वयम्भोज से अधिक उत्पन्न हुआ ॥४॥ अधिक ने महापराक्रमी पुत्रा ने

१ क काङ्क । २ क वाप्राणु० । ३ क जग्यमानो । ४ क अत्तामिद० । ५ क अन्तचक्रद्व । ६ क वीरा । ७ क स गमीपु० । ८ क जाद्वदीक । ९ जाद्वदि० ।

तस्य पुत्रा बभूवुर्ह सव्यं भीमपराक्रमाः। कृतवर्मप्रजस्तेषां शतघनवा तु मध्यमः॥५॥
 देवान्तश्च नरान्तश्च निषर्ग्वतरणश्च यः। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाशः कामदम्भकः॥६॥
 देवान्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः। असमोजा सुतस्तस्य नासमोजाश्च तावुभौ॥७॥
 अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमोजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः॥८॥
 गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुमार्यं बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
 माद्री सुधाजितं पुत्रं ततो यं देवमीदृषम्। अनमित्रममिश्राणा जेतारमपराजितम्॥१०॥
 अनमित्रसूतो निष्णो निष्णतो ह्यौ बभूवतुः। प्रसेनश्चायं सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावभौ॥११॥
 प्रसेनो द्वारवत्यां तु नियसन् यो महामणिम्। दिव्यं स्यमन्तकं नाम॥ स सूर्याद्विपुल्यवान्॥१२॥
 तस्य सत्राजितः सूर्यः यथा प्राणसमोऽभवत्। स कदाचिन्निशापायं रथेन रथिना वरः॥१३॥
 "तौमकूलमपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्यानघतः स्थितः"॥१४॥
 विस्पष्टमूर्तिर्भगवास्तंजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वस्तमुवाच स्थितमघतः॥१५॥
 पयैव ध्योऽग्निं पश्यामि सदा तथा ज्योतिषा पते। तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
 को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः "सत्येनोपगतस्य वै। एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

सवसे ज्येष्ठ कृतवर्मा और महाला शतघनवा था ॥५॥ इनसे छोटे देवान् नरान्, सुदान्, अतिदान्, मिपगर्वतरण, निका-
 श तथा कामदम्भक थे ॥६॥ देवान् का पुत्र विद्वान् कम्बलबर्हिष था। उसका असमोजा और नासमोजा नामक
 दो पुत्र थे ॥७॥ पुत्र-विहीन असमोजा को अन्धक न सुदंष्ट्र सुचार अरु कृष्ण नामक पुत्र दिये, जो अन्धक नाम
 से ही प्रख्यात हुए ॥८॥ क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री नामक दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी न अनमित्र नामक महाबली
 पुत्र को उत्पन्न किया ॥९॥ माद्री से सुधाजित् अरु देवमीदृष नामक पुत्रो की उत्पत्ति हुई। देवमीदृष शत्रुओं
 का भी मित्र तथा सर्वदा विजयशाली था ॥१०॥ अनमित्र का पुत्र निष्ण था। निष्ण ने के दो पुत्र थे—प्रसेन और
 सत्राजित्। दोनों शत्रु विजयी थे ॥११॥ प्रसेन द्वारवत्यापुरी में वास करता था। सत्राजित् न सूर्य से स्यमन्तक नामक
 दिव्य महामणि को प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का प्राणप्रिय आराध्य सूर्य था। जिस समय राजा के अवसान
 में सूर्योपस्थान करने के लिए महारथी सत्राजित् रथ पर अश्वक हारकर नदी के किनारे गया ॥१३॥ जब वह
 सूर्योपस्थान कर रहा था तब स्पष्ट मूर्तिवान् तेजोमण्डल से युक्त तथा शक्ति-सम्पन्न भगवान् सूर्य उससे साम-
 न् स्थित हो गए। राजा ने सूर्य से निवेदन किया ॥१४॥ हे ज्योतिष्मन्! जैसे आकाश में मैं आपको सदा
 तेजोमण्डल से युक्त देखता हूँ वैसे ही अपने सामने भी देख रहा हूँ ॥१५॥ इसलिए आपसे साथ मेरी घनिष्ठता
 में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ? यह सुनकर भगवान् सूर्य ने अपना गले से स्यमन्तक मणि को उतार कर एकान्त

१ क म। सुगान्तश्चापि निष्कोशो निष्कोशात्कामः०। २ क। तामसीजाश्च। ख। नामसीजाश्च। ३ ख।
 ०त्यन्धकाः। ४ क। स। क्रोष्टुमार्यं। ५ क। महादुनी। ६ क। तथा। ७ ख। ०मित्र च शत्रुणां। ८ क। ०श्चापि सः। ९ ख।
 ०वसश्च मः। १० क। स। समुद्रादुः। ११ ख। ०समुपस्थातु स राजा च यः। १२ म। ०तः। अरयः। १३ क। देव।
 १४ ख। महायत्न यः।

स्वकण्ठादवमुच्याय^१ एकान्ते न्यस्तवान् विभुः। ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥
 प्रीतिमानय तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कपाम्। तमभिप्रस्थितं भूपो विवस्वन्त स सप्रजित्॥१९॥
 लोकान् भासयसे शर्वान् येन त्वं सततं प्रभो। तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥
 ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमावधाय^२ नगरीं प्रविवेश महोपतिः॥२१॥
 तं जनाः पर्ययथावन्तः सूर्योऽयं गच्छतीति ह^३। स्यां पुरीं स विसिप्त्वाय राजा त्वन्त पुरं तथा॥२२॥
 तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ ध्यात्रे^४ नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥
 ॥ मणिः स्यन्तते स्वप्नं वृण्वन्धकनिवेशने। फाल्गुनी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
 लिप्तां चक्रे प्रसेनस्य^५ मणिरत्नं स्यमन्तकं। गोविन्दो न च त स्त्रेभे भवतोऽपि न जहार सः॥२५॥
 फवाविन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूयितः। स्यमन्तककृते सिंहद्वयं^६ प्राप यनेचरात्॥२६॥
 अय सिंहं प्रयावन्तमूलराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं^७ तदादाय प्राविशद्गुहाम्॥२७॥
 ततो घृण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्। प्रार्थनां^८ ता मणेर्युध्या सत्त्वं एव शशङ्किरे॥२८॥
 स "शङ्कयमानो घर्मात्मा अकारो तस्य कर्मणः। आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययी॥२९॥
 यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यय^९ प्रसेनस्य पद गृह्य पुरं चरात्सकारिभिः"॥३०॥

स्थान में रख दिया॥१७३॥ तब राजा ने शरीरवाणी सूर्य को देखा और प्रसन्नता से दो घड़ी तक उनसे बातचीत किया॥१८३॥ जब सूर्य चलने लगे तब सत्राजित ने फिर कहा—'भगवन्' जिस मणिश्रेष्ठ से आप सब लोका को सदा प्रकाशित करते हैं, वह मुझ दे दीजिये॥१९२०॥ तब सूर्य ने स्वमन्तकमणि उसे दे दी। उसने भी मणिवा दीधकर अपने नगर में प्रवेश किया॥२१॥ नगर के लोग 'वह सूर्य आ रहा है' ऐसा मन्त्र कर भागने लगे। इस प्रकार नगरवासियों को विस्मित करते हुए राजा अन्तपुर में चला गया॥२२॥ राजा सत्राजित ने अपने भाई प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्वमन्तक प्रेम से दे दिया॥२३॥ वृष्णि-अन्धक कुल वालों के घर में वह मणि सोना सरसि थी। मणि के रहते द्वारिकापुरी में कभी अवृष्टि या अत्यावृष्टि नहीं होती थी, व्याधि का भय तो बतई नहीं था॥२४॥ कृष्ण को स्वमन्तक मणि की लालसा थी, पर उन्हें नहीं मिली। सामर्थ्यवान् होते हुए भी वे हर्षण नहीं कर सकते थे॥२५॥ किसी समय मणि से विमुग्ध होकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वन में विचरते हुए एक सिंह प्रसेन को मारकर स्वमन्तक मणि लेकर भाग गया॥२६॥ दौड़ते हुए उस सिंह को महाबलवान् ऋअराज (जाम्बवान्) ने मार डाला और मणि लेकर वह अपनी गुहा में प्रविष्ट हो गया॥२७॥ पश्चात् कृष्ण स्वमन्तक लेना चाहते थे, ऐसी व्याफा कर वृष्णि-अन्धक-वशियों ने श्रीकृष्ण पर प्रसेन के चरणों पर आरोप लगाया॥२८॥ घर्मात्मा कृष्ण दोषरहित होते हुए भी मिथ्यारोप से बचने के लिए 'मैं मणि लाऊंगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन में गये॥२९॥ जहाँ प्रसेन शिकार खेलने गया था उस (स्थान) को आप्त व्यक्तियों के द्वारा निश्चित कराकर उसके पद-चिह्नों के ऊपर

१ ख ०मृत्युवमेका०। ग मृत्युवमेका०। २ क ग कानुद्भासयस्येतान्ये०। ३ ख ०मास्यन०। ४ ख ह।
 पुरी विस्मापयित्वा तु स राजाऽन्त०। ५ क ख तयो। ६ ग ०सेनात्तुम०। ७ क ०द्वधमाप। ८ ग ०न्त तु आदाय
 वनमाविशत्। त। ९ क ०शदिबलम्। १० क प्रायित त मणि बुद्ध्या। ११ क शङ्क्या०। १२ ख, ०रामका०।

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् । अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥३१॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् । अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविवूरतः ॥३२॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदं ऋक्षस्तु सूचितः । पदं स्तैरन्विधायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३३॥
स हि ऋक्षविले बाणो शुधाव प्रमदेरिताम् । धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥३४॥
क्रोडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यवेरिताम् ॥३५॥

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्वमन्तकः ॥३६॥
अपविततस्तस्य शब्दस्य सूर्यमेव बिलं ययौ । प्रविश्य तत्र भगवांस्तद्वक्षबिलमञ्जसा ॥३७॥
स्यापयित्वा बिलद्वारे यदूलाङ्गलिना सह । शङ्खधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्त ददर्श सः ॥३८॥
पुपुधे वासुदेवरु बिले जाम्बवता सह । बाहुभ्यामेव गोविन्दो द्विसर्पानेकविंशतिम् ॥३९॥
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः । पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥४०॥
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् । लेभे जाम्बवतीं कन्यामुक्षराजस्य सम्मताम् ॥४१॥
मणि स्वमन्तकं चैव जप्राहारमविशुद्धये । अनुनीयसंराजं तु निर्णयौ च ततो बिलात् ॥४२॥
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः । एवं स भगिराहृत्य विशोऽध्यात्मानमच्युतः ॥४३॥

कृष्ण चलन लगे । पर्वत-श्रेष्ठ ऋक्षवान् और पर्वतोत्तम विन्ध्य पर्वत में मणि को ढूँढत हुए जब वे थक गये तो अथर्व सहित निहत प्रसेन दिखायी पड़ा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी ॥३०-३१॥ दहर-उधर देखने पर प्रसेन ने शव के पास ही रीछ द्वारा निहत सिंह दिखाई पड़ा ॥३२॥ रीछ ने पदबिह्वो का अनुसरण करत हुए श्रीकृष्ण उसकी गुहा तक पहुँच गए । रीछ की खोह में श्रीकृष्ण को जाम्बवान् के बालक को मणि से खेलती हुई बाली के मुख से निकली हुई 'मत रोओ' यह बाणी सुनाई पड़ी ॥३३-३५॥

धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने । हे सुपुत्र ! मत रोओ, यह पुम्हारी ही स्वमन्तक मणि है ॥३६॥ उसने शब्द स्पष्ट सुनते ही कृष्ण ने उस खोह में प्रविष्ट होने से पूर्व बिल-द्वार पर यत्नसह सहित यदुवशियो को खड़ा कर दिया । शङ्ख नामक धनुष को धारण करके बाले कृष्ण ने खोह में स्थित जाम्बवान् को देखा ॥३७-३८॥ बिल में वासुदेव जाम्बवान् के साथ मल्लयुद्ध करने लगे । इन्कीस दिनों तक दोनों बाहु-युद्ध करने रहे ॥३९॥ कृष्ण ने खोह में प्रविष्ट हो जाने पर बलदेव सहित यदुवशियो ने द्वारका आकर लागा से कह दिया कि कृष्ण मारे गये ॥४०॥ कृष्ण ने महाबलशाली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की इच्छानुसार उसकी कन्या जाम्बवती से विवाह कर आत्मशुद्धि के लिए (देहेज में) उसी स्वमन्तक मणि को प्राप्त किया । फिर वे जाम्बवान् को सत्य ना देकर बिल से बाहर निकले ॥४१-४२॥ तब अपने विनयी अनुयायियों के साथ कृष्ण द्वारका पहुँचे । इस प्रकार मणि

१ ग यक्षवन्त । २ क. ग अन्वेषय परि० । ३ ख ०ष्ट पादे० । ४ ०क्षस्य मावित । ख ०क्षस्य मू० । ५ ख यक्षवन्तस्तस्य श० । ग व्यक्तीकृतस्य श० । ६ ख शब्दश्च । ७ ख ०विष्टस्तत्र । ८ ख ०भ्यामय गो० । ९ क. महाबल । १० ख समतम् । ११ ख जहाराऽऽम० ।

ददौ सत्राजिते' तं वै सर्वसात्वतसंसदि'। एवं मिथ्याभिज्ञस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४४॥
 आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् । सत्राजितो दशत्वाप्तुं भार्यास्तासां शतं सुताः ॥४५॥
 ह्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वजः'। वीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४६॥
 कुमार्यश्चापि तिलो वै दिक्षु ह्याता द्विजोत्तमाः । सत्यभामोत्तमा तासां प्रतिनो च दृढव्रता ॥४७॥
 तथा प्रस्वापिनो चैव भार्याः कृष्णाय ता ददौ । सभासो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमो ॥४८॥
 जज्ञाते गुणसम्पन्नो विभ्रुतो रूपसम्पदा । माद्र्याः पुत्रोऽय जज्ञेऽय वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४९॥
 जज्ञाते तनयो वृष्णे, इवफलकश्चित्रकस्तथा । इवफलकः काशिराजस्य सुतां भार्यामिविन्दत ॥५०॥
 गान्दिनो नाम तस्याश्च गतः सदा प्रवदौ पिता । तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिविप्रियः ॥५१॥
 अकूरोऽय महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः । उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मुदरश्चारिमर्दनः ॥५२॥
 अरिभेपस्तयोपेक्षः' शत्रुहा चारिमेजयः । धर्मभृच्छापि 'धर्मा च' गृध्रभोजान्यकस्तथा ॥५३॥
 'आबाहूप्रतिबाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना । विश्रुताश्चस्य' महिषी कन्या चास्य 'वसुधरा ॥५४॥
 रुद्रवीचनसम्पन्ना सम्बन्सत्त्वमनोहरा । अकूरेणोपसेनाया' सुतो वै कुलनम्बनी' ॥५५॥
 वसुदेवश्चोपवेवश्च जज्ञाते देववर्चसो । चित्रकस्याभवन् पुत्रा, पृथुध्वपृथुरेव च ॥५६॥

हेतुकर आत्म-शुद्धि के लिए वासुदेव ने यादवों से भरी हुई सभा में वह नग्न सत्राजित् को दे दी ॥४३॥ इस प्रकार मिथ्या-
 पवाद को प्राप्त शत्रु-नाशन कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को ओत कर पाप से अपनी शुद्धि की ॥४४॥ सत्राजित् के दस
 पतिन्याँ और ती पुत्र थे। उन पुत्रों में तीन ही प्रशस्त हुए। भङ्गकार ज्येष्ठ था और वीर वातपति तथा वसुमेघ
 छोटे थे ॥४५-४६॥ विप्रवर । सर्वत्र दिक्ष्वात सत्यभामा, दृढव्रता तथा प्रस्वापिनी नामक तीन कन्यायें भी
 उसकी थीं। सत्राजित् ने उन कन्याओं का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया ॥४७॥ भगकार के सभास और नावेय
 नामक रूप-गुण-सम्पन्न नरोत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ॥४८॥ माद्री का पुत्र युधाजित हुआ। वृष्णि के इवफलक और चित्रक
 नामक दो पुत्र हुए । इवफलक ने काशिराज की गान्दिनी नामक पुत्री से विवाह किया ॥४९-५०॥ पिता गान्दिनी
 को सदा गर्व से दिया करता था। गान्दिनी से अकूर नामक वीर, विद्वान्, अतिवि प्रजक, महाभाग्यशाली तथा
 बहुत्र दक्षिणा देन वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५१॥ अकूर के उपमद्गु, मद्गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिभेप, उपेक्ष,
 शत्रुहा, अदिनेत्र, धर्ममूत, धर्मा, गृध्रभोजान्यक, आबाह और प्रतिबाह—ये पुत्र थे। उसकी वसुधरा नामक कन्या,
 जो रुद्र-वीचन आदि सर्वगुणों से सम्पन्न थी, राजा अश्व की रानी बनी ॥५२-५३॥ अकूर की पत्नी उपसेना से वसुदेव
 तथा उपदेव नामक दो देवसन्तान लेजस्वी कुल-वर्चस्व पुत्र उत्पन्न हुए ॥५४॥ चित्रक के पृथु, विपुषु अश्वघ्रीव,

१ ख ० ते चैव स० । २ क ० वेयादयस० । ३ ग ० पां नगका० । ४ क ० ज । विरोधाधिप० । ५ क ० व
 उपश्रवस्त० । ६ क ग स्त्रीणा । ७ ॥ ० शोभाङ्ग० । ८ ख सारयेव । ९ ख रूपसवती । १० क ग ० न । गिरि० ।
 ११ क ग ० स्तयालोष घ० । १२ ग धर्मी । १३ क ० धर्मो जाम्बवस्त० । ग ० धर्मो जानुवस्त० । १४ क आबाह
 प्रतिबाहपुत्र सु० । १५ ० ता सा च महिषक० । ग ता० स्वस्य ग० । १६ ख वराङ्गना । १७ ग ० सेन्या तु सु० ।
 १८ क ० नी । वृपदे० ।

अश्वप्रोवोऽश्वबाहुश्च सुपादवंकगवेपथौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभूदेव च॥५७॥
सुबाहुर्वहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्ववणे स्त्रियौ। इमा मिथ्याभिज्ञस्ति य कृष्णस्य समुदाहृताम्॥५८॥
वेद मिथ्याभिज्ञापास्त न स्पृशन्ति कदाचन॥५९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपण नाम धोडशोऽध्याय ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम्। वदाबहारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना॥१॥
सदा हि प्राययामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अक्रूरोऽतरमन्विष्यमणि खंभ स्यमन्तकम्॥२॥
सत्राजित ततो हत्वा शतधन्वा महाबल। रात्रौ स मणिमावाय ततोऽक्रूराय वक्तवान्॥३॥
अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमावाय चोत्तमम्। समय कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽह त्वयेत्युत॥४॥
'वपमन्युत्प्रपत्स्याम कृष्णेन' त्वा 'प्रघर्षितम्' ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसशयम्॥५॥
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा मनस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम्॥६॥

अश्वबाहु सुपादवक, गवेपण धर्म धर्मभूत् सुबाहु और बहुबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। उसके श्रविष्ठा और श्ववणा नामक दो बेटायें भी थीं॥५६५७३॥ कृष्ण क इस मिथ्यापवाद की वया को जो जानता है, उसे मिथ्यापवाद कभी नहीं लगता॥५८५९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे स्यमन्तक प्रत्यानयन निरूपण नामक सोलहवा अध्याय समाप्त॥१६॥

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

लोमहर्षण बोले—जिस स्यमन्तक मणि की कृष्ण न सत्राजित् को दिया, उसे भोजवशा शतधन्वा ने पुरा लिया॥१॥ यवहरदूढ़ता हुआ अक्रूर सदैव अनिय मुदरी सयमामा से स्यमन्तक मणि के लिए प्रायना किया करता था॥२॥ एक रात महाबली शतधन्वा न सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि लेकर अक्रूर को दे दिया॥३॥ विप्रवृन्द। उस उत्तम मणि को प्राप्त कर अक्रूर न शतधन्वा से यह प्रतिज्ञा कराया कि अक्रूर न पास मणि है—यह रहस्य तुम उग्यो नही बतलाना॥४॥ यदि कृष्ण तुम्हारा कोई अनिष्ट करे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। आज सारी द्वारका मेरे अधीन है इसमे कोई सशय नहीं॥५॥ निदान सत्राजित् न वय से दुखी मनस्विना सत्यभामा रथ पर

१ छ ०२वसेनोऽश्व०। २ क ०प्रा मणि मा०। ३ छ वय कृष्ण प्रप०। ४ क ०ण्य च त्वा। ५ क प्रघर्षति।
६ ग ०मा यन्स्वि०।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतघन्वनम् । भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पाश्वरस्याभूण्यवर्त्तयत् ॥७॥
पाण्डयानां च दग्धानां हरिः कृतबोदकक्रियाम् । शुल्पायै चापि पाण्डूनां न्यषोजयत् सत्यकिम् ॥८॥
ततस्तत्वरितमायम्य द्वारकां मधुसूदनः । पूर्यञ्जं हलिनं धीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

हृत् प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतघन्वना । स्थमन्तकस्तु मदगामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
तवारोह रयं क्षीघ्रं भोजं हत्वा महारयम् । स्थमन्तको महाबाहो अस्माकं न भविष्यति ॥११॥

लोमहर्षण उवाच

ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः । शतघन्वा ततोऽक्रूरं सख्यंतोविशमंशत ॥१२॥
संरब्धो तावुभी तत्र दृष्ट्वा भोजजनादंनौ । शपतोऽपि साधाद्वाविषयमक्रूरो नाग्वपद्यत् ॥१३॥
अपदाने ततो बुद्धिः भोजइच्छे भयादितः । योजनानां शतं साधु हृदया प्रत्यपद्यत् ॥१४॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत् ॥१५॥
क्षीणा जवेन हृदयामघ्वनः शतयोजने । दृष्ट्वा रथस्य रथां बुद्धिः शतघन्वानमवर्द्धयत् ॥१६॥
ततस्तस्या हतायास्तु भ्रमात् खेदोच्च भो द्विजा । समुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णे राममयाब्रवीत् ॥१७॥

षडंबर वारणावत नामक नगर को चली गई ॥९॥ सत्यभामा शतघन्वा का संपूर्ण वृत्तान्त अपने स्वामी से निवेदन कर उन्हीं के पास खड़ी होकर राने लगी ॥७॥ श्री कृष्ण ने दग्ध पाण्डवों को जलजलि देकर उनके अस्थि-संस्कार के लिए सत्यकि को नियुक्त कर दिया और फिर द्वारका पहुँच कर अपने ज्येष्ठ भाई बलभद्र से कहा ॥८-९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रभो ! सिंह ने प्रसेन की मार डाली और शतघन्वा ने सत्राजित् को । अब स्थमन्तक मणि का स्वामी मैं हूँ ॥१०॥ इसलिए हम लोग क्षीघ्र रथाखंड हाथर शतघन्वा की मारकर स्थमन्तक मणि ग्रहण कर ॥११॥

लोमहर्षण बोले—हयिबृन्द, डूबने बाद कृष्ण और शतघन्वा ने घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । शतघन्वा चारों तरफ अक्रूर की ताकन लगा ॥१२॥ परन्तु जब युद्ध में प्रवृत्त शतघन्वा और कृष्ण को देखकर सामर्थ्यवान् होते हुए भी अक्रूर साप के कारण शतघन्वा की सहृदयता करने के लिए न आया तब भय से पीड़ित शतघन्वा ने भागने का विचार किया ॥१३॥ विप्रमण ! तब हृदया चार सौ कोस दूर चली गई ॥१४॥ भोज की हृदया नाम से विख्यात घोड़ी सौ योजन तक चलन वाली थी जिस पर सवार होकर शतघन्वा कृष्ण से युद्ध कर रहा था ॥१५॥ परन्तु चार सौ कोस पहुँचने पर हृदया का वेग क्षीण हो गया । तब अपने रथ को आगे जहाजर श्रीकृष्ण शतघन्वा को पीड़ित करने लगे ॥१६॥ पश्चात् यम अर्थात् खेद के कारण हृदया ने प्राणपक्षे उड़ गये । तब कृष्ण ने राम से कहा ॥१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

निष्ठेह त्वं महाबाहो वृष्टयोपा हया मया । पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्वमन्तकम् ॥१८॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतघन्वानमव्युतः । मिथिलामभितो विप्रा जघान परमात्त्रधित् ॥१९॥
स्वमन्तकं च नापश्यद्वत्वा भोजं महाबलम् । निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं मणिं देहीति लाङ्गली ॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो वयान्वितः । धिक्शब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनाद्बन्धनम् ॥२१॥

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् । कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च दृष्टिभिः ॥२२॥
प्रविशेश ततो रामो मिथिलामरिमद्बन्धनः । सर्वकामरूपहृत्तमिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुमन्तिमतां वरः । नानाव्यान् कृतुन् सध्वानाजहार निरगलान् ॥२४॥
वीक्षामयं स कबचं रक्षायं प्रविशेश ह । स्वमन्तककृते प्राप्तो गान्धोषुत्रो महायशः ॥२५॥
अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च । पण्डितं वर्याणि धर्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
अक्रूरयज्ञा इति ते ह्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वृषदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
अथ दुर्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः । गवाशिक्षा ततो दिव्या बलवेद्याद्वान्तवान् ॥२८॥
सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यग्न्यकमहारथैः । आनीतो द्वारकायेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥
अक्रूरश्वान्यकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः । हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धु महाबल ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—महावर्षिनयास्मिन् । आप यही रहिये, वीही नष्ट हो चुकी है, अब मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्वमन्तक को ले आऊँगा ॥१८॥ तब परमवत्सल कृष्ण ने पैदल जाकर मिथिलापुरी के पास शतघन्वा को मार पर महाबली भोज के मारने पर भी स्वमन्तक मणि नहीं मिली । कृष्ण के लौटने पर बलराम ने उनसे मणि मांगी बाला ॥१९॥ ॥२०॥ उन्होंने जवाब दिया कि मिली ही नहीं । यह सुन बलराम क्रुद्ध होकर कृष्ण को बार-बार धिक्कारने लगे ॥२१॥

बलराम ने कहा—भ्रातृ-भनेह के कारण मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर रहा हूँ । अच्छा, तुम्हारा बल्याण हो, मैं जाता हूँ । मुझे न तो द्वारका से, न तुमसे, न दृष्टियों से ही कोई कार्य है ॥२२॥ तब शत्रु-पाश राम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया । मिथिलापति ने अनेक उपायों से राम की पूजा की ॥२३॥ इसी समय बुद्धिमावी मे श्रेष्ठ अक्रूर ने नाना प्रकार के यज्ञ विये और स्वमन्तक की रक्षा के निमित्त दंडात्मय बवध भी घारण किया ॥२४॥ स्वमन्तक के लिए उस महायज्ञस्यः तथा बुद्धिमान् शान्दी-युव अक्रूर ने साठ वरों तक अनेक प्रकार के रत्न तथा धन उन यज्ञों में लगाये ॥२५-२६॥ उस महात्मा के बहुत अन्न और दक्षिणा वाले तथा सब कामनाओं को देने वाले वे यज्ञ 'अक्रूर-यज्ञ' नाम से विख्यात हुए ॥२७॥ इसके बाद राजा दुर्योधन मिथिलापुरी जाकर बलदेव जी से दिव्य वद्या-शिक्षा प्राप्त करने लग, ॥२८॥ कुछ दिनों बाद महारथी वृष्ण-अय्य वशिष्ठ ने साथ कृष्ण बलराम को डारका लावा लाये ॥२९॥ वन्धु सहित सोने सत्राजित् को मारकर

जातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितयास्तदा । अपयाते तदाकूरे नावर्पत्पाकशासन' ॥३१॥
 अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम् । ततः प्रसादयामासुरकूरं कुकुरान्धकः ॥३२॥
 पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपती ततः । प्रववर्ध सहस्राक्षः कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥
 कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्पत्ताम् । अकूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमा ॥३४॥
 अयं विनाय' योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् । सभामध्यगतः' प्राह तमकूर जनार्दनः ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तत्रलं भणिवरं तव हस्तगतं विभो । तत्प्रयच्छ' च मानाहं मयि मानार्थकं कृपा' ॥३६॥
 पण्डितवर्गते काले' यो' रोषोऽभून्मानव । स सख्योऽसकृत् प्राप्तस्ततः' कालात्ययो महान् ॥३७॥
 स ततः' कृष्णवचनात् सध्वंसात्प्रवृत्ततद्विद । प्रददौ त मणिं बभ्रुवलेजेन 'महामति' ॥३८॥
 ततस्तमानंवात् प्राप्तः च भ्रोहंस्तदरिन्दम । ददौ हृष्टमना कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥३९॥
 स कृष्णहस्तान् सम्प्राप्तं' मणिरत्नं स्थमन्तकम् । आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजाशुमानिव ॥४०॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवशकयन नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

महाबली अकूर भी अन्धक वशिषो वै साथ आया ॥३०॥ उस समय बन्धु-भेद के भय से कृष्ण ने उसका प्रतिपाप कट दिया । अकूर के चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥३१॥ अनावृष्टि के कारण राष्ट्र विप्लव हो गया । तब कुकुर और अन्धक वगवालों ने अकूर को प्रसन्न किया ॥३२॥ फिर उस दानपति आने पर इन्द्र ने द्वारका में वृष्टि की ॥३३॥ मुनिवर । बुद्धिमान् अकूर ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वसा नामक अपनी सुशिल कन्या उन्हे समर्पित कर दी ॥३४॥ पर योगबल से कृष्ण अकूर के पास मणि का जानकर सभा मध्य में स्थित बनूर से कहने लगे ॥३५॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे शक्ति-भूषण ! आपके पास जो मणि रत्न है, उसे आप समर्पित कर दीजिये, मेरे साथ अनार्य वंश-का व्यवहार न कीजिये ॥३६॥ हे निष्पाप ! मणि सबधी जो मेरा कोव था, वह अब शान्त हो गया है, क्योंकि इस बीच महान् काल व्यतीत हो गया अर्थात् तब से आज तक साठ वर्ष बीत गये ॥३७॥ तब कृष्ण के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अकूर ने वादवी की सभा में प्रसन्नतापूर्वक मणि कृष्ण को लौटा दी ॥३८॥ अकूर के हाथ से मणि प्राप्त कर कृष्ण ने पुनः बड़ी प्रसन्नता से मणि उसी को लौटा दी ॥३९॥ वह गान्दिनी-पुत्र (अकूर) स्वमन्त्रक मणि को अपने गले में बाँध कर सूर्य की तरह गुञ्जोषित होने लगा ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में चन्द्र-वश-कयन नामक सप्तहर्षा अध्याय समाप्त ॥१७॥

१ ग ०दी श्रीमा० । २ क ०य चातियो० । ३ क बन्धुग० । ४ क ०गत प्रा० । ५ स मणिमय । ६ स ग ०चस्व मा० । ७ ग ०ले यज्ञोपो० । ८ क मी यज्ञोऽभूत्तवान् । ९ क सतुष्टोऽन्यत प्राप्तः । १० ग ०स्तदाका० । ११ क तत् । १२ क ग महावृत्ति । १३ स ग ०प्राप्यम० ।

अष्टादशोऽध्यायः

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो सुमहवाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । भारतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥१॥
 देवानां वानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् । दैत्यानामप्य सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥२॥
 अत्यद्भुतानि कर्म्मणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः । विविधाश्च कथा दिव्या जन्म चाग्रमनुत्तमम् ॥३॥
 सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते । प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसां तथा ॥४॥
 स्थावरं जङ्गमं सध्वंमुत्पन्न विविधं जगत् । स्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम् ॥५॥
 कथितं पुण्यफलद पुराण इलक्षणया गिरा । मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम् ॥६॥
 इवानां श्रोतुमिच्छामः सकल मण्डलं भुवः । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ पर कौतूहलं हि नः ॥७॥
 यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः । वनानि सरितः पुष्पदेवादीनां महामते ॥८॥
 यत्प्रमाणमिदं सर्वं यदाधारं यदात्मकम् । संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥९॥

अध्याय १८

भुवन-कोश-द्वीप का वर्णन

मुनियो ने कहा—आपने भारती (भरत-वशोत्पन्न) तथा सब राजाओं का महान् आख्यान एकम् देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, गुह्य और सिद्ध के अद्भुत कर्म, पराक्रम, धर्म निश्चय, अनेक प्रकार की दिव्य-कथा और उत्तम जन्म वर्णन किये ॥१-३॥ हे महाबुद्धिमन् ! प्रजापति का सृष्टि-वर्णन भी आपने अच्छी तरह किया । सब प्रजापतियो, गुह्यको, अप्सराओ, स्थावर, जंगम और विविध प्रकार के जगत् का वर्णन भी आपने सूब दिया । हमने मन और वर्ण को सुख देने वाला, मनोहर तथा पुण्यफल प्रद अमृत तुल्य पुराण आपने मुझ से श्रवण किया ॥४-६॥ अब पुण्यो के सम्पूर्ण मण्डल का वर्णन श्रवण करने की हमारी इच्छा है । हे सर्वज्ञ ! हमें बड़ी उत्कण्ठा है । अतः आप मुनाने की कृपा करें ॥७॥ हे महामते ! जितने समुद्र, द्वीप, पर्व, पर्वत, वन, नदियाँ और पवित्र देवस्थल हैं एवम् जितने प्रमाण वाला, जिस आधार वाला और जिस स्वरूपवाला इस जगत् का संस्थान है, उन सबका यथोचित वर्णन करें ॥८-९॥

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् संक्षेपाद्दत्तो मम । नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्योऽतिविस्तरः ॥१०॥
 'जम्बूद्वीपा द्वीपो' शात्मलक्ष्मिचपरो द्विजाः । कुशः श्रीञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥११॥
 एते द्वीपाः 'समुद्रंस्तु सप्तसप्तभिरावृताः । रुवणेक्षुसुरासिपिर्दधिदुग्धजलैः' 'समम् ॥१२॥
 जम्बूद्वीपः 'समस्तानामेतेषां' 'मध्यसंस्थितः । तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्राः मेरुः कनकपर्वतः ॥१३॥
 चतुरशीतिसाहस्रैर्जनेस्तस्य चोच्छ्रयः । प्रविष्टः षोडशशतद्वारित्रिशमूध्नः' विस्तृतः ॥१४॥
 मूले षोडशसाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सव्यंत । 'भूपरस्यास्य शंलोऽसौ कणिकाकारसंस्थितः ॥१५॥
 हिमवान् हेमकूटश्च निपथस्तस्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्यन्ताः ॥१६॥
 लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये' दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयोच्छ्रयास्तावद्विरतारिणश्च ते' ॥१७॥
 भारतं प्रथमं वर्षं ततः किपुरप स्मृतम्' । हरिवर्षं तथैवान्मरेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ॥१८॥
 रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव' तु हिरण्यमम् । उत्तरा' कुरवश्चैव यथा वै भारत' तथा ॥१९॥
 नवसाहस्रमेकैरुमेतेषां द्विजसत्तमाः । 'इलावृतं च तमध्ये' सौवर्णो मेरुश्चिह्नतः ॥२०॥
 मेरोश्चतुर्दिशं तत्र' नवसाहस्रविस्तृतम् । इलावृतं 'महाभागादचत्वारश्चार्ध पर्वताः ॥२१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द । इसका विस्तृत वर्णन सा. वर्ष में भी नहीं हो सकता, इसलिए संक्षेपतः सुन ॥१०॥
 द्विजगण । जम्बू, प्लक्ष, शात्मल, कुश, श्रीञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप हैं ॥११॥ सातों द्वीप लवण, ईक्ष, मदिरा, घृत, दही, दूध और जल के साथ सात समुद्रों से वेष्टित हैं ॥१२॥ इन सब द्वीपों में मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है ।
 द्विजवर । उसके भी बीच में सुवर्ण का मेरुपर्वत है ॥१३॥ मेरुपर्वत चारोंपसी हजार योजन ऊँचा सोलह हजार योजन पूर्व की ओर प्रविष्ट बर्तुस हजार योजन मस्तक (चाटी) में और सोलह हजार योजन मूल में विस्तृत है ॥१४॥ पुष्पी रूपी कमल के लिये मेरु कणिका (कमल का छत्ता या पेंखुरी) है । दक्षिण भाग में हिमवान्, हेमकूट और निपथ नामक पर्वत स्थित हैं । उत्तर में नील, श्वेत, और शृंगवान् नामक वर्ष पर्वत स्थित है ॥१५-१६॥ बीच में एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत हैं तथा नव्ये हजार विस्तृत अन्य पर्वत भी हैं । उन पर्वतों की ऊँचाई तथा चौड़ाई दो हजार योजन की है ॥१७॥ द्विजगण । मेरु से दक्षिण पहले भारतवर्ष तब किपुरप वर्ष, हरिवर्ष तथा अन्य वर्ष भी स्थित हैं ॥१८॥ उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्यवर्ष और उत्तरकुशवर्ष भारत ही की तरह स्थित है ॥१९॥ द्विजवर । इलावृतवर्ष समेत ये सब नौ हजार योजन विस्तृत हैं । उनमें बीच सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत स्थित है ॥२०॥ महाभाग ऋषिवृन्द । मेरु के चारों तरफ नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है । इलावृत वर्ष में मेरु तब फैले हुए दश हजार योजन विस्तृत चार पर्वत भी हैं ॥२१॥ मेरु से पूर्व मन्दरा-

१ ख ग ०पाद्गद० । २ क शक्येत विस्तरम् । ज० । ३ ग जम्बूद्वीपः । ४ क ख शात्मलक्ष्मिचप० । ५ क ख. ०द्वैश सप्तमि परिवारिता । ६ क समा । ७ ग जम्बूद्वीपः । ८ क फ समुद्राणाम् । ९ क ०ध्यत स्थि० । १० ख ०द्विदशमूध्नः । ११ ख भूमिपदमस्य । १२ ग मध्यो । १३ क ये । १४ क द्विजा । १५ ख ग ०स्यैवानु हि० । १६ क. ०रतास्तथा । १७ क ०वृतश्चतस्रः । १८ क ०ध्ये योजनयुतविस्तृत । १९ क वज्र । २० क महद्वीप चत्वारः ।

विष्कम्भा' वितता मेरोर्योजनामुतविस्तृताः। पूर्व्वेण मन्दरो' नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥
विपुलः पश्चिमे पादर्व सुपादर्वश्चोत्तरे स्थितः। कदम्बस्तपु जम्बूद्वीपं पिप्पलो वट एव च॥२३॥
एकादशशतामामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूनमिहेतुद्विजोत्तमाः॥२४॥
महागजप्रमाणाणि जम्बास्तस्याः कलानि च। पतन्ति भूमतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः॥२५॥
रत्नेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति च। सरित्प्रवर्तते सा च पीयते तत्रिवातिभिः॥२६॥
न खेदो' न च दोग्धयं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तस्यानस्त्वस्यमनसा जनानां तत्र जायते॥२७॥
तोरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोषिता'। जम्बूनवार्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
भद्राश्वं' पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च' पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिष्वेत्तास्तयोर्मध्ये' दिवत्प्रावृत्तम्॥२९॥
वनं चैत्ररथं पूर्व्वं' दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्वृत्तरे नन्दनं' मृतम्॥३०॥
अरुणोदं' महाभद्रमसितोदं' समानसम्। सरास्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि 'सर्व्वदा॥३१॥
शान्तवांश्चक्रकुञ्जद्वयं कुरुरी माल्यवास्तया'। वंककप्रमुखा मेरोः पूर्व्वत' 'केसराचला॥३२॥
त्रिकूटः 'शिशिरश्चैव पतङ्गी रुचकस्तथा। निपघादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वता॥३३॥
शिखिवासः' सर्व्वदूर्य्यः कपिलो गन्धमादनः। 'जामुनिप्रमुखास्तद्वत्' पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
'मेरोरन्तरास्ते च 'जठरादिष्ववस्थिताः। 'शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापराः॥३५॥

चल, दक्षिण गन्धमादन, पश्चिम विपुल और उत्तर सुपादर्व स्थित हैं ॥२२॥ इन चारों पर्वतों पर बध्मव, जामुन, पीपल और वट ग्यारह सी योजन लम्बी पतिका के रूप में स्थित हैं ॥२३॥ द्विजवर' वहीं जामुन 'जम्बूद्वीप' नाम होने का कारण है। उस जामुन के विशाल हाथी के बराबर-बराबर फल पककर पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरते रहते हैं ॥२४-२५॥ उन फलों के रस से जम्बूनदी नाम से विख्यात नदी बह रही है, जिसका रस वहाँ के निवासी पीते हैं ॥२६॥ उस रस के पान करने वाले की खेद, दुर्गन्ध, बुढ़ापा, और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता ॥२७॥ वहाँ के उत्तम वायु में तट की मृत्तिका सूखकर जम्बूनद नाम से ख्यात सुवर्ण बनकर सिद्धों का आभूषण होती है ॥२८॥ मुनिगण। मेघ से पूर्व्व भद्राश्वपर्व, पश्चिम केतुमालपर्व और इन दोनों के मध्य में अरुणपर्व हैं ॥२९॥ पूरव के चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन नामक वन हैं ॥३०॥ अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक चार देव-भोग्य चार सरोवर हैं ॥३१॥ शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुरुरी, माल्यवान् और वंकक नामक केसर पर्वत मेघ के पूर्व्व में स्थित हैं ॥३२॥ त्रिकूट, शिशिर, पतंग, च और निपघ नामक केसरपर्वत दक्षिण में स्थित हैं ॥३३॥ शिखिवास, सर्व्वदूर्य्य, कपिल, गन्धमादन और जामुनि नामक केसरपर्वत पश्चिम में स्थित हैं। शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालञ्जर नामक केसरपर्वत उत्तर में स्थित हैं ॥३४-३५॥

१क ०म्भारविता। २स ०रो मेरोदंति०। ३क जम्बूद्वीप। ४क सर्व्वदा। ५क स खेदो।
६क नराणा। ७स ०पितम्। जा०। ८क स ०द्राश्व पू०। ९क स ०मालद्वय प०। १०क ०मध्य
इला०। ११क पूर्व्व। १२क ०भद्र क्षितितीय स०। ग ०भद्र सपीतो०। १३क ०दा। क्षितानक बुरग च
कुप्री मा०। ग ०दा। क्षीतामपच कुमुद्वय बुवरी। १४क ०या। पानेन्दुप्र०। १५क केसराचला।
१६क शिखर०। १७क नासा स०। १८क जारवि०। १९क ०नविप्र०। २०क ०रान्तरे श्रेटाज०।
२१क ०रादी व्यवस्थि०। २२क ०द्वत्तपञ्चोऽथ।

कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः । चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी ॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता दिवि । तस्यां समन्ततश्चाष्टौ दिशास्तु विविदिशस्तु च ॥३७॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः । विष्णुपादविनिष्कान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुण्या गङ्गा पतति च दिवि । सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत ॥३९॥
सीता चालङ्कनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् । पूर्व्वेण सीता शैलाच्च शैलं यान्त्यन्तरिक्षगाः ॥४०॥
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राश्वनेति सार्णवम् । तयैवालङ्कनन्दा च दक्षिणेनैव भारतम् ॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः । चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीर्य सक्लांस्ततः ॥४२॥
पश्चिम केतुमालाश्च वर्षमन्वेति सार्णवम् । भद्रा तयोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुहू ॥४३॥
अतीत्योत्तरमन्धोधिं समन्वेति द्विजोत्तमा । आनीलनियधायामौ मर्यादपर्व्वतावभौ ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः केतुमालाश्च भद्राश्च कुरवरतथा ॥४५॥
पद्माणि लोकांशस्य मर्यादाशैलबाहुधतः । जठरो देवकटश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४६॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनियधायतौ । गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चात् तावभौ ॥४७॥
अशीतियोजनायामावर्ण्वान्तर्ध्वंस्थितौ । निपद्य पारियात्रश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४८॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनियधायतौ । मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वः तथा स्थितौ ॥४९॥

३५३॥ निप्रवर । भर पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है ॥३६॥ उसके चारों ओर दिशाओं और कोणी मद्भन् आदि लोक-पालों की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं ॥३७॥ विष्णु के पैर से समुद्रभूत आकाश-नगा चन्द्र-मन्बल को प्लावित करती हुई ब्रह्मा की नगरी के चारों तरफ गिरती है ॥३८॥ वहाँ से गंगा चार दिशाओं में क्रमशः सीता, अलङ्कनन्दा, चक्षु, और भद्रा नाम से निकलती है ॥३९॥ सीता नामक आकाश-नगा पर्वत से पूर्व की ओर जाकर पर्वत में ही मिलती है । फिर वहाँ गंगा भद्राश्च नामक वर्ष-पर्वत से मिलकर समुद्र में मिल जाती है ॥४०॥ द्विजगणधेय । उहाँ तरह अलङ्कनन्दा सात भागा में बँटकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र में मिल जाती है ॥४१॥ चक्षु नामक गंगा पश्चिम दिशा के सब पर्वतों का अतिव्रमण कर केतुमाल नामक वर्ष-पर्वत ही हुए समुद्र में मिल जाती है ॥४२॥ भद्रा नामक आकाश-नगा उत्तर के पर्वतों तथा कुछ देशों का अतिव्रमण कर उत्तर समुद्र में मिल जाती है ॥४३॥ द्विजवर । नील से निपद्य तब एक म् आत्यवान् से गन्धमादन तब मरुपर्वत वनेल के आकार में स्थित है ॥४४॥ मर्यादापर्वत के बाहर लोकापर्वत के भारत, केतुमाल, भद्राश्च और कुछ पर्व हैं । जठर और देवकट मर्यादापर्वत हैं ॥४५॥ ये दोनों दक्षिण-उत्तर में नील और निपद्य तब विस्तृत हैं । पूर्व-पश्चिम की ओर गन्धमादन और कैलास अस्सी योजन लम्बे तथा समुद्र तब विस्तृत है ॥४६॥ निपद्य और पारियात्र दोनों मर्यादापर्वत कहलाते हैं । ये दोनों भी दक्षिण-उत्तर में नील-निपद्य तब विस्तृत हैं तथा मेरु के पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व की तरह ही अवस्थित हैं ॥४७॥ त्रिगुण और

१ग प्रपिता । २ग दिव । ३ग गणहर्षलाष्टीनाल च । ४ग गन्दापि ५ । ५ग महामने ।

६ग गन्धमादन । ७ग तवरो । ८ग गन्धमादन । ९ग गन्धमादन ।

त्रिशृङ्गो जादधिदचंब उत्तरो । वर्षपर्वन्तो । पूर्वपदचायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ॥५०॥
 इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्यादापर्वन्ता द्विजाः । जठरावस्थिता मेरोर्ध्वेषा द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ॥५१॥
 मेरोश्चतुर्दिश ये तु प्रोक्ताः कैसरपर्वन्ताः । सीतान्ताद्या द्विजारस्तेषामतीव हि मनोहराः ॥५२॥
 शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः । सुरभ्याणि तथा ताम् काननानि पुराणि च ॥५३॥
 लक्ष्मीविष्णवग्निसूक्ष्मैन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः । तास्वायतनवर्षाणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ॥५४॥
 गन्धर्व्वयक्षरक्षासि तथा इंदेयदानवाः । क्रोडन्ति तेषु रम्यासु शैलद्रोणीष्वर्हानशम् ॥५५॥
 भीमा ह्येते स्मृताः सर्गा धर्मिणाभालया द्विजाः । नैतेषु पापकलारो धान्ति जन्मशतरपि ॥५६॥
 भद्राक्षे भगवान् विष्णुरास्ते ह्यशिरा द्विजाः । वाराहः कंतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक् ॥५७॥
 मत्सररूपश्च गोविन्दः क्रूररूपास्ते सनातनः । विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वं सर्व्वेश्वरो हरिः ॥५८॥
 सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलतमकः । यानि किंपुरुषास्त्रानि धर्वाव्यष्टौ द्विजोत्तमाः ॥५९॥
 न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुब्धयादिकम् । सृष्ट्या प्रजा निरातडकाः सर्व्वबुःखविषगिजन्ताः ॥६०॥
 वशद्वादशवर्षाणा सहस्राणि स्थिरायुषः । नैतेषु भीमान्यन्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजाः ॥६१॥

जादधि नामक षपपर्वत पूर्व-पर्वत की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है ॥५०॥ द्विजगण । उन मर्यादा-पर्वतों के बारे में मैंने बतला दिया, जो दो-दो करके मेरे पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥५१॥ मेरे के चारों तरफ स्थित कैसर पर्वत के विषय में भी मैंने बतला दिया, जिनके आदि-अन्त शैतल एवं मनोहर हैं ॥५२॥ त्रिशृङ्ग । उन पर्वतों के मध्य में सिद्ध-चारणों से सेवित अन्तर-द्रोणियाँ (पर्वतों के बीच की भूमि) हैं । जहाँ लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं ॥५३॥ मुनिवर । नरकिन्नरों से मुयोक्ते उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वत-द्रेणिया में दिनरात क्रीडा किया करते हैं ॥५४-५५॥ द्विजगण । धर्मिमाओं के लिए उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं । पापराज लोग सैकड़ों जन्म के बाद भी वहाँ नहीं जा सकते ॥५६॥ भद्राक्षर । भद्राक्षरों में ह्यशिरा तथा कंतु-माल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं । भारत में कूर्म तथा मत्सररूपधारी विष्णु रहते हैं । क्रूर वेशों में सनातन गोविन्द वास करते हैं ॥५७॥ सर्व्वेश्वर हरि विश्वरूप से सब जगह रहते हैं ॥५८॥ त्रिशृङ्ग । अखिलात्मा विष्णु सब के आधार हैं । किंपुरुष आदि आठ वर्णों जो पहले बहे गये हैं, उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा-भय का लेख भी नहीं है ॥५९॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, आतंक-रहित और सब प्रकार के दुष्टों से विवर्जित रहती है ॥६०॥ वहाँ मनुष्यों की आयु दस हजार अथवा बारह हजार वर्षों की होती है । त्रिशृङ्ग । यहाँ के लोगों की तरह उन्हें मूल-म्यास नहीं खताती ॥६१॥ उन स्थानों में व्रतयुग, प्रेता आदि

१श च । २ख ०ठरावास्थि० । ३क व्यवस्थितौ । ४ल मेचर० । ५क ०ता । सीता० । ग० ०ता । पीता० । ६म ०नामुत्तद्रो० । ७न ०नि च सर्व्वत । ल० । ८न तान्याप० । ९क ०नमु-स्यानि च० । १०क ०र । अप्सरोय० । ११क ०या गन्धर्व्वविनरा । जी० । १२ग वाराह । १३म ०प । न तेषु पर्वते देवो भीमान्यन्यानि तेषु च । कु० ।

कृतत्रेतादिका नव तेषु स्थानेषु कल्पनाः सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलीचला
नष्टव शतशस्तेभ्य प्रसूता या द्विजोत्तमा ।

॥६२॥

इति श्रीब्रह्मो महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे । वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सतति ॥१॥
मवधोऽनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमा । कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥२॥
महेन्द्रो मलय सहा गुणितमानुषपञ्चत । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपञ्चता ॥३॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुणितमस्मात् प्रयाति यः । तिम्यं च नरक चापि सात्यत पुरया द्विजा ॥४॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चाते ह्युच्यते । मध्वत्स्वयत्र मर्यादा कर्मभूमौ विधीयते ॥५॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदात्रिशमयः । इन्द्रद्वीप कसेतुमास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥६॥

युगो की कल्पना नहीं है। विप्रवच । इन सब वर्षों में भी सात सात पर्वत स्थित हैं और उन पर्वतों से
सैकड़ों नदियाँ निकलती हैं ॥६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में भुवन त्रिश-द्वीप वर्णन नामक अष्टादशवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १६

जम्बूद्वीप का वर्णन

समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण भारतवर्ष है जहाँ की सतति भारती नाम से पुकारी जाती
है ॥१॥ विप्रवच । भारतवर्ष नाम हजार योजन विस्तृत है । स्वर्ग और माध के इच्छुका के लिए यह पथ
भूमि है ॥२॥ यहाँ पर महेन्द्र मलय सह्य गुणितमानुष ऋक्ष विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं ॥३॥
यहाँ के मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने हैं । यहाँ से पुण्य पणायोनि में और नरक में भी जाते हैं ॥४॥ यहाँ से
मध्यमाल मध्वत्स्वय और मध्वत्स्वय म मध्य की भी प्राप्त करने हैं । मनुष्या के त्रिदशके अतिरिक्त कमभूमि वही नहीं

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्तथैव वारणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥७॥
 योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् । पूर्वं किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः । इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमान्तो व्यवस्थिताः ॥९॥
 शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः । वेदस्मृतिमुख्याश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥१०॥
 नभमंदासुरमाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः । तापोपयोष्णीनिर्विन्ध्याकावेरोप्रमुखा नदीः ॥११॥
 ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः । गोदावरोभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥१२॥
 सह्यादोद्भवा मद्याः स्मृताः पापभयापहाः । कृतभालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥१३॥
 त्रिसांध्यऋषिकुल्याद्याः महोद्भवाः स्मृताः । ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥१४॥
 आसां नद्युपनद्याश्च सन्त्यग्न्यास्तु सहस्रशः । तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥१५॥
 पूर्ववेशादिकाश्चैव कामरूपनिवातिनः । प्रोङ्गा, कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सत्त्वशः ॥१६॥
 तथापरान्त्याः सोराष्ट्रा, शूद्राभीरस्तस्याऽर्धुदाः । मादका मालवाश्चैव पारियात्रनिवातिनः ॥१७॥
 सौवीराः सन्ध्यापद्माः शात्वा, शाकलयातिनः । मन्धारास्तास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा ॥१८॥
 आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सवा । समोपेता महाभाया हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥१९॥
 वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने । कृतं त्रेता द्वापर च कलिञ्चाप्यत्र न वचिन् ॥२०॥
 तपस्तप्यन्ति यतमो जुह्वते चान यजिन्नः । दानानि चात्र दीपन्ते परलोकार्थमादरात् ॥२१॥

है । इस भारतवर्ष के नाँव भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेतुमान्, तापमर्ग, यमस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारण आर स्वयं नदी द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है ॥५॥ दक्षिण उत्तर की तरफ यह एक हजार योजन विस्तृत है । इसके पूव में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में यज्ञ, युद्ध, व्यापार आर सेवा वृत्ति वाले क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥८-९॥ शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं । तथामुने । वेद, स्मृतिप्रधान अन्य नदियाँ पारियात्र से उत्पन्न हुई हैं ॥१०॥ नर्मदा, सुरमा आदि नदियाँ विन्ध्य से उद्भूत हुई हैं । तापो, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, वावेरी आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निकली हैं जो पापो का हरण करती हैं ॥११॥ पाप भय की मिटान वाली गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्य पर्वत में उत्पन्न हुई हैं ॥१२॥ कृतभाला, ताम्रपर्णी आदि नदियाँ मलयाचल से निकली हैं ॥१३॥ त्रिवाण्य, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महोद्भ पर्वत से उत्पन्न हैं । ऋषिकुल्या-कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से समुत् हैं । इन नदियों की हजारों उपनदियाँ हैं ॥१४॥ कुरु, पञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश कामरूप, पण्डु, कलिङ्ग, मगध, दक्षिणदेश, परान्त्य, सोराष्ट्र, शूद्र, आभीर अर्बुद, मादक, मालव, पारियात्र, सौवीर, सन्ध्या शात्वा, शाकल, मद्र, राम, अम्बष्ठ, पारसीक (फारम) आदि देश निवासी जन इन नदियों के जल पीते हैं ॥१५-१८॥ महामुन । इस भारतवर्ष में महाभागवान् हृष्ट-पुष्ट मनुष्य युगों से बस रहे हैं । सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग भारतवर्ष में अतिरिक्त बड़ी नहीं होते ॥१९-२०॥ यहाँ मुनि लोग तपस्या करते हैं, यज्ञकर्ता लोग याचक होते हैं और परलोक के लिए सम्मानपूर्वक दान दिया करते हैं ॥२१॥ जन्मद्वीप में मनुष्य सदा विष्णु-यज्ञ करते हैं । यहाँ मत्स्य द्वारा यतमय

पूरुषं यं ज्ञातुं पुरुषो जम्बूद्वीपे स देव्यते । यज्ञं यं ज्ञायो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥२२॥
 अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने । यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२३॥
 अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम । कदाचित्कलभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
 धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
 स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते, , ,
 भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥२५॥
 कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि, , ,
 संन्यस्य विष्णो परमात्मरूपे ।
 अवाप्य तां कर्ममहोपनन्ते, ,
 तस्मिंस्तत्त्वं ये स्वमलाः प्रयान्ति ॥२६॥
 जानीम नो तत्तु वयं विलीने,
 स्वर्गं प्रवे कर्मणि देहबन्धम् ।
 प्राप्स्यन्ति धन्याः क्षलु ते मनुष्यः,
 ये भारते नेन्द्रियविग्रहीनाः ॥२७॥

नववर्षं च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया । लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः ॥२८॥
 जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः । भो द्विजा बलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥२९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिर्णयः नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विष्णु की आराधना की जाती है और अन्य द्वीपों में अन्य प्रकार से यज्ञ होता है ॥२२॥ महामुनि ! इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, यह (भारतभूमि) कर्मभूमि है और दूसरे (वर्ष या द्वीप) भोग-भूमि है ॥२३॥ यहाँ पर हमारा जन्म के बाद कदाचित् जीव पुण्य-संचय के बल से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२४॥ भारत की महिमा गाते हुए देवगण, कहते हैं—'ये मनुष्य धन्य हैं जाम्बवं और मला की प्राप्ति के कारणभूत भारत-भूमि पर जन्म लेने हैं और उस कर्म-भूमि को प्राप्त कर निजिल कर्मों तथा उनके अमर्त्यत्व फलों को परमात्मरूप विष्णु को समर्पित करने निर्मल बन जाते हैं और फिर अनन्त मलान् हो जाते हैं ॥२५-२६॥ हम यह नहीं जानते कि स्वर्ग-प्रद कर्मों के (विष्णु से) विलीन हो जाने पर जीव शरीर का बंधन प्राप्त करते हैं, किन्तु वे मनुष्य धन्य हैं जो भारत में इन्द्रियों में अत्यन्त होन (अर्थात् अपव) नहीं हैं ॥२७॥ विप्रवृन्द ! जी सगुण सहित जम्बू द्वीप तथा उसके लक्षयोजन परिमित विस्तार का भी वर्णन मैंने संक्षेप से कर दिया। इस जम्बूद्वीप को लक्षयोजन विष्णु की ओर समुद्र घेर कर बलयाकार में स्थित है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जम्बूद्वीप-निर्णय नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

'क्षीरोदेन यथा द्वीपो 'जम्बूतन्त्रो'ऽभिषेष्टितः । संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥१॥
'जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रतन्मितः । स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः ॥२॥
सप्त 'मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै । श्रेष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥३॥
सुखोदयस्तपानन्दः शिवः क्षेमक एव च । ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥४॥
पूर्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखं तथा । आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथाप्ये वर्षपञ्चमताः । सप्तैव तेषां नामानि शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा । सोमकः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघा । वसति देवगन्धर्वसहिताः 'सहितं' प्रजाः ॥८॥
तेषु पुण्या जनपदा' बीरा न भिषते जनः । नाघयो व्याघयो वापि 'सर्वकारसुखं' हि सत् ॥९॥
तेषां मण्डश्च सप्तैव वर्षाणांभु समुद्रगाः । नामतरताः प्रवक्ष्यामि धृताः पापं हरन्ति यः ॥१०॥
अनुत्पत्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः । 'अमृता सुकृता' चैव सप्तैतस्तित्र निम्नगाः ॥११॥

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप का वर्णन

लोमहर्षण बोले—जैसे क्षीर समुद्र से जम्बूद्वीप वेष्टित है वैसे ही प्लक्ष-द्वीप क्षार-समुद्र से वेष्टित है ॥१॥ भिप्रवृन्द । जम्बूद्वीप स्थल-योजन-विस्तृत है और प्लक्ष-द्वीप उल्लेखे द्विगुण विस्तृत है ॥२॥ प्लक्षद्वीप के स्वामी मेधातिथि के सात पुत्र हैं । उनमें सबसे ज्येष्ठ शान्तमय है और उससे छोटे शिशिर, सुखायय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हैं । ये सब प्लक्ष-द्वीप के अधिपति हैं तथा मर्यादापर्वत कहलाते हैं । मुनिवर ! इनके अतिरिक्त दूसरे वर्षपर्वत भी सात ही हैं । उनके नाम मुनि ॥३-६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, और वैभ्राज ॥७॥ पुण्यलोक मुनिवृन्द । इन रमणीय वर्षपर्वतों पर प्रजासहित देव-गन्धर्व वास करते हैं ॥८॥ वहाँ स्थित देश पवित्र तथा और हैं, वहाँ के निवासी अमर हैं । उन्हे आधि-व्याधि का बिजुल डर नहीं है । वहाँ सदा सुख ही सुख का साम्राज्य रहता है ॥९॥ उन पर्वतों से निचल तथा समुद्र में मिलने वाली अनुत्पत्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुकृता और क्रमु—ये पापनाशिनी सात नदियाँ हैं ॥१०-११॥

१ स क्षीरोदेन । २ क जम्बूस० । ३ स ०सा निवे० । ४ क ग जम्बूद्वी० । ५ स ०मेधाति० । ६ स सप्त । ७ क ०दा विरादुद्दिश्यते । स = दाधिचरावधिय० । ८ स ०काल सु० । ९ ग प्रसृता ।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रवाणाः कथिता द्विजाः। क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः॥१२॥
 ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते। अवसर्पिणी नदी तेषां न चंबोत्सर्पिणी द्विजा॥१३॥
 न तेष्वस्ति युगावस्था तेषु स्वानेषु सप्तथु। त्रेतायुगसमः कालः सर्वदेव द्विजोत्तमाः॥१४॥
 प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै। पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामया॥१५॥
 धर्मदचतुर्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः। वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तां बुधा प्रवदामि वः॥१६॥
 आर्यकाः कुरुवश्चैव विविधा भाविनश्च ये। विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः॥१७॥
 जम्बूद्वीपप्रमाणानु तन्मध्ये सुमहातरुः। प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः॥१८॥
 इज्यते तत्र भगवांस्तैर्व्यंजैराय्यैकादिभिः। सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्वः सर्वेश्वरो हरिः॥१९॥
 प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः। तयैवैश्वरसोवेन परिषेयानुकारिणा॥२०॥
 इत्येतद् बो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृत। सक्षेपेण मया भूयः शास्त्रमलं तं निबोधत॥२१॥
 शास्त्रमलस्येश्वरो बीरो वपुष्मांस्तत्सुता द्विजाः। तेषान्तु नाम संज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै॥२२॥
 श्वेतोऽयं हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा। यद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः॥२३॥
 शास्त्रमलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेश्वरसोदकः। विस्ताराद्द्विगुणेनायं सर्वतः संवृतः स्थितः॥२४॥

द्विजगणः प्रवान् पर्वतो तथा नदियो के नाम सो मीने पित्त दिवे हैं। इनके अतिरिक्त हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं॥१२॥ वहाँ के निवासी सर्व उन्हीं नदियों का जल ग्रहण पीते हैं। विप्रगण। उनकी नदियाँ घटती-बढ़ती नहीं हैं॥१३॥ उन सप्त स्थानों में युगों की कल्पना भी नहीं है, यदि त्रेतायुग के समान काल वहाँ सर्व ही होता है॥१४॥ प्रकृतः प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप तक में मनुष्य पाँच हजार वर्ष रहित होकर जीते हैं॥१५॥ वहाँ वर्णाश्रमविभाग के अनुसार चार प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। वहाँ के चार वर्णों के बारे में मैं आपस बातलाता हूँ॥१६॥ मुनिवर! वहाँ जो आर्य, ब्राह्म, विदिव और भार्य हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं॥१७॥ जम्बूद्वीप में जामुन का वृक्ष जितना बड़ा है उतना ही बड़ा पावर का वृक्ष प्लक्षद्वीप में है। इसी से इसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा॥१८॥ त्रिवेष्टा। वहाँ आर्य आदि जाति के लग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर सोमरूपी हरि के लिए माया करते हैं॥१९॥ प्लक्षद्वीप के बराबर विस्तृत मण्डलाकार में दक्ष-समुद्र से प्लक्षद्वीप वेष्टित है॥२०॥ महापुनः। प्लक्षद्वीप का वर्णन करने के बाद अब मैं शास्त्रमलद्वीप का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ तथा मुने॥२२॥ शास्त्रमलद्वीप का स्वामी शरीररक्षारी बर है। उसके पुत्रों के नाम से श्वेत, हरित, जीमूत, राहित, वैजुन, मानस और सुप्रभ ये सात वर्षावर्ष प्रसिद्ध हैं॥२३॥ शास्त्रमलद्वीप में दक्ष-समुद्र से वेष्टित है और विस्तार में पहले द्वीप से द्विगुण है॥२४॥ वहाँ भी सात नदियाँ और सात रत्नमयित

१ ग ०ते। आग०। २ ग, न तेषां वैव। ३ न स. तिष्ठति। ४ क ०रयस्वै०। ५ क विद्या भोजवि०।
 ६ ग विद्यामा०। ७ ग ०वासवैवर्ष्य०। ८ ग जगत्वेष्ट। ९ ग ०प्यानु तथादि०। १० ग ग ०मुनादि०।
 ११ ग ०नामय०। १२ स ०यलोहित०। १३ य. ०तो हरि०। १४ ग ०माय द्विगु०।

तथापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः। वर्षाभिव्यञ्जकास्ते'तु तथा सप्तैव निम्नगाः॥२५॥
 'बुभुक्षोप्रतदञ्च तृतीयस्तु बलहृक्ः। द्रोणो यत्र महोपध्यः स 'चतुर्थो महोपरः॥२६॥
 कटस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा। ककुद्मान् पर्वतवरः सरिद्रामान्यतो' द्विजाः॥२७॥
 धोणो तोया वितृष्णा'च खट्वा'शुक्रा विमोचनी। निवृत्तिः सप्तमी ताता'स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः॥२८॥
 श्वेतश्च लोहितश्चैव जीमूतं हरितं तथा। यद्युतं मानसञ्चैव सुप्रभं नाम सप्तमम्॥२९॥
 सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्यंयुतानि च। वर्षाश्च शात्मले ये च वसन्त्येव द्विजोत्तमाः॥३०॥
 कपिलाश्चार्दणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक्पृथक्। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव 'यजन्ति तम्॥३१॥
 भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मल्लश्रेष्ठंयज्वानो' 'यज्ञसंस्थितम्॥३२॥
 देवानामग्र साग्निष्यमतीव सुमनोहरे। शात्मलश्च महावृक्षो' नामनिवृत्तिकारकः॥३३॥
 एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन' समावृतः। विस्ताराच्छात्मलेऽर्चैव समेन तु समन्ततः॥३४॥
 सुरोदक' परिवृतः कुशोदोपेन सधृतः। शात्मलस्य तु विस्तारश्चद्विगुणेन समन्ततः॥३५॥
 श्वोतिष्मत्. 'कुशक्षीये धनुष्वं सत्य पुत्रकान्। उद्भिदो वैष्णुमाश्चैव 'स्वैरयो रम्भनो' धृतिः॥३६॥
 प्रभाकरोऽप्य कपिलस्तद्गाम्ना' वर्षपद्धतिः। तस्या वसन्ति मनुजं सह दैतेयदानवाः॥३७॥
 तथैव देवगन्धर्वा यक्षकिम्बुधादयः। वर्षास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः॥३८॥

पर्वन है। उन पर्वता से वहाँ स्थित द्वीपों का बोध होता है॥२५॥ पहला पर्वत बुभुक्ष, दूसरा उग्रज, तीसरा बलहृक, चौथा महोपधिया से युक्त द्रोण, पाँचवाँ कट, छठा महिष और सातवाँ पर्वनश्रेष्ठ बकुपान् है। चितवर । जब नदियाँ वे नाम सुनिये—॥२६-२७॥ धार्या, तोया, वितृष्णा, खट्वा शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति। ये सब नदियाँ पाननामिनी हैं॥२८॥ श्वेत, लालि, जीमूत, हरित, वैजुन, मानस और सुप्रभ ये मान वर्ग (द्वीप) चार वर्गों में युक्त हैं॥२९॥ शात्मलद्वीप से जमा कपिल (भूरा) अरण (लाल) पर्वत और कृष्ण वर्ग होते ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सर्वरमा, अव्यय, वायुभूत एवं यज्ञ स्थित मनुजान् विष्णु की आराधना करें करें यज्ञों में करते हैं॥३०-३२॥ इस सुन्दर द्वीप में देवगन्धर्वा का साग्निष्य बना रहता है। महा-वृक्ष शात्मल (मेमर) के होनेसे इस द्वीप का नाम शात्मलद्वीप पड़ा॥३३॥ यह द्वीप गुण-समुद्र में वेष्टित है और शात्मल वृक्ष यहाँ बहुत और फल होता है॥३४॥ गुण समुद्र में ही वेष्टित शात्मल द्वीप में द्विगुण विष्णुत कुण्डल है। कुण्डल का स्वार्थ उजालिष्मान् है। उद्भिद, वैष्णुमान्, स्वैरय, रम्भन, धृति, प्रभाकर और कपिल नाम से द्वीप उमरे पुत्र रूप में विष्णवान् है॥३५-३६॥ उन वर्गों में मनुज, दैत्य दानव, देव, गन्धर्व, वन, विरुण आदि बना करते हैं॥३७॥ वर्गों में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। श्वेत द्विजा । वर्गों के निर्याम, दमी, दम्पी,

१ क म • शात्मलतः॥ २ क बुभुक्षोप्रतदञ्च॥ ३ क बलहृक्॥ ४ क • मानि मादि॥ ५ क म • जा । पानि॥ ६ म विनृष्णा खट्वा । म विरुणा । ७ म खट्वा । ८ म प्रयन्ति । ९ म म • रम्भनी । १० क • रम्भनः । ११ क नानावृत्तिः । १२ म • मनुष्यपरा । १३ क पुत्रादि । १४ म • वैष्णुपरादिर्बोधः । १५ म वैष्णुपरादिर्बोधः । १६ म मनुष्यः । १७ क रम्भनी । म रम्भनी । १८ म रम्भनी ।

'दमिनः शुष्मिणः' स्नेहा मान्दहाश्च द्विजोत्तमाः । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या क्षूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥३९॥
 यथोक्तवर्त्मकत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते । तत्र ते तु कुशद्वीपे बहुरूप जनादर्दनम् ॥४०॥
 'यजन्त क्षययन्त्युग्रमधिकारकप्रदम्' । 'विद्रुभो हेमशैलश्च घुतिमान् पुष्टिमांस्तथा ॥४१॥
 कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः । वर्षाचलास्तु सप्तं द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥४२॥
 नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये' नामान्यनुक्रमात् । घृतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतस्तथा ॥४३॥
 'विद्युद्गमो मही' चान्या सध्वपापहरास्त्विमा । अन्या सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥४४॥
 कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्समुत्तम् । तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतीदेन समावृतः ॥४५॥
 घृतीदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः । क्रौञ्चद्वीपो मुनिधेष्ठा श्रूयता चापरो महान् ॥४६॥
 कुशद्वीपस्य विस्ताराद्विगुणो यस्य विस्तरः । क्रौञ्चद्वीपे घुतिमतः 'पुत्रा सप्त महात्मनः ॥४७॥
 तन्नामानि च वर्षाणि तेषां' चक्रे महामनाः । 'कुशपो' मन्दमद्योऽणः पीवरोऽपान्धकारकः ॥४८॥
 मुनिश्च वुन्दुभिश्चैव सप्तं तत्सुता 'द्विजा' । तत्रापि देवगन्धर्वसंविताः 'सुमनोरमाः ॥४९॥
 वर्षाचला मुनिधेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजा । क्रौञ्चश्च धामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥५०॥
 देववतो 'धमश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान् । वुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणस्ते परस्परम् ॥५१॥
 'द्वीपाद्द्वीपेषु' ये 'शैलास्तथा' द्वीपानि ते तथा । वर्षेष्वेतेषु रम्येषु' वर्धशैलवरेषु' च ॥५२॥

स्नेह और मान्दह जमा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र हैं ॥३८-३९॥ अपने-अपने अधिकार की रक्षा के लिए ये चारों वर्ग स्वधिकृत बर्तन में लगे रहते हैं । कुशद्वीप में लगे अधिकार-क्षत्र प्रद बहुरूप जनादर्दन के लिए यज्ञ करते हैं ॥४०॥ विद्रुभ' वही विद्रुम, हमशील, घुतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेश, हरि, मन्दराचल—ये सात धर्म-वर्धन हैं ॥४१-४२॥ और घृतपापा, शिवा, पवित्रा ममनि, विद्युद्गम, मही और अन्या—ये सात पापनाशिन, नदियां हैं ॥४३॥ इनके अतिरिक्त वही और भी हजारों क्षूद्र नदियां तथा पर्वत हैं । कुशद्वीप में कुशों का समूह होने से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा है ॥४४॥ वह द्वीप अपनी ही परिधि के परिमाण के घृतसमुद्र से घेरित है और घृत-समुद्र क्रौञ्चद्वीप से आवृत है ॥४५॥ महामुन' अब महान् क्रौञ्चद्वीप का वर्णन मुनि-यै-क्रौञ्चद्वीप कुशद्वीप की अष्टा द्विगुण विस्तृत है ॥४६॥ उनमें घुतिमान् के सात महात्मा पुत्र हैं । महामना घुतिमान् ने उनकी के नामा पर पट्टी का वर्ण (दीया) के भी नाम कुग, मन्द, उग्र, पवित्र, अप्धकारक, मुनि और वुन्दुभि स्नेह । द्विगुण । वही के मनोहर पर्वतीय द्वीपा पर देव, गन्धर्व आदि रहते हैं । क्रौञ्च, धामन, अप्धकारक, देवदत्त, धम, पुण्डरीकचल और महावज्र वुन्दुभि—ये वही के पर्वतीय द्वीप हैं, जो एक दूसरे से दूरे हैं ॥४७-५१॥ उन रमणीय वनों में तथा वर्षाचला पर देवगणा के साथ आनन्दरहित जनता वास करती है । विद्रुभ !

१ क दमिनः ॥ २ ग ०५ मया महेन्द्राश्च महामुने । ३ ० ॥ ३ क ० ग्यामिषाक्षत्रिया हि ते । ४ ग पर्वत । ५ ग ॥ ममिषा ० । ६ क चित्रमा । ७ ग गृधु । ८ क ० त्रा जगित तथा । ९ क ० न्या म ० । १० ग मया । ११ क ॥ पुत्रात्मन्य म ० । १२ क तेषु । १३ क ग महीपति । १४ क कुशुक्षु वापरा पावर्त । गन्धवा ० । १५ ग ० गम्यसमुद्रकोष्ठ पर्व ० । १६ ग मुने । १७ ग ० गवां गर्व ते मु ० । १८ क देवपुत्रैः मयातेजान् ० । १९ क द्वीपति ० । २० ग ० गार्दिते ० । २१ ग वै । २२ क ० ग मया द्वीपेन ते । २३ क ० गृतीपापानु जी द्विजा । द्वि ० । २४ ग ० धनेषु ।

निवसन्ति निरासङ्गाः सह देवगणैः प्रजाः । पुष्कला पुष्करा घन्यास्ते' ह्याताश्च द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः । तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा ॥५४॥
 सप्त प्रधानाः शतशस्तथान्याः क्षुद्रनिम्नगाः । गौरी कुमुदती चैव सन्ध्या रात्रिमनोजवा ॥५५॥
 रथातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्पनिम्नगाः । तत्रापि 'वर्णभंगवान् पुष्कराद्यैर्जनाद्वर्तनः ॥५६॥
 ध्यानयोगे रद्वरूप इज्यते यज्ञसन्निधौ । क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥५७॥
 आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपस्तुत्येन' मानतः । दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ॥५८॥
 क्रौञ्चद्वीपस्य 'विस्तारद्विगुणेन द्विजोत्तमाः । शाकद्वीपेऽध्वरस्यापि 'भयस्य सुमहारमनः ॥५९॥
 सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः । जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो 'मनोरकः' ॥६०॥
 'कुसमोदश्च मोदकिः सप्तमश्च महाद्रुमः । तत्संज्ञान्येष तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ॥६१॥
 तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षाविच्छेदकारकाः । पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः ॥६२॥
 तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाञ्भोगिरिद्विजाः । आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ॥६३॥
 शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः । 'यत्प्रवातसंस्पर्शाद्वाह्वादी जायते परः ॥६४॥
 तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ष्यसमन्विताः । निवसन्ति महात्मानो निरासङ्गा निरामयाः ॥६५॥
 नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः । सुकुमारी कुमारी च नर्मिनी 'रेणुका च या ॥६६॥
 ह्युदय' धेनुका' चैव गभस्ती सप्तमी तथा । 'अन्यास्तव्युतशस्तत्र भुद्रनद्यो द्विजोत्तमा' ॥६७॥

वहाँ के निवासी पुष्कल, पुष्कर, धन्य और श्याम हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र वर्णों के समान हैं ॥५३॥ ५३ ॥
 उस द्वीप में गौरी, कुमुदती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ह्याति और पुण्डरीका ये सात प्रधान नदियाँ हैं । इनके
 अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं । वहाँ के निवासी सदा उन्नी नदिया का जल पान करते हैं ॥५४॥ ५४ ॥
 श्री पुष्कर आदि वर्ण रद्वरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं । क्रौञ्चद्वीप अपने चारों तरफ दधि समुद्र से घेरित
 है ॥५५॥ ५५ ॥ द्विजगण । दधि समुद्र श्री शाकद्वीप से आवृत है, जिसका विस्तार क्रौञ्चद्वीप की अपक्षा
 द्विगुण है ॥५६॥ ५६ ॥ शाकद्वीप के स्वामी महात्मा भय के सात ही पुत्र हैं जिनके नाम से जलद कुमार सुकु
 मार, मनोरक, कुसमोद, मोदकि और महाद्रुम ये सात वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥५७॥ ५७ ॥ द्विजगण । शाकद्वीप में श्री
 उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, रमणीय आस्तिकेय और पर्वतोत्तम केसरी ये सात वर्षावर्तन
 हैं ॥५८॥ ५८ ॥ उस द्वीप में पावन का महापुण्य सिद्ध-गन्धर्वों से सुश्रुति है, जिसके पक्षों के क्षत्रियों से मनुष्य
 अनन्दिन हो जाता है ॥५९॥ ५९ ॥ उस द्वीप में चारों तरफ से समन्वित पवित्र देव स्थित हैं । उन देवा के नीचे
 निपाद महात्मा लोग वास करते हैं ॥६०॥ ६० ॥ सुकुमारी, कुमारी, नर्मिनी, रेणुका, ह्यु, धेनुका और गभस्ती
 नाम की पापनाशिन पवित्र नदियाँ हैं ॥६१॥ ६१ ॥ महाद्रुम । इनके अतिरिक्त दश हजार और क्षुद्र नदियाँ हैं ॥६२॥ ६२ ॥

१ स न्यामिप्यास्याच । २ स वर्णभंगः । ३ स पवत्येन । ४ स स स्तारद्विगुणः । ५ स स
 मक्षिप्य सः । ६ स मरिचिः । ७ स मरिचिः । ८ स मरिचिः । ९ स मरिचिः । १० स मरिचिः । ११ स मरिचिः । १२ स मरिचिः । १३ स मरिचिः । १४ स मरिचिः । १५ स मरिचिः । १६ स मरिचिः । १७ स मरिचिः । १८ स मरिचिः । १९ स मरिचिः । २० स मरिचिः । २१ स मरिचिः । २२ स मरिचिः । २३ स मरिचिः । २४ स मरिचिः । २५ स मरिचिः । २६ स मरिचिः । २७ स मरिचिः । २८ स मरिचिः । २९ स मरिचिः । ३० स मरिचिः । ३१ स मरिचिः । ३२ स मरिचिः । ३३ स मरिचिः । ३४ स मरिचिः । ३५ स मरिचिः । ३६ स मरिचिः । ३७ स मरिचिः । ३८ स मरिचिः । ३९ स मरिचिः । ४० स मरिचिः । ४१ स मरिचिः । ४२ स मरिचिः । ४३ स मरिचिः । ४४ स मरिचिः । ४५ स मरिचिः । ४६ स मरिचिः । ४७ स मरिचिः । ४८ स मरिचिः । ४९ स मरिचिः । ५० स मरिचिः । ५१ स मरिचिः । ५२ स मरिचिः । ५३ स मरिचिः । ५४ स मरिचिः । ५५ स मरिचिः । ५६ स मरिचिः । ५७ स मरिचिः । ५८ स मरिचिः । ५९ स मरिचिः । ६० स मरिचिः । ६१ स मरिचिः । ६२ स मरिचिः । ६३ स मरिचिः । ६४ स मरिचिः । ६५ स मरिचिः । ६६ स मरिचिः । ६७ स मरिचिः । ६८ स मरिचिः । ६९ स मरिचिः । ७० स मरिचिः । ७१ स मरिचिः । ७२ स मरिचिः । ७३ स मरिचिः । ७४ स मरिचिः । ७५ स मरिचिः । ७६ स मरिचिः । ७७ स मरिचिः । ७८ स मरिचिः । ७९ स मरिचिः । ८० स मरिचिः । ८१ स मरिचिः । ८२ स मरिचिः । ८३ स मरिचिः । ८४ स मरिचिः । ८५ स मरिचिः । ८६ स मरिचिः । ८७ स मरिचिः । ८८ स मरिचिः । ८९ स मरिचिः । ९० स मरिचिः । ९१ स मरिचिः । ९२ स मरिचिः । ९३ स मरिचिः । ९४ स मरिचिः । ९५ स मरिचिः । ९६ स मरिचिः । ९७ स मरिचिः । ९८ स मरिचिः । ९९ स मरिचिः । १०० स मरिचिः ।

महोषरास्तथा सन्ति शतशोऽप्य सहस्रश । ता पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ॥६८॥
 वर्षेषु ये 'जनपदाश्चतुर्यार्यसमन्विता । नक्षत्राश्च महापुण्या स्वर्गादिभ्येत्य मेदिनीम् ॥६९॥
 धर्महानिनं' तेष्वस्ति न 'सहस्रं न शुक् तया । मर्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥७०॥
 मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा । मगा ब्राह्मणभूमिष्ठा मामघा क्षत्रियारतु ते ॥७१॥
 वंश्यास्तु मानसारतेषा शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगा । 'शाकद्वीपे स्थितोविष्णु सूर्यरूपधरो हरि ॥७२॥
 यथोक्तैरिज्यते' सम्भवः कर्मभिनियतात्मभि । शाकद्वीपस्ततो विप्रा क्षीरोदेन समन्तत ॥७३॥
 शाकद्वीपप्रमाणेन बल्येनेव वेष्टित । 'क्षीराग्रिष सध्वतो विप्रा पुष्करारयेन वेष्टित ॥७४॥
 द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्तत । पुष्करे सवनस्यापि 'महावीतोऽभवत् सुत ॥७५॥
 घातश्चिद्व तपोस्तद्वद्वे वर्षे नामसजिते । 'महावीत तयंबाण्ड्यात्कीलण्डसजितम् ॥७६॥
 एकश्चात्र महाभागा ग्रहयातो वर्षपथ्वन्त । मनसोत्तरसजो वं मध्यतो वन्द्याकृति ॥७७॥
 योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छिन ' । तावदेव च विस्तीर्णं सध्वन्त परिमण्डल ॥७८॥
 पुष्करद्वीपबल्य मध्येन विभजन्निव । स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्न जगत्' वर्षद्वय हि तत् ॥७९॥
 बलयाकारमेकैक तयोर्मध्ये महागिरि । दशवयसहस्राणि तत्र जीवति मानवा ॥८०॥
 निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता । अथमोत्तमो न तेष्वारता न वयवधको द्विजा ॥८१॥
 'नेर्ष्यासूया भय रोषो दोषो लोभादिक्' न च । महावीत बहिर्वर्षं घातवीलण्डमन्तत ॥८२॥

'तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवष्टितम् । पञ्चाशत्कोटिविरतारा सेयमुर्ध्वो द्विजोत्तमाः ॥९८॥
सहंवाण्डकटाहेन सद्बीषा समहीधरा । सेष धात्री विधात्री च सध्वंभूतगुणाधिका ।
आधारभूता जगता सध्वंवा सा द्विजोत्तमाः ॥९९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

तनादौ पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथित पूर्व्विध्या मुनिसत्तमा । सप्ततिरस्तु सहस्राणि 'तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
वशासाहस्रमेकैकं पाताल मुनिसत्तमा । अतल वितलऽध्वं' नितल' सुतल तथा ॥२॥
तलातलं रसातलं पातालऽध्वानि सप्तमम् । कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा' शैलकाञ्चनी ॥३॥
भूमयो घन विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिता । तेषु 'दानवर्द्धतेयजातय' शतशः' स्थिताः ॥४॥

(ब्रह्मांड ?) से परिवेष्टित है। महामुने । पचास करोड़ भोजन विस्तृत यह पूर्व्व अण्डकटाहो द्वीप और पर्वता से युक्त है। यही धात्री, विधात्री, प्राण्यमात्र ने गुणा से अधिक गुणवाली तथा समार का आधार बनी हुई है ॥९८ ९९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म समुद्र द्वीप परिमाण-वर्णन नामक ब्रह्मार्थ अष्टम्य समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

लोमहर्षण बोले—पुनिवर । पूर्व्वी के विस्तार का वर्णन मैं किया। उत्तरी सत्तर हजार याजन परिमित ऊँचाई के बारे में भी कहा जा रहा है ॥१॥ मुनिवर । एक एक पाताल दस सत् हजार याजनप्रमाण विस्तृत है। अतल वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल—य छत पाताल हैं जहाँ कृष्णा, शुक्ला, कृष्णा, पीला, लाल और पीलाकाञ्चनी नामक पूर्व्वी उत्तम मन्त्रों से गुणयुक्त है ॥२-३॥ उन स्थानों में नर, नारी

१ क तम राण्ड । २ क ० त्रिः ष सप्तो त ० । ३ क ० दुर्धर्षोऽपि । ४ स ० व तलातल गमस्तिम् ।
महातलास्य गुणः पा० । ५ ग ० ल ष गमस्तिम् । महास्य सुतल चाप्य पा० । ६ क ग ० रा ध्वं वा ० । ७ क ० रसातलं शत० । ८ र ० रसातलं जान० । ९ ग ० तपस्तु महता । ना० । १० ग ० दानवपथ । ना० । १० रा ० न ।
निवसन्ति महामाया पन० । ग ० ता । निवसन्ति महामाया जान० ।

नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमाः । स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारद ॥५॥
 प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम् । आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
 नागाभरणभूषाश्च पातालं केन तत्समम् । दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ॥७॥
 पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते । दिवाकरश्मयो यत्र प्रभास्तन्वति नातपम् ॥८॥
 शशिनश्च न शीताय निशि शीताय केवलम् । भक्ष्यभोग्यमहापानमदमत्तश्च भोगिभिः ॥९॥
 यत्र न जायते कालो गतोऽपि वनजदिभिः । वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकरा ॥१०॥
 पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च । भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यञ्चानुलेपनम् ॥११॥
 वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनश्च सबा द्विजाः । एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥१२॥
 दैत्योर्गदश्च भुज्यन्ते पातालान्तरमोचरैः । पातालानामथश्चास्ते विजयोऽयं तामसी तनुः ॥१३॥
 शोषास्या यद्गुणान् वस्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः । योऽनन्तः पृथ्वेः सिद्धदैवदेवपूजित ॥१४॥
 सहस्रशिरसा व्यक्तः स्वस्तिकामलभूषणः । कणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् विशः ॥१५॥
 सत्त्वान् करोति निर्वाणान् हिताय जगतोऽसुरान् । मदापूर्णतमेवोऽसौ यः सर्वैककुण्डल ॥१६॥
 क्रिरीटी स्रग्धरो भाति साग्नित्वेन इवाचलः । नीलवासा मदोत्सवस्त इवेतहारोपशोभित ॥१७॥

दैत्य-दानव रहते हैं ॥४॥ महासर्पों की बृहत्-सी जातियाँ निवास करती हैं । पाताल स्वर्ग से भी रमणीय है ॥५॥
 एक बार पाताल से स्वर्ग जाकर नारद ने देवसभा में कहा—'सुखदायक अच्छी कान्तिवाली स्वच्छ
 मणियों से परिपूर्ण एवम् मय-भूषणा से भूषित पाताल की उपमा किसी से दी जा सकती है ? ॥६॥ इतस्तत
 दैत्य-दानवों की कन्याओं से सुशोभित पाताल में पहुँचकर किस मुकाम पर यत्र की भी प्रीति उत्पन्न नहीं हो
 जाती ? ॥७॥ वहाँ दिन में सूर्य की किरणों प्रकाश फैलती है न कि धूप । रात्रि में चन्द्रमा भी केवल प्रकाश
 ॥८॥ पातालवासी दानव, दैत्य और सर्प वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर कमलों से युक्त तालाब पुष्प बागिचा
 का आलाप, मनोहर वस्त्र, अतिरमणीय भूषण, गुप्प-चन्दन मग्न, वीणा, बाँसुरी और मृदंगों के शब्द आदि रमणीय
 पदार्थों का भाग करते हैं ॥९-१०॥ पाताली के नीचे विष्णु का शेष नामक शरीर है, जिसके गुण-गान करने
 में दैत्य-दानव भी समर्थ नहीं हैं ॥११॥ उसी शेष का नाम अनन्त है । वह सिद्ध, देवता और देवपिया से पूजित
 तथा व्यक्तव्य है । उसके हजार शिर तथा दिव्य आभूषण हैं । वह जपन पत्र की हजार मणियाँ से दिशाओं
 को प्रकाशित करता है ॥१४-१५॥ जगत्त्रयणा के लिए वह सब असुरों को शक्ति-रहित बनाकर छोड़ता है ।
 उसकी आँखें सदा मद से चञ्चल रहती हैं । मुकुट-कुण्डल-माला को धारण किये हुए शेष अग्नियुक्त श्वेतपर्वत के
 समान सुशोभित होता है ॥१६॥ वह नीलवस्त्रधारी, मद से जगन्मत्त, श्वेत द्वार से सुशोभित है ॥१७॥ आनाम

१ ग ०लादीनि ना० । २ क स दिवि । ३ क ०ण सर्वा भूषयाञ्च मनोहरा । नानाम० । ४ स ०तस्व
 सतयो० । ५ न ०किलविरावैश्च म० । ६ ग गन्धाद्य । ७ न दैवदेवपि० । ८ ग ०जित । स० ।

साश्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कंचासादिरिवोत्तमः^१। लांगलासयतहस्ताग्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम् ॥१८॥
 उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्तया। कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोऽऽवलः ॥१९॥
 संकल्पणात्मको ऋद्रो निष्क्रम्याति जगत्त्रयम्। स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥२०॥
 आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः। तस्य वीर्यं प्रभायश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥२१॥
 न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्यैषा सकला पृथ्वी कणामणिशिखारुणा ॥२२॥
 आस्ते कुसुममालेखस्तद्वीर्यं वदिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥२३॥
 तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना। गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः 'क्षिप्ररोरगवारणाः ॥२४॥
 नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमध्ययः'^२। यस्य नागवधूहर्तृर्लक्षितं^३ हरिचन्द्रनम् ॥२५॥
 मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवासताम्। यमाराध्य पुराणविर्गर्गो ज्योतीषि तत्त्वतः ॥२६॥
 ज्ञातवान् सकलं चैव 'निमित्तपठितं फलम्'। तेनेयं 'नागवर्येण शिरसा विधृता महो।
 विभ्रति सकलाहलो ज्ञान् ॥ देवासुरमानुषान् ॥ ॥२७॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्तनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रोरवादयः। पापिनो येषु प्पादयन्ते तद्विजोत्तमाः॥१॥
 रोरवः 'शोकरो' 'रोषस्तानो' 'विशसनस्तया'। महाज्वालस्तप्तकुड्यो' महालोभो विमोहनः॥२॥
 'दधिरान्यो' वसातप्तः 'कृमोशः' कृमिभोजनः। असिपत्रवनं कृष्णो 'लालाभक्षश्च' दारुणः॥३॥
 तथा पूषवह' पापो दह्निज्ज्वालो' ह्यधःशिराः। सर्वशः कृष्णसूत्रश्च 'तमश्चावीचिरेव' च॥४॥
 'श्वभोजनो'ऽप्राप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः। इत्येवमादयश्चाग्रे नरका भूषावाहणाः॥५॥
 यमस्यः विषये घोराः शस्त्राग्निविषदशिनः। पतन्ति येषु पुरयाः पापकर्मरताश्च ये॥६॥
 कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो धवेत्। 'यश्चान्यदनुत्तं' ववित स नरो याति रोरवम्॥७॥
 भ्रूणहा 'पुरहन्ता' च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः। यान्ति ते 'रोरवं' घोरं 'यश्चोच्छ्वासनिरोधकः'॥८॥
 सुरापो 'ब्रह्महा' हर्ता सुवर्णस्य च शूकरः'। प्रयाति 'नरके' यश्च तैः सप्तर्षिर्मुपैति वै॥९॥
 राजन्यवैश्यहा चैव तथैव 'गुरुतल्पगः'। तप्तकुम्भे 'स्वसुगामी' हन्ति राजभट्टश्च यः॥१०॥

अध्याय २२

नरको का वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द 'जब इसके बाद रोरव आदि नरको के बारेमें मुनिये, जिनमें पापी लोग गिराये जाते हैं॥१॥ द्विजश्रेष्ठो' रोरव, शीकर, रोषस्तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन॥२॥ दधिरान्य, वसातप्त, कृमोश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण॥३॥ पूषवह, पाप, दह्निज्ज्वाल, श्वभिरा, सर्वश, कृष्णसूत्र, तम, आर्वाचि॥४॥ श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, आर्वाचि आदि और दूसरे भी अत्यन्त भयंकर नरक हैं॥५॥ यम के राज्य में पाप-कर्म में निरत शस्त्र अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले मयानक पुरुष नरको में गिरते हैं॥६॥ जो मनुष्य झूठ, गप्पाही, देता, पक्षपात करता है, मिथ्या बोलता है, वह रोरव नरक जाता है॥७॥ मुनिवर। गर्भपात, नगर-ध्वंस तथा गोहत्या करने वाले और भला घोटकर हत्या करने वाले मनुष्य भयंकर रोरव नरक में जाते हैं॥८॥ भवपान करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, सुवर्ण चुराने वाले तथा उनके समर्थ करने वाले मनुष्य शूकर नरक में जाते हैं॥९॥ क्षत्रिय, वैश्य तथा राजदूत के हत्यारे, गुरुपत्नीगामी, और

१ व पञ्चमो। २ क स शूकरो। ३ स रोष शीलो विशसन०। ४ क रतालो वि०। ५ ग शनस्त०। ६ स तप्तकुम्भो म०। ७ स ग न्यो वीतरणी कु०। ८ क कृमिज। स कृमिश। ९ क स मुदा०। १० क दह्निज्ज्वाल। ११ क श्वावीचि०। १२ क यस्तावद०। १३ स गृहन्ता। १४ न निरय। १५ स यश्च स्वास०। १६ क ब्रह्महत्यावान्मु०। १७ क मूयक। १८ क नरक। १९ व ग। ये कुञ्जेषु मृगान्गान्ध्रान्ति राजभटाश्च ये। सर्वत्रिमूर्तौ वै पाप वै। २० स स्वसागा०।

‘मयुहा’ ग्रामहन्ता च याति ‘वैतरणो नर । रेत पानादिषु तारो ‘मर्यादाभेदिनश्च ये’ ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्ति यशोचाश्च कुहकजीविनश्च ये । अग्निपत्रवन ‘याति वनच्छदो दूधेव य ॥२४॥
 ओरभ्रिका मृगव्याधा बह्निज्वाले पतन्ति वै । यान्ति तत्रैव ते विप्रा’ यदक्षापाकेषु बह्निद ॥२५॥
 वतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य’ । सन्दशयातनामध्ये पततरतावुभावपि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु ‘स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिण । पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति इवभोजने ॥२७॥
 एते क्षान्ते च नरका शतशोऽप्य सहस्रश । येषु दुष्कृतकर्मणि पच्यन्ते यातनागता ॥२८॥
 तथैव पापान्पेतानि तथान्यानि सहस्रश । भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकात्तरगोचर’ ॥२९॥
 वणश्रमविरुद्धश्च कर्मं कुर्वन्ति ये नरा । कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 यथ शिरोभिर्विद्यन्ते नारकैर्दिवि देवता । देवाश्चाधोमुलान् सध्वनिध पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 ‘स्यावरा’ ‘कृमयोऽज्ञाश्च पक्षिण पक्षयो नरा । धार्मिकास्त्रिदशारतद्वन्मोक्षिणश्च यथ क्रमम् ॥३२॥
 सहस्रभाग’ प्रयमाद्वितीयोऽनुक्रमास्तथा । सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुवितसमाधया ॥३३॥
 यावन्तो जन्तव स्वर्गे तावन्तो नरकोक्तस’ । पापकृद्वापि नरक प्रायश्चित्तपराङ्मुख ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा । तथा तथैव सस्मृत्य श्रोतव्यानि परमधिभि ॥३५॥

जाते हैं । बँस आदि का पान करने वाले मर्यादा का भेदन करने वाले अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आज
 विवा करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं ॥२३॥ व्यथही वृक्षा का छदन करने वाले अग्निपत्रवन नरक में जाते
 हैं ॥२४॥ भेड़ से जँबिया बन्गाने वाले मूसा का गिंकार करने वाले बह्निज्वाला नरक में जाते हैं । पाकरहित
 भोजन में माँ अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य में उस नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ वत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से क्युत होन वाले सदायातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्वप्नवाप होता है व तथा पुत्रों से पढ़ने वाले मनुष्य में नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे में सँकड़ा-हजारा नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकड़े जाते हैं ॥२८॥ इस तरह नरकगाम । जँ व
 हजारा पापों का फल मोगते हैं । कम मन और बाण से वणश्रम विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पकते
 हैं ॥२९॥ माँके सिर वाले नरकास जँ स्वगगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधामुल नारक या
 को न देखते हैं ॥३१॥ महाभाग ऋषिगण स्यावर इमि जलजगु पक्ष । पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरप-
 प सब श्रमश उत्तरोत्तर योगियों को प्राप्त करते हुए भोक्ष पान लज्हा रहते हैं ॥३२॥ ३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं उतनेह नरक में भी हैं । प्रायश्चित्त न करने वाले पाप मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ प पा के अनुरूप
 प्रायश्चित्त के बारे में मुनिया ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्रवर । स्वायम्भुव आदि स्तुत्रों ने नारा

१ क मयुहा । २ क णी द्विती । मूल्यन सध्याक० । ३ क ० दानिदित्तश्च । ४ य ये । य कृष्ण पा० ।
 ५ ल । प्रति । ६ क ० प्र य इवश० । ७ क य । सध्या प्रायश्चित्तिय जलजगता० । ८ क ० स्वप्न । ९ क ० स्वप्न ।
 १० क ० वागवो० । १० क ० गय त्ख्याता प० । ११ क ० समागतिव्यमादित्त यात्रमन्तया । स
 ० समागतिव्यमादित्तया तु क्रमास्तथा ।

माध्वीविक्रयकृद्दध्यपाल ' केसरविक्रयी'। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भवतं परित्यजेत् ॥११॥
 सुता स्नुषाञ्चापि गत्वा महाश्वाले निपात्यते। अवमन्ता गुरुणा यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥१२॥
 वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः। अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजा ॥१३॥
 चोरो विमोहे पतति मर्यादाद्रूपकस्तथा। 'देवद्विजपितृद्वेष्टा रतनदूषयिता च यः ॥१४॥
 स याति कृमिभक्ष्ये वं कृमोज्ञे' तु दुरिष्टिकृत्। पितृदेवातिथीन् यरतु पर्य्यङ्गनाति नराधमः ॥१५॥
 लालाभक्ष्ये स यात्युग्रे शरकर्ता च वेधके। करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकुघ्नरः ॥१६॥
 प्रयान्त्येते विज्ञासने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यघोमुखे ॥१७॥
 अवाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचकः। कृमिपुण्ये नरश्चक्रो याति मिष्टान्नभृक् सदा ॥१८॥
 लाक्षामासुरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च। विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजाः ॥१९॥
 माञ्जरिकुबकुटच्छाणश्वराह्विहङ्गमान्"। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमा ॥२०॥
 रङ्गोपजीवी क्वचत् कुण्डाशो गरदस्तथा। सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वगामी च यो द्विजः ॥२१॥
 अगारवाही 'मित्रघ्नः' शकुनिग्रामयाजकः। रुधिराश्वे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥२२॥

मर्गिनीगर्मा, मनुष्य तप्तबुद्धि नरक में जाते हैं ॥११॥ यद्य तथा केसर-विनेता, यद्य करने योग्य व्यक्ति वा रक्षा
 एवम् मरन-र्यागी मनुष्य तप्तलोह नरक में जाते हैं ॥१२॥ पुत्री तथा पुत्रवधू गामी एवम् गृह निन्दक तथा गृह वा
 अरमान करने वाले नीच मनुष्य महाश्वाल नरक में गिराये जाते हैं ॥१३॥ वेद विनेता, वेद निन्दक तथा
 अगम्या-गमन करने वाले मनुष्य शबल नरक में जाते हैं ॥१४॥ चोर, मर्यादानाराज, रतनाग्न, देवता, ब्राह्मण
 तथा पिता के शत्रु। मनुष्य विमोह नरक में जाते हैं ॥१५॥ दूषित यज्ञ करने वाले तथा पिता, देवता और अनधिवा
 निराश्रय करने वाले नीच मनुष्य कृमिभक्ष्य या कृमिभक्षण नरक में जाते हैं ॥१६॥ विपत्तन धाणा के निर्माता मनुष्य
 लालाभक्ष्य या वेधक नरक में जाते हैं। निग्न (पुण्यलोचर) तथा तलवार आदि के निर्माता मनुष्य अपत्य
 मयानक विगमन नरक में जाते हैं ॥१७॥ अनुचित दान देने वाले, अनधिकारी, व्यक्तिनामे यज्ञ करने वाले तथा
 नक्षत्रादि, स्वधना देने वाले (उपनिषद् के व्यवहारी) मनुष्य अवागुन नरक में जाते हैं ॥१८॥ सदा मिष्टान्न खाने वाले
 द्विजवर्ग। बिलाड, मूर्ख, धरते, अश्व, दूधर और फर्मा वा। पाप्मे वाले मनुष्य भी, उर्ग, नरक में जाते हैं ॥१९॥
 है ॥२०॥ गग के द्वारा जीविकार्जन करने वाले, रक्षक (शम या धीवर), कुण्ड (आर-पुत्र) के अन्न प्राप्त, वि
 प्रगम करने वाले ब्राह्मण, गृह जलान वाले, मित्रवा। मारने वाले, शत्रु विघात करने वाले और पर्व्वगम में रक्ष
 शिवा। रथिताय नरक में जाते हैं ॥२१-२२॥ मनुष्य नरक करने वाले तथा धाम जन्माने वाले मनुष्य नरक में

१ म ०५० वीं पार्श्व में ०। २ म ०५१ वीं पार्श्व में ०। ३ म ०५२ वीं पार्श्व में ०। ४ म ०५३ वीं पार्श्व में ०।
 ५ म ०५४ वीं पार्श्व में ०। ६ म ०५५ वीं पार्श्व में ०। ७ म ०५६ वीं पार्श्व में ०। ८ म ०५७ वीं पार्श्व में ०।
 ९ म ०५८ वीं पार्श्व में ०। १० म ०५९ वीं पार्श्व में ०। ११ म ०६० वीं पार्श्व में ०। १२ म ०६१ वीं पार्श्व में ०।
 १३ म ०६२ वीं पार्श्व में ०। १४ म ०६३ वीं पार्श्व में ०। १५ म ०६४ वीं पार्श्व में ०। १६ म ०६५ वीं पार्श्व में ०।

मधुहा' ग्रामहृता च याति 'वैतरणीं नरः। रेत-पानादिकर्तारो 'मय्यादाभेदिनश्च ये' ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्त्यशोचादश्च कुहकाजोविनश्च ये। अग्निपत्रवनं 'याति' वनच्छदी वृथैव यः ॥२४॥
 औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति ये। यान्ति तत्रैव ते विप्रा' यश्चापाकेषु वह्निदः ॥२५॥
 यतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः'। सन्दशयातनामध्ये पततरतावभावपि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु 'स्थन्दन्ते' ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति इवभोजने ॥२७॥
 एते चान्ये च नरकाः शतशोऽप्य सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्मणः पच्यन्ते यातनागताः ॥२८॥
 तथैव पापाग्येतानि स्यान्त्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरंगोचरैः ॥२९॥
 वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नराः। कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 अथ शिरोभिदंश्यन्ते नारकैर्वि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सध्वानधः पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 स्यावराः 'कुमयोऽज्ञाश्च पक्षिणः पशवो नरा। धार्मिकास्त्रिदशस्तद्वर्गमोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥३२॥
 सहस्रभागः' प्रथमाद्वितीयोऽनुक्रमात्तथा। सध्वं ह्येते महाभागा यावन्मुक्षितसनाश्रयाः ॥३३॥
 यावन्तो ऽन्तवः स्वर्गं तावन्तो नरकोकसः। पापकृद्वाति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव सस्मृत्य प्रोक्तानि परमविभि ॥३५॥

जाते हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले, मर्यादा का भेदन करने वाले, अविद्यता से रहनेवाले और छल से आजी-
 विवा करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं। ॥२३॥ मय्यादा भेदिन करने वाले असिपत्रवन नरक में जाते
 हैं। ॥२४॥ भेद से जीविका कमाने वाले, मृगों का शिकार करने वाले वह्निज्वाला नरक में जाते हैं। पाकरहित
 माजन में भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उहाँ नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ यत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से च्युत होने वाले सदशयातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्नानदाप होता है वे तथा पुत्रों से पढ़ने वाले मनुष्य १० माजन नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे भी सैकड़-हजार नरक हैं, जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकड़े जाते हैं ॥२८॥ इसी तरह नरकगर्भी जीव
 हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म, मन और वाणी से वर्णाश्रम-विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पड़ते
 हैं ॥२९-३०॥ नीचे सिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अपामुख नारकीयों
 को नीचे देखते हैं ॥३१॥ महाभाग अपिण्ड, स्यावर इमि, जलजन्तु पक्षी, पशु मनुष्य धर्मि तथा मुक्त पुर-
 षे सब क्रमशः उत्तरोत्तर मीनिमा को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं ॥३२-३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं, उतने ही नरक में भी हैं। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ पापा के अनुरूप
 प्रायश्चित्तों के बारे में मुनियों ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्रवर! स्वायम्भुव आदि मनुओं ने भारी

१ क बभ्रुहा। २ क ०णी द्विजा। मूल्यन सध्याक०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। ये कृष्णे पा०।
 ५ ख। यान्ति। ६ क ०प्रायश्चित्त०। ७ क य। सदशपापमाश्रिय व्रतस्ता०। ८ क स्थन्दन्ते। ग स्थन्दन्ते।
 ९ क ख ०वार्णवगो०। १० क ०मय-स्याता प०। ११ क ०समागताश्चमाद्विर्तयान्ममस्तथा। स
 ०अभागात्प्रथमा द्वितीया तु क्रमास्तथा।

पापे गुरुणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्धिदः। प्रायश्चित्तानि' विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवावयः॥३६॥
 प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
 कृते 'पापेऽनुतापो वै यस्य पुनः प्रजायते। प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं' हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥
 प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः 'पापक्षयाघ्नरः॥३९॥
 विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तबलेशसञ्चयः। मुक्तिं 'प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात्॥४०॥
 वासुदेवे मनो यस्य जपहोमाच्चर्चनादिषु। तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥४१॥
 यच्च नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्। यच्च जपो वासुदेवेति मुक्तिवोज्ज्वलमुत्तमम्॥४२॥
 तस्माद्बर्हिनिशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विजः। न याति नरकं शुद्धः 'संशोणालिलपातकः॥४३॥
 मनःप्रोतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥४४॥
 वस्तुवेकमेव दुःखाय सुखायेऽप्यौदयाय च। कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कृतः॥४५॥
 तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते॥४६॥
 तस्माद्बुद्ध्यात्मकमस्ति न च क्रिञ्चित्सुखात्मकम्। मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः॥४७॥
 ज्ञानमेव परं ब्रह्माज्ञानं बन्धाय' धेद्यते। 'ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥४८॥

पाप के भारी प्रायश्चित्त तथा अल्प पाप के अल्प प्रायश्चित्त बताए हैं॥३६॥ तपस्या, मुकर्म, आदि प्रायश्चित्त हैं। पर समस्त प्रायश्चित्तों के बाद श्रीविष्णु का स्मरण करना उत्कृष्ट है॥३७॥ जिस पुरुष को पाप करने पर अनुताप होता है, उसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्रीहरि का स्मरण॥३८॥ प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, रात तथा दिन में नारायण का स्मरण करने वाले मनुष्य का सद्यः पाप-क्षय हो जाता है॥३९॥ विप्रवृन्द! विष्णु के सन्ध्या स्मरण से क्षमस्त कष्टों को नष्ट कर मनुष्य हरि-कीर्तन के बल में मुक्त हो जाता है॥४०॥ जिस मनुष्य का मन, जप होम-भूषा वें द्वारा वासुदेव में लगता है उसे विष्णु वाचा नहीं सताती, तथा इन्द्र-भद भी उसके लिए सुख है॥४१॥ वहाँ पुनर्जन्म-दायक स्वर्गगमन और वहाँ सर्वोत्तम मोक्षदायक वासुदेव का जप।॥४२॥ इसलिए दिन-रात विष्णु का स्मरण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण, जिसमें भयस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, नरक नहीं जाता है॥४३॥ स्वर्ग मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है और नरक उसका प्रतिकूल (अर्थात् दुःखदायक है)। द्विजवर्य! पाप-पुण्य नरक-स्वर्ग सत्ता वाले हैं॥४४॥ एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या और भय उत्पन्न करती है। इसलिए कोई परार्थ वृत्तसमक नहीं है॥४५॥ जो परार्थ सुख देकर दुःख देता है, वहीं विर भय और प्रसन्नता उत्पन्न करता है। इसलिए दुःख सुख नामक कोई चीज नहीं है॥४६॥ सुख दुःख होना—यह सः मन का परिणाम है। ज्ञान ही परब्रह्म है और अज्ञान बन्धन में डालता है॥४७॥ यह संसार ज्ञान रूप है और ज्ञान से बदकर कुछ नहीं है॥४८॥ विप्रवृन्द! विद्याया से जानने योग्य पदार्थों में ज्ञान ही को धारण करना चाहिये।

१ स ० नि भो विप्रा ज०। २ स ० वे च ता०। ३ व ० कृष्णानुस्मरणः। ४ स ग ० दाय नरः। ५ स ग ० तित्स्वर्गाद्विस्तस्य विष्णोर्नृपयते। वा०। ६ व ० म्। नाकपृष्ठादिग०। ग ० म्। आना०। ७ व ० णत्तेपपा०। ८ स ग ० शेषम्। जा०। ९ क स वल्लभा०। १० व ० य नेष्य०। ११ क ज्ञानमेव पर वि०। स ज्ञान च कामद वि०।

विद्ये हि' भो विद्या ज्ञानमेवावधार्यताम् । एवमेतन्मयाख्यात भवता मण्डल भुव ॥४९॥
 तानि च सर्वानि तथैव नरका द्विजा । समुद्रा पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगा
 पात् सर्वमाख्यात किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥५०॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्तन नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भूर्भुव स्वरादिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

यित भवता सर्वमस्माक सकल तया । भुवर्लोकैर्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे धयम् ॥१॥
 त्वं प्रहसत्यान प्रमाणानि यथा तथा । समाचक्ष्व महाभाग यथावत्लोकमहर्षण ॥२॥

लोकमहर्षण उवाच

विचन्द्रमसोर्यावन्मूलैरवभास्यते । सप्तमृदसरिच्छेल्य तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
 यत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला । नभस्तान्त्रप्रमाण हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४॥

इम प्रकार मैंने आपसे पृथ्वी मण्डल जलिल पाताल तथा नरको का वर्णन किया ॥४९॥ द्विजगण ।
 आप स्वर्गा द्वीपा वर्षा तथा नदिया के बारे में भी सक्षप से सब कुछ कह दिया । अब आप फिर क्या सुनना
 चाहें ? ॥५०॥

यः ब्रह्म महापुराण म पातालनरककीर्तन नामक द्वाविंशो अध्याय समाप्त ॥२२॥

अध्याय २३

भूः, भुवः और स्वः आदि लोका का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने सब कुछ हमसे कहा । अब हम भुवः स्व आदि लोकों के बारे में सुनना
 चाहें हैं ॥१॥ हे महाभाग महा व स्थिति तथा प्रमाण के सम्बन्ध में भी यथासमय बात बताएं ? ॥२॥

लोकमहर्षण बोले—मूल चन्द्रमा वः, किरणा गजहो तक लम्ब नदी और पवन सहित पृथिवी, प्रमाणित
 होता है वहाँ तक उसका प्रमाण है ॥३॥ विस्तार और मण्डल सहित पृथ्वी का जिसका परिमाण है उतना है ।

१ व हि य विद्या मान तथा पर मनम । २ क म ० पृष्ठत । ३ ० १ ३ व ० दिवर्गोन्माख्या ० । ४ व नव
 पृष्ठत ० । ५ क ० वत्तिरपर ० ।

भूमेर्योजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम् । लक्षे दिवाकराच्चापि' मण्डलं शशिन स्थितमा
पूर्णं शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् । तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः । लक्षद्वयेन भोमस्य स्थितो देवपुरोहितः
सौरिर्वृहस्पतेरुद्धर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः । सप्तविमण्डलं तस्मात्तत्समेकं द्विजोत्तमा ॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शताबुद्धये व्यवस्थितः । मेढोभूतं समस्तस्य ज्योतिश्चित्रस्य वै ध्रुवः ॥१॥
म्रलोक्ष्यमेतत् कथितं सलोपेण द्विजोत्तमा । 'इड्याक'स्य 'भरेया' इड्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥
ध्रुवाद्धर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । एकयोजनकोटी' तु 'महर्लोको विधीयते ॥
द्वे कोट्यो तु ज्यो लोको यत्र ते ग्रहाण सुता । सनन्दनाद्या 'फयिता' विप्राश्चामलन्वेतस ॥
चतुर्गुणोत्तर' 'बोद्धर्ध्वं जनलोकोत्तप स्मृतम्' । वैराजा यत्र ते दवा स्थिता देहविवर्जिता ॥
पद्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते । 'अपुनर्मारक' यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ॥
पादगन्धं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् । स भूर्लोकं समाह्वयतो विस्तरा रोऽश्मभ्योदितः ॥
भूमिसूक्ष्मांतरं यत् सिद्धादिमुनिसेवितम् । भुवर्लोकरतु सोज्ज्वलतो द्वितीयो मुनिरुत्तमा ॥

परिमाण विस्तार और परिमण्डल सहित आकाश का भ है ॥४॥ विप्रबुध' पृथिवी से एक लाख योजन
पर सूक्ष्म मण्डल स्थित है और सूक्ष्म स उत्तमा है दूर पर चन्द्र मण्डल स्थित है ॥५॥ चन्द्रमा स एक लाख
ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित होता है ॥६॥ नक्षत्र मण्डल स दो लाख माजन उत्तर बुध मण्डल है
बुध स उत्तमा है दूर उत्तर भुव स्थित है ॥७॥ भुव से उत्तमा है दूरी पर मण्डल स स्थित है । मण्डल स दो
माजन दूर पर वृहस्पति स्थित है ॥८॥ वृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित है । द्विजभट्टो । १
एक लाख योजन ऊपर सप्तवि मण्डल है ॥९॥ सप्तवि मण्डल से एक लाख योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चित्र' का
बना हुआ ध्रुव स्थित है ॥१०॥ विप्रवर' सक्षय शशिन लोच का भवन मने कर दिया । यन्त्रन का ग्रह भूमि
यत्र पट्टा प्रतिष्ठित हुआ है । ध्रुव स ऊपर महर्लो है जहाँ बल्यवर्षी जन रहते हैं ॥११॥ सप्तवि मण्डल
एक बराह माजन है । दो करोड़ माजन प्रमाण जनोर्ग है जहाँ ब्रह्मा ने निमल वित्त का सनन्दन आदि पुत्र
हैं ॥१२॥ जनलोक स चौगुना ऊपर तपोलोक है जहाँ वैराज सगर्भ देवता परा रहित होकर स्थित हैं ॥
तपोलोक स छह गुना ऊपर सत्यलोक विराजमान है जहाँ सिद्ध आदि मुनियों ने निबिन् ब्रह्मलोक भ है ॥
वैरा स गमन करण माध्य जो कुछ या पवित्र वस्तु है वह भूर्लोक, बह्मलोक है । इसका विस्तार मैं बना चु
॥१६॥ मुनिभट्टा । सिद्ध आदि मुनियों स संबंधित पच्च और सूक्ष्म का अंतर तथा भुवर्लोका का भारे भ म । मैं कह चु

परितर यत्तु नियुतानि चतुर्वदंश। स्वर्लोक सोऽपि कथितो 'लोकसंस्थानचि तर्क' ॥१८॥
 मतत वृत्तक विप्रंश्च परिपठ्यते। जनसत्परातया सत्यमिति चावृत्तक त्रयम् ॥१९॥
 ततो मध्ये महर्लोक इति स्मृत। शूयो भवति कल्पाते योऽत न च विनश्यति ॥२०॥
 महालोका मया य कथिता द्विजा। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माधरमेव दिशतर ॥२१॥
 कटाहेन तिथ्यपूर्वध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीज सत्त्वतो वै समवृत्तम् ॥२२॥
 णे पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदवृत्तम्। स चाम्बुपरिवारोऽसौ बह्विना वेदितो बहि ॥२३॥
 धाम्ना धाम्यविप्रास्तु नभसावृत। आकाशोऽपि मुनिभेदा महा परिवेष्टित ॥२४॥
 राण्येवाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महातञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम् ॥२५॥
 स्य न तस्यात सह्यान् धापि विद्यते। तदन तमसस्थात प्रमाणेनापि वै यत ॥२६॥
 म्मेयस्य प्रकृति सा परा द्विज। अण्डाना तु सहस्राणा सहस्राभ्युतानि च ॥२७॥
 ना तथा सप्त कोटिकोटिशतानि च। द्वाह्यग्निर्व्या तल तिले तद्वत् पुमानिह ॥२८॥
 नेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिर्बेदन। प्रधानञ्च पुमाश्चैव 'सर्वभूतानुभूतया' ॥२९॥

। लाह स्थिति चितका का कहना है कि एक और मूल के उच एक करो घाल म लाख योजन प्रमाण
 है। विप्रा न इसका नाम वृत्तकजिलोकी रखा है ॥१८॥ जन सप्त तथा मय—यह म अद्वैतक विप्राकी
 मे क्यात है ॥१९॥ वृत्तक और अद्वैतक म मध्य महर्लोक माना गया है जो कल्पान्त म गाय हो जाना है
 प्ट नहीं हुना ॥२०॥ द्विजगण। मैंन साता महाल क तथा सता पालाल म युक्त ब्रह्माण ३ विस्तार का
 कर दिया ॥२१॥ जैसे कपित्थ (कटल) का बीज सब अर मे डका पड़ता है उसी तरह यह ब्रह्माण
 कटाह मे ऊपरनीचे और तिरछ डका हुआ है ॥२२॥ द्विजगण। दस गुन जल म यद् ब्रह्माण आवन है।
 राग मे बाहर अग्नि से वेष्टित है ॥२३॥ अग्नि तो वायु मे और वायु आकाश से आवन है। मनिधत्ता।
 ग म मनुमत्क ॥ परिवेष्टित है ॥२४॥ विप्रक ॥ ये सम्पूर्ण माता दगापिक (अर्थात् कुल) हैं। महत्त्व
 आवन कर प्रपात (प्रकृति) अवस्थित है ॥२५॥ उन अनन्तमप देव का अन्त और मर्या नहीं है अत एव
 अनन्त का प्रमाण भी नहीं बताया जा सकता है ॥२६॥ द्विजगण। अथेव ब्रह्माण का कारण परा प्रकृति है।
 ही हजार क हजार और करोड न करह अरिगिन ब्रह्माण्ड है। जम का म अग्नि और निल म तेल
 म रहता है उमा तरह व्याक जेनन प्राप्ता प्रपात म अवस्थित है। द्विजधत्ता। सब प्राणिना ॥ अनु
 वेष्ट विष्णु गति प्रकृति और पुरुष आध्यधम का कारण करते हैं। प्रकृति-पुरुष ने पाचवय तथा आधय का

१ म ० दूरीतर। २ म ० ना द्विजस्तत्त्वविधि०। ३ म ० वन्यानिविधि०। ४ म ० क। लाहमय वृत्तक।
 ५ ० क्षत्रामय। ६ म या हानेय। ७ म सन्मन०। ८ म ० न। भूपातिना मय माप्ति म०। ९ म ० रात्रिना।
 १० म ० क्षान्ति। प्र०। ११ म ० नेन विधि०। १२ म न ० नामधू०।

विष्णुशक्त्या द्विजधेष्ठा धृतौ संश्रयघर्म्मिणौ। तयोः संव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥
 क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः। यया शतं जले वातो विभक्ति कणिकागतम्॥३१॥
 जगच्छवितस्तया विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यया च पादपी मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः॥३२॥
 'आद्यबीजात् प्रभवति बीजाज्यन्यानि वै ततः। प्रभवन्ति ततस्तैर्यो भवन्त्येते परे द्रुमाः॥३३॥
 तेषां तत्त्वक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः। एवमव्याकृतात् पूर्व जायते महादयः॥३४॥
 'विशेषान्तास्ततस्तैर्मयः सम्भवन्ति सुरादयः। तैर्मयश्च पुत्रारतेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥
 बीजाद्यक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवारयपचयस्तथा॥३६॥
 सप्रधानाद्यथाकाशकलाद्याः कारणं तरोः। तर्पेवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥
 श्रीह्रिबीजे यथा 'मूलं नालं पत्राद्भुरौ तथा। फण्डकोयास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥
 मुपाः फणाश्च सन्तो वै घान्त्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहेतुसामप्रयमासाद्य मुनिस्तमाः॥३९॥
 तथा 'कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः। विष्णुशक्तितं समासाद्य प्ररोहमुपयागति वै॥४०॥
 स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र खेवं 'यस्मिन्विलयमेत्यति॥४१॥
 तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्। यस्य सर्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥
 स एव मूलप्रकृतिर्व्यवहारी जगच्च सः। तस्मिन्नेव सर्वं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कारण श्री शक्ति ही है, जो सृष्टिकाल में क्षोभ का कारण बन जाती है॥३०॥ द्विजवर! जैसे बाग़ जल-वृक्ष से प्राप्त सैषकी घारण करना है वैसे सृष्टि-काल में सत्वात्म-कारण भूत विष्णु-शक्ति प्रकृति-गुण रूप जगत् का घारण करती है॥३१॥ जैसे मूल-वृक्ष-शाखा आदि से समुत्पन्न वृक्ष प्रथम बीज से उत्पन्न होता है दूसरे बीज उस वृक्ष से और अन्य वृक्ष उन बीजा से उत्पन्न होने हैं तथा हे द्विजो! वे श्री उर्मा लक्षण वाले ब्रह्म के कारण के अनुगत होने हैं, उन्हीं तरह अव्याकृत (मूल प्रकृति) से पूर्व महादि उत्पन्न होत है॥३२-३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष उनमें अन्तिम होता है उनसे ही सब गुरु यदि समुत्पन्न हुआ करते हैं, फिर उनसे पुत्र उत्पन्न होने हैं और उन पुत्री के श्री परम पुत्र-बीजादि हुआ करते हैं॥३५॥ जैसे बीजा के रहत हुए वृक्ष का जमाव नहीं होता उन्हीं प्रकार प्राणि-सृष्टि से प्राणिया का जमाव नहीं हो सकता॥३६॥ जैसे सप्रधान में वृक्ष के अङ्गार, बाल आदि कारण होने हैं उन्हीं तरह विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण हल हैं॥३७॥ जैसे घान के बीज में मूक, मात, पत्र, भक्षुर, फण्ड (पार) बाँध (आवरण) पुष्प, द्रूप, चावल, गुप (मूमी) और बग़ अक्षुर की कारण-तामसी को प्राण कर उत्पन्न हो जाते है उन्हीं प्रकार अनार प्रकार के कर्मों में स्थित देव आदि के लीर विष्णु लक्षित को प्राण कर अनुगित हो जाते है॥३८-४०॥ वह विष्णु परब्रह्म है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा॥४१॥ वह ब्रह्म परम धाम, सत् असत् रूप और परम पद है, जिसमें यह चराचर स्थित सम्पूर्ण जगत् समित है॥४२॥ यही मूल प्रकृति और व्यवहारी सत्कार है। उन्हीं में यह जगत् स्थित रहता है तथा लीन होता है॥४३॥ यही वर्गी वर्गी विज्ञा,

१ क० ट्या। प्रवृत्त्या०॥ २ क० आदिबी०॥ ३ क० विपश्य तप०॥ ४ क० ये तु वि०॥ ५ क० अ० ग्या-
 भूतपादरे। बा०॥ ६ क० संयु लोके०॥ ७ क० यस्मिन्विलय०॥

कर्ता क्रियाणां स च इज्यते ऋतुः, स एव तत् कर्मफलञ्च तस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो हरेन किञ्चिच्चद्व्यतिरिषत्परित तत् ॥४४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकी तंन नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ध्रुवसंस्थितिनिर्हणम्

लोमहर्षण उवाच

तारामय भगवत शिशुमारकृति प्रभो । दिवि त्व हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ॥१॥
सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् । भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥
सूर्याच्चन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहे सह । वातानीकमयैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥
शिशुमारकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि । नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥४॥
उत्तानपावतनयस्तमारोह्य प्रजापतिम् । स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थितः ॥५॥

मगरूप से पूजित और कर्म फल भी है । उसी हरि से समस्त युग होते हैं और उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है ॥४४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म भूर्भुव स्व आदि लोको के वर्णन नामक तेईसवा अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण बोले—तारो से व्याप्त तथा शिशुमार तारे (ताराचक्र का भेद) की आकृति जैसे जगवान्
हरि के दिव्य रूप के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है ॥१॥ स्वय घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों को भी घुमाता है ।
घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है ॥२॥ सूर्य चन्द्रमा तारे नक्षत्र ग्रह—ये सब वायु
समूहस्त्री बधन से ध्रुव म बंधे हुए हैं ॥३॥ आशान म शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषा का रूप बड़ा
मया है उसका आधार स्वय परमधाम नारायण है ॥४॥ ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूछ

१ ग ०या वै छ। २ ख ०दि यसाधनमप्यग। ३ ग ०दि तत्साधनमप्यग। ३ ग ०यच्च त०। ४ ग
०मयैर्वागंधु०।

आधारः शिशुमारस्य सर्वाङ्ग्यक्षो जनाद्देनः। ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्ध्ववस्थितः॥६॥
 तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
 विवस्वानष्टभिर्मसिर्प्रसत्यापो। रसात्मिकाः। वर्षत्यम्बु ततश्चाग्नमग्नादमलिलं जगत्॥८॥
 विवस्वानंशुभिस्तोषणैरादाय जगतो जलम्। सोमं पुष्ट्यत्ययेन्दुश्च वायुनाङ्गोमयं दिवः॥९॥
 जलं विक्षिप्यतेऽश्रेषु धूमाम्बुनिलमूत्सिपु। न अश्रयन्ति यतरतेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् दतः॥१०॥
 अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। संस्कारं कालजनिस्त विप्राश्चासाद्य निर्मलः॥११॥
 "सरित्समुद्रा" भोमास्तु तथापः प्राणित्सम्भवाः। क्षुत्प्रकारा भगवानादसे सदित्ता द्विजाः॥१२॥
 आकाशगङ्गासलिलं तयाहृत्य यजतिमान्। अनभ्रगतमेवोष्ण्या सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
 तस्य संस्पर्शनिर्धूतापापपङ्क्तो द्विजोत्तमाः॥ न याति मरकं मर्यां दिव्यं स्नानं हि तत्तमृतम्॥१४॥
 "वृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः॥१५॥
 कृतिहाडिषु "श्रद्धेषु विपमेधम्बु यद्विदवः। वृष्ट्वार्कं पतितं श्रेष्ठं तद्व्याङ्गं विगुणजोद्धतम्॥१६॥
 युग्मर्क्षेषु तु यत्तोषं पतत्यर्कोद्धतं दिवः। तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते॥१७॥
 उभयं पुण्यमस्ययं नृणां पापहरं" द्विजाः। आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं "द्विजोत्तमाः॥१८॥

परं व्यवस्थित हुआ ॥५॥ शिशुमार का आधार सर्वाङ्ग्यक्ष जनादेन है। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव म सूर्य अवस्थित है ॥६॥ विप्रवृन्द । वह सूर्य देवता, राक्षस और मनुष्य सहित इस जगत् का जिस विधान से आधार है वह अब आप सुनिये ॥७॥ आठ मासो मे सूर्य रसरूप जल को धींचना है। तब जलवृष्टि होती है, उससे भस्म उपजता है और भस्म को खाने वाला मिलिल जगत् है ॥८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणो से जगत् के जलको ग्रहण कर सोम का पोषण करता है और वह इन्दु वायुमय नाटियो के द्वारा आकाश मे स्थित होकर जल को धूम, अग्नि और वायु रूप मेध मे विलेख देता है। वही से जल के न गिरने के कारण उसका नाम अभ्र (बादल) पड़ा है ॥९-१०॥ विप्रवृन्द । वायु से प्रेरित बादल का निर्मल जल कालजन्म सत्त्वार को प्राप्त कर गिरता है ॥११॥ द्विजगण । भगवान् सूर्य नदी, समुद्र, पृथिवी और प्राणी से उत्पन्न चार प्रकार के जल को ग्रहण करते हैं ॥१२॥ सूर्य आकाशगंगा के जल को भी ग्रहण कर बिना बादल के ही अपनी किरणा से पृथ्वी पर (उत्ते) बरसाते हैं ॥१३॥ द्विजवर्ग, उस जल के स्पर्श से मनुष्य का पाप-पङ्क धुल जाया है और इस दिव्य स्नान के बाद उमे नरक में नहीं जाता पड़ता है ॥१४॥ सूर्य के न दिलाई पड़नेपर भी बिना बादल के जो वर्षा होती है, वह आकाश-गंगा का जल सूर्य-किरणो के द्वारा प्रक्षिप्त होता है ॥१५॥ कृतिहा आदि विषम नशनों मे जो सूर्य-दर्शन के साथ वर्षा होती है, उमे दिग्गजों के द्वारा उज्ज्वल-आकाश गंगा का जल समस्तता आहिये ॥१६॥ युग्म नशनों मे जो आकाश से जल बरसता है, उस जल को सूर्य-रश्मियाँ तत्काल ग्रहण कर प्रक्षिप्त करती है ॥१७॥ द्विजगण । वह जल अत्यन्त पवित्र और पापहारी है। आकाश-गंगा का जल दिग्बर स्नान है ॥१८॥ द्विजगण । मेघो से बरसा हुआ जल ओरधियाँ को पुष्ट करता है और वह जल प्राणियो के जीवन के लिए

१ग ध्रुवमुष्टम्बः०। २क ०सत्येको २०। ३क रसात्मकम्। ४क ०ध्वंश्वरम् तन्मादग्रादाप्याने ज०। ५ग ०म्बुज तन्मादग्रादाप्याने०। ६क सोमेन्द्रम् पुष्ट्ये चेन्दुर्वापुः०। ७ग ०व्यत्यपःप्रवः। ८ग ०वि। नालं विक्षिप्यतेपु। ९क ०व्य मेघेषु। १०क ०रित समु०। ११क ०मुद्र मुनि चतः०। १२ग ०मम। न०। १३ग दृष्ट्वा मू०। १४क ०पु निरस्यपम्बु। १५क पापह। १६क स्थान।

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः । पुष्पात्योषधयः सर्व्वी जीवनायामृतं हि तत् ॥१९॥
 तेन वृद्धिं परा नीतः सकलश्चोषधीगणः । साधकः कल्पकाकान्तः प्रजानां तु प्रजायते ॥२०॥
 तेन यजान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः । कुर्वन्तेऽहंरहश्चैव देवानाप्यादयन्ति ते ॥२१॥
 एवं यजादश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः । सर्व्वदेवनिर्वाणश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२॥
 वृद्ध्या घृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२३॥
 आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः । ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥२४॥
 हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः । विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५॥
 एवं मया मुनिभ्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् । भूतमद्वादिभिर्मुक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सर्वतीर्थंमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्या घानि तीर्थानि" पुण्यान्यायतनानि च । वस्तुमहंसि धम्मं ज्ञे ध्योतुं नो वर्तते मनः ॥१॥

अमृत रूप है ॥१९॥ उस जल से सब ओषधियाँ संचयित होती हैं । ओषधि समूह फलने-फूलने और पकने तक प्रजाओं के उपयोग में आता है ॥२०॥ इसलिए शास्त्ररूप चक्षु वाले मनुष्य देवताओं की पुष्टि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करते हैं ॥२१॥ इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, देव समूह, पशु-प्राणी-पक्ष, स्थावर, जगम—एतद्रूप यह समूह जगत् वृष्टि के द्वारा धारण किया जाता है । मुनिवर्ग । वह वृष्टि भी सूर्य से निष्पन्न होती है ॥२२-२३॥ मुनिवर । सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार और वह भी नारायण का आश्रित है ॥२४॥ शिशुमार के हृदय में सब प्राणियों का धारण करने वाले आदिकारण सनातन नारायण स्थित हैं ॥२५॥ मुनिवर्ग । इस तरह पृथ्वी, समुद्र आदि से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन मैंने कर दिया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ? ॥२६॥

श्री ब्रह्महापुराण में ध्रुव-संस्थिति-निरूपण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे धर्मज्ञ । पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ तथा आश्रम हैं, उन सबके बारे में हम सुनना चाहते हैं ॥१॥

१. सकल ० । २. कान्तस्तमादेतत्त्रयम् ० । ३. येन । ४. स वन्त्यह ० । ५. हस्तैश्च दे ० । ६. रूपयो । ७. च सर्व्वम् ० । ८. सर्व्वमत्र निष्पाद्यते यथा । साऽऽ ० । ९. च । एव निष्पाद्यते वृद्ध्या सा विभ्याम् ० । १०. चतुर्विंशति ० । ११. विधान्या ० ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तो च पादो च मनश्चैव सुसयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचा तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
वित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति । शतशोऽपि जलघोतं सुराभाष्टमिवाशुचि ॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमा । दुष्टाश्चैव बभूवुर्वाचं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः । तत्र तत्र कुरुष्वेवं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
"तस्माच्छृणुष्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च । सक्षेपेण मुनिश्चेठा पृथिवा यानि वानि वै ॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि । प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमा । धेनुकं चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च । गया प्रभासं श्रीतीर्थं विषयं कनकलं तथा ॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्पासं भीमारण्यं कुशस्थलीम् । लोहाकुलं सकेदारं मन्वशारण्यमेव च ॥११॥
महाबलं कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा । रूपतीर्थं शूकरवत् चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२॥
योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं तथा । तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥
सोमतीर्थं मुद्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा । कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिलं तथा ॥१४॥

धर्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकोसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च क्रुद्धदण्डञ्च विभ्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वभौमिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चेव ववरी सुप्रभं तथा। ब्रह्माकुण्डं बह्मिकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तयोर्ध्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च॥ सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महाश्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारं एकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। बिल्वप्रभं देवहूदं तीर्थं विष्णुहूदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रामुषं तथा। अग्निप्रभञ्च पुत्रागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगन्धर्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदयम्। सातीर्थं लोकपालारय मणिपूरगिरिं तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चहूदञ्चेव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभावं च गोवरं घटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याथमं दायकुण्डं जम्बूमागं तथोत्तमम्॥२५॥
गमस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थवज्रं तथार्धुदम्। पिङ्गुतीर्थं वासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुशृङ्गम्॥२७॥
तीर्थं दीर्घासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मपुङ्गवं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैंतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपदं तीर्थं, पञ्चवसिल ॥१५॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थं, बाधप्रमोचन तीर्थं, गङ्गाद्वार, पञ्चकूट, मध्य-
कोसर ॥१५॥ चक्रप्रभ, मतङ्ग, प्रसिद्ध क्रुद्धदण्ड दंष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थं, सार्वभौमिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिल बदरी, सुप्रभ,
ब्रह्माकुण्ड, बह्मिकुण्ड, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ चतुःश्रोत, चतुः शृङ्ग, शैल, द्वादशधारक, मानस स्थूलशृङ्ग, उर्वशी- तीर्थं
॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वं, शैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोमामिषेचन तीर्थं ॥१९॥ महाश्रोत, कोटरक, पञ्चधार
विद्याधर, सप्तधार, एकधार, चामरकण्टक तीर्थं ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम, बिल्वप्रभ, देवहूद विष्णुहूद
॥२१॥ शङ्खप्रभ, देवकुण्ड, वज्रामुष, अग्निप्रभ, पुत्राग, देवप्रभ ॥२२॥ विद्याधर गन्धर्व, श्रीतीर्थं ब्रह्महृद सातीर्थं,
लोकपाल, मणिपूरगिरि ॥२३॥ पञ्चहूद, पिण्डारक, मलय, गोप्रभाव गोवर, घटमूलक ॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य
विष्णुपद, प्रयाग, कन्याथम, दायकुण्ड, जम्बूमागं ॥२५॥ गमस्तितीर्थं, ययातिपतन, कोटितीर्थं भद्रवट, महाकालवन
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थवज्र, अर्धुद, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुशृङ्ग ॥२७॥ दीर्घासिक पिञ्जरक, ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
पुङ्ग, वसुतीर्थं, कुमारिक ॥२८॥ शत्रुतीर्थं, पञ्चनद, रेणुकातीर्थं, पैंतामह, विमल, रुद्रपाद ॥२९॥ मणिमत्त, कामाक्ष्य,

१५ ०र्थं सार्वभौमिकमेव च। सूर्यप्रभं ब्रह्माकुण्डं तीर्थं सो०। २५ गङ्गाधर। ३५
शत्रुकुण्ड। ४५ दंष्ट्राकुण्ड। ५५ विष्णुकुण्ड। ६५ ०शवार०। ७५ स्थूलशृङ्ग। ८५ स्थूलकूट। ९५ मेसधर।
१०५ ०मानि सो०। ११५ च। सूर्यप्रभं मयुक्त०। १२५ ०हाथोय कोचनद ५०। १३५ ०ज्वारि०। १४५
शालिग्राम०। १५५ वज्रतीर्थं। १६५ ०र्थं बदरीहृदमेव च। वि०। १७ ०र्थं नदनीहृदमुत्त०। १७५ ०म्।
विष्णुप्र०। १८५ स विष्णुप्रभ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम्^१। विद्या तपश्च कीर्तिश्च ॥ तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
 मनो विशुद्धं पुण्यस्य तीर्थं, चाचा^२ तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च^३।
 एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
 चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्घोतं सुराभाष्टमिवाशुचि ॥४॥
 न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। बुष्टाशयं दम्भरुचि पुनन्ति^४ व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
 इन्द्रियाणि यशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र^५ कुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
 'तस्माच्छृणुष्वं वक्ष्यामि तीर्थान्प्रापयतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा पृथिव्यां यानि ॥ निर्वै ॥७॥
 विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं यथंशतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
 प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं^६ चम्पकारण्यं सन्धवारण्यमेव च ॥९॥
 पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं वनरालं तथा ॥१०॥
 भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं^७ कुशस्थलीम्। लोहाकुलं^८ सकेदारं मन्दारारण्यमेव च ॥११॥
 महाबलं^९ कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा। रूपतीर्थं शूकरव^{१०} चयतीर्थं महाफलम् ॥१२॥
 योगतीर्थं^{११} सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं^{१२} तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥
 सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं^{१३} स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं^{१४} तथा ॥१४॥

लोमहर्षण बोले—जिसके हाथ, पैर और मन में सयम है तथा विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ फल की प्राप्ति करता है ॥२॥ पुण्य के शुद्ध मन और वाणी तथा इन्द्रियो का निग्रह तीर्थरूप हैं। ये शरीरजात तीर्थ स्वर्ग के मार्ग का बोध कराते हैं ॥३॥ सी बर जल से पाया जाने पर भी मद्य-पान जैसे पवित्र नहीं होता उसी तरह दुष्ट मन तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता है ॥४॥ तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम दुष्ट चित्त वाले दम्भी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य को पवित्र नहीं कर सकते ॥५॥ इन्द्रिया को यश में करके मनुष्य जहाँ निवास करेगा, वही उसको कुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर आदि तीर्थ प्राप्त हो जायेंगे ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ ! इसलिए पृथिवी पर जितने तीर्थ तथा आश्रम हैं, उनके सम्बन्ध में आप संक्षेप से सुन लीजिये। विस्तार से तो सी बरों में भी नहीं कहा जा सकता है ॥७॥ द्विजवर्य ! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सन्धवारण्य ॥८-९॥ पवित्र मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया प्रभास, श्रीतीर्थ दिव्य वनराल ॥१०॥ भृगुतुङ्ग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, द्वारका-पुरी, लोहाकुल, वेदार, मन्दारारण्य ॥११॥ महाबल कोटितीर्थ, सर्वपापहर, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चय-तीर्थ ॥१२॥ योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोदक तीर्थ, कोकामुख पवित्र बदरीशैल ॥१३॥ सोमतीर्थ, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम,

१ स समुत्तमः। २ स वाचो मनस्विन्द्रिः। ३ स वाच्य मनस्विन्द्रिः। ४ स ग षट्त्वा।
 ए०। ५ ग षन्नात्र पु०। ६ क षण्डमषामु०। ७ क दुष्टवृद्धिः। ८ स षचि न पु०। ९ न षन्तीह
 द्विजोत्तमा। १० स षन्त्यजिते०। ११ ग तत्र। १२ स ग तस्य। १३ स तस्य पु०। १४ स
 वेणुः। १५ स षमासतीर्थं च दि०। १६ क हिमवारण्य। १७ स षाहोदकं च के०। १८ स हिमालयः। स महालयः।
 १९ स गृध्रतीर्थः। २० स मुद्रितः। स शूकर च क०। २१ स घोरतीर्थः। स व्यामर्त्यः। २२ स सावोटः।
 स सावोटः। २३ स धर्मतीर्थः। २४ स स्कन्दाश्रमः। २५ स ग षा। सृष्टप्रथमं धेनुकं सन्तमापिष्य तथा।

धर्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं वाद्यप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च भृशदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वभौमिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभं तथा। ब्रह्माकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
अतु सोतश्चतु शृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तयोर्ध्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च॥ सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महालोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारं चतुर्धारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शाकप्रभं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवहृदं तीर्थं विष्णुह्रदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं यज्ञायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्यापरं सगान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम्। सातीर्थं लोकपालारथं मणिपूरगिरिं तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभाञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याधर्मं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालञ्च तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थं वज्रं तथार्धुदम्। पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुतङ्गम्॥२७॥
तीर्थं दोर्वीक्षितं नाम तथा पिङ्गरकं क्षुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मवृक्षं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पेंतामहञ्च विमलं रत्नपाव तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं पञ्चविंशति ॥१४॥ धर्मोद्भवं कोटितीर्थं, वाद्यप्रमोचन तीर्थं, गङ्गाद्वार, पञ्चकूट, मध्य-
केसर ॥१५॥ चक्रप्रभं मतङ्गं प्रतिष्ठं भृशदण्डं दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं, सार्वभौमिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिल, बदरी, सुप्रभं
ब्रह्माकुण्डं, वह्निकुण्डं, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ अतु शीत, चतु शृङ्ग शैल, द्वादशधारकं मानसं स्थूलशृङ्ग उर्ध्वशी तीर्थं
॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वं शैलं सदाप्रभं मेरुकुण्डं सोमामिषेचन तीर्थं ॥१९॥ महालोतं कोटरकं पञ्चधार,
॥२०॥ शाकप्रभं, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुमं विल्वप्रभं देवहृदं, विष्णुह्रदं
॥२१॥ शङ्खप्रभं, देवकुण्डं, यज्ञायुधं, अग्निप्रभं, पुन्नागं, देवप्रभं ॥२२॥ विद्यापरं गान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्महृदं, सातीर्थं,
॥२३॥ लोचनप्रभं, देवकुण्डं, कन्याधर्मं, वायुकुण्डं, जम्बूमार्गं ॥२४॥ गभस्तितीर्थं ययातिपतनं कोटितीर्थं भद्रवटं, महाकालञ्च
विष्णुपदं, प्रयागं, कन्याधर्मं, वायुकुण्डं, जम्बूमार्गं ॥२५॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, तथार्धुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठं, पृथुतङ्गम् ॥२६॥ दोर्वीक्षितं पिङ्गरकं ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
॥२७॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, तथार्धुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठं, पृथुतङ्गम् ॥२८॥ शत्रुतीर्थं पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पेंतामहं विमलं रत्नपाव ॥२९॥ मणिपूरं, वामाश्रयं,
पुनः, वसुतीर्थं, कुमारिकं ॥२८॥ शत्रुतीर्थं पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पेंतामहं विमलं रत्नपाव ॥२९॥ मणिपूरं, वामाश्रयं,

१४ ०१ सार्वभौमिकमेव च। सूर्यप्रभं ब्रह्माकुण्डं तीर्थं सो०। २४ गङ्गापर। ३५
गङ्गाकुण्ड। ४४ दंष्ट्राकुण्ड। ५४ विष्णुकुण्ड। ६५ गङ्गावार०। ७४ स्थूलशृङ्ग। ८४ स्थूलदण्ड। ९५ मनुवर।
१०५ सोमामिषेचनं। ११४ च। सूर्यप्रभं मधुकुण्ड०। १२४ महाशत्रु वाहनपदं०। १३५ जम्बूमार्गं०। १४४
वासिष्ठं०। १५४ ययातिपतनं। १६४ तीर्थं वज्रं तथार्धुदं०। १७४ पृथुतङ्गं०। १८४ शत्रुतीर्थं पञ्चनदं।
विमलं०। १८४ रत्नपाव।

मणिमतञ्च कामास्य कृष्णतीर्थं कुशाविलम् । यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुक्म् ॥३०॥
 पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् । दीर्घसत्रं ह्यपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च । वस्त्रापदं दाहबलं छायारोहणमेव च ॥३२॥
 सिद्धेश्वरं मित्रबलं कालिकाश्रममेव च । वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३॥
 द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा । रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्भावनामितम् ॥३४॥
 स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् । सत्ततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदकी ॥३५॥
 वशाश्वमेधिकं तीर्थं सवित्रं विषयान्तिरुम् । कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदम् ॥३६॥
 पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तरम् । बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७॥
 लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलतीर्थमेव च । सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥३८॥
 तीर्थञ्च यस्मिन् राजस्य ब्रह्मावतं सुतीर्थं कम् । कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९॥
 स्नानलोमापहञ्चैव मातसंततरकं तथा । दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥४०॥
 सप्तपिकुण्डञ्च तथा तीर्थं द्वेष्टाः सुजम्बुकम् । ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जल्पं तथा ॥४१॥
 कारण्डव्यं चावेष्ट्यञ्च त्रिविष्टपमयापरम् । पाणिनातं मिथकञ्च मधूवटमनोजवौ ॥४२॥
 कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम् । विष्यञ्च नृगधूमास्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥४३॥
 अमराणां ह्रवं पुण्यं कोटितीर्थं तयापरम् । श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशोऽञ्च विभूतम् ॥४४॥
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च । ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै काष्ठापावनम् ॥४५॥
 सोमन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती । ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चदशिकम् ॥४६॥
 त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृताञ्जलम् । शास्त्रभरीं देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कालिं ह्रदम् ॥४७॥
 क्षीरस्रव विष्णुपाशं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् । ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मपोनिं नीलपद्मं तमेव च ॥४८॥

कृष्णतीर्थं कुशाविलं, यजनं, याजनं, ब्रह्मवालुकम् ॥३०॥ पुष्पन्यासं, पुण्डरीकं, मणिपूरं, दीर्घसत्रं, ह्यपदं, अनशनं ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदं, वस्त्रापदं, दाहबलं, छायारोहणं ॥३२॥ सिद्धेश्वरं, मित्रबलं, कालिकाश्रमं, वटावटं,
 भद्रवटं, कौशाम्बीं दिवाकरं ॥३३॥ द्वीपं, सारस्वतं, विजयं, कामदं, रुद्रकोटिं, सुमनसं, सद्भावनामितं ॥३४॥ स्यमन्त-
 पञ्चकं, ब्रह्मतीर्थं, सुदर्शनं सत्ततं, पृथिवीसर्व्वं, पारिप्लव, पृथूदकी ॥३५॥ दशाश्वमेधिकं, सवित्रं, विषयान्तिरुं, कोटि-
 तीर्थं, पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदं ॥३६॥ पुण्डरीकं, सोमतीर्थं, मुञ्जवाटं, बदरीवनं, रत्नमूलकं ॥३७॥ लोकद्वारं,
 पञ्चतीर्थं, कपिलतीर्थं सूर्य्यतीर्थं यक्षिणी, गवां भवनं ॥३८॥ यस्मिन् राजस्य, ब्रह्मावतं, सुतीर्थं, कामेश्वरं, मातृतीर्थं
 शीतवनं ॥३९॥ स्नानलोमापहं मातसंततरकं, दशाश्वमेधं केदारं, ब्रह्मोदुम्बरं ॥४०॥ सप्तपिकुण्डं, सुजम्बुकं,
 ईहास्पदं, कोटिकूटं किन्दानं किञ्जल्पं ॥४१॥ कारण्डव्यं, चावेष्ट्यं, त्रिविष्टपं, पाणिनातं, मिथकं, मधूवटं, मनोजवौ ॥४२॥
 कौशिकी, देवतीर्थं ऋणमोचनं, नृगधूमं, विष्णुपदं ॥४३॥ देवनागो का पवित्रं ह्रदं कोटितीर्थं, श्रीकुञ्जं शालितीर्थं
 नैमिशं नैमिषं ॥४४॥ ब्रह्मस्थानं, सोमतीर्थं, कन्यातीर्थं ब्रह्मतीर्थं, मनस्तीर्थं, काष्ठापावनं ॥४५॥ सोमन्धिकवनं,
 मणितीर्थं, सरस्वती, ईशानतीर्थं, प्रवरं, पावनं, पाञ्चदशिकं ॥४६॥ त्रिशूलधारं, माहेन्द्रं, देवस्थानं, कृताञ्जलं, शास्त्र-
 भरीं, देवतीर्थं, सुवर्णाक्षं, कालिं, ह्रदं ॥४७॥ क्षीरस्रव, विष्णुपाशं, भृगुतीर्थं, कुशोद्भवं, ब्रह्मतीर्थं, ब्रह्मपोनिं, नीलपद्मं ॥४८॥

कुञ्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रममेव च॥४९॥
 रद्रावत्तं सुगन्धाश्व कपिलावनमेव च। भद्रकण्हदञ्चैव शङ्खपुरणहृद तथा॥५०॥
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थंभीशनस तथा। कपालमोचनञ्चैव अदकीर्णञ्च काम्यकम्॥५१॥
 चतुसामुद्रिकञ्चैव शक्तिञ्च सहस्रिजम्। रेणुक पञ्चवटक विमोचनस्योत्तमम्॥५२॥
 स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वार कुशध्वजम्। विदेवेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रयम्॥५३॥
 गङ्गाहृद घटञ्चैव धरणीपाटन तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्र क्षीरकावासमेव च॥५४॥
 सोमतीर्थं दधीञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजा। कोटितोयस्थलोडञ्चैव भद्रकालीहृद तथा॥५५॥
 अरुणतीर्थञ्चैव ब्रह्मावत्तं तयोत्तमम्। अश्ववेदी कुञ्जावन यमुनाश्रयम् तथा॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूस्थमपिकुल्या सकृत्सिकम्। उर्व्वोत्तमकमणञ्चैव मायाविद्योदभव तथा॥५७॥
 महाभूमौ वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं नारदार्थं विमलाशोकमेव च॥५८॥
 तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत। सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा॥५९॥
 सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पद कामदञ्च शुकतीर्थं सवालुकम्॥६०॥
 पिशाचनोचनञ्चैव सुभद्राहृदमेव च। कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च॥६१॥
 ज्येष्ठस्थानहृदञ्चैव पुण्य ब्रह्मासर तथा। जंगोपव्यगृहा चैव हरिकेशदन तथा॥६२॥
 अजामुलसरञ्चैव पण्डारकहृद तथा। पुण्डरीकहृदञ्चैव वापी एकैटकस्य च॥६३॥
 सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थहृद तथा। कुण्ड घर्षरिकाश्रय इयामाकूपञ्च चन्द्रिका॥६४॥
 श्मशानस्तन्मकूपञ्च विनायकहृद तथा। कूप सिन्धूदभवञ्चैव पुण्य ब्रह्मासर तथा॥६५॥
 रद्रावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्। भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम्॥६६॥
 ब्रह्मावत्तं कुशावत्तं दधिकर्णोदपानकम्। श्रृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थक्षेष्ठा महानदी॥६७॥

कुञ्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपद स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रम॥४९॥ रद्रावत् सुगन्धाश्व कपिलावन भद्रकण्हद
 शङ्खपुरणहृद॥५०॥ सप्तसारस्वत भीशनस कपालमोचन अवकाण काम्यक॥५१॥ चतुसामुद्रिक शक्ति सह
 स्रि रेणुक पञ्चवट विमोचन भीजस॥५२॥ स्थाणुतीर्थं कुशध्वज स्वर्गद्वार कुशध्वज विदेवेश्वर मानवक
 कूप नारायणाश्रय॥५३॥ गङ्गाहृद घट धरणीपाटन इन्द्रमार्ग एकरात्र क्षीरकावास॥५४॥ सोमतीर्थं दधीच
 श्रुततीर्थं कोटितायस्थला भद्रकालीहृद॥५५॥ अरुणतीर्थं ब्रह्मावत्तं अश्ववेदी कुञ्जावन यमुनाश्रय॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूस्थमपिकुल्या सकृत्सिक उर्व्वोत्तमकमण मायाविद्योदभव॥५७॥ महाभूमौ वैतसिकारूप सुन्दर
 काथम बाहुनाय चारुत्तम विमलाशोक॥५८॥ विद्वान् मार्कण्डेय का पञ्चनदतीर्थं सोमतीर्थं सितोद मत्स्योदरी
 ॥५९॥ सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थं अशोकवन अरुणास्पद कामद शुकतीर्थं सवालुक॥६०॥ पिशाचनोचन सुभद्राहृद
 विमलदण्ड कुण्ड चण्डेश्वर-तीर्थं॥६१॥ ज्येष्ठस्थानहृद पवित्र ब्रह्मासर जंगोपव्यगृहा हरिकेशवन॥६२॥ अजा
 मुलसर पण्डारकहृद पुण्डरीकहृद एकैटक-वापी॥६३॥ सुवर्णास्योदपान श्वेततीर्थहृद घर्षरिकाकुण्ड इयामाकूप
 चन्द्रिका॥६४॥ श्मशानस्तन्मकूप विनायकहृद सिन्धूदभवकप पवित्र ब्रह्मासर॥६५॥ रद्रावास नागतीर्थ पुलोमक
 भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारक॥६६॥ ब्रह्मावत्तं कुशावत्तं दधिकर्णोदपान श्रृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थक्षेष्ठा,
 महानदी॥६७॥

दिव्यं ब्रह्मसरं पुष्पं गयाशीर्षक्षयं वटम् । दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥६८॥
 कपिनीहृदं गृध्रवटं सावित्रीहृदमेव च । प्रभासनं सोतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ॥६९॥
 धन्वकं कोटिनाथप्रञ्च मतङ्गहृदमेव च । पितृकूपं रुद्रतीर्थं शयतीर्थं सुमालिनम् ॥७०॥
 ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नहृदं तथा । कौशिकीयं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठाश्रमा तथा ॥७१॥
 विदेवेश्वरं कल्पसरः वन्यासवेद्यमेव च । निदचीवाप्रभवञ्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥
 देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च । योराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥
 कुमारधारा श्रीधारा गौरीशखरमेव च । शुनः कुण्डोऽप्य तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४॥
 कुमारवासं श्रीवासोर्ध्वशीतीर्थमेव च । कुम्भकर्णहृदञ्चैव कौशिकीहृदमेव च ॥७५॥
 धम्मन्तीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालक तथा । सन्ध्यातीर्थं कारतोय कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६॥
 शोणोद्भवं वंशगुल्ममृगं कल्मीकम् । पुण्यादतीहृदं तीर्थं तीर्थं यदरिकाश्रमम् ॥७७॥
 रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च । मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रधुम्नसरञ्च यत् । सानुगतं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९॥
 इषुतीर्थं वार्यभञ्च कावेरीहृदमेव च । कन्यातीर्थञ्च गोवर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०॥
 बदरीहृदमग्न्यश्च मध्यस्थानं विकर्णकम् । जतीहृदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१॥
 सवर्देवव्रतञ्चैव जगन्नाथमहृदं तथा । तथान्यद्वाल्लिखितानां संपूर्वाणां तथापरम् ॥८२॥
 तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा । तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् यद्वाप्तमन्यतः ॥८३॥
 स्नानं करोति यो मर्यः सोपवासी जितेन्द्रियः । देवान्धुम्ननुयायश्च पितृन् सन्तप्य च व्रजमात् ॥८४॥
 अम्यक्ष्यं देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् । पृथक् पृथक् कृतं तेषु प्रतितीर्थेषु भोजिजाः ॥८५॥

महानदी ॥६७॥ गयाशीर्षक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक ॥६८॥ कपिलाहृद, गृध्रवट, सावित्रीहृद, प्रभासन, सोतवन, योनिद्वार, धेनुक ॥६९॥ धन्वक, कोटिनाथ, मत्स्यहृद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शयतीर्थ, सुमाली ॥७०॥ ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्नहृद, कौशिकी भरत, ज्येष्ठाश्रमा ॥७१॥ विदेवेश्वर, कल्पसर, वन्यासवेद्य, निदची-
 वाप्रभव, वसिष्ठाश्रम ॥७२॥ देवकूट, कूप, योराश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥ कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशखर, शुन-
 कुण्ड, पुनस्तीर्थं नन्दितीर्थं ॥७४॥ कुमारवास, श्रीवास, ओर्ध्वशीतीर्थं?, कुम्भकर्णहृद, कौशिकीहृद ॥७५॥ धम्म-
 तीर्थं, कामतीर्थं, उद्दालकतीर्थं मध्यस्थानं, कारतोय, कपिल लोहितार्णव ॥७६॥ शोणोद्भव, वंशगुल्म, कूप, कल्-
 मीक, पुण्यादतीहृद यदरिकाश्रम ॥७७॥ रामतीर्थं, पितृवन, विरजातीर्थं, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थं, वटतीर्थं ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रधुम्नसर सानुगतं, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थं, श्रीनद ॥७९॥ इषुतीर्थं, वार्यभतीर्थं, कावेरीहृद, मध्य-
 स्थानं, गोवर्णं, गायत्रीस्थान ॥८०॥ बदरीहृद, मध्यस्थान, विकर्णक, जतीहृद, देवकूप, कुशप्रवण ॥८१॥ सवर्देवव्रत,
 जगन्नाथमहृद—ये तीर्थं ओर आश्रम है । इसी प्रकार वाल्लिखितों और दूसरे महर्षियों के भी अखण्डित हृद अर्थात्
 तीर्थस्थान हैं ॥८२॥ '१' द्वित्रयण ' जो अनूप्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पुनं यद्वाप्त होकर स्नान तीर्थों में स्नान करता
 है और व्रजमा देव, ऋषि, मनुष्य, तथा गिरजा का तर्पण कर देव-पूजन करते हुए तीन रात बड़ी वास करता है, वह

प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥
इति श्रीब्राह्मो महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तत्रादौ स्वयम्भूब्रह्मर्षिसवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

पृथिव्यामुत्तमा^१ भूमिं धम्मंकामार्चमोक्षदाम्^२। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतावर ॥१॥

लोमहर्षेण उवाच

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुरा। तमहं सम्प्रक्षयामि यत्पृच्छस्व द्विजोत्तमा ॥२॥

स्वाध्वमे^३ सुमहापुण्ये^४ नानापुण्योपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे^५ नानामृगगणैर्मते ॥३॥

पुत्राणां^६ कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धन्वादिभिः ॥४॥

पाटलाशोकवकुलैः^७ करवीरैः^८ सचम्पकैः^९ अन्यैश्च विविधैर्बृक्षैर्नानापुण्योपशोभितैः ॥५॥

प्रत्येक तीर्थ में पृथक्-पृथक् भस्वमघ यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है। जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का वक्ता-मदन करेगा या करायेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायेगा। ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक पचीसवा अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियो का सवाद-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे वक्ताजी मे श्रेष्ठ। पृथिवी में धर्म अर्थ-काम-मोक्षदायक उत्तम भूमि तथा तीर्थों में उत्तम तीर्थ को हमें बतलाइये ॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द। पहले मुनिया ने यही प्रश्न मेरे गुरु से पूछा था। इसे मैं बतलाऊंगा, आप लोग मुनिये ॥२॥ महापवित्र, नाना प्रकार के पुण्यों से सुशोभित, अनेक वृक्ष-शृताओं से व्याप्त, पशु-पक्षीगणों से युक्त, पुत्राग, कर्णिकार (कनेल या बनकचम्पा), सरल (सदर) देवदारु, शाल (सालू), ताल तमाल, पनस (रूटहल), घव, सादिर (खैर), पाटला, अजोन, वकुल (मोलसिरी) करवीर, चम्पा और विविध प्रकार के दूमरे

कुक्षेत्रे समासीनं व्यास मतिमतां वरम् । महाभारतकर्त्तरि सत्सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥
 अध्यात्मनिष्ठं सर्वज्ञं सर्वभूतहिते रतम् । पुराणागमविवारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥
 पराशरसुतं ज्ञानं पद्मपत्रायतेक्षणम् । ब्रह्मसम्पाद्युः प्रीत्या मुनयः संशितव्रतः ॥८॥
 कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽय गौतमः । वसिष्ठो जैमिनिर्घोष्यो मार्कण्डेयोऽय वाल्मीकिः ॥९॥
 विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽय आसुरिः । सुमन्तुर्भगवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥१०॥
 माण्डव्यश्च्यवनो घृष्णो ह्यसितो देवलस्तथा । मोद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११॥
 संवत्सः कौशिको रैम्भ्यो मंत्रेयो हरितस्तथा । शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोमशस्तथा ॥१२॥
 नारदः पर्वतश्चैव वैशम्पायनगालवी । भास्करिः पुरणः सूत पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३॥
 उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः । सनत्कुमारः पलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४॥
 एतैर्मनुनिवरैश्चैव सत्यवतोसुतः । रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५॥
 तानागतान्मुनीन् सदर्शनं पूजयामास वेदवित् । तेषां प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥१६॥
 कथान्ते ते मुनिधेष्ठाः कृष्ण सत्यवतोसुतम् । प्रपद्युः सशयं सत्यं तपोवननिवासिनः ॥१७॥

मुनय ऊचुः

मुने वेदाश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं जानासि धार्म्ययम् ॥१८॥

बुद्धौ तथा पुण्यौ ते श्री मुनीश्वरिन गुरुभ्यो नमः । अपने आश्रम म बँडे हुए ज्ञान, विद्वत्प्रेष्ठ, महाभारत-रचयिता,
 सर्वशास्त्र निष्णात, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब प्राणियों के कल्याण में निरत, पुराण-शास्त्र-वक्ता, वेद-वेदाङ्ग-पारग
 और कमल के समान दीर्घं ज्ञान बाल पराशर-पुत्र व्यास के दर्शन करने के लिये महाप्रणी मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक आये ॥१-
 ८॥ कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, घोष्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य,
 गार्ग्य आसुरि सुमन्तु भगव, कण्व, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, घृष्ण, असित देव, मोद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद,
 अकृतव्रण सवर्ण, कौशिक रैम्भ्य, मंत्रेय, हरित शाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालवी,
 भास्करि पुरण, सूत पुस्त्य, कपिल, उलूक, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनत्कुमार, पल, कृष्ण, कृष्णानु-
 भौतिक—इन मुनिधेष्ठा तथा दूसरे श्री कश्यप के मध्य व्यास उनी प्रहार शोभित हो रहे थे जिस प्रकार नक्षत्रों
 के बीच चन्द्रमा ॥९-१५॥ वेदवेत्ता व्यास ने आपन्तु मुनिया का सम्मान किया । उन्होंने श्री व्यास की पूजा कर
 आपन म कथा-वार्ता-गण छेड दिया ॥१६॥ मुनिवर ! कथा के अन्त में तपोवन-निवासियों ने व्यास से सदेह
 पूजा ॥१७॥

मुनिषो ने कहा—हे मुन ! आप वेद, शास्त्र पुराण आगम महाभारत मुन, भविष्य, वर्तमान—सब कुछ

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे'। रागप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंस्पृष्टे ॥१९॥
 इन्द्रियावर्तकलिले दृष्टोमिश्रतसङ्कुले। मोहपङ्खाविले दुर्गे 'लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०॥
 निमज्जजगदालोवय निरालम्बमचेतनम्। पृच्छामस्तथा महाभागं ब्रूहि नो 'मुनिसत्तम ? ॥२१॥
 धेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥२२॥
 दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां 'कर्ममूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥
 कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्मभूमौ 'यथोदितम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥२४॥
 मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति 'पुरुषः सुधीः'। तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५॥
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितस्मनाम्। व्यासः 'प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनयः सर्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ। यः संवादोऽभवत् पूर्वमुषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७॥
 मेऽपृष्टे' तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८॥
 नानापक्षिरते रम्ये 'नानाप्रसवनाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाऽर्घ्यसमन्विते ॥२९॥
 नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णे नानाभ्रमसमन्विते ॥३०॥

जानते हैं ॥१८॥ अनुराग रूपी प्राहा से व्याप्त, मयकर, विषयरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों (मँवर) से युक्त, सैकड़ों तरंगों से सङ्कुल, मोहरूपी कीचड़ से समन्वित, बंठिन, लोमरूपी गम्भीरता से दुस्तर तथा कष्टमय इस सारहीन भवसागर में चेतनाहीन और नि सहाय होकर डूबते हुए विश्व को देखकर हम आपसे पूछते हैं कि इसे भयानक तथा रोमाञ्चोत्सादक संसार में क्या नाम देना है ? ॥१९-२१॥ हे महाभाग ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उपदेश देकर लोगों का उद्धार कर सकते हैं। परम दुर्लभ तथा मोक्ष-दायक क्षेत्र को हमें बतलाइये। पृथिवी पर कर्ममूमि के बारे में भी हम सुचना चाहते हैं ॥२२-२३॥ मूमि पर शास्त्रविहित कर्मों को करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है तथा कुर्म करने से नरक भी जाता है ॥२४॥ उसी प्रकार विद्वान् पुरुष मोक्ष-क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिए, हे महाविद्वन् ! हे द्विजवर्य ! जो हमने पूछा है, उसे बतलाइये ॥२५॥ वक्ष्यामि मुनियों के वचन सुनकर मूल-मविष्य-वर्तमान-वेत्ता भगवान् व्यास बोलें ॥२६॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द ! यदि आप पूछते हैं तो मुनिये। पहले ब्रह्मा के साथ ऋषिया का जो संवाद हुआ था, वही मैं बतलाऊँगा ॥२७॥ नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, विविध पुष्पों में सुशोभित, विभिन्न पक्षियों से सन्दायमान, अनेक जीव-जन्तुओं से परिव्याप्त, अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओं से समन्वित विभिन्न वर्णों की शिलाओं तथा धातुओं से विभूषित, अनेक मुनिजनो तथा आश्रमा से युक्त एवम् विस्तृत सुमेरु पर्वत के पीठ पर बैठे हुए विद्वन्नाथ, जगत् के उत्पत्तिस्थान, विश्ववन्द्य, संसार के आधार तथा शासक ब्रह्मा को

१८. ०२ रोम ०। २८. ०२ योवाचले। २९ लोह ०। ४ व स द्विजसत्तम। ५८ प्राणिना।
 १९ ०२ मिश्रतसङ्कुले। २०. यदीरित ०। ८४ वा। २८ स परम। १०८ सुवि। ११९ ०८
 मतिमान् ०। १२८. ०८। यत्तवा ०। १३८ य ०८ सुवि ०। १४८ ०२ प्रवक्ष्यामि। ना०।

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् । जगत्पतिं जगद्वन्धं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥
 देवदानवगन्धर्व्वयक्षविद्याधरोरगैः । भुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमर्ग्यदिवालयेः ॥३२॥
 (केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाप्रतः । केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥)
 एवं प्रमुदिते काले सर्वभूतसमागमे । नानाकुसुमगन्धाद्यै दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥
 भूवाद्यास्तैः तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् । इममर्थमृपिवरा प्रपच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५॥

शृणुय ऊचुः

भगवञ्छुभुमिच्छामः कर्मभूमिं महोत्तरे । वस्तुमहंसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च बुल्लभम् ॥३६॥

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः । पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्वं मुनिसत्तमाः ॥३७॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूवर्णपिस्वावे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनयः सर्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् । पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१॥

देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मृनि सिद्ध, अप्सरा तथा और भी दूसरे देवता घेरकर बैठे हुए थे । ॥२८-३२॥
 कोई ब्रह्मा की स्तुति करते थे तो कोई उनसे आगे गाते थे । (कोई बाजे बजाते थे तो कोई नाचते थे ॥३३॥) मुनि-
 वृन्द । इस प्रकार आनन्दित, नाना प्रकार के पुष्पा से सुगन्धित तथा मल्लयानिल से सुगन्धित प्राणियों के समागम-
 वात में भृगु आदि मुनि ब्रह्मा को प्रणाम कर यही प्रश्न पूछने लगे ॥३४-३५॥

मुनियों ने कहा—भगवन् । पृथ्वी-तल पर कर्मभूमि के धारे में हम सुनना चाहते हैं । हे देवता के
 स्वामी । बुल्लभ मोक्षक्षेत्र की भी बतला दीजिये ॥३६॥

व्यास बोले—मुनिवर । उनके वचन सुनकर देवेश ब्रह्मा उनके सारे प्रश्नों पर उत्तर देने लगे ॥३७॥

श्री ब्रह्म महापुराण में ब्रह्मा और ब्रह्मपिया के संवाद प्रथम में प्रश्न निरूपण नामक छत्रोत्तरी अध्याय
 समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण । इस समय मैं वेदा से सम्बन्ध रखने वाले तथा योग-मोक्ष को देनेवाले पवित्र

१. ० निमिदवाप्सः । २. ० वस्तु नर्तनदेव । ३. ० तन्वत । ४. ० लोते । ५. ० छा मुनयो देवा प्र० ।
 ६. ० मर्ष तदा देवा प्र० । ७. ० ग ० जा । ८. ० क्ष यज्ञ ।

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृता^१। कर्मणः फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरकं तथा ॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा धर्मञ्च भो द्विजाः। अवश्यं फलमाप्नोति अश्वत्थ शुभस्य च ॥३॥
ब्राह्मणाद्याः स्वकं कर्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः ॥४॥
धर्मञ्चायं च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः। प्राप्नोति पुरयः सर्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः ॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः। कृत्वा सुशोभनं कर्म देवत्वं प्रतिपेदिरे ॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरपाः संयतेन्द्रियाः। तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७॥
ये चापि स्वर्गं सिध्यन्ति विमानेन गतज्वराः। तेऽपि कृत्वा शुभं कर्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः ॥८॥
निवासं भारतं वर्षं आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म^२ नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय^३ वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा^४ च भारतम् ॥१०॥
तत् स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं^५ तच्च गम्यते^६। न^७ कृत्यन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥११॥
तस्माद्विस्तृतो ब्रह्मभस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति^८ दयास्मासु यथावत्स्यतिरेव च^९ ॥१२॥
तस्माद्वर्षमिव^{१०} नाथ ये चास्मिन् वर्षपर्वताः। भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्वान्नशेषतः ॥१३॥

पुराण के बारे में कहेंगा आप लोग सुनें ॥१॥ पृथिवी पर कर्मभूमि के रूप में भारतवर्ष बतलाया गया है। कर्म-फल की भूमि तथा स्वर्ग-नरक भी यहीं है ॥२॥ निप्रसूत^१ भारतवर्ष में मनुष्य पाप-पुण्य करने उनके शुभ अशुभ फल अवश्य पाते हैं ॥३॥ इस वर्ष में ब्राह्मण आदि वर्ण समपूर्वक अपने-अपने कर्मों को करने निःसन्देह परा मिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४॥ द्विजश्रेष्ठो! इस वर्ष में पुरुष समी होकर धर्म-अर्थ-काम मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर सकता है ॥५॥ विप्र-वर! इस वर्ष में इन्द्र आदि देवगण उत्तम कर्म करने देवत्व को प्राप्त हुए ॥६॥ दूसरे भी जितेन्द्रिय, विद्वान् शान्त, वीतराग तथा ईर्ष्यारहित पुरुषों में इस वर्ष में मोक्ष को प्राप्त किया ॥७॥ जो भी तापरहित होकर विमान के द्वारा स्वर्ग में विराज रहे हैं वे भी इसी वर्ष में शुभ कर्म करने स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥८॥ स्वर्ग-मोक्ष-दायक भारतवर्ष में आस करने के लिये देवता लोग सदा कालायित रहते हैं ॥९॥

मुनियो ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपने जिसलिए यह कहा है कि पाप-पुण्य-दायक कर्म भारतवर्ष को छोड़कर वही नहीं होता एवम् मनुष्यों के लिए भारतवर्ष ही स्वर्ग-मोक्ष-दायक कर्म भूमि है इसलिए भारतवर्ष के विषय में हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये। ब्रह्मन्! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा है तो भारतवर्ष, इसके वर्षपर्वत तथा वर्ष के भेदों को निःशेष करने बतला दीजिए ॥१०-१३॥

१क ०हृतम्। २क ०मिद्धि स्व०। ३क कर्म। ४क ०णाद्यास्तु यत्कर्म०। ५क ०त्वा
वु गो०। ६क स सयता। ७क सजिते०। ८ ०क ०रा। देवा स्व०। ९क ०ने विग०। १०क ते कृ०।
११क मुमु०। १२क उत्पस्याम। १३क ०मं चान्य०। १४क पापद। १५क वर्णयित्वा। १६क ०ध्यश्चान्तश्च
ग०। १७क ०ते। तनश्चान्यत्र। १८क न चास्य चाय। १९क ते स्निग्धताश्रया। २०क ०द पावयेत्यस्मि०।

ब्रह्मोवाच

धृणुध्व भारत वर्षे नवभेदेन भो द्विजा । समुद्रात्तरिता ज्ञेयारते' समाश्च परस्परम् ॥१५॥
 इन्द्रद्वीप' कशेरुद्वयं ताम्रपर्णी गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो मान्द्यर्ध्वो' वाहणस्तथा ॥१५॥
 अदन्तु नवमस्तथा द्वीप सागरसंवृत । योजनाना सहस्रं वै द्वीपोऽयं' दक्षिणोत्तर ॥१६॥
 पूर्वो' किराता दस्यासन पश्चिमे यवनारतया' । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च ते स्थिता द्विजा ॥१७॥
 इज्यायुद्धवणिज्याद्यं' दर्ममंभि कृतपावा । तेषां सन्ध्याहारश्च एभि' कर्मभिरिध्यते' ॥१८॥
 स्वर्गापवर्गहेतुश्च' पुष्य पापञ्च वै तथा । महेन्द्रो मरुत्य सह्य क्षुतिमानृक्षपर्वत ॥१९॥
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवान् कुलाचला । तेषां सहस्रशश्चाये भूधरा ये समीपगा ॥२०॥
 विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानव । कोलाहल' स बभ्राजो मन्दरो श्वर्बुराचल' ॥२१॥
 घातघयो' बंध्यतश्च मंदाक' सुरसस्तथा । सुङ्गप्रस्थो नागगिरिगोधन पाण्डराचल' ॥२२॥
 पुष्पगिरिवैजयतो' रैवतोऽम्बुद' एव च । ऋष्यमूक स' गोमय' कृतशैल' कृताचल' ॥२३॥
 ध्रुवावतश्चकोरश्च शतशोऽये च पथ्वता' । तैविमिथा जनपदा' श्लेष्छाद्याश्चैव भागश ॥२४॥
 ते पीयूषे सरिच्छेऽस्ता बुध्यध्व द्विजोत्तमा । यङ्गा सरस्वती सिन्धुश्च द्रभागा तथापरा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! भारतवर्ष के नौ भेदों को सुनिय जो परस्पर समुद्रात् स व्यावहित हैं ॥१५॥
 तप्त—इन्द्रद्वीप कशेरुद्वय गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य मान्द्यर्ध्व वाहण और नर्वा यहा द्वीप (भारतवर्ष) है जो समुद्र से आवृत है ॥१५॥ दक्षिण उत्तर में यह द्वीप एक हजार योजन विस्तृत है । इसमें पूर्व भाग में किरात पश्चिम में यवन और उत्तर में ब्राह्मण क्षत्रिय वय और पात्र रहते हैं ॥१६॥ द्विजगण ! ब्राह्मण क्षत्रिय वय जनपद यथा यथा व्यापार आन भवा एव तमो स पवित्र होता है । इन्हीं वनों से उनका परस्पर व्यवहार चलता है ॥१८॥ मध्य मोग और पञ्चन्यास का उत्पलिनस्थान यहा द्वीप है । यहाँ महेन्द्र मरुत्य सह्य क्षुतिमान ऋष्य विन्ध्य और पारियात्र नामक भान पर्वत हैं ॥१९॥ उनका पास दूमेरे में हजार पर्वत हैं जो विस्तृत उच्च रमणीय तथा चित्र विवित्र गिरि वा— हैं । जम—नागद्वीप बभ्राज मन्दरो श्वर्बुराचल घातघय वचन मनात सुरग सगग्रथ नागगिरि गान्ध पाण्डराच पुष्पगिरि वैजयन्त रवत जवु ऋष्यमूक गोमय कृतशैल कृताचल ध्रुवावत शकोर तथा शतशः स सरसा पर्वत हैं ॥२०॥ २३॥ इन पर्वतों से विभिन्न श्लेष्छाद्याश्चैव भागश देग हैं जिनसे निराला आन भविया वा जन्म पाते हैं ॥२४॥ द्विजपथा ! उन नरिया के नाम सुनिय । तप्त—

यमुना शतद्रुविपाशा वितस्तेरावती कूटः^१। गोमती घृतपापा^२ च बाहुदा च दृपदती^३॥२६॥
 विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठोवा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः॥२७॥
 देवस्मृतिदेववती वातघ्नी सिन्धुरेव च। वेण्या तु चन्दना^४ चैव सदानोरा^५ मही तथा^६॥२८॥
 चर्मण्वनी वृषी^७ चैव विदिशा वेदवत्यपि^८। सिन्ध्रा^९ हवन्ती च तथा पारियात्रानुगा। स्मृताः॥२९॥
 शोणा^{१०} महानदी चैव नर्मदा सुरथा क्रिया^{११}। मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा^{१२} तथापरा॥३०॥
 चित्रोत्पला वेनवती^{१३}। करमोदा पिशाचिका^{१४}। तयान्यातिलघुधोणी विपाप्मा^{१५} शैबला^{१६} नदी॥३१॥
 सपेरजा^{१७} शक्तिमती^{१८}। शकुनी त्रिदिवा कमः^{१९}। ऋक्षपादप्रसूता चैव तयान्या^{२०} वेगवाहिनी॥३२॥
 सिन्ध्रा^{२१} पयोष्णी निर्विन्ध्या^{२२} तापी चैव सरिद्धरा^{२३}। वेणा वंतरणी चैव सिनोवाली^{२४} कुमुदती॥३३॥
 तोया^{२५} चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥३४॥
 गोदावरी भीमरयी कृष्णवेणा तथापगा। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तयान्या पापनाशिनी॥३५॥
 सह्यपादविनिष्पन्ता इत्येताः सरिता वराः। वृत्तमाला^{२६} ताम्रपर्णी पुण्यजा^{२७} प्रत्यलावती॥३६॥
 मलयप्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः। पितृतोमपिकुल्या च^{२८} वञ्जुला^{२९} त्रिदिवा च या॥३७॥

गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रमागा, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितन्ता, एरावती कूट गाम्नी घृतपापा, बाहुदा, दृपदती,
 देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये नदियाँ हिमा—य से निकली हैं ॥२५-२७॥ देवस्मृति, देववती,
 वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या, चन्दना, सदानोरा, मही, चर्मण्वनी वृषी, विदिशा वदवती सिन्ध्रा अवन्ती—ये नदियाँ
 पारियात्र से निम्न हैं ॥२८-२९॥ शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा क्रिया मन्दाकिनी, दशार्णा चित्रकूटा,
 चित्रोत्पला, वेनवती, करमोदा, पिशाचिका, अनिलधुधोणी, विपाप्मा, शैबला सपेरजा शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा
 कमः चक्षु, ऋक्षपादप्रसूता चैव तयान्या वेगवाहिनी—ये नदियाँ त्रिन्ध्या पर्वत तापी, वेणा, वंतरणी,
 भीमरयी, कुमुदती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला—य पवित्र जलवाली नदियाँ त्रिन्ध्या पर्वत से
 निकली हैं ॥३१-३४॥ गोदावरी, भीमरयी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ
 नदियाँ सह्य पर्वत से निकली हैं ॥३५॥ वृत्तमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलावती—य शीतलोत्पन्न पवित्र
 नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३६॥ पितृ तोमपिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा लाङ्गुलिनी और वराकरो
 नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३७॥ मुक्तिकाला, कुमारी, मनूगा मन्दगामिनी और क्षयापलाहिनी शक्तिमान्
 नदियाँ वराकरो से निकली हैं ॥३८॥ मुक्तिकाला, कुमारी, मनूगा मन्दगामिनी और क्षयापलाहिनी शक्तिमान्

१. ग. कुर। २. घृतपापा। ३. च ग वदना। ४. चन्द्रमागामिनी तः। ५. च। परा चर्मण्वती चै०।
 ६. च नृषी। ग. मूपा। ७. चैव व०। ८. च सिन्ध्रा। स. शीघ्रा। ९. च ग शोणे। १०. च कृपा। ११. च
 वेनवती। १२. च विपाशा। १३. च चैवला। १४. च समरजा। स. समरजा। १५. च
 मुक्तिमती। १६. च कु। स. कु। १७. च ग मन्दाकिनी। १८. च चित्रा। १९. च विन्ध्यान्ता।
 २०. च मलयपर्वत। २१. च माला कु०। २२. च वापी। २३. च शतमाला। २४. च मालाकुली०।
 २५. च चन्द्रमाला दि०। २६. च इक्षुना।

लाङ्गुलिनी' वंशकराः। महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। सुविकाला कुमारी च मनूगा मन्वगामिनी ॥३८॥
 क्षयापलासिनी चैव शक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः। सर्व्वीः पुष्पाः सरस्वत्यः सर्व्वी गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९॥
 विश्वस्य मातरः सर्व्वीः सर्व्वीः पापहराः स्मृताः। अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
 प्रायदकालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्चैव। मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशल ॥४१॥
 अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च क्षमकाश्च वृकैः सह। मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽसौ प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
 सह्यस्थं चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥
 गोवर्द्धनपुरं रम्य भागवस्य महात्मनः। बाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥४४॥
 अपरान्ताश्च क्षूद्राश्च वाल्मिकाश्च सकेरलाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥
 शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारवा हारभूषिकाः। माठराश्चैव कनकाः कंकोया दम्भमालिका ॥४६॥
 क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यक्षूद्रकुलानि च। काम्बोजाश्चैव विभ्रेन्द्रा बम्बराश्च सलौकिकाः ॥४७॥
 वीराश्चैव तुपाराश्च पल्लवाधायता नराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥४८॥
 लम्पकाः क्षुन शोराश्च कुलिका जाङ्गले सह। औपध्यवचलचन्द्रा च किरातानाश्च जातयः ॥४९॥
 तोमरा हसमागाश्च काश्मीरा करुणास्तथा। शूलिकाः कुहकाश्चैव भागधाश्च तथैव च ॥५०॥
 एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशाग्निबोधत। अन्धा बामद कुराकाश्च वल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१॥

पर्वत से निकली हैं ॥३८॥ द्विजवर । ये सभी नदियाँ पवित्र हैं और सभी गया में गिरती हैं। ये सब नदियाँ पापहारिणी तथा विश्वमाताएँ हैं ॥३९॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य छोटी मोटी नदियाँ और भी हैं। इनमेंसे कुछ तो नेवल बरसाती है और कुछ सदा बहती रहती हैं ॥४०॥ मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अन्धक, कलिङ्ग दामक और वृक ये जनपद मध्यदेश कहलाते हैं ॥४१-४२॥ सह्यपर्वत के उत्तर भाग में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश सम्पूर्ण पृथ्वी में (सर्वाधिक) मनोरम है ॥४३॥ वहाँ महात्मा मार्गव का गोवर्धनपुर रमणीय है। बाहीक, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरान्त, क्षूद्र, वाल्मिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शतद्रुह, कलिङ्ग पारव, हारभूषिक, माठर, कनक, कंकोय, दम्भमालिन—ये क्षत्रियोपम देश हैं तथा वैश्य एक क्षूद्रकुल हैं ॥४४-४६॥ द्विजेन्द्रो 'काम्बोज, वर्वर, लौकिक, वीर, तुपार, पल्लव, आधायत, नर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, क्षुनशोक, कुलिक, जाङ्गल, औपधि, चलचन्द्र, किरात-जाति, तामर, हसमाग, कादमीर, वरण, शूलिक कुहक और भागध—य उत्तर दिशा के देश हैं। अब जो पूर्व दिशा के देश हैं उन्हें भी समझ लीजिए ॥४७-५०॥ अन्ध, बामकुराव, वल्लक, मखान्तक, अङ्ग, बङ्ग, मलद, मालवतिक, मद्रतुङ्ग, प्रतिशय, भार्माङ्ग, अपमर्दक, प्रा-

१क लगली चैव श०। २क स सर्वपा०। ३श ०या। गान्धा कुमुदगान्धाश्च चक्रग व०। ४व प्रतुगा। ५क अपमर्दक। ६क वृषः। ७श ०ह्यचैवात्त०। ८क काशिकोशलवर्धायश्च मुनिरावात्तो०। ९न ०द्वक पादपाश्चर्मसंख्यका। गा०। १०क शतदुर्गा। स शतद्रुहा। ११श ०रम्य। १२क वरव-
 द्धैवपादा मुनासिवा। १३क ०का। चीनादचै०। १४ क ०द्वक उर्णा दीर्घस्तथैव च। ए०। १५न पञ्चवा-
 लायतीन०। १६ क ०पराश्च। १७ क एव। १८ क प्राच्या दिशि निवोः। १९ न अन्यथा मुञ्जाराश्च
 वस्तीरा वरणास्तथा। शूलिका कुहकाश्चैव समन्तिर्वर्धिता। त०।

'तयापरेऽङ्गा वङ्गाश्च' मलदा मालवतिकाः । भद्रतुङ्गाः । प्रतिजया भार्याङ्गाश्चोपमर्दकाः ॥५२॥
 प्राण्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः । मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३॥
 तयापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पूर्णाश्च केवलाश्च गोलाङ्गूनास्तथैव च ॥५४॥
 ऋषिका मुषिकाश्च कुमारा रामठाः शकाः । महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥५५॥
 आभीराः सह वैदिब्या अटव्याः । सरवाश्च ये । पुलिन्दाश्चैव मौलेया वंदर्भा दण्डकैः सह ॥५६॥
 पौलिता मौलिताश्चैव अश्मका भोजवह्मनाः । कौलिताः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालका ॥५७॥
 दक्षिणात्यास्त्वन्नो देशा अपरान्ताग्निबोधतः । शूर्पारकाः कालिघना लोलास्तालवटैः सह ॥५८॥
 इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्ययासिनः । मलजाः कर्कशाश्चैव मेरुकाश्चोर्कः सह ॥५९॥
 उत्तमार्गा वशाणाश्च भोजाः क्रिदिरुग्न्यकैः सह । तोषलाः कोशलाश्चैव त्रपुरा वैदिशास्तथा ॥६०॥
 शुम्बुरास्तु चराश्चैव धवनाः पवनेः सह । अभया हण्डिकेराश्च चर्ध्वरा होत्रघत्तयः ॥६१॥
 एते जनपदाः सर्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः । अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताभ्रविणश्च ॥६२॥
 गौहारास्तुषमाणश्च कुरवस्तङ्गणा खसाः । कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्वाः सकुन्तकाः ॥६३॥
 धैत्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरेः सह । कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्पुंगवकृतो विधिः ॥६४॥

म्योतिष, मद्र, बिदेह ताञ्जल्लिप्तक, मल्ल, मनघक और नन्द—प्राच्य देश कहलाते हैं॥५१-५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणापगामांनो है—एव पूर्ण केवल, गोलाकुल ऋषिक, मुषिक कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, आभीर, वैशिकय, अटथ्य, सरथ, पुलिन्द मीलेय, वेदर्म, दण्डक, पौलिक, मौलिक, अग्मक, भोजवर्धन, मौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलक, अलब—ये दक्षिण के देश हैं। अब पश्चिम दिशा के देशों को समझिए—॥५४-५७३॥ क्षूर्परक, कालिघन, लोल, तालवट—ये प्रतीच्य देश कहलाते हैं। अब विन्ध्यपर्वत स्थित देशों के नाम सुनिये॥५८३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ष, दशाण, भोज, किष्किन्धक, सिन्धु देशों के नाम सुनिये॥५९३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ष, दशाण, भोज, किष्किन्धक, सिन्धु देशों के नाम सुनिये॥५९३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ष, दशाण, भोज, किष्किन्धक, सिन्धु देशों के नाम सुनिये॥५९३॥

तक्षक, खस, वर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्भ, कुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात और तोमर ये पार्वत्य प्रदेश हैं॥६०३॥ इस वर्ष (ईप) म सत्ययुग, त्रेता आदि चार युग होते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष में नौ खण्ड हैं। इस द्वीप के पूर्व और

१ स ०या प्रवरमा व०। २ स ०झा म०। ३ क ब्रह्मपुङ्गा। ४ क पूरणा केरला०। ५ स कटिका। ग
तृपिका। ६ ग ०रानाम वासवा। ७ क माहिका। ८ क ०सा। ९ क ०सिका अपाध्याश्व श्वराश्व
सहस। पुत्रका विन्ध्यलेवाश्वन०। १० स आपाश्व। ११ स श्वराश्व। १२ ग पालिका। १३ क बालिका।
१४ स ०म्बानलका०। १५ क ०ल्वना०। १६ ग ०नादूणस्थालटिक स०। १७ स ०ल्लवना सुकेराश्व मे०।
१८ स ॥ ०चोत्कल स०। १९ क उल्लापा। स अपल। २० क ०यास्तुङ्गरा सर्वे सर्वरा होनवर्का। ए०।
२१ क ०तानाश्रिताश्व०। २२ स ०श्रमिण०। २३ स ०णास्तथा। कुण्डरा०। २४ स ०व उल्लाटच्यः सनुज्वा।

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् । दक्षिणे^१ परतो यस्य पूर्व्वं चैव महोदधिः ॥६५॥
हिमवान् उत्तरेणास्य कामुकस्य यथा गुणः । तदेतद् भारतं वर्षं सर्व्वबोजं द्विजोत्तमाः ॥६६॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा । भृगुपक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरोसृपाः ॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः क्षुभाशुभे । प्रयान्ति कर्मभूविप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदेवेष मनोरयः । अपि भानुष्यभाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युता^२ क्षितौ ॥६९॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः । तत्कर्मनिगडग्रस्तेरतत्कर्मक्षयणोऽमुल्लेः ॥७०॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजा । यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्मभिवाञ्छितम् ॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः । धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपसा फलं परमदुर्लभम् । सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥७३॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गृहसेवाफलं तथा । देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः^३ ॥७४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् । नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५॥
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वभिवाञ्छितम् । ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
यत् फलं वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् । इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्मणाम् ॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः । कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः ॥७८॥
एवं सम्यङ्मया प्रोषते भारतं वर्षं मुत्तमम् । सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिबिद्यद्वन्द्वनम् ॥७९॥

दक्षिण म समुद्र और उत्तर मे धनुष की डोरी की तरह हिमालय स्थित है । द्विजवर । यत्र भारतवर्षं सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का केन्द्र है ॥६५-६६॥ यहाँ से जीव अपने-अपने शुभ अशुभ कर्मों के द्वारा ब्रह्मत्व, देवत्व, देवेशत्व और वामुत्व को तथा भृगु, यक्ष, अप्सरा, सर्प और स्थावर की योनि को प्राप्त करते हैं । विप्रवृन्द । सत्सारमरु म केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है ॥६७-६८॥ द्विजगण । देवताओं की सदा यही लालसा रहती है कि हम देवत्व से श्रुत होकर पृथ्वी पर मनुष्य-योनि को प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य जो कर्म कर सकता है, वह कर्मरूपी शुक्ला मयूक तथा कर्म-शाय करने के लिए उद्यत देवता और राक्षस नहीं कर सकते ॥७०॥ द्विजगण । पृथिवी पर भारत के समान कोई वर्ष नहीं है, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण अभिलषित पत्र प्राप्त करते हैं ॥७१॥ वे उत्तम मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेकर धर्म अर्थ-शान्-मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥७२॥ भारतवर्ष में तपस्या, सर्वदान, सर्वयज्ञ, तीर्थयात्रा, गृहसेवा, देवता-आराधन और स्वाध्याय का परम दुर्लभ फल प्राप्त होता है ॥७३-७४॥ इस वर्ष में मुंदिर जन्म पाने के लिए देवतागण उत्कण्ठित रहते हैं । द्विजवर्ष । नानाव्रत, नानाशास्त्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वनवास, सन्यास, इष्टापूर्त्त (यज्ञ विशेष) तथा दूसरे शुभकर्मों का फल भारतवर्ष से अन्यत्र कहीं नहीं मिलता ॥७५-७७॥ द्विजगण । भारत के अखिल गुणों का वर्णन कौन कर सकता ? ॥७८॥ इस प्रकार सप्त

१ व ० णे वी पुरामाक्षा पू० । २ णे च पुरी चास्य पू० । ३ व ० णे च ० णे च । नानाविवर्ष० ।

४ व ० णे च पुरी चास्य पू० । ५ व ० णे च पुरी चास्य पू० ।

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा' नित्येन्द्रियः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं त गच्छति ॥८०॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः । ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥
समुद्राबुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् । देशोऽसौ पुण्यशैलानां गुणैः सध्वैरलङ्कृतः ॥२॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः । तपःस्वाध्यायनिरता वन्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
आद्वे'दाने विवाहे च' यत्ने वाचायकर्मणि । प्रशस्ताः सध्वैकाम्येषु तत्रदेशोऽङ्गवा द्विजा ॥४॥
यद्वक्त्रमनिरस्तास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः । इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥

पापों को हटाने वाले, बुद्धि को बढ़ाने वाले, स्तुत्य, पवित्र, तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैंने कर दिया ॥७९॥
जो व्यक्ति इन्द्रियों को बस म करके इस आत्मान का नित्य श्रवण या पठन करेगा, वह सब पापों से रहित होकर
विष्णु-लोक को प्राप्त करेगा ॥८०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा तथा ऋषियों के संवाद प्रकरण में भारतवर्षानुकीर्तन नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भारतवर्ष में दक्षिण समुद्र के समीप स्वर्ग-मोक्षदायक ओण्ड्रदेश विख्यात है ॥१॥ समुद्र
से उत्तर विरजमण्डल तक सब गुणों से विभूषित पुण्यार्थमा मनुष्यों का निवास ओण्ड्र देश है ॥२॥ उस देश के ब्राह्मण
जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्याय में निरत, वन्दनीय एवम् पूजनीय होते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मण आद्वे, दान, विवाह, यज्ञ या
वाचायकर्म तथा सब कार्यों में प्रशस्त माने जाते हैं ॥४॥ वे पद्मास्त्री, वेदपारग, इतिहास-वेत्ता, पुराण विशारद,
सर्वशास्त्र-कुशल, यज्ञ-कर्ता, ईश्वर-हित, स्त्री-पुत्र धन से युक्त, दाता तथा सत्यवादी हैं। उनमें से कोई अग्निहोत्री

१ क. ख जपेद्वा । २ क. षपाविनि । ३ क. ०८ । मद्रदे० । ४ क. ०२ यावद्वक्त्रेति जयम० । ख ०२यावद्वक्त्रेति
विर० । ५ ख ०सी गुणशो० । ६ क. आद्वेकाले वि० । ७ क. नयेज्ञेया पुण्यक० । ८ क. ०र्वपशेषु ।

सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो^१ द्योतमत्सराः। अग्निहोत्ररता^२ केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निमतपराः॥६॥
 पुत्रदारधनैर्युक्ता^३ दातारः^४ सत्यवादिनः। निवसन्त्युत्कृष्टे पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते॥७॥
 दूसरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसयता। 'स्वकर्मनिरता' शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः॥८॥
 कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे^५ व्यवस्थितः^६। यं दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९॥

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं स्यस्य साम्प्रतम्। तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मणस्योदधेरतीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्वत्र बालुकाकीर्णं देशे सर्वगुणान्विते॥११॥
 चम्पकाशोकबकुलं, करबोरं सपाटलं। पुष्पागैः कणिकारैश्च बकुलैर्नागकेसरैः॥१२॥
 तगरैर्ध्वजबाणैश्च अतिमुक्तैः सङ्कुञ्जकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः॥१३॥
 'कोनकीयनक्षत्रैश्च' सर्वैस्तुकुसुमोद्भवैः। 'कदम्बैर्लकुचैः' शालैः पनसैर्देवदारुभिः॥१४॥
 सरलैर्मूचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैराम्रातकैस्तथा॥१५॥
 शालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वैस्तः समलङ्कृतम्॥१६॥
 क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विभ्रतम्। समन्ताद्योजनं सायं भूषितमुक्तिफलप्रदम्॥१७॥

(वैदिक कर्म करनेवाले) हैं तो गोई स्मार्त-अग्नि-निरत (स्मृति विहित कर्म करनेवाले) हैं। उस पवित्र देश में नित्य यज्ञ उत्सव होता रहता है॥५-७॥ वहाँ ब्राह्मण के अनिरक्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण भी अपने अपने कर्म में निरत, सयमी, शान्त तथा धर्मरत्ना होकर वास करते हैं॥८॥ उस देश में व्यवस्थित 'कोणादित्य' नाम से प्रसिद्ध सूर्य को देखने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है॥९॥

मुनियों ने कहा—सप्रति हम लोग उस सूर्य के क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहते हैं। हे सुरश्रेष्ठ! उस स्थान के बारे में कहिये, जहाँ ये सूर्य रहते हैं॥१०॥

ब्रह्मा बोले—यवन समुद्र के पवित्र, मनोहर, सर्वगुणमय्यत्र तथा बालू से परिपूर्ण तट पर चम्पा, अशोक, मौलसीरी अशोक करवीर पाटल, पुनाय, ननकचम्पा, नागकसर, तगर, पत्र, अनिमुलन, पुष्पक, मालती, कुन्द, मल्लिका देवदारु, कदम्ब, बडहर, सासू, बटहल देवदारु, सर- मुबुबुन्द, चन्दन, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, आम्र, इमली, शाल, सुपारी, नारियल, बँधा और अन्य प्रकार के दूसरे वृक्षा से विभूषित, पवित्र तथा जगत्प्रसिद्ध सूर्य का क्षेत्र है॥११-१६॥ जा पारा तरण एव-एव योजन विस्तृत एवम् शोभामान के फल को देनेवाला है। वहाँ साक्षात्

१ क मानिना। २ ख हागार। ३ क ख स्वयम्०। ४ क ०वा। वर्णादि०। ५ ख ०देवदिवार। ५०।
 ६ क मुनैःसरा। ७ ख ०विवाणरव०। ८ ख ०द्व वकुर्नागकसर। ९०। ९ क ०वंच कु०। १० क कदम्ब-
 बकुलानां। ५०। ११ क ०द्व मुक्तरैरगिर्न पर। अ०। १२ क ०श्रुते। ख०।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः। कोणादित्य इति ह्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१८॥
 माये मासि सिते यत्र सप्तम्यां संयतेन्द्रियः। कृतोपदासो यत्रेत्य स्नात्वा तु मकरालये॥१९॥
 धृतशोचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्। सागरे विधिवत् स्नात्वा श्रव्यं ते समाहितः॥२०॥
 देवान्पोनमनुष्याश्च पितॄन् सन्तप्य च द्विजाः। उत्तम्यं दाससो घोते परिधाय 'सुनिर्मले'॥२१॥
 आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदयेः। उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सविस्तुतदा॥२२॥
 विलित्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा। अष्टपत्रं केसरार्द्रं 'धत्तुलं' चोर्ध्वकर्णिकम्॥२३॥
 तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसयुतम्। रक्तपुष्पं सर्वभञ्जं प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने॥२४॥
 ताग्याभावेऽकंप्रस्य पुटं कृत्वा तिलादिकम्। विधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत्॥२५॥
 कस्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गहृदयादिभिः। आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्प्यः श्रद्धासमन्वितः॥२६॥
 मध्ये चाग्निदले धोमाग्नेर्भस्ते इवसने हले। वामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत्॥२७॥
 प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। सम्पूज्य पद्मभावाह्य गगनात्तत्र भास्करम्॥२८॥
 कणिकोपरि संस्थाप्य ततो 'मुद्रा' प्रदर्शयेत्। कृत्वा स्नानादिकं सर्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः॥२९॥
 सितपद्मोपरि 'रवि' तैजोबिम्बे ध्यवस्थितम्। पिङ्गलं द्विभुजं रक्तं 'पद्मपत्रारुणाम्बरम्'॥३०॥

सहस्र किरणपाटी सूर्ये रहते हैं जो कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध तथा भोग मोक्ष-दायक हैं ॥१७-१८॥ मायमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में सही जाकर जिनेन्द्रिय होकर मनुष्य उपासपूर्वक समुद्र में स्नान करे। स्नान के बाद मुद्ग चित्त से सूर्य का ध्यान करे। रात के अन्त में सावधान होकर त्रिपुर्वक समुद्र में स्नान करे ॥१९-२०॥ देवता, ऋषि और मनुष्यों का तर्पण कर दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे ॥२१॥ उसी समुद्र के तट पर आचमन से पवित्र होकर सूर्योदय काल में पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये ॥ २२ ॥ फिर विद्वान् व्यक्ति लाल चन्दन मिश्रित जल से आठ पक्षी वाले, केसर (फूलों के बीच के पतले २ लीने) से परिपूर्ण गोलाकार और ऊपर की ओर कणिका (बुरल फूल) का समान कमल को लिलवर तिल, चावल, जल, रक्तचन्दन, रक्तपुष्प और कुश की तावे के पात्र में रखे ॥२३-२४॥

मुनिवर्य ! ताव के अभाव में जान के पत्ते के दोने में निज आदि रखे और हे मुनीन्द्र ! उस पात्र को दूसरे पात्र में डालकर न्यास करे ॥२५॥ फिर हृदय यदि अगा में अङ्गन्यास तथा करन्यास अच्छी तरह करके धन्वा-पूर्वक सूर्य का ध्यान करे ॥२६॥ विद्वान् मनुष्य मध्यदल में अग्नि मूर्ध्नि, ईशान तथा बाम कोण के दल में और फिर मध्य दल में पूजा करे ॥२७॥ पद्मनाभ प्रभूत, विमल, सार आराध्य और परम सुख कमल को पूजकर आभाग में सूर्य का आवाहन करे ॥२८॥ कणिका (रमल का छत्ता) के ऊपर स्थापित कर मुद्रा प्रदर्शन करे। स्नान के अनन्तर सावधान मन से स्वच्छ कमल के ऊपर तेजोमण्डल में स्थित, पीले नेत्रवाले, दो मुखाभा वाले,

१ क. ख. ०न्निप्रदायक०। मा०। २ क. ख. ०त्वा सर्वेन्द्रियग०। ३ क. विनिर्मले। ४ ग. बहुल। ५ क. ०ल
 ६ क. ०। ६ ग. ०। ७ ख. ०। ८ क. ख. ०। ९ क. ख. ०। १० क. ०। ११ क. ०। १२ क. ०। १३ ख. प्रदायक०।
 १४ ख. ०। १५ क. ०। १६ ख. ०। १७ ख. ०। १८ ख. ०। १९ ख. ०। २० ख. ०। २१ ख. ०। २२ ख. ०। २३ ख. ०। २४ ख. ०। २५ ख. ०। २६ ख. ०। २७ ख. ०। २८ ख. ०। २९ ख. ०। ३० ख. ०।

सर्वलक्षणसम्पुक्तं सर्वाभरणभूषितम्। सुखं चरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१॥
 उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम्। ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥३२॥
 कृत्वा शिरसि तन्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः। श्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३॥
 अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नेवाध्वं प्रयच्छति। श्रद्धया भावयुक्तेन भवितग्राह्यो रविर्यतः ॥३४॥
 अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च। हृच्छिरश्च शिलावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५॥
 दद्याध्वं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च। ऊष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥
 ये धार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः ॥३७॥
 भक्तिभावेन सततं विमुह्यन्तान्तरात्मना। ते भुक्त्वा भिमितान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥
 त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम्। ये संश्रयन्ति भनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९॥
 यावन्न दीयते धार्घ्यं भास्कराय यथोदितम्। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥
 तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्याध्वं दिने दिने। अदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पगन्धर्मनोरमैः ॥४१॥
 एवं वदाति पद्माध्वं सप्तम्यां सुसमाहितः। अदित्याय शुचिं स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२॥

छाल कमल के समान अर्धन वस्त्र धारी, सर्वलक्षण-सम्पन्न, सब भामुपणी से विभूषित, सुन्दर रूपवाले, चर देनेवाले, शान्त और प्रेमा मण्डल से मण्डित सूर्य का ध्यान और पूजन करे ॥३१-३२॥ फिर सघन सिन्दूर के समान उदित होते हुए सूर्य को देखकर पूर्वोक्त पात्र को ग्रहण करे और घुटने टेककर उस पात्र को मस्तक पर रखकर वाक्सयमी तथा सावधान हो तीन अक्षर वाले मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे ॥३२-३३॥ अदीक्षित मनुष्य केवल सूर्य का नाम लेकर अर्घ्य दे, क्योंकि सूर्य श्रद्धा, भाव और भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्य और पूर्व आदि विंशतिओ म हृदय शिर, शिला, नेत्र, कवच और अस्त्र की भी पूजा करे ॥३५॥ अर्घ्य, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य देकर जप, स्तुति और नमस्कार करके मुद्रा बाधकर विसर्जन करे ॥३६॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सयमी होकर भक्ति भाव तथा विमुक्त मन से सतत सूर्य को अर्घ्य प्रदाय करते हैं, वे अमिलपित भोगों की भोगकर उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥३७-३८॥ जो मनुष्य तीनों लोक की प्रवाप्ति करनेवाले आवाध-विहारी सूर्यदेय की उपासना करते हैं, वे सुखी वे भोगता होते हैं ॥३९॥ जबतक सूर्य को यथा विहित अर्घ्य न दिया जाय तबतक विष्णु, शङ्कर या इन्द्र की पूजा नहीं की जा सकती ॥४०॥ इसलिए प्रतिदिन पवित्र होकर सुन्दर पुष्प-गन्ध आदि से यत्नपूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार सप्तमी तिथि की स्नान करने पवित्र तथा सावधान होकर जो सूर्य को अर्घ्य देता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है ॥४२॥ सूर्यार्घ्य देने से रोपी

१ स उद्यन्तः। २ स सन्प्रार्थमा०। ३ स ०त। पडक्षरेण म०। ४ स नाम्नाऽन्नास्य प्रपूजयेत्। ५ स जपित्वा। ६ स उदाऽगुम०। ७ स येचस्मरन्ति। ८ स पूजयन्ति। ९ स स्ते सर्वे मु०। १० स सुखमागिन। ११ स सप्तमागिन। या०। १२ स ०ते भक्त्या भा०। १३ स ०यार्घ्यं उत्तम। ता०। १४ स निवेदितम्। १५ स स शुचि स्ना०।

रोगाद्विमुच्यते रोगो वित्तार्थी लभते धनम् विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३॥
य य काममभिध्यायन् सूर्यायाध्यं प्रयच्छति तस्य तस्य फलं सम्यक् प्राप्नोति पुरय 'सुधो ॥४४॥
स्नात्वा' वै सागरे दत्त्वा सूर्यायाध्यं प्रणम्य च । नरो वा यदि वा नारी सर्वकामफलं लभेत् ॥४५॥
तत् सूर्यालयं गच्छेत् पुण्यमादाय वागयत् । प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु' त्रि प्रदक्षिणम् ॥४६॥
पूजयेत् परया भक्त्या कोणाकं मुनिसत्तमा । गन्धं पुष्पैस्तथा' 'दोषधूपं नवेद्यके' रपि ॥४७॥
दण्डवत् प्रणिपातंश्च जयदासैस्तथा स्तवं " । एव सम्पूज्य ॥ देव सहस्रांशु ' जगतपतिम् ॥४८॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानव । सर्वपापविनिर्म्ममतो युवा' 'विष्यवपुर्नर ॥४९॥
"सप्तावरान् सप्त" परान् वशानुदधृत्य भो द्विजा । विमानेनाकवर्णेन कामगेन सुबध्वंसा ॥५०॥
उपगोषमानो गन्धध्वं सूर्यलोक ॥ गच्छति । भुक्तवा तत्र वरान भोगान् यावदाभूतसत्त्वबलम् ॥५१॥
पुण्यक्षयाविहायात् प्रवरे योगिना कुले । चतुर्व्वेदो' 'भवेद्विप्र ' स्वधर्मनिरत ' शुचि ॥५२॥
योग विवस्वत् " प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयत् । चित्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभञ्जिवाम् ॥५३॥
य करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्तं स फलं लभेत् । शपनोत्थापने भानो सकात्या विषुदायने ॥५४॥

रोग से मुक्त हो जाता है धन भी धन विद्यार्थी विद्या एवम् पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है ॥४३॥ जो विद्वान् पुरय मन
मजिप्त इच्छा को रखकर सूर्य को अर्पण देता है उसका वह इच्छा मला भाति पूरा होती है ॥४४॥ पुरय
या त्ना—जो कोई समग्र म रानन कर सूर्य को प्रणाम करवे अर्पण देता है उसकी सब कामनाएँ पूरा होती हैं ॥४५॥
तनुपरात् सूर्य मन्दिर म मीन होकर हाथ म पुष्प डेकर सूर्य का तीन बार प्रदक्षिणा कर पूजा करे ॥४६॥
मुनिवय । गन्ध-पुष्प धूप दण्ड-नवद्य स श्रद्धा मज्जित पूर्व्वक वाणाक सूर्य का पूजा करना चाहिए ॥४७॥
द्विगण । दण्डवत् प्रणाम जय गन्ध व उच्चारण एवम् स्तुति स पूर्व्व कथित विधि के अनुसार सहस्रांशु जगत्पति
धूप का पूजाकर मनुष्य दस अश्वमध यज्ञो का फल प्राप्त करता है और सब पापा स भुक्त होकर निव्य देहधारी
मुक्त बन जाता है । ॥४८-४९॥ उसकी आग का सात पीढ़ी तथा बाद का सात पीढ़ी का उद्धार हो जाता है ।
और यन्त म वह सूर्य व समान तेजस्वी तथा इच्छागामा विमान म स्थित होकर गन्धर्वों स प्रशंसित हाता हुआ
सूर्यजैव को प्राप्त करता है ॥५०॥ वहाँ बहुत दिना तक उत्तम माया का मोहरण पुण्य-क्षय होने पर मत्पलाक म
योगिया व उत्तम कुल म जन्म लेकर धारा बना कर जाता स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होकर सूर्य से माया
को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥५१-५२॥ चत्रमास व शुक्ल पक्ष म जो मनुष्य काम को नष्ट करनेवाली
कोनार्क की यात्रा करता है वह पूर्व्वोक्त फल का प्राप्त करता है ॥५३॥ विप्रवृन्द । सूर्य व गणन उत्थापन

१ स परम् । २ स स्नात्व स्यात् । ३ स स्नात्व स्यात् । ४ स स्यात् । ५ क स स्यात् । ६ क स
गामास स्यात् । ७ क स्यात् । ८ क स्यात् । ९ स स्यात् । १० क स्यात् । ११ क स्यात् ।
१२ क स्यात् । १३ स स्यात् । १४ क स्यात् । १५ क स्यात् । १६ स स्यात् । १७ क स्यात् ।
१८ क स्यात् । १९ क स्यात् । २० क स्यात् । २१ क स्यात् । २२ क स्यात् । २३ क स्यात् । २४ क स्यात् । २५ क स्यात् । २६ क स्यात् । २७ क स्यात् ।

वारो रवेस्तिथौ' चैव पर्वकालेऽथवा द्विजाः। ये तत्र यानां कुर्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः॥५५॥
 विमानेनाकं वण्णं सूर्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तोरे' नदनदीपतेः॥५६॥
 रामेश्वर इति स्थातः सत्त्वकामरूपप्रदः। ये तं पश्यन्ति कामारि स्नात्वा सम्यग्महोदधौ॥५७॥
 गन्धं पुष्पैस्तथा धूपदीपैर्नैवेद्यकैश्चरैः। प्रणिपातैस्तथा 'स्तोत्रैर्मार्तैर्वाद्यैर्मनोहरैः'॥५८॥
 राजसूयफलं सम्प्रदाजिमैघफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा॥५९॥
 कामगेन विमानेन क्रिञ्चिणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वं शिवलोकं व्रजन्ति ते॥६०॥
 आभूतसंलब्धं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहागत्य' चातुर्ध्वंदा भवन्ति ते॥६१॥
 शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते। यस्तत्र' सवितुः क्षेत्रे प्राणास्त्यजति मानवः॥६२॥
 स सूर्यलोकमास्थाय' देवबन्धोदते दिवि'। पुनर्मनुषतां' प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः॥६३॥
 योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः' प्रोक्तं क्षेत्रं सुबुद्धं भम्॥६४॥
 कोणाकंस्तोदयेस्तोरे' भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुःपिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्तनं

नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

सत्रानि, उत्तरायण, रविवार तथा सप्तमी निधि म, अथवा पर्वकात् मे जो मनुष्य इन्द्रिया वा समन कर धडापूर्वक वहाँ की यात्रा करत है, वे सूर्य सदा वण्णवाते विमान म बँटार सूर्यलोक को जाते हैं॥५४-५५॥
 उसी के निकट समुद्र तट पर सत्र बामनाजा वा पत्र देनेवाले रामेश्वर नाम से प्रख्यात महादेव हैं॥५६॥ जो मनुष्य समुद्र म अच्छी तरह स्नान कर उन महादेव के दर्शन करते हैं एवम् गन्ध, पुष्प धूप दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र और सुन्दर गीत-वाद्यों से उनकी पूजा करत है वे महारत्ना राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल तथा परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और इच्छानुपूर्वक शमन करनेवाले शिञ्जिनी-जात से सिन्धुपिपि विमान पर चढ़कर गन्धर्वों द्वारा प्रशयित होत हुए शिव-लोक को जाते हैं॥५७-६०॥ वहाँ बहुत दिनों तक उत्तम योगों को योगेश्वर पुण्य-शाय होने पर फिर इस लीला म आते हैं और चाग्रा जडा व क्षाता हीवर सादर माग म आस्था रखते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं॥६१॥ जो मनुष्य उन सूर्य-क्षेत्र म प्राणत्याग करता है वह सूर्यलोक म जाकर स्वर्ग म देवता के समान आनन्द प्राप्त करता है॥६२॥ और फिर वह मनुष्य यौनि म जाकर धर्मात्मा राजा होता है और सूर्य-माग को प्राप्त कर मात्र प्राप्त करता है॥६३॥ मुनिवर्ग' इस प्रकार मैंने परम बुद्धि, योग भात के फलदायक तथा समुद्र तट पर स्थित कोणा-क्षेत्र का बान कठ मुखाया॥६४-६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा आर पिया व महाद प्रशरण म बागादित्य-माहात्म्य-
 वचन नामक अष्टाविंशो अध्याय समाप्त॥२८॥

१ क रा रं नियमदेव २ ग ० नवा सुनेन वै ० ग ० ३ ग यमुत्रयन्ति दवा स्ना ० ४ ग ० र्गैर्नर्नर्न ० ५ रा ० नारम् ॥ रा ० ६ व ० न सिध्यन्ति नियम म् ॥ ७ क ० हायना शिवतो व्रजन्ति ८ क यन्त्रात्र १ क रा ० माग ० २ ० १० व ग विरम् ११ व ० नुप्ये प्रा ० १२ क ० श्रेयः सपादगतिं हितम् १३ व ० रे माहात्म्य मुक्तिद नृपाय ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः

भूतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् । भास्करस्य परं क्षेत्रं भक्तिभक्तिफलप्रदम् ॥१॥
न तृप्तिमपि गच्छाम' श्रूयन्तः सुखदां कथाम् । तव चक्रोद्भवो पुण्यामादित्यप्राधानाशिनीम् ॥२॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर । देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे । दीपधूपप्रदाने च सम्भाज्जनविधौ च यत् ॥४॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं 'नक्तभोजने । अर्घ्यैश्च कीदृशः प्रोक्तः' कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥
कपञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति । एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

अर्घ्यं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः । भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७॥
मनसा भावना 'भक्तिरिष्टा' श्रद्धा च कीर्त्यन्ते । ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुष्व सुसमाहिताः ॥८॥
तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भवतान् पूजयति वा । अग्निशुभ्रपक्वैश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनावर्धैव देवपूजारतः सदा । तत्कर्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भक्तः सनातनः ॥१०॥

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

मुनियों ने कहा—हे देवश्रेष्ठ । आपसे वर्णित भोग-भोग-फल-दायक सूर्य-भोग के बारे में हमने सब कुछ सुना ॥१॥ पर आपके मुख से निःसृत सूर्य की पापनाशिनी, पवित्र तथा सुख-दायक कथा को सुनने से तृप्ति नहीं होती ॥२॥ अतः ब्रह्मदावर, प्रभो ! उस देव की पूजा का फल, दान का फल और प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, दीप-धूप-दान, मार्जन, उपवास तथा रात्रि-भोजन में जो पुण्य होता है, वह भी हम बतलाइये ॥३-४॥ हे सुरश्रेष्ठ । अर्घ्य कथा हीना चाहिये या नहीं देना चाहिये, भक्ति कैसे की जाती है और वह देव कैसे प्रसन्न होत है—यह सब हम लोग सुनना चाहते हैं ॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य ! सूर्य के वर्ण, पूजा, भक्ति, श्रद्धा, समाधि की पद्धति बतला रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥७॥ मन से की जाने वाली भावना ही इष्ट अग्नि और श्रद्धा कहों गयी है । और ध्यान योग ही समाधि है । आपलोग श्रावण होकर सुनें ॥८॥ जो मनुष्य सूर्य की कथा को सुनाएगा या उनके शक्तियों की पूजा करेगा तथा अग्निहोत्री हाथा, वही सनातन भक्त कहा जाएगा ॥९॥ जो सदा सूर्य ही में अपने चित्त-यन को लगाता है, उन्हीं

१ रा ० ने । देवतान् कथं प्रोक्तं चिन्तावास प्र० । २ क. ० का वीदुष्यास प्र० । ३ क स्तव । ४ क भक्तिः
गता । ५ य ० क्ताऽधुयतरतदा । ज० ।

देवार्थे' क्रियमाणानि य कर्माभ्यनुमन्यते। कीर्तनाद्वा परो विप्राः स वै भवत्तरो नरः॥११॥
 नाम्यसूयेत तद्भक्तान् न 'निन्द्याच्चान्यदेवताम्'। आदित्यव्रतचारी च स वै भवत्तरो नरः॥१२॥
 गच्छस्तिष्ठन् स्वपञ्चिजघ्नमुन्मिषन्निमिषघ्नपि। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भवत्तरो नरः॥१३॥
 एवं विद्या त्वयं भक्तिः सदा कार्या विजानता। भक्त्या समाधिना चैव श्रुत्वेन मनसा तथा॥१४॥
 क्रियते नियमो यस्तु दान विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥
 पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भवत्या समुपाहृतम्। प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्ति फलं वषट्जयन्ति च॥१६॥
 भावशुद्धिं प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्वं सफलं भवेत्॥१७॥
 स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
 प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते तान्न संशयः॥१९॥
 भक्तिपुवतो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२०॥
 सूर्यं नमसि यः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि॥२१॥
 एकाहारो नरो भूत्या षष्ठ्या योऽर्च्यते रविम्। नियमव्रतचारी च 'भवेद्भक्तिसमन्वितः'॥२२॥
 सप्तम्या वा महाभागाः सोऽद्यमेवफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भस्करम्॥२३॥

यौ पूजा म गिरत रहता है और उनके लिए कर्म करता है वह सनातन भक्त है॥१०॥ विप्रबुद्ध । देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का जो अनुमोदन या कीर्तन करता है, वह मनुष्य महामक्त है॥११॥ जो मनुष्य देव-भक्तों से ईर्ष्या नहीं रखता, अन्य देवता की निन्दा नहीं करता और सूर्य-व्रत का धारण करता है, वह महामक्त है॥१२॥ जो मनुष्य जाते स्थित होते, सोते, सुंघते और नम्रा भी शोलते तथा भीक्षते सूर्य का नियम स्मरण करता है, वह महामक्त है॥१३॥ विना पुरुष का इस प्रकार की भक्ति सदा करनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति, समाधि, स्तुति तथा मन से नियम करता है तथा ब्राह्मण को दान देता है, उसका दान को देवता, मनुष्य और पितर स्वीकार करते हैं॥१४-१५॥ पत्र, पुष्प, फल जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक समर्पित किया जाता है, उसे देवता स्वीकार करते हैं। पर देवता नास्ति की वा दान स्वीकार नहीं करते॥१६॥ नियम और आचार पूर्वक भाव-शुद्धि होनी चाहिये। भाव शुद्धि से जो कुछ भी दिया जाता है वह सब सफल होता है॥१७॥ सूर्य की पूजा स्तुति, जप, उपहार और उपवास से मनुष्य सर्वपाप-रहित हो जाता है॥१८॥ जो भूमि पर निर रखकर सूर्य की नमस्कार करता है, उसने तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं॥१९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, वह सातों द्वीप सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करता है॥२०॥ जो मन म सूर्य का ध्यान करके आनाश से प्रदक्षिणा करता है वह सब देवताओं की प्रदक्षिणा करता है॥२१॥ जो मनुष्य एकाहार करने पट्यो या सप्तमी तिथि में नियम, व्रत और भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करता है वह जन्ममेव मक्ष का फल प्राप्त करता है॥२२॥ अहोरात्र

१ रा वेदार्थे। २ रा न्यायान्य०। ३ रा भवता । आ०। ४ रा भक्तवरो जन । ग०। ५ रा शुद्धेन । ६ रा भ्या । देवमुद्दिश्य भाव्य त दा०। ७ रा न्य तत्सब । ८ रा भावेन हि श्रुत मन्त्र तत्स०। ९ रा भूत् । तनुनायु-पचार०। १० ॥ षष्ठ्या । ११ रा रा रवेर्भक्ति०। १२ रा न्त । वृत्त०।

सप्तम्यामयवा यष्ट्यां ॥ याति परमां गतिम् । कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥
 'सर्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् । पद्मप्रभेण यानेन सूर्यलोकं स गच्छति ॥२५॥
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः । सर्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति । अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥२७॥
 प्रमवद्ध्या 'क्षतुर्विंशमेकं क्षपयेत् पुनः । द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८॥
 सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी । शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९॥
 सप्तमी विजया माम तत्र दत्तं महत् फलम् । स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
 सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् । ये चादित्यदिने प्राप्ते धादं कुर्वन्ति मानवाः ॥३१॥
 यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् । येषां धर्म्याः क्रियाः सर्वाः सर्वबोद्ध्यभास्करम् ॥३२॥
 न कुले जायते तेषां दरिद्रो ध्यायितोऽपि वा । श्वेतपा रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३॥
 उपलेपनकर्त्ता तु विग्नितं लभते फलम् । चित्रभानुं विचित्रंस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
 पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितान्निभेत् । घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतलेन वा पुनः ॥३५॥

उपवास करके जो सप्तमी या यष्टमी तिथि में सूर्य की पूजा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥२३॥
 इष्ट पक्ष की सप्तमी में जो इन्द्रिय-सयमपूर्वक उपवास करके सब रत्नों में उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह कमल की-सी शान्ति वाले विमान से सूर्यलोक को जाता है ॥२४-२५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास करके सर्वथा स्वच्छ उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥२६॥ यदि चौबीस दिनों तक क्रमशः एक-एक की वृद्धि कर आठ के दोने से प्रभुत जल पिये और फिर क्रमशः एक-एक का हास करे तो दो वर्ष तक इस प्रकार करते रहने से नियम की समाप्ति हो जाने पर यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को देनेवाली होती है ॥२७-२८॥ जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़ जाता है तब वह विजया सप्तमी कहलाती है, उसमें दान देने से महाफल होता है । विजया सप्तमी में स्नान, दान, तप, होम और उपवास—ये सब मगधर पापों का नाश करने वाले होते हैं ॥२९-३०॥ जो मनुष्य रवि के दिन धाद तथा सूर्य की पूजा करते हैं । उन्हें मनोवांछित फल मिलता है ॥३१॥ जिनकी सब क्रियायें धार्मिक तथा सूर्य की उद्देश्य करके होती हैं उनके कुल में कोई दरिद्र या योगी नहीं होता ॥३२॥ श्वेत, रक्त या पीत मृत्तिका से जो सूर्यालय को लीपता है, वह अमिलपित फल प्राप्त करता है ॥३३॥ चित्र-विचित्र प्रकार के फूलों तथा गन्धा से जो उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करता है, वह ईप्सित वस्तु की प्राप्ति करता है ॥३४॥ घृत या तिल के तेल से दीप जलाकर जो सूर्य की पूजा करता है, उसे कोई

१ व ० म्या पूजयेद्योऽपि ॥ २ व ० रक्तोप ॥ ३ व ० येषो दिवावर ॥ ४ व ० हरासव ॥ ५ व ग भवेत् ॥ ६ व प्रतिष्ठा ॥ ७ व श्वेती ॥ ८ व ० म् । प्रदान जपहोमी च उ ॥ ९ व ० म्यामनन्तपृथ्वा स्मृत् ॥ १० ग जपति ॥ ११ ग धर्मा ।

अग्नौ तोषेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च । प्रतिमायां तथा 'पिण्ड्यां' देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८॥
 नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदः । सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्षितसमन्वितः ॥४९॥
 तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । श्रोत्रासं चतुरश्रञ्च देवदारं तथैव च ॥५०॥
 कर्पूरागुरुपानि दत्त्वा वै स्वर्गं गमिनः । अयने तूत्तरे सूर्यमथवा दक्षिणायने ॥५१॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते । विषुवेष्वपरागेषु षट्शतीतिमुखेषु च ॥५२॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते । एवं बेलासु 'सर्व्व्यासु' सर्व्वकालञ्च मानवः ॥५३॥
 भवत्यां पूजयते योऽङ्गं सोऽङ्गलोके महोयते । कृसरः पायसः पूषः 'फलमूलघृतोदनैः' ॥५४॥
 शल्लि 'कृत्वा' तु सूर्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् । घृतेन तर्पणं कृत्वा 'सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः' ॥५५॥
 क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापेन युज्यते । दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः ॥५६॥
 स्नानार्घ्यमाहरेद्यस्तु जलं भानोः समाहितः । तीर्थेषु शुचितापत्रः "स याति परमां गतिम्" ॥५७॥
 छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च । श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८॥
 यद्यवद्वर्ग्यं नरो भवत्प्रादित्याय प्रयच्छति । तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९॥
 मानसं वाचिकं वापि" कायज यच्च बुद्धकृतम् । सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन" तवशेषं व्यपरोहति ॥६०॥

पवित्र नूनि, प्रतिमा और पीठ (चीकी या आसन) पर यत्नपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कमी भी चाहिए
 तथा बायी ओर न दे, कल्कि मन्दा ही अभिमुख होकर अर्घ्य देना चाहिए । गुग्गुलु या घृत के साथ मक्खिपूर्वक
 सूर्यार्घ्य देने से मनुष्य निमदेह तत्काल सब पापा से मुक्त हो जाता है ॥४९॥ श्रोत्रास, देवदार, कर्पूर, अगर
 और घूप चढ़ाने से मनुष्य स्वर्गगामी होता है ॥५०॥ उत्तरायण या दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने
 में मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥५१॥ विषुव में (अर्घ्यान् उग्न समय जब दिन-रात का मान बराबर
 होता है) ग्रहण काल में और षट्शतीतिमुख (तुला राशि से छियासी दिना के समय) में सूर्य की विशेष पूजा
 करने से मनुष्य सब पापा से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ इस प्रकार सब दिन सब समय मक्खिपूर्वक सूर्य की पूजा
 करने मनुष्य पूर्व्वणीय म पूजित होता है ॥५३॥ खीर, मालपुष्पा, फल, मूल, घृत और चावल में सूर्य को बलि
 देने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं ॥५४॥ सूर्य को घृत का तर्पण करने से मनुष्य पूर्ण सिद्ध हा जाता है ॥५५॥
 घूप का तर्पण करने में मनस्ताप दूर होता है । दही में तर्पण करने से कार्य्यसिद्धि होती है ॥५६॥ जो सावधान होकर
 सूर्य को स्नान करने के लिए तीर्थ से पवित्रता पूर्वक जल लाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥५७॥ सूर्य
 को छत्र, ध्वज, शंकोश, पताका, और चामर श्रद्धापूर्वक समर्पित कर मनुष्य वांछित गति को प्राप्त करता है ॥५८॥
 मनुष्य भविष्यर्क सूर्य को ब्राह्मण दान करता है, उसे मगवान् सूर्य उससे दान से लाख गुना अधिक करके लौटा
 देते हैं ॥५९॥ सूर्य की कृपा में वाचिक, वाचिक और मानसिक चयताप और पाप, सभी नष्ट हो जाते हैं ॥६०॥

१ स पुण्य २ क देयोऽर्घ्यं प्र० । ३ म ० भु मक्खिप्रदानबोतम । म० । ४ न गुवेलायु । ५ क ० कया
 मयुष्य तरणि मयलो० । ६ क स वल्लोन्मिधनीदन । ७ स ० त्वा तर्पेयञ्च स० । ८ क त्वा म० । ९ क तीर्थाद्रा
 यु० । १० क ० चित्वा स्नानात्स य० । ११ म ० पि कर्मणाऽय चयत्तुन० । १२ क स ० प्रणामेन ।

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । यथोक्तदक्षिणविप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥६१॥
इति श्रीब्राह्मो महापुराणे सूर्य्यपूजावि नामकोनत्रिशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगत्पते । भास्करस्य सुरधेष्ठ धवतस्तेषु दुर्लभम् ॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पुच्छामो जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽय भिक्षुः । इच्छेन्मोक्षमास्यातुं वेक्ता कां पजेत सः ॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निश्चयसं परम् । स्वर्गंतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः ॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता । यस्मात् परतरं नास्ति तस्मै ब्रूहि सुरेश्वर ॥५॥
कुतः सृष्टमिवं विश्वं सर्वं स्यावरजङ्गमम् । प्रकथ्ये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥६॥

सूर्य की एक दिन की पूजा से जो फल प्राप्त होता है, वह विधिविधान सहित किए गए दक्षिणा पुरस्सर की यको से भी नहीं मिलता है ॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषिया के संवाद प्रकरण में सूर्य-पूजा-नियम-
मणित-माहात्म्यवर्णन नामक उत्तीसवीं अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सुर्य्येष्ठ ! हे जगत्पते ! आपने सूर्यदेव का दुर्लभ माहात्म्य सुनाया, अब हमारी एक जिज्ञासा और है । हमें यह जानने की बड़ी उलझता है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी जो भी मोक्षार्थी हो वह किस देवता की उपासना करें ॥१-३॥ वह कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर फिर वहां से च्युत नहीं होता है ॥४॥ हे ब्रह्मन्, देवाधि-देव कौन है ? पितरो वर पिता कौन है ? जिससे बढकर कुछ भी नहीं है, वह कौन है ? ॥५॥ स्यावर-जगम सहित सपूर्ण विश्व की सृष्टि किससे हुई ? प्रलयकाल में यह जगत् किसमें लीन होता है ?—यह सब हमें बतलाइये ? ॥६॥

ब्रह्मोद.

'उद्यन्नेवंप कुक्षते जगद्विस्मिरं करैः । नातः परतरो, देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥७॥'
 अनादिनिघ्नो ह्येष' पुरुषः, द्वाश्चतोऽव्ययः । तापयत्येष' श्री'ल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुत्थः ॥८॥
 सर्वदेवमयो ह्येष तपतो' तपनो धरः । सर्वस्य जगतो नाथः सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥९॥
 सक्षिपत्येष भूतानि तया विसृजते पुनः । एष भाति तपत्येष' वर्धत्येष गभस्तिभिः ॥१०॥
 एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः । न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥
 पितृणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता । ध्रुवं स्थानं' स्मृतं' होतृद्वयस्मात्त च्यवते पुनः ॥१२॥
 सगंकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते' । प्रलये च तमम्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥
 'योगिनश्चाप्यासंख्यातास्त्यक्तृत्वा' गृहकलेवरम्' । वायुर्भूत्वा' विशन्त्यस्मिंस्तोजोराशौ दिवाकरे ॥१४॥
 अस्य रश्मिसहस्राणि शाला इव विहङ्गमाः । दसस्याधिरय भुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ॥१५॥
 गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो' योगधर्मिणः । बालस्त्रिहत्याद्यप्येवं ऋषयो ब्रह्मयाविनः ॥१६॥
 वानप्रस्थाश्च ये क्षाम्ये व्यासाद्या' भिक्षवस्तथा । योगमास्थाय सर्वे ते प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम् ॥१७॥
 शूको व्याससुत. श्रीमान् योगधर्ममवाप्य स' । आदित्यकिरणान् गत्या ह्युपुनर्भवमास्थितः ॥१८॥

ब्रह्माने कहा—द्विजवर । जो उदित होते हुए अपनी विरणो से संचार को अथवा रहित कर देता है, उनमे बकर-बोई देव नहीं है ॥७॥ यही अनादिबीर अनन्त है, पुरुष, द्वाश्चत (नित्य) बीर अव्यय (नामरहित) भी यही है, यही अपनी सौक्ष्म्य रश्मिया से तीनों लोक को तपाता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय, तपानेवालों में श्रेष्ठ, संपूर्ण जगत् का स्वामी, सब का साक्षी, जगत्पति, प्राणिमा का महारक्ष तया सृष्टिकर्ता, विरणों के द्वारा प्रकाश तया वषा करने वाला, धाता, विधाता, भूतादि, भूतपालक, क्षयरहित बीर नित्य अक्षयमण्डल वाला है ॥९-११॥ यही पितरा का पिता, देवताओं का देवता और ध्रुव का अक्षय स्थान है क्योंकि यहाँ से फिर पतन नहीं होता ॥१२॥ सृष्टिकाल में संपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय का काल उसी अत्यन्त तेजस्वी आदित्य में लीन हो जाता है ॥१३॥ वनस्प योगी भी, शरीर हर्षी गृह को छोड़कर वायु का रूप धारण कर उसी तेजराशि सूर्य में प्रवेष्ट करने हैं ॥१४॥ सूर्य की हजार विरणा का आश्रय पाकर देवतामा के साथ सिद्ध-मुनि उनी तरह वाग्य करत हैं, निगम तत्त्व पर्यागण वृक्षा को घाताओं पर रहते हैं ॥१५॥ गुरुत्वं होने हुए भी योगी राजा जनक आदि, ब्रह्मवादी मुनि वानवित्य आदि, वानप्रस्थ और सन्यासी, व्यास आदि जो कोई भी थे, वे सब माग को प्राप्त कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं ॥१६-१७॥ व्यास-मुनि श्रीमान् ध्रुव ने योग को प्राप्त कर सूर्य-किरणा में जाकर पुन उदरान्न न होने की स्थिति को प्राप्त किया ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता अव्ययमान से गम्य हैं, पर तिमिर-नाशन सूर्य ही प्रत्यक्ष-

१ म उद्यन्नेव कु० । २ न देव । ३. व ० य लोकाग्नीन्ममन्तिमिरन्'गी । स० । ४ म ० ना का मुनाशन । स० । ५ म मुनाशुमे । ६ व ० य श्रेष्ठतयस्वग० । ७ स स्वग० । ८ स ० त तस्य यम्य० । ९ म ० प्रजाप० । १० व म ० वचन स० । ११ व म ० क्षाम्यन्त्यकत्वा । १२ स ० म् । एवीमूना वि० । १३ व ० द्वाश्चतो तेजोमूर्ति शिरात् । स० । १४ व ० नो ये च पाणिनाः । वा० । १५ व. ब्रह्मचारिणः । १६ स ० द्वा वचन० ।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥
 तस्मादग्नयत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता । यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥
 अतो भवद्भिः संततमग्न्यर्च्यो भगवान् रविः । स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो मुखः ॥२१॥
 अनाद्यो लोकनायोऽसौ रश्मिभालो जगत्पतिः । मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेषु द्विजोत्तमाः ॥२२॥
 अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च । सृष्ट्वा सप्ताग्रान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३॥
 लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्ते । सृष्ट्वा प्रजापतीन् सवर्गिसृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥२४॥
 ततः शतसहस्रांशुरग्न्यवतश्च पुनः स्वयम् । कृत्वा द्वादशधात्मानमादिदमुपपद्यते ॥२५॥
 इन्द्रो धाताय पर्जन्यस्त्वष्टा पूषायमा भगः । विवस्वान् विष्णुर्गन्धर्व वरुणो मित्र एव च ॥२६॥
 अभिर्द्वाविंशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं भूतिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥२७॥
 तस्य धा प्रथमा भूतिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता । स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनो ॥२८॥
 द्वितीया तस्य धा भूतिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता । स्थिता प्रजापतिस्त्वेन विविधा सृजते प्रजाः ॥२९॥
 तृतीयाकस्य धा भूतिः पर्जन्य इति विभृता । मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्धते जगभस्तिभि ॥३०॥
 चतुर्थी तस्य धा भूतिर्नाम्ना त्वष्टेति विभृता । स्थिता धनस्पती सा तु ओषधीषु वसवदतः ॥३१॥
 पञ्चमी तस्य धा भूतिर्नाम्ना पूषेति विभृता । अग्रे व्यवस्थिता सा तु प्रजापुण्याति नित्यशः ॥३२॥

देव है ॥१९॥ इसलिये कन्याण चाहने वाले को भूर्न को छोड़ कर अन्यत्र भक्ति नहीं करनी चाहिये । जिसलिये विष्णु आदि देव अप्रत्यक्ष हैं अतः आप लोगों को सतत सूर्य की अर्चना करनी चाहिये ॥२०॥ सूर्य ही जिसलिये जगत् का माता पिता है । मित्रवर । यह अनादि, लोकनाथ, किरणों की भाला वाला, जगत्पति, मित्रत्व में स्थित होकर तप करने वाला, जन्म-मरण से रहित, ब्रह्मा, नित्य और अक्षय है ॥२१-२२॥ समुद्रों और द्वीपों सहित चौदहों भुवन की सृष्टि करने लोक कल्याण के लिए सूर्य चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित हुआ ॥२३॥ प्रजापतियों और विविध प्रजाओं का निर्माण करती हजार किरण वाले उस अत्यन्त ने बारह आदित्या के रूप में अपने आत्मा को विभक्त कर दिया ॥२४-२५॥ द्विजवर्ग । इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अयमा, भग, विवस्वान्, विष्णु अतः, वरुण और मित्र—इन बारह भूतियों से परमात्मा सूर्य ने सम्पन्न जगत् को ध्यात् कर रखा है ॥२६-२७॥ उस सूर्य की इन्द्र नामक जो पहली भूति है, वह देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाली है तथा देवराजत्व पर स्थित है ॥२८॥ धाता नाम की उसकी दूसरी भूति प्रजापति बनकर विविध प्रजाओं की सृष्टि करती है । उसकी तीसरी भूति, जो पर्जन्य नाम से प्रख्यात है, बादलों में है स्थित रहती है और निरणा के द्वारा वर्षा करती है ॥२९-३०॥ त्वष्टा नाम से प्रख्यात उसकी चौथी भूति ओषधी वनस्पतियों में स्थित है ॥३१॥ पूषा नाम से विख्यात उसकी पाँचवीं भूति अन्न में स्थित होकर नित्य प्रजा को पुष्टि प्रदान करती है ॥३२॥ सूर्य की अयमा नाम से प्रसिद्ध छठी भूति देवों में ही

१ स ०ता । दृष्टरोगापहो यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि । अ० । न ०ता । दृष्ट न आघते यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि । अ० । २ ण पाता । ३ न ०रयुत्तव । ४ स विषाता ।

मूर्ति पट्टी रवेयां तु अय्यमा इति विभ्रुता । वायोः संतरणा सा तु देवेष्वेव समाधिता ॥३३॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भोगेति विभ्रुता । मूर्तिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४॥
 मूर्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विभ्रुता । अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५॥
 नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिर्विष्णुश्च नामतः । प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनो ॥३६॥
 दशमी तस्य या मूर्तिरंशुमानिति विभ्रुता । वायो प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादपति वै प्रजः ॥३७॥
 मूर्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता । जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥३८॥
 मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता । लोकानां सा हितार्याय स्थिता चन्द्रसरित्ते ॥३९॥
 'वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मंत्रेण क्षुधा' अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वर्तनानाविधैस्तु सः ॥४०॥
 एवं सा जगतां मूर्तिर्हिताय विहिता पुरा । तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम् ॥४१॥
 अभिर्द्वादशमिस्तेन सवित्रा परमात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२॥
 तस्माद्भ्येयो नमस्तदश्च द्वादशस्यासु मूर्तिषु । भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतैरान्तरात्मना ॥४३॥
 इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः । नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महीयते ॥४४॥

काशिम होकर वायु की सचालन-गति को बटाती है ॥३३॥ मग नामवाली सातवी मूर्ति भूमि में स्थित होकर देहधारियों के शरीर में प्रवेश करती है ॥३४॥ विवस्वान् नामक आठवी मूर्ति अग्नि में प्रतिष्ठित होकर देहधारियों के अन्न को पचती है ॥३५॥ विष्णु नामक नवी मूर्ति देवताओं के शत्रुओं का वध करने के लिए नित्य अवतार लेती है ॥३६॥ अनुमान् नाम से प्रख्यात दसवी मूर्ति वायु में प्रतिष्ठित होकर प्रजाओं को आनन्दित करती है ॥३७॥ सूर्य की ग्यारहवी मूर्ति, जो वरुण नाम से प्रसिद्ध है, जल में अवस्थित होकर नित्य प्रजाओं का पोषण करती है ॥३८॥ मित्र नामक बारहवी मूर्ति लोह-कषपाण के लिए चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मित्रतापूर्ण नेत्रा से अनेक प्रकार के वरदानों द्वारा भक्तों के ऊपर कृपा करते हुए सूर्य ने केवल वायु भक्षण करने तपस्या की ॥४०॥ इस प्रकार जगत्कल्याण के लिए उठने मूर्तियों का विधान किया । मित्रभाव से स्थित होने के कारण यह मित्र कहाया ॥४१॥ द्विजवर ! परमात्मा सूर्य ने इन बारह मूर्तियों से अखिल जगत् को व्याप्त कर दिया है ॥४२॥ इष्टान् मरितमान् मनुष्य नित्य सूर्य में भक्ति लगाकर बारह मूर्तियों में स्थित आदित्य को नमस्कार करे ॥४३॥ इस तरह बारह आदित्यों की नमस्कार करने नित्य उनमें आहात्म्य का भवण-गठन करने से मनुष्य सूर्य-लोक में पुजित होता है ॥४४॥

१ न ०ष्टी तयामातार्यमेत्यमिवि० । २ न ० रा व्यवस्थिता । ३ न ० रा या तुमानोर्व० । ४ न ० ना । सा जीवयति च कृत्स्न जगदम् प्रनिष्ठिताम् । मू० । ५ न ० ता मूर्ति स० । ६ रा ०ष्टम्य मण्डले । बटवान् तपस्तेपे स्थित सा तु सरित्ते । वा । ७ न ० मुमुक्त सदा । ८ रा एवमान हित स्थान परस्वावाप्यनारिता । त० । ९ एवमाय दि तस्यान यदवाप्यदयेन वास्तस्थिताम् । त० । १० न ० त्य ममाहिनी मृता मू० । १० रा पवित्रोय मू० ।

यजन्ति त्वामहरहृस्त्वां मूर्तित्वं समाश्रितम् । पिता माता च सर्व्वस्य देवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विदमहे ॥५६॥

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम् । त्वयि भवितमिति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥
यस्तु सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् । इन्द्रियैरिन्द्रियायैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्जितम् ॥५८॥
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते । त्रिगुणाद्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः । महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥
साख्ये च कथ्यते योगे नामभिर्यदुपात्मकः । स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोक्षर इति स्मृतः ॥६१॥
पूतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना । अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥
यस्तदपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः । नमान्तरात्मा तव च ये चाप्ये देहसंस्थिताः ॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् । सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥
सर्व्वतः पाणिपादास्तः सर्व्वतोऽक्षिशरीरोमुखः । सर्व्वतः श्रुतिर्माहोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥
विश्वमूर्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्चरति च क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम् ॥६६॥
क्षेत्राणोह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम् । तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥६७॥

नित्यमिति आप ही। वीं मूर्तिपा की पूजा किया करते हैं और आप सबने माता पिता तथा सनातन देव हैं। हे देव ।
ऐसी परिधिपति म आप किस देवता की उपासना करते हैं—यह मुझे नहीं जान पड़ता। ॥५३-५६॥

मित्र ने कहा—ब्रह्मन् । यद्यपि यह सनातन रहस्य कहने योग्य नहीं है तो भी आप जैसे मन्त्रों से मैं छिपाऊँगा
नहीं ॥५७॥ जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, और इन्द्रिया, इन्द्रिया के विषय तथा सब प्राणियों से विवर्जित है, वह
प्राणिमात्रा अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहलाता है ॥५८॥ सत्य-रज-तम—इन त्रिगुणा से परे पुरुष भी वही कहलाता
है ॥५९॥ वही भगवान् हिरण्यगर्भ तथा बुद्धि भी कहलाता है। योगी म उसे महान् तथा प्रधान (प्रवृत्ति) कहते
हैं ॥६०॥ साख्य-योग म उसे बहुत नामों से कहा गया है। उसी के नाम त्रिरूप, विश्वात्मा, शर्व और अक्षर
है ॥६१॥ उसने त्रैलोक्य का कारण दिया। वह शरीर रहित हाकर सब देहा म निवास करता है ॥६२॥ पर शरीरा
में वास करने हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। वह मेरा, आपका और जितने देहधारी हैं—सब का साक्षी
है। वह वही निर्मा से गुह्यत नहीं होता ॥६३॥ वह सगुण निर्गुण, विश्व, ज्ञानगम्य और सब और हाथ-पैर नेत्र-
गिर तथा कर्ण वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है ॥६४-६५॥ वह विश्वमूर्धा, विश्वभुज और विश्वरूप पैर-
गिर तथा नास वाला है। वह क्षण म गुप्त तथा दृष्ट के अनुबल अकेला ही विचरण करता है ॥६६॥ वही क्षेत्र
परीर को कहा गया है। वह योगी क्षत्रा को आसानी से जानता रहता है। इसलिए उसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा

१ म गुप्त । २ व ० मजर मुने । ३ ० १ ३ त ० व । पवित्र ० । ४ व सर्व्वगुण वि० । ५ त म लिप्यति ।

अव्यक्तं' च पुरे शक्ते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्वत्र उच्यते ॥६८॥
 तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृत। तस्यैकस्य महत्त्वं हि ॥ चेकं पुरय स्मृत ॥६९॥
 महापुरुषशब्द हि विभक्त्येकं सनातन। 'स तु विधिक्षियायत' सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥
 शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशब्द करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥
 आकाशात् पतित तोय याति स्वाद्वन्तर यथा। भूमे रसविशेषेण तथा 'गुणरसात् ॥ ७२॥
 एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशय ॥७३॥
 स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्। सप्तां तथा भूने सोऽग्न ब्रह्मादिषु तयाप्नुयात् ॥७४॥
 यथा दीपसहस्राणि दीप एक प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एक सम्प्रसूयते ॥७५॥
 यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवल। 'एकत्वप्रलये' चास्य बह्वयञ्च प्रवर्तते ॥७६॥
 नित्यं हि नास्ति जगति भूत स्याद्वरजङ्गमम्। असपञ्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च स उच्यते ॥७७॥
 तस्मादव्यक्तमुत्पन्न त्रिगुणं द्विजसत्तमा। अव्यक्ताव्यक्तभावस्या या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥
 तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः। लोके च पूज्यते योऽसौ देवे विद्ये च कर्मणि ॥७९॥

हे ॥६७॥ अव्यक्त पुर मे वह सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। विश्व बहुत प्रकार का है और उसे सबक
 कहा गया है ॥६८॥ इसलिए अनेक रूप होने के कारण उसका विश्वरूप नाम पड़ा। उसी एक का महत्त्व अर्थात्
 महत्त्व है और वही एक पुरुष कहलाता है ॥६९॥ वही एक सनातन महापुरुष के शब्द को धारण करता है।
 वह विधिक्षिया के अर्थ न आत्मा से आत्मा का सृजन किया करता है ॥७०॥ वह आत्मा से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा)
 को ही हजार लाख और करोड़ प्रकार का बना डालता है ॥७१॥ आकाश से पतित जल जैसे भूमि रस के संयोग
 से मिश्र प्रकार के स्वाद को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार वैसे गुण के रस-संयोग से वह विषेय रस को धारण
 करता है ॥७२॥ जैसे एक ही वायु धारी में पाँच प्रकार से रहता है उसी प्रकार उसका एकत्व और पृथक्त्व है
 दृग्मग कोई संदेह नहीं ॥७३॥ जैसे अग्नि स्थानान्तर के कारण दूसरी-दूसरी सप्ता को प्राप्त होता है वैसे वह भी
 ब्रह्मा आदि सत्ताएँ प्राप्त करता है ॥७४॥ जैसे हजारों दीपों को एक ही दीप उत्पन्न कर देता है वैसे वह भी एक
 हीकर हजारों रूपा को उत्पन्न करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा को जानता है तब केवल रूप जाना है अर्थात्
 एक ही रहता है और एकत्व का भाग जान पर उसका बह्वत्त्व अर्थात् बहुरूप हो जाता है ॥७६॥ गद्यार में
 स्वाद-रस-गन्ध नित्य नहीं है। पर वह अव्यक्त अप्रमेय (न मापने योग्य) और व्यापक है ॥७७॥ द्विजधर!
 इसलिए उसी से अव्यक्तरूप त्रिगुण उत्पन्न होता है और अव्यक्त से व्यक्त माय में जो स्थित है वही प्रकृति
 कहलाता है ॥७८॥ जो सन-अज्ञ रूप और लोभ में देव त्रिगुण में पूजित होता है वह ब्रह्मा को योनि है ॥७९॥

१ स ऽव्यक्तिः पु०। २ क मयत्त्व। स समत्त्व। ३ क स त त्व वि०। ४ क स ऽप्याप्तं गु०।
 ५ क ऽप्यप्यगा०। ६ क भूमी र०। ७ क ऽप्याय व्यापकौ महान्। ए०। ८ स ऽणवपानुय। ए०। ९ म ऽजां
 यथाऽध्वरा ह्यपु यज्ञाह्यपु तथा जसौ। य०। १० क स ऽवत्त्व प्र०। ११ क ऽप्रप्य य०। १२ स स तगो
 मवेन। नि०। १३ क प्रपयन। १४ क त्रिगुण।

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः । आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥८०॥
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । तेन गच्छन्ति देव्यं तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१॥
तं देवाः स्वाश्रमस्याश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चंपां ददाति सः ॥८२॥
स हि सर्वगतश्चैव' निर्गुणश्चैव कथ्यते । एवं भूत्वा ययाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥
ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः । एतदप्यधिकं तेषां यदेकं' प्रविशन्त्युत ॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः । अस्मद्भवत्यापि देव्यं त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥
सर्वेषां मुनिभिर्वर्षापि पुराणेष्वंरहं स्मृतम् । सर्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराण्यतं नारदाय तु भानुना । मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमाः ॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं' मयाख्यातं द्विजोत्तमाः । न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥
पश्चेत्तच्छ्राव्येप्रित्यं' यश्चैव शृणुयात्तरः । स' सहस्राक्षिपं देवं प्रविशेन्नाथ संशयः ॥८९॥
मुष्येतात्तस्तया रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुलभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च ॥९०॥
क्षणेन लभतेऽप्यनमिदं यः पठते मुने । यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥

उमने ब्रह्मर अन्य कोई पिता, द्विज और देव नहीं है। वह आत्मा द्वारा जानन योग्य है। अतः उमी की पूजा मैं करता हूँ ॥८०॥ हे देवपि । स्वर्ग में भी जो कोई उमे नमस्कार करते हैं, वे उमसे अपने अमीष्ट की पूजा मैं प्राप्त करते हैं ॥८१॥ अनेक मूर्तियां मैं आश्रित देवता अपने आश्रम में ही रहकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करने हैं और उमसे अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। वह सब में व्याप्त और निर्गुण ब्रह्मात्मा है ॥८२॥ एका जानकर मैं अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित मैं एक तरह की प्राप्त कर फिर उमी एक (सूर्य) अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित मैं एक तरह की प्राप्त कर फिर उमी एक (सूर्य) मे प्रवेश करते हैं ॥८३॥ हे नारद । यह रहस्य मैंने आपसे बतला दिया और हमारी भक्ति से आपने भी मुना ॥८४-८५॥ देवता या पुराणज मुनिया ने उन सूर्य का वरदायक कहा है। सभी परमात्मा सूर्य की पूजा करने हैं ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर्ग । पहले इस प्रकार नारद से सूर्य ने कहा था और अब मैंने आप लोगों से बतला दिया ॥८७॥ किप्रद ! मेरे द्वारा वर्णन इस आख्यान की आप लोग भी सुनाएँगे, पर सूर्य ने अमरत्व की कमी नहीं मुनाएँगे ॥८८॥ जो मनुष्य नित्य इसका श्रवण करेगा या कराएगा, वह सहस्रप्रणिश्रुत देव में प्रविष्ट होगा ॥८९॥ इस कथा की आदि से मुने से रागी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अमीष्ट होना ॥९०॥ इस कथा का आदि से मुने से रागी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अमीष्ट होना ॥९१॥ मुने । जो इसका पाठ करता है, वह तत्काल माय-प्राप्ति करता है। त्रिमूर्ती

१ क ग त । २ क स ० व कथ्यते स्थाणुजन्ममे । ए० । ३ क ० क ह्यधिक पुन । ४० । ४ स ० मायं च म० । ग ० मा । ५ अमरताय न देय वै दायायापि कथयन । ६ क ० वच्छादे य० । ७ ग वं दिवाकर दे० ।

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः । स च घाता विघाता च सर्वस्य जगतः । प्रभुः ॥१२॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं त्रिलोक्यं मुनिसत्तमा । भवत्यस्माज्जगत् सत्त्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवीकसाम् । महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं साध्वैर्लौकिकम् ॥२॥
सर्वारमा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदेवतम् ॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्धृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४॥
सूर्यात् प्रसूयते सध्वं तत्र जैय प्रलीयते । भावाभावो हि लोकानामादित्याग्निः सूतो पुरा ॥५॥
एतत् ध्यानिना ध्यानं मोक्षदाम्येष मोक्षिणाम् । तत्र गच्छन्ति निर्वर्णं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥

जो कामना हो, वह इसके पाठ में निःसंदेह पूर्ण हो जाती है ॥१२॥ इसलिए आप एग छदा भगवान् सूर्य का स्मरण करें। वही घाता, विघाता और सपूर्ण जगत् का स्वामी है ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-माहात्म्य-वर्णन

नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

आदित्य के नाम का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! समस्त त्रैलोक्य का मूल सूर्य है। देवता, राक्षस और मनुष्य सहित यह सपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न है ॥१॥ विप्रगण! रुद्र, इन्द्र, विष्णु और महाकान्तिमान् देवताओं का भावैर्लौकिक तेज यह सूर्य ही है ॥२॥ सर्वात्मा, सब लोकों का स्वामी, देव-देव, प्रजापति, परमदेवता और त्रैलोक्य का मूल भी सूर्य ही है ॥३॥ अग्नि में प्रस्तापित आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य में वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और ध्रुव से प्रजा ॥४॥ सूर्य से सब की उत्पत्ति होती है और अन्तिम सब लीन होते हैं। पढ़ने वालों के भाव (सत्ता) और अभाव दाना सूर्य से निःसृज हो ॥५॥ वही ध्यानिना का ध्यान और साधना का योग है। उन्हीं में मनुष्य निर्वाण

क्षणा मूर्ततां दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च॥७॥
 अयादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न नियमो नामनो विहरणक्रिया॥८॥
 ऋतूनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः॥९॥
 अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च। जगत्प्रभावाद्विशते 'भास्कराद्धारितस्करात्'॥१०॥
 नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति'। नावृष्ट्या परिधिं घते वारिणा दीप्यते रविः॥११॥
 घसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो द्यपसि वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः॥१२॥
 हेमन्ते ताम्रवर्णाभिः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः॥१३॥
 ऋतुस्वभाववर्णेश्च सूर्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अयादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः॥१४॥
 द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोर्जः प्रभाकरः॥१५॥
 मातृगण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः॥१६॥
 विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽय्यमा। विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः॥१७॥
 इत्येते द्वादशादित्यः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः। उत्तिष्ठन्ति सवा ह्येते मातृगण्डाद्विशभिः क्रमात्॥१८॥
 विष्णुस्तपति चन्द्रे तु वैशाखे चाय्यमा तथा। विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आपादे चांशुमान्॥१९॥

मान्त करते हैं और उसी से पुन पुन उत्पन्न होते हैं॥६॥ क्षण, मूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग—इन सब की कालसंख्या बिना सूर्य के नहीं हो सकती है॥७॥ बिना काल के कोई नियम नहीं हो सकते और न अग्नि में विहरण किया ही हो सकती है। ऋतुओं का विभाग नहीं हो सकता, फल फूलों की तो बात ही क्या। पान्य पुण और औषधियों की उपज भी नहीं हो सकती॥८-९॥ पृथ्वी तथा आकाशमें जीवों का व्यवहार नहीं हो सकता। जल चुराने वाले सूर्य से जगत् प्रभावित होता है॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य न तप सकता है, न मूल खनना है। वृष्टि के अभाव में सूर्य अपनी परिधिको भी भारण नहीं कर सकता। जल से ही तो यह दीप्त होता है॥११॥ सूर्य घसन्त ऋतु में कपिल रूप, ग्रीष्म में श्वेत के समान, वर्षा में श्वेत, शरद् में पाण्डु, हेमन्त में ताम्रवर्ण और शिशिर में रक्त हो जाता है॥१२॥ सूर्य के ये ऋतुकालीन वर्ण मैंने वर्णन कर दिये। अब ऋतुओं के अनुसार सूर्य सुमिश्र करता है—यह जानकर आप उसके सामान्य नामों को भी सुन लीजिये॥१३-१४॥

दिग्गण। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मातृगण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि—ये सामान्य नाम हैं॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अय्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित हैं। ये बारह महीना में क्रमशः उत्पन्न करते हैं॥१७-१८॥ विष्णु चैत्र में, अय्यमा वैशाख में, विवस्वान् ज्येष्ठ में, अंशुमान् आपाद में, वरुण भाद्रपद में, इन्द्र

१ क० ख० या०। धातूना०। २ क ख ०२३ पु०। ३ क ख ०ण्मूलक०। ४ ख ०त्प्रमाण हि वृते।
 ५ घ. ०स्वरो वारि०। ६ ख ०स्वर। ना०। ७ क परिचिते। ८ ख ०न श०। ९ ख ०दि द्यामवर्णनं। हे०।
 १० क. ०क्षोभनं। ११ क ०शुमास्तथा। प०।

पज्जन्त्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके। इन्द्र आश्वयुजे मासि घाता तपति कार्तिके ॥२०॥
 मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः। माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥
 शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दोष्यते सदा। दोष्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिर्गर्ग्यमा ॥२२॥
 द्विःसप्तकौर्विवस्वास्तु अंशुमान् पञ्चमिस्त्रिभिः। विवरवानिव पज्जन्त्यो वरुणश्चाग्यमा तथा ॥२३॥
 मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विपुर्णः पड्भिर्घातैकादशभिः शतैः ॥२४॥
 सहस्रेण तु मित्रो घे पूषा तु नवभिः शतैः। उत्तरोपक्रमेऽस्य वदंते रश्मयस्तथा ॥२५॥
 दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रान्तु 'सूर्यलोकादनुग्रहम्' ॥२६॥
 एवं 'नान्ना चतुर्विंशदेक' एषां प्रकीर्तितः। विस्तरेण सहस्रान्तु पुनरग्यत् प्रकीर्तितम् ॥२७॥

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यकं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनिशाब्ददूलाः सारभूतं सनातनम्। अलं नामसहस्रेण 'पठन्नेवं' रत्नं शुभम् ॥२९॥
 यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि वः कीर्तयिष्यामि शृणुष्वं भारस्कस्य वै ॥३०॥
 विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः धीर्मातृलोकक्षुम्भेश्वरः ॥३१॥

आविन मे, घाता कार्तिक मे, मित्र अग्रहण मे, पूषा पीष मे, भग माघ मे और त्वष्टा फाल्गुन मे तपते हैं ॥१९-२१॥
 बारहसौ किरणा से विष्णु, तेरह सौ किरणों से अर्ग्यमा, चौदह सौ किरणा से विवस्वान् और पन्द्रह सौ किरणा से
 अंशुमान् सदा तथा करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् के बराबर किरणों से पर्वग्य, वरुण और अर्ग्यमा दीप्त होते
 हैं ॥२३॥ ग्यारहसौ किरणों से मित्र, घाता, और त्वष्टा दीप्त होते हैं। बारहसौ किरणों से इन्द्र और नौसौ
 किरणा से पूषा दीप्त होते हैं ॥२४॥ उत्तरायण मे सूर्य की रश्मियाँ बरती हैं और दक्षिणायन मे घटती हैं।
 इस प्रकार मे सहस्र किरणें सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२५-२६॥ सूर्य के चौबीस नाम तो मैंने बतला
 दिये, पर उनसे सहस्र नाम भी हैं ॥२७॥

मुनियो मे वहा—हे परमेश्वर! हे प्रजापते! जो मनुष्य उन सहस्र नामों से सूर्य की स्तुति करते हैं,
 उनको क्या पुण्य प्राप्त होता है, कौन सी गति मिलती है? ॥२८॥

ब्रह्मा ने वहा—मुनिगण! सूर्य के सहस्र नामों से क्या प्रयोजन? जो उनकी सनातन तथा सारभूत गुण स्तुति
 है, उसे मुनिये ॥२९॥ सूर्य के जो पवित्र, शुभ तथा गुप्त नाम हैं, उन्हें मैं आपको बतला रहा हूँ, मुनिये ॥३०॥ विवर्त्तन,
 विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक-प्रकाशक, धीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोचन, वर्ता, हर्ता,
 तमिस्रहा, तान, तान, मुचि, सप्तास्ववाहन गमस्तिहस्र, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्तुत—इन द्वाबीस नाम का स्तोत्र

लोकसाक्षी त्रिलोकेश' कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्तशिववाहन ॥३२॥
गमस्तिहस्तो ब्रह्मा' च 'सर्वदेवनमस्कृत। एकविंशतिरित्यप्यस्तव इष्ट सदा' रवे ॥३३॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु 'विश्रुत ॥३४॥
य एतेन द्विजश्रेष्ठा' द्विसाध्येऽस्तमनोदये। स्तोति' सूर्यं शुचिर्भूत्वा सर्वपापं प्रमुच्यते ॥३५॥
मानस चाचिक यापि देहज कर्मज तथा। एकजप्येन तत्सर्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥३६॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च। धूपमन्त्राध्यमन्त्रश्च' बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७॥
अन्नप्रदाने' दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽयं महामन्त्र सर्वपापहर शुभ ॥३८॥
तत्समादय्य' प्रयत्नेन स्तवेनानेन च द्विजा। स्तुवीष्व वरव देव सर्वकामफलप्रदम् ॥३९॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मातृण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मातृण्डजन्ममाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचु

निगुण शश्वतो देवस्तथा प्रोक्तो दिवाकर। पुनर्द्वादशधा जात श्रुतोऽस्माभिरव्योदित ॥१॥

सूर्य को सदा प्रिय है ॥३१ ३३॥ यह स्तवराज तनो लोक में प्रसिद्ध और आराध्य धन तथा याग को देनेवाला है ॥३४॥ जो मनुष्य पवित्र होकर धनो सध्या इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥३५॥ कमणा मनसा वाचा तथा गरिरे से जो कोई भी पाप किया गया है वह सब सूर्य की सन्निधि में एक बार इस स्तोत्र का जप करने से नष्ट हो जाता है। ॥३६॥ यही स्तवराज जप होम सन्ध्योपासन धूप मन्त्र अन्न-मन्त्र और बलि-मन्त्र का जप करने से नष्ट हो जाता है। ॥३७॥ अन्न-दान दान प्रणाम और प्रदक्षिणा में पूजित किया गया यह महामन्त्र सब पापों का हरण कर लेता है ॥३८॥ द्विजगण। इसलिए आप लोग इस स्तोत्र से वर-दामक तथा सर्व-काम फल प्रद सूर्य का स्तुति व जिय ॥३९॥

आ ब्रह्म महापुराण में सूर्य के इक्क स नामा का अनुकृतन नामक

एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

मुनियो ने कहा—आपने निगुण तथा निय सूर्यदेव के बारे में कहा। सूर्य बाह्य प्रकार के हैं। गये—

१ क ० कशो दग्गुह ० ख ० केनो लोचनवर्तित ०। २ ख ब्रह्मण्य स ०। ३ व ० वलोचन ०। ४ ख ग ० वे। श्रीदारोग्यकरश्च ०। ५ ख ० त। पठनवर्द्धि ०। ६ ख ० थठोद्धि ०। ७ ख याति। ८ व ख ० त्रायम ०। ९ ख ० दानमन्त्रव प्राप्तमन्त्रस्तथैव च। पू ०। १० व ख ० स्मान्मूय प्र ०। ११ ख नन्व नन्वपा जात।

तस्य तेजसो राशिं त्रिष्य गर्भे महाद्युतिः । सम्भूतो भास्वरौ जातस्तत्र न तशायो महान् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

'कस्य हि सुता श्रेष्ठा यभूय पटि गोभता । अदिनिदितिदनुश्चैव विनताछारतप्येव च ॥३॥
दशस्ता प्रददौ कस्या कश्यपाय प्रयोदश । अदिजिनयामास देवास्त्रिभुवनैश्चरान् ॥४॥
दश्यादितिदनुश्चोप्रादानवान् अदपितान् । विनताछारतया चाया सद्युष्य स्थाणुज्जमान् ॥५॥
तस्याय पुत्रदोहित्रे पोत्रदोहित्रकादिभिः । व्याप्तमेतज्जगत् सत्यं तेषां तातां च वे मुने ॥६॥
तया कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः । सास्विता राजासादचायै तामसादय गणां स्मृता ॥७॥
दद्यात्तमभुजदक्षत्रे तया त्रिभुवनैश्चरान् । स्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ॥८॥
तानवायत संहिता सायत्याश्वरैर्यदानवा । ततो निराकृतान् पुत्रान्दत्तेर्देवान्दत्तया ॥९॥
हत् त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिमुनिरत्तमा । आदिष्टनवयत्तभागंश्च क्षुधासम्पोहितान् भुङ्गम् ॥१०॥
आराधनाय सवितु पर धनं प्रसज्यते । एकाद्या नियताहारा पर नियममास्थिता ॥
तुष्टाय तेजसां राशिं गगनस्य दिवाकरम् ॥११॥

यह भी हमने जाना गया । पर एव कस्या गन्तेह हम यह ह्य रहा है नि महाबान्तिमन् तया तत्रराशिं सुय कपी
के गम रा कते उत्तम हुण ? ॥१२॥

ब्रह्मा बोल—अब मैं जानूँगी कस्याय हुई जिनम त अग्नि निति दनु और विनता आग्नि तेरह
कस्यायै द्या म कस्याय का ही ॥३॥ अग्नि ने तीनो भुवन के स्वाम देवा का उत्तम किया ॥४॥ निति ने दस्या
को दनु न उष तया ब्रह्ममिदानीं दानवा का और विना आग्नि दूगर् कस्याभा न स्यादरन्ध्रगमा का उत्तम
किया । ५॥ कस्याय क पुत्र-दोहित्र तया पोत्र-दोहित्र आग्नि स यह गपूज जगन् व्य प्त है ॥६॥ कस्याय-पुत्रा म देवता
तो सास्विता ॥ पर दूरे पुत्र राजान तया तामम हैं । ब्रह्मदेवताभा म श्रेष्ठ प्रजापति कस्याय न देवताओ को
त्रिभुवन-स्व म तया पत्र भोजना बनाया । ७॥ उन दानवा का दय और दानव पत्नी देन लग । मुनिगण ।
दय तया दानवा न दयताभा को मगाकर उनका धन प्राण अगहरण कर लिया । दवान्रा को अत्यन्त पीड़ित
तया त्रिभुवन को विनष्ट ह ने हुए देखकर अग्नि मूय की आराधना करने लगी । यह नियमित भोजन तया बर्दिन
नियमा को धारण कर एकाग्रचित्त होकर आकाशस्य तेजाराशिं सुय की स्तुति करने लगी । ११॥

१ ख ०भा रागिग्निग्निजाम ० । २ ख ०रोदेवस्त ० ३ ग ०क्षन्तिर सर्वाव ० । ४ क ०ति । दानवा
यशसहिता सपत्ना दक्षानवा राशसाञ्च तता यष्ट तयामासत्सुदारुणम् । न्यिय वषसहस्र तु तत्राजीयन्त देवता ।
जययन्ताऽभवस्तन वल्गो दयदानवा । त ० । ५ क ०भा । विच्छि ० । ६ ख यत्तमुपस्थिता । ए ० । ७ क ०भा ।
जिताहारा तमनस्का प ० ।

अदितिस्त्वाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं 'विभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवताभीशं' धामाधारं च शाश्वतम् ॥१२॥
 'जगतामुपकाराय त्वामहं स्तोमि' गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१३॥
 प्रहीनुमप्यमासेन 'कालेनाम्बुमयं' रसम्। विभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥१४॥
 समेतमग्निप्रीतिमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाध्नामैवयेन तपते तव ॥१५॥
 विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। यत्तु तस्मात्परं रूपममित्युक्त्वाभिसंहितम् ॥
 अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्। निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्द्विजाः ॥१७॥
 ततः कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः। प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 सा ददशं महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम्। भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिबुद्धं शम् ॥१९॥
 तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥२०॥

अदिति ने कहा—हे पृथ्वीपते ! तुम्हें नमस्कार है। तुम परम सूक्ष्म, अनुपमेय तेज को धारण करने वाले, तेजधारिणी के स्वामी, तेजा के आधार तथा नित्य हो ॥१२॥ ससार के उपकार के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ। तुम्हारे तीक्ष्ण रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१३॥ जाठ महीना में जलमय रस को धारण करने वाले आपके अत्यन्त तीक्ष्ण रूप को नमस्कार है ॥१४॥ सत्य-रज-तम से युक्त तथा अग्नि-सोम सहित आपके रूप को नमस्कार है। ऋग्, यजुस् और साम की एकता से जो आपका रूप तपता है, उसे नमस्कार है ॥१५॥ विश्वात्मक जो आपका रूप है, उसे नमस्कार है। हे सूर्य ! सब से परे जो आपका ओम् रूप है उसे नमस्कार है। हे सनातन ! आपके अस्थूल, स्थूल और निर्मल रूप को भी नमस्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! सूर्य की आराधना करने वाली अदिति निराहार तथा नियमों से युक्त होकर इस प्रकार सूर्य की स्तुति किया करती थी ॥१७॥ विप्रबृन्द ! बहुत दिनों बाद मगवान् सूर्य उस दश-भुत्री के सामने प्रकट हुए ॥१८॥ विश्वर ! अदिति ज्वालाओं के कारण देखने न पाय्य, तेजोरश्मि और भूमि पर स्थित सूर्य को देखकर अत्यन्त डर गई ॥१९॥

अदिति बोली—हे गोपते ! हे जगत् के आदि ! प्रसन्न हो ! मैं आप को नहीं देखती। इसलिए कृपा

अदितिह्वाच

जगदाय' प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यदूपं ते दिवाकर
भवतानुकम्पक विभो त्वद्गुणतान् पाहि मे सुतान्। ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततः ॥ तेजसस्तस्मादविर्भूतो विभावसु'। अवृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥२२॥
ततस्तां प्रगतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजा'। प्राह' भास्वान् वृणुध्वं कं वरं मत्तो यमिच्छसि॥२३॥
प्रणया शिरसा सा तु जानुपौडिनमेदिनी। प्रस्थुषाञ्च विवस्वन्तं वरं सनुपस्थितम्॥२४॥

अदितिह्वाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभगावश्च दंतैर्यद्वान्वंश्च बलाधिकं॥२५॥^१
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं यत्वा तान्नाशये रिपून्॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर॥२७॥
तयानुत्तपं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नार्तिहर काव्यं कर्ता त्वमुच्यते'॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्त्वामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः। प्रणतामदिति विप्राः प्रसादसमुज्जो विभुः॥२९॥

कर मुने अपना रूप दितलाइये। हे भक्तो पर अनुकम्पा करने वाले। हे विभो। आप अपने भक्त मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये ॥२०-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—समुपरांत सूर्य उस तेज से निकलकर तप्त तावे के सघन कान्तिमान् होकर अदिति के सामने प्रकट हुए ॥२२॥ और प्रणाम करत, हुई अदिति से सूर्य ने कहा—'तुम एक वर जो चाहो मुझसे माग लो ॥२३॥ घुटने टक कर प्रणाम करत, हुई अदिति ने वर देने के लिए प्रसन्न सूर्य से कहा ॥२४॥

अदिति बोली—हे देव। प्रसन्न हो। अधिक बल वाले ईश्वर मानवों ने मेरे पुत्रों से तीनों लोक तथा यज्ञ भागों को छीन लिया ॥२५॥ हे गणपते। जन्ही के निमित्त आप मुझ पर अनुग्रह करें। अपने एक अंश से आप उनके माई बनकर शत्रुओं का नाश कीजिये ॥२६॥ हे प्रभो। जिस प्रकार मेरे पुत्र पुनः यज्ञ-भोक्ता और त्रिलोक के स्वामी बनें उसी प्रकार की कृपा आप मुझ पर करें। हे शरणागतों की पीड़ा हरने वाले। आप सबके कर्ता बड़े जाते हैं, मेरे मनोरथ पूरा कर दीजिये ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—धियवृन्द। तब जल चुराने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर दण्डवत् करती हुई अदिति से बोले ॥२९॥

सूर्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः । त्वत्पुत्रशत्रून् दसोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः । निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रास्तु सुषुम्णाहयो रवेः करः । ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः ॥३२॥
निवासं सञ्चिता ऋक् देवमानुस्तदोदरे । कृच्छ्रबान्द्रायणादोश्च सा ऋक् सुसमाहिता ॥३३॥
शुचिना धारयाम्यने दिव्यं गर्भमिति द्विजाः । ततस्तां वश्यपः प्राह किञ्चित्कौपिप्लुताक्षरम् ॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि 'गर्भाण्डमिति नित्योपवातिनी ॥

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना । न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा 'गर्भमुत्सासजं सुरारणिः । जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्बन्धनकोपिता ॥३६॥
तं वृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवच्चंसम् । मुष्टाय प्रणतो भूत्वा 'वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥३७॥

सूर्य ने कहा—मैं अपने हजार अंश से तेरे गर्भ में वास करनेवाला और तेरे पुत्रों के शत्रुओं को सौ अंश ही नष्ट कर दूंगा ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी बाछित फल प्राप्त कर लक्ष्म्या से निवृत्त हुई ॥३१॥ एक वर्ष बाद अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए सहस्र किरणों में से सुषुम्णा नामक सूर्य किरण आकर देवमाता के गर्भ में वास करने लगी ॥३२॥ अदिति भी साधवान् होकर कठिन बान्द्रायण आदि व्रत करने में प्रवृत्त हुई । द्विजगण । 'मैं पवित्रता से गर्भ धारण करूँगी' ऐसा निवेदन करती हुई अदिति से कश्यप ने बोध प्रकट कुछ बातें कही ॥३३-३४॥

कश्यप ने कहा—नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भस्थ अंडे को मार रही हो ?

ब्रह्मा ने कहा—अदिति भी जोष में आकर बोली—दिखो, यह गर्भस्थ अंड (बालक) नहीं मरा है । वस्तुतः शत्रुओं की मृत्यु होगी, ॥३५॥ इतना कहकर पति के कृष्ण से मुपित अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान गर्भ का त्याग कर दिया ॥३६॥ उदयकालीन सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर कश्यप झुनझुन आद्य वागियों

१ ग ० ८ । विप्राव्रतारसचकेदे० । २ ख कृच्छ्रास्तुधारण तस्य सा । ३ ख गर्भेऽण्ड० । ४ ख ० मंमास० ।
५ ख ० गिरौद्याभि० ।

संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् । 'पद्मपत्रसवर्णमिस्तेजसा ध्याप्तदिदमुलः ॥३८॥
अयान्तरिक्षादाभाप्य वक्ष्ये' मुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरा वाग्वाचाक्षरीरिणी ॥३९॥

वाग्वाच

'भारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं' स्वयादितेः । तस्मान्मुने सुतस्तेष्वं मार्तण्डाहयो भविष्यति ॥४०॥
हनिष्यत्यसुरादिचायं यज्ञभागहरानरीन् । देवा निक्षम्येति यचो गगनात् समुपागतम् ॥४१॥
प्रहृष्यन्तुलं याता दानवाश्च हतो जसः । ततो युद्धाय इतेयानाजुहाव शतशतुः ॥४२॥
सह देवं मुंदा युक्ता दानवाश्च तमभ्ययुः । तेषां युद्धमभूद्धोरं देवानामसुरैः सह ॥४३॥
शस्त्राश्च वृष्टिस्सन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् । तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिता ॥४४॥
तेजसा बह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः । ततः प्रहृष्यन्तुलं प्राप्ताः सख्यं विद्यौक्सः ॥४५॥
मुष्टयुस्तेजसां धीनिं मार्तण्डमदिति तथा । स्वाधिकारास्ततः प्राप्ता यज्ञभागाश्च पूर्ववत् ॥४६॥
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमयाकरोत् । कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोद्धर्षञ्च रश्मिभिः ।
'भूतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुटं यपु ॥४७॥

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पश्चाद्भूयं संलब्धवान् रविः । कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥४८॥

॥ आदिसूर्येण उक्तकी स्तुति करने लगे ॥३७॥ स्तुति किये जाने पर अब गर्भस्थ अण्ड से निकल कर कमल-पत्र के समान कान्तिमान् सूर्य तेज से दशा दिशाओं का व्याप्त करते हुए प्रकट हुए तब मुनि-ज्येष्ठ वक्ष्य को लक्ष्य करके सजल मेघ के समान गभीर आकाशवाणी हुई ॥३८-३९॥

वाणी ने कहा—हे मुने ! जिसलिए तुमने अदिति से कहा था कि क्यों अण्ड को मार रही हो इसीलिए यह तुम्हारा पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रख्यात होगा ॥४०॥ यह यज्ञ भागों को हरने वाले असुरों का संहारक होगा । आकाशवाणी सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और दानव निस्तेज हुए ॥४१॥ तब इन्द्र ने देवता को युद्ध के लिए आह्वान किया । दानव भी देवताओं के साथ संधान में प्रसन्नतापूर्वक जुट गये । बड़ा मयानरु देवासुर-सन्धान हुआ ॥४२-४३॥ उनके शास्त्र अस्त्रों की वृष्टि से विभुवन व्याप्त हो गया । उस युद्ध में भगवान् मार्तण्ड ने देखा कि तेज से सब भूदेवता भस्मसात् हो गये ॥४४॥ तब देवगण अत्यन्त हर्षित होकर तेजोरश्मि सूर्य की स्तुति करने लगे । भगवान् की कृपा से देवताओं को पूर्ववत् अपना-अपना अधिकार मिल गया ॥४५-४६॥ स्वयं सूर्य ने भी स्वाधिकार प्राप्त कर अग्नि पिण्ड के समान क्वचित् अस्फुट शरीर को धारण किया, जो कदम्ब-पुष्प के सदृश रश्मियों से कान्तिमान् था ॥४७॥

मुनियों ने कहा—हे जगत्पते ! सूर्य का कदम्ब के समान गोल तथा रमणीयतर रूप कैसे हुआ ? ॥४८॥

१ ग ०त्रमुव० । २ ॥ ०रितस्ते यत् प्रो० । ३ ख त्वयोदितम् । स० । ग त्वयोदिते । त० ।
४ ख. ०तोऽपि पि० ।

ब्रह्मोवाच

‘त्वष्टा तस्म ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते । प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥४९॥
 श्रोष्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः । द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुना तथा ॥५०॥
 यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य भार्ताण्डस्य विवस्वतः । तेनातितापयामास त्रौल्लोकान् सचराचरान् ॥५१॥
 तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः । असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्प्रमथन्ती ॥५२॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः । निर्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥५३॥
 इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी । सम्भाव्या नैव चाश्च्येयमिदं भगवते त्वया ॥५४॥

छायोवाच

‘आ कचग्रहणद्बो वि आशापान्नैव कर्हिचित् । आश्यास्यामि मत्तुभ्यं गन्धता यत्र वाञ्छितम् ॥५५॥
 इत्युक्त्वा श्रीक्षिता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । यत्सराणां सहस्रान्नु वसमाना पितुर्गृहे ॥५६॥
 भर्तुः समीपं याहोति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः । आगच्छद्वडवा भूत्वा कुहनघोत्तरास्ततः ॥५७॥
 तत्र तेषे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमा । पितुः समीपं यातव्या सज्ञायां वाक्प्रमथन्तपरा ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—‘त्वष्टा नामक प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य को जिस नमस्कार के द्वारा प्रसन्न किये
 सनानामक अपनी कन्या व्याह दी ॥४९॥ सूर्य से संज्ञा मे दी पुत्र और एक यमुना नामक कन्या बं । उत्पति हुई ॥५०॥
 भार्ताण्ड का जो अत्यधिक तेज था, वह चराचर सहित त्रैलोक्य का बहुत तपाता था ॥५१॥ उसने गोलान्कार
 रूप को देखकर महान् तेज को न सहती हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥५२॥

संज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ । शुभे ! तुम्हारा क्याण हो ! मेरी आज्ञा से तुम यही
 पर निर्विकार होकर रहो ॥५३॥ हे सुन्दरी ! मेरे दोनो बालका तथा कन्या का पालन-पोषण करना । पर भग-
 वाण से इस आश्याण को बनी न रहना ॥५४॥

छायाने कहा—हे देवी ! जब तक मेरे बाल नहीं पड़ते जायेंगे और शाप नहीं पड़ेगा तब तक मैं इस रहस्य
 को बनी नहीं बतला सक्ती । तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥५५॥ इस प्रकार नहीं जाने पर लगानी हुई संज्ञा
 त्रिगुण को चली गयी । वहाँ एक हजार वर्ष तक वास करने के उपरान्त पिता ने उसे अपने स्वामी के पास
 भौट जाने के लिए विवक किया ॥५६॥ तब पतिव्रता संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके उत्तर-कुण देश में आयी और
 निपटार रहकर तपस्या करने लगी ॥५७॥ द्विजगण ! संज्ञा के अपने पिता के पास चली जाने पर उरों का रूप

१ क ग अय । २ स तय । ३ व ०न्ती तदा तेज । ४ ग ०याप्ययथे० । ५ स आ वेगप्र० । ६ स तु ।
 ७ स ०स्नेवोत्त० ।

तद्रूपधारिणी छाया भास्कार समुपस्थिता । तस्याञ्च भगवान् सूर्यं सनेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
 तप्येव जनयामास द्वौ पुत्रौ' कन्यका तथा । सज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजाना तथाकरोत ॥६०॥
 स्नेहं न पूर्वजानिना तथा' कृतवती' तु सा । मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
 ब्रह्मा पीडयमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयस्य वै बलतः' ॥६२॥
 पदा स तज्जयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायावाच

पदा तज्जयस्य यस्मात्पितुर्भाय्या गरीयसीम् । तस्मात्तद्वप्यं चरणं पतिय्यति न सशय ॥६३॥

ब्रह्मवाच

यमस्तु तेन शपेन भूश पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा पित्र सख्यं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु' माता देव न वर्तते । विसृज्य व्यायस भक्त्या कनीयास सुभूषति ॥६५॥
 तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षतुमहसि ॥६६॥
 शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो मये न जननीमिमां वै सप्तवारं ॥६७॥
 तव प्रसादाच्चरणौ भगवन् न पतेदयथा । मातृशपादिय मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८३॥ भगवान् सूर्य ने उसे सनाहा समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री
 उससे उत्पन्न किया ॥५९३॥ अब नकल सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री का सच्चे सगा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लग ।
 मनु ने तो इसका सहन किया पर यम नहीं सह सका ॥६०॥ ६१॥ उसने विमला द्वारा बहुत पंडित होने पर कोप या
 लज्जकपन या भावी अनय के कारण छाया को लात मारना चाहा पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छायाने कहा—जिस चरण से तु माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़गा इसमें कोई सशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शप से अत्यंत दुःख होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर
 उनसे सारी बात निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव । माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये पर वह तो बड़ बड़ी
 छोट कर छोटे ह । को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पर उठाया कि तु मारा
 नहीं । आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात । हे तपनश्रद्ध । माता ने क्रोध से मुझ नाप दे दिया । इससे
 मैं समझता हू कि यह मेरा माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन् । मातृ नाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय
 करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख उवाच यमः । २ ख सुती । ३ क यथा । ४ क ता पुत्र । म० । ५ क बशात् । ६ ख मनु
 आत्मजेयु न ।

रविहवाच

असन्धं महत्पुत्रं भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो घम्भंजं घम्भगीलिनम् ॥६९॥
सर्वपापमव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राभिगन्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥७०॥
न गन्धमेतमिच्छ्या तु कर्तुं भानुवचस्तव । किञ्चित्तेह विधास्यामि पुनस्नेहादनुग्रहम् ॥७१॥
इमयो मासमादाय प्रयास्यति महीतलम् । कृतं तस्या वचं सत्यं त्वञ्च ज्ञातो भविष्यति ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्त्वग्रवोच्छाया किमर्थं सनयेयु वं । तुल्येष्टव्यधिकं स्नेहं एकं प्रति कृतस्त्वया ॥७३॥
मूत्रं नैपातकं जननी सक्ता कापि त्यमागता । निर्गुणोऽव्यपत्येषु मातां शापं न दास्यति ॥७४॥
सा तत्परिहरन्ती च शापादभोता तदा रवे । कथयामास वृत्तात् स श्रुत्वा इवगुरु दयी ॥७५॥
स चापि तं दयायायमच्छयित्वा तदा रविम् । निदाघुकामं रोपेण सात्त्वयानरतमब्रवीत् ॥७६॥

विश्वकर्मावाच

तथातितेजसा ध्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहती तु तत्सक्ता यने चरति वं तप ॥७७॥
इत्यते ता भवानद्य त्वाभाष्यं शुभधारिणीम् । रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तप ॥७८॥
धृतं मे ब्रह्मणो जायय तव तेजोऽवरोधने । रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कान्तं दिवस्पते ॥७९॥

सूय ने कहा—पुत्र । जिसने इतना क्रोध मिला कारण है जिससे तुम्हारे जस धमन तथा धमगात्र का
नाश हो गया ॥६९॥ सबसे पाप का प्रतिकार है कि तु माता से अभिगन्ता व शाप निवर्तित नहीं हो पाता । ७०॥
मे तुम्हारे माता के वचन को मिथ्या नहीं कर सकना । फिर भी पुत्र-स्नेह का कारण मैं कोई उपाय करूँगा । ७१॥
तुम्हारे पैर का मांस लूँ और तुम्हारे पद जायेंगे इसमें उसका वचन भी मान्य होगा और तुम भी बच जाओगे ७२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसका उद्धारना सूय ने छाया में कहा—यद्यपि तुम समान पुत्रा म म एक व प्रति अश्व
स्नेह कर रहे हो ? ॥७३॥ (इसमें जान पहचान है कि) निश्चय ही तुम स्नेह माता नहीं हो कोई दूसरा मना
भा रहा हो । क्योंकि गुणहीन सन्तान की भी माता शाप नहीं देती ॥७४॥ तब सूय व शाप मय त छया ने मारा
कत्तल कर दिया । सूय ने यह मुनिकर अपने द्वार के पास गया । विश्वकर्मा ने शाय स रूप बन कर
इसका रूप की समयावधि पूजा की और सान्त्वना देने हुए उनसे कहा । ७६॥

विश्वकर्मा ने कहा—आपका अथवा तत्र से व्यापार द मरुत्प कान सही दुर्गमना वत म तपस्या
कर रही है ॥७७॥ आपने रूप व लिए वन म पार तपस्या करत हुई पवित्र आचरण करा अपन पन का आज
आपने ॥७८॥ आपने तेज को अवरोध करत के विषय म मैंने ब्रह्मा का वाक्य मना है । मारा का
रसमी । आज मैं आपका रूप का मनाहर बना दूँगा ॥७९॥

१ श ० भगवानम् । २ ग ० विद्वान् । ३ व ० मतवन् । ४ स ० प्रवृत्त्याम् । ५ स ० एव । ६ ग ० य
रपि पुत्रम् । ७ क ० च । ८ क ० अन्विता । ९ क ० अथ यदि तेन रोचते । १० ।

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता। तस्याञ्च भगवान् सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यकां तथा। संज्ञा तु पार्थिवो तेषामात्मजानां तथाऋतोत् ॥६०॥
स्नेहं न पूर्वज्जातानां तथा कृतवतीं तु सा। मनुस्तत्सान्तर्वास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः। स वै कोपाच्च बाल्याञ्च भाविनोऽयस्य वै बलात् ॥६२॥
पदा सन्तर्जयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायावाच

पदा तर्जयस यस्मात्पितुर्भाष्या गरीयसोम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥६३॥

ब्रह्मवाच

यमस्तु तेन क्षपेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्मात्मा पित्र सर्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन सुख्यमस्मासु माता द्वे न वर्तते। विसृज्य ज्ञायसं भक्षया कनीयासं बुभूषति ॥६५॥
तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातितः। बास्माद्वा यवि वा मोहात्तद्भुवान् क्षन्तुमर्हति ॥६६॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो धतः। ततो मम्ये न जननीमिमां वै तपतावर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा। मातुःशोषादयं मेऽद्य तथा क्षितय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८॥ भगवान् सूर्य ने उसे सज्ञाही समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९॥ अब नकली संज्ञा अपने पुत्र-पुत्री को सर्व्व; संज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी। मनु ने तो इसका सहन किया, पर यम नहीं सह सका ॥६०-६१॥ उसने विमाताद्वारा बहुत पीड़ित होने पर कोप या लड़कपन या माँबी अनर्थ के कारण छाया को लात मारना चाहा, पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता की मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शोष से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पाप जाकर उनसे सारी बातें निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव! माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये, पर वह तो बड़े को छोड़ कर छोटे हैं। को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उठाया, किन्तु मारा नहीं। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात! हे तपनश्रद्ध! माता ने क्रोध से मुझे शाप दे दिया। इससे मैं समझता हूँ कि यह मेरी माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन्! मातुः शोष के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख तदा सम०। २ ख सुतो। ३ क यथा। ४ क ०ती पुरा। म०। ५ क. वसात्। ६ ॥ ०५॥
आत्मजेषु न।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा धृताः । त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
 त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डविवर्तिनाम् । सम्भूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
 शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥९६॥
 सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन । ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥९७॥
 उपगमिषुमारब्धा गान्धर्वकुशला रविम् । षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः ॥९८॥
 मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सम्प्रयोगः सुखप्रदम् । विश्वाची च घृताची च उर्व्वदय्य तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजन्या च रश्मा चाप्सरस्तांबरा । ननूतुजंगतामोशे लिख्यमाने विभावसौ ॥१००॥
 भावहासबिलासाद्यान् कुर्व्वरयोऽभिनयान्बहून् । प्रावाद्यन्त ततस्तत्र क्षीणा वेण्वादिभर्ताराः ॥१०१॥
 पणवाः पुष्कराश्चैव मुदङ्गाः पटहानकाः । देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽप्य सहस्रशः ॥१०२॥
 गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः । सूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
 ततः कृताञ्जलिपुटा अभितनग्रास्ममूर्त्तयः । लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेषुः सर्वदेवताः ॥१०४॥
 ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजसः शततनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥१०५॥
 आजानलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्मणा । नाभ्यनन्दतु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥१९३॥ बालकिल्लय सन्नक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रों से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवी ने भी खरादे जाने हुए सूर्य को हृद्यपूर्वक स्तुति की—'तुम मुक्तों के मोक्ष और ध्यानिया के ध्येय हो ॥१९२-१९॥
कर्माकांक्ष का अनुष्ठान करने वाले प्राणियों की गति भी तुम्ही हो।' हे देवेश! तुम पूज्य हो। हे जगतपते! हमारा भगल हो। द्विपद तथा चतुष्पद जीवा से नित्य हमारा कल्याण हो ॥१९४॥ इतब यक्ष, राक्षस, सर्प और विद्याधर गण ने अञ्जलि बाँध शिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा काना को मुख देने वाली अनेक वारें भी कही ॥१९५-१९६॥ 'हे नूतपाल! आपका तेज हम सह्य हो।' तब हाहा, हूहू, नाख और तुम्बुरु जो गान्धर्व क्री ॥१९७-१९८॥ विदवाधी, घृताधी, उर्वरी, तिरोत्तमा, मेनका सहजया और रश्मा—ये श्रेष्ठ प्रद गीत गाते लगे ॥१९७-१९८॥ विदवाधी, घृताधी, उर्वरी, तिरोत्तमा, मेनका सहजया और रश्मा—ये श्रेष्ठ ऋषपाएँ हाथ, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करतीं हुई नाचने लगीं। बीजा, बर्हि, सांड, डोल, नक्कारे, मुद्गर, कमलपाएँ हाथ, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करतीं हुई नाचने लगीं। गन्धर्व तथा अप्सरागणों के ठमक, देवकुचुमि और शख आदि वाजे सैकड़ों-हजारों की सख्या में बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणों के गान, नाच और मेढी आदि वाजा के शब्द से महान् कोलाहल हुआ ॥१९९-२०३॥ तब अस्तित्व से नतमस्तक हो अञ्जलि जोडकर सब देवनाओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥२०४॥ देवों के एकत्रित होने से कोलाहल मभ गया। उसी समय विश्वकर्मा ने धीरे धीरे तेज को सश्लिप्त कर दिया। ॥२०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जघं तक सूर्य को खराद

१ क ०त्ता । त्वन्नामस्मरणाग्नात्तो । २ क ०ष्टप्रव० । ३ क ०श्च सुप्र० । ४ क ०यागमु० ।
५ क ०या । तुष्टुवुर्ज० । ६ क ०र्माश लि० । ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि मू० । ८ ख समत । ९ ख र्नी ।
अयार्गस्तित्वि० ।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः । ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥८०॥
 विवस्वकर्मा त्वनुजातः शाकद्वीपे विवस्वताः । अग्निमारोप्य तत्तेजःशतनाथोपचक्रमे ॥८१॥
 अमताशेषजगतो नाभिभूतेन भास्वता । समुद्राद्रिवनोपेता त्वागरोह महो नभः ॥८२॥
 गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम् । अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥८३॥
 विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथागंवाः । ध्यमिधन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥८४॥
 ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्यन्ति मुनिसत्तमाः । ब्रुधद्यद्रश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो मयुः ॥८५॥
 वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्ताः सहस्रशः । व्यशीर्यन्त महामेघा घोराशवविराविणः ॥८६॥
 भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूयःकाशरसात्तरुम् । जगदाकुलमत्यर्थं तवासीन्मुनिसत्तमाः ॥८७॥
 प्रेलोक्यमाकुलं दौक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥८८॥
 आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वभूतये भुवः । स्वर्गस्थित्यस्तकालेषु त्रिधा भवेन तिष्ठसि ॥८९॥
 स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ' घर्मवर्ष दिवाकर । इन्द्राद्यस्तदा देवा लिह्यमानमयास्तुवन् ॥९०॥
 जय देव 'जगत्सवामिन् जयाशेष जगत्पते । ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोदमा ॥९१॥
 तुष्टुवुर्विबिधैः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्वोतिवाविनः । वेदोक्तिभिरथाग्राभिर्वासिष्ठित्याश्च तुष्टुवुः ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् सूर्य ने त्वष्टा से कहा—ऐसा ही सही । 'तब सूर्य का रूप पहले मण्डल-
 कार था ॥८०॥ परचात् शाकद्वीप में सूर्य की आकाश से विवस्वकर्मा ने उनको अग्नि (भ्रमण-यत्र) पर चढ़ा कर उनके तेज की
 विशीर्ण अर्थात् सक्षिप्त करना प्रारम्भ किया ॥८१॥ समस्त जगत् के नात्रिषु सूर्य के भ्रमण से समुद्र, वन आदि सहित
 पृथिवी आकाश में चली गई ॥८२॥ विष्वन्द । अन्धमा, यह और तारा सहित निखिल आकाश व्याकुल होकर
 नीचे आ गया ॥८३॥ समुद्र का जल चंचल हो उठा । चाटियों के शीर्ण विशीर्ण हो जाने से बड़े-बड़े पर्वत टूटने
 लगे ॥८४॥ मुनिगण । ध्रुव रश्मि आधार वाले समस्त नक्षत्र, जिनकी किरणों के बन्धन टूट गये, नीचे गिर पड़े ॥८५॥
 भ्रमण-वेग से पतित वायु के द्वारा हजारों घोर शब्द करने वाले मेघ उल्लास कर फेंक दिये गये ॥८६॥ मुनिगण ।
 सूर्य-भ्रमण के समय भूमि, आकाश और पाताल आदि विशिष्ट जगत् अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥८७॥ तीनों
 लोक की भ्रमण से आतुल देववर ब्रह्मा सहित देवगण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥८८॥ 'तुम देवा के आदिदेव हो,
 तुम ससार की उत्पत्ति के लिए हो और सृष्टि स्थिति प्रलय—तीनों काल में तुम तीन प्रकार से रहते हो ॥८९॥
 हे दिनकर । हे जगन्नाथ । हे ताप बरसने वाले । तुम्हारा बल्ल्याण हो ।' उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने
 भी सरादे जाते हुए सूर्य की स्तुति की ॥९०॥ हे देव । आप की जय हो । हे अशेष जगत् के स्वामी । आपकी जय
 हो । वसिष्ठ, अत्रि आदि सप्तर्षि भी स्वस्तिवाचन पूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करने लगे

अग्निराद्याश्च भास्व त लिख्यमान मुदा युता । त्वनाय मोक्षिणा मोक्षो ध्येयस्त्वध्यानिना पर ॥९३॥
 त्व गति सर्वभूताना केम्वंकाण्डविवर्तिनाम् । सम्पूज्यस्त्व तु देवेश नोऽस्तु जगता पते ॥९४॥
 न नोऽस्तु द्विपदे नित्य श नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगा ॥९५॥
 वृताञ्जलिपुटा सर्वे शिरोभि प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मन श्रोत्रमुखवाहा ॥९६॥
 सह भवतु तेजस्ते भूताना भूतमावन । ततो हाहृहृहृश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तया ॥९७॥
 उपगमिषुमारब्धा गाघ्र्यं कुशला रविम् । यदजमध्यमगाधारगानत्रयविशारदा ॥९८॥
 मूचुनाभिश्च तालेश्च सम्प्रयोगे सुखप्रदम् । विश्वाची च घृताची च उर्व्वदय्य तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजया च रम्भा चाप्सरसावरा । ननूतुजंगतामीने लिख्यमाने विभावसी ॥१००॥
 भावहासविलासाद्यान कुर्व्वन्त्योऽभिनयानबहून् । प्रावाद्यत ततस्तत्र वीणा वेण्वादिमन्त्ररा ॥१०१॥
 पणवा पुष्कराश्चैव मूढका पटहानवा । देवदुर्धम शङ्कवा शतशोऽप्य सहस्रश ॥१०२॥
 गायदभिश्चैव नृत्यदभिर्गाघ्र्यं रप्सरोगणैः । तुर्य्यवादिप्रघोषैश्च सर्वे कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
 तत वृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तय । लिख्यमान सहस्राशु प्रणैमु सर्वदेवता ॥१०४॥
 तत कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजस शतन चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥१०५॥
 वाजानुलिखितश्चासौ निपुण विश्वकर्म्मणा । नाम्न्यनवस्तु लिखन् ततस्तेनावतारित ॥१०६॥

॥११३॥ वाल्मिय सक मन्त्रिण ने श्री वेण्वा मया श भास्वर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवो ने
 म सपने जाने हुए सूर्य की हृषपूवक स्तुति क—तुम मुक्ता के मोन और ध्यानिषा र ध्येय हो ॥९२ ९३॥
 रम्भा का अन्वृष्टान करने वाल प्राणिषा र गति म। तम्ही हो। हे देवेश । तुम पूज्य हो। हे जगत्पते । हमारा
 मण्डल । द्विप तथा चतुष्प जवा से निय हमारा कयाग हो ॥९४॥ तब यक्ष राक्षस सप और विद्याधर
 गन अजलि बाध गिर पका कर सूर्य का प्रणाम किया और मन तथा काना को मुख देने वाला अनेक बात सी
 रहा ॥९५ ९६॥ हे भूतपाल । आपका तेज हम सख्य हो। तब हाहा हृह नारद और तुम्बक जो गाघ्र्य
 विषा म कान तथा पङ्क मध्यम और गाधार—इन स ना गावो ने विगारव प मठना और ताला के साथ मुख
 प्र यत गाये लग ॥९७ ९८॥ विवाचा घृताचा उवा तिलोत्तमा मेनका सहजया और रम्भा—ये धष्ट
 जम्बरप हाव भाव तथा विलास पूवक अभिनय करत हुई नाचने लग यणा वण पाश डोल नचकारे मदग
 डम्बर दवदुर्धम और गय यादि बाजे सवडा-ह्वारा क सख्या ने बजने लगे। गधव तथा अप्सरागणो के
 गाव नाच और मेरा आदि वाजा क गल से महान कालाहल हुआ ॥९९ १०३॥ तब शक्ति से नतमस्तक हो अजलि
 जाकर सब दवनामा ने सूर्य का प्रणाम किया ॥१०४॥ देवो के एतव्रित होने ने कोलाहल मच गया। उसी
 समय विश्वकर्मा ने ध रे ध रे तेज को सलिप्त कर दिया । ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दसता से जब तक सूर्य को सराद

१ क ०ता । वनामस्मरणामखो । २ क ०प्रव० । ३ क ०स्व सुप्र० । ४ क ०यगमु० ।
 ५ क ०रा । तुष्टयज० । ६ क ०मा लि० । ७ ख ०णवादीनि वाचानि म० । ८ ख गमन । ९ ख ०न ।
 अथानुलिखि० ।

न तु निर्भस्तिंतं रूपं तेजसो हननेन तु । कान्तारिकान्तरं रूपमधिकं शुशुभे ततः ॥१०७॥
 इति हिमजलधम्मकालहेतोर्हंरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
 तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्भ्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥१०८॥
 एवं जन्म रवेः पूर्वं बभूव मुनिसत्तमाः । रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्तितम् ॥१०९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्यसमाश्रिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम् ॥१॥
 योऽयं दीप्तो महातजा वह्निराशिसमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्यावरजङ्गमे । 'प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु' पूर्वं बुद्धिरजायत ॥३॥

दिया । यद्यपि सूर्य इससे प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी सक्षिप्त तेज वाले रूप की उन्होंने निंदा भी नहीं की । और अब उनका रूप सुन्दर से भी सुन्दर बन गया ॥१०६-१०७॥ हिम, जल, धर्म और काल के कारण तथा ब्रह्मा विष्णु-महेश से स्तुत सूर्य के सरादे जाने के सम्बन्ध में सुनकर आयु के अन्त में मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है ॥१०८॥ मुनिवर ! पहले इस प्रकार सूर्य का जन्म हुआ । उनके परमरूप के बारे में भी मैंने कह दिया ॥१०९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सूर्य-जन्म शरीर लिखन नामक वर्तिकाओं अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों का कीर्तन

मुनियो ने कहा—फिर हम सूर्य सम्बन्धी तथा मुनादये । क्योंकि उस पवित्रकथा को सुनते हुए हम तृप्ति नहीं हो रहे हैं । हम जानना चाहते हैं कि अग्नि राशि के समान कान्तिमान् तथा महातेजस्वी (सूर्य) को इतना प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब तीनों लोक अन्यकारणवश और स्यावर-जगम नष्ट हो चुके थे तब पहले (त्रिगुण-

वेद्यं वेदयिदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८॥
 विद्वत्कृद्भिश्चभूतं च वद्वानरसुरार्चितम् । विद्वत्स्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१९॥
 परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः । परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०॥
 अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमध्ययम् । अनादिनिघनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय^१ ।

नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय^२ ॥२२॥

नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नमः^३ सर्व्वसुखप्रदाय ।

नमो नमः सर्व्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥२३॥

स्तुत. स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः । उवाच धात्रा कल्याण्य को वरो यः प्रदीयताम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

तवातिर्तैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत् । सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो ॥२५॥
 एवमस्तिवति सोऽप्युवाच^४ भगवानादिकृतं प्रभुः । लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं धर्मवर्षहिमप्रदः^५ ॥२६॥
 ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चाप्ये मोक्षकाङ्क्षिणः । ध्यायन्ति^६ ध्यायिनो देवं हृदयस्थं विचारकम् ॥२७॥
 सर्व्वं लक्षणाहीनोऽपि^७ 'युक्तो वा सर्व्वपातकः' । सर्व्वञ्च तरते पापं^८ 'देवमकं' समाभितः ॥२८॥

वेद-वेदाओं से जानने योग्य, नित्य सब ज्ञानों से युक्त तथा सब देवा के रूप से बहकर जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१८॥ विद्व-कृतां, विद्वत्कृतां, अग्नि तथा देवताओं से पूजित, ससार में स्थित और अचिन्त्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१९॥ यज्ञ, वेद, लोक और आकाश से परे तथा परमात्मा नाम से विख्यात जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२०॥ अविज्ञेय, अलोच्य, ध्यान से अगम्य, अव्यय, अनादि और अनन्त जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२१॥ कारणा के कारण रूप तुम्हें नमस्कार है, पाप विमोचन रूपी प्रभो^१ तुम्हें नमस्कार है, दैत्यों के नाश करने वाले तुम्हें नमस्कार है, रोगों से उन्मुक्त करने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब धरदानी को देने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब के सुखदायक तुम्हें नमस्कार है, सब को धन देने वाले तुम्हें नमस्कार है और सब को ब्रुद्धि देने वाले तुम्हें नमस्कार है^२ ॥२२-२३॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य तैजस रूप को धारण कर कल्याणमयी^३ बाणी से कहने लगे—'आप लोगो को मैं कौन सा वरदान दूँ?' ॥२४॥

देवताओं ने कहा—'प्रभो^४ तुम्हारे इस तैजस रूप को कोई नहीं सह सकेगा। इसलिए ससार के कल्याण के निमित्त अपने रूप को सहन करने योग्य बनाने की कृपा करो ॥२५॥ तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य लोकों के कल्याण के लिये धाम, धर्मा तथा हिम देने लगे ॥२६॥ तर्ष से सास्य, योग्य, और मोक्षकांक्षी जन हृदयस्थ मास्कर वा ध्यान किया करते हैं ॥२७॥ सब लक्षणा से हीन तथा सब पापों से युक्त मनुष्य भी सूर्यदेव का आश्रय

१ क ख ० विनाशना ० २ क ख ० विनाशना ० ३ क. ० म सर्व्वमतिप्र ० ४ ग ० प्युक्ती ग ०

५ क ख ० प्रमु । त ० ६ ख मनसा ७ ग मुक्तो । ८ ख दुख । ९ ख ० वमाश्रित्य मानव । अ ० ।

'अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोर्भक्तिनमस्कारकलां नार्हन्ति योऽशोम् ॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम् । पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते' दिवाकरम् ॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं 'देवं ये नमस्यन्ति भास्करम् । सर्वकलिविषयनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं व्रजन्ति' ते ॥३१॥

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवे ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुष्वं गदतो मम । भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः ॥३३॥
ॐ सूर्योऽयं मा भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः । गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्घाता प्रभाकरः ॥३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् । सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्ताशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चैस्कन्वो वैश्ववणो यमः ॥३६॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरन्यनस्तेजसा पतिः । धर्म्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥३७॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमराधयः । कलाकाष्ठामूर्त्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः ॥३८॥
संवत्सरकरोऽवत्यः कालचक्रो विभावसुः । पुरुषः शाश्वतो योगी व्यवसायकः सनातनः ॥३९॥

ब्रह्म कर पाप-समुद्र को पार कर जाता है ॥२८॥ अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ, बहुत दक्षिणा—ये सब सूर्य को भक्तिपूर्वक नमस्कार करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥२९॥ मङ्गलालय तीर्थों के तीर्थ, मङ्गल के मङ्गल और पवित्रों के पवित्र सूर्य को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य इन्द्र आदि द्वापरा स्तुति किए गए सूर्यदेव को नमस्कार करते हैं, वे सब पापा से मुक्त होकर सूर्य-लोक को जाते हैं ॥३१॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् । चिरकाल से हमारी सुनने की इच्छा है, अब आप सूर्य के एकसौ आठ नामा की बताइए, जो आपने पहले कहा था ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । (यदि यही इच्छा है तो) भास्कर के गुह्य तथा स्वर्ग-मोक्ष-दायक अष्टोत्तरशत नामा की मुनिये—आ सूर्य, अर्धमा, यम, त्वष्टा पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, घाता, प्रभाकर, ॥३४॥ पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, ॥३५॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्ताशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्ववण, ॥३६॥ यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि अन्यन, तेजस्पति, धर्म्मध्वज, वेदकर्ता, वेदान, वेदवाहन ॥३७॥ कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वमराधय, कला, काष्ठा, मूर्त्त, क्षपा, याम, क्षण, ॥३८॥ संवत्सर, अवत्य, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यवसायक, सनातन, ॥३९॥ कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष,

१ ख ग होनाश्च वे० । २ ग ०द्यध्व दि० । ३ ख देवैर्येन० । ४ ख प्रयान्ति । ५ व सोमश्च ।
६ ग ०गोपम । ७ ख ०म । विकर्तनश्च ब्रह्मश्च स्वीयवस्ते० । ८ क सत्य । ९ ख कलि । १० ख ०वच पक्षा
मासास्त० । ११ व ०पक्ष मासास्त० ।

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः 'सागरोऽश्वश्च' जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥४०॥
 भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको बह्निः सर्वस्याऽऽदिरलोलुपः ॥४१॥
 'अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिर्देवितः' ॥४२॥
 मनः सुपर्णो भूतादिः क्षोध्यः प्राणधारणः। घन्वन्तरिधूमकेतुरदिदेवोऽदितेः सुतः ॥४३॥
 द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४४॥
 देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरत्मा सूक्ष्मात्मा मंत्रेयः कक्षान्वितः ॥४५॥
 एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नाम्नामष्टशतं रयं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमा ॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्धितम्।
 वरकनकहृताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥४७॥
 सूर्योदये यः सुप्तमाहितः पठेत्, स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
 लभेत जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम् ॥४८॥
 इमं स्तव्यं देववरस्य यो नरः, प्रकीर्तयेच्छुद्धमना समाहितः।
 विमुच्यते शोकदवाग्निसागराहस्यभेत कामाग्ननसा ॥४९॥
 इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभुविसंबावे सूर्यनामाष्टोत्तरशतं
 नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण सागर, अश्व, जीमूत, जीवा, अरिहन्, ॥४०॥ भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक, बह्नि, सर्वादि, अलोलुप, ॥४१॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिर्देवित, ॥४२॥ मनः, सुपर्ण, भूतादि, क्षोध्य, प्राणधारण घन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, ॥४३॥ द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता पितामह स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप ॥४४॥ देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मंत्रेय और कक्षान्वित ॥४५॥ द्विजवयं। अमित तेजस्वी तथा कीर्तनीय सूर्य के रमणीय अष्टोत्तरशत नामों को मैंने सुना दिया ॥४६॥ देवगण, पिता तथा यक्षा से सेवित, राक्षस, वज्रमा तथा सिद्धों से बन्धित और अग्नि तथा सुवर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को जगत् कल्याण के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ जो मनुष्य सूर्योदयकाल में सावधान होकर इन नामों का पाठ करेगा, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न समस्त पूर्वजन्म के स्मरण, स्मरण-शक्ति और उत्तम बुद्धि को प्राप्त करेगा ॥४८॥ देवयेष्ट सूर्य के दस स्तोत्र का जो मनुष्य सावधान होकर शुद्ध मन से कीर्तन करेगा, वह शोकानिर्मुक्त, सागर से मुक्त होकर यथेष्टित कामनाओं का प्राप्त करेगा ॥४९॥

श्री ब्रह्मा महापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों की तीसरी अध्याय समाप्त ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्राख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धवृत्तशेखरः ॥१॥
विद्राग्य विद्युधान् सत्त्वन् सिद्धविद्याधरानुषीन् । गन्धर्व्यप्रक्षनागांश्च तथाग्यांश्च समागतान् ॥२॥
जघान पूर्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले । यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं 'सर्वसम्भारसंभूतम् ॥३॥
पत्युः प्रतापसन्त्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवीकसः । शान्तिं न लेभिरं विप्राः 'कैलासं' शरणं गताः ॥४॥
स आस्ते तत्र धरदः शूलपाणिर्धृषध्वजः । पिनाकपाणिर्भगवान् 'दक्षयज्ञविनाशनः ॥५॥
'महादेवोऽकले' देशे कृत्तिवासा मृषध्वजः । एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदो हरः ॥६॥

मुनय ऊचुः

'किमर्थं' न भवो देवः सर्वभूतहिते रतः । जघान यज्ञं दक्षस्य देवं 'सर्व'रत्नरुद्रवृत्तम् ॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम् । धोनुमिच्छामहे ब्रूहि पर कौतूहलं हि नः ॥८॥

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो ये सर्वव्यापक, त्रिपुर-शत्रु, त्रिनेत्र, पावर्त प्रिय, रुद्र और मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी देव हैं, उन्होंने सिद्ध, विद्याधर, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, देवता तथा दूधरे श्री रामागत व्यक्तियों का तिरस्कार कर पृथ्वी-तल पर पतन करते हुए दक्ष के समृद्ध, रत्नों से परिपूर्ण और सब प्रकार के उपररणा से सुमण्डित यज्ञ का विध्वंस कर दिया ॥१-३॥ विप्रवृन्द ! उनके प्रताप से मंत्रस्त इन्द्र आदि देवता पान्ति न प्राप्त कर शरणवश 'कैलास' पर्वत पर गये ॥४॥ मुनिवर्ग ! वहाँ वे बरदायक, शूलपाणि, मृषध्वज, पिनाकपाणि, दक्ष-यज्ञ-विनाशन, भगवान्‌वामी, व्याघ्र-वर्मधारी, हर तथा एनाग्रव (स्थानविशेष) में सर्वकामप्रद भगवान् महादेव रहते हैं ॥५-६॥

मुनियों ने कहा—सब प्राणियों ने द्वित में निरत उस दानरदेव ने सब देवा से अर्घ्य ददा देने यज्ञ को क्या नष्ट किया ? प्रभो ! अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा ? हम सुनना चाहते हैं, हम नहीं उत्सुकता है यही है, कृपया सुनाइए ॥७-८॥

१ स ०र्वलोकेश्वरस्तुतः ० । २ क ० स । न दार्प ले ० । ३ क व पुनस्तः । ४ क ० त । यज्ञास्ते धरदो देव ० । ५ क स ० शत्रुतु ० । ६ क स ० वीरते । ७ क स ० र्व भगवान् देव । ८ क ० हे प्रह्लाद ।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या यादवैव पतिसङ्गता । स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीयता पिताऽभ्यर्चयंदगृहे ॥९॥
 ततस्त्वभ्यर्चिता विप्रान्मयवस्ता पितुर्गृहे । तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या 'अभ्यर्चकस्य वै' ॥१०॥
 नाऽज्जुहावाऽमजा ता वै दक्षो रुद्रमभिद्विपन । अकरोत्सन्नति दक्षे न च काञ्चिन्महेश्वर ॥११॥
 जामाता इवशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थित । ततो जात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ता पितुर्गृहम् ॥१२॥
 जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम् । ताम्यो होना पिता चक्रे सत्या पूजामसम्मताम् ॥
 ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधसमाकुल ॥१३॥

सत्युवाच

यद्यौयसीभ्यः श्रेष्ठाऽहं किं न पूजति मा प्रभो । असत्कृतामवस्थां यं कृतवानसि गर्हिताम् ॥
 अहं श्रेष्ठां वरिष्ठा च मा ॥ सत्कर्तुंमहंसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ताऽब्रवादिना दक्ष सरपतलोच्चन ॥१५॥

दक्ष उवाच

स्वतः श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बाला सुता मम । तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमता सति ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की आठ कन्याएँ थीं जिन्हें उसने यथायोग्य पतिपुत्रों से व्याहृ दिया। (एक समय) यज्ञ में) दक्ष ने सब कन्याओं को बुलाकर सत्कार किया ॥९॥ विप्रवृद्ध । वे सम्मानित कन्याएँ तब से पिता के ही घर में वास करने लगीं । उनमें वही बहिन सती थी जो शिव की पत्नी थी और जिसे दक्ष ने वर से शत्रुता के कारण नहीं बुलाया था ॥१०॥ शिव ने इससे दक्ष के प्रति कोई शोध नहीं प्रकट किया । स्वभाव से तेजस्वी जामाता इवशुर के प्रति तटस्थ रहा ॥११॥ तब सब बहनें पिता के घर गईं हैं—यह जानकर सती बिना बुलाये ही पिता के घर चली गई ॥१२॥ पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया । तब क्रोध से आकुल सती ने पिता से कहा ॥१३॥

सती बोली—प्रभो ! छोटी बहनों से मैं बड़ी हूँ । फिर आप सम्मान क्यों नहीं करते ? मेरा निरादर करके मेरा अवस्था का क्यों बुरी बना रहे हैं । मैं श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हूँ । मेरा भी सत्कार काजिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—सती की यह बात सुनकर दक्ष ने आस लाल कर उससे कहा ॥१५॥

दक्ष ने कहा—सत । तुमसे श्रेष्ठ उत्तम और पूज्य मेरी छोटी पुत्रियाँ हैं । उनके जो स्वामी हैं वे

१ ग ० समता । २ क ख ० चिता सवा निवसति पि० । ३ क शकस्य । ४ ख दक्षो । ५ ख ० श्वरे ।
 आजगामाप्यनाहू० । ६ क ख ० समता० । ७ क ० श्रेष्ठा च पूज्या च ।

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्याश्च महायोगा सुधार्मिका । गुणैश्चैवाधिका इत्याध्या सत्वे ते श्रियम्बकात् सति ॥१७॥
 वसिष्ठोऽग्निं पुलस्त्यश्च अङ्गिरा पुलहं क्रतु । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥१८॥
 तैश्चापि स्पृष्टं ते शर्वं सत्वे ते चैव त प्रति । तेन त्वा न बुभूषामि प्रतिफूलो हि मे भव ॥१९॥
 इत्युक्तवास्तदा दक्ष सम्प्रमूढेन नेतसा । श्रापार्थमात्मनश्चैव धेनोवता धे महर्षय ,
 तयोक्ता पितर सा धे क्रुद्धा देवी तमब्रवीत ॥२०॥

सत्युवाच

बाह्मन कर्म्मभिर्यस्मादबुद्धा मां विगर्हन्ति । तस्मात्स्यजाम्यहं बहामम तात तत्वाऽऽत्मजम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तोनापमानेन सती बुद्धादमपिता । अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्य स्वयम्भव ॥२२॥

सत्युवाच

येनाहमपवेहा धे पुनर्वहेन भास्वता । तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्मिकी पुन ।
 गच्छेय धर्म्मपत्नीत्वं श्रियम्बकस्यैव धीमत ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्रैव।प समासीना दृष्टाऽऽत्मानं समाबधे । धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारयामात्मनाऽऽत्मानं ॥२४॥

मेरे सम्माननीय हैं ॥१६॥ सत्य । वे सब जामाता गिव से अधिक गुणवान ब्रह्मिष्ठ ब्रवी महाभाग। धर्मिन्मा तथा प्रामर्शनीय हैं ॥१७॥ वसिष्ठ अग्नि पुलस्त्य अगिरा पुलह, क्रतु भृगु और मरीचि—ये मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं ॥१८॥ इनसे गिव स्पर्मा करता है और उससे मे सब । इस कारण गिव को मैं अपना गघु समझ कर गुम्हाया मान नहीं करना चाहता ॥१९॥ इस प्रकार दक्ष ने बिना सोचे समझ बड़ क्या दिया मानो उसने अपने को क्षय दिलाने के लिए ही महापिया का नाम ले लिया । पिता का यह उत्तर सुनकर सती ने क्रुद्ध होकर कहा ॥२०॥

सती बोली—तात ! जिसगिए आप मन वाणा और बग से मुझे दुष्ट तथा निम्नित बना रहे हैं इसलिए आपसे उत्तम इस धार/र का अब मैं त्याग कर रही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब जब अपमान के दुष्ट से क्रुपित सती ब्रह्मा को नमस्कार करने बहने लगी ॥२२॥

सती बोली—इस देह का परित्याग करने पर फिर जो मुझे नान्तिमान् गरीर मिले उन गरीर में भी मैं विवेकान्ति तथा धर्मिन्मा होऊँ और बुद्धिमान् गिव की हूँ। पत्नी बनूँ ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरात्न ब्रवी परबैठी क्रुद्ध सती ने आत्मा को नग्राहित किया और जामा ने आत्मा

ततः स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरितः । सर्वाङ्गेभ्यो विनिभृत्य बह्निर्भस्म भ्रकार ताम् ॥२५॥
तदुपश्रुत्य निघ्नं सत्या देव्याः स शूलघृक् । संवादञ्च तयोर्बद्ध्वा यायातम्येन, शङ्कुरः ॥
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः ॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादधमता दक्ष सहसैवाऽऽयता सती । प्रशस्ताश्चेतराः सर्वास्त्वत्सुता भर्तृभिः सह ॥२७॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षयः । उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्यायोनिजाः ॥२८॥
'हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः' । अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽन्यथापु पुनः ॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । प्राचीनर्बाह्यः पौत्रः पुत्रदत्तापि प्रचेतसः ॥३०॥
दक्ष इत्येव नाम्ना श्व मारिषायां जनिष्यति । बन्धायां क्षालिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥३१॥
अहं तन्नापि ते विघ्नमाचरिष्यामि कुर्मते । धम्मकामार्थयुक्तेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो वदं सोऽन्यथापु पुनः ॥३३॥

दक्ष उवाच

यस्मात्सर्वं मरुते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि । तस्मात् सार्द्धं सुरयंजे न रथां यक्षयन्ति वै द्विजाः ॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अप स्पृशन्ति कर्मसु । इहैव वत्स्यसे लोके विवं हित्वाऽऽयुगक्षपात् ॥
ततो देवैस्तु ते सार्द्धं न तु पूजा भविष्यति ॥३५॥

मे आनेर्गे। धारणा को जब धारण किया तब वायु से प्रेरित अग्नि ने सती के सब अंगों से निकल कर उसे मरमनाई कर दिया ॥२४॥ सती देवी का मरण सुनकर तथा दक्ष और सती का संवाद यथावत जान कर दक्ष के विनाश के लिए भगवान् चुकर ने त्र्योप किया ॥२६॥

श्री शंकर बोले—'दक्ष' जिसलिए हठात् आई हुई सती का तुमने अपमान किया और इतर पुत्रियों का अपमान के साथ सम्मान किया इसलिए द्वितीय वैवस्वत मनु के आने पर पुन ये महर्षि तुम्हारे यज्ञ में अयोनिज होकर उत्पन्न होंगे ॥२७॥ २८॥ वायुप मन्वन्तर में ब्रह्मा के यज्ञ में फिर उत्पन्न होंगे ।' इस प्रकार सप्तर्षियों को शाप देकर शिव ने फिर से दक्ष को शाप दिया ॥२९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में तुम मनुष्यों के राजा, प्राचीनर्बाह्य वै पौत्र प्रचेता के पुत्र तथा 'दक्ष' इसी नाम से प्रख्यात होंगे और वृक्ष की पुत्री मारिषा से तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३१॥ दुष्ट-वृद्धे । वही मैं मैं तुम्हारे धर्म अर्थ, और काम से युक्त कर्मों में बार-बार बिघ्न डालूंगा ॥३२॥ इस प्रकार कहे गये दक्ष ने भी क्रोध को शाप दिया ॥३३॥

दक्ष ने कहा—क्रूर । मेरे कारण तुमने ऋषियों को शाप दिया है, इसलिए ब्राह्मणगण यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे ॥३४॥ क्रूर । पुण्य कर्म करते समय तुम्हें आहुति देकर लोग जलस्नान करेंगे । स्वर्ग छान्दकर मृग पीतने तक तुम इसी लोक में घास बरोगे । देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं होगी ॥३५॥

इत्येयोऽनुशयो 'ह्यासीत्तयोजित्यन्तरं गतः'। प्रजपतेइव दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः॥४९॥
 'तस्मान्नानुशयः कार्यो' वरेष्विह कदाचन। जित्यन्तरगतस्यापि भावितस्य' शुभाशुभैः॥
 जन्तोर्न भूतये ह्यातिस्तत्र कार्यं विजानता ॥५०॥

मुनय ऊचुः

कथं रोपेण सा पूर्व' दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो॥५१॥
 देहान्तरे' कथं तस्याः' पूर्वदेहो बभूव ह। भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम्॥५२॥
 स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् भूति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सर्व्वश्चैश्वर्यसमन्वितः॥५३॥
 तत्सर्व्वं विस्तरवद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हं सिसाम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे पुण्या कथां खातिमनोहराम्॥५४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलः कथां पापप्रणाशिनोम्। उभाश्चक्रुरयोः पुण्यां सर्व्वकामफलप्रदाम्॥५५॥
 कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विषदां वरम्। अपृच्छद्विमवान् वृत्तं लोके ह्यातिकरं हितम्॥५६॥
 केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ह्यातिश्च परमा मुने। तथैव चाचर्चनीयश्च सत्सु तत्कथयस्व मे॥५७॥

का ऐसा पूर्व वर था, जिसका परिणाम जन्मान्तर में आकर निकला॥४९॥ इसलिए ब्रह्मों के साथ वर नहीं करना चाहिये। जीवों को पूर्व वर का फल जन्मान्तर में भी मुगलना पड़ता है। अतः विद्वान् को ऐसा नहीं करना चाहिये॥४९-५०॥

मुनियो ने कहा—ब्रह्मा! पहले कयो कौष से दक्ष की पुत्री सती अपने धरिर् का त्याग कर हिमालय के गृह में उत्पन्न हुई? ॥५१॥ दूसरे जन्म में भी कैसे उसको पहली देह मिली? शिव के साथ संयोग कैसे हुआ? महादेव और पार्वती का सवाद कैसे हुआ? ॥५२॥ उस ब्रह्मन् जन्म में स्वयंवर तथा विवाह कैसे हुआ? हे जगन्नाथ! यह सब आश्चर्यजनक बात है॥५३॥ ब्रह्मन्! यह सब विस्तरपूर्वक हमें बतलाइये। अत्यन्त मनोहर तथा पवित्र कथा को हम सुनना चाहते हैं॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिशार्दूल! उभा और शक्र की पापनाशिनी, पवित्र तथा सब कामनाओं को देनेवाली कथा को आप लोग सुनिये॥५५॥ किसी समय अपने गृह से आये हुए मानवा में श्रेष्ठ कश्यप से हिमालय में लोक में स्थाति-वर्धक तथा कल्याणकर वृत्तान्त पूछा—'मुने' किस तरह अक्षय लोक मिलेंगे, परम स्थाति होगी और सत्सुराओं में प्रतिष्ठा बढेगी—यह हमें बताइये॥५६-५७॥

१ क ० संतपो तेजन्तराज्तरा। प्र०। २ ख गते। ३ क ० स्माश्र सख०। ४ ख ० योर् धीरे। ५ क ० स्य मुरेरपि। ज०। ६ ख मै। देहान्तरे कथ तस्य पुनर्वहे न मुञ्चति। वासना न जहात्येव देहान्तरगतेऽपि वा। दुःख त्वनुसमात्पन्तस्तत्र कार्मा विजानत। गु०। ७ क पूर्णा। ८ ग ० रे पुनस्तस्या कथ दे०। ९ ख ० स्या पुनर्वहे।

कश्यप उवाच

अपत्येन' महाबाहो सव्यमेतदवाप्यते । ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभि सह ॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपुच्छसि । वर्त्तमिष्यामि यच्चापि यथादृष्टं पुराऽञ्चल ॥५९॥
धाराणसीमहं गच्छन्नपश्य सस्थित दिवि । विमान' सुनय दिव्यमनीषम्य महर्द्धमत् ॥६०॥
तस्याधस्तादात्तनाद गतंस्याने शृणोम्यहम् । तमहं तपसांजात्वा तत्रैवाग्निरहित स्थित ॥६१॥
अपागान्तत्र शैलेन्द्र' विप्रो नियमवान् शुचि । सीर्याभिषेकपूतात्मा परे तपसि सस्थित ॥६२॥
अथ स व्रजमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विज । विघ्नेश स तदा वेश स गतो यत्र भूधर ॥६३॥
गर्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तवा मुनीन् । अपश्यदार्तोऽबु खार्तास्तानपुच्छञ्च स द्विज ॥६४॥

द्विज उवाच

के पूय वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्यधोमुखा । दु खिता केन मोक्षश्च युष्माक भविताऽनघा ॥६५॥

पितर ऊचुः

यद्य ते कृतपुण्यस्य पितर सपितामहा । प्रपितामहाश्च विलम्बयामस्तत्र दुष्टेन कर्मणा ॥६६॥
नरकोऽय महाभाग गतंरूपेण सस्थित । त्व चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम् ॥६७॥
यावत्स जीवसे विप्र तावदेव वय स्थिता । मृते त्वयि भूमिष्यामो नरक पापचेतस ॥६८॥

कश्यप ने कहा—हे महाबाहो ! सन्तान से सब कुछ प्राप्त होता है । ब्रह्मा और ऋषियों के साथ मेरी क्याति सन्तान ही से है ॥५८॥ हे शैलेन्द्र ! क्या यह आप देख नहीं रहे हैं जो मुझसे पूछते हैं । हे पवन ! तो भी जैसा मैंने देखा है वैसा बतलाऊंगा ॥५९॥ जब मैं वाराणसी जा रहा था तब आकाश में स्थित नवन दिव्य अनुपम तथा महदैववप-सम्पन्न एक विमान मुझ दिखाई पड़ा ॥६०॥ उस विमान के नीचे गतस्थान (गड्ढा) में मैंने आतनाद सुना । उसको तपस्या से मैं जानकर वहीं अन्तर्हित होकर ठहर गया ॥६१॥ इसके उपरान्त हे शैलेन्द्र !, एक सपत्नी पवित्र ॥ वस्त्रानो सेपवित्रात्मा और उत्कृष्ट तपस्वी ब्राह्मण वहा आया ॥६२॥ गमन करते हुए ब्राह्मण को एक व्याघ्र ने डरा दिया । हे भूधर ! तब वह द्विज उस स्थान में चला गया जहाँ वह गड्ढा था ॥६३॥ गड्ढे में वीरण (लत) के गुच्छों से लटकते हुए दुःखपीडित मुनियों को देखकर उस द्विज ने पूछा ॥६४॥

द्विज ने कहा—वीरण के गुच्छों से लटकते हुए नीचे मुख किये हुए तुम कौन हो ? किसने तुम्हें यह दुःख दिया है ? हे निष्पाप ! किस प्रकार तुम्हें लुटकारा मिल सकता है ? ॥६५॥

पितरों ने कहा—तुझ पुण्यात्मा के पितामह प्रपितामह आदि पितर तेरे दुष्ट कर्म से कष्ट पा रहे हैं ॥६६॥ महामाग ! गत रूप में स्थित यह नरक ही है । तू ही वीरण का गुच्छा है । तुझमें ही हम लोग लटक रहे हैं ॥६७॥ विप्र ! जब तक तू जी रहा है तभी तक हम लोग स्थित हैं । तेरे मर जाने पर हम सब पापी नरक को जायेंगे

१ ख तपसवः । २ क ० क्याति परा तेन । ३ ख ० न स्वस्ति महिष्य मनोवेग यः । ४ ख ० न वसिष्ठो नियमस्थित । जी० ।

यदि त्वं वारसयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम् । उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेतत् ॥६९॥
नान्येन तपसा पुत्रं सीर्यानाञ्च फलेन च । एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥७०॥

कश्यप उवाच

॥ तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम् । पितॄन् गर्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥७१॥
स्वयं रुद्रस्य दयितं सुवेशो नाम नामतः । सम्मतो बलवान् रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणवद्भुजम् । उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं वरर्याणिनीम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

॥ एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थितः । तपश्चकाराप्यतुल्यं येन तुष्टिरभून्मम ॥७४॥
तदा तमुत्पपात ह वरदोऽस्मीति धाम्नवम् । ब्रूहि तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥७५॥

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणैः सर्वैरलङ्कृतम् । एव धरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽस्ति मे प्रभो ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजा । तदा तस्मै वरं चाहं दत्तवान्मनसेऽस्तितम् ॥७७॥

॥६८॥ यदि तू विवाह कर गुणवान सन्तान को उत्पन्न करता है तो उसी से हम लोगो की मुक्ति हो जायगी ॥६९॥ पुत्र । और किसी तपस्या या तपों के फल से हमारी मुक्ति सम्भव नहीं है। महाबुद्ध । ऐसा करके वय से पितरो का उद्धार कर ॥७०॥

कश्यप ने कहा—द्विज भे ऐसा ही करैगा यह प्रतिज्ञा कर शिव की आराधना की और गत से पितरो का उद्धार कर उहे गणपालक बना दिया ॥७१॥ वह स्वयं रुद्र का सुवेश नामक प्रिय बुद्धिमान तथा बलवान गणपाल हुआ ॥७२॥ हे शैलेन्द्र । इसलिए घोर तपस्या करके अत्यन्त गुणवान पुत्र तथा सुदरी कन्या को उत्पन्न कीजिये ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋषि द्वारा इस प्रकार का सुभाव प्राप्त कर शैलेन्द्र नियमयुक्त होकर अतुल्य तप करने लगा जिससे मैं प्रसन्न हो उसके समीप जाकर बोला— मैं वर देने आया हूँ। हे शैलेन्द्र । तुमसे पूछा सतुष्ट हैं । हे सुव्रती । मांगो इस तपस्या का फल तुम क्या चाहते हो ? ॥७४७५॥

हिमवान ने कहा—भगवन । मैं सबगणसम्पन्न सन्तान चाहता हूँ। प्रभो । यदि आप सतुष्ट हैं तो ऐसा ही वरदान भक्ष दीजिये ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । हिमालय के वचन को सुनकर मैंने उसे यह भवोन्मिलित वरदान दिया

दत्तकद्वयशतं तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपुत्रो तु देवलं सुपुत्रं सुतम् ॥९१॥
 या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला। पुत्रं सा तमलकस्य जंगोपव्यमुपस्थिता ॥९२॥
 तस्यापि च शङ्खलिखितो स्मृतो पुत्रावयोनिजो। उमा तु या मया तुभ्यं कीर्तिता वरवर्णिनी ॥९३॥
 अयं तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रपूषितमिहाऽऽलक्ष्य वसस्तामहमवधम् ॥९४॥
 देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने। स्वयां सृष्टमिदं सख्यं मा कृत्वा तद्विनाशय ॥९५॥
 त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सध्वान् स्वतेजसा। ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रायितं सम्प्रतीह नः ॥९६॥

देव्युवाच

यदर्थं तपसो ह्यस्य धरणं मे पितामह। त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति ॥९८॥
 शब्धं एव पतिः श्रेष्ठः सध्वंलोकेऽवरोऽवरः। वयं सदैव यत्प्रेमे वक्ष्यां वं किङ्कुराः शुभे ॥९९॥
 स देवदेव, परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भुरायास्पति देवि तेऽन्तिकम्।
 उदाररूपो विकृतादिरूपः, समानरूपोऽपि न यस्य कस्यचित् ॥१००॥

प्राप्त किया ॥९०॥ दत्तक का पुत्र भृगु-वशी शुक्र था, जिससे व्याहृकर एकपुत्रां मे देवल नामक पुत्र को उत्तर
 दिया ॥९१॥ इन कुमारियों में तीसरी एकपाटला का विवाह अलक के पुत्र जैगीपव्य से हुआ ॥९२॥ उसके शख
 और लिखित नामक दो अयोनिज पुत्र हुए। जिस सुन्दरी उमा के बारे में मैंने आपसे कहा है, उसने तपस्या के
 बल से संपूर्ण त्रिलोकी को प्रवासित कर दिया। यह देखकर मैंने उससे कहा ॥९३-९४॥ हे देवि! हे सुन्दरि!
 क्या तुम तपस्या से लोको को तपाओगी? तुमने सब की सृष्टि की है। ऐसा करने पुन उनका विनाश मत
 करो ॥९५॥ तुम्ही अपने तेज से लोकी की धारण करती हो। हे जगन्माता! बहो, तुम्हें क्या अभीष्ट है ॥९६॥

देवी ने कहा—पितामह! मैं जिसलिए तप कर रही हूँ, वह तो आप जानते ही हैं। फिर क्यों पूछ रहे
 हैं? ॥९७॥

ब्रह्मा ने कहा—तब मैंने उससे कहा—‘शुभे’। तुम जिसके लिए तप कर रही हो, वह स्वयं यहाँ आकर
 तुम्हें स्वीकार करेंगे ॥९८॥ नल्याणययी। सब लोको के ईश्वर के ईश्वर शिव ही श्रेष्ठ पति हैं, जिनके सदा हम
 वस्य तथा दास बने रहते हैं ॥९९॥ देवी! वह देव-देव, स्वयम्भु, परमेश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेगे, जो उदार
 रूप विकृत आदि-रूप महेश्वर, पर्वतलोकवासी, चराचर के स्वामी, प्रथम, अग्रमेव (न आपने योग्य), चन्द्रमा

महेश्वरः पर्वतलोकावासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः ।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवर्चसा, 'विभोपणं' रूपमिवास्त्यतो यः ॥१०१॥
इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वत्युपाख्यान-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततस्ताम्रधुवन् देवास्तवा गत्वा तु सुन्दरीम् । देवी शीघ्रेण कालेन धूर्जटिर्नीललोहितः ॥१॥
स भर्ता तव देवेशो भविता' मा तपः कृयाः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम् ॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह । सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता । अयागाच्छन्नतिलकस्त्रिवर्णातिहरो हरः ॥४॥
विकृतं रूपमास्याय हृत्सो बाहूक एव च । विभग्ननासिको भूत्वा कुञ्ज' केशान्तपिङ्गलः ॥५॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम् । अपोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम् ॥६॥

के बिना ही इन्द्र के समान तेजस्वी तथा भयानक रूप के सदृश अवस्थित हैं और जिनके समान रूप वाला कोई नहीं है ॥१००-१०१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्म और ऋषि के संवाद प्रकरण में चौतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त देवता लोग आकर उस सुन्दरी से कहने लगे—'हे देवि ! अब शीघ्र ही देवी के स्वामी महादेव जी तुम्हारे पति होंगे । तप मत करो' ॥१३॥ ऐसा कहकर देवगण पार्वती की प्रदक्षिणा कर अदृश्य हो गये । और पार्वती भी विप्र्राम करने लगी ॥२३॥ वह देवी 'जच्छा मद्वा' ऐसा कहकर अपने पवित्र आश्रम के द्वार पर उत्पन्न अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥३३॥ इसके अनन्तर देव-दुसहारी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले महादेव वहाँ आये, जिनके रूप तथा मुख विभूत थे, नाक कटी हुई थी, नेत्रों वा अन्तिम भाग पीला था और बाहें छोटी थी । उन्होंने गिरि-नन्दिनी से कहा—'देवी ! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ' ॥४-५॥ इससे बाद ब्रह्मणप्रिय,

अन्तर्भावविशुद्धात्मा' कृपानुष्ठानलिप्ताया। तमुवाचाध्वं पाद्याभ्यां मधुपर्कं चैव ॥७॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥८॥

देव्युवाच

भगवन् स्वतन्त्राहं पिता मे स्वप्रणीर्गृहे। स प्रभुर्म्मम दाते ये कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् देवस्तथैव' विकृतः प्रभुः। उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट् ॥११॥
स त विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमयाव्ययम्। भीतः शपाच्छ विमना इव वचनमब्रवीत् ॥१२॥

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान्' भुवि देवता'। मनोपितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते ॥१३॥
स्वयं वरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति ॥१४॥
तच्छृत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः। देव्यां सनीपमागरय इदमाह महामना ॥१५॥

शिव उवाच

देवि पित्रा ह्वनुज्ञातः स्वयं वर इति श्रुति'। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता' भवेदिति ॥१६॥

योग से सिद्ध तथा विद्युद्ध अन्तरामा उमा ने शकर के आगमन को जानकर उनकी कृपा पाने की लिप्ता से उन्हें अर्थ आचमनीय तथा मधुपर्क दिया और पुष्पो से उनकी पूजा करके कहा—॥६-८॥

देवी बोली—भगवन् ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे घर मे पिताजी मुख्य हैं। द्विजश्रेष्ठ ! मैं तो कन्या हूँ। वे ही मेरे वान करने में समर्थ हैं। अतः आप जाकर के उन विनाशरहित पर्वतराज से याचना कीजिये। विप्र ! यदि वे मुझे आपको दे दें तो उचित है ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उदन्तर पूर्ववत् विकृतरूपधारी भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर से कहा—‘शैलराज ! मुझे आप अपनी कन्या दें।’ तब पर्वतराज ने विकृत रूप से ही उन्हें अविनाशी रुद्र समझ कर शाप के डर से दुखी होकर यह वचन कहा ॥११-१२॥

शैलेन्द्र ने कहा—भगवन् ! मैं पृथ्वी पर देवरूप ब्राह्मणों का अपमान नहीं करता। महामेधाविन् ! मेरी जो इच्छा है यह आप सुनिये ॥१३॥ मेरी कन्या का ब्राह्मणों से सत्कृत स्वयवर होगा। वहाँ वह जिसका वरण करेगी, वही उसका पति होगा ॥१४॥ पर्वतेश्वर के ये वचन सुनकर भगवान् शिव पार्वती के समीप आकर कहने लगे ॥१५॥

शिव ने कहा—देवी ! ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता की आज्ञा से स्वयवर होगा, उसमे तुम

तदापृच्छ्य समिप्यामि 'दुर्लभां त्वां धरानने। रूपवन्तं समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरिताम्। भावञ्च खद्विहितं प्रसादं मनसस्तया ॥१८॥

सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूदबुद्धिरन्यथा। अहं त्वां वरयिष्यामि 'नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥१९॥

अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता। स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृत्तोऽसि मे ॥२१॥

ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृत्तस्तदा। उवाच तमशोकं वै वाचा सज्जीवयन्निव ॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृत्तोऽस्म्यहम्। तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्तवमरः सम्भविष्यसि ॥२३॥

कामरूपी कामपुण्यः कामदो दयितो मम। सर्वभरणपुण्यादयः 'सर्वपुण्यफलोपगः' ॥२४॥

सर्वप्रभक्तकश्चैव अमृतत्वाद् एव च। सर्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढप्रियः ॥२५॥

निर्भयः सर्वलोकोपु' भविष्यसि सुनिर्वृतः। आश्रमं येवमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥२६॥

मित्रको चुनोगी, वही तुम्हारा स्वामी होगा। हे सुमुखी ! इसलिए तुम्हें दुःखीय जानकर मैं जा रहा हूँ, क्योंकि कपवान् को छोड़कर मला तुम कैसे कुरूप वा वरण करोगी ? ॥१९-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त शिव के प्रति अपने भाव और मन को प्रसन्न करने वाली उसी वाणी को सोचती हुई उमा ने देवताओं के स्वामी शंकर से कहा—'आप अन्यथा न मानें। मैं आप ही वा वरण करूँगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अथवा हे विप्र ! हे महाभाग ! यदि आपको किसी प्रकार वा सदेह होता है, तो यही पर मैं आपकी मन से वरण किए लेती हूँ।' ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा ने वही पर स्थित अशोक की मञ्जरी को हाथों से उठाकर शिव के कपे पर रखकर कहा—'आप मेरे वृत्त (वरण किये गये) हो चुके।' तब भगवान् शिव उमा से वृत्त होकर उस अशोक वृक्ष से इस प्रकार बहने लगे मानो वाणी से उसे जीवित कर रहे हो ॥२१-२२॥

शिव बोले—तुम्हारा इस पवित्र मञ्जरी से जैसे मैं वृत्त हुआ हूँ वैसे ही तुम भी अजर-अमर हो जाओगे ॥२३॥ तुम कामरूपी, कामरूप पुण्यवाले, काम देने वाले, मेरे प्रिय, सब आभूषण रूप पुण्यो से धनी, सब प्रकार के पून-पन्नों से युक्त, सब अशोक वा मदारग करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट, निसिक्त गन्धो तैं परिपूर्ण तथा देवताओं के अत्यन्त प्रिय होगे ॥२४-२५॥ समस्त लोका में तुम निर्विघ्न तथा निर्भय रहोगे। चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध इस

१ श्र. ०लंमार्जित व०। २ क. ०वा। देवीप्रोवा०। ३ क. ०द्वितीयो। अ०। ४ य नान्यद्भूत व०। ५ क. ०वैरंजित०। ६ य. ०पुण्यकरोपम। स०। ७ क. ०तपत्र ए०। य. ०तत्वर ए०। ८ य. ०यु सर्वत्र भविष्य०।

यो हि यास्यति पुण्यार्थी^१ सोऽश्वमेधमवाप्स्यति । यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं न गच्छति ॥२७॥
यश्चात्र नियमयुक्त प्राणान् सम्यक् परित्यजेत् । स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

'एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छय' हिमवत्सुताम् । अन्तर्दधे जगत्स्रष्टा सर्वभूतप^२ ईश्वरः ॥२९॥
सापि देवो गते तस्मिन् भगवत्यमितात्मनि । तत^३ एवोन्मुखो भूत्वा शिलार्था सम्बभूव ह ॥३०॥
उन्मुखो सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभो । निशेव चन्द्ररहिता न^४ बभौ विमनास्तदा ॥३१॥
अयं शुभाव शब्दश्च बालस्यातंस्य शैलजा । सरस्युदकसम्पूर्णं समीपे चाश्रमस्य च ॥३२॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेव स्वयं शिवः । क्रीडाहेतो^५ सरोमध्ये ग्राहप्रस्तोऽभवत्तदा ॥३३॥
योगभाया समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम् । तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्स्नं समभाषत ॥३४॥

बाल उवाच

ब्रातु मा कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम् । पिवकण्ठं बाल एवाहमप्राप्तार्यमनोरथ ॥३५॥
प्रयामि निधनं वक्ष्ये ग्राहस्थास्य दुरात्मन । शोचामि न स्वकं देहं ग्राहप्रस्तं सुकुक्षितः ॥३६॥
यया शोचामि पितरं मातरश्च तपस्विनीम्^६ । ग्राहगृहीतं मा श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सृजौ ॥३७॥

आश्रम पर जो कोई पुण्यामिलापी व्यक्ति आयेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा ॥२६॥ जो यहाँ मरेगा वह भी ब्रह्मलोक को जाएगा । और जो यहाँ नियमपूर्वक प्राण-त्याग करेगा, वह देवी की तपस्या से युक्त होकर महा-गणाधिपति होगा ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सब मृतो के पालक, जगत्स्रष्टा, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न शंकर उमा से बिदाई लेकर अन्तर्धान हो गये ॥२९॥ पावती भी सर्वज्ञा शिव के चले जाने पर उन्हीं का ध्यान करती हुई शिला-खड्ग पर बैठ गई ॥३०॥ उस समय उसी जगत्प्रभु महेश्वर शिव ने मन लगाये हुई दुखी उमा चन्द्रमा रहित रात्रि की तरह शोमाहीन थी ॥३१॥ कुछ समय बाद पार्वती ने आश्रम के समीप ही जल से परिपूर्ण सरोवर में बालक का आर्तनाद सुना ॥३२॥ देवताओं के भी देव स्वयं शिव ही बालक का रूप धारण करके क्रीडा के निमित्त बीच सरोवर में ग्राह-प्रस्त हो गये थे ॥३३॥ योगभाया में स्थित होकर ससार की उत्पत्ति के कारणभूत शिव अपने रूप को इस प्रकार मध्य सरोवर में करके बोले ॥३४॥

बालक ने कहा—ग्राहके द्वारा गण्ट चेतना वाले मुझे कोई बचाये । हाथ कण्ट है । मैं बालक ही रहा, अपनी अमिलापा को भी पूरी नहीं कर सका ॥३५॥ इस दुरात्मा ग्राह के मुँह में मैं मर रहा हूँ । ग्राह के प्रसने से अत्यन्त दुःखी मुझे अपनी देह की उतनी चिन्ता नहीं है जितनी कि पिता तथा तपस्विनी माता की है ॥३६॥ मैं ग्राह-गृहीत होकर मर गया—एसा सुनकर मेरा प्यार करने वाले तथा एक पुत्र वाले माता पिता निश्चय ही

१ ख यात्रार्थं । २ ग देवस्त० । ३ ख भूत्वा वृक्षराजमशोक हि० । ४ क ञ्छय पिरिजां द्रुतम् ।

५ क भगणश्व० । ख भगवद्देव० । ६ ख भगवन्माता० । ७ ख तदेव दुःखी भूत्वा या समाया सविषा ह ।

८ ख सा । ९ क भद्रस्विनीम् ।

'प्रियपुत्रावेकपुत्री प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यत' । अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रम ॥
अन्तर्ग्राहेण प्रसूतस्तु यास्यामि निधनं किल ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवी तं नादं विप्रस्याऽऽर्त्तस्य शोभना । उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विज ॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुहृषिणम् । ग्राहस्य मुक्तमापन्न वेपमानमवस्थितम् ॥४०॥
सोऽपि ग्राहवर, श्रीमान् दृष्ट्वा देवोमुपागताम् । त गृहीत्वा द्रुतं यातो मध्यं सरस एव हि ॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमात्तं तदाकरोत् । अयाह देवी दुःखार्त्ता बालं दृष्ट्वा प्रहावृतम् ॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम् । विमुञ्चेम महार्द्र क्षिप्र भीमपराक्रम ॥४३॥

ग्राह उवाच

यो देवि विषते पठे प्रथमं समुपैति माम् । स आहारो मम पुरा विहितो लोकभर्त्तुभि ॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे पठेऽहनि गिरोग्रजे । ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैन मोक्षे वयञ्चन ॥४५॥

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे चरित तप उत्तमम् । तेन बालमिममुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥४६॥

प्राणी को त्याग देवे । अहो खेद तथा कष्ट है कि मैं अकृताश्रम बालक (आश्रम धर्म को बिना प्राप्त निय हो) बीच
घरोवर म ग्राह-प्रसूत हुए मर जाऊँगा ॥३७-३८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुन्दरी उमा दुःखी बालक व उस आतनाद की सुनन ही उठकर उधर ही चल पड़ी,
त्रिपर वह ब्राह्मण-बालक था ॥३९॥ चन्द्रमूली उमा ने ग्राह के मुँह म पड़े हुए तथा वीपत हुए गुरुपवान् बालक
को देया ॥४०॥ देवी की हेतते ही वह ग्राहराज बालक को सीधकर बीच सरोवर म ले जाने लगा तब तत्रस्वी
बालक आननाद करने लगा ॥४१॥ अनन्तर ग्राह-गृहीन बालक की देववर दुःख-वीरित देवी कहन लगी ॥४२॥

पार्वती बोली—हे महापराक्रमी ग्राहराज ! हे महासत्त्व ! इस बालक को सीध छाड़ दो । हे महासत्त्व
शामी ! यह अपने माँ-बाप का एक ही पुत्र है ॥४३॥

ग्राह ने कहा—हे देवि ! छडेदिन पहले-महल जो मुझे प्राप्त होता है वही मेरा आहार होता है—ऐसा विधान
ने मेरे लिए पहले से विधान बना रखा है । हे महामागे ! हे विरतिन्दिनी ! नि म-देह यह आज छडे दिन ब्रह्मा
॥ प्रेरित भोजन मुझे मिला है । मैं इसे किसी (भी) अवस्था म नहीं छोड़ूँगा ॥४४-४५॥

देवी ने कहा—हे ग्राह ! हे स्वामी ! तुम्ह नमस्कार है । मैंने हिमाग्य म गिरर पर जो कुछ भी
उत्तम तपस्या की है उससे इस बालक को छोड़ दो ॥४६॥

१ क ० वा तु ता नूनमप प्राणास्त्यजि० । २ क ० प्यजि । अ० । ३ श ० द बालराजः० । ४ श निगु ।
५ श दुर्गति । ६ क प्राप्ते । ७ क ० ज्ञे चीनं वीज० ।

ग्राह उवाच

मा व्यपस्तपसो देवि' भृशं बालं शुभानने । यद्वर्षीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥४७॥

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविर्गाहितम् । तत् कृतं नात्र सन्देहो यतो मे ग्राह्याणां प्रिया ॥४८॥

ग्राह उवाच

यत् कृतं वं तपः' किञ्चिद्भयत्यां स्वल्पमुत्तमम् । तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽनु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥४९॥

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्यं महाग्राहं कृतं मया । तत्ते सर्वं मया दत्तं बाल मुञ्च महाप्रह ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूयित । आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥५१॥

उवाच सर्वं दुष्टात्मा' देवी लोकस्य धारिणीम् ॥५२॥

ग्राह उवाच

देवि किं कुर्यानेतत्ते' सुनिश्चित्य महाव्रते । तपसोऽप्यर्जनं दुःखं तस्य त्यागो न शक्यते ।

ग्राह ने कहा—हे बाले ! हे सुमुखी ! हे देवी ! ब्रह्म तपस्या का व्यय भव करो ! हे श्रेष्ठे ! मैं जो कहता हूँ वह करो ! उन्नी से इसको मुक्ति मिलेगी ॥४७॥

देवी ने कहा—ग्राह राज ! शीघ्र बहो ! जो सज्जनो से अनिन्दित बात है उसे मैं अवश्य कहूँगी इसमें कोई सन्देह नहीं । क्योंकि ग्राह्या मुझे प्रिय है ॥४८॥

ग्राह ने कहा—तुमने जो कुछ बोझा कि तु उतम तप किया है वह सब मुझे शीघ्र दे दो ताकि इसे भोजन मिल जाय ॥४९॥

देवी ने कहा—हे महाग्राह ! जन्म से लेकर जो कुछ भी मैंने पुण्य किया है वह सब तुम्हें समर्पित है बालक को मुक्त कर दो ॥५०॥

ब्रह्मा ने कहा—उदुपरान्त वह ग्राह उस तपस्या से भूयित हो मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान तथा दुर्निरीक्ष्य हो गया । प्रसन्नचित्त ग्राह लोक धारिणी देवी से कहने लगा ॥५१॥

ग्राह बोला—हे महाव्रतधारिणी देवी ! तुमने ऐसा क्यों किया ? तपस्या का भजन बहुत दुःख से होता है । उसका त्याग ठीक नहीं है । हे सुन्दर कटि वाली ! तुम इस बालक के साथ साथ अपना तप भी ले लो ! तुम्हारी

गृहाण तप एव त्वं बाल चेमं सुमध्यमे^१। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभवत्या वर तस्माद्बदामि त ॥
सा त्वेवमुक्ता प्राहेण^२ उवाचेद महाव्रता

॥५३॥

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्षो विप्र प्रयत्नत । तप पुनर्मया प्राप्त न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥५४॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृत बालस्य मोक्षणम् । न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥५५॥
इत्था चाह न गृह णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते । न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रवत् पुनराहरेत् ॥५६॥
वत्समेतन्मया तुभ्य नाऽऽबदानि हि तत् पुन । स्वय्येव रमतामेतद्बालश्चाप विमुच्यताम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तपोऽक्षरता प्रशस्याथ मुक्त्वा बाल नमस्य च । देवीभादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥
बालोऽपि सरससतीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा । स्वप्नलब्ध इवार्थोपस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५९॥
तपसोऽपचय मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा । भूय एव तप कर्तुमारेभे नियमस्थिता ॥६०॥
कर्तुंकामा तपो भूयो ज्ञात्वा ता शङ्कर स्वयम् । प्रोवाच वचन विप्रा^३ मा कृथास्तप इत्युत ॥६१॥
महामेतत्तपो देवी स्वया दत्त महाव्रते । तत्सनेवाक्षय तुभ्य भविष्यति सहस्रधा ॥६२॥
इति लब्ध्वा वर देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम् । स्वयवरमुदीक्षन्ती तस्यौ प्रीता मुदा युता ॥६३॥

ब्राह्मण मस्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ । अतः वर देता हूँ । ग्राह के इस प्रकार कहने पर उस महाव्रतधारिणी देवी ने यह कहा ॥५९-५३॥

देवी बोली—हे ग्राह ! मुझ तो शरीर देकर भी ब्राह्मण की मनपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । हे महाग्राह ! तप ता मैं पुन प्राप्त कर सकता हूँ ब्राह्मण नहीं—एसा सोच कर मैंने बालक को मुक्त कराया है ॥५४॥ तपस्या ब्राह्मणो स श्रष्ट नहीं है ब्राह्मण ही श्रष्ट है—यह मेरा मत है । हे ग्राहेन्द्र ! मैं अपना तप देकर फिर उसे ग्रहण नहीं करूँगी । क्योंकि कोई भी मनुष्य दत्त वस्तु का पुनर्ग्रहण नहीं करता है । मैंने तुम्हें यह दे दिया अब वापस नहीं ले सकती । इस तपस्या का उपभोग तुम्हीं करो और बालक को छोड़ दो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सूर्य के समान कान्तिमान वह ग्राह बालक को छोड़ देवी की प्रशंसा करके उसे नमस्कार करके वही पर अन्तर्धान हो गया ॥५८॥ सरोवर के तीर में ग्राह से मुक्त बालक मा स्वप्न में प्राप्त धनराशि का तरह उसा जगह अन्तर्हित हो गया ॥५९॥ गिरिनदिना उम्मा ने तपस्या का हूँ स जानकर पुन नियम में स्थित हो तप करना आरम्भ कर दिया ॥६०॥ पुन तप करने का इच्छुक उम्मा का देखकर स्वयं शंकर ने उससे कहा—तप मत करो ॥६१॥ हे महाव्रते । हे देवि ! तुमने मझ अपना तप निया है । इसलिए तुम्हारा तप अक्षय रूप सटनारगुना अधिक हो जायगा ॥६२॥ अक्षय तथा उत्तम तप रूप वर्णन प्राप्त कर पावना आनन्ति हो

इदं पठेद्यो हि नर सदैव, बालानुभावाचरणं हि शम्भो ।

॥ देहभेद' समवाप्य पूतो' भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्य ॥६४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि सवादे पार्वत्या सत्त्वदर्शनं नाम षट्त्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीस्वयवर-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले । अभवत् स तु कालेन शैलपुत्र्या स्वयवर ॥१॥
अथ पर्वतराजोऽसौ हिमवान्' ध्यानकोविद । दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमान्त्रितम् ॥२॥
जानन्नपि महाशैल समयारक्षणेत्सया । स्वयवरं सतो वेद्या सत्त्वलोकेष्वघोषयत् ॥३॥
देवदानवसिद्धानां सत्त्वलोकनिवासिनाम् । वृणुयात् परमेशानि समक्षं यदि मे मे सुता ॥४॥
तदेव सुकृतं श्लाघ्यं भगवन्मुदयसम्भतम् । इति सञ्चित्य शैलेन्द्रं कृत्वा हवि महेश्वरम् ॥५॥

स्वयवर की प्रताशा करती हुई रहने लगी ॥६३॥ जो मनुष्य पाकर के इस बालमावानुकूल आचरण को सदा पढ़ना वह पवित्र हवन-देह भेद प्राप्त कर (अर्थात् गरीर-स्यागकर) गणसत्तया कार्तिकेय के समान हो जायगा ॥६४॥

आ ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण में पार्वती के सत्त्वदर्शन नामक पत्तीतवा अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

पार्वती स्वयवर का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सैवानी विमानों से व्याप्त विस्तृत हिमालय के पृष्ठ पर समथ पाकर गिरिपुत्र या स्वयवर हुआ ॥१॥ ध्यानशाल पर्वतराज हिमालय ने शिव के द्वारा अपना कन्या का अभिमान (स्वीकार) जानकर भी समथ निर्धारण (शिष्टाचार) करने में इच्छा से देवा का स्वयवर सब लोकों में घोषित कर दिया ॥२३॥ सत्त्वलोकनिवासी देव गानव सिद्धों के समक्ष यद्यपि भरा कन्या शिव का वर्णन कर लेगा तभी मेरा श्लाघनीय पुण्योदय होगा—एसा सोचकर शैलेन्द्र ने अपने हृदय में महेश्वर वा ध्यान कर देवी के स्वयवर के लिये ब्रह्मलोक तक के देवों को रलों

आग्रहकेयु देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम । कृत्वा रत्नाकुल देशे स्वयवरमचीकृतम् ॥६॥	
अयं वमाधोपितमात्र एव, स्वयवरे तत्र नगेद्रुप्या	।
देवादय सर्वजगन्निवासा, समाययुस्तत्र गृहीतवेशा	॥७॥
प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्ट, सिद्धेर्बृतो योगिभिरप्रमेयं	।
विज्ञापितस्तेन महीधराज्ञाऽऽगतस्तदाह जिह्वैरपेत	॥८॥
अक्ष्णा सहस्र सुरराट् स द्विगद दिव्याङ्गहारस्रग्गुदाररूप	।
ऐरावत सध्वजजेन्द्रमुख, त्रयमदासारकृतप्रवाहम्	॥९॥
आरुह्य सर्वामरराट् स वज्र, विभ्रात् समागतं पुरतः सुराणाम्	।
तेज प्रभावाधिकतुल्यरूपी, प्रोद्भासयन् सध्वदिशो विवस्वान्	॥१०॥
हेम विमान ॥ बलत्पताङ्गभाट्ट आगात्स्वरित जवेन	।
मणिप्रदीप्तोज्ज्वलमुण्डलश्च बह्म दकतेज प्रतिमे विमाने	॥११॥
समन्यगात् कश्यपसूनुरेक, आदित्यमध्याद्भगनामधारी	।
पीनाङ्गयष्टि सुकृताङ्गहारतेजोबलमासदृशप्रभाव	॥१२॥
दण्ड समागृह्य कृतान्त आगादाकृह्य भीम महिष जवेन	।
महामहीप्रोच्छ्रयपीनपात्र स्वर्गादिरत्नाञ्जितचारुवेश	॥१३॥

स मुनिर्जन किया ॥५॥ पावनी व स्वयवर का धारणा हान ही मपूण वयत् व निवामा देव आग्नि गण मुन्दर वग बराकर वही पवार ॥३॥ पहल विक्रमिन कम गे व आसन पर उपविष्ट अग्रमव यागिया तथा सिद्धा स जावन मनावा ममुक हाकर भर वन पट्टवन के मूचना पवनराज को मिली ॥८॥ तत्पनतर महामननारा नित्य अगा व हार तथा पुष्पमात्रा धारण किए हुए उगार रूप बाल मज्जा म मूय तथा बहन हुए म मूमलधार बाटि स धारा बनात हुए ऐरावत नामक हाथा पर आम्ह और वय को धारण किए हुए म देवनाडा के अग्रगामा हाकर वन भाप ॥९॥ अनन्तर तज व प्रभाव के अधिक मन्द और छत्र-यनाका से यक्त सुवर्ण व विमान पर स्थित मूय मत्र आग्नि को प्रकाशित करने हुए वय स गीघ वही आय। अग्नि तथा मूय व तज व समान विमान पर आम्ह और प्रणीत मणि व उगार मुण्डल का धारण किए हुए एक वय नामक आग्नि जो वय पर के पुत्र बहलान है आग्नि का मध्य स निकल कर वही आये ॥१०॥ मयानक मग्नि पर बड़ाकर अगा को हार आग्नि से मुमज्जित कर नेत्र बल और आभा के समान प्रभाव वा तथा स्वयं के बाले यमराज दण्ड को धारण किए हुए वही पहुँचे ॥११॥ महागव व समान उच्च तथा पण्ट शरीर वाले सुवर्ण आग्नि रत्न मज्जित चारु वेग वाले और निविल गन् व पाण्ड वायु से विमान पर चढ़कर आये ॥१२॥ अधिक तजवान तज म जल प्रस्त मर दक्ष मशगा को

समोरणः सर्वजगद्धिभर्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि ।	
संतापयन् सर्वसुरासुरेशांस्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः	॥१४॥
चक्षुः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतप्त्यो वरवेशधारी	।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिजगद्वरं दिव्यविमानमाग्रम्	॥१५॥
आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेश, स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाञ्च	।
आप्याययन् सर्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः	॥१६॥
ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात्	।
इयामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सध्वंज्ज आबद्धसुगन्धिमात्यः	॥१७॥
ताक्ष्यं समाारुह्य महोधकल्पं, गदाधरोऽसौ स्वरितः समेतः	।
अयाश्चिनो चापि भियन्धरो द्वायेकं विमानं स्वरयाऽधिकरुह्य	॥१८॥
मनोहरो प्रज्वलचारुवेशो, आजगमुद्ववरो सुवीरो	।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं, विभ्रतदानी ज्वलनार्कतेजाः	॥१९॥
साद्धं स भागैरपरमं हस्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाञ्च	।
हितेः सुतानाञ्च महासुराणां, बह्व्यर्कशकानिलसुखभासाम्	॥२०॥
घरानुरूपं प्रविधाय वेशं, कुन्दं समायात् पुरतः सुराणाम्	।
गन्धर्वराजः स च चारुरूपो, दिव्याङ्गवो दिव्यविमानचारी	॥२१॥

संतापित करने-वाले और सुन्दर वेश धारण करने वाले जलते हुए अग्नि भी देवताओं के मध्य मण्डित हुए ॥१४॥ अनेक मणिमा के सदृश जालिमान् शरीर वाले तथा सब धनो के स्वामी हुवेर समार म धेष्ट दिव्य विमान पर आरुह होकर सीमन्ता से आय ॥१५॥ मनोहर रूप वाले चन्द्रमा महाराज से विचित्र रूप वाले विमान पर चढ़कर अपनी शक्ति तथा वेग से सब देव असुरा को गुष्ट करते हुए आय ॥१६॥ इयाम शरीर वाले विचित्र वेशवाले और सपूर्ण अगा म सुमण्डित माग्रा को धारण करने वाले विष्णु पर्वत सदृश गड्ढ पर सवार होकर वेग से आये ॥१७॥ अनन्तर वीर-धेष्ट, देवधेष्ट सुन्दरवीर मनोहर तथा चारुवेग वाले योगा अद्वितीयकुमार भी एव ही विमान पर चढ़कर सीमन्ता से आय ॥१८॥ हजारों नागा को धारण करने वाले अग्नि के समान जालिमान् और शूर्प के सदृश तेजस्वी महारमा शरभ भी बहून मे नागा के साथ विमान पर आरुह होकर उभ समय वहाँ पधारे ॥१९॥ पर्य, इन्द्र और वायु के तुल्य जालिमान् दिति-युत्र राक्षसा ना समूह भी वर के धाय वेग बना कर देव-हले उपमण्डित हुआ ॥२०॥ इन्द्र की आज्ञा से सुन्दर रूप वाले गणपतराज विदेवावमु भी दिव्य चक्र गन्धर्वसमूह और अप्सराया न साथ वहाँ आये ॥२१॥ और भी गन्धर्व, यक्ष, राक्ष,

गन्धर्वसङ्घः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राजया तत्र समाजगाम।
 अन्ये च देवास्त्रिदिवास्तदानीं, पूयक् पूयक् चाल्पगृहीतवेशा ॥२२॥
 आजम्बुराह्या विमानपृष्ठं, गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराश्च।
 शचोपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्ति ॥२३॥
 आज्ञावलेद्वय्यंकृतप्रमोदः, स्वयवरं तं समलञ्चकार।
 हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्मता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥२४॥
 पत्नी च शम्भोः पुण्यस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या।
 दक्षस्य कोपाद्विभवदगृहं सा, कार्यायमायास्त्रिदिवीकर्सा हि ॥२५॥
 'विमानपृष्ठे' भणिहेमजुष्टे, स्थिता बलवधामरबीजिताङ्गी।
 'सर्वतृत्पुष्पा' सुसुगन्धमाला, प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थिताया देवतंसदि। शक्राक्षरागतैर्वै स्वयवर उपागते ॥२७॥
 देव्या जितासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिक्ष शिशुः। उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव सहसा विभु ॥२८॥
 ततो ववर्ष तं देवी शिशुः पञ्चशिक्ष स्थितम्। ज्ञात्वा स समवध्यानजिगृहे 'प्रोतिसयुता' ॥२९॥
 अथ सा शब्दसङ्कुला काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम्। निवृत्ता चतुर्वा तस्यो कृत्वा सा हवि त विभुम् ३०॥
 ततो ब्रुवा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्तिनम्। कोऽयमनेति संमन्य चतुर्भुशोहिता ॥३१॥

किन्नर आदि देवता पूयक्-पूयक् सुन्दर वेश बनाकर विमान पर आरुढ़ होकर स्वयं से वहाँ आये ॥२२॥
 राजाओं से अधिक सुन्दर और आशा, बल तथा ऐश्वर्य से प्रमोद करने वाले इन्द्र देवताओं के मध्य में
 शुभाशित होते हुए स्वयवर समा की अलङ्कृत करने लगे ॥२३॥ सप्ता की उत्पत्ति का कारण सुरासुरों की
 माता, भीमान् पुत्र शक्र की पत्नी पुराण में परा प्रकृति नाम से प्रख्यात दक्ष के शाप से देवताओं के वायु के
 लिए हिमालय के गृह में उत्पन्न, भणि तथा सुवर्ण जटित विमान पर स्थित एवम् छत्र चामरा से बीजित अगा
 वाली उमा सब ऋतुओं के पुष्पा की सुगन्धित माला की ग्रहण कर हठान् प्रस्थित हुई ॥२४ २५॥

ब्रह्मा ने कहा—जब स्वयवर इन्द्र आदि देवता उपस्थित हुए और देवसभा में पार्वती भी भाग लेकर
 उपस्थित हो गई तब देवी के मनोमान को समझने के लिए भगवान् शक्र एकएक पञ्चदिक्पात्री गोद में सोया हुआ सा
 बालक, वन गये ॥२७ २८॥ देवी ने उस बालक को देखकर ध्यान योग से पहचानकर प्रीतिपूर्वक पकड़ लिया ॥२९॥
 सुन्दर सत्य वाली उमा जमिलकित सत्पति की प्राप्ति कर उस प्रभु बालक की हृदय में लगाकर निवृत्त हो गई ॥३०॥
 देवगण देवी के श्रोत्र-देश में स्थित बालक को देखकर मोहित हो गये और यह कौन यहाँ इस प्रकार

१ ग ० मोहा वृषादिव बलमुमा च०। २ क ० नवर्ग म०। ३ क ० मपृष्ठ स्थि०। ४ क ० मुगन्धपुष्पा।
 ५ स ० अनर्प्यपुष्पा। ४ स ० नरगन्धमाला। ६ क ० स्थे। मा०। ७ क ० भु। अक्षमादेव त। ८ ग ० ज्वहये
 प्रो०। ९ क ० ता। तपस धु०। १० क ० सत्पलम्। ११ ग ० गमादिना।

वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स बाहुवर्त्यितस्तस्य तथैव समतिष्ठत ॥३२॥
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। वज्रं क्षेप्तुं न शक्नाक वृत्रहा चलितुं न च ॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली। उत्क्षिप्य (चिक्षेप) अग्रेण दीप्तं छेतुमिच्छन्
विमोहित ॥३४॥

तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः ॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवेक्षत। अयं तेषु स्थितेष्वेवं मन्थुमत्सु सुरेषु च ॥३६॥
अहं परमसंक्षिप्तो ध्यानमास्थाय सावरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुत्सङ्गे समास्थितम् ॥३७॥
सातवाहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सावरम्। वयम्बे चरणं शम्भोः स्तुतवास्तमहं द्विजाः ॥३८॥
पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः। अजरस्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः परापरम् ॥३९॥
प्रधानं पुरुषो यस्तथं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्^१। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत् ॥४०॥
ब्रह्मसूक् प्रकृतेः स्रष्टा सत्यंकृतप्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम् ॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वैं सहिताय च ॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाञ्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमा सृष्टा मडास्त्वद्योगमायया ॥४३॥

परस्पर धर्तों करन लगे ॥३१॥ इन्द्र ने तो वज्र उठाकर उस पर फेंकना चाहा, पर उनकी भुजा जैसे उठी थी, वैसे हक गई ॥३२॥ बालक रूपवारी देव देव शवर ने उनका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र ने तो वज्र को फेंक सके म चले सके ॥३३॥ तब ब्रह्मप-पुत्र मय नामक बली आदित्य बिना सावे-समसे उस बालक को धारने के लिए प्रतीप्त अस्त्र फेंकन लगे, पर उनकी भी भुजा का भगवान् शिव ने स्तम्भित कर दिया। शिवजी ने बल, तेज और योग का भी स्तम्भन कर दिया ॥३४-३५॥ शिर को कंपाते हुए विष्णु शकर को देखन लगा। सब देवा के इस प्रकार क्रुपित हो जान पर मैं बहुत चिन्तित हुआ और ध्यानस्थित होकर देवन के बाद उमा की गोद में समम्भान ग्मित देवा के स्वामी शकर को समक्ष पाया ॥३६-३७॥ द्विजगण । मैं महादेव जानकर शीघ्र उठा और सत्कारपूर्वक यामु की चरण-बदना कर पुराण सामवेदाङ्ग संगीत और उनके पवित्र गुण नामा से उनकी यह स्तुति करने लगा ॥३८॥ 'आय अजर अमर देव, सृष्टिकर्ता व्यापक, परास्पर, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, ध्यान करने योग्य, अविनाशी, अमृत, परमात्मा ईश्वर कारण महत्तत्त्व ब्रह्म-स्रष्टा गृहीत-स्रष्टा, प्रकृति से परे और सर्व भर्ता हूँ ॥३९-४०॥ ये देवी आपकी प्रकृति हैं जो सदा सृष्टि कारण तथा जगत्कारण होती हुई आपकी पत्नी के रूप में आई हैं ॥४१॥ हे महादेव । देवी महति आपको नमस्कार है। हे देवज । आपकी हृषा तथा आज्ञा से मैंने योगमाया के बन्ध से देव आदि मूढ़ प्रजा भी मुक्ति की है ॥४२-४३॥ अब आप इनके उपर अनुष्टुत करें ताकि ये पहले की तरह हो जाय ।'

कुरु प्रसादमेतेषा ययापूर्वं भवत्वमे। तत एवमह विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥४४॥
 स्तम्भितान सच्चदेवास्तानिद चाह तदोक्तवान। मूढाश्च देवता सर्वानेन बुध्यत गङ्गारम ॥४५॥
 गच्छध्व शरण शीघ्रमेनमेव महेश्वरम्। सार्धं मयैव देवश परमात्मानमध्ययम् ॥४६॥
 ततस्त स्तम्भिता सर्व्वे तयैव त्रिदिवीकृत। प्रणमुमनसा सर्व्वं भावशुद्धेन चतसा ॥४७॥
 अथ तया प्रसन्नोऽभददेधदेवो महेश्वर। ययापूर्वं चकाराऽङ्गु देवताना तनूस्तदा ॥४८॥
 तत एव प्रवत्ते तु सच्चदेवनिवारणे। वपुश्चकार दवेष्टश्चक्ष परममवभुतम् ॥४९॥
 तजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षु सर्व्वे यमोलयन्। तेभ्य सपरम चक्षु स्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत ॥५०॥
 प्रादात् परमदेवेशमपश्यत्ते तदा विभुम्। ते दृष्ट्वा परमेगान तृतीयक्षणाधारिणम् ॥५१॥
 गङ्गाया मेनिरे देवा सर्व्व एव सुरेश्वरा। तस्य दबो तदा हृष्टा समक्ष त्रिदिवीकृतम् ॥५२॥
 पादयो स्थापयामास खड्गमालामनितद्युति। साधु साध्विति ते होषु सर्व्वेदया पुनर्विभुम् ॥५३॥
 सह देव्या नमश्चक्रु शिरोभिभुतलाधितं। अथास्मिन्नतरे विप्रस्तमह दैवतं सह ॥५४॥
 हिमवत महानैलमुक्तवाश्च भहाद्युतिम्। इलाध्य पूजयश्च चक्षश्च सर्व्वेषा त्वमहानसि ॥५५॥
 गवैण सह सम्बन्धो यस्य सऽभ्युदयो महान्। क्रियता चारुद्वद्वाह किमर्थं स्थीयते परम् ॥
 तत प्रणम्य हिमवास्तदा भा प्रत्यभाषत ॥५६॥

विप्रः। १ व प्रकार गिव की बदना कर चक्र के बाग में स्तम्भित देवगणा से कहा— ४४॥ तुम सब देवता मज हो। मगवान् गिव को नहीं जानत हो अब इन्हीं परमात्मा अध्यय तथा देवग महेश्वर की शरण में मरे साथ ग्राध चगे यह सुन कर समस्त स्तम्भित देवगणा भाव गुद चित से मन हा मन गकर को प्रणाम करने लग। ४५ ४७। तब उन पर प्रसन्न हाकर देव-देव मेश्वर न गीर हो उह पूजवन कर दिया। इन प्रकार सब देवा का दुख निवारण करने देव न अपना तीन आखा बाग अमृत गरीर बना दिया ४८ ४९। उनके तज से देवगणा मष्ट होने लगे। सब ने आग भू ग। तब गिव ने देवा को अमृत दृष्टि गतिन बाते नय न्यि जिनसे वे दारक का देगने लगे ५० ५१। तनीय नत्रपारी परमेश्वर का देगकर इन् आनि समस्त देव उह महान् मानने लगे ५२ ५३॥ देवताका के समस्त अमृत कान्तिमयी पावता ने हथ से पुण्यमाग गिव क बरणा पर समर्पित कर दा ५४ ५५॥ फिर देवगणा ने साथ साथ कन्कर पावनी सहित गकर को पछी पर माया क कर प्रणाम किया ५६॥ विप्रवन्द त्स उपरान्त देवताका न साथ म मन्त्रकान्तिमान पवनराज हिमालय ने कहने लगा— ५७। आप इलाधनय सबके पूज्य बन्धनय तथा महान हैं। आपका साथ जिसका मन्त्रय होगा उसका महान अभ्युदय कहना चाहिये। अब आप पवित्र विवाह मस्कार सम्पन्न कर दर हो रही है। तब हिमालय ने मन्त्र प्रणाम कर कहा ५८ ५९।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्वोदये मम । प्रसादः सहस्रोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि ॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्धि (क्तं वि) घटस्व पितामह ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तत एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥५८॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकयः । तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्मितं पुरम् ॥५९॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम् । रत्नानि मणयश्चित्रा ह्येवमोक्तकमेव च ॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलङ्कृषुः पुरोत्तमम् । चित्रा मारुती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥६१॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता । तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्मिता ॥६२॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः । सोमादित्यौ समं तत्र स्थापयन्तौ महामणौ ॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मातुः । प्रवक्षी सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः आकाशाश्च सुरोत्तमाः । देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव ॥६५॥
गन्धर्व्याप्सरसः सद्यै नागा यक्षाः सराक्षसाः । औदकाः क्षेत्राश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥६६॥

हिमालय ने कहा—हे देव । हम सब के अमृत्युय मे आप ही कारण हैं । अकस्मात् जो हम लोगो को प्रसन्नता उत्पन्न हो गई, इसम भी आप ही कारण है । हे पितामह ! जब और जिस तरह विवाह सम्पन्न हो, उसकी व्यवस्था आप ही करेंगे । ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । तब पर्वतराज के वचन सुनकर मैंने परमेश्वर से कहा—‘देव । विवाह कीजिये’ ॥५८॥ शैव-पालक पक्षर ने भी मुझसे कहा—‘जैमी आप सबकी इच्छा ।’ विप्रबन्ध । तबसाल ही हमने गिब व विवाह के निमित्त अनेक प्रकार के रत्नों से सुतोमित नगरी का निर्माण किया ॥५९॥ चित्र चित्रित रत्न मणि, मोती और सुवर्ण माना शरीरधारण कर उस थोष्ट नगरी को अलङ्कृत कर रहे थे । यहाँ की भूमि भरवत मणिमय थी, जहाँ सुवर्ण के स्तम्भ सुगोमित हो रहे थे ॥६०-६१॥ देवों के देव भगवान् गिब के विवाह के लिए उम रमणीय नगर के द्वार पर निमित्त चमकने हुए स्फटिकों की दीवार सुगोमित हो खड़ी थी, जहाँ आतिया के हार लटक रहे थे ॥६२॥ यहाँ महामणि रूप सूर्य-चन्द्रमा समान रूप से प्रकाश फैला रहे थे । गिब भक्ति की प्रकट करते हुए वायु, त्रिनारा रत्नों सुगन्धवायु या सुगन्धित तथा मनारम गन्ध मे सुवन होकर बढ़ रहे थे ॥६३-६४॥ चारों समुद्र, इन्द्र आदि देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ सिद्ध मुनि, गन्धर्व, अप्सरा नाय, यक्ष, रागाय, जलवर, आभागवर, किन्नर, देवचारण, सुम्बुष नाम्द हाहा, हूह, और नाम माने जाते (यथायाय) रमणीय बाघों वः स्तर

नुम्हर्नरिदो हहाहूहृदचैव तु सामगोः। रम्याण्यादाय वाधानि तत्राङ्गंभुस्तदा' पुरम् ॥६७॥
 ऋपस्तु क्यास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः। पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेषुः संहृष्टमानसाः ॥६८॥
 जगतो मातरः सर्वार्थं देवकन्याश्च वृत्स्नशः। गायन्ति हृषिताः सर्वार्थं उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥६९॥
 ऋतवः पट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः। 'उद्वाहः शङ्करस्येति' मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥७०॥
 'मोलजीमूतसङ्काशेर्मन्त्रध्वनिप्रहर्षिभिः। केकायमानैः शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्वशः ॥७१॥
 विलोचयिञ्च, स्पष्टविद्युत्स्लेखाविहासिता'। 'कुमुदापीडशुबलाभिर्बलाकाभिश्च' शोभिता ॥७२॥
 प्रत्यप्रसञ्जातशिलोन्ध्रकन्वलीलताद्रुमाद्युदगतपल्लवा शुभा ॥
 क्षुभाश्चुपाराप्रणयप्रबोधितर्महालसंभैकगणैश्च नादिता ॥७३॥
 प्रियेय् मानोद्धतमानसनां, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ॥
 मयूरकोकाभिरुतैः शणैः, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥७४॥
 'तया विवर्णोऽज्ज्वलचापमूर्तिना, शशाङ्कुलेखाकुटिलेन सर्वतः ॥
 पयोदसङ्घातसमोपवर्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥७५॥
 'विचित्रपुष्पाम्बुभवं सुगन्धिभिर्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलः ॥
 विकम्पयन्ती पवनर्मनोहरैः, सुराङ्गनानाफलकावलीः शुभाः ॥७६॥

वहाँ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥ तपोधन ऋषिगण वेदविहित क्या और विवाह-सदस्यी पवित्र मन्त्रों का जो हृषं पूर्वक करने लगे ॥६८॥ निखिल जगन्माताएँ तथा देवकन्याएँ शिव के विवाह में हृषं से गान करने लगी ॥६९॥ नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छड़ी ऋतुएँ समान रूप से शंकर के विवाह में शरीर धारण कर उपस्थित हुई ॥७०॥ ((धर्पा ऋतु के जाने पर) नील मेघ के समान कान्ति वाले और मन-ध्वनि से हृषित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे ॥७१॥ वह ऋतु चञ्चल तथा पिपलवर्ण वाली मिश्रित-पतितियों से कामाक्षित एवम् कुमुदी की माला के समान शुक्ल बलाकाजी (बगलियों) से सुशोभित थी ॥७२॥ वल्ली, लता और वृक्षों के अमिनव पल्लवों से उसकी अपूर्व घोमा थी। कन्याणमय मेघों के प्रेम के कारण जने हुए अत्यन्त धालसी मेढकों से एवम् प्रियजनों के प्रति मान करने से उद्धत मन वाली मनस्विनी कामिनियों के क्षण भर में मान-भग के हेतुगत मनोहर मयूर-बाणी के शब्दों से वह शब्दायमान हो रही थी ॥७३-७४॥ विविध वर्ण तथा उज्ज्वल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले चन्द्र-लेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघसमूह के समीपवर्ती चन्द्र-धनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ नागा प्रकार के पुष्पों के रस से सुगन्धित और मेघ-जल के सपर्क से सुशीतल मनोहर पवना के द्वारा वह मानो देवायनाओं की पवित्र अलका-वलि (वेश समूह) को कथित कर रही थी ॥७६॥ गरजते हुए बादल में चन्द्रचिह्न को छिपाने वाली तथा

१ क ०मुगिरे पु०। २ क ०नन्या सहस्रय। ३ क ख उद्वाहे। ४ क ०रस्येह मु०। ५ ख ०रकाकारं प्रदर्शितं। ६ क ०विनामिता। ७ क कुसुमापी०। ८ ख ०दातरजु०। ९ ग ०या शिव०। १० क ०पुष्पामरणं मु०। ग ०पुष्पमय रसै मु०।

गजेंद्रपयोदस्य गितेन्दुविम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ॥
 निरोक्षिता सादरमुत्सुकाभिनिश्वासधूत्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥७७॥
 हंसनूपुरशब्दाद्या समुन्नतपयोधरा। चलद्विद्युत्स्तताहारा' स्पष्टपद्मविलोचना ॥७८॥
 असितजलदधोरध्वानयित्रस्तहसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाया' ।
 सूरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा, गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविद्वंभूव ॥७९॥
 मेघकञ्चुननिर्मृगता' पद्मकोशोद्भवस्तनी। हंसनूपुरनिह्लादा' सर्वशस्यदिगन्तरा' ॥८०॥
 धिस्तोषं पुलिनध्रौणी कूजत्सारसमेखला। प्रकुल्लेन्दोर्वरश्यामविलोचनमनोहरा ॥८१॥
 पद्मविम्बाधरपुट्टा कुम्बदन्तप्रहासिनी। नवश्यामलताश्यामसोमराजिपुरस्कृता ॥८२॥
 चन्द्राशुहारयोगेण कण्ठोरस्थलगामिना। प्रह्लादयन्तो चेतसि सर्वेषां त्रिदिवीकसाम् ॥८३॥
 समवाङ्गिकुलोद्गीतसमधुस्वरभाषिणी। चल्त्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी' ॥८४॥
 रक्तासोकप्रशालोत्पललवङ्गलिधारिणी । तत्पुष्पसञ्चयमर्वांसोभिः समलङ्कृता ॥८५॥
 रक्तोत्पलाप्रवरणा' जातोपुष्पनखावली। कदलीस्तम्भवामोल्' शशाङ्कुवदना तथा ॥८६॥
 सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता। प्रेम्णा स्पृशति वास्तेव सानुरागा मनोरमा ॥८७॥

नवीन जल से सिक्त सुन्दर घातवाली वर्षा ऋतु की राह चलने वाली रमणीया आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानो धूमिल बन रही थी ॥७७॥ वह ऋतु मानो समुन्नत पयोधर (मेघ, स्तन) वाली, विमलसलिलमय सदाशनेत्र वाली, जबल विद्युत्स्तता रूप हार वाली तथा हम (हम पक्षी, पंर के कडे) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी ॥७८॥ वह बाले बादल के गम्भीर गर्जन से त्रस्त हस वाली, विमल जलधारा के गिरने से अचानक कमल के अग्रभाग वाली और गुणगुण पुष्पों की रेणु से गुणोर्मित सर्वाङ्ग वाली थी। इस प्रकार वर्षा ऋतु गिरिचर्या के विवाह में आविर्भूत हुई ॥७९॥ (तदनन्तर धारद् ऋतु का आगमन)। मेघरूप कबूकी से निर्मुक्त, कमल की बलियों रूपी स्तनी वाली, हस और नूपुर से शब्दित, नव रित्ताओं में अन्तों में परिपूर्ण, विसृज्य तट रूप नितम्ब वाली, शब्द करत हुए सारस पक्षी रूप भेषज वाली, विविध मीन समूह की मनोहर नेत्र वाली, पद्मे विम्बकल (कुन्दरु के कल) रूपी अधर वाली, कुन्द पुष्प की दाँतों से ढँकी वाली, पद्ममल्ला रूपी वृष्ण रोमावल्या से युक्त, बले से बल म्बल तक लटकत हुए षट्त्रिंश रूपी हारा में देखने के वित्त की आह्लादित करने वाली, अदम्य धमरो के गीत करी मधुर स्वर से बोलने वाली अथवा कुमुद-पुष्प-समय रूपी सुन्दर कुण्डला से घामिन रक्त यन्त्रों की गाथा के पञ्च रूपी अनुजिनी धारण करने वाली, लाल अशोक-गुला के सचय रूपी वस्त्रा में अलङ्कृत, रक्त कमल के अग्रभाग रूपी चरणों वाली, पद्मे की पद्म रूपी तल-पल्लव वाली कदली-समय रूपी सुन्दरजया वाली, षट्मूर्ती, मधमन लक्षणों से गण्ड और सब प्रकार के मूर्तियों से युक्ति धारद् ऋतु मानो अनुरागपूर्ण सुन्दरी स्त्री की तरह प्रेम से स्पर्श करती

निर्मृक्तासितमेघऋचुकपटा पुण्ड्रुबिम्बानना, नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ।
नानापुष्परजःसुगन्धिवनप्रह्लादनी चेतसां, तत्रऽऽसीत् कलहंसनूपुररवादेव्या विवाहे शरत् ॥८८॥
अत्यंशोत्तमाभोभिः प्लावयन्तो दिशः सदा । ऋतुं हेमन्तशिशिरो आजग्मतुरतिद्युतो ॥८९॥
ताम्रामृतुभ्या 'संप्राप्तो हिमवान् न नयोत्तमः । प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रोम्पहरो 'दभो ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः । अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः ॥९१॥
ऋतुपर्यायसम्प्राप्तो बभूव स महागिरिः । साधूपचारात् सहसा 'कृतार्थ' इव दुर्जनः ॥९२॥
प्रालेयपटच्छत्रं शृङ्गस्तु शत्रुभे नगः । छत्रैरिव महाभागं पाण्डुरैः पृथिवीपतिः ॥९३॥

मनोभवोद्रेकफराः 'सुराणां' सुराङ्गनानाञ्च मूढः समीराः ॥

इवच्छाम्बुपूर्णदिक्' तथा नलिन्यः पद्मोदपलाना कुसुमंरुपेताः ॥९४॥

विवाहे गृहकन्याया वसन्तः समपादुतः ॥९५॥

इपस्तमुद्भिन्नपयोधराया नाभ्यौ यथा रम्यतरा बभूवुः ॥

नास्युष्णशीतानि' पयःसरांसि' किञ्चजत्कचूर्णैः कपिलीकृतानि ॥

चक्राह्वयुर्मंदपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरवर्गितमुखाः ॥९६॥

प्रिङ्गुः शूततरवश्चूताश्वापि प्रियङ्गवः । तज्जंयत इवान्योग्यं मञ्जरीभिश्चकाशिरै ॥९७॥

या ॥८०-८७॥ इष्टा मय रूपी कचुकी स निर्गुण पूर्ण-वन्द्य विम्ब के समान मूल बानी नील कमल के समान नेत्र वाली, सूर्य निरण से विकसित कमल के समान स्तन वाली, अनेक पुष्पों की रेणु से सुगन्धित पचना द्वारा चित की अनन्त बेनी वाली तथा राजहंस के समान नूपुरा द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती का विवाह में उपस्थित हुई । ॥८८॥ जयन्त नील जल से दिवाजा की सदा प्लाविन करती हुई मत्तान्ति वाली हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं की बायी ॥८९॥ हिम चूर्णों की वरमन वाली उन ऋतुभा से प्राप्त (सम्प्लित) पर्वतश्रेष्ठ हिमालय शीत ही पौदनी के आलना की तरङ्ग धामित होन लगा ॥९०॥ हिमवर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय शीत-ममूड की तरङ्ग सुगन्धित हुआ ॥९१॥ अछटे उपचारी से जैसे दुर्जन इतार्थ हो जाता है वैसे ऋतुओं के आगमन से वह महापर्वत (इतद्वय) हुआ ॥९२॥ हिम समूह ने आच्छादित शिलरा से पर्वत की बेसी ही शोभा हुई जैसी महा-पुष्पर रज छत्र में राजा की होती है ॥९३॥ बभूव तथा देवागनाभा में कामार्पण करने वाले पवन बार-बार बहने लगे । जत्रागम स्वच्छ जल से पूर्ण एव कमल और रुमद का गुप्ता से युक्त हुए ॥९४॥ पवन-पुत्री के विवाह में बाल्य ऋतु आई ॥९५॥ (उसके आनं पर) जैसे घोड़ उमरे हुए स्तनाश्र वाली नारियां अधिक रमणीय होती हैं वैसे न अधिक गरम न अधिक ठंड जल वाले सरोवर पुष्परणु (या कमल का सरोर) से वरिष्ठ वन बन धामित हो रहे थे । चरया चर्च में धामित उन सरोवरों में देवताओं के थपट हाथी हर्ष से जाते थे ॥९६॥ प्रियगुण आश्रवणा को और आश्रवण प्रियगुणा का माना परस्पर धकेलते हुए मञ्जरिया से सुनोमिन हो रहे थे ॥९७॥ हिमालय के उगमल

१ ग म्ता म्ता ० । २ क सव्याजो । ३ ख म्भो । हिमपद्मप्रव ० । ४ ग ह्तायं । ५ ग वल्लेग ० । ६ ग म्ता म्ता ० । ७ क रुमरणा । ख मुचिना । ८ ग म्भ्युर्णा ० । ९ ख म्नि दिव पयामि । १० ख म्ता म्ता । ११ क म्ता म्ता ० ।

'हिमशृङ्गे पुं शुक्ले पुं तिलकाः कुसुमोत्कराः । शशभुः कार्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः ॥९८॥
फल्गुशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंस्थिताः । कामिन्य इव कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः ॥९९॥

तस्मिन्मृतो शुभ्रकदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥१००॥

अशोकसज्जज्जुनकोविदाराः पुष्पागमगेदवरकणिकाराः ॥१०१॥

लवङ्गतलापुद्गस्तपर्णा स्वप्रोषशोभाञ्जननारिकेलः ॥१०२॥

वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ॥१०३॥

जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डबर्हसजुष्टाः ॥१०४॥

कोपटिवात्यूहवञ्चयुक्ता दृश्यास्तु पयोत्पलमोनपूर्णाः ॥१०५॥

लगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥१०६॥

श्रीङ्गासु युक्तानय सज्जंशतः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ॥१०७॥

तस्मिन् गिरावद्विसुताधिवाहे ववृश्च वाताः सुखशीतलाङ्गाः ॥१०८॥

पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नयेम्यो मलयद्विजाताः ॥१०९॥

तथैव सर्वे ऋतवश्च पुष्पाश्चकाशिरोज्योन्यविनिधिताङ्गाः ॥११०॥

येषां सुलिङ्गानि च कीर्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः ॥१११॥
समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसङ्घर्षैः । परस्पर हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥११२॥

शिलारो पर पुष्पा से युक्त तिलक वृक्ष कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुष्पा की तरह शोभा पा रहे थे ॥९८॥
सायू से लिपटी हुई प्रफुल्लित प्रशाफलता श्रियतम के गले में अपनी बोह डाले हुई वामिनी की तरह विराजमान थी ॥९९॥ उस ऋतु में सफेद मदम्ब, नील अशोक, ताल, तमाल, सरल, बंधा, अशोच, सज (सायू) अर्जुन, बचनार, पुष्पाग, मागदवर बनवचम्पा लवग, अगर, सप्तवर्ण (डितवन) वट, शामाञ्जन (सहिजन), मारियल और दूसर भी फल-फूल वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अग्रा में दिखाई पड़े ॥१००-१०१॥ सुवर्ण के समान जल वाले, चक्राङ्ग, बारण्डव और हमा से सजिन टिटिम, दात्यूह (वटफोडिया) तथा बलाको में युक्त एवम् कमल, कुमुद तथा मछलिया से पूर्ण तालाब देखने योग्य थे ॥१०२॥ वृक्षों पर चित्र विचित्र पल वाले तथा विविध भूषणों से भूषित परीगण वाम-विश्वल होकर श्रीङ्गा में निरत पक्षिया की (बचु से) भारले हुए कलरव कर रहे थे ॥१०३॥ पार्वती के विवाह में उम पर्वत पर मुग तथा शीतल स्पर्श वाला बाय बह रहा था ॥१०४॥ पर्वतो से धीरे-धीरे मलय-नील निरल कर देवन पुष्पा की गिरा रहा था । उसी प्रकार सब पवित्र ऋतुएं परस्पर मिलकर विराज रही थी ॥१०५॥ जिन ऋतुओं के सब चिह्न बना दिय गये हैं, वे सब मनोहर रूप में बड़ी थी ॥१०६॥ मदमत भ्रमरो से गुंजिन शिला-गुप के समूह से परम्पर मिलती हुई मालती लताये शोभित हो रही थी ॥१०७॥ सरावर का जल नील

१ ब हिमाञ्चल शृङ्ग । २ न कुसुमाकर । ३ ब बराल । ४ य नमून्य । ५ न ग दूर्यन्त
सर्वे म । ६ क ग दूर्यन्त । ७ क य दूर्यन्त । ८ य ० डा प्रयुक्तास्त्वय । ९ य ० क्तास्त्वय । १० रा पनाप्य ।

नीलानि नीलाम्बुहः पर्याप्ति, गौराणि गौरश्च मृणालदण्डैः ।
 रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि, मत्तद्विरेकावलज्जुष्टपत्रैः ॥१०८॥
 हेमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारतराणि केषुचित् ।
 वेदूष्यं नालानि सरःसु केषुचित्प्रजजिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥१०९॥

वाप्यस्तत्राभवन्नरम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः । 'नानाविहङ्गसंजुष्टा' हेमसोपानमृदुवतयः ॥११०॥
 भृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । समुच्छिन्नान्यविरलं हेमानोव धमृद्विजा ॥१११॥
 ईषद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः । संबभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्तिभिः ॥११२॥
 कुष्णाज्जुमा वशागुणा नीलाशोकमहीरुहाः । गिरी ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥११३॥
 वायरावबिजुष्टानि किशकानां वनानि च । पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥११४॥
 तमालगुल्मैस्तस्यासीत्सच्छोभा हिमवतस्तदा । नीलजीमूतसङ्घातं निनीलैर्निर्व्वि सन्धिषु ॥११५॥

निकामपुष्पैः सुविशालशालिः, समुच्छिन्नैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
 प्रमत्तपूरकोकिलसम्प्रलपं हिमाचलोत्तीव तदा रराज ॥११६॥

भूत्वा 'शब्दं' मृदुमदकलं सध्वतः कोकिलानां, चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलदण्डा दिनेन्दुः ।
 तेषां शब्दरूपचितबलः पुष्पधापेषु हस्तः, सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता' वेदुमङ्गध्वनङ्गः ॥११७॥
 पटुः सूपतिपद्मापि प्रायशोऽल्प (लघु) जलाशयः । देवीविवाहसमये प्रीत्य आगादिनाचलम् ॥११८॥

कमलो म से नील, श्वेत मृणालदण्डो से श्वेत तथा मदमत्त भ्रमरावली स सेवित पत्रबाले लाल कमलों से लाल
 हो गया था ॥१०८॥ किसी विस्तीर्ण जल वाले सरोवर म स्वर्ण वर्ण वाले, किसी मे अत्यन्त रमणीय और किसी
 मे वीर्य्य मणि के मृणाल वाले कमला के वन उत्पन्न हुए थे ॥१०९॥ वहाँ कमल तथा मृदु पुष्पा से युक्त अनेक
 पक्षिया से सेवित तथा सुवर्ण की पीडियो से समन्वित बावलियां थी ॥११०॥ द्विजगण । उस पर्वत के विस्तृत शिखर
 सपन वनकचम्पा वृक्षो से मुपुष्पित होकर सोने की तरह छिटा रहे थे ॥१११॥ वायु से कम्पित किञ्चित् विरसित
 पाटला के पुष्पो से सब दिशाये श्वेत-रक्त वर्ण की हो गई थी ॥११२॥ पर्वत पर नील अशोक वृक्ष तथा वृष्ण
 अर्जुन वृक्ष परस्पर स्पर्धा करते हुए दश गुना बढ़ने लगे ॥११३॥ मनोहर शब्दो से सेवित पलाश के वन पर्वत
 के नितम्ब पर विराज रहे थे ॥११४॥ सधिया (सध्या समय) मे छिपे हुए बाले बादलों के समूह जैसे तमाल
 वृक्षो से हिमालय की दोमा हो रही थी ॥११५॥ अतिशय पुष्पित विशाल शाखाओ से युक्त तथा विस्तृत चन्दन
 और चम्पा वृक्षो से और मत्त पुष्प-नीलिलो के प्रलाप से हिमालय अत्यन्त शोभित हो रहा था ॥११६॥
 कोकिलो के मृदु तथा मध से भरे शब्दो को सुनकर मधुर पक्षो को फँलाकर अत्यन्त मधुर शब्द करने
 लगे । उनसे शब्दो से बल प्राप्त कर पुष्पो का वनूप हाथ मे लेकर तीसारी के साथ कमदेव देवागनाओ को वेप
 करते लगा ॥११७॥ सूर्य की किरणें तीव्र होने लगी और प्राय तालावा म जल घटने लगा, जब देवी

१ क गमयता है ॥ २ क सपुष्टा ॥ ३ क पटुदिग्गज ॥ ४ क वत शुभ्रा नी ॥ ५ स सानुष्ट

१ क शब्दमृदुम ॥ ७ ग नित्य वे ॥

स चापि तदभित्तत्र बहूभिः कुसुमोत्तरैः। शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥११९॥
 तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः। ववुः पाटलविरतीर्णपद्मश्चाञ्जुनगन्धिनः॥१२०॥
 वायः प्रकुलपद्मोद्योकेतरारुणमूर्तयः। अभवंस्तदसंधु (ज्) षट्कलहंसकदम्बकाः॥१२१॥
 तथा कुरवकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्तयः। सर्वेषु भगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः॥१२२॥
 षकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः। उत्सर्जन् मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥१२३॥
 इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गममादरम्यदेशः ।
 'हिमगिरितनयाविबाहूभूयं पट्टपट्टमूर्त्तयो मुनिप्रवीराः ॥१२४॥
 तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वेभूतसमागमे। 'नानावाद्यसमाकीर्णं' अहं तत्र द्विजातयः॥१२५॥
 शैलपुत्रीमलङ्कृत्य योगशरभणसम्पदा। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः॥१२६॥
 ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम्'। हविर्जुहोमि' यज्ञो ते उपाध्यायपदे स्थितः॥१२७॥
 वदासि मह्यं दद्यातां कस्योद्योऽयं क्रियाविधिः। मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः॥१२८॥

शिव उवाच

'यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुलपदमेषोन्मितम्। कर्त्ताऽस्मि वचनं सर्वं ब्रह्मस्तव जगद्भिभो॥१२९॥

ये विवाह के समय प्रथम ऋतु हिमालय पर जा पहुँचा ॥११८॥ वह भी प्रचुर पुष्पा से युक्त वृक्षा से हिमालय के शिखरों को सब ओर से घेरित कर रहे थे ॥११९॥ पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अञ्जुन के गन्धा से युक्त मनोहर वायु बह रहा था ॥१२०॥ बावल्याँ चिकित्सक-अमृत के बरतों से अरण्य रंग की हो गई थी ॥१२१॥ जिनके तट बरहसा और कदम्बा से सजिन थे ॥१२१॥ श्वेतवर्ण के कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावलिया से सेवित कुरवक वृक्षा समस्त पर्वत गिजर पर घेरित हो रहे थे। पर्वत के विमान निगन्धा पर मौन-सिराँ मनोहर पुष्पो को चारा ओर बिखेर रहे थे ॥१२२-१२३॥ मुनिवर! सब वृक्ष पुष्पो से विविध रंगिते थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगने थे। गिरिपुत्री का विवाहोत्सव मनाने के लिए छोटी-बहुत उपस्थित हुई ॥१२४॥ द्विजगण! तदुपरांत नानाप्रकार के वाद्या से युक्त सब प्राणिपक्षी समागम होकर पर्वत पार्वती को सम्बलित अभूषणा से अलङ्कृत कर स्वयं स्वर मगर म प्रवेश कराया ॥१२४-१२६॥ तब महावान् शिवर से मैंने कहा—'महान् उपाध्याय-पद पर स्थित होकर मैं ब्रह्म ब्रह्मण्य। यदि आपका आज्ञा हो तो मैं यह क्रिया प्राण्य करूँ।' तब देवदेव जगन्पति शिवर ने मुझसे कहा ॥१२७-१२८॥

शिव बोले—'देव! एवमन्तु। ब्रह्मन्! जगत्स्वामी! मैं तुम्हारे सभी वचनों का अनुमोदन करता हूँ ॥१२९॥

१ क. *सपुष्टः। २ क. *हृष्ट्यै। ३ ग. *घातापी। ४ ख. *णै देवास्तत्र द्विजा स्वयम्। शं०। ५ म. *दा। सम्प्रा। च वेत्यामासु स्व०। ६ क. *यु। यद्दिन ज्हां०। ७ क. *मि विविक्कपुग०। ८ क. *न। रति तस्य वदन्त्य-स्वर्गात् इत्या चियाविधी। मा०। ९ ख. यद्यस्ति।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम् । हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः । 'श्रुतिगीतमंहामन्त्रमूर्तिमद्भरपस्यते' ॥१३१॥
ययोक्तविधिना हृत्वा सर्पस्तदभृतं हविः । ततस्तं ज्वलनं सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदेवतैः । पुत्रंश्च मानसं सिद्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१३३॥
वृत्तं उद्गाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम् । 'योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः' ॥१३४॥
उद्गाहं । 'त परो वृत्तो यं देवा न विदुः क्वचित्' । इति च सर्वमाख्यातं स्वयवरमिव शुभम् ।
उद्गाहश्चैव देवस्य भृगुध्वं परमाद्भुतम् ॥१३५॥

इति श्रीआदिवाहो महापुराणे स्वयम्भु-ऋषिसंवादे उमाभट्टेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं
नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥३६॥

यह्मा ने कहा—उसके बाद मैं प्रसन्न होकर शीघ्र कुशों को लेकर देवी और देव के हाथों को योगबन्धन से बाँध दिया ॥१३०॥ स्वयं अग्नि हाथ जोड़ कर वहाँ उपस्थित थे । शरीर धरकर वहाँ उपस्थित वेदबिहित महामन्त्रों से विष्णुपूर्वक मैंने हवन किया । वहाँ धी की जगह अभूत ही था ॥१३१॥ तब यमि की प्रदक्षिणा करा कर उनका हस्तबन्धन छोड़वा दिया । विप्रबृन्द । विवाह काल के समाप्त होने पर मैंने प्रसन्न चित्त से सभी देवताओं, अपने मानस पुत्र तथा सिद्धों के साथ शिव को प्रणाम किया । योग ही से उमा और भट्टेश्वर का विवाह सम्पन्न हुआ—इस कृतान्त को वही देवताओं ने नहीं समझा । इस शुभ स्वयंवर का सब-वर्णन मैं आपसे कर दिया ॥१३२-१३४॥ अब शिव के परम अद्भुत विवाह के विषय में भी सुन लीजिये ॥१३५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में उमा और भट्टेश्वर के विवाह निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पन्न ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अयं वृत्ते विवाहे तु' भवत्प्रामिततेजसः। प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
'तुष्टुबुध्निभिर्वाग्भिः' प्रणेमुर्ते महेश्वरम् ॥१॥

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय' पर्वतेशाय च' नमः। नमः पवनवेगाय' विरूपाक्षजिताय च ॥
नमः श्लेशविनाशाय वात्रे च' शुभसम्पदाय ॥२॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः। नमः पवनरूपाय' शतरूपाय' च' नमः ॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च'। नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च ॥४॥
नमो देववयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः। विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्वोर्बेदाङ्कुराय च ॥५॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः। सलिलोद्गर्पलिङ्गाय गुणान्ताय नमो नमः ॥६॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे। नमः कपालहस्ताय वणिजने' गविने नमः ॥७॥

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के विवाह सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र की अगुवा बनाकर देवगण अत्यन्त हर्ष से महेश्वर के पास गए और प्रणाम करके आद्य बाणी से उनकी स्तुति करने लगे ॥१॥

देवद्वन्द्व धोले—पर्वतलिंग की नमस्कार है, पर्वतेश की नमस्कार है, पवनवेग, विरूप और अजित की नमस्कार है, श्लेश-नाशक तथा शुभ-संप्रदायक की नमस्कार है ॥२॥ नीलशिखण्ड की नमस्कार है, अम्बिकापति की नमस्कार है, पवनरूप की नमस्कार है, शतरूप की नमस्कार है ॥३॥ भैरवरूप तथा विरूपाक्ष की नमस्कार है, सहस्रनेत्र तथा सहस्रचरण की नमस्कार है ॥४॥ देवमित्र की नमस्कार है, वेदाय की नमस्कार है, इन्द्र की बांहों की समित करने वाले तथा वेदाङ्गुर की नमस्कार है ॥५॥ चराचर के स्वामी तथा शमन की नमस्कार है, जलाशय में लिंग वाले तथा पुणों का मन्त्र करने वाले की नमस्कार है ॥६॥ कपालमाला तथा कपाल-सूत्र धारी की नमस्कार है, कपाल,

१ क. वृत्ति ०। २ क. ० गिरिध्यायि ०। ख ० गिरिध्यायि ०। ३ क. ० धामिरमया सह शर ०।

४ ख ० तशायाम नमः पर्वतधारिणे। न०। ५ ख पर्वतजात्रे। ६ ग च गुप्त ०। ७ क. पर्वतरूपाय। ख. पर्वतनाथाय। ८ क श्वेतरूपाय। ९ क. च। सहस्रनेत्ररीपाय। १० ग वष्टिणे।

नमस्त्रेलोक्यनाथाय पञ्चलोकरताय च । नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमयातिहराय च ॥८॥
 नमो , यज्ञशिरोहस्त्रे कृष्णकेशपहारिणे । भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च ॥९॥
 नमः पिनाकशूलसिखङ्गमुद्गरधारिणे । नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च ॥१०॥
 अन्तकान्तकृते चैव नमः पव्यन्तवासिने । सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे ॥११॥
 वैत्यानां योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः । शशाङ्खादित्यनेत्राय सलोटनयनाय च ॥१२॥
 नमः हमशानरतये हमशानवरदाय च । नमो वैचतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥१३॥
 गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे । नमो भुण्डार्धभुण्डाय पञ्चानां पतये नमः ॥१४॥
 सलिले तप्यमानाय योगेश्वर्यप्रदाय च । नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे ॥१५॥
 नमोऽङ्गप्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः । नमो रुद्राय वसव आदिश्यायाशिवने नमः ॥१६॥
 नमः पित्रेऽय साहस्रनाय विद्महेदेवाय वै नमः । नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च ॥१७॥
 नमो भीमाय सेनाय पञ्चानां पतये नमः । शुचये बंरिहानाय सद्योजाताय वै नमः ॥१८॥
 महादेवाय चित्राय विचित्राय च वै नमः । प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ॥१९॥
 पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च । नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे ॥२०॥

१०३ तथा गदाधारी को नमस्कार है ॥७॥ त्रिलोकीनाथ तथा पञ्चलोक में रत रहने वाले को नमस्कार है, खट्वाण (अस्त्र विशेष) धारी तथा प्रमथ (शिव के अनुचर) की आति को हरने वाले को नमस्कार है ॥८॥ यज्ञ शिर के हुता तथा कृष्णवेश (मृगचर्म ?) के अपहर्ता को नमस्कार है, भग देवता के नेत्र को गिराने वाले तथा पूषा के दन्तो को तोड़ने वाले को नमस्कार है ॥९॥ पिनाक (शिवधनुष), त्रिशूल तलवार, खंडा तथा मुद्गर धारण करने वाले को नमस्कार है, कालो के काल तथा तृतीय नेत्रधारी को नमस्कार है ॥१०॥ शालनाशन तथा पर्वतवासी को नमस्कार है, सुवर्णरूप धीर्यवाले (?) तथा कुण्डल धारण करने वाले को नमस्कार है ॥११॥ ईश्या के योग के भागस्वामी तथा योगियों के गुरु को नमस्कार है, सूर्य-चन्द्रमा-रूपी मैत्री वाले तथा मस्तक पर नत्र वाले को नमस्कार है ॥१२॥ हमशान म रत तथा हमशान में वर देने वाले को नमस्कार है, देवताजा के स्वामी तथा त्र्यम्बक (तीन नेत्र वाले) को नमस्कार है ॥१३॥ गृहस्थों म साधु, नित्य जटाधारी तथा ब्रह्मचारी को नमस्कार है, मुण्डी, अर्ध-मुण्डी तथा पशुपति को नमस्कार है ॥१४॥ जल म सप्त होने वाले तथा योग-ऐश्वर्य को देने वाले को नमस्कार है शान्त, दान्त तथा मृष्टि प्रलयकारी को नमस्कार है ॥१५॥ अनुग्रह-वर्ता तथा स्थिति-वर्ता को नमस्कार है, रुद्र, वसु आदित्य तथा अश्विनीकुमार को नमस्कार है ॥१६॥ पिता, साह्यरूप तथा विश्वदेव को नमस्कार है, शर्व, उग्र, शिव तथा वरद को नमस्कार है ॥१७॥ भीमरूप, सेनानी तथा पशुपति को नमस्कार है, पवित्ररूप, अनुभाशन तथा सद्य उत्पन्न को नमस्कार है ॥१८॥ महादेव, चित्त तथा विचित्ररूप को नमस्कार है, प्रधान, प्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है ॥१९॥ पुरुष तथा पुरुषरूप पुत्र की इच्छा करने वाल को नमस्कार

१ म • भाषाहा • २ व • वृषभधामिने । ३ व • राहुवे । ४ स • भोजनतना • ५ स • म ।

मुनिशङ्कुमा • ६ स • म । माध्याय विद्वत्पतये वि • ७ म • मृत्तिने च नया न • ८

प्रवर्तकाय प्रकृते पुरुषस्य च सर्वेशः। कृताकृतस्य 'सत्कर्त्रे' फलसयोगदाय च ॥२१॥
 कालज्ञाय च 'सर्वेषां नमो नियमकारिणे। नमो वेधम्यकर्त्रे च गुणानां वृत्तिदाय च ॥२२॥
 नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवं ॥ भगवान् देवो जगत्पतिरुमापति। स्तूयमान सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत् ॥२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

द्रष्टुं सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भो, सुरा। 'वर' परयत क्षिप्र दाताऽस्मि तमसशयम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणता, सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम् ॥२६॥

देवा ऊचुः

तयंय भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमोप्सितम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः। लोकाश्च 'प्रमये' सार्थं विवेश 'भवनं' स्वकम् ॥२८॥

है पुरुष-सयोग से प्रधान गुण व करने वाले को नमस्कार है ॥२०॥ प्रकृति पुरुष व प्रवक्तृ को नमस्कार है वृत्त और ध्रुव के सत् करनेवाले को तथा फलसयोग देने वाले को नमस्कार है ॥२१॥ काल तथा सब के नियामक को नमस्कार है और विषम करनेवाले तथा गुणों की वृत्ति देने वाले को नमस्कार है ॥२२॥ हे देवदेवेश ! हे प्राणिमा की उत्पत्ति करनेवाले ! आपकी नमस्कार है ! हे शिव ! हे प्रभो ! भगवान् करने के योग्य सौम्य रूप तथा सौम्यमुखवाले हैं। जयों ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवगणों द्वारा स्तुति किया जाने पर जगत्पति तथा उमापति भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा ॥२४॥

श्रीशङ्कर ने कहा—देववृन्द ! मैं देवताओं व ऋषि मुनि के देने योग्य तथा सौम्यरूप हूँ। आप लोग जो वरदान मांगते चाहें उसे मैं निमदेह दूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तब समस्त देवता शिव की प्रणाम करत हुए बोले ॥२६॥

देवताओं ने कहा—महेश्वर ! आप हम जो वरदान देना चाहते हैं, अपने पाप मुरझित करें। अब आश्विनपक्ष पदेगी तब आप हम ऋषिमुनि वरदान दीजिएगा ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—नमस्कार नमस्कार भगवान् शिव ने देवताओं को विदा किया और प्रत्यक्ष नाम व गुण व माय

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेन गापति देवतविप्रसमक्षम् ।

सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविषय्यमेत्य सुखो स्यात् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्या स्तव होम भूण्याद्वर पठेच्च य । स सर्वलोकमोदेवं पूज्यतेऽमरराडिव ॥३०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसवादे शिवस्तुतिनिर्हपण

नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

मदनदहन-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रविष्टे भवत देवे सूपविष्टे घरातने । स चक्रो मन्मथ ऊरो देव देहमना भवत् ॥१॥
तमनाधारसदृशत दुरात्मान कुलाधमम् । लोकान् सर्वान् पीडयन्त 'सर्वाङ्गावरणात्मकम्' ॥२॥

अपन भवन म प्रवर्ग किया । जो देवना तथा ब्राह्मणा व समान गिव व इस अन्धुन उत्तमव वा गान करणा वह मरन पर गणा व समान देह प्राप्त कर मुक्ती हागा ॥२८ २९॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवर ! जो इस म्तीव को मुनगा या धरगा वह समान एता वा प्राप्त कर वचनामा द्वारा देह व समान पुत्रिन हागा ॥३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि व सवाद प्रकरण म शिवस्तुतिनिर्हपण

नाम सैनीसवा अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

मदन-दाह वा वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जब गिव न अपन भवन म प्रविष्ट हातर भण्ड आसन ग्रहण किया ता वृत्ति वर वन्द्य ने उट नाम-वामना म विचित्रि करना थागा ॥१॥ विप्रवर ! अनाधार म मयुक्त दरागा वग म अपन

श्रद्धीणां विघ्नकर्त्तारं नियमानां व्रतं सह। चक्राह वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम् ॥३॥
 अयाऽस्ततापिन विप्रा येद्वुकाम सुरेश्वर। नयनेन तृतीयेन सावज्ञ समयक्षत ॥४॥
 ततोऽस्य नेत्रजो बह्निर्ज्वालाभालासहलवान्। सहसा रतिभर्तारमदहत् सपरिच्छदम् ॥५॥
 स दह्यमान करुणमात्तोऽक्रोशत विस्वरम्। प्रसादयश्च त देव पपात धरणीतले ॥६॥
 अथ सोऽग्निपरीताङ्गो ममयो लोक्तापन। पपात सहसा मूच्छा क्षणेन समपद्यत ॥७॥
 पत्नी तु करुण तस्थ विललाप सुदुःखिता। देवो देवञ्च दुःखार्ता अयाचत् करुणावती ॥८॥
 तस्याश्च करुण शास्त्रा देवो तो करुणात्मको। ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वस्य च दुःखिताम् ॥९॥

उमामहेश्वरायूचतु

दग्ध एव ध्रुव भद्रे नास्योत्पत्तिरिहप्यते। अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति ॥१०॥
 यदा तु विष्णुभगवान् वसुदेवसुत क्षुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तत सा तु वर लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना। जगामेष्ट तदा वेश प्रीतिमुक्ता 'गतबलमा' ॥१२॥
 वग्ध्वा काम ततो विप्रा स तु देवो वृषध्वज। रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले ॥१३॥

समस्त लोगो का उत्पीड़न करने वाले सब भगो को आवन करने वाले 'कपिया' व नियमा एव व्रता न विघ्न करने वाले 'चक्र' का रूप धारण कर रति क साथ आने वाले 'अयाचारी' और 'गिव' को विचलित करने के इच्छक उस काम को महादेव ने अपने तीसरे नेत्र से तिरस्कार पूर्वक देखा ॥३॥ तत्पश्चात् सहया ज्वालाओं वाला अग्नि गिव के नेत्र से उत्पन्न होकर वस्त्र आभूषण सहित कामदेव को सहसा जलाने लगा ॥५॥ दग्ध होना हुआ काम दुर्गी होकर जोर से चिल्लाते लगा और गिव की स्मृति करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६॥ लोक्तापन नाम अग्नि से सर्वांगदग्ध होकर सहसा मूर्छित हो गया ॥७॥ उसकी पत्नी रति दुःखित होकर करुण विलाप करने लगी। करुणावती दुःखीयिता रति गिव तथा पावनी से याचना करने लगी ॥८॥ उसकी वरण स्मृति समझकर वरणाक्ष भवानी 'गवर' दुःखित रति को आश्वासन देन हुए बोले— ॥९॥

उमा और महेश्वर ने कहा—भद्र। यह तो दग्ध ही गया। अब इसरी उत्पत्ति नहीं होगा। पर गरीर न होने पर भी यह तुम्हारा सब काम कर देगा। ध्रुवे। अब विष्णु भगवान् बगुदेव के पुत्र होने तक उनका पुत्र तुम्हारा पनि होगा। १० ११

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त कल्याणमयी कामपत्नी वर प्राप्त कर पाए रहित हा गई और प्रगल्भ होकर अमीष्ट स्थान को चम्प गई ॥१२॥ द्विजगण कामको दग्ध कर भगवान् 'गवर' उर्मी हिमाचल पर प्रसन्नतापूर्वक उमा व साथ रमण करने लगे ॥१३॥ रमणाव कन्तराभा म पद्मनाभ गुफाभा म मनहर शीला म मनकचणकवन।

१ स मुञ्जलस्तम्भः। २ वराङ्गना। ३ व मनसिर्वन। ४ ल ०या। ५ ल ०या। ६ ल ०या। ७ ल ०या। ८ ल ०या। ९ ल ०या। १० ल ०या। ११ ल ०या। १२ ल ०या। १३ ल ०या।

कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु^१ च । निर्गरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च ॥१४॥
 नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च । शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च ॥१५॥
 वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिस्तेषु च । तीर्थेषु पुण्यतीर्थेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥१६॥
 एतेषु पुण्येषु^२ मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु ।
 गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्र- ॥१७॥
 देवैः सहैन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।
 अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोत्सौ, तस्मिन्नग्रे हृष्यमवाप शम्भुः ॥१८॥
 मृत्युमन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।
 दिव्यानि वाद्याम्यय वादयन्ति, केचिद्भुतं^३ 'देववरं स्तुवन्ति'^४ ॥१९॥
 एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलैः शक्रयमानितुल्यैः ।
 देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तस्याज तदा महात्मा ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा । अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमवच्छृङ्गे स हि देव्या. प्रियेच्छया । गणेशोविषाकारैर्हासं सञ्जनयन् मुहुः ॥२२॥

म, सुन्दर नदी-तटा पर, किन्नरा से सेवित पर्वतराज के शिखर पर तालाबा म, सरोवरा म मनोरम तथा नाना पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित बना म पवित्र जल वाले तीर्थों म और मुनिया के आश्रम म—मनोहर, विद्याधरी स भूपति और गन्धर्व, यक्ष तथा देवराजा से सेवित पवित्र स्थाना म—शक्र ने भवानी के साथ रमण किया ॥१४ १७॥
 उन्नी पर्वत पर इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, राक्षस एवं विविध गणा से जाबून होकर शक्र हूषित हुए ॥१८॥ [यहाँ अप्सरायें नाच करती थी, देवता तथा गन्धर्वगण प्रसन्न होकर गान करत थे कोई दिव्य वाजे बजाते थे और कोई हुन गति स शक्र की स्तुति करने थे ॥१९॥] इस प्रकार इन्द्र और यम के पुत्र्य महा बलवान् अपने गणा से युक्त होकर भग देवता के नेत्र को नष्ट करने वाले महात्मा शम्भु ने प्रिया के निमित्त पवन को नहीं छोड़ा ॥२०॥

ऋषियो ने कहा—काम-नाशन भगवान् शिव न यही रहत हुए उमा की प्रसन्नता के लिए क्या किया—यह हम समझना चाहत हैं ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय के शिखर पर उमा के मनोरञ्जन के लिए भगवान् शिव अनन्य प्रकार के

‘देवीं बालेन्दुतिलको रमयश्च रराम च। महानुभावं सर्वज्ञं कामरूपधरं शुभं ॥२३॥
अयं देव्याससादंका मातरं परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमादभुते ॥२४॥
अयं दृष्ट्वा सतीं देवीभामता सुररूपिणीम्। आसनेन महाहोनासम्पादयदनिदिताम् ।
आसीनां तामथोवाच मेना हिमवत प्रिया ॥२५॥

मेनोवाच

चिरस्यागमनं तेऽद्य ख पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडन्तस्तु हि भर्त्रा क्रीडासि सङ्गता ॥२६॥
ये दरिद्रा भवन्ति स्म तथैव च निराश्रया। उभे त एव क्रीडन्ति यथा तव पतिः शुभे ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

सैवमुक्ताऽयं मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत्। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
विसृष्टा च तदा मात्रा गत्या देवमुवाच ह ॥२८॥

पार्यत्युवाच

भगवन् देवदेवेश मेहं वारस्यामि भूधरे। अयं कुत्र समाऽऽवास भुवनेषु महाद्युते ॥२९॥

देव उवाच

सदा त्वमुद्यमाना वं मया वासार्यमीश्वरि। अयं न रोचितवतो वास वं देवि कर्हिचित् ॥३०॥

गण-नायका के साथ बार बार हास्य करते थे ॥२२॥ बागवन् रूप तिलाचारी गिरि इच्छानुसार रूप धारण करने वाले व-दाणमय सवण तथा बिनाउ ह्मणवाले गण-पतिया के साथ हास्य करने उमा को प्रमुग्धित करते थे तथा स्वयं आनन्दित होते थे ॥२३॥ एक समय पावनी सुवर्ण व स्वच्छ तथा परम अमन आसन पर बैठी हुई माना व पाम ग ॥२४॥ देव भयमारिणी सती को देखकर हिमालय की पत्नी मेगा न उम अनिय देवी को बहुमुख आसन पर बटाया और कहा ॥२५॥

मेना बोली—हे क्षम नका बाला पुत्र! बहुत ग्नि। पर तुम आई हो। कहा स्वामी व सग प्रीण करते करने तुम मा दरिद्र हा गई क्या? जो दरिद्र तथा आश्रयहीन होते हैं व हा इस प्रकार प्रीण करते हैं जैसे कि मुहारा पनि कर रहा है ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—माता का यह बात सुनकर उमा हर्षित न हुई। क्षमागत होने व कारण वह माना म प्रिता कुछ नहे बिग होकर गकर व पास जाकर बोला। २८॥

पार्यतो ने कहा—भगवन्! हे देव-देव! मैं अब इस पवन पर नहीं रहेंगा। हे महाकर्ता नवान्! मेरे लिए निमुवन म कहा दूसरा आवास-स्थान इन्द्रिय ॥२९॥

देव ने कहा—बो! ईश्वरी! मैं ता वासस्थान व लिए तुमम सग कहना था पर मुझे तो बर्मी

इदानीं स्वयमेव त्वं वासमन्यत्र शोभने। कस्मान्मृगयसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते ॥३१॥

देव्युवाच

गृहं गताऽस्मि देवेश पितुरद्य महात्मन। दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावेन ॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत। उभे तव सदा भर्ता दरिद्रं क्रीडनं शुभे ॥३३॥
क्रीडते न हि देवानां क्रीडा भवति तादृशी। यतः किल त्वं महादेव गणेशं विविधैस्तथा।
रमते तदनिष्ट हि मम मातुर्वर्षध्वज ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

ततो देव प्रहृष्ट्याऽऽह देवीं हासयितुं प्रभु

॥३५॥

देव उवाच

एवमेव न स देह कस्मान्मन्युरभूत्तव। कृत्स्न्यासां ह्यवासाश्च इमं ज्ञाननिलयश्च ह ॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येयुः पर्वतानां गुहासु च। विचरामि 'गणनैर्नन्दतोऽभोजयितोऽनेन' ॥३७॥
मा क्रुधो देवि मात्रेऽस्य तस्य माताऽवदत्तव। न हि मातुसमो बन्धुर्नतूनामस्ति भूतले ॥३८॥

देव्युवाच

न मेऽस्ति बन्धुभिः किञ्चित् कृत्यं सुरवरेऽक्षर। तथा कुर्वन् महादेव 'यथाऽहं सुखमाप्नुयाम्' ॥३९॥

दूतगी जगह क्या ही नहीं। सुदरी। पवित्रहास्य बाउ। क्या कारण है कि इस समय तुम स्वयं दूसरी जगह जाह्न हो? ॥३० ३१॥

देवी ने कहा—देवे। आज मैं पूज्य पिता के घर गई थी। वहाँ जन मन मानव एवान्त स्थान में मेरी माता को मन देना। आसन आदि प्रणाम कर मेरा सत्कार करता हुई वह मुझसे इस प्रहार करने लग — उम। मुन्दारा पति जाड़ा करते-करते दरिद्र हो गया है। इसलिए कि देवताओं की तरह वह क्रीडा नहीं करता। है मन्त्रेव। आप जो विविध गणा के साथ रमण करते हैं वह मर माता को बुरा लगता है ॥३२ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रभु स्वयं हसकर देवी को हसाते हुए बोले ॥३५॥

देव ने कहा—ब्रह्म एनी ही है इसमें कोई सार्य नही है तुम्हें क्या शोष हुआ? हे पद्मनोबने। मैं पद्म पहनता हूँ नही भी कुछ पहनता हूँ "मगान म रहता हूँ नही मा नही रहता हूँ और धना म तथा पवला भी गुहाओं म मन्त्र गणा के साथ विचरण करता हूँ। देवी। तुम माता के ऊपर काय मत करो। उसने साथ कहा है। पूर्वज पर प्राणियों के लिए माता के समान कोई बन्धु नहीं है ॥३६ ३८॥

देवी ने कहा—देवप्रष्ट। मुझ बन्धुओं में कुछ करना नहीं है। मन्त्रदेव अब आप वही कीजिये जिनके मम मुझ मिले ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थे 'स्वमिरिं विहाय ।

जगाम भेरुं सुरसिद्धसेवितं', भार्यासहाय स्वगणंश्च युक्तः ॥४०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवाद उभा-महेश्वरयोहिमवत्परित्यागनिरूपणं
नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे । 'विनाशमगमद्' ब्रह्मन् ह्यमेध.' प्रजापते ॥१॥

देव्या 'मन्युवृत्तं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मकं प्रभुः । कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजसः' ॥

महादेवेन रोषाद्धं तप्तः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवी व वचन सुनकर उसकी अमीष्ट सिद्धि के लिए घरर अपने पर्वत को छोड़कर मार्ग और अपने गणों से युक्त होकर देवता तथा मिट्टा से सुमेवित मेरुपर्वत पर चले गए ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में सिद्ध और पार्वती के
हिमालय-त्याग निरूपण नामक अष्टीमर्वा अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३६

दश के यज्ञ का विध्वंस

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! वैवस्वत नामक अन्तर म प्रचना-युक्त प्रजापति दश का अरवमय पशु कैसे विनष्ट हुआ ? दवी के क्रोध (-अन्य विनाश) को जानकर क्रुद्ध सर्वात्मक प्रभु ने अग्नि तेजस्वी दश के यज्ञ का विनाश कैसे किया ? महादेव ने क्रोध में जो किया वह विष्णुपूर्वक हम बतलाए ॥१-२॥

ब्रह्मोवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा । क्रोधाद्विध्वंसितो यज्ञो देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥३॥
पुरा मेरोद्विजधेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम् । ज्योतिः स्थलं नाम चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥४॥
अप्रमेयमनापृथ्यं सर्वलोकनमस्कृतम् । तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते ॥५॥
पर्यङ्कु इव विस्तीर्णं उपविष्टो बभूव ह । शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥६॥
आदिरयाश्च महात्मानो वसवश्च महोजसः । तथैव च महात्मानावश्विनौ भिपजां वरौ ॥७॥
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकः परिवारितः । यक्षाणामोदवरः श्रोमान् कलासनिलयः प्रभुः ॥८॥
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः । सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥९॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च । विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्यंतौ ॥१०॥
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजमुरनेकशः । बभौ सुखशिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ॥११॥
सर्वलङ्कुसुमोपेतः पुष्पवन्तोऽभवन्नुमाः । तथा विद्याधराः साध्याः सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥१२॥
महादेवं पशुपतिं परमपासत तत्र वै । भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यपि ॥१३॥
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः । बहुरूपधरा घृष्टा नानाप्रहरणायुधाः ॥१४॥
देवस्यानुधरास्तत्र तस्युर्वेद्वानरोपमाः । नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥१५॥
प्रगृह्य श्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा । गङ्गा च सरितां धेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रबन्ध ! देवी का प्रिय करने की इच्छा से जैसे महादेव ने कोप से यज्ञ का विध्वंस किया, उगका मैं सविस्तार वर्णन कहूँगा ॥३॥ द्विजधेष्ठो ! पहले ज्योतिःस्थल नामक एक पर्वत का शिखर तीनों लोक से पूजित, विचित्र, सब प्रकार के रत्नों से विभूषित, मापने न बाध्य, जनसमागमगूढ तथा समस्त लोक से नमस्कृत था ॥४॥ वही सब प्रकार के धातुओं से चित्रित पलंग भी तरह विस्तीर्ण पर्वत-तट पर शहर बँटत थे । उनकी बगल में गिरिराज-कन्या भी नित्य बैठती थी ॥५-६॥ महारथा आदित्यगण, महातेजस्वी वसुगण, दाना वैश्रव्येष्ठ अश्विनीकुमार और गुह्यका से युक्त, यथा के ईश्वर, बलासक्तामी तथा शक्ति सम्पन्न धीमान् कुबेर उनकी उपासना करते थे ॥७-८॥ महामुनि भुज, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अगिरा आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नागद पवन और अप्सरा गण वहाँ अनेक बार आते थे ॥९-१०॥ सुख-दान्ति-दायक तथा गन्धवाहक पवित्र वायु, बहता था । वृक्ष सब ऋषुभा म छोड़े वाले पुष्पा से समन्वित थे । विद्याधर, साध्या, सिद्ध और तपस्वीगण पशुपति महादेव की आराधना करने लगे ॥११-१२॥ नाना प्रकार के रूपा को धरत्तर दूसरे प्राणी, महाभयकर राक्षस, बहुरूपी, घृष्ट नाना अस्त्र करने लगे ॥१३-१४॥ नाना प्रकार के रूपा को धरत्तर दूसरे प्राणी, महाभयकर राक्षस, बहुरूपी, घृष्ट नाना अस्त्र करने लगे ॥१५-१६॥ गङ्गा से युक्त तथा महाबलवान् पिशाच और अग्नि के समान शिव के अनुचर वहाँ उपस्थित रहते थे ॥१७-१८॥ अपने तेज से दीप्यमान तथा प्रग्वलित त्रिशूल का धारण कर भगवान् नन्दीश्वर भी सबार की आज्ञा पाने के लिए तैयार खड़े रहते थे । द्विजधेष्ठो ! सब तीर्थों के जल से उत्पन्न तथा नदिया म खेद्य गंगा रूप धारण कर सबर

१ ग ०म् । विल ज्यो० । २ ग ० म स० । ३ ग म विद्याधरमु० । ४ स पुण्यव० । १ ग ग हृष्टः ।

पर्युपासत तं देवं रूपिणी द्विजसत्तमाः। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरविभिः॥१७॥
 देवंश्च 'सुमहाभागंमहादेवो व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वय कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः॥१८॥
 पूर्वोक्तेन विधानेन 'यद्ययमाणोऽभ्यपद्यत। ततस्तस्य 'मखे देवाः सर्वे शक्रपुराणम्'॥१९॥
 स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य' दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानमहात्मानो'ज्वलद्भ्रुव्वलनप्रभाः॥२०॥
 देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः। गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं मानाद्भुमलतावृतम्॥२१॥
 'ऋषिसिद्धेः'परिवृतं दक्षं धर्मभूता वरम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे 'च ये च स्वर्लोकावातिनः॥२२॥
 सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्युः प्रजापतिम्। आविष्टा वसवो रुद्राः 'साध्याः सर्वेमरुद्गणाः॥२३॥
 विष्णुना सहिताः सर्वे आगता 'यज्ञभागिनः। ऊष्मपा धूमपाश्चैव आज्यपाः सोमपास्तथा॥२४॥
 अश्विनौ मरुतश्चैव 'नानादेवगणैः सह। एते चाग्ये च बहवो भूतप्राप्तास्तयं च॥२५॥
 जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोजिद्भुवः। 'आगताः 'सन्निभः सर्वे देवाः' 'स्त्रीभिः सहविभिः॥२६॥
 विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इधान्वयः'। तान्दुष्ट्वा मय्युनाऽऽबिरटो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥२७॥

की उपासना में लगी रहती थी॥१५-१६॥ इस प्रकार देवपिया तथा महाभाग देवताओं से पूज्यमान भगवान् शिव वही रहने थे। कुछ काल बाद दक्ष नामक प्रजापति ने पूर्वोक्त विधान के अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया॥१७-१८॥ ऐसा मुना जाता है कि उसके यज्ञ में इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से आकर उपस्थित हुए। जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाले के महाभागण शिव की अनुमति पाकर गंगा-द्वार (हरिद्वार) में पहुँचे।—॥१९-२०॥ पृथिवी, आकाश तथा स्वर्गलोकासी—मन्त्र सब गन्धर्व तथा अप्सराओं से समन्वित, नाना वृक्ष-लताओं से आवृत, ऋषि, तथा सिद्धा भी बसित और धर्मधारियों में श्रेष्ठ प्रजापति दक्ष को हाथ जोड़कर उपस्थित हुए॥२१-२२॥ विष्णु महिम्न आदित्य, वसु रुद्र, माध्य और मरुद्गण—ये सब यज्ञ में भाग लेने के लिए आये॥२३॥ ऊष्म पात्र करने वाले धूम पात्र करने वाले, धी पात्र करने वाले, सोमरस पात्र करने वाले, अश्विनौ कुमार, नाना देवगण, मरुद्गण—य तथा दूसरे बहुत स प्राणी—जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिग्ज वही आये। सब देवगण ऋषियों तथा त्रिपा के साथ विमान में स्थित होकर अग्नि के समान दीप्यमान तथा शोभायमान होने हुए पथारे। उहे देगनर कोप से आविष्ट है। दधीनि ने कहा॥२४-२५॥

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा^१ तु विप्रयिः पुनर्दक्षमभाषत ॥२९॥

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्तारं कस्मान्नाच्चर्चयसे प्रभुम्^२ ॥३०॥

दक्ष उवाच

‘सन्ति मे बहवो यद्वा. झूलहस्ताः कर्पाद्दिनः । एकादशस्यानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमग्नितः । यथाऽहं शङ्कराबुध्वं नान्यं पश्यामि वैद्यतम् ।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥३२॥

दक्ष उवाच^३

विष्णोश्च भामा विविधाः प्रवृत्तास्तथा च रद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥३३॥

दधीचि बोले—अपूज्या के पूजन तथा पूज्या के अपूजन से मनुष्य महापाप का भागी होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रयि इनका कहकर फिर दक्ष से कहने लगे ॥२९॥

दधीचि ने कहा—सर्वशक्तिमान् पशुपति की पूजा क्या नहीं करते हा ? ॥३०॥

दक्ष ने कहा—ग्यारह स्वाना में प्राप्त, जटाधारी तथा त्रिशूल हाथ में लिए अनवरत घूम रहे हैं मैं दूसरे महेश्वर को नहीं जानता ॥३१॥

दधीचि ने कहा—सबका एकमात्र यही कहना है कि मेरे प्रभु का निमग्नित नहीं किया गया । जिस प्रकार मैं शंकर से बड़ा करिमी दूसरे देव को नहीं सम्पन्नता उसी प्रकार दक्ष का यह बृहत् यज्ञ (सम्पन्न) नहीं होगा ॥३२॥

दक्ष ने कहा—मैंने विष्णु को विविध भाग दिये, यज्ञ को दिये और दूसरे देवों ने भी अपने-अपने भाग पाये, पर मैं शंकर को यज्ञ-भाग नहीं दे सकता हूँ ॥३३॥

१ ग ० चत्वा मुनिविप्रानुनर्वात्म्यम० । २ य विभुम् । ३ स सन्निहित ० । ४ य ० य तथा नान्य विप्रे न म० । ५ य ० च । एतन्मतेभ्यः सुवर्णपात्रं हविः सम्यक् विविच्यन्तपूतम् । विष्णुस्तत्र यस्याप्रतिवेश्य भागं न यज्ञभागं तु महेश्वराय । जगत्प्रभासस्य दधीचि भागं विष्णोश्च नित्यं विभुषं प्रदत्तम् । तस्मादहं देववराय दद्यां यन्मयं भागं ।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा । उवाच वचनं 'शर्वं देवं' पशुपतिं पतिम् ॥३४॥

उभोवाच

भगवन् कुत्र गन्तव्येते देवाः शत्रुपुरोगमाः । ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥३५॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः । हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥३६॥

वेद्युवाच

यज्ञमेतं 'महाभाग किमर्थं ज्ञानुगच्छसि । केन वा प्रतिपेधेन गमनं ते न विद्यते ॥३७॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव' महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् । यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥३८॥

पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि । न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥३९॥

उभोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः । अजेयश्चाप्यध्व्यश्च' तेजसा यशसा श्रिया ॥४०॥

अनेन तु महाभाग प्रतिपेधेन भागतः । अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब (दक्ष के यज्ञ में) गये देवताओं की जानकर गिरि-कुमारी अपने पति पशुपति शिव से कहने लगी ॥३४॥

पार्वती बोली—भगवन् ! ये इन्द्र आदि देवता नहीं जा रहे हैं ? हे तत्त्वज्ञ ! बतलाए, मुझे बड़ा शय हो रहा है ॥३५॥

महेश्वर ने कहा—महाभागे ! दक्ष नामक उत्तम प्रजपति अश्वमेध यज्ञ करते हैं । यही ये देवता लोग जा रहे हैं ॥३६॥

देवी बोली—हे महाभाग ! इस यज्ञ में आप क्या नहीं जाते ? आपने गमन पर कान-सा प्रतिबन्ध लग गया है ? ॥३७॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग ! देवताओं ने ही यह सच किया है । किसी भी यज्ञ में मुझे भाग नहीं मिलता । धेष्ट वर्ण-वाली ! पहले क मार्ग काही अनुसरण करना चाहिये । देवता लोग यज्ञ में धर्मपूर्वक भाग मुझे नहीं देते ॥३८-३९॥

उमा ने कहा—भगवन् ! समस्त देवताओं से आप अधिक प्रभावशाली तथा गुणवान् हैं । तेज, यश और श्री में भी आप अजेय तथा अध्व्य (न दबाने योग्य) हैं ॥४०॥ आपने ये इस विषय में कारण मैं बड़ी दुर्ग है,

किं नाम दान नियम तपो वा, 'कुर्यामिह येन पतिर्ममाद्य ॥
लभेत भाग भगवानचिन्त्यो, यत्तस्य' चेन्द्राद्यमरेविचित्र (भक्त) म् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एव श्रुवाणा भगवान् विचित्र्य, पत्नीं प्रहृष्ट क्षुभितामुवाच ॥

महेश्वर उवाच

म धेस्ति मा देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्त वचन तवेदम् ॥४३॥

अहं विज्ञानामि विशालनेत्रे, ध्यानेन सर्वे च विदन्ति सन्त ॥

तवाद्य' मोहेन सहेन्द्रदेवा, लोकत्रय सर्वमयो विनष्टम् ॥४४॥

मामध्वरेश नितरा स्तुवन्ति, रघन्तर साम गायन्ति मह्यम् ॥

मा ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजति, ममाध्वर्य्यं च कल्पयन्ते च भागम् ॥४५॥

देव्युवाच

विकल्पसे प्राकृतयत् सर्वस्त्रीजनसत्सवि। 'स्तोषि मर्वायसे' चापि स्वमात्मान न सशय ॥४६॥

भगवानुवाच

माऽऽत्मान स्तोमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि। सत्यक्यामि' वरारोहे भागार्थे वरवर्णिनि ॥४७॥

मेरा धीर वीर काप रहा है ॥४१॥ मैं कौन सा दान नियम या तप कर जिससे मेरे अचिन्त्य तथा शक्तिमान् पति यश म इन्द्र आदि देवताओं से भी विरूपाक्ष भाग प्राप्त करेंगे ॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहत हुई द सी पत्नी को दण कर प्रसन्न भगवान् गबर बोले।

महेश्वर ने कहा—हे क्षीण बटि वाली ! देवी ! क्या तुम मुझ नहीं जानती हो ? क्या यह तुम्हारा वचन युक्ति-मगत है ? ॥४३॥ हे विनालादी ! मैं सब कुछ जानता हूँ क्योंकि योगीजन ध्यान से सब कुछ समझ लेत हैं। आर्य तुम्हारे मोह के कारण इन्द्र आदि देवता महित सीना लोक नष्ट हो जायेंगे ॥४४॥ ब्राह्मण लोग मुझ यशपति की स्तुति करते हैं मेरे लिए रघुनर साम का गान करते हैं तथा वेन मन्त्रों म यज्ञ करते हैं और अध्वर्यु मुझ भाग देन है ॥४५॥

देवी ने कहा—स्त्रिया की समा म साधारण मनुष्य की तरह बाण अपनी बनाई करत हैं क्षीण होस्त है तथा गव करते हैं इसम कोई सानेह नहीं ॥४६॥

भगवान् ने कहा—हे देवताओं की स्वामिनी ! मैं अपना प्रणाम नही करता जैसा कि तुम समझ रहा हो। हे स्त्रा रत्न ! हे सुन्दर वन वात्री ! मैं अपने भाग क लिए सृष्टि बरह्या ॥४७॥

१ क इया मय येन विमागमय। २ ग ०स्य भाग ह्यपवातृयम। ३ स वलेन। ४ ग ०च-प्राप्तुं गहि
पुरय सब०। ५ ग स्तोमि। ६ स ०र्वाभिभूतस्तु त्वमा०। ७ क स प्रवक्ष्यामि।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्। सोऽसृजद्भगवान् 'वववाद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥४८॥
तमुवाच मत्तं गच्छ दत्तस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दत्तस्य मदनुज्ञया ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेपेण लीलया। देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दत्तस्य स क्रतुः ॥५०॥
मग्न्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः। धीरभद्रेति विस्थातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान्रोद्रान् रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥५३॥
घटस्थानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽप्य सहस्रशः ॥५४॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव। समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥५५॥
तेन शब्देन महता प्रस्ताः सर्वे दिवौकसः। पर्वताश्च व्यशोर्यन्त चकम्पे च वसुंधरा ॥५६॥
महतश्च यवुः क्रूराश्चक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यन्त भास्करः ॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवान् च दानवाः ॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वर। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् धोरानुपाटयन्ति च ॥५९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राणाधिक प्रिया उमा से इस तरह कहकर भगवान् ने क्रोधाग्नि के द्वारा अपने मुक्त से एव भूत को उत्पन्न किया। उससे शबर ने कहा—‘तुम दत्त के यहाँ सीधे जाकर उससे यज्ञ का विध्वंस करो।’ ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर रुद्र ने भेजे हुए उम मूल में लीला में सिंह का रूप धारण कर पार्वती का क्रोध जानकर दत्त के यज्ञ को नष्ट किया ॥५०॥ क्रोध से महाभयंकर भद्रकाली माहेश्वरी भी आत्मा को कर्म-साक्षी बनाकर भूत के साथ ही बल पड़ी ॥५१॥ उस बली, क्रोधरूपी, समगानवासी तथा देवी के ज्ञाप को मिटाने वाले भूत का नाम वीरमद्र था ॥५२॥ उसने अपने रोम-रूपा से रुद्र के जन्माग्नी, मयवर तथा रुद्रानुग पराक्रमी गण-नायक की सृष्टि की ॥५३॥ सबके साथ रुद्रानुग पराक्रमी तथा रुद्र के अनुचर थे। ये सैन्धवी हजारा की संख्या में सीधेता से टूट पड़े ॥५४॥ विप्रवृन्द ! तब रुद्रगणा की विल्लारी इतनी अधिक हुई कि (उससे) आकाश भर गया ॥५५॥ उस महानष्ट से देवता डर गये, पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु घूर्णा से बहने लगा, समुद्र मग्न हो उठा, अग्नि मीनक पड़ गया, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारे प्रकाश रा बँटे और ऋषि, देव तथा दानव तत्रोद्गीन हो गए ॥५६-५८॥ इस प्रकार सर्वत्र तिमिरावृन् हो जाने पर वे

१ स ०वपाद्भूतः । २ स ०कृते जा० । ३ स ०स्व वनूव वगवर्णिनी । वीरमद्रा महाभूरुतया सार्धं सहानुगाः ॥ । ४ स ०रमदव य० ।

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे । स्वरितं वै प्रघावन्ति वायुवेगं मनोजवाः ॥६०॥
 चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि । शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा इव नभस्तलात् ॥६१॥
 दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः । क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकूर्दमाः ॥६२॥
 मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करबालुकाः । यद्भस्मान्नवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥६३॥
 उन्वाचचानि मांसानि भक्ष्यानि विविधानि च । यानिकानि च दिव्यानि लेह्यबोष्वाणि यानि च ॥६४॥
 भुञ्जन्ति विविधैर्वन्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च । द्रक्कोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥६५॥
 भक्षयन्तोऽप्य शीलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः । क्रीडन्ति विविधकारादिचक्षिषुः सुरयोषितः ॥६६॥
 एवं गणाश्च तैर्घुवतो वीरभद्रः प्रतापवान् । द्रक्कोपप्रमुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥६७॥
 तं यत्नमदहृच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः । चक्रुरग्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥६८॥
 छित्त्वा शिरोऽग्रे यज्ञस्य व्यनवन्त भयङ्करम् । ततः शकादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥६९॥
 ऊचुः पान्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा न च भोवतुमिहागतः । नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥७०॥

गणेश्वर यज्ञमण्डप को जलान लगे । कोई मयानव धूपी (यज्ञ स्तम्भो) को तोड़ते उखाड़ते, तो कोई अव्यक्त शब्द करते थे । कोई कुत्सित शब्द करते थे और कोई वायु तुल्य या मन तुल्य शीघ्रता से दीड़ते थे ॥५९-६०॥
 यज्ञ-पात्र चूर-चूर कर दिये गये । यज्ञ-गृह टूट कर इस प्रकार गिरे जैसे आकाश से तारे गिरते हैं ॥६१॥ (वहाँ) दिव्य अन्न, पान तथा मध्य पदार्थों की राशि पर्वत की तरह थी । दूधवी नदियाँ बह रही थी । घी तथा क्षीर रूप की बड़ बाली, मधु तथा मट्ठा रूप जल वाली और खाद तथा शक्कर रूप रेत वाली दूसरी दिव्य नदियाँ बह रही थी । छोटी रसो की बहाने वाली अल्प मनोरम गुड की नहरें थी ॥६२-६३॥ छोटे-बड़े मांस तथा चाटने योग्य और चूसने योग्य विविध प्रकार की मध्य सामग्रियाँ थी ॥६४॥ (इन पदार्थों को) द्रक् कौपरी, महाकौपरी, कालाग्नि की उपमा देने योग्य तथा पर्वताकार गणेश्वर अनेक मुञ्जो से खाते और फन्ते थे । अनेक सपवारी गण सामग्रियों को खाते, लींगो को डराते, क्रीडा करते तथा देवागनाभा के ऊपर प्रक्षेप करते थे ॥६५-६६॥ इस प्रकार गणों से युक्त, द्रक्कोप से उत्पन्न, प्रतापी वीरभद्र ने निखिल देवों से सुरक्षित उस यज्ञ की मद्रकाली के सामने ही जीघ्र अला डाला । अतिरिक्त गणों में से कुछ तो प्राणीमात्र को मयानक लगने वाले शब्द करने लगे और कुछ यज्ञ के शिर को नाट कर भीषण चीत्कार करने लगे । तदनन्तर शक आदि देवता और प्रजापति दक्ष ने अजलि बाध कर पूछा कि आप कौन हैं ॥६७-६९॥

वीरभद्र ने कहा—देवश्रेष्ठो ! मैं न देव हूँ, न दैत्य हूँ, न साने के लिए आया हूँ, न देवने के लिए आया हूँ और न मुझे कुतूहल ही है ॥७०॥ देवबृन्द ! मैं तो दक्ष के यज्ञ की नष्ट करने के लिए आया हूँ । वीरभद्र

दक्षयज्ञविनाशाय सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमा । वीरभद्रं विव्यातो रुद्रकोपाद्विनि सृत ॥७१॥
भद्रकाली च विव्याता' देव्या क्रोधाद्विनिर्गता । प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागतः ॥७२॥
शरण गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम् । वर क्रोधोऽपि देवस्य न वर' परिचारकं ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

निखातोत्पाटितं पुरं पविद्धं स्ततस्ततः । उत्पतद्भू पतद्भूश्च गृध्रेरामिषगृध्नुभिः ॥७४॥
पक्षवातविनिधूतं शिवारुतविनावितं । स तस्य यज्ञो नृपतेर्बाध्यमानस्तदा गणं ॥७५॥
आस्थाय भृगुरूपं वै खमेवाभ्यपतत्तदा । तन्तु यज्ञ तयारूपं गच्छन्तमुपलभ्य स ॥७६॥
घनुरादाय बाणञ्च तदर्थमममत् प्रभु । ततस्तस्य' गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः ॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदविन्दुर्बभूव ह । तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदविन्दो तदा भुवि ॥७८॥
प्रावृभूतो महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपमः । तत्रोदपद्यत तदा पुण्यो द्विजसत्तमा ॥७९॥
हृत्स्थोऽतिमात्रो रवताक्षो हरिच्छमभ्रुविभीषणः । ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः' शौणकर्णस्तथैव च ॥८०॥
करालकृष्णवर्णश्च रत्नवासास्तथैव च । स यज्ञ स महासत्त्वोऽवहृत्क्षमिवानलः ॥८१॥
देवाश्च प्रद्रुता सर्वे गता भीता दिशो दश । तेन तस्मिन्विधरता विक्रमेण तदा तु वै ॥८२॥
पृथिवी ध्वजलसर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः । महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकभयकरे ॥८३॥

मेरा नाम है । रुद्रजीव से मेरी उत्पत्ति हुई है ॥७१॥ पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली की भी शक्ति ने यज्ञ के समीप भेजा है । राजेन्द्र' देव-देव उमापति की शरण में आओ । महान् का क्रोध भी वरदान होता है और नीच का वरदान भी ह्य होता है ॥७२-७३॥

ब्रह्मा ने कहा—तोड़े उठाड़े तथा इधर उधर बिखरे हुए यूपों उड़ते गिरते तथा पत्ता के घामु स बँपान मांसाभिन्नायी गिद्धों और शृगालों के सांध्य द्वारा जब रुद्र गण राजा के यज्ञ में बाधा डालने लगे तब यज्ञ भृगु की रूप धारण कर आकाश में उड़ गया ॥७४-७५॥ यज्ञ की उस प्रकार जाति हुए देख कर प्रभु वीरभद्र न घनुष और बाण लेकर उसका पीछा किया ॥७६॥ क्रोध में उस अग्नि तन्त्रम्बी घणनापक' व अस्त्र से भयकर स्वेद बिन्दु टाक पड़ा ॥७७॥ द्विजप्रेत्यो' पृथ्वी पर उस स्वेद बिन्दु ने गिरते ही बालाग्निक' समान जलता हुआ महान् अग्निरूप पुरष उसमें उत्पन्न हुआ ॥७८-७९॥ वह अत्यन्त छाया था उसका मुख लाल थे दाढ़ी-मूँह नील तथा भयकर थी कानों ऊपर की ओर उठे थे अंगों में बहुत रीछे थे कान लाल थे वण भयानक तथा बाण था और वस्त्र लाल था ॥८०॥ उस महाशिव ने यज्ञ की उमी तरहू जग्न' डाला जैसे अग्नि दृष्ट गुण की जग्न दत्ता है । देवगण डर के मारे दगा' दिया आ म माय गया ॥८१॥ जब वह जीव पराक्रम से विचरण करने लगा तब गता' डीन मर्तिन पृथिवी काँप उठी ॥८२॥ देव समूह की डरान काँपे उस महाशिव के उत्पन्न

१ स भ्रातृशेषादि० । २ क परः । ३ क नरे । नि० । ४ क त भैरव्य० । ५ ग बाणाश्च त० ।
६ क भयगुणैरभ्यन्त यत्त० । ७ क भिर्गणायामा' भयकर । त० । ८ क भृगु गतावस्थ० । ९ क मरुगोने ।
ग मर्त्योव च मरणे द० ।

तदा चाहं महादेवमब्रुवं प्रतिपूजयन् । भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ॥८४॥
 क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया । इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः ॥८५॥
 तव श्रोष्ठान्महादेव न शान्तिमपलेभिरे । यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥८६॥
 ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति । एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेनसः प्रभो ॥८७॥
 समर्पा सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतमयम् । इत्युक्तः सभया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥८८॥
 भगवान्महादेव तयोस्याह देवदेवः पिनाकधृक् । परा च प्रीतिमगमस्त स्वयं च पिनाकधृक् ॥८९॥
 दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वधात् । प्राणापानौ समारुध्य चक्षुस्थाने प्रदत्ततः ॥९०॥
 विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् । स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥९१॥
 आवृत्ते च महास्थाने देवानां पितृभि सह । समुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देव प्रजापतिः ॥
 भीतः शङ्कुरचित्तस्तु सबाष्पवदनेक्षणः ॥९२॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽह तव प्रियः । यदि चाहमनुग्राहो यदि देवो वरो मम ॥९३॥
 यद्बुद्धं भक्षितं पीतं प्राप्तं यच्च नाशितम् । चूर्णीभृतापविद्धं च यज्ञसभारमीदृशम् ॥९४॥
 दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च सञ्चितम् । न च मिथ्या भवेन्महा स्वत्प्रसादाम्हेश्वर ॥९५॥

होने पर मैंने शिव की पूजा करते हुए उनसे कहा—‘प्रभो! आपकी ओ सव देवता भाग देंगे ॥८३॥ ८४॥
 हे समस्त देवो के ईश्वर! आप संहार को रोकिये। आप के श्रोत्र के कारण ये सव देवता और हजारो
 मुनि शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! जो यह आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष है यह तीनों
 लोक में ज्वर नाम से प्रसिद्ध होगा ॥८५॥ ८६॥ हे प्रभो! एकत्रीभूत इस तेज को धारण करने में संपूर्ण पृथिवी
 समर्प नहीं हो सकती। अत इसकी अनेक कर दीजिये’ ॥८७॥ जब इतना मैंने श्वर से कहा और उनका भाग भी
 ठीक कर दिया तब पिनाक नामक धनुषधारी महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझसे कहने लगे कि ऐसा ही होगा
 ॥८८॥ ८९॥ दक्ष भी मन से शिव की शरण में गया। तब नेत्रस्थान में प्राण अपान वायु को यत्नपूर्वक रोक कर सब तरफ
 से दृष्टि हटाकर बहुदृष्टि वाले तथा अनुजित् शिव ने मुस्कराते हुए दक्ष से कहा—‘बहिये प्रजापति मैं आपका
 क्या उपहार करूँ?’ भयभीत, सन्नतित तथा नेत्रों में आसू गरे प्रजापति दक्ष ने पितरों के साथ देवताओं
 का महान् आश्रय सुना कर हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥९०॥ ९१॥

दक्ष ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं आपका प्रिय हूँ मुझपर आपकी कृपा
 है और आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो जो मेरी छात्र सामग्रियाँ लायी गईं तथा मष्ट की गईं और जो चिरकाल
 से महान् प्रयत्न से सचित यज्ञ-यदार्थ तोड़-ताड़ कर चुर चुर कर दिये गये वे सब मिथ्या न हों अर्थात् फिर
 मुझे प्राप्त हों ॥९३॥ ९४॥

१ क ग ०वतेऽपि । २ क समाधाय । ३ क चित्तस्थाने । ४ क विस्तार्य । ५ क ०रमावजि० ।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विदं ब्रह्म भगवान्भगनेत्रहरो हर । धर्माध्यक्षं महादेव त्र्यम्बकं च प्रजापति ॥१६॥
 जानुभ्यामवर्त्नी गत्वा दक्षो सत्त्वा भवाद्वरम् । नाम्ना चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्बृषभध्वजम् ॥१७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवः पिसवादे दक्षयज्ञविध्वंसन नामकोनचत्वारिंशो-
 शोऽध्याय ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृतिशिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एष वृष्टवा तदा दक्ष 'शभोर्ध्वं द्विजोत्तमा । प्राञ्जलिं प्रणतो भूत्वा सत्सोऽनुपघर्षमे ॥१॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽयमसूदन । देवेन्द्र त्वं खलयेष्ट देवदानवपूजित ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—मग नामव आदित्य के नेत्र की फोड़ने वाले शिव ने ऐसा ही सही यह कहा ।
 प्रजापति दक्ष शिव से वरप्राप्त कर पृथ्वी पर घुटने टेककर धर्म के अध्यक्ष तीन नेत्र से मुक्त तथा बुधमास में
 महादेव की स्तुति करने लगा ॥१६ १७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि व सवाद प्रकरण में दक्ष-यज्ञ विध्वंसन
 नामक अठ्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर ! तबु के ऐसे परायण को देखकर दण्ड हाथ जोड़कर नमस्कार करना कर
 उनकी स्तुति करने लगा ॥१॥

दक्ष ने कहा—हे देवदेव ! आपको नमस्कार है । हूँ बचन नामक दैत्य को मारने वाले ! आपको

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय । सर्व्वतःपाणिपादस्त्वं सर्व्वतोक्षिशिरोमुख ॥३॥
 सर्व्वतःश्रुतिमांलोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठसि । शङ्खुकर्णो महाकर्णः । कुम्भकर्णोऽर्णवालयः ॥४॥
 गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते । शतोदरः शतावर्तः शतजिह्व सनातनः ॥५॥
 गायन्ति त्वां 'गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्कणः । देवदानवमोप्ता च' ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः ॥६॥
 मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः । त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते ॥७॥
 त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम् । आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥८॥
 क्रिया करणकार्यं च कर्ता कारणमेव च । असच्च सबसच्चैव तयैव प्रभवोऽयं यो ॥९॥
 नमो भवाय शर्वाय हृदाय वरदाय च । पशूना पतये चैव नमोऽस्त्वन्मकघातिने ॥१०॥
 त्रिजटाय त्रिशोर्षाय त्रिशूलधरधारिणे । त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरधनाय चै नमः ॥११॥
 नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च । 'दण्डिने शङ्खुकर्णाय' 'दण्डिदण्डाय चै नमः ॥१२॥
 नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च । विलोहिताय घूर्णाय' नीलप्रोवाय चै नमः ॥१३॥
 नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च । सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताश्विने ॥१४॥
 नमः प्रमथनाशाय 'वृषस्कन्धाय चै नमः । नमो हिरण्यगर्भाय' हिरण्यकक्षत्राय च ॥१५॥

नमस्कार है । देवेन्द्र ! बलश्रेष्ठ ! देवदानवपूजित ! सहवास ! विरूपाक्ष ! त्रिनेत्र ! कुवेर के सखा ! आप सब ओर हाथ-पैर वाले हैं, सब तरफ नेत्र शिर वाले हैं, सब जगह कान वाले हैं और लोक में सबको आभूत करने स्थित हैं ॥३-३॥ शङ्ख के समान कर्ण वाले, महाकर्ण, धड़े के समान कर्णवाले, समुद्र में रहने वाले गजेन्द्र सदृश कर्णवाले गो सदृश कर्णवाले और सौ कर्णवाले आपको नमस्कार है ॥४॥ आप सौ उदर वाले सौ आवृत वाले सौ जिह्वा वाले तथा सनातन हैं ॥५॥ गायत्री के उपासक आपका गान करते हैं और सूर्य के उपासक सूर्य रूप में आप ही नी पूजा करते हैं । आप देव-दानवों के रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं ॥६॥ आप मूर्तिमान् महामूर्तिमान् तथा शरीरवा भी निधि समुद्र हैं । जैसे गावें गोष्ठ (गोठ) में रहती हैं वैसे अखिल देवता आप में रहते हैं ॥७॥ आप ही से शरीर में अग्नि, वायु, सूर्य, विष्णु ब्रह्मा और बृहस्पति को देवता हैं ॥८॥ आप त्रिया करण कार्य कर्ता कारण, सत्-असत् तथा उत्पत्ति प्रलय रूप हैं ॥९॥ भव, शर्व, रक्ष तथा वरद को नमस्कार है । पापघ्नि तथा अन्धकारघ्न को नमस्कार है ॥१०॥ तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, तीन नेत्र वाले त्रिशूलधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले शिव को नमस्कार है ॥११॥ चण्ड, मुण्ड, विश्वचण्डधर दण्डधारण करने वाले दानुकर्ण तथा दण्डिया के दण्डरूप को नमस्कार है ॥१२॥ अर्ध दण्ड तथा वेधा वाले, शुष्क, विहृत, रक्त-शृण्व वणं वाके और नीलप्रोव को नमस्कार है ॥१३॥ अनुपमेय रूप वाले, विरूप, शिव, सूर्य, सूर्यपति एवम् सूर्यध्वज की पताकावाले को नमस्कार है ॥१४॥ प्रमथनाशन तथा वृषस्कन्ध को नमस्कार है । हिरण्यगर्भ, हिरण्यकक्ष, हिरण्यवृत्तवृद्ध तथा हिरण्यरति को

हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चूडाय पर्णसंघशाय च॥१६॥
 नमः स्तुताय^१ स्तुतये स्तूयमानाय च^२ नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥
 नमो होमाय^३ मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्याय^४ मम्याय नमः किलकिलाय च॥१८॥
 नमस्त्वा शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुञ्जाय कुटिलाय च॥१९॥
 नमो मत्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। आघापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
 नमो षष्ठेष्टाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥२१॥
 नमः कपाहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मवतधराय च^५॥२२॥
 नानाविभूतवक्त्राय खड्गजिह्वोपदंष्ट्रिणे। पक्षमासलघार्याय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
 अघोरघोररूपाय घोरार्योत्तराय च। नमः शिवाय शान्तायः नमः शान्ततमाय च॥२४॥
 'नमो बुद्धाय' 'बुद्धाय' सविभागप्रियाय च। पवनाय^६ पतङ्गाय नमः साह्यपराय च॥२५॥
 नमश्चण्डकण्ठाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय^७ घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
 प्राणदण्डाय नित्याय 'नमस्ते लोहिताय च। हूंकाराय'^८ ह्रदाय 'भगाकारप्रियाय च॥२७॥
 नमोऽपारधते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञापिपतये भूताय^९ प्रस्तुताय^{१०} च॥२८॥

नमस्कार है॥१५३॥ शत्रुघाती, चण्ड तथा पत्नी पर सोने वाले को नमस्कार है॥१६॥ स्तुत, स्तुति, और स्तूयमान को नमस्कार है। सबके रूप, सर्वभक्षण तथा सब प्राणियों के अन्तरात्मा को नमस्कार है॥१७॥ होम, मन्त्र तथा शुक्ल ध्वज-महाभा वाले को नमस्कार है। अनम्य, मम्य तथा किलकिला शब्द करने वाले को नमस्कार है॥१८॥ सोते हुए मुक्त, परिष्कृत स्थान, शोडते हुए, मुक्त तथा कुटिल आपको नमस्कार है॥१९॥ (नर्तनशील, नृत्य करने वाले क्षीपा नष्ट करने वाले, व्यापकपारी तथा नाना-वस्त्राना करने वाले आपको नमस्कार है॥२०॥ उपष्ट श्रेष्ठ और बलवान् का नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दशभुजाधारी को नमस्कार है॥२१॥ कप वक्त्रास जिये, खड्गमग्नप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्मवतधारी, अनेक विभूत मुग्न वाले, सङ्ग के गमान् विहङ्गा तथा सितधण्ड्या वाले, पक्ष, पक्ष, तथा अर्ध लक्ष रूप, तुम्बी तथा वीणा के प्रिय, अघोररूप, घोर रूप, घोरतरङ्ग और अघोरतरङ्ग आपकी नमस्कार है॥२२-२३॥ शिव, शान्त तथा शान्ततम को नमस्कार है। बुद्ध, बुद्ध, विभागप्रिय पवन तथा पतङ्ग को नमस्कार है। साह्यपराय लक्ष्मण को नमस्कार है॥२४-२५॥ एकचक्र घण्टा वाल घण्टा के शत करने वाले घण्टाधारी, हूंकार-ह्रदाय चक्राधार करने वाले, घण्टा की माला के दिय, प्राण-दण्ड रूप, नित्य तथा एक लक्ष वाले का नमस्कार है॥२६॥ 'हूं हूं' करने वाले, ह्रद तथा मण्डल के प्रेमी को नमस्कार है॥२७॥ गिरिवृक्ष तथा पवन-बुध के प्रेमी को नित्य नमस्कार है। यज्ञपति, युनक्त, मण्डुक्त, यज्ञ के

१ न स्तुत्यावास्तुपायस्तु० २ च स होमाय ३ च भो देवनम्याय नमः ४ च भीमा ५ रा मान् प्रहरणाय ६ न भो मुखप्रियाय नः ७ क बुद्धाय ८ च लुब्धाय ९ च पाञ्चालाय १० च सगमा ११ न नमो मोहिः १२ च दण्डहाय १३ च हंकारप्रियाय १४ च ह्राय १५ च प्रस्तुताय

घनवाहीय दान्ताय तप्याय^१ च भगाय च। नमस्तटाय^२ तटनीपतये नमः॥२९॥
 अन्नदायान्नपतये नमस्तन्मनुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय ॥३०॥
 सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥३१॥
 नमो बालार्करूपाय कालकोडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥३२॥
 तरङ्गाङ्गुलिकेशाय मुवतकेशाय च नमः। नमः धट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च॥३३॥
 घर्णाभ्रमाणा विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तने। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च॥३४॥
 श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रयाय क्रयनाय च॥३५॥
 साह्याय साह्यमुह्याय योगाधिपतये नमः। नमो रघ्याधिरघ्याय चतुष्पयपथाय च॥३६॥
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतने। ईशान^३ रत्नसघात हरिकेश नमोऽस्तु ते॥३७॥
 ध्यम्बकायाम्बिकानाथ ध्यक्ताभ्यक्त नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न^४ दुष्टोद्धृत्तनिघ्न ॥३८॥
 सर्वगहितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते। उन्मादनशतावर्त गङ्गातोषाद्रंभूर्धन॥३९॥
 घन्त्रार्थसद्युगावर्त मेधावर्त नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नवप्रभवे नमः॥४०॥
 अन्नभोक्त्रे च गोत्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजण्डजादिवं स्वदेजोद्भूज एव च॥४१॥

अथवहप, दान्त, तपने योग्य और भग रूप की नमस्कार है ॥२८३॥ तटरूप, तट से युक्त तथा नवियों के स्वामी को नमस्कार है ॥२९॥ अन्न देनेवाले अन्नपति तथा अन्नभोक्ता को नमस्कार है। सहस्र शिर वाले सहस्र चरणवाले हकार उद्धत त्रिशूल वाले तथा सहस्र नेत्र वाले को नमस्कार है ॥३०॥ बाल सूर्य के समान वर्ण वाले तथा बाल रूप धारीको नमस्कार है ॥३१॥ बालार्कवर्णी तथा बाल से खेलने वाले को नमस्कार है। शुद्ध बुद्ध क्षोभ रूप, क्षयरूप तरंगों से अधिकित केश वाले तथा बिसरे केश वाले को नमस्कार है ॥३२॥ छहों धर्मों में निष्ठा रूप, क्षयरूप तरंगों से अधिकित केश वाले तथा बिसरे केश वाले को नमस्कार है ॥३३॥ छहों धर्मों में नियमित तथा वर्णधर्मों के पृथक्-पृथक् धर्मों के प्रवर्तक को नमस्कार है ॥३४॥ श्रेष्ठ, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द करने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिङ्गल नेत्र वाले रक्त कृष्ण नेत्रवाले धर्म अर्थ-जाम मोक्ष रूप, भारण छेदन रूप साह्य (सम्बन्धान) रूप, साह्यो में प्रधान तथा योग के अधिपति को नमस्कार है ॥३५॥ रघ्या (गली) रूप, गलियों के स्वामी, चौराहेरूप कृष्णमृग-धर्म के उत्तरीय वाले तथा सर्व के यज्ञोपवीत धारीको नमस्कार है ॥३६॥ ईशान। शत्रु के समूह। हरिकेश। आपको नमस्कार है ॥३७॥ पार्वतीपति। व्यक्त-अव्यक्त। तीन नेत्र वाले आपको नमस्कार है। बाल। काम-दाता। कन्धर्पनाशन। दुष्टों की धृति (उपश्रव) को दवाने वाले। सब बुरादमों की समाप्ति करने वाले। सत् उत्पन्न। आपको नमस्कार है ॥३८॥ सैकड़ों उन्मादन भँवरों वाले। गगाजल से सिक्त भस्मक वाले। अर्धचन्द्र युक्त। मेघ रूप आवर्त वाले आपको नमस्कार है ॥३९॥ अन्नदान करने वाले, अन्नदाताओं के स्वामी, अन्नभोक्ता तथा रक्षक आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयानि हैं। जरायुज गण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आप ही हैं ॥४०॥ हे देवदेवेश। चार

१ क पथ्याय। २ तप्याय वितथाय। ३ रत्न सघात। ४ रत्न सघात। ५ रत्न सघात। ६ रत्न सघात। ७ रत्न सघात। ८ रत्न सघात। ९ रत्न सघात। १० रत्न सघात। ११ रत्न सघात। १२ रत्न सघात। १३ रत्न सघात। १४ रत्न सघात। १५ रत्न सघात। १६ रत्न सघात। १७ रत्न सघात। १८ रत्न सघात। १९ रत्न सघात। २० रत्न सघात। २१ रत्न सघात। २२ रत्न सघात। २३ रत्न सघात। २४ रत्न सघात। २५ रत्न सघात। २६ रत्न सघात। २७ रत्न सघात। २८ रत्न सघात। २९ रत्न सघात। ३० रत्न सघात। ३१ रत्न सघात। ३२ रत्न सघात। ३३ रत्न सघात। ३४ रत्न सघात। ३५ रत्न सघात। ३६ रत्न सघात। ३७ रत्न सघात। ३८ रत्न सघात। ३९ रत्न सघात। ४० रत्न सघात। ४१ रत्न सघात। ४२ रत्न सघात। ४३ रत्न सघात। ४४ रत्न सघात। ४५ रत्न सघात। ४६ रत्न सघात। ४७ रत्न सघात। ४८ रत्न सघात। ४९ रत्न सघात। ५० रत्न सघात। ५१ रत्न सघात। ५२ रत्न सघात। ५३ रत्न सघात। ५४ रत्न सघात। ५५ रत्न सघात। ५६ रत्न सघात। ५७ रत्न सघात। ५८ रत्न सघात। ५९ रत्न सघात। ६० रत्न सघात। ६१ रत्न सघात। ६२ रत्न सघात। ६३ रत्न सघात। ६४ रत्न सघात। ६५ रत्न सघात। ६६ रत्न सघात। ६७ रत्न सघात। ६८ रत्न सघात। ६९ रत्न सघात। ७० रत्न सघात। ७१ रत्न सघात। ७२ रत्न सघात। ७३ रत्न सघात। ७४ रत्न सघात। ७५ रत्न सघात। ७६ रत्न सघात। ७७ रत्न सघात। ७८ रत्न सघात। ७९ रत्न सघात। ८० रत्न सघात। ८१ रत्न सघात। ८२ रत्न सघात। ८३ रत्न सघात। ८४ रत्न सघात। ८५ रत्न सघात। ८६ रत्न सघात। ८७ रत्न सघात। ८८ रत्न सघात। ८९ रत्न सघात। ९० रत्न सघात। ९१ रत्न सघात। ९२ रत्न सघात। ९३ रत्न सघात। ९४ रत्न सघात। ९५ रत्न सघात। ९६ रत्न सघात। ९७ रत्न सघात। ९८ रत्न सघात। ९९ रत्न सघात। १०० रत्न सघात।

त्वमेव देवदेवेश भूतप्रागश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
 त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म चदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
 ऋषसामानि तयोकारमाहुस्त्वा ब्रह्मवादिनः। हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाजसकृत॥४४॥
 गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मयं ऋद्धमयश्च सामाथर्वयुतस्तथा॥४५॥
 पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया धैर्याः शूद्रा वर्णाश्रमाश्च ये॥४६॥
 त्वमेवाऽऽश्रमसंघादश्च विद्युस्तस्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो माता माताधिमेव च॥४७॥
 कला फाष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। धृषाणा ककुब्धं त्वं हि गिरीणा शिखराणि च॥४८॥
 सिंहो 'मृगाणा पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणा प्रणवस्तथा॥४९॥
 वज्रं प्रहरणाना च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवैच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥५०॥
 व्यवसायो धूर्तलोभः कामक्रोधो जयाजयो। त्वं गदी त्वं शरी चापो खट्वाङ्गी मूवृगरी तथा॥५१॥
 छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च 'नेता' मन्ताऽसि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽयं काम एव च॥५२॥
 'इन्दुः समुद्रः सरितः पत्यलानि सरांसि च। लतावत्यस्तुणीषध्यः पशवो मुगपक्षिणः॥५३॥
 ब्रह्मकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योकार एव च॥५४॥
 हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः। कद्रुश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मच्छ (हस्य) कस्तथा॥५५॥

प्रचार के प्राणी समूह भी आप ही हैं। चराचर के स्रष्टा तथा सहारक आप ही हैं॥४२॥ हे विश्वेश ! आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही को लोग ब्रह्म कहते हैं। आप सब की उत्कृष्ट योनि तथा ज्योतिषों की निधि चन्द्रमा हैं॥४३॥ ब्रह्मवादी आप ही को ऋग्वेद, सामवेद तथा ओंकार कहते हैं। साम गाने वाले सुरश्रेष्ठ ब्रह्मवादी 'हायि हायि-हरे हायि-हुवाहावा' इमने बार-बार आप ही का गान करते हैं॥४४॥ यजुर्वेदमय, ऋग्वेदमय, सामवेदमय तथा अथर्ववेद से युक्त आप ही ब्रह्मवेत्ताओं तथा बल्य और उपनिषद्गणों द्वारा पढ़े जाते हैं॥४५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णाश्रम और आश्रम समूह भी आप ही हैं। आप विद्युत्, मेघवर्षन, वर्ष, जल, माता, माताधर्म, कला, बाष्ठा, निमेष, तथा युग वीर्य के वज्र, पर्वतों के शिखर, मृगों के स्वामी सिंह, तपों में अनन्त और तथा, समुद्रों में क्षीरमय, मन्त्रों में प्रणव (ओं), अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य हैं॥४६-४९॥ आप ही दृष्टा, द्वेष, राग, मोह, शम, क्षमा, व्यवसाय, धर्म लोभ, काम, क्रोध जय और पराजय हैं॥५०॥ आप पदाधारी, भागधारी, धनुषधारी, गद्वांगधारी, मुद्गरधारी, छेदन करने वाले, भेदन करने वाले, प्रहार करने वाले, नेता और मानने वाले हैं—यह नेता मत है॥५१॥ आप दश प्रकार के लक्षणों से युक्त धर्म अर्थ, काम, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ सात्विक, सरोवर, लता, कर्करी, तृण ओषधियाँ पशु मृग, पक्षी, इन्द्र्य, धर्म और गुणों के आरम्भ, समय पर पञ्चयूत्र देने वाले, आदि, अन्त, मध्य गायत्री, आचार, हरित-लोहित-कृष्ण-नील-पीत (रंग), क्षण, वज्र, बभ्रु, कपिल और मलय हैं॥५२-५५॥

१ ग. ०पा। तेजस्तु ००। २ ख मूत्रवर्णस्त्रयश्च। ३ ख ०णां च पञ्चि बभ्रुवो योऽस्ति मो०। ४ ग ०ता मर्ताभिर्गणो यत्। ५ ख इहः।

भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः॥७१॥
 ब्रह्मावर्तः 'सुरावर्तः' कामावर्तः नमोऽस्तु ते। 'कामविश्वविनिर्हन्ता' कर्णिकारस्वजप्रिय ॥७२॥
 गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता 'गोगर्ग' (?) एव च॥७३॥
 अलण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽप्युखः। चतुर्मुखो बहुमुखो रणध्वभिमुखः सदा॥७४॥
 हिरण्यगर्भः शकुनिधनदोऽथपतिविराट्। अथर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः॥७५॥
 तिष्ठन्तिष्ठरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विग्रहो दुःसहो दुरतिक्रमः॥७६॥
 दुर्धरो दुर्बलो नित्यो दुर्बलो विजयो जयः। शशः 'शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्प्या जरा'॥७७॥
 आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगध्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः॥७८॥
 शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डयुक्क्षत्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः॥७९॥
 विषपोऽमृतपश्चैव सुराप क्षीरसोमयः। मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः॥८०॥
 'वृषाङ्गराम्भो' (?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः। वृषभश्चैव विस्थानो लोकानां लोकसंस्कृतः॥८१॥
 चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः। अग्निष्टोमस्तथा वेहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥८२॥
 न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणश्रवणो न च। माहात्म्य वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः॥८३॥
 शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मा 'सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिषौरसम्'॥८४॥
 रक्ष मा रक्षणीयोऽहं तवानप्य नमोऽस्तु ते। भवतानुकम्पी भगवान्भक्तसच्चाहं सदास्त्वमि॥८५॥

वर्तमान, उद्भव, भूद्, सुवद्, स्वर, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त रूप आपको नमस्कार है॥६९-७१॥ आप कवर्पनाशन, वनकचम्पा भी माला के प्रेमी, गो-नेता, गो प्रचारक, गोवृषेश्वरवाहन, त्रैलोक्यप्रसक्त, गो लाम करने वाले, सरलक, गोगर्ग (?) ॥७२-७३॥ पूर्णचन्द्रमुख, सुमुख, दुर्मुख, मुखरहित, चतुर्मुख बहुमुख सदा रणतमुख ॥७४॥ हिरण्यगर्भ, शकुनि, धनद, धनपति, विराट्, अथर्मनाशन, महादक्ष, दण्डधार रणप्रिय ॥७५॥ खड़े होनेवाले, स्थिर स्थाणु, नम्ररहित, निश्चल, दुर्वारण, दुर्विग्रहाशन, दुःसह, दुर्लभ्य ॥७६॥ दुर्धर, दुर्बल, नित्य, दुर्बल, विजय, जय क्षरगोश, चन्द्रनेत्र, शीत, उष्ण, मूष व्यास बुद्ध्या ॥७७॥ आधि, व्याधि, व्याधिनाशन, व्याधिप (?), सह्य यज्ञरूपी मृग के लिए व्याध, व्याधिनामक, निधि अकर्ता ॥७८॥ मयूर, कमल, कमलनेत्र, दण्डधारी, क्षत्रदण्ड, रौद्रभागविनाशन ॥७९॥ विष पीने वाले अमृत पीनेवाले, मदिरा पीने वाले, दूध तथा सोमरस पीने वाले, मधु पीने वाले, जल पीनेवाले, सब पीने वाले, बलाबल ॥८०॥ बैला का (रामना) (?) बैल, बैल के समान नेत्र वाले, वृषभ नाम से विख्यात तथा शीघ्र-संस्कृत हैं ॥८१॥ सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं ब्रह्मा हृदय है और अग्नि ष्टोम धर्म-कर्म से साधित शरीर है ॥८२॥ हे शिव ! ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन रूपि कोई भी आपके माहात्म्य को यथार्थ नहीं जान सकते ॥८३॥ आपकी ओ सूर्य शिवमूर्ति हैं, उनका मुझे दर्शन हो। उनसे मेरी सख तरह रक्षा कीजिये जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥८४॥ मेरी रक्षा कीजिये। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। हे निष्पाप ! आपको नमस्कार

१ ग स्वरावर्तः । २ च ०म्बनिहृता च ० । ३ ग गोमाङ्गी मार्गः । ४ स ०ग साक्षात्पयनः प्रमुष्णद्व
 पृथा ज्वरः । आ० । ५ ग ०मागावि० । ६ च बुधाद्रधान्यो । ७ स शत्रवः ।

यं सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दशाम् । तिष्ठत्येव समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु नित्यश ॥८६॥
यविनिद्रा जितशशा सत्त्वस्था समर्दशिनः । ज्योति पश्यन्ति घुञ्जन्तस्तमं योगात्मने नमः ॥८७॥
समक्ष्य सर्वभूतानि युगाते समुपस्थिते । यं ज्ञेते जलमध्यस्थरत प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥८८॥
प्रविश्य चदन राहोर्धं सोम पिबते निशि । प्रसत्यर्कं च स्वर्भानुभूत्वा सोमाग्निरेव ॥८९॥
अद्गुण्डमात्रा पुरया वेहस्या सर्वदेहिनाम् । रक्षन्तु ते च मा नित्य नित्य चाऽऽश्वायनं तु माम् ॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये । तेपा स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥९१॥
येन रोहन्ति वेहस्या प्राणिनो रोदयन्ति च । हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेऽस्तु नित्यश ॥९२॥
ये समुद्रे नदीवृत्तं पर्वतेषु गूहासु च । वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु फान्तरागहनेषु च ॥९३॥
चतुष्पयेषु रथ्यासु क्षत्रवरेषु सभासु च । हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानाभ्येषु च ॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु विशासु विदिशासु च । इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्राकरश्मिषु ॥९५॥
रसातलगता ये च ये च तस्मात्पर गता । नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वश ॥९६॥
सर्वस्य सर्वंगो देव सर्वभूतपतिर्भव । सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्व न निमग्नित ॥९७॥
स्वमेव चोदयसे देव यज्ञैर्विधिपदक्षिणं । स्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्व न निमग्नित ॥९८॥

है। भगवान् भस्म के ऊपर कृपा करते हैं। मैं आपका सदा भक्त हूँ ॥८५॥ जा हारा दृष्टि वाले पुण्या को भवतु कर समुद्र के अन्त में एकत्री वाम करते हैं च मरी नित्य रक्षा करें ॥८६॥ जिनको ज्वातिरूप में निद्रा तथा श्वाभ को जीतने वाले सत्त्व गुण में स्थित एवम समदर्शी जन दक्षत हैं उन योगात्मा को नमस्कार है ॥८७॥ ओ युगान्त उपस्थित होने पर सब प्राणिया का भक्षण करके जल मध्य में सोने हैं उन जलानी की मैं प्राप्त हूँ ॥८८॥ जो राहु के मूल में प्रवेश कर रात में सोम-पान करते हैं चन्द्राग्नि तथा राहु बनकर सूर्य को ग्रस्त हैं ॥८९॥ और सब प्राणियों के शरीर में अगुण्ड प्रमाण-रूप के रूप में बस करत हैं वे मरी नित्य रक्षा करें और मम निय समुद्र बनायें ॥९०॥ जिन्होंने जल को विभक्त करके उत्पन्न किया जिनको स्वाहा और स्वधा प्राप्त होता है तथा आस्वादन करती हैं और जो देह स्थित होत हुए या जल नहीं लेते प्राणिया को दयात प्रातिदित करते और स्वयं आहुष्ट नहीं होत उनकी नित्य नमस्कार है ॥९१ ९२॥ जो समुद्र में दुस्तर नित्या में पवना में गुफाओं में वनमला में गाण्डा में वास्तारा में वनो में चतुष्पथा में गलिया में चबरा में ममाजा में हाया घो तथा रथ की गालाओं में जीण जवानालया में पञ्च महामूलो में दिगाजा में विन्गिजा में सूर्य-चन्द्रा के मध्य में चन्द्र-सूर्य की क्षिरगा में और रसानागे में प्राप्त हैं तथा रसानाल से नी आगे गये हुए हैं उहे नमस्कार है उहे नमस्कार है उहे सब वार में नमस्कार है ॥९३ ९६॥ आप सब हैं सबगन हैं सब प्राणिया व स्वामी हैं सब नाम वाले हैं और सब प्राणिया के अन्तरा में हैं। इस कारण मैं आपको निषेधन नहीं किया ॥९७॥ हे देव ! विविध दक्षिणा वांछे यत्ना व द्वारा आप ही यत्न किये जात है। आप ही सबके कर्ता हैं। इस कारण आपको निमग्नित नहीं किया ॥९८॥ अथवा हे देव !

१ स नित्यवश्य स्व०। २ स सोम तथा रविम। अ०। ३ स हृष्यन्ति। ४ स ०। ५ स्यात्प्रलम्भं दुर्गं।

५ स नित्या।

अथवा मायया देव मोहितः 'सूक्ष्मया तव। तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमग्नितः ॥१९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वं च स महादेवं विरराम प्रजापति। भगवानपि सुप्रोतः पुनर्दक्षमभाषत ॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवनेनेन सुव्रत। बहुना तु किमुवतेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥१०२॥

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं श्रैलोक्याधिपतिर्भवः। कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसहितम् ॥१०३॥

श्रीशिव उवाच

दक्ष बुधं न पतंगं यज्ञविष्वंसनं प्रति। अहं 'यज्ञहनस्तुभ्यं' वृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥१०४॥
भूयश्च त्वं यरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नसुमुखो भूत्वा मर्मकाप्रमनाः धृणु ॥१०५॥
अद्वयमेघसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्रजापते मत्प्रसन्नवत्फलभागी भविष्यसि ॥१०६॥
वेदान्यङ्गान्युध्यस्व साह्ययोगांश्च कृत्स्नशः। तपश्च विपुलं तप्तवा' बुद्धवरं देवदानवैः ॥१०७॥

मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित हो गया था। इस कारण भी मैंने आपसे निमग्नित नहीं किया ॥१९॥ हे देवेश ! प्रसन्न होइय, आप ही मेरे रक्षक हैं, गति है तथा प्रतिष्ठा है। आपके सिवाय भरा दुःख का कोई नहीं है—देसी मेरी धारणा है ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार महादेव की स्तुति करके प्रजापति विराम करने लगा। भगवान् शिव भी प्रसन्न होकर दक्ष से बोले ॥१०१॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुव्रती दक्ष ! मैं तुम्हारी इन स्तुति से सन्तुष्ट हूँ। मैं अचिन्त क्या कहूँ, तुम मेरे समीप जाओ ॥१०२॥

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन के स्वामी सर्वज्ञ धार सान्त्वनादायर तथा वाक्यसमूह रूप वाक्य इस प्रकार बोले ॥१०३॥

ब्रह्मा ने कहा—दण्ड ! यज्ञ विष्वस व प्रति तुम खद मन करो ! निष्पाप ! गृह्णते तुमने देना है कि तुम्हारे यज्ञ का नाशकर्ता मैं हूँ। फिर तुम मुझसे वर माँगो ॥१०४॥ सुव्रती ! प्रसन्न होकर एकाग्र मन से (मेरे दक्ष) सुनो ! ॥१०५॥ प्रजापति। मरी कृपा से तुम मत्स्य अद्वयम तथा सौ वाजपय यज्ञ के फलभागी होगे ॥१०६॥ छद अगो सहित वेद तथा सांख्य-योग का पूर्ण ज्ञान करो। दक्ष ! देव-दानवों से दुःखाय प्रचुर छद करो ॥१०७॥

अव्द्वेद्वादिशभिर्पुंक्तं गूढमप्रज्ञनिन्दितम् । यणश्चिमरुतेर्धर्मैर्विनीतं न क्वचित्त्वचिन्त ॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् । सर्वेषामाश्रमाणा च मया पाशुपतं पतम् ॥१०९॥
उत्पादितं दक्ष शुभ सर्वपापविमोचनम् । अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तच्चास्तु सुमहोभाग मानसस्त्यज्यता ज्वरः ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सप्तलोकः सहानुग । अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥१११॥
अवाप्य च तया भागं ययोक्त चोमया भवः । ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥११२॥
शान्तयर्थं सर्वभूतानां शृणुष्वमयं वं द्विजा । शिलाभिस्तापो नागानां पर्वतानां शिलाजनु ॥११३॥
अर्षां तु नीलिका विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च । खोरकः सौरभेषाणामूखरः पृथिवीतले ॥११४॥
शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यवरोधनम् । रघ्वागतमयाश्चानां शिलोद्भेदश्च बहिणाम् ॥११५॥
मैत्ररागः कोकिलानां द्वेषः प्रोक्तो महात्मनाम् । जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति न श्रुतम् ॥११६॥
शुक्रानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः । शार्दूलैष्वप्यं विप्राः श्रमोऽज्वर इहोच्यते ॥११७॥
मानुषेषु च सर्वज्ञा ज्वरो नामैव कीर्तितः । मरणे जन्मनि तया मध्ये चापि निवेशितः ॥११८॥
एतन्माहेज्वर तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः । नमस्त्यजश्चैव माग्यश्च सर्वप्राणिभिरोज्वरः ॥११९॥

बाह् वषों मे सम्पन्न होने वाले बटिन मूर्तों द्वारा निर्दित वर्णायम विहित धर्मों से युक्त नदी-वही नदी प्राप्त निर्दिष्ट, सब आश्रमा को पशु-पाश से मुक्त करने वाले सब पाषा से छुड़ाने वाले तथा पवित्र पाशुपत नामक धन को देने उत्तम किया है । महाभाग ! इस वृत्त का जो वर्णोक्त उत्तम पत्र है, यह तुम्हें मिलेगा । तुम मन मदीहा मन करो ॥१०८-११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कह कर पत्नी और अनुचर सहित महेश्वर अमिष तेजस्वी दश के दृष्टि-अप ग बहिर्मुख हो गए ॥१११॥ पार्वती सहित सब धर्मों के ज्ञाना निव अपना माग जैसा कि पहल कहा गया है प्राप्त कर ज्वर का अनेक भाग म बाँट दिया ॥११२॥ द्विजगण ! धर्म के ज्ञानप्रा । प्राणामात्र की शान्ति के लिए अय आप सुनिए । नागा का शिलाजिनाम, पर्वत का शिलाजनु, जल का नीलिका, अर्षों का निर्मोह या जोति का खोरक, पृथ्वी का ऊखर, बुद्ध का दृष्टिप्रत्यवरोध पाशा का रघ्वागत, मयूर का शिलाभेद, बाघों का मैत्रराग, महात्माओं का द्वेष, व्यक्तियों का भेद, राजा का हिक्किका और बाघों का धर्म नामक ज्वर कहा जाता है ॥११३-११७॥ सर्वज्ञ ऋषिगण ! मनुष्यों में यह ज्वर नाम वही प्रसिद्ध है, जो मरणकाल, जन्मकाल तथा मध्य मे भी प्रवेश करता है ॥११८॥ मायक ज्वर नाम मे प्रसिद्ध यह निव का सब अतिव्य प्राणिमा मे

१ ग विद्वान् । गतातैरप्य० । २ य भोक्षणम् । ३ य यथाशक्ता करो न० । ४ य परः । ५ य परः । ६ य दक्षिणः । ७ य भ्रा समोक्षो ज्वर उच्य० । ८ य धर्मज्ञः ।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः

विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामाश्च यथामनोर्षितान्

॥१२०॥

दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा । नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दोषमायुरवाप्नुयात् ॥१२१॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः । तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः ॥१२२॥
यज्ञः स्वर्गसुरैश्च यं वित्तादिज्यकाडक्षिभिः । शतैस्तव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यततः ॥१२३॥
वशाधितो दुःखितो दोषो नरो ग्रस्तो भयादिभिः । राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥१२४॥
अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात् । इह लोके सुखं प्राप्य गणैर्वाहुपजायते ॥१२५॥
न यस्यान पिशाचा वा न नागान विनायकाः । कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ॥१२६॥
शृणुयाद्वा इवं तारी भवस्याऽयं भवभाविता । पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्यो भवति चैवं ह ॥१२७॥
शृणुयाद्वा इवं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभोक्षणैः । तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्येवमनतः ॥१२८॥
मनसा विमलितं यच्छ यच्छ यात्राऽप्युदाहृतम् । सर्वे संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥१२९॥
देवस्य सगुहस्याथ देव्या मंदीश्वरस्य च । बलिं विभज (भाग) तः कृत्वा इमेन नियमेन च ॥१३०॥
ततः प्रयुक्तो गृह्णीयात्प्रामाण्याशु यथाक्रमम् । इप्सितान्तेभ्योऽप्यर्थान्कामान्भोगाश्च मानवः ॥१३१॥
भुतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः । सर्वकामसुयुक्तो वा युवतो वा सर्वपातकैः ॥१३२॥

आदर्शार्थं तथा नमस्कार करने योग्य है ॥११९॥ जो मनुष्य सावधान होकर बिनता रहित मन से इस ज्वरोत्पत्ति का सदा पाठ करेगा, वह मनुष्य रोग-मुक्त तथा प्रीतियुक्त हो कर यथेप्सित कामनाओं को प्राप्त करेगा ॥१२०॥ दक्ष के द्वारा कथित स्तवन का जो कीर्तन या श्रवण करेगा, उसे किसी प्रकार का अशुभ नहीं होगा और वह दीर्घायु प्राप्त करेगा ॥१२१॥ जैसे सब देवा में भगवान् शक्र श्रेष्ठ है वैसे सब स्तोत्रों में दक्ष निर्मित यह स्तोत्र श्रेष्ठ है ॥१२२॥ यज्ञ, स्वर्ग, देव विमूक्ति, वित्त तथा जय के अभिलाषियों का भक्तिपूर्वक इस स्तवन का पाठ करना चाहिए । विद्या चाहने वाला का तालन से इसका पाठ करना चाहिए ॥१२३॥ (इस स्तवन के पाठ से) व्याधि-पीडित, दुःखपीडित, दोष, भय आदि से ग्रस्त, राजकार्य में नियुक्त मनुष्य महामय से मुक्त होता है और इसी देह से गणा का ईश्वर बन कर तथा इस लोक में सुख प्राप्त कर गण-राज हो जाता है ॥१२४॥ न यक्ष, न पिशाच, न नाग, न विनायक ही उस घर में विघ्न करते हैं, जहाँ शिव की स्तुति की जाती है ॥१२५॥ जो स्त्री शिव में मन लगा कर भक्ति से इस स्तोत्र को सुनती है, वह पिता के घर तथा पति के यहाँ भी सम्मानित होती है ॥१२६॥ इसका बार-बार कीर्तन या श्रवण करेगा, उसके सब कार्य बिना विघ्न के सिद्ध हो जायेंगे ॥१२७॥ इस स्तव के कीर्तन से मन से चिन्तित या वाणी से कथित सब काम सिद्ध हो जाते हैं ॥१२८॥ दम तथा नियम से शिव, कार्तिकेय, पार्वती और मन्दीश्वर में अलग अलग बलि चढ़ा कर शीघ्र ही कमानुसार नामों के ग्रहण करने से मनुष्य यथामिलपित कामनाओं तथा भोगों को प्राप्त करता है और मरने पर हजारों स्त्रियों से आवृत होकर स्वर्ग प्राप्ति करता है ॥१३०-१३१॥ मनुष्य सब कामनाओं से युक्त हो या सब पापों से युक्त हो पर दक्षकृत स्तवन कर पाठ करने से सब पापों

पठन्वक्ष्यते स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते। मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरं ॥१३३॥
 धृषेण विनिपुवतेन विमानेन विराज्यते। अभूतसंस्तवसायी ह्रस्वानुचरो भवेत् ॥१३४॥
 इत्याह भगवान्दयास पराशरस्तु प्रभु। नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित् ॥१३५॥
 श्रुत्वेन परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापघोनय। चेदस्या स्त्रियश्च शूद्राश्च ह्रस्वलोकमवाप्नुयुः ॥१३६॥
 भावयेद्यश्च विप्रश्च सदा पर्वसु पर्वसु। ह्रस्वलोकमवाप्नोति द्विजो वं नात्र सशयः ॥१३७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुविसवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अयंकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वां वं मुनिश्रेष्ठा कथां पापप्रणाशिनीम्। ह्रस्वोद्योद्भवया पुण्या व्यासस्य धरतो द्विजा ॥१॥
 पारंपरायश्च तथा रोषं क्रोधं शमोश्च दुःसहम्। उत्पत्तिं चौरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च सभवंसु ॥२॥

हे मुनि ह! जाता है मरन पर मुर असुरो म पुजित हाते हूण गण सायुज्य प्राप्त करता है वृष-मुक्ता विमान पर विराजता है और महाप्रभु तब रत्न का अनुचर होता है ॥१३२ १३४॥ ऐसा पराशर-मुनि भगवान् व्यास ने कहा है। इस वार्त्ता नहीं जानता है यह किसी का नहीं सुनाना चाहिए ॥१३५॥ जा वार्त्ता भी पापघाति वीर्य स्त्री तथा गूढ़ इसे सुनेंगे व ह्रस्वक का प्राप्त करेंगे। जा द्विज पर्वतान् म ब्राह्मण का यह स्नान सुनाता है उसे निगदेह निबलान् की प्राप्ति होगी है ॥१३६ १३७॥

श्रीब्रह्महपुराण म ब्रह्मा और मुनि ने सवादे प्रकरण म दक्ष-स्तुति निरूपण नामक चत्वारिंशो अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

एकाम्रक क्षेत्र का माहात्म्य-वचन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार रत्न काय से उत्पन्न पापनाशिनी पवित्र कथा का एतम् पार्वती के रोष नाम्ने के दमक काय औरभद्र तथा ब्रह्मर्षी की उत्पत्ति इस-यन् विनाग मार

दक्षयज्ञविनाशं च धीर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम् । पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥३॥
 यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः । हृष्टा बभूवुः संप्रीता विस्मितश्च पुनः पुनः ॥४॥
 पप्रच्छुदच पुनर्व्यासं 'कामाक्षेणं तथा द्विजाः । पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्नाकं पुनः ॥५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः । प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूह्विताः ॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम् । दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा ॥७॥
 एकाम्नाकं क्षेत्रवरं बभूवुर्महंति सांप्रतम् । श्रोमुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कीर्तुहलं हि न ॥८॥

- व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्भुजः । प्रोवाच शंभोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छवम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः । सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१०॥
 लिङ्गकोटिसमायुक्तं चाराणसीसमं शुभम् । एकाम्नाकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥११॥
 एकाम्नाक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः । नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्नाकमिति श्रुतम् ॥१२॥

के अद्भुत पराक्रम, महात्मा दक्ष के ऊपर पुनः शिव की कृपा, रुद्र के यज्ञ-भाग तथा दक्ष के यज्ञ-फल को व्यास से सुन कर द्विजगण हृष्ट तुष्ट तथा विस्मित हो कर फिर व्यास से कथा का अवशिष्ट भाग पूछने लगे ॥१-५॥

व्यास ने कहा—ब्रह्मा द्वारा कही गई पवित्र कथा को सुन कर हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर होकर ऋषिगण प्रशंसा करने लगे ॥६॥

ऋषियो ने कहा—अहो! देवश्रेष्ठ! आपने शम्भु का माहात्म्य तथा दक्ष का यज्ञ-विध्वंस वर्णन किया। अब एकाम्नाके क्षेत्र का वर्णन कीजिए। ब्रह्मन्, हम सुनना चाहते हैं, हमें बड़ी उत्सुकता है ॥७-८॥

व्यास ने कहा—उनको इस वचन को सुनकर लोकपति ब्रह्मा भूतल पर पापनाशन शम्भु के उस क्षेत्र के बारे में कहने लगे ॥९-१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य! सुनिये, मैं संक्षेप से कहूँगा। सब पापों को हरने वाला, परम दुर्लभ, करोड़ा लिंगों से युक्त, चाराणसी के समान शुभदायक तथा पवित्र एकाम्ना नाम से प्रसिद्ध तीर्थ आठ तीर्थों से युक्त है ॥१०-११॥ द्विजवर! पहले वहाँ एक नाम का वृक्ष था। उसी के नाम पर वह क्षेत्र

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् । विद्वंसग (शावद्ग) णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥१३॥
 गृहोपुरसंवाधं त्रिकचाद्धारभूयितम् । नानावणिक्तमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
 पुराट्टालकसंयुक्तं रयिभिः समलंकृतम् । राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादेरुपशोभितम् ॥१५॥
 मार्गद्वारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम् । रक्षितं शस्त्रसंघेयं परिखाभिरलंकृतम् ॥१६॥
 सितरत्नेस्तथा पीतेः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम् ॥१७॥
 नित्योत्सवप्रमुदितं 'नानावादिशनिस्वनैः । वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणोभिरलंकृतम् ॥१८॥
 वेद्यतायतनैर्विभ्यः 'प्राकारोद्यानमण्डितैः । पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥१९॥
 स्त्रियः प्रमुक्तास्तत्र वृश्यन्ते तनुमध्यमाः । 'हारैरलंकृतप्रीवाः पद्मपत्रायतेभ्याः ॥२०॥
 पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । स्तिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुराभिताः ॥२१॥
 सुकोटयचारुजम्भराः कर्णमस्तरमस्तलोचनाः । सर्वलक्षणसपत्न्याः सर्वाभरणभूयिताः ॥२२॥
 दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसनिभाः । हंसवारणभामिन्यः कुचभारावनामिताः ॥२३॥
 विषयगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णभरणभूयिताः । मवालसाश्च सुभोग्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥२४॥
 ईषद्विस्पष्टदशना विम्बोष्ठा मधुरस्वराः । ताम्बूलरञ्जितमुखा विदग्धाः प्रियदर्शनाः ॥२५॥

एकाग्रक नाम से विख्यात ॥१३॥ हृष्ट-पुष्ट जना से प्रपूर्ण, नर-नारिया से समन्वित, विद्वद्गणा से परिपूर्ण, पन धाय आदि से सयुक्त ॥१३॥ गृह तथा पुरद्वारों से सकीर्ण, त्रिकोण द्वारों से भूयित, अनक व्यापारिया हैं व्याप्त, नाना रत्ना से सुशोभित ॥१४॥ नगर की अट्टालिकाया से संयुक्त, रथ वाली से अलंकृत, राजहंस के समान उज्ज्वल प्रासादों से शोभित ॥१५॥ मार्ग-द्वारों से संयुक्त, रत्न चहारदीवारिया से शोभित, शस्त्रसमूहा से रक्षित, लाह्या से अलंकृत ॥१६॥ वायु द्वारा चंचल और सफेद, लाल, पीत, कृष्ण तथा श्याम वर्ण वाली पताकाओं से अलंकृत ॥१७॥ नित्य उत्सवा से प्रमुदित, अनक प्रकार के वाद्या—वीणा, वेणु, मृदंग और क्षेपणी के शब्दों से अलंकृत ॥१८॥ और चहारदीवारी युक्त उद्यानों से मण्डित तथा पूजा की विचित्र रचनाओं से युक्त देवालया से भूयित है ॥१९॥ वहाँ क्षीण कटिवाली, युक्त-दिव्य हारा से अलंकृत प्रीवा वाली, कमलशोभता ॥२०॥ स्पूल तथा उन्नत स्तनों वाली, श्यामा, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, स्तिर केस वाली, सुन्दर नेपाल वाली, करघनी और नूपुर का शब्द करने वाली ॥२१॥ सुन्दर भेषवाली, सुन्दर अघा वाली, काना तक लम्बी आँखों वाली, सब लक्षणों से सपत्न, सब भूषणों से भूयित ॥२२॥ दिव्यवस्त्रधारिणी, गौरवर्णा, सुवर्ण-समान वर्ण वाली, हंस तथा हाथी के समान चाल वाली, स्तना के मार से झुकी हुई ॥२३॥ दिव्य गन्धा से लिप्त अंग वाली, कानों के गहनों से भूयित, मन्द से अलसगी हुई, सुन्दर नितम्ब वाली, सदा हंसमुख ॥२४॥ निजिबु स्पष्ट दाँता वाली, विम्बोष्ठी, मधुर स्वर वाली, ताम्बूली से रञ्जित मुख वाली, चतुर, प्रिय-

१ ग नवादिस्तम् । वी० । २ ख ० करार्षातुम् । ३ ग हावभावानतः । ४ ख ० द्रसमानः ।
 ५ ख शुभ्रयोः ।

सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगङ्गिताः । दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः ॥२६॥
 श्रीढन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः ॥२७॥
 पुष्पास्तत्र दृश्यन्ते रूपयोवनगङ्गिताः । सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥२८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वेश्याः शूद्राश्च भुनिसत्तमाः । स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति मुधामिकाः ॥२९॥
 अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्याः कुलोचनाः । घृताक्षीमेनका तुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः ॥३०॥
 उर्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिनिभास्तथा । विश्वाक्षीसहजान्याभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥३१॥
 सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा बिहसिताननाः । कलाकौशलसंयुक्ताः सर्वास्तः । गुणसंयुताः ॥३२॥
 एव पण्यस्त्रिग्रस्तत्र नृत्यगीतविशारदाः । निवसन्ति मुनिभेष्टाः सर्वस्त्रीगुणगङ्गिताः ॥३३॥
 प्रेक्षणाकापकुञ्जनाः सुन्दर्यः प्रियवर्सनाः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः ॥३४॥
 दासा कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः । न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्रिपः ॥३५॥
 न रोगिणी न मलिनाना न क्रूर्या न मायिनः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिणः ॥३६॥
 तिष्ठन्ति मामवास्तत्र क्षेत्रे जगति विभुते । सर्वत्र सुखसंचारं सबसत्त्वसुखावहम् ॥३७॥
 'मानाजनसमाकीर्णं सर्वसत्यसमन्वितम् । कर्णिकारंश्च पनसंश्चम्पकान्गिकेसरः' ॥३८॥
 पाटलाशोकवकुलैः 'कपित्थैर्बहुलैर्धवैः । जलनिम्बकदम्बैश्च तथाऽर्ज्यैः पुष्पजातिभिः' ॥३९॥
 नीपकैर्धवक्षविरैर्लताभिश्च विराजितम् । जालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जनैः ॥४०॥

दशाना ॥२५॥ सौभाग्यवती, प्रियवादिनी, नित्य यौवन से गङ्गिता और सुवर्णिता स्त्रियां दीक्षती हैं ॥२६॥
 अप्सराओं के समान वे श्रेष्ठ स्त्रियां दिनरात अपने अपने घरों में स्वयं से क्रीडा करती रहती हैं ॥२७॥
 वहाँ रूप यौवन-गङ्गिता, सर्वलक्षण-संपन्न तथा सुन्दर मणि-कुण्डली से युक्त पुरुष देखे जाते हैं ॥२८॥ मुनिवर्ग,
 स्वधर्मपरायण अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ वास करते हैं ॥२९॥ वहाँ और भी
 घृताक्षी, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी, विप्रचित्ति, विश्वाक्षी तथा प्रम्लोचा तुल्य सुन्दर नेत्र वाली वैष्णव्य रहती
 हैं ॥३०-३१॥ वे सब प्रियवादिनी, हास्ययुक्त मुख वाली, कला-कौशल समुक्त तथा सर्वगुण-सम्पन्न हैं ॥३२॥
 मुनिवर्ग । इस प्रकार नृत्य-गीत विशारद, समस्त स्त्रीगुणों से गङ्गित, ताकने तथा बातचीत करने में कुशल, प्रिय
 दीक्षने वाली, सुन्दरी गणिकार्ये वहाँ भ्रमती हैं, जो न रूप से हीन, न दुराचारिणी और न दूसरे से द्वेष
 करने वाली हैं, जिनके कटाक्षपात से ही मनुष्य मुग्ध हो जाते हैं ॥३३-३४॥ वहाँ न निर्धन, न मूर्ख,
 न परद्रोही, न रोगी, न म्लच्छ, न क्रूर, न मायाकारी, न रूपहीन और न दुराचारी मनुष्य रहते हैं
 ॥३५-३६॥ उस जगद्दिव्यामलक्ष्य में सब जगद् सुख का संचार है, सब जीवों को सुख ही मुक्त होता है ॥३७॥
 वह क्षेत्र अनेक प्रकार के मनुष्या से व्याप्त, सब तरह के जनों से समन्वित, वनकचम्पा, कटहल, चम्पा, नाग-
 वैसर ॥३८॥ पाटला, अशोक, मौलसिरी, कैया, आम, नीम, बदम्व तथा दूसरी पुष्प जातिया ॥३९॥
 कदम्ब, धव, खैर और लताओं से विराजित, साक्षु, ताल, तमाल, नारियल, सहजान ॥४०॥ अनृत, समपूर्ण,

अर्जुनः समपर्णश्च कोविदारः [सपिप्पलः । लकुचः सरलेलोऽग्रेहिन्तालेदेवदारुभिः ॥४१॥
 पलशैर्मुचकुन्दैश्च पारिजातः सकुब्जकः । कदलीवनसण्डैश्च जम्बूपागफलैस्तथा ॥४२॥
 केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किशुकैः । मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽप्यः गुष्पजातिभिः ॥४३॥
 नानापक्षितैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः । फलभारागतैर्वृक्षैः सर्वैर्तुकुसुमोदकैः ॥४४॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः । कलविद्धुर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शकैस्तथा ॥४५॥
 जीवजीवकहारोतिश्चातकैर्वनवेष्टितैः । नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजदिभर्मघुरस्वरैः ॥४६॥
 वीथिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः । नानाजलाशयैश्चान्यैः पक्षिनीखण्डमण्डितैः ॥४७॥
 कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः । कादम्बैश्च क्वाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४८॥
 कारण्डवैः प्लवहैस्तथाऽप्यजलचारिभिः । एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥४९॥
 नानाजलाशयैः पुष्पैः शोभितं तत्समागततः । आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥५०॥
 हिताय सर्वलोकस्य भुवितमुवितप्रदः शिवः । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥५१॥
 पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सामराः । तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलविन्दुम्यध्वपयक् ॥५२॥
 सर्वलोकहितायैव ह्यः सर्वसुरैः सह । तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 धकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम् । अष्टम्यां बहुले पक्षे मागशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥५४॥

बचनार, पीपल, बड़हल, सरल, लोघ्र, हिन्ताल, देवदारु ॥४१॥ पलाश, मुचकुन्द, पारिजात, कुब्ज, कदलीवन-
 सण्ड, जामुन, सुपारी ॥४२॥ केतकी, करवीर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा दूसरी पुष्प-जातियो ॥४३॥
 नाना पक्षियो के शास्त्री, नन्दनवन के समान सेव्य उद्यानो, फलो के बार से झुके वृक्षो, सब ऋतुजो न हाने वाले
 पुष्पो की राशि ॥४४॥ चकोर, शतपत्र (कण्ठफोडवा), भृङ्गराज, कोकिल, चटक (गौरैया), मयूर, प्रियपुत्र, ताते
 ॥४५॥ जीवजीवक, हारीत, पपीहे, तथा वन मे व्याप्त मयूर स्वर से बोलने वाले अन्य पक्षीगण ॥४६॥ बाबली,
 तालाव, पुष्करिणी तथा कमलनी-वन मण्डित अनेक जलाशय ॥४७॥ कुमुद, वमल, सुन्दर नीलकमल, हंस,
 चरवाक, जलकुक्कुट ॥४८॥ कारण्डव, प्लव, हंस तथा अन्य जलचर पक्षियो एवम् अनेक प्रकार के वृक्षो, पुष्पो तथा
 पवित्र जलाशयो से चारो ओर सुशोभित है ॥४९॥ वहाँ स्वयं चर्म रूप वस्त्रधारी शिव रहते है ॥५०॥ भुवित-
 मुवित-दाता शिव ने सब लोको के कल्याण के लिए पृथिवी पर जितने तीर्थ, नदियां, सरोवर, पुष्करिणियां, तालाव,
 बाबलियां, कुएँ तथा समुद्र हैं, उन सब से पृथक्-पृथक् जल बिन्दुजो को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया ॥५१-५२॥
 द्विजधेनो ! सर्वलोक-हित के लिए अखिलदेवगण तथा मुनिवृन्द सहित ह्ये न उस क्षेत्र मे बिन्दुसर नामक तीर्थ
 का निर्माण किया। बिन्दुजो से बनने के कारण उसका नाम बिन्दुसर पडा ॥५३॥ द्विजवर्य ! जो अग्रहण-वृष्ण-
 अष्टमी तिथि एव विपुव मे (बहु समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) उस क्षेत्र के लिए यात्रा करता

१ ख ०कुब्जकैः। २ ख ०म्बूकन्दक०। ३ ख ०शुयाकरैः। ४ ख ०स्वर्नं। दी०। ५ ख ०रिण्याश्च
 राशिभिः। ६ ख ०धैर्वनैः। मा०। ७ ख. सदा।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

कुरुते विषुवे विजितेन्द्रियः। विधिबद्धिन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥५५॥
 प्राश्च पितृसतप्यं वाग्यतः। तिलादकेन विधिना नामगोत्रविधानवित्॥५६॥
 स्नात्वेवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरारणे विषुवे सत्रान्त्यामयने तथा॥५७॥
 युगादिषु षडशोत्थां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम्॥५८॥
 अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै। पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरस्तस्ते॥५९॥
 पितृणामक्षया तृप्तं ते कुर्वन्ति न संशयः। ततः शभोर्मुहं गत्वा वाग्यतः संयतेन्द्रियः॥६०॥
 प्रविश्य पूजयेच्छब्दं कृत्वा तं त्रिप्रदक्षिणम्। घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचिं॥६१॥
 चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च। ततः संपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम्॥६२॥
 'पुष्पैर्नानाविधैर्मध्ये विल्लोककमलदिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम्॥६३॥
 अदीक्षितस्तु भाम्नेन मूलमन्त्रेण ध्यायेत्। एवं संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पाङ्गरागिभिः॥६४॥
 धूपदीपैश्च नैवेद्यरूपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्व्याघ्रमनोहरैः॥६५॥
 नृत्यजप्यनमस्कारैर्जपशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं संपूज्य विधिबद्धदेवमुमापतिम्॥६६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगावितः। कुलैकविंशमुद्दृत्य दिव्याभरणभूषितः॥६७॥
 सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगोपमानो गन्धर्वरप्सरोभिरलंकृतः॥६८॥

है अर्थात् जितेन्द्रिय होकर विधिपूर्वक विन्दुसर मे स्नान कर श्रद्धापूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरो का तिल-जल से नाम-गात्र उच्चारण कर वे तर्पण करता है, वह इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से अवशेष यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५४-५६॥ सूर्य और चन्द्रके ग्रहणों में, तुला और मेष राशि की सक्रान्ति में, अथन में (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के दिन), युगारम्भ में (अक्षय तृतीया के दिन), मिथुन, कन्या, धन तथा मीन राशि में और अन्य शून्य तिथि में जो वहाँ पर ब्राह्मणों का धन आदि दान देते हैं, वे अन्य तीर्थों से सौ गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥५७-५८॥ जो उस सत्रावर में तट पर पितरा को पिण्ड देता है, वे नि सन्देह पितरो का अक्षय वृष्टि प्रदान करते हैं ॥५९॥ इसके अनन्तर शिवालय में जाकर बाक्सम तथा इन्द्रिय सयम कर के शिव की तीन बार प्रदक्षिणा कर के पूजा करे ॥६०॥ पवित्रतापूर्वक घी, दूध आदि से शिव को स्नान कराये। फिर सुगन्धित चन्दन तथा कुङ्कुम लेप कर नानाविध पुष्प, पवित्र विल्वपत्र, आक तथा कमल से एवम् आगमवत् और वेदोक्त मन्त्र से चन्द्र मुकुटधारी उमापति की पूजा करे ॥६१-६३॥ अदीक्षित व्यक्ति केवल नाम ही लेकर मूलमन्त्र से पूजा करे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत् प्रणाम, गीत, मनाहर वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा से विधिपूर्वक उमापति की पूजा करने से मनुष्य सर्वपापविनिर्मुक्त, रूपयौवनगावित, इकीस कुलों का उद्धारक, दिव्य भूषणा से भूषित तथा क्षुद्रघण्टिकाया की माला से युक्त सुवर्ण के विमान पर आसब होकर गन्धर्व और अप्सराया से स्तुत

उद्योतयदिशः सार्धं शिवलोचं स गच्छति । भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रामनसं प्रीतिदायकम् ॥६९॥
 तत्तल्लोचयातिभिः सार्धं यावदाभूतसंस्तवम् । ततस्तस्मादिहाऽऽयात युधिर्व्यां पुण्यसन्धये ॥७०॥
 प्रापते योगिना गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमा । योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७१॥
 दायनोत्थापने चैव सत्रात्पानयने तथा । अग्नौकाह्या तथाऽष्टम्यां पवित्रारोपणे तथा ॥७२॥
 ये च पश्यन्ति तं देवं धृतिवातसामुत्तमम् । विमानेनार्चयन्नेन शिवलोचं यजति ते ॥७३॥
 सर्वेशोऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः । तेऽपि पापविनिर्मुक्ता शिवलोकं यजन्ति ये ॥७४॥
 देवस्य पदिस्रमे पूर्वं दक्षिणे चोत्तरे तथा । योजनद्वितीयं सार्धं क्षेत्रं तदभुञ्जितमुञ्जितम् ॥७५॥
 तस्मिन्नेत्रपरे स्निग्धं भस्मदरेऽवरसंस्तितम् । पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेऽवरम् ॥७६॥
 आग्निं येनार्चयन् पूर्वं देवदेवं त्रिजोचनम् । सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानयन्माहिषता ॥७७॥
 उपनीयमाना गार्घ्यं शिवलोकं यजन्ति ते । तिष्ठन्ति तत्र मुदिता वत्सपमेव द्विजोत्तमा ॥७८॥
 भुङ्क्तास्तु त्रिपुराभोगाश्छिन्नबद्धोक्ते रुनोरमान् । पुण्यलयादिहाऽऽयाता जायते प्रवरे बुद्धे ॥७९॥
 सपदा योगिना गेहे वेदवेदाङ्गपारगा । उत्पद्यन्ते द्विजवरा सर्वभूतहिते रता ॥८०॥
 योगिनास्त्रायकुण्डं सर्वत्र समयुद्धम् । योगं शमोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं यजन्ति ते ॥८१॥
 तस्मिन्नेत्रपरे पुण्ये स्निग्धं ददद्भ्यस्ते द्विजा । पूजयापूजय च सर्वत्र घने रम्याऽन्तरेऽपि वा ॥८२॥

घतुष्ये श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति । दृष्ट्वा तल्लिङ्गमध्यमः श्रद्धया सुसमाहितः ॥८३॥
 स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः । धूपदीपैः सन्वेद्येनं मस्कारैस्तथा स्तवैः ॥८४॥
 दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा । संपूज्यं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥८५॥
 नारी वा द्विजशार्दूलः संपूज्य श्रद्धयाऽन्विता । पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥८६॥
 कः शक्नोति गुणान्यक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः । तस्य क्षेत्रवरस्यायः श्रुते देवान्महेश्वरात् ॥८७॥
 तस्मिन्नेत्रोत्तमे तथा श्रद्धयाऽथ श्रद्धयाऽपि वा । माघवादिषु मासेषु नरो वा यदि वाऽङ्गना ॥८८॥
 यस्मिन् यस्मिंस्तिथौ यि प्राः स्नात्वा विन्दुसरोऽभसि । पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम् ॥८९॥
 'गणं' 'चण्डं' कातिकेयं गणेशं वृषभं तथा । कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति ॥९०॥
 स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्प्राप्तनाशने । प्राप्नोत्यभिमताङ्गामाश्रित्यलोकं स गच्छति ॥९१॥
 यः स्नानं तत्र विधिवत्करोति नित्यतेन्द्रियः । कुलं कविशमुद्रस्य शिवलोकं स गच्छति ॥९२॥
 एकाम्रके शिवक्षेत्रे धाराणसीसमे शुभे । स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम् ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवादे एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं

नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

लिंग वन में गलियों में, चौराहों पर, श्मशान में या जहाँ-वहीं भी मिले, उस लिंग को प्रसन्नता, श्रद्धा तथा सावधानी से स्नान करा कर मन्त्रपूर्वक गन्ध, मनोहर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम (तथा नृत्य-गीत आदि से पूजे) इस प्रकार विधानपूर्वक लिंग की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक को जाता है ॥८३॥
 ८५॥ द्विजवर्ग ! स्त्री भी अगर श्रद्धान्वित होकर इस तरह पूजा करेगी तो वह पूर्वोक्तफलमायिनी होगी, इसमें सौचने की कोई आवश्यकता नहीं ॥८६॥ मुनिवर ! महेश्वर को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उस उत्तम क्षेत्र में समग्र गुणों का वर्णन कर सके ? ॥८७॥ विप्रगण ! पुरुष या स्त्री जो कोई भी श्रद्धा या अश्रद्धा से उस उत्तम क्षेत्र में जाकर वैशाख आदि मासी में किसी किसी तिथि को विन्दुसर में स्नान कर विरूप क्षेत्र वाले शिव, वर देने वाली पार्वती गण, कातिकेय, गणेश, वृषभ कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करेगा, वह शिवलोक को जायेगा ॥८८-९०॥ वहाँ पापनाशक कापिल तीर्थ में विधिवत् स्नान कर के मनुष्य अमिलपित भोगों को प्राप्त करता है तथा शिवलोक को जाता है ॥९१॥ जो जितेन्द्रिय होकर ध्वजारोपण करता है, वह इकलौस कुलों का उद्धार कर शिवलोक को जाता है ॥९२॥ धाराणसी के समान पवित्र उस एकाम्रक नामक शिव-क्षेत्र में जा स्नान करता है उसे निश्चय ही भक्ति मिलती है ॥९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में एकाम्र-क्षेत्र माहात्म्य-वर्णन

नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

१ क ० य तस्य देवस्य मूलिनः । त० । २ ख व्यापयामः । ३ ख माघावादि० । ४ ख ० ना । तस्मिन्नेन स्थितो वि० । ५ ख गणेशचन्द्र का० । ६ ख ० ने । काल नयति ।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्कलक्षेत्र-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता । यस्याः 'संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्' ॥१॥
 सृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च । नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥२॥
 'अग्रावक्ष्ये तत्र तिष्ठन्ति विरजे' लोकमातरः । सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः ॥३॥
 आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी । यस्यां स्नात्वा नरश्चेष्टः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥
 आस्ते 'हव्यभूस्तत्रैव' क्रोडरूपी हरिः स्वयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥५॥
 कापिले गोपहो सोमे तीर्थे चास्त्राबुसंजिते । 'मृत्युंजये' क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकोश्वरे ॥६॥
 तीर्थेष्वेतेषु भक्तिनाम्बिरजे संयतेन्द्रियः गत्वाऽष्टतीर्थे विधिवत्स्नात्वा देवाग्रणम्य च ॥७॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । उपगोपमानो गन्धर्वमम लोके महीयते ॥८॥
 विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै । स 'करोत्यक्षयां तृप्तिं' पितॄणां नात्र संशयः ॥९॥
 मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम् । परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥१०॥
 स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम् । पश्येद्देवीं च दाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥११॥

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विरज नामक क्षेत्र मे विरजा नामक माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठित है, जिससे दर्शन करने से मनुष्य सात कुल को पवित्र करता है ॥१॥ एक बार उस देवी के दर्शन करने भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य अपने वंश का उद्धार कर भेदे लोक को प्राप्त करता है ॥२॥ उस विरज-क्षेत्र मे दूसरी भी सब पाप को हरने वाली, वर देने वाली तथा भक्तवत्सला लोकमातायें रहती हैं ॥३॥ वहाँ निजिल पापनाशिनी वैतरणी नामक नदी है, जिसमे स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ वही पर साक्षात् वराहरूपी स्वयम्भू हरि है, जिसमे स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥५॥ विरज-क्षेत्र मे कापिल, विराजते हैं । उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ विरज-क्षेत्र मे कापिल, गोपह, सोम, अस्त्राबु, मृत्युंजय, क्रोडतीर्थ, वासुक तथा सिद्धनेस्वर नामक तीर्थों मे जो ब्रह्मिष्ठ मनुष्य इन्द्रिय समपूर्वक स्नान करके देवताओं को प्रणाम करता है, वह सब पापों से रहित तथा उत्तम विमान मे स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होकर भेदे लोक मे पूजित होता है ॥७॥ भेदे विरज-क्षेत्र मे जो पिण्डदान करता है, उसके पितर लोग अश्व तृप्ति प्राप्त करते हैं, इसमे कोई संशय नहीं ॥८॥ मुनिवर्य ! भेदे विरज-क्षेत्र मे जो दारा रवाग करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥९॥ जो मनुष्य समुद्र मे स्नान कर मगवान् कपिल तथा दाराही देवी का

१ ग ०दाने मर्त्य । २ स ०म् । तत्र दृष्ट्वा ३ स अथान्यास्तत्र । ४ स विरजा । ५ स ०य तु तर्प ० ।

६ स ०व त्रीडप्रति ह ० । ७ स ०क्या वरस्तु मत्तुर धजेत् । वा ० । ८ स मृत्युंजये । ९ स वराति परांतु ० ।

सन्ति चान्यानितीर्यानि पुण्यान्यायतनानि च । तत्काले तु मुनिप्रेष्ठावेदितव्यानि तानि वै ॥१२॥
 समुद्रस्योत्तरे 'तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः । आस्ते गुह्यं पर क्षेत्रं भुवि तदं पापनाशनम् ॥१३॥
 सर्वत्र बालुकाकोणं पवित्रं सर्वकामदम् । दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१४॥
 अशोकार्जुनपुनर्गर्भवकुलं सरलद्रुमैः । पनसर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥१५॥
 क्षम्पकैः कणिकारैश्च चूतविल्वैः सपाटलैः । कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचेनगिकेसरैः ॥१६॥
 प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्घण्टिकाविरैः । सर्जभूजशिवकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥१७॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च मयप्रोधागरुचन्दनैः । खर्जूराम्नातकैः सिद्धैर्मृदुकुन्दैः सक्विशुकैः ॥१८॥
 अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुपारशभाञ्जलैः । शिशुपामलकैर्नोपनिम्बतिल्वुविभितकैः ॥१९॥
 सर्वतुङ्गफलगन्धाद्यैः सर्वतुङ्गसुमोज्ज्वलैः । मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनावितैः ॥२०॥
 श्रोत्ररम्यैः सुमधुरैर्बलनिदमनेरितैः । मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः जगमुत्थे रितैः ॥२१॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोविलैः फलविज्जैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥२२॥
 प्रियपुत्रैश्च तैर्लोकैश्च तयाज्यैर्मधुरस्वरैः । श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजविभ्रंशचार्यधिष्ठितैः ॥२३॥
 केतकीवनस्रष्टैश्च अतिमुक्तैः सकुञ्जकैः । भाल्मीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः ॥२४॥
 जम्बीरकरुणाङ्गुलीर्दाडिमैर्बीजपूरकैः । मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः ॥२५॥
 अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः । रत्नाविस्तारगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥२६॥

दर्शन करता है, वह देवलोक जाता है ॥११॥ मुनिवर्य । दूसरे भी बहुत से तीर्थ तथा आलय हैं, जिन्हें इस समय जानना चाहिए ॥१२॥ द्विजवर । समुद्र के उत्तरी तट पर एक पापनाशन, मोक्षदायक परम गुप्त, बालुकामय, पवित्र सर्वकामप्रद, दश याजन प्रमाण विस्तृत तथा परम दुर्लभ क्षेत्र है ॥१३-१४॥ वह अशोक, अर्जुन, पुन्नाग मौलसिरी सरल, कटहल, भारियल, सालू, ताल, बठबेल, चम्पा, कनकचम्पा, आम, बेल, पाटला, कदम्ब, कचनार, बड़हर, नागकेसर, जलामलक, लोध, नारंगी, कैदा, खैर, सर्व, भोजपत्र अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मदार, पारिजात बरगद अगर चन्दन खजूर, आमडा, मुकुन्द, पलाश, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, मधुर सहिजन शिशाप, आमला, नीप, निम्ब तिल्वु वहेडा आदि वृक्षों से तथा मन को आनन्दित करने वाले, शुक्ल वर्ण वाले, नावा पत्तिया के शब्दों से शब्दित और सब ऋतुआ में फल फूलों से सम्पन्न वृक्षों से सुशोभित है ॥१५-२०॥ सुमने में मनोरम, अत्यन्त मधुर, कामप्रेरित तथा मन में प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षी-मुलान्वरित शब्दा से, चकोर, शतपत्र, भृङ्गराज, लोवे, वानिल गौरये, हारीत जीवजीवक प्रियपुत्र, चातक तथा दूसरे भी मधुर स्वर से आलाप करने वाले और प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षिया से और केतकीवन, अतिमुक्त, कुञ्ज, भाल्मी, कुन्द बाण, लाल करवीर नीबू, करुण, अकाल, दाडिम, बीजपूरक, मातुलग, सुपारी, हिन्ताल कदलीवन तथा अन्य विविध वृक्षों एवम् मनोहर पुष्पों से भी वह अलङ्कृत है ॥२१-२५॥ वहाँ रत्नावी का विस्तार विविध

१ ग उत्कृष्टे । २ ख भागे । ३ ख अस्ति । ४ ख सावित्र । ५ ख नैर्लिखेरेव । ६ ख नैः । शिरीषाम् ।

७ ख नैर्वेणीयैर्नारमूर्धितैः । ८ ख नमुसादितैः । ९ ख नन्दपुष्पेन । १० ख नारमे । ११ ।

दीधिकाभिस्तडागंश्च^१ पुष्करिणीभिश्च घापिभिः । नानाजलाशयैः पुष्पैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥२७॥
 सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२८॥
 बह्मारेः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चकवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥२९॥
 कारण्डवैः^२ प्लवहैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः । वात्यहसारसाकीर्णैः कोयटिबकशोभितैः ॥३०॥
 एतैश्चाप्येवैश्च कज्जदिभः^३ समन्ताज्जलचारिभिः^४ । खर्गजलचरैश्चाप्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥३१॥
 एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः । ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥३२॥
 स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यैः समलंकृतम् । हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥३३॥
 अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम् । एव सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥३४॥
 आस्ते स नृनिधेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः । यावदुत्कलमयाश्च दिक्त्रयेण प्रकीर्तिता ॥३५॥
 तावदृष्णप्रसादेन देशः पुष्पतमो हि सः । यत्र तिष्ठति विदवात्मा देशे ॥ पुरुषोत्तमः^५ ॥३६॥
 जगद्भ्यापी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अहं रुद्रश्च शक्रश्च देवश्चाग्निपुरोगमाः ॥३७॥
 निवत्सामो नृनिधेष्ठास्तस्मिन्देशे सदा ययम् । गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानवाः ॥३८॥
 यक्षा विद्याधराः सिद्धा मुनयः सज्जितव्रताः । ऋषयो बालखिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः ॥३९॥
 सुपर्णा किनरा मागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः । साङ्गाश्च चतुरो वेदाः ज्ञास्त्राणि विविधानि च ॥४०॥

अत्राप्य, दीपिकाएँ, तालाव, पुष्करिणीयाँ, बावल्याँ, कमलिनी-वन-मण्डित माना जलाशय और
 कुमुद, कमल, नील कमल तथा लाल कमल से परिपूर्ण सरदार हैं ॥२६-२८॥ कादम्ब, चक्रवाक, जल-
 कुवकुट, कारण्डव, प्लव, हंस, मद्गु (पानिवीडि), बालनष्ट और बक—ये तथा दूसरे भी जलचर पक्षी और
 जल में उत्पन्न होने वाले फूल उस क्षेत्र की घामा बढ़ा रहे हैं ॥२९-३१॥ इस प्रकार नाना वृक्षा स्थल
 और जल में होने वाले पुष्पा, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासिया और स्वधर्मपरायण चारों वर्णों
 से बहु अलंकृत है ॥३२॥ वह हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों से प्रपूर्ण तथा नर-नारिया से समन्वित है । अशेष विद्याभा
 वा केन्द्र तथा समस्त धर्म-गुणा की निधि वह माना जाता है । इस प्रकार वह क्षेत्र नितिल गुणा से युक्त एवम्
 परमदुर्लभ है ॥३३-३४॥ नृनिधेष्ठो^६ वहाँ पुष्पात्तम नाम से विख्यात कृष्ण भगवान् उक्त है । दिगा के प्रथम से
 जहाँ तक उत्कल (उड़ीसा) की सीमा है वहाँ तक वह देश कृष्ण की अनुकम्पा से पुष्पतम माना गया है ॥३५॥
 जिस देश में विदवात्मा, जगद्भ्यापी, जगन्नाथ, पुरुषोत्तम वास करते हैं, वहाँ सब कुछ स्थित है ॥३६॥ मुनिवर ।
 ई, रुद्र, इन्द्र और अग्नि आदि देवता उस देश में सदा वास करते हैं ॥३७॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, पितर, दैव, मनुष्य,
 यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, महाव्रती आदि बालखिल्य, प्रजापति बन्धव आदि, मुष्ण, विष्णु, नाग तथा अन्य
 स्वर्गवासी, भगा सहित चारों वेद, विविध शास्त्र इतिहास, पुराण, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ, अनन्त पवित्र नदियाँ,

१ स. ०दय कागारैश्च समन्ततः । ना० । २ स प्रमुकं । ३ स ०इवैर्देवैर्हृ० । ४ स कीर्णानि । ५ स
 ०स्यभिनि । ६ स अस्ति । ७ स । ०म आरमा स्वय ज० ।

इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः। नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थान्यापतनानि च॥४१॥
 सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देहे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवपितृसेविते॥४२॥
 सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं चान्यदधिकं ततः॥४३॥
 आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रख्याय वसन्त्युत्कले नराः॥४४॥
 तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमे। स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये॥४५॥
 ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेघसाम्॥४६॥
 ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्। चारुभूकेशमुकुटं चारुकर्णवितंसकम्॥४७॥
 चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम्। सुनासं सुकोपलं च सुललाटं सुलक्षणम्॥४८॥
 प्रलोकयानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभु-ऋषिसंवादे उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम
 द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीर्थ, बैतालप, समुद्र और पर्वत उस देश में व्यवस्थित हैं॥४८-४९॥ ऐसे देवपियो तथा पितरो से सेवित, समस्त उपर्जन पदार्थों से युक्त एवम् पवित्रतम देश में किसको बसने की इच्छा नहीं होती? उससे भला कौन देश श्रेष्ठ है? कहीं उससे अधिक पदार्थ है? ॥४२-४३॥ जिस उत्कल देश में साक्षात् मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम देव रहते हैं, वहाँ के निवासी देवमुख्य हैं और धन्यवाद के पात्र हैं ॥४४॥ जो मनुष्य तीर्थराज के जल में स्नान कर पुरुषोत्तम के दर्शन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं, यमपुरी कभी नहीं जाते ॥४५॥ जो बुद्धिमान् पुरुषोत्तमाश्रित उस उत्कल क्षेत्र में बसते हैं उनका जीवन सफल है ॥४६॥ जो देवश्रेष्ठ, विकसित कमल सदाशेव बाले, सुन्दर शरीर, केश, और मुकुट वाले, मनीहर कर्ण-भूषणी वाले, सुन्दर हास्य और दाँत वाले, सुन्दर कुण्डलो से विभूषित, सुन्दर नाक, कपाल, ललाट और लक्षण वाले तथा तीर्थी लोक को आनन्द देने वाले कृष्ण के मुखकमल को देखते हैं, उनका जीवन सफल है ॥४७-४९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में उत्कल क्षेत्र-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

पञ्चत्तोर्यं च विधियत्कृत्वा तत्र महीपति । स्नान दान तपो होम देवताप्रेक्षण तथा ॥१२॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधियत्प्रत्यहं पुरयोत्तमम् । प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥१३॥
'मार्कण्डेय' च कृष्ण च दृष्ट्वा राम च भोद्विजा । सगरे चेन्द्रधुम्नाख्ये स्नात्वा मोक्ष लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥

मुनय ऊचुः

कस्मात्स नृपति पूर्वमिन्द्रधुम्नो जगत्पति । जगाम परम क्षेत्रं मुक्तिदं पुरयोत्तमम् ॥१५॥
गच्छा तत्र मुरध्रेष्ठ यथ स नृपसत्तम । वाजिमेघेन विधिवद्विष्टवान् पुरयोत्तमम् ॥१६॥
अथ स सर्वकण्डे क्षेत्रे परमदुर्लभे । प्रासाद कारयामास 'चेष्ट' प्रलोक्यविश्रुतम् ॥१७॥
अथ स कृष्ण राम च सुभद्रा च प्रजापते । निर्ममे राजशार्ङ्गं क्षेत्रं रक्षितवान्कथम् ॥१८॥
अथ तत्र महीपाल प्रासादे भवनोत्तमे । स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिवर्शाक्षितान् ॥१९॥
एतत्सर्वं सुरध्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् । वस्तुमहं स्पशेयेण चरितं तस्य धीमत ॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वं । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मण्यर कौतूहलं हि न ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

श्लाघु श्लाघु द्विजध्रेष्ठा यत्पृच्छस्य पुरातनम् । सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे । शृणुष्व मुनिशार्ङ्गसा प्रयता सत्यतन्द्रिया ॥२३॥

निर्माण कर स्नान दान तप तथा देव-दग्गन किया और प्रतिदिन यज्ञ से विधिपूर्वक पुरपात्तन की पूजा करके देवदेव की कृपा से मांस प्राप्त किया ॥१२॥ द्विजगण ! मार्कण्डेय कृष्ण तथा राम का दग्गन कर इन्द्रधुम्न नामक सागर में स्नान करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥१४॥

मुनियो ने कहा—हे सुरध्रेष्ठ ! पहले किसलिए जगत्पति इन्द्रधुम्न नामक राजा पुरयोत्तम सक्षम भक्तदायक परम क्षम को गया ॥१५॥ वहाँ जाकर कैसे उस श्रेष्ठ राजा ने अद्वैतधर्म यज्ञ द्वारा विधिपूर्वक पुरपात्तन की आराधना की ? ॥१६॥ कैसे सबफलप्रद परमदुर्लभ क्षम में उसने त्रैलोक्य प्रसिद्ध श्रेष्ठ भवन बनवाया ? ॥१७॥ हे प्रजापति ! कैसे उसने कृष्ण राम तथा सुभद्रा का निर्माण किया और क्षम की रक्षा की ? ॥१८॥ कैसे दुर्द्धिमान राजा ने तीनों लोक में उत्तम उस भवन में देवताओं से अर्चित कृष्ण आदि देवों की स्थापना की ? ॥१९॥ देवध्रेष्ठ ! उस धीमान् के समस्त चरित्र विस्तार से यथायत्त वर्णन कीजिए ॥२०॥ आपका वचनानामत से हमें तृप्ति नहीं मिलती । ब्रह्मन् ! सुनने के लिए हमें बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजध्रेष्ठो ! ठीक है ! ठीक है ! जो आपने प्राचीन सर्वपापनाशन भुक्ति मुक्ति प्रद तथा पवित्र चरित्र पूछा है उसे मैं कहूँगा । मुनिवर ! सत्ययुग में जैसे वह वत्तात हुआ था वैसे आप पवित्रता से इन्द्रिय ध्वजमपूषक सनियो ॥२२ २३॥ उस राजा की मालव देश में अवती नाम से प्रसिद्ध नगरी मालो पृथिवी का ककुद

अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विद्युता । बभूव तस्य नृपते पृथिवी ककुदोपमा ॥२४॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा । दृढयन्त्राङ्गन्द्वारा परिखाभिरलकृता ॥२५॥
नानावर्णितसमाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया । रघ्यापणवती रम्या सुविभवतचतुष्पथा ॥२६॥
गृहगोपुरसबाया वोथोभि समलकृता । राजहसनिभं शुभ्रंश्चित्रग्रीवंमनोहरं ॥२७॥
अनेकशतसाहस्रं प्रासादं समलकृता । यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादिनस्तिवना ॥२८॥
नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलकृता । हस्तपदवस्त्रसकीर्णपदातिगणसकुला ॥२९॥
नानापोषसमाकीर्णा नानाजनपदेयता । ब्राह्मणं क्षत्रियैर्वैश्यैश्च द्विजातिभिः ॥३०॥
सम्पन्ना सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलकृता । न तत्र मलिना सति न मूर्खा नापि निधना ॥३१॥
न रोगिणी न होनाङ्गा न चूतव्यसनान्विता । सदा हृष्टा सुमनसो दृश्यते पुरुषा स्त्रिय ॥३२॥
क्रीडति स्म बिबा राज्ञो हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक् । सुषेणः पुरुषास्तत्र दृश्यते मृष्टकुण्डला ॥३३॥
सुकृपा सुगुणादर्थं विद्यालकारभूयिता । कामदेवप्रतीकाशा सवलक्षणलक्षिता ॥३४॥
सुकृपा सुकपोलश्च सुमुखा इमभ्युधारिणः । तातार सवशस्त्राणा भेत्तार शत्रुवाहिनीम् ॥३५॥
दातार सधरत्नाना भोक्तार सर्वसपदाम । स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यते सुमनोहरा ॥३६॥
हसवारणगामि यः प्रफुल्लाम्भोजलोचना । सुमध्यमा सुजयना पीनोन्नतपयोधरा ॥३७॥

(बिला) है। वह नगरी हृष्ट पुष्ट लगी से परिपूर्ण दृढ प्राकार-तोरण (बहार दीवारी-बदनबार) वाली दृढ यन्त्र (ताला) तथा अगला (जजीर) यन्त्र द्वार वाली खाइयो से अलंकृत अनेक व्यापारियों से प्रपूर्ण विविध वस्तुओं के विक्रय से युक्त गलियों और बाजारों से समन्वित रमणीय अच्छी तरह विभक्त चौपटों से सज्य गहो तथा नगर-द्वारों से पूर्ण गलियों से अलंकृत राजहस के समान उज्ज्वल तथा मन-हर लकड़ी के हजारा विन्न विविध महला से भूषित यन्त्रों और उसमें से आनन्दित गीत तथा वाद्य से भूषित अनेक वर्णों की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित हाथी घोड़े रथ तथा पैदल सेनाओं से परिपूर्ण और नाना यन्त्राओं तथा जनपदों से युक्त है ॥२५-२९॥ मुनिवयः । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जातियों और विद्वद्गणों वह विभूषित है ॥३०॥ वहाँ न मूर्ख न मूख न निधन न रणी न हीन अग-वाले और न जङ्गली रहते हैं ॥३१॥ वहाँ सदा हृष्ट प्रसन्न स्त्री-मुख्य दिन रात पथक पथक क्रीडा करते हैं ३२॥ वहाँ के पुरुष सुन्दर बग तथा कुण्डलधारी रूपवान् गुणवान् दिव्य अलंकारों से भूषित कदपतुय सवलक्षण सम्पन्न सुन्दर केश कपोल तथा मुख वाले दाढ़ी मूळ धारण करने वाले सब शस्त्रों के पाता शत्रु सेना के छदनकर्ता मखिल रणों के दाता और निःसिल सम्पत्तियों के भोक्ता हैं ॥३३-३५॥ मुनिवयः । वहाँ की मनोहर हस तथा गज के समान चलने वाली विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुन्दर कटि तथा जघना वाली

१ छ ०ता । इद्रगुप्तस्य । २ ग ०त्राकुल० । ३ छ ०म्मा चतुष्पथविनयिता । पुराट्टालकस्यनता सुविभक्त० । ४ ग तातिनि० । ५ छ ०ज्जा नाज्ञानव्य० । ६ छ ०ल । प्रथा सुभगा दूरादि० । ७ र सबका मानो । ८ छ ०य कर्णातायतलो० । ९ छ ०मध्याश्च सु० ।

सुकोशादधारवदनाः सुषपोलाः स्थिरालकाः^१। हावभावानतपोवाः कर्णाभरणभूषिताः॥३८॥
 बिम्बोष्णो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः॥ सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिताः॥३९॥
 श्यामावदाताः सुधोष्यः काञ्चीनूपुरनादिताः। दिव्यमाल्याम्बधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः॥४०॥
 विद्यधाः सुभगाः कान्ताश्चार्वाङ्ग्यः प्रियदर्शनाः। रूपलावण्यसंयुक्ताः रर्वाः प्रहसिताननाः॥४१॥
 श्रीङ्गयश्च मन्दोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च। गीतावाद्यकथालापे रमयन्त्यश्व ताः स्त्रियः॥४२॥
 वारमुहयाश्च दृश्यन्ते नृत्यमोतविशारदाः। प्रेक्षणात्पापकुशलाः सर्वोपिदगुणान्विताः॥४३॥
 अश्वश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः। पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलंकृताः॥४४॥
 धनश्चोपवनैः पुष्पैरुद्यानैश्च मनोरमः। देवतायतनैर्विद्यनानाकुसुमशोभितः॥४५॥
 शालस्तालेस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेसरैः। पिप्पलैः कर्णिकारैश्च चन्दनगुहचम्पकैः॥४६॥
 पुंनागैर्नारिकैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गैर्बकुलैर्ध्रुवैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः॥४७॥
 चूतबिल्वकदम्बैश्च शिषपैर्धन्वराविरैः। पाटलाशोभतगरैः करवीरैः सितैरैः॥४८॥
 पीताम्रैर्नकुलैस्तैः सिद्धैराम्नातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्वत्थकाशमर्यैः पलाशैर्वैवदासभिः॥४९॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च तिल्लिङ्गीकविभोतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षैर्जम्बूशिरौषपादपैः॥५०॥
 कालैर्वा काञ्चनारैश्च मधुजम्बोरतिन्दुकैः। खजूरैर्गन्धर्वकुलैः शालोटकहरीतकैः॥५१॥
 कङ्कालैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्वाजपूरकैः। केतकीयनखण्डैश्च अतिमुक्ताः सङ्कुञ्जकैः॥५२॥

स्फूल तथा उन्नत स्तनी वाली, सुन्दर वेश, मुख तथा कर्णाल वाली, स्थिर लट वाली, हाव-भाव से झुकी ग्रीवा वाली, कर्णामूषणो से भूषित, बिम्बोष्णी, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, सुवर्ण के आभूषणो से युक्त, अश्व अलंकरणो से भूषित, श्याम तथा श्वेत वर्णवाली, मुनितम्बा, वाञ्ची (करघनी) और नूपुरो से शश्विल, दिव्य माला तथा वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध तथा रूप से युक्त, चतुर, सीमायवती, रमणीय, मनाहर अंग वाली, देखने में आकर्षक, रूप-सौन्दर्य संयुक्त और हंसमुख स्त्रियाँ मन्दोन्मत्त हास्य समझो म, चतुरो पर श्रीङ्ग करती हैं और गीत, वाद्य, कथा तथा आलपों से मनोरञ्जन करती हैं॥३९-४२॥ (इहाँ माघने गाने में निपुण, कटाक्ष तथा आलाप करने में कुशल और समस्त स्त्रियो के गुणा से संपन्न वेश्यायें देखी जाती हैं॥४३॥ दूसरी भी कुलधुर्यो वहाँ दीखत हैं, ज. गुणो म आचार्य पतिव्रता, सीमायवती और सर्वगुण सम्पन्न हैं॥४४॥ बना से पवित्र उषवः से अनन्तर उद्यान। से, दिव्य तथा नाना पुष्प समन्वित देवालये से,॥४५॥ साखू ताल, तमाल, मौलसिरी, नागकेशर, पीपल, कनकचम्पा वृक्ष, चन्दन, अमर, चम्पक,॥४६॥ पुत्राग, दारिपल, कटहल, सरल, नारंगी, बडहर, लोच, सप्तपर्ण सहिजन ॥४७॥ आम, बेल, कदम्ब, धीराम, कैय, खैर, पाटल, अशोक, तगर, लाल करवीर,॥४८॥ पीतगर्जन, गल्लात, सिद्ध, आम्नातक, वरपद, अश्वत्थ, काशमर्य, पलाश, वैवदार,॥४९॥ मदार, पारिजात, तिल्लिङ्गीक, बहेडा, प्राचीनामलक (जलआमला) पाकर, जामुन, शिरौष,॥५०॥ कालेय (काला चदन), कचनार, मधु, नीबू, खजूर, अगस्त्य, शाखोटिक, हरीतक,॥५१॥ कङ्काल, मुचुकुन्द, हिन्ताल

देवान्पितृनृपयोश्चैव संतर्प्य विधिवद्बुध । गत्वा शिवालये पञ्चवस्त्रकृत्वा तं त्रिप्रदक्षिणम् ॥६७॥
 प्रविश्य संप्रसो भूतश घौतवासा जितेन्द्रियः । स्नानं पुष्पस्तया गन्धैर्घर्षेदोपैश्व भक्तितः ॥६८॥
 नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः । दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥६९॥
 सपूज्य विधिवद्भुवत्या महाकालं सकृच्छिवम् । अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥७०॥
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः । आरह्य त्रिदिव याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥७१॥
 दिव्यरूपधरं श्रीमान्दिव्यालकारभूषितः । भुङ्क्ते तत्र जगन्भोगान्याददाभूतसंप्लवम् ॥७२॥
 शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जगामरण्यजितः । पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥७३॥
 चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः । योगं पाशुपतं प्राप्य सतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७४॥
 आस्ते तत्र नदी 'पुण्या शिप्रा' नामेति विभृता । तस्यां स्नातस्तु विधिद्वयसंतर्प्य पितृदेवतः ॥७५॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥७६॥
 आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः । गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुवि नमुक्षितप्रदो हरिः ॥७७॥
 त वृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः । विमानैर्नाकवर्णैर्न किङ्किणीजालमालिनः ॥७८॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च । उपयोयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महोयते ॥७९॥
 भुङ्क्ते च 'विधिधान्कामान्निरातङ्गो' गतज्वरः । आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपः सुभगः सुखी ॥८०॥

पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर पवित्रवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय तथा सयमी होकर स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, गीत, वाद्य, प्रदक्षिण, दण्डवत् प्रणाम, नृत्य और स्तोत्र से महाकाल शिव की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। (इस तरह एक बार पूजा करने से) मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और समस्त पापों से रहित हो स्वेच्छाचारी विमानों पर चढ़ कर शम्भु के निवास स्थल को जाता है ॥६९-७१॥ वहाँ दिव्य मूपणों से भूषित तथा दिव्यरूपधारी होकर कल्पान्त तक अनेक प्रकार के उत्तम भोगों का भोगता है ॥७२॥ मुनिवर्य! शिवलोक में बुढ़ापा तथा मृत्यु नहीं होती। पुण्यक्षय होने पर जीव यहाँ आकर उत्तम शास्त्र कुल में जन्म लेता है और चारों वेदों का ज्ञाता तथा सर्वशास्त्र-कुशल होकर पाशुपत योग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥७३-७४॥ वहाँ एक शिप्रा नाम से प्रसिद्ध पवित्र नदी है। उसमें स्नान तथा विधिपूर्वक पितर देवताओं के तर्पण करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है और उत्तम विमान द्वारा स्वर्गलोक जानकर अनेक भोगों का उपभोग करता है ॥७५-७६॥ वही पर गोविन्दस्वामी नाम से प्रसिद्ध, मुक्ति-मुक्ति दायक, देवों के देव, भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥७७॥ उनका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और इक्कीस कुलों के साथ सूर्य के समान वर्ण वाले, शुद्ध षष्टिकाओं की माला वाले, सब कामनाओं के पूरणकर्ता, स्वेच्छाचारी तथा अस्थिर विमान में स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुलोक में पूजित होता है ॥७८-७९॥ वहाँ वह आतङ्ग तथा ज्वर से रहित, रूपवान्, गाम्यवान् तथा सुखी होकर

कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मण स्यान्महीतले । प्रवरेधोगिना गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥८१॥
 घेष्णव योगमास्याय ततो मोक्षमवाप्नुयात् । विक्रमस्वामिनामान विष्णु तत्रैव भो द्विजा ॥८२॥
 दृष्ट्वा नरो वानारी वा फलपूर्वोदित लभेत् । अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवा शत्रुपुरोगमा ॥८३॥
 मातरश्च मुनिधेष्ठा सबकामफलप्रदा । दृष्ट्वा तान्विधिवदभवत्सा सपूज्य प्रणिपत्य च ॥८४॥
 'सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम् । एव सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥८५॥
 नित्योत्सवप्रमुदिता ध्येन्द्रस्यामरावती । पुराष्टादशसयुक्ता सुविस्तीर्णवतुष्यया ॥८६॥
 धनुर्ध्याघोषनिनदा सिद्धसगमभूषिता । विद्यावद्गणभूषिता वेदनिर्घोषनादिता ॥८७॥
 इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च । काष्ठशालापकयाश्चैव भूयःसेहनिश द्विजा ॥८८॥
 एवमभागुणाढ्यासातड्डु (सोज्ज) धिनी समुद्गृहता । यस्या राजाऽभवत्पूवमिन्द्रद्युम्नो महामति ॥८९॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादेश्वन्तिकावर्णन नाम त्रिवत्वारिंशोऽध्याय ॥४३॥

वत्पान्त एक विविध भजा क मगता है ॥८०॥ फिर समय पाकर भूतल पर आकर यगियो के उत्तम पर भजम लेता है और वेद शास्त्रों का तत्त्वज्ञाता ब्राह्मण होकर वैष्णव यग में स्थित होते हुए मोक्ष प्राप्त करता है ॥८१॥ द्विजगण । वही पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु ५ दशन करन से नर या नारी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं । मुनिवर । वहाँ दूसरे भी इंद्र आदि देवता तथा सब कामनाआका देने वाले मात गण विद्यमान हैं । उनका दशन कर मक्ति से विधिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य सबपाप रहित होकर स्वर्ग जाता है ॥८२ ८४॥ (इस प्रकार श्वत् राजा से पालित वह रमणीय नगरी अमरावती की तरह नियम से प्रमुषित रहता है ॥८५॥ द्विजगण । उस नगरी में अष्टादश विस्तृत चौराहे हैं धनपनागा के महानन्द होते रहते हैं अनेक सत महारमा तथा विद्वदगण वेद ध्वनि करते रहते हैं और इतिहास पुराण विविध शास्त्र काय कथा तथा आख्यानको की चर्चा रात दिन चलती रहती है ॥८६ ८८॥ इस प्रकार वर्णित उस गुण-सम्पन्न नगरी का नाम उज्जयिनी है जिसमें पहले इंद्रद्युम्न नामक महाबुद्धिमान राजा हुआ था ॥८९॥)

श्री ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में अवन्तिका-वर्णन

नामक उतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य दक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपति. पूर्वं कुर्वन्नाज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिवोरसान्॥१॥
 सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः। मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशास्त्रभूतां वरः॥२॥
 सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः। आवित्य इय तेजोभी हर्षं राश्विनयोरिव॥३॥
 वर्धमानसुराश्चर्यः शत्रुतुल्यपराक्रमः। शारवेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणैः समलंकृतः॥४॥
 आहूतां सर्वयज्ञानां हयमेधाश्चकृत्तया। दानैर्यज्ञेस्तपोभिश्च सत्तुल्यो नास्ति भूपति॥५॥
 सुवर्णमणिमुपताना गजाश्चानां च भूपतिः। प्रददौ विप्रमुह्येभ्यो यागे यागे महाधनम्॥६॥
 हस्तपद्मरथमुत्थाना कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते॥७॥
 एवं सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः। सर्वकामसमुद्भात्मा कुर्वन्नाज्यमकण्टकम्॥८॥
 तत्त्वेयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेऽथर्व हरिम्। कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम्॥९॥
 विचार्य सर्वशास्त्राणि सन्प्राप्यागमविस्तरम्। इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः॥१०॥

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न वा दक्षिणसमुद्र के तट पर जाना

ब्रह्मा ने कहा—यहले उगनगरी मे उत्तम राज्य करते हुए वह बुद्धिमान् राजा अपने पुत्रों की तरह प्रजाओं का पालन करता था॥१॥ वह सत्यवादी महाविद्वान्, शूर, सर्वगुणाकर, बुद्धिमान्, धर्मगण, वाङ्मय मे अष्ट, धर्मज्ञान, नीलवान, गदमी, श्रीमान्, शत्रुविजयी, मूर्ध के समान नेत्रस्वी, अरिभीतुकार के मनुष्य रूपवान्, देवताओं का पकित करने वाल, इन्द्रद्युम्न पराजयी, शत्रु के शत्रु के शत्रु बुद्धिमान् कानिदान् अगम एताओं मे अष्टुत अस्वमेय आदि यज्ञों का कर्ता और राज, यज्ञ तथा तप करने मे अतीव राजा था॥२॥ वह प्रियजन् मे उत्तम वाङ्मयों का पर्याप्त धन—सुवर्ण, मणि, माला, हाथी और घोड़ा—देता था। उक्त हाथी, घोड़ा, रथ, कम्बल, धर्म, वस्त्र, खन तथा धन धान्यों का अन्न नहीं था। इस तरह तप प्रसाद के धन मे युक्त, गमरन गुणों मे अष्टुत तथा सब कामनाओं मे परिपूर्ण वह राजा अष्टुत राज्य करता था॥३॥ उगने धन ॥ यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भुक्ति-मुक्ति-दायक प्रभु हरि की सेवा उपायता हूँ। तब वह अस्त्रिष्ट वास्तव, तन्त्र, आगम, इतिहास, पुराण, वेदांग, धर्मशास्त्र, ऋषिस्मृतियों नियम तथा विद्याओं के (पता) के

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमान्निभाषितान् । वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि ॥ ११ ॥
 गुरुं संसेव्य' यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारयान् । आषाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
 संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम् । भ्रान्तिज्ञानादतोतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥ १३ ॥
 कथमारोपयिष्यामि देवदेवं सनातनम् । पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
 वनमालावृत्तोत्सुकं पद्मपत्रायतेक्षणम् । श्रीवत्सोरःसमाधुवत् भुक्टाङ्गवशोभितम् ॥ १५ ॥
 स्वपुरातनं तु निष्क्रान्तं उज्जयिन्याः प्रजापतिः । बलेन महता युवतः 'सभृत्यः सपुरोहितः' ॥ १६ ॥
 अनुजामुदत्तं तं सर्वे रयिनः शस्त्रपाणयः । रथैर्विमानसकाशैः पताकाध्वजसेवितैः ॥ १७ ॥
 सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोपरपाणयः । अश्वैः पवनसकाशैरनुजम्भुस्तु तं मृपम् ॥ १८ ॥
 हिमवत्सभवेमंतैर्वारणैः पर्वतोपमैः । इंपावन्तैः सदा मत्तैः प्रवण्डैः पण्डितैः ॥ १९ ॥
 हेमकक्षैः सपत्तार्कैर्घण्टारवविभूषितैः । अनुजामुदत्तं तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥ २० ॥
 असख्येयाश्च पादाता धनुष्प्रासासिपाणयः । दिव्यमाल्याम्बुधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ २१ ॥
 अनुजामुदत्तं तं सर्वे युयानो मृष्टकुण्डलाः । सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥ २२ ॥
 अन्तपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलकृताः । बिम्बोच्छारदशनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २३ ॥
 दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिताः । दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ २४ ॥

विचार कर मत्तपूर्वक वेदपारगत ब्राह्मण तथा गुरु की सेवा कर चरम सीमा पर पहुँचकर कृतकृत्य हो गया ॥ ११-१२ ॥ पश्चात् काल वासुदेव सशक अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर मुमुक्षु, जितेन्द्रिय तथा भ्रान्तिमक ज्ञान से परे होकर देव, के देव, सनातन, पीतवस्त्रधारी, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र गदाधारी वनमाला से आवृत वक्षस्थल काले, विकसित कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त तथा मुकुट और अवद (बाहुभूषण) से सुशोभित (कुण्डल की केशे आरधना कर्त्ते) यह सोचते हुए राजा अपने मगर उज्जयिनी से चल पड़ा ॥ १३-१५ ॥ उसके पीछे विद्याल सेना, नीकर-चाकर, पुरोहित और शस्त्र हाथी म लिए सब रथारोही ध्वजा-पताकाओं से सेवित, विमान तुल्य रथों में स्थित हाकर चल पड़े ॥ १६-१७ ॥ अश्वारोहीगण भी पवन तुल्य वेगी अश्वों पर चढ़ कर भाले और तोमर धारण कर राजा के पीछे हो लिए ॥ १८ ॥ हिमालय प्रदेश में उत्पन्न, पर्वतकार, हरित के समान दाँत वाले, सदा मत्तवाले भयंकर, साठ वर्ष वाले सुवर्णमय होदा तथा पताका से युक्त और घटा के शब्दों से विभूषित हाथियों पर चढ़ कर गजयुद्धविशारदवृन्द राजा का अनुसरण करने लगे ॥ १९-२० ॥ दिव्यमाला वस्त्र और मुग्नियत लेपधारी, सब प्रकार के अस्त्र चलाने में कुशल वीर, सदा सङ्ग्राम के अमिलाधी तथा सुन्दर कुण्डलों से विभूषित असंख्य युवक धनुष, भाले और तलवार हाथों में लिये पैदल ही राजा का अनुगमन करने लगे ॥ २१-२२ ॥ बिम्बाच्छी, सुन्दर दाँत वाली, अक्षेप आभूषणा से अलङ्कृत, दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्य मालाजाल से विभूषित,

१ ख ० नि सर्वेश । गु० २ ख समान्य ३ ख सौदलास । ४ न रेखादन्त । ५ ख ० र्वे जयमु० ।
 ६ ग सादिपा० । ७ ख रूपयौवनसम्पन्ना ।

सुमध्यमाश्चास्वेपाश्चादिकर्णालकाञ्चिताः । ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥२५॥
 यानिरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिगाञ्चनभूषितैः । उपगम्यमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥२६॥
 वेष्टिताः 'शस्त्रहस्तैश्च' पद्मपत्रायतेक्षणाः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजगमुश्च तं नृपम् ॥२७॥
 वणिग्प्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः । धने रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः ॥२८॥
 अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः । तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥२९॥
 रङ्गोपजीविनः सर्वे मासविक्रयिणस्तथा । तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा ॥३०॥
 फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा । तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रतः ॥३१॥
 गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः । मेघपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥३२॥
 धान्यविक्रयिणश्चैव सवतुविक्रयिणश्च ये । मूढविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥३३॥
 गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः । शैलूपाः 'कयकाश्चैव' पुराणार्थविशारदाः ॥३४॥
 कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः । विषयना शास्त्राश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः ॥३५॥
 व्योकरास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च लूठकाः । कौवकाराश्चित्रकाराः कुम्बकाराश्च पावकाः ॥३६॥

विषय गन्धा से लिप्त अग वाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर बेरा वाली, कानों पर लटकते हुए बालों से सुशोभित, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, रत्नगणना से सुरक्षित, सब तरह की मणि काञ्चन भूषित सवारिया पर स्थित, मागधवन्दियों से स्तुत, पत्र पत्र के समान शीर्ष नेत्र वाली और शस्त्रधारिया से आवृत अन्त पुर की स्त्रिया अन्धी तरह सज वज कर राजा के पश्चात् प्रस्थित हुई ॥२३-२६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा धन रत्न, सुवर्ण, स्त्री और सामानों की साथ लिये बगिक-समूह, अस्त्र-विक्रेता ताम्बूल तथा जूए से जीविका उपार्जन करने वाले, घास-विन्नेता, लकड़ी का व्यापार करने वाले ॥२७-२९॥ रत्ना से जीविका कमाने वाले, मास विन्नेता, तेल विन्नेता, वस्त्र-विन्नेता, ॥३०॥ फल विन्नेता पत्र विन्नेता, घास ढाले वाले, हजारों धात्री, ॥३१॥ अहीर, नाई, दर्जी, गडहिये, बकरी पालने वाले, हरिण पालने वाले, हंस पालने वाले, ॥३२॥ धान्य विन्नेता, सलू बेचने वाले, मूठ बेचने वाले, लवण विन्नेता ॥३३॥ (गवयें, नर्तक, बदी, नट कथक, पौराणिक, ॥३४॥ बवि, काव्यकर्ता, नाना काव्यनिपुण विषयविद, विषयप्रज्ञाता, रत्ना के परीक्षक, ॥३५॥) लोहार, बसेरा, कोशकार, चित्रकार

१ स मष्टिहस्तैश्च । २ स ०श्च अ० । ३ स ०म । ४ स ० । ५ स ० । ६ स ० । ७ स ० । ८ स ० । ९ स ० । १० स ० । ११ स ० । १२ स ० । १३ स ० । १४ स ० । १५ स ० । १६ स ० । १७ स ० । १८ स ० । १९ स ० । २० स ० । २१ स ० । २२ स ० । २३ स ० । २४ स ० । २५ स ० । २६ स ० । २७ स ० । २८ स ० । २९ स ० । ३० स ० । ३१ स ० । ३२ स ० । ३३ स ० । ३४ स ० । ३५ स ० । ३६ स ० । ३७ स ० । ३८ स ० । ३९ स ० । ४० स ० । ४१ स ० । ४२ स ० । ४३ स ० । ४४ स ० । ४५ स ० । ४६ स ० । ४७ स ० । ४८ स ० । ४९ स ० । ५० स ० । ५१ स ० । ५२ स ० । ५३ स ० । ५४ स ० । ५५ स ० । ५६ स ० । ५७ स ० । ५८ स ० । ५९ स ० । ६० स ० । ६१ स ० । ६२ स ० । ६३ स ० । ६४ स ० । ६५ स ० । ६६ स ० । ६७ स ० । ६८ स ० । ६९ स ० । ७० स ० । ७१ स ० । ७२ स ० । ७३ स ० । ७४ स ० । ७५ स ० । ७६ स ० । ७७ स ० । ७८ स ० । ७९ स ० । ८० स ० । ८१ स ० । ८२ स ० । ८३ स ० । ८४ स ० । ८५ स ० । ८६ स ० । ८७ स ० । ८८ स ० । ८९ स ० । ९० स ० । ९१ स ० । ९२ स ० । ९३ स ० । ९४ स ० । ९५ स ० । ९६ स ० । ९७ स ० । ९८ स ० । ९९ स ० । १०० स ० ।

दण्डकाराश्चासिकारा सुराद्यतोपजीविनः । मत्स्यं दूताश्च कायस्था ये चान्ये फर्मकारिणः ॥३७॥
तनुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठका । लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपशुपजीविनः ॥३८॥
गजवेद्याश्च घंटाश्च नरवेद्याश्च ये नरा । वृक्षवेद्याश्च गोवेद्या ये चान्ये छेददाहका ॥३९॥
एते नागरका सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता । अनुजम्भुस्तु राजान समस्तपुरवासिनः ॥४०॥
यथा व्रजन्त पितर ग्रामान्तर समुत्सुका । अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा त तैऽपि नागरा ॥४१॥
एव स नृपति श्रीमान्वृत सर्वे मंहाजनः । हस्तधरथपादातिर्जगाम च शनं शनं ॥४२॥
एव गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम् । सर्वस्तैर्दीर्घकालेन बलैरनुगत प्रभू ॥४३॥
वदश 'सागर रम्य नृत्यन्तमिव च स्थितम् । अनेकशतसाहसैरभिभिश्च समाकुलम् ॥४४॥
नानारत्नालय पूर्णं नानाप्राणिममाकुलम् । बीचीतरङ्गबहुल महाश्चर्यसमन्वितम् ॥४५॥
तीर्थराज महाशब्दमपार सुभयकरम् । मेघवृन्दप्रतीकाशमगाध सकरालयम् ॥४६॥
मत्स्यै भूमेश्व शङ्खलेश्व धुविकानकशङ्खभिः । शिशुमारं कर्कटंश्च 'वृत सर्पमंहाविषं ॥४७॥
लवणोद हरे स्यान् शयनस्थ नदोपतिम् । सर्वपापहर पुण्य सर्वदाङ्गुष्ठाफलप्रबम् ॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीर दानवीना समाधयम् । अमृतस्यारणि दिव्य देवयोनिमया पतिम् ॥४९॥
विशिष्ट सर्वभूतानां प्राणिना जीवधारणम् । सुपवित्र पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥५०॥

शरादने वाले बटक ? पावक (तपस्वी ?) ॥३६॥ दण्ड बनाने वाले तलवार बनाने वाले मद्य विनोता पट्टवान हुत कापस्य अयकमचारी ॥३७॥ जुलाहे सीनार, वार्तिक (जामूस) तैलपाठक (सेली) लावा पक्षी से जाविका कमाने वाले तीतर पक्षी से निर्बाह करने वाले पशु पक्षियों से जीने वाले ॥३८॥ हाथी के वैद्य वैद्य मनुष्य वैद्य वृक्ष-वैद्य गो वैद्य छदनकर्ता दाह-कर्ता—ये नागरिक और दूसरे भी समस्त पुरवासी जिनके नाम नहीं लिए गए राजा के अनुगमन करने लगे ॥३९॥ जैसे दूसरे रात को जाने वाले पिता का पुत्र उत्सुकता से अनुगमन करते हैं उसी तरह ये नागरिक भी भी राजा के अनुगामी हुए ॥४०॥ इस प्रकार हाथी घोड़ रथ पैदल सेना और समस्त नागरिकों से घेरित राजा धीरे धीरे प्रस्थान करने लगा ॥४१॥ इस प्रकार वह राजा सकल सैनिका के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचा ॥४२॥ राजा ने नाचते हुए से स्थित रमणीय सैकड़ा-हजारों तरंगों से व्याप्त ॥४३॥ नाना रत्नों के आलय पूर्ण अनेक जीव-जंतुओं से भरे महान आश्चर्यजनक ॥४४॥ तीर्थराज महाशब्दकारी पाररहित अतिभयकर मेघसमूहगुल्य अगाध प्राहा के घर ॥४५॥ मत्स्य कूभ शंख गवितिका (सितुही) नर शङ्ख शिशुमार कर्कट तथा महाविषपर सर्पों से युक्त ॥४६॥ खारे जल वाले हरि के शयन-स्थान नदिया के पति सब पापों के हरने वाले पवित्र सब कामनाओं के फल देने वाले ॥४७॥ अनेक आवतों से गम्भीर, दानवी के आश्रय अमृत के उत्पत्ति-स्थान दिव्य देव-योनि जल के स्वामी ॥४८॥ सब के प्रिय प्राणियों के जीव धारण

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम् । चन्द्रवृद्धिसयस्येव यस्य मानं प्रतिष्ठितम् ॥५१॥
 अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम् । उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥५२॥
 उपजोद्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम् । दृष्ट्वा तं नृपतिश्चेष्टो विस्मयं परमं गतः ॥५३॥
 निवासमकरोत्तत्र वेलाभासाद्य सागरिम् । पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुण्युते ॥५४॥
 वृतं शालैः कदम्बैश्च पुनर्गणैः सरलद्रुमैः । पनसर्नारिकेलैश्च दकुलैर्नगिकैसरैः ॥५५॥
 तालैः पिप्पलैः खजूरैर्नारङ्गैर्बोजपूरकैः । शालैराभ्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः ॥५६॥
 कपिरथैः कर्णिकारैश्च पाटलालशोकचम्पकैः । दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तयाज्जुनैः ॥५७॥
 प्राचीनामलकैर्विलेखैः प्रियंगुवटखारिणैः । इज्जदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थामरस्यजम्बुकैः ॥५८॥
 मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैः सतिन्दुकैः । पलाशबदरैर्नारिकैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः ॥५९॥
 वारकैः कोविदारैश्च भस्मातामलकैस्तथा । इति हिताशकाङ्गुलैः करञ्जैः सविभीतकैः ॥६०॥
 ससर्जमधुकाशमयैः शास्मलीदेवदाहभिः । शास्त्रोटकैर्निम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः ॥६१॥
 गुग्गुलैश्चन्दनैश्च क्षैस्तथैवागुरुपाटलैः । जम्बीरकदण्डैश्च क्षैस्तित्तिशोरैश्चतचन्दनैः ॥६२॥
 एवं नानाविधैर्वक्षैस्तथाऽप्येवंबहुपादपैः । कल्पद्रुमैर्नित्यफलैः सर्वतृकुसुमोत्करैः ॥६३॥
 नानापक्षितैर्विष्यैर्मत्स्यकोकिलनावितैः । मयूरवरसंघट्टैः शुक्रसारिखसंघुलैः ॥६४॥
 हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः । जीवजीवककाकोलैः कलविष्णुः कपोतकैः ॥६५॥

करने वाले, पवित्रों में पवित्र, मगला में मगल, ॥५०॥ तीर्थों में उत्तम तीर्थ, मादा-रहित, जलजन्तुओं के स्वामी, चन्द्रमा की वृद्धि तथा क्षय की तरह मान (सीमा प्रमाण) वाले, ॥५१॥ सब प्राणियों से अनेक वैभवात्मा के अमृतालय, उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण, सनातन, ॥५२॥ सब के आश्रय और नदनदिया के स्वामी सागर की देखा । देख कर वह अत्यन्त विस्मित हो गया । समुद्र-तट पर पड़े-बकर राजा वहीं निवास करने लगा ॥५३॥ (उस) पवित्र, मनोहर तथा भूमि के समस्त गुणों से युक्त देश के शाल, कदम्ब, पुष्पा सरस, कदहूल, नाट्यल, मीलसिरी, नामकेसर, ॥५४-५५॥ ताल, पीपल, खजूर, नागमी, बीजपूर, आभ्रातक, लोध्र, बहुवारक, कठवेल, वनकचम्पा, पाटला, अशोड़, चम्पा, अनार, तमाल, पारिजात, अर्जुन, ॥५६॥ प्राचीनामलक, वेल, प्रियंगु, बट, खैर, हिगाट, छतिवन अश्वत्थ, अगस्त्य, नीबू, ॥५७॥ महुआ, तिन्दु, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सहिजन ॥५८॥ वारक, कचनार, भस्मात, आमलक, हिताल, बाङ्गू, करञ्ज, नहेडा, ॥६०॥ सर्ज, मधु, काशमय, सेमल, देवदाह, शास्त्रोटन कुम्भीकोष्ठ, हरे, ॥६१॥ गुग्गुल चन्दन, अगर, करण तिन्तिडी, खतचन्दन—एसे नाना प्रकार के वृक्षों से, नित्य फूलने वाले तथा सब श्रुतुमा में फूलने वाले कल्पवृक्षों से, ॥६२-६३॥ नाना पक्षियों के दिव्य सन्दा से, मत्त कोकिल, मयूर, ताने, मीने, हारीत, भृङ्गराज, पपीहे, बहुपुत्रक, जीवजीव (चकोर), गोरेये, कतूर—पक्षियों में तथा दूसरे

१ ख ०श्च लघुचर्मा ० । २ ॥ ०म्बगुणर्व । वा० । ३ ख ०या । टीति । ४ न ०पादा । उ० ।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय उचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे । किं तत्र प्रतिभा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो ॥१॥
 येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलबाहनः । स्थापयामास कृष्णं च 'रामं भद्रा शुभप्रदाम् ॥२॥
 संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व पूर्वसंवृताः कथां पापप्रणाशिनीम् । प्रवक्ष्यामि सप्तासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः ॥४॥
 सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते । सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः किनरैरपशोभिते ॥५॥
 देवदानवगन्धर्वैर्नागैरप्सरसा गणैः । मुनिभिर्मुह्यकैः सिद्धैः सोपणैः समरद्गणैः ॥६॥
 अन्यैर्देवा रयैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः । बालसित्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे ॥७॥
 कर्णिकारवर्नैर्दिव्यैः सर्वैर्लोकसुमोत्करैः । आतरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः ॥८॥
 अन्यैश्च बहुभिर्बुधैः शालतालादिभिर्वनैः । पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाभ्रातकार्जुनैः ॥९॥
 पारिजाताभ्रखदिरनीपविल्वकदम्बकैः । धवलाविरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकैः ॥१०॥

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—प्रभो ! क्या विष्णु के उस पवित्र पुर्यात्तम क्षेत्र में पहले कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं थी, जो सेना बाहुना के साथ आकर उस राजा ने वहाँ कृष्ण, राम और कल्याण-आदि का सुमद्रा की स्थापना की ? जगत्पते ! इसमें हमें बड़ा संशय है और आश्चर्य भी है । हम सविस्तर गुनना चाहते हैं । आप इसका कारण बतलायें ॥१-३॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिये, जो क्या पूर्वकाल में लक्ष्मी ने विष्णु से पूछी थी, उसी पापनाशिनी कथा का मैं संक्षेप से वर्णन करूँगा ॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, विद्भर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरागण, मुनि, गुरुज, सोपण, समरद्गण, साध्य, कश्यप आदि प्रजापति, बालसिन्य आदि ऋषि तथा देवालयों से घासित, अत्यन्त मनोहर, सब ऋतुओं में सुनहले पुष्पों से समन्वित, दिव्य वनक चम्पा वृक्षा में भूषित, सूर्य के समान वर्ण वाले पुष्पा से युक्त, दूसरे भी बहुत से वृक्षा से अलंकृत, शाल, ताल, पुत्राग, अशाक सरह वट, आश्रातक, अर्जुन, पारिजात, आम, खैर, नीम, बेल, कदम्ब, बँच, पलाश, शिरीष, आंवला, तिन्दुल, ॥५-१०॥

नारिङ्गकोलवकुललोध्रदाडिमदारकः । सर्वे च कर्णेस्तगरैः शिशिभूर्जवनिम्बकैः ॥११॥
 अन्ये च काञ्चनैश्चैव फलभारैश्च नामितैः । नानाकुसुमगन्धाद्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः ॥१२॥
 मालतीयूथिकामल्लीकुन्दवाणकुण्डकैः । पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमादिभिः ॥१३॥
 अन्ये च विविधैः पुष्पैर्मनसं प्रीतिदायकैः । नानाविहगसंघैश्च कूर्जद्भिर्मधुरम्बरैः ॥१४॥
 पुंस्कोकिलवृक्षैर्दिव्यैर्मन्तवह्निनादितैः । एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥१५॥
 खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते । तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम् ॥१६॥
 सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम् । प्रणम्य शिरसा देवीं लोभना हितकाम्यया ॥१७॥
 पद्मच्छेत्रं महाप्रसन्नं पद्मजा तमनुत्तमम् ॥१७॥

श्रीरुवाच

धूहि त्व सर्वलोकेश सशयं मे हृदि स्थितम् । मर्त्यलोके महाश्चर्यं कर्मभूमौ सुतुल्यमे ॥१८॥
 लोभमोहप्रहप्रस्ते कामक्रोधमहार्णवैः । येन मुच्येत देवेश अस्मात्ससारसागरात् ॥१९॥
 आश्चर्यं सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे । त्वद्वृत्ते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता सशयनिर्णये ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

ध्रुववं धधन तस्या देवदेवो जनार्दन । प्रोवाच परमा प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥२१॥

नारंगी, कोल, मीलसिरी लोभ, अनार, दारक, सर्ज, कनेल, तगर, शिशिभू (?), जब अर नीम वृक्षा से तथा फल के भार से झुके हुए अन्य वृक्षा से मण्डित, मालती, गूही, मल्लिका कुन्द, वाण कुण्डक, पाटला, अगस्त्य, कुटज मन्दार आदि पुष्पा से तथा मन को प्रसन्न करने वाले अन्य विविध पुष्पों से विभूषित, मधुर स्वर से आलाप करने वाले नाना पक्षिमात्रा से समूहा से तथा कतिल एवम् मस्त मयूरा से शिथिल, देवताओं से सुसेवित, समस्त आश्चर्यजनक वस्तुओं से समन्वित मेखपर्वत के सुवर्णमय शिखर पर स्थित जगत्स्रष्टा जगत्पति, अविनाशी, सब जगत् के विधाता, वासुदेव को शिर युक्त कर प्रणाम करने लक्ष्मी ने लज्ज-वस्थान के लिए उनसे यह महाप्रश्न पूछा ॥११-१७॥

रमा ने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी ! मेरे हृदय में जो सशय है, उसका आप निराकरण कीजिए । देवेश ! महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त दुर्लभ, कर्म की भूमि, लोभ-मोह रूपी घाटों से प्रस्त, काम क्रोध रूपी महासमुद्र से युक्त मर्त्य लोभ में प्रवृत्त इस ससार सागर से किस प्रकार मुक्त हो वह उपाय आप बतलाइये । हे जगत्पति देवों के स्वामी ! इस लोक में आपकी छोड़कर दूसरा कोई सहाय निर्णय करने में समर्थ नहीं है ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी के ऐसे वचना को सुन कर देव-देव जनार्दन बहुत प्रमत्त अमृतमुल्य सार बात बतलाने लगे ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुमत्फलः । आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरषोत्तमः ॥२२॥
 न तेन सद्दशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते । कीर्तनाद्यस्य देवेशि मृच्यते सर्वपातकैः ॥२३॥
 न विज्ञातोऽमरं सत्त्वं देव्येन च दानवैः । मरीच्यार्धमुनिवरैर्गोपितं मे वरानने ॥२४॥
 ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि तोर्थराज च साप्रतम् । भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व वरवर्णिनि ॥२५॥
 'आसीत्कल्पे 'समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे । 'प्रलीना 'देवगन्धर्वदेवविद्याधरोरगा' ॥२६॥
 तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तस्मिञ्जागतिं भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥२७॥
 श्रीमस्त्रिमूर्तिः कुब्जदेवो जगत्कर्ता महेश्वरः । वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरिद्वरः ॥२८॥
 सोऽसृजद्योगनिद्रागते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम् । 'पद्मकेशरसंकाश ब्रह्माणं भूतमध्यगम्' ॥२९॥
 तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः । पञ्चभूतसमापुष्टं सृजते च 'ज्ञानं शानं' ॥३०॥
 मात्रायोगीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च । चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥३१॥
 ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा जने सर्वे चराचरम् । संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥३२॥
 मरीक्यादीन्मुनीन्सर्वांश्चैवासुरपितृनपि । यज्ञविद्याधरांश्चाम्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३३॥

श्री भगवान् ने कहा—देवी । उत्तम तीर्थों में प्रसिद्ध पुरषोत्तम नामक तीर्थ सुख ॥ उपासना करने योग्य, आसनतया साधना करने योग्य, मनोहर तथा सत्फलदायक है । उसने समान तीनों लोक में कोई नहीं है । उसका कीर्तन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥२२-२३॥ अष्ट मुख वाली । न देवता, न दैत्य, न दानव, न मरीचि आदि मुनि ही उस गुप्त स्थान को जानते हैं ॥२४॥ हे सुन्दर कटि बाणों । हे सुन्दरी । इस समय मैं उस तीर्थराज के बारे में कहता हूँ, तुम एकाक्ष मन से सुनो ॥२५॥ कल्प उत्पन्न होने पर (कल्पास्त मे) स्थावर जगमा के नष्ट हो जाने पर तथा देवा, गन्धर्वों, दैत्यों, विद्याधर, और सर्पों के लीन हो जाने पर यह सब कुछ जन्मकारमय दीखता था, कुछ भी भालूम नहीं पड़ता था ॥२६॥ इस समय प्राणिमा के आत्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, श्रीमान्, त्रिमूर्ति (सत्त्व रजस् तमःभय), देव, जगत्कर्ता, महेश्वर, ईश्वर, योगात्मा, हरि (इत्यादि नामधारी) वासुदेव जानते थे ॥ २७-२८॥ उन्होंने योगनिद्रा के अन्त में नाभि रूपी कमल के मध्य में स्थित, कमल के केसर के समुद्र, सत्त्व रूप तथा अविनाश, ब्रह्मा की सृष्टि की ॥२९॥ तदुपरात समस्त लावा में महान् ईश्वर ब्रह्मा धीरे-धीरे पञ्चभूतात्मक सृष्टि करने लग्य ॥३०॥ मात्रासूक्ष्म स्थूल-सूक्ष्म जितने चार प्रकारके स्थावर-जगम है, उन सब को उन्होंने रचा ॥३१॥ तब प्रजापति ब्रह्मा ने समस्त चराचरा को उत्पन्न किया । मन से आत्मा का ध्यान कर विविध प्रजापति की उत्पत्ति की ॥३२॥ मरीचि आदि समस्त मुनि, देव, राक्षस, पितर, यज्ञ विद्याधर तथा आदि नदी, अनुष्ट, चन्द्र, सिंह, विविध

१ स ०र्वेति दिव्ये० । २ स ०सीतपय स० । ३ स ०त्यः न० । ४ स ०गर्जने । ५ स ०न्धर्वदेव्य० । ६ स ०२० । ७ स ०रमाप्रत्येवेज० । ८ स ०२ । आर्धस्तथा० । ९ स ०ध्यः । १० स ०वद० । १० स ०वाप ० । ११ स ०म् । आविर्भूत० । १२ स ०देवः । १३ स ०मः । १४ स ०नै । विदवचनानाम्० ।

नरवानरसिंहाश्च विविधाश्च विहंगमान् । जरायून्अण्डजान्देवि स्वदेजोभेदजास्तथा ॥३४॥
 ग्रहाक्षरं तथा वैश्यं शूत्रं चैव चतुष्टयम् । अन्त्यजास्तदेव स्लेच्छाश्च ससर्जं विविधान्पृथक् ॥३५॥
 यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम् । ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम् ॥३६॥
 दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम् । वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत् ॥३७॥
 ततः प्रभृति लोकोऽस्मिन्प्रजा मय्युत्पन्नसंभवा । 'अथमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च ॥३८॥
 एवं संचिन्त्य देवोऽसी पुरा सलिलयोनिजः । जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिका तनुम् ॥३९॥
 ध्यानमात्रेण द्वेष्टेन स्वयमेव जनादंनः । तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥४०॥
 सहस्रशोभां पुरुषः पुण्डरीकनिभक्षणः । सलिललब्धाभक्तमेवाभः श्रीमात्रस्त्रीवत्क्षणः ॥४१॥
 अथयत्सहस्रा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः । आसनैरर्धपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च ॥४२॥
 सुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चि च सुसदाहृतः । हस्तोऽहमुत्तमः देव ब्रह्माण कमलोद्भवम् ॥
 कारणं यद मां तात मम ध्यानस्थ सांप्रतम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकाश्च दुर्लभम् । स्वर्गद्वारस्थ मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च ॥४४॥
 योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थाणि विविधानि च । विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं यद ॥४५॥
 स्थानं 'जगत्पते मह्यमुत्कृष्टं च द्रुच्यते । सर्वेषामुत्तम स्थानं ब्रूहि मे 'पुदयोत्तम ॥४६॥

पक्षी, जरायुज अण्डज स्वदेज और उदभिज्ज जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, अन्त्यज (अधृत), स्लेच्छा—सब को पृथक् पृथक् रचा ॥३३-३५॥ जा कुछ भी जीवमजक चास पात बीडे मकोडे है, उन सब चराचरा का निर्माण उन्होंने ब्रह्मा हुआ कर किया ॥३६॥ अपन दाहिन अंग में पुरुष और वाम अंग में स्त्री की कल्पना कर के स्वयम् हुआ गए ॥३७॥ तब से लाव मे प्रजा की मयूरी सृष्टि होती है। मेरे जितन उत्तम-मध्यम अधम क्षत्र (क्षत्रीर) है, उन सबकी चिन्तना कर ब्रह्मा ध्यान स्थित हो कर वासुदेव के क्षत्रीर का प्राप्त हुए ॥३८-३९॥ ध्यानमात्र से ही तत्क्षण सहस्रनेत्र, सहस्रचरण और सहस्रगिर, कमल-गमन, नील नीरद तुल्य सुन्दर तथा श्रीवत्स चिह्न से युक्त स्वयम् जनादंन प्रकट हुए ॥४०-४१॥ सहस्रा उन्ना देल पर लाव रचयिता ब्रह्मा आसन, अर्ध, पाद्य और अक्षत से उनकी पूजा कर प्रणतिपूर्वक सावधान मन से स्तुति करने लगे। तबवाच कमलात्मज ब्रह्मा से मैंने कहा—तात! किस हेतु तुमने इस समय मेरा ध्यान किया है? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवेन 'जगत्प्रस्थाप के लिए स्वर्ग-द्वार के मार्ग—यज्ञ दान तप, व्रत, योग, सत्य, यज्ञ और विविध तीर्थ—इनका छांट कर मर्त्यलोक में दुर्लभ जा सुख-साधन है, उसे बतलाइए ॥४४-४५॥ जगत्पते! 'पुदयोत्तम! पृथ्वी पर सब से उत्कृष्ट स्थान जो हो, उसे भी बतला दीजिए ॥४६॥ श्रिये! ब्रह्मा के

विधातुर्वचनं श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये। शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि 'निर्मलं भुवि दुर्लभम् ॥४७॥
 उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं ससारतारणम्। गोब्राह्मणहितं पुण्यं चातुर्वर्ण्यसुखोदयम् ॥४८॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदं मृणा क्षेत्रं परमदुर्लभम्। महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं वै पितामह ॥४९॥
 'तस्मादासीत्समुत्पन्नं तीर्थं राजं सनातनम्। विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्वर्ण्यनिषेधितम्' ॥५०॥
 सर्वेषामेव देवानामृपोणा ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥५१॥
 नानाविद्याधराणां च स्वावरस्य चरस्य च। उत्तमं पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तम ॥५२॥
 दक्षिणस्योदधेस्तीरे श्यमोदो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥५३॥
 यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महद्बु (स्यु) त्कानिबर्हणे। 'विनाशं नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः ॥५४॥
 वृष्टिमात्रे बटे तस्मिन्शायामाश्रम्य चासृजत्। 'ब्रह्महृत्यत्प्रमुर्येत पापेभ्यश्च येन का कथा ॥५५॥
 प्रदक्षिणा कृता यस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः। 'सर्वे विभूतपाप्मानसते यताः केशवालयम् ॥५६॥
 श्यमोदस्योत्तरे ऋषिदक्षिणे केशवस्य तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हितम् ॥५७॥
 प्रतिभा तत्र वै दृष्ट्या स्वयं देवेन निर्मिताम्। अनायासेन च यान्ति भुवनं मे ततो नरा ॥५८॥
 गच्छमानास्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये। मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽज्ज्वलीत् ॥५९॥

वचनं सुनन्तं मेने कहा—ब्रह्मन्। सुनिष्ट, पृथ्वी पर दुर्लभ निमल निमल क्षत्रा म उत्तम, धन्यवाद के योग्य
 ससार-तारण गा ब्राह्मणा का हितकारक, पवित्र कार्यो वर्णों के लिए सुखदायक, भुक्ति मुक्ति प्रद परम दुर्लभ
 महापुण्यवर्धन और सब के लिए सिद्धिदाता स्थान में बतलाने ॥४७-४९॥ चारा युगा म रहने वाला, सनातन
 तीर्थों का राजा और परम विख्यात एक क्षेत्र है ॥५०॥ वहाँ पर समस्त दैव ऋषि, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध,
 गन्धर्व, सप्त राक्षस नाग विद्याधर, स्वावर, जगम और सब स उत्तम पुरुष वास करते हैं अतः उसका नाम
 पुरुषोत्तम पड़ा है ॥५१-५२॥ दक्षिण समुद्र के तट पर जहाँ बट वृक्ष है, वहाँ दश योजन प्रमाण विस्तीर्ण क्षत्र
 परम दुर्लभ है ॥५३॥ जो कल्प के उत्पन्न होने पर (कल्पान्त में) महान् उत्तरापात होने पर (संसार के विनष्ट
 होने पर) स्वयं विनष्ट नहीं होता, वे उसी क्षत्र में स्थित होते हैं ॥५४॥ एक बार उस बट के टुकड़े पर छाया में
 बैठन से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है, और पापा भी उस वात ही क्या है? ॥५५॥ जिन प्राणियों ने उसकी
 प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया है, वे सब निर्णायक हृत्कर वैकुण्ठ गए हैं। यद्यपि उत्तर और कृष्ण से कुछ दक्षिण जो
 मन्दिर है यह धर्ममय स्थान है। वहाँ साक्षात् भगवान् द्वारा निर्मित प्रतिभा का दर्शन कर अनुपम अनायास ही
 वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं। प्रिये! एक समय वैकुण्ठ जात हुए उन भक्तियों का दत्त कर धर्मराज मेरे पास आकर
 प्रणाम करते सुनने परने लगा ॥५६-५९॥

१ रा निर्मित। २ रा भगवान्मनम्। ३ रा भवा वसता प्रिये०। ४ रा सत्तदा०। ५ रा भगवान्निर्दिष्ट।
 म०। ६ रा भगवाँनैव वसने स्वयं तत्रैव दुर्लभ। ७ रा भवत्या विनश्यत्। ८ रा भवेत्तु पापनिवहना गच्छति
 च गिरा०। ९ रा मदन।

यम उवाच

नमस्ते भगवद्देव लोकनाथ जगत्पते । क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥६०॥
 वरं वरेण्यं वरदं वर्तारमकृतं प्रभुम् । विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥६१॥
 नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥६२॥
 सर्वलोकविधातारं सर्वलोकसुखावहम् । पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥६३॥
 परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम् । श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥६४॥
 पीतवस्त्रं क्षतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् । हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गवधारिणम् ॥६५॥
 सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविर्वाजितम् । कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६६॥
 भावाभावादिनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम् । नमस्त्यागि, जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥६७॥
 इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसन्धियो । स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥६८॥
 तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् । स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥६९॥
 यैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि । किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद्वद्वीहि मे ॥७०॥

धर्मराज उवाच

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे । इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥७१॥
 तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकैव श्रद्धया । श्वेताख्यं भवनं याति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥७२॥

यम ने कहा—भगवन् ! देव ! जगत्पते ! लोकनाथ ! आपको नमस्कार है । क्षीरसमुद्रवासी, शेषशायी, ॥६०॥ श्रेष्ठ, वरदाता, वर्ता, अविनाशी, समर्थ, विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, ॥६१॥ नील कमल के पत्र के समान श्याम, कमलनयन सर्वज्ञ निर्गुण, शान्त, जगत् धारणकर्ता, नित्य, ॥६२॥ सर्वलोक-विधाता, सर्वलोक-मुखदायक, प्राचीन पुरुष, जानने योग्य, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, ॥६३॥ उच्च-नीच सब के स्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, बक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न-धारी, वनमाला से विभूषित, ॥६४॥ पीतवस्त्र-शाल-चक्र-गदा हार-केयूर-मुकुट-अनन्द-धारी ॥६५॥ क्षतुर्बाहु, सर्वलक्षण संपन्न, सब इन्द्रियो से वर्जित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतीरूप सनातन, ॥६६॥ भाव अभाव से निर्मुक्त व्यापक, प्रकृति से परे, जगन्नाथ, ईश्वर, सुखदाता और सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है ॥६७॥ इस प्रकार पूर्वकाल में बट वृक्ष के समीप धर्मराज ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर मुझ प्रणाम किया ॥६८॥ महाभागे ! मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए यम से स्तुति का कारण पूछा ॥६९॥ सूर्य के पुत्र ! महाबाहो ! तुम सब देवा में उत्तम हो । किसलिए तुमने मेरी स्तुति की ? संक्षेपत बताओ ? ॥७०॥

धर्मराज ने कहा—इस पवित्र तथा विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र में सब वामनाओं को पूर्ण करने वाली इन्द्रनील-मणि की उत्तम प्रतिमा है ॥७१॥ पुण्डरीकाक्ष ! अन्य भाव से श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य

अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमस्मिन्नुदन। प्रसीद सुमहादेव संहार प्रतिमां विभो॥७३॥
 श्रुत्वा 'देवस्वतस्मैतद्वाक्यमेतदुवाच ह। यम ता गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः॥७४॥
 ततः सा प्रतिमा देवि कलिभिर्योषिता मया। यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥७५॥
 प्रच्छाद्य कलिकंदेवि जातरूपपरिच्छदः। यम प्रस्थापयामास रथा पुरीं दक्षिणां दिशम्॥७६॥

ब्रह्मोवाच

क्षुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः। तस्मिन्क्षेत्रवरं पुण्ये विख्याते पुरयोत्तमे॥७७॥
 यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनादेनः। तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा॥७८॥
 इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्रासादकरणं तथा॥७९॥
 हयमेधस्य यजनं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदधेस्तोरे 'काष्ठस्य दर्शनं तथा॥८०॥
 दर्शनं वामुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः॥८१॥
 'स्थापनं चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे। यात्राकाले च विप्रेन्द्राः 'कल्पसंकीर्तनं तथा॥८२॥
 मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शंकरस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः॥८३॥
 वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजाः। दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः॥८४॥
 सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः। दर्शनं भरसिंहस्य व्युष्टिसंकीर्तनं तथा॥८५॥

निष्काम हो जाते हैं और स्वतंत्रताजन मन की जाते हैं॥७२॥ अनुतापन । इसलिए मैं अपना काम नहीं कर सकता। महादेव । विभो । मुझ पर प्रसन्न हो, प्रतिमा की हटा दीजिए॥७३॥ यम की यह बात सुनकर मैंने कहा—'यम' । मैं बालुआ से उस प्रतिमा का चारों ओर से ढक दूँगा॥७४॥ देवी । तब मैंने लताआ से उस प्रतिमा का छिपा दिया, जिससे स्वर्गाभिलाषी मनुष्य उसका दर्शन न कर पाये॥७५॥ मुद्रहृदी लताआसे उगे आच्छादित कर मैंने यम का दक्षिण दिशा की ओर अपनी नगरी के लिए बिदा कर दिया॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विगण । उस पवित्र तथा प्रसिद्ध पुरातन नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में इन्द्रनील मणि की प्रतिमा के स्फुट हो जाने पर आ दना वहीं की हुई उसे भगवान् जनादेन ने लक्ष्मी से बतला दिया॥७७-७८॥ विप्रवृन्द । इन्द्रद्युम्न का गमन, क्षत्र का दर्शन तथा वर्णन, भवन निर्माण,॥७९॥ अरवमेध यम, स्वप्नदर्शन, क्षार समुद्र के तट पर काष्ठ का दर्शन,॥८०॥ वामुदेव तथा शिल्पिराज का दर्शन, प्रतिमा का उचित वर्णानुसृत निर्माण॥८१॥ तथा तीनों लताओं में सब से उत्तम भवन में स्थापन, यात्राकाल में बलदेव का दर्शन, मार्कण्डेय का चरित, शंकर की स्थापना, पञ्चतीर्थ का माहात्म्य, शिव का दर्शन,॥८२-८३॥ वट का दर्शन तथा स्तुति, बलदेव, कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और माहात्म्य, भरसिंह का दर्शन, स्तुति तथा वर्णन, अनन्त वामुदेव के दर्शन तथा

१ स ०दक्ष म०। २ स ०स्वप्न वाक्य युक्तमतदक्षिणतमम्। सा तदा प्र०। ३ स ०मिरछादिता।

४ स ०छाद०। ५ स ०स्थापना। ६ स ०वाच्यं च। ७ स ०मार्कण्डेय०।

'अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं भुण्क्तीर्त्तनम् । श्वेतमाधवमोहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम् ॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च । समुद्रस्नानमोहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः ॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं तथैव च । स्थानं कृष्णस्य हलिनः पर्वयात्राफलं तथा ॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः । पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यैव स पुरुषोत्तमः ॥८९॥
इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवऋषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपते । तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः । क्षेत्रसंदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपते ॥२॥

गुणों का कीर्तन, श्वेतमाधव का माहात्म्य, स्वर्ग का दर्शन, समुद्र का दर्शन तथा उसमें स्नान और तर्पण, समुद्र-स्नान तथा इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य, पञ्चतीर्थ का फल, महाज्येष्ठ (ज्येष्ठ की पूर्णिमा), कृष्ण तथा बलराम का स्थान, पर्व यात्रा का फल, विष्णु लोक का वर्णन, क्षेत्र का पुनः-पुनः वर्णन—यह सब मगवान् पुरुषोत्तम ने लक्ष्मी को बतला दिया ॥८४-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में पूर्व वृत्तान्त वर्णन नामक पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—देव ! हम राजा की अवशिष्ट कथा की सुनना चाहते हैं । उस उत्तम क्षेत्र में जाकर राका ने क्या किया ? ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! मुनियो, मैं संक्षेप से उस राजा के कर्म तथा क्षेत्र-दर्शन का वर्णन करता हूँ

१ स भृगु तु वा० । २ स पुष्पकीर्त्तनम् । ३ स वर्णनम् । ४ स अन सर्व० । ५ स स्वयम् । ६ स स्वस्नानम् । ७ स जात ।

गत्वा तत्र महोपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविभुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥३॥
 नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता। स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥४॥
 गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा ॥५॥
 'दक्षिणस्योदधेर्गमं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्मस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥६॥
 दृश्यन्ते मुनिशार्दूलः सुतस्याः सुमनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥७॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्। स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥८॥
 ताम्बूलपूर्णवचना मालादामविभूषिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सयङ्गपदकमाः ॥९॥
 अग्निहोत्ररता केचित्कोचिदोपासनक्रियाः। सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥१०॥
 क्षत्रे राजमातृषु वनेषु पवनेषु च। सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥११॥
 इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः। काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः ॥१२॥
 स्त्रियस्तवृक्षवासिन्यो रूपयौवनगविताः। संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः ॥१३॥
 सरोरुहमुष्णाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समुध्या चाववर्शनाः ॥१४॥
 सौवर्णवलयारक्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृताः। कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जलकसप्रभाः ॥१५॥
 बिम्बाधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः। मुमुलाश्चावकेशाश्च हावभावाद्यनामिताः ॥१६॥

॥२॥ त्रैलोक्य प्रसिद्ध उस क्षेत्र में जाकर राजा ने रमणीय स्थानों तथा नदियों को देखा ॥३॥ वहाँ विन्ध्य-
 पर्वत से निकली स्वित्रोपला नामक नदी है, जो अतिल पापों को हरने वाली, कल्याणमयी, गंगातुल्य, महा-
 सातवाली, दक्षिण समुद्र की ओर जाने वाली, महानदी नाम से विख्यात, पवित्रसलिला, नदिमा में धोए,
 दक्षिण समुद्र के गर्भ में प्राप्त तथा आवतों से सुश्रावित है ॥४॥ ५३॥ मुनिवर्य! उस नदी के दोनों तट पर
 घन धान्य-सम्पन्न सुन्दर ग्राम और नगर हैं, जो हृष्ट-पुष्ट लोगों से प्रपूर्ण तथा वस्त्र-अलंकारों से भूषित हैं ॥६-७॥
 वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मों में निरत, शान्त, शुभलक्षण सम्पन्न मालाया से विभूषित
 तथा ताम्बूल से पूर्ण मुखवाले दीखते हैं ॥८॥ वहाँ के ब्राह्मण छोटी अथ पद और प्रभु सहित वेदा के गाता,
 सब धाम्ना में कुशल, यज्ञकर्ता तथा विपुल-दक्षिणादाता होते हैं। उनमें कोई अग्निहोत्री तो नाई कर्मकाण्डी
 होते हैं ॥९-१०॥ वहाँ क्षत्रियों पर, राजमातों में, वनों में, उपवनों में, सभामण्डल में तथा देवालयों में इतिहास,
 पुराण, अथ संहित वेद, सुन्दर काव्य, शास्त्र और कथामें महान् व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती हैं ॥११-१२॥ उस
 देश की स्त्रियों रूप यौवन से गर्वित समस्त लक्षणों से युक्त विशाल नितम्ब वाली, ॥१३॥ कमलमूर्ती, श्यामा,
 शरद्-चन्द्र-तुल्य मुख वाली, स्फुल तथा उन्नत स्तन वाली, सुन्दर दीखने वाली, ॥१४॥ सने की बूदियों पहनने वाली, दिव्य
 वस्त्रों से अलङ्कृत, नेले के (मीठरी भाग) के तुल्य, (वर्ण वाली), कमल के केसर के समान कान्ति वाली ॥१५॥
 बिम्बाष्टी, मनारम, काना तथा लम्बी आँखों वाली, मुमुली, सुन्दर वेश वाली, हाव भाव दिखाने में समुद्र, ॥१६॥

१ स ०ता। विन्ध्योपले०। २ स. सुमा। ३ स ०दये कान्ता दुहितृसतता०। ४ न गपना। ५ स
 ०क्षामराम०। ६ स ०विद्यागायनप्रिया। ७ ग. ०कलालापादृश्यन्ते मुमुह्यन्तः। स्त्रि०।

कादिचतुष्पदाशोऽप्य कादिचदिन्दोवरेणणा । विद्युद्विस्पन्दशनास्तन्वद्भ्यश्च तथाऽपरा ॥१७॥
 कुटिलालकसयुक्ता सीमन्तेन विराजिता । श्रीवामरनसयुक्ता मातृपदामविभूषिता ॥१८॥
 कुण्डलं रत्नसयुक्तं कर्णपूरंमनोहरं । देवयोषितप्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥१९॥
 दिव्यगीतवरधन्यं क्रीडमाना वराङ्गना । वीणावेणुमुदङ्गंश्च पणवश्चैव गोमुखं ॥२०॥
 शङ्खदुर्धुभिनिर्घोषैर्नावाद्यैर्मनोहरं । क्रीडन्त्यस्ता सदा हृष्टा विलासिन्य परस्परम् ॥२१॥
 एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदा । दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गना ॥२२॥
 भिक्षुवैखानसं सिद्धं स्नातकैर्बह्व्यचारिभिः । मन्त्रसिद्धंस्तप सिद्धंयज्ञसिद्धंनिषेधितम् ॥२३॥
 इत्येष दृष्टो राजा क्षेत्र परमशोभनम् । 'अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवत सनातनम् ॥२४॥
 जगद्गुरु पर देव पर पार पर पदम् । 'सर्वेश्वरेश्वर विष्णुमनन्तमपराजितम्' ॥२५॥
 इव तमानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् । कल्पवृक्षो महारकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥२६॥
 प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वयं देवेन गोपिता । 'न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥२७॥
 तथा'यत्नं करिष्यामि यथा देवो जगत्पति । प्रत्यक्ष'मम चान्येति विष्णु सत्यपराक्रम ॥२८॥
 यत्तर्तान्तस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानिस्तयाऽर्चनं । उपवासंश्च विधिवच्चरेय व्रतमुत्तमम् ॥२९॥

कमललक्षणा विजया की तरह छिटकते हुए दाँतो वाली कामलाङ्गी ॥१७॥ घुघुराले बाला से युक्त सीमत (स्त्रिया की माँग) से गुणामित गङ्गा आमूषणा से युक्त मालाबा से विभूषित ॥१८॥ रत्न-सयुक्त कुण्डल तथा मन-हर कणपूरा से अलङ्कृत देवांगना तुल्य और रुमस्त घुम लक्षणा से सज्जन देखी जाती हैं ॥१९॥ व विलासिनियाँ दिव्य गीत वीणा वेणु मृग ढाल गामूख (गुरही) शंख नगाड तथा अनेक दूसरे मनाहर वाद्या स परस्पर प्रसन्नता प्रकट करती हैं ॥२०॥ २१॥ अनेक गीत-वाद्य विगारद वागिनियाँ काम स उमत्त होकर रात दिन विलास करती रहती हैं ॥२२॥ वहाँ राजा ने सयासी वानप्रस्थी, सिद्ध स्नातक, ब्रह्मचारी मन्त्र सिद्ध तप सिद्ध तथा यागसिद्धा आदि सुसज्जित एवं अत्यन्त मन-हर शय देखा । परचात वह सोचने लगा—यहीं पर मैं सनातन जगद गुरु परम देव परा से भी परे परम पद सर्वेश्वर, अनन्त अपराजित भगवान् विष्णु की आराधना करूँगा ॥२३॥ ॥२४॥ यह पुरातन तीर्थ जनता मानस तीर्थ है—एसा मुख ज्ञात हा रहा है । यहाँ कल्पवृक्ष रूपी विगालकाय वट वृक्ष स्थित है ॥२५॥ इन्द्रनील मणि की प्रतिमा का स्वयं देव ने छिपा दिया था । यहाँ कोई दूसरी वैष्णवी प्रतिमा नहीं दीख पड़ती ॥२६॥ मैं वैयास यत्न करूँगा जिससे जगत्पति सत्यपराक्रमी विष्णु मेरे प्रत्यक्ष हाग । अन्य मन से

१ स अत्र त्वारा० । २ स ०श्वर विष्णुरूपमरूपय० । ३ स ०म । दत्त आपवगत ज्ञान मा पु० । ४ स न वा न्तःपत्ये आपि दत्तलिभैर्बोण० । ५ स ०या पात्र क० । ६ स ०य दृश्यते सर्वविष्णु ।

अनन्यमनसा चैव तन्मना भान्यमानस । विष्णुवायतनविन्यासे प्रारम्भं च करोम्यहम् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्त्यसिवादे क्षेत्रवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रासादकरणार्थं राज्ञामाह्वानम्

ब्रह्मोवाच

एव स पृथिवीपालश्चित्तयित्वा द्विजोत्तमा । प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तवा ॥१॥
 आनाय्य गणकाग्रसर्वाणाचार्याञ्छास्त्रपारगान् । भूमिं सशोध्य यत्नेन राजा तु परधामुदा ॥२॥
 ब्राह्मणैर्ज्ञानसपन्नैर्बेदशास्त्रार्थपारगं । अमात्यैर्मभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदं ॥३॥
 तैः सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्तं शुभे दिने । सुचक्रतारसंयोगे ग्रहानुकूल्यसमूहे ॥४॥
 जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरं । वेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतं सुमधुरस्वरैः ॥५॥

अर्थात् उही मैं मन क लगा कर यज्ञ दान तप हेम पूजा तथा जपवासा से मैं विधान पूर्वक उत्तम श्रत नर्हंगा ।
 बिष्णु मन्दिर का निर्माण तो प्रारम्भ ही कर रहा हूँ ॥२८ ३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण में शिववर्णन
 नामक छियालीसवा अध्याय समाप्त ॥४६॥

अध्याय ४७

मंदिर बनाने के लिए राजाओं का आह्वान

ब्रह्मा ने यहाँ—द्विजवर । इस प्रकार खेचने के बाद उस राजा ने हरि मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया ॥१॥ उसने परम हर्ष से गार्हपत्यगत आचार्यों तथा ज्योतिषियों को बुलाकर यज्ञपूजक भूमि का शायन कराया ॥२॥ फिर वेदशास्त्र-कुशल ज्ञानसंपन्न वास्तुविद्या विगारद ब्राह्मणों तथा अमात्य-मंत्रियों से सलाह करके सुन्दर मुहूर्त शुभ दिन सुन्दर चन्द्रमा और नक्षत्रों के संयोग तथा ग्रहों की अनुकूलता में जय मंगलाब्दों अनेक मनाहर वाद्या वैष्णविका गीता मधुर स्वरों गुण-लावा-जड़ना मध्या पूजकृष्ण तथा

१ स विवाय० । २ स न्यासप्र० । ३ स सूत उवा० । ४ स ०ने । सञ्चद्र० । ५ स प्रह्लादे नाम
 तथा । ज० । ६ ग ०सतवै । शु० ।

पुष्पलाजाक्षतगन्धं पूर्णकुम्भं सदोषकं । ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुमासित ॥६॥
दत्त्वंवमर्घ्यं विविचदानाम्य स महोपति । कलिङ्गाधिपति शूरमुत्कलाधिपति तथा ॥
कोशलाधिपति चैव तानुवाच तदा नृप ॥७॥

राजोवाच

गच्छध्व सहिता सर्वे शिलार्थे सुसमाहिता । गृहीत्वा शिल्पिमुत्पादच्च शिलाकर्मविशारदान् ॥८॥
विन्ध्योच्चल सुविरतोर्णं बहुकन्दरशोभितम् । निरूप्य सर्वतानूनि छेदयित्वा शिला शुभा ॥
सर्वाह्वता च शकटैर्नोकाभिर्मा विलम्बय ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव गन्तु समाविश्य ताभूषांस महोपति । पुनरेवाब्रवीद्वाक्य सामात्यान्स पुरोहितान् ॥१०॥

राजोवाच

गच्छन्तु दूता सर्वत्र ममाऽऽज्ञा प्रवदन्तु वं । यत्र तिष्ठन्ति राजान पृथिव्या ता सुशीघ्रया ॥११॥
हस्तपद्मवरापादात् सामात्यैः सपुरोहितैः । गच्छत सहिता सर्वे इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

एव दूता समाज्ञाता राजा तेन महात्मना । गत्वा तदा नृपानूचुर्वचन तस्य भूपते ॥१३॥
भूत्वा तु ते तथा सर्वे दूताना वचन नृपा । आजगमुस्त्वरिता सर्वे स्वसंयं परिवारिता ॥१४॥

दीपा स पूजा की ॥३५॥ तत्पश्चात् सावधान हूँ कर श्रद्धा स अर्घ्यदान किया । विधिपूर्वक अर्घ्य देकर भूपति ने कल्पि-नरेण भूपति उत्तल के अधिपति तथा कालि महाराज से कहा ॥६७॥

राजा ने कहा—आप ठाण मिलकर सावधानी से शिला लाने के लिए जाएँ । शिलावन में निपुण अच्छे कारीगरों की साथ लेकर अनेक गुफाओं से घाभित तथा अत्यन्त विस्तीर्ण विन्ध्योच्चल पर जाकर उसकी शिखरस्थ शिलाओं को कटा कर नावा डारों की धारा से आइए ॥८९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार राजाओं को आदेश देकर भूपति ने फिर मंत्री और पुरोहितों से कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—सब जगह दूत जायें और मेरी आज्ञा पालन करें कि—पृथ्वी पर जितने राजा लगे हैं वे शीघ्र ही हाथी घोड़े रथ सिंघादी मन्त्रा और पुरोहित सहित इन्द्रद्युम्न के पास जायें ॥१११२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस महात्मा राजा की आज्ञा पाकर दूत राजाओं के पास जाकर उसकी आज्ञा सुनाने लगे ॥१३॥ दूतों का वचन सुनकर राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

ये नृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः । पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः ॥१५॥
 प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च संनिधिवासिनः । पावंतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥१६॥
 रथैर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्धनविस्तरैः । संप्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥१७॥
 तानागतान्पान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान् । प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥१८॥

राजोवाच

भृगुध्वं नृपशार्वा ला यथा किंचिद्ब्रवीम्यहम् । अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुवि तमुपि तप्रवे शिवे ॥१९॥
 ह्यमेध महायज्ञं प्रास्तावं चैव वंणवम् । कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति सिन्धुताकुलं मनः ॥२०॥
 'भञ्जिः सुसहायैस्तु 'सर्वमेतत्करोम्यहम् । यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः । सर्वं प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥२२॥
 बब्रुध्वं नृपशार्वा सुवर्णमणिमौक्तिकैः । कम्बलाजिनरत्नैश्च राज्ञास्तरणैः शुभैः ॥२३॥
 वज्रवैद्युपमाणिषदैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः । गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥२४॥
 असह्यैर्षट्पङ्क्तिष्वैर्ध्वजैश्चैव चावचैस्तथा । शालिनीह्रियवैश्चैव मायमुद्गतिलैस्तथा ॥२५॥
 सिद्धार्थैश्चणकैश्चैव गोधूमैर्सुरादिभिः । इयामाकर्मपुङ्क्तैश्चैव नीवारैः सकुलैश्चैव ॥२६॥
 अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्घ्राभ्यारण्यैः सहस्रशः । बहुपान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥२७॥

सब दिशाओं के राजा लोग अर्थात् दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के रहने वाले, मन्वेष्टदेशवासी, समीप के रहने वाले, पर्वत प्रदेश के वासी तथा द्वीपनिवासी राजा हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे तथा पर्याप्त धन लेकर चल पड़े ॥१५-१६॥
 इन्द्रद्युम्न की आज्ञा सुनकर बहुत से ब्राह्मण भी पहुँचे । अमात्य-पुरोहिता के साथ आए हुए उन राजाओं को देखकर इन्द्रद्युम्न हर्षित होकर आदर से अपने कार्य का उद्देश्य बताने लगा ॥१७-१८॥

राजा ने कहा—नृपवर ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलगा ध्यान से सुनें । मुक्ति मुक्तिदायर, कल्याणमय, पवित्र इस उत्तम क्षत्र में मैं अदम्य महायज्ञ तथा विष्णु के मन्दिर की रचना करे पड़े—इस चिन्ता से मेरा मन व्याकुल हो रहा है । नृपवर्य ! यदि आप लोग सहायता करें तों आप जैसे मुदाय्य सहायक पाकर मैं सब कुछ कर सकना हूँ ॥१९-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धिमान महायज्ञ की बात सुनकर उसने शासन में रहने वाले समस्त राजकुन्द हर्षित हुए ॥२२॥ उन्होंने धन, रत्न सुवर्ण, मणि, मनी, कम्बल, धर्म पवित्र मृगरौद्र निर्मित विस्तर (बागीचा) वज्रमणि, वैद्युपमणि, पद्मराग, इन्द्रनील, अमर्य तथा अनक प्रकार के हाथी-घोड़े-रथ, छटे-बट इष्ट, घान, घव, चावल, उडद, तिल, दूधेन मरगा, चना, गेहूँ, मधुरी, व्याधान, मधुर, नीवार, कुलत्पक तथा दूसरे भी विविध प्रकार के घाम्य एवम् जगती अन्न, गन्ध पुन के सैकड़ों-हजारों घोड़े, अनक मध्य, मोय्य तथा लेण करने के पदार्थ—इन सब

गन्धस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः । तेषाञ्चैव विधेर्द्रव्यभोग्यभोग्यानुलेपनैः ॥२८॥
 राजानः पूरयामासुर्यत्किंचिद्द्रव्यसंभवेः । तान्वृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्समन्वितान् ॥२९॥
 यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् । शास्त्रेषु निपुणान्वेदान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥३०॥
 ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान् । ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा ॥३१॥
 स्नातकान्ब्राह्मणान्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्तिथान् । आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाञ्जितान् ॥३२॥
 सदस्याञ्छास्त्रकुशलंस्तथाऽन्यान्पावकान्बहून् । दृष्ट्वा ताम्रपतिः धीमानुयाध स्वं पुरोहितम् ॥३३॥

राजोवाच

ततः पयान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः । वाजिमेयार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं स तथा यज्ञे वचनं तस्य भूपतेः । हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥३५॥
 ततो ययौ पुरोधाश्च प्राज्ञः स्वयस्तिष्ठिं सह । ब्राह्मणानप्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥३६॥
 तं देशं धीवरप्राप्तं सप्रतोऽविट्कृत्तुम् । कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥३७॥
 प्रासादशतसंघायं भग्निप्रवरशोभितम् । इन्द्रसदमनिभं रम्य हेमरत्नविभूषितम् ॥३८॥
 स्तम्भान्कनकचित्राश्च तोरणानि बृहन्ति च । यज्ञायतनवेशेषु दत्त्वा शब्दं च काञ्चनम् ॥३९॥

अथ से प्राप्त हुआ। ने वाली सामग्रियों को पूरा किया ॥२३-२८॥ अरिबल सर्पति-समन्वित यज्ञ सामग्रियों, यज्ञकर्मवेत्ता, वेद वेदांगपारग, शास्त्री भ निपुण तथा सब वर्गों में कुशल ब्राह्मण, ऋषि, महर्षि, देवर्षि, तपस्वि, ब्रह्मचारि, गृहस्था, वानप्रस्था, सम्पासिया, स्नातका, अग्निहोत्री ब्राह्मण, आचार्य, उपाध्याय, स्वाध्याय तथा तपस्या से युक्त विप्र, शास्त्र-कुशल सदस्य और अन्य बहुत स पवित्र अनुप्या क। देखकर राजा ने अपने पुरोहित से कहा ॥२९, ३३॥

राजा ने कहा—वेदपारग विद्वान् ब्राह्मण जायें और अवशेष यज्ञ की सिद्धि में लिए यज्ञ-स्थल का निरीक्षण करें ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के वचन सुनकर राजपुरोहित ने वैसा ही किया। वह प्रसन्न होकर मंत्रियों के साथ चल पड़ा ॥३५॥ यज्ञ-वर्गों में दश ब्राह्मणों का आगे बढके कारीगरो के साथ विद्वान् पुरोहित गलिमों तथा विटका (कबूतरों के अण्ड) से युक्त धीवरशम को विधानपूर्वक यज्ञस्थल बनवाया ॥३६, ३७॥ उत्तम मणिघटा से शोभित, सुवर्ण-रत्नों से विभूषित, मनोरम तथा इन्द्र भवन तुल्य सौन्दर्यो महल बनवाये। सुवर्ण के चित्र विचित्र स्तम्भ अनेक तारण, शुद्धसुवर्णमय यज्ञ गृह और नाना देश निवासी राजाओं के अन्य पुर को उस धर्मालया ने

१ स तथैव विधि० । २ स ० न्सर्वान्यानसम० । ३ स दिक्ष । ४ स याज्ञिका । ५ स ० णान्पुरतः ।

६ ग ० रदुडिभम् । कारयामास विधिबद्धम् ।

अन्तःपुराणि राज्ञा च नानादेशनिवासिनाम् । कारयामास घर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥४०॥
 ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसन्तोषयाम् । कारयामास विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः ॥४१॥
 प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुनृपसत्तमाः । रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽयुस्सर्वे ॥४२॥
 तेषां निर्विशतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम् । नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्धनिः ॥४३॥
 तेषामभ्यागतानां च ॥ राजा मुनिसत्तमाः । व्याविदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥४४॥
 भोजनानि विवित्राणि शालीमुखवगोरसः । उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्याविदेश स्वयं तदा ॥४५॥
 तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः । ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसंगिद्विजसत्तमाः ॥४६॥
 समाजगमुः 'सशिष्यास्ताम्रप्रतिजग्राह पार्थिवः । सर्वाश्च ताननूययौ यावदावसथानिति ॥४७॥
 स्वयमेव महतेजा इभं स्वस्त्वा नृपोत्तमः । ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽप्ये च ये तदा ॥४८॥
 'कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन् । ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतङ्गितः ॥
 हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्पक्षे प्रवृत्ते तु 'आमिमनो हेतुवादविधिः । हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीयसः ॥५०॥
 'देवेन्द्रस्येव' (?) विहितं राजसिन्हेन भो द्विजाः । वदन्तस्तोरणान्ध्रं शातकुम्भमयानि च ॥५१॥
 शय्यासनविकाराश्च 'सुबहूग्नस्तर्जयान्' । घटपात्रीकटाहारानि कलशान्वर्धमानकान् ॥५२॥

अच्छी तरह बनवाया ॥३८-४०॥ अनेक देशवासी ब्राह्मणों तथा वैश्याकी बहुत सी शालायेँ विधिपूर्वक बनवायी ॥४१॥
 इन्द्रधूम्र के हित के निमित्त राजा और स्त्रियाँ भी विविध रत्ना वः लेकर उत्सव म आयी ॥४२॥ जब वे महारमा-
 नन्द अपने-अपने शिविरों के अन्दर थे उस समय समुद्र-गर्जन की तरह आकाशमार्गी ध्वनि हुने लगी ॥४३॥
 मुनिगण ! तब राजा ने स्वयं वहाँ जाकर उन अभ्यागतों की गृह, शय्या, अद्भुत भाजन—चावल, गुड़, पक्क, दूध, घी आदि—देने की आज्ञा दी ॥४४-४५॥ द्विजवर ! उस महायज्ञ में बितने शिष्य सहित ब्रह्मवादी द्विजवर आये हुए थे, उन सब का राजा ने सत्कार किया और स्वयं उनके घर तक पहुँचाया ॥४६-४७॥ महा-
 तैजस्व नृप ने दम्भ का परित्याग कर दिया । जिसने शिल्पी लाग थे, उन्होंने अपनी कारीगरों अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ-
 विधि (यज्ञस्थल के निर्माण) को पूर्ण कर राजा से निवेदन किया कि सब कार्य सम्पन्न हो गया—यह सुन कर आलस्यरहित राजा मन्त्रिया सहित आनन्द से गद्गद हो गया ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने, हूँ—उस यज्ञ के प्रारम्भ में परस्पर विजय के दृष्टिक्र वाष्पी लाग हेतुवादिया ने अनेक कारणवाद कहने लगे ॥५०॥ द्विजगण ! उस श्रेष्ठ भूपति ने इन्द्रकी तरह कार्य किया । वहाँ सुवर्णमय तारण, घट, पात्र तथा

१ ग वैश्यानि । २ य वैद्विदितात्मा ह्यने० । ३ य अस्ताग्नस्त्या ज० । ४ य कृत्स्नयज्ञविधान शास्त्रदा । ५ य वादिनी । ६ य इन्द्रस्य विधि चिन्त्य रा० । ७ य अवहवन्नस्थ स० । ८ य नृ । स्फटिकानि च मेहानि य० ।

महिं कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिप । यूपाश्च शास्त्रपठितान्दारवाहेमभूयितान् ॥५३॥
 उपक्षिप्तान्वयाकालविधिवद्भूरिवर्चसः । स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन द्विजा ॥५४॥
 सर्वानेव समानोत्तान्पश्यस्तत्र ते नृपाः । ग्राह्यैश्च महिषोश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ॥५५॥
 ओदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वर्षासि च । जरायुज्जघ्नाजानि श्वेदजा युधिभदानि च ॥५६॥
 पक्षतायुधान्यानि भूतानि वदशुश्च ते । एव प्रमुत्ति सर्वं पशुतो घनधान्यतः ॥५७॥
 यज्ञवाटं नृपा वृष्ट्वा विस्मय परमं गताः । ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमिष्टान्नमृष्टिमत् ॥५८॥
 पूर्णं शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् । कुन्दुभिर्नैद्यनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत् ॥५९॥
 विनान्वासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते । एव स ववुधे यज्ञस्तस्य राजस्तु धीमतः ॥६०॥
 अभस्य सुबहूनिप्रा उत्सर्गन्निर्गन्तोपमानः । दधिकुल्याश्च ददुशु पयसश्च हृद्वास्तथा ॥६१॥
 जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदैर्युतः । द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राजस्तस्य महामखे ॥६२॥
 तत्र यानि सहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः । गृहोत्वा भाजनं जम्बूद्वीपे द्विजस्तस्मात् ॥६३॥
 श्राविणश्चापि ते सर्वे सुमुष्टमणिकुण्डलाः । पर्यवेपथ्यद्विजातोऽस्तशोऽथ सहस्रशः ॥६४॥
 विविधाभ्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः । ते च नृपोपभोग्यानि ब्राह्मणेभ्यो बहु सह ॥६५॥
 समागतान्वेदविदो राजाश्च पृथिवीश्वरान् । पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिवक्षिणः ॥६६॥
 (विवेकाशास्त्राग्राहो महासङ्ग्रामशालिनः । नटनर्तककादौश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥६७॥)

ब्राह्मण और राजपटित गम्या आसन एवम अन्ये उपकरण ये ॥५१ ५२॥ राजा ने ऐसा कोई चीज नहीं देखी जा
 सोने की नहीं थी। उन्होंने शास्त्रविहित काष्ठ के यूपा के स्नानमयि अर्पित सज्जवी तथा ठाक समय से विधिपूर्वक
 गडत हुए दत्ता। विप्रवद । स्थलचर और जलचर सभी जंतु वहाँ लाय गए ॥५० ५४॥ गाय भसे बढ़ा स्त्रियो
 जलाय ज त हिसक जत पक्षीगण जरायुज्जघ्ना स्वदज उदमिज्ज पवत अभ, प्राण—मख वहाँ विद्यमान
 थे ॥५५ ५९॥ इस प्रकार पशुओं और धनधायी से आनंदित यज्ञस्थल के देख कर राजा लग आश्चर्यचकित
 रह गए ॥५७॥ ब्राह्मणी और वद्यों के पास पर्याप्त मिष्टान्न था। वहाँ एक लाख वर्षों तक ब्राह्मण भोजन ह ला
 रहा ॥५८॥ मेघ-गजन के समान नगादों के अवधरत पाप हो रहे थे। इस प्रकार उस बद्धिम न राजा का यज्ञ
 काय विस्तार होने लगा ॥५९ ६०॥ विप्रवद । अत्रिजितना सचह ता था उत्तवाह बबता जाता था। दही के सर बर
 और दूध के शालें वहाँ दाखती थी ॥६१॥ द्विजगण । अनेक न्या से यवत सम्पूर्ण जम्बूद्वीप हा उस राजा के महामण में
 उपस्थित हुआ था ॥६२॥ द्विजवय । हजार पुरुष पात्रों के लकर धहा पहुँचे। निमल मणि-कुण्डल से यवत सकुट
 हसारा मकाल ग ब्राह्मणों का अलकृत करते राजा के खाने योग्य भोजन कराते और विविध प्रकार के अनपन दते
 थे ॥६३ ६५॥ विधिपूर्वक मूरि दक्षिणा देने वाला राजा आये हुए वेदवेत्ताओं तथा पथिव-श्वर राजाओं की पूजा
 करता था ॥६६॥ (समी दित्ताओं के देवों से वहाँ महासङ्ग्रामशाली राजवद तथा गीत-स्तुति विशारद नट नर्तक आदि

१ ख ० रिदक्षिण । स्थ० । २ ख च । पावत यानि भूतानि प्रतपा द० । ३ न कायास० । ४ ख ० मा ।
 ते वै ।

पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधरा । इन्दोचरपलाशाक्ष्यं शरच्छन्दनिभानना ॥६८॥
 कुलश्रीगुणोपेता सहस्रैक शताधिकम् । एव तदभूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥६९॥
 रत्नमालाकुल दिग्ध पताकाध्वजसेवितम् । रत्नहारयुत रम्य चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥७०॥
 'हरिण पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलिन' । शतश कोटिसघातेर्दन्तिभिर्दन्तभूषणं ॥७१॥
 'वातवेगजवेरदयं सिन्धुजातं सुशोभनं' । 'श्वेताश्वं श्यामकर्णंश्च कोट्यनेर्जंजान्दितं' ॥७२॥
 सनद्धदृक्क्षेत्रं नानाप्रहरणोद्यतं । असह्येयं पदाश्वतंसं देवपुत्रोपमंस्तथा ॥७३॥
 इत्येव बबूशो राजा 'यज्ञसभारविस्तरम्' । 'मुद लेभे तदा राजा सहृष्टो वाक्पमप्रवीत्' ॥७४॥

राजोवाच

आनयथ ह्यश्वेष्ट सर्वलक्षणलक्षितम् । चारयथ पृथिव्यां च राजपुत्रा सुसज्जता ॥७५॥
 विद्वद्भिर्धर्मविदिभिश्च अत्र होमो विधीयताम् । कृष्णच्छाप च महिष कृष्णसारमुग द्विजान् ॥७६॥
 अरुणपाहू च गावश्चैव सर्वाश्च पशुपालकान् । इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाव वैष्णव तत ॥७७॥
 सर्वमेतच्च शिष्टेभ्यो दीयता मनसेत्तितम् । स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च 'नगराणि च' ॥७८॥
 सम्पत्तमूढभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् । अन्धानि द्रव्यजतानि मनोज्ञानि वट्टानि च ॥७९॥
 सर्वेषां याचमानानां नारिस्त ह्येतन्न भाषयेत् । ताश्चप्रवर्ततां यमो 'धापददेव पुरा दिवह' ॥
 प्रत्यक्ष मम 'क्षाम्येति' पञ्जरधार्य समीपतः ॥८०॥

आए हुए थे ॥६७॥) दृष्टुम् की ग्यारह सौ मनोरम पत्नियाँ थीं जो स्थूल और उन्नत स्तन वाली कमल-लक्ष्मिना, गरुड-चन्द्र सुय मुग वाली और कुल शील तथा गुणा ग सम्पन्न थीं ॥६८॥ इस प्रकार पत्नीगण स समन्वित रत्न मालाभा ग व्याप्त दिग्ध भुजा-पाशाभा ग सज्जित और चन्द्रकान्तमणि के समान वासिमान बहू यन-रथन था ॥६९॥ ७०॥ पवताकार, महाबल, मद स विक्रम और दन रूप आभूषणों ग युक्त बरह्म हाथिया ग गुण्डः ग पवन सुय वेग वाल सिप हग तान सुन्दर तथा श्वेत अग बाजे बराड़ा श्यामवर्ण पांडा ग और नवचपाटी मद्धक अनेक अस्त्र धारण गे सुसज्जित तथा देव-पुत्र तुल्य असह्य सैनिकों से घन-स्थल सुग मित था ॥७१॥ ७२॥ इन प्रकार दण-स्थान ग महान टाट-आट का देण कर राजा अत्यंत आनन्दित हो बहू-बाग ॥७३॥

राजा ने कही—ममस्त लक्षणा स सम्पन्न उत्तम पाहू का मयमी रात्रिपुमार लायें और फिर पृथिवी पर उगवा विचरण करायें ॥७५॥ विद्वान तथा धर्मवेत्ता लोग हवन करें। वाक् बहरे महिष कृष्णमुग ब्राह्मणा बैल गाय और समस्त पशु-पक्षी का मुलाकर यग आरम्भ किया जाए। विष्णु का मंदिर बन ॥७६॥ ७७॥ शिष्टा का अनिर्जित दान दिया जाय याचका का शिष्टा रत्न गाव नगर अच्छी उपजाऊ भूमि रम्य तथा दूगरे सुन्दर इष्ट दिए जायें ॥७८॥ किया भी याचक स नहीं है एसा पद नहीं बहू जाय। जब तब भगवान् यम देवी ग प्रत्यक्ष प्रकट न हो सब तक यग होगा रहे ॥७९॥ ८०॥

१ ग ० महाहरण । २ स ० निति कृतम् । ३ स ० श्वर्ण ० । ४ स ० जवाग्रवि ० । ५ स ० द पंडागुणं प्राप्य ० । ६ ग ० च भूपविह ।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विशा राजासिंहो महाभुज । ददौ सुवर्णसंघात कोटीना चैव भूषणम् ॥८१॥
 करेणुशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च । अर्बुदं चैव क्षयम स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुका ॥८२॥
 सुरूपं सुरभीश्चैव कास्यदोहा पयस्विनी । प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भयो मुदायुत ॥८३॥
 बासांसि च महार्हाणि राज्ञोवास्तराणानि च । सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥८४॥
 अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥८५॥
 वज्रवैद्युपमाणिव्यमुक्तिकाद्यानि यानि च । अलंकारयतो शुभ्रा कन्या राजीवलोचना ॥८६॥
 शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्ट प्रदत्तवान् । स्त्रिय योनययोभारा कञ्चुकं स्वस्तनावृता ॥८७॥
 मध्यहीनाश्च सुधौष्य पद्मपत्रायतेक्षणा । हावभावाद्भित्तग्रीवा बहुभ्यो वलयभूषिता ॥८८॥
 पावनपुरसयुक्ता पटटुकूलवासस । एकैकशोऽदवात्तस्मिन्काश्याश्च कामिनीर्बहू ॥८९॥
 अश्विभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेघे द्विजोत्तमा । भक्ष्य भोग्य च सपूर्णं नानासंभारसयुतम् ॥९०॥
 खण्डकाद्याभ्यनेकानि स्वर्णपद्मवाश्च पिष्टकान । अन्नान्यन्यानि मेघ्याश्च घृतपूराश्च खाण्डवान ॥९१॥
 मधुरास्तजितानूपानघ्न मृष्ट सुपाकिकम । प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वाना दीयतेऽन्न पुन पुन ॥९२॥
 वसस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते । एव दृष्ट्वा महायज्ञं देवदेवता सत्वा (चा) रणा ॥९३॥
 गन्धर्वाप्सरस सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वरा । विस्मय परमं याता दृष्ट्वा श्रुत्वाश्च श्रुत्वाश्च ॥९४॥
 पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव तथैव । न तत्र मलिन कश्चिन्नदीनो न क्षुधाऽनित ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना बहूकर उस महाबलवान नृपवर ने हृषपूवक सुवर्ण समूह कर ड़ा भूषण एक लाख हाथी दस लाख घोड़े एक अरब बैल तथा स्वर्णशृङ्गी सुन्दररूपवती एवम दुधारू पायें वेदवत्ता ब्राह्मणों को दान में दी ॥८१॥ ८३॥ तथा बहुमूल्य वस्त्र उज्ज्वल मृगरोम निमित्त बिस्तर (कालीन) उत्तम प्रवाल मणियाँ और विविध रत्न भी दिए ॥८४॥ ८५॥ वज्रमणि वैद्युमणि मत्ती तथा अत्रकरो से युक्त गौरवर्ण एवम कमल के समान नेत्रों वाली पाँच सौ कन्यायें राजा ने प्रसन्न होकर विप्रों को दी ॥८६॥ ८७॥ द्विजवय । अश्वमेध यज्ञ में स्थल तथा कषुक्तियों ने जावृत स्तना वाली क्षीणकटि वाली सुन्दर नितम्ब वाली कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रों वाली हाव भावों से अवनत ग्रीवा वाली ककण तथा नपुरो से विभूषित वीक्ष्यवस्त्रधारिणी बहुत सी कामिनियों को राजा ने एक एक कर के ब्राह्मण आदि याचकों को दे दिया ॥८८॥ ८९॥ अनेक प्रकार के रसों से युक्त पर्याप्त मध्यमोष्ण खाद्य मिश्रित विविध अन्न तथा उवाककर बनाये गए पीसकर बनाये गए पवित्र तथा घृतपूज खाँड के बने मधुर अच्छी तरह फकाये हुए साद्यान्न एवं पूए—समस्त प्राणियों की तृप्ति के लिए बार-बार दिये जाते ॥ १०॥ ९२॥ दिए गए तथा दिए जाने वाले अन्न का अन्त नहीं था । इस प्रकार महायज्ञ का देखकर देव देव्य चारण गंधर्व अप्सरा सिद्ध ऋषि तथा प्रजापति अत्यन्त विस्मित हुए ॥९३॥ ९४॥ पवित्र तथा उत्तम यज्ञ को देखकर पुरोहित मन्त्री राजा—सब के सब हर्षित हुए । वहाँ न कोई मलिन न दीन और न क्षुधापीडित

न बोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽघयो व्याघयस्तथा । नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥९६॥
 हृष्टपुष्टजना सर्वे तस्मिन् राज्ञो महोत्सवे । ये च तत्र तपःसिद्धा मुनयश्चिरजीविनः ॥९७॥
 न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम् । एवं स राजा विधिवद्वाजिमेषं द्विजोत्तमाः ॥
 ऋतुं समापयामास प्रासादं वैष्णवं तथा ॥९८॥

इति श्रीमहापुराण आविर्बाह्ये स्वयम्भुविसवादे प्रासादकरणं नाम
 सप्त चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम् । यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिताः ॥१॥
 केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव । तत्सर्वं वद जस्माक पर कौतूहलं हि न ॥२॥

ब्रह्मोवाच

भूणुध्व मुनिशार्दूलः पुराण वेदसंमितम् । कथयामि पुरा धृतं प्रतिमाना च संभवम् ॥३॥

दिखायी पढ़ता था ॥९५॥ उत्पात, ग्लानि, आधि-व्याधि, अकाल मृत्यु, दश, ग्रह और विष किसी प्रकार की
 विपत्ति नहीं थी ॥९६॥ राजा ने उस महोत्सव में सब लोग हृष्ट-पुष्ट, तपस्वी, मुनि तथा चिरजीवी थे ॥९७॥
 वैसा धन धान्य-समन्वित यज्ञ वही नहीं हुआ था । द्विजवय । इस तरह राजा ने विधानपूर्वक अश्वमेध यज्ञ तथा
 विष्णु के मंदिर का सम्पन्न किया ॥९८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण में मंदिर-निर्माण नामक
 सैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

मुनियो ने कहा—हे देवदेवेश ! हम यह प्रार्थना तथा मुनना चाहते हैं कि इन्द्रद्युम्न ने उन प्रतिमाओं का
 निर्माण कैसे कराया ? किस प्रकार माधव उससे सतुष्ट हुए ? यह सब हमसे कहिए, हमें बड़ी उत्सुकता
 है ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! वेदसम्मत पुराण को मुनिए । मैं पूर्वकालीन, वृत्तान्त—प्रतिमाओं का

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निमित्ते । चिन्ता तस्य बभूवाय प्रतिमायमहनिशम् ॥४॥
 न वेद्यि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम् । समस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥५॥
 चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शक्ते राश्री दिवाऽपि न । न भुङ्गते विविधान्भोगाश्च च स्नान प्रसाधनम् ॥६॥
 नैव वाद्येन गन्धेन भायनेर्वर्णकैरपि । न गर्जनेन्दयुषतश्च न चानेकैर्हृष्यान्वितं ॥७॥
 मेघ्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयनं च । सुवर्णरजताद्यैश्च वस्त्रस्फटिकसमृतं ॥८॥
 बहुरागायकामैर्वा न घनैरन्तरिक्षगं । बभूव तस्य मुपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥९॥
 शैलपुद्गारजातेषु प्रशस्तं किं महोत्तले । विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलभितम् ॥१०॥
 एतरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम् । स्वापिते प्रीतिमग्न्येति इति चिन्तापरोऽनन्दम् ॥११॥
 पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम् । चिन्ताविष्टो महोपालः सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रधनुस्तस्य प्रतिमानिर्माणविधान नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

निर्माण—बनलाता हैं ॥३॥ महायज्ञ का आरम्भ तथा मन्दिर का निर्माण हो जाने पर राजा को दिनरात प्रतिमा की चिन्ता लगी रहती थी ॥४॥ "मैं नहीं जानता कि किस प्रकार देवों के स्वामी, सब के स्वामी, लोकपावन तथा मूर्ति स्थिति प्रलयकर्ता पुरुष तम भगवान का दर्शन कर सकूँगा। इस चिन्ता के कारण राजा का एक क्षण भी नींद नहीं आती थी। स्नान, भूगार तथा भगा से भी वह विरक्त हो गया था ॥५॥ ६॥ वाद्य गन्ध, गाना मद्युक्त हाथ पाड़े, इन्द्रनील महनील, पद्मराग, साना, चादी, वज्रमणि स्फटिकमणि अनुराग उत्पन्न करनेवाले बहुत से घन्य तथा गगन विहारी पक्षी—चाँदी भी राजा के मन का सतुष्ट नहीं कर पाता था ॥७॥ ८॥ भूतल पर पत्थर मिट्टी और लकड़ी—इन तीन चीजों में कौन विष्णु की प्रतिमा योग्य, सर्वलक्षण सम्पन्न तथा प्रशस्त है? इन्हीं तीनों में से किसी वस्तु की प्रतिमा देवताका का प्रिय होती है। प्रतिमा स्वापित होने पर ही भगवान प्रसन्न होते। इस तरह राजा साजते हुए पञ्चरात्र के विधान से पुरुषोत्तम की पूजा कर चिन्तामय स्थिति में ही स्तुति करने लगा ॥१०॥ ११॥

श्री ब्रह्मह्मपुराण म ब्रह्मा और ऋषि केसवाद प्रकरण मे प्रतिमानिर्माण विधान

नामक अठतालीसवा अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुति

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण । त्राहि मा सर्वलोकेषु जन्मसत्सारसागरात् ॥१॥
 त्रिमलाम्बरसकाश नमस्ते पुरषोत्तम । सन्ध्याय नमस्तेऽस्तु त्राहि मा धरणीधर ॥२॥
 नमस्ते ह्रैमगर्भाय नमस्ते मकरध्वज । रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मा सवरात्तक ॥३॥
 नमस्तेऽञ्जनसकाश नमस्ते भवतवत्सल । अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मा वरदो भव ॥४॥
 नमस्ते त्रिविधाज्ञान नमस्ते त्रिविधप्रिय । नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मा शरणागतम ॥५॥
 नमस्ते बलिना श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गनायुध । चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मा प्रपितामह ॥६॥
 नमस्ते नीलमघाभ नमस्ते त्रिदशाजित । त्राहि विष्णो जगन्नाथ मम मा भवसागर ॥७॥
 प्रलयानलसकाश नमस्ते वित्तजातक । नरसिंह महावीर्य त्राहि मा दीप्तलोचन ॥८॥
 यथा रसातलादुर्वी त्यया ददौद्रुता पुरा । तथा महावराहस्तु त्राहि मा दुःखसागरात् ॥९॥
 तवैता मृत्युं हृष्य वरदा सस्तुता मया । तवैवे बलदेवाद्या पृथूपूजेण सन्निधत्ता ॥१०॥
 अङ्गानि तव देवेश गरुमाद्यास्तथा प्रभो । विष्णो सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽस्तुत ॥११॥

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान् की स्तुति

वासुदेव । आपका नमस्कार है । म तकारण । आपकी प्रसन्नता है । अतिल लकी व स्वामी । मुझ जन्म तथा ममारा सागर से बचाइए ॥१॥ स्वच्छ गगन सुख । पुरषोत्तम । आपकी नमस्कार है । सन्ध्याय । आपका नमस्कार है । धरणीधर । मेरी रक्षा करें ॥२॥ द्विष्यमम । आपका नमस्कार है । मकरध्वज । आपकी नमस्कार है । रतिकान्त । आपका नमस्कार है । सवरात् । मेरी रक्षा कर ॥३॥ अञ्जनसकल । आपकी नमस्कार है । भवतवत्सल । आपका नमस्कार है । अनिरुद्ध । आपका नमस्कार है । मेरी रक्षा करें तथा वरणागत बन ॥४॥ त्रिविधप्रिय । आपका नमस्कार है । नारायण । आपकी नमस्कार है । मुझ शरणागत की रक्षा कर ॥५॥ बलिना म धष्ट । आपका नमस्कार है । हतमुख । आपका नमस्कार है । चतुर्मुख । जगद्धाम । प्रपितामह । मेरी रक्षा करें ॥६॥ नीलमेष व ममान्वाति बाल । आपका नमस्कार है । दद-पुत्रिन । आपका नमस्कार है । विष्णु । मेरी रक्षा करें । जगन्नाथ । भवसागर से मया उद्धार कर ॥७॥ प्रलय नि व सत्त्व । देवनागि । आपका नमस्कार है । नरसिंह । महावीर्यगामी । दीप्त नेत्र बाल । मेरी रक्षा करें ॥८॥ आपका जिस प्रकार महावराह का रूप धारण कर अपने दाया पर पताल से पृथ्वी का उद्धार किया था वैसे मुझ मा दगमागर से बचाइए ॥९॥ हृष्य । वर देने आप वागी आपकी की इन मुनियों की मीने स्तुति की है । आप ही व म बलदेव आदि रूप पुरष-पुरष स्थित है ॥१०॥ दवग । प्रभो । गरु आदि आपका

ये ज्ञान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः । तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥१२॥
मयार्जुनः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः । प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१३॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकल्पनादयः । तव पूजार्थसंभूतस्तत्तत्स्त्वयि समाश्रिताः ॥१४॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः । विश्वं तव यद्रूपमुबतं तद्रुपचारतः ॥१५॥
अद्वैतं त्वा कथं द्वैतं चतुं शक्योतिमानवः । एकरत्नं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम् । निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम् । तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो ॥१८॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गधारिणम् ॥१९॥
धीवत्सोरस्त्वंसंपुष्टं वनमालाविभूषितम् । तद्वर्चयन्ति विबुधा ये ज्ञान्ये तव संश्रयाः ॥२०॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भवतानामभयप्रद । त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषमसागरे ॥२१॥
नायं पश्यामि लोकोऽयस्याहं शरणं व्रजे । स्वामृते कमलाकाशे प्रसीद मधुसूदन ॥२२॥
जराव्याधिशतैर्व्यस्रो नानादुःखैर्निपीडितः । हर्षशोकाग्नितो मूढं वर्मपाशैः सुयन्त्रितः ॥२३॥
पतितोऽहं महारोद्रे घोरे संसारसागरे । विषमोदककुल्यारे रागद्वेषपाकुले ॥२४॥

अग है। अच्युत ! विष्णुपाल तथा आयुधधारी केवाच आदि भी आपके अवयव हैं ॥११॥ प्रसन्न तथा लम्बे नेत्र वाले जगन्नाथ ! विद्वानों ने जितने आपके भेद बतलाए हैं, उन सबकी मैंने पूजा तथा स्तुति की और आपकी नमस्कार किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक वरदान मुझे दोषिए ॥१२-१३॥ हरे ! आपके सर्वर्षण आदि जितने भेद हैं, वे सब आपकी पूजा के लिए उत्पन्न होकर आपही के आश्रित हैं ॥१४॥ देवेश ! परमार्थदृष्टि से आपका कोई भेद नहीं है। आपके जाँचे विविध रूप बहे गए हैं, वे औपचारिक हैं ॥१५॥ आप अद्वैत हैं, मला मनुष्य आपकी वैसे द्वैत कह सकता है। हरे ! आप एक, व्यतपक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं ॥१६॥ प्रभो ! आपका जा मात-अमात से वञ्चित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सब उपाधियों से निर्मुक्त तथा सत्तामात्र से व्यवस्थित रूप है, उसे तो देवता भी नहीं जानते, मैं कैसे जानूँ ॥१७-१८॥ आपका दूसरा जो पीतवस्त्र, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, मुकुट तथा अगद (बाज्रवद) धारी, वक्ष स्थल पर अचरित चिह्न से युक्त और वनमाला से विभूषित रूप है, उसी की पूजा आपके आश्रित देवगण करते हैं ॥१९-२०॥ देवों के देव ! सुरश्रेष्ठ ! भवतों की अमर देने वाले ! पद्म-पत्र के समान नेत्रों वाले ! विषमसागर में डूबे हुए मुझको बचाइए ॥२१॥ लोवेश ! आपको छँडकर मैं किसी दूसरे को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकाश ! मधुसूदन ! मुझ पर प्रसन्न हो ॥२२॥ मैं सैकड़ों जरा-व्याधियों से युक्त, नाना दुःखा से पीडित हर्षशोक से समन्वित मुग्ध तथा वर्म-जाल में निबद्ध होकर महाभयकर संसारसागर में फिर चुका हूँ ॥२३॥ प्रभो ! विषय-जल के कारण दुष्पार, राग-द्वेष इषी मीनो से अपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवतों से गभीर, तृष्णा शङ्क इषी तरंगा से व्याप्त, आश्रय

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले । निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽल्पन्तश्चञ्चले ॥२५॥
 मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो । नानाजातिसहस्रेषु जयमानः पुनः पुनः ॥२६॥
 मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्यभूतानि च । विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥२७॥
 वेदाः साङ्गा मयाऽधोताः शास्त्राणि विविधानि च । इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥२८॥
 असंतोषाश्च संतोषाः संक्षयापक्षया च्यवाः । मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्धयक्षयैतराः ॥२९॥
 भार्यारिमित्रबन्धूना वियोगाः संगमास्तथा । पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥३०॥
 दुःखानि ज्ञानभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः । प्राप्ताश्च बन्धवाः पुत्रा भ्रातरो नातयस्तथा ॥३१॥
 मयोपितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विष्मृषपिच्छले । गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥
 दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययीवनयोचरे । वार्यके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥३३॥
 मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये । मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा ॥३४॥
 लुप्तकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम् । महिषोद्भृगवा चैव तथाऽज्येषां वनौकसान् ॥३५॥
 द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु । घनिना क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥
 नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽज्येषां च बेहिनाम् । गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥
 गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम् । दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामिदं च तथा गतः ॥३८॥
 हतो मया हताश्चाप्ये घातितो घातितास्तथा । दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

तथा अवलम्ब सह ॥२५॥, क ॥२५॥ अत्र अत्यन्त चञ्चल ब्रह्माण्ड मे माया मे मोहित होकर चिरकाल से मैं भ्रमण कर रहा हूँ (अर्थात् डूब रहा हूँ) ॥२५-२५३॥ जनार्दन । इस संसार मे नाना प्रकार की जातियों मे हजारों-लाखों बार जन्म लेकर मैंने विविध सुख-दुःख का अनुभव किया ॥२६-२७॥ जगन्नाथ । मैंने चारों वेदों, छहों शास्त्रों, इतिहास-पुराणों तथा अनेक शिल्पा का अध्ययन किया ॥२८॥ असंतोष, संतोष सब, अपक्षय, क्षय, वृद्धि तथा अक्षय मुझे प्राप्त हुए ॥२९॥ भार्या, पुत्र, मित्र तथा वधुओं से सदा विरह हुए, अनेक पिता माता देते ॥३०॥ शिष्य सुख-दुःखों का अनुभव किया, बहुत से भाई-बन्धु मिले ॥३१॥ स्त्रियों के गल मूत्र से पिच्छले (निसल काले) कोष्ठ मे वास किया, गर्भ-वास मे महान् दुःख का अनुभव किया ॥३२॥ हृषीकेश । बाल्याश्रया, यौवनकाल तथा युवपे मे जितने कष्ट होते हैं, वे सब मुझे मिले ॥३३॥ मरणकाल मे, यम के मार्ग में तथा यमालय मे जितने दुःख होते हैं, उन सब का मैंने अनुभव किया, नरक मे यातनाएँ भी सही ॥३४॥ इमिन्वीट वृक्ष हाथी, घेंटे, भृग, पक्षी, महिष, ऊँट, गौ तथा अन्य जंगली पशु, द्विज एवम् शूद्र की योनि मे और घनवान् क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी नृप, राजा के नौकर तथा अन्य प्राणियों के घरों मे मैं बार-बार उत्पन्न हुआ ॥३५-३७॥ नाथ । मैं अनेकों मनुष्य तथा दासों का दास बना दरिद्र, घनी तथा स्वामी भी बना ॥३८॥ मैंने दूसरों की मारा और दूसरों ने मुझे मारा, मैंने दूसरा पर आपात किया और दूसरा ने मुझ पर आपात किया, मुझे दूसरों ने दिया और मैंने दूसरों को दिया ॥३९॥

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥४०॥
 उक्तं देव्यं च त्रिविधं स्यत्वा लज्जा जनार्दन। देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्यावरेषु चरेषु च ॥४१॥
 न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गत प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते ॥४२॥
 कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्यतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥४३॥
 याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं सुरध्येष्ट भ्रमरज्जुसमावृतः ॥४४॥
 अपश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमर्ये रोमहर्षणे ॥४५॥
 भ्रमामि सूत्रिं कालं नाग्नं पश्यामि कर्हिहित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुरितेन्द्रियः ॥४६॥
 शोभतृष्णाभिभूतोऽहं कादिशोको विचेतनः। इदानीं स्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥४७॥
 ग्राहि मां दुःखितं कृष्ण भग्नं संसारसागरे। कृपा कुर्व जगन्नाथ भक्तं मां यदि मयसे ॥४८॥
 श्वदूते नास्ति मे ह्यधुयोऽसौ चिन्तां करिष्यति। देव त्वां नायमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥४९॥
 जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽप्य जा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नाचयन्ति नराधमाः ॥५०॥
 सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशोलेन विद्यया जीवितेन च ॥५१॥
 येषां न जायते भक्तिजगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं स्वासुरीं प्राप्य ये त्वा निन्दन्ति मोहिताः ॥५२॥
 पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् ॥५३॥

पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री धनी, श्राविय, दरिद्र और तपस्वियों के लिए मैंने बहुत कुछ किया ॥४०॥ जनार्दन ! मैंने लाख छ डकर विविध प्रकार की दीनता प्रकट की। प्रभो ! देव, पक्षी, मनुष्य, स्यावर और जगमा मे ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं नहीं गया ॥४१॥ जगत्पते ! मैं कम कभी रस्सी से बँधा हुआ कभी नरक में, कभी स्वर्ग में कभी मनुष्य लोक में और कभी तिर्यग् योनि में उसी प्रकार नीचे-ऊपर भ्रमण कर रहा हूँ, जैसे जलयन्त्र में रस्सी से बँधा हुई गंगरी ऊपर-नीचे तथा मध्य में घूमती रहती है ॥४२-४४॥ इस प्रकार भयकर तथा रोमांचकारी संसार-चक्र में मैं विचराल से घूम रहा हूँ, कहीं अन्त नहीं देखता ॥४५॥ हरे ! मैं नहीं जानता हूँ कि क्या कभी मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गई हैं, मैं शोक-तृष्णा से अभिभूत तथा अन्नत हँस रहा हूँ, मुझे इतना भी नहीं पता कि किस दिशा में जाऊँ। देव ! इस समय विह्वल होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४६-४७॥ कृष्ण ! संसार-सागर में निमग्न मुझ परितोष की रक्षा करें। जगन्नाथ ! यदि आप मुझ भक्त समझते हैं तो कृपा कीजिए ॥४८॥ आपकी छत्रकर मेरा कोई बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करे। देव ! आपका स्वामी के रूप में प्राप्त कर जीवन, मरण या पागलपन—इसी भी मुझे भय नहीं हाता ॥४९॥ प्रभो ! जो नराधम विधिपूर्वक आपकी पूजा नहीं करते, उन्हें संसार-बन्धन में कैसे मुक्ति मिले ? जिनको जगद्धाता के शव में शक्ति नहीं है, उन्हें बुल-धील, विद्या तथा जीवन से क्या प्रयोजन ? ॥५०-५१॥ आसुरी प्रकृति का प्राप्त कर महत्त्व जा आपकी निन्दा करते हैं, वे बार-बार जन्म लेकर घोर नरक में मिरते हैं। देव ! जा दुष्टाचारी तथा अधम मनुष्य आपका दूषित करते हैं,

ये हूयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥५४॥
 तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु वृद्धा सदा। आराध्य त्वां सुरादैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥५५॥
 अवापुः परमां सिद्धिं कृत्वा देव न पूज्येत। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥५६॥
 कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तोमि त्वा प्रकृतेः परम्। तथा च ज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५७॥
 तत्क्षमस्त्वापरार्थं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५८॥
 तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः। स्तुतोऽसि धन्यया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
 साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गुरुश्चक्रवर्जः। इदो तस्मै मुनिषेष्ठाः सकलं मनसेऽस्मितम् ॥६०॥
 यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तोति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥६१॥
 त्रिसंध्यं यो जपेद्बिह्वानिदं स्तोत्रवरं शुक्तिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६२॥
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः। स लोकं शशिमतं विष्णोर्वाप्ति निर्युतकल्मषः ॥६३॥
 धर्मं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न वेयं यस्य कस्यचित् ॥६४॥
 न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यात्तत्र भक्ताय कदाचन ॥६५॥

उनका नरकारण से उद्धार नहीं होता ॥५२-५३॥ हरे! कर्म-बन्धन मे पड़ कर वहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आपमे मेरी वृद्ध भक्ति बनी रहे ॥५४॥ सयमी, देव, दैत्य, मनुष्य तथा दूसरो ने भी आपकी आराधना कर परम सिद्धि प्राप्त की है। देव! कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? हरे! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य-बुद्ध्या में कैसे प्रकृति से भी परे आपकी स्तुति कर्होगा? प्रभो! तो भी अज्ञानता से मैंने आपकी स्तुति की ॥५५-५७॥ यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हरे! अपराधी पर भी क्षमा लोग दया करते हैं। देवेश! इसलिए भक्त के स्नेहवश आप प्रसन्न हों। देव! भक्ति-युक्त चित्त से जो मैंने आपकी स्तुति की, वह सब पूर्ण हो। वासुदेव! आपका नमस्कार है ॥५८-५९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा ने इस प्रकार स्तुति की। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। मुनिवर्य! भगवान् ने उसकी समस्त अमिलापार्ये पूरी की ॥६०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ की पूजाकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है ॥६१॥ जो विद्वान् मनुष्य पवित्र होकर तीन सन्ध्या इस उत्तम स्तोत्र का जप करता है वह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है ॥६२॥ जो सावधान होकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह निष्पाप होकर शाश्वत विष्णु-लोक का जायेगा ॥६३॥ यह स्तोत्र धन्य, पापहारी, मुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणकारी, गणनीय, अविदुर्लभ और पवित्र है। यह हर किसी को नहीं देना चाहिए ॥६४॥ नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अतिमानवी, अमनस तथा दुष्ट बुद्धि का यह कभी भी नहीं देना चाहिए ॥६५॥ भक्त भगवान्, सीलवान्,

दातव्यं भवितुमर्हताय गुणशीलान्विताय च । विष्णुभक्ताय शान्ताय अद्वानुष्ठानशालिने ॥६६॥
 इदं समस्तापविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च ।
 अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य ॥६७॥
 ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारि, ध्यायन्ति नित्यं पुरं पुराणम् ।
 ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हृतमध्वरानी ॥६८॥
 एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत् ।
 इ (ख) ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्तालिलसारभूतः ॥६९॥
 किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरपि ।
 येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥७०॥
 लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मत्तस्तपोभिः ॥ गुणैर्वरिष्ठः ।
 ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाह्वये ॥७१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूषिसंवादे कारुण्यस्तवर्णनं नामकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

विष्णु भक्त, शान्त, धृष्टालु और अनुष्ठानशाली को यह देना चाहिए ॥६६॥ पुरुषोत्तम का यह समस्त पापों के नाश का कारण कारुण्यसंज्ञक सत्त्वमोक्षदायक, अशेष वाञ्छनाशक दाता और सब से श्रेष्ठ स्तोत्र मैंने बतला दिया ॥ ॥६७॥ जो निर्मल पुरुष उस अत्यन्त सूक्ष्म, पुराण पुरुष तथा मुरारिक दैत्य के शत्रु विष्णु का नित्य ध्यान करते हैं वे मोक्षाधिकारी होंगे विष्णु से उसी तरह प्रवेश करते हैं जिस तरह मन्यो से छोड़ा गया भीम अग्नि में प्रवेश करता है ॥६८॥ वह देव एक, ससार-दुःखनाशन, परों से भी परे, अद्वितीय, इष्टा, रक्षक, नाशकर्ता, व्यापक और अलिल पदार्थों के सारभूत है ॥६९॥ जिसको जगद्गुरु तथा मोक्षसुखदाता कृष्ण में भक्ति नहीं है, उसे विद्या, गुण, यज्ञ, दान और उग्र तप से क्या लाभ? ॥७०॥ लोक में वही धन्य, पवित्र, विद्वान् यज्ञकर्ता, तपस्वी गुणवान्, ज्ञाता, दाता और सत्यवक्ता है, जिसको पुरुषोत्तम कृष्ण में भक्ति है ॥७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में कारुण्यस्तुतिवर्णन

नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वञ्च मुनिशाल्वा प्रणम्य च सनातनम् । वासुदेवं ऋगन्नयं स्वकामफलप्रदम् ॥१॥
 विन्ताकिष्टो महीपा ॥ कुशानास्तीत्य भूतल । दत्तत्र न ० मना भूत्वा मुध्वाप धरणीतले ॥२॥
 कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनादन । मम काऽऽतिहरो देवस्तवाऽऽतिविति चिन्तयन् ॥३॥
 'सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगदगुरु । आत्मानं दशयामास' इदं लक्ष्मणवाभूतम् ॥४॥
 ॥ वदश तु' सप्रेम देवदेव भगवदगुरुम् । इदं लक्ष्मणधर देव गदश कोप्रपाणिनम् ॥५॥
 शाङ्गबाणधर देव ज्व स्तेजोतिमण्डलम् । युगातात्तिरदर्शभ नीलवर्द्धयसनिभम् ॥६॥
 सुपर्णासि तमासीन योऽङ्गधभुज शुभ्रम् । स वारम् प्राक्कवीढीरा साधु राजन्महामत ॥७॥
 ऋतुनाज्जेन दिव्येन तदा भवत्या च श्रद्धया । तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा विमनुशोचसि ॥८॥
 यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूजया सनातनी । यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥९॥

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवय ! इस प्रकार स्तुति कर चकने के बाद राजा ने स्व-काम-फल प्रद सनातन वासुदेव जगन्नाथ के प्रणाम किया और फिर भूमि पर कुन्दा एवं वस्त्र को बिछा कर वि तादम्य राजा जमान पर स गया ॥१२॥ रा त सम्य उरुच मन मयहा भावना बना रहा कि जिस प्रकार देवाधिदेव दुखान गक भगवान वासुदेव मरे नेत्रा के सम्मुख हा । ॥३॥ सय हुए उस राजा के गल-न-गदा धार भगदगुरु भगवान न कर्पना रूप लिलाया ॥४॥ उस राजा ने बर प्रद से देवा के दव ससार के शुभ (मह नागक) भगवान को इस प्रकार दस्ता कि जनव हाया म गल नन गदा धनुष आर बाण म प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य के समान अदभुत तेज दय दरीर से एकद प्त प्रमा-युज चारी आर विस्तर रहाया न लंमणि सत्पा मयलमय विग्रह धारण किय हुए अष्टभुजाधार) भगवान गरुडसन पर आरोहन थे । मनिरण । इस प्रकार प्रकट ह कर भगवान ब —अनल्पमति राजन ! तुम घमट ॥५६॥ महीपाल ! मैं तुम्हारे इस उत्कृष्ट यज्ञ भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न हू तुम व्यथ ग क कर रहे ह ? ॥८॥ राजन ! इस ससार म न्यत्पू य ज सनातनी प्रतिमा है उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ ॥९॥ सूर्योय

१ स ० त्रि दृष्टमम ज० । २ स ० न । स महाति० । ३ स सुयुम्नस्य तु न० । ४ ग ० स स्वप्ने तस्य समशक्त । स । ५ ग तु स्वप्ने वै दे० । ६ स ० म । तत्ता राजानमासाद्य विभु प्राह महा० । ७ स दानेन । ८ स वे । प्रमाते विमते जाते नि० ।

गतायामद्य शय्यो निर्मले भास्वरोदिते । सागरस्य जलस्थान्ते मानाद्रुमविभूषिते ॥१०॥
जलं तप्येय घेलाया दृश्यते तत्र ये मृत् । स्थण्डिलोदये राजरत्नं समभिलषितम् ॥११॥
ब्रूताते हि महायुध स्थित स्वल्पजलेषु च । घेलाभिर्हृन्ममानश्च न चासौ क्षम्यते द्रुम ॥१२॥
परमावाय हस्तेन ऊर्मरन्तरततो यज । एकाकी विहरन्नाजन्त स्व पश्यति पादपम् ॥१३॥
इदुर्विबुधं समालोक्य छेदय स्वमशङ्कित । छेद्यमा तु त वृक्ष प्रातरद्भुतदर्शनम् ॥१४॥
बृष्ट्वा तेनैव सचिन्मसततो भूपालदर्शनात् । कुर ताप्रतिमां विद्या जहि विन्ता विमोहिनीम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शन हरि । स चापि स्वप्नमालोक्य पर विरमयमाणतः ॥१६॥
तां निशां स समुद्रोदय स्थितस्तद्गतमानस । व्याहरन्ब्रह्मबान्मन्त्रास्तूयत चैव तदात्मकम् ॥१७॥
प्रगतायां रज्यां तु उस्थितो नाम्यमानसः । सस्मरन् सागरे सम्यग्यथावद्विदिता ततः ॥१८॥
वरदा दान च विप्रेभ्यो ग्रामादथ नगराणि च । दृष्ट्वा पीडांस्त्रिंशं कर्म जगाम स नृपोत्तम ॥१९॥
न चादयो न पदानिदं न गजो न च सारथि । एकारो स महावेदी प्रविशेत् महोपतिः ॥२०॥
तं ददर्श महायुध तं जहत् महाद्रुमम् । महातिगमहरोह पुष्पं विपुलमेव च ॥२१॥
'महोत्सेम महावपि' प्रसुप्तं च जलान्तिक् । ताद्रमाजिज्जठवर्जान् नामजातिविर्वाजितम् ॥२२॥

नरनाथस्तदा विप्रा' हुम दृष्ट्वा मुदाऽन्वित । परशुना शातयामास निश्चितेन दृढेन च ॥२३॥
 द्वंशीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च । निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥२४॥
 विश्वकर्मा' च विष्णुश्च विष्णु-धरातुभौ । 'आजगमुर्महाभागौ तदा तुल्यप्रजन्मानौ ॥२५॥
 'ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्त्रगनुलेपनौ' । अथ तौ त समागम्य नमस्त्रिसख तदा ॥२६॥
 तायच्चतुर्महाराज किमत्र त्व करिष्यसि । किमर्थं च महाबाहो शातितश्च धनस्पति ॥२७॥
 असहायो महाद्वर्गे निर्जने गहने बने । महासिन्धुतटे चैव' कथं व शातिनो हुम ॥२८॥

ब्रह्मवाच

तयो भूत्वा वचो विप्रा स तु राजा मुवाऽन्वित । वभायेवधन ताभ्या मृदुल मधुर तथा ॥२९॥
 दृष्ट्वा तौ' ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवाऽज्जती । नमस्कृत्य जगन्नायाववाङ्मुलमयस्थित ॥३०॥

राजोवाच

देवदेवमनाद्य-तमनन्त 'जगता पतिम् । आराधयितुं प्रतिमां करोमीति मतिर्मम ॥३१॥
 अहं स देवदेवेन परमेष्ठेन महात्मना । स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्गया श्रायित मया ॥३२॥

कथा १ जगति कथा है ॥२२॥ ब्राह्मणम् । उस वृक्ष का देखकर अत्यंत प्रसन्न चित्त राजा ने अपने बेटे तीक्ष्ण कुटार से काट कर गिरा दिया ॥२३॥ इंद्र का सखा वह राजा उसका दः भागो में काटने की इच्छा में देखने लगा कि इनने मैं ही उसकी अमृत दान टूटा ॥२४॥ उस समय ब्राह्मण-वर्ग में अत्यंत तेजस्वी तथा रूप और बल में सक्षम विष्णु और विश्वकर्मा जा आये ॥२५॥ गौतरिक कालिने प्रदीप्त उमर अग्रा पर दिव्य रूप और दिव्य भावा मुग भित थी ॥२६॥ विप्र वेषधारी विष्णु और विश्वकर्मा राजा ने समर्थ आकर पूछने लग कि महाराज ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? महाबाहु ! इस महावृक्ष के काटने का क्या प्रयोजन है ? अब के इस जनपद सघन दुग्ध जन में आकर महासगर तट पर स्थित इस वृक्ष का किसलिए काट डाला ? ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणवर्ग ! इंद्रमा और सूर्य ने समान देहाप्यमान उपस्थित उन द ब्राह्मणों का देख कर और उनकी जिज्ञासा सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने गिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विनम्र कानी से बोला ॥२९-३०॥

राजा ने कहा—प्रभो ! इस काष्ठ से देवाधिदेव विष्णुपति आद्यतर्हित भगवान का आराध्य प्रतिमा बनाने की मरी इच्छा है । शेषाधिदेव परमात्मा द्वारा मुग इस प्रकार प्रतिमा बनाने का जा आदेश स्वप्न में प्राप्त हुआ है । उग मैंने आप यथा का मुता दिया ॥३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

राजस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च । प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत् ॥३३॥

विष्णुस्वाच

साधु साधु महीपाल 'धदेतन्मतमुत्तमनम्' । संसारसागरे घोरे कदलीदलसनिभे ॥३४॥
नि.सारे 'दु.खबहुले कामक्रोधसमाकुले । इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसंनिभे । यतस्ते मतिरुपपन्ना विष्णोराधनाय व ॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशाहूल गुणेः सर्वैरलंकृतः । सप्रजा पृथिवी धन्या सर्वलोकनानना ॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता । यत्र त्वं नृपशाहूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥३८॥
एहोहि सुमहाभाग हुमेऽस्मिन्सुखशीतले । आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं 'कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिना वर' । विश्वधर्मसमः' साक्षान्निपुणः' सर्वकर्मसु ॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तदं त्यज ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वायं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः । सागरस्य तदं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवत्प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी ऐसी बातें सुनकर विश्वपति विष्णु हँसते हुए राजा से बोले—॥३३॥

विष्णु ने कहा—मूपाल ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारा यह सबलप उत्तम है। इस घाट, कैले के पत्त के समान नि सार, दुःखा से भरे काम क्रोध से युक्त, इन्द्रिय रूपी आवर्त से गहन, कठिनाई से पार करने योग्य, भयकर, अनेकों व्याधियों से व्याप्त और जल बुद्बुद के समान क्षणभंगुर संसार सागर से विश्रुत है। तुम्हारा भयकर, अनेकों व्याधियों से व्याप्त और जल बुद्बुद के समान क्षणभंगुर संसार सागर से विश्रुत है। तुम्हारा ध्यान भगवान् की उपासना की धार लगा है इसलिए तुम धन्य हो। नृपश्रेष्ठ ! तुम सब गुणा से विभूषित हो। यह पर्वत, वन, वानन और प्रजाओं के युक्त पृथ्वी जो चारों धनों से और पुर, ग्राम, नगर से सुशोभित है, धन्य है जिस पर प्रजा के पालक और शासन के रूप में तुमने जन्म लिया है। महाभाग ! तुम परम धार्मिक हो, आत्मा, आर्मी, इस वृक्ष की सुखद, शीतल छाया में हम लोगों के साथ बैठो, और कोई धर्म-चर्चा सुनाओ। यह मेरा साथी उत्तम शिल्पी है, साक्षात् विश्वकर्मा के समान सब वस्तुओं में कुशल है। यह मेरे आदेशानुसार प्रतिमा बना देगा। तुम तट छोड़ कर मेरे पास आओ ॥३४४०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! तब वह राजा ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन सागर-तट को छोड़ कर वृक्ष की

तस्यो ॥ नृपतिश्चेष्टो वृक्षच्छाये सुशीतले । ततस्तस्मै स विद्वात्मा ददावाज्ञा द्विजाकृति ॥४२॥
 शिल्पिमुखाय विप्रेन्द्रा बुरुष्व प्रतिमा इति । कृष्णरूप पर शान्त पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४३॥
 श्रीवत्सकोस्तुभधर शङ्खचक्रमदाधरम् । गौराङ्गक्षीरवर्णाभि द्वितीय स्वस्तिकाङ्कितम् ॥४४॥
 लाङ्गलास्त्रधर देवमनन्तराय महाबलम् । देवदानवागन्धर्व्यक्षविद्याधरोरगै ॥४५॥
 न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृत । भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णा सुशोभनाम् ॥४६॥
 तृतीया वै सुभद्रा च सर्वरक्षणलक्षिताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्यैतद्वचन तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृतं । तत्क्षणत्वाख्यामास प्रतिमा शुभलक्षणा ॥४८॥
 प्रथम शुक्लवर्णाभि शारदेन्दुसमप्रभम् । आरक्ताक्ष महाकाय स्कटाविपटमस्तकम् ॥४९॥
 नीलाम्बरधर चोप बल यत्रमदोद्धतम् । कुण्डलैकधर विष्य गदामुशलधारिणम् ॥५०॥
 द्वितीय पुण्डरीकाक्ष नीलजीमूतसनिभम् । अतसीपुण्यसकाक्ष पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥५१॥
 पीतवाससमत्युग्र शुभ श्रीवत्सलक्षणम् । चक्रपूर्णकर विष्य सर्वपापहर हरिम् ॥५२॥

पूजित छाया मे उनके समीप बैठ गया । 'सर्वे' बाद ब्राह्मणवेशपात्री परमारमा ने मेरे बचनानुसार मूर्तियाँ बनायीं'
 एसा आज्ञा उस श्रष्ट शिल्पी के दी ॥४१-४२॥ पहली कृष्ण का मूर्ति हा जे कृष्णवर्ण की अत्यन्त शान्त कमल के
 समान नेत्रवाणी श्रीवत्स आर कोस्तुममणि से युक्त वक्ष स्थरवाली तथा गल चर आर गदा धारण किए हुए हा।
 दूसरी गार वर्ण शुभ्र के समान घवल और स्वस्तिक से युक्त हथ म हा (अस्त्र) धारण किए हुए अनन्त दब की मूर्ति
 बनायी। इनका अन्त (रहस्य) देव दानव गन्धर्व्यक्ष विद्याधर और नगा ने भी नहीं जाना इसीलिए ये
 अनन्त इस नाम से प्रसिद्ध हुए। तिसरा स्थण वर्ण के अत्यन्त रुज हर और सब लक्षणा विनैपत थे। सयक्त भगवान
 वासुदेव की बहिन सुभद्रा के प्रतिमा की रचना करी ॥४३-४७॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राश्रयवपराय विष्णु के उपयुक्त बर्तें गुन वर स्वगित्वा विश्वकर्मा ने ग १ ही
 मन हर तथा सब का तथा स युक्त प्रतिमाये बना दी ॥४८॥ पहला तेजस्वा तथा बल ३ रंग उद्धत कन्देव जी की
 प्रतिमा थी जे 'का' रण शरदरागिन चन्द्रमा के समान के तिम्र न थे जिनके नेत्र बल ल ३ पण स युक्त
 विषट मस्तक महाकाय शरार पर ना स्त्र वान म एव दिग्ग वृष्ण हाथ म गदा और गुणकाया ॥४९
 ५०॥ दूसरी सब पापों के हरन वाग वमक नत्र ना यक्ष के समान 'याम' शरार वाग सयक्त कृष्ण की मूर्ति
 थी जे पीत वस्त्र पहन हुए श्रीवत्स स गुण भिन थे। जिनके शरीर का आभा अलसी के कुसुम के समान थी
 तेज वमकाल के समान थे और हाथ म चक्र था ॥५१-५२॥ तिसरी मनाहर मूर्ति साने के समान पीत वर्ण
 वाणी मुमद्रा के थी जिनकी आँखें कमल के समान बड़ी बड़ी थी जे विचित्र वस्त्रा से अङ्कृत थी जिनके अग्र

तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पञ्चपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसल्लभ्णा हारकेयूरभूषिताम् ॥५३॥
विचित्राभरणोपेता रत्नहारालम्बिताम्। पीनोन्नतकुचा रम्या विश्वकर्मा विनिममे ॥५४॥
स तु राजाऽद्भुत दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिता। दिव्यवस्त्रयुगच्छता नानारत्नैरलंकृता ॥५५॥
सर्वलक्षणसंपन्ना प्रतिमा समनोहरा। विस्मय परम गत्वा द्वद वचनमब्रवीत् ॥५६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवो 'समनुप्राप्तो द्विजरूपधराबुधो। उभो वादिभुतकर्माभौ देववृत्तावमानुषौ ॥५७॥
देवो वा मानुषो वाऽपि 'यस्यविद्याधरो युवाम्। किन्तु ब्रह्महृयोऽकेशो किं वसू किमुतादिवनौ ॥५८॥
नवेषिसत्पत्सद्भावो मायारूपेण सन्धितौ। युवा गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाशयताम् ॥५९॥
इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भूपिसंवादे प्रतिमोत्पत्तिकथन नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रत्यय हार केयूर आदि विचित्र आभूषणा से भूषित ये बीजा मे रत्ना के हार लटक रहे थे और जिनके कुच पीन और ऊँचे थे ॥५३॥ ५४॥ अब राजा ने देखा कि इस शिल्पी ने क्षण भर मे ही दिय युगल वस्त्र से युक्त अनेक आभूषणा से सुशोभित समा लक्षणा से युक्त मन हर मूर्तिया बना दीं तो इस अविद्यमानक कौशल पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ और आश्चर्य-चकित हो पृछने लगा—॥५५॥ ५६॥

इन्द्रद्युम्न ने कहा—यया आप लग देवता हैं। जः इस ब्राह्मण-वेणु मे मुझ कृत्याय करने के लिए आये हुए हैं? आप दानो महानुभावो के काम अदभुत हैं, व्यवहार देवोचित हैं आप लग मे नव नहीं ज्ञात हत। आप देव हैं या मनुष्य? यक्ष हैं या विद्याधर अथवा ब्रह्म रूपका वसु या अश्विनीकुमार हैं? मैं इस समय समयतत्त्व और रहस्य का नहीं समझ पा रहा हूँ क्या कि आप देवा ने माया वेश धारण कर रखा है। मैं आप लोगों का शरण मे हूँ। कृपा कर अपने यथाय पत्रिचय के प्रकाश से मेरे अतत्करण को प्रकाशित कर ॥५७॥ ५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अतत्त्व स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण मे प्रतिमोत्पत्ति

कथन नामक पचासवा अध्याय समाप्त ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवदिन्द्रद्युम्नसवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच^१

नाहं वेद्यो न यक्षो वा न देव्यो न च देवराट्^२ । न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्^३ ॥१॥
 अतिहा सर्वलोकानामनन्तबलपीडयः । आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते ॥२॥
 पश्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते । यमाहुर्जानगम्येति वासुदेवेति योगिनः ॥३॥
 अहमेव स्वयं ब्रह्मा 'अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम् । इन्द्रोऽहं देवराजश्च' जगत्संयमनो यमः ॥४॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेतानिहृतभङ्गनृप । वरणोऽप्य पतिश्चाहं वरित्री च महीधरः ॥५॥
 यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम् । चराचरं च यद्विद्मं मद्व्यप्राप्तिं किञ्चन ॥६॥
 प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ यत् वरय सुव्रत । यद्विष्टं तत्प्रपञ्चामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम् ॥७॥
 मद्वर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते । त्वं पुनर्वृण्वन्ति तत्त्वात्प्रत्यक्षं वृष्टवानसि ॥८॥

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का संवाद

श्री भगवान् ने कहा—“मैं ॥ देव हूँ न यक्ष, न दैत्य न तो देवराज इन्द्र । मैं ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं । राक्षन् मुझे पुराण पुरुषोत्तम जानो ॥१॥ जिसका अन्त नहीं है, जो समस्त प्राणियों का एकाग्र आराध्य है, जिसका बल और पराक्रम निःसीम है, जो अखिल-लोक की पीडा दूर करने वाला है, जिसकी सभी शास्त्रों में चर्चा है, जो वेदान्त का दण्य विषय है, जिसकी योगीजन ज्ञान-गम्य (ज्ञान से प्राप्त करने योग्य), वासुदेव (सर्व व्यापक) कहा करते हैं । मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूँ, विष्णु और शिव भी मैं ही हूँ । देवराज इन्द्र और सत्तार का नियन्त्रण मैं रखने वाला यम (मृत्यु देव) मैं ही हूँ ॥२-४॥ यम । पृथ्वी आदि पाँच भूभूत, आहुति ग्रहण करने वाले तीनों अग्नि मैं ही हूँ । जल मे स्वामी वरुण, घरेली और पहाड़ भी मेरे ही रूप हैं ॥५॥ सत्तार का सारा वाङ्मय, स्थावर जगम रूपत्मक जगत् और जो कुछ भी चराचर विषय है वह मुझसे अतिरिक्त नहीं है ॥६॥ नृपश्रेष्ठ । मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । सुव्रत । वर माँगो । तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हागे, मनोवाञ्छित फल तुम्हें दूँगा । देखो, मेरा दर्शन पुण्य न करने वाले को स्वप्न में भी नहीं होता । तुमने अपनी अविचल गन्ति द्वारा ही मेरा यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है” ॥७-८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वायं वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः । रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृपः ॥९॥

राजोवाच

धियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे । श्रीदश्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन ॥१०॥
आद्यं पुरयमोशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम् । निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि 'समातनम्' ॥११॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविर्वाजितम् । निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम् ॥१२॥
'प्राक्पञ्चप्रतीकाशं योगाह्वयहिते' रतम् । सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम् ॥१३॥
शङ्खचक्रधरं देवं गवामुशलधारिणम् । नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलबलच्छविम् ॥१४॥
नागपर्वङ्गुशयनं क्षीरोदागन्धशायिनम् । नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहृरं हरिम् ॥१५॥
पुनस्त्वर्वा देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम् । सर्वलोकोद्धारं विष्णुं भोक्षकारणमव्ययम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा तु तं देव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—वासुदेव की इस प्रकार की बातें सुन कर, द्विजगण । उस राजा को रोमांच हो गया, वह आनन्द विमोद हो यह स्तौति गाने लगा ॥९॥

राजा ने कहा—हे लक्ष्मीकान्त 'श्रीपते' पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । लक्ष्मी के होने वाले । श्री के स्वामी । श्री निवास । श्री निवेतन । आपको नमस्कार है ॥१०॥ आप आद्यपुरुष, सामर्थ्यवान्, सब के स्वामी और सबतःमुख (चार और मुख वाले, व्यापक) हैं । निरवयव, समातन, परम (मष्ट) देव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ सद्यः-गुण से परे भाव और अभाव से रहित आसक्तिहीन, निर्गुण (गुण रहित) सूक्ष्म, सब कुछ जानने वाले, और सब के एकमात्र ध्येय आपकी प्रणाम है । वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम, गो-आह्वणी के हित में लीन, सभी के रक्षक, व्यापक और सर्व भावी (स्रष्टा) तथा शूल, चक्र गदा और मुशल धारण करने वाले, नीलवस्त्र की पलटिया के समान वान्तिमय वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ । शेष-शैत्या पर सोने वाले क्षीर-सागर जागी, इन्द्रिया के स्वामी, पाप-नाशन हरि को नमस्कार है । देवदेवेश, वरदाता, व्यापक, सब लोका के स्वामी, भोक्षदाता और अव्यय (नष्ट न होने वाले) विष्णु रूप का नमस्कार है ॥१२-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् की स्तुति करने के बाद करबद्ध साष्टांग दण्डवत् करते हुए राजा ने कहा—॥१७॥

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृषोमि वरमुत्तमम् । देवासुरा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा ॥१८॥
 सिद्धविद्याधरा साध्या किन्नरा गुह्यकास्तथा । ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदा ॥१९॥
 परिब्राडयोगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका । मोक्षमागविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परम पदम् ॥२०॥
 निर्गुण निर्मल 'शा'त यत्पश्यन्ति मनीषिण । तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

'सर्वं भवतु भद्र ते यथेष्ट सर्वमाप्नुहि । भविष्यति यथाकाम मत्प्रसादात् सशय ॥२२॥
 दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च । अविच्छिन्न महाराज्यं कुरु त्व नृपसत्तम ॥२३॥
 प्रयास्यसि पदं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः । पूर्णमनोरमं ज्ञानं गुह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥२४॥
 परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निष्कलं ध्रुवम् । चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं त्रियाकारवर्जितम् ॥२५॥
 तदहं दर्शयिष्यामि ज्ञेयार्थं परम पदम् । यः प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यति परमां गतिम् ॥२६॥
 कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र महीतले । यावद्वचनां नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२७॥
 यावत्समुद्रा सप्तैव यावन्मेवादिपर्वता । तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र ध्यायया ॥२८॥

राजा ने कहा—नाथ । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही उत्तम वर माँगता हूँ कि देव असुर गन्धर्व दक्ष राक्षस महानाग सिद्ध विद्याधर साम्यगण किन्नर और गुह्यक तथा मित्र मित्र शास्त्री के पारंगत महामायगाल ऋष साध्या तथा वेद के रहस्य जानने वाले और मन्त्र भाग के नाता जिस परम पद का ध्यान करते हैं तथा मनीषी (ज्ञानी) जिस अमल न निगुण और ज्ञान परम पद का देखा करते हैं उस दुर्लभ परम पद का आपका कृपा से प्राप्त करूँ यहाँ मेरी अमिल या है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपने सभी मनोरथ प्राप्त करोगे । मेरी कृपा से तुम्हारे सभी कार्य इच्छानुरूप होंगे जिससे सन्देह नहीं ॥२२॥ नृप-अर्थात् पहलु तुम दश हजार मी सौ वर्ष निरन्तर अपने साम्राज्य का शासन कर । तदनन्तर उस दिव्य परमपद का प्राप्त करोगे जो देव दानवा के लिए दुर्लभ मनोरथ का पूष करनेवाला ज्ञान रहस्यमय अप्रत्यक्ष और नित्य है जो परात्पर (सर्वोपरि) सूक्ष्म निर्लेप अलङ्घ्य अटल चिन्ता न क से रहित कार्यकरण मुक्त (अनादि-अनन्त) है ॥२३ २५॥ मैं ऐसे पद परम पद का दिलाऊँगा जिसको पाकर तुम अत्यन्त अन्तर्हित हो मन्त्र पद प्राप्त करोगे ॥२६॥ राजेन्द्र । जब तक मेरा आकाश चन्द्रमा सूर्य और तारा मण्डल एवं जब तक केवल समुद्र तथा सात भेग आदि पर्वत और स्वर्गलोक में देव गण स्थित हैं तब तक जिस मही मण्डल पर तुम्हारी अर्वाध कार्ति फैली रहेगी ॥२६ २८॥ यह द्रष्टुम्

इन्द्रद्युमत्तरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् । यत्र स्नात्वा सकृत्लोकः शशलोयमवाप्नुयात् ॥२९॥
 दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्तरसः शुभे । कुलकविशममुद्धृत्य शकृत्लोकं गमिष्यति ॥३०॥
 पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वगतिनिस्वनैः । विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३१॥
 सरसो दक्षिणे भागे नैऋत्या तु समाश्रिते । न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥३२॥
 केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः । नारिकेलसहयेयैश्चम्पकैर्वकुलावृतः ॥३३॥
 अशोकः कर्णिकारश्च पुंनागैर्नागकेसरैः । पाटलाभ्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः ॥३४॥
 श्यग्रोषावक्षत्यलदिरः पारिजातः सहजर्जुनैः । हित्तालैश्चैव तालैश्च शिशपैर्वन्दरैस्तथा ॥३५॥
 करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बलिष्यातुकैः । अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥३६॥
 आपादस्य तिते पक्षे पञ्चभ्या पितृदेवते । ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै ॥३७॥
 मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेद्याभिः सुशोभनैः । क्रीडाविशेषबहुलैर्नन्द्यगीतमनोहरैः ॥३८॥
 चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजने रत्नभूषणैः । धौजघ्नस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गला ॥३९॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः । धानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चाम्ये च ब्राह्मणा ॥४०॥
 नानावर्णपर्वैः रतोवैर्ऋत्यजुःसामनिस्वनैः । करिष्यन्ति स्तुतिं राक्षसात्मकैश्च योः पुनः ॥४१॥
 ततः स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सप्रणम्य च भविततः । नरो बर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्वरिपुरे वसेत् ॥४२॥

सर यज्ञांग से उत्पन्न पवित्र और अमर तीर्थ होगा, जिसमे एक बार स्नान करने से भी मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करेगा ॥२९॥ जो इस सरोवर के पुनीत तट पर पिण्डदान करेगा वह अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर स्वयं देव-लोक का अधिकारी होगा ॥३०॥ वहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ अपनी मधुर गीत-ध्वनि से उसकी पूजा करेंगी। जब तक चौदहो इन्द्र रहेंगे तब तक वह पुण्यात्मा विमान द्वारा बिहार करता हुआ स्वर्ग में निवास करेगा। सरोवर के दक्षिण तीर पर नैऋत कोण में एक बट वृक्ष है जिसके निकट केकी वन से घिरा हुआ एक मण्डप है। जिसके चारों ओर अनेक वृक्ष, अनगिनत नारियल, चम्पक और मौलिसिरी, वीं पवित्तर्फी हैं ॥३२-३३॥ अशोक, कर्णिकार (कनेर), पुनाग, भागकेसर, पाटल, आम्रता (आमड़ा), सरल, चन्दन, देवदारु, बट, पीपल लारि, अर्जुन पारिजात हिताल, ताल, वीशाभ बदर (बैर) तथा करञ्ज, लकुच (बड़हर), प्लक्ष (पाकड़), बटहल, बिल्व धातुक एव अन्य बहुत प्रकार के वृक्षों से वह मण्डप सुशोभित है ॥३४-३६॥ उस मण्डप में आपाद वै शुक्ल पक्ष की मघा नक्षत्र वाली पञ्चमी तिथि में जो हमारी मूर्ति ले जा कर प्रतिष्ठित करेगा और सात दिन। तक सुन्दर वेश्याओं ने मधुर गान, विभिन्न खेड़ाओं एवं मनोहर नृत्य-गीत द्वारा समाराहपूर्वक पूजन करेगा, चँवर और रत्नजटित स्वर्ण-दण्ड वाले पतंगों से आदरपूर्वक पक्षा झलते हुए मांगलिक पूजा करेगा राजन् । जो ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, उत्तम वैदपाठी, धानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ, सिद्ध अथवा जो कोई ब्राह्मण मित्र मित्र वर्ण-पद वाले स्नान पाठ से, ऋग्य, यजु, साम के ऋचा-पाठ से राम और वैद्यभ की स्तुति करेगा और स्तुति के उपरान्त भवितपूर्वक दर्शन एवं प्रणाम करेगा, वह नर दिव्य अयुत (दस हजार) वर्ष तक विष्णु लोक में निवास

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनेः। हरेरनुचरस्तत्र श्रीडते केशवेन् । वै ॥४३॥
विमानेनाकंयणैश्च रत्नहारेण भ्राजताः। सर्वकाममर्हामोर्गस्तिष्ठते भुवनोत्तमे ॥४४॥
तपःक्षयाविहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् । कोटीधनपतिः श्रीमाश्चतुर्वेदी भवेद्भुवम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एव तस्मै वर दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः । जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥४६॥
॥ तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनुरहः । कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्वरे ॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं सुभद्रां च वरप्रवाम् । रथंविमानसंकाशमणिकाञ्चनचित्रितं ॥४८॥
संबाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनिस्वनेः । आनयामास मतिमाऽसामार्यः सपुरोहितः ॥४९॥
नानाबादित्रनिधोर्विनाभावैरस्वनेः शुभैः । संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥५०॥
ततः शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे । प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः सह ॥५१॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा । आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः ॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिब्रह्मभूम् । ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽभ्येधयो धनं ददौ ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिब्रह्मप्रासादे भवनोत्तमे । स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५४॥

करेगा ॥३७-४२॥) उस लोक में उस भगवद्भक्त की गन्धर्व और अप्सरायें अपने मधुर गीत गा-गाकर तब करेंगी। वह भगवान् केशव के साथ वहाँ सुखपूर्वक श्रीडा करेगा ॥४३॥ उस उत्तम लोक में वह रत्नहार में सुसज्जित, सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार हो अपनी सभी कामनाओं की तृप्ति और भोगों का उपभोग करता हुआ निवास करेगा। इस प्रकार भग्न द्वारा पुण्य क्षीण हो जाने पर वह इस मृत्युलोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण तथा वैभवशाली कराव्यपति होगा ॥४४-४५॥

ब्रह्मा बोले— विप्रगण । इस प्रकार भगवान् उस राजा को वर देकर तथा एसी प्रतिज्ञा करके विश्वकर्मा के साथ स्वयं अन्तर्हित हो गए। वह राजा भगवान् के इस अद्भुत दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने रोम आनन्द से पुलकित हो गए, वह अपने को कृतकृत्य-सा समझने लगा ॥४६-४७॥ इसके उपरान्त मन्त्रियों और पुरोहिता के साथ वह युद्धिमान् राजा भण्डि, सुवर्ण से अलङ्कृत विमान के समान रथ पर कृष्ण, बलराम और वर देने वाली सुभद्रा की मूर्तियों को चढ़ा कर परम माणलिक वाद्य ध्वनि के साथ ले आया ॥४८-४९॥ मित्र मित्र प्रकार की वाद्य ध्वनि और माणलिक वेद-ध्वनि के साथ पवित्र शुभ, मनोहर प्रदेश में मूर्तियों स्थापित की गई ॥५०॥ तदनन्तर शुभ तिथि, काल और शुभ लक्षण वाले नक्षत्र में ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठा कराई गई ॥५१॥ महीपति ने आचार्य की अनुमति से आस्थापन नियमानुष्ठान पूर्वक सारा देवकार्य समाप्त किया, विधिपूर्वक आचार्य, तथा ऋत्विजों को दक्षिणा दी, अनाय ब्रह्मण को धिम्न के अनुसार धन दान दिया। इस प्रकार राजा ने सर्वोत्तम भवन में मूर्ति की प्रतिष्ठा कर शास्त्र-सम्मत कर्म से स्थापन किया समाप्त की ॥५२-

ततः संपूज्य विधिना नानोपुष्पैः सुगन्धिभिः । सुवर्णमणिमुक्तादीर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः । ददौ ज्ञान्यास्तं विद्यानपुराणि नगराणि च ॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा ययोचितम् । इष्ट्वा च विविधैर्नैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥५७॥
कृतकृत्यस्ततो राजा त्वयत्तसर्वपरिग्रहः । जगाम परम स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः । क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥५९॥

विष्णुरुवाच

श्रुत्वा च घटनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । आश्चर्यं मेनिरं विप्राः पद्मच्छुद्ध्य पुनर्मुखा ॥६०॥

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले 'सुरश्रेष्ठ' यन्तव्यं पुरघोत्तमम् । विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम् । -वेद्यतप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

विराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत् । जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसर्वत्तरायुतम् ॥६३॥

५४॥ तदनन्तर राजा ने भगवान् की अनेक सुगन्धित पुष्पी से विधिवत पूजा की, स्वर्ण, मणि, मुक्ता एव आभूषण
जडाये, अनेक सुन्दर वस्त्र, विविध रत्न, दिव्य आसन भगवान् को अर्पित किए, बहुत से गाँव पत्तन, अनेको विषय
(जिन्हे), पुर और नगर इच्छानुसार दान में दिए गए ॥५५-५६॥ इस प्रकार इच्छानुरूप बहुविध दान देकर
राजा ने न्यायपूर्णक वासन किया। विविध यज्ञो के अनुष्ठान, तथा अनेक प्रकार के दान से उसने अपने क। कृतकृत्य
समझा। अन्त में सारी इच्छाओं और वस्तुओं का परित्याग कर विष्णु के परम पद को प्राप्त किया ॥५७ ५८॥
श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र और क्षेत्र की महिमा आप लोगों को बतलायी, इसके अतिरिक्त
आप लोग क्या सुनना चाहते हैं? ॥५९॥

विष्णु ने कहा—अव्यक्तजन्मा (अनादि) ब्रह्मा की उपर्युक्त बातें सुन कर ब्राह्मणों की अत्यन्त आश्चर्य
हुआ, फिर प्रसन्न मन से प्रश्न किया ॥६०॥

मुनियों ने पूछा—“सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरघोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, जिस विधि से पाँचों
तीर्थों को करना चाहिए। एक-एक तीर्थ के स्नान, दान और देव-दर्शन का ज। फल होता है उसका अलग-अलग
समझा कर बताएँ ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—“कुरुक्षेत्र में सात अयुत (सत्तर हजार) वर्ष तब इन्द्रिय-समयपूर्वक त्रैलोक्य की वश में कर

१ क ० भ्यानि वितानि ग्रामाणि न० । २ ख. त्यक्त्वा देहं दिव यथौ । देवदेवप्रसादेन जगाम परम प० ।
३ ख. मुनिश्रेष्ठ ।

दृष्ट्वा 'सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽपि फलम् ॥ ४॥
 तस्माज्ज्येष्ठे मनिधेःठाः प्रयत्नेन सुसंयतः । स्वर्गलोकेप्सुविप्रावर्द्धं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ५॥
 'पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः । शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥ ६॥
 ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ ७॥
 तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः । कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ८॥
 सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम् । अहन्यहनि शूद्रात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ९॥
 यात्रा करोति कृष्णस्य भक्त्या यः समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ १०॥
 अथ दृष्ट्वा हरेर्वृत्तात्प्रासादोपरि संस्थितम् । सहसा मुच्यते पापाश्रयो भवत्या प्रणम्य तत् ॥ ११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१॥

एक पैर पर खड़ा हो, निराहार तपस्या करने से जितना फल मनुष्य को मिलता है, उससे अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन निराहार रह कर पुरुषोत्तम के दर्शन से प्राप्त होता है ॥ ६३-६४॥ इसलिए, ज्येष्ठ मूनिगण! स्वर्ग चाहने वाले, समयमाल ब्राह्मण आदि मनुष्यों को ज्येष्ठ मास में प्रवेश पूर्वक पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए ॥ ६५॥ ज्येष्ठ मास में उत्तम मनुष्य पाँचों तीर्थों की विधिवत् यात्रा करके अवश्य पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन करे ॥ ६६॥ जो द्वादशा के दिन अथवा पुरुषोत्तम देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक में जाते हैं, कभी भी उनका चर्चा से पतन नहीं होता है ॥ ६७॥ इसलिए हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! ज्येष्ठ मास में प्रयत्नपूर्वक पञ्चतीर्थ की यात्रा कर पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए ॥ ६८॥ तीर्थ-यात्रा में असमर्थ व्यक्ति अत्यन्त दूर रह कर भी यदि भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम का कीर्तन करे, तो वह भी दिन-प्रतिदिन पाप-रहित हो कर विष्णुपुर का अधिकारी होगा। और जो व्यक्ति एक-दम से भद्रापूर्वक इस कृष्ण-तीर्थ की यात्रा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो कर विष्णुलोक की निश्वस ही प्राप्त करता है। दूर से ही कृष्ण-मन्दिर में उतर जाने हुए अथवा देव कर जो भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य सहसा (सीधे ही) पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ६९-७१॥

श्री ब्रह्महापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में पुरुषोत्तम वर्णन नामक इकावनवा अध्याय समाप्त ॥ ५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

'आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठा संप्रवृत्ते महाक्षये । नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्यावरजङ्गमे ॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगजिते । विद्युदुत्पत्तिसंघाते सभङ्गे तरुपर्वते ॥२॥
लोके च संहृते' सर्वे महदुल्कानिबंहणे । शुष्केषु सर्वतोभ्येषु सरसु च सरित्सु च ॥३॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह' भो द्विज । लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यंरुद्रशोभितम् ॥४॥
पञ्चास पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसतितम् । देवदानययक्षाणां भयं जनयते महत् ॥५॥
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किञ्चिस्तिताविह । अघस्तान्मुनिशार्दूला सर्वे नाशयते क्षणात् ॥६॥
ततो योजनविज्ञाना सहस्राणि क्षतानि च । निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥७॥
सर्वेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् । ततो दहति सदीप्तः' सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥८॥
प्रदीप्तोऽसौ महारोद्रः कल्पाग्निरिति संभ्रुतः । महाज्वालो महर्चिष्मान्संप्रदीप्तमहास्वन ॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा । जलोत्थं चावहत्पूर्णं सत्सुरासुरमानुषम् ॥१०॥

अध्याय ५२

मार्कण्डेयमुनि का वटवृक्ष-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—श्रेष्ठ मुनिगण । जब कल्पान्त में महानाशप्रारम्भ हुआ गया तब सूर्य चन्द्र नष्ट हो गए वायु, स्यावर, जगम सभी विनष्ट हो गए । प्रलय-सूर्य आकाश में कमबल लगे, प्रचण्ड मेघ गर्जन लगे बार-बार बिजली गिरने से तट-पर्वत टूट फूट गए महाभयंकर उल्कापात में सारा ससार भस्म हो गया सर, सरिता और समुद्र का जल सूख गया ॥१-३॥ इसने बाद विप्रवृन्द । वामु के साथ संवर्तक अग्नि (बारह) सूर्यो में शीमन लक्ष्मी में प्रविष्ट हुआ ॥४॥ वहाँ वह नाश सीला समाप्त कर पृथ्वी का पतना हुआ रमान्त लक्ष्मी में पहुँचा त्रिमे देव कर देव, दानव, यक्ष सभी भय-वस्तु हो गए ॥५॥ नगर्क' को जला कर पृथ्वी और रसातल में जा कुछ या सब धातु भर में जला डाला ॥६॥ तदनन्तर क्षीप्रता से चलन वाला वह वायु और संवर्तक अग्नि बीस हजार बीस बीस योजन (वाइस हजार योजन) में फँस कर जलने लगे । ॥७॥ इस अग्नि प्रभु न देव-असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षसा सहित सम्पूर्ण ससार को जला डाला ॥८॥ इस प्रकार प्रचण्ड, प्रदीप्त कल्पाग्नि नाश से प्रसिद्ध उस अग्नि ने क्षीप्र ही मुद्र, असुर तथा मनुष्या से युक्त इस त्रिका को भस्म कर दिया । उत्तरी लगते बड़ी भयंकर और व्यापक थी । ज्वाला प्रचण्ड थी । उससे घोर ताप हो रहे थे । वह बराही सूर्य के समान, अपन तेज से

एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे । ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥११॥
 एकः संतिष्ठते विप्रा भार्कण्डेयेति विधुतः । मोहपार्शेनिबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः ॥१२॥
 स दृष्ट्वा तं महावर्द्धं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । तृष्णातः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥१३॥
 बभ्राम पृथिवीं सर्वां कादिशीको^१ विचिन्तनः । त्रातारं नाधिमच्छन्वं इतश्चेतश्च धावति ॥१४॥
 न लभे चतुर्वा शर्मं यत्र विश्राम्यता द्विजाः । करोमि किं जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥१५॥
 कथं पश्यामि^२ तं देवं पुरुषेशं सनातनम् । इति संचितयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥१६॥
 प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम् । पुरपेशमिति स्थितं वटराजं सनातनम् ॥१७॥
 स्वरायुवसो मुनिश्चासौ न्यग्रोधस्यान्तिकं ययौ । आसाद्य तं मुनिधेः ठास्तस्य मूले समाविशत् ॥१८॥
 न कालान्निभयं तत्र न जोङ्गारप्रवर्यणम् । न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनिस्तथा ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे भार्कण्डेयेन
 वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

स्वयं जलता हुआ सा जान पड़ता था ॥१-१०॥ ऐसे महाघोर, दारुण प्रलयकाल में, विप्रगण ! परम धर्मात्मा, ध्यान योग में लीन रहने वाले केवल भार्कण्डेय नामक ऋषि बच गए थे । उनकी इन्द्रियां मूल-न्यास से व्याकुल हो रही थी, वह माह-बन्धन से मुक्त होते हुए भी माह-बन्धन से बंधे थे ॥११-१२॥ उस समय उस महान् अग्नि को देखते ही उनके कण्ठ, ओंठ और तालु मूल गए, भय से वे विह्वल हो गए और भूयःप्यास के कारण उनके पैर सीधे न पड़ते थे ॥१३॥ वे चेतना-शून्य, दिशा-ज्ञान रहित हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे, वही कोई रखत न पाकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥१४॥ विप्रवृन्द ! वह जहाँ वही गए उनके मुख नहीं भिला । “क्या करे नहीं समझ पाता कि किसी कारण से जाऊँ ॥१५॥ किस प्रकार सनातन पुरातन देव का देख पाऊँ” इस प्रकार एकाग्र भाव से सनातन देव भगवान् का स्मरण करने लगे ॥१६॥ इतने ही में महाप्रलय का कारण, पुरपेश नाम से प्रसिद्ध, भगवान् का दिव्य पद, सनातन वटराज (अस्यवट) उन्हें दिखायी पड़ा तो लपक कर दीप्रता से वे उस वट वृक्ष की ओर बढ़े । मुनिश्रेष्ठ ! उस वृक्ष के पास जाकर वे उसकी जड़ में घुस गए । वही न मृत्यु का भय था, न ता प्रलय अग्नि की ज्वालायें अगार बरसा रही थी न तो संवर्तन (अग्नि) अथवा वज्र की ही बर्षा पड़ने लगी थी ॥१७-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुरुष ने स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में भार्कण्डेय
 का वटदर्शन नामक वाक्यवाच्य अध्याय समाप्त ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

ततो गजकुलप्रस्थास्तडिन्मालाविभूषिताः । समुत्तस्युर्महाभेषा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥१॥
 केचिन्नोलोत्पलश्यामाः केचिन्कुमुदसंनिभाः । केचिरिक्ञ्जलसंकाशाः केचित्पिताः ५धोधराः ॥२॥
 केचिद्धरिततंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा । केचित्कमलपत्राभाः केचिद्विङ्गुसंनिभाः ॥३॥
 केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमा । केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥४॥
 विद्युन्मालापिन्दाङ्गाः समुत्तस्युर्महाभेषाः । घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥५॥
 ततो जलधराः सर्वे समावृष्य भस्तलम् । संरियं पृथिवीं सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥६॥
 आपुरिता दिशः सर्वाः सलिलोद्यपरिल्लुताः । ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः ॥७॥
 सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिना । वर्षमाणा महातोयं पुरयन्तो वसुंधराम् ॥८॥
 सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम् । ततो द्वादश वर्षाणि पयोदाः समुपलब्धे ॥९॥
 पाराभिः पुरयन्तो च चोद्यमाना महात्मना । ततः समुद्राः स्वां बेलामतिक्रामन्ति भो द्विजा ॥१०॥

अध्याय ५३

मार्कण्डेयमुनि का प्रलय-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर आकाश में गजकुल नाम के विचित्र महाभेष प्रकट हुए, जिनके बीच विजयी चमक रही थी ॥१॥ उनमें कुछ नीलचमल के समान स्यामवर्ण के, कुछ कुमुद के समान, कुछ कमल-केसर के समान और कुछ पीत वर्ण के थे । कुछ बादल हरे-हरे तथा कुछ कोमा के अण्डे के समान, कुछ कमल-पत्र के समान एवं कुछ विंगुल वर्ण के समान थे ॥२-३॥ विस्तार में कुछ तीरे बड़े-बड़े नगरा के समान विस्तीर्ण तो कुछ हिमालय के समान विस्तार थे, कुछ तो काजल के समान अत्यन्त काले, कुछ मरकत मणि के समान प्रभापूर्ण थे ॥४॥ ऐसे भयंकर आकार वाले भेष—जिनके मध्य विजयी बार-बार चमक रही थी, जा भयंकर गर्जना कर रहे थे—आकाश मण्डल में चारा ओर फैल गये । पितामह ब्रह्मा की प्रेरणा से उन मेघा ने पर्वत-वना सहित पृथ्वी को आच्छादित कर लिया । सम्पूर्ण दिनार्ये जल प्रवाह से व्याप्त हो गईं । अष्ट मुनिवृन्द ! उन घोर बादला ने जल से चारो ओर भर दिया । अत्यधिक जल से सारी पृथ्वी परिपूर्ण हो गई जिससे पृथ्वीतल का वह अत्यन्त मय-कर, अत्यापन्न और प्रचण्डाग्नि शान्त हो गया ॥ ब्रह्मा की प्रेरणा से इस प्रकार चारह वर्षों तक निरन्तर वर्षा होती रही ॥५-९॥ मूसलपार वर्षा से सभी समुद्र लबालब भर गए और जल की अधिकता से अपनी तट-सीमा का

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति । सर्वतः सुमहाभ्रन्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥११॥
 संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः । ततस्तं मातुं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमः ॥१२॥
 आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः । तस्मिन्नेकाण्वे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१३॥
 नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते । ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 ददर्श चक्षुःश्रोत्रं जलपूर्णं वसुधराम् । नापश्यत्तं वटं नीर्वो न दिगादि न भास्करम् ॥१५॥
 न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम् । तस्मिन्नेकाण्वे घोरे तमोभूते निराश्रये ॥१६॥
 निमज्जन्तस्तदा विप्राः संतर्तुमुपचक्रमे । बभ्रन्मासौ मुनिश्चाऽऽप्तं इतश्चेतश्च संलब्धम् ॥१७॥
 निमज्जन्तस्तदा विप्रास्त्रातारं नाधिमच्छति । एवं तं बिह्वलं वृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः ॥
 प्रोवाच मुनिशार्दूलस्तदा ध्यानेन तोषितः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्तत्रयमनुव्रत । आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं स्वं मार्कण्डेय भगान्तिकम् ॥१९॥
 मा स्वयंैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि भगप्रतः । मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥२०॥

उल्लस्य करने लगे ॥१०॥ जिससे सभी पर्वत गल गए, पृथ्वी जलमग्न हो गई। पुन वे उपद्रवी, इधर उधर घूमने वाले आकाशवापी मेघ वायु-वेग से टक्कर खाकर स्वयं नष्ट हो गए ॥११॥ मुनिवर ! उस घोर वायु की भी आदि कमल के आधार भगवान् विष्णु पीकर जल घर महासागर में, जब कि उस समय स्थावर जगम देव असुर यक्ष राक्षस सभी नष्ट हो चुके थे, सं गए। इधर वने-पर्वे मार्कण्डेय मुनि ने जब भगवान् के ध्यान के बाद आँखें खोलीं तब बैजल जल से भरी हुई पृथ्वी दिखाई दी, न बट, न पृथ्वी, यहाँ तक कि दिशाये, सूर्य चन्द्र अग्नि वायु तथा देव, राक्षस, नाग कोई भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता था ॥१२-१५॥ उस घोर अन्धकारमय, आश्रयहीन महासमुद्र में जब मार्कण्डेय मुनि डूबने लगे तब उसको पार करने के उपाय सोचने लगे। कोई रास्ता न पाकर दुःखी हो, उधर-उधर जलप्रवाह में भटकते हुए घूमन लग। विप्रवर ! उस समय मुनि को कोई रास्ता न मिलने से वे असहाय होकर डूबने लगे। मुनिशार्दूल ! उनक, इस प्रकार बिह्वल देख कर भगवान् उनकी ध्यान-भावना से प्रसन्न होकर वृथा करने के ॥१६-१८॥

श्रीभगवानुवाच—'वत्स ! सुव्रत ! मनोरक्षक ! तुम बालक हो, मनुज हो। इस समय यह गए हो। आओ मार्कण्डेय ! शीघ्र भरे समीप आओ। तुम इस प्रकार मत डरो, जब मेरे समीप आ गए हो। धीरे मार्कण्डेय मनि ! तुम श्रम में दुःखी बालक जान पड़ते हो' ॥१९-२०॥

१ वः ऽप्युद्रितः ०। २ वः स ०रे समीपूने निराश्रये। न० ३ वः ०रमानवम्। ४ वः सल्लवे।
 ५ स ०रस प्रीतोऽस्मि बा०। ६ स शीघ्रेण मा०।

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनि परमकोपितः । उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव । बहुवर्षसहस्राय धर्पयन्निव मे वपुः ॥२२॥
न ह्येव समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः । मा ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो भगवत् स्वयन्तजोवितः । मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच ॥

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनिः । किं स्वप्नोऽयं मया ब्रुष्टं किंवा मोहोऽयमागतः ॥२५॥
इत्य चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना बुद्धिर्बलवती । प्रजामि शरणं देवे भवस्याऽहं पुरपोतमम् ॥२६॥
स गत्वा शरणं देवे मुनिस्तद्गतमानसः । यदर्थं तं वद भूयो विशाल सलिलोपरि ॥२७॥
शास्त्रायां तस्य सौवर्णं विस्तीर्णायो महाद्भुतम् । तस्मिन् विषयपर्यङ्कुरितं विश्वकर्मा ॥२८॥
धन्वंतरीरचितं मणिबिद्ममशाभितम् । पद्मरागादिभिर्जुष्टं रत्नैरग्नैरलङ्कृतम् ॥२९॥
मानस्तिरणसवीतं नानारत्नोपशोभितम् । नानावचनं समावृतं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—विष्णु की उन बातों को सुन कर मुनि तो पहले अत्यन्त क्रुपित हुए परन्तु शीघ्र ही विस्मित हो बाले—॥२१॥

मार्कण्डेय ने कहा—कौन है यह जो मेरी विरसचित तपस्या और मेरे इस दाघजीवी शरीर की उपेक्षा करता हुआ सा मेरा नाम लेकर युक्त रहा है। ऐसा सिद्धाचार तो देवों में भी नहीं देखा है मुन्य देवेश ब्रह्मा भी दीर्घायु इस नाम से पुकारते हैं। यह कौन है जिसका जीवन का मोह नहीं जा आज तपोमाकी मुझ मार्कण्डेय' ऐसा कह कर मेरे द्वारा मृत्यु पाना चाहता है ॥२२-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—0सा कह कर विप्रगण। उस समय मुनि चिन्ताग्रस्त हो गए। क्या मैंने यह स्वप्न देखा है अथवा यह मोहता नहीं है क्या ॥२५॥ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनके हृदय में मैं अवश्य मन्त्रि पूर्वक मगवान की शरण चला एही बुद्धिवाशिनी सदबुद्धि उत्पन्न हो गई ॥२६॥ मुनि इस प्रकार अनन्य भाव से मगवान की शरण में गए। पुन उन्होंने जल के ऊपर विशाल वट वृक्ष को देखा जिसकी विस्तृत शाखा पर विषवर्मा द्वारा निर्मित परम अद्भुत शास्त्रागमय विषय पत्र था जो वज्र और वैद्य मणि का बना था जिसमें विद्म पद्मराग आदि मणि जड़ हुए थे जो मित्र मित्र रत्ना से अलङ्कृत और नाना प्रकार के विद्योती से सुसज्जित था ॥२७-२९॥ इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रभा मण्डल से सुशोभित धर्म्या पर कराडो सूर्य के समान प्रकाशमान अत्यन्त तज्ज्वल

१ एत वपुः २ ग व तेजसा ३ न ४ क ५ वपुःप्रपातः ६ क ७ ५ ख किं सती मां समाह्वय किं वा भगवन् ८ ६ क ख दुःसहः ९ क ख विष्णुः

तत्सोपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम् । सूर्यकोटिप्रतीकाक्षं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥३१॥
 'चतुर्भुजं सुन्दराङ्ग पद्मपत्रायतेक्षणम् । श्रीवत्सवक्षस देव शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२॥
 वनमालावृत्तेरत्नं दिव्यकुण्डलधारिणम् । हारभाराफितग्रीव दिव्यरत्नविभूषितम् ॥३३॥
 दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचन । शोभाञ्जिततनुर्देव प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो चक्राणवे घोरे विनष्टे सत्तराचरे । कथमेको ह्ययं बालस्तिष्ठत्यत्र 'सुनिर्भयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूत भयं भविष्यं च जानन्नपि महामुनि । न बुबोध तदा देव मायया तस्य माहितः ॥३६॥
 यदा न बुबुधे धनं तदा' खेदादुवाच ह ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

यथा मे तपसो धीर्यं यथा ज्ञानं यथा क्रिया । यथा मे जीवितं वीर्यं यथा 'मानुष्यमेव च ॥३७॥
 योऽहं सप्त न जानामि 'यमं'ष्टु दिव्यलोकम् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

एवं सच्चिन्मयिब्र- प्लवमानो विद्येतनः । प्राणायं विहृत्तलश्यासौ निधेव गतवास्तदा ॥३९॥

कृष्ण भगवान् कः बाल रूप मे बैठे हुए देखा, जिसके चार भुजाएँ थी, मनाहर अय, नेत्र कमल के समान बड़े थे, वक्षस्फल पर श्रीवत्स, हाथा मे शङ्ख, चक्र और गदा थी, उस प्रदेश वनमाला से ढँका, कानी मे दिव्य कुण्डल और ग्रीवा मे हारावली लटक रही थी। इस प्रकार दिव्य रत्ना से सुशोभित देव को देखकर मुनि की आँखें आश्चर्य-चकित हु। गर्व, शरीर भर/माच हु गया। ये प्रणाम कर बहने लग-॥३०-३४॥

मार्कण्डेय बोले—अहा! इस चराचर मूल्य धार सागर मे कैसे यह निर्भय बालक रह रहा है ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ब्रह्मामुनि उस देव की आया से माहित होने के कारण उस विषय मे कुछ नहीं जान सके यद्यपि वे जून, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता थे। जब वे देव के विषय मे कुछ न जान सके तब दुःखी होकर व बोले ३६॥

मार्कण्डेय ने कहा—मरी तपस्या, ज्ञान और शक्ति व्यर्थ हैं, सारी क्रियायें विफल हैं, भरा यह दीर्घ जीवन यहाँ तक कि मानव जन्म भी व्यर्थ है ज। आज मैं इस दिव्य पत्र पर माय बालक को नहीं जान पा रहा हूँ ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्ता मग्न मुनि चेतना गून्ग-न हा कर, दहर उपर जलप्रवाह मे मटकने लगे, रसा के लिए प्यासुक्ता बदन लगी, अन्त मे असमर्थता व कारण दुःखी हा गए। इससे अन्तर प्रमातृत्व के

ततो बालाकंसंकाशं स्वमहिम्ना व्यवस्थितम् । सर्वतेजोमयं विप्रान् शशकाभिर्वीक्षितुम् ॥४०॥
वृष्ट्वा तं मुनिमायान्त ॥ बालः प्रहसन्निव । प्रोवाच मुनिशार्दूलस्तदा मेघौघनिस्त्वन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

धरस जानामि श्रान्तं त्वा प्राणार्थं मामुपस्थितम् । शरीरं विश मे क्षिप्रं विधामस्ते मयोदितः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स धर्मेन तस्य किञ्चिन्नोवाच मोहितः । विवेश वदनं तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभूषिसंवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तम । बदर्शं पृथर्वीं कृत्स्नां नानाजनपदं वृताम् ॥१॥

सूर्य के समान, तेजस्वी, महामहिमाशाली उस बालक को देखने में भी असमर्थ हो गए । मुनिवर्यवृन्द । मुनि को अपनी ओर आता देख कर, हैसता हुआ सा वह बालक मेघ के समान गम्भीर स्वर से बोल उठा ॥३९-४१॥

भगवान् बोले—धरस । मैं जानता हूँ कि तुम थक गए हो और अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आए हो । शीघ्र ही मेरे शरीर में घुस जाओ, यही तुम्हारे लिए सुख का स्थान है जिसे मैंने तुम्हें बता दिया ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की इन बातों ने सुन कर मुनि मोहित हो गए, कुछ भी न कह सके, और विवेश हो उनके (विवृत) कले हुए मुख में घुस गए ॥४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का प्रलय दर्शननामक तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर में घुसकर मार्कण्डेय मुनि ने अनेक जनपदों से युक्त संपूर्ण पृथ्वी को

१ स्वमहिम्नि । २ स •साकः अधी० । ३ न स त्वाप्राणाभिनम्० । ४ क विपयस्ते ।

लवणेशसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलीदधीन् । ददशं तान्समुद्रांश्च जम्बू प्लक्षं च शात्मलम् ॥२॥
 कुशं श्लोञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददशं सः । भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान् ॥३॥
 मेहं च सर्वरत्नाद्यम्पदयत्कनकाचलम् । नानारत्नान्वितः शृङ्गभूषितं बहुवन्दरम् ॥४॥
 नानामृनिजनाकोणं नानावक्षवनाकुलम् । नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥५॥
 व्याघ्रः सिंहवराहश्च चामरमंहिपेगजेः । मृगः शास्त्रामृगश्चाप्यभूषितं सुमनोहरम् ॥६॥
 शक्राद्यैर्विबिधैर्देवैः सिद्धचारणपद्मनः । मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृतेश्चाग्नयः सुरारत्यः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेहं श्रीमत्तमपदयन्मुनिसत्तमः । पर्यटन्त तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे ॥८॥
 हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम् । श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम् ॥९॥
 महेंद्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथाऽर्बुदम् । सह्यं च शक्तिमान्तं च मेनाकं वक्रपर्वतम् ॥१०॥
 एताश्चान्याश्च बहुवो यावन्तः पृथिवीधराः । ततस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्भस्मभूषितान् ॥११॥
 क्रुशक्षेत्रं च पाञ्चजालान्मत्स्यगन्धमादयः । बाह्लीकान्मृगशरसेनश्च काश्मीरंस्तङ्गणान्खसाम् ॥१२॥
 पावंतीपाकिराताश्च कर्णप्रावरणामकम् । अन्त्यजान्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१३॥
 मृगाञ्छालामृगान्सिंहान्वराहान्सूमराञ्छशान् । गजश्चान्यास्तथा सत्त्वान्तोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१४॥

देवा ॥१॥ वही लवण, इक्षु, सुग, घृत, दुग्ध और जल के सागरों को जम्बू (वामन), प्लक्ष (पाण्ड), शात्मली (सेमर), कुश, श्लो, शाक, पुष्कर नामक द्वीपों को भारत आदि वर्णों को एवं सभी पर्वतों और सभी रत्नों से युक्त मय नामक सुवर्णपर्वत पर्वत व देवा । जिसकी चोटियाँ अनेक रत्नों से विभूषित थी जिसकी बन्दरायें अनेक मुनिया से व्याप्त थी ॥२-४॥ जहाँ मित्र मित्रप्रकार के वृक्षा से सुगन्धित वन थे जहाँ अनेक आश्चर्यजनक दृश्योत्तमा विभिन्न जीवा से युक्त था, जहाँ बाघ, सिंह, घुंजर, चामर (चमरी गी), महिष, शमी, भृग, बन्दर एवं अन्य विविध जीवा से सुगन्धित सबसे मन के प्रसन्न कर रहा था, जहाँ इन्द्र आदि विविध देवता, सिद्ध, चारण, पद्मन, मुनि, यक्ष एवं अप्सरायें निवास करती थी । इसी प्रकार अनेकी देव मन्दिरों से बहु मेघ पर्वत सुगन्धित था ॥५-७॥ इस प्रकार अतिगोमागाली सुन्दर पर्वत व देवते के बाद मुनि उस बालक के उदर-अन्दर में घूमने लगे ॥८॥ श्रेष्ठ मुनिगण ! वही मत्स्यपर्वत के अतिरिक्त हिमाद्र्य, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील कैलास, मन्दरा-बल, महेंद्र, मलय विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शक्तिमान् मेनाक, वक्र आदि पर्वतों और अन्त्यान रत्नों से अलङ्कृत पहाड़ों का उन्हाट देखा ॥९-११॥ इसके बाद उस बालक के उदर में क्रुशक्षेत्र, पाञ्चजाल, मत्स्य, मृग, कैश्य, बाह्लीक, मृगसेन, काश्मीर, तमण, खस आदि देशों और वहाँ के निवासियों एवं पहाड़ी, चिपल, कर्ण प्रावरण मरुदेगवासियों, आर्यजा और अर्याव्य जातिवों के लोगों को भी देखा । ऐसे ही मृग, बन्दर, सिंह, वराह, मृगर गण (सरहे), गज आदि अन्य जीवा का तथा समस्त नीचों, गाँवा, नगर, वृषि, घोरक्षा, व्यापार, वन विषय

पृथिव्यां यानि तूतीर्यानि ग्रामाश्च नगराणि च । कृषिगोरोसवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा ॥१५॥
 नाकादीन्विबुधाच्छ्रेष्ठास्तथाऽन्याश्च दिवौकसः । गन्धर्वाप्सरसो यक्षानूर्वाश्चैव सनातिनान् ॥१६॥
 देवपदानवसंघादिव नागाश्च भुनिसत्तमाः । सिंहिकातनयाश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः ॥१७॥
 यत्किञ्चित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम् । अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 अथवा किं बह्वतेन कीर्तितेन पुनः पुनः । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् ॥१९॥
 भूलोकं च भुधलोकं स्वलोकं च द्विजोत्तमाः । महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा ॥२०॥
 पाताल सुतलं चैव वितलं च रसातलम् । महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥२१॥
 अध्याहृतं गतिस्तस्य तदाऽभूद्विजसत्तमाः । प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत् ॥२२॥
 भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिवं द्विजाः । नातं जगाम देहस्य तस्य विष्णोः कदाचन ॥२३॥
 यदाऽतो माऽऽतदन्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः । तदा तं वरदं देव शरणं गतवान्मुनिः ॥२४॥
 ततोऽसौ सहसा विभ्रा वायुवेगेन निःसृतः । महात्मनो मुखात्तस्य त्रिवृतात्पुरुषस्य सः ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाश-
 तमोऽध्यायः ॥५४॥

आदि कर्मी को भी वही देखा ॥१२ १५॥ इन्द्र आदि देवता एवं अन्य स्वर्गलोकवासी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सनातन
 ऋषिगण ईत्येकान्त-समूह नाम सिंहिका-युग्म (शङ्ख-वेधु) और अन्य जितने देवशत्रु हैं उन सबको यहाँ तक कि
 इस सप्ताह में सभी पूर्व परिचित चराचर वः उस बालक के उदरे में उन्होंने देखा ॥१६ १८॥ अथवा नाम गिनाने
 से क्या लाभ ? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (ऊँट पदाय तक) चर अचर जो कुछ है उन सब को भू, भुव, स्व
 मह जन तप, सत्य आदि लोका अतल, वितल तथा पाताल, सुतल, वितल रसातल, महातल पर्यन्त ब्रह्माण्ड को
 उस मुनि ने उस बालक के उदरे में देखा ॥१९ २१॥ श्रेष्ठब्राह्मणवर्ग । उस समय उस देव के प्रभाव से मुनि को
 अध्याहृत (बर्तन न करने वाला) गति प्राप्त हो गई । उनकी स्मरण शक्ति भी लुप्त नहीं हुई ॥२२॥ द्विजवर्मन् । उदरस्य
 सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भ्रमकर लगाते हुए मार्कण्डेयमुनि किसी भी प्रकार से भगवान् विष्णु के शरीर का अन्त न पा
 सके ॥२३॥ द्विजगण । जब मुनि ने उस देव के शरीर का अन्त न पाया तब विषय होकर वह भनोरपदाता देव की
 शरण में गये ॥२४॥ और परमात्मा के फँसे हुए मुख से वाम के वेग के समान एकाएक बाहर निकल आये ॥२५॥

श्रीः प्रह्लादमहापुराण मे स्वयम् और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे मार्कण्डेय का भगवत्कुक्षि-

परिवर्तन नामक चौवनवा अध्याय समाप्त ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स निष्क्रम्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा । पुनश्चेकाणं वामुर्वीमपश्यज्जनर्वाजिताम् ॥१॥
 पूर्वदृष्टं च त देवं ददर्श शिशुरपिणम् । शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥२॥
 श्रीवत्सवत्सवं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३॥
 सोऽपि तं मुनिमावाप्तं धृष्टमानमघेतनम् । दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्कान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

कश्चित्स्थयोचित वरस विभान्त च मनोदरे । अममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि ॥५॥
 भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ भ्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः । तेन त्वामुपकाराय सभाये पश्य मामिह ॥६॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन तस्य संप्रहृष्टतनूदहः । ददर्श तं सुदुष्प्रेक्षं रत्नेर्दिव्यैरलंकृतम् ॥७॥
 प्रसन्ना निर्मला वृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः । प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥८॥

अध्याय ५५

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति

ब्रह्मा बोले—उस बालक ने उदर से निकल कर मुनि ने पुन जनमूय, समुद्रमय पृथ्वी देली। सामने बड़ी पहले का देखा हुआ बालरूपधारी देवता दिखाई दिया, जो वटवृक्ष की शाखा पर अवलम्बित पालने पर लेटा हुआ था। श्रीवत्स से मुशामित वक्षस्थल, कमल ने समान बड़े बट नेत्र, चार भुजायें और पीताम्बर से मुशामित उमका धारी था। ऐसा वह दिव्य बालक ससार का समेट कर स्थित था। अपने मुख से बाहर निकले हुए और जलप्रवाह म भटवले दृष्टे चेतनारहित मुनि का अपनी ओर आता देख कर मुस्कराता वह बालक बोला ॥१५॥

श्री भगवान् बोले—वरस ! मेरे उदर भ तुमने निवास किया। थक गये हो क्या? घूम घूमकर तुमने शीत-सा आश्रयजनक दृश्य देखा है? मुनिश्रेष्ठ ! तुम मेरे भक्त हो, आश्रित हो, थक गये हो, तुम्हारे हित के लिए मैं तुमसे बड़ रहा हूँ। मेरा यह रूप देखो ॥१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की यह बात सुनकर मुनि के राम शीम पुलकित हो उठे, उन्होंने दिव्य-रत्नालङ्कार से अलंकृत, कठिनाई से देखने योग्य भगवान् को देखा। भगवान् की श्रृंखला ने द्विजवर्ग। रागभर मही मुनि की दृष्टि

रक्ताङ्गुलितलो पादो ततस्तस्य सुरार्चितो । प्रणम्य शिरसा विप्रा हृषगदगदया गिरा ॥१॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुन पुन । दृष्ट्वा स परमात्मान सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगताय मायाबाल्वपुर्धर । ब्राहि मा स्वरूपप्राप्त दु खित शरणागतम् ॥११॥
सतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सवर्ताख्येन बह्निना । अङ्गारव्यभीत च ब्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१२॥
शोषितश्च । प्रचण्डेन वायुना जगदामुना । बिह्वलोऽह तथा श्रान्तस्त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१३॥
तापितश्च तशामास्य (?) प्रलयावर्तकादिभि । न शान्तिमधिगच्छामि ब्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१४॥
तृपितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दु खितश्च जयत्पते । प्रातार नात्र पश्यामि ब्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१५॥
अस्मिन्नेकाण्ये घोरे विनष्टे सचराचरे । न चा तमधिगच्छामि ब्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१६॥
तयोदरे च देवेश मया दृष्ट चराचरम् । विस्मितोऽह विषण्णश्च ब्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१७॥
ससारोऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम । प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥१८॥
प्रसीद विबुधा नाथ प्रसीद विबुधालय । प्रसीद सबलोकेश जगत्कारणकारण ॥१९॥

पुन प्रसन्न निमल और नवीन हो गई । 'हूँ' के अनन्तर उनमें रक्तवर्ण अगुलिय और तलवों से सुगोमित चरणों पर जिनका पूजा में देवगण सदा निरत रहते हैं शिर रखकर प्रणाम किया । परमात्मा के उस मनोहर रूप को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्यमग्न हो गये । पुन हाथ जोड़कर बार-बार भगवान् को देखते हुए मुनि गद गद वाणी से स्तुति करने लगे ॥७-१०॥

मार्कण्डेय बोले—देवाधिदेव । ससार में स्वामी । माया से बालरूप धारण करने वाले । सुन्दर कमल के समान नेत्र वाले । शरण में आये हुए मुझ दुःखा व रक्षा कीजिये ॥११॥ सुरश्रेष्ठ । मैं इस सबलतानामक अग्नि से जला जा रहा हूँ । पुरुषोत्तम । अंगार की वर्षों से भयमात मेरी रक्षा कीजिये । ॥१२॥ ससार में प्राणाधार आज मैं इस ज्वालामय वायु से मैं सुख गया हूँ और भय से व्याकुल होकर बक गया हूँ पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१३॥ मैं प्रलयकारी आवर्तक आग्नेय सूर्य से मैं जल गया हूँ । किसी प्रकार मुझे शांती नहीं मिल रही है पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१४॥ जगत्पते । मैं व्यासा हूँ भूखा हूँ अति दुःखी हूँ इस ससार में किसी के भी अपना रक्षण नहीं देख रहा हूँ हे पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१५॥ इस भयकर घट एकांत सागर में जबकि चराचर विनष्ट हो गया है मैं अत नहीं पा रहा हूँ हे पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१६॥ देवेश । आपके ऊपर मैंने चराचर-व्याप्त विषय देखा है । इसलिये मैं आश्चर्यचकित हूँ सिद्ध हूँ पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१७॥ पुरुषोत्तम । इस अवलम्बहीन ससार में मुझ आश्रयहीन पर प्रसन्न हो देवश्रेष्ठ । प्रसन्न हो देवप्रिय । प्रसन्न हो ॥१८॥ देवा न स्वामी । देवा के एकमात्र सहायक । प्रसन्न हो । अखिल लोक के स्वामी । जगत के कारण

प्रसीद सर्वकृददेव' प्रसीद मम भूधर। प्रसीद' सलिलावास' प्रसीद मधुसूदन॥२०॥
 प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन॥२१॥
 प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन॥२२॥
 प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय'। एवं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः॥२३॥
 एवं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव व। त्वं बुद्धिः प्रकृतिश्चैव 'सत्त्वाद्यास्तव' जगत्पते'॥२४॥
 पुरुषस्त्व 'जगद्वायो' पुरुषादपि चोत्तमः। त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि जगदाद्या विपद्याः प्रभो॥२५॥
 एवं द्विपालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सर्वक्षिणा'। त्वमिन्द्रस्त्व शिवो देवत्वं हविरत्वं हुताशनः॥२६॥
 एवं यमः पितुराद्देव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्। वरुणस्त्वमपा नाथ' त्वं 'वायुस्त्वं धनेश्वरः॥२७॥
 त्वमीशानस्त्वमनन्तराक्षं गणेशश्च यक्षमुखः। अश्वस्त्यं तथा रुद्रास्त्वमारिष्टाश्च खेचराः॥२८॥
 शानवास्त्यं तथा यक्षारत्नदैत्याः समस्तगुणाः। सिद्धाश्चास्तरसो नागा गन्धर्वाश्च संचारणाः॥२९॥
 पितरो बालखिल्याश्च प्रजानां पतयोऽस्त्युत। मनुयस्त्वमुपि गणारस्त्वमश्विनौ निशाचराः॥३०॥
 अन्धाश्च जातयस्त्यं हि यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम्। रुक्माश्च बहुनोषतेन ब्रह्मादिस्तम्बोच्चरम्॥३१॥
 भूतं भयं भविष्यं च त्वं जगत्संचराचरम्। यत्ते रूप परं देव कूटस्थमवलं ध्रुवम्॥३२॥

के मी वारण। प्रसन्न हो॥१९॥ सबके कर्ता देव। पृथ्वी के पालक। मेरे उपर हुआ करे। जलशायी। मधुसूदन। प्रसन्न हो॥२०॥ कमलाकांत। देवेश्वर। प्रसन्न हो। वरुण, केशी और अरिष्टाशुर के संहारक। मुझ पर प्रसन्न हो।॥२१॥ कृष्ण। दैत्या के नाशक। दानवों के संहारक। प्रसन्न हो। मथुरावासी। यदुनन्दन कृष्ण। आप प्रसन्न हो जायें॥२२॥ इन्द्र के लघुभ्राता। वरदाता। अश्व। आप मुझ पर प्रसन्न हो। देव। तुम मही ही, जल ही, तुम्हीं अग्नि और वायु भी हो।॥२३॥ तुम आकाश मन और अहंकार भी हो, जगत्पते। तुम बुद्धि, प्रकृति, और सत्त्व आदि गुण हो॥२४॥ तुम समार म व्याप्त करने वाले पुरुष (अक्षर ब्रह्म) मे मी उत्तम पुरुष (प्रेमात्मन) हो। प्रभो। तुम्हीं ममी इन्द्रियाँ और चनेके विषय शब्द, स्पर्श, रस आदि मा हो॥२५॥ तुम वरुण दिक्पाल, धर्म, वेद और क्षिणापुत्र (उत्तम) यज्ञ हो, इन्द्र, शिव, देव, हवि यहाँ तक कि हुताशन (अग्नि) भी तुम्हीं हो॥२६॥ देव। तुम पितरों के अधिपति यम हो, पाशना के राजा भी स्वयं तुम्हीं हो। जल के रक्षार्थ वरुण, वायु, धनेश्वर कुबेर तुम्हीं हो॥२७॥ तुम इशान (शिव) अनन्त, गणेश और कालिकेश भी हो। तुम वसु, तथा रुद्र हो और अश्विनाचर, आदित्य भी हो॥२८॥ तुम दानव, यक्ष तथा मरुद्गण सहित दैत्य हो। सिद्ध, अस्तरायें, नाग, चारणा सहित गन्धर्व, य सभी तुम्हीं हो॥२९॥ अच्युत। पितर, बालखिल्य (ऋषि) प्रजापति के पति (प्रजापति), मनि, ऋषिगण, अश्विन, अथवा निशाचर तुम्हीं हो॥३०॥ जो कुछ जीव ताम से प्रसिद्ध दूसरे जातियों हैं सभी तुम हो अथवा बहुत अधिक वर्णन से क्या प्रयाजन? ब्रह्मा से लेकर रुक्म (टूट) पर्यंत दिखाई पड़ने वाले मूत, मय्य भविष्यत् संचराचर जगत् तुम्हारे ही रूप हैं॥३१॥ देव। जो तुम्हारा कूटस्थ, अवल,

१ स सर्वदेवता। २ व ० द मे श्रीनिवास। ३ स कमलावास। ४ व ० दायव। त्व। ५ व सत्य त्व व ज०। ६ स जगत्प्रभो। ७ स ० ते। जगन्स्रष्टा जगदीश पु०। ८ व जगदीश। ९ स ० व व०। १० स ० स्य वन्देवता। त्व०।

ग्रहाद्यास्तत्र जानन्ति फयमन्येऽल्पमेधसः । देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृतः परः ॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः । त्वमाकाशः परः शान्तो अजरस्त्वं विभुरव्ययः ॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं फः शक्नोति निरञ्जनम् । स्तुतोऽसि यन्मया देव विकलेनाल्पचेतसा ॥३५॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे
भगवत्स्तवनरूपं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजा । प्रीतः प्रोवाच भगवान्मेधगम्भीरया गिरा ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिधेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते । इदामि सर्वं विप्र्ये मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥२॥

ध्रुव, पर (उत्कृष्ट निरञ्जन) रूप है उसको तो ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, दूसरे बाकी बुद्धिवालों की तो कर्वा भी व्यर्थ है ॥३२३॥ देव । तुम शुद्ध स्वभाव वाल, नित्य और प्रकृति स परे हो । तुम अव्यय, शाश्वत (नित्य), अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, आकाश, पर (सर्वव्यापक) और शान्त तथा अजर, व्यापक, अव्यय भी हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार निरञ्जन, निर्गुण तुम्हारी कौन स्तुति कर सकता है, जो कुछ विकल, अल्पबुद्धि भेन तुम्हारा स्तुति की है, देवदेवेश, अव्यय । वह तुमम क्षमा के योग्य है । अर्थात् उसका क्षमा कर दो ॥३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण का भगवत्स्तवन नामक पंचपनवी अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

विस्तार से विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद-कथन

ब्रह्मा बोले—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर हे ब्राह्मण बग ! अत्यन्त प्रसन्न भगवान् मेरे के समान गर्भीर बाणी से बोले—॥१॥

भगवान् ने उत्तर—मुनिधेष्ठ । अपनी मन कामना बनाओ ? विप्र्ये ! मैं तुम्हारे सभी मनारप पूर्ण करूंगा ॥२॥

१ स विद्वले ० २ व एव ।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन विप्रा 'शिशोस्तस्य महात्मन । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा माया यं तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहोयते ॥४॥

द्वृतमग्न शरीरेण सतत पर्य (रि) वर्तितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातु त्वामहमध्ययम् ॥५॥

इह भूत्वा शिशु साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाह्यातुमर्हसि ॥६॥

किमयं च जगत्सर्वं शरीरस्य तयाऽनघ । कियन्त च त्वया कालमिह स्पेयमरिदम ॥७॥

ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः । त्वत्त कमरूपप्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥

महदेतद्विगत्य च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः । साम्बयन्त तदा वाक्यमुवाच वदता धर ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामदेवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः । तव प्रीत्या प्रयक्ष्यामि यथेदं वित्तुजान्महम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! परमाह्मा गिणु की एम बातें मुनिकर अर्थात् प्रत्येक मुनि प्रभु में तत्पर होकर बोलें ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अन्य माया का जानना चाहता हूँ । देव ! आपके प्रसाद ॥ परी स्मृति कुल नहीं हुई है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपसे दूरतर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी पून पूनकर सब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपकी जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप सारे सत्त्व को उदरस्थ कर स्वयं गिणु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे करिये ॥६॥ निष्ठाप ! जिस प्रयाजन से सारा समार तुम्हारे दरीर में समाहित हो गया है ? सन्तुष्टन ! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारे महा निवास होगा ॥७॥ देव ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ सम्पूर्ण रूप में सब कुछ मुझसे कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अर्थात् भगव्य और अविनाश है । कमलनयन ! मैं यथाथ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमेश्वर तेजःपद भगवान् से कहा । तत्पश्चात् परमेश्वरी मुनि की आज्ञागत दन हुए भगवान् बोलें—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! जेवना की मुझसे यथाथ और पून रूप में नहीं जानने है । गिणु तुम्हारे प्रम

पितृभक्तोऽसि विप्रप्रे'मामेव शरण गत । ततो दृष्टोऽस्मिते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
 आपो नारा इति पुरा सज्ञाकर्म कृत मया । तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयन सदा ॥१२॥
 अहं नारायणो नाम प्रभव' शाश्वतोऽव्यय । विधाता सर्वभूताना सहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शश्वदवापि 'सुराधिप । अहं वैश्रवणो राजा यम 'प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
 अहं शिवश्च सोमश्च चन्द्रश्च' प्रजापति । अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
 अग्निरास्य क्षिति पावो च द्वादित्यो च लोचने । 'द्यौर्मूर्धा खदिश श्रोत्रेतयाऽऽय स्वेदसभवा ॥१६॥
 सदिश च नभ कायो वामुमनसि मे स्थित' । मया 'ऋतुशतं रिष्ट' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणं ॥१७॥
 यज्ञं ते वेदविदुषो भा वेद्यमजने स्थितम् । पृथिव्याक्षत्रियेन्द्राश्च पायिवा स्वर्गं कादृक्षिण ॥१८॥
 यजन्ते मा तया वेद्या स्वर्गं लोकजिणीष्व । चतु समुद्रपयन्ता मेहमन्दरभूषणम् ॥१९॥
 गेयो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुधराम्' । वाराह रूपमास्याय ममेव जगती पुरा ॥२०॥
 मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता । अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
 विबोध्यप समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम् । ब्रह्म वक्त्र भुजौ क्षत्रमूरु मे सश्रिता विशा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्राः^१ शिशोस्तस्य महात्मनः । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा मायां वै तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
 द्रुतमग्नः शरीरेण सततं पर्यं (रि) वर्तितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमप्ययम् ॥५॥
 इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाहयातुमर्हसि ॥६॥
 किमर्थं च जगत्सर्वं शरीररथं तवाऽनघ । कियन्तं च त्वया कालमिह स्येदमरिदम ॥७॥
 ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः । त्वत्त. कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
 महर्षेतेवचिन्त्यं च यदहं वृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त. स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः^२ । सान्त्वयन्त तवा^३ वाक्यमुवाच वदता वरः ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मा विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण^१ परमात्मनः शिशु की पत्नी वार्ते सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु ने तन्मय होकर बोले ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अज्ञाय माया का जानना चाहता हूँ । देवेश ! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपसे शरीर में प्रवेश कर मैंने अमी-अमी धूम-धूमकर सब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपको जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप सारे ससार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये ॥६॥ निष्पाप ! जिस प्रयोजन से सारा ससार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? शत्रुघ्न ! जिसने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास किया ॥७॥ देवय ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ, सम्पूर्ण रूप में सब कुछ मुझसे कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है । कमलनयन ! मैं यथाय रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमदेव तेजोमय भगवान् से कहा । तदनन्तर परमवामी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बोले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझका यथाय और पूज्य रूप से नहीं जानते हैं । विन्तु तुम्हारे प्रेम

पितृभक्तोऽसि विप्रये'मामेव शरणं गतः। ततोदृष्टोऽस्मिते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
 आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म'कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयनं सदा ॥१२॥
 अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽप्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः। अहं वैश्वणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
 अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
 अग्निरास्यं क्षितिः पावो चन्द्रादित्यो च लोचने। धोर्मूर्धा संहिंसः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥१६॥
 संहिंसं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया'क्षुशर्तेरिष्ट' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणः ॥१७॥
 यजन्ते देवविदुषो मा देवयजने स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पायिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥१८॥
 यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। क्षत्रुःसमुद्रपर्यन्तां मेघमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
 यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। क्षत्रुःसमुद्रपर्यन्तां मेघमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
 शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्'। वारहं रूपमास्याय ममेयं जगती पुरा ॥२०॥
 मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च बाडवो विप्र भूत्वाहं द्विजसत्तम ॥२१॥
 पिबाभ्यपः समाधिष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरु मे संश्रिता विशाः ॥२२॥

यस्य जिस प्रकार इस जगत् का वितर्जन करता हूँ कहूँगा ॥१०॥ विप्रये'। तुम पितृ-भक्त हो, मेरी ही शरण मे
 थाए हो, इसके बाद मैंने स्वयं तुम्हारे महान् ब्रह्मचर्य व्रत को देला है ॥११॥ आदि काल मे मैंने जल का नाद, यह
 नामकरण किया है। मेरा जल ही सर्वदा निवास-स्थान है, इसलिए मैं नारायण कहलाता हूँ ॥१२॥ द्विजोत्तम। मैं
 नारायण नाम से प्रसिद्ध आधिकारण, निरय, अविनाशी, सभी भूतों का विधाता और विनाशकर्ता हूँ ॥१३॥ मैं ही
 विष्णु, ब्रह्मा और ऐश्वर्य इन्द्र हूँ। मैं ही वैश्वण नामक राजा तथा प्रेतपति यम हूँ ॥१४॥ मेरा ही नाम पितृ
 सोम और प्रजापति कश्यप है। द्विजवर्ग। मैं ही सब का स्रष्टा, पालक तथा यज्ञ भी हूँ ॥१५॥ मेरा मुख अग्नि,
 शरीर पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और मूय, घी (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने
 शरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और मूय, घी (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने
 से उत्पन्न है। सम्पूर्ण दिशाया सहित नम मेरा शरीर है, वायु मेरे मन मे स्थित है। बहुसंख्यक मरपूर दक्षिणा
 वाले सैकड़ों यज्ञ मे मैं पूजित हूँ ॥१७॥ देव-यज्ञ मे प्रतिष्ठित मेरा ही पूजन वेदज्ञ लोग किया करते हैं। इत पृथ्वी
 पर स्वर्गलोक के इच्छुक बड़े-बड़े प्रतापी सम्राट् तथा स्वर्ग-लभना वाले वैश्य (धनिज वर्ग) मेरी ही पूजा करते
 हैं ॥१८॥ मैं ही अकेला शेष रूप होकर बारो समुद्र तक विस्तर्ण, मेघ, मन्दर आदि पर्वता से सुशामित, गुरु
 भार वाली वसुन्धरा को धारण करता हूँ ॥१९॥ प्राचीन काल मे वारह रूप धारण कर मैंने ही जल मे दूबी
 हुई पृथ्वी का अपने पराक्रम से उद्धार किया था। द्विजवर'। विप्र। ब्रह्मवानल हुकर मैं ही सम्पूर्ण जल को भी
 जाता हूँ और इस प्रकार अपने उदर मे जल का समावेश कर पुन उसका छोड़ भी देता हूँ ॥२०-२१॥ ब्राह्मण
 मेरा मुख, रात्रिय मेरी भुजायें और वैश्य मेरे ऊरु के आश्रित हैं। क्षत्रिज और व्रम (धेनी) मे रूप से दूध मेरे

१ व. स. ०५ मां चैव स। २ व. ० मता दयः। ३ व. द्विजोत्तम। ४ व. प्रेतपतिस्त। ५ व. धोर्मूर्धा स।

६ व. सदा। ७ व. ० ष्ट यथावत्वरद। ८ व. ० त्वा महीमेको धाः। ९ व. महामुने।

पादो शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वयवंग ॥२३॥
 मत्तः प्रादुर्भवत्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो वृभुत्सवः ॥२४॥
 कामक्रोधद्वेषमुक्ता नि सङ्गा द्यौतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥२५॥
 माप्येव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥२६॥
 अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। तारास्थाणि दृश्यन्ते दान्येतानि नभस्तले ॥२७॥
 मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकरा समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥२८॥
 वसतं शयनं चैव नित्यं चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तयैव च ॥२९॥
 ममेव विद्धि स्थाणि सर्वाण्येतानि सत्तम। प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥३०॥
 सत्यं दानं तपश्चोपमहिसां सर्वजन्तुषु। मद्दिधानेन विहिता मम वेहविदारिणः ॥३१॥
 मयाऽभिभूतविज्ञानाश्चेष्टयन्ति न कामतः। सम्पद्येदमधीयाना यजन्तो विविपर्यमलः ॥३२॥
 'शांतात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः। प्राप्तुं शक्यो न चेवाहं नरेर्बुधृतपर्यभिः ॥३३॥
 लोभाभिभूतं कृपणरत्नायंरकृतात्मभिः। तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनान् ॥३४॥
 सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुपोननिषेविणाम्। यदा यदा हि धर्मस्थलानिर्भवन्ति सत्तम ॥३५॥

वर्ण हैं। ऋक्, यजुस्, साम और अवर्ण ये चारों वेद मुझसे उत्पन्न होते पुन मुझसे प्रविष्ट हैं जाते हैं ॥२२-२३॥
 शान्ति के धाम आसक्त, मधर्मा, जिज्ञासु (ब्रह्मज्ञान के इच्छुक) यही एव काम, क्रोध, द्वेष से दूर रहने वाले, अनासक्त, निष्पाप, सार्विक, अहंकार-रहित (परम विनित) सर्वदा अप्यारम्भ (ज्ञान) के ही उपासक ब्राह्मण सर्वदा भेदाहं विनित और भेद ही उपासना किया करते हैं ॥२४-२५॥
 आकाश मंडल में तारागण के रूप में विद्यमान पड़ने वाले सवर्तक (प्रलयकारी) ज्योति, सवर्तक अग्नि, सवर्तक सूर्य और सवर्तक वायु मैं ही हूँ। द्विषयं। इहे भेद हैं। रोग छिद्र जानो। चारों दिशाओं में फैले रहने के साक्षात् इन समुद्रों के ही भेदा वस्त्र, दान्या और घा आता ॥२६-२८॥
 काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह, इन सब को भी मुनिघेष्ट। भेद ही रूप आती ॥२९॥
 विप्र। जिन धर्मियों के अनुष्ठान में मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं वे भी भेद ही रूप हैं। सत्य, दान, उग्र तपस्या, सब प्राणिमा में अहिमा, की। मावना करने वाले अनुष्य भेद ही विधान में रचे गए हैं और भेद ही शरीर में विवरण करने हैं ॥३०-३१॥
 व भेद द्वारा अभिभूत विज्ञान वाले होने के कारण ऐसी कष्टा करते हैं न कि अपनी इच्छा से। सम्पन्न रूप में वेद का अध्ययन करने वाले, विविध यज्ञ से यज्ञ करने वाले, शान्त चित्त वाले, काम का अपने पास में वर्णवान् द्विजानि ही मुझे प्राप्त करते हैं ॥३२॥
 वरे काम करने वाले, लालच, कृपण, अनाय और स्वेच्छा-शरीर, जना के लिए मैं सर्वथा अप्राप्य हूँ ॥३३॥
 शूद्र हृदयवान् मनुष्या के जीवन का (प्राप्य) महापन्न मुझसे जाता। विमूढ़ कृप - निषेवा (असत्य पर चरने वाले) अती म मैं अत्यन्त दुष्प्राप्य हूँ ॥३४॥
 हे सज्जनपत्नी! अब-अब धर्म की हानि, और अधर्म की वृद्धि होती है नव-नव मैं अवर्णन होता हूँ ॥३५॥
 जब हिमा में लित

अन्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् । दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तम ॥३६॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्त्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः । तदाऽहं सप्तसूयामि गृहेषु पुण्यधर्मणाम् ॥३७॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् । सृष्ट्वा देवमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥३८॥
स्यावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया । कर्मकाले पुनर्देहमनुदिन्य सृजाम्यहम् ॥३९॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् । इवेतः कृत्ययुगे धर्मः श्यामश्चेतायुगे मम ॥४०॥
रक्तो ह्यापरमास्थि कृष्णः कृत्ययुगे तथा । त्रयो भागा ह्याधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥४१॥
अन्तकाले च संप्राप्ते फालो भूत्वाऽतिदारुणः । श्र्लोचं नाशयाम्येकः सर्वं स्यावरजङ्गमम् ॥४२॥
अहं त्रिधर्मा विश्वारमा सर्वलोकासुखावहः । अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रम ॥४३॥
कालचक्रं नयाम्येको बहुरूपं ममैव तत् । क्षमनं सर्वभूतानां सर्वभूतहृतोद्यमम् ॥४४॥
एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम । सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेति फडबन् ॥४५॥
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः । यच्च किञ्चित्त्वया प्राप्तं मयि बलेशात्मकं द्विज ॥४६॥
सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ । यच्च किञ्चित्त्वया लोके द्रष्ट स्यावरजङ्गमम् ॥४७॥
विहितः सर्वं एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावनः । अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥४८॥

[illegible]

पुमानां विप्रयै सहस्रं परिवर्तते । तावत्स्वपिति विश्वत्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥४९॥
 सर्वमहं कालमिहाऽऽस्ते मुनिसत्तम । अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥५०॥
 च दत्तो विप्रन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा । असकृत्परितुष्टेन विप्रपिगणपूजित ॥५१॥
 'कार्णवं कृत्वा नष्टे स्यावरज्ज्ममे । निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दक्षितं जगत् ॥५२॥
 म्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम । दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥५३॥
 'सि चक्राद्विप्रयै द्रुतं नि सारितो मया । आख्यातस्ते मयाचाऽऽत्मा बुज्यो'हि मुरासुरः ॥५४॥
 'स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः । तावत्स्वमिह विप्रयै विश्वध्वजवर वं सुखम् ॥५५॥
 विबुद्धे तस्मिन्नु सर्वलोकपितामहे । एको भूतानि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥५६॥
 'तां पृथिवीं ज्योतिर्बायुः सलिलमेव च । लोके यच्च भवेत्किञ्चिदिह स्यावरज्ज्मम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

वृत्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधव । पूर्णं युगसहस्रे तु भेषगम्भीरनिस्वनः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थतः । वरं दृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरावहम् ॥५९॥

तक चारा युग एक हजार बार व्यतीत होते हैं तब तक मैं विश्व को अपने वश में कर सीना रहता हूँ ॥४९॥
 श्रेष्ठ । जब तक ब्रह्मा उत्पन्न नहीं होते तब तक बालक न होते हुए भी मैं बाल रूप में यहाँ विराजमान
 ॥५०॥ विप्रेन्द्र । विप्रपिगणा से पूजित मुनि । ब्रह्म स्वरूप मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको यह वर
 'है । स्वावर-जगम ने मृष्ट हो जाने पर जब सारी पृथ्वी समुद्रमय हो गई तब तुम मेरी आज्ञा से निर्गत हुए
 जब तुम मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए तब तुमने सारे विश्व का देखा, समस्त ब्रह्माण्ड को देवकर भी
 आश्चर्यचकित हो कुछ जान न पाए ॥५१-५३॥ तदनन्तर विप्रयै । मेरे ही द्वारा तुम मुख से शीघ्र निकाले
 । मुरासुरा के द्वारा दुख से जानने योग्य अपने स्वरूप को मैंने तुमसे कहा है ॥५४॥ इसलिए यावत् बाल
 ॥ महातपस्वी ब्रह्मा प्रकट नहीं होते तब तक हे विप्रयै । तुम यहाँ सुखपूर्वक विचरते हो, स्वच्छता से विचरण
 ॥५५॥ तदनन्तर सबलोक-पितामह ब्रह्मा ने प्रकट हो जाने पर द्विजोत्तम । अबेला मैं सम्पूर्ण भूता की
 ' रक्षणा ॥५६॥ इस प्रकार युग-सहस्र बीत जाने पर आकाश, पथी, वायु, तेज जब अथवा इस लोक में
 कुछ स्वावर जगम रहा, तब का निर्माण करूँगा ॥५७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने के बाद एक सहस्र युग बीत जाने पर फिर मध के समान गम्भीर वाणी वाले
 तब ने मार्गण्डेय से कहा—॥५८॥ हे मुने । परमार्थ रूप से जिस लिए तमने मेरी स्तुति की है—बड़ी,

आयुष्मानसि देवाना मद्भवतोऽसि दृढव्रत । तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभा तस्य विलोक्य स तदा पुन । मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरश्वीत् ॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

दृष्ट परं हि देवेश तव रूप द्विजोत्तम । मोहोऽयं विगत सत्य त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥६२॥
एवमेवमह नाथ इच्छेय त्वत्प्रसादत । लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६३॥
शिवभागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम् । अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले 'पुद्गलोत्तमे' ॥६४॥
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परम महत् । प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थाने च शकरम् ॥६५॥
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तीं हरीश्वरो । प्रत्युवाच अगन्नाथ स पुनस्त महामुनिम् ॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

यदेतत्परमं देव कारणं भुवनेश्वरम् । लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६७॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्रं शिवालयम् । तत्प्रभावाच्छिष्यलोके तिष्ठ त्वं च तथाऽक्षयम् ॥६८॥
शिवे सरथापिते विप्रं मम सरथापनं भवेत् । नाऽऽवयोरन्तरं किञ्चिदेकभावो द्विधा कृतो ॥६९॥

वह अष्टम भाग, मैं तुम्हें शीघ्र ही प्रदान करूँगा। तुम देवताओं से भी अधिक दीर्घायु ही मेरे भक्त हो
बुद्धप्रती हो। इसलिए विप्रवय । तुम पुन दीर्घायु प्राप्त कर ॥५९ ६०॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवान की इस मगलमयी वाणी को सुनकर पुन प्रसन्नता से उनकी ओर देख कर
मुनि ने चरणा पर गिर झुका कर प्रणाम करते हुए कहा—॥६१॥

मार्कण्डेय बोले—देव । द्विजोत्तम । मैंने तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप देखा । हरे । निश्चय ही तुम्हारे
रूप-दर्शन से मेरा ओ त्रिषु मोह भष्ट हो गया। तुम्हारे प्रसाद से नाथ । मैं ऐसा चाहता हूँ कि लक्ष हित की
दृष्टि से भिन्न भिन्न मावनाम । (साम्प्रदायिकता) का दानि मे लिए जिससे कि जीव और मागवतों की प्रतिद्वन्द्विता
मिष्ट आय इस पवित्र निमल अश्व पुरष रूप क्षेत्र मे देव । बहुत शिव मन्दिर का निर्माण कहेँ और वही तुम्हारे
स्थान पर शिव की प्रतिष्ठा कहेँ । ऐसा करने मे उपरात्त इस सत्सार म लोग समझेंगे कि शिव और हरि (विष्णु)
एक रूप ही है। इसी बातें सुन कर अगन्नाथ ने महामुनि से पुन कहा ॥६२-६६॥

श्री भगवान् बोले—विप्र । जो ये उत्कृष्ट कारण स्वरूप भुवनेश्वर महादेव हैं उनके लिंग की आराधना
का निमित्त विभिन्न भावा की प्रतिष्ठा के लिए मेरे आदेश से शीघ्र ही शिव मन्दिर का निर्माण करो ॥६७॥ इस
मुक्ति के प्रभाव से तुम शिव लिंग म अक्षय रूप से निवास करोगे। विप्र । शिव की स्थापना से मरी ही स्थापना
होगी हम दोनों म कई अन्तर नहीं मान्ना दो रूपों में विभक्त होते हुए भी हम लोग मयावत एक

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्गो विष्णुः स महेश्वरः । उभयोरन्तरं नास्ति पचनाकाशयोरिव ॥ ७० ॥
 मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः । वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरध्नं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥
 तव नामाद्भुतं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम् । उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम् ॥ ७२ ॥
 मार्कण्डेयहृदो नाम नरलोकेषु विद्युतः । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत । मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वध्यापी जनार्दनः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिकाण्डे स्वयंभूतसंवादे मार्कण्डेयस्य
 श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्षञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा । वरकलं स्नानदानेन दत्तप्रेक्षणैः च ॥ १ ॥

ही हैं ॥ ६८-६९ ॥ ज। रुद्र वही स्वयं विष्णु और जो विष्णु वही स्वयं महेश्वर (शिव) हैं ॥ दाना में पवन और आकाश में समान वृष्टि भी अन्तर नहीं है ॥ ७० ॥ भाया-मूत्र व्यक्ति नहीं जानता है कि जा गरुडध्वज है वही त्रिपुर नाशक, विष्णुध्वज वृषध्वज (शिव) हैं ॥ ७१ ॥ इति विप्र 'देव देव शिव मे मन्दिर में उत्तर भाग में अपने नाम में अर्पित एक सुन्दर तीर्थ भी बनव.आ ॥ ७२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ । इस तीर्थ में सब पापों को दूर करने वाला वह तीर्थ 'मार्कण्डेयहृद' नाम से विख्यात होगा ॥ ७३ ॥

ब्रह्मा ने कहा—एसी बातें कहकर हे मुनिवर । सर्वध्यापी जनार्दन भगवान् वही अन्तर्धान हो गए ॥ ७४ ॥

श्री दक्षमहापुराण में मार्कण्डेय ऋषि का श्रीभगवद्दर्शन नामक छठवनवा अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

अध्याय ५७

पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन

यह्या ने कहा—द्विजगण । अब मैं पञ्चतीर्थ करने की विधि, उन तीर्थों में स्नान, दान और देव दर्शन का

मार्कण्डेयहृदं गत्वा नरकचोददमुखः शुचिः। निमज्जेतत्र चारंतीनिभं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
 संसारसागरे भग्नं पापप्रसक्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्नं त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥३॥
 नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥४॥
 नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषोन्। तिलोदकेन मतिमान्पितृद्वन्द्वान्याश्च तर्पयेत्॥५॥
 स्नात्वा तर्पेय चाऽऽश्रम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्। प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्॥६॥
 मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेदवरम्। अधोरेण च ओ विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥७॥
 त्रिलोचनं नमस्तेस्तु नमस्ते दक्षिणपूजण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥८॥
 मार्कण्डेयहृदं त्वेवं स्नात्वा वृद्ध्वा च शंकरम्। ब्रह्मानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९॥
 पापं सर्वविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरभोगिन्यावब्रह्मभूतसंगलवम्॥१०॥
 इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुभूतः। शंकरं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥
 कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम्॥१२॥
 ओं नमो व्यक्तहृषाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय स्वप्रोषाय नमोऽस्तु ते॥१३॥
 अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेदचाऽऽयतनं वट। न्यघ्रोष हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥१४॥

फल वतला रहा हूँ ॥१॥ मार्कण्डेय हृदं म उत्तरामिमुख हाकर, पवित्र भाव से तीन बार डुबकी लगा कर स्नान करने के बाद निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे भगनेत्रघ्न, त्रिपुरारे, तुम्हें नमस्कार है। मैं मवसागर में निमज्जित पापलिप्त और ज्ञान धूम्य हूँ—मेरी रक्षा करो ॥३॥ पापनाशन, शान्त शिव को नमस्कार है। हे देवेश। मैं स्नान कर रहा हूँ, मेरे सभी पापों को क्षय नष्ट करें ॥४॥ इस प्रकार नामि पदस्त जल में स्नान कर बुद्धिमान् व्यक्ति तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरा आदि का यथाविधि तर्पण करे ॥५॥ फिर आचमन करने के बाद शिवालय में जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर मूल मंत्र से मार्कण्डेय ऋषि से सहित शिव की पूजा करे। तदनन्तर शिर झुका कर इस अवलिखित अवोर मंत्र समस्तान् शिव की स्तुति कर— हे त्रिलोचन। हे चन्द्रमूषण। अदभ्य, मेरा नमस्कार है, हे विरूपाक्ष। तुम मेरी रक्षा करो, महादेव। तुम्हें नमस्कार है ॥६-८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय हृदं म स्नान और शंकर का दर्शन करने से अनुप्राप्त दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥९॥ वह सब पापों से निर्मुक्त हो कर शिवलाभ में जाता है और वहाँ कल्पान्त तक दिव्य माणा का भोग करता है ॥१०॥ योग समाप्त होने पर मूल्यलाक में बहुव्रत, विद्वान्, ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है और पावन योग का अभ्यास कर मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥११॥ स्नान पूजन कर चुकने के बाद कल्पवृक्ष (वट वृक्ष) के पास जाकर उसकी तीन परिचर्या कर अलग्ग भक्ति भावना से निम्नांकित मन्त्र से वट की पूजा करे। चाहिए ॥१२॥ मन्त्र—ओ, महाप्रलयकर, प्रलय रूप वट वृक्ष को नमस्कार है महान् रम (अमृत) पर सर्वदा स्थित (अमृत पान करने वाले) न्यघ्राय (वट) की नमस्कार है ॥१३॥ वट। तुम शाश्वत हो। तुम कल्पान्त में भी अमर हो,

भवत्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः । सहसा भुच्यते पापाज्जीर्णत्वञ्च द्वोरगः ॥१५॥
 छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः । ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वायेषु का कथा ॥१६॥
 दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसंभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम् । न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥१७॥
 राजसूयाश्वमेधाम्या फलं प्राप्नोति चाधिकम् । तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८॥
 येनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् । सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं यजेत् ॥१९॥
 दृष्ट्वा वटं येनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमा गतिम् ॥२०॥
 प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिं प्रदक्षिणम् । संकर्षणं स्वमन्त्रेण भवत्याऽऽपूज्य प्रसादयेत् ॥२१॥
 नमस्ते हृलधूप्रामं नमस्ते मुञ्जलायुध । नमस्ते रेवतीकांत नमस्ते भवतवत्सल ॥२२॥
 नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर । प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥२३॥
 एषं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिवशाक्षितम् । कैलासशिखराकारं चन्द्रादकांततरामनम् ॥२४॥
 नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम् । महाबलं हृलधरं कुण्डलं कविभूषितम् ॥२५॥
 रौहिणेयं नरो भवत्या लभेदभिमतं फलम् । सर्वपापं विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२६॥

तुम विष्णु के निवास-स्थान हो, न्यग्रोध । मेरे पापों को दूर करो, कल्प-वृक्ष ! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥ मन्त्रि-
 पूर्वक कल्पवृक्ष की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से एकाएक उसी प्रकार मुक्त हो जाता
 है, जिस प्रकार सर्प अपने पुराने चर्म (बैचुली से) ॥१५॥ द्विजगण ! उस कल्पवृक्ष की छाया में बैठने से मनुष्य ब्रह्म-
 हत्या से भी मुक्त हो जाता है तो फिर अन्य पापों से मुक्त होने के विषय में कहना ही क्या है ? ॥१६॥ ब्राह्मण-
 गण ! कृष्णांग से उत्पन्न, ब्रह्मतेज से व्याप्त, पर, न्यग्रोध की आर्ति वाले विष्णु की प्रणाम कर मनुष्य राजसूय
 और श्वमेध से भी अधिक फल प्राप्त करता है और अपने वंश का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता
 है ॥१७-१८॥ कृष्ण के अग्रभाग में स्थित गरुड को नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से विनिर्मुक्त हो विष्णु-
 पुर को जाता है ॥१९॥ जो मनुष्य वट एवं बिलतापुत्र गरुड का दर्शन कर पुरुषोत्तम, संकर्षण (वत्सल) और
 सुभद्रा का दर्शन करता है, यह परमर्षि (माक्ष) को प्राप्त करता है ॥२०॥ विष्णु के मन्दिर में प्रवेश कर तीन
 बार परिचम करने के बाद भगवान् संकर्षण की पूजा निम्नांकित मन्त्र से यत्किन्पूर्वक करके उन्हें प्रसन्न करता
 चाहिए ॥२१॥ मन्त्र—हे हृलधर राम ! तुम्हें मया नमस्कार है । मुञ्जलायुध, रेवतीपाल ! हे भवतवत्सल, तुम्हें
 नमस्कार है ॥२२॥ बलिनालिया मैं अग्रमन्त्र ! धरणीधर ! आपको नमस्कार है । हे प्रलम्ब-नूतन, कृष्णाक्षर !
 आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा करें ॥२३॥ इस प्रकार अनन्त, सबविजयी, देवा से पूजित, कैलास-निलार के समान
 गुम्फा आकार वाले, चन्द्रमा में भी अधिक रम्य मूलराजे, नीलवस्त्रधारी, शेषशयन में सुगामित विजट
 मस्तक वाले, एक कुण्डल से अञ्जित, महाबली, रौहिणीपुत्र हृलधर या अन्य मन्त्र से प्रसन्न कर अपने मन पादे
 फल को प्राप्त करता है । वह सब पापों से मुक्त हो कर दीप्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२४-२५॥

आभूतसंश्लघं यावद्भूक्त्वा तत्र सुखं नरः^१। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥
 ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारण^२। ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्^३ ॥२८॥
 एवमभ्यर्च्यं हृल्लिनं ततः कृष्णं विचक्षणं^४। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः^५ ॥२९॥
 द्विपट्टश्चर्चमन्त्रेण भक्त्या ये पुरयोत्तमम्^६। पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥३०॥
 न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोमपाः^७। या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः^८ ॥३१॥
 तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्^९। संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत्^{१०} ॥३२॥
 जप कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाधिनाशनं^{११}। जय चाणूरकेशिधन जय कंसनिपूदनं^{१२} ॥३३॥
 जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर^{१३}। जय नीलाम्बुदर्याम जय सर्वसुखप्रदं^{१४} ॥३४॥
 जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन^{१५}। जय लोकपते नाथ जय दान्छाफलप्रदं^{१६} ॥३५॥
 सत्सारसागरे घोरे^{१७} निःसारे दुष्कफेनिले^{१८}। क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोवकसंश्लवे^{१९} ॥३६॥
 'भानारोगोमिकलिले मोहावतंसुदुस्तरैः^{२०}। निमग्नोऽहं सुरथेष्ठ ग्राहि मा पुरयोत्तम ॥३७॥
 एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भवतवत्सलम्^{२१}। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्^{२२} ॥३८॥

यहाँ प्रलय काल तक नाना दिव्य सुखा का भाग कर पुन पुण्यक्षय होने पर इस मृत्यु लोक में आवर थोष्ट योगी के
 मक्ष में उत्पन्न होता है ॥२७॥ इस प्रकार थोष्ट ब्राह्मण हो कर, सम्पूर्ण वास्त्रा का पारगत विद्वान् हो जाता है
 और शास्त्राभ्यास के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर दुर्लभ मुक्ति का अधिपारी हो जाता है ॥२८॥ हलधर की पूजा के
 बाद एकप्रमत्त होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से कृष्ण की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥२९॥ या धीरमति सर्वदा
 द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक भगवान् पुरयोत्तम की पूजा करते हैं वे निरक्षय ही मान लाभ करते
 हैं ॥३०॥ विप्रगण। द्वादशाक्षर मन्त्र के जप में सर्वदा लीन रहने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को
 देवता, यणी तथा सोम-रस का पान करने वाले भी महा प्राप्त करते ॥३१॥ इसलिए उसा मन्त्र में भक्तिपूर्वक
 जगद्गुरु कृष्ण का गन्ध, पुष्पादि द्वारा विधिवत् पूजन कर स्तुति से प्रसन्न करे ॥३२॥ स्तुति—हे जगन्नाथ कृष्ण !
 तुम्हारी जय हो^१। हे सम्पूर्ण पापा के नाश करने वाले^२। चाणूर, बैथी के मारने वाले, कंस प्राण हर^३। आपकी जय
 हो, जय हो ॥३३॥ चक्र-दल के समान आमत नैव वाले^४। जय हो, चक्र गदा धारण करने वाले^५। नीलमय के समान
 रयान वर्ण वाले^६। तप को सुख देने वाले^७। (तुम्हारी) जय हो ॥३४॥ जगत्पूज्य^८। सत्सार का सत्सार करने वाले देव^९।
 जय हो^{१०}। अखिल लोक के स्वामी^{११}। अमिवाञ्छित फल के दन वाले नाथ^{१२}। तुम्हारी जय हो ॥३५॥ इस महाभारद
 निःसार, दुश्चरणी फल से परिपूर्ण, जाय-रुपी ग्राह से व्याप्त, भगवत्, विषयवासना-रुपी जल से भरे हुए, अन्त
 रणरुपा वरणा से धुन, मोह के जलवर्त (भँवर) से पार करने में अति कठिन सत्साररुपी सागर में मग्न,
 हे गुरुदेव पुरयोत्तम^{१३}। भरो रक्षा करो ॥३६-३७॥ इस प्रकार स्तुति से वरदाता भगवत्सल, सभी पापा का

१ ग मुप। २ क निर्विचलम्। ३ क ०स। विप०। ४ ख सामय। ५ क ०रचित्तवा। ६ ०।
 ६ ख सर्वविना०। ७ क चक्रप्रमर्दन। ८ ख ०द देवदे०। ९ क ०रे दुःखसंश्लेष०। १० ग ०नावेगा०।
 ११ ख ०म्। योगिध्येपद विष्णु प०।

पीतांशं त्रिभुजं कृत्वा पञ्चपत्रायत्तेक्षणम् । महोररकं महाबाहुं पीतवस्त्रं गुमाननम् ॥३९॥
 शङ्खचक्रगदापाणिं मुमुटान्द्रभूषणम् । सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमात्मविभूषितम् ॥४०॥
 दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डयत्पणिपरम् च । अद्वयमेवसत्स्थानां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥४१॥
 यत्फलं सर्वतोयेषु स्नाने दाने प्रसीतितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२॥
 यत्फलं सर्वरत्नाजैरिष्टे बहुसुवर्णे । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३॥
 यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४॥
 यत्फलं सर्वदानेन घनेन नियमेन च । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५॥
 तपोभिर्विविधैरप्रयत्नैः समवाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६॥
 यत्फलं ब्रह्मचर्येण सभ्यवर्चसेन तत्कृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७॥
 यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारयतिनः । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८॥
 यत्फलं वनवासेन धानप्रत्यस्य कीर्तितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९॥
 सन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०॥
 किं चात्र महानोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः । दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

हृते बाँ भूलूणं मा/रका बाँ देने बाँ मुमुट स्थाय बाँ, दा मुजा वाले, पच-पत्र वै सभान भनोहर नेत्र वाले, विशाल वक्र, महाबाहु, पील वस्त्रधारी, गुमानन, शत, चक्र, गदा, पच ये युक्त, मुमुट और बेयूर से अलङ्कृत, सर्व लक्षण सम्पन्न, वनभागा से सुगोमिन दवेन्द्र कृष्ण को प्रसन्न कर और उनका दर्शन कर भुज्य करवड साष्टांग दण्डयन् करने, तो द्विजगण ! यह भुज्य निश्चय ही सहस्र अद्वयम का फल प्राप्त करना है ॥३८-४१॥ सब तीर्थों में स्नान करने से, दान देने से जो फल बड़े गये हैं, उन सब का भुज्य कृष्ण का दर्शन और प्रणाम करने से प्राप्त करता है ॥४२॥ जो फल सब प्रकार के रत्नाएँ एवं प्रबुर सुवर्ण में धन करने पर प्राप्त होते हैं, हैं भुज्य उन सब फल को कृष्ण का दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४३॥ सकल वेद (वेदान) तथा सभस्त यथा (वेद अनुष्ठान) से जो फल प्राप्त हुआ है उस फल को भुज्य कृष्ण का प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ जो फल सब प्रकार के दान यज्ञ एवं सभ्य से प्राप्त होता है, उस फल को भुज्य कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ विविध वटिन उपस्था से जो फल बड़े गये हैं, वे सभी कृष्ण ने दर्शन और प्रणाम करने से भुज्य को प्राप्त करते हैं ॥४६॥ मलीमाति ब्रह्मचर्य-व्रत पालन और शास्त्रात्म विधि से सन्यास ग्रहण करने से जो फल मिलते हैं वे सभी फल कृष्ण का दर्शन और प्रणाम से मिलते हैं ॥४७॥ शास्त्रानुसार आचार-पालन करने वाल गृहस्थ का जो फल प्राप्त होता है, वे सब फल कृष्ण का दर्शन और उहे प्रणाम करने से प्राप्त हो जाते हैं ॥४८॥ वन में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के पालन से जो फल बढ़ा गया है वह फल भुज्य का कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त होता है ॥४९॥ शास्त्रात्म विधि से सन्यास-पालन से जिन फलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है वे फल भुज्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से अनायास प्राप्त हो जाते हैं ॥५०॥ अथवा द्विजगण ! कृष्ण दर्शन माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, कृष्ण के दर्शन से भुज्य दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर

पार्ष्विमुक्त शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुदभव । धिया परमया युक्त सर्व समुदितो गुण ॥५२॥
 सर्वकामेसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा । त्रिसप्तकुलभुङ्क्ष्य नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥
 तत्र कल्पशत यावद्भूत्वा भोगान्मनोरमान् । गन्धर्वाप्सरसे साधं यथा विष्णुश्चतुर्भुज ॥५४॥
 न्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणा प्रवरे कुले । सर्वज्ञ सर्ववेदो च जायते गतमत्सर ॥५५॥
 स्वधर्मनिरत शान्तोऽवाता भूतहिते रत । आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६॥
 ‘सत सप्रप म नग सुभद्रा भवतवत्सलाम्’ । प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७॥
 नमस्ते सर्वेणे देवि नमस्ते द्वाभसोऽहये । त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कारुण्यपाणि नमोऽस्तु ते ॥५८॥
 एष प्रसाद्य ता देवी जयद्वारा जगद्धिताम् । बलदेवस्य भगिनी सुभद्रा वरदा शिष्याम् ॥५९॥
 कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत् । आभूतसप्लव मावर्त्तीकृत्वा तत्र देववत् ॥६०॥
 इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् । प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥६१॥
 इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भुश्चपिसवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्य
 नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५७॥

लता है ॥५१॥ कृष्ण-दान के प्रभाव से मनुष्य करता कल्पा के सचिव पापी से मुक्त होकर निमल हृदय हो जाता है वह सर्वगुण सम्पन्न बन जाता है और परम-आ से युक्त हो जाता है ॥५२॥ अपने पुण्य प्रभाव से वह इसकी स कुल परम्परा का उद्धार कर सब इच्छित पदार्थ से पूर्ण तत्वालय विमान पर आरुढ़ होकर विष्णु लोक प्राप्त करता है ॥५३॥ वहाँ ही कल्प तक चतुर्भुज भगवान् विष्णु के समान शेष और अप्सराओं के साथ मनोहर भागा का भाग करता है ॥५४॥ पुन वहाँ से पुण्यस्थल हीन पर न्युत हो कर इस लीक में अष्ट ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है । यहाँ आकर वह सब गस्त्रों का जाता अनुभवा ईप्सार्हित अपने धर्म में निरत गत शान्ति और समः प्राणियों के हित में लगा रहता है । तदनन्तर भागवत नाम का प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥५५॥ इष्टय के इस प्रव र पूजा करने के बाद मनुष्य भक्ता पर मुक्त प्रथम करने वाला सुभद्रा जी की भक्ति द्वारा पूजा कर हाथ जड़ कर प्रणाम करे और इस स्तुति से उन्हें प्रसन्न कर ॥५७॥ स्तुति — हे स्वयम्भुषिनी गुन सौम्य प्रदान करने वाला देव । तुम्हें नमस्कार है पद्मपत्राक्षि । मेरा श्ठा करा । कारुण्यपाणि । आपका प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार भग्न का पावन करने वाला सखर का कल्याण करने वाला वरदाधिनी मण्डलाधिनी बलदेव की भगिनी सुभद्रा की स्तुति और यथापूर्वक पूजन से प्रसन्न कर मनुष्य इच्छा-परिकालि विमान पर आरुढ़ कर विष्णुलोक को जाता है । यहाँ वह देवताओं के समान कल्प पयत विहार कर पुन मनुष्य में आने पर मनुष्य में नि म वदन ब्राह्मण होता है और भागवत नाम का प्राप्ति कर विद्वय हो माय लान करता है ॥५९॥ ६१॥

श्री ब्रह्मपुराण में कृष्ण-दान माहात्म्य नामक सत्तावनवा अध्याय समाप्त ॥५७॥

१ न समुदितः २ स धर्मः ३ क स सत्यवाणी । ४ स शान्तः ५ स म नत पूज्य स्वमः । ६ क भद्रवर्तिणीम् ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव दृष्ट्वा बलं कृष्णं शुभद्रां प्रणिपत्य च । धर्मं चाथ च कामं धर्मोक्षं च लभत ध्रुवम् ॥१॥
 निष्क्रम्य दधतागारात्कृतकृत्यो भवेश्वर । प्रणम्याऽऽयत्तनं पश्चादवजत्तत्र समाहित ॥२॥
 इन्द्रनीलमयो विष्णुयन्त्राऽस्तं बालुकावृतं । अतर्धानगतं मत्वा ततो विष्णुपुरज्जित ॥३॥
 सवदेवमयो योऽसौ हृतवानसुरोत्तमम् । स आस्त तत्र भो विप्रा सिंहायकृतविग्रह ॥४॥
 भवत्या दृष्ट्वा तु तं दध प्रणम्य नरकसरीम् । मुच्यत पातकमत्यं समस्तनात्रं सशम् ॥५॥
 नरसिंहस्य यं भवता भवति भुवि मानवाः । न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६॥
 तस्मात्सर्वप्रपन्नं नरसिंहं समाश्रयत । धर्मायकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति ॥७॥

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् । यथा कथयस्य दध तन नो विस्मयो महान् ॥८॥

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मा बोल—उपयुक्त विधि से बलराम कृष्ण तथा सुनन्ता का दर्शन और प्रणाम करने से मनुष्य धर्म अथ काम और मोक्ष प्राप्त करता है यह ध्रुव है । उस देवालय से निकलने पर मनुष्य हृतहृत् हो जाता है। इस प्रकार देव मन्दिर से निकल कर उसको प्रणाम कर तत्पश्चात् उस स्थान पर अनन्य भाव से जाय जहाँ इन्द्रनीलमय विष्णु बाल की ढरी में डके हुए हैं वहाँ इस प्रकार बालुकामय भूमि में छिपे हुए भगवान् को प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२३॥ विप्रगण । जिन सवदेवमय (सम्पूर्ण देवा के तेज से सम्पन्न) ने असुरोत्तम हिडम्ब वचस्प की मारा व नही पर हैं जिनका आधा शरीर सिंह का है अर्थात् जो नृसिंह बने जाते हैं। उन नृसिंह भगवान् को देख कर आ मय (मानव) मन्त्रिपुत्रक प्रणाम करता है वह समस्त पापों से छूट जाता है इससे लगामात्र भी सदेह नन्ता ॥४५॥ इस मूलोक्त में आ नृसिंहेव के प्रकट होते हैं उनके सभी पाप मिट जाते और वे मनचाहे फल को प्राप्त करते हैं ६ इसीलिए मनुष्य प्रत्येक प्रकार का भगवान् का आश्रय प्राप्त कर जिससे उसे धर्म अथ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। ७।

मुनियो न कथा—देव । इस लोक में दुर्लभ और समस्त नरसिंह देव के योग्य है जो जिस रूप में अपने

प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥१॥
यया प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः । भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०॥
प्रसादाभरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः । ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम । अजितस्याभ्रमेयस्य भुवितभुवितप्रदस्य च ॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्यवतुं समस्तांसस्य भो द्विजाः । सिद्धार्षकृतदेहस्य प्रयक्ष्यामि समासतः ॥१३॥
याः कारिचरित्सिद्धयश्चान्न श्रूयन्ते देयमानुषाः । प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४॥
स्वर्गे मर्ये , च पाताले दिक्षु तोये' पुरे नये । प्रसादात्तस्य देवस्य भक्त्यग्न्याहता गतिः ॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सच्चराचरे । नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भवतानुकम्पिनः ॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम् । येन प्रसीदेच्चैवासी सिद्धार्षकृतविग्रहः ॥१७॥
शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराज सनातनम् । नरसिंहस्य तत्त्वं च यन्न ज्ञात सुरासुरैः ॥१८॥
शाकयायकमूलैस्तु फलपिण्याकसक्तुकैः । पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः ॥१९॥
कोशकौपीनयासादच ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः । अरण्ये विजने देशे पठते सिन्धुसगमे ॥२०॥

वर्णन किया है, इससे हम लोग को महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ जगत्पते । उस देवता के प्रभाव को विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, कहिए, हम लोगों को अत्यन्त उत्सुकता हो रही है ॥९॥ देव । जिस प्रकार महाबली नरसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं । उसका भक्ता के उपकार के लिए कहिये, आपको हमारा नमस्कार है ॥१०॥ नरसिंह की इषा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनको कहिए । प्रपितामह । हम लोग पर अटुष्ट बीजिए ॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण । उस अजित, अभ्रमेय (जिसका वषार्य शान न हो) भुवि और भुवि के दन वाल नृसिंह देव के प्रभाव को मैं कह रहा हूँ, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो ॥१२॥ द्विगण । उम देवता के—जिसका आधा शरीर सिंह का है—समस्त गुणों का वर्णन बोल कर सकता है, इसलिए संशय में ही कह रहा हूँ ॥१३॥ इस प्रकार मे जो कुछ सिद्धियाँ देवा या मनुष्य में सुनी जाती हैं, वे सभी सिद्धियाँ उस देव की इषा से प्राप्त होती हैं, इमन सदेह नहीं ॥१४॥ उस देव की इषा से स्वर्ग, मर्ये, पाताल लोक तथा विस्वाभा म, जल, पुर और पहाड़ में सर्वत्र मनुष्य की अज्ञात गति हो जाती है ॥१५॥ विप्रगण । सर्वदा भक्तव्रता पर इषा करने वाले, नरसिंह देव के लिए इस तवरारचर जगत् में कुछ भी यत्नाय अथवा अदेय नहीं है ॥१६॥ मैं भक्तव्रता के लिए उपहार उन नियमों को कह रहा हूँ, जिनसे आपा सिंह का शरीर धारण करने वाले नृसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥१७॥ मुनिवर । नरसिंह देव के उस घनावन, कल्पराज (कल्पान्त में भी विद्यमान रहने वाले अमृत) तरव का गुण, जो सब तर देव और अगुरो से ऊँचा रहा है ॥१८॥ विप्रद्रवुद । पहले उत्तम साधक, साध, साधक (अलनन, भद्र विरोध), बन्द मूल, पल, पिण्या (तिल से बना कोई भोग्य), कर्तु अथवा बेल दुग्धाहार का निषिद्ध बन्द,

ऊपर सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा । प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाजपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥२१॥
 द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः । जपेत्लक्षाणि वै विशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२॥
 उपपातकपुत्रश्च महापातकसंयुतः । मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत् । 'पुण्यगन्धादिभिर्घृणैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्' ॥२४॥
 कर्पूरचन्दनाक्तानि जातोपुष्पाणि भस्तके । प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५॥
 भगवान्सर्वकार्येषु न भवच्चित्प्रसिद्ध्यते । तेजः सोढुं न शक्ताः स्युर्ग्रहपट्टादयः सुराः ॥२६॥
 किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः । विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः ॥२७॥
 मन्त्रं यानासुरान्हुन्तुं जपन्त्येकेऽप्यसाधकाः । ते सर्वे प्रलयं यागति दृष्ट्वाऽऽदिश्याग्निवर्धनः ॥२८॥
 सृष्टजप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् । द्विजप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥
 गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः । भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चाग्रे परिगम्यन्तः ॥३०॥
 त्रिजप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः । द्वादशाम्ब्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१॥
 रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः । ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीयम् ॥३२॥

कोश अथवा बोरीन वस्त्र धारण करे, सर्वदा ध्यानपरायण और जितेन्द्रिय रहे फिर किसी वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, मरिचा का समग स्थान, उसर, सिद्ध क्षेत्र अथवा नृसिंह के मन्दिर में ही स्वयं नरसिंह भगवान् की मूर्ति स्थापित कर विधिपूर्वक पूजा करे ॥२१-२१॥ मुनिपुंगव । वह साधक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार व्रत रहे, इस प्रकार सयमपूर्वक वह बीस लक्ष मन्त्र का मानस जप करे ॥२२॥ इस प्रकार साधक चाहे उपपातक से युक्त अथवा महापातक से युक्त क्या न हो, मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥२३॥ जप के अनन्तर प्रदक्षिणा कर पुष्प, गन्ध, धूपदि से नरसिंह की पूजा करे ॥२४॥ पुन शिरस्त्राश्रय प्रभुको प्रणाम कर कर्पूर-चन्दन से रंगे जाती पुष्प (जूही) को नरसिंह देव के भस्तक पर चढ़ाये । इस प्रकार नियमपूर्वक पूजन तथा जप से सिद्धि प्राप्त होती है ॥२५॥ इस प्रकार का साधक सब कार्यो का करने में समर्थ हो जाता है, उसकी गति कभी भी रोक नहीं जा सकती, उसके तेज का ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता सृष्टि में असमर्थ हो जाते हैं । उसके सामने इस लोक के राजा, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर और किन्नर, महानागी सृष्टि मयः की क्या गणना ॥२६-२७॥ अन्य विविध साधक जिन अमुरा का मानने के अभिप्राय से मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी अमुर आदिर्याग्नि के समान तेजस्वी, उस साधक को देख कर ही नष्ट हो जाते हैं ॥२८॥ एक बार नरसिंह-वचन का जप करने से सभी प्रकार के उपाद्रवों से रक्षा होती है । दो बार जप हुआ वह दिव्य कवच देव-दानवा से रक्षा करता है, गुरु एवं क्षत्रिय से अभेद्य यह दिव्य कवच जब तीन बार जपा जाता है तब गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस तथा अन्य दूमरे विप्लव करने वालों से हे द्विजात्मवृन्द । महावीर भगवान् नरसिंह सब बाह्य याजन तत्र रक्षा करते हैं ॥२९-३१॥ तदनन्तर बिलद्वार के पास जाकर तीन रात्रि तत्र निराहार रह कर पञ्चाश की एराड़ी में भगवान् अग्निदेव की प्रवृत्ति कर मधु म द्वादश दो सौ पलाय की समिधा का बपट्टार मय से वह साधक उस

पलाशकाष्ठं प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम् । पलाशसमिधस्तत्र जुहुयादत्रिमधुप्लुता ॥३३॥
 'द्वे शते द्विजशार्दूल' वषट्कारेण साधकः । ततो विवरद्वारं तु प्रकट जायते, क्षणात् ॥३४॥
 ततो विशेषेण निःशङ्कुं कवची विवरं बुधः । गच्छतः सकट तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५॥
 राजमार्गं सुविस्तीर्णो ब्रूयते भ्रमराजि (ञ्चि)त । नरसिंह स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजा ॥३६॥
 गत्वा तत्र जपेत्तत्त्वं नरसिंहाख्यमव्ययम् । तत स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम् ॥३७॥
 निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागतं ता वदन्ति च । प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८॥
 ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः । पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः ॥३९॥
 'श्रीकृते सह कन्याभिर्भावदाभूतसंप्लवम् । भिन्नदेहो वासुदेवो लीयते नान सशयः ॥४०॥
 यदा न रोचते वासस्तस्मात्प्रिगच्छते पुनः । पट्टं शूलं च खड्गं च रोचना च मणि तया ॥४१॥
 रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च । कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा मुष्टिका च मनोहराम् ॥४२॥
 कमण्डलु चाक्षसूत्रं यष्टिं सज्जीवनीं तथा । मिद्विद्या च क्षात्राणि गृहीत्वा साधकेश्वर ॥४३॥
 ज्वलद्वाह्निस्फुलिङ्गोभिवेष्टितं त्रिशूलं हविः । सकृन्त्यस्तं बहेत्सर्वं वृजिन जन्मकोटिजम् ॥४४॥

प्रगल्भित अग्नि मे हवन करे ॥३२-३३॥ विप्रवर । इनकी साधना करने के बाद उस विवर का द्वार खोली क्षण प्रकाश हो जायगा ॥३४॥ इससे अनन्तर वह कवचधार कन्यापी निशक माय से उस चिल म प्रवेश करे, उस विवर म प्रवेश करने वाले साधक की सारी विपत्तियाँ और अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥ प्रवेश करने पर वहाँ भ्रमरावलिया से सुगन्धित विस्तीर्ण राजपथ दिखाई देगा। द्विजगण । वह साधक भगवान् नरसिंह का स्मरण करते हुए पाताल म प्रवेश करे ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक मन्त्र तत्त्व का जप करे। जप के प्रभाव से वीणावादन करती हुई सहस्रो स्त्रियाँ उससे आग उपस्थित हो जाती हैं और उस साधक-गिरामणि का शेष पकड़ कर विवर म ले जाती हैं ॥३७-३८॥ वहाँ जाकर उसका दिव्य रसायन पिलाती हैं, पीनेही वह साधक दिव्य शरीरपारी और बलशाली हो जाता है। वह भ्राम्यशाली कल्पात पर्यन्त उन कन्याओं के साथ प्रकाश कल्पा है तथा शरीर त्याग करने के बाद वासुदेव म लीन हो जाता है, इसम कोई सन्देह नहीं ॥३९॥ मुनिप्रवर । यदि उस साधक का वहाँ का निवास प्रिय नहीं जान पड़े, तब भी यह साधक सिरामणि पट्ट गूँ खड्ग, रोचना (वज्राचन या गीरोचन) मणि तथा रस (साधित द्रव्य), रसायन पादुका, अञ्जन कृष्णभूषणम कनहारि मुष्टिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (रस्सा), सज्जीवनी यष्टी (एक लकड़ी का दण्ड का त्रिशूली है) सिद्ध विद्या और क्षात्रा का प्राप्त कर उस पाताल देश से निकलता है ॥४१-४३॥ उस कवच का प्रभाव ऐसा है कि यदि जन्म अग्नि की लपटा से वेष्टित कर उसको हृदय पर एक बार रखा जायता करारा जन्म के पापा का जला देता है। विप

१रा ०मिया तत्र । २ ०मिध तत्र । ३क ०विमेषु० । ३स ग द्वे वृते । ५क ०रा एकोनशतान्तथा ।
 त० । ५स निशक' । ६स भगवद्दिद्वारा । ७क ०वशोत्तमम् । ८ग ०ते स्मर० । ९न स ०दृ वा० ।
 १०रा द्विजश्रेष्ठा । ११य मुष्टिर्वा । १२य मन शिलाम् । १३य विद्या । १४य ०म् । देह न्यस्त कर न्यस्त
 हृन्त्यापायते वृत्त० ।

विधे न्यस्त विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनी स्थितम् । स्वदेहे भ्रूणहृत्पादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ।
 'महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् । हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दाहणा ग्रहाः ।
 घालानां कण्ठके' बद्धं रक्षा भवति नित्यशः । गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं कुशते ध्रुवम् ।
 व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् । त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ।
 असाध्यं तु न पश्यामि श्रेलोचये सचराचरे । यां यां कामयते सिद्धिं तां ता प्राप्नोति स ध्रुवम् ।
 अष्टोत्तरशतं स्त्रेके पूजयित्वा मृगाधिपम् । मृत्तिकाः सप्त बल्मीके श्मशाने च चतुष्वप्ये ।
 रक्तचन्दनसमिधा गवा क्षीरेण लोडयेत् । सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम् ॥
 लिम्पेतया भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत् । नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥
 जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये । यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः ॥
 जलाकोर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी । अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥
 जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं जपेन्तं विनिवारयेत् । तमेवं पिञ्जके' बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥
 महाबातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नान सशयः । पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज)प्तेन वारिणा ॥
 अथ तां प्रतिमां द्वारि निलनेद्यस्य साधकः । गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते' चैव शान्तिदः ॥

म स्थापित करने पर विष प्रभाव को नष्ट कर देता है और किसी बीबी के शरीर पर रखने से कुछ रोग को दूर करता है । स्वयं भ्रूण-हृत्पादि पापा को करने वाला व्यक्ति अपने शरीर पर वह दिव्य कवच धारण करने से पाप हो, पुण्ड्र हो जाता है ॥४४-४५॥ महादुष्ट ग्रहा से पीड़ित व्यक्ति यदि अपन हृदय में उस तेजोमय का स्मरण तो शीघ्र ही उससे शरण ग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ बालका के कण्ठ में बांधने से उसकी सर्वदा व्याधि रक्षा होती है और गण्ड, पिण्डर, कृता आदि रोग निश्चय ही मिट जाते हैं ॥४७॥ व्याधि उत्पन्न होने पर भी प्रतिष्ठा कर एक महीने तक सन्निधा, धी और दूध से तृप्ता कर—प्रातः, मध्याह्न और संध्या—हवन स सनी राग विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ उस साधक के लिए इस पराचर युक्त त्रिभुवन में कुछ भी असाध्य देता रहा है, वह तो जिन-जिन सिद्धियां की कामना करता है, निश्चय ही उज-उजवा प्राप्त कर लेता है ॥४९॥ मृ (नृसिंह) की एक तो आठ बार पूजा कर, वर्ष्मिक, रमजान, चौराहे आदि से लुप्त मृत्तिका ला कर, उत्तम चन्दन मिलाय । पुन गो दुग्ध में उसका मिश्र कर छह अंगुल प्रमाण की सिंह की प्रतिमा बनाय ॥५०-५१॥ गायत्रि पर गायत्रि से पुण्ड्र कर नृसिंहकवच लिख कर वह मन्त्र उमरा नरसिंह के कण्ठ में बांधे ॥५२॥ साधक उग मूर्ति को दियो जलाय म स्थापित कर गन्ताह वर्षान पूजन कर बिना गणना किए का जप कर ॥५३॥ ऐसा करने से क्षण भर में वृष्टी जल से परिपूर्ण हो जाती है अथवा यदि गृहे वृष्टा के भाग पर नृसिंह देव का पूजन और एक तो आठ बार जप करेना वृष्टि का निवारण हो जाता है ॥५४॥ मृनि को रसमी में बांध कर चुमान मद्यन भर मही जाय की औषी आ जाती है, इसम कुछ भी सन्देह । पुन उसका शीघ्र ही जल में सान कर देता वह मरुवाय शीघ्र ही दान्त भी हो जाता है ॥५५-५६॥

तस्मात्तं मुनिशार्दूल भक्त्या संपूजयेत्सदा । मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् । मुच्यन्ते चाशुभेर्दुःखजन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् । देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥६१॥
 यक्षविद्याधरत्वं च तयाऽऽन्यच्चाभिवाञ्छितम् । दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा संपूज्य 'नरकेसरीम् ॥६२॥
 प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम् । नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३॥
 निमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥
 'मुच्यते चाशुभेर्दुःखजन्मकोटिसमुद्भवैः । संप्राप्ते संकटे दुर्गे श्वरोव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥
 कान्तारे प्राणसंवेगे विषयात्कल्लेपे च । राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥
 स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वं राजप्राप्तैर्विमुच्यते । सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७॥
 तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्मुमुक्षवाः । गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥
 नरसिंहे प्रसन्ने तु 'प्राप्नोत्यन्याश्च वाञ्छितान्' । यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९॥

अनन्तर साधक यदि किसी के द्वार पर उसको खोद कर गाड़ दे, तो उसने वश का उच्चाटन हो जाय, उखाड़ देने से पुन वही प्रतिमा शान्तिप्रद हो जाती है ॥५७॥ इसलिए है मुनिवर । सर्वदा उस महापराक्रमी, सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले नरसिंह भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से वह नवत सब पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर की प्राप्ति करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियो, शूद्र और बाण्डाल पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर की प्राप्ति करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियो, शूद्र और बाण्डाल सभी उस सिंह शरीर धारण करने वाले देव की भक्ति से पूज कर करोड़ो जन्म के किए पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥५९-६०॥ उस सुर श्रेष्ठ की पूजा कर द्विजो ! मनुष्य इच्छित देवपद, इन्द्रपद अथवा गन्धर्वपद को प्राप्त कर लेते हैं ॥६१॥ नरसिंह की पूजा, दर्शन, स्तुति और नमस्कार से मनुष्य, यक्ष, विद्याधर अथवा अन्य मन बाहे पद, राज्य, स्वर्ग और दुर्लभ मोक्ष की भी प्राप्ति कर लेते हैं । नरसिंह का दर्शन कर मनुष्य अभिमत फल को प्राप्त कर अपने पापों से मुक्त हो विष्णुलोक की प्राप्ति करता है ॥६२-६३॥ श्रद्धापूर्वक सिंह शरीरधारी देव को एक बार देख कर भी मनुष्य करोड़ा जन्म के पापा से अपने को मुक्त कर लेता है ॥६४॥ संप्राप्त में सबद को एक बार देख कर भी मनुष्य करोड़ा जन्म के पापा से अपने को मुक्त कर लेता है ॥६४॥ संप्राप्त में सबद या कठिनाइयाँ आ पड़ने पर, बीर, व्याघ्र आदि से पीडित होने पर उस नरसिंह का स्मरण कर मनुष्य विष, अग्नि, जल से भय होने पर राजा, समुद्र, ग्रह, रोगादि से पीडित होने पर उस नरसिंह का स्मरण कर मनुष्य उन सभी सबदों से इस प्रकार छूट जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निविड अन्यकार से यह लोक ॥६५-६७॥ इसी प्रकार उसके दर्शन से सारे उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य श्रीनरसिंह के प्रसन्न हो जाने पर गुटिका-अंजन, पाताल-पादुका (वह खंडाँ जिसको पहन कर पाताल लोक में मनुष्य बला जाता है), रसायन तथा अन्य मनोरथा को भी प्राप्त करता है । जिन जिन कामनाओं की हृदय में रख कर मनुष्य नरकेसरी की

१स सर्वज्ञत्व । २व ग अन्यन्व प्रयच्छति । ३क । ४क । ५क । ६क । ७क । ८क । ९क । १०क । ११क । १२क । १३क । १४क । १५क । १६क । १७क । १८क । १९क । २०क । २१क । २२क । २३क । २४क । २५क । २६क । २७क । २८क । २९क । ३०क । ३१क । ३२क । ३३क । ३४क । ३५क । ३६क । ३७क । ३८क । ३९क । ४०क । ४१क । ४२क । ४३क । ४४क । ४५क । ४६क । ४७क । ४८क । ४९क । ५०क । ५१क । ५२क । ५३क । ५४क । ५५क । ५६क । ५७क । ५८क । ५९क । ६०क । ६१क । ६२क । ६३क । ६४क । ६५क । ६६क । ६७क । ६८क । ६९क । ७०क । ७१क । ७२क । ७३क । ७४क । ७५क । ७६क । ७७क । ७८क । ७९क । ८०क । ८१क । ८२क । ८३क । ८४क । ८५क । ८६क । ८७क । ८८क । ८९क । ९०क । ९१क । ९२क । ९३क । ९४क । ९५क । ९६क । ९७क । ९८क । ९९क । १००क ।

५८. समुद्रादये । ६८. अन्यन्व वा । ७८. अञ्जितम् । या० ।

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥
 दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् । पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥
 सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः । सौवर्णेन विमानेन किकिणीजालमालिना ॥७२॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा । तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥
 दिव्यस्त्रोशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना । कुलैर्काव्यशमुद्धृत्य देवयन्मुदितः सुखी ॥७४॥
 स्तूपमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः । भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥
 गन्धर्वैरपसरैर्दत्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् । मनोज्ञावकरं सौख्यं यावदाभूतसंगलयम् ॥७६॥
 पुण्यभयादिहाऽऽपातः प्रवरे योगिनां कुले । चतुर्वेदो भवेद्विप्रो देववेदाङ्गपारगः ॥
 वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मण्युत्तरपञ्चाशत्तमोऽध्यायः
 नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उपासना करता है, उन-उनको वह नि सन्देह प्राप्त करता है ॥६८-६९॥ उस देव-देवेश का दर्शन कर, भक्ति से उसका पूजन तथा प्रणाम कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के दश गुने फल को (सौ अश्वमेध के बराबर) प्राप्त करता है । वह सब पापों से मुक्त हो सभी गुणों से विभूषित हो जाता है ॥७०-७१॥ वह जब मृत्यु से मुक्त हो सभी मनोरंजनों को प्राप्त कर लेता है, सुदृढ़ पण्डितार्थों से युक्त, सभी इच्छित साधनों से सुसज्जित, तेजोमय, इच्छा-परिचालित स्वर्णमय, तदन सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर आरुढ़ हो, मुक्ताहार से सुसज्जित, दिव्य गान और वादन में निरत सैकड़ों स्वर्गाङ्गनायकों से घिरा, देवता के समान आनन्द मग्न और सुखी वह व्यक्ति अपने इक्ष्वाकु कुल का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को प्राप्त करता है, रास्ते में अप्सरायें उसकी स्तुति करती जाती हैं ॥७२-७४॥ द्विजवर । वह गन्धर्व और अप्सराओं के साथ बीड़ा बरता हुआ, मन को आनन्द और सुख देने वाले चतुर्भुज रूप को धारण कर बलवान्त सब दिव्य मोगों का आस्वादन करता है । पुनः पुण्य क्षय होने पर इस भक्त्यन्त में पुनः योगि कुल में जन्म लेकर वेद, वेदांग ना पारदर्शी, चतुर्वेदभाषी विद्वान् ब्राह्मण होता है । तदनंतर वैष्णव योग (भागवत ज्ञान) का अभ्यास कर मोक्ष-मदवी प्राप्त करता है ॥७५-७७॥

यही ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत स्वयम् और ऋषि के सवादप्रकरण में नरसिंह-
 माहात्म्य-वर्णन नामक अष्टाध्यायों अध्याय समाप्त ॥५८॥

ब्रह्मपुराणम्

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वामुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च । सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासी शनेण तदन्तरम् । विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् । मत्स्याख्य माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥३॥

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं श्वेतुमर्हस्यशेषतः । विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरेः ॥४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले । श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा ॥५॥

ब्रह्मोवाच

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली । मतिमान्धर्मयिच्छूरः सत्यसधो बृहन्नतः ॥६॥
यस्य राज्ये तु पर्याणां सहस्रं दश मानवाः । भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिन् सौवर्ति ॥७॥
वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजाः । कपालगौतमो नाम ऋषि परमधार्मिकः ॥८॥

अध्याय ५६

श्वेतमाधव का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्य अनन्त नामक वामुदेव का भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करने से सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्वप्रथम मैंने इस वामुदेव की आराधना की तदनन्तर इन्द्र, विभीषण और राम ने। अतः मैंने ऐसा मनुष्य है जो उस देव की आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेत गंगा में स्नान कर श्वेतमाधव और मत्स्यमाधव का दर्शन करता है वह श्वेतद्वीप को प्राप्त करता है ॥१-३॥

मुनिगण बोले—जगन्नाथ। श्वेतमाधव का माहात्म्य शीघ्र उनकी प्रतिमा के विषय में विस्तारपूर्वक बनलाइए। उस पुरातन, जगतीतल पर प्रसिद्ध शुमशेर में सर्वप्रथम किसने श्वेतमाधव देव की स्थापना की ॥४५॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण। कृत्तवुष में श्वेत नाम का बगी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धूर, सत्यप्रभो और बृहन्नती राजा हुआ। जिसके राज्य में मनुष्य दश हजार वर्ष आयु वाले होते थे, बालकों की मृत्यु नहीं होती थी। उस समय द्विजगण! उसी राज्यकाल के कुछ वर्षों बीत जाने पर परम धार्मिक और बुद्धिमान् कपालगौतम नामक ऋषि

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः' कालवशाद् द्विजाः। तमादाय ऋषिर्घोमारूपस्यान्तिकमनयत् ॥९॥
दृष्ट्वैव नृपतिं मृतं कुमारं गतच्चेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा ॥१०॥

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदनं गतम्। नाऽनये'सप्तरात्रेण चिता दीप्तां समाह्वे ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकं। सपूज्य स महादेव राजा'विद्या'पुनर्जयेत् (?) ॥१२॥
अतिभक्तिं तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर। सानिध्यमगमत्पुष्टोऽस्मोत्युवाच सहोमया ॥१३॥
भुत्वैवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मदिग्धं बिहपाक्ष शररकुन्दैर्बुधचंसम् ॥१४॥
शार्दूलचवर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स तवाऽब्रवीत् ॥१५॥

श्वेत उवाच

कालस्य यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि। कालस्य वशमापन्नो' बालको द्विजपुत्रकः' ॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं श्रुतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम् ॥
यथोक्तायुष्यसयुवत क्षेमं कुरु महेश्वर। ॥१७॥

काल की प्रणना से मरे पुत्र की—जिसके अभी दाँत भी नहीं निकले थे—लेकर उस राजा के पास आए। विप्रगण। राजा ने इस प्रकार उस सत्ये से, शत प्राण बालक को देख कर उसका पुन जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की ॥१६-१७॥

राजा ने कहा—यदि मैं सात दिन के भीतर यमलोक गए इस बालक को लौटा न लाऊँ तो जलती चिता में प्रवेश कर मरुन हो जाऊँगा ॥११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर राजा शत सहस्र (एक लाख) नील कमला से महादेव की पूजा कर पुन विद्या (मन्त्र) का जप करने लगा। जगदीश्वर शरर राजा की उस उत्कृष्ट भक्ति को देख कर अति प्रसन्न हुए और पार्वती के सहित नृपति के समीप आकर बोले—'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।' भगवान् शरर की ऐसी वाणी को सुन कर राजा ने अकस्मात् देखा कि शरीर पर भस्म लगाए, तीन नेत्र वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा और बुध के समान शुभ्र, व्याघ्रचर्मधारी, मालचन्द्र शरर सामने खड़े हैं, तुरन्त साष्टांग दण्डवत् किया और फिर उसने कहा— ॥१२-१५॥

श्वेत ने कहा—प्रभो! यदि मुझको देख कर आपके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो 'यम के वश में गया (मृत) यह ब्राह्मण-विष्णु पुन जीवित हो जाय, ऐसी प्रतिज्ञा देने की है।' अकस्मात् मरे हुए इस बालक पर अनुग्रह कर इसे पूर्ववत् जीवित (दीर्घायु) कर दीजिए। महेश्वर! यही क्षण अनुग्रह कीजिए ॥१६-१७॥

१ क य ०त पञ्चशताब्दिक। त०। २क ०येय सपुत्रो हि चि०। ३क ॥ रात्रि०। ४त ०नयंजेत्।

५क ०प्रो जीवतु ३०। ६क. ०क। बानयिष्ये पु०।

ब्रह्मोवाच

इवेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम्॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धनं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः। बालं सजीवयामास मृत्योर्मुलगतं पुनः॥१९॥
कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं भुनेः पुनं स त द्विजाः। देव्या सहोभया देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥२०॥
एवं सजीवयामास भुनेः पुनं भूयोत्तमः॥२१॥

भुनय ऊचुः

वेदेव जगन्नाथ प्रेलोक्यप्रभवाम्यय। ब्रूहि नः परमं तथ्यं इवेताह्यस्य च सांप्रतम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्वं मुनिशाङ्गिः सर्वसत्त्वहितावहम्। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ध्रुव प्राप्नोति भानव॥२४॥
भूतवानृषिभिः 'पूर्वं माधवायस्य भो द्विजाः। भृगुध्वं तस्य कथां दिव्या भयशोकातिनाशिनीम्॥२५॥
स कृत्वा राज्यमेकाग्रं वर्षाणां च सहस्रशः। विचार्य 'लौकिकान्धर्मान्वैविकान्निपमास्तथा॥२६॥
कोशवाराधने विप्रा' निश्चितं व्रतमास्थितः। स गत्वा परमं क्षेत्रं सामरं दक्षिणाश्रयम्॥२७॥
तटे तस्मिन्पुनरेव रथे देशे कृष्णस्य चान्तिके। इवेतोऽयं कारयामास प्रसाव शुभलक्षणम्॥२८॥

ब्रह्मा बोले—राजा श्वेत की इन बातों को सुन कर सकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब प्राणियों को भयभीत करने वाले काल की आज्ञा दी। यम देव के आज्ञाकारी दुर्धन काल को वशीभूत कर मृत्यु के मुख में गए बालक को पुन जीवित कर दिया। इस प्रकार विप्रबृन्द। सकर ने उस मुनि-पुत्र को जीवित कर सारे ससार का कल्याण किया। और देवी पार्वती के सहित वह वहीं पर अन्तर्हित हो गए ॥१८-२१॥

मुनियों ने कहा—हे त्रैलोक्य के आदिकारण, ब्रह्मण्य देवाधिदेव जगत्पते। इस समय राजा श्वेत की परम रहस्यमयी बातें अधिकतर रूप से हम लोगों की बतलाइये ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—हे निष्ठाप मुनिबृन्द। जो मुझसे पूछ रहे हो, उस सम्पूर्ण लोक के लिए उपकारक रहस्य की पार्याय रूप से कह रहा हूँ, तुम लोग भुने ॥२३॥ श्वेतमायव का माहात्म्य अत्रिल पापी का नाशक है, जिसको भुन कर मनुष्य अपनी द्रष्ट कामनाओं का निवन्ध ही प्राप्त करता है ॥२४॥ विप्रबृन्द। प्राचीनकाल में ऋषिपति ने इस श्वेत माधव की कथा सुनी, उसी दिव्य, मय, दौक और पीडा को नष्ट करने वाली कथा को तुम लोग सुनो ॥२५॥ उस राजा श्वेत ने एकाग्र भाव से एक हजार वर्ष तक लोक-धर्म और वैदिक नियमों का पयावत् पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया ॥२६॥ विप्रबृन्द। राज्य-शासन के अनन्तर उसके मन में मयवान् की आराधना का दृढ सङ्कल्प उत्पन्न हुआ। इस विचार से दक्षिण दिशा में पवित्र समुद्र के तट पर स्थित शुभ तीर्थ में इच्छा मन्दिर के समीप

धन्यन्तरशतं चक्रे देवदेवस्य दक्षिणे । ततः श्वेतेन विप्रेन्द्रा श्वेतशत्रुमयेन च ॥२९॥
 कृतं स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसन्निभः । प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयमुत्स ॥३०॥
 दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम् । अयान्तरतो राजा माधवस्य च सन्निधौ ॥३१॥
 महीं निपत्य सहसा ओकारं द्वादशाक्षरम् । 'अपन्त मौनमास्थाय मासमेकं समाधिना ॥३२॥
 निराहारो महाभाग सम्यग्विष्णुपदे स्थितः । जपान्ते स तु देवेश सस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३॥

। श्वेत उवाच

ओ नमो वासुदेवाय नमः सकर्षणाय च । प्रद्यम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥
 नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे । निर्गुणायान्तर्कर्षाय शुचये 'शुपलकर्मणे ॥३५॥
 ओ नमः पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च । नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नमः ॥३६॥
 ओ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मोदुये । नमः सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यये ॥३७॥
 ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे । वरिष्ठाय 'वरेण्याय' शरण्यावाध्युताय च ॥३८॥
 ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च । बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥
 केशवाय नमो निस्थ नमो नारायणाय च । माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४०॥

ही परम मनोहर सौ भक्तान्तर (४०० हाय) की नाप का उत्तम मन्दिर बनवाया उसमें श्वेत परम्पर की चन्द्रमा व
 रमान स्वच्छ भगवान् श्वेतमाधव की विधिवत् मूर्ति स्थापित का दान अनाथ और तपस्वी ब्राह्मणों का दान दिया
 ॥२७ ३०॥ श्वेत उपासक राजा न माधव मूर्ति के समीप जाकर सहसा सप्टांग प्रणाम किया। वह एक
 मास तक मौन रह कर समाधित्व ही द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करता रहा। जप-काल में वह श्वेत
 निराहार रह कर अपने मन का मनीमूर्ति विष्णु के चरणों में हा लगाय रहा। जप का उपरान्त वह श्वेत
 देवेश की स्तुति करने लगा ॥३१ ३३॥

श्वेत ने कहा—आ वासुदेव सवर्ण प्रद्युम्न अनिरुद्ध और नारायण का नमस्कार है ॥३४॥ बहुरूपार्थ
 विश्वरूप निर्गुण तर्क ॥ अगम्य पवित्र तथा शुभ वस्तु करने वाला ब्रह्म का नमस्कार है ॥३५॥ पद्मनाभ कमल वंशम
 उत्तम दाता का तथा कमल के समान वंश और हस्त वाल प्रभु का नमस्कार है ॥३६॥ पद्मगर्भ समान सत्य भक्त
 का वंशपाददाता की नमस्कार है। सहस्र चरण और मुखावा मयू (यम रुद्र) की नमस्कार है ॥३७॥
 वरद मुष्टिप्रतिमा वाक् शब्द वरण्य शरण्य और अज्युत योगवान् बलवान् की नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप धारण
 करने वाला नील कमल का समान वाक् शब्द नील मुख और चन्द्रमा रूपी भक्त तथा कामल वंश वाक् शब्द
 का नमस्कार है ॥३९॥ माधव का नमस्कार है, नारायण का भोग नियम नमस्कार तथा वरिष्ठ माधव और गोविन्द

१। ० श्वेतमा० । २। ० नारायण० । ३। ० चन्द्रमा गो० । ४। ० सर्ववर्णाय । ५। ० यमे नमः ।
 ६। ० वरिष्ठाय । ७। ० वंश वरदाय ।

ओं नमो विष्णवे नित्यं देवाय वसुरेतसे। मधुसूदनाय नमः शुद्धायाशुभराय च॥४१॥
 'नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमः श्रोवत्सधारिणे। त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च॥४२॥
 सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे' नमो नमः। नमोऽस्तु 'गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः॥४३॥
 नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्त्रे। नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने॥४४॥
 'नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्यव्यक्तरूपिणे। अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च॥४५॥
 सत्सारणं प्रोक्ताय प्रज्ञान्ताय स्वरूपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय द्वायोत्तारणाय च॥४६॥
 भवभङ्गहृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसंघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः॥४७॥
 ओं नमो विष्णुरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च। 'सोमसूर्याशुकेशाय गोक्षाह्मणहिताय च॥४८॥
 ओ नमः ऋक्स्वहपाय पदक्रमस्वरूपिणे। ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्यं नमः ऋक्साधनाय च॥४९॥
 ओं नमो यजुषा धात्रे यजुरूपधराय च। यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः॥५०॥
 ओ नमः श्रीपते देव श्रीधराय धराय च। श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने॥५१॥
 ओ नमः सामरूपाय सामध्वनिधराय च। ओं नमः सामसौम्याय सामयोगिधरे नमः॥५२॥
 साम्ने च सामगीताय ओ नमः सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च॥५३॥
 नमस्त्यव्यवर्धिशरसे नमोऽयवर्धस्वरूपिणे। नमोऽयवर्धपादाय नमोऽयवर्धराय च॥५४॥

१। धार-धार नमस्कार है॥४०॥ विष्णु, वायुदेव इव का भरा नित्य नमस्कार है, शुद्ध स्वरूप, तजामय मनुसूदन का नमस्कार है॥४१॥ अनन्त, सूक्ष्म, श्रोवत्सधारी, त्रिनित्रम, दिव्य पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान का नमस्कार है॥४२॥ सृष्टि, पालन और पापण करन वाल, गुणभूत, निर्गुण ब्रह्म को धार-धार नमस्कार है॥४३॥ वामन रूप वामन कर्म, वामन नम और वामन धन (धान) वाले वामन भगवान् को नमस्कार है॥४४॥ रम्य, पूज्य, अन्यक्त स्वरूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और मय दूर करने वाल भगवान् को नमस्कार है॥४५॥ सत्सार रूपा सत्सार के धार करने के लिए पीत के समान, प्रज्ञान रूप वाल, सौम्य रूप शिव, उद्धारकर्त्ता इन्द्र, सत्सार का नाश करने वाले, सत्सार के सुवदता, सत्सारव्यापी और सृष्टिकर्त्ता को नमस्कार है। दिव्य रूप वाले, श्रम, अग्नि और वायु रूप म राज म प्रसिद्ध साम और सूर्य की किरण रूपी केत वाले तथा या ब्राह्मण के हितकारी ब्रह्म का नमस्कार है॥४६-४८॥ पद नम रूपवाले ऋक्पद स्वरूप ऋक्वाजा स स्तुत, ऋग्वेद की साधना के परम लब्ध तुमको नमस्कार है॥४९॥ यजुर्वेद को धारण करने वाले फिर भी यजुषरूपधारी यजुष स पूजित और सप्रम वन्दित पालन ब्रह्म को नमस्कार है॥५०॥ श्रीपति 'हे देव' आपका नमस्कार है, श्रीधर, लक्ष्मी के स्वामी, उदार, य मिया के द्वारा स्नान और स्वयं भी यानी नारायण का नमस्कार है॥५१॥ साम स्वरूप साम की सौम्य ध्वनि स गेय, साम के समान मधुर और सामग्रय के ज्ञाता, साम से बाण गण और सामवदधारी, साम यज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता का नमस्कार है॥५२-५३॥ अयव शिर, अयव रूप वाल, अयव रूपा चरण वाल अय च अयव के वक्ता के लिए

१। स तुभ्यं। २। नमः। ३। य सुरेतसे०। ४। यद्वायु अक्षर०। ५। यत् नमः पी०। ६। यत् अम्बरधरा०। ७। यत् हवै। स हवै। ८। यत् गुणभूताय। ९। यत् अंमोऽनन्ताय। १०। यत् धोरूपधराय। ११। यत् सूर्याग्निने०।

ओ 'नमो घञ्शोर्पाय मधुकंटभघातिने । महोदधिजलस्थाय । वेदाहरणकारिणे ॥५५॥
 नमो 'दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः । नमो भगवते तुम्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६॥
 नारायण नमस्तुम्य नमो लोकहिताय च । ओ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७॥
 गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च । प्रलोचयते जसा कर्त्रे नमस्तेजस्वरूपिणे ॥५८॥
 योगीश्वराय 'शुद्धाय' रामायोत्तरणाय च । सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे ॥५९॥
 वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय च नमः । देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०॥
 देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने । नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१॥
 ओ नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय' च । नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२॥
 यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे । सकर्षणाय च नमः प्रलम्बमधनाय च ॥६३॥
 'भेद्यधोपस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे । नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४॥
 न मेऽस्ति त्वामृते क्षण्युर्नरकोत्तारणे प्रभो । अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५॥
 मल यत्कायज धार्मि मानस धैव केशव । न तस्यान्धोऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत ॥६६॥
 सप्तर्गाणि समस्तानि विहाय 'त्वामुपस्थित' । सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय वेश्य ॥६७॥
 ऋष्टमापत्सुषुप्पार सप्ताह वेद्मि केशव । सापत्रयपरिविलष्टस्तेन त्वां शरण गतः ॥६८॥

हमारा नमस्कार है ॥५४॥ वज्र 'न' समान गिर वाले, मधुकंटक की साखे वाले एक भट्टान् समुद्र के जल में स्थित
 और वेदा के उद्धारकर्ता का नमस्कार है ॥५५॥ परम प्रणामय हृषीकेश वासुदेव भगवान् तुमका मया नमस्कार
 है ॥५६॥ नारायण । लोक हिम करने वाले, मोहनाशक, भवभङ्गकारी आपका नमस्कार है ॥५७॥ सप्ताह का गति
 देने वाला, बाधाहारी को नमस्कार है, जिगाह का तेजोमय करने वाला, तेजस्वरूप भगवान् का नमस्कार है ॥५८॥
 योगीश्वर, शुद्ध लोक से उद्धार करने वाला राम का नमस्कार है, सुख देने वाले, सुखस्वरूप और सुकृत धारण करने
 वाले को नमस्कार है ॥५९॥ वन्द्याय वासुदेव वामदेव, वृद्धाग्या के सप्टा और भद्रमास को नष्ट करने वाले को
 नमस्कार है ॥६०॥ देवताओं से बन्दि दिव्य मुकुट वाले, वास रूप, निवास रूप तथा वासव्यवहार का नमस्कार
 है ॥६१॥ वसु (जत्र) की मूर्ति करने वाले, वसु का काम देने वाले, यज्ञ स्वरूप योगी और योगिनी का नमस्कार
 है ॥६२॥ यति और योगिना के ईश यज्ञागधारी प्रलम्ब नामक अंगुलि के धारण वाले सकर्षण का नमस्कार है ॥६३॥
 क्षय ध्वनि से भी अधिक गम्भीर ध्वनि वाला, हल धारण करने वाला ज्ञानिना में जान रूप तथा नारायण-परायण
 को नमस्कार है ॥६४॥ प्रभो । इस तरह से पार उगारने का गति तुमसे बढ़ कर कोई मया गहाय नहीं है, मैं
 मान-बदलता । मैं सब प्रकार से आपका शरण मई ॥६५॥ देवता । अच्युत । भगव । तुमको छोड़ कर शरण
 और मानगिर पोषा का पान वाला दूसरा कोई नहीं है ॥६६॥ भगव । मैं भक्त सत्त्वपात्र योग कर तुम्हारे
 शर्माय भाया हूँ इसलिए तुम्हारे साथ मया दुःख सब्ध हुआ जाय जिससे आनन्दान या जाऊँ ॥६७॥ भगव । ऋष्ट

१५ ओ नमो वाजिशी ० १६ य दीवस्व ० १७ य शशीस्वराय ० ४५ ॥ शुद्धाय ० ५४ या ० य वासा ०

१६ एतन्मयप्रदाय ० ७८ नमस्कार ० १७ नमस्कार ० ८९ ० मुपाश्रित ० ९४ च ० ९५ य योगीश्वर ०

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यंरतस्त्वामहमाश्रितः॥६९॥
नास्ति किञ्चित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहिनिः। यया यथा हि यत्नेन त्वयि चेतः प्रवर्तते॥७०॥
तया फलविहोनेन तु सुखमात्मयन्तिकं लभेत्। नष्टो विवेकान्न्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम्॥७१॥
गोविन्द ग्राहि संसारान्मायुद्धतुं त्वमर्हसि। भग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष स्वामृतेऽन्यो न विद्यते॥७२॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राजा श्वेतेन भो द्विजा। तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुण्योत्तमे॥७३॥
भक्तिं तस्य तु सचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम नृपस्याग्रे सर्वदेववर्तते हरिः॥७४॥
नीलजीमूतसंकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम्॥७५॥
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसनिभः। रराज वामहस्तेऽप्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः॥७६॥
पक्षिराजप्वजः श्रीमान्गदाशाङ्गसिंघप्रभुः। उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा॥
यदिदं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

भूतैश्च देवदेवस्य वाक्यं तत्परमाभूतम्। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः॥७८॥

और आपत्तिया के कारण, दुःख से पार पाने योग्य इस संसार को भलीभाँति जानता हूँ। अब मैं त्रिविध साप से चतुष्टय हो गया हूँ, इसलिए प्रभो! आपकी चरण आया हूँ॥६८॥ तुम्हारी भाषा के कारण यह साप संसार कामनाया से मुक्त, लिप्त और लाम कायादि से आहत है, अतः मैं तुम्हारा आश्रित हूँ॥६९॥ विष्णो! संसार-पिण्ड जीवा का कुठ भी मुझ प्राप्त नहीं। यत्नेन। ज्या-ज्यो आप मे मनुष्य का चित्त रगता जाता है, त्यो-त्यो पञ्चाकाशा रहित आत्यन्तिक मुख उसको मिलते जाते हैं। मैं ज्ञान-गुण्य और नष्ट-सा हूँ, यह साप संसार व्याकुल दिग्दर्शक रह रहा है। गोविन्द! रक्षा करो। तुम्हीं संसार-सागर से मेरा उद्धार कर सक्ते हो। पुण्डरीकाक्ष! इस मोह-वपी जल से भरे, पार न करने योग्य संसार सागर में मग्न (डूबे हुए) मुझ जैसे के उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है॥७०-७२॥

ब्रह्मा बोले—‘विप्रबुध’! उस दिव्य, प्रसिद्ध पुण्योत्तम नामक पवित्र तीर्थ में इस प्रकार राजा श्वेन ने भगवान् की स्तुति की। उसकी भक्ति से आहत होकर नील मेघ के समान कान्तिमान् कमल-पत्र के समान बड़े और मनोहर नेत्र वाले, हस्ताग्र म प्रकाशमान सुदर्शन चारण क्रिये निर्मल चन्द्रमा के समान कान्तिमान्, क्षीरसागर के जल के समान प्रभापूर्ण, वायें हाथ में महातेजोमय पाञ्चजन्य ध्वज चारण क्रिये हुए गरुड के ऊपर आसीन तथा यदा, धनुष, सङ्ग चारण क्रिये हुये देवदेव जगद्गुरु हरि देवतात्रा के सहित राजा के पाम आए और बोले—‘राजन्! तुम पण्य हो, तुम्हारी उत्तम बुद्धि प्रशस्तनीय है। अनघ! अभीष्ट वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ,॥७३-७७॥

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव भगवान् की ऐसी परम सुधापयी वाणी को सुनकर राजा श्वेन ने नमस्त्वं हो प्रणाम करते हुए कहा—॥७८॥

पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽयं सागरे । त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं
नामंकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम् । एकार्णवजले 'पूर्वं' रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥
वेदानां 'हरणार्णम' रसातलतले स्थितम् । चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्स्थानस्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
आद्यान्तरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम् । प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वं वृक्षादिमुच्यते ॥३॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् । काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
धत्समाधवमासाद्य कुराधर्षो भवेन्नरः । जाता भोक्ता भवेद्यज्या ब्रह्मणः सत्यसंगरः ॥५॥

है ॥९०॥ तदुपरान्त पुरुषोत्तमतीर्थं मे आकर सागर तट पर स्थित वट की छाया मे भगवान् का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर परम पद को प्राप्त करता है ॥९१॥

श्री ब्रह्मनहापुराण मे श्वेतमाधव-माहात्म्य-वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

ब्रह्मा मे कहा—श्वेतमाधव का दर्शन कर समीप मे ही स्थित उस मत्स्यमाधव को चित्तमग्न भाव से प्रणाम करने पर मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है। पूर्वकाल मे मत्स्यमाधव ने समुद्रमग्न पृथ्वी पर रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेदा का उद्धार करने के लिये वह रसातल मे स्थित रहे और पृथ्वी को पुनः पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, यही भगवान् का मत्स्यरूप मे प्रथम अवतार था। वह मनुष्य, जो मत्स्य को प्रणाम करता है वह उसी स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ भगवान् विष्णु स्वयं निवास करते हैं। समय पर (सृष्टि काल मे) वह पुनः इस मृत्युलोक मे आकर राजा होता है। मनुष्य मत्स्यमाधव का दर्शन कर अत्यन्त पराक्रमी, अजेय, दानी, भोगी यत्नकरी, विष्णुभक्त और सत्यप्रेमी होता है। लौकिक सुख-भोग के पश्चात् वैष्णव योग को पाकर मोक्ष प्राप्त

१क. ख. पूर्णो । २क. मोहित । ३ख. करणार्णवि ।

योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो भोक्षमवाप्नुयात् । मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम् ॥
य दृष्ट्वा मुनिशार्दूला सर्वाङ्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

मुनय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये । श्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद ॥७॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि । भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम् ॥८॥
मार्कण्डेयह्रदे स्नानं पूर्वकाले 'प्रशस्यते । शतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥
तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकालं प्रशस्यते । पौर्णमास्या विशेषेण हयमेधफलं लभेत् ॥१०॥
मार्कण्डेय वट कृष्ण रौहिणेय महोदधिम् । इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थोविधि स्मृत (?) ॥११॥
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा श्रद्धा यदा भवेत् । तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराजं परं शुभम् ॥१२॥
कायवाहमानसं शुद्धस्तुब्बाबो भान्यमानसः । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो शीतरागो विमत्सरः ॥१३॥
कल्पवृक्षवटं रम्यं तत्र स्नात्वा जनार्दनम् । प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रिवारं सुसमाहितः ॥१४॥
य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भावात् । पुण्यं चाऽऽप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च भो द्विजा ॥१५॥

करता है। मुनिवर ! मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य कह दिया जिसका दशन कर मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है ॥१६॥

मुनियो ने कहा—भगवन् ! अब हम लोग समुद्र में स्नान करने की विधि स्नान दानादि करने का फल भलीभाँति सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! मार्जन की विधि और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से स्नान से जो उत्तम पुण्य प्राप्त होता है उसे सुनिए ॥८॥

मार्कण्डेय ह्रद का प्रातःकालीन स्नान पापनाशक होता है शतुर्दशी के दिन का स्नान तो विशेष रूप से सभी पापों को दूर करता है ॥९॥ उसी प्रकार यो तो सबदा समुद्र का स्नान प्रशस्त माना गया है परन्तु पूर्णिमा के दिन स्नान करने से विशेष रूप से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय ह्रद कृष्ण वट रौहिण्य महोदधि (सागर) इन्द्रद्युम्न सर—इन पाँच तीर्थों के स्नान की विशेष विधि कही गई है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा यदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष रूप से परम शुभ तीर्थराज की यात्रा करनी चाहिये ॥१२॥ वहाँ शरीर वाणी और मन से शुद्ध एवं सभी प्रकार के आन्तरिक द्वन्द्व राग ईर्ष्या से मुक्त हो अनन्य मन और साधना से मनोहर कल्पवटवृक्ष के समीप स्नान कर एकाग्र हो जनार्दन की तीन बार प्रदक्षिणा करे ॥१३॥ १४॥ विप्रगण वहाँ पर जनार्दन भगवान का दशन कर मनुष्य अपने सात जन्म के पापों से छूट जाता है और अत्यन्त पुण्य तथा मनवाहे

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे। यथासंख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
 वटं वटेश्वरं 'कृष्णं' पुराणपुरुषं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
 योजनं पादहीनं च योजनार्थं तदर्थकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम्॥१८॥
 'ययोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो भृच्छेद्वन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥
 यज्ञासौ दृश्यते विष्णुः' स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागराम्भ. 'समाकृष्टं' काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥
 प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। 'मुच्यते' सर्वरोगाद्यस्तथा पापं प्रहृदिभिः॥२१॥
 उपसेनं पुरा वृद्धा स्वर्गद्वारेण 'सागरम्'। भृत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥
 न्यसेद्वृष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्वस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिणः॥२३॥
 किं कार्यं बहुभिमन्त्रे मनीषिणो विष्णुकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
 आपो नरस्य सूनुरवाभ्रा रा इतीह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्तत्त्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥२५॥
 नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
 नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो बह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
 नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

फल को प्राप्त करता है ॥१५॥ विप्रण। मैं उस वट के नाम ध्यानरूप प्रमाण और कृतादि युगा के अनुसार सख्या क्रमपूर्वक कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। द्विजगण। कृत आदि युगा में इस वट के वट, वटेश्वर, कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कहे गये हैं ॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादोन योजन (तीन कोश) आधा (दो कोश) उसका आधा (एक कोश) त्रयसा कृत श्रेता, आपर और कलि में कहा गया है ॥१८॥ यद्योक्त मन्त्र से उस वट का नमस्कार कर दक्षिण की ओर तीन सौ घन्वन्तर (१२०० हाथ) पर्यंत जाना चाहिए। जहाँ विष्णु मनारम स्वर्गद्वार तथा सनुद्र-जल के द्वारा लाया गया सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ दिखाई देता है ॥१९-२०॥ वहाँ पर भगवान् ४। नमस्कार और पुनः पूजन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोग, पाप और ग्रह-भीषा से छूट जाता है ॥२१॥ पहले उपसेन का दान कर स्वर्ग द्वार से सागर के समीप आकर, आचमन करके पवित्र हो जाय, फिर नारायण का स्मरण कर हाथ और शरीर पर 'ओ नमो नारायणाय' इस अप्ठोखर मन्त्र से न्यास करे। अन्य बहुत से भ्रम पैदा करने वाले मन्त्रा से कोई लाभ नहीं, यह ओ नमो नारायणाय मन्त्र ही सभी अर्थों का साधक है ॥२२-२४॥ नर से उत्पन्न होने के कारण आप (जल) की 'नार' इस नाम से इस लोक में कहा गया है, वह पहले-पहल विष्णु का निवास-स्थान बना इसलिये विष्णु 'नारायण' इस नाम से विख्यात हुये ॥२५॥ वेद द्विज, यज्ञादि सभी नियाम्य पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि वायु और मन सभी नारायण पर हैं, अर्थात् नारायण की उपासना में लीन और नारायण रूप हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणात्मक हैं, भूत, मय्य, स्रष्टव्य और समस्त जीव नाम से प्रसिद्ध पदार्थ तथा स्थूल, सूक्ष्म पर ये सभी नारायणात्मक हैं ॥२६-२९॥ शब्द, रस आदि सभी विषय, श्रोत्र (कान) आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति—यहाँ तक कि पुरुष भी

१क पूर्व। २ग पूर्वोक्तेन। ३क ग विद्वत्। ४ग ०माकीर्णं वा०। ५स ०ते वृष्टरोगैस्तु तथा।
 ६क संगतम्। ७क ०त्वा तत्र शुचिर्भूत्वा ध्या०। ८क ०स्तास्तव्य०।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम्। स्थूलं सूक्ष्मं परंचैव सर्वं नारायणात्मकम्॥३१॥
 शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः॥३२॥
 जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे। अवष्टम्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः॥३३॥
 किं चान यहुनोवतेन जपदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम्॥३४॥
 नारायणात्परं किञ्चित्त्रेह पश्यामि भो द्विजाः। तेन व्याप्तमिदं सर्वं बुद्ध्यादुद्भूतं चराचरम्॥३५॥
 आपो ह्यापतनं विष्णोः॥ च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम्॥३६॥
 स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाप्य जले क्षुधिः। स्मरेत्तानारायणं ध्यायेद्वस्ते काये च विन्यसेत्॥३७॥
 ओंकारचनकारं च धृष्ट्यै हस्तयोग्यंसेत्। शेषं हं (पाहं) स्ततलं (ले) यावत्तज्जगद्वा विपु विन्यसेत्॥३८॥
 ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्। मोकारं वामकट्या तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत्॥३९॥
 राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके। णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्॥४०॥
 अथश्चोर्ध्वं य हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चाद्वारभेत्कवचं बुधः॥४१॥
 पूर्वं मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे धीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे॥४२॥
 पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैऋते माधवोऽज्ययः। वायव्ये तु हृषीकेशस्तपेशाने च वामगः॥४३॥
 भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः। कृत्वेव कवचं पश्चाद्वारमानं चिन्तयेत्ततः॥४४॥

नारायणात्मक है॥३०॥ जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, लोक, आकाश और पहाड़ सर्व नारायण व्यापक रूप से स्थित है॥३१॥ इस नियम से और अधिक क्या कहा जाय, यह सचराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ पर्यन्त सब कुछ नारायणात्मक है॥३२॥ द्विजगण। नारायण के अतिरिक्त कोई भी वस्तु यहाँ नहीं दिखाई दे रही है, यह सारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चराचरात्मक जगत् उसी नारायण से व्याप्त है॥३३॥ विष्णु का जल ही निवास स्थान है वे ही जल के स्नानी हैं इसलिये जल में सर्वदा उस अथर्व नारायण का स्मरण करना चाहिये॥३४॥ स्नान के समय तो विशेष रूप से जल में पवित्र भाव से स्थित होकर नारायण का स्मरण, ध्यान और हस्त तथा शरीर पर अंग-न्यास करना चाहिये॥३५॥ पहले ओंकार और नकार को हाथों के अंगूठे पर न्यास करे, शेष मन्त्रभाग से हस्त तल (हथेली) से लेकर तजनी आदि तक न्यास करना चाहिये॥३६॥ पुन ओंकार का बायें और नकार को दाहिने चरण पर न्यास करे। मोकार को वाम तथा नाकार को दक्षिण कटि भाग पर स्थापित करे॥३७॥ इसी प्रकार णकार को नाभि-देश में, यकार को बाईं भुजा पर, णकार को दाहिनी भुजा पर रखकर यकार को शिर भाग पर स्थापित करे।॥३८॥ तदनन्तर अथ, ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व (बगल) पृष्ठ (पीछे) और अग्र भाग में नारायण का ध्यान कर विद्वान् आगे कहे हुये नारायण कवच का पाठ प्रारम्भ करे॥३९॥ गोविन्द पूर्व में, मधुसूदन दक्षिण में, श्रीधर पश्चिम में, इसी प्रकार उत्तर में केशव देव मेरी रक्षा करे॥४०॥ और अग्निर्कोण में विष्णु नैऋत में अविनाशी माधव, वायव्य में हृषीकेश तथा ईशान में गगवान् वामन मेरी रक्षा करें॥४१॥ एव मू-पठ पर वाराह तथा आकाश में त्रिविक्रम विष्णु मेरी रक्षा करें। मैं ही सब, चक्र और नवाधारी भगवान् नारायण

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । एव ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥
 त्वमग्निद्विपदा' नायः रेतोधा कामदीपनः । प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४॥
 अमृतस्मारणस्त्व हि देवयोनिरपा पते । वृजिन हर मे 'सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत् । अन्यथा भो 'द्विजश्रेष्ठा स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥
 कृत्वा तु वेदिकमन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम् । अन्तर्जले 'जपेत्पञ्चाक्षरं वावृत्त्याऽधमर्षणम् ॥४७॥
 हृदये यथा विप्रा सर्वपापहरः शत्रुः । तयाऽधमर्षणं चात्र सूत सर्वपापनाशनम् ॥४८॥
 उत्तमं वाससी धौते निमले परिधाय वै । प्राणानायम्य चाऽऽधम्य सध्या चोपास्य भास्करम् ॥४९॥
 'उपतिष्ठेत्तद्विचोर्ध्वं क्षिपत्वा पुष्पजलाञ्जलिम् । उपस्थायोर्ध्वं बाहुभ्यां तस्मिन् भस्करं ततः ॥५०॥
 गायत्रीं पावनीं देवीं अपेक्ष्योत्तरं शतम् । अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठ समाहितः ॥५१॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च । स्वाध्यायं प्राङ्मुखः कृत्वा तर्पणं देवतान्युदीनम् ॥५२॥
 मनुष्याश्च पितृन्श्चान्यानामगोत्रेण मन्त्रवितः । तोषेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ॥५३॥
 तर्पणं देवतानां च पूजं कृत्वा समाहितः । अधिकारो भवेत्पञ्चाक्षरं तर्पणं द्विजः ॥५४॥
 श्राद्धे हवनकाले च पाणिर्नकेन निर्वपेत् । तर्पणं 'सूभयं कुर्यादप्येव विधिः सदा ॥५५॥

हैं इस प्रकार नारायण रूप में अपने को ध्यान में रखकर इस आगे कहे हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥४३॥
 हे नरनाथ ! तुम अग्नि बीज धारण वाले और प्राणियों के हृदय में काम को दीप्त करने वाले हो । तुम सभी मूलों
 (जीव या पदार्थ) में प्रधान और जीवों के अविनाशी प्रभु हो ॥४४॥ जल के स्वामी ! तुम अमृत के निधान और
 देवयोनि हो तीर्थराज ! मेरे सभी पापों को दूर करो तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर
 विधिवत् स्नान करना चाहिये । विप्रवय ! अन्यथा (अविधि से) समुद्र में स्नान करने का कोई विशेष फल नहीं
 होता ॥४६॥ वैदिक मन्त्रों से अभिषेक और मार्जन करने के पश्चात् जल में डूबकर तीन बार अधमर्षण मन्त्र का जप
 करे ॥४७॥ ब्राह्मण ! जिस प्रकार अश्वमेध सब पापों को नष्ट करनेवाला यज्ञ है उसी प्रकार इस लोक में
 अधमर्षण सब पापों को नष्ट करने वाला सूक्त है ॥४८॥ जल से निकल कर स्वच्छ घुले उत्तरीय बन्ध पहनकर
 प्राणायाम और आचमन कर विधिवत् सध्यापासन करे । तदनन्तर पुष्पवृक्ष जलाञ्जलि देकर लङ्घ्य होकर सूर्यो
 पस्थान करे ऊर्ध्वबाहु हो पूज्य प्रकार से ही सूर्योपस्थान करने के बाद एकाग्रचित्त से पवित्र गायत्री देवी का एक सौ
 षष्ठ बार और अन्य सूक्त-मन्त्रों का भी जप करे ॥४९॥ पुनः सूर्य की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कर आसनस्थ
 हो पूज्य की ओर मुख कर स्वाध्याय करे । मन्त्र मनुष्य स्वाध्याय के बाद तिलमिश्रित जल से विधिपूर्वक एकाग्र
 मन से देवताओं ऋषियों और नाम गोत्रपूर्वक मनुष्या पितरों एवं अन्य मूलों का तर्पण करे ॥५०॥ ब्राह्मण
 मन से देवतार्पण करने के बाद ही पितृतर्पण का अधिकारी होता है । श्राद्ध और हवन काल में एक हाथ से ही
 निर्वपण (श्राद्ध या हवन की क्रिया) करना चाहिये । तर्पण में दोनों हाथों से क्रिया करे यही सनातन विधि है ॥५१॥

१क स - द्विपदा ना० । २स ना च प्रमुख्यक । अ० । ३न स ०य । यतस्तस्या० । ४क देव ।
 ५य मुनिश्रेष्ठा । ६क ०वामन चाप्यथ० । ७व ०त्ततो विप्रा नि० । ८क नर । ९क तपयेत् । १०स द्वितीय ।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। 'तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥५६॥
 कायस्वैर्यंस्तिर्लेर्मोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तो न पितरस्त्वद्भमासधिरास्थिभिः॥५७॥
 अङ्गस्थेन तिलं। कुर्याद्देवतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भूवेतोय प्रदाता किंत्वपि भवेत्॥५८॥
 भूम्यां यद्दीयते तोय दाता चैव जले स्थित। यथा तन्मुनिशार्दूलो नोपतिष्ठति कस्यचित्॥५९॥
 स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेद्बुदक नरः। पितृणां नोपतिष्ठेत सलिल तन्निरर्थकम्॥६०॥
 उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तोर्यं तु शुचौ देशे कुर्याद्बुदकतर्पणम्॥६१॥
 नोदकेषु न पात्रेषु न घृद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते॥६२॥
 पितृणामक्षयं स्थानं महोदत्ता मया द्विजाः। तस्मात्सर्वं दत्तव्यं पितृणां प्रीतिमिच्छता॥६३॥
 भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः। भूम्यां चैवल्यं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्॥६४॥
 आस्तीर्य च कुशांस्तप्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः। प्राचीनाग्रेषु च देवाग्याम्याग्रेषु तथा पितृन्॥६५॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये स्वयम्भुद्विषसंवादे समुद्रस्नानविधिर्निरूपणं नाम
 षष्ठितमोऽध्यायः॥६०॥

५५॥ अन्वारब्ध (वायें पैर को मोड़कर बैठना) हो वायें हाथ से दाहिने हाथ में जल गिराता हुआ बाणी का समय कर नाम गोत्र का उल्लेख करता हुआ 'तृप्यताम्' इस मन्त्र से तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य शरीर पर तिल रख कर अज्ञान ब्रह्म पितृतर्पण करता है वह अपने पितरों का मांस, रुधिर और चर्म अस्थि से तर्पण करता है॥५६-५७॥ इसलिये शरीर पर रखे तिलों से कभी भी देव पित्रु तर्पण नहीं करना चाहिये क्योंकि तर्पण में दिया वह जल रुधिर के समान होता और वह दाता पाप का भागी होता है॥५८॥ मुनिवयः । दाता द्वारा स्वयं जल में स्थित होकर भूमि पर दिया हुआ जल व्यर्थ जाता है वह किसी पितर या देव को प्राप्त नहीं होता॥५९॥ इसी प्रकार जो स्थल पर बैठ कर जल में तर्पण जग गिराता है वह जल व्यर्थ हो जाता है, किसी पितर को प्राप्त नहीं होता॥६०॥ जल में स्थित होकर जल में कभी भी तर्पण नहीं करना चाहिये किन्तु जल से बाहर निकल कर पवित्र स्थान पर जल-तर्पण करना चाहिए॥६१॥ कुछ होकर, एक हाथ से, जल में या किसी पात्र में तर्पण जल नहीं गिराना चाहिये क्योंकि वह जल जो पृथ्वी पर नहीं दिया जाता व्यर्थ जाता है किसी अनीष्ट उद्दिष्ट पितर या देवता को प्राप्त नहीं होता॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने पितरों को पृथ्वी ही अक्षय स्थान के रूप में दी है इसलिये पितृप्रेमी व्यक्ति पितरों को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर ही तर्पण जल दे॥६३॥ पितर लोग इस मूषष्ठ पर ही उत्पन्न हुये, भूमि पर ही रहे और अंत में भूमि में ही लीन भी हों मये इसलिये भूमि पर ही अग्रभागसहित कुशाओं को फैलाकर, उनका मन्त्रों से आवाहन कर पूर्वाग्रभाग में देवताओं के लिये और दक्षिण भाग में पितरों के लिये जल देना चाहिये॥६४ ६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में समुद्रस्नान विधि निरूपण नामक साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

पूजाविधिवचनम्

ब्रह्मोवाच

देवान्पितृस्तथा चान्यान्सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यत । हस्तमात्रचतुष्कोण चतुर्द्वारसुशोभनम् ॥१॥
 पुरविलिह्य' भो विप्रास्तोरे तस्य महोदधे । मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्र सर्वाणिकम् ॥२॥
 एव मण्डलमालिह्य पूजयेत्तत्र भो द्विजा । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमज विभुम् ॥३॥
 अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् । 'अकार' हृदये ध्यात्वा' चक्ररेखासमन्वितम् ॥४॥
 ज्वलन्तं त्रिशूलं चैव दहन्त पापनाशनम् । 'चन्द्रमण्डलमध्यस्थ' 'राकार' मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥
 'शुक्लवर्ण' प्रवर्ण्यन्तममृत प्लावयन्महोम् । एव निर्धूतपापस्तु 'दिक्पदे'हस्ततो भवेत् ॥६॥
 अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽमनो ब्रुव । वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥
 पञ्चाङ्गं वृण्वद् चैव चतुर्व्यूहं तथैव च । करशुद्धिं प्रतुर्वीर्यं मूलमन्त्रेण साधक ॥८॥
 एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् । ओकारपृथिवीं शुक्लं वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
 नकारं 'शांभवं' इयामो वक्षिणे तु व्यवस्थित । मोकारं कालमेवाऽङ्गुर्वामिकट्या निधापयेत् ॥१०॥

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव पितर और मनुष्या का तपण कर मौन हो आचमन कर विप्रगण उस महोदधि के तट पर एक हाथ लम्बा उठना ही चौड़ा एक सुन्दर चतुर्भुज शत्रु बनाये जिसके चारो ओर चार द्वार हो उसके मध्य में आठ पल्लवियों वाला कमल बनाये । द्विजवृन्द । ऐसा मण्डल बना कर उसमें अष्टाक्षर मन्त्र से अज, व्यापक नारायण की स्थापना कर पूजा करे ॥१॥३॥ अब हस्तके बाद उत्तम शरीर-शोचन की विधि बतला रहा हूँ । पहले हृदय में अकार रेखा से युक्त आकार का जिसमें पापों को नष्ट करने वाले प्रज्वलित अग्नि का भी रूप हो— ध्यान करे और मस्तक में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण और अपनी अमृत-वर्षा से पृथ्वी को डुबाने या मरते हुए से 'रा' का ध्यान करे ॥४॥५॥ इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य पापमुक्त और दिव्य देहवाला हो जाता है । तदुपरान्त विद्वान् मनुष्य अपने बायें पैर से आरम्भ कर क्रमशः अन्य अंगों में अष्टाक्षर मन्त्र से अङ्गन्यास करे ॥६॥७॥ वह साधक फिर वृण्वद् पञ्चाङ्ग तथा चतुर्व्यूह और मूल मन्त्र से करशुद्धि करे ॥८॥ अङ्गुलिया पर पृथक् पृथक् एक एक वर्ण का और बायें पैर पर शुक्ल वर्ण पृथिवी आकार का न्यास करे ॥९॥ दक्षिण

१ख विलिप्य । ग प्रलिप्य । २ग लकार । ३ख ग चिन्त्य । ४ख ० रेफख० । ५ख चतुर्मुण्ड० । ६ख लकार । ७ख चकार । ८ख रक्तवर्ण । ९ख ० व्यहस्तस्त० । १०ख शोभन ।

नाकार 'सर्वबीज' तु दक्षिणस्या व्यवस्थित । राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थित ॥११॥
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रित । णाकार सर्वगो ज्येष्ठो दक्षिणांशे व्यवस्थित ॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोका प्रतिष्ठिता ॥१२॥

ॐ विष्णवे नमः शिरः । ॐ ज्वलनाय नमः शिखा । ॐ विष्णवे नमः कवचम् । ॐ विष्णवे
नमः स्फुरण दिशो बन्धाय । ॐ हुफडस्त्रम् । ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति । ॐ आ ललाटे
रक्त सकपणो गल्मान्बल्लिस्तेज आदित्य इति । ॐ आग्नीवाया पीत प्रद्युम्नो वायुमेघ इति ।
ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिमन्वित इति । एव चतुर्व्यूहमात्मानं कृत्वा तत् कर्म
समाचरेत् ॥१३॥

ममापेक्ष्यस्थितो विष्णु पृष्ठतश्चापि केशव । गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदन ॥१४॥
"उपरिष्ठात् बंकुष्ठो वाराह पृथिवीतल । अवान्तरविशो यास्तु तासु सर्वासु मायव ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रत स्वपतोऽपि वा । नरासहस्रकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एव विष्णुमयो भूत्वा तत् कर्म समारभत् । यया" बहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥

पाद पर क्षामवर्ण के शम्भु प्रतीक 'न' को स्थापित करे । 'मो' को काल ही कहा जाता है उसको वाम कटि पर
और सबके बीज रूप 'न' को दक्षिण कटि पर स्थापित करे । 'रा' को तेज कहा जाता है उसको नाभि प्रदेश में बा
प्रतीक 'य' को वायु के पर स्वस्त करे । गकार को सबव्यापक जानना चाहिये । इसी प्रकार ण को बाहि
पर तथा 'य' को —जिसमें सब लोक प्रतिष्ठित हैं—शिर पर स्थापित करे ॥१०-१२॥

पुनः ॐ विष्णवे नमः कहकर शिरः ॐ ज्वलनाय नमः कहकर शिखा ॐ विष्णवे नमः कहकर कवच ॐ विष्णवे
नमः और हुं फडस्त्रम् कहकर नेत्र-स्पर्श और दिग्बन्ध करे । इसके पश्चात् ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव (शिर पर शु
वासुदेव) ॐ आ ललाटे (ललाट पर) रक्त सकपणो गल्मान् बल्लिस्तेज आदित्य ॐ आग्नीवाया (पीता में) पी
प्रद्युम्न वायुमेघ ॐ आ हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिमन्वित इन मन्त्रों से अपने को चतुर्व्यूह से सुसज्जित कर
के बाद आगे कहीं विधि का अनुष्ठान करे ॥१३॥ मरे अग्रभाग में विष्णु पीछे बैराव दाहिने पार्श्व में योकि
बायें मधुसूदन ऊपर में वैकुण्ठ पृथिवी-तल पर भगवान् वाराह सम्पूर्ण दिशाओं और अवान्तर दिशाओं (कोनों में
मायव रक्षा करें इसी प्रकार चलते बैठते जागते और सोने समय मेरी नृसिंह भगवान् के द्वारा रक्षा है
अब मैं वासुदेवमय हो गया । इस प्रकार भगवान् स विष्णुमय होकर अग्रिम कर्म का आरम्भ करे और त्रि
प्रसार शरीर पर सब तत्त्वा भी योजना भी उसी प्रकार देव पर (मण्डलस्थ देव पर) सम्पूर्ण तत्त्वा भी योजना करे ॥१

१ ग पूरबीज । २ व ० वे इपु० । ३ स ० म स्फुरन्गारि० । ४ ० म शारधारि० । ५
० धम्मनम । ६ व ० नि । ए० । स ० नि० । ६ स ० णो बल्लि० । ७ व ० नि । आदि० । स ०
अग्नी० । ८ स ० मेपात्र इ० । ९ ग ० नि । अ ऊ ह० । १० ग ० य हृष्टोनि० । ११ व ० पतिष्ठतु वै
१२ स ० पार्श्वे त० ।

ततश्च प्रकुर्वीत प्रोक्षण 'प्रणवेन तु। फटकारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम्॥
'तत्राकंचन्द्रबह्वीना मण्डलानि विचिन्तयेत्। पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु' पवनस्याम्बरस्य च॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकार ज्योतीरपिणम्। कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम्॥
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम्। तेन व्यस्तसमस्तं पूजन परम स्मृतम्॥
द्वादशाक्षरमग्रेण यजेद्देव सनातनम्। ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया बहिन्यसेत्॥
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनात
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र त्रयेणाऽऽचिन्त्य मानसे

॥

आवाहनमन्त्र—मीनरूपो बराहश्च मरसिंहोऽथ वामन। आयातु देवो
मम नारायणोऽग्रतः। ॐ नमो नारायणाय नम

॥

स्थापनमन्त्र—कर्णिकाया सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम्। सर्वसत्त्वहितायैव तिष्ठ
मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नम

॥

अथमन्त्र—ॐ त्रैलोक्यपतिना पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नम। ओं
नारायणाय नम

॥

१७॥ इतमी क्रिया के पश्चात् विघ्न विनाशक गुप्त प्रणव से प्रारम्भ फटकारान्त वाले मन्त्र (ॐ नमो नारा
यणाय) प्रोक्षण (जः तिस्र) करे ॥१८॥ उस मण्डल में मूय चन्द्र अग्नि वायु और आकाश के चक्र स्थापि
पद्म के मध्य भाग में विष्णु की स्थापना करे ॥१९॥ तदुपरान्त अपने हृदय में पद्मपत्र पर स्थित ज्योतिः
सनातन ज्योतिर्मय ओंकार का ध्यान कर त्रयपूजक अष्टाक्षर मन्त्र का विन्यास करे फिर उसी मन्त्र से अलग
और समूहात्मक रूप में पूजन करना परम उद्दिष्ट कहा गया है ॥२० २१॥ द्वादशाक्षर मन्त्र से सनातन है
पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजन के बाद हृदय में भगवान् का ध्यान और सनातन ज्योति रूप महायोग
स्मरण कर कर्णिका के बाहरी भाग में महापराक्रमी कोटि सूर्य के समान तेजस्वी चतुर्भुज भगवान् की र
पर मन्त्र का क्रम से ध्यान कर आवाहन करे ॥२२ २३॥ आवाहन के मन्त्र— मीनरूप बराह
और वामन रूप धारण करने वाले वरदनारायण देव मेरे सम्मुख आये। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२४॥

स्थापन मन्त्र—इस सुन्दर कर्णिका के पीठ पर पद्म रूप में वक्षित आसन पर है मधुसूदन। अक्षिप्त
के कल्याण के लिए तुम बठो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२५॥

अथमन्त्र—ॐ त्रैलोक्यपति के भी पति देवदेव हृषीकेश विष्णु को नमस्कार है ॐ नमो नारायणाय नम।

१क प्रवर्णन। २ग प्रवर्णन। ३क ० प्रायश्चित्त ०। ३क ० द्विष्णुमवमत्वापरस्व तु। त०। ४त ० या हरि
५ग ० त्र ०। सुमेरु ० पादपीठ तै प०। ६क तीनामन्त्राय दे०। ७त ० यैऽर्थाय दे०।

पाद्यमन्त्रः—ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन । विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण
मधुसूदन । ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्रः—मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पित तव । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण
पुरुषोत्तम । ओ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीयमन्त्रः—मन्दाकिन्या सित वारि सर्वपापहरं शिवम् । गृहाणाऽऽचमनीय त्वं
मया भक्त्या निवेदितम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नानमन्त्रः—स्वपाप, पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च । लोकेन धृतिमात्रेण वारिणा
स्नापयाम्यहम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्रः—देवतत्त्वसमायुक्तं यज्ञवर्णसमन्वित । स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव ।
ओं नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपनमन्त्रः—शरीरं ते न जानामि खेष्टां चैव च केशव । मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य
विलिप्यताम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्रः—ऋग्यजु साममन्त्रेण श्रितं पद्मयोनिना । सावित्रीप्रस्थिसंयुतमुपवीत
तवाप्यये । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

पाद्य मन्त्र—हे पद्मनाभ सनातन देव । तुम्हारे चरणों पर पाद्य अर्पित कर रहा हूँ, कमलपत्राक्ष ! मधुसूदन ।
विष्णो, ग्रहण करो, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्क मन्त्र—महादेव । ब्रह्मा आदि द्वारा कल्पित तुम्हारे इस मधुपर्क को मैं भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, पुरुषोत्तम । ग्रहण करो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीय मन्त्र—इस सर्वपापहर क्षुद्र मन्दाकिनी के जल को आचमन के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, देव । तुम ग्रहण करो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नान मन्त्र—तुम जल, पृथिवी, और ज्योति रूप हो, तुम्ही वायु हो, फिर भी लोकपते । वेदत्र औपचारिक
रूप से जल से स्नान करा रहा हूँ, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्र मन्त्र—देव-तत्त्व से युक्त यज्ञवर्ण से समन्वित देव । केशव । ये तुम्हारे लिये स्वर्णवर्ण के
वस्त्र हैं । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपन मन्त्र—केशव । तुम्हारे शरीर को नहीं जानता न तो तुम्हारी इच्छाओं को ही जानता हूँ, पुनरपि
यह मुगन्धिन रूप अर्पित कर रहा हूँ, इसको ग्रहण कर अपने शरीर पर लगा लो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीत मन्त्र—पद्यार्पित ब्रह्मा द्वारा ऋग्, यजु और सामवेद के मन्त्रों से तीन बार स्पृष्ट हुआ और
सावित्री द्वारा बनाई गीठा से युक्त इस उपवीत को अर्पित कर रहा हूँ । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

अलकारमन्त्र — दिव्यरत्नसमायुक्त बह्निभानुसमप्रभ । गात्राणि तव शोभन्तु सालकाराणि ॥३४॥

माधव । ओ नमो नारायणाय नम

ओ नम इति प्रत्यक्षर समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ॥३५॥

धूपमन्त्र — वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्य सुरभिश्च ते । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽय ॥३६॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

दीपमन्त्र — सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषा देव दीपोऽय ॥३७॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

मन्त्रेशमन्त्र — अत्र चतुर्विधं चैव रसं पद्भि समन्वितम् । मया निवेदित भक्त्या नैवद्य ॥३८॥

तव कैशव । ओ नमो नारायणाय नम ।

पूर्व दले वासुदेव याग्ये सकपणं न्यसेत् । प्रद्युम्न पश्चिमे दुर्वादिनिष्ठ तपोत्तरे ॥३९॥

वाराह च तथाऽऽनेये नरसिंह च नैऋते । वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥४०॥

तथाऽऽक्षरदेवस्य गण्ड पुरतो न्यसेत् । वामपाश्वे तथा चक्र ब्रह्म दक्षिणतो न्यसेत् ॥४१॥

तथा महागदा चैव न्यस्य देवस्य दक्षिणे । ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्मसेदेवस्य वामत ॥४२॥

दक्षिणेनेवुधौ दिव्ये खड्गं वामे च त्रिशूलेन । शिष्य दक्षिण न स्यात्पु पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥४३॥

अलङ्कार मन्त्र—दिव्य रत्ना से आभूषित अग्नि और भान के समान प्रभा वाले माधव । तुम्हारे अङ्ग
इन मेरे दिये गए आभूषणों से सुसोमित ह । ॐ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इसके प्रत्येक अक्षर से या समस्त मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिये ॥३५॥

धूप मन्त्र—मैं तुम्हारे लिये इस दिव्य गन्ध से भरे सुरभित वनस्पति रस धूप को थड़ा से समर्पित कर रहा
हूँ देव । प्रहण करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीप मन्त्र—सुप्त सूय चन्द्र विद्यत और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् हो तुम ही प्रकाश-पुञ्ज हो देव ।
यह दीप स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्य मन्त्र—चार प्रकार का यन्त्र से युक्त मधुर भोजन थड़ापूर्वक अर्पित कर रहा हूँ कैशव । स्वीकार
करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३८॥ (इन उपयुक्त मन्त्रों से सबविधि भगवान् की पूजा करने के बाद पुन देवन्वास
करे ।) पूष दत्त पर वासुदेव को दक्षिण पर सकपण की एवं पश्चिम दत्त पर प्रद्युम्न को एवं उत्तर बाँके दल पर
अनिरुद्ध को न्यस्त करे ॥३९॥ इसी प्रकार अग्नि निष्कृति वायव्य और ईशानकोण में क्रमशः वाराह नरसिंह
माधव और त्रिविक्रम का याग करे ॥४०॥ इस प्रकार आठ अक्षरों में ७-स्त देवता के अवप्रमाण में गण्ड पा
तथा वाम पाश्व और दक्षिण पाश्व मन्त्रक दश का न्यास कर देव के दक्षिण महागदा तथा वामभाग में शार्ङ्ग धनुष
का विद्वान् मनुष्य न्यास करे ॥४१-४२॥ पुन दक्षिण बार दो दिव्य तरुण और बायी ओर खड्ग का न्यास करे ।
शस्त्रन्यास के उपरान्त दक्षिण ओर श्री को उत्तर ओर पुष्टि को आगे की ओर वनमाला शीवस और कौस्तुभ तथा

धनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ । विन्यसेद्दृषयादीनि पूर्वादिव चतुर्दिशम् ॥४४॥
 ततोऽस्त्र देवदेवस्य कोणे चैव ॥ विन्यसेत् । इन्द्रमग्निं यमं चैव नैऋतं वरुणं तथा ॥४५॥
 वायुं धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह । पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥४६॥
 एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्य जनार्दनम् । लभेदभिमतान्कामाप्नोरो नास्त्यत्र संशयः ॥४७॥
 अनेनैव विधानेन मण्डलस्य जनार्दनम् । पूजितं यः सपश्येन स विशोद्विष्णुमध्ययम् ॥४८॥
 सकृद्वर्षाचिंतो येन विधिनाऽनेन केशवः । जन्ममृत्युजरा^१ सीत्स्वा स विष्णोः पद्मपुष्पात् ॥४९॥
 यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमतन्द्रितः । 'अन्वह' तस्य वासाय इवेतद्दीपः प्रकल्पितः ॥५०॥
 ओंकाराविसमायुक्तं नमःकारान्तवीर्यितम् । तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥५१॥
 अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत् । एकैकस्य प्रकुर्वीत ययोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥५२॥
 मुद्रास्त्रतो 'निबध्नीयाद्योक्तकमचोदितः । जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥५३॥
 अष्टाविंशतिमण्डौ वा शतमण्डोत्तरं तथा । कामेषु च^२ यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः ॥५४॥
 पद्मं शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च । चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥५५॥
 विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परंस्थानं पुराणपुरोत्तम^३ । यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्यन्ति परम पदम् ॥५६॥

हृत्पादि को पूर्वादि चारा दिशाओ म प्रमानुसारं व्यस्त करना चाहिये ॥४३-४४॥ तदनन्तर कोण म देवदेव के अर्चो की स्थापना कर इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त आदि देवो का ब्रह्मा के साथ अथ और ऊर्ध्व भाग म आवाहन कर तान्त्रिक मन्त्रो से पूजन करे ॥४५-४६॥ इस प्रकार मण्डल मे स्थित देवेश जनार्दन का पूजन करने से मनुष्य अपने अभीष्ट कामनाओ को अवश्य प्राप्त करता है इसमे सन्देह नहीं ॥४७॥ इसी विधि से पूजित मण्डलस्य जनार्दन का जो दर्शन करता है वह भी अविनाशी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है ॥४८॥ एव वार भी जो मनुष्य वेदाव की इस प्रकार अर्चा करता है वह जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को पारकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥४९॥ जो मनुष्य सर्वदा आलस्य-रहित हो नारायण का स्मरण करता है उसके निवास के लिये प्रतिदिन स्वर्गद्वीप की व्यवस्था की जाती है ॥५०॥ ओंकार जिससे आदि मे और नमःकार जिसके अन्त मे लगा हो वह सम्पूर्ण सत्त्वा का सार है और वही ओष्ट मन्त्र कहा गया है ॥५१॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्प अर्पित करना चाहिये एवं ययोद्दिष्टं तम से ए-एक देव का पूजन करना चाहिये ॥५२॥ पूजनानन्तर यथोक्त तम मे मुद्रा बन्धन कर मन्त्रज्ञ मनुष्य मूल मन्त्र का जप करे ॥५३॥ मिथ मिथ कामनाओ के लिये जिस प्रकार सत्त्वा का विधान है उसी के अनुसार यथाशक्ति एकाग्रचित्त हो अष्टाईश आठ अथवा ए-ए सो आठ बार जप करे ॥५४॥ पद्म, गदा श्रीवत्स गदा गरुड, चक्र शङ्ख और शार्ङ्ग धनुष यही आठ मुद्राये वही गई हैं ॥५५॥

विसर्जन का मन्त्र—“हे पुराणपुरोत्तम^३ अपने उस परम स्थान को जाओ, जाओ, जहाँ जाकर ब्रह्मा

१व० तान्त्रिकी० । २व० जरातीन सः । ३व० ०२ स्वर्गमार्गं यं तेन दीपं प्रकल्पितः । ४व० पारमार्थिकं विधानतः । ५० । ५१ च तथा ज्येष्ठ यः । ६व० ०राण पु० ।

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥५७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषितंवावे पूजाविधिकथनं नामकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरिता पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु ब्राह्मि मामच्युतप्रिय ॥२॥
स्नातवैव सागरे सम्यक्तस्मिन्नेववरे द्विजाः। तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
रामं कृष्ण सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविर्जितः। वृन्दारक इव श्रीमान्भूपयौवनगवितः ॥५॥

आदि देवता परम पद को प्राप्त करते हैं।" इस मन्त्र से विसर्जन करे ॥५६॥ जो मनुष्य ऊपर कहे गये मन्त्रों से हरि का पूजन करना नहीं जानते हैं वे वहाँ मूल मन्त्र से ही सर्वदा अच्युत विष्णु की पूजा करें ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद मे पूजाविधि-कथन नामक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

समुद्र-स्नान का माहात्म्य

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भक्तिपूर्वक भयवान् पुरुषोत्तम का विधिवत् पूजन और नतमस्तक होकर प्रणाम करने के बाद सागर की यह स्तुति करनी चाहिए—हे नदियों के स्वामी! तुम सब प्राणियों के जीवन और उत्पादक हो, तीर्थराज! तुम्हें प्रणाम है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा करो ॥१-२॥ विप्रगण, इस विधि से इस पुनीत और थ्येष्ठ तीर्थ में आकर स्नान कर और तीर पर अनामय (निर्विकार) नारायण की विधिवत् पूजा कर राम, कृष्ण, सुभद्रा और सागर को प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को अवशेष यत्नों का फल प्राप्त करता है, वह सब पापों और दुःखों से रहित हो, तेजस्वी तथा रूप-यौवन से सुशोभित हो जाता है ॥३-५॥ और सूर्य

विमानेनाकं वर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना । कुलेर्काविशमृद्धृत्य विष्णुलोकं ॥ गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र धरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरः सह । मन्वन्तरगतं साध्रं जरामृत्युविवर्जितः ॥७॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते । रूपवान्सुभगः श्रोमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥८॥
 वेदशास्त्रार्थचिद्धिप्रो भवेद्यज्वा तु येष्वजः । योगं च वर्णवत् प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥
 ग्रहोपरागे संक्रान्त्यामयने विपुत्रे तथा । युगादिषु पञ्चोत्था व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥
 आपाद्यां चैव कार्तिकां माघ्यां वाऽप्ये शुभे त्रिषु । ये तत्र दान विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥
 फल सहस्रगुणितमन्यतोर्बल्लभन्ति ते । पितॄणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः ॥१२॥
 अक्षयां पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवन्ति च । एवं स्नानफलं सम्पद्यसागरस्य मयोवितम् ॥१३॥
 दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि । धर्मार्थमोक्षफलवमायुर्कीर्तियशस्करम् ॥१४॥
 भुवितभुवितफलं नृणां धन्य दुःस्वप्ननाशनम् । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥
 नास्तिकायमवततव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः । तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पूयकपूयक ॥१६॥
 यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं ब्रूयते द्विजाः । पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्पर्कं फलम् ॥१७॥

के समान प्रकाशमान, स्वर्गीय मन्वर्गों के जयकार, तथा स्तुतिपान से मुखरित विमान पर आरुह होकर, देवता के समान, अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जरा-मृत्यु से रहित हो अगले ही मन्वन्तरो तक दिव्य भोगों का भोग करता हुआ अप्सराओं के साथ ब्रीडा कर पुनः पुण्य के क्षीण हो जाने पर इह लोके में सब गुणों से भूक्त परिवार में जन्म ग्रहण करता है । इस जन्म में भी अपने पुण्य के प्रभाव से हर्ष-बान्, माग्यशाली, धनवान्, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय, वेद शास्त्रों का ज्ञाता और वैष्णव भक्त विप्र होता है । अन्तकाल में वैष्णव योग को पाकर मोक्ष लाभ करता है ॥७॥ जो बुद्धिमान् उस पुनीत क्षेत्र में ग्रहण, सन्नान्ति, अयन, विषुव (तुला और मेष सन्नान्ति काल), युगादि काल में तथा पञ्चोत्थि, व्यतीपात, दिन-क्षय और आपादी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन अथवा अन्य शुभ तिथियों में ब्राह्मणों को दान देते हैं, एवं विधान पूर्वक पितरों को पिण्डदान देते हैं वे अन्य तीर्थों की अपेक्षा हजार गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१०-१२॥ उनके पितर भी निश्चय ही अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं । इस प्रकार मैंने समुद्र स्नान पिण्डदान का फल कह दिया ॥१३॥ वस्तुतः हे द्विजगण, धर्म, अथ और मोक्ष को देने वाले, आद्य ध्याने वाले, कीर्ति एवं यश फैलाने वाले, भुक्ति भुवितदाता दुःस्वप्ननाशक, मनुष्यों को शुभ फल देने वाले, सर्व पाप-हर, पवित्र और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले पुराणों को अथद्वाल् नास्तिकों से नहीं कहना चाहिए ॥१४॥१५॥ सभी तीर्थों तक ही अलग अलग अपने माहात्म्य के गर्व से गरजते रहते हैं जब तक द्विजगण । तीर्थराज पुरुषोत्तम तीर्थ का माहात्म्य नहीं कहा जाता है ॥१६॥ पुष्कर आदि तीर्थ तो केवल अपने फल को ही देते हैं परन्तु यह तीर्थराज तो पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों का फल देता है ॥१७॥ पृथ्वी-सक के जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं वे सागर में

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता यतः। राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः। तपोनाशं ययाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा यापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूत न भविष्यति॥२१॥
अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै। क. शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः॥२२॥
कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै। तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्य मुरार्चनम्।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मणे स्वयंभुव्हृत्पिंसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम्

। ब्रह्मोवाच

ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यत्ताङ्गसमयम्। इन्द्रधुम्नसरो नाम यत्राऽस्ते पावनं शुभम्॥१॥

किसी न किसी रूप से प्रवेश करते हैं (सभी जलाशयों का जल समुद्र से जाता अथवा समुद्र से जाता है) इसलिये यह तीर्थराज सर्वश्रेष्ठ पदवी का अधिकारी है॥१८॥ समुद्र सब नदियों का स्वामी है, समस्त तीर्थों (जलाशयों) का राजा है इसलिये यह सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब मनोरथों का दाता है॥१९॥ द्विजवर ! जिस प्रकार सुषोम होने पर अग्निराग स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तीर्थराज के स्नान से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है॥२०॥ तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ दृष्टा है न होगा॥२१॥ प्रभु नारायण का जहाँ सबदा वास है हे द्विज-धुम्ब ! उस तीर्थराज के गुणों को पहने में बौन समर्थ हो सकता है॥२२॥ जहाँ पर नवासी करोड़ तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान, होम, जप, देवपूजन अथवा जो कुछ भी किया जाता है निश्चय ही द्विजधुम्ब ! वह अक्षय हो जाता है॥२३॥

श्री ब्रह्महापुराणे मे समुद्रस्नान-माहात्म्य वर्णन नामक वासठवीं अध्याय समाप्त॥६२॥

अध्याय ६३

पञ्चतीर्थी का माहात्म्य-वर्णन

यद्वा बोले—द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर यज्ञों के कारण शुभ, पवित्र इन्द्रधुम्न तीर्थ में जाकर विवेकी मनुष्य

गत्वा तत्र शुचिर्धोमानाचम्य मनसा हरिम् । ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
 अश्वमेधाङ्गसभूत तोर्यं सर्वाधनाशन । स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृपोन्वितुन् । तिलोदकेन चान्पाद्व्य संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४॥
 दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम् । दशाश्वमेधिकं सम्पदफलं प्राप्नोति मानवः ॥५॥
 सप्तारारान्तरं परान्धं शानुद्भूत्य देववत् । कामयेन विमानेन विष्णुलोकं ॥ गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र 'सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् । व्युत्स्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७॥
 एव कृत्वा 'पञ्चतीर्थोन्मेषादश्यामुपोषितः । ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्या यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८॥
 स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य क्रीडित्वा वाऽज्युत्तालये । प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥९॥

मुनय ऊचुः

मासान्ग्यान्परित्यज्य 'माघादीन्प्रप्रितामह । प्रशंससि कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्बुलाः प्रवक्ष्यामि समासतः । ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः ॥११॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च । पुष्करिण्यस्तडामानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः ॥१२॥

पवित्र माघ से आचमन और हृदय से मगवान् हरि का ध्यान कर जल के निकट इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥१-२॥
 मन्त्र—'अश्वमेध के अङ्ग से उत्पन्न । सब पापों के विनाशक हे तीर्थ । आज मैं तुम्हारे जल में स्नान कर रहा हूँ, मेरे पापों को दूर करो, तुम्हें नमस्कार है ॥३॥ इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये । पुनः तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरों और दूसरे देवों का तर्पण और आचमन कर वाणी पर समय रख पितरों को पिण्ड दान दे और मगवान् पुरुषोत्तम की विधिवत् पूजा करे । ऐसी क्रिया का विधिवत् अनुष्ठान कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥४-५॥ अपने सान पिछले एव सात अपले वष का उद्धार कर देवता के समान इच्छानुसार चलने वाले विमान से विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारागण रहते हैं तब तक सुखमय भागी का भोग करता है । भोग के बाद वहाँ से लौटकर इस लोक में उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता और अन्त में निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है ॥७॥ उक्त नियम के अनुसार जो मनुष्य एकादशी के दिन निराहार रहकर पञ्चतीर्थों एव ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को पुरोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है अथवा अभ्युत् हरि के लोक में सुखपूर्वक निवास कर उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः नहीं लौटता ॥८-९॥

मुनियों ने कहा—प्रप्रितामह । माघ आदि अन्य महीनों को छोड़ कर क्यों आप जेठ महीने की इतनी प्रशंसा करते हैं । प्रभो । इसका कारण बताइए ॥१०॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर अन्य महीनों की अपेक्षा जेष्ठ मास की प्रशंसा का कारण सक्षप में सुनाता हूँ ॥११॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ, सरिता, सरोवर, पुष्करिणी (पोखरियाँ), तालाब, बावलियाँ, कुएँ, झीलें, अनेक नदियाँ और

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे । ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा ॥१३॥
 स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः । यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत् ॥१४॥
 शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥
 यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥
 उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वपने पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा राममुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥
 नरो द्योलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । काल्पन्या प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥
 विपुबद्धिबसे प्राप्ते पञ्चतीर्थो विधानतः । कृत्वा संकल्पं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रा च भो द्विजाः ॥१९॥
 नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति कुलंभम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
 यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनहस्तितम् । वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यव्युत्तमगिरम् ॥२१॥
 उपैच्छ्यां ज्येष्ठार्धयुनतायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । कुलं कविशत्रुमुद्रस्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवपिसंवादे पञ्चतीर्थोपाहात्म्यनिरूपणं
 नाम त्रियष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

समुद्र हैं, वे सभी इस पुरुषोत्तम तीर्थ में जेठ शुक्ल की दशमी आदि तिथियां को एक सप्ताह तक सर्वदा प्रत्यक्ष रूप में रहते हैं ॥१२-१३॥ इसलिये द्विजगण । उस समय स्नान, दान देव-दर्शन अथवा अन्य जो कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे अवश्य होते हैं ॥१४॥ विप्रबुद्ध । ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी दशविध पापों को नष्ट करती है इसलिये यह 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से बलराम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१६॥ विप्रबुद्ध । उत्तर और दक्षिण अथवा काल में भी पुरुषोत्तम राम और सुभद्रा का दर्शन कर मनुष्य विष्णुलोक का अधिकार प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य फाल्गुन पूर्णिमा के दिन झूले में झूलते हुए पुरुषोत्तम का अवन्ध भाव से दर्शन करके गोविन्दलोक को जाता है ॥१८॥ द्विजगण । जो मनुष्य विपुब दिन आने पर विधिपूर्वक पञ्चतीर्थों की यात्रा करके राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह समस्त यज्ञों के कुलम्फल को पाता है और सब पापों से छूट कर विष्णुलोक का अधिकारी होता है ॥१९॥ जो वैशाख मास की कृष्ण-तृतीया को चन्दन चर्चित कृष्ण का दर्शन करता है वह अव्युत्तलोक को प्राप्त करता है ॥२०॥ ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा को जो पुरुषोत्तम का दर्शन करता है वह अपने इक्ष्वाकु कुलो का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२१॥

श्री ब्रह्महपुराण में पञ्चतीर्थोपाहात्म्यवर्णन नामक तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्येष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
 कृष्णं दृष्ट्वा महाज्येष्ठ्यां राम भद्रां च भो द्विजाः। नरो द्वादश्यानायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२॥
 प्रयागे च कुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे ॥३॥
 कोकामुखे शूकरे च मथुरायां भरस्वले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४॥
 पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः। शङ्खोद्गारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे ॥५॥
 लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। कामालये कोटितीर्थे तथा घामरकण्ठके ॥६॥
 लोहागले जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथ्वके। उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७॥
 एकाम्रके च केवारे काश्या च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ॥८॥
 महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च श्रुतिमन्ते च गोमन्ते चाबुदे तथा ॥९॥
 गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥१०॥
 गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ॥११॥

अध्याय ६४

महाज्येष्ठी की प्रशसा

ब्रह्मा ने कहा—जब उत्तम राशि, नक्षत्र से युक्त महाज्येष्ठपूर्णिमा हो, उस समय प्रयत्नपूर्वक मनुष्य को पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये ॥१॥ हे विप्रवृन्द! मनुष्य ज्येष्ठ की महापूर्णिमा को कृष्ण, राम और सुमित्रा का दर्शन करके बारह बार तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है ॥२॥ द्विजगण! प्रयाग, कुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हृदाद, कुशावर्त, गंगासागर संगम ॥३॥ कोकामुख, शूकरक्षेत्र, मथुरा, भरस्वले, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर ॥४॥ पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्गार, द्वारका, बदरिकाश्रम ॥५॥ लोहकुण्ड, सव पापों को दूर करने वाले अश्वतीर्थ कामालय, कोटितीर्थ, अमरकण्ठक ॥६॥ लोहागल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथ्वक, उत्पलावर्तक, पृथुतुङ्ग, सुकुब्जक ॥७॥ एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जरे, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन ॥८॥ महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, श्रुतिमन्त, गोमन्त, अबुद ॥९॥ गंगा के सभी तीर्थ एवं यमुना, सरस्वती, गोमती और ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ ॥१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी,

१ ग ०रे च कुब्जाश्रे ग०। २ क ०करके म०। ३ क ख ०हृदये। ४ क ०हृदये। ५ क ०हृदये। ६ क ०हृदये। ७ क ०हृदये। ८ क ०हृदये। ९ क ०हृदये। १० क ०हृदये। ११ क ०हृदये।

वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुबहुदा तथा। ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च दृषदती ॥१२॥
 'सरयूनाकिगङ्गा च गण्डकी च महानदी। कौशिकी करतोया च त्रिलोता मधुवाहिनी ॥१३॥
 महानदी वंतरणी यादचान्या नानुकीर्तताः। अथवाकि बहुक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः ॥१४॥
 पृथिव्या 'सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायत्नेषु च। सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५॥
 यत्फलं स्नानदानेन राट्टप्रस्ते दिवाकरे। तत्फलं कृष्णमालोक्य महान्येष्ट्या लभेन्नरः ॥१६॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे'। महान्येष्ट्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेषुभिः ॥१७॥
 वृष्ट्वा रामं महान्येष्टं कृष्ण सुभद्रया सह। विष्णुलोकं नरो याति समुद्रस्य सम कुलम् ॥१८॥
 भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। पुण्यसथाविहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९॥
 स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभवतो जितेन्द्रियः। वैष्णव योगमास्थाय' ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिकाण्डे स्वयम्भुव्याप्तिसाधने महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनं नाम
 चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

शिवा, चर्मज्वती ॥११॥ वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु (सतलज) तथा बाहुदा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषदती ॥१२॥
 ॥१३॥ सरयू, स्वर्गगा, गण्डकी, महानदी कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिलोता, मधुवाहिनी ॥१३॥ महानदी,
 वंतरणी, या जो अन्य नदियाँ जो प्रसिद्ध हैं अथवा द्विजवर्मबुन्द। बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ॥१४॥ पृथ्वी
 के सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से सब मन्दिरों में दान करने से, सागर, शैल, नदी और सरोवरों में स्नान करने दान देने
 एवं सूर्यग्रहण के समय स्नान और दान से जितना फल मिलता है, उस सम्पूर्ण फल को ज्येष्ठ की इस अतिपवित्र
 पूर्णिमा के दिन कृष्ण के दान करने से मनुष्य प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ इसलिये मुनिवर्मबुन्द। सब मनोरथों
 को पाने की कामना करने वाले मनुष्यों को अपने सभी प्रयत्नों से पुण्योत्तम तीर्थ को जाना चाहिए ॥१७॥ वहाँ
 मनुष्य सुभद्रा सहित ज्येष्ठ राम और कृष्ण का दर्शन करके अपने संपूर्ण कुल का उद्धार करता है और स्वयं
 विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१८॥ वहाँ वरुणान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्यस्थ हो जाने पर
 इस मर्त्य लोक में चतुर्वेदपाठी ब्राह्मण होता है ॥१९॥ वहाँ वह जीवन पर्यन्त अपने धर्म में निरत रहने वाला,
 शान्त, जितेन्द्रिय और कृष्ण का भक्त होता है। पुनः वैष्णव भक्ति या ज्ञान को पाकर मोक्ष की प्राप्ति
 करता है ॥२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में महान्येष्ठी-प्रशसा वचन नामक अध्याय समाप्त ॥६४॥

अथ पञ्चपण्डितमोऽध्यायः

कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव । विधिना केन तद्वद्बहि ततो विधिविदां वर ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम । रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥२॥
 'मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदेवते । वीर्णमास्या तदा स्नानं सर्वकालं हरेद्विजा ॥३॥
 सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः क्षुचिः । तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा' भवति द्विजाः ॥४॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्या समुद्रस्य हैमादयैः कलशैर्जलम् । कृष्णरामाभिषेकार्यं सुभद्रायाश्च भो द्विजाः ॥५॥
 कृत्वा सुशोभनं मञ्च पताकाभिरलंकृतम् । सुवर्णं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम् ॥६॥
 विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः । 'सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम् ॥७॥
 तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्ण नीलाम्बरं द्विजाः । मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्याप्य जयमङ्गलनिस्वनैः ॥८॥

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का महात्म्य-वर्णन

मुनियो मे कहा—कमल से उत्पन्न, विधियो मे श्रेष्ठ । किस समय और किस विधि से भगवान् कृष्ण का स्नान होता है, कृपया बताइए ॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिगण । मैं कृष्ण, राम और सुभद्रा के शुभ और अशुभ पापों को नष्ट करने वाली स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो ॥२॥ द्विजगण । जेठ के महीने में चन्द्रदेवत नक्षत्र (ज्येष्ठा) से युक्त पूर्णिमा के दिन भगवान् का स्नान सदा प्रशस्त और धुन माना गया है ॥३॥ उस समय कूप निर्मल, पवित्र और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से युक्त हो जाता है और भोगवती प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हो जाती है ॥४॥ इसलिये । द्विजगण । कृष्ण, राम और सुभद्रा के अभिषेक के लिये सुवर्ण-बलशो में कुयों से जल निवारल लिया जाता है ॥५॥ इसके पूर्व पताकाओं से सुशोभित दृढ़, सुविधा से इधर उधर घुमा देने योग्य, विस्तृत और मनोहर मंच बनाना चाहिए । उसको रंग विरंगे फूलों और पुष्पों से सजाकर धूप से सुगन्धित कर देना चाहिये । उस मंच पर राम-कृष्ण के स्नान के लिये श्वेत वस्त्र मुक्ताहार आदि विविध सामग्री एकत्र कर रख देनी चाहिये ॥६-७॥ ऐसे सुसज्जित मंच पर अनेक बाजे बजाते हुए, जयकार और मंगल ध्वनि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, क्षूद्र और अन्य जातिपों के लोगो

१ ख ० व । के च उत्कारयन्तीह स्नान तस्य विधि वद । ब्र० । २ क ख माते । ३ ग प्रत्यक्ष ।

४ ख ० वदन्तः प० ।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः । अनेकशतसाहस्रैर्वतं, स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥१॥
 गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः । स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०॥
 तथा समस्ततोयानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः । स्वोदकैः पुष्पमिश्रंश्च स्नापयन्ति पूययपुयक् ॥११॥
 पश्चात्पटह्नाह्वाद्येभ्यो मूरजनिस्वनैः । काहलेस्तालशब्दैश्च मृदङ्गहंशैरंस्तथा ॥१२॥
 अन्यैश्च 'विविधैर्वांशैर्घण्टास्वनविभूषितैः । स्त्रीणां भङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥
 जयशब्दैस्तथा स्तोत्रवीणावेणुनिनादितैः । श्रूयते सुमहाच्छब्दः सागरस्यैव गर्जतः ॥१४॥
 मुनीनां जेवशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः । नानास्तोत्रध्वः पुष्पैः सामशब्दोपबृंहितः ॥१५॥
 यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः । स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥
 इयामवैश्याजनैश्चैव कुचभारवनामिभिः । पीतरयताम्बराभिश्च मात्यवामायनामिभिः ॥१७॥
 सारत्नकुण्डलैर्विभ्यैः 'सुवर्णस्तवकाङ्क्षितैः । चामरै' रत्नवण्डैश्च बीज्यैते रामकेशवौ ॥१८॥
 यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किन्नरैश्चाप्सरोगणैः । 'परिषापाम्बरगतैर्वैद्यगन्धर्वचारणैः ॥१९॥
 आविरया वसवो दद्याः साध्या विश्वे मरुद्गणः । लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम । सर्गस्थित्यन्तकृदेव लोकनाथ जगत्पते ॥२१॥
 ब्रैलोचयधारिण देवं ब्रह्मण्य' मोक्षकारणम् । त नमस्यामहे भवत्या सर्वकामफलप्रबन् ॥२२॥

एव अनेक सैकडा हजारो स्त्री पुरुषो के साथ समारोहपूर्वक राम, कृष्ण और सुमद्रा की स्थापना की जाती है ॥८॥ ९॥
 ऐसे शुभ मुहूर्त में पहले गृहस्थ, स्नातक, यति, और वेदपाठी ब्रह्मचारी मञ्च पर अवस्थित हलधर राम और कृष्ण को
 नहलाते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार ऊपर कहे गये सम्पूर्ण तीर्थ की पूजक पूजक पुष्प मिले अपने जल से अप्रत्यक्ष रूप
 से स्नान कराते हैं ॥११॥ तदनन्तर वहाँ पटह, शस्त्र, भेरी, मूरज, बाहुल, मृदग, शस्त्रर एवं अन्य त्रिविध बाजो की
 ध्वनि और स्त्रियों के मंगल शब्द, मनोहर स्तुतिपाठ, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, और वीणा-वेणु की मधुर ध्वनि से गरजते
 हुये समुद्र की गम्भीर ध्वनि के समान महान् शब्द सुनाई पड़ता है ॥१२-१४॥ उस समय स्नान-काण्ड में अश्वत्थ
 प्रसनतापूर्वक मुनिगण वेदपाठ से, अपर ऋषि मन्त्रोच्चारण से, नानास्तोत्रों के पाठ से, पवित्र स्वरपुवन सामवेद के
 गान से, यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्तुति करते हैं ॥१५-१६॥ इयमाङ्गी, स्तनमार से विनम्र, पीले, लाल
 वस्त्र धारण करने वाली रत्नजटित कुण्डल आदि आभूषण एवं पुष्पमाला से सजी हुई यणिकायें अनेक शिल्पकलाओं
 से आभूषित रत्नजटित स्वर्ण के बने चंद्र राम और वेत्रव को डुलाती हैं ॥१७-१८॥ आकाश में यक्ष, विद्याधर, सिद्ध,
 किन्नर, अप्सरायें, देव, गन्धर्व आदि मण्डल बनाकर एवं आदित्य, वसु, रुद्र, साध्यगण, विदेवेश, मरुद्गण, और
 लोकपाल सभी पुरुषोत्तम की इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥१९२०॥ 'देवदेवेश' पुराणपुरुषोत्तम' सृष्टि पालन
 और विनाश करने वाले देव । लोक के स्वामी । जगत्पते । आपको नमस्कार है ॥२१॥ हम सब मनोरथों को
 देने वाले, निम्बुन पालन करने वाले, ब्रह्मणों की रक्षा करने वाले, मोक्षदायक भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार

१क. ख ०र्वषोर्वष० । २ख ०काञ्चित् । ३ ख ०रै वमद० । ४ख ०र्ष । सविचार्य वरगुण० ।

५क. ०योमरणैर्द० । ६क. ख ब्रह्मण ।

स्तुतवैव विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३॥
 गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा । देवतूपोष्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
 पुष्पमिश्रं तदा मेघा वपेन्त्याकाशगोचराः । जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
 शक्राद्या विबुधाः सर्वं ऋषयः 'पितरस्तथा । प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥
 ततो मङ्गलसभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । आभिषेचनिकं ब्रूय गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥
 इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यं सूर्याचन्द्रमसौ तथा । धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानली ॥२८॥
 पूषा भर्गोऽयं मा त्वष्टा अशुनेव विवस्वता' । पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९॥
 रुद्रैर्बभूव भिरावित्येवैरिचिभ्यां च वृतः प्रभुः । विश्वैर्वैभवं सद्भिश्च सार्ध्यश्च पितृभिः सह ॥३०॥
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपद्मैः । देवविभिरसंश्लेषैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥३१॥
 वैखानसं बालखिल्यं च ग्वाहारेमं रोचिषं । भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२॥
 सर्वविद्याधरं पुष्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः । पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥
 अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च । क्रतुर्हरः प्रचेताश्च भनुर्दक्षस्तथैव ॥३४॥
 'ऋतवश्च ब्रह्मश्चैव' ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः भूतिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥
 समुद्राश्च ह्रदश्चैव तीर्थानि विविधानि च । पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पावपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६॥

करते हैं ॥२२॥ मुनिगण । देववृन्द इस प्रकार कृष्ण, महाबलशाली राम और सुभद्रा की स्तुति कर आकाश में स्थित हो जाते हैं (उस समय देवगन्धर्व गते हैं, अप्सरायें नृत्य करती हैं, और देव वाद्य बजाने लगते हैं, शीतल वायु चलने लगता है ॥२३-२४॥) आकाश से मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि करते हैं, मुनि, सिद्ध, और चारण, इन्द्र आदि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग और अन्य सभी स्वर्ग में निवास करने वाले देव विशेष जयध्वनि करते हैं ॥२५-२६॥ तदनन्तर मागलिक सामग्रियों के साथ यथाविधि वेदध्वनि की जाती है । उस समय अभिषेकोपयोगी ब्रह्म लेकर देवगण, इन्द्र, महापराक्रमी विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विधाता, वायु, अग्नि ॥२७॥ पूषा, भग, अयंमा, त्वष्टा, तथा अशु (किरण) विवस्वान्, मित्र, वरुण, पतिनयो सहित धीमान्, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विन सहित प्रभु, विष्वेदेव, महर्षि, साध्य, पितरो के साथ गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष-राक्षस, पद्मन, असंख्य देवर्षिगण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षिगण ॥२८-३१॥ वैखानस, वायु का आहार करने वाले, किरण पाव कर जीवन बिताने वाले बालखिल्यगण, भृगुवशी, सब विद्याओं में निपुण अङ्गिरस् ॥३२॥ सब शुभ विद्याधरो, तथा योग-सिद्धि के साथ पितामह, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अग्नि, मरीचि, भृगु ऋतु, हर, प्रचेता, भनु दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योति पिण्ड, भूतिमती नदियाँ, नित्य सनातन देवता, समुद्र, ह्रद, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशायें, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती,

१क ग ०तरोऽव्यया । प्र० । २ग ०ता । स्वास्विस० । ३ख ०श्च यतिमिरश्च महात्मभि । स० ।

४क स. ०श्यपश्चैव म० । ५ख मधुर्द० । ६क ईश्वराश्च । स ऐश्वराश्च । ७क स. ०व नक्षत्राणि द्वि० ।

८ग. ०तो वेदाश्चै० ।

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती । उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः । कुहूः ॥३७॥
 राका च धियणा चैव पत्युश्चान्या दिव्योक्तसाम् । हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकभृङ्गवान् ॥३८॥
 ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च । मासायं मासश्रुतवस्तथा राश्रुहनी समाः ॥३९॥
 उच्चैःश्रवा ह्यपथेष्ठो नागराजश्च वामनः । अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चोपधिभिः सह ॥४०॥
 यमश्च भगवान्नेवः । समाजग्मुर्हि संगताः । कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ॥४१॥
 बहुलस्वाच भोक्ता ये विविधा देवतागणाः । ते देवस्याभिपेकायं समायान्ति ततस्ततः ॥४२॥
 गृहोत्था ते तवा विप्राः सर्वे देवा दिव्योक्ततः । आभिपेक्षनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥
 दिव्यसंभारसंयुक्तः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः । सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४॥
 'तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम् । सपुत्र्यं काञ्चनं कुम्भं स्नापयन्त्यवनिस्थिताः' ॥४५॥
 संवरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तथा । उच्चावधानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६॥
 दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः । भोतैर्वायैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७॥
 एवं तवा मुनिश्रेष्ठा । कृष्णं रामेण संगतम् । स्नापयित्वा सुभद्रां च सस्तुषन्ति मुदाऽग्नितः ॥४८॥
 जय जय लोकपालः भवतरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽविदेव

उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥३३-३७॥ राका, धियणा एव अन्य देवपरिवार, हिमालय, विन्ध्य, अनेक
 शिखरों वाला मेरु ॥३८॥ अनुचरो सहित ऐरावत, कला काष्ठा (समय परिमाण) पक्ष मास, ऋतु, रात्रि, दिन, वर्षा
 उत्तम अथ उच्चैःश्रवा, नागराज शेष, वामन, अरुण, गरुड, ओपधियों के सहित वृक्ष ॥३९-४०॥ काल, यम, मृत्यु,
 एव यम के अन्य अनुचर, भगवान् यम, ये सभी देवता वहाँ इकट्ठे होते हैं । इसी प्रकार अन्य विविध अगणित देव-
 गण जिनका नाम यहाँ अधिकता के कारण नहीं कहा गया है—अपने अपने स्वानों से वहाँ अभिपेक्ष के लिये आते
 हैं ॥४१-४२॥ विप्रवृन्द । उक्त समय के सभी देवलोकावासी देवता स्वयं पृथ्वी पर स्थित हो भागल्लिख अभिपेक्षोचित
 सामग्रियों एवं दिव्य स्नानोचित द्रव्यों से भरे सुवर्ण कल्पों में पवित्र सरस्वती आदि नदियां एवं आकाशगंगा व
 दिव्य जल भरकर पुण्यादि मुगन्धिप द्रव्यों से युक्त सुवर्ण कुम्भों से बलराम सहित कृष्ण और सुभद्रा
 को स्नान कराते हैं ॥४३-४५॥ उस समय आकाश में देवताओं के छोटे बड़े, मनोहर, दृढ़ और इच्छानुसार चलने
 वाले (इच्छा-परिचालित) विमान द्धर-उधर उड़ने दिखाई देते हैं ॥४६॥ आकाश मण्डल अप्सराओं के दिव्य
 और विविध विविध आभूषणों, चारों ओर पहराती हुई मनोहर पताकाओं से जगमगा जाना है । पन्थियों और क-
 कष्ट मधुरालयी अप्सराओं के गान एवं वाद्य से आकाश सूज उठता है ॥४७॥ मूनिगण । इस प्रकार आनन्द
 मग्न हो बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराते के उपरान्त सभी श्रद्धापूर्वक स्तुति करने लगते
 हैं ॥४८॥ है लोकपाल । भक्तों के रक्षक, दारणागतों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, आदिदेव प्राणिमात्र में स्थित

१ ग ०नेर्दे स० । २ क ०रातथा । व० । ३ क तोयेराका० । ४ त ०यन्ति घरास्थि० । ५ ग ०न्यम्बरे
 स्थि० । ६ ग ०यन्तरे । ७ क ०र जय जयजय नादलण जय जय पद्मनाभ जय जय परावय । ग ०र जय जय
 पद्मनाभ मूषर० ।

बहुकारण' जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय 'दिव्यमीन' जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिषयन जय जय योगिवर' जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कंटभारे जय जय वेदवर' जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर' जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय घरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र' जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनियास जय जय 'गहनचरित्र' जय जय योगिमय्य जय जय मखनिवास जय जय वेदेवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचित्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भायवेद्य' जय जय मुक्तिकर' जय जय विमलवेह जय जय सत्त्वनिलय' जय जय गुणसमृद्ध' जय जय यज्ञकर जय जय गुणबिहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कात्तिवृत्त जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीवृत्त जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयाततीकुसुमश्यामवेह' जय जय 'समुद्रविष्टवेह' जय जय लक्ष्मीपङ्कजपट्टचरण जय जय भवतवश जय जय लोककांत जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर

॥४९॥

बहुकारण वासुदेव असुर विनाशक निव्यमत्स्यरूपधारिण देववर समुद्र में सोने वाले योगिश्रष्ट देवों के स्वामी, सूर्यनेत्र कंटक के शत्रु वेद रूप कूर्मवितार पारण करने वाले यज्ञवर पद्मनाभ शैलचर! आपकी जय हो जय हो। हे प्रलयकांत मैं योगमामा में शयन करने वाले वेगधर विश्वरूप चक्रधर भूतो के नाथ पृथ्वी को धारण करने वाले, शेष पर शयन करने वाले पीताम्बर चन्द्र के समान कान्तिमान् योग-वास मुख से अग्नि उत्पन्न करने वाले धमरूप, गुणों के कोष श्री के वासस्थान (पति) गरुड पर यमन करने वाले सुख के सागर धम की पताका फहराने वाले, पृथ्वी व्यापक गड चरित्र वाले योगिगो द्वारा प्राप्त होने वाले यज्ञों में वास करने वाले वेदों के द्वारा जानने योग्य, शान्ति दाता योगिगो से ध्यान किये जाने वाले भगवन्! आपका जय जयकार हो। हे पुष्टिकर्ता! नाम के स्वरूप कमलाकर भावनाओं द्वारा जानने योग्य मुक्तिदाता निभन्न स्वरूप वाले सत्त्व के निधान गुणशाली (सगुण) भग्नकर गुणातीत मोक्षदाता लोकलक्षक शान्तिमान् लोकाश्रय लक्ष्मीपति कर्मलनेत्र सृष्टि करने वाले अलसी (तोसी) के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले घनश्याम। सागर के मध्य निवास करने वाले लक्ष्मीरूपी वमल वा भ्रमर के समान मधुपान करने वाले भवतजनों के वश रहने वाले लोकपति परमशान्त। आपकी जय हो जय हो। हे परमसत्त्व! चक्रधर! हे सपशायिन् नीलाम्बर (बलराम) शान्तिकर मोक्षप्रद और कलुषहरण करने वाले! आपकी

१ग ०हुकर०। २ख दिव्यगीत। ३ख ०न जय जय जल०। ४क ०वन्ध ज०। ५क ॥ वैद्यवर ६क यज्ञरूप। ७ख यज्ञचर। ८क ख दहनचक्र। ९ग गहनगेहनिवास। १०ख ०नगमन जय जय भवाधिवस ज०। १०क भववैद्य। ११क ख मुक्तिकर। १२क ख प्रीतिकर। १३ग गुणसमह। १४ख ०म ज०। १५क ख सप्तसमु०। १६क ख ०धमेह०।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्षणानुज । जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥
जय मालावतोरस्क जय चक्रगदाधर । जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तुते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एव स्तुत्या तदा देवा शक्राद्या हृष्टमानसा । सिद्धचारणसघादश्च ये चान्ये स्वर्गयासिन ॥५२॥
मुनयो वाल्किर्याश्च कृष्ण रामेणसंगतम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा श्रणिपत्न्याम्बरे स्थिता ॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवीकस । कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेदनम् ॥५४॥
सञ्चरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा । उच्चवाचानि दिव्यानि काममानि स्थिराणि च ॥५५॥
दिव्यरत्नविभूजाणि सेवितान्यप्सरोगणं । गीतं वार्धं पताकाभि शोभितानि समतत ॥५६॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुण्योत्तमम् । बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७॥
सुभद्राशानसहित मञ्चस्थ पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा निरामयस्थानं यान्ति नास्त्यत्र सशय ॥५८॥
कपिलाशनशनेन यत्फलं पुङ्करे स्मृतम् । तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ सहलापुत्रम् ॥
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभं नर ॥५९॥
व्यापशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम् । तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नर ॥६०॥
सुवर्णशतनिष्पाणा दानेन यत्फलं स्मृतम् । तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नर ॥६१॥

जय हो ॥५९॥ कृष्ण ! जगत्पते ! बलराम के छोटे भ्राता ! पद्मपत्र के समान मनोहर नेत्रवाले ! मनोरथ सिद्ध करने वाले ! सर्वदा वल्लभ पर वैजयन्ती माला धारण करने वाले ! चक्रगदाधारिन् ! ब्रह्मीपते विष्णो ! आपकी जय हो । आपको हमारे अत्यन्त नमस्कार हैं ॥५०-५१॥

ब्रह्मा घोले—मुनिवर ! उस समय इस प्रकार इन्द्र भक्ति देवता सिद्ध और चारणा वा समूह एवम्ब सभी स्वर्गदामा देवता समस्त मुनिगण और वाल्मिल्य प्रमुनि क्षयिगण राम सहित कृष्ण और सुभद्रा की स्तुति करते तथा प्रणाम कर आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥५२-५३॥ इसके अनन्तर वे देवबन्ध कृष्ण राम एक सुभद्रा का स्तुति अथवा नमस्कार कर अपने-अपन विवास-स्थान को चले जाते हैं ॥५४॥ उस समय आकाश में मनोहर छोटे बड़े उत्तम दृढ़ विमान उड़ते हुये दिखाई देते हैं आकाश रंग विरगी पताकाया और अम्बरराश के विभिन्न विभिन्न आभूषणा से सुशोभित हो जाता है अम्बरराश के मनोहर मयूर गान और वाद्य स स्वयं गीत। हुआ सा आनन्ददा है ॥५५-५६॥ उस समय जो मनुष्य राम कृष्ण और सुभद्रा का दान करते हैं वे अत्यन्त पद को प्राप्त करते हैं । मञ्च पर बैठ सुभद्रा राम के महिम्न पुण्यात्तम कृष्ण का दान कर मनुष्य निरामय स्थान को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं । ७॥ मुनिवर ! पुनरुत्तर में सैकड़ा गौत्रा के दान से जो फल मिलता है उस फल व गुप्त वाद्य करनशान मनु मञ्चस्थ कृष्ण बलराम और सुभद्रा को दसवर प्राप्त करता है ॥६०॥ सैकड़ा बन्धान्तर में जो फल प्राप्त होता है मनुष्य उसका मञ्चस्थ कृष्ण के दान से प्राप्त करता है ॥६०॥ गौ निवृ (एक निवृ १६ भाग)

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
 भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
 यत्फलं चाध्वदानेन अर्घ्यातिथ्येन कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
 वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
 यत्फलं तोयदानेन प्रोक्ष्ये वाऽन्यत्र कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
 तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
 गजादवरयदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
 सुवर्णशृङ्गोदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
 जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
 दानेन घृतधेनवाश्च फलं यत् समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
 चान्द्रायणेन क्षीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
 मासोपवासांश्चिद्विधद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥
 अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः॥७४॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु प्रतीर्दानैश्च कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं सहलापुधम्॥७५॥
 सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति क्षुभकृद्भरः। तस्मात्प्ररोक्ष्यवा नारी पश्येत् पुरुषोत्तमम्॥७६॥
 ततः समस्ततीर्थानि लभेत्स्नानादिकं फलम्। स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥
 वन्द्या मृतप्रजा या तु दुर्भंगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वासपा रोगैश्च संहता॥७८॥

परिमित स्वर्गदान से हजार गौओ के दान से, विधिपूर्वक भूमिदान करने से एवं अन्नदान और अतिथि सत्कार से जो फल मिलते हैं वे सभी मञ्चस्थ कृष्ण का दर्शन करने से मनुष्यो को मिल जाते हैं॥६१-६४॥ इसी प्रकार विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग आद्य करने से गर्भों के दिनों में जल पिलाने से, तिलधेनु (कूटे हुए तिला की धनी वाद्य की प्रतिमा) के दान से, हाथी घोड़े और रथ के दान से सोने से बड़े सींगवाली गौओ के दान से, जल धेनु, घृत धेनु (घी से बनी धेनु) के दान से जो फल वा स्नानकार प्राप्त होते हैं वे फल मञ्च पर आसीन पुरुषोत्तम कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होते हैं॥६५-७१॥ चान्द्रायण व्रत एवं विधिपूर्वक एक मास के उपवास से जो फल प्राप्त होता है वह मञ्च पर स्थित कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलता है॥७२॥ द्विजवर! उस मञ्चस्थ देव कृष्ण के दर्शन की महिमा को इस प्रकार बार बार अधिक बहने से क्या लाभ? सब तीर्थों के करने दान देने और व्रतों के अनुष्ठान से जो फल होते हैं वे सभी मञ्चस्थ बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा के दर्शन से पुण्यवान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥७३-७५॥ इसलिये नर अथवा नारी अवश्य उस पुरुषोत्तम का दर्शन करे॥७६॥ इसके अतिरिक्त कृष्ण के अभिषेक से बचे जल से जो स्नान करता है वह सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल पाता है॥७७॥ वन्द्या, मृतवत्सा, विधवाया भाग्यहीन, ग्रहों से पीडित, भूतप्रेतादि

सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभिवेचिता । प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
 पुत्रार्थिनी लभेत्युत्तमोभाम्य च सुखार्थिनी । रोगार्ता मुच्यते रोगाद्भन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०॥
 पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले । तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१॥
 तस्मात्स्नानावशेष यत्कृष्णस्य सलिल द्विजा । तेनाभिविञ्चेद्गोत्राणि सर्वकामप्रद हि तत् ॥८२॥
 स्नात पश्यन्ति ये कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् । ब्रह्महत्यादिभिः पार्षमुच्यन्ते तेन सशय ॥८३॥
 शास्त्रेषु यत्फल प्रोक्त पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४॥
 तीर्थयात्राफलं यत् पृथिव्या समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८५॥
 बदर्या यत्फल प्रोक्त दृष्ट्वा नारायणं नरम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८६॥
 गङ्गाद्वारे कुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८७॥
 प्रयागे च महामाध्या यत्फलं समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८८॥
 शालग्रामे महार्चय्या स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८९॥
 महाभिधानकातिव्या पुष्करे यत्फलं स्मृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९०॥
 यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९१॥
 प्रस्ते सूर्ये कुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९२॥

से दुखी और रोगग्रस्त स्त्रिया यदि उस स्नान से बचे जल से स्नान करें तो सक्षय ही अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं और मनोरथा को प्राप्त कर लेती हैं ॥७९॥ पुत्र की कामना करने वाली स्त्री पुत्र को पाती है, सुख चाहने वाली अपने सौभाग्य को प्राप्त करती है, रोगी अपने रोगों से छूट जाती है और धन की इच्छा रखने वाली धन प्राप्त करती है ॥८०॥ इस पृथ्वीतल पर जितने प्रकार के जल पाये जाते हैं वे सभी इस स्नान से बचे जल के सोलहव भाग के बराबर भी पुण्य देने वाले नहीं होते ॥८१॥ द्विजगण । इसलिये कृष्ण के स्नान से बच जल में अवश्य अपने गोत्रों का अभिषेक करना चाहिये क्योंकि वह सब मनोरथा को देने वाला है ॥८२॥ जो मनुष्य स्नान किये हुए और दक्षिण की ओर जाने वाले (यहाँ रथयात्रा से अभिप्राय है) स्नान के बाद रथ पर कृष्ण को चढ़ाकर घुमाया जाता है) कृष्ण को देखता है वह नि सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥८३॥ शास्त्रों में पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा करने से जो फल कहे गये हैं वे दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य का प्राप्त होते हैं ॥८४॥ पृथ्वी पर तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलते हैं, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दशन करने से जो फल मिलते हैं, हरद्वार कुक्षेत्र में स्नान करने एवं दान देने से जो फल मिलते हैं, मायी अयावस्था को श्रयण में स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे सभी दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य को मिलते हैं ॥८५॥ ८८॥ पुण्यदायक चैत्रमास में शालग्राम तीर्थ में स्नान करने, और दान देने से, महापुण्यदायिनी वातिव-पूणिमा के दिन पुष्करक्षेत्र में स्नान और दान से, गङ्गासागर सगम के स्नान और दान से, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुक्षेत्र में स्नान करने और दान देने से जो

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु' यामुनेषु च भो द्विजा । सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरसु च ॥९३॥
 यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥
 पुष्करे चाय तीर्थेषु गये चामरकण्टके । नर्मिषादियु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥
 यत्फल स्नानदानेन राहुपस्ते दिवाकरे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥
 अयं किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन । यत्किञ्चित्कथितं चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥
 वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा । धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ॥९८॥
 दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम् । सकल भद्रया साध यजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये स्वयम्भूषितवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम
 पञ्चपण्डितमौड्याय ॥६५॥

फल होता है वह दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दान से होता है ॥८९ ९२॥ गया के सभी तीर्थों यमुना के सभी तीर्थों सरस्वती एवं अन्य सरोवरों के तीर्थों में विधिवत् स्नान और दान से जो फल वहे गये हैं वे सभी फल दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य को प्राप्त होते हैं ॥९३ ९४॥ सन्ध्या में पुष्कर गया अमरकण्टक नर्मिषारण्य इत्यादि तीर्थों क्षत्रों एवं देवमन्दिरों में जाने दशन करने दान देने तथा सूर्याग्रहण काल के स्नान-दान से जो फल मिलते हैं वे सभी फल उस भाग्यवान् मनुष्य को मिलते हैं जो दक्षिणामुख जाते हुए कृष्ण का दान करता है ॥९५ ९६॥ अबका बार बार पुनरुक्त भाषण करने से क्या प्रयोजन ? वेदशास्त्र पुराण महानारद तथा सभी धर्माचार्यों और अन्यत्र भी विद्वानों द्वारा जो पुण्य-फल वहे गये हैं वे सभी उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो बलराम और सुभद्रा के सहित दक्षिण की ओर जाते हुए कृष्ण का दशन करता है ॥९७ ९९॥

श्री ब्रह्महपुराण में कृष्ण माहात्म्य-वर्णन नामक पसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुडिवायानामाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

'गुडिवा मण्डपं यातुं ये पश्यन्ति रथे स्थितम् । कृष्ण बलं सुभद्रा च ते याति भवनं हरे ॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्ण सप्ताहं मण्डपे स्थितम् । हस्तिनं च सुभद्रा च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥२॥

मुनय ऊचुः

कन सा निर्मिता यात्रा क्षिणस्या जगत्पते । यात्राफलं च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवं ॥३॥
विमये सरस्ततोरे रात्रस्तस्य जगत्पते । पवित्रे विजने देशे गत्वा तत्र च मण्डपे ॥४॥
कृष्ण सकर्षणश्चैव सुभद्रा च रथेन त । स्वस्थानं सपरित्यज्य सप्तरात्रं वसति वै ॥५॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रधुम्नेन भो विप्रा पुरा वै प्रार्थितो हरि । सप्ताहं सरस्ततोरे मम यात्रा भवत्यिति ॥६॥
गुडिवा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । तस्मै किल धर चासी ददौ स पुरयोत्तम ॥७॥

अध्याय ६६

गुडिवायाना वा माहात्म्यं कथनं

ब्रह्मा धील—जा मनुष्य रथ पर चढ कृष्ण बन्धु राम और सुभद्रा का गुडिवा मण्डप की ओर जात हुए दोनों
हैं वे विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं । और जो मण्डप में स्थित कृष्ण राम और सुभद्रा का एक सप्ताह पथस्थ रथान
करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥१॥ २॥

मुनिमो न पूछा—जगत्पते । किसने भगवान् की इस दण्डि की ओर की यात्रा का नियम निकाला और
इस यात्रा के रथान में मनुष्य को कौन सा यन्त्र मिला है कृपा करते शुभान्य । जगत्पते । उस इन्द्रधुम्न सर के
रथ पर पवित्र निम्न प्राप्त म कृष्ण बन्धु राम और सुभद्रा का रथ स रथ द्वारा २ न जात्रा का मण्डप में
एक सप्ताह तक निमग्न रह जाते हैं ॥३॥ ५॥

ब्रह्मा ने हा—विप्रान्द । पन्थ इन्द्रधुम्न ने भगवान् से प्रार्थना की था कि मेरे सरोवर के तट पर एक
सप्ताह तक आकर यात्रा हा दवा । वह यात्रा राम और मोन को देनेवाणी शुभिना नाम से विख्यात हा ।
ऐसी प्रार्थना मुनिर पुरयोत्तम ने उगको मनवाहा कर प्रार्थन किया ॥६॥ ७॥

१. गुडिवा० । २. गुडिवा० । ३. दण्डिणास्यां । ४. गुडिवास्यां । ५. य जगत्पते । ६. यात्रा ।

श्रीभगवानुवाच ।

सप्ताहं सरसस्तोरे तव राजन्भविष्यति । गुडिवा^१ नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा ॥८॥
 ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति श्रद्धया मण्डपे स्थितम् । संकल्पं सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः ॥९॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वै नृप । पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यैर्वरैः ॥१०॥
 उपहारैर्बहुविधैः^२ प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः । जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गोतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥११॥
 न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदोप्सितम् । भविष्यति नृपधेष्ट मत्प्रसादादसंशयम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

[एवमुक्त्वा] तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत् । स तु राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१३॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन 'गुडिवायां' [द्विजोत्तमाः । सर्वकामप्रदं] देवं पश्येत् पुर्योत्तमम् ॥१४॥
 गमुक्ते लभते पुत्रादिधनं लभते धनम् । रोगान्च मुच्यते रोगो कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥१५॥
 आयुः कीर्तिं यशो मेधां बलं विद्यां धृतिं पशून् । नरः संततिमाप्नोति हृषीकेश सपदम् ॥१६॥
 धान्यान्समोहते^३ भोगान्बुध्दवा तं पुर्योत्तमम् । नरो बाष्पयथा मारी तास्ताग्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७॥
 यात्रां कृत्वा 'गुडिवायां' विधिवत्सुसमाहितः । आपादस्य^४ सिते पक्षे नरो योपिवथापि वा ॥१८॥

श्री भगवान् ने कहा—राजन् ! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सब मनोरथों को देनेवाली गुडिवा नाम की यात्रा एक सप्ताह पर्यन्त होगी । जो एकाग्र चित्त से मण्डप में स्थित मेरी, बलराम और सुभद्रा की पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य तथा विविध उत्तम उपहारों से विधिवत् पूजा कर नमस्कार एक प्रदक्षिणा करेगा तथा जयध्वनि, स्तोत्रपाठ मनोहर गान, वाद्य आदि से मुझे सतुष्ट करेगा, नृप ! वे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्या न हो उनके लिये सप्ताह में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । नृपधेष्ट ! मेरी कृपा से उनको निश्चित ही इच्छानुरूप फल प्राप्त होंगे ॥८-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु राजा से कहकर अन्तर्हित हो गये । वह प्रभावशाली राजा भी अत्यन्त इतुष्ट हो गया ॥१३॥ इन्द्रिये, द्विजवर ! मनुष्य को प्रयत्न करने गुडिवा यात्रा के समय सब मनोरथ सिद्ध करने वाले पुर्योत्तम देव का दर्शन करना चाहिये ॥१४॥ पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रों को, और धनहीन धन को प्राप्त करता है । इसी प्रकार रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है और कन्या इच्छानुरूप उत्तम पति प्राप्ता करती है ॥१५॥ भगवान् पुर्योत्तम के दर्शन से मनुष्य आयु, कीर्ति, यश, बुद्धि, बल, विद्या, धैर्य, स्व, दीन, धन और उत्तम सन्तान प्राप्त करता है ॥१६॥ नर हो या नारी सभी भगवान् के दर्शन से जिन जिन सुखा को इच्छा करने है, निःशङ्क उनको वे सभी इच्छार्थ पूर्ण होनी हैं । नर हो अथवा स्त्री कोई भी आपाङ्ग के शुभ पक्ष में अनन्य भाव में विधि-

दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः । दशपञ्चाशदवमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥१९॥
सप्तावरान्तस्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः । कामयेन विमानेन सर्वरत्नैरलङ्कृतः ॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिदच सेव्यमानो ययोत्तरैः । रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदामृतसंप्लवम् । सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ॥२२॥
पुण्यभयादिहाऽऽपत्य चतुर्वेदो द्विजो भवेत् । वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृष्टिसंवादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिर्णय-
नाम पदपष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तवष्टितमोऽध्यायः

द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

मृत्युं कञ्चुः

एकैकस्यास्तु यात्रायाः फलं ब्रूहि 'पुण्यपुण्यम् । यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी' वा तत्र संयता' ॥१॥

पूर्वकं गुडिवा नाम की यात्रा कर एव कृष्ण, राम और सुभद्रा के दर्शन कर द्विजवृन्द । पन्द्रह अवमेध यशो से भी अधिक फल प्राप्त करता है ॥१७-१९॥ वह अपने सात बीते और सात आने वाले वशो का उद्धार कर स्वयं इच्छागामी विमान से सब रत्ना से अलङ्कृत होकर विष्णुलोक की जाता है ॥२०-२१॥ वहाँ उसकी गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा उत्तरीतर जम से सेवा होती है और वह रूपवान्, साम्यशाली एव धरवीर होता है । उस विष्णुलोक में वह जप-मृत्यु से रहित और शान्त होकर ब्रह्मान्त तक उत्तम भोगों का भोग करता है । पुनः पुण्य क्षीण हो जाने पर हम लोक में आकर नारी वेशो का जाता ब्राह्मण होता है । तदनन्तर वैष्णव योग (ज्ञान) को पाकर मोक्ष का अधिकारी होता है ॥२२-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद मे गुडिवा-यात्रा माहात्म्य-वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—उन यात्राओं को अनन्य साथ से करके स्त्री पुरुष क्या फल पाते हैं वृषपा एव-एव यात्रा का पत्र अलग-अलग कहिये ॥१॥

१४. स. ०यासाद्यत० । २४. ०यश्विभोः य० । २६. ०रीयस्तिष्ठ सं० । २४. घ. धनुः ।

ब्रह्मोवाच

प्रतिप्राप्ताकल विप्रा भृशुष्य यदतो मम । यत्प्राप्नोति नर कृत्वा तस्मिन्क्षेत्रे सुसप्त ॥२॥
गुडिवाया तयोत्थाने फाल्गुन्या विषुवे तथा । यात्रा कृत्वा विधानेन दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥३॥
सकर्येण सुभद्रा च लभेत्सर्वत्र वै फलम् । नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४॥
यावद्यात्रा ज्येष्ठमासे करोति विधिधनैः । सावत्कप विष्णुलोकं सुखं भुङ्क्ते न सशय ॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रधरे पुण्यं रम्यं भोजुष्योत्तमम् । भुविमुनिप्रदं नृणां सर्वसर्वसुखायहे ॥६॥
ज्येष्ठे यात्रा (त्रा) नर कृत्वा नारीयासयत्तन्द्रिय । ययोजतन विधानेन वशं ह्ये च समाहित ॥७॥
प्रतिष्ठा कुरुते यस्तु शाठ्यदम्भविर्जित । स भुक्त्वा विधानभोगान्मोक्षं चा ते लभेदध्रुवम् ॥८॥

मुनय ऊचुः

भोतुमिच्छामहे दद प्रतिष्ठां यदतस्तव । विधानं चार्चनं दानं फलं तत्र जगत्पते ॥९॥

ब्रह्मोवाच

भृशुष्य मुनिशार्दूला प्रतिष्ठां विधिचोदिताम् । या कृत्वा नु नरो भवत्या नारी वा लभते फलम् ॥१०॥
यात्राद्वादशसपूर्णा यदा स्यात्तु (स्युस्तु) द्विजोत्तमा । तदा कुर्वीत विधियत्प्रतिष्ठां पापनाशिनीम् ॥११॥

अथा बोले—विप्रबुद्ध । तयमी व्यक्ति उस तीथ (गुडिवा) की यात्रा को मन्त्राग्र कर प्रवेश यात्रा का जो फल प्राप्त करते है उसका मैं कह रहा हू गुना ॥२॥ वायुन का पूर्णिमा विषुव (जिग निन रात्रि निन समान होन है) काठ म तथा देवोत्थान एकादशी व निन गुडिवा यात्रा नर विविपूर्वक कृष्ण बरुसम तथा मुमन को प्रगाप्त कर मनुष्य मत्र फला का प्राप्न करता है जीर चौन्ह इन्द्रा व भाग-काठ तक विष्णु व कोर म निवास करता है ॥३॥ ४॥ जठ ने महाने म मनुष्य विान शार विधिपूर्वक यात्रा करता है वह उतन ही कन्या तत्र विष्णु कोर म भुज भोग करता है इगम सन्नेह नह ॥५॥ स पवित्र मनाहर भोग और माग को देने बाते सभी प्राणिमो को मुख पट्टवान बाते पुराणेतन क्षत्र म जा विनिर्ग्य गारी या नर मनन्य भाव मे विधान के अनुगार बारह बार ज्येष्ठ मास म यात्रा करग तथा पत्नी और घनता का छन्दवर न्व प्रतिष्ठा करेगे के विरिय भागा का भोग कर अन्तका म विनिर्त ही भोग प्राप्न करय ॥६॥ ८॥

मुनिगण बोले—एव । अतो आरने जा तयनि की प्रतिष्ठा की चर्चा की है उग प्रतिष्ठा के विधान पूजन दान और फल के विषय म हम लोग गुनना चाहते हैं कृपाकर सुनाइय ॥९॥

अथा न पहा—मुनिवद विप्र देव प्रतिष्ठा व करन म मनुष्य उत्तम फला का प्राप्न करता है उस प्रतिष्ठा की विधि मैं बता रहा हू धनपूर्वक मुनो ॥१०॥ उत्तम द्विजबुद्ध । जब बारह बार यात्रा पूरी हो जाय तब

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्या समाहित । गत्वा जलाशय पुण्यमाचम्य प्रयत्न शुचि ॥१२॥
 आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायण तथा । तत स्नान प्रकुर्वीत विधिवत्सुसमाहित ॥१३॥
 यस्य यो विधिरुद्रिष्ट ऋषिभि स्नानकर्मणि । तेनैव तु विधानेन स्नान तस्य विधीयते ॥१४॥
 स्नात्वा सम्यग्विधानेन ततो देवानूपीन्पितृन् । सतर्पयेत्तथाऽग्न्याश्च नामगोत्रविधानवित ॥१५॥
 उत्तीर्णं वाससी धीते निर्मले परिधाय वै । उपस्पृश्य विधानेन भास्कराभिमुखस्तत ॥१६॥
 गायत्रीं पावनो वेदो मनसा वेदमातरम् । सर्वपापहरा पुण्यां जपेदष्टोत्तर शतम् ॥१७॥
 पुण्याश्च सौरमग्न्याश्च श्रद्धया सुसमाहित । त्रिप्रदक्षिणमावृत्य भास्कर प्रणमेत्तत ॥१८॥
 वेदोक्तं त्रिषु वर्णेषु स्नानं जाप्यमुदाहृतम् । स्त्रीभूद्रयो स्नानजाप्य वेदोक्तविधिर्वर्जितम् ॥१९॥
 ततो गच्छेद्गृहं मोक्षी पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । प्रक्षाल्य हस्तौ पावौ च उपस्पृश्य यथाविधि ॥२०॥
 धृतेन स्नापयेद्देव क्षीरेण तदनन्तरम् । मधुगन्धोदकैर्नैव तीर्थचन्दनवारिणां ॥२१॥
 ततो वस्त्रपुग श्रेष्ठ भक्त्या त परिधापयेत् । चन्दनागद्वयैर्द्वि कुङ्कुमेन विलेपयेत् ॥२२॥
 पूजयेत्परया भक्त्या 'पर्यङ्क' पुरुषोत्तमम् । अन्यैश्च वैष्णवैः पुष्पैर्वर्धयेन्मल्लिकादिभि ॥२३॥
 सपूज्यैव जगन्नाथ भुविर्भुक्तिप्रद हरिम् । धूप चामुनसयुक्तं बहुदेवस्य चाग्रत ॥२४॥

विधिपूर्वक इस पापनाशिनी प्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥११॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-एकादशी के दिन समय मात्र से उस पवित्र जलाशय के समीप जाकर आचमन कर पवित्र होना चाहिये ॥१२॥ पुनः सब तीर्थों का आवाहन कर तथा भगवान् का ध्यान कर विधिपूर्वक समाहित हित से उसमें स्नान करना चाहिये ॥१३॥ ऋषिपिता ने स्नान-कर्म में जिसके लिये जो विधि कहा है उसी विधि से स्नान करना चाहिये ॥१४॥ तदनन्तर भली भाँति स्नान कर नाम गोत्र का जानने वाला व्यक्ति देव ऋषि पितर तथा अन्य देवों का तपण करे ॥१५॥ इससे बान् जल से निजल कर स्वच्छ निमल सुले वस्त्र पहन कर सूर्याभिमुख हो विधिपूर्वक आचमन करे ॥१६॥ आचमन से पवित्र हो सब पापों को दूर करने वाली पवित्र वेन्माता गायत्री देवी का मन में जप करे ॥१७॥ इससे अनन्तर पवित्र सूपमन्त्रों का पाठ करते हुए थड़ा और सयन भाव से तीन बार प्रणिष्ठा कर सूप को प्रणाम करे ॥१८॥ मँदे तीन वर्णों के लिये वेन्मात्रा कहें गये स्नान और जपविधान को कहा है स्त्री गोत्रों के लिए वेदविधि से स्नान और जप वर्जित है ॥१९॥ इस प्रकार सध्या बन्दन से निवृत्त होकर मोन हो घर जाय वहाँ हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन कर पुरोत्तम की पूजा प्रारम्भ करे ॥२०॥ पहले भगवान् को घृत से तन्मन्तर धूप से नहलाय फिर मधु-मुगध से युक्त जल तथा चन्दन मिश्रित सोव-जल से तह्णकर भक्तिपूर्वक भगवान् को उत्तम सुगन्ध वस्त्र पहनाय सारी म चन्दन अगर गुड-गुम और बपूर का लेप लगाय तथा अचल भक्तिभाव से कमल एवं अय मल्लिका आदि विष्णु की त्रिप लगने वाले फूला से पुरोत्तम की पूजा करे ॥२१॥ २३॥ इस विधि से भुक्ति-भुक्ति-दाना नाकपति भगवान् विष्णु देव की पूजा कर उनके आगे अगुरु मित्रे धूप और मुखाचिन गुग्गुलु को जलाये शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक

१ ग ० न जप्य० । २ स ० था । नध्यव० । ३ क मन्त्रैश्च । ४ यथैश्च । ५ क विविधैः ।

५ क ० क्तं देवदेव० ।

गुग्गुलु च मुनिश्रेष्ठा दहेदगन्धसमन्वितम् । दीप प्रज्वालयेद्भक्त्या ययाशक्त्या (वित) घृतेन वै ॥२५॥
 अन्यांश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहित । घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतैलेन वा पुन ॥२६॥
 नैवेद्ये पायसापूपशङ्खुलीचटक तथा । मोदक फणित चाज्य कलानि च निवेदयेत् ॥२७॥
 एव पञ्चोपचारेण सपूज्य पुरुषोत्तमम् । नमः पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२८॥
 ततः प्रसादयेद्देव भक्त्या त पुरुषोत्तमम् । नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद ॥२९॥
 ससारसागरे मग्न ग्राहि मा पुरुषोत्तम । यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते ॥३०॥
 प्रसादात्तव गोविन्द सपूर्णास्ता भवन्तु मे । एव प्रसाद्य त देव दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥३१॥
 ततोऽर्घ्येदगुरु भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनैः । नानयोरन्तर यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमा ॥३२॥
 देवस्योपरि कुर्वीत श्रद्धया सुसमाहित । नानापुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विविध पुष्पमण्डपम् ॥३३॥
 कृत्वाऽप्यधारण पश्चाज्जागर कारयेद्भिर्भिः । कथा च वासुदेवस्य गीतिका चापि कारयेत् ॥३४॥
 'ध्यायन्पठन्स्तुबन्वेव' प्रणयेद्भजनों बुध । ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु ॥३५॥
 'निमग्नयेद्वत्तस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । इतिहासपुराणशास्त्रोत्रियान्सयतेन्द्रियान् ॥३६॥
 स्नात्वा सन्ध्याविधानेन धीतवासा जितेन्द्रिय । स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

धूत का दीपक जलाये । इसी प्रकार मुनिवयः । धूत के अथवा तिल-तैल के अन्य बारह प्रणीप अर्थात् पूजक भगवान् को निवाधे । भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के समुर पन्थ खीर मालपूजा पूरी लड्डू राब एव फल भगवान् को अर्पित करे ॥२५-२७॥ इस प्रकार पञ्चोपचार से भगवान् की पूजा कर नमः पुरोत्तमाय इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥२८॥ जन के बाद भगवान् पुरुषोत्तम को स्तुति द्वारा प्रसन्न करे । भक्ता को अभय दान देने वाले देवेन । आप को नमस्कार है । पुरुषोत्तम । ससार-सागर में डूबे हुए मेरी रक्षा करो । जगत्पते । मैंने आप की कृपा से जो ये तुम्हारी द्वादश यात्राये की हैं वे पूज्य से मग्न कर दें । इस प्रकार स्तुति से भगवान् को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥२९-३१॥ मुनिश्रेष्ठ । गुरु और भगवान् में थोड़ा भी अन्तर नहीं है इसलिये भगवान् की पूजा के बाद गुरु की कूल वस्त्र और सुगन्धित इन्द्रियो से पूजा करनी चाहिये । मुनिश्रेष्ठ । भगवान् की प्रसन्नता के लिये उनके ऊपर अनेक पुष्पो का विविध मण्डप अर्थात् पूर्वक अनन्य भाव से बनाता चाहिये ॥३२-३३॥ हम प्रकार देव प्रतिष्ठा कर रात्रि में जागरण करना चाहिये वासुदेव की मनोहर कथा और गीत भी गाये जाने चाहिये । मुद्रिमान् व्यक्तिया को चाहिये कि इस प्रकार पुरुषोत्तम का ध्यान स्तुति और स्तोत्र पाठ करने हुये रात बिताएँ ॥३४॥ तदनन्तर द्वाणी के तिन प्रातःकाल वेद के प्रमाण्ड विद्वान् इतिहास-पुराणा के नाता धोत्रिय जितेन्द्रिय और प्रती बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे ॥३५-३६॥ स्वयं स्नान कर धुले हुए वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक सयन भाव से भगवान् पुरुषोत्तम को पहले की तरह स्नान कराये विविध पुष्पा उपहार नैवेद्य दीप तथा विविध उपचार

गन्धं. पुष्पंरूपहारंनैवेद्येर्दीपकंस्तथा । उपचारं बहुविधं प्रणिपातः, प्रदक्षिणैः ॥३८॥
 मायं स्तुतिनमस्कारं गीतवाद्यैर्मनोहरं । सपूज्यं च जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः ॥३९॥
 द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च । छत्रोपानद्युग चैव श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥४०॥
 भक्त्या तु सधन तेभ्यो दद्याद्वस्त्रादिकं द्विजा । सद्भावैः तु भोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः ॥४१॥
 आचार्यापि ततो दद्याद्गोवस्त्रं कनकं तथा । छत्रोपानद्युगं चान्यत्कास्यपानं च भक्तितः ॥४२॥
 ततस्तान्भोजयेद्विभ्रान्भोज्य पायसपूर्वकम् । पक्वाश्रं भक्ष्यभोज्यं च गृहसर्पिसमन्वितम् ॥४३॥
 ततस्तान्भक्षतुप्ताश्च ब्राह्मणान्वस्त्रयमानसान् । द्वादशैवोदकुम्भाश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान् ॥४४॥
 दक्षिणां च यथाशक्त्या (वित्तं) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः । कुम्भं च दक्षिणां चैव आचार्याय निवर्धयेत् ॥४५॥
 एव सपूज्य तां विभ्रान्गुरुं ज्ञानप्रदायकम् । पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्यं द्विजोत्तमः ॥४६॥
 सुवर्णैश्च गोधामैर्गन्धैश्चान्यैर्वरेभ्यः । सपूज्य तं नमस्कृत्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४७॥
 सर्वव्यापी जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर । अनादिनिघ्नो देवः प्रीयतां पुष्टोत्तमः ॥४८॥
 इत्युच्चार्य ततो विभ्रान्निश्च हृत्वा च प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत् ॥४९॥
 ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत् । अनुव्रज्य तु तान्सर्वान्नमस्कृत्य निवर्तयेत् ॥५०॥

से विधिवत् पूजा करे पुनः दण्डवत् और प्रदक्षिणा करे भगवान् को मनोहर गान, स्तुति, नमस्कार और जप द्वारा प्रसन्न करे। इस प्रकार भगवान् की पूजा करने के बाद उन निमन्त्रित ब्राह्मणों की यथा विधि पूजा करे ॥३७-३९॥ प्रत्येक को एक-एक गाय सुवर्ण छत्रा, और एक एक जाड़े जूते भक्तिपूर्वक दान दे ॥४०॥ द्विजगण। प्रत्येक ब्राह्मण को मन सहित वस्त्र आदि भी दे। क्यावि सद्भावपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने से भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं ॥४१॥ ब्राह्मणों की पूजा के बाद भक्तिपूर्वक आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छत्र और उपानह आदि प्रदान करे। फिर उन ब्राह्मणों को पायस, पक्वाश्र एव गुड, धी से बने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का भोजन कराये। उस भोजन से तृप्त ब्राह्मणों को मोदक के साथ बारह जल के घड़े दे और यथाशक्ति विनम्र भाव से दक्षिणा भी दे। इसी प्रकार अपने आचार्य को भी जल-वस्त्र दक्षिणा सहित प्रदान करे ॥४२-४५॥ द्विजात्तम । इस प्रकार उन ब्राह्मणों तथा विष्णुतुल्य ज्ञान दाता गुरु की अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करे ॥४६॥ पुनः सुवर्ण वस्त्र, गौ एव दूसरे उत्तम पदार्थों से चतुर व्यञ्जित गुड की पूजा और नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥४७॥ सर्वव्यापक, जगत् के स्वामी, शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले और अनादि अनन्त पुष्टोत्तम देव प्रसन्न हो जायें ॥४८॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों की तीन बार प्रदक्षिणा करे, पुनः आचार्य को विनम्र प्रणाम कर विदा करे ॥४९॥ उन ब्राह्मणों के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक भक्तिपूर्वक जाय और वहाँ से उन ब्राह्मणों का नमस्कार कर लौटा दे ॥५०॥ घर लौटकर बान्धव, स्वजन एवं अन्य उपासक, दीन, मित्रक तथा

वान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः । अन्यैश्चोपासकैर्देनेभिर्लुकेश्चाप्राकाङ्क्षिभिः ॥५१॥
 एवं कृत्वा नरः सम्यङ्नारी वा लभते फलम् । अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥५२॥
 अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः । भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक् ॥५३॥
 सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालंकारभूषितः । सर्वकामसमृद्धात्मा देवद्विगतज्वरः ॥५४॥
 रूपयौवनसंपन्नो गुणैः सर्वैरलंकृतः । स्तूयमानोऽप्सररोभिश्च गन्धर्वैः समलंकृतः ॥५५॥
 विमानेनार्कवर्णनं कामनेन स्थिरेण च । पताकाध्वजयुक्तेन सयंरत्नैरलंकृतः ॥५६॥
 उद्योतयन्विशः सर्वा आकाशे विगतबलम् । युवा महाबली धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
 तत्र कल्पशतं दाबद्भुङ्क्ते भोगान्ययेत्सितान् । सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधरोरगैः ॥५८॥
 स्तूयमानो मुनिवरैस्तिष्ठते विगतज्वरः । यथा देवो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ॥५९॥
 तयाज्ञौ मुदितो विप्रा कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् । भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान् क्रीडा कृत्वा सुरैः सह ॥६०॥
 तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम् । सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः ॥६१॥
 कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः । तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥६२॥
 रत्नलोकं सुरगणैः । सेवितं सुखमोक्षदम् । अनेकशतसाहस्रं विमानैः समलंकृतम् ॥६३॥

मुखे ध्वनियो वे साप मौन होकर मोहन करे ॥५१॥ कोई भी स्त्री या पुरुष इस प्रकार मली माँति
 व्रत वा अनुष्ठान कर हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ के बराबर फल प्राप्त कर सकते हैं ॥५२॥ नरप्रेष्ठ ।
 इस प्रकार दैवानुष्ठान-परायण व्यक्ति अपने कुल के अतीत काल के सौ और आने वाले सौ ध्वनिधारा के सहित
 दिव्य रूप धारण कर, तत्र लक्षणों से युक्त, मन आभूषणों से आभूषित, पूर्णमनोरथ, देवता के समान साप रत्न,
 रूप और यौवन से युक्त, सब गुणों से सुशोभित होकर रण विरमे पताकाया से सुसज्जित, दक्ष और
 सूर्य के समान चमरने वाले इच्छागामी विमान से विष्णुचार को जाता है ॥५३-५७॥ साथ-साथ अप्सरायें और
 गन्धर्वे स्तुति गान करते जाते हैं । आवास में वह अपनी देह-वान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करता जाता है ।
 इस प्रकार वह युवा, महाबली, ज्ञानवान् ध्वनि शान्तिचित्त से आवास मार्ग से विष्णुलोक को प्रवेश करता है ।
 वहाँ वह सौ बरस तक अपन ईप्सित भोगों का भोग करता है, पिंड, अप्सरायें, गन्धर्व, देवता, विद्याधर, नाग और मुनिप्रवर
 उसका यशोगान करते हैं, वह रात चक्र-महाधारी विष्णु का चतुर्भुज रूप स्वयं धारण कर ह विप्रगण । शान्त भाव से,
 प्रगल्भित हो निद्राम करता है । वहाँ उत्तम भोगों का भाग तथा देवयुग्मों के साथ पीड़ा करने उग विष्णु-
 मन्दिर में स्थान पाता है जो सुर, किन्नर, सिद्ध और विद्याधरा में सुशोभित रहता है ॥५८-६१॥ वहाँ से वह ध्वनि
 मन्त्रे बल्य तक गुप्ता का उपासक कर हे विप्रन्द्रिय । पुन उस रत्नलोक में जाता है जो सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण
 करने वाला, गुरु-ममूह से मरा हुआ, गुरु और मोक्ष को देने वाला है, जो अनेक सहस्र देव विमानों से सुशोभित है,

तदन्ते योगिना लोकं गत्वा मोक्षप्रदं शिवम् । तत्र भुक्त्वा चरान्भोगान्यावदाभूतसत्त्ववम् ॥७८॥
 तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिना कुले । प्रवरं वैष्णवं विप्रां दुर्लभं साधुसमते ॥७९॥
 चतुर्वेदो विप्रवरो यज्ञैरिष्टवाऽऽप्तदक्षिणं । वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥८०॥
 एव यात्राफलं विप्रा मया सम्यगुदाहृतम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां किमन्यच्छीतुमिच्छस्य ॥८१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मणे स्वयम्भुविसवादे द्वादशयात्राफलमाहात्म्यनिरूपण
 नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोकवर्णनम्

मनुय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव 'विष्णुलोकमनामयम् । लोवानन्दकरं कान्तं सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ॥१॥

और बड़ बड़ यज्ञ करता है जिनमें ब्राह्मणा को भरपूर दक्षिणाय देता है ॥७७॥ इसके उपरान्त मोक्ष देने वाले योगियों के धूम लोह' में जाकर बल्य पवन्त उत्तम मोगा को भोगता है ॥७८॥ वहाँ से इस पृथ्वी पर दुलभ सर्वोत्तम वैष्णव भक्ता के कुल में—जिसकी साधु जन भी इच्छा करते हैं—जन्म लेता है और चतुर्वेद का ज्ञाता ब्राह्मण होता है जो द्रष्टव्य दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है । पुनः वैष्णव योग को प्राप्त कर भोग का अधिरार प्राप्त करता है ॥७९-८०॥ विप्रगण ! मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाले इस यात्रा के फल को मैंने कह चुनाया अब तुम लोग और क्या सुनना चाहते हो ॥८१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भु तथा ऋषि के संवाद प्रकरण में द्वादशयात्राफलमाहात्म्यवर्णन नामक सरसटीका अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

विष्णुलोक वा वर्णनं

मुनियों ने कहा—देव ! सब आदित्यजात्र सम्पूरा में भरे पवित्र मनोहर लोक को आनन्द देने वाले और

प्रमाण तस्य लोकस्य भोग कान्ति बल प्रभो । कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणा ॥२॥
दशनास्पर्शनाद्वापि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा । विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन पर कौतुहल हि न ॥३॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्व मुनय सर्वे यत्पर परम पदम् । भक्तानामोहित धन्य पुण्य सधारनाशनम् ॥४॥
प्रवर सर्वलोकानां विख्यातस्य वदतो मम । सर्वाश्चर्यमय पुण्य स्थान त्रैलोक्यपूजितम् ॥५॥
अशोके पारिजातेश्च मन्दारेश्चम्पकद्रुमे । मालतीमल्लिकार्ककुन्दैर्बकुलैर्नागकेसरैः ॥६॥
पुष्पागैरतिमुक्तैश्च प्रियङ्गुतगराजैर्बुधैः । पाटलाक्षतसदिरैः कर्णिकारयनोऽञ्जलैः ॥७॥
नारङ्गैः पनसैर्लोध्रेनिम्बराडिमसर्जकैः । द्राक्षाक्षकुवक्षजैर्मेघुकैश्च फलैर्द्रुमैः ॥८॥
कपित्थैर्नारिकेलैश्च तालैः श्रीफलसम्भवं । कल्पवृक्षैरसह्यैश्च वन्यैरन्यैः सुशोभनैः ॥९॥
सरलैश्चन्दनैर्नैर्पिण्डैश्च दशभुजाञ्जनैः । जम्बूलवज्रकङ्कालैः कर्पूरामोदवासिभिः ॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगीफलद्रुमैः । अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलशोभितैः ॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लग्नागुच्छसमुद्भवं । नानाजलाशयैः पुष्प्यैर्नानापक्षितैर्वरैः ॥१२॥
सौमिकाशनसथास्तोयपूर्णमनोहरैः । कुमुदैः शतपत्रैश्च पुष्पैः कोकनदैर्वरैः ॥१३॥
रवतनीलोत्पलैः कान्तैः कङ्कारैश्च सुगन्धिभिः । जम्पैश्च जलजैः पुष्पैर्नानावर्णैः सुशोभनैः ॥१४॥

घान्तिप्रद विष्णुलोक के विषय म हम लोग सुनना चाहते हैं। इसलिये उस लोक के प्रमाण भोग शोभा और बल (आयु) के बार म कहिए। दान स्थान अथवा तीर्थस्थान आदि जिन गुण कर्मों से धर्माचरण-परायण व्यक्ति बहो जाते हैं वृषया मयापरूप से विस्तारपूर्वक कहिये हम लोगो को सुनने की अत्यन्त उत्कृष्टा हो रही है ॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवृन्द । वह विष्णुलोक नाम से प्रसिद्ध पवित्र परम पद सत्तार व दुष्का को नष्ट करने वाग सब लोको से श्रेष्ठ आश्चर्यमय और धन्य है उस पाने के लिये भक्तजन प्रयत्न किया करते हैं वह लोक सम्पूर्ण जगत् से पूजित है ॥४॥ ५॥ अशोक पारिजात मन्दार चम्पक मालती मल्लिका कुन्द बकुल नागकेसर ॥६॥ अनिमृक्त (माधवी) प्रियद्रुम तगर अजुन पाटल आम खदिर उज्ज्वल कर्णिकार ॥७॥ नाग्य पनस लोष निम्ब अनार सर्जक द्राक्षा ऋक्ष (वडहर) सजूर मधुवेद आदि फल ॥८॥ और वृक्षा तथा कपित्थ नारिकेल ताड श्रीफल असह्य कल्पवृक्षा और अथ मनोहर जगली वृक्षा ॥९॥ सरल चन्दन अर्णाक देवदारु गुमा ञ्जन (सहजान) जानी (चमेली) लवंग वनोज नूपुर आनि सुगंध फलने वाले वृक्षा ॥१०॥ ताम्बूल पुगी फल इनी प्रकार अन्य प्रत्येक आयु म फलने वाले वृक्षा ॥११॥ नाना प्रकार की लताग्रा और गुच्छो से उत्पन्न होने वाले पुष्पा स सुशोभित है जहाँ नाना प्रकारके पवित्र जलगाय और जल से मरी मनोहर सजडा बावर्गिया स्थित हैं त्रिनय मित्र मित्र प्रकार के वनी नटरव करते रहते हैं ॥१२॥ जो जलगाय कुम्भ शतपत्र कमल मनाहर कोकनद, नीलमल, बहलार एवं अनेक सुगन्धित कमला से सुशोभित है जहाँ हंस कारण्डव मनोहर चक्रवाक कोयलिक,

हंसकारण्डवाकीर्णेशचक्रवाकोपशोभितैः । कोयटिकेशच दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः ॥१५॥
 चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवन्जीवकजातिभिः । अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः ॥१६॥
 एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानादचयंसमन्वितैः । वृक्षैर्जलाशयैः पुष्पैर्भूषितं समनोहरं ॥१७॥
 तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितं । कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥१८॥
 तरुणादित्यसंकाशैरप्सरोगैर्भिरलंकृतैः । हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१९॥
 क्षेत्रैः सप्तकाण्डैश्च मुक्ताहाराबलम्बिभिः । नानावर्णैरसंख्यातैर्जतिहृत्परिच्छदैः ॥२०॥
 नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितैः । सुलप्रचारबहुलैर्नानावादित्रनिस्वनैः ॥२१॥
 मनोमादस्तुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः । विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते ॥२२॥
 नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः । चन्दाननाभिः कान्ताभिर्योधिभिः सुमनोहरैः ॥२३॥
 पीनोन्नतकुचाप्राभिः सुमध्याभिः सपन्ततः । श्यामावदातवर्णाभिर्मसमातङ्गगामिभिः ॥२४॥
 परिवार्य नरश्रेष्ठं बीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः । चामरं दशमदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः ॥२५॥
 गीतनृत्यैस्तथा धाद्यैर्मोदमानैर्मदालसैः । यश्चविद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६॥
 सुरसंधैश्च ऋषिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम् । तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनोयिणः ॥२७॥

टिप्पणि (टिडिहिरी) दात्यूह (कारण्ड) चातक, प्रियपुत्र, चकोर, एवं अन्य दिव्य जङ्गर विहार करते और जो उनकी मधुर ध्वनि से सुश्रुजित रहते हैं ॥१५-१६॥ इस प्रकार वह लोक मिश्र-मिश्र प्रकार के आश्चर्य-जनक वस्तु, पवित्र मनोहर जलाशय से सुशोभित है ॥१७॥ उस लोक में नाना रत्नों से विभूषित, सुवर्णमय (गुनहले) तरुण सूर्य के समान चमकने वाले शुभ्र दिव्य विमानों पर आरुढ़ गन्धर्वगण मधुर गान करते रहते हैं । वे अप्सराओं के स्वर्णमय शय्या आसन और नाना प्रकार की भोग-सामग्रियों से सर्वदा भरे रहते हैं, जिन पर आकाश में पहराने वाली पताकायें झुल्लाती रहती हैं जो अनगिनत, रंग बिरंगे गुनहले वस्त्रों से सजे रहने हैं ॥१८-२०॥ जो नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों चन्दन अमुर आदि से सुगन्धित और नाना प्रकार की सुखदायक सामग्रियों से युक्त रहते हैं, जिन पर अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं, किङ्किणी की ध्वनि होती रहती है और जो मन तथा वातु के समान गतिमान हैं, उसमें पुष्पवान् श्यविन बैठकर उस लोकपूज्य वैष्णव लोग में विहार करते हैं ॥२१-२२॥ उन भाग्यशाली श्रेष्ठ ध्यस्तियों के चारों ओर सर्वदा अनेक चन्द्रमयी स्त्रियाँ, गन्धर्व अप्सरायें, और मनोहर द्यमाद्यपी, भक्त हस्ती के समान गमन करने वाली मनोहर बटिवाली अङ्गनायें जिनके मुख बटोर और उमड़े हुए रहते हैं घेर कर घेरी रहती हैं और नाना रत्नों से सुशोभित स्वर्ण दण्ड वाले चामर झुल्लाती रहती हैं । (वह उत्तम लोक प्रसन्न, नदों में झूमते यश, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओं के नृत्य गीत तथा वाद्य से सुख-समृद्ध और ऋषिणा से सुशोभित रहता है उन लोक में जाकर सामान्यजानी जानी मनुष्य अनेक गुणा का भोग करते हैं ॥२३-२७॥)

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे । दृष्टो धर्मगवान्कृष्ण पुष्कराक्षो जगत्पति ॥२८॥
 श्रोत्रपत्न्यसं सार्धं यावद्योश्च व्रतारकम् । प्रतप्तहेमसकाशा जरामरणवर्जिता ॥२९॥
 सत्रंदु खविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविवर्जिता । चतुर्भुजा महावीर्या वनमात्रविभूयिता ॥३०॥
 धीवत्सलान्ठनैर्युक्ता शङ्खचक्रगदाधरा । केचिन्नोलोत्पलश्यामा केचित्काञ्चनसनिभा ॥३१॥
 केचिभरपतप्रण्या केचिद्वैदूर्यसनिभा । श्यामवर्णा कुण्डलिनस्तथाज्ये वज्रसनिभा ॥३२॥
 न तादृचसदवाना भाति लोका द्विजोत्तमा । यादृग्भाति हरेर्लोक सर्वाश्चयसमवित ॥३३॥
 न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजा । प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसंप्लयम् ॥३४॥
 विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनवर्णिता । कृष्ण राम सुभद्रा च पश्यति पुष्टोत्तमे ॥३५॥
 प्रतप्तहेमसकाशा तरुणादित्यसनिभम् । पुरमध्ये हरेर्भाति मन्विर रत्नभूयितम् ॥३६॥
 अनेकशतसाहस्रं पतार्कं समलकृतम् । योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवर्धितम् ॥३७॥
 नानावर्णैर्ध्वजैश्चित्रैः कल्पितं सुमनोहरं । विभाति शारदो यद्वनसर्तं सह चद्रमा ॥३८॥
 चतुर्द्वारं सुविस्तीर्णं कञ्चुकोभिः सुरक्षितम् । पुरसप्तकसयुक्तं महोत्सेकं मनोहरम् ॥३९॥
 प्रथमं काञ्चन तत्र द्वितीयं मरकतैर्भूतम् । इन्द्रनीलं तृतीयं तु महानीलं ततः परम् ॥४०॥

जो मनुष्य दक्षिण सागर के तट पर स्थित वटराज के समीप जगत्पति कमल-नेत्र भगवान् कृष्ण का दर्शन करते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और तारागण रहने हैं तब तक अप्सराओं के साथ नील-वर्तन हैं वे जरा मरण के भय से मुक्त सब इसी तृष्णा और आत्मग्लानि से रहित हो जाते हैं तब सोने के समान कान्तिमान चतुर्भुज गल-चक्र-गदाधारी धीवन्त और वनमाला से सुशोभित महापरायणी हो जाते हैं ॥२८-३०॥ उनमें से कोई नील-कमल के समान श्याम कोई सोने के समान गौर वण कोई मरकतमणि के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई श्यामवर्ण के कुण्डल पहने हुये और अन्य वण के समान कान्तिमान होते हैं ॥३१-३३॥ द्विजगण संप्लुन देव-लोको की भी वैसी गोमा नहीं होगी जैसी उम आश्वपुत्रजन्म-विष्णुलोक की गोमा होगी है ॥३३॥ विप्रकल्पा विष्णु देव के प्रभाव से कल्प-पयन्त पुनर्जन्म नहीं होता ॥३४॥ जो पशुपतिम शिव म जाकर राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे अपने रूप और यौवन पर इतरान हुय उम दिव्य पुर में विचरण करते हैं ॥३५॥ उस पुर के मध्य में रहता स सुशोभन तपावे हुए सोने की भांति कान्तिमान और तरुण रूप के समान चमकता हुआ भगवान का मन्दिर है ॥३६॥ उसके चारों ओर दश लाख योशन विस्त्राण सुमहली चहार निवारी बनी हुई है। अवश्य पत काशा मनाहर रत्न विरभी चित्र विचित्र च्वात्रास स सुशोभित बहु मन्दिर नखत्रों से घिरे चद्रमा के समान गोमा देता है ॥३७-३८॥ उस चहार दीवारी में चार बड़ बन् द्वार हैं जो राक्षस स सुरगिन हैं। मीनर ऊँचे ऊँचे मकान काठ मनोहर सात उपपुर हैं ॥३९॥ काला काञ्चन (मन्त्रालय) दूसरा मन्त्र मणिपा से जडा हुआ नील वण का तीसरा इन्द्र नीलमणि का बना चौथा महानीलमणि का पाचवाँ

पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम् । षष्ठं वज्रमयं विप्रा वैदूर्यं सप्तमं पुरम् ॥४१॥
 नानारत्नमयैर्हमप्रवालाङ्कुरभूषितैः । स्तम्भैरद्भुतसंकाशैर्भाति तद्भवनं महत् ॥४२॥
 दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति दिशो दश । पौर्णमास्या सनसत्रो यथा भाति निशाकरः ॥४३॥
 आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको जनादेनः । पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुतः ॥४४॥
 ज्वलत्सुदर्शनं चक्र घोर सर्वास्त्रनायकम् । दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतन्त्रजोमयं हरिः ॥४५॥
 कुन्देन्दुरजतप्रलय हारगोक्षीरसनिभम् । आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सद्यहस्तेन केशवः ॥४६॥
 यस्य शब्देन सकल संक्षोभ जायते जगत् । विद्युतं पाञ्चजन्येति सहस्रावर्तभूषितम् ॥४७॥
 दुष्कृतान्तकरीं रौद्रा दैत्यदानवनाशिनीम् । ज्वलद्दह्निशिखाकारां नुःसहं त्रिदशैरपि ॥४८॥
 कौमोदकीं गदा चासौ धृतवान्दक्षिणे करे । वामे विस्फुरति हास्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम् ॥४९॥
 शरीरादित्यसंकाशैर्ज्वालाकुञ्जैरैः । योऽसौ संहर्ते देवस्त्रैर्लोचनं सचराचरम् ॥५०॥
 सर्वानिन्वकरः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥५१॥
 सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षण । सहस्राक्षः सहस्राङ्गः सहस्रभुजवान्प्रभुः ॥५२॥
 सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः । विद्युद्विस्पष्टसंकाशो जगन्नाथो जगद्गुरुः ॥५३॥

जमकते पद्मराग मणियो से बना अति सुशोभित, छठा वज्रमय और सातवां वैदूर्यमणि से बना हुआ है ॥४०-४१॥
 ऐसे उपपुरो के मध्य वह ऊँचा हरिमन्दिर माना रत्नो से बने हुए और प्रवाल खण्डो से जड़े हुए अद्भुत वर्ण के लक्ष्मी
 से सुशोभित है ॥४२॥ उस मन्दिर में सिद्ध समूह रहते हैं, जो दशो दिशाओं को जगमगाते रहते हैं । उस भवन की वैसी
 शोभा होती है मानो पूर्णिमा की जगमग रात्रि में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा शोभायमान हो ॥४३॥ वहाँ सिंहासन पर
 पीताम्बर पहने हुये, श्रीवत्स से अङ्कित, श्यामवर्ण के भगवान्, जनादेन सहमी के सहित विराजमान रहते हैं ॥४४॥
 वे हरि अपने दाहिने हाथ में सब अस्त्रा में श्रेष्ठ, भयङ्कर सर्वतन्त्रजोमय और अग्नि के समान जलता हुआ-सा सुदर्शन
 चक्र धारण किये रहते हैं ॥४५॥ वामें हाथ में कुन्द, चन्द्रमा और रजत के समान सुभ्र हार, गोदुग्ध के समान देवत,
 सहस्रो आवर्तों (चक्रर घुमन) से सुशोभित वह प्रसिद्ध पञ्चजन्य शस्त्र रहता है, जिसकी ध्वनि से सारा ससार
 क्षुब्ध हो जाता है ॥४६-४७॥ दाहिने हाथ में प्रलय मृषा देने वाली, भयङ्कर, दैत्य दानवों को विनष्ट करने वाली,
 जलते अग्नि के लपटों के समान और देवताओं से भी घटिनाई से राहो जाने योग्य कौमोदकी गदा को धारण किये
 रहते हैं ॥४८॥ उसी प्रकार उनके बायें हाथ में मूर्ध के समान प्रभापूर्ण शाङ्करनामक धनुष रहता है । वह भगवान्
 उसी धनुष से छूटे हुए असंख्य लपटों से जगमगाने, मूर्ध के समान जलते बाणों से चराचर जगत् का संहार करते
 हैं ॥४९-५०॥ ऐसे सबको आनन्द देने वाले श्रीमान् सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता, सब लोका के गुरु, देवगुरु, सहस्र
 शिर, सहस्रचरण और सहस्र नेत्रवाले, अनन्त नामों से प्रसिद्ध, सहस्र भुजाओं से युक्त देवेश, जगन्नाथ जगद्गुरु
 भगवान् सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, जिनके नेत्र पद्म के समान बड़े और जिनके शरीर की कति विद्युत् के

परीतः सुरसिद्धेश्च गन्धर्वप्सरसा गणैः। यक्षविद्याधरैर्नर्ममूर्तिनिष्ठैः सचारणैः ॥५४॥
 सुपर्णैर्दानवैर्देवैश्च राक्षसैर्गृह्यकिन्नरैः। अन्यैर्देवगणैर्दिव्यैः स्तूयमानो विराजते ॥५५॥
 तत्रस्था सततं कीर्तिः। प्रभा मेधा सरस्वती। बुद्धिमतिस्तथा क्षान्तिः सिद्धिर्भूतिस्तथा धृतिः ॥५६॥
 गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला। प्रभामतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता ॥५७॥
 श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सोदामिनी तथा। निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽन्यामरयोपितः ॥५८॥
 वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने संप्रतिष्ठिताः। अयं किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥५९॥
 धृताक्षी मेनका रम्भा सहजान्या तिलोत्तमा। उर्वशी चैव निम्लोचा तथाऽन्या वामना परा ॥६०॥
 मन्दोदरी च सुभगा विश्वाची विपुलानना। भद्राङ्गी चित्रसेना च प्रम्लोचा सुमनोहरा ॥६१॥
 मृत्तिसंमोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी ॥६२॥
 अलम्बुषा मिथकेशी तथाऽन्या मुञ्जिकस्थला। ऋतुस्थला वराङ्गी च पूर्वचित्तिस्तथा परा ॥६३॥
 परावती महारूपा शशिलेखा शुभानना। हसलोलानुगामिन्यो मत्तवारणगामिनी ॥६४॥
 बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विख्याता सुरयोपितः। एतादृशान्या अप्सरसो रूपयौवनगविता ॥६५॥
 सुमध्याश्चादववना सर्वालकारभूषिता। गीतमाधुर्यसंपुक्ता सर्वलक्षणसंपुताः ॥६६॥
 गीतवाद्ये च कुशला सुरगन्धर्वयोपितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रासौ पुरोत्तमः ॥६७॥

समान है, जिनको सुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराय, यक्ष, विद्याधर, नाय, मुनि, सिद्ध, चारण, सुपर्ण (गर्दभ) दानव, दैत्य, राक्षस, गृह्य, किन्नर एवं अन्य दिव्य देवगण नारो ओर से घेरे हुए स्तुति किया करते हैं ॥५१-५५॥ वहाँ सर्वदा कीर्ति, प्रभा, मेधा, सरस्वती, बुद्धि, मति, क्षान्ति, सिद्धि, भूति, धृति, गायत्री, सावित्री, मङ्गला सर्वमङ्गला, प्रभा, मति, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, देवी, विद्युत्, सोदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य देवस्त्रियाँ भगवान् के मन्दिर में विराजमान रहती हैं। अधिक कहाँ तक कहा जाय ? वहाँ सब कुछ सर्वदा विद्यमान रहता है ॥५६-५९॥
 (पूताक्षी, मेनका, रम्भा, सहजान्या, तिलोत्तमा, उर्वशी, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सोमाम्बवती, विश्वाची, विपुलानना, भद्राङ्गी, चित्रसेना, अत्यन्त मनोहर प्रम्लोचा, मुनिजनी को भी भुज करने वाली रामा, सुन्दर मुख वाली चन्द्रमध्या, सुकेशी, नीलकेशा, मन्मथदीपिनी, अलम्बुषा, मिथकेशी, मुञ्जिकस्थला वराङ्गी, ऋतुस्थला, पूर्वचित्ति, परावती, महारूपा, शुभानना शशिलेखा, आदि हरी के समान बीड़ा करने वाली, मत्त पत्र के समान गमन करने वाली विम्ब के समान लाल ओठों वाली विख्यात सुर-सुन्दरियाँ एवं अन्य अपने रूप और यौवन पर गर्व करने वाली वाली अप्सराय, तथा सब आभूषणों से आभूषित, सुन्दर मुख वाली तथा शीघ्र वटि वाली सर्वलक्षणसम्पन्न सुर-गन्धर्वों की गीत और वाद्य में कुशल स्त्रियाँ प्रतिदिन, अपने मधुर गान और नृत्य से भगवान् पुरोत्तम को प्रसन्न किया करती

१स. सतति । २व. स. ०दिर्मूर्ति० । ३क. मुवने । ४क. स. ०यी सुरसेना च त० । ५क. ॥ वामना ।

६क. महोद० । ७क. जम्बुकस्तना । ८क. जन्तुस्थला । ९क. पञ्चत्रन्या । १०. क. शलिलेखा ।

न तत्र रोगो नो म्लानिन् मृत्युर्न हिमातपौ । न क्षुत्पिपासा न जरान्वेहप्य न चासुखम् ॥६८॥
 परमानन्दजनन सर्वकामफलप्रदम् । विष्णुलोकात्परलोक नात्र पश्यामि भो द्विजा ॥६९॥
 ये लोका स्वर्गलोक तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम् । विष्णुलोकस्य ते विप्रा कला नाहन्ति षोडशोम् ॥७०॥
 एव हर पुरस्थान सर्वभोगगुणान्वितम् । सर्वसौख्यकर पुण्य सर्वाश्चर्यमय द्विजा ॥७१॥
 न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मका । न कृतधनान पिशुनानो स्तेना नाजितेन्द्रिया ॥७२॥
 येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेव जगदगुरुम् । तत्तत्र धैर्येण वा यान्ति विष्णुलोक न सशय ॥७३॥
 वक्षिणस्योदधस्तोर क्षत्र परमदुलभ । दृष्ट्वा कृष्ण च राम च सुभद्रा च द्विजोत्तमा ॥७४॥
 कल्पवृक्षसमीप तु ये त्यजन्ति कलेवरम् । तेऽत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे ॥७५॥
 वटसागरयोर्मध्य य स्मरेत्पुरुषोत्तमम् । तेऽपि तत्र नरा यान्ति ये मृता पुरुषोत्तमे ॥७६॥
 तेऽपि तत्र पर स्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय । एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोक सनातन ॥
 सर्वान्वरकर प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूतिसत्वादे विष्णुलोकानुकीर्तननामाष्ट-
 पष्टितमोऽध्याय ॥६८॥

है ॥६० ६७॥) मुनिगण । उस लोक में रोग म्लानि (मानसिक चिन्ता) मृत्यु हिम और आतप का भय नहीं न तो मूल
 प्यास की ही चिन्ता और न तो बुढ़ापा अह्नयोदय और निशी दुःख की ही सम्भावना रहती है ॥६८॥ हे विप्रगण ! इस
 सृष्टि में विष्णुलोक से अधिक आनन्ददायक और मनोरम पूण करने वाला कोई लोक नहीं है । स्वर्गलोक में जो कोई
 अन्य पुण्य देवलोक मुने जाते हैं वे विष्णुलोक की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं कर सकते ॥६९ ७०॥
 द्विजगण ! भगवान का इस प्रकार का वह पावन लोक है जहाँ प्रत्येक प्रकार की भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं ।
 उस आश्चर्यमय पवित्र स्थान पर जाकर प्रकट अन सुख का अनुभव करते हैं ॥७१॥ उस पुण्य लोक में नास्तिक विपरी
 या इन्द्रियलालुष मनुष्य नहीं जा सकते न ता विद्वान्महात्मा न चुगुन्धोर और न चोर ही वहाँ जा सकते हैं ॥७२॥
 इससे विपरीत जो वण्य मन्त्र सबदा भक्तिपूर्वक जगन्गुरु वासुदेव की उपासना में रत रहते हैं वे ही उस लोक
 में जाते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥७३॥ द्विजात्तम ! दक्षिण समुद्र के तट पर उस परम दुलभ पवित्र क्षत्र में
 राम कृष्ण और सुभद्रा का दान कर जो मनुष्य कल्पवृक्ष व समीप शरीर त्याग करते हैं पुरोधात्तम क्षत्र में भरने वाले
 वे मनुष्य उसी लोक में जाते हैं ॥७४ ७५॥ जो मनुष्य वट और सागर के मध्यवर्ती पुनीत प्रदेश में भगवान् का स्मरण
 करते हुए प्राण त्याग करते हैं वे भी विष्णुलोक की प्राप्ति करते हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥७६॥ मुनिगण !
 आप लोग व इच्छानुसार सब आनन्द का दान पाते और मुक्ति भुक्ति उभय प्रदान करने वाले विष्णुलोक का भगव
 न्ने सुधा दिया ॥७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णुलोकानुकीर्तन नामक अष्टषोडशी अध्याय समाप्त ॥६८॥

अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

ब्रह्माश्चर्यस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते । नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१॥
 क्षेत्रं च दुर्लभं लोके कीर्तितं पुरुषोत्तमम् । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरे ॥२॥
 सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्वयां सम्यक्प्रकीर्तितम् । यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥३॥
 'अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोक्तिः । नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः ॥४॥
 अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः । तस्मिन्क्षेत्रे परं विष्णोः पदं यान्ति निरामयम् ॥५॥
 धृत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महान्भूत् । प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यायत्नानि ॥६॥
 पुण्यिण्यां सर्वतोर्थाणि सरितश्च सरासि च । न तथा तानि सर्वाणि प्रशंसति सुरोत्तम ॥७॥
 यथा प्रशंसति क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुनः पुनः । शालोष्माभिरभिप्रायस्तवेदानीं पितामह ॥८॥
 येन प्रशंसति क्षेत्रं भुक्तिदं पुरुषोत्तमम् । पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्रं नास्ति महीतले ॥
 तेन त्वं विबुधभेले प्रशंसति पुनः पुनः ॥९॥

अध्याय ६६

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—जगत्पते । आपने नित्य आनन्दप्रद भुक्ति और मुक्ति के दाता, शोभावाली विष्णुलोक के विषय में बहुत सी आश्चर्यजनक बात सुनाई ॥१॥ आपसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र इस ससार में दुर्लभ है और वहाँ पर देहत्याग कर भगव्य हरि की सालोक्य भुक्ति प्राप्त करता है ॥२॥ आपने इस पवित्र क्षेत्र की महिमा भी मलीमाँति बतलाई जहाँ देहत्याग करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥३॥ अहा ! आपने लोक के उपकार के लिये यह मोक्ष का सरल मार्ग बतलाया (कि इस पुरुषोत्तम तीर्थ में देह त्याग करने से निश्चय ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है) ॥४॥ देवेश ! आपने यह भी बतलाया कि इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में देह त्याग कर मनुष्य अनायास विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ इस क्षेत्र की महिमा सुनकर हृष लोको को महान् आश्चर्य हुआ । सुरोत्तम ! आप जिस प्रकार इस तीर्थ की प्रशंसा करते हैं, वैसे प्रशंसा प्रयाग, पुष्कर आदि क्षेत्र, अन्य देव-मन्दिर या पृथ्वीपर के किसी तीर्थ, नदी या सरोवर की नहीं करते ॥६-७॥ आप जिस अनिप्राय से बार-बार इस क्षेत्र की प्रशंसा करते हैं, हे पितामह ! आपके उस अनिप्राय को हम लोको ने जान लिया ॥८॥ इस भुक्ति-दायक पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रशंसा से ज्ञात होता है कि निश्चय ही इस धरातल पर पुरुषोत्तम के समान अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है । इसीलिये हे देवेन्द्र ! आप इसकी बार बार प्रशंसा करते हैं ॥९॥

१क जगत्पते । २स •वा ब्रह्मप्रकी० । ३ग अथ । ४क वर ।

ब्रह्मोवाच

सत्य सत्य मुनिधेष्ठा भवद्भिः समुदाहृतम् । 'पुरुषाख्यसम क्षेत्र 'नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥१०॥
 सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । तानि श्रीपुरुषाख्यस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११॥
 यथा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वलोकोत्तमोत्तम । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
 आदित्यानां यथा विष्णुः श्रेष्ठत्वे समुदाहृत । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१३॥
 नक्षत्राणां यथा सोमः सरसा सागरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 वसूनां पावको यद्वद्ब्रह्माणां शकरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
 वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वनतेयश्च पक्षिणाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 शिखरिणां यथा मेरुः पर्वतानां हिमालयः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
 प्रमदानां यथा लक्ष्मीः सरिता जाह्नवी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
 ऐरावतो गजेन्द्राणां महर्षीणां भृगुर्यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
 सेनानीनां यथा स्कन्दः सिद्धानां कपिलो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 उज्ज्वैश्च यथाऽश्वानां कवीनामुज्जनां कविः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
 मुनीनां च यथा व्यासः कुबेरो यक्षरक्षसाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२२॥
 इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामयनी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
 अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवनः प्लवतो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—मुनिधेष्ठ । आप लोगो का कथन सत्य है । वास्तव में इस पृथ्वी-तल पर पुरुषोत्तम तीर्थ के समान तीर्थ नहीं हैं ॥१०॥ जितने तीर्थ और पुनीत क्षत्र हैं वे सभी श्रीपुरुषोत्तम तीर्थ के सोलहवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते ॥११॥ जिस प्रकार सब के ईश्वर विष्णु सम्पूर्ण लोको में सबधेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ धेष्ठ है ॥१२॥ जिस प्रकार आदित्या में विष्णु की धेष्ठता स्वीकार की गई है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ धेष्ठ है ॥१३॥ जिस प्रकार नक्षत्रों में सोम और जलाण्या में सागर की बतुओं में पावन की तथा द्रो में शकरी की धेष्ठता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ धेष्ठ है ॥१४॥ १५॥ जिस प्रकार वर्णों में ब्राह्मण वर्णों में वरिष्ठ पक्षिणों में मेरु तथा पर्वतों में हिमालय और शिखरों में रुद्रों में शिवों में गङ्गा धेष्ठ मानी जाती है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ धेष्ठतम है ॥१६॥ १७॥ मुनिगण ! जिस प्रकार गजेन्द्रों में ऐरावत महर्षियों में भृगु सेनापतियों में स्कन्द सिद्धों में कपिल अर्थात् उज्ज्वैश्च कवियों में शूद्र मुनियों में व्यास यज्ञ और रसोगणों में कुबेर इन्द्रियों में मन और सम्पूर्ण तत्त्वों में पृथ्वी धेष्ठतम है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ धेष्ठ है ॥१९॥ २३॥ और जिस प्रकार सब वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) सबरक्षणशील पदार्थों में

भूपणानां तु सर्वेषां यथा ब्रह्ममणिद्विजाः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२५॥
 गन्धर्वाणां चित्ररथ इन्द्राणां कुलिशो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
 अकारं सर्वेश्वरानां गायत्री छन्दसां यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२७॥
 सर्वाङ्गेभ्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमाः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२८॥
 अश्वपतो यथा ह्योषां सतीनां श्रेष्ठता गता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥२९॥
 यथा समस्तविद्यानां भोक्षविद्या परा स्मृता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥३०॥
 मनुष्याणां यथा राजा धेनूनामपि कामधुकः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
 सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पाणां वासुकिर्वरः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३२॥
 ब्रह्माव सर्वदेवतायां राम इन्द्रभृता यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३३॥
 श्यावाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराजश्च यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
 समुद्राणां यथा श्रेष्ठं क्षीरोदः सरिता पतिः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३५॥
 वरुणो यादसां यद्वन्मृगं सयमिना यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३६॥
 वैवर्ष्याणां यथा श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमाः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३७॥
 धातूनां काञ्चन यद्वत्पवित्राणां च दक्षिणा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३८॥

पवन श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२५॥ द्विवृत् । जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्मपुत्रों में ब्रह्ममणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२५॥ जिस प्रकार गंधर्वों में चित्ररथ राक्षसों में अकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ छन्द है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२७॥ द्विज श्रेष्ठ । जिस प्रकार सब अंगों में उत्तम अङ्ग है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरोत्तम उत्तम तीर्थ है ॥२८॥ जिस प्रकार सती स्त्रियों में अश्वपती परमश्रेष्ठ सती मानी गई है उसी प्रकार तीर्थों में पुरोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है ॥२९॥ जिस प्रकार समस्त विद्याओं में भोक्ष विद्या परा (सर्वोत्तम) विद्या मानी गयी है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में भोक्षविद्या सर्वोत्तम माना गया है ॥३०॥ जिस प्रकार मनुष्यों में राजा धूप देने वाली गायों में कामधनु उत्तम धनु है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ उत्तम है ॥३१॥ जिस प्रकार सब रत्नों में सुवर्ण और सर्पों में वासुकि श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३२॥ जिस प्रकार सब देवों में ब्रह्मा और मृगों में मृगराज हैं उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३३॥ जिस प्रकार समुद्रों में क्षीरोद और समुद्रों में नारद श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३४॥ तथा जिस प्रकार धातुओं में काञ्चन (सोना) पवित्र द्रव्यों में दक्षिणा पवित्र है उसी प्रकार

प्रजापतिर्यया दक्ष ऋषीणा कश्यपो यया। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३९॥
 प्रहाणा भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यया। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥४०॥
 अश्वमेधस्तु यज्ञानां यया श्रेष्ठः प्रकीर्तितः। तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्विजोत्तमा ॥४१॥
 शोषधीनां यया धान्यं तृणेषु तृणराइयया। तथा समस्ततीर्थानामुत्तमं पुरुषोत्तमम् ॥४२॥
 यया सप्तस्ततीर्थानां धर्मः ससारतारकः। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यनिर्घण
 नामकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति तीर्थसंख्याविषयको नारदप्रश्नः

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च ॥१॥
 न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सर्वज्ञं भुवि। किञ्चात्र बहूनावतेन भाषितेन पुन पुन ॥२॥

सप्तस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम क्षेत्र पवित्र है ॥३८॥ जिस प्रकार प्रजापतियों में दक्ष, ऋषियों में कश्यप श्रेष्ठतम माने गये हैं उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ माना गया है ॥३९॥ जिस प्रकार प्रहा में भास्कर (सूर्य) और मन्त्रों में प्रणव (ओंकार) श्रेष्ठतम माने गए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥४०॥ जिस प्रकार यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ को श्रेष्ठ कहा गया है ॥४१॥ मुनिवृन्द! जिस प्रकार शोषधियों (जीवन-दायि-मदायी) में धान्य (अन्न) और तृणों में तृणराइ (कुष्ठ) की श्रेष्ठता नहीं गई है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम की श्रेष्ठता है ॥४२॥ जिस प्रकार सप्तस्त तीर्थों में धर्म ससार से उद्धार करने वाला है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ (ससारोद्धारक) है।

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुरुषोत्तम-माहात्म्य-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

अध्याय ७०

ब्रह्मा से नारद का तीर्थसंख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! इस संसार में जिनने तीर्थ क्षेत्र, जप होम, व्रत तप और दान आदि हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो पुरुषोत्तम तीर्थ से समान पवित्र तथा बल देने वाला हो। इसकी महिमा के विषय में बार-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत्। पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भ.समाप्लुतम्॥३॥
 ब्रह्मविद्या सकृज्ज्ञात्वा गर्भवातो न विद्यते। हरेः सनिहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे॥४॥
 सवत्सरमुपासीत मासमाश्रमयापि वा। तेन जप्तं हृतं तेन तेन तप्तं तपो महत्॥५॥
 स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः। भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोपित्समन्वितः॥६॥
 कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः। जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्योद्यतो गृहे॥७॥
 सप्राप्य वैष्णव योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत्। कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह॥८॥
 मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं भागवस्य च। स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात्॥९॥
 मार्जनस्य ययाकाले भागीरथ्याः समागमम्। सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छस्य॥१०॥
 इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया। सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम्॥
 पुराण परमं गुह्यं धन्यं संसारभोचनम्॥११॥

मुनय ऊचुः

नहि नस्तुप्तिरस्तीह धृष्वतां तीर्थविस्तरम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥
 परं तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमम्॥१२॥

बार कहने से क्या लाभ ? ॥१-२॥ समुद्र-जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दशन करने से तथा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य कभी भी जन्म-मरण के चक्के में नहीं पड़ता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है। भगवान् के शाश्वत निवास इस पुरषोत्तम क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रह कर उपासना करता है उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होनेवाले सभी फल प्राप्त होते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वयं योगेश्वर हरि निवास करते हैं ॥३-५॥ विप्रपण ! देवकन्याओं के साथ वह विचित्र भोगों को भोग कर कल्पान्त में पुन इस मृत्यु लोक में ज्ञान और ज्ञेय की जिज्ञासा रखने वाला वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति योगियों के कुल में जन्म लेता है ॥६-७॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक में सामीप्य भक्ति जन्म लेता है ॥८-९॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक में सामीप्य भक्ति प्राप्त करता है। मैंने इस प्रकार कल्पवृक्ष एवं सुमद्रा सहित राम कृष्ण, मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, नाथव स्वर्गद्वार, और सागर व माहात्म्य क्रमशः सुना दिया ॥८-९॥ भागीरथी के तट पर आने का समय और स्नान विधि आदि बातें भी मैंने सुना दीं, जिनसे सुनने के लिये तुम लोगों को अत्यन्त उत्कण्ठ थी ॥१०॥ इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य पुरुषोत्तम की रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातें तथा ससार के नलेशों को मिटाने वाले इस परम गुह्य शुभ पुराण को भी सुना दिया ॥११॥

मुनिगण बोले—भगवन् ! तीर्थों की इस विस्तृत विवेचना को सुनकर भी हम लोग अभी तृप्त नहीं हुए हैं। इसलिये पुन तीर्थों का माहात्म्य और सर्वोत्तम तीर्थ की परम रहस्यमय बातें पूरा रूप से सुनाइये ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमा॥ नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम्॥ ॥१३॥

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावनं स्मृतम्। सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते॥ १४॥
'किपन्ति सन्ति तीर्थानि' स्वर्गमर्त्यरसातले। सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते॥ १५॥

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। देवानि भुवि चार्दूल आसुराण्यारपाणि ॥ १६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। मानुष्येभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्यं तीर्थमनुत्तमम्॥ १७॥
आर्येभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्। आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं देवं तत्सर्ववामिकम्॥ १८॥
ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव निर्मितं देवमुच्यते। त्रिम्यो यदेकं जायेत तस्मात्प्रातः परं विदुः॥ १९॥
प्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम्। तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम्॥ २०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रिलोक्यविद्युतम्। कर्मभूमिपतः पुत्र सस्मात्तीर्थं सदुच्यते॥ २१॥
तत्रैव घानि तीर्थानि घान्युक्तानि मया तव। हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पण्डितो देवसम्भवा॥ २२॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य! पूर्वकाल में नारदमुनि ने इसी प्रश्न को मुझसे पूछा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा, उसी को पुनः कह रहा हूँ ॥१३॥

नारद ने कहा—अर्गन् के आदि कारण! जगत्पते! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना। अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातलो में कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों में किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है ॥१४-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—भुवि चार्दूल! देवताओं एवं तत्त्वज्ञानियों के स्वर्ग, मर्त्य और रसानन्द में स्थित देव आसुर, आर्य और मानुष—ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं। इनमें मानुष तीर्थों से आर्यतीर्थ उत्तम माने गये हैं आर्य से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से देवतीर्थ सब मनोरथों के दाता कहे गये हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ देवतीर्थ नहीं जाते हैं। इन तीनों देवा द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ उस देव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं है ॥१६-१९॥ याता सीता लोका के तीर्थ पवित्र माने गये हैं। पशुपु उत्तम भी जम्बू द्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम पत्र देने वाले हैं ॥२०॥ जम्बूद्वीप के तीर्थों से भी भारतवर्ष त्रिभुवन प्रसिद्ध तीर्थ हैं। भूमि यह भारतवर्ष कर्मभूमि है इसलिए यह तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ उस देश में जिनने तीर्थ हैं उनसे विषय में मैंने सुमत्त कहा है कि हिमालय और विन्ध्य गिरि के मध्य की छह नदियाँ देवनदियाँ हैं ॥२२॥ उसी प्रकार हे नारद!

१५ तीर्थमेव नमुत्तमम्। इति शु०। २५ जगत्प्रभो। ३५ ० यन्मेदाति ती०। ४५ ० नि विष्णुर्वाति गुणेश्वर। ग।

तथैव देवजा ब्रह्मन्दिशिणाणैर्विन्ध्ययोः। एता द्वादश नद्यस्तु प्रामान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥
अभिसंपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वै तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥
आर्याणि चैव तोर्यानि देवजानि बवचित्स्वचित्। आसुरैरावृताभ्यास्तदेवाऽऽसुरमुच्यते॥२५॥
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। दैवप्रभावात्तपस आर्याण्यपि च तान्यपि॥२६॥
आत्मनः श्रेयसे मुक्तये पूजायै भूतयेऽथवा। आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽप्याप्तये पुनः॥२७॥
मानुषः कारिताभ्याद्रूपमनुयाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमा॥२८॥
भेद न ब्रह्मविजानाति श्रोतु युक्तोऽस्ति नारद। बह्व्यं पण्डितमन्या भृष्यन्ति कथयन्ति च॥
सुहृत्तो कोऽपि जानाति यस्तु श्रोतु निर्जगुर्णः॥२९॥

नारद उवाच

तेषां स्वरूप भेद च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः॥३०॥
ब्रह्मकृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते। तीर्थसेवा विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातर्षक्ता ज्ञाताऽथवा ब्रह्मचित्। त्वनाभिकमले विष्णो संजातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरयी तुङ्गभद्रा च वेङ्गिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताभिराः॥३४॥

विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गई हैं॥२३॥ क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अतएव इसको देवों न वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है॥२४॥ आर्य और वही वही दैवतीर्थ भी आसुर प्रदेशों अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिये उनको आसुर कहा गया है॥२५॥ दैव प्रदेशों में ही श्रद्धिप्राप्ति के तपसाकार देव प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आप तीर्थों का निर्माण किया है॥२६॥ लोक-बलापण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-सिद्धि या यश प्राप्ति के लिये मनुष्या न जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं॥२७॥ मुनिवर नारद। इस प्रकार तीर्थों के चार भेद हैं। नारद। इस भेद को कोई नहीं जानता। तुम्हीं इस भेद को सुनने के अधिकारी हो। यद्यपि बहुत से पण्डितमन्य लोग इस भेद को सुनते और सुनाते हैं, किन्तु कोई पुण्यवान् व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण सुनने और कहने (प्रवचन) का अधिकारी होता है, सभी नहीं॥२८-२९॥

नारद बोले—ब्रह्मन्। यथार्थ रूप से मैं उपयुक्त तीर्थों का स्वरूप और भेद सुनना चाहता हूँ जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कृतयुग आदि में भोटे धर्म से मनोरथ सिद्ध करने वाली तीर्थ-सेवा के अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है। धात। तुम्हारे समान ज्ञाता और वक्ता वही नहीं है, क्योंकि तुम विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न हुए हो और सबके पूर्वज हो॥३०-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरयी, तुङ्गभद्रा, वेङ्गिका, तापी, पयोष्णी, ये नदियाँ ही गई हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालय पर्वत से निकली हैं॥३३-३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्यान्मुदाहृताः । गयः 'कोल्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यग्वकस्तथा ॥३५॥
 ह्यमूर्धा च लवणो नमुचिः ॥ शुद्धकस्तथा । यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च ॥३६॥
 एतैराब्रूततीर्थानि आसुराणि शुभानि च । प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा ॥३७॥
 वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः । इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥३८॥
 अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधवाता मनुरेव च । कुरुः कनकलक्ष्मणश्च भद्राश्वः' सगरस्तथा ॥३९॥
 अश्वत्थो नाचिकेता व्याकपिररिदमः । इत्यादिमानुष्यविप्र निर्मितानि शुभानि च ॥४०॥
 यज्ञासः फलभूत्यर्थं निर्मितानोह नारद । स्वतोद्भूतानि देवानि यत्र षडपि जगत्त्रये ॥
 पुण्यतीर्थानि ताग्याहुस्तोयंभेदो मयोदितः ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणै' स्वयंभुवपितंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥
 गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

1

ये नदिर्या अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ बड़ी गयी हैं । गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अग्वक, ह्यमूर्धा, लवण नमुचि, शुद्धक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरों से अधिष्ठित अथवा चिरे हुये तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं ॥३५-३६॥ प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वसिष्ठ, नारद्वान, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्यतीर्थ है ॥३७-३८॥ अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, माधवाता, मनु, कुरु, कनकल, भद्राश्व, सगर, अश्वत्थ, नाचिकेता, व्याकपि, अरिदम, आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ है । नारद ! इसलोक में यद्य तथा ऐश्वर्य की मिष्टि निमित्त बनये गये या स्वय उत्पन्न देवतीर्थ जहाँ-जहाँ भी इन तीनों लोकों में हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ बड़े जाते हैं । इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये ॥३९-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य के अथ में तीर्थ भेद-वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम

नारद उवाच

त्रिदंष्ट्र तु यतीर्यं सर्वेभ्यो ह्यवतमुत्तमम् । तस्यैव स्वरूपभेदं च विस्तरणं ददंति मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

सावदयानि तीर्यानि तावता पुण्यभूमय । सावद्यज्ञादयो यावद्विदंष्ट्र न दृश्यते ॥२॥
गङ्गाय सरिता श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी । त्रिदंष्ट्रया मुनिश्रेष्ठ तदुत्पत्तिमतः शृणु ॥३॥
षर्पाणामयुनात्पूर्यं देवकाय उपस्थिते । तारको बलवानासीमहारावतिगवित ॥४॥
देवानां परमेश्वर्यं हृतं तन बलीयसा । ततस्त शरणं जम्बुद्वीपा सप्तपुरोगमा ॥५॥
क्षीरोदगापिन देव जगता प्रपितामहम् । कृताञ्जलिपुटा देवा विष्णुमूषुरनमगा ॥६॥

देवा ऊचुः

त्वं ज्ञाता जगता नाथ देवानां कीर्तिवर्धन । सर्वेश्वर जगद्योने त्रयीमूर्ते नमोऽस्तु त ॥७॥

अध्याय ७१

गंगा की उत्पत्ति की कथा

नारद ने कहा—आपन जो त्रिदंष्ट्र तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ कहा है सो उसके स्वरूप और भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझ सुनाइय ॥१॥

ब्रह्मा बोले—सब तब ही अन्य तीर्थों पुण्यभूमा और अन्य यज्ञा का महत्त्व है जब तक कि त्रिदंष्ट्र का वर्णन नहा होना है । मुनिश्रेष्ठ ! यह क्या नयी ही—जो सब यन्त्रियां मथ्यते हैं सम्पूर्ण वरु को देने वाली है—विदंष्ट्र है, अन उसकी उत्पत्ति की कथा सुनो । आज स दस हजार वर्ष पूर्व एक देवकाय उपस्थित हुआ । उस समय तारक नामक एक अमुर था जो मुझने वर पाकर अत्यन्त मगोद्वत हो गया था । उस महाबली ने वल्लूवक देवताओं का सारा वैभव छीन लिया । इसलिये वे देवगण हतसस्त्र द्रुत को अगुवा बना कर देवताओं के एकमात्र रक्षक शारंग या जगन्कर्ता विष्णु की शरण में गये । उनके पास जानकर देवगण हाथ जोड़कर कहने लगे ॥२॥

देवगण बोले—समस्त लोक के स्वामी ! हे देवों की कीर्ति बढ़ाने वाले सर्वेश्वर ! तुम हमारे एकमात्र रक्षक हो सत्कार के उत्पत्तिस्थान ! हे विभूति ! आपकी नमस्कार है ॥३॥ तुम्हीं अतुल्य को मारने वाले लोक के

लोकप्रवृत्त्याऽसुरान्हुन्ता त्वमेव जगता पति । स्थित्युत्पत्तिविनाशाना कारण त्व जगमय ॥८॥

प्राता न कोऽप्यस्ति जगत्त्रयेऽपि, शरीरेणा सर्वविपदगतानाम् ।

त्वया विना धारिजपत्रनेत्र, तापत्रयाणा शरण न चान्यत

॥९॥

पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सवासुलभोऽसि विष्णो ।

प्रसोद पाहोश महाभयम्योऽस्मदातिहन्ता वद कस्त्यदय

॥१०॥

आदिकर्ता बराहस्त्व मत्स्य कूर्मस्तथैव च । इत्यादिहपभेदेनो रक्षते भय आगते ॥११॥

हृतस्त्वाम्यान्सुराणां हृतवारान्गतापद । कस्मान्न रक्षते देव अनयशरणान्हरे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्छेयशायी जगत्पति । कस्माच्च भयमापन्न तद्ब्रुवतु गतज्वरा ॥

तत भियर्पति ब्राह्मस्त तारकवध प्रति

॥१३॥

देवा ऊचुः

तारकाद्रूपमापन्न भीयण रोमहर्षणम् । न युद्धंस्तपसा शार्पहंतु नैव क्षमा वयम् ॥१४॥

अर्वाग्बशाह्राद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति, तस्माद्देव न चान्येभ्यस्तन ॥ नीतिविधीयताम् ॥१५॥

निर्माता और ससार के स्वामी हो । हे ससारमय ! ससार की सृष्टि पालन और विनाश के कारण तुम्ही हो ॥८॥

इन तीनो लोकों में सब प्रकार की विपत्तियों में जैसे जीवा में रक्षक तुम्हा हो दूसरा कोई नहीं । कमलनेत्र !

त्रिताप से सतप्त प्राणियों को तुम्हारे अतिरिक्त कोई आश्रय देनेवाला नहीं है । विष्णो ! इस अखिल लोक के तुम्ही

पिता और माता हो और तुम्ही केवल सेवा द्वारा सुलभ हो । ईश ! प्रसन्न हो जाओ । इस महाविनाश से हम लोग

की रक्षा करो । तुम्हारे सिवा और कौन हम लोग के बच्चा को दूर कर सकता है ? ॥९१०॥ विपत्ति आ जाने

पर तुम्ही आदिकर्ता बराह मत्स्य तथा कूर्म आदि रूप में अवतार लेकर हमारी रक्षा करते हो । देव ! हरे ! इन

अनन्यगण तथा विपत्तियों में जैसे देवों की—जिनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं और जिनकी स्त्रियाँ लूट ली

गई हैं—क्या नहीं रक्षा करते ? ॥९१११॥

ब्रह्मा बोले—इन बातों को सुनकर जगत्पति रोषयायी भगवान् न प्रवृत्त—देववन्द ! तुम लोगों को किससे

मप है ? निश्चय होकर बहो । भगवान् की बातें सुनकर देवा न तारक के वध के सबध में उनसे बड़ा ॥९१३॥

देवों ने कहा—भगवन् ! तारकानुर के भीषण रोमाञ्जवारी अत्याचारों से हम लोग भयभीत हो गये

हैं । हम लोग युद्ध तप साध आदि किसी उपाय से उमड़ो मारन में समर्थ नहीं हैं । देव ! दस दिन के बाद

का ही गिरु उत्तरी मृत्यु का कारण होगा दूसरे से उत्तरी मृत्यु नहीं होगी । इसलिये कोई उपाय दूँ

निकालिये ॥९१४१५॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बल्लोक्तः सुराः। न मत्तो मदपत्यान्व न देवेभ्यो यद्यो भवेत्॥१६॥
 ईश्वराद्यदि जायेत अपत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वचमवाप्नोति तारको 'लोकवाक्यः'॥१७॥
 तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुमृषिभिः सह। भार्यायं प्रयमो यत्नः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः॥१८॥
 सत्ययुक्त्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्। हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम्॥१९॥
 द्वदमूषुः सर्व एव सभापं सुहिनं गिरिम् ॥२०॥

देवा ऊचुः

दाक्षायणी लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरौ'। बुद्धिः प्रज्ञा धृतिर्मेधा रुद्रा पुष्टिः सरस्वती॥२१॥
 एवं स्वनेकया लोके या स्थिता लोकपावनी। देवानां कार्यसिद्धयं 'ध्रुवयोगर्ममाविशत्'॥२२॥
 समुत्पन्ना 'जगन्माता शंभोः पत्नी भविष्यति। अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्वाक्यं सुराणामभिनन्द्य च। मेना चापि महोत्साहा अस्तिस्वत्येवं यचोऽन्नवीत्॥२४॥
 तदोत्पन्ना जगद्वात्री गौरी हिमवतो गृहे। शिवध्यानरता नित्यं तस्मिन्ना 'तन्मनोगता'॥२५॥
 तां वै प्रोचुः सुरगणा ईशायं तप आविश। तथा हिमवतः पृष्ठे गौरी तपे तपो महत्॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् नारायण ने कहा—'देवगण ! मैं उल्टा बलवाली नहीं हूँ और उसका यद्यपि न मुझसे न मेरे पुत्र से न देवताओं से ही हो सकता है। यदि शत्रु से कोई अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हो तो वह लोक-पीडक तारक उससे मारा जा सकता है। इसलिये प्रभावशाली ऋषियों ने सहित हम सब प्रयत्न करने के लिये चले। सर्वप्रथम उनके विवाह के लिये प्रयत्न करना चाहिये। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देवगण रत्नपूर्ण नपापिराज हिमालय और उसकी स्त्री मेना के पास गये। सभी उसकी भार्या मेना और हिमालय से बोले ॥१६-२०॥

देवों ने कहा—लोक-माता शक्तिस्वरूपिणी दाक्षायणी तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं। लोक को पवित्र करने वाली उस जननी के, बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेधा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती आदि अनेक नाम लोक में प्रसिद्ध हैं। वही देवा की कार्य-सिद्धि के लिये आपके गर्भ में प्रविष्ट हुई हैं। उत्पन्न होकर वह जगन्माता भविष्य में संसृ की पत्नी होगी और हम लोगों की तथा आप लोगों की भी वह रक्षिका बनेगी ॥२१-२३॥

ब्रह्मा बोले—पर्वतराज हिमालय ने भी देवों के इस प्रस्ताव की सराहना की और मेना ने भी बड़े उत्साह से कहा कि 'ऐसा ही हो' उस समय हिमालय ने घर में उत्पन्न जगन्माता गौरी भी सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी निष्ठ और मन उनमें ही लगा रहता था। देवों ने उस हिमवत्या से कहा कि तुम भगवान् को पति रूप में पाने के लिये तप करो। तब गौरी भी हिमालय के ऊपर बैठकर बटोर तपस्या करने लगी। पुनः

पुनः संमन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम् । आत्मानं वा तयाज्यद्वा न जानीमः कथं भयः ॥२७॥
मेनरूपाः सुतायां तु चित् दध्यात्सुरेखरः । तत्र नीतिर्विचातव्या ततः धेष्टघमवाप्स्यय ॥
ततः प्राह महाबुद्धिर्वाचस्पतिरदारधोः ॥२८॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुण्यबाणधृक् । स विध्यतु शिवं ज्ञान्तं बाणैः पुण्यमयैः शुभैः ॥२९॥
तैर्द्विद्विस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत् । परिणेष्यस्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः ॥३०॥
जयित्वा मृच्चबाणस्य न बाणाः कदापि कुप्लताः । तयोडाया जगद्वाग्यां शंभोः पुत्रो भविष्यति ॥३१॥
जातः पुत्रद्विस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति । वसन्तं च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम् ॥३२॥
आह्लादनं च मनसा कामार्थं प्रयच्छत ॥३३॥

महोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम् । प्रेषयामासुरव्यप्राः शिवान्तिकमरिबमाः ॥३४॥
संजगाम ह्यरा कामो घृतचापो समाधवः । रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम् ॥३५॥
मूर्खैश्च सशरं चापमिदं तस्य मनोजभवत् । मया वेध्यस्यवेध्यो वै शंभुर्लोकगुरुः प्रभुः ॥३६॥
मैलोक्यजयितो बाणाः शंभो मे किं वृद्धा न वा । तेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशेषस्तदा वृत्तः ॥३७॥

देवताओं ने मन्त्रणा की कि मगवान् शर स्वयं गीरी या अपने आपका या अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं। हम घात को हम नहीं जानते। अतः सुरेखर शर किस प्रकार मेना-पुत्री म अपना मन लगावेंगे, इस बात के लिए कोई उपाय करना चाहिये, तभी सफलता प्राप्त होगी। इसी बातें सुनकर महाबुद्धिमान्, उदारचेता बृहस्पति ने कहा ॥३४-२८॥

बृहस्पति बोले—जो यह कुसुम-यनुष धारण करने वाला बुद्धिमान् कामदेव है, वह जान्ता मित्र को अपने पुण्य-पुण्यमाणा में मारे। पुण्यगणा से विषे त्रिनेत्र गीरी की ओर आदृष्ट होकर, तब निद्राय ही शर गिरिजा का पाणिग्रहण करे। त्रिजयी कामदेव के बाण वही भी असफल नहीं हूँ। इस प्रकार पावेंतो से विवाह हो जाने पर हम से पुन उत्पन्न होगा। शर से उत्पन्न वह पुत्र तारक का वध करेगा। इसके पूर्व मनोहर वसन्त को जो कि मूल में आह्लाद उत्पन्न कर देता है—सहायता के लिए मदन को दे दिया जाय ॥२९-३३॥

यह भी कहा—यही ठीक है—ऐसा बहुर धनुषगुद देवताओं ने प्रव्रजतापूर्वक बगल में साथ मदन को मित्र के गंधी-भेदा। कामदेव भी वसन्त और रति के साथ हाथ में अपना अयोध धनुष लेकर उग दुर्गर कार्य को करने के लिए प्रीति-प्रिया से गया। हाथ में बाण रहित धनुष लेकर कामदेव मन में सोचने लगा कि शीघ्र-पुण्य (अनन्य) न वेपने योग्य प्रभु शर अवश्य मेरे बाणों से लज्ज बनेंगे। त्रिभुवन को वध में करने वाले मेरे बाण अन्ध-धर भवता प्रनाश शिखरों के नहीं, कामदेव यह सोच ही रहा था कि इन्ने ही मे वह मयशान् के नेत्र में निद्रा

तदेव कर्म सुदृढमोक्षितुं सुरसत्तमाः । दाजम्मुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम् ॥३८॥
 शंभुं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति भन्मयम् । तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः ॥
 , नुष्टुबुस्त्रिदशेशानं कृतान्जलिपुटाः ॥ सुराः ॥३९॥

देवा ऊचुः

तारकाङ्गयमापन्नं कुपुपत्नीं गिरेः सुताम्

॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विद्वच्चित्तो हरोऽप्याशु मेने वाक्यं सुरोदितम् । अरुण्यतो वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा ॥४१॥
 प्रेयवामासुरमरा विवाहाय परस्परम् । संबन्धोऽपि तयाऽप्यासीद्विमवल्लोकनाययो ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुपिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शंभुविवाहसंभवो

॥

॥ भामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

शौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्वाला से जलकर मम्म हो गया । इस कठोर कर्म को देखने के लिये वहाँ के देवता आये । इसके आगे जो आश्चर्य-जनक घटना हुई उसको हे पुत्र ! सुनो । धनु को देखने के बाद देवगण ज्योंही मदन की ओर ताकने लगे त्योंही उसको मस्मीभूत देखकर भय से अधीर हो गये । तब हाथ जोड़कर देवताओं ने देवेश शक्र की स्तुति की ॥३४-३९॥

देवो ने कहा—तारकासुर से हम लोग त्रस्त हैं, हमारे उद्धार के लिये (प्रभो) पावन्ती को अपनी पत्नी बनाइये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—दधर मदन-पीडित शक्र ने भी सीध ही देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली । अपना मनोरथ सिद्ध जानकर देवताओं ने अरुण्यती, वसिष्ठ, मूला (ब्रह्मा) को और विष्णु को विवाह का सघटन (घटवैती) करने के लिये भेजा । यथार्थ में वह विवाह भी हिमालय और लोकस्वामी शक्र के पद और प्रणिष्टा के अनुरूप ही था ॥४१-४२॥

श्री ब्रह्मपहापुराण में गणोत्पत्ति-प्रकरण में शंभुविवाह की समावना नामक

इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

हिमवद्वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वत श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रितः । नानावृक्षलताकीर्णं नानाद्विजनिपेविते ॥१॥
 नदीनदसरःकूपतडागादिभिरावृते । द्रवगन्धवयक्षादिसिद्धचारणसेविते ॥२॥
 शुभमावृतसपन्ने हर्षोत्कर्षेकराणः । मेरुमन्दरकलासर्पनाकादिनगैवृते ॥३॥
 वसिष्ठागस्त्यपौलस्त्यलोमशादिभिरावृते । महोत्सव वतमान विवाहः समजायत ॥४॥
 तत्र बंदी रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूयिता । चञ्चमाणिक्यवैव्यूतन्मयस्तम्भशोभिता ॥५॥
 जयालक्ष्मीशुभाक्षान्तिकीर्तिपुष्पादिसंवृता । मेरुमन्दरकलासरवर्तः^१ परिशोभितैः ॥६॥
 पूजितो लोकनायक विष्णुना प्रभविष्णुना । मैनाकः पवतश्छो रेजेऽजीव हिरण्मयः ॥७॥
 ऋषयो लोकपालाश्च आदित्या मरुद्वगणा । विवाह वेदिकां चक्रुर्वेदेवस्य शूलिनः ॥८॥
 विश्वकर्मा स्वयं दृष्ट्वा बंदीं चक्र सतोरणाम् । सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामदोहिनी ॥९॥
 अभिस्तु शोभितशान्या विवाहः समजायत । समुद्रा सरितो नगा ओषध्यो लोकमातरः ॥१०॥

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नाना रत्ना के विचित्र गोमांगली भट्ट हिमालय-पर्वत पर जो अनेक वृक्ष और लताओं से प्रभूण था जहाँ मित्र मित्र रंग के अनेक पक्षी रहते थे जो नदी नद सरोवर कूप और तडाग आदि से पिया हुआ था जहाँ देव गणव यन् आदि तथा मिट्ट चारण निवास करते थे और वसिष्ठ अगस्त्य पौलस्त्य लोमना आदि विवाहोत्सव देखने के लिये आये थे—यन् समारोह के साथ विवाह-कृत्य शुभ वंश से प्रारम्भ हुआ ॥१॥ वहाँ सोने से सुसज्जन रत्नज्वलित बेनी बनाई गई उस पर मञ्जुभाणिनय और वक्रय जड़ स्तम्भ लटके गये ॥५॥ जया लक्ष्मी शुभाक्षान्ति कीर्ति घण्टि आदि द्रवियों वहाँ विवाह-मण्डप में उपस्थित थी मेरु मन्दर कैलाश रत्न आदि विराजमान थे और लोचस्वामी सबसमय विष्णु से सम्मानित स्वर्णमय पवन गिरामणि भूनाथ वहाँ अथवा मुण्डोमिन हा रहा था ॥६॥ उस गड्ढर के विवाह में ऋषि लोकपाल तथा मरुद्वगणा के साथ आनन्दगणों के मिलकर बेनी बनाया देव गिणी विश्वकर्मा ने तोरण से उसको सज्जाया । तत्पश्चात् सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामधेनु आदि सप्तिया व मय्य मुण्डोमिन पावती का विवाह सम्पन्न हुआ । समुद्र सरिता पवन ओषधियां लाजपाताय

सवनस्पतिबीजादच सर्वे तत्र समाप्युः । भुव कर्म इत्या चके ओषध्यस्त्वन्नकर्म च ॥११॥
 वरुणः । पानकर्माणि दानकर्म धनाधिप । अग्निश्चकार' तत्राग्न यच्चेष्ट लोकनाथयो ॥१२॥
 तत्र तत्र पूयकपूजा चके विष्णु सनातन । 'वेदादच सरहस्या' वै गायन्ति च' हसन्ति च ॥१३॥
 नृत्यत्यप्सरसः सर्वा जगुर्गन्धर्वाकनरा । लाजाघृवचापि मैनाको बभूव मुनिसत्तम ॥१४॥
 पुण्याहवाचनं वृत्तमन्तर्वेशमनि नारद । वेदिकायमुपाविष्टौ दपती सुरसत्तमौ ॥१५॥
 प्रतिष्ठाप्याग्नि विधिबद्धमानं चापि पुनरु । हुत्वा लाजाश्च विधिवत्प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१६॥
 अश्मनः स्पर्शहेतोश्च देव्यद्भ्युष्ट करेऽप्युक्षत् । विष्णुना प्रेरित शम्भुर्दक्षिणस्य पदस्य च ॥१७॥
 तामवशंमह तत्र होमं कुवन्हरान्तिके । दृष्टेऽद्भ्युष्टे दृष्टबुद्ध्या वीर्यं मुक्ताव मे तदा ॥१८॥
 लज्जया कलुषोभूत स्कन्न वीर्यमूर्ध्वगम् । महीर्याञ्चूर्णितात्सूक्ष्माद्वालसिल्यास्तु ॥ जशिरे ॥१९॥
 ततो महानभूतत्र हाहाकार सरोदित । लज्जया परिभूतोऽह निर्गतस्तु तवाऽऽसनात् ॥२०॥
 पश्यस्तु देवसद्येषु तूर्णोभूतेषु नारद । गच्छन्त मा महादेवो दृष्ट्वा नन्दितमब्रवीत् ॥२१॥

वनस्पति बीज समी वहाँ उत्सव म सम्मिलित हुये ॥८१॥ नारद । उस उसव म इग ने पृथ्वी-वम (क्षांना लीपना आदि) किया आपधिया ने अन्न-सामग्री जुटायी वरुण ने अलपान का प्रबन्ध किया धनपति कुबेर ने दान-दक्षिणा देने का कार्य किया अग्नि ने शिव की इच्छा के अनुरूप विविध स्वादु भाजन बनाया ॥१११२॥ सनातन विष्णु ने स्थान स्थान पर विवाहोचित पूयक-पयक पूजा की । वहा सापोषाग वेद स्वयं गान करते थे तथा हँसते भी थे ॥११३॥ सभी अप्सराओं ने अपना नृत्य दिखाया गायन और किन्नरा ने मधुर गान गाया । मुनिधेष्ट । मैनाक ने मार्गलिक धान के लाजा (खावा) विखेरने की विधि पूरा की ॥१४॥ नारद । अन्तर्गह म पुण्याहवाचन हुआ और दोनों देव-दम्पति ने वेदिका पर बैठकर विधिपूर्वक अग्नि और पंचर की प्रतिष्ठा की । तदनन्तर लाजा-होम और अग्नि प्रदक्षिणा विधि समाप्त हुई । विष्णु की प्रेरणा से शम्भु ने पावती के दाहिने पैर के अंगुठा का पत्थर से स्पर्श कराने के लिये हाथ से स्पर्श किया । पुत्र । उस समय मैं शंकर के समीप हवन कर रहा था । मैंने पावती को देख लिया । उनके अंगुठ को देखने से ही मेरे हृदय मे कामभावना जागरित हो गई और वीर्य-पात हो गया ॥११५१८॥ लज्जा से सन्तुष्ट होकर मैंने उस गिरे हुए वीर्य को चूग कर दिया । उस वारीक चूग त्रिपे वीर्य से शालसित्य उत्पन्न हुये ॥११९॥ यह देखकर देवताओं ने बड़ा हाहाकार मचाया । तब लज्जा से आसन छोड़कर मैं बाहर चला आया ॥२०॥ नारद । इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते मुझ देखकर सभी देवता मोहित हो गये । किन्तु मुझको जाते देखकर शंकर ने नन्दी से कहा ॥२१॥

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्वयस्वेह गतपापं करोम्यहम् । कृतापराधेऽपि जने सन्तः सकृपमानसाः ॥
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थिता । ॥२२॥

ब्रह्मोव ।

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः । ममानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया ॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः । पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति ॥२४॥
तपोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम् । एवं निश्चित्य भगवांस्तपो सारं समाहरत् ॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सनिवेश्य च । पावमान्यादिभिः सूक्ष्मैरभिमन्त्र्य च यत्नतः ॥२६॥
त्रिजगत्पावनीं शक्तिं तत्र सस्मार पापहा । मामुवाच स लोकेशो गृहाणेम कमण्डलुम् ॥२७॥
आपो वै मातरो वेद्यो भूमिर्माता तथाऽपरा । स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम् ॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठतो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः । अत्र भुक्तिश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२९॥
स्मरणात्मानसं पाप वचनाद्वाचिकं तथा । स्नानपानाभिषेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम् ॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम् । मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्मणूहाणेन कमण्डलुम् ॥३१॥
अत्रत्य धारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि । स सर्वकामान्प्राप्नोति गृहाणेन कमण्डलुम् ॥३२॥

शंकर बोले—तुम ब्रह्मा को यहाँ बुलाओ, मैं उनको निष्पाप करूँगा । सन्त मनुष्य अपराधी पर भी दया
दिखलते हैं, विषयवासनाओं की यह स्थिति है कि वे ज्ञानी को भी बंधीमूत कर लेती हैं ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा के सहित शंकर ने ऐसा कहकर भेरे ऊपर वृषाकर, लोक-हित की भावना से आगे बढ़ा
किया उसको तुम सावधानी से सुनो । उन्होंने कहा कि पृथ्वी और जल पापियों के पाप को नष्ट करने में सहायक
होते हैं । मैं इनके पवित्र सार भाग को निकालूँगा, ऐसा निश्चय कर भगवान् शंकर ने उनके सार भाग को निकाल
लिया ॥२३-२५॥ पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें जल को रख दिया । पावमान्य आदि वैदिक मन्त्रों से मलीमति
अभिमन्त्रित कर उस पाप-विनाशक ने उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने वाली शक्ति का आवाहन किया ।
पुनः लोकपति शंकर ने मुझसे कहा कि इस कमण्डलु को लो ॥२६-२७॥ सुनो, जल मातृदेवी है, तथा पृथ्वी भी दूसरी
माता है । इन दोनों में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं ॥२८॥ इनमें धर्म प्रतिष्ठित है ।
सनातन यज्ञ इनमें वर्तमान है । इनमें मुक्ति और मुक्ति है । स्थावर, जंगम सभी इनमें ही रहते हैं ॥२९॥ जल के
स्मरण से मन के पाप, इससे विषय में चर्चा करने से वचन के पाप और इसके स्नान, पान और अभिषेक से शरीर के
पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ यही ससार में अमृत है । इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं । मैंने इसको अभि-
मन्त्रित कर दिया है, इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३१॥ इस कमण्डलु के जल का जो कोई स्मरण करेगा अथवा
इसका स्तोत्र पाठ करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, अतः इस कमण्डलु को लो ॥३२॥ पञ्च महामूर्तों से प्रल-

भूतैर्म्यश्चापि पञ्चम्य आपो भूत महोदितम् । तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गृहाणेम कमण्डलुम् ॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्य पुण्य पावनमेव च । स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पाद्विमोक्षये ॥३४॥
एवमुक्त्वा महादेव प्रादान्मय कमण्डलुम् । ततः सुरगणा सर्वे भक्त्या प्रोचुः सुरेश्वरम् ॥
आह्लादश्च महास्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत ॥३५॥

देवोत्सवे मातुरज पदाग्र, समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप ।

प्रादात्कृपालु स्मरणात्पवित्रा गङ्गा पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ ब्रह्म-

कमण्डलुदान नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

गौतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

वलिप्रशसावर्णनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविर्वाधिनी । यया मर्त्यं गता नाय तमे विस्तरतो यव ॥१॥

तत्त्व ध्येष्टं ब्रह्म गमा है । यह तो उसका सार तत्त्व होने के कारण उसका भा अति उत्कृष्ट है इसलिये इस कम
ण्डलु को ग्रहण करो ॥३३॥ ब्रह्मन् । इस कमण्डलु में जो जल है वह पवित्र पापनाशक और गुणसाधक है ।
इसके स्पर्श स्मरण और दान से मनुष्य पापा से छूटा जाता है ॥३४॥ ऐसा कहकर महादेव ने मूत्रका कमण्डलु दे
दिया । इस घटना का देखकर सबका अत्यन्त प्रसन्नता हुई जब घोष की तुमुल ध्वनि ॥ मण्डप गूज उठा । देवनाभा
ने मन्त्रिपूवक सुरेश्वर गजर से कहा ॥३५॥ देवोत्सव के अवसर पर माता के चरण के अगूठ को देखकर ब्रह्मा
अपने पाप से पतित हो गए परन्तु कृपालु पिता गकर ने इसका स्मरण करते ही परम पवित्र गंगा का कमण्डलु
में रखकर ब्रह्मा को दे दिया ॥३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य-अवतारण म यथाशक्ति नामक बह्वतरकी अध्याय समाप्त ॥७२॥

अध्याय ७३

वलि की प्रशंसा का वर्णन

नारद ने कहा—ब्रह्मा ! आपने कमण्डलु में रहने वाली पुण्यदायिनी गंगा त्रिसप्ततार मयलार म
आया देने की विस्मरपूवक सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मोवाच

बालिनाम महादत्तो देवारिरपरजित । धर्मेण यशसा चैव प्रजासंरक्षणेन च ॥२॥
 दुःखभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च । त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमोयते ॥३॥
 तस्यार्द्रमुद्रता दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरायणा । मिथ समूचुरमरा जेष्यामो ये पथ बलिम् ॥४॥
 तस्मिञ्चासति राज्यं तु त्रैलोक्यं हतकष्टकम् । नारयो व्याधयो घातपि नाऽऽधयो वा कथञ्चन ॥५॥
 अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जन । स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत कलौ राज्यं प्रधासति ॥६॥
 तस्योन्नतिशरभंगा कीर्तिसङ्घट्टिधातृता । तस्याऽऽज्ञाशक्तिभिन्नाङ्गा देवा क्षमं न लेभिरे ॥७॥
 सत समग्रयामासु कृत्वा मात्सर्यमग्रतः । तद्यज्ञोनिप्रदीप्ताङ्गा दिष्णु जग्मु सुविह्वला ॥८॥

देवा ऊचुः

आर्ता स्म गतसत्त्वा स्म शङ्खचक्रगदाधरा । अस्मदर्थे भवन्तिस्वमायुधानि विभर्ति च ॥९॥
 त्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माकं दुःखमोदुशम् । त्या तु प्रपमती घाणी वयं दैत्य नमस्यति ॥१०॥
 मनसा कमणा वाचा त्वामेव शरणं गता । त्वदङ्घ्रिशरणा सन्त वयं दैत्य नममेहि ॥११॥
 यजामस्तथा महापक्षैर्वदामो वाग्भिरेभ्युत । त्वदेकशरणा सत कथं दैत्य नममेहि ॥१२॥

ब्रह्मा न कह्यो—बलि नामक एक महान् योद्धा जो दैवताओं का परम शत्रु था। दैवता उत्तमो पक्षी भी पराजित न कर सार। वह अपने घम-मान्ता का प्रजा-संरक्षण गुरु भक्ति साथ धीरप पराक्रम त्याग और क्षमा आदि गुणों का कारण तीनों लोक में अनुपम था। उसका महान् बलवत् दैवत दैवता अत्यंत विजित हो उठ। वे परस्पर बहुत लगे कि त्रिस प्रचार बलि का हम लोग जीत सक्य ॥२॥ इसका शासनकाय में तो मारा सत्कार निष्पष्ट है न शत्रु है न शत्रु है और न त्रिस का त्रिसा प्रकार की मानमित्र विजिता ही है ॥३॥ अनावृष्टि (मृता) अधम नास्तिकता और दुष्ट मनुष्य मृता है। और क्या मृता तब इस अर्थ का शासन-काल में रहने में भी य साथ मृता देख जाय ॥६॥ इस प्रकार उत्तरी उन्नति रूपी गरा का व हतागाह हाथ पर उत्तर दैवता का गत स आहत हाथ पर उत्तरी प्रमुखा भक्ति का देखकर व दैव क्षम विजित अथात् विजित हाथ पर। उनका त्रिती प्रचार शक्ति मृता मिली ॥७॥ अन्त में ईर्ष्यामाय में मित्र-जुद्ध पर उन गंगा का मरणा का और उत्तर दैवता का अर्थ स जो भुन व दैव अत्यंत व्याकुल होकर भगवान् विष्णु का समीप गये ॥८॥

दैवो न कह्यो—गण वचन गंगा का घाटन करने का। हम लामा का काम का विजय ही साथ सत्कार पर धारण करने हैं फिर भी हम लोग दुःखा है अधिकार ग विजित है। जगन्नाथ। आपका रक्षा रहने पर भी हम लामा की मृदा दृष्टि। आप का मरणा शक्ति करने का भी मृदा वाणा त्रिस प्रकार में अधम दैव का शक्ति करण ॥९॥ हम सभी मन वचन और कम स आप का हाथ गरा में रहने। मृदा आप का घराणा का दैव हाथ में दैव की वगे नमस्कार करण ॥११॥ हम महापक्षा का दाया आत्मा हा आराधना करने हैं। अत्यंत। अपना घाती के साथ का ही रक्षा मान करते हैं। एवमाय आपका ही घाटन में रहने का हम वस उस दैव का नमस्कार कर सत्कार

त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्य देवा सेन्द्रपुरोगमा । त्वया दत्त पद प्राप्य कथं दैत्य नमेमहि ॥१३॥
 खण्डा त्वं ब्रह्ममूर्त्यां तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि । सहर्ता खड्गशक्त्या त्वं कथं दैत्य नमेमहि ॥१४॥
 ऐश्वर्यं कारणं लोके विनैश्वर्यं तु किं फलम् । हतैश्वर्या सुरैश्चान् कथं दैत्य नमेमहि ॥१५॥
 अनादित्वं जगद्धातरन्तस्तस्य जगदगुरु । अन्तवन्तममुं शत्रुं कथं दैत्य नमेमहि ॥१६॥
 तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रेलोक्यमोजसा, स्थिरा स्थाम सुरैश्चान् कथं दैत्य नमेमहि ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतदेव ध्यानं श्रुत्वा दैतेयसूदन । उवाच सर्वानमरादेवानां कार्यसिद्धये ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्योऽत्यक्व्योऽसौ सुरासुरं । यथा भवन्तो मत्प्रेम्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम ॥१९॥
 विना तु सगर देवा हत्वा राज्यं निविष्टये । बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्यं च प्रददाम्यहम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

तमेतमुक्त्वा सुरगणा सजग्मुर्दिवमेव हि । भगवानपि दवेशो हृषदित्वा मभमाविशत ॥२१॥
 तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च यभूविर । जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्यतसो पत्न्युरप ॥२२॥

हैं? ॥१२॥ इन्द्र आदि हम सभी देव आपके पराक्रम के सहार जीते हैं आपके द्वारा प्राप्त अधिकार को पकर कसे अधिकारहीन (याधन) की भाँति उस दाय को नमस्कार कर ॥१३॥ प्रसो आप ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं विष्णु होकर रक्षा करते हैं और शङ्खध्वनि से विनाश करते हैं फिर हम कसे उसको नमस्कार कर ॥१४॥ हम लोक में ऐश्वर्य ही जीने का आधार है त्रिमूर्तान् जीवन सक्या लाभ देवा व गुणेष्ठ । ऐश्वर्यहीन हम कसे उसको नमस्कार कर ? ॥१५॥ जगत् के पालक आप अनारि हैं अनन्त हैं पवन के एवमात्र गुण हैं आपके रत्न हूण इस तत्पर दाय को गुरु मानकर हम डोल कसे नमस्कार कर ॥१६॥ आप ही प्रभाव से हम पुन परा वमी होकर अप पराक्रम सतीन लाका को जीत कर स्थिर और शान्त हुये । सुरपात्र । आपके समान पवन पालक कसे तत्त्व को नमस्कार कर ॥१७॥

ब्रह्मा १४—देवताओं का इतना बात गुनकर दायारि भगवान् न कह—॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—यह देव बलि मर गया है और देव दानव कोई इसे मार नहीं सकते । जिस प्रकार जगत् लोग का पालन करता है उसी प्रकार बलि भी मेरा पोष्य है । फिर भी मेरे वन्द विना ब्रह्मा के ही उसमें राज्य छीनार में मुक्ति से उसी की स्तोत्रों से ही उसको बंधकर स्वयं का राज्य सुख लाना को द दया ॥१९, २०॥

ब्रह्मा १४—ऐसा हा हो यह कहकर सुरगण स्वयं धके गये । इधर दया भगवान् न भी यदि वे मन में प्रवृत्ति किया ॥२१॥ ब्रह्मा १५—यह दायार भगवान् न भी उत्पन्न हुए उनके उत्पन्न

एतस्मिन्नतरे ब्रह्मन्ह्यमेधाय दीक्षित । बलिर्बलवता श्रेष्ठ ऋषिमुष्यं समाहित ॥२३॥
 पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना । मध्ये तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा ॥२४॥
 आत्विज्यः । ऋषिमुष्ये तु शुक्रे तत्र पुरोषसि । हविर्भाग्यमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे ॥२५॥
 दीयता भुज्यता पूजा क्रियता च पृथक्पृथक् । परिपूर्णं पुन पूर्णमेव वाक्ये प्रवर्तति ॥२६॥
 शनैस्तद्देशमभ्यागाद्वामन सामगायन । यज्ञवाटमनुप्राप्तो 'वामनश्चित्रकुण्डल' ॥२७॥
 प्रशसमानस्त यज्ञ वामन । प्रेक्ष्य भार्गव । ब्रह्मरूपधर देव वामन ब्रह्मसूदनम् ॥२८॥
 दातार यज्ञतपसा फल हन्तार रक्षसाम् । ज्ञात्वा त्वरन्नयोवाच राजान भूरितेजसम् ॥२९॥
 जेतार क्षत्रधर्मेण दातार भविततो धनम् । बलिं बलवता श्रेष्ठ सभार्य वीक्षित मध्ये ॥३०॥
 ध्यायन्त यज्ञपुरुषमुत्सृजन्त हवि पृथक् । तस्माह भृगुशार्दूल शुक्र परमबुद्धिमान् ॥३१॥

शुक्र उवाच

पोऽसौ तव मल प्राप्तो ब्राह्मणो वामनाकृति । नासौ पित्रो बले सस्य यज्ञेशो यज्ञवाहन ॥३२॥
 शिशुत्वा पाचितु प्राप्तो नून देवहिताय हि । मया च सह समन्वय पश्चाद्देव त्वया प्रभो ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गव प्राह पुरोधसमर्चिदम

॥३४॥

होने पर बड़-बड़ उत्सव मनाये गये ॥२२॥ ब्रह्मन् 'इसी बीच बलवाना म श्रेष्ठ बलि ने अवमेष धन की दीक्षा ली। उसने यज्ञ म प्रमुख प्रमुख ऋषि सम्मिलित हुए ॥२३॥ वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता गुरु पुरोहित थे। उन धन म बलि यजमान बनकर बैठे हुआ था ऋषि-वर गुरु पुरोहित बन हुये थे और अपन अपन हवि प्राण पत्ने के लिये देव गन्धर्व और नाग उर्पा यज्ञ थे। पुरोहित गुरु यज्ञ अमुक सामग्री दो यहाँ बलि दो यहाँ पूजा करो इस प्रकार पथक पथक आदेश दे रहे थे और परिपूर्ण पुन पूरणम आत्ति वाक्य वह रक्षे यि इनने म सामग्री का पान करन हुए हाथ म विविध वस्तु लिये हुए भगवान वामन यज्ञ प्रत्यक्ष म पहुँच गये और उस धन की प्रशंसा करने लगे। भाग्य शक्र विप्रवपचावी दीक्षार वामन को—ऐसकर समय गया कि य धन और तब के एक मन बात गणगा के विनागा भगवान् हैं। इसलिये परम बुद्धिमान् भृगु श्रेष्ठ गुरु न अयत्न पराक्रमी पराक्रम म युद्ध म गवरा! तीन बात गन्तीक यज्ञमान बलि से जो मस्तिष्क धन का दान दिया करता था और उस समय धन पुण्य का ध्यान कर पथक उनके निमित्त हवि देने को प्रस्तुत था कहा—॥२४॥ ३१॥

शुक्र ने कहा—यज्ञ स्थल म आया हुआ वामन रूप धन ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं हैं अग्नि माताय यज्ञपुरुष यज्ञ व स्वामी हैं। बलि 'अवश्य ही यज्ञ गिण देवताओं की मन्त्रार्च करन के लिय नम्र याचना करने आया है। इसलिये राजन् मरे साथ परामर्श करने व बात हो इसको दान दत्त उचित होगा ॥३२॥ ३३॥

ब्रह्मा नृपति—शत्रु-मूलक बलि न परोक्ष मायव म बना ॥३४॥

बलिहवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो ब्रह्मायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किंचित्किं मन्त्र्यमवशिष्यते ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभाप्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दन ॥३६॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा केनायित्थं तदुच्यताम्। वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमिता भुवम् ॥३७॥
बेहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्। तथेत्युक्त्वा तु कलशान्नानारत्नविभूषितात् ॥३८॥
वारिधारा, पुरस्कृत्य वामनाय भुव इवौ। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुकं चैव पुरोधसि ॥३९॥
पश्यत्सु लोकनाथेषु वामनाय भुव इवौ। पश्यत्सु दैत्यसधेषु जयशब्दे प्रवर्तति ॥४०॥
शनैस्तु वामनः प्राह स्वस्ति राजन्तुष्वी भव। बेहि मे समिता भूमि त्रिपदामाशु गम्यते ॥४१॥
तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरपञ्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥४२॥
यया स्यातां सुरा मूर्ध्नि वक्ष्ये विक्रमाकृति। अनन्तराद्याप्तो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृति ॥
त दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभाप्यो विनयान्वित ॥४३॥

बलि बोले—मैं धन्य हूँ कि आज स्वयं वनग मूर्तिमान् होकर मेरे घर आये हुये हैं। यदि आकर कुछ माँगत ही हा तो इस विषय में मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है? ॥३५॥

ब्रह्म ने कह—एसा बह्वर पुराहित गुन की साथ लेकर मार्या सहित राजा बलि उस स्थान पर गया जहाँ अग्निपुत्र ब्राह्मण त्रिरोमणि वामन त्रिराजमान थे ॥३६॥ हाथ जोड़कर बलि ने कहा कि आप किस वस्तु की इच्छा करते हैं। वानन ने कहा 'बैचन तीन ढग मात्र भूमि। राजेन्द्र। केवल भुव इतनी ही भूमि दे दो अन्य किसी वस्तु या धन की आवश्यकता नहीं है ॥३७॥ एसा ही हों यह बह्वर नानारत्ना से विभूषित वनग ग जल तिवाक वर ऋषियों के देवन-देवते पुरोहित गुन के तामने वामन की (तत्परिचित) पृथ्वी दे दी। इस दान को लोक-पान और दानको का समूह भी देग रहे थे। इस अपूर्व दान का देववर आनन्द-सुखित हो सवने जय ध्वनि की ॥३८॥ इसर भगवान् वामन ने घीरे स कहा—'राजन्। स्वस्ति हो तुम सुखी बनो। भरी अमीष्ट तीन ढग पृथ्वी तीप दे दो मैं तीप घटा जाऊँ ॥४१॥ एसा ही हों यह बह्वर दत्तराज जयाही वामन का देवता है एसाही वनग वनगुरप का दत्ता विराट रूप दिखाई दिया कि चन्द्र और सूर्य उससे वनस्थान पर दिखाई देने लग ॥४२॥ वे अनन्त अच्युत ऐसे इन सः दिवाल दिखाई पड कि सुरपा भी उनर मन्त्र म दिखाई पडन लग। तत्र मार्या व सहित विनय से नम्र दैत्यराज ने कहा—॥४३॥

१ व ० मागय वनग। आ०। २ व ० चित्तिमन्त्रव०। ३ व ० त्वा मम इत्यं पु उद३। वा०।
४५ सोत्तान्पु। ५४ सुरागानी व०। ६५ विद्वमायव०।

बलिरुवाच

न विष्णो लोकेऽयं यावच्छक्त्या (वित्) जगन्मयः । जितं मया सुरेशानं सर्वभावेन विश्वकृत् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

अयमकालं तु विष्णुं प्राह महाकृतुः ॥४५॥

विष्णुरुवाच

श्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

यदन्तः स प्राह ध्रुवः विष्णो पुनः पुनः ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

मृष्टे पदं न्यस्य बलियज्ञं पदं न्यसतः । द्वितीयं तु पदं प्राप ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥४८॥

यस्य पदस्थानं स्थानं नास्त्यसुरेश्वरः । यवः क्रमिष्ये भुय देहि बलिं तं हरिरब्रवीत् ॥

स्य बलिरप्याह सभार्यं स कृताञ्जलिः ॥४९॥

बलिरुवाच

१ मृष्टं जगत्सर्वं न लब्ध्वाऽहं सुरेश्वरः । त्यहोपादत्तमभवत्किं करोमि जगन्मयः ॥५०॥

यत्किं न पश्ये—लोह-स्वामिनः व्यापकः । विष्णुः अपनी 'गति' व अनुगार नाए 'गे' । सुरेश्वरिन् ।
१ वरचविना । मैंने तब प्रकार स मगार को जीत लिया है नाए 'जीतिय' ॥४४॥

ब्रह्मा १ पद—उसने काय के साथ हां भट्टारापण्य विष्णु न कहा—॥४५॥

विष्णु बोले—भगवान् । 'न्यस्य' । दसो मैं न उठा रहा हूँ । दसराट् । देहा ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—'न' प्रकार की गिण की बात मतकर 'किं' १ कहा—विष्णु यथारथि अन्तः अन्तः
पः ॥४७॥

ब्रह्मा न पश्ये—ब्रह्मा १ ने आ गये धरम वध । पीर पर गहर दूगरा 'रसन' बलि के धन म रस 'गिण'
'दमर' १ सागत 'दमर' 'दमर' पश्य गया । पश्य 'गय' १ 'गि' स कहा—'अगुरेश्वर' । सागर दम व
'धर' स्थान '१' १ 'ता' व' । 'ता' नृत्य परण रण । ('अ' नाप न्य व 'गि') पूर्यो दः । 'गुण' थाता
'गि' व 'गि' बलि ने हृष्य आन्तर वध—॥४८॥ ४९ ।

यत्किं बोले—गुणेश्वर । 'तमने' सम्पूर्ण सागर को बसाया है मैंने कहा । ('अन्तः') गुह्यार दोष स बनी

तथाऽपि नानूतपूर्वं कदाचिद्विष्मि वशव। सत्यवाक्यं च मा कुचमत्युष्ठं हि पदं यस्य ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्मयीमूर्तिं सुरार्चितं

॥५२॥

भगवानुवाच

वरं धृणोऽप्यभद्रं स भक्त्या प्रीतोऽस्मि दैत्यराट्

॥५३॥

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जगन्नाथ न याच त्वा त्रिविधमम। स तु प्रादात्सर्वं विष्णुं प्रीतः समनससितमः ॥५४॥
रसातलपतित्वं च भावि चन्द्रपदं पुनः। आत्माधिपत्यं च हरिरविनाशि यशो विभु ॥५५॥
एष इत्या बलं सर्वं ससुत भाग्यदायकितमः। रसातलं हरिं स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम् ॥५६॥
शतशतोस्तथा प्राज्ञासुरराज्यं यथाभक्तम्। एतस्मिन् तरं तत्र पदं प्राज्ञासुरार्चितम् ॥५७॥
द्वितीयं सत्यं विष्णोः पितुममं महामतः। यत्पदं समनुप्राप्तं गृहं दृष्ट्वाऽप्यचिं तयम् ॥५८॥
किं कृत्यं यच्छुभं म स्थाप्य विष्णोः समागतः। सब्रह्म च समालोक्य श्रेष्ठो म स्यात्कमण्डलुः ॥५९॥
तद्वारिं यत्पुण्यतमं वत्तं च त्रिपुरारिणः। वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं ॥६०॥
शुभं च शुभं नित्यं भूषितमुक्तिप्रदायकम्। मातस्यैव लोकानाममृतं भयजं शुचि ॥६१॥

हो गई जगन्नाथ म क्या कर फिर भी हे नाथ मैं कभी भी असत्य नहीं करता हूँ इसलिये मेरे सत्य की रक्षा के लिये मेरी पीठ पर अपना चरण रखिये। ५० ५१।

ब्रह्मा न कर्हा—तदनन्तर तीन मति वाल तथा दवताजा द्वारा पूज कय भगवान न प्रसन्न होकर कहा—
‘तुम वर मागा तुम्हारा क्याण हागा दयगाव। तुम्हारी मति स मैं प्रसन्न हूँ ॥५१॥

ब्रह्मा न कर्हा—राजा बलि न कहा कि मैं तीन ङगा स सम्पूर्ण राज की नापने वां तुम जगपति से कुछ नहा भागगा। परंतु भगवान् न प्रसन्न होकर स्वयं उसको अपना द्वाष्टा के अनुसार वर लिया कि तुम सम्प्रति रसातल के स्वामी बनो और त्रिविष्य म इन्द्र की पत्नी तुम्हें मिलगी तुम्हारी अश्व कीति लाव म पत्नी और तुम्हारा एकमात्र आधिपत्य रहेगा। ५४ ५५। इस प्रकार अगव्यापी भगवान हरि ने पत्र और भाषा के सन्ति बलि को सब कुछ वर देस देस तत्र (बलि) को बरिवार सन्ति रसातल म भेज लिया और इन्द्र का पूव की पाति स्वयं का राज्य दे लिया। ५६॥ महामते! रसातल की जबकि भगवान दूसरे चरण से नापने का प्रयत्न कर रहे थ तब वह देवा से पूजित द्वितीय चरण मरे लोक म आया। म अपन पिता के चरण को अपन घर म आया नेत्रकर सोचने लगा कि मरे पर आप रस चरण की क्या सेवा करू कि भरा गम हा। इस विचार से मैं सत्र कुछ देखन ग्या तब तब ध्यान मे आया कि यह मेरा वरमण्डल हूँ इस भाव से लिय श्रेष्ठ है। इसम त्रिपुरारि गकर का लिया हुआ वह जल है जो पावन वर देन वाला श्रेष्ठ अमृत गान्तिप्रद शुभ शुभ दनवाग सबदा मुक्ति और मलि देने वाग माता के समान लोकपालक अमृत रोगनाशक पवित्र पूय सर्वोत्तम और उत्तम गुणा सं युक्त है। जिसके स्मरण मात्र से

पवित्रं पावनं पूज्यं ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम्। स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात्॥६२॥
 तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेद्धार्य मे पितुः। इति सचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम्॥६३॥
 विष्णो. पादे तु पतितमर्घ्यवारि सुमन्त्रितम्। तद्वारि पतित मेरौ चतुर्धा व्यगमद्भुवम्॥६४॥
 पूर्वं तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा। दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरो मुने॥६५॥
 जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डलुम्। उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम्॥६६॥
 पूर्वस्मिन्नुपयो देवा पितरो लोकपालका। जगृह. शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते॥६७॥
 या दक्षिणां दिशं प्राप्ता आपो वै लोकमातरः। विष्णुपादप्रसृतास्ताः ब्रह्मण्या लोकमातरः॥६८॥
 महेश्वरजटासंस्थाः पर्वजातशुभोदयाः। तासां प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात्॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभूषितंवादे तीर्थमाहात्म्ये गंगाया महेश्वरजटापवन-
 निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥
 गौतमोमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय में तो कहना ही क्या? तो आज इस पवित्र जल से, स्वयं पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ्य प्रदान करें, ऐसा सोचकर उस जल को लेकर अर्घ्य देने को प्रस्तुत हुआ॥५७-६१॥ जब मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घ्य-जल को विष्णु ने चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेघ पर्वत पर गिर कर चार भागा में बँट कर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पड़ा॥६४॥ जो जल-धारा दक्षिण की ओर गिरी उसका, हम मुने, शंकर ने अपनी जटा में धारण कर लिया। पश्चिम की ओर गिरा उन मेरे कमण्डलु में आया। उत्तर दिशा में जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और जो पूर्व की ओर गिरा, उस मगल-प्रद जल को ऋषि, देव, पितर और लोकपाला ने ले लिया। इस प्रकार विष्णु का अर्घ्य के रूप में दिया गया वह जल और अधिक पवित्र हो गया। जो जल दक्षिण दिशा में गया वह विष्णु चरण से निष्पन्न हुआ, लोभ-माया, और ब्रह्म-संबन्धी है। जिसको पवित्र जानकर स्वयं महेश्वर ने अपनी जटा में स्थापित किया, और जिसका पर्ववेल में उदय (उत्पत्ति) हुआ है। इसलिय ऐसे जल की महिमा का स्मरण करने से मनुष्य सब मनारथों को प्राप्त करता है॥६५-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण में गंगा का महेश्वर की जटा में आवमन निरूपण नामक निरूपण अध्याय समाप्त॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता । श्रुता देव यया मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्या वा आपो देव्यो महामते । तासा च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२॥
एकाशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना । गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुत ॥३॥
अपरस्तु महाम्राज्ञ क्षत्रियेण बल्लोयसा । आराध्य शंकर देव तपोभिनियमैस्तथा ॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा । एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५॥

नारद उवाच

महेश्वरजटास्या वा हेतुना केन गौतम । आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ययाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा । तत्सर्वं विस्तरेणाह वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदों का कथन

नारद ने कहा—कमण्डलु में रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा में आयी उसको तो मैंने सुना । अब जिस प्रकार वे मर्त्यलोक में आयी, उसको सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मा बोले—महामते । महेश्वर की जटा में रहनेवाली जल-देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे इसलिये उसवे दो भेद हो गये । एक अश्व को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत दान और समाधि से शकर की पूजाकर पृथ्वी पर लाया, यह लोक में प्रसिद्ध है । गङ्गाया । दूसरे अश्व को बलवान् भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शकर को प्रसन्न करके ले आया । मुनिश्रेष्ठ । इस प्रकार गंगा के दो भेद हो गये ॥२॥

नारद ने कहा—महेश्वर की जटा में रहने वाली गंगा के एक अश्व को किस कारण गौतम और दूसरे अश्व को किस कारण क्षत्रिय (यहाँ) लाये, सो बतलाइये ॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—पूर्वकाल में जिस वारण ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय गंगा को पृथ्वी पर लाये, इन सब बातों

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया । तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शमोर्महामते ॥८॥
 मम शोषापनोदय चिन्तयाम शिवस्तदा । उमया सहित धीमान्देवो प्रेष्य विशेषत ॥९॥
 रसवृत्ती स्थितो यस्मात्प्रभेम रसमुत्तमम् । रसिकत्वात्प्रियत्वान्च स्त्रेणत्वात्पावनत्वत ॥१०॥
 सर्वान्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्विजसत्तम । तामव चिन्तयानोऽज्ञो र्विदाऽस्ते महेश्वर ॥११॥
 संबोद्भूता जटामार्गात्कस्मिन्चित्कारणान्तरे । स तु सगोपयामास गङ्गा शमुजटागतम् ॥१२॥
 शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा । सोढु ब्रह्मजटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३॥
 अमर्षेण भव गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत । नैवासी प्रेरयच्छभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥
 जटास्त्रेव तदा देवो गोपायन्त विमृश्य सा । विनायक जया स्कन्द रहो वचनमब्रवीत् ॥१५॥
 नैवाय निबधेशानो गङ्गा त्यजति कामुक । साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६॥
 एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च । न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभु ॥१८॥
 पुनस्तस्यानि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् । अपवा साहस्यं पुण्यंस्तपोभिर्भूतकल्मष ॥१९॥

को मैं मुन्दारी प्रसन्नता के विय विस्तारपूर्वक रह रहा हूँ ॥७॥ महामत ! जिस समय उमा शहर की पत्नी हुई उसी समय गंगा भी राम की प्रिय पत्नी हुई ॥८॥ उस समय भरे बाप को दूर करने के लिए पावती सहित गकर ने चिन्तन करते हुए विनोद रूप से देवी को देखा । उस समय रसभाव म रहने के कारण उन्होने उत्तम रस (गुण) का निर्माण किया । विजय ! रसिक प्रिय स्त्रीमवा (माया मन्त्र) तथा स्नानपावन होने क कारण गकर की सबसे अधिक प्रीति गंगा म हो गई । महेस्वर दिन रात उसी गंगा व ध्यान म मग्न रहन गये ॥९॥ १०॥ बड़ा गया प्रिया अन्य कारण जटा भाग से प्रवत हुई । गकर जी ने जटा म आयी हुई गंगा को छिपा लिया ॥११॥ १२॥ ब्रह्मन् । उस समय उमा गंगा को गिर पर प्रतिष्ठित दशहर इस बात को सह न सका । जटानूट म स्थित गंगा को बार बार दसहर गौरी न बीच स गंगा को हटा देने के लिये गकर स कहा । किन्तु रसिक गिरामणि शहर न उत्तम रस बनवाली गंगा को नहा हटाया । गौरी ने फिर भी गंगा को जटा म ही छिपात दसहर विनायक रूप द ओर जया स एकांत म कहा कि यह देवा व स्वामी वामी गिव गंगा को नहा छोड रहे है वह इनकी प्रिया भी इनका नहा छोड रही है तो ५ किस प्रकार गंगा को छोड सकत ह ? एसा करने क वास् सोच विचारकर गौरी न गंगा से कहा ॥१३॥ १७॥

पावती बोली—य शहर देवा अमुरा यथा गिटा राजाया मुन्दार अथवा अय गिती व कहने से गंगा को नही छोड रह है । इसलिय या ता मैं इस भाव व लिय पुन नगाधिराज हियाम्य पर जाकर स्वयं तरस्या करगी

१४ ०म । आ-मना भरतके यदथा जानायव उपैति वै । गन्गा अगन्मुद्वेक कस्मि० । २४ ०न । उमा तन्वान्दु सान्द्रायास्मीति च तदा । ७० । ३५ ०न मयैम० ।

तेर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमान्पुयात्

॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विघ्नराट् । भ्रात्रा स्कन्देन जयया संमन्त्र्येह 'च युज्यते ॥२१॥
तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गां यथा त्यजति मे पिता । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मघ्ननावुष्टिरजायत ॥२२॥
द्विद्विंश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा । ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामहम् । स्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्यावरं जङ्गमं तथा ॥२४॥
कृतो यतो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः । मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः । तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६॥
आधयो ध्याधयो याऽपि दुर्मिश्रं वाऽप्यवर्षणम् । भयशोको च वारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७॥
तवाश्रमं विनाऽन्यत्र हृष्य या कव्यमेव वा । नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तयैव च ॥२८॥
यदेव गौतमो विप्रो वदाति च जुहोति च । तदेवाप्ययनं स्वर्गं सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥
देवलोकोऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः । होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा मुनयः तवै नानाश्रमनिवासिनः । गौतमाश्रममापूच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१॥

अवशः तत्तस्या द्वारा निष्पद्य एव पवित्र ब्राह्मण को प्रार्थना से प्रसन्न होकर गया पृथ्वी पर जाय, ऐसा कोई प्रयत्न करता चाहिये ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की इन बातों को सुनकर विघ्नराज विनायक ने कहा कि भाई स्कन्द और जया से हमके लिए परामर्श करना ठीक होगा । इनके परामर्श से मैं वही प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरे पिता गया को मस्तक से हटा सकें ॥२१॥ ब्रह्मन् । इसी बीच समस्त प्राणियों ने श्रुत करने वाला बारह वर्ष का अकाल पड़ गया । सारा स्थावर जगमात्मक सत्ता विनष्टप्राय हो गया केवल सब मनोरथों को देने वाला गौतम का आश्रम ही शेष रहा । पुत्र । इसका कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जब स्थावर (अचल) जगम (चल) की सृष्टि की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई तब उसी देवयजन गिरि पर मैंने यज्ञ किया था । तभी से सर्वदा के लिए वह पहाड़ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२२-२५॥ वह गौतम उसी श्रेष्ठ पर्वत पर अपना आश्रम बना कर सदा रहता है । उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर बने अतिपवित्र शुभ आश्रम में रोग, भानसिक चिन्ता, दुर्मिश्र, मूना, मय, शोक और दरिद्रता आदि कभी भी नहीं सुने गये हैं ॥२६-२७॥ पुत्र । उस आश्रम को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी हृष्य कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) दाता, होता, और यज्ञकर्ता नहीं थे ॥२८॥ जब भी विप्र गौतम, पितरों को अन्न देते या हवन करते थे, तभी स्वर्ग में देवताओं को भी तृप्ति मिलती थी । अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥२९॥ देव या भूयुलोक में गौतम ऋषि की ही प्रसिद्धि थी । सभी यही जानते थे कि हवन करने वाले, दान देने वाले और सुख भोगने वाले केवल गौतम ऋषी ही हैं । इस चर्चा को

तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां ॥ गौतम । शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पुत्रकोऽभवत् ॥३२॥
 यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथायोग्यं यथाक्रमम् । यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३॥
 आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोपध्वो लोकमातरः । आराधिता 'पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥३४॥
 जायन्ते च तदौपध्वो लूयन्ते च तदेव हि । सपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥
 सर्वा समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोयता । प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वगातान्मुनीन् ॥३६॥
 पुत्रवद्विष्टप्यवच्छेदं प्रेष्यवत्करवाणि किम् । पितृवत्पुत्रपयामास सवत्सरगणान्वहम् ॥३७॥
 एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराभवात् । ततो विनायकं प्राह मातरः भ्रातरं जयाम् ॥३८॥

विनायक उवाच

देवानां सद्ने मातर्गोयते गौतमो द्विज । यन्न साध्यं सुरमणं गौतमं कृतवानिति ॥३९॥
 एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम् । स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥
 तपसा वाञ्छ्यतो घाटिं पूजयित्वा त्रिलोचनम् । स एव ध्याययेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१॥
 तत्र नीतिविधातव्या सा विप्रो याचयेद्यया । तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

मुनिकर अनेक आश्रमा के रहने वाले ऋषिमुनि गौतम के आश्रम को पृच्छते हुए आने लगे । ऋषि ने भी उन आगत सभी मुनियों की योग्यतानुसार किसी का गिण्य के समान किसी का भक्ति नम्र पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन पोषण किया ॥३२॥ ३३॥ जिसकी जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार यथायोग्य मुनि ने सेवा-सत्कार किया । गौतम की इस अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्मा विष्णु और महेश भी अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥३३॥ ३४॥ उनकी आज्ञा से लोक का भरण पोषण करने वाली मानुस्वरूप ऋषियों की भी देर में बड़ जागी थी और पुनः काट भी ली जाती थी । ऋषि ने तपः प्रभाव से बोले ही बोले पक्कर तैयार भी हो जाती थी ॥३५॥ इस प्रकार सब उस अतिथि सेवकी गौतम ऋषि का मनोवाञ्छित वैभव प्राप्त हो जात था । प्रतिदिन वे ऋषि आश्रम में आये हुए अनियमित सा विनयपूर्वक बह्म करते थे कि पुत्र के समान गिण्य के समान मुनिको आज्ञा दीजिय कि मैं आप लोगों की कौन सी सेवा करूँ ॥३६॥ ३७॥ इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमों से आये अनियमित सा पालन किया और इस प्रकार बड़े मुनियों के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई ॥३८॥ गौतम की इस नीति का मुनिकर गणना न अपनी माता आई और जया स कहा ।

गण । घोल—माता । स्वयं मैं गौतम का बड़ा गुण-दान हो रहा है । सभी कहते हैं कि इन्होंने वह कार्य कर लिया जो देवताओं में भी नहीं हो सकता था । इस प्रकार मैंने ब्राह्मण गौतम के तपावन को मुना है । वह विप्र निचय ही जगत् में उभरे रहा जागी गया का बड़ा से हनु देगा । तपस्या या अन्य किसी प्रकार से वह जिनके गौरव को प्रसन्न कर सकय ही पिता की प्यारी सेवा को जटा से ध्वन कर देगा । इस विषय में कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि गौतम गणा की याचना करे । उसने प्रभाव में गया (गिद के) गिर से उत्तर गायती है ॥३९॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातर आश्रा जयया सह विघ्नराट् । जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३॥
वसन्कतिपयाहसु गौतमाश्रममण्डले । उवाच ब्राह्मणान्सर्वास्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥
गच्छाम स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च । पुष्टा स्म गौतमाश्रमे पृच्छामो गौतम मुनिम् ॥४५॥
इति समन्व्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमा । स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पूयक् ॥४६॥

गौतम उवाच

कृताञ्जलि सविनयमासध्वमिह चैव हि । पुष्पञ्चरणशुश्रूषा करोमि मुनिपुत्रावा ॥४७॥
शुश्रूषी पुत्रवन्नित्य मयि तिष्ठति नोचितम् । भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥
इवनेवाऽऽश्रम पुष्प सर्वेषामिति मे मति । अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा 'मुनेर्वाच्य विघ्नकृत्यमनुस्मरन् । उवाच प्राञ्जलिभूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वय किं नो^१ निवारयत गौतम । साम्ना^२ नैव वय शक्ता गन्तु २३ स्व निवेशनम् ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार माता स बह्वर विघ्नराज विनायक बाई स्कन्द और जया के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ यगोपवीतधारी दुवले-पतले गौतम थे । कुछ िना तक गौतम के आश्रम में रहने के बाद विघ्नराज वहाँ के सब ब्राह्मणों से कहा— हम लोग गौतम के अन्न को खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं अब अपन-अपने घरों पवित्र आश्रमों को चलना चाहिये इसके लिये मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये । इस प्रकार परामर्श कर उन अष्ट मुनियों ने गौतम से पूछा । उनके इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर मुनि ने बड़ स्नेहपूर्वक उन मुनियों को जाने से रोका ॥४६॥

गौतम ने कहा—मुनिपुत्र ! मैं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आप लोगों से प्राचना करता हू कि आप लोग मेरे आश्रम में रहें । आप लोग की और अधिक चरण सेवा करना चाहता हूँ । क्योंकि अभी इस क्षुद्र सेवा से मुझ सतोष नहीं है । पुत्र के समान सेवा करने की इच्छा रखने वाले गौतम के रूढ़ते आप भूखा वा दूसरे आश्रम को जाना ठीक नहीं है । मेरा विचार है कि यह पवित्र आश्रम ही आप लोगों के रहने के लिये सवया उचित है । मुनिबुद्ध ! आप लोगों वा अन्य आश्रमों में जाना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है ॥४७-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की बातों को सुनकर बाबा दारुने वाले कायों का स्मरण करते हुए गणपति ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा ॥५०॥

गणपति बोले—क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमकी घर जाने से रोक रहे हैं ?

नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः। तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः त्रियतामित्यनुब्रुवन्। एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुह। ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा भने वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥

विनायक उवाच

त्रियते गुणरूपं यद्गीतमस्तु विशेषतः

॥५५॥

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनश्चकार्षीः। स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥५६॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः

विनायक उवाच

यदा नाग्यो विज्ञानीते सया कुह शुभानने। गोरूपधारिणो गच्छ गीतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
शालीश्राव विनाशाय विकारं कुह भामिनि। कृते प्रहारे हुंकारे प्रेक्षिते चापि किञ्चन ॥५८॥
पत दीनं स्वनं कृत्वा न स्त्रियस्य न जीय च

शान्त (सीने) उपाय से हम अपने-अपने घर को जाने में सर्वथा समर्थ नहीं हैं, परन्तु इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। श्रमणिये मैं अनुसारी से एक नई व्यक्ति कर रहा हूँ। आप सभी इसका समर्थन करें ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने उपरान्त उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा—‘दीन है, ऐसा ही कीजिये। लोभ-हिंसा की दृष्टि से इस श्रेष्ठि व उपकार एक हम सभी ब्राह्मणों के बल्यान की दृष्टि से जो कुछ आपकी श्रेयस्कर जान पड़े वैसा ही करें।’ गणनायक ने ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर उनके बचन की सराहना की। पुनः कहा कि जो गीतम के गुण और प्रतिष्ठा के अनुकूल हो विशेष रूप से उसी कार्य को करना चाहिए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा बोले—बार-बार उन सभी ब्राह्मणों को सान्त्वना देकर और उनका समर्थन प्राप्त कर उदार बुद्धि गणेश जी ने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम किया। अपनी माना की भी स्वीकृति लेकर विद्वान् गणेश न जवा से कहा ॥५६॥

विनायक बोले—अगन्तुमूरी। जिसको दूसरे न जान मर्ते इस रूप में कार्य करा। तुम गीत का रूप धारण कर उहाँ गीतम है वहाँ जाओ। भामिनि। वहाँ जाकर पावन मान ल्यो अपना उसको पीरो से कुप-कर नष्ट कर दो। इसका दण्ड कर यदि गीतम मारें या हुंकार के साथ मुम्हारी ओर देंगे, तो मुरल करो आतंसाद कर फिर आओ। न तो मरना न तो जीना ही, अथवा हो पड़ जाना ॥५७-५८॥

ब्रह्मोवाच ,

तया चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता । यत्राऽऽसीदगौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५९॥
जगाम शालीन्वादन्तो ता ददर्श ॥ गौतम । गा दृष्ट्वा विकृता विप्रस्ता तृणेन न्यवारयत ॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वन कृत्वा पपात गौ । तस्या तु पतिताया च हाहाकारो महानभूत ॥६१॥
स्वन श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् । व्यथिता ब्राह्मणा प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृता ॥६२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

हृदितो गच्छामहे सर्वे न श्यातव्य तवाऽऽश्रमे । पुत्रवत्पोषिता सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

हृदिति श्रुत्वा मुनिर्वायव विप्राणा गच्छता तदा । बध्नाहत इवाऽऽसीत्स विप्राणा पुरतोऽपतत ॥६४॥
तमूचुर्ब्राह्मणा सर्वे पश्यमा पतिता भुवि । खडाणां भातर देवीं जगता पावनीं प्रियाम ॥६५॥
तीर्पदेवस्य कृपिण्यामस्या गवि विषर्बलात् । पतिताया मुनिश्चेष्ट गतव्यमवशिष्यते ॥६६॥
चीर्णं व्रत क्षय याति यथा वासस्त्वदाश्रमे । धम नान्यधना ब्रह्मकैवल तु तपोधना ॥६७॥

ब्रह्मा बोल—विघ्नराज के भक्त को मान कर जया ने बसा ही विवा । वह जया गो रूप धारणकर वहाँ गई
जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे । वह जाकर चावल खाने लगी । गौतम ने चावल खाती हुई उस गाय को देखा
और उसे दुबल जानकर एक तिनके से उसको हलकने लगे । उसको गौतम हाँक रहे थे कि वह निबल गौ करणाजनक
पन्वन कर गिर पड़ी । उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ । गौ की आतश्चिन्ति को सुनकर और गौतम
की चेष्टाभा को देखकर वे ब्राह्मण बहुत दुःखी हुये और विघ्नराज के साथ जाकर गौतम से बोले ॥५९ ६२॥

ब्राह्मणो न कंहा—हम सभी यहाँ से जा रहे हैं तुम्हारे आश्रम मरहना अब उचित नहीं । मनिवम । तुमने
पुत्र के समान हम लोगों का पालन किया है इसलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं ॥६३॥

ब्रह्मा बोल—मुनि गौतम उस समय ब्राह्मणा की बात सुनकर और आश्रम से उनको जात देखकर बध्नाहृत-से
हो गये और ब्राह्मणों के सामने पृथ्वी पर गिर पड़ । ब्राह्मणा ने कहा—संसार को पवित्र करने वाली प्रिय इस
रुद्रों की माता वो जो परती पर पड़ी हुई है देखो । काल की प्ररणा से तीक्ष्ण-देव-रूप पों के इस प्रकार मूर्च्छित हो
गिरने पर मुनिश्रद्ध ! हम लोगों का यहाँ से चला जाना ही एकमात्र उचित उपाय है । अब तुम्हारे आश्रम भ
पूव की भाँति निवास करने से हमारा यह चिरसञ्चित व्रत (पुण्य-तप) नष्ट हो जायगा । श्रद्धान् ! हम लोगों के
पास अन्य कोई धन नहीं नेवल तप ही धन है । ॥६४ ६७॥

ब्रह्मोवाच

विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतम

॥६८॥

गौतम उवाच

भवन्त एव शरणं पूतं मा कर्तुमर्हय

॥६९॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराजब्राह्मणर्षुतः

॥७०॥

विघ्नराज उवाच

नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम्। वदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृति गतिमेव वा ॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीत्य गौरथ चास्मिन्नत्र निष्कृतिम्। वक्तुमर्हय तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम् ॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सर्वेषां च मतेनायं वदिष्यति च बुद्धिमान्। एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणं प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा। विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की इन बातों को सुनकर गौतम ने विश्व के सामने विनीत भाव से खड़े होकर कहा—
मेरे एक मात्र सहायक आप ही लोग हैं। आप लोग मुझ अवश्य पवित्र करने में समर्थ हैं ॥६८-६९॥

ब्रह्मा न कहा—गौतम की वरुण बातों को सुनकर ब्राह्मणा से पिरे हुए विघ्नराज ने कहा—‘यह गौ न ही मरी ही है और न तो जीवित ही जान पड़ती है। तो इससे क्या प्रयोजन? मैं इस अत्यन्त सन्देहजनक अवसर पर इसके बचाव और उद्धार का उपाय बताता हूँ ॥७०-७१॥

गौतम ने कहा—यह गौ किस प्रकार उठ खड़ी होगी और मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा इसकी आप लोग बतायें। मैं निश्चय ही उन सब बातों का पालन करूँगा ॥७२॥

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम। सबकी ओर से यह चतुर ब्राह्मण बड़ेगा। इससे बड़े वचन हमारे और आपके लिए प्रमाण स्वरूप होंगे ॥७३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणा और स्वयं तपस्वी गौतम की प्रेरणा से ब्राह्मण वेदाचार्य उस विघ्नराज ने सबकी सुनाकर यह कहा ॥७४॥

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाह वदिष्यामि यथार्थवत् । अनुमन्यन्तु मुनयो महास्य गीतमोऽपि च ॥७५॥
महेदवरजटाजूटे ब्रह्मणोऽप्यवतजन्मन । कम्पडलुस्थित वारि तिप्यतीति हि क्षुध्रुम ॥७६॥
तदानयस्य तरसा तपसा नियमेन च । तेनाभिपिञ्च रामेता भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेदमनि ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युपवसति विघ्ने ब्राह्मणानां च ससदि । तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयदाय्यो ध्यवर्धत ॥
तत कृताञ्जलिर्नम्रो गीतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

गीतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादत । भवता च प्रसादेन मत्सकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपुण्यम् । स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समूढान्यत्रवारिभि ॥८०॥
यातेषु तेषु विघ्नेषु भ्राना सह गणेश्वर । जयया सह सुप्रेत कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥
गतेषु ब्रह्मबन्धु गणेशे च गते तथा । गीतमोऽपि मुनिश्रद्धस्तपसा हतफलमप ॥८२॥

विघ्नराज बोले—मैं सारा प्रणाम और राय से यथावत् बात कह रहा हूँ। आप यहाँ व उपस्थित सभी मुनि और गौतम मरी बात का समर्थन करें। भावन शक्ति व जगत्त्रास म अत्यन्त ब्रह्मा व कमण्डलु का पवित्र जल स्थित है ऐसा हम सभी सुनते हैं। उस जल का योग-भाषना तपस्या या नियमानुसार अनुष्ठान से लाजो। भगवान्। उनी को इस धरता पर पना गौ पर छिड़का। ऐसा करने से हूँ हम सभी पहले की मर्ति तुम्हारे आश्रम में रह सकेंगे ॥७५७॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की उस श्रद्धा में विघ्नश्रद्ध के इतना बहन पर वहाँ आवागम सपना का वषाहूँ और तारा का जगत्त्रि हूँ। उदन्तर गौतम न अञ्जलि वाक्य कर बड़ी नम्रता से यह कहा—॥७८॥

गीतम बोले—तपस्या अग्निव की वृथा देवा और ब्राह्मणों व अनुग्रह और आप लोगो की दया से मरा यह मन्त्र मिष्ट हो ॥७९॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे सकल पूज हूँ ऐसा कहकर ब्राह्मणों ने उस मुनिवर गौतम से विदा लेकर जल और जल से समूह अत-अत निवास-स्थान का चले गये। उन ब्राह्मणों के चल जान पर जया और भाई (स्वल्प) व सत्य गौर प्रसन्नता में कुण्डल हार लौक गये। उन ब्राह्मणों और गणेश जी व जल जाने पर मुनिश्रद्ध अतम नी तपस्या से जान की निगाह सम्यक् कर इस धरता पर विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि मरे द्वारा यह क्या हुआ। इस प्रकार बार-बार ध्यान करने पर अन्त में अपने ज्ञान से इन सब बातों को जान गये। दक्ष-बाप

ध्यायस्तदयं स मुनि किमिदं मम सस्थितम् । इत्येव बहुशो ध्यायञ्जानेन ज्ञातवान्निज ॥८३॥
 निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मनः किल्बिषा गतिम् । लोकानामुपकारं च शमो प्रीणनमेव च ॥८४॥
 उभायां प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च । सर्वं श्रेयस्करं मन्ये मयि नैव च किल्बिषम् ॥८५॥
 इत्येव मनसा ध्यायन्तुप्रीतोऽभूद्विजोत्तमः । आराध्य जगतामीशं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥८६॥
 आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीतांस्तु गिरिजां मम । सपत्नीं जगदम्बायां महेश्वरजटास्थितां ॥८७॥

एष हि सर्वस्य मुनिप्रबोधः, स गौतमो ब्रह्मगिरिजंगमः ।

कैलासमाधिष्ठितमुपपन्वना, सुरार्चित प्रियया ब्रह्मवन्द

॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिद्वाह्ये स्वयम्भूप्रसिद्धादे तीर्थमाहात्म्ये विनायकगौतमव्यापार-

निरूपणं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्

नारद उवाच

कैलासशिखरं गत्वा गौतमो भगवानुयि । किञ्चकार तपो वाग्भिः का चक्रे स्तुतिमुत्तमां ॥१॥

का मित्रि अने पापा का उद्धार सत्तार का बल्याण उमा और गङ्गा की प्रसन्नता और गंगा का पृथ्वी पर आपन
 य समा बन्ध्याणकर है । इसमें मुनि वाग्द पाप नष्ट करेगा । इस प्रकार मन में ध्यान करत हुए वह द्विजवर अत्यन्त
 प्रसन्न हुआ । उनमें प्रतिष्ठा की कि मैं जगत् के स्वामी वृषभध्वज त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गंगा की
 अवश्य उज्जा । गिरिजायां पावनी और जगन्माता की सीत महेश्वर की जगत् भर करने वाली गंगा मुनि पर प्रसन्न
 है । इस प्रकार वह मुनिवर गौतम अपने मन में बृहन्मन्त्र कर ब्राह्मण वृन्द के आराधनासार ब्रह्मगिरि को छोड़कर
 देवा में पूजित बंगाल पर्वत पर गये जहाँ उग्र धनुष धारण करने वाले शङ्कर, प्रिया पावती के साथ रहने से ॥८०-८८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बंगाल और गौतम के साथ निरूपण नामक चौहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७४॥

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

नारद ने कहा—भगवान् श्रेष्ठ गौतम ने बंगाल पर्वत पर जाकर गौतमी तट पर गौतमी उमा
 स्तुति की ॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो॑ वत्स वाच समयस्य गौतम । आस्तीर्य स कुशान्नाञ्च कंलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥
उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेद ततो जगौ । अपतत्पुण्यवृष्टिदच स्तूयमाने महेश्वरे ॥३॥

गौतम उवाच

भोगार्थिना भोगमभोप्सितं च, दातु महान्त्यष्टवपूयि घत्ते॑ ।
सोमो जनानां गुणवन्ति नित्यं, देव महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥
कर्तुं स्वकीर्यविषयं सुखानि, भर्तुं समस्त सचराचरं च ।
सपत्न्ये ह्यस्य॑ विबुद्धये च, महीमय रूपमितीश्वरस्य ॥५॥
सृष्टे स्थिते सहरणाय भूमेराधारमाधातुमया स्वरूपम् ।
भजे शिव शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम्॑ ॥६॥
‘कालव्यवस्थाममृतलव च, जीवस्थिति सृष्टिमयो विनाशनम् ।
मुद प्रजानां सुखमुभ्रति च, चक्रेर्कचन्द्राग्निमय शरीरम् ॥७॥
धृष्टि गति शक्तिमयाक्षराणि, जीवव्यवस्था मुदमप्यनेकाम् ।
लघु कृत वायुरितीशरूप, त्व घेत्सि नूनं भगवन्भवन्तम् ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तदनन्तर विवेकी गौतम पर्वत पर जाकर अपनी वाणी को वक्ष में कर कुशाभी को बिछा कर पर्वतो में अष्ट कंलाश पर बैठ गये । पुन पवित्र होने के वाव जब वे यह स्तोत्रपाठ करने लगे तो फूलों की वर्षा होने लगी ॥२॥ ३॥

गौतम ने कहा—जो भगवान् सोम (शकर) भोग चाहने वाले मनुष्यों की भोगेच्छा की पूर्ति और मनचाहे पदार्थों को देने के लिये आठ महान् शरीरों को धारण करते हैं और जिस निय देव को विवेकी जन महादेव कहकर स्तुति किया करते हैं ॥४॥ जिस ईश्वर ने समस्त चर-अचर जगत् को अपनी महिमा से उत्पन्न पदार्थों से सुख देने के लिए और इसका मरण पोषण करने के लिये इसको एवम युक्त बनाने तथा इसकी समष्टि के लिये महीमय (पृथ्वी) रूप धारण किया है ॥५॥ जिस शान्त वपु शिव ने सजन पालन और सहार के लिये भूमि का आधार रूप बनने के लिए (अर्थात् पृथ्वी को सहारा देने के लिये) जन समष्ट को सुख देने के लिए और धम की रक्षा के लिये लोक प्रसिद्ध जल के रूप को धारण किया है ॥६॥ जिसने अपने सूर्य चन्द्र और अग्निमय शरीर से समय की व्यवस्था (सूर्यरूप से) सुधा की कृष्टि (चन्द्ररूप से) जीव की स्थिति (पालन) सृष्टि और विनाश (अग्निरूप से) किया है एव प्रजा को सुख आनन्द और उत्तति दी है ॥७॥ भगवन ! ऐसे आपने वृद्धि गति शक्ति और अक्षर (निय पदार्थ) जीव व्यवस्था तथा अनेक प्रकार के आनन्द की सृष्टि करने के लिये ही वायु इस ईशरूप (शक्तिशाली स्वरूप) को धारण किया है । आप स्वयं इन सब रहस्या को निश्चय ही जानते हैं ॥८॥

भेदेऽविना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यत्र दिशोऽन्तरिक्षम्	।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेष्ट	॥९॥
धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखा	।
लोके च गायत्रा स्मृतयः पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति	॥१०॥
यष्टा ऋतुर्पान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेशः (य) फलदेशकाला	।
त्वमेव शभो परमार्थतत्त्व, ब्रह्मन्ति यन्ताङ्गमय यपुस्ते	॥११॥
कर्ता प्रजाता प्रतिभू प्रदान, सर्वशसाक्षो पुरुष परश्च	।
प्रत्यात्मभूत परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्बिलासं	॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुरुभिः प्रदिष्टो, न नास्ति बुद्ध्यादिभिरप्रधुष्य	।
अजोऽग्रमेव 'शिक्षाश्च वाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्य भगवन्मस्ते	॥१३॥
आत्मैकता स्वप्रकृति कदाचिदेकच्छिव सपदिय 'ममेति	।
पृथक्त्वदेवाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविधमूर्ति	॥१४॥
भावोऽभिवृद्धा च भवे भवे च, स्वकारण कारणमास्थिता च	।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा या, विलक्षणा विद्वकरस्य शक्ति	॥१५॥

है। भेदा के बिना न तो कृति न धर्म न जातीयता न अन्य पदार्थ न दिगाय न अन्तरिक्ष न आकाश न पृथिवी और न भुक्ति या मुक्ति की ही वन्यता सम्भव हो सकती है। अतः हे नाथ! इसलिए यह जो है वह तुम्हारा ही है ॥९॥ आग इस लोक में धर्म की व्यवस्था (स्थापना) करने के लिये ऋक् यजु साम आदि वेद और गायत्र तथा गारुड गायत्र स्मृतियाँ और पुराण आदि शब्दामक रूप धारण करते हैं ॥१०॥ यज्ञवर्ता यज्ञ सभी सामान ऋत्विक् प्रयोग फल देण और बाल एवं परमाद्यतत्त्व आदि सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हारा शरीर यज्ञागमय है ॥११॥ कर्त्ता प्रजाता प्रतिभू (जातिन) प्रदान सबन साक्षी सर्वोपरि पुरुष सब जाया में बस मान रहन वा और परमाद्य रूप आदि सब कुछ तुम्हा हो। इस विषय में अधिक बहने में क्या लाभ ॥१२॥ तुम वेद गारुड और गुरुता में भा अगम हा अर्थात् वेद गारुड और ऋषि मुनियों में भी तुम्हें नहीं जान पाया। बुद्धि आदि की पटुता में तुम परे हो। तुम अत्र (जम रहित) अप्रमथ (बुद्धि से न जानन योग्य) और शिव शक्त के वाच्य (अर्थ) हो। भगवन्! तुम्हा एकमात्र भाव हो। इसलिये सत्यम्भ भगवान् का मरा नमस्कार है ॥१३॥ जब किसी समय अपने में लीन अपनी प्रकृति को यह मरा सत्य मोक्ष हो इस रूप में देखने लगन हो उनी तमय यह प्रकृति तुममें अगम हो जाना है और अप्रमथ (त्रिमूर्ति विषय अतः न किया जा सक) अर्थात् प्रमाद (त्रिमूर्ति प्रमाद न जाना जा सक) तुम विषय में अनेक रूपों में मूर्तिमान् हो जाण हो ॥१४॥ समार न रक्षयिता शत्रु की निय सब मुक्तता से सकन शिवा विभक्त शक्ति है जो अपना स्वय कारण हान दृष्ट भी समार का कारण है

उत्पादन सन्धितिरक्षवृद्धिलया सता यत्र सनातनास्ते	।
एकैव' मूर्तिनं समस्ति किञ्चिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य	॥१६॥
यदर्थमनानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान्	।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री, प्रिया तु सोमस्य' महासुकीर्ति	॥१७॥
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमानुषाच्च	।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति', सोमा सदा सोमसमानरूपा	॥१८॥
शृङ्गादिजीवस्य' चराचरस्य, बुद्ध्यक्षिजेतन्यमन सुखानि	।
यस्या प्रसादात्फलवन्ति नित्य, चागीश्वरी लोकगुरो सुरम्या	॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीन, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता	।
गङ्गाऽयतार विविधैरूपायै, सर्वं जगत्पावयितुं चकार	॥२०॥
श्रुती समालम्ब्य हरप्रभुत्व, विश्वस्य लोक सकलं प्रमाणं	।
कृत्वा च धर्मान्युभुजे च भोगान्विमूर्तिरेषा तु सदाशिवस्य	॥२१॥
कार्यप्रियाकारकसाधनानां, वेदोदितानामथ लौकिकानाम्	।
यत्साध्यमुत्कृष्टतम प्रिय च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुं	॥२२॥

और जो मय (जन्म) मय म अपने भाव मे अभिवृद्ध है ॥१५॥ शरर की सनातन शक्ति से ही विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति सन्धिपति पालन होता है और पुन उसी म लय भी हो जाता है इस प्रकार शरर की एक ही शक्ति के लिये हम सत्तार म कुछ भी अग्राध्य नहीं है। जगत को पैदा करने वाली जिस जननी को सत्तार के जीव अन्न और धन का उपहार देते हैं और जिसकी प्रसन्नता के लिये तपस्या करते हैं वह जयन्त गोमन कीर्ति वाली जगज्जननी शिव की प्रिया है ॥१६ १७॥ इन्द्र भी जिस शिव प्रिया शिवा की रूपा को चाहते ह जिसके नाम लेने से ही कल्याण की प्राप्ति होती है जो हम विश्व मे व्यापक होकर इसको निमल बना देती है यानी तमोगुण का नाश कर देती है वह सोमा (गिवा) सदा सोमम्बरूप (गिक्स्वरूप) ही है ॥१८॥ ब्रह्मा म शरर चराचर जीव की बुद्धि क्षेत्र चैतन्य (गान) मन और मुख जिस लोक-गुरु की स्मरणीय चागीश्वरी की प्रसन्नता और रूपा से पश्यु र होने है उस माता ने अय जन्तुआ की गौन बड़े ब्रह्मा के भी मन को मन्त्रि दखकर विविध रूपामा मे सत्तार का पवित्र करने के लिये गंगा की पृथ्वी पर अवतरित किया ॥१९ २०॥ सम्पूर्ण सत्तार वेदो मे वर्णित गिद महिमा की समग्र कर समस्त प्रमाणा के आधार पर विविध विधि नियमा की कल्पना कर जो विविध भोगा का भोग कर रहा है यह सब सदाशिव शरर की ही विमूर्ति है (उनका ही गमाय है) ॥२१॥ वेदोक्त अथवा लौकिक कार्य प्रिया शरर और साधना का जो परम उत्कृष्ट प्रिय साध्य है वह अनानि समार सष्टा शरर की सिद्धि ही है जर्बान वैदिक लौकिक कार्य-कलाप और प्रयत्ना का एवमात्र उद्देश्य शरर को प्रसन्न

ध्यात्वा वर ब्रह्मा पर प्रधान, यत्सारभूत यदुपासितव्यम्
 यत्प्राप्य मुक्ता न मुक्तम्वन्ति, सद्योगिनो मुक्तिरुपापति स ॥२३॥
 यया यया शम्भुरभेयमायारूपाणि घत्ते जगतो हिताय
 तद्योगयोग्यानि तथैव घत्से, पतिव्रतात्वं त्वयि मातरैवम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुयतस्तस्य पुरस्तादववृषमध्यज । उभया सहित श्रीमान्गणेशादिगणैर्बुत ॥२५॥
 साक्षादागत्य त शम्भु प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत ॥२६॥

शिव उवाच

किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतं शुभं । परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तैर्वाक्यं वाक्यविशारद । हृयवाप्यपरोताङ्गो गौतम पर्यचिन्तयत् ॥२८॥
 अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम् । अहो लोकरुतिविचित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु त ॥२९॥

गौतम उवाच

जटास्थितां गुभां गङ्गा दहि मे निदशाचित । यवि तुष्टोऽस्ति देवेश प्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

करता ही है ॥२२॥ जिस परम ब्रह्म सारभूत प्रधान तत्त्व का योगीजन ध्यान करते हैं जिसकी उपासना करते हैं और जिस तत्त्व का पावन मुक्तजन आवागमन के बंधन से छूट जाते हैं वे अच्छे योगीजन के मुखिनारा उपासित पावन ही है ॥२३॥ जगत् के बन्धन से तब जिस प्रकार मगवान् गङ्गा में जानने योग्य माया के रूप धारण करते हैं उन्हीं अनुरूप ही हे माता शिव ! तब भी उनमें अपनी दक्ष परिमार्ति धारण करती हो ॥२४॥

ब्रह्मा ॥ वहा—इस प्रकार गौतम की स्तुति सुनकर उमा सहित श्रीमाता शिव जी गङ्गा आदि गंगा के साथ लिये हुए मृनि के नामने प्रथम रूप में आय और प्रमदनापूर्वक गौतम से कहने लगे ॥२५॥ २६॥

शिव बोले—ओतम ! तुम्हें क्या दूँ । तुम्हारी भक्ति स्तुति और तुम धन के अनुष्ठान से प्रसन्न हैं । तुम वर मांगो देन-द्वारा वर भी तुम्हें दूंगा । ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—जगन्मूर्ति शिव की वाता वा सुनकर वाणी प्रथम में निपुण गौतम शायन में गङ्गा हो गए और मा में विचार करने लगें कि अहा ! दैव क्या है धर्म और विद्या की पूजा या क्या है अना । गङ्गा की मृनि भी क्या विचित्र है अहा ! याता । आपकी नमस्कार है ॥२८॥ २९॥

गौतम बोले—वा के पूज्य शिव ! देवेश ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपनी जगत् में रहने वाला कल्याणी गंगा की मुझ से दीजिये । हे त्रैलोक्यवाग्नि ! आपकी नमस्कार है ॥३०॥

ईश्वर उवाच

प्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया । आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१॥

गीतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वा च देवी स्तुवन्ति वः । सर्वकामसमूहा स्मुरेतद्धि वरयाम्यहम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेश परितुष्टोऽब्रवीद्वचः । अन्यानपि वरान्भक्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३॥

एवमुक्तस्तु हर्षेण गीतम् प्राह शक्रम् ॥३४॥

गीतम् उवाच

इमा देवी जटासंस्था पावनीं लोकपावनीम् । तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५॥

सर्वासा तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् । ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६॥

स्नानमात्रेण सर्वाणि विलम्बं यास्तु शक्र । चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ॥३७॥

सकान्तो बध्नुती पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् । अस्यास्तु स्मरणादेव सत्पुण्यं जायता हर ॥३८॥

श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च । द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ॥३९॥

शक्र ने कहा—तुम ता तीना लोका के उपकार के लिये यह याचना की है अपने उपकार के लिये भी कुछ भागो इसमें करने की वा२ आवश्यकता नहीं ॥३१॥

गीतम् न कहा—जो भक्त इस स्तोत्र से आपकी और देवी गीरी की स्तुति कर वे भी अपनी सब कामनाओं से परिपूर्ण होकर विभवशाली बन यही वर मैं चाहता हूँ ॥३२॥

ब्रह्मा न कहा—प्रसन्न भगवान् शक्र ने कहा कि ऐसा ही हाँ तुम किन्तु हाकर दूसरे वरों को भी मुझसे मागो । इस प्रकार आवाहन पान पर गीतम् ने प्रसन्न होकर शक्र से कहा—३३ ३४॥

गीतम् न कहा—जगन्नाथ ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली जगत् म रहन वाली अपनी पुनीत प्रिया गंगा को ब्रह्मगिरि पर छाड़ दो ॥३५॥ शक्र ! सब तीर्थों का स्वरूप यह गंगा जहाँ तक सागर में जाती है वहाँ तक अर्थात् जगत् म से सागर तक इसके जल में स्नान करने मात्र से मनुष्या के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन भ्रमन और शरीर से किय गये पाप विनष्ट हो जाय ॥३६॥ अथ पवित्र तीर्थों में चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय अथवा काल में तथा विषुवकाल में सन्नान्ति और वषट्ति शेष में स्नान करने से जो फल (पुण्य) मिलते हैं वे सब पुण्य इसके स्मरण मात्र से मिल जाय ॥३७ ३८॥ इतन्मुख में तपस्या व्रता में यज्ञ द्वापर में यज्ञ और दान तथा कलि युग में केवल दान महत्त्वपूर्ण कहा गया है ॥३९॥ इसी प्रकार युगधर्म तथा सब दण्डधर्म एवं दण्डकाल के संयाग में जो धर्म श्रद्धा माने गये हैं और अन्यत्र स्नान दान तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, हर ! वे सभी पुण्यफल

युगधर्माच्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च । देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥
 यदन्यत्र कृत पुण्य स्नानदानादिसयमे । अस्यास्तु स्मरणादव तत्पुण्य जायता हर ॥४१॥
 यत्र यत्र त्वय याति धावत्सागरगामिनौ । तत्र तत्र त्वया भाव्यमथ चास्तु वरो वर ॥४२॥
 योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सरयया । तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३॥
 तत्पितृणा च तेषा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव । स्नान चाप्यन्तर मृत्योमुक्तिभाजो भवतु मे ॥४४॥
 एकत सवतीर्थानि स्वर्गमत्यरसातले । एषा तम्यो विशिष्टा तु अल शभो नमोऽस्तु त ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

सवगौतमवच श्रुत्वा तयाऽस्त्वित्यश्वीच्छिव । अस्या परतर तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६॥
 सत्य सत्य पुन सत्य वेदे च परिनिष्ठितम् । सर्वेषा गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽऽतरधीमत ॥४७॥
 ततो गत भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूणबल स गौतम
 जटा समावाय सरिद्धरा ता, सुरैर्वृत्तो ब्रह्मगिरि विवश ॥४८॥
 ततस्तु गौतम प्राप्ते जटामावाय नारद । पुष्यवृष्टिरभूत्तत्र समाजम् सुरैश्चरा ॥४९॥
 ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा । जयशब्देन च विप्र पूजयतो मुदाविता ॥५०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसंवाद तीयमाहात्म्य गौतम्यानया नाम
 पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥५५॥
 गौतमीमाहात्म्य षष्ठोऽध्याय

इस (गौतमी) गंगा के स्मरण मात्र से मनुष्या को मिल जाय ॥४०॥ ४१॥ जहाँ जहाँ यह जाय और जब तब सागर में न मिले वहाँ वहाँ आप अवश्य विराजमान रहें वही मरे लिय श्रेष्ठ बरदान होगा । फिर ! दण्ड योत्रन तब के भीतर लपनेवाले या इस सीमा तत्र प्रवां पा जाने वाले महापातकियों स्नान के लिय आप हुए मनुष्या और उनके पिता का भी पाप इस यगा में स्नान करने से नष्ट हो जाय और वे मनुष्य के वात् निश्चित रूप से मुक्ति के अधिकारी हो जाय । स्वर्ग मय और रसातल के सभी तथों में यह अतिशय शाय है और सबमें यह विनिष्ट मानो जाय । गंगा बस यही इच्छा है । अब आपको मेरा नमस्कार है ॥४२॥ ४५॥

ब्रह्मा बोल—गौतम के (उपसक्त) गंगा को सुनकर गङ्गा में बहता एता हा हो गया । तब तीर्थ न तो हुआ और न होगा । यह सत्य है सत्य है पुन सत्य है और वे स प्रमाणों है कि गौतमी सब तीर्थों से विनिष्ट तीर्थ है यह कहकर वे अन्तर्हित हो गये ॥४६॥ ४७॥ तदनन्तर गङ्गापूजित भगवान् गङ्गा के चले जाने पर उनका आज्ञा से पूणमनारण और तपावन्ताली गौतम गिर की जग और उसमें स्थित सरिता गिरामण यगा से लहर देनात्रा के सहित ब्रह्मगिरि पर आप ॥४८॥

गङ्गा जग की लहर जब मुनि गौतम आन आश्रम में आये तब वनों (आश्रम में) वृक्षों की वटि हूँ सब देवा वट उदरियन हो गई । माय-माय ऋषिमाय मायगंगा ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी वहाँ एकत्रि हो गए और वह आनन्द में गौतम की पूजा कर जयजयकार करने लगे ॥४९॥ ५०॥

या ब्रह्मपुराणे य गौतमयन नामा पञ्चसप्ततितमोऽध्याय समाप्त ॥५५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्वर्गादौ पचदशाकृत्या गङ्गाया गमनम्

नारद उवाच

महेन्दरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतम । आगत्य ब्रह्माण पुण्ये तत् किमकरोद्गिरी ॥१॥

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचिं प्रयतमानसः । पूजितो देवगन्धर्वस्तथा गिरिनिवासिभिः ॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटा स्थाप्य स्मरन्नेवं त्रिलोचनम् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तम ॥३॥

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि । क्षमस्व मातः शान्ताऽसि सुखं याहि हितं कुरु ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् । दिव्यरूपधरा देवी दिव्यलङ्गनुलेपना ॥५॥

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् । रसातलं वा गच्छेयं जातस्त्वं सत्यवागसि ॥६॥

अध्याय ७६

१५ रूपवनाकर स्वर्ग आदि में गंगा का गमन

नारद ने पूछा—महेन्दर की जटा से गंगा को ले आने के बाद गौतम ने उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया ॥१॥

ब्रह्मा बोले—पवित्रात्मा, समीप गौतम जब गंगा को लेकर उस पर्वत पर आये तब देव गन्धर्व और पर्वत-निवासिपति उनकी बड़े प्रेम से पूजा की। पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर विनेत्र शंकर का स्मरण करते हुए उन्होंने गंगा से कहा ॥२-३॥

गौतम बोले—त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होन वाली । सब मनोरथों को पूरा करने वाली माता । आप अपराधों को क्षमा कीजिये । आप धान्तिपूर्वक सुख से जायें और हम लोका का कल्याण करें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्राथना सुनकर दिव्य रूप धारण करने वाली और दिव्य माना तथा लेप से विभूषित अगा वाली गंगा ने कहा ॥५॥

गंगा ने कहा—मैं देवलोक जाऊँ या ब्रह्मा के वभण्डलु में अथवा रसातल जाऊँ ? तुम सत्यवादी मानव हो, इसलिये बतलाओ ॥६॥

गौतम उवाच

त्रयाणामुपकाराय लोकानां याचिता मया । दाम्बुना च तथा दत्ता देवि तन्नाम्यया भवत ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमयच श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विर्जेरितम् । त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याय स्वर्गमत्यरसात्तल ॥८॥

स्वर्गे चतुर्था व्यगमत्सप्तथा मर्त्यमण्डले । रसात्तले चतुर्थे च सव पञ्चदशावृत्ति ॥९॥

सर्वं सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनो । सर्वकामप्रदा नित्यं सर्वं वदे प्रगीयते ॥१०॥

मर्त्यमित्येतामेव पश्यन्ति न सल गताम् । मेव स्वर्गगता मर्त्यः पश्यत्यज्ञानयुद्धय ॥११॥

यावत्सामरया देवो तावद्देवमयो स्मृता । उत्सृष्ट्वा गौतमनं च प्रायात्पूर्याणव प्रति ॥१२॥

ततो देवर्षिभिर्जुष्टा मातर जगत शुभाम् । गौतमो मुनिशार्दूल प्रवक्षिणमयाकरोत् ॥१३॥

त्रिलोचन सुरेशान प्रथम पूज्य गौतम । उभयोस्तीरयो स्नान करोमोसि दधे सतिम् ॥१४॥

स्मृतमानस्तदा तत्राऽऽविरासीत्कल्याणव । तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येव शयमब्रवीत् ॥१५॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भवितनमस्त्रिलोचनम् ॥१६॥

गौतम उवाच

देवदेव महेशान तीव्रस्नानाविधौ मम । ब्रूहि सम्पद्मदृशान् लोकानां हितकाम्यया ॥१७॥

गौतम ने कहा—तीना लोका व उपकार के लिये मैंने गयु से प्रायतनपूर्वक आपकी मांगा है । गम्बु ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है इसलिये देवि । इसने विपरीत नहाना होना चाहिए ॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—एसी बात सुन कर गया ने गौतम की बात मान ली और स्वर्ग मय एव रसात्तल में जन्म के लिये अपने को तीन भागों में बाँट कर स्वर्ग में चार रूप से मत्स्यरूप में सात रूप से और रसात्तल में चार रूप से प्रवेश किया । इस प्रकार गया की पंद्रह आवृत्तियाँ हुई ॥८॥ सब जगह सब रूप से सब जाग का दिनाग करनेवाणी तथा सबके मनोरथ को देने वाणी उस गया का बेष न गान किया है ॥९॥ मत्स्यरूपवासी अपने लोह का मय को ही बैलत है रसात्तल वाली गया का नहाना । इसा प्रकार अनाना व्यक्ति स्वयं में गया गया का भी नहीं देखे हैं ॥१०॥ सागर तब की गया अर्थात् जिस स्थान पर गया सागर में मिल जाती है वहाँ ठरा वह इतनी दूरी जाती है ॥११॥ इस प्रकार गौतम से छोड़ी यही गया पूष सागर का ओर चली गई । तत्पश्चात् दक्षिणा द्वारा पूजित जगत् वा कल्याण करने वाली गम्बु गया की मुनिशार्दूल गौतम ने प्रार्थना की ॥१२॥ पूषा रूप में गुरुत्वामी त्रिलोचन की पहले पूजा की ओर फिर मैं दाना तथा पर आरत स्नान करे इस प्रार्थना का निश्चय मन में किया ॥१४॥ तब स्मरण मात्र से कल्याण के सागर गम्बु नहीं प्रगल्भ हो गई । गौतम ने हाथ आँखें मँगा न विनम्र हावर गकर से बड़ा कि जिस विधि से मैं स्नान करूँ हुएपश्चात् आप बनत प ॥१५॥ १६॥

गौतम ने कहा—हे देव के देव । महेशान । छोड़-द्विज की कथना में आज आज मंगीस इस तीव्र स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥

शिव उवाच

महर्षे शृणु त्वयं च विधि गोदावरीभवम् । पूर्वं नान्दीमुख कृत्वा देहनुद्धि विधाय च ॥१८॥
 ग्राह्याणाम्भोजयित्वा च तेषामात्मां प्रगृह्य च । ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापयजिता ॥१९॥
 यस्य हृस्तो च पादौ च मनश्चैव सुसम्यक्तम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च ॥ तीर्थफलमनुते ॥२०॥
 भायर्षुष्टि परित्यज्य स्वयमपरिनिष्ठित । श्रान्तसावाहन कुर्वन्वद्यावधं यथोचितम् ॥२१॥
 अकिञ्चनेभ्य साधुभ्यो दद्यादस्त्राणि कम्बलान् । शृण्वन्तरिकायां विद्यां तथा गङ्गासामुद्रयाम् ॥
 अनेन विधिना गच्छन्नाम्यपतीर्यफल लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥७६॥ ।

गौतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्याय ॥७७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमीमहत्त्ववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रम्यवदन्न इति प्राह गौतम मुनिभिर्वृतम्

॥१॥

शिव ने कहा—महर्षि गौतम ! गोदावरी तीर्थ की सभी विधियाँ श्रुती । पहले नान्दी मुख आदि कर
 भोग्य नि पादौ च मनश्चैव सुसम्यक्तम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च ॥ तीर्थफलमनुते ॥२०॥
 भायर्षुष्टि परित्यज्य स्वयमपरिनिष्ठित । श्रान्तसावाहन कुर्वन्वद्यावधं यथोचितम् ॥२१॥
 अकिञ्चनेभ्य साधुभ्यो दद्यादस्त्राणि कम्बलान् । शृण्वन्तरिकायां विद्यां तथा गङ्गासामुद्रयाम् ॥
 अनेन विधिना गच्छन्नाम्यपतीर्यफल लभेत् ॥२२॥

श्रीब्रह्मपुराण म तीर्थमाहात्म्य प्रकरण मे षट्सप्ततमो अध्याय समाप्तः ॥७६॥

अध्याय ७७

‘गौतमी वा महत्त्व-वर्णनं

ब्रह्मा बोले—इसने ब्राह्म ऋषियो से चिरे हुए गौतम ने शिव ने पुन यह कहा ॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सभविष्यन्ति गौतम । सर्वत्राह सनिहित सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सगरसगमे । एतेषु पुण्यदा पुतां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥
नमदा तु सरिच्छूष्ठा मर्वतेऽमरकण्टके । यमुना सगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥
कृष्णा भीमरथी चैव सुङ्गभद्रा तु नारद । तिसृणा सगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम् ॥५॥
पयोष्णी सगता यत्र तत्रत्या तच्च मुक्तिदम् । इय तु गौतमी वत्स यत्र व्वापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥
सर्वेषां सर्वदा तृणा स्नानान्मुक्ति प्रदास्यति । किञ्चित्काले पुण्यतम किञ्चित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥
सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नाम सशय । तिल कोट्योऽर्धकोटी च योजनाना शतद्वये ॥८॥
तीर्थानि मुनिशार्ङ्गल सभविष्यन्ति गौतम । इय माहेन्दुरी भङ्गा गौतमी वैष्णवीति च ॥९॥
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामवायिनी । ब्रह्मतेज समानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥
स्मरणादेव पापौघहर्त्री मम सदा प्रिया । पञ्चानामपि भूतानामाप श्रेष्ठद्वयमागता ॥११॥
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादाप परा स्मृता । तासां भागीरथी श्रेष्ठा तान्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

शिव बोले—गौतम । दो हाथ परिमित स्थानों पर तीर्थ रहते हैं और सबके मनोरथ को पूरा करने वाला मैं सब स्थानों पर सबदा विद्यमान रहता हूँ ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिद्वार प्रयाग तथा गंगासागर सगम में मुक्तिदायिनी भागीरथी अधिक पुण्य देनेवाली है ॥३॥ नदियाँ में श्रष्ट नमदा अमरकण्टक पर्वत पर यमुना सगम क्षेत्र में और सरस्वती प्रभास क्षेत्र में अधिक पुण्यप्रदान करती है ॥४॥ नारद । कृष्णा भीमरथी सुगन्धा ये तीनों नदियाँ जहाँ मिलती हैं वह तीर्थ मनुष्यों के लिये मोक्षदायक है ॥५॥ पयोष्णी नदी जहाँ सगम बनाती है वह स्थान और जो नदी उससे मिलती है दोनों मोक्षदायक हैं । वत्स । इस गौतमी तथा माहेन्द्रवरी की स्नान किया जाय यह मेरी आज्ञा से सब लोगों को सर्वत्र मोक्ष प्रदान करेगी । कुछ तीर्थ किसी विशेष अवसर पर देवताओं के आचमन पर अत्यन्त पुण्यदायक होते हैं परन्तु गौतमी सब के लिये सब काल में पुण्यप्रदान तीर्थ है इसमें कुछ भी संदेह नहीं । तीन करोड़ पचास लाख दो सौ योजन परिमित क्षेत्र में हे मुनिशार्ङ्गल गौतम । बहुत से तीर्थ हैं और हमें परन्तु ये माहेन्द्रवरी तथा गौतमी वैष्णवी ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामवायिनी आदि नदियाँ ब्रह्म तेज ॥ पृथ्वी पर लाई गयी हैं इसलिये सब पापों को नष्ट करने वाली हैं । परन्तु मेरी प्रिया गौतमी स्मरण मात्र से ही पाप-समूह का नाश करने वाली है । पापों महाभूतों में जल श्रेष्ठ है । उसमें भी तीर्थभूत जल अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है । उन तीर्थों में भी भागीरथी परमश्रेष्ठ मानी गई है परन्तु भागीरथी से भी गौतमी श्रेष्ठतर मानी गई है । मुने ! यद्यपि स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् । स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने । साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥
एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका भता । तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगराख्यानकथनम्

नारद उवाच

द्विविधा संघ गदिता एकाऽपि सुरसत्तम । एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहुतो 'यत ॥१॥
क्षत्रियेणापरोऽप्यशो जटास्वेव व्यवस्थितः । भवस्य देवदेवस्य आहुतस्तद्वदस्व मे ॥२॥

समी तीर्थं यनोरपपूर्णं करने वाले हैं किन्तु गौतमी जटासहित वहाँ लाई गई है अतः इससे अधिक शुभदायक अन्य तीर्थ नहीं है ॥६१॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र ! य सारी बात स्वयं हर ने प्रसन्न होकर गौतम से कही थी जिन्हें मैंने तुमसे कह दिया । इस प्रकार वह गौतमी गंगा सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई । इसके स्वरूप का परिचय मैंने दे ही दिया अब अधिक स्पष्ट सुनने की इच्छा है ? ॥६४६५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ माहात्म्य प्रसंग मे सप्तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अध्याय ७८

सगर का आर्यान्

नारद बोले—सुरश्रेष्ठ ! आपने उस एक ही गंगा के दो भेद कहे हैं उनमें से एक अथ जिस प्रकार ब्राह्मण द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया अब दूसरा अथ जो कि देवदेव त्रिव की जटा में ही रह गया था, वह शत्रिय मणीरथ द्वारा जिस प्रकार लाया गया उस भी कहने की इच्छा कर ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसम्भव । पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽमीदितधार्मिकः ॥३॥
यज्वा दानपरो नित्य धर्माचारविचारवान् । तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्पतिभक्तिपरायणम् ॥४॥
तस्य च सततिर्नाभूदिति चितापरोऽभवत् । यस्मिन् गृहमाहूय संपूज्य विधिवत्तत् ॥५॥
उवाच यचन राजा सतत कारणं प्रति । इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत् ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

सप्तलोकं सदा राजन्पिपूजापरो भव

॥७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्र यथास्थानं जगाम ह । एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागत्यपोनिधिः ॥८॥
तस्यैव पूजनं चक्रे ॥ सत्पुष्टोऽब्रवीद्वचः । परं ब्रूहि महाभागत्युक्तं पुत्रासं चाब्रूणोत् ॥९॥
स मुनिः प्राह राजानमकस्म्य वक्ष्यधाराकः । पुत्रो भूयात्तयाऽयस्मा यस्मिन्साहस्रकं सुतः ॥१०॥
परं इत्वा मुनीं याते पुत्रा जाता सहस्रशः । स यथासुखं ह्यमघासुदक्षिणान् ॥११॥
एकस्मिन् हयमधः च दीक्षितो विधिवन्नृपः । पुत्रान्वयोजयद्राजा सप्तया हयरक्षणम् ॥१२॥
वचिर्वन्तरमासाद्य हयं जह्म शतक्रतुः । मार्गमाणादिव तं पुत्रं नवापश्य हयं तदा ॥१३॥

ब्रह्मा न कह — प्राचीन काठ में वक्त्रन बग की स्त्राकु कुल-परम्परा में सगर नाम का एक अच्युत धार्मिक राजा हुआ । वह धर्मानुरक्त आचार और विचार का पालन करता था और नियमवान् तथा दान प्रिया करता था । उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं । सन्तानहीन होने का कारण वह सबका संतान प्रियता में ही गीत रहता था । एक दिन उमने घर बगिच में पर बलाकर उमरी विविध नृपुत्रों की । तन्नागर नग राजान होन का कारण पूछा राजा का प्रश्न को सुनकर कुछ समय ध्यान करके वसिष्ठ वाच ॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन् तुम सबका पत्नी मन्त्रि अधिपूजा प्रिया करा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—जना बहुकर मनि वसिष्ठ अपने स्थान को चला । एक दिन का राजपि ने पर एक तपस्वी आया । राजा ने उस अधिपि की भक्तिपूर्वक पूजा की । उमरी पूजा में प्रयत्न हारर अधिपि ने कहा—
‘महामाग ! वर मांगो । तब राजा ने अधिपि से पुत्रोत्पत्ति का वर मांगा ।

मनि ने राजा से कहा—तुम्हारी एक स्त्री में का वचन काय याम्बा पत्र होया । दूसरी में गाठ हारर लड़के उत्पन्न हुए ॥१०॥ इस प्रकार वर देकर मनि चला गया । तब राजा का वचन काय उल्लस हय । राजा ने दत्त से अवमेष यत्र विजे दिनभ व्याख्याना को मरपुर मणिना म क ॥११॥ एक अवमेष यत्र म जत्र राजा ने विधिपूर्वक दीक्षा लगी तब अपने पुत्रों को मना ने साथ यन्त्रावरी रक्षा का नियम दिया ॥१२॥ किन्तु धनत्रु दत्र ने उस घोड़े का हरण कर लिया । सगर-पुत्र पांड को दूत कर हार मर परन्तु वहा पडा नहीं

सहस्राणां पुत्र्या जटिर्नानामुद्विषारदा । तेषु पश्यत्सु रक्षासि पुत्रेषु सगरस्य हि ॥१४॥
 प्रोक्षित तद्वय नीत्वा ते रसातलभागम् । राक्षसान्मायया युवताश्चैवापश्यन्त सागरा ॥१५॥
 न दृष्ट्वा ते ह्य पुत्रा सगरस्य बलीयस । इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्हुय तदा ॥१६॥
 देवलोक तदा जग्मु पर्वताश्च सरासि च । वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्हुय तदा ॥१७॥
 कृतस्वस्त्ययनो राजा नृविग्निं हृतमङ्गलम् । अदृष्ट्वा तु पशुरस्य राजा चिन्तामुपेयिवान् ॥१८॥
 'अदन्त सागरा रथे' देवलोकमुपागमन् । ह्य तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न ह्योऽभवत् ॥१९॥
 ततो महौ समाजग्मु पर्वताश्च वानि च । तत्रापि च ह्य नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजा ॥२०॥
 एतस्मिन्तन्तरे यन् दैवो यागभवत्तदा । रसातले, ह्यो बद्ध आस्ते नापत्र सागरा ॥२१॥
 इति श्रुत्वा ततो घाव्य गन्तुवामा रसातलम् । अल्लनमृषिषा सवा परित सागरास्तत ॥२२॥
 ते क्षुपाता मूढ दुष्का भद्रमन्तस्त्वहंविशम् । न्यल्लनश्चरपि जग्मुश्च सत्वरान्ते रसातलम् ॥२३॥
 तानापतानभूपसुतान्सागरावतिन कृतीन् । श्रुत्वा रक्षासि सनस्ताः, व्यगमकपिलास्तिकम् ॥२४॥
 कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तान् दाते रसातले । पुरा च साधित तेन देवाना कार्यमुत्तमम् ॥२५॥
 विनिव्रेण तत धान्त सिद्ध कार्ये सुराग्रति । अन्नवोत्कपिल श्रीमानिन्द्रास्थान प्रयच्छथ (स) ॥२६॥
 रसातल बहुस्तरम् पुनराह सुरामुनि । यो मामुपापयेन्मन्दो भस्मो भूयाच्च तत्परम् ॥२७॥

चला ॥१३॥ मित्र मित्र प्रसार वा युद्धविद्या म कुशल उन साठ हजार सगर-पुत्रा के देखते रहने पर मा (इन्द्र के अनुयायी) राक्षस गगन म यागमिषिक्त अन्न का स्तर रसातल चल गये । किन्तु सगरपुत्रा ने मायावी राजसा का महा देखा ॥१४ १५॥ राजा सगर व के बलवान् पुत्र अन्न को न पाकर इधर-उधर दौड़त हुए देवलोक म गये पर्वत सरोवर वना उद्यान डाल फिर मा घोडा का कुछ पता न चला ॥१६ १७॥ इधर राजा न स्वस्त्ययन श्रिया की भीरु श्रुतिवा न भग श्रिया की परतु उमरगाव को जाय त दत्तवर राजा अधिक चिन्तित हो गया ॥१८॥ देवराज म ब्रह्मन क पन्थाव सगर-पुत्रा पर आय पर्वता भीर वना को छान डाला किन्तु माडा वहा नी निखाई न पडा ॥१९ २०॥ रथी अन्न यह आकाशवाणी हुई कि सगर-कुमार । रसातल म घोडा बंधा हुआ है दूसरी जगह नहा है ॥२१॥ एसा आकाशवाणी सुन कर व सब रसातल जान के लिय चारा आर स पृथ्वी का सादन गग ॥२२॥ मूर त मकुल व लोग सूची मिट्टी सन्ध्यावर रात्रिपरिधम कर पृथ्वी खोद कर रसातल म पहुच गये ॥२३॥ उन बनी बम एउ वाय-कुशल सगर उपाग का अगमन सुनवर रात्रि म भयवस्त हो कपिल मुनि व समाप चल गये ॥२४॥ महाप्राणी कपिल मुनि त उमर मय रसातल म ही साग हुये थ । बहुत पहले उन्हाने देवताओं का एक उत्तम वाय सिद्ध किया थ ॥२५॥ रात नि जा कर वाय वरत स थक हुए कपिल मुनि न देवताओं स कहा कि मुझ साने व गिये स्थान दो ॥२६॥ तत्र देवताओं न उह मान क लिए सारातल राज दे दिया कपिलमुनि न देवा से कहा— जा बाद मन्मथि मुच जगाय ॥२७॥ वह साध ही मरम हा जाय एसा होने पर ही मैं रसातल म जावर सो

तत इये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि । तथेत्युक्त सुरगणैस्तन शोते रसातले ॥२८॥
 तस्य प्रभाव ते ज्ञात्वा राक्षसा मायया युता । सागराणा च सर्वेषा बधोपाय प्रचक्रिरे ॥२९॥
 बिना युद्धेन ते भीता राक्षसा सत्वरस्तदा । आगत्य यत्र स मुनि कपिल कोपनो महान् ॥३०॥
 शिरोदेशे ह्य ते वै बद्ध्वाऽथ त्वरयाऽन्विता । दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्त किं भवेदिति ॥३१॥
 ततस्तु सागरा सर्वे निर्विघ्नन्तो रसातलम् । ददुशुस्त ह्य बद्ध क्षयान पुरय तथा ॥३२॥
 त मेनिरे च हर्तारं क्रतुहन्तारमेव च । एनं हत्वा महापाप नयामोऽज्व नृपान्तिकम् ॥३३॥
 कैचिद्वृत्त पशु बद्ध नयामोऽनेन किं फलम् । तदाऽऽहुरपरे शूरा राजानं शासका वयम् ॥३४॥
 उत्थाप्यैनं महापाप हन्म क्षात्रेण धर्षसा । ते त जघ्नुर्मनि पार्दुर्बुवन्तो निष्ठुराणि च ॥३५॥
 तत कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तम । सागरानोक्षयामास ता कोपाद्भस्मसात्करोत् ॥३६॥
 जज्वलुस्ते ततस्तत्र सागरा सर्वे एव हि । तत्तु सर्वं न जानाति बोक्षित सगरो नृप ॥३७॥
 नारद कथयामास सगराय महात्मने । कपिलस्य तु सत्यान ह्यस्यापि तु सत्यिति ॥३८॥
 राक्षसानां तु विकृति सागराणा च नाशनम् । ततश्चिन्तापरो राजा कर्तव्य भावबुध्यत ॥३९॥
 अपरोऽपि सुतश्चाऽऽसीदसमञ्जसा इति श्रुत । स तु बालास्तथा पौरान्मोक्षार्थं क्षिपति चाम्भसि ॥४०॥
 सगरोऽप्ययं विज्ञप्त पौरं समिलितंस्तदा । दुर्गमं तस्य ॥ ज्ञात्वा तत क्रुद्धोऽब्रवीन्नृप ॥४१॥

सकता हूँ अज्यया मुच नीद नहीं आयेगी । देवताओं ने उनकी इच्छा का अनुरूप घर दे दिया । इसीलिये वे वहाँ रसातल में सोये हुए थे ॥२८॥ मायावी राक्षसा ने मुनि के उस प्रभाव को जानकर (मायामुक्ता) उन सगर-पुत्रों के बंध का उपाय किया ॥२९॥ अजमीत राक्षस बिना युद्ध किये ही सीधे वहाँ आये जहाँ महाशोपी कपिलमुनि थे और उनके गिर की ओर घोड़ को बाँध कर तुरत वहाँ से हट गये । दूर जाकर धुपचाप छिपकर यह देखने लगे कि क्या परिणाम होता है ॥३०-३१॥ इसके अनन्तर वे सब सगरपुत्र रसातल में पहुँचे । वहाँ उन लोगों ने बँधे हुये घोड़ और साँधे हुये एक पुरष को देखा ॥३२॥ उस पुरष को ही उन सबों ने घाड़ का चोर और यन्त्र-विध्वंसक समझा । उनमें से कुछ लोगों ने कहा कि इस पापी को मारकर अदब को राजा में निष्कल चल ॥३३॥ किसी ने कहा कि बँधे हुये घोड़ को ही ले चलना चाहिये इस पुरष को मारने से क्या काम ? यह गुनकर दूसरे कुछ गूर पुरषों ने कहा कि हम कामका राजा हैं ॥३४॥ इस मन्त्रपापी को उठाकर धाक तेज से इसको मारो । ऐसा कहकर मुनि को अनुचित बातें कहते हुये वँधों में मारने लगे ॥३५॥ इस पर महात्मनि कपिल अत्यन्त क्रोध से उन सगर-पुत्रों को देखा और देख ही थे सब मुनि के क्रोधान्न में मग्न हो गए ॥३६॥ इस दुष्टता को मन में दोषित नृप सगर नहीं जानते थे ॥३७॥ नारद ने आकर उनमें कपिल का रसान्तक भ रत्ना और वहाँ घोड़े का बाँधा जाना रागमा का बगट ध्यबहार तथा उनके पुत्रों का सर्वनाश आदि सारा बात बता दी ॥३८॥ इन बातों को सुनकर राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये अब क्या करना चाहिये यह भा न भाव मग्न ॥३९॥ राजा का दूसरा पुत्र एक असमजस नाम का था । यह अपनी दुष्टता और अमानना के कारण नगर में बाग्यवा को जल में पक देता था ॥४०॥ नगरवास्निया ने मित्रहर राजा से यह बात बताई । उसने इस अत्याचार को जानकर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और मंत्रिया से बोला कि असमजस शत्रिय-धमभष्ट और बाग्यवा को मारने वाला है । इसलिये यह दण्ड से

स्वानमात्यास्तदा राजा देशत्याग करोत्वयम् । असमञ्जा क्षत्रधर्मत्यागो धै बालघातक ॥४२॥
 सगरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विताः । तत्पुत्रजन्मपते पुत्रमसमञ्जा गतो यनम् ॥४३॥
 सागरा बहुशापेन नष्टा सर्वे रसातले । एषोऽपि च वन प्राप्त इदानीं का गतिर्मम ॥४४॥
 अनुमानिति विख्यात पुत्रस्तस्यासमञ्जसः । आनाय्य बालक राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥४५॥
 कपिल च समाराध्य अनुमानपि बालकः । समराय ह्य प्रादात्तत् पूर्णोऽभवत्कृतु ॥४६॥
 तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलोप इति धार्मिकः । तस्यापि पुत्रो मतिमान्भगीरथ इति श्रुतः ॥४७॥
 पितामहाना सर्वेषां गतिं धृत्वा सुदुःखितः । सगर नृपशार्दूल पप्रच्छ विनयान्वितः ॥४८॥
 सागराणां तु सर्वेषां निष्कृतिस्तु कथं भवेत् । भगीरथ नृप प्राह कपिलो वेंसि पुत्रक ॥४९॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालः प्रायाद्रसातलम् । कपिल च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥५०॥
 स मुनिस्तु चिर ध्यात्वा तपसाऽऽराध्य शकरम् । जटाजलेन स्वपितृनाम्नारप्य नृपसत्तम ॥५१॥
 ततः कृतार्थो भविता त्वं च ते पितरस्तथा । तथा करोमीति मुनि प्रथम्य पुनरब्रवीत् ॥५२॥
 क्व गच्छेऽहं मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं चापि तद्वद ॥५३॥

कपिल उवाच

कंसात् तं नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम् । तपः कुटं यथादासितं ततश्चेप्सितमाप्स्यसि ॥५४॥

निबाल निया जाय ॥४१॥ ४२॥ राजा सगर की आज्ञा सुनकर मंत्रिया न सीध ही राजपुत्र को देग न निबाल
 दिया । वत वन का क्या गया ॥४३॥ राजा सावन लग कि मर साठ हजार पुत्र रसातल में मुनि वाप स मग्न हो
 गये और एक जा था वह भी वन को क्या गया अब मर गिय बीन-सा माग है ॥४४॥ अनुमान नाम स प्रसिद्ध अम
 मग्न का एक पुत्र था । राजा न उस बाग्य का सुनवा कर यह वाक्यमार उमरो सोय निया ॥४५॥ बाग्य भग
 मान न कपिल मुनि का प्रसन्न कर पाडा लाकर मगर का द निया । तन्मन्त्र बहुत यम ममान हुआ ॥४६॥ अम
 मान का पुत्र गिरीप तत्रया तथा धार्मिक था । उमर भगीरथ नाम का बुद्धिमान् पुत्र हुआ ॥४७॥ अतः निनाम
 की मनि सुनकर अमन हुआ भी भगीरथ न होय आइकर विनयपूर्वक नृप-सादल मगर स पूछा ॥४८॥ मर निनामडा
 का उदार भग हुआ । राजा न भगीरथ स क्या—पुत्रक । इसकी कपिल मुनि हो जानत है ॥४९॥ यम सुनकर
 बाग्य भगीरथ कपिलमुनि का वाग्य रसातल गाय का गया । मुनि को मन्त्रकार कर मारी क्या उनम का सी
 ॥ ५०॥ तब मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ । निबाल तब ध्यानावस्थित होकर अपना नमस्कार स गहर का आराधना
 करने प्रसन्न करा । उनही अम स मन्त्र गला व अम स अतः पितरा को अमिष्टित करो ॥५१॥ तम स्वयं कृतार्थ
 (मग्न) होय और अतः पितरा को भी कृतार्थ कर मगाय । मैं आइर आयेगानुमार वाप करेगः । यह वचन
 भगीरथ न मुनि को प्रसन्न कर कह कहा—मुनिश्रेष्ठ । मैं वहीं जाऊ दिन शरार मापना करे हुंया यह मा
 बलदाय ॥५२॥ ५३॥

कपिल ने कहा—नरश्रेष्ठ । कंसात् पर जाकर महेश्वर का स्तुति और यथादासित तपसा करो । तब

तुम अतः अमोघ का प्रसन्न कर मगोय ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वपाश्रमम् । कैलासं स शुचिर्भूत्वा बालो बालश्रियान्वितः ॥
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच ॥ भगीरथः ॥ ॥५९॥

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो ॥५६॥
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेश, सोमं नमस्यामि सुरादिपूजयम् ॥५७॥
उत्पादितो यैरभिर्वाद्यतश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः । वरेण ष्ठन्दयानो^१ वै भगीरथमुवाच ॥५९॥

शिव उवाच

यज्ञ साध्यं सुरगणैर्देवं तप्ते भया ब्रुवन् । वरस्य निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बालक मुनि की वाता को सुनकर उन्हे प्रणाम करके कैलाश पर्वत पर चला गया । वहाँ पवित्र होकर अपने बाल-मुलम व्यग्रहार के साथ तपस्या का दूढ़ निश्चय करके शंकर की स्तुति करने लगा ॥२५॥

भगीरथ ने कहा—बालचन्द्र को धारण करने वाले प्रभो ! मैं बाल हूँ, बालबुद्धि हूँ, कुछ भी नहीं जानता हूँ । इतलिय प्रभो ! मुझ बालक पर प्रसन्न हो जाओ ॥५६॥ देवेश, जो किसी समय मेरा मन वाणी और नर्तन से सदा उपहार और हित निय करते थे, उन्हीं पूर्वजा के उद्धार के लिये मैं देवों के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥ जिन महापुरुषों का इन्द्रा मैं उत्पन्न किया गया हूँ, पाल-पौंस कर बढ़ा बनाया गया हूँ, जिनका मैं सपत्नी और सधर्मी हूँ, उनकी इष्ट सिद्धि (उद्धार) शिवजी करें, मैं बालचन्द्र को धारण करनेवाले शंकर का नित्य प्रणाम करता हूँ ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगीरथ प्रार्थना कर ही रहे थे कि शंकर जी ने वरदान देने की इच्छा से भगीरथ से कहा ॥५९॥

शिव बोले—महामति भगीरथ ! जो देवा के लिय दुष्प्राप्य है उस वर को जो तुम प्राप्त कर सकते हो । इसलिय निर्भीक होकर कहो ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येवं हृष्टः प्रोवाच शंकरम्

॥६१॥

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सखिद्वयम् । तामेव देहि देवेश सर्वमाप्त ततो भवेत् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि ब्रिहस्पत्य भगीरथमुवाच ह

॥६३॥

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुत्र पुतस्तां स्तुहि सुव्रत

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देवचनं धृत्वा तदयं तु तपो महत् । स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानसः ॥६५॥

तस्या अपि प्रसादं च प्राप्य बालोऽन्यबालवत् । गङ्गा महेश्वरात्प्राप्तामावायागाद्व्रसातलम् ॥६६॥

म्यवेदयत्स मुनये कपिलाय महात्मने । ययोदितप्रकारेण गङ्गा सस्याप्य यत्नतः ॥६७॥

प्रदक्षिणमयाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् । ॥६८॥

भगीरथ उवाच

वेदि मे पितरः शापात्कपिलस्य महामुनेः । प्राप्तास्ते विगतिं मातस्तस्मात्तान्पातुमर्हसि ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—भगीरथ ने शंकर को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥६१॥

भगीरथ ने कहा—मेरे पितरों के उद्धार के लिये अपनी जटा में रखी हुई उत्तम सरिता (गंगा) को प्रदान करें। इस दान से ही मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे ॥६२॥

ब्रह्मा बोले—इसके बाद शंकर ने हँसकर भगीरथ से कहा ॥६३॥

शिव बोले—पुत्र ! मैंने गंगा को तुम्हें दे दिया। सुव्रत ! अब उसकी स्तुति करें ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् शंकर की बातों को सुनकर भगीरथ ने गंगा को प्रसन्न करने के लिये एकाग्र मन से महान् तपस्या और गंगा की स्तुति की। बालक होते हुए भी भगीरथ ने अवलोक के समान गंगा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गई गंगा को लेकर रसातल चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गंगा की स्थापना की। तदनन्तर उनकी परिचया कर बड़ा-बलि होकर कहा ॥६५-६८॥

भगीरथ ने कहा—देवि ! मेरे पितर महामुनि कपिल ने शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं। उस पप से हे माता ! तुम्ही उन लोगों का उद्धार कर सकती हो ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका । लोकानामुकारार्थं पितृणा पावनाय च ॥७०॥
 अगस्त्यपीतस्वाम्भोधे पूरणाय विशेषतः । स्मरणादेव पापाना नाशाय सुरनिम्नगा ॥७१॥
 भगीरथोदित चक्रे रसातलतले स्थितान् । भस्मीभूताभूषसुतान्सागराश्च विशेषतः ॥७२॥
 विनिर्दग्धान्थाऽऽप्लाव्य खातपूरमथाकरोत् । ततो मेघ समाप्लाव्य स्थिता बालोऽश्वीनृप ॥७३॥
 कर्नभूमौ त्वया भाव्य तथेत्यागाद्विमालयम् । हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भूरात धर्ममभ्यगात् ॥७४॥
 संन्मध्यत पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णव प्रति । एवमेवाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने ॥७५॥
 माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी । भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया ॥७६॥
 महेश्वरजटाशरि एव द्वैविध्यमागतम् । विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते ॥
 उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुञ्जपिसवावे भागीरथ्यवतरण नामाष्ट-
 सप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—सबका उपकार करने वाली देवनदी गया ने ऐसा ही हो कह यह कहकर लोक-वत्स्याण के लिये पितरा को पुनीत करन के लिये विशेषरूप से अगस्त्य द्वारा पान किये गये समुद्र को भर देने के लिये, और स्मरणमात्र से पापा का नाश करने के लिये भगीरथ के कथनानुसार कार्य किया। पहले तो उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रा को जल से भलीभाँति अभिषिक्त किया तदनन्तर उनसे खादे गये गङ्गा को जल से भर दिया। फिर वहाँ से मरु पर्वत पर आकर विराजमान हुआ गया। यह देखकर बान्क राजा भगीरथ ने कहा आपका भक्तभूमि (भाग्यभूमि) पर चन्द्रा चाहिये। इसको भी स्वीकार कर यह हिमालय पर्वत पर चली गई। उस हिमालय पर्वत से मुख्य भूमि भारतवर्ष में आ गई। उससे मध्य में होकर वह मुख्य नदी पूर्वभाग (बंगाल) की ओर चली गई (और उसमें मिल गई)। महामुनि नारद । इस प्रकार गौतमी क्षत्रिय द्वारा लब्ध हुई गया वह विषय में गुना दिया। वही माहेश्वरी वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी है। उगी को भगीरथी देवनदी और हिमालय के शिखर पर रहने वाली (हिमालय-शिखराश्रया) कहते हैं। इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह शुभ जल दो भागों में विभक्त हो गया। विन्ध्य के दक्षिण में वह गया गौतमी नाम से वही जानी है और विन्ध्य के उत्तर प्रदेश की गया में भगीरथी इस नाम से पुकारी जानी है ॥७०-७३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भागीरथी-अवतरण नामक अष्टहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

अयोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमापसे कथा शृण्वत्त्वपेरिता । पुण्यतीर्थफलं श्रोतुं प्रवृत्तं मम मानसम् ॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीतां गङ्गां मे प्रथमं वद । पुण्यतीर्थफलं पुण्यं सेतिहासं यथाक्रमम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पुण्यभावः फलमाहात्म्यमेव च । सर्वं ध्वस्तु न दाबनोमि न च त्वं श्रवणे क्षम ॥३॥
तथाऽपि किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः । यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च ॥४॥
तानि वक्ष्यामि सन्नेषाग्रमस्मृत्वा त्रिलोचनम् । यत्रासी भगवानासीत्प्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने ॥५॥
त्र्यम्बकं नाम तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । वाराहमपरं तीर्थं त्रिपुलोकैषु विधृतम् ॥६॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि माम् विष्णुययाऽभवत् । पुरा ददाम्यराभूय यज्ञभादाय राक्षस ॥७॥
रसातलमनुप्राप्तं सिन्धुसेन इति श्रुतं । यज्ञं तलमनुप्राप्तो निर्यज्ञा ह्यभवत्तरो ॥८॥
नाय लोकौऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतीत्वरः । सुरास्तमेव विविशू रसातलमनुद्विष्टम् ॥९॥

नाशक्तुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमाः। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्ययेदयन् ॥१०॥
 राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञध्वंशमशेषतः। ततः प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थितः ॥११॥
 शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मलं पुण्यं हत्वा राक्षसभृगवान् ॥१२॥
 स्व प्रयान्तु सुरा सर्वे ध्येतु वो मानसो ज्वरः। येन गङ्गा तलं प्राप्ता पथा तेनैव चक्रधृक् ॥१३॥
 जगाम तरसा पुत्र भुव भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपुः श्रीभाग्यसातलनिवासिनः ॥१४॥
 राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे धृत्वा महाध्वरम्। वाराहहृषी भगवान्मखमादाय यज्ञभृक् ॥१५॥
 येन प्राप तलं विष्णु पथा तेनैव शत्रुजित्। मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात् ॥१६॥
 तत्र ब्रह्मगिरौ देवा प्रतीक्षा चक्रिरे हरेः। पयस्तस्माद्दिनि सृत्य गङ्गातलवर्णमभ्यगात् ॥१७॥
 प्राक्षालयच्च स्थाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाग्निसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्ततः ॥१८॥
 मुखे न्यस्य महायज्ञं देवानां पुरतो हरिः। दत्तवास्त्रिवशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽभ्यजायत ॥१९॥
 ततः प्रभृति यज्ञाङ्गं प्रधानं सुख उच्यते। वाराहरूपमभवदेवं च कारणान्तरात् ॥२०॥
 तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं वाराहं सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वकृतफलप्रदम् ॥२१॥
 तत्र स्थितोऽपि यः कश्चित्पितृन्स्मरति पुण्यकृत्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥२२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥
 गौतमीमाहात्म्ये व्रतमोऽध्यायः ॥१०॥

नेतृत्व में जाने वाले वे देव उसको जीत न सके, इसलिये पुराणपुरुष विष्णु के पास जाकर उन्होंने राक्षस का वह कुटुम्ब और यज्ञलोप होने का समाचार पूर्णरूप से निवेदन किया ॥१०॥ सुनकर भगवान् ने कहा कि मैं वराह शरीर धारण कर हृषी में शङ्ख चक्र गदा लेकर रसातल को जाऊँगा और वहाँ के बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर पुनीत यज्ञ को ले आऊँगा ॥११॥ आप सब देवगण स्वर्गलोक को जाइये और मानसिक चिन्ता को छोड़ दीजिये। पुत्र! जिस मार्ग से गया रसातल लोक को गयी थी उसी मार्ग से वह चक्रधारी भगवान् पृथ्वी को फाड़ कर चले गये ॥१२॥ वह वराहरूपधारी श्रीमान् रसातल निवासी राक्षसों एवं दानवों को मारकर, महायज्ञ को मुख पर रख लिया। पुनः वराहरूपधारी यज्ञ के भोक्ता तथा शत्रुओं के विजेता विष्णु जिस पथ से गये थे उसी पथ से महायज्ञ को मुख पर रखे हुये रसातल से निकल आये ॥१४॥ द्यवर ब्रह्मगिरि पर देवता भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद! उस मार्ग से निकल कर विष्णु गया की घाटी में पहुँचे ॥१७॥ वहाँ गया-जल से रक्त लगे अपने अंगा को धोया। इसलिये वहाँ का वह कुण्ड वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ देव शिरोमणि भगवान् हरि ने मुख पर रखे हुए महायज्ञ को देवताओं के सामने रख दिया। इसलिये मुख से यज्ञ की पुनः उत्पत्ति हुई ॥१९॥ तभी से सुख प्रधान यज्ञाग कहा जाता है, इस प्रकार कारणान्तर से वाराह रूप हुआ ॥२०॥ इस कारण वाराह सब कामा को देने वाला तीर्थ है। वहाँ का स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञों के फल देने वाला है ॥२१॥ जो कोई पुण्यकर्मा वहाँ स्थित होकर भी अपने पितरों का स्मरण करता है उसके वे पितर सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में चले जाते हैं ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वराहतीर्थवर्णन नामक उन्नासीवाँ अध्याय सम्पन्न ॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

कपोततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमम् । तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
 कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम् । कुशोनाऽऽवर्तितं यत्र गीतमेनं माहात्मना ॥२॥
 कुशोनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः । तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तृप्तिदायकम् ॥३॥
 नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निस्तुता नीलपर्वतात् । तत्र स्नानादिं यकिंचित्करोति प्रयतो नरः ॥४॥
 सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणां तृप्तिदायकम् । विभुतं त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥
 तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने द्रुणु महाफलम् । सत्र ब्रह्मगिरो कश्चिद्व्याध परमदारुणः ॥६॥
 हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्पतौन्मोषक्षिणो मृगान् । एवभूतं स पापात्मा बोधनोऽनुसभाषणः ॥७॥
 भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः । दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८॥
 ह्रस्वोवरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्त्रेण । पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधमः सदा ॥९॥

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं कुशावर्ततीय की महिमा तुमसे कहने में समर्थ नहीं हूँ । उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ जहाँ पर महात्मा मुनि गीतम ने कुशा से बुझाया था वह मनुष्य के सब मनोरथों को देने वाला स्थान कुशावर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२॥ मुनि कुशा से गंगा को घुमा कर लाया था । वहाँ का स्नान और दान पितरों को तृप्त करने वाला है ॥३॥ नील गंगा नाम की उत्तम नदी नील पर्वत से निकली हुई है । उसमें मनुष्य एकाग्रचित्त से स्नान आदि जो कुछ करता है वह पितरों के लिये अक्षय तृप्ति को देनेवाला होता है ॥४॥ तीनों लोकों में कपोत तीर्थ अति प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है ॥५॥ मुने ! उसका इतिहास और फल बता रहा हूँ मुनो—असु पन्त पर कोई एक अतिकूर (शिकारी) रहता था ॥६॥ वह ब्राह्मण साधु यति भी पक्षी और जंगली जीवों को मारा करता था । ऐसा हिसक वह पापात्मा बोधो असत्यवादी भयकर आकारवाला और अत्यन्त उद्वेग था । उसकी आँख नीचे रख की मुजायें छोटी छोटी दाँत निकले हुये नाक पिपटी एक आँख नानी पैर छोटे छोटे पैर लम्बा और मोटा और उसका स्वर गद्गदे के समान था । वह क्रुद्ध पापी सबदा हाथ में पाश और धनुष लिये हुए पाप (हिंसा) की ही बातें सोचा करता था । नारद ! उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी के सपान थे ॥ ७-९॥

तस्य भार्या तयाभूता अपत्यान्यपि नारद। तया तु प्रेयमाणोऽसौ विवेश गहनं यनम्॥१०॥
 ॥ जघान मृगान्याप पक्षिणो बहुरुषिण। पञ्जरे प्राक्षिपत्वादिवञ्जीवमानास्तपेतारान्॥११॥
 क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृपया तया। श्रान्तदेशो बहुतर न्यवर्तत गृहं प्रति॥१२॥
 ततोऽपराङ्मे सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे। क्षणात्तडिर्गजितं च साश्रु चंदाभवत्तदा॥१३॥
 यद्यौ वायु सादमद्वयौ चारिधारतिभोषण। गच्छत्लुब्धकं श्रान्तं पन्यान नायमुध्यत॥१४॥
 जलं स्थलं गतंमयो पन्यानमयथा दिशः। न बुभोच तदा पाप श्रान्तं शरणमप्यय॥१५॥
 यव गच्छामि यव तिष्ठेयं किं करोमीत्यचिन्तयत्। सर्वेषां प्राणिनां प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तक॥१६॥
 ममाप्यन्तकरं भूतं सप्राप्तं चादमवर्षणम्। त्रातारं नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके॥१७॥
 एव बहुविधं व्याधौ विचिन्त्यापश्यदन्तिके। वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणां यथाऽत्रिजम्॥१८॥
 मृगाणां च यथा सिंहमाश्रमाणा गृहाधिपम्। इन्द्रियाणां मन इव त्रातारं प्राणिनां नमम्॥१९॥
 श्रेष्ठं विटपिनं शुभ्रं शाखापल्लयमण्डितम्। तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्तिलग्नवासा ललुब्धक॥२०॥
 स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरथवा न वा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्तं प्राप्तं दिवाकरं॥२१॥
 तमेव मगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह। पुत्रपौत्रं परिबृत्तो हृष्टास्ते तत्र नगोत्तमे॥२२॥

एक दिन अपनी स्त्री की प्ररणा से वह घने जंगल में घुस गया। उस पापी ने बहुत-से मृगों और रंग बिरंगे पक्षियों को मारा। अपने पिंजरे में कुछ जीवित और कुछ मृत पक्षियों को भी भर लिया॥१०-११॥ बहुत इधर उधर घूमने के कारण भूल की ज्वाला से उसका शरीर जलने लगा और वह प्यास से व्याकुल हो गया। बिबसा हो वह भटकता हुआ घर की ओर लौटा॥१२॥ तत्पश्चात् उस जेठ की दुपहरी बीत जाने पर तीसरे पहर क्षण भर में बिजली गरजने लगी आकाश बादलों से घिर गया वायु जोरों से चलने लगी अति भीषण दृष्टि होने लगी और साय-साय पत्थर गिरने लगे। ऐसे समय वह धहेलिया चलते चरते थक गया और अपना मार्ग भी भूल गया॥१३-१४॥ उसको जल स्थल या गड्ढे का ज्ञान न रहा। न तो उस समय उसको मार्ग और दिशा का का ही ज्ञान रहा। वह थका भादा पापी यह भी नहीं जान पाता था कि वहाँ उसको शरण (रहने की स्थान) मिलेगी।॥१५॥ वह चिन्ता करने लगा कि कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ क्या करूँ। जिस प्रकार सब प्राणियों ने प्राण का धातक मैं सबके लिये यमराज के समान हूँ उसी प्रकार मेरे प्राण का अन्त करने वाला यम के रूप में यह पत्थर की वर्षा भी आ गई है। यहाँ कोई अपना रक्षक नहीं दील पड़ता न तो समीप में कोई चट्टान या वृक्ष ही दिखाई देते हैं कि अपनी रक्षा कर सकूँ॥१६-१७॥ इस प्रकार वह व्याघ्र अपने मन में मित्त भिन्न प्रकार से सोच ही रहा था कि इतने में उसे समीप ही वन में वनस्पति के समान, नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा के समान पशुओं में सिंह के समान आश्वमो में गहस्थ के समान इन्द्रियों में मन के समान प्राणियों का रक्षक एक वृक्ष दिखाई पड़ा॥१८-१९॥ शाखाओं और पत्तों से सुशोभित शुभ्र उस उत्तम वृक्ष के नीचे आकर वह बैठ गया। उस शिकारी के वस्त्र भीग गये थे वह धर-धर काँप रहा था। वह सोच रहा था कि मेरे वस्त्रों और स्त्री जीवित रहेंगे या नहीं। इसी बीच सूर्य भी अस्त हो गया॥२०-२१॥ उसी वृक्ष पर अपना (बसेरा) बनाकर एक वृत्तर अपनी स्त्री पुत्र और पौत्रों के साथ रहता था। उस उत्तम वृक्ष पर वह सन्तुष्ट और

सुखेन निर्मयो भूत्वा सुतुप्तः प्रीत एव च। बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः॥२३॥
 पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तन्मये श्रेष्ठे जलवाग्निर्वजिते॥२४॥
 भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः। तस्मिन्दिने देववशात्कपोतश्च कपोतकी॥२५॥
 भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमम्यगात्। साऽपि देववशात्पुनः पञ्जरस्थैव वर्तते॥२६॥
 गृहीता लुब्धकेनाय जीवमानेव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च॥२७॥
 ययं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातौ दिवाकरः। स्वकोटरं तयाहीनमालोचय बिललाप सः॥२८॥
 तां बद्धौ पञ्जरस्थां वा न बुबोध कपोतराट्। अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्॥२९॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी॥३०॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती खटे च मम दुःखप्रमार्जनी॥३१॥
 सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वापयरता सदा। नाद्याप्यायाति कल्याणी संप्रयातेऽपि भास्करे॥३२॥
 न जानाति व्रतं भग्नं दैवं धर्मार्थमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया॥३३॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि वयं यामि वा। किं मे गृहं काननं च तया हीनं हि बुध्यते॥३४॥
 तया युक्तं म्रिया युक्तं भीषणं चाऽपि शोभनम्। नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्॥३५॥

प्रसन्न पक्षी निर्मय होकर सुखपूर्वक रहता था। इस प्रकार उस वृक्ष पर रहते हुये उस पक्षी के बहुत वर्ष बीत गये थे ॥२३-२३॥ उसकी पतिव्रता भार्या भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। उस श्रेष्ठ वृक्षके कोटर (घोड़ा) में जहाँ अग्नि-जल और वायुका मय नहीं था—वह वैचारा बबूतर भार्या और पुत्रके साथ सर्वदा निवास करत था ॥२४॥ देववश उसी दिन कपोत और कपोती दोनों मोजन की खोज में बाहर गये हुए थे। कपोत तो उस वृक्ष पर पुन लौट आया। पुत्र! देवयोग से वह कपोती भी उस शिकारी के पित्रे में ही थी ॥२५-२६॥ यद्यपि श्याम ने उसको पकड़ लिया था परन्तु वह अभी जीवित थी। वैचारा कपोत अपने मातृ हीन बच्चा को देखकर और यह देखकर कि इतनी भीषण वर्षा हो रही है, सूर्य भी दूब गया है, कोटर मेरी कपोती से घूम्य है, बिलाप करने लगा ॥२७-२८॥ उस कपोतराज ने नहीं जाना कि कपोती यही पित्रे में बची पड़ी है। वह अपनी प्रिया की यड़ाई इस प्रकार करने लगा ॥२९॥ वह कल्याणी मेरे आनन्द को बढ़ाने वाली मेरे धर्म की जननी और मेरे शरीर की स्वामिनी अब तक नहीं आ रही है। वह मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सर्वदा सहायता करने वाली रही है। मेरे प्रसन्न रहने पर वह स्वयं प्रसन्न रहती थी और मेरे दुःख के समय सात्वना देकर दुःख का दूर कर देती थी ॥३०-३१॥ आवश्यक् परामर्श से समय वह सखी के समान थी। वह सर्वदा मेरे बहने के अनुसार ही काम करती थी। सूर्य दूब गया, परन्तु अब तक वह कल्याणी नहीं आई ॥३२॥ वह कोई व्रत मन्त्र, देव या धर्म ने तत्त्व नहीं जानती है, वह तो केवल पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पति की आज्ञाकारी और पतिप्रिया है वह कल्याणी अब तक नहीं आ रही है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? उसके बिना आज यह मेरा घर और कानन क्या मूना दिखाई दे रहा है ॥३३-३४॥ उसके साथ रहने पर मैं सजट बाल बबवा मुख के सखा में सर्वदा शीसम्पन्न रहा। ऐसी मेरी भार्या नहीं आ रही है, जिनके रहने से ही गृह गृह बढ़ा गया है (गृहिणी गृहमुच्यते) ॥३५॥ उमरे बिना मैं जखित नहीं रहूँगा, अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ दूँगा। परन्तु मेरे ये बच्चे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, पुन मैं तो दोना हूँ मैं धर्म

दिनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम् । किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहे पुन ॥३६॥
एव विलपतस्तस्य भर्तुर्बावय निशम्य सा । पञ्जरस्थेय सा बावय भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३७॥

कपोतकयुवाच

अनाहमस्मि यद्वैय विवशाऽस्मि खगोत्तम । अनोताऽह लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८॥
ध्याऽऽज्यगुह्रीताऽस्मि पतिवदित गुणान्मम । सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्याऽह न सशय ॥३९॥
तुष्ट नर्तरे नारीणा तुष्टा स्यु सर्वदेवता । विपर्यये तु नारीणामवश्य नाशमाप्नुयात् ॥४०॥
त्व वैव त्व प्रभुमंहय त्व सुहृत्त्व परायणम् । त्व व्रत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव य ॥४१॥
मा चिन्ता गुरु कल्याण धर्मे बुद्धि स्थिरा कुरु । त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥
अल खेदेन मरणेन धर्मे बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

ब्राह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्ततार नगोत्तमात् । यत्र सा पञ्जरस्या तु कपोती बर्तते त्वर (व्रत)म् ॥४४॥
तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवत्त्वापि लुब्धकम् । मोक्षयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५॥
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम् । लुब्धानां खेचरा ह्यस्य जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६॥
नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु । गुप्तरिनिद्रिजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरु ॥४७॥

छोड़ रहा हूँ ॥३६॥ इस प्रकार विलाप करते हुए अपने पति की बात सुनकर उस कपोती ने पिंजरे से ही अपने पति से य शब्द कहे ॥३७॥

कपोती ने कहा—खगोत्तम । मैं यहीं बंधी हुई हूँ विवश हूँ । महामति । व्याध पाश से बांधकर मुझको यहाँ रखा है । मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मेरे रहते या न रहते हुए भी आप मेरे गुणों का वणन कर रहे हैं । इसलिये निश्चय ही मैं कृताय हो गई । पति के प्रसन्न रहने पर नारी के ऊपर सब देवता प्रसन्न रहते हैं अन्यथा नारियों का निश्चय ही नाश होता है । तुम मेरे देवता हो मेरे लिये तुम ईश्वर हो तुम सुहृद हो मेरे एकमात्र रक्षक हो तुम्हा व्रत हो परब्रह्म तुम्हीं हो मेरे लिये मोक्ष अथवा स्वयं भी तुम्हीं हो । कल्याण । तुम चिन्ता मत करो, धर्म में अपनी बुद्धि स्थिर करो । तुम्हारे अनुग्रह से मैंने विविध भोगों को भोगा है । यह वेद ध्यय है । इस प्रकार चिन्तामग्न होना उचित नहीं । तुम धर्म (कृतव्य) में अपनी बुद्धि (आस्था) स्थिर करो ॥३८॥३९॥

ब्रह्मा बोल—पत्नी की इन बातों को सुनकर वह वृक्ष से उतर आया और जहाँ उसकी पञ्जरबद्ध कपोती थी वहाँ सीढ़ी ही चला गया । प्रिया के समीप जाकर अपनी प्रिया को साथ ही मृत की भाँति अचत व्याध को देखकर उसने अपनी प्रिया से कहा कि अभी तुमको छुड़ाता हूँ । इस समय शिकारी चेतना-शून्य सा हो रहा है ॥४४॥४५॥ यह सुनकर कपोती ने कहा कि महामाया । पतिपत्नी के सम्बन्ध को अस्थिर (चोड़ समय का) समझकर मुझ मत छड़ाओ । तुम्हें के लिये पत्नी ही अन्न (भोजन) है जीव ही जीव का भोजन है ॥४६॥ इसमें इसका मैं कुछ भी अपराध नहीं समझ रही हूँ । अपनी धार्मिक भावना को दब करो । ब्राह्मणों के गुरु अग्नि और इतर वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं । स्त्रियों के गुरु पति ही हैं परन्तु अतिथि सब के गुरु माने गये हैं ॥४७॥ जो पर पर आये अतिथि

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनंस्तोष्यन्ति ये ॥४८॥
तेषां वागीश्वरो देवो तृप्ता भवति निश्चितम्। तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९॥
पितरः पादशोचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्धं लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योऽं गृहमागतम् ॥
तं विद्याद्देवहृषेण सर्वशत्रुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽन्नपश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२॥
तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज। कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर ॥५३॥
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति संमतौ। उपकारिणु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥५४॥
अपकारिणु यः साधु पुण्यभाक्ते उदाहृतः ॥५५॥

कपोत उवाच

श्रावयोरनुकूलं च त्ययोक्तं साधु मन्यसे। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने ॥५६॥
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमग्नौ दशापरः। आत्मानं च सुखेनान्यो ययं कष्टोदरंभरा ॥५७॥
गर्तधान्यधनाः केचित्कुशूलधनिनोऽपरे। घटक्षिप्तधनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तधना ययम् ॥५८॥
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९॥

को अपनी मयूर वाणी से सत्युष्ट करते हैं उन पर वागीश्वरी देवी निश्चय ही प्रसन्न होती है ॥४८॥ उसको अन्न देने से स्वयं इन्द्र तृप्त होते हैं, पैर धोने से पितर और अन्न भोजन कराने से प्रजापति (ब्रह्मा) तृप्त होते हैं। उसकी सेवा करने से विष्णु सहित लक्ष्मी प्रसन्न होती है ॥४९-५०॥ शयन कराने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये 'अग्निर्भि सवसे पूज्य है। सूर्यास्त के समय ब्रह्मा मर्दिता अतिथि यदि घर आये तो उसको देवकूप समझना चाहिये, 'भयोनि वह सब यज्ञों के फल के रूप में वहाँ आता है ॥५१॥ यके अतिथि के पीछे-पीछे सब देवता पितर और 'अग्नि चलते हैं। उसने तृप्त हो जाने पर वे भी आनन्दित होते हैं और अतिथि के निरास होने पर वे भी निरास हो जाते हैं ॥५२॥ इसलिये कान्त। सब प्रकार से दुःख वा परिचाय कर आप शान्त हो जाएँ अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर धर्मकार्य करें ॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों श्रेष्ठ माने गये हैं। उपकार करने वाले के 'प्रति' सभी उपकार करते हैं परन्तु अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करता है वही पुण्य वा अविचारी कहा गया है ॥५४-५५॥

कपोत ने कहा—तुमने तो दोनों के अनुरूप ही कहा है। मैं इसको उचित मानता हूँ। किन्तु सुमति। 'मेरे भी कथन सुनो। कोई हजारों का मरण-शोषण-करता है, कोई सो या अन्य कोई दश या और कोई सुख-पूर्वक अपना भी मरण-शोषण कर देता है, परन्तु हम लोग कष्ट से अपनी उदर-प्रति कर पाते हैं। कोई गन (तह-संज्ञा), मर धान के धनी होते हैं, कोई कुशूल (बखार) परिमित धान के तो कोई घड़े भर धान के ही धनी होते हैं, किन्तु हम तो केवल थोच मर धान के ही धनी हैं। यज्ञे। इस अवस्था में मैं किस प्रकार दश यज्ञे हूँ अतिथि की पूजा करे ॥५६-५९॥

कपोतमुवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठानि च यत् । एतदप्यग्निने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम् ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट् । आलोकयामास तदा बल्लि दूरं ददर्श ह ॥६१॥
 ॥ तु गत्वा बल्लिदेशं चञ्चुनोत्मुकमाहरत् । पुरोर्ज्ज्वलयामास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२॥
 शृष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः । अग्नौ निक्षेपयामास निशीये स कपोतराट् ॥६३॥
 तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः । अवशानि स्वकाङ्क्षानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४॥
 क्षुधाग्निना बहुधमानं ध्यायं दृष्ट्वा कपोतकी । मम मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५॥
 स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम् । इष्टातिथीनां ये लोकास्तास्त्वं प्राप्नुहि सुवत ॥६६॥

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते । इष्टातिथिर्नैवासीद् अनुजानीहि मां शुभे ॥६७॥

ब्रह्मोवाच

इत्थुक्त्वाऽग्निं त्रिरावृत्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम् । विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८॥
 घघासुख जुपस्वेति घटप्रग्निं तथाऽऽविशत् । तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥६९॥

कपोती ने कहा—अग्नि, जल, घुमवाणी, तृण, काष्ठ आदि जो कुछ हो, वही याचक को दे देना चाहिये । यह व्याध तो शीत से दुःख पा रहा है ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इन बातों को सुनकर पक्षिराज कपोत वृक्ष पर चढ़ गया । उसने चारों ओर देखा तो दूर अग्नि दिखाई पड़ा । वह उस अग्नि वाले स्थान पर गया और अपनी बोध से जलती लकड़ी ले लाया । कबूतर ने शिकारी के आगे अग्नि जला दिया । उस अघेरी रात में वह कपोतराज सूखे काष्ठ, पर्णियाँ, और तिनके ला-लाकर बार-बार उसमें छोड़ने लगा । अग्नि को इस प्रकार जलता हुआ देखकर शीत से दुःखी वह शिकारी ठिठुरे हुये अपने अगो को आग से सेंक कर सुखी हुआ । भूख की ज्वाला से जलते हुए उस व्याध को देखकर कपोती ने अपने स्वामी से कहा—महाभाग ! भूखको मत छुड़ाओ, मत छुड़ाओ । यह मैं अपने शरीर से दुःखी शिकारी की भूख मिटाकर उसे प्रसन्न करूँगी । सुवत ! तुम (मेरी इस सेवा से) अतिथि-भूखको के जो लोक हैं, उन्हें प्राप्त करो ॥६१-६६॥

कपोत ने कहा—मेरे रहते दुम्हार यह धर्म नहीं है । मैं स्वयं अतिथि का इष्ट-साचक बनूँगा । शुभे ! भूखको आज्ञा दो ॥६७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर विश्वरूप, शरण्य, भक्तवत्सक, चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु का स्मरण करता हुआ 'तुम सुखपूर्वक भोजन करो' यह कहकर अग्नि में घुस गया । इस प्रकार कबूतर को अपने को अग्नि में फेंकता हुआ देखकर शिकारी ने यह अगले वाक्य कहे ॥६८-६९॥

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम । यदिदं पक्षिराजेन मदर्थं साहसं कृतम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

एवं द्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं धात्येष मे पति ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम् । लुब्धको मोक्षयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥

सागपि प्रवक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४॥

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम् । वेदे च विहितो मागः सवल्लोकेषु पूजितः ॥७५॥

व्यालप्राहो यया व्यालः बिलादुद्धरते बलात् । एष त्वनुगता नारी सह भर्ता दिवं व्रजेत् ॥७६॥

तिष्ठ । कौटपोऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याज्जुगच्छति ॥७७॥

नमस्कृत्या भुवं देवानाङ्गा चापि वनस्पतीन् । आश्वत्थान्पितृपत्यानि लुब्धकः वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—जहा । मेरे मानव शरीर के इस जीवन को धिक्कार है । क्योंकि आज पक्षिराज ने मेरे लिये अपूर्व साहस किया है ॥७०॥

ब्रह्मा ने कहा—वपोती ने इस प्रकार उसको कहता हुआ देखकर यह वाक्य कहा ॥७१॥

कपोती ने कहा—महामाग । तुम मुझको छोड़ दो देखो मेरा यह पति मुझसे दूर जा रहा है ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—वपोती की उन बातों को सुनकर वह शिवारी कुछ डर-सा गया और उसने बंधी हुई वपोती को गीघ्र छोड़ दिया । वह भी अपने पति और अग्नि की परित्रमा कर आगे बड़ी हुई बालें बहने लगी ॥७३-७४॥

कपोती ने कहा—'मर्ता के साथ सहगमन ही स्त्रियों का उत्तम धर्म है । यही मार्ग वेदों में प्रतिपादित है, और सब लोकों में यह श्रेष्ठ माना गया है । जिस प्रकार सपिरा साँप को बिल से बलपूर्वक बाहर खींच लाता है उसी प्रकार पति ने साथ अनुगत (सती होनेवाली) नारी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है । जो अपन पति ने साथ गती होती है, वह मनुष्य के शरीर में जितने तीन करोड़ पचास लाख के लगभग रोग हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है ।' इस प्रकार सहगमन की महिमा कह कर वपोती ने पूष्यो, देवगण तथा और वनस्पतियों को नमस्कार किया, अपने बच्चों को डाँस बैठाया और पुन चिकारी से कहा ॥७८॥

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्न ममेदृशम् । अपत्याना क्षमस्त्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम् । प्रविष्टाया हुतवहे जयशध्वी न्यवर्तत ॥८०॥
गगने सूर्यसकाश विमानमतिशोभनम् । तदाऽऽरूढो सुरनिभौ दपती ददृशे ततः ॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुदभौ लुब्धक विस्मयान्वितम् ॥८२॥

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽसि महामते । आययो स्वर्गसोपानमतिथिस्त्व नमोऽस्तु ते ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

विमानवरमाहूढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि स । सधनु पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥८४॥
लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागो देय किञ्चिदजानते । अहमत्रातिथिर्मान्यो निष्कृति वक्तुमर्ह्यः ॥८५॥

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्र ते तस्या पाप निवेदय । तर्नवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपार्ष्विमोक्षये ॥८६॥
मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने । अश्वमेधफलं पुण्यं प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥

कपोती ने कहा—महाभाग । तुम्हारी कृपा से मुझे यह मुअबसर प्राप्त हुआ । मेरे बच्चों को क्षमा करना अर्थात् बच्चों पर कृपा करना । मैं अब स्वामी के साथ स्वर्ग जा रही हूँ ॥७९॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर वह साध्वी कपोती अग्नि में प्रवेश कर गई । उसके अग्नि में प्रवेश करते ही जयध्वनि हुई । आवाश में अतिमनोहर सूर्य के समान चमकी ग विमान और उस पर बैठ हुये वे पक्षी के जोड़े देवता के समान दिखाई पड़े । आश्चर्य में डूबे हुये उस व्यास से उन दोनों ने आनन्दपूर्वक कहा ॥८० ८१॥

दपती ने कहा—हम दोनों देवलोक को जा रहे हैं । तुम से विदा चाहते हैं । महामति । तुम हम लोगों के स्वर्ग की सीढ़ी के समान अतिथि हो अर्थात् तुम्हारे अतिथि होने से ही स्वर्ग मिला है । तुमको नमस्कार है ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—उन दोनों को उत्तम देव विमान पर आरुढ़ देखकर वह शिवारी भी धनुष और पिंजरा पेंककर हाथ जोड़ कर बोला ॥८४॥

व्यास ने कहा—हे महाभाग । मुझ अज्ञानी को इस प्रकार छोड़ना उचित नहीं । इस अनजान को भी कुछ ज्ञान देते जाइये । मैं आज मान्य अतिथि हूँ । इसलिये मेरे उद्धार का माग बताने की कृपा कीजिये ॥८५॥

दम्पती ने कहा—गौतमी नदी के तट पर जाओ । उनसे अपने पापा का निवेदन करो । तुम्हारा वत्पण होगा । वही एक पक्ष तक स्नान करने से तुम सब पापा से छूट जाओगे । पुन पापमुक्त होकर उस गंगा में स्नान

सरिद्वारायां गौतम्यां ब्रह्मविष्ण्वीशसंभुवि । पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८॥
विमानवरमाहूढः स्वर्गं गन्ताऽस्थसंशयम् ॥८९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा यचनं ताम्या तथा चक्रे ॥ लुब्धकः । विमानवरमाहूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । कपोतश्च कपोतो च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे यं दिव्यमात्रमन् ॥९१॥
ततः प्रभृति तृतीयं कपोतमिति विभुतम् । तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदामन्त्याय बल्पते ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

कुमारतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेये परं तीर्थं कौमारमिति विभुतम् । यन्नामश्रवणादेव कुलवाञ्छुपधान्भवेत् ॥१॥

करने से अश्वमेध का फल पाकर पवित्र हो जाओगे । ब्रह्मा, विष्णु और शंकर द्वारा प्रकट की हुई उस उत्तम सरिता में गुप्त स्नान करने से ही अपन बाधमय शरीर को छाड़कर उत्तम विमान पर चढ़कर नि सन्देह स्वर्ग चले जाओगे ॥८६-८९॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों से ऐसी बात सुनकर व्याध ने वैसा ही किया । जिसने कल्पस्वरूप यह दिव्यदेह-पाटी होकर उत्तम विमान पर आरुढ़ हो गया, उत्तम दिव्य माला और वस्त्रा स सुशोभित हो गया और अप्सराएँ उसकी पूजा करने लगी । इस प्रकार वे कपोत, कपाती तथा तीसरा व्याध य तीना गौतमी गंगा ने प्रभाव सह स्वर्ग-लोक की चले गये । तब से वह तीर्थ कपोत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ गया । उस तीर्थ में स्नान दान पितृपूजन और जप, यज्ञ आदि कर्म करने से अद्यय और अनन्त पुत्र प्राप्त होते हैं ॥९० ९३॥

श्री ब्रह्महपुराण में कपोततीर्थ वर्णन नाम अस्तीर्वा अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जिसकी प्रसिद्धि कुमार तीर्थ नाम से भी है । उस

निहते तारके दंत्ये स्वस्थे जाते त्रिविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोवाच पार्वती॥२॥
 यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगास्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्। ममाप्नया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादतः॥३॥
 एवमुक्तः स वै मात्रा विशालो देवतास्त्रियः(?)। यथासुखं बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे॥४॥
 ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारदः। नाशबनुवन्वारयितुं कार्तिकेयं दिवौकसः॥५॥
 सतो निवेदयामासु पार्वत्यै पुत्रकर्म तत्। असकृद्वायमाणोऽपि मात्रा देवं स शशितयूक्॥६॥
 नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीष्वासक्तस्तु षण्मुखः। अभिशापभयाद्भूता पार्वती पर्यचिःसयत्॥७॥
 पुत्रस्नेहासयैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यश्चिर १क्षया इति मत्वा पुनः पुनः॥८॥
 यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वयि तादृशी। तद्रूपमात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती॥९॥
 इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय षण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत्॥१०॥
 तामपास्य नमस्याथ पुनरन्यामयाऽऽहूयत्। तस्यां तु मातृरूपं स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान्॥११॥
 एवं बह्वीषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति संचिन्तय गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्सदा॥१२॥
 स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्किं तु पूर्वं प्रवर्तितं॥१३॥
 तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं स्थितिः। लज्जया परया मुक्तो गीतमीमगमत्सदा॥१४॥

तीर्थ का स्मरण करते मात्र से अनुपम रूपवान् और पुत्रप्रीतिदि से सपन्न हो जाता है॥१॥ जब तारक नामक असुर के मारे जाने पर स्वर्ग में शान्ति स्थापित हो गई तब युद्ध में थके अपने ज्येष्ठ प्रिय पुत्र कार्तिकेय से पार्वती ने कहा॥२॥ 'तुम मेरी आज्ञा और पिता की प्रसन्नता से इस त्रिभुवन में प्रसन्नतापूर्वक प्रिय भोगों का यथेच्छ उपभोग करो'॥३॥ माता से इस प्रकार आज्ञा पा जाने पर कार्तिकेय बलपूर्वक देव स्त्रियों के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगे देवस्त्रियाँ भी उनके साथ विहार करने लगीं॥४॥ नारद। तदनन्तर इस प्रकार देवपत्नियों के साथ विहार करनेवाले कार्तिकेय को देवता किसी प्रकार से भी रोक न सके॥५॥ विवश हो उन्होंने माता पार्वती से उनके पुत्र का यह अनुचित कर्म कहा। माता और देवताओं से बार-बार मना किये जाने पर भी वैशक्तिशाली षण्मुख स्त्रीजनों ने अधिक आसक्त हो जाने के कारण अपने को उस कार्य से विरत न कर सके॥६॥ तब अभिशाप (निन्दा) के भय से डरकर माता पार्वती सोचने लगी—'पुत्र-स्नेह तथा देवा को कार्य सिद्धि के लिये देवपत्नियों की चिररक्षणाय है' यह बार-बार सोचकर अन्त में जिस स्त्री से कार्तिकेय विहार करते थे उसी के समान अपना रूप बनाकर पावती रहने लगीं॥७ ९॥ इधर इन्द्र और वरुण की स्त्रियों को समीप बुलाकर स्कन्द ने ज्यों ही देखा त्या ही उनको उनमें मातृत्व का आभास मिला॥१०॥ यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हो गये। उनको हटाकर और प्रणाम कर पुन दूसरी को बुलाया। उसमें भी मातृरूप देखकर वे और भी लज्जित हुये॥११॥ उन बहुत सी देवभार्याओं में मातृत्व का दर्शन करने से उनके यह सारा ससार ही मातृमय है यह ज्ञान हो जाने से वैराग्य हो गया॥१२॥ उन्होंने 'यह सारा रहस्य कामासक्त भुङ्गको निवृत्ति की ओर ले जाने के लिये ही माता द्वारा किया गया है यह जान लिया। वे सोचने लगे कि यदि भुङ्गको भोगों से निवृत्त करना था तो क्यों पहले भोग की ओर भुङ्गें झुकाया गया? इसलिए माता द्वारा किया गया यह सब कुछ मेरे लिए हास्यास्पद है। यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होकर गीतमी

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम् । इतः स्त्रीनामघेयं यन्मम मातृसमं मतम् ॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शंकरः । पुत्रं निवारयामास वृत्तमित्यब्रवीद्गुहः ॥१६॥
ततः सुरपतिः प्रीतः किं ददामोति चिन्तयन् । कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत् ॥१७॥

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तथ पुत्रोऽहमित्यपि । अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित ॥१८॥
अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया । याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
महापातकिनः केचिद्गुरुद्वाराभिगामिनः । अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धौतपापा भवन्तु ते ॥२०॥
आप्नुवन्तुसमा जाति तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर । कुरूपो रूपसंपत्तिमत्र स्नानादवाप्नुयात् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवसि ॥ शंभुः प्रत्यनन्दस्तेरितम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम् ॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वकृतुफलप्रदम् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामकाशीतित-
मोऽध्यायः ॥८१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की ओर चले गये ॥१३-१४॥ वहाँ जाकर गौतमी को सम्बोधित करते हुये कहा कि यह गौतमी मेरी माता के
समान है, अतः हे माता ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो 'आज से स्त्री मात्र का नाम मेरे लिये मातृनाम के तुल्य होगा, ऐसा
मेरा विचार है' ॥१५॥ पार्वती ने सहित लोचपति शंकर ने जब इस प्रकार की घटना सुनी तब अपने विरागीपुत्र
को वहाँ से लौटाने का प्रयत्न किया और कहा कि जो कुछ होना था सो हो गया, अब चलो । पुनः सुन्दरस्वामी
शंकर प्रसन्न होकर सोचने लगे कि स्कन्द को क्या दिया जाय । इधर स्कन्द हाथ जोड़कर पिता से बोले ॥१६-१७॥

स्कन्द ने कहा—देवेन्द्र ! देव-पूज्य ! मैं सेनापति (देव-सेनापति) हूँ, सुर और सुम्हारा पुत्र भी हूँ, इसलिये
मुझे वर देने से क्या प्रयोजन । अथवा यदि तुम वर देना ही चाहते हो तो मैं अपने लिये नहीं प्रत्युत लोकहित के लिये
याचना करता हूँ, सो हे देव ! मुझे प्रदान कीजिये । जो कोई महापातकी हो, चाहे वे गुरु-मलीगामी ही
क्यों न हों, व समी यहाँ गौतमी में स्नान मात्र से पाप मुक्त हो जायें । सुरेश्वर ! यहाँ के स्नान से तिर्यग्योनि में
उत्पन्न भी उत्तम योनि को प्राप्त करें, और कुरूपजन रूप-सम्पदा को प्राप्त करें ॥१८-२१॥

यहाने कहा—शंभु ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने पुत्र की वही हुई बातों का समर्थन कर उसको
प्रसन्न किया । तभी से वही तीर्थ कार्तिकेय नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने ॥ समस्त
यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कुमारतीर्थ-वर्णन नामक द्वादशीर्वा अध्याय समाप्त ॥८१॥

अथ द्वयशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिवातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्स्यात् कृत्तिवातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम् । तस्य श्रवणमात्रेण सोमपानफलं लभेत् ॥१॥
 पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कवि । रेतोर्गर्भं कविं दृष्ट्वा श्रयिपत्न्योऽस्पृहमुने ॥२॥
 सप्तर्षीणामनुस्नाता वर्जयित्वा त्वरन्धतोम् । तासु गर्भं समभवत्पदसु स्त्रीषु तदाऽग्निमत ॥३॥
 सप्यमानास्तु शोभिष्ठा (?) श्रुतुस्नातास्तु ता मुने । किं कुर्मं वव नु गच्छाम किं कृत्वा सकृत् भवेत् ॥४॥
 इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गा व्यग्रा गत्वा व्यपीडयन् । ताम्यस्ते नि सृता गर्भा फेनरूपास्तदाऽम्भसि ॥५॥
 अम्भसा त्वेकता प्राप्ता वायुना सर्व एव हि । एकरूपस्तदा ताम्य यन्मुलं समजायत ॥६॥
 स्वावयित्वा तु तानाभान्पिपत्यो गृह्णाययु । तासां विकृतरूपाणि दृष्ट्वा ते श्रययोऽब्रुवन् ॥७॥
 गम्यता गम्यता शीघ्रं स्वैरी वृत्तिर्न युज्यते । स्त्रीणामिति ततो वत्स निरस्ता पतिभिस्तु ता ॥८॥
 ततो दुःखं समाविष्टास्त्यक्ता स्वपतिभिश्च घट । ता दृष्ट्वा नारदं ब्राह्मं कार्तिकेयो हरोद्भूव ॥९॥

अध्याय ८२

कृत्तिवातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न कहे—कार्तिकेय तीर्थ के बाद कृत्तिका नामक तीर्थ प्रसिद्ध है। उसके नाम सुनने मात्र से सोमपान का फल प्राप्त होता है ॥१॥ प्राचीन काल में तारक के वन के लिये कवि (अग्नि) ने शकर का पीय पी लिया। मुने ! कवि को इस प्रकार शिववीर्य से युक्त देखकर श्रयिपत्नियों के मन में इच्छा उत्पन्न हुई ॥२॥ उस समय ब्रह्मघटी को छोड़ शेष सप्तर्षिया की पत्नियाँ श्रुतु-स्नाता थी। उन छह स्त्रियों को इच्छामात्र से अग्नि के द्वारा गम रह गया ॥३॥ मुनितारद ! ये श्रुतुस्नाता सुन्दर स्त्रियाँ यह देखकर अनुताप करने लगी सोचने लगी कि क्या करें हम वहाँ चले क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥४॥ इस प्रकार आपस में विचार कर व्याकुल हो गया के पास गई। वहाँ जाकर अपने पेट को बलपूर्वक दवाने लगी। जिससे उन सबों का गम फेन के रूप में बाहर जल में निकल पड़ा ॥५॥ वायु की प्रेरणा से और जल के वेग से सभी एक में मिल गये। तब वह मिलित गम एक शरीर और छह मुखवाला हो गया ॥६॥ श्रयिपत्नियाँ भी गम-साव के बाद अपने-अपने घर चली गयी। उनके विरूप मुख को देखकर उन श्रयियों ने कहा—॥६॥ ‘आओ तुम लोग यहाँ से शीघ्र जाओ। स्त्रियों के लिये स्वरी वृत्ति (पर पुरुष की कामना) उचित नहीं है। वस ! उसके बाद ये सभी स्त्रियाँ अपने पतियों से वहिष्कृत हो गई ॥८॥ तब पतित्यक्ता ये छहो स्त्रियाँ अत्यन्त दुःखी हुई। उनको इस प्रकार दुःखी देखकर नारद ने कहा—शकर के पुत्र कार्तिकेय के पास जो

गाङ्गेयोऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः । तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति ॥१०॥
 देवर्षेयचनादेव समम्येत्य च यष्मुखम् । कृत्तिकाः स्वयमेवंतद्यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥११॥
 ताम्यो वाक्यं कृत्तिकाम्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च । गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम् ॥१२॥
 एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम् । तथेत्युक्त्वा कृत्तिकाश्च स्नात्वा गङ्गा च गौतमीम् ॥१३॥
 देवेश्वर च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात् । देवेश्वरप्रसादेन प्रपद्युः सुरमन्दिरम् ॥१४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृत्तिकातीर्थमुच्यते । कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥१५॥
 सर्वकृतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः । तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि यः करोति शृणोति च ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिक तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने । यस्य श्रवणमात्रेण ह्यश्वमेधफलं लभेत् ॥१॥

गारेय (गंगा के पुत्र) अग्निवध (अग्नि से उत्पन्न) और तारकान्तक (तारक के वध करने वाले) नाम से प्रसिद्ध हैं, जाओ। वे तीर्थ ही प्रसन्न होकर मुक्ति के उपाय बतलायेंगे ॥९-१०॥ देवर्षि नारद ने कहने से पण्मुख स्कन्द के पास जाकर उन कृत्तिकात्री (ऋषि-यलियों ने) स्वयं जैसा हुआ था वैसा कह सुनाया। उन कृत्तिकात्री के मुख से इन बातों को सुनकर कार्तिकेय ने स्वयं विचार किया और कहा कि गौतमी नदी के पास आप सब जायें। वहाँ स्नान कर महेश्वर की पूजा करें। आप सबका उद्धार हो जायगा। मैं भी वहाँ आऊँगा और देवमन्दिर में चलाँगा ॥११-१२॥ कृत्तिकात्री ने भी 'ठीक है' यह कहकर गौतमी गंगा में स्नान किया और कार्तिकेय के कथनानुसार महेश्वर की पूजा की। इस प्रकार देवेश्वर की कृपा से वे स्वर्ग को चली गईं ॥१३-१४॥ उस समय से वह स्थान कृत्तिकातीर्थ का नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो कृत्तिका नक्षत्र से मुक्त कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करता है, वह सब यज्ञ का फल प्राप्त करता है और परम धार्मिक राजा होता है। जो व्यक्ति उस तीर्थ का स्मरण करता है या वर्णन सुनता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥१५-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराणे कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥८२॥

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—'महामुनि' अब दशाश्वमेधिक तीर्थ के विषय में मुने, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य दस

विश्वकर्म्मसुतः श्रोमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
 पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः॥३॥
 यश्येऽहं ह्यमेधेश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं यव यद्यामि सुरानिति॥४॥
 सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रायतन्त महाऋतून्॥५॥
 सत्राभवन्नृपिगणा आर्तिवज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥
 पूर्णतां नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्त्रहून्॥७॥
 उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णास्ततो यज्ञान्ग्राज्यं गुरमभायत॥८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वर। पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिन'॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च बुद्धितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गोप्यतेभ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमृचतुः॥१०॥

कश्यपभौवनावूचतुः

भगवन्पुनरकार्याभ्यदशमेधानि मानद। दश संपूर्णतां याति तं देशं तं गुरुं वद॥११॥

अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है॥१॥ महाबलवान् श्रीमान् विश्वरूप विश्वकर्मा का पुत्र था। उसके एक पुत्र था। उसके भी बलवान् भौवन नाम का एक पुत्र हुआ॥२॥ सब विद्याओं में निपुण कश्यप जी उसके पुरोहित थे। उस महापुरुषमी, सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा भौवन ने उनसे पूछा—॥३॥ 'मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।' फिर उसने ब्राह्मण गुरु से पूछा कि कहाँ मैं देवताओं का यजन करूँ॥४॥ कश्यपजी ने उन-उन स्थानों को—जहाँ-जहाँ द्विजवर्यों ने बड़े-बड़े यज्ञों को कराया था—यज्ञ करने के लिये बताया॥५॥ पुरोहित द्वारा एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ प्रारम्भ करा दिये गये और उस यज्ञ-मण्डल में ऋषिक् का कार्य करने के लिये ऋषिगण नियुक्त भी कर दिये गये। परन्तु वे यज्ञ पूर्ण नहीं हुये। यह देखकर राजा चिन्तित हो गये। पुनः वहाँ उन देव-यज्ञों को छोड़कर अन्यत्र उन्हीं दस यज्ञों को प्रारम्भ किया। वहाँ भी ज्योंही यज्ञ प्रारम्भ हुये, विघ्न और दोष उपस्थित हो गये। फिर यज्ञों को अपूर्ण देखकर राजा ने गुरु से कहा॥६-८॥

राजा ने कहा—देश दोष, समय दोष से, मेरे अथवा आपके दोष से ही मेरे ये दस अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं हो रहे हैं॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर पुरोहित कश्यप के साथ बृहस्पति के बड़े माई सप्तर्षि के पास जाकर कहा॥१०॥

कश्यप और भौवन ने कहा—भगवन्! प्रतिष्ठा देने वाले। दस अश्वमेध यज्ञ एक ही साथ करना चाहता हूँ। जहाँ और जिससे पूर्ण होंगे, उस स्थान और गुरु को बताइये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिधेष्टः संवर्तो भौवनं तदा । अन्नवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति ॥१२॥
 भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना । आगत्य मामन्नवीच्च गुरुं देशादिकं च यत् ॥१३॥
 ततोऽहमन्नं पुनः भौवनं कश्यपं तथा । गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः यतु पुण्यवान् ॥१४॥
 अयमेव गुरुः धेष्टः कश्यपो वेदपारगः । गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५॥
 एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः । सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधाणि धाजिनः ॥१६॥
 तच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् । कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः ॥१७॥
 ततः प्रवृत्ते यत्नेन हयमेधे महास्तौ । संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः ॥१८॥
 ततोऽन्तरिक्षे वागुर्चरयाच नृपसत्तमम् । पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽयं सवस्पतीन् ॥१९॥

आकाशवागुवाच

पुरोयते कश्यपाय ससैलवनकाननाम् । पृथिवीं दातुकामेन दत्तं सर्वं त्वया नृप ॥२०॥
 भूमिदानस्फुहा त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम् । नाश्रदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१॥
 विशेषतस्तु गङ्गाया अद्भ्यः पुलिने मुने । त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः ॥
 कृतकृत्योऽसि भद्र ते मात्रं कार्या विचारणा ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—‘तब ऋषि-धेष्ट संवर्त ने कुछ समय तब ध्यानस्थ होकर जीवन से कहा—‘ब्रह्मा के पास जाओ, वही गुरु और उचित स्थान को बतायेंगे।’ महाज्ञानी जीवन ने श्री गुरु कश्यप के साथ मेरे पास आकर गुरु और देश आदि के विषय म पूछा। पुनः इसके बाद मैंने जीवन और कश्यप से कहा—‘राजेन्द्र ! गौतमी के तट पर जाओ, वही यज्ञ के योग्य पुण्यभूमि है। वही वेदा के पारंगत विद्वान् कश्यप उत्तम गुरु हैं। इनकी और गौतमी की कृपा से एक ही अश्वमेध यज्ञ करने से और पुनः उसमें स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् दस अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। उन बातों को सुन कर राजा जीवन गौतमी तीर पर गुरु कश्यप के साथ गये और यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। इसने उपरांत महायज्ञ तथा यज्ञराज अश्वमेध के प्रारम्भ हो जाने पर राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया। तब वह गुरु कश्यप को दक्षिणा म पृथ्वी देने के लिये उद्यत हो गया। तदनन्तर जब उसने विप्र, ऋत्विज और सदस्या की पूजा समाप्त कर ली तब अतिशय म उच्च स्वर से राजा ने प्रति आकाशवाणी ने कहा ॥१२-१९॥

आकाशवाणी ने कहा—नृप ! पुरोहित कश्यप को सैल, वन, वाननसहित दान देने की इच्छा कर तुमने सब कुछ दे दिया। इसलिये भूमिदान की इच्छा छोड़कर तुम अन्नदान दो, इससे बड़ा फल होगा। अन्नदान के समान पुण्यदायक दान इन तीनों लोकों म नहीं है। मुनि ! यथा के तट पर अन्नदान देने से ता और विशेष फल होता है। तुमने तो इस यथा (गौतमी) के तट पर यह महान् अश्वमेध यज्ञ किया है, जिसम बहुत दक्षिणा दी गई है। इसलिये तुम कृतकृत्य हो गये। तुम्हारा कल्याण होगा। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२०-२२॥

ब्रह्मोवाच

तयाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम्

॥२३॥

पृथिव्युवाच

विदवकर्मज सावंभौम मा मा देहि पुनः पुनः । निमज्जोहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीपताम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

सतश्च भौवनो भोत, किं देयमिति चाग्रवीत् । पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणर्वृतम् ॥२५॥

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किञ्चिद्गौतमीतटे । सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥

गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः । तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तद्भुवो धचनं श्रुत्वा भौवनः सावंभौवनः । तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रावात्सुविस्तरम् ॥२८॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः । दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम अथशीतिलमोऽध्यायः ॥८३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्वंशोऽध्यायः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना मुन लेने पर भी उमने पृथ्वी दान का विचार नहीं छोडा तब स्वयं पृथ्वी ने भौवन से कहा ॥२३॥

पृथ्वी ने कहा—विदवकर्म के बन्धन ! सावंभौम ! मुझको बार बार दान में मत दो । एसा करने से मैं जल में डूब जाऊँगी, इसलिये मेरा दान मत करो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बात सुनकर भौवन डर गया और पूछा—चि चीन सी वस्तु देनी चाहिए । इनको सुनकर पुन पृथ्वी ने ब्राह्मणों से चिरे मौवन से कहा ॥२५॥

पृथ्वी ने कहा—तिल, गौ, धन, अन्न आदि जो कुछ गौतमी के तट पर दिया जाता है, यह सब अक्षय दान होता है, तो भौवन ! क्या मुझे दान कर रहे हो ? जो इस गंगातीर पर आकर एक बौर अन्न भी दान दे देता है, उमने मैं गङ्गानाथ रूप से दान में दे दी जाती हूँ । इसलिये भौवन ! क्या मुझे दान में दे रहे हो ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी की बात सुनकर पञ्चवर्ग भौवन ने उमको स्वीकार कर दिया और प्रचुर अन्न विप्रे को दिया । तब ने वह तीर्थ दशाश्वमेध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ स्नान करने ने दश अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन नामक निगनीचा अध्याय समाप्त ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद । तस्मिञ्छैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसुप्तमाङ्गेन वानरी । केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३॥
साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा । उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥
दक्षिणार्णवमम्यागात्केसरी लोकविभ्रुतः । एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमम्यागात् ॥५॥
अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमुपिसत्तमम् । पूजयामासतुरभे यथान्यार्यं यथासुखम् ॥६॥
ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे प्रियता वरः । ते आहतुरभेऽगस्त्यं पुत्रौ देहिं मुनीश्वर ॥७॥
सर्वम्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ । तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८॥
ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तया । गीत नृत्यं च हास्यं च कुर्वन्त्यौ गिरिमुर्धन्ति ॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ । कामान्नान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः ॥१०॥

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गीतमी के दाहिने किनारे पर पैशाच नामक एक दूसरा तीर्थ है, जिसकी ब्रह्मजानी भी पूजा करते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥१॥ नारद । ब्रह्मगिरि के बगल में अञ्जन नाम का एक पर्वत है। मुनिवर । उस पर्वत पर अञ्जना नाम की एक शाप-भ्रष्ट थैल अप्सरा थी, जिसका शिरोभाग वानरी का था। उसके पति का नाम केसरी था। दूसरी अद्रिका नाम की थी ॥२-३॥ वह भी शापभ्रष्ट थी और उसी केसरी की स्त्री थी। उसका मुख मार्जारी के समान था ॥४॥ वही अञ्जन पर्वत पर वह भी रहती थी। एक समय लोकविख्यात केसरी दक्षिण सागर के समीप गया। इसी बीच ऋषि अगस्त्य अञ्जन पर्वत पर गये ॥५॥ ऋषि को आया देखकर अञ्जना और अद्रिका दोनों ने ऋषि-श्रेष्ठ अगस्त्य जी की यथोचित और सुखदायक पूजा की ॥६॥ उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्य ने वहाँ 'वर माँगो'। उन दोनों ने अगस्त्य से कहा कि हे मुनीश्वर ! सबने अधिक बलवान्, उत्तम गुण सम्पन्न और सब लोको का उपकार करने वाले दो पुत्र दीजिये। 'ऐसा ही होगा' ऐसा बहुर अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चले गये ॥७-८॥ इसके अनन्तर किसी समय अञ्जना और अद्रिका दोनों पर्वत के शिखर पर थीं, हास्य और नृत्य कर रही थीं उस समय वायु और निर्ऋति नामक दो देवता उन दोनों को देखकर प्रसन्न हो गये और काम के वशीभूत होकर पीछे ही वहाँ आ गये ॥१०॥ और कहा कि 'तुम दोनों हम वर देने वाले देवताओं की स्त्रियाँ हो जाओ'। उन दोनों

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं शृणु नारद तन्मनाः । कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१॥
 ऋषिरासीत्युरा कण्वस्तपस्वी ब्रह्मविस्मयः । परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२॥
 गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नधारिणा । आत्मानं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३॥
 धीर्य कण्वोऽयं वपम्नं वैराग्यमगमत्तदा । गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥
 तमेव याच्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवदेमनि । न भोदयेद्दक्षुधातीर्थोऽपि पीडितोऽपि कलेबरे ॥५॥
 गच्छेयं गौतमीं गङ्गामजयेय च सपदम् । इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम् ॥६॥
 स्नात्वा शुद्धिर्यतमना उपविश्य कुशासनम् । तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधा च परमापदम् ॥७॥

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमातिहारिणि, नमः क्षुधे सर्वजनातिकारिणि ।
 नमो महेशानजटोद्भूते क्षुधे, नमो महामृत्युमुखाद्विनि सृते

॥८॥

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद ! क्षुधातीर्थ नाम एक प्रसिद्ध तीर्थ है । मनुष्यों के सम्पूर्ण मनोरथा को पूर्ण करने वाले इस महापवित्र तीर्थ के विषय में अब कहूँगा, तुम एकाग्र मन से सुनो । प्राचीन काल में कण्व नामक ब्रह्म-वेत्ता और तपस्वी ऋषि थे । वे एक बार क्षुधा से पीडित होकर विभिन्न आश्रमों का भ्रमण करते हुये गौतम ऋषि के पवित्र आश्रम में पहुँचे जो अन्न और जल से परिपूर्ण था । अपने को ब्रह्म से व्याकुल तथा गौतम को समृद्धिवाली देखकर कण्व को कठोर वैराग्य हो गया । सोचने लगे कि गौतम भी ब्राह्मण हैं, मैं भी उसी के समान तपस्या में निरत रहने वाला उत्तम ब्राह्मण हूँ । समान ध्येयी और ज्ञान रखने वाले से याचना करना अनुचित है इसलिये मैं गौतम के आश्रम में ब्रह्म से व्याकुल और सारीरिक कष्ट सहते हुए भी भोजन नहीं करूँगा । शीघ्र ही गौतमी गंगा के पास जाऊँगा और विमलज्वरों न करूँगा । इस प्रकार काटूढ़ निश्चय कर वह मेधावी ऋषि परम पवित्र जगमा तट पर गया और स्नान से पवित्र हो हुआसन पर एकाग्रचित्त हो बैठ गया तथा गया और आपति स्वरूपिणी 'क्षुधा देवी की स्तुति करने लगा ॥१-७॥

कण्व बोले—ममानक कष्टों को दूर करने वाली गङ्गा ! तुमको नमस्कार है, सब लोगों को कष्ट देने वाली क्षुधा ! तुमको भी नमस्कार है । महेश की जटा से उत्पन्न होने वाली क्षुधे ! तुमकी नमस्कार है और महामृत्यु के मुख से निकलने वाली भगवती क्षुधा ! तुमको भी नमस्कार है ॥८॥ पुष्पात्माओं के लिये शान्तिरूपवाली ।

पुण्यात्मना शान्तरूपे श्रोत्ररूपे दुरात्मनाम् । सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापपहारिणि ॥९॥
क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नमः । नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि ॥
नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यघनाशिनि ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुयतस्तस्य पुरस्तादभवदद्वयम् । एक गाङ्ग मनोहारि हृत्पर भीषणाकृतिः ॥
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तम ॥११॥

कण्व उवाच

सवमङ्गलमाङ्गल्यं ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे । वृष्णवि श्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
श्र्यम्बकस्य जडोदभूत गौतमस्याघनाशिनि । सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सवपापकृता पापे धर्मकामायनाशिनि । दुष्कलोभमयि देवि क्षुधे तुम्य नमो नमः ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

सत्कण्ववचन श्रुत्वा सुप्रीते आहर्तुर्द्विजम् ॥१५॥

गङ्गाक्षुधे ऊचतु

अभीष्टं यद वक्ष्यामि वरावर्य सुव्रत ॥१६॥

दुरात्माभा के लिये श्रोत्रस्वरूपे ! और सरिता के रूप में पानी तथा सम्बन्ध सबके ताप पाप दोनों को हरन वाली गङ्गा । तुमको नमस्कार करता हूँ । सबको मूग के रूप में ताप और पाप देने वाली क्षुध । तुमको नमस्कार करता हूँ । श्रय (वक्ष्यामि) करने वाली । पाप को नष्ट करने वाली तुमको नमस्कार है । पालि प्रदान करने वाली देवि ! तुमको नमस्कार करता हूँ । दक्षिणा का नष्ट करने वाली ! तुमको नमस्कार है ॥९१०॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—इस प्रकार कण्व श्रुति कर रहे थे कि उनके सामने दो विभिन्न रूपवाली मूर्तियाँ प्रकट हुईं । एक गंगा की मनोहर मूर्ति दूसरी क्षुधा की भयंकर आकृति । यह दत्तवर कण्व हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे ॥११॥

कण्व बोले—महामया को देने वाली मधुसूक्तिनी ! ब्राह्मि ! शुभे ! माहेश्वरि ! वृष्णवि ! श्र्यम्बके ! देवि ! गंगावरि ! तुमको नमस्कार है । त्रिगोपन की जगत् उत्पन्न हो गयी ! गोत्रम के पारम को नष्ट करने वाली ! गात्र धारण में विभक्त होकर सागर में मिलन वाला ! गोत्रवरी ! आदरा नमस्कार है । सब पारिवर्ष के लिये पापकर वाली ! यम काम अथ को नष्ट करने वाली ! दुःख लाभ में परिपूष क्षुध ! देवि ! तुमको बार-बार नमस्कार है ॥१२१३॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—श्रुति कण्व का कान सुनकर दाना देवियाँ प्रमत्त होकर ब्राह्मण कण्व न बाली ॥१५॥
गंगा और क्षुधा बोली—वक्ष्यामि ! जाना भवार्थ रहा । मुनत्र ! कर मन्त्रा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्व क्षुधा ययात्रमम्

॥१७॥

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम । आयुर्वित्तं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

हृद्युक्त्वा गीतमीं गङ्गा क्षुधा चाऽऽह द्विजोत्तम

॥१९॥

कण्व उवाच

मयि मद्गुणैश्चापि क्षुधे तृष्णे हरिद्रिणि । याहि पापतरे रक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०॥

अनेन स्तवेन ये धै स्वा स्तुवन्ति क्षुधातुरा । तेपा हरिद्रघटुखानि न भवेयुर्वरोऽपर ॥२१॥

अस्मिन्तीर्थे महापुण्ये स्नानवानजपाविकम् । ये कुर्वन्ति नरा भरत्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२॥

यस्त्विद पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे । तस्य हरिद्रघटु खेभ्यो न भय स्याद्दरोऽपर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वभालयम् । तत प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्गा क्षुधाभिधम् ॥

सर्वपापहर वत्स पितृणा प्रीतिधनम्

॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्कारो तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥

गीतमीमाहारम्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—विनीत कण्व ने क्षुधा और गंगा से त्रमपूवक कहा ॥१७॥

कण्व बोले—देवि । मुझ मनोहर वामनाएँ और सम्पत्ति दो । गये । आयु धन भुक्ति और मुक्ति मुझे दो ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—यह वहवर द्विजवर कण्व ने पुन गीतमी गंगा और क्षुधा से कहा ॥१९॥

कण्व बोले—अतिपापे । तुम जाओ मेरे अथवा मेरे वक्षना के समीप क्षुधा । तृष्णा । हरिद्रा । रक्षा । कण्व । तुम भभी मत आना । जो कोई क्षुधा पीन्ति व्यक्ति इस स्तुति से तुम्हारी प्राप्ति कर उनको दरिद्रता और दुख बन्नी न सताय । दूसरा एक और घर है—इस महापुण्यवान् तीर्थ में जो कोई स्नान दान जप आदि भवितपूर्वक करे वह अवश्य धनवान हो । जो इस स्तोत्र को तीर्थ अथवा घर पर ही पढ़ उसको दरिद्रता और दुख से मय न हो यह एक मेरा और घर है ॥२० २३॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही हो यह वहवर ने बोना अन्तर्हित हो गई । इधर कण्व भी अपने घर चले गये । उस समय से वह तीर्थ काण्व गांग या क्षुधा-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वत्स । वह तीर्थ सब पापा को दूर करने वाला और पितरा की प्रीति बढ़ाने वाला है ॥२४ २५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में क्षुधातीर्थ वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थगणिकासंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम् । तत्र स्नानाघ्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात् ॥१॥
 एकादश्या तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवोपते । गणिकासंगमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम् ॥२॥
 पुरा तत्र यथा द्यूतं तन्मे निगदत भूषु । आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बहूधनान्वितः ॥३॥
 उत्तरे वपसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवद्व्ये । गुणवाद्रूपसंपन्नो विलासी शुभदर्शनः ॥४॥
 प्राणेभ्योऽपि प्रियः पुत्रः काले पञ्चत्वमागतः । तया दृष्ट्वा तु तं पुत्रं दंपती दुःखपीडिता ॥५॥
 कुर्वति स्म तदा तेन सहैव मरणे मतिम् । हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना ॥६॥
 यौवने वर्तमानाऽपि नीतोऽसि गुणसागर । आचयोश्च तयैव त्वं प्राणेभ्योऽपि सुदुर्लभः ॥७॥
 इत्थं तु हवितं भूत्वा दंपत्योः करुण यमः । त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽपिष्टमानसः ॥८॥
 गोवाचर्याः शुभे तीरे स्थितो ध्यायन्नृजनादेनम् । अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा बृद्धाः समन्ततः ॥९॥
 ह्यत इति मे पृथ्वी कथ्यतां केन पूरिता (?) । न कश्चिन्म्रियते जन्तुर्भाराप्राप्ता वसुंधरा ॥१०॥

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिकातीर्थ का संगम-वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्मन् । चक्रतीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध महातीर्थ है, उस तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ पृथ्वीपते । धृतराष्ट्र की पत्नी द्रौपदी को उपवास कर गणिकासंगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है ॥२॥ पहले वहाँ जो कुछ हुआ, उसको मैं कह रहा हूँ, गुनो । कोई विश्वधर नाम का एक अत्यन्त धनवान् वैश्य था ॥३॥ श्रुते । उसकी दंपती हुई अकस्मात् उसकी एक गुणवान् रूपवान् दंपति ने जो कुछ और और विलासी उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ प्राणों में भी अविश्रित प्रिय वह पुत्र युवावस्था में ही मर गया । इस प्रकार अपने बालक को मराने के दोनो पति-पत्नी अत्यन्त दुःख में ध्यातुल्लस गये और पुत्र के ही साथ मरने का निश्चय कर लिया ॥५॥ इस प्रकार निश्चय कर पुत्र को मराने के लिए गये—हा पुत्र ! हे गुणसागर ! सोच है कि पापी दुरात्मा का स्वर्ग के द्वारा तुम युवावस्था में ही हर लिये गये हो । तुम हम लोभ के लिए प्राणा में भी अविश्रित प्रिय और दुर्लभ हो ॥६-७॥ इस प्रकार दंपति का करना उपवास करने वाला विष्णु गुणकर यम का हृदय करुणा में पिघल गया और वे अपने लोक को छोड़कर तीर्थ की गोशाली के पवित्र तीर्थ पर आकर बैठ गये और समान् जनार्दन का ध्यान करने लगे ॥८॥ इसलिये मृत्यु मृत्यु के कारण दोनो ही समय में मारा और प्रजा की मरवा बड़ गई । किसी भी प्राणी की मृत्यु नहीं होती थी इसलिए वसुंधरा मार में आयात हो गई ॥९-१०॥ यम लोचने लगे कि हमने जोड़े समय में जिसने मेरी पृथ्वी को मार में पूर्ण कर दिया ।

ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसमुक्तं शक्रं परपुरजम् ॥
दृष्ट्वा वसुधरामिन्द्रं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥११॥

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम् ॥१२॥

धरोवाच

भारेण गुह्या शक्रं पीडिताऽहं विना वधम्। कारणं प्रष्टुमायाता किमिदं कथ्यतां मम ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महोवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

कारणं यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया। सुराणां हि पतिर्यस्मादहं सर्वासु(?) मेदिनि ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अथ पृथ्वी तवा वारय श्रुत्वा चाऽहं शक्षीपतिम्। यम आदिदयता सहि यया सहर्तते प्रजा ॥१६॥
इति श्रुत्वा वधो मह्य आविष्टाः सिद्धकिन्नराः। यमस्याऽऽनयने शीघ्रं महेंद्रेण महामुने ॥१७॥
ततस्ते सत्वरं याता सर्वे संवत्सतः पुरम्। नैवापश्यन्धम तत्र ते सिद्धा सह विनरं ॥
तथाऽऽगत्य पुनर्योगाद्वार्तां शक्रे निवेदिता ॥१८॥

मुनिशास्त्रम् । इससे बाद वसुधरा देवी बोली हुई वहाँ गई जहाँ देवताओं में मुनि वसुधरा को जीने वाले इन्द्र
किराजमान रहते हैं। वसुधरा को देखकर इन्द्र ने प्रणाम किया और कहा ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देवि पृथ्वि । तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? मुझसे कहो ॥१२॥

धरा ने कहा—इन्द्र । मैं भार की अधिकता से बिना वध वही (अर्थात् बिना किसी से मार लाये ही)
अत्यन्त पीड़ित हूँ। इसका कारण पूछने के लिए आई हूँ क्या कारण है मुझमें कहिये ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—पृथ्वी की उपर्युक्त बातें सुनकर इन्द्र ने यह बात कही ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—मेदिनि । यदि कोई कारण है तो अवश्य मैं उसको जान सकता हूँ क्योंकि मैं (मैं) अब
स्वायं मैं देवताओं का स्वामी हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—तब पृथ्वी ने इन्द्र की बात सुनकर पुनः इन्द्र ने कहा—यदि ऐसा बात है तो यम को जाना
दीजिये ताकि वे प्रजाओं का सहारा करें। पृथ्वी की यह बात सुनकर इन्द्र ने सिद्धकिन्नरों का आदेश दिया कि
यम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। तदनन्तर वे किन्नर शीघ्र ही यमपुरी में गये परन्तु उन किन्नरों और सिद्धों ने वहाँ
यमराज को नहीं देखा। तब शीघ्र ही वहाँ से लौटकर इन्द्र ने सारी बातें वरुणादि ॥१६-१८॥

सिद्धकिन्नरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिनवलोकित । महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाण समन्तत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तोपा पृष्ट शक्रेण वै तदा । सविता स पिता तस्य यम कुत्राऽस्त इत्यय ॥२०॥

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना । चरस्तत्र तपस्तीव्र न जाने किं नु कारणम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानो शक्र शङ्कामुपाविशत् ॥२२॥

शक्र उवाच

अहो कष्ट महाकष्ट नष्टा मे सुरनायता । गोदावर्या तप कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टित ॥

जिघृक्षुर्मत्पद नून देवा इति मतिमम ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युवत्वा सहस्रेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगण ॥२४॥

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विष । तप प्रणाशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम् ॥२५॥

सिद्ध किन्नर बोले—नाथ ! यमलोक में हम लोग ने यम को नहीं देखा यद्यपि बड़े परिश्रम से चारों ओर खोज की ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—उन की इन बातों को सुनकर इन्द्र ने यम के पिता सविता से पूछा यम इस समय कहाँ है ? ॥२०॥

सूर्य ने कहा—इन्द्र ! पुत्र यम इस समय गोदावरी के तीरे पर बैठा हुआ उस तपस्या कर रहा है मैं यह नहीं जानता कि क्या कारण है ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सूर्य की यह बात सुनकर इन्द्र को सन्देह हो गया ॥२२॥

इन्द्र बोले—अहो ! कष्ट है महाकष्ट है । मरी दबड़ को पदबन्दी लगाना चाहती है । यम निश्चय ही ईर्ष्या भावना से गोदावरी तीरे पर तपस्या कर रहा है । दबगण ! निश्चय ही वह मेरे पद को लक्ष्मी चाहता है यही मरी चारणा है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र न इस प्रकार बहबुर सहसा अंगरात्रा को बुलवाया ॥२४॥

इन्द्र बोले—तपस्या में लालीन जानु यम की तपस्या प्रत्यक्ष करने में आज लक्ष्मी में मैं कौन समर्थ हूँ यह मुझमें शीघ्र समझाव ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इति शस्त्रवच श्रुत्वा नोचे काऽपि महामुने । अयं शकः प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम् ॥२६॥

इन्द्र उवाच

उत्तरं नात्रबोक्तिञ्चिद्यामस्तर्हि वयं स्वयम् । सज्जा भवन्तु विबुधा संन्यसरायान्तु मा चिरम् ॥
घातयामो वयं शत्रुं तपसा स्वर्गकामुकम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवानां सेनां प्रादुर्बभूव ह । इतीन्द्रहृदयं ज्ञात्वा हरिणा लोकधारिणा ॥२८॥
प्रेषितं चक्रिणा चक्रं रक्षणाय यमस्य हि । चक्रं यनाभवत्तत्र चक्रतीर्यमनुत्तमम् ॥२९॥
अयेन्द्र मेनका प्राह शङ्कितेति वचस्तदा ॥३०॥

मेनकोवाच

कालावलोकने नालं काचिवस्ति सुरेदवर । मरणं च घोरं देव भवतो न धर्मात्पुनः ॥३१॥
रूपयौवनमत्सेयं गणिकायाचनं प्रभो । प्रेषणं तत्प्रयच्छंया स्वामित्वं मन्यते त्वया ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्यां शत्रुं सुरवरेदवर । आदिदेशाबला क्षामा सत्कृत्य गणिकां तया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—महामुन । इन्द्र की यह बात सुनकर किसी ने कुछ नहीं कहा । तब इन्द्र ने बड़ क्रोध से अप्सराओं से कहा ॥२६॥

इन्द्र बोले—तुम लोग कुछ उत्तर नहीं दे रही हो, इसलिये हम स्वयं जा रहे हैं । देवताओं ! तैयार हो जाओ, अपने सैनिकों के साथ युद्धाय प्रस्थान करो विलम्ब न हो । हम स्वयं तपस्या द्वारा स्वर्ग की इच्छा करने वाले शत्रु का वध करेंगे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कह देने पर देवताओं की सेना प्रस्तुत हो गई । इन्द्र की इस कुटिलता को जान कर भोवरत्नक, चक्रधारण करने वाले विष्णु ने यम की रक्षा के लिये चक्र को भेज दिया । जहाँ चक्र रक्षाय प्रवृत्त हुआ वह परम थपू चक्रतीर्थ हो गया । यह देखकर चकित भनका न इन्द्र से यह वचन कहा ॥२८-३०॥

मेनका ने कहा—सुरेन्दर ! हम लोगों में सब कोई मृत्यु देव की ओर आँखें उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकती है । देव ! आपने हाथ की मोल अच्छी है यम की नहीं । प्रभो ! रूप और यौवन से भतवाली इस गणिका की यही प्रार्थना है । यदि आप भेजना चाहते हैं तो मुझे भेजिये, आपका प्रभु-जादूग मुझे सबथा स्वीकार है ॥३१-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गणिका की इन बातों का सुनकर मुरनायक इन्द्र ने अच्छे प्रकार से सत्कार कर उस वृषाणी अवला गणिका को आज्ञा दी ॥३३॥

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम् । कृतकृत्याऽऽगता भूयो वल्लभा मे यथा शची ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकण्य वच शक्रादुत्पत्य गणिका दिशः । क्षणेन यमसानिध्यमायाता चारुपिणी ॥३५॥

यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश । सलील ललित बाला जगौ हिन्दोलकलम् (चञ्चला) ॥३६॥

ततश्चञ्चल कालस्य मनो लोल चलाचलम् । अयोन्मीत्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते ॥३७॥

तस्या श्यापारयामास श्रयशत्रो महामुनः । ततो विलीय सा सद्यः सरित्त्वमगमत्तदा ॥३८॥

गौतम्या तु समागम्य गणिकागणिककरं । गीयमाना गता स्वर्गे तस्य तीर्यप्रभावतः ॥३९॥

गच्छन्तीं गणिका दृष्ट्वा विमानस्यां दिव प्रति । विस्मय परम प्राप्त कालस्तरललोचन ॥

आऽऽदित्यन चाऽऽगत्य एवमुक्तो यमस्तदा ॥४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निज कम प्रजानां त्वं परिक्षमम् । पश्य वात सदा वान्तं सृजन्तं वेधसं प्रजा ॥

पर्यटन्तं त्रिलोकं मा वृहन्तीं वसुधां प्रजा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो वाक्यं पितृवचनमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र बोले—गणिका ! जाओ मेरे बाप को पूरा करा । मुन्दरि ! बिम्ब न हो । तपलता प्राप्त करने पर तुम शची की भाँति मेरी प्रिया बनाओ ॥३४॥

ब्रह्मा न कहा—इन्द्र की इन बातों को सुनकर मनाहूर रूप वाली वह मनसा आकाश मार्ग से उड़कर शान भर मही यम के समीप आ गई । (अपना गीत-वादिता से दगा गिताओ को प्रकाशित करती हुई वह बाला (गणिका) यम के समीप आकर बह हाव भाव से आकषक हिन्दोलकल (राग) गान लगी । उतार मधुर गान को सुनकर यम का चञ्चल मन विक्षलित हो गया ।) महामुनः ! यम न बोधामि त मेने नेत्रों को शान्ति कर दिया मार्ग में बाधा पट्टवान बाला गणिका की ओर दगा : दगन ही वह उसी क्षण अन्त्य होकर गनीम्प में परिणत हो गई और गौतमा में मिल गई । उस ताप के प्रभाव से वह गणिका गंगा और विप्रा के मान से शान्त होकर स्वर्ग मोह को छोड़ गई । विमान में बैठ कर जब वह स्वर्ग की ओर जान लगी तब वह दगनकर चञ्चलतापन बाल को आपत्त आश्रय हुआ । तत्पश्चात् उग समय स्वयं सूर्य ने आकर यम से कहा—॥३५ ४०॥

सूर्य ने कहा—पुत्र ! अपना कसम्य—प्रजा का नाश करो : देना ब्रह्मा शपथ प्रजा को गृष्टि करन रहने है बाध नश्वर करन रहने है मैं मरण विमुक्त का चक्रर लगावा करना हूँ और पृथ्वी अपने वास्तव्य पर प्रजा का नाश करती रहती है ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—गणिका की इन बातों को सुनकर यम ने कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गहितं कर्म कुर्यामहमिदं ध्रुवम् । कर्मण्यस्मिन्महाकूरे समादेष्टुं न वाऽर्हसि ॥४३॥
 इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्वचनमब्रवीत् । किं नाम गहितं कर्म तव कर्तुमलं यम ॥४४॥
 किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणिककरं । गीयमाना दिवं सद्यो गौतमीतोयमाप्लुता ॥४५॥
 त्वया चात्र तपस्तोत्रं कृतं पुत्रं सुदुष्करम् । नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्गच्छ निजं पुरम् ॥४६॥
 इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम् । यमोऽपि सगमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ ॥४७॥
 भूतहाऽपि ततः शङ्कां तस्याजं च महामुने । तया दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम् ॥४८॥
 भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः । इति यं शृणुयान्मर्त्यं पठेद्वाऽपि समाहितः ॥४९॥
 आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राहे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासगमवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
 गौतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यम बोले—यह कूर और निन्द्य कर्म मैं नहीं कहूँगा यह ध्रुव है। यह अति कूर कर्म करने के लिये आप आदेश न दीजिये। पुत्र यम भी इन वाता को सुनकर सूर्य के कहा—यम! क्या मैं तुमको गहित कर्म करने के लिये बर्षी भी कह सकना हूँ। क्या तुमने अभी-अभी गौतमी-जल में स्नान करने के कलस्वरूप गणिका को स्वर्ग की ओर जाते नहीं देखा जिसका गुणगान देवगण सेवक माव से करते आ रहे थे? पुत्र! तुमने तो इस नदी के पुनीत तीर पर अर्घ्यों से न करने योग्य बठिन तप किया है इस तपस्या का अन्त (नारा) नहीं देख रहा हूँ इसलिये तुम योद्धा अपने लोग को जाओ। यह कह कर भगवान् सूर्य गौतमी में महाकर स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यम भी सगम में स्नान कर अपने लोक को चले गये। महामुने! प्राणिया का वध करने वाले यम ने भी (गहित कर्म करने की) शका को छोड़ दिया। इस प्रकार यम को जाते हुए देखकर चक्र भी जहाँ वनमाला से सुशोभित भगवान् गोविन्द के वहाँ चला गया। इस उपर्युक्त वक्ता को जो कोई मनुष्य एवाग्रचित्त से सुनता है या पढ़ता है उसको सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है ॥४३-५०॥

श्री ब्रह्मपुराण मे चक्रतीर्थ-गणिका-सगम-वर्णन नामक टियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अहल्यासगम चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् । शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तमिदं यथा ॥१॥
 कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर । सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता ॥२॥
 तासामेका श्रेष्ठतमा निमंमे शुभलक्षणाम् । ता बाला चारुसर्वाङ्गी दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम् ॥३॥
 को वाऽस्या पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत् । न दैत्याना सुराणां च न मुनीना तथैव च ॥४॥
 नास्त्यस्या पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत् । गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते ॥५॥
 सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने । गौतमाय महाप्राज्ञमददा पोषणाय ताम् ॥६॥
 पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम् । यौवनस्या पुनः साध्वीमानयेया ममान्तिकम् ॥७॥
 एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादा कन्या सुमध्यमां । तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हतकल्मषः ॥८॥
 ता पोषयित्वा विधिवदलङ्घय ममान्तिकम् । निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा ॥९॥

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला अहल्या-सगम नाम का एक तीर्थ है । मुनिश्रेष्ठ ! इस विषय में जो कुछ हुआ, उसको मलीमांति मुनी ॥१॥ मुनीश्वर ! बहुत पहले मैंने भक्त्युक्त कौतुहल वश बहुत-सी रूपवती और गुणवती कन्याओं को बनाया ॥२॥ उनमें से एक को सर्वलक्षणसम्पन्न और अतिपुद्गल बनाया । उस रूप और गुण से युक्त, मनोहर अर्थात् वाली बाला को देखकर इसके पालन-पोषण का भार कौन उठा-सकेगा, यह भावना मेरे मन में उत्पन्न हुई ॥३॥ इसका पालन-पोषण की क्षमता न तो दैत्यो न देवताओं और न तो मुनियों में ही है ऐसी मरी चारणा हुई । यह सोचकर गुणश्रेष्ठ, परमनरत्नो, बुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्ग वे ज्ञाता, सर्वलक्षण-सम्पन्न विप्र गौतम को पालन करने के लिये उस घर में बुद्धिमती कन्या को दे दिया और कहा कि मुनिश्रेष्ठ ! तुम इसका तब तक पालन करो जब तक कि यह युवावस्था को न प्राप्त हो जाय । पुनः युवती हो जाने पर इस साध्वी को मर समीप ले आना ॥४-७॥ यह कहकर मैंने उस सुन्दर कटिवाली कन्या को गोमय को दे दिया । मुनिश्रेष्ठ ! तब से पापी को दूर कर देने वाले उस मुनि ने उसको ले लिया और नियत अवधि तक चमकर अभिवन्द्य पालन-पोषण किया । और इसका बाद आभूषण से आभूषित कर निर्विकार यावत् से अहल्या को मरे समीप ले आया ॥८-९॥ उस समय उसको देखकर सब अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवता 'गुरोमान ! मुनको दीक्षित, मुनको दीक्षित'

ता दृष्ट्वा विबुधा सर्वे शशग्निवरुणादयः । मम देया सुरेशान इत्युचुस्ते पृथक्पृथक् ॥१०॥
तयैव मुनय साध्या दानवा यक्षराक्षसाः । तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कान्धार्यमथ सगताम् ॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषण महाश्वाभूतदा ग्रहः । गौतमस्य तु माहात्म्य गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ॥१२॥
स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधी । देयेय गौतमार्यैव नान्ययोग्या शुभानना ॥१३॥
तस्मा एव तु ता दास्ये तयाऽप्येवमचिन्तयम् । सर्वेषां च मतिर्धैर्यं मयितं बालयाऽनया ॥१४॥
अहल्येति सुरैः प्रोक्तं मया च ऋषिभिस्तदा । देवानुर्योस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकं ॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूयं पृथिव्या प्रवक्षिणाम् । कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुनः पुनः ॥१६॥
ततः सर्वे सुरगणा श्रुत्वा बावय मयेरितम् । अहल्याय सुरा जम्मु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥
गतेषु सुरसयेषु गौतमोऽपि मुनीश्वरः । प्रयत्नमकरोत्कचिदहल्यार्यमिमं तथा ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभिः सर्वकामयुक् । अर्थप्रसूता ह्यभवत्ता ददर्श ॥ गौतम ॥१९॥
तस्याः प्रवक्षिणं चक्रे ह्यमुर्वीति सस्मरन् । लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रवक्षिणमयाकरोत् ॥२०॥
तयोः प्रवक्षिणं कृत्वा गौतमो मुनिसत्तमः । सर्वेषां चैव देवानामेकं चापि प्रवक्षिणम् ॥२१॥
नैवाभवद्भुवो गन्तुं सजातं द्वितीयं मम । एव निश्चित्य स मुनिर्मयान्तिकमयाम्यगात् ॥२२॥

इस प्रकार अलग अलग कहते लगे ॥१०॥ इमी प्रकार सभी मुनि साध्य दानव यक्ष राक्षस कन्याको मायनेके लिये आ गये । इस प्रकार कन्या के लिये सबको सामूहिक रूप से आया देखकर और इस विषय मे इंद्र का विशेष रूप से महान् आग्रह देखकर मुनिको अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥११॥ इसके साथ ही गौतम का धैर्य गम्भीरता और उसकी महत्ता को स्मरण कर मैं तो अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । इतने म मुझे यह सुबुद्धि हुई कि यह शुभानना गौतम को ही दी जानी चाहिए यह दूसरा के योग्य नहीं ॥१२ १३॥ अतः उसको ही दूया । फिर भी मैंने इस प्रकार सोचा कि इस बात ने सबके पान और धैर्य को मग्न ढाठा है इसलिये इसका नाम अहल्या रखा जाय इसका समर्थन ऋषिया और देवताओं ने भी किया ॥१४॥ तब मैंने देवताओं और ऋषियों की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि यह मुबार भी बाली कन्या उसी की दी जायगी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर सबसे पहले आ जायगा दूसरे को को बार बार नहीं दी जायगी ॥१५ १६॥ इसके बाद मेरी नहीं हुई बातों को सुनकर सब देवता अहल्या को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिये चले गये ॥१७॥ मुनीश्वर ! देवताओं के चले जाने पर गौतम ने भी अहल्या के लिए कुछ इस ढंग का प्रयत्न किया । ब्रह्मन् ! इसी बीच सब कामनाओं को देने वाली कामधनु अथ प्रसूता (आधा बच्चा जनने वाली) हुई । गौतम ने उसको देख लिया ॥१८ १९॥ यह पृथ्वी है इस बात को स्मरण कर उसने उसी की प्रदक्षिणा की और सुरेश श्वर के लिए की भी प्रदक्षिणा की ॥२०॥ उन दोनों की प्रदक्षिणा कर मुनि गौतम 'सब देवताओं ने अब तक पृथ्वी की एक भी प्रदक्षिणा नहीं की तब तक प्रदक्षिणा करने वाले मैंने तो दो प्रदक्षिणाएँ कर दी यह मन में निश्चय कर मेरे समीप आया ॥२१ २२॥ महामति गौतम ने मुझे नमस्कार करके यह

नमस्कृत्वाऽग्रवोद्गावय गौतमो मां महामति । कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुन पुन ॥२३॥
 प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेयं वसुधाऽखिला । यदन युक्त दवेश जानीने तद्भूवास्वयम् ॥२४॥
 मया तु ध्यानयोगन ज्ञात्वा गौतममब्रवम् । तवैव दीयते सुभ्रू प्रदक्षिणमिद कृतम् ॥२५॥
 धर्म जानीहि विप्रये दुर्ज्ञेय निगमैरपि । अर्धप्रसूता सुरभि सप्तद्वीपवती मही ॥२६॥
 कृता प्रदक्षिणा तस्या पृथिव्या सा कृता भवेत् । लिङ्ग प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात् ॥२७॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नन मुने गौतम सुमत । तुष्टोऽह तव धर्मेण ज्ञानेन तपसा तथा ॥२८॥
 दत्तयमृपिशार्वल कन्या लोकवरा मया । इत्युक्त्वाऽह गौतमाय अहल्यामब्रवा मुने ॥२९॥
 जात विवाहे ते देवा कृत्वेलाया प्रदक्षिणम् । ज्ञानं ज्ञानैरयाऽऽगत्य वदशु सर्व एव ते ॥३०॥
 स गौतममहत्या च दाम्पत्य प्रीतिवर्धनम् । ते चाऽऽगत्याय पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुरा ॥३१॥
 अतिक्रान्ते विवाहे तु सुरा सर्वे दिव ययुः । समत्सर शचीभर्ता तामीष्य च दिव मयौ ॥३२॥
 तत प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने । प्रादा ब्रह्मगिरिं पुण्य सर्वकामप्रद शुभम् ॥३३॥
 अहल्याया मुनिध्रेष्ठो रेमे तत्र स गौतम । गौतमस्य कयां पुण्या भुत्वा शत्रस्त्रिविष्टपे ॥३४॥

वाक्य कहा— कमलासन ! विश्वात्मन् ! आपको मेरा बार बार नमस्कार है ॥२३॥ ब्रह्मन् ! मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर दी । देवेश ! इस विषय मे जो कुछ सचता है उसको आप स्वयं जानते हैं, ॥२४॥ मैंने श्री ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से यह सब कुछ जान लिया और गौतम से कहा यह गुदर मौं वाली अहल्या तुमको ही दी जायगी क्योंकि तुमने प्रदक्षिणा समाप्त कर दी है ॥२५॥ विप्रयि ! नास्को स श्री कठिनाई स जानने योग्य घम का तुम जानते हो । सचमुच अर्धप्रसूता (आधी ब्याई) कामयन् सात द्वीप वागी पृथ्वी है ॥२६॥ इनकी की हुई प्रदक्षिणा पृथिवी की की हुई प्रदक्षिणा के बराबर हुई और पिबालिग की प्रदक्षिणा स पृथ्वी प्रदक्षिणा का ही फल मिलता है ॥२७॥ इसलिये मुने ! उत्तम व्रत करने वाल गौतम । तुम्हारे धर्म ज्ञान और तपस्या स मैं मणी मति प्रमन्न हूँ ॥२८॥ श्रियिणादूल ! सबमुन्दरी यह कन्या तुमको दे दी गई । मुन ! यह बहुरर मैंन गौतम की अहल्या दे दी ॥२९॥ इधर विवाह हुआ जाने पर वे देवता पृथ्वी की परिचया कर धीरे धीरे मेने पाग आये और यह सब कुछ दखा ॥३०॥ वे देवता आकर अहल्या और गौतम का प्रेम बक्षने वाला दाम्पत्य (विवाह-मन्त्र) देकर अत्यन्त विस्मिन् हो गय ॥३१॥ इस प्रकार विवाह विधि समाप्त हो जाने पर सब देवता स्वर्ग को चने गय । परन्तु शचीपति इन्द्र न अत्यन्त ईर्ष्या की दृष्टि स अहल्या को देखते हुए स्वयं को प्रस्थान किया ॥३२॥ इधर बाद मैंने प्रमन्न होकर महामा गौतम को सब कामनाओं को दन वाला पवित्र ब्रह्मगिरि दे दिया । उस पर्वत पर मुनिध्रेष्ठ गौतम आनन्द-पूवक अहल्या के साथ विहार करने लगे इस पवित्र सुमन्यक गौतम के दाम्पत्य प्रेम को क्या को द्रष्ट ने स्वर्ग मे

तमाश्रमं तं च मुनि तस्य भार्यामनिन्दिताम् । भूत्वा ब्राह्मणक्षयेण द्रष्टुमाणाच्छतक्रतुः ॥३५॥
म दृष्ट्वा भवने तस्य भार्या च विभक्त्य तया । पापीयसीं भर्ति कृत्वा अहल्यां समुदेक्षत ॥३६॥
नाञ्जमानं न परं देशं कालं शापादुपेभयम् । न बुबोध तदा चत्स कामावृष्टः शतत्रतुः ॥३७॥
तद्व्यानपरमो नित्यं सुरराज्येन गवितः । संतप्ताङ्गः कथं कुर्या प्रवेशो मे कथं भवेत् ॥३८॥
एवं वसन्विप्ररूपो नान्तरं त्वध्यगच्छतः । स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पौर्वाह्निकीं त्रयाम् ॥३९॥
सहितो गौतमः शिष्यैर्निर्गतश्चाश्रममादबहिः । आश्रमं गौतमीं विप्रान्धान्यानि विविधानि च ॥४०॥
द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदेक्षत । इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मन प्रियम् ॥४१॥
रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेसुः स शतक्रतुः । ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमहत्या वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणै रूपं स्मृत्वा स्थलरूपव । इति कुवन्हसम्भूस्तमादायान्त समाविशत् ॥४३॥
न बुबोध त्वहल्या त जात मेने तु गौतमम् । रमणा ययासीत्यं प्रतागच्छिष्यं स गौतमः ॥४४॥

मुना ॥३३-३४॥ ईर्ष्यालु शतक्रतु इन्द्र उस आश्रम, उस मुनि और मुनि की पवित्र पतिव्रता भार्या को देखने के लिये ब्राह्मण के वेष में आया ॥३५॥ गौतम के भवन भार्या और विभक्त को देखकर उसके मन में पापवृद्धि उत्पन्न हो गई । उसने दूरी दृष्टि से अहल्या को देखा ॥३६॥ वत्स । उस काम के वशीभूत शतक्रतु इन्द्र ने न तो आत्मगौरव न शोकपवाद, न देश, न काल की ही समझा और न तो ऋषि-शाप के भय का ही उसको ज्ञान रहा ॥३७॥ वह कामाग्नि से दाघ शरीरवाला सर्वदा अहल्या के ही ध्यान में मस्त रहा । उसको अपने सुर राज्य पर अभिमान था । वह तो यही सोचता रहा कि 'क्या नरक' कैसे ऋषि के घर में मेरा प्रवेश होगा' ॥३८॥ इस इकार ब्राह्मण के वेष में छिपा हुआ इन्द्र ऋषि-आश्रम में रहने लगा किन्तु उसको अवसर नहीं मिला । किसी समय वह महाबुद्धिमान् गौतम मुनि पूर्वाह्न की नित्यत्रिया समाप्त कर शिष्यों के साथ आश्रम से बाहर चले गये ॥३९॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि आश्रम गौतमी, विप्रों और विविध धान्यों को देखने के लिए चले गये हैं । तो अब मुझे अवसर मिला, यह कहकर अपना अमिलपित कार्य करने लगा ॥४०॥ ४१॥ प्रिय अहल्या को पाने की इच्छा रखने वाले शतक्रतु ने गौतम का रूप धारण कर लिया और उस सर्वाङ्गी सुन्दरी अहल्या को देखकर यह कहा ॥४२॥

इन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारे गुणों से शिवा हुआ (वशीभूत) हूँ । तुम्हारे रूप का स्मरण कर मेरे पैर सीधे नहीं पड़ते (अपने पद से भ्रष्ट हो गया हूँ) । यह कहकर हँसता हुआ उसका हाथ पकड़कर अन्त पुर में घुस गया । अहल्या ने उसको जार (उपपति) नहीं समझा किन्तु गौतम ही मान लिया । इसलिए उसके साथ सुख-पूर्वक विहार करने लगी । इसी समय अपने शिष्यों सहित गौतम पहुँच गये । नित्यप्रति प्रिय वचन कहने वाली

आगच्छन्त नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी । प्रतियाति' प्रिय वक्ति तोषयन्ती च ॥४५॥
 तामदृष्ट्वा महाप्राज्ञो भेने तन्महदभुतम् । द्वारस्थित मुनिश्रेष्ठ सर्वे पश्यन्ति नारद ॥४६॥
 अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकमिण । ऊचुर्मुनिवर भीता गौतम विस्मयान्विता ॥४७॥

रक्षिण ऊचु

भगवन्निमिदं चित्रं बहिरन्तश्च दृश्यसे । प्रिययाऽन्तं प्रविष्टोसि तथैव च बहिर्भवान् ॥
 अहो तप प्रभावोऽयं नानारूपधरो भवान् ॥४८॥

अह्योवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्तं प्रविष्टः को नु तिष्ठति । प्रिये अहल्ये भवति किं मां न प्रतिभापसे ॥४९॥
 इत्थं पूर्वैश्च न श्रुत्वा अहल्या जारमब्रवीत् ॥५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पापं स्व कृतवानिति । इति क्ववती शयनादुत्थिता सत्वरं भयात् ॥५१॥
 स चापि पापकृच्छ्रो विद्यालोऽभून्मुनेर्भयात् । तस्मां च विकृता बुद्ध्या स्वप्रियां दूषितां तवा ॥५२॥

अहल्या गौतम के आने पर उनका सत्कार करने के लिये द्वार तक जाती मधुर वचन बोलती थी जोई अपने स्त्रीमुल्लस गुणों से उनको सतुष्ट करती थी । किन्तु आज उसको पूरा की भाँति न देत कर उस महाप्राज्ञ को अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ा । नारद । द्वार पर खड़े मुनिश्रेष्ठ को समी देखने लगे । अग्निहोत्राग्य के रक्षण और घर घर काम करने वाला सेवा आश्रय धरित और सपत्नीत हाथर मुनि से कहन लग्य ॥४३ ५७॥

रक्षकों ने कहा—भगवन् ! यह क्या ! आप बाहर और भीतर सबत्र दिनाई दन हैं अभी प्रिया के साथ अंत पुर में प्रविष्ट रूप और अभी उसी प्रकार बाहर भी दिनाई दे रह हैं । अहा ! यह तपस्या का प्रभाव है आप किमित्र रूप धारण करने वाले हैं ॥४८॥

अह्या ने कहा—यह मुनिकर विस्मित गौतम घर के भीतर क्या गय और क्यों—यही क्यों है ? प्रिये ! अह— ! तुम आज मुझसे क्या नहीं प्रतिभापण कर रही हो ? श्रुति की शक्ति को मुनिकर अहल्या ने जोर से कहा ॥४९ ५०॥

अहल्या बोली—तुम क्यों हो ? तुमने मुनि का रूप धारण कर मेरे साथ पाप कम किया है । यह कहती हुई मधुग पीछे पलग में उठ गई । वह पापकर्मा इन्द्र भी मुनि के सम्यग विद्वान् बन गया । उग समय सम्यग भीन विद्वान् और दूषित अपनी प्रिया को देखकर उग मुनि ने त्राप से कहा कि तुमने यह कौन-सा माहम (कुरा

उवाच स मुनि कोपात्किमिदं साहसं कृतम् । इति ब्रुवन्तं भर्तारं सा अपि भोवाच लज्जिता ॥५३॥
अन्वेयस्तु तं जारं बिडालं ददृश मुनिः । को भवानिति तं प्राह भस्मोदुर्या ॥५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपति । शचीभर्ता पुरा भेत्ता तपोधन पुरुष्युत ॥५५॥
ममेव पापमापन्नं सत्यमुक्तं मयाऽनघ । महद्विगर्हितं कर्म कृतवानस्म्यहं मुने ॥५६॥
स्मरसायकनिर्भन्नहृदया किं न कुर्वते । ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व करुणानिधे ॥५७॥
सन्तं कृतापराधेऽपि न रौक्ष्यं जातु कुर्वते । निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह व्याञ्जित ॥५८॥

गौतम उवाच

भगवत्या कृतं पापं सहस्रभयवाग्भव । तामप्याह मुनि कोपात्स्व खं शुष्कनदी भव ॥५९॥
ज्ञातं प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतम् ॥६०॥

अहल्यावाच

मनसाऽप्यन्यपुदयं पापिष्ठा कामयन्ति याः । अक्षयायाति नरकास्तासां सर्वेऽपि पूवजा ॥६१॥

कर्म) कर डाला । इस प्रकार भर्ता को कहते हुए देखकर वह भी लज्जा के मारे कुछ न कह सकी । मुनि भी जार को धूने के इतने में एक बिडाल दिखाई दिया । उन्होंने उससे कहा कहा—तुम कौन हो ? असत्य बोलोगे तो मरम् कर दूंगा ॥५१५४॥

इन्द्र बोल—हाथ जोड़कर इन्द्र ने इस प्रकार कहा—तपोधन । शची का भर्ता पुरा राक्षस को मारने वाला पुरुष्युत (बहुत नाम वाला) इन्द्र हूँ । निष्पाप । मुझसे ही यह पापकर्म हुआ । मैंने सत्य कहा है । मुने । ज्ञान निषिद्ध कर्म मैंने किया है । काम के बाणों से आहत हृदय वाले (कामात) मनुष्य क्या नहीं कर देते हैं ? जहन्म । करुणा सागर । मुझ महापापी को क्षमा कीजिये । सत् पुरुष अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते । इन्द्र की बातों को सुनकर नृद्ध विप्र ने इन्द्र से कहा—॥५५५८॥

गौतम बोल—तुमने भय के प्रभ से यह काम किया है इसलिये हजार भय (घोति) वाले हो जाओ । मुनि ने क्रोध से अहल्या से भी कहा कि तुम भी सूखी नदी हो जाओ । तदनन्तर इन्द्र की आज्ञा का वचन करती हुई अहल्या उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी ॥५९६०॥

अहल्या न कहा—जो पापिष्ठा नारी यम से भी परपुरुष की कामना करती है उसकी तो कौन कहे उसके सभी पूवज भी वही न नष्ट होने वाले नरक को जाते हैं । भगवन् । प्रसन्न होकर मेरी बातों पर विचार कीजिये ।

१२ ०ता । अममाण भयोडिन् वि० । २४ ०यी सहानुगम् । ३० । ३क ०त । त्वया गफ ह० ।

४ घ ०गमागव ।

भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय मद्वचः। तव रूपेण चाऽऽगत्य मामगताक्षिणस्त्वमे॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहृत्या सत्यवादिनी। ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तः प्राह पतिव्रताम्॥६३॥

गौतम उवाच

यदा तु सगता भद्रे गौतम्या सरिदीशया। नदी भूत्वा पुनरूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम॥६४॥
द्रुत्येवंचनं भूत्वा तथा चचे पतिव्रता। तया तु संगता देव्या अहृत्या गौतमप्रिया॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभयद्यन्मया निमित्तं पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम्॥६६॥

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठ गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः॥६७॥

गौतम उवाच

गौतमी गच्छ भद्रं ते स्नानं कुव पुरंदर। क्षणतश्चिर्भूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि॥६८॥
उभयं विस्मयकरं दृष्टवानस्मि नारद। अहृत्यापाः पुनर्भावं शचीभर्ता सहलवृक्॥६९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्यमहृत्यासंगमं शुभम्। इन्द्रतीर्यमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्॥७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिक्काह्ये तीर्यमाहात्म्येऽहृत्यासंगमेन्द्रतीर्यवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

वह आप का ही रूप धारण कर मेरे पास आया, इसने ये रक्षकों ने भी कहा कि अहृत्या सत्य कह रही हैं। मुनि ने भी अपने योगशल से जानकर शांत हो पतिव्रता भावा से कहा॥६१-६३॥

गौतम ने कहा—वत्स्याणि। जब तुम नदी होकर नदियों की स्वामिनी गौतमी से मिलोगी तब पुन मेरे प्रिय करनेवाले रूप को प्राप्त करोगी। श्रुति की बात सुनकर पतिव्रता अहृत्या ने बैठा ही किया। देवी गौतमी से मित्र जाने पर गौतम की प्रिया अहृत्या पुन उस रूप को पा गई जैसा कि मैंने पहले बताया था। इसने बाद गुरुरात्र इन्द्र ने हम आकर गौतम से कहा—॥६४-६६॥

इन्द्र बोले—‘मुनिगार्दूल। घर में आये हुए हम महापापी की रक्षा कीजिये’। हम प्रकार इन्द्र को पैरो पर गिरा हुआ देखकर कृपा से आर्द्र मुनि ने कहा—॥६७॥

गौतम ने कहा—गौतमी ने पास जाओ, तुम्हारा वत्स्याण होना। पुरंदर! उगमे जा कर स्नान करो, एक क्षण में ही तुम्हारे पाप धुल जायेंगे और तुम महत्वात्मान हो जाओगे’। नारद! मैंने आश्चर्य में डाल देने वाली दोना घटनाओं को—पत्नी अहृत्या का नदी होकर भी पुन अपने स्वरूप को प्राप्त होना और दूसरी शचीपति का महत्वात्माना—दंगा है। तब मे बहुत श्रमपूर्वक अहृत्या-ममम या इन्द्रतीर्य नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्यों के सब मनोरंजन को पूर्ण करने वाला है॥६८-७०॥

श्री कृष्णमहापुराण में अहृत्या-ममम इन्द्रतीर्य-वर्णन नामक वृत्तांतीर्षी अध्याय समाप्त॥८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपर तीर्थे जनस्थानमिति श्रुतम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्भुक्तिव नृणाम् ॥१॥
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनक पुरा । सोऽप्रापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणः जनका जनको नृप । अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥
याज्ञवल्क्यश्च विभ्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः । तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्यः पुरोहितम् ॥४॥

जनक उवाच

भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णति मुनिसत्तम । दासीदासेभ्यस्तुरगस्थाद्यैर्भुक्तिवत्तमा ॥५॥
कित्त्वन्तविरसा भुक्तिर्भुक्तिरेका निरत्यया । मुक्तेर्मुक्ति श्रेष्ठतमा भुक्त्या भुक्तिः कथं ब्रजेत् ॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्भुक्तिप्राप्तिं सुदुःखतः । तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत् ॥७॥

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद जनस्थान नाम स श्रद्धि चार योजन तक विस्तृत एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र स मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है । प्राचीन काउ मे वैवस्वत वस भ जनक नाम के एक राजा उत्पन्न हुए । उन्होंने जल क स्वामी वरुण की बन्धा गुणागवा (गुण का समुद्र अत्यन्त गुणवती) ने—जो कि धर्म धन धन और मोक्ष को देने वाली थी—विवाह किया । उस राजा जनक की भार्या गुणागवा अपने अनुरूप गुणा क कारण वास्तव म गुणागवा (गुण-सागर) थी । विभ्रेन्द्र याज्ञवल्क्य उस राजा के पुरोहित थे । एक दिन मृदधष्ठ जनक ने पुरोहित याज्ञवल्क्य से पूछा—॥१-४॥

जनक बोले—भुक्ति और मुक्ति दोनों श्रेष्ठ हैं ऐसा श्रेष्ठ मुनिया ने निर्णय किया है । यद्यपि दासी दास, हाथी, घोड़े और रथ आदि सुख सामग्रियों के कारण मुक्ति उत्तम मानी जाती है परन्तु मुक्ति का अन्त आनन्द से रहित है केवल मुक्ति ही निरत्यय (नित्य और अविनाशी) है । मुक्ति से मुक्ति श्रेष्ठ है परन्तु मोक्ष के बाद मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है । सब प्रकार की वासन्ति के त्याग से ही मुक्ति प्राप्त होती है इसलिये मह मुक्ति अत्यन्त दुःख से प्राप्त करने योग्य है । अतः हे द्विजशार्दूल ! मुक्ति सुखपूर्वक कैसे प्राप्त की जा सकती है यह कहिये ॥५-७॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अपापतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तया । तं गत्वा पूज्य नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा । गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

वरुण उवाच

द्विधा तु सस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि । वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरपार्यचतुष्टयम् । अकर्मणैवाऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मपोच्यते ॥११॥
कर्मणा 'सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम । तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तोह मानवाः । अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याधमेषु च ॥१३॥
जात्याभितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित् । आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानव ॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम् । तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान् । वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । तद्वदस्व सुरधेष्ट सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

याज्ञवल्क्य ने कहा—जल के स्वामी वरुण तुम्हारे श्वशुर गुरु (मानदाता) तथा प्रिय करने वाले हैं। भूपति! तुम उन्हीं के पास जाकर पूछो। वे तुम्हारे अनुबल ज्ञान का उपदेश करेंगे। सब याज्ञवल्क्य और जनक दोनों ने राजा वरुण के पास जाकर घान्तभाव से यथाक्रम मुक्तिमार्ग के विषय में पूछा ॥८-९॥

वरुण ने कहा—मुक्ति की स्थिति दो प्रकार की है, एक कर्म द्वारा, दूसरी अकर्म द्वारा, परन्तु वेदों में यही मार्ग निश्चित किया गया है कि अकर्म से कर्म ही श्रेयस्कर है। सब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरपार्य कर्म सह ही जाबज है। अतः 'वर्मत्याग मुक्ति का मार्ग है' यह कहना व्यर्थ है। नृपधेष्ट! कर्म से ही सब धान्यो की भी प्राप्ति होती है अतः सब प्रकार से वेदोक्त कर्म करना चाहिये। मनुष्य उस कर्म के द्वारा ही लोक में मुक्ति और मुक्ति प्राप्त करते हैं। अकर्म की अपेक्षा कर्म ही श्रेयस्कर है। चारों आश्रमों में भी कर्म की ही प्रधानता है। राजेन्द्र! धर्म के जानने वाले! उन कर्मों में भी जाति से सम्बन्ध रखने वाले कर्म को मुनो! मानव! चारों आश्रमों में कर्म के द्वारा ही बन्नाय गये हैं। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम पुण्यप्रद कहा गया है। उसी गृहस्थाश्रम से मुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, यह मेरा विचार है ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर जनक और बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने वरुण की पूजा कर पुनः यह वचन कहा—'बौन-सा देश और बौन से तीर्थ, मुक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं। सुरधेष्ट! आप सर्वज्ञ हैं। इस बात को बतलाइये। आपकी ममस्कार हैं' ॥१६-१७॥

वरुण उवाच

पुण्यिष्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यवम् । तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा भुक्तिप्रदा नृणाम् । तत्र यत्नेन दानेन भोग्यान्भुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको याचं श्रुत्वा ह्यर्पापतेः । वरुणेन ह्यनुजातो स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृपः । याज्ञयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥
गङ्गातीरं समाधित्य यज्ञान्भुक्तिमवाप राट् । तथा जनकराजानो बह्वस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
भुक्तिं प्राप्नुमहाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः । ततः प्रमृतिं तत्तीर्थं जनस्थानेति विद्युतम् ॥२३॥
जनकानां यत्तसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् । क्षतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितृणां तर्पणेन तु । तीर्थस्य स्मरणाद्वापि गमनाद्भुक्तिसेवनात् ॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति भुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥
गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

वरुण बोले—इस भूमण्डल में भारतवर्ष और उसमें भी दण्डकवन पुण्यदायक प्रदेश है। उस क्षेत्र में गये गये जनों से मनुष्य को भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है। तीर्थों में गौतमी गंगा श्रेष्ठ और मनुष्यों को भुक्ति देने वाली है। वहाँ यज्ञ करने और दान देने से भोगों से भुक्ति मिल जाती है ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—याज्ञवल्क्य और राजा जनक वरुण की उपर्युक्त बातों को सुनकर उनसे आज्ञा लेकर अपनी नगरी को चले गये। वहाँ जाकर नृप जनक ने अश्वमेधादियज्ञों को चिया और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने (पुरोहित बनकर) नृप जनक से यज्ञ करवाया। उस राजा ने इस प्रकार गंगा-तीर का आश्रय लेकर यज्ञों द्वारा भुक्ति प्राप्त की। इसी प्रकार बहुत से जनक वंश के राजाओं ने वहाँ पर कर्म करने से और गौतमी की कृपा से भुक्ति प्राप्त की। तब से वह तीर्थ जनस्थान नाम से प्रसिद्ध हो गया। जनकवंशी राजाओं का यज्ञमवन ही जनस्थान कहा गया है, जो चार योजन विस्तीर्ण है। उसके स्मरण से ही सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ स्नान करने, दान देने और पितृतर्पण करने और तीर्थ के स्मरण करने, अथवा भुक्तिपूर्वक वहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर अन्त में भुक्ति प्राप्त करता है ॥२०-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जनस्थान-तीर्थ-वर्णन नामक अष्टाशीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

अथोननवतितमोऽध्यायः

अरुणावरुणासगमाश्वभानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव मद्यो पुण्यतरे शुभे । तयोश्च सगम पुण्यो गङ्गाया मुनिसत्तम ॥१॥
 तदुत्पत्तिं शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम् । काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुत ॥२॥
 त्रैलोक्यचक्षुस्तीक्ष्णाः सप्ताश्वो लोकपूजित । तस्य पत्नी उपा रयाता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३॥
 भर्तुं प्रतापतीव्रत्यभसहन्ती सुमध्यमा । चिन्तयामास किं कृत्य मम स्यादिति भामिनी ॥४॥
 तस्या पुत्री महाप्राज्ञो मनुर्वेवस्वतो यम । यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम् ॥५॥
 साऽकरोदात्मानश्छायामात्मरूपेण यत्नत । तामयवीक्षतश्चोषा त्व च भस्त्वृशी भव ॥६॥
 भर्तारं त्वमपत्यानि पालयस्व ममाऽज्ञया । यावदागमन मे स्यात्पत्युस्तावत्प्रिया भव ॥७॥
 माऽऽत्त्यातव्यं त्वया क्वापि अपत्याना तया प्रिये । तयेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुपा ॥८॥
 ह्रस्वत्वा सा जगामाऽऽशु ज्ञान्त रूपमभीप्सते । सा गत्वोषा गृहं स्वष्टु पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥९॥
 त्वष्टाऽपि चकित प्राह ता सुता सुतवत्सल

॥९॥

अध्याय ८६

अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिज्येष्ठ । अरुण और वरुण नाम की दो शुभ पवित्र नदियाँ हैं । उनका सगम जो गंगा में मिलने से बनता है—अत्यंत पुण्य देने वाला है । उनकी उत्पत्ति की क्या—जो सब पापों को नष्ट करने वाली है—मुनी । काश्यप के ज्येष्ठ पुत्र लोक प्रसिद्ध आदित्य हैं—जो तीनों लोकों के नेत्रस्वरूप तीक्ष्ण चिरणवाले और शूर-पूजित हैं । उनसे सात बच्चे हैं । उनकी पत्नी त्वाष्ट्री की क्या विभूति—सुन्दरी उपा हुई । वह सुन्दर कटि वाली भार्या पति के तीव्र तन को नहीं सह पाती थी । इसलिये अपने मन में विचार किया कि मुझ क्या करना चाहिये । उसने दो परम प्रणवान् र्वेवस्वत मनु और यम पुत्र हुए । परम पवित्र यमुना नदी पुत्री हुई । आगे बौन सी विस्मय उत्पन्न करने वाली घटना हुई । उसको मुनी । उसने अपनी छाया को बड़े यत्न से अपने रूप के समान ही बनाया । इसका अनन्तर उपा ने अपनी मूर्तिमती छाया से कहा—तुम मेरे समान हो जाओ । मेरी आज्ञा से मेरे पति और यच्छा का पालन करो जब तक मैं न आऊँ तब तक तुम मेरे पति की प्रिया बनो । प्रिये ! इस रहस्य को कहा पर किसी से भी यहाँ तक कि अपने वध्वों से भी मत कहना । छाया ने इसको स्वीकार कर लिया । तब उपा घर से बाहर चली गई । इस प्रकार छाया को समझा कर शीघ्र आत्मगान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता त्वष्टा के घर जाकर पिता से सब कुछ कह मुनाया । सुतवत्सल त्वष्टा भी यह सुनकर चकित हो गये और पुत्री उपा से कहा—॥१॥

त्वष्टोवाच

नैतद्युतं भर्तृमत्या यत्स्वरेण प्रवर्तनम् । अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव ॥
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गोहं पुनर्वज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा वै पुनः पुनः । उत्तरं च कुरोर्दशं जगाम तपसे त्वरा ॥११॥
तत्र तेपे तपस्तोयं वद्वारूपधारिणो । दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्तो निश्चला उवा ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया चोपास्ववर्त्तिणी । पत्यो सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जगिरे ॥१३॥
सार्वाणिदच शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका । सा छाया वर्तयामास वैषम्येणैव नित्यशः ॥१४॥
स्वेष्वपत्येषु चोपाया यमस्तत्र चुकोप ह । वैषम्येणाय वर्तन्ती छाया तां मातर तदा ॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणाशापतिर्यमः । पुत्रद्वौर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्यतं यमम् ॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽऽजया । विशीर्णचरणो दुष्साद्रुदन्पितरमभ्यगात् ॥
सविने तं तु वृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः ॥१७॥

यम उवाच

नेयं माता सुरश्रेष्ठ यया शप्तोऽहमोदश । अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते ॥१८॥
यद्वाल्यादध्रवं किञ्चिदथवा दुष्टृतं कृतम् । नैव कुप्यति सा माता तस्मान्नेयं ममास्त्रिका ॥१९॥

त्वष्टा ने कहा—यह पति वाली स्त्रियां क'गिये उचित नहीं है कि वह स्वेच्छा से कार्य करे। मला बताओ तो तुम्हारे भर्ता सविता और सतान की क्या स्थिति होगी। मरे ! मैं शिष्टता के माते डर रहा हूँ, तुम पुनः अपने स्वामी के घर चली जाओ ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पित्रा के इस प्रकार कहने पर उस उपा ने बार बार “नहीं, नहीं” कहा और कुछ से उत्तर प्रदेश की ओर क्षीप्रता से तपस्या करने चली गई। वहाँ वदवा (घोड़ी) का रूप धारण कर उपा ने निश्चल भाव से अपने बटिनाई से देखे जाने योग्य पति का ध्यान करती हुई तीव्र तप किया। तात ! इस बीच उपा की प्रतिनिधि छाया ने पनि के साथ दाम्पत्य व्यवहार किया और सार्वर्षिक तथा शनि नाम के दो पुत्रों एवं विष्टि नाम की दुष्ट कन्या को उत्पन्न किया। वह छाया नित्य प्रति अपने पुत्रों और उपा के पुत्रा के साथ असमान व्यवहार करने लगी। यह देखकर यम क्रुद्ध हो गये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम न उस समय असमान व्यवहार करने वाली उस माता छाया को पैर से मारा। पुत्र को इस अशिष्टता को देखकर छाया को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसने वैवस्वत यम को शाप दिया कि पापी ! मेरे शाप से तारे चरण गल जायें। माना कि शाप से यम के पैर गल गए, दुःख से राना हुआ वह हिला के समीप गया और सविता म आदि से अन्न तक सारा वृत्तान्त कहा सुतापा ॥११-१७॥

यम ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! बिगने मुझे इस प्रकार शाप दिया है, वह मेरी माना नहीं है। मत्तन के अति टाकावरण करने पर माता कभीभी क्रोध नहीं करती है। बाल्य-काल में जो कुछ मैंने कहा था अशिष्टता की है,

यदपत्यकृतं किञ्चित्साध्वस्वाधु यथा तथा । मातृस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते ॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मा तात नित्यं पश्यति चक्षुषा । वक्तृग्निमालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सविताऽचिन्तयत्ततः । इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः ॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्तो देशेऽन्यास्मिस्तपोरता । उत्तरे च कुरी त्वाष्ट्री बडवारूपधारिणी ॥२३॥
तत्राऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः । यत्र सा वर्तते फान्ता अश्वरूपं स्वयं तदा ॥२४॥
ता वृष्ट्वा बडवारूपां पर्यधावद्वयाकृति । कामातुरं हूयं वृष्ट्वा श्रुत्वा वै ह्रेषितस्वनम् ॥२५॥
उषा पतिव्रतौपेता पतिध्यानपरायणा । हृषधर्षणसंभीता को न्वयं चेत्यजानती ॥२६॥
अपलायत्पत्नीं प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा । को नु मे रत्नकोऽत्र स्यादुपयो वाऽप्यवा सुरा ॥२७॥
धावन्तीं ता प्रियामश्वामश्वरूपधरः स्वयम् । पर्यधावद्वतो याति उषा भानुस्ततस्ततः ॥२८॥
स्मरप्रह्वशो जातः को दुश्चेष्ट न चेष्टते । भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च ॥२९॥
नर्मदां चाप विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखावु (खीउ) भौ । अतिरुम्य भयोद्धिन्ता त्वाष्ट्याभ्यगाच्च
गौतमीम् ॥३०॥

आतारः सन्ति मुनयो जनस्थान इति श्रुतम् । ऋषीणामाभ्रमं साऽश्वा प्रविष्टा गौतमीं तथा ॥३१॥

उसकी देखकर वह मेरी माता कभी भी नृद्ध नहीं हुई। इसलिये यह मेरी माता नहीं है। जिस किसी प्रकार का सतान द्वारा किया हुआ कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा सब कुछ उस माता के कारण हृदय में जाकर ही घान्त हो जाता है, इसीलिए उसकी (माति अस्याम्) माता कहते हैं। तात ! मुझ को यह इस प्रकार देखती है मानो आँखों से जला बेगी और सर्वदा कालाग्नि के समान वाणी से ही बोलती है, इसलिये यह मेरी माता नहीं है ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सविता अपने पुत्र की बातों को सुनकर विचार करने लगे कि यह छाया इसकी माता नहीं है। इसकी माता उषा तो दूसरे स्थान पर है। वह स्वप्ता की पुत्री तो बडवा का रूप धारण कर इस समय उत्तर कुच प्रदेश में मेरी शान्ति की कामना से तपस्या में लीन है। 'वह वहाँ ही है' यह जानकर भगवान् दिवाकर स्वयं अश्व का रूप धारण कर उन प्रदेश में गये जहाँ उसकी प्रिया उषा तपस्या कर रही थी। प्रिया उषा को इस प्रकार बडवा के रूप में देखकर स्वयं अश्व की आकृति वाले मूयं कामातुरहो उसकी ओर दौड़ पड़े। घोड़े को कामातुर देखकर और उसकी हिनहिनाहट को सुनकर पतिव्रता, पति ध्यान में तल्लीन उषा अश्व की छिटाई से डर गई। 'यह कौन है' यह जान कर पति ने आने पर भी वह स्त्रीछ हो दक्षिण दिशा की ओर भाग चली और सोचने लगी कि अब इस परिस्थिति में मेरा कौन रत्न होगा ऋषिगण अथवा देवगण। उस अनारी प्रिया बडवा को भागती हुई देववर अश्वरूप धारी मूयं भी स्वयं दौड़ने लगे। वह दौड़ते हुए त्रिषर जाती थी मूयं भी उपर ही दौड़ते हुये जाते थे। कामदेव रूपी यह वे वग में हो जाने पर कौन है जो अजिष्ट चेष्टाएँ नहीं कर देना है ? इस प्रकार वे दोनों दक्षिण की ओर मुख त्रिये हुये भागीरथी, अन्यान्य नदिवा वन उपवन तथा नर्मदा और विन्ध्यपर्वत को पार कर गये। उषा किसी प्रकार अपनी रत्ना न देखकर मय से अडिग्न हो गौतमी के समीप गई। यह सुनकर नि ऋषिमुनि इस लोभ में दुःखिता की पीडिता के रत्न हैं, वह बडवा गौतमी-नट पर स्थित ऋषि-आश्रम में पहुँची। कुछ देर

अनुप्राप्तस्तथा चाश्वो भानुस्तुद्रूपवास्तत । अश्व निवारयामासुजनस्था मुनिदारका ॥
तत कोपादूर्पोस्ताश्च शशापोपापति प्रभु ॥३२॥

भानुरुवाच

निवारय मा यस्माद्दृढा स्य भविष्य ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेन्द्रवमुपापतिम् । स्तुवन्तो देवदेवेश भानु त मुनयो मुदा ॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वो भानुरथागमत् । वडवाया मुखे लग्न मुख चाश्वस्वरूपिणम् ॥३५॥
ज्ञात्वा स्वाष्ट्री च भर्तारं मुखाद्दोषं प्रसुख्ये । तयोर्वीर्येण गङ्गायामश्विनौ समजायताम् ॥३६॥
तत्राऽऽगच्छन्मुरगणा सिद्धाश्च भुनयन्तथा । मद्यो गावस्तथोपपन्नो देवा उद्योतिर्गणास्तथा ॥३७॥
सप्ताश्वदश्च रथ पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथि । यमो मनुश्च वरुण शनिर्वैवस्वतस्तथा ॥३८॥
यमुना च मदी पुण्या तापी चैव महानदी । तत्तत्राप समास्थाय नद्यस्ता विस्मयाभुने ॥३९॥
दृष्ट्वा ते विस्मयाविष्टा आजग्मु श्वशुरस्तथा । अभिप्राय विवित्वा तु श्वशुर भानुरब्रवीत् ॥४०॥

भानुरुवाच

उपाया प्रीतये त्वष्ट कुर्वत्यास्तप उत्तमम् । यन्त्रारुढ च मा कृत्वा छिन्धि तेजास्यनेकदा ॥
यावत्सौख्य भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ॥४१॥

बाद भानु भी अश्व के रूप में वहाँ पहुँच गये। आश्रम में रहने वाले मुनि-कुमारों ने उस घोड़े को रोका। इस प्रकार रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उपापति सूर्य ने उनको तथा ऋषियों को शाप दे दिया ॥३२-३२॥

भानु ने कहा—तुम लोग मुख जिम कारण निवारण कर रहे हो इसलिये बट वृक्ष हो जाओगे ॥३३॥

ब्रह्मा न कहा—ज्ञानदृष्टि से देखने पर मुनिया ने उस अश्व को उपापति समझ लिया। तब प्रसन्न होकर उस देवदेवेश सूर्य की स्तुति करने लगे। इस प्रकार मुनिगणों द्वारा स्तुति किये जाने के बाद सूर्य वडवा के पास गये और अपने घोड़े के मुख के आकार वाले मुख को वडवा (घोड़ी) के मुख में मिला दिया। 'वाष्टी ने मुखस्पर्श से अपने पति को पहचान कर मुख से वीर्य त्याग किया। यमा में उन दोनों के वीर्य मिलने से अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई। मुने। यह घटना देखकर विस्मित हो वहाँ पर मुरगण सिद्ध मुनि नदियाँ गोक अचरियाँ देवता नक्षत्र सूर्य या सातो घोड़े तथा दिव्यरथ के सहित सूर्यसारथी अरुण यम मनु वरुण वैवस्वत शनि पवित्र नदी यमुना तापी और महानदी आदि नदियाँ अपने रूप को धारण कर कौतूहलवश देखने के लिये आठ। उस समय सूर्य के श्वशुर त्वष्टा भी आश्चर्यचकित होकर वहाँ चले आये। उपा के अभिप्राय को समझकर सूर्य ने अपने समुद्र त्वष्टा से कहा ॥३४-४०॥

भानु न कहा—त्वष्टा ! उत्तम तप करने वाली उपा की प्रसन्नता के लिये मुखको यत्र पर चढ़ाकर अनेक प्रकार से मेरे तेज को काट डालो (खराद डालो)। प्रजापति ! जितने से इसको मुख हो अर्थात् जितना तेज सह सके उतना मेरा तेज काट डालो ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य संनिधौ । तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदुः ॥४२॥
 भर्त्रा च सगता यत्र गौतम्यामश्वरूपिणी । अश्विनोर्वत्र चोत्पत्तिरश्वतीर्थं , तदुच्यते ॥४३॥
 भानुतीर्थं तदाख्यात तथा पञ्चवटाश्रमः । तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते ॥४४॥
 अरुणावरुणानद्योगैर्द्वायां संगमः शुभः । देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पूयकपूयकु ॥४५॥
 नय त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च । तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥४६॥
 रुमरणात्पठनाद्वाऽपि श्रवणादपि नारद । सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी , भवेत् ॥४७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासंगमाश्वभानुतीर्थवर्णनं नामो नवतित-

मोऽध्यायः ॥८९॥

गौतमोमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

गरुडतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

गरुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—“ऐसा ही होगा” यह कहकर त्वष्टा ने सोमनाथ के समीप सूर्य के तेज का छेदन किया । तब से वह स्थान प्रभास नाम से लोक-प्रसिद्ध हो गया । जहाँ गौतमी के तीर पर अश्वरूप धारण करनेवाली उषा का पति के साथ संयोग हुआ और अहाँ अश्विनीकुमार की उत्पत्ति हुई वहीं अश्वतीर्थ कहा जाता है । जहाँ तापी और यमुना अपने पिता का दर्शन करने के लिए आईं, वह भानुतीर्थ अथवा पंचवटाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । जहाँ अरुणा और वरुणा गंगा नदी में मिलती हैं, वह सगमस्थल अत्यन्त पवित्र एवं शुभ है । वहाँ देवताओं और अन्य तीर्थों के आने से वहाँ पुष्प-पुष्प सत्ताऽस सहस्र पुण्यप्रद तीर्थ हुए गये । वहाँ स्नान करने और दान देने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है । नारद ! ओ अनुपम इस तीर्थ के माहात्म्य का स्मरण, पाठ या श्रवण करता है वह धार्मिक सब पापों से मुक्त होकर गुरी होता है ॥४२-४७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अरुणा-वरुणासंगम, अश्वतीर्थ वर्णन नामक नवतीर्थ अध्याय समाप्त ॥८९॥

अध्याय ६०

गरुडतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गरुड नामक तीर्थ, सब विघ्नों को नष्ट करने वाला है । नारद ! उसकी महिमा का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ।

मणिनाग इति त्वासीच्छेपपुनो महाबल । गरुडस्य भयाद्भूतया तोषयामास शकरम् ॥२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वर । तमुवाच महानाग वर वरय पद्मग ॥३॥
नाग प्राह प्रभो महा देहि मे गरुडामयम् । तथेत्याह च त शम्भुर्रुडादभय भवेत् ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् । क्षीरोदशाखी यत्राऽस्ते क्षीरार्णवसमीपत ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशोतले । गरुडोऽपि च यत्राऽस्ते त देशमपि यात्यसौ ॥६॥
गरुड पद्मग दृष्ट्वा चरन्त निर्भयेन तु । त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्वस्य वेदमनि ॥७॥
त बद्ध्वा गरुडं पाशं गरुडो नागसत्तमम् । एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेन जगत्प्रभुम् ॥८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

नून नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा । गरुडेन सुरेशान जीवन्नायो न सन्नजेत् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरयावधीत्

॥१०॥

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् । गत्वा त जयतामोऽश विष्णु स्तुहि जनार्दनम् ॥११॥
बद्ध नाग काश्यपेन मद्भाषयादानय स्ययम । तत्प्रभोर्वचन श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रिय पतिम् ॥१२॥
घ्नतापयत्स्वय चावय विष्णु लोकपरायणम् । नारायण प्रीतमना गरुड बाधयन्नयनी ॥१३॥

शेषनाग का पुत्र महाबलवान् मणिनाग था । उसने गरुड के भय से भक्तियुत हो शङ्कर को सन्तुष्ट किया । उसकी प्रशंसा से प्रसन्न हो भगवान् परमेश्वरी गुरु ने उस महानाग से कहा— पद्मग ! वर मागो । नाग ने कहा— प्रभु ! मुझे गरुड का अभय होने का वरदान दीजिये । गुरु ने कहा ठीक है गरुड से निर्भीक हो जाओ । तब वह नाग अरुण के छोटे भाई गरुड से निमग्न होकर निकला और जहाँ क्षीरसागरी मग्नमान्थ उस क्षीरसागर के समीप सही होकर दृष्टर उभर मुक्त-शक्ति के साथ घूमन लगा । यहाँ तब कि जहाँ स्वयं गरुड था वहाँ पर भी वह निर्भीक नाग जाता था । गरुड ने जब इस प्रकार निर्भीक भाव से नाग को टहलते हुये देखा तो उस नाग भ्रातृ को पकड़कर और गरुड-भाग से बांधकर अपने घर में बन्द कर दिया । इसी बीच यह घटना देखकर नन्दी ने भगवान् गुरु से कहा ॥१०॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—सुरेशान ! वह नाग इस समय नहीं जाता है तो अवश्यमेव उसे गरुड ने खा लिया होगा या बांध दिया होगा । यदि ऐसा न होता और वह जीवित रहता तो क्या नहीं आता ? ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दी की बातों को सुनकर महेश्वर ने कहा ॥१०॥

शिव बोले—गरुड का घर में वह नाग बँधा हुआ है इसलिये घीघ्र हो जगत का स्वामी जनान्त्र विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति करो । स्वयं मेरी ओर से वहनकर गरुड द्वारा बांध गये उस नाग को लू आओ ।

विष्णुस्वाच

विनतात्मज मे वाक्याभ्रन्दिने देहि पद्मगम् । कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः ॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो भन्दिनोऽन्तिके ॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यतिप्रयतम किञ्चिद्भूत्येभ्य प्रभविष्णवः । दास्यन्त्यन्ये भवार्थेव मयाऽऽनोत हरिष्यति ॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयन नाग मोक्षयति नन्दिना । मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६॥
त्वां ब्रह्मिन् सत्त्वा स्वामिन्मम देय सत्त्वा त्वया । मयोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम् ॥१७॥
सत्ता प्रभूणा नेय स्याद्भक्तिः सद्भक्तिकारिणाम् । सन्तो दास्यन्ति भूत्येभ्यो मनुपातहरो भवान् ॥१८॥
दैत्याञ्जयसि सप्राने मद्बलेनेव केशव । अहं महाबलीत्येवं मुग्धं श्लाघते भवान् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगवाधरः । विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्भ्रूलोकपालकः ॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान् । त्वद्बलादसुरान्तर्बाञ्जयेज्ज्ञः जगत्तमः ॥२१॥
इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मज्ञान्तकोऽब्रवीद्विदम् । ब्रह्मज्ञानं करस्याऽऽशु कनिष्ठा नन्दिनोऽन्तिके ॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत् । सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम ॥२३॥

प्रभू की बातों का सुनकर नन्दी ने लक्ष्मीपति विष्णु के पास जाकर लोकपालाण में रत रहने वाले मगवान् से सारी घटना बह सुनाई । नारायण ने भी प्रसन्न होकर गरुड से ये वाक्य कहे ॥११-१३॥

विष्णु ने कहा—विनतामुत । मेरे कहने से पद्मग की नन्दी के हाथ से वो । इस बात को सुनकर गरुड न कांपा हुए 'नही' ऐसा कहा । नन्दी के सामने ही उसने क्रोध से विष्णु से ओर भी कहा ॥१४॥

गरुड ने कहा—इससे समर्थ स्वामी सेवका के जो जो पदार्थ प्रिय होते हैं उन सब पदार्थों को देने हैं, किन्तु आप ही ऐसे हैं जो कि मेवक के जग्य हुए पदार्थ को भी (उससे) छीन लेते हैं । त्रिनेत्र गरुड को दखिये वह नन्दी के द्वारा नाग को मुक्त कराते हैं और मेरे द्वारा पाये हुए नाग को आप नन्दी को दे रहे हैं । स्वामी ! मैं आपको सर्वदा होता हुआ आपकी सर्वदा मुझे कुछ न कुछ देना चाहिए अतः मेरे द्वारा पाये हुए 'माग का देश' ऐसा कहना उचित नहीं है । गर्व्यपहार करने वाले स्वामी का ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये । सज्जन लोग अपने मृदा को पुष्कराक्ष दत्त हैं और आप तो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तु को भी हर लेते हैं । केवल । मेरे बल से ही आप दैत्यों को जीतते हैं । और स्वयं मैं महाबलवान् हूँ ऐसी व्यर्थ मझीय होत है ॥१५-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—महाबुद्धिमान् चक्रपदाधारो विष्णु मे शरद की उन बातों को सुनकर हँसकर नन्दी के गर्भाप बैठे लोचपाग के सामने ही गरुड ने कहा 'तुम सबभुक्त मुझे पीठ पर डीन डाने दुर्बल है । गये हो । गम-भ्रष्ट । तुम्हारे बल सही मैं सज्ज अमुरों को जीतता हूँ, जीतूया भी । ब्रह्मन् । यह बह्म अपने दोष को छिपाकर लोभोपनि न कहा—मेरी कनिष्ठिका अङ्गुली को दीप्त ही नदी के समीप तब डो कर ले चलो । इतना बह्मर मगवान् ने गरुड के गिर पर अपनी अङ्गुली रख दी और फिर कहा कि 'विहङ्गम ! यदि तुम सबभुक्त मुझसे निम्न

न्यस्ताया च ततोऽङ्गुल्या शिरः कुक्षौ समाविशत् । कुक्षिश्च चरणस्यान्तं प्राविशच्चूर्णितोऽभवत् ॥
ततः कृताञ्जलिर्दोनो व्यथितो लज्जयाऽन्वितः ॥२४॥

गरुड उवाच

ब्राहि ब्राहि जयद्राय भृत्य मामपराधिनम् । त्वं प्रभु सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रनविष्णव । कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६॥
वदन्ति मुनयः सर्वे स्वामेव करुणाकरम् । रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्बुजनिवासिनि ॥
कमले बालकं दोनमार्तं तनयवत्सले ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृपान्विता देवी श्रीरम्याह जनार्दनम् ॥२८॥

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वकं भृत्यं गरुडं विपदं गतम् । जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शम्भुबाहनम् ॥२९॥

विष्णु उवाच

नय भागं सगरुडं शशोरन्तिकमेव च । तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥
आत्मीयं च पुनः रूपं गरुडं समवाप्स्यति ॥३०॥

छोते ही तो इसका निगल आज देखो । इसके उपरांत अंगुली के रखते ही शिर दबकर कोख में घुस गया और कोख
दोनो पैरों के बीच घुस गया इस प्रकार वह बेचारा खुर मूरहो गया । तब वह अत्यंत लज्जित दोन व्यथा से करा
हता हुआ हाथ जोड़ कर विनीत भाव से बोला ॥२० २४॥

गरुड ने कहा—जयभ्रात्रे ! मुझ अपराधी मूल्य की रक्षा करो रक्षा करो । तुम सम्पूर्ण ससार के धारण
करने वाले प्रभु हो तुम्ही संपूर्ण लोक के धार्य (धारण करने योग्य) भी हो । समय व्यति हजारा अपराधों को क्षमा
कर देते हैं और अपराधियों पर उनकी सर्वदा कृपा रहती है । सब मुनि तुमको ही वरुणा का कोश कहते हैं । हे कमल
भनिवास करने वाली ! जगन्माता ! मुझ दुखी की रक्षा करो । कमठे । पुत्रवत्सल । इस दोन दुखी बालक की
रक्षा करो ॥२५ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनंतर करुण हृदयवाली कृपालु लक्ष्मी ने भी जनार्दन से कहा ॥२८॥

कमला ने कहा—नाथ । अपने इस विपत्ति में पड़ हुए सेवक गरुड की रक्षा कीजिये । जनार्दन ने यह
सुनकर शम्भुबाहन नन्दी से कहा ॥२९॥

विष्णु बोले—गरुड के सहित इस नाग को शकर के समीप ले जाओ । उनकी कृपा से यह गरुड जब वे
अपनी कृपा दृष्टि से इसको देखने तो पुनः अपने स्वरूप स्वरूप को प्राप्त करेगा ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गच्छेन च । शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥
शकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥

शिव उवाच

ग्रहि गङ्गा महाबाहो गौतमी लोकपावनीम् । सर्वकामप्रदां शान्ता तामाप्सुत्य पुनर्वपुः ॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामादृष शतधाऽय सहस्रधा । सर्वपापोपतप्ता ये दुर्द्वेष्टोन्मूलितोद्यमाः ॥
प्राणिनोऽभोष्टदा तेषां शरणं खग गौतमी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात् । गङ्गामाप्सुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः ॥३४॥
ततः स्वर्णमय पक्षी यश्चदेहो महाबलः । वेगी भवन्मुनिश्चेष्ट पुनर्विष्णुमियात्सुधीः ॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गरुड सर्वकामदम् । तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रपतो नरः ॥
सर्वं तदभाय यत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकाविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—‘आपकी जैसी आज्ञा यह कहकर नन्दी नाग और गरुड के साथ मन्दगति से शंकर के पास गया और सारी घटना कह सुनाई । चन्द्रशेखर शंकर ने भी गरुड से कहा—॥३१॥

शिव ने कहा—महापराश्रमी ! लोक को पुनीत करने वाली गौतमी नगा के पास जाओ । उस शांल, सब कामनाओं को देने वाली नगा भ स्नान करने से सुख पुन अपना शरीर तथा अपने मनोरथ का सीगुना, हजार गुना अधिक फल प्राप्त करोगे । खग ! सब पाप रूषी अग्नि से जले दूये, दुर्भाग्य से विफल परिश्रम वाले प्राणियों को यह मनोरथ पूर्ण करने वाली गौतमी एक मात्र शरण देने वाली है ॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—गरुड भगवान् शंकर की बातों को विनीत भाव से सुनकर गंगा के समीप गया, उसने स्नान किया और शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया । मुनिश्चेष्ट ! स्नान के बाद गरुड स्वर्णमय पक्ष वाला, महाबली, धृष्ट के समान देह वाला और अति वेशवान् हो गया । तब वह महाबुद्धिमान् गरुड विष्णु के समीप चला गया । तब से वह स्थान सब कामनाओं को देने वाला गरुडतीर्थ कहा जाने लगा । जो व्यक्ति अतन्त्रभाव से उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ सत्कर्म करता है यत्स ! वह सब कुछ असय हो जाता है तथा उससे शिव, विष्णु दोनों प्रसन्न होते हैं ॥३४-३६॥

श्रीब्रह्मपुराण में गरुडतीर्थवर्णन नामक नवविंश अध्याय समाप्त ॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धन तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् । पितृणां पुण्यजनन स्मरणादपि पापनुत् ॥१॥
तस्य प्रभाव एष स्थानमया दृष्टस्तु नारद । ब्राह्मणं कर्षकं कश्चिज्जावालिरिति विभुत् ॥२॥
न विमृञ्चत्यनङ्वाहौ मध्यं धातेऽपि भास्करे । प्रतोदेन प्रतुदति पृष्ठतोऽपि च पादव्यो ॥३॥
तौ गावावधुपूनाक्षौ दृष्ट्वा गौ कानवोहिनी । सुरभिर्जगता माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ॥४॥
स चापि व्यथितो भूत्वा शम्भवे तन्यवेदयत् । शम्भुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिध्यतु ते वच ॥५॥
शिवाज्ञासहितो नन्दो गोजात सर्वमाहरत् । नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गं मर्त्यं ततस्तवरा ॥६॥
मानवोचन्सुराणां विना गोभिरनं जोष्यते । तानवोच सुरान्सर्वज्ञश्चकार यात याचत ॥७॥
तर्ध्वेश तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन् । ईशोऽपि विदुधानाह जानाति वृषभो मम ॥८॥
ते वृष प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिणः । वृषोऽपि विदुधानाह गोसवः त्रियता क्रतु ॥९॥

अध्याय ६१

गोवर्धन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसने अनन्तर सब पापों को नष्ट करने वाला और पितरों को सुख देने वाला गोवर्धन दीप है जिसके स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ नारद । उसका प्रभाव मैंने अपने नन्ना से देखा है वह इस प्रकार है—जावाल नाम स प्रसिद्ध कोई कृषक ब्राह्मण था ॥२॥ वह मध्याह्न हो जाने पर भी अपने बैठा को नहा छोड़ता था अपितु बादर से उन्हे पृष्ठ और पाद्व भाग पर मारता था ॥३॥ इस प्रकार पीड़ित आसू से भरे नख वाले बैला को देखकर जगत की माता कामधेनु भी ने नन्दी से जाकर सब कुछ कहा ॥४॥ नन्दी ने भी उन मन्त्र पशुजा की व्याघ्र से व्यथित होकर भगवान् जाकर से निवेदन किया । शम्भु ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार ही काम सिद्धि होगी ॥५॥ नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गो-समूह को ही छिपा दिया । इस प्रकार गो-समूह के नष्ट हो जान पर स्वर्ग और मृत्युलोक में खलबली मच गई ॥६॥ देवताओं ने घोरता से भरे पात आकर कहा कि गोओं के बिना हम सब कैसे जी सकत हैं । उन देवताओं से मैंने कहा कि शिव के पास आज्ञा और उनसे याचना करो ॥७॥ मेरे कहने के अनुसार उन सब देवताओं ने शिव की स्तुति की और उनसे अपना अग्निप्राप व्यक्त किया । शिव ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है ॥८॥ उन देवताओं ने पुन नन्दी से कहा कि उपकारी गोजा को दे दो । नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसव नामक यज्ञ करें ॥९॥ तभी अतनी

तत प्राप्स्यय गा सर्वा या दिव्या याश्च मानुषा । तत प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मित ॥१०॥
 गौतम्याश्च शुभे 'पाश्वे' गावो ववृधिरे तत । गोवर्धन तु तत्तीर्थं देवाना प्रीतिवर्धनम् ॥११॥
 तत्र स्नान मुनिधेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम् । किञ्चिद्दानादिना यत्स्यात्फल तत्तु न विद्महे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णन नामकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥
 गौतमोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशन नाम तीर्थं पापभयापहम् । नामधेय प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत ॥१॥
 धृतव्रत इति ह्यातो ब्राह्मणो लोकविश्रुत । तस्य भार्या मही नाम तरणी लोकसुन्दरी ॥२॥
 तस्य पुत्र सुयनिभ सनाज्जात इति श्रुत । धृतव्रत तथाऽर्कवर्णस्तु कालेरितो मुने ॥३॥
 तत सा बालविधवा बालपुत्रा सुरुषिणी । ज्ञातार नैव पश्यन्ती गालवाभ्रममभ्यगात् ॥४॥

दिव्य और मत्स्यलोक की गोएँ है प्राप्त हो सकती हैं । तदनंतर देवों की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ ॥१०॥ यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र कछार में गोओं की वृद्धि होने लगी । वह गोवर्धन तीर्थ देवताओं को अधिक प्रसन्न करने वाला है ॥११॥ मुनिधेष्ठ उस तीर्थ का स्नान सहस्र योदान का फल देता है । वहाँ दान देने का जो फल है उसको तो मैं भी नहीं जानता अतः कहने में असमर्थ हूँ ॥१२॥

श्रीब्रह्म महापुराण गोवर्धनतीर्थवर्णन नामक इक्ष्यानवर्वा अध्याय समाप्त ॥९१॥

अध्याय ६२

पापप्रणाशन तीर्थ का वर्णन

नारद ! पाप भय को दूर करने वाला एक पाप प्रणाशन नामक तीर्थ है । उसका यह नाम क्या पड़ा इसको मैं कह रहा हूँ तुम मनपूर्वक सुनो ॥१॥ व्रतव्रत नाम का एक परम लोकप्रसिद्ध ब्राह्मण था । उसकी मही नाम की विद्वन्-सुन्दरी युवती स्त्री थी ॥२॥ उसने स्वयं ने समान तेजस्वी सनाज्जात नामक एक पुत्र हुआ । मुनि । काल की प्ररणा से मृत्यु ने उस व्रतव्रत को खींच लिया ॥३॥ इसने अनन्तर वह सुन्दरी बाल विधवा जिसका पुत्र जमी अवधाय था—निती को अपना रखकर गालव श्रुति के आश्रम में चली गई ॥४॥ नारद को अपना पुत्र

तस्मै पुत्रं निवेद्याथ स्वैरिणी पापमोहिता । सा बभ्राम बहून्देशान्युत्क्रामा कामचारिणी ॥५॥
 तत्पुत्रो गालवगृहे वेदवेदाङ्गपारण । जातोऽपि मातृदोषेण वेदयेरितमतिस्त्वभूत् ॥६॥
 जनस्थानमिति रथात् नानाक्रातिसमावृतम् । तत्रासी पण्यवेषेण अध्यास्ते च मही तथा ॥७॥
 तत्सुतोऽपि बहून्देशान्परिवभ्राम वामुक । सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानं वसतस्तदा ॥८॥
 स्त्रियमात्रादभते वेश्या धृतव्रतसुतो द्विज । मही चापि धन दातुं गुरयान्तमपभते ॥९॥
 मेने न पुत्रमात्मोप स चापि न तु मातरम् । तयो समागमश्चाऽऽसौ द्विधिना मातृपुत्रयो ॥१०॥
 एष बहुतिथे काले पुत्र मातरि गच्छति । तयो परस्परं ज्ञान नैवाऽऽसीमातृपुत्रयो ॥११॥
 एष प्रयतमानस्य पितृधर्मेण सन्मति । आसीत्स्याप्यसद्वृत्ते भृशु नारद चित्रवत् ॥१२॥
 स्वैरस्पित्या वर्तमानो मेव स परिहातवान् । ब्राह्म्यं सध्यामनुष्ठाय तदूध्वं तु धनार्जनम् ॥१३॥
 त्रिद्यायलेन पित्तानि बहून्पार्थ्यं वदात्पत्नी । तथा ॥ प्रातस्तथाय गङ्गा गत्या यथाविधि ॥१४॥
 शीघ्रावि स्नानसध्यादि सर्वं कार्यं यथाश्रमम् । कृत्या तु ब्राह्मणाग्रत्वा ततोऽभ्येति स्वधर्मसु ॥१५॥
 प्रातःकाले गीतमीं तु यदा याति विरूपवान् । कुप्टसर्वाङ्गशयिल पूयशोणितनि स्त्रव ॥१६॥
 स्नात्वा तु गीतमीं गङ्गा यदा याति शुरुपधृक् । क्षात सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्वर ॥१७॥

इतरेषु बहु स्वर्गाचारिणी पापवर्मा न आवरण म माप्ति होरं योन मुनि की वामना स स्वच्छ दनागुवक बहुत
 देना म घुमन ग्या ॥१॥ यद्यपि उतावा पुत्र गानव न आधम म बंद वगण्या वा पाता हुआ तथापि मातृदोष
 र कारण उगरी वग्यामन की ओर प्रवर्ति हो गई ॥६॥ इत महा जनस्थान नामक नगर म—जनी विभिन्न
 जाति व लोग रहत थे—व्या वृत्ति स भूत ल्या ॥७॥ उसका वामुकपुत्र सी इधर-उधर बहुत स देना का
 भ्रमण करता रहा । उस समय वह भी समय की प्रणय म उमी जनस्थान म रहता था ॥८॥ इधर ब्राह्मण
 पुनव्रत का पुत्र वग्या नागा की इच्छा करता था उधर महा भा धन न्त वाल ग्ण्ट पुत्रवा की अपथा रगती
 थी । ॥९॥ उग नामी पुत्र न न तो माता की ओर माता न ही अपन ओरग पुत्र को पहचाना । स्वर्गा उन
 माता-पुत्रा का परस्पर समागम हा गया ॥१०॥ इस प्रकार बहुत समय बीत गया माना पुत्र म परस्पर अनुचित
 समय चग्या रहा परंतु उन दाता व। माना-पुत्र व पारम्परिक सम्बन्ध का पाल नहा था ॥११॥ नारद ।
 मुनी यह आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार अनुचित व्यवहार म प्रवृत्त रहने वाल उम दुर्धर्म ब्राह्मण म
 गिता व प्रभाव व कारण समझि थी ॥१२॥ इस प्रकार स्वच्छा म लीन रहने हुए भी उसने अपने नित्यव्रम का
 नहा छोडा । प्रतिनि बह प्राण अध्या का अनुष्ठान करना नित्यमान धन वमान व लिए जाता था ॥१३॥ वह
 अपन विद्या व प्रभाव म धन कमाता पुन उमी को मायका दे देता था । प्रातःकाल उठ कर यथाविधि दगात्र
 पर जाता था और प्रभ पूजत जीव स्नान सध्या ओति सब क्रियाय समाप्त कर ब्राह्मणा को नमस्कार करता था
 गेलाना अर्पन कायम लय जाता था ॥१४॥ प्रातःकाल उठ कर गीतमा को जाता था गव वह विष्णु रहना सर्वद्विग
 बुद्ध राग ॥ निमित्त रहता उमक क्षीर व द्रव्य से पूज और रत्न देना रहता था । जब उधर न स्नान व बाद
 पोता था तय गुन्त स्य वाणा क्षान्त मूष और अग्नि व समान तद्रम्यी होकर जाता था । वह अपनी कानि म एगा
 जान होता था माने भूमिमात्र आरत है ॥१६॥ ७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अपन दन दाता क्य को नहीं दन पाता था

एतद्रूपद्वयं स्वस्य नैव पश्यति स द्विज । गालवो यत्र भगवास्तपोज्ञानपरायण ॥१८॥
 आश्रित्य गौतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिर्वृत । ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्यं तोर्यं समेत्य च ॥१९॥
 गालवश्च नमस्याथ ततो याति स्वमन्दिरम् । गङ्गायां सेवनात्पूर्वं सनाज्जातस्य यद्रुप ॥२०॥
 स्नानसध्द्योत्तरे काले पुनर्यदपि तद्द्विजे । उभयं तस्य तद्रूपं गालवो नित्यमेव च ॥२१॥
 दृष्ट्वा सविस्मयो भेने किञ्चिदस्त्यत्र कारणम् । एव सविस्मयो भूत्वा गालवश्च प्राह त द्विजम् ॥२२॥
 गच्छन्तं तु नमस्याथ सनाज्जातं गरुहम् । आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च ॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्ताऽसि किं करोषि बभ भोक्ष्यसि । किनामा त्वं बभ शय्या ते का ते भार्या वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वचं श्रुत्वा 'ब्राह्मणोऽप्याह तं मुनिम् ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

इव कथ्यते मया सत्यं ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालवश्च तं सनाज्जातो गृहं ययौ । भुक्त्वा रात्रौ तथा सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम् ॥
 उवाच च वितस्मृत्वा गालवस्य तु यद्रुप ॥२७॥

तप और ज्ञान में राक्षसों की रीति रहने वाले गालवमुनि अपने साथी मुनियों के साथ जहाँ गौतमी के तट पर सन्ध्या सन्ध्यादि करते थे वही वह ब्राह्मण भी नित्य आता और मिलता था तथा गालव मुनि को प्रणाम कर अपने घर को जाता था ॥१८-१९॥ गया स्नान के पूर्व सनाज्जात वा जैसा शरीर रहता था और पुनः स्नान सध्या के बाद उस ब्राह्मण वा जैसा रूप हो जाता था उसके उस समय रूपा को नित्य देखकर मुनि गालव को बहुत आश्चर्य हुआ सोचा इसमें अबश्य कुछ कारण है ॥२०-२१॥ निदान इस प्रकार विस्मित होकर बुद्धिमान शुद्ध गालव ने नमस्कार के बाद घर जाने के लिये प्रस्तुत उस ब्राह्मण को बुलाकर कृपा और आश्चर्य से युक्त होकर बड़ यत्न से पूछा ॥२२-२३॥

गालव ने कहा—तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ? क्या कार्य करते हो ? कहाँ भोजन करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? वहाँ सोते हो ? तुम्हारी भार्या कौन है ? इन प्रश्नों का उत्तर मुझे दो ॥२४॥

ब्राह्मण ने कहा—मैं कल मलीर्माति विचार कर उत्तर दूंगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गालव मुनि से बहकर सनाज्जात अपने घर को चला गया । रात्रि में भोजन के पश्चात् उस वक्ष्या के साथ मलीर्माति शय्या पर बैठ कर गालव की बातों का स्मरण करता हुआ वह चिन्तित होकर वक्ष्या से बोला ॥२७॥

ब्राह्मण उवाच

त्वं तु सर्वगुणोपेता बन्धक्यपि पतिव्रता । आवयो सद्गौ प्रीतिर्यावज्जीव प्रवतताम् ॥२८॥
तयाऽपि किञ्चित्पुच्छामि किनाम्नी त्वं व वा कुलम् । किनु स्यान् व वा बन्धुर्मम सर्वं निवेद्यताम् ॥२९॥

बन्धक्युवाच

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो दीक्षित शुचिः । तस्मै भार्या मही चाह मत्पुत्रो गालवाश्रमे ॥३०॥
उत्सृज्यो मतिमान् बाल सनाग्जात इति धृत । अहं तु पूर्वदीपेण त्यक्त्वा धर्मं कुलागतम् ।
स्वैरिणो त्विह वर्ततेऽहं विद्धि मां ब्राह्मणो द्विज ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मर्मविद्ध इवाभवत् । पथा सहस्र भूमौ येदया ह वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥

येदयोवाच

किं तु जातं द्विजश्रेष्ठ वयं च प्रीतिगता तव । किं तु वाक्यं मया चोक्तं तव चित्तविरोधकृत् ॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्रयास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतः पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽहं सनाद्यत । माता मही मम इयं मम देयादुपागता ॥३५॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम सब गुणों से युक्त भेदभावहीन हुए भी पतिव्रता हो। यह हम लोग का समान प्रेम जीवन भर रहे। फिर भी मैं कुछ पूछ रहा हूँ। तुम्हारा नाम क्या है? कुल क्या है? तुम्हारा गौन सा रंगान (जन्मभूमि) है? तुम्हारे बन्धु (हितछूट माता पिता या परिवार) कहाँ रहते हैं? इन बातों को मुझ बताओ ॥२८ २९॥

बन्धकी ने कहा—धृतव्रत नाम का पवित्र एवम्पनिष्ठ ब्राह्मण था। उसी की मैं भार्या हूँ। मेरा नाम मही है। मैंने अपने सनाग्जात नामक बुद्धिमान पुत्र की शान्तिवास्तवा मही शान्ति व आश्रम में छोड़ दिया। स्वयं अपने पुत्रजन के श्रेष्ठ के कारण कुलधर्म की छोड़कर इस प्रकार के शान्तिजनकर रह रही हूँ। द्विज! मुझ ब्राह्मणों की यही क्या है ॥३० ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—उत्तरी उन बातों को सुनकर वह समझन सा हो गया। यह एकएक पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देगदर के शान्ति न उम ब्राह्मण ने कहा ॥३२॥

येदो ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्या क्या हो गया? तुम्हारा वह प्रेम कहाँ गया? क्या मैं एक वाक्य कह गिरे जा तुम्हारे हृदय में विरह भावना उत्पन्न करने वाला हूँ? इन बातों को सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं अपने को सम्मान कर कहा ॥३३ ३४॥

ब्राह्मण ने कहा—धृतव्रत मेरे पिता का नाम है। मैं उन्हीं का पुत्र विप्र सनाग्जात हूँ। यह मेरी ही माता मही है जो देवयोग से मेरे समान इस रूप में आई है ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूदतिदुःखिता । तपोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवी ॥
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः । उपनीतस्त्वया चैव मही माता मम प्रभो ॥३७॥
किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा ध्रुवः । तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत् ॥३९॥
ततः पृष्टोऽसि द्युत्तान्तं श्रुतं ज्ञातं यथा यथा । यत्कृत्यं तत्र तत्सर्वं यद्गर्भं प्रत्यगात्मकम् ॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः । पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
प्रभाते तव रूपाणि सप्तापानि त्वहर्निशम् । पश्येह पुनरप्येव रूपं तव गुणोत्तमम् ॥४२॥
आगच्छन्त स्वागोयुक्तं गच्छन्त त्वामनामसम् । पश्यामि नित्यं तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना ॥४३॥
तस्मान्न कार्यं ते किञ्चिदवशिष्टं भविष्यति । इयं च माता ते विप्र जाता या चैव बन्धकी ॥४४॥

ब्रह्मा बोले—उसकी इन बातों को सुनकर वह भी अत्यन्त दुःखी हुई । इस प्रकार पश्चात्ताप करते-करते प्रातः हो गया । निर्मल सूर्य प्राची में धमकने लगे । तब विप्र ने मुनिपुत्र गालव से कहा ॥३६॥

ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं धृतव्रत का पुत्र हूँ । वीशव मे आपने ही मेरा पालन पोषण और उपनयन (यशोपवीत) किया है । प्रभु ! यही मेरी माता है । मैं क्या करूँ ? क्या करने से मेरा उद्धार होगा ? ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—उस विप्र की बातें सुनकर गालव ने कहा—‘मत्त उरो । तुम्हारे इन दो रूपों को प्रतिदिन अनोखे स्वरूप में मैं देखता हूँ । इसके पश्चात् जैसा कि मैंने सुनाया और अनुमान द्वारा जाना, उसी द्युत्तान्त को मैंने पूछा है । तुम्हारे प्राचीन किये हुए सभी दुष्कर्म इस समय गौतमी में नष्ट हो गये । वत्स ! इस तीर्थ के माहात्म्य वश, इस देवी की कृपा से तुम प्रतिदिन पवित्र हो इस विषय में अधिक शोक करने की आवश्यकता नहीं । प्रतिदिन प्रातः काल तुम्हारे पापयुक्त स्वरूप को देखता हूँ, पुनः तत्काल ही तुम्हारे उस रूप-गुण से सम्पन्न आकृति को भी देखता हूँ ॥३९-४२॥ नित्य ही आते समय तो तुम को रोगयुक्त देखता था परन्तु जाते समय स्वस्थ एवं रूपमय । अतः तुमको देवी गौतमी ने इस समय पवित्र बना दिया ॥४३॥ ता तुम्हारा कोई भी कार्य शेष नहीं रह गया है । विप्र ! यह तुम्हारी माता, जो वेश्या के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अत्यन्त पश्चात्ताप की ज्वाला में जल चुकी है । इसलिये वह भी पाप से सर्वथा मुक्त हो गई । वत्स ! प्राणियों की विषयों के प्रति आसक्ति स्वभाविक है, परन्तु यह भी सत्य है कि दैववश सत्सग अन्य महापुण्य से निवृत्ति भी हो जाती है । इसके अतिरिक्त पूर्व-

पश्चात्तापं गताश्रयन्तं निवृत्ता स्वयं पातकात्। भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः॥४५॥
 सत्सङ्गतो महापुण्याग्निवृत्तिर्देवतो भवेत्। अत्यर्थमनृतप्लेथं प्रागाचरितपुण्यतः॥४६॥
 स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थे ततः पूता भविष्यति। तथा सौ चशत्रुभौ मातापुत्रौ च नारद॥४७॥
 स्नानाद्वभूवतुदभौ यतपापावसंशयम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते॥४८॥
 पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम्। महापातकमल्पं वा तथा यच्छोपपातकम्॥
 सत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सपुण्यदम्॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे भास्विब्राह्मे गौतमीमाहात्म्ये धौतपापमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्र वारारथी रामः सीतया सहितो द्विजः। पितृन्सर्तपयामास पितृतीर्थं ततो विदुः॥१॥
 तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तर्पणं तथा। सर्वमक्षयतामेति नात्र कार्या विचारणा॥२॥

अगमवृत्त पुण्यो वै कञ्चस्वरूपं यह अत्यन्त अनुत्पन्न भी है॥४४-४६॥ इसलिये इस तीर्थ में स्नान करने से यह भी प्र
 पवित्र हो जायगी। नारद 'उन दोनों माता और पुत्रों ने ऋषि के कथनानुसार सारा कार्य किया। स्नान के करने से
 ही वे दोनों निरिचन ही पवित्र हो गये॥४७॥ तभी से वह तीर्थ धौतपाप नाम से प्रसिद्ध हो गया, साथ ही उसके
 पापप्रणाशन (पाप नष्ट करने वाला) और वानव नाम भी प्रसिद्ध हैं। यह अत्यन्त पुण्य देने वाला गालव नामक
 तीर्थ चाहे भूमि काप हो चाहे कम अथवा जो कुछ उपपाप भी हैं उनको क्षणभर में नष्ट कर देता है॥४८-४९॥

श्रीब्रह्म महापुराण में धौतपाप-माहात्म्य निरूपण नामक वानवेर्वा अध्याय समाप्त॥९२॥

अध्याय ६३

विश्वामित्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ दशरथ-पुत्र राम ने सीता के सहित अपने पित्रों को वृत्त किया, उसको पितृ-तीर्थ कहा
 जाता है। उस तीर्थ में स्नान, दान और पित्रों पर तर्पण, ये सभी अक्षय पुण्य के देने वाले हैं, इस पर विचार करने
 की आवश्यकता नहीं। जहाँ पर दशरथ पुत्र राम ने महाभूति विश्वामित्र की उत्सवदृष्टा मूर्तिवनों के सहित पूजा

यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३॥
 विश्वामित्रं तु तत्तोयमृषिजुष्टं सुपुण्यदम् । तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभिः ॥४॥
 अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभोषणा । विश्वामित्रो महाप्राज्ञः सशिष्यो गौतमीमगात् ॥५॥
 शिष्यान्पुत्राश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान् । व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्छिष्यानिदमुवाच ह ॥६॥

विश्वामित्र उवाच

यथाकार्यं चिच्छात्किंचिच्छन्न एवापि यथा तथा । आनीयतां किंतु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्बयताम् ॥
 इदानीमेव गन्तव्यमानेतत्तथ्यं क्षणेन तु ॥७॥

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्त्वरया ययुः । अटमाना इतश्चेतो मृतं द्रवुशिरे शुनम् ॥८॥
 समादाय त्वरापुक्ता आचार्याय न्यवेदयन् । सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना ॥९॥
 विशासध्वं इयमासं च क्षालयध्वं च वारिणा पचध्वं मन्त्रवक्त्रापि हृत्वाऽग्नौ तु यथाविधि ॥१०॥
 देवानूपीन्पितृनन्यास्तर्पयित्वाऽतिथीन्गुरुन् । सर्वे भोक्ष्यामहे शेषमित्युवाच ॥ कौशिकः ॥११॥
 विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तथैव तत् । पच्यमाने श्वमासे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात् ॥
 देवानां सवने सर्वं देवैभ्यस्तन्यवेदयत् ॥१२॥

की, उस शुन, पुण्यप्रद, ऋषियो से अहर्निश सेवित विश्वामित्र तीर्थ के स्वरूप का परिचय दे रहा हूँ, जिसका वेदाभ्यासी लोग सर्वथा गान किया करते हैं। आज से बहुत पहले का समय था। प्रजा को अत्यन्त बूढ़ देने वाला भयकर सूखा (अनावृष्टि) पड़ा। यह देखकर महाप्राज्ञ विश्वामित्र अपने शिष्यवर्ग के साथ गौतमी के तट पर गये। अपने पुत्र स्त्री, और शिष्यो को कृशकाय और मूल से व्याकुल देखकर श्रीमान् विश्वामित्र व्यथित हो गये। उन्होंने अपने शिष्यो से कहा ॥१-६॥

विश्वामित्र बोले—जिस किसी प्रकार जो कुछ, जहाँ नहीं भी खाने योग्य या पीने योग्य पदार्थ मिलें ले आओ। विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं। अभी-अभी चले जाओ और क्षण भर में ही लाना होगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ऋषि की बातें सुनकर मूखे वे शिष्य शीघ्र इधर-उधर चले गये। इधर उधर घूमने पर उन लोगों ने एक मृत वृत्त को देखा। उसको लेकर बड़ी सी घाता से आचार्य विश्वामित्र को अर्पित कर दिया। उन्होंने भी कहलगाय हो ऐसा कह कर अपने हाथों से ले लिया और कहा कि इस श्वमास को काट डालो, पानी से धो डालो और अग्नि में डाल कर विधिपूर्वक मन्त्र के साथ इसकी पकाओ, पुन देवता, ऋषि, पितर, एव अन्य अतिथि गुरु-जनों को तृप्त कर वषे हुए मांस को हम सब भोजन करेंगे। विश्वामित्र भी उपर्युक्त बातें सुनकर शिष्यो ने उठी तरह किया। इस प्रकार जब कुत्ते का मांस पकाया जाने लगा तब उसी समय देवदूत अग्नि देवों के समीप गये और सब देवों से उस घटना को कह सुनाया ॥८-१२॥

अग्निश्वाच

देवं ' इयमास भोवतव्यमापन्नमृषिकल्पितम्

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्र इयेनो भूत्वा विहायसि । स्यालोमयाहृत्यूर्णां मांसेन 'पिहिता तदा ॥१४॥
 तत्कर्म दृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषे इयेन न्यवेदयन् । हुता स्याली मुनिष्येष्ट इयेनेनाकृतवृद्धिना ॥१५॥
 ततश्चुकोप भगवाद्गन्धर्वकामस्तदा हरिम् । ततो ज्ञात्वा सूरपति स्यालीं चक्रे मधुप्लुताम् ॥१६॥
 पुनर्निवेद्यामास उत्कास्थेव क्षमो हरि । मधुना तु समायुक्ता विश्वामित्रश्चुकोप ह ॥
 स्यालीं वीक्ष्य ततः कोपादिदमाह स बौशिक ॥१७॥

विश्वामित्र उवाच

इवमांसमेव नो देहि त्व हरामृतमुत्तमम् । नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामित्रो भीतस्तदाऽग्रधीत् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु हुत्वा यथायाय पितृ पुत्र्य समन्वित । किमनेन इवमांसेन अमेध्येन महामुने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेर्नैवेन किं फलम् । प्रजा सर्वाश्च सीदन्ति किं तेन मधुना हरे ॥२०॥

अग्नि ने कहा—ऋषि द्वारा बनवा हुआ कृत का मान अगर देवा को खाना होगा ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि की उन बातों को सुनकर इन्द्र इयेन (बात्र) बनकर मांस से परिपूर्ण और इषी हुई स्याली को लेकर आराम में उठ गया । ऋषि शिष्या ने यह कर्म देखकर इयेन क इस घोर कर्म को ऋषि से निवदन किया कि 'मुनिष्येष्ट' । जिसी अधिवेनी बात्र ने मान की स्याली चुरा ली है । तत्पश्चात् भगवान् विश्वामित्र इन्द्र को ताप देने की इच्छा से अत्यन्त क्रुणित हुए । इस अभिप्राय को जानकर बात्ररूपधारी इन्द्र ने स्याली का मधु से परिपूर्ण कर दिया और उसको पुनः जड़नी हुई लकड़ियाँ पर रख दिया । विश्वामित्र मधु में परिपूर्ण स्याली को देखकर और अधिक क्रुणित हो गये । तब ऋषि से उन्होंने कहा ॥१४-१७॥

विश्वामित्र बोले—तुम हम लोग को कृत का मांस ही दोग अपना उत्तम अमृत ॥ बात्रो महा तो तुमको मरम कर दूंगा । इन्द्र मुनि की ओय मुद्रा को देखकर चमकीत हो गये और बोले ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—मधु को ही यथाभाग वितरित कर पुत्र परिवार सहित पीजिये । महामुने ! इस अपवित्र, कृत का मान खाने में क्या लाभ होगा ? ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—विश्वामित्र न भी कहा कि नहीं केवल हम लोग ने भोजन कर लेने में क्या लाभ होगा ? इन्द्र ! सारी प्रजा ब्रष्ट पा रही है । तो उस मधु या मधुपान में क्या लाभ होगा ? यदि सबके लिये अमृत का प्रबंध

सर्वेषाममृत चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृतं शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तोऽहं श्वमासकम् ॥२१॥
 पश्चादहं तच्च मासं भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे। ततो भीतः सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात् ॥२२॥
 वर्षं चामृतं वारिं ह्यमृतेनापिना प्रजा। पश्चात्तदमृतं पुण्यं हरिदत्तं यथाविधि ॥२३॥
 तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्रं सभुक्तवाञ्छिष्यं विश्वामित्रं स्वभार्याया ॥२४॥
 ततः प्रभृतिं तत्तीर्थमाख्यातं चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगतं सुरपतिर्लोकानाममृतार्पणम् ॥२५॥
 तज्जातं मासवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यदं नृणाम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वत्रुत्फलप्रदम् ॥२६॥
 ततः प्रभृतिं तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमथैन्द्रं च श्येनं पर्जन्यमेव च ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूयिसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णनं नाम

त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्यातं त्रैलोक्ये विभूतं शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१॥

हो तो मैं भी पवित्र अमृत का पान करूँगा नहीं तो देव पितर सभी उस अमृत्य मास को ही खावेंगे। इसके बाद मैं उस मास को खाऊँगा मेरा कथन असत्य नहीं है। विश्वामित्र की इन बातों से सहस्र नेत्र वाले इन्द्र भयभीत हो गये। उसी समय मेघों को बुलाकर अमृत मय जल की वर्षा कर सम्पूर्ण प्रजा को अमृतदान से तृप्त किया। इसके अनंतर इन्द्र के दिये हुए पवित्र अमृत को लेकर यथाविधि पहले देवताओं को और तीनो लोक को विश्वामित्र ने तृप्त किया पुन अपनी भार्या और शिष्यों के साथ स्वयं पान किया। उस समय से वह तीर्थ अत्यन्त पुण्यप्रद माना जाने लगा। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से सब यशों का फल प्राप्त होता है। और उसी समय से वह विश्वामित्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोई उसका मधुतीर्थ ऐन्द्र श्येन, और पर्जन्य भी कहते हैं ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्रतीर्थ वर्णन नामक तिरानवेक अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—त्रिमुक्ता में अति प्रसिद्ध श्वेततीर्थ नामक एक तीर्थ है। उस तीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। प्राचीन काल में श्वेत नामक एक ब्राह्मण ऋषि गौतम का रहता था। यह गौतमी

इवेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रिय सखा । आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रित ॥२॥
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायण । ध्यायन्त त द्विजश्रेष्ठ पूजयन्त सदाशिवम् ॥३॥
पूर्णायुष द्विजवर शिवभक्तिपरायणम् । नेतुं दूता समाजम्मुर्दक्षिणाशापतेस्तदा ॥४॥
नाशक्नुवन्गृह तस्य प्रवेष्टुमपि नारद । तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमन्नवीत् ॥५॥

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो इवेत कथत्विति । नाद्याप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्नोचितं तु ते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्यु प्रायान्द्वयेतगृह स्वयम् । बहि स्थितास्तदा पश्यन्मृत्युर्दूताभ्यादितान् ॥
प्रोवाच किमिदं दूता मृत्युमृच्छुश्च दूतका ॥७॥

दूता ऊचुः

शिवेन रक्षित इवेत वयं नो वीक्षितुं क्षमा । येषां प्रसन्नो निरिशस्तेषां का नाम भीतय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्यु प्राविशद्यन् स द्विज । नासी विप्रो विजानाति मृत्यु वा यमकिंकरान् ॥९॥

के तीर पर आधम बना कर रहता था । सबदा द्वार पर आये अतिथिया के आतिथ्य-सत्कार में लगा रहता था । मन बचन और कर्म से उसकी शिव में निष्ठा रहता थी । एक दिन जब उस शिव भक्ति-परायण द्विजवर की आयु का अन्त समय आया तब सदाशिव की पूजा में रत और ध्यानमग्न उस श्रेष्ठ द्विज को ले जाने के लिये यम के दूत आये । नारद ! उस शिवभक्त के तब से हतवीर्य हो वे समझूत उसक गृह में प्रवेश नहीं कर पाते थे । उधर बिलम्ब होने पर चित्रक ने मृत्यु से पूछा—॥११॥

चित्रक ने कहा—मृत्यु ! आयु क्षीण हो जाने पर भी इवेत क्यों नहीं आ रहा है ? अब तब तुम्हारे त भी नहीं आये यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥९॥

ब्रह्मा बोले—इस पर मृत्यु बुपित होकर स्वयं विप्र इवेत के घर गया । वहाँ अपन मयप्रस्त दूता को बाहर बैठ देखकर बोले—दूतो ! यह क्या है ? यह सुनकर दूता ने मृत्यु से कहा ॥७॥

दूता ने कहा—शिव के द्वार रक्षित इवेत को हम लोग आँख उठाकर भी देखने में समर्थ नहीं हो रहे हैं । जिनने उपर स्वयं कलाशपति गकर प्रसन्न हैं उनको डर किस बात का ॥८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर मृत्यु हाथ में पाश लिये हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह विप्र विराजमान था । उसने अपनी तमयता के कारण मृत्यु अथवा यमदूता को नहीं पहचाना । वह तो भक्तिपूर्वक शिवाराधन में ही लगा रहा । ऐसे भक्त इवेत के समीप पाशहस्त मृत्यु को देख कर दण्डी ने अत्यन्त विस्मित हो उससे पूछा—॥९॥

शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्य तु समीपतः। मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी प्रोवाच विस्मितः॥१०॥

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिन मृत्युरब्रवीत्

॥११॥

मृत्युर्ब्रवीत्

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम्

॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वं पच्छेत्यब्रवीदण्डी मृत्युः पाशानयाक्षिपत्। श्वेताय मुनिशार्दूल ततो दण्डी शुकोप ह॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्युः पपात धरणीतले॥१४॥
ततस्ते सत्वरं ब्रूता हतं मृत्युमवेक्ष्य च। यमाय सर्वमवदन्बन्धं मृत्योस्तु दण्डिना॥१५॥
ततश्च क्रुपितो धर्मो यमो महिषबाहनः। चित्रगुप्तं बहुबलं यमदण्डं च रक्षकम्॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिध्याधीस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्। त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः॥१८॥
एतैरन्यैः परिवृत्तो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। तमायात यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सामुधः॥१९॥
विनायक तथा स्कन्द भूतनाथ तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम्॥२०॥

दण्डी बोला—मृत्यु ! यहाँ क्या देख रहे हो ? ॥११॥

मृत्यु ने दण्डी से कहा—श्वेत को ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ इसलिये द्विजश्रेष्ठ श्वेत को देख रहा हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तुम चले जाओ, दण्डी ने कहा। मुनिशार्दूल ! इसके बाद मृत्यु ने श्वेत के लिए पाश फेंका। यह देख दण्डी के त्रोष का ठिकाना न रहा। उसने शिव-दत्त दण्ड से मृत्यु पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप यम पाश हाथ में लिये ही पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१३-१४॥ वे यमदूत इस प्रकार मृत मृत्यु को देखकर भीषण ही यम के पास गये और उसने दण्डी के द्वारा मृत्यु का वध आदि सब कुछ यम को सुना दिया ॥१५॥ इसको सुनकर महिष बाहन यम क्रुपित हो गया। उसने अपने अतिबलशाली चित्रगुप्त, रक्षा करने वाले यमदण्ड, भैसा, भूत, वेताल, ध्यावि, इसी प्रकार नेत्ररोग, उदररोग, कर्णशूल तीन प्रकार के ज्वर पाप और विविध प्रकार के नरकों में 'जल्दी करो' यह कहकर बड़ी शीघ्रता से सबको साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँचा ॥१६-१८॥ इस प्रकार उपर्युक्त गणों एवं अन्य सहायकों के साथ यम वहाँ पहुँचा जहाँ श्वेत बैठा था। नस्त्रसज्जित यम को इस प्रकार आते देखकर शस्त्र सम्हालते हुए नन्दी ने विनायक, स्कन्द तथा दण्डधारी भूतनाथ शंकर से यम की दुरन्तिस्थिति कह सुनाई। अब वहाँ सम्पूर्ण लोक को मय देने वाला यमकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥१९-२०॥ युद्ध में नातिक्रिय ने स्वयं अपनी शक्ति

कार्तिकेय स्वयं शक्त्या बिभेद यमकिञ्चरान् । दक्षिणाशापति चापि निजघान बलान्वितम् ॥२१॥
 हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन् । आदित्योऽपि सुरैः सार्धं श्रुत्वा तन्महदद्भुतम् ॥२२॥
 लोकपालैरनुवृत्तो मभान्तिकमुपागमत् । अहं विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥२३॥
 चन्द्रादित्यावश्विनो च लोकपाला मरुद्गणा । एते चान्ये च बहवो वयं याता यमान्तिकम् ॥२४॥
 मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वित । समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकश ॥२५॥
 तत्राऽजगम् सुरेशान् द्रष्टुं वैवस्वत यमम् । तं द्रष्टुं वा हतसंन्य च यम देवा भयादिता ॥
 कृताञ्जलिपुटा शभुर्मूर्धु सर्वे पुन पुन ॥२६॥

देवा ऊचुः

भक्तप्रियत्वं ते नित्यं दुष्टहन्तृत्वमेव च । आदिकर्तनमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥
 ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥२७॥

श्वेतं द्विज भक्तमनायुषं ते, नेतुं यमादिं शकलोऽसमर्थः ।
 सतीयमाप्ता परमं रामोऽस्य, भक्तप्रियस्य त्वयि नाथ सत्यम् ॥२८॥
 ये त्वा प्रपन्ना शरणं कृपालु, नालं कृतान्तोऽप्यनुवीक्षितुं तान् ।
 एव विदिषा शिव एव सर्वं, त्वामेव भक्त्या परया भजन्ते ॥२९॥

त्वमेव जगतां नाथ किं न स्मरसि शकर । त्वा विना कं रामर्थोऽत्र व्यवस्था कर्तुमीश्वर ॥३०॥

से यमदूता को छेद डाला । पुन उन्हाने चलयावित दक्षिण दिशा के स्वामी यम को भी मार गिराया ॥२१॥ हतरोप यम के अनुचरो ने यमपिता आदित्य से सारी कथा कही । आदित्य भी इस अद्भुत सपना को सुनकर देवताओं और लोकपालों को साथ के मरे पास आय ॥२२३॥ ग (गङ्गा) विष्णु भगवान् इन्द्र अग्नि वरुण कष्ट आदिय अश्विन लोकपाल मरुद्गण तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देव यम के समीप गए ॥२३- २४॥ बड़ा गंगा ने तट पर अपनी मना सहित दक्षिणतः यम मरा हुआ पड़ा था । सभी समुद्र नद नाग एव अन्य मयबद्ध प्राणी देवस्वामी वैवस्वत यम को दत्तने के लिये वहाँ पहुँचे हुए थे । उसको इस प्रकार सौय महित मरा दत्तकर सभी देवता यम से व्याकुल हो गये । यह हाम जोडकर भगवान् शरर से पुन पुन कहन गये ॥२५ २६॥

देवों ने कहा—तुम्हारा भक्ता के प्रति सबदा स्नेहभाव रहता है । तुम दुष्टों के वध के लिये सबदा तत्पर रहते हो । आदित्या ! तुमको नमस्कार है नीलकण्ठ ! तुम्हारा हम नमस्कार करते हैं । ब्रह्मप्रिय ! आपको नमस्कार है । देवप्रिय ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२७॥ तुम्हारा इस गतायुष मर्त्य द्विज श्वेत को के जाने म यमादि सभी असमर्थ हो गये । नाथ ! तुम मर्त्यवातात्स्य का यह उच्छेद सत्यस्वरूप दमकर हम अत्यंत सन्तुष्ट हैं । जो व्यक्ति कृपालु तुम्हारी शरण में जाते हैं उन लोगों को बार यम भी और उदात्तर देखने का साहस नहीं कर सकता । निज ! तुम्हारी इस कृपालुता को जानकर सब तुमको अत्यन्त भक्ति में मग्न होते हैं । शरर ! क्या आप स्मरण नहीं करते कि आपही ससार का स्वामी हैं । तुमको छोडकर कौन ऐसा है जो इस ससार में व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ हो सकता है ॥२८ ३०॥

ब्रह्मोवाच

एव तु स्तुवतां तेषां पुरस्तादभवच्छिवः । किं ददामीति तानाह इदमूचुः सुरा अपि ॥३१॥

देवा ऊचुः

अयं वंदस्पतो धर्मो नियन्ता सर्वदेहिनाम् । धर्मधर्मव्यवस्थायां स्यापितो लोकपालकः ॥३२॥
नायं यधमपान्तेति नापराधी न पापकृत् । विना तेन जगद्वातुर्नैव किञ्चिद्भविष्यति ॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यम सबलवाहनम् । प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमसंशयम् । यम यदि वषो मेऽथ अनुमन्यन्ति देवताः ॥३५॥
तत प्रोचु सुरा सर्वे धूर्मो धाव्यं स्वपोदितम् । हरिवह्णादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत् ॥३६॥
तत प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान् । मद्भूक्तो न मूर्तिं यातु मेत्यूचुरमराः पुनः ॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचरा । अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय ॥३८॥
पुनरप्याह साञ्जभु शृण्वन्तु मम भाषितम् । मद्भूक्तानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम् ॥३९॥
यम तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्याम्यमर्हति । वाताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन ॥४०॥
आधिपत्याध्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभव, बबधित् । ये शिवं शरणं यातास्ते मुक्तास्तत्क्षणादपि ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार देवों की प्रार्थना सुनकर आगुतीष शिव उन देवों के सामने प्रत्यक्ष हुये । उन्होंने कहा—क्या रू ? यह सुनकर देवों ने कहा ॥३१॥

देवगण बोले—यह वैवस्वत धर्म सब प्राणियों पर अनुशासन करनेवाला है । यही धर्मधर्म की व्यवस्था के लिये लोक पालक के रूप में प्रतिष्ठित है । यह न तो अपराधी ही और न पापकर्म करनेवाला ही है । अतः यह वष के योग्य नहीं है इसके बिना विधाता की सृष्टि में कोई व्यवस्था नहीं सकेगी । देवेश ! इसलिये इस यम को सैन्य, वाहन के सहित जीवित कर दो । नाथ ! महानो से की गई प्रार्थना सफल होती है, व्यर्थ नहीं ॥३२-३४॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा 'मैं अवश्य यम को जीवित कर दूंगा, यदि आप सब देवता आज मेरे प्रस्ताव का समर्थन कर । यह सुन कर सब देवताओं ने कहा कि आप की कही हुई बातों का हम सब अक्षरशः पालन करेंगे । जिसके अधिकार में विष्णु, और ब्रह्मा सहित सारा जगत् है, उसकी कौन उपेक्षा कर सकता है ? तत्पश्चात् भगवान् ने आगत देवों से कहा—'मेरे भक्त कभी मृत्यु मुख में न जायें ।' पुनः देवताओं ने कहा 'नहीं । देव ! तब तो चराचरात्मक सारा जगत् अमर हो जायगा । जगद्वापक ! देव ! अमर्त्य (देव) और मरणवर्मा मनुष्य का भेद भी मिट जायगा ।' इन उपर्युक्त बातों को सुनकर शंकर ने पुनः कहा—मेरी वही हुई बातों का अभिप्राय मुने 'मेरे भक्तों (जीव) और वैष्णवों—जो कि सर्वदा गौतमी गंगा के आश्रय में रहते हैं—के स्वामी हम सब ही हैं अतः उन भक्तों पर मृत्यु का आधिपत्य कभी भी रहना उचित नहीं । अधिकार को कौन गड़े,

सानुगस्य यमस्यातो नमस्या सर्व एव ते । तथेत्यूच सुरगणा देवदेव शिव प्रति ततश्च ॥४२॥
भगवान्नाथो नन्दिन प्राह वाहनम् ॥४३॥

शिव उवाच

गौतम्या उदकेन स्वमभिषिञ्च मृत यमम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमावय सर्वे अभिविवतास्तु नन्दिना । उत्थिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशा ततो गता ॥४५॥
उत्तरे गौतमीतीरे विष्णवाद्या सर्वदेवता । स्थिता आसन्पूजयन्तो देवदेव महेश्वरम् ॥४६॥
तत्राऽऽसन्नपूताग्यष्ट सहस्राणि चतुर्वंश । तथा षट्च सहस्राणि पुन षट्च तथैव च ॥४७॥
षड्दक्षिणे तथा तीरे तोर्यानामयुतत्रयम् । पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद ॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते । तस्य श्रवणमात्रेण सहस्र जीवते समा ॥४९॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वपापप्रणाशनम् । श्रवणं पठनं चापि स्मरणं च मलक्षयम् ॥
करोति सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्कारो तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीर्थस्यैकलक्षद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिण
तीर्थस्यानशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाविंशोऽध्यायः ॥२५॥

इन लोगों के विषय में यम कभी बातों तक न करे । वे कभी किसी अवस्था में आधि ध्याधि से सताये न जायें
जो शिव की शरण में चले जाते हैं वे तरक्षण ही मुक्त समझे जाते हैं । अतः वे सभी अनुचर सहित यम के लिये बन्ध
नीय हैं अचनीय हैं । यह सुनकर देवताओं ने देवाधिदेव शंकर से कहा— ऐसा ही हो । इसके अनन्तर भगवान्
नारद ने अपने वाहन नन्दी से कहा ॥१५४॥

शिव ने कहा—तुम गौतमी के जल से मृत यमराज का अभिषेक करो ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सभी यम आदि ने ऊपर नन्दी ने गौतमी का जल छिड़वा । वे सभी जल स्पश से ही
सजीव हो उठ गये और अपनी प्रिय दक्षिण दिशा की ओर चले गये । इधर उत्तर की ओर गौतमी के तीर पर
विष्णु आदि सब देवताओं ने आसन जमाया और देवाधिदेव महेश्वर की सर्वाधि पूजा की । वहाँ उस समय एक सौ
छह हजार तीर्थ उपस्थित हुये थे । इसी प्रकार दक्षिण तीर पर छत्तीस हजार तीर्थ उपस्थित थे । नारद । यही श्वेत
तीर्थ का पुण्यदाता आरूपान है । जहाँ मृत्यु युद्ध में आहत हो घराशायी हुए थे वही मृत्युतीर्थ कहा जाता है । उस
मृत्युतीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सहस्र वर्ष तक जीवित रहता है । वहाँ स्नान करने और दान देने से सब
प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । इस तीर्थ का माहात्म्य श्रवण पठन अथवा स्मरण सम्पूर्ण लोक का पाप नष्ट करता है
और सबको भुक्ति मुक्ति प्रदान करता है ॥४५५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चौरावनेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिपिनाशनम् ॥१॥
 अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषीः परमधार्मिकौ । तयोः पुत्रौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ ॥२॥
 जीव कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्वंशे रतौ । उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितराव्चतुर्मय ॥३॥

ऋषी ऊचुः

आवपरेक एपास्तु शास्ता नित्यं च पुत्रयोः । तस्मादेकं शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको ययासुखम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततः शीघ्रमङ्गिराः प्राह भार्गवम् । अध्यापयिष्ये सद्यः सुखं तिष्ठतु भार्गव ॥५॥
 एतच्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्यं भृगुकुलोद्बुधम् । तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्रं तस्मै न्यवेदयत् ॥६॥
 उभावपि सुतौ नित्यमध्यापयति वै पृथक् । वैषम्यमुद्यया तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽग्नौदिवम् ॥७॥

अध्याय ६५

शुक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब मनष्यों के मनोरथ को पूरा करने वाला शक्तीय नामक एक विश्वविख्यात तीर्थ है जो मनुष्य के सब पापों को दूर करता और सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। अङ्गिरा और भृगु नाम के दो परम धार्मिक ऋषि थे। उनके दो पुत्र थे जो परम बुद्धिमान तथा रूप और बुद्धि के कोश थे। उन लोगों का नाम जीव (वहस्पति) और नति (गुत्र) था जो सबदा माता और पिता के आना-पालन में निरत रहते थे। पुत्रों के यगोपवीत सत्कार हो जाने के बाद उन दोनों बालकों के पिता ने आपस में मन्त्रणा की ॥१॥

शेनो ऋषियः १ कहा—हम दोनों में से एक ही सबदा इन दोनों का अभिम वक रहे। इसलिये एक तो इनका अभिभावक हो और दूसरा पुत्रपात्रन से निश्चित होकर सुखपूवक रहे ॥४॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर अङ्गिरा ने भागव से शीघ्र कहा—म समान भाव से दोनों बालकों को पढ़ाऊँगा भागव सुलपूवक रहे। ऋषि अगिरा की इन बातों को सुनकर भृगुकुलध्वज ने उसको स्वीकार कर लिया और शुक्र को अगिरा के हाथ समर्पित कर दिया। गृह उन दोनों बालकों को चिरकाल तक पृथक्-पृथक् असमान भाव से नियम पढ़ाते थे। यह चिरकालीन विषम अध्यापन देखकर गुत्र ने कहा ॥५॥ ७॥

शुक्र उवाच

वैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यतः। गुरुणां नेहमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिका। नैपा विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते॥९॥
आचार्यं सम्पज्ज्ञातोऽसि नमस्येहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्व्ययसौ विषमो भवेत्। ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते॥११॥

ब्रह्मोवाच

गुरुं ब्रह्मस्यसि दृष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अद्यात्तमिद्यः पितरं गच्छेयं चेत्पचिन्तयत्॥१२॥
तस्मात्कमनुपृच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपृच्छद्वबुद्धगौतमम्॥१३॥

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ नम ब्रूहि गुरुर्भवेत्। प्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं ज्ञजाम्यहम्॥१४॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह जगतमीशं शंभुं देवं जगद्गुरुम्। क्वाऽऽराधायामि गिरिप्रामित्युक्तः प्राह गौतमः॥१५॥

शुक्र बोले—गुरुदेव । तुम तो नित्य ही मुझको असमान रूप से पढाते हो। गुरुजनों का इस प्रकार पुत्र और शिष्य के प्रति विषम व्यवहार उचित नहीं। मूर्ख गुरु ही शिष्यों के प्रति पक्षपात युक्त व्यवहार करते हैं, ऐसे पक्षपाती गुरुओं के पापों की गणना नहीं हो सकती। आचार्य । तुम मलीमांस पहचाने गये। तुमको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। अब अन्य गुरु के समीप जाना चाहता हूँ कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। ब्रह्मम् । यदि वहाँ जाने पर भी ऐसा ही विषम व्यवहार होगा तो पिता जी के पास चला आऊँगा अथवा दूसरे गुरु के समीप चला जाऊँगा। स्वामिन् । आप से पूछ लिया, अब जा रहा हूँ ॥८-११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार गुरु और सहपाठी ब्रह्मस्यति से भेट कर उनसे विदा माँग कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सोचने लगा कि सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता होकर ही पिता के समीप चलना चाहिये। इसलिये किससे पूछूँ, कौन ऐसा उत्कृष्ट व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो। इस प्रकार सोचते हुए उसने महाबुद्धिमान् गौतम से पूछा—॥१२-१३॥

शुक्र ने कहा—मुनिश्रेष्ठ । इस लोक में कौन ऐसा ज्ञानी व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो, यह मुझको बतलाइये। तीनों लोकों के जो गुरु हैं, उनके समीप भी मैं जा सकता हूँ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—गौतम ने जगत् के स्वामी, जगद्गुरु भगवान् शंकर को ही गुरु के योग्य बताया। यह पूछने पर कि उनकी आराधना नहीं करूँ, गौतम ने कहा ॥१५॥

१८ ०म् । शुक्र प्राह क्व त्वं पश्येय विद्वत्श्वरम् । गौतम प्राह धर्मज्ञो बृद्ध शुक्र गुरुप्रियम् । गौतम्या ।

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्या स्तोत्रैस्तोषय शङ्करम् । ततस्तुष्टो जगन्नायः स ते विद्यां प्रदास्यति ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रागादङ्गत्वां स भार्गवः । स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः ॥१७॥

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं जानामि ते किञ्चित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते ॥१८॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा । त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९॥
गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि । अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
विद्यार्यं हि सुरेशान नाहं वेदमि भवद्गतम् । मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिप्रभोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः ॥२२॥

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते पञ्चापि सुरबुर्लभम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह वेदेषां कृताञ्जलिस्वारधीः ॥२४॥

गौतम बोले—गौतमी में स्नान कर पवित्र हो स्तोत्र-पाठ से शंकर को प्रसन्न करो । तब जगत्पति प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—बहु भार्गव (शुक्र) गौतम के कथनानुसार गंगा की तीर पर गया । स्नान कर पवित्र हो उस बालक ने विधिपूर्वक शंकर की स्तुति की ॥१७॥

शुक्र बोले—द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाले । प्रभो ! मैं बालक हूँ, बाल-बुद्धि (अल्पबुद्धि) हूँ । किञ्चित्मात्र भी तुम्हारी स्तुति करना नहीं जानता, तुमको मेरा नमस्कार हो । गुरु से परित्यक्त मेरा कोई भी सहायक या मित्र नहीं है । जगन्नाय । सब प्रकार से तुम्ही मेरे प्रभु हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । तुम श्रेष्ठों में श्रेष्ठ तथा महानों के भी महान् हो । मैं तो अत्यन्त अल्पबुद्धि बालक हूँ । जगद्व्यापक । आपको मेरा नमस्कार है । सुरेशान । मैं विद्या-प्राप्ति के लिये आपकी शरण में आया हूँ, परन्तु आपकी गति नहीं जानता । अतः आप मुझको कृपा-दृष्टि से देखिए । लोकसाक्षिन् । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बालक की स्तुति-प्रार्थना सुनकर सुरेश्वर शंकर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

शंकर ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो । तुम अनिलपित्त वर माँगो । जो देवों से भी दुष्प्राप्य हो वह भी माँगो ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—उदार बुद्धि शुक्र ने भी अञ्जलि नौकर देवेद्य से कहा—॥२४॥

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्षा विद्या नैव गोचरा । तां विद्यां नाय याचिष्ये त्वं गुरुर्मम देवतम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

मृतसंजीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिवशैरपि । तां दत्तवान्सुरथेष्ठस्तस्मै क्षुत्राय याचते ॥२६॥
इतरा लौकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा । किं पुनः शंकरे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते ॥२७॥
स तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं गुरुम् । दैत्यानां च मुदश्चाऽऽसीद्विद्याया पूजितः कविः ॥२८॥
ततः कवाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे । कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्तः कवेस्तु ताम् ॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि ततो देवाः पूयन्पूयन् । अवाप्तुमर्हतीं विद्यां यामाहुर्मृतजीविनीम् ॥३०॥
यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम् । गौतम्या उत्तरे पारे क्षुत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
मृतसंजीविनीतीर्थमायुरारोग्यवर्धनम् । स्नानं दानं च यत्किञ्चित्तत्तत्तदप्युच्यते ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुक्तपितृवादे मृतसंजीविनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम

पञ्चनवतितामोऽध्यायः ॥१९५॥

गौतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शुक्र ने कहा—जिस विद्या को ब्रह्मादि देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना, नाथ । उसी विद्या की याचना करता हूँ, तुम मेरे गुरु हो, देवता हो ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—जब देवों से भी अज्ञात मृतसंजीवनी विद्या की सुरथेष्ठ शंकर ने शुक्र की याचना पर दे दिया तो इतर लौकिक, वैदिक या अन्य विद्याओं के दान के विषय में प्रसन्न शंकर के लिये कुछ सोच विचार करने का अवसर ही कहाँ रहा ? अर्थात् इतर विद्यायें तो अनायास शंकर से प्राप्त हो गईं । वह महाविद्या को प्राप्त कर अपने गुरु के समीप चला गया । अपनी विद्या के कारण पूजित कवि दैत्यों के गुरु हुए । तदनन्तर किसी समय कारणवश बृहस्पति पुत्र कच ने कवि से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त की । कच से बृहस्पति और बृहस्पति से देवताओं ने पूयन्पूयन् उस थेष्ठ विद्या को—जिसको मृतसंजीवनी (मरे को जिलाने वाली) कहते हैं—प्राप्त किया । जिस स्थान पर शुक्र ने महेश्वर की आराधना कर उस विद्या को प्राप्त किया था, वही गौतमी के उत्तम तीर वाला स्थान शुक्रतीर्थ कहा जाता है । वह मृतसंजीवनीतीर्थ आयु-आरोग्य को बढ़ाने वाला है । वहाँ पर स्नान, दान, आदि जो कुछ किया जाता है, वह असम पुण्य को देता है ॥२६-३२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे मृत संजीवनी माहात्म्य-वर्णन नामक पञ्चनवविंश अध्याय समाप्त ।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात ब्रह्महत्याविनाशनम् । स्मरणादपि पापौघवलेशसघविनाशनम् ॥१॥
 पुरा ब्रूवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद । शचीपति चानुगता ता दृष्ट्वा भीतवद्वरि ॥२॥
 इन्द्रस्ततो ब्रूवन्ता इतश्चेतश्च धावति । यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽपीन्द्रगामिनी ॥३॥
 स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत् । तत्रासौ तन्तुवद्भत्वा वास चक्रे शचीपति ॥४॥
 सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसौ द्विष्य घर्षसहस्रकम् । एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यभवन्मुने ॥५॥
 मन्त्रयामासुरव्यघ्रा कथमिन्द्रो भवेदिति । तत्राहमवद देवान्हत्यास्थान प्रकल्प्य च ॥६॥
 इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभियिष्यताम् । यत्राभियिष्यन् पूतात्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति ॥७॥
 तथा ते निश्चय कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन् । तत्र स्नात सुरपति देवाश्च ऋषयस्तथा ॥८॥
 अभिवेतुकामास्ते सर्वे शचीकान्त च तस्थिरे । अभियिष्यमानमिन्द्र त प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत् ॥९॥

अध्याय ६६

पुण्या-सिक्ता सगम, इन्द्रतीर्थ आदि सप्त सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्महत्याजय पापों को भी नष्ट कर देने वाला इन्द्र तीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से सब पाप और क्लेश-समूह विनष्ट हो जाते हैं । नारद । प्राचीन काल में ब्रह्मासुर वध के पश्चात् ब्रह्महत्या साधारण रूप में शचीपति के पीछे चली । उसको देखकर इन्द्र सयमरित-से हो गये । सब ब्रूवन्ता इन्द्र इधर उधर मागने लग । जहाँ जहाँ वे जाते थे वह ब्रह्महत्या भी उनके पीछे-पीछे आती थी । अन्ततोगत्वा इन्द्र महासरोवर में घुसकर कमल नाल में छिप गये वहाँ तन्तु के रूप में शचीपति इन्द्र निवास करने लगे । वह हत्या भी उस सरोवर के तीर पर दिव्य सहस्र वर्षों तक निवास करती रही । मुने । इतने वर्षों तक देवता बिना इन्द्र के हो गये । आपस में उन देवों ने शान्त चित्त से परामश किया कि किस प्रकार पुन इन्द्र प्रकट होंगे । उस समय मैंने देवों से कहा कि कुछ समय तक हरया को एक निदिष्ट स्थान दे दिया जाय और इन्द्र को हत्या से मुक्त करने के लिये गौतमी में उनको स्नान कराया जाय । उस गौतमी में अभिविन्त होने से इन्द्र पुन पवित्र होकर इन्द्रत्व को प्राप्त कर लगे । ऐसा निश्चय कर वे देव शीघ्र ही गौतमी के तीर पर आये । वहाँ गुरेस को स्नान करा कर, उनका अभिषेक करने की इच्छा से देव ऋषि आदि प्रस्तुत हो गये । अभिषेक किये जाने वाले इन्द्र को देखकर गौतम ने क्रुपित होकर कहा—॥१-९॥

गौतम उवाच

अभिषेक्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुह्यतमम् । तान्स्वर्गान्भस्मसात्कुर्यां शीघ्रं यान्त्वसुरारय ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तद्देवंचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गौतमीम् । नर्मदापयमन्सर्वं इन्द्रमादाय सत्वरः ॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्मिन् । अभिषेक्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवानुपि ॥१२॥
अब्रवीद्भस्मसात्कुर्यां यवि स्यादभिषेचनम् । पूजयामासुरभरा माण्डव्यं युक्तिभिः स्तब्धं ॥१३॥

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देशेऽभिषिष्यते । तत्रातिवारुणं विघ्नं मुने समुपजापते ॥१४॥
तच्छान्तिं कुर्व कल्याणं प्रसीद वरदो भव । मलनिर्घातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वारुण्यहून् ॥१५॥
देशो दास्यामहे सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि । यस्मिन्देशे सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति ॥१६॥
॥ सर्वकामदः पुसां धान्यवृक्षफलैर्युतः । नानावृष्टिर्नैवुभिक्ष भवेदत्र कदाचन ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिभ्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः । अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्घातनं तथा ॥१८॥
देवैस्तदोक्तो मुनिभिः स देशो मालवस्ततः । अभिषिक्तो सुरपती जाते च विमले तदा ॥१९॥

गौतम बोले—यदि गुह्यतमामी पापी इन्द्र का तुम लोग अभिषेक करोगे तो सबको अपने शापाग्नि से नष्ट कर दूंगा, अतः राक्षसों के शत्रु देवगण यहाँ से दौड़ चले जायें ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बात सुनकर गौतमी को छोड़कर इन्द्र को साथ ले वे देवता दौड़ ही नमदा के तट पर चले गये । वहाँ नर्मदा के उत्तर तीरे पर अभिषेक करने के लिये स्थित हुये । इस प्रकार इन्द्र के अभिषेक का समारोह देखकर भगवान् ऋषि माण्डव्य ने कहा—‘यदि यहाँ अभिषेक हुआ तो सबको मरमावशेष कर दूंगा । यह देखकर देवा ने अनेक युक्तियों और स्तुतिपाठ से माण्डव्य ऋषि की पूजा की ॥११-१३॥

देवों ने कहा—इस सहस्र नेत्र वाले इन्द्र का जिस देश में अभिषेक होगा मुनिवर । उस देश में अति भयंकर विघ्न उत्पन्न होगा । कल्याणमूर्ति । आप प्रसन्न होइये, उन विघ्ना की शांति कीजिये । वर देने वाले होइये । हम जिस प्रदेश में मल मोचन करेंगे, उस प्रदेश को हम सब उत्तम कल्याणमय वरों से समृद्ध कर देंगे इसलिये आप कृपा कर आज्ञा प्रदान करें । जिस प्रदेश में सुरराज का अभिषेक होगा वह प्रदेश भीति भाति के घान्य और फलदार वृक्षों से सुशोभित रहेगा एव मनुष्यों की कामनाओं की पूर्ति करेगा । वहाँ समयानुकूल वृद्धि होती रहेगी, कमी भी दुर्भिक्ष न होगा ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना के उपरान्त लोक-पूजित माण्डव्य ऋषि ने इसको स्वीकार किया । वहाँ इन्द्र का अभिषेक तथा पापमोचन कर्म किया गया । तब देवताओं और मुनियों के द्वारा उस देश का मालव नामकरण किया गया । इस प्रकार अभिषेक हो जाने पर सुरपति इन्द्र पापमुक्त हो गये । पुनः उनको गौतमी गंगा के तट पर

आनीय गौतमो ब्रह्मा त पुण्याभिषेचिरे । सुगश्च ऋषयश्चैव अहं विष्णुस्तथैव च ॥२०॥
 वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यप । एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षा सपत्न्या ॥२१॥
 स्नानं तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नाभिषेचनम् । मया पुनः शचीभर्ता कमण्डलुभवेन ॥२२॥
 वारिणाऽप्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवन्नदी । सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीते गङ्गाया च सगते ॥२३॥
 सगमौ तत्र विरपातौ सर्वदा मुनिसंविता । ततः प्रभृति ततीर्थं पुण्यासगममुच्यते ॥२४॥
 सिक्तायाः सगमं पुण्यमेन्द्र तदभिधीयते । तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासञ्शुभानि च ॥२५॥
 तपुः स्नानं च दानं च विशेषेण तु सगमे । सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥
 यदेतत्पुण्यमाख्यानं यः पठेच्च शृणोति वा । सर्वपापं स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजं ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राह्ये तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थविस्तेप्तसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम घणवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्ताविंशोऽध्यायः ॥२७॥

काकरसुराण आदि में (ब्रह्मा) विष्णु वशिष्ठ गौतम अगस्त्य अत्रि कश्यप तथा अन्य ऋषि देव यक्ष और नाग आदि ने पुण्याथ उनका अभिषेक किया । प्रथम उस नदी के पवित्र जल से स्नान हुआ पुनः अभिषेक क्रिया समाप्त हुई । तदनंतर स्वयं मने अपने कमण्डलु-जल से शचीपति का अभिषेक किया । उस अभिषेक के जल से वहाँ पुण्या नदी उत्पन्न हुई वहाँ एक सिक्ता नदी भी थी ये दोनों मिलायी गयीं और मिल गयीं । उन दोनों के सगम स्थान अर्थात् विख्यात तीर्थ हो गये वहाँ सर्वदा मुनिजन निवास करने लगे । तब से यह तीर्थ पुण्या-सगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । सिक्ता के सगम स्थान पर जो तीर्थ हुआ वह इन्द्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ सात हजार पवित्र तीर्थों का निवास है उन तीर्थों में स्नान और वहाँ का दान अक्षय होता है सगम का स्नान और दान तो विशेष महत्त्व रखता है इसमें विचार या सन्देह करने की आवश्यकता नहीं । जो इस पवित्र आख्यान को पढ़ता अथवा श्रवण करता है वह अपने मानसिक और वाचिक पापों से मुक्त हो जाता है ॥१८-२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुण्या सिक्ता-सगम इन्द्रतीर्थ आदि सप्तसहस्रतीर्थों का घणन नामक
 छियाननेवी अध्याय समाप्त ॥९६॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पीलस्त्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पीलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् । प्रभावं तस्य वक्ष्यामि ऋष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः । पुरा लङ्घ्वापतिश्चाऽऽसीरज्येष्ठो विश्रवसः सुतः ॥२॥
तस्येते भ्रातरश्चाऽऽसन्मलवन्तोऽमितप्रभाः । सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषणः ॥३॥
तेऽपि बिभ्रवसः पुत्रा राक्षस्यां राक्षसास्तु ते । महत्तेन विमानेन धनदो भ्रातृभिः सह ॥४॥
ममान्तिकं भवितुमवतो नित्यमेति तु याति च । रावणस्य तु या माता कुपिता साऽऽब्रवीत्सुतान् ॥५॥

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा बह्व्यकारणात् । देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो भिषः ॥६॥
अन्योन्यबधमीप्सन्ते जयंश्चर्यवशानुयाः । तद्भुवन्तो न पुर्या न शक्ता न जयंयिणः ॥७॥
सापत्नं योऽनुमन्यते तस्य जीवो निरर्थकः ॥७॥

अध्याय ६७

पीलस्त्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला पीलस्त्यनामक प्रतिष्ठ तीर्थ है । राज्यभूषण ध्यपति को पुनः राज्य दिलाने वाले उस तीर्थ की महिमा का वर्णन कहूँगा । विश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर पहले एका का अधिपति था । पहले वह ऋषि, सिद्धि से युक्त अत्यन्त वैभवशाली था । उसके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण नामक सौतेले भाई थे । वे भी विश्रवा के, राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न राक्षस पुत्र थे । मेरे द्वारा दिये गये विमान से नित्य कुबेर अपने भाइयों के साथ मक्ति पूर्वक आता और जाता था । रावण की माता इस प्रकार मातृ-प्रेम देखकर कुपित हो गई, उसने अपने पुत्रों से कहा ॥१-५॥

रावण की माता बोली—पुत्रो ! तुम लोगों के प्रकृति विषय कार्य को देखकर न तो मरती ही हूँ न जीवन-सुख ही प्राप्त करती हूँ । अब तक देवता और दानव आपस में सौतेले भाई थे । वे विजय और ऐश्वर्य की कामना से एक दूसरे का बध करना चाहते थे । इसीलिये तुम लोग न तो पुष्ट हो, न धनितशाली और न तो विजयाकांक्षी हो । उन लोगों का जीवन निरर्थक है जो अपने सौतेले भाई के अनुचर होकर रहते हैं ॥६-७॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने । जग्मुस्ते तपसेऽरण्यं कृतवन्तस्तपो महत् ॥८॥
 मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसाः । मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु ॥९॥
 तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत । रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वरमभन्महत् ॥१०॥
 ततस्तदभवद्युद्धं देवदानवयोरिव । युद्धे जित्वाऽग्रजं शान्तं धनं भ्रातरं तथा ॥११॥
 पुष्पकं च पुरीं लङ्कां सर्वं चैव ध्यापाहरत् । रावणो घोषयामास त्रैलोक्ये सघराचरे ॥१२॥
 यो वद्यादाश्रयं भ्रातुः स च वध्यो भवेमम । भ्रात्रा निरस्तो वैश्रवणो नैव प्रापाऽऽश्रयं ववचित् ॥१३॥
 पितामहं पुलस्त्यं तं मत्वा नत्वाऽग्नवीड्य

धनं उवाच

भ्रात्रा निरस्तो बुष्टन किं करोमि वदस्व मे । आश्रयं शरणं यत्स्याद्वै वा तीर्थमेव च ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्

॥१५॥

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्वं स्तुहि देवं महेश्वरम् । तत्र नास्य प्रवेशः स्यादगङ्गाया जलमध्यतः ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने ! माता की बातों को सुनकर वे तीनों माई तपस्या करने के लिये जंगल में चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने धीरे तपस्या की और उन राक्षसों ने मुझसे वरदान भी पा लिया । तदनन्तर मामा मरीच मातामह तथा उस माता की वाणी से प्रेरित होकर उन तीनों ने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से लंका का अधिपत्य माँगा । एक तो स्वयं राक्षस होने के कारण दूसरे माता की बुष्टता से उन भाइयों में महान् वैर हो गया । इसके परिणाम स्वरूप देव और दानव के समान ही उन सीतेले भाइयों में युद्ध हुआ । रावण ने अपने परम शात जेठ माई कुबेर को युद्ध में पराजित कर पुष्पक विमान लंकापुरी एवं सारी संपत्ति छीन ली और सारे घरघर युक्त सत्सार में घोषित कर दिया कि जो कोई उसके माई को आश्रय देगा वह मेरे हाथों द्वारा मारा जायगा । इस प्रकार वह वैश्रवण अपने भाई से निर्वासित कर दिया गया उसको किसी के यहाँ आश्रय नहीं मिला । अतः वह विवश होकर अपने पितामह पुलस्त्य के यहाँ गया और प्रणाम कर कहा—॥८ १३॥

कुबेर ने कहा—मैं अपने ही भाई रावण से निर्वासित कर दिया गया हूँ अब क्या करूँ मुझ बताइये देव का भरोसा करना होगा या तीर्थ की शरण लेनी होगी ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पौत्र की बातें सुनकर पुलस्त्य ने कहा ॥१५॥

पुलस्त्य ने कहा—पुत्र ! गौतमी के तीर पर जाओ यहाँ महेश्वर की स्तुति करो उस स्थान पर गया जल के

तिर्दिष्टं प्राप्स्यसि कल्याणो तथा कुरु मया सह

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामासौ सभार्यो धनवस्तथा । पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वर ॥१८॥
गत्वा तु गौतमीं गङ्गां शुचिं स्नात्वा यतव्रत । तुष्टाव देवदेवेश भुक्तिमुक्तिप्रद शिवम् ॥१९॥

घनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शमो न परोऽस्ति कश्चित् ।
स्वामप्यवजाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव ॥२०॥
त्वमष्टमूर्त्या सकल विभर्षि, त्वदाजया वर्तत एव सर्वम्
तथाऽपि चेदेति बुधो भवन्त, न जात्वविद्वान्महिमा पुरातनम् ॥२१॥
मलप्रसूत यदबोधदम्बा हास्यात्सुतोऽयं तव देव शूर
त्वत्प्रेक्षिताद्य स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशवृष्टे ॥२२॥
अभ्युपलुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, विपुक्तदापत्यमितीशमूचे
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्वं (नं) त्वमवाप सोमात् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुतवस्तस्तस्य मुरतोऽभून्निर्लोभन । वरेण ऋण्वयामास हर्षाब्रह्मोवाच किञ्चन ॥२४॥

बीच से इसका प्रवेश न हो सकेगा । वहाँ अवश्य तुम कल्याणमयी सफलता प्राप्त कर करोगे । इसलिये चलो मेरे साथ पूर्वोक्त कार्य का अनुष्ठान प्रारम्भ करो ॥१६ १७॥

ब्रह्मा बोले—आपके कथनानुसार कार्य करूँगा यह कहकर अपनी भार्या तथा पिता माता और वृद्ध पुलस्त्य के साथ धनेश्वर कुबेर गौतमी तट पर चला गया । वहाँ जाकर उसने यथा मे स्नान कर अपने को पवित्र किया और धन की दीक्षा लेकर एकत्र मन से देवदेवेश भुक्ति और मुक्ति के दाता शिव की स्तुति प्रारम्भ की ॥१८ १९॥

घनद ने कहा—तुम्हीं इस चराचर विश्व के स्वामी हो शबो ! आपसे बहकर और कोई नहीं है । यदि इस सत्कार मे आपकी उपेक्षा कर कोई मनुष्य मोहवश अभिमान करता है तो वह अधम शोचनीय है ॥२०॥ आप अपनी आठ मूर्तियों से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं । आपकी ही आज्ञा से सारा सृष्टि विधान संचालित होता है । तथापि विद्वान् ही सनातन आपको जानते हैं अविद्वान् कभी भी आपकी महिमा नहीं जान पाते ॥२१॥ हँसी में जननी ने अपने मल स उत्पन्न बालक को तुम्हारा बलवान् पुत्र कहा पर तु देव ! तुम्हारी कृपादृष्टि से वही विघ्नराज विनायक हो गया । अहा ! आपकी कृपादृष्टि का यह फल है ॥२२॥ रति के कर्ण विष्णु से आँखों से ध्याप्त अर्गों वाली पार्वती ने कर्णापूर्वक रति और मदन का पारस्परिक सम्बन्ध मग हो गया है—इस विषय की बातें मगवान् शंकर से कही, जिससे कल्याण करने वाले आपकी कृपा से मदन ने मनोमय-पदवी और रति न अपना सौभाग्य-मूल प्राप्त किया ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति सत्कर्म कुबेर के सम्मुख विवेक शंकर स्वयं उपस्थित हो गये और वरदान से उसको कृतार्थ किया, परन्तु घनद कुबेर आनन्दातिरेक से कुछ भी बोले ॥२४॥ कुबेर और पुलस्त्य के इस प्रकार

तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे चादिनि हर्षिते॥२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम्॥२६॥
 पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमुदीरयत्॥२७॥
 भूतवद्भूतवित्तं स्याद्वाप्त्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्यं प्राप्तवत्तत्र देवी वागभवच्छुभा॥२८॥

प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, सपूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम् ।

दिगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलत्रपुत्रान् ।

॥२९॥

तां वाचं धनवः श्रुत्वा देवदेयं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु मामेति धनदो वाक्यमब्रवीत्॥३०॥
 तयैवास्त्विति देवेशो देवीं वाचममन्यत। पुलस्त्यं च वरं पुण्यंस्तथा विश्रवसं भुजिम्॥३१॥
 धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः। ततः प्रभूतिस्तत्तीर्थं पौलस्त्यं धनवं विदुः॥३२॥
 तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किञ्चित्सत्सर्वं बहुपुण्यवम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥१९७॥
 गौतमीमाहारम्पेष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

मीन होने पर शकर जी अति प्रसन्न होकर 'वर मांगो', वर मांगो, यह शब्द बार बार कहने लगे ॥२५॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी ने शकर से कहा कि यह धनपाल (कुबेर) की पदवी ही प्राप्त करना चाहता है ॥२६॥ पुलस्त्य और पिता वैश्रवण के मन में जैसी इच्छा थी उसको जानकर ही आकाशवाणी ने उस समय यह कल्याणमय अभि-
 प्राय व्यक्त किया ॥२७॥ भविष्य भूत के समान समृद्धिपूर्ण, प्राप्तव्य, प्राप्त के समान और दिया जाने वाला, दिये हुए के समान ही ऐसी उस समय शुभ देववाणी हुई ॥२८॥ अनेक शत्रुवाले, अनेक कष्टों से दुखी कुबेर ने सोमेश्वर लिंग की पूजा कर दिक्पाल पदवी, प्रभूतधन, अमितदान की शक्ति और स्त्री-पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥२९॥ उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनकर कुबेर ने त्रिशूलधारी, देवों के देव शकर से कहा कि ऐसा ही हो ॥३०॥ देवेश शकर ने भी आकाशवाणी का ही समर्थन करते हुए कहा कि ऐसा ही हो। इस प्रकार पुलस्त्य, मुनि विश्रवा और कुबेर को पवित्र, उत्तम वरों से सम्मानित कर देवेश शकर जी अन्तर्हित हो गये। उस समय से वह तीर्थ पौलस्त्य और धनद नाम से प्रसिद्ध हो गया, तथा सब मनोरथों को देने वाला, शुभ, पवित्र वैश्रवस् तीर्थ भी वही कहा गया। उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ किया जाता है वह बहुत पुण्यप्रद होता है ॥३१ ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नामक सप्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वैकतुफलप्रदम् । सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता ॥ हव्यवाद् । हव्यं बहन्त देवानां गौतम्यास्तीर एव ॥२॥
ऋषोणा सप्तसदमे अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् । घातुं प्रियं तथा इक्षं मर्षादितिसुतो बली ॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि । हव्यं देवा मंत्रं चाऽऽप्नुमते चं जातवेदसि ॥४॥
मृते भ्रातरि स त्वग्निं प्रिये चं जातवेदसि । कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गमम्भं समाविशत ॥५॥
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नीं देवाश्च मानुषा । जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मत्ता ॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्तं वेदा सर्व एव ते । आजन्मृविद्युधा सर्वं शृण्वन् पितरस्तथा ॥७॥
विनाऽग्निना न जीवाम स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः । अग्निं जलगत् दृष्ट्वा प्रियं चोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचुः

देवाऽजीवय हव्येन कव्येन च पितृस्तथा । मानुषाननपाकेन बीजानां बलेदेन च ॥९॥

अध्याय ६८

अग्नितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो सब यज्ञों के फल को देने वाला सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने वाला प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है उसके फल को सुनो । जातवेदस नाम का अग्नि का एक भ्राता था वह यज्ञों में हव्यवाहक था । एक समय वह गौतमी के तीर पर ऋषिवा के यज्ञमण्डप में हव्य (हवनसामग्री) को डो रहा था । उसी समय बली नाम का देवता और मुख्य ऋषिवा की आँखा ने सामने ही अग्नि के उत्तम प्रिय कायकुशल भाई को मार डाला । जातवेदस के मर जाने पर देवताओं को हव्य नहीं प्राप्त होता था । इस पर अपने प्रिय भ्राता जातवेदस के मर जाने से अग्नि अत्यन्त क्रुपित होकर गंगा के जल में प्रविष्ट हो गये । अग्नि के गङ्गा में इस प्रकार प्रविष्ट हो जाने पर सभी देवता भनुष्य निर्जीव से हो गये । क्योंकि सभी अग्नि के ही आचार पर जीने वाले प्राणी हैं । वे सब देवता ऋषि और पितर गण जहाँ जल में अग्नि प्रविष्ट हुए थे वहाँ जा गये । हम लोग अग्नि के बिना जीवित नहीं रह सकते इस प्रकार विशेषरूप से अग्नि का गुणगान करने लगे । और प्रिय अग्नि को जल में प्रविष्ट देखकर सब देवता प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥१८॥

देवों ने कहा—आप हव्य प्रदान कर देवताओं को और कव्य दान से पितरों को जीवित कीजिये । इसी प्रकार अन्न का परिपाक कर तथा बीजों को उगाकर भनुष्या को जीवन-दान दीजिये ॥१९॥

अग्निरप्याह तान्देवाऽश्वतो यो मे गतोऽनुजः। त्रियमाणे भयत्वार्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
 सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने। कार्यं तु सर्वतस्तस्य भयतां जातवेदसः॥११॥
 इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्। इह धामुत्र च व्याप्ती शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
 अयापि त्रियमाणे धे कार्ये सैव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण श्रूययस्तया॥१३॥
 आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्ती शक्तिश्च दीयते। प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
 देवानां त्व मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रयमास्तव। स्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्याम। सुरसत्तम॥१५॥

ब्रह्मोपाच

ततस्तुष्टोऽभवद्बह्विर्वेववाक्यात्पात्रमम्। इह धामुत्र च व्याप्ती हव्ये वा लौकिके तथा॥१६॥
 सर्वत्र बह्विरभयः समर्थोऽभूत्सुराजया। जातवेदा बृहद्भानुः सप्ताविर्नीललोहितः॥१७॥
 जलगर्भं शमीगर्भं यज्ञगर्भं स उच्यते। जलादाकृत्य विबुधा अभि (भ्य) पिष्य वि (ञ्चन्वि) भावसुम्॥१८॥
 उभयत्र पदे घासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभयत्। ययागतं सुरा जग्मुर्बह्वितीयं तदुच्यते॥१९॥
 तत्र सप्त क्षातान्यासंस्तीर्षानि गुणवन्ति च। सेयु स्नान च दान च यः करोति जितात्मवान्॥२०॥
 अश्वमेधफलं साध्र प्राप्नोत्यविकलं शुभम्। देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्॥२१॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि ने भी उन देवताओं से कहा कि जो मेरा समर्थ शक्तिशाली छोटा भाई था वह तो बल गया। आप लोगों के कार्य करते रहने पर जो गति उस जातवेदस् की हुई, वही गति मेरी भी हो जायेगी। इसलिये, देवगण! आप लोगों के कार्य सम्पादन करने के लिए मुझे उत्साह नहीं हो रहा है। आप लोगों के कार्य को मछीमाँति करने वाला बेचारा जातवेदस् जब इस अवस्था को प्राप्त हुआ तो मेरी कैसी दुईशा होगी। साथ ही मृत्युलोक, स्वर्गलोक और व्याप्ति मे कार्य करने की शक्ति भी तो मुझमे नहीं है। इसके अतिरिक्त आप लोगों के कार्य करते रहने पर भी तो वही मेरी गति होगी। यह सुनकर देवों तथा ऋषियों ने सब प्रकार से अग्नि से कहा—हम लोग आयु कर्म मे प्रेम और व्याप्ति मे शक्ति दे रहे हैं। हव्यवाहन! प्रयाज और अनुयाज (यज्ञ भाग) भी हम आपको देंगे। तुम देवों के श्रेष्ठ मुख हो इसलिए पहली आहुतियाँ तुम्हे दी जाएँगी। शुरश्रेष्ठ द्वारा दिये गये द्रव्य को ही हम लोग ग्रहण करेंगे ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर देवताओं के कहने से अग्नि प्रसन्न हो गये। और त्रयानुसार भूलोक, स्वर्लोक, व्याप्ति हव्य तथा लौकिक कार्यों मे सर्वत्र ही देवों की आज्ञा से अग्नि भयरहित और शक्तिशाली हो गये। अब वे जलगर्भ (जल मे रहनेवाला बड़बानल) शमीगर्भ और यज्ञगर्भ नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार देवों ने जल से अग्नि को निकाल कर अग्निषेक द्वारा सतुष्ट कर (लोक-प्रतिष्ठित) किया। तब लोक, परलोक दोनों मे अग्नि का निवास हुआ। तदनन्तर देवों के अनुग्रह से अग्नि सर्वव्यापक हुये। इस प्रकार अग्निप्रतिष्ठा कर देवगण जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। यह स्थान भी इसीलिए बह्वि तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर और भी सात सौ पवित्र, पुण्यप्रद तीर्थ हैं। जो जितात्मा उन तीर्थों मे स्नान और दान करता है वह सम्पूर्ण रूप से अश्वमेध का शुभ, उत्तम

अग्निप्रतिष्ठित लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत् । तद्देवदर्शनादेव सर्वव्रतुफलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्याय ॥१८॥

शौतमीमाहात्म्ये एकोनत्रिंशत्तमोऽध्याय ॥२९॥

अथैकोनशततमोऽध्यायः

ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो बिभु । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मया ॥१॥
आसीत्पृथुधवा नाम प्रिय कक्षीयत सुत । न दारसग्रहं लेभे वराग्यान्नाग्निपूजनम् ॥२॥
कनीयास्तु समर्थोऽपि परिवर्तिभयान्मुने । नाकरोद्धारकर्मादि नैवाप्नोनामुपासनम् ॥३॥
ततः प्रोचु पितृगणा पुत्र कक्षीयत शुभम् । ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वच ॥४॥

पितर ऊचुः

ऋणप्रयापनोदाय क्रियतां दारसग्रहं

॥५॥

फल प्राप्त करता है। वही पर अग्नितीर्थ आतवेदा और देवतीर्थ भी है। तथा अनेक व्रत के अग्नि द्वारा प्रतिष्ठित लिंग भी हैं। उन देवों के दान मान से मनुष्य सम्पूर्ण मनो का फल प्राप्त करता है ॥१६ २२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण अग्नितीर्थवर्णन नामक अष्टानवर्षा अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय ६६

ऋणप्रमोचनतीर्थ वा वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ऋण प्रमोचन नामक तीर्थ को वेदन लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ मन लगा कर सुनो। पृथुधवा नाम का कक्षीयान का प्रिय पुत्र था। उसने विरचित के कारण न तो विवाह ही किया और न तो अग्निपूजन (अग्नि स्थापन) ही। मुने! कनिष्ठ पुत्र ने योग्य होते हुए भी परिवर्ति (ज्येष्ठभ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे भाई के विवाह से उत्पन्न पाप या दुःख) के मय से स्वयं विवाह या अग्निस्थापन आदि व्रत नहीं किया। यह देखकर पितृगणों ने कक्षीयान् का प्रिय ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र से अलग अलग ये शब्द कहे ॥१ ४॥

पितरों ने कहा—तीन ऋणा से उद्धार पाने के लिये तुम लोगों को अपना विवाह कर लेना चाहिये ॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेमुवाच ततो ज्येष्ठः किमृषं येन युज्यते। कनोयास्तु पितृग्राह न योग्यो दारसंग्रहः॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवर्त्तिभयादिति। तावुभौ पुनरप्येवमुचुस्ते वं पितामहाः॥७॥

पितर ऊचुः

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्या वक्षीयतः सुतौ। कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गा लोकान्त्रितयपावनीम्। स्नानं च तर्पणं तस्यां कुरुतां श्रद्धयाऽन्वितौ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता घ्राता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनिषमोऽनावगाहने॥
ज्येष्ठोऽनूणस्ततो भूयात्परिवर्त्तिनं घेतरः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः पृथुश्रवा ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतर्पणम्। त्रयाणामपि लोकाणां काशीवतोऽनूणोऽभवत्॥११॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तं ऋणैर्भ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी भुवत् सुखी भवेत्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिशोऽध्यायः॥३०॥

ब्रह्मा बोले—पितरा के उपदेश सुनने पर भी ज्येष्ठ पुत्र ने कहा नहीं, 'कौन सा ऋण है ? उससे किस प्रकार मनुष्य ऋणी हो जाता है ? छोटे पुत्र ने पितरों से कहा—जेठ भाई के रहते बुद्धिमान् छोटे भाई को बिवाह नहीं करना चाहिये ऐसा करने से वह परिवर्त्ति दोष का भागी होता है ॥६-७॥

पितरों ने कहा—कक्षीवान् के तुम दोनों पुत्र पवित्र गौतमी तट पर जाओ, सब मनोरथों को देनेवाली गौतमी में स्नान करो। तीनों लोकों में अति पुनीत उस नदी के तट पर जाओ, उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमी के दशन प्रणाम और ध्यान से सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त होती हैं उसमें स्नान करने के लिये देश, काल जाति आदि का कोई वन्धन नहीं। ऐसा करने से ज्येष्ठ भ्राता अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जायगा और छोटे को भी परिवर्त्ति दोष नहीं लगेगा ॥८-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पितरों के उपदेशानुसार ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा ने गौतमी गंगा में स्नान और तर्पण आदि किया जिससे कि वह तीनों लोकों तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उच्छ्रृंखल हो गया। उसी समय से वह तीर्थ ऋण-मोचन तीर्थ कहा जाने लगा। नारद । वह तीर्थ श्रौत स्मार्त जयवा अन्य सब प्रकार के ऋणों से मनुष्य को मुक्त कर देता है। उस तीर्थ में स्नान और दान से ऋणी मनुष्य ऋण से मुक्त हो सुखी हो जाता है ॥११-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नामक निन्यानवेर्वा अध्याय समाप्त ॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

कद्रूसुपर्णासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासगम नाम काद्रवांसगम तथा। महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुत्रिणमाश्रित ॥१॥
 अग्निकुण्ड च तत्रैव रौद्रं क्षेत्रवमेव च। सौर सौम्य तथा ब्राह्म कौमार वारण तथा ॥२॥
 अप्सरा च नदी यत्र सगता गङ्गया तथा। तत्तीर्थस्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥३॥
 सर्वपापप्रशमनं शृणु यत्नेन नारद। इन्द्रेण हिंसिता पूर्वं बालसित्प्या महर्षयः ॥४॥
 वतार्धतपस सर्वं प्रोचुस्ते काश्यप मुनिम् ॥४॥

बालसित्प्या ऊचुः

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रवर्षहर शुभम्। तपसोऽर्धं तु दास्यामस्तयेत्याह मुनिस्तु तान् ॥५॥
 सुपर्णायां ततो गर्भमादधे स प्रजापति। कद्रया चैव शनैर्ब्रह्मसर्पाणां सर्पमातरि ॥६॥
 ते गर्भाभ्यावुभ आह गन्तुकाम प्रजापति। अपराधो न च क्वापि कार्यो गमनमथ च ॥७॥
 अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न सशयः ॥८॥

अध्याय १००

कद्रू सुपर्णा-सगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सुपर्णा सगम और काद्रवा सगम नाम के दो तीर्थ हैं जहाँ भगवान् गकर गया तट पर बिद्यमान हैं। वहीं पर अग्निकुण्ड रौद्रकुण्ड विष्णुकुण्ड सौर सौम्य ब्राह्म कौमार और वारणकुण्ड है। जहाँ अप्सरा नाम की नदी गंगा से मिलती है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। नाथ! उस सप्त पापों को शांत करने वाले तीर्थ के विषय मैं ध्यानपूर्वक सुनो। आज से बहुत पहले इंद्र ने बालसित्प्य महापिया से बहुत अधिक दीर्घा की। वे सब अपनी तपस्या का आधा भाग काश्यप मुनि को देकर मुनि से बोले ॥१४॥

बालसित्प्यो ने कहा—मुनि काश्यप! आप हमारी तपस्या से इस आध भाग से इंद्र के दण्ड को धर धरने वाले कल्याणकारी पुत्र की उत्पत्ति कीजिये। इस काम के लिए तपस्या का आधा भाग दे रहे हैं। मुनि ने भी कहा कि अवश्य ऐसा करेगा। तदनन्तर उस प्रजापति काश्यप ने सुपर्णा नामक पत्नी में गर्भाधान किया। ब्रह्मन् साँपो की माता कद्रू ने भी उन्होंने साँपो की उत्पत्ति के लिये गर्भाधान किया। एक दिन प्रजापति के मन में आया जाने की इच्छा हुई उन्होंने अपनी दोनो गतिनी पत्निया से कहा—तुम लोगो को न कोई अपराध करना चाहिए और न बड़ी जाना चाहिए। अन्यत्र जाने से अवश्य शाप पडना ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ॥ ययो पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे । तदेव जग्मतुः सत्रमूषीणां भावितात्मनाम् ॥९॥
 ब्रह्मवृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम् । उन्मत्ते ते उभे नित्यं यय.संपत्तिगविते ॥१०॥
 निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । विकुर्वन्तौ तत्र सत्रे समानि च हवींषि च ॥११॥
 योयितां दुर्विलसित फलः सवरितुमोदवरः । ते दृष्ट्वा चक्षुर्भुविप्रा अपमार्गरते उभे ॥१२॥
 अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथ । सुपर्णा चैव कद्रूश्च नद्यौ ते संवभूवतुः ॥१३॥
 स कदाचिदपूहं प्रायात्कश्यपोऽयं प्रजापतिः । ऋषिभ्यस्तत्र घृतान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम् ॥१४॥
 श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत् । ऋषिभ्यः कथयामास वाल्मिल्या इति श्रुताः ॥१५॥
 ॥ ऊचुः कश्यप जिघ्रं गत्वा गङ्गां तु गीतमोम् । तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भायं भविष्यतः ॥१६॥
 ब्रह्महृद्याभयादेव यत्र देवो महेश्वरः । गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया ॥१७॥
 तमेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितव्रतः । तुष्टाय स्तवर्नः पुष्प्यद्वेवदेवं महेश्वरम् ॥१८॥

कश्यपः उवाच

लोकत्रयैकाधिपतेनं कश्यप, कुत्रापि वस्तुन्यभिमानलेशः

त सिद्धनाथोऽलिलयिद्वयकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः

॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर प्रजापति कश्यप चले गये। पति के चले जाने पर दोनों पत्नियाँ उसी समय बुद्धहृदय ऋषिया के यज्ञ में चली गयी, जो गया तट पर हो रहा था और जहाँ ब्राह्मण-मण्डली एकत्र थी। अपनी युवावस्था पर गर्व करने वाली उन्मत्त वे दोनों प्रतिदिन तत्त्वदर्शी ऋषियों के बार बार मना करने पर भी उस यज्ञ में हविष्य (पदार्थों) को दूषित या विकृत कर देती थी। मला कौन ऐसा व्यक्ति है जो नारियों की अनुरित पटा (व्यापार) को रोकने की शक्ति रखता है? इसलिए वे ऋषि बार बार अनुचित व्यापार में लगी रहने वाली उन दोनों नारियों को देखकर दुःख हो ग। और शाप दिया कि तुम दोनों अपमार्ग पर स्थित हो इसलिये आपगा (नदी) हो जाओ। वे दोनों शाप बड़ा शीघ्र गदियाँ बन गईं। इसके अनन्तर किसी समय प्रजापति कश्यप धर की ओर लौटे जा रहे थे। उन्होंने ऋषियों के मुख से उन दोनों के शाप की घटना को विस्तार रूप से सुना। सुनकर विस्मित हो गये सोचने लगे कि 'अब क्या करें'। विवश हो उन्होंने ऋषियों से कहा कि 'मैं वाल्मिल्यो से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यह सुनकर ऋषियों ने विप्र कश्यप से कहा—गीतमी गया के समीप जाइये, वहाँ शकर गङ्गे की स्तुति कीजिये जहाँ वे ब्रह्महृत्वा के अग्र से देवमहेश्वर सर्वदा गया के मध्य में मध्यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। (ऐसा करने से) पुन आपकी माधयिँ पहले के समान हो जायेंगी। "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर परम व्रती कश्यप ने भी गया में स्नान कर मगलमय स्तुतियों से देवदेव की स्तुति की ॥९-१८॥

कश्यप ने कहा—तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी होते हुए भी जिस शकर ने किसी भी अवस्था में लेश-मात्र अधिकार गन नहीं किया वे सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, सिद्धनाथ, शिवा के भर्ता मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥१९॥ त्रिताप

तापत्रयोष्णक्षुतितापितानामितस्ततो वै परिधावतां च
शरीरिणां स्वावरजङ्गमानां, त्वमेव दुःखघ्नपनोददक्ष.
सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिर्वक्तुमशक्य एव
यिचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः

॥२०॥

॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो हृददाच्छंभुः वश्यपाप वरान्वहन् ॥२२॥
भार्यायिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे फल्गुं ये गङ्गां प्राप्य सरिद्धराम् ॥२३॥
तत्तत्तंगमनमात्रेण ताम्यां भूयात्स्यक वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥२४॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामना। आह्वयामास तान्विप्रान्नीतमीतीरमाश्रितान् ॥२५॥
सौमन्तोन्नयन धर्मे ताम्यां प्रीत प्रजापतिः। ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२६॥
भुवतवत्स्वयं विप्रेषु वश्यपस्यास्य मन्दिरे। भर्तुं समीपोपविष्टा कद्रुविप्रान्निरीक्ष्य च ॥२७॥
ततः कद्रुर्धन्यो नक्षत्रां प्राह सते च क्षुब्धम्। येनाक्ष्णा हसिता पापे भग्यतां तेऽक्षि पापवत् ॥२८॥
काणाऽभवसतः कद्रुः सर्पमातेति धोच्यते। ततः प्रसादयामास वश्यपो भगवानृषीन् ॥२९॥

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां यरा। अपराधसहलेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात् ॥३०॥
 भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः। ततः प्रभूति तत्तीर्थमुभयोः संगमं विदुः॥
 सर्वपापप्रशमनं सर्वश्रुतुफलप्रदम् ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुश्चपिसंवादे कद्रुसुपर्णासंगमतीर्थवर्णनं नाम
 शततमोऽध्यायः ॥१००॥

गौतमीमहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वतीसगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनम्

ब्रह्मोपाच

पुरूरवसमाख्यातं तीर्थं धेदुविदो विदुः। स्मरणादेष पापानां नाशनं किंतु दर्शनात् ॥१॥
 पुरुरवा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम्। यदुच्छया देवन्दीं हसन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥
 तां वृष्ट्वा रूपसंपन्नामुर्वशीं प्राह भूपतिः ॥२॥

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके। सर्वात्तामुत्तमा योधिहीषयन्ती सभामिमान् ॥३॥

उत्तम कीटि की गौतमी गंगा सेवा करने से सहस्रो अपराधो से रक्षा करती है ॥३०॥ तब मुनि वक्ष्य ने भार्या सहित गौतमी की सेवा कर भार्या के नेत्रवोष को दूर किया। उस समय से वह तीर्थ सब पापों को नष्ट करने वाला, सब भक्तों के फल को देने वाला सुपर्णासंगम या काद्रवसगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वङ्-सुपर्णा-संगमतीर्थ नामक तीर्थों अध्याय समाप्त ॥१००॥

अध्याय १०१

सरस्वतीसगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—देवज्ञ व्यक्ति उस पुरूरवा नामक तीर्थ को जानते हैं, जो स्मरण मात्र से पापों को नष्ट कर देता है। उसके दर्शन के फल को तो कहना ही क्या। एक समय पुरूरवा ब्रह्मा के भवन में गया। वहाँ उनके समीप अकारण हास करती हुई देवन्दी सरस्वती को देखा। भूपति पुरुरवा ने उस रूपवती को देखकर उर्वशी से पूछा ॥१-२॥

राजा ने कहा—यह रूपवती साध्वी कौन है? जो सब स्त्रियों में उत्तम है, अपनी शरीरकान्ति से इस देवसमा को प्रवासित कर रही है—और ब्रह्मा के समीप बैठी हुई है ॥३॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी प्राह राजानमिय देवनदी शुभा । सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमा ममान्तिकम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजान भूरिदक्षिणम् ॥५॥

उर्वशीवाच

आनीयते महाराज तस्या सर्वं निवेद्य च ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ता प्राहिणोत्तत्र राजा श्रुत्वा तदोर्वशीम् । सा गत्वा राजवचन ग्यवेदयदोर्वशी ॥७॥
सरस्वरपि तस्मिन्ने उर्वश्या यन्निवेदितम् । सा तथेति प्रतिताप प्रापाद्यत्र पुनरवा ॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुला समा । सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहदथ ॥९॥
तां गच्छन्तीं नृपगृहं नित्यमेव सरस्वतीम् । सरस्वन्त ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽन्येषु तया कृतम् ॥१०॥
तस्य ददावह शाप भूया इति महानदी । मच्छापभीता यायीता प्रागाद्देवीं च गीतमीम् ॥११॥
कमण्डलुभवा पूता मातर लोकापावनीम् । तापप्रयोपशमनीर्महिकामृष्टिकप्रदाम् ॥१२॥
सा गत्वा गीतमीं देवीं प्राह मच्छापमावित । गङ्गाऽपि मामुवाचेद विनाया कर्तुमर्हति ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—उर्वशी ने राजा से कहा—यह ब्रह्मपुत्री पवित्र देवनदी सरस्वती है जो यहाँ सबदा आती और जाती है । यह सुनकर राजा विस्मित हो गया और कहा— इसको घेरे समीप ले आओ ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—उर्वशी ने अत्यन्त दक्षिणा (दान) देने वाले राजा से पुत्र कहा ॥५॥

उर्वशी बोली—महाराज ! मैं उससे सारी बातें कहकर अभी ले आ रही हूँ ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके पश्चात् राजा न प्रेमपूर्वक उर्वशी को सरस्वती के समीप भेजा । सरस्वती ने भी उर्वशी ने जो कुछ कहा उसको स्वीकार कर लिया । और अवश्य मैं भिक्षुकी यह प्रतिज्ञा कर जहाँ पुररवा य वहाँ वह पहुँच गई । पुररवा ने बहुत वर्षों तक सरस्वती के तीर पर उमने साथ विहार किया । उसके गम से एक सरस्वान् नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बृहदथ नामक प्रतापी राजा हुआ ॥७-९॥ मैं सरस्वती को प्रतिदिन राजा के घर जाते देखता था । सरस्वान को भी उसके आकार चिह्न एव दूसरा से बड़े गव सवेता से सरस्वती का पुत्र जान लिया । अतः मैं यह शपथ देकर सरस्वती को शाप दे दिया कि तুম महानदी हो जाओ ॥१०॥ मेरे शाप से बड़ी हुई वागीदवरी गीतमी देवी के समीप गई । उसने कमण्डलु से उत्पन्न पवित्र लोकापावनी जग-माता तीनों तापों को दूर करने वाली एहिं एव पारलौकिक मुखा को देनेवाली गीतमी के पास जाकर आदि । अन्त तब मेरे शाप का विवरण सुनाया ॥११-१२॥ उसको सुनकर गया ने भी मुझसे कहा कि अवश्य इसको शापमुक्त कर देना चाहिए । सरस्वती को जो कुमन शाप दे दिया, यह ठीक नहीं किया क्योंकि लिखा था यह स्वभाव है कि वे प्रायः

न युषतं यत्सरस्वत्याः शापं त्वं वत्तवानसि । स्त्रीणामेव स्वभावो ध्वं पुंस्कामा योषितो यतः ॥१४॥
 स्वभावचपला ब्रह्मण्योषितः सकला अपि । त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन ॥१५॥
 विडम्बयति कं वा न कामो वाऽपि स्वभावतः । ततो विशापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती ॥१६॥
 तस्माच्छापाद्भदी मर्त्ये दृश्याऽदृश्या सरस्वती । यत्रेणा संगता देवी गङ्गाया शापविह्वला ॥१७॥
 तत्र प्रायाद्रूपवरो धार्मिकः स पुरुरवाः । तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम् ॥१८॥
 सर्वान्कामानयावाप गङ्गायाश्च प्रसादतः । ततः प्रभृति तत्तीर्थं पुरुरवसमुच्यते ॥१९॥
 सरस्वतीसंगमं च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते । सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसंगमपुरुरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं

नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती । एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः ॥१॥

पुरपत्तानिष्य की कामना करती हूँ ॥११-१५॥ ब्रह्मन् । सभी स्त्रियाँ स्वभाव से ही चपल होती हैं, पकजासन ।
 तुम जगत् के सृष्टिकर्ता होकर भी इसको क्यों नहीं जानते हो ॥१५॥ स्वभावतः कामदेव सहज मेरी किसको अपने
 जाल में नहीं फँसा लेता है ? गौतमी की बातों को सुनकर मैंने उसको शाप से मुक्त कर दिया कि सरस्वती दृश्या
 (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली) भी हो ॥१६॥ मेरे उस शाप के कारण ही इस मर्त्यलोक में सरस्वती दृश्य और अदृश्य
 दो रूपों की हो गईं । जहाँ यह सरस्वती शापविह्वल होकर गया मे मिली, वहाँ वह धार्मिक, श्रेष्ठ राजा पुरुरवा
 गया । वहाँ तपस्या तथा सिद्धेश्वर शंकर की आराधना करके उसने गया की कृपा से अपने सब मनोरथों को प्राप्त
 किया । उस समय से वह पुरुरवा तीर्थ कहलाता है, सरस्वतीसंगम और ब्रह्मतीर्थ भी उसी को कहते हैं । जहाँ
 सिद्धेश्वर महादेव विराजमान है, वह पुनीत तीर्थ सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है ॥१७-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सरस्वतीसंगम पुरुरवस ब्रह्मतीर्थ सिद्धेश्वर वर्णन नामक एक सो पहला अध्याय
 समाप्त ॥१०१॥

अध्याय १०२

पञ्चतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, और सरस्वती ये पांच तीर्थ अत्यन्त पवित्र हैं, इनको

तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मसात् । सावित्री चैव गायत्री यद्वा मेधा सरस्वती ॥२॥
 एता' मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतव । सर्वास्तामुत्तमा काचिन्निर्ममे लोकसुन्दरोम् ॥३॥
 ता दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तम । गृह्यमाणा मया बाला सा मा दृष्ट्वा पलायिता ॥४॥
 मृगोभूता तु सा बाला मृगोऽहमभव तदा । मृगव्याधोऽभवच्छब्दमूर्धमसरक्षणाय च ॥५॥
 ता मद्भूता पञ्च सुता गङ्गाभीयुर्महानदीम् । ततो महेश्वर प्रमादमसरक्षणाय स ॥६॥
 धनुर्गृहीत्वा सशरमोशोऽपि मृगरूपिणम् । मामुवाच बधिष्ये त्वा मृगव्याधस्तदा हर ॥७॥
 तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादा कन्या विवस्वते । सावित्र्याद्या पञ्च सुता नदीरूपेण सगता ॥८॥
 ता आगता पुनश्चापि स्वर्गं लोकममान्तिकम् । यत्र ता' सगता देव्या पञ्च तीर्थानि नारद ॥९॥
 सगतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती । तेषु स्नानं तथा दानं यत्किञ्चित्कुरते नर ॥१०॥
 सर्वकामप्रदं तस्मान्मन्त्रकर्म्यान्मुदितद स्मृतम् । तत्राभवन्मृगव्याधं तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम् ॥
 स्वर्गमोक्षफलं धान्यद्वह्मतीर्थफलं स्मृतम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम
 द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यश्विप्रशोऽध्यायः ॥३३॥

मुनिगण जानते हैं । इन तीर्थों में स्नान और आचमन करने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।
 सावित्री गायत्री यद्वा मेधा और सरस्वती ये मरी ज्येष्ठ कन्याय हैं जिनके द्वारा धर्म संस्थापन का कार्य हुआ है ।
 इन सबों में से एक को मैंने विभुवन में अलौकिक रूपवती बनाया । मुनि २८ । उस अद्वितीय सुन्दरी को दरदर
 मरी बुद्धि भी विह्वल हो गई । कामका मैंने जब उसको पकड़ना चाहा तब वह मुझको देतकर भाग रही हुई ।
 जब वह मृगी बन कर भागने लगी तब मैं भी मृग बन गया । यह दरदर तब धर्म की रक्षा के लिये मनुज भय
 व्याध (पिशाच) का रूप धारण कर लिया । वे पाँच कन्याय मुक्त दरदर महानदी गंगा में मिल गी । उनके
 बाद ही धर्म रक्षा के लिये उद्यत शर भी पीछ पीछ आये । तब मृगविव (शर) ने हाथ में बाण सहित
 धनुष लेकर मृगरूपमारी मुझसे कहा मैं अबका तुम्हारा वध करूँगा ॥१॥ ३॥ किसी प्रकार उग्रधर्म मण्डल लुप्त
 मैंने अपनी कन्याओं को विवस्वान् के हाथों सौंप दिया । इधर सावित्री आदि पाँच कन्याय नदी रूपों में मिल गी ।
 तीर्थ बन गये । जहाँ वे सरस्वती आदि पाँच नदियाँ मिलकर पवित्र तीर्थ बनानी हैं उन तीर्थों में स्नान दान
 अथवा जो कुछ गुण वाप लिये जान हैं सब अविनाशकामनाओं का दान वाञ्छित हैं तब निपात भाव में लिये जान पर
 मुक्तिदायक होत हैं वही मनुष्यों को सब दुःखाओं का पुण करने वाला मृगव्याधमीय भी है । दूसरा जो
 ब्रह्मतीर्थ है वह भी स्वर्ग अथवा मोक्षार्थ को देने वाला ब्रह्म गंगा है ॥८॥ ११॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पञ्चतीर्थ-माहात्म्यं वर्णन नामक एव ही दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

शम्पादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थं निति ख्यात सर्वपापोपशान्तिदम् । तस्याऽऽख्यात प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयता वर । गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षा चक्रे पुरोघता ॥२॥
 हृषमथ उपरान्त ऋत्विग्भिर्ज्जपिर्बुते । तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहित ॥३॥
 तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽयं हिरण्यक । तं दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्रिदशपुरोगमा ॥४॥
 भीता केचिद्दिव्य जम्बुहृद्व्यवाद्दक्षमिमांशतः । अद्वयं विष्णुरगमद्भानुरकं वटं शिव ॥५॥
 सोम पलाशमगमदगङ्गां भो हृष्यवाहन । अश्विनी तु ह्य गृह्य यायतोऽभूद्यमं स्वयम् ॥६॥
 एतस्मिन् तरे तत्र वसिष्ठो भगवानुषि । यष्टिमादाय दैतेया न्यवारयवयाऽज्ञया ॥७॥
 ततः प्रवृत्त पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गत स्वप्ने बलेन युक्तः ।
 इमानि तीर्थानि ततः शुभानि, वशाश्चमेधस्य फलानि वक्षुः ॥८॥
 प्रथमं तु शमीतीर्थं द्वितीयं वैष्णवं विदुः । आकं शैवं च सोम्य च वासिष्ठ सर्वकामदम् ॥९॥

अध्याय १०३

शमी आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ॥ कहा—शमीतीर्थ सम्पूर्ण पापा से मुक्त करने वाला है उसकी कथा मैं कह रहा हूँ नारद । तुम ध्यान से सुनो । विजयप्रप्ती राजाओं में श्रेष्ठ शिवयज्ञ नामक एक क्षत्रिय राजा था । उसने गौतमी के दक्षिण तीरे पर पुरोहित द्वारा यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की । उस महाबलवान् राजा के अद्वयमेध यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर सब ऋषि वहाँ ऋत्विक् बनाये गये । वसिष्ठ ने पुरोहित का आसन ग्रहण किया । यज्ञ प्रारम्भ हो जाने के बाद हिरण्यक नाम का एक दानव यज्ञ मण्डप की ओर आया । उस दानव को देखकर इन्द्र आदि सभी देवता भयभीत हो गये । कुछ ही स्वप्न भाग गये । स्वयं अग्निदेव शमी वक्ष में छिप गये । विष्णु पीपल के बल में सूर्य अक (मदार) में शिव वट में और सोम पलाश में घुस गये । बेचारे हृष्यवाहन गंगा जल में कूदकर छिपे अश्विनीकुमारों ने यज्ञाश्व में छिप कर प्राण रक्षा की यम ने कौए का रूप धारण किया । इसी बीच मेरी आज्ञा से भगवान् ऋषि वसिष्ठ ने हाथ में डण्डा लेकर हठात उन दैत्य पुत्रों को यज्ञ भूमि में आने से रोक दिया ॥१७॥ तदनन्तर जब वह दैत्य अपने अनुचर सनिका के साथ लौट गया तब पुनः यज्ञ प्रारम्भ हुआ । तब से ये आगे कहे हुए तीर्थ शुभ और दण्ड अद्वयमेध के फल को देने वाले हुए ॥८॥ उनमें से पहला शमी तीर्थ दूसरा वैष्णवं तीसरा आक (सूर्य सम्बन्धी) तीर्थ माना गया है । इसी प्रकार वहाँ सम्पूर्ण अग्निमत वस्तुओं के देने वाले शैव सोम्य और वासिष्ठ तीर्थ भी हुये ॥९॥

देवाश्च ऋषयः सर्वे निवृत्ते मलविस्तरे । तुष्टाः प्रोचुर्बसिष्ठस्तं यजमानं प्रियव्रतम् ॥१०॥
ताश्च वृक्षास्तां च गङ्गां मुदा युवता पुनः पुनः । हयमेधस्य निष्पत्त्यं एते याता इतस्ततः ॥११॥
हयमेधफलं दद्युस्तोयानित्यवन्सुराः । तस्मात्त्वानेन वानेन तेषु तीर्थेषु नारद ॥
हयमेधफलं पुण्यं प्राप्नोति न मृषा वच ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये स्वयम्भुवृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्भ्यादितीर्थवर्णनं नाम
अधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शैव च रोहिनम् । वारुण ब्राह्मन्नेयमं द्रमन्दयमेश्वरम् ॥१॥
मन्त्रं च वैष्णवं चैव याम्यमाग्निबनमौशनम् । एतानि पुण्यतीर्थानि नामधेयं भृगुपुत्र मे ॥२॥
हरिश्चन्द्र इति स्वस्तोर्विष्वाकुप्रभवो मृगः । तस्य गृहे मुनी प्राप्ता नारद पर्यन्तस्थाः ॥
हृत्वाऽऽतिथ्यं तपो सम्पद्यन्ति चन्द्रोऽश्वीदुषी ॥३॥

अब उस महान् यज्ञ से सभी निवृत्त हुये तब देवा और ऋषिमा ने प्रसन्न और आनन्दित होकर पुरोहित बसिष्ठ और उस यजमान प्रियव्रत से कहा कि यह गंगा और ये सभी वृक्ष अन्वमेध यज्ञ की पूति के लिये ही यज्ञ तन विभिन्न रूपां में उत्पन्न हुये हैं ॥१० ११॥ देवा ने पुनः कहा कि वे तीर्थ अश्वमेध यज्ञ के समान फल देने वाले हैं । इसलिये हे नारद ! उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से मनुष्य अन्वमेध का पावन कर्म प्राप्त करता है इसको अत्यन्त मज्जा समझना ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में शम्भ्यादितीर्थ वर्णन नामक एक भी तीसरा अध्याय सम्पात ॥१०३॥

अध्याय १०४

विश्वामित्र आदि वार्दस हजार तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इन पवित्र विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शैव रोहित वारुण ब्राह्म आग्नेय इन्द्रनीप ईश्वरनीप मैन वैष्णव याम्य आग्निव न और गुरु आदि इन तीर्थों के नाम तथा पर इनको भी मुझने मुनी । इत्यादि वृक्ष म उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था । एक समय उसने घर नारद और पवन नामक दो मुनि आपे । उन दोनों की भली भाँति अनिधि सेवा कर हरिश्चन्द्र ने ऋषियों से कहा ॥१ ३॥

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं विलश्यते लोकं किं पुत्रेण भविष्यति । ज्ञानी वाऽप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽप्यवा ॥
एतं मे सशयं नित्यं श्रुतामृषिवरावुभौ ॥४॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्हरिश्चन्द्रं पर्वतो नारदस्तथा ॥५॥

नारदपर्वतावूचतु

एकधा दशधा राजञ्जसत्तथा च सहस्रधा । उत्तरं विद्यते सम्यक्तयाऽप्येतदुदीर्यते ॥६॥
नापुत्रस्य परो लोको विद्यत नृपसत्तम । जाते पुत्रे पिता स्नानं करोति जनार्धपि ॥७॥
दशानामश्वमधानामभिषेकफलं लभेत । आत्मप्रतिष्ठा पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तम ॥८॥
अमृतनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादयः । त्रिऋणान्मोचयेत्पुत्रं पितरं च पितामहान् ॥९॥
किंतु मलं किंतु जलं किंतु इमं धर्मं किं तपः । विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो मुक्तिः सुतात्स्मृता ॥१०॥
पुत्र एव परो लोको धर्मं कामोऽयं एव च । पुत्रो मुक्तिः परं ज्योतिस्तारकं सर्वदेहिनाम् ॥११॥
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ । पुत्र एव परो लोको धर्मकामार्थसिद्धये ॥१२॥
विना पुत्रेण यद्वत् विना पुत्रेण यद्वत्तम । विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे ॥१३॥
तस्मात्पुत्रसमं किञ्चित्काम्यं नास्ति जगत्त्रये । तच्छ्रुत्वा विस्मयवास्तावुवाच नृप पुनः ॥१४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—सत्तार के लोग पुत्र के लिये बहुत चिन्तित रहते और कष्ट उठाते हैं चाहे वे ज्ञानी हों अथवा अज्ञानी उत्तम मनुष्य हों अथवा मध्यम सबकी यही गति है । परन्तु पुत्र से क्या होता है । यही सबका मुक्त सदेह बना रहता है आप दोनों ऋषिवर मुझ समझा कर कहें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों नारद तथा पर्वत हरिश्चन्द्र से बोले ॥५॥

नारद और पर्वत ने कहा—राजन ! स्वर्ग प्रद के एक दश सौ और हजार प्रकार के यज्ञिय पुत्र उत्तर हैं । तथापि यहा सक्षम म कहा जा रहा है । नप १८१ 'अनुत्र के लिये स्वर्गलोक म कोई स्थान नहीं । जनार्धपि ' पुत्र हो जाने पर जो पिता स्नान करता है वह दश अश्वमेध के अभिषेक का फल प्राप्त करता है । पुत्र के द्वारा ही आम पतिष्ठा प्राप्त होती है और उत्तम दत्त की प्राप्ति भी । अमृत के द्वारा देव अमर हुए हैं परन्तु ब्राह्मण आदि मानव पुत्र के द्वारा । पुत्र अपने पिता और पितरों को तीनों (देव पित ऋषि) ऋणा से छुड़ाता है । पुत्र के बिना मूल (वेदाध्ययन) जल (स्नान-तपण) पचकेन (दाडी आदि रखने) और तपस्या से क्या लाभ । राजेन्द्र ! स्वर्ग अथवा मुक्ति की प्राप्ति पुत्र द्वारा ही होती है ऐसा कहा गया है ॥६-१०॥ पुत्र ही उत्तम लोक धर्म काम और अर्थ भी है । पुत्र ही भवित पर ज्योति और सब मनुष्यों का उद्धारकर्ता है । राजेन्द्र ! पुत्र के बिना स्वर्ग और मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है । इस लोक में धर्म काम और अर्थ सिद्धि के लिये पुत्र ही एकमात्र साधन है । मेरा मत है कि पुत्र के बिना दिया हुआ दान हवन यज्ञ यहा तक कि पुत्र के बिना मानव जीवन भी व्यर्थ है । इसलिये तीनों लोक से पुत्र के समान कोई काम्य कर्म नहीं । इन वाक्यों को सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ और पुनः कहा—॥११-१४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

कथं मे स्यात्सुतो भूता यत्र क्वापि यथातथम् । येन केनाप्युपायेन कृत्वा किञ्चित् पौरुषम् ॥
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सुतार्थिनम् । ध्यात्वा क्षण तथा सम्यग्योतसौ याहि मानद ॥१६॥
तत्रापापतिरुत्कृष्टं वदति मनसोऽस्मितम् । वरुण सर्वदाता ये मुनिभिः परिकीर्तित ॥१७॥
स तु ग्रीत शनैः काले तव पुत्र प्रवास्थिति । एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्यं तथाऽकरोत् ॥१८॥
तोषयामास वरुण गौतमीतीरमाश्रित । ततश्च तुर्यो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह ॥१९॥

वरुण उवाच

पुत्रं दास्यामि ते राजल्लोकत्रयविभूषणम् । यदि यक्ष्यसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्भ्रुवम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुण यक्ष्ये तेनेत्यवोचत । ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चर कृत्वा तु वारुणम् ॥२१॥
भार्यायै नृपति प्रदात्ततो जात सुतो नृपात् । जाते पुत्रे अपापीना प्रोवाच वदता धर ॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो यदृष्य स्मरसे वरुण पुरा

॥२३॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा इसको आप बतायें । मैं जिस किसी उपाय से—चाहे कहीं जाने से अथवा कोई धीरप करने से अथवा दान से—वह पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहता हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—क्षण भर ध्यानावस्थित होकर (सोच विचार कर) पुत्राकांक्षी हरिश्चन्द्र से उन ऋषियों ने कहा—मानद ! तुम गौतमी के समीप जाओ । वहाँ जल के अधिपति वरुण उत्तम से उत्तम मनोवाम्छित पत्र को प्रदान करते हैं वयंवि मुनियों ने वरुण को सर्व दाता कहा है । वह शनैः शनैः तुम्हारी आराधना से प्रसन्न होकर अथवा यथासमय तुम्हें पुत्र प्रदान करे । मुनियों की उपयुक्त बात सुनकर भ्रष्ट नृपति ने तबनुकूल ही काय किया । गौतमीतीर पर आसनस्थ होकर उसने वरुण को प्रसन्न किया । तदनन्तर वरुण प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र से बोले—॥१६ १९॥

वरुण ने कहा—राजन् ! तीन लोकों को अपने गुणों से विभूषित करने वाला पुत्र दूँगा यदि तुम उसी पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करो । ऐसी प्रतिज्ञा करने पर तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा यह ध्रुव है ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्रकांक्षी हरिश्चन्द्र ने उत्पन्न पुत्र से यज्ञ कहेवा ऐसी प्रतिज्ञा वरुण से की । धर प्राप्ति के बाद नृपति हरिश्चन्द्र ने धर जाकर वारुण चक्र (हविष्य) बनाया और भार्या को सिलाया । पन्द्रवरूप राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्र उत्पन्न होने पर जल के पति वाग्मी वरुण ने कहा—॥२१ २२॥

वरुण ने कहा—आज ही पुत्र द्वारा यज्ञ कीजिये, क्या पहले की बातों का स्मरण है ? ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेद क्रमागतम्

॥२४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दशो मेध्यतां याति पशुर्मक्ष्ये ततो ह्यहम्

॥२५॥

तच्छ्रुत्वा यचन राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम् । निर्दशो पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम् ॥२६॥

राजाऽपि वरुण प्राह निर्दन्तो निष्कल पशु । पशोर्वन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्सते ॥२७॥

तच्छ्रुत्वा राजयचन पुन प्रायादपापति । जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद ॥२८॥

पुनरप्याह राजान यजस्वेति ततोऽब्रवीत् । राजाऽपि वरुण प्राह पत्स्यन्तीमे अपापते ॥२९॥

सपत्स्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये ब्रजाधुना । पुन प्रायात्स वरुणः पुनर्वन्तेषु नारद ॥

यजस्वेति नृप प्राह राजा प्राह त्वपापतिम् ॥३०॥

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिप । धनुर्वेद यदा येति तदा स्यात्पशुस्तमः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजयचन वरुणोऽगात्स्वमालयम् । यदाऽस्त्रेषु च शास्त्रेषु समर्थोऽभूत्स रोहितः ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार क्रमशः वरुण से कहा ॥२४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—दाँत निकल जाने पर ही पशु मेघ्य (यज्ञ-योग्य) माना जाता है, इसलिये दाँत निकलने पर ही यज्ञ करूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—राजा की बातें सुनकर वरुण अपने स्थान पर चले आये । दाँत निकल आने पर पुनः आकर वरुण ने राजा से कहा 'यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा—निदन्त (बहुत-से दाँतों के बिना) पशु यज्ञ के योग्य नहीं होते । यज्ञपशु के बहुत दाँत निकल जाने पर पुनः आइये । वरुण ! इस समय आप चले जाइये । राजा की बातें सुनकर वरुण लौट गये । नारद ! सात वर्षों में बहुत दाँत निकल आने पर पुनः राजा से वरुण ने कहा कि 'जब यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा कि जब ये दाँत गिर जायेंगे और दूसरे दाँत निकल आयेंगे तब उपरान्त यज्ञ करूँगा, इस समय आप जाइये । नारद ! पुनः दाँतों की निदिष्ट अवधि बीत जाने पर वरुण आये और राजा से यज्ञ करने के लिये कहा । यह सुनकर राजा ने वरुण से कहा ॥२६-३०॥

राजा ने कहा—अलरसक वरुण ! जब क्षत्रिय यज्ञ में पशु बनाया जाता है तब धनुर्वेद ज्ञान लेने पर ही वह उत्तम पशु होता है ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की बातें सुनकर वरुण पुनः अपने स्थान से वापस चले गये । जब वह राजपुत्र रोहित अस्त्र और शास्त्र विद्या में निपुण हो गया, शत्रुनाशक, एवं सब वेदों और शास्त्रों का भी विद्वान् हो गया और जब

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु वेत्ताऽभूत्स त्वरिवमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके ॥३३॥
प्रोतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरणः प्राह यजस्वाद्य सुतं स्वकम् ॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः प्राह भूपतिः। रोहितं च सुतं ज्येष्ठं भृश्वतो वरणस्य च ॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर मध्ये त्वां वरणाय हि

॥३६॥

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्ययोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यथावृत्तमाचक्षते सविस्तरम् ॥
रोहितः पितरं प्राह भृश्वतो वरणस्य च ॥३७॥

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महाराज ऋत्विग्भिः स्मुरोहितः। विष्णवे लोकनायाय मध्येऽहं त्वरितं क्षुब्धः ॥
पशुना वरणेनाय तवनृजातुमर्हसि ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारोद्वरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोद्वरमयाकरोत् ॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहितः स घनं धनं। गृहीत्वा स धनं दिव्यं रथाह्वो गतध्वजः ॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरणं हरिश्चन्द्रो जनेद्वरः। यज्ञायां प्राप्तवानुत्र तत्रायास्तोऽपि रोहितः ॥४१॥
ध्यतीतान्यथ धर्षाणि पञ्चपण्डे प्रवर्तन्ति। तत्र स्थित्वा नृपसुतः शुभाव नृपते रजम् ॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुष्वं बलेनाकारिणा। किं फलं किम् कृत्य स्यादित्येष पर्यचिन्तयत् ॥४३॥

उसने सोलह वर्ष का होकर युवराज पद का अधिकार भी प्राप्त कर लिया तब वरण प्रसन्न भित्त हो, जहाँ राजा और रोहित ये वहाँ गये और कहा कि आज अपने पुत्र द्वारा यज्ञ करो। वह नृपज्येष्ठ ऋत्विज् राजा वरण के सामने ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहित से बोला ॥३२-३५॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—पुत्र! आज, मैं वरण की प्रसन्नता के लिये तुम से यज्ञ करूँगा ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर रोहित ने अपने पिता से कहा 'यह क्या'। पिता ने भी पूर्वं की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया। पिता से सारा रहस्य जानकर रोहित ने वरण के सामने ही कहा ॥३७॥

रोहित ने कहा—महाराज! पहले मैं ही ऋत्विजो और पुरोहित के सहित वरण को यज्ञ-यशु बनाकर लोक-स्वामी विष्णु का यज्ञ शीघ्र ही करना चाहता हूँ आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित की बातें सुनकर वरण अत्यन्त शोषाध्य होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोद्वर रोग का रोगी बना दिया। वह रोहित दिव्य धनुष लेकर रथ पर सवार होकर शान्त भाव से वन को चला गया। वह रोहित भी उस स्थान पर—जहाँ जलनायक हरिश्चन्द्र ने वरण के शरीर पर वरण की आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया था—गया। वहाँ रहकर उसने पाँच वर्ष बिता दिये। छठे वर्ष के प्रारम्भ में ही सुना कि राजा को जलोद्वर रोग हो गया है। वह सोचने लगा कि 'पिता को मरने वाले थे रे समान पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ हुआ? अब इस

तस्यास्तीरे ऋषीन्पुण्यानपश्यन्नृपते सुत । गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषित्तमम् ॥४४॥
 अजीगतमिति ख्यातमृषेस्तु वयसं सुतम् । त्रिभिः पुत्रैरनुवृत भार्यया क्षीणवृत्तिकम् ॥
 त दृष्ट्वा नृपते पुत्रो नमस्येद यचोऽब्रवीत् ॥४५॥

रोहित उवाच

क्षीणवृत्तिं कृशं वस्मादुदुमंता इव लक्ष्यसे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

अजीगर्तोऽपि श्रोत्राच्च रोहित नृपते सुतम् ॥४७॥

अजीगतं उवाच

वर्तनं नास्ति देहस्य भोक्तारो बहवश्च मे । विनाऽग्नेन मरिष्यामो ब्रूहि किं करवामहे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र श्रुतिं तदा ॥४९॥

रोहित उवाच

तव किं वर्तते चित्ते तदब्रूहि वदतावर ॥५०॥

अजीगतं उवाच

हिरण्यं रजतं पाषाणं धान्यं वस्त्रादिकं न मे । विद्यते नृपसार्द्धं वतनं नास्ति मे तत ॥५१॥
 सुता मे सन्ति भार्या च अहं चं पञ्चमस्तथा । नैतया कतमस्यापि भेत्ताऽग्नेन नृपोत्तम ॥५२॥

समय मेरा क्या वक्तव्य है । उसी समय नृपपुत्र ने गंगा के तट पर पवित्र ऋषिया को देखा । उसी तट पर वर्तमान वय नामक ऋषि के पुत्र अजीगत नामक ऋषिविष्वक्ष को देखा जो अपनी भार्या और तीन पुत्रों के साथ ये परम्पु जीविका के साधन से हीन थे । उनको देखकर राजपुत्र ने नमस्कार करके पूछा ॥३९॥४५॥

रोहित ने कहा—आप इतने दुबल और जीविकाहीन क्यों हैं किस कारण इतने व्यग्र से जान पड़ते हैं ? ॥४६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर अजीगत ने नृप पुत्र रोहित से कहा—॥४७॥

अजीगत ने कहा—शरीर रक्षा के साधन नहीं है और मेरे परिवार में भोजन करने वाले बहुत से हैं अन्न के बिना हम लोग मर जायेंगे कहीं इस अवस्था में हम लोग क्या कर ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि की बातों को सुनकर नृपपुत्र ने पुनः ऋषि से कहा—॥४९॥

रोहित ने कहा—हे ऋष्य वक्ता । तुम्हारे क्या विचार है वह बताओ ॥५०॥

अजीगत ने कहा—नृपपुत्र । मेरे पास सोना चाँदी भी धान्य और वस्त्रादि कुछ नहीं हैं इसके अतिरिक्त मेरे पास जीविका का भी कोई साधन नहीं है । हाँ मेरे पास पुत्र भार्या और पाँचवाँ मैं हूँ । नृपोत्तम ! हम लोगों में से किसी को अन्न देकर खरीदने वाला भी कोई नहीं है ॥५१॥५२॥

रोहित उवाच

किं क्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्तं सत्यमेव मे । वद नान्यच्च वक्तव्यं विप्रा वं सत्यवादिन ॥५३॥

अजीगर्त उवाच

त्रयाणामपि पुत्राणामेकं वा मा तथैव च । भार्यां वाऽपि गृहाणेमां क्रीत्वा जीवामहे वयम् ॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्यां महाबुद्धे किं स्वयां बृद्धवर्षिणा । युवानं देहि पुत्रं मे पुत्राणां यं त्वमिच्छसि ॥५५॥

अजीगर्त उवाच

अप्येष्टपुत्रं क्षुण्णपुच्छं नाहं क्रीणामि रोहित । माता कनोपसं चापि न क्रीणासि ततोऽनयो ' ॥

मध्यमं तु क्षुण्णं शेषं क्रीणामि वद तद्धनम् ॥५६॥

रोहित उवाच

वर्णाय पशुं कल्प्यं पुरुषो गुणवत्तर । यदि क्रीणासि मूल्यं त्वं वद सत्यं महामुने ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्पुत्रत्वात् स्वजीगतं पुत्रमूल्यमकल्पयत् । गवां सहस्रं धायाणां निष्काणां चापि वाससाम् ॥

राजपुत्रं वरं बहिः दास्यामि स्वसुतं तव ॥५८॥

रोहित ने कहा—महाबुद्धिमान् अजीगर्त ! आप किसको कितने में बचना चाहते हैं सत्य बहिय । दूसरी बात मत कहियेगा ब्राह्मण सबका सत्य वक्ता होते हैं ॥५३॥

अजीगर्त ने कहा—इन तीनों पुत्रों में से किसी एक को अथवा मुझको या इस भार्या को ही खरीद कर ले जाओ जिससे कि हम लोगों की जीवन रक्षा हो ॥५४॥

रोहित ने कहा—इस भार्या से क्या होगा बृद्ध वृषी तुम्हारी भी आवश्यकता नहीं । हाँ इन पाँचों में से किसी मुक्त पुत्र को जिसको तुम चाहो दे दो ॥५५॥

अजीगर्त ने कहा—रोहित ! अप्येष्ट पुत्र क्षुण्णपुच्छ की मैं नहीं बेच सकता । माता अपने अनिष्ट पुत्र को भी बेचना नहीं चाहती है इसलिये इन दोनों से अतिरिक्त मत्स्यके पुत्र क्षुण्ण शेष को बेचूँगा इसका मूल्य कहो ॥५६॥

रोहित ने कहा—एक अधिक गुणवान् पुरुष की वर्ण-यज्ञ में यज्ञ-पशु बनाने के लिये आवश्यकता है महामुने ! यदि तुम बचना चाहते हो तो उचित मूल्य कहो ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर अजीगर्त ने सहस्र गौ सहस्र निष्क (अर्णवों) धाय और सहस्र वस्त्र अपने पुत्र का मूल्य बताया और कहा राजपुत्र ! इतना दे दो मैं तुमको अपना पुत्र दे दूँगा ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसनं धनम् । दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहित ॥
पित्रे नियेदयामास श्रम्यक्रीतभूये सुतम् ॥५९॥

रोहित उवाच

वरुणाय यजस्व त्वं पशुना त्वमसम्भव ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्र पुत्रवाक्यादनन्तरम् ॥६१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या राजा पाल्या इति श्रुतिः । विशेषतस्तु वर्णानां गुरवो हि द्विजोत्तमा ॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशा कुल एव हि । अयज्ञयाऽपि येषां स्यान्नृपाणां स्वकुलक्षयः ॥६३॥
ताम्रशून्कृत्या कृपणं कथं रक्षितुमुत्तरे । अहं च ब्राह्मणं कुर्यां पशुं नैतद्धि मुज्यते ॥६४॥
वरं हि जातु भरणं न कथयिद्द्विजं पशुम् । वरोमि तस्मात्पुत्रं त्वं ब्राह्मणेन सुखं व्रज ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित ने भी उसको स्वीकार कर लिया और ऋषि को मुह मांगा वस्त्र और धन दे दिया । धन देकर ऋषिपुत्र को साथ ले वह अपने पिता के पास गया । पिता से मूल्य देकर खरीदे हुये ऋषि पुत्र के विषय में सारी बातें बताइ ॥५९॥

रोहित ने कहा—आप वरुण का इस पशु से यज्ञ कीजिये और नीरोग हो जाइये ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र की बातों को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा ॥६१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का पालन राजा का कर्तव्य है ऐसी श्रुतियों की आशंका है । उत्तम ब्राह्मण की रक्षा तो विशेष रूप से होनी चाहिये इसलिये कि वे सब वर्णों के गुरु हैं । जो ब्राह्मण विष्णु के भी पूज्य है तो मेरे समान व्यक्तियों के लिये तो कुछ कहना ही नहीं । जिनके अपमान से भी राजाओं का कुल-क्षय हो जाता है उन देवपूज्यों को पशु बनाकर अपने शूद्र जीवन की रक्षा करने का साहस मुझसे नहीं होगा । मैं ब्राह्मण को यज्ञ पशु बनाऊ यह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है । बल्कि मृत्यु उत्तम है परन्तु द्विज को किसी प्रकार पशु नहीं बनाऊँगा । इसलिये पुत्र ! तुम सुखपूर्वक इस ब्राह्मण पुत्र के साथ जाओ मुझे रोषी ही रहने दो ॥६२-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय वहां आकाशवाणी हुई ॥६६॥

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भिः सपुरोहित । पशूना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च ॥६७॥
त्वया वाय शत्रुदर्शव शुन शेषवध विना । शत्रु पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा यचन शीघ्र गङ्गामगानूषोत्तम । विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा ॥६९॥
वामदेवेन ऋषिणा तथाऽयमुनिभिः सह । प्राप्य गङ्गा गौतमीं ता नरमेधाय दीक्षित ॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि धूपपश्यादि चाकरोत् । कृत्वा सर्वं यथायाय तस्मिन् यज्ञे प्रवर्तिते ॥७१॥
शुन-शेष पशु धूपे निवर्ष्याय समन्त्रकम् । चारिभिः प्रोक्षित दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽग्रीवोदिदम् ॥७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानूपी-हरिश्चन्द्र रोहित च विशेषतः । अनुजानन्निदम् सर्वं शुन-शेष द्विजोत्तमम् ॥७३॥
येभ्यस्त्वय हविर्वैपो देवेभ्योऽयं पृथक्पृथक् । अनुजानतु ते सर्वं शुन-शेष विशेषतः ॥७४॥
यत्ताभिर्लौमभिस्त्वयिभर्मसं तस्मिन्निर्मलम् । अग्नौ होष्य पशुश्चायं शुन-शेषो द्विजोत्तम ॥७५॥
उपासिता स्युर्विप्रेन्द्रास्ते सर्वे त्वनुषय माय । गौतमीं यातु विप्रेन्द्रा स्नात्वा देवान्युपपृथक् ॥७६॥
मन्त्रं स्तोत्रं स्तुवतस्ते मुद यातु शिवे रता । एन रक्षतु मुनयो देवाश्च हविषो भुज ॥७७॥

आकाशवाणी ने कहा—‘‘राजेन्द्र । तुम अपने ऋविदों और पुरोहित के साथ गौतमी के तट पर जाओ । साथ में ऋषिपुत्र और राजपुत्र रोहित को भी ले लो । तुम यज्ञ करो । ‘‘गुन-ग’ के वध के बिना ही तुम्हारा यज्ञ पूरा हो जायगा । इसलिये महामति कहाँ जाओ ॥६७ ६८॥

ब्रह्मा ने कहा—‘‘आकाशवाणी को सुनकर नृपोत्तम हरिश्चन्द्र शीघ्र ही ऋषि विश्वामित्र पुरोहित वसिष्ठ वामदेव एवं अवाच मुनियों के साथ गया तट पर गया । वहाँ गौतमीगंगा के तट पर जाकर नरमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर वेणी मण्य धूप और पशु आदि की व्यवस्था करने लगा । यथाविधि सब सामग्री पूजन कर यज्ञ काय प्रारम्भ हुआ । धूप में शुन-ग’ को पशु बनाकर मात्र पाठ पूजक बांधा गया । उसको जल से अभिषिक्त होते देखकर विश्वामित्र ने यह कहा ॥६९ ७२॥

विश्वामित्र ने कहा—‘‘देव ऋषि हरिश्चन्द्र विशेषरूप से रोहित से मैं कह रहा हूँ कि सभी इस द्विजोत्तम गुन-गैष को आज्ञा दे । जिन देवताओं को यह हवि (गुन-गैष) पृथक् पृथक् दी जायगी वे सब देवता भी विशेष रूप से इस गुन-गैष को अनुमति दें । इस यज्ञपशु द्विजवध धुन-गैष के वसा (चर्बी) कोम त्वचा मांस से मात्रो च्चारणपूर्वक पशुनिर्मल हवन किया जायगा । अर्थात् गुन-गैष इन सभी ब्राह्मणों और देवों की पूजा कर । वे सभी विप्रेन्द्र (देवा) आज पूजित ह । मेरी ओर ध्यान देकर आज सब विप्रवध भी गौतमी के तीर पर जाय और स्नान कर पूजा पूजक मात्र स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करने हुए आनन्दपूर्वक निव उपासना में लीन हो जाय । इस प्रकार आज आप मुनि हविष्य को ग्रहण करने वाले देवताय इस गुन-ग’ की प्राण रक्षा कर ॥७३-७७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युसुदध मुनयो मेने च नृपसत्तम । ततो गत्वा शुनशेषो यज्ञा त्रिलोक्यपावनीम् ॥७८॥
 स्नात्वा तुष्टाय तादेवान्ये तत्र हविषो भुज । ततस्तुष्टा सुरगणा शुनशेष च ते मुने ॥
 अवदन्त सुरा सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वन्त ॥७९॥

सुरा ऊचुः

अनु पूर्णो भवत्स्वेष शुनशेषवध विना

॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाय वरणश्चावदन्नृपसत्तमम् । तत पूर्णोऽभवद्वाजो नृमेधो लोकविभूत ॥८१॥
 देवाना च प्रसादेन मुनीना च प्रसादत । तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञः पूर्णोऽभवत्पुत्र ॥८२॥
 विश्वामित्र शुनशेष पूजयामास सतदि । अकरोदात्मन पुत्रं पूजयित्वा सुरान्तिके ॥८३॥
 ज्येष्ठ चकार पुत्राणामात्मन स तु कौशिक । न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमत ॥८४॥
 शुनशेषस्य च ज्येष्ठ्य ताञ्जशाप स कौशिक । ज्येष्ठ्य ये मेनिरे पुत्रा पूजयामास तान्सुतान् ॥८५॥
 वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथित मया । एतत्सर्वं यत्र आस गौतम्या दक्षिणे तटे ॥८६॥
 तत्र तीर्थानि पुण्यानि विख्यातानि सुराविभि । बहूनि तेषां नामानि मत्त शृणु महामते ॥८७॥
 हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहितम् । इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यप्य चतुर्दश ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनियो ने ऐसा ही होगा यह कहा और नृपथष्ठ ने भी इसको स्वीकार किया । इसके अनन्तर शुन शेष त्रिमुचन पावनी गंगा के पास गया । गंगा में स्नानकर जितने वहाँ हविष प्रहण करने वाले देवता थे उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न किया । ये सभी देवता शुन शेष पर प्रसन्न हो गये । मुने । सब देवताओं ने विश्वामित्र के सामने ही कहा ॥७८ ७९॥

देवो ने कहा—यह यज्ञ शुन शेष के वध के बिना ही पूर्ण हो जाय ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण ने विशेषरूप से नृपवर्य को यज्ञपूर्ति का आशीर्वाद दिया । तदनन्तर राजा का यह लोक प्रसिद्ध नरमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ । देवताओं की कृपा से मुनियो के अनुग्रह से और तीर्थ के माहात्म्य से राजा का यज्ञ इस प्रकार निर्विघ्न समाप्त हुआ । उस सभा में ही विश्वामित्र से शुनशेष का सत्कार किया और देवों के सभीप ही उसकी पूजा कर अपना पुत्र स्वीकार कर लिया । उस विश्वामित्र ने उसको ज्येष्ठ पुत्र बताया । परम बुद्धिमान् ऋषि विश्वामित्र के जिन पुत्रों ने उसका ज्येष्ठत्व स्वीकार नहीं किया उनको ऋषि ने शाप दे दिया और जिन पुत्रों ने उसकी ज्येष्ठता स्वीकार कर ली उनका उस मुनिशार्दूल ने बर देकर आदर सत्कार किया । इस प्रकार नारद । मैंने इस घटना को सुना दिया । यह सारा काय गौतमी के दक्षिण तीर पर जहाँ सम्पन्न हुआ वहाँ बहुत से पवित्र देवताओं के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो गये । महामति नारद । इनके नाम मैं कह रहा हूँ मुनो—हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहित आदि बाईस हजार तीर्थ हैं । उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से

तेषु स्नानं च दानं च नरमेघफलप्रदम् । आश्यात चास्य माहात्म्यं तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥८९॥
य पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भक्तितः । अपुत्रं पुत्रमाप्नोति यच्चाभ्यन्मनसः प्रियम् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्र-

तीर्थवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चात्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति हृष्यात् पितृणां प्रीतिर्षयनम् । तत्र वृत्तं महापुण्यं शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणां पुराऽभवत् । न देवानां तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन् ॥२॥

देवा ऊचुः

गन्धर्वराहुतः सोमो देवानां प्राणवः पुरा । तमध्यायन्सुरगणां श्रययस्त्वतिदुःखिताः ॥
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माकं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥३॥

नरमेघपत्र का फल प्राप्त होता है । मुनिगण' इस तीर्थ की कथा और माहात्म्य की जो पढ़ता या पढ़ाता है
अथवा भक्तिपूर्वक सुनता है वह अपुत्र रहने पर पुत्र को प्राप्त करता है अथवा जो कुछ उसकी अभिलाषा होती
वह पूरी होती है ॥८९ ९०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौथा

अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सोमतीर्थ नामक पितरों को आनन्द देने वाला एक तीर्थ है । नारद ! वहाँ जो अत्यन्त
पवित्र शुभ घटना हुई उसको सुना रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो । बहुत पहले गणधर्वाँ का अमृतमय सोम राजा हुआ देवों
का नहीं (अर्थात् गणधर्वाँ को सोम प्राप्त हो गया देवों को नहीं) । यह देखकर देवता मेरे पास आये और बोले ॥१ २॥

देवों ने कहा—देवताओं के भीवनाचार सोम को गणधर्वाँ ने पहले ही ले लिया । यह देखकर हम देवता लोग
अत्यन्त चिन्तित हैं, ऋषिगण अति दुःखी हैं । जिस प्रकार सोम हम लोगों को मिले वैसे कोई युक्ति कीजिये ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । तेभ्यो वत्साऽय मा देवा सोममाहर्तुमहय ॥४॥
 याच प्रत्यचुरमरास्त्वा दातु न क्षमा वयम । विना तेनापि न स्यातु शक्य नैव त्वया विना ॥५॥
 पुनर्वागब्रवीद्देवान्पुनरेष्याम्यह त्विह । अत्र बुद्धिविधातव्या क्रियता ऋतुस्तम ॥६॥
 गौतम्या दक्षिणे तीरे भवेद्देवागमो यदि । मय्य तु विषय कृत्वा आयातु सुरसत्तमा ॥७॥
 गन्धर्वा स्त्रीप्रिया नित्य पणध्व त मया सह । तथेत्युक्त्वा सुरगणा सरस्वत्या ध्व स्थिता ॥८॥
 देवदूतं पृथग्देवायक्षान्गन्धर्वपन्नगान । आह्वान चक्रे सत्र पुण्ये देवगिरी तदा ॥९॥
 सतो देवगिरिर्नाम पवतस्याभवन्मुने । सत्राऽऽगमन्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिन्नरा ॥१०॥
 देवा सिद्धाश्च ऋषयस्तथाऽऽदौ देवयोनेय । ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे ॥११॥
 सत्र ध्वं परिवृत सहस्राक्षोऽभ्यभाषत ॥१२॥

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानपि सपूज्य सरस्वत्या समीपत । सरस्वत्या पणध्व नो युष्माकममृतात्मना ॥१३॥

ब्रह्मा न कहा—उस समय वाणी (सरस्वती) ने कहा कि गन्धर्व अत्यन्त स्त्रीवामी होते हैं उनके हाथ मुझको लीप कर तुम लोग सोम को प्राप्त कर सकते हो । वाणी की बात सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया तुमको कभी भी हम देने को तैयार नहीं हैं । न तो हम सोम के बिना जीवित रह सकते हैं न तो तुम्हारे बिना । पुन वाणी ने देवताओं से कहा—मे पुन वहाँ से यहाँ चली आऊँगी । यहाँ बतुराई दिखलायी चाहिये । तुम लोग एक उत्तम यज्ञ का उपक्रम (सयारी) करो । गौतमी के दक्षिण तीरे पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम (देवाचन) हो तो वहाँ सब सुर ऋ एकत्र हो जाय । गन्धर्व सबदा स्त्रीप्रेमी होते हैं इसलिये मेरे साथ उनका सौदा पड़ा दिया जाय । इस बात की स्वीकार कर वे देव सरस्वती के कथनानुसार नाय करने लगे । इसके अनन्तर उन लोगों ने देवदूतों को भेजकर पृथक् पृथक् देवों गन्धर्वों यक्ष और पन्नगों को उस पवित्र देवगिरि पर बुलवाया ॥९॥ मुने ! उस समय से ही उस पथक का नाम देवगिरि पड़ा । वहाँ सुर गण गन्धर्व यक्ष किन्नर देव सिद्ध ऋषि तथा आठ देवयोनित्र उपस्थित थे । जब उस गौतमी के तीरे पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देव ताओं से घिरे इन्द्र ने कहा ॥४ १२॥

इन्द्र ने कहा—सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हम लोग अमृत प्राप्ति के लिये तुम लोगों से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुम लोग यह सौदा स्वीकार कर लो ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचनात्ते वै गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । सोम दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगृहुस्ता सरस्वतीम् ॥१४॥
 सोमोऽभवच्चाभराणः गन्धर्वाणा सरस्वती । अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके ॥१५॥
 आयाति च रहो नियमुपाशु त्रियतामिति । अत एव हि सोमस्य क्यो भवति नारद ॥१६॥
 उपाशुना वर्तितव्य सोमत्रयण एव हि । ततोऽभवद्देवताना सोमश्चापि सरस्वती ॥१७॥
 गन्धर्वाणां नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती । तत्रागमन्सर्व एव सोमार्थं गीतमीतदम् ॥१८॥
 गाथो देवा पर्वता यक्षरक्षा, सिद्धा साध्या मुनयो गुह्यकाश्च ॥ ॥ ॥
 गन्धर्वास्ते मरुत पद्मगाश्च, सर्वौघघ्नो मातरो लोकपाला ॥ ॥
 रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽग्रे देवा यज्ञभागस्य योग्या ॥१९॥
 पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गाया सगता मुने । पूर्णाहुतिर्न दत्ता पूर्णास्थान तदुच्यते ॥२०॥
 गौतम्या सगता यास्तु सर्वाश्चापि धनोदिता । तन्नामधेयतीर्थानि सक्षेपाच्छृणु नारद ॥२१॥
 सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमत परम् । पूर्णातीर्थं तत शाल श्रीषण्णिसगम तथा ॥२२॥
 स्वागतासगम पुण्य कुसुमायाश्च सगमम् । पुष्टिसगममास्थ्यात कर्णिकासगम शुभम् ॥२३॥
 वैष्णवीसगमश्चैव कृशारासगमस्तथा । वासवीसगमश्चैव 'शिवशर्पा तथा शिखी' ॥२४॥
 कुसुम्बिका उपारध्या शान्तिजा देवजा तदा । अजो बृद्ध सुरो भद्रो गौतम्या सह सगता ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की घोषणा के अनुसार स्त्रीप्रेमी गन्धर्वों ने सोम को लेकर बबले में सरस्वती को ले लिया । अब सोम देवताओं के अधिकार में आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गई फिर नी वागीश्वरी देवों के ही समीप रहती थी ॥१४ १५॥ प्रतिदिन एवान्त नाव से (छिपे रूप में) आती थी और देवों को उपाशु (मीन) रहने के लिए कहती थी । नारद ! इसी कारण यज्ञ में सोम को खरीदा जाता है ॥१६॥ और सोमयज्ञ के समय उपाशु व्यवहार किया जाता चाहिये अर्थात् मीन रहना चाहिये । इस प्रकार चतुराई से सोम और सरस्वती दोनों देवताओं के ही अधिकार में रह गये ॥१७॥ गन्धर्वों के साथ न तो सोम और न तो सरस्वती ही थी । सोम के इस प्रकार प्राप्त हो जाने पर उस गौतमीतट पर यज्ञ में सब गोमैं देव पर्वत यज्ञ रस सिद्ध साध्य मुनि गुह्यक गन्धर्व मरुत पद्मग सब ओषधियाँ मातृगण लोकपाल रुद्र आदित्य वसु अश्विन अथवा जो और यज्ञभाग के अधिकारी देवता थे आये ॥१८ १९॥ मुने ! पञ्चस नदियाँ गया में आकर मिल गईं । अहाँ पूर्णाहुति दी गई वह पूर्णास्थान नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ गौतमी में जितनी नदियाँ मिली जिनका कि ऊपर वृणन हो चुका है नारद ! उन नामों में प्रसिद्ध तीर्थों का नाम थोड़े में सुनो ॥२१॥ सोमतीर्थ गान्धर्वतीर्थ देवतीर्थ पूर्णातीर्थ शाक श्रीषण्णिसगम पवित्र स्वागतासगम कुसुमासगम प्रसिद्ध पुष्टिसगम शुभकर्णिकासगम तथा वैष्णवीसगम कृशारासगम, वासवीसगम शिवशर्पासगम शिखी कुसुम्बिका उपारध्या शान्तिजा देवजा बृद्धज और भद्रसुर इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये ॥२२-२५॥ इसके अतिरिक्त बहुत सी नदियाँ और नद सम्मिलित

१. पूर्णती० । २. शिल्पा आर्या । ३. शिखी । ४. ध्या रत्निदा देवनी नद । आजो बुज्य सरो ।

एते चान्ये च ग्रहयो नदीनदसहायगा । पृथिव्यां यानि तीर्यानि ह्यगमन्देवपर्वते ॥२६॥
 सोमार्थं यं तथा चान्येऽप्यागमन्मलमण्डपम् । तानि तीर्यानि गङ्गाया सगतानि ययाक्रमम् ॥२७॥
 नदीरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित् । सरोरूपेण कान्यत्र स्तरूपेण कानिचित् ॥२८॥
 तान्येव सर्वतीर्यानि विख्यातानि पृथक्पृथक् । तेषु स्नान जपो होम पितृतर्पणमेव च ॥२९॥
 सर्वकामप्रदं पुसा भुक्तिद भुक्तिभाजनम् । एतेषा पठनं चापि स्मरणं वा करोति यः ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो^१ याति विष्णुपुरं जन ॥३०॥

। इति श्रीमहापुराणे भाविब्राह्मे स्वयंभुव्यसवादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णाविपश्चविंशतिनदी-
 देवनदीनदसगमवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥
 गौतमीमाहात्म्ये षड्विंशततमोऽध्याय ॥३६॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवानां मेरुपर्वतं प्राप्य मन्त्रकरणम्

ब्रह्मोवाच

प्रवरासगमो^१ नाम श्रेष्ठा चैव महानदी । यत्र सिद्धेश्वरो देव सर्वलोकोपकारकृत् ॥१॥

हुये । उस देवगिरि पर पृथिवी के जितने तीर्थ आये थे व सभी तथा अय भी क्षोम के लिये उस यज्ञ-मण्डप में आये ॥२६॥ उन सब तीर्थों में से कुछ नदी रूप में कुछ नद रूप में कुछ सरोवर के रूप में और कुछ स्तब (स्तुति) के रूप में ही गौतमी गंगा में सम्मिलित हुये ॥२७ २८॥ वे सभी तीर्थ पृथक् पृथक् प्रसिद्ध हैं । उन तीर्थों में स्नान जप होम और पितृतर्पण आदि काम मनुष्यों के लिए सब मनोरथ तथा भुक्ति और मुक्ति के देने वाले हैं । इन तीर्थों की महिमा का जो कोई पठन या स्मरण करता है वह भी सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णा आदि पचीस नदी देवनदी नद सगम वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

देवता और दानवों का सुमेरुपर्वत पर जाकर मन्त्रणा करना

ब्रह्मा ने कहा—प्रवरा सगम नामक तीर्थ और प्रवरा नामक श्रद्धा महानदी है । जहाँ सब लोक के उपकार

१ध ० मुक्तश्चान्तो विष्णुपदं व्रजत् । पुण्याप्रवरयोर्मध्यं नद्यो विंशतिरीरित । बुद्धाप्रवरयोर्मध्ये वा भूमिं श्रयसयुता । तत्रस्था प्राणिनः सर्वे भुक्तिभाजो न सशय । अहं च वा य आसीच्च सृष्ट्यर्थं यजनं कृतम् । प्रणीतान् सगमायार्थं पुरतः कथयामि ते । ३० । २कं ० गम श्रेष्ठ श्रे ० । ३घ सैव ।

देवाना दानवाना च सगमोऽभूत्सुदारुण । तेषां परस्परं वाऽपि प्रीतिश्चाभून्महामुने ॥२॥
तेऽप्येव मन्त्रयामासुर्देवा यं दानवा मिथ । मेरुपर्वतमासाद्य परस्परहितं विण ॥३॥

देवदैत्या ऊचुः

अमृतेनामरत्वं स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम् । पिबाम सर्वं एवंतं भवामश्चामरा वयम् ॥४॥
एकोभूत्वा वयं लोकान्पालयाम सूलानि च । प्राप्स्याम सगरं हित्वा सगरो दुःखकारणम् ॥५॥
प्रीत्या चैवाजितानर्यान्भोक्ष्यामो गतमत्सरा । यत स्नेहेन वृत्तिर्यासाऽस्माकं सुखदा सदा ॥६॥
वैपरोत्य तु यद्ब्रूत न स्मर्तव्यं कदाचन । न च त्रैलोक्यराज्येऽपि वैवृत्ये वा सुखं मनाकं ॥७॥
तद्बुद्ध्यनपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एव परस्परं प्रीता सन्तो देवाश्च दानवा एकीभूताश्च सुप्रीता विमय्यं वरुणालयम् ॥८॥
मन्यान् मन्वरं कृत्वा रज्जुं कृत्वा तु वासुकिम् । देवाश्च दानवा सर्वे समन्धुर्दरुणालयम् ॥९॥
उत्पन्नं च तत् पुण्यममृतं सुरवरलभम् । निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोक्षु परस्परम् ॥१०॥
याम स्व स्वमधिष्ठानं कृतकार्यां श्रमं गता । सर्वे समं च सर्वस्यो यथायोग्यं विभज्यताम् ॥११॥
यदा सर्वागमो यत्र यस्मिन्लब्धे शुभावाहे । विभज्यतामिव पुण्यममृतं सुरसत्तमा ॥१२॥

करने वाले सिद्धेश्वर महादेव विराजमान हैं । एक समय देवों और दानवों में अति मयकर मुझ हुआ । महामुने !
चोडे समय बाद उन में परस्पर प्रेम भी हो गया । उन देव-दानवों ने आपस में मिलजुल कर मेरु पर्वत पर परस्पर हित की कामना से परामर्श किया ॥१३॥

देव दानवों ने कहा—अमृत से अमरत्व की प्राप्ति होती है । अतः अमृत उत्पन्न कर हम सभी पान करें जिससे हम सब अमर हो जायें । तब हम एक होकर लोक-पालन कर और युद्ध का त्याग कर सुख भोग कर । वास्तव में मुझ ही दुःख का वारण है । इस प्रकार प्रमत्तक जो हम लोगों का परस्परिक व्यवहार होगा वह सदा सुखकर होगा । आज तक के जो विपरीत व्यवहार हुये उनका स्वप्न में भी स्मरण नहीं करना चाहिये । जो सुख बर-बलह को छोड़कर जीवन पापन करने में मिलता है उसका स्वत्पाग भी निभुवन के राज्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति में नहीं ॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव और दानव परस्पर की प्रीति वार्ता से प्रसन्न होकर एक हो गये और प्रसन्नतापूर्वक समुद्र को मयकर अमृत उत्पन्न करने की युक्ति सोची । मन्दराचल की मयनी और वासुकि की रस्सी बनाकर सब देवों और दानवों ने समुद्र को मय डाला । यथन के बाद समुद्र से देवा का प्रिय पवित्र अमृत निकला । अमृत उत्पन्न हो जाने पर उन लोगों ने परस्पर विचार किया—हम सब अपने-अपने स्थान को इस समय चल अब तो हम सफलमनोरथ हो गये सारा थग दूर हो गया । पुनः जब सब लोग घुम लग्न में जहाँ-वहाँ एकत्र होंगे तब सब देवता सबको यथाभाग यह पवित्र अमृत बांट देंगे ।

इत्युक्त्वा ते ययुः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः । गतेषु दैत्यसघेषु देवा सर्वेऽन्वमन्मन् ॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माकं दैवयोपादरिदमा । रिपूणाममृतं नैव देयं भवति सर्वथा ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिवम

॥१५॥

बृहस्पतिरवाच

न जानन्ति यया पापा पिबध्वं च तयाऽमृतम् । अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणां पराभवः ॥१६॥

द्वेष्या सर्वात्मना द्वेष्या इति भोतिविदो विदुः । न विश्वास्या न चाऽऽस्प्रेया नैव मन्त्राश्च शत्रवः ॥१७॥

तेभ्यो न देयममृतं भवेयुरमरास्ततः । अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु ॥

ताञ्जेतु नैव शक्ष्यामो न देयममृतं ततः

॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति समन्वयं ते देवा वाचस्पतिमयाभुवन्

॥१९॥

देवा ऊचुः

यद्ययमं कुत्र मन्त्रं स्यात्स्व पिबाम यद्यसिपतिः । कुर्मस्तदेव प्रयमं यद्यवाचस्पते तया ॥२०॥

यह कहकर वे सब दैत्य दानव और राक्षस चले गये । उन दैत्य समूहों के चले जाने पर सब देवता परामर्श करने लगे ॥८१३॥

वेदों ने कहा—शत्रुनाशक । दैवयोगसे हम लोगों के वे शत्रु चले गये । शत्रुओं को किसी भी प्रकार से अमृत देना उचित नहीं ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति ने भी इसका समर्थन किया । पुनः उन्होंने देवताओं से कहा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—तुम लोग यह अमृत पी जाओ । किसी प्रकार वे पापी राक्षस इस भेद को न जान पाय । यह उचित मात्र है कि शत्रुओं की हार हो । नीतिज्ञों ने कहा है कि शत्रुओं से सब प्रकारसे द्वेष करना चाहिये । शत्रु किसी प्रकार भी विश्वसनीय नहीं शत्रुओं से कोई हृदय की बात नहीं कहनी चाहिये न तो उनसे रहस्यमय परामर्श ही करना चाहिये । उनको अमृत नहीं देना चाहिये अन्यथा अमृत पान से वे अमर हो जायेंगे । उन शत्रु दैत्यों के अमर हो जाने पर हम किसी प्रकार उनको जीत न सकेंगे । इसलिये उनको अमृत नहीं देना चाहिए ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा कर देवताओं ने पुनः बृहस्पति से कहा ॥१९॥

देवताओं ने कहा—वाचस्पति । कहाँ जायें कहा परामर्श किया जाय और कहाँ स्थित होकर हम लोग अमृत पान करें । आप जैसा कहेंगे हम वही करेंगे आप कहिये ॥२०॥

बृहस्पतिखाच

यान्तु ब्रह्माणममरा. पृच्छन्स्वत्र गतिं पराम् । स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमयाऽऽजमन् । नमस्य मां सुराः सर्वे यद्वृतं तन्न्यवेदयन् ॥२२॥
तद्देववचनात्पुनः तैः सुरैरयमं हरिम् । विष्णवे कथितं सर्वं शंभवे विपहारिणे ॥२३॥
अहं विष्णुश्च शंभुश्च देवगन्धर्वैर्किनरैः । मेरुकंदरमागत्य न जानन्ति यथाऽसुराः ॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरैः । आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यामयेतरान् ॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रधुरक्षकस्तथा । नैव जानन्ति तर्ह्यस्या वनुजा राक्षसास्तथा ॥२६॥
विना राहुं महाप्राप्तं संहिकेयं च सोमपम् । कामरूपधरो राहुर्मदां मध्यमादिशत् ॥२७॥
महद्रूपं समास्थाय पानपानधरस्तथा । ज्ञात्वा विवाकरो दैत्य तं सोमाय न्यवेदयत् ॥२८॥
तदा तदमृत तस्मै दैत्यायादित्यरूपिणे । दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत् ॥२९॥
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः । चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत् ॥३०॥
शिरोमात्रविहीनं यद्वेहं तदपतद्भुवि । वेहं तदमृतस्फुटं पतितं दक्षिणे तटे ॥३१॥
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पयद्बसुधातलम् । वेह चाप्यमरं पुनः तदबभूतमिवाभवत् ॥३२॥

बृहस्पति ने कहा—सब देवता ब्रह्मा के पास जायें और इस विषय में उन्हीं से उचित राय पूछें । वे पितामह जाता, वक्ता और दाता हैं । ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति की बातें सुनकर देवता मेरे पास आये और मुझे नमस्कार कर के जो कुछ हुआ था वह सुनाया ॥२२॥ पुनः । उन देवताओं के कबनानुसार मैं उन लोगों के साथ विष्णु के समीप गया । सारा रहस्य विष्णु और विपपान करने वाले शकट से कह दिया गया ॥२३॥ मैं, विष्णु, राम, देव, गन्धर्व और किनर मेरु की कन्धरा में आकर जिस प्रकार असुर न जान पायें, उस प्रकार ॥२४॥ हरि की रक्षक बनाकर सोम पान के लिये बैठ गये । वहाँ आदित्य ही सोम पान के योग्य और अयोग्य व्यक्ति को जानते थे ॥२५॥ सोम देव अमृत को बाँटने वाले तथा चक्रधारी विष्णु रक्षक थे, इस रहस्य को महाबुद्धिमान् और सोम-प्रायी सिंहिका मुत राहु की को छोड़कर अन्य दैत्य दानव तथा राक्षस नहीं जानते थे ॥२६॥ माया रूपधारी राहु मध्यगणों के मध्य घुस गया और मर्द का रूप धारण कर पान-पात्र हाथ में लेकर बैठ गया ॥२७॥ दिखाकर ने उस रहस्यमय दैत्य को जानकर सोम को वता दिया ॥२८॥ उस समय देवरूपधारी उस दैत्य को सोम अमृत दे चुके थे, तब इस घटना को उन्होंने विष्णु से कहा ॥२९॥ विष्णु ने अमृत पान कर चुके उस दैत्य के शिर को चक्र उठाकर बलपूर्वक काट डाला ॥३०॥ वत्स । काटने पर भी उसका शिर अमर हो गया । शिर से रहित जो कबच था वह पृथिवी पर गिर पड़ा । मुनि शार्दूल । वह अमृत से स्फुट शरीर गौतमी के दक्षिण तट पर पृथ्वीतल को कंपाता हुआ सा गिर पड़ा । पुनः । उस अमर देह की अद्भुत अवस्था हो गई ॥३१-३२॥ देह शिर की अपेक्षा रखती और शिर देह के

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चायं महाबलः॥३३॥
 शिरः काये समाविष्टं सर्वाभक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिदं पूर्वं नाशयामो महीगतम्॥
 ततस्ते शंकरं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमाः॥३४॥

देवा ऊचुः

महीगतं दैत्यदेहं नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव कष्टासिन्धुः शरणागतरक्षकः॥३५॥
 शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा क्रुध॥३६॥

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास क्षेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः। मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम्॥३७॥
 ईशायुधधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागामाङ्गव्यकाङ्क्षिणी॥३८॥
 शिरोमात्रं सुरा सर्वे मेरो तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्यां पुनस्तत्र युयुधे बहवः समाः॥३९॥
 राहुस्तान् सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम(?)। अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तवाकृष्टं शरीरतः(?)॥४०॥
 पृथग्भूते रसे देहं प्रवरऽमृतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणैरेव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाङ्मयचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वेऽसुरारयः। अभ्यविभ्रञ्चन्ग्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुवाऽन्वितः॥४२॥

बिना अलग नहीं रह सकता परन्तु वह महाबली (शिर और घट) उभय रूप में भी अमर हो गया॥३३॥ देवताओं ने सोचा कि यदि शिर पुनः घट पर जुट जायगा तो यह राक्षस सब देवों को खा जायेगा, इसलिये पृथ्वी पर पड़े इस शरीर का पहले ही नाश कर दिया जाय। यह सोच कर उन देवताओं ने बड़ी शीघ्रता से शंकर के पास जाकर निवेदन किया॥३४॥

देवो ने कहा—सुरोत्तम! पृथ्वी पर पड़े इस दैत्य-शरीर को नष्ट कीजिये। देव! आप कष्टनाशक सागर हैं, शरणागत जनो के एकमात्र रक्षक हैं। यह देह शिर से युक्त न होने पाये, ऐसा कोई उपाय कीजिये॥३५-३६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों की प्रार्थना सुनकर शंकर ने अपनी श्रेष्ठ शक्ति लोकपालक माता, देवी शक्ति का मातृकाओं के साथ भेजा। शिव के आयुधों और उनकी शक्ति से युक्त होकर वह देवी उस दैत्य शरीर को खा जाने की इच्छा से यहाँ गई। उधर सब देवता केवल शिर भाग को उसी मेरु पर्वत पर रोक रखे। उधर वह देह देवी के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध करती रही। अन्त में मेरु स्थित राहु के शिर ने देवों से कहा कि पहले मेरे शरीर को फाड़ कर उसमें से उत्तम रस को शरीर से अलग खींच लो। उस उत्तम रस के अलग हो जाने पर वह अमर शरीर क्षण भर में ही भस्म हो जायगा। इसलिये पहले इस कार्य को करें॥३७-४१॥

ब्रह्मा बोले—राहु की वही हुई बात को सुनकर सब देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगों ने राहु का प्रसन्नता-पूर्वक अभिषेक करते हुए कहा कि तुम आनन्दपूर्वक ग्रहों के मध्य एक ग्रह हो जाओ॥४२॥ देवताओं के कथनानुसार

तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते । देहं भित्त्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता ॥४३॥
 आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः । स्थापयित्वा तु तद्देहं मलयामास चाम्बिका ॥४४॥
 कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला । स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम् (?) ॥४५॥
 व्यध्वत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी । आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभवत्यम् ॥४६॥
 ततः श्रेष्ठो नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा । राहुदेहसमुद्भूता रुद्रशक्तिसमन्विता ॥४७॥
 नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ॥४८॥
 तत्र शंभुः स्वयं तस्यो सर्वदा सुरपूजितः । तस्यै तुष्टाः सुराः सर्वे देव्यं नद्यं पृथक् पृथक् ॥४९॥
 वरान्दुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति । शंभुः सुरपतिलोके तथा पूजामवाप्स्यति ॥५०॥
 निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया । सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा ॥५१॥
 स्तवनार्कीर्तनाद्यध्यानात्सर्वकामप्रदायिनी । त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किञ्चिदापेक्ष्य सर्वदा ॥५२॥
 तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवताज्ञया । शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातन ॥५३॥
 अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः । प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रीतास्ते वरान्दुः ॥५४॥
 गङ्गायाः संगमो यस्ते विख्यातः सुरवत्सलम् । तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च ॥५५॥
 यद्वाऽपि मनसः काञ्च्यं देवानामपि दुर्लभम् । स्यात्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः ॥५६॥

ईश्वरी नाम से विख्यात शिवशक्ति ने देवों की शक्ति से उत्तराहित होकर दैत्यराज का शरीर फाड़ कर शीघ्र ही उस उत्कृष्ट अमृत रस को खींचकर बाहर निकाल डाला । और कालरात्रि भद्रकाली एवं महाबला कही जानेवाली वह अम्बिका उसके शरीर को खा गई और उस रसो में श्रेष्ठ रस को एक स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४३-४५॥ उस रसो में रस का जो भाग बाहर रह गया उससे प्रवरा नाम की उत्तम और शुभ नदी हो गई । उस घटस्थापित उत्तम अमृत को भी वह अम्बिका खा गई ॥४६॥ इस प्रकार राहु देह से निकली हुई, रुद्रशक्ति से युक्त वह शुभ श्रेष्ठ प्रवरा नाम की अमृत सरिता उत्पन्न हो गई । वहाँ पाँच हजार पवित्र पुण्यप्रद तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं ॥४७-४८॥ वहाँ देवपूजित शम्भु सर्वदा विद्यमान रहते हैं । देवताओं ने प्रसन्न होकर उस देवी (नदी) को पृथक्-पृथक् वरदान दिया कि जिस प्रकार मयवान् शम्भु लोक में पूजा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी लोक में पूजा प्राप्त करागी ॥४९-५०॥ देवि ! तुम लोकहित की कामना से सर्वदा इस पृथ्वी पर निवास करो, रसेशानि । सबको सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाली तुम सर्वदा यहाँ विराजमान रहो ॥५१॥ स्तुति कीर्तन और ध्यान करने से मनुष्यों को सब मनोरथ देने वाली बनो । जो गतिपूर्वक किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए सर्वदा तुम्हें नमस्कार करेंगे उन मन्त्रों के सभी कार्य देवताओं की आशा से अवश्य पूर्ण होंगे । यत वहाँ शिव और शक्ति वा सर्वदा निवास रहते हैं । इसलिये उस तीर्थ को मुनिगण 'निवासपुर' कहते हैं । इस भाँति देवताओं ने प्राचीन काल में प्रवरा को प्रसन्न होकर वर प्रदान किया ॥५२-५४॥ जो देवों का अत्यन्त प्रिय विख्यात गंगा-संगम है वहाँ स्नान करने वालों को भुक्ति और मुक्ति अथवा जो भी उनका मनोमिलपित है चाहे वह देव-दुर्लभ ही क्यों न हो, सब उनको प्राप्त हो, ऐसा वर देकर देवता चले गये ॥५५-५६॥ सब से वह

ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासंगमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्या प्रेरिता तु सा ॥५७॥
अमृता' संव विख्याता प्रवरंवे महानदी ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृष्टिसंवादे शिवप्रेरितामृतासंगमादितीर्थवर्णनं नाम
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

बृद्धासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

बृद्धासंगममाख्यात यत्र बृद्धेदवरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि भूणु पापप्रणाशनम् ॥१॥
गौतमो बृद्ध इत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गौतमस्य सुतो द्विजः ॥२॥
अनास' स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपधृक्। स वैराग्याञ्जगामाय देशं तीर्थमितस्ततः ॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽऽसीत्लज्जितस्य समागमः। शिष्यैरन्यैः सहाध्यायै लज्जितस्य च नामवत् ॥४॥

तीर्थं प्रवरासंगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार देवदेव वाकर ने जिस क्षत्रिय को प्रेरित प्रेरित किया था, वही प्रेरित होने पर विख्यात अमृत स्वरूपिणी महानदी प्रवराहो गई ॥५०-५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में शिव प्रेरित अमृतमपवादित्तीर्थं वर्णन नामर
एक ती छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

अध्याय १०७

बृद्धासंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्म! बृद्धेदवर शिव निवास करते हैं उस बृद्धासंगम नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की पापविनाशक
कथा का वर्णन कर रहा हूँ उसकी सुनो ॥१॥ बृद्ध गौतम नामक एक महातपस्वी मुनि थे। बहुत पहले गौतम मुनि
को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्म के ही नामिवा हीन था। इसलिये विरूप होने के कारण विरसन होकर बड़े
बाल गौतम इपर उपर देत और तीर्थ का भ्रमण करने लगा ॥२-३॥ अपनी विरूपता से लज्जित होने
के कारण वह उपाध्याय (विद्यागुरु) के शरीप न जा सका, न तो अन्य शिष्यों के साथ उस शरीरवलील गौतम का
सहाय्यपन ही हुआ ॥४॥ किसी प्रकार उसके पित्रा गौतम ने उत्पन्न, उत्पन्नपन सफार कर दिया। इनके ही ब्रह्म-

उपनीत कयचिच्च पित्रा वै गौतमेन ॥ एतावता गौतमोऽपि व्यगमच्चरितु बहि ॥५॥
 एव बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे । नैव चाध्ययन तस्य सजात गौतमस्य हि ॥६॥
 नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमस्याभवत्तदा । अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रत ॥७॥
 गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारक । अग्न्युपासनमात्रं च गायत्र्यभ्यसनं तथा ॥८॥
 एतावता ब्राह्मणत्वं गौतमस्याभवन्मुने । उपासतोऽग्निं विधिवद्गायत्रीं च महात्मन ॥९॥
 तस्याऽऽयुर्वबुधे पुत्रं गौतमस्य चिरायुष । न दारसप्रहं लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम् ॥१०॥
 तथा चरस्तीर्यदेशे वनेषु विविधेषु च । आश्रमेषु च पुण्येषु अटलास्ते स गौतम ॥११॥
 एव ऋमञ्जोतगिरिपारश्रित्याऽऽस्ते स गौतम । तत्रापश्यद्गुहां रम्यां बस्तीविटपमालिनीम् ॥१२॥
 तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तुं समकरोन्मतिम् । चिन्तयस्तु प्रविष्टोऽसावपश्यत्स्त्रियमुत्तमाम् ॥१३॥
 शिथिलाङ्गीमथ कुशां वृद्धां च तपसि स्थिताम् । ब्रह्मचर्येण वर्तन्तीं विरागां रहसि स्थिताम् ॥१४॥
 स तां दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तत्स्थितान् । नमस्यन्तं मुनिश्रेष्ठं स गौतममवारयत् ॥१५॥

वृद्धोवाच

गुहस्त्व भविता मह्यं न मा वन्दितुमर्हसि । आयुर्विद्यां धनं कीर्तिधर्मं स्वर्गादिकं च यत् ॥
 तस्य मय्यति वै सर्वं यं नमस्यति वै गुह ॥१६॥

चिह्नं से (यज्ञोपवीतं सत्कार) से युक्त होकर वह बाहर भ्रमण करने चला गया ॥५॥ इस प्रकार यज्ञोपवीत
 मात्र (ब्रह्म चिह्न) धारण किये हुये उस ब्राह्मण के जीवन का बहुत अंश बीत गया । उस द्विज गौतम ने न तो
 अध्ययन ही किया और न तो शास्त्रों का अभ्यास ही । परन्तु उस समय व्रत वाले गौतम ने अग्न्याधान
 अवश्य किया और गायत्री जप के अभ्यास से ब्रह्मत्व की रक्षा अवश्य करता रहा । मुने । इस प्रकार अग्निपूजा
 और गायत्रीजप मात्र ही उसके ब्राह्मणत्व का प्रतीक रहा ॥६-८॥ विधिपूर्वक अग्नि की उपासना एवं गायत्री
 का जप करते करते हे पुत्र ! उस दीपजीवी महात्मा ब्राह्मण की आयु अधिक हो चली । परन्तु उसका विवाह
 नहीं हुआ क्योंकि उस विष्णु को कोई अपनी कन्या देने वाला नहीं था ॥९-१०॥ इस प्रकार अविवाहित वह गौतम
 तीर्थों विविध वनों और पुण्य आश्रमों में वटकता हुआ समय बिताने लगा ॥११॥ एक समय वह भूमता हुआ
 हिमालय पहाड़ पर पहुँचा । वहाँ उसने लताओं और वृक्षमालाओं से सुशोभित एक रमणीय गुफा का देखा ॥१२॥
 वहाँ बैठकर उस विप्र ने उसी गुफा में निवास करने का विचार किया । इसी विचार से वह उस गुहा में प्रविष्ट
 हुआ इतने में उसने एक उत्तम स्त्री को जो कृशकाय और वृद्ध थी जिसके अंग शिथिल हो गये थे जो सबदा
 एवान्त में रहने वाली बीतराग और ब्रह्मचर्यपरायण थी देखा । वह मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर नमस्कार करने के
 लिये उद्यत हुआ । यह देखकर उस वृद्धा ने नमस्कारोमुख उस मुनि गौतम को रोका ॥१३-१५॥

वृद्धा ने कहा—तुम मेरे भविष्यद् गुहो मुख नमस्कार मत करो उस व्यक्ति की आयु विद्या, धन,
 कीर्ति, धर्म स्वर्ग आदि सब कुछ जप्य हो जाते हैं जिसको गुह्यजन नमस्कार करते हैं ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां वं गौतमः प्राह विस्मितः

॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धा च गुणज्येष्ठा च भामिनी । अल्पविद्यस्थल्पवया अहं तव गुरुः कथम् ॥१८॥

वृद्धोवाच

आष्टियेणप्रियपुत्र ऋतध्वज इति श्रुतः । गुणवान्मतिमाञ्जूरः क्षत्रधर्मपरायणः ॥१९॥
॥ ववाचिद्वनं प्रायान्मुपयाकृष्टचेतनः । विधाममकरोदस्यां गुहायां स ऋतध्वजः ॥२०॥
मुया स मतिमान्दक्षो यत्नेन महता वृत । तं विधान्तं नृपवरमप्सरा ददृशे ततः ॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता । तां दृष्ट्वा चक्रमे राजा राजानं चक्रमे च सा ॥२२॥
इति श्रीका समभवत्तया राज्ञो महामते । निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापूज्ययाऽऽगमद्गृहम् ॥२३॥
उत्पन्नाऽहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते । गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन ॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्यस्यां प्रविशेद्भूद्रे स ते भर्ता भविष्यति

॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा सा जगामाय माता मम महामते । तस्मादन्र प्रविष्टस्त्वं पुमाद्भाग्यः ववाचन ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुनवर विस्मित गौतम ने हाथ जोड़कर उस वृद्ध ब्रह्मचारिणी से कहा ॥१७॥

गौतम ने कहा—तुम तपस्विनी, वृद्ध और गुणज्येष्ठ स्त्री हो, मैं, अल्पज्ञ तथा अल्प वय वाला व्यक्ति जिस प्रकार तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ ॥१८॥

पूढ़ा ने कहा—ऋतध्वज नाम का अष्टियेण का प्रिय पुत्र था । वह बड़ा ही दूर, गुणशाली, बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला था । वह ऋतध्वज त्रिमी समय मुग्या (शिवर) धेतने की प्रवृत्ति इच्छा से प्रेरित होकर वन में आया और इसी गुहा में विधाम करने लगा । वह युवा, बुद्धिमान्, कुशल, महापुत्रान् ऋतध्वज यहाँ विधाम कर रहा था कि उस थोड़े नृप को गन्धर्वराज की कन्या सुश्यामा नामक अग्रा ने देग दिया । राजा उसको देगकर बाधातकन हो गया और वह राजा का दगकर । महामति ! इत्यदि राजा का उम अप्सरा के साथ प्रेम-भावण हुआ गया । राजेन्द्र की काम-विशामा जब दान्ति हो गई तब उससे परिचय-भाषण कर अपने घर को चले गये । महामन ! तदनन्तर मैं उस सुश्यामा के गर्भ से उत्पन्न हुई । तपोधन ! मुझको यहाँ छोड़कर जानी हुई माता ने मुझसे यह कहा—॥१९-२४॥

सुश्यामा ने कहा—अरे ! जो इस गुहा में प्रवेश करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा ॥२५॥

पूढ़ा ने कहा—महामति ! इससे बाद यह कहकर वह मेरी माता चली गई । इस कारण मात्र इस गुहा में आये हुए तुम बन्नी भी अन्य (अधोपपत्ति से अन्य) नहीं हो सकते । मेरे पिता एक हजार अग्री बर्ष तक राज्य

सहस्राणि तयाऽशीति कृत्वा राज्यं पिता मम । अत्रैव च तपस्तप्त्वा ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तया दश । वर्षाणि भुविशाब्दं राज्यं कृत्वा तया पर ॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव सस्थिता । अहं ब्रह्मान्न्यवृत्ता न माता न पिता मम ॥२९॥
अहमात्मेदवरो ब्रह्मन्निविष्टा' क्षत्रकथका । तस्माद्भजस्व मा ब्रह्मन्व्रतस्या पुर्य्याधिनीम् ॥३०॥

गौतम उवाच

सहस्रापुरह भद्रे मत्तस्त्व धनसाधिका । अहं बालस्त्व तु वृद्धा नैवाप घटते मिय ॥३१॥

वृद्धोवाच

एव भर्ता मे पुरा विष्टो नाम्यो भर्ता मतो मम । धान्ना दत्तस्तत्तस्त्व मा न निराकर्तुमर्हति ॥३२॥
अथवा नेच्छसि मा स्वमप्रदुष्टामनुव्रताम् । तत्तत्स्वक्यामि जीव मे इदानीं तप पश्यत ॥३३॥
अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिना मरणं वरम् । अनुरक्तजनस्यापि पातकान्तो न विद्यते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वच्च श्रुत्वा गौतमो धामयमन्नयित ॥३५॥

गौतम उवाच

अहं तपोधिरहितो विद्याहीनो ह्याकिंचन । नाहं वरो हि योग्यस्तं कुरूपो भोगवर्जित ॥३६॥

पालन कर रहा तपस्या कर स्वर्ग को चले गये । मुनिगावुल । पिता के स्वर्ग चले जाने पर एक हजार दस वर्ष तक राज्य कर दूसरा मेरा माई भी स्वर्ग चला गया और मैं यही स्थित हूँ । ब्रह्मन् 'मैं अथ किसी वृत्त (व्याही गई) नहीं हूँ' न तो मेरी माता और पिता ही हैं । इस समय मैं स्वयं अपनी स्वामिनी हूँ । ब्रह्मन् 'मैं क्षत्रिय-कथा हूँ तपस्विनी हूँ' इसलिये पति की इच्छा करने वाली मुझ सदाचारिणी को तुम अपना लो ॥३६ ३०॥

गौतम ने कहा—भद्र । मैं सहस्रायु हूँ तुम मुझसे आयु में अधिक हो मैं बालक हूँ तुम वृद्ध हो अतः हम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध उपयुक्त नहीं जच रहा है ॥३१॥

वृद्धा ने कहा—पहले से ही तुम मेरे भर्ता निविष्ट (कहे गये) हो । ब्रह्मा ने तुम्हारे हाथों मुझ सीप दिया । इसलिये मेरा अनादर करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है । अथवा यदि तुम (निष्पाप) सदाचारिणी व्रतपरायण मुझको नहीं अपनाओगे तो अगो तुम्हारे देखते देखते मैं अपने प्राणा को छोड़ दूंगी । क्योंकि अपेक्षित (मनचाही) वस्तु को न पाने की अपेक्षा मनुष्या का मरण जाना ही अच्छा है । और यह भी समझ लो कि अनुरक्त (प्रमी) जन के परित्याग में पापी का अंत भी नहीं है । अर्थात् प्रमी के परित्याग से अनन्त पाप होते हैं ॥३२ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धा की जन बातों को सुनकर गौतम ने कहा ॥३५॥

गौतम ने कहा—मैं तपस्या विमूर्ख अविश्रित और धनहीन हूँ इसलिये कुरूप और भोगरहित मैं तुम्हारे वर धन के योग्य नहीं हूँ । नास्तिकाहीन मुख और तपोहीन मैं क्या नरु मैं सबदा तुम्हारे लिए अयोग्य हूँ । इसलिये

अनातोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च । तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे ॥
पश्चात्ते वचन कार्यं ततो वृद्धाऽब्रवीद्द्विजम् ॥३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोयिता तपसा द्विज । तथैवाऽऽयो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च ॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्या प्रदास्यति । अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूप प्रदास्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतम त वृद्धोवाच विभावसुम् । प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम् ॥४०॥

ततः सुविद्यः सुभग सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रीतियुक्तः ।

तया स रेमे बटूला मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुहायाम् ॥४१॥

कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुक्षतो गिरौ । गुहाया मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमला ॥४२॥

वसिष्ठवामदेवाद्या ये ज्ञाम्ये च महर्षयः । भ्रमन्तः पुष्पतीर्यानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुहाम् ॥४३॥

आगतास्तानुपोऽज्ञात्वा गौतमः सह भार्यया । सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन ॥४४॥

ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमाः । वृद्धां च गौतम प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन ॥४५॥

ऋषयः उचुः

पुनोऽयं तव पीत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत् । सत्यं वदस्व कल्पाणि इत्येव जहसुर्द्विजाः ॥४६॥

शुभे । पहले तुम मुझको रूपवान् और विद्यावान् बनाओ, पश्चात् मैं योग्य होकर तुम्हारी बातों का पालन करूँगा । यह सुनकर वृद्धा ने ब्राह्मण से कहा ॥३६-३७॥

वृद्धा ने कहा—द्विज । मैंने अपनी तपस्या से सरस्वती देवी को प्रसन्न कर लिया है, इसी प्रकार रूपवान् अलदेव (धरण) और रूपदाता अग्नि को भी । इसलिये वह वागीश्वरी देवी तुम्हें विद्या और रूपवान् अग्नि तुमको रूप प्रदान करेंगे ॥३८-३९॥

ब्रह्मा ने कहा—दुसरे प्रकार उस गौतम ने कहकर वृद्धा ने सूर्यदेव से प्रार्थना की और उनको प्रार्थना से प्रसन्न कर उस कुरूप मुनि का रूपवान् और विद्यावान् बना दिया ॥४०॥ इस प्रकार रूपवान् बनने के बाद उस मुरूप विद्यावान् और माध्यमाली ब्राह्मण ने उस वृद्धा को अपनी पत्नी बना लिया और उस गुहा में उस गुन्दरी के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक विहार किया ॥४१॥ मुनिशार्दूल । उस गिरि पर सानन्द विहार करने वाले दम्पति के पास किसी समय पवित्र मुनि लग आये । वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जो अन्य महर्षियों के साथ पवित्र तीर्थों का भ्रमण कर रहे थे गौतम की उमर गुहा में पहुँचे ॥४२-४३॥ उन महर्षियों को अपना अतिथि जान कर भार्या सहित गौतम ने उनका आतिथ्य सत्कार किया । उनमें जो बाल यौवन की उमर से मरे और आयु में मध्यम श्रेणी के थे वे उस वृद्धा गौतम को देखकर हँस पड़े ॥४४-४५॥

ऋषियों ने कहा—वृद्धे । यह गौतम तुम्हारा पुत्र है या पीत्र ? कल्याणी । सत्य बनाओ, यह तुम्हारा कौन है, यह कहकर वे द्विज होमन लगे । अहा । वृद्ध के लिये युवती विष तुल्य और वृद्धा के लिये युवक

विष वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृत युवा । इष्टानिष्टसमायोगो दृष्टोऽस्माभिरहो चिरात् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिद्वपत्यो धृष्वतोस्तदा । एवमुक्त्वा कृतातिभ्या ययु सर्वे महर्षय ॥४८॥
ऋषीणां वचन श्रुत्वा उभावपि सुदु खितौ । लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्गवौ सह ॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलमयस्तथमृषिसत्तमम् ॥४९॥

गौतम उवाच

को देश किमु तीर्थं वा यत्र श्रेय समाप्यते । शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिभुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्मर्षिर्मुनिभिर्ब्रह्ममया श्रुतमिदं वच । सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र सशय ॥५१॥
तस्माद्गच्छ महायुद्धे गौतमो पापनाशिनीम् । अहं त्वामनुयास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वागस्त्यवाक्यं वृद्धा गौतमोऽभ्यगात् । तत्र तेषे तपस्तीव्रं पत्न्या स भगवानुयि ॥५३॥
स्तुतिं चकार देवस्य शोभोविष्णोस्तथैव च । गच्छा च तोषयामास भार्गवै भगवानुयि ॥५४॥

अमृत तुल्य है इस प्रकार इष्ट (अच्छे) और अनिष्ट (दुरे) का संयोग हम लोग ने बहुततमप के बाद देखा है ॥४६ ४७॥

ब्रह्मा बोले—कुछ मुनियों ने इस प्रकार की हास्यजनक बात उन दम्पतियों के सामने कहा । ऐसी हास्यजनक बातें बहुर के सब महर्षि आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के बाद चले गये । ऋषियों की बातें सुनकर बुद्धिमान वे दोनों ही अत्यन्त दुःखी और लज्जित हो गये । भाग्य के साथ गौतम, ऋषि अष्ट अगस्त्य ऋषि से पूछा ॥४८ ४९॥

गौतम ने कहा—महाप्राज्ञ । वह कौन सा देश अथवा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है आप ग्रीष्म ही उस भुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ की वनलाइय ॥५०॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मन् । श्वश्रवण बताने वाले मुनियों के मुख से मैंने सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं इसमें संदेह नहीं । इसलिए महाबुद्धि । तुम पापमाचिनी गौतमी के पास जाओ । मैं तुमको केवल पथ प्रदर्शन कर रहा हूँ तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥५१ ५२॥

ब्रह्मा बोले—अगस्त्य की उपयुक्त बातों का सुनकर वृद्ध पत्नी के साथ गौतम गौतमी के तट पर चला गया । वहाँ पर उस समय ऋषि ने पत्नी के सहित घोर वपस्या की । उस घक्तिवपस्य ऋषि ने इस प्रकार पत्नी के लिये धाम और मन्थान, विष्णु की स्तुति की तथा गया को प्रसन्न किया ॥५३ ५४॥

गौतम उवाच

क्षिप्रमात्मनामत्र भवे त्वमेव शरण शिव । मरुभूमावध्वगाना विटपीव प्रियायुत ॥५५॥
उच्चवावचाना भूताना सर्वथा पापनोदन । सस्याना घनवत्कृष्ण त्वमवग्रहशोषिणाम् ॥५६॥
बहुकुण्डबुर्गनि श्रेणिस्त्व पोष्यपतरङ्गिणी । अधोगताना तप्ताना शरण भव गौतमि ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तप्तस्तुष्टाऽब्रवद्वाक्य गौतम वृद्धया युतम् । शरणागतवीनातं शरण्या गौतमी मुदा ॥५८॥

गौतम्युवाच

अभियिञ्चस्व भार्या त्व मज्जलमन्त्रसयुतं । कलशैरपचारैश्च तप्त पत्नी तव प्रिया ॥५९॥
सुरुषा चारुसर्वाङ्गी सुभगा चारुलोचना । सर्वलक्षणसपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति ॥६०॥
रूपवत्या पुनस्त्व वै भार्यया चाभिषेचित । सर्वलक्षणसपूर्ण कान्त रूपमवाप्स्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

तथेति गाङ्गवचनाद्ययोक्त तौ च चक्रुः । सुरुपतामुभौ प्राप्ता गौतम्याश्च प्रसादत ॥६२॥
अभिषेकोदक यच्च सा नदी समजायत । तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धया मुनिसत्तम ॥६३॥
वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते । वृद्धगौतम इत्युक्त ऋषिभि समवासिभि ॥
वृद्धा तु गौतमी प्राह गङ्गा प्रत्यक्षरूपिणीम् ॥६४॥

गौतम ने कहा—इस ससार में आर्तजनो के तप्त मरुभूमि के मध्य वात्रा करने वाले पथिकों के रक्षक वृक्ष के समान हे उमा सहित चक्र जी! आप ही रक्षक हैं । वृष्ण! अनावृष्टि से सूखते हुए पान के खेतों को जिस प्रकार मेघ हरा बना देता है उसी प्रकार तुम अथम पुरष के पापों को दूर कर सुखी बना देते हो । मगवति गौतमी । तुम अमृतमय तरंगों वाली और स्वर्ग ऋषी दुर्ग की सीढ़ी हो, इस समय अथम और आर्त मेरी रक्षा करो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल गौतमी ने प्रसन्न होकर वृद्ध भार्या के सहित शरण में आये दीन और आर्त गौतम से कहा ॥५८॥

गौतमी ने कहा—तुम मात्रोच्चारण वृत्तस्थायन और अयाग यागिक उपचारों और कृष्ण मे रते हुए मेरे जल से अपनी भार्या का अभिषेक करो । ऐसा करने से तुम्हारी प्रिय पत्नी सर्वाङ्गमुन्दरी, सुरुष शोभायवती मुनेचना और सब लक्षणों से युक्त हो मनोहर रूप को प्राप्त कर लेगी । पुन अपनी रूपवती भार्या द्वारा अभिषिक्त होने पर तुम भी सुन्दर रूप प्राप्त कर लोगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर गया के कथनानुसार उन दोनों ने परस्पर अभिषेक किया, त्रिमम गौतमी की वृषा से वे दोनों अत्यन्त रूपवान् हो गये । अभिषेक का जो जल था उससे एक नदी उत्पन्न हो गई । मुनि २८३ । वह उस वृद्धा का नाम से वृद्धानदी नाम से प्रसिद्ध हो गई । गौतम भी वृद्धा के साथ रहने के कारण मृत्योगी ऋषियों के कथनानुसार वृद्ध गौतम नाम से प्रसिद्ध हो गया । उस वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपवाली गौतमी गंगा से कहा ॥६२-६४॥

बृद्धोवाच

मन्नाम्नीयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम् । त्वया च संगमस्तस्यास्तस्यास्तीर्यमनुत्तमम् ॥६५॥
 श्यसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम् । आयुरारोग्यवत्याणं जयप्रोतिविवर्धनम् ॥
 स्नानदानादिहोमैश्च पितॄणां पावनं परम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्विहस्याह च तां गङ्गा सुबृद्धां गौतमप्रियाम् । गौतमस्यापितं लिङ्गं बृद्धानाम्निव कीर्तितम् ॥६७॥
 तत्रैव च मुवं प्राप्तो बृद्धया मुनिसत्तम । तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥६८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं बृद्धासंगममुच्यते ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णनं नाम
 सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

गौतमोमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इ गौतीर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इलातीर्यमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम् ॥१॥

बृद्धा ने कहा—देवि । यह नदी मेरे नाम पर 'बृद्धा' इस नाम से पुकारी जाय और इसका तुम्हारे साथ
 संगम हो तथा यह संगम-तीर्थ परमोत्तम हो । यहाँ स्नान, दान और होम करने से यह रूप, सीमाग्य, संपत्ति, पुत्र,
 पौत्र बढ़ाने वाला, आयु, आरोग्य, वत्याण, विजय और प्रेम बढ़ाने वाला, तथा पितरों को पवित्र कर देने
 वाला हो ॥६५-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—गंगा ने उस सुखबृद्धा, गौतम भार्या से कहा कि ऐसा ही होगा । गौतम द्वारा स्थापित
 लिङ्ग भी बृद्धा नाम से ही प्रसिद्ध हुआ । यही उस बृद्धा के साथ गौतम को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था । उस
 तीर्थ में स्नान और दान करने से सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं । तब मे वह तीर्थ बृद्धासंगम के नाम से प्रसिद्ध
 हो गया ॥६७-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बृद्धासंगमतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

अध्याय १०८

इलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला इलातीर्थ नामक एक विख्यात पवित्र तीर्थ
 है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों को भी दूर कर मनुष्य को सब प्रकार की इच्छाओं पूर्ण करता है । वैवस्वत वश में इल

वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वर । महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम् ॥२॥
परिवधाम गहन बहुव्यालसमाकुलम् । नानाकारद्विजयुत विटपं परिशोभितम् ॥३॥
वनेचर नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानस । तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानयान्नवीत् ॥४॥

इल उवाच

गच्छन्तु नगर सर्वे मम पुत्रेण पालितम् । देश कोश बल राज्य पालयन्तु पुनश्च तम् ॥५॥
वसिष्ठोऽपि तथा यातु आदायान्गोन्पितेव न । पत्नीभि सहितो धीमानरण्येऽहं वसाम्यय ॥६॥
अरण्यभोगभुग्भिश्च बाजिवारणमानुषं । मृगयाशीलिभि कैश्चिद्यान्तु सर्व इत पुरीम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा यमुत्तेऽपि स्वयं प्रायाच्छनैर्गिरिम् । हिमवन्त रत्नमय वसस्तत्र इलो नृप ॥८॥
ववर्षा कन्दर तत्र नानारत्नविधिजितम् । तत्र यक्षेश्वर कश्चित्समन्युरिति विश्रुत ॥९॥
तस्य भार्या समानाम्नी भर्तुव्रतपरायणा । तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये मगोत्तमे ॥१०॥
मृगरूपेण व्यवहरन्प्राप्य सा महामति । स्वच्छया स्ववने यक्ष क्रीडते नृत्यगीतकं ॥११॥
इत्थं स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च । इलस्तु त न जानाति कन्दर यक्षपालितम् ॥१२॥

मामक एक नरेश हुआ । एक समय वह बहुत बड़ी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये वन में गया । वह अनेकों सौ स मरे विभिन्न आकार वाले पक्षियों से व्याप्त अनेक प्रकार के वृक्षा से सुशोभित उस गहन वन में घूमने लगा । उस वन में घूमते हुए मृगयाप्रमी नृपश्रेष्ठ के मन में उसी वन में रहने की भावना उत्पन्न हुई । अतः उन्होंने अपने मंत्रिया से कहा ॥१४॥

इल ने कहा—तुम सब मेरे पुत्र द्वारा रक्षित नगर को चले जाओ । वहाँ जाकर देश कोश, सेना राज्य और उस मरे पुत्र की रक्षा करो । पितृकुल्य गुरु वसिष्ठ भी अग्नि और राक्षसों को साथ लेकर चले जाय । मैं यहीं जंगली पक्षियों को लाकर रह राखने वाले अपन घोड़े से अनुचरा आघेटकुसुम हाथी घोड़े और मनुष्यों के साथ निवास करूँगा । और सब यहाँ से अपनी पुरी (राजधानी) को छोड़ जायें ॥५-७॥

ब्रह्मा ने कहा—जैसी आज्ञा यह कहकर वे सभी चले गये । वह राजा कुछ भी धीरे धीरे रत्नमय हिमालय पहाड़ की ओर चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने डरा डाल दिया ॥८॥ उसने एक दिन नाना रत्नों में सुसज्जित कन्दरा देखी । उस कन्दरा में कोई सुमन्यु नाम का यक्षराज रहता था ॥९॥ उसकी समा नाम की पत्निव्रता भार्या थी । पत्नी सहित वह यक्ष उस परम रम्य हिमगिरि पर रहता था ॥१०॥ वह महामति पक्ष दृष्टानुरूप मृगरूप धारण कर अपनी भार्या के साथ नृत्य गान करता हुआ स्वच्छया विहार करता था ॥११॥ इस प्रकार मृग रूप धारण करने पर भी वह यक्ष अपनी कन्दरा को अच्छी तरह जानता था परन्तु एक यक्ष द्वारा अधिष्टत उस कन्दरा के विषय

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम् । तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृत ॥१३॥
वास चक्रे ॥ तत्रैव गेहे यक्षस्य धीमतः । स यक्षोऽधर्मकोपेन भार्यया भृगरूपधृक् ॥१४॥
इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न वदाति च । हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्या चेति स्थित्वा स यक्षराट् । आत्मोपायान्प्रेषयामास यक्षाञ्छरान्धनुर्धरान् ॥१६॥

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतदन्तिनम् । गृहाद्ययाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुर्मह्यम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यक्षेऽश्वरस्य तद्वाक्याद्यस्मात्ते युद्धदुर्मताः । इलं भत्वाऽभुवन्तश्च निर्गच्छास्माद्गृहालयात् ॥१८॥
मं चेद्युद्धात्परिष्यष्टं पलाय्यं बभूव गमिष्यसि । तद्यक्षवज्रनाकोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट् ॥१९॥
जित्वा यक्षान्धनुर्विधानुवासं दक्षं शशंरो । यक्षेऽश्वरो भृगो भूत्वा भार्ययाऽपि वने वसन् ॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्तो हृतभृत्यः स यक्षिणीम् । प्राह चितापरो भूत्वा भृगोरुपधरां प्रियाम् ॥२१॥

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्मेनां कान्ते व्यसनासक्तमानसः । कथमायाति विषदं तत्रोपायो विचिन्तयताम् ॥२२॥
पापधिव्यसनान्तानि राज्यापलिलभूभुजां । प्रापयोमावनं सुभ्रूर्मुगी भूत्वा मनोहरा ॥२३॥

मे अनमित्र-सा या ॥१२॥ यक्ष का यह गृह बहुत बड़ा और नाना रत्नों से सुसज्जित था । अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ वह नृपति उस बुद्धिमान् यक्ष के घर में निवास करने लगा । भृगरूप धारी भार्या के सहित वह यक्ष इस अत्याय को देखकर अत्यन्त क्रुपित हुआ । वह सोचने लगा कि इस इल को मैं युद्ध में जीत नहीं सकता मीने पर यह दे नहीं रहा है अब क्या करूँ । इस उमत्त को युद्ध में मैं हराऊँ—यह सोचकर उस यक्ष ने अपने धनुष पर गुर यक्ष सैनिका को लटन के लिये भेजा और कहा ॥१३ १६॥

यक्ष ने कहा—सैनिक । राजा इल को—जिसके पास बहुत से मत्तवाल हाथी हैं—युद्ध में जीत कर जिस किसी प्रकार वह मेरे घर से अलग चला जाय वही प्रयत्न करना ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—यद्यपिपति की वाता को सुनकर वे युद्ध दुर्मद यन्त्र उसने पास गये और कहा कि हे राजन् । तुम इस गृहा-गृह से निकल आओ । नहीं तो युद्ध में हार जाने पर तुम भगवत् कहल जा सकोग । यक्षा की अगिष्ट वातो को सुनकर वह सम्राट इल क्रुपित हो युद्ध करने लगा । युद्ध में उमन अनेका यक्षा को हराकर दगराजि तेज आनन्दपूषक उस गृहाम रहा । इधर वह भृगरूपधारी यक्ष जो अपनी भार्या के साथ वन में निवास कर रहा था गृह विहीन और जन विहीन हो गया । उसने वन में भृगी रूप धारी अपनी यक्षिणी भार्या से अत्यन्त चिन्तित होकर कहा ॥१८ २१॥

यक्ष ने कहा—कान्ते । यह दुष्ट राजा किस प्रकार विपत्ति पस्त हो सकता है इसका लिय उपाय सोचना चाहिये । अधिपतर गम्भीर भूमिपाला का शासन इसी प्रकार अन्याय और द्रव्यसन से चरित्रित है । हे सुन्दर मो वाली । तुम मनोहर भृगी बनकर इस राजा को उमावन में पहुँचा दो । जब वह उस वन में घुमना निश्चय ही

प्रविशेत्तत्र राजाऽथ स्त्री भविष्यत्यसशयम् । करणीय त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम ॥
अहं तु पुरुषो येन त्वं पुनः स्त्री च यक्षिणी ॥२४॥

यक्षिण्युवाच

कथं त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम् । गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वतः ॥२५॥

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहितः शिवः । देवैर्गणैरनुवृत्तो विचचार ययासुखम् ॥
पार्वती शकरं ग्राह्यं कदाचिद्गृह्णति स्थितम् ॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेव स्वभावोऽस्ति रतः योपायितः भवेत् । तस्मान्मे निपतः देशमाज्ञया रक्षितः तव ॥२७॥
वेहि मे त्रिविशोऽज्ञानं उमावनमिति श्रुतम् । विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना ॥२८॥
यस्त्वनं प्रविशेन्नाथ स्त्रीस्य तस्य भवेदिति ॥२९॥

यक्ष उवाच

इत्यालोमावने वत्सा प्रसन्नेनेन्दुमौलिना । विं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनावितः ॥
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया यनमुत्तमम् ॥३०॥

स्त्री हो जायगा । भद्र ! यह बात तुम्हारे ही करन योग्य है मुझसे यह नहीं हो सकता । क्योंकि मैं पुरुष हूँ इसलिये
वहाँ नहीं जा सकता । तुम तो यक्षिणी स्त्री हो ॥२२-२४॥

यक्षिणी ने कहा—तुम उस परम मनोहर उमावन न क्यों नहीं जा सकते ? तुम्हारे जावे से क्या
अनिष्ट होगा ? उसको यथाय रूप से मुझको कहो ॥२५॥

यक्ष ने कहा—एक समय पर्वतशिरोमणि हिमालय पर उमा के साथ शरारत जी मुख पूरक भ्रमण कर
रहे थे उनका पीछ पीछ देवता भी थे । किसी समय पार्वती ने एकांत में बैठ शरारत कहा ॥२६॥

पार्वती ने कहा—स्त्रिया का यह स्वभाव है कि अत्यन्त गुप्त रूप से उनका पुरुष के साथ सहवास
हो । इसलिये देवगण ! भरे लिये एक नियत रूप से गुप्त और अपनी आत्मा से गुरगित रचान दीजिये । वह
उमावन नाम से प्रसिद्ध रहे । नाथ ! तुमको यशस्य कार्तिकेय और नन्दी को छाडकर जो कोई इतर व्यक्ति
यहाँ प्रवेश करे वह अवश्य स्त्री के प्राप्त करे (स्त्री हो जाय) ॥२७-२९॥

पार्वती—शकर ने प्रसन्न होकर इस प्रकार की आज्ञा दे दी । कान्ते ! मैं पुरुष हूँ इसलिये विषय
हूँ क्या करूँ । तुम न मुझसे प्यार से पूछा है इसलिये यह रहस्य बता दिया । इसलिये उस परम रमणीय उमावन
म मेरा जाना उचित नहीं है ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भूतं वचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी । मृगी भूत्वा विशालाक्षी इत्यस्य पुरतोऽभवत् ॥३१॥
यक्षस्तु संस्थितस्तत्र ददर्श लो मृगीं तदा । मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषतः ॥३२॥
एक एव ह्यारूढो नियमौ ता मृगो मनु । साऽऽकर्षत शनैस्तं तु राजान मृगयाकुलम् ॥३३॥
शनैर्गंगाम सा तत्र यदुमावनमुच्यते । अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती बवचित्त्वचित् ॥३४॥
तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च विभोतवत् । हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षदुमावनम् ॥३५॥
अनुप्राप्तौ ह्यारूढस्तत्प्राप स उमावनम् । उमावनं प्रविष्ट त ज्ञत्वा सा यक्षिणी तदा ॥३६॥
मृगीरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी । दिव्यरूपं समास्याय चाशोकतरुनिधौ ॥३७॥
तच्छालालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना । दिव्यरूपधरा तन्वी कृतकार्या समा तदा ॥३८॥
हसन्ती नृपतिं प्रेक्ष्य ध्वान्ते ह्यगत तदा । मृगीमालोकयन्त चपलाक्षमिल तदा ॥३९॥
भर्तृवाक्यमशेषेण स्मरन्ती प्राह भूमिपम् ॥४०॥

समोवाच

ह्यारूढाऽबला तन्वि बव एवैव तु गच्छति । पुरस्य च बेपेण इले कमनुयात्यसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इलेति वचनं श्रुत्वा राजाऽसी ब्रोधमूर्च्छितः । यक्षिणीं भर्तृपतिवाऽसी तामपृच्छन्मृगीं पुन ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—पति की बातें सुनकर इच्छानुकूल रूप परिवर्तन करनेवाली यक्षिणी दीर्घलोचन मृगी बनकर राजा इले के सामने आई। वही बैठे हुए राजा ने उस समय मृगी और यक्ष को देखा। उस मृगी को देखकर मृगया प्रेमी राजा विशेष रूप से आकृष्ट हो गया। वह अकेलाही घोड़े पर सवार होकर उस मृगी के पीछे निकल पड़ा। उस मृगी से धावेट के लिये उतावले राजा को अपने बस में कर लिया। वह धीरे धीरे उस स्थान पर गई जो उमा वन कहा जाता था। वह वही वही अपने को प्रकट करती बनी छिपाती बनी, बैठती बनी चलती और बनी ठरी हुई सी दौड़ती थी। इस प्रकार अनेको हाव भाव दिखाती हुई वह चपल नन्ना वाली मृगी उस राजा को उमा वन तक खींच ल गई। राजा अश्वारूढ़ हो उसके पीछ पीछे उस उमा वन तक चला गया। उस समय जब उस यक्षिणी ने राजा को उमा वन में फँसा हुआ जान लिया तब वह कामरूपिणी यक्षिणी मृगीरूप छोड़ दिव्यरूप धारण कर अशोक वृक्ष के निवट शाखा को हाथ में पकड़ कर खड़ी हो गई। दिव्य सुगन्धित लेपा को अंग में लगाए हुई दिव्य रूप वाली वह तन्वी समा अपने को कृतकृत्य सी समझने लगी। तब वह चपल नन्ना वाला बवा भाँदा अश्वारोही मृगी को इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार विस्मित राजा को देखकर वह हँसने लगी और अपने पति (यक्ष) की वाना को पूणरूप से स्मरण करती हुई राजा से बोली ॥३१-४०॥

समा बोली—हृयाऽग्रो ! घोड़े पर सवार होकर अबला तुम अकेले कहाँ जा रही हो ? इले । पुरप-वेद बनाकर किस प्रेमी के पीछे पागल हो रही हो ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर वह राजा क्रोध से पागल हो उठा। पुन यक्षिणी को बुरा मन्त्र कहकर उठने पर

तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षसे। इलेति वचनं श्रुत्वा घृतचापो हयस्थितः ॥४३॥
 कुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयी धनु। पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम् ॥४४॥
 प्रेक्षस्व पश्चान्मा ब्रूहि असत्या सत्यवादिनीम्। तदा चाऽऽलोक्यद्राजा स्तनौ तुङ्गौ भुजान्तरे ॥४५॥
 किमिदं मम संजातमित्येव चकितोऽभवत् ॥४६॥

इलोवाच

किमिदं मम संजातं जानीते भवती स्फुटम्। वद सर्वं यथातथ्यं त्वं का वा यद सुव्रते ॥४७॥

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरुधेष्ठे समन्युर्वसते पति। यक्षाणामधिपः श्रीमास्तद्भार्याहं तु यक्षिणी ॥४८॥
 यत्कवरे भवान्राजा तृणविष्टः सुशोतले। यस्य यक्षा हता मोहात्स्वया हि संगरं विना ॥४९॥
 ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमावनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः ॥५०॥
 यस्त्वन्न प्रविशोन्मन्दः धुमान्स्त्रीत्वमवाप्स्यति। तस्मात्स्त्रीत्वमवाप्तोऽसि न त्वं दुःखितुमर्हसि ॥
 प्रौढोऽपि कोऽत्र जानाति विचित्रमवितथ्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यक्षिणोवचनं श्रुत्वा हयारूढस्तदाऽपतत्। तमाश्वास्य पुनः संव यक्षिणी वाचयमब्रवीत् ॥५२॥

उस मृगी के विषय में पूछा। पूछने पर यक्षिणी ने कहा—'इले'। क्या बूढ़ रही हो? 'इले' ऐसा संबोधन सुनकर अस्व पर बैठे बैठे, राजा ने कुपित होकर अपना त्रैलोक्य-विजयी धनुष दिलाया। फिर यक्षिणी ने महात्मा इल से कहा 'स्वयं अपने का देस लो, पश्चात् मुझे सत्यवादिनी या असत्यवादिनी कहो'। तब राजा ने अपनी मुजाभा के बीच उमड़े हुए दो स्तनों को देखा। आह! 'यह क्या हो गया' इस प्रकार वह आश्चर्यचकित हो गया ॥४२-४६॥

इला ने कहा—वह मुझे क्या हो गया, इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो। मुझसे सब ठीक ठीक रहो। सुव्रते! तुम बौन हो यह भी बताओ ॥४७॥

यक्षिणी ने कहा—हिमालय की रमणीय कन्दरा में मेरा समन्यु नामक पति रहता है जो यक्षों का राजा और अत्यन्त श्रीमान् है। मैं उसी की भार्या यक्षिणी हूँ। जिस अतिशीतल रम्य कन्दरा में आप राजा बन कर बैठे थे और जिसके यक्षा को आपने प्रमाद वश विना युद्ध के ही मार डाला। उसके कारण मैं आपको वहाँ से निरालने के लिये मृगी बन कर इस उमावन में प्रविष्ट हुई। मेरे पीछे तुम भी धुस आये। कुछ समय पहले कवरे ने पार्वती से कहा था कि जो मूर्ख पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्रीरूप प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम स्त्री हो गये हो, तुम्हें इस विषय में दुःखित होने की आवश्यकता नहीं। इस समार में कोई अति चतुर ध्यनि भी विचित्र अवितथ्यता को नहीं जानता है ॥४८-५१॥

ब्रह्मा बोले—यक्षिणी की बात सुनकर वह घोड़े पर से गिर पड़ा। उसे साम्बन्ध देख कर पुनः यक्षिणी उससे कहने लगी ॥५२॥

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्य जात जातमेव न पुस्त्व कर्तुमर्हसि । गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्या नृत्य गीतमलकृतिम् ॥
स्त्रीलालित्य स्त्रीविलास स्त्रीकृत्य सर्वमेव तत् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इहा सर्वमयावाप्य यक्षिणीं वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

इलोवाच

को वा भर्ता किं तु कृत्य पुन पुस्त्व कथं भवेत् । एतद्वदस्व कल्याणी दुःखार्ताया विशेषतः ॥
भार्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो भाग्यधिकं क्वचित् ॥५५॥

यक्षिण्युवाच

बुध सोमसुतो नाम यनावस्माच्छ्व पूर्वतः । आश्रमस्तस्य सुभगे पितर नित्यमेष्टयति ॥५६॥
अनेनैव पया सोम पितर स बुधो ग्रहः । द्रष्टुं याति ततो नित्यं नमस्कृतुं सर्वं च ॥५७॥
यदा याति बुधः शान्तस्तावाऽऽत्मानं च दशायं । त दृष्ट्वा स्व तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तामाववाप्त्य ततः सुभूर्यक्षिण्यन्तरधीयत । यक्षिणी सा तमाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान् ॥५९॥ १

यक्षिणी ने कहा—अब स्त्रीत्व हो गया तो तो रहेंगे ही तुम किसी भी प्रकार इसको पुस्त्व में बदल नहीं सकते हो । अर्थात् अब स्त्री से पुरस्च नहीं बन सकते । अब स्त्रीजनोचित नृत्य गीत अलंकार स्त्रियों के हावभाव सौन्दर्य आदि सम्पूर्ण स्त्री योग्य कलाओं को मुझसे सीख लो ॥५३॥

ब्रह्मा ने कहा—इहा सब कलाओं को यक्षिणी से सीखकर पुन यक्षिणी से बोरी ॥५४॥

इहा बोलो—मेरा पति कौन होगा मुझे क्या करना होगा पुन मैं पुरुषत्व कैसे प्राप्त करूँगी । इन बातों को विशेष रूप से मुझ दुःखी को बतलाओ । दुःखियों के दुःख को दूर करने की अपेक्षा अधिक पुण्य इस सत्कार में रही भी नहीं है ॥५५॥

यक्षिणी ने कहा—सुभगे ! सोमपुत्र बुध का इस वन से पूर्व की ओर आश्रम है । वह प्रतिदिन पिता के पास जाते हैं । वह बुध (ग्रह) इसी मार्ग से पिता को देखने और प्रणाम करने के लिये प्रतिदिन जाते हैं । जब शान्त बुध इस मार्ग से जाने लगे तो तुम अपने को दिखाओ । सुभगे ! तुम उनको देखकर (परिचय प्राप्त कर) अवश्य सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त कर सकोगे ॥५६-५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उसको समझा-बुझाकर वह सुन्दर भी वाली यक्षिणी अतर्हित हो गई । उसने अपने पति (यक्ष) से सारी घटना सुना दी । यक्ष ने भी यह सुनकर सुख को प्राप्त किया । जो वहाँ इल की सेना पड़ी

इलसैन्य च तत्राऽऽसीत्तद्गत च यथासुखम् । उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यती पुन ॥६०॥
 स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणो गतिम् । कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि ॥६१॥
 तामपश्यद्बुधो धोमान्प्रितर गन्तुमुद्यत । इला दृष्ट्वा गतिं त्यक्त्वा तामागत्याब्रवीद्बुध ॥६२॥

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्व प्रिया भव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या स्वभिनन्द्य तत्राऽकरोत् । स्मृत्वा च यस्मिणीवाक्यं ततस्तुष्टाऽभवन्नुने ॥६४॥
 बुधो रेमे तया प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम् । सा चापि सर्वभावेन तोषयामास तं पतिम् ॥६५॥
 ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽबदत्प्रियाम्

बुध उवाच

किं ते वेप मया भग्रे प्रिय यन्मनसि स्थितम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु पुत्रं देहीत्यभाषत । इला बुधं सोमसुतं प्रीतिमन्तं प्रियं तया ॥६७॥

बुध उवाच

अभीष्टमेतन्मद्विषं तया प्रीतिसमुद्भवम् । पुत्रस्तो भविता तस्मात्प्रियो लोकविभूत ॥६८॥

हुई थी वह अपनी राजधानी को सुसज्जित लौट गई । (इधर इला उस उमावन में रहने लगी । वह कभी गाती नाचती पुन अपने वन की गति का स्मरण करती हुई स्त्री-मुलम कानाओं की इच्छा करती थी । किसी समय इला नृत्य कर रही थी उसी समय बुद्धिमान् बुध पिता ने पास जाने को तैयार थे । उसको देखकर उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और इला के पास आकर कहा ॥५९ ६२॥)

बुध ने कहा—तुम मेरी प्रिय भार्या बन जाओ । तुम सब स्थितियों से अधिक प्रिय बनो ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने बुध की बातों का आदर के साथ समर्थन किया और उसकी भार्या बन गई । मुने ! वह यक्षिणी की बातों का स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई । बुध उसको अपने उत्तम स्थान पर लिवा ले गये और प्रीतिपूर्वक उसके साथ विहार करने लगे । उसने भी प्रत्येक प्रकार से अपने पति को प्रसन्न किया । इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर बुध ने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया से कहा ॥६५॥

बुध ने कहा—भग्रे ! तुमको क्या दू ? तुम्हारे मन में जिस प्रिय वस्तु की इच्छा हो, वही मैं अवश्य प्रदान करूँगा ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध की बातें अभी समाप्त नहीं हुई थी कि 'पुत्र दीजिये', ऐसा उसने अपने प्रिय प्रेमी सोमपुत्र बुध से कहा ॥६७॥

बुध ने कहा—भग्रे यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण निकला हुआ शीर्ष अमोघ है । इसलिये तुमको

सोमवशकर श्रीमान्नादित्य इव तेजसा । बुद्ध्या बृहस्पतिसम क्षमया पृथिवीसम ॥६९॥
घोर्येणाऽऽजी हरिरिव कोपेन हृतभुग्यया ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि । जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेशमनि ॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजम्मु सुरेश्वरा । अहमप्यागम तत्र मुदा युक्तो महामते ॥७२॥
जातमात्र सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम् । तेन सर्वेऽप्यवोचन्व सगता श्रुयथ सुरा ॥७३॥
यस्मात्पुष्करवोऽस्येति तस्मादेव पुष्करवा । स्यादित्येव नाम चक्रु सर्वे सतुष्टमानसा ॥७४॥
बुधोऽप्यध्यापयामास क्षात्रविद्यां सुत शुभाम् । धनुर्वेद सप्रयोगं बुध प्रादात्तदाऽऽत्मजे ॥७५॥
स शीघ्रं वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशी । स मातरं दुःखयुता समीक्ष्येला महामति ॥
नमस्थाय विनीतारमा इलामेलोऽब्रवीदिवम् ॥७६॥

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा । अहं च पुत्र कर्मण्य कस्मात्ते मानसो ऽवर ॥७७॥

इलोवाच

सत्यं पुत्रं बुधो भर्ता त्वं च पुत्रो गुणाकर । भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कवाचन ॥७८॥
तथाऽपि पूर्वजं किञ्चिद्बुद्धं स्मृत्वा पुन पुन । चिन्तयेय महाबुद्धे ततो मातरमन्नवीत् ॥७९॥

लोक विख्यात क्षत्रिय पुत्र होगा । वह सोमवश की नीव डालने वाला बुद्धिमान् तेज मे आदित्य के समान बुद्धि मे बृहस्पति के समान क्षमा मे पृथिवी के समान युद्ध मे पराक्रम प्रदत्तन मे विष्णु के समान और क्रोध मे अग्नि के समान होगा ॥६८-७०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस महारमा बुध पुत्र के उत्पन्न होने पर स्वर्ग मे सर्वत्र जयध्वनि होने लगी । बुध-पुत्र के उत्पन्न होने पर वहाँ बेवैश उपस्थित हो गये । महामति । मैं भी वहाँ प्रसन्न होकर आया । उस बालक ने उत्पन्न होते ही अग्नि ऊँचे स्वर से शब्द किया । इसलिये सब देवताओं और ऋषियों ने मिलकर कहा । यत इसका रव (ध्वनि) पुष् (गम्भीर) है इसलिये इसका नाम पुरुरवा रखा जाय । इस प्रकार विचार विमश कर प्रसन्नतापूर्वक सबने उसका नाम पुष्करवा रख दिया । बुध ने भी अपने पुत्र को शुभ क्षात्रविद्या पढ़ाई और प्रयोगविधि सहित धनुर्वेद पुत्र को प्रदान किया । वह शीघ्रता से जिस प्रकार शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता है उसी प्रकार बढ़ने लगा । उस विनीत महामतिमान् ऐल ने माता इला को दुःखी देख कर नमस्कार करके पूछा ॥७१-७६॥

ऐल ने कहा—माता । बुध मेरे पिता और तुम्हारे प्रिय पति हैं । मैं तुम्हारा न्यतुंगल मनस्वी पुत्र हूँ । तो जिस कारण तुमको इतना मानसिक व्यथा है ? ॥७७॥

इला ने कहा—मुत्र । यह सत्य है कि बुध मेरे पति आर अतिगुणवान् तुम मेरे पुत्र ही । मुत्र किया प्रचार की पुत्र और पति सम्बन्ध न ता नहा है । फिर भी महानुद्धिमान् । अपने पूव कात्र क दुःख का स्मरण पर बार-बार मुझ चिन्ता हो जाती है । यह सुनकर ऐल ने पुन माता से कहा ॥७८-७९॥

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम

॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इला चेन्मुयाचेदं रहोवाचं कथं वदे। तथाऽपि पुन ते वन्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः ॥
मन्वानां दुःखपायोऽधो पुनः प्रवहणं परम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनीतः प्राह मातरम्। पादयो पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

सा पुह्रवसं प्राह इक्ष्वाकूणां तथा कुलम्। तत्रोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान् ॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाय अमात्यानां पुरोधसः ॥८४॥
प्रेषणं च नगपौ ता मृगयासवितमेव च। हिमवत्कंदरगतिं यक्षेश्वरगृहे गतिम् ॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्त्रीत्वप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु ॥८६॥
यक्षिणीवाक्पमप्यस्य वरदानं तथैव च। कुपप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याद्यशेषतः ॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्। पुह्रवाः किं करोमि किं कृत्या सुकृतं भवेत् ॥८८॥
एतावता ते तृप्तिश्चेदलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोर्यति तदप्याज्ञापयस्व मे ॥८९॥

ऐल ने कहा—मेरी माता ! इसलिये मुझे सबसे पहले वही बात बताओ ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने पुत्र ऐल से कहा 'यह गुप्त भेद है, इसका मैं बँसे कहूँ। फिर भी हे पुत्र ! तुमने मैं कह रही हूँ। क्योंकि माता पिता का एकमात्र आधार पुत्र ही है। दुःखपूर्ण सागर में डूबे हुए मनुजाना के लिये पुत्र ही उद्धार करने वाला महान् नौका है ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की वाता का सुनकर वह माता के धरणा पर गिर पड़ा और उगने माता से विनम्र हो कहा कि माता ! तुम सब सत्य कहो ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—इला ने अपने पुत्र पुह्रवा से, इक्ष्वाकु का वंशवर्णाधी कुल, उस कुल में अपनी उत्पत्ति, अज्ञात नाम राज्य-प्राप्ति, प्रियपुत्रा की उत्पत्ति, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय भार्या अज्ञात राज्य-अनिष्टा, मन्त्रिया और पुरोहितों के साथ वन को जाना, पुन उनको राजवर्णा का प्रेक्षा मृगया के प्रति आकर्षित, हिमालय की कन्दरा के पास अज्ञात, यक्षेश्वर के घर में प्रवेश करना, उमावन म प्रवेश करना, स्त्रीत्व प्राप्ति आदि बातें पूरा पूरा से तथा महेश्वर की आज्ञा से उमावन म पुरुष का प्रवेश-निषेध, यक्षिणी की बातें, कुप-प्राप्ति का वरदान और उनका विदार प्रेम, पुत्र का उत्पन्न होना आदि सब कुछ बातें सम्पूर्ण रूप से कह दी। उन सब घटनाओं का सुनकर पुह्रवा ने माता से कहा—
मैं क्यों ता कार्य कर्त्त बया करने से बर्त्ताण होगा ? माता ! यदि इतने से (वर्तमान अवस्था से) मुझे मनोर्य है तब ता हम प्रकार की विन्या की आवश्यकता नहीं। यदि मुझसे मन म कोई दूसरी इच्छा है तो मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥८३-८९॥

इलोवाच

इच्छेय पुस्त्वमुत्कृष्टमिच्छेय राज्यमुत्तमम् । अभिषेकं च पुत्राणां तव चापि विशेषतः ॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च मुक्तिमार्गस्य वीक्षणम् । सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः ॥९१॥

पुत्र उवाच

उपायं त्वां तु पृच्छामि येन पुस्त्वमवाप्स्यसि । तपसो वाञ्छ्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः ॥९२॥

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्रं यथाददत् । स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

तन्मत्सृज्यवनादंलो गत्वा पितरमञ्जसा । उवाच प्रणतो भूत्वा मातुः कृत्यं तयाऽऽत्मनः ॥९४॥

बुध उवाच

इलं जाने महाप्राज्ञ इला जाता पुनस्तथा । उमावनप्रवेशं च शमोराता तथैव च ॥९५॥
तस्माच्छुभप्रसादेन उमायाश्च प्रसादतः । विशापो भविता पुत्रं तावाराध्य न चाग्न्यया ॥९६॥

पुरुखा उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा भातरं शिवाम् । तीर्थाद्वा तपसो वाऽपि तत्पितं प्रथमं वद ॥९७॥

इला ने कहा—मैं पुनः अपना उत्कृष्ट पुरुषभाव और उत्तम राज्य को चाहता हूँ । अनेक पुत्रों का अभिषेक विधि रूप ॥ तुम्हारा अभिषेक करना चाहती हूँ । पुत्र ! तुम्हारे प्रसाद से मैं दान देना बन करना और मुक्ति मार्ग का अनुसरण आदि सब कुछ चाहता हूँ ॥९०-९१॥

पुत्र ने कहा—मैं तुमसे उन उपायों को पूछता हूँ जिन्हें से पुनः तुम पुस्त्व प्राप्त कर सकते हो । चाहें वह तपस्या से हो या अन्य विधि प्रकार से, मुझसे तुम यथावश्यक मे कहो ॥९२॥

इला ने कहा—पुत्र ! तुम पिता बुध के पास जाओ उनसे यथावश्यक पूछो । वह सब कुछ जानते हैं तुम्हारा हितकर उपाय बतावेगे ॥९३॥

ब्रह्मा ने कहा—माता वृकथनानुसार एलने पिता के पास अधिक विद्वान्भाव से युक्तों का गया अपना सम्पूर्ण कहानी सुना दो ॥९४॥

बुध ने कहा—महाप्राज्ञ मैं इल को तब और उनका इलारूप में परिवर्तन हुआ जाना उमावन प्रवेश करना और पहर का जाना आनिष्टनाया का जानता हूँ । दसल्लि हे पुत्र ! नाम और उमा का कृपा सही नाम से उद्धार हो सकेगा । उनकी आराधना से ही यह कार्य होगा अथवा नहीं ॥९५-९६॥

पुरुखा ने कहा—उम देव पहर और माता उमा को वैसे देव स्मृता हूँ तीर्थयात्रा से या तपस्या से इसको पितारी ! आप पहले बतलाइये ॥९७॥

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व तत्राऽस्ते सर्वदा शिव । उमया सहित श्रीमाञ्छापहन्ता वरप्रद ॥९१॥

ब्रह्मोवाच

पुरुषा पित्रुर्वक्ष्य श्रुत्वा तु मुदितोऽभवत् । गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गा प्रलोचयपावनीम् ॥९२॥

पुस्त्वमिच्छस्तथा भानुर्जंगाम तपसे त्वरन् । हिमवन्त गिरिं नत्वा मातर पितर गुरुम् ॥९३॥

गच्छन्तमग्न्यात्पुत्रमिला सोमसुतस्तथा । ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात् ॥९४॥

तत्र स्नात्वा तप किञ्चित्कृत्वा चक्रु स्तुतिं पराम् । भवस्य देवदेवस्य स्तुतित्रिममिम शृणु ॥९५॥

बुधस्तुष्टाव प्रथममिला च तदनन्तरम् । तत पुरुषा पुत्रो गौरीं देवीं च शकरम् ॥९६॥

बुध उवाच

यौ पुङ्गवेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिभौ सख्यौ ।
यावाचितौ स्कन्दगणेश्वराभ्या, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥९७॥

इलोवाच

ससारतापत्रयदावदग्धा, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्त ।
सद्य परा निर्बृत्तिमान्भवन्ति, तौ शकरी मे शरण भवेताम् ॥९८॥
आर्ता ह्यह पोडितमानसा ते, बलेशादिपोत्ता न परोऽस्ति कश्चित् ।
देव त्वदीयो चरणौ सुपुण्यौ, तौ न शरण्यौ शरण भवेताम् ॥९९॥

बुध ने कहा—पुत्र ! तूम गौतमी के तट पर आया। वहाँ तबदा उभा सहित धीमान् गङ्गा जी निवास करने हैं। वही साथ को मण्ड करने वाले और वरदाता हैं ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—पिता के वाक्या को सुनकर पुरुषा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह धीमान् त्रिमुवनगर्वन गौतमी गंगा के पास जाता इला को पुन पुण्यत्व प्राप्त करा देने की इच्छा से तपस्या करने के लिये जाता पिता गुरु और हिमालय की प्रणाम कर दास्यही गया। पुत्र का तपस्या के लिये जाते हुए देखकर साम सुन बुध और इला उस हिमालय पहाड़ से उतर कर पुत्र के पीछे प छ चले और गौतमी तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान और कुछ तपस्या कर देवाधिदेव शकर की अति उत्कृष्ट स्तुति की। जिस वचन से स्तुति हुई ईश्वर को मुखा। सबसे पहले बुध ने सदानन्द इला ने सत्यरवान पुत्र पुरुषा ने देवी गौरी और शकर की स्तुति की ॥९९॥

बुध ने कहा—ओ प्रहृत्या सुवर्ण के समान गौरवण सुन्दर रूप वाले और स्कन्द एवं गङ्गा के अगम रूप कुटुम्ब से सदा पूजित रहने हैं ऐसे अक्षयसल दावर और पावनी हमारे रक्षक हैं ॥१००॥

इला ने कहा—ससार के त्रिविध तपस्वी दावान्त से दम्य व्यक्ति जिस दावर और पावनी का ध्यान कर अत्यन्त सुख तथा शान्ति प्राप्त करते हैं वे पावनी शकर हमारे सहायक हैं। मैं अत्यन्त आनन्द और व्यक्तिचित्त हूँ। आपका छोड़ कर और बाई मेरा रक्षक नहीं। दब ! आपका वे सुख पुनित चरणानन की रक्षा करने वाले चरण मेरे रक्षक हैं ॥१०१॥

पुरुषा उवाच

ययो सकाशादिदमभ्युदेति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम् ।
जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरण भवेताम् ॥१०७॥
यो देवदेव महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुत्रा-
प्रोक्त धृतो प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०८॥

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्टं प्रदास्यामि युष्मभ्य तद्ब्रूतु मे । कृतकृत्या स्य भद्रं वो देवानामपि दुष्करम् ॥१०९॥

पुरुषा उवाच

इलो राजा तवाज्ञात्वा धनं प्राविशदम्बिके । तत्समस्त्व सुरेशानि पुस्त्व दातु त्वमर्हसि ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

तत्प्रेत्युवाच तान्सर्वाभयस्य तु मते स्थिता । ततः स भगवानाह देवीवाक्यरतः सदा ॥१११॥

शिव उवाच

अप्राप्तयेकमात्रेण पुस्त्व प्राप्नोत्वय नृप ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

स्नाताया बुधभार्याया शरीराद्धारि सुखम् । नृप गीतं च लावण्यं यक्षिण्या यदुपाजितम् ॥११३॥

पुरुषा ने कहा—जिनके समीप से (जिन प्रकृति पुरुष से) यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ अर प्रलय काल
संजिनम पुन लीन हो जाता है उस जगत् का एक मात्र रक्षक व जगन्निर्माता (संसार रूप) पावनी शिव पर रक्षक
है । परमोत्तम क अवसर पर देवबन्ध की उपस्थिति में गिरि-पुत्री ने भरे चरणा को पकड़िय ऐसा कहा ।
उस समय प्रमदुराव पुरुष जी बिना किसी सकोच क पावता के जिन चरणा का पकड़ लिया वे गरणागत की रक्षा
करने वांन पावनी ने चरण मेरी रक्षा कर ॥१०७ १०८॥

श्री देवी (पावती) ने कहा—तुम लम्बा की अज्ञात वस्तु क्या है कही मैं अवश्य प्रमाण करूँगी बाहे बहुत
देवदुर्लभ ही क्या न हो । तुम लम्बा अब सफल मनारथ हा (अपन को सफल समझो) वम लम्बा की कल्याण हो ।
देवताभा से भी दुर्लभ वर प्राप्त करागे यह निश्चित समझो ॥१०९॥

पुरुषा ने कहा—अम्बिके ! राजा इल लम्हारी महिला और जात्रेण को न जानकर उदावने
म धूस गया । सुरेश्वरी ! उस अपराध को क्षमा कर दो तुम कृपा कर उनको पुन पुस्त्व (पुरुषभाव) प्रदान
कर दो ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—गिर की आगा व अनुसार ही वाय करने वाली पावनी ने गिर का अभिप्राय समझ
कर एसा ही हा मह कह गिया । यह सुनकर सर्वत्र दवी उमा म ही लीन रहने वाले गिर ने कहा ॥१११॥

शिव ने कहा—यहाँ केवल अभिपन्न करने से ही यह राजा पुस्त्व (पुरुषभाव) प्राप्त कर लमा ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—तुम भार्या इला व स्नान करने से जो जल गिरा और नृप भीत सौन्दर्य आदि जो कुछ
गणिनी से सीखे गये वे वे सभी जल-मारा व रूप व परिणत हीकर गया के जल में मिल गये ॥११३॥ जिससे नृत्या

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाभ्रमसि समाविशत् । नृत्या गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूवुरे ॥११४॥
 ताश्चापि संगता गङ्गा ते पुण्याः संगमात्त्रय । तेषु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रलदम् ॥११५॥
 इला पुंस्त्वमवाप्याय गौरीशंभो प्रसादतः । महाम्युदयसिद्धयर्थं वाजिमेधमयाकरोत् ॥११६॥
 पुरोधसं वसिष्ठं च भार्या पुत्रांस्तथैव च । अमात्यांश्च धनं कोशमानोय स नृपोत्तमः ॥११७॥
 धतुरङ्गं धनं राज्यं दण्डकेऽस्यापयत्तदा । इसस्य नाम्ना वित्यातं तत्र तत्पुरमुच्यते ॥११८॥
 पूर्वजातानयो पुत्रान्सूर्यवंशप्रमाणतः । राज्येऽभिषिष्य पश्चात्तमलं स्नेहादसिञ्चयत् ॥११९॥
 सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति । सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठः श्रेष्ठोऽभवन्मुने ॥१२०॥
 यत्र च क्तवो वृत्ता इसस्य नृपतेः शुभा । यत्र पुंस्त्वमवाप्याय यत्र पुत्राः समागताः ॥१२१॥
 यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गला । नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गा संगतास्तानि नारद ॥१२२॥
 तीर्थानि शुभवाण्यासन्सहस्राण्यय पोडश । उभयोस्तीरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वरः ॥
 तेषु स्नानं च दानं च सर्वं क्रतुफलप्रदम् ॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिबाह्ये स्वयंभूविसंवादे तीर्थमाहात्म्ये वृषेलापुरेश्वरवसिष्ठ-
 नृत्यगीतसौभाग्यलेश्वरादिपोडशसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

गीतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशतमोऽध्यायः ॥३९॥

गीता और सौभाग्या नाम की नदियाँ उत्पन्न हो गईं । ये सभी नदियाँ जहाँ गंगा से मिलीं, वे तीनों संगम-रूपा
 अत्यन्त पुण्य क्षेत्र बनें सिद्ध हुये । उन तीनों में स्नान करने और दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥११४-११५॥
 इसके अनन्तर गौरी और शम्भु की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त हुआ जाने के बाद राजा इसने परम कल्याण (मोक्ष)
 की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥११६॥ उस उत्तम नृप ने पुरोहित वसिष्ठ, भार्या, पुत्र, राज-
 कोश, मन्त्रीगण और सेना को लेकर उस दण्डकारण्य में धतुररग सैन्य से युक्त वित्तुत राज्य की स्थापना की ।
 इस के नाम से ही उस राज्य में वह नगर, जो कि राजधानी था, इलपुर नाम से कहा जाने लगा ॥११७-११८॥
 इसने पश्चात् अपने पहले के उत्पन्न पुत्रों को पैतृक राज्य (यज्ञ यज्ञ से प्राप्त राज्य) पर अभिषिक्त कर दिया ।
 (राज्याधिकारी बना दिया) । तत्पश्चात् नवीन राज्य पर ऐल (पुरुखा) को वह सोच कर कि यह सोम वश का
 संस्थापक श्रीमान् राजा हो—स्नेह से अभिषिक्त कर दिया ॥११९॥ मुने । वह पुरुखा दोष अपने भाइयों से बुद्धि
 मान्, गुणवान् और श्रेष्ठ हुआ ॥१२०॥ राजा इस ने जिस स्थल पर शुभ यज्ञ हुये, जहाँ उनको पुरुषत्व की प्राप्ति
 हुई, जहाँ उनके सब पुत्र भाइयों और जहाँ यक्षिणी से दिये हुये नृत्य, गीत और सौभाग्य आदि नदी होकर गंगा में मिले,
 नारद । ये सब धर्मदायक तीर्थ वहाँ हुये साथ ही अन्य सोलह हजार और भी तीर्थ वहाँ उसके दोनों तट पर स्थापित
 इलेश्वर शंकर भी हैं । उन तीर्थों से स्नान, दान आदि पुण्य कर्म करने से सब पदों का फल

तीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक ही आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१०८॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति स्थातं ब्रह्महत्यादिनाशनम् । यत्र चक्रेश्वरो देवचक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चकार्यं शकरं प्रभु । पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । दक्षज्ज्ञो प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे ॥३॥
‘दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे । अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलौमसे ॥४॥
‘दाक्षायण्या श्रुते दास्ये अनाह्वानस्य कारणे । महत्यायां चोक्तवत्या कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी ॥५॥
‘पितरं नाशये पापं क्षमेयं न’ कथंचन । भूष्यती दोषवाच्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥६॥
‘पत्युः भूष्यन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कुत । यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः ॥७॥
किं पुनः सकलापीडो महादेवो जगद्गुरु । श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम् ॥८॥
तस्मात्पश्य इमं देहमिदमुक्त्वा सा महासती । कोपेन महताऽऽविष्टा प्रज्ज्वाल सुरेश्वरी ॥९॥

अध्याय १०६

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्महत्या आदि सभी पापों को नाश करने वाला विष्णु चक्रतीर्थ है, जहाँ चक्रेश्वर देव से विष्णु ने चक्र प्राप्त किया था ॥१॥ जिस स्थान पर स्वयं प्रभु विष्णु ने चक्र के लिये शकर की पूजा की, वह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२॥ जिसके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥३॥ एक समय दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया । उसमें सब देवता एकत्र हुए । दक्ष के मन में शिव के प्रति कुछ मलिनता हो गई थी, जिससे उन्होंने महेश्वर, शर्व, देव, शिव को दूषित (अश्राद्ध) घोषित कर दिया ॥४-५॥ दाक्षायणी ने इन बातों को सुना और निमन्त्रित न होने का कारण समझ लिया । अहत्या के मुद्दे से कुछ अनुरजित वाक्यों की सुनकर वह सुरेश्वरी अत्यन्त क्रुपित हो गई ॥६॥ उन्होंने अपने पति के प्रति पिता की आलोचनारी बातें सुनकर कहा कि मैं अवश्य पापार्ता घोषित हो गई ॥७॥ तो फिर सबके स्वामी जगद्गुरु शकर के विषय में क्या कहा जाय । ऐसे पति की मैंने निन्दा सुनी है, इसलिए अब अपने शरीर को धारण न करूँगी ॥८॥ इस अवधि शरीर को छोड़ दूँगी । यह कहकर वह महासती सुरेश्वरी अत्यन्त क्रोध से स्वयं जलने लगी ॥९॥ शिव ने ही अपने ध्यान की ललाटे उन्हीं योग द्वारा

दह बलाघोगाच्च तत्पजे । महेश्वरोऽपि सकल वृत्तमाकार्ण्य नारदात् ॥१०॥
 कोप प्रपच्छ जया च विजया तथा । ते ऊचतुश्चे देव दक्षश्रुतुविनाशनम् ॥११॥
 इति श्रुत्वा मल्ल प्राया महेश्वर । भोमैर्पणे परिवृतो भूतनाथे सम ययौ ॥१२॥
 त सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृत । दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षित ॥१३॥
 रत्नयुग्रेर्मुनिभि परिवारित । इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभि सर्वत परिपालित ॥१४॥
 मयदेश्च स्वाहा शब्दैरलकृत । अद्वा पुष्टिस्तया तुष्टि शान्तिलज्जा सरस्वतो ॥१५॥
 त्वरो क्षान्तिरुषा आशा जया मति । एताभिश्च तयाऽज्याभि सवत समलकृत ॥१६॥
 त्मना चापि कारितो विश्वकमणा । सुरभिन्विनो धनु कामधुक्कामबोहिनी ॥१७॥
 तमवर्षाभि सबकामसमुद्दिमान । कल्पवृक्ष पारिजातो रुता कल्पलतादिका ॥१८॥
 । किञ्चित्त्र तस्मिन्मले स्थितम् । स्वय भयवता पूष्णा हरिणा परिरक्षित ॥१९॥
 रतां वाऽपि क्रियतां ह्यीयतां सुखम् । एतैश्च सर्वतो वाक्पर्यर्दक्षस्य पूजित मल्लम् ॥२०॥
 धीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या धृतो ययौ । शोककोपपरोरतात्मा पश्चाच्छूलपिनाकधुक ॥२१॥
 महाबलौ महाभूतैरलकृत । तानि भूतानि परितो मले वेष्ट्य महेश्वरम् ॥२२॥
 तयामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत । पलायन्त तत कचित्केचिदगत्वा तत शिवम् ॥२३॥
 त देवश केचित्कुप्यन्ति श करम् । एव विध्वंसित यज्ञ दुष्टवा पूया समभ्यगात् ॥२४॥

छोड़ दिया । नारद के मुख से सारी घटना की सुनकर चकर अचलत हुए हुए । उन्होंने जवा और
 तकर इस विषय म पूछा । उन दोनों ने दाशायणी की अर्थ से इति तत्र की कथा दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने
 । वहीं । यह सुन कर महेश्वर अपने भयङ्कर अनुचरों और भूतनाथों (रक्षकों) के साथ उतरा यज्ञ म
 २॥ वहाँ वह दक्ष का यज्ञ निबन्धनों से घेर लिया गया जहाँ देव और ब्रह्मा भर्ता/मति सम्मानित थे जो
 से शुद्धता पूवक अचलत रक्षित था जो वणिष्ठ आदि तेजस्वी मुनियों से घिरा हुआ दृढ़ आश्रित
 में चारों ओर से रक्षित ऋण यज्ञ सम्भवेद की ध्वनि और स्वाहा आदि से शुद्धि यद्वा पुष्टि पुष्टि
 । सरस्वती भूमि की सारी क्षान्ति उपा आता जया अति आदि तथा अर्थ देखिये से मुग्धाभि महा
 कल्पवृक्ष से भर्ता/मति बनाया हुआ मुरभिन्विनी धनु कामधुक् कामबोहिनी आदि कामनाओं की वर्या
 । मुरभिना तथा शम्भु वर्या । ये मुक्त और कल्पवृक्ष पारिजात कल्पलता रुता आदि आहुति अर्पित
 । उत यज्ञ म उपस्थित थे । वह स्वयं दृढ़ पूया और विष्णु से परितः था ॥१३ १९॥ इति अर्थ भावन
 । प्रारम्भ कीजिये यहाँ मुगधुक् विराजित आदि निष्ठ वाक्यों से दक्ष का वह यज्ञस्थल दलाप्य
 पट्टे कीरभद्र मद्रनाली के साथ वहाँ गया पीछे गूल और पिनाक (धनुष) धारण करते वात दास
 इस प्रकार महादेव दास अपने उद्भूत और भयङ्कर अनुचरों महाभूता से मुग्धाभित हुए वहाँ गये
 उन भूता को चारा और पचासान निपुण करयण का विनाश कर दिया । इस विनाशालीला को देखकर
 तेलाहल हो गया ॥२२३॥ कुछ देर उपर भागने लगे कुछ देवे दास व पास दास स्तुति करने लग तो
 दास कोप से घुटने लगे । इस प्रकार यज्ञ का ध्वस्त होने देवदास पूया दास का नामने आये ॥२३ २४॥

। दन्तानयोत्पाटय इन्द्रं व्यद्रावयत्सणात् । भगस्य चक्षुषो विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत् ॥२५॥
करं पुनर्दोर्म्या परिधाम्य समाक्षिपत् । ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं मे क्षरणं ययुः ॥२६॥

देवा ऊचुः

१ आहि गदापाणे भूतनायकृताद्भयात् । महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः ॥
दग्धो मलः सर्वो वैष्णवः पश्यतो हरैः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एषा चक्रमुत्सृष्टं भूतनायकधं प्रति । भूतनायोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽप्रसन्नः ॥२८॥
ते चक्रे ततो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः । तया स्थितानवेक्ष्याय दशो यज्ञं सुरानपि ॥
दाय शंकरं देवं दशो भक्त्या प्रजापतिः ॥२९॥

दक्ष उवाच

प शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे । जय कल्याणभृच्छभो जय कालारमणे नमः ॥३०॥
दिकर्तृर्नमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते । ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥३१॥
त्रिमूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर । सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामदे ॥३२॥
मो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने । यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते ॥३३॥
सदान नमस्तेऽस्तु हृष्यबाह नमोऽस्तु ते । यज्ञहर्त्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते ॥३४॥

एतु उन्होंने पूजा के बात उल्लाह लिये और इन्द्र की साथ भर में वहाँ से भगा दिया । विप्र । वीरभद्र ने भग की आँखें
नकाश की ॥२५॥ सूर्य की भुजाओं के बीच पकड़ कर घुमा कर रेंक दिया । तदनन्तर सब अकारण होकर विष्णु
की शरण में गये ॥२६॥

देवताओं ने कहा—हे गदापाणि । भूतनाथों के इस उपद्रव से रक्षा करी, बचाओ । तुम्हारे देखते देखते
उपद्रविया के शरदार (शस्त्र के गण) से यह वैष्णव (विष्णु का) यज्ञ जला दिया गया, नष्ट कर दिया गया ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुहार सुनकर विष्णु ने भूतनाथ को भारते के लिये चक्र चलाया । भूतनाथ ने भी चक्र
को अपनी ओर आते देखकर थका हुआ । विष्णु ने असीम चक्र की दक्ष प्रकार व्यर्थ होते देखकर सर्व लोकपाल
भयभीत हो इधर उधर भागने लगे । प्रजापति दक्ष ने यज्ञ और देवी की, ऐसी स्थिति देखकर विनीत भाव से शस्त्र
की स्तुति की ॥२८-२९॥

दक्ष ने कहा—शंकर । सोमेश । आपकी जय हो, हे सर्वज्ञ । शम्भु । जय हो । कल्याण करने वाले ।
जय हो । राम । जय हो । काल रूप शस्त्र को नमस्कार है । आदिकर्ता । आपको नमस्कार है । नीलमण्ड ।
आपकी नमस्कार है । ब्रह्मप्रिय । आपको नमस्कार है । ब्रह्मरूप । आपको नमस्कार है । त्रिमूर्ति को
नमस्कार है । परमेश्वर । देव । त्रैलोक्यव्यापी । आपको नमस्कार करते हैं । विश्वपति । त्रिभुवन के आधार ।
हृष्यबाहों को देने वाले । अक्षय की नक्षत्र है । वेदान्त (जीव) से जानने योग्य आपको नमस्कार है । परमात्मा को
नमस्कार है । यज्ञरूप । आपको नमस्कार है । यज्ञधाम । आपको नमस्कार है । यजमान । आपको नमस्कार है ।

ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल । भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः । किं ददामीति तं प्राह क्रतुः पूर्णोऽस्तु मे प्रभो ॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः । शंकरः सर्वभूतात्मा कर्णधारणालयः ॥३७॥
क्रतुं कृत्वा ततः पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने । एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधोयत ॥३८॥
यथागत सुरा जम्मुः स्वमेव सदनं प्रति । ततः कदाचिद्देवानां वीत्यामां विप्रहो महान् ॥३९॥
बभूव तत्र वैतेभ्यो भीता देवाः ध्रियः पतिम् । तुष्टुषु सर्वभायेन वचोभिस्तं जनार्दनम् ॥४०॥

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिवंशः कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति ।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्या न परः समानो, न चाधिकस्ताक्षरयान्नुत्तिहात् ।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्यः कृपया प्रपन्नान् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्ब्रह्मचक्रमदाधरः । किमर्थमागता सर्वे तत्कृतास्मितीयुवाच तान् ॥४३॥

हृष्य को डोने वाले । (अग्ने !) आगको नमस्कार है । यज्ञ का मण्ड करने वाले का नमस्कार है, परल देने वाले को नमस्कार करते हैं । जगन्नाथ ! शरण में आये हुए को रक्षा करने वाले ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । प्रभो ! तुम्हीं भगवा जी अभयना के रक्षक हो ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—४५ प्रकार काकर की स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये । उन्होंने दक्ष से कहा कि 'वया दूँ।' दक्ष ने कहा—प्रभो ! मेरा यज्ञ पूर्ण हो । भगवान् देवदेवेश्वर काकर ने ऐसा ही हो यह कहा । मुने ! ब्रह्मा ने मागर, गज प्राणिमा मे निवास करने वाले भगवान् उग दक्ष के यज्ञ को पूरा कर आने अनुचर भूतो के साथ अन्तर्हित हो गये । आप हुए देवता भी अपने अपने स्थान को चले गये । अन्नन्नर किंगी समग्र देवा और दानवा मे अग्नि भयकर मुद्र हुआ । उस मुद्र में देवता दानवा मे भयभीत हो गये । त्रिवंश हो लक्ष्मीपति जनार्दन की शरण में गये । वही जगत् उन लोगों ने सब माता मे भगवान् को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न किया ॥३६-४०॥

देवताओं ने कहा—त्रिवंश देवल ब्रह्मा मातृकादेवक इन्द्र आदि देवता उदरी प्राणि के लिए भयसा करते हैं, वहीं लोभी त्रिम विष्णु की शरण-मेक्षा में लक्ष्मी रहती है उग ब्रह्मचर्य विष्णु की शरण में हम आये हुए हैं । त्रिम मन्त्र पाहन भगवान् नृसिंह मे त्रिवंश मे उत्तम, ममान या अघिह दूसरा बर्हि नहीं है वे देवदेव प्रसन्न (शरण में आये) हम लोगों की समस्त भयदकर विभीषिता मे रक्षा करें ॥४१-४२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा की प्रार्थना मुद्रकर पाये, भय और भयापारी भगवान् अपना प्रसन्न हो गये । उन्होंने देवों से कहा कि 'किमिति गुप्त लोग यहाँ आये हो, मैं उन सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूँगा' ॥४३॥

देवा ऊचुः

भयं च तीव्रं दंष्ट्रेभ्यो देवानां मधुसूदन । ततस्त्राणाय देवानां मतिं पुरः जनार्दन ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

तानागतान्ह्रिः प्राह अस्तं चक्रं हरेण मे । किं करोमि भतं चक्रं भवन्तश्चातिमगता ॥४५॥
धातुं सर्वं देयमणा रक्षां च क्रियते मया ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्चकार्यमुद्यत । गोदावरीं ततो गत्वा शभो पूजां प्रचक्रम ॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यैः सुगन्धैर्दंशभिः शतैः । भक्तितो नित्यवत्पूजां चक्रे विष्णुरमापते ॥४८॥
एव संपूज्यमाने तु तपोस्तत्त्वमिदं शृणु । कमलानां सहस्रे तु यदेकं मंदं पूर्यते ॥४९॥
तदाऽसुरारि स्व ज्ञेयमुत्पाट्याद्यधमकल्पयत । अर्घ्यपात्रं करे गृह्य सहस्रकमलान्वितम् ॥
ध्यात्वा शभुं वदावर्धमनन्यशरणो हरिः ॥५०॥

विष्णुरवाच

त्वमेव देव जानीषे भावमन्तर्गतं नृणाम् । त्वमेव शरणोऽधीशोऽग्नौ का भवेद्विचारणा ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

षडनुदभुनयनो निलिल्येऽसावितीश्वरे । भवानीसहितं शभुं पुरस्तादभवत्तदा ॥५२॥

ब्रह्मो ने कहा—मधुसूदन ! देवा से हम देवा का कारण भय डाला है। इसलिये आप देवताओं का रक्षा का उपाय कीजिये ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन शरणागत देवा शभुगवान् विष्णु ने कहा—मरा चक्र शस्त्र ने च लिया है। क्या कर ? पत्र हाथ में निकल गया और आप लोग इस समय विपत्ति में पड़ गये। फिर भी आप लोग इस समय जइय में आप लोगो की रक्षा करुगा ॥४५-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं के लिये जान पर विष्णु चक्र लान के लिये उद्यत हो गया। इस अभिप्रेय में व गौतमजी के हाथ पर गय और शस्त्र का पूजा करने लगे। विष्णु ने प्रतिनिधि भक्तिपूर्वक दिव्य मुद्रा पित हस्तर मुखे बभूव। उस उपापति का पूजा करने लगे। इस प्रकार पूजा करते समय उन देवा देवा ॥ जो रहस्य हुआ उभवा मुनी। जब महेश्वर बभूव। एक बभूव ही गया तब असुरगण विष्णु ने अपने बभूव नत्र बाही। निरालवर अर्घ्य देने के कि उग (मरवा) को पूरा किया। इस प्रकार हजार बभूव का पूजा कर अर्घ्य पात्र का हाथ में डालर अन्य भावना से विष्णु ने शस्त्र का ध्यान कर अर्घ्य प्रदान किया ॥४७-५०॥

विष्णु ने कहा—ह ! तुम्ही मुन्ना का मन के भावा का अमन है स्वयं। तुम्ही एकमान शरण है। इस विचार का क्या आवश्यकता है ? ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् विष्णु इस प्रकार प्राचना करते हुए शस्त्र में प्रतीति हो गये, उनकी माँगा में प्रतीति

गङ्गामलिङ्ग्य च विविपैर्वरेणपूरयद्भरिम् । तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा ॥५३॥
 ततः सुरगणाः सर्वे तुष्टुबुह्निशंकरो । गङ्गां चापि सरिच्छेष्टां देवं च वृषभध्वजम् ॥५४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्षतीर्थमिति स्मृतम् । यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिस्विपैः ॥५५॥
 तत्र स्नानं च दानं च यः कुर्यात्पितृतपणम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गभागभवेत् ॥५६॥
 तत्तु चक्राङ्कितं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्षतीर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

श्रीतमोमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं 'चक्षतीर्थ'दिनन्तरम् । यत्र चक्रेश्वरो देवद्वयक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
 यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकर विभुम् । पूजयामास तत्तीर्थं चक्षतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥

बहने लगे । इसी समय भवानो उठि० गकर प्रकट हुये । उन्होंने उदयो प्रेक्षपूर्वक गल लगाकर विविध करदान भी कर्पा कर प्रसन्न किया । पुनः वही चक्र विष्णु के समीप चला आया और उदया नेत्र भी पूर्ण हो गया । तदनन्तर सब देवताओं ने हरि और गकर तथा श्रेष्ठ नदी गया भी स्तुति की । तभी से वह तीर्थ चक्षतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया । उसने श्रीमदश्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । उस तीर्थ में जो कोई स्नान, दान और पितृतपण आदि गुप्त कर्म करता है वह सब पापों से मुक्त होकर अपने पितरों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है । ऐसा वह तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित देखा जाता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्षतीर्थवर्णन नामक एक ही नवी अध्याय समाप्त ॥१०९॥

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—चक्षतीर्थ के बाद पिप्पलतीर्थ पन्थ प्रसिद्ध है, जहाँ चक्रेश्वर देव, त्रिनसे हरि ने चक्र प्राप्त किया था—रहते हैं ॥१॥ जहाँ विष्णु ने चक्र के लिये प्रभु गकर भी पूजा की, वही तीर्थ चक्षतीर्थ के नाम से विख्यात

यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः । महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः ॥३॥
चत्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम् । शृणु नारद तद्भक्त्या साक्षाद्देवोदितं मया ॥४॥
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः । तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गमस्तिनी । इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता ॥६॥
दधोचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तथा महत् । दधीचिरग्निमाश्रित्यं गृहधर्मपरायणः ॥७॥
भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः । स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८॥
तस्य प्रभावात्तं देशं नारयो वैत्यवानवाः । आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मु र्देवाविद्यास्तयाऽश्विनौ । इन्द्रो विष्णुर्वमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०॥
अयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मत्सृगणैः । दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११॥
दधीचिर्जातसंहर्षः सुरान्पूज्य पूयकपूयकः । गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२॥
पृष्ठाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रे सुरा अपि । दधीचिमनुवादेवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३॥
आसीनं हृष्टमनसं श्रुतिं नत्वा पुनः पुनः ॥१४॥

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके श्रुयेऽस्माकं भविष्यति । त्वादृशं सकृपो येषु मुनिर्भूक्तपदादपः ॥१५॥

हुवा ॥१२॥ जहाँ भगवान् शम्भु विष्णु पर प्रसन्न हुए वह पिप्पलतीर्थ कहा जाता है, जिसकी महिमा वर्णन करने में
येपनाम भी समर्थ नहीं हैं ॥३॥ नारद । चत्रेश्वर और पिप्पल नाम पढ़ने का कारण भक्तिपूर्वक सुनो । यह आश्विन
मासात् वेद म भी कहा गया है ॥४॥ दधीचिनाम के एक परमविख्यात, गुणवान् मुनि थे । उनकी परम पुत्रा
बुद्धिनी और पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ वह प्रसिद्ध लोपामुद्रा का बहिन गमस्तिनी थी, जिसका लोग वडवा भी
कहा करते थे ॥६॥ दधीचि की वह प्रिया भी प्रतिदिन ब्रह्मन् तप किया करती थी । स्वयं दधीचि नित्य ही अग्नि
स्वायम्बा कर गृहस्थ धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते थे ॥७॥ वे भार्यारथी के तट पर निवास कर देव और अतिथिया की
एकान्त सेवा में लगे रहते थे । उनकी प्रिया के प्रति अनन्य प्रेम रखन वाले वे शान्त दधि चि दूधरे अगस्त्य के भवान्
थे ॥८॥ मुनिशार्दूल । उनकी तपस्या के प्रभाव में उस प्रदेश में और अगस्त्य श्रुति के आश्रम में कार्य भी बहुत
वैत्यवान् आने का आदेश नहीं करते थे ॥९॥ एक दिन आश्विनमासी उपद्रवी दैत्या का जातकर हट, आदित्य, अश्विन,
इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, आदि देवता उनके यहाँ जाये जो विजय से अत्यन्त प्रसन्न थे, मत्सृगण उनकी स्तुति कर रहे थे ।
उन देवेश्वर ने मुनिपुङ्गव दधीचि को देखकर उनकी अगिनन्दन किया ॥१०-११॥ दधीचि अपने देव अतिथिया का
देवकर आनन्द के भारे कूले न समझे । भार्या का महित उन्होंने उन देवा का प्रेमपूर्वक अतिथि-सन्धार किया ॥१२॥
पुत्रागमन होने के बाद कुशलाने अपनी कुशल-वार्ता सुनाई । पुन देवगण प्रसन्न होकर भार्याश्रित बैठे हुये श्रुति
दर्शानि को बार-बार नमस्कार करने लगे ॥१३-१४॥

देवों ने कहा—श्रुते । अब तुम्हारे सभान् पृथ्वी के कल्पवृक्ष की कृपा हम लाया पर है सब भला हम

एतदेव कल मुसा जीवता मुनिसत्तम। तोर्याप्सुतिभूतदया दर्शनं च भवादृशम् ॥१६॥
 यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१७॥
 वयं च सुखिनो ब्रह्मस्त्वयि दृष्टे विक्षेपत। नाऽऽयुधं क्लमस्माक वोढु नैव क्षमा वयम् ॥१८॥
 स्थाप्यदेशं न पदयाम आयुधाना मुनीश्वर। स्वर्गसुरद्विधो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च ॥१९॥
 नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्वाणि मानव ॥२०॥

नैवान किंचिद्भयमस्ति विप्र, न हानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
 स्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समान ॥२१॥
 जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ, वयं च पूर्वं निहता दैत्यसघा ।
 अस्त्रैरलं भारभूतं कृतार्थं, स्थाप्य स्थानं ते समीपे मुनीश ॥२२॥
 दिव्यान्भोगाकामिनीभिः समेतान्देवोद्याने मन्दने सभजाम ।
 ततो याम कृतकार्या सहेन्द्रा, स्व स्व स्थानं चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥
 त्वया कृता जायता तत्प्रज्ञाधि समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य बघीचिरेव, वाक्यं जगौ विमुधानेयमस्तु ।
 निवापमाणं प्रियशीलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विदुःकारिणा ॥२५॥

लोगा को कौन सा पदार्थ दुःख होगा ? मुनिसत्तम ! अनुप्य जीवन को पल तीयादन प्राणिया पर दया आपर समान
 महापुरुषा को दान ह ॥१६॥१६॥ मुने ! आह हम् लोग विनम्र भाव से प्रमत्तव जो कुछ कह रह हैं उस पर
 ध्यान वाजिदे। बन् वदे बलगाती दैत्या को जे तजर हम वहाँ आय हुए हैं। ब्रह्मन् ! हम लोग गुस्ता हैं। आपको
 देतकर और विषय रूप से प्रसन्न हो रही हैं। ये अस्त्र गस्त्र अब भार से आन पड़ते हैं यकावट के कारण इन
 व्यय अस्त्रा को डोने की गक्ति भी नहीं रह गई है ॥१७॥१८॥ मुनीश्वर ! इन आयुधा को रखन क लिये कोई
 सुरा तन स्थान भी नहीं दियाई दे रहा है। स्वयं म रखन पर राक्षस पला पर जान पर छान लेंगे। इसी प्रकार यदि
 इन अस्त्रा को रसातल ले जाया जाय तो वहाँ भी यही दगा है। इत्यन्त्ये ह भानव ! (प्रतिष्ठा देने वाले छवरी
 प्रतिष्ठा करने वाग्) आपने आश्रम म इन अस्त्रों को रख जा रहा ह ॥१९॥२०॥ यवाकि ह विप्र ! वहाँ न ता
 रागम। से और न तो हानवों से ही भय है। यह पुण्य स्थान आपकी जागा (नर) म सुरक्षित है आने समान
 सरहा म भी कोई नहीं है ॥२१॥ मुनं ग ! श्रानिया म छट ! हम लोग वागुत्रा को जल लिया है दैया
 को पत्रे हा विनम्र कर दियाई अब इन भारपूर्ण युद्धाय अगाव व्यय अस्त्रावा कोई आवयवला नहीं और आपने
 सम प रखने पाय स्थान म है ॥२२॥ अब हम लोग कामिनिया न राय दवाधान नन्दनवन म दिव्य भोगा ना भोग
 करेग इमलिये हम लोग इन्द्र के सहित आनी दगा मे वृन्तव्य हाव र अपने-अपने स्थान को जा रहे हैं। अब
 दास्त्रागा की रक्षा आप के ही हाथ होगी इमलिये आना दीजिय आप ही इन दास्त्रा की रक्षा और देख भाल
 करन म समर्थ हैं ॥२३॥२४॥

ग्रहा ने कहा—आ की एगी प्रायना मुनवर दर्षाचि न देया से कहा नि एवमस्तु। यह देवावर प्रिय स्वभाव
 वाली स्त्री ने बार बार भना किया कि इस वैभवंस्य पंदा करन वाच देव-नय म हाथ लगाने की क्या आवश्यकता ॥२५॥

मे जातशास्त्रा परमार्येनिष्ठा, सत्सारचेष्टासु गतानुरागं	1
तेषा परार्यं यस्यनेन किं मुने, येनात्र वाऽमृतं सुखं न किञ्चित्	॥२६॥
देवद्वियो द्वेषमनुप्रयान्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्यं शृणुष्व	1
नष्टे हूते चाऽऽयुधाना मुनीश, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति	॥२७॥
तस्माभेद वेदविदा वरिष्ठ, युक्तं द्रव्ये परकीये ममत्वम्	1
तावत्तु मंत्रो द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हूते रिपवस्ते भवन्ति	॥२८॥
चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यहाने ततस्ते, दातव्यमेवाधिने किं विचार्य	1
नो चेत्तस्मात् परकार्याणि कुर्युर्वाग्मिर्मनोभि कृतिभिस्तथैव	॥२९॥
परस्वसंभारणमेतदेव, सर्वभिर्निरस्तं त्यज कान्तं सद्यः	॥३०॥

ब्रह्मोवाच

एव प्रियाया वचनं स विप्रो, निशम्य भार्यामिवमाह सुभ्रूम ॥३१॥

दधोच्चिश्वाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतोति वाणी न सुखं ममेति ॥३२॥

मुने! जो शास्त्रन परमाथ (मोक्षज्ञान) में निष्ठा रखने वाले और सासारिक व्यापारों से विरक्त हैं उनको ऐसे दूसरों के व्यर्थ कामों में पड़ने से क्या लाभ? जिनके करने से न तो कोई लौकिक सुख हो न पारलौकिक ॥२६॥
विप्रवर्य! मुनिदे इस प्रकार स्थान देने से रागसं कुपित हो जायगा। मुनीश! परमात्मा के नष्ट हो जाने से या चोरी चले जाने से देवता कुपित होगे और शत्रु बन जायेंगे ॥२७॥ इन कारणों से हे देवता म श्रद्धा! दूसरे के द्रव्य में इस प्रकार ममत्व उत्पन्न करना कदापि उचित नहीं। जब तक यह पास (मोक्ष) प्राप्त है तब तक मंत्री है नष्ट हो जाने पर अवश्य चोरी चल जाने पर वे ही शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥ यदि द्रव्यज्ञान की शक्ति है तो पाचका को घन अवश्य देना चाहिये वहाँ आग-पीछा सोचने की आवश्यकता नहीं यदि दान की शक्ति नहीं है तो सज्जन व्यक्ति की या दूसरों का नाश वाणी भन तथा रचनाओं से करना चाहिये ॥२९॥ यही कारण है कि दूसरा की सम्पत्ति अपने पास रखने को सज्जन ने बार बार शना किया है और निन्द्य माना है।
इक्षव्य वान्त! आप अपने घस निदक्य का छोड़ दीजिये ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया को इस प्रकार की बात सुनकर विप्र दधोचि ने अपनी सुन्दर भी वाली पत्नी से कहा ॥३१॥

दधोचि ने कहा—भद्र! पहले देवताओं को वाग्मन द्वारा सम्मानित कर पुन नहीं बहना मुझको उचित भगवा सुनकर नहीं जान पड़ता ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया के प्रति पति का वही हुई जाना को सुनकर वे देवता अपने तेजोमय (चमकने वाले) अस्त्रों को मुनि के आश्रम में रखकर मुनि की प्रणाम कर अपने लोभ को चले गये। पत्नी भी मनुष्या के भाग्य के

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, देवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम्	।
तूष्णीं स्थिताया सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति	॥३३॥
नत्वा मुनोन्द्रं ययुरेव लोकान्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः	।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः	॥३४॥
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, देवे वर्ये संस्थया वै सहले	।
न ते सुरा आयुधानां मुनोऽश, वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः	॥३५॥
दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषसीह भद्रे	।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र ब्रह्मस्व युक्तम्	॥३६॥
सा चाऽऽह कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम्	।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वामुधानि	॥३७॥
तदस्त्ररक्षार्यमिदं स चक्रे, भग्नेस्तु संज्ञात्प जलैश्च पुण्यैः	।
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं, तेजोयुक्तं तच्च पयो दधीचि.	॥३८॥
निर्वोदरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोपात्	।
सुराः समागत्य दधीचिमुचुर्महाभयं ह्यागतं शात्रवं नः	॥३९॥

अतिरिक्त और कोई पदार्थ ब्रह्मान् नहीं, यह सोच कर चुप हो गई। डर देवद्वय मुनि-प्राथम्य में हाथ रखकर अपने को अत्यन्त वृत्तव्य समझने लगे ॥३३॥

देवताओं के भले जाने पर मुनि-वर्ग भाग्य के स्वयं धर्म का पालन करते हुए सानन्द जीवन बिताने लगे। मुनीश ! देवा के हनार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु देवी ने अपने रते हुए अस्त्रा के विषय में कोई खोज भी नहीं की, वे जाने की चर्चा नहीं करते, मन से भी अस्त्रों के बारे में कुछ नहीं सोचा ॥३४-३५॥ यह देखकर दधीचि ने मनः प्रिया गभस्तिनी से कहा—भद्रे ! सुरदास गक्षस मेरे इस कार्य से द्वेष करते हैं, और अब तक देवता इस रक्षा अस्त्रों को ले आती नहीं पाहते, इसलिए इस वाद्य में कोई उचित उपाय बताइए ॥३६॥ उसने अपने पति से बिना पूर्वक कहा 'मैंने तो पहले ही' कह दिया था, नाथ ! इस विषय में जो कुछ उचित है उसको आप स्वयं जानते हैं ॥३७॥ ब्रह्म और महाशक्तिशाली राक्षस अपने अस्त्रों को छीन ले जगेंगे, यह सोचकर दधीचि ने उन अस्त्रा की रक्षा के लिये मन्त्रों से जटका अभिमन्त्रित कर उससे अस्त्रों को घा दिया। और उस तेजोमय पवित्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-गच्छा की शक्ति से सम्पन्न उस जल को पी गये, इस प्रकार उन्होंने अस्त्रा की रक्षा की ॥३७-३८॥ अचिर समय बीत जान के कारण वे अस्त्र बेवाम हो गये और धीरे धीरे नष्ट हो गये। अब जबकि देखकर देवताओं ने अचिर दधीचि ने कहा कि हम लोगों के शिर पर शत्रुभावा अभिषेक भय आ गया ॥३९॥ इसलिये मुनिप्रवर ! आप उन

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रोतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥
मदस्थिभि प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुरा सर्वे कितु देहेन कार्यम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्यो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्न,
वायु सर्वाङ्ग मध्यमोद्घाटयोगाश्रोत्वा शनैर्वहाराकाशगर्भम् ॥४९॥
यदप्रमेयं परमं पदं यद्यद्ब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम्
तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०॥
निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवा, कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक्
त्वष्टारमप्युक्षुरतिस्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१॥
स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः
बिभेमि कर्तुं, दारुणं चाक्षमोऽहं, चिदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२॥
तदस्थिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गा, समुक्षुस्वरन्तः ॥५३॥

प्रिय वचन बोलने वाली, अतिथि-सेविका पत्नी वहाँ उपस्थित न थी। वे देव उसको वहाँ उपस्थित न देखकर, उसने भय से भयभीत होकर ब्राह्मण से बोले कि दीधनता कीजिये। देवा की बातें सुनकर यधीचि प्रसन्न हो अपने अत्यन्त कष्ट से छोड़ने योग्य प्राणा की यह कहते हुए कि मेरे इस शरीर का इच्छानुबूल उपयोग कीजिये, सब देवता मेरी हविष्यों से प्रसन्न हो, इस व्यर्थ शरीर का परीक्षण कर के अतिरिक्त और कौन सदुपयोग हो सकता है, इस शरीर से कोई लाभ नहीं, छोड़ दिया ॥४९-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह नहवर यधीचि पद्मासन लगाकर बैठ गये, नासाग्र में अपनी दृष्टि एकाग्र कर दी, योग द्वारा सुषुम्ना की जाग्रत कर शरीर सञ्चारी वायु और अग्नि को दीप्त कर शनैः शनैः हृदय-ग्राह्य में पहुँचा दिया ॥४९॥ और जो अग्रमेय (अग्नेय), परम पद ब्रह्म का स्वरूप है, उसी में अपनी बुद्धि (भावना) की लगाकर उस महारमा ब्राह्मण ने परब्रह्म की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर ली। इस प्रकार उस ब्राह्मण के शरीर को निर्जीव देखकर, देवताओं ने विद्वज्जनों से कहा—‘दीधन ही इसी क्षण बहुत से अस्त्रों को बना दालो’। विद्वज्जनों ने भी देवताओं से कहा—‘देवगण! यह ब्राह्मण का शरीर है, मैं कैसे यह दारुण कार्य कर सकता हूँ, यह चीभरस कार्य करने में मैं असमर्थ हूँ, यदि अस्त्रियों को कोई पाठ कर अलग कर दे तब मैं उनसे उत्तम से उत्तम अस्त्र शीघ्र बना दूँगा। यह सुनकर देवताओं ने दीधन ही गौत्रों से कहा ॥५०॥-५२॥

देवा ऊचुः

वञ्च मुखं व क्षिपते हितार्थं, भावो देवैरामुषार्थं क्षणेन ।
दधोच्चिदेह तु विदार्य मूयमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्यान्व तथैव चक्रुः, सलिह्य चास्थीनि बहु सुराणाम् ।
सुरास्त्वेरा जगमुरद्वेनसत्त्वा, स्वमालय चापि तथैव गाव ॥५५॥
कृत्वा तथाऽऽत्मानि च देवतानां, स्वष्टा जगामाय सुराक्षया तदा ।
ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा, भर्तुं प्रिया बालगर्भा स्वरन्ती ॥५६॥
वरे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमा नत्वा फलपुष्पं समेय ।
अग्निं च भर्तारमयाऽऽश्रमं च, सद्रष्टुकामा हृषाजगामाय शीघ्रम् ॥५७॥
आगच्छन्तीं तां प्रातिघेयीं तदानीं, निवारयामास तदोत्कृषात ।
सा सप्तमादागता चाऽऽश्रमं स्व, नैवापश्यत्तत्र भर्तारमये ॥५८॥
वयं वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिघेयीं तदानीम् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, वेदागमं ध्यात्तनं च शरीरे ॥५९॥

वेदो ने कहा—गौमा । आह देवों के हित के लिये तुम सबका मुख वञ्च के रमान पटार बना दिया जाता है इसलिए तत्काल ही दधीचि के गरीर को पाटकर हडिडया को गुद कर दा जिससे वि देवा के लिये अन्नगत्य बनाये जायें ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उम गौमा ने देवों के कथनानुसार बँस ही बना हडिडयो को पाट पाट कर स्पष्ट कर देवभाषा को दे दिया । एकलभनारय ही पराशर देवता ग प्रह्लाद अपने अपने स्वाम को चले गये वम प्रकार गौमा ने भी अपना पास्ता पक्का ॥५५॥ स्वष्टा (विस्ववर्मा) भी देवताओं के अन्न बना कर उनको आग पा चर गये । इसके बाद विधाग सुगला दधीचि की प्रिय पत्नी जो गर्भवती थी बहुत बिल्ग से भा व पूरा कर हाथ में अन्न स भरा बला आर फल पुष्प लिये हुय जादी-नत्वा वहाँ पहुँचा । उससे हृदय में आश्रम अग्नि और भता के दान का अयन उत्सुकता म ॥५६ ५७॥ वह अतिथि-सेवा-मरावण साध्वी, जन्म आ रही थी उसी समय रात में उत्तरापात हुआ जिससे कि उसको अगस्त्य की पुत्र भूतना मली । यह देख कर उसके हृदय में और अधिक आकांक्ष हो गई । यह सोची हुई नीति अपने आश्रम में जाई परतु आत हुई उसने अपने प्राण पित्र पति का नहीं देता ॥५८॥ उस अतिथि सेवा-परायण न अयन विस्मित हो उस समय अग्नि से पूछा कि मेरे पति देव कहां गये । यह सुनकर अग्नि ने विस्तारपूर्वक उसने देवों का आश्रम में आता दधीचि से गरीर का मोचना उनका प्राणत्याग हडिडया का निराकृत उससे अन्न निर्माण और पुन देवताओं का बना जन्म आदि बतें कह सुनाई । इन बातों को सुनकर

अस्थानमुपादानमय प्रयाण, श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्वा, मन्द मन्द वह्निनाऽऽवासिता च ॥६०॥

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणां तु नाहं समर्था, अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कोपं च दुःखं च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीह्यमयुवतं च भर्तुं ॥६२॥

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोध्यमस्तीति मनुष्यलोके । ॥६३॥

गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति, प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्या ॥६४॥

ससारचक्रे परिवर्तमाने देहं समर्थं धर्मयुवत स्वयाप्य । ॥६५॥

प्रियान्प्राणान्देवविप्राहंतेतोस्ते वै धन्या प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६६॥

प्राणां सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य, यातारो वै नात्र सदेहलेश । ॥६७॥

एव ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनात्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६८॥

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिपहं स । ॥६९॥

मनोमतं चेत्पयसा विधातुं, को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥७०॥

उक्तको अत्यन्त दुःख हुआ दुःख का आवेग स मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्निदेव ने धीरे धीरे उसको पुनः क्षुब्ध-तुलायक सच किया ॥५९॥ ६०॥

प्रातिथेयो ने कहा - देवताओं को शाप देना मेरे लिए उचित नहीं अब अग्नि प्रवेग (मर्ता होना) ही कहेंगे। इसके अतिरिक्त मेरे लिए रास्ता ही बोन सा है ॥६१॥

ब्रह्म ने कहा - धीरे-धीरे उस साध्वी व प्रजा दाता का अति आन्तरिक व्यापार अधिकार दिया, सब उनमें अपने पति व विषय में समयुक्त (अन्यथा) बात कहना प्रारम्भ किया ॥६२॥

प्रातिथेयो ने कहा—इस मनुष्य लोक में जो कुछ उत्पन्न होता है वह मर्त्य (क्षणभंगुर) है इसलिये इसमें विषय में दाता व ना मर्त्य के मर्त्य के मनुष्य के पण्य भा है जाना। विप्र और देवों के लिये अपने प्रिय प्राणा का बलिदान करते हैं। इस परिवर्तना के कारण (यह) प्रजा मलय (काय-भा) समयुक्त (समय सदा सत्तर रहने वाला) मनुष्य दाता और अपने प्रिय प्राणा का देव और प्राणा व अति छाड़ देता है व प्राणा मय है। इस दाता में निवार्य करने वाले प्राण मलय (अन्यथा) है इसमें मर्त्य भाव है वह नहीं है। यह रहस्य जानकर जो विप्र जो देव और दाता व अति अपने प्राणा का छाड़ देता है व अन्य ही माया-मर्त्य और मर्त्य है। मैंने बड़े अनुभव-विषय में उनको रोना परन्तु उद्देश्य देवता व अस्त्र व रात्र दिया। अथवा दाता है, मर्त्य में रहने वाले (मनुष्य) में मेरे व अति स्वभाव-वर्त विषय व मर्त्य भाव व मर्त्य जानता है ॥६३॥ ६४॥

ग्रहोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चाम्नीन्ययावद्भर्तृस्त्वचालोमभिः सा विवेश ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातियेयी, कुक्षि विदार्याय करे गृहीत्वा ॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोपधाराधमस्थान् ॥६८॥

प्रातियेयुवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजेश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथोपध्वो बालकं लोकपालाः ॥६९॥
ये बालकं मातृपितृग्रहीणं, सर्वाविशेषं स्वतनुप्रहृष्टैः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

ग्रहोवाच

इत्युक्त्वा चात्यजद्वाल भर्तृचित्तपरायणा । पिप्पलाना समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यत्तपाशसमन्विता । शिष्येणाग्निं प्रातियेयी भर्ता सह दिवं ययी ॥७२॥
दत्तुदत्ताऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः । पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च बधोक्षिना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तथा मात्रा विना तथा । मुगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥

वृक्षा ऊचुः

स्यर्गमासेदुयोः पित्रोस्तदपारमेष्ठकृत्रिमम् । ये कुर्वन्त्यनिश स्नेह त एव कृतिनो नराः ॥७५॥

ग्रहा ने कहा—इस प्रकार कहकर उस अतिथि मेविना ने अग्नि की यथाविधि पूजा की, पति के अवशिष्ट वस्त्र, लोम आदि को एकात्र किया और अपनी, कुक्षि का फाड़कर गर्भस्थ बालक को अपने हाथों पर लिया । अनन्तर आश्रम की वनस्पतिया, ओषधिया, गन्ध, पुष्प, और अपने आश्रम की प्रणाम करती हुई वह अग्नि में प्रवेश करने की वदिता से बोली—॥६७-६८॥

प्रातियेयी ने कहा—अप्य अग्नि, ओषधियाँ और लोकपाल पिता, माता, भाई, बन्धु और श्वाभा से रहित इस बालक की रक्षा करें । जो व्यक्ति माता-पिता सेहीन (अनाथ) बालक को अपने आश्रम पुत्र के समान आश्रम कर पालन करते हैं वे भाग्यशाली हैं और ब्रह्मा आदि देवा के भी वन्दनीय हैं ॥६९-७०॥

ग्रहा बोले—यह कहकर पति-चरण में लीन रहने वाली उस मुर्खिल ने बालक को एक पौलव के वृक्ष के नीचे रक्ष दिया । फिर यज्ञाश्र हाथ में लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा तथा अभिचार करने वह अग्नि में प्रक्षिप्त हो गई । इस प्रकार अपने पति के साथ वह स्वर्ग की चली गई । यह कहण दूसरे देवता, आश्रम तथा वन के वृक्ष, पक्षी, मृग आदि, त्रिनश्रा ऋषि दर्पार्थि ने पुत्र के अभाव पालन किया था, गी पडे । वे परस्पर कहने लगे कि उस माता के बिना हम लोग कैसे जी सकेंगे ? ॥७१-७४॥

पुत्रों ने कहा—जो व्यक्ति माता पिता से वंचित गमान पर अपना बहुत स्नेह भ्रंश दिखलाने है, वे ही बालक में भाग्यशाली हैं । पिता दर्पार्थी और माता प्रातियेयी जिस बहुत-स्नेहपूर्ण दृष्टि से हम लोग को देखते थे,

दधीचिः प्रातिथेयो वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा । तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वपापमतः प्रभृति निश्चितम् । बालो दधीचिः प्रातिथेयो बालो धर्मः सातनः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदीयभ्यो वनस्पतिसमन्विताः । सोमं राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥
स चापि वत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम् । वदुर्वालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥
स तेन तृप्तो वधूश्च शुक्लपक्षे यथा क्षत्री । पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलावः स बालकः ॥
प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः । बीजेभ्यो बीरयो लोके वैपम्यं नैव वृश्यते ॥
बाक्षेस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

बुधास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूचुर्यथाक्रमम् । वधीचेर्मरणं साध्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२॥
अस्यां सहरणं देवेरेतत्सर्वं सविस्तरम् । श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तवा भूयि ॥८३॥
आश्वसितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः । आश्वस्तः स पुनः प्राह तदीयधिवनस्पतीन् ॥८४॥

उस प्रकार कोई माता या पिता भी अपनी सन्तान का नहीं देख सकते । ऐसे पिता-माता से हम विपुक्त हो गये । हाय ! हम पापियों को भिषकार है । अतः आज हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि दधीचि और प्रातिथेयों के इस बाल आत्मा का पालन-पोषण हम लोग अवश्य करेंगे । यही सनातन धर्म है ॥७५-७७॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ऐसी प्रतिज्ञा करके वनस्पतियों सहित वे ओषधियाँ राजा साम के समीप गईं और अमृत माँगा । उस राजा साम ने भी उनको वह परमात्म अमृत दे दिया । उन्होंने भी देवा को प्रिय लगने वाला अमृत बालक को दे दिया । वह बालक भी अमृत पान से तृप्त होकर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिनदिन बढ़ने लगा । पीपल ने बुधा ने उस बालक का पालन किया था, इसलिये उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया । जब वह बड़ा हुआ, तब अत्यन्त विस्मित होकर पीपल ने बुधा से कहा ॥७८-८०॥

पिप्पलाद ने कहा—प्रायः लाख व मनुष्यों ने मनुष्य, पक्षियों से पक्षी और वीर से वनस्पतियों उत्पन्न होने हैं, इसमें कभी भी वैपम्य नहीं देखा जाता । परन्तु मैं हृषीकेश बाल, प्राणघारी मानवकंससे बुधासे उत्पन्न हुआ हूँ ? ॥८१॥

ब्रह्मा बोले—बालक पिप्पलाद की स्वामात्रिक वाता का मुनकर बुधा ने आदि से अन्त तक—दधीचि की मृत्यु, साध्वी का पति के साथ अग्नि प्रवेश (सती होना), देवताओं द्वारा अस्थि के लिये कष्ट उपाय आदि—सारी घटनायें विस्तारपूर्वक सुना दीं । यह सुनकर उसका अत्यन्त ध्या हुआ । वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा । बालक को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर बुधा ने धर्मवि-संगत वाक्य कहकर डाढ़म बँधाया । बुधा ने आश्वस्तन में आने को समझा कर उसने पुनः ओषधियाँ और वनस्पतियाँ स कहा ॥८२-८४॥

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तृहनिष्येऽहं नान्यया जीवितुं क्षमः। पितृमित्राणि शत्रून्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥
स एव पुत्रो योज्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितातपि ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमावाप सोमान्तिकमथाऽऽययुः। बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ॥८७॥
धृत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत

सोम उवाच

गृहाण विद्यां विधिवत्समप्रां, तपःसमृद्धिं च शुभां च वाचम् ॥८८॥
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्त्यसे पुत्र मदाज्ञया त्वम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओपधोऽं विनीतवत् ॥८९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्वृषया मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥९०॥
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके। यत्र तौर्यं च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता के हत्यारों का अवश्य वध करूँगा। बिना ऐसा किये मैं जी नहीं सकता। यह नीति वचन है कि पिता के शत्रु और मित्रों के प्रति पुत्र को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। वही पुत्र है जिसने उपर्युक्त सवचन को शरय सिद्ध किया, नहीं तो वह पुत्र नहीं प्रत्युत पुत्र रूप में पिता का शत्रु है। ऐसे ही पुत्र पिता के उद्धारकर्ता होते हैं जो पिता के मित्रों और शत्रुओं के प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हैं, ऐसा नीतियों ने कहा है ॥८५-८६॥

ब्रह्मा ने कहा—बालक की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर वृक्ष उसकी साथ लेकर सोम के समीप गये और उनसे बालक की वही हुई बातें कह सुनाई। सोम ने यह सुनकर बालक पिप्पलाद से कहा ॥८७॥

सोम ने कहा—वेडा! तुम विधिपूर्वक सब विचारों बहुत बड़ी तपस्याओं, कल्याणमयी वाणी, वीरता, रूप, बल तथा बुद्धि प्राप्त करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें सब चीजें मिल जाएँगी ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर पिप्पलाद ने पुन राजा सोम से नम्रतापूर्वक कहा ॥८९॥

पिप्पलाद बोले—पिता के हत्यारों से बदला लेने मनुष्य भी सहायता न देने वाले देव वरदान को व्यर्थ समझता है। जितना आप कह गये हैं उनमें से किसी की भी मैं स्वीकार नहीं करता। इसलिये हे देववर! पहले आप यह बतलाइये कि किस देव में किस समय किस देवता के पास किस मन्त्र का जप करने से या किस तीर्थ में जाने से मेरा संकल्प सिद्ध होगा? ॥९०-९१॥

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा । सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम् । बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तया ॥९३॥

चन्द्र उवाच

गीतमीं गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम् । प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सकः ॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारणिकः शिवः । आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५॥
वरं च वत्सवान्निष्णोश्चक्रं च त्रिवशाक्षितम् । गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गीतमीं मदीम् ॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योपधयस्तु तत् । तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाजयचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनि । आजगाम अजग्रायो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाभ्रमान्ययुः । गोवाचर्षा ततः स्नात्वा तत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलावः शिवं क्षुचिः ॥९९॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ देर तक ध्यान करते चन्द्र ने कहा—‘भुक्ति या मुक्ति सब कुछ पाकर भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं।’ पुनः बालक ने सोमदेव से प्रसन्न किया, मैं बालक हूँ, थोड़ी बुद्धि रखता हूँ, कठोर तपस्या करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। तब मैं किस प्रकार महेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकूँगा ? ॥९२-९३॥

चन्द्र ने कहा—भद्र ! तुम गीतमीं के तट पर जाओ, वहाँ चक्रेश्वर शंकर की स्तुति करो ! वत्स ! तुम्हारे थोड़े प्रयत्न से ही शंकर प्रसन्न हो जायेंगे। महादेव शंकर साक्षात् कृपा के अवतार हैं, वे अवश्य तुम्हारी बाल-उपासना से प्रसन्न होकर दर्शन देंगे। परम साधर्म्यवान् विष्णु ने शंकर का साक्षात्कार किया है। शंकर ने उनको देवा से पूजित कर और अन्यान्य वर दिये हैं। महाबुद्धिमान् ! तुम दण्डक वन में गीतमीं के तट पर जाओ। ये ओषधियाँ भी उस चक्रेश्वर तीर्थ की जाननी हैं। वहाँ जाकर अनन्य भाव से भगवान् शंकर की स्तुति करो। तब ! वे प्रसन्न होकर अवश्य तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करेंगे ॥९४-९७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा माय के अद्वैतानुसार महामुनि पिप्पलाद उस स्थान पर गये, जहाँ चक्र के दाता अजग्राय शंकर निवास करते हैं। पीपल वृक्ष में कृष्णा ग विहंगम होकर उस बालक को वहाँ पहुँचाकर अपने आश्रम का बतल गये। इसके उपरान्त पिप्पलाद ने गोदावरी में स्नान किया और पवित्र होकर त्रिभुवनेश्वर शंकर की प्रणाम करते अनन्य भाव में उनकी स्तुति की ॥९८-९९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धोरास्त्यक्तपणा निर्जितचित्तवाताः	।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शंभुम्	॥१००॥
यः सर्वसाक्षो सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम्	।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः कर्णां करोतु	॥१०१॥
दिगोश्वराञ्जित्य सुरार्चितस्य, कैलासमान्दोलयतः पुरारः	।
अदगुष्टकृत्यैव रसातलादथोगतस्य तस्यैव दशाननस्य	॥१०२॥
आलूनकायस्य गिर निशम्य, विहस्य द्रव्या सह दत्तमिष्टम्	।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्वदयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम्	॥१०३॥
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योज्वां हरौ (रे) नित्यमतीव कृत्वा	।
घाणः प्रशस्यः कृतबानुच्चपूजां, रम्या मनोज्ञां शशिखण्डमौलेः	॥१०४॥
जित्वा रिपून् देवगणान्प्रपूज्य, गुहं नमस्कर्तुमगाद्विशालः	।
धुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढमङ्गु तमारोप्य जहास सोमः	॥१०५॥
ईशाङ्गुलोऽपि शिशुस्वभावात्मा मातुरङ्गं प्रमुमोच बालः	।
क्रुद्धं सुतं बोधितुमप्यशक्तस्ततोऽर्धनारिरवमवाप सोमः	॥१०६॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं उस व्यापकशिव को प्रणाम करता हूँ जिसकी शरण में जाकर मनस्वी जन अपनी सम्पूर्ण सासारिक इच्छाओं और सब कर्मों का त्याग कर अपने चित्त एवं प्राणवायु को बस मे करके मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥१००॥ वे शत्रु सबके सार्थी हैं, सबके अन्त करण में निवास करते हैं, सबके ईश्वर और सम्पूर्ण कला के कोश हैं, वे भद्वरिषु मेरे हृदय की सभस्त भावनाओं को जानकर मेरे ऊपर कृपा करें ॥१०१॥ हे महेश्वर! रावण ने दिक्पाली की जीतकर देवताओं से पूजा प्राप्त की और दर्प से आपके कैलाश पर्वत को हिला दिया। उसकी इस दृष्टता से कुपित होकर आपने उसे अगुठ से दबाकर रसातल भेज दिया, परन्तु उस छिन्न शरीर वाले रावण की प्रार्थना सुनकर कुपित होने पर भी आप पार्वती सहित प्रसन्न हो गए और उसको अभिलषित वरदान दिया। इस प्रकार आप औरदानी हैं ॥१०२-१०३॥ प्रशस्तनीव बाण ने शशिमौलि की उच्च कोटि की रम्य और मनोहर पूजा के द्वारा सौत्रामणि यज्ञ सम्बन्धी सिद्धियों को सुख कर दिया ॥१०४॥ जब कार्तिकेय शत्रुओं को जीतकर और देवताओं की पूजा करके गुरुजना को प्रणाम करने के लिये आये तब गणनाथ (गणेश) को पहले ही आपकी गोद में बैठे देखकर कुपित हो गये, फिर आप कार्तिकेय को गोद लेकर आ पार्वती सहित हंस पड़े ॥१०५॥ आपकी गोदी में बैठे हुए उस बालक ने अपनी बाल प्रकृति के कारण माता की गोद नहीं छोड़ी। तब अपने क्रुद्ध पुत्र को और किसी प्रकार से समझाने में अपने को असमर्थ पाकर पार्वती सहित आपने अर्धनारी का रूप धारण कर लिया ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत

॥१०७॥

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम्

L

॥१०८॥

पिप्पलाद उवाच

हूतो देवैर्महादेव पिता मम महायशः। अवाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥
 देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो माहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥
 तस्माग्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा। अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

इंद्रवर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ। ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभो। न वाशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३॥

इंद्रवर उवाच

किञ्चित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्। तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद की प्रार्थना सुनकर स्वयंभू शिव जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पिप्पलाद से बोले ॥१०७॥

शिव ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपना अभीष्ट कर मागो ॥१०८॥

पिप्पलाद ने कहा—महादेव ! मेरे अतिविनम्र, साधु, सत्यवादी और महाप्रतीची पिता तथा पतिव्रता माता को देवताओं ने मार डाला। नाथ ! देवताओं द्वारा अपने माता पिता का नाश सुनकर दुःख और नाथ से अन्धा हो गया हूँ, मुझे जीने की इच्छा नहीं हो रही है। इसलिये मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं देवताओं का नाश कर सकूँ। शशिशेखर ! इस किम्वदन्त में आप ही अवध्य एवं सेव्य हैं ॥१०९-१११॥

इंद्रवर ने कहा—हे निष्पाप ! यदि तुम मेरे सीखे नेत्र को देख सको तो तुम देवताओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाओगे ॥११२॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर व्यापक शक्ति के तृतीय लोचन को देखने के लिये उसने प्रयत्न किया, परन्तु देख न सका। तब शिवर से कहा कि मैं देखने में समर्थ नहीं हूँ ॥११३॥

इंद्रवर ने कहा—बालक कुछ और तपस्या करो जब तुम तृतीय नेत्र को देखोगे तब निश्चय ही अपने अभीष्ट को प्राप्त करोगे ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेतानवावयं तपसे कृतनिश्चयः। दधौचिसूनुर्यमात्मा तदेव बहुलाः समाः॥११५॥
शिवध्यानंकरितो बालोऽपि बलवानिव। प्रत्यहं प्रातस्तथा स्नात्वा भूत्वा गुरुन्यमात्॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः। हस्तस्वस्तिकमारोप्य नामो विस्मृतसंस्मृतिः॥११७॥
स्थानास्त्यानास्तरोत्कर्षान्विदध्यो शार्भवं महः। ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीयं पिप्पलाशनम्॥११८॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत्

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन धरो इतः पुरा मम। तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात्॥११९॥
सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः। तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूता प्रयच्छ मे॥१२०॥
तदेव पिप्पला, प्रोक्षुर्बडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिथेयी वनस्पेव दिव गता॥१२१॥
पराभिद्रोहिनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचिन्ताः पतन्ति नरकावटे॥१२२॥
तन्मातृवधनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः। अभिमाने ज्वलत्पन्तः साधुबादो निरर्थकः॥१२३॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर जी की इतनी बातें सुनकर धर्मात्मा दधीचि-पुत्र ने तपस्या के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया और वह वही पर एकमात्र शिव के ध्यान में तल्लीन होकर बालक होते हुये भी बलवान् के समान दीर्घजालीन तपस्या करने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल उठता, स्नानापरान्त ब्रम्हा गुरुजनो को प्रणाम करता था। पुन आसन पर सुखपूर्वक बैठकर सुषुम्ना में एकाग्र मन से ध्यान लगाता और नाभिस्थान में हस्त-स्वस्तिक लगाकर सप्ताह की ओर से एकदम अपना मन हटा देता था। इस प्रकार अपने ध्यान को एक स्थान से हटाकर दूसरे उत्कृष्ट स्थान में जमाता हुआ शम्भु के महादेव का ध्यान करता था। अन्त में पिप्पलाव ने अपनी उत्कृष्ट योग-साधना द्वारा शंकर के तृतीय नेत्र को देख लिया। तब हाथ जोड़कर विनीत भाव से शंकर जी से कहा॥११५-११८॥

पिप्पलाद ने कहा—महले देवों के देव शंकर ने मुझको वर दिया था कि 'जब तुम मेरे तीसरे नेत्र की ज्योति को देखोगे तब उसी क्षण मुझारे सब मनीष्य पूरे हो जायेंगे'॥११९॥ इसलिये शम्भु का विनाश करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। उसी समय पीपल के वृक्षा और वडवा ने कहा 'हे महादेवजी। सुम्हारी माता प्रातिथेयी इस प्रकार कहती हुई ही स्वर्ग चली गई थी कि दूसरों के अपकार में निरत रहने वाले, अपने हित को भूल देने वाले और ईश्वर उधर मटकने वाले मानव नरक-मुण्ड में गिरते हैं॥१२०-१२२॥ माता की वही हुई बातों को सुनकर पिप्पलाद कुपित हो गया। उसका अन्त-करण अभिमान के अग्नि में जलने लगा। उसने कहा कि यह सगु उपदेश निरर्थक है॥१२३॥ उसी क्षण उसके नेत्र से एक कृत्वा निकली और बोलने लगी—'दो दो।' चूँकि उस समय

वेहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता। वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः॥१२४॥
 सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगर्भिणी। गमस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः॥१२५॥
 तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी। उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
 अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्। पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम॥१२७॥
 जप्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्। स प्राह किमिदं कृत्यं सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥
 देवंदध निमित्तं देहं ततो भीतः शिवं ययौ। तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तवा शिवः॥१२९॥

शिव उवाच

योजनास्तः स्थिताञ्जीवास्त गृहाण मदाज्ञया। तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुत॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया। प्रातिष्ठद्बडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
 तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे अस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
 चन्द्रेदवरं पिप्पलेशं, पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तो, भीतमनसः शंभुमुच्चबोकेतः॥१३३॥

ब्राह्मण ने बडवा की स्मरण किया था, अतएव कृत्या भी बडवा (पोड़ी) जैसी आकृति में प्रकट हुई। वह सभी प्राणियों को विनष्ट करने के लिए अपने गर्भ में प्रचुर अग्नि धार किये हुई थी॥१२४॥ पिप्पलाप की माता बड़ी बान्धिमूर्ती तथा बालगर्भा थी, इसलिये उसका ध्यान करने के कारण कृत्या भी अग्निगर्भा हुई। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर एवं मृत्यु की जीम के समान भयंकर वह कृत्या उत्पन्न होकर पिप्पलाद से बोली—मेरे लिए कौन सा कार्य है, वह बताओ। पिप्पलाद ने भी उसे कहा कि तुम मेरे घाम देवताओं को खा डालो॥१२५-१२७॥ 'अच्छी बात' यह कहकर उसने पहले सामने खड़े हुये पिप्पलाद की ही पकड़ लिया। पिप्पलाद बोला—'कृत्या! यह क्या कर रही है?' वह बोल उठी—'तुमने ही तो कहा है। तुम्हारा शरीर भी तो देवताओं द्वारा ही निमित्त है।' तब पिप्पलाद डरकर शिव की कारण में गया और उनका स्तुति करने लगा। तब शंकर ने कृत्या से कहा॥१२८-१२९॥

शिव ने कहा—कृत्या! मेरी आज्ञा से यौवन-परिमित मीमा ने भीतर रहने वाले प्राणियों को मत् पकड़ो। इसलिये यहाँ से दूर जाओ और तब अपना कार्य करो॥१३०॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर वह ऋषि द्वारा उत्पन्न की हुई बडवारूप भारिणी कृत्या पिप्पल तीर्थ-से पूर्व एक मोजन के क्षेत्र में अवस्थित हो गई। वहाँ उसने शरीर से सम्पूर्ण लोक को भस्म कर देने की क्षमता रखने वाली अग्निज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सब देव भयवस्त हो शंकर के शरण गये। वहाँ जाकर भयभीत देवगण पिप्पलाद से सन्तुष्ट किये गये पिप्पलाधिपति चन्द्रेदवर घाम की स्तुति करते हुए बोले॥१३१-१३३॥

देवा ऊचुः

रक्षस्व शम्भो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भुवान्त । शरणं भव सर्वेश भोतानामभयप्रद ॥१३४॥
सर्वतः परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् । सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरणं शिव ॥१३५॥
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या स्वच्छक्षुर्वह्निर्निगता । सा जिघांसति लोकास्त्र्योस्त्व न वरात्रा न घेतर ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तानमबीजजगन्नाथो योजनान्तनिवासिन । न बाधते त्वसां कृत्या तस्माद्यूपमहनिशम् ॥१३७॥
इहैवाऽऽसंभ्रममरास्तस्या ओ न भय भवेत् ॥१३८॥

ब्रह्मोवाच

पुनरुचुः सुरेशानं त्वया दत्तं त्रिविष्टपम् । तस्यैकत्वाऽत्र कथं भाव्यं वत्स्यामस्त्रिवशाच्चित ॥१३९॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो यावयमथावधीत् ॥१४०॥

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख । यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मत ॥१४१॥
स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा । स्थितिं करोतु तन्मूर्तो भविष्यन्त्यखिला स्थिता ॥१४२॥

देवगण बोले—शम्भो ! रक्षा कीजिये । कृत्या और उससे निकली हुई ज्वाला हम लोगों को नष्ट कर रही है । हे सबके स्वामी ! उरे हुआ को अभय वरदान देने वाले ! हम लोगों के शरणदाता होइये । हे शिव ! सब ओर से पराजित हुई तूया बने हुए चित्त वाले सभी प्राणिमा के लिए आप ही शरणदाता हैं । ऋषि से प्रार्थित और आप के नेत्र का ज्वाला से निकली हुई वह कृत्या तीनों लोकों को नष्ट करना चाहती है । आप ही हम लोगों को बचा सकते हैं । दूसरा कोई नहीं बचा सकता ॥१३४ १३५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनिकर जगन्नाथ शंकर ने देवों से कहा—यह कृत्या योजन परिमित सीमा के भीतर रहने वाला कोई सति नहीं पहुँचाती । इसलिए तुम लोग रातदिन यही रहो । मुझे उसका कोई भय नहीं होगा ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—पुनः देवताओं ने शंकर से कहा—आप ने ही तो हम लोगों का स्वयं प्रदान किया है तब हे नाथ ! हे देवों के पुण्य ! उस स्वयं को छोड़कर यहाँ हम कैसे निवास करेंगे ? देवताओं की बातें सुनकर शिव ने पुनः देवों से कहा ॥१३८ १४०॥

शिव ने कहा—जिसके चारों ओर नेत्र है तथा चारों ओर मुख है और जो नित्य ही अपना किरणों से प्रकाशमान रहता है तथा ससार के प्राणदाता है वे ही सूर्य देवता अकेले यहाँ सर्वदा प्रत्यक्ष रूप से निवास करेंगे और उनकी मूर्ति में सभी देवता अवस्थित होंगे ॥१४१ १४२॥

ब्रह्मोवाच

तयेति शभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा । देवा दिवाकर चक्षुस्त्वष्टा भास्करमथवीत् ॥१४३॥

त्वष्टोवाच

इहंयाऽऽस्त्व जगत्स्वामिग्रसेमान्विबुधान्स्वयम् । स्वाशंस च यमप्यत्र तिष्ठाम शभुसनिधौ ॥१४४॥

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसहस्रया । गङ्गाया उभय तीरमासाद्याऽऽसन्तुरोत्तमा ॥१४५॥

अङ्गुल्यर्धार्धमात्रं तु गङ्गातीरं समाभिता । तिस्र कोट्यस्तया पञ्च शतानि मुनिसत्तम ॥

तीर्थानां तत्र द्युष्टि च क भृणोति क्षवीति वा ॥१४६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा सर्वे विनीता शिवमस्रुधन् ॥१४७॥

देवा ऊचु

पिप्पलाव सुरेशान शम नय जगन्मय ॥१४८॥

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ पिप्पलादमवोचत ॥१४९॥

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति । दत्ता पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०॥

वीनार्तकण्ठाद्यधु को हि तावृग्भये भवेत् । तथा माता रिय तात तव माता पतिव्रता ॥१५१॥

ब्रह्मा ने कहा—एक ह। एता यह कहकर गिर ब आदित्यनुसार उस समय देवताओं ने पारिव्रत पुन
क बाण्ड से मृग क मृनि बनाई। तब विश्वकर्मा ने मृग स कहा ॥१४३॥

विश्वकर्मा ने कहा—हमसार क स्वामी । आप यहीं रह और स्वयं इन देवा की रक्षा करें। हम
लगा भी अपने अपना स यहीं रहर क समीप निवास करेंगे। इस प्रकार चक्रेश्वर क चार। और एक यात्रन
के परिमाण स गङ्गा के दोनों तटों पर देव-यग निवास करन लगा। हे मुनिश्रेष्ठ ! य तीन करोड़ पंच गी
द्वन्ता गगाने पर आप आप अगुल मात्र स्थान पाकर भी रहने लगे। वही क तीर्थों का पञ्च बीन बना सरना
अदना मुन सरना है ॥१४४ १४५॥

ब्रह्मा ने कहा—तत्पश्चात् तव देवता विनियोग याव स पाद मे बाध ॥१४७॥

देवगण बोले—ह देवर्षिदेव । जगद्स्वामी । पिप्पलाद की अब पान कार्यय ॥१४८॥

ब्रह्मा ने कहा—अष्टा । यह कहकर शिव ने पिप्पलाद स कहा ॥१४९॥

शिव ने कहा—या क नष्ट ह। जान पर भी तुम्हारे पिता नहीं आवेंगे और तुम्हारे पिता न तो दश की
बाद मृष्टि के तिर ध्यान प्राणा का बन्धन विद्या है। हम ससार स उनक समान दीन-दु गिरा पर करना करनेवाला
दूरात बीन हागा ? पुन । तुम्हारी पतिव्रता माता भी लीहलिन क लिये ही स्वय गई है। तुम्हारी माता क समान

समा प्राप्स्यथ न तथा लोपामुद्राप्स्यन्वथी । यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२॥
 तेनावाप्तं यशः स्फोटं तव मात्राप्स्यथं कृतम् । त्वया पुत्रेण सर्वेन नातः परतरं कृतम् ॥१५३॥
 स्वप्नतापभयात्स्वर्गच्छ्युतांस्तथं पातुमर्हसि । कादिशोकांस्तथ भयादमरास्त्रातुमर्हसि ॥
 नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं ववापि विद्यते ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरितं चाहं मनुष्यलोकं अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
 दिने दिने वर्षसंख्या (ह्यं) परस्मिन्लोको वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥
 मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्यास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
 ये दानशीला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशीला न त एव शोच्याः ॥१५६॥

ब्रह्मोवाच

भाषितं देवदेवस्य' श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमयाब्रवीत् ॥१५७॥

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्मनोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
 तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुराविभूषणम् ॥१५८॥
 संरक्षितो' धैर्यभिराधितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
 तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलि प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

लोपामुद्रा अथवा अश्वघटी कोई भी इस भूतल पर नहीं है। उनकी हृद्दिङ्गो से सम्पूर्ण देवता सर्वदा विजयी और सुखी रहेंगे? इस ब्रह्मात्म्या से तुम्हारी माता ने अपने यश को फैलाया और अविनाशी बनाया। परन्तु उनका पुत्र हीकर तुमने उनसे अधिक यश अर्जन नहीं किया। तुम्हारे प्रताप के भय से वे देवता स्वर्ग से क्षुब्ध हो गए हैं। भगने को उन्हें दिशा नहीं मिल रही है। ऐसे देवों की तुम रक्षा करो। कहीं भी दुर्खीर्णों की रक्षा से बचकर और कोई पुण्य नहीं है। इस मनुष्यलोक में मनुष्य का जितने दिनों तक विमल यश रूपा प्रकाश फैलता रहता है वह मनुष्य मरने पर दिनों की संख्या ने अनुसार उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में सुखपूर्वक निवास करता है। इस ससार में जिनकी श्रुति नहीं है वे ही मृत हैं, जो वेदज्ञानहीन हैं वे ही अन्धे हैं जो दानपरायण नहीं हैं वे नपुंसक हैं और जो धर्मशील नहीं हैं वे ही शोचनीय हैं ॥१५०-१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवादिदेव शंकर का वचन सुनकर मुनि शान्त हो गये, और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शंकर को प्रणाम करने बोले—

पिप्पलाद ने कहा—जो मेरे हिस का ध्यान रखते और वाणी, मन तथा कार्यो द्वारा मेरा उपकार करते हैं, उनके और अन्यो के हिस के लिये मैं देव आदि के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ। जिन लोगों ने मेरी रक्षा की,

येरह वर्धितो नित्य मातृवत्पितृवत्प्रभो । तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥
यशस्तु तेषा भविता तेभ्योऽहमनून्स्तत । यानि क्षेत्राणि देवाना यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥
तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता । तत क्षमेऽहं देवानामपराध निरञ्जन ॥१६२॥

ब्रह्मोवाच

तत समक्ष सुरसाक्षरा गिर, सहस्रधक्षु प्रमुखास्तथाऽग्रत ।
उवाच देवा अपि मेनिर वचो, दधोचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥
यास्य बुद्धि विनय च विद्या, शौर्यं बल साहस सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावशुद्धि विवित्त्वा, तदाऽवादीच्छकर पिप्पलादम् ॥१६४॥

शकर उवाच

यत्स यद्वं प्रिय काम यच्चापि सुरबल्लभम् । प्राप्त्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मन कृपा ॥१६५॥

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मेनिष्ठा, सपश्यन्ति स्वत्वदाज्ञ महेश ।
सर्वान्कामानाम्बुवन्तु प्रसह्य, बेहान्ते ते पदमापाणु शैवम् ॥१६६॥
तात प्राप्तस्त्वपद चाम्बिका मे, नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुख प्राप्ता नायनाथ विलोक्य, त्वां पश्येपुस्त्वपद ते प्रयाणु ॥१६७॥

पालन पोषण किया और जा मेरे सात सवा समान घम बलि है उनके धनराश को भगवान् शकर पूज करें। मैं द्विताया के शत्रुओं को गिर पर धारण करने वाले शकर को नित्य प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! हे देवाधिदेव! जिन्होंने माता और पिता के समान नित्य मेरा पालन करने इतना बड़ा बनाया है उहीं के नाम स यह साध प्रसिद्ध हो। जब उन लोगों के, किन्ति सम र म र्पैर्गो तभी मैं उनके श्रुण से उद्भूत हो सह्या। इस मूल पर कितने स.प और देवस्यान हैं उन सुदम श्रेष्ठ इस तथ को यदि देवगण स्वीकार करें तो शिव। मैं देवताओं के अपराध को क्षमा कर सकता हूँ ॥१६७ १६२॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर ऋद्ध आदि देवताओं के समान यह बात रची गई। देवाने भी स्वीकृत्य करी वर हुई बात का यादर के शर्म स्वीकार किया। अन्त में बालक की बुद्धि विद्या विनय शौर्य बल सहस्र सत्य वचन मोना पिता का भक्ति और भाव-शुद्धि का आनन्द शकर ने पिप्पलाद से कहा—॥१६२ १६४॥

शकर ने कहा—अन्त । जा तुम्हारा अमाष्ट है वह देव दुग्ध हो क्या न हो उस बातों। अवश्य पात्राग। इन में अथवा न कदाचित् ॥१६५॥

पिप्पलाद ने कहा—अन्त । जा पदप्रदा गया मे स्थान पर आपने चरणरमल का ध्यान करते हैं वे अवश्य हैं। आपने सब मनोरथा का प्राप्त कर और गरीब-न्याय का बाद निवन्धन में बिचारें। नाथ । मेरे पिता और माता ने आपका पावन पद प्राप्त किया पिप्पल और देवताओं ने भी। नाथ का नाम (अन्त) का दान कर गुण प्राप्त किया। दान प्रहार जा कोई आपने दान का परिणाम प्राप्त करें वे सभी अपने लाभ में जाय ॥१६६-१६७॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः । अभिनन्द्य च तं देवं सार्धं वाक्यमयाब्रवीत् ॥१६८॥
देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तकृताद्भ्यात् । इदमूचुः सर्व एव दार्धीर्च शिवसन्निधौ ॥१६९॥

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम् । पालिता देवदेवस्य आज्ञा श्रूलोच्यमण्डनी ॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽरमणे द्विज । तस्मादन्यतमं ब्रूहि किञ्चिद्वास्यामहे वयम् ॥१७१॥

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसद्या द्विजोत्तमम् । कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शम्भुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलावश्च उमा नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥

पिप्पलाद उवाच

पितरौ श्रद्धुकामोऽस्मि सदा मे शम्भुगोचरौ । ते धन्या प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वंशे स्थिता ॥१७३॥
शुभ्रयणपरा नित्य तत्पादाज्ञाप्रतीशका । इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः ॥१७४॥
परिलभ्य तयोः कृत्स्ने कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् । पशूनां पक्षिणां चापि सुखं मातृवशं नम् ॥१७५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा के देव शक्र ने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पिप्पलाद की प्रशंसा की और पुन देवों के साथ उस बालक से समापण किया। देवगण भी उसके द्वारा उत्पन्न किये गये भय से अपने को मुक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और निर्भय होकर सब देवों ने भी शिव के समीप नहीं दयोचि-पुत्र से कहा ॥१६८-१६९॥

देवगण बोले—जि सदैव तुमने त्रिमूर्ति को निर्भूषण करने वाली शिवज्ञा का पालन किया है और इस प्रकार देवों का जो अभीष्ट था, वह तुमने पूरा कर दिया। द्विज! परन्तु तुमने अब तक परीषकार के लिये ही याचना की। अपने लिये कुछ नहीं मागा, इसलिये कोई दूसरी चीज अपने लिए माँगे, हृद अथवा प्रदान करेंगे ॥१७०-१७१॥

ब्रह्मा ने कहा—तार तार देवा न द्विजवर्य पिप्पलाद से वहाँ बातें दुहराईं। पिप्पलाद ने भी हाथ जोड़कर धाम्, देव, उमा और पिप्पलो को प्रणाम कर ये वाक्य कहे ॥१७२॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता-पिता को देखना चाहता हूँ, जिनका नाम मैं सदा सुनता हूँ। सत्सार में वे प्राणी धन्य हैं जो माता और पिता के वश में रहते हैं, उनकी सेवा में समर्पण करते हैं और उनके चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। मनुष्य इन्द्रियाँ, शरीर, कुल, पीछे बुद्धि और शरीर को धारक यदि उनको माता-पिता के सेवानार्थ में लगायें तो वह स्वयं ही कृत्यकृत्य हो जायें। पशुओं और पक्षियों को भी माता का दर्शन नित्य हुआ

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् । दुर्लभं च तया चेत्स्यात्सर्वेषां यस्य कस्यचित् ॥१७६॥
 नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् । तयोर्वंशनामात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा ॥१७७॥
 मनोवाकपापकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति । पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) सप्ततौ ॥
 तेषां महापातकानां क' संख्या कर्तुमीश्वरः ॥१७८॥

ब्रह्मोवाच

तदप्येवंचतं श्रुत्वा मिथः समन्वयं ते सुरा । विमानवरमाहूयौ पितरौ दपतो शुभौ ॥१७९॥
 तव संवर्शनाकाङ्क्षो ब्रह्मसे वाङ्मयं निश्चितम् । विपावं लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शमय ॥१८०॥
 पश्य पश्येति तं प्राहृर्वाधीच सुरसत्तमा । विमानवरमाहूयौ स्वर्गिणौ स्वर्गभूषणौ ॥१८१॥
 तव संवर्शनाकाङ्क्षो पितरौ दपतो शुभौ । वीज्यमानौ सुरस्त्रीभिः स्तूयमानौ च किनरैः ॥१८२॥
 दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसनिधौ । हृष्याव्याभुनयनौ च कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितराबन्धे पुत्रा कुलोद्वहा । अहं तु मातुस्वरे केवलं भवेकारणम् ॥
 एवं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मति ॥१८४॥

क'त्ता है, परन्तु मुझ अभाग के लिये वह दुर्लभ हो गया है । मैं पूछता हूँ कि यह मेरे जिस पाप का फल है ? यदि सबके लिए मातृदर्शन दुर्लभ होता तो जिस किसी एक व्यक्ति को सुलभ न होने पर कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु मेरे विषय में यह विपरीत है । अतः मेरे सम्मानार्थी दूसरा कोई नहीं है । हे ध्येष्ठ देवगण ! यदि मैं अपने माता पिता का दर्शन मात्र या आर्जुना तो भन, वचन और कर्म का फल मिल गया—मेरा मैं समझूँगा । इस लोभ में जो जन्म लेकर अपने माता-पिता को नहीं देखते हैं उन महापापियों के पापा क' गिनती करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१७३-१७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की माता की मुनवर देवा ने परस्पर दम्पत्या बरके कहा कि तुम आज निश्चित रूप से ध्येष्ठ विमान पर आरुढ़ अपने गुप्त मूर्ति माना पिता का जा स्वयं तुम्हें दर्शन देने के लिए उत्सुक हैं, दर्शन करीये । तुम विपाद, लोभ और माह का परित्याग कर अपने चित्त की शांत करो । पुत्र उन सर्वधेष्ठ देवा ने उठ दर्शयिष्युः से कहा कि 'देवी, देवी, उत्तम विमान पर चढ़े हुए स्वर्ण आभूषणा में सुराभिः सुधरा दर्शन देने के लिए लालचिल, और पवित्र दम्पति तुम्हारे माता पिता आ रहे हैं । उन्हें देवागणों पते-शाल रही है और निम्नरक्षण स्तुति कर रहे हैं । तब के समस्त अपने माता-पिता का दर्शन पाकर पितालाद न उह प्रणाम किया । उम्मे नेत्रा मे आनन्द के आँसू आ गय । फिर किसी प्रकार अपने को सेमाल कर उभन माता पिता मे कहा ॥१७९-१८३॥

पुत्र ने कहा—मैं का पारण करने वाउ दूमेरे पुत्र अपने माता पिता का उद्धार करते हैं, परन्तु मैं अमाया माता के उदर मे आकर केवल उसके दुःख का कारण बना । ऐसा मायहीन होकर या अज अत्यन्त दुर्मति में मोहवा अपने माता पिता को देख रहा हूँ ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

तावालोवय ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशक सः। देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमयाब्रुवन्॥१८५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम्। साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽवासितास्त्वया॥
त्वया पुत्रेण सत्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्राबुभूतो महामुने॥१८७॥
आशिषं तु सुते वत्सा दधीचि, सह भार्यया। शभुं यज्ञा सुराग्रत्वा पुत्रं वाचयमयाब्रवीत्॥१८८॥

दधीचिरुवाच

प्राप्य भार्या शिवे भक्तिं कुरु यज्ञा च सेवय। पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदैक्षिणान्॥
कृतकुरपस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९॥

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधीचि पिप्पलाशनः। दधीचिः पुत्रमाश्वत्थ भार्यया च पुनः पुनः॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवमानमत्। देवा अप्सूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमा॥१९१॥

ब्रह्मा बोले—इसके अनन्तर उनकी देवता यह कुछ के बारे में कुछ बातें न सका। तब देवगण तथा मातापिता ने पिप्पलाद से कहा—॥१८५॥

देवगण बोले—पुत्र! तूनी लोक में तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग में भी पहुँच गई। तुमने शिव का साक्षात्कार किया और देवी को भी आस्थापन दिया। तुम्हारे समान पुत्र के उत्पन्न होने से उत्तम लोका का भय ही नहीं होता॥१८६॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय उसके शिर पर स्वर्ग में पुष्पवृष्टि हुई। महामुने! देवा ने जयघोष किया। पत्नी, समेत दधीचि ने पुत्र का आशीर्वाद दिया और शक्र, गंगा तथा देवी की नमस्कार करके, पुत्र में कहा॥१८७-१८८॥

दधीचि ने कहा—पुत्र! पहले विवाह करा। शिव भ अपनी भक्ति करो, गंगा की सेवा करा, शास्त्रानुसार पुत्रों को उत्पन्न करो, फिर यज्ञों का अनुष्ठान करो और उनमें भरपूर दक्षिणा दा। इस प्रकार अपने जीवन का सफल बना चिरकाल तक स्वर्ग में बने रहो॥१८९॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने ऐसा ही कहा यह अपने पिता दधीचि से कहा। दधीचि ने भी बार-बार अपने पुत्र को आशीर्वाद देकर देवताओं से आज्ञा लेकर भार्या सहित स्वर्ग का चले गये। तदनन्तर सब देवताओं ने भी सहसा पिप्पलाद से कहा॥१९०-१९१॥

देवा ऊचु

कृत्वा शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम्

॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे । असत्यं नैव वक्ताऽहं यूय कृत्यां तु ब्रूत ताम् ॥१९३॥
 मा दृष्ट्वा सा महारोद्रा विपरीतं करिष्यति । तामेव गत्वा विषुधां प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥
 अनलं च यथाप्रीतिं ते उभे नेत्यवोचताम् । सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विज-मना ॥१९५॥
 तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् । महाभूतानि पञ्चापि स्यावरं जङ्गमं तथा ॥१९६॥
 सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्भक्तव्यं नावशिष्यते । मया समन्त्र्य ते देवा पुनर्लक्ष्मणभावपि ॥१९७॥
 भक्षयेतामुभौ सर्वं ययानुवमतस्तथा । बडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु मारव ॥१९८॥

बडवोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे सुरसप्तमा

॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

बडवा सा मदी जाता गङ्गया सगता मुने । तदभवस्तु महानग्निय आसीदतिभीषण ॥
 तमाहुरमरा बह्वि भूतानामाबितो विदुः ॥२००॥

देवगण बोले—हृयां आर उरुते उत्पन्न भवति का ग त वर । तुम्हारा बन्धन हटा ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद न उन देवा से कहा— मैं उनका नाश करने में असमर्थ हूँ । मैं अमर नहीं रह रहा हूँ । आप लोग स्वयं उरुते रहिए । मुझका देववर वह महाभयंकर हृयां उत्पन्न हो करेगा । तदुत्पन्न देवगण उगा हृयां बगल गय और उरुते तथा अग्नि से प्रकटवत् उत्पन्न हो जायेगा कहा । उन देवा से कहा मूढ । भस्म कर देने का लिये हा मेरी तथा मुझसे उत्पन्न इस भट्ट ने अग्नि की प्राप्ति न करी है । तब भस्म करने के लिये कस हो सक्ता है ? योवा भूतभूत स्यावर तथा जगम गवरा हृयां मुन म समया अब हम विषय में उ बहने का शेष नहीं है । पुन मुझसे मन्त्रणा कर उन देवताओं न उन देवा से क्या—तब तब देवा कदा कदा गा हाना । नाश । मुनी बन्ना न भी देवताओं म डम प्रकट कहा ॥१९३-१९८॥

बडवा ने कहा—हृयां देवा । आप लोग की दृष्टि से सब कुछ मरा गया है । ॥१९९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुन । डका बहने की बडवा नहीं हो गई । और गंगा म झिल गई । उरुते उत्पन्न जो अग्निगण महान अनल या उग्रही बन्ना ने बहिन कहा और वह पञ्चमहाभया का आदि भूतभूत भाना जगम है ॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथम भवान् । तत्राप्यपापति ज्येष्ठ समुद्र (तिज्येष्ठस्तस्य त्व) मशन कुरु ॥
यथैव तु यय भूमौ गच्छ भुङ्क्ष्व ययासुखम् ॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथं त्वहम् । व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदकं महत् ॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याह कथं तेऽग्ने गतिर्भवेत् । अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कन्यामूचु सरस्वतीम् ॥२०४॥

देवा ऊचुः

'नयनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नैका शयता च धारणे । युक्ता सतसृभिः शीघ्रं ब्रहेय वरुणालयम् ॥२०६॥
सरस्वत्या यय श्रुत्वा गङ्गा च यमुना सथा । नमदा तपती चैव सुरा प्रोचु पृथक्पृथक् ॥२०७॥
ताभिः समन्वितोऽप्याह हिरण्यकलशेऽनलम् । सस्थाप्य शिरसाऽऽचार्यं ता जम्बुवदणालयम् ॥२०८॥
सस्थाप्य यत्र देवेश सोमनाथो जगत्पति । अभ्यास्ते विबुधं सार्धं प्रभासे शशिभूषण ॥२०९॥

देवो ने कहा—ब्रह्म सबसे थप्ट मान गया हूँ उस प्रकार आप मा है। उसने मा जगति सुनने सबसे ज्येष्ठ है इसलिये उसको ही लावो। जैसा हम कह रहे हैं उसी के अनुसार जाया और आन प्रवृत्त भक्षण करो ॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—ब्रह्म ने देवा से कहा जहाँ जल है वहाँ मैं कैसे रह सकूँ हूँ? यदि आप मुझ उस अणु अणु के द्रव्य पहुँचा दें तो मैं जा सकूँ हूँ। यह सुनकर उन्होंने कहा—अग्ने! किस प्रकार मुझे वहाँ तक जा सकते हो? अग्नि ने भ देवा से कहा कि यदि (ब्रह्मा का) गुणशालिना क्या सरस्वती, मुझ सुवर्ण कलश में रख कर वहाँ तक के जाय तो मुझ में गति हो सकती है अर्थात् वहाँ मैं जा सकूँ हूँ। उसकी उन बातों को सुनकर देवो ने मेरी क्या सुझाव से कहा—॥२०२ २०४॥

देवगण बोले—तुम इस अनल का पान छह। शिर पर रखकर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥

ब्रह्मा बोले—सरस्वतः ने देवताओं से कहा मैं अनेक अनल का ले जाने में असमर्थ हूँ। यदि चार और सहस्रक मिल जायें तो प्राप्ति हो समुद्र में पहुँचा सकूँ हूँ।

सरस्वतः ने बातें सुनकर देवताओं ने वगा यमुना नमदा और तपती (साप्ता) से अलग अलग कहा। अन्त में सरस्वती ने उन चारों सहस्रक नदियों से साथ सुवर्ण कलश में अनल को रखा और उस कलश का शिर पर

प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति। अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः ॥२१०॥
ततः सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम् ॥२११॥

देवा ऊचुः

अस्मां च पावनं ब्रूहि अस्माकं च गवां तथा ॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिवः प्राह तदा सर्वान्ज्जामाप्सुत्य यत्नतः। देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२१३॥
प्रक्षालितानि चास्यीनि ऋषिदेहभवान्यय। तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूतताम् ॥२१४॥
यत्र देवा मुक्तपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम्। तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याघिनाशनम् ॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम्। तत्र स्नानान्महावृद्धिर्गोमेषफलमाप्नुयात् ॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्यीनि आसन्पुण्यानि नारद। पितृतीर्थं तु वै ज्येष्ठं पितृणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥२१७॥
भस्मास्त्रियनक्षरोमाणि प्राणिनो यस्य बभूवृचिन्। तत्र तीर्थं संश्रमेरन्यावच्चन्द्रार्फतारणम् ॥२१८॥
स्वर्गो वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः। तथा चश्रेयवरासीर्यात्प्रोणि तीर्थानि नारद ॥२१९॥
ततः पूताः सुरगणा गावः शम्भुमाब्रुवन् ॥२२०॥

पारण करने समुद्र की ओर ले जाती। जहाँ प्रभास क्षेत्र में देवताओं के साथ गन्धर्व के पनि तथा देवताओं के प्रभु राक्षस रहते हैं, वहाँ अनेक बौद्ध भवन और स्तूपों आदि पाँच नदियों ने पुनः उसे समुद्र में पहुँचा दिया। वहाँ वह अनेक बौद्धों के प्रति जलाना रहता है। तदनंतर सब देवताओं ने गुरुदेव राक्षस से कहा ॥२०६-२११॥

देवगण बोले—अस्ति, हूँ गव और आपें दिव्य प्रकार पवित्र है करने हैं इसका आप यत्न करें ॥२१२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब राक्षस ने उन सब देवताओं से कहा कि यज्ञपूर्वक गदा में स्नान करने में सब देव और आपें करने पाय में छूट जाएँगे, इसमें कुछ भी गलत नहीं। ऋषि-गर्भ में प्राप्त अग्निवदी यज्ञों के प्रशालन मात्र कर देने में पवित्र है आपेंगी। जहाँ देवगण पाप-मुक्त हैं गव, वह तीर्थ पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ स्नान करने और दान देने में ब्रह्महत्या और दान भी छूट जाते हैं। जहाँ गये पवित्र हो गईं पा, वह तीर्थ गव से कहा जाता है। बुद्धिमान्, शक्तिशाली स्नातक वगैराह (पुनः) का पत्र प्राप्त करना है। नारद। इस स्थान पर ब्राह्मण दर्शन के पवित्र अग्निवदी रत्न। गदें वी, वह विजय का परमार्थ दार वाला निर्दोष नाम में प्रसिद्ध हुआ। उग पवित्र नाम में विजय विनी प्राप्ति के लिये वगैराह वगैराह अग्नि वगैराह और राज पदों करने हैं, वह दुष्टों को होने पर भी स्नान में सब सब निराश करना है जब सब मृत, यज्ञों और नार है। नारद। इस भूमि में अनेक तीर्थों में तीर्थों में उत्पन्न हुए। इसके उत्पन्न मूर्तों और गये पवित्र है जान पर समुद्र में जाने ॥२११-२१९॥

गोसुरा ऊचुः

याम स्व स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यं प्रतिष्ठित । अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुरा सर्वे प्रतिष्ठिता ॥२२०॥
भवेयुजंगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि । सूर्यो ह्यात्माप्त्य जगतस्तत्स्थुषश्च सनातन ॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तनात्माभि प्रतिष्ठित । यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र धं त्र्यम्बक स्वयम् ॥
सुरवास प्रतिष्ठान भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम् ॥२२२॥

ब्रह्मोवाच

आपृच्छ पितृलाव त सुरा स्व सदन ययु । पिप्पला कालपर्याये स्वर्गं जग्मुरयास्यम् ॥२२३॥
पादपाता पद विप्र पिप्पलाद प्रतापवान् । क्षेत्राधिपत्ये सस्याप्य पूजयामास शकरम् ॥२२४॥
वधीक्षितुर्मुनिरुप्रतेजा, अवाप्य भार्या गौतमस्याऽऽमजा च ।
पुत्रानयावाप्य अयि यशश्च, सुहृज्जनं स्वर्गमवाप धीर ॥२२५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते । सर्वंकुपुल पुण्य स्मरणाद्यधनाशनम् ॥२२६॥
किं पुन स्नानवानाम्यामादित्यस्य तु वशंभान् । चक्रेश्वर पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी ॥२२७॥
सरहस्य विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात् । सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते ॥
प्रतिष्ठान तु तत्क्षेत्र सुराणामपि बल्लभम् ॥२२८॥

गायें और देवगण बोले—हम सब अपने अपने स्थान को जा रहे हैं। यहाँ सूर्य प्रतिष्ठित हैं। इनके यहाँ रहने से सब देवता भी रहे हे ससार के ईश । ऐसा आप आशा प्रदान कीजिये। इस वर्तमान जगत् का सूर्य सनातन आत्मा है। हमने सूर्य को सब देवा के रूप में वहाँ प्रतिष्ठित किया है अतः हम सभी वहाँ प्रतिष्ठित से हैं। जहाँ जगमाता गंगा और स्वयं त्रिनेत्र शंकर विराजमान हैं वही स्थान सकल देवताओं का मंदिर तथा सस्थान है ॥२२१-२२२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवबृन्द उस पिप्पलाद से पूछ कर अपने लोक को चले गये। वे पापल के वस भी कालक्रम से अमर लोक की शाने गये। इस प्रतापी विप्र पिप्पलाद ने क्षेत्राधिपति के रूप में वृक्षों का स्थापना करके शंकर की पुजा की। पुन अतितेजस्वी मुनि दधीक्षिपुन ने गौतम-कन्या को अपना भार्या बनाई और उससे पुन उत्पन्न किये। तदनंतर वह धार पुण्य यश और लक्ष्मी को प्राप्त कर इष्ट मित्रा के साथ स्वयं में चला गया। तब से वह तीर्थ पिप्पलेश्वर तथा वहाँ जाता है। वह तथा सब यथा ने फल को देने वाला है और उसके स्मरण से सम्पूर्ण पापों को नाश हो जाता है। उस तथा में स्नान दान और आदित्य के दान से जो फल प्राप्त होता है उसका तो बहुत ही क्या ? चक्रेश्वर और पिप्पल ये दोनों देवदेव शंकर के नाम हैं। उस तथा के रहस्य को जानकर मनुष्य अपना सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है। सूर्य की वहाँ प्रतिष्ठा होने से और सब देवताओं के निवास करने से वह क्षत्र देवताओं का भी मित्र हो गया है। यह आस्थान अत्यन्त पुण्यप्रद है, इस पुण्य आस्थान को जो पढ़ता मुनता अथवा स्मरण करता

इतीदमास्थानमतीव पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा

॥ दीर्घजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्तो स्मरञ्जंभुमुपैति नित्यम्

॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूय

प्रतिष्ठानवोट्यादितोर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

शौतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति स्थातं सर्वकामप्रदं शुभम् । यत्र नामेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम् ॥१॥

प्रतिष्ठानपुरे राजा झूरसेन इति श्रुतः । सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२॥

पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह । तस्य पुत्रविचारादासीत्सर्पों वै भीषणाकृतिः ॥३॥

पुत्रं तं गोपयामास झूरसेनो महीपतिः । राज्ञः पुत्रः सर्प इति न वदित्विद्वद्वते जनः ॥४॥

अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना । धात्रेऽप्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५॥

हे बह्वीर्यजीवी, धनवान् और धार्मिक होता है तथा अन्तःकाल में यन्त्रु का स्मरण करता हुआ शिव का सात्रिष्य प्राप्त करता है ॥२२९-२२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पिप्पलेश्वरजीववर्णनं नामक एक ती दसवीं अध्याय समाप्त ॥११०॥

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भव ब्राह्मणाओं को देने वाला नागतीर्थ नामक एक शुभ तीर्थ है जहाँ नागेश्वर देव निवास करते हैं। उसके विषय में भी विस्तारपूर्वक बतला रहा है, सुनी। प्रतिष्ठानपुर में झूरसेन नाम का अत्यन्त गुणवान्, धार्मिक और बुद्धिमान् सोमवंशी राजा था। पुत्र की ब्रह्मना से उमने अपनी प्रिया के साथ महान् प्रयत्न किया। बिराल के बाद उसके एक भयंकर आकार वाला सर्प उत्पन्न हुआ। राजा झूरसेन ने उसको अत्यन्त गुप्त रखा। सावि नहीं कोई यह न जान जाय कि राजा का पुत्र सर्प है। अन्तःकाल के अनिश्चित कोई भी दूसरा व्यक्ति, चाहे वह अत्यन्त अत्यन्त ही क्यों न रहा हो, नहीं जानता था।

तं दृष्ट्वा भोषणं सर्पं सभायौ नृपसत्तमः। संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्विरमपुत्रता ॥६॥
एतदस्ति महासर्पौ बलिं नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं ब्राह्मं कुर्व 'चूडामपि' क्रियाम् ॥७॥
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च। यावद्वेदं न चाधोते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रबचः शूरसेनोऽतिदुःखितः। ब्राह्मणं कंचनाऽऽनोय सस्कारादिं तदाऽकरोत् ॥
अधीत्येवः सर्पोऽपि पितरं चाब्रवीद्विदम् ॥९॥

सर्प उवाच

विवाहं कुर्व मे राजन्स्रीकायोऽहं नृपोत्तम। 'अन्यथाऽपि च कृत्यं तेन सिध्दयेदिति मे मतिः ॥१०॥
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽलिलसंस्कृतीः। न कुप्याथः पिता तस्य नरकाग्रास्ति निष्कृतिः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

विस्मितः ॥ पिता ब्राह्मं सुतं तमुरगाकृतिम् ॥१२॥

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि प्राप्तं यान्ति शूराश्च पूरयाः। तस्मै वन्द्यां तु को वचाद्वद पुत्रं करोमि किम् ॥१३॥

यहाँ ७२ कि मन्त्री पुरोहित आर धार्मिक। इस रहस्य को नहीं जाननी थी। उस भाषण सप को देखकर वह व्येष्ट राजा भार्या सहित अत्यन्त व्यथित रहता था और सीधता था कि इस सर्प पुत्र की अपेक्षा पुत्र का न होना ही अच्छा था। इसर वह सप सबदा मनुष्य के समान बोलता था। एक दिन उस सर्प ने पिता से कहा कि मेरा चूडाकरण संस्कार, उपनयन और वेदाध्ययन करा दीजिए। द्विज जब तक वेद वा अध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के समान रहता है ॥१-८॥

ब्रह्मा बोले—शूरसेन पुत्र की बातें सुनकर अति दुःखित हुआ और विवश हो किन्तु ब्राह्मण का बुलाकर संस्कार आदि करवा दिया। पाँडेदिना बाद जब वह वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका तब पुन पिता से कहा ॥९॥

सर्प ने कहा—राजन्। मेरा विवाह कर दो। नृपोत्तम। मैं इस मलय स्त्री का इच्छुक हूँ। यदि ऐसा नहीं करने तो तुम्हारे वतस्य व, पूणता नहीं सिद्ध होगी, ऐसी मरी वारणा है। जो पिता पुत्र को उत्तरण कर वेद-विधि से उनके सब सद्व्यवहार नहीं करता उसे नरक से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१०-११॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर आश्चर्य म पडा हुआ पिता अपने सपसरीरवारी पुत्र से बोला ॥१२॥

शूरसेन ने कहा—जिसे पाण्डव आज से बड़े बड़े वीर मयमल हो जाते हैं, उसे भला अपन। वन्द्या कौन देगा ? पुत्र। तुम्हीं वन्द्याओं में क्या बच्चे ? ॥१३॥

१४ सतीप नित्य नाम्जो०। २४ ०वादिनी कि०। २६ ०मणिक्रिया। ३०। ४० ०स्वाराध तयाऽव०। ५५ ०र ह्यत्रोद्वेह०। विवाहकर्म हे तात मय त्वं कुर्व निर्वय। ५०। ६० ८ ०या पितृहृत्य मेव। ७५ ०ह त्व सर्पो ह्यतिभोषण। ८०। ८ ०मानवा।

ब्रह्मोवाच

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः

॥१४॥

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राजगजां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च ॥१५॥
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत्। नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रमिदञ्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तमः। विवाहार्थममात्स्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत् ॥१७॥

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्छरो दुर्जयः शत्रुतापनः ॥१८॥
रथे नागे स धनुषि पृथिव्यां मोपमोयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं बृद्धस्तथैव च ॥१९॥
राज्यभारं सुते भ्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यस्तः। न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः ॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च। विवाहायाम् कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः ॥२१॥
म मे काचित्त्वा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽमजः। सुते न्यस्तभरां यान्ति कृतिनस्तपते वनम् ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर पंडित सर्प ने कहा ॥१४॥

सर्प ने कहा—राजन् ! प्रजापति के प्रभु ! राजाजी के बहुत प्रकार के विवाह होते हैं, बलात् कन्या-हरण, और युद्ध द्वारा जीतकर विवाह करना भी राजाजी के लिये विषय है। पुत्र का विवाह ही जाने पर ही पिता बृद्धत्व होता है। यदि आप मेरा विवाह नहीं करावेंगे, तो मैं इसी गया में बृषकर प्राण दे दूँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥१५-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा शूरसेन ने उस पुत्र के हठ को जानकर विवाह-परामर्श करने के लिये मन्त्रियों को बुलाकर कहा ॥१७॥

शूरसेन ने कहा—मेरा गुणवान्, दूर, बुद्धिमान्, दुर्जय और शत्रुघ्न को घेत से न रहने देने वाला पुत्र नागेश्वर अब युवराज हो गया है, वह रथ, हाथी और धनुष बलाने में इस पृथ्वी पर अपनी समता नहीं रखता। अतः अब उसका विवाह कर देना चाहिए। मैं बृद्ध हो चला हूँ, इसलिये विवाहोपरान्त पुत्र को राज्यभार मोप कर निश्चिन्त हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है। जब तक पुत्र का विवाह नहीं होता तब तक वह मेरा प्रियपुत्र बालभावं का नहीं छोड़ सकता, अतः मेरे हितचिन्तक आप लोग इसने विवाह के लिये प्रयत्न कीजिये। जब मेरा पुत्र विवाहित हो जायगा तब कदापि मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न होगी। प्रायः विलेखन पुत्र को सारा भार सीप कर सरस्या के लिये वन में चले जाते हैं ॥१८-२२॥

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत्। ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम्॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणग्रेष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः। विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किं चिन्तयते॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तयोक्तेषु गम्भीरो मृतसत्तमः। पुत्रं सर्पत्वमात्यानां न चाऽऽख्याति म ते विदुः॥२५॥

राजा पुनस्तामुवाच का स्यात्कन्या गुणाधिका। महावशभवः श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाभ्यः॥२६॥

संबन्धयोग्यः शूरश्च यस्तबन्धः प्रशस्यते। तद्वाजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः॥२७॥

कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिंसे रतः। राज्ञो मतिं विदित्वा तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीद्विदम्॥२८॥

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः। वाजिधारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते॥२९॥

अष्टौ पुत्रा महेश्वासा महाराजस्य धीमतः। तेषां स्वसा भोगवती साक्षात्लक्ष्मीरिवापरा॥

तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—सभी मन्त्रियों ने राजा की बातें सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक अत्यन्त तेजस्वी राजा से कहा॥२३॥

मंत्री बोले—आपके कुमार बड़े गुणवान् हैं और आप भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, तब आपके पुत्र के विवाह में परामर्श और चिन्ता की क्या आवश्यकता है॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—मन्त्रियों के इस प्रकार कहने पर गम्भीर महाराज ने न तो सर्पपुत्र के विषय में कुछ कहा और न मन्त्रियों ने कुछ जाना। राजा ने पुनः उन मन्त्रियों से कहा कि वह कौन-सी गुणवती कन्या है और वह कौन अत्यन्त कुलीन, गुणवान्, श्रीमान् तथा सम्बन्ध योग्य राजा है, जिसके साथ सम्बन्ध करना श्रेयस्कर और प्रशस्त होगा। राजा की बातें सुनकर मन्त्रियों में अत्यन्त बुद्धिमान्, कुलीन, साधु, चेष्टाभा द्वारा मन की बात जानने वाले और राजा के अत्यन्त हिंसी एक मन्त्री ने राजा का अभिप्राय समझकर कहा॥२५-२८॥

मंत्री बोले—महाराज! पूर्व देश में विजय नाम का एक राजा है, जिसके असंख्य हाथी, घोड़े और रत्नों की गणना नहीं की जा सकती। उस धीमान् राजा के धनुर्विद्या में कुशल आठ पुत्र हैं। उसकी भोगवती नाम की वहिन साक्षात् द्वितीय लक्ष्मी के समान है। राजन्! आपके पुत्र के योग्य वही कन्या है, यही मेरा वचन है॥२९-३०॥

१ घ पुत्ररूपत्व० २ क० चक्रस्य कन्या। ३ घ अक्षरः श्री० ४ घ अनाधिकः स०।

५ घ अत्याय। ६ क क० दितम्। व०।

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभाषत

॥३१॥

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत्

॥३२॥

बृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज यत्ते मनसि वर्तते^१। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मा ततः॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूषणाच्छादनोक्तिभिः। संपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह॥३४॥

स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। संपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसंभवं॥३५॥

महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपते सुनीर्नागस्य धीमतः॥३६॥

विवाहापाकरोत्सांधि मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभिः। पूजयामास नृपति भूषणाच्छादनादिभिः॥३७॥

अवाप्य पूजा नृपतिर्दंभोत्पद्यदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ बृद्धामात्यो महामतिः॥३८॥

शूरसेनाय तद्वृत्तं संवाहिकमवेदयत्। ततो बहुतिथे काले बृद्धामात्यो महामतिः॥३९॥

पुनर्वलेन महता वस्त्रालंकारभूषितः। जगाम तरता सर्वैरन्यद्वच सचिष्यवृत्तः॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर राजा ने उससे कहा ॥३१॥

राजा ने कहा—उसकी कन्या किस प्रकार मेरे पुत्र की भागी होगी यह बतलाओ ॥३२॥

बृद्धे मन्त्री ने कहा—महाराज! आपने मन में जो बात है, उसका मैंने सूझ समझ लिया। शूरसेन! अब जा बतला है, उसने जिस मुझे आमा दीजिये ॥३३॥

ब्रह्मा ने कहा—बृद्धमन्त्री की बात सुनकर राजा ने आभूषण, वस्त्र और आदर की वार्ता से उसका सम्मान कर बहुत बढ़ा। सेना के साथ उग भेज दिया। वह पूरा देश में आकर महाराज से मिल, उनकी पूजा करने की निम्नत उपाय और अनेक प्रकार के वार्ता से उस महाबुद्धिमान मन्त्री ने नृपति शूरसेन के बुद्धिमान पुत्र नाग के साथ महाराज-कन्या भागवत के विवाह की गण्य की। इस बात से उसने सत्य, असत्य प्रत्यक्ष प्रकार के उपाय और उक्ति का सहारा लिया, विविध आभूषण और वस्त्र आदि भेट की साधनियों से उस राजा की पूजा की की। पूजा से प्रसन्न होकर राजा ने कन्या-दान की स्वीकृति दे दी। कार्यसिद्धि जानकर उस बृद्धमन्त्री ने लौट कर शूरसेन से मारी वैवाहिक घटना की सुना दिया। इसके उपरान्त कुछ समय बीत जाने पर वह महाबुद्धिमान् बृद्धमन्त्री बहुत बड़ी सेना के साथ वस्त्र और आभूषण से सुसज्जन होकर आगे बढ़ मन्त्रियों का भी साथ

विवाहाय' महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्'। सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्य सचिवंवृत ॥४१॥

वृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽया (चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपते । पुत्रो नाग इति श्वातो बुद्धिमान्गुणसागर ॥४२॥
क्षत्रियाणां विवाहादच भवेयुर्वह्नुषा नृप । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाह स्थानमहामते ॥४३॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच बधन्ति हि । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४॥

ग्रहोवाच

वृद्धामात्यवच ध्रुत्वा विजयो राजसत्तम । मेने वाक्य सया' सत्यममात्य भूपति' तदा ॥४५॥
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्या सविस्तरम् । शस्त्रेण च ययाशास्त्र प्रेययामास ता पुन ॥४६॥
स्वानमात्यास्तया गाश्च हिरण्यसुरपादिकम् । बहु दत्त्वाऽयं विजयो हर्षेण महता द्युत ॥४७॥
सामादायाश्च सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमा । प्रतिष्ठानमयाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम् ॥४८॥
न्यवेदयस्तथोवृत्ते विजयस्य वधो बहु । भूयणानि विविधानि दास्यो वस्त्राविव च दत्त ॥४९॥
निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरै । विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगता ॥५०॥
तांग्पूजयित्वा राजाऽसौ बहूमानपुर सरम् । विजयाय यया प्रीतिस्तथा कृत्वा द्यसजयत् ॥५१॥
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी । इवभूद्वशुरयोर्नित्य शुभयन्ती सुमध्यमा ॥५२॥

लेकर दप के साथ राजा विजय के पास गया । भार अपने सहायन मंत्रियों के सहित उस बृद्ध महामन्त्र ने विवाह के लिये महाराज से प्रस्ताव किया ॥१४४१॥

बृद्ध मन्त्री ने कहा—राजा शूरसेन का वह गुणसागर बुद्धिमान पुत्र नाग यहाँ आना नहीं चाहता है । नृप ! क्षत्रिया के विवाह बहुत प्रकार से होते हैं इसलिये महामते । यह विवाह शस्त्र और आभूषणों से ही सम्पन्न हो जाय । क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्य वचन बोलते हैं । इसलिये शस्त्र और आभूषणा से विवाह विधि सम्पन्न हो एसः आना दीजिये ॥४२४४॥

ग्रहमा ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर महाराज विजय ने अमात्य राजा तथा वृद्धमन्त्री की बात को साथ समझ लिया । राजा ने शास्त्रानुसार शस्त्र के साथ धूमधाम से भागवतों का विवाह कर उसकी पतिगृह भेज दिया । इस धूम कृत्य से प्रफुल्लित होकर राजा विजय ने अपने मंत्रियों सेवकों और ब्राह्मणादिकों को गायें मुग्ध और घोंड इत्यादि पुत्कार और दान म दिये । उधर वृद्ध मन्त्र सहित सचिवा ने प्रतिष्ठान पुर अकर राजा शूरसेन को उनकी पुत्रवधू अर्पित कर द । तथा महाराज विजय के बहुत से बरतें सुनायी साथ ही उनके दिये हुए विविध प्रकार के वस्त्र आभूषण और दासी आदि अर्पित कर वे लौन कृतकृत्य हो गये । राजा शूरसेन ने भी भोगवत के साथ आये हुए राजा विजय के मंत्रियों का बहुत आदर-सत्कार करने राजा विजय के

१ घ विजयाय । २ ड ०मासगुणाकर । ३ घ तज्ज अथमत्वा बद्धस्य भूपति । वि० ।

४ ड ०पतिस्तदा ।

भोगवत्पाश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषण । एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३॥
सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले । स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुनः पुनः ॥५४॥
मम भार्या राजपुत्री किं मा नैवोपसर्पति । तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रवीत् ॥५५॥

राजपत्न्युवाच

धात्रिकं गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवतीं वद । तव भर्ता सर्प इति ततः सा किं वदिष्यति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा । रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत् ॥५७॥

धात्रिकोवाच

जानेह सुभगे भद्रे भर्तारं तव देवतम् । न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्पद्मवीदिवम ॥५९॥

भोगवत्पुवाच

मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् । किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते ॥६०॥

प्रसन्नता के अनुरूप उद्दे विदा किया । राजा विजय की बहु रूपवती मुखरी और सुन्दर कटिबाली, कन्या स्वदा अपने सास-ससुर की गुथूपा में लगा रहनी थी । भोगवती का जो सप पति या वह भी एकांत जनगूच रत्ना से सुशोभित और सुगन्धित पुष्पी से सुसज्जित गृह में निवास करता था । एक दिन उस सप ने अपनी माता और पिता से अनुरोध पूर्वक बार बार कहा कि मेरी राज कन्या पति मेरे पास नया नहीं आता है । पुत्र का बात सुनकर राजा माता ने कहा ॥५५ ५५॥

राजपत्नी ने कहा—पार्श्वी ! सुन्दरी ! जाओ गाँव भोगवती से कहो कि तुम्हारा पति सप है इसका उत्तर मे वह क्या कहता है या मुझ बताना ॥५६॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्श्वी जैसा आना यह कहकर भोगवती के पास गई । एकांत पात्रर बनी मग्नता और अत्रु वगैरे बाली ॥५७॥

पार्श्वी बोली—मुभगे ! भद्र ! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा पति देवता है । परन्तु तुम निश्चय ही इस बात का कहो भी न कहना कि तुम्हारा पति मनुष्य नहीं बल्कि सप है ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्श्वी की बात का सुनकर भोगवती ने यह कहा ॥५९॥

भोगवती बोली—माधारणनया मानुषी स्त्रिया का पति मनुष्य ही होता है । देवदुर्गाग्र प्रसामी तो महान् पुण्य से प्राप्त होता है ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत् । सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१॥
हरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम् । भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वा पुनः सखीम् ॥६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभीषणम् । सुगन्धकुसुमाकीर्णं शयने सा रहोगता ॥६४॥
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं भर्तार रत्नभूषितम् । कृताञ्जलिपुटा 'बाबयमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५॥

भोगवत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे देवत पतिः ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं 'सर्पभावनं' । खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चैवाङ्गसंगमैः ॥६७॥
सुगन्धकुसुमं पानैस्तोषयामास तं पतिम् । तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥६८॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकृतं राज्ञौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम्

ब्रह्मा ने कहा—उस घाई ने भोगवती की बातों को सप, उसकी माता और राजा की कमल विस्तारपूर्वक सुना दिया । राजा उसकी बातों को सुनकर उसके कम-विपाक का स्मरण करने रो पड़ा । इसपर भोगवती ने अपने उस सन्देशवाहक सर्पों से कहा ॥६१-६२॥

भोगवती ने कहा—मेरे कान्त को दिखलाओ, मेरा जीवन व्यर्थ बीतता जा रहा है, यह कार्य करने से तुम्हारा कल्याण हीगा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर उस सेविका ने सुगन्धित फूलों से सजी शय्या पर विराजमान उस भीषणाकृति सर्प को दिया दिया । एकान्त में अवस्थित भोगवती ने रत्नों से अलंकृत भयङ्कर सर्पपति को देखकर विनीत भाव से बड़ाञ्जलि होकर पति से गुरुत कहा ॥६४-६५॥

भोगवती ने कहा—मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि भूय देवता पति-प्राप्त हुआ ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कह कर स्वयं शय्या पर स्थित हो उस सुकुमारी ने अपने सर्पपति के साथ उसके मनो-नुकूल गीत और अगस्त्यशय्यापारपूर्वक दाम्पत्य क्रीडा की, और सुगन्धित फूल एवं पेय पदार्थों से अपने पति को प्रसन्न किया । हे मुनि (नारद) ! उसी राजकन्या के प्रसाद से सर्प को पूर्व-स्मृति हो गई । भाग्य की सब वस्तु स्मरण करने सर्प ने रात्रि में अपनी पत्नी से कहा ॥६७-६८॥

राजकन्याऽपि या दृष्ट्वा न भीताऽसि कथं प्रिये। सोवाच देवविहितं कोऽतिक्रमिष्यतीति ॥६९॥
पतिरेव गतिं स्त्रीणां सर्वदेव विधेयतः

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति दृष्टस्तामाह नायं प्रहसिताननः

॥७०॥

सर्प उवाच

मुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम्। तव प्रसादाच्चावर्द्धि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१॥
शस्त्रोऽहं देवदेवन कुपितेन पिनाकिना। महेश्वरकरे नागं शेषपुत्रो महाबल ॥७२॥
'सोऽहं पतिस्त्वच्च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा। उमावाक्याज्जहासोर्ध्वं शम्भु प्रीतो रहोगतः ॥७३॥
ममापि 'चाऽऽगत भद्रे हास्य तद्देवसनिधौ। ततस्तु कुपितः शम्भुः प्रादाच्छापं ममेवृक्षामः ॥७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोगी त्वं सर्पो भविता ज्ञानवानिति

॥७५॥

सर्प उवाच

ततः प्रसादितः शम्भुस्त्वया 'भद्रे मया सह'। ततश्चोक्तं तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम् ॥७६॥
'कुर्वतो' ज्ञानमाधास्ये' यदा' सर्पाकृतेस्तव'। तदा विशापो भविता' भोगवत्या प्रसादतः ॥७७॥

सर्प ने कहा—प्रिये! तुम राजकुमार! हाथर भ, मुझका देवकर क्या नहीं करी? यह मुनकर उरने कहा—
भाय विधान का उलट देने में कौन समय ही सकता है? पति है मन्त्र स्त्रिया की विधेय गति होता है ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—यहाँ का बापा का मुनकर मुस्तुराते हुए नाग ने हृष से कहा ॥७०॥

सर्प बोला—मुहारी इस पति भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ मुहारी कौन-सी कामना मैं पूरा करूँ? मुहारी।
मुहारी कृपा में मुझ पूर का रारी घटनाओं का अब स्मरण हो जाया है। मैं शपनाम का पुत्र महाबल नाम पत्नी
का हाथ पर रहना था। एक बार देवदेव विवने ने कुपित होकर मुझ नाग दे दिया था। वही मैं मुहारा गति हूँ और मुझ
भद्रा पूर जन्म का वही भागवती नाम का भार्या ही। एक बार एकान्त व दाम उमा का प्रसाद से मैं शिव जी के
हैं म पंड। भद्र! उमा देवता का मर्मपि मुझे भी हूँ ही आ गई। तब कुपित होकर पाकर ने मुझ पराग छाप दे दिया
॥७१-७४॥

शिव ने कहा—तुम मनुष्य कुल में जाना जायेंगे ॥७५॥

सर्प ने कहा—भद्र! तदनन्तर मुहारे भाय मैं भी बड़ी विवधता से उनका प्रसन्न किया। तब उमा ने
कहा कि भागवत भद्र! मैं जब भेट पूजन करीये तब भागवती का कृपा में मुहारी का गरीब पुत्र का भिक्षा। मुहारा।

१ प ०६ म २ त्व प। २ प ०८ तन हसित दश०। ३ प ०९ व ४ व ५ ह। पुनः ०। ५ व ६
पुरा। ६ प ०७ वी सर्वभावेन सहस्रस्तिपुरमरुत्। त०। ७ व ०८ मापतय०। ८ व ०९ तन। ९ व १० व।
पि०। १० व ०९ तन वग मय०। १० व ०९ तन वग मय०।

तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने । तस्माभोत्वा गौतमी मां पूजां कुरु मया सह ॥७८॥
ततो विद्यापो भविता आवां यावः शिवं पुनः । सर्वेषां सर्वदाऽऽर्त्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृधवनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ । ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु ॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने । आपृच्छध पितरौ सर्पौ भार्यया गन्तुमुद्यतः ॥
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह 'महामतिः' ॥८१॥

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति । तस्माद्वाज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुताम्बहून् ॥
याते मयि परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्' ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराद् । कामरूपमवाप्पाय भार्यया सह सुव्रत ॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रं राज्यं कृत्वा सुविस्तरम् । याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्वाप्य स्वके पवे ॥८४॥
भार्यामात्पादिसहितस्ततः शिवपुरं ययौ । ततः प्रभृति तसौर्यं नामतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५॥

उसी क्षण के प्रभाव से मेरे और तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति आई। इसलिये मुझको वहाँ के चलो और मेरे साथ पूजा करो। तब हम दोनों क्षण-भूक्त होकर पुन शिव का सर्वाप्य प्राप्त करेंगे। भगवान् शंकरही सदा सब विषय प्राणियों के एकमात्र आधार हैं ॥७६-७९॥

ब्रह्मा ने कहा—मति की बातें सुनकर यह पति (साँप) को लेकर गौतमी के तट पर गई। इसके अनन्तर गौतमी ने स्नान कर उसने शिव की पूजा की। मुने! पूजा से प्रसन्न होकर शंकर ने नाग का दिव्य रूप दिया। अपनी माता और पिता से अनुमति लेकर वह साँप भार्या के साथ शिवलोक जाने के लिये उद्यत हुआ। यह जानकर महाबुद्धिमान् पिता ने कहा—॥८०-८१॥

पिता ने कहा—गुण्हीं मेरे एकमात्र युवराज पद का धारण करने वाले पुत्र हो। इसलिये मेरे सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर बटुल से पुत्रो का उत्पन्न करो। फिर जब मैं स्वर्ग को सिवार जाऊँ तब तुम शिवपुरी जाना ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर नागराज ने उसे स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह महाव्रती नाग यथेष्ट रूप पाकर पत्नी, पिता, माता तथा पुत्रा के साथ अपने विनाश राज्य का उपभोग करने लगा। पुन पिता ने स्वर्ग लौट चले जाने पर अपने पद पर पुत्रा को स्थापित करके स्त्री और आश्रय आदि के सहित वह

'यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानञ्च दानं च सर्वकृतुफलप्रदम् ॥८६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥
श्रीतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं मृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१॥
देवानामसुराणां च संगरोऽभूत्सुदारुणः। नाशश्चनुवंस्तवा जेतुं देवा दानवसंगरम् ॥२॥
'तदाऽहमगमं देवैस्तिष्ठन्तं क्षूलपाणिनम्। अस्तव्यं विविधैर्बाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३॥
संमन्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्यदाऽऽहृतं संमयितुं समुद्रम्
यत्कालकूटं समभून्महेश, तत्त्वां विना को प्रसितुं समर्थः ॥४॥

शिवपुरी को चला गया। तब से वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ भोगवती के द्वारा नागेश्वर देव प्रतिष्ठित हुये हैं, वहाँ स्नान और दान करने से सम्पूर्ण यज्ञी के फल प्राप्त होते हैं ॥८३-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग मे नागतीर्थ वर्णन-नामक एक मी प्यारट्वाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

मातृतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला मातृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से भी मनुष्य मानसिक व्यथाओं से छूट जाता है। एक समय देवा और दानवों मे अति धारयुद्ध हुआ। जब देवगण वह दानव-संग्राम जीतने मे समर्थ नहीं हुए, तब मैं देवताओं के सहित बंलाय पर्वत पर विराजमान सागर के पास गया और हाथ जाड़कर धीरे धीरे विविध वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगा—
'महेश! जब सब देवता और दानव आपस मे मन्त्रणा कर समुद्र का मथन करने लगे, उस समय जी बालकूट विष उत्पन्न हुआ, उसको निगलने मे आपने बिना दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? जा कामदेव पुण्य-दाण के

पुष्पप्रहारेण^१ जगत्त्रयं यं, स्वाधीनमापादयितुं समर्थः
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितायमानो विलयं प्रयात.
विमय्य वारोशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः
दत्त्वा विषं संहर्त्तोलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते धं समर्थः

१

॥५॥

१

॥६॥

॥७॥

ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः

शिव उवाच

दास्येऽहं यदभीष्टं यो वृषन्तु सुरसत्तमाः

॥८॥

देवा ऊचुः

वानदेभ्यो भय घोरं तत्रैहि वृषभध्वज। जहि शत्रून्सुरान्पाहि मायवन्तस्त्वया प्रभो॥९॥
निष्कारण. सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि। तवाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता^२ सर्वदेहिनः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थुवतस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः। तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम्॥११॥
ततस्त्रिलोचनः^३ श्रान्तस्तमोरूपधरः शिव। 'सलाटाद्व्यपतस्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः॥१२॥
स सहृन्दैर्यगणास्तामसीं मूर्तिमाश्रित। ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुवं ययुः॥१३॥
स 'सहृन्सर्वदेत्यास्तादाऽगच्छद्भुव हुरः। इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वा महोमिमाम्॥१४॥

प्रहार सेनाओं लोको को अपने वर्णमन्त्र करने में समर्थ हुआ, तथा अन्य सब देवताओं द्वारा वन्दित हुआ, वही मदन जब आप पर अपनी सक्ति का प्रयोग (प्रदान) करने लगा तब स्वयं विनष्ट हो गया। मदन-रिपु^१। समूह को मथने से जो उत्तम बीजें निकली उनकी तो देवताओं ने ले लिया, परन्तु नीलकण्ठ^२। विनाशकारी विष आपको दिया गया। सत्य है कि आपको छाड़कर उस महाविष को पारण करने में कौन समर्थ था ? इस स्तुति से आदिकर्ता शंकर प्रसन्न हो गये ॥१-७॥

शिव ने कहा—हे देवदेष्टो^३। आप लोग अपनी अभीष्ट बनाइए, मैं अवश्य दूँगा ॥८॥

देवों ने कहा—हे वृषकाहन^४। दानवा से हम देवा को दाखल भय हा गया है, आप वहाँ चलिये और राक्षसा की मारकर देवा की रक्षा कीजिये। प्रभो^५। तुम सही। हम सुनाय हैं। दावी^६। यदि आप आज अकारण वधु (रक्षक) नहीं होते तो दुःखा से आत मुक्त प्राणी क्या कर सकेंगे ? ॥९-१०॥

ब्रह्म ने कहा—इस प्रकार निवेदन किये जान पर शंकर जी तुम वहाँ भय जहाँ राक्षस लाग थे। वहाँ उनके साथ राक्षसा का भपकर युद्ध हुआ। इसके अनन्तर ताम्रस रूप धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव शत्रु-से गये। युद्ध करते समय उनके लगट से पानी की बूँद गिरने लगी। तब वे रौद्र मूर्ति धारण कर दैत्यो का सहार करने लगे। उनकी उस भयकर महारक्षणी मूर्ति को देखकर वे दानव मेरुपृष्ठ से भाग कर पृथ्वी पर चले आये। यह देखकर शंकर जी

तथैव कोपाद्द्रोऽपि शत्रूस्ताननुधावति । तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वदेविन्दव ॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुमहिंश्वरो मुने । तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जतिरे ततः ॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति । ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम् । अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८॥
यत्र यत्र द्वियो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः । रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भूयाद्द्विपः ॥
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विपः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तावच्च जग्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः । तान्हत्वा मातरः 'सर्वान्देवारीनतिभीषणान् ॥२०॥
पुनर्देवानुपाजगमु' पया तेनैव मातरः । गताश्च मातरो यावद्वावच्च पुनरागताः ॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्मौतमौतोरमाभिताः । प्रस्थानास्तत्र मातृणा सुराणां च प्रतिष्ठितेः ॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम् । मातृणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्यं पृथक्पृथक् ॥२३॥
तत्र तत्र विलास्यासग्रसातलगतानि च । सुरास्ताम्यो 'धरान्प्रोचुर्लोकं पूजां यथा शिवः ॥२४॥

सब दानवा का सहार करते हुये पृथ्वी पर चले आये। वहाँ भी शकर को देखकर राक्षस भयभीत हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर दहश उबर भागने लगे। शकर भी कुछ हीबेर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। जैसे जैसे वे दौड़ते थे वैसे वैसे उनके शरीर से पत्तियों की बूँदें गिरने लगीं। मुनि ' जहाँ जहाँ शिव के शरीर से निकल कर बूँदें पृथ्वी पर गिरी वहाँ वहाँ शिव के आकार की मातायें उत्पन्न हो गईं। उन माताओं ने शहर से कहा कि 'हम अनुरा को लायेंगी।' यह सुनकर भगवान् ने सब देवगुन्दा के सामने ही कहा ॥११-१७॥

शिव ने कहा—वे सब राक्षस स्वर्ग से भागकर पृथ्वी पर आए, फिर वहाँ से रसातल को चले गये। इसलिये आप सब मेरा कहना मुनिये। जहाँ जहाँ शत्रु जायें, वहाँ वहाँ मातायें भी जायें। इस समय मेरे भय से शत्रु रसातल को चले गये हैं। इसलिये आप सब भी शत्रुओं का पीछा करती हुई रसातल को जाइये ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे मातायें पृथ्वी की ओर बढ़ रही हैं, जहाँ दैत्य-दानव थे। वहाँ जाकर सभी महामयक राक्षसा को मार डालो। पुनः वे उन्हीं मार्ग से जिस मार्ग से शहर से गई थीं—देवताओं के पास चर्चें आईं। जिस समय मातायें रसातल का गईं और जब तक पुनः वहाँ से नहीं लौटीं तब तक देवगण मोनमी के तट पर स्थित रहें। वहाँ माताओं के प्रस्थान करने और देवताओं के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र पवित्र और विजय देनेवाला क्षेत्र माना गया। जहाँ माताओं की उत्पत्ति हुई और जहाँ रसातल को जाने वाले बिल थे वे पृथक् पृथक् एक-एक भान्नीयें कह गये।

प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजा भवतु सर्वदा । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदुः । सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मनुषादिभि ॥२६॥
तेषु स्नानमयो दानं पितृणां चैव तर्पणम् । सर्वे तदक्षयं ज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा ॥२७॥
यस्तिवद भृगुर्वाग्निस्तथ स्मरेदपि पठेत्तथा । आरयान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत् ॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्त्वाधिसवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णनं नाम
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

श्रीतमोमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशसमोऽध्यायः ॥४३॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपरं तीर्थं देवानामपि दुर्लभम् । ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं मृणाम् ॥१॥

देवा ने माताआ का वर दिया नि जिस प्रकार लोक में गिव की पूजा होता है उसी प्रकार सबदा माताआ को भी पूजा प्राप्त होगी। यह कहकर देवता अतर्हित हो गये परन्तु माताय वही रही। जहाँ जहाँ माताय स्थित रहा वहाँ वहाँ मातृत्वं स्थापित हुय। वेन ये देवा के लिये भी सेवा माने गये हैं फिर मनुष्या के लिये तो कहना ही क्या ? उन तीर्थों में किये गये स्नान दान और पितृ तर्पण अधिक उत्तम प्रकार अवश्य होते हैं जिस प्रकार शिव के वरदान वाक्य। जो मनुष्य मातृत्वाय वा कथा को सुनता स्मरण करता और पठता है वहदाय ज वः आर सुख होता है ॥२० २८॥

याब्रह्म महापुराणे न देव ताम मातृताय प्रतिष्ठान-वर्णनं नाम कण्ठसी चारहवां अध्याय समाप्तः ॥११२॥

अध्याय ११३

ब्रह्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यह एक दूसरा मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्मतीर्थ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो देवा के लिये भी दुर्लभ माना गया है ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ ! जब राखस रस तल में धुस गये तब उनके पीछ पीछ

स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम्। दैत्येषु च मुनिष्येष्ठ तथा मातृषु ताननु ॥२॥
 मदीयं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृति भोषणम्। तद्वक्त्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह ॥३॥
 'हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम्। 'आगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्वे क्षणादिति' ॥४॥
 निवारयन्तं मामेवं भक्षणायोद्यतं तथा। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे वित्रस्ता विष्णुमब्रुवन् ॥५॥
 ब्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य भुखं लुन। चक्रधुविबुधानाह च्छेदमि चक्षणे' ये शिरः ॥६॥
 किं तु तच्छिद्यमेवेदं संहरेत्सचराचरम्। मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव' हि ॥७॥
 त्रिनेत्रः कशिरद्वेष्टा स' च धत्ते न संशयः। मया च' शंभु' सर्वेऽश्च स्तुत प्रोवतस्तयैव च ॥८॥
 याग' क्षणो दृष्टफलेऽसमर्थ', स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा ॥
 फलस्य दाने प्रतिभूजंतीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः ॥९॥
 ततः सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये। लोकानामुपकारार्थं तपेत्पाह सुरान्प्रति ॥१०॥
 तद्वक्त्रं पापहृषं यद्भीषणं लोमहर्षणम्। निरुध्य नक्षत्रास्त्रैश्च क्व स्थाप्यं चेत्यथान्वीत् ॥११॥
 तत्रेला विबुधानाह नाहं बोद्धुं शिरः क्षमा। रसातलमथो यास्ये उदधिश्चाप्यथावतीत् ॥१२॥

ज्ञातव्यं किं गर्द और देव सेनामें कहीं रहे गर्द, उस समय मेरा पाँववाँ गवहे की जाइति का भयकर मुख देवताओं और
 सैनिकों के बीच मुझको बैठे देख कर बोल उठा ॥२-३॥ हे दैत्यो! तुम लोग क्या भाग रहे हो? तुम लोग भयभीत
 हो होओ, आओ, मैं एक ही क्षण में सब देवा को खा जाऊँगा ॥४॥ मैं उस मूल को जो इस प्रकार देवा को खाने के
 लिए उद्यत हो रहा था, रोकने लगा। यह देखकर सब देव भयभीत हो भगवान् विष्णु से बोले ॥५॥ विष्णु! रक्षा
 कीजिये। ब्रह्मा के इस मुख को घाघ्र बाट डालिये। विष्णु ने देवताओं से कहा 'मैं एक से शिरच्छेद तो अवश्य कर
 दूँगा। हे, त्रिगु बह शिर कट जाने पर भी चराचर साहस जगत् का सहार कर सकता है। इसलिये देवगण! मैं इस
 विषय में एक उपाय प्रस्ताव दे रहा हूँ, संक्षेपान्वीतर मुनि। भगवान् त्रिलोचन इस दुष्ट शिर का छेदन कर, इसकी
 धारण कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।' यह सुनकर मैंने और सब देवताओं ने मिलकर शिर की स्तुति की और
 कहा ॥६-८॥ 'यग क्षणमर मे सम्पन्न होने वाले, प्रत्यक्ष फल देने मे अक्षम' तथा कर्णों को क' नहीं देता है। इस
 हिंसा को मानकर, फल देने में शक्य नहीं। साक्षी माना जाता है और सब प्रत्यक्ष काम में सहार प्रवृत्त होता
 है ॥९॥ छेदनकर संतुष्ट हुए शिर ने देवार्थक। सिद्ध तथा लोककल्याण के लिये देवताओं से कहा कि मैं ऐसा
 ही करूँगा ॥१०॥ परन्तु इस दुष्टि का काले, भीषण और रागते सजे कर देने वाले दस्तक को नालची अन्धता
 से बाट कर कहीं स्थापित करे। यह बनाइए ॥११॥ यह सुनकर पृथ्वी ने देवा से कहा कि मैं इस शरीर का बीजे

१ क हा। २प ०प्यनमु०। ३प ०दिव। नि०। ४क ०तगिर। तद्दृष्ट्वा। ५ ०तशिर। ६प
 ०तहर। मुरारिवि०। ६प ०प नस्य नमू। ७क ०वै एव। ८ क स ०धेरयनि। ९प ५ सर्व'दैवैरच।

शोष यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचु शिव सुरा । त्वय्येवंतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया ॥१३॥
अच्छेदे जगता नाशश्छेदे दोषश्च तादृश । एव विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा ॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्कर कर्म गौतमो प्राप्य पावनोम् । अस्तुवञ्जगतामीश प्रणयाद्भक्तित सुरा ॥१५॥

देवत्वमित्र कशिरोऽतिभीम, तान्भक्षणायोपगत नकृत्य

नखाग्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्याग्येऽपि दोषात्कृपयाऽनुधत्ते

॥१६॥

तत्र ते त्रिमुधा सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके । तुष्टुर्विवर्धेशान कर्म दृष्ट्वाऽतिद्वयतम् ॥१७॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । अद्यापि ब्रह्मणो रूपं चतुर्मुखमवस्थितम् ॥१८॥
शिरोमान् तु य पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मण पवम् । यत्र स्थित्वा स्वयं हृदो लूनवान्ब्रह्मण शिर ॥१९॥
हृदतीर्थं तदेव स्वात्तत्र साक्षाद्दिवाकर । देवानां च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम् ॥२०॥
सौर्यं तीर्थं तवाप्यात सर्वक्रतुफलप्रदम् । तत्र स्नात्वा रविं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्नं ब्रह्मण पञ्चमं शिर । क्षेत्रेऽविमुक्ते सस्याप्य देवतानां हितं कृतम् ॥२२॥

मे असमर्थ हूँ यदि ऐसा कहूँ तो इसके भार से मैं ही रसतिल बना जाऊँगी । समुद्र ने कहा यदि मैं इसको धारण करूँ तो क्षण भर में ही सूख जाऊँगी । निदान विवश ही देवी ने पुनः शंकर से कहा कि लोक पर दया करके आप ही इस शिर को धारण काजिये ॥१२-१३॥ शंकर जा ने इस शिर को न काटने से ससार का नाश ही जगता और काट देने पर भाँवता ही दोष हीना यह विचार कर उस समय उस गदभाकृति शिर को धारण कर लिया ॥१४॥ इस दुष्कर काम की देवकर सब देवता पावन गीतगा के ०८ पर जाकर प्रथम से भक्तिपूर्वक जगत्पति शंकर की स्तुति करते लगे ॥१५॥ देवी के मध्य शत्रु बनकर रहने वाले ब्रह्मा के पांच मुख को जो कि सब देवताओं को खा जाने के लिये उद्यत था—द्वितीया के चंद्र की गिर पर धारण करने वाले आपने मखाग्र रूपा सूचा अस्त्र से काट कर दोषों के कारण स्थाने योग्य उत्त शिर को श्री हंसापूर्वक धारण कर लिया ॥१६॥ ब्रह्मा ब्रह्मा के समाप जिनने देवता ये उ होने शंकर के इस देवतागत काम को देखकर उनका अत्यन्त स्तुति क ॥१७॥ तब से बहुताय ब्रह्मतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ । आज भी ब्रह्मा का चतुर्मुख रूप वहा स्थित ह ॥१८॥ जो मनुष्य उनके गिरीभाग का दान कर लेता है वह अवश्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । जहाँ स्थित होकर स्वयं शंकर ने ब्रह्मा का शिर काटा था वहाँ बहुताय बहुलता है । वहाँ साक्षात् भूय देवताओं के स्वरूप से स्थित हैं । वह अत्युत्तम तीर्थतीय माना जाता है और सब यनों का फल देने वाला है । उस तीर्थ में स्नानकर भूय बिम्ब का दशन करने से मनुष्य आध्यात्मन के वचन से छूट जाता है ॥१९-२१॥ महादेव ने ब्रह्मा के जिस पाँचव शिर का छदन किया और अविमुक्त क्षेत्र में जिसका स्थापना कर देवताओं का हित साधन किया गोमती तटवर्ती बहर्त प में उस शिर

ब्रह्मतीर्थं शिरोमात्रं यो दृष्ट्वा गौतमो तटे। क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति॥
कपालं ब्रह्मणः पुण्यं ब्रह्महा पूततां व्रजेत् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थब्रह्मशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्य-
तीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

गौतमोमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि वृत्तमाख्यास्ये शृणु मारद भविततः॥१॥
देवसत्रे प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैव सत्रस्य संजाता विनदोपतः॥२॥
ततः सुरगणाः सर्वे भ्रामयोच्चर्हन्ति तव। ततो ध्यानगतोऽहं तानयोच' बौक्ष्य कारणम्॥३॥

भाष्य का दर्शन करने जो व्यक्ति अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मकपाल का दर्शन करता है, यह यदि ब्रह्मपार्ता भी हो तो भी पवित्र हो जाता है ॥२३-२३॥

अथ ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मर्षि, गिरालिंग, शिवतीर्थ, सूर्यतीर्थ, आदि छिपार्यः तीर्थों का वर्णन
नामक एक सी तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥११३॥

अध्याय ११४

अविघ्नतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मर विघ्ना का नष्ट करने वाला अविघ्ननामक विशाल एक तीर्थ है। उसका भी वृत्तान्त
योजना है। मारद' मुझ धडा से सुनो। एक समय गौतमी के उत्तर तीरे पर देवयन प्रारम्भ हुआ, परन्तु बिज्जी
और बुद्धि का कारण उम्र, यम का समाप्ति नहीं हो सका। तदनन्तर मर देवनाभा ने मुझसे और बिष्णु ने विवेक
दिना। मैंने ध्यानस्थित होकर यम-दृष्टि से कारण जान लिया और कहा कि यह यम मर्गेगहन बिज्जी के

विनायककृतेविघ्नने तत्सत्रं समाप्यते । तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम् ॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे । अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम् ॥५॥

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामप्रीतिष्वम्बुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं ब्रजामः ॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता ।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरातकोऽपि, तं पूजयामास वधे पुराणाम् ॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाकृतो सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां, पूर्णा भविष्यन्ति मनोभिलाषाः ॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव ।
अतीश्वरदन्तुरसंघा' कृतायां, सद्योजातं विघ्नराजं नमस्तु ॥९॥
यो मातुस्तस्यमृतोऽयं माना, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम् ।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनायस्य विनोद एवः ॥१०॥
पपौ स्तन मातुरयापि तृप्तो, यो भ्रातृमात्सर्यकपायमुद्धिः ।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः ॥११॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेसा, प्रवर्ततां नृत्यमितिस्पुवाच ।
सतोपितो मूपुररावमात्रादणेश्वरत्वेऽभिपिपेच पुत्रम् ॥१२॥

कारण समाप्त नहीं हो पा रहा है । अब आप लोग आदिदेव विनायक की स्तुति करें । देवताओं ने इसे स्वीकार किया और गीतों में म स्नान कर भक्तिपूर्वक आदिदेव गणेश की स्तुति की ॥ १-५ ॥

वैवर्गण बोले—जी सब कामों में सर्वदा देवता, शंकर, विष्णु और ब्रह्मा आदि के भी पूज्य, नमस्करणों (य और ध्यान करने योग्य है उन विघ्नराज की शरण में हम आये हैं ॥६॥ अनारय पूज्य करने में विघ्नराज के समान कोई भी दूसरा देवता नहीं है, यहाँ निश्चय कर त्रिपुरारि शंकर ने भी, त्रिपुरासुर के वध के समय उस गणेश की पूजा की ॥७॥ वे अम्बिका सुत—जिनके ध्यान करने से सम्पूर्ण प्राणियों के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं—हमारे इस महायज्ञ में मङ्गल करें ॥८॥ देवी दिवा को पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका मातृ ध्यान करने से सम्पूर्ण ससार को महान् आनन्द हुआ, इसलिये देवगणों ने कृतार्थ होकर उस सद्योजित बालक को नमस्कार करते हुये विघ्नराज कहा ॥९॥ वे गणेश माता की गोद में बैठ हुए थे, परन्तु माता के बार-बार मला करने पर भी उन्होंने हठात् चन्द्र को पिता की जटा में छिपा दिया । यह गणनायक का विनोद रहा ॥१०॥ वे माता के स्तनपान से तृप्त थे, फिर भी स्कन्द के प्रति ईर्ष्या से उनकी बुद्धि क्लृप्त हो जाती थी । इसलिये शंकर ने उनसे कहा कि विघ्नराज ! तुम लम्बोदर (पेट) हो, यह कहकर शिव ने उनका नाम लम्बोदर रख दिया ॥११॥ देवा से पियरे हुए महेश ने आपसे कहा—अपना नृत्य दिखाओ । आपने भी अपने नूपुर के संचालन मात्र से पिता को प्रसन्न कर दिया । यह देखकर पिता ने भी पुत्र गणेश को गणनायक की पदवी से विभूषित कर दिया ॥१२॥ जो एक हाथ से विघ्नराज धारण करते और दूसरे हाथ से कन्धे पर

यो विघ्नपाशं च करेण विभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण ।
 अपूजितो विघ्नमयोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोज्ज्वलः ॥१३॥
 धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम् ।
 यस्याचनं नैव विनाशमस्ति, तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि ॥१४॥
 यस्यार्चनात्प्रार्थनयाज्जुष्पां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम् ।
 स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, श्रातृप्रियं त्वाश्रुरयं तमोऽहं ॥१५॥
 यो मातरं सरसं नृत्यगीतेस्तथाऽभिलाषं रक्षितं विनोदं ।
 संतोषयामास तदाऽतितुष्टं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१६॥
 'सुरोपकारं रसुरंश्च युद्धेः, स्तोत्रैर्नमस्कारपरंश्च' मन्त्रैः ।
 पितृप्रसादेन सदा समृद्धं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥
 जये पुराणामकरोत्प्रतीपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः ।
 निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि ॥१८॥

ग्रह्योवाच

इति स्तुतः सुरगणैर्विघ्नेशः प्राह तान्पुनः ॥१९॥

गणेश उवाच

इतो निर्विघ्नता सन्ने मत्तः स्यादसुरारिणः ॥२०॥

कुठार लिये रहते हैं, और पूजा न पाने पर माता के कार्य में भी विघ्न उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे विघ्नराज के समान
 दूसरा कौन देवता है ॥१३॥ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों में देव और असुरा द्वारा आप सर्वदा पूर्वपूज्य के
 रूप में पूजे जाते हैं । जिसका पूजन करने से कार्य निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे पूर्वपूज्य (प्रथम पूजा पाने
 योग्य) देव को प्रथम नमस्कार है ॥१४॥ जिसकी पूजा और श्रवण से अनुरूप ही सब फल की सिद्धि होती जाती है
 है ऐसे अपनी स्वतन्त्र शक्ति पर गर्व करने वाले, स्वल्पप्रिय, और चूहे पर सवारी करने वाले देव को नमस्कार है
 ॥१५॥ जो अपनी माता को सरस नृत्य, गीत और बालन/डाया से प्रसन्न करने स्वयं अनिप्रसन्न हो जाते थे ।
 ऐसे श्री गणेश जी के हम शरणागत हैं ॥१६॥ जिन्होंने देवा के उपकार, असुरा से युद्ध में स्थायित्व और नमस्कार-
 परत मन्त्री के द्वारा पिता की कृपा से समृद्धि प्राप्त की, ऐसे श्रीगणेश की शरण में हम लाग आये हैं ॥१७॥ त्रिपुरों
 की विजय के समय जिन्होंने कुछ विघ्न कर दिया, जिससे पिता (शत्रु) ने भी प्रसन्नता से जिसकी पूजा की, तद-
 नन्तर जिन्होंने निर्विघ्न रूप से कार्य होने दिया, ऐसे गणेश को हम नमस्कार करते हैं ॥१८॥

ग्रह्या ने कहा—इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाने पर विघ्नराज ने पुरा कहा ॥१९॥

गणेश ने कहा—असुरासन्नु । आज से आप लोग के यज्ञ में मेरी ओर से किसी प्रकार का विघ्न नहीं
 होगा ॥२०॥

१ य. चर्चने ने० । २ य. विमानम० । ३ य. गुराण० । ४ य. सर्वे० । ५ युद्धे । ६ य. उपदेश ।
 ७ य. ०३ । ८ य. प्र० ।

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्सुरान्

॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः । तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥२२॥

अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः । तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मग्नताम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेष्टयूचुः सुरा अपि । निवृत्ते तु मध्ये तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम् ॥२४॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थमविघ्नमिति गच्छते । सर्वकामप्रदं । पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम् ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे भाविष्ठाहोतीर्थमहाहस्म्येऽविघ्नतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

गीतमीमाहाहस्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ह्यात सर्वकामप्रदायकम् । तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१॥

शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः । सर्वनागैः परिवृतो रसातलमयाम्बुगात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देव-यज्ञ के पूण हो जाने पर गणेश ने उन देवों से कहा ॥२१॥

गणेश ने कहा—जो सबकी व्यक्ति इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक सेटी स्तुति करेंगे उन्हें कभी भी दारिद्र्यता से कष्ट नहीं होगा । इस स्थान पर जो उत्साही व्यक्ति स्नान और दान करेंगे उनके सब कार्य पूर्ण होंगे, इस पर आप विश्वास करें ॥२२-२३॥

ब्रह्मा ने कहा—गणेश जी के इस प्रकार के आशीर्वाद-कथन के साथ ही देवा ने भी ऐसा ही ही यह कहा । इस प्रकार उस यज्ञ ने समाप्त हो जाने पर सब देवता अपने स्थान की चले गये । तब से वह तीर्थ मनुष्यों ने सब मनोरथ पूर्ण करने वाला और विघ्नविनाशक अविघ्नतीर्थ कहा जाता है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्मपुराण में अविघ्नतीर्थ वर्णन नामक एक सी चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

शेषतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब वांछनाओं को देने वाला शेषतीर्थ नाम से विख्यात एक तीर्थ है । उसका परिचय जिसे मैं पहले बनी बता चुका हूँ—दे रहा हूँ । रसातल का स्वामी महान् शेषनाग अपने अनुबर भागों के सहित रसातल-

राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम् । तैर्निरस्तो भोगिपतिर्ममुवाधाय विह्वलः ॥३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां भूमिपि च । ते मे स्यान् न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४॥
ततोऽहमब्रुवं नागं गौतमीं याहि पन्नग । तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५॥
नाग्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः । मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६॥

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनायाय दक्षयज्ञविभेदिने । आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥७॥
ममः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे । सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः । पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग ॥९॥
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं वेहि मे मनसेप्सितम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादाभ्रामेप्सितान्ध्वरान् । विनाशाय सुरादीणां दैत्यदानवरभक्षाम् ॥१०॥
शेषाय प्रददौ शूलं जहघनेनारिमुंगवान् । ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः ॥११॥
रसातलमयो गत्वा निजधानं रिपूगणे । निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसाम् ॥१२॥

लोक में गया । किंतु राक्षस, दैत्य और दानवी ने पहले ही रसातल में घुस गये थे—सर्पपति को वहाँसे निकाल दिया । तब वह व्याकुल होकर मुझसे बोला—॥१-३॥

शेष ने कहा—आपने राक्षसी की और मुझको रसातल की दिया, परन्तु वे मुझको वहाँ रहने नहीं देते, इसीलिये आपकी शरण में आया हुआ हूँ । तब मैंने नाग से कहा कि सर्व ! गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ महादेव की स्तुति कर अपना मनोरथ अवश्य प्राप्त करोगे । इस त्रैलोक्य में शंकर के समान मनोरथ पूर्ण करने वाला और कोई नहीं । मेरे कथन से प्रेरित होकर वह नाग त्रेदपूर्वक गया मे स्नान कर हाथ जोड़ कर देवता की स्तुति करने लगा ॥४-६॥

शेष ने कहा—त्रैलोक्य के स्वामी, दक्ष-यज्ञ की नष्ट करने वाले शिव की नमस्कार है, आदिकर्ता ! तुमकी नमस्कार है, त्रिलोकी के रूप में रहने वाले का नमस्कार करते हैं । हजारशिर वाले का नमस्कार है, सहार करने वाले प्रभु की नमस्कार है, सोम, सूर्य, अग्नि और जल वाले आपको नमस्कार है । सर्वदा सब रूप में रहने वाले कालरूप आपको नमस्कार है, शंकर ! रक्षा कीजिये, सर्वेश ! सोमेश ! सर्वव्यापी ! रक्षा कीजिये । जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है । आप मेरे अभिमत की प्रदान कीजिये ॥७-९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रार्थना सुनकर महादेव प्रसन्न हो गये, उन्होंने नागराज को अभीष्ट वर प्रदान किया । गुरु-दानु राक्षसा और दैत्यदानवी के नाश के लिये शंकर ने अपना शूल दिया और कहा कि इससे अपने प्रबल शत्रुओं का नष्ट कर दो । शूल प्राप्ति के बाद शंकर का इस प्रकार आर्जुनार्जव प्राप्त कर नागराज अनुचरो को साथ लेकर रसातल की

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पया येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट् ॥१३॥
 रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्विलतलाद्यातं गङ्गां वार्यतिपुण्यदम् ॥१४॥
 तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः^१ संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम् ॥१५॥
 नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः। सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः ॥१६॥
 देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायशः। रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ ॥१७॥
 ततः प्रभृति तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८॥
 आयुर्लक्ष्मीकर पुण्यं स्नानदानाच्च भूषितदम्। शृणुयाद्वा पठेद्भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९॥
 तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
 शतानि धुनिलादूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये तीर्थमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेश्वरशूलेश्वराग्नि-
 कुण्डरसातलगङ्गासंगमोष्णतीर्थाद्येकविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम
 पञ्चदशधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

गंगा और मुक्त म शबुआ का सहार करने लगा। इस प्रकार शूल से दीव्य, दक्षिण और राक्षसी को निनष्ट कर पुन
 जहाँ शेषेश्वर शकर ये वहाँ नागेन्द्र लौट आया। जिस क्षण से वह नागराज शकर का दमन करने के लिये रसातल
 से शिव-स्थान तक आया था वह मार्ग बिल के रूप में ही गया। उस बिल से होकर गङ्गा, गंगाका अति पुनः जल
 बहने लगा और वह गंगा के जल से मिल गया, जिससे वहाँ शकर के सामन ही दो गंगाया का पुनर्गत संगम एवं दार्वा
 का कुण्ड के रूप में बन गया। उस कुण्ड में नाग ने हवन किया। वहाँ अग्निदेव सर्वदा स्थित रहते हैं, इसलिये गंगा
 के संगम का जल सर्वदा के लिये उष्ण हो गया। महायशस्वी नाग देवाधिदेव शकर की आराधना कर प्रसन्न हो
 शकर से अपना अर्भीष्ट पाकर रसतल को चला गया। तब से सब कामनाओं को प्रदान करने वाला रोग और
 दरिद्रता को दूर करने वाला वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो व्यक्ति इस तीर्थक्षेत्र को भक्तिपूर्वक
 मुक्ता, पर्वता या स्मरण करता है उसको वह पावन ताय आयु और लक्ष्मी प्रदान करता है। वहाँ स्नान और दान
 करने से मुक्ति प्राप्ति होती है। जहाँ शक्ति-दाना शकर रहते हैं वहाँ शेषेश्वर ताय हैं। मुनिश्रेष्ठ गौतमी के
 दाना तटा पर सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाल इक्ष्वाकु सौ ताय विराजमान हैं ॥१०-२०॥

श्रीब्रह्महापुराण में शेषतीर्थ-वर्णनं नामक एवं सा पञ्चदश अध्याय सम्पत्ति ॥११५॥

ब्रह्मोवाच

देवा अप्सुरानूचुर्यशार्धं भवतामपि । भवेदेव ततो यातु ऋषीणा सत्रमुत्तमम् ॥८॥
 ते श्रुत्वा त्वरिता सर्वे यत्र यत्र प्रवर्तते । जग्मुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषत ॥९॥
 तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहू किं कुमहे वयम् । आगता देववचनाद्राक्षसा यज्ञनाशिन ॥१०॥
 मृत्युना सह समन्ध्य नैमियारण्यवासिन । सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रम त शमित्रा सह नारद ॥११॥
 अग्निमात्रमुपावाय त्यक्त्वा पात्रादिक तु यत । ऋतुनिष्पत्त्ये जग्मुर्यो तनौ प्रति सत्त्वरा ॥१२॥
 तत्र स्नात्वा महेशान रक्षणायोपतस्थिरे । कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुवुस्त्रिदशेश्वरम् ॥१३॥

ऋषय ऊचु

यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
 यो विश्वरूपं सदसत्परो य, सोमेश्वर स शरणं व्रजाम ॥१४॥

मृत्युरुवाच

दृष्ट्वा मात्रेण यः सर्वं हन्ति पाति करोति च । तमहं त्रिदशेशान शरणं यामि शकरम् ॥१५॥
 महानल^१ महाकाय महानागविभूषणम् । महामूर्तिधरं देवं शरणं यामि शकरम् ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा ने यह सुनकर असुरों से कहा कि तुम लोगों को भी यज्ञ में आवा चाय मिले । अब तो शत्रु ऋषियों व उस यज्ञ में जात्रा । यह सुनकर वे रागस्थ प्रयत्न व विनाश करने के लिये यज्ञभूमि देवा का विधेय प्रणाम ने कहा गये जहाँ यज्ञ हो रहा था । यह जानकर ऋषिया ने मृत्यु से कहा—अब हम लोग क्या कर देवा का प्रणाम स यज्ञ का नष्ट करने के लिये दाक्षस जा गये हैं । नारद^१ मृत्यु से परमिग करने के उपरांत वे नैमिया रण्य निवास ऋषिगण अपने आश्रम तथा पात्र आदि को भा छात्रकर गमित्रा के साथ अग्निमात्र लेकर यज्ञ पूज करने के लिये गौतम के ऋट धर जल्दा से पहुंचे । उसमें स्नान कर के वे यज्ञ रक्षा के लिये गकर के निकट गए और बदाञ्जलि होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८ १३॥

ऋषिगण बोले—जिस्ने सहस्रहं म विव का निर्माण कर दिया जीतना लोका का पालक आर स्वर्ण हं आ विश्वमूर्ति हैं और जो सत्र एवं असुर से परे हैं उस सोमेश्वर गकर का गरण में हम आये हुये हैं ॥१४॥

मृत्यु ने कहा—आ ने व दृष्ट्वा मात्र स त्रिय का सहार पात्र और निर्माण करता हू उस देव गकर का गरण में हम उपस्थित हैं । महान अग्निरूप महान गराय वाले महान नामा के आभूषण वागे और महान मूर्ति धारण करने वाले शकर देव की गरण में हम आये हैं ॥१५ १६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्मृत्योः का प्रीतिरस्तु ते

॥१७॥

मृत्युर्वाच

राक्षसेभ्यो भयं घोरमापन्नं त्रिदशेश्वर। यज्ञमस्माश्च रक्षस्व यावत्सत्रं समाप्यते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवास्त्रिनेत्रो वृषभध्वज। शमित्रा मृत्युना सत्रमूषीणां पूर्णतां ययौ ॥१९॥
हविषा भागधेयाय आजग्मुरमरा क्रमात्। तानबोचन्मुनिगणा संक्षुब्धा मृत्युना सह ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

अस्मन्मलविनाशाय राक्षसा प्रेषिता यतः। तस्माद्भूषद्भूष पापिष्ठ्य राक्षसा सन्तु शत्रवः ॥२१॥
ततः प्रभृति देवानां राक्षसा वैरिणोऽभवन्। कृत्या च वडवा तत्र देवाश्च ऋषयोऽमला ॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्वं तामित्युक्त्वा तेऽभ्ययेचयन्। अभियेकोवकं यत्तु सा मदो वडवाऽभवत् ॥२३॥
मृत्युना स्थापितं लिङ्गं महानलमिति श्रुतम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं वडवासगमं विदुः ॥२४॥
महानलो यत्र वेवस्तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिदम्। सहस्रं तत्र तीर्थानां सर्वाभीष्टप्रदामिनाम् ॥

ब्रह्मा ने कहा—नव भगवान् गिर ने कहा हे मृत्यु मैं तुम्हारा काम सा प्रिय क्या सम्पन्न बनूँ ? ॥१७॥

मृत्यु ने कहा—देव विपत्ति। राक्षसा ने भय स्रष्ट सदा कर दिया है अब तब यन् समाप्त न हो जाय तब तब आप यन् कर और हमारा भी रक्षा कर ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वृषभध्वज भगवन् तिल ने बैसाई, किया जिससे मृत्युगमिता का, राक्षसा म ऋषियो वहाँ रह यन् पूरा हो गया। यन् पूरा हो जाने पर देव नृप भ भगवन् अपना यन् भाग लने के लिये आये। यह देव नृप मृत्यु ने साथ क्षुब्ध मुनियों ने देवा से कहा ॥१९ २०॥

ऋषियो ने कहा—जिस लिङ्ग के यन् यन् ने हमारे यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षसा का भेजा हमलिये के यन् राक्षस आये यन् ही जायें ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—उक्त समय से राक्षस देवताओं के वैरी हो गये। हमने साथ ही वहाँ निमज्ज करिया और देवता ने तुम मृत्यु का भार्या बनो, यह कहकर वडवा कृत्या का अभियेक किया। जो अभियेक जल या वही वडवा नदी बन गया। मृत्यु द्वारा स्थापित लिङ्ग महानल तब म प्रसिद्ध हुआ। तब से वह स्थान वडवा पण्ड नाम म कहा जाने लगा। वहाँ महानल महादेव हैं वह मुक्ति और मुक्ति देन वाला तीर्थ है। हमने अतिरिक्त

उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम्

॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बडवादिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ह्यास्य भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणां । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः ॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यातः सोऽग्निपुत्रो हरप्रियः । दुर्वाससः प्रियो गता सर्वज्ञानविशारदः ॥
स गता पितरः प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२॥

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं वृच्छामि भवयामि च ॥३॥

यहाँ गीतमा क रीता लडा पर सब प्रकार के अमोघ देने वाले तथा केवल स्मरण मात्र से पापों को नष्ट करने वाले सह्या तीर्थ हैं ॥२२-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बडवा आदि सहस्रतीर्थवर्णन नामक एक मी मोलहवा अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

आत्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नृणां को भाव और भाष प्रदान करने वाला एक आत्मतीर्थ नाम मे विख्यात तीर्थ है, जहाँ ज्ञानेश्वर शिव निवास करते हैं। उससे प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनो। अग्नि की पुत्र शरणा का प्रिय और दुर्वासा का भाई दत्त नाम मे विख्यात था। वह सब प्रकार के ज्ञान में निपुण था ॥१२॥ एक दिन वह अपने पिता के पास आकर विनयपूर्वक प्रणाम करने बोला ॥१-२॥

दत्त ने कहा—ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति मुझे कैसे होगी ? मैं किससे पूछूँ ? और कहाँ जाऊँ ? ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाक्यं ध्यात्वा वचनमब्रवीत्

॥४॥

अत्रिरुवाच

गीतमीं पुत्रं गच्छ त्वं तत्र स्तुहि महेश्वरम् । तं तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा तदाऽऽश्रेयो गङ्गां गत्वा शुचिर्यत । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या सुप्टाय शकरम् ॥६॥

वत्स उवाच

ससारकूपे पतितोऽस्मि देवान्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के ।

अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं, परं न विन्दामि सुराधिनाय ॥७॥

भिन्नस्त्रिशूलेन घलीयसाहं, पापेन चिन्ताभुरपाटितश्च ।

तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापं, आन्तोऽस्मि सतारय सोमनाय ॥८॥

यद्वोऽस्मि दारिद्र्यमयंश्च घण्टेहंतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापं ।

क्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजगमेन, भीतो भूय किं करयाणि शम्भो ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रि-पुत्र का जाना को सुनकर पांडी वैर तर विचार मग्न रहे फिर बोले ॥४॥

अत्रि ने कहा—पुत्र ! तुम गान्धर्व के पास जाओ। वहाँ महेश्वर का स्तुति करो। वे जर प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रिपुत्र वत्स ऐसा हो कहेंगे कहार गया व सर्पाय गया और स्नान कर पवित्र हो गया भाव से होय जाइकर मणिपूजक शरर की स्तुति करने लगा ॥६॥

वत्स ने कहा—ईश्वरग स गतार क्या कुछ म गिर पडा है। माह न मुझ गतार व दुःख रूपी बाध म छिा दिया है। अज्ञानांपकार म डर गया हू। मुझ व स्वर्गमा। आपसी नहीं पा रहा हूँ ॥७॥ बलशान् पापरुपा त्रिगुल श मैं शन दिग्गन हो गया हूँ तया चिन्ता के अस्तुरे ॥ पाह श्रिया गया हूँ। पाँवा इन्द्रिया क ता श तप श अल गया हूँ। सोमनाय । मैं यन गया हूँ। विना प्रहार पार उगाइय ॥८॥ दरिद्रता व बचन म मैं बंध गया हूँ। रोग रुपी अग्नि व ताय दाह म मार डाल गया हूँ। मृत्यु रूपी सार न मुझ डग लिया है। घमा ! मैं अत्यंत भयमान हो गया हूँ। क्या कर ? समय म नहीं आता ॥९॥ जम और अजम का पीश शया नृणा रत्राणु और तमगाण

१५ इ ०२वा गिर सुप्टाय मक्षितव । ४० । १६ ०२पटव ५० । ३५ ०३म रोपा-वन्ती० । ४५ ०२र पाईदुंयो रिम । ५५ ०३० । मायाम० ।

भवामवाम्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधान्यां च रजस्तमोम्याम् ।
 द्वंद्वक्षया^१ जरया^२ चाभिभूतः^३, पश्यावस्थां कृपया भेद्य नाथ ॥१०॥
 कामेन कोपेन च मत्तरेण, दम्भेन वर्षादिभिरप्यनेकैः ।
 एकैकशः^४ कष्टगतोऽस्मि विद्वत्स्व^५ नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११॥
 कस्यापि फरिचत्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
 विना भवन्त मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२॥
 तावत्स कोपो भयमोहदुःखाम्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव ।
 कानादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वच्मि वावयम् ॥१३॥
 न भेज्स्ति धर्मो न च भेज्स्ति भवितर्नाह बिबेकी कण्ठा कुतो मे ।
 दाताऽसि तेनऽऽशु शरण्य चित्ते, निर्धेहि सोमेति पर्व मदीये ॥१४॥
 याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
 श्रीसोमपादाम्बुजसंनिधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुल्व ॥१५॥
 यथा तवाह विदितोऽस्मि पापस्तयाऽपि विज्ञापनमाभ्युषुव ।
 संभूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ ॥१६॥
 गौरीपते शकर सोमनाथ, विद्वेश कारुण्यनिधेऽस्त्रिलात्मन् ।
 संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केषामपि स्यात्कृतिना निवासः ॥१७॥

से मैं पीडित हूँ। ऐसी घृणावस्था से आक्रान्त हूँ। नाथ^१। आज मेरी इस अवस्था को कृपापूर्वक देखिये ॥१०॥
 ब्राम, शोष, बाह दम्भ अभिमान आदि अनेक शत्रु एव-एक करके मुझे कष्ट दे रहे हैं, वेष्ट रहे हैं। प्रभा^२। आप मेरे रक्षक बन कर शत्रुओं को दूर भगाइये ॥११॥ किसी पतित प्राणी का कोई अनुष्य दुःख दूर करने वाला होता है यह सत्य है, किन्तु सोमनाथ^३। आपके अतिरिक्त किसी के सम्मुख मैं अपनी कृष्ण बहानी^४ भी तो नहीं बड़ सकता ॥१२॥ शोष, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दूरिदृष्टा, रोग, शत्रु आदि तथा मृत्यु-भय सभी तब है जब तब 'मम शिवाय' मन्त्र मेरे मुख से नहीं निकलता है ॥१३॥ मेरे पास न तो धर्म है, न भक्ति है, न मैं जानी हूँ। फिर कण्ठा मुझमें कहाँ से आएगी? धरन्तु है शरण देने वाले। आप दाता है इसीलिये मेरे हृदय में सदा 'सोम' इस पद की स्थापित कर दीजिये ॥१४॥ मैं इन्द्र-नन्दी की याचना नहीं करता। सोमनाथ^५। मेरे हृदय-कमल क मध्य में श्रीसोमनाथ के चरण-चन्द्र की स्थापना हो बड़ी प्रायना है। पहले विचार कर लीजिये तब उसको स्वीकार कीजिए ॥१५॥ जैसे आपने मुझ को पापी समझ लिया है उन्हीं प्रकार मेरी भी आप से एक प्रायना है उसको भलीभाँति गुनिए। सोमनाथ^६। जहाँ 'शिव ऐश्वर्य शब्द सुना जाता है वहाँ मेरा निवास हो ॥१६॥ (स्वादि) जहाँ सर्वदा गौरीपते! शकर! सोमनाथ! विद्वेश! कारुण्यनिधे! अस्त्रिलात्मन्! आदि शब्दा द्वारा स्तुति की जाती है, वहाँ विन्दी पुण्यालय आना निवास होता है ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तृतीय भगवान्हरः । वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भुवः ॥१८॥

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं च विपुलां त्वयि । तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशाक्षित ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिरिति तं शंभुस्त्वा चान्तरधीयत । ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं विदुर्बुधाः ॥

तत्र स्नात्वेन दानेन मुक्तिः स्यादिह नारद ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिक-

शततमोऽध्यायः ॥११७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम् । उत्तरे मन्दतीर्थं तु तत्र ग्युष्टिमितः शृणु ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार अत्रि-पुत्र की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए । उस विश्व-स्रष्टा शंकर ने उस योगी से कहा मैं 'वर देना चाहता हूँ, माँगो ॥१८॥

आत्रेय ने कहा—हे देववन्द्य ! आत्मज्ञान, मुक्ति, आपने प्रबुद्ध भक्ति और तीर्थ का माहात्म्य मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर शंभु अन्तर्हित हो गये । उस समय से उस तीर्थ को विद्वान् लोग आत्मतीर्थ कहने लगे । नारद ! उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मुक्ति अद्वय मिलती है ॥२०॥

श्रीब्रह्मपुराण में आत्मतीर्थवर्णन नामक एक सर्ग सप्तदश अध्याय समाप्त ॥११७॥

अध्याय ११८

अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अश्वत्थ और पिप्पलीय दोनों प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उत्तर दिशा में अश्वत्थ तीर्थ है । इन तीर्थों

१. द्र. भक्ति । २. तदुच्यते । ३. स्थानित्विन क्लृप्तम् । ४. ४८. ५. ४. ०६वतीर्थमिति ख्यातमश्वत्थ ५ ।

पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवंस्तु प्रेरितः पुर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति ॥२॥
 ॥ शर्नोविन्ध्यमम्यागात्सहस्रमुनिनिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥३॥
 स्पर्धनं मेरुभानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतं। अत्युन्नतं नगं धीरो लोषामुद्रापतिर्मुनिः ॥४॥
 वृत्तातिप्यो द्विजैः साधं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यसिद्धये ॥५॥

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदर्शिनः। तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां व्रजाम्यहम् ॥६॥
 देहि मार्गं नगपते आतिथ्यं देहि याचते। याचदागमनं मे स्यात्स्यात्तद्व्यं तावदेव हि ॥७॥
 माग्यया भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तमः। आकामन्वक्षिणामाशां तैर्वृतो मुनिभिर्मुनिः ॥८॥
 शर्नः स गौतमीमागात्सत्यागाय दीक्षितः। यावत्संवत्सरं सत्रमकगोदृषिभिर्वृतं ॥९॥
 कैटभस्य सुतो पापौ राक्षसो धर्मकण्टको। अश्वत्थः पिप्पलश्चेति विख्यातौ त्रिदशालये ॥१०॥
 अश्वत्थोऽश्वत्थरूपेण पिप्पलो ब्रह्मरूपधृक्। तावुभावन्तरं प्रेप्सु यज्ञविध्वजनाय तु ॥११॥
 कुर्वतां कादृशितं रूपं दानयो पापचेतसो। अश्वत्थो वृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः ॥१२॥
 उभौ तौ ब्राह्मणान्नित्यं पीडयेता तपोधन। आलभन्ते च येऽश्वत्थं तास्तानश्नात्यसौ तदः ॥१३॥

का परिचय तथा फल अब सुनो। बहुत पहले दक्षिण दिशा के स्वामी भगवान् अगस्त्य से देवताओं ने विन्ध्य के विषय में प्रार्थना की। देवताओं ने प्रेरित होने पर अगस्त्य ऋषि सहस्र मुनियों की साथ के बीरे से विन्ध्य के निकट आये। बहुत से वृक्षा मे भरे, मेरु और भानुध्वत से स्पर्धा करने वाले, सैकड़ों शिखरा से युक्त, अत्यन्त ऊँचे विन्ध्य पर्वत के पास आकर लोषामुद्रा के स्वामी धीर मुनि अगस्त्य ने विन्ध्य का आतिथ्य ग्रहण किया। पुन विन्ध्याचल की प्रशंसा करते हुए देवकार्य की सिद्धि करने के लिये मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥१२५॥

अगस्त्य बोले—हे पर्वतश्रेष्ठ। मैं तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से दक्षिण दिशा को जा रहा हूँ ॥१॥ नगपते। मुझे मार्ग दो यहाँ आतिथ्य के रूप में दोगे रहा हूँ। जब तक मैं हजर से न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार विनम्र रहो, इसके प्रतिकूल कोई कार्य न हो। विन्ध्याचल ने इसे स्वीकार कर लिया। उन मुनियों के साथ अगस्त्य मुनि ने दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया। शर्न शर्न वे गौतमी के तट पर आये और सत्रयाग के लिए दीक्षा लेकर एक वर्ष ऋषियों के साथ यज्ञ करते रहें ॥७९॥ स्वर्ग में कैटभ के दो दापी, धर्म के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले, अश्वत्थ और पिप्पल नाम से विख्यात राक्षस पुत्र थे ॥१०॥ अश्वत्थ पीपल का और पिप्पल ब्राह्मण का रूप धारण कर यज्ञ नष्ट करने के लिये जाते थे। दोनों इस गुप्त रूप को यज्ञ का भेद जानने के लिये धारण किया करते थे। हे तपस्वी। इस प्रकार ये दोनों पापात्मा राक्षस इच्छानुसार अश्वत्थ वृक्ष और ब्राह्मण को आहूति धारण कर ब्राह्मणों का नित्य प्रति पीडा पहुँचाते थे ॥११-१२३॥ जो सन्निधा के लिये वृक्ष की टह्नियाँ तौंने आता था उसको वह अश्वत्थ सा जाता था और राक्षस पिप्पल क्षाम-भायक बनकर अपने शिष्यों को

पिप्पल सामगो भूत्वा शिष्यानश्नाति राक्षस । तस्मादद्यापि विप्रेषु सामगोऽतीव निष्कृप ॥१४॥
 क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविभौ । इनि ब्रुध्वा महाप्राज्ञा दक्षिण तोरमाश्रितम् ॥१५॥
 सौरि शनैश्चर मन्द तपस्यन्त घृतघृतम् । गत्वा मुनिगणा सर्वे रक्ष कर्म न्यवेदयन् ॥१६॥
 सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णं तपसि मे द्विजा । राक्षसो हन्यपूर्णं तु तपस्यक्षम एव हि ॥१७॥
 पुन प्रोचुर्मुनिगणा नस्यामस्त तपो गृह्यत । इत्युक्तो ब्राह्मणं सौरि कृतमित्याह तानपि ॥१८॥
 सौरिर्ब्राह्मणवेपेण प्रापाद्वदत्थरूपिणम् । राक्षस ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१९॥
 प्रदक्षिण तु बुध्वा मेने ब्राह्मणमेव तम् । नित्ययद्राक्षस पापो भक्षयामास मायया ॥२०॥
 तस्य काय समाविश्य चक्षुषाऽन्प्राण्यपश्यत । दृष्ट स राक्षस पापो मन्देन रविसूनुना ॥२१॥
 भस्मीभूत क्षणेनैव गिरिवज्रहतो यथा । अश्वत्थ भस्मसात्कृत्वा अन्य ब्राह्मणरूपिणम् ॥२२॥
 राक्षस पापगिलयमेक एव समन्यगात् । अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतयत् ॥२३॥
 पिप्पल पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम् । स भक्षित पूर्ववच्च कुशावन्प्राण्यवैक्षत ॥२४॥
 तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत् । उभौ हत्वा भानुसुत कि कृत्य मे वदत्वथ ॥२५॥
 मुनयो जातसहर्षा सर्व एव तपस्विन । तत प्रसन्ना ह्यभवन्पुण्योऽगस्त्यपूवका ॥२६॥

खा जातां या। यहाँ कारण है कि अब भी ब्राह्मणा में सामान्यिक अर्थात् ब्रह्मणाहीन माना जाता है ॥१३॥ १४॥
 बुद्धिमान् मुनिवृन्दः स प्रकाशं ब्राह्मणां कं नक्षत्राकम् हृते देवतार ये दाना राक्षसं हं यह जानकर दक्षिण तार पर
 लपट्या बरने बाँधे व प्ररायण भूयमुतः न्नि के पास गये और प्रणाम कर राक्षसा के इस पूजित बन को उनसे निवे
 दन किया। यह सुनकर भूयमुत ने मुनिवास कहा तपस्या पूर्ण हो जाने पर ही मैं राक्षसा का वध कर सक्ता हूँ
 तपस्या व अपूर्ण रहने पर तो मैं सबका अक्षम हूँ ॥१५॥ १७॥ पुन मुनिवास ने कहा आपका हम सब अपनी मर्दा
 तपस्या दे रहे हैं। यह सुनकर दानि ने ब्राह्मणा स कहा कि तब काय हो गया ऐसा समझिये ॥१८॥ ननि ब्राह्मण का वध
 कनाकर अश्वत्थ रूप वाले राक्षस के पास गये और प्रदक्षिणा करने लगे ॥१९॥ राक्षस इस प्रकार उनकी प्रदक्षिणा
 करते देखकर सामान्य ब्राह्मण समस्त कर नित्य का तरह अपन माया से उनका निगल गया ॥२०॥ दानि ने उतर
 धारीर म पुसकर उर्ध्वः आँगा को देखा। देखते ही वह पापी राक्षस ननि के द्वारा क्षणभर म उनी प्रकार
 भस्म कर दिया गया जिस प्रकार वज्र स पथत विनष्ट कर दिया गया था ॥२१॥ अश्वत्थ का भस्म कर
 ननि दूसरे ब्राह्मणदेवाचार पापा राक्षस के पास गया। उरने ब्राह्मण व समान नित्यरूप से विनीत होकर
 पड़ने लगे ॥२३॥ पहल व भक्ति पिप्पल ने इस भानुपुत्र का भी खा लिया। साथे जाने पर दानि ने भी
 पहल व भक्ति उर म आँगा का देखा ॥२४॥ उर इस प्रकार दानि मात्र ॥ वह राक्षस भस्माभूत
 हो गया। दानि व इस प्रकार नन् कर भानुपुत्र न कहा कि अब अयोध्या का राज्य सा प्रिय काय कहे बनल दूध ॥२५॥
 यह तत्सर्वः मुनि आनन्द-विभार हो गया ॥२६॥ तदनंतर अगस्त्य आदि महर्षिपा न प्रसन्न होकर दक्षानुसार मन्द

वरान्ददुर्यथाकाम सौरये मन्दगामिने । स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनि सूर्यसुतो बली ॥२७॥

सौरिखाच

मदद्वारे नियता ये च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम् । तेषां सर्वाणि कार्याणि स्युः पीडा मद्भवान्न च ॥२८॥
तीर्थं चाश्वत्थसजे ये स्नानं कुर्वन्ति यनरा । तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वर ॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थं प्रातस्तथायाम् नवा । आभलन्ते च तेषां वै ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥३०॥

ग्रहोवाच

तत् प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थं पिप्पलं विदुः । तीर्थं शनैश्चरन् तत्र तन्नागस्य च सात्रिकम् ॥३१॥
याज्ञिकं चापि तत्तीर्थं सामगं तीर्थमेव च । इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ योऽशः ॥
तेषु स्नानं च दानं च सत्रभागफलप्रदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्येऽश्वत्थाद्यष्टोत्तरयोऽशसहस्रं

तीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

गौतमीमाहात्म्ये ऊनपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥४९॥

गति से चलने वाले गति को यथेष्ट वर प्रदान किये। बलवान् सूर्यपुत्र गति ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों से कहा ॥२७॥

शनि ने कहा—मेरे दिन अर्थात् गनिवार को जो मनुष्य निदिमि० रूप से अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करे उनके सब कष्ट सिद्ध होंगे तथा मुझसे उनके कोई पीडा नहीं होगी ॥२८॥ जो व्यक्ति इस अश्वत्थ वृक्ष में स्नान करे उनके सब मनोरथ पूरे हों यह दूसरा वरदान है ॥२९॥ जो शनिवार को प्रातः का उठकर अश्वत्थ का स्पर्श करे उन्हें ग्रहकष्ट पडा नहीं होगा ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से ही वह तथा अश्वत्थ तथा और पिप्पल वृक्ष कहा जाने लगा। वहाँ पर गनैश्चरन् तथा याज्ञिक और सामगं आदि तीर्थ सहस्रांश्वत्थ प्रतिष्ठित है। उन तीर्थों में स्नान और दान करने से मनुष्य सत्रभाग का फल प्राप्त करता है ॥३१ ३२॥

श्रीब्रह्मपुराण में अश्वत्थ तथा पिप्पलाय और मन्दत व वन

नमस्व एक ही अठारहवा अध्याय समाप्त ॥११८॥

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात तदप्युक्त 'महात्मभि । तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत ॥१॥
जगता मातर पूज्यमोषधयो जीवसमता । ममापि भातरो देव्य 'पूर्वाता पूर्ववत्तरा ॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धम स्वाध्यायो यज्ञकर्म च । आभिरेव धृत सर्व त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३॥
अश्वरोपोपशमो भवत्वाभिरसन्नयम् । अन्नमेताभिरेव स्यादश्वप्राणरक्षणम् ॥४॥
अत्रौषधयो जगद्वन्द्या मामूचुरनहकृता ॥५॥

ओषध्य ऊचु

अस्माक त्व पति बहि राजान सुरसत्तम

॥५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन 'तासा मयोक्ता ओषधोरिदम् । पति प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम् ॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचु पुनर्मुने । गतव्यं क्व पुनश्चोक्ता गौतमीं यातु मातर ॥७॥
मुष्टापामय तस्या धो राजा स्याल्लोकपूजित । ताश्च गत्वा मुनिष्वेष्ट सुष्टुबुधौ तमीं नदीम् ॥८॥

अध्याय ११६

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसने बाद महात्माभिः द्वारा वर्णित सोमतीर्थ नाम का एक प्रसिद्धत है। उस तथ म स्नान करने और दान देने से मनुष्य सोमपान का फल प्राप्त करता है। पहले ओषधियाँ प्राणिमात्र से माय और सत्तार की माता कहलाती थी। पूज्य उत्पन्न ओषधियों से भा पूज्य का। ओषधियाँ मेरी भा माता या। इही ओषधियों से धम स्वाध्याय और यज्ञकर्म प्रतिष्ठित हैं इहानहीं सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य को धारण किया है। इनसे ही सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं इससे सन्देश है। सब प्राणिमा की प्राणरक्षा करने वाले अन्न इनसे ही उत्पन्न होते हैं। एक बार जगद्वन्द्या इन ओषधिया ने विनित भाव से मुझसे कहा ॥१५॥

ओषधियाँ बोलों—हे देवा य अष्ट । हम लागा की अन्न राजा पति दीजिए ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—उनका वाता की सुनकर मैं ओषधिया से कहा कि तुम सब प्रथम बढ़ाने वाले राजा पति का प्राप्त करोगी। मुन' राजा ऐसा जब सुनकर उड़ाने मुनसे पुन पूछा—इसने क्या कहा जाता होगा। मैंने कहा—मामूचु । गौतमी ने तट पर जाओ । उसकी प्रसन्नता पर अथवा ही लाजपूजित राजा तुम लागा का पति बनेगा। वे र व ओषधिया पास जाकर गौतमा नदी की स्तुति करने लगा ॥६८॥

ओपध्व ऊचु

किं चाङ्करिष्यन्भववर्तिनो जना, नानाधसधामिभवाञ्च दुःखिता ।
 न चाङ्गमिष्यदभवतो भुव चेत्पुण्योदके गौतमि शम्भुकान्ते ॥९॥
 को वेत्ति भाग्य नरदेहभाजा, महीगताना सरितामघोशे ।
 एषा महापातकसघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सर्वदेव ॥१०॥
 न ते विभूति ननु वत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यधन्धे जगदम्ब गङ्गे ।
 गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि, धत्ते स्मरारि शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११॥
 नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽप्यनाशिनि ।
 नमोऽस्तु ते विष्णुपदाम्बुजि सृते, नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनि सृते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतामीशा किं 'दवामीत्यवोद्यत ॥१३॥

ओपध्व ऊचु

पति देहि जगन्माता' राजानमतितेजसम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तवोवाच नवो गङ्गा ओपधीस्ता इव वच ॥१५॥

ओपधिया बोलीं—गौतमि ! समुद्राते । य अनेक पापसमूहा से अभिभूत दुःख ससारी जन क्या कर सकते थे (अर्थात् इनका उद्धार कैसे होता) ? यदि पुण्यात्मे ! आप इस भूतल पर न आता । नदिया का अर्थ बरसा ! मनुष्य-देह धारण करने वाला का अहंभाग्य कम जानता था ? हे अम्ब ! गंगा ! आज इन पापियों के पापसमूहों को नष्ट करने वाले तुम इनकी छाया के लिये मुल्म हो गई हो । जगदम्ब ! जगदम्ब ! गंगे ! तुम्हारे विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है । बराबर पावता से आलिंगित गरीर काल मर्त्य मन्त्रय शरीर म तुम्हारा अपन गिर पर बठाये रहने हैं । भगता ! मनोरथ-दायिनी ! तुम्हारा नमस्कार है ब्रह्मस्वरूपिणी । पापविनाशिन ! तुमको नमस्कार है । विष्णु के चरण कमल से निकलने वाले ! तुम्हारे नमस्कार हैं 'गङ्गा' के जटा से निकलने काग ! तुमका बार बार नमस्कार है ॥९ १२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार आपधिया की, स्तुति से प्रसन्न हो गौतम ! ने कहा क्या दू ? ॥१३॥

ओपधिया बोलीं—जगन्माता ! हम अत्यन्त तेजस्वी राजा पति द जिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—ओपधिया क प्रायता मुनवरगौतम ! गंगा ने उन ओपधिया से यह वचन कहा ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अहं चामूर्तरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृता । तादृशं चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि व ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्यं मेनिरे सोम एव च । ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ॥१७॥

यत्र चाऽऽप्नुमहेऽप्यधो राजानममृतात्मकम् । सोमं समस्तसतापपापसघनिवारकम् ॥१८॥

सोमतीर्थं तु तत्पयात् सोमपानफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन पितरं स्वर्गमाप्नुमुः ॥१९॥

य इव शृगुषान्निभ्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत् । दीर्घमायुरवाप्नोति ॥ पुत्री 'धनवान्भवेत्' ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राद्धे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोर्नावशत्यधिकशत-

तमोऽध्यायः ॥११९॥

शौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् । सुभिक्षं क्षेमदं पुसां सर्वापह्निनिवारणम् ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मैं अमृत स्वरूप हूँ और आप ओषधि मातायें भा अमृत रूप ही हैं अतः मैं ही अमृतात्मा तान को आप लागा को पति के रूप में दे रहा हूँ ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा ऋषिया और सोम ने भी इस वाक्य का स्मरण किया । ओषधिया ने भी यह स्वरूप स्मर लिया और प्रकृततापूवक अपन स्थान को चला गई । जिस स्थान पर उन भूहोषधियों ने सब सताप और पाप क्षुण्ण को दूर करने वाले अमृतस्वरूप शाश्वत का प्राप्त किया वह स्थान सोमदान का फल को देने वाला सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । उस ताप में स्नान करने और दान देने से पितरयण स्वयं प्राप्त करते हैं । जो व्यक्ति इस अक्षय्य का नित्य भक्तिपूर्वक ध्वज पठे या स्मरण करता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है और धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥१७ २०॥

यं ब्रह्महट्टपुराणे भ सामन्तवर्णनं नाम एव सी उपसर्गवी अध्यायं समाप्तः ॥११९॥

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्या का सब कामनाओं का पूरा करने वाला सब आपदाओं का निवारक और सुभिक्ष

ओषध्य सोमराजान पति प्राप्य मुदाऽन्विता । ऊचुः सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेत्सित वच ॥२॥

ओषध्य ऊचुः

वेदिकी पुण्यगाणाऽस्ति या वे वेदविदो विदुः । भूमि सस्यवतीं कश्चिमातर मातृसमिताम् ॥३॥

गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् । भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वित ॥४॥

विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्यादभक्तिभाक्षर । सर्वं तदक्षयं विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५॥

ओषध्य सोमराजन्या सोमश्चाप्योषधोपति । इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यं प्रदास्यति ॥६॥

सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महोपते । सा एव सोमराजन्या प्रीता प्रोचुः पुन पुन ॥७॥

ओषध्य ऊचुः

योऽस्मान्ददाति गङ्गायाः स राजन्यारयामसि । त्वमुत्तमश्चोषधीना त्वदधीन चराचरम् ॥८॥

ओषध्य सबदन्ते सोमेन सह राज्ञा । योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥९॥

यय च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च । योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥१०॥

अस्मान्ददाति यो नित्यं ब्राह्मणेभ्यो जितव्रत । उपास्तिरस्ति साऽस्माकं स राजन्यारयामसि ॥११॥

एव कल्याण प्रदान करने वाला वायवीय नामक एक तीर्थ है। राजा सोम को अपना पति पाकर अमन्त हाँपत हुई ओषधिया ने सब लोक तथा गंगा को प्रिय जगन वाले बचन कहे ॥१२॥

ओषधियाँ बोलीं—यह एव बहिन पवित्र गाथा है जिसे वेदों ब्रह्मपुरण जानते हैं कि जो कोई व्यक्ति गंगा के समीप मनुष्य एव सस्य सम्पन्न भूमी भूमि का दान करता है उसकी क्षयि क्षमनीय पूण होता है। जो भक्त मनुष्य प्रसन्न होकर सस्यसम्पन्न भूमि गाँवों तथा ओषधियाँ विष्णु ब्रह्मा और ईशरूप (ब्राह्मण या मन्दिर) को दान में देता है वह अपने सब अभिप्रायों पदार्थों को प्राप्त करता है और उसकी दान की हुई वस्तु अन्य हा जायी है। ओषधियाँ साराका क राजियाँ हैं और सोम ओषधियाँ क राजा हैं यह समझ कर जो ओषधियाँ का दान करता है वह अपने सब भवारया को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में उरका पूजा होता है। इस दान कथा को उन ओषधियों ने ही प्रमगदयन हवाए बार बार कहा था ॥३७॥

ओषधियाँ बोलीं—राजन् ! जो गंगा में हम सबका दे दता है उसका हम इस सस्य रसागर से पार लगा देती हैं। ओषधियाँ ने स्वामा । तुम थक हो तुम्हारे हाँ अयन यह बराबर है। ओषधियाँ राजा सोम के साथ वानचिंत करती हैं कि जो हमका ब्राह्मणा को दान करता है राजन् ! उसका हम उदार करत हैं। हम ब्रह्मरूप हैं प्राण रूप हैं हम जो विप्रा का प्रदान करता है उसको हम ससार से पार कर देता हैं। जो समय ब्रह्मरायण व्यक्ति नियम हमको ब्राह्मणा का दान में देता है वह हम सब का प्रिय होता है उसका हम भवसर से पार कर देता हैं। राजन् ! स्यावर और जगम जो कुछ जगत है सब हमसे व्याप्त हैं। एसी हमका जो ब्राह्मण क नियम दान कर देता है उसको हम ससार से पार कर देती हैं। हव्य (देवा के लिए देयाय) कव्य (पितरा का दिया जाने वाला अन्न)

स्यावर जङ्गम किंचिदस्माभिव्यपित अगत । योऽस्मान्ददाति' विप्रेभ्यस्त राजा पारयामसि ॥१२॥
 हव्य कव्य यदमृत यत्किंचिदुपभुज्यते । यदगरीयश्च यो दद्यात् राजपारयामसि ॥१३॥
 इत्येता वैद्वी गाथा य शृणोति स्मरत वा । पठते भविमापन्नस्त राजपारयामसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमन सह राजा । गङ्गातीरं चोपवीर्भिव्यतीर्थं तदुच्यते ॥१५॥
 तत प्रभृति तत्तीयमौपध्य सीम्यमेव च । अमृत वेदगाय च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६॥
 एषु स्नानं करो होमो दानं च पितृतर्पणम् । अन्नदानं तु य कुर्यात्तद्दानं तयाय कल्पते ॥१७॥
 पदशताधिकसाहस्रं तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः । सर्वपापनिहन्तृणां सर्वसपट्विषधनम् ॥१८॥

इति महापुराण आदिब्राह्म तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थविषदशताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

गीतमोमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदर्भासगमरेवतीसगमादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विदर्भासगमं पुण्यं रेवतीसगमं तथा । तत्र यद्गन्तमास्यास्य यत्पुराणविदो विदुः ॥१॥

एष जो अमृत पदार्थ है जो कुछ उपमाग किया जाता है और जो सर्वोत्तम पदार्थ है उस जो दान करता है उसका हम उद्धार करते हैं । हे राजन ! इस वैदिक गाथा को जो भक्तिपूर्वक मुनित स्मरण करता या पढ़ता है उसका है राजन ! हम उद्धार कर देते हैं ॥८१४॥

ब्रह्मा ने कहा—गगातटवर्ती जिस स्थान पर ओपधिया न राजा सीम के साथ इस गाथा को पढ़ा वह पाप भी य कहा जाता है । तब से वह तीर्थ ओपधिय य सीम्य य अमृतगाय वेत्तायतीर्थं मातृगाय आनिमो से प्रसिद्ध है । इन तीर्थों में जो मनुष्य स्नान अथ होम दान पितृतर्पण और अन्नदान करते हैं वे अन्तर्फल के अपिभार होते हैं । उस गीतमा के दाना लटा पर एक हजार छह सौ त्रय है जो सब पापों को दूर करनेवाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले हैं ॥१५१८॥

यथाब्रह्महपुराण म धान्य तीर्थवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

अध्याय १२१

विदर्भा-सगम और रेवती सगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जहाँ उरान्त पवित्र विदर्भा सगम तथा रेवती-सगम हैं, वहाँ का वर्णन मैं करेगा त्रिदशो

भरद्वाज इति श्यात ऋषिरस्योत्तपोऽधिक । तस्य स्वसा रेवतीति कुक्ष्या विकृतस्वरा ॥२॥
 ता द्रष्टुं विकृता भ्राता भरद्वाज प्रतापवान् । चिन्तया परया युक्तो भङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३॥
 कस्मै दद्यामिमा कन्या स्वसार भोगाकृतिम् । न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा ॥४॥
 अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुर्लभकारणम् । मरण जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे ॥५॥
 एव विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने । द्रष्टुं मुनिवर प्रायाद्भरद्वाज यतव्रतम् ॥६॥
 दृष्टव्यं शुभवपु शान्तो दान्तो गुणाकर । नाम्ना कठ इति श्यातो भरद्वाज मनाम स ॥७॥
 विधिवत्पूज्य त विप्र भरद्वाज कठ तदा । तस्याऽऽगमनकार्यं च पप्रच्छ पुरत स्थित ॥८॥
 कठोऽप्याह भरद्वाज विद्याभ्यंहुमुपागत । तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युक्त तद्भिधीयताम् ॥९॥
 भरद्वाज कठ प्राह अधीष्व यदभोप्सितम् । पुराण स्मृतयो वेदा धर्मस्यानान्यनेकश ॥१०॥
 सर्वं वेदमि महाप्राज्ञ रुचिर धद मा चिरम् । कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुभ्रपणे रत ॥
 अभिमानी भृतधर शिष्य पुण्यैरवाप्यते ॥११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मजिज्ञाष्य मा धीतकल्मषम् । शुभ्रपणरत भक्त कुलीन सत्यवाचिनम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तथेयुक्त्वा भरद्वाज प्रादाद्विद्यामशेषत । प्राप्तविद्य कठ प्रीतो भरद्वाजमथाब्रवीत् ॥१३॥

पुराणवेत्ता लोग मली भति जानते हैं । भरद्वाज नामक एक अत्यन्त तपस्वी ऋषि थे । उनकी एक बहिन थी जो अति कुक्ष्य और अत्यन्त स्वर से बोलने वाली थी । प्रतापी भाई भरद्वाज उस कुक्ष्य कन्या को देखकर एक दिन गंगा के दक्षिण तट पर बैठ चिन्तामग्न हो विचार करने लग कि इस भयङ्कर और बाली कन्या (बहिन) को निरने होया गोर्खु । भाई इसको ग्रहण भी तो नही करेगा परन्तु इस बहिन को क्या विप्र का देना अनिवार्य है । हाय ! दुःख का एकमात्र कारण कन्या निर्धन को उत्पन्न न हो । ऐसे कन्या का प्राणी (पिता) को जीवन में क्षण क्षण में मृत्यु का स्वाद मिलता है । इस प्रकार वे विचार कर रहे थे कि उनका उस रम्य आश्रम में भाई मुनिवर रामजी भारद्वाज ऋषि को देने आये । उग पाण्डवर्षीय शुभमूर्ति गात्र उदार और गुणा आत्मुक्त का नाम कठ था । उसने भरद्वाज को नमस्कार किया । मुनि ने उसका सत्कार किया । और स्वयं उसके सामने स्थित हो उससे आन का कारण पूछा । कठ ने भा भरद्वाज मुनि से कहा कि 'मैं विद्या प्राप्त करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ हूँ उसी बहाने दान की भी अमिलाया था अब जो कुछ उपयुक्त आता हो प्रदान कर दिये । यह मुनिकर भारद्वाज ने कठ से कहा 'जो कुछ पढ़ने की इच्छा हो पढ़ा । पुराण स्मृतियाँ वेद आदि अनेक धर्मग्रन्थ हैं । महाबुद्धिमान मैं सब कुछ जानता हूँ इच्छानुसार कठो : विस्मय करने के आवश्यक्ता नहीं है । कुलीन कृत्यप्रमी गुरुगवा म रीन रहने वाला स्वामिदानी और प्रतिभाशाली शिष्य बड़े भाष्य से गुरु का प्राप्त होता है ॥१११॥

कठ ने कहा—ब्रह्मन् ! मुझ निष्ठाप दशुपापरायण भक्त कुलीन और रम्यवादी शिष्य को पढ़ाइय ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—एसा ही है । यह कहकर भरद्वाज ने उसको सब विद्यायें पूरुष से पढ़ा दी । विद्या प्राप्त कर लेने के बाद कठ ने प्रसन्न होकर भारद्वाज से कहा ॥११३॥

कठ उवाच

इच्छेय दक्षिणा दातुं गुरो तव मन प्रियाम् । यदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्य नमोऽस्तु ते ॥१४॥
विद्या प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरो पारितोषिकम् । न प्रयच्छन्ति निरयं ते यान्त्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्या विधिवद्भाषां कुरु मम स्वसाम् । अस्या प्रीत्या वर्तितव्यं याचेय दक्षिणामिमाम् ॥१६॥

कठ उवाच

आतृष्यत्पुत्रवच्चापि शिष्य स्यात्तु गुरो सदा । गुरुश्च पितृवच्च स्यात्सबन्धोऽथ कथं भवेत् ॥१७॥

भरद्वाज उवाच

मद्भाषय कुरु सत्यं त्वं ममाज्ञा तव दक्षिणा । सर्वं स्मृत्वा कठाद्यं त्वं रेवतीं भर तन्मना ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना । रेवतीं विधिवद्दत्तां तां समीक्ष्य कठस्तथ ॥१९॥
'तत्रैव पूजयामास देवेश शकर तदा' । रेवत्या रूपसंपत्त्यं शिवप्रीत्यै च रेवती ॥२०॥
सुरुपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणोपमीयते । अभियेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनि सृतम् ॥२१॥

कठ ने कहा—गुरो ! मैं आपको मन-दसद दक्षिणा देना चाहता हूँ । गुरो ! चाहे आपकी इच्छा कुछ बस्तु के लिए ही क्यों न हो आप कहिये । आपको नमस्कार है । जो विद्या प्राप्त कर अगानवग गुरु को दक्षिणा नहीं देते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और नक्षत्र रहते हैं तब तक वे लिये नरक को जाते हैं ॥१४ १५॥

भरद्वाज ने कहा—मेरी इस तुम्हारी बहिन की गालवानुसार अपनी भाषां बना लो । इससे प्रमदूषण व्यवहार करना इसी दक्षिणा का माधना करता हूँ ॥१६॥

कठ ने कहा—गिन्य गुरु ने गिने माई ने समान या पुत्र ने समान सबदा माना जाता है । गुरु गिन्य के पिता के तुल्य होता है । ऐन, स्थिति मे (आपक यहाँ मेरा) वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा ? ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—मेरे शब्दा को तुम सत्य सिद्ध करो यह मेरी आशा और तुम्हारी दक्षिणा है । कठ ! आज सब कुछ स्मरण कर भी देखी का प्रमदूषण पाणिग्रहण करो ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—जो आशा बहुर बरठ न करने गुरु ने कथनानुसार विधिपूर्वक ही हुई देवन का पाणि ग्रहण कर लिया । कठ ने देखी को देखकर उसको रूपकता बनाने के क्रमिप्राय से भगवान् शकर को प्रत्यक्ष करने के लिये वही देवन शकर की पूजा की । पूजा के प्रभाव से वह कुरुपा देखी सुरुप सर्वोद्गमुन्दरी बन गई । उक्त रूप का सादृश्य किसी अय से करना कठिन हो गया । उक्त अभियेक से जो जल बहा वह उगी व नाम पर रूप और सीमाय देने वाली देखी नाम की नदी बन गई जो कि गंगा में जाकर मिल गई । पुन कठ ने पवित्र रूप को

साऽभवत्तत्र गङ्गाया तस्मात्तन्नामतो नदी। रेवतीति समारयता रूपसौभाग्यदायिनी ॥२२॥
 पुनर्दर्भेश्च विविधैरभियेक चकार स। पुण्यरूपत्वसत्तिद्ध्यै विदर्भा तदभृन्नदी ॥२३॥
 श्रद्धया सगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नर। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीधते ॥२४॥
 तथा विदर्भागीतम्यो सगमे श्रद्धया मुने। स्नान करोत्यसौ याति भुक्ति मुक्ति च तत्क्षणात् ॥२५॥
 उभयोस्तोरयोस्तत्र तीर्थाना शतमुत्तमम्। सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासगमरेवतीसगमादितोर्थवर्णन
 नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१२१॥

गीतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५२॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादितीर्थवर्णनम्

ग्रहोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे। तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तयाऽपि शुभमाप्नुयात् ॥१॥

प्राप्ति के लिये अनेक कुसो से उसका अभिषेक किया। उस अभिषेक के जलसे विदर्भा नाम का नद बन। मनुष्य रेवता और गंगा के सगम में स्नान कर सब पापा से छूट जाता और विष्णुलोक में पूजित होता है। मुने! इसी प्रकार विदर्भा और गीतमी के सगम में स्नान करने से भी, मनुष्य तत्क्षण भुक्ति और मुक्ति का प्राप्त करता है। यह नहीं कहाँ दोषा तटों पर सब पापा को नष्ट करने वाले और सब प्रकार के सिद्धियाँ प्रदान करने वाले तीर्थों का हैं ॥१९ २९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विदर्भा सगम रेवती-सगम आदि तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

ग्रहो ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तट पर पूरा तीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसमें यदि मनुष्य मूलकर भी स्नान करे तो भी शुभ फल प्राप्त करेगा ॥१॥ जहाँ स्वयं चक्रवर विष्णु और पिताव, निवास करते हैं,

पूर्णतीर्थस्य माहात्म्यं वर्ण्यते केन जतुना । स्वयं सस्थायते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना ॥२॥
 पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुय सुत । इष्ट्वा बहुविधैर्गङ्गां रश्मिभेधपुरं सरं ॥३॥
 दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगाश्च पुष्कलान् । विज्ञाय भोगवैषम्यं परं वीराग्यमाश्रित ॥४॥
 गिरिभृङ्गेऽम्बुधे पारे तथा गङ्गानदीतटे । शिवविष्णोर्गङ्गे वापि विशेषात्पुण्यसगमे ॥५॥
 तप्तं कृतं च जप्तं च सवमक्षयतां व्रजेत । धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तपःतपो महत् ॥६॥
 ज्ञानवैराग्यसपन्नो भीमेशचरणाश्रयः । तपश्चकार विपुलं गङ्गासागरसगमे ॥७॥
 पुरा च निकृतो राजा रणं हित्वा महासुरः । सहस्रमेकं वर्षाणां समुद्रं प्राविशद्भुयात् ॥८॥
 धन्वन्तरौ वनप्राप्ते राज्यप्राप्ते तु सत्सुते । विरागश्च गते राज्ञि ततः प्रायादयार्णवात् ॥९॥
 तपस्यत तमो नाम बलवानसुरो मुने । गङ्गातीरं समाश्रित्य राजा धन्वन्तरियत ॥१०॥
 जपहोमरतो नित्यं ब्रह्मज्ञानपरायणः । तस्मिन् नाशयामोति तमं प्रायादयार्णवात् ॥११॥
 नाशितो बहुशोऽनन राजा बलवता त्वहम् । तस्मिन् नाशयामोति तमं प्रायादयार्णवात् ॥१२॥
 मायया प्रमदारूपं कृत्वा राजानमभ्यगात् । नृत्पतीतयती सुभ्रह्मन्ती चारदशना ॥१३॥

उक्तं पूर्णतमं वा माहात्म्यं वर्णनं भला बौद्धेन कृतं है ? ॥२॥ बहुत पहले कल्प के आदि में आयु का धन्वन्तरि नामक पुत्र था । उसने अश्वमेध आदि विविध यज्ञ किये अनेक प्रकार के दान दिये और अनेक भोगों का भोग किया । अन्त में भोगों का विषम-परिणाम जानकर वह परम विरक्त हो गया ॥३॥ उसने यह जानकर कि परम विरक्त समुद्रतट गंगा-ट अथवा कि विष्णु के मन्दिर में और विराग रूप में पवित्र सगङ्गा-स्थान में जप तप आदि करने पर तप आगम पुण्य प्राप्त होगा है—यह जानकर धन्वन्तरि महान् तप करने लगा ॥४॥ उसने गंगा और सागर के समान परम ज्ञान वैराग्य से युक्त होकर मन्दिर में बसना प्रारम्भ किया और महान् तपस्या की ॥५॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) के निकट राजा के राजा मरण के कारण एक महाराजसुत उसके समय में एक हजार वर्ष तक समुद्र में रहा ॥६॥ उस एक महाराजसुत ने जब यह सुना कि राजा को विराग हो गया है वह वन में तपस्या के लिए चला गया है और राज्य पुनः हाथ में चला आया है तब वह समुद्र से निकला ॥७॥ मुने । वह समुद्र में समुद्र में निकलकर यह मानने लगा कि किसलिए राजा धन्वन्तरि गंगा-ट पर जायमान बनकर तपस्या कर रहा है और उसका नाम तमो है वह महाराजसुत जानने लगा गया है कि उस समुद्र का तट पर रहा । इस बातसे राजा ने मुझ अनन्त वार कष्ट किया है । इसलिए मैं भी समुद्र का तट पर रहा । यह मानकर वह समुद्र से निकला ॥८॥ १०॥ (अन्तर्गत) तमो नामक नृत्पतीतयती सुभ्रह्मन्ती चारदशना नामक पाश के

ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गौ बहुकालं नयाविताम । शातामनुव्रता भवता कृपया चान्नवीमूष ॥१४॥

नृप उवाच

काऽसि त्व कस्य हतोर्वा वतस गहने वने । क दृष्ट्वा हृषीव त्व वद कल्याणि पृच्छत ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्य श्रुत्वा राजानमब्रवीत ॥१६॥

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोकः हनुहपस्य स भवत । अहमिदं त्वया लक्ष्मीस्त्वा दृष्ट्वा कामसंभृतम् ॥१७॥

हर्षाच्चिरामि पुरतो राजस्तव पुन पुन । अगण्यपुण्यविरहावह सवस्य दुलभा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निगम्याऽऽनु तपस्तप्यत्वा सुदुष्करम् । तामव मनसा ध्यायस्तत्तिष्ठस्तपरायण ॥१९॥

तदकशरणो राजा बभूव स यदा तम । अतर्धान गतो ब्रह्मप्राप्तयित्वा तपो बृहत् ॥२०॥

एतस्मिन्नंतराह व वरान्दातु समस्यगाम । त दृष्ट्वा विह वलीभूत तपोऽष्ट ययामृतम् ॥२१॥

वह राजा के पास गया। राजा ने उस महाद्वगमुखर कितना ल गी भव और व रमण महिला को बहुत बार देखा। अतः म स्वयं दृष्टा और प्रम से आदि ही उस माया रण से पूछा ॥१३ १४॥

राजा बोला—तुम कौन हो? किसलिए इस गहन वन में घूम रही हो? क्याणि किसी देववर से प्रसन्न हो रहे हो? तम वतलाओ मैं पूछ रहा हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—वह रमण भा राजा के वाक्य का सुनकर उठते बात ॥१६॥

रमणी बोली—तुम्हारे रहते हमारा कौन मेरे आनन्द का कारण हो सकता है? राजन! मैं इस व दारवाच गोमा हूँ आज तुम की कामभीहित देववर आनन्द से बार-बार तुम्हारे स्निह्य घूम रहा हूँ। परन्तु यह कदा क्क म अगणि पुण्य ने रहि व्यक्ति के लिए दुःख है ॥१७ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर राजा का मन अपने अति दुष्कर प को छानकर उसका ध्यान करने लगा। उस म उक्त एकमात्र निष्ठा हो गई और उक्त पक्ष वह पालन-रक्ष ही गया। ब्रह्मन् जब ने देखा कि राजा एकमात्र मम पर अनुरक्त हो गया है—व वह उक्त महान रूप को आनन्द माया से नष्ट कर स्वयं अर्हि हो गया। नारद! इस बाध में उक्तो के दन ने लिय उक्त पक्ष गया। उक्त तपःपट्ट व्याकुल और मृतमुख महाप्रेत की देववर मने विविध युक्तिया और उपाहरणा से उसकी स्तब्धता का कि देखा वह तम नाभक तुम्हारा मृदु था जा

१५ ०लिन ॥१०॥ २५ ०नुपमामकया ॥३०॥ ३६ ०गीन्द्रम् ॥ ४०॥ ४५ ०इत्यत्रम् ।

५५ ०परोऽभवत् । अनायतपस्तस्य तम वेनापि हेतुना । ७० । ६५ च । ७५ ० महत् ।

तमाश्वास्याय विविधेहेतुभिर्नृपसत्तमम् । तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम् ॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि । आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम् ॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयो तु सा । तत कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः ॥२४॥

राज्ञोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मस्तपसः पारमाप्नुयाम्

॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तत्पुत्रं प्रादा देवदेवं जनार्दनम् । स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२६॥
स ह्यशेषजगत्प्रण्टा देवदेवः पुरातनः । सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नान्योऽस्ति भुवनश्रेयः ॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठ हिमवन्त नृपोत्तमः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं सुष्ट्वाव भविततः ॥२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत । जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय ॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पद्मगशायिने । जय सर्वंग गोविन्द जय विश्वकृते तमः ॥३०॥

इस प्रकार तुम्हको तपस्या से बहुत बड़ा सफलमनोरथ हासिल चला गया। राजन्! तुम चिन्तित मत हो। सम। रत्नगिरी विशेष रूप से मानव की आनन्दित करता और केश पट्टेवाले है। वह ही मायाविन। धी, फिर उसके विषय में कहता है। क्या? तदनन्तर मेरी बातों को सुनकर उसका भ्रम दूर हो गया, उसने हाथ जाड़कर मुझसे कहा ॥१९-२४॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! तो अब मैं क्या करूँ? किस प्रकार तपसिद्धि को प्राप्त करूँ ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त मैंने उसको उत्तर दिया कि तुम देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करो। उससे सिद्धि प्राप्त करोगे। वे सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, वेदों से जानने योग्य पुरातन और मनुष्यों को सब प्रकार की मनोरथ-सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उनके समान इस त्रिभुवन में और कोई नहीं है। मेरे आदेश की मानकर वह नृपोत्तम पर्वतगढ़ हिमालय पर गया और वहाँ अञ्जलि बांधकर भक्तिपूर्वक विष्णु की स्तुति करने लगा ॥२६-२८॥

धन्वन्तरि ने कहा—विष्णो! आपकी जय हो, अचिन्त्य! जय हो, जगन्मय! जय हो, अच्युत! जय हो। गोपाल! जय हो, लक्ष्मीपति! जय हो, जगन्मय! कृष्ण! जय हो ॥२९॥ भूतपते! जय हो। नाथ! सर्ग परमोने वाले! जय हो। व्यापक! जय हो। गोविन्द! जय हो। समार के बनाने वाले! आपकी नमस्कार है ॥३०॥ विश्व के मोक्ष! देव! आपकी जय हो, विश्व के धारण करने वाले की नमस्कार है। ईश! जय

जय विद्यभुजे^१ देव जय विश्वघृते^२ नम । जयेश^३ सदसत्त्व चै जय माधव धर्मिणे ॥३१॥
 जय कामद काम त्वजय राम गुणार्णव । जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने ॥३२॥
 जय भूतप भूतेश जय मानविधायिने । जय कर्मद कर्म त्व जय पीताम्बरच्छद ॥३३॥
 जय सर्वेश सर्वस्त्व जय मङ्गलरूपिणे । जय सत्त्वाधिनायाय जय वेदविदे नम ॥३४॥
 जय जन्मद जन्मिन्स्त्व परमात्मज्ञमोऽस्तु ते । जय मुक्तिद मुक्तिस्त्व जय भुक्तिद केशव ॥३५॥
 जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन । जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नम ॥३६॥
 जय मानद मानस्त्व जय लोकनमस्कृत । जय धर्मद धर्मस्त्व जय सत्तारवारग ॥३७॥
 जय अन्नद अन्न त्व जय वाचस्पते नम । जय शक्तिद शक्तिस्त्व जय जन्मवरप्रद ॥३८॥
 जय यज्ञद यज्ञस्त्व जय पद्मदलेक्षण । जय दानद दान त्व जय कर्तृभूसूदन ॥३९॥

हो। आप सत और असत् रूप हैं। माधव^१ धर्मार्थिन्^२ जय हो ॥३१॥ काम के देने वाले। कामरूप। जय हो गुण के सागर। राम। आपकी जय हो। पुष्टि के देने वाले। जय हो पुष्टि के ईश। जय हो। कल्याण दाता की जय हो ॥३२॥ समस्त प्राणियों के पालन करने वाले। भूतेश। जय हो। सम्मान देने वाले की जय हो। कर्म के देने वाले। कर्मरूप। जय हो। पीताम्बरधारी। आप की जय हो ॥३३॥ सर्वेश। सब। आपकी जय हो। मंगल रूप की जय हो। जीवों के अधिपति की जय हो। वेदों के ज्ञाता की जय हो। आपको नमस्कार है ॥३४॥ जन्मदाता। जन्म देने वाले के हृदय में रहने वाले। परमात्मान्। आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता। जय हो। आप मुक्ति रूप भी हैं। केशव। मुक्तिदाता। जय हो ॥३५॥ लोक के मनोरथ दाता। लोकेश। पापविनाशन। जय हो भक्तवत्सल। जय हो चक्रधारी को नमस्कार है। ॥३६॥ मान देने वाले। आप मानस्वरूप हैं। सत्तार से पूजित। जय हो। धर्म के देने वाले। और धर्मस्वरूप। आपकी जय हो। सत्तार के पार जाने वाले। जय हो ॥३७॥ अन्नदाता। आप अन्नस्वरूप हैं। आपकी जय हो। बाणीपति को नमस्कार है। शक्ति के दाता। जय हो। आप शक्तिस्वरूप हैं। विजयी जनों को धर देने वाले। जय हो ॥३८॥ यज्ञफल देने वाले। आप यज्ञस्वरूप हैं। आपकी जय हो। पद्म की पल्लवियों के समान नेत्रवाले। जय हो। दानदाता। आप दानस्वरूप हैं। आपकी जय हो। कर्तृ नामक समुद्र के शत्रु। जय हो ॥३९॥ कीर्तिदाता। आप कीर्तिस्वरूप हैं। आप की जय हो।

१ध विजयिदे। २ध च पाशभुते। ३ध ह जय सत्यद सत्य त्व ज०। ४ध मायावि०। ५ध च तत्त्वद सत्यस्थ ज०। ६ध जन्मत्व ज०। ७ध मुक्तीश जय सर्वद माधव। ८ध च ०नभुते। ९ध च अन्नत्वं ज्ञय। १० ध च यज्ञात्मज्जय ज्ञानव०। ११ध च यज्ञात्मज्जय।

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्व जय मूर्तिद मूर्तिधृक् । जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन ॥४०॥
 जय शान्तिद शान्तिस्त्व जय शकरसभव । जय पानद पानस्त्व जय द्योति त्वरूपिणे ॥४१॥
 जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने । जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥४२॥
 त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसबलेशविनाशदक्ष
 श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्व, निधेहि पाणि मम मूर्ध्नि विष्णो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्त भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः । धरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिद ॥४४॥
 धन्वन्तरि, प्रीतमना वरदानेन चक्रिण । वरदानाय देवेश गोविन्दं संस्थितं पुरः ॥४५॥
 तमाह नृपति प्रह्व सुरराज्य ममेप्सितम् । तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्तोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥४६॥
 स्तुत, संपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत । तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात् ॥४७॥
 प्रायोजितानेककर्मपरिपाकवशात्ततः । त्रि कृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात् ॥४८॥
 नहुषद्वृषहरयाया, सिन्धुसेनवधात्ततः । अहल्यायां च यमनाद्येन केन च हेतुना ॥४९॥
 स्मार स्मार तत्तद्विन्द्विचिन्तासतापदुर्मनाः । तत सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिदं वचः ॥५०॥

मूर्ति देने वाले ! मूर्ति धारण करने वाले ! जय हो । सौख्य प्रदान करने वाले ! सौख्यरूप ! जय हो । पवित्र को भी पवित्र करने वाले ! जय हो ॥४०॥ शान्ति प्रदान करने वाले ! आप शान्तिरूप हैं । आपकी जय हो । शकर के उद्गम ! जय हो । धन प्रदान करने वाले ! आप धैर्यरूप हैं ! आपकी जय हो, ज्योति स्वरूप की जय हो ॥४१॥ वामन ! जय हो । धनेश ! जय हो । अग्निरूप की जय हो । सम्पूर्ण ससार के दातास्वरूप आपकी नमस्कार है ॥४२॥ आप ही त्रिभुवन में रहने वाले प्राणि समूह के महान् बलेशो को विनष्ट करने में दक्ष हैं । श्रीकमलनयन ! कृपानिधान ! विष्णो ! आप मेरे सिर पर अपना (वरद) हस्त रखिय ॥४३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने वाले धन्वन्तरि को सब प्रकार की कामनाओं और समृद्धियों को देने वाले तथा सब चक्र एवं गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया । चन्नी के वरदान से धन्वन्तरि प्रसन्न हो गया । उसने बड़ी विनम्रता से वर देने के लिये सामने खड़े भगवान् से कहा—‘विष्णो ! आपने मेरी अभीप्सित कामना देवराज्य को प्रदान कर दिया । इससे मैं कृतहृत्य हो गया हूँ ।’ भगवान् विष्णु भी राजा की स्तुति और पूजा से प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये । राजा ने भी जय से देवेन्द्र की पदवी प्राप्त की । तदनन्तर पूर्वजन्म के अनेक वर्षों के परिपात्र से यह सह्यास (इन्द्र) अपने पद से तीन बार च्युत हुए । पहली बार दून-हत्या के कारण नहुष द्वारा पदच्युत किये गये, दूसरी बार सिन्धुसेन-वध के कारण, इसके बाद तीसरी बार अहल्या के पास अनुविन रूप से जाने के कारण वे पदच्युत हुए । इस प्रकार जिस विभी कारण से पदभ्रष्ट होने पर इन्द्र अपने उन-उन पतन की घटनाओं अथवा कारणों को सोचकर चिन्ता की अग्नि से जलन से लगे । तब अत्यन्त व्याकुल हो देवेन्द्र ने ब्रह्मपति से यह प्रश्न किया ॥४४-५०॥

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम् । मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम् ॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवर्गतिं को वेत्ति तत्त्वतः । रहस्यं सर्वभावानां ज्ञातुं नाग्न्यः प्रगल्भते ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हंरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम् । स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम् ॥५३॥
स तु ब्रह्मपति येनेदं जातं तच्च महामते । तावागत्य महाप्राज्ञो नमस्कृत्य ममान्तिकम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मामूचतुरिदं वचः ॥५४॥

इन्द्रबृहस्पतो ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः । राज्यात्प्रमथ्यते नाथ संशय छेतुमर्हसि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रव ब्रह्मर्षिभरं ध्यात्वा बृहस्पतिम् । खण्डधर्मव्यदोषेण तेन राज्यपवाच्यतः ॥५६॥
देशकालादिवोपेयं ब्रह्मात्मत्रयिपर्ययात् । यथाबह्वक्षिणादानादसद्द्रव्यप्रवानतः ॥५७॥
देवभूदेवतावशापात्तत्काष्ठं विशेषतः । यस्त्वेष्टत्वं स्वयमस्य देहिभामुपजायते ॥५८॥

इन्द्र ने कहा—वागीश ! किस कारण मैं तिरहासन-ज्युत हो जाता हूँ । मनुष्यों के बीच-बीच में पद-भ्रंश से तो जीवनभर श्री-हीन होना ही उत्तम है । कुर्सें कर्मों के अनुसार कठिन जीवर्गति को कौन व्यक्ति यथार्थतः जान पाता है ? सब मावो (व्यापारों) के रहस्यों को जानने की क्षमता अन्य किसी में नहीं है ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि तुम ब्रह्मा के पास जाओ और उनसे ही पूछो । वे भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं । महामते ! वही जिस कारण ऐसा हुआ है उसको बतायेंगे । ऐसा परामर्श करके वे दोनों महामतिमान् मेरे समीप आये और नमस्कार कर ब्रह्माञ्जलि हो मुझसे बोले ॥५३-५४॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—भगवन् ! किस दोष से उदार बुद्धि वाले देवराज अपने राज्य से ज्युत होते हैं । नाथ ! इस संशय को जाप ही दूर कर सकते हैं ॥५५॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्मन् ! तब मैंने बहुत देर तक सोच विचार कर बृहस्पति से कहा कि ये खण्ड धर्म नामक दोष के कारण राज्यपद से ज्युत हो गये हैं । क्योंकि देशकाल आदिके दोष से धन्दा और मन्त्र के विपर्यय से यथोचित दक्षिणा कैन देने से, असद्-द्रव्य के दान देने से और विदोष रूप से देवता एवं ब्राह्मण के अपमानजन्य पाप से मनुष्यों का जो धर्म खण्डित होता है, उससे अत्यन्त मानसिक सताप होता है और अवश्यमेव पवहानि होती है । क्षुब्धचित्त होकर धर्म करने से भी अनिष्ट ही होता है । वह धर्म कार्य सिद्धिके लिये नहीं होता, है, अतएव मनुष्य को स्थिरचित्त

तेनातिमानसस्ताप पदहानिश्च दुस्त्यजा । कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा ॥५९॥
 कायस्य न भवत्सिद्धयं तस्मादध्याकुलाय च । असंपूर्णं स्वधर्मं हि किमनिष्टं न जायते ॥६०॥
 ताम्ना यत्पूर्ववृत्तान्तं तदप्युक्तं मयाऽनघ । आयुषस्तु सत श्रीमान्धवत्तरिहदारधी ॥६१॥
 तमसा च कृतं विघ्नं विघ्णुना तच्च नाशितम् । पूवजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम् ॥६२॥
 तच्छ्रुत्वा विस्मिता चोभौ मामेव पुनरुचतु ॥६३॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतु

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावदध धूपता दोषका (ह)रकम् । कारणं सर्वसिद्धीनां दुःखससारतारणम् ॥६५॥
 शरणं तत्तच्चिन्तायां निर्वाणं जीवतामपि । गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तुयेतां हरिशकरी ॥६६॥
 भोपायोऽज्योऽस्ति सद्गुह्यं तौ सा हित्वा जगत्त्रये । सर्वं जन्मतुश्चो गौतमीं मुनिसत्तम ॥
 स्नातौ 'कृतक्षणी चोभौ देवीं तुष्टुवतुर्मुदा ॥६७॥

इन्द्र उवाच

नमो भस्त्राय कूर्माय वराहाय नमो नमः । नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नमः ॥६८॥

होकर धर्मकाय करना चाहिये । अपने धर्म के अपुण रहने पर वीन सा अनिष्ट नहीं होता है ? निष्पाप । मैंने उन दोनों से जो कुछ पूरा जन्म का वृत्तान्त या उसकी भी कह दिया । उदारबुद्धि आयु-पुत्र पवनतरि का होना तम रागस द्वारा उनकी सपस्या में विघ्न डालना और विष्णु के द्वारा पुनः उन विघ्नों का नाश आदि जो कुछ पूरा जन्म के वृत्तान्त में सब बना दिये । इस प्रकार की बातें सुनकर वे दोनों विस्मित हो गये । पुनः उन दोनों ने मुझे कहा ॥५९ ६३॥

इन्द्र और बृहस्पति न कहा—हे देवधत्त ! इस दोष का निराकरण किससे होगा ? ॥६४॥

ब्रह्मा न कहा—पुनः मैं विचारकर उन दोनों से कहा कि मुनी सब प्रकार की सिद्धियों के आश्रितारण ससार के दुःखा में पार लगाने वाले दुःख-दग्ध जीवों के एवमात्र आधार और जीवन महा निर्वाण गुरु देने वाले उपाय को मुना । गौतमी गंगा का तट पर जाकर हरि और शर की स्तुति करो । दोष-शुद्धि का सिद्धि हरि और शर की स्तुति को छोड़कर इन तीनों मोक्ष में अन्य कोई उपाय नहीं है । मुनि-शुद्ध ! यह सुनकर वे दोनों उगी समय गौतमी का समागम कर और स्नान कर समय पाकर दोनों देवी की स्तुति करने लगे ॥६५ ६७॥

इन्द्र न कहा—भगवान् भस्त्र को नमस्कार है वृष को नमस्कार है वराह को बार बार नमस्कार है नरसिंह देव और वामन को नमस्कार है नमस्कार है । अश्वत्थ भगवान् को नमस्कार है । तीन इय से सम्पूर्ण मुचनमगल

नमोऽस्तु ह्यरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते । नमोऽस्तु' बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने ॥६९॥
 अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः । वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः ॥७०॥
 परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे । बिम्बत्तरस्वर्तो यवत्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥७१॥
 लक्ष्मीयानस्यतो लक्ष्मीं बिम्बद्वलसि ध्यानध । बहुबाहू रूपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः ॥
 त्वामेव सुखिने प्राप्य बह्व्यः सुखिनोऽभवन् ॥७२॥
 तावन्नि.श्रोकता पुंसां मालिन्यं हेन्यमेव वा । यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां कदणार्णवम् ॥७३॥

बृहस्पतिवचा

सूक्ष्मं परं जो (ज्यो) तिरनन्तरूपमोकारमात्रं प्रवृत्तेः परं यत् ।
 चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तोऽहं मुमुक्षवस्त्वाम् ॥७४॥
 आराधयन्त्यत्र भवन्तमोक्षां, महामर्त्यः पञ्चभिरप्यकामाः ।
 संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विद्वान्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते ॥७५॥
 सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य पट्सूत्रिषु शान्तभावाः ।
 ज्ञानेन ते बभूवुःफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविद्वान्ति शंभो ॥७६॥

को नापने वाले (त्रिविक्रम) । आपको नमस्कार है । बुद्धरूप, रामरूप और कल्की रूप में अवतीर्ण होने वाले महाबान् को नमस्कार है । ईश । अनन्त अष्टपुन और परमुराम रूप आपको नमस्कार है । वरुण इन्द्र और यम रूप आपको नमस्कार है । परमेश देव और त्रैलोक्यरूपवादी को नमस्कार है । अपने मुख में मरुत्स्वरी को धारण करने वाले आप सर्वज्ञ हैं, आपको नमस्कार है । निष्कल्मष । आप लक्ष्मीवान् हैं इसलिए लक्ष्मी को बड़ा स्थल पर धारण करते हैं । आप अनन्त बाहु, ऊरु (अपा), धारण बान, आंग और गिर करते हैं । गुणमूर्ति आपको पाकर ही बृहत्-मे मनस्य गुणी हो गये । हरे । मनस्य के पास दक्षिणा, मन्त्रिणा और दीनता सभी तत्र रहनी है जब तक वे बन्धन-मागर आपको धारण में नहीं आते हैं ॥६८-७३॥

बृहस्पति ने कहा—ईश । मुमुक्षु लोग आपको मुदम पर, ज्योति स्वरूप अवलम्ब आकार मात्र प्रवृत्ति में परे, विद्वान्, आनन्दमय और सम्पूर्ण (विश्वरूप) ऐसा करते हैं ॥७४॥ निष्काम साधक पाँच महायज्ञ द्वारा आराधना की ही आराधना करते हैं । समाप्त-मागर में पार आने की इच्छा करने वाले लोग आप ही के दिव्य भुवन रूपी शरीर में प्रवेश करते हैं ॥७५॥ धामो । सब प्राणिमों में प्रधान बुद्धि में देखकर उह प्रकार के बन्धन—मूत्र प्यास, लोभ, मोह सभी और धर्मों में शान्त भाव में रहने वाले मुमुक्षुजन मुद्गहारे जान में बभूवुःको छोड़कर ध्याने द्वारा मुदम में ही प्रवेश करते हैं ॥७६॥ मुदमे मतो ज्ञानि-धर्म है न वेद-धर्म न आन है न ध्यान-योग

न जातिधर्माणि न वेदशास्त्र, न ध्यानयोगो न समाधिधर्म	।
रुद्र शिव शंकर शान्तचित्त, भक्त्या देव सोममह नमस्ये	॥७७॥
मूर्खोऽपि शम्भो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनु ते	।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तप सु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु	॥७८॥
सपन्नमेतत्फलमुत्तम यत्सोमेश्वरे भक्तिरहनिज्ञा यत्	।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य	॥७९॥
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेवा	।
स्वत्पादसंप्राप्तिफलाप्तये सु, सोपानपङ्क्तिं न वदन्ति धीरा	॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा	।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्	॥८१॥
स्थूल च सूक्ष्म त्वमनादि नित्य, पिता च माता यवसच्च सच्च	।
एव स्तुतो य श्रुतिभि पुराणैर्नामि सोमेश्वरमीशितारम्	॥८२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रीतो हरिहराबूचतुस्त्रिदशेश्वरौ	॥८३॥
-------------------------------------	------

हरिहराबूचतु

प्रियता यमनोभीष्ट यद्हर चातिदुर्लभम्	॥८४॥
--------------------------------------	------

का बल है और न समाधि धर्म ही है। मैं केवल भक्तिपूर्वक शान्तचित्त रुद्र शिव शंकर और सोमदेव को नमस्कार करता हूँ ॥७७॥ धर्मो! मूल भी तुम्हारे चरणों की भक्ति से आपके मुक्तिमय शरीर को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान यज्ञ तपस्या ध्यान होम महान् फल वाले कार्यों का उत्तम फल यही है कि यगवान् सोमेश्वर के चरणों में सर्वदा अवलम्ब भक्ति हो ॥७८॥ जगन्निवास! आपकी यह भक्ति स्वर्ग के फल तथा जीवों को प्रिय लगने वाले दृष्ट एवं श्रुत फल और स्वर्ग तथा मोक्ष (प्राप्त करने) की सीढ़ियाँ की परम्परा है ॥७९॥ परन्तु धीर पुरुष तुम्हारे चरणों तक पहुँचा देने के लिये इस सीढ़ियों के मिलसिले को नहीं बताते हैं ॥८०॥ इसलिये हे दयालो! तुममें मेरी भक्ति हो तुम्हारी रूप सेवा (भक्ति) के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई उपाय नहीं है। ईश! अपनी महता का ध्यान कर हम पापात्माओं के ऊपर आप प्रसन्न होइए ॥८१॥ श्रुतियाँ और पुराणों ने स्थूल सूक्ष्म अनादि नित्य पिता माता असत् और सत् कहकर त्रिसकी स्तुति की है उस प्रभु सोमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—तत्तन्त्र देवेश हरि और हर प्रसन्न होकर बोले ॥८३॥

हरिहर ने कहा—तुम लोगों को जो अभीष्ट हो और जो अतिदुर्लभ चर हो वह पाओ ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशान मद्राज्य तु पुन पुन । जायते म्रियते चैव तत्पापमुपशाम्यताम् ॥८५॥
यथा स्थिरोऽहं राज्ये स्या सर्वं स्यान्निश्चल मम । सुधीतो यदि देवेशो सर्वं स्यान्निश्चल सदा ॥८६॥
तथेति हरिवाक्यं तावन्निश्चयेदमूचतु । परं प्रसादमापन्नो तावालोकेयं स्मिताननो ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणो । शरण्यां सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदायुधो ॥८८॥

हरिहराबूचतु

निर्देवत्व महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा । तस्यामनेन मन्त्रेण कृता स्नानमादरात् ॥८९॥
अभिषेकं महेंद्रस्य मङ्गलाय बहस्पति । करोतु सस्मरन्नावा सपदा स्वयंसिद्धये ॥९०॥
इह जन्मनि पूर्वस्मिन् यत्किञ्चित्सुकृतं कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥९१॥
एव स्मृत्वा तु यः कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत् । आवागम्य तु प्रसादेन धर्मं सपूर्णतामिवाप्नोति ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चतुर्षु प्रीतो सुरेन्द्रधिपनी सत । महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार द्युसदा गुरु ॥९३॥
तेनाभूत्वा नदी पुण्या मद्रगलेत्युदिता तु सा । तया च सगम पुण्यो मङ्गाया शुभदस्त्वसौ ॥९४॥
इन्द्रेण सन्तुतो विष्णु प्रत्यक्षोऽभूज्जगमय । त्रिलोकसमिता शक्नो भूमिं लेभे जगत्पते ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ने गवर से कहा—जिस पाप से बार बार मेरा राज्य होता है और नष्ट हो जाता है उस पाप को गान्त कीजिये । यदि आप दोनों देवों परम प्रसन्न हैं तो मैं किस प्रकार अपने राज्य पर स्थिर हो जाऊँ और सब पर मेरा अधिकार अचल हो जाय वैसा कीजिये । विष्णु ने ऐसा ही हो यह कहा । इस स्वीकारात्मक शायी को सुनकर उन दोनों ने अभिनन्दन किया और पुन कहा—अविनाशी निराधार निर्विकारस्वरूप समस्त लोकों के रक्षक और भोग-भोग देने वाले आप दोनों को प्रसन्नमुख देखकर हम दोनों अत्यन्त आनन्दित हो गए ॥८५ ८८॥

हरिहर ने कहा—यह त्रिक्रम (तीन देवताओं वाला) महातीर्थ है और यह गौतमी वाञ्छित फल को देने वाली है । उगमे इस (निम्नलिखित) मन्त्र से मङ्गिपूर्वक स्नान करो । बहस्पति इन्द्र के कल्याण तथा सम्पत्ति की स्थिरता के लिए हम दोनों का स्मरण करते हुए देवराज का अभिषेक कर । (स्नान-मन्त्र) इस जन्म में तथा पूर्व जन्म में जो कुछ मैंने शत्रु बन्ने किये हैं वे सब (कर्म) पूर्ण हो जाय । हे गोदावरी ! आपको नमस्कार है । इस प्रकार स्मरण कर जो कोई गौतमी में स्नान करता है उसका सञ्चित धर्म हम लोगों की कृपा से पूर्ण हो जाता है और वह पूर्व जन्म के किये दोषों से मुक्त हो पुण्यवान् हो जाता है ॥८९ ९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त महेंद्र और वाचस्पति ने ऐसा ही करके यह कहकर प्रसन्न हो वाप्य प्रारम्भ किया । देव-मुद ने इन्द्र का महाभिषेक किया । उस अभिषेक-जल में जो नदी उत्पन्न हुई वह पवित्र मङ्गला नाम से प्रसिद्ध हुई । गंगा के साथ उसका सगम पवित्र और शुभप्रद हुआ । इन्द्र की स्तुति से जगत्पति विष्णु वहाँ प्रत्यक्ष हुये । उस जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रिलोक-भूजित (भूमि) प्राप्त की । इनलिये वहाँ 'गोविन्द' इस नाम से

तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्द इति तत्र च । त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गोर्वज्रधारिणा ॥१६॥
 दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः । त्रिलोक्यराज्यं यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने ॥१७॥
 निश्चलं येन (तच्च) 'संजात देवदेवान्महेश्वरस्तु । बृहस्पतिर्देवगुर्यत्रास्तोषीन्महेश्वरम्' ॥१८॥
 राज्यस्य स्थिरभावाय' देवेन्द्रस्य महात्मनः । सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशार्चितम् ॥१९॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम् । 'मङ्गलासंगमं चैवं पूर्णतीर्थं ततः परम्' ॥२०॥
 इन्द्रतीर्थमिति ह्यतः बाह्यस्थलं च विश्रुतम् । यत्र' सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च ॥२१॥
 तेषु' स्नानं च दानं च यत्किञ्चित्सुकृताजर्जनम् । सर्वं तबल्यं विद्यात्पितृणामतिबलभम् ॥२२॥
 शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः । तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥२३॥
 सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानि तोरयोर्द्वयोः । उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२४॥
 न पूर्णतीर्थसदृश तीर्थमस्ति महाफलम् । निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उभयोस्तीरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासंगम-

गोविन्दसिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१२२॥

श्रीतमोमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

।

॥

विख्यात द्वये, क्योंकि उस वज्रधारी इन्द्र ने वहाँ त्रिलोक्यपूजित गौ (गौं) प्राप्त की। विष्णु ने वहाँ इन्द्र को गौ
 वी धी, इसलिए हरि गोविन्द हो गये। मुने' विष्णु से इन्द्र ने जो त्रिलोक्य राज्य प्राप्त किया वह राज्य
 देवाधिदेव महेश्वर की कृपा से अचल हो गया। देव-गुरु बृहस्पति ने वहाँ महात्मा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के
 लिये महेश्वर की स्तुति की, वहाँ सिद्धेश्वर देव और देवपूजित लिंग की स्थापना की गई। उस समय से वह तीर्थ
 गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् मंगला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बृहस्पति तीर्थ विख्यात तीर्थ द्वये।
 जहाँ सिद्धेश्वर देव विष्णु और गोविन्द (इन्द्र) स्थित हैं, उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से जो कुछ पुण्य
 प्राप्त होते हैं, वे सब अक्षय होते हैं और उनसे पितरों को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। उस तीर्थ के माहात्म्य
 को जो कोई नित्य पढ़ता है, या स्मरण करता है उसका गया हुआ राज्य और नष्ट वैभव पुन प्राप्त हो जाने हैं।
 मुनिवर! उस पुण्य सारिला नदी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सीतम हजार तीर्थ
 हैं। पूर्ण तीर्थ के समान उत्तम फल देने वाला कोई भी तीर्थ इस मूलपङ्कल पर नहीं है। उस मनुष्य के जन्म आदि
 निष्फल है जो इस पूर्णतीर्थ का सेवन नहीं करता है ॥१३ १०५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णतीर्थ, मङ्गला तीर्थ आदि सीतम हजार तीर्थों का

माहात्म्य-वर्णन नामक एक ली आईसर्वा अध्याय समाप्त ॥१२२॥

१५ च तत्प्राप्तः । २६ त तर्हि देवाः । ३५ च ०२स्तोष नीत्वा महे० । ३६ ०२स्तन स्याय महे० ।
 ४५ च ०२तां प्रायार्हे० । ४६ ०२तां प्राय दे० । ५५ च ०३ चेति तत्र स्नात्वा शुचिर्भवेत् । ६० । ६७. च
 ७३ । ७८. तत्र । ८५ ह च ०५ । यत्र सिद्धेश्वरो देवो गोविन्दो जनबन्धनः । ८० ।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तीर्थमिति ख्यातं भूणहत्याधिनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१॥
 'कुवशप्रभव' क्षत्रियो लोकविभूत । बलवान्मत्तिमाञ्जुरो यथा शक्र पुरन्दर ॥२॥
 पैतामह राज्यं कुर्धन्नास्ते यथा बलि । तस्य सिलो महिष्य स्यू राजो दशरथस्य हि ॥३॥
 ल्या च सुमित्रा च कँकेयो च महामते । एता कुलीना सुभगा रूपलक्षणसमुता ॥४॥
 मन्त्राजनि राज्ये तु स्थितेज्योध्यापती मुने । वसिष्ठे ब्रह्मविच्छेष्टे पुरोधसि विशेषतः ॥५॥
 व ध्याधिनं दुर्भिक्षं न चावृष्टिनं चाऽऽधय । ब्रह्मक्षत्रविज्ञा नित्यं शूद्राणां च विशेषतः ॥६॥
 रमाणां तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक् । तस्मिञ्ज्ञासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणां कुलोद्गर्हे ॥७॥
 ना दानवानां तु राज्यायै विप्रहोऽभवत् । ववापि तत्र जयं प्राप्नुर्वेवा ववापि तथेतेरे ॥८॥
 प्रवर्तमाने तु प्रलोक्यमतपोडितम् । अभून्नारव तत्राहमवद दैत्यदानवान् ॥९॥

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नामहत्या के पाप को दूर करने वाला रामतीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके नामश्रवण से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ इक्ष्वाकुवंशी विश्व प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय राजा दशरथ इंद्र के पुत्र और बुद्धिमान् थे ॥२॥ वे बलि के समान अपने पिता पितामह के राज्य का पालन करते थे। उस राजा रथ की तीन रानिया थी ॥३॥ महामते । उनके नाम कीशल्या कँकेयी और सुमित्रा थे। वे कुलीन भाग्यशालिनी र रूपलक्षण-संपन्ना थी ॥४॥ मुने । उस अयोध्यापति राजा दशरथ के शासन काल में विशेषकर महाब्रह्म ती वसिष्ठ के पुरोहित रहते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और विशेषतया शूद्र को कभी भी मानसिक पीड़ा व्याधि क्ष अथवा अवृष्टि (भूखा) इत्यादि से वन्ट नहीं होता था ॥५॥ ६॥ इक्ष्वाकु-कुल की मर्यादा बढ़ाने वाले उस राजेन्द्र शासन में सब आश्रमों को पृथक्-पृथक् दृष्टान्तुल आनन्द प्राप्त था ॥७॥ इसी समय देवताओं और दानवा मे ल के लिये युद्ध हो गया कहीं पर राक्षसों की विजय तो किसी मोर्चे पर देवों की विजय हुई ॥८॥ इस प्रकार युद्ध जाने पर वि भुवन दुःख से काप उठा। नारद । यह देखकर मैंने दैत्य दानवों और विशेषकर देवताओं को साया परन्तु उन रण-धुमदों ने मेरा कहना नहीं सुना ॥९॥ प्रत्युत पुनः उनमें परस्पर अति भयंकर युद्ध छिड़

१६ च ०१ ब्रह्मह० । २३ ०२ स्मरण० । ३६ ड च ० प्रवर क्ष० । ४४ च ० हे । एतस्मिन्नन्तरे महत्पापमुपरिधत्तम् । ६० ।

देवांसचापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम् । पुनश्च संगरस्तेषा बभूव सुमहान्मियः ॥१०॥
 विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम् । तावूचतुरुभौ देवानसुरान्देत्यदानवान् ॥११॥
 तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम् । तथेत्याहुर्मयुः सर्वे तपसे नियतव्रताः ॥१२॥
 ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनरस्ते मत्सरान्विताः । देवानां दानवाना च संगरोऽभूत्सुदारुणः ॥१३॥
 न तत्र देवा जेतारो नैव देत्याश्च दानवाः । संयुगे वर्तमाने ॥ वायुवाचाशरीरिणी ॥१४॥

आकाशवायुवाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ । तत्र वायुस्त्वरन्प्राप्तो राजानमवदत्तवा ॥१६॥

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्वेवदानवसंगरे । यत्र राजा दशरथो जयस्तनेति विभ्रुतम् ॥१७॥
 तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुराः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः । आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो ययासुखम् ॥१९॥
 गते वायो तदा' दैत्या आजग्मुर्भूषति प्रति । तेष्व्यूचुर्भगवन्नस्मत्साहाय्यं वर्तुमर्हसि ॥२०॥

गया । देवताओं ने विष्णु और जगद्गुरु वाकर से सारा वृत्तान्त बह सुनाया । उन दोनों देवताओं ने देव, असुर, दैत्य और दानव सबको एकत्र कर कहा कि पहले तपस्या से बल प्राप्त करो, फिर युद्ध करना । दोनों पक्ष वालों ने इस आदेश को स्वीकार किया और उमयपक्ष दुर्द्वत होकर तपस्या के लिये चले गये । यद्यपि वे दोनों (राक्षस और देवता) गये तो परन्तु पुन वे ईर्ष्या करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप पुन अति कठिन युद्ध छिड़ गया । परन्तु उस युद्ध म न तो देवता ही विजयी हुये और न दानव ही । इसी बीच युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई ॥१०-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—जिनके पक्ष में राजा दशरथ रहेंगे वे ही जीतेंगे, दूसरे नहीं ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर दोनों देव और दानव विजय की इच्छा से राजा दशरथ के पास पहुँचने लगे ।

(उनम से देव-पक्ष के दूत) वायु नीध्र राजा के पास पहुँच गये और राजा से बोले ॥१६॥

वायु ने कहा—राजन् ! देव-दानवा के युद्ध म आपको आना चाहिये, क्योंकि जिस ओर आप रहेंगे वही पक्ष विजयी होगा यह बात प्रसिद्ध है । इसलिये आप देव-पक्ष म रहे, जिससे देव विजयी हो जायें ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु की बात सुनकर राजा दशरथ न कहा कि आप मुझपूर्वक जाइय, मैं अवश्य आपसे पक्ष म आऊँगा । जब वायु चले गये तब दैत्य भी राजा के समीप आये । उन लोगों ने भी कहा—'वयवन्' ! हम लोगो

राजन्दशरथ धीमन्विजयस्त्वयि सस्थित । तस्मात्त्व वं दैत्यपते साहाय्य कर्तुमर्हसि ॥२१॥
 तत प्रोवाच नृपतिर्वियुना प्रार्थित पुरा । प्रतिज्ञात मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवा ॥२२॥
 स तु राजा तथा चक्रे पत्वा चैव त्रिविष्टपम् । युद्ध_चक्रे तथा दैत्यैर्दानवै सह राक्षसै ॥२३॥
 पश्यत्सु देवसंघेषु नमचेर्भ्रातरस्तदा । विविधुर्निशितैर्बाणैरयास नृपतेस्तथा ॥२४॥
 भिद्राक्ष त रथ राजा म जानाति स सभ्रमात् । राजान्तिके स्थिता सुभ्रू कंकेय्याञ्जायि नारद ॥२५॥
 न श्रापित स्या राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता । भग्नमक्ष समालोक्य चक्रे हस्त तदा स्वकम् ॥२६॥
 अक्षयन्मुनिशार्बल तदेतन्महद्भुतम् । रथेन रथिनां ॥ अष्टस्तथा दसकरेण च ॥२७॥
 जितवान्दैत्यवतुजान् देवै प्राप्य वरान्बभूवुः । ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्या पुनरभ्यगात् ॥२८॥
 स'पु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् । कंकेय्या कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मय परम गत ॥२९॥
 ततस्तत्स्य वरान्प्रावात्नीस्तु नारद सा अपि । अनुमान्य नृपप्रोक्त कंकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥

कंकेय्युवाच

स्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी

॥३१॥

की सहायता कीजिये । धीमन् । राजन् । दशरथ । विजय आप ही के हाथ में है । इसलिये आप अवश्य दैत्यपति की सहायता कीजिये । यह सुनकर राजा ने कहा—वायु ने पहले ही आकर प्रायना की है मैंने भी उस प्रायना के अनुसार जाने की प्रतिज्ञा कर ली है अतः (आप) दैत्य दानव चले जाय । उस राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वयं आकर दैत्य दानव तथा राक्षसों के साथ युद्ध किया । उस समय देवताओं के देखते देखते नमचि ने भाइयों ने राजा के रथ की धुरी को तीखे बाणों से तोड़ डाला । वह राजा युद्धरत होने के कारण इस घटना को न जान सका परन्तु नारद । उसके समीप बैठी हुई सुंदर ग्रीवाली कंकेयी ने जान लिया । उस मुन्रता ने स्वयं देखकर भी राजा को नहीं बताया अपितु अपना हाथ धुरी की जगह लगा दिया । मनिबर ! उसने यह बड़ा अदभूत काम किया । रथियों में शय्य राजा दशरथ ने उसी रथ पर बैठ कर दैत्य दानवा को जीता और देवताओं से अनेका वर प्राप्त किये । तदनन्तर देवताओं से सावर बिदा हो पुनः अयोध्या पुरी को लौट आये । उस समय माग म राजा अपनी प्रिया को देखकर और कंकेयी के उस अति अदभूत काम को जानकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । नारद । तब (उसके इस काम से वृत्त हो) राजा ने रानी को तीन वर दिये । कंकेयी ने भी राजा ने दिये तीन वरों को स्वीकार कर राजा से कहा—॥१९३०॥

कंकेयी ने कहा—राजद्र । तुम्हारे दिये ये तीन वर तब तक तुम्हारे ही पास धरोहर के रूप में रहे ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह । रथेन विजयी राजा ययौ स्वतनगर सुखी ॥३२॥
 योयिता किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे । स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिवर्त ॥३३॥
 अटन्नरूप्ये शर्वपां वारिवन्धमयाकरोत् । सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा ॥३४॥
 इति जानन्नपि च तत्त्वकार तु विधेर्वशात् । गतं प्रविश्य पानार्थमागताग्निशितं शरं ॥३५॥
 मृगान्हन्ति महाबाहु शृणु कालविपर्ययम् । यत्नं प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥३६॥
 वृद्धो वैश्ववणो नाम न शृणोति न पश्यति । तस्य भार्या तयाभूता सावब्रूता तवा सुतम् ॥३७॥

मातापितराबूचतुः

आवा तृपातौ रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते । वृद्धानां जीवितं 'वृत्स्म बालस्त्यमसि पुत्रक ॥३८॥
 अन्धानां बधिराणां च' वृद्धानां धिक्च जीवितम् । जराजर्जरवेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम् ॥३९॥
 तावत्पुभिर्जीवितव्यं यावत्लक्ष्मोदुंद वपु । यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थांशवन्मया मृति ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धमोर्गुणवत्सल । पुत्रं प्रोवाच तद्वदुखं गिरा मधुरया हरन् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह विजयी राजा अपनी प्रिया को विविध आभूषण देकर प्रिया के साथ रथ से सुलपूर्वक अपने नगर को गया । सच कहा है कि उचित समय आने पर प्रिय स्त्रियों के लिये कौन सी वस्तु न देने योग्य है ?

किसी समय वह राजा पिंकार के प्रेमी अनुचरों के साथ वन में डहर डहर घूमने लगा । रात्रि में उसने पानी को बाँपा से रोक्का दिया । 'राजा को सात प्रकार के व्यसन स (जिनमें एक पिंकार भी है) पृथक् रहना चाहिये' यह जानकर भी विधि प्रेरणा से उसने एक अनय किया । वह महापराक्रमी राजा स्वयं गड्ढे में छिपकर पानी पीने के लिये आए हुए वन्य पशुजा को अपने तीखे बाणों से मारने लगा । अंत समय की कुटिलता की कहानी सुनो—उसी ऊँच पर्वत पर—जहाँ कि राजा बहते-त घूमकर आघट कर रहा था—एक वृद्ध रहता था जो न सुनता था न देखता था । उसकी स्त्री भी उसी के समान थी । उन दोनों वृद्ध दम्पति ने अपने पुत्र से कहा ॥३२-३७॥

माता पिता ने कहा—हम दोनों प्यास से व्याकुल हैं और इस समय रात अंधेरी है । वन्य ! तुम्हीं गड्ढे वृद्धों के एकमात्र जीवन हों । अथा बहता और वृद्ध न जीवन को धिक्कार है । बेठा ! वृद्धावस्था में जीन दारीर वाला के जीवन को धिक्कार है । धिक्कार है । 'मनुष्याः को तब तक ही जीना चाहिये जब तक उनका पाग लम्बी हो तथा दारीर दुर्ग हो और उनकी आगा का बरौह-टाक पाग्न होना हो । नहीं तो उह तीनों में दारीर स्वाग दना चाहिए ॥३८-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध माँ-बाप की इन बातों को सुनकर अपनी मधुर वाणी से उनका दुःख को हटाता हुआ वह गुरमन पुत्र बोला ॥४१॥

पुत्र उवाच

मपि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमौदृशम् । न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रमनोरुजम् ॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधायिना ॥ ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा सायाश्वास्य ब्रह्ममना । तत्सकन्धे समारोप्य वृद्धौ च पितरौ तदा ॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः । स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम् ॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत् । सत्वरं कलशे न्युञ्जे वारि गृह्णन्तमाशुगः ॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्स्या विध्याथ निशितं वारं । वनद्विषोऽपि भूयानामवध्यस्तद्विदमपि ॥४७॥
विध्याप सं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिविञ्चितः । स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे । मंत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

सर्वैर्द्वचनं श्रुत्वा मुनेरातस्य भूपतिः । निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा । असावप्यभवत्तत्र सशल्प इव सूच्छितः ॥५१॥

पुत्र ने कहा—मेरे जीते जी आप लोगों को इस प्रकार दुखी होने की क्या आवश्यकता ? जो पुत्र अपने
आचरण से माता-पिता की मानसिद्ध धन्या को दूर नहीं करता उस कुलाचार पुत्र से क्या लाभ ? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर उस महामना ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, पुत्र प्रणाम कर
उनको वृक्ष के स्वच्छ पर बैठा दिया और स्वयं अपने हाथ में कलश लेकर वह ऋषि-कुमार जल लेने के लिए चल पड़ा ।
उस समय न तो वह ऋषिपुत्र मृगयासक्त राजा के विषय में जानता था और न राजा ही उस द्विज का जानता था ।
धीमा अपने-अपने ध्यापार में आवश्यकता में अधिक शीघ्रता कर रहे थे । उस गड्डे में पानी के लिए वह द्विज उतरा,
शीघ्र ही वृक्ष को झुकाकर पानी मरने लगा । उसी समय राजा ने उसको जगली हाथी जानकर अपने तीधे और
शीघ्रगामी बाणों में डेप डाला । 'राजा जगली हाथी को भी अवध्य समझे' यह जानते हुए भी राजा ने उसको मार
ही डाला । माग्य में प्रतारित होने पर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है ? सर्व-स्थल में माग्य लगने से वह ऋषि-
कुमार ज्वलन्त पीड़ित हो बोला—॥४४-४८॥

ब्राह्मण ने कहा—आह ! मुझ निरपराध सद्ब्राह्मण के प्रति बिमने यह पीडाकारक कार्य किया ? ब्राह्मण
सत्ता गिन बटा जाता है, फिर मैंने जो कोई अपराध भी नहीं किया है ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा जानं मुनि की इन बातों को सुनकर चित्रतैव्यविभूष हो गया । उसका सारा अत्माह

आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम्

॥५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः । वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृति पराम् ॥५३॥

ब्रह्महर्षिभिः कितु श्वपचरपि जातुचित् । न स्पृष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः

॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्तमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किञ्चन । स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाक च कर्मणाम् ॥५६॥

आत्मार्यं तु न शोचामि बृद्धौ तु पितरौ मम । तयोः शुभपक्वः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः ॥५७॥

विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः । ममाभाग्यमहो कीदृक्पितृशुभ्रपणे क्षतिः ॥५८॥

जातः मेऽद्य विना प्राणैर्हर्षा विधे किं कृतं त्वया । तयाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वयन् ॥५९॥

ताभ्या देहपुवपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं श्रुतस्तस्य गताः प्राणा महावने । विमुग्य संशरं चापभावाद्य कलशं नृपः ॥६१॥

तत्रागात्स तु वेगेन यत्र बृद्धौ महावने । बृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योग्यं समुचतुः ॥६२॥

जाता रहा । वह धीरे धीरे उस स्थान पर आया । वह तेज से जलते हुए उस ब्राह्मणकुमार को देखकर स्वयं बाण-
बिद्ध-सा मूर्च्छित हो गया । धीरे-धीरे उस राजा ने अपने को सम्हालकर कहा—॥५८-५९॥

राजा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? यहाँ किसलिए आये ? आप इस पापी से कहिये, साथ ही
इस महापाप का क्या प्रतिकार है, इसकी भी बतलाइये । महाबुद्धिमान् ! ब्रह्मपाती मनुष्य किसी वर्ण के मनुष्यों
म तो कौन कहे पाण्डाला से भी छूने योग्य नहीं होगा । उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए ॥५३-५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस राजा की बातों को सुनकर मुनिपुत्र ने कहा ॥५५॥

मुनिपुत्र ने कहा—मेरे प्राण अभी निश्चल जायेंगे । इसलिये कुछ बह रहा हूँ सुत्रा, स्वयं हा जाने वाले
व्यवहारा या कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझो । मैं स्वयं अपने लिये धोक्त नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मेरे बृद्ध माँ-
बाप हैं, उन इकलौते पुत्र वाले अन्धे बृद्धों की सेवा करने वाला अब कौन होगा ? मेरे बिना अब इस घनघोर जंगल
म वे कैसे जीवित रहेंगे ? आह ! मेरा यह रोग दुर्भाग्य है कि मेरी मृत्यु से माता पिता की सेवा में बाधा पड़
गई । हा ! अकरण विधाता ! तुमने यह क्या किया ? तथापि तुम बन्ध से लगे और छोड़ वहाँ जाओ । उनकी
पानी पीने के लिये दो, जिससे कि वे दोनों मरने न पायें ॥५६-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वह बह ही रहा था कि उसने प्राण उम महावन में निश्चल गये । राजा यह
दृश्यकर बाण महिन घनघोर को फेंक दिया तथा स्वयं जल-बन्ध से लेकर वही मोघना में बहो गया, जहाँ दोनों बृद्ध थे ।
ये दोनों बृद्ध भी कुछ अधिक विस्मय होने के कारण उस समय रात्रि में एरा दूगरे ॥ वह रहे थे ॥६१-६२॥

बृद्धावूचतुः

उद्विग्न. कुपितो वा स्यादयथा भक्षितः कथम् । न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत् ॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुनो विद्यते सचराचरे । यः पिशोरन्यथा वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः ॥६४॥
यच्चादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः । शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयो ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा याचो बृद्धयोर्वंदतोर्वने । तवा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम् ॥६७॥

बृद्धावूचतुः

कुतो बलस चिरात्प्राप्तस्त्व दृष्टिस्त्व परायणम् । न भूये किंतु हृष्टोऽसि बृद्धयोरन्ययोः सुतः ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्नुद्धृतमात्मनः । स भोत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाय नारद ॥६९॥
उदयानं च कुलां तच्छ्रुत्वा मृगभाषितम् । नार्यं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवास्तत्पुरा वद ॥७०॥
पद्मात्पिबायः पानीय ततो राजाऽब्रवीच्च तौ ॥७१॥

राज्ञोवाच

तत्र तिष्ठति वा पुनो यत्र वारिसमाश्रयः ॥७२॥

बृद्धो ने कहा—क्या वह उत्र गया या कुपित हो गया ? अथवा अपनी जानवर ने उसको छा डाला ?
माह ! वह हम लोग के हाथ की रजडी (सहारा) नहीं आया। क्या करें ? हम लोगो की उससे बिना क्या
गति होगी ? अशिल चराचरात्मक जगत् में उससे समान कोई भी पुत्र नहीं, जो डाँटने-फटकारने पर भी माता
के कहने के विरुद्ध काम नहीं करता। हम लोगो का जीवन वयस से भी अधिक कठोर है जो उसको न देखकर उसी
के सहारे जीने-बाले हमारे प्राण क्षीप्त नहीं निश्चलते ॥६३-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की बहुत सी बातें के दोनो बृद्ध उस वन में कह रहे थे कि इतन में राजा दशरथ
पीरे से उस स्थान पर पहुँचा। उससे पीर की आहट पाकर दोनो ने समझा कि उनका श्रिय-गुण आ गया ॥६६-६७॥

बृद्धों ने कहा—बलम् । क्यों इनने विलम्ब में आय ? तुम हमारे नत्र हो, एकमात्र आधार हो, बोलने
नहीं हो, क्या इन यूँ अन्धों के पुत्र तुम हष्ट हो गये हो ? ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इन शब्दों को सुनकर वह राजा मानो बाणों से आहत-मा हो गया। दुःख से उसको तीव्र
वेदना हुई। नारद ! पाप का स्मरण करते हुए उस राजेन्द्र ने द्रवते-द्रवते उन दोनो बृद्धों ने कहा—‘यह जन्म
पीत्रिये !’ राजा की उन बोली को सुनकर उन दोनो ने कहा—‘यह वक्ता मेरा पुत्र नहीं जान पड़ता। अतः आप
पहले यह बतलाइये कि आप कौन हैं, पीछे हम जन्म ग्रहण करेंगे।’ यह सुनकर राजा ने उनका कहा ॥६९-७१॥

राज्ञो ने कहा—इस समय आरता पुत्र जन्मज्य के तट पर पड़ा हुआ है ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरातो तौ सत्यं ब्रूहि न चान्यथा । आचक्षते ततो राजा सर्वमेव यथातथम् ॥७३॥
ततस्तु पतितो बृद्धो तत्राऽऽवां नय मा स्पृश । ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति ॥७४॥
नित्ये धं श्रवणं बृद्ध सभायं नृपसत्तमः । यत्रासी पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः ॥७५॥

बृद्धावूचतुः

यथा पुत्रविपयोगेन मृत्युर्नो बिहितस्तथा । त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्पुमाप्स्यसि ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु जल्पतोर्ब्रह्मगताः प्राणास्ततो नृपः । अग्निना योजयामास बृद्धौ च ऋषिपुत्रकम् ॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुस्सितो नृपतिर्भुने । वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदपदशेषतः ॥७८॥
नृपाणां सूर्यवदयानां वसिष्ठो हि परा गति । वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठः संमन्त्र्याऽऽह च निष्कृतिम् ॥७९॥

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमय कश्यपम् । एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः ॥८०॥
यजत्स्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर उन दु खी बृद्धो ने कहा—‘सच्ची बात कहो मूठी मत बोली । तदनन्तर राजा ने सत्य सत्य आदि से अन्त तक सब कुछ कह सुनाया । यह सुनकर वे दोनों बृद्ध मुच्छित हो नीचे गिर पड़े । पुनः कुछ अपने को सम्हाल कर उन्होंने कहा कि हम दोनों को वहाँ ले चलो, परन्तु धीरे-धीरे मत करो, क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाले के स्पर्श से जो पाप होता है वह कभी भी दूर नहीं होता है । अन्त में वह राजपति बृद्ध श्रवण को स्वीकृतित वहाँ लिखा ले गया जहाँ उनका वह प्यारा पुत्र मरा पड़ा हुआ था । उसका स्पर्श कर वे दोनों विलाप करने लगे ॥७३-७५॥

बृद्ध ने कहा—जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम दोनों की मृत्यु हो रही है उसी प्रकार ऐ पापी ! तू भी अपने पुत्र के वियोग से मरेगा ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहन हुए उन दोनों ने प्राण-त्याग कर दिया । इसके बाद राजा ने अग्नि में उन दोनों बृद्धों और ऋषि-मुनार की दाह क्रिया की । भुने ! तब वह राजा अति दुखी हो नगर की ओर लौटा । नगर जाकर उसने गुरु वसिष्ठ से सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से कह सुनाया । गुरु वसिष्ठ ही सूर्यवन्धी राजाओं के एकमात्र गति (आधार) थे । उन्होंने भी अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणों से परामर्श कर इन पाप की निष्कृति (उद्धार) बनाई ॥७७-७९॥

वसिष्ठ ने कहा—गालव वामदेव जाबाल और कश्यप इनकी तथा अन्य ऋषियों को हयमेध यज्ञ के नित्य विधिपूर्वक निमन्त्रण देकर बुझाओ । फिर अनेक उत्तम दक्षिणावाले श्रवणमेध यज्ञ करा ॥८०-८१॥

ब्रह्मोवाच

अकरोद्धयमेधाश्च राजा दशरथो द्विजं । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥८२॥

आकाशवाभ्युवाच

पूत शरीरमभवद्राजो दशरथस्य हि । ध्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुता ॥
प्येष्टपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यशृङ्गान्मनोऽवरात् । देवानां कार्यसिद्धयर्थं सुता आसन्सुरोपमा ॥८४॥
कौशल्याया तथा राम सुमित्राया च लक्ष्मण । शत्रुघ्नश्चापि कंकण्या भरतो मतिमत्तर ॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिता । त राजानमृषिं प्राप्य विश्वामित्र प्रजापति ॥८६॥
राम च लक्ष्मण चापि अयाचत महामते । यज्ञसरस्वतीर्थाय ज्ञाततन्महिमा मुनि ॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो बृद्धो राजा नैवेद्यभापय ॥८८॥

राजोवाच

महता दैवयोगेन धन्यचिद्द्वार्धके मुने । जातावानन्दसदोद्भाषकी मम बालकौ ॥८९॥
सशरीरमिव राज्य दास्ये नैव सुताविमो ॥९०॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा दशरथ ने शूद्र के आदेशानुसार अनेको अश्वमेध यज्ञ किये । इसी बीच वहाँ आकाश गणी हुई ॥८२॥

आकाशवाणी ने कहा—अब राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया । अब इनके साथ (सामाजिक) व्यवहार किया जाता चाहिये । उनके पुत्र उत्पन्न होंगे । और अपन जेठे पुत्र के पुण्यप्रभाव से ये राजा निष्पाप हो जायेंगे ॥८३॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ समय बीत जाने के बाद मुनीश्वर ऋष्यशृङ्ग के प्रभाव से देवों की काम सिद्धि के लिये राजा के देव तुल्य चार पुत्र उत्पन्न हुए । वीरसत्ता से राम सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कंकण्या से भरत नाम के महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुए । वे सभी बुद्धिमान् बालक राजा के प्रिय और वशवर्ती थे । महाबुद्धिमान् । एक बार प्रजापति ऋषि विश्वामित्र उस राजा के पास आये और यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को माँगने लगे । क्योंकि तत्त्वदर्शी मुनि उन दोनों पराक्रमी बालकों की महिमा को जानते थे । परन्तु बृद्ध राजा दशरथ ने चिरकाल के बाद प्राप्त इन दोनों पुत्रों को देने में आनाजानी की और कहा ॥८४८८॥

राजा ने कहा—मुने ! बहुत बड़ी दैवशृणा से किसी प्रकार इस वृद्धावस्था में अपार आनन्द देने वाले ये दोनों पुत्र मुझे प्राप्त हुए हैं । अब मैं शरीर व सहित अपना सारा राज्य दे सकता हूँ परन्तु ये दोनों पुत्र नहीं दूंगा ॥८९९०॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति

॥९१॥

वसिष्ठ उवाच

रथं प्रार्थनाभङ्गं न राजन्ववापि शिक्षिता

॥९२॥

ब्रह्मोवाच

रामं च लक्ष्मणं चैव कथञ्चिद्वदद्भूप

॥९३॥

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुता (त) यज्ञरक्षणम्

॥९४॥

ब्रह्मोवाच

धवन्निति सुतौ सोऽष्टं निश्चसन्ग्लपिताधर । पुत्रीं समर्पयामास विश्वामित्राय 'शास्त्रकृत् ॥९५॥
 तथेत्युक्त्वा दशरथं नमस्य च पुनः पुनः । जगत् रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा ॥९६॥
 ततः प्रहृष्ट 'स मुनिर्मुखा प्रायास्तदोभयो । माहेऽस्वरीं महाविद्यां धनुर्विद्यापुरं सराम् ॥९७॥
 शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भ्राम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानमभिसर्जनं ॥९८॥
 सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । बभौकसां हितार्थाय जगत्पुरताटका धने ॥९९॥
 अहत्यां शापनिर्मुक्ता पादस्पर्शाच्च जम्बुतः । यज्ञविध्वंसनायाताञ्जघ्नतुस्तथ रक्षसाम् ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कण्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा ॥९१॥

वसिष्ठ ने कहा—रथवाणियों ने प्रार्थना की अस्वीकार कर देना वही भी नहीं सीखा है ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—बहूँ भुरवाक्य सुनकर राजा ने किसी प्रकार राम और लक्ष्मण से कहा ॥९३॥

राजा ने कहा—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो ॥९४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार पुत्रों को आज्ञा दते समय राजा ने गरम सोत ली । उसके ओठ मूल मय, फिर भी शास्त्रज्ञ राजा ने दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथ में सौंप दिया ॥९५॥ पुत्रों ने भी ऐसी आज्ञा कहकर बार-बार पिता की प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त हुए । यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र के साथ चले गये ॥९६॥ तदनन्तर प्रसन्न मुनि ने आनन्दपूर्वक उन दोनों बालकों को धनुर्विद्या आदि महत्त्व रखने वाली महाविद्या एवं बाहुजान और विसर्जन के मन्त्र सहित अश्वविद्या अस्त्रविद्या लौकिक विद्या रथ विद्या हस्ति विद्या अश्व विद्या और गन्धर्व विद्या प्रदान की ॥९७-९८॥ इस प्रकार गुरु विश्वामित्र ने मनु विद्या प्राप्त कर उन दोनों राम और लक्ष्मण ने बलवती शक्ति-मुद्रिका के हित के लिये वन में ताड़ना का मार डाला ॥९९॥ अपने पावन चरणों के स्पर्श से अहत्या की शाप मन्त्र दिया और यज्ञ विध्वंस के लिये आय हुए जम्बु राक्षसों को बध किया ॥१००॥ उन दोनों विद्या-मुक्त

'कृतविद्यो धनुष्पाणो चक्रतुर्यन्तरक्षणम् । ततो महामखे दत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥१०१॥
 पुत्राभ्या सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात् । चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः ॥१०२॥
 रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम् । तत्प्रोतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम् ॥१०३॥
 तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च । शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः ॥१०४॥
 राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने । ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति ॥१०५॥
 नृपती सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि । मन्यरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला ॥१०६॥
 कैकेयी बिभ्रन्मातस्ये वनप्रयाजनं तथा । भरतस्य च तद्गान्धर्वं राजा नैव च दत्तवान् ॥१०७॥
 पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वन्ग्रामो महावनम् । विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह ॥१०८॥
 सतां च मानसं दुष्टं स विवेश स्वकंगुणैः । तस्मिन्निर्गन्ते रामे धनवासाय दीक्षिते ॥१०९॥
 समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविर्वाजते । तं रामं चापि सौमित्रिञ्च सीतां च गुणशालिनीम् ॥११०॥
 दुष्टेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन् । तदा दशरथो राजा प्राणास्तत्प्राजं बुद्धितः ॥१११॥
 कृतकर्मविषाकेन राजा भीतो यमानुगैः । तस्मै राज्ञे महाप्राज्ञं यावत्स्यावरोजङ्गमे ॥११२॥
 यमसद्वन्मन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद । नरकाण्यथ घोरानि भीषणानि बहूनि च ॥११३॥

धनुर्पाणो कुमार ने इस प्रकार यज्ञ की रक्षा की । तदनन्तर महायज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद महा-
 मुनीश्वर विश्वामित्र उस कुमार के साथ राजा जनक को देखने के लिये जनकपुर गये ॥१०१॥ वहीं नृप-कुमार
 राम ने लक्ष्मण के सहित उस राज-सभा में गुरु द्वारा प्राप्त और अभिमत अद्भुत धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया ।
 उनकी कला से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या-लक्ष्मी अयोनिजा सीता राम को दे दी ॥१०२-१०३॥
 उसी प्रकार वसिष्ठ आदि गुरुजनों के कथनानुसार श्रीमान् राजा दशरथ ने भरतानुज लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न
 आदि भाइयों का भी विवाह कर दिया ॥१०४॥

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने प्रजा और गुरु की अनुमति से राम को राज्य देने का विचार किया परन्तु
 मन्यरा के रूप में आये दुर्दैव की प्रेरणा से कैकेयी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गई ॥१०५-१०६॥ उसने इस कार्य में बिम्ब
 उपस्थित किया और राम को वन भेजने और भरत का राज्य देने का बर माँगा । किन्तु राजा ने (पुत्र-स्नेह वश)
 नहीं दिया ॥१०७॥ पितृभक्त राम अपने पिता के वचन को सत्य निष्ठ करने के लिये सीता और सुमित्रा-मुनि लक्ष्मण
 के साथ महावन में प्रविष्ट हुए, और साथ ही अपने (उज्ज्व) गुणों के कारण सज्जनों के दुष्ट मन में भी प्रविष्ट
 हो गये ॥१०७-१०८॥ इस वनवास के लिये दीक्षित (दृढ़ प्रतिज्ञ) तथा राज्य-स्नेह से रहित राम ने सीता और
 लक्ष्मण के सहित चले जाने पर राम लक्ष्मण और गुणवती सीता के वियोग की महान् व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्म-
 शाप का स्मरण करते हुए दुष्टी राजा ने अपने प्राणा को छोड़ दिया ॥१०९-१११॥ बिच हुए कर्मों के परिणामस्वरूप
 राजा को यम ने अनुचर ले गये । महाप्राज्ञ नारद । स्थावर-जगम रूप यमान्ध में जिनने भयकर और
 तामिस्र आदि नरक हैं, उनमें राजा (दशरथ) पुण्ड्र-गुण्ड रूप से डाले गये ॥११२-११३॥ उनको अग्नि में जलाया

१ घ ट च कृतास्त्री तो घ० । २ च तस्मिन्नाग्नि महाप्राज्ञे या० । ३ घ ट च ० ज्ञमम् । घ० ।

तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक् । पच्यते छिद्यते राजा पिथ्यते' चूर्धयते तथा ॥११४॥
 शोष्यते दह्यते भूयो दह्यते च निमज्ज्यते । एवमाविषु घोरेषु नरकेषु च पच्यते ॥११५॥
 रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागमत् । तत्रैव श्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते ॥११६॥
 पुनः स दक्षिणामाशामाश्रामदृष्ट्वा वनम् । विवृणोत त्रिषु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम् ॥११७॥
 प्राविशत्तन्महारण्य भीषण दैत्यसेवितम् । तद्भूयादपिभिरत्यवतं हत्वा दैत्यास्तु राक्षसान् ॥११८॥
 विचरन्वपडकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद यत्नतः ॥११९॥
 सावच्छनेस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम् । गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः ॥१२०॥
 यमः स्वर्गिकरानाह रामो दशरथात्मजः । गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः ॥१२१॥
 आकर्षन्त्वय राजानं नरकान्नात्र संशयः । उत्तीर्य गौतमीं याति यावद्योजनपञ्चकम् ॥१२२॥
 रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम् । यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्पदि दूतकाः ॥१२३॥
 ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जय । या काऽप्युक्ता परा श्रुतिः शिवस्य समयायिनी ॥१२४॥
 तामेव गौतमीं सन्तो यदन्त्यश्च स्वरूपिणीम् । हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च संय यत् ॥१२५॥
 निस्तीर्यते न कोनापि तदतिप्रमज्जत्स्वधम् । पापिनोऽप्यात्मजः कश्चिद्यदपि (स्य) भङ्गामनुमरेत् ॥१२६॥

गया, चक्की में पीगा गया, मुलाया गया, दाँतो से काटा गया, पुन जलाया गया, फिर दुधाया गया, इस प्रकार विभिन्न प्रकार नरकों में उन्हे यत्रणा दी गई ॥११४-११५॥

इपर राम भी वन-मार्ग पर चलते-चलते चित्रकूट आये। महामते । उसी स्थान पर उन्होंने तीन वर्ष ध्येयीत जिये ॥११६॥ पुन वे दक्षिण दिशा की ओर चले और सीनो स्त्रो में विव्यात, परम पुण्यप्रद उस दण्ड वन में प्रविष्ट हुये, जो दैत्यो के रहने के कारण अत्यन्त भयङ्कर था। दैत्यो के मय से अरिया ने भी उस वन को छोड़ दिया था। उन्होंने उस दण्डवारण्य में घूम-घूम कर उन दैत्यो का वध किया तथा वन को अरियो के निवास-योग्य बनाया ॥११७-११८॥ नारद । अब आगे जो घटना हुई उसको वह रहा है, सावधान होकर सुनो। राम भी तब तब घोरे-घोरे गौतमी की ओर बढ़े और केवल पाँच योजन दूर रह गये थे, उस समय तब राजा नरक में ही थे ॥११९-१२०॥ यह देखाकर वमराज ने अपन अनुचरा से कहा कि दशरथ-गुरु राम गौतमी के समीप जा रहे हैं अतः उस बुद्धिमान् के पिता राजा दशरथ को नरक से निशाल दो इसमें संशय करने की आवश्यकता नहीं है। ॥१२१॥ जब तब राम गौतमी को पार कर पाँच योजन दूर नहीं चले जाते, तब तब उनके पिता को नरक में मार पड़ा ॥१२२॥ यदि मेरे हम पवित्र बचन की उपाशा कराये तो ऐ हूतो । तुम लोग अवश्य पार नरक में दूबने ॥१२३॥ शिव की जो मयी-मून पराशक्ति है उगी के जन्ममय रूप को सन्त लोग गौतमी कहते हैं ॥१२४॥ किमपि वही गौतमी हरि, ब्रह्मा और महेश्व की मान्य और पूज्य है, वन उगने अवमान करने से उत्पन्न पापों से किसी का उद्धार नहीं हो सकता ॥१२५॥ पापी पिता का भी बर्दा पुन यदि गया का स्मरण करता है तो उगता जिन्ना का पार नरका में निरुद्ध कर भुक्ति प्राप्त करता है ॥१२६॥ फिर निम पिता का साथ वे समान पुन गौतमी

सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्तता व्रजेत् । किं पुनस्तादृशः पुनो गौतमीनिकटे स्थितः ॥१२७॥
यस्यासौ नरके पवतुं न करिषि हि शक्यते । दक्षिणाशापतेर्वक्यं निशम्य यमकिंकरा ॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम् । उत्तार्य धोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुनः स तादृशः । इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुनः केन लभ्यते ॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

॥ विश्रान्तः शनैः राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत्

राजोवाच

नरकेऽप्य धोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः । कथं त्वाकर्षितः क्षीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हम् ॥१३२॥

ब्रह्मोवाच

तत्र कविच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत्

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः । प्रकाश्यते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः ॥१३४॥
रामस्तत्र सुतः श्रीमान्गौतमीतोरमागतः । तस्मात्त्वं नरकाद्योरावाकृष्टोऽसि नरोत्तम ॥१३५॥
यदि दृष्टा तत्र गौतम्या स्मरेद्ब्रह्मणः सलक्ष्मणः । स्नानं कृत्वाऽपि पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम ॥
ततस्त्वं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम् ॥१३६॥

वे निश्चय अवस्थित हो, उसके विषय में तो कहना ही क्या है? अतएव इस समय दशरथ को नरक में कोई भी नहीं पीड़ित कर सकता है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम की बातों को सुनकर यम-दूता ने नरक में पड़े उस अयोध्या-पति राजा को उस घोर नरक से निकाला और कहा ॥१२७-१२९॥

यमदूत बोले—नृपश्रेष्ठ । तुम धन्य हो, जिसका बेटा (राम के समान) पुत्र है। (क्योंकि) इलोक और परलोक में शान्ति प्रदान करने वाला सुपुत्र किसको मिलता है? (अर्थात् बड़े भाग्यशाली को ही मिलता है) ॥१३०॥

ब्रह्मा ने कहा—धीरे-धीरे (उस नरक-यातना से) विद्याम मिलने पर राजा ने यमदूतों से कहा ॥१३१॥

राजा ने कहा—बार-बार घोर नरक में यातना सहने वाले मुझको तुम लोगों ने क्यों निकाला? यह भीष्ट ही मुझसे बतलाओ ॥१३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दूतों में से किसी शान्त दूत ने राजा से कहा ॥१३३॥

यमदूत ने कहा—वेद-शास्त्र और पुराण आदि में यह बात यत्नपूर्वक गुप्त रूप में बहो गई है, परन्तु आज मैं तुमको पुत्र और तीर्थ या सामर्थ्य बता रहा हूँ। तुम्हारे पुत्र श्रीमान् राम गौतमी-नट पर आये हुये हैं, नरोत्तम । इसीलिये तुम इस घोर नरक से निकाले गये हो। यदि लक्ष्मण ने सहित वह राम उस गौतमी में तुम्हारा स्मरण करे और हे नृपोत्तम । यदि स्नान कर पुण्ड्र आदि दोगे, तो तुम सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग चले जाओगे। ॥१३४-१३६॥

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमाकल्यास्ये स्वसुतो प्रति । भवत एव शरणमनुज्ञा दातुमर्ह्य ॥१३७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचन श्रुत्वा कृपया यमकिंकरा । आज्ञा च प्रदुस्तस्मै राजा प्राणात्सुतो प्रति ॥१३८॥
भीषण यातनादेहमापन्नो निश्वसन्मुहुः । निरोक्ष्य स्वयं लज्जमान कृत कर्म च तस्मै ॥१३९॥
स्वेच्छया विहरन्नाङ्गमाससाव च राघव । गीतम्यास्तटभाक्षित्य रामो लक्ष्मण एव च ॥१४०॥
सीतया सह धेवेह्या सस्मो चैव यथाविधि । नैव तत्राभवद्भोज्य भक्ष्य वा गीतगीतट ॥१४१॥
तद्दिने सत्र वसता गीतभीतीरवासिनाम् । तददृष्ट्वा बुद्धितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत् ॥१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रौ दशरथस्याऽऽवा तवापि बलमोदशम् । नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम् ॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातयद्विहितं कर्मे नैव तज्जापयामहेत । पृथिव्यामन्नपूर्णाया ययमन्नाभिलाषिण ॥१४४॥
सौमित्रे भूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम् । अवशया महोदेवास्तर्पयत्यर्चयन्ति न ॥१४५॥
ते य लक्ष्मण जायन्ते सबद्धं बुभुक्षिता । स्नात्वा देवानपाम्भ्यर्च्य होतव्यश्च हुताशन ॥
तत् स्वसामये देवो विधास्यत्यशनं तु नौ ॥१४६॥

राजा न कहा—वहाँ जाकर अपने पुत्रों से आपकी बात कहूँगा। अब आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं आशा कीजिये ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की प्राणना भुनकर यमदूतों ने कृपाकर उस राजा की आत्मा ले दी। राजा भी अपने पुत्रों के समीप चला पड़ा। उसका यातना-शरीर (मनु के दाव पाप मोक्ष के लिए जीव को एक शरीर दिया जाता है वही यातना-शरीर कहलाता है) नष्ट कर था। वह बार-बार लंबी साँस ले रहा था और अपने पूर्व के किये बर्तों का स्मरण कर तथा अपनी वर्तमान दशा की देखकर रुचिहीन हो रहा था। राघव भी स्वेच्छया यमत हुय गङ्गा तट पर आये। गीतभी-तट पर आश्रय पाकर लक्ष्मण और विर-ताया सीता के साथ उन्होंने यथा विधि स्नान किया परन्तु उस गीतभी-तट पर निवास करनेवाले उन तीनों को कोई भी भोज्य या नम्य पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ। यह देखकर लक्ष्मण अत्यंत दुःखी हुये। उन्होंने राम से कहा ॥१३८ १४२॥

लक्ष्मण ने कहा—हम दोनों दशरथ न पुत्र हैं और आपको ऐसी अन्नभुज शक्ति भी प्राप्त है। फिर भी आज गंगा-तट पर निवस करत हुए हम लोगों को भोज्य सामग्री कहा मिल रही है ॥१४३॥

राम ने कहा—भ्राता ! जो किय हुये वस्तु हैं वे करने नष्ट जा सकत। इस वास्तव-मन्त्र पृथ्वी पर हम अन्न के लिए विनित्त हैं। तो सौमित्र अवश्य ही हम लोगों ने ब्राह्मण वंशज मर्दा पत्तन नहीं किया है अर्थात् किसी ब्राह्मण को नष्ट मिलाया है। जो ब्राह्मणों को अवशस स तप्य करत हैं उनकी पूजा नहीं करत हैं वे (उनके अपमान व कारण) मरण भूय रहत हैं। अन्न स्नान कर स्वभावा की पूजा करनी चाहिए और तपनकर अग्नि में हवन करना चाहिए। इससे देवता अपने समय पर हम लोगों के नित्य आशन की व्यवस्था कर दग ॥१४४ १४६॥

ब्रह्मोवाच

भ्रात्रोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम् । अनन्दशरयो राजा तं देशमुपजग्मिवान् ॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । धनुराहृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽयवा ॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा ग्राहि यात्य (ह्य)त्र पुण्यभाक् । रामो दशरथो राजा धर्मभाक्पश्य वतंते ॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः । त्रैलोक्यरक्षादसौऽसौ वर्तते यत्र राघवः ॥१५०॥
न तत्र स्वादृशमस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम् । यदि प्रविशसे पाप ततो बधमवाप्स्यसि ॥१५१॥
तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा शनैराहूय धात्रया । उवाचापोमुखो भूत्वा स्तुपां पुत्री कृताञ्जलिः ॥
मुहुरन्तविनिध्यायनातिं दुष्कृतकर्मणः ॥१५२॥

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्री मे भृशतं ध्वज । तिसृभिर्ब्रह्महृत्याभिर्बृतीह दुःखभागतः ॥
छिन्नं पश्यत मे हेह मरकेषु च पातितम् ॥१५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च । भूमौ प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन् ॥१५४॥
सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः
वस्येदं कर्मणस्तात फल नृपतिसत्तम ॥१५५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार दोनों भाई परस्पर बातें गाप कर रहे थे और कर्म की गति का अनुभव कर रहे थे कि राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचे । उनको देखकर लक्ष्मण ने अपना धनुष लीच लिया और क्रोधपूर्वक कहा—एक जाओ, एक जाओ ! तुम दानव हो या राक्षस ? पुनः उस भयङ्कर प्रतिमा को ममीप आने बसकर उन्होंने कहा—जाओ जाओ देवा, यहाँ पुण्यशाली धर्मिणी राजा राम हैं । जहाँ गुरु-भक्त मर्य प्रतिज्ञ दब-ब्राह्मण-सेवक और शैलोक्य की रक्षा में कुशल राम रहते हैं वहाँ तुम्हारे समान पापीजन का प्रवेश नहीं होगा । पापी ! यदि तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हारा वध अवश्य कर दिया जायगा । पुत्र की उन बातों को सुन कर उन्होंने धीरे से बुलाकर नीचे मिर रिये हुए हाथ जोड़कर अपनी पुत्र-ज्यौ और पुत्रों से बार-बार अपने दुष्कर्मों के फल का ध्यान करत हुए कहा ॥१५०-१५२॥

राजा ने कहा—मैं राजा दशरथ हूँ । पुत्री ! मरी बातें सुनो ! मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ । नन्हीं मे गिराये हुए मर बटे शरीर को देखो ॥१५३॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दनर सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने हाथ जोड़कर सान्त्वना प्रणाम दिया तथा उन मर ने यह वचन कहा ॥१५४॥

सीता राम और लक्ष्मण ने कहा—महाराज ! यह आपसे किस कर्म का फल है ? ॥१५५॥

ब्रह्मोवाच

स च प्राह यथावृत्तं ब्रह्महत्यान्यं तथा

॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणा पुनो क्वापि न विद्यते

॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो बुद्धेन महताऽऽयुताः सर्वे भूयं गताः । राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा ॥१५८॥

बुद्ध्यागमं कर्मणं नरके पातनं तथा । एवमाद्यं सस्मृत्य मुमोह नृपते. सुतः ॥

विसंभं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमयाब्रवीत्

॥१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वाद्दृशा व्यसनागमे । चिन्तयन्ति प्रतीकारं वैद्यमप्यथ मानुषम् ॥१६०॥

शोचद्भिर्गुणसाहसं विपत्तिर्नैव तोर्यते । ध्यामोहमानुवन्तोह न कदाचिद्विचक्षणा ॥१६१॥

किमनेनात्र बुद्धेन निष्कलेन जनेदवर । देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा ॥१६२॥

पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गभारगः । अनाया यो हतो विप्रस्तत्पापस्यत्र निष्कृतिम् ॥१६३॥

आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुतं युवाम् । द्वितीयां लक्ष्मणो हर्षां गृह्णातु त्वपराभवान् ॥१६४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन्होंने, जिस प्रकार तीन ब्रह्म-हत्याये हुई थी उनको उसी प्रकार कह दिया ॥१५६॥

राजा ने कहा—पुनो ! ब्रह्म-हत्या करनेवालों के पाप का प्रतीकार कही भी नहीं है ॥१५७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर सभी अचान्त दुःखी हो गये और दुःखान्तेप से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । नृपति-युव राम राजा की अवस्था वनवास माना पिता दुःखों की प्राप्ति, कर्म-गति और पिता का नरक में गिराया जाना आदि बातों का स्मरण करने सज्जा-हीन से हो गये । इस प्रकार राम को सन्ना-भूय देखकर सीता ने कहा—॥१५८-१५९॥

सीता ने कहा—आपने समान महत्त्वा कीम अणुतिमा ने आ जान पर शोक नहीं करते, प्रत्युत उसने प्रतीकार को सोचते हैं, चाहे वह प्रतीकार मानवीय हो या देवी । सहस्र-युगा तक शोक करते रहने पर भी विपत्तिया से पार नहीं पाया जा सकता । अतएव विद्वान् व्यक्तित्व सभी भी इस तरह म मोह को नहीं प्राप्त होते हैं । जनेदवर ! इस निष्फल दुःख करने से क्या लाभ ? पशु की अति भीषण हत्या हो गई है । उसका पत्र मुझे दे दीजिये । पित्र-भक्त पुण्यशील, वेदवेदाङ्ग के पारदर्शी विद्वान् और निष्पाप ब्राह्मण की जो हत्या हुई है, उस पाप का प्रतीकार मैं शास्त्र-सम्मत उपाय से करूँगी । आप दोनों शांति मन कीजिये । दूसरी हत्या को स्मरण और अवशिष्ट को आप ग्रहण कर लीजिये ॥१६०-१६४॥

भूयते सवशास्त्रेषु यद्राम शृणु यस्ततः । यदत्र पुरोयो राजस्तदत्रास्तस्य देवता ॥१७५॥
 पिण्डे निपतिते भूमौ नमस्कृत्यत्पितरं तदा । श्वं च पतितं यत्र श्वतीर्यमनुत्तमम् ॥१७६॥
 महापातकसघातविघातकृदनुस्मृतिः । तत्राऽऽगच्छत्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽग्निदनी ॥१७७॥
 स्वः स्व विमानमारुढास्तथा मध्येऽतिदीप्तिमानः । विमानवरमारुढः स्तूपमानश्च किनरं ॥१७८॥
 आदित्यसदृशाकारस्तेषां मध्यं बभौ पिता । तमदृष्ट्वा स्वपितरं देवादृष्ट्वा विमानिनः ॥१७९॥
 कृताञ्जलिपुटो रामः पिता मे कस्यभाषतः । इति (ततो) दिव्याऽम्बवद्वाणी रामः स बोधयः सीतया ॥१८०॥
 तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्भुक्तो वज्ररथो नृपः । वृत्तं पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूषिरे च तमः ॥१८१॥

देवा ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि रामः स्वर्गं गतः पिता । नानानिरयसघातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु यः ॥१८२॥
 स धन्योऽलंकृतः तनः कृतिना भुवन्त्रयम् । एनं पश्य महाबाहो मुखतपाय रविप्रभम् ॥१८३॥
 सवसवसिभुक्तोऽपि पापी दग्धद्रुमोपमः । निष्किञ्चनोऽपि सुकृतो बुध्यत चन्द्रमौलिवत् ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

बुष्टबाह्वीत्सुतः राजा आशीर्भिरभिनन्द्य च

॥१८५॥

राज्ञोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्रः ते तारितोऽहं स्वयाऽजयः । धन्यः स पुत्रो लोकऽस्मिन्पितृणां यस्तु तारकः ॥१८६॥

गिरायाः । किन्तु उन्होंने अपने पिता को नहीं देखा केवल गवः वहाँ पाया हुआ दिख-ई दिया । जहाँ वह गवः गिरा वह परमोत्तम शवनीय बन गया । जिसके स्मरणभाव से महापाप का समूह सृष्ट ही में नष्ट हो जाता है । इससे बाद वहाँ लोकपाल रुद्र आदित्य तथा अश्विनीकुमार अपने-अपने विमानों पर आरुढ़ होकर आए । उनके मध्य में एक उत्तम विमान पर अलङ्कृत अत्यन्त कातिमान रूप में राम व पिता शोभित थे । वे सूर्य के समान चमक रहे थे और किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे थे । उस समय राम ने अपने पिता को नहीं देखा केवल देवता विमानों पर दिखाई दिए । तब हाथ जोड़कर वे बोले कि मर पिता वहाँ हैं । उसी समय सीता सहित राम को संबोधित कर आकाशवाणी हुई कि तात ! सीता ब्रह्म-हत्याओं का राजा वारंश मुख हो गया । इनका दशों से घिरा हुआ देसों । पुनः दवा ने उनसे कहा ॥१७०-१८१॥

देवगण बोले—राम ! तुम धन्य हो । तुम्हारा जीवन सफल है । देखो तुम्हारा पिता स्वयं को बल गया । जो अपने पिता को अनेक तरह जात्रा से उबारता है वह धन्य है । उसने अपनी कृति में दिभुवन को मुशोभित कर दिया । महाबाहु ! इस मुख-पाप एवं सूर्य व समान लज्जित पिता का देखा । सब प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण रहने पर भी पापी धर्मिक अन्ध वन व समान हैं इससे विपरीत अकिञ्चन पुण्यात्मा व्यक्ति गिर व समान पूज्य भाव से देखा जाता है ॥१८२-१८४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पुत्र को राजा ने आशीर्वादन दिया और उसकी प्रशंसा करने हुए कहा ॥१८५॥

राजा ने कहा—मम कृत्य-कृत्य हो गया हो तुम्हारा बन्धन हो । निष्पाप ! तुमने मुझसे तार दिया । हम लोग में वह पुत्र धन्य है जो अपने पिता का उद्धार करता है ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा प्रोचुर्देवाना कार्यसिद्धये । राम च पुरुषथेष्ठ गच्छ तात यथासुखम् ॥
ततस्तद्वचन श्रुत्वा रामस्नानब्रवीत्सुरान् ॥१८७॥

राम उवाच

गुरौ पितरि म देवा किं कुत्थमवशिष्यते ॥१८८॥

देवा ऊचुः

नदी न गङ्गाया तुल्या न त्वया सद्गुण सुत । न शिवेन समो द्यौ न तारेण समो मनु ॥१८९॥
त्वया राम गुरुणा च काय सवमनुष्ठितम् । तारिता पितरो राम त्वया पुत्रण मानव ॥
गच्छान्तु सर्वे स्वस्थानं त्व च गच्छ यथासुखम् ॥१९०॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्रवीचनादृष्ट सीतया लक्ष्मणाद्यज । तद्ब्रुष्ट्वा गङ्गामाहात्म्य विस्मितो वायपमब्रवीत् ॥१९१॥

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽयं श्रैलोक्य नोपमीयते । वयं धन्या मतो गङ्गा दृष्ट्वास्माभिस्त्रिपावनी ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता यक्तो दयं स्थाप्य महेश्वरम् । तं शोडशभिरीशानमुपचारे प्रयत्नत ॥१९३॥

ब्रह्मा न कहा—इसके बाद देवताओं ने देव-नाय की सिद्धि के लिये पुरपोत्तम राय से कहा—तात !
अब मुक्तपूवक जाओ । दशों की बातें सुनकर राम ने उन देवताओं से पूछा ॥१८७॥

राम ने कहा—देवगण ! आदरणीय पिता के विषय में कौन सा कृत्य गेय रह गया है ? ॥१८८॥

देवगण बोले—मगा के समान कोई नदी नहीं है तुम्हारे समान कोई पुत्र नहीं है शिव के समान कोई देवता
नदी है और ओङ्कार के समान कोई अक्षर नहीं है । राम ! तुमने अपने गुरु के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया ।
राम ! पुत्र होकर तुमने अपने पितरा का उद्धार कर दिया । अब सब अपने-अपने स्थान को जाय तुम भी अपने
स्थान को सुखपूर्वक जाओ ॥१८९ १९०॥

ब्रह्मा ने कहा—ज्यों की उपयुक्त वाता को सुनकर सीता सहित लक्ष्मणाद्यज, राम अत्यन्त प्रसन्न हुए
और मगा ने उस अमृत महामय को देखकर आश्चर्य के साथ बोले ॥१९१॥

राम ने कहा—अहो ! मगा ने इस प्रभाव की उपमा श्रैलोक्य में किसी से नहीं दी जा सकती । हम धन्य
हैं कि आज इस त्रिमुक्ताभावनी मगा का दान हम प्राप्त हुआ ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर उन्होंने महेश्वर देव की स्थापना की । बड़ धन से उनका

संयुज्याऽऽवरणैर्दुवत्तं षट्त्रिंशत्कलमौश्वरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शंकरम् ॥१९४॥

राम उवाच

नमामि शंभु पुण्य पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्	।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षय तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि	॥१९५॥
नमामि देवं परमव्यय तमुमापति लोकगुरुं नमामि	।
नमामि दारिद्र्यविदारण तं, नमामि रोगापहरं नमामि	॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्	।
नमामि विश्वस्थितिकारण तं, नमामि संहारकर नमामि	॥१९७॥
नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्	।
नमामि चिद्रूपममेयभाव, त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि	॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं खासि सदा नमामि	।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ	॥१९९॥
नमामि वेदत्रयलोचनं तं नमामि भूतित्रयवर्जित तम्	।
नमामि पुण्यं सदसद्ध्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि	॥२००॥

पोडसोपचार पूजन किया । अगो सहित छत्तीस कला वाले महेश्वर की अर्चना करने राम हाथ जोड़कर शंकर की स्तुति करने लगे ॥१९३-१९४॥

राम ने कहा—पुराण-पुराण धनु की नमस्कार करता हूँ । सर्वत्र तथा अनन्त रूप वाले की नमस्कार करता हूँ । अक्षय (नित्य) प्रभु रत्न की नमस्कार करता हूँ । उस शर्व की शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९५॥ उस परम अव्यय देव की नमस्कार करता हूँ । उमापति, लोकगुरु का नमस्कार करता हूँ । दारिद्र्य को नष्ट करने वाले की नमस्कार करता हूँ । रोगों को दूर करने वाले उस धार को नमस्कार करता हूँ ॥१९६॥ कल्याणमय, अचिन्त्यरूप की नमस्कार करता हूँ । विश्व-निर्माण के आदि कारण को नमस्कार करता हूँ । विश्व की स्थिति के कारण को नमस्कार करता हूँ । संहार करने वाले विष्णु की नमस्कार करता हूँ ॥१९७॥ उस गौरी प्रिय शंकर की नमस्कार करता हूँ । उस नित्य क्षर और अक्षर रूप की नमस्कार करता हूँ । ज्ञानरूप एवं अविनाश प्रभाव वाले की नमस्कार करता हूँ । उस त्रिनेत्र की शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९८॥ समार पर करणा करने वाले की नमस्कार करता हूँ । भय प्रदान करने वाले की सदा नमस्कार करता हूँ । मनोरम्य प्रदान करने वाले की नमस्कार करता हूँ । सर्वप्रथम सोमेश और उमेश की नमस्कार करता हूँ ॥१९९॥ तीन वदनपी नभ वात की नमस्कार करता हूँ । त्रिमूर्ति वर्जित उस धार की नमस्कार करता हूँ । सन् और अमृत से परे उस पुण्यस्वरूप की नमस्कार करता हूँ । उस पापहर की नमस्कार करता हूँ ॥२००॥ विश्व के हित में लीन रहने वात की नमस्कार करता हूँ । रूप हित के विविध रूप

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते	।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि त विश्वपति नमामि	॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं श्लोकसदाशिवो यः	।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि शानप्रियमिष्टदेवम्	॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापति तं विजयं नमामि	।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि	॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि	।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि	॥२०४॥
नमाम्यज्ञादीशपुरंदरविसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्	।
नमामि देवीमुखवादनानामोशायंमक्षित्रितयं य ऐच्छत्	॥२०५॥
पञ्चवामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः	।
भक्तप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि	॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम् । बरान्वृणीष्व भद्र ते राम प्राह वृषध्वजम् ॥२०७॥

धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। जो विश्व का रक्षक तथा सन् और असत् का रचयिता है, उसको नमस्कार करता हूँ। उस विश्वपति को नमस्कार करता हूँ ॥२०१॥ जो संप्रति यज्ञेश्वर, हव्य और कव्य है, जो सर्वदा श्लोक को मंगल दान करने वाला एक गति है, जो आराधना करने पर सेवक को सब कुछ प्रदान करता है उस दान-पट्ट इष्टदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२०२॥ सोमेश्वर तथा अस्वतन्त्र (भक्त के अधीन) उमापति को नमस्कार करता हूँ, उस विजय को नमस्कार करता हूँ। विघ्नेश्वर नन्दिनाथ को नमस्कार करता हूँ। पुत्र प्रेमी को शिरसा नमस्कार करता हूँ ॥२०३॥ गङ्गाधर को नमस्कार करता हूँ। भवदुःख और शोक को नष्ट करने वाले देव को नमस्कार करता हूँ। देवधैर्य चन्द्रमा को धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। पञ्च गङ्गाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवधैर्य उमापति को नमस्कार करता हूँ ॥२०४॥ जिनके चरण बरुल की अर्चना ब्रह्मा आदि तथा प्रभु इन्द्र आदि देवता एवं राक्षस करने है, उनको नमस्कार करता हूँ जिन्होंने देवी के मुख-वादन के विशेषावलोकन की इच्छा से तीन नेत्रों की इच्छा की, उनको नमस्कार करता हूँ ॥२०५॥ पञ्चामृत गन्ध सुगन्धित धूप दीप, विचित्रपुष्प एवं विविधमन्त्रा तथा अन्य प्रकार के भोग्य पदार्थ म जिसकी षोडशोपचार पूजा होती है उस सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०६॥

ब्रह्मा ने कहा—राम की प्रायना म प्रमत्त होकर भगवान् राम ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—‘वर मांगो, मुहारा कल्याण हो। यह सुनकर राम ने शवर से कहा ॥२०७॥

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम । तेषां सर्वाणि कार्याणि^१ सिद्धिं यावन्तु महेश्वर ॥२०८॥
 येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे । तेषां^२ पिण्डादिदानेन पूता यावन्तु त्रिविष्टपम् ॥२०९॥
 जन्मप्रभृति पापानि (यच्चापि) मनोवाक्कायिक^३ त्वधम् । अत्र तु स्नाननात्रेण तत्सर्वो^४ नाशमाप्नुयात् ॥२१०॥
 अत्र ये भविततः शम्भो ददत्प्रायश्चित्तं अथवा^५ । सर्वे तदक्षयं शम्भो दातॄणां^६ फलकृद्भवेत् ॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिव्रति सं राम शंकरो हृषितोज्ज्वलोत् । गते^१ तस्मिन्सुरश्रेष्ठे रामोऽप्यनुचरं^२ सह ॥२१२॥
 गौतमी यत्र द्योत्पन्ना शनैस्तं वैशमम्यात् । तस्य प्रभृति तत्तीर्थं^३ रामतीर्थमुदाहृतम् ॥२१३॥
 इयालोरपतत (द्य) अ लक्ष्मणस्य कराच्छरः । तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वापह्निवारणम् ॥२१४॥
 यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं^४ कृतम् । तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भूतम् ॥२१५॥
 नानाविधाशोभपापसंघनिर्मूलनक्षमम् । यवद्वित्रिसङ्गादभवद्गङ्गा त्रिलोचनपावनी ॥२१६॥
 स यत्र स्नानमकरोत्तद्विशुद्धं किमुच्यते । तद्रामतीर्थसदृशं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थवितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंश-

धिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चास्रतमोऽध्यायः ॥५४॥

राम ने कहा—सुरोत्तम । इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करें महेश्वर । उनसे सब मनोरथ सिद्ध हो जायें। शम्भु ! जिनके पितर नरक में गिरे हों, उनके यहाँ पिण्ड-दान देने से वे स्वर्ग को चले जायें। यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्यों के जन्म से लेकर सभी कायिक, वाक्किक और मानसिक पाप नष्ट हो जायें। शम्भो ! यहाँ जो याचकों को भक्ति-पूर्वक अनुमान भी प्रदान करें, वह उन दाताओं के लिए अक्षय फल प्रदान करने वाला हो ॥२०८-२११॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर ने प्रसन्न होकर उस राम से 'एवमस्तु' कहा। उस देवसे के चले जान पर राम भी अपने अनुयायियों के साथ धीरे धीरे उस स्थान पर गये, जहाँ से गौतमी नदी निकलती है। तब से वह स्थान राम-तीर्थ कहा जाता है। इयालु लक्ष्मण के हाथ से जहाँ बाण गिरा वह लक्ष्मण-तीर्थ हुआ गया। इसी प्रकार बनी अनेक प्रकार के अस्त्रिल पाप-समुह का नष्ट कर देने वाला सीतातीर्थ भी प्रसिद्ध है। त्रिनके धरण-जग से गंगा त्रिमूलन-पावनी हो गई, उन्ही राम न जहाँ स्नान किया उस स्थान की विपत्ता का क्षण बँस दिया जा सकेगा है ? उस राम-तीर्थ का समान कहीं भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२१२-२१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रामतीर्थवर्णन नामक एक सी तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२३॥

१ घ ट य ० गि सिद्धि यावन्तु शंकर । २ घ ट च तेम्प । ३ व ० विरानि च । अ० । ४ घ ट य सदप । ५ घ ट य दातृम् । ६ घ ट य यावे । ७ घ ट य ० नुवते स० ।

अथ चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः

पुत्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ह्यतः 'पुण्यतीर्थं तदुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि ॥१॥
तस्य स्वरूपं ब्रूयामि शृणु यत्नेन नारद । वितेः पुत्राश्च वनुजाः परिरक्षीणा यदाऽभवन् ।
अदितेस्तु सुता ज्येष्ठा । सर्वभावेन नारद ॥२॥
तदा विति । पुत्रवियोगदुःखात्संस्पर्धमाना वनुमाजगाम ॥३॥

दितिरुवाच

क्षीणा । सुता आक्षयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीयः ।
पश्यादितेर्वैशमभितमुत्तम, सोराज्ययुवतः पशता जयश्रिया ॥४॥
जिताः रिमभ्युन्नतकोतिधर्मं, मच्चिससंहर्षविनाशदक्षम् ।
समानभर्तृत्पसमानधर्मं, समानगोत्रेऽपि समानरूपे ॥५॥

अध्याय १२४

पुत्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—एक प्रसिद्ध पुत्रतीर्थ है । उसको पुण्यतीर्थ भी कहा जाता है । उसकी महिमा के सुनने से भी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्ति कर लेता है । उससे स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ । नारद ! तुम ध्यान से सुनो । जब वैश्य और दानव बहुत क्षीण हो गए तथा देवगण सब प्रकार से श्रेष्ठ हो गए तब नारद ! दिनि पुत्र-विभाग में पातर और गौत की विभूति की प्रतिस्पर्धा में दुरी होकर वनु के पास आई ॥१॥ ३॥

दिति ने कहा—भद्रे ! हम दोनों ही के पुत्र नष्ट हो गये । क्या करें ? उसार में कम राखत बलवान् होता है । देखो, अदिनि का क्या किम प्रकार जय-रुद्धभी, भीति और उत्तम राज-मुक्त का निरन्तर उपभोग कर रहा है, अपने वानुजा की जीत कर धन की बड़ी कमा रहा है, भीति और धर्म की पताका पहना कर मरे हृदय को सर्वथा नष्ट कर रहा है । मरुति अदिनि भी मेरे ही पति की पत्नी है और शत्रु और धर्म तथा रूप में भी समान है, तथापि उमने पुत्रों की भी एक उदिति देवदर में दुर्बल हो गई है । अब जीने की सम्भावना भी नहीं है । अदिनि की उन्मृष्ट

न जीवयेय धियमुन्नतिं च, जीर्णास्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान् ।
 कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्वादिदितिविलोक्याथ परा समृद्धिम् ॥
 दावप्रवेशोऽपि सुखाय नून, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मी ॥६॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणामतिदीनवक्त्रा, विनिश्चयसन्तो परमेष्ठिपुत्र ।
 कृताभिपूजो विगतभ्रमस्ता, स सान्त्वयन्नाह मनोभिरामाम् ॥७॥

परमेष्ठिपुत्र उवाच

खेदो न कार्यं समभीप्सितं यत्तत्प्राप्यते पुण्यत एव भद्रे ।
 तत्साधनं वेत्ति महानुभाव, प्रजापतिस्ते स तु वक्ष्यतीति ॥८॥
 साध्येतत्तत्सर्वभावेन प्रभयावनता सती ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणा च विंति दनु प्रोवाच नारद ॥१०॥

दनुश्वाच

भर्तार कश्यप भद्रे तोषयस्व निर्जगुणं । तुष्टो यदि भवेद्भर्ता तत कामानवाप्स्यसि ॥११॥

समृद्धि को देखकर अस्वस्थ हो गई हूँ और किसी दूसरी ही दगा को प्राप्त करने जा रही हूँ क्योंकि स्वप्न मे भी सीत का वैभव देखने की अपेक्षा अग्नि मे जल कर मर जाना बड़ा अधिक मुनकर है ॥४६॥

ब्रह्मा ने कहा—दम प्रचार कहकर निति आह भरने गंगा दीर्घोच्छवास छोड़न गंगी और उसने मुझ पर दीनता के भाव दिखाई देने लग। यह देखकर परमेष्ठिपुत्र (कश्यप) ने उसका सम्मान किया और स्वयं शास्त्र होकर उस मनोहारिणी दिति को आश्रय देत हुये कहा ॥७॥

परमेष्ठिपुत्र ने कहा—भद्र ! इस प्रकार पत्र करने का आवश्यकता नहीं है। मनोरथ पुष्प द्वारा ही प्राप्त हात हैं। महानुभाव प्रजापति तुम्हारे मनोरथ का पूरा करने का उपाय जानत हैं। वे अवश्य तुम्हें उपायका साधन बतायेंगे। इस पर दिनपावन पतिव्रता निति ने कहा—यह सब तरह से अच्छा है ॥८९॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार कहने वाली निति स दनु ने कहा ॥१०॥

दनु ने कहा—भद्र ! अपने पति कश्यप को अपने गुणा से प्रसन्न करो। यदि तुम्हारे पति प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम अपनी मनकामना अवश्य प्राप्त करोगी ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथैव कृत्वा सर्वभावंस्तोषयामास कश्यपम् । दिति प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽयं प्रजापति ॥१२॥

कश्यप उवाच

किं ददामि यदाभीष्टं दिते वरय सुवते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

वितरिष्याह भर्तारं पुत्रं बहुगुणान्वितम् । जेतारं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥

येन जातेन लोकेऽस्मिन्भवेयं वीरपुत्रिणो । तं वरेयं सुरपतिरित्याह विनयान्विता ॥१५॥

कश्यप उवाच

उपदेश्ये व्रतं श्रेष्ठं द्वादशान्वफलप्रदम् । तत्त आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम् ॥

निष्पापताया जाताया सिध्यन्ति हि मनोरया ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

भर्तृवाक्यादिति प्रीता तं नमस्याऽऽयतक्षणा । उपदिष्टं व्रतं चक्रे भर्त्राऽऽदिष्टं यथाविधि ॥१७॥

तीर्थसेवापात्रदानव्रतधर्मादिचर्जिता । कथमासादयिष्यन्ति प्राणिनोऽनं मनोरयान् ॥१८॥

ततश्चीर्णं व्रतं तस्या दित्या गभमधारयत् । पुन कान्तामयोवाच कश्यपस्ततः दितिं रह ॥१९॥

ब्रह्मा न क्हा—दिति न हमको स्वीकार किया और अपने प्रत्येक प्रयत्ना से कश्यप को प्रसन्न किया । अनन्तर भगवान् प्रजापति कश्यप ने दिति से कहा ॥१२॥

कश्यप ने कहा—जित् । तुमको क्या दूँ ? तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो । मज्जत ! वर मागो ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने भी अपन भर्ता से विनयपूर्वक कहा मैं अत्यन्त गुणगानी सब लोका को जीतने वाला और सब लोका से पूजित पुत्र चाहती हूँ । हृदय के पिता ! जिसके उत्पन्न होने से मैं इस ससार में वीर पुत्र की माता बह्मल ऊपको मैं चाहती हूँ ॥१४-१५॥

कश्यप ने कहा—बारह वर्षों में एक दिन वाल अष्ट व्रत की व्रता रहा हूँ । इस व्रत का पालन के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार गर्भपात करवा क्याकि पापान्त्र होने पर ही मनोरथ पूर्ण होत है ॥१६॥

ब्रह्मा न क्हा—जिन की व्रता से निम्न प्रसन्न हो गई । तत्पश्चात् उस विनाशना ने जिन को प्रणाम कर उनके द्वारा वह हुए व्रत का विधिपूर्वक पालन किया । तीर्थ-नद्या उपयुक्त पात्र को दान देना व्रत-पालन आदि पुण्या नुष्ठान के बिना प्राणी कते इस लोका में अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं ? ऐसे बड़े व्रत-पालन के बाद कश्यप ने उस निम्न में गर्भपात किया । एक निम्न परन्तु कश्यप ने उस विधि निम्न से कहा ॥१७-१९॥

कश्यप उवाच

न पाप्नुवन्ति यत्कामा मुनयोऽपि तपस्थिता । यथाविहितकर्माङ्गावज्ज्ञया तच्चुचिस्मित ॥२०॥
 निन्दितं च न कतव्यं सध्ययोरुभयोरपि । न स्वप्तव्यं न गतव्यं भुवतकशो च नो भव ॥२१॥
 भोक्तव्यं सुभग नव क्षुतं वा जम्भणं तथा । सध्याकालं न कतव्यं भूतसघसमाकुल ॥२२॥
 सातर्धनिं सदा कार्यं हसितं तु विदधत । गृहात्तदशं सध्यासु न स्थातव्यं कदाचन ॥२३॥
 मुशलोलूखलादीनि शूयपीठपिधानकम् । नैवातिक्रमणीयानि विवा रात्रौ सदा प्रिय ॥२४॥
 उदवशीषं तु दायनं न सध्यासु विदधत । वक्तव्यं तामृतं किञ्चिन्नायगृहादनं तथा ॥२५॥
 कान्तादयो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नन नरं क्वचित् । इत्यादिनियमं युवता यदि त्वमनुवर्तसे ॥
 ततस्तं भविता पुत्रस्त्रलोक्यद्वयभाजनम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तयति प्रतिजनं सा भर्तारं लोकपूजितम् । गतश्च कश्यपो ब्रह्मर्षितश्च तं सुराप्रति ॥२७॥
 दितगर्भोऽपि ववृषं वरुणानुष्यसंभव । एतं सबं मयो दियो मायया वसिं सत्यत ॥२८॥
 इन्द्रस्य सत्यमभवत्तमयं प्रीतिपूर्वकम् । मयो मत्वा रहं प्राह इन्द्रं स विनयाचित ॥२९॥

कश्यप न कहा—पवित्र हास्य वाली ! तपस्या में लीन मनिषण भी जो अपने मनोरथ को प्राप्त करने में असफल होते हैं उसका मध्य कारण गारुड-सम्मत नियमों की उपेक्षा है। (अतः उन नियमों को मुता) दोनों ताप्या काल में कोई निन्दित काम नहीं करना चाहिए। न सोना चाहिये न (बाहर) जाना चाहिये और न उत समय केगा को किसी अवस्था में रहना चाहिए। सुदरी सध्याकाल में विनियत अनेक प्राणियों से भरे स्थान में भोजन नहीं करना चाहिए। न छीकना चाहिए और न जम्मा नहीं चाहिये। हंसने व समय ता अवश्य कोई अ वरण लगा लेना चाहिए। सध्याकाल में घर की ओर नहीं जाना चाहिए। प्रिये ! न वा रात्रि में सवदा मगल आतल। धूप पीका आदि को नमा भी नहीं लेना चाहिये। उत्तर की ओर गिर कर नही सोन। च हिम विनियत सध्या समय। घोंगा भी अत्यन्त मापन नही करना चाहिये। दूसरे व घर नही जाना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक पति व अनिश्चित विज्ञा अन्य पुरुष को नही देखना चाहिये। इस प्रकार यदि तुम उपयुक्त नियमों का पालन करोगी तो त्रिभुवन व एवम को प्राप्त करने वाला सम्पन्न वन होगा। ॥२०-२६॥

ब्रह्मा न कहा—निज लोकपूजित पति के सामने ऐसा ही नही ऐसी प्रशिक्षा की। ब्रह्मन् ! यन्त्रा भी इधर उधर देवताओं व निवास स्थान का आरंभ करे। यन्त्रागणों और पुण्य द्वारा प्राप्त विजय व नम मा वडा लगा। न मय जाना व। मय नामक दय अपनी माया व द्वारा यथावश्यक जानना था। मय की इन्द्र व ताप महान् है। स अग्नि प्रीतिपूर्वक विद्वत्ता थी। मय न दन् व दन् आकर दिग्गज मान व एकान्त में निज और दनु का अग्नि

दितेर्दनीरभिप्रायं व्रतं गर्भस्य वर्धनम् । तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत् ॥३०॥
विश्वासेकगृहं मित्रमपायप्रासवजितम् । अजितं सुव्रतं नानाविध चेत्तदवाप्यते ॥३१॥

नारद उवाच

नमूचेरञ्च प्रियो भ्राता मयो दैत्यो महाबलः । भ्रातृहन्ता कथं सैन्य मयस्याप्सोत्सुरेद्वर ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा । इन्द्रेण वीरमभवद्भीषण लोमहर्षणम् ॥३३॥
युद्धं हित्वा कदाचिद्भूो गच्छन्तं तु शतक्रतुम् । दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिं पृष्ठतोऽवगात् ॥३४॥
तमायास्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयानुरः । ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमयाऽऽविशत् ॥३५॥
स बल्यपाणिस्तरसा फेनेर्नवाहनत्रिषुम् । नमुचिर्नाशमगमत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः ॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेषु मयो महत् । माया च विविधामाष देवानामतिभीषणाम् ॥३७॥
वराश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोचपरायणात् । दानशीष्टः प्रियालापी तदाऽभवत्सौ मयः ॥३८॥
अनीदं च ब्राह्मणान्मूय जेतुमिन्द्रे कृतक्षणः । दातार च तदाऽर्यम्यः हस्त्यमानं च बन्धिभिः ॥३९॥
वितित्वा मघया दायोर्मयं मायाविनं रिपुम् । उपशान्त सुमुखाय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात् ॥
शचीभर्ता मयं दैन्य प्रोवाचेदं पुनः पुनः ॥४०॥

प्रायः, व्रत-पालन, गर्भ का दिना दिन वढ़ना तथा उस भावी पुत्र का पराक्रम आदि विविध बातें बड़े प्रेम से कही ।
कहा भी है कि 'एकमात्र विश्वास-पात्र और नैनी विच्छेद के भय से रहित मित्र मनुष्य को अनेको अजित सत्कर्मों के प्रभाव से प्राप्त होता है ॥३० ३१॥

नारद ने पूछा—सुरेद्वर ! महाबलवान् मय नमुचि का प्रिय भाता था । उस मय की मातृ-हन्ता इन्द्र के साथ कैसे मित्रता हो गई ? ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राचीन काल में बलवान् नमुचि दैत्या का स्वामी था । उसकी इन्द्र से भीषण एक रोमाञ्चकारी शत्रुता हो गई । किसी समय युद्धभूमि की छोड़कर आगते हुए इन्द्र को देखकर दैत्यराज शूर नमुचि उनका पीछा करने लगा । उसको अपना पीछा करते देख अचीपति इन्द्र मय से विह्वल हो ऐरावत हाथी से उतरकर फेन में घुस गये । उन्होंने उस फेन से ही उस शत्रु को शीघ्रता से मारा । नमुचि उस प्रहार से मर गया । मय उसी नमुचि का छोटा भाई था । उसने भाई के हत्याकारी को मष्ट करने के लिये तपस्या की । उसने तपोबल से देवा को डरा देने वाली भीषण माया प्राप्त की और तप के द्वारा लोचपालक विष्णु से वर पाकर वह मय अति दान-नुशल तथा भयूरनापी बन गया । अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा कर वह इन्द्र को जीतने का मौका ढूढ़ने लगा । वदी और वाचरु लोग उसकी स्तुति किया करते थे । वह इन्द्र से युद्ध के लिए तैयार हो रहा था । ऐसे मायावी शत्रु को वायु के द्वारा जानकर शचीपति इन्द्र ब्राह्मण के वेश में उस मय दैत्य के पास गये और बार-बार उससे यह कहने लगे ॥३३-४०॥

इन्द्र उवाच

देहि दैत्यपते महधर्मथिनेऽपेक्षित वरम् । त्वां श्रुत्वा दातृतिलकभागतोऽहं द्विजोत्तमः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽवददत्त मया तव । विचारयन्ति कृतिनो बह्वत्सवं वा पुरोऽर्थिनि ॥४२॥

इत्युक्ते तु हरिः प्राह सस्यमिच्छे ह्यहं त्वया । इन्द्र मयः पुन प्राह किमनेन द्विजोत्तम ॥४३॥

न त्वया मम वर भोः स्वस्तोऽत्याह हरिर्मयम् । तत्त्वं वदेति स हरिर्दैत्येनोक्तः स्वकं वपुः ॥४४॥

वशोऽयमास दैत्याय सहस्राक्ष यदुच्यते । ततः सविस्मयो दैत्यो मयो हरिमुवाच ह ॥४५॥

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्व तवायोभ्या कृतिः सखे । ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहसयाय वृत्तमित्यब्रवीद्धरिः । केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समीहितम् ॥४७॥

ततः प्रभृति शक्रस्य मयेन महती ह्यभूत् । सुप्रीतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिहितः सदा ॥४८॥

इन्द्रस्य भयनं गत्वा तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविनं हरिः ॥४९॥

हरये च मयो माया प्राशस्तप्रोत्या तथा हरिः । प्राप्तः संप्रीतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद ॥५०॥

इन्द्र ने कहा—दैत्यपति ! मुझ याचक को मेरा अभीष्ट वर दो। दाताजी मे सर्वश्रेष्ठ तुम्हें सुनकर मैं उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे पास आया हूँ ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—मय ने भी उसको ब्राह्मण जानकर कहा—तुम जो चाहो, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ। क्या दानशील व्यक्ति याचक ने आ जाने पर उसने सामने दान की छोटाई या बढाई पर विचार करत हैं ? इतना कहने पर इन्द्र ने कहा मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ। मय ने पुन इन्द्र से कहा 'द्विजवर' इसका क्या अर्थ ? ओ ! तुम्हारे साथ तो मेरी कोई शत्रुता नहीं। इन्द्र ने मय से "स्वस्ति" यह कहा। यह सुन दैत्य ने उस ब्राह्मण वेशपायी इन्द्र से कहा कि इसका रहस्य बतलाओ। तब इन्द्र ने दैत्य को अपना सहस्र नेत्र वाला शरीर दिखाया। इन्द्र को इस कपट माया को देखकर विस्मित हो दैत्य ने इन्द्र से कहा ॥४२-४५॥

मय ने कहा—यह क्या, तुम तो वज्रपाणि इन्द्र हो। सखे ! यह कपट तुम्हारे समान देवता के लिये उचित नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने हंसकर मय को गले लगाया और कहा कि जो होता था हो गया। इस लोभ में बुद्धिमान् व्यक्ति जिस किसी प्रकार स अपने इष्ट का साधन करते हैं। मुनिशार्दूल ! तभी से मय के साथ इन्द्र की अति घनिष्ठ मैत्री हो गई। मय भी सर्वदा के लिये इन्द्र का हितेच्छु बन गया। इन्द्र के भवन में जाकर मय ने सारा रहस्य कह दिया। यह सुन कर हरि ने मायावी मय से कहा कि मुझे क्या करना चाहिये। मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया (विद्या) हरि को दे दी। हरि ने माया विद्या पाकर बनि प्रसन्न हो कहा कि 'मय ! मुझे क्या करना होगा वह बताओ' ॥४७-५०॥

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽथमं गच्छ तत्राऽस्ते गभिणी दितिः । तस्याः शुभ्रपुत्रं पुर्वप्रास्व तत्र कियन्ति च ॥५१॥
अहानि मयवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक् । वर्धमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽयवा मृतिम् ॥
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा मयं पूजय मयवानेक एव हि । विनीतवत्तदा प्रायादिति मातरमञ्जसा ॥५३॥
शुभ्रपमाणस्तां देवीं शक्रो दैतेयमातरम् । सा न जानाति तच्चित्तं शक्रस्य द्विपतो दितिः ॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम् । अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासवम् ॥५५॥
ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरंदरः । अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बहुकालं समावसन् ॥५६॥
संघ्योदवशीर्षनिद्रां सामवेक्ष्य कुलिशायुधः । इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुलिं समाविशत् ॥५७॥
अन्तर्वातं च यद्भूतमिदं दृष्ट्वा धृतायुधम् । हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभोतवत् ॥५८॥

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिन्भ्रातरं त्वं निघातसि । नारणे मारणादन्यत्पातकं विद्यते महत् ॥५९॥

मय ने कहा—अगस्त्य के आथम न जाओ, वहाँ गभिणी दिति रहती है। उस आथम में कुछ दिनों तक उसकी गुप्ताप करते हुए रहो। वज्रहस्त ! समय पाकर उसके गर्भ में घुसकर उस बच्चे को धुप करके वह वयवता न स्वीकार करे अथवा मर न जाय तब तक वज्र से काटो। ऐसा करने से वह तुम्हारा शत्रु नहीं होगा ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा, यह कहकर मय की पूजा कर वह इन्द्र अकेले विनीत माय से घीघ्र ही माता दिति के पास गया। वहाँ जाकर वह उस दैत्य-माता देवी की सेवा करने लगा। परन्तु वह दिति ईर्ष्यालु इन्द्र के मनोगत माया को नहीं जानती थी। उस मुनि कश्यप के अमोघ और दुर्लभ तेज के गर्भस्थ होने पर इन्द्र के मन में ब्रह्मे विचार हुये होने इस बात को भी दिति नहीं जानती थी। इधर सहस्राक्ष इन्द्र वज्र हाथ में लिये गर्भ में प्रवेश करने की इच्छा से बहुत समय तक वहाँ प्रतीक्षा करते हुये रह गये। निदान एक दिन दिति को सध्या समय उत्तर की ओर धिर रखकर सोते हुये देखकर 'यह अच्छा अवसर है' यह कहकर इन्द्र दिति के उदर में घुस गये। वज्र हाथ में लिये हुये और मारने के लिये उद्यत इन्द्र को देखकर गर्भस्थ जीव निर्भीक होकर बार-बार कहने लगा ॥५३-५८॥

गर्भस्थ शिशु ने कहा—वज्रिन् ! तुम क्यों मेरी रक्षा नहीं करते ? क्या अपने माई का ही पच करना चाहते हो ? युद्ध से अत्यन्त किसी को मारने से जो सहाया होता है, उससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है। पराजयी इन्द्र ! बाहर निकलने पर मुझसे युद्ध करो ! इसलिये इस प्रकार का यह दुष्कर्म तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा ।

श्रुते युद्धान्महाबाहो शक युध्यस्व निर्गते । मयि तस्मान्नतदेव तव युक्तं भविष्यति ॥६०॥
 शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरंदरः । वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं ते न युक्तं भवेत्प्रभो ॥६१॥
 अपवा युद्धकामस्त्वं मम निष्कमण यया । तथा क्रुद्ध महाबाहो मार्गदस्मादपासर ॥६२॥
 कुमार्गे न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विपद्गताः । अविद्यश्चाप्यज्ञस्त्रिदश नैव चाऽऽमुधसंग्रहः ॥६३॥
 त्वं विद्यायान्वज्रपाणे मा निष्कर्त्तान्कन लज्जसे । कुर्वन्ति गर्हितं कर्म न कुलीनाः कदाचन ॥६४॥
 हत्वा वा किं नु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा । वध्यन्ते भ्रातरः कामाद्गर्भस्थाः किं न पीरयम् ॥६५॥
 यदि वा युद्धभक्तिस्ते मयि भ्रातरसंशयम् । ततो भुवि पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ ध्यवस्थितः ॥६६॥
 बालघाती ब्रह्मघाती तथा विश्वासघातकः । एवंभूतं फलं शक कस्मान्परं हन्तुमुद्यतः ॥६७॥
 यस्याऽऽजया सर्वमिदं वर्तते सचराचरम् । स हन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पीरयम् ॥६८॥

ग्रहोपाच

एवं युवन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः । ज्योत्स्नानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते ॥६९॥
 न भमार ततो दुःखाबाहुस्ते भ्रातरो धयम् । पुनश्चिच्छेद तान्खण्डान्मा वधीरिति धाम्नुवन् ॥७०॥
 विश्वस्तान्मातृगर्भस्याभिजभ्रातृज्जातकृतो । द्वेषविध्वस्तबुद्धीनां न क्षिते कशपाकणः ॥७१॥

प्रभो ! तुम शतक्रतु (सी यज्ञ करने वाले) सहस्राक्ष, शची के भर्ता, वज्र-पाणि, पुरन्दर और सुरेन्द्र हो, अतः यह कार्य तुम्हारे लिये युक्त नहीं होगा । अथवा यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो जिस प्रकार मैं यहाँ से निकलूँ बैसा करो । परन्तु महाबाहु ! इस कुमार्ग से अपने को हटाओ । महान् व्यक्ति आपत्ति में पड़ने पर भी कुमार्ग की ओर नहीं आते । तुम तो विद्या विमुख और शरत्र-हीन भी नहीं हो । वज्रपाणे ! तुम तो आदुपवान् हो, विद्यावान् हो । तो क्या मुझको मारने में तुम लज्जित नहीं होते ? कुलीन व्यक्ति कभी भी निन्दित कर्म नहीं करते । सोचो तो, मुझको मारने से तुमको क्या मिलेगा यश वा पुण्य ? शोकवास गर्भरथ भ्राता को मारकर तुम कौन-सा पीरप करोगे ? अथवा माई ! यदि तुम्हारी मुझसे निश्चिन ही युद्ध करने की इच्छा है (यदि तुम मुझे मारना चाहते हो) (तो उमने अपनी बधी भुट्टी इन्द्र को दिलाते हुये कहा) तो तुम बालघाती, ब्रह्मघाती और विश्वास-घातक हो । शन ! तुमको इस गर्भार्थ से क्या फल मिलेगा ? जिस लिये तुम मुझे मारने के लिये तैयार हो ? जिसकी आत्मा में यह सम्पूर्ण स्थावर-जगम रूप जगत् संचालित होता है क्या वह मेरे समान बालक-रूप हत्यारा बने ? इसमें तुम्हें क्या यश मिलेगा ? और क्या पुरस्कार होगा ? ॥५९-६८॥

ग्रहमा ने कहा—इस प्रकार वानचौत करने हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से काट डाला । सत्य है, शीघ्र और लोभी जनों को किसी काम में धृष्टा नहीं होती । बटने पर भी वह गर्भस्थ जीव मरता नहीं । किन्तु दुःख से गर्भ में टुकड़ों में कहा—‘हम लोग माई हैं । फिर इन्द्र ने उन टुकड़ों को भी काटा । इस पर टुकड़ों ने कहा—‘घनक्रतो ! विश्वासपात्र एवं माना के गर्भ में म्रियन अपने मादया को मर मारो ।’ परन्तु द्वेष से जिन प्राणियों की बुद्धि नष्ट

एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत् । निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः ॥७२॥
 'एकवद्वहुरुपाणि गर्भस्थानि शुभानि च । रुदन्ति बहुरूपाणि मा रुतेत्यश्रवोद्धरिः ॥७३॥
 ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महोजसः । गर्भस्था एव तेऽन्योन्यमूचुः शक्रं गतभ्रमाः ॥७४॥
 अगस्त्य मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता । अस्मत्पिता तव भ्राता सख्यं ते बहु मन्यते ॥७५॥
 अस्मानुपरि सन्नेहं मनस्ते विद्महे मुने । न यत्करोति श्वपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रघृक् ॥७६॥
 द्रयेतद्वचनं श्रुत्या अगस्त्योऽगात्ससभ्रमः । दितिं संबोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात् ॥
 तत्रागत्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम् ॥७७॥

अगस्त्य उवाच

सदग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे । जीवतामेव मरणमेतदेव हि मानिनाम ॥
 पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं दया दितिः ॥७९॥

दितिरुवाच

न पौरुषं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव । स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे ॥८०॥

हो गई है, उनके हृदय में थोड़ी सी भी कण्ठा के लिये स्थान नहीं? इस प्रकार इन्द्र ने प्रत्येक खण्ड को खण्डित करने भी हाथ पैर वाले जीव के समान उनकासा भागी को निर्विकार देखा । यह देखकर वे अतिविस्मित हो गये । उन एक प्रकार के बहुत से रूपवाले पवित्र गर्भस्थ जीवों को विभिन्न प्रकार से रोते हुये देखकर इन्द्र ने कहा—'मा रु (मत रोओ) । इतना कहने से व जीव महातेजस्वी एवं बलवान् 'मारुत' हो गये । गर्भम रहकर ही उन जीवों ने मुनिवर अगस्त्य से जिनके आश्रम में उनकी माता रहती थी, इन्द्र के बारे में परस्पर बातचीत की फिर नि शक होकर कहा 'मुने ।' हमारे पिता तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी मित्रता पर अधिक विश्वास करते हैं । मुने । हम लोगों पर तुम्हारे मन में स्नेह है, यह हम जानते हैं, परन्तु इतना होने पर जिस काम को एक चाण्डाल भी नहीं कर सकता, उस कार्य में वरुणधारी इन्द्र प्रवृत्त हुए हैं । यह सुनकर अगस्त्य शीघ्र वहाँ पहुँचे और गर्भपीडा से व्यथित दिति को संबोधित करने लगे । वहाँ अगस्त्य ने अत्यन्त क्रुणित होकर इन्द्र को शाप दिया ॥६९-७३॥

अगस्त्य ने कहा—हरे । सर्वदा शत्रु सग्राम में तुम्हारी पीठ देखें । मान प्रिय व्यक्तियों के लिये यही जीते हुये भी मृत्यु के समान कष्ट भोगना है कि रण में उनके शत्रु भागते हुये उन मनस्विमों की पीठ देखें ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस दिनि ने भी शीघ्र से उस इन्द्र को शाप दिया, जो कि बन्धी गर्भ में ही था ॥७९॥

दिति ने कहा—तुमने पुरुषार्थ नहीं किया है (अर्थात् तुमने यह वापरता की है) । अतः तुमको यह शाप है कि ऐ इन्द्र । तुम स्त्रियाँ में अनावर पाकर राज्य से व्युत्त होगे ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः । प्रायाच्च व्यथितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम् ॥
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं ब्राह्म भोतवत् ॥८१॥

शक्र उवाच

अगस्त्याञ्च बितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं बहिः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः । पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च ॥
दितिशापमगस्त्यस्य श्रुत्वाऽसौ बु सितोऽभवत् ॥८३॥

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रैतत्पापं किं कृतवानसि । न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वस्त्रपाणिः सत्रीडोऽधोमुखोऽब्रवीत् । तन्मूर्तिरेव धदति सदसच्चेष्टितं नृणाम् ॥८५॥

शक्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायाल्लोकपालः स कश्यपः । सर्वं वृत्तमबोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः ॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम् । गर्भस्थानी च सर्वेषामिन्द्रेण सह मित्रताम् ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच प्रजापति कश्यप भी वही आ गए । वे अगस्त्य के मूंह से इन्द्र के दुस्वर्ग को गुनकर अत्यन्त व्यथित हुये । इन्द्र मयभीत होकर गर्भ के भीतर से ही पिता से बोले ॥८१॥

इन्द्र ने कहा—अगस्त्य और दिति के श्रेय से मैं बाहर आने से डर रहा हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस समय प्रजापति कश्यप भी पुत्र के उस गर्भ को और गर्भ के भीतर उसको घुसा देसकर एव दिति तथा अगस्त्य के पाप को गुनकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥८३॥

कश्यप ने कहा—शक्र ! निबटो । पुत्र ! तुमने यह पाप कार्य क्या किया है ? उच्च कुल से उत्पन्न व्यक्ति अभी भी पाप की ओर अपना मन नहीं लगाते ॥८४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह वस्त्रपाणि इन्द्र सज्जा से मूंह नीचे किए हुए निबटला और बोला । सत्य है भगुप्य की आहुति ही उगरे सन् और असन् बर्गों को बता देती है ॥८५॥

इन्द्र ने कहा—जिस कार्य के करने में कस्याण होया, यह मैं अवश्य बर्क्या । आप कृपापूर्वक बतलाइये ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर लोकपालों के साथ कश्यप मेरे पास आये । सारी घटना यह गुनाई । पुनः देवताओं ने मुझसे पूछा—जिस प्रकार दिति की गर्भ-स्थानि, इन्द्र का पाप से उद्धार, गर्भरथ सब जीवों की इन्द्र के साथ मैत्री

तेषामारोग्यता चापि शचीभर्तुरदोषताम् । अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि ज्ञेयम् ॥८९॥
 ततोऽहमब्रुव ब्रह्मण कश्यप विनयान्वितम् । प्रजापते कश्यप त्व वसुभिर्लोकपालकं ॥९०॥
 इन्द्रेण सहितं शोभ गौतमीं याहि मानद । तत्र स्नात्वा महेशानं स्तुहि सर्वं समन्वित ॥९१॥
 ततः शिवप्रसादेन सर्वं श्रेयो भवेदिति । तथेत्युक्त्वा जगामासी कश्यपो गौतमीं तदा ॥९२॥
 स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदकर्म । सर्वदुःसापनोदायं ब्रह्ममेव प्रकीर्तितम् ।
 गौतमी वा पुष्यनदी सिन्धो वा कुरुणाकर ॥९३॥

कश्यप उवाच ।

पाहि शकर देवेश पाहि लोकनमस्कृत । पाहि पावन बागीश पाहि पद्मभूषण ॥९४॥
 पाहि धर्म धृष्टासु पाहि वेदत्रयेक्षण । पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर ॥९५॥
 पाहि त्रिपुरहन्नाय पाहि सोमाश्वभूषण । पाहि यशोदा सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक ॥९६॥
 पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक । पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव ॥९७॥
 पाहि भास्कर वित्तेश पाहि बह्यनमस्कृत । पाहि विदेवेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते ॥९८॥
 धोरससारकान्तरसंचारोद्विग्नचेतसाम् । शरीरिणा कृपासिन्धो स्वमेव शरणं दिव ॥९९॥

और उन जीवा का उत्तम स्वास्थ्य घाचीपति के दोषों का निराकरण एवं अगस्त्य के नियुक्त शाप से इन्द्र का उद्धार होया ? तब मैं विनयावलीन कश्यप से कहा—प्रजापते ! कश्यप ! मानद ! तुम श्रीमन् ब्रह्मा लोकपालों और इन्द्र के सहित गौतमी के पास जाओ । उममें स्नान कर सबके साथ महेशान (शकर) की स्तुति करो । निव की कृपा मे सब प्रकार से कल्याण होगा । कश्यप ने उसको स्वीकार किया और गौतमी के तट पर गया । उसमें स्नानकर इन आप के कहे गये छान्ना से शकर की स्तुति की । इस लोक में सब प्रकार के दुःखा को दूर करने के लिए शिवदेवता ही समर्थ मान गये हैं—एक पुष्यनदी गौतमी और दूसरे करणा के सागर प्रभवान शरणा ॥८७-८९॥

कश्यप ने कहा—देवताओं के प्रभु शरणा । रक्षा करो । लोकपूजित । रक्षा करो । परम पावन । बागी के स्वामी । रक्षा करो । सपके आभूषण वाले । रक्षा करो । घम । मन्त्रीवर (अथवा घमरूप धूपरूप) आरद्र होने वाले । रक्षा करो । तीन वर्णों की तीन मन्त्रवाले । रक्षा करो । ब्रह्मा, श्री लक्ष्मी (सोमा) के ईश । रक्षा करो । गज भामशक्ति । रक्षा करो । त्रिपुर को नष्ट करने वाले नाथ । रक्षा करो । अष्ट चन्द्रमा को घिराभूषण बनाने वाले । रक्षा करो । यमराज । रक्षा करो । सोमराज । मनारथ देने वाले । रक्षा करो । कल्याणमूर्ति । रक्षा करो । मङ्गलदायक । रक्षा करो । सबको उत्पन्न करने वाले । रक्षा करो । वासव । पालक । रक्षा करो । भास्कर । यमराज । रक्षा करो । ब्रह्मा मे भी पूजित । रक्षा करो । विदेव । रक्षा करो । सिद्धराज । रक्षा करो । पूर्ण । आपका नमस्कार है । निव । कृपासिन्धो । समारोपी भयकर वन में संचार करने से उद्विग्न हुए चित्त वाले प्राणिमा के लिए तुम्हा एकमात्र शरण हो ॥९४-९९॥

ब्रह्मोवाच

एव सस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभद्रूपध्वज । वरेण च्छन्दयामास कश्यप त प्रजापतिम् ॥१००॥
 कश्यपोऽपि शिव प्राह विनोतवदिदं वच । स प्राह विस्तरेणाय इन्द्रस्य तु विवेष्टितम् ॥१०१॥
 शाप नाश च पुत्राणां परस्परमभिन्नताम् । पापप्राप्तिं तु शत्रुस्य शापप्राप्तिं तथैव च ॥
 ततो वृषाकपि प्राह दिंति चागस्त्यमेव च ॥१०२॥

शिव उवाच

मरुतो ये भवत्पुत्रा यञ्चाशास्त्रैकवर्जिता । सर्वे भवेयुः सुभया भवेयुर्दशभागिनः ॥१०३॥
 इन्द्रेण सहिता नित्यं वतंयेयुर्मुदाऽन्विता ॥१०४॥
 इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मले भवेत् । आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र सशयः ॥१०५॥
 मरुद्भिः सहितं शक्रं न जयेयुः कदाचन । जेता भवेत्सर्वदेव सुखं तिष्ठ प्रजापते ॥१०६॥
 अद्यप्रभृति ये कुर्मुरनयाद्भ्रातृघातनम् । वशच्छेदो विपत्तिश्च नित्यं तेषां भविष्यति ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमुपि शार्दूल शम्भुरप्याह यत्नतः ॥१०८॥

शम्भुरुवाच

मं कुर्यास्त्व च कोप च शचीभर्तारं वै मून । शमं वज्रं महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा भवन् ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

विंति चापि शिव प्राह प्रसन्नो वृषभध्वज ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर कश्यप के सामने शक्र ने प्रवृत्त होकर उस प्रजापति कश्यप को वरप्रदान किया । कश्यप ने भी विनीत भाव से इन्द्र के किए वचन—शाप पुत्रों का नाश परस्पर की ईर्ष्या इन्द्र की पाप तथा पाप की प्राप्ति आदि—विस्तार के साथ बतला दिया । यह सुनकर शिव ने अगस्त्य और शिवि से कहा ॥१००-१०२॥

शिव ने कहा—जो मरुत नाम के तुम्हारे जनकास्त पुत्र हैं । वे सब भाग्यशाली और यशसाग पात्रे वाले होंगे । वे इन्द्र के साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे । जिन यन्त्रों में इन्द्र की यज्ञ भाग प्राप्त होगा वही इन्द्र के पहले मरुत ही यज्ञ भाग पायेंगे यह निश्चित समझो । मरुता के सहित इन्द्र की कभी कोई जीत न सकेगा । प्रजापते ! आप सुखपूर्वक निश्चित रहिये । यह आपका पुत्र सबदा ही विजयी होगा । आज स जो कोई अन्याय-भूषक भाइया का वध करेगा उनका वध-नाश होगा । और वे सबदा विपत्ति-ग्रस्त रहेंगे ॥१०३-१०७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त शम्भु ने वर प्रभ से शिववर अगस्त्य से कहा ॥१०८॥

शम्भु ने कहा—मुने ! शचीपति के उपर आप क्रोध न करें । महाप्राज्ञ ! आप शान्त हो जाइय । मरुद्गण तो अब अमर हो गये हैं ॥१०९॥

ब्रह्मा ने कहा—परम प्रसन्न श्वपच ध्वज शक्र ने दिंति से भी कहा ॥११०॥

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डित । इत्येव चिन्तयन्ती त्व तपसे नियताऽभव ॥१११॥
तदेतत्सफल तेऽद्य पुत्रा बहुगुणा शुभा । अभवन्बलिन शूरास्तस्माज्जहि मनोरजम् ॥
अन्यानपि धरान्तभूर्याचस्व गतसध्रमा ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्ब्रह्म श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति । कृताञ्जलिपुटा नत्वा क्षम् वायमयात्रवीन् ॥११३॥

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परम यत्पिप्रो पुत्रदर्शनम् । विशेषेण तन्मातु प्रिय स्यात्सुरपूजित ॥११४॥
तत्रापि स्वसपत्तिशीयविश्रमवान्भवेत् । एकोऽपि सनय किंतु बहवश्चेत्किमुच्यते ॥११५॥
मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम् । इन्द्रस्य भ्रातर सत्य पुत्राश्चैव प्रजापते ॥११६॥
अगस्त्यस्य प्रभावाच्च गङ्गाप्राश्च प्रसादतः । यत्र देव प्रसादस्ते तच्छुभ कोऽत्र सशय ॥११७॥
कृतार्थाऽह तयाऽपि त्वा भक्त्या विज्ञापयाम्यहम् । शृणुष्व देव वचनं कुरुष्व च जगद्धितम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

वदेत्पुत्रता जगद्वात्रा विनिर्गमाश्चवीविदम् ॥११९॥

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापण लोके दुर्लभं सुरवन्दित । विशेषेण प्रिय मातु पुत्रश्चेत्किं नु वर्ण्यते ॥१२०॥

शंकर ने कहा—मूझ तलोक्य के ऐश्वर्य का अधिकारी एक पुत्र हो इस विचार से तुमने कठिन तपस्या की है। सो आज तुम्हारी कामना सफल हो गई। तुम्हारे पुत्र बहुगुणाली गुणमणि बली और गूर हो गए हैं। अब पानपिक सन्ताप छोड़ दो। सुंदर भी वाली। तुम अब निश्चिन्त हो, अन्य बातों को मागो ॥१११-११२॥

ब्रह्मा ने कहा—दवाधिष्ठेव गकर की इन बातों को सुनकर वह दिति ह्राप आइकर गम्ब का प्रणाम करने बोली ॥११३॥

दिति ने कहा—गुरुपूजित इस सत्तार में यह परम सीमाय का विषय है कि माता पिता पुत्र का मुख देखें। माता के लिये तो यह और भी अधिक प्रिय विषय है। तिस पर भी यदि एक भी पुत्र हय सम्पत्ति गूरता और पञ्चम काला हा जाता है तो महान् आनन्द होता है फिर एम बहुत स पुत्रा न हो जान पर तो कहना ही क्या है। आपने प्रभाव में तया अगस्त्य और गया की कृपा से मेरे सभी पुत्र कलवान् विजयो इन्द्र के माई और प्रजापति व पुत्र है, यह सत्य है। जहा आपकी कृपा होगी वहाँ तो गुम हागा ही, यम सन्ध के गुत्रायग नहीं है। अब मैं कृताय हो गई तिस पर भी आज मैं भक्तिपूर्वक आपसे प्रार्थना करती हूँ। देव ! इस प्रार्थना को सुनिये और जयत वा कल्याण कीजिय ॥११४-११८॥

ब्रह्मा ने कहा—जयमाता मे कहा कहा। सब निनि नम्रता के साथ बोली ॥११९॥

दिति ने कहा—सुरवन्दित ! इस लोक में सन्तान प्राप्ति दुर्लभ है विधापकर माता को सन्तान बहुत प्रिय

स चापि गुणवाञ्छीमानायुष्मान्यदि जायते । किंतु स्वर्गेण देवेश' पारमेष्ठ्यपदेन वा ॥१२१॥
 सर्वेषामपि भूतानामिहामुन फलैषिणाम् । गुणवत्पुत्रसंप्राप्तिरभीष्टा सर्वदेव हि
 तस्मादाप्लवनादत्र क्रियता समनुग्रह ॥१२२॥

शंकर उवाच

महापापफल चेद मदेतदनपत्त्यता । स्त्रिया वा पुरुषस्यापि वन्द्यत्व यदि जायते ॥१२३॥
 तदन स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमान्पुयात् । स्नात्वा तत्र फल दद्यात्स्तोत्रमेतच्च य पठेत् ॥१२४॥
 स तु पुत्रमवाप्नोति' त्रिमासस्नानवानत । अपुत्रिणी त्वत्र स्नान कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥१२५॥
 ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुसौल्लभेत् । त्रिमासाम्यन्तरं या तु गुर्विणी भक्तिरतस्त्वियह ॥१२६॥
 फलं 'स्नात्वा तु मा पश्येत्स्तोत्रेण स्तौति मातया । तस्या शत्रुसम पुत्रो जायते नात्र शशप ॥१२७॥
 पितृदोषैश्च ये पुत्र न लभन्ते विरे भृशु । घनापहारदोषैश्च तत्रेया निष्कृति परा ॥१२८॥
 तत्रेया पिण्डदानेन पितृणा प्रीणनेन च । किंचित्सुचर्णदानेन तत पुत्रो भवेद्भुवम ॥१२९॥
 ये म्यासाद्यपहर्तारो रस्नापह्नवकारका' । श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषा वशो न वर्धते ॥१३०॥
 दोषिणा तु परेताना मतिरेया भवेदिति । सततिर्जायता इत्याद्या जीवता तीर्थसेवनात् ॥१३१॥

होती है उस पर भी पुत्र हो तो फिर कहना ही क्या है? देवेन । यदि वह पुत्र गुणवान् धीमान् और दीधजीवी हो जाय तब तो उससे सामने स्वयं या ब्रह्मपद का भी कोई महत्त्व नहीं होता । शौरिक एव पारलीपिच फला की इच्छा करने वाले सभी प्राणियों को सुभी पुत्र पाने की सबका इच्छा बनी रहती है । इसलिय आप इस विषय में बल्प-मपन के लिये अनुग्रह कीजिये ॥१२० १२१॥

शंकर ने कहा—जो यह अनप-यता (सतान-हीनता) है वह महापाप का परिणाम है । अत यदि स्त्री या पुरुष किसी को बध्यापन दोष हो जाय तो यहाँ स्नान करने से ही वह दोष नष्ट हो जायगा । जो वस तीर्थ में स्नान कर किसी को पत्न का दान करेगा और इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसे तीन मास का स्नान-दान से पुत्र की प्राप्ति होगी । अपुत्रिणी स्त्री यहाँ स्नान करने से पुत्रवती होगी । जो कोई ऋतु-स्नाता स्त्री यहाँ स्नान करेगा वह पुत्र का प्राप्ति करेगी । जो गर्भिणी स्त्री यहाँ तीन महीने तक स्नान कर षडहाय मन्त्र करेगी और भरे स्तोत्र से शानि करेगी उसको इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं । इति । जो अपने पिता के दोष तथा पन अपहरण करने के दोष का कारण पुत्र नहीं प्राप्त करत उनके लिये उत्तम उपाय बता रहा हूँ मनों । ऐसे ध्यक्षित यदि उस तीर्थ में पिण्डदान कर और पितरों को प्रसन्न कर तथा कुछ सोना दान दतो वे अवश्य पुत्रवान् होंगे । जो किसी की घनेद्वर को हृत्पलन अवका रत्न । जो पुनना स वन्द्य गते हैं और जो ध्याद आन्विष्य नहा करत हैं उनकी वश वडि नहीं होती है । एग दष्ट ध्यक्षितया के मरने पर यही गति (बन्ध विच्छेद) होती है । अत जायित ध्यक्षितया को दग तीर्थ में मवन में उत्तम सतति की प्राप्ति हाती है । जो निति और गगा के सगम में स्नान कर प्रभु सिद्ध कर

सममे दितिगङ्गाया स्नात्वा सिद्धेश्वर प्रभुम् । 'अनाद्यपारमजर चित्सदानन्दविग्रहम् ॥१३२॥
 देवर्षिसिद्धगन्धयोगोद्वरनिर्पेक्षितम् । लिङ्गात्मकं महादेवं ज्योतिर्मयमनामयम् ॥१३३॥
 पूजयित्वोपचारैश्च नित्यं भक्त्या यतयत् । स्तोत्रेणानेन यः स्तौति चतुर्दशष्टमीषु च ॥१३४॥
 यथाशक्त्या (क्ति) स्वर्णदानं ब्राह्मणानां च भोजनम् । यः करोत्यत्र गङ्गायां स पुत्रशतमाप्नुयात् ॥१३५॥
 संप्राप्य सकलान्कामानस्ते शिवपुरं व्रजेत् । स्तोत्रेणानेन यः कश्चिद्यत्र क्वापि स्तवीति माम् ॥
 पश्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि 'वन्ध्याऽप्यशङ्कितम् ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभूतिं तत्तीर्थं 'पुनर्तीर्थं मुदाहृतम् । तत्र तु स्नानदानाद्यं सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१३७॥
 महर्षिः सह मध्येन मित्रतीर्थं तदुच्यते । निष्पापत्वेन चन्द्रस्य शक्रतीर्थं तदुच्यते ॥१३८॥
 ऐन्द्री श्रियं यत्र लेभे तत्तीर्थं वमलान्धम् । एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि ॥१३९॥
 सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत । कृतकृत्याश्च ते जन्मु सर्वं एव यथागतम् ॥
 तीर्थानां पुण्यं तत्र लक्षमेकं प्रकीर्तयत् ॥१४०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूपितृवादे तीर्थमाहात्म्ये पुनर्तीर्थविलक्षण-
 तीर्थवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥
 गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अनादि अपार अजर सत् चित् एव आनन्दमय शरीरवाले देव ऋषि सिद्ध गन्धर्ग और योगीश्वरों से सबदा सेवित
 लिङ्गात्मक ज्योतिर्मय तथा निर्विकार महादेव की समग्र और शक्तिपूर्वक नित्य पोषणोपकार स पूजा करते हैं
 और चतुर्षो अष्टमी आदि तिथियों में इस स्तोन से स्तुति करते यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते और उत्त
 म्गम म स्नान दान देते हैं वे भी पुत्र पाते हैं । वे अपने जीवन की सम्पूर्ण वामनाओं का उपभोग कर अन्त में शिव
 लोक को जाते हैं । जो कोई जहाँ बहो भी इस स्तोन से मेरी स्तुति करता है वह चाहे वाँस ही क्यों न हो छह महीने
 के भीतर ही निश्चित रूप से पुत्रवान् हो जाता है ॥१२३ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब से वह तीर्थ पुनर्तीर्थ कहा जाने लगा । उसमें स्नान दान आदि करने से सब वामनाय
 प्राप्त होती हैं । मरुत के साथ इन्द्र की मैत्री होने से वह मित्र-तीर्थ भी कहा जाता है । इन्द्र का वह पाप दूर हो गया
 अतएव उसको शक्र-तीर्थ भी कहा जाता है । जहाँ इन्द्र ने अपनी श्री प्राप्त की वहाँ कमला-तीर्थ बन गया है । ये
 सब तीर्थ सब प्रकार की मन कामनाओं को देने वाले हैं । तदनन्तर सब कुछ प्राप्त होगा यह कहकर शिव अर्थात्
 हो गये । वे सभी इन्द्र आदि ब्रह्मदेव होकर अपने गन्तव्य स्थान को चले गये । वहाँ एक लाख पवित्र तीर्थ निवास
 करते हैं ऐसा कहा जाता है ॥१३७ १४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुनर्तीर्थ वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

अथ पञ्चविंशधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितृणां प्रीतिवर्धनम् । दृष्टादृष्टेष्टद सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१॥
 तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् । अनुह्राव इति ख्यातं कपोतो बलवान्भूत् ॥२॥
 तस्य भार्या हेतिनाम्नो पक्षिणो कामरूपिणो । मृत्यो धीरो ह्यनुह्रावो दीहित्री हेतिरेव च ॥३॥
 कालेनाय तपो पुत्रा पौत्राश्चैव बभूवुरे । तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट् ॥४॥
 तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोरुक्ताः । तयोश्च वरमभवद्बहुकालं द्विज-मनो ॥५॥
 गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत् । तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट् ॥६॥
 वात चक्रे तत्र पुत्रं पौत्रंश्च द्विजसत्तम । तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयो ॥७॥
 पुत्रं पौत्रंश्च वृत्तमोर्बलिनोर्बलिभिः सह । उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ ॥८॥
 कपोतो यममाराध्य मृत्युं पंतामहं तथा । याम्यमस्त्रमवाप्याय सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९॥
 तयोलूकोऽग्निमाराध्य बलवान्भवद्भूशम् । वरंरुमस्ययोर्युद्धमभवच्छांतिर्भीषणम् ॥१०॥
 तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत् । कपोतोऽप्यथ पाशात्तं याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११॥

अध्याय १२५

यमतीर्थ वा वर्णनं

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों के आनन्द को बढ़ाने वाला दृष्ट अदृष्ट और इष्ट फल को देने वाला और सब देवा एव ऋषिया से मन्त्रित यम-तीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सब प्रकार के पापा को नष्ट करने वाले उस तीर्थ के प्रभाव को बतला रहा हूँ। एक अनुह्राव नाम का बलवान् वृक्षतृण था। उसकी हेति नाम की भार्या थी, जो अश्वन्त मुद्गर पक्षिणी थी। अनुह्राव मृत्यु का पीत्र और हेति उसकी नतिनी (कन्या की कन्या) थी। समय आने पर उनके पुत्र और पौत्र हुए। उसका एक उलूक नामक बलवान पक्षिराज पान्थ था। उसने भी अत्यन्त विषट् अग्निवाणी पुत्र और पौत्र हुए। उन दोनों पक्षिजुला में दोषकालीन वैर हो गया। गया के उत्तर तीर पर वृक्षतृण था और उसके दक्षिणी तट पर पक्षिराज उलूक निवास करता था। द्विजवर। पुत्र और पौत्रों से युवन दोनों वस्त्राली पक्षीदला का बहुत बाल सब युद्ध चलता रहा परन्तु कपोत या उलूक दोनों में से किसी को हार-जीत नहीं हुई। कपोत ने पितामह मृत्यु (यम) का आराधना कर याम्य अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे वह सबम अचिन्त पक्षिनाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्नि की आराधना से अत्यन्त बलवान् हो गया। इस प्रकार देव-वर पा ेन से उन्मत्त उन दोनों पक्षिया में घोर सघाम हुआ। उस युद्ध में उलूक ने कपोत पर आग्नेयास्त्र और कपोत ने

उलूकायाय दण्डं च मृत्युपाशान्वासृजत् । पुनस्तदभवद्युद्धं पुराऽऽदीनकमोर्यथा ॥१२॥
हेति कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलनं प्राप्तमन्तिके । पतिवता महायुद्धे भर्तुं सा द्रुष्ट्वा विह्वला ॥१३॥
अग्निना वेष्ट्यमानाश्च पुनान्दृष्ट्वा विक्षेपत । सा गत्वा ज्वलनं हेतिस्तुष्ट्वा विविधोषितभिः ॥१४॥

हेतिरुवाच

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम् ।
अनन्ति हव्यानि च येन देवा, स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये ॥१५॥
मुखभूतं च देवानां देवानां हृष्यद्याह्वनम् । होतारं चापि देवानां देवानां द्रुतमेव च ॥१६॥
तं वै धारणं यामि आदिदेवं विभावसुम् । अन्तःस्थितं प्राणरूपो बहिर्दद्यान्प्रदो हि यः ॥
यो यज्ञसाधनं यामि धारणं तं धनजयम् ॥१७॥

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्तं युद्धे कपोतकि । यत्र विश्वमयेदस्त्रं तं मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८॥
कपोत्युवाच
नयि विश्वम्यतामस्तं न पुनः न च भर्तारि । सत्यवाग्भव हव्येषां जातवेदो नमोऽस्तु तः ॥१९॥

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते । तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं दद्याम्यहम् ॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारि सुतानपि । न स्वा दहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि ॥२१॥

रात्रि उलूक पर याम्य पास की छोड़ा । इस प्रकार प्राचीन काल के आदी और वक् पक्षियों के समान वह युद्ध होने लगा ।
पतिव्रता कपोतकी हेति ने देखा कि उसके पति के पास अग्नि की लपट पहुच गई है और पुत्रों की अग्नि ने घेर लिया है इससे वह बहुत घबराई । तब अग्नि के पास जाकर वह विविध वाक्यों से स्तुति करने लगी ॥११॥

हेति ने कहा—जिनका स्वरूप और दान किसी से छिपा नहीं है जो सभी पदार्थों को आत्मसात कर लेते हैं, जिनकी सहायता से देवता हव्य ग्रहण करते हैं ऐसे स्वाहा के पति यज्ञभक्त अग्नि को नमस्कार करती हूँ । जो अग्निदेव देवताओं के मूल के समान हैं जो देवों के हव्य डोने वाले हैं जो देवताओं के होता और दूत हैं उस अग्निदेव विभावसु (अग्नि) की धारण मैं ग्रहण करती हूँ । जो प्राणरूप होकर समस्त प्राणियों के अन्तः में स्थित हैं जो बाहर (जगत में) रहकर सबके अन्न दाता हैं जो यज्ञ के एकमात्र साधन हैं ऐसे धनजय अग्नि की धारण मैं ग्रहण करती हूँ ॥१५॥

अग्नि ने कहा—कपोतकि ! मगर यह अस्त्र अमोघ है जिसका इस युद्ध में प्रयोग हो गया है । इसलिये पतिव्रते ! जहाँ यह विश्राम ले (अर्थात् जिसकी मार कर यह शान्त हो जाय) वहाँ मुझ बताना ॥१८॥

कपोती ने कहा—मुझ पर यह विश्राम करे । मेरे पुत्र और पति पर इसका प्रभाव न पड़े । हव्येश ! आप अपनी बात सत्य कीजिये जातवेदा ! आपको नमस्कार है ॥१९॥

अग्नि ने कहा—पतिव्रते ! तुम्हारे पति प्रम और इन वाक्यों से मैं प्रसन्न हूँ हेति ! तुम्हारे भर्ता पुत्र और स्वयं तुमनों भी बलवान् वा बरदान देता हूँ । यह मेरा आग्नेयस्त्र न तो तुमको ही जलायेगा न तुम्हारे पति या पुत्रों को ही । कपोतकि ! तुम सुखपूर्वक आओ ॥२०॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम् । वेष्ट्यमानं याम्यपार्श्वमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यम प्रायाद्भयमातुरा ॥२२॥

उलूक्युवाच

त्वद्भूता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भूता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भूता साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भूता कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३॥
त्वद्भूता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भूताः सौम्यतामाभ्यन्ते, त्वद्भूताः सोमपानं भजन्ते ॥
त्वद्भूताश्चाग्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भूता ब्रह्मचार्यं भवन्ति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवं 'श्रुत्वा तस्या तामाह दक्षिणदिगपतिः ॥२५॥

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच उलूकी ने भी अपने पति का मुँह में मृत्युपाश से बंधा और यमदण्ड से चिट्ठे देखा । यह देखकर उलूकी दुःखी और भयातुर होकर यम के समीप गई ॥२२॥

उलूकी ने कहा—देव ! तुमसे भयभीत होकर सभी प्राणी भाग जाते हैं । तुमसे डरकर ही प्राणी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं । धीर पुरुष तुम्हारे भय से ही साधु आचरण करते हैं और तुम्हारे भय से ही सभी अपने वर्त-व्या में आस्था रखते हैं । तुम्हारे ही भय से अविध्यसक्त कार्य किये जाते हैं और लाव यौव से जगल हो जाते हैं । तुम्हारे भय में मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़कर विनीत बन जाते हैं । तुम्हारे डर से सोम-पान किया जाता है । तुम्हारे डर से मनुष्य अग्निदान, गोदान आदि में निष्ठा रखते हैं और तुम्हारे भय में मनुष्य ब्रह्मवाद (आस्तिकवाद) का प्रवचन करते हैं । ॥२३-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की स्तुति सुनकर दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस उलूकी से कहा ॥२५॥

यम ने कहा—भद्र ! वर मागो ! मैं तुम्हारी मन-कामना पूर्ण करेगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यम की बातें सुनकर उम पतिव्रता ने यम से कहा ॥२७॥

उल्लूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टित पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव । तस्मादस्य सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

॥२९॥

'तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यम प्राह पुन पुन

यम उवाच

॥३०॥

पाशाना चापि दण्डस्य स्थानं यद शुभानने

ब्रह्मोवाच

सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्तव्येरिता । आबिभक्तुं जगन्नाथ इच्छो मयमेव सविशेत् ॥

॥३१॥

तत प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन

यम उवाच

॥३२॥

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा

ब्रह्मोवाच

म्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्रं तु हृष्यवाद् । अपोतोलूकयोश्चापि प्रीतिं वं चक्रत सुरौ ॥

॥३३॥

आहतुवच द्विजन्मानौ क्रियतां वर इस्मित

पक्षिणावूचतु

भवतीर्दानं लब्धं वैरव्याजेन दुष्करम् । धय ख पक्षिण पापा किं वरेण सुरीत्तमौ ॥३४॥

उल्लूकी ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! मेरा पति तुम्हारे पाप से बँधा हुआ है । तुम्हारे दण्ड से पीड़ित है । इसलिये

मेरे पुत्र और पति की रक्षा करो ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—उल्लूकी की वाता की सुनकर यम ने दयाद्र होकर बार-बार कहा ॥२९॥

यम ने कहा—हे गुमानने ! मेरे पाश और दण्ड के लिये स्थान बतलाओ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उसने यम देवता से कहा—तुमने अपने पाशा को मेरे ऊपर ही फका है । अतः जगन्नाथ !

य पाश और दण्ड मझम ही शीम हो जायें । इसने बाद भगवान यम ने कृपापूर्वक उससे कहा ॥३१॥

यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और पति सब निष्पष्टक होकर जीय ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार यम ने उल्लूकी को वर देकर अपने पाशों (बन्धन) को और अग्नि ने अपने वाग्नेयास्त्र को हटा दिया । अपोत और उल्लूक पर भी उन दोनों देवाने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और उन दोनों पक्षियों से कहा कि अपन अभीष्ट वर मागो ॥३३॥

दोनों पक्षी बोले—सुरोत्तम ! आज अपने परस्पर के वैर के बहाने ही आप लोगों का यह दुःख दान प्राप्त हुआ । हम तो पापकर्मा पक्षी हैं हम लोगों को वर की क्या आवश्यकता ? यदि आप देवता हम लोगों को वर देना

अथ देवो वरोऽस्माक भवद्भ्या प्रीतिपूर्वकम् । नाऽऽत्मार्यमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५॥
 आत्मार्यं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ । जीवितसफल तस्य य परार्थोद्यत सदा ॥३६॥
 अग्निरापो रवि पृथ्वी धान्यानि विविधानि च । परार्थं वर्तन तेषा सता चापि विशेषत ॥३७॥
 ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह । एव ज्ञात्वा तु देवेशो ब्रूया स्वार्थपरिभ्रम ॥३८॥
 जन्मना सह यत्पुसा विहित परमेष्ठिना । कदाचिन्नान्यथा तद्वै ब्रूया विलश्यन्ति जन्तव ॥३९॥
 तस्माद्याचावहे किञ्चिद्धिषाय जगता शुभम् । गुणदायि तु सर्वेषा तद्युवा (युवाभ्या) मनुमन्यताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तावाहुतुरुभो देवी पक्षिणौ लोकविद्युतौ । धर्मस्य यदासौवापर्य लोकाना हितकाम्यया ॥४१॥

पक्षिणावूचतु-

आवाभ्यामाश्रमौ तीर्थे गङ्गाया उभये तटे । भवेता जगता नायावेप एव परो वर ॥४२॥
 स्नान दान जपो होम वित्तुणा चापि पूजनम् । सुकृती दुष्कृती वाऽपि य करोति यथा तथा ॥
 सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर ॥४३॥

देवावूचतु

एवमस्तु तथावाग्यत्सुप्रीतौ तु ब्रुवावहं ॥४४॥

ही चाहत हैं तो हम भी आप लोग का यह दिया हुआ शुभ वर अपने स्वाय के लिये नहीं चाहते हैं क्योंकि हे सुरेश्वर गण ! जो व्यक्ति अपने धुन स्वयय के लिये याचना करता है उसका जीवन प्रगसनीय नहीं होता । उसी व्यक्ति का जीवन सफल कहा जाता है जो सदा परोपकार के लिये उत्तम रहता है । अन्न, जल मूय पृथ्वी विविध प्रकार के धान्य आदि परोपकार के लिए ही अपना अस्तित्व बनाय हुआ है और प्रायः सज्जन व्यक्ति बिनाप रूप से परोपकार के लिए जीते हैं । जब ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु की पाग म बचे है तो यह जानकर हे देवय ! स्वाय के लिए परिभ्रम करना व्यय है । परमेष्ठी (ब्रह्मा) न प्राणिमा के जन्म व साथ जो कुछ निर्दिष्ट कर दिया है, वह किसी प्रकार से बदल नहा जा सकता । तब जीवा की अपने स्वाय के लिए कष्ट उठाना व्यर्थ है । इसलिये लोच-वत्प्राण के लिये कुछ शुभ और गुण प्रद वरदान माँग रहे हैं उसरो आप दोना स्वीकार करें ॥३४४०॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोना लोच प्रसिद्ध देवताआ से उन दोना पक्षिया न धर्म और यज्ञ की प्राप्ति के लिये साथ ही लोक जिन की कामना से कहा ॥४१॥

दोनों पक्षियो ने कहा—जगत् के स्वामी ! क्या के दोना तटा पर हम लोया व आश्रम हैं । वे दोना आश्रम तीर्थ यन कार्य यही हमारे लिए उत्तम वर है । सुकृती या दुष्कृती कोई भी हो और वह यहाँ स्नान दान जप होम और पित्रा की पूजा आदि कम चाहें जिस किसी प्रकार कर परन्तु उसरो उत्तम अशय-गुण्य प्राप्त हो यही हमारा अमीष्ट वर है ॥४२-४३॥

दोनों देवों ने कहा—हम दोना प्रमप्र हाकर कहन है कि ऐसा ही होया तथा दूसरी बाने भी हावी ॥४४॥

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये । तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले-मृत्युमाप्नुयात् ॥४५॥
 पुरुषो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम् । यस्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान् ॥४६॥
 अप्पासीतिसहस्रं च व्याधिभिर्न स बाध्यते । अस्मिन्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्युविणी सती ॥४७॥
 अर्वाग्वन्द्या च यन्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत् । वीरसूः सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत् ॥
 लक्ष्मीयाम्गतिमाञ्जूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः । तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८॥
 मनोवाक्कायजात्यापातस्नानमुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

यमवाक्यादानु तथा हृष्यवाडाह पक्षिणी

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतःप्रताः । तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम् ॥५१॥
 इदं स्तोत्रं तु यः कश्चिद्यत्र ववापि पठेन्नरः । नैवाग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गुह्ये स्थिते ॥५२॥
 स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नरः । अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमानेयमेव च । कपोतं च तपोलूकं हेतुलूकं विदुर्बुधाः ॥५४॥

यम ने कहा—जो गौतमी के उत्तर तीर पर यम का स्तोत्र पढ़ेये उनकी सात पीढ़ी में किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होगी। जो सप्तमी व्यक्ति उस मृत्यु-स्तोत्र का सर्वदा पाठ करेगा वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा और अष्टासी हजार व्याधियां से कभी भी पीड़ित नहीं होगा। पक्षिश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में गर्भिणी स्त्री यदि तीन महीने तक और बन्ध्या छः महीने से कम (या) सात दिन भी स्नान कर ले तो वह नारी वीर-पुत्र की जननी होगी और वह पुत्र शतायु, लक्ष्मीवान्, भक्तिमान् शूर और पुत्र-पौत्र को बढ़ाने वाला होगा। उस तीर्थ में पिण्डदान करने से पितर मुक्ति प्राप्त करते हैं। मनुष्य उसमें स्नान करने से मानसिक वायिक और वाचिक पापा से छूट जाता है ॥४५-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—यम के कहने के बाद अग्नि ने पक्षियों से कहा ॥५०॥

अग्नि ने कहा—जो व्रती मेरे स्तोत्र को दक्षिण तीर पर पढ़ेये उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य, लक्ष्मी और सुन्दर रूप प्रदान करूँगा। जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को जहाँ-जहाँ भी पढ़ता है अथवा लिखकर अपने घर में रखता है उसको अग्नि से भय नहीं होता। जो मनुष्य पुनीत माव से इस अग्नि-तीर्थ में स्नान करता है और दान देता है, उसको अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल मिलता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥५१-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से उस तीर्थ को याम्य, आनेय, कपोत, उलूक तथा हेति-उलूक तीर्थ के नामसे

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ॥ पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येकं मुक्तिभाजनम् ॥५५॥
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः । पूतास्ते पुत्रविताद्या आक्रमेयुर्दिव शुभा ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यमाम्यादिनवत्युत्तरत्रिंशताधिक-

त्रिंशत्सतीर्थवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

गौतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

Imp

तपस्तीर्थवर्णनम्

तपस्तीर्थमिति एषात् तपोवृद्धिकरं महत् । सर्वकामप्रदं पुण्या पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥१॥
सस्मिन्स्तीर्थे तु यद्वत् भूषणं पापप्रणाशनम् । अपामग्नेश्च सबादमृषीणां च परस्परम् ॥२॥
अपो ज्येष्ठतमा केचिन्मेनिरेर्ज्म तयाऽपरे । एव ब्रुवन्तो मुनयः सबादं चाग्निधारिणो ॥३॥
विनाऽग्निं जीवनं न स्याज्जीवभूतो यतोऽनलः । आत्मभूतो ह्यवभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम् ॥४॥
अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्ज्योतिर्मयं जगत् । तस्मादग्ने परं नास्ति पावनं वैद्यतं महत् ॥५॥
अन्तर्ज्योतिं स एवोक्त परं ज्योतिं स एव हि । विनाऽग्निना किंचिदस्ति पश्य धाम जगत्प्रथमम् ॥६॥

विद्वान् लोग कहने लगे । वहाँ इसके अतिरिक्त तीन हजार तीन सौ नव्वे तीर्थ भी हैं जिनमें से प्रत्येक ही मुक्ति देने वाले हैं । उनमें स्नान करने और दान देने से अनुप्य पवित्र हो जाता तथा पुनः और तीन से परिपूर्ण होकर मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥५४-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यमादि तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पञ्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद तपस्या की वृद्धि करने वाला तपस्तीर्थ नामक एक प्रतिष्ठित तीर्थ है जो पवित्र सब कामनाओं को देने वाला और पितरों का आनन्द बढ़ाने वाला है । उस तीर्थ में जो पाप को दूर करने वाली घटना हुई उसको मुनो । एक बार ऋषिया में जल और अग्नि को केवल परस्पर सबाद हुआ । कुछ ऋषि जल को ज्येष्ठ मानते थे तो कुछ अग्नि को । इस प्रकार अग्नि और जल की थप्यता को लेकर बातचीत होन लगी और धीरे धीरे बढ़ विवाद का रूप में बदल गई । कुछ मुनि कहते थे कि बिना अग्नि के जीवन दुःख है क्योंकि अग्नि ही प्राणरूप है अग्नि ही आत्मा स्वरूप और हृदय रूप भी है अग्नि सही सम्पूर्ण विषय की उत्पत्ति होती है अग्नि सही मह एतद् दिखा हुआ है और अग्नि से ही ससार ज्वालिमय होता है । इसलिये अग्नि स बहुत बड़ा पवित्र द्रव्य है । वही अन्तर्ज्योति है, वही पर ज्योति भी है, जिसका स्थान तीनो लोक में है उस अग्नि का बिना इस जगत् में अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है । इसलिये सम्पूर्ण भूत में अग्नि के अतिरिक्त और कोई थप्य कहने के योग्य नहीं है ।

तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां ज्यैष्ठ्यभाजनम् । योषित्सेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा ॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः कृशानोरेव नान्यथा । देवानां हि मुखं वह्निस्तस्मान्नातः परं विदुः ॥८॥
अपरे तु ह्यपां ज्यैष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिनः । अद्भिः संपत्स्यते ह्यक्षं शुचिरद्भिः प्रजायते ॥९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वं मातरः स्मृताः । त्रैलोक्यजीवनं वारि वदन्तीति पुराविदः ॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यदम्यस्ताम्यदचोषधिसंभवः । अग्निज्यैष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे ॥११॥
एवं भीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः । विरुद्धवादिनो मां च समभ्येत्येदमब्रुवन् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

॥१३॥

अग्नेरपां वद ज्यैष्ठ्य त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तानृषीस्तर्वाग्न्यतव्रतान् । उभौ पूज्यतमौ लोक उभाभ्यां जायते जगत् ॥१४॥
उभाभ्यां जायते हृष्यं कष्यं चामृतमेव च । उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम् ॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्यैष्ठ्यं समं मतम् । ततो मद्बचनाज्ज्यैष्ठ्यमुभयोरैव कस्यचित् ॥१६॥
ज्यैष्ठ्यमन्यतरस्मेति मेनिरे ऋषिसत्तमाः । न तुप्ता मम वाक्येन जन्मुर्वायुं तपस्विनः ॥१७॥

जिस किसी प्रकार पुरुष द्वारा स्त्री-लोक में डाले गये बीज का देहात्मक माप अग्नि का ही है दूसरे का नहीं । देवताओं का मुख भी अग्नि ही है । अतः अग्नि नि सन्देह सबसे बड़ा है । अपर पक्ष जो कि वेदवादी या वह जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता था । उनका कहना था कि जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है, जल से ही सब पदार्थ शुद्ध होते हैं, जल में सम्पूर्ण लोक को धारण किया है, आप (जल) को ही माता कहा जाता है, प्राचीन मर्मज्ञ जन जल को ही त्रैलोक्य का जीवन कहते हैं, जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार कुछ ऋषि अग्नि को ज्यैष्ठ्य कहते थे और अपर जल को उससे भी श्रेष्ठ कहते थे । इस प्रकार की भीमांसा करते हुए वे वेदवादी तथा विरुद्ध पक्ष वाले मेरे पास आये और कहा ॥१-१२॥

ऋषिगण बोले—आप त्रिलोकी के प्रभु हैं, अतः आप ही निर्णय करें कि अग्नि और जल में कौन श्रेष्ठ है ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—मैंने भी आये हुए उन वृत्ती ऋषियों से कहा कि दोनों ही इस लोक में पूज्य हैं, क्योंकि दोनों से जगत् की उत्पत्ति होती है । दोनों से हव्य कष्य और अमृत उत्पन्न होते हैं, दोनों ही ससार के जीवन हैं और दोनों से लोक में शरीर का धारण किया जाता है । इन दोनों में कोई बढकर नहीं है, इसलिये दोनों की श्रेष्ठता समान है, यही मेरा मत है । तदनन्तर मेरे कहने से किसी की भी श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई । परन्तु उन मुनिवरो को किसी एक की श्रेष्ठता अभीष्ट थी, इसलिये मेरे निर्णय से वे तुष्ट नहीं हुये और तपस्वी वायु के पास गये ॥१४-१७॥

मुनय ऊचु

कस्य ज्यैष्ठ्य भवान्प्राणो वायो सत्य त्वयि स्थितम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठ सर्वमग्नीं प्रतिष्ठितम् । नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मुस्तेऽपि वसुधराम् ॥१९॥

मुनय ऊचु

सत्य भूमे दद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽसि चराचरे ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्यराह विनयादागतास्तानृषीनिवम् ॥२१॥

भूमिरवाच

ममाप्याधारभूता स्युरापो देव्य सनातना । अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमस्तु प्रतिष्ठितम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मुः क्षीरोदशाग्निम् । सुष्टुर्विविधं स्तोत्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२३॥

ऋषय ऊचु

यो वेद सर्वं भुवन भविष्यच्छजायमान च गुहानिबिष्टम्
लोकत्रय त्रिप्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमाविवेश ॥२४॥
यवक्षर शाश्वतमप्रमेय, य वेदवेद्यमूपयो वदति

मुनियो ने कहा—वायु ! आप जगत के प्राण हैं । जिसकी धृष्टता आप स्वीकार करते हैं ? आप न सत्य की स्थापना है । ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु ने कहा कि अग्नि धृष्ट है क्योंकि अग्नि य सब कुछ प्रतिष्ठित है । परन्तु वे ऋषि यह उचित नियम नहीं है इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वसुधरा के पास गये ॥१९॥

मुनिगण ने कहा—पृथ्वी ! तुम सत्य बताओ कि कौन ज्येष्ठ है क्योंकि तुम चर-अचर सबकी आधार हो ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी ने भी उन आये हुए मुनियों से वसुधरापूजन कहा ॥२१॥

भूमि ने कहा—मेरा आधार भी सनातन (जल) है । जल सही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं । अतः धृष्टता जल में प्रतिष्ठित है ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—एक पक्ष में इसकी भी स्वीकार नहीं किया इस प्रकार इस नियम पर भी विवाद न कर वे मुनि क्षीरसागरागमो विष्णु के पास गये और शङ्ख-चक्र-गदाधारी विष्णु की विविध स्तोत्रों का स्तुति करने लगे ॥२३॥

ऋषियों ने कहा—जो सब भुवन तथा मूल भविष्य और वर्तमान की जानने हैं त्रिगुण अन्तराल में यह त्रि-विचित्रमय त्रैलोक्य समा जाना है जो अक्षर नित्य तथा अप्रमेय हैं त्रिगुणोऽपिगण वेदाः ए वेद (जानने

यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं ब्रजामः
भूतं महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम्
तद्वक्तुमेते श्रूययोऽत्र याताः, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजा, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमीश
तयाऽपि जानन्ति न केऽपि कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात्
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना संपरिवर्तमानम्

॥२५॥

॥२६॥

॥

॥२७॥

ब्रह्मोवाच

सतः प्राह जगद्धामो देवी वागन्तरीरिणो

॥२८॥

देवी वागुवाच

उभाकाराभ्य तपसा भवत्या च नियमेन च । यस्य स्वात्प्रथमं सिद्धिस्तद्भूतं ज्येष्ठमुच्यते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा धनुः सर्वे श्रूययो लोकपूजिताः । श्रान्ताः खिन्नान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥३०॥
सर्वलोककं जननीं भुवनत्रयपावनीम् । गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतन्वताः ॥३१॥
अर्चयन्त तयाग्निं च पूजनायोद्यतास्तदा । अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिताः ॥
तत्र वागब्रवीद्देवी वेदमाता सरस्वती ॥३२॥

॥३२॥

योग्य) बताते हैं और त्रिनके आश्रितजन अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं, ऐसे सत्य वस्तु ब्रह्म की शरण में हम आये हुए हैं। योगी जन भी महामातात्मक जगत् में प्रधानतया व्याप्त एव सत्य विष्णुरूप को नहीं जान पाते हैं, अतः जगन्निवास । इतने श्रुति आपने समीप आये हुये हैं। आप कृपा कर स्वयं इस सत्य को व्यक्त कीजिये। ईश ! देहधारी सम्पूर्ण जीवा के आप ही अन्तरात्मा हैं, आप ही सब कुछ हैं और आप मेही सब कुछ हैं। परन्तु प्रकृति के प्रभाव से कोई भी वही भी आपको जान नहीं पाते हैं यद्यपि आप भीतर, बाहर, चारों ओर विद्यमाना के रूप में परिवर्तमान (धुले-मिले) हैं ॥२४-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त जगत् का धारण करने वाली आनन्दवाणी ने कहा ॥२८॥

आकाशवाणी ने कहा—तपस्या, मन्त्र और समय से दोनों की श्रितियों करो, जिसको या जिसने पहले सिद्धि प्राप्त होगी वही ज्येष्ठ माना जायगा ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसकी स्वीकार कर के सब लोक-चन्दित, श्रान्त, अपने अन्तःकरण में कुछ श्रुश्रुलये हुये से और अत्यन्त वैराग्यभाव से भरे श्रुति लोट गये और तीना लोक को पवित्र करने वाली, सब लोको की एक-मान जननी गौतमी के सट पर समयपूर्वक तपस्या करने के लिये बैठ गये। उस समय वही जो जल देवता के मस्त में वे जल की पूजा करने के लिए और जो अग्निमस्त में वे अग्नि की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय वेद-माता सरस्वती रूप देवी वाणी ने कहा ॥३०-३२॥

देवी वाग्वाच

अग्नेरापस्तया योनिरङ्गिः शौचमवाप्यते । अग्नेश्च पूजका ये च विनाङ्गिः पूजनं कथम् ॥३३॥
 अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत् । तावत्कर्मण्यनहोऽयमशुचिर्मलिनो नरः ॥३४॥
 न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु श्रोतासु वेदवित् । तस्मादापो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता यतः स्मृताः ॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुभ्रवुस्ते श्रपयो वेदवादिनः । निश्चयं च तत्तद्वचकुर्मवेज्ज्येष्ठ्यमपामिति ॥३६॥
 यत्र तीर्थं वृत्तमिदमुपि सत्रे च नारद । तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३७॥
 अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं सया सारस्वतं विदुः । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३८॥
 चतुर्दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम् । तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥३९॥
 कृतं संवेहहरणमुदीनां यत्र भायया । सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गाया संगता मदी ॥
 माहात्म्यं तस्य को वक्तु संगमस्य क्षमो नरः ॥४०॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थाविचतुर्दशशततीर्थवर्णनं
 नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥५७॥

देवी वाणी ने कहा—जल अग्नि वा उत्पादक है, जल से ही पवित्रता प्राप्त होती है । जो अग्नि के पूजक हैं वे विना जल के पूजन कैसे करेंगे ? जल में स्नान करने के बाद ही सब कर्मों के करने का अधिकार प्राप्त होता है । तब तक वह मनुष्य किसी अनुष्ठान के अयोग्य समझा जायगा, चाहे वह वेदज्ञ ही क्या न हो जब तक कि वह शीतल जल में स्नान नहीं करेगा । इसलिये जल ही सर्वश्रेष्ठ है । अतः जल मातृभूत है, इसलिये जल की ही श्रेष्ठता सर्वमान्य है, विशेष रूप से इसलिये कि वह अग्नि की भी जननी है ॥३३-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन बातों को उन वेद-वादी श्रपियो ने सुना । तदनन्तर यह निश्चय हुआ कि जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार हो । नारद । जिस तीर्थ या श्रपि-सत्र (यज्ञ) में यह सब कुछ हुआ, उसकी तपस्तीर्थ या सत्रतीर्थ नाम से प्रसिद्धि हुई । वही अग्नि-तीर्थ या सारस्वतीर्थ भी माना जाता है । उसमें स्नान और दान अत्यन्त शुभ और सब अमीष्टों के दाता माने जाते हैं । जहाँ वाणी द्वारा श्रपियों का सन्देश दूर बिया गया वहाँ सरस्वती नाम की एक नदी हो गई जो कि गंगा में जाकर मिली । उस संगम की महत्ता वर्णन करने में मैं मनुष्य समर्थ हूँ सना है ? ॥३६-४०॥

धीमहमाहापुराण में तपस्तीर्थ-वर्णन नामक एक सी छवीसवी अध्याय समाप्त ॥१२६॥

अथ सप्तविंशधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवतीर्यमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
 आण्डियेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः । तस्य भार्या जया नाम साक्षात्लक्ष्मोरिवापरा ॥२॥
 तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पितृवत्सलः । धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातो वक्ष एव च ॥३॥
 तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्याभिभुता । आण्डियेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेश्य सः ॥४॥
 पुरोधसा च मुख्येन दोक्षां चक्रे नरेश्वरः । सरस्वत्यास्ततस्तोरे हृयमेधाय यत्नवान् ॥५॥
 ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः । दोक्षितं तं मूपश्रेष्ठं ब्राह्मणाग्निसमीपतः ॥६॥
 मियुर्दानवरादशूरः पापबुद्धिः प्रतापवान् । मल्लं विध्वंस्य नृपतिं सभार्यं सपुरोहितम् ॥७॥
 आदाय वेगात्स प्रागाद्वसात्तल्लल मुने । नीते तस्मिन्नूपवरे यज्ञे नष्टे ततोऽमरा ॥८॥
 ऋत्विजश्च दयुः सर्वे स्वं स्वं स्यान् मखात्ततः । पुरोहितसुतो राज्ञो देवार्पिरिति विभ्रुतः ॥९॥

अध्याय १२७

देवतीर्य का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तीर पर देवतीर्य नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले प्रभाव को कह रहा हूँ। आण्डियेण नाम से प्रसिद्ध एक सर्वगुणी राजा था। उसकी जया नाम की भार्या थी, जो (रूप और गुण में) दूसरी साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। उसका भर नामक पुत्र था जो बुद्धिमान् और पितृ भक्त था। वह धनुर्वेद और वेद में अत्यन्त निपुण और पारदर्शी विद्वान् था। उसकी सुप्रभा नाम की ऋत्विक्पत्नी भार्या थी। अपने पुत्र को योग्य और वयस्क जानकर राजा ने सारा राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अपने प्रधान पुरोहित से यज्ञ-दीक्षा ले ली। तदनन्तर वह सरस्वती के तीर पर अश्व-मेघ यज्ञ करने के लिये तैयारी करने लगे। परन्तु यज्ञ में वेदशास्त्रों के पारदर्शी प्रधान ऋषियों के रहते हृय भी एक पापात्मा, प्रतापी और वीर दानवराज मय्यु यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर पुरोहित और स्त्री के सहित उस यज्ञ-दीक्षित राजा को लेकर ब्राह्मण और अग्नि के समीप से उठाकर बड़े वेग से पाताल चला गया। यह देखकर सब देवता और ऋत्विज यज्ञ मूमि को छोड़कर अपने-अपने आश्रम को चले गये। राजा ने पुरोहित का देवार्पि नामक एक पुत्र था। उस बालक ने अपनी माता को तो देखा, परन्तु पिता को नहीं देखा। यह देखकर उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ वह पितृ वियोग से कातर हो उठा।

'बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पितरं न, ॥ दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दुःखितोऽतीव चाभवत् ॥१०॥
स मातरं तु पप्रच्छ पिता मे क्व गतोऽम्बिके । पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे ॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम् । न यक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमयाऽविशे ॥१२॥
पुत्र प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः । दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव ॥१३॥

देवापिरुवाच

क्व नीतः केन वा नीतः कथं नीतः क्व कर्मणि । केव पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वेदस्य मे ॥१४॥

मातोवाच

वीक्षितं यमसबसि सभार्यं सपुरोपसम् । राजानं तं मियुर्दंत्यो नीतवान्स रसातलम् ॥
पश्यत्सु देवसंघेषु बहिनः प्राह्मणसंनिधौ ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तस्मान्नुवचनं श्रुत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत् । देवान्यस्येऽथवाग्निं वा श्रुत्विवजो वाऽसुरांस्तथा ॥१६॥
एतेऽदेव पिताऽदेव्यो नान्यत्रेति मतिमम । इति निश्चित्य देवापिभरं प्राह मृपात्मजम् ॥१७॥

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च । आनेतव्या भया सर्वे नीता ये च रसातलम् ॥१८॥

उत्तने अपनी माता से पूछा—'माँ ! मेरे पिता जी कहाँ चले गये ? माता ! मैं पितृ-हीन होकर जीना नहीं चाहता । तुम मुझसे सत्य कहो । पापी, पितृ-हीनो के जीवन्-को धिक्कार-धिक्कार है, माता ! यदि तुम नहीं बतलाओगी तो मैं या तो जल में डूब मरूँगा या अग्नि में जल जाऊँगा ।' पुत्र की इस प्रकार की कातरता देखकर राजपुरोहित को उस भार्या ने अपने पुत्र से कहा—'राजा के सहित तुम्हारे पिता को लेकर दानव रसातल चला गया ॥१-१३॥

देवापि ने कहा—'वहाँ ले गया ? कौन ले गया ? किस कार्य के लिए और क्यों ले गया ? किनके देवने-देवले यह दुष्कार्य हुआ ? दानव वा कहाँ स्थान है ? इन सब बातों को बताओ ॥१४॥

माता ने कहा—यज्ञ-मण्डप में दीक्षित राजा को उनकी भार्या और पुरोहित के सहित, वह निम्न मानक दैत्य अग्नि और ब्राह्मण के समीप से देवों के देखते-देखते लेकर चला गया ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर देवापि सोचने लगा कि क्या करूँ, देवा के पास जाऊँ या अग्नि अथवा श्रुत्विवज के समीप अथवा सीधे असुरों को ही देखूँ । इन्हीं स्थानों में पिता जी को खोजना चाहिये, अन्यत्र नहीं । यही मेरा निश्चय है । इस प्रकार निश्चयकर देवापि ने राज-पुत्र भर से कहा ॥१६-१७॥

देवापि ने कहा—मैं तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत तथा अनुष्ठान के बल से उन लोगों को, जिन्हें दानव रसातल ले गया है, ले आना चाहता हूँ । जो नराधम नठोरतापूर्वक अपमानित होने पर भी बदला नहीं लेता उसके जीवन में

जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । नराधमेन किं तेन जीवता वा भूतेन वा ॥१९॥
त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामार्ष्ट्येण पिता यथा । माता भम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽगति ॥
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मा भर ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्त स देवापि सर्वं निश्चित्य यत्नतः ॥२१॥

भर उवाच

सिद्धिं कुर्वे सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाऽऽग्निध्यानतत्परः । ऋत्विजोऽन्वेष्ट्य यत्नेन नत्वा तानृत्विजं पुण्यम् ॥
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च ममो रक्ष्यो यजमानश्च वीक्षितः । पुरोधाश्च तथा रक्ष्य पत्नी या वीक्षितस्य तु ॥२४॥
भवत्सु तन पश्यत्सु यज्ञ विध्वंस्य दैत्यराट् (ऋत्विजः) । राजावयस्तेन नीतास्तत्र यवततम भवेत् ॥२५॥
अयाप्येतद्बहू मन्वे भवन्तस्तानरोमिणः । दातुमर्हन्ति तान्स (वं स) वनिन्यथा शापमर्ह्य ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

मल्लेजनि प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवान्न देवतम् । तस्माद्वयं न जानीमो ह्यग्नीनां परिचारका ॥२७॥

क्या लाभ ? या मृत्यु से क्या हानि ? तुम इस पृथिवी का शासन अपने पिता आर्ष्टियेण के समान करो । राजन् । जब तक मैं लौटकर नहीं आता तब तक मेरी माता की देखरेख या पालन तुमको करना होगा । भर ! मैं अपने कार्य में दृढ-कृत्य (सफल) हो जाऊँ ऐसा तुम मुझे आदेश दो ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—सब कुछ विचारपूर्वक निश्चित कर भर ने देवापि से कहा ॥२१॥

भर ने कहा—तुम अपने कार्य में सफलता प्राप्त करो, सुखपूर्वक जाओ, किसी विषय की चिन्ता-सी भी चिन्ता न करो ॥२१-२२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवापि ने देवराज के चरणों का ध्यान करता हुआ वस्त्रे परिश्रम से ऋत्विजों का पता लगाया, उनको प्रणाम कर एकान्त में उनसे अलग अलग हाथ जोड़कर कहा ॥२३॥

देवापि ने कहा—आप लोगों को यज्ञ-वीक्षित यजमान पुरोहित और यजमान की पत्नी की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप लोगों के सामने से ही दैत्यराट् यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर राजा आदि को लेकर चला गया यह अच्छा नहीं हुआ । फिर भी मैं आप लोगों से कहूँगा कि उन सबको आप शीघ्र स्वस्वरूप में ले आएं । अन्यथा आप लोग शाप के भागी होंगे ॥२४-२६॥

ऋत्विज गण ने कहा—यज्ञ में अग्नि की पहले पूजा होती है, अतः अग्नि ही इसका देवता है इसलिये इस

स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाद् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ऋत्विजं पृष्ठतः कृत्वा देवापिर्जातवेदसम् । पूजयित्वा ययान्यायमग्नये तद्व्यवेदयत् ॥२९॥

अग्निरुवाच

यथार्त्विजस्तथा चाह देवानां परिचारकम् । हव्यं ब्रह्मामि देवानां भोक्तारो रक्षकाश्च त ॥३०॥

देवापिरुवाच

देवानांहूय यत्नेन हविर्भागान्पूयकपूयक् । दास्येऽहमेव दोषो मे तस्माद्याहि सुराग्रति ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

देवापि स सुराग्रप्यनत्वा तेभ्यः पूयकपूयक् । ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं शापं चापि न्यवेदयत् ॥३२॥

देवा ऊचुः

आहूता वैदिकैर्मन्त्रैर्ऋत्विग्भिश्च ययाकमम् । भोदयामहे हविर्भागान् स्वतन्त्रा द्विजोत्तम ॥३३॥

तस्माद्वेदानुगा नित्यं वयं वेदेन चोदिता । परतन्त्रास्ततो विप्र वेदेभ्यस्तन्निवेदय ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

स देवापि शुचिर्भूत्वा वेदानांहूय यत्नतः । ध्यानेन तपसा युक्तो वेदाश्चापि पुरोऽभषन् ॥३५॥

वेदानुवाच देवापिर्नमस्त्य तु पुनः पुनः । ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं देववाक्यं न्यवेदयत् ॥३६॥

विषय मे हम कुछ नहीं जानते क्योंकि हम लोग तो केवल अग्नि के सेवक हैं। वे ही दाता भोक्ता हर्ता, कर्ता और हव्य को देने वाले हैं ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋत्विजों को पीछे करके देवापि ने अग्नि की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और यह निवेदन किया ॥२९॥

अग्नि ने कहा—जिस प्रकार ऋत्विज देवा के सवक हैं उसी प्रकार मैं भी। मैं तो केवल देवों के लिये यत्नपूर्वक हव्य पहुँचा दिया करता हूँ, यज्ञ के रक्षक या भोक्ता वे ही हैं ॥३०॥

देवापि ने कहा—मैं देवताओं को यत्नपूर्वक बुलाकर पूयक्-पूयक्, हविर्भाग दे देता हूँ। यही मरा दोष है। अतः तुम देवताओं के पास जाओ ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—बहु देवापि देवताओं के पास गया और प्रणाम कर एक-एक से ऋत्विजों का वचन अग्नि की बातें और शाप की वचा ली ॥३२॥

देवगण थोड़े—द्विजवर । हम सबको ऋत्विज यदिक मन्त्रों से जपना बुलाते हैं इस प्रकार हम अपने हविष्यांग को खाते हैं। हम भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इस कारण हम नित्य वेदा के अनुयायी हैं और वेदों की प्रणाली से प्रेरित होते रहते हैं। अतएव हम परतन्त्र हैं। विप्र! तुम उन वेदों में अपना अभिप्राय लो ॥३३-३४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस देवापि ने पवित्र होकर अपनी तपस्या एवं ध्यान के द्वारा वेदा का आह्वान किया। वेद भी उसके सामने प्रकट हुए। देवापि ने भी बार-बार प्रणाम कर बड़ा से ऋत्विजों, अग्नि और देवताओं की बात यह सुनायी ॥३५-३६॥

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा वयं तात ईश्वरस्य वशानुगाः । अशेषजगदाधारो निराधारो । निरञ्जनः ॥३७॥
सर्वशक्त्यैकसदनं निधानं सर्वसंपदाम् । स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः ॥३८॥
वयं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विद्म एव च । अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्ब्रह्मदामो यत्तु पृच्छति ॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा । भक्षिता किंतु नो नष्टा एतज्ज्वानीमहे वयम् ॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यन्माराध्य च यत्र च । स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्मुरः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

॥४२॥

एतच्छ्रुत्वाऽवबुद्धेऽस्मिन्चायं सुचिरं ह्रदि

देवापिरवाच

वेदा बदन्येतदेव सर्वमेव यथार्थतः । सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु व ॥४३॥

वेदा ऊचुः

गीतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम् । सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं वास्त्ययेव कृपाकरः ॥४४॥
भवेद्देवः शिवः प्रीतः स्तुतः सत्यं महामते । आर्ष्टिपेणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती ॥४५॥

वेदो ने कहा—तात । हम परतन्त्र हैं, ईश्वर के सकेत के अनुसार चलने वाले हैं । सम्पूर्ण विश्व के आधार, निराधार, निर्विकार सर्वशक्तिसम्पन्न, और समस्त विभूतियों के पुत्र वे महादेव ही सब के निर्माता और वे महेश्वर ही सबके सहार करने वाले हैं । ब्रह्मन् । हम तो शब्द-स्वरूप हैं सब कुछ जानते हैं और उसको बता देते हैं । हम लोग यही कार्य कर सकते हैं कि जो कुछ तुम पूछोगे बता देंगे । कौन ले गया, उसका नाम उसका नगर, उसकी सम्पत्ति और वे जा लिये गये किन्तु नष्ट नहीं हुए (या वह उन व्यक्तियों को खा गया या वे नष्ट हो गये), यह सारे रहस्य हम जानते हैं । इसके अतिरिक्त तुम्हारी शक्ति, जहाँ जिसकी आराधना से कार्यसिद्धि होगी और जिस प्रकार धुम उन लोगों को सामने पाओगे आदि बातों को भी हम जानते हैं ॥३७-४१॥

ब्रह्मा ने कहा—येदो की ये बातें सुनकर अपने हृदय में भलीभाँति सोच विचार कर उसने वेदो से कहा ॥४२॥

देवापि ने कहा—वेदगण । आपको नमस्कार है । कृपाकर आप इन्हीं सब बातों को यथार्थ रूप से बता दीजिये कि कैसे मैं रसातल में पहुँचाये हुए उन लोगों को प्राप्त करूँगा, और कुछ अधिक नहीं जानना चाहता ॥४३॥

वेदगण ने कहा—देवापे । गीतमी के तट पर जाओ । वहाँ महेश्वर की स्तुति करो । वे करुणा के सागर अवश्य प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे । महामति । स्तुति करने पर महादेव

पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोगिणः । यरदानान्महेशस्य मिथुं हत्वा च राक्षसम् ॥
यशः प्राप्त्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतस्म ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवापिगौतमीं गतः । स्नात्वा कृतशपो विप्रस्तुष्टाय च महेश्वरम् ॥४७॥

देवापिरुवाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरुणां त्वं गुरुर्मम । न मे शशितस्त्वत्स्तवने तुभ्यं शंभो नमोऽस्तु ते ॥४८॥
न त्वां जानन्ति निगमा न देवा मुनयो न च । न ब्रह्मा नापि बंधुणो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥४९॥
येऽज्ञाया ये च कृपणा ये हरिद्राश्च रोगिणः । पापात्मानो ये च लोके तास्त्वं पाप्ति महेश्वर ॥५०॥
तपसा नियमर्मन्त्रैः पूजितास्त्रिदिवौकसः । त्वया दत्तं फलं तेभ्यो वास्यन्ति जगतां पते ॥५१॥
याचितारश्च वातारस्तेभ्यो यद्यन्मनीषतिम् । भवतीति न चित्रं स्यात्त्वं विपर्ययकारक ॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना भरकार्णवे । शिवेति वचनान्नाथ तान्पाप्ति त्वं जगद्गुरो ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः ॥

॥५४॥

शकर भवस्य प्रसन्न होये। राजा आष्टिवेण उनकी पतिव्रता स्त्री अया, तुम्हारे पिता उपमन्यु समी रसातल में
बुधालपूजक हैं। तुम शकर की कृपा से बरदान प्राप्त कर मिथु राक्षस को मार कर कीर्ति और धर्म प्राप्त करोगे।
यही कार्य तुमसे हो सकता है, इसके अतिरिक्त नहीं ॥४४-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—उन वेदों की आज्ञा के अनुसार बालक देवापि गौतमीतट पर गया। उसमें स्नान कर
बड़ी तपस्या से वह विप्र शकर की स्तुति करने लगा ॥४७॥

देवापि ने कहा—देवदेवेश । मैं बालक हूँ। तुम मेरे गुरुओं के भी गुरु हो। तुम्हारी स्तुति करने की
मुझमें शक्ति नहीं है। शंभो ! तुमको नमस्कार है। तुमको न तो वेद जानते हैं न देवता और न मुनि। ब्रह्मा और
बंधुपति विष्णु भी तुमको नहीं जानते। तुम जो हो बड़ी हो। तुमको नमस्कार है। इस ससार में जो अनाथ हैं,
कृपण हैं, रूढ़ि हैं, रोगी हैं और पापी हैं उनकी हे महेश्वर ! तुम्ही रक्षा करते हो। जगन् के स्वामी ! जो व्यक्ति
तपस्या नियम और मन्त्रों से देवताओं की पूजा करते हैं उनको भी देवतागण तुमसे पाये हुये फल को ही प्रदान
करते हैं। उन व्यक्तियों के मनोरथों को स्वयं याचक बनकर ही वे देवता दान करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य
नहीं। क्योंकि तुम विपरीत कार्य करते भ समर्थ हो। हे नाथ ! जगद्गुरो ! जो अज्ञानी, पापी और नरक के सागर
में गिरे हुए हैं, उनके 'शिव' इस शब्द के कहने पर ही तुम उसकी रक्षा करते हो ॥४८-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस बालक की ऐसी स्तुति सुनकर त्रिलोचन शकर स्वयं उससे सामने प्रवृत्त होकर बोले ॥५४॥

शिव उवाच

॥५५॥

वर ब्रूहृष्य देवापे अल दैन्येन बालक

देवापिस्त्वाच

राजान राजपत्नीं च पितर च गुह मम । प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधन च रिपोर्मम ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

देवापिबचन श्रुत्वा तपेत्याहाखिलेश्वर । देवापे सर्वमभवदाज्ञया शकरस्य तत ॥५७॥
पुनरप्याह त (आहूय स्वागण) शम्भुर्देवापिकथनाकर । मन्त्रिन प्रेषयामास शम्भु (तत) शूलेन नारद ॥५८॥
रसातल मियु नन्दी ह्रस्वा घासुरपुगवान । तत्पित्रादीन्समानीय तस्मै तान्स म्रवेवेयत् ॥५९॥
हयमेधश्च तत्राऽऽसीदाष्टियेणस्य धीमत । अग्निश्च ऋत्विजो देवा देवाश्च ऋपयोऽब्रुवन् ॥६०॥

अग्न्यादय ऊचु

यत्र साक्षादब्रूच्छम्भुर्देवापे भवतवत्सल । देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्यमभूच्च तत् ॥६१॥
सर्वपापक्षयकर सवसिद्धिप्रद नृणाम । पुण्यद तीर्यमेतत्स्यात्सर्व कीर्तिश्च शाश्वती ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरावदु । स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्त दिवमाक्रमन ॥६३॥

शिव ने कहा—देवापे । वर मागो । बालक । अब दीन की भावना छोडो ॥५५॥

देवापि न कहा—जगन्नाथ । राजा राजपत्नी और अपने गुरु पिता को प्राप्त करना चाहता हू साथ ही मेरे शत्रु का नाश भी हो यही मेरा वर है ॥५६॥

ब्रह्मा न कहा—देवापि की बातों को सुनकर अखिल जगत के ईश्वर ने ऐसा ही हो यह कहा । शकर की आज्ञा से देवापि की सभी कामनाय पूरा हो गई । नारद । पुन देवापि पर कथना करने वाले शम्भु ने अपने गण नन्दी को बुलाकर सब बातें कही और त्रिशूल देकर उसको रसातल भेज दिया । नन्दी ने रसातल में जाकर मियु एवं बड बडे असुरों का वध किया और उस बालक के पिता आदि को लाकर उसको दे दिया । इसके बाद पुन धीमान् आष्टियेण ने वहाँ अश्व-मेध यज्ञ किया । उस यज्ञ में अग्नि ऋत्विज देवता देवों और ऋषियों ने कहा ॥५७-६०॥

अग्नि आदि ने कहा—देवापे । जिस स्थान पर भक्तवत्सल देवों के देव तथा जगन्नाथ शकर का साक्षात्कार हुआ था वह स्थान देवतीर्थ हो गया है । वह सब पापों को नष्ट करने वाला मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और पुण्य देने वाला तीर्थ तुम्हारी शाश्वत कीर्ति का स्मारक है ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—अश्वमेध सम्पन्न हो जाने पर देवों ने उन सबको वर दिया । वे भी गंगा में स्नान कर स्वर्ग

ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तोर्यानि दश पञ्च च । सहस्राणि शतान्यष्टावुभयोरपि तोरयोः ॥
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः ॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आष्टियेणाष्टोत्तरशताधिक-
पञ्चदशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

शौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥५८॥

अथाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवनादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसंगमं तथा । सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं शौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं भृशम् । यस्याऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अग्निहोता पुरा त्वासीद्देवानां हृष्यवाहनः । भार्यां प्राप्नो दक्षसतां स्वाहानाम्नीं सुरुषिणीम् ॥३॥
साऽनपत्या पुरा चाऽसीत्युत्रार्थं तप आविशत् । तपश्चरन्तीं विपुलं तोययन्तीं हुताशनम् ॥
स भर्ता हुतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्विताम् ॥४॥

हुतहृत्य हो गये और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया । तब से वहाँ उस गंगा के दोनों तट पर पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थ प्रतिष्ठित हो गये । उनमें स्नान और दान करना अधिक फलदायक माना गया है ॥६३-६४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आष्टियेण आदि पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नाम एक सौ
सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

अध्याय १२८

तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद शौतमी के दक्षिणी तट पर तपोवन तथा नन्दिनीसंगम नामक विख्यात तीर्थ हैं, वहाँ सिद्धेश्वर और शार्दूल नामक दो और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं । उनका इतिहास सुनो, जिससे सुनने से ही सब पाप छूट जाते हैं ।

बहुत पहले देवों को हव्य पहुँचाने वाले अग्नि होते थे । उनका दक्ष की परम सुन्दरी स्वाहा नाम की बच्चा से विवाह हुआ । पहले वह सन्तानहीन रही । तब पुनः के शिवे कात्यायन करने लगी । उसने अपनी बटोर लपटों से हुताग्नि को प्रगल्भ करने लगी श्रेयदा की । यह देखकर उसके पुत्र अग्नि ने अपनी अनन्य सुन्दरी भार्या से कहा ॥१-४॥

अग्निस्वाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तप कुर्व शोमने

॥५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा भर्तुर्वाक्य निवृत्ता तपसोऽभवत् । स्थोणामभीष्टद नान्यदभर्तुर्वाक्य विना वदचित ॥६॥

ततः कतिपये काले तारकादभय आगते । अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते ॥७॥

महेश्वरे भवान्या च अस्ता देवा समागता । देवाना कार्यसिद्धयथमग्निं प्रोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचुः

देव गच्छ महाभाग शम्भु त्रिलोक्यपूजितम् । तारकादभयमुत्पन्नं शभवे त्व निवेदय ॥९॥

अग्निस्वाच

न गन्तव्यं तत्र देशं दपत्यो स्थितयो रह । सामान्यमानतो न्यायं किं पुनः शूलपाणिनि ॥१०॥

एकान्तस्थितयो स्वैर जल्पतोऽयं सराययो । दपत्या शृणुयाद्वाक्यं निरयात्तस्य नोदधृति ॥११॥

स स्वाम्यखिललोकानां महाकालस्त्रिशूलवान् । निरीक्षणीयं कनः स्यादभवान्या रहसि स्थित ॥१२॥

देवा ऊचुः

महाभयं चानुगतं न्यायं कोऽन्वन्न वप्यत । तारकादभयं आपन्नं गच्छ त्वं तारको भवान् ॥१३॥

अग्निं न कहा—मुद्गी । तपस्या मत करो तुम्हें सन्तान होगी ॥५॥

ब्रह्मा न कहा—भर्ता की बातों ने सुनकर उसने तपस्या छोड़ दी । क्योंकि बिना पति के वचन के स्त्रियों के अभीष्ट को सिद्ध करने वाली दूसरी कोई बात नहीं होती । कुछ समय बीत जाने पर देवताओं को तारक का भय उत्पन्न हुआ । चिरकाल तक महेश्वर और भवानी के एकान्त विलास के बाद भी कार्तिकेय भी उत्पत्ति नहीं हुई । यह देखकर देवता भयवस्तु हो गये । वे देव अपने काय भी सिद्धि के लिए एकत्र हुये और अग्नि से कहा ॥६॥

देवों ने कहा—महाभाग । देव । तुम त्रिलोक्य से विदित शकर के पास जाओ । वहाँ जाकर शम्भु से कहो कि तारक के वारण देवों के सामने महान् सकट आ गया है ॥९॥

अग्नि ने कहा—उस स्थान पर जहाँ पति-पत्नी एकान्तवास करते ही नहीं जाना चाहिये यह एक सब साधारण के लिए नियम है फिर शूलपाणि शकर के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं । जो एकान्त में स्थित प्रभु पूर्वक स्वेच्छया बातचीत करने वाले पति-पत्नी की बातों को सुनता है उसका नरक से कभी भी उद्धार नहीं होता । वे तो अखिल लोक के स्वामी हैं महाकाल हैं और त्रिशूलधारी हैं । एकान्त में भवानी के साथ स्थित उनको कौन देख सकता है ? ॥१०॥ ११॥

देवों ने कहा—महान् सकट आ जाने पर कौन सा काय उचित है इसको कौन कह सकता है ? इस समय तारक के भय से रक्षा करने वाले आप ही हैं अतः आप अवश्य जायें । क्योंकि महासकट के समुद्र से उबारने के

महाभयाब्धौ साधूना यत्परार्थाय जीवितम् । रूपेणान्येन वा गच्छ वाच वद यथा तथा ॥१४॥
विश्रान्त्य देववचन शभुमागच्छ सत्वर । ततो दास्यामह पूजामुभयोर्लोकयो कवे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जयामाऽऽशु देववाक्याद्भुताशनः । यत्राऽऽसीज्जगता नाथो रममाणस्तदोमया ॥१६॥
स भीतवदय प्रायाञ्छुको भूत्वा तदाऽजलः । नाशकद्वारदेशे तु प्रवेष्टु हृद्यवाहन ॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु सस्थो धुन्वन्नयोमुखः । तदृष्ट्वा प्रहस्तर्जामुस्मा प्राह रहोगत ॥१८॥

शमुवाच

पश्य देवि शक प्राप्त देववाक्याद्भुताशनम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चावदद्देवमल देवेति पावती । पुरश्चरन्त देवेशो हर्षणि त द्विजहृषिणम् ॥२०॥
आहूय बहुशश्चापि ज्ञातोऽस्पन्नेऽग्न मा वद । विवारयस्व स्वमुख गृहाणैव मयस्व तत्त ॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्येऽग्ने रेत स प्राक्षिपद्बहुः । रेतोगभस्तवा घनिर्गन्तु नैव' च शक्तवान् ॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीर आन्तोऽग्निरुपतस्थिवाम । कृत्तिकासु च तद्रेत प्रक्षेपास्कार्तिकोऽभवत् ॥२३॥

लिये साधुओं का जीवन ही परोपकार की भावना से आगे बढ़ता है। इसलिये अपने इसी रूप में या किसी अन्य देव में आप जाइये और जिस किसी प्रकार से उनसे कहिये। इस प्रकार शरर से देवताओं का सफ्ट सुनाकर शीघ्र ही आइये। कवे! तदनन्तर हम लोग दोनों लोकों की श्रद्धा पूजा आपको अर्पित करेंगे ॥१३ १५॥

ब्रह्मा ने कहा—दोनों के कहने के अनुसार अग्नि गुक का रूप धरकर वहाँ गये जहाँ कि ससार के स्वामी उमा के साथ विलास कर रहे थे। अग्नि गुक के रूप में डरते डरते वहाँ गये परन्तु वे मुख्य द्वार की ओर से पुनर्ने में समर्थ न हो सके। अतः सिङ्घी पर मुह मीचे लटकाये और कुछ नीचे हुए बैठ गये। उनको सिङ्घी पर बैठा देखकर एकान्त में विलास करने वाले गम्भीरतर पावती से बोले ॥१६ १८॥

शमु ने कहा—देवि! देखो देवों के कहने से अग्नि गुक के रूप में यहाँ आया है ॥१९॥

ब्रह्मा ॥ कहा—लज्जित होकर पावती ने शरर से कहा—‘देव! अब बस कीजिये। देवेन ने सामने घूमते हुए पत्नीरूपधारी अग्नि को बुलाकर कहा—अग्ने! अपने विषय में कुछ मत कहो। तुम जिसलिय आये हो यह मैं पूर्णरूप से जान गया हूँ। अपना मुख फँलाओ यह लो और लेवर जाओ। यह कहकर उम अग्नि ने मुख में बहुत—सा बीर्य उड़ल दिया। अग्नि उम सिङ्घीर्य को मुख में रखकर ले जाने में असमर्थ हो गये। अतः शरर कर गया नगीचे तट पर बैठ गये। कृत्तिकाओं में उस बीर्य को डाल देने से कार्तिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अग्नि की देह में बचा हुआ शमु का जो कुछ बीर्य था उसी को अग्नि ने अपनी विनायक रूप से पुत्र की इच्छा रखने वाली प्रिय भार्या

अवशिष्टं च पत्किंचिदग्नेर्देहे च शाश्वतम् । तदेव रेतो बहिर्मस्तु स्वभार्याया द्विधाऽक्षिपत् ॥२४॥
 स्वाहाया प्रियभूताया पुनर्यिन्या विशेषत । पुरा साऽऽश्वासिता तेन सततित्ते भविष्यति ॥२५॥
 तद्वह्निनाऽयं सस्मृत्य तत्क्षिप्तं शाश्वतं मह । तदग्ने रेतसस्तस्या जज्ञे मियुनमुत्तमम् ॥२६॥
 सुवर्णं च सुवर्णां च रूपेणाप्रतिमं भुवि । अग्ने प्रीतिकरं नित्यं लोकानां प्रीतिवर्धनम् ॥२७॥
 अग्निं प्रीत्या सुवर्णां ता प्रादादधर्माय धीमते । सुवर्णस्याय पुत्रस्य सकल्पाभकरोत्प्रियाम् ॥
 एव पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कवि ॥२८॥

अग्न्योऽग्नेरेतोऽप्यतिथङ्गबोयादान्नेरपत्यमुभयं सयैव ।
 पुत्रं सुवर्णो बहुरूपरूपो, रूपाणि कृत्वा सुरससमानान् ॥२९॥
 इन्द्रस्य बायोधनस्य भार्या, जलेश्वरस्यापि मनीश्वराणाम् ।
 भार्यास्तु गच्छत्यनिशं सुवर्णो, यस्यां प्रियं यच्च यपुः ॥ कृत्वा ॥३०॥
 याति ववचिच्छापं कवस्तनूजस्तद्भुतं रूपं च पतिव्रतास्तु ।
 कृत्वाऽनिशं ताभिस्त्वारभावः, कुर्वन्कृतार्थं मदनं स रमे ॥३१॥
 कृत्वा गता ववापि चैव सुवर्णां, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी ।
 स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोमता या ॥३२॥
 भार्यास्वरूपा सैव भूत्वा सुवर्णां, रमे पतीन्मानुषानामुराश्च ।
 देवान्पुत्रीन्वित्पुरुषास्तथाऽन्यान्पुत्रीदार्प्यस्थैर्यगाम्भीर्यं युवतान् ॥३३॥

स्वाहा में दो माया म बोट कर छोड़ दिया क्योंकि पहले उन्होंने उसको आत्मासन दिया था कि तुमको सताना अवश्य होगी । इसी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि ने उस शत्रु तेज को स्वाहा के शब्द में छोड़ दिया । अग्नि ने उसी दिवे हुए रेतस (वीर्य) से युगल (जुड़ावा) सन्तान सुवर्ण और सुवर्णा उत्पन्न हुई । वह सति सुव्रता में भूमण्डल पर बैठी थी । उससे अग्नि ने दो अधिक आनन्द मिलता ही था परन्तु उसके साथ-साथ लोक को भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था । अग्नि ने अपनी उस कन्या सुवर्णा को प्रज्ञावान् धर्म को प्रम-पूवक दे दिया । इसके उपरान्त पुत्र सुवर्णा का विवाह सत्पत्नी के साथ कर दिया । इस प्रकार अग्नि ने पुत्र और पुत्री का विवाह कर दिया ॥२० २८॥ एक दूसरे के बीच सम्मिश्रण-दोष के कारण अग्नि की दोनों सन्तान उसी के अनुसार असत्तामिलायी हो गई । अनेकों कष्ट-वैशं धारण-भट्ट पुत्र सुवर्ण देवा के वेश में इन्द्र वायु कुबेर वरुण और मनीश्वरो की स्त्रिया के साथ उनकी इच्छा के अनुसार मनोहर शरीरधारण कर प्रतिदिन एका त विलास करता था ॥२९ ३०॥ वहीं पर अग्नि पुत्र पतिव्रता स्त्रिया के यहाँ उनसे पति का रूप धारण कर प्रतिदिन जाता था और स्वेच्छया अपनी कामेच्छा को पूरित करता हुआ रमण करता था ॥३१॥ इसी प्रकार धर्म की रूपवती भार्या सुवर्णा भी मायारूप धारण कर वहीं भी बली जाती थी । वह स्वाहा पुत्री इतनी स्वच्छाचारिणी हो गई कि जिन जिन पुरुषों को जो जो स्त्रियाँ प्रिय लगती थी उन्हीं उन्हीं के रूप धारण कर सब मानव अथवा असुर पतियों के साथ या देव ऋषि पितर या अन्य रूप उदारता गम्भीरता आदि से युक्त पतियों के साथ विहार करती थी । जिस देवता को जो स्त्री प्रिय थी उसी का

याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्
 नानाभेदः करणश्चाप्यनेकैरुत्कर्षन्ती तन्मनःकामसिद्धिम् ॥३४॥
 एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाग्नेः ॥
 सर्वे च श्रेणुः कुपितास्तवाग्नेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते ॥३५॥

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छ्रमना वर्तनं पापरूपम् ।
 तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारवाचक, सर्वत्र गामी जायतं हृष्यवाह ॥३६॥
 तथा सुवर्णाऽपि न चेकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतुप्ता बह्वंश्च ।
 नानाजातीस्त्रिन्वितान्वेहभाजो, भगिनी स्यादेव दोषश्च पुत्र्याः ॥३७॥

महोवाच

इत्थेनच्छापवचनं भूत्वाऽग्निरतिभीतवत् । मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं च पुत्रयोः ॥३८॥
 तवाऽहमश्रयं बहून् भौतभौं गच्छ शक्रम् । स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते ॥३९॥
 माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च । एवविधं स्वपत्यं ते जातं बहून् ततो भवान् ॥४०॥
 निवेदयस्य (तु) देवाय देवानां शापमीदृशम् । स्यात्पत्यरक्षणयासौ शंभुः श्रेयः करिष्यति ॥४१॥
 स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः । ततस्त्वपत्यविषये प्रियान्कामानवाप्स्यसि ॥४२॥

रूप धारण कर वह नाना प्रकार के स्त्री-मुक्तम हाव-भावी और अदम्य-सञ्चालन के द्वारा उनके मन में काम-नाशना जागरित कर उनको अपनी ओर आकृष्ट करने उनके साथ रमण करती थी ॥३२-३४॥ इस प्रकार अग्नि के पुत्र और पुत्री की श्रिया को देखकर देवी तथा अगुरा ने कुपित होकर शाप दे दिया ॥३५॥

सुर और असुरों ने कहा—अग्ने ! वपदरूप से तुम्हारे पुत्र ने जो यह व्यभिचाररूप पापकर्म किया है, इसका फलस्वरूप बट व्यभिचारी और सर्वत्रगामी हो जाय ! और तुम्हारी बन्धा सुवर्णा भी बन्धी भी एवं पति से प्रेम करने वाली तथा एग से तृप्त होने वाली न हो । नाना जातियों तथा निम्नित देहधारियों के साथ विलास-शील हो ऐसी तुम्हारी पुत्री की वृत्तिप्रवृत्ति हो जाय ॥३६-३७॥

अहो ने कहा—शाप की इस भाषा को सुनकर अग्नि अत्यन्त भय-भीत से हो गये । मेरे पास श्रावर उन्हीने कहा—मरी सन्तानों के उद्धार का मार्ग बताइये । तब मैंने कहा—अग्ने ! गीतमी के सट पर जाओ, वहाँ राक्षस की स्तुति कर दे महाबाहु ! जगत्पति से निवेदन करो कि किस प्रकार तुम्हारे मुल में रखे गये शम्भु के वीर्य से इस प्रकार की तुम्हारी सति उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् अग्ने ! शम्भु शक्र से देवताओं के इस शाप का वर्णन करो । अपने अत्यन्त ही रक्षा के लिये भगवान् शक्र अवश्य कोई न कोई कल्याणकर प्रवर्ण्य करेंगे । दीप्त जाकर शम्भु शक्र और देवी योनिमी भी अस्त्रिपूर्वक स्तुति करो । तब शक्र जी प्रसन्न होंगे और तदनन्तर शम्भु अपनी

ततो मद्रचनादग्निपङ्खां गत्वा महेश्वरम् । तुष्टाव नियतो वाक्यैः स्तुतिभिर्वेदसंमितैः ॥४३॥

अग्निरुवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिनिरञ्जनः । आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
योऽग्निर्भूत्वा संहरति स्रष्टा च जलरूपतः । सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शंभुरध्वयः । धरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम् ॥४६॥
स विनीतः शिवं ब्राह्म तव धीर्यं मयि स्थितम् । तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविभूतः ॥४७॥
तया सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो । अग्न्योऽग्न्यधीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विवम् ॥४८॥
व्यभिचारात्सर्वोऽयं च अपत्यमभवच्छिव । प्रापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुर्व प्रभो ॥४९॥
तवग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम् ॥५०॥

शंभुरुवाच

मद्वीर्यादभवत्सत्तः सुवर्णो भूरिविष्मः । समग्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णोऽस्मिन्समाहिताः ॥५१॥
भविष्यन्ति न संवहो बहूने शृणु वचो मम । त्रयाणामपि लोकानां पावनः स भविष्यति ॥५२॥
स एव चामृतं लोके स एव सुरबल्लभः । स एव भुक्तिमुक्तो च स एव मलदक्षिणा ॥५३॥

मन्वान के विषय में अपने मनोरथ को प्राप्त करने में । इसके बाद मेरे करने के अनुसार अग्नि गया के समीप गये और तपन भाव से भगवान् आशुतोष की वेदसम्मत स्तुति वचना से स्तुति करने लगे ॥३८-४३॥

अग्नि ने कहा—तुम गतिशील विद्वत् के पालक, विद्वत्स्वरूप, निर्विघ्न, आदिशक्ति और स्वयम्भू हो, ऐसे जगत्पति शक्ति को प्रणाम करता हूँ । जो अग्नि रूप से विद्वत् वा सहार करता है, जगत्स्वरूप सृष्टि करता और सूर्यरूप से सत्ता की रक्षा करता है, उस विनेत्र शक्ति को नमस्कार है ॥४४-४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् अनन्त, अव्यय शम्भु ने प्रसन्न होकर देव-पूजित अग्नि की वरदान दिया । विनीत अग्नि ने शक्ति से कहा कि मेरे मुख में रखे हुए तुम्हारे वीर्य से लोक प्रसिद्ध सुवर्ण नामक एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ । प्रभो ! उसी (वीर्य) से पुत्री सुवर्णा की भी उत्पत्ति हुई । परस्पर व वीर्य-मयीय स और उसने दोष से ये दोनों अत्यन्त व्यभिचारदोष से दूषित हो गये । प्रभो ! मन्वदेवताओं ने उन दोष के कारण प्राप भी दे दिया । उनसे प्रापों की शान्ति कीजिये । अग्नि की उन बातों को सुनकर शम्भु ने यह मंगल-जनक वाणी बही ॥४६-५०॥

शंभु ने कहा—मेरे वीर्य से तुम्हारे द्वारा यह परम विजयवाणी सुवर्ण हुआ है । इस सुवर्ण से सम्पूर्ण अद्वितीय समाहित (एकत्र) होगी । अग्नि । इससे कुछ भी संदेह नहीं । और सुनो, वह सुवर्ण तीन लोकों में पवित्र होगा । समार में बही अमृत है, वही देवों को भी प्रिय है, वही मुक्ति-मुक्ति है वही यज्ञ की दक्षिणा भी है । वही सवरा रूप और गुरुओं का भी गुरु है । उसको परम श्रेष्ठ वीर्य समझो । दूसरे उत्पन्न जो उत्तम वीर्य था,

स एव रूपं सर्वस्य गुरुणामप्यसौ गुरुः । वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याहीर्यं मत्तो यदुत्तमम् ॥५४॥
 विशेषतस्त्वयि क्षिप्त तस्य का स्याद्विचारणा । हीनं तेन विना सर्वं संपूर्णास्तेन सपदः ॥५५॥
 जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः । निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि ॥५६॥
 सस्मान्नतः परं किञ्चित्सुवर्णाद्वि भविष्यति । तया चेष्टा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला ॥५७॥
 अतया बोधितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति । तपसा जपहोमैश्च 'येन' प्राप्या जगत्त्रये ॥५८॥
 तस्या प्रभावः प्राशस्त्यमग्रे किञ्चित्च कीर्त्यते । सर्वत्र या तु सतिष्ठेदायातु विचरिष्यति ॥५९॥
 सुवर्णा कमला साक्षात्प्रवित्रा च भविष्यति । अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तया स्वरं विधेदतोः ॥६०॥
 तयाऽपि चैतयोः पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा ततः शम्भुः साक्षात्प्राभवच्छिवः । लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥६२॥
 बरान्प्राप्य सुताभ्यां च अग्निस्तुष्टोऽभवत्ततः । स्वभर्त्रा च सुवर्णां सा धर्मेणाग्निसुता मुवा ॥६३॥
 धर्तयामास पुत्रोऽपि बहूनिः संकल्पया मुवा । एतस्मिन्नन्तरे स्वर्णामनेनैर्दुहितरं मुने ॥६४॥
 परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो वामदेववरः । अहरद्वाग्यसौभाग्यविलासवसतिं छलात् ॥६५॥

जो विशेष रूप से तुम (अग्नि) म प्रक्षिप्त होने के कारण और अधिक निखर सा गया, उसकी उत्तमता के विषय में अधिक क्या विचार किया जाय । उसने विना सारा ससार मुच्छ है । उससे सब प्रकार की सम्पत्ति को पूर्ण समझो । सुवर्ण के बिना जीवित मनुष्य को भी मृत समझो । ससार में गुणहीन धनी व्यक्ति आदर का पात्र है और गुण भी धनमात्र के कारण उल्टा होता है । इसलिए इस सुवर्ण से उच्छेद कोई भी पदार्थ नहीं होगा । और यह सुवर्ण भी परम उच्छेद पर नु चला होगी । इनके दृष्टि विशेष मात्र से सारे अभाव भाव में परिणत हो जायेंगे । इनतीना लोकों में तपस्या जप और होम द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यह सुवर्ण है अग्ने । इससे प्रभाव और महत्त्व का बोझा-मा वर्धन किया गया है । जो सुवर्ण सर्वत्र रहती है, वह सर्वत्र रहे और धृमे पुनरपि यह साक्षात् एतमी और पवित्र मानी जायगी । आज मे इस प्रकार का स्वेच्छाचार करते हुये भी तुम्हारी ये मन्त्रि पवित्र है । इनके समान पवित्र पदार्थ न हुये न हयि ॥६२॥ ६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बह्मर वामु सब लोकों के हित की कामना से लिङ्ग रूप में वही प्रवृत्त हुए ॥६२॥ वे अग्नि भी वरदा से अपने पुत्रों के लिये वरदान पाकर प्रसन्न हो गये । इनके अनन्तर अग्नि-मनया यह सुवर्ण प्रीतिपूर्वक अपने पति धर्म के साथ रहने लगी । अग्नि-पुत्र सुवर्ण की आनन्दपूर्वक सरला के साथ बाल बिताने लगा ॥६३॥ मुने । इस बीच दानवराज शार्दूल धर्म को हरत्र माण्य सोमाय और विनाश की चेष्टामुमि विद्वत् विद्वत् सुवर्ण का छत्र म अपहरण करने समान्त में ले गया । यह देखकर अग्नि के ज्ञाता धर्म

नीता रसातल तेन सुवर्णा लोकविभृता । जामाताग्ने स धर्मदत्त अग्निश्चैव स हृदयवाट् ॥६६॥
 विष्णवे लोकनायाम् स्तुत्वा चैव पुन पुन । कार्यविज्ञापन चोभौ चक्रतु प्रभविष्णवे ॥६७॥
 ततश्चक्रेण चिच्छेद शादूलस्य शिरो हरि । साऽग्नीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी ॥६८॥
 महेश्वरसुता चैव अनेशचैव तथा प्रिया । महेश्वराय तां विष्णुदंशयामास नारद ॥६९॥
 प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सत्त्वजे ता पुन पुन । चक्र प्रक्षालित यत्र शादूलच्छेदि दीप्तिमत् ॥७०॥
 चक्रीयं तु श्लिषात् शादूलं चेति तद्विदु । यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शकरान्तिकम् ॥७१॥
 ततोयं शाकर ज्ञेय वैष्णव सिद्धमेव तु । यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो हृद्यग्निधर्मश्च शाश्वत ॥७२॥
 आनन्दाभूणि ध्यपतन्मन्त्राग्नेर्मुनिसत्तम । आनन्देति नदी जाता तथा च नन्दिनीति च ॥७३॥
 तस्याश्च सगम पुण्यो गङ्गाया तत्र चैव शिव । तत्रैव सगमे साक्षात्सुवर्णाऽद्यापि संस्थिता ॥७४॥
 दाक्षायणी सैव शिवा आग्नेयी चेति विभृता । अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी ॥७५॥
 भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलकृत्योभय सटम । तपस्तेपे यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम् ॥७६॥
 एवमादीनि तीर्थानि तीर्थयोक्तृभयोर्मुने । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥७७॥
 उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश । दक्षिणे च तथा पार सहस्राण्यथ षोडश ॥७८॥

और स्वयं हृदय-वाट अग्नि ने लोक-पति महामहिम विष्णु की बार-बार स्तुति करके उनको इस अन्याय-काय की सूचना दी ॥६४॥ ६७॥ हरि ने उन दोनों की प्रायना सुनकर वज्र से शादूल का शिर काट डाला और लोक सुन्दरी महेश्वर और अग्नि की प्रिय पुत्री उस अपद्वृत सुवर्णा देवी को ला दिया । नारद ! विष्णु ने लाकर उसको शकर की शिल्लायामा ॥६८॥ ६९॥ उनको देलकर व प्रसन हो गये और बार-बार उसको छाती से लगाया । जहाँ पर उन्होंने शादूल के गिर की काटने वाले चक्र को जल से धोया वह चक्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ । शादूल तीर्थ भी लोग उसी को कहते हैं ॥७०॥ ७१॥ जहाँ वह सुवर्णा विष्णु के द्वारा शकर के पास लाई गई उसको शाकर वैष्णव और सिद्ध-तीर्थ कहा गया ॥७२॥ ७३॥ मुनिवैष्ट ! जहाँ अग्नि और घम की अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ और अग्नि के नेत्रा स आनन्द के अयु विदुषिरे बंधा आन दा नाम की नदी—जिसको नन्दिनी भी कहते हैं—उत्पन्न हो गई ॥७४॥ ७५॥ उसने गंगा भ मिलने स जो सगम बना वह अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया । वहाँ गिब और साक्षात् सुवर्णा आज तक प्रतिष्ठित हैं ॥७६॥ ७७॥ उसी की दाक्षायणी शिवा आग्नेयी आदि नामों से प्रसिद्ध है । उस नदी के दोनों तटों पर भक्ता को अभीष्ट प्रदान करने वाली जगदाधार अम्बिका शिवा और ईश्वरी कात्यायनी नित्य निवास कर उत तटों की गोमा बडाती हैं । जहाँ अग्नि ने तपस्या की वह तीर्थ तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७८॥ ७९॥ मुने ! इस प्रकार के तीर्थ उसके दोनों तटों पर स्थित हैं जहाँ स्नान और दान करना शुभ एवं सब प्रकार की काम नाशों को देने वाला है ॥८०॥ इसने उत्तर तट पर चौदह हजार और दक्षिण तीर पर सोलह हजार तीर्थ हैं । ये सब तीर्थ विषय षट्ताओं के स्मारक हैं । इनके नाम अलग-अलग हैं । मैंने तो संक्षेपरूप में कुछ के नाम गिनाये हैं

तत्र तत्र च तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै । नामानि च पुथक् सन्ति सक्षेपास्तन्मयोच्यते ॥७९॥
 एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत् । सर्वेषु तत्र काम्येषु परिपूर्णो भवेन्नर ॥८०॥
 एतद्वृत्त तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिकं चरेत् । लक्ष्मीवाञ्छायते नित्यं धर्मवाश्च विशेषतः ॥८१॥
 अञ्जनात्पश्चिमे तीर्थं तच्छाईलमुदाहृतम् । वाराणस्यादितोऽर्थेभ्यः सर्वेभ्यो ह्यधिकं भवेत् ॥८२॥
 तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्बन्धुवन्दते तपयत्यपि । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महोयते ॥८३॥
 तपोबनाच्च शाईलान्मध्ये तीर्थान्यशेषतः । तस्यैकैकस्य माहात्म्यं न केनाप्यत्र वर्ण्यते ॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्राह्ये तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसगमेश्वरदेवीदाक्षा-

मणोसिद्धेश्वरवर्णयशाईलान्मित्रतीर्थदित्रिशतहस्ततीर्थवर्णन नामाष्टा-

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोनपट्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तत्रैव च यूपकपम् । केनाया सगमो यत्र हनूमत तथैव च ॥१॥

॥७८७९॥ ओ इन तीर्थों का नाम श्रवण करता है पढ़ता है अथवा स्मरण करता है वह मनुष्य अपने सम्पूर्ण अमिलपित फलों को प्राप्त करता है ॥८०॥ इन तीर्थों के इतिहास को जानकर जो व्यक्ति इनमें स्नान आदि करता है वह नित्य प्रति लक्ष्मीवान् और विजयस्वरूप से धार्मिक होता जाता है ॥८१॥ अञ्जनात् पश्चिम ओर जो तीर्थ है वह शाईलतीर्थ कहलाता है। वह वाराणसी आदि सब तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥८२॥ जो व्यक्ति जगने स्नानकर पितर और देवों की वन्दना करता है या तपण करता है वह सब पापों से छुटकर विष्णुलोक में स्थान पाता है ॥८३॥ तपोवन से लेकर शाईलतीर्थ के बीच के सम्पूर्ण तीर्थों की महिमा पृथक्-पृथक् रूप से इस लोक में कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है ॥८४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपोवन, नन्दिनी-सगम आदि तीर्थ हजार तीर्थों का वर्णन नामक

एक सौ अष्टादशवा अध्याय समाप्त ॥१२८॥

अध्याय १२६

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वहीं इन्द्रतीर्थ तथा यूपकपतीर्थ प्रसिद्ध हैं। वही केना या सगम हनूमन तीर्थ एवं अञ्जना

अञ्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः । तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२॥
 तत्र घृतान्ययाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे । इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यतप्रतः ॥३॥
 नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुभंदोत्कटः । तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेन्द्रोऽहरच्छिरः ॥४॥
 अपां च नमुचे, शत्रोस्तत्फेनवच्छरूपधृक् । शिरसिच्छत्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥५॥
 न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमयाऽऽविशत् । रसातलभव गाङ्गं वारिं यद्विश्वपावनम् ॥६॥
 वज्रादिष्टेन मार्गेण ध्यगमद्भूमिमण्डलम् । तज्जलं फेनाम्ना तु नदी फेनेति गच्छते ॥७॥
 तस्यास्तु संगमः पुण्यो गङ्गाया लोकविश्रुतः । सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोरिव ॥८॥
 हनूमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमाव्रतः । मार्जारत्वाद्भवन्मुबता विष्णुगङ्गाप्रसादतः ॥९॥
 मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव । हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यातं पुरोहितम् ॥१०॥
 'वृषाकर्पं चाञ्जकं च तत्रेदं प्रयतः शृणु । हिरण्य इति विख्यातो, वैत्यानां पूर्वजो बली ॥११॥
 तपस्तपसा सुरैः सर्वरजयोऽभूत्सुबाहणः । तस्यापि बलवान्मुनो देवानां दुर्जयः सदा ॥१२॥
 महाशनिरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता । तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम् ॥१३॥
 महाशनिर्महावीर्यं सततं रणमूर्धनि । जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे व्यवेदयत् ॥१४॥

तीर्थं है जहाँ स्वयं विष्णु निवास करते हैं ॥११॥ वहाँ स्नान और दान करने से पुन जन्म लेना दुर्लभ हो जाता है ॥२॥
 अब वहाँ का इतिहास बताता हूँ—गंगा के दक्षिण तट पर जैसी घटना हुई और उत्तर तीर पर जिस प्रकार इन्द्रेश्वर
 तीर्थ की स्थापना हुई, उसका वर्णन हे नारद । अन्तिमपूर्वक कालतमावसे सुनो ॥३॥ नमुचि इन्द्र का अति मदीयमत
 और बलवान् शत्रु था । उसका इन्द्र के साथ सपान हुआ । युद्ध मद्दुन्द ने फेन से उसका शिर उतार लिया ॥४॥
 वह फेन वच्छरूप होकर शत्रु नमुचि ने शिर को काटकर गंगा के दक्षिण तट पर गिर पड़ा और पृथिवी को फोडकर
 रसातल म घुस गया । विश्व की पवित्र कर देने वाला पाताल गंगा का जो जल बख के प्रवेश से बन हुये छिद्र-मार्ग
 से निकलकर पृथ्वी तल पर आया, उस जल की फेन नाम से प्रसिद्धि हुई । अतः उससे निकली नदी भी फेना कहलाने
 लगी ॥५-७॥ उसरा गंगा के साथ पावन कोटि प्रसिद्ध संगम गंगा-यमुना के संगम के समान सब पापा को नष्ट
 करने वाला हुआ ॥८॥ हनूमान् की उपमाता जहाँ स्नान करने से ही विष्णु और गंगा की कृपा से बिल्ली की
 आदृति को छोडकर परम मुन्दरी बन गई ॥९॥ उसका माजार-तीर्थ नाम से परिचय पहले ही सुनते कह चुका हूँ ।
 हनूमन तीर्थ भी उसी को कहा गया है । इसकी नया भी पहले ही कह दी गई है ॥१०॥ अब वृषाकर्प और अञ्जक
 तीर्थ कैसे बने, इसको सावधान होकर सुनो । बली हिरण्य दैत्या का पूर्वज था ॥११॥ वह अति मयानक दैत्य अपनी
 मठोर तपस्या के कारण देवा से न जीतने-योग्य (अजेय) हो गया ॥१२॥ उसका बलवान् पुत्र भी जिसका नाम
 महाशनि था—सदा देवताओं के लिए दुर्जय ही रहा । उसकी पराजिता नाम की स्त्री थी । उस महाशनि का
 इन्द्र ने साथ निरन्तर युद्ध होता रहा ॥१३॥ सदा न पराजयी उस दैत्य न उस अयड्यर युद्ध में ऐरावत के सहित
 इन्द्र को जीत कर पिता ने हारपा सौंप दिया ॥१४॥ जिस समय हाथी ने सहित इन्द्र की बाधकर ले आया, उस

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्त स्वसार वीक्ष्य ता तदा । विहाय क्रूरता दंत्यो हिरण्याय न्यवेदयत् ॥१५॥
 महाशनिपिता दंत्य पूर्ववा पूर्ववत्तर । शचीकान्त तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत् ॥१६॥
 महाशनिर्हिरं जित्वा जेतु वरुणमभ्यगात् । वरुणोऽपि महाबुद्धिं प्रादात्कन्या महाशने ॥१७॥
 उर्वधिं स्वालय प्रादाद्वरुणस्तु महाशने । तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशने ॥१८॥
 वारुणो चापि या कन्या सा प्रियाऽभू-महाशने । वीर्येण यशसा चापि शीर्येण न बलेन च ॥१९॥
 महाशनिमहादेवस्यैलोक्ये नोपमीयते । निरिन्द्रत्व गते लोक देवा सर्वे न्यमग्नयन् ॥२०॥

देवा ऊचुः

विष्णुरेवमब्रवात्ता स्यादस्यहन्ता स एव च । मग्नवृक्षा स एव स्याद्विद्र चान्य करिष्यति ॥२१॥

अहोवाच

एव समन्त्य ते देवा विष्णोमग्न न्यवेदयन् । ममावध्यो महादंत्यो महाशनिरिति श्रुत्वा ॥२२॥
 प्रायादारीश्वर विष्णु इवशूर वरुण तदा । वंशवो वरुण गत्वा प्राहृद्रस्य पराभवम् ॥२३॥
 तथा स्वर्पतक्तर्तव्य ययाऽऽप्नोति पुरंदर । सविष्णुवचनाच्छीघ्रं ययौ जलपतिर्मुन ॥२४॥
 सुतापतिं हिरण्यसुत विक्रान्तं त महाशनिम् । अतिसमानितस्तनं जामात्रं ददणं प्रभु ॥२५॥
 पप्रच्छाऽऽगमनं दंत्यो विनयाच्छशूर तदा । वरुण प्राह त दंत्य यदागमनकारणम् ॥२६॥

समय अपनी कहित इ द्राणी को देखकर उसने अपनी क्रूरता का त्यागकर ... का पिता हिरण्य ने हाथा सीप दिया । ॥१५॥ महागनि का वह दंत्य पिता जो पूव के समी दंत्या से अधिक बड़ी और दीपजीवी था दावी-यति को पाताल में बन्नी बना कर रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबंध कर दिया ॥१६॥ इधर महागनि ने इन्द्र को जीतकर वरुण को जीतने के लिये अभियान किया । महाबुद्धि वरुण ने इस आगत सक्त को टाकने के लिये महागनि को अपनी कन्या वारुणी और अपना वास-स्वान समुद्र दे दिया । फलस्वरूप उन आत्मा (वरुण और महागनि) में मित्रता हो गई ॥१७-१८॥ वरुण की जो कन्या वारुणी थी वह भी महागनि की प्राणप्रिया बन गई । वह वीर्येन्द्र अपने पराक्रम कीति गीय और बल में विलोक्य भ वेगोड हो गया । तब स्वगलाक का इन्द्र से शून्य देखकर देवताओं ने मन्त्रणा की ॥१९-२०॥

देवो ने कहा—विष्णु ही इन्द्र के दाता हूँ । वही दंत्या के हन्ता भी हैं । वही मन्त्रप्रप्ता हैं और वही दूसरा इन्द्र बनायेंगे ॥२१॥

अहो ने कहा—देवताओं ने इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा की और विष्णु से कहा कि हम लोगों से यह महागनि नाम का महादंत्य अवश्य है । यह मुनवर विष्णु अपने श्वर जेवर वरुण के पास गये । वही जाकर वेगव ने इन्द्र की पराजय की वषा वरुण से वही और बतलाया कि तुमको वीसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्र यही आ जायें । मुन ! विष्णु की बातों को मुनवर वरुण गीघ्र हो अपन पराक्रमी जामाला हिरण्य-गुप्त मह गनि के पास गये । उस जामाला ने अपने श्वर वरुण का अत्यन्त सम्मान किया और वही नेत्रता से उनका आन का कारण पूछा । वरुण ने अपने आन का जो कारण था वह बतला दिया ॥२२-२६॥

चरुण उवाच

इन्द्र देहि महाबाहो यस्त्वया निजित पुरा । बद्ध रसातलस्थ न देवानामधि सखे ॥२७॥
अस्माकं सर्वदा मान्य देहि त्व मम शत्रून् । बद्धा विमोक्षण शत्रोर्महते यशसं सताम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा यथचित्स दैत्येशो धरुणाय तम् । प्रादादिद्व शचीकान्त धारणन समन्वितम् ॥२९॥
 स दैत्यमध्येऽतिविराजमानो, हारं तदोवाच जलेशसनिधो ।
 सपुण्य खेवाय महापवारंमहाशनिमधयन्त यथापे ॥३०॥

महाशानिद्वयाच्च^१

केन त्वमिन्द्रोऽप्य कृतोऽसि केन, योयं तवेदग्बहु भायसे च ।
 त्व' सगरे 'शत्रुभिर्भाव्यसे' च, तयाऽपि चेदो भवसीति चित्रम् ॥३१॥
 अयापि बद्धा पुरुषण काचित्तस्या पतिस्ता मोक्षयतीति युक्तम् ।
 त्रिपोऽस्त्वतन्त्रा पुरुषप्रधानास्त्य, वं युमाभ्यिता शक्र साधो ॥३२॥
 बद्धो मया सगरे घाहनेन, 'क्वाप्यस्त्र ते अस्त्रमुह्यशयित ।
 चिन्तारत्न नन्दन योयितस्ता, यशो बल देवराजोपभोग्यम् ॥
 सर्वं हित्वा (त्व) कित् मुक्तो जलेऽदादाकादक्षसे जीवित धिक्त्ववेदम् ॥३३॥

यरण ने कहा—मधे! तुमने जिस इन्द्र को युद्ध में जीत लिया है और बन्दी बना कर रसातल में रख छोड़ा है उस देव-नरामोष हो महाबाहा! देदो। 'गुनाग'। वह हम लोषा के सग मान्य हैं इसलिए उनको मर देदो। सब को बन्दी बना कर पून छाड़ देने से विजयता की महान् कीर्ति होती है॥२-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छी बात है यह बहुर उत दैत्य ने निमा प्रवार उम सची-मति इन्द्र को एरावत के सहित यरण के हवा कर दिया। अपने दाय-मात्र म अति-गोमा-गोली उस दैत्य न वरुण व सामन ही इन्द्र की बरुण पुत्रा गामप्रिया स पुत्रा की और पुन इन्द्र स बहू ॥२९॥ ३०॥

महामानि न कहें—आज जिसके द्वारा इन्द्र बनाये गये हैं ? जिसके द्वारा पुत्र तुम गवितसम्पन्न हुये ? और विगत नारण तुम वरु चक्रवर धारण कर रहे हो ? तुम अब बार युद्ध में बाण्डूआ द्वारा बन्दी बनाये गये थे फिर भी तुम आज इन्द्र हो रह हो यह एक विचित्र घटना है। निम्नी पुण्यके द्वारा बन्दी बनाई गई स्त्री को उसका पति ही छोड़ना है यह मान गयी और उचित है। क्याकि मित्रों परवरा और पुण्या व ही मरणा रहनेवाणी होती है। राज ! गयो ! अब आज से तुम मुक्त हो आज गत तो तुम बन्दी बनकर स्त्री के हाथों में बन्द रहे। अब पुन पुन हीन तुम अपने बाह्य एरावन सहित युद्ध में मरे द्वारा बन्दी बनाय गये थे। तुम्हारा वह अद्भुत प्रभाव

१५ अ ०५—दत्त पद त वद वन दत्त एव वा सूत्रं वन जम्मागुरारः व०। २५ अ ०५ य। १५ अ ०५ मिषप्यनप्रो त। ४० अ०५नेमो त०। ५५ अ०५मास्त्य स्तोत्रवर्षिः व०। ६५ अ ०५न पुत्रो रण क्षत्रधर्म एव। ७५अ०५ददरास्त्योप्येव वा द्विवा विष्णु मस्तो जम्मागुरारः॥३३॥ तगो०।

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि
 एवं जानञ्जक कथं जलेशान्मक्तिं प्राप्तो नैव लज्जा भजेयाः^{॥३५॥}
 त्रिविष्टपस्थ. परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः
 संस्तूयमानश्च तयाऽऽपसरोभिन्नं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये^{॥३५॥}
 त्वं वृत्रहा नमचेष्ट्यापि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्ज्वाहुः
 एवं सुरास्त्वां परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतत्पयस्व^{॥३६॥}
 विकारभाष्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसविशन्ति
 भवादृशां दुःख्यवनारुज्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता^{॥३७॥}

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु वीर्येशो वरुणाय महात्मने । प्रादाविन्द्रं पुनश्चेवं वचनं तबभाषत^{॥३८॥}

महाशनिर्ववाच

अथ प्रभृष्यसौ शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः । इवशुरो भमयेन त्वं मुक्तिमाप्तोऽमि वासव^{॥३९॥}
 तया त्वं भूतपावेन वर्तेथा वरुण प्रति । नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वं वै क्षेप्स्ये चैव रसातलम्^{॥४०॥}

और शक्ति रखने वाला अस्त्र वज्र तो वही का भी नहीं रहा। तुम्हारे पास चिन्ता दूर करनेवाली चिन्तामणि, नन्दनवन, मनोमोहिनी स्त्रियाँ (अप्सरार्ये) कीर्ति, बल (सैन्यशक्ति) आदि देवराज के उपभोग योग्य सब साम-ग्रियाँ हैं, परन्तु आज तुम वरुण द्वारा छुड़ायें जा रहे हो। फिर भी जीना चाहते हो। विकार है तुम्हारी इस जीवना-काशा को। जीवन वही है जो भय का माण्डार हो। कीर्ति-विरोधी जीवन ही मृत्यु है। इन्द्र! ऐसा जानते हुए भी तुम वरुण की इपा से मुक्ति प्राप्त नर रहे हो। क्या इससे तुमको कुछ भी लज्जा नहीं हो रही है? मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि जब तुम सब देवताओं के बीच में स्वर्गासन पर विराजमान होते हो, दावी पला झलने लगती है और अप्सरार्ये स्तवन गान करने लगती हैं तब लज्जा तुमसे डर जाती है। तुमको बुझा (बुझने मारने वाले) नमुचि को मारने वाले, पुरावर पर्वतों के पक्ष-खेदन करने वाले वज्रबाहु आदि बहुर देवगण तुम्हारी पूजा करने हैं परन्तु आज से हे जयसील! अपनी इन सय उपाधियों को छोड़ दो। आपके समान अपकीर्ति-जन्य निन्दा (लोहापवाद) को पारर भी जो जीते हैं और इस लोक में मूढ़ दिखाते हैं, उन्हें देखकर अच्युत बमल्योनि, ब्रह्मा का हृदय घट क्यों नहीं जाता? ^{॥३९-३७॥}

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बहुर दैत्यन्द्र ने महात्मा वरुण के हाथ इन्द्र को सौंप दिया और पुनः उनसे यह वचन कहा ^{॥३८॥}

महाशनि ने कहा—आज से यह इन्द्र शिष्य और मेरे समुद्र वरुण गुरु होंगे। क्योंकि इन्द्र! तुमको इन्हीं के कारण मुक्ति प्राप्त हुई है। साथ ही तुम सर्वदा वरुण के प्रति दास-भाव से रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे तो पुनः तुमको बाँधकर पाताल की चारा में शल दूँगा ^{॥३९-४०॥}

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः । अन्नवीदग्च्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु ॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः । पौलोम्यां ग्राह तत्सर्वं यत्तच्छुभ्रपराभवम् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

एवमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाहं वरानने । निर्वापयामि येन स्वमात्मानं सुभगे वद ॥४३॥

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोद्भूति शक्र मायां पराभवम् । वरदानं तथा मृत्युं जानेहं बलसूदन ॥४४॥
तस्माद्यत्मातस्य मृत्पुत्रव्यापि पराभवः । जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येहं प्रीतये तव ॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो वीरः पितृव्यस्य सुतो बली । तस्मान्मम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च वपितः ॥४६॥
ब्रह्माणं तोषयामास तपसा नियमेन च । ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति ॥४७॥
तस्मात्पया वित्तरागो विस्मयो वा कथंचन । न कार्यः शृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु क्रमागतम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी ग्राहेण विनयान्विता

॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस इन्द्र को फटकार सुनाकर और बार-बार हँसते हुये उस दैत्य ने कहा—
'जोओ जाओ, वरुण की सेवा स्वीकार करो । इन्द्र इस प्रकार की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जा से उदास
होकर अपने मवन धाप और पौलोमी से शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को कहा ॥४१-४२॥

इन्द्र ने कहा—सुन्दर मुख वाली ! मैं इस प्रकार शत्रु द्वारा अपमानित किया गया हूँ, और कटु वचन सुन
चुका हूँ । मुमने ! जिस प्रकार इस अपमान का बदला ले सकूँ, ऐसी युक्ति बताओ, जिससे कि अपने को शान्त कर
सकूँ ॥४३॥

इन्द्राणी ने कहा—शक्र ! बलसूदन ! दानवों की उत्पत्ति, उनकी माया, उनका पराभव वरदान तथा उनकी
मृत्यु के कारण आदि बातों को मैं जानती हूँ । अतः जिससे उसकी मृत्यु अथवा पराजय होगी उसको मैं तुम्हारी
प्रसन्नता के लिये कह रही हूँ सुनो । वह मेरे पितृव्य (पापा) हिरण्य का बलवान् पुत्र है इसलिये वह मेरा भाई
हुआ । वह इस समय वरदान से उन्मत्त हो गया है । उसने तपस्या और सयम के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया था ।
इसी कारण उसको इस प्रकार बल प्राप्त हुआ है । सच है, तपस्या के द्वारा क्या नहीं प्राप्त होता है ? इसलिये
तुमको अपने मन में किसी प्रकार का शोक या विस्मय नहीं करना चाहिये । इस विषय में जो कुछ करना है, वह
सुनो ॥४४-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर विनीत पौलोमी ने पुन इन्द्र से कहा ॥४९॥

१ घ. च. ०न्य च ॥४१॥ स । २क. ०लोम्यां प्रा० । ३द. येनाऽऽशु चाऽऽयमा० । ४ घ दवित ।

५ घ. ०या न चित्ताऽन कार्या शक्र वदावन । एनाय दृणु तत्रेद कार्य ।

इन्द्राभ्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः । नासाध्यं लोकनायस्य विष्णोर्भवत्या हरस्य च ॥५०॥
 पुनश्चेदं मया कान्त श्रुतमस्त्यतिशोभनम् । रत्रीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप ॥५१॥
 तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो । तपो वा यज्ञकर्मादि ताभ्यामेव यतो भवेत् ॥५२॥
 तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद्भवान् । तत्र विष्णुं शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥५३॥
 श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रता । ता एव सर्वे जानन्ति धृतं तानिश्चराचरम् ॥५४॥
 पृथिव्यां सारभूत स्यात्तन्मध्ये दण्डक वनम् । तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूज्य प्रभो ॥५५॥
 विष्णुं या जगतामीशं दीनार्तातिहरं विभुम् । अनायानामिह भूणां मञ्जतां दुःखसागरे ॥५६॥
 हरो हरिषां गङ्गा वा ववाप्यन्यच्छरणं नहि । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयतां तस्माहितः ॥५७॥
 भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा क्रुध चैव मया सह । ततः प्राप्स्यसि वरुणानोशविष्णुप्रसादजम् ॥५८॥
 अज्ञात्वंकणुण कर्म फलं दास्यति कर्मिणः । ज्ञात्वा शतगुणां तत्स्याद्भार्यया च तदक्षयम् ॥५९॥
 पुंसः सर्वेषु कार्येषु भार्येवेह सहयिनी । स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना ॥६०॥
 एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्थफलं भवेत् । जायया तु कृतं नाप्य पुष्कलं पुदयो लभेत् ॥६१॥

इन्द्राणी ने कहा—तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं, यज्ञ के द्वारा सब कुछ साध्य है और लोकपति विष्णु तथा शिव की शक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसने अतिरिक्त है कान्त । एक और अति-उपयुक्त बात सुनी है। सुराधिप ! स्त्रियों की प्रकृति को स्त्रियाँ ही जानती हैं ॥५०-५१॥ प्रभो ! इगलिये भूमि और जन के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, क्योंकि तपस्या अथवा यज्ञ आदि इन्हीं दो पंथाओं में निष्पन्न होन है ॥५२॥ इनमें भी जो तीर्थभूमि है वहाँ आज आप जाइये। वहाँ विष्णु और शिव की पूजा कर आप अपने सब मनोरथों को प्राप्त कीजिए ॥५३॥ और यह भी गुना बताता है कि जो पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं वे सब कुछ जानती हैं। इन्द्रो व द्वाग यह वराचगत्स्य जगत् टिका हुआ है ॥५४॥ पृथ्वी का जो मुख्य प्रदेश है उसी के मध्य में दण्डक वन है। उगम जगज्जननी गौतमी वही है। प्रभो ! वही चलकर इस विष्णु अथवा दीनार्तजना के कष्ट को दूर करने वाले जगत्पति शङ्कर की पूजा करो ॥५५॥ इस विरात्ति-सागर में डूबने हुए अनाथ माय्या के लिये शार, विष्णु और गौतमी की छोड़कर अन्यत्र वही भी शरण नहीं है। इसलिये तन्वय होकर अपने प्रपंच प्रयत्नों में इन देवियों को प्रगप्त करा। सुम मरे साथ मलिनपूर्वक स्तोत्र-पाठ और तपस्या से उनकी उपासना करो। तदन्तर शार और विष्णु की कृपा में वरदाण प्राप्त करो ॥५६-५८॥ विना जाने कर्म करने में कर्म करने वाले को एक गुना फल मिलता है, जानकर करने पर वह फल सो गुना हो जाता है मरवीच करने से वह फल अन्त हो जाता है ॥५९॥ इस वरदा म पुण्य के प्रदेश काय मरवी ही महाका है। छोटे-छोटे कार्यो में भी उगने दिना मरवी नहीं या न होनी ॥६०॥ जोड़े जो काय किया जाता है, उगने भाषा पन्ध मिलता है। नाथ ! रती के साथ वरदा के पुत्र प्रदु क वरदा फल है ॥६१॥ इलीनिये वेदों में भी 'जाया अर्द्धमात्र है' ऐसा कहा गया है।

तस्मादेतत्सुविदितमर्थो' जाया इति श्रुतेः । श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी ॥६२॥
अशेषावप्रशमनी सर्वाभ्योष्टप्रदायिनी । तस्माद्गच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम् ॥६३॥
ततः शनून्निहत्याऽऽजो महत्सुखमवाप्स्यसि ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तपेऽयुस्त्वा सा गुरुरा भार्यया च शतक्रतुः । ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विश्रुताम् ॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थो ययौ ॥ (दृष्ट्वा तां) प्रीतिमान्हरिः । तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शमभवे ॥६६॥
गङ्गां नत्वा तु प्रथमं स्नात्वा च सा कृताञ्जलिः । शिवं कशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत् ॥६७॥

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिल चराचरं, सृजत्यवत्यस्ति न सृजतेऽस्मिन् ।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचिन्तुस्वात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः ॥६८॥
न यस्य तत्त्व सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः ।
स पार्वतीशः सकलामिलापदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्यकारिः ॥६९॥
सृष्ट्वा स्वयभूर्भगवान्विरिञ्चि, भयकरं चास्य शिरोऽन्वपश्यत ।
ऽऽत्वा नखाग्रैर्नखसक्तमेतन्विचलेपं तस्मादभवत्त्रिवर्गं ॥७०॥

मुना जाता है कि दण्डकारण्य में गौतमी नाम की जेय पापी को नष्ट करने वाली एक अतिपवित्र नदी है । इसलिये मेरे साथ वहाँ चलो और महाफलदाता पुण्य (तप) करो । तदनन्तर शत्रु को समर में भारकर महान् आनन्द प्राप्त करोगे ॥६२-६४॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो', यह कहकर व इन्द्र गुरु और भार्या के साथ प्रसिद्ध जगज्जननी दण्डकारण्य के मध्य में सुशोभित गौतमी के तट पर गये । उसको देखते ही इन्द्र प्रसन्न हो गये और देवदेव शत्रु की आराधना करने के लिये प्रस्तुत हो गये । पहले तो गया में स्नान किया, पुन हाथ जोड़कर शिव में ही अपनी एवान्त भावना स्थिर करते यह (अग्निम) स्तोत्र पढ़ने लगे ॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—जो अपनी माया में अखिल चराचर की सृष्टि करते, रक्षा करते और पुन सहार करते हैं, फिर भी अनासक्त ही रहते हैं, एष जो एक स्वतन्त्र अद्वैत, चिन्, मुख-स्वरूप हैं, ऐसे पिनाकपाणि (शंकर) हम पर प्रसन्न हो ॥६८॥ जिनके तत्त्व की वेदान्त ने रहस्य जानने वाले सनकादि ऋषि भी नहीं जानते हैं, वे पार्वतीपति, सब अभिलाषों को पूर्ण करनेवाले, अन्धकारिणु शिव भूय पर प्रसन्न हो ॥६९॥ स्वयम् भगवान् शंकर ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया, परन्तु जब उन्होंने उनके भयकर शिर की देखा तब नखाग्र से उसको काट डाला । किन्तु वह नख में ही चिपका रहा । पुन उसको फट दिया । उससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की उत्पत्ति हुई ॥७०॥ उषी त्रिवर्ग से पाप दरिद्रता लोभ, याचना, मोह, विपत्ति और अनन्त प्रभावशाली सामारिक दुःख उत्पन्न होते,

पाप दरिद्र त्वघ लोभयाञ्छे मोहो विपन्नेति ततोऽप्यनन्तम्	।
जातप्रभाव भवदुस्तरूप, बभूव तैर्व्याप्तिमिदं समस्तम्	॥७१॥
अवेक्ष्य सर्वं चकित सुरेशो, देवीमवोचज्जगदस्तमेति	।
स्व पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे शरण्ये सुभगे सुभद्रे	॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरवे जय त्व, भुक्ति समाधि परमा च भुक्ति	।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गोबुद्धिरासीरजरामरे स्वम्	॥७३॥
विद्यादिरूपेण जगत्त्रये स्व, रक्षा करोष्वेव 'मदाज्ञया च	।
स्वयैव सृष्ट भुवनत्रय स्याद्यत प्रकृत्यैव तयैव चित्रम्	॥७४॥
इत्येवमुक्ता दयिता हरेण, सल्लेखसलापपरा बभूव	।
श्रान्ता भवस्यार्धतनो सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजलं कराग्रै	॥७५॥
तस्माद्बभूव प्रथमं स धर्मो, लक्ष्मीरयौ दानमयो सुवृष्टि	।
सत्त्व सुसपन्नधर सरासि, धान्यानि पुष्पाणि फलानि चैव	॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि धनु सुवेष, शृङ्गारभाजीनि महौषधानि	।
नृत्यानि गीतान्यमृत पुराण, ध्रुतिस्मृती नीतिरथाश्रयानि	॥७७॥
शास्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्त्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि	।
इष्टानि पूतानि च मङ्गलानि, यानानि शृङ्गारभरणासनानि	॥७८॥

जिनसे यह सारा लोक भर-सा गया ॥७१॥ सुरेश ने जब यह सब देखा तो चकित हो गये और देवी से कहा कि सारा जगत् बिनाग की ओर जा रहा है। लोकेश्वरी! जगज्जननी! उमे! सुमये! सुभद्रे! शरणदायिनी! तुम रक्षा करो। वरदायिनी! जगत् को नाश से बचाने वाली! तुम्हारी जय हो! तुम भुक्ति परम समाधि (दान्ति) और भुक्ति हो। तुम स्वाहा स्वधा स्वस्ति अनादि सिद्धि वाणी बुद्धि और अन्न अमर हो ॥७२७३॥ तीनो लोको म तुम विद्या आदि रूप से रक्षा करती हो। मेरी आज्ञा से यत प्रवृत्तिरूपा तुमने ही त्रिभुवन की सृष्टि की है अतः यह त्रिभुवन आश्चर्यमय है। इस प्रकार शंकर ने अपनी प्रिया से कहा। तब उमा उनका आलिंगन प्रमत्त रूप से तल्लीन हो गई। इस प्रकार शंकर के पास म चिपकी हुई उमा ने ध्यात होकर अपनी अगुनिया से श्रम-स्वेद (पसीने) को गिराया ॥७४७५॥ उसी पसीने की बूंदों से पट्ट धर्म तब लक्ष्मी दान सुवृष्टि, पृथ्वी को समृद्ध बनाने वाले प्राणी सरोवर धान्य पुष्प, फल, सौभाग्य-पदार्थ, शरीर को सुन्दर बनाने वाले पदार्थ शृङ्गारोपयोगी वस्तुयें महौषधियाँ नृत्य गीत अमृत पुराण, ध्रुति-स्मृति, नीति, अन्न, वैद्यपदार्थ शास्त्र शास्त्र गृहोपयोगी अन्न तीर्थ कानन, इष्टधर्म पूतधर्म (तालाब खोदवाना आदि), अगल, सकारियाँ स्वच्छ आभूषण आसन आदि पदार्थ उत्पन्न हुये ॥७६-७८॥ देवि! इसी प्रकार तुम्हारे और शंकर ने अद्य-मयोग एतान्तावत न सुखद हास और सलापत्रय

भयाङ्गसंसर्गसुसंग्रहाससुस्वेदसंलापरह-प्रकारः ।

तथैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम् ॥७९॥

सुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि घेतस्तव देवि भावात् ।

तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जनित्रि, भीतं भयैर्म्यो जगतां प्रधाने ॥८०॥

एके तर्के विमुह्यन्ति स्त्रीयन्ते तत्र चापरे । शिवशक्त्योस्तदाऽद्वैतं सुन्दर नोमि विग्रहम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः ।

॥८२॥

शिव उवाच

विमभीष्टं वरयसे हरे वद परायणम् ।

॥८३॥

इन्द्र उवाच

यत्तद्यात्मे रिपुदचाऽऽसीद्दशनिंदक' शनिर्यया । तेन बद्धस्तलं नीत, परिभूतस्त्वनेकया ॥८४॥

याश्चापकस्तथा विद्धस्तद्वधाय त्विम वृत्ति । तवयं जगतामीश येन जेष्ये रिपु प्रभो ॥८५॥

तदेव देहि धीर्यं मे यच्चान्यद्रिपुनाशनम् । जात पराभवो यस्मात्तद्विनाशो हृते सति ॥

पुनर्जातमह मन्ये यर कीर्तिर्जयक्षियो.

॥८६॥

स्वेद (पसीन) से चराचरात्मक सत्कार (पापघ्न) उत्पन्न हुए। देवि! इस काम में जो प्रचुर सुख और नित्य सुम पौन हुआ है यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है। इमन्त्रिज हजयज्जनमी' कोर-प्रधाने' तुम भयभीत एवं विराजित म पडे हुए मरी रक्षा करो। कुछ मनीषी अपने तरों के जाल में पड़कर मोह में पडे जाते हैं और दूसरे उत्तम चीज हो जाते हैं। ऐम शिव और शक्ति अद्वैत (अभिन्न) एव सुन्दर विग्रह (शरीर) को मैं नमस्कार करना हूँ ॥७९-८१॥

ब्रह्मा ने कहा—दशप्रकार स्तुति करत हुए इन्द्र के सम्मुख शिव प्रकट हुए ॥८२॥

शिव ने कहा—इन्द्र! जिस उत्तम अभीष्ट को चाहते हो, वही ॥८३॥

इन्द्र ने कहा—मैरा कल्याण रिपु, जो कि दग्धन में साक्षान् शक्ति-मा जान पहना था मुझको शीघ्र रक्षा कर ले गया और वहाँ अनेको प्रकार से उमने मुझे आमानिन किया और बाधाओं में मरा हृदय छज्नी बना दिया। उसी के बग के सिधे धड़ मेरा प्रपन्न है। जगत् के स्वामी! इमन्त्रिज जिस प्रकार मैं उमको जीत मणूँ, वैसी ही मुझे शक्ति दीजिये। तारि मैं अन्य राजा का भी नाश कर सकूँ। जिसने मैं पराभूत हुआ हूँ, उमको बिलकट कर देने पर अपना पुनर्जन्म भयमना। कथानि कीर्ति बिजय और इन्द्री मे धेष्ट होती है ॥८४-८६॥

ब्रह्मोवाच

स शिवः शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपुः । वधमाप्नोति तस्मात्त्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम् ॥८७॥
 आराधयस्व पोलोभ्या सह देवं जनार्दनम् । लोकत्रयकशरण नारायणमनन्यधीः ॥८८॥
 ततः प्राप्स्यसि तस्माच्च भक्तश्चापि प्रियं हरे । पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः ॥८९॥
 मन्त्राभ्यासस्तपो वापि योगाभ्यासनमेव च । संगमे यत्र कुत्रापि सिद्धिदं मुनयो विदुः ॥९०॥
 किं पुनः संगमे विप्र गौतमोस्तिन्धुफेनयोः । गिरीणः गह्वरे यद्वा सरितामय संगमे ॥९१॥
 विप्रो धियैव भवति मुकुन्दाद्भिनिविष्टया । गङ्गाया दक्षिणे तीरे आपस्तम्बो मुनीश्वरः ॥९२॥
 आस्ते तस्याप्यहं तोयमगमं बलसूदन । तेन त्वं भार्यया चैव तोययस्व गदाधरम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गाया दक्षिणे तटे । तुष्टाव चेव प्रयतः स्नात्वा पुण्येऽय संगमे ॥९४॥
 फेनायाश्चैव गङ्गायास्तन देवं जनार्दनम् । वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैस्तपसाऽतोषयत्तदा ॥९५॥
 ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्प्रमापत । देहि मे शत्रुहन्तारमिष्याह भगवान्हरिः ॥९६॥
 दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः । तत्राभवच्छिवस्यैव गङ्गाविष्णवोः प्रसादतः ॥९७॥
 अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक् । चक्षपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम् ॥९८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनवर शिव ने इन्द्र से कहा 'अकेले मुझसे तुम्हारा धनु मारा नहीं जायगा । इसलिये तुम अव्यय, हरि, विष्णु की लोको के एकमात्र आधार, नारायण और जनार्दन देव की इन्द्राणी के साथ अनन्य भाव से आराधना करो । हरे ! इससे बाद तुम मुझसे और उनसे अपन प्रिय मनोरथ को प्राप्त करोगे ।' आदितर्ता महेश्वर ने पुन कहा—'मुनिय ! मे मन्त्राभ्यास, तपस्या, तथा योगाभ्यास को जिस किसी समय पर करन त सिद्धि प्रद कहा है । विप्र ! तब जहाँ गंगा, तिन्धु और फेना का संगम हो, गिरि-गुहा हो या अनेक नदिया का संगम हो उनके विषय मे तो कुछ कहना ही नहीं है । गंगा के दक्षिणी तट पर विप्र मुनीश्वर आपस्तम्ब मुकुन्द के वरणमल मे अपनी बुद्धि को लगाये हुए रह रहे हैं । बलसूदन ! उनका भी मैंने इसी प्रकार सन्तुष्ट किया है । अत तुम अपनी भार्या के साथ गदाधर विष्णु को प्रसन्न करो ॥८७ ९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गया और फेना के पवित्र संगम मे स्नात कर गया के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब के साथ इन्द्र एवाग्र मन से विष्णु की स्तुति करन लगे । विविध वैदिक मन्त्रों और तपस्या से इन्द्र ने जनार्दन देव की स्तुति की । तदनन्तर विष्णु प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा कि तुमको क्या दू । 'मुझे धनु का नाम करने वाला साधन प्रदान कीजिये' ऐसा इन्द्र ने कहा । यह मुनवर जनार्दन न इन्द्र से कहा—'दे दिया गया ऐसा समझो । उगी समय यही शिव, गंगा और विष्णु की कृपा से जल के बीच से शिव और विष्णु दोनों के मित्र जुड़े आकार का हाथ मे चक्र और शूल लिये हुए एक पुरुष उत्पन्न हुआ । उमने रसातल जाकर इन्द्र ने धनु उस दीव्य महागति को मार डाला । परन्तु वह अत्रक, वृषाक्षरि इन्द्र का मित्र बन गया । इन्द्र स्वर्ग मे रहने हुए भी सर्वदा उस वृषाक्षरि का अनुसरण

निजघान तदा दत्थमिन्द्रशत्रु महाशनिम् । सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः ॥१९१॥
दिव्यस्योऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम् । कुपिता प्रणयेनाभूदग्यासवतं विलोक्य तम् ॥
शचीं तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हंसप्रिदम् ॥१९०॥

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि शरणमृते सख्युर्वृषाकपेः । वारि वाऽपि हविर्यस्य अने प्रियकरं सदा ॥१९१॥
नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे । तस्माद्गार्हसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि ॥१९२॥
पतिव्रता प्रिया मे स्व धर्मं मन्त्रे सहायिनी । सापत्या च कुलीना च त्वत्सोऽग्या का प्रिया मम ॥१९३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गा प्राप्य महानदीम् । प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वै चक्रपाणिनः ॥१९४॥
तया शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः । जलोद्भवाच्च मे मित्रादग्जकास्लोकविश्रुतात् ॥१९५॥
उत्तीर्णतु त्वः शुभे इत् इन्द्रोऽहमच्युतः । किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी ॥१९६॥
दुष्करा तत्र नो भवितुः कित्वर्यावित्रय शुभे । जार्यव परमं मित्रं लोकरुपहितं विणी ॥१९७॥
सा चेत्कुलीना प्रियभाषिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाद्या ।
संपत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह शिलोवयाम् ॥१९८॥
तस्मात्तव प्रिया कान्ते ममेव शुभमागतम् । इतस्तवोदितं चैव कर्तव्यं नान्यदस्ति मे ॥१९९॥

करने लगे । इस प्रकार अपने सखा मे इन्द्र की प्रेममय आसक्ति देखकर शची कुपित हो गई । उसका कोप देखकर इन्द्र हँसने लगे और उसको समझाते हुए बोले ॥१९४-१९०॥

इन्द्र ने कहा—इन्द्राणि । मैं सखा वृषाकपि की छोड़कर और किसी के वश मे नहीं हूँ । प्रिये । मैं तुम्हारे अग की शपथ साकर कहता हूँ कि जिस वृषाकपि अग्नि को हवि और वारि (जल) सदा प्रिय हूँ उसको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता । इसलिए हे भामिनी । मुझसे शका की दृष्टि से मत बोलो ॥१९१-१९२॥ तुम धर्म और सलाह मे सदा सहायता करने वाली मेरी पतिव्रता प्रिया हो । ऐसी सन्तानवती, कुलीन तुमको छोड़कर और कौन मेरी प्रिया हो सकती है ? ॥१९३॥ तुम्हारे ही उपदेश से मैंने महानदी तथा को प्राप्त किया । देवादि देव चक्रपाणि विष्णु, देव शकर की कृपा और जल से उत्पन्न, लोक-प्रसिद्ध अब्जक और वृषाकपि नामक मित्र की सहायता से अपने दुखो मे पार पाया है । शुभमे । तुम्हारे ही प्रयत्नो से मैं अब्युत इन्द्र हुआ । जिसकी भार्या पति के अनुकूल आचरण करने वाली है, उसके लिये ससार मे कौन ऐसा काम है जो न हो सके । शुभे । उसके लिये मुनिन भी दुर्लभ नहीं है, अर्थ, धर्म और काम की तो बात ही क्या । पुरुष के लिये लोक-नरलोक दोनों का हित चाहने वाली स्त्री ही परम मित्र है ॥१९४-१९७॥ यह स्त्री यदि कुलीन है, प्रिय बोलने वाली है, पतिव्रता, रूप, गूणवती, और सपत्ति तथा विपत्ति मे समान रूप से रहने वाली है तब तो उसके लिये त्रिमुचन मे कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१९८॥ कान्ते । इसीलिये तुम्हारी मूर्खि के प्रभाव से ही मेरा शुभोदय हुआ है, बाज से मेरे लिये तुम्हारा सनेत ही एकमात्र वस्तुव्यप्रदर्शक है, दूसरा नहीं ॥१९९॥ सत्युक्त के समान परलोच और धर्म का सहायक

परलोके च यमं च सत्पुत्रसदृशं न च । आतस्थ पुरुषस्येह भार्यायद्भेयजं न हि ॥११०॥
 निःश्रेयसपदप्राप्तये तथा पापस्य मुक्तये । गङ्गाया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने ॥१११॥
 पर्मार्यकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये । शिवविष्णुवोरनन्यत्वज्ञानप्राप्त्यत्र मुक्तये ॥११२॥
 तस्मात्तव प्रिया साध्वि सर्वमेतन्मनोगतम् । अवाप्तं च शिवादिष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥११३॥
 इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मिश्रबलात्पुनः । वृषाकपिर्मम सखा यो आतस्त्वप्सु भामिनि ॥११४॥
 त्वं च प्रियसखो नित्यं नान्यत्प्रियतरं मम । तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशंकरौ ॥११५॥
 तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेप्सितमाप्तवान् । मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११६॥
 तस्मादेतद्विधाचिप्ये देवान्स्त्वाननुक्रमाम् । अनुमन्यन्तु श्रुपयो गङ्गा च हरिशंकरौ ॥११७॥
 इन्द्रेश्वरे चाब्जके च उभयोस्तीरयोः सुराः । एकत्र शंकरो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः ॥११८॥
 पावयन्वण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः । अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च ॥११९॥
 अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वं ते मुचितमाप्नुयुः । पापिष्ठाः पापतो मुचितमाप्नुयुर्धे च धामिजः ॥१२०॥
 तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः । अत्र किञ्चिच्च ये धृष्टरायस्यस्तिलमात्रकम् ॥१२१॥
 घातुम्यो ह्यक्षयं तत्स्यात्कामदं मोक्षदं तथा । धन्यः यश्चस्यमापुष्यमारोग्यं पुण्यधर्मनम् ॥१२२॥
 आह्वयानं विष्णुशंभ्वोश्च शात्वा स्नानान्च मुक्तिदम् । अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥१२३॥

दूसरा नहीं और दुखी पुरुष के लिए मार्ग के समान कोई ओपधि नहीं ॥११०॥ सुन्दर मुच वाली ! पाप से छूटने के लिये एक मोक्ष-पद पाने के लिए गंगा के समान और कोई साधन नहीं ॥१११॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तथा पाप-मुक्त होने के लिये शिव-विष्णु के ऐक्य-ज्ञान के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं ॥११२॥ पतिव्रते ! गुह्यारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरी समस्त मनोगत कामनायें शिव, विष्णु और गंगा के प्रसाद से पूर्ण हुई हैं ॥११३॥ इसके अतिरिक्त मेरा इन्द्रत्व भी मेरे मित्र की सहायता से ही पुनः स्थिर हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ । भामिनि ! मेरा मित्र भी दूसरा कोई नहीं अपितु वही वृषाकपि है, जो जल से उत्पन्न हुआ ॥११४॥ तुम मेरी सर्वदा की प्रिय सखी हो । तुमसे बढ़कर मेरा कोई प्रियपात्र नहीं । तीर्थों में गौतमी गंगा तथा देवों में विष्णु और शंकर ही मेरे मान्य हैं ॥११५॥ इनकी कृपा से ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुये हैं । यह त्रैलोक्य प्रतिष्ठित तीर्थ मुझे बहुत प्रिय है ॥११६॥ इसलिये मैं क्रमशः सब देवताओं से यही याचना करता हूँ और श्रुतिगण, गंगा, हरि और शंकर से भी मेरा यही अनुरोध है कि गंगा के दोनों तटों पर इन्द्रेश्वर और अब्जक नामक तीर्थों में सब देवता जमानुसार निवास करें । एक स्थान पर शंकर और दूसरे पर स्वयं जनार्दन निवास करें तथा इस वण्डकारण्य को साक्षात् विष्णु पवित्र करें । इसके मन्त्र में बिलने तीर्थ हैं वे सभी सब पुण्यों के देने वाले हों ॥११७-११९॥ यहाँ स्नान करने से ही सबको मुक्ति मिले । पापी इस तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो जाय । जो धार्मिक व्यक्ति स्नान करें, वे परम मुक्ति प्राप्त करें और उनकी पाँच आगे की तथा पाँच पीछे की पीड़ी मुक्त हो जाय ॥१२०॥ यहाँ जो कोई याचको को तिलपात्र भी दान करे दो वह दान के लिये अक्षय हो जाय । उस क्षुद्रदान से वह मोक्ष और अपने मनोरथ को प्राप्त करे ॥१२१॥ जो इस धन्य, कीर्तिप्रद, आयु, आरोग्य और पुण्य प्रद विष्णु और शम्भु के आह्वयान और स्नान से मुक्ति देने वाले इस तीर्थ के माहात्म्य का ध्वनन या पाठ करते हैं वे पुण्यात्मा हो जाते हैं और उनको इसी लोक

पुण्यभाजो भवेत्पुंस्ते तेभ्योऽत्रैव स्मृतिर्भवेत् । शिवविष्णुबोरशेषाद्यस्यविच्छेदकारिणी ॥
यां प्रायेयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसा ॥१२४॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्यवमेवेति त देवा ऋषयोऽब्रुवन् । गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थानां मोक्षदायिनाम् ॥१२५॥
देवर्षिसिद्धसेध्याना सहस्राण्यस्य सप्त वै । तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु ॥१२६॥
अञ्जक हृदय प्रोक्त गोदावर्यां मुनीश्वरं । विश्रामस्थानमोशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च ॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्यैत्रेश्वराविसप्तसहस्र
तीर्थदक्षिणकूलस्यापस्तम्बसोमेश्वरफेनासगमवृषाकपाञ्जकवैष्णवहनुमत्तीर्थमार्जा
देत्याद्येकादशतीर्थवर्णनं नामैकोनविंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१२९॥
गौतमीमाहात्म्ये पष्ठितमोऽध्याय ॥६०॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ख्यात तीर्थं त्रैलोक्यविभुतम् । स्मरणावप्यशेषाद्यस्यविष्वसनसमम् ॥१॥

म सब पापा को नष्ट करने देने वाली गिरि और विष्णु की स्मृति हो जाती है जिस स्मृति के लिये इन्द्रिय और मन
पर समय रखने वाले मुनि प्रायना किया करते हैं ॥१२२ १२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इंद्र की बात सुनकर देवताओं और ऋषियों ने कहा कि आपका कहा हुआ सब सत्य होगा ।
गौतमी के उत्तर तट पर देव ऋषि और सिद्धजनों के रहने योग्य सात हजार मोक्षदायक तीर्थ हैं । इसी प्रकार
दक्षिणी तीर पर ग्यारह तीर्थ हैं । मुनीश्वरों ने ईश विष्णु और ब्रह्मा के निवास-स्थान अञ्जक को गोदावरी का
हृदय स्वीकार किया है ॥१२५ १२७॥

श्रीब्रह्मपुराण में गौतमी के उत्तर तट पर स्थित ईश्वर आदि सात हजार तीर्थों
एवं दक्षिण तटवर्ती आपस्तम्ब सोमेश्वर अञ्जक आदि ग्यारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनतीसवाँ
अध्याय मयाप्त ॥१२९॥

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) तीना लोक में प्रसिद्ध आपस्तम्ब नामक एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र

आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायज्ञा । तस्य भार्याश्रमसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२॥
 तस्य पुत्रो महाप्राज्ञ कर्किनामाश्रय तत्त्ववित् । तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तम ॥३॥
 तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर । शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४॥

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणां को नु पूज्य स्याद्देवानां मुनिसत्तम । भुक्तिर्मुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत् ॥५॥
 अतन्तश्चापि को विप्र देवानामपि देवतम् । यस्तं क इज्यते देव को वेदेष्वनुगीयते ॥
 एव मे सशय छेत्तु वदागस्त्य महामुने ॥६॥

अगस्त्य उवाच

धर्मायकाममोक्षाणां प्रमाणं शब्द उच्यते । तत्रापि वैदिक शब्द प्रमाणं परमं मतं ॥७॥
 वदेन गीयते यस्तु पुरुष स परात्परः । मृतोऽपरः स विशेषो ह्यमृतः पर उच्यते ॥८॥
 योऽमृतः स परो ज्ञेयो ह्यपरो भूतं उच्यते । गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत् ॥९॥
 ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोऽच्यते । त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हि तत् ॥१०॥
 एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः । लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत् ॥११॥
 यस्तत्त्व वेत्ति परमं च विद्वान् चेतः । तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदो ॥ उच्यते ॥१२॥

से समस्त पापों का विध्वंस हो जाता है । महायज्ञस्वी एव महाबुद्धिमान् आपस्तम्ब नामक एक ऋषिः । उनकी अक्षसूत्रा नाम की पतिव्रता भार्या थी । उनके तत्पन्न तथा महामेधावी कर्कि नामक पुत्र था । एक दिन मुनि-पुङ्गव अगस्त्य उनके आश्रम में आये । मुनीश्वर आपस्तम्ब ने उनकी पूजा की । पुनः अपने समस्त शिष्यों के साथ बुद्धिमान् मुनि ने मान्य अस्तिथि से पूछा ॥१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—भूमिश्रेष्ठ ! तीनों देवों में कौन पूज्य है ? किसके द्वारा भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ? कौन अनादि है ? विप्र ! कौन अनन्त और देवों का भी पूज्य देव है ? यों से किसकी पूजा की जाती है ? किसकी वेदों में स्तुति की गई है ? यही मेरा सदेह है जिसका निराकरण चाहता हूँ । महामुनि अगस्त्य । कृपान्वर कहिये ॥५६॥

अगस्त्य ने कहा—धर्म अथ काम और मोक्ष के शब्द ही प्रमाण कहे जाते हैं । उनमें भी वैदिक शब्द परम प्रमाण माने जाते हैं । वेद जिस पुरुष का गान करते हैं वह परात्पर कहा जाता है । पर अमृत है और अपर मृत है । जो अमृत (अप्रत्यक्ष) है वह पर और जो मृत (प्रत्यक्ष) है वह अपर कहा जाता है । वह मृत गुणों की अग्नि व्याप्ति (उत्पर्षापवष) भेद से तीन प्रकार का हो जाता है । ब्रह्मा विष्णु और शिव एक के ही तीन रूप हैं । इन तीनों देवों से भी जो एक ही वेद्य है वही पर है । एक की ही गुण-कर्म के भेद से बहुत रूपों में व्याप्ति होती है । लोकों के उपकार के लिए ही ये तीन रूप होते हैं । जो परमवत्त्व को जानता है वही विद्वान् है दूसरा नहीं । उनमें जो भेद

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भूदम् । प्रयाणामपि देवानां भूतिभेदः पृथक्पृथक् ॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक् । निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४॥

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् । तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमुद्रयाऽऽशु कीर्तयताम् ॥
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाचयमब्रवीत् ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येतां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम् । तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुजातमनः ॥१७॥
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः । तमेव साधय ह्रं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाद्यौघसंहर्ता दण्डके वने ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः । भुक्तिवो मुक्तिवः पुंसां साकारोऽय निराकृतिः ॥१९॥
'सृष्ट्याकारस्ततः' शक्तः पालनाकार एव च । दाता' च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०॥

द्वि रजता है, वह लिंग-भेदी कहा जाता है । जो इन तीनों में भेद बतलाते हैं, उनके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नहीं । इन तीनों में केवल पृथक्-पृथक् स्वरूप का ही भेद है । सर्वत्र साकार पदार्थों में वेद ही पृथक्-पृथक् प्रमाण माने जाते हैं । जो एक निराकार तत्त्व है, वह उन तीनों से पर माना गया है ॥७-१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—इस कथन से कोई भी निर्णय मुझे ज्ञात नहीं हुआ । इसमें भी जो कुछ रहस्य है, उसको मही माँति विचार कर कहिये, क्योंकि निःसंशय और निर्विकल्प (ननु नष्ट रहित) ज्ञान ही सब प्रकार की समृद्धियों का एकमात्र स्थान है ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर भगवान् अगस्त्य ने कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—यद्यपि इन देवों में परस्पर भेद नहीं है तो भी आवन्दारत्ना शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इस प्रपञ्च का जो निमित्त कारण है, वह पर ज्योति शिव है । मुने 'अपनी उत्कृष्ट भक्ति से उसी शक्ति की साधना करो । दण्डक वन में गौतमी के तट पर सब पाप-समूह को नष्ट करने वाले शक्ति रहते हैं, वही जाओ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि भी इन बातों को सुनकर आपस्तम्ब परच प्रसन्न हुये । अनुप्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्म साकार है और निराकार भी । वही सृष्टि करने वाला, पालन करने वाला, देने वाला और सबका संहार करने वाला भी है । उसी में सब कुछ समाप्त हो जाता है ॥१९-२०॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृति कर्तृरूपा घण्णवी पालनी तथा । ख्दाकृतिनिहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

आपतम्बस्तदा गङ्गा मत्वा स्नात्वा यतव्रत । तुष्टाय शकर देव स्तोत्रेणानेन नारद ॥२२॥

आपस्तम्ब उवाच

काण्डेषु बह्वि कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षावि द्रुपत्सु हेम ।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै, त सोमनाथ शरणं व्रजामि ॥२३॥
यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
यो विश्वरूपः सदसत्परो यः, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२४॥
य स्मृत्य दारिद्र्यमहभिज्ञापरोगादिभिर्न स्पृश्यते, शरीरी
यमाभिताड्वेप्सितमाम्नुवन्ति, सोमेश्वर ॥ शरणं व्रजामि ॥२५॥
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मावयस्तत्र समोहिताश्च ।
एव हिंसा येन कृतं शरीरं, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२६॥
यस्मै मनो गच्छति मग्नप्रत, हुत हविर्पा य कृता य पूजा
वत् हविर्वैन सुरा भजन्ते, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२७॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मा की आकृति कर्तारूप है विष्णु की आकृति पालन करने वाली और शत्रु की आकृति नाश करने वाली है । यह सब वेदों के द्वारा समर्पित है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! तदनन्तर आपस्तम्ब गंगा-तट पर गये और उसमें स्नानकर सयत् नाव से इस आगे कहे स्तोत्र से शकर की स्तुति करने लगे ॥२२॥

आपस्तम्ब ने कहा—जिस प्रकार सभी काण्ड में अग्नि फूलों में सुगन्ध बीजों में वृक्ष और पत्थरों में सुवर्ण रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों में जो छिपा हुआ है उस सोमनाथ की शरण में आया हूँ । जिसने अनायास इस विश्व की रचना कर दी जो त्रिभुवन का धाता और विधाता है जो विश्वरूप सत् और असत् से परे है मैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसके स्मरण करने से प्राणी दरिद्रता महामिथ्या एव रोगादि से सर्वथा पृथक् हो जाता है और जिसकी शरण में आये हुये व्यक्ति अपने मन चाहे फल को प्राप्त करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में मैं जाता हूँ । आदि काल में ब्रह्मा आदि जिसके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त कर पुनः उसी के ध्यान में समाविष्ट हो गये तथा जिसने अपने शरीर को दो भागों (प्रकृति पुरुष के रूप) में बांट दिया उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसके पास सबके मनस्कार जाते हैं जिसको मन्त्र में पवित्र की हुई आहुतियाँ और हवि प्राप्त होती हैं जिसके निकट की हुई पूजा चली जाती है और जिसकी दी हुई हवि सब देवता ग्रहण करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिससे

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रज्ञातं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्मभन्यत् ।
यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२८॥
यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२९॥
यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहरवमेव ।
प्रीतिपेशः सौख्यप्रणादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥३०॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य ।
नित्यं शिषो यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनिं न्वर धृष्विति चाऽह तं म् ।
आत्मार्यं च परार्यं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम् ॥३२॥
सर्वान्कामान्पुमुस्ते ये स्नात्वा देवसोमेश्वरम् । पश्येद्युजंगतामीशमसिधर्याह शिषो मुनिम् ॥३३॥
ततः प्रभृति तृतीयमापस्तम्बमुवाहृतम् । अनाद्यविद्यातिमिरत्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दक्षिणकूलस्यापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थवर्णन
नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥
गीतमीमाहात्म्ये एकपटितमोऽध्यायः ॥६१॥

बढकर उत्तम कोई पदार्थ नहीं है जिससे बढकर कोई अति सूक्ष्म वस्तु नहीं है और जिस महान् से बढकर कोई महान् पदार्थ नहीं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसकी आज्ञा से यह विचित्र, विविध, महान्, और अचिन्त्य रूप वाला विषय एकक्रिय (सहकर्मी) के समान पीछे-पीछे चलता है, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसमें सम्पूर्ण विषय की विभूतियाँ, सबका स्वामित्व, कर्तृत्व, दानशीलता, महत्त्व, प्रीति, यश, सौख्य और अनादि धर्म समाहित हैं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जो नित्य है, शरण देने वाला है सबका पूज्य है जो शरण में आये हुये से नित्य प्रेम करने वाला है, जो नित्य शिव (मंगल) है, जो सब का रूप है उस सोमेश्वर देव की शरण में जाता हूँ ॥२९-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! मुनि की उपर्युक्त स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उस मुनिवर से वर माँगने के लिए कहा । आपस्तम्ब ने भी आत्मकल्याण तथा लोककल्याण की दृष्टि से कहा कि जो यहाँ स्नान करके जगत् के स्वामी ईश (शक्र) का दर्शन करें वे अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करें । यह सुनकर शिव ने कहा 'ऐसा ही हो' । तब से बहुतीर्थ आपस्तम्ब कहा जाता है, जो अनादि अविद्या रूपी अघकार के समूह को नष्ट कर देने में समर्थ है ॥३२-३४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आपस्तम्बतीर्थवर्णन नामक एक ही तीसरी अध्याय समाप्त ॥१३०॥

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अशेषपापक्षमनं तत्र घृत्तमिदं शृणु ॥१॥
 तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासीदितिहासं पुरातनम् । सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनो मुने ॥२॥
 तस्याः पुत्रो महाश्रेष्ठो श्वानो नित्यं जनाननु । गामिनो पवनाहारौ चतुरक्षो धर्मप्रियौ ॥३॥
 गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पिताम्बुजम् । रक्षन्तोमनुजाम्भुस्ते राक्षसा वृत्यदानवाः ॥४॥
 रक्षन्तो तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्नारं शुनीम् । प्रलोभयित्वा विविधैर्वावयैर्वानैश्च यत्नत ॥५॥
 हुता गा राक्षसः पार्षः पञ्चयै कल्पिताः शुभाः । तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी ॥६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसः पार्श्वेस्ताडयित्वा प्रहारकः । नीता गा यज्ञसिद्धयर्थं कल्पिता पशवः सुरा ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाच निशम्याऽऽशु सुरान्प्राह बृहस्पतिः

॥८॥

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों की प्रीति बढ़ाने वाला तथा समस्त पापों को दूर करने वाला एक यम-तीर्थ है, उसतीर्थ में जो घटना हुई उसको सुनो । उसके विषय में यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है । मुने । सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (देवों की कुतिया) थी । उसके दो बहुत अच्छे पुत्र (कुत्ते) थे, जो घास पीकर रहने वाले, सर्वदा प्यार से देवों के पीछे चलने वाले, चतुरक्ष (चार नेत्र वाले) और यम के प्रिय थे । वह देव-शुनी यज्ञ के लिए पालित-पशुओं और गायों की रक्षा करती थी । एक बार राजस और दैत्य उस रक्षा करने वाली कुतिया के पास गये । और उसको चतुराई से विविध प्रकार के साध-मदार्यों के लोभ में फँसावर और चतुल वचनों के द्वारा उसको बोझा देकर वे पापी राक्षस सब गायों और पशुओं को चुरा ले गये । उन पशुओं को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया । तब वह कुतिया देवों के पास आकर बोली ॥१-६॥

सरमा ने कहा—देवगण । राक्षसों ने मुझे रस्सी से बाँधकर ढड़ों से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये रक्षित सब गायों को ले जाकर अपने पशु बना लिये हैं ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी बातों को सुनकर बृहस्पति ने देवों से कहा ॥८॥

बृहस्पतिरुवाच ।

इयं विकृतस्वाऽऽस्ते अस्या पापं च लक्षये । अस्या मत्तनं तां भावो नीता नान्येन हेतुना ॥
पापेयं सुकृतोवेति लक्षयते देहचोदितं ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्बन्धनाच्छकं पदा तां प्राहरच्छुनीम् । पदाघातात्तदा तस्या मुखाक्षीरं प्रसृज्यते ॥१०॥
पुनः प्राह शचीभर्ता क्षीरं पीतं स्वयां शुनि । राक्षसैश्च तदा दत्तं तस्मात्प्रीतास्तु या मम ॥११॥

सरभोवाच

नापराधोऽस्ति मे नाथ मया चाग्न्यस्वापि कस्यचित् । नापराधो न चोपेक्षा समाहितः ॥
तस्माद्बुद्धोऽस्ति किं नाथ रिपवो बलिनस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्वासा तस्या विषदितम् । सत्यं शक्रं त्वयि द्रुष्ट्वा रिपूणां पक्षकारिणो ॥१३॥
ततः शशाप तां शक्रं पापिष्ठे त्वं शुनी भव । मृत्युलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणो ॥१४॥
तदेव त्वं तु शापेन मानुषे सा व्यवजायते । यया ज्ञप्ता मय्यवता पापत्वा ह्यतिभीषणा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—यह इस समय विकृत रूप दिखाई देती है जिसमें उसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है । इसी की राय से मैंने चुराई गई है और कोई कारण नहीं । यह पापिष्ठा अपनी शारीरिक चेष्टाओं से निर्दोष-सी दिखाई दे रही है ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने गुरु की बात को सुनकर इन्द्र ने उस कुतिया को पीर से मार-र । उस समय पर की चोट से उसके मह ने दूध निकल आया । पुनः इन्द्र ने कहा—‘शुनी’ ! तुमने राक्षसों का दिया हुआ दूध पिया है इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी माया को ले गये हैं ॥१०-११॥

सरमा ने कहा—नाथ ! ‘मम मेरा अराधक नहीं है किसी दूसरे का भी नहीं है । देवेन्द्र ! न तो मेरा अपराध है और न इस विषय में मेरी उदासीनता ही है । नाथ ! वे शत्रु ! (राक्षस) बली हैं । आप क्या कर रहे हैं ? ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब देवगुरु ने ध्यान लगाकर उसकी वषट् चण्डाओं को जान लिया और कहा ‘शत्रु ! सनमूष यह द्रुष्टा शत्रुओं का पक्ष करने वाली है ॥१३॥ तब इन्द्र ने उसकी नाप दिया पापिष्ठे ! तुम मृत्युलोक में अज्ञानवा पाप करने वाली पापकारिणी कुतिया हो जाओ ॥१४॥ तब इन्द्र के नाथ म यह मृत्युलोक में जैसा कि इन्द्र ने नाप दिया था अपने पापों के कारण भयङ्कर कुतिया हुई ॥१५॥ शहर देवेन्द्र उन राक्षसों द्वारा चुराई हुई गोश्राओं से

गावो या राक्षसेर्नोतास्तामामानयनाय च । यत्नं कुर्वन्सुरपतिविष्णवे तन्मृषेदयत् ॥१६॥
 विष्णुर्देत्याश्च दनुजान्गोहर्तुश्चैव राक्षसान् । हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च । ॥१७॥
 शाङ्गं यत्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च । जितारिः पूजितो देवः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः ॥१८॥
 यत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः । तत्रस्यान्दैत्यदनुजाग्राहसाश्च बलीयसः ॥१९॥
 पुनर्जने स वै विष्णुर्गा धर्मेताश्च राक्षसः । तत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिरिति धृतः ॥२०॥
 मुप्यमानस्ततो विष्णुर्वितिजे राक्षसः सह । ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ॥२१॥
 अन्वगच्छततो विष्णुस्तान्नेव परमेश्वरः । गच्छता तानवाप्य शाङ्गमुवर्तमनोजवः ॥२२॥
 बाणैस्ताम्र्याह्नद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे । देवारयः क्षयं मोता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२३॥
 शाङ्गमुवर्तमहावेगः सुस्वनेश्च सुमन्त्रितः । क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ॥२४॥
 गावो लब्धा यत्र देवर्षाणतीर्थं तदुच्यते । वैष्णवं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विधुतम् ॥२५॥
 पदवर्षे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे । प्रदुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संयवेद्यम् ॥२६॥
 तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं चैवाऽऽश्रयं गवाम् । तैर्गाभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत ॥२७॥
 यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः । देवानां यज्ञं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२८॥

आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णु से कह सुनायी ॥१६॥ विष्णु यह सुनकर उन गौओं के चुराने वाले राक्षसों, दनुजों और दैत्यों को मारने के लिये उत्तत हो गए । उन्होंने दैत्यों को नष्ट करने वाले लोक-विख्यात महान् शाङ्ग (धनुष) को हाथ में लिया ॥१७॥ शत्रुविजयी, देवों से पूजित तथा सत्तार के स्वामी विष्णु हाथ में धनुष लेकर उस दण्डकारण्य में गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसों को मारने लगे । पुनः शाङ्ग पाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने उन गावों के चुराने वाले राक्षसों को भी मार डाला । इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यों और राक्षसों से युद्ध करने लगे । महामुने । विष्णु के मय से वे राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर भाग गये ॥१८-२१॥ तब परमेश्वर विष्णु ने गङ्ग पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर व्रत के समान वेग-वाले अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से गया के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया । इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसों का संहार कर डाला ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे सभी देव-शत्रु धनुष से फेंके गये सुमन्त्रित (मन्त्री द्वारा प्रयुक्त) शस्त्रीर शब्द करने वाले और महावेग वाले विष्णु के बाणों से नष्ट कर दिये गये ॥२४॥ जहाँ देवताओं ने गौओं को पाया उसको बाणतीर्थ कहा जाता है । लोक-विदित वैष्णवं तीर्थ एव यज्ञतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ॥२५॥ गंगा के दक्षिण तट पर वे मयै यज्ञ-यज्ञ बनाई गई थी । वे देवता यह देख दौढ़कर गंगा में घुस गये ॥२६॥ उसके मध्य में उन्होंने गौओं के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया । वहाँ उन गौओं के द्वारा देव-यज्ञ सम्पन्न हुआ ॥२७॥ गंगा के मध्य में जहाँ वह सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला देवों का शुभ-यज्ञ हुआ, वह योतीर्थ और यज्ञ-तीर्थ कहलाया ॥२८॥ महाकान्तिमान् ! इस असार और अपार ससार रूपी सागर से पार लगाने में नौका के समान, विरवेश्वरी,

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते । असारपारसंसारसागरोत्तरणे तरिः ॥२९॥
 विश्वेश्वरी योगमाया सद्भवतामयदायिनी । गोरक्षं तु ततस्तोयं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३०॥
 ती इयानी सरमापुनो चतुरस्रो यमप्रियो । मातुः शार्पं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम् ॥३१॥
 निवेद्य तु ययान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम् । विज्ञापकरणं चापि पप्रच्छतुरुभौ यमम् ॥३२॥
 ॥ ताम्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत् । श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम ॥३३॥
 लोकत्रयं कपायन्यां गीतम्यां दण्डके वने । अद्यया परया वरस सुस्नातः सुसमाहितः ॥३४॥
 ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामोजं च ययाक्रमम् । स्तुहि त्वं सर्वभावेन भूत्वौ प्रीतिमवाप्स्यतः ॥३५॥
 तस्मिन्नुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तवा । तयोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतर्पणयोर्वम, ॥३६॥
 गीतम्यामयहारिण्यां सुसमाहितमानसः । तयं च तोययामास गङ्गायां सुरसत्तमान् ॥३७॥
 इवम्यां च सहितः धीमान्दक्षिणाश्रयितः प्रभुः । ब्रह्माणं तोययामास भान्त्वं दक्षिणे तटे ॥३८॥
 ईशानमुतरे विष्णुं स्वयं यमः प्रतापवान् । वसवन्तो वरं धेष्टं सरमाया विज्ञापकम् ॥
 यरानमाधत ब्रह्मलोकानामुपकारकान् ॥३९॥

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । आत्मार्यं च परार्यं च ते कामानान्पुनः शुभान् ॥४०॥
 धाननीयं तु ये स्नात्वा शार्ङ्गपाणिं स्मरन्ति वै । तेभ्यो वारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्दुगे दुगे ॥४१॥

योगमाया और अर्च्य भक्तों की अमय प्रदान करने वाली गंगा-शक्ति मूर्ति धारण करने उस यम ने उपस्थित थी । इसके बाद गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना ॥२९-३०॥

इधर सरमा के पुत्र उन दोनों यम के प्रिय-प्राथ चार आँखों वाले स्वानों ने माता के अपराध और पाप को यथावत् विस्तारपूर्वक यम से कह सुनाया और माता के धाममोचन का उपाय तथा उसको मुक्त पहुँचाने वाले कार्य के विषय से भी पूछा ॥३१-३२॥ सूर्य-तनय यम ने अपने प्रिय स्वानों के साथ सूर्य के पास आकर सारी कथा कह सुनाई । यह सुनकर सूर्य ने अपने पुत्र से कहा—‘सुरधेय’ वत्स’ तुम दण्डक वन से त्रैलोक्य की पवित्र करने वाली गंगा से अति श्रद्धा के साथ स्नान करो और एकाग्र मन से ब्रह्मा, विष्णु भेरी (सूर्य की) और शंकर की जमशान्ति करो । ऐसा करने से तुम्हारे ये श्रुत्य सब प्रकार का सुख प्राप्त करोगे ॥३३-३५॥ पिता की बातों को सुनकर यम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने सेवकों को बुली बनाने की इच्छा से देवा को तृप्त करने के लिये पापहारिणी गंगा के पाग गये । अपने बुत्तों के सहित दक्षिण दिशा में स्वामी प्रभु यम ने एकाग्र-मन से गंगा में स्नान कर धेष्ट देवताओं को प्रगन्न किया । पहले गंगा के दक्षिण तट पर ब्रह्मा और सूर्य को तथा उत्तर तट पर ईशान और विष्णु को स्वयं प्रतापी यम ने प्रसन्न किया । देवों ने प्रसन्न होकर सरमा को पाप-रहित करने के लिये वर प्रदान किया । फिर स्वयं यम ने बहून-से शोभास्त्राणवारी बरों की भी माँगा ॥३६-३९॥

यम ने कहा—हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ! जो कोई इन तीर्थों में आत्मार्य या परार्य स्नान करे तो उन्हें अवश्य अपने दुःख मनोरथों की प्राप्ति होगी । आज तीर्थ में स्नान कर जो धार्ष्ट्य-पाणि विष्णु का स्मरण करे, उनको

गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतवत । ब्रह्माण त नमस्याय द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम् ॥४२॥
 य कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुधरा । प्रदक्षिणोक्ता तन किंचिद्दत्त्वा वसु द्विजम् ॥४३॥
 तद्देवयजन प्राप्य किंचिदधृत्वा हृताशने । अश्वमेधादियज्ञाना फल प्राप्नोति पुष्कलम् ॥४४॥
 य सकृत्तत्र पठति गायत्री वेदमातरम् । अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो मुक्तिभाजनम् ॥४५॥
 स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्ति देवीं तु भक्तित । पूजयित्वा यथाग्याय सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥४६॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशाना शक्तिर्माता त्रयीमयी । सर्वान्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेद्यस्ता) ॥
 पुत्रवाग्यनयान्भवेत् ॥४७॥
 आदित्य भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो भर । स्नात्वा पश्येत् तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणा ॥४८॥
 कूले यद्वोतर चंद्र गङ्गाया देवसूदनम् । स्नात्वा पश्येत् तत्तत्त्वा तस्य विष्णो पर पदम् ॥४९॥
 यतःशर तनो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम् । स्नात् पश्यति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि ॥५०॥
 विष्णुमक्षय पुण्य फलद कोतिवर्धनम् । तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च ॥
 अपि दुष्कृतकर्माण पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

‘इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि त्रीणि नारद । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यवम् ॥५२॥

युग-युग तक दरिद्रता के कण्ठ नहीं होंगे । जो समयी व्यक्ति गोतीर्थ और ब्रह्मतीर्थ में स्नान कर उस ब्रह्मा को नमस्कार करता है और द्वीप की प्रदक्षिणा करता है उसे सात द्वीप वाली वसुमती पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है । ब्रह्मा यदि कुछ धन ब्राह्मणों को दे देता और उस देव-यजन के पास जाकर अग्नि में हवन कर देता है तब तो अश्वमेध यज्ञ का अपरिमित फल उसको प्राप्त हो जाता है । जो वहाँ निष्काम होकर एक बार भी वेद भाता गायत्री का पाठ करता है वह सब वेदों का पाठ करने का फल प्राप्त करता है एवं मुक्तिका अधिकारी हो जाता है । जो दक्षिण तट पर स्नान कर शक्ति देवी की मक्तिपूवक यथा विधि पूजा करता है वह अपने सारे मनोरथों को प जाता है । जो ब्रह्मा विष्णु और महेश की शक्ति वेदमयी माता की पूजा करता है वह अपने सब मनोरथों को प्राप्त कर पुत्रवान् और धनवान् होता है । मनुष्य नियम-पूर्वक दक्षिण तट पर स्नान कर भगवान् भूय का दशन करता है वह विविध दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है । जो गया के उत्तर तट पर स्नान कर दैत्य नाशक विष्णु को नमस्कार करता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है । इसके बाद जो यम तीर्थ में स्नान कर एकाग्र मन से यमेश्वर का दशन और पूजन करता है वह शीघ्र ही पितरों को अक्षय पुण्य तथा तथा यथा विस्तारक फल का अधिकारी बना देता है । उस तीर्थ में स्नान दान जप और स्तुति करने से अति दुष्कर्म करने वाले पितर भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ॥४०-५१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार आठ हजार तीन तीर्थ वहाँ प्रतिष्ठित हैं । उनमें स्नान और दान करने

एतेषा स्मरण पुण्य नानाजन्माघनाशनम् । श्रवणात्पितृभिः सार्धं पठनात्स्वकुलं सह ॥५३॥
 तेषामप्यतिपापानि नाशं यान्ति ममाऽऽजया । तत्र स्नानादि यं कृत्वा किञ्चिद्देत्वा यतात्मवान् ॥५४॥
 पितृणां पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान् । धन धान्य यशो वीर्यमासुरारोऽसृष्ट ॥५५॥
 पुत्रान्पौत्रान्प्रिया भायां लब्ध्वा चान्यन्मनोयितम् । अविपुक्त प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानित ॥५६॥
 नरकस्थानपि पितुस्तारयित्वा कुलानि च । पावयित्वा प्रियैर्युक्तो ह्यन्ते विष्णु शिव स्मरेत् ॥
 ततो मुक्तिपदं गच्छेद्देवानां वचनं यथा ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्राह्मतीर्थशास्त्रं पाणीयगोक्षीपदेव-
 यजनब्रह्मतीर्थशक्तियमादित्यसुपर्णदेत्यसूदनयमेश्वरपितृतीर्थवि'त्र्यधिकाष्ट-
 सहस्रतीर्थवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥
 गौतमीमाहात्म्ये द्विपण्डितमोऽध्यायः ॥६२॥

से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है । इन तीर्थों का स्मरण भी पुण्यकारक और अनेक जन्मों के पापों को दूर करने वाला है । इन तीर्थों के माहात्म्य सुनने और पढ़ने से उस व्यक्ति के पितरों तथा कुल के अत्यन्त पाप भी भेरी आशा से नष्ट हो जाते हैं । जो समयी उनमें स्नान कर विप्रा को कुछ दान देता एवं पितरों को पिण्डदान देकर इन देवों को नमस्कार करता है वह धन धान्य या पराक्रम आयु आरोग्य सम्पत्ति पुत्र पौत्र प्रिय भायाँ एवं अपने अन्य मनोरथा को प्राप्त कर सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवार के साथ बन्धुजनों से सम्मानित होकर निवास करता है । यह अपने नरकगामी पितरों का उद्धार कर और कुल को पवित्र कर प्रियजनों के सहित अन्तर्कार म विष्णु और शिव का स्मरण करता है । तदनन्तर देवों के कथनानुसार वह मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२ ५७॥

श्रीब्रह्मपुराण म यमतीर्थवर्णन नामक एक ती इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसंगमं नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
 यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भक्तिमुक्तिदः । तत्र च स्नानमात्रेण 'सत्रयागफलं' लभेत ॥२॥
 विद्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी । ऋषीणां सत्रमगमदगौतमीतीरवर्तिनाम् ॥३॥
 वृष्ट्या सत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगविता । या गत्वाऽऽभाव्य धौघडस्तु धोपडिति स्थिरम् ॥४॥
 विस्वरेण ब्रूयतो तां तेश्वरुः स्त्राविणी भव । ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति 'सुविश्रुता ॥५॥
 ततो विश्वावसुः पूज्य ऋषीन्धेवं त्रिलोचनम् । संगम्य चैव गौतम्यां तां विशापामथाकरोत् ॥६॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम् । तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
 विद्वावसोः प्रसन्नोऽभूद्यत्र शम्भुः शिवान्वितः । शंभं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८॥
 सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम् । सर्वेषां तीर्थमुत्थानां तद्वि सारं महामुने ॥
 तीर्थं मुनिवरैः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसंगमदुर्गावित्तीर्थवर्णनं नाम

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिपटित्तमोऽध्यायः ॥६३॥

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) सत्र पत्नी को देनेवाला यक्षिणी-संगम नामक एक तीर्थ है उसमें स्नान एवं दान करने में मनुष्य अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ केवल दर्शनमात्र से भक्ति और मुक्ति के देने वाले यक्षेश्वर देव हैं, उस तीर्थ में स्नान मात्र से यज्ञपत्र मिल जाते हैं। विद्वावसु की स्त्रुव ठहाका मारकर हमने वाली पिप्पला नाम की एक कहिन थी। वह एक दिन गौतमी-तीर पर रहने वाले ऋषियों के यत्न में गई। वहाँ दुर्गले-पतले ऋषिया को देखकर घमड़ में हुई पड़ी और वज्र के निकट जाकर 'घोषट्, धौघट्', इन शब्दों का मरो और भगुद्ध स्वर में पाठ कर उनकी चिन्तने लगी। यह देखकर ऋषिया ने उस पिप्पला को पाप दिया कि 'तुम नदी हो जाओ'। पाप सुनने ही वह यक्षिणी नाम की प्रसिद्ध नदी हो गई। तब विद्वावसु ने ऋषिया और त्रिनेत्र शारद की पूजा की तथा यक्षिणी को गौतमी से मिलाकर उसको साप मूकन किया। उस समय से वह स्थान यक्षिणी-संगम नामक तीर्थ हो गया। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मनुष्य अपने सारे मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ शिवा सहित शिव विद्वावसु पर प्रमत्त हुए वह सब पाप-समूहों एवं कठिन पीडाओं को दूर करनेवाला अति उत्तम तीर्थ और दुर्ग-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। महामुनि नारद । उस तीर्थ को ऋषिवरों ने मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और सब प्रसिद्ध तीर्थों का सारभूत तीर्थ घोषित किया है ॥१-९॥

श्रीब्रह्मपुराण में यक्षिणी-संगम वर्णन नामक एक सी वृत्तिसर्ग अध्याय समाप्त ॥१३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

शुक्लतीर्थमिति श्यात सर्वसिद्धिकरं मुणाम् । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामान्वाप्नुयात् ॥१॥
 भरद्वाज इति श्यातो मुनि परमधार्मिक । तस्य पैठीनसी नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२॥
 गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा । अग्नीषोमीयस्यैवान्न पुरोडाशमकल्पयत् ॥३॥
 पुरोडाशे धूप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत । पुरोडाश भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषण ॥४॥
 यत्त मे ह्यम को हसि कोवास्त्वमिति त मुनि । प्रोवाच सत्वर क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तम ॥५॥
 तद्वेवेचनं धृत्वा राक्षस प्रत्युवाच तम् ॥

राक्षस उवाच

हृदयधन इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् । सध्यासुतोऽहं ज्येष्ठश्च पुन प्राचीनबहिष ॥६॥
 ब्रह्मणा मे धरे दत्तो यज्ञाग्लाद यथामुत्तमम् । ममामुज कश्चिदवापि बलवानतिभीषण ॥७॥
 अहं कृष्ण पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुज । अहं मल हनिष्यामि यूप छेपि कृतान्तक ॥८॥

अध्याय १२३

शुक्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) मनुष्य को सब प्रकार की मिथियां प्रदान करने वाला शुक्ल-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य अपनी मन वापनाओं को अवापस प्राप्त कर लेता है। (इसकी क्या इस प्रकार है) —

भरद्वाज नाम के एक परम धार्मिक विख्यात मुनि थे। उनकी पैठीनसी नाम की अत्यन्त सुकुलती भार्या थी। वह पति-परायणा गौतमी-तीर पर रहती थी। एक बार वह अग्नि-सोम देवता तथा इन्द्र-अग्नि देवता के लिए चर बना रही थी। जब वह चर पकने लगा तब धुंसे से एक त्रैलोक्य भयङ्कर जीव निकला जो चर को छट कर गया। यह देख दिग्भय मुनि भरद्वाज ने त्रौष स तुरन्त उसको काँटकर कहा—तुम कौन हो जो मेरे चर को नष्ट कर रहे हो? अथि की बात सुनकर राक्षस ने मुनि से कहा ॥१-५॥

राक्षस ने कहा—मरुदाज! मुझे जो प्राचीनबहिष का सध्या से उत्पन्न यज्ञज नामक प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र जानो। ब्रह्मा ने मुझे वरदान दिया है कि तुम दृष्टानुसार यथा को खाया करो। मेरा बलवान् अतिभीषण अनुज भी इसी वंश का है। मैं बाटा मेरे पिता वाले माता वाली और भाई भी वाला है। मैं यम होकर यथा को नष्ट करूँगा और मुझे को छोड़ डालूँगा ॥१-८॥

भरद्वाज उवाच

रक्षतां मे त्वया यज्ञः प्रियो धर्मः सनातनः । जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥१॥

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासतः । ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः । अमृतं प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वा मुनिसत्तमाः ॥११॥
तदा विद्यापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा । एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति ॥
यद्यथाकाङ्क्षितं ब्रह्मघ्नं तन्मिम्या कदाचन ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते । मत्संरक्षणं येन स्यान्मे यव करोमि तत् ॥१३॥
सभूय देवा वैतेया ममन्धुः क्षीरसागरम् । अलभन्तामृतं कण्टासदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत् । तदपेयं च न भुक्त्वा रक्षः प्राह तदा मुदा ॥१५॥
अमृतं गौतमीवारि अमृतं त्वणंमुष्यते । अमृतं गोमयं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६॥
एतैर्ममभिपिञ्चस्व अथ वैतंस्तथा त्रिभिः । गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च ॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—देवो, मैं यज्ञ विध्वंसक तुमको जानता हूँ तुम एवं अच्छे ब्राह्मण हो, तुम मेरे यज्ञ और प्रिय सनातन धर्म की रक्षा करो ॥९॥

यज्ञघ्न ने कहा—भरद्वाज ! मेरी बात को मधीन में सुनो । देव-दानवों के सामने ब्रह्मा ने मुझे साग दिया । तब मैंने बड़े अनुनय विनय से लोक-पितामह को प्रसन्न किया । उन्होंने कहा कि जब मुनिवर्यगण अमृत से तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तब हे हव्यघ्न ! तुम वाप-मूक होओगे अन्यथा नहीं । यदि तुम ऐसा करोगे तब हे ब्रह्मन् ! जो जो तुम चाहोगे वह सब हो जायगा, यह बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती ॥१०-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—भरद्वाज ने पुनः कहा 'महामते' । तुम मर गया हो । जिस प्रकार मेरे यज्ञ की रक्षा हो, ब्रह्मा मैं अवश्य कहूँगा । एक बात है कि देवों और दैत्यों ने मिलकर क्षीर-सागर को मँबा । तब बड़े कष्ट से अमृत को प्राप्त किया । ऐसा दुर्लभ अमृत हम लोगों को कैसे गुप्त ही सबता है ? यदि तुम हृदय से मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो बनाओ कि वह कैसे गुप्त रहेगा । श्रुति की बात को मुनिकर गद्यसने प्रसन्न होकर कहा ॥१३-१५॥

राक्षस ने कहा—गौतमी का जल अमृत है । सोन की भी अमृत बहने हैं । गोमै घृत और सोम को भी अमृत माना जाता है । इनमें मरा अभिषेक कीजिये अथवा यवा-जल दूत और सुवर्ण इन तीनों से ही अभिषेक हो । या सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी का जल ही है ॥१६-१७॥

ब्रह्मोवाच ।

एतदाकर्ण्ये ॥ श्रुत्वा परं संतोषमागतः । पाणायादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात् ॥१८॥
तेनाकरोद्वयो रक्षोऽहमभियुक्तस्तदा मखे । पुनश्च यूषे च पशावृत्तिशु मलमण्डले ॥१९॥
सर्वमेवाभयच्छुक्लमभियेकान्महात्मनः । तद्वक्षोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०॥
यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात् । यज्ञं सर्वं समाप्याय भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१॥
श्रुत्वा ज्योऽपि विसृज्याय यूषं गङ्गोदकेऽक्षिपत् । गङ्गामध्ये तद्वि यूषमद्याप्यास्ते महामते ॥२२॥
अभियुक्तं धामतेन अभिज्ञानं तु सन्महत् । तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३॥

रक्ष उवाच

अहं यामि भरद्वाज इतः शुक्लस्त्वया पुनः । तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४॥
कुर्वुस्तेषामभौष्टानि भवेयुर्पेक्कलं मखे । स्मरणावपि पापानि नाशं यान्तु सदा मुने ॥२५॥
ततः प्रभृति ततोयं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम् । गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपायुतम् ॥२६॥
उभयोस्तोरयो सप्त सहस्राण्यपराणि च । तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुक्लतीर्थाद्युभयतीरस्यसप्त-

सहस्रतीर्थवर्णनं नाम अष्टविंशोऽधिकतमोऽध्यायः ॥१३३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस शुक्ल उपाय की सुनकर श्रुति अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने बड़े आदर से हाथ में मगजल ले लिया । उसने उस यज्ञ में ही उस राक्षस का अभिषेक किया । पुन उसी जल को घूर, यज्ञ-घूम और श्रुति-जल पर भी छिड़का । उस महात्मा के अभिषेक में सब कुछ शुक्ल-वर्ण का हो गया । वह महाबली राक्षस भी शुक्ल होकर प्रबल हुआ । जो पहले कृष्ण था वह क्षण भर में ही शुक्ल-वर्ण का हो गया । प्रसन्नी भरद्वाज ने अपने यज्ञ की समस्त क्रियायें समाप्त कीं । सब श्रुति-जो की बिना कर दिया और उस घूर को गंगा के मध्य में फेंक दिया । महामते ! वह फेंका हुआ घूप आज भी गंगा के बीच में वर्तमान है । गौतमी के अमृत-जल में अभि-पिक्त होने पर उस राक्षस को पूर्व की बानों का स्मरण हो आया । सब उसने पुन उस तीर्थ में मरदान से कहा ॥१८-२३॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज ! मुझको तुमने पुन शुक्ल कर दिया । अब इस तीर्थ में जो स्नान-दान और देवपूजा करेगे उनसे सब अमिमल पूरे होंगे और उनको यज्ञ करने का सब प्राप्त होगा । मुने ! इससे स्मरणमात्र से सब पाप नष्ट हो जायेंगे । उस समय में वह तीर्थ शुक्ल-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया । यह दण्ड वन में गौतमी-तट पर स्वर्ण का एक सुल्का द्वार है । मुनिशार्दूल ! वहाँ गोवती के दोनो तटों पर सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले और भी सात हजार तीर्थ हैं ॥२४-२७॥

श्रीब्रह्मपुराण में शुक्ल-तीर्थ आदि सात हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक भी तैत्तिरीय अध्याय समाप्त ॥१३३॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 श्रुयः सप्त विल्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने । गौतम्यास्तोरमाधित्य सत्रयज्ञमुपासते ॥२॥
 तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीयणे । भामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन् ॥३॥
 तदाऽहं प्रमदारूपं मापयाऽऽसृज्य नारद । यस्याश्च वर्जनादेव नाशं भान्त्यय राक्षसाः ॥४॥
 एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदा मुने । मद्वाक्यानुषयो मायामादाय पुनरागमन् ॥५॥
 अर्जुना या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी । मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी ॥६॥
 लोकत्रितयसंमोहदायिनी कामरूपिणी । तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुंगवाः ॥७॥
 गौतमी सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः । पुनस्तन्मखनाशाय राक्षसाः समुपागमन् ॥८॥
 यज्ञवादान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुंगवाः । ततो मृत्यन्ति गापन्ति हसन्ति च खदन्ति च ॥९॥
 माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिद्विषता । तेषां मध्ये दैत्यपतिः शम्बरः नाम धीर्यवान् ॥१०॥

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

• ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) चक्रतीर्थ नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणवाच से पाप नष्ट हो जाते हैं।
 नारद ! उससे प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। मुने ! वसिष्ठ आदि सात प्रसिद्ध मुनि गौतमी के तीर पर कुटी बनाकर सत्र-यज्ञ कर रहे थे। जब अतिभीषण राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालना प्रारम्भ किया तब मुनिया ने मेरे पास आकर राक्षसों का वह उद्भव बताया। नारद ! तब मैंने अपनी माया से एक ऐसी स्त्री उत्पन्न की, जिसके देखने से ही सम्पूर्ण राक्षस नष्ट हो जायें। मुने ! मैंने मुनियों से इस प्रकार कह मुनिकर उस स्त्री को श्रुतियों के साथ कर दिया। मेरे समझाने से वे श्रुति उस माया-स्त्री को लेकर चले गये। वह शरण और ईश्वर स्वरूप की मुक्तवेली नाम की अज्ञा माया आज भी अपने स्वरूप में वर्तमान है, जो माया-रूपिणी है और त्रिभुवन को मोह में डाल देने वाली है। व मुनिश्रेष्ठ उसकी शक्ति से स्वस्थचित होकर उस श्रेष्ठ गौतमी के तट पर पुनः यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। राक्षस यह देखकर फिर यज्ञ को नष्ट करने के लिये उपस्थित हुए ॥१-८॥ (वे बड़े-बड़े राक्षस यज्ञ-यण में उस मोहिनी माया को देखकर माहेश्वरी महामाया के प्रभाव से अनिर्गति होकर नाशने, नाने, हँमने और रोने लगे)। उनमें एक अनिपरायनी शम्बर नामक दैत्यराज था। नारद ! उनमें उस माया रूप प्रमदा को ता लिये। उसका यह कार्य उससे मायाबल को देखने वालों के

मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद । तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शनाम् ॥११॥
मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः । प्रादाद्विष्णुश्चक्रमयो मुनीनां रक्षणाय तु ॥१२॥
चक्र तत्राक्षसानाजो वंत्थांश्च दनुजांस्तथा । चिच्छेद तद्भूयादेव मृता राक्षसपुंगवाः ॥१३॥
ऋषिभिस्तन्महासत्रं संपूर्णमभवत्तदा । विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं गङ्गाभोभिः सुदर्शनम् ॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् । तत्र स्नानेन क्षानेन सत्रयागफलं लभेत् ॥१५॥
तत्र पञ्च शतान्यासंस्तोत्राणां पापहारिणाम् । तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं भुक्तिदायकम् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थविषयचक्रशततीर्थवर्णनं नाम

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ पञ्चात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

‘वाणीसंगममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः । तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम् ॥१॥

लिये अतिविस्मयजनक था । वे ऋषि पुन. अपने यज्ञ को नष्ट होते देख विष्णु की शरण में गये । विष्णु ने मुनिगणों की रक्षा के लिये अपना चक्र भेजा । उस चक्र ने युद्ध में उन राक्षसों, दैत्यों और दनुजों का सिर काट काटा । कितने राक्षस तो उसने मय से ही मर गये । तब ऋषियों का वह महा-यज्ञ पूर्ण हुआ । विष्णु का वह सुदर्शन चक्र जहाँ गया-जल से घोसा गया वह स्वान तब से चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसने स्नान और दान करने से सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है । वहाँ पाप-समूह को दूर करने वाले पाँच सौ और बी तीर्थ हैं जिनमें स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है ॥१-१६॥

श्रीब्रह्मपुराण में चक्रतीर्थ आदि पाँच सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बीतीसवें अध्याय समाप्त ॥१३४॥

अध्याय १३५

वाणीसंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) वाणीसंगम नामक तीर्थ है, जहाँ वागीश्वर शस्त्र विद्यमान हैं । वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है । उस तीर्थ में स्नान और दान करने से ब्रह्म-हत्या जनित

तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् । ब्रह्मविष्णोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२॥
 तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल । तत्रैव वागुवाचेवं देवो पुन तयोः शुभा ॥३॥
 अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मोति वै मिय' । देवो वाक्तावुभौ प्रह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति ॥४॥
 स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वाद कर्तुमर्हयः । तद्वाक्याद्विष्णुरगमदघोऽहं चोर्ध्वमेव च ॥५॥
 ततो विष्णुः शीघ्रमेव ज्योतिःपार्श्वं उपाविशत् । अप्राप्यान्तमहं प्राप्या दूराद्भूततरं मुने ॥६॥
 ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं ब्रह्ममोक्षं तु तं प्रभुम् । तदैवं मम धीरासीद्दुष्टश्चान्तो मया भूषम् ॥७॥
 अस्य वैश्यस्य तद्विष्णोर्मम ज्येष्ठ्यं स्फुटं भवेत् । पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८॥
 सत्यैवंशत्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः । नानाविधेषु पापेषु मानुतात्पातकं परम् ॥९॥
 सत्यैवंशत्रैरसत्यां वा धाचं वक्ष्ये कथं त्विति । ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं मर्वभाकृतिभीषणम् ॥१०॥
 कृत्वा तूतानानुत वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा । अब्रवं तं हरिं तत्र आसीमं जगतां प्रभुम् ॥११॥
 अस्य चान्तो मया दुष्टस्तेन ज्येष्ठ्यं जनार्दन । ममेति वचतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशंकरौ ॥१२॥
 एककश्चैवमापन्नौ सूर्याचन्द्रमसायिव । तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तवं तावुभायपि ॥
 ततः क्रुद्धो जगन्नाथो धाचं तामिदमूचतुः ? ॥१३॥

॥१३॥ हरिहराबूचतुः

दुष्टे स्वं निम्नगा भूणानानुतावस्ति पातकम् ।

॥१४॥

दोष भी मिट जाते हैं । एक बार ब्रह्मा और विष्णु ने 'मैं बड़ा हूँ तो मैं बड़ा हूँ' इस विषय पर आपस में वाद-विवाद होने लगा । उस समय उन दोनों के मध्य महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई और धुम आकाशवाणी हुई । उगने दोनों ने कहा कि पुत्र ! ओ इस ज्योतिर्मयमूर्ति का अन्त देख लेगा । वही ध्येष्ठ माना जायगा, अतः ध्येय का विषय मत करो । उसके कथनानुसार विष्णु नीचे की ओर और मैं ऊपर की ओर गया । तदनन्तर विष्णु भीम ही नीचे से लौटकर आये और उस मूर्ति के समीप बैठ गये । मुने ! मैं तो उसका अन्त न पाकर बहुत क्रोधित गया । अन्त में दब कर उस प्रभु ईश की देखने के लिये लौटा । उस समय मेरे मन में ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि यदि मैं जोर देकर यह कहूँ कि मैंने अन्त देख लिया है तब तो उस विष्णु से मेरा ध्येष्ठत्व स्वयं सिद्ध हो जायगा, परन्तु फिर ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि पीडित होने पर भी सत्य वचन कहने वाले इन मुखों से जिस प्रकार असत्य बोल्ना । नाना प्रकार के पापों में असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं । अतः सत्यवादी मुखों से कैसे असत्य बोल्, यह सोचकर गदगे की आहृति का अतिभीषण पाँचवाँ मुख बना कर उसी में असत्य बोल्ना । इस प्रकार ध्येयस्था कर विरवात्क तत्र ध्यातमान होकर वही बैठे हुए जगन्प्रभु विष्णु ने कहा कि जनार्दन ! इतना अन्त मैंने देख लिया है अतः मेरी ध्येष्ठता स्वतः सिद्ध है । इस प्रकार कहने ही मेरे बगल में दोनों हरि और शंकर सूर्य-चन्द्र की ज्योति के समान एकाकार हो गये । इस प्रकार उन दोनों को देखकर मैं तो हैरान हो गया । दर कर दोनों की स्तुति करते लगा परन्तु उन दोनों जगन्नाथियों ने ब्रह्मज्ञान उस वाणी में कहा ॥१-१३॥

हरिहर ने कहा—'दुष्टे' गुण नहीं बन जाओ । असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं है ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा ब्रह्मलला भूत्वा नदीभावमुपागता । तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामश्रवमहं तदा ॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती । तस्माददृश्या त्वं भूयाः पापहृयाऽस्यसंशयम् ॥१६॥
एतच्छापं विदित्वा तु तो देवो प्रणता तदा । विशापत्वं प्रार्ययन्तो तुष्टाव च पुनः पुनः ॥१७॥
ततस्तुष्टौ देवदेवो प्रार्थितो त्रिविधांचितो । प्रोत्था हरिहरावेवं वाचं वाचमयोचतुः ॥१८॥

॥१५॥
गङ्गाया संगता भवे यदा त्वं लोकपावनी । तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गाया संगताऽभवत् । भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः ॥२०॥
देवी सा वयमवद्ब्रह्मन्देवानामपि कुलंभम् । गौतम्या संव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१॥
भागीरथ्यां संव देवी सरस्वत्यभिधीयते । उभयत्रापि विख्यातः सगमो लोकपूजितः ॥२२॥
सरस्वतीसगमश्च वाणीसंगम एव च । गौतम्या संगता देवी वाणी वाचा सरस्वती ॥२३॥
संश्रय पूजितं तीर्थं तत्र वाचा मित्र प्रभुम् । देवेश्वर पूजयित्वा विशापमगमद्यतः ॥२४॥
गङ्गा विभूरा वाऽशौङ्गं स्वं च धामागमप्युत । तस्मात्तत्र भुविर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च संगमे ॥२५॥
वागीश्वरं तनो वृक्षदा तात्रना मुक्तिमाप्नुयात् । दानहोमादिकं किञ्चितुपवासादिकां क्रियाम् ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ध्याकुल होकर वह मेरी असत्य वाणी नदी के रूप में परिणत हो गई। यह देखकर मैं विस्मित हो गया। उस समय करते करते मैंने उस वाणी से कहा—जिसलिये तुमने ब्रह्मवाणी में रहकर भी असत्य कहा है, अतः तुम निःसन्देह पापी हो, तुम अदृश्य हो जाओ। इस शाप की सुनकर वह उन दोनों देवों के चरणों पर गिर पड़ी। और बार बार प्रार्थना करती हुई अपने शाप-मोचन का उपाय ढूँढ़ने लगी। इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवपूजित वे दोनों देव प्रसन्न हो गये और उस वाणी से इस प्रकार बोले ॥१५-१८॥

हरिहर ने कहा—भद्र ! लोकपावनी तुम जब यदा से मिलोगी तब पुनः पुनः । तुम पवित्र शरीर प्राप्त करोगी ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही हो’ यह कहकर वह देवी भागीरथी गंगा और गौतमी में मिल गई। तदनन्तर ब्रह्मम् । उमने देव-कुलंभ अपना शरीर प्राप्त कर लिया। गौतमी में मिलने वाली वह देवी वाणी नाम में प्रसिद्ध हुई और भागीरथी गंगा में सरस्वती नाम से। दोनों स्थानों पर ये सगम लोक-विख्यात और लोकपूजित हैं। इस प्रकार दोनों गंगा (गौतमी, भागीरथी) में मिलने पर बड़ी वाणी वाणी और सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुई और उमना सगम सरस्वती-सगम और वाणी-सगम कहलाने लगी। यह वहाँ वाणी देवेश्वर निव की पूजा कर शाप मुक्त हुई, अतः वह तीर्थ सब तीर्थों में उत्तम और श्रेष्ठ समझा जाना है। इस प्रकार वहाँ अपनी वाणी के दुष्प्रयोग-अन्य पापों को छोड़कर पुनः अपने मोक्ष को चले गये। इसलिये जो कोई वहाँ पवित्र होकर सगम में स्नान करता और

य कुपत्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन । 'एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो' ॥
 नानाजन्माजिताशेषपापक्षयविधायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये 'वाणीसगमवामीश्वराद्युभयतटस्थेकोन
 विंशतिशततीयवर्णन नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३५॥
 गौतमीमाहात्म्ये षट्पण्डितमोऽध्याय ॥६६॥

अर्थ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विष्णुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति क्वात तत्र वृत्तमिदं शृणु । मौदगल्य इति विख्यातो मुदगल्यस्य सुतो ऋषि ॥१॥
 तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना क्वाता सुपुत्रिणी । पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुदगलो लोकविभूत ॥२॥
 तस्य भार्या तथा क्वाता नाम्ना भार्गवीरथी शुभा । स मौदगल्यः प्रतररेव गङ्गा स्नाति यतव्रत ॥३॥
 नित्यमव त्विदं कर्म तस्याऽऽसौ-मुनिसत्तम । गङ्गातीरे कुशैर्भृङ्गि 'शमीपुष्पैरहनिशम ॥४॥

वाणीश्वर का वान करता है वह इतने से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है । जो उस पुण्य सगम पर वान होम और
 उपवास आदि अनुष्ठानों को करता है उसका पुन ससार में जन्म नहीं होता है । इसने अतिरिक्त वहाँ दोन
 तटों पर अनेक जमों के उपाजित पाप को नष्ट करने वाले उन्नीस सौ तीर्थ हैं ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वाणीसगम आदि के दोनों तटों पर स्थित उन्नीस सौ तीर्थों का वणन
 नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३५॥

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थ है । वहाँ जो घटना हुई उसको सुनो । मुद्गल
 ऋषि ने मौद्गल्य नामक प्रसिद्ध पुत्र था । उसकी सुपुत्रवती जाबाला नाम की पत्नी थी । उसने पिता वृद्ध मुदगल
 मी लोक प्रसिद्ध ऋषि थे । उसी प्रकार उनकी भार्गवीरथी नाम की भार्या भी भगवन्मयी थी । वह प्रती मौद्गल प्रात
 काल ही नियमत गंगा में स्नान करता था । मुनिब्रह्म । उसका यह नित्य का कर्म था । गंगा-तीर पर प्रतिदिन
 वह मौद्गल कुशा मुसुका और गमीपुष्प अ दिस मधियोंसे पित द्वारा बताई विधि में अनुसार अपने मानस रूपी

गृहदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे । आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मोद्गलिः ॥५॥
 तेनाऽऽहूतस्त्वरमेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः । वैनतेयमयाऽऽरूढा शङ्खचक्रगदाधरः ॥६॥
 पूजितस्तेन श्रियिषा स मोद्गल्येन यत्नतः । प्रव्रूते च कथाश्चित्रा मोद्गल्याय जगत्प्रभुः ॥७॥
 ततोऽनराहूणसमये विष्णुः प्राह ॥ मोद्गलिम् । याहि वत्स स्वभवनं आन्तोऽसीति पुनः पुनः ॥८॥
 एवमुक्तः ॥ देवेन विष्णुना याति स द्विजः । जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९॥
 मोद्गल्योऽपि तयाऽभ्येत्य किञ्चिदादाय नित्यशः । स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वार्जितं धनम् ॥१०॥
 ददाति स महाविष्णुश्चरणारज्यपरायणः । मोद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११॥
 शाकं मूलं फलं घाऽपि भर्ताऽऽनीत तु यत्नतः । सुसंस्कृत्याप्यतिथीना बालानां भर्तुरेव च ॥१२॥
 दत्त्वा तु भोजन तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्षते यतन्नता । भुक्तवस्तव्य, सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मोद्गलिः ॥१३॥
 विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्ष्यय ह्यपि तः । एव बहुतिथे काले ध्यतीते चातिविस्मिता ॥
 मोद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तार वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

जाबालोवाच

यदि ते विष्णुरभ्येति समीप त्रिदशाचित । तयाऽपि कष्टमस्माकं कस्माद्विस्तृत जगत्प्रभुम् ॥१५॥
 तत्पुच्छ त्व महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च । अस्मिन् च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः ॥
 नाहं यान्ति कुतो वृद्धे तस्मात्पुच्छ जगत्पतिम् ॥१६॥

कमल म विष्णु का नित्य आवाहन करता था । उसने आह्वान की सुनकर जगत्पति और लक्ष्मी के पति शङ्ख-चक्र-गदा-धारी विष्णु गरुड पर सवार होकर सीधे चले आते थे । श्रुति मोद्गल्य उनकी भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करता था । पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उससे तरह तरह की कथायें कहा करते थे । तदनन्तर अनराहूण काल में विष्णु मोद्गलि से कहते 'वत्स ! तুম अब अधिक थक गय हो, अपना भवन की जाओ' ॥१-८॥ इस प्रकार विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण घर जाता था । तब स्वयं भगवान् भी देवा के साथ अपने मन्दिर की जाते थे । वह विष्णु के चरण-भमलो में अनन्य निष्ठा रखने वाला विद्वान् मोद्गल्य प्रतिदिन इस प्रकार भगवान् का मुजद दसान पाठा था । बाद में थोड़ा सा धन भी बना लेता था और उस धन का धर ल जाकर अपनी भार्या की दे दता था । उसकी वह प्रिया भार्या भी अति पतिव्रता थी । पति के द्वारा लाये हुए शाक, मूल और फल को यत्नपूर्वक स्वच्छ करके रखती थी । बड़े प्रेम से अतिथि, बालक और पति को भोजन करा कर पीछे वह व्रतिनी स्वयं भोजन करती थी । मगर भोजन कर लेने के बाद रात्रि में वह मोद्गलि विष्णु से सुनी हुई अनुभम कथा को बड़ी प्रसन्नता से अपने उन बाल-बच्चों को सुनाया करता था । इस प्रकार बहुत समय बीत गया । एक दिन पत्नी अत्यन्त विस्मित होकर अपने पति से एकान्त में बोली ॥९-१४॥

जाबाला ने कहा—जब कि स्वयं दब-पूज्य विष्णु तुम्हारे पास आते हैं तब हम लोगों को इतना कष्ट क्या सहन करना पड़ता है ? इस बात की जब जगत्प्रभु तुम्हारे पास आये तब है महामन्त्रि ! तूम (उनमें) पूछना । त्रिमूर्ति स्मरण मात्र से जरा, जन्म और मृत्यु सम्बन्धी व्याधि ही नष्ट हो जाती है उसने दर्शन पाने पर हमारी विपत्तियाँ क्यों नहीं नष्ट होती । इसलिये इस रहस्य की जगत् के स्वामी से पूछो ॥१५-१६॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा प्रियादाक्यान्मोद्गत्यो नित्यवद्वरिम् । पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७॥

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम् । नात्र याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८॥

श्रीविष्णु उवाच

स्वकृतं भुङ्गते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा । न कोऽपि कस्यचिद्विचित्रकरोत्यत्र हिताहिते ॥१९॥

यादृश चोप्यते बीज फलं भवति तादृशम् । रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जात्वपि कुत्रचित् ॥२०॥

न कृता गीतमोसेवा मार्चितौ हरिशकरो । न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१॥

स्वया न दत्तं किञ्चिच्च ब्राह्मणेभ्यो भमापि च । यद्दीयते तदेवेह परस्मिन्चोपतिष्ठति ॥२२॥

मुद्गिर्बाभिः कुशैर्मन्त्रैः क्षुचिकर्म सर्वं यत् । करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३॥

विना दानेन न बवापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् । सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नरः ॥२४॥

ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् । सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्वतः ॥२५॥

भुक्तिर्दानादिना सर्वंभूतदुःखनिवर्हणात् । अथवा लप्स्यसे भुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही कर्णा’ यह कहकर प्रिया ने कथनानुसार उस श्रुति ने नित्य को भीति हरि की पूजाकर विनीत भाव से हाथ जोड़कर पूछा ॥१७॥

मौद्गल्य ने कहा—जगन्नाथ ! तुम्हारे स्मरण मान से मनुष्यों के शोक, दारिद्र्यता और पापकर्म नष्ट हो जाते हैं । तब आपने दर्शन करने पर भी क्या मेरी विपत्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं ? ॥१८॥

श्री विष्णु ने कहा—सब सर्वदा अपने निये कर्मों का फल भोगते हैं । कोई भी किसी का इस सत्कार में हित या अहित नहीं करता । बीजा बीज बोया जाता है, बीजा ही फल भी मिलता है । वही घर भी मीम के बीज से आम का शोषा नहीं उगता । जिन्होंने कभी गीतमी की सेवा नहीं की, हरि धरर की अर्चना नहीं की, ब्राह्मणों को भोजन-दान नहीं दिया वे किस प्रकार लक्ष्मी के अधिपारी हो सकते हैं । तुमने आजतक किसी ब्राह्मण को अपना मुन्नको कुछ नहीं दिया । जो कुछ दूसरों को दिया जाता है, वही इस लोभ और परलोभ में प्राप्त होता है । तुम जो सर्वमिट्टी, जल, भुष और मग्ना से सुचिकर्म करत हो, इसलिये शरीर से बन्ध सत्ते हुए भी पुनीत आ मा बाले हो । विना दान के वही भी मनुष्य को भोग-मुक्त की प्राप्ति नहीं होती । सत्कर्म के आचरण से मनुष्य मुक्त हो जाता है । बाद में यह विरक्त हो जाता है । इससे बाद यह अकाषित ज्ञान प्राप्त करता है । तत्पश्चात् यह जीवन्मुक्त हो जाता है । मेरी भक्ति और पूर्ण कर्मा (सात्त्विक आदि मोदवाने और धरिदर बनकाने) से सब मनुष्यों के लिये इस लोभ में मुक्ति सुलभ है । दान आदि देने और सब प्राणियों से दुःख दूर करने से भुक्ति या मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है, चिन्तु केवल भक्ति से भुक्ति नहीं मिलती ॥१९-२६॥

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्तिं कथं भूयाद्भुक्तेर्भुक्तिं सुदुर्लभा । जाता चेद्देहिना मुक्तिं किमन्येन प्रयोजनम् ॥२७॥

भक्त्या मुक्तिं सर्वपूज्या तामिच्छेय जगन्मय

॥२८॥

विष्णु उवाच

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् । ब्राह्मणायाथवाऽयिभ्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत् ॥२९॥

मामध्यात्वाऽयं यद्दद्यात्तन्मात्रफलप्रदम् । तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते ॥३०॥

तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्यं किञ्चिन्मम ध्रुवम् । अथवा विप्रमुहयाय गीतमीतीरमाश्रित ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्य प्राह तं विष्णुं देयं मम न विद्यते । मान्यत्किञ्चन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२॥

ततो विष्णुर्गुरुमन्त्रं प्राह शीघ्रं जगत्पति । इहाऽऽनयस्व कण्ठि स ममाय चार्पयिष्यति ॥३३॥

ततो योगदानं भोगान्प्राप्स्यते भनसं प्रियान् । आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्टं तया चक्रे स पक्षिराट् ॥३४॥

विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रत । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विद्वक्कर्माणमब्रवीत् ॥३५॥

मौद्गल्य ने कहा—भुक्ति से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है ? यदि भुक्ति से ही मुक्ति मिल जाय तो भनूप्य को अथ वस्तु की आवश्यकता ही नहीं ? जगन्मय ! यदि भुक्ति से मिली भुक्ति सर्वमान्य है तो मैं उसी को चाहता हूँ ॥२७ २८॥

विष्णु ने कहा—दान देने के भी कई माग हैं । ब्रह्मन् ! उनमन्तर यह है कि जो दान ब्राह्मणों या पाचकों को मेरा स्मरण करते हुए दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है । और जो मर स्मरण के बिना दिया जाता है उससे केवल उतन परिमाण भी फल मिलता है । वह दिया हुआ दान तो केवल दान-मय है वह इस जीवन में भोग-मुख का कारण नहीं बनता । अतएव महाबुद्ध ! भूक्षकों कुछ अवश्य दो अथवा इस गीतमी के तीर पर श्रद्धा ब्राह्मण को दो ॥२९ ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर मौद्गल्य ने भगवान् विष्णु से कहा कि परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी देने योग्य नहीं है । देह को छोड़ कर और कुछ नहीं है । वह भी आपको अर्पित हो चुकी है । तदनन्तर जगत्पति विष्णु ने गुरु सन्निध ब्रह्मा सुम यहाँ कुछ अन्न के दानों के आगो जिसको यह मेरा भक्त भूक्षकों देकर उचित मनो वाञ्छित भोगों को प्राप्त कर सके । स्वामी की आज्ञा को सुनकर पक्षिराज ने शीघ्र उसका पालन किया । तब व्रती मौद्गल्य ने विष्णु के हाथ में अन्न-वर्णा को रख दिया । इसी बीच विष्णु ने विन्वन्मर्मा से कहा ॥३२ ३५॥

विष्णुखाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु । भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनोपिताः ॥
गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

यच्च किञ्चिन्मन प्रीत्यै लोके भवति भूषणम् । तत्सर्वमाप्तमौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः ॥३७॥
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ । आश्रमे स्वस्य सर्वार्थं दृष्ट्वा ऋषिरभापत ॥३८॥

ऋषिरुवाच

अहो वानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः । अहो गङ्गाप्रभावश्च कविचार्यो महानयम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यो भार्यया सार्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः । पितृभ्यां द्युभुजे भोगान्भुक्तिं भुक्तिमवाप च ॥४०॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं सया । तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिभुक्तिफलप्रदम् ॥४१॥
तत्र भुक्तिः स्मृतिर्विधिः तीर्थस्य स्यात्कथंचन । तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेत् ॥४२॥
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीर्थयोर्द्वयोः । सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मौद्गल्यविष्णुतीर्थार्थिकावशसहस्र-

तीर्थवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

गीतमोमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

विष्णु ने कहा—महाबुद्धि ! जब तक इसके कुल में सात पुरुष (सात पीढ़ियों तक के पुरुष) हो तब तक के लिये मनचाही इच्छायें अर्थात् भो, भोगा, अन्न, वस्त्र और आभूषण आदि इसके घर में हो जायें । ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में मन की प्रिय लगने वाले जो कुछ आभूषण या पदार्थ हो सकते हैं, वे सब सामर्थ्या विष्णु और गंगा के प्रभाव से मौद्गल्य को प्राप्त हो गईं । तब विष्णु ने मौद्गल्य को घर आने की आज्ञा दी । वह अपने घर गया । अपने आश्रम में सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देखकर ऋषि ने कहा ॥३७-३८॥

ऋषि ने कहा—अह ! यह दान का प्रभाव है ! यह विष्णु की उपासना का प्रभाव है । अह ! यह गंगा का प्रभाव है । वीर इस महान् प्रभाव को जान सकता है ॥३९॥

ब्रह्मा ने कहा—सार्ध, पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु और माता पिता के सहित मौद्गल्य ने विविध भोगों को भोग कर भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त किया । उस समय से वह तीर्थं मौद्गल्य और वैष्णव तीर्थं कहा जाता है । उसमें स्नान-दान करने से भुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है । यदि किसी प्रकार किसी को उग तीर्थ का नाम-श्रवण हो जाय तो उस व्यक्ति पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं और वह सब पापों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है । उगने दोनों तीर्थ पर स्नान, दान और जप से सब प्रकार के अनारोग्य सिद्ध करने वाले ग्यारह हजार तीर्थ हैं ॥४०-४३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मौद्गल्य विष्णुतीर्थं आदि ग्यारह हजार तीर्थों का वर्णन नागर एक ही छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥१३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थवर्णनम्

१११

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षात्लक्ष्मीविवर्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१॥
सवादश्च पुरा त्वासीत्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्र्या । परस्परविरोधिभ्यावुभे विश्वं समोपतुः ॥२॥
ताम्यामप्यापृतं वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये । मम जैष्ठ्यं मम ज्यैष्ठ्यमिरपूचतुभे मिथः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह भ्रियभोजसा ॥३॥

श्रीलक्ष्मीरवाच

कुलं शीलं जीवितं वा बेहिनामहमेव तु । मया येना बेहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४॥
ब्रह्मोवाच

दरिद्र्या च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् । मुक्तिर्भवाभिता नित्यं दरिद्र्यं वचोऽग्रवीत् ॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च । यन्नाहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६॥
न भयोद्भूतिरन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता । यन्नाहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७॥
दरिद्र्या वा वधः भूत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभापत ॥८॥

अध्याय १३७

लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) साक्षात् लक्ष्मी को बड़ाने वाला लक्ष्मी-तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है ।
नारद ! उसही दरिद्रतानाशक पवित्र कथा को सुनो । पुनः आत्र से बहुत पहले लक्ष्मी का दरिद्र ने साथ सवाद
हुआ । परस्पर विवाद बरती हुई वे दोनों ससार में घाई । दोनों भुवन में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो उनके अछूता
बचा हो । दोनों परस्पर में बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ, कहने लगी । दरिद्रता ने बड़े तपस्व से लक्ष्मी से कहा कि मैं पहले
उत्पन्न हुई हूँ । यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा ॥१-३॥

श्रीलक्ष्मी ने कहा—प्राणियों का कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ । मेरे बिना प्राणी जीते हुए भी मरे के
समान हैं ॥४॥

ब्रह्मा बोले—दरिद्र ने लक्ष्मी से कहा—‘सबसे श्रेष्ठ मैं हूँ । मुक्ति सर्वदा मेरे ही अधीन है ।’ फिर
दरिद्र ने ऐसा कहा कि जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ नाम क्रोध, लोभ, मद और मात्सर्य सभी भी टिकने नहीं पाते । जहाँ मैं
रहती हूँ वहाँ भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्वेग-व्यवहार सभी भी नहीं रहने हैं । दरिद्र की बातों को सुनकर लक्ष्मी ने
पलुप्तर दिया ॥५-८॥

लक्ष्मीवाच

अलकृतो मया जन्तु सर्वो भवति पूजित । निर्धनं शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९॥
 देहोति वचनद्वारा देहस्या पञ्च देवता । सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्योशान्तिकोतय ॥१०॥
 तावद्गुणा गुणत्व च यावन्नाथयते परम् । अर्थो चेत्पुरुषो जात क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११॥
 तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालय । नमस्य सर्वलोकानां यावन्नाथयते परम् ॥१२॥
 कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् । न भानयति नो वञ्चित न स्पृशत्यधन जन ॥१३॥
 अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्त्वलक्ष्मीवचनं श्रुत्वा दरिद्रा यावन्मन्त्रोक्तं ॥१५॥

दरिद्रोवाच

वस्तु न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वै लज्जसे मुहु । पापेषु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 विश्वस्तवञ्चका नित्य भवतोऽलाघसे कथम् । सुखं न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यया गृह ॥१७॥
 न तथा जायते पुसा सुरया दारुणो मय । स्वत्सनिधानमन्त्रेण यया वै विदुषामपि ॥१८॥

लक्ष्मी ने कहा—मुझसे अलकृत साधारण मनुष्य भी सम्मान पाता है। निर्धन मनुष्य चाहे णिव के तुल्य ही क्यों न हो वह सबसे अपमानित होता है। 'धौ इतस्य' की सुनते ही देह न रहने वाले धी धी ही शान्ति और कीर्ति में पाँच देवता तुरत देह से निवृत्त कर चले जाते हैं। मनुष्य मे तब तक ही सारे गुण और महता रहती है जब तक कि वह दूसरो से याचना नही करता। यदि पुरुष याचक बन गया तब तो वहाँ के गुण और वहाँ के गौरव। मनुष्य तब तक ही सर्वश्रेष्ठ सब गुणों का घर और सब लोग का पूज्य होता है जब तक वह दूसरो से याचना नही करता। मनुष्य के णिव नियन्त्रा महापाप है बहुत बड़ा कष्ट है। मनुष्य निषण ध्यस्तिन का न तो मान करता है न उससे बोलता है महाँ तक कि उसका स्थान भी नहीं करता है। दरिद्र। मरी बात सुनो। इसणि मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ ॥९१४॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी की बड़ी-बड़ी बातों को सुनकर दरिद्र ने कहा ॥१५॥

दरिद्र ने कहा—लक्ष्मी। मैं देखी हूँ यह कहते क्या तुमको फिर लज्जा नहीं हो रही है? तुमको क्या नहीं कि तुम पुरुषोत्तम (महान् और सतुल्य) को छोड़कर पापियों के साथ रहा करती है। विवाह पात्रों के साथ नित्य प्रवचना करने वाली तुम क्या बड़-बड़कर बातें बना रही हो? तुमको पाने से मनुष्य इतना अधिक मुक्त नहीं पाता जितना अधिक परचाताप। मनुष्य को मुक्त-पान से भी उनका बना नहीं होता जितना तुम्हारे साथ रहने

सदैव रमसे लक्ष्मी प्रापस्त्व पापकारिषु । अह वसामि योग्येषु धर्मशालेषु सर्वदा ॥१९॥
 शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च । सदाचारेषु शातेषु गुरुसंबोधतेषु च ॥२०॥
 सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु । निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माद्व्यप्यस्य मयि स्थितम् ॥२१॥
 ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु । निर्भयेषु वसिष्ण्वामि लक्ष्मीस्तस्य शृणु ते स्थितिम् ॥२२॥
 राजर्षीषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च । पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३॥
 अनायैषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा । मित्रद्रोहिण्वनिष्ठेषु भग्नचित्तेषु व्रतसे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमाने ते जन्मतुर्गामुभे अपि । तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५॥
 मत्त पूर्वतरा पृथ्वी आप पूर्वतरास्तत । स्त्रीणां विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति मेतरे ॥२६॥
 विदोवत् पुनस्ताम्य 'कमण्डलुभवाश्च या । तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७॥
 सैव सर्वातिशहर्षा सैव सबेहकर्तरी । ते मद्वाक्याद्बुध गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८॥
 अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमी यपुरापगाम् । भूमिरापस्तयोर्वाक्य गौतम्यै क्रमश स्फुटम् ॥२९॥
 सर्वं निवेदयामासुर्मयावृत्त प्रणम्य ताम् । दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्य मध्यस्थवत्त्वा ॥३०॥

से चाहे वे विद्वान् ही क्यों न हों। लक्ष्मी ! प्राय तुम सबदा पाप कम करने वालों के साथ ही रमा करती हो। इसके विपरीत मैं सबदा योग्य धर्म प्रेमी व्यक्तियों के समीप रहती हूँ। लक्ष्मी ! मैं सबदा सज्जन विद्वान् शूर बुद्धिमान् साधु शिव और विष्णु के भक्त महान् व्रतन सदाचार-दरायण शान्त और गुरु-सेवा में तत्परता दिखाने वाले जना के समीप रहा करती हूँ इसलिए श्रद्धा मुझमें है। लक्ष्मी ! (मेरे अन्य वास-स्थानों को भी सुन लो) मैं शुद्ध ब्राह्मण पवित्रात्मा व्रत प्रेमी त्यागी भिक्षु और निर्भीक जनों के समीप ही निवास करती हूँ। तुम ती राजा के चापलूस या सेवक पापी निष्ठी दुष्ट कुलखोर हत्यारे शठ विकृत (बचल) अनाय कृतघ्न धर्म द्रोही मित्र-द्रोही अनिष्ट करने वाले और रुबे लानो से ही सबदा प्रेम करती हो ॥१९-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों मेरे पास आई। उनकी बातों को सुनकर मैंने उन दोनों से कहा मुझसे पूर्व पृथ्वी हुई उससे भी पूर्व अप्स (अक्ष)। स्त्रियों के विवाद का निपटारा वे स्त्रियाँ ही जानती हैं दूसरे नहीं। उनमें भी विरोध रूप से जो मेरे कमण्डलु से उत्पन्न नदियाँ हैं वे पूषण रहस्य हैं। उनमें भी गौतमी देवी निश्चय ही नियम कर देगी। वही सब दुष्टों को नष्ट करने वाली है सदेहों का नाश करने वाली छुटी भी वही है। वे दोनों मेरे वचनानुसार पृथ्वी के पास गई। भूमि के सहित वे दोनों जल के समीप गई। वहाँ से वे सब गौतमी नदी के पास गई। गौतमी को प्रणाम कर भूमि और जल ने उन दोनों के वचन को प्रमाण स्पष्ट रूप से जसा कि दोनों कहती थीं कह सुनाया। नारद ! तब दरिद्रा और लक्ष्मी के वाक्यों को सुनकर वह गौतमी गंगा

शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद । शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमीं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता । धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाय भुक्तिश्च स्मृतिलज्जा धृतिः क्षमा । सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा महौ ॥३३॥

अहशक्तिरथोपध्य भुक्ति शुद्धिविभावरी । योग्योत्सना आश्रियः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उपा शिवा ॥३४॥
यत्किंचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम् । ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वय साधुषु ॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु । यद्यद्रम्यं सुन्दरं दृष्ट्वा तत्तल्लक्ष्मीविवृम्भितम् ॥३६॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वे लक्ष्मीमयं जगत् । यस्मिन्कास्मिञ्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तथा हीनं न किञ्चन । अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जते ॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् । ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत् ॥३९॥
तावदरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते । ततः प्रभृति ततोर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यवान्भवेत् । तोर्यानां यदसहस्राणि तस्मितीर्थं महामते ॥
देवैर्यमुनिजुष्टानां सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थविषयदसहस्रतीर्थवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

मध्यस्थ के समान लोक पालो, पृथ्वी और जल को सुनाती हुई लक्ष्मी की प्रशंसा करके दरिद्रा से बोली ॥२५-३१॥

गौतमी ने कहा—ब्रह्मश्री, तप श्री, यज्ञश्री, कीर्ति नामक श्री, धनश्री, यश श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती,

भुक्तिश्री भुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, पुष्टि, शान्ति, जल और पृथिवी, एवं आत्मशक्ति इसके बाद ओषधियाँ भुक्ति, शुद्धि उजेली रात, आकाश, ज्योत्स्ना (चाँदनी) आशीर्वाद, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उपा, शिवा अथवा जो कुछ इस लोक में है—यह सारा चराचर लक्ष्मी से व्याप्त है । इसके अनन्तर ब्राह्मणों, धीरों, अमावानों, साधुओं, विद्वानों अथवा अन्य भुक्ति भुक्ति के अनुपायियों में जो कुछ रमणीयता या सुन्दरता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मी का ही प्रसार है । और अधिक क्या कहा जाय, सारा जगत् लक्ष्मीमय है । जिस किसी में जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मीमय है, उससे रहित कोई भी वस्तु नहीं । शुभ इस विषय में लक्ष्मी से प्रतिस्पर्धा करने में लज्जती नहीं ? गंगा ने उस दरिद्रा से कहा । यहाँ से चली जाओ ! जाओ ! तब से गंगाजल दरिद्रा का शत्रु बन गया । दरिद्रा से दुःख उभरी तक होता है जब तक कि गंगा की सेवा नहीं की जाती । उस समय से वह तीर्थ पवित्र और दरिद्रता को भगाने वाला हो गया । वहाँ स्नान और दान करने से मनुष्य धनवान् और पुण्यवान् होता है । महामति ! उस तीर्थ में सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले छह हजार तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और वास करने के लिये देवता, ऋषि और मुनि भी लालायित रहते हैं ॥३२-४१॥

श्रीब्रह्मपुराण में लक्ष्मी-तीर्थ आदि छह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥

अष्टाविंशदधिकशततमोऽध्यायः

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । तथेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१॥
 शार्वातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिकः । तस्य भार्या स्वयच्छेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२॥
 मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्यामित्रो द्विजोत्तमः । पुरोधस्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः क्षमिना प्रभुः ॥३॥
 दिशो विजेतुं जगाम राजा, पुरोधस्तां तेन नृपप्रवीरः ॥ ॥ ॥ ॥
 पुरोपसं ग्राह्यं महानुभावः, जिह्वा दिशश्चाप्यनि सन्निविष्टः ॥४॥
 पप्रच्छेद केन खेदं गतोऽसि, हेतुं वदस्येति महानुभावः ॥ ॥
 त्वमेव राज्ये भव सर्वमान्यः, समस्तविद्यानिरवद्ययोधः ॥५॥
 विभूतपाशं परितापशून्यं, किमन्यचेता इयं लक्ष्यसे, त्यम् ॥ ॥ ॥
 जितेयमूर्ध्वा विजिता नरेन्द्रा, हृषंस्य हृत्तो मत्सोऽहं जाते ॥६॥
 किं त्वं कृशो मे वद सारथमेव, द्विजातिवर्षातिमहानुभावः ॥ ॥
 सर्वोप्यं शार्वातिमुवाच, विप्रश्छन्दोमधु प्रेममयीं प्रियोक्तिम् ॥७॥

अध्याय १३८

भानु आदि तीन महत्त्व तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्याः को सब सिद्धियाँ देने काग्य भानुतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ जो महापापों को दूर करने वाली घटना घटी उसको अब कह रहा हूँ सुना ।

शार्वाति नामक एक प्रसिद्ध परम धार्मिक राजा था। उसकी स्वयच्छेति नाम की माया या जो लीन म मनुष्य मुहुरी थी। उस नरेन्द्र ने मधुच्छन्दा नामक विश्वामित्र-मुनेन्द्र उतम ब्राह्मण पुरोहित के जो नि शयभिया म मयच्छेद और ब्रह्मर्षि थे। वह मयच्छेद राजा अपने उस पुरोहित के साथ दिग्विजय करने काग्य। मयूष शिवाका का जीन कर जब लीने लगा तब रास्ते में महानुमकी पुराहि न पूछा—‘महानुभाव’। आप क्या इतने निद्र हैं कृपाकर कारण बताइय। आप ही मरे राज्य में राजमात्र हैं समस्त विज्ञाओं के प्रगतनीय ज्ञाना हैं निष्पाप हैं और सजाय-मूत्र हैं फिर क्या आज आप अवमनस्स-म शिवाई देने हैं। सारी मन्त्री मयुषरा जीन ली गई नरेन्द्र का म हो मय इस प्रकार महानु आनन्द की सामग्री या जान कर नी आप क्या दुःख होने जा रह है ? हे महानुभाव ! द्विजातिवर्ष ! मय सत्य कहिय। फिर मयुच्छन्दा ख्याति को सर्वोचित करने हुए इस प्रकार प्रेममय मयुर वाली ओर—॥१-॥

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्राक्ष्य भार्यया यदुदीरितम् । स्थिते यामे वयं यामो यामिनो चार्धगामिनो ॥८॥
स्वामिनो चास्य देहस्य कामिनो मा प्रतीक्षते । स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसज्जाते जीवातुर्नलिनानना ॥९॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाब्रवीत्राजा पुरोधसमरिदम् ॥१०॥

राजोवाच

त्वं गुरोर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे । किमनेन महाप्राज्ञं भमं वाचयन् मानव ॥
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्या महात्मनाम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमानमधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२॥

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूलं क्षयसोस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते । न चेत्तु यत्र राज-भूयणं चातिभग्नताम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतः । परीक्षार्थं च सत्प्रेमं पुर्यां यातमिषोदिशत् ॥१४॥

मधुच्छन्दा बोले—भूपाल ! शर्मा ने जो कुछ मुझसे कहा है उसको सुनो । प्रहर बीत जाने पर हम लोग घर जायगे और आज अठ्ठ रात्रि बीत जाने पर मेरे इस शरीर की स्वामिनी मेरे जीवन की सजीवनी कमलमुखी मेरी स्त्री बुद्ध होकर काम मावना से मेरी प्रतीक्षा करती रहेगी । उस कामिनी प्रिया के वाक्यों का स्मरण कर मेरा शरीर सुखता जा रहा है ॥८॥९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित की बात सुनकर सम्बुविजेता राजा ने हँस कर कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं मित्र हैं । क्यों इस प्रकार अपने को विडम्बना में डाल रहे हैं । मेरे मानव ! महाप्राज्ञ ! इस वाक्य से क्या प्रयोजन । इस क्षणमगुर सुख के पीछे महापुरुषों को इतनी निष्ठा रखने से क्या लाभ ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर मतिमान मधुच्छन्दा ने कहा ॥१२॥

मधुच्छन्दा ने कहा—जहाँ पति-पत्नी में हृदय की इस प्रकार एकता रहती है वहाँ प्रिय (धर्म अथ काम) की वकती होती है, राजन् ! इसको जीवन का अभिशाप नहीं वरदान मानना चाहिए ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा अपनी महती सेना के साथ अपने देश में आया । पुरोहित-दम्पती की प्रेम-परीक्षा के लिये उन्होंने राजधानी में द्विद्वारा पिटवा दिया कि दिग्विजय के लिए प्रस्थित राजा शर्मासि को पुरोहित के सहित

दिशो विजेतु शर्यातो याते राक्षसपुंगव । हत्वा रसातल यातो राजान सपुरोधसम् ॥१५॥
 राजो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम । वार्ता श्रुत्वा दूतमुक्षान्मधुच्छन्द प्रिया पुन ॥१६॥
 तदेवाभूदगतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत् । तस्या वृत्तं तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन् ॥१७॥
 यत्कृत राजपत्नीभिः प्रियया च पुरोधस । विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत् ॥१८॥

राज्योवाच

शीघ्र गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम् । रक्षन्तु वार्तां कुलं राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तातुरे राज्ञि बाणवाचाशरीरिणी ॥२०॥

आकाशबाणोवाच

विधास्यत्यखिलं गङ्गा राजस्तव समीहितम् । सर्वाभिपङ्गुशमनी पावनी भूमि गौनमी ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छृत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रित । ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा तर्पयित्वा पितृन्दिवान् ॥२२॥

किसी बली राक्षस ने मार डाला और स्वयं रसातल चला गया । दूतों के मुख से ऐसी वार्ता सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा की स्त्री इसकी सच्चाई की जांच करने लगी परन्तु मधुच्छन्दा की स्त्री उसी समय निष्प्राण हो गई । इस प्रकार जिलवाह मही एक विचित्र सी घटना हो गई । दूतों ने उसकी इस अवस्था को देखकर राजा से जाकर राज-पत्नियों ने और पुरोहित की स्त्री ने जो कुछ बिचा यह कह सुनाया । यह सुनकर अत्यन्त विस्मित और दुःखित हुए राजा ने पुनः दूतों से कहा—॥१४ १८॥

राजा ने कहा—दूतों ! शीघ्र जाओ ब्राह्मणी का जो शरीर है उसकी रक्षा करो और ऐसा धोषित कर दो कि राजा पुरोहित के साथ वा रहे हैं ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के इस प्रकार चिन्तातुर होने पर आकाशबाणी हुई ॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—राजन् ! तुम्हारी सब कामनाओं को सब आपत्तियों को शान्त करने वाली पृथ्वी की पुनीत नदी गौतमी पूजा कर देनी ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शर्याति ने गौतमीतट पर स्थित होकर ब्राह्मणा को धन दिया तथा पितरों और दिव्यों को तृप्त किया और उस द्विजश्रेष्ठ पुरोहित को बहुत-सा धन देकर विदा किया । उसके अनन्तर स्वयं दूसरे तीर्थों

'पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्। अन्यत्र तोर्यं सार्येषु दानं देहि (ददौ) प्रयत्नतः॥२३॥
 एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्य पुरोहितः। गते तस्मिन्पुरौ राजा वंश्वामित्रे महात्मनि॥२४॥
 सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्। इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुगानपि॥२५॥
 यदि दत्तं यदि द्रुतं यदि व्रता प्रजा मया। तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु॥२६॥
 इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातो नृपसत्तमे। तदेव जीविता भार्या राजस्तस्य पुरोधसः॥२७॥
 अग्निप्रविष्ट राजान् धृत्वा विस्मयकारणम्। पतिव्रतां तथा भार्यामृता जीवान्विता पुनः॥२८॥
 तदर्थं चापि राजानं त्यक्त्वात्मानं विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः॥२९॥
 अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत यास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्ये ततो निश्चयवान्निजः॥३०॥
 एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च। जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः॥३१॥
 एतदेव शुभं मे स्यात्तत्तत्सुष्टाय भास्करम्। न हान्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः॥३२॥

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओकारार्थाय ते नमः॥३३॥
 विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे॥३४॥

मे अनुचरो के सहित जाकर बड़े चाव से दान दिया। पुरोहित राजा के इन कार्यों के रहस्य को नहीं जानता था ॥ इस महात्मा विश्वामित्रकुलोत्पन्न गुरु के चले जाने पर राजा ने सब सेनाओं को राजधानी भेज दिया, और स्वयं वह गंगा-तट पर अग्नि भे गया, सूर्य और देवताओं से यह प्रार्थना करता हुआ कि यदि मैंने कुछ दान दिया है, हवन किया है और प्रजाओं की रक्षा की है तो मेरे उन पुण्यों के प्रभाव से तथा मेरे शेष आयु से वह साध्वी शास्त्री जीवित हो जाय, घुस गया। राज, क्षमति के अग्नि में प्रवेश करते ही उस राज-पुरोहित की भार्या वीमही जीवित हो गई। नृपति-गुरु ने जब राजा का इस प्रकार का विस्मयजनक अग्नि प्रवेश और अपनी पतिव्रता भार्या का मर कर पुन जीवित होना सुना और विशेष रूप से यह सुना कि राजा ने अपने को उसके लिये अग्नि में जला दिया है, तब वह अपना कर्तव्य सोचने लगा। उसने सोचा कि क्या मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँ, या प्रिया के पास जाऊँ अथवा यही उपस्था करूँ, अनन्तर उसने विस्मय किया कि यही मेरा पुण्य कर्त्तव्य है कि पहले राजा को जीवित करूँ तब फिर प्रिया के पास जाऊँ। यही मेरे लिए कल्याणप्रद है। ऐसा सोचकर वह भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगा और बोला कि सूर्य को जोड़ दूसरा कोई भी सब प्रकार के अभीष्ट को पूरा करने वाला नहीं है ॥२२-३२॥

मधुच्छन्दा बोले—उस अमित तेजस्वी, मुक्तिस्वरूप सूर्य को नमस्कार है, ओंकार के अर्थ स्वरूप वेदमय देव को नमस्कार है। विरूप, सुरूप, त्रिगुणात्मक, त्रिमूर्ति, स्थिति, सृष्टि और विनाश के आदि कारण एवं महा-महिमशाली सूर्य को नमस्कार है ॥३३-३४॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत

॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम् । आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्नाशस्त्रेण शुभान्वरान् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाञ्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम् । तां च भार्यां वरानग्यान्तर्बन्धेनमयं तथा ॥३७॥

ततो धातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा । पयौ सुखी स्वकं देशं सत्सु तीर्थं द्युम् स्मृतम् ॥३८॥

तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च । ततः प्रभृतिं तत्तीर्थं भानुतीर्थमुवाहृतम् ॥३९॥

मृतसंजीवनं चैव शार्यातं चेति विभूतम् । माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने ॥४०॥

तेषु स्नानं च दानं च सर्वैकमुक्तप्रदम् । मृतसंजीवनं तत्स्पाद्यायुरारोग्यवर्धनम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्ट-

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

गीतमोमाहात्म्य एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सूर्य प्रसन्न हो गये और कहा कि 'वर माँगे' ॥३५॥

मधुच्छन्दा घोला—देवेश ! राजा और मेरी प्रिय मापिणी भार्या को जीवित कर दो, साथ ही मुझे उत्तम पुत्र और राजा को भी उत्तम वरदान दो ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रसन्न होकर जगन्नाथ ने रत्न-भूषित शर्याति, (तथा) भार्या (विप्रपत्नी को जीवितदान),

अन्य वरदान और प्रत्येक प्रकार के कन्याश्रमय आशीर्वाद दिये । इस प्रकार वरदान पाकर वह विप्र अपनी प्रिया के साथ आनन्द और सुखपूर्वक अपने देश को चला गया । वह तीर्थ भी इसीलिये शुभ-तीर्थ माना गया । वहाँ जल देने वाले और भी तीन हजार तीर्थ हैं । उस समय से वह तीर्थ भानुतीर्थ कहा जाने लगा । मुने । मृतसंजीवन और शर्याति तीर्थ नाम से भी वह विख्यात हुआ । माधुच्छन्द तीर्थ भी उस ही कहा जाता है जिसके स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है । उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से सब बन्धों का फल मिलता है । जो मृतसंजीवन तीर्थ है वह तो आपु और आरोग्य दोनों को बढ़ाने वाला है ॥३७-५१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भानु आदि तीन हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अठ्ठीसवा

अध्याय समाप्त ॥१३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्गतोर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सङ्गतोर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे । तत्र स्नानेन दानेन भुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१॥
 तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः । पैलूय इति विख्यातः कवयस्य सुतो द्विजः ॥२॥
 कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्याप्यो परिधावति । न किमप्याससादासौ ततो यैरायमास्थितः ॥३॥
 अत्यन्तविमुखे दंढे द्यप्योभूते तु पौरुषे । न वैयास्यदग्निदग्निः पाण्डित्यमापलम्बनम् ॥४॥
 इति संविन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः । क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहवो मम ॥५॥
 मानी धाऽऽत्मा न कट्टाहो हा धिदुर्बलचेष्टितम् । स कदाचिद्वृत्तिपुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६॥
 ॥ लेभे तद्धनं वृत्तेविरागमगमत्तदा । सेवा निषिद्धा या काचिद्गह्ना दुष्करं तपः ॥७॥
 यत्नादाश्चर्यतीयं मां तृष्णा सयंत्र दुष्कृते । स्वयाऽपकृतमजानातस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८॥
 एवं विचिन्त्य मेधावी' तृष्णाछेदाय किं भवेत् । इत्यालोक्ष्य स पैलूयः पितरं वारधमब्रवीत् ॥९॥

पैलूप उवाच ।

ज्ञानासिना श्रोत्रलोभौ संसृतिं चातिदुस्तराम् । छेदमीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०॥

कवय उवाच

ईश्वराज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः । तस्मादाराधयेज्ञानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूपो ज्ञानायेश्वरमारचयत् । ततस्तुष्यो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्विजातये ॥

प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः

॥१२॥

पैलूप उवाच

श्रोत्रस्तु प्रथमं शत्रुनिष्कलो देहनाशनः । ज्ञानलङ्घनेन त छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३॥

तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी । छित्त्वेतां ज्ञानलङ्घनेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४॥

सङ्गस्तु 'परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः' । असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः ॥१५॥

छित्त्वेन ज्ञानलङ्घनेन शिर्वैकल्यमवाप्नुयात् । संशयः परमो नाशो धर्मायिना विनाशकृत् ॥१६॥

पैलूप बोला—हे तात ! ज्ञानरूपी खड्ग से इस श्रोत्र, लोभ और अतिदुस्तर सासारिक माया को कैसे काटूँ, वह उपाय बतलाइये ॥१०॥

कवय ने कहा—ईश्वर (शक्र) से ही ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, ऐसी वैदिकी श्रुति है । इसलिये शिव की आराधना करो । तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही वरूँगा’ यह कहकर वह पैलूप ज्ञान के लिये ईश्वर की पूजा करने लगा । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर महेश ने उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया । ज्ञान पा जाने पर उस महाबुद्धिमान् ने ऐसी मुक्तिवायिनी गाथा गाई ॥१२॥

पैलूप बोला—इस देह को नष्ट करने वाला निष्कल श्रोत्र पहला शत्रु है । ज्ञान की तलवार से उसको काटने से परम सुख प्राप्त होता है । यह मित्र-मित्र प्रकार की तृष्णा पाप करने वाली तथा बन्धन में डाल देने वाली माया है । इसको ज्ञान-खड्ग से काटकर मनुष्य सुखी होता है । ‘आसक्ति’ बहुत बड़ा पाप है, ऐसा देवताओं आदि वा वयन है । इस अनासक्त (मुक्त) आत्मा के लिये यह आसक्ति परम शत्रु है । इसको ज्ञान के खड्ग से काटकर शिव से अद्वैतता प्राप्त करनी चाहिये । संशय परम शत्रु है । यह धम, अर्थ काम, श्रोत्रादिको का विनाश करने वाला है । इस संशय को दूर कर ही जीव अपने परम मनोरम को प्राप्त कर सकता है । आशा पिशाची के

छित्त्वेन सशय जतु परमप्सितमाप्नुयात् । पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम् ॥
पूर्णहिंतासिना छित्त्वा जीव-भुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीरं समाश्रित । ज्ञानखड्गन निर्मोहस्ततो भुक्तिमवाप ॥१८॥
तत प्रभृति तत्तीथ खड्गतीथमिति स्मृतम् । ज्ञानतीथं च कवयः पलूय सवकामदम् ॥१९॥
इत्यादिषट्सहस्राणि तीर्थान्याहुर्महर्षयः । अशेषपापतापोघहराणीष्टप्रदानि च ॥२०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म तीथमाहात्म्य खड्गतीथवर्णन नामकोनचत्वारिंश
दधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

गौतमोमाहात्म्य सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अन्विन्द्रात्रयादितीथवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आश्रयमिति विख्यातमन्विन्द्र तीथमुत्तमम् । तस्य प्रभावः वक्ष्यामि ऋष्टराज्यप्रवायकम् ॥१॥

सन्तान मानव-देह में पुसकर सब सुखों को नष्ट कर देती है । मनुष्य इसको उसी ज्ञानखड्ग से मली भाँति नष्ट कर
जीवन काल में ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१॥ १७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने बालू वह ज्ञान प्राप्त कर क्या नीर पर रहने लगा और ज्ञानखड्ग से मोह का छत्र
करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली । उस समय से वह तब खड्गनीय नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसा को सब काम
नाशों को देने वाला नादतीथ वषट् और पञ्च नामा यथा पुरातरा जाता है । इसके अतिरिक्त महर्षिगण समस्त
पाप-लाप के समूह को नष्ट करने वाल और इष्ट प्राप्त होकर हीन तीर्थों की स्थिति भी वर्णन करने हैं । १८ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीथ माहात्म्य प्रकरण में खड्गनीय वर्णन नामक एक सौ उनवत्तीसवा
अध्याय समाप्त । १३९॥

अध्याय १४०

अन्विन्द्र आश्रय आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—आश्रय नाम से विख्यात अन्विन्द्र नामक उत्तम तीर्थ है । उसमें ऋष्ट राज्य को
नष्ट करने वाले प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ । पौत्र्यी के उत्तर तीर पर मयवान् ऋषि आश्रय ने ऋषिर्वा और मुनिरा के

गीतम्या उत्तरे तोर आत्रेयो भगवानुवि । अन्वारेभेऽय सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृत ॥२॥
 तस्य होताऽभवत्त्विग्निर्हव्यवाहन एव च । एव सत्रे तु सपूर्ण इष्टि माहेश्वरी पुन ॥३॥
 कृत्वंश्वर्यमगाद्विप्र सब्रत गतिमेव च । इन्द्रस्य भवन रम्य स्वर्गलोक रसातलम् ॥४॥
 स्वेच्छया याति विप्रेन्द्र प्रभावात्तपस शुभात । स कदाचिद्वि वत्वा इन्द्रलोकमगात्पुन ॥५॥
 तत्रापश्यत्सहस्राक्ष सुरं परिवृत शुभं । स्तूयमान सिद्धसार्धं प्रेक्षन्त नृत्यमुत्तमम् ॥
 भूषवान मधुर गीतमप्सरोभिश्च योजितम् ॥६॥

उपोषविष्टं सुरनायकस्तं, संपूज्यमान महदासनस्थम् ।
 जयन्तमङ्गे विनिधाय सूनु, शय्या युत प्राप्तवति महिष्ठम् ॥७॥
 सता शरण्य वरद महेन्द्र, समीक्ष्य विप्राधिपतिर्महात्मा ।
 विमोहितोऽसौ मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम् ॥८॥
 संपूजितो देवगणैर्यथावत्स्वमाश्रम वं पुनराजगाम ।
 समीक्ष्य ता शक्रपुरीं सुरम्या, रत्नैर्दुता पुण्यगुणं सुपूर्णम् ॥९॥
 स्वमाश्रम निष्प्रभहेमवर्ण्यं, समीक्ष्य विप्रो विरम जगाम ।
 समीहमान सुरराज्यमासु, प्रिया तदोवाच महात्रिपुत्र ॥१०॥

सहित यज्ञ प्रारम्भ किया । उस यज्ञ के होता हव्य वाहन अग्नि स्वयं था । इस प्रकार यज्ञ के पूरा हो जाने पर पुन उन्होंने माहेश्वरी इष्टि का अनुष्ठान कर महान ऐश्वर्य एवं सब्रत व्रतन करने की शक्ति प्राप्त कर ली । वे विप्रेन्द्र इन्द्र के रम्य भवन स्वर्गलोक और रसातल में अपनी तपस्या के श्रुत प्रभाव से स्वच्छाशुक्ल जात थे । वे किसी समय स्वर्ग में गये फिर धूमते हुए इन्द्रगोक में पहुँचे । वहाँ मङ्गलमय देवताओं के मध्य में बैठ हुये इन्द्र को देखा जिनकी स्तुति सिद्ध और साध्यगण कर रहे थे (जो स्वयं उत्तम नृत्य को देख रहे थे गणवर्गों का मधुर गान को सुन रहे थे अप्सराय जिनकी पक्षा मल रही थी) । उन महेन्द्र का जो उच्च असन पर बैठ हुये थे समीप बैठे हुए सुरनायक जिनकी पूजा कर रहे थे जो अपने पुत्र जयन्त को गोत्र में बैठाकर शत्रुओं के साथ प्रमालाप कर रहे थे जो महान सज्जनों के एक मात्र आश्रय और कर देने वाले थे देखकर विप्रेन्द्र महात्मा मुनि इन्द्र की लक्ष्मी से मोहित हो गये । मन ही मन उन्होंने उस इन्द्र राज्य की इच्छा की । पुन वहाँ देवताओं से मन्त्रीमाति सम्मानित होकर अपने आश्रम में चल आये । उस इन्द्रपुरी को अतिमनोहर विनिमय रत्ना स सुसज्जित ऐश्वर्यों और उत्तम पदार्थों से भरी-पूरी देख कर और इससे विपरीत अपने आश्रम को एश्वर्य एवं श्री से हीन देखकर वह विप्र उदस हो गया । उस ऐश्वर्य-शामी अति-पुत्र के मन में शीघ्र इन्द्र-पद पाने की इच्छा हो गई । तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥ १-१०॥

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्मप्यतिसंस्कृतानि ।
 स्मृत्वाऽमृतं पुष्पतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोग्यं च वरासनानि ॥
 स्तुतिं च दानं च सभां शुभां च, अस्त्रं च चासांसि पुरीं वनानि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्स्वप्नारमाहूय वचो बभाषे ॥१२॥

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुल्य शीघ्रं पदमेन्द्रमग्र ।
 ब्रूषेऽन्यथा चेन्मनुदोरितं त्वं, भस्मी करोम्येव न संशयोऽत्र ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्स्वरितं प्रजानां, लब्धं विभुविश्वकर्मा तदेव ।
 चकार मेवं च पुरीं सुराणां, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम् ॥१४॥
 चकार वज्रादिविभूषितानि, गृहाणि शुभाप्यतिचित्रितानि ।
 चकार सर्वावयवानवद्यां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम् ॥१५॥
 सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः ।
 चकार चोच्चैःश्वसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशोयान् ॥१६॥

अत्रिपुत्र ने कहा—इन परिष्कृत एवं अत्युत्तम फल-मूला को खाने में मैं असमर्थ हूँ। स्वर्ग के उन अनूतमय, पवित्रतम मध्य और भोग्य पदार्थों, उत्तम आसनो स्तुति दान, उत्तम सभा, अस्त्र, अस्त्र, पुरी और वना को देखकर इन फलमूलों से अक्षि हो गई है ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मा आत्रेय ने अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वप्न को बुलाकर कहा ॥१२॥

आत्रेय ने कहा—महात्मन् । मैं इन्द्रत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ। शीघ्र ही यहाँ ऐन्द्र पद के उपयुक्त स्पवस्था कर दो। यदि मेरे बहने के विरुद्ध एवं भी सन्देह निवृत्त तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मैं तुमको जलाकर भस्म कर दूंगा ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस आत्रेयकी आज्ञा से शीघ्र ही प्रजापति ने स्वप्न, व्यापक विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पद्रुम, वन्यलता धेनु आदिकी सृष्टि कर दी। अति विविध वज्र (मणि) आदि सज्जित शीघ्रगालयें बना दी गई। सर्वाङ्गसुन्दरी, वरमदेव की विहारशाला के समान शची सुरल प्रस्तुत कर दी गई। अनोकर देवसभा, और अमर रायें क्षण भर में ही बना दी गई। उच्चैःश्वरा, ऐरावत, वज्रादि अस्त्र और सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रस्तुत कर दिये गये। त्रिपा के बार-बार मना काले पर भी उस राणी हर्षिणी राणी को ऋषि ने अपनी पत्नी बना लिया। तब उसने बाद

निवार्यमाणः प्रिययाऽत्रिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार	।
तदाऽत्रिपुत्रोऽत्रिमूलैः समेतो, यच्चादिरूपं च चकार चास्त्रम्	॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य पुरे च दृष्टम्	।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनेन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव	॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि योचरेयु	।
भूत्वा च दंत्या दनुजाः समेता, रक्षासि कोपेन युतानि सद्यः	॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो न्वेय मिथः सुखाय	।
सस्माद्वयं याम इतो नु योद्धु, बुधस्य हन्तारमदीर्यसप्रम्	॥२०॥
ततः समागत्य तदाऽत्रिपुत्रं, संवेष्टयामासुरयासुरास्ते	।
संवेष्टयित्वा पुरमत्रिपुत्रकृतं तथा, चेन्द्रपुराभिधानम्	॥
संबध्यमानः शस्त्रपातैर्महद्भिस्ततो भीतो वाक्यमिदं जगाद	॥२१॥

आत्रेय उवाच

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रुनुता पर्यभूयत्	।
यस्य शुष्माद्रौदसी अभ्यसेता, नृगणस्य महूना सजना ॥ इन्द्रः	॥२२॥

अत्रि-पुत्र ने अत्रि प्रमुख ऋषियों के सामने ही बच्चादि अस्त्रों को अपना अस्त्र बना लिया (नृत्य, गीत आदि सब कुछ की व्यवस्था—जैसा कि इन्द्रपुरी में उन्होंने देखा था—कर ली।) उस समय उन सम्पूर्ण सुखद सामग्रियों को पाकर मुनीन्द्र स्वयमेव प्रसन्न चित्त हो गये। सत्य भी है, आपातरम्य (देखने में ऊपर से अतिआकर्षक) विषय के सामने आ जाने पर किसी को भोगाकाशा नहीं हो जाती है? जब देखो मनुजों और राक्षसों में यह सुना तब वे क्रुपित हो गये। सोचने लगे कि किस कारण यह इन्द्र स्वर्ग को छोड़कर यहाँ पृथ्वी पर आ गया है। यह तो हम लोगों के लिये प्रसन्नता की बात है। इसलिये हम वृत्र-हन्ता, दीर्घकालीन यज्ञों से विमुख इस इन्द्र से युद्ध करने के लिये यहाँ (दैत्यलोक) से प्रस्थान करें। इस प्रकार निश्चय करके उन असुरों ने दैत्यलोक से आकर अत्रि पुत्र को घेर लिया। अत्रि-पुत्र से वसाये गये उस इन्द्रपुर नामक नगर को घेरकर महान् भयकर शस्त्रों के प्रहार से उनको मारने लगे। तब अस्त्र प्रहार से मयभीत होकर आत्रेय ने यह कहा ॥१४-२१॥

अत्रिपुत्र ने कहा—जो उत्पन्न होते ही सबका मुखिया बन गया जिसने स्वयं देव होकर भी अन्य देवों को वशीभूत कर लिया, जिसके शारीरिक बल से स्वर्ग और पृथ्वी वाँप उठी हे असुर जनो! वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र है (मैं नहीं) ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरि च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्र

॥२३॥

आत्रेय उवाच

नाह हरिर्नैव शची मदीया, नेय पुरो नैव वन तदेन्द्रम् ।

स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुः ॥२४॥

अह तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दै, समाविष्टो गौतमीतीरसस्य ।

यत्राऽऽपत्यां माद्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकार्यं कर्म दुर्दैवमोगात् ॥२५॥

असुरा ऊचुः

सहरस्वेवमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम् । क्षेमस्ते भविता सत्य नान्यथा मुनिसत्तम ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽनेयोऽब्रवीद्वाक्य यथा वक्ष्यन्ति मामिह । करोम्येव महाभागा सत्येनानि समालभे ॥२७॥

एमुक्त्वा स दैतेयास्त्वष्टार पुनरब्रवीत्

॥२८॥

आत्रेय उवाच

यत्कृत त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्र त्वष्ट पद त्वया । सहस्व पुन शीघ्र रक्ष मा ब्राह्मण मुनिम् ॥२९॥

पुनर्देहि पद मह्यमाभ्रम मृगपक्षिण । वृक्षावध वारि यत्राऽऽसीन्न मे दिव्यं प्रयोजनम् ॥

सर्वमक्रममायात न सुखाय मनीषिणाम्

॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—तब इस सूक्त स अत्रि-पुत्र ने इन्द्र की महता व्यक्त की और पुन अपने पापों से बचा ॥२३॥

आत्रेय बोले—मैं इन्द्र नहीं हूँ न तो यह वाणी और नगरी ही मेरी है और न यह नन्दवन ही मेरा है ।

वस्तुतः स्वयम् इन्द्र ही इन्द्र है वही वृत्र हन्ता वज्र धारण करने वाला सहस्र नख वाला, पवता कपला को बाटने वाला वज्रबाहु इन्द्र है । मैं तो वेदा को आनने वाला ब्राह्मण हूँ सदा ब्राह्मण के सहित इस गौतमी तीर पर रहा करता हूँ । जिससे द्वारा भविष्य अथवा वर्तमान वभी भी सुख का मूल नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि जिस व्रम से वभी सुख नहीं प्राप्त होता उस व्रम की आर मैं दुर्दैव की प्ररणा से आहूट हो गया हूँ ॥२४-२५॥

असुरों ने कहा—आत्रेय ! तो तुमने जो यह इन्द्र का ढाग पैला रखा है उसको समटा । मुनिश्रेष्ठ !

यथापत तुष्टाव कल्याण इसीम है दूसरे न नहीं ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तब आत्रेय ने कहा—महाभाग ! जैसा आप सोच रहते हैं वैसा ही बहैगा । अत्रि की धारम है सत्य कहता हूँ । इस प्रकार उन दैत्या से बह कर पुन उन्होंने स्वप्ता से कहा ॥२७-२८॥

आत्रेय ने कहा—स्वप्ता ! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए जिस एन्द्र-मद को यहाँ बनाया है उसको शीघ्र दूर करो । इस प्रकार इस मुनि ब्राह्मण की रक्षा करो । पुन मरा वह भूग और पनियो त मुनोर्मित आश्रम ही दो जहाँ वृण और जल का मधु सोन था अब मुझे इस स्वर्गीय वस्तुत्रा की कुछ भी आवश्यकता नहीं । मनीषिया के लिये वमविषय (अवस्थात) प्राप्त पदार्थ सुखद नहीं होते ॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा । दैत्याश्च जम्मुः स्वस्थानं कृत्वा देशमकण्टकम् ॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं संप्रहसन्निव । आत्रेयोऽपि तदा शिष्यः संवृतः सह भार्यया ॥३२॥
गोनमोत्तोरमाश्रित्य तपोनष्टोऽखिलैर्वृतः । वर्तमाने महायज्ञे लज्जितो वायव्यमब्रवीत् ॥३३॥

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि भ्रान्तचित्तता । किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्मानेयं लज्जितं प्राबुधन्पुराः

॥३४॥

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता' ध्यातिस्तमा । आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्पुर्ज्जता ॥३५॥
इन्द्रास्ते भविनारो वं स्मरणा'सुखभागिनः । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ॥३७॥
अन्वित्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३८॥

ब्रह्मा बोले—तब ऐसा ही हो यह कहकर प्रजापति त्वष्टा ने सब माया समेट ली । दैत्य भी यह देखकर उस स्थान को निरापद कर अपने स्थान को चले गये । त्वष्टा भी हँसते हुये-से अपने स्थान को लौट गये । अन्तर आत्रेय भी अपने शिष्यों और भार्या के साथ गौतमी-तट पर तपोनिष्ठ हो रहने लगे । कुछ दिनों बाद पुन महायज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसमें सब देवों और ऋषियों के सामने ही लज्जित होकर उन्होंने कहा ॥३१-३३॥

आत्रेय ने कहा—अहो ! मोह की महिमा भी क्या है, जिसके कारण मेरे मन में भी भ्रान्ति हो गई । मैंने पहले क्या (तप) किया था और फिर मोह में आकर किस प्रकार महेन्द्र-पद प्राप्त किया ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहने वाले लज्जित भूनि से देवों ने कहा ॥३५॥

देवताओं ने कहा—महाबाहु ! लज्जा को छोड़ो तुम्हारी उत्तम कीर्ति इस लोक में फैलेगी । इस आत्रेय तीर्थ में जो प्राणी विधिपूर्वक स्नान करेंगे, वे अवश्य इन्द्र होंगे और इस तीर्थ के स्मरण मात्र से प्राणी सुखभागी होंगे । वहाँ मनीषियों ने अन्य पाँच हजार अन्विन्द्र, आत्रेय, दैतेय आदि तीर्थों के नाम गिनाये हैं जिनमें स्नान और दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः संतुष्टश्चाभवन्मुनिः

॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽम्बिन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

पौतमोमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलासगमाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलासंगमं नाम तीर्थं प्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम् ॥१॥

कपिलोऽङ्गनाम तत्त्वतो मुनिरासौगन्धमायशः । क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः ॥२॥

तपस्यश्च मुनिश्रेष्ठ गौतमीतीरमाश्रितम् । समागत्य महात्मान धामदेयादयोऽब्रुवन् ॥३॥

हृशः चेनं ब्रह्मशापेनंष्टधर्मं त्वराजके । कपिलं सिद्धमाचार्यमूचुर्मुनिगणास्तदा ॥४॥

मुनिगणा ऊचुः

गने वेदे गते धर्मे किं कर्तव्यं मुनीश्वर

॥५॥

११ ब्रह्मा बोले—यह कहकर देवता चले गये और मुनि भी संतुष्ट हो गये ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अम्बिन्द्र-आत्रेयादि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४०॥

अध्याय १४१

कपिला-संगम की कथा का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—‘‘मित्रवत बिश्रुत कपिला-संगम नामक एक तीर्थ है । नारद ! उस तीर्थ की अत्युत्तम पुण्य कथा को कह रहा हूँ मुनो । महापरायणी कपिल नामक तत्त्वदर्शी मुनि थे । वे क्रूर एवं प्रसन्न होकर भी तपस्या और व्रत परायण मुनि थे । गौतमी-तीर पर स्थित होकर तपस्या करते हुये उस महात्मा मुनिवर के पास आकर धामदेव आदि ऋषियों ने कहा कि जब वेन की बह्य साग से मार डाला गया, सागर राजवधर्म नष्ट-भ्रष्ट हुआ गया और देश में अराजकता फैल गई तब मुनियों ने सिद्ध आचार्य कपिल से कहा ॥१-४॥

मुनिगण बोले—‘‘गुरीश्वर ! वेन ने शून्य हो जाने पर और धर्म ने नष्ट हो जाने पर क्या करना उचित है ? ॥५॥

१ एतदपि यं च पुण्यस्थो विज्ञोत्तमोऽस्मिन्नेव संयमो षोडविधुः । स्मरणात्यर्बपापानां नाशनं विन्दुर्दोषान् इत्यपि च श्लोको वर्तते ।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिर्ध्यात्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन्

॥६॥

कपिल उवाच

वेनस्योद्विमम्योऽभूत्ततः कश्चिद्भूविध्यति

॥७॥

ब्रह्मोवाच

तयैव चक्षुर्मुनयो वेनस्योदं विमम्य वं। ततोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः॥८॥
 तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निपीड्येति चाब्रुवन्। निपादः सोऽभवत्तस्मान्निपादाश्चाभवन्ततः॥९॥
 वेनबाहु ममभ्युक्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पृथुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः॥१०॥
 राजाऽभवात्पृथुः श्रीमान्ब्रह्मसामर्थ्यसयुतः। समागत्य सुरा सर्वे अभिनन्द्य वराभ्युभान्॥११॥
 तस्मै बहुस्तथाऽस्त्राणि धन्वाणि गुणदन्ति च। ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पृथुं कपिलेन च॥१२॥

मुनय ऊचुः

आहारं देहि जीवेन्मो भुवा प्रस्तौयधीरपि

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः

॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कपिल मुनि ने सोच-विचार कर आगत मुनियों से कहा ॥६॥

कपिल बोले—वेन का ऊरु प्रदेश यदि मया जाय तो कोई समस्या का हल प्राप्त हो जायगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—मुनियों ने मुनि के आदेशानुसार वेन के ऊरु को मया। उससे से एक महापापी कृष्णकाय भयंकर बलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको देखकर मुनि लोभ डर गये। और 'निपीडस्व' (बँटो) ऐसा कहा। तब वह निपाद बन गया। उससे फिर निपादों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उन्होंने धर्मयुक्त वेन की दाहिनी भुजा को मया। तब उससे से गम्भीर स्वर वाला, सब राजलक्षणों से युक्त श्रीमान् ब्रह्मलक्षित से युक्त पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसके पास आकर सब देवों ने उसका स्वागत किया और उसको विभिन्न सुभ वरदान, अस्त्र और उपयोगी मन्त्र दिये। तदुपरान्त मुनियों ने कपिल के सहित उस पृथु से कहा ॥८-१२॥

मुनिगण बोले—समस्त जीवों को मोहन दो और पृथिवी द्वारा निगली हुई ओषधियाँ भी ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हाथ में धनुष लेकर उस नृपोत्तम ने पृथिवी से कहा—॥१४॥

पृथुस्वाच

ओषधीर्देहि या यस्ता प्रजानां हितकाम्यया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तमुवाच महो भीता पूय ॥ पृथुलोचनम् ॥१६॥

मह्युवाच

मयि जोषां महौषध्य कथं दातुमहं क्षमा ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततः सकोपो नृपतिस्तामाह पृथिवी पुनः ॥१८॥

पृथुस्वाच

नो चेद्वास्पद्य त्वा वं हत्वा वास्पे महौषधी ॥१९॥

भूमिरुवाच

कथं हसि स्त्रिय राज्ञ्यज्ञानी भूत्वा नृपोत्तम । विना मया कथं क्षेमा प्रजा सधारयिष्यसि ॥२०॥

पृथुस्वाच

यत्रोपकारोऽनेकानामेकनाशो भविष्यति । न दोषस्तत्र पृथिवी तपसा धारये प्रजा ॥२१॥

न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽचक्षेऽन्यकं वच । यस्मिन्निपातिते सौख्यं ब्रह्मनामुपजायते ॥

मुनयस्तद्वचः प्राहुरश्वमेधशताधिकम् ॥२२॥

पृथु ने कहा—जिन ओषधियों को तुमने हजम कर लिया है प्रजापति की मलाई के लिए उनको क्षीम लाओ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मयगीत पृथिवी ने उस दीपनेत्र पृथु से कहा ॥१६॥

पृथ्वी ने कहा—वे महौषधियाँ तो मेरे उदर में जीण हो गई । अब कैसे उनको दे सकती हूँ ? ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—तब राजा क्रुपित होकर पुनः उस पृथिवी से बोले ॥१८॥

पृथु ने कहा—यदि नहीं दोषी तो आज तुमको मारकर प्रजा की महौषधियाँ दे दूँगा ॥१९॥

भूमि ने कहा—राजन् ! तुम जानी होकर कैसे स्त्री को मारने के लिए उद्यत हो ? नृपात्तम ! मेरे बिना किस प्रकार इन प्रजापति की रक्षा या पालन करोगे ? ॥२०॥

पृथु बोले—पृथिवी ! जहाँ एक के नाश से अनेक का उपकार होना हो उस एक का वध करने में कोई दोष नहीं । प्रजापति की रक्षा तो अपनी तपस्या के द्वारा कर लूँगा । इसमें कुछ भी दोष नहीं देख रहा हूँ । यह व्यर्थ की बातें मैं नहीं कर रहा हूँ । जिसने वध से बहुतों को मुक्त होता ही उसने वध की मुनिपण तो अत्यन्त से भी अधिक फल प्रद बखलाते हैं ॥२१-२२॥

देवाऊचुः

ततो देवाश्च ऋषयः सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम् । महौ च मातर देवोमूचुः सुरगणास्तदा ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भूमे गोरूपिणो भूत्वा पयोरूपा महौषधी । देहि त्व पृथवे राज्ञे ततः प्रीतो भवेन्नृपः ॥
प्रजासरक्षणं च स्यात्ततः क्षेम भविष्यति ॥२४॥

देवा ऊचुः

ततो गोरूपमास्यापः भूम्यासीत्कपिलान्तिके । दुदोहं च महौषधौ (पौ) राजा येनकरोद्भूष ॥२५॥
यत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः कपिलो मुनिः । महौ गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥२६॥
सरस्वत्या भागीरथ्या गोदावर्या विशेषतः । महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥२७॥
सा बुद्ध्यमाना पृथुना पुष्यतोयाऽभयन्नदी । गौतम्या सगता चाभूत्तदद्भुतमिषाभवत् ॥२८॥
ततः प्रभृति तत्तीथ कपिलासगमं विदुः । तत्राष्टाशीति पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणा स्मरणादपि नारदः । पावनानि जगत्सर्वस्मस्तानि सर्वाण्यनुकृतात् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिबाह्ये स्वयम्भुविसवादे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमाष्टा-

शीतिसहस्रतीर्थवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनंतर देवों और ऋषियों ने उस नृपव्य को समझा-बुझा कर शांत किया । तब देवों ने माता पृथिवी देवी से कहा ॥२३॥

देवगण बोले—भूमि ! तুম ही रूप होकर दूध के रूप में महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो । इससे राजा प्रसन्न हो जायेंगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी । इस प्रकार सबका कल्याण होगा ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद पृथिवी भी का रूप धारण कर कपिल के समीप खड़ी हो गई अहा गंधर्वों के सहित देवता ऋषि और कपिलमुनि ये । वहाँ येन के हाथ से उषन राजा ने उससे महौषधियों को दूहा । महामनि नारद । गौ रूप धारण करने वाली उस पृथिवी के दूध को उस राजा ने नर्मदा सरस्वती भागीरथी गोदावरी आदि सब विशिष्ट महानदियों में गली भाति दूहा । पृथु से दूही गई वह कपिला (पौ) पवित्र जल वाली नदी बन गई और वह गौतमी से जाकर मिल गई । इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चर्यजनक घटना हुई । तब से वह तीर्थ कपिला सगम कहा जाने लगा । महामति । वहाँ पर मुनिगण और अस्सी हजार पूज्य तीर्थ बदलाते हैं । नारद । इस ससार में वे सब तीर्थ कमजोर स्मरणमात्र से सबको पुनीत कर देते हैं ॥२५-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-सगम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविभ्रुतम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसंगरे । प्रवृत्ते वा सिंहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी ॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः । अमृते तु समुत्पन्ने सिंहिकेये च भेदिते ॥३॥
तस्य पुत्रो महावैत्यो मेघहात इति श्रुतः । पितरं धातिसं श्रुत्वा तपस्तेपेऽसिद्धः खितः ॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम् । देवाश्च ऋषयः सर्वे तमूचुरतिभीतवत् ॥५॥

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि सस्यितम् । सर्वं भवतु नामेवं शिवगङ्गाप्रसादतः ॥
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

परिभूतः पिता पूज्यो युध्माभिर्मम देवतम् । तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि ॥७॥

अध्याय १४२

देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विशुवन मे प्रसिद्ध देव-स्थान नामक एक तीर्थ है । नारद ! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।

बहुत पहले कृतयुग के आदि मे देव-दानवो म युद्ध छिडा । उस समय सिंहिका नाम की प्रसिद्ध दैत्य-सुन्दरी थी । उसका राहु नामक महाबलवान् दैत्य पुत्र था । जब अमृत उत्पन्न हुआ, तब राहु अमृत-पान के कारण काट दिया गया । उस राहु का पुत्र मेघहास नामक महादैत्य था । अपने पिता का वध सुनकर दुःखी हो वह अति-भीषण तप करने लगा । गौतमी-तीर पर बैठ कर तपस्या करने वाले उस राहु-पुत्र से देव और ऋषि भयभीत-से होकर बोले ॥१-५॥

देव और ऋषि बोले—महाबाहु ! तपस्या छोड़ दो । शिव और गंगा की कृपा से तुम्हारी जो कोई मनः कामना है वह पूर्ण हो जाएगी । इस सत्कार मे शिव-गंगा की कृपा से कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ? ॥६॥

मेघहास ने कहा—आप लोगो मे मेरे देवतुल्य पूज्य पिता को पराजित किया है । यदि उनका और मेरा अत्यन्त प्रिय करना चाहते हैं तो मैं अपनी इस तपस्या से आपसे उस वर को दूर कर रहा हूँ । पुत्र का यह वर्तव्य

भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातिनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात्॥
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूर्णस्तनो मनोरयाः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्। तं चापि मेघहासं ते चक्रुः राक्षसपुंगवम्॥९॥
ततोऽभवद्वाहुसुतो नैर्ऋताधिपतिः प्रभुः। पुनश्चाऽहं सुरान्देत्यो मम श्वातिर्यथा भवेत्॥१०॥
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे मतिः। तथेत्युक्त्वा बह्नुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम्॥११॥
दैत्येऽजरस्य देव्यै तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते। देवा यतोऽभवन्तस्य तत्र स्थाने महामते॥१२॥
देवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम्॥१३॥
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाष्टादशतीर्थवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

है कि वह आदरपूर्वक पिता के वैर का बदला चुकाये। यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायें ॥७-८॥

ब्रह्मा बोले—तब सब देवताओं ने राहु को ग्रहों की श्रेणी में परिगणित कर दिया और उस मेघहास को भी श्रेष्ठ राक्षस बना दिया। इसके बाद वह राहु-पुत्र नैर्ऋत दिशा का समर्थ स्वामी हो गया। पुनः उस दैत्य ने देवताओं से कहा कि मेरी कीर्ति जिस प्रकार हो वैसे ही इस तीर्थ को प्रभावशाली बनाइए, यही मेरा विचार है। देवताओं ने 'एवमस्तु' वह (उत्ते) मनोवाञ्छित सब कुछ दे दिया। देवर्षिनारद ! उस दैत्येश्वर के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। महामते ! यतः उस स्थान पर सब देवता उपस्थित हुये अतः वह तीर्थ देवों के लिए भी दुर्लभ देवस्थान नामक तीर्थ हो गया है। अहाँ देवेश्वर देव हैं वह देवतीर्थ कहा जाता है। नारद ! वहाँ दैत्यों से पूज्य अट्ठादह और तीर्थ हैं, उनमें स्नान और दान करने से महापातक भी नष्ट हो जाते हैं ॥९-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देवस्थान आदि अट्ठारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१॥
 पुलस्त्यवंशसंभूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च सोमलोकमजीगमत ॥२॥
 सोमेन सह योत्स्यन्त दशास्यमहमन्नवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दशानन ॥३॥
 इत्युक्त्वाऽऽदोत्तरं मन्त्रं शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादा मारद शान्तये ॥४॥
 निःश्रीकाणां विपन्नानां नानावलेक्षणानां नृणाम्। शरणं शिव एवात्र ससारेऽन्यो न कश्चन ॥५॥

ततो निवृत्तः स ह मन्त्रियुवतस्तत्सोमलोकान्जयमाप्स्य रक्षः ।

त पुष्पकालङ्घतिः 'सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाद्दशास्यः ॥६॥

स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गङ्गाश्च विप्रान्' ।

आलोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावाप्त उमापतेर्यः ॥७॥

वृष्ट्वा स्मर्योत्फुल्लदुग्धद्विराजं, स मन्त्रिणौ रावण इत्युवाच ॥८॥

अध्याय १४३

सिद्धतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है, जहाँ सिद्धेश्वर हर निवास करते हैं। मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाले उसके प्रभाव को बना रहा हूँ। पुलस्त्यकुलोत्पन्न लोचन-मयङ्कर रावण सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर चन्द्र-लोक में पहुँचा। चन्द्रमा ने साथ-युद्ध-रत उस दशभुज से मैने कहा—'दशानन। तुमको मन्त्र दूँगा, चन्द्रमा ने साथ युद्ध करना बन्द कर दो। मारद। यह कहकर मैने उमकी पान्ति के लिए उस राक्षसेन्द्र को शिव के एक-सी आठ नामों से युक्त मन्त्र दे दिया। इस समार में थीहीन, तथा विषद्वस्त अनेक बलशों को भोगने वाले मनुष्यों के शिव ही एकमात्र शरण है, दूसरा कोई नहीं। तब वह राक्षस सोमलोक को जीत कर मन्त्रिया के सहित वहाँ से लौटा। वह रावण गर्व के साथ पुष्पकविमान पर आरुढ़ होकर बड़े बग से पुन लाना में गया। वह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नागों, गजों एवं विप्रा को देखने लगा। इतने में उमापति का जो कासस्थान था, उस महापर्वत कैलाश को उतने देखा। पर्वतराज को देखकर उस रावण के नेत्र आनन्द से तिल उठे। उसने अपने दोनों मन्त्रियों से कहा ॥१-८॥

रावण उवाच

को वा गिरावत्र वसेन्महात्मा, गिरिं नयाम्येनमथाधि भूमे ।
लङ्कागतोऽयं गिरिराजो शोभा, लङ्काऽपि सत्यं श्रियमातनोति ॥९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणो तो, निशम्य रसोधिपतेऽत्र भावम् ।
न युरतमित्यूचतुरिष्टबुद्ध्या, निशाचरस्तद्वचनं न मेने ॥१०॥
सस्यास्य तत्पुष्पकमाशु रक्ष, पुष्पाव कंलासमिरेदश्च मूले ।
हिन्दोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भव कृत्यमिदं चकार ॥११॥
जित्वा दिगोशाश्च सर्गात्रितस्य, कंलासमान्दोलयत सुरारे ।
अङ्गुष्ठकृत्यं रसातलादिलोकाश्च यातस्य, दशाननस्य ॥१२॥
आन्तूनकायस्य गिरिं निशम्य, बिहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नं कुपितोऽपि शम्भुरयुक्तदासेति न सशयोऽत्र ॥१३॥
ततोऽयमावाप्य वराम्बुबोरो, भवप्रसादात्कुसुमं जगाम ।
गच्छन्तं लङ्कां भवभूजनाय, गङ्गायनाच्छभुजटाप्रसूताम् ॥१४॥
सपुञ्जयित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजले शम्भुमदीनसत्त्व ।
अस्ति स लभे दशशिवगडभूयास्तिष्ठि च सर्वधिमभीप्सिता च ॥१५॥

रावण ने कहा—कौन महात्मा इस पर्वत पर रहते हैं ? मैं इस पर्वत को पम्बीरल पर ले जाना चाहता हूँ । यह गिरि लङ्का में अच्युत शोभा प्राप्त करेगा । इससे लङ्कापुरी की शोभा भी अधिक बढ़ जाएगी ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—ये दोनों राक्षस मन्त्री राक्षसपति की ऐसी वाना को सुनकर उसके माथ की ठाढ़ गये । उन्होंने उनके हिल की दृष्टि से कहा कि यह उचित नहीं है । किन्तु निशाचर ने उनकी बात न मानी । वह राक्षस अपने पुष्पक विमान को बठी रखकर कैलाशगिरि के मूल देश में बूढ़ पड़ा । वहाँ जाकर वह दानान उस पर्वत को हिलाने लगा । गकर ने रावण का इस धृष्टता को जानकर ऐसा किया कि सब दिक्पालों को जीतने से गवित और कैलास की हिलाने वाले उस गुर गन्ध दानान को अगुठ से दबा दिया । जिससे वह रसातल्लोक में बँसने लगा उसका गरीर क्षत विभ्रत हो गया और वह जोरो से चिलाने लगा । अतः म उषकी प्रायना को सुनकर देवी के सहित क्रुद्ध होते हुए भी गकर ने प्रसन्न होकर हँसकर उसको वरदान दे दिया । वास्तव में गकर अयोग्या को भी दान देने वाले हैं इसमें कोई सन्देह नहीं । गकर की कृपा से वरो को पाकर वह भीर पुष्पक विमान के पास गया । लका आते समय वह गकर की पूजा के लिए शिव की जटा से निकली हुई गंगा के पास गया । गंगा जल और विविध मन्त्रों से उस धृष्टार्थी रावण ने धनु की पूजाकर उस शक्तिमौलि से सडय सिद्धिपति और श्री

मद्वत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य ।
सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः ॥१६॥

ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च ।
समस्तपापोधविनाशनं च, सिद्धैरशेषं परितोषितं च ॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थछष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतु सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसंगमं धेति तीर्थं त्रिलोक्यविश्रुतम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ॥१॥
अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा मयं भविष्यम् ॥२॥
तथा चत्वारः कृत्यो मम भवेत्पुत्राः । तथा पुत्रत्वमाप्नुते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३॥

पित्त सब ऋद्धिप्राप्त की । उसने चन्द्र की रक्षा के लिये शंकर की पूजा कर मेरे दिये हुये मन्त्र का अनुष्ठान किया ।
मन्त्र-सिद्धि होने पर वह राक्षस राज प्रसन्न होकर पुन लम्बा में चला आया । तब से महासिद्धियों को देने वाला
इष्टप्रद, अनिप्रमादशाली और समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाला वह तीर्थ समस्त सिद्धों का प्रिय और सेष्य हो
गया ॥१-१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सिद्ध-तीर्थ वर्णन नामक एव तीर्तालीनवा अध्याय समाप्त ॥१४३॥

अध्याय १४४

परुष्णी-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—परुष्णी-संगम नामक तीर्थ त्रिलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ ॥ । उसने पाप-विनाशक परिचय का वर्णन
कर रहा हूँ, सुनो । अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की आराधना की । उनके प्रसन्न होने पर उन्होंने उनसे कहा कि
आप लोग मेरे पुत्र होइये और हे देवगण । मुझे एक रूपवती कन्या भी हो । निदान ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर
उन्हे पुत्र दिये । कुछ समय बाद अत्रि ने आनेही नाम की एक क्षुद्र कन्या उत्पन्न की और उस महात्मा ने दत्त,

कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः । दत्तः सोमोऽयं दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः ॥४॥
 अग्नेरङ्गिरसो जातो ह्यङ्गारैरङ्गिरा यतः । तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयोमातरोचियम् ॥५॥
 अग्नेः प्रभावात्पश्यमानेयौ सर्वदाऽयवत् । आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वतो सर्वदाऽभवत् ॥६॥
 तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमा । अङ्गिराः पश्यं वादीदात्रेयौ नित्यमेव च ॥७॥
 पुत्रास्तवाङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते । सा कदाचिद्भूतुं वाक्यादुद्विग्ना पश्याभरात् ॥
 कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुरुम् ॥८॥

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाहं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै । शुश्रूषणपरा नित्यं पुत्राणा भर्तुरेव च ॥९॥
 पतिर्मा पश्य दक्षि त्र्यंबोद्घोषते दवा । प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तारं मम दैवतम् ॥१०॥

ज्वलन उवाच

अङ्गारेभ्य समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः । यया शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिर्विधीयताम् ॥११॥
 आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने । तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेया मवाज्ञया ॥१२॥

आत्रेय्युवाच

सह्यं पश्य वापय मा भर्ताऽग्निं समाविशेत् । भर्तारं प्रतिकूलानां योषिता जीवनेन किम् ॥१३॥

सोम और दुर्वासा तीन पुत्र हुये । अग्नि के अङ्गिरस पुत्र थे । जिस लिए अङ्गारो से उसकी उत्पत्ति हुई थी इसलिये उसको अङ्गिरा कहते थे । अग्नि ने अपनी अतितेजस्वी कन्या अङ्गिरा को दे दी । अग्नि के प्रभाव से अङ्गिरा सर्वदा आत्रेयी को जली-कटी सुनाया करते थे परन्तु आत्रेयी सर्वदा पति-शुश्रूषा करती रहती थी । उससे महा बलवान् और पराक्रमी आङ्गिरस उत्पन्न हुआ । अङ्गिरा नित्य प्रति आत्रेयी को कटु बातें सुनाया करता था । वे पुत्र आङ्गिरस नित्य पिता को शान्त किया करते थे । वह किसी दिन पति के कटु शब्दों से उद्विग्न हो गई । उस दिन आत्रेयी ने हाथ जोड़कर अपने पूज्य श्वशुर से कहा ॥१-८॥

आत्रेयी ने कहा—हे हव्य को ढोने वाले अग्नि ! मैं अग्नि तनया आपके पुत्र की मार्या हूँ प्रतिदिन पुत्रो और भर्ता की शुश्रूषा किया करती हूँ, फिर भी मेरे पति वृथा ही कटु शब्द कहा करते हैं जोश से आँखें लदरे कर देखा करते हैं । सुरज्येष्ठ ! कृपाकर मेरे मर्तुदेव और मुझको भी उचित उपदेश दीजिये ॥९-१०॥

अग्नि ने कहा—तुम्हारे भर्ता ऋषि अङ्गिरा अगार से उत्पन्न हुये हैं । वो जिस प्रकार यह शात हो भद्रे ! वैसे ही उपाय करना चाहिए । सुन्दर बानन वाली ! तुम्हारे पति आग्नेय जब अग्नि के पास आये तब तुम जलरूप से उनको मेरी आभा से डूबा दो ॥११-१२॥

आत्रेयी ने कहा—मैं उनके कटु वाक्यों को सह लूँगी, परन्तु मेरे भर्ता अग्नि ने भत प्रवेश करें । भर्ता से

ज्वलन उवाच

इच्छेय शान्तिवाक्यानि भर्तारं लभते तथा ॥१४॥
 अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्यादरे जङ्गमे तथा । तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मत ॥१५॥
 योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्ता कर्तुमर्हसि । किंचाऽप्यो मातरो देव्यो ह्यग्निं स्वशुर इत्यपि ॥
 इति बुद्ध्या विनिश्चित्य मा विपण्या भव स्नुषे ॥१६॥

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यदवभाषे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या ॥
 कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाथ ॥१७॥

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नीं भरणात् भार्या, जनेस्तु जाया 'स्वगुणै' कलत्रम् ॥
 इत्यादिरूपाणि विभर्षि भद्रे, कुरुष्व वाक्यं मद्वोरितं यत् ॥१८॥
 योऽस्या प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातृव न सस्योऽत्र ॥
 तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञा, सा नैव योषितनयेऽभिजाते ॥१९॥

प्रतिकूल रहने वाली स्त्रियो के जीवन से क्या लाभ ? मैं तो जिस प्रकार भर्ता शान्ति वचन कहने लगीं वैसा ही करना चाहती हूँ ॥११ १४॥

अग्नि बोले—अग्नि तो जल शरीर स्यादर और जलम मे रहता है । मैं तुम्हारे पति को उत्पन्न करने वाला और उनका धाम (आश्रय) हूँ । मैं तो जो हूँ वह हूँ ही या रहूँगा ही ऐसा जानकर तुम कभी भी चिन्ता न करो । दूसरी बात यह है कि आप (जल) देवी माता हैं, और अग्नि तुम्हारे समुद्र हैं इसका बुद्धि द्वारा निश्चय कर लो ! तुम उदास मत होओ ॥१५ १६॥

स्नुषा बोली—अने ! आप (जल) जननी हैं यह आपने जो कहा वह ठीक नहीं क्योंकि मैं तुम्हारे पुत्र की भार्या हूँ । नाथ ! भार्या होकर स्त्री किस प्रकार जननी हो सकती है ? यह तो जलरूप से (जननी बनना) विरुद्ध जान पड़ता है ॥१७॥

अग्नि ने कहा—पहले (विवाह के समय) स्त्री पत्नी रहती है पुत्र भरणपोषण करने से भार्या बन जाती है पुत्रोत्पत्ति के कारण जाया और अपने गुणों के कारण कलत्र बहलती है । मद्र ! इस प्रकार स्त्री होने से नाते तुम इन विविध रूपों को धारण करती हो अतः मैं जो कह रहा हूँ उसको करो । जो पति इसम (स्त्रीम) उत्पन्न हुआ वह तो पुत्र ही हुआ और वह उसकी माता हुई इसम सन्देह नहीं । इसीलिये वेत्त ममता ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न हो जाने पर स्त्री योषिण नहीं प्रयुक्त जननी हो जाती है ॥१८ १९॥

ब्रह्मोवाच

द्वन्द्वरूपं तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽऽत्रेयो तदेव तत् । आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम् ॥२०॥
 उभौ तौ दंपती ब्रह्मसंगतो गङ्गावारिणा । शान्तरूपधरो सोमो दंपती संबभूवतुः ॥२१॥
 लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुर्मया शंकरो यथा । रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मियुनं तदा ॥२२॥
 भर्तारं प्लावयन्तो सा दधाराम्बुमयं वपुः । परुष्णी चेति विख्याता गङ्गाया संगता नदी ॥२३॥
 गोशतापणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत् । तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्र्यज्ञांश्च बहुवक्षिणान् ॥२४॥
 तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणगाः । उभयोस्तीरयोस्तात पूययामफलं विदुः ॥२५॥
 तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम् । विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह सगमे ॥२६॥
 स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राप्ते तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसंगमाद्विषसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४॥

गीतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—समुद्र की इन बानों को सुनकर आग्नेयी ने उसी समय उस आग्नेय रूप पाये हुये पति को जल में डुबो दिया । ब्रह्मन्^१ । वे दोनों दम्पती गङ्गा-जल से मिल जाने पर शान्तस्वरूप वाले दम्पती बन गये । जिस प्रकार लक्ष्मी से युक्त विष्णु, उमा से युक्त शिव और रोहिणी से युक्त चन्द्रमा की शोभा होती है, उसी प्रकार वे दोनों युगल दम्पती सुशोभित हुये । भर्ता को जल से डुबोती हुई उसने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नाम से विख्यात हुई और वह नदी गंगा में जाकर मिली । परुष्णी में स्नान करने से सौ गोदान का पुण्य प्राप्त होता है । उस सगम तीर्थ में आगिरसों ने बहुत-सी वक्षिणा वाले अनेक यज्ञ किये । पुराण-गायक लोग वहाँ और तीन हजार तीर्थ बताते हैं । ठाढ़ । वहाँ दोनों तटों के यज्ञों का फल पृथक्-पृथक् कहा गया है । उनमें स्नान और दान करने से वाजपेय यज्ञ से भी अधिक फल मिलता है, ऐसा कहा जाता है । गंगा और परुष्णी के सगम में स्नान-दान करने से जो विशेष पुण्य मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२० २७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में परुष्णी-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एनसी चौवालीसवाँ
 अध्याय समाप्त ॥१४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेय नाम तीर्थ सर्वपापविमोचनम् । सर्वकृतुफल पुण्यमघौघविनिवारणम् ॥१॥
 तस्य प्रभाव वक्ष्यामि भृगु नारद यत्नत । मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतम ॥२॥
 याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽपि नारद । एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगा ॥३॥
 पुराणन्यायमोमासाकथास्तु परिनिष्ठिता । मियं समूचविद्वांसो मुक्तिं प्रति दयामति ॥४॥
 कैचिज्ज्ञानं प्रशसन्ति कचित्कमं तयोभयम् । एव विवदमानास्ते मामूचुर्बभूवुः ॥५॥
 मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम् । तस्य चापि मतं ज्ञात्वा श्रुत्यस्ते महोजसः ॥६॥
 पुनर्विवदमानास्ते शक्रं प्रष्टुमुद्यताः । यज्ञाया च भव पूज्य तमेवार्थं शशसिरे ॥७॥
 कमणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरातकः । क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया संघं तदुच्यते ॥८॥
 तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः । कर्मैव विश्वतोऽप्यापि तद्गते नास्ति किञ्चन ॥९॥
 दिद्याम्यासे' दत्तकृतियोगाभ्यासं शिवाचनम् । सर्वं कर्मैव नाकर्मा प्राणी कदाप्यन विद्यते ॥१०॥

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब पापों को छुड़ाने वाला सब यज्ञ पाली को देने वाला पवित्र और अघ-समूह को नष्ट करने वाला मार्कण्डेय नामक तीर्थ है । नारद । उसके प्रभाव को बह रहा हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो । नारद । मार्कण्डेय भारद्वाज वसिष्ठ अत्रि गौतम यागवल्क्य जाबालि आदि मुनियों एवं अन्य शास्त्रकर्ता वेदवेदाङ्ग व पारंगत पुराण मीमांसा और यागवर्षा में अति निष्ठा रखने वाले विद्वान् । न मुक्ति के विषय में अपनी मूल वे अनुसार परस्पर अपने विचार व्यक्त किए । कोई ज्ञान की प्रशंसा करते थे तो कोई कर्म की तो कोई कर्म और ज्ञान दोनों की । इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन लोगों ने मेरे सामने दोनों पक्ष रखे । मेरे मन को जान कर लोग चक्रगदाधारी विष्णु के समीप गये । उनक मत को भी जान कर महातेजस्वी श्रुति पुन अपने म विवाद करते हुए शक्र से पूछने के लिये तैयार हुए । गया में शक्र की पूजा कर उनसे पुन उसी विवाद के विषय में निवेदन किया । त्रिपुरारि शिव ने कर्म का ही प्राधान्य बतलाते हुए कहा—वह ज्ञान भी कर्म रूप ही है और वही कर्म ज्ञान कहा जाता है । इसलिए सब प्राणी कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करते हैं । कर्म ही विवद्व्यापी है । कर्म के बिना कुछ भी सम्भव नही है । दिद्याम्यास यज्ञकार्यं योद्याम्यास शिवपूजा सब कुछ कर्म ही है । कोई प्राणी

१ य च कर्म । २ रु रु चार्वाणि । ३ य वेद्याम्यासे ।

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम् । ऋषीणां यत्र संवादोऽयं देवो महेश्वरः ॥११॥
 चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः । मार्कण्डेयं मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते ॥१२॥
 तीर्थमुपिगणाकीर्णं गङ्गाया उच्यते तटे । पितृणां पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा ॥१३॥
 तथाष्टो भवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः । वेदेन चापि तत्प्रोक्तमूषयो मेनिरे च तत् ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाष्टनवतित्तीयवर्णनं नाम

षष्ठ्यष्टत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

अथ षट्त्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालञ्जरः शिवः । सर्वपापप्रशमनं तद्वत्समुच्यते मया ॥१॥

भक्तों वहीं पर भी नहीं देखा गया है । इसलिये अन्य उन्मत्त चेष्टाओं (पागलपन के कामों) का भी कर्म ही कारण है । जहाँ ऋषियों का इस प्रकार का संवाद हुआ और जहाँ महेश्वर ने अनुपम सब कुछ कर्म के द्वारा ही प्राप्त करता है ऐसी निगम विशेष रूप से मार्कण्डेय की ही लक्षित करके किया, इसलिये उसको मार्कण्डेय तीर्थ कहते हैं । गंगा के उत्तर तट पर ऋषियों से व्याप्त तीर्थ पितरों को पवित्र करने वाला और सर्वदा स्मरणमात्र से भी पुण्यदायी है । तात । जगद्व्यापक ने वहाँ अद्वैतानन्द तीर्थों को कहा है, वेदों ने भी उसको कहा है और ऋषियों ने भी इसका समर्पण किया है ॥१-१४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय आदि अद्वैतानन्द तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

समाप्त ॥१४५॥

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यायात नामक एक दूसरा तीर्थ है जहाँ कालञ्जर शिव रहते हैं । उसके सब पापों को धात कराने वाला इतिहास मैं कह रहा हूँ । नहुष का पुत्र ययाति नामक राजा था, जो छात्राङ्ग हूयरे इन्द्र के समान

ययानिर्नाहुयो राजा साक्षादिन्द्र इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुलक्षणभूयितम् ॥२॥
 ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुरुसुता शुभा। शर्मिष्ठीति द्वितीया सा सुता स्याद्दूषपर्वणः ॥३॥
 ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुरुप्रसादतः ॥४॥
 शर्मिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुरुसुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत् ॥५॥
 यदुं च तुवंतुं चैव देवपुत्रसमावुभौ। शर्मिष्ठा च नृपाल्लेभे त्रीण्युत्रान्देवसमिभान् ॥६॥
 दुह्युं चानुं च पूरु च ययातेनृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुरुस्पतः ॥७॥
 शर्मिष्ठायास्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कशाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता ॥८॥

देवयान्युवाच

मम स्वपत्यद्वितयमभाग्याया भृगूदह। मम दास्याः सभाग्याया अपत्यनितयं पितः ॥९॥
 तवेतदनुमृदयामं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिवृत्तिप्रियात् ॥
 मानभङ्गाद्वरं तात भरणं हि मनस्विनाम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तवेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुकः प्रतापवान्। वृषितोऽग्न्याययौ शीघ्रं ययातिमिदम्वीत् ॥११॥

या। उसकी कुलीन और सब लक्षणों से सुसोमित दो स्त्रियाँ थीं। जेठी कल्याणमयी शुक-कन्या देवयानी नामकी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। वह सुन्दर गटिवाली, महाबुद्धिमती देवयानी ब्राह्मणी होते हुए भी शुक की हृष से सक्रिय ययाति की भार्या हुई। वृषपर्वा-तनया शर्मिष्ठा भी उसी की पत्नी हुई। पुत्र-कन्या देवयानी ने दो पुत्रों की उत्पन्न किया। उन दोनों के नाम यदु और तुवंशु या। दोनों देव-पुत्रा के समान थे। शर्मिष्ठा न भी नृपश्रेष्ठ ययाति से देव तुल्य तीन पुत्र—दुह्य, अनु और पूरु—प्राप्त किये। ब्रह्मन्। देवयानी के पुत्र रूप में शुक के समान थे, और शर्मिष्ठा के पुत्र इन्द्र, अग्नि और वरुण के समान तेजस्वी थे। किसी समय देवयानी ने अत्यन्त दुःखी हो कर पिता से कहा ॥१-८॥

देवयानीने कहा—भृगुकुलोत्पन्न पिता जी! मुझे अभागिनी के तो दो ही पुत्र हैं, किन्तु मेरी सौभाग्य-वती दासी के तीन पुत्र हैं। इन बाता को सोचकर मुझे दुःख हो रहा है। दानव-शुक! ययाति के द्वारा किये गये अपमान से मैं मर जाऊँगी। तात! मनस्वी के लिए मानभङ्ग की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥९-१०॥

यहमा ने कहा—पुत्री की यह बात सुनकर प्रतापी शुक नृपित हो गए और शीघ्र ययाति के पास जाकर यह बोले ॥११॥

शुक्र उवाच

यदिदं विप्रिय मे त्वं सुताया कृतवानसि । ह्योन्मत्तेन राजेन्द्र तस्माद्बुद्धो भविष्यसि ॥१२॥
न च भोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयातुर । स्पृहयन्मनसं वाऽऽस्ते निश्वातोच्छ्वासनष्टयो ॥१३॥
वृद्धत्वमेव मरणं जीवतामपि देहिनाम् । तस्माच्छ्रेष्ठ प्रयाहि त्वं जरा भूपातिदुर्धराम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शापं शुक्रस्य धीमतः । कृताञ्जलिपुटो राजा ययाति शुक्रमब्रवीत् ॥१५॥

ययातिरुवाच

नापराधे न सङ्कुप्ये नैवाधर्मं प्रवर्तये । अधर्मकारिण पापा शास्या एव महात्मनाम् ॥१६॥
धर्ममेव चरन्तं वै कथं मां शप्तवानसि । देवयानी द्विजश्रेष्ठ युया मां यचित् किञ्चन ॥१७॥
तस्मात् नमं विप्रैश्च शापं वातुं त्वमहंसि । विद्वान्कोऽपि हि निर्दोषे यदि कुप्यन्ति मोहिताः ॥
तदा न दोषो मूर्खाणां द्वेषामिच्छुःचेतसाम् ॥१८॥

शुक्रोवाच

ययातिवाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम् । असंकुटप्रिय तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया ॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काम्यो राजानमब्रवीत् ॥२०॥

शुक्र बोले—तुमने जो यह रूप के पीछ पागल होकर मेरी पुत्री का अपमान किया है राजेन्द्र । इस पाप से तुम बूढ़ हो जाओगे । विषयातुर होते हुए भी बूढ़ा व्यक्ति न तो विषयो का भोग ही कर सकता है और न त्याग ही । केवल वह मन से इच्छा करता रहता है । अतृप्ति के कारण वह सबदा आहें भरा करता है । उसकी बुद्धि मष्ट हो जाती है । गरीरपारियों के लिये बुढ़ापा जीते जी मृत्यु है । इसलिये भूपाल ! तुम शीघ्र ही दुःखदायी बुढ़ापे का आन्विह्वन करो ॥१२-१४॥

ब्रह्मा बोले—धीमान शुक्र के इस शाप को सुनकर राजा ययाति हाथ जोड़कर शुक से बोले ॥१५॥

ययाति ने कहा—महारमाओ द्वारा अधर्मी पापी सबदा अनुगमिष्ठ होते ही हैं किन्तु मैंने न तो कोई अपराध किया है न किसी पर अघ किया है और न अधम की ओर ही गम बढ़ाया है । सबदा धर्माचरण करने वाले मुझको आपने क्या शाप दिया है ? द्विजश्रेष्ठ ! देवयानी व्यस ही भूस पर दोषारोपण कर रही है । विप्रन्द्र ! इसलिये आपरो मुझ पाप नहीं देना चाहिये था । यदि विद्वान् भी मोहित होकर निरपराधो पर इस प्रकार कोप करेंगे तो द्वेषामि से जले द्वये चित्त वाले मुखों को ऐसा काय करने में कोई दोष नहीं होगा ॥१६-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—ययाति के कहने से शुक को भी अपनी त्रि रात बार-बार धृष्टता करने वाली प्रचण्ड क्रिया के वृत्तों की याद आ गई । उन्होंने मेरा कोष अब गात हो गया ऐसा कह कर राजा से कहा ॥१९-२०॥

शुक उवाच

।।

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनुतम्॥ शापस्येभं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रहं नृप॥१२१॥
यस्मै पुत्राय सदातुं जराभिच्छसि मानद॥ तस्य सा यात्विय राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात्॥१२२॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययाति इवशुरं शुकं प्राह विनीतवत् ॥१२३॥
यो गृह्णाति मया दत्ता जरा भवितसमन्वितः । स राजा स्याद्वैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम्॥१२४॥

ययातिरुवाच

घो मद्राक्यं नाभिनन्देऽसुतो दैत्यगुरो वृद्धम् । शपेयमनुज्ञाऽत्र दातव्यं त्वया गुरो॥१२५॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति राजानमुवाच भृगुनन्दनः । सतो ययाति स्व पुत्रमाहूयेव वचोऽब्रवीत्॥१२६॥

ययातिरुवाच

यवो गृहाण मे शापाञ्जरा ज्ञातां सुतो भवान् । ज्येष्ठः सर्वार्यवित्प्रोढः पुत्राणां धुरि सस्थितः ॥
पुत्री तेनैव जनको यस्तवामावशो स्थितः ॥१२७॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच यदुस्तातं ययाति भूरिवक्षिणम् । ययातिश्च यदु शापवा तुर्वसुं काममब्रवीत्॥१२८॥

शुक ने कहा—मैंने जान लिया कि उसने अवश्य अपराध किया है परन्तु मैं किसी भी असत्य नहीं बोलता ।
नृप ! हम चाप का यह परिहार कर रहा हैं । मानद ! जिस पुत्र को अपना बुढ़ापा देना चाहते हो राजन् !
उसको वह बुढ़ापा मेरे बरदान से मिल जाय और तुम युवा हो जाओ ॥१२१-१२२॥

ब्रह्मा बोले—पुनः ययाति ने अग्नि विनम्र भाव से इवशुर शुक से कहा ॥१२३॥

ययाति ने कहा—परन्तु दैत्यगुरो ! आप इस वान की अनुमति दीजिए कि जो मणिपुर्व्व मेरे दिग्गे
हुए बुढ़ापे को अपना ले वह राजा हो । दैत्यगुरो ! जो मेरे वाक्या का दृढ़ता से अनादर करे उसको शाप भी दे
दूँ । गुरो ! आप ऐसी भी आज्ञा दीजिये ॥१२४-१२५॥

ब्रह्मा बोले—भृगुनन्दन ने 'एवमस्त्यु' ऐसा राजा से कहा । तब राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुढ़ापर
यह बात कही ॥१२६॥

ययाति ने कहा—यदु ! चाप से पाई हुई मेरी इस जरा को ले लो क्योंकि तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र, सब बातों
को जानने वाले वयस्क और सब पुत्रों के अग्रणी हो । पिता उस पुत्र से पुत्रमान् बहा जाता है जो उसकी आज्ञा
ने अनुसार कार्य करे ॥१२७॥

ब्रह्मा बोले—यदु ने अतिवैभवाकी पित्रा ययाति से 'नहीं' ऐसा कहा । ययाति ने यदु को चाप

नागृह्णातुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा । तं शप्त्वा चाश्वीद्दुह्युं गृहाणेमां जरां मम ॥२९॥
 दुह्युश्च मेच्छतां दत्तां जरां ह्यविनाशिनीम् । अनुमप्यब्रवीद्राजा गृहाणेमां जरां मम ॥३०॥
 अनुनेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुषब्रवीत् । अमिनन्ध तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः ॥३१॥
 सहस्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रोतोऽभवत्पिता । यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च ॥३२॥
 पुत्रयौवनसंपुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम् । ततस्तुप्तोऽभवद्वाजा सर्वभोगेषु नाहुषः ॥
 ततो हर्षात्समाहूय [पूरु] पुत्रमयात्रयौत् ॥३३॥

ययातिरुवाच

[]

तुप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवानघ । गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

मेतुषाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया । विकारास्तात भावानीं दुर्निवाराः शरीरिणाम् ॥३५॥
 बलात्कालागता सह्या जराऽप्यस्त्रिलदेहिभिः । सा चैद्गुरूपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम् ॥३६॥
 स्वीकृतस्यागपापादि देहिनां भरणं वरम् । अथवा तु जरां राजस्तपसा नाशयाम्यहम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम् । गीतम्या वक्षिषे पारे ततस्तेपे तपो महत् ॥३८॥

देकर तुर्वसु से बड़े प्यार से अपना मनोरम कहा । उस समय तुर्वसु ने भी पिता के दिये हुए बुढ़ापे को नहीं लिया । राजा ने उसको भी शाप देकर दुह्यु से कहा—'मेरा यह बुढ़ापा ले लो' । दुह्यु ने भी हृष सौन्दर्य का विनष्ट करने वाली पितृ-दत्त जरा का अस्वीकार कर दिया । राजा ने अनु से भी कहा कि मेरी इस जरा को ले लो । अनु ने कहा 'कभी नहीं ।' तब उसको भी शाप देकर राजा ने पूरु से कहा । पूरु ने पिता का सम्मान कर पिता का बुढ़ापा ले लिया । पिता ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक प्रसन्न एवं पुत्र की जबानी से परिपुष्ट होकर युवावस्थावित्त जितने विविध भोग-मदार्थ और सुख थे, उनका उपभोग किया । इसके बाद जब राजा नहुष पुत्र सब भोगों से तृप्त हो गये तब बड़ी प्रसन्नता से पुत्र पूरु को बुलाकर बोले ॥२८-३३॥

ययाति ने कहा—तुम्हारे इस यौवन से मैंने विविध भोगों का भोग किया । अब मैं तृप्त हो गया हूँ । पुत्र ! अब इस यौवन को ले लो और मेरी पापिनी बुढ़ावस्था को दे दो ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—तब पूरु ने कहा 'नहीं तात । जरा से मेरी दुर्वासनायें नष्ट हो रही हैं । देह धारियोंके भाव-विकार कठिनाई से दूर करने योग्य होते हैं । अब उन विकारों को दूर करने वाली जरा यदि हटात समय की प्रेरणा से आ जाय तो भी सब देहधारियों को स्वीकार कर लेना चाहिये । वह यदि गुरु के उपकार के लिये हो तब तो उसको क्यों छोड़ा जाय । स्वीकार की हुई वस्तु के परित्याग जनिता-पाप से देही का मर जाना ही अच्छा है । अथवा राजन् ! मैं इस जरा को तपस्या के द्वारा नष्ट नित्ये देता हूँ ॥३५-३७॥

ब्रह्मा बोले—पिता से यह कहकर पूरु परमोत्तम शीतली तथा के पात्र गया; और उसके दक्षिण तट पर

ततः प्रीतोऽभवद्देव कालेन महता शिव । लोकातीतमहोदारगुणसंभणिभूषितम् ॥
किं वदामीति त प्राह पूरु स सुरसत्तम ॥३९॥

पूरुखाच

शापप्राप्ता जरा नाय पितुर्मम सुराधिप । ता नाशयस्व देवेश पितृशप्ताश्च कोपत ॥
मवन्मातृशपातो मुक्ताङ्कुरण्व सुरपूजित ॥४०॥

ग्रहोवाच

तथत्युक्त्वा जगन्नाय शापाज्जिता जरा तथा । 'अनाशयज्जगन्नायो मातृश्चक्रे विशापिन ॥४१॥
ततः प्रभृति तत्तोष जरारोगविनाशनम् । अकालजजरादीना स्मरणादपि नाशनम् ॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विरूपात कालजरमुदाहृतम् । यायात नाहुष पीर शोकं शामिष्यमेव च ॥४३॥
एवमादीनि तीर्थानि तन्नाष्टोत्तरमेव च । शतं विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकरं तथा ॥४४॥
तद्यु स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा । सर्वपापप्रशमनं भुक्तिमुक्तिप्रदं भवेत् ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कालजरानाष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

महान् तपस्या करने लगा । तदनंतर समयवान् गगर बहुत समय बाद प्रसन्न हुये । उस सुर वर ने लीलागीत महान् उदारता रूपी अञ्जलि मणि से भूषित उस पूरु से कहा कि क्या दू ॥३९॥

पूरु ने कहा—सुर स्वामिन ! नाथ ! आप से पार्श्व हुई मेरे पिता की जरा को नष्ट कर दीजिये । देवेश ! देवपूजित ! शीघ्र से पिता द्वारा अभिप्राप्त मेरे माइया को आप से मुक्त कर दीजिये ॥४०॥

ग्रहमा ने कहा—एसा ही हो यह वरवर जगन्नाथ घरर ने शाप से उत्पन्न जरा को नष्ट कर दिया और उसने माइया को भी आप से मुक्त कर दिया । तब से वह तीर्थ जरा एव रोग का विनाशक और स्मरणमान से भी अममय के बुढ़ाने को दूर करने वाला हो गया । उस प्रभाव के कारण उसका नाम भी नाशकर हो गया । महाबुद्धे ! यायात नाहुष पीर शीघ्र शामिष्य आदि एक सौ आठ तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं जो तब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले हैं । उनमें स्नान दान क्या श्रवण पठन आदि ब्रह्म सर पापों को दूर करने वाले और भुक्ति मुक्ति प्रद हैं ॥४१-४५॥

श्रीब्रह्मपुराण में यायात नाशकर आदि एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक
एक सौ छियासीतर्क अष्टम्य सप्तमः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः.

अप्सरारोयुगसगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अप्सरारोयुगमाख्यातमप्सरसगमं ततः । तीरे च दक्षिणे पुण्यं स्मरणात्सुभगो भवेत् ॥१॥
मुक्तो भवत्यसदेहः सन्न स्नानादिना नरः । स्त्री सती सगमे तस्मिन्नुत्सनात् च नारद ॥२॥
अध्यासि जनयेत्पुत्रं त्रिमासात्पतिना सह । स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्बचो भवेत् ॥३॥
अप्सरारोयुगमाख्यातं तीर्थं येन च हेतुना । तत्रैव कारणं वक्ष्ये शृणु नारद यत्नतः ॥४॥
स्पर्शाऽऽसौमहती ब्रह्मन्विश्वामित्रपतिष्ठयोः । तपस्यन्त गाधिसुत ब्राह्मण्यार्थं यत्नतः ॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीन प्रेरितेन्द्रेण मेनका । त गत्वा तपसो भ्रष्टं कुरु भद्रे ममाऽऽज्ञया ॥६॥
तदोक्ते त्रेण सा मेना विश्वामित्र तपश्च्युतम् । कृत्वा कन्या तया दत्त्वा जगामेन्द्रपुरं पुनः ॥७॥
तस्या गताया सस्मार गाधिपुत्रोऽखिल कृतम् । त तु देशं परित्यज्य तीर्थं तु सुरवल्लभम् ॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गां यत्र कालजरो हरः । तपस्यन्त तदोवाच पुनरिन्द्र सहस्रदुक् ॥९॥

अध्याय १४७

५५२३३,

अप्सरारोयुग या अप्सरा-सगम तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद गौतमा के दक्षिण तीर पर अप्सरो-युग नाम एक पवित्र तीर्थ है जिसको अप्सरासगम भी कहते हैं । उससे स्मरण से श्री मनुष्य आश्रयान् हो जाता है । उस तीर्थ में स्नान आदि से मनुष्य निराशदेह मुक्त हो जाता है । नारद ! उस सगम में यदि शत्रुत्सनाता पतिव्रता स्त्री तीन महाने तक पति के साथ स्नान, दान आदि का व्रत करे तो वह चाहे क्या हो क्या न हो अवश्य पुत्र उत्पन्न करती है । नारद ! जिस कारण उसका अप्सरा-युग तीर्थ नाम पड़ा वह बता रहा हूँ ध्यामधुवक सुनो ।

ब्रह्मन् ! विश्वामित्र और वसिष्ठ में बहुत बड़ी प्रतिस्पर्धा थी । ब्रह्मणि वनने के लिए विश्वामित्र ने व्रत धारण करके हृष्टिार में जाकर महान् तपस्या प्रारम्भ की । तपस्वी विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने के लिये इन्द्र ने मेनका से कहा मन्त्रे ! मेरी आज्ञा से तुम विश्वामित्र के पास जाओ और उसको तपस्या से अभ्युत कर दो । इन्द्र से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मेना ने विश्वामित्र का तपोभ्रष्ट कर दिया । वह उनसे एक कन्या उत्पन्न कर उनकी देवर पुत्र इन्द्रपुरी चली गई । उससे बने जाने पर श्रुति को पिछली सारी बातों का स्मरण हुआ । शीघ्र उस प्रान्त और सुरप्रिय तीर्थ को छाड़ दक्षिण गंगा के तट पर आये जहाँ बालरूपी महादेव स्थित हैं । पुनः उहाँ पहले की ही भाँति तपस्या में लीन देखकर सहस्राक्ष इन्द्र ने उन्हीं मेना रम्मा और तिलोत्तमा

उर्वशीं च ततो मेना रम्भा चापि तिलोत्तमाम्। नैवेत्पूजुर्भयत्रस्ता पुनराह शचीपति ॥१०॥
गम्भीरा चातिगम्भीरामुभे ये गर्विते तदा। ते ऊचतुर्भे देव सहस्राक्ष पुरंदरम् ॥११॥

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतु

आवा गत्वा तपस्यन्त गाधिपुत्र महाद्युतिम्। व्याध्यावो नृत्यनात रूपयौवनसपदा ॥१२॥
पातामपाङ्गे हसिते वाचि बिभ्रमसपदि। नित्यघसति पञ्चवेपुस्ताभि फोऽत्र न जीयते ॥१३॥

बह्मोवाच

सथत्पुक्ते सहस्राक्षे स आगत्य महानदीम्। द्रव्वाते तपस्यन्त विश्वामित्र महामुनिम् ॥१४॥
मृत्योरपि दुराध्व भूमिस्यमिष धूर्जटिम्। सहस्रमेक वर्षाणामीक्षितु न च शक्नुत ॥१५॥
बूरे स्थिते नृत्यगीतचादुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्तत कोपाकुलोऽभवत् ॥१६॥
प्रतीपाचरण दृष्ट्वा क्रोध कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तस्मिन् प्रसहन्निव ॥१७॥
आम्या मुक्त सहस्राक्षो ज्यःसरोम्या षडन्निव। क्षापाते स गाधेयो द्रवरूपे भविष्यति ॥१८॥
द्रवितु मा समापात यतस्त्विह ततो लघु। तत प्रसादितस्ताभ्या क्षापमोक्ष चकार स ॥१९॥

आदि से उनको तपोब्रष्ट करने के लिये कहा। परन्तु भयभीत होकर किसी ने कुछ नहीं कहा। तब पुन गाची पति ने अपने रूप पर अभिमान करने वाली गम्भीरा और अतिगम्भीरा नामक अप्सराओं से कहा। उन दोनों ने सहस्रनेत्र इन्द्र से कहा ॥११॥

गम्भीरा और अतिगम्भीरा ने कहा—(हम दोनों जाकर अपने सौन्दर्य और मुखावस्था के प्रभाव से एव अपने मृत्यु और गीत के आकर्षण से उस तपोनिष्ठ महातेजस्वी गाधि मुत को घ्युत कर देंगी।) उनके कटाक्ष हास, वाणी और विलास ने पञ्चवक्त्र मदन सवदा निवास करता है जनसे मला कीन नहीं जीता जा सकता है ? ॥१२१॥

बह्मा ने कहा—इन्द्र की स्वीकृति मिल जाने पर दोनों अप्सराओं ने महानदी पर आकर तपोरत उस महामुनि को देखा परन्तु मृत्यु से भी अधिक भयकर पृथ्वी पर स्थित भैरव शकर के समान उस मुनि की ओर एक हजार वर्ष तक आँस उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ। (जब वे दूर रहकर ही अपने नृत्य गीत और हास भाव दिखाने में लग गई।) उनकी यह कीला देखकर यही विश्वामित्र क्रोध से व्यावृल हो गये। टीक है—अनुचित व्यवहार को देखकर किसी क्रोध नहीं होता ? निस्पृह होते हुए भी उस महापराक्रमी गाधि-मुत ने इन्द्र पर हँसते और यह बहते हुए स कि सहस्राक्ष इन्द्र इन अप्सराओं के भार से अब मुक्त हो गये' उन दोनों को शाप दे दिया कि तुम दोनों जल (द्रव) रूप हो जाओ क्योंकि तुम दोनों मुझको यहाँ द्रवित (घ्युत) करने के लिये आई थी। गादी देर म ही उन दोनों ने मुनि को प्रसन्न कर दिया जिससे उस मुनि ने उसे शाप से मुक्त कर दिया और कहा—जब तुम दोनों गया से मिलोगी तब उसी क्षण शाप से पाये हुए नदी रूप को छोड़ दिव्य रूप पा जाओगी।'

भवेतां दिव्यरूपे वा गङ्गाया संगते यदा । तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्संवभूवतु ॥२०॥
अप्सरोयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत् । ताम्यां परस्परं चापि ताम्यां गङ्गासु संगमः ॥२१॥
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः । तत्राऽस्ते दृष्ट एवासौ सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२२॥
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते 'सर्वबन्धनात्' ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मणे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरोयुगसंगमतीर्थवर्णनं नाम

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया 'दक्षिणे' तटे । यस्यानुस्मरणादेव सर्वपार्ष्णं प्रमुच्यते ॥१॥
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वकोटिगुणं भवेत् । कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभदायिनाम् ॥२॥
तत्र द्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः । कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो बाह्लीक इति विधुतः ॥३॥

इसलिये नदीद्वय के संयोग से यह तीर्थ अप्सरोयुग नाम से प्रसिद्ध हुआ । उनका परस्पर का संगम, पुन उन दोनों का गंगा से संगम सब लोक में प्रसिद्ध हो गया । उस तीर्थ में भुक्ति-मुक्ति देने वाले एवं दर्शनमात्र से सब सिद्धियाँ देने वाले लोक-विख्यात शिव रहते हैं । तीर्थ में स्नान और उस शिव का दर्शन करने से मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है ॥१४-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अप्सरोयुग-संगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के दक्षिण तट पर कोटि-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ जहाँ कोटीश्वर देव हैं, वहाँ में प्रत्येक कार्य करोड़ गुना फल देते हैं । वहाँ पुरे दो करोड़ पवित्र तीर्थ हैं ॥२॥ नारद ! वहाँ के फल का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । कण्व के ज्येष्ठ पुत्र बाह्लीक नाम से प्रसिद्ध थे ॥३॥ और लोग उन्हें कण्व कहते थे । वे वेदवेदांग के पारंगत विद्वान् वेदज्ञ नाण्व अपनी भार्या

काण्वश्चेति ॥ जनेः स्थातो वेदवेदाङ्गपारगः । इष्टीः पार्वीयणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः ॥१४॥
 कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तोरस्यो लोकपूजितः ॥ १५॥ प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुह्वदग्नी समाहितः ॥१५॥
 सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः । एकाहुति स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने ॥१६॥
 आहुत्यन्तरवानाय हविर्द्रव्यं करोहेत् । एतस्मिन्नन्तरे वह्निरुपशान्तोऽभवत्तदा ॥१७॥
 ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति । अन्तर्विचारयामास विषादं परमं गतः ॥१८॥
 आहुत्योदयं द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः । अग्न्यन्तरमुपादेय वैदिकं लौकिकं तथा ॥१९॥
 अब होष्य स्याद्वितीये तु आहुत्यन्तरमेव च । एवं भीमासमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा ॥१९॥
 अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति । यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः ॥१९॥
 अर्धवायेषु काष्ठेषु विप्रराजं प्रहूयताम् । नैयुवाच तदा काण्वः संव वागब्रवीत्पुनः ॥१९॥
 अग्ने पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु । पुत्रे वत्तं प्रियार्यं पितुः प्रीत्यं भविष्यति ॥१९॥
 पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रीतिगुणं भवेत् । दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वं महर्षयः ॥१९॥
 निश्चित्य धर्मसर्वस्व तथा चक्रुर्ययोदितम् । एतज्ज्ञात्वा जगत्पुत्र पुत्रे वत्तं पितुर्भवेत् ॥१९॥
 अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्वया भवेत् । तथा नान्येन केनापि जगत्प्रेतद्वि विधुतम् ॥१९॥
 सुप्रसिद्धं जगत्प्रेतसर्वलोकेषु पूजितम् । तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्य सर्वं कोटिगुणं सुत ॥१९॥

के सहित शौनमी-नट पर पार्वीयणानी नामक इष्टियों को बरत हुय रहते थे ॥१४॥ सर्वदा प्रातःकाल सावधानी से भार्यासहित अग्नि में हवन करते थे ॥१५॥ एक दिन जब वे हवन के लिये तैयार हुये तब एक आहुति से अग्नि के प्रज्वलित होने पर दूसरी आहुति देने के लिये हवनीय द्रव्य को उज्झेलि हाथ में लिया ही था कि इतने में अग्नि एकाएक बुझ गया ॥१६-१७॥ तब काण्व विचार करने लग कि अब क्या करना चाहिए । हवन में विचार करने पर उनकी अत्यन्त विषाद हुआ ॥१८॥ दो आहुतियां के बीच में ही अग्नि बुझ गया । वैदिक (वेद-प्रतिष्ठित) या लौकिक अग्नि इसने लिए उपादेय (उपयुक्त) होगा कि नहीं अब यह द्वितीय आहुति कहाँ से जाय, इस प्रकार वे भीमासा बर ही रहे थे कि इतने में आवासवाणी हुई कि दूसरा अग्नि यहाँ सुन्हाते लिये उपयुक्त नहीं है ॥१९१-१९॥ जो यहाँ समीप में अधजल बाढ़ में अग्नि सज्ज है, विप्रराज ! उन्हीं में आहुति दो । यह सुनकर काण्व ने कहा कि नहीं । पुन उसी दैवी वाणी ने कहा ॥१९१-१९॥ अग्नि का पुत्र हिरण्य है । पिता ही तो वह पुत्र है, प्रसन्न करने के लिये पुत्र को दिया हुआ द्रव्य पिता को प्रसन्नता का भी कारण बनता है ॥१९३॥ पिता के देय को यदि पुत्र को दे दिया जाय तो यह पिता को बरोख गुना आनन्द देता है । जब दैवी वाणी ने इस प्रकार बरताव सब महर्षियाने धर्म के हृदय का निःसन्देह बर जैसा कि दैवी वाणी ने कहा था वैसा ही किया ॥१९४॥ (तबसे) इस प्रकार में यह बात फैल गई कि पुत्र को दिया हुआ पदार्थ पिता को दिया हुआ हो जाता है और पुत्र यदि वह उपकार से पिता का जैसा उपकार होता है वैसा दूसरा कार्य करने में नहीं । पुत्र यह बात भी समार में प्रतिष्ठित हुआ यदि कि यहाँ दान देने से बरोख गुना पत्र होता है । इस बात को दैवी वाणी ने फिर कहा कि इस पवित्र काण्व तीर्थ में आत्म-अग्नि दूर हो जाती तथा महान् गुण भी प्राप्ति होगी है ॥१९५-१९७॥ मुनि काण्व के पुण्य के प्रभाव से वह तीनों लोगों के सब तीर्थों

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते - च महत्सुखम् । पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिस्तीर्थं उत्तमे ॥१८॥
 अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुष्पप्रभावतः । लोकत्रयाभ्याशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम् ॥१९॥
 स्नानदानादिकं किञ्चिद्भूक्त्या कुर्वन्समाहितः । फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने ॥२०॥
 यत्किञ्चित्किपते चात्र स्नानदानादिकं नरैः । सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः ॥२१॥
 यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पोत्रं हिरण्यकम् । वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः ॥२२॥
 कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र धत्तुं न शक्यते । वाचस्पतिप्रभृतिभिरयं वाज्यैः सुरैरपि ॥२३॥
 यत्रानुष्ठोद्यमानं हि सर्वं कर्म यथा तथा । गोदावर्याः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२४॥
 कोटितीर्थे द्विजाग्र्याय गामेकां यः प्रपठति । तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते ॥२५॥
 तस्मिन्तीर्थे शुचिभूत्वा भूमिदानं करोति यः । श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम् ॥२६॥
 सर्वत्र गौतमीतीरे पितृणां दानमुत्तमम् । विशेषतः कोटितीर्थे तदनन्तफलप्रदम् ॥
 अत्रैकान्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे ॥ आदिब्राह्मे ॥ तीर्थमाहात्म्ये काण्वारोकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं
 नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनाशतितमोऽध्यायः ॥७९॥

से अधिक फल देने वाला महान् तीर्थ हो गया । मुने । इस तीर्थ में मनुष्य एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक स्नान-दान
 आदि जो कुछ करता है उससे वह पूर्णरूप से करोड़ गुना फल पाता है ॥१८-२०॥ यहाँ मनुष्य स्नान, दान आदि
 जो कुछ करते हैं व सब करोड़ गुना हो जाते हैं इसीलिये उसको कोटि-तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ जहाँ यह घटना
 हुई उसको आग्नेय, काण्व पोत्र, हिरण्यक वाणीतीर्थ और कोटितीर्थ कहा जाता है, क्योंकि इससे कोटि तीर्थों का
 फल मिलता है ॥२२॥ कोटितीर्थ की महिमा का वर्णन बृहस्पति आदि अथवा दूसरे देवता भी नहीं कर सकते हैं
 ॥२३॥ उस तीर्थ में जिस किसी प्रकार निये गये कर्म गोदावरी की रूप से कोटि-गुण फल देने वाले हो जाते हैं
 ॥२४॥ जो उस कोटि तीर्थ में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को एक गौ देता है, उस तीर्थ की महिमा से वह कोटि गो-दान
 का फल पाता है ॥२५॥ उस तीर्थ में भविष्य होकर जो श्रद्धायुत हृदय से भूमिदान करता है वह कोटिगुण अधिक
 फल पाता है ॥२६॥ सर्वत्र गौतमी-तट पर पितरों के निमित्त दिया हुआ दान उत्तम है, परन्तु कोटि-तीर्थ में देने
 से वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है । मुनि लोग यहाँ के उनपञ्चाश तीर्थों की मलीर्माति जानते हैं ॥२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कोटितीर्थ, काण्व आदि उनपञ्चाश तीर्थों का वर्णन नामक एक से
 अठतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंहतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१॥
 हिरण्यकशिपुं पूर्वमभवद्वलिनां वरः । तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२॥
 हरिभक्ततात्मजद्वेषकलुप्तोक्तमानसः । आविर्भूय सभास्तम्भाद्विशयात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३॥
 तं हृत्वा नारसिंहस्तस्यैवमद्रावयत्तदा । सर्वाहृत्वा महादेव्यान्क्रमेणाऽऽजी महामुगः ॥४॥
 रसातलस्याञ्जश्रून्श्च जित्वा स्वर्लोकमोयिवान् । तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हृत्वा नगस्थितान् ॥५॥
 समुद्रस्थाघ्नदीप्तस्थान्प्रामस्यान्वनवासिनः । मानारूपधरावर्दयाभिजघान मुगाकृति ॥६॥
 आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान् । वज्रपाताधिकनखः समुद्रतमहासटः ॥७॥
 दैत्यगर्भस्त्राविगर्जो निर्जिताशेषराक्षसः । महानार्वर्धोक्षितंश्च प्रलयानलसंनिभैः ॥८॥
 चपेटैरङ्गविभेदैरसुरान्पर्यवर्णयत् । एवं हृत्वा बहुविधान्यौतमीमगमद्वरिः ॥९॥

अध्याय १४६

नारसिंह तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नामक तीर्थ है, उसके सर्वरक्षक प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ ।
 पूर्व समय में हिरण्यकशिपु नामक एक श्रेष्ठ बलवान् राक्षस हुआ । वह अपनी तपस्या और पराक्रम के कारण
 देवों के लिये भजेय हो गया । अपने हरिभक्त पुत्र के प्रति द्वेष रखने से उसका मन कलुषित हो गया । तब नृसिंह
 रूप धारण कर भगवान् ने समा-मवन के स्तम्भ से अपने विश्व-व्यापक रूप को दिखलाते हुये, प्रबल होकर उस
 राक्षस को मार डाला । फिर उग्रहोने उस समय उसके सब सेना का भी सहार कर दिया । नृसिंह समर में सब
 महादेव्यों को क्रमशः मारकर और रसातल में रहने वाले सब शत्रुओं को जीतकर स्वर्लोक में पहुँच गये ।
 वहाँ भी शत्रुओं को पराजित कर मूलोक में चले आये । वहाँ सब पर्वतीय दैत्यों को मारकर उस सिं-
 शरीरधारी ने समुद्र, नदी, ग्राम और वन में रहने वाले एव नाना माया-रूप धारण करने वाले दैत्यों का वध किया ।
 आकाशचारी, वायु में विचरण करने वाले एव ज्योतिर्लोक में गये हुये राक्षसों को वज्रपात से अधिक मयकर नख-
 प्रहार करने वाले, अपनी ग्रीवा के केसर को ऊपर फहराने वाले अपनी गर्जना से दैत्य-द्विज्यों के गर्म को गिरा देने
 वाले और सम्पूर्ण राक्षसों को जीतने वाले नृसिंह ने अपनी मयकर गर्जना, प्रलयार्थि के समान अपनी मयकर दृष्टि
 अङ्ग विभेद और क्रूर चपेटों से मार डाला । इस प्रकार अनेकों राक्षसों का वध कर हरि अपने पद-नख से उत्पन्न
 तथा मन और नयन दोनों को तृप्त करने वाली गौतमी के पास आये ॥१-९॥ वहाँ अम्बयं नामक दण्डकारण्य का

स्वपदाम्बुजसभूता मनोनयननन्दिनीम् । तन्नाम्बयं इति स्यातो दृष्टकाधिपते' रिपु ॥१०॥
 देवानां दुर्जयो योद्धा बलन महताऽऽवृत । तेनाभवन्महारौद्रः भोषण लोमहर्षणम् ॥११॥
 शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना । निजघान हरि श्रीमास्त रिपु ह्यक्षरे तटे ॥१२॥
 गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । स्नानदानादिकं तत्र सर्वपापप्रहावेनम् ॥१३॥
 सर्वरक्षाकर नित्य जराभरणवारणम् । यथा सुराणां सर्वेषां न कोऽपि हरिणा सम ॥१४॥
 तीर्थानामप्यनेषाणां तथा तत्तीर्थमुत्तमम् । तत्र तीर्थं नर स्नात्वा कुर्यान्नुहरिपूजनम् ॥१५॥
 स्वर्गं मर्त्यं तले याऽपि तस्य किञ्चिन् दुर्लभम् । इत्याद्यष्टौ भुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६॥
 पूषक्ष्म्यक्ष्मीर्यकोटिफलमाहुर्मनोविण । अथद्वयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसंक्षय ॥१७॥
 भवेत्साक्षानृसिंहोऽसौ सबदा यत्र सस्थित । तत्तीर्थसेवासंजातं फलं कैरिह वर्ण्यते ॥१८॥
 यथा न देवो नृहरेरधिकं क्वापि यत्तते । तथा नृसिंहतीर्थेन समं तीर्थं न कुत्रचित् ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आविर्वाहो तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णनं नामकोन

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

गीतमीमाहात्म्येऽतीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

स्वामी विख्यात गन्धु या । वह देवताओं से दुर्जय योद्धा बहुत बड़ी सेना के साथ रहता था । उस दैत्य पुत्र के साथ
 मगवान् का भति मयकर लोमहृषक यद्ध हुआ जिसमें गत्वास्त्रों की मयकर वर्षा हुई अतः मे श्रीमान हरि ने
 गीतमी के उत्तर तीर पर उस गन्धु को मार डाला । वह गीतमी तत्र का नारसिंह तीर्थ विभूत प्रसिद्ध है । उसमें
 स्नान दान आदि सब प्रकार के पाप ग्रह दूर हो जाते हैं सब प्रकार से रक्षा होती है तथा जरा-मापु का भय दूर जाता
 है । जिस प्रकार सब देवों में नमिह व समान कोई नहीं है उसी प्रकार सम्पूर्ण माथों में वह उत्तम तीर्थ है । उस तीर्थ
 में स्नान कर जो मनः पद्ममिह की पूजा करता है उससे लिये स्वर्ग मय और पाताल में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं
 है । मुनः नारद । एस आठ और महानीय हैं । विज्ञान कृत है कि वे आठों पथक पथक कोटि तीर्थ के बराबर
 फल देन वाले हैं । उनका अथडा स भी नाम-स्मरण करने में सब पापों का क्षय हो जाता है । जहां सबदा व नसिंह
 मगव नृ साक्षात् रूप से स्थित रहते हैं उस तीर्थ की सेवा करने में जो फल मिलता है उसका वर्णन कौन कर
 सकता है । जिस प्रकार नसिंह देव सब देवों काई देवता नहीं है उसी प्रकार नृमिह तीर्थ के समान कोई तीर्थ
 भी नहीं है ॥१० १९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में नारसिंहादि अष्ट महानीयों का वर्णन नामक एव सो उनका समाप्त

अध्याय समाप्त ॥१४९॥

१ घ ० श्रावण १ च ० नाव २० । २ छ ० पत्नी रि० । ३ क ० म् । युद्ध परमक बंध
 हरे वें दे० ।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाच तीर्थमाख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे । पिशाचत्वात्पुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते ॥१॥
 'सुयवस्पाऽऽत्मजो लोकेऽजीगतिरिति विधुतः' । कुटुम्बभारबुद्धार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडित ॥२॥
 मध्यम तु शुन शेष पुन ब्रह्मविदा धरम् । धिक्नीतवान्क्षत्रियाय वधाय बहूलंघनं ॥३॥
 किं नामाऽऽपद्गत पाप नाऽऽघरस्त्वपि पण्डित । शमितृत्वे धन चापि जगृहे बहुल मुनि ॥४॥
 धिदारणार्थं च धन जगृहे ब्राह्मणाधम । ततोऽप्रतिसमाधेयमहारोगनिपीडित ॥५॥
 स मृत कालपर्याये नरकेष्वथ पातित । भोगादुते न क्षयोऽस्ति प्राक्तनानामिहाहसाम् ॥६॥
 किंकर्यमवाक्येन धुह्योग्यन्तर गत । तत पिशाचो हृद्यभवद्वाक्पणो वारुणाकृति ॥७॥
 शुष्ककाष्ठेऽथधारणे निर्जले निर्जने तथा । श्रोत्रे श्रोत्रमदयव्याप्ते क्षिप्यते धर्मकिंकरं ॥८॥
 कन्यापुत्रमहीबाजिगदा विक्रयकारिण । नरकाश्च विवर्तन्ते यावदाभूतसत्त्वबन्धम् ॥९॥

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर पैशाच नामक एक उत्तम तीर्थ है । महामति ! बहुत पहले उस स्थान पर एक विप्र ने पिशाच योनि से मुक्ति पाई थी । सुयव वा लोक से अजीमति नाम से प्रसिद्ध पुत्र था । परिवार के भार से दुःखी और दुर्निध से पीडित होकर उसने अपने ब्रह्मनामिषा म श्रद्धा नैष्ठिक पुत्र शुन शेष को बहुत धन लेकर दानिय के हाथ वध करने का न्ये देच दिया था । पंडित भी आपत्ति में पड़ने पर कौन ऐसा पाप है जो नहीं करते हैं । मुनि ने वलि करन का न्ये भी बहुत सा धन ले लिया । उस अधम ब्राह्मण ने अपने पुत्रको चीर देने के लिये धन लिया वा इच्छालिये वह एक असाध्य रोग से पीडित हो गया । बोट दिने बाद उसकी मृत्यु हो गई । वह नरक में गिरा निया गया । यहा क किये हुये पापों का क्षय पापभोग के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नहीं होता । यम के आदेशानुसार दूतों ने सकोमिश्र मित्र योनिया में पहुँचाया । तदनन्तर अत में वह मयङ्कर आकृति वाला भयानक पिशाच हुआ ॥१७॥यमदूत उसको जगल म सूखे काठो पर निजल और निजल स्थान में और श्रोत्रमदयव्याप्ते में श्रोत्र की धर्मों से जलते हुये स्थानों में डकेल देते थे । सब है कन्या पुत्र पृथिवी घोडा और गायबेधने वाले न्यमित प्रलयकाल तक नरक से उद्धार नहीं पाते हैं । अपने किये हुए पापों के परिणामस्वरूप गया

स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्ममिकरैः । सधत्ते पच्यमानोऽसौ हरोदोच्चं कृत स्मरन् ॥१०॥
 पथि गच्छन्कदाचित्स जीगर्तेर्मध्यम सुत । शुभाव ददतो वार्षीं पिशाचस्य मुहुर्मुहु ॥११॥
 पुनरेतुर्ब्रह्महन्तुर्जोगतस्तु । पितुस्तदा । पापिन पुनर्विक्रेतुर्ब्रह्महन्तु पितुश्च ताम् ॥१२॥
 शुन शेषस्तदोवाच को भवानतिदुःखित । जीगर्तिरथबोद्धुं खाच्छुन शेषपिता ह्यहम् ॥१३॥
 पापोयसौ क्रिया कृत्वा योनिं प्राप्तोऽस्मि दारुणाम् । नरकेष्वथ पवश्च पुन प्राप्तोऽन्तरालकम् ॥
 ये ये दुष्कृतकर्मणस्तोया तेषामिय गति ॥१४॥

जीगर्तिपुत्रस्तमुवाच दुःखात्सोऽहं सुतस्ते मम दोषेण तप्त
 विप्रोत्स मा नरकानेवमाप्तस्तत करिष्ये स्वर्गतं त्वामिदानीम् ॥१५॥
 एष प्रतिज्ञाय स याधिपुत्रनुव्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीर
 गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानोहमानो जगाम ॥१६॥
 अतोपनु स्नानलभूपितानां, निमज्जता मोहमहासमुद्रे
 शरीरिणा नान्यदहो त्रिलोकधामालम्बन विष्णुपदीं विहाय ॥१७॥
 एष विनिश्चित्य मुनिर्महत्मासमुद्दिधोर्षु पितरं स दुर्गते ।
 शुचिस्ततो गौतमीमाधु गत्वा, तत्र स्नात्वा सस्मरञ्छुविष्णु ॥१८॥
 ददौ जलं प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदुःखिताय ।
 तद्गानमात्रेण तदैव पुतोऽजीगर्तिरावाप यषु सुपुण्यम् ॥१९॥

नरकस्मरन् की यातना-॥ स पाकित वह अपन पूव कृत्या का स्मरण करके चित्ला नर राता था । किसी दिन जी गति का संसला पुन रागते भ जा रहा था । उसने पुनविजय करे वाले ब्रह्महत्या करने वाले पापी पिता जीगर्ति के—जो पिशाच हो गया था—रौने की ध्वनि सुनी । तब शुन गपने पूछा कि आप कौन है जो इतने दुःखी हैं । जी गति ने दुःखित होकर कहा मैं शुन शेष का पिता हूँ । पापर्मों में करने से दारुण योनि को प्राप्त हुआ हूँ । माना नरको मे मैं पीडा पाता रहा अब पुन उनसे छुटकारा पाकर पिशाच बना हूँ । जो पाप कम करने वाले होते हैं उनकी इसी प्रकार दुर्गति होती है ॥८१५॥

यह सुनकर जीगर्ति क पुत्र ने दुःखी होकर कहा—तात ! मैं आपका वही पुत्र हूँ । मेरे ही दाप से मुझको बेचकर आप इस प्रकार नरक में गिराये गये । अब मैं अभी आपको स्वर्ग पहुंचाऊंगा ॥१५॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर विद्वामित्र का दत्तक पुत्र वह मुनिप्रवीर अपने पिता का उत्तम लोक में पहुंचाने की इच्छा से गया वा स्मरण कर (उसी की ओर) चल पड़ा ॥१६॥ अहो ! इस त्रिलोकी में समस्त दुःख रूपी अग्नि में जलने वाल तथा महामोह रूपी समुद्र में डूबने वाले देहधारियों का गंगा की छोटकर जीगर्ति सहायक नहीं है ॥१७॥ इस प्रकार का निश्चय कर वह पवित्र महत्तमा मुनि अपने पिता की दुर्गति से छुड़ाने के लिये क्षीण ही गौतमी के पास पहुंच गया । उसमें स्नान कर उठने धामु और विष्णु का स्मरण किया तथा अतिदुःखित, पिशाचरूप अपने प्रत पिता को जल दिया । जल देते ही उसी समय अजीगर्ति पवित्र हो कर पुण्य शरीर पा गया और दस हजार सूर्य के समान चमकता

विमानयुक्त सुरसधजुष्ट जिष्णो पद प्राप सुतप्रभावात् ।
 गङ्गाप्रभावाच्च हरेद्वच शभोविधानुरर्कायुततुल्यतेजा ॥२०॥
 तत प्रभृत्येतदतिप्रसिद्ध पञ्चाचनाश च महागद च ।
 महान्ति पापानि च नाशमाशु प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुताम ॥२१॥
 तीर्थस्य च द गदित तवाद्य, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत्र
 तीर्थान्ययान्यानि भवन्ति भुक्तिभुक्तिप्रदायीनि किमन्यदत्र ॥२२॥
 सबसिद्धिदमाख्यातमित्याद्यत्र शतत्रयम् । तीर्थानां मुनिजुष्टानां स्मरणादप्यभीष्टदम् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चाचादिशतत्रयतीर्थवर्णनं नाम
 पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५०॥

गीतमीमांसास्य एकशोत्तितमोऽध्याय ॥८१॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

निम्नभेदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् । गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं ब्रूलोचयिभुतम् ॥१॥

हुआ वह गया बिष्णु शंकर और ब्रह्मा के प्रभाव से अपन पुत्र की कृपा से विमान पर आरुढ़ होकर देवगणों के साथ सम्मानपूर्वक बिष्णुलोक को चला गया । तब से वह पिपाचयोनि से मस्त करने वाला तथा महारोगी को छुड़ाने वाला तीर्थ परम प्रसिद्ध हो गया । जिसके स्मरण मात्र से मनष्यों के महान पाप क्षीप्र ही नष्ट हो जाते हैं । आज इस तीर्थ के माहात्म्य को—जहां पर भक्ति भक्ति प्रदान करने वाले दूसरे और तीन सी तीर्थ हैं—तुमसे कह दिया अब और अधिक क्या कहूँ । ये सब सिद्धियों को देने वाले तीन सी तीर्थ मुनियों के भाति प्रिय और सेव्य हैं । इनके स्मरण से श्री मनोरथ सिद्ध हो जाता है ॥१८ २३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पञ्चाचतीर्थ आदि तीन सी तीर्थों का बहुत नामक एक सी पञ्चासवाँ
 अध्याय समाप्त ॥१५०॥

अध्याय १५१

निम्नभेद तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न कथा—गंगा ने उत्तर तट पर सब पापों को नष्ट करने वाला त्रिमय प्रसिद्ध निम्नभेद नामक

यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत् । वेदद्वीपश्च तत्रैव दर्शनाद्वेदविद्भवेत् ॥२॥
 ज्वंशीं चकमे राजा ऐलः परमधामिकः । को न मोहमुपायाति विलोभय मदिरक्षणाम् ॥३॥
 सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समश्नुते । आनन्ददर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधि नृपः ॥४॥
 तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम् । सुप्तायां क्षयने तस्या समुत्तस्थौ पुरुरवा ॥५॥
 विलोभ्य तं विवसनं तदेवासौ विनिर्गता । विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थैर्यं ननु योषिताम् ॥६॥
 ईक्षांश्चक्रे स शर्वयां विवस्त्रा विस्मितो महान् । एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्रिपूजितः ॥७॥
 ताञ्जित्वा पुनरप्यागाद्देवलोकां सुपूजितम् । स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः ॥८॥
 उर्वश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः । न जुहोति न चाश्नानि न शृणोति न पश्यति ॥९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम् । बोधयामास वाक्यंश्च हेतुभूतं पुरोहितः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽथ महाराज मा व्यथस्य महामते । एवं स्थित तु मा त्वां वै अक्षिवा स्पृश्यराशुगाः ॥११॥
 न वै स्त्रेणानि जानीये हृदयानि महामते । शालावृकाणां यावृंशि तस्मात्स्य भूप मा शुचः ॥१२॥
 को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः । वञ्चकत्वं नृशसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता ॥१३॥

एकतीर्थ है, जिसके स्मरण से भी सब पापों का नाश हो जाता है । वही पर वेदद्वीप भी है जिसके दर्शनसे मनुष्य वैश्व हो जाता है । एक बार परम धामिक राजा पुरुरवा उर्वशी पर आसक्त हो गया । कौन ऐसा है जो मतवाले नेत्र वाली कामिनी को देखकर मोहवश नहीं हो जाता । जहाँ राजा अल्प परिमाण में घृत का पान कर रहा था वहाँ वह पहुँच गई । उसके साथ गमन न देखने तक रहने की प्रतिज्ञा (धर्त) कर राजा ने युवका को रम्य लगाने वाली उस युवती ललना को स्वीकार कर लिया । एक दिन पुरुरवा शय्या पर सोई हुई उसके सामने ही उठ गया । राजा को वस्त्ररहित देखकर वह उसी समय चली गई । विद्युत् के समान चञ्चल चित्त वाली स्त्रियाँ कौन जीवन में स्थायित्व कहाँ ? उस रात्रि में गमन पुरुरवा अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर इधर उधर देखने लगा । इसी समय राजा को शत्रुओं से युद्ध करने के लिये जाना पड़ा । उनको पराजित कर वह पुनः अतिपूजित देवलोक में गया । वहाँ से आने पर राजा पुरोहित वसिष्ठ के मुख से उर्वशी का पलायन सुनकर दुःखी हो गया । (अतएव) वह न तो हवन करता था, न खाता था, न कुछ सुनता था और न देखता ही था । इस बीच पुरोहित वसिष्ठ उस मृतक तुल्य राजा को उपयुक्त रहस्यमय वाक्यों से समझाने लगे ॥१-१०॥

वसिष्ठ बोले—महाराज ! आज वह मर गई । महाबुद्धिमान् ! उसके लिये व्यथा मत करो । इस प्रकार अवस्थित तुमको शीघ्र आने वाले अमंगल स्पर्श न करो (अर्थात् अशुभ भावनायें न व्याप्त हों) । महामति ! शालावृक (कुंकुर) की जैसी मनोवृत्ति वाली स्त्रियों के हृदय के गर्भ को तुम नहीं जानत हो । मूर्ख ! अतः तुम शोक मत करो । राजेन्द्र ! इस लोक में कौन ऐसा व्यक्ति है जो कामिनीयों से ठगा नहीं जाता है ? जिनकी

इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थो गौरवमागतः॥१५॥
 श्रियां न श्रामितः को वा योषिद्विद्भूः को न खण्डितः। स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः॥१४॥
 सुखाय योषितः कस्य ज्ञात्वेतिद्विज्वरो भव। विहाय शकरं विष्णुं गीतमीं वा महामते॥
 दुःखिनीं शरणं नान्यद्विद्यते भुवननये ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहृत्य यत्नतः। गीतम्या मध्यसस्योऽस्तावैलः परमधार्मिकः॥१७॥
 तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनादेनम्। ग्रहार्ण भास्कर गङ्गा देवानग्याश्च यत्नतः॥१८॥
 यो विपन्नो न तीर्थानि देवताश्च न सेवते। स कालवशो' जन्तुः का दशामुपयास्यति॥१९॥
 तवीश्वरंकाशरणो गीतमीसेवनात्सुकः। परा श्रद्धामुपगतः संसारस्थापरादमुखः॥२०॥
 इंजे यसांश्च बहुलानुत्विग्भिर्यद्विदक्षिणान्। वेदद्वीपोऽभवत्तेन यज्ञद्वीपः ॥ उच्यते॥२१॥
 'पौर्णमास्या' सु शर्वयां तनाऽप्याति सदीवंशी। तस्य दीपस्य यः कुर्यात्प्रवक्षिणमयो नरः॥२२॥
 प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणं तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा॥२३॥
 सुकृती' यत्नतः यः कुर्याद्विदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्जेयं तदेव च पुरुरवम्॥२४॥
 वासिष्ठं यापि तत्तु स्याद्विभ्रमभेदं तदुच्यते। ऐले राज्ञि न किंचित्स्याद्विभ्रमं सर्वेषु कर्मसु॥२५॥

धूर्तता, क्रूरता, जञ्जलता एवं अनुदारता ही प्रकृति है वे किस प्रकार सुख का कारण बन सकती है ? काल ने किसको नष्ट नहीं किया ? किस याचक ने गौरव प्राप्त किया है ? कौन लक्ष्मी के मद में अपने को मूल न गया ? स्त्रियों ने किसको घटा नहीं बताया ? राजन् ! मद से भ्रष्ट चित्त वाले किस मनुष्य के लिये स्वप्न माया के समान स्त्रियाँ सुख का कारण बनीं हैं ? इस बात को समझ नरतुम मोहको छोड़ दो। महामते ! केवल शकर, विष्णु और गीतमी को छोड़कर इस त्रिभुवन में दुःखियों का सहायक कोई नहीं है॥११-१६॥

ब्रह्मा बोले—इन बातों को सुनकर राजा बड़ी तत्परता से अपने दुःखों को कमाकर गीतमी के तट पर गया। उसके बीच में स्थित होकर परम धार्मिक पुरुरवा ने शिव, भगवान् विष्णु ब्रह्मा सूर्य, तथा एव अन्यान्य देवों की भक्ति पूर्वक आराधना की। जो विपत्ति-ग्रस्त मानव तीर्थ अथवा देवताओं की सेवा नहीं करता, वह मृत्यु के ममीप आने पर जिस अवस्था को प्राप्त करेगा या गया कर सकेगा। वह राजा एकमात्र ईश्वर की अन्त्य भक्त, गीतमी की सेवा के लिये उत्सुक एवं ससार की माया से विमुख होकर अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। उसने ऋत्विजों के साथ बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें अधिव दक्षिणार्थ दी। इस कारण वह स्थान वेदद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। यज्ञद्वीप भी उसको कहा जाता है। वहाँ सदा पूर्णिमा की रात्रि में उर्वशी आती है। उस द्वीप की जो व्यक्ति प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो समुद्र समेत पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली। जो सुकृती वहाँ वेदों और यज्ञों का स्मरण करता है, वह वेद-यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसको ऐलतीर्थ कहा जाता है। पुरुरवा और

यदेतन्निम्नमुर्वश्यां सर्वभावेन वर्तनम् । तच्चापि भेदितं निम्नं वसिष्ठेन च गङ्गाया ॥२६॥
निम्नभेदमभूतेन दृष्टादृष्टेष्टसिद्धिबम् । तत्र सप्त ३३ शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च ॥२७॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वश्रुतफलप्रदम् । स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान् ॥२८॥
इह धामुय वा निम्नं न किञ्चित्स्य विद्यते । सर्वोन्नतिमवाप्स्यासौ मोदते दिदि शक्रवत् ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं

॥३॥

नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नग्वीरदमिति ह्येतत् तीर्थं वेदयिदो विदुः । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु मत्नेन नारद ॥१॥
अग्निपुरी महातेजोदचन्द्रमा इति विभुतः । सर्वान्वेदाश्च विधिवद्धनुर्वेदं यथाविधि ॥२॥

वासिष्ठ भी नहीं है। निम्नभेद उसको इसलिए कहते हैं कि राजा ऐल के घामन-बाल में सब कामों में निम्न भावना नहीं थी। उर्वशी में राज प्रचार से आरक्त हो जाना 'निम्न' था। उस निम्न को भी वसिष्ठ ने गुणा के द्वारा दूर कर दिया। अब वह तीर्थ निम्न-भेद कहा जाता है, जो दृष्ट, अदृष्ट और इष्ट (मनोरथ) की सिद्धि देने वाला है। यहाँ सात सौ और भी गुणााली (पूज्यप्रद) तीर्थों का होना कहा गया है। उनमें स्नान और दान से सब यगो का फल मिलता है। जो निम्न भेद तीर्थ में स्नान कर इन (पहले बड़े यगे) देवों का दर्शन करता है, उसको इन लोग म अथवा परलोक में किसी प्रकार का निम्न (अभाव) नहीं रह जाता है। वह सब प्रकार की उन्नति प्राप्त कर स्वर्ग में इन्द्र के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥१७-२९॥

श्री ब्रह्मपुराण में निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन नामर एक सौ इक्ष्वाकुनवां

अध्याय समाप्त ॥१५१॥

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नदीतट नामक तीर्थ को वेदवेत्ता लोग जानते हैं। नारद ! मैं उससे प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो। महादेवकी अग्नि-पुत्र चन्द्रमा नाम से प्रसिद्ध है। महामते ! गुरु बृहस्पति से सब वेदों, पनुर्वेद और अन्य विद्याओं का यथाविधि अध्ययन कर उस चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा कि मैं गुरुपूजा

अधीत्य जीवात्तत्प्रादं च विद्याश्चाग्या महामते । गुरुपूजां करोमीति जीयमाह ॥ चन्द्रमा ॥
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्र शिष्य मुदान्वितः ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा

॥४॥

ग्रहोवाच

प्रष्टु तां च तदा प्रायावन्तर्षभ ॥ चन्द्रमा । तारां तारामूर्त्तिं दृष्ट्वा जगृहे तां करेण स ॥५॥

स्वपदेश्य प्रति तां लोभाद्व्यल्लासार्कयस्तदा । तत्पदपंचनिधितानी मतिमान्विजितेन्द्रिय ॥६॥

यावन्न वामिनीनेप्रवागुराभिनिबध्यने । विनोयतो रहसस्यां वामिनीमायतेशणाम् ॥७॥

विनोय न मनो याति वस्य वामेषु यश्यताम् । अत एवाग्यपुदपदर्शनं न वदाचन ॥८॥

कुलवध्या रह वार्यं भीतया शीलविष्कृते । विनाय तत्परिजनात्सहसोत्थाय निर्गत ॥९॥

दृष्ट्वा तवदुष्टत कर्म बृहस्पतिरुदारयो । ज्ञात्वा बोधाच्छास्त्रशिष्य वामिर्भावप्रियकारिभि ॥१०॥

पराभिभूतामात्रोश्च कान्तां च सोदुमोश्चर । युयुत्सेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा रुपा ॥११॥

न ज्ञानेहृष्यने चन्द्रो नाऽयुषं शुरमन्त्रितं । बृहस्पतिप्रणीतेश्च न मन्त्रैर्हृष्यते शशी ॥१२॥

तदा चन्द्रस्तु तां तारां नीत्वा सत्याप्य मन्दिरे । युभूजे ब्रह्मर्षाणि रोहिणीं चाकुतोभय ॥१३॥

न जीयेत तवा देवैर्न बोधे ज्ञापमन्त्रकं । न राजभिर्न श्रुतिभिर्न साम्ना भेदवण्डनं ॥१४॥

कहेया । तत्र बृहस्पतिः प्रसन्न होय र गिष्य चन्द्रमा स बोधे ॥१३॥

बृहस्पति ने कहा—रति के समान गुन्गरी मेरी गली तारा से इय विषय म पूछ लो वही जाननी है ॥४॥

ग्रहो वा बोधे—यह चन्द्रमा गुरु गली म पूछने के लिये अतः पुर मे गया । उमने तारा के

समान मूल वाली तारा को देखकर उगको हाथ म पकड़ लिया और मोहवा उगको हठात् अपने निवासस्थान की

आरक्षा प र गया । मनुष्य तब तब ही धैर्यशील जानी नूडिमान् और जितेन्द्रिय रहना है जब तब वह वामिनी

के लक्ष्य की पाप से चौपा नगी जाता अर्थात् बडाध से आह्वय नहीं होता । विशेष रूप से तन्नात म दिखत

मृगनयनी वामिनी को देखकर बिसरा मन वाम के वामभूत नहीं हो जाता है ? इसलिये कुल-वपुओं को नील

व्युत्ति होने के मय स एकात मे कभी भी परपुरुष का दान नहीं करना चाहिये । अपने स्वजना स इस बात का

पता पत्कर उन्नर बुद्धि वाले बुद्ध सहसा उठकर बाहर गए और उन दुष्टम को देखकर अतिकुपित हो अत्यन्त

अपमानजनक ामो से उन्होंने चन्द्रमा को बुरा मला बहकर क्षाप दे दिया । कौन ऐसा व्यक्तित्व है जो अपनी हठी

को दूसरे से अभिभूत (अपमानित) देखकर उसको सहने म समथ हो सकता है । इसलिये बृहस्पति भी शोध से

उस चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे । चन्द्रमा ना शाप से कुछ नहीं हुआ देवों के आगन्तित अस्वरो भी उसका

कुछ नडा विगडा और न तो वह चन्द्रमा बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त भन्त्रों से ही मारा गया । तब वह अपराजित

चन्द्रमा उस तारा को लेकर चला गया । अपने घर मे उसको रखकर रोहिणी के सहित उसका बहुत वर्षों तक

उपभोग करता रहा ॥५॥१३॥ जब वह चन्द्रमा देवों कोषों और शाप मन्त्रों से भी न जीता जा सका और न

राजाओं श्रुतिमो साम भेद वण्ड आदि से ही बन्ध मे आ सका तथा बृहस्पति सब प्रकार के प्रयत्नों से भी अपनी

वरानपाप्य विविधाञ्जरादभावपूजितात । शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम् ॥२५॥
जगाम शुभो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमा । यतते ॥ शशापोच्चं शृणु त्वं चन्द्र मे वच ॥२६॥
यस्मात्पापतरं यमं त्वया पापं मदात्कृतम् । बुद्धौ भूयास्ततश्चन्द्र शशापं वया कथि ॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदेव मृगलाञ्छन । प्रापुः क्षयं न के ताम् गुरुस्वामिसखिद्रुह ॥२८॥
तत्पाज तां स चन्द्रोऽपि तां तारां जगृह कवि । शुभोऽपि देवानाहूय श्रुषीन्पितृगणास्तथा ॥२९॥
नदीनंदाश्च विविधाऽप्यधोश्च पतिव्रता । ततः सप्रष्टुमारभे तारावृत्तिविनिष्पद्यम् ॥३०॥
ततः श्रुतिं सुरानाह गीतम्या भविततस्त्वियम् । स्नानं करोतु जीवेन तारां पूता भविष्यति ॥३१॥
रहस्यमेतत्परमं न कथ्यं यस्य वक्ष्यचित् । सर्वस्वपि ददास्वेह क्षरणं गीतमी नृणाम् ॥३२॥
तथाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नानं यथाविधि । पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो ध्वजतंत ॥३३॥
पुनर्वै देवा अवबुधुः पुनमनुष्या उत । राजानं सत्यं कृष्णानां ब्रह्मजायां पुनर्बुधुः ॥३४॥
पुनर्दत्त्वा ब्रह्मजायां कृता देवैरकल्मषाम् । सर्वे क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने ॥३५॥
तदभूत्सकलाघोषध्वसनं सर्वकामदम् । आनन्दं क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम् ॥३६॥
बृहस्पतेश्च गुरुस्य तारायाश्च विशेषतः । परमानन्दभाषणो गुरुर्गङ्गामभाषत ॥३७॥

ससार म गिव की कृपा से देहधारियों के लिये कौन सा पदार्थ दुःखम है ? गुरु गुरु के साथ वहाँ गये जहाँ तारा मे साथ चन्द्रमा रहता था । उन्होंने उसको उच्च स्वर से गाप दिया— चन्द्र ! तुम मेरी बात सुनो—जिस भद्र से तुमने पापकर्म किया है इसके परिणामस्वरूप तुम कोटी हो जाओ । इन प्रकार कवि ने शेषब्रूयक चन्द्रमा को गाप दे दिया । मृग चिह्न से युक्त चन्द्र कवि के गाप से उठी समय दण्ड हो गया । सत्य है कि गुरु स्वामी और मित्रो स द्रोह करते वाले कौन ऐसे हैं जो मर्त्य नहीं हो गये ? उस चन्द्रमा ने भी उस तारा को छोड़ दिया । कवि ने उस तारा को ले लिया । शुक ने भी सब देवो श्रुतियो पितरो नदियो नवो विविध ओषधिया और पतिव्रता स्त्रियो स तारा के कर्मों व प्रशंसार (प्रायश्चित्त) पूछना प्रारम्भ किया । तत्र श्रुति ने देवो से कहा— यह गीतमी मे गुरु के सहित भक्तिपूर्वक स्नान करे । उससे तारा पवित्र हो जायगी । यह परम गुप्त रहस्य है । जिस किसीसे इसको नहीं कहना चाहिए । प्रत्येक अवस्था मे गीतमी मनुष्य मात्र के लिये एकमात्र कारण है तबनुसार तारा ने यथा विधि भर्ता के साथ स्नान किया । इस पर ब्रह्मा आनाश से पुष्पवृष्टि हुई और चारो ओर जय ध्वनि होने लगी । पुन देवो ने उसको शुद्धता का आशीर्वाद दिया । फिर मनुष्यो ने पुन राजाया ने उस ब्रह्म मार्ग को सत्य घोषित करते हुए दे दिया । फिर इस प्रकार देवतायो ने उस ब्राह्मण-पत्नी को निष्पाप बना कर देवगुरु को सौंप दिया । महामुनि ! उस स्थान पर सब कल्याण ही हुआ इसलिये वह स्थान सब पापो का ध्वंस करने वाला और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाला तीर्थ हो गया । वहाँ असुर द्रोही देवो बृहस्पति गुरु और विशेष रूप से तारा को परम आनन्द और क्षेम प्राप्त हुआ । परम आनन्द से युक्त गुरु ने यथा से कहा ॥२४ ३७॥

गुरुवाच

त्व गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि मुक्तिदा । विरोधतस्तु सिहस्थे मयि त्रैलोक्यपायनी ॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थे समन्विता । यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृतपुरसातले ॥
त्वा स्नातु तानि यास्यन्ति मयि सिहस्थितेऽम्बिके ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धन्य यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम् । सौभाग्यैश्वर्यजनन तीर्थमानन्दनामकम् ॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थाणि चाह स गौतम । स्मरणास्पृष्टनाद्राजपि द्रष्टुं सपुज्यते सदा ॥४१॥
शिवस्यात्र निविष्टस्य नन्दी गङ्गातटेऽनिशम् । साक्षात्स्वरूपसौ धर्मस्तस्मान्नवीतु स्मृतम् ॥
आनन्दमपि ततीर्थे सर्वानन्दविवर्धनात् ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णन
नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यंशोत्तितमोऽध्याय ॥८३॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

भावतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षादभव स्थित । अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृति ॥१॥

गुरु ने कहा—गौतम ! तुम अब पूज्य हो । मन्मा को मुक्ति देने वाली हो । विष्णु रूप में मेरे सिहस्थ
(सिंह राशि पर) रहने पर हूँ सरित्तीरमें १ । तुम सब तीर्थों में युक्त होकर त्रिभुवनप्राप्ती होगी । अम्बिक ।
स्वर्ग मृत्यु और रसातल में जितने तीर्थ हैं वे सब मेरे सिहस्थ होने पर तुम्हारे पास स्नान करने योग्य हैं ।
॥३८ ३९॥

ब्रह्मा बोले—बहु तीर्थ धन्य कीर्तिप्रद आयु आरोग्य और श्री को बढ़ाने वाला सौभाग्य और ऐश्वर्य
को पैदा करने वाला आनन्द नामक तीर्थ है । उस गौतम ने वहाँ पाँच हजार तीर्थ बताये हैं । उनमें स्मरण और
पठन से मनुष्य के सब प्रकार के अनारोग्य दूर हो जाते हैं । यहाँ मगध पर ध्यानावस्थित शिव का धर्म रूप नन्दी
साक्षात् विवरण करता है इसलिए इसका नाम नन्दीतट पड़ा है । बहु सब का आनन्द बढ़ाने वाला है अतः उसको
आनन्दनामक कहते हैं ॥४० ४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आनन्दतीर्थ आदि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक छोटी भावना अध्याय
समाप्त ॥१५२॥

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ समस्त संसार के जन-वरण में रहने वाले, भूतात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात्

तत्रेमा शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम् । सूर्यवदश्वर श्रीमान्क्षत्रियाणा धुरधर ॥२॥
 प्राचीनबहिराहपात सर्ववर्मेण पारण । तिस्र षोडशोऽर्धकोटिद्वय वर्षाणा राज्य आस्थित ॥३॥
 तस्येदृश दत्त चाऽऽसीद्यदह योवनच्युत । भवेय प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभि ॥४॥
 विमुक्तये ततो राज्य त्यक्ष्येऽह नात्र सशय । विवेकिना कुलीनानामिदमयोचित नृणाम् ॥५॥
 स्थीयते विजने भवापि विरवर्तेविभवस्ये । तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोग प्रियं ववचित् ॥६॥
 नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्ष न यन्धुकलहो नृणाम् । तस्मिन्प्रशासति राज्य तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७॥
 तत पुत्रार्थमकरोद्यज राजा महामति । तत प्रसन्नो भगवानश्वर प्रादाद्यधेप्सितम् ॥८॥
 गीतमीतीरसस्याय राज्ञे देवो महेश्वर । पुत्र देहीति राजा वै भव प्राह स भार्यया ॥९॥
 भव प्राह नृप प्रीत्या पश्य नेत्र तृतीयवम् । तत पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०॥
 चक्षुर्दोषयाऽभक्षःपुत्रो महिमा नाम विधुत । येनाकारि स्तुति पुण्या महिम्न (?) इति विधुता ॥११॥
 किमलम्भ्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके । य नित्यमनुवर्तन्ते हरिरब्रह्मादय सुरा ॥१२॥
 प्राप्तपुनश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठमयाचत । महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम् ॥१३॥
 नानाविपद्गणार्तना सर्वाभिमतलब्धये । प्रादात्स्येष्ठ्य भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥

शकर विराजमान हैं उसको भावतीर्थ कहा गया है। उसकी क्षम एवं पुण्यतम कथा कह रहा हूँ सुनो! सूपवर्ग को बहाने वाला सत्र धर्मों में पारङ्गत श्रीमीवन और अत्रिय कुलधुरधर एक प्राचीनरहित नामक राजा था। वह राज सिंहासन पर साठ तीन करोड़ वर्ष तक रहा। उसने ऐसा नियम किया कि यदि मैं योवन च्युत हो जाऊँगा या प्रिया या अपनी प्रिय वस्तुओं से जलग हो जाऊँगा तो मैं अपना राज्य अवश्य छोड़ दूँगा इसमें कोई भी सन्देह नहीं। कुलीन और शान्ती मनुष्यों के लिए यह उचित है कि वह विम्वहीन होने पर विरक्त हो वही एकांत स्थान में जीवन व्यतीत करे। उसने शासनकाल में कहीं किसी को प्रिय वियोग नहीं होता था। मनुष्यों का किसी प्रकार की आधि व्याधि दुर्भिक्ष तथा बन्धुना से कलह नहीं होता था। उसके राज्य शासन का म कोई अपने प्रिय से विमुक्त नहीं होता था। इसने बाद महाबुद्धिमान राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब प्रसन्न होकर भगवान महेश्वर देव न गीतमी नीर पर रहने वाले राजा को इच्छानुवृत्त कर दिया। भार्या सहित उस राजा ने पुत्र दीजिये यह वर शकर से मागा ॥१९॥ शकर ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि मरे तीसरे नेत्र को देखो! मानद! तब उनके तीसरे नेत्र को देखने पर राजेन्द्र को नेत्र की दीप्ति के प्रभाव से महिमा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिसने महिम्नस्तोत्र नामक प्रसिद्ध स्तोत्र को बनाया और उसी से स्तुति की। जिसकी आज्ञा का अनुसरण हरि ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उस भगवान् त्रिपुरारि के प्रसन्न होने पर ससार में क्या जलम्भ है? पुत्र पा जाने पर राजा ने उस तीर्थ की श्रद्धा का भी वर माँगा। भव ने महापापी महारोगी महाव्यसनी और अनेक विपत्तियों से दुखी मनुष्यों की अमीष्ट सिद्धि के लिये उस तीर्थ को अति श्रद्धा दे दी। अब वह भावतीर्थ कहा जाता है।

तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् । भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनवर्हिषः ॥१५॥
महिमा गीतमीतीरे भावतीर्यं तदुच्यते । तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्थादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

गीतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः । यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१॥
पुरा दाशरथी रामः सैतुं बद्ध्वा महार्णवे । लङ्कां दग्ध्वा रिपून्कृत्वा रावणादीन्गणे शरैः ॥२॥
वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत् । पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्यं पुरः स्थिते ॥३॥
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ । एहि वैदेहि शुद्धासि अङ्गमारोढुमर्हसि ॥४॥

उत्तमे स्नान और दान करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है । भगवान् अब की वृषा से प्राचीनवर्हिष
को गीतमी-तट पर महिमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसलिये उसको भावतीर्थ कहा जाता है । इसके अतिरिक्त वहाँ
पवित्र और अखिल मनोरथों को देने वाले सत्तर तीर्थ हैं ॥१-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भावतीर्थ आदि सत्तर तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ विरपनवां
अध्याय समाप्त ॥१५३॥

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वेदों के जानने वाले व्यक्ति सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ को जानते हैं, जिसके स्मरण मात्र से
मनुष्य सुखी हो जाता है । प्राचीन-काल में दशरथ-पुत्र राम ने महासमुद्र पर पुल बाँध कर लंका को जला रण में
अपने बाणा से रावण आदि शत्रुओं को मारकर वैदेही को प्राप्त किया । तत्पश्चात् सब लोकपालों और क्षत्रियों आचार्य
के सामने ही राम ने लक्ष्मण के समीप अग्नि में शूद्र की गई सीता से कहा—‘वैदेहि ! तुम पवित्र हो, अब मेरी
गर्भ में आरूढ़ होने के योग्य हो ।’ उस समय वह मुनिरा श्रीमान् अंगद तथा हनुमान् ने इसका निषेध विद्या और
कहा ‘वैदेहि ! हम सब अपने सुहृदों के साथ कथोप्या चलेंगे । वहाँ शूद्र होने पर और साथ ही भ्रातृगण,

मेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा। अयोध्यायां तु वंदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनं ॥५॥
 तत्र शुद्धिमवाप्स्याप पुनर्भातुषु मातृषु। लोकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६॥
 अयोध्याया सुपुण्येऽह्नि अङ्गुभारोद्गमहंसि। अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७॥
 लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनपुं हि। तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभोषण ॥८॥
 रामश्च जाम्बवाश्चैव तामाह्वयन्नुपात्मजाम्। स्वस्त्योक्त्या देवताभो राज्ञोऽङ्गं चाऽऽहरोह सा ॥९॥
 मुवत्तिस्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता। अयोध्या नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०॥
 मुदितस्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः। ततः कतिपयाहेषु अनार्येभ्यो विरूपिकाम् ॥११॥
 वाचं श्रुत्वा ॥ तस्याज गुर्विणो तामयोनिजाम्। मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२॥
 बाल्मीकिर्मनिमूह्यस्य आश्रमस्य समीपतः। तस्याज लक्ष्मणः सीतामदृष्ट्वा हवतीं हवन् ॥१३॥
 मोल्लङ्घ्याऽऽजा गुरुणामित्यसौ तदकरोऽब्रुवा। ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः ॥१४॥
 रामः सोमित्रिणा सार्धं हयमेयाय दीक्षितः। तत्रैवाऽऽजगमत्पुत्रो रामपुत्रो यशस्विनी ॥१५॥
 लवः कुदाश्च विख्यातो नारदाविष गायको। रामायण समग्रं तद्गन्धर्वाविष सुस्वरी ॥१६॥
 रामाय चरितं सर्वं गायमानो समीपतुः। यज्ञवाट राजसुतो हेतुभिलक्षितो तदा ॥१७॥
 रामपुत्राबुभौ शूरो वंदेहपास्तनयाविति। तावानोय ततः पुत्रावभिषेच्य यथाक्रमम् ॥१८॥
 अङ्गाह्वी ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः। ससारबुद्धिनिग्नानामपतीना शरीरिणाम् ॥१९॥

मातापे और समस्त प्रजावें जब इस अग्नि-परीक्षा को देख लेंगी तब नृप-सनया सीता शुद्ध होगी। इससे अनन्तर पवित्र शुभ दिन में उसी अयोध्या में वे आपके अकारुण्य होगी। वास्तव में इनके चरित्र के विषय में किसने सन्देह होगा? फिर भी स्वजनो में फैले लोकापवाद को अवश्य दूर करना चाहिये।' उन दोनों की इन बातों का अनादर कर विभीषण सहित राम लक्ष्मण और जाम्बवान् ने उस शुद्ध नृप कन्या को बुलाया, देवताओं ने स्वस्ति-पाठ किया और सीता आदरपूर्वक राजा के अंक में आरुढ़ हुई ॥१-९॥ सभी पुष्पक-विमान पर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अयोध्या की ओर चले। अयोध्या नगरी और अपने राज्य को पा सदा राम की आज्ञा का पालन करने वाले वे सब लोग अति प्रसन्न हुये। इसके बाद कुछ दिनों में राजा राम ने अनार्यों के मुख से सीता के संबंध में अनुचित बात सुनकर उस अयोनिजा को गर्भवती अवस्था में ही छोड़ दिया, क्योंकि कुलीन ध्यति मिथ्यापवाद को भी नहीं सहते हैं। लक्ष्मण ने मुनिशिरोमणि वाल्मीकि के आश्रम के समीप उस रोती हुई पवित्र सीता को स्वयं रोते हुए छोड़ दिया। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, इस उर से उन्होंने वह वृक्ष गर्भ लिया। इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर नृप-पुत्र राम ने लक्ष्मण के सहित अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उसी यज्ञ में वे दोनों यशस्वी तथा नारद के समान विख्यात गायक रामपुत्र लव और कुश उस सम्पूर्ण रामचरित्र—रामायण को गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाते हुए पहुँचे। उस समय जब वे दोनों राज-पुत्र यज्ञ-पथ पर आये तब अपने अंग-लक्षणों से दोनों सीता से उत्पन्न राम के पुत्र पहचाने गये। राम ने अपने उन दोनों पुत्रों को बुलाकर यथाक्रम उनका अभिषेक किया, पुनः गोद में लेकर बार-बार छाती से लगाया ॥१०-१८॥ सत्य है कि ससार के दुखों से उद्भिन्न एवं निरुपाय देहाचार्यों के लिये इस ससार में पुत्र वा आश्रित ही अत्यन्त दुःख-शान्ति का वारण है। राम उन दोनों पुत्रों को बार-बार अपनी छाती से लगाते, चूमते और आश्रित करते, कुछ हृदय में सोचते-से थे,

पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विधान्तिकारणम् । मुहुरालिङ्गयत्तौ पुत्रौ मुहुः स्वजतिं चुम्बति ॥२०॥
 किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि यं मुहुः । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कवासिनः ॥२१॥
 सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवास्तथा । अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरः सराः ॥२२॥
 ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम् । सीतामदृष्ट्वा हनुमानद्भ्रष्टः कनकाङ्गदः ॥२३॥
 यत्र यताऽप्योनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते । रामेण सा परित्यक्ता इत्थंचुर्द्वारपालकाः ॥२४॥
 यद्वत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवर्दिनि । अग्नौ शुद्धियतां (ता) सीतां (ता) किंतु राजा निरंकुशः ॥२५॥
 उत्पन्नैर्लोकिर्कंवाक्यं रामस्यजति तां प्रियाम् । भरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः ॥२६॥
 रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह । आगत्य गौतमीं तत्राकुर्वन्ते परमं तपः ॥२७॥
 स्मरं स्मरं निःश्वसन्तस्तां सीता लोकमातरम् । संसारास्याविरहिता गौतमीसैवनोत्सुकाः ॥२८॥
 लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः । प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२९॥
 परितप्तं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः । यत्र चाऽसीतं वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०॥
 वशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च । तत्र स्नानं च वानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१॥
 यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः । सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम् ॥३२॥
 सहस्रसंख्यायुक्तैषु कुण्डेषु वसुधाराया । सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३॥

और फिर बार-बार लम्बी आँखें मरने लगते थे । इसी बीच लकावासी विभीषण आदि राक्षस, सुग्रीव, हनुमान्, अगद और जाम्बवान् एव अन्य वानर आये । उन सबों ने सिंहासन पर बैठे राम को तो देखा, परन्तु सीता को न देखा । तब वनक और नैयूर पहले हुए हनुमान् और अगद ने पूछा कि मेरी अयोनिजा माता सीता कहाँ चली गई, केवल अकेले राम ही दिखाई पड़ रहे हैं । द्वारपाल ने कहा कि राम न उनको छोड़ दिया है । तब सब लोकपालों के देखते-देखते और आर्य राम ने रोक्ते रहते पर भी उन्होंने कहा कि ओह ! अग्नि के द्वारा शुद्ध की गई प्रिय सीता को राम ने लोका-पवाद के नारण छोड़ दिया है । टीक है राजा अति निरंकुश होते हैं । अब हम अवश्य मर जायेंगे । यह कह गौतमी-नट पर चले आये । राम भी उन दोनों के पीछे-पीछे अयोध्यावासियों के साथ उस गौतमी-नट पर आये । संसार से निराग और गौतमी-भवन के लिये उल्लुख से सब उस लोकमाता सीता का बार-बार स्मरण कर और दीर्घो-च्छ्वास छोड़ते हुए परमोत्पृष्ट तप करने लगे । सीता लोक के स्वामी साक्षात् राम अपने अनुज के साथ गौतमी के तट पर आये और उनमें स्नान कर शिवाराधन में लीन हो गये ॥२९-२९॥ इस प्रकार उन्होंने सहस्रजनों के साथ दीर्घ तपस्या कर सब दुःख से अपने को मुक्त किया । जहाँ वह घटना हुई उसको सहस्रकुण्ड कहा जाता है । वहाँ और भी सब अतिमहत् पदार्थों को दन वाले दन तीर्थ हैं । उनमें स्नान और दान करने से सहस्रगुण फल प्राप्त होता है । जहाँ श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनीश्वरों से युक्त होकर सहस्रकुण्ड में पाप नष्ट करने वाली और सब आपत्तियों को दूर करने वाली आहुतियों को वसुधारा के साथ दिया और राक्षसों के विध्वंसक

गौतम्या सरिदम्बाया प्रसादाद्वाक्षसान्तक । सहस्रकुण्डाभिष तदभूतीर्य महाफलम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णन नाम
चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशोत्तितमोऽध्याय ॥८५॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

कपिलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमारुपात् तदेवाऽऽङ्गिरस स्मृतम् । तदेवाऽऽदित्यमाख्यात् संहिकेय तदुच्यते ॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम । अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणां ते भुव इदु ॥२॥
अङ्गिरोऽयस्नदाऽऽदित्यास्नपसेऽङ्गिरसो ययु । सा भूमि संहिकी भूत्वा जनान्सर्वानभक्षयत् ॥३॥

उस महातपस्वी राम ने माता गौतमी नदी की कृपा से सब अमीष्ट मनोरथों को प्राप्त किया, वह महाफल देने वाला सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात हो गया ॥३० ३४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन मायक एवं सौ बीवनर्वा अध्याय समाप्त ॥१५४॥

अध्याय १५५

१

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कपिलासतम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है । उसी को आगिरम आदित्य और संहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है । मुनिप्रपठ ! अङ्गिरसो ने गौतमी के दाहिने तट पर आदित्या को यज्ञ कराया । उन आदित्या ने दक्षिणा में अङ्गिरसा का पृथिवी दी । अङ्गिरस सगर्भ्य के लिये चले गये । वह भूमि संहिकी बनकर मनुष्यों को खात लगी । वे सब लोग मयस्त्र हो गये और उन्होंने जाकर अङ्गिरसा से अपनी कष्ट-माया मुनाई । अपने अन्त ज्ञान से उग पृथिवी का सहज होना जानकर वे भी डरने लगे । इनके बातों से आदित्या ने पाम जाकर बोले— अपनी ही

तत्रसुप्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोम्यो न्यवेदयन् । विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां संहिकीमिति ॥४॥
 आदित्याननुगत्वाऽयं चाचमद्भिरसोऽब्रुवन् । भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥५॥
 निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः । स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुंधराम् ॥६॥
 पण्डितैर्वसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः । भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥७॥
 पापमस्ति महारौद्रं न स्वोऽकुर्मः पुनस्तु ताम् । एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥८॥
 तयाऽपि फयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम् । तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिला शुभलक्षणाम् ॥९॥
 गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु ता दधुः । भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥१०॥
 कपिलासंगमं तच्च सर्वाद्योघविनाशनम् । तत्राभवद्दानतोयादायया कपिलाभिधा ॥११॥
 सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम् । लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः ॥१२॥
 यत्र तीर्थं च तद्भुक्तं गोतीर्थं । तनुदाहृतम् । पुण्यं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः ॥१३॥
 तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत् । सगता गङ्गाया तच्च कपिलासंगमं विबुः ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमादिशततीर्थवर्णनं नाम

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हुई पृथ्वी को ले लीजिये ।' नव आदित्यों ने कहा 'नहीं, ज्ञानी दक्षिणा में दिये गये पदार्थ को पुनः स्वयं अपने नहीं लेते । जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा में कीड़ा बनता है । अपनी अथवा दूसरे की दी हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा कदाचित् और दूसरा महामयङ्कर पाप नहीं है । इसलिये पुनः उस भूमि को हम नहीं ग्रहण करेंगे ॥१७३॥ यद्यपि स्वदत्त पृथ्वी के पुनः ग्रहण में पाप होता है तब अब क्या होगा ? तथापि मृत्यु देवर क्रय के रूप में इस दक्षिणा दी हुई पृथिवी को ले लेता हूँ ।' 'ऐसा ही हो' ऐसा अङ्गिरसों के कहने पर उन आदित्यों ने शुभ लक्षणों वाली कपिला गौ को पृथ्वी के निष्क्रम्य के रूप में गंगा के दक्षिण तीर पर दे दिया । उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देने वाले साक्षात् भूतिमान् विष्णु निवास करते हैं । वहाँ वह कपिला-सगम नामक एक तीर्थ बन गया जो सब पापों को दूर करने वाला है । वही दान-जल में गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गई । सत्य-सम्पन्न पृथ्वी ने दान से भी गोदान उत्तम दान है । इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोच-रक्षा की । जहाँ वह घटना हुई उसको गोतीर्थ कहा जाता है । मनीषियों ने वहाँ और पुण्यप्रद सो तीर्थों को कहा है । वहाँ स्नान और दान करने से भूमि-दान का फल प्राप्त होता है । गंगा से मिलने पर उस स्थान को कपिला-सगम कहा जाता है ॥८-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-सगम आदि सौ तीर्थों का वर्णन नागव

एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शङ्ख हृदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शङ्खहृद नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधरः । तत्र स्नात्वा च तद्दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१॥
तत्रेव वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मण सामपायिनः ॥२॥
ब्रह्माण्डागारसभूता राक्षसा बहुरूपिणः । ब्रह्माण खादितुं प्राप्ता बलोन्मत्ता धृतायुधाः ॥३॥
तदाऽहमब्रव विष्णु रक्षणाय जगदगुरुम् । स विष्णुस्तानि रक्षासि हन्तुं चक्रेण चोद्यतः ॥४॥
छित्त्वा चक्रेण रक्षासि शङ्खमापूरयत्तदा । निष्कण्टकं तलं कृत्वा स्वर्गं निर्वरमेव च ॥५॥
ततो हर्षप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्धरि । सतो रक्षासि सर्वाणि हृषनीनशुरशेषतः ॥६॥
यत्रैतद्बृहत्तमखिलं विष्णुशङ्खप्रभावतः । शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्तं सर्वक्षेमकरं नृणाम् ॥७॥
सर्वाभीष्टप्रदं पुण्यं स्मरणान्मङ्गलप्रदम् । आयुरारोग्यजननं लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम् ॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात् । तीर्थानामप्युत तत्र सर्वपापनुदं मुने ॥९॥
तीर्थान्यप्युतसत्पानि सर्वपापहराणि च । येषां प्रभावः जानाति वक्तुं देवो महेश्वरः ॥१०॥

अध्याय १५६

शङ्ख हृद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शङ्ख हृद नामक एक तीर्थ है जहाँ शङ्ख और गदा को धारण करने वाले भगवान् रहते हैं। उस तीर्थ में स्नान कर उस भगवान् का दशन करने से मनुष्य ससार के बन्धन से छूट जाता है। वहाँ जो यह भुक्ति और मुक्ति देने वाली घटना हुई उसको कह रहा हूँ। बहुत पहले कृत युग में आदि में साम गान करने वाले ब्राह्मण थे। उस समय ब्रह्माण्ड रूपी गृह में उत्पन्न भिन्न भिन्न रूप वाले तथा बल से उन्मत्त रहने वाले राक्षस हाथ में शस्त्र लेकर ब्रह्मा को साने के लिये आये। तब मैंने जगदगुरु विष्णु से रक्षा के लिये कहा। वे विष्णु उन राक्षसों को चक्र से मारने के लिये तैयार हो गये। चक्र से राक्षसों को काट कर अपना सख बजाया। मृतल को शत्रु रहित और स्वयं को निश्चित कर हरि ने आनदातिरेक से अपने शङ्ख को बजाया। इस प्रकार सब राक्षसों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। जहाँ यह सारी घटना हुई वह विष्णु के शङ्ख के प्रभाव के कारण मनुष्यों के सब प्रकार के कल्याण करने वाला शङ्खतीर्थ हो गया। वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र सब मनोरथों को देने वाला स्मरण मान से भगल प्रदान करने वाला और आयु आरोग्य लक्ष्मी तथा पुत्र को बढ़ाने वाला है। मनुष्य उसके स्मरण और पठन से सब कामनाओं को पा जाता है। मुने! वहाँ सब पापों को नष्ट करने वाले दस हजार तीर्थ हैं।

पापक्षयप्रतिनिधिर्न तेभ्योऽस्त्यपर वयचित्

॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थचयुततीर्थवर्णनं नाम

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किप्विन्धातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किप्विन्धातीर्थमाहवात सर्वकामप्रदं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं यत्र सनिहितो भव ॥१॥
तस्य स्वल्पं वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद । पुरा दाशरथी रामो रावणं लोकरावणम् ॥२॥
किप्विन्धावासिभिः सार्धं जघान रणमूढभिः । सपुत्रं सबलं हत्वा सीतामादाय शत्रुहः ॥३॥
मात्रां सीमन्त्रिणां सार्धं वानरंश्च महाबलं । विभीषणेन बलिना देवं प्रत्यागतो मूष ॥४॥
कृतस्वस्त्ययनं श्रीमान्पुष्पकेन विराजितः । यदासीद्धनराजस्य कामनेनाऽऽशुगामिना ॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छन् गङ्गामपश्यत । रामो विरामं शत्रुणां शरण्यं शरणाधिनाम् ॥६॥

उन सब पापों को हरने वाला दस हजार तीर्थों का प्रभाव का वणन मन्वर देव ही कर सकत हैं। पापा का नाश करने वाला ऐसा प्रतिनिधि सीध और दूसरा कोई भी इस भूमण्डल पर नहीं है ॥१ ११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शल-साध आदि दस हजार तीर्थों का वणन नामक

एक सौ छपनवों अध्याय समाप्त ॥१५६॥

अध्याय १५७

किप्विन्धा तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों की सब प्रकार की कामनाओं का पूरा करने वाला तथा सब पापों को दूर करने वाला किप्विन्धातीर्थ नाम का एक तीर्थ है जहाँ भगवान् राम स्वर्ग निवास करने हैं। नारद! उनके स्वरूप का वणन कर रहा हूँ ध्यान से सुनो। बहुत पहले दशरथ-पुत्र राम ने 'मौ' को हलाने वाले रावण का किप्विन्धा निवासियों के सहयोग से मर्यादित युद्ध भगाया। 'मनुना' राजा राम युद्ध और सीता सहित रावण को मारकर सीता को लाने आई लक्ष्मण महाबलाली वानरा बलों विभीषण और दंडा के साथ सीता आया। यामानु राम स्वर्ग-ययन आदि मांगलिक कार्यों को समाप्त कर कुवर के इच्छा चालित शास्त्रमाया विमान पर विराजमान होकर सबके साथ अयोध्या को चले गए थे वणा का दान हुआ। मुने! 'मनुना' के नाम का एक 'मर्यादा' के प्रतिपालक

गीतमीं तु 'जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम् । मनोनयनसंतापनिवारणपरायणाम् ॥७॥
ता दृष्ट्वा नृपति श्रीमान्ज्जातोरमयाऽविशत् । तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हृदयगदगदया गिरा ॥
हरोन्सर्वानथाऽऽमन्य हनुमत्प्रमुखान्मुने ॥८॥

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्धरयो याऽसौ मम पिता प्रभुः । सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम् ॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा मुक्तिमयापि दद्यात्
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना ॥१०॥
हृतानि शस्त्रबदुरितानि चैव, अस्याः प्रभावादरयः सखायः
विभीषणो मैत्रमुपैति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमाच्च बन्धुः ॥११॥
लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परिसेवनेन
या गीतमी देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सज्जटामवप ॥१२॥
सेयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सनिहन्त्री
जगत्पवित्रीकरणैकबद्धा, दृष्ट्वाऽद्य साक्षात्सरितां सवित्री ॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सर्वानां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम् ॥१४॥

राम मन और नेत्र के सताप को निवारण करने में अतिकुशल, सत्कार की अति पवित्र और सब मनोरथों को देने वाली उस गीतमी को देखकर गंगा-तीर पर उतर पड़े । मुनि नारद ! उसको देखकर राजा हर्ष से प्रफुल्लित होकर हनुमान् आदि प्रमुख वानरों को बुलाकर गदगद् वाणी से बोले ॥१-८॥

राम बोले—वानरगण ! इस महानदी के प्रभाव से मेरे प्रभु पिता सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग को चले गये । यह समस्त प्राणियों की माता है और सबको भूमि और मृत्ति दोनों देती है और उनके दारुण पापों को भी नष्ट कर देती है । इस मू पर इसके समान कोई अन्य नदी नहीं है । इसने सब पापों को पुन पुन नष्ट किया, इसके प्रभाव से शत्रु मित्र हो गये, विभीषण नित्य का मित्र हो गया, सीता मिल गई और हनुमान्, बन्धु (सहामक) मिल गया । इसकी सेवा से लङ्का नष्ट कर दी गई और राक्षस अपने परिवर्जनों सहित मारे गये । गीतमन्त्रपि ने देववर शरण रखकर शिव की पूजा कर जिस गीतमी को जटा सहित प्राप्त किया था, वह यह सबल मनोरथों को प्रदान करने वाली और सब अमंगलों को नष्ट करनेवाली सत्कार को पवित्र करने में एकमात्र कुशल और सब नदियों को उत्पन्न करने वाली गीतमी आज प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिभोग्य हुई है । मैं ऐसी शरणवत्सल गंगा की शरण में शरीर, मन और ध्वन से सेवा के लिये आया हूँ ॥९-१४॥

ब्रह्मोवाच

एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवन्हुरयः सर्व एव
 पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पृथक्च, पुष्पैरनेकैः सर्वलोकोपहारैः ॥१५॥
 संपूज्य शवं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः
 ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः ॥१६॥
 मलोपितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भाभः
 दुःखं जहौ सर्वमभिप्रसंभवं, किं माऽऽप्यते गौतमीसेवनेन ॥१७॥
 सविस्मयः पश्यति भृत्यवर्गं, गोदावरीं स्तोति च संप्रहृष्टः
 संमानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कमपि प्रमोदम् ॥
 पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो वासरयिं बभाषे ॥१८॥

विभीषण उवाच

नाद्यापि तृप्तास्तु भवाम तीर्थे, कंचिच्च कालं निवसाम चात्र
 वत्स्या (सा) म चात्रैव पराश्चतस्रो, रात्रोरथो याम वृतास्त्वयोध्याम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच ॥

तस्याथ वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रोरपराश्चतस्रः
 संपूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमयो जगाम ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—राजा राम की उपर्युक्त बातों की सुनकर वे सब वानर उस पुष्पस्रोता गया में कूब पड़े और स्नान कर सब लोको के उपहार स्वरूप मूर्ति-मूर्ति के फूलों से विधिवत् पूजा की। राजा ने भी शिव की पूजा कर सब भावों को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त वाक्यों से विधिपूर्वक स्तुति की। उन सभी वानरों ने मुदित होकर उसी प्रकार नृत्य-नाम किया। महात्मा राम ने प्रिया सीता के सहित अपने प्रेमी अनुचरों के साथ उस रात्रि को वही बिता दिया और सब शत्रुओं के कारण पाये हुये दुःख को वे मूल गये। सत्य है, गौतमी की सेवा से मनुष्य क्या नहीं कर पा सकता है? वे कभी विस्मित हो अपने अनुचरवर्ग को देखते तो कभी प्रसन्न हो गोदावरी की स्तुति करते थे। अपने समस्त अनुचरों को सम्मानित करते हुए राम को कोई अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। पुनः प्रातः काल जब विमल सूर्योदय हुआ तब विभीषण ने राम से कहा ॥१५-१८॥

विभीषण ने कहा—दस तीर्थों में रहने से अभी हम तृप्त नहीं हुये हैं, अतः यहाँ कुछ समय तब और रहना चाहते हैं। यहीं और चार रात तक रहें, पुनः अयोध्या को आनन्दपूर्वक प्रस्थान करें ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद वानरों ने भी विभीषण की बातों का समर्थन किया और उसी प्रकार आनन्दपूर्वक अन्य चार रात्रियाँ भी बिताई गईं। इसके बाद सब के प्रभु शत्रु की पूजा कर सब उस भ्रातृ-प्रिय जगत्प्रसिद्ध

सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः । एवं तु पञ्चाहमयोषिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमर्च्यं शुश्रूषणं तत्र करोति वायो, सुतोऽनुगामी हनुमान्प्रस्य गच्छन्नुपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व मत्स्यापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तथेतरेः शंकरांककरंश्च मोक्षास्य पूजा परशंकरेण, आहूय' समायोग्यमहो भवस्य (?) तिष्ठन्ति सुखास्तवनारदरेण, ते खड्गपद्मादिषु सभवन्ति । येऽभद्राणाः शिवलिङ्गपूजां, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति ययोषितं ते यमांककरं हि, पथ्यन्त एवाखिलदुर्गतीषु । रामाज्ञया वायुसुतो जगाम, दोष्या न चोत्पादयितुं शशाकः [ततः स्वपुच्छेन ग्रहीतुकाम', संवेष्ट्य लिङ्गं तु विसृष्टकामः] मैवाशक्तममहद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तपैव कञ्चालयेत्लब्धमहानुभार्यं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी तस्मिन्नेकं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम विग्रामपाऽऽमग्न्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणोक्त्य च रामचन्द्र. शुद्धातिशुद्धेन ह्वाऽखिलैस्तैलिङ्गानि सर्वाणि नमाम राम	॥२१॥ । ॥२२॥ । ॥२३॥ । ॥२४॥ । ॥२५॥ । ॥२६॥ । ॥२७॥ । ॥२८॥
--	---

सिद्धेश्वर नामक तीर्थ में गये, जिसके प्रभाव से रावण प्रबल हो गया था। इस प्रकार वे सब पाँच दिनों तक वहीं रहकर अपने अपने स्थापित किए हुए शिवलिंग की पूजा करते रहे। वहाँ वायु-पुत्र, अनुगामी हनुमान् राजा राम की शुश्रूषा करते थे। जाते समय राजशिरोमणि राम ने हनुमान् से कहा कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित इन सब लिङ्गों का उत्तम मन्त्रज्ञो अथवा इतर शंकर-भक्तों ने उपदेश से विसर्जन कर दो ॥२०-२२॥ अहो! शंकर के भक्तों को उनकी पूजा का विसर्जन किये बिना इतर कार्य नहीं करना चाहिये। भक्त विधिपूर्वक पूजा करके ही सुखपूर्वक रहते हैं अर्थात् उन (शंकर) के अनादर से वे असिपन्न-बन नामक नरक में कष्ट पाते हैं। जो अश्रद्धालु जन शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर, विहित कार्यों का अनुष्ठान नहीं करते हैं वे यमदूतों द्वारा विभिन्न भयों में यातना पाते हैं। राम की आज्ञा से वायु पुत्र चले, परन्तु अपनी मुजाबों से उस लिङ्ग को उखाड़ न सके। तब उन्होंने अपनी पूँछ से बांधकर उस लिङ्ग को उखाड़ना चाहा, परन्तु बैसा भी न कर सके। यह देख कर कपीश्वरो और राजा राम को महान् विस्मय हुआ। कौन ऐसा मनस्वी पुरुष है जो उस महामहिम शिवलिङ्ग को हटा सकता है? नृपश्रेष्ठ महानुभाव राम उस लिङ्ग को अचल देखकर सहसा वहाँ गये और ब्राह्मणों को बुलाकर उस लिङ्ग की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा की। फिर अति निश्चिद् हृदय से राय ने अखिल अनुयायी वर्गों के साथ उन लिङ्गों को नमस्कार

किष्किन्धवासिप्रवरंरशेषं, संसेवित तीर्थमतो बभूव	।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयाऽत्र	॥२९॥
पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमी-	।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिविलोक्यन्प्रणमन्गौतमीं ताम्	॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं विबुधा वदन्ति	।
।पृष्ठेस्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं किं पुनः स्नानदानैः	॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चा-

[शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥]

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थवर्णनम्

॥ ब्रह्मोवाच ॥

व्यासतीर्थमिति स्यात् प्राचेनसमतः परम् । नात, परतरं किंचित्पावनं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
यदा मे मानसा, पुत्रां स्रष्टारो जगतामपि । अन्तं जिहासवस्ते वै पृथिव्या जन्मुरोजसा ॥२॥

किया । किष्किन्धा के रहने वाले सब श्रेष्ठ वानरो से सेवित होने के कारण उसका नाम किष्किन्धतीर्थ पड़ा । इस तीर्थ में स्नान करने से ही बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥२९-३१॥ फिर राम ने 'हे माता गौतमी ! प्रसन्न हो' यह कहकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । इस प्रकार वे सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार आपस में बातचीत करते हुये उस गौतमी की ओर देखते हुए और बार बार प्रणाम करते हुए वहाँ से चल पड़े । उस समय से पवित्र जन उसको अति पवित्र किष्किन्धतीर्थ कहते हैं । जो भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का स्मरण, माहात्म्य-श्रवण या पाठ करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । फिर उसके स्नान और दान की महिमा का वर्णन क्या किया जाय ॥३०-३१॥

श्रीब्रह्मपुराण में किष्किन्धातीर्थ-वर्णन नामक एक ही सप्तावनवा अध्याय समाप्त ॥१५७॥

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद व्यास-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है, जिसे प्राचेनस तीर्थ भी कहते हैं । इस तीर्थ से बढ़कर पवित्र तथा सब सिद्धियों को देने वाला अन्य कोई तीर्थ नहीं है । ससार की भी सृष्टि करने वाले

पुनः सृष्टाः पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम् । नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः ॥३॥
 तदोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या अङ्गिरसो (सा) मुने । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥४॥
 तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुहं नत्वा तपोधनाः । तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम् ॥५॥
 सर्वेभ्यो ह्यधिकं माता गुरुभ्यो गौरवेण हि । तदा नारद कोपेन सा शशाप तवाऽऽत्मजान् ॥६॥

मातोवाच । । ।

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः । सर्वेऽरपि प्रकारेस्तप्त तेषां सिद्धिमेष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नानावेशाश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च । विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावत ॥८॥
 यवापि तद्वाक्षसैर्विघ्नं यवापि तन्मानुषैरभूत् । प्रमदाग्निः स्वचिच्छापि यवापि तद्देहदोषतः ॥९॥
 एव तु भ्रममाणास्ते ययुः सर्वे तपोनिधिम् । अगस्त्यं तपतां धेष्ठं कुम्भयोनिं जगद्गुहम् ॥१०॥
 नमस्कृत्वा ह्यङ्गिरसा ह्यग्निर्वंशसमुद्भवाः । दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः ॥११॥

अङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति । नानाविधैरप्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः ॥१२॥

मेरे दस मानस पुत्र हुये । वे पृथ्वी का अन्त जानने की इच्छा से बड़े साहस के साथ चले गये । फिर मैंने अन्य ही मानस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे भी उनको ढूँढ़ने के लिये चले गये । वे भी लौट कर नहीं आये । जो गये वे चले ही गये । मुने ! तदनन्तर महाबुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाले तथा सब शास्त्रों के परिनिष्ठित विद्वान् दिव्य अङ्गिरस उत्पन्न हुए । तपस्वी अङ्गिरसों ने गुरु से आज्ञा लेकर तपस्या के लिये बुधनिश्चय हुये, परन्तु अपनी माता से इस विषय में राय नहीं ली । यह देख कर माता को क्रोध हो गया, क्योंकि माता गौरव में सब गुरुओं से बढ़कर है । तब उसने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को शाप दे दिया ॥१-६॥

माता बोली—जो मेरे पुत्र मेरा अनादर कर तपस्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं, वे सब प्रयत्न करने पर भी तपस्या में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ये उपर्युक्त स्थान ढूँढ़ते हुये अनेक देशों में गये, परन्तु तप सिद्धि प्राप्त नहीं हुई । इसर-उधर दौड़ने वाले उन लोगों के पीछे-पीछे विघ्न भी लगते रहते थे । कहीं तो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते तो कहीं मनुष्य । कहीं स्त्रियों के कारण विघ्न हो जाता था तो कहीं उनके निजी दोषों के कारण । इस प्रकार चक्कर काटते हुये वे तपस्त्रियों में श्रेष्ठ, सप्ताह के गुरु एवं आम्बल्यमान अगस्त्य के पास गये । अग्निवस्त्रीय वे अङ्गिरस दक्षिण दिशा के स्वामी, परम शान्त अगस्त्य को नमस्कार कर विनीत भाव से पूछने लगे ॥८-११॥

आङ्गिरस बोले—भगवन् ! बार-बार नाना प्रकार के उपाय करते हुए भी हम लोगों की तपस्या किस दोष के कारण सिद्ध नहीं हो रही है ? क्या करें ? इस तपस्या का कौन सा प्रकार (नियम) है ? विप्रेन्द्र ! ऊपाकर उपाय बनाइये, आप निश्चय ही तपस्या में सर्वश्रेष्ठ हैं । ब्रह्मन् ! आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ माता हैं तथा

किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम् । उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा द्रुवम् ॥१३॥
 ज्ञाताऽसि ज्ञानिनो ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदता वरः । शान्तोऽसि यमिना नित्यं दयावान्प्रपकृत्या ॥१४॥
 अत्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम् । साहंकारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिता ॥
 असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः । ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो ये खण्टारो ब्रह्मणा कृताः । न यदपि तपश्चामुत्तमरघ्व' स्मयकारणम् ॥१७॥
 ब्रह्मणा निर्मिता, पूर्वं ये गताः सुखमेधते । ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन् ॥१८॥
 ते यूयं च पुनः कात्रे याता याताः शनैः शनैः । प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः ॥१९॥
 इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां श्रेणोक्यपावनीम् । मोषायोज्योऽस्ति संसारे विना गङ्गा शिवप्रियाम् ॥२०॥
 तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानद पूजयिष्यथ । स षष्ठेदयिष्यत्यक्षिलं संशयं वो महामतिः ॥
 न सिद्धिः क्वापि केवाचिद्धिना सद्गुरुणा यतः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ते समुत्सुर्मुनिवरं ज्ञानद कोऽभिधीयते । ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमा ॥२२॥

वक्ताओ मे खेष्ठ वक्ता हैं । आप समयमशीलो मे सबसे अधिक शान्त और सयमी हैं । आप सर्वदा दया दिखाने वाले और प्रिय करने वाले हैं । आप क्षमाशील और उदार हैं । इसलिये कृपाकर उपयुक्त उपाय बतलाइये । जो अह-
 कारी, निर्दय गुरु-सेवा-पराङ्मुख, झूठ बोलने वाले और क्रूर हैं वे तरबो को नहीं जानते हैं ॥१२-१५॥

ब्रह्मा बोले—क्षण भर तक विचार कर अगस्त्य ऋषि ने धीरे धीरे उनसे कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—तुम लोग शान्त चित्त वाले, खण्टा (प्रजापति) और ब्रह्मा के पुत्र हो, फिर भी पर्याप्त तपस्या नहीं हुई । इस आश्चर्यजनक असफलता का कारण सोचो । पहले ब्रह्मा ने जितनी उत्पन्न किया और जो सुख की खोज में गये, वे सुख का अनुभव कर रहे हैं । जो पुनः उनको खोजने के लिये गये, वे आश्रितरस हो गये । वे ही तुम लोग पुनः समय पाकर शनैः शनैः आगे बढ़ते ही गये और अब इससे सदेह नहीं कि तुमलोग प्रजापति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाओगे । अब त्रिमुक्ता-पावनी गंगा के तट पर तपस्या करने के लिये जाओ । समार मे शिव प्रिया गंगा के बिना और कोई कल्याण का उपाय नहीं । वहाँ पवित्रस्थान में आश्रम बनाकर जब ज्ञानदाता (शकर) की पूजा करोगे तो वे महामति सब सन्देशों को अवश्य मिटा देंगे । क्योंकि कहीं पर किसी को अच्छे गुरु के बिना सिद्धि नहीं मिलती है ॥१७-२१॥

ब्रह्मा बोले—उन लोगों ने उन मुनिवर से कहा कि कौन ज्ञान-दाता कहा जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य या चन्द्रमा । मुनिपेष्ठ ! अग्नि अथवा वरुण वीर ज्ञानदाता हैं ? यह सुन ज्ञानदाता अगस्त्य ने कहा—ज्ञान

अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्॥२३॥
 या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते। यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः॥२४॥
 यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्। यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते॥२५॥
 देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायवेहदाः। गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्॥२६॥
 तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वयः। शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः॥
 यदस्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे

॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गाथा गायन्त एव ते। जम्बु पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जम्बुश्च दक्षिणाम्॥२८॥
 अगस्त्येनोदितान्वेदान्मृजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण हृद्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः॥२९॥
 तेषां सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्रष्टृत्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना॥३०॥
 अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदानां स्थापनाय च। लोकानामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये॥३१॥
 पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्रष्टृत्वं जगतामिष्टं तावुपूपा भविष्यत्॥३२॥
 प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति शानं क्रमात्। यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः॥३३॥
 वेदानां' व्यसनं तेष्वो भाविष्यासास्ततस्तु ते। यदा यदा तु धर्मस्य ग्लानिर्वैवस्य वृश्यते॥३४॥

देने वाली इन बातों को सुनो। जो जल है वही अग्नि कहा गया है। जो अग्नि है, वही सूर्य, जो सूर्य है, वही विष्णु और जो विष्णु है, वही भास्कर है। जो ब्रह्मा है, वही रुद्र है। और जो रुद्र है, वही सब कुछ है। जिसका सब कुछ है, उसको ज्ञान है और वही ज्ञान का दाता यहाँ कहा जाता है। उपदेशक, प्रेरणा करने वाला, व्याख्याकार, उपाध्याय और पिता आदि बहुत से शब्द हैं। उनमें ज्ञानाता शब्द महान् है। वही ज्ञान यहाँ कहा गया है जिससे भेद-भुक्ति का नाश होता है। शम्भु एक ही है वह अद्वितीय है। बहुधा भ्रान्ति निवारण करने के लिए विप्रगण उन्हीं को अग्नि, रुद्र, मित्र आदि नामों से अभिहित किया करते हैं॥२२-२७॥

ब्रह्मा बोले—मुनि की इन बातों को सुनकर गाथा गाते हुए उनमें से पाँच तो गंगा के उत्तर तट पर और पाँच गंगा के दक्षिण तट पर गये। अगस्त्य के बतलाये हुए देवों की यथाविधि पूजा करते हुये वे तत्त्वचिन्ता करने-वाले मुनि विशेष रूप से आसनों पर बैठ गये। मुने! उनकी तपस्या से उनके ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो गये और वहाँ 'युग के आदि में विद्वत् स्रष्टा ब्रह्मा ने अधर्म की निवृत्ति के लिये वेदों की स्थापना, लोकोपकार, धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि तथा पुराण स्मृति, वेद एवं धर्मशास्त्रों के अर्थ-निश्चय के लिये जिस रूपरेखा की कल्पना की थी, तुम लोग उसी कल्पना के अनुरूप हो जाओगे। क्रमशः शानं शानं प्रजापति का पद अवश्य प्राप्त कर लोगे। इसकें अतिरिक्त जब-जब अधर्म का आदर और वेदों का अनादर होगा, तब तब तुम लोगों को वेदों के अध्ययन और अध्यापन का स्वभाव सा हो जायगा और मावी व्यास तुम लोग होगे। जब जब धर्म और वेद का ह्रास दिखाई देगा, तब तब तुम लोग व्यास बनकर जगत् का उपकार करोगे। मुने! उन लोगों का जो गंगा के तट पर उत्तम तपस्या का

तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः। तेषां यत्तपसः स्थानं गङ्गायास्तोरमुत्तमम् ॥३५॥
तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निरापः सर्वमिति तत्र संनिहितं सदा ॥३६॥
नेतेभ्यः पावनं किञ्चिन्नेतेभ्यस्त्वधिकं क्वचित्। तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥३७॥
सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थं सर्वप्राण्यनुकम्पया ॥३८॥
सर्वदेवैरनुवृत्तस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च ॥३९॥
तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपविष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कजालनाम्भो मोहध्वान्तमवापहम् ॥
सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाश-

अधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

श्रीतमीमाहात्म्य एकोनवत्तितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वजरासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वजरासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविभूतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धै राजर्षिभिरुत्तमा ॥१॥

स्थान है, वहाँ शिव, विष्णु और मैं आदित्य, अग्नि, जल आदि सब देवता सर्वदा रहा करते हैं। उन स्थानों से
ब्रह्मकर कोई दूसरा पवित्र और श्रेष्ठ स्थान नहीं है। वे ती ब्रह्माकार की प्राप्ति के कारण ब्रह्म रूप हैं।
सर्वदेवता, व्यापक, सब की भावनाओं के अनुसार स्वरूप धारण करने वाले शिव विशेष रूप से उस तीर्थ में सब
प्राणियों के ऊपर दया और अनुग्रह कर सर्वदा ही निवास करते हैं। वे आदिगुरुस धर्म-व्यास माने जाते हैं। उसी
प्रकार वे ही वेदव्यास भी कहे जाते हैं। पापरूपी पद्मक की घेने वाले जल स युवन तथा मोहरूपी अन्धकार के
नशे को दूर करने वाला वह पवित्र तीर्थ उन्हीं लोगों के नाम से तीना लोक में प्रसिद्ध हो गया। वह मनुष्या को
सब सिद्धियाँ देने वाला व्यास-तीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है ॥२८-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म व्यासतीर्थ-वर्णनं नामक एव सौ अठ्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

अध्याय १५६

वजरासगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वजरा सगम नामक तीर्थ तीना लोक में प्रसिद्ध है। वहाँ सर्वदा ऋषि, सिद्ध, और राजर्षि-
गण निवास करते हैं। पहले पक्षी गरुड नाम के दास हो गये थे, क्योंकि उनकी माता उस समय नागा की

दासत्वमगमत्पूर्वं नागानां गरुड खग । 'भातृदास्यात्तदा' दुःखपरिसत्तप्तमानस ॥३॥
कदाचिन्विचिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्चयन् ॥२॥

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि । नान्यसेवा कृता येस्तु न येया ध्यसनागम ॥३॥
सुखं तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च । स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाधिष्ठो जननीमेत्य दुःखित । पर्यपृच्छदमेयात्मा वनतैर्योऽथ मातरम् ॥५॥

गरुड उवाच

कस्यापराधात्मातस्त्व पितुर्बा भयं वाऽन्यत । दासीत्वमाप्ता वदन् तत्कारणं मम पृच्छत ॥६॥

ब्रह्मोवाच

साऽप्रबोत्पुत्रमात्मीयमरुणस्थानुज प्रियम् ॥७॥

विनतोवाच

मैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदित । यस्या वाक्यं विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८॥
कद्रुश्चापि तर्पेवाह सा भया सयुता ययौ । कद्रवा ममाभवद्वादशब्दमनाह तप्रा जिता ॥९॥

माता की गयी थी। यह देखकर उनका मन दुःख से सतप्त रहता था। किसी समय एकात्त में बैठकर लम्बी साँस छोड़ते हुए वे विचार करने लगे ॥१२॥

गरुड बोले—इस लोक में वे ही धन्य हैं और वे ही धर्मात्मा हैं जिन्होंने दूसरे की दासता नहीं की और जो आपत्तियों के बन्दीमत् नहीं हुए। वे अपने तन के राजा थे यही क्योंकि वे सुखपूर्वक रहते हैं गाते हैं सोते हैं और हसते हैं। जो दूसरे के धन में हैं उनको धिक्कार है, धिक्कार है ॥३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्तित एवं दुःखी होकर वे माता के पास गये और अपरिमित शक्ति सम्पन्न विनता-पुत्र ने माता से पूछा ॥५॥

गरुड ने कहा—माता! तुम किसके अपराध से—पिता के या मेरे या अन्य के कारण दासी बनाई गई? मैं इसको पूछ रहा हूँ बताओ ॥६॥

ब्रह्मा बोले—उसने अपने प्रियपुत्र अरुण के छोटे माई गरुड से कहा ॥७॥

विनता बोली—किसी का अपराध नहीं मेरा ही अपराध है। मैंने एक बार कद्रू से कहा कि जिसका वहना झूठा हो जायगा वह दासी होगी। कद्रू ने भी ऐसा ही कहा। इस प्रकार मैं और वह दोनों साध-नाथ गद। कद्रू के साथ मेरा विवाद हुआ। कद्रू ने घोसे से मुझ हरा दिया। विधि बलवान है। तात! वह किन

विधिर्ह वलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते। एवं दासोत्वमगमं कद्रवाः कश्यपनन्दन ॥

यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज

॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासी गरुडोऽतीव दुःखितः। न किञ्चिद्बुधे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम् ॥११॥

कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भुतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम् ॥१२॥

कद्रूश्वाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कृतुं तव यात्यनिवारितः। अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि धन दास्यपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

स्वयं खं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता

॥१४॥

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च

॥१५॥

कद्रूश्वाच

पुत्रागमदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्तवबहुभ्रातृगान्कद्रूं च विनता तवा। ततः प्रोवाच मुविता वनतेपस्य मातरम् ॥१७॥

विन चेष्टाया (व्यापार) को नहीं करता है? कश्यपनन्दन! इस प्रकार मैं दासी हो गई। जब मैं दासी हो गई हूँ, तो हे पक्षि-पुत्र! तुम भी दास हो ॥९-१०॥

ब्रह्मा बोले—वे गरुड तब अति दुःखित होकर मोन हो गये, अपनी भवितव्यता की चिन्ता करते हुए अपनी जननी में कुछ नहीं बोले। किसी समय पुन-हित और अपने एश्वर्य की इच्छा से उस कद्रू ने पक्षि-माता विनता से कहा ॥११-१२॥

कद्रू बोली—तुम्हारा पुत्र विना बाधा के सूर्य का नमस्कार करने जाता है। अहो! तुम दासी होती हुई भी इन त्रिलोरी में माग्यशालिनी हो ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अपने दुःखों को हृदय में छिपायी हुई विनता न विस्मित होकर कद्रू से कहा ॥१४॥

विनता ने कहा—तो तुम्हारे पुत्र क्या नहीं सूर्य को देखने जाते? ॥१५॥

कद्रू बोली—सुभगे! मेरे पुत्रों को नागालय ले चलो। वहाँ समुद्र के समीप शीतल जल से पूर्ण एक सरोवर है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—गरुड उन नागा, कद्रू और विनता का डोकर ल गये। तब कद्रू प्रसन्न होकर गरुड की

सुराणा नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति । पुनः प्राह सर्वमाता गरुडं विनयान्वितम् ॥१८॥

सर्वमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम् । नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम ॥
हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

सा धेयमाना विनता बीना कद्रुमभायत ॥२०॥

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्वमात. पुत्रो मे नेष्यते सुतान् । दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधोऽवरम् । नमस्कर्तुमयेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः ॥२२॥
भास्वन्तमित्युवाचेयं मा सर्वजननो हठात् । तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगा ॥२३॥
तदाऽऽरुढ सर्वसैन्य गरुड विहगाधिपम् । शनं शनैरुपगमन्न देवो दिवाकरः ॥
ते बहुधमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विष्यधुः ॥२४॥

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो ममः । अलं सूर्यस्य सदनं दग्धा. सूर्यस्य तेजसा ॥
यामस्तब्धया वा गरुड विहाय स्वामयापि वा ॥२५॥

माता से बोली—‘गरुड मेरे पुत्रों को देवलोक में ले चले।’ पुन सर्पों की माता ने विनयशील गरुड से कहा ॥१७-१८॥

सर्वमाता ने कहा—‘मेरे पुत्र त्रिलोकी के गुरु सूर्य को देखना चाहते हैं। इसके बाद सूर्य को नमस्कार करते पुन मेरे घर चले आयेंगे। दासी। तुम मेरे पुत्रों को प्रतिदिन वहाँ ले जाया करो ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—‘कौपती हुई दीन विचारी विनता ने कद्रु से कहा—॥२०॥

विनता ने कहा—‘सर्वमाता। मैं वहाँ ले जाने में असमर्थ हूँ। मेरा पुत्र वहाँ ले जायगा। वे देव सूर्य को देखकर पुन चले आयें ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—विनता ने अपने पुत्र पक्षिराज गरुड से कहा—‘दस सर्वमाता ने वलपूर्वक मुझसे कहा है कि ये पुष्टहारे स्वामी नाग सूर्य को नमस्कार करना चाहते हैं। गरुड ने कहा कि अच्छी बात है। नाग मेरी पीठ पर चढ़े। विहगपति गरुड की पीठ पर आरुढ होकर वे सर्प शनं शनं उस ओर चले जहाँ भगवान् दिनकर रहते हैं। वे सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जलने लगे और अति व्यथित हो गये ॥२२-२४॥

सर्पों ने कहा—‘महाबुद्धिमान् ! लौटो, लौटो, भगवान सूर्य को बार बार नमस्कार है। अब सूर्यलोक को जाना नहीं चाहते। हम लोग सूर्य के तेज से जल गये। गरुड ! हम लोग पुष्टहारे साथ जायेंगे अथवा पुष्टहारे बिना भी चले जायेंगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवं नागेह्यमान आदित्यं दर्शयामि वः। इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसंसंमुखः॥३६॥
 'दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं धीरणं प्रति। बहवः शतसाहस्राः पीडिता दग्धविग्रहाः॥३७॥
 पुत्राणामार्तसंनदं पतितानां महीतले(?)। आदवासितुं समामाता तान्सा कद्रूः सुबिह्वला॥३८॥
 उवाच विनता कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम्। कृतवान्तिदुर्मेघा येयां शान्तिर्न विद्यते॥३९॥
 नामयया कर्तुमायासि स्वामिनाकथं फणोदवरः। स काश्यपो बृहतेजा यद्यत्र स्यादनामयम्॥४०॥
 भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि। कद्रूवास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यतिभीतवत्॥४१॥
 पुत्रमाह महात्मानं गच्छं विहगाधिपम्॥४२॥

विनतोवाच

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। 'वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते॥४३॥
 नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जितुं कदाचन। श्रोत्रिये धान्यजले वापि समं चन्द्रः प्रकाशते॥४४॥
 कुर्वन्त्यनिष्टं कपटंस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः॥४५॥

ब्रह्मोवाच

विनता च ततः प्राह कद्रुं तां सर्पमातरम्

॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार नागों के कहन पर 'मैं तुम लोगों को अवश्य सूर्यदर्शन कराऊँगा' यह कह कर मरठ वही शीघ्रता से सूर्य की ओर चला। असह्य गर्मी से उनमें से कितनों की पंजायें जल गईं। धीरण द्वीप में, शूलसवर सैकड़ों और हजारों की संख्या में पीडित होकर वे गिर पड़े। पृथ्वीलाल पर गिरे हुये पुत्रों के आर्तनाद को सुनकर वह कद्रू अतिबिह्वल होकर उनको आदवासन देने के लिये वहाँ आई। कद्रू ने विनता से कहा कि मुन्हारे अति-दुष्टबुद्धि पुत्र ने महान् दुष्कर्म किया है जिसकी शान्ति के उपाय नहीं हैं। फणोदवर (धननाथ) मेरे स्वामी के आदेश को अंग्या नहीं कर सकना है। वह अति तेजस्वी कश्यपपुत्र यदि यहाँ होना तो अवश्य रोग ग्रान्ति हो जाती। भामिनि ! अब मेरे पुत्रों का शान्ति किस प्रकार मिलेगी ? कद्रू की उन बातों को सुनकर विनता डरी हुई-सी अपने पक्षिराज गच्छ में जाती ॥३६-३९॥

विनता से कहा—पुत्र ! यह तुमने अच्छा नहीं किया। विनम्र व्यवहार ही जीवन का आभूषण है, ऐसा कहा गया है। हमके विपरीत आचरण करना ठीक नहीं है। सज्जनों की कभी भी अपने सन्तुष्टों के प्रति भी कपट-व्यवहार नहीं करना चाहिए। देखो वेदपाठी और शास्त्रालय पर चन्द्रमा की चिरणें समान रूप से प्रकाश-दान करती हैं। मेरे अशान्ति पुत्र ! वेही कष्ट में अनिष्ट व्यवहार करते हैं, जो पुण्याधम साक्षात् ब्रह्मयोग करने में अग्रगण्य रहते हैं ॥३३-३५॥

ब्रह्मा बोले—नर विनता ने सर्पमाता कद्रू से कहा ॥३६॥

विनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणां ते करोमि तत् । जरया तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

कदूरप्याह विनतां रसातलगतं पयः । तेनाभिषेचितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति ॥३८॥

कद्वास्नद्वचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः । क्षणेनैव समानीय नागांस्तानभ्यपेक्षयत् ॥

ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम् ॥३९॥

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यन वपन्तु श्रैलोक्यस्योपकारिणः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

'तथा वयं पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गां नागसंजीवनं पय ॥४१॥

जराशोकविनाशार्थं मानीतं गरुडेन यत् । यत्राभिषेचिता नागास्नन्नागालयमुच्यते ॥४२॥

गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात् । तद्गाङ्गां वारि सर्वेषां सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३॥

जराया वारण यस्माद्नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गां नागसंजीवनं यतः ॥४४॥

जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे । सास्वादमृतसंवाहा बंजरा साऽभवन्नदी ॥४५॥

जरादारिद्र्यघंसापहारिणी वल्लेशवारिणी । रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६॥

विनता ने कहा—क्या करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ? वही मैं वैसा ही करूँगी । व इस समय व्याधि-नीतिज्ञ है । वहा, मैं अवश्य शान्ति करूँगी ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—बट्ट ने विनता से कहा—'रसातल में जल है । उससे अभिषेक (स्नान) करने पर अवश्य मेरे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ।' बट्ट की इन बातों को सुनकर गरुड ने क्षणभर में रसातल से जल ले आकर उगरी उन नागों का स्नान दिया । इसके बाद गरुड ने शतक्रतु इन्द्र से कहा ॥३८-३९॥

गरुड ने कहा—त्रिगर्भी का उपकार करने का मेघ भी यहाँ अवश्य वर्षा करे ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—मेघा ने तदनुरूप ही वर्षा की जिससे नागों का बन्धाण हुआ । जहाँ गरुड नागों को जीवित कर देने वाले रसातल में उतार गया—जहाँ की जरा-शोक दूर करने के लिये ले आया से और जहाँ उस जल से नाग नहलाय गया उगरी नागाय्य कहा जाता है । यत गरुड रसातल से जल ले आया, जल वह गंगाजल मया पायो को मत्त करने वाला हुआ । त्रिगर्भ जल से जरा की निवृत्ति हुई नागों का बन्धाण हुआ वह रसातल में उतार गया—जहाँ नागों का शिव मजीवनी जल हुआ । इसलिये जरा-शोक को विनष्ट करने के लिये मेघा के दक्षिण तट पर माशात् अमृत स्नान का भी प्रकार नाम की नदी हो गई । जरा दारिद्र्य, मत्ताप और बन्धा का दूर करने वाली रसात-

तपोश्च सगमो यः स्पर्शिक पुनस्तत्र वर्ण्यते । यस्यानुस्मरणादेव नाशः यान्त्यघसत्त्रया ॥४७॥
तत्र च स्नानदानानां फलं को धवतुमीश्वर । संपादयति तत्र तीर्थानां लभ्यमाहुर्मनीषिणः ॥४८॥
सर्वसंपत्तिदातया सर्वपापौघहारिणाम् । वजरासगमसमं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तयः ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वजरासगमादिसंपादलक्षतीर्थवर्णनं
नामैकोनषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

श्रीतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अथ षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः.

देवागमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मवाचः

देवागमं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शिवम् । भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणां पितृणां पुत्तिपारकम् ॥१॥
तत्र वृत्तं समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद । देवानामसुराणां च स्पर्शाभूढनहेतवै ॥२॥
स्वर्गं सुराणामभवत्सुराणामिलाऽभवत् । कर्मभूमिषष्ठ्यं असुराः सर्वतीऽभवन ॥३॥

लान्द्रज गंगा का मय लोक की गंगा के साथ जो सगम हुआ है उसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय ? जिससे स्मरण में ही अथावक समझ नष्ट हो जाते हैं उसमें स्नान और दान से आ फल मिलते हैं उसको बहने की शक्ति किम है ? वहाँ पर मनीषीगण और महा लाल तीर्थों को बतलाते हैं । जो महा प्रवार की सम्पत्ति लेने वाले तथा सब पाप समूहों को नष्ट करने वाले हैं । वजरा-सगम का समान तीर्थ वही पर नहीं है जिसका स्मरण स भी विपत्तियाँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं ॥४१-४९॥

आब्रह्ममहापुराण में वजरा-सगम आदि सब लाल तीर्थों का वर्णन
नामक एव ही उनषष्ठ्यां अध्याय समाप्तः ॥१५९॥

अध्याय १६०

देवागम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—देवागम नामक तीर्थ का प्रकार के मतारवा को देने वाला और मय-जनक है मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति देने वाला तथा पितरों को पुत्ति देने वाला है । नारद ! मैं वहाँ की घटना को तुममें पत्नपूर्वक कह रहा हूँ । एक बार घन के शिव देवा और असुरों में प्रतिस्पर्धा हुई । देवाओं को स्वयं मिला और असुरों को पुत्ती ।

देवानां यज्ञभार्गाश्च दातृन्धन्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभार्गविना कृताः॥४॥
 व्यथिता मामुपाजम्ः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्। मया धोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात्॥५॥
 भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यज्ञांसि च। तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः॥६॥
 वेत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः। एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयितो युद्धकाङ्क्षिणः॥७॥
 अहिर्वृत्रो बलिस्त्वाष्ट्रिनंमुचिः शम्बरो मयः। एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः॥८॥
 अग्निर्द्विजोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारवाः॥९॥
 ते दानवा सर्वे एव याम्यां वै दिशि संगरे। अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः॥१०॥
 त्रिकूटः पर्वतश्चेष्टो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम्॥११॥
 सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु सः। 'मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा॥१२॥
 देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल॥१३॥
 देवाः स्वरयमाह्वास्तत्र तत्र समाममन्। गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने यिमलाशयाः॥१४॥
 प्रसन्नाऽभोऽह्वा या स्यात् पित्राणामखिलस्य तु। ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्॥
 अभयं चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम्॥१५॥

असुरगण कर्मभूमि (पृथ्वी) को रोजकर अर्थात् उस पर अपना अधिकार जमा कर सब जगह फैल गये। तब वे राक्षस देवों के यज्ञ-भाग को बन्द करने और दाताओं को मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने देवताओं को यज्ञारा से रहित कर दिया। निदान वे देव व्यथित होकर मेरे पास आये और बोले "अब क्या करना चाहिये?" मैंने उन देवताओं से कहा कि युद्ध में बलपूर्वक जानुओं को जीतकर पृथ्वी पर अधिकार करो। तब सुभक्म, हवि और कीर्ति प्राप्त करोगे। 'ऐसा ही होगा यह कहकर वे युद्धार्थी पृथ्वी पर गये। इधर जयामिलाधी देख, दानव तथा बल का घमड़ रखने वाले राक्षस समष्टि होकर युद्ध करने के लिये आये॥१-७॥ अहि वृत्र, बलि, स्वाष्ट्रि, नमुचि, शम्बर और मय आदि तथा और भी दूसरे बहुत से पराक्रम पर अभिमान करने वाले लड़ाऊ राक्षस इकट्ठे हुये। उधर अग्नि इन्द्र, वरुण त्वष्टा पूषा अश्विनीकुमार मरुत, लोकपाल आदि नाना प्रकार के युद्ध में कुशल देवता युद्धार्थ प्रस्तुत हुए। उन सभी दानवों ने दक्षिण दिशा में दक्षिण-समुद्र के किनारे स्थित होकर (ब्यूह-रचना कर) युद्ध में महान् प्रयत्न किया। पहले राक्षसों ने पर्वतश्चेष्ट त्रिकूट पर अधिकार जमा लिया। तब वे देवतागण वन के रास्ते उन राक्षसों से लड़ने के लिये दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाँ सबका सपर्य हुआ, वह मलय पर्वत हुआ। तदनन्तर वह मलय प्रदेश भी राक्षसों का हो गया। वहाँ गौतमी-नद पर देवों के प्रियदेव शिव पर सप्ती ही थे, यह सुझबझ जानकर वहाँ सब देवता एकत्र हुए। शिव महदय वाले देवता अपने रथों पर आरुढ़ होकर उम माता गौतमी के तट पर आये जो प्रसन्न होने पर सबको असीम प्रदान करती है और सब पित्रों को तृप्त करने वाली है। तब सब देवता महेश्वरदेव की स्तुति करने लगे और आपस में निर्भय होने की बात सोचने लगे॥८-१५॥

देवा ऊचुः

अनाप्युवायः कोऽस्माकं निर्जितानां परंहृतात् । एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाऽयवा मृतः ॥

सपत्नरभिभूतानां जीवितं धिडमनस्विनाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्रं वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥

आकाशवागुवाच

क्लेशेनालं सुराणां गौतमीमाशु गच्छतः । भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराध्यतेश्वरौ ॥१८॥

गोवावर्यास्तपोश्चैव प्रसादात्किंतु दुष्करम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नाभ्यां हरीशम्भ्या देवा जयमभीप्सितम् । अवाप्य सर्वतो जम्मुः पालयन्तो दिवौकसः ॥२०॥

यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं तेन विश्रुतम् । देवागमं प्रशसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२१॥

तत्राज्ञोत्तिसहस्राणि शिषलिङ्गानि नारदः । देवागमः पर्वतोऽसौ प्रियः इत्यपि कथ्यते ॥

तत्र प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षष्ठ्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१६०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकनवतितमोऽध्यायः ॥१९॥

देवगण बोले—शत्रुओं से हठात् पराजित किये गये हम लोगों के लिये अब कौन-सा उपाय है ? अब श्रेय का एक ही मार्ग है—विजय या मृत्यु । शत्रुओं से पराजित मनस्वीजनों के जीवन को धिक्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—पुनः 'इसी बीच आकाशवाणी हुई ॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—सुरगण ! ध्येयं क्लेश मत करो । गौतमी के पास शीघ्र जाओ । वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् हरि और हर की आराधना करो । गादावरी और उन दोनों प्रभुओं की कृपा से कौन-सा कार्य दुष्कर है ? ॥१८-१९॥

ब्रह्मा बोले—प्रसन्न विष्णु और शंकर स अपना असीमित विजय-वरदान पाकर आकाशवाणी का मली-मौति अनुसरण करते हुए वे देवता चले गये । जहाँ देवी का आगमन हुआ वह स्थान उसी देवागम नाम से प्रसिद्ध हो गया । तत्त्वदर्शी मुनि देवागमतीर्थ की प्रशंसा करते हैं । नारद ! वहाँ जस्सी सहस्र दिवलिङ्ग हैं । वह देवागम पर्वत प्रिय इस नाम से भी कहा जाता है । इसलिये तब से वह तीर्थ देव प्रिय प्रख्यात हुआ ॥२०-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवागम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६०॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं कर्मभू भव विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भूमीरध्वय नर्मदा ॥२१॥
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नद कश्चिन्न सरः सरितोऽमला ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन ॥२२॥

देवी वागुवाच

सुमेरोदक्षिणे पाश्वे तथा हिमवतो गिरेः। दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्यार्चवाय दक्षिणे ॥
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमि शुभोदया ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेह महागिरिम्। त प्रवेशमयाऽऽगत्य स्थातव्यं ब्रवेत्यचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्सैव विष्णोर्बाण्यशरोरिणे ॥२४॥

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि। सकल्पं कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञं समाप्यते ॥२५॥
कृते चैवाय सकल्पे यज्ञार्थं सुरसत्तम। यद्वदन्यखिला वेदा विधेः तत्तत्समाचर ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो मुखे भ्रम प्रापादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—फिर मैंने उस देवी से कहा—कर्मभूमि कहाँ है? नारद। उस समय मागीरपी नर्मदा यमुना तापी वट् सरस्वती और गौतमी नहीं थी। कोई समुद्र, नद, सरोवर या विमल जल बागी नदियाँ भी नहीं थी। उस शक्ति ने पुन मुझसे इस प्रकार बार-बार कहा ॥२१-२२॥

देवी वाणी ने कहा—सुमेरु गिरि के दक्षिण और हिमालय विन्ध्य तथा सह्य के दक्षिण की भूमि सत्रे किय सबका पुन देन बागी कर्मभूमि है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—उम आदश वाक्य का सुनकर उम महागिरि मेह को छोड़कर मैं उन प्रदेश ॥ आया और सोचन लगा कि वहाँ रहना चाहिये। इनके बाद उस विष्णु की देवी वाणी ने मुझसे कहा ॥२४॥

आकाशवाणी ने कहा—द्वार चलो यहाँ ठहरो। यहाँ बैठो। यज्ञ का सत्कार करो। वट् तुम्हारा यज्ञ अवश्य समाप्त होगा। सुन्येष्ठ! यन्त्राय सकल्प कर देन पर ब्रह्मन्! अखिल वेद जैसा कहते हैं उसका अनुगार काय करो ॥२५-२६॥

ब्रह्मा बोले—इतिहास, पुराण आदि का अर्थ ध्वज सन्द स्वतः परे मुझ में आय, वे धीरे धीरे स्मृति में आन लगे। तत्काल मुझ पर वरदाय जात हुआ। तदनन्तर उस लोक विख्यात पुण्यभूत का स्मरण किया। तदनुसृत्य

वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसी तत्क्षणेन च। ततः पुरयसूक्त तदस्मर लोकविश्रुतम् ॥२८॥
 यज्ञोपकरण सर्वं तदुक्तं च त्वकल्पयम्। तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम् ॥२९॥
 अहं स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान्। दीक्षितो विप्रदेशोऽसी मन्नाम्ना तु प्रकीर्तित ॥३०॥
 महैवयजन पुण्य नाम्ना ब्रह्मगिरि स्मृत। चतुरश्रोतिपर्यन्तं योजनानि महामुने ॥३१॥
 महैवयजन पुण्य पूर्वतो ब्रह्मणो गिरे। तत्र मध्ये वेदिका स्याद्गार्हपत्योऽप्य (१) दक्षिणे ॥३२॥
 तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नौस्त्वकल्पयम् (२)। विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञ श्रुतिनिदर्शनात् ॥३३॥
 शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरव मुने। पूर्वार्धेन ततः पत्नी ममाभूद्यज्ञसिद्धये ॥३४॥
 उत्तरेण त्वहं तद्वर्धो जाया इति श्रुते। कालं वसन्तमुत्कृष्टमाग्यरूपेण नारद ॥३५॥
 अकल्पय तया चोष्म ग्रीष्म चापि शरद्वि। श्रुतं च प्रावृष पुत्र तदा बर्हिषत्कल्पयम् ॥३६॥
 छन्दासि सप्त वै तत्र तदा परिधयोऽभवन्। कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पानकुशा स्मृता ॥३७॥
 योऽनादिश्च त्वनन्तरश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा। मूपरूपेण देवर्षे योजनं च पशुबन्धनम् ॥३८॥
 सत्त्वादिनिगुणा पाशा नैव तन्नामवत्पशु। सतोऽहमश्वश्च वाचं वैष्णवीमशरीरिणीम् ॥३९॥
 विनैव पशुना नायं यज्ञं परित्समाप्यते। सतो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी ॥४०॥

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाय सूक्तेन स्तुहि, त पुरुष परम्

॥४१॥

मैंने सब यन्त्र सामग्रियों को इकट्ठा किया। उसी व अनुसार यज्ञ पात्रा को प्रस्तुत किया। विप्र! जिस प्रदेश में पवित्र और एकाग्रचित होकर मैंने आसन बनाया और यन्त्र-दीप्य ग्रहण की वह देश भर ही नाम में प्रसिद्ध हो गया। मरा पवित्र द्रव्ययजन ब्रह्मगिरि व नाम से विख्यात हो गया। महामुनि नागद! ब्रह्मगिरि व पूर्व में चौरासी योजन तक मरा पवित्र देव यजन फैला था। उसके मध्य में एक अदा बनाई गई। उसके दक्षिण गार्हपत्य अग्नि की स्थापना हुई। वहां आहवनीय अग्नि की भी स्थापना की गई। इस प्रकार यज्ञाग्नि की विधि पूरा हुई। विना स्त्री के यन्त्र का सिद्धि नहीं होती इस वगैरा व कारण मुने! मैं अपने गठार को दो भागों में बाँट दिया। तदनन्तर पर यन्त्र की सिद्धि के लिये पूर्वाह्न भाग में पत्नी उत्पन्न हुई और उत्तराह्न में मरता। वन् भी कहना है कि पत्नी वाया भाग है। नारद! वसन्त ऋतु को उत्कृष्ट शून्य ग्रीष्म को इष्म (समिधा) और शरद को हार्ध बनाया। इस प्रकार पुनः। वया ऋतु को कुण बनाया ॥२७-२९॥ इसके बाद मान छन्द परिधि बन। वया काष्ठ और निमय (ममय-परिमाण) समिधा पात्र और कुणा हुये। उस समय जो अनादि और अनन्त स्वयं काल है वह है देवर्षे! मूप रूप में पशुको बाधने के लिए पशुबन्धन काष्ठ हुआ। सत्त्व राज और तम आदि गण पात्र (रस्सी) हुए। परन्तु वहाँ पशु तो था ही नहीं। तब मैंने उस अप्रत्यक्ष वैष्णवा आकाशवाणी से कहा कि विना पशु व यह यन्त्र नहीं समाप्त होगा। यह सुन उस नित्य अप्रत्यक्ष देवी ने मुझ से कहा ॥३७-४०॥

आकाशवाणी ने कहा—पुरुष-सूक्त से उस परम पुरुष की स्तुति करो ॥४१॥

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगम तथा। तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे पादेषु सह्यो नाम महागिरि ॥२॥
षडङ्घ्रिभ्योऽभवत्प्रद्यो गोदाभीमरयोमुखा। यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा ॥३॥
न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम्। तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत ॥४॥
गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्देवोदितं शुभम्। यत्र जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुरा ॥५॥
तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम्। परं स पुरुषो ज्ञेयो हृष्यक्तोऽक्षर एव तु ॥६॥
अपरश्च शरत्तस्मात्प्रकृत्यग्वित एव च। निराकारात्सावयव पुरुषं समजायत ॥७॥
तस्मादाप समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरयस्तथा। ताम्बामञ्ज समुद्भूतं तत्राहमभव मुने ॥८॥
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च। एते मत्तं पूर्वतरा एव देवाभवन्मुने ॥९॥
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्यावरजङ्गमम्। नैव वेदास्तदा चाऽऽस्तन्नाह द्रष्टाऽस्मि किञ्चन ॥१०॥
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यय। तूष्णीं स्थिते मयि तदा अधीय याचमुत्तमाम् ॥११॥

अध्याय १६१

कुशतर्पण नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कुशतर्पण और प्रणीता-सगम नामक तीर्थ सभी लोकों में प्रख्यात है और भुक्ति-मुक्ति दोनों देने वाला है। उसका पापहर और मङ्गल स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ मुने।

विन्ध्य के दक्षिण ओर एक सह्य नाम का महापर्वत है जिसके चरण (तलहटी) में गोदा और भीमरयी नाम के प्रमुख नदियाँ निकलती हैं। जहाँ प्रसिद्ध विरज और एकवीरा नाम के नदियाँ हैं उसी महिमा का वर्णन करते हैं कोई भी शायद नहीं हो सकता। नारद! उस पुण्य पर्वत प्रदेश में जो अति रहस्यमय घटना हुई जिसका सामान्य शरीर में वर्णन किया गया है जो शुभ है और जिसके श्रवणमात्र से सारा कामनाओं पूर्ण हो जाती है जिसके मुनि देव पितर और अमुर भी नहीं जानते हैं। उसको मैं तुम्हारी प्रशंसा करने कह रहा हूँ। वह पुरुष पर है अध्याय और अपर भागही ३। अगर धार (नष्ट होने वाला) और प्रकृति गर्मायन है। उस (पर पुरुष) निराकार परब्रह्म में सावयव पुरुष (वायव्य) उत्पन्न हुआ। उसमें जन्म और जन्म में पुरुष (विष्णु) की उत्पत्ति हुई। मुने! पुरुष में काम और कर्म में योग (ब्रह्म की) उत्पत्ति हुई। मुने! पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति (तत्त्व) में मूलतः पञ्च एतद्वा बार उत्पन्न हो गये। मैं इन पदार्थों को ही दत्ता था। उस समय मैं तो बड़ ही बड़ा और मैं तब मैं सभी अथ पदार्थों को ही दत्ता था। जिसमें मैं उत्पन्न हुआ उनका भी मैं नहीं दत्ता था। तब मैं अथाक् ही बँट गया। उस समय मुझे उत्तम भाषा सुनाई दी ॥१-११॥

आकाशवाणुवाच

॥ १२॥

ब्रह्मन्कुलं जगत्सृष्टिं स्यावरस्य चरस्य च

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रुवं वाचं 'पह्या तत्र नारद । कथं सख्ये क्व वा सख्ये केन सख्य इदं जगत् ॥१३॥
संव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्याऽभिधीयते । विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥१४॥

आकाशवाणुवाच

यज्ञं कुरु ततः शशितस्तो भवित्री न संशयः । यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मसनातनी ॥१५॥
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रुव देवो क्व वा केनेति तद्वद । यज्ञः कार्यो महाभागे ततः सोवाच मा प्रति ॥१७॥

आकाशवाणुवाच

ओंकारभूता या देवी मातृकत्वा जगन्मयी । कर्मभूमी यज्ञस्वेह यज्ञेश यज्ञपूष्यम् ॥१८॥
स एव साधनं ते स्यात्तेन तं यज्ञं सुवत । यज्ञं स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥१९॥
हरिरेवाखिलं तेन सर्वं विष्णोरवाप्यते ॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—ब्रह्मन् ! तुम स्थावर और चर (जगम) रूप ससार की सृष्टि करो ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—नारद ! तब मैंने बठीर और उग्र स्वर से कहा—'कैसे सृष्टि करूँ ? कहाँ और किस वस्तु से इस जगन् की सृष्टि करूँ ? यह सुन कर विष्णु से प्रेरित, ससार की स्वामिनी जगन्मयी माता उस देवी वाणी ने—
जिसको प्रकृति भी कहते हैं—कहा ॥१३-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—यज्ञ करो । तब तुम्हें यज्ञित प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है । यज्ञ ही विष्णु है ।
ब्रह्मन् ! यही सनातन वेद कहलाता है । इस लोक और परलोक में यज्ञ करने वाला के लिये क्या असाध्य है ? ॥
१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—पुनः मैंने उस देवी से कहा—'कहाँ और किस साधन से यज्ञ करूँ ? महाभागे ! इसको बत-
लाइये ।' तब देवी ने मुझसे कहा—॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—मातृ-तुल्य जगन्मयी तथा आकाररूपिणी जो देवी है उससे इस कममूर्ति में
यज्ञपति, यज्ञपुरुष का यज्ञ करो । बहो तुम्हारे साधन (सहायक) होमे । सुवत ! इसलिए उनका यजन करो ।
स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हवि आदि सब यज्ञ ही है । सब कुछ विष्णु ही है, इसलिये सब कुछ विष्णु से ही
प्राप्त किया जाता है ॥१८-२०॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने। मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि॥४२॥
 सा च मामश्वोद्देवी ब्रह्मन्मां त्वं पशुं कुरु। तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाध्ययम्॥४३॥
 कालयूपस्य पार्श्वं तं गुणपाशैर्निवेशितम्। बहिस्स्थितमहं प्रोक्षं पुरुषं जातमग्रतः॥४४॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूद्विदम्। ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाह्वोश्च क्षत्रियाः॥४५॥
 मुखादिभ्यस्तथाऽग्निश्च इवसनः प्राणतोऽभवत्। विशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा॥४६॥
 मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुस्तथा। अन्तरिक्षं तथा नाभेरुक्त्या विश एव च॥४७॥
 पद्भ्यां शूद्रश्च सजातस्तथा भूमिरजायत। ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्यः केशतोऽभवन्॥४८॥
 ग्राम्यारण्याश्च 'पशवो नल्लेभ्यः' सर्वतोऽभवन्। कृमिकोटपतङ्गादि पायूपस्थावजायत॥४९॥
 स्यावरं जङ्गम किञ्चिद्दृश्यादृश्यं च किञ्चन। तस्मात्सर्वमभूद्देवा मत्सञ्चाप्यभवन्पुनः॥
 एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वामित्रबोच्च माम् ॥५०॥

आकाशवागुवाच

सर्वं संपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तयेप्सिता। इदानीं जुहुषि हृष्यन्तो पात्राणि च समानि च॥५१॥
 विसर्जय तथा यूपं प्रणीतां च कुशास्तथा। ऋत्विक्पूर्वं यत्नरूपमुद्देश्यं ध्येयमेव च॥५२॥
 सुखं च पुरुषं पाशान्तर्वं ब्रह्मन्विसर्जय ॥५३॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही होगा' यह कहकर मैंने भक्तिपूर्वक पुरुषयुक्त से अपने उत्पादन देवदेव जनार्दन की स्तुति की। ब्रह्मन्! इस पर उस देवी ने मुझसे कहा—'मुझको तुम पशु बनाओ।' तब मैंने अपने उत्पादन, नित्य पुरुर को जानकर उनको गुणों के पाश से बालयूप के पार्श्व से बाँधकर बैठा दिया। पुन मैंने सबसे पहले उत्पन्न बहि पर बैठे हुए पुरुष वा प्रोक्षग (अभिषेक) किया। इसी बीच वहाँ उस पुरुष से यह दृश्यमान (ब्रह्माण्ड आदि) उत्पन्न हो गया। उन्हे मूल से ब्राह्मण और बाहु से क्षत्रिय हुये। पुन मूल से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु बान से दिशाय तथा शिर से सब स्वर्ग उत्पन्न हुये। मन से चन्द्रमा और नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुये। नाभि से अन्तरिक्ष ऊरु से वीर्य, चरणा से गूद और पृथिवी उत्पन्न हुई। रोमकूपों से ऋषि और केशों से ओषधियाँ उत्पन्न हुई। तब मत्ता से ग्राम्य (पालतू) और वन्य (जंगली) पशु उत्पन्न हुये। पायु (गुदा) और उपरस्थ (लिंग) से कृमि बोट और पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए। उस पुरुष से स्यावर, जगम आदि जो कुछ दृश्य या अदृश्य है वह सब कुछ और सब दवता उत्पन्न हुये। पुन वे मुझसे उत्पन्न हुये। इस बीच उसी विष्णु की वाणी ने पुन मुझसे कहा ॥४२-५०॥

आकाशवाणी ने कहा—सब कुछ पूर्णरूप से हो गया, और मनवाही सृष्टि भी हो गई। अब अग्नि मे हवन करो। सब पाशों यूप प्रणीता, पात्र, कुशा आदि को विमर्जित कर दो। ब्रह्मन्! ऋत्विक्पुरुष, यत्नरूप, उद्देश्य और ध्येय तथा सुख, पाप, पुरुर आदि सबका विसर्जन कर दो ॥५१-५३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायसमकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाम्नी तथा चैव महामुने ॥५४॥
 पूर्वस्मिन्नपि चैवाम्नी क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसंधाय पूषम् ॥५५॥
 मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः। लोकनायो विश्वकर्ता कुण्डानां तत्र सनिधौ ॥५६॥
 शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाम्नेः पीतो गृहपते कवेः ॥५७॥
 सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु सस्थितः। न तेन रहितं किञ्चिद्विष्णुना विश्वयोनिना ॥५८॥
 प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं ततः। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९॥
 ष्यसर्जय प्रणीता सा मार्जयित्वा कुशैरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकविन्दवः ॥६०॥
 पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१॥
 याऽलंकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा। सोपानपद्मवित् सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२॥
 संमाजिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यात बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३॥
 कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते। पश्चाच्च संगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४॥
 'प्रणीताया महामुने प्रणीतासगमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५॥
 तत्रैव कल्पितो 'यूपो नया विन्ध्यस्य चोत्तरे। विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६॥
 अक्षयवटमवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ। धटोऽभवत्। नित्यश्च 'कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—महामुने ! उस आकासवाणी के समकाल ही मैंने क्रमशः यज्ञ-कुण्डों, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि में एक-एक करके अग्नि में भी क्रमशः उन-उन स्थानों में अगस्त्य, मन्त्र-पूत पुंस्व का ध्यान कर हवन करना प्रारम्भ किया। वहाँ कुण्डों के समीप अतिपवित्र, जगन्मय, यज्ञदेव लोक-स्वामी विश्वकर्ता, शुक्लरूपधारी विष्णु आहवनीयक में हुए। दक्षिण अग्नि में श्याम विष्णु और गार्हपत्याग्नि में पीत विष्णु हुए। सर्वदा उन देशों में विष्णु रहते हैं। उस विश्व के आदि कारण विष्णु से रहित कुछ भी नहीं है। तदनन्तर मैंने मन्त्रों से प्रणीता का निर्माण किया। वह प्रणीता-जल ही शुभ प्रणीता नाम की नदी हुई। इसके बाद कुशों से उस प्रणीता का मार्जन कर विशर्जन किया। मार्जन करने से प्रणीता-वाज से जहाँ-जहाँ जल-विन्दु गिरे वहाँ-वहाँ गुणसाली तीर्थ हो गये। मुनिवर ! स्नान करने से वहाँ यज्ञफल देने वाली एक नदी हो गई, जो सर्वदा देवाधिदेव विष्णु से सुशोभित रहती है। वह नदी वैकुण्ठ में जाने के लिए सर्वसाधारण की सोपान परम्परा है। जिस शुभ भूतल पर सम्मार्जन कुश गिरे वह वहुत फल देने वाला कुश-तर्पण नामक तीर्थ हो गया ॥५४-६३॥ यत्र वहाँ कुशों से सबका तर्पण हुआ, अतः उसको कुश-तर्पण कहा जाता है। पश्चात् वहाँ गौतमी अन्य कारण से आकर मिल गई। महाबुद्धिमान् ! प्रणीता में गौतमी ने सगम से प्रणीता सगम नामक तीर्थ हो गया। जिस प्रदेश में कुशों से तर्पण हुआ। वह कुश-तर्पण तीर्थ हो गया। वही विन्ध्य के उत्तर में उस कल्पित यूप को मैंने छोट दिया जो लोक-पूज्य और विष्णु का एकमात्र निवासस्थान है। वह यूप अति शोभाशाली और अक्षय (नाश-रहित) वटवृक्ष हुआ। अतः उसका नाम अक्षयवट पड़ा। वह नित्य, कालरूप और स्मरण-मात्र से यज्ञ के पुण्य को देने वाला है। मेरा वह देवयजन-प्रदेश दण्डकारण्य कहा जाता है। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर मैंने भक्ति

महैवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते । सपूर्णे तु ऋतो विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित ॥६८॥
 यो विराडुच्यते घेदे यस्मान्मूर्तमजायत । यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विवृत जगत ॥६९॥
 तमह देवदेवशमभिवन्द्य व्यसर्जयम् । योजनानि चतुर्विंशन्महैवयजन शुभम् ॥७०॥
 तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद । यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिन ॥७१॥
 तत प्रभृति चाऽऽख्यात महैवयजन च तत । तत्रस्थ कृमिकोटादि सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम् ॥७२॥
 धर्मवीज मुक्तिवीज दण्डकारण्यमुच्यते । विशेषाद्गौतमीशिलष्टो देश पुण्यतमोऽभवत् ॥७३॥
 प्रणीतासगमे चापि कुशतर्पण एव वा । स्नानदानादि य कुर्यात्स गच्छेत्परम् पदम् ॥७४॥
 स्मरण पठन वाऽपि श्रवण चापि भक्तित । सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिमुक्तिप्रब विदु ॥७५॥
 उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिण । पञ्चशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोवितम् ॥७६॥
 धाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम् । नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७॥
 ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम् । तीर्थमेतन्मुने प्रोक्त स्वर्गद्वार महीतले ॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासगमकुशतर्पणादिविषयशोति-
 सहस्रतीर्थवर्णन नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विदशतितमोऽध्याय ॥९२॥

से विष्णु को प्रसन्न किया । जो बन्ने से विराट कहा गया है जिससे यह मूल जगत उत्पन्न हुआ है जिससे मेरी उत्पत्ति हुई जिसका विचार यह जगत् है उस देवा के देव ईश की स्तुति कर विसर्जन कर दिया । चौबीस योजन पयन्त मेरा गुप्त देवयजन प्रदेश है । नारद ! इसीलिए वहाँ आज भी चक्रपाण विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप की मूर्चना देने वाले तीन कुण्ड हैं । उस समय से वह मेरा देव-यजन प्रदेश प्रसिद्ध हो गया । वहाँ के जो कृमि कीट आदि हैं वे भी अतः म भुक्ति के अधिकारी होते हैं । दण्डकारण्य घमवीज एक मुक्तिवीज कहा जाता है । गौतमी के आसपास की भूमि विषय रूप से पुण्य भूमि मानी जाती है । प्रणीता सगम अथवा कुशतर्पण तीर्थ म जो स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त करता है । उस तीर्थ का भक्तिपूर्वक स्मरण पठन और श्रवण भी पुण्या के लिए सर्वत्र मनोरप-दाता तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाला (कहा गया) है । विद्वान् लोग वहाँ दोनों तटों पर छिपासी हजार तीर्थों का निशान बताते हैं । उनका पुण्य पहले बताया जा चुका है । मुने ! कुशतर्पण धाराणसी से भी उत्तम तीर्थ है । इस तीर्थ व समान इस चराचर जगत् म दूसरा तीर्थ नहीं है । मुने ! इससे स्मरण से भी ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जात हैं । यह तीर्थ क्या है माना इस पृथ्वी-तल पर स्वर्ग-द्वार है ॥६४७८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म कुशतर्पण प्रणीता-सगम आदि तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन नामक
 एक ती एकादशी अध्याय समाप्त ॥१६१॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ख्यात सर्वप्रापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्मरणादघनाशनम् ॥१॥
तस्य प्रभाव इक्ष्वासि भृशुष्यावहितो मुने । देवानां दानवानां च सगरोग्रभून्मय पुरा ॥२॥
तत्राजयश्रव सारा दानवा जयिनोऽभवन् । पराङ्मुखा सुरगणां सगराद्गतचेतसः ॥३॥
मामम्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम् । तानह प्रत्यबोध वै गङ्गा गच्छत सर्वशः ॥४॥
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम् । अनपायनिरायाससहजानन्दमुन्दरम् ॥५॥
लक्ष्यते सर्वविश्रुता जयहतुमंहेश्वरात् । तयेत्युक्त्वा सुरमणां स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६॥
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननुतश्च तथाऽपरे । अस्नापयश्च केचिच्छ्वापूजयश्च तथाऽपरे ॥७॥
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छूलपाणिर्महेश्वर । देवानयान्नवीलुण्डो त्रिपता यदभीप्सितम् ॥८॥
देवा ऊचुः सुरपति विजयाय ददस्व न । पुरुष परमश्लाघ्य रणेयुः पुरतः स्थितम् ॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम् । तयेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब प्राणी को नष्ट करने वाला सब प्रकार के मनोरथों को पूरा करने वाला और स्मरण मात्र से अघों को नष्ट कर देने वाला मन्यु-तीर्थ नामक एक तीर्थ है । मुने ! उससे प्रभाव का वगन मै कर रहा हूँ एकाग्र होकर मुनो । प्राचीन काल में देवों और दानवों में परस्पर युद्ध छिड़ा । उसमें देव विजयी नहीं हुए प्रायुतः विजयपथी दानवों के हाथ लगी । युद्ध से पराङ्मुख देवों की चेतना लुप्त-सी हो गई । वे मेरे पास आकर बोले— हम लोगों को अमय करने वाला उपाय बतलाइये । मैंने उन देवों से कहा— देवगण ! सबका गंगा की धारण में जाओ । वहाँ गौतमी के तट पर नित्य एवं स्वतः सहजानन्द सुन्दर महादेव की स्तुति कर उस महादेव से विजय माधन प्राप्त करो । (एसा ही होगा वह कहकर देवगण महेश्वर की आराधना करने लगे । उनमें से कोई तरस्या करते थे कोई प्रमद्विह्वल हो नाचते थे) कोई स्नान कराते थे तथा कोई उनका पूजा करते थे । निदान देवनाथ भगवान् शरकर महेश्वर प्रसन्न हुये और बोले— जो अभीप्सित धरदान हो मायो । देवा ने सुरपति (शिव) से कहा— हम लोगों की विजय के लिये रण में आगे रहने वाला परम पराक्रमी पुरुष को दीजिए जिसके बाहुबल

आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निमित्तः परमेष्ठिना। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११॥
तं नत्वा त्रिदशः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्। मन्युना सह चाम्येत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ॥१२॥
युद्धे स्थित्वा तु दनुर्जदेतयेश्च महाबलः। विबुधा जातसन्नदा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः ॥१३॥

देवा ऊचुः

।

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परं। तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युमुत्सताम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव

॥१५॥

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वेशः सर्वद्वन्द्वभूः। यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम^१ मनःस्थितम् ॥१६॥
नैव कश्चिन्व तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्तं मूर्तमप्येतदेति कर्ता जगन्मयः ॥१७॥
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तया दिव्यन्तरिक्षगः। कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८॥
एवं विधादहं जातो मा कथं वेत्तुमर्हय। अथवा ब्रह्मकामा वै भवन्तो माऽनुपपद्यत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

हृत्पुश्रत्वा वशीयामास मन्यु रूपं स्वकं महत्। तार्तीयक्षुपोद्भूतं भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०॥

के मरोते हम सुखी हो।' भगवान् महादेव ने 'ऐसा ही हो ब्रह्म और परमेष्ठी शिव ने अपने तेज से किसी मन्यु नामक अति प्रतापी पुरुष को अग्रणी बना दिया। सब देवता उस मन्यु को प्रणाम कर उसको साथ लेकर अपने घर आये और पुन युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। महाबलवान् दनुज और दैत्यो के साथ युद्ध की घोषणा कर देवता स्वयं युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये और मन्यु के आग जाकर उससे बोले ॥१-१३॥

देवगण बोले—गहने हम लोग तुम्हारे सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहते हैं तब हम दानुओं के साथ लड़ेंगे। इसलिये मन्यु! युद्ध के लिये प्रस्तुत हम लागा को अपना पराक्रम दिखालाओ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—देवा की वांछे मुनारर मन्यु ने हँसते हुए कहा—॥१५॥

मन्यु ने कहा—देवा व ईश, त्रिश, सब ओर देखन वाले प्रभु घर घर में उत्पन्न हैं, जो सबके धाम (स्थान), नाम और आन्तरिक वाता को सर्वदा जानने हैं और उनको कोई भी नहीं जानता है। वही जगन्मय कर्ता गिव मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों का जानन है। वह घर मयवान् स्वयं स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अग्रजित गति रखते हैं। ऐसा कौन है जो उनके स्वरूप को जानता है? वह जगन्मय सर्वप्रथम जन की सृष्टि करने वाले हैं। ऐसे महाप्रभु के तेज से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझको किते तुम जान सकते हो? अथवा यदि तुमलाग देवता ही चाहते हो तो मुझका देखा ॥१६-१९॥

ब्रह्मा बोले—मन्यु न यह कह कर अग्न जग महान् तेजस स्वरूप को दिखाया जो परमेष्ठी दांर के तीगरे

तेजसा सभूत रूप यत् सर्वं तदुच्यते। पौरुष पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१॥
 श्रेय सर्वस्य यो भीम उपसंहारकृद्भवेत्। त शरुप्रतिनिधि उवलन्त निजतेजसा ॥२२॥
 सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता। विनेसुर्देत्यमनुजा कृताञ्जलिपुटा सुरा ॥२३॥
 भूत्वा मन्युमयोचुस्ते त्व सेनानी प्रभो भव। त्वया दत्तमिदं राज्यं मन्यो भोक्ष्यामहे वयम् ॥२४॥
 तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्व जयवर्धन। त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५॥
 अस्मात् सर्वदेवेषु प्रविश त्व जयाय यं। मन्यु प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किञ्चन ॥२६॥
 सर्वेष्वन्त प्रविष्टोऽहं न मा जानाति किञ्चन। स एव भगवान्मयुस्ततो जात पृथक्पृथक् ॥२७॥
 ॥ एव रुद्ररूपो स्याद्भूतो मन्यु शिवोऽभवत्। स्याद्वरजङ्गम चैव सर्वं व्याप्त हि मयुना ॥२८॥
 तत्रवाप्य सुरा सर्वे जयमापुञ्च ॥ सगरे। जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेज समुद्भवम् ॥२९॥
 मयुना जयमाप्ताय कृत्वा देवैश्च सममम्। धयागत ययु सर्वे मयुना परिरक्षिता ॥३०॥
 यत्र यं गौतमीतीरे शिवमाराम्य ते सुरा। मयुमापुर्जयं चैव मयुतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
 उत्पत्ति च तया मन्योर्धो नर प्रयत्न स्मरेत्। विजयो जायते तस्य न कश्चित्परिभूयते ॥३२॥

मैत्र ने उत्तर हुआ है जो तेज स युक्त है और जिसमें सब कुछ उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा जाता है। जो पुरुषों में योग्य जन्मा में अहकार तथा सबका श्रेय है और जो भीमरूप होकर सबका संहार करनेवाला है उस अपने तब से जन्म वाल मन्त्र प्रकार के गत्ता को धारण करने वाले गत्त के प्रतिनिधि को देवकीर सब देवताओं ने प्रणाम किया। दैत्य और दानव उसको देखकर अचरित हो गये। वे देवताएँ हाथ जाँकर मयु से बोले— प्रणाम! तुम हमारे सेना नायक बनो। मन्यो! तुम्हारे लिये हुए इस स्वर्गाय्य का हम भोग करेंगे। इसलिये सब बापों में तुम्हीं विजय लाने वाले और जय-वृद्धि करने वाले हो। तुम ईश हो तुम वरुण हो तुम्हा लोकाय भी हो। तुम हम सब देवा में विजय के लिये प्रवेश कर जाओ। मन्यु ने उन सब से कहा— मर बिना किसी वस्तु का अस्ति-त्व नहीं। मैं सबको अन्त में रहता हूँ। परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है। तदनन्तर वही भगवान् मयु पृथक्-पृथक् रूप में व्यक्त हुआ। वही मयु रुद्र रूप हुआ और रुद्र शिव हुआ। स्याद्वर-जगम आदि सब मयु से व्याप्त है। उस मयु को पाकर देवा ने रण में विजय पाई। जय मयु और धैर्यता की उत्पत्ति पाकर सब ने हुई थी। अतएव ईश्या से समर्थ कर देवा ने मयु की स्थापना से विजय पाई और उमर सरक्षण में सब देवता जहाँ ग आय थे वहाँ चले गये। जहाँ गौतमी के तीर पर देवा ने शिव की आराधना कर मयु और जय का प्राप्ति किया वही मयुतीर्थ कहा जाता है। जो मनुष्य मन्यु की उत्पत्ति का शब्दापूर्वक स्मरण करता है उगरी मन्त्रदा विजय होती है। वे जिना से पराजित नहीं होता। महामुनि! मयु के समान कोई पवित्र लाभ नहीं है। जहाँ

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरुपी सर्वदा शंकरः स्थितः॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशतत-

मोऽध्यायः ॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥१३॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं माम् तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं मुनिं सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमन सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तथेमं शृणु ब्रूतान्तं विस्तरेणाय नारद॥२॥
पुण्योत्कटात्पूर्वभागे पर्वतोऽं लोकविभूतः। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमनैष्ठिकः। तस्मिञ्शुभ्रे पुण्यगिरौ तपस्तेषू ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥
अग्निशुभ्रयणपरः वेदाध्यनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमन सेविते, तत्र पर्वते ॥६॥

साक्षात् मन्यु रुपी शंकर निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान और तीर्थनाम के स्मरण से सब कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं ॥२०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मन्यु तीर्थ-वर्णन नामक एक ती बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६२॥

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब कामनाओं को देनेवाला, सुम सारस्वत नामक तीर्थ है जो मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और उनके सब पापों का नाश करता है, सब रोगों को दूर करता है और सब प्रकार की मित्रियाँ प्रदान करता है। नारद! यहाँ के इस ब्रूतान्त को विस्तारपूर्वक बहुरहा हूँ मुने। गौतमी के दक्षिण तट पर पुण्योत्कट से पूर्व की ओर लोच-विख्यात शुभ्र नामक एक उत्तम पर्वत है। उस स्वच्छ पवित्र पर्वत पर शाकल्य

तस्मिन्निरी महापुण्ये देवद्विजभयंकरः । यत्तद्वेषो ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः ॥७॥
 कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने । क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्द्विजैर्गुरुरूपधृक् ॥८॥
 वदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक् । कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः ॥९॥
 कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत् । यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वान्ज्ञाकृत्यो मुनिसत्तमः ॥१०॥
 तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः । शुचिष्मन्त द्विजश्रेष्ठं परशुनित्यमेव च ॥११॥
 नेतुं हन्तुं प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत् । स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवान्म्यर्च्यं यत्नतः ॥१२॥
 भोवतुकामः किलाऽऽयातस्तत्रायात्परशुर्मुने । ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली ॥
 कन्यामादाय काचिच्च क्षाकृत्यं चावयमब्रवीत् ॥१३॥

परशुरुवाच

भोजनस्यायिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज । आतिथ्यकाले संप्राप्तं कृतकृत्यमोऽसि मानव ॥१४॥
 त एव धन्या लोकेऽस्मिन्प्रेषामतिययो गृहात् । पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे ॥१५॥
 भोजने तुपविष्टे तु आरमार्यं कल्पितं तु यत् । अतिथिभ्यस्तु या दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो वदामीत्येवमब्रवीत् । आसने चोपवेश्यायाजानात्तं परशुं द्विजम् ॥१७॥
 ययाग्यार्थं पूजयित्वा क्षाकृत्यो भोजनं वदौ । आपोशनं करे कृत्वा परशुर्याकियमब्रवीत् ॥१८॥

नामच परमदीर्घिर मुनि अति बठोर तपस्या करते थे । शीतमी-तीर पर अग्नि-सेवा-व्यवस्था और वेदाध्ययन में लीन रहते बाद उम द्विजवर्य को मंत्र प्राणी प्रतिदिन प्रणाम करने और स्तुति करते थे । उस क्षण, मन्त्रार्च और मन्त्रजो के निवास योग्य, महापुण्यप्रद पवत पर देव और ब्राह्मण को नय देने वाला, यज्ञविरोधी तथा ब्रह्म-पापी परशु नाम का एक राक्षस रहता था । वह मायावी अनन्त रूप धारण कर घूमता करता था । वह क्षणभर में बन्सी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता था तो बन्सी वायु का, बन्सी देवरूप में घूमता था तो बन्सी पशुरूप में । किसी समय स्त्रीरूप में किसी समय मृगरूप में और किसी समय बालक के रूप में वह पापवर्मा घूमता था । जहाँ मुनिवय विद्वान् ब्राह्मण शाकल्य रहते थे, वहाँ वह महापापी परशु उनके पास आता था । उस पवित्र-भारमा द्विजश्रेष्ठ को परशु नित्य मारने के लिये या हार देने के लिये आता था । परन्तु वह पापी इसमें सफल नहीं हो पाता था । मूल ! किसी समय वह द्विजश्रेष्ठ अग्नि यज्ञपूर्वक देवों की पूजा करने की इच्छा से भाग्य । उसी समय वहाँ वह परशु सितवेस एक शिथिल ब्राह्मण का वेश धारण कर किसी कन्या को साथ लिये हुए वास्तव्य के पास आग और बाग ॥१-१३॥

परशु ने कहा—द्विज ! मुझको और इस कन्या को इस आतिथ्योचित काल में जाये भोजनार्थी समझो । मानद ! तुम दृष्टव्य हो गये । क्योंकि इस स्त्री में बड़े धन्य है जिनके घर में अतिथि करने की अमिलावाग्री को पूर्ण करने बाधर जाने हैं । इनके विपरीत जो मनुष्य हैं वे जीते-जी मरे हुये-स हैं । आश्रम के लिये बैठे जो व्यक्ति अपने गिय परता हुआ भोजन अतिथि को दे देता है वह मानो पुण्य का दान कर देता है ॥१४-१६॥

ब्रह्मा बोले—यह मुनिर शाकल्य ने कहा—'दृष्टा ।' इनके बाद वह द्विजरूपधारी परशु को आसन पर बैठा-कर भोजन के शाकल्य ने उसकी यथावत् पूजा कर भोजन दे दिया । परशु ने भोजन को हाथ में लेकर कहा ॥१७-१८॥

परशुर्वाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुपच्छन्ति देवता । तस्मिंस्तुप्ते तु तृप्ता स्युरनुप्ते तु विपर्ययः ॥१९॥
 अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ । अपवादी हरेत्यापमतिथिः 'स्वर्गसंक्रमः' ॥२०॥
 अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिबीजते । तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥२१॥
 तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम । दास्यसे यदि मे कामं तद्भोऽप्येहं न चान्यथा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

वत्तमित्येव शाकल्यो भूङ्क्ष्वेत्येवाऽहं राक्षसम् । ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षससत्तमः ॥२३॥
 नाहं द्विजस्तव रिपुर्न वृद्धः पलितः कृशः । बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः ॥२४॥
 शुष्यन्ति मम गात्राणि श्रोत्रे स्वल्पोदकं यथा । तस्मान्नेष्ये सानुपं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यममन्वीत् ॥२६॥

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसंभूता वितातसकलागमाः । तत्प्रतिभृतमभ्येति न जात्वान् विपर्ययम् ॥२७॥
 ययोचितं कुप सखे तयाऽपि शृणु मे वचः । निहन्तुमप्नुयतेषु वक्षतव्यं हितमुत्तमैः ॥२८॥

परशु ने कहा—दूर से आये हुये, यहाँ अतिथि के पीछे पीछे देवता आते हैं। उनके तुप्ता होने पर वे तुष्ट होते हैं और अनुष्ट होने पर अनुष्ट। अतिथि और अपवादी दोनों सत्तार के बन्धु हैं। अपवादी (निन्दक) पाप को हर लेता है। अतिथि मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाने वाला है। जो रास्ते के घरे-माँद अतिथि को विस्मयित करने की दृष्टि से देवता है, उसी क्षण उसका धर्म, और श्री नष्ट हो जाती है। इसलिये द्विजोत्तम ! मैं श्रान्त अतिथि तुमसे माचना करता हूँ कि यदि तुम मुझे पर्याप्त भोजन दोगे तब तो साँझा अन्यथा नहीं ॥१९-२२॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य ने राक्षस से कहा—'इतना ही था, जो दे दिया। अब इसको लाओ।' तब परशु ने कहा—'मैं राक्षसराज हूँ, द्विज नहीं हूँ, तुम्हारा शत्रु हूँ, वृद्ध, दुर्बल तथा मितवेष नही हूँ। तुमको देखते-देखते मेरे बहुत साल बीत गये। शीघ्र शृणु ॥ जिस प्रकार बोझा जल मूस आता है, उसी प्रकार मेरे अथ मूसते जा रहे हैं। इसलिए द्विजोत्तम ! आज तुमको अनुयायिका समान उठा ले जाऊँगा और साँझा जाऊँगा ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—परशु की बात सुनकर शाकल्य ने कहा ॥२६॥

शाकल्य ने कहा—जो महाकुल में उत्पन्न होते हैं और जो सब शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं वे अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करते हैं इगम विपर्यय (परिवर्तन) नहीं होता। मने ! जैसा उचित समझो करो। फिर भी मेरी बात सुनो। सम्जन सागा का स्वभाव है कि वे हत्या के लिये प्रसन्न हत्यारों से भी उचित जान करते हैं। मैं वय के

ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः । पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः ॥२९॥
बाहू रक्षतु धाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट् । हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः ॥३०॥
मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिगः । श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः सर्वतो रक्षताद्भवः ॥
नानापत्स्वेकशरणं देवो नारायणः स्वयम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम् । मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः ॥३२॥
राक्षसस्तस्य वचनाद्भूक्षणाय समुद्यतः । नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां करुणाकणः ॥३३॥
बद्धाकरालवदनो गत्वा तस्यास्तिकं तदा । ब्राह्मणं तं निरीक्ष्यैव परशुर्वियमब्रवीत् ॥३४॥

परशुवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम । सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम् ॥३५॥
'सर्वभूतैकनिलयं छन्दोर्लप्य जगन्मयम् । त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः ॥३६॥
तस्मात्प्रसावये विप्र त्वमेव शरणं भव । ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं ब्रूह्मयनिष्कृतिम् ॥३७॥
महता दर्शनं ब्रह्मज्जायते नहि निष्फलम् । द्वेषादज्ञानतो वाजपि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः ॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शो ह्यमत्वार्ययं जायते ॥३९॥

समान शरीर वाला ब्राह्मण है । विष्णु मेरी चारों ओर से रक्षा करने वाले हैं । विष्णु मेरे चरणों की रक्षा करें जनार्दन देव शिर की रक्षा करें धाराह मेरी भुजाओं की रक्षा करें कूर्मराज पृष्ठभाग की रक्षा करें कृष्ण हृदय की और नृसिंह अङ्गुलियों की रक्षा करें । वागीश मुख की गरुडबाहन नेत्रों की कुबेर कानों की तथा शक्र चारों ओर से मेरी रक्षा करें । स्वयं नारायण देव नाना आपत्तियों में एकमात्र मेरे शरणदाता हैं ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहकर शाकल्य ने राक्षस से कहा—'राक्षसेन्द्र । परशो ! मुझको ले चली या इस समय अलस्यरहित होकर आनन्द पूर्वक मुझको खा जाओ । तब राक्षस मुनि के वचनानुसार (मुनि को) खाने के लिए तैयार हो गया । वास्तव में पापी मनुष्यों के हृदय में दया का एक कण भी नहीं होता है । उस भयानक घात और विकराल मुखवाले परशु ने जब उस ब्राह्मण के समीप जाकर उसे देखा तो इस प्रकार कहा ॥३२-३४॥

परशु ने कहा—द्विजोत्तम । मैं इस समय तुमको शङ्ख चक्र और गदाधारी सहस्र चरण और शिरवाला, सहस्र नेत्र और भुजा वाला व्यापक सब प्राणियों का एकमात्र वासस्थान छन्दस्वरूप और जगन्मय के रूप में देख रहा हूँ । विप्र ! तुम्हारा वह पहलू का शरीर नहीं है । इसलिये हे विप्र ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम्हीं मेरे रक्षक बनो । महाबुद्धिमान् ! ज्ञान दो मेरे पापों को दूर करने वाले तीर्थ को बताओ । ब्रह्मन् ! महान् व्यभिचारों का दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता है । द्वेषवश, अज्ञान से, प्रसंगवश या भूल से किसी भी प्रकार से पारस या स्पर्श लोहे को सोना बना ही देता है ॥३५-३९॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम् । शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती ॥४०॥
 तवाचिराद्दृष्टपते ततः स्तुहि जनार्दनम् । मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुते ॥४१॥
 किञ्चिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं शृणु राक्षस । प्रसन्ना तव सा देवी मद्वाक्याच्च भविष्यति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् । स्नात्वा शुचिर्यतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः ॥४३॥
 तत्रापश्यद्विष्णुरूपी दिव्यगन्धानुलेपनाम् । सरस्वतीं जगद्धात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम् ॥४४॥
 जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम् । तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः ॥४५॥

परशुर्वाच

गुरुः शाकल्य इत्याह माकान्तं स्तुहि विध्वजम् । तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तया कुरु ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्तिवती च सा प्राह परशुं शीसरस्वतो । सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम् ॥४७॥
 तुष्टाय विविधैर्वाक्यैस्ततस्तुष्टोऽभवद्धरिः । वरं प्रादाद्वाक्षसाय कृपासिन्धुर्जनार्दनः ॥४८॥

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः । सरस्वत्या प्रसादेन नरसिंहप्रसादतः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—राक्षस की कही हुई इन बातों को सुनकर शाकल्य ने कृपापूर्वक कहा—‘वैरपते । यह सरस्वती शीघ्र तुमको वर प्रदान करेगी । इसलिए जनार्दन की स्तुति करो । नारायण की स्तुति के अतिरिक्त मनोरथ पूर्ण करने का और कोई सरल साधन इस लोक में नहीं है । राक्षस ! सुनो, मेरे कहने से सरस्वती देवी तुम्हारे ऊपर अवश्य प्रसन्न होगी ॥४०-४२॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही कहूँगा’ यह कहकर वह परशु त्रिभुवन-पावनी यथा मे स्नान कर पवित्र हो एकान्न भन से गंगा के सम्मुख बैठ गया । उसने दिव्य रूप वाली दिव्य गंध और अमराग (लेप) से युक्त तथा ससार का धारण-धोषण करने वाली सरस्वती को, शाकल्य के वचन के अनुसार स्थित देखा, निष्पाप एवं विनीत परशु ने जगत् की अदृष्टता को दूर करने वाली, विश्व-जननी और भुवनेश्वरी उस सरस्वती से कहा ॥४३-४५॥

परशु ने कहा—गुरु शाकल्य ने मुझसे कहा है कि लक्ष्मीपति गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करो । अतः आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझमें वैसी शक्ति हो, वैसा ही आप करें ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—उस श्री सरस्वती ने परशु से कहा कि ऐसा ही हो । सरस्वती की कृपा से परशु उस जनार्दन भगवान् की विविध वाक्यों से स्तुति करने लगा । तब हरि उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और कृपा-सागर जनार्दन ने राक्षस को वरदान दिया ॥४७-४८॥

जनार्दन बोले—राक्षस ! तुम्हारे जो जो मनोरथ हैं, वे सब पूरे हो जाएंगे ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य, गौतमी, सरस्वती तथा नरसिंह की कृपा से उस परम पापी परशु ने भी स्वर्ग

पापिष्ठोऽपि तदा रक्ष परशुदिवमेयिवान । सर्वतीर्थार्हाद्रिपद्मस्य प्रसादाच्छाङ्गधन्वन ॥५१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम् । तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते ॥५२॥
वाग्जवेष्णवशाकल्यपरशुप्रभवाणि हि । बहून्यभूवस्तोरीयानि तस्मिन्वं श्वेतपर्वते ॥५३॥

इति ध्रोमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्यशाकल्यादितोर्थ-
वर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥१४॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चिच्चिकतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चिच्चिका (व) तीर्थमित्युक्त सर्वरोगविनाशनम् । सर्वचिन्ताप्रहरण सर्वशान्तिकरं नृणाम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं धक्ष्यामि शृध्रे तस्मिन्प्रगोत्तमे । गङ्गाया उत्तरे पारे यन्द्देवो गवाधर ॥२॥

को प्राप्त किया और तबल तीर्थों को अपने चरण कमल में बसाने वाले विष्णु की कृपा से वह तीर्थ तब से सार-
स्वत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वहाँ स्नान करने और दान देने से मनुष्य विष्णु लोक में पूजित होता है । उस
श्वेतपर्वत पर सारस्वत वेष्णव शाकल्य और परशु राक्षस के नाम से प्रसिद्ध और भी बहुत से तीर्थ हैं ॥५० ५३॥

धीशङ्गमहापुराण में श्वेतपर्वत पर अवस्थित शाकल्य आदि तीर्थों का वर्णन
नामक एकसी तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यः क सब रोगों को नष्ट करने वाला सब चिन्ताओं को दूर करने वाला तथा सब प्रकार
की गाति देने वाला चिच्चिक तीर्थ नामक एक तीर्थ है । उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ । गंगा के उत्तर
तट पर जहाँ देव गन्धर्व निवास करते हैं उस उत्तम सुध्र पर्वत पर चिच्चिक नामक मातमोज पक्षि राज—त्रिसको

चिच्चिक' पक्षिराद् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते । सदा वसति तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते ॥३॥
 नानापुष्पफलाकीर्णः सर्वतुंकुसुमैर्नगैः । सेविते द्विजमुख्येऽथ गौतम्या चोपशोभिते ॥४॥
 सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरामरसंकुले । तत्समीपे नग कश्चिद्द्विपदा च चतुष्पदाम् ॥५॥
 रोगातिक्षुत्पाचिन्ताभरणानां न भाजनम् । एव गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते ॥६॥
 पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुतः । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः ॥७॥
 बलेन महता युक्तः सपुरोधा वन ययौ । रमे ह्योभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजः सुखं ॥८॥
 स च एवं धनुष्पाणिम् गयाशोलिभिवृतः । एव भ्रमकदाचित्स आन्तो द्रुममुपागतः ॥९॥
 गौतमीतीरसंभूतं नानापक्षिगणैर्वृतम् । आद्यमाणां गृहपति धर्मज्ञमिव सेवितम् ॥१०॥
 तमाक्षित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः । स विभ्रान्तो जनवृत ईक्षा चक्रे नगोत्तमम् ॥११॥
 तत्रापश्यद्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतम् । चिन्ताविष्टं तथा भ्रान्तं तमपृच्छनृपोत्तमः ॥१२॥

राजोवाच

को भवान्निमुख पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे । नैवान् कश्चिदनु श्रुतं कस्मात्स्वं दुःखमागतः ॥१३॥

भेरुण्ड भी कहते हैं—सर्वदा निवास करता था । नाना पुष्प और फलों से भरे, सब ऋतु के फूलों और वृक्षों से युक्त एव गौतमी से सुशोभित उस पर्वत पर मुख्य द्विज (ब्राह्मण या पक्षी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और देवता सर्वदा निवास करते थे । उसके समीप ही कोई वृक्ष था जहाँ जाने से किसी मनुष्य या चार पौर बाले (चतुष्पद जन्तु) को रोग, दुःख, मूल, प्यास चिन्ता और मृत्यु का भय नहीं रहता था । ऐसे गुणों से युक्त और अनेकों मुनियों से सुशोभित उस पर्वत पर वह पक्षी भी रहता था । एक दिन कोई पवमान नामक पूर्व देश का अधिपति, क्षत्रिय-धर्म-परायण, श्रीमान्, देवी और ब्राह्मणों का पालक राजा अपने असह्य वैनिकों और पुरोहित के साथ वन में आया । (बहा मनोहर स्त्रियों के साथ नृत्य वाद्य-जन्म मुखों का अनुभव करता हुआ वह विहार करने लगा) इस प्रकार एक दिन वह अपने अनुचर सिकारियों के साथ हाथ में धनुष लिये हुये घूमता हुआ वना सा उस वृक्ष के नीचे आया, जो गौतमी के तट पर अनेक पक्षियों से भरा हुआ था और आद्यमवासियों के लिये धर्मज्ञता गृहपति के समान (भोजनदाता) था । उस वृक्ष के नीचे आकर उस नृप-श्रेष्ठ पवमान ने अपने अनुचरों के सहित विधाम किया, और उस पर्वत की ओर दृष्टि दीवाई । उस पर्वत पर उसने स्थूल परन्तु सुन्दर आकार और दो मुख वाले पक्षी को देखा, जो वना हुआ-सा चिन्तातुर था । नृपोत्तम ने उस पक्षी से पूछा ॥११॥

राजा ने कहा—तुम दो मुख वाले पक्षी कौन हो ? क्यों चिन्ताकुल-से दिखाई देते हो ? यहाँ कोई दुःखी नहीं दिखाई देता । फिर तुम इतने दुःखी क्यों हो ? ॥१२॥

ब्रह्मपुराणम्

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच नृपति पवमान शनं शनं । समाश्वस्तमना पक्षी चिच्चिको^१ नि श्वसन्मुहु ॥१४॥

चिच्चिक उवाच

मत्तो भय न चान्येषा मम वाऽन्योपपादितम् । नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभि परिसेवितम् ॥१५॥

पश्येय शून्यमेवात्रि तत शोचामि मामहम् । न लभामि सुख किञ्चिन्न तृप्यामि कदाचन ॥

निद्रा प्राप्नोमि न क्वापि न विश्रान्ति न निर्वृतिम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्त श्रुत्वा राजाऽतिविस्मित ॥१७॥

राजोवाच

को भवान्कि कृत पाप कस्माच्छून्यश्च पर्वत । एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽन नगोत्तमे ॥१८॥

किमुताऽऽस्यद्वयेन त्व न तृप्तिमुपयास्यसि । किंवा ते दुष्कृत प्राप्तमिह जन्मन्ययो पुरा ॥१९॥

तत्सर्वं शत मे सत्य आस्ये त्वा महतो भयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

राजान त द्विज प्राह नि श्वसन्प्रथ चिच्चिक^१ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद उस चिच्चिक पक्षी ने अपने को सम्हाला और बार-बार लबी आह भरता हुआ वह राजा पवमान से धीरे धीरे बोला ॥१४॥

चिच्चिक ने कहा—मुझसे किसी दूसरे को भय नहीं और न मुझको ही किसी दूसरे का भय है । परन्तु मुनिजनोंसे सेवित और रत्न विरग के फूलों और फलों से सुगोमित यह पर्वत मुझ सूना-सा दिखाई देता है । इसीलिये मुझको अपने ऊपर शोक होता है । यहाँ न तो मुझ सुख मिलता है न कभी आत्म-तृप्ति न नींद और न कहीं विश्राम या शांति ही मिलती है ॥१५ १६॥

ब्रह्मा बोले—उस दो मुख वाल पक्षी की कही हुई बातों को सुनकर राजा विस्मित हो गया ॥१७॥

राजा बोला—आप कौन हैं ? आपने कौन सा पाप किया है ? क्यों आपके लिए पर्वत शून्य है ? इस उत्तम पर्वत पर प्राणी अपने एक मुखसे तृप्त हैं । फिर आप दो मुख रखते हुए भी क्यों नहीं तृप्त हो रहे हैं ? अथवा इस जन्म में या पूर्वजन्म में कौन सा पाप किया है ? आप सब बातें सत्य रूप से कहिये । मैं आपको सब महान सचटो से बताऊँगा ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—उतना सुनने के बाद पक्षी चिच्चिक ने दीर्घश्वास लेते हुए उस राजा से कहा ॥२१॥

चिच्छिव उवाच

यक्ष्यऽहं त्वां पूषवृत्तं पवमानं शुणुष्व ततः । अहं द्विजातिप्रवरो वेदवदाङ्गपारगः ॥२२॥
 कुलीनो विदितप्राज्ञः शायहन्ता वृत्रिप्रियः । यवः पुरस्तथा पृच्छे अयदयच्च जतुषु ॥२३॥
 परयुद्धया सदा दुष्टो मायया विश्वयश्चकः । शृतपन्नं सत्परहितं परनिदायिचक्षणः ॥२४॥
 मित्रस्वामिगुरुरोहो दम्भाचाराऽतिनिषुणः । मनसा वमणा याचा तापयामि जनामहूतः ॥२५॥
 अयमयं विनोदो मं सदा यः परहितम् । युग्मभेदं गणोच्छेदं मर्यादाभदनं सदा ॥२६॥
 परोमि निर्विचारोऽहं विद्वत्तत्तापापारम्भकः । न मया सद्गुणं वदितं पातरो भुवनत्रये ॥२७॥
 तनाहं द्विमुक्तो जातस्तापापददुःखभाग्यहम् । तस्मादबुधेन सतप्तं नूयोऽयं पयतो मम ॥२८॥
 अयच्च नृणुं भूपात्रं पाष्य धर्मायसहितम् । ब्रह्महत्यासमं पापं तद्विना तदवाप्यते ॥२९॥
 क्षत्रियः सगरं गत्वा अययाज्यन्नं सगरात् । पलायन्तं न्यस्तं तस्य विश्वस्तं च पराङ्मुखम् ॥३०॥
 अधिज्ञानं घोषपिष्टं विभ्रमोति च यादिनम् । तं यदि क्षत्रियो ह्यात्सं नु स्यादब्रह्मपातकम् ॥३१॥
 अधीतं विस्मरति यस्तु परोति तथोत्तमम् । अनादरं च गुरोषु तमाहुर्ब्रह्मपातकम् ॥३२॥
 प्रत्यग्ने च प्रियं वक्ति परोऽने परपाणिं च । अन्यद्वदि यक्षस्त्यक्तरोत्यं यस्तदंयं यः ॥३३॥
 गृह्णतां पापयवर्तां दृष्ट्वा ब्राह्मणनिदधः । मिथ्या विनीतं पापात्मकं न तु स्यादब्रह्मपातकम् ॥३४॥

चिच्छिव उवाच—पवमान ! मनुष्यपूषवृत्तं पवमानं उच्यते । मैं पहले वेद-विभाग का पारदर्शी उच्यते ब्राह्मण था । कुलीन विद्वान् तो था परन्तु दूसरे वार्यों को बिगड़ाने वाला तथा क्षणशूल था । त्रोगा के महार तो दूता था यान बहता था परन्तु पीछे पीछे दूसरी । दूसरा की बातों से सज्ज था बुझी रहता था अपनी धृतिता से सत्कार को ठगा करता था और शृतपन्न अयमवादी परनिदानादित मित्र स्वामी और गुरुराह बरन वाला वरिष्ठ अति धुनित वाय करने वाला और मन वमन तथा वमसे बहुत लोगो को पष्ट पड़ जाता था । यही मेरा सबदा था मनबहलाव था विद्वान् । मैं ब्रह्मणा की सेवा से पराङ्मुख रहकर विना विचारे दो जना में पट हाजता समान में भेज उठा करता और मर्यादा का उल्लंघन आदि करता था साराग यह वि मेरे समान निमग्न न को पापी न था । उसके पञ्चवक्ष्य में दा मुख वाला पक्षी हुआ । दूसरो का पीडा पहुंचाने से दुष्टी हूँ । गच्छि दुःखं सततं मरेत्येव यद्वत् पूष है ॥२२-२८॥ [मपाल] अब धर्माय से यवत बात सुनो ब्रह्म हय के समान पापब्रह्म हत्या करने से भी होते हैं (असे) क्षत्रिय यद्ध में जाकर या यद्ध में अयन मागत हये गरण में आये हुये विन्व सपात्र रण विमल अपरिचित बठ हुये और म डरता हूँ एता कहने वाल था यदि मारे ता वन् ब्रह्म पातक कहा जाता है जो अध्ययन किम हूए (शास्त्र) को न जाता है अष्ट-यवित को तुम महार पुकारता है और मरजना का अनादर करता है वह ब्रह्मपातक हूँ । जो रामने प्रिय ब्रह्मणा है किन्तु पीछे पछे पछे और जो सज्ज सज्जरी सज्जम हूछरी और लज्ज लज्ज हूछरी ही जात करता है और जो मरु का पाप लने वाला द्वय करने वाला ब्राह्मणो की निंदा करने वाला मिथ्या विनात तथा पापात्मा है वे ब्रह्मपातक होते हैं जो देवता वेद अध्या मज्ञान धर्म तथा ब्राह्मण की सभित की द्वय से निंदा करता

देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम् । एताद्विन्दति यो द्वेपात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३५॥
 एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा । सद्धत इव वर्तेऽहं तस्माद्वाजन्द्भिर्गोऽभवम् ॥३६॥
 एवं भूतोऽपि सत्कर्म किञ्चित्कर्ताऽस्मि कुञ्चित् । तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

‘तच्चिच्चिकयच श्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः । कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम् ॥३८॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं ब्राह्म पक्षिराट् ॥३९॥

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगध्वेष्टे गौतम्या उत्तरे तटे । गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मानय सुव्रत ॥४०॥
 ‘तद्धि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम् ॥४१॥
 न गौतम्यास्तथा विष्णोरपरं बलेशनाशनम् । सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः ॥४२॥
 मट्टतेन प्रयत्नेन नैतच्छ्रुत्वा कवाचन । कयमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्वुष्टकर्मणाम् ॥४३॥
 सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम् । तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम् ॥४४॥
 अधितापितदुःखं कष्टावरुणालयम् । यस्मिन्दृष्टे भवबलेशा न बुध्यन्ते पुनर्नरैः ॥४५॥
 बुद्धैव तं विद्यं मास्ये प्रसादात्तव सुव्रत ॥४६॥

है, वह ब्रह्मघातक हाना है। राजन् ! इस प्रकार का होता हुआ भी मैं दम्भ के लिये अथवा लोभलज्जावश
 सदाचारी की तरह वास्तव्य व्यवहार करता था। राजन् ! इर्माक्षिप मैं पक्षी हुआ। ऐसा होता हुआ भी
 मैं कहीं-कहीं कभी सत्कर्म कर देता था। उन कर्मों के प्रभाव से ही मुझे पूर्व के किय हुए कर्मों का स्वतः
 स्मरण है ॥३९-३७॥

ब्रह्मा बोले—चिच्चिक की बात सुन कर राजा पवमान अतिविस्मित हो गया। उसने पत्नी से कहा—
 ‘किन कर्म से तुम्हारी मुक्ति हुई गयी है ? उसकी बात सुनकर पक्षिराज ने राजा से कहा ॥३८-३९॥

चिच्चिक ने कहा—इसी पर्वत श्रेष्ठ पर गौतमी के उत्तर तट पर गदाधर नामक एक तीर्थ है। सुव्रत !
 वही मुझको लक्ष्मी है। वह तीर्थ अनिपवित्र, सब पापों को दूर करने वाला तथा सब कामनाओं का दान वाला
 है, ऐसा महामुनियों से हमने सुना है। गौतमी एवं विष्णु मन्त्र कर दूसरा कोई पाप का मन्त्र करनेवाला नहीं
 है। इसलिए मेरा विचार है कि उस तीर्थ का बड़ी श्रद्धा से देखूँ। यह मेरे प्रयत्न से कभी भी नहीं हो सकता।
 मगर, दुष्कर्म करने वालों को किस प्रकार प्राप्त हो सके हैं ? वीर ! प्रयत्न करने पर भी मैं उस अत्यन्त कठिन
 कार्य को सिद्ध नहीं देखता हूँ। अब मैं तुम्हारी महापत्नी और कृपा से ही सब वस्तु गदाधर को देव मरता हूँ,
 जो स्वयं दूसरों के दुःखों को जानने वाले और करुणा का सागर हैं तथा जिनका दान या ज्ञान पर मनुष्य पुनः
 मागारिष्य कष्टों के फन्दे में नहीं पड़ने हैं। सुव्रत ! तुम्हारी कृपा से उनका दान करते ही मैं स्वयं को चला
 जाऊँगा ॥४०-४६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः ॥ 'नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना । दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने ॥४७॥
ततः स चिच्चिकः' स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रिलोक्यपावनीम् ॥४८॥

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गीतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः । न पश्यत्युच्यते तावदिहामुग्रापि पातकी ॥४९॥
तस्मात्सर्वजितमपि मामुद्धर सरिद्धरे । ससारं देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित् ॥
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे ॥५०॥

इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गकशरणो द्विजः । स्नानं चक्रे स्मरन्तर्गतं त्रयस्य मामिति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वा ॥ पश्यत्सु नगवांसिपु । पवमानाभ्यनुज्ञातस्तदेव दिवमाक्रमत् ॥५२॥
पवमानः स्वनगरं प्रययो सानुगस्ततः । ततः प्रभृति तृतीयं पावमानं 'सचिच्चिकम् ॥५३॥
गदाधरं कोटितीर्थमिति वेदविदो विदुः । कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेन्मुणाम् ॥५४॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितीर्थवर्णनं

नाम चतु षट्पदधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

गीतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

ब्रह्मा बोले—पक्षी चिच्चिक ने उस नृपति से ऐसा कहा और राजा ने उस पक्षी को उस देव गदाधर और गीतमी गंगा का दर्शन करा दिया । तदनन्तर चिच्चिक ने गीतमी में स्नान कर उस त्रिलोक्य-पावनी गंगा से कहा ॥४७-४८॥

चिच्चिक ने कहा—गङ्गे ! गीतमी ! मनुष्य जब तक त्रिभुवन-पावनी तुमको नहीं देखता है तभी तक उसको इस लोक में या परलोक में पापी कहा जाता है । इसलिये श्रेष्ठ नदी ! इस प्रकार अपराध करने वाले मेरा भी उद्धार करो । हे विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होने वाली ! इस ससार में तुम्हारे बिना देहधारियों के किये कहीं पर और कोई सहारा (गति) नहीं है ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले, और एकमात्र गंगा की धारण में रहने वाले उस ब्राह्मण ने 'गङ्गे ! मेरी रक्षा करो इस प्रकार हृदय में ध्यान करते हुए गंगा में स्नान किया । तत्पश्चात् भगवान् गदाधर को नमस्कार कर पर्वतनिवासियों के देखते देखते उसी समय वह पक्षी पवमान से विदा की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया । तब पवमान भी अनुचरों के साथ अपने नगर को चला गया । उस समय से वह तीर्थ पवमान चिच्चिक और कोटितीर्थ इन नामों से वेदज्ञों द्वारा पुकारा जाने लगा । वहाँ मनुष्य ने किये हुए कर्म कोटि कोटि गुना फल देते हैं ॥५१-५४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पवमान चिच्चिक-गदाधर-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ चौठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६४॥

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् । सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१॥
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता । छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२॥
तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापहृषिणी । तां कन्यां सविता कस्मै ददामोति मतिं दधे ॥३॥
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः । सच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४॥
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५॥

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरुषिणे । स कृतार्थो भवेत्लोके न चेद्दुष्कृतबाग्निता ॥६॥
चतुर्थादिसराबुध्वं यावन्न दशमास्थयः । तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यं प्रयत्नतः ॥७॥
भीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने । उवाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८॥
एतच्चेन्नयया कुर्यात्पिता स निरयो सदा । धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९॥
नरकस्थेव मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् । एकतः पृथिवी कृत्स्ना शशैलवमकानना ॥१०॥

अध्याय १६५

भद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा धोले—सब अनिष्टों को दूर करने वाला, सब पापों को शान्त करने वाला तथा महान शान्ति को देने वाला भद्रतीर्थ नामक एक तीर्थ है। त्वाष्ट्रा की पुत्री त्वाष्ट्री सूर्य की प्रिय एवं पतिव्रता भार्या थी। छाया भी उन्हीं की भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर है। उसकी अति कुरूप और भयकर आकार वाली विष्टि नाम की वहिन थी। सूर्य 'वह कन्या को भिसे दूँ' यह सोचने लगे। लोक गुरु प्रभु सूर्य जिस-जिसको देना चाहते थे सभी मुनिकर मही कहते थे कि 'ऐसी भीषण भार्या को लेकर हम क्या करेंगे।' यह दया देल कर एक दिन विष्टि दृष्टी होकर पिता से धोली ॥१-५॥

विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला (छोटी अवस्था की) कन्या सुरूप वर को देता है वह लोक में वृत्तव्य हो जाता है, अन्यथा पिता पाप का सामी होता है। चौथे वर्ष के बाद जबतक दसवाँ न बीत जाय तब तक पिता को कन्या का विवाह मत्नपूर्वक कर देना चाहिए। यीमान्, विद्वान्, युवक कुलीन, यशस्वी, उदार और माता-पिता या अभिभावक वाले घर को ही कन्या देनी चाहिये। जो इसके विपरीत कार्य करता है वह सर्वदा नरक भोगता है। भास्कर ! विद्वानों के लिये भी कन्या धर्म का साधन है। नाम वेदध्व हृदय वाले मूर्खों के लिए कन्या नरक का

स्वलंकृतोपाधिहोना सुकन्या चैकतः स्मृता । विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११॥
 न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् । विवाहातिश्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२॥
 तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते । यावत्लज्जां न जानाति यावत्प्रीडति पशुभिः ॥१३॥
 तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरघोगतिः । पितुः स्वरूपं पुनः स्याद्यः पिता पुन एव सः ॥१४॥
 आत्मनः सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च । यत्कन्यायां^१ पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम् ॥१५॥
 यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदसयम् । यद्दत्तं तासु कन्यासु तदानन्त्याय क्षत्पते ॥१६॥
 पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रये । करोति यः कन्यकानां स संपद्भाजनं भवेत् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टिं प्रोवाच भास्करः

॥१८॥

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णातिस्वाकश्चिद्भीयणाकृतिम् । कुलं रूपं वयो वित्तं विद्या वृत्तं सुशीलताम् ॥१९॥

मियः पश्यन्ति सन्धे विवाहे स्त्रीषु पुत्रु च । अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे ॥

किं करोमि वदस्वामि वृथा मा धिक्करोमि किम्

॥२०॥

साधन है। एक ओर सौल, वन तथा उपवन से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी है तो दूसरी ओर अलकारी से अलंकृत विकार-हीन सुकन्या। जो व्यक्ति कन्या, अथवा गौ और तिल को बेचता है, उसका रोदव आदि नरक से कभी भी छडार नहीं होता। साथ ही कन्या के विवाह-वय का अतिक्रमण कभी भी नहीं होना चाहिये। ऐसा करने से कन्या के पिता की जो पाप होता है, उसको भीन कह सकता है? जब तक कन्या लज्जा करना नहीं जानती, जब तक वह घूल मिट्टी से खेलती रहती है, तब तक कन्या का दान नर देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो पिता-माता की अघोगति होती है। पिता का स्वरूप पुन है। जो पिता है वही पुत्र है। लोक में अपने को सुखी बनाना भीन नहीं चाहना या नहीं चाहता? परन्तु पिता कन्या के लिये जो कुछ दान, पूजन, दान (वर निरीक्षण) आदि करता है वही करना (कार्य) उत्तम समझा जाता है। जो कन्या के लिये दिया जाता है वह अक्षय दान है और वह अनन्त फल प्रदान करता है। रवि! पुन और पौत्र के सुख के लिये कौन नहीं प्रयत्न करता परन्तु जो कन्या के सुख के लिये प्रयत्न करता है वही सम्पत्ति का त्रियपात्र होता है अर्थात् वही धनवान् होता है ॥१६-१७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने वाली उस कन्या विष्टि से भास्कर ने कहा ॥१८॥

सूर्य ने कहा—क्या करूँ? तुम भयङ्कर आकृति वाली को कोई भी ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता। स्त्री और पुरुषों के विवाह में परस्पर के कुल रूप अवस्था, धन विद्या, व्यवहार और सौजन्य को देखा जाता है। शुभे! हम लोगों में और सब कुछ है परन्तु केवल तुममें कोई गुण नहीं है। क्या करूँ? कहाँ तुमको दूँ? वयो वृथा मुझे धिक्कार रही हो? ॥१९-२०॥

१घ. ०न्यापे पि०। ड. ०न्याया. पि०। २ड. तद्दानं क्षुप्यमुच्यते। च. तद्दानं पुष्यमुच्यते।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्ता च विष्टिं प्रोवाच भास्कर

॥२१॥

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्व वै यद्यनुमन्यते । दीयसेऽथ मया विष्टे अनुजानोहि मा तत ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पितर प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धन सुखम् । आयू रूप च सप्रीतिर्जायते प्रावतनानुगम् ॥२३॥

यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्यसाधु वा । फल तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवात्तरे ॥२४॥

स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात् । तादृगेव फल तु स्याद्यादुगाधरित पुरा ॥२५॥

तस्मात्तद्दानसम्यग् स्ववशानुगत पिता । करोति शेषं देवेन यद्भाष्य तद्भूविध्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा कुहिलुर्वाक्य त्वष्टु पुत्राय भीषणाम् । विश्वरूपाय ता प्रादाद्विष्टिं लोकभयकरीम् ॥२७॥

विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः । एव मित्य सचरतो क्षीलरूपसमानयो ॥२८॥

प्रीति क्वाचिद्वैद्यस्य वपत्योरभवन्मिय । गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यस्तिगण्डश्चैव च ॥२९॥

रयताक्ष क्रोधनश्चैव ध्ययो दुर्मुख एव च । तेभ्य कनीयानभवद्वर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—एसा कहकर पुन भास्कर ने उस विष्टि से कहा ॥२१॥

सूर्य ने कहा—तुम यदि इस बात कलिय अनुमति दो कि जिस किसी के हाथ मुझ में जिया जाय ता आज ही मैं किनाका द देता हूँ । विष्टे । केवल मुझ अपनी स्वीकृति दो । ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—उस विष्टि ने अपने पिता से कहा—भता पुत्र धन सुख आयू रूप प्रीति सब पहूँ क विय गये कर्मों का अनुसार ही हाते हैं । प्राणी पूव जन्म में जो अच्छा या बुरा कर्म करते हैं दूसर जन्म में भी उगा के अनुसार फल पत हैं । इसलिये पिता का आदर पूवक अपन दोषों का ही परिहार करना चाहिये । फल ता पैसा ही होगा जैसा कि पूव जन्म में किया गया है । इसलिये पिता अपने वश के अनुरूप ही कथा दान-सम्पन्न करे गये ईव के अनुसार जोहाने कोहाना वह होगा ही ॥२३ २४॥

ब्रह्मा बोले—पुत्री की बात सुनकर सूर्य ने उस लोक भयकरी विष्टि को त्वष्टा पुत्र विश्वरूप के हाथ दे दिया । विश्वरूप भा उसी की तरह भयकर और भीषण आकार वाला था । इस प्रकार समान स्वभाव और रूप वाले दोनों परस्पर प्रीतिपूवक व्यवहार करने से परन्तु किसी समय उन दोनों दम्पति में वषम्य (मन मुटाव) हो गया । उनसे गण्ड अतिगण्ड रयताक्ष वाचन ध्यय और दुर्मुख नामक पुत्र हुए । सबग छाटा हृषण नामक पुत्र पुण्यरत्ना पर । बह्मुगील भाग्यवान् गात गुड हृदय और पवित्र पुत्र त्रिशो गमय दम गुन का देखन

सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि । स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१॥
स ददर्श बहूञ्जन्तुस्त्वर्गस्यानिव दुःखिन । स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्म सनातनम् ॥३२॥

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते मरके च के ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

एष पृष्ठो धर्मराज सर्वं प्राह ययार्थवत् । तत्कर्मणा गति सर्वामर्शयेण न्यवेदयत् ॥३४॥

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् । न ते पश्यन्ति निरय कदाचिदपि मानवा ॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्र नाऽऽचार न ब्रह्मभुक्ता । विहितातिशयं कुर्युर्मे ते नरकगामिन ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्षण पुनरब्रवीत् ॥३७॥

हर्षण उवाच

पिता श्वाद्धो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा । आतरश्च महात्मानो येन ते शातबुद्धय ॥३८॥
सुरूपश्च भविष्यति निर्दोषा मङ्गलप्रदा । तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९॥

के लिये मामा यम के यहा गया । उसने वहाँ बहुत से प्राणियों को स्वर्ग के समान सुख भोगते तथा बहुतो को दुःखी देखा । उसने मामा को प्रणाम कर उनसे सनातन धर्म के विषय में पूछा ॥२७ ३२॥

हर्षण ने कहा—तात ! ये कौन हैं जो सुखी हैं और ये कौन हैं जो नरक में यानना भोग रहे हैं ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार पूछने पर धर्मराज यम ने उनके कर्मों को सब गति को ठीक-ठीक पूणरूप से कह दिया ॥३४॥

यम बोले—जो कमी भी विहित (उचित या वेद विहित) कर्मों को नहीं छोड़ते हैं वे मनुष्य कमी भी नरक में नहीं जाते है । जो शास्त्रो को नहीं मानते है आचार और ब्रह्मभुतो (पवित्रो) का आदर नहीं करते हैं और विहित कर्मों का उल्लंघन करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—उस हर्षण ने धर्मराज की बात सुनकर पुन कहा ॥३७॥

हर्षण ने कहा—मेरे अग्रज भीषण पिता भीषण माता विष्टि तथा भाई जिस उपाय से शान्त-बुद्धि महात्मा, सुरूप निर्दोष और कल्याणदायक हो जाय उस कम को बतलाइये । सुरोत्तम । मैं उन वार्त्तों को आज ही कहूँगा । अथवा मैं उनके पास नहीं जाऊँगा । यह सुनकर धर्मराज ने उस शुद्धबुद्धि हर्षण से कहा—तुम शास्त्र

अनया तान्न गच्छेयमित्युक्तं प्राह धर्मराट् । हर्षणं शुद्धबुद्धिं त हर्षणोऽस्ति न सशय ॥४०॥
 बहव स्युः सुता केचिन्नैव ते कुलतन्त्रव । एक एव सुत कश्चिद्येन तदधियते कुलम् ॥४१॥
 कुलस्याऽऽधारभूतो यो ऽपि पित्रोऽप्रियकारक । यः पूजयानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२॥
 यस्मात्त्वयाऽनुरूपं मे प्रोक्तं मातामहं प्रियम् । तस्मात्त्व गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानस ॥४३॥
 स्तुहि विष्णुं जगद्योनिं शान्तं प्रीतेन चेतसा । स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्टं प्रदास्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणो गौतमीं ययौ । शुचिस्तुष्ट्वा देवेश हरिं प्रीतोऽभयद्वरि ॥४५॥
 हर्षणाय सतः प्रादात्कुलभद्रं ततस्तु स । सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वकं भद्रमस्तु त ॥४६॥
 तद्ब्रुवा प्रोच्यते विष्टिं पिता भद्रस्तया सुता । ततः प्रभृतिं तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७॥
 सर्वमङ्गलदं पुसा तत्र भद्रपतिर्हरिः । तत्तीर्थंसेविनां पुसा सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
 मङ्गलैकनिधिं साक्षाद्देव्यो जनार्दन ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवर्णनं नाम

पञ्चपष्टयधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चवर्तितमोऽध्यायः ॥१६॥

म हर्षण (आनन्द देन वाला) हो। कुल में बहुत स पुत्र हो जाते हैं परन्तु व कुलतन्त्र (कुल की मर्यादा बढाने वाले) नहीं होते। वह कोई एक ही पुत्र होता है जिससे कुल की रक्षा होती है। जा पुत्र कुल का आधारभूत है जो माता पिता का प्रिय करने वाला है और जो पूर्व पुण्या का उद्धार करता है वही पुत्र है अथवा कुल के लिए विराति है। जिसलिए तुम अपने मातामह को प्रिय लगने वाली और अनुरूप बात समझ लूँगी है इसलिये तुम गौतमी का पास जाओ। उसमें स्नान कर एकाग्र होकर प्रसन्न चित्त स जगत् के आदि कारण गान विष्णु की स्तुति करो। वे यदि तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे सब अनारोगों को पूज कर दग ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—धर्मराज की इन बातों की सुनकर हर्षण गौतमी का पास गया। पवित्र होकर वह हरि की स्तुति की। हरि उसकी स्तुति से प्रसन्न हो गये। उन्होंने हर्षण को कुल का भद्र वा बरदान दिया और कहा कि तुम लोगो का सब अमंगल नष्ट हो जाय तथा बुरायाण हो। इस कारण वह विष्टि पुनः पिता पुनः और पुनः भी पुनः हो गय। उस समय से वह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा जाता है। वहाँ मनुष्यों को सत्र प्रकार का बुरायाण दन वाला मंगल एवमात्र लोग साक्षात् देवाधिप जनार्दन विष्णु निवास करते हैं। उगतीय की सेवा करने का योग्य को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्ति होती हैं ॥४८॥

श्रीब्रह्मपुराण म भद्रतीर्थ वर्णनं नामक एव सो पैगम्बी अध्याय समाप्त ॥१६५॥

अथ पट्यपट्यधिकशततमोऽध्यायः

पतत्रितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पतत्रितीर्थमाख्यात रोषघ्नं पापनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
 बभूवतुः कश्यपस्य सुतायारुणबीश्वरी । संपातिश्च जटायुश्च संभवेतां तदन्वये ॥२॥
 तार्क्ष्यप्रजापतेः पुत्रायारुणो गृह्यस्तथा । तदन्वये च संभूतः संपातिः पतगोत्तमः ॥३॥
 जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुजः । अन्योन्यस्पर्धया युक्तावुन्मत्तौ स्वयलेन तौ ॥४॥
 सजगमनुदिनकरं नमस्कृतुं विहायसि । यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ ॥५॥
 दग्धपक्षादुभौ श्रान्तौ पतितौ गिरिभूर्धनि । यावद्यौ पतितौ दृष्ट्वा निश्चेष्टौ गतचेतसौ ॥६॥
 तावद्दुःखाभिभूतौऽसाधारुणः प्राह भारकरम् । तौ दृष्ट्वा त्वरुणः सूर्यं प्राहेवं पतितौ भुवि ॥
 आदयासयंती तिग्मांशो यावन्नंती मरिच्यतः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्या दिनकरो जीवयामास तौ खगौ । गृह्योऽपि तयोः धृत्वा अवस्थां सह विष्णुना ॥८॥
 आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारदः । सर्वं एव तवा जन्मगुणं ज्ञात्वा तापापनुत्तये ॥९॥

अध्याय १६६

पतत्रितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—रोगी तथा पापी को नष्ट करने वाला पतत्रितीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके (नाम को) सुनने से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कश्यप ने अरुण और ईश्वर दोपुत्र हुए। उन्हीं ने कुल में सम्पाति और जटायु भी थे। तार्क्ष्य प्रजापति ने पुत्र अरुण और गृह्य हुये। उस वंश में पक्षिष्वेष्ट संपाति भी हुआ। उसका जटायु नामसे विख्यात दूसरा छोटा सभा भाई था। वे अपने धूल से उन्मत्त थे और सर्वदा परस्पर प्रतिस्पर्धा (होड़) किया करते थे। वे दोनों आकाश में भ्रम्यदेव नौ नमस्कार करने के लिये उड़े। ज्यों ही दोनों पक्षि-ष्वेष्ट सूर्य के समीप गये त्यों ही उनके पंख जल गये और वे बक नारपत्र की चाटी पर गिर पड़े। अपने वन्धुओं को मूर्च्छित और निश्चेष्ट अवस्था में गिरते देखकर अरुण को अत्यन्त दुःख हुआ। वह अरुण दुःख से कातर हो भूमि पर गिरे उन दोनों की ओर लक्ष्य करके सूर्य से बोला—तीक्ष्ण किरण वाले! इन चारों को बचाइये ताकि वे मरने न पायें ॥१-७॥

ब्रह्मा बोले—दिनकर ने ऐसा ही हो यह कहकर उन दोनों पक्षियों को जिला दिया। नारद! विष्णु सहित गृह्य ने भी उन दोनों की शोचनीय अवस्था का पता पाया और आकर उन दोनों को आश्वासन दिया और सुखी बनाया। तब सभी उसी समय ताप की शान्ति के लिये गया के पास गये। जटायु अरुण, संपाति, गृह्य,

जटाशुशवारुणश्चैव संपातिर्गरुडस्तथा । सूर्यो विष्णुस्तत्प्रययौ तत्तीर्थं बहुपुण्यदम् ॥१०॥
पतत्रितोयमाख्यातं विपद्घ्नं सर्वकामदम् । स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च ॥११॥
आसते गौतमीतीरे तथैव वृषभध्वजः । त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥
तत्र स्नात्वा धुचिर्भूत्वा नमस्कुर्यात्सुरानिमान् । आधिव्याधिर्विनिर्मुक्तः ॥ परं सोऽह्यमाप्नुयात् ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितोयवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥१७॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ख्यातं तथा नारायणं विदुः । तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम् ॥१॥
अन्तर्वेद्या द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः । तस्य पुत्रा महाप्राज्ञाशुणरूपदयान्विताः ॥२॥
तेषां कनीयान्यो ज्ञाता ज्ञान्तो गुणगणर्वृतः । आसन्निव इति ख्यातः सर्वज्ञानो महामतिः ॥३॥

सूर्य तथा (स्वयं) विष्णु उस स्थान पर गये । इसलिये अत्यन्त पुण्य देने वाला, विषाको दूर करने वाला और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला वह तीर्थ पतत्रितोय नाम से प्रसिद्ध हो गया । गौतमी के तीर पर उसी तीर्थ में अरुण और गरुड के साथ सूर्य तथा विष्णु एवं वृषभध्वज वाकर रहते हैं । तीनों देवों के रहने के कारण वह तीर्थ अति उत्तम तीर्थ हो गया है । उसमें स्नान कर पवित्र हो जो इन देवों को नमस्कार करता है वह सम्पूर्ण आधिया और व्याधियों से छूट कर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥८॥ १३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पतत्रितोय-वर्णन नामक एवं सो छःठठवीं अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

विप्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—विप्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जिसको नारायणतीर्थ भी कहते हैं । उसका आश्चर्य-जनक आख्यान को कहता हूँ, सुनो—ब्रह्मवर्च (गण, और यमुना के बीच के प्रदेश) में कोई वेदा का पारदर्शी ब्राह्मण रहता था । उसने पुत्र महाबुद्धिमान् शुण, रूप और दया सम्बन्धित । उनमें छोटे भाई का नाम आस-न्निव था, जो शान्त, गुणवान्, सर्वज्ञ तथा महाबुद्धिमान् था । पिता आसन्निव के विवाह के लिये प्रयत्न कर रहे

विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान् । एतस्मिन्तरे राज्ञो सुप्त त द्विजपुत्रकम् ॥४॥

अविष्णुस्मरण सौम्यशिरस्कमसमाहितम् । आसन्दिव क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी ॥५॥

तमादायागमच्छीघ्र गौतम्या दक्षिणे तटे । श्रीगिरेरुत्तरे 'पारे बहुब्राह्मणसेवितम् ॥६॥

नगर धर्मनिलय लक्ष्म्या निलयमेव च । तत्र राजा बृहत्कीर्ति सर्वक्षत्रगुणान्वित ॥७॥

तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्त, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता ।

सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि विभक्ति, नित्यम् ॥८॥

सा कामरूपेण चरत्यशेषा, महोमिमा तेन सप्त द्विजेन ।

गोदावरीदक्षिणतीरभागे, वृद्धाकृतिस्त द्विजमाह भीमा ॥९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सध्या, उपास्यता विप्रवरं समेत्य ।

यथोचित विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सध्याम् ॥१०॥

नीचास्त एवाभिहिता सुरेशैरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते ।

अहं जनित्री तव चेति बाध्य, नो चेविदानीं त्वमुपैषि नाशम् ॥११॥

मद्वाक्यकर्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुख करिष्ये तव यत्प्रिय च ।

पुनश्च वेश निलय गुरुद्वज, सप्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत् ॥१२॥

ये । इसी बीच एक रात बिना विष्णु का स्मरण किये असावधानीपूर्वक सीधे उस सुन्दर सिर वाले ब्राह्मण पुत्र आर्ति बख को एक स्नेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा भयकर रूप वाली राक्षसी उठाकर गोदावरी के दक्षिण तट पर ले गई । श्रीगिरि के उत्तरतट पर बहुत ब्राह्मणों से सुतेवित तथा धर्म का केन्द्र रूप एक नगर है जहाँ मानो लक्ष्मी का ही आवास है । यहाँ समस्त राज गुणों से सम्पन्न बृहत्कीर्ति नामक राजा है । रात्रि के अंत में उसी कल्याणमय तथा धन धाय सम्पन्न नगर में नित्य मनोहर रूपों को धारण करने वाली वह राक्षसी ब्राह्मण पुत्र के साथ जा पहुँची । अनंतर वह स्नेच्छा से रूप धारण कर उस द्विज के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करती हुई गोदावरी के दक्षिण तट पर आयी । वहाँ वृद्धा का रूप बनाकर वह मयानक राक्षसी ब्राह्मण से कहने लगी ॥११॥

राक्षसी बोली—द्विजवय यह बग है । ब्राह्मणों को चाहिये कि यहाँ आकर सध्या उपासना करें । जो विप्र वर समय पर सावधानी से सध्या की उपासना नहीं करते हैं उनको देवताओं ने नीच तथा चाण्डाल तुल्य बतलाया है । मैं तुम्हारी माता हूँ—यह तुम्हें कहन पड़गा अथवा तुम तत्क्षण मर्यु को प्राप्त करोगे । द्विज श्रेष्ठ । यदि तुम मेरी बात मानोगे तो मुझ भोगों । मैं तुम्हारी कामनाओं को पूरा करूँगी और पुन तुम्हें अपने देश में पहुँचाकर गुरुजनों से मिला दूँगी यह सत्य बात है ॥१०॥ १२॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह को त्वं द्विजपुंगवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा ।
विशवासयन्ती शपर्यरनेकैस्तं भ्रान्तचित्त मुनिराजपुत्रम् ॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जयत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत् ।
तदेव कर्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वच्मि करोमि धैव ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी । वृद्धा तवाऽपि चार्वङ्गी दिव्यालंकारभूषणा ॥१५॥
द्विजमावाप सर्वेन मत्सुतोऽयं गुणाकरः । एवं वदन्ती सर्वेन याति ववित करोति च ॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम् । तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे ॥१७॥
तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वा कन्यां भूषणान्विताम् । राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रावासस्मि द्विजातये ॥१८॥
सा कन्या त पति प्राप्यकृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत् ।
स द्विजोऽपि गुणैर्पुङ्गवां पत्नीं वृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१९॥

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी । किं करोमि ब्रह्म गच्छामि कर्पयतस्तथयामि वा ॥२०॥
महत्संकटमापन्न रक्षयिष्यति कोऽन माम् । भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोमुता ॥
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भूक्षयिष्यति राक्षसी ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—उस ब्राह्मण ने भी पूछा—‘तुम कौन हो ? तब वह कामरूपिणी राक्षसी अनेक गपयो से विश्वास दिनाती हुई उस भ्रान्त चित्त वाले मुनिराज पुत्र से कहने लगी— मैं कङ्कालिनी नाम म ससार मे विख्यात हूँ ।’ तब ब्राह्मण ने भी उससे निवेदन किया—‘तुम सदेह मत करा । जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा’ ॥१३-१४॥

ब्रह्मा बोले—विप्र ने वचन सुनकर स्वेच्छा से रूप बनाने वाली राक्षसी वृद्धा होती हुई भी मुन्दर अगो एव दिव्य अलङ्कारों से विभूषित हो गई । फिर वह ब्राह्मण को लेकर यह मेरा गुणवान् पुत्र है ऐसा कहती हुई सब जगह जाने दोऊने और (नाथ) करने लगी । लोथो ने सम्पन्ना कि रूप सौभाग्य अवस्था तथा विद्या से सम्पन्न यह ब्राह्मण उसी सर्वगुण सम्पन्ना वृद्धा का पुत्र है । तब एक द्विजवरने अलङ्कारों से युक्त अपनी कन्या को उसी राक्षसी के आगे उस ब्राह्मण को दे दिया । उस कन्या ने पति को पाकर सारा नि मे कृतार्थ हो गई, पर वह ब्राह्मण गुणवती पत्नी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥१५-१९॥

द्विज बोला—यह पापरूपिणी राक्षसी मुझे खा ही लेगी । क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? जिससे यह बात नहूँ ? महान् सबट उपस्थित हो गया है । कौन मेरी रक्षा करेगा ? यह मेरी भार्या कल्याणमयी तथा गुण एवम् अवस्था से सम्पन्न है । इसे भी पापिनी राक्षसी अपानक खा डालेगी ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी । वृद्धाऽप्यतिदुराधर्या सा गता कुत्रचित्तदा ॥२२॥
प्रश्रयावन्तता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता । भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनं ॥२३॥

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिस्तत्त्वं वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शनं प्रोवाच तां भार्या यथावत्पूर्वविस्तरम् । किमकस्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योयिति ॥२५॥
भर्तृवाच्यं निदाम्येवं प्रोवाच वदता वरा ॥२६॥

भार्योवाच

अनात्मनः सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि । कुतो भयं ह्यारमवतां किमुनगौ तमीतटे ॥२७॥
वसतां विष्णुभक्तानां विरपतानां विवेकिनाम् । अत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनामयम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः । तुष्टाव गौतमीतीरे द्विजो नारायण तथा ॥२९॥

द्विज उवाच

स्वमस्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, त्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता ।
त्वं पालकः पालयसे न दीनमनाथबन्धो नरसिंह कस्मात् । ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—इसी बीच (एक दिन) वह भयकर वृद्धा कही चली गई। वह गुणवती, प्रीडा तथा पतिव्रता पत्नी स्वामी को बुझित जानकर एकान्त में अत्यन्त नम्रतापूर्वक पति से धीरे-धीरे कहने लगी ॥२२-२३॥

भार्या बोली—स्वामिन् ! किससे तुम्हें दुःख हुआ है ? मुझे सही सही बताओ ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—प्रिये ! मित्र तथा कुलीन स्त्री से क्या गोपनीय है ? ब्राह्मण ने धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक सब बातें बता दी ॥२५-२६॥

भार्या बोली—अज्ञानी के लिए घर पर भी भय है। किन्तु ज्ञानियों के लिये कहीं भय नहीं है। उस पर भी गोदावरी के तट पर निवास करने वाले विष्णु-भक्त, विरपत तथा वेकी पुरुषों को तो भय ही नहीं हो सकता। तुम इस (गोदावरी) में स्नान करके पवित्र होकर कल्याणदाता भगवान् की स्तुति करो ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर ब्राह्मण गया भे स्नान करके निष्पाप होकर गोदावरी के तट पर नारायण की स्तुति करने लगा ॥२९॥

द्विज बोला—नाथ ! आप ही ससार के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द ! आप ही इसके कर्ता, हर्ता तथा पाल-यिता हैं। दीनबन्धो ! नरसिंह ! आप मुझ दीन का पालन क्यों नहीं करते ? उसकी यह प्रार्थना सुनकर ससार

श्रुत्वंतत्प्रार्थनं तस्य 'जगच्छोकनिवारण । नारायणोऽपि ता पापां निजघान स राक्षसोम् ॥३१॥
सुदर्शनेन चक्रेण सहस्रारेण भास्वता । तस्मै प्रादाद्वरानिप्यान्प्रापयच्च' गुरु प्रभु ॥३२॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विप्र नारायण विदुः । स्नानदानेन पूजाद्यैर्येन सिध्यति वाञ्छितम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णनं नाम सप्तपट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥१८॥

अथाष्टपट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं त्वाष्ट्र माहेश्वर तथा । ऐन्द्र याम्य तथाऽऽग्नेय सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शन । हयमेधेन पुष्येन यदुत्तारमध्यमान्सुरान ॥२॥

के शोक निवारण करने वाले नारायण ने अपने चमकते हुए सहस्रो अरों (दाता) वाले सुदर्शन चक्र से उस राजसी का काम समाप्त कर डाला और ब्राह्मण को बरगन दकर उसे अपने गुरुजनो के पास पहुँचा दिया । तब से लेकर वह तीर्थ विप्र तथा नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ जहाँ स्नान दान पूजा आदि करने से अभीष्ट सिद्धि होती है ॥३० ३३॥

श्रीब्रह्मपुत्राण म तीर्थ माहात्म्य वर्णन प्रसंग मे विप्र नारायण-तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ सरसठवा अध्याय समाप्त ॥१६७॥

अध्याय १६८

भानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—समस्त पापों के नाश करने वाले त्वाष्ट्र माहेश्वर ऐन्द्र याम्य तथा आग्नेय तीर्थ भानुतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हैं । अमिष्टुत नामक एक सुन्दर राजा था । उसने पवित्र अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया । उस

तत्र त्विज, षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोपमाः। क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत् ॥३॥
 ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम्। भूपतो दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४॥
 याच्यो यमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी। केनाप्यतो न कार्यं व क्षत्रियेण विशेषतः ॥५॥
 एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम्। तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाने तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति। देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम् ॥७॥
 देवं क्षत्रमसि ब्रह्मभूतनाथ नमोऽस्तु ते। याचितः सविता राजा देवानां यजनं द्युभम् ॥८॥
 ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेऽं दिवाकरम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम्। श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मकं रविम् ॥१०॥

राजोवाच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

क्षत्र देव यतः सूर्यो दत्ता भूर्भुवतेस्ततः। सविता देवदेवेशो ऽ ददामीत्यग्नभाषत ॥१२॥
 एवं करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिर्न काचन। तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वैवपारणैः ॥१३॥

यज्ञ म वसिष्ठ, अग्नि आदि सोऽह ऋत्विज हुए। वहाँ ब्राह्मणों न परस्पर यह विचार होने लगा कि क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञभूमि की व्यवस्था कैसे की जाय, क्योंकि ब्राह्मण के यज्ञ करने पर तो क्षत्रिय यज्ञ भूमि देते हैं पर क्षत्रिय के यज्ञ करने पर कौन भूमि देगा? और कौन माँगेगा? यह याचना अत्यन्त अशुभ करने वाली तथा पापरूपिणी वही गई है। इसलिये विशेष कर किसी क्षत्रिय को यह यज्ञ करना ही नहीं चाहिये। (इस तरह के विवाद उपस्थित होने पर) वहाँ महापण्डित तथा धर्मवेत्ता वसिष्ठ बोले ॥१-६॥

वसिष्ठ ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर सूर्य से भूमि की याचना की जा सकती है। जैसे—‘देव! सत्कर्मों में लोगों के प्रेरक! देवतोचित यज्ञ भूमि भुज्जे प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! आप क्षत्रियो के देवता हैं। भूतनाथ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार राजा द्वारा याचना करने पर सूर्य अवश्य देवोचित यज्ञ-भूमि देंगे। राजन्! इसलिये आप दिनकर की प्रार्थना करें ॥७-९॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही हो यह कहकर राजा श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवादिदेव सूर्य की प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

राजा ने कहा—दिनकर! देवताओं के लिय यज्ञभूमि भुज्जे प्रदान कीजिये! आपको नमस्कार है ॥११॥

ब्रह्मा बोले—जिसलिये सूर्य क्षत्रियो के देवता है अतः देवादिपति सूर्य ने ‘दे देता हूँ यह कहकर राजा को यज्ञ-भूमि दे दी। इस प्रकार जो यज्ञ करता है उसका किसी प्रकार अशुभ नहीं होता है। वैवपारगत विप्रों द्वारा

प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञः यथागाद्भूपतिं रविः । देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥
त देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेघं सुरैर्युतम् । दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५॥
ब्रह्मवेपथराः सर्वे गायन्तः सामगा इव । तेषां तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६॥
चमसानि च पात्राणि सोमं चपालमेव च । सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपति तथा ॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः । तेयां चण्डां न जानन्ति विश्वरूपं विनामुने ॥१८॥
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह वैत्या इमे इति । तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९॥

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा वारिवर्माश्च प्रोक्षयिष्वं समन्ततः । ये निन्दन्ति मत्तं पुण्यं चमसं सोममेव च ॥२०॥
मया त्वपहताः सर्वे इत्युक्त्वा परिपिञ्चत ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तया चतुः सुरगणास्त्वष्टा चापितथाऽकरोत् । भस्मीभूतास्ततः सर्वे काविशीकास्ततोऽभवन् ॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत् । ततः क्षीणायुषो वैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३॥
यज्ञैतत्प्राक्षिपद्धारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः । त्वाध्वं तीर्थं तदाख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
त्वष्टुर्वाक्याकच्युतान्दैत्याभिजघान धमस्तदा । कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मम्युता ॥२५॥

राजा अभिष्टुत से आरम्भ किये गये अश्वमेध यज्ञ में विवाकर देवताओं के निमित्त यज्ञ भूमि देने के लिए राजा के निकट पहुँचे थे, इसलिये उस स्थान का नाम भानुतीर्थ पड़ा। देवताओं से युक्त उस उत्कृष्ट अश्वमेध नामक देवयज्ञ में विघ्न डालने के लिये दैत्य, दानव तथा दूसरे यज्ञ-विघ्न कर्ता जन्तु ब्राह्मणों का वेश बनाकर साम गान करते हुए-से वहाँ आये। उन्हें प्रवेश करने से किसी ने नहीं रोका। उनमें से कोई चमस पात्र, सोम चपाल (यज्ञिय पशुको बाँधने के लिए बाण्ड), सोमपान, हविस्त्याग मृत्विज तथा राजा की निन्दा करने लगा कोई (सामप्रियो को) फेंकने लगा और कोई हँसने लगा। उन राक्षसों के कृत्यों को सिवा विश्वरूप के और किसी ने नहीं समझा। तब विश्वरूप ने अपने पिता से कहा कि ये दैत्य हैं। पुत्र के वचन सुनकर त्वष्टा ने देवताओं से यह कहा ॥१२-१९॥

त्वष्टा बोले—कुश-जल लेकर सब ओर छिड़क दो। 'जो पवित्र यज्ञ, चमस तथा सोम की निन्दा करते हैं, वे सब मेरे द्वारा विनष्ट हों यह कहकर सर्वत्र जल से सिञ्चन करो ॥२०-२१॥

ब्रह्मा बोले—देवन्द तथा त्वष्टा ने भी वैसा ही किया। समस्त दैत्य भस्मसात् हो गये। उन्हें इतना भी पता नहीं रहा कि किस दिसा की ओर भायें। 'मैंने पापियों को मार दिया यह कहकर त्वष्टा ने जल फेंक दिया। तब क्षीणायु दैत्यसमूह कुपित होकर भाग निकले। जिस द्वार पर लोक-प्रजापति त्वष्टा ने जल फेंका, वह अखिल पापनाशन त्वाध्व तीर्थ कहलाया। त्वष्टा के वाक्य से वधे दैत्यों को यम ने क्रुद्ध होकर कालदण्ड, चक्र तथा कालपाश से मार दिया। जहाँ वे दैत्य मारे गये, उस स्थान का नाम याम्यतीर्थ पड़ा। जहाँ अग्नि म हविष्य

यत्र ते निहता देवास्ततीर्थं याम्यमुच्यते । यत्राभवत्कृतु पूर्णो ह्रत्वाग्नीचामृत बहु ॥२६॥
 धाराभि शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे । यत्राभवद्व्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुत ॥२७॥
 अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् । इन्द्रो मरुद्भिर्नृपति प्राहेद वचन शुभम् ॥२८॥
 त्व सग्राडभविता राजानुभयोरपि लोकयो । सखा मम प्रियो नित्य भविता नात्र सशय ॥२९॥
 स कृतार्यो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च सर्पणम् । कुर्यात्पितृणा प्रीत्यर्थं यमतोर्थे विशेषत ॥३०॥
 माहेस्वर तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुत शिव । भवितुमुक्तेन विप्रंश्च सत्यवर्मविशारदं ॥३१॥
 वैदिकैर्लो'किकैश्चैव मन्त्रं पूज्य माहेस्वरम् । नृत्यैर्गोलेस्तथा वाद्यैर्मृतं पञ्चसभयं ॥३२॥
 उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणै । धूपैर्दोपैश्च नयेद्यं पुष्पैर्गन्धै सुगन्धिभि ॥३३॥
 पूजयामास देवेश विष्णु शम्भु धियैकया । तप्त प्रसन्नो देवेशो यशःवतुरोजसा ॥३४॥
 अभिष्टुत नरेन्द्राय भुक्तिमुपतो उभे अपि । माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ववतुहस्तमम् ॥३५॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थं शैव वृष्णवमुच्यते । तत्र स्नानं च दानं च सवकामप्रदं विदुः ॥३६॥
 इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत् वा । विमुक्त सर्वपापेभ्य शिवविष्णुपुर व्रजेत् ॥३७॥
 भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम् । तत्र तीर्थं महापुण्य तीर्थानां शतमत्र हि ॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भाग्यादिशततीर्थवर्णन नामाष्टपष्ट्य

धिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

गीतमीमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्याय ॥१९॥

हालकर यज्ञ सम्पन्न किया गया और जहां महायज्ञ में बाण के समान अखण्ड धाराओं से अभिष्टुत द्वारा अग्निदेव तप्त हुए उस स्थान का नाम अभितीर्थ पड़ा जो अश्वमेध के सयान फलदायक है। तब इन्द्र ने वायु के द्वारा राजा से यह गुप्त वचन कहलाया कि राजन ! तुम दोनों लोक के सम्राट् होये और मेरे प्रियपान वनोगे इसमें कोई सशय नहीं। मृत्युलोक में वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है जो इन्द्रतीर्थ में और विशप वरके यमतीर्थ में पितरों की प्रीति के लिये तपण करता है ॥२२ ३०॥ माहेस्वर तीर्थ वह कहलाता है जहां अभिष्टुत ने शिव की पूजा की थी। जब अखिल कर्मों में निपुण विप्रों ने भक्तिपूर्वक वैदिक तथा लौकिक मन्त्रों नय गीत वाद्य पञ्चामृत अनेक उपहार दण्डवत् प्रणाम प्रदक्षिणा धूप दीप नवैद्य पुष्प गन्ध तथा सुगन्धित द्रव्यों से देवताओं के स्वामी विष्णु तथा शंकर की एक ही भाव से पूजा की तब दोनों देवेशों ने राजा अभिष्टुत को वरदान के रूप में भोग और मोक्ष दोनों दिये तथा उस तीर्थ के माहात्म्य को भी ब्रह्मा दिये। तब से लकर वह तीर्थ शैव और वृष्णव दोनों नामों से पुकारा जाता है। वहाँ स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इन सब तीर्थों का स्मरण या पाठ करेगा वह निखिल पापों से मुक्त होकर शिवलोक तथा विष्णुलोक को जाएगा। विशेष करके भानुतीर्थ का स्नान समस्त कामनाओं को पूरा करता है। उस तीर्थ में स्नान करने से महान पुण्य होता है। उसमें एक ही तीर्थ वास करते हैं। ॥३१ ३८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रथम में भानु आदि तीर्थों के वर्णन-नामक

एक ही बरसठवें अध्याय समाप्त ॥१६८॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम् । महादेवपदाम्भोजयुगभक्तिप्रदायकम् ॥१॥
 तत्राप्येवविधा पुण्यां कथां शृणु महामते । गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे ॥२॥
 आदिकेश इति ख्यातः ऋषिभिः परिपूजितः । महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः ॥३॥
 सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः । तस्य ज्ञाता वेद इति स चापि परमो ऋषिः ॥४॥
 तमादिकेशं वं देवं त्रिपुरारि त्रिलोचनम् । नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ ॥५॥
 भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति धानं विचक्षणः । याते तस्मिन्निजवरे व्याधः परमधार्मिकः ॥६॥
 तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये भूयसां याति नित्यशः । अटित्वा विविधाग्देशान्मुगान्हरत्वा यथासुखम् ॥७॥
 मुखे गृहीत्वा पानीयमभिवेकाय शूलिनः । भ्यस्य मांसं घनुष्कोट्या श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम् ॥८॥
 आदिकेशं समागत्य न्यस्य मांसं ततो बहिः । गङ्गा गत्वा मुखे वारिगृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम् ॥९॥
 यस्य कस्यापि पशूनि करेणाऽऽदाय भविततः । अपरेण च मांसानि नैवेद्याय च तन्मनाः ॥१०॥
 आदिकेश समागत्य वेदेनाजितमोजसा । पादेनाऽऽहृत्य तां पूजां मुखानीतेन वारिणा ॥११॥

अध्याय १६६

भिल्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भिल्लतीर्थ रोगनाशक, पापहारी तथा शिव के चरणयुगल में भक्ति बढ़ाने वाला है। महा-
 बुद्धिमान् । उसके बारे में भी इस प्रकार की एक पवित्र कथा सुनो। श्रीगिरि के उत्तर प्रदेश में गंगा के दक्षिण तट
 पर आदिकेश नाम से प्रसिद्ध, मुनियों से परिपूजित तथा समस्त कामनादायक शिवलिंग सदा विद्यमान रहते
 हैं। सिन्धुद्वीप नामक मुनि परम धर्मात्मा था। उसका वेद नामक भाई भी महान् ऋषि था। वह ऋषि त्रिपुर
 के शत्रु तथा तीन नेत्र वाले आदिकेश नामक शंकर देव की प्रतिदिन मध्याह्न काल में पूजा किया करता था। तत्प-
 श्चात् विद्वान् वेद भिक्षाटन करने के लिये गाँव की ओर चल देता था ॥१-५॥ उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक
 परम धर्मात्मा व्याध उसी पवित्र पर्वत की गूहा में नित्य शिकार करता था। विविध प्रदेशों में पर्यटन करने
 मृगों को मारकर शिव की जल चढ़ाने के लिये मुख में बल लेकर घनुष में मांस को लटका कर वह श्रान्त व्याध
 आदिकेश नामक सर्वभक्तिमान् शिव के पास आता था। गंगा में जाकर वह मुख में जल भर कर मन्त्रपूर्वक जिस-
 किसी वृक्ष का पत्र हाथ से तोड़ लेता था। फिर नैवेद्य के लिये मांस लेकर आदिकेश के समीप आता था और
 वेद द्वारा पूजित शिव को खात मारकर उसकी पूजा को नष्ट करके अपने मुख-जल से शिव को नहलाता था। तब
 पत्नी से शंकर की पूजा करके उन्हें मांस चढ़ाता था और कहता था कि शिव । मुख पर प्रसन्न होइये। वह कल्याण-

स्नापयित्वा शिवदेवमर्चयित्वा तु पत्रकं । कल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मास शिवो मे प्रीयतामिति ॥१२॥
 नैव किंचित्स जानाति शिवभक्तिविना शुभम् । ततो याति स्वक् स्थानमासेन तु मयागतम् ॥१३॥
 करोत्येतादृगप्यस्याऽऽपत्य प्रत्यहमेव स । तथाऽप्येतास्तुतोपायश्च विचित्रा हीद्वरस्थिति ॥१४॥
 यावन्नायात्यसौ भिल्ल शिवस्तावन्न सौख्यभाक् । भक्तानुकम्पिता शोभन्नातं ता तु येति क ॥१५॥
 सज्जयत्पादिकेशमुमया प्रत्यहं शिवम् । एव बहुतिथे काले याते वेदचक्रोप ह ॥१६॥
 पूजा मन्त्रवर्ती चित्रा शिवभक्तिसमविताम् । को नु विध्वसते पापी भक्त स वधमाप्नुयात् ॥१७॥
 गुह्यदेवजिज्ञासामिद्रोहो वध्यो मुनेरपि । सर्वस्यापि यथाहोऽसौ शिवस्य द्रोहकृष्ण ॥१८॥
 एव निश्चित्य मेधावी यैव सिन्धोस्तथाऽनुज । कस्येय पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मन ॥१९॥
 पुणर्वन्द्यभर्तृवन्द्यै कन्दर्मूलफलं शुभं । कृता पूजा स विध्यस्य ह्यन्या पूजा करोति य ॥२०॥
 भासेन तरुप्रदेश स च वध्यो भवेन्मम । एव सच्चिन्त्य मेधावी शोषयित्वा तनु तदा ॥२१॥
 त मश्येमह पाप पूजाकर्तारमीश्वरे । एतस्मिन्नन्तरे प्रापाद्वधापी देव यथा पुरा ॥२२॥
 नित्यवत्पूजयन्त तमादिकेशस्तदाऽग्रवीत ॥२३॥

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे आन्तोऽसीति पुन पुन । विराय कथमायातस्त्वा विना तात दु खित ॥
 न विन्दामि सुख किंचित्समादकसिंहि पुत्रक ॥२४॥

मयी शिवभक्ति को छोड़कर कुछ नहीं जानता था । तदुपरांत वह मास लेकर अपने स्थान को चला जाता था । वह प्रतिदिन ऐसा किया करता था । फिर भी शकर उस पर प्रसन्न हो गये । क्योंकि शकर की लीला अपरम्पार है । जब तक वह व्याध नहीं आता था तब तक शिव को चैन नहीं पड़ती थी । भक्त के ऊपर जो शकर की नितीम अनुकम्पा होती है उसे कौन जानता है ? ॥६१५॥ वह प्रतिदिन उमासहित शकर की पूजा करता था । इस प्रकार बहुत दिनों बीत जाने पर वेद को शोष हुआ । वह कहने लगा— शिवभक्तियुक्त तथा मन्त्रविहित मेरी अपूज पूजा को कौन पापी नष्ट कर देता है ? मैं उसे अवश्य मारूँगा । गुरु देवता द्विज तथा स्थामी से द्रोह करने वाला मुनि भी वध्य है । शिव का द्रोही मनुष्य सबके लिए वध्य है । सिन्धु के अनुज मेधावी वेद ने ऐसा ही निश्चय किया । उसने सोचा— कौन ऐसा पापिष्ठ तथा दुरात्मा है जो वनीय दिव्य पुष्प कन्द मूल तथा पवित्र फलों से की हुई पूजा को विनष्ट करने मास तथा वृक्ष पत्रों से दूसरी पूजा करता है ? उस पापी शिव पूजक को मैं देखूँगा । ऐसा सोचकर विद्वान् वेद छिपकर वहाँ स्थित हुआ । इसी बीच वह व्याध पहले की तरह वहाँ आ पहुँचा । नित्य की तरह पूजा करते हुए उस व्याध से आदिकेश ने कहा ॥१६२३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान व्याध ! तुम बड़ आन्त हो । तुम्हें जाने मे देरी क्यों हुई ? तुम्हारे बिना मैं दुःखी हूँ । मुझ कुछ भी सुख नहीं मिल रहा है । पुत्र ! मुझ वासवस्त करो ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तमेव वादिन देव वेद श्रुत्वा क्लोक्थ्य तु । चुकोप विस्मयाविष्टो न च किंचिदुवाच ह ॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजा कृत्वा स्वभवन ययौ । वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह ॥२६॥

वेद उवाच

अयं व्याध पापरत क्रियाज्ञानविवर्जित । प्राणिहिसारत क्रूरो निर्दय सर्वजन्तुषु ॥२७॥
हीनजातिरकिंचिज्ज्ञो गुरुश्रमविवर्जित । सदाऽनुचितकारी चार्निजिताखिलमोगण ॥२८॥
तस्याऽऽत्मान दर्शितवान्न मा किंचन वक्ष्यति । पूजा मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रत ॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्य भार्यापुत्रविवर्जित । व्याधो मासेन बुष्टेन पूजा तव करोत्यसौ ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान्न ममेति महाद्भुतम् । शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिण ॥३१॥
मूढो कोऽपि भवेत्प्रीत कोऽपि तद्बुदुरात्मन । तस्मादहं मूर्ध्न शिला पातयेयमसशयम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वं वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिवदम् ॥३३॥

आदिकेश उवाच

इव प्रतीक्षस्व पश्चान्ने शिला पातय मूर्धनि ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तमेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिला सत्यज्य बाहुना । उपसहृत्य त कोप इव करोमीत्युवाच ह ॥३५॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए शकर को देखकर तथा उनके वचन सुनकर वेद आश्चर्य चकित तथा क्रुद्ध हुआ । पर कुछ भी नहीं बोला । व्याध भी नित्य की तरह पूजा करने अपना घर चला गया । वेद कुपित होकर शकर से आकर कहने लगा ॥२५ २६॥

वेद बोला—यह व्याध पापी क्रिया ज्ञान शून्य प्राणियों की हिंसा में निरत क्रूर सब जीवा के प्रति निर्दय नीच जाति का कुछ भी नहीं जानने वाला गुरु रहित अनुचित काम करने वाला तथा अजितेन्द्रिय है । इसको तो आपने दान दिया पर मुझे क्या नहीं दिया ? बतलाइये । शिव । मैं पूणशरी होकर मन्त्रविहित पूजा करता हूँ । नित्य आप ही मेरे रक्षक हैं । मैं भार्या पुत्र से भी वंचित हूँ । यह व्याध दुषित मास से आपकी पूजा करता है । फिर भी इसके ऊपर आप प्रसन्न हुए और मेरे ऊपर नहीं । यह महान आश्चर्य की बात है । मैं इस दुष्ट व्याध को दण्ड दूंगा । कोई मनुष्य सज्जन का मित्र होता है और कोई दुरात्मा ना । इसलिये मैं नि सन्देह आपके मस्तक पर पत्थर पटक दूंगा ॥२७ ३२॥

ब्रह्मा बोले—वेद के इतना कहने पर शकर हँसकर यह बोले ॥३३॥

आदिकेश ने कहा—कल तक ठहर जाओ । पश्चात् मेरे मस्तक पर पत्थर गिरा देना ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही सही कहकर वेद ने हाथ से शिला-खण्ड को फेंक दिया और शिव का परित्याग करने

तत प्रातः समागत्य कृत्वा स्नानादिवर्मं च । वेदोऽपि नित्यवत्पूजा कुर्वन्पश्यति मस्तके ॥३६॥
 लिङ्गस्य सत्रणा भोमा धारा च रुधिरप्लुताम् । वेद सविस्मितो भूत्वा विमिद लिङ्गमूर्धनि ॥३७॥
 महोत्पातो भवेत्कस्य सूचयेदित्यचिन्तयत् । मूद्भिश्च गोमयेनापि कुशैस्त गाङ्गवारिभि ॥३८॥
 प्रक्षानयित्वा ता पूजा वृत्तवानित्यवन्तदा । एतस्मिन्नन्तरे प्रायादध्याधो विगतस्त्वय ॥३९॥
 मूर्धाम ग्रणसयुक्तं सरक्तं लिङ्गमस्तके । शकरस्याऽऽदिकेऽस्य ददुशेऽन्तर्गतस्तदा ॥४०॥
 दृष्ट्वेव किमिदं चित्रमित्युक्त्वा निशितं शरं । आत्मानं भेदयामास शतधा च सहस्रधा ॥४१॥
 स्वामिनो यंकृतं दृष्ट्वा च श्रमेतोत्तमाश्रय । मुहुर्निनिन्द चाऽऽत्मानं मयि जीवत्यभूदिदम् ॥४२॥
 पण्डमापतितं कोदग्गहो दुर्विधिर्वैशतात् । तत्त्वमं तस्य सवोदय महादेवोऽतिविस्मित ॥
 तत प्रोयाच भगवान्येदं वेदविदा वरम् ॥४३॥

आदिकेश उवाच

पश्य ध्याय महाबुद्धे भक्त भावेन सयुतम् । त्वं तु मूद्भिः कुशैर्वाभिर्मूर्धनि स्पृष्टवानसि ॥४४॥
 अनेन सहस्रा ग्रन्थममाऽऽत्माऽपि निवेदित । भक्ति प्रेमायवा शक्तिविचारो यत्र विद्यते ॥
 तस्मादस्मै वरान्दास्ये पञ्चाक्षुष्यं द्विजोत्तम ॥४५॥

बहा—'तो कल ही कहेंगा । तब प्रातः पात्र वही आकर स्नान आदि कर्म से निवृत्त हो वेद के नित्य की भाँति मस्तक पर पूजा करने देता कि धाव से युक्त निर्वर्त्म से मयकर शोणित की धारा निर्वर्त रही है । फिर वटा आश्रयित हुआ और माचन लगा कि जिसके मस्तक पर यह बना हो गया । इससे तामह मूर्तित होना है कि किसी का महान् उन्नाह हुआ । फिर मुक्ति का सावर कुट तथा गमाजल से जिसको पवित्र कर उगने निर्वर्त की भाँति पूजा की । इसी बीच निम्नान् ग्राह्य वही आया । जिसके मस्तक पर पात्र तथा गणित को दणत ही बहु धोले उठा—यह क्या ? फिर तान्त्रिक वाला ग उगा । आन को संवदा गया महत्या तन्त्र विद्वत्तरात्रि और वटा—स्वामी को बिह्व दणतर कीन उत्तम जित बाग मनुष्य दणका मदन करवा ? घर जान ही । गा हो गया । हय ! दीर्घायव मनु गय आ गया । दण तरह उग अनेन का वटा पिकारा । उगका यन्त्र बन् देन कर मन्त्रेन आदित्य शिम्भन हुन । तब मन्त्रान् सावर त यदेवतात्रा म श्रष्ट वेद म कर्ण ॥४५॥४३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान् भक्ति नाव म मनुष्य व्याप का देगा । तुमने मूर्ति या पुजा म मस्तक पर लगा दिया । पर दणत तो मुझ अनी आत्मा ही समर्पित कर दा । त्रिगर्भ्य दणम भक्ति प्रेम भयवा शक्ति या विचार है अत्र इसको पहिच हा कर दया पञ्चान् मुग्ध बुधा ॥४४॥४५॥

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याघ्र देवो महेश्वर । व्याघ्र प्रोवाच देवेश निर्मात्य तव यद्भवत् ॥४६॥
तवस्माक भवेद्वाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम् । सर्वकृतुफल तीर्थ स्मरणादेव जायताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम् । भिल्लतीर्थं समस्ताघसघविच्छेदकारणम् ॥४८॥
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम् । अभवत्स्नानदानाद्यैर्भुवितमुवितप्रदायकम् ॥
येहस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्वहन् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णन नामैकोनसप्त-
त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

गौतमीमाहात्म्ये शततमोऽध्यायः ॥१७०॥

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति रयात् रूपसौभाग्यदायकम् । यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
पुर भौवनमाख्यात गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते । यनासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायण ॥२॥

ब्रह्मा बोले—महेश्वर ने व्याघ्र से वर मागने को कहा । व्याघ्र ने देवेश से कहा— आपका निर्मात्य जो हो वही मेरे नाम से तीर्थ कहूँगे । उस तीर्थ के स्मरण मात्र से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो ॥४६॥४७॥

ब्रह्मा बोले—देवता ने कहा ऐसा ही होगा । तब से उस उत्तम तीर्थ का नाम भिल्लतीर्थ पड़ा जो समस्त पापसमूह का नाश करने वाला तथा शिव के चरणों में महाभक्ति प्रदान करने वाला है । उसमें स्नान दान आदि करने से मोक्ष मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । शिव ने वेद को भी अनेक प्रकार के वरदान दिये ॥४८॥४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मतीय माहात्म्यवर्णन प्रसंग में भिल्लतीर्थ की महिमा का वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥

अध्याय १७०

चक्षुस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गोदावरी के दक्षिण तट पर रूप-सौभाग्य देने वाला प्रसिद्ध चक्षुस्तीर्थ है जहाँ योगेश्वर भगवान् रहते हैं । पर्वत के शिखर पर भौवन नामक एक नगर था, जहाँ क्षत्रियघष में निरत भौवन नामक

तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो बृद्धकौशिक । तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तम ॥३॥
 तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विज । सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४॥
 तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विषम द्विजवैश्ययो । श्रीमद्विरद्वयोनित्य परस्परहर्तृपिणो ॥५॥
 कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम् । प्राहेदवचनप्रीत्या रह स्थित्वा पुन पुन ॥६॥

गौतम उवाच

गच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि । यौवन तद्व्या ज्ञेय विना 'सौरयानुबूल्यत ॥
 धन विना तत्कय स्यादहो घिङ्निर्घन नरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेव मत्पुत्रोपाजित धनम् । बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
 द्विज पुनरवाधेद मणिकुण्डलमोजसा ॥८॥

गौतम उवाच

धर्मपितृभक्तानामामाना को नु तूत्त प्रदास्यते । उत्स्पर्शप्राप्तिरेवैषां सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९॥
 स्वेनैव व्ययसायेन धन्या जीवन्ति जन्तव । परदत्तार्थसमुप्टा कष्टजीविन एव ते ॥१०॥
 स पुत्र शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते । य वैश्यमभिलिप्सेत न वाचाप्यितु कुण्डल ॥११॥

राजा रहता था । उती उत्तम मगर म बृद्धकौशिक नामक कोई ब्राह्मण रहता था । उगने वेदवत्ताभ्राम श्रष्ट गौतम नामक एक पुत्र था । वह अपनी माता के मनोदोष के कारण (पिता से) विपरीत हुआ । मणिकुण्डल नामक कोई बहिनया उसका मित्र था । ब्राह्मण और वैश्य भी मित्रता विषम थी । चूँकि एक था धनिक और दूसरा था गरीब फिर भी परस्पर एक दूसरे का हित चाहता था । किसी समय गौतम ने अपनी मणिकुण्डल से तब्रात में प्रमथवक यह वचन बार-बार कहा ॥१६॥

गौतम बोला—धन बमान के लिए पवन पर या समुद्र में भी हल्ला मचाने । बिना गुणभोग किये जयानी व्यय है । बिना धन से गुण मित्रता भी ता अमम्भव है । हाथ । निषण मनुष्य को धिक्कार है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—कुण्डल ने द्विज से कहा—ब्राह्मणश्रष्ट । मेरे पिता का बर्माया हुआ बटुन-गा था है । उस धन से मैं क्या करूँगा ? द्विज ने पुन मणिकुण्डल से कहा ॥८॥

गौतम बोला—धन अथ नान और काम से जीन मनुष्य होता है ? मित्र । प्राप्तिवा का उत्पत्ति परत रहता ही अच्छा माना गया है । अपने ही उद्योग में जीन वाल प्राप्ता का जीवन व्यय है । जादूगरे के शिष्य धन से समुप्ट रहता है वह कष्टजीवी है । कुण्डल । वही पुत्र प्रगल्भीय तथा पिता का प्रीतिपात्र हाता है जो माणी

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽयानिर्जयते सुत । स कृतार्थो भवेत्लोकपेन्थ वित्तं न तु स्पृशेत् ॥१२॥
स्वयमाज्यं सुतो वित्तं पित्रे दास्यति बन्धवे । त तु पुन विजानीयादितरो योनिर्कोटक ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यं ब्राह्मणस्याभिलाषिण । तथेति मत्वा तद्वाक्यं रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि धौतमाय न्यवेदयत् । धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम् ॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे' गृहम् । सत्यमेव वणिग्वक्ति स तु विप्र प्रतारक ॥१६॥
पापात्मा पापचित्तश्च न धुबोध वणिग्विद्वजम् । तौ परस्परमामन्य मातापित्रोरजानतौ ॥१७॥
देशाद्देशान्तरं यातौ धनार्थं तौ वणिग्विद्वजौ । वणिग्वस्तस्यैव वित्तं ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८॥

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायन तद्धनं हि समाहरे । अहो पृथिव्या रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९॥
इष्टप्रदास्य कामस्य वैभवा इव योषित । मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिवन्धो यदि दीयते । भुज्यन्ते तास्ततो नित्यं सफलं जीवितं हि तत ॥२१॥
नृत्यगीतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलंकृत । भोक्ष्य कथं तु तद्वित्तं वैश्यामद्वस्तमागतम् ॥२२॥

स भी वित्तधन की लिप्ता नहीं करता है । जो अपने बाहु बल से धन उपाजन करता है और पैतृक संपत्ति को छूटा तक भी नहीं बही लोक में कृताय होता है । जो स्वयं धन कमाकर पिता तथा बन्धवों को देता है उसी को पुत्र समझना चाहिये । उससे भिन्न तो योनि वा कीट है । ॥१९ १३॥

ब्रह्मा बोले—अभिलाषा करने वाले ब्राह्मण की यह बात सुनकर तथा उसकी बात को मानकर कुण्डल अपन रत्ना को लाकर गीतम् को समर्पित करके कहने लगा— हम लोग इस धन से सुखपूर्वक देशभ्रमण करके धन कमाकर पुन घर लौट आयेगे । पापी और दग ब्राह्मण ने कहा— तुम ठीक कहते हो । बनिया ने पापयक्त चित्त वाले ब्राह्मण को नहीं समझा । वे दोनों परस्पर सगह करके माता पिता को बिना जताय ही घर से निकल पडे । बनिया और ब्राह्मण दोनों धन की कामना से देश देशांतर में जाने लगे । पर ब्राह्मण बनिया के हाथ से धन का अवहरण कर लेना चाहता था ॥१४ १८॥

ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी उपाय से मुझ धन अवहरण कर लेना चाहिये । अहो ! पृथिवी पर हजारों रमणीय नगर हैं जिनमें असीष्ट सिद्ध करने वाली देवता तुल्य मनोहर कामिनिया रहती हैं । तो मुझ क्या करना चाहिये ? यदि प्रयत्न से धन चुराकर स्त्रियों को दू और उनके साथ उपभोग करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाय । (नित्य नृत्य-गात-परायण तथा वश्याओं से अलङ्कृत होकर मैं रहूँगा ।) पर कैसे वैश्य के हाथ से धन को प्राप्त करूँ ? ॥१९ २२॥

१ध च ०प्यावहे । २ध च रत्नानि रम्याणि च सहस्रश । नगराणि च रम्याणि मुग्धयुतानि सयध । ३० ।

ब्रह्मोवाच

एव चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव । मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३॥
 वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः । धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दुःखपन्ते दुःखभागिनः ॥२४॥
 तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मं प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं प्लेश एव च ॥
 यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदतोस्तत्र संपरायस्तथोरभूत् । यस्य पक्षो भवेज्जयायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७॥
 पृच्छाव' कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः । वेदात् लौकिकं व्येष्टं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८॥
 एव विवदमानो तावूचतुः सकलाञ्जनान् । धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भूवि ॥२९॥
 तद्वदन्तु ययावृत्तमेवमूचतुरोजसा । एवं तत्रोचिरे केचिद्ये धर्मेणानुवर्तिनः ॥३०॥
 तद्वैःखननुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः । संपराये धर्मं सर्वं जितं धिमे न्ययेदयत् ॥३१॥
 मणिमाधर्मविच्छेष्टः पुनर्धर्मं प्रशंसति । मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुदांसति ॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

ब्रह्मा बोले—यह सोचते हुए गौतम ने हँसकर मणिकुण्डल से कहा—'जीव अपर्मा से ही अभीष्टित सुख को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। लोक में धर्मिष्ठ प्राणी दुःखी देने जाते हैं। इसलिये जिसका एक दुःख ही फल है, ऐस धर्म से क्या प्रयोजन ? ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—तब वैश्य ने कहा—'नहीं, सुख धर्म में प्रतिष्ठित है। पाप म दुःख, मय, शोक, दारिद्र्य तथा प्लेश है। जहाँ धर्म है, वही मुक्ति है। स्वधर्म का वही विनाश नहीं होता है' ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विवाद करते-करते दोनों ने बाजी लगाई कि जिसका पक्ष उत्तम होगा, वह दूसरे का धन ले लेगा। लोग ने हम दोनों यह पूछे कि धर्मिष्ठा ध्येष्ट होगा है या अधर्मिष्ठा। वैदिक धर्म से लौकिक धर्म ध्येष्ट होगा है या लोक अधर्म से मुक्त होगा है। (यहाँ प्रश्न यह है कि वैदिक धर्म ध्येष्ट होगा है या लौकिक धर्म ? धर्म से मुक्त मिच्छा है या अधर्म से ?) इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों ने खोप म पूछा—'पृथ्वी पर धर्म की प्रबलता है या अधर्म की ? आप लोग यथार्थ बतलायें।' तब कुछ लोग ने बतलाया—'जो धर्म से पथ पर है, वे दुःख अनुभव करते हैं और जो पापी है, वे सुखी है।' बाजी में ब्राह्मण ने गव धन जीत लिया। फिर भी मणिकुण्डल धर्म की प्रशंसा करता रहा। तब द्विज ने मणिकुण्डल से कहा—'क्या धर्म की प्रशंसा करते हो ?' ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने कहा—'मैं नहीं हूँ।' ब्राह्मण ने फिर कहा ॥३२॥

ब्राह्मण उवाच

जित मया धन वैश्य निर्लज्ज किन्तु भापसे। मयैव विजितो धर्मो ययेष्टचरणात्मना ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवच धृत्वा वैश्य सस्मित ऊचिवान् ॥३४॥

वैश्य उवाच

पुलाका इव धायेयु पुत्तिका इव पक्षिषु। तथैव तान्मत्वे मन्ये येषां धर्मो न विद्यते ॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्यानां धर्मं प्रथम उच्यते। पञ्चादर्यश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
कथं धूये द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यथ ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

द्विजो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्यां जायता पण । तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरुच्यतु ॥३७॥
पूर्ववत्लौकिकांगत्वा जितमित्यथबोद्धिज । करो छित्वा तत् प्राह कथं धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मये प्राणं कण्ठगतैरपि। माता पिता सुहृदबन्धुधर्म एव शरीरिणाम् ॥३९॥

ब्राह्मण बोला—वैश्य ! मैंने धन जीत लिया। अब बोलने में तुम्हें लाज नहीं आती ? ययेष्ट आचरण
को हूँ मैंने ही धर्म को जीत लिया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मण का वचन सुनकर वैश्य आश्चर्यित होकर बोला ॥३४॥

वैश्य बोला—महो ! मैं उन मनुष्यों को धाना मपुलाक (खसरी चुन्च धान) तथा पक्षियों म शुद्र
मातिका की तरह समझता हूँ ओ धर्मात्मा नहा है। आरो पुरुषार्थों म पहिउधमही कहा जाता है पश्चात् अथ
और काम। वही धम मुझम विद्यमान है। द्विजश्रेष्ठ ! कम तुम नहते हो कि मैंने इस धम को जीत लिया ?
॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—द्विज ने पुन वैश्य से कहा— तो इस बार हाथा की बाजी लगाओ। वैश्य ने कहा— अस्तु ।
तत्र दोना व्यक्तियों ने लोगो से जाकर पूछा। लोगो न पहिले की तरह बतलाया। ब्राह्मण ने कहा—मेरी जीत
हुई। वैश्य ने अपने हाथ बटका लिये। तब ब्राह्मण न पूछा— वही अब भी धम को मानते हो ? ब्राह्मण का
व्यय वचन सुनकर वैश्य ने कहा ॥३७ ३८॥

वैश्य बोला—जब तक कण्ठ म प्राण रहेया तब तक मैं धम को मानूया। शरीरधारिया ने लिये धम ही
माता पिता मित्र तथा बन्धु है ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत् । विमुक्तो वैश्यस्तत्र ब्राह्म्या च धनेन च ॥४०॥
 एव भ्रमन्तौ संप्राप्तौ गङ्गा योगेश्वर हरिम् । यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मियस्तावूचतु पुन ॥४१॥
 वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशंसति । अतिकोपाद्विजो वैश्यमाक्षिप्यपुनरब्रवीत् ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

गत धन करौ छिन्नायवशिष्टोऽसुभिर्भवान् । स्वमन्यया यदि ब्रूय आहरिष्येऽसिना शिर ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराहव वैश्यो गीतममञ्जसा ॥४४॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये यथेच्छसि तथा कुह । ब्राह्मणाश्च गुरुन्देवान्देवान्धर्मं जनार्दनम् ॥४५॥
 यस्तु निदपत् पापो नास्ती स्पृश्योऽय पापकृत । उपेक्षणीयो दुर्वृत्त पापात्मा धमद्रूपक ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तत् प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशसति । आवयो प्राणयोरत्र यथ स्यादिति वै मुने ॥४७॥
 एवमुक्ते गीतमेन तयत्याह वणिक्तदा । पुनरप्युचतुर्भौ लोकैस्तलोकास्तथोच्चरे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार ने विवाद से ब्राह्मण तो धनवान हुआ पर वैश्य धन तथा हाथ दोनों से वधित होगया । फिर इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गंगा ने तट पर पहुँचे जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं । मुनिश्रेष्ठ । स्वेच्छा से वहाँ भी उन दोनों ने वही बात छद्म की । वैश्य ने गंगा योगेश्वर तथा धर्म की ही प्रशंसा की । तब ब्राह्मण ने अत्यन्त क्रोध से व्यंग्य करते हुए उनसे कहा ॥४०-४२॥

ब्राह्मण बोला—तुम्हारे धन तथा दोनों हाथ तो गये । अब प्राण भी बँवाना चाहते हो ? यदि हम तरह बोलोग तो मैं तम्बार में तुम्हारा शिर बाट डालूँगा ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य न हँसकर पुन गीतम म यह सीध कहा ॥४४॥

वैश्य ने कहा—मैं तो धर्म का ही पथ मानूँगा । तुम्ह जो इच्छा हो सो करो । जा पापी मनुष्य ब्राह्मण गुरु देवता धर्म वत् तथा भगवान की निन्दा करता है वह पापात्मा अस्पृश्य उपेक्षणीय दुराचारी तथा धमद्रूपक है ॥४५-४६॥

ब्रह्मा बोले—तब द्विज न बोध स कहा—यदि तुम धर्म की प्रशंसा करते हो तो इस बार हम दोनों ने प्राणा की बाजी हो । गीतम व इतना कहने पर वनिधम कहा—एसा ही मही । तब दानान लागा म पूछा । लोग ने वही उत्तर दिया । तब गीतमरी व दण्डित पर योगेश्वर व सामने वैश्य को पट्टा कर द्विज न उसकी एव भाषा निवाल सी और कहा ॥४७-४८॥

योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे । तनिपात्य विश विप्रश्चक्षुस्तपाद्य चाब्रवीत् ॥४९॥

विप्र उवाच

गतोऽसौमा दशा वैश्य नित्य धर्मप्रशसया । गत धन गत चक्षुश्छेदितौ करयल्लवौ ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैव ब्रूया कथान्तरे ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि । हा कष्ट मे किमभवद्धर्मकमनसो हरे ॥५१॥
॥ कुण्डलो वणिक्थेष्ठो निर्धनो गतबाहुक । गतनेत्र शुच प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन् ॥५२॥
एव बहुविधा चिन्ता कुर्वन्नास्ते महोत्तले । निश्चेष्टोऽथ निरुत्साह पतित शोकसागरं ॥५३॥
दिनावसाने शर्वर्यामुचिते चन्द्रमण्डले । एकादश्या शुक्लपक्षे तनाऽऽयाति विभीषण ॥५४॥
स तु योगेश्वर देव पूजयित्वा यथाविधि । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गा सपुत्रो राक्षसं वृत ॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापर । वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६॥
वैश्यस्य वचन श्रुत्वा यथावृत्त स धर्मवित । पित्रे निवेदयामास लज्जुक्षाय महात्मने ॥
स तु लज्जुश्चर प्राह पुत्र प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७॥

विभीषण उवाच

श्रीमाधामो मम गुरुस्तस्य मान्य सत्त्वा मम । हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽभीतो गिरिर्महान् ॥५८॥

विप्र बोला—वैश्य । नित्य धर्म की प्रशंसा करते करते तुम इस दशा में प्राप्त हो गये हो कि तुम्हारा धन गया आल गयी और हाथ भी कटे । मित्र ! अब मैं जा रहा हूँ । किन्तु इतना कहे देता हूँ कि फिर तुम कभी ऐसा न भोगना ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—उसके जाने पर वैश्य चिन्ता करने लगा—हाय भगवान् ! एक धर्म में ही मैंने मन को लगाते हुए मुझ जितना कष्ट हुआ । निधन अथवा तथा हाथों से वंचित वणिक्थेष्ठ कुण्डल धर्म का ही स्मरण करते करते शोक को प्राप्त हो गया । इस प्रकार अनेक तरह की चिन्ता करते हुए वह निश्चेष्ट तथा निरुत्साह होकर शोक सागर में डूबते हुए धरती पर गिर पड़ा । शुक्लपक्ष की एकादशी को दिन के अन्त में तथा रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विभीषण पुत्र तथा राक्षसों से युक्त होकर वहाँ आते थे और गोदावरी में स्नान करके योगेश्वर की विधिपूर्वक पूजा करते थे । विभीषण का पुत्र वैभीषणि जो अपर विभीषण ही था वैश्य की ओर देखने लगा । परचात उस धर्म के वस्तु ने वैश्य का सब समाचार सुनकर अपने पिता महात्मा लक्ष्मण से निवेदन कर दिया । लवापति ने प्रेमपूर्वक गुणगाली पुत्र से कहा ॥५१ ५७॥

विभीषण बोले—मेरे गुरु श्रीमान् राम हैं । उन्हीं का प्रियपुत्र मेरा मित्र हनुमान् है । वही महान् पवन को ल आया था । पूरा समय वह वायव्य समस्त ओपधिया के आश्रयभूत पवन को ले आया था । पुन वाय

पुरा कार्यान्तरे प्राप्तं सर्वोपध्याश्रयोऽचलः । जाते कार्ये समादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९॥
 विशल्यकरणी चेति मृतसंजीवनीति च । तदाऽऽजीय महाबुद्धी रामायामिलपट्कर्मणे ॥६०॥
 निवेदयित्वा तत्साध्यं तस्मिन्वृत्ते समागतः । पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१॥
 तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन् । ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२॥
 गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः । अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३॥

वैभीषणिरुवाच

तामोपधौ मम पितदंशयाऽऽशु विलम्ब मा । परातिशमनावस्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तथेत्युक्त्वा ता पुत्रस्याप्यदंशयत् । इमे स्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां विच्छेद तत्सुतः ॥
 वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्त परहिते रताः ॥६५॥

वैभीषणिरुवाच

यनापतन्नगे चास्मिन्त वृक्षस्तु प्रतपवान् । तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय ॥
 तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वकं रूपमवाप्नुयात् ॥६६॥

सम्पन्न हो जाने पर वह उसे लेकर हिमालय पर चला गया । तब उसी महाबुद्धिमान् ने विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी नामक ओपधिया को लेकर अथवा काम करने वाले राम को समर्पित कर दिया और उन ओपधियों का गुण भी बतला दिया । पुनः कार्य सम्पन्न हो जाने पर हनुमान् उस पर्वत को लेकर देवपर्वत पर चला गया । तब उसी ओपधि को लेकर हरि का स्मरण करते हुए, वैश्य के हृदय में लगा दो । तब यह उदार बुद्धि वाता स्थित अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करेगा । अब हनुमान् वैश्य से जा रहा था तब विशल्यकरणी गोदावरी के तट पर उसी जगह गिर गयी थी जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं ॥५८-६३॥

वैभीषणि बोला—पिता जी ! शीघ्र वह ओपधि मुझे दिये ग योत्रिये । दूसरे की पीड़ा को शान्त कर देने से जितना कल्याण होता है, उतना (कल्याण) तीना लोक में और किसी से नहीं होता है ॥६४॥

ब्रह्मा बोले—त्रिभोषण ने 'टीर' कहकर पुत्र को वह ओपधि दिया दी । तब उगने पुत्र ने वैश्य पर स्नेह के कारण 'इमे'त्वा इमं मन्त्र से उन वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली । क्योंकि मत्स्यपुत्र दूसरे के ही कल्याण में निरत रहते हैं ॥६५॥

विभीषण बोले—इमपर्वत पर जो वह प्रतापी वृक्ष बिना है, उसकी शाखा लेकर इगने हृदय में लगा दो । उमरा सदा होते ही यह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वार्यं वैभीषणिरुदारधीः । तथा चकार चं सम्पक्काष्ठखण्डं न्यवेशयत् ॥६७॥
 हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत् । मणिमन्त्रौषधीनां हि वीर्यं कोऽपि न वृध्यते ॥६८॥
 तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन् । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम् ॥६९॥
 नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः । परिभ्रमन्नूपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०॥
 महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः । तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना ॥७१॥
 सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमोदृशम् । देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२॥
 वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा । तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३॥
 राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्युचोपयत् । अहर्निशमसौ वैश्यः श्रुत्वा धोपमयाब्रवीत् ॥७४॥

वैश्य उवाच

अह नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असशायम्

॥७५॥

ब्रह्मोवाच

तं वैश्य तरसाऽऽदाय महाराजे न्यवेशयत् । तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभूद्रूपात्मजा ॥७६॥
 ततः सविस्मयो राजा को भयानिति चाब्रवीत् । वैश्यो रामे यथावृत्तं न्यवेशयदशेषतः ॥७७॥

ब्रह्मा बोले—पिता का यह वचन सुनकर उदार चित्त वाले वैभीषणि ने उस लकड़ी के टुकड़े को लेकर लिये और एक टुकड़े को उसके हृदय में लगा दिया। हृदय में स्पर्श होते ही वह वैश्य नेत्र तथा हाथों से मुक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा औषधियों के प्रभाव को कौन जान सकता है। उसी काष्ठ-खण्ड को लेकर धर्म का स्मरण करते हुए उसने गोवावरी में स्नान किया और योगेश्वर हरि को नमस्कार करके पुनः काष्ठ-खण्ड धारण कर वही से प्रस्थान कर दिया। इतस्ततः भ्रमण करते हुए वह महापुर नाम से प्रसिद्ध एक राजधानी में पहुँचा। उस नगर में महाराज नाम से प्रसिद्ध एक महाबलवान् राजा रहता था। उसके कोई पुत्र नहीं था। एक कन्या भी थी तो नेत्रों से वधित। वही कन्या उसके पुत्र के स्थान पर थी। राजा ने नियम बियाए—जो कोई देवता या दानव या ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र या गुणवान् या निर्गुण व्यक्ति मेरी पुत्री को नेत्र प्रदान करेगा, उसी को मैं राज्य के साथ कन्या दूंगा। यह वैश्य दिनरात यह धोपणा सुनकर बोला ॥६७-७४॥

वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री को नेत्र दूंगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—उस वैश्य को लेकर वरुण राजदूत ने महाराज से निवेदन किया। उस काष्ठ का स्पर्श होते ही राजकुमारी नेत्रमुक्त हो गई। तब राजा ने विस्मयपूर्वक उससे पूछा—‘आप कौन हैं?’ वैश्य ने राजा से सारी घटना निवेदन कर दी ॥७६-७७॥

वैश्य उवाच

ब्राह्मणानां प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा । दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविधभूरिदक्षिणं ॥
दिव्योपधिप्रभावेन मम सामर्थ्यमोदशम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवच श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपति ॥७९॥

राजोवाच

अहो महानुभावोऽयं प्रायो वृन्दारको भवेत् । अन्ययन्तादुगन्धस्य सामर्थ्यं वृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु ता कन्या प्रदास्ये राजपूविकाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इति सकल्प्य मनसि कन्या राज्यं च दत्तवान् । विहारार्थं गत स्वैरपर खेदमुपागत ॥८१॥
न मित्रेण विना राज्यं न मित्रेण विना सुखम् । तमेव सततं विप्रं चिन्तयन्वैश्यनन्दन ॥८२॥
एतदेव 'सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम् । कृपाद्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि ॥८३॥
महानूपो वनं प्रायात्स राजा मणिकुण्डल । तस्मिन्नासति राज्यं कदाचिद्गीतमद्विजम् ॥८४॥
दृष्ट्वा धूतकं पार्श्वपश्यन्मणिकुण्डल । तमावाप द्विजं मित्रं पूजयामास धर्मवित् ॥८५॥
धर्माणां तु प्रभावः स तस्मै सर्वं स्यवेदयत् । स्तूपयामास गङ्गायां स सर्वाघनिवृत्तये ॥८६॥

वैश्य बोला—ब्राह्मणों की कृपा से और धर्म तपस्या दान दिव्य औपधि तथा विविध दक्षिणा सम्पन्न पना के प्रभाव से मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुआ है ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य का यह बचन सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ ॥७९॥

राजा बोला—अहा ! यह महानुभाव प्रायः दक्षता हाया । अन्यथा दूगर मगना सामर्थ्य कदा दशा है ? इमल्लिखे इमी को राज्यगन्ति कन्या प्रदान करूँगा ॥८०॥

ब्रह्मा बोले—मैंने मन से सङ्कल्प करके राजा ने उक्त किया तथा राज्य दे दिया । जब वह विहार करने के लिए गया तो उक्त वक्ता मत्त हुआ । वह माधन ल्या—'विना मित्रं न भूयस्य राज्यं ही गृहाना है न सुख ही ।' वैश्यपुत्र उमा ब्राह्मण की मन्त्र विज्ञता करता था । मगार में कुलीना का यद्वा लक्षण हाया है कि वह राजपूत्री के ऊपर श्री गर्व व कृपा करने रहने है । मन्त्राज्ञा वन में चला गया । मणिकुण्डल हा अत्र राज्य-चाप गमाल्या था । राज्य पर आगमन करने किसी समय मणिकुण्डल ने उमा गौतम नामक द्विज को दगा क्रियवा घन पारी ऊँचाविया न हूत कर दिया था । उक्त ब्राह्मण मित्र का लाकर घमवत्ता वैश्य ने उमकी पूजा की और धर्मों का मन्त्र प्रभाव उमे द्रव्य ल्या । अगिन् पाप निवृत्ति के लिए उमने द्विज का यमा मरना करवाया । गौतम,

तेन विप्रेण सर्वस्तैः स्वकीयेर्गोत्रजैर्वृतः । वेश्यैः स्वदेशसंभूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७॥
 वृद्धकीशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके । यज्ञानिष्ठावा'सुरान्भूज्य ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः । चक्षुस्तीर्थं सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम् ॥
 मनःप्रसादजननं सर्वदुर्भावनाशनम् ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

गीतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अयंकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थं माह्व्यातमश्वमेधफलप्रदम् । स्नानदानमहादेववासुदेवार्चनादिभिः ॥१॥
 महेश्वरो यत्र देवो यत्र शाङ्गधरो हरिः । प्रमतिर्नाम राजाऽऽसीत्सर्वभौमः प्रतापवान् ॥२॥

अपने यज्ञमा स्वदेशोत्पन्न वैश्या, गीतम के बान्धवों तथा श्रेष्ठ याज्ञिकों के साथ योगेश्वर के समीप यज्ञ तथा
 देवताओं की पूजा करके मणिबुड्डल ने स्वर्ग प्राप्त किया । तब स लेकर उस तीर्थ का नाम मृतसंजीवनी पड़ा ।
 योगेश्वर सहित चक्षुस्तीर्थ के स्मरण करने से पुण्य, मन की प्रसन्नता तथा समस्त दुर्भावनाओं का नाश होता
 है ॥७१-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ-माहात्म्यकथन-प्रसंग म चक्षुस्तीर्थ आदि
 का वर्णन नामक एक ती सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उर्वशी नामक तीर्थ म स्नान दान शिव और विष्णु की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल
 प्राप्त होता है । यहाँ नाकर तथा शाङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले हरि रहते हैं । (पूज वाल में) प्रमति नामक

१ध च. ०द्वा प्रजा भूज्य । २ध ०र्थ च यो० । ३इ ०र्वदुस्त्वित्ना० । ४ध च मुनेश्वरो । इ मुद्देश्वरो ।

रिपुञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम् । तत्रापन्नयत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद ॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः सत्रिपयम्भः । न हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत् ॥४॥

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः क्रीडितैरलम् । दिशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह ॥५॥

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिश्चो निशम्य प्रमतिनृपः । तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे ॥
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वाप्य सुरराष्ट्रपमब्रवीत् ॥६॥

इन्द्र उवाच

उर्वंश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मखैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गवितः । उर्वंशीं निष्कृतिं मन्ये त्व राजर्निक मु' मन्यसे ॥८॥
यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतकृतो । 'प्राहेन्द्रं' प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यं वक्षिण करम् ।
सर्वं सशर धर्मं देहि' (मन्ये) दीध्यामहे' वयम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तामेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्यतुः । प्रमतिजित्वास्तत्र उर्वंशीं दैवतस्त्रियम् ॥१०॥

एक प्रतापी तथा वज्रवर्ती राजा रहता था । वह एक बार, शत्रुओं को जीतकर देवताओं से घिरे हुए इन्द्रलोक को गया । नारद । अहाँ उसने मरुद्गण के साथ इन्द्र को देखा । हाथ में पाशा लिये हुए इन्द्र को देखकर क्षत्रियभेष्ट प्रमति ने हँस दिया । हँसते हुए प्रमति को देखकर इन्द्र ने उससे कहा ॥३॥

इन्द्र बोले—महाबुद्धिमान् ! देवलोक भ मरुता के साथ मैं बहुत खेल गया । आप समस्त दिशाओं को जीत कर स्वर्ग आये हैं । इसलिये अब आप मेरे साथ क्रीडा करें ॥५॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने सत्रय वचन को सुनकर राजा प्रमति ने इन्द्र से कहा—'तो इसमें आप बाजी क्या लगाने हैं ?' प्रमति की बात सुनकर इन्द्र ने कहा ॥६॥

इन्द्र बोले—उर्वंशी की ही मैं बाजी लगाता हूँ, जो अस्त्र यज्ञ के करने से मिलती है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र की यह बात सुनकर प्रमति खँसे में बोला—'उर्वंशी की बाजी मुझे स्वीकार है।' तब इन्द्र ने पूछा—'गजन् ! आप क्या बाजी रखने हैं ?' उसने कहा—'इन्द्र आप जा बह मैं वहीं रखने के लिये तैयार हूँ।' इन्द्र ने कहा—'मैं यह चाहता हूँ कि आप वज्र, बाण तथा वनस्पति अपने दाहिने हाथ को रखें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वे दाना इस तरह बाजी रखकर जुआ खेलने लगे, जिसमें प्रमति ने देवान्ना उर्वंशी को जीत लिया । उसे जीतकर प्रमति ने अधिमानपूर्वक इन्द्र से कहा ॥९॥

प्रमतिरुवाच

निष्कृत्य पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो

॥११॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमयो यच्चं जंत्रं सरयमुत्तमम् । दीव्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्या तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान् । जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसन्तदा ॥१३॥

एतस्मिन्नन्तरे प्रायादभजस्तत्र नारद । विश्वावसुरिति ख्यातो गन्धर्वाणां महेश्वरः ॥१४॥

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजस्तया दीप्यामहे त्वया । तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा ॥१५॥

तां जित्वा नृपतिर्मां स्याद्देवेन्द्रं प्राह कश्मलम् ॥१६॥

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वाऽपि न त्व जेता कथंचन । महेंद्र सततं तस्मादस्मद्वाराधको भव ॥१७॥

यद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव

ब्रह्मोवाच

तथा प्राहोर्वंशीं गर्वाद्गच्छ क्रमं करी भव । उर्वंशीं प्राह देवेषु यथा वर्ते तथा त्वयि ॥१८॥

वर्तेषु सर्वभावेन न मां धिक्कर्तुमर्हसि

प्रमति बोला—अगवन् । अब दूसरी बाजी लयाइये ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देव के योग्य जयशील क्या तथा उत्तम रथ को मैं धर्न पर रखता हूँ । राजन् । आपने हाथ को भी इग बार मैं रखवाना नहीं चाहता हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने मणिभूषित दूसरे पासे लेकर फेंके और इन्द्र से हँसकर कहा—'मेरी जीत हुई।' नारद । इसी बीच ब्रह्मा देखने में निगुण गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु वहाँ आ पहुँचा ॥१३-१४॥

विश्वामसु ने कहा—'राजन् । गन्धर्व विद्या की बाजी रखकर मैं आपने ब्रह्मा खेलना चाहता हूँ।' राजा ने स्वीकार कर पाया वेंचा और कहा—'मेरी जीत हुई।' प्रमति ने दोनों का जीतकर मूर्खतावश इन्द्र से कहा ॥१५-१६॥

प्रमति बोला—महेंद्र । न युद्ध में और न जुए में तुम किसी तरह मुझे जीत गये । इसलिये तुम सतन मेरी पूजा किया करो और यह भी बगलाओ कि तुम इन्द्र जैसे बन गये ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—उसी तरह उर्वंशी से भी उगन गर्व से कहा—'तुम जाओ और मेरी नौपरी करो।' उर्वंशी ने उगने कहा—'मैं जंग देवताओं के साथ व्यवहार करती हूँ, उसी तरह आपसे भी साथ रहूँगी । आप मुझे पट्टकरिये पद' ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्वादृश्यं सन्ति चारिकाः । त्वं किं विलज्जसे भद्रे^१ गच्छ कर्मकरी भव ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा । चित्रसेन इति ख्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली ॥२०॥

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजन्सर्वेणानेन भूपते । राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोत्तमौ । दीव्येतामभिसंरक्ष्यौ चित्रसेनोऽजयत्तदा ॥२२॥
गान्धर्वैस्त महापाशैर्बन्ध नृपतिं तदा । चित्रसेनोऽजयत्सर्वं मुर्वसीमुल्लयत्. पणैः ॥२३॥
राज्यं कोशं बलं चैव यदन्यद्वसु किञ्चन । चित्रसेनस्य तज्जातं यदासीत्प्रमतेर्धनम् ॥२४॥
सा जित्वा प्रमतिः प्राह संरम्भात्तं शतक्रतुम् ॥२५॥

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृतं पापं वव वा बद्धो महामतिः । कथमेध्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तमः । मधुच्छन्दा जयादेवं^२ प्रमतेर्वर्तनं तदा ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने उर्वशी से कहा—‘भद्रे ! तुम्हारी जैसी भैयै अनेक परिचारिकाये हैं । तुम क्यों लज्जा करती हो ? जाओ, मेरा काम करो ।’ राजा की यह बात सुनकर गन्धर्वों के स्वामी विश्वावसु के पुत्र बन्वान् चित्रसेन ने कहा ॥१९-२०॥

चित्रसेन बोला—राजन् ! मैं सब कुछ की बाजी लगाकर आप से जूझा खेलना चाहता हूँ । मैं अपने तथा आपके राज्य एवम् जीवन की बाजी लगाना चाहता हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—राजा ने कहा—‘ऐसा ही सही ।’ फिर चित्रसेन और राजा न खेलना आरम्भ कर दिया । चित्रसेन की विजय हुई । तब उसने गान्धर्व पाश में राजा को बाँध दिया । चित्रसेन ने बाजी में उर्वशी आदि सबको जीत लिया । प्रमति का राज्य कोश, सेना, धन आदि जो कुछ भी था, सबको चित्रसेन ने जीत लिया । तब प्रमति के पुत्र ने जो विलकुल बालक ही था, अपने पुरोहित विश्वामित्र के पुत्र महापण्डित मधुच्छन्दा से पूछा ॥२२-२५॥

प्रमति का पुत्र बोला—मेरे महानृद्धिमान् पिता ने कौनसा पाप किया ? कहीं बाँधे गये ? कैसे पाश से विमुक्त होकर अपने स्थान पर आवेंगे ? ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—सुमति के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मधुच्छन्दा ने ध्यान करके प्रमति के बारे में कहना आरम्भ किया ॥२७॥

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोकं तव पिता बद्ध आस्ते महामते । कंतवर्बहुदोषंश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥२८॥
 यो याति कंतवसभा स चापि क्लेशभागभवेत् । द्यूतमद्यामिषादीनि व्यसनानि नृपाः ॥२९॥
 पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि । एकैवमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च ॥३०॥
 यानासनाभिलाषाद्यैः कृतैः कंतवर्वातिभिः । कुलीनाः कलुषीभूताः किं पुनः कितवो जनः ॥३१॥
 कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा । स चापि कितवः पापो योऽपि क्षीय तप्यते ॥३२॥
 तां दृष्ट्वा विग्नानन्दो नित्य वदति पापकृत् । अहो संसारचक्रेऽस्मिन्मया तुल्यो न पातकी ॥३३॥
 न किञ्चिदपि यस्याऽऽस्ते लोके विषयजं सुखम् । लोकद्वयेऽपि न सुखो कितवः कोऽपि दृश्यते ॥३४॥
 विभाति च तथा नित्य लज्जया दग्धमानसः । गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽदिति ॥३५॥
 अकंतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम् । कृपिगोरक्ष्यवाणिज्यमपि कुर्यान्न कंतवम् ॥३६॥
 यस्तु कंतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति । धर्मार्यकामाभिजनैः स विमुच्येत पौरुषात् ॥३७॥
 येऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम् । तस्मात्किं कुर्महे वत्स यदुक्तं ते विधीयते ॥३८॥
 विधातृविहितं मार्गं को नृपाऽप्येतं पण्डितः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधतो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरब्रवीत्

॥४०॥

मधुच्छन्दा बोले—महाधीमान् । देवलोक में तुम्हारे पिता बंधे हुए हैं । अनेक दोषों से युक्त द्यूतकर्म (जुआ) करने से वे राज्यभ्रष्ट हो गए । जो कोई भी द्यूतसभा में जाता है, वह अवश्य दुःख पाता है । नृपपुत्र । द्यूत, मद्य, मांस आदि पापरूपी व्यसन पापिया के लिये ही हैं । इनमें से एक भी अनर्थ, पाप तथा नरक के लिये पर्याप्त है । जुआरिया के साथ चलने बैठने तथा वार्तागप करने से कुलीन व्यक्ति भी दूषित हो जाते हैं, और जो जुआरी ही हैं, उसने विषय में तो कहा ही क्या ? जुआरी की जो स्त्री होनी है वह सदा अनुताप करती है । वह पापी जुआरी की स्त्री को देखकर परचात्ताप करता है । स्त्री का देखकर वह पापी आनन्दगून्व होकर बहने लगता है—‘हाय ! इस संसार-चक्र में भरे जैसा पानरी कोई नहीं है ।’ लोक में ऐसा कोई नहीं है, जिस विषयजन्य सुख नहीं मिलता है । पर जुआरिया के लिए दोनों लोक भी मुक्त नहीं हैं । वह नित्य लज्जा से दग्धचित्त बना रहता है और धर्म तथा आनन्द से गून्व होकर मदमत्त ही तरह घूमता है । द्विजानिया के लिये छल-रहित वृत्ति ही प्रशस्त मानी गई है । छत्र में खेती, गोरक्षा तथा व्यापार भी नहीं करना चाहिये । जो छल-वृत्ति से धन उपार्जन करना चाहता है, वह धर्म अर्थ, नाम, कुटुम्ब तथा पुण्यत्व से वंचित हो जाता है । वेद में भी जो वर्म दूषित माना गया है, वही तुम्हारे पिता के किया । वत्स ! इगलिष हसलोग क्या करें ? तुम जो कहो, वही कर दो । मला, कौन विद्वान् विधाता के मार्ग का उत्लघन कर सकता है ? ॥२८-२९॥

ब्रह्मा बोले—पुण्येहित का यह वाक्य सुनकर सुमति बोला ॥४०॥

सुमति रुवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुनः राज्यमवाप्नुयात्

॥४१॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत्

॥४२॥

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शंकरम् । 'अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम् । पूजयायास शंभुं च तपस्तेपे यतव्रतः ॥४४॥

सहस्रमेक वर्षाणां घट्टं पितरमात्मनः । मोक्षयामास देवेभ्यः पुनः राज्यमवाप सः ॥४५॥

शिवे (हरी) शाश्वो मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतास्त्वकात् । अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छ-

तप्रतोः ॥४६॥

शाम्ब वैष्णव चैव उर्वशीतीर्यमेव च । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृतं चेति विभूतम् ॥४७॥

शिश्नशिशुसंस्मृतः प्रसादादाप्यते न किम् । तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम् ॥

पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उर्वशीपादतीर्थवर्णनं नामैकसप्तत्यधि-

कशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सुमति ने कहा—क्या करने से पिता प्रमति पुनः राज्य प्राप्त करे ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—फिर ध्यान करके मधुच्छन्दा ने सुमति से कहा ॥४२॥

मधुच्छन्दा बोले—वत्स 'तुम गोदावरी जाओ और वहाँ शंकर, अदिति, वरुण तथा विष्णु की पूजा करो ।

तब तुम्हारे पिता पाश से मुक्त हो जायेंगे ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—'अस्तु' कहकर सुमति ने शीघ्र ही गंगा के लिये प्रस्थान कर दिया । वहाँ पहुँच कर) वह गंगा को प्रणाम कर विष्णु तथा शंकर की पूजा करके निवमपूर्वक तप करने लगा । एक हजार वर्षों तक तपस्या करके उसने अपने पिता को देव-बन्धन से मुक्त किया । तब प्रमति ने अपने पुत्र से पुनः राज्य तथा शिव एवम् विष्णु की भक्ति प्राप्त की । वह गन्धर्व-विद्या को प्राप्त कर दन्त्र का प्रियपात्र बना । तब से उस तीर्थ का नाम शाम्ब वैष्णव उर्वशीतीर्थ एवम् कृतवतीर्थ भी पड़ा । शिव विष्णु तथा भगव की कृपा से क्या नहीं प्राप्त हो सकता है ? वहाँ स्नान तथा दान करने से बहुत पुण्य, पाप तथा बन्धन से मुक्ति और समस्त दुर्गतिषो का नाश होता है ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में तीर्थमाहात्म्य-कथन-असंग में उर्वशी आदि तीर्थ वर्णन नामक एक

श्री एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सामुद्र तीर्थमाख्य सर्वतीर्थफलप्रदम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥
 विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी । लोकानामुपकारार्थं प्रायात्पूर्यार्णव प्रति ॥२॥
 आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता भया । क्षिरसा च घृता देवी शम्भुना परमात्मना ॥३॥
 विष्णुपादात्प्रसूता सा ब्राह्मणेन महात्मना । आनीता मर्त्यभवन स्मरणादधनाऽमोम् ॥४॥
 गुरोर्गुरुतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत् । या यद्या जगतामोशा ब्रह्मेशार्चनं मरुता ॥५॥
 तामह प्रतिगच्छेय मो चेत्स्याद्वर्णवृषणम् । आगच्छ त महात्मान यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६॥
 न तस्य कोऽपि प्राप्ताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयो । एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्बिनयावित ॥
 कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेद सरितापति ॥७॥

सिन्धुरवाच

'रसात्तलगत वारि पृथिव्या यत्नभस्तले । तन्मा मेवात्र विशतु माह वक्ष्यामि किञ्चन ॥८॥

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सामुद्रतीर्थ समस्त तीर्थों का फलदायक है। उसका स्वरूप-वर्णन मैं कहूँगा। नारद ! आप ध्यान से सुनिये। गौतम सत्यक होकर अतिलपापनाशिनी गंगा को उपकार के लिये पूब समुद्र की ओर चल पड़ी। आती हुई उस देवनी को मैं कमण्डलु में धारण कर लिया और परमात्मा बनकर न उस अपन गिर पर अवस्थित किया। विष्णु के चरण से निकली हुई उस पापनाशिनी देवी को महात्मा ब्राह्मण मृदुलाव में ले आया। उस सब-पटा देवी को देखकर समुद्र अपने वसव्य की चिन्ता करने लगा कि जो भगवती सत्तार का पूजनीया तथा ब्रह्मा गिर आदि देवताओं की प्रणम्या है उससे मुझ सगम करना पड़ना। इसमें घमण्य तो नहीं है क्योंकि जो मोहवर्ग आते हुए महात्मा का सत्कार नहीं करता है उस पापा का सरसकट दोना लोक मैं बर्द नहीं हूँगा है। एसा सोचकर मानो नम्रता की मूर्ति धारण कर रत्नाकर ने हाथ जोड़कर गंगा से कहा ॥१॥ ७॥

समुद्र बोला—गंगातल में पृथिवी पर तथा आकाश में जो जल है वह मुझमें ही प्रविष्ट है। (जब इतना ही) और मैं कुछ नहीं हूँगा। मैं रत्न अमृत पवत रागस देवता तथा दूसरे जीवों को धारण करता हूँ। मेरे

मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्संधारयाम्यहम् ॥१॥
 ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा। ममाक्षयं न किमपि विद्यते सचराचरे ॥१०॥
 महत्पम्पागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिग्रहो निरयं तु समाप्नुयात् ॥११॥
 न तान्मे विभ्रतः खेदो विनाऽप्यस्त्यपराभवात्। कितु त्वं गौरवेण धामतिरिक्ता रत्नरत्नम् ॥१२॥
 प्रवीमि देवि गङ्गे मां त्वं साम्यात्संगता भव। नैकरूपामह शक्तः संगन्तुं बहूधा यदि ॥१३॥
 सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बहूधा तद्विचारये ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५॥
 सप्तर्षीणां च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः। भर्तुभिः सहिताः सर्वा अनय स्वं तदा त्वहम् ॥१६॥
 अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता। तयेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिश्च (श्चक्र) विभिवृत्तः
 (ताः) ॥१७॥

आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत। सा चैवं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८॥
 सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्। तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९॥

मीतर लक्ष्मीयुक्त विष्णु सदा शयन करते हैं। ससार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मुझसे अस्वाम्य हो। महान् व्यक्त के आने पर जो अभिमान से उठता नहीं है, वह धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। उन चीजों को धारण करने से मुझे खेद नहीं होता है, यदि खेद होता है तो केवल एक अवस्थ द्वारा पराजय से। किन्तु तुम अपनी महत्ता के कारण इनसे अतिरिक्त हो। इसलिये, देवि! गये, मैं कहता हूँ कि तुम समान होने के कारण मुझसे सगम करो। तुम जब तक एक रूप में रहोगी तब तक मैं तुमसे सगम करने में असमर्थ रहूँगा। पर यदि तुम अनेक रूप धर कर साम करोगी तो मैं सगम कर पाऊँगा, अन्यथा नहीं। गये। सोचो, जिससे कि तुम अनेक रूप बनाकर सगम कर सकी ॥८-१४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए बल के स्वामी समुद्र से उस गौतमी देवी गया ने कहा—‘तो मेरी यह बात करो कि सप्तर्षियों की अरुन्धती आदि जो भार्याये है, उनको पतियों के सहित ले आओ। तब मैं सीमित हो जाऊँगी, जिससे तुम्हारे साथ मेरा सगम हो जायगा।’ ‘ऐसा ही सही’ कहकर समुद्र ऋषि पतियों सहित सप्तर्षियों की भार्याओं को ले आया। तब गया सात भागों में विभक्त हो गई। वही यह गौतमी गया है, जो सात भागों में बँटकर समुद्र में मिल गई। तब सप्तर्षियों के नाम से सात गगार्यें हुईं। वहाँ, स्नान, दान श्रवण तथा पाठ करने से या स्मरण

स्मरणं चापि यदेभक्त्या सर्वकामप्रद भवेत् । मास्माद-यत्परं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानी भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरोसमुद्रागमनवर्णनं नाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

• गौतमीमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋषिसत्रमिति श्यातमूपय सप्त नारद । निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वर शिव ॥१॥
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपिबुद्धितम् । शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२॥
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामूपय सप्त नारद । वासिष्ठी शक्तिण्यो स्याद्वैश्वामिनी तदुत्तरा ॥३॥
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा । भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा ॥४॥
जामदगनी तथा चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा । तं सर्वं ऋषिभिस्तत्र यदुमिष्टं महात्मभि ॥५॥

करने से भी समस्त कामनायें पूरी होती हैं । पापा को नष्ट करने में और मुक्ति मुक्ति तथा मनकी प्रसन्नता देने में इस समुद्र से बड़कर तीनों लोग में कोई तीर्थ नहीं है ॥१५२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में नावमाहात्म्यकथनप्रसंग में साती गयाआ व समुद्र मिलन वर्णन
नामक ११ वीं बहतरवा अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद । उस तीर्थ का नाम ऋषिसत्र है जहाँ तप करने के लिए सात ऋषि अवस्थित हुए थे और जहाँ भीमेश्वर निवस रहते हैं । वहाँ देवर्षियों और पितरों द्वारा जो वृत्तान्त हुआ था उसे मैं बतलाऊंगा । इस अभिज्ञ कामनादायक एवम् पवित्र वृत्तान्त को ध्यान से सुनिये । नारद । सप्तर्षियों ने गंगा को सात भागों में विभक्त कर दिया । जिस दिशा में वासिष्ठी हुई और उत्तर में वैश्वामिनी । वामदेवी त मरी हुई और मध्य में पवित्र गौतमी हुई । इनके अनिरन्त भारद्वाजी आनयी एवम् जामदगनी हुई । इस प्रकार गया सात भागों में बँट गई । वहाँ उन महात्मा तथा भविष्यदाँ सप्तर्षियों ने महासत्र नामक यज्ञ करना आरम्भ किया । इसी बीच देवताओं

निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदक्षिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रियुः॥६॥
 विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि॥
 विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७॥

विश्वरूप उवाच

ध्रुव सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः॥
 यतर्वा सपसा वाऽपि मुनयो वस्तुमर्हय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना। ॥९॥

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च। प्रमाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम्॥१०॥
 सततं च कारणं कर्ता ततश्चाग्न्यप्रकोस्तिम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्दुधा॥११॥
 कर्मणा कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति। भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माधितं फलम्॥१२॥
 कर्मापि द्विविधं क्षेत्रं क्रियमाणं तथा कृतम्। कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते॥१३॥
 तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्। यद्ब्रूभावावपते जन्तुः कर्म कुर्वन्निवचक्षणः॥१४॥
 तद्भावतानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनमा यदि॥१५॥
 अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः। तस्मात्तपो व्रतं ध्यानं जपयज्ञादिकाः क्रियाः॥१६॥

का प्रबल शत्रु विश्वरूप मुनियो के यज्ञस्थल में आ गया। ब्रह्मचर्य तथा तपस्या से विधिपूर्वक मुनियो की जमरा आराधना करके उसने तन्त्रता के साथ उनसे प्रश्न किया ॥१७॥

विश्वरूप ने कहा—मेरी स्वस्थता के कारण जिस उपाय से—यज्ञ या तप करने से—बलवान् एवम् देवताओं से भी अजेय पुत्र मुझे उत्पन्न हो, वह आप लोग बतलायें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—उनमें से महाबुद्धिमान् तथा महामनस्वी विश्वामित्र ने कहा ॥९॥

विश्वामित्र बोले—तात ! कर्म से अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणों में कर्म ही प्रथम कारण माना जाता है। उसके बाद कारण, कर्ता तथा दूसरी वस्तु नहीं आती है। विद्वान् लोग उपादान कारण एवम् बीज को कर्म नहीं मानते हैं। कारणों के आधिक्य होने पर ही कर्मों में कारणत्व माना जाता है। कर्म के दो फल होते हैं—एक माय और दूसरा जमाय। इसलिये कर्म-फल कर्म के अधीन है। कर्म भी दो प्रकारका माना गया है—एक क्रियमाण और दूसरा कृत। कर्तव्य क्रियमाण का साधन कहा जाता है। कर्तव्य की भावना कर्म तथा उसकी सिद्धि में कारण होती है। विद्वान् अनुष्य जिस भावना से कर्म करता है उसी भावना के अनुरूप उसे फल मिलता है। जो बिना भावना के विधिपूर्वक कर्म करता है, उसे अपनी भावना के प्रतिकूल फल मिलता है। इसलिये तप,

कर्मणस्त्यनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः । तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७॥
 भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा । तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८॥
 भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः । तस्मादिच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
 पञ्चात्मकमपि कर्तव्यं 'फलदाताऽपि तद्विधम् । फलं ददाति फलिनां फले यदि प्रवर्तते ॥२०॥
 कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः । तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१॥
 भावात्प्रारम्भे तद्वद्भावं फलमवाप्स्यते । धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२॥
 भावस्थित भवेत्कर्म मुक्तिदं व्यवहारणम् । स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवैह परतः च ॥२३॥
 फलानि विविधान्यासु करोति समतानुगम् । एक एव पदार्थोऽसौ भावर्भेदः प्रवृत्तयते ॥२४॥
 क्रियते भुज्यते चापि तस्माद्भावो विशिष्यते । दयाभावं कर्म कुट्ट दयेऽस्ति समवापयसि ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वार्यं विद्वामित्रस्य धीमतः । तपस्तपसा बहुकालं तामसं भावमाधितः ॥२६॥
 विद्वद्रूप कर्म भीम चकार सुरभीषणम् । पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७॥
 आत्मकोषानुसारेण भीम कर्म तथाऽकरोत् । भूषणे कुट्टस्ताते तु भीषणे जातवेहसि ॥२८॥

व्रत, दान, जप, यज्ञ आदि क्रियायें भावना के अनुरूप कर्मफल देती हैं । अतः भावना के अनुसार ही कर्म का फल प्राप्त होता है । भाव तीन प्रकार का होता है—एक सत्त्विक दूसरा राजस और तीसरा तामस । फल कर्म तथा भावना के अनुसार मिलता है । कर्मों की स्थिति विचित्र है । इसलिये विद्वान् मनुष्य इच्छा के अनुसार भाव करे । पञ्चान् कर्म भी करता चाहिये । फलदानां भी कर्मकर्ता को भावना के अनुरूप ही फल देते हैं । वस्तुतः कर्मकर्ता अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है । वही कर्म उपादान आदि कारणों और सत्त्व आदि गुणों के भेद के कारण भाव से प्रारम्भ होता है । और उसी तरह भाव से फल प्राप्त होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण कर्म ही है । भावनानुसृत कर्म मोक्ष भी देता है और बन्धन का कारण भी होता है । अपनी भावना के अनुसार किया गया कर्म इस प्रकार म तथा परलोक में गीत हो विविध फलों को देता है । एक ही पदार्थ भावा के भेद से भिन्न हो जाता है । अर्थात् एक ही पदार्थ बताया जाता है और ग्राह्य भी जाता है । इसलिये भाव विशिष्ट माना गया है । जैसी भावना स कर्म करेगे वैसा फल पात्राण ॥१०-३५॥

यद्वा बोले—भीमान् विद्वामित्र मुनि की यह बात सुनकर विद्वद्रूप ने तामस भाव का अवलम्बन लेकर चित्तान्तक तप किया और देवताओं का डराने वाला भयानक कर्म किया । ऋषिगण उसका कर्म दसत से और निम्न उगे माना भी करते थे । फिर भी अपने श्रेष्ठ के अनुसार वह भयानक कर्म करता ही रहा । वह भयानक कुट्ट

१५ फल तत्रापि । २४ ड. फलेच्छेय । च फलेच्छीव । ३५ य च अन्याह क० । ४५. समतानुगम् ।

भोग्यं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गृहाणयम् । एव तपन्तमालक्ष्य धाम्नात्ताशरीरिणी ॥२९॥
 जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्रं व्यजीयत । ध्यात्वाऽऽत्मानं विश्वरूपो जह्याज्जातवेदति (?) ॥३०॥
 स एवेन्द्र स वरुण स च स्यात्सर्वमेव च । त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हृतवान्वृजिनोद्भव ॥३१॥
 वृत्र इत्युच्यते वेदे ॥ चापि वृजिनोऽभवत् । भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितु ॥३२॥
 सृजयशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते । विररामेति सकीर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वरा ॥३३॥
 भीमेश्वरं नमस्कृत्य जगत् स्वस्वमयाऽऽश्रमम् । विश्वरूपो महामोमो भीमकर्मा तयाकृति ॥३४॥
 भीमभाषो भीमननुष्णः प्रसीदमान जुहाव ह । तस्मादभीमेश्वरो देव पुराणे परिपठ्यते
 तत्र स्नानं च दानं च भुञ्जितं च नात्र सशय ॥३५॥

इति पठति शृणोति धश्च भवत्या, विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम् ।

जगति विदितमशेषपापहारिस्मृतिपदशरणेन भुञ्जितदश्च (?) ॥३६॥

गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थवात्री

सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यन्मांश्चुरांश्च समनुप्रविष्टा ॥३७॥

स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसगमे य ।

उद्धृत्य तीर्थाभिरयादशेषात्स पूर्वजान्याति पुरपुरारे ॥३८॥

मे भयकर अग्नि मे हवन करता था और हृदयस्थित आत्मा का दारुण पुरुष के रूप में ध्यान करता था । इस प्रकार
 ता ८१ ने दृष्ट ॥३४॥ को देवकर आकाशवाणी ने कहा— शिव के बिना वृत्र ने आत्मा को नहीं जीता । विश्वरूप
 ०२४ हो अग्नि ने आत्मा को आहुति देगा । वही इन्द्र वही वरुण और वही सब कुछ है । वृजिन के पुत्र ने आत्मा को
 छोड़कर जटामात्र की आहुति दी थी । वेद में जो वृत्र कहा गया है वह वृजिन से इतर नहीं है । सत्तार के स्वामी
 भीम पुरुष की महिमा को कौन जानता है ? भयकर भाव वाले विश्वरूप ने भयकर शरीर का ध्यान करके आत्मा
 की आहुति दी । इसलिये भीमेश्वर देव पुराणों में पढ़ जाते हैं ॥ वहाँ स्नान तथा दान करने से निःसदेह मुक्ति
 मिलना है ॥२९ ३५॥ जो भयान्ध देवताओं के स्वामी तथा जगदविदित भीम रूप वाले शिव के इस आस्थान का
 भ्रमण तथा पाठ करेगा उसके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे और मोक्ष मिलेगा । गोदावरी सब जगह अशेष-पाप-हारिणी
 तथा मोक्ष देने वाली है । पर उस जगह तो और भी फल देती है जहाँ वह समुद्र में प्रविष्ट हुई है । जो घमर्त्ता
 मनुष्य गयासागरसगम में स्नान करता है वह भयकर नरक से पितरों का उद्धार करके शिवलोक को जाता है ।

१३ ०१ तव पुत्रोऽभ्यजायत । तथाऽऽत्मा ० । २४ च ० क्त्वाऽऽत्मनो ज० । ३१ ० टामोर्लि
 ह्वनाद्वृजिनोऽभवत् । ४४ ०२ ह्वनाद्वृजिनोऽभवत् । वृ० । च ०३ ह्वनाद्वृजिनोऽभवत् । वृ० ।
 ५ क वेदे । ६ देव । ६४ ० पि वृजिनोऽभ्य० । च ० पि वृजिनोऽभ्य० । ७१ ० रणमुनिदश्च पशाम् ।
 गो० । ८४ ० ति पद मुरा० ।

चेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्सल्लु भीमनाथः ।

दृष्टे हितस्मिन्न पुनर्विजन्ति, शरीरिणः संसृतिमुग्रदुःखाम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम
त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गंगासागरसगमवर्णनम्

ब्रह्मोपाच

सा संगता पूर्वमपापतिं त, गङ्गासुराणामपि वन्दनीया	।
देवेश्च सर्वैरनुगम्यमाना, सस्तूयमाना मुनिभिर्महद्भिः	॥१॥
घसिष्ठजाबालिसयाज्ञबल्क्यवृत्स्वङ्गिरोदकमरीचिविष्णवाः	।
शातातपः शौनकदेवरातभृगुवग्निवेश्यात्रिमरीचिमुह्याः	॥२॥
सुधूतपापा मनुगौतमादयः, सकौशिकास्तुभ्यरुपवंताद्याः	।
अगस्त्यमार्कण्डसिप्पलाद्याः, सगलवा योगपरायणाश्च	॥३॥

वेदान्त से ज्ञानने योग्य एवम् उपासना करने योग्य जो ब्रह्म है वह माझात् भीमनाथ है । उससे दर्शन हा जाने पर मनुष्य उग्र दुःख देने वाले इस ससार से पुनः प्रवेश नहीं करते हैं ॥३६-३९॥

योगेश्वरमहापुराण के तीर्थमाहात्म्य-कथन प्रसंग में ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थ-वर्णन नामक
एक सौ तत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥१७३॥

अध्याय १७४

गंगा और सागर के सगम का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिसरी देवगण वन्दना करने हैं मुनि तथा भगवद्वर्ण स्तुति करते हैं और समस्त देवता अनु-
गमन करने हैं, वह गंगा समुद्र में जाकर मिल गई ॥१॥ घसिष्ठ जाबालि याज्ञवल्क्य वृत्स्वङ्गिरोदक मरीचि
विष्णव, शातातप, शौनक देवरात भृगु अग्निवेश अत्रि निष्पाप मनु गौतम आदि, कौशिक तुम्बर पर्वत आदि ।
अगस्त्य, मार्कण्ड निष्पाप सात्यक सागरराजगण सागदेव अङ्गिरा आदि नामक स्मृतियः में प्रकीर्ण वेद-पुराणों

सवामदेवाङ्गिरसोऽय भार्गवाः, स्मृतिप्रबोणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।

सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमी देवनदी तु गत्वा ॥४॥

स्तोष्यन्ति मन्त्रं. श्रुतिभिः प्रभूतं ह्येवं च तुष्टं मुदितं मनोभिः ।

ता सगता बोक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः. ॥५॥

तथाऽमरास्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवो सकलार्तिहारिणी ॥६॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशंकरौ ॥७॥

संगमेव प्रसिद्धेव नित्य सग्नसु नारद । समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवो प्रतिष्ठितौ ॥८॥

गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः । नित्यं सनिहितस्तत्र माधवो रमया सह ॥९॥

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयं वर्यापितः शिवः । लोकानामुपकारार्थमारुतः कारणात्तरे ॥१०॥

चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवर्षेण सह । तत्र सनिहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११॥

ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम् । हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥

सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः ॥१२॥

इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा । प्रार्थितः सोम एवाऽऽविन्द्रापेन्दो परित्स्व ॥१३॥

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परित्स्व ॥१४॥

के तत्त्वज्ञाता एवम् बहुज्ञाता मुनिबृन्द देवनदी गोदावरी के निबट्र जाकर प्रफुल्लित से वेदमन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥२-४॥ गंगा का संगम देखकर शिव और हरि ने मुनियों को दर्शन दिया । पितर तथा देवगण सकल पीडाओं को हरने वाले उन दोनों देवों की स्तुति करने लगे ॥५-९॥ आदित्य, वसु रुद्र मरुत् तथा लोकपाल हाथ जोड़कर हरि और शंकर की स्तुति करने लगे ॥७॥ नारद । समुद्र तथा गंगा के सातों प्रसिद्ध संगमों में नित्य हरि हर वास करते हैं । जहाँ गौतमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिव रहते हैं वहाँ लक्ष्मी सहित विष्णु भी रहते हैं ॥८-९॥ लोगों के उपकार के लिये मैंने ही ब्रह्मेश्वर नामक शिव की स्थापना की । फिर अपने दूसरे कारण से चक्रपाणि नामक शिव की स्थापना करके मैंने देवताओं के साथ उनकी स्तुति की । वहाँ मरुद्गणों के साथ विष्णु वास करते हैं । ऐन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक हयमूर्धक नामक तीर्थ है । जहाँ हयमूर्धा नामक विष्णु और देवगण वास करते हैं । सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है । जहाँ सोमेश्वर शिव वास करते हैं ॥१०-१२॥ सोमश्रव नामक इन्द्र के यज्ञ में देवता तथा ऋषियों ने सोम से प्रार्थना की—‘सोम । इन्द्र के लिये आप क्षरण करें । सात दिशाओं अनेक सूर्यों सात होताओं ऋत्विजा देवों एवम् आदित्यों से आप हमारी रक्षा करें और इन्द्र के लिये क्षरण करें । राजन् । सोम । आपका जो पवत्र हविष् है उससे हमारी रक्षा करें । शत्रु हमारा पार न पाये कुछ बिगाड़े नहीं और आप

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरस नः ।
 अराती वा मा नस्तारोन्मो च नः किचनामदिन्द्रायेन्दो परिलव ॥१५॥
 ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
 सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञेवोरुधा पतिरिन्द्रायेन्दो परिलव ॥१६॥
 कारुरहं ततो भियमुपलप्रक्षिणो नना ।
 नानाधियोवसूयवोऽनु या इव तस्यमेन्द्रायेन्दो परिलव ॥१७॥

एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च बध्निष्णे । तैम्यो बत्वा ततो यज्ञ-पूणो जातः शतक्रतोः ॥१८॥
 तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत् । अग्निरिष्ट्वा महायज्ञं मांसादाय्य मनीषितम् ॥१९॥
 संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव मित्यशः । स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०॥
 तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्य तदमन्तरम् । यत्राऽऽदित्यो वेदमयो निरदमेति उपासिदुम् ॥२१॥
 रूपान्तरेण मध्याह्ने ब्रह्म मा शंकरं हरिम् । भक्तकार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सत्त्वो जगत् ॥२२॥
 रूपेण केन सविता समायातोऽयनिश्चयात् । तस्मादादित्यमाख्यात बाह्ंस्पत्यमनन्तरम् ॥२३॥
 'बृहस्पतिः सुरं पूजां तस्मात्तीर्थादवाप ह । ईजे च यज्ञान्बिधिवान्बाह्ंस्पत्यं ततो विदुः ॥२४॥
 तत्तीर्थं स्मरणादेव ब्रह्मान्तिर्भविष्यति । तस्मादप्यपर तीर्थमिन्द्रगोपे मनीषितम् ॥२५॥

इन्द्र के लिये परिकरण करें। ऋषे । कश्यप । मन्त्रकारों के स्तोमों से वाणी को बढ़ाइये। बृक्षा ने पति सोम राजा को नमस्कार है। चन्द्र । इन्द्र के लिये आप परिकरण करें। हम ऋषि, पिता, यज्ञब्रह्मा तथा बालुका मे यवा को कूटने वाली माता हैं। जैसे गाये गोष्ठ मे परिचरण करती है वैसे अनेक कर्म करने वाले तथा धन की इच्छा करने वाले हम लोग निचरण करते हैं। चन्द्र । आप इन्द्र के लिये क्षरण करे ॥१३-१७॥ ऋषिया ने इस प्रकार प्रार्थना करके इन्द्र के लिये सोम को प्राप्त किया। फिर इन्द्र ने ऋषियों को देखकर यज्ञ सम्पन्न किया। उसी का नाम सोमतीर्थ पड़ा। उससे आगे आग्नेयतीर्थ है। अग्नि ने महायज्ञों द्वारा विष्णु की आराधना की और मेरी कृपा से उनको प्राप्ति भी की। वही लोगो के उक्तर के लिये विष्णु और शिव नित्य वास करते हैं ॥१८-२०॥ इसीलिये उनका नाम आग्नेय पड़ा। उसके बाद आदित्यतीर्थ है जहाँ वेदमय आदित्य नित्य उपासना करने के लिये श्रात है और मध्याह्न काल मे स्वरूप बदल कर भेरे, शंकर और हरि के दर्शन करते हैं। जिस रूप मे सूर्य आते हैं— यह अनिश्चित है। इसलिये वहाँ मध्याह्न काल मे समस्त प्राणियों की नमस्कार करे। इसी कारण उसतीर्थ का नाम आदित्य पड़ा। उसके आगे बाह्ंस्पत्यतीर्थ है ॥२१-२३॥ वहाँ बृहस्पति ने देवताओं द्वारा पूजित होकर धृत से यज्ञ किये। इसलिये वह तीर्थ बाह्ंस्पत्य कहलाया ॥२४॥ उस तीर्थ के स्मरणमात्र से ब्रह्मान्ति हो जाती है। उसके आगे इन्द्रगोपनामक उत्तम पर्वत पर एक दूसरा तीर्थ है। ॥२५॥ किसी कारण वहाँ महालिङ्ग (शंकर) की

प्रतिष्ठित महालिङ्गं कस्मिंश्चित्कारणात्तरे । हिमालयेन तत्तीर्थमद्वितीयं तदुच्यते ॥२६॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् । एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेः च विनिर्मुता ॥२७॥
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित् । सक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८॥

वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च ।

वक्तुं कथं तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद वस्य शक्ति ॥२९॥

भवत्या प्रवृत्तस्य यथावयचिन्नेवापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।

तस्माच्च दिङ्मानमतिप्रयासात्ससूचितं लोचहिताय तस्या ॥३०॥

कस्तस्या प्रतितीर्थं तु प्रभावं वक्तुमोक्ष्वर । अपि लक्ष्मीपतिविष्णुरल सोमेश्वर शिव ॥३१॥

वचिन्नेवापराधो भवति हि । गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२॥

सर्वत्र सर्वदा पुण्या को न्यस्या गुणकीर्तनम् । वक्तुं शक्यतस्तत्तत्सर्वं नम इत्येवमुच्यते ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसमवर्णनं नाम चतु सप्त-
त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

प्रतिष्ठा हुई । हिमालय से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम अद्वितीय पड़ा । वहाँ स्नान करने से समस्त कामनाय सिद्ध होती है । इस प्रकार गौतमी गंगा ब्रह्मपवत से निकला है और जब तक वह देवी समुद्र से मिलती है इस बाध में जितने तीर्थ पड़ जाते हैं उनका रहस्य सक्षेप में बतला दिया ॥२६ २८॥ नारद ! देवी और पुराणों में ऋषियों ने जिस गोदावरी का प्रशंसा की है और जो त्रिभुवनप्रणम्या है उस महामहिमात्म्यी देवी का अक्षेप वर्णन भला कौन कर सकता है ? ॥२९॥ उसने यथावयचित वर्णन करने में मैं शक्ति भाव से प्रवृत्त हुआ हूँ । निःसन्देह इसमें मेरा कोई अत्राध नहीं है । इसलिये लोचहित के लिये मैंने उसके दिग्दर्शनमात्र कराने का प्रयास किया है ॥३०॥ कौन उसके तीर्थों का प्रभाव वर्णन कर सकता है ? लक्ष्मीपति विष्णु तथा सोमेश्वर शिव भी वर्णन करने में असमर्थ हैं । महापण्डित ! तीर्थ किसी स्थान में किन्हीं अवसर पर गुण सम्पन्न होते हैं । पर गोदावरी तो मनुष्यों के लिये सदा सर्वत्र गुणसम्पन्ना एवम् पुण्यदायिका है । उसने गुणों का वर्णन कौन कर सकता है ? अतः उसे प्रशंसा कर लेना ही उचित है ॥३१ ३३॥

श्री ब्रह्महपुराण भ त वमाहात्म्यवर्णनप्रसंग म गंगासागर-वर्णनं नामक एक सो चोत्तरवां
अध्याय समाप्त ॥१७४॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

तीर्यादीना चातुर्विध्यादिनिरूपणम्

नारद उवाच

त्रिदेवत्या सुरेशान गङ्गा श्रूये सुरेश्वर। ब्राह्मणेनाऽऽहृता पुण्या जगत पावनो शुभाम् ॥१॥
आविमध्यावसाने च उभयोस्तोरयोरपि। या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ॥
पुन सशेषतो ब्रूहि म मे तृप्ति प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा। महेश्वरजटाजूटे स्थिता संव नमस्कृता ॥३॥
ब्रह्मतेज प्रभावेण शिवधाराध्याय्य भस्मतः। तत् प्राप्त्य निरिद पुण्य तत् पूर्वार्णव प्रति ॥४॥
आगत्य सगता देवी सर्वतोभयमयी मृणाम्। इप्सिताना तथा बात्री प्रभावोऽस्या विनिष्पद्यते ॥५॥
एतस्या माधिक मन्ये किञ्चित्तोयं जगत्त्रये। अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मन स्थितम् ॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्यं वक्तुं कैश्चिन्न शक्यते। भक्तितो वक्ष्यते नित्यं या ब्रह्म परमार्थतः ॥७॥
तस्या परतर तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम। अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथञ्चन ॥८॥

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

नारद बोले—देवताओं के स्वामी। आपने गंगा के बारे में बतलाया है कि वह त्रिदेवमयी ससारपावनी कल्याणमयी और ब्राह्मण द्वारा लाई गई है और उसके दोनों तटों के आदि मध्य तथा अन्त में विष्णु व्याप्त हैं। अब फिर उसी के विषय में संक्षेप में कहिये। मुझ (सुनने से) तृप्ति नहीं होती है ॥१॥ २॥

ब्रह्मा बोले—यहिले वह कमण्डलु में थी। तब विष्णु के शरणा की अनुषासिनी हुई। तत्पश्चात् वही प्रणम्या देवी शंकर की जटाओं में अवस्थित हुई। ब्रह्मतेज के प्रभाव से यत्पूजक शिव की आराधना करके वह पवित्र पर्वत पर पहुँची। तदुपरान्त पूजसमय से मिलकर वह देवी मनुष्या के लिये सर्वतोभयमयी बन गई। वह सभी प्सित फल को देने वाली है। उसका प्रभाव बहुत विनिष्ट है। तीनों लोक में उससे बढकर कोई तीर्थ मैं नहीं मानता। उसी के प्रभाव से जो कुछ भेरे मन में है वह होगा। आज भी उसका माहात्म्य कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। वह वस्तुतः ब्रह्म है। मैं भक्ति के प्रताप से उसके विषय में कुछ कहूँगा। उससे बढकर कोई तीर्थ नहीं है—यह मेरा सिद्धान्त है। अन्य तीर्थों से उसकी उपमा नहीं हो सकती। मुने! तीनों लोक में गंगा के गुणवर्णन

१ष ह च वन्दते। २ष ह च नमसिभिः। त०। ३क कदाचन।

श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषं ज्ञाया गुणकीर्तनम् । सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता ॥
इति भाति त्रिचित्रं मं मुने खलु जगत्त्रये ॥ १५ ॥

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं चेत्ता चोपदेशकः । छन्दसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च ॥ १० ॥
धर्मशास्त्राणि यच्चाप्यतत्त्व वाक्ये प्रतिष्ठितम् । तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसा तथा ॥ ११ ॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो । यद्ब्रूये भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा ॥ १२ ॥
एत मे संशय ब्रह्मवाक्यात्त्व छेत्तुमर्हसि । इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं धर्ममुत्तमम् । चतुर्विधानि तीर्थानि सावन्त्येष्व युगानि च ॥ १४ ॥
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः । देवाश्च स्मृतिभिर्ब्रूताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा । गुणा ह्यपि तु चत्वारः समस्त्वेनेति नारदः ॥ १६ ॥
सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मं सनातनः । साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः ॥ १७ ॥
तस्याऽऽभ्ययश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा । कालाभ्ययश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा ॥ १८ ॥
युगानामनुलूपेण पादः पादोऽस्य हीयते । धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम् ॥ १९ ॥

रूपी मेरे वचनामृत को पीकर सबको सुबुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हो गई—यह मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है ॥ १३-१५ ॥

नारद ने कहा—आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता एवम् रहस्य सहित वेद, पुराण, स्मृति तथा धर्म-शास्त्रों के उपदेशक हैं। आपके वाक्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रभो! अब तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवताओं के मन्त्रों एवम् उपासनाओं के बारे में ही कहिये। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। भगवन्! यह जो आपने कहा है कि भक्ति से यह हो सकता है, अन्यथा नहीं, इसमें मुझे सचय है। ब्रह्मन्! उसका आप निवारण करें। मैं अपनी अभिलषित बात को सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया हूँ ॥ १०-१३ ॥

ब्रह्मा बोले—नारद! मुने, मैं रहस्य सहित उत्तम धर्म को बतलाऊँगा। चार तीर्थ हैं और उतने ही युग हैं ॥ १४ ॥ गुण तीन हैं और सनातन देवपुरुष भी तीन ही हैं। स्मृतियों से मुक्त वेद चार माने गये हैं ॥ १५ ॥ पुरुषार्थ चार हैं और वाणी भी चार प्रकार की है। नारद! समता की दृष्टि से ब्रह्म भी चार है ॥ १६ ॥ धर्म सब जगह सामान्य है, जिसलिये वह सनातन धर्म है। वही धर्म साध्य-साधन भेद से अनेक हो जाता है ॥ १७ ॥ उसके आश्रय भी दो हैं—देश और काल। काल का आश्रित जो धर्म है उसका ह्रास और क्षय होता है ॥ १८ ॥ युगों के अनुरूप उसका एक-एक पाद क्षीण होता रहता है। महाप्राज्ञ! देशाश्रित धर्म का भी ह्रास और क्षय होता है। कालाश्रित धर्म सदा

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः । युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु ॥ १२० ॥
 उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता । तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सु प्रतिष्ठितः ॥ १२१ ॥
 स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति । कृते देशं च कालं च धर्मोऽव्यष्टम्य तिष्ठति ॥ १२२ ॥
 श्रेतायां पादहीनेन स तु पादः प्रदेशतः । द्वापरे चार्धतः काले धर्मो देशे समास्थितः ॥ १२३ ॥
 कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति संकटम् । एवंविधं तु या धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते ॥ १२४ ॥
 युगानामनुभावेन जातिभेदाच्च सस्थिताः । गुणैर्म्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थितिः ॥ १२५ ॥
 गुणानामनुभावेन उद्भूताभिभवो तथा । तीर्थानामपि वर्णानां वेदानां स्वर्गमोक्षयोः ॥ १२६ ॥
 तादृशप्रत्यक्षा तु तदेव च विशिष्यते । कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यञ्जक उच्यते ॥ १२७ ॥
 यदा यदा अभिव्यक्तिं कालो घत्ते तदा तदा । तदेव व्यञ्जनं ब्रह्मास्तस्मान्नास्त्यत्र संशयः ॥ १२८ ॥
 युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा । कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु ॥ १२९ ॥
 त्रिदेवस्य सत्ययुगे तीर्थं लोकोषु पूज्यते । द्विदेवस्य युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदेविकम् ॥ १३० ॥
 कलौ न किञ्चिद्विज्ञेयमन्यदपि तच्छृणु । देवं कृतयुगे तीर्थं श्रेतायामासुरं विदुः ॥ १३१ ॥

देशो मे प्रतिष्ठित रहता है । युगों के क्षय होने पर भी देशों में उस धर्म का ह्रास नहीं होता है ॥ १२०-२०॥ दोनों जगह उसका ह्रास होने पर धर्म का अभाव हो जायगा । इसलिये देशाश्रित धर्म चार चरणों से युक्त तथा सुप्रतिष्ठित है ॥ १२१ ॥ वह भी धर्म देशों में तीर्थरूप से रहता है । सत्ययुग में देश और बाल को व्याप्त कर धर्म स्थित रहता है ॥ १२२ ॥ तैत्तिरीय में वह एक चरण से हीन हो कर देशों में विद्यमान रहता है । द्वापर में दो चरणों से हीन होकर वह देश और बाल में स्थित रहता है ॥ १२३ ॥ कलियुग में एक ही पैर से युक्त होकर धर्म संकट से चलता है । इस प्रकार जो धर्म को जानता है, उसका धर्म क्षीण नहीं होता ॥ १२४ ॥ युगों के अनुसार गुणों एवम् गुणकर्ताओं से जाति-भेद बनता है । धर्म की स्थिति विचित्र है ॥ १२५ ॥ गुणों के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय भी होता है । तीर्थों, वर्णों, वेदों स्वर्ग और मोक्ष की भी उसी रूप में प्रवृत्ति होती है । बाल प्रकाशक और देश प्रकाशक माना गया है ॥ १२६-२७ ॥ ब्रह्मा । जब-जब बाल प्रकाश का कारण करता है तब तब उससे वही प्रकाश होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १२८ ॥ युगों के अनुरूप ही देव, कर्म, तीर्थ, जानि तथा आश्रम की वैदिकी मूर्ति होती है । सत्ययुग में त्रिदेवमय तीर्थ की लोकों में पूजा होती है, तैत्तिरीय में द्विदेवमय तीर्थ की पूजा होती है, द्वापर में एकदेवमय तीर्थ की पूजा होती है और कलियुग में त्रिती की भी नहीं । अज और भी युगों ॥ १२९-३० ॥ कृतयुग में देवतीर्थ, तैत्तिरीय में आसुर, द्वापर में आर्ष और कलियुग में मानुषतीर्थ कहलाता है ॥ १३१ ॥ नारद । अब और भी कारण बतलाता

१क. छ. ०पु मही० । २क. छ. पादप्र० । ३क. छ. ०र्मा हीयतेसमयत । ४० । ५क. ०न याति भेदाश्च सस्थितिम् । गु० । ५घ. ०तिवेदासमास्थिति । यु० । ६घ. ०ना धर्मनास्त्यर्ग० । ७ छ. देवानां । ८क. ०व्याप्ति का० । ९ घ. छ. ०व्याप्ति का० । १क. छ. धर्मः च धर्मस्तदा । २०क. छ. च. व्यज्यते । ११प. ०स्मादस्य० । १२घ. च. विस्मय । १३छ. ०त्य वेद्युगे द्वाप० ।

आपं च द्वारे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते । अयान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२॥
 गौतम्या यत्त्वया पृष्ट तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात् । यदा चेयं हरश्चिरं प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३॥
 तदा प्रभृति सा गङ्गा शमो प्रियतराऽभवत् । तद्देवस्य मतं ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४॥
 उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता । शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत

॥३६॥

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्यं शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसंशयम्

॥३७॥

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेदं महेश्वरजडास्थिता । स्वयाऽवतार्यता गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती ॥३८॥
 पुनश्चेष्टास्त्रं चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत । शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदा सनातना ॥३९॥
 तत्रैव श्रद्धया सर्वे मनुष्या पितरस्तथा । तस्मान्निवर्तयेषान् देवदेव महेश्वरम् ॥४०॥
 तस्या निवर्तिते देवे गङ्गाया सर्वे एव हि । निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं ब्रह्मो मम ॥
 निवर्तय ततस्तस्या सर्वभावेन शकरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर

॥४२॥

हैं सुनो। गोदावरी के विषय में जो तुमने पूछा है उसे मैं विस्तार से बतलाऊँगा। महामुने! जब से यह गंगा शकर के शिर पर पहुँची तब से यह शिव की प्रिया हो गई ॥३२-३३॥ शिव का आशय समझकर तीनों लोक की ईश्वरी सत्ता की माता तथा हितविणी शान्ता श्रुतिरूपा और भुक्ति मुक्तिदायिनी पावनी ने गणेश से यह बात कह दी ॥३४-३५॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर गणेश ने कहा ॥३६॥

गणेश बोले—माता! आज्ञा करो! क्या कार्य है? मैं निःसन्देह उसे पूरा करूँगा ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—उमा ने पुत्र से कहा—शकर की जटा में उनकी प्रिया सती बसा अबस्थित है। उसे तुम हटा दो। क्योंकि शकर सदा उसमें अनुरक्त रहते हैं और जहाँ शिव रहते हैं वहाँ देवता सनातन वेद समस्त ऋषि मनुष्य एवम पितर रहते हैं। इसलिये देवों के देव शिव को उससे अलग करो। उनके अलग हो जाने पर सब अलग हो जायेंगे। इसलिये मेरी बात सुनो और सब प्रकार से शकर को अलग करो ॥३८-४१॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर पुनः गणेश ने कहा ॥४२॥

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम् । अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुम् ॥४३॥
न शक्या जगता मातरयान्यच्चापि कारणम् । गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा । सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५॥
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवंम् । तुष्टेन शंकरेणैदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६॥

शंकर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान् । यद्यच्छिस्तं तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि क्षुण्वति । इदमेव तदोवाच सजटां बेहि शंकर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शभुः सर्वलोकोपकारकः ॥४९॥

शंभुरुवाच

'उक्तं न चाऽऽमन' किञ्चित्तस्माद्याचस्य दुष्करम् ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१॥

गणेश बोले—मेरे द्वारा शिव उससे अलग नहीं किये जा सकते हैं और शिव के अलग नहीं होने पर देवता भी निवृत्त नहीं हो सकेगे । जगन्माता । इसका और भी कारण है कि पूर्वं काल में महात्मा गौतम गया को लाने थे । लोकपूज्य तथा त्रैलोक्यहितकारी ऋषि ने तपस्या, स्तुति तथा सामगान द्वारा शंकर की आराधना की । सतुष्ट होकर शिव ने गौतम से कहा ॥४३-४६॥

शंकर बोले—महामुद्धिमन् ! तुम पवित्र प्रिय तथा मनोमिलपित वरदान मागो । तुम जो-जो चाहोगे, वह सब आज मैं तुम्हें दूँगा ॥४७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर मेरे सुनते ही गौतम ने यह कहा—'शंकर' अपनी जटासहित पवित्र गया मुझे दीजिये, दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—ममस्त लोको ने उपचारक शिव ने पुन गौतम से कहा ॥४९॥

शंभु बोले—तुमने अपने लिये कुछ नहीं माँगा । इसलिये कठिन वरदान भी मुझसे माग लो ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—दीनता-यून्य गौतम ने हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥५१॥

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषां दुष्कर तव दर्शनम् । मया तदद्य संप्राप्तं कृपया तव शकर ॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्यां कृतकृत्या मनीषिणः । भवति किं पुन साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वित । त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया ॥५४॥
मत्ताऽऽत्मनो महायुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम् । एव प्रोक्तं पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५॥
विनीतघबदीनात्मा शिवभक्तिसमन्वित । सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम् ॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेव स गौतम ॥५६॥

गौतम उवाच

यावत्सागरगा वेदी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरे । सर्वत्र सर्वदा तस्या स्यात्तव्यं ब्रूयभध्वज ॥५७॥
फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगत प्रभो । तीर्याग्न्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८॥
यत्र तं समिधिनित्यं तदेव शुभं विदुः । यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसंस्थिता ॥
'सर्वत्र तव सान्निध्यात्सर्वतीर्थानि' शकर ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

तवगौतमवच श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत् ॥६०॥

गौतम बोले—आपका दर्शन ही सबके लिये कठिन है। शकर! आप की कृपा से आज मैंने उसे प्राप्त कर लिया। आपके चरणों के स्मरण से ही विद्वान् लोग कृतकृत्य हो जाते हैं। जिसे आपका साक्षात्कार हो जाता है उसका तो भला कहना ही क्या? ॥५२-५३॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के इतना कहने पर शकर प्रसन्न हो गये और बोले—'तीनों लोकों के उपकार के लिये तुमने याचना की। पर महावद्धिमन्! अपने लिये तुमने याचना नहीं की। इस प्रकार कहे जाने पर शिवभक्ति से युक्त वीनता से रहित तथा विनीत गौतम ने शिव से कहा। लोकपालों के सुनते गौतम ने समस्त लोकों के उपकार के लिये पुन यह याचना की ॥५४-५६॥

गौतम बोले—ब्रह्मगिरि से लेकर समग्र पयन्त इस गंगा में सबत्र सब काल आप रहे। अगप्रभो! कष्ट चाहने वालों को फल आप ही देते हैं। देवेश! जहाँ-कहीं भी जो अन्य पवित्र तीर्थ हैं उनमें भी जिस तीर्थ में आपका सान्निध्य है वही शमदायक माना गया है। शकर! जहाँ आपने अपने जटा मुकुट में अवस्थित गंगा को प्रदान किया है वहा सब जगह आपके सान्निध्य से समस्त तीर्थ रहेंगे ॥५७-५९॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के वचन को सुनकर पुन हर्ष से शिव ने कहा ॥६०॥

शिव उवाच

यत्र यथापि च यत्किंचिद्यो वा भवति भवितः (?) यात्रां स्नानमयो दानं पितृणा वाऽपि तर्पणम् ॥६१॥
 श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम । यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः ॥६२॥
 सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना । सरत्ना सोषधी रम्या सार्णवा धर्मभूयिता ॥६३॥
 वस्वा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृतेः । एवं विधा इला विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते ॥६४॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्स्रानिष्ये यतव्रतः । भूभूते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५॥
 गाः सुन्दराः सवत्साश्च संगमे लोकविभ्रुते । यो वदाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६॥
 तस्माद्द्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः । गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्या तु भविततः ॥६७॥
 तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति । सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८॥

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुत मया मातर्बदतो गौतम शिवात् । एतस्मात्कारणाच्छुभ्रगङ्गाया नियतः स्थितः ॥६९॥
 को निवर्तयितुं शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम् । अथापि मातरेतस्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः ॥७०॥
 विनिवृद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्यिताम् । न ममन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१॥
 तथा मातः करिष्यामि तव सतोपहेतवे । सतिरोद्धुमयो वलेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ॥७२॥

शिव बोले—गौतम ! जो मनुष्य नियमपूर्वक गोदावरी में जहाँ-कहीं भी जो कुछ भी भक्ति से करता है अर्थात् यात्रा, स्नान, दान पितृ-तर्पण श्रवण, पठन या स्मरण—करता है, उसे उतना ही धर्म होता है जितना सातों द्वीप, पर्वत, वन, रत्न, ओषधि तथा समुद्र सहित एवम् धर्मभूयिता पृथ्वी के दान करने से होता है । विप्र ! इस प्रकार की पृथ्वी दान करने से जो धर्म होता है उतना धर्म चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण काल में गोदावरी में गोदान करने से होता है । द्विजवर ! उसे भी उतना धर्म होता है, जो लोक-प्रसिद्ध गंगा-सागर के संगम पर नुबन के धारण करने वाले विष्णु की प्रीति के लिये बछड़े सहित सुन्दर गो दान करता है । इसलिये मनुष्य विश्ववन्द्या तथा महानदी गोदावरी में भक्तिपूर्वक स्नान-दान करने से अत्यन्त पुण्य प्राप्त करता है । अतः समस्त पापों को नष्ट करने वाली तथा अखिल कामनाओं को देने वाली गोदावरी गंगा को तुम ले जाओ ॥६१-६८॥

गणेश्वर बोले—माता ! मैंने गौतम तथा शिव का इतना सवाद सुना है । इसी कारण शकर नियमपूर्वक गंगा में रहते हैं । अम्ब ! उस कणासागर को कौन निवारण कर सकता है ? माता ! इतना तो मैं तुम्हारे सतोप के लिये बर्हूँ कि विघ्न-जाल में फँसकर मनुष्य सभीप रहने पर भी गंगा में स्नान करने नहीं जायगा और शिव को प्रणाम, स्मरण तथा स्तुति नहीं करेगा । पर उनका निवारण तो असम्भव है । इसलिये मुझे क्षमा करो ॥६९-७२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेऽग्रे मानुषान्प्रति किञ्चन । विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ॥७३॥
 अयो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भविततः । सकृत्तार्यो भवेत्लोकं न कृत्य मवशिष्यते ॥७४॥
 विघ्नान्पनेकानि भवन्ति गेहान्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
 निधाय तन्मूर्ध्नि पदं प्रयाति, गङ्गा न किं तेन फलं प्रलब्धम् ॥७५॥
 अस्याः प्रभावः को भूयादपि साक्षात्सदाशिवः । सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं यच्चराचरे । तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ॥७७॥
 वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सर्वम् ।
 सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराणं बहुधर्मयुक्तम् ॥७८॥
 अस्य श्लोकं पदं वाऽपि भविततः शृणुयात्पठेत् । गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यनवाप्नुयात् ॥७९॥
 कलिकलङ्गुविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभं शिवम् ।
 जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
 साधु गौतम भद्रं ते कोऽप्योऽस्ति सबुद्धस्त्वया । य एनां गौतमीं गङ्गां वण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१॥
 गङ्गा गङ्गेति यो भूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥
 तिलः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नातु समायान्ति गङ्गायां सिंहो गुरौ ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—तब से गणेश मनुष्यों को विघ्न करते हैं। जो उनकी उपासना करता है, उसे छोड़ देते हैं। जो मनुष्य गणेश की वन्दना कर मक्ति से गोदावरी को जाते हैं, वे लोक में कृतार्थ हो जाते हैं और उन्हें कुछ करना शेष नहीं रहता। घर से बाहर जाने वाले नराधम को अनेक विघ्न होते हैं। जो भस्त्रक पर गंगा के चरणों को रखकर (अर्थात् उनका ध्यान करते हुए) प्रयाण करता है, उसे कौन-सा फल नहीं मिलता है? (अर्थात् सब मिलते हैं) ॥७३-७५॥ गंगा का प्रभाव कौन बतला सकता है? साक्षात् सदाशिव भी भद्रसक बतला सकते हैं। सक्षेप में मैंने इस इतिहास को बतलाया है ॥७६॥ ससार में धर्म, धर्म, काम और मोक्ष के जितने साधन होते हैं, वे सब इस विस्तृत इतिहास में विद्यमान हैं ॥७७॥ ससार के कल्याण के लिये मैंने अनेक धर्मों से युक्त पुराण भुना दिया, जो वेद प्रतिपादित सम्पूर्ण रहस्यों का सार, सत्कारणस्वरूप, सद्गुणस्वरूप तथा सम्यक् दर्शनरूप है ॥७८॥ इस पुराण का एक श्लोक या एक पद जो मनुष्य मक्ति से सुनेगा या पढ़ेगा या 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण ही करेगा, उसे पुण्य लाभ होगा ॥७९॥ 'गंगा' इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कलको को नष्ट करने में दक्ष, सकल सिद्धियों को देने वाला कल्याणकारक सुन्दर जगत्पूज्य तथा अभीष्टफलदायक है ॥८०॥ गौतम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गंगा को वण्डकारण्य में प्राप्त करे ॥८१॥ जो व्यक्ति सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥८२॥ तीनों लोकों में साढ़े तीस करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सिंह राशि पर नृहस्पति के जाने पर गंगा में स्नान करने जाते हैं ॥८३॥ नृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी में एक बार स्नान करने से उतना ही फल

पट्टिधर्षसहस्राणि भःगोरथ्यवगाहनम् । सृङ्गोदावरीस्नानं सिंहमुवते बृहस्पती ॥८४॥
 इयं तु गौतमी पुत्र यत्र बवापि ममाऽऽज्ञया । सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५॥
 अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६॥
 यत्पेतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम् । न भयं विद्यते तस्य कल्किकालस्य नारद ॥८७॥
 यस्य कस्यापि नाऽऽख्येय पुराणमिदमुत्तमम् । अहधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८॥
 इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम् । एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९॥
 लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे ब्रह्मामाहात्म्यश्रवणा-
 दिफलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न हि मस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम् । पुनरेव परं गृह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१॥

होना है, जितना साठ हजार वर्षों तक बगामे स्नान करने से होता है ॥८४॥ पुर । यह गौतमी गंगा (अपने मे) जहाँ-कहीं भी स्नान करने से मनुष्या को मेरी आज्ञा से मुक्ति दे देती है ॥८५॥ सहस्रो अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके श्रवणमात्र से होता है ॥८६॥ नारद । जिसके घर में यह ब्रह्मपुराण रहता है, उसके लिए कल्किकाल का कोई डर नहीं है ॥८७॥ जिस रिषी को यह पुराण नहीं सुनाना चाहिये । अन्धानु, धान्न , विष्णुभक्त तथा महात्मा को यह पापनाशन तथा भुक्ति-मुक्ति-दायक पुराण सुनाना चाहिये ॥८८॥ इसके श्रवणमात्र से मनुष्य श्रुतकृत्य हो जाता है । जो इस पुस्तक का लिखकर ब्राह्मण का समर्पित करता है, वह सब पापों से निर्मुक्त होकर पुनर्गर्भ में नहीं जाता है ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण न तीर्थमाहात्म्य म ब्रह्मा और नारद क संवाद म ब्रह्मामाहात्म्य-प्रकरण
 आदिका पञ्च-वर्णनं नामक एक मौ पञ्चशतवर्षा अध्याय समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य-निरूपण

मुनियो ने कहा—भगवत्कथा सुनते-सुनते हम तृप्ति नहीं होती है । आप पुनः संपूर्ण रहस्य को बतलायें ।

अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग् वर्णितं त्वया । श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठा । सारत्सारतरं परम् । अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३॥
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान् । विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४॥
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माणप्रकर्मणम् । प्रतिमा वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५॥
यौ प्रेक्ष्य बिधिवद्भक्ताः सेन्द्रा वै मानुषादयः । येन दानवरक्षोभ्यो विनाय सुमहद्भयम् ॥६॥
त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिलर चिरम् । वासुदेवं समाराध्य निरातङ्गो वसन्ति ते ॥७॥
मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्सणात् । चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खलचक्रगदाधराम् ॥८॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् । श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥९॥
वनमालावतोरस्का मुकुटाङ्गदधारिणीम् । पीतवस्त्रा सुपीनासां कुण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥१०॥
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् । प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निमिता पुरा ॥११॥
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्क्षेत्रः सह । जगाम ब्रह्मसवनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२॥
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः । प्रतिमां सां समाराध्य (वाय) स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३॥
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः । ब्रूयाद्यानसुराङ्गकूराभमुखिप्रमुखांस च ॥१४॥

अनन्त वासुदेव का आपने सम्यक् वर्णन नहीं किया । देव ! (वही) हम सुनना चाहते हैं । विस्तारपूर्वक बहिये ॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठो ! अनन्त वासुदेव का जब दुर्लभ तथा सारतम माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३॥
विप्रबुद्ध ! पहले आदिकल्प में अव्यक्तजन्मा मैंने अत्यन्त अलवान्, देवताओं के कारीगर और षडई के काम में
अग्रणी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—पृथ्वी पर वासुदेव की एक ऐसी पत्थर की मूर्ति बनाओ, जिसे विधि पूर्वक देखकर
भक्त, इन्द्र तथा मनुष्य आदि, दानव-राक्षसों के महान् भय से स्वयं मैं आकर अर्थात् सुमेरु पर्वत के शिलर पर चिर-
काल तक वासुदेव की आराधना करते हुए गुप्त से वास करे ॥४-७॥ मेरे वचन को सुनकर तत्काल विश्वकर्मा ने
शुद्ध, शाल, चक्र, तथा गदा धारण करने वाली, सर्वलक्षणसम्पन्न, कमल के समान दीर्घ नेत्रों वाली, श्रीवत्स चिह्न से
युक्त, अत्यन्त उग्र, वनमाला से आवृत वक्षस्थल वाली, मुकुट तथा अगद धारण करने वाली, पीतवस्त्रा, स्थूल स्वर्ण
बालों तथा पुण्ड्रों से अलंकृत प्रतिमा को बना डाला ॥८-१०॥ इस प्रकार बनी दिव्य प्रतिमा में मैं स्वयं गुह्य
मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करने लगा । उस समय देवबुद्धा के साथ इन्द्र उत्तम हाथी पर चढ़कर ब्रह्मालोक में आये ।
इन्द्र बार-बार स्नान-दानों से प्रतिमा की आराधना करते अपने नगर को चले गये ॥११-१३॥ चिरकाल तक वायिन,
वाचिक तथा मानसिक समय के साथ उस प्रतिमा की आराधना करते इन्द्र ने वृत्र, नमुचि आदि क्रूर राक्षसों को
मारकर तीना लोक ना उपभोग किया ॥१४३॥ द्वितीय युग प्राप्त होने पर अर्थात् नेता आने पर राक्षसाग्रज, प्रतापी

१४ वर्मन्मुनिर्ब्रूत् ॥ २४. ० दिवेद्यमनुशा० । ३४. गिरे । ४४. य दृष्ट्वा । ५४. स ० परं-
यंत । ७० ।

निहत्य दानवान्भोमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम् । द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप ॥१५॥
 बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान् । दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय ॥१६॥
 चचार क्षतमत्युग्र तप परमदुश्चरम् । तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७॥
 अवप्य सर्वदेवानां स दंत्योरगपक्षसाम् । शापप्रहरणैर्गुरुरवच्यो यमार्किकर ॥१८॥
 वर प्रा प्र तश रसो यशान्वताशानिमान् । धनाध्यक्ष विनिजित्य शक्र जेतु समुद्यत ॥१९॥
 सग्राम सुमहावीर कृत्वा देवं स राक्षस । देवराज विनिजित्य तदा इन्द्रजितेति वै ॥२०॥
 'राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनाद प्रलम्बवान् । अमरावर्ती सत प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१॥
 'ददशाञ्जनसकाशा रावणस्तु धलान्वित । प्रतिमा वासुदेवस्य सर्वलक्षणसयुताम् ॥२२॥
 श्रीवत्सलक्ष्मसयुक्ता पद्मपद्मायतेक्षणा । वनमालावतीरका मुकुटाद्बभूविताम् ॥२३॥
 शङ्खचक्रगदाहस्ता पीतवस्त्रा चतुर्भुजाम् । सर्वाभरणसयुक्ता सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४॥
 विहाय रत्नसङ्घाञ्च प्रतिमा शुभलक्षणा । पुष्पकेण विमानेन लब्ध्वा प्रास्थापयद्भुतम् ॥२५॥
 पुराध्यक्ष स्थित श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषण । रावणस्यानुजो मन्त्री मारायणपरायण ॥२६॥
 दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभयनच्युताम् । रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७॥
 प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टेनागतरात्मना । अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८॥
 इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मह । ध्येष्ट आतरमासाद्य कृताञ्जलिर्भाषत ॥२९॥

तथा महाशक्तिशाली रावण ने दस हजार वर्षों तक निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त उग्र तप किया ॥१५॥ १६॥
 उसकी तपस्या से सतुष्ट होकर मैं उसे बरवान दिया कि तुम समस्त देवता दैत्य सर्प राक्षस शापप्रहार तथा यम
 भूतो स अवप्य होगे । सतुष्टवान् वर प्राप्त कर वह राक्षस यक्षगण सहित कुबेर को जीतकर ऋद्ध को जीतने के लिये
 उद्यत हुआ ॥१७॥ १८॥ देवताओं के साथ घोर सग्राम करके उसने देवराज पर विजय प्राप्त की । तब से उसका
 पूज मेघनाद इन्द्रजित् बहलाने लगा ॥२०॥ बलवान् रावण ने अमरावती मेघसुन्दर इन्द्र के पवित्र गृह से अञ्जन
 तुल्य सर्वलक्षणसम्पन्न श्रीवत्सल चित्त से युक्त कमण्डलु के समान दीप नेत्रा वाली वनमाला से आवृत वक्ष स्पल
 वाली मुकुट तथा अग्र्या से विभूषित हाथों व शस्त्र चक्र-गंगा धारण करने वाली पीतवस्त्रा चतुर्भुजा समस्त आभूषणा
 से युक्त 'गुम्फणो से सम्पन्न तथा समस्त कामनाओं के फल को दन वाली वासुदेव की प्रतिमा को लेकर रत्नसमूह
 को बिना छूए ही पुष्पक विमान से लब्ध के लिये शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥२१॥ २५॥ नगर का अग्र्यन्धर्मान्
 धर्मात्मा वासुदेव भक्त मन्त्री तथा रावण का छोटा भाई विभीषण था ॥२६॥ यह इन्द्र भवन से लौटै हुई दिव्य
 प्रतिमा को देवराज आश्चर्य चकित हो गया ॥२७॥ उसे रोमाञ्च हो आया । हृदय से शयमद होकर उसने गिर धुना
 कर वासुदेव की प्रणाम किया और कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ ॥२८॥ यह
 कहकर उस धर्मात्मा ने बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा— राजन् ! यह प्रतिमा

राजप्रतिमया त्व मे प्रसाद कर्तुमहसि । यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरये भवार्णवम् ॥३०॥
 म्नातुर्वचनमाकण्य 'रावणस्त तदाऽब्रवीत् । गृहाण प्रतिमा वीर त्वनया किं करोम्यहम् ॥३१॥
 स्वयंभुव समाराध्य त्रैलोक्य विजय त्वहम् । नानाश्चयमय देव सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२॥
 विभीषणो महाबुद्धिस्तदा ता (रासाद्य) प्रतिमा शुभाम । शतमण्डोत्तर चाब्द समाराध्य जनादनम् ॥३३॥
 अजरामरण प्राप्तमणिमादिगुणर्षुतम् । राज्य लब्ध्वाधिपत्य च भोगा भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥३४॥

मुनय ऊचु

अहो नो विस्मयो जात भुत्स्वेद परमामृतम् । अनन्तवासुदेवस्य सभय भुवि दुर्लभम् ॥३५॥
 श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम् । तस्य देवस्य माहात्म्यं बभ्रुमहस्यशेषतः ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षस क्रूरो देवगन्धर्वजिन्निरान् । लोकपालान्समनुजामुनिसिद्धाश्च पापकृत ॥३७॥
 विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गना । सस्वाप्य नगरं लब्ध्वा पुन सीतार्थं (ता च) मोहित ॥३८॥
 'शङ्कितो मृगरूपेण सीषर्णेन च 'रावण । ततः क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९॥

मुझे दे देने की इया करे। जगत के स्वामी ! इसकी आराधना करके मैं ससार समग्र से पार उतर जाऊँगा ।
 माई का बचन गुनकर रावण ने कहा— वीर ! प्रतिमा ले लो मुझ इससे क्या करेगा है ? मैंने सबभूतमय ससार
 को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त श्रेष्ठ की उपासना करके तानों काज को जीत लिया
 है। तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने प्रतिमा का लेकर एकसी आठ वर्षों तक जनात्म की आराधना करके अजररव
 अमरत्व अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा स्वर्ग का आपिण्य प्राप्त किया और अनेक अनिलपित भोगों का उपभोग
 किया ॥२९ ३४॥

मुनियो ने कहा—अहा ! अनन्तवासुदेव का यह ससार-द्वन्द्व बलान्त सन्तान हम् मन्नाभयन मिल गया
 है तथा आश्चर्य हो रहा है। हे देव हम् विस्मारपूर्वक यथाय बचन गुनना चाहत है। उम देव का अगिल माहात्म्य
 आप बतलाइय ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—तब उस वीर तथा पापी राक्षसने देव गन्धर्व विप्रर लोकपाल मनुष्य मुनि तथा सिद्धों की
 समर में जीतकर देवागन्ना का अपहरण कर लिया ॥३७३॥ उनको स्वर्ग में उपासना पुन जगन साक्षात् कर लिय
 मोहित होकर सान के मृग का रूप धारण किया। तन्मन्त्र राम ने लम्बय व साय रण में रावण के बच के निमित्त

रावणस्य वधार्थाय हत्वा घालि मनोजवम् । अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तया ॥४०॥
 हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तया । गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमोजसः ॥४१॥
 एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्बानरैः समहावलं । समावृतो महाघोरं रामो राजीवलोचनः ॥४२॥
 गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं बद्ध्वा महोदधौ । बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३॥
 संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वित । प्रमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४॥
 मरान्तकं महावीर्यं तया चैव यमान्तकम् । मालादधं मालिकादधं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५॥
 पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम् । वैदेहीं चाग्निनाऽऽशोष्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे ॥४६॥
 बासुदेवं समादाय यानं पुण्यकमारुहत् । लीलया समनुप्रापदयोध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७॥
 कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छब्रुधनं भक्तवत्सलम् । अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८॥
 पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः । दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥४९॥
 भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः । राज्यमासाद्य सुगतिं वंणवं पवमाविशत् ॥५०॥
 तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान् । धन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१॥
 द्वारं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पति । धरण्याश्चानुरोधेन भावशैथिल्यकारणात् ॥५२॥
 अवतीर्णः स भगवान्बसुदेवकुले प्रभुः । कंसादीनां वधार्थाय संकल्पं सहायवान् ॥५३॥

मन के तुल्य वेग वाले घालि को मारना सुग्रीव को अभिषिक्त किया एवम् अंगद को युवराज बनाया ॥३८-४०॥
 हनुमान नल, नील जाम्बवान् पनस गवय, गवाक्ष पाठीन आदि बोजस्वी बन्दरी तथा दूसरे भी बहुत से बलवान्
 तथा महामयवर बन्दरा से युक्त हाकर बमालाचन राम ने पर्वत के समूहों से समुद्र में पुल बंध कर विशाल सना
 के साथ समुद्र पार करते रामता के साथ अतुल सशाम किया । फिर बमहस्त, प्रहस्त, निकुम्भ कुम्भ महामक्तिपाली
 मरान्तक, यमान्तक, मालाद्वय मालिकाद्वय मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण को मार कर शक्तिसम्पन्न राम ने जानकी
 को अग्नि से गुदकर विभीषण को राज्य दे बासुदेव की प्रतिमा को लेकर पुण्य विमान से प्रस्थान कर दिया ।
 क्षण मही पूर्वपालित अयोध्या पहुँचकर भक्तवत्सल राम ने स्नेह से छोटे भाई भरत तथा शत्रुघ्न को सम्पूर्ण राज्य
 में राजा की तरह अभिषिक्त कर अपनी पुरातनी प्रतिमा की आराधना करते हुए ग्यारह हजार वर्षों तक समुद्र
 पर्यन्त पृथ्वी का भोग किया । राज्य-बाल के बाद तुम जल तथा रत्नों से सभ्य हो धन्य हो, इसकी रक्षा करो
 यह कहकर समुद्र के अधिष्ठित देवता को वह प्रतिमा देकर राम ने विष्णुलोक में प्रवेश किया ॥४१-५१॥ विप्रवृन्द ।
 द्वार युग में जब धर्म के नाश होने के कारण तथा पृथ्वी के अनुरोध से जगत्पति भगवान् कस आदि के वच के
 निमित्त बर-राम सहित बसुदेव के कुल में अवतीर्ण हुए थे तब किसी कारण सभस्त बाधनाओं के फल का देने वाली

१क प्लवगमम् । २म नवनस्त० । ३ख षडधैव मन्दश्च वानरेषा महोद० । ४ख ०हामाप्सो रा० ।

५ग ०न ॥५२॥ घतश शाल्वस० । ६क महोदर । ७क मालिन् मात्वन्त च । ८ग ०मादाय मु० । ९व राजे ।

तदा' तां प्रतिमां विप्राः सर्ववाञ्छाफलप्रदाम् । सर्वलोकहितार्याय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४॥
 तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे । उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५॥
 तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः । आस्ते स देवो देवानां सर्वकामफलप्रदः ॥५६॥
 ये संध्यन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम् । वाइमनः कर्मभिनित्य ते यान्ति परमं पदम् ॥५७॥
 वृद्ध्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च । राजसूयाश्वमेधाम्या फलं दशगुणं लभेत् ॥५८॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामेन सुवर्चसा । विमानेनाकं वर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९॥
 त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रोगणसेवितः । उपगोषमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०॥
 तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जलामरणवर्जितः । दिव्यरूपधरः श्रीमत्प्रावदाभूतसंलब्धम् ॥६१॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽप्तात्तश्चतुर्वेदो द्विजोत्तमः । वैष्णव योगमाध्याय ततो भोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥
 एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः । कः शक्योति गुणाः दधत् तस्य दयैव तैरपि ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुविसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम

पदसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

उस प्रतिमा को अखिल लोको के हित के लिये उस पवित्र, उत्तम तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में सरिताओं के स्वामी समुद्र ने जल से बाहर कर दिया । द्विजगण ! तब से लेकर उती मुक्तिदायक क्षेत्र में देवों के देव तथा अखिल कामनाओं के दाता भगवान् रहते हैं । जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा भक्तिपूर्वक तब के ईश्वर, सर्वशक्तिमान्, अनन्त धामुदेव की शरण में जाते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं । एक बार अनन्त भगवान् के दर्शन, पूजन तथा प्रणाम करने से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों से दस गुने अधिक फल प्राप्त करते हैं । देहान्त के बाद वे निखिल कामनाओं से सम्पन्न, स्वेच्छाचारी, सूर्य सदा वर्ण वाले तथा धृष्ट पण्डिताओं में मुन विमान पर अश्वर अपने इक्कीस कुला का उद्धार करने दिव्य यन्त्रियों से सुतेविन तथा गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुपुर को जाते हैं । ॥५२-५०॥ वहाँ वृद्धत्व तथा मृत्यु से रहित होकर दिव्य रूप धारण कर बलान्त तब उत्तम भागों को भोगते हैं । फिर पुण्यक्षय होन पर इस लोका में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता द्विजधर होते हैं । तदनन्तर वैष्णव योग में स्थिर होकर मात्र प्राप्त करते हैं । मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार मैं अनन्त भगवान् का गुण-नीर्तन किया है । यो तो संकटा यशों से भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥६१-६३॥

श्रीमहापुराण में ब्रह्मा और ऋषिमाध प्रवरण में अनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपण

नामक एक ही छिहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥१७६॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव धोऽनन्तमाहात्म्य क्षेत्रं च पुरुषोत्तमम् । भुक्तिमुक्तप्रदं नृणां मया प्रोक्तं सुदुर्लभम् ॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर । पीताम्बरधर कृष्ण कसकेशिनिपूवन ॥२॥
ये तत्र कृष्ण पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम् । सकर्षणं सुभद्रा च धन्यास्ते नान सशय ॥३॥
श्र्लोकपाधिपति देव सर्वकामफलप्रदम् । ये प्यायन्ति सदा कृष्ण मुक्तास्ते नात्र सशय ॥४॥
कृष्णे रता कृष्णमनुस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्ण पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नवेहा प्रविशन्ति कृष्ण हृदियंया मन्त्रहृत हुताशनम् ॥५॥
तस्मात्सदा मुनिभेष्टा कृष्ण कमललोचन । तस्मिन्क्षेत्रे प्रपत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभि ॥६॥
'दायनोत्थापने कृष्ण ये पश्यन्ति मनोषिण । हलायुध सुभद्रा च हरे स्थानं व्रजन्ति ते ॥७॥
सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् । रोहिण्ये सुभद्रा च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥८॥

अध्याय १७७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अनन्त का माहात्म्य तथा मनुष्यां के लिये प्राण मोक्ष-दायक एवम् अत्यन्त दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र मैंने बताया ॥१॥ उस क्षेत्र में कमललोचन गज चक्र-गदाधारी पीताम्बर तथा कस और केशी के सहर्ता कृष्ण वास करते हैं ॥२॥ वहीं जा मनुष्य देव रामसा स बन्धीय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं व नि सन्नेह धन्यवादाह हैं ॥३॥ जो त्रिशोरी के स्वामी तथा समस्त कामनाभा के फलदाता कृष्ण का ध्यान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं ॥४॥ जो कृष्ण में निरत होकर सतत कृष्ण का स्मरण करते हैं अर्थात् रात्रि में तथा उठने पर भी कृष्ण का ध्यान करते हैं व रातरी छत्र पर उठी तरह कृष्ण में प्रवृत्त करते हैं जैसा मन्त्रपूवक छात्र गय हविर् अग्नि में ॥ ॥ मूनिवर ! इसलिये योगामिलापिदा को यत्नपूर्वक उस क्षेत्र में जाकर कमललोचन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥६॥ जो साने-उठने सदा कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक का जाते हैं ॥७॥ जो सब बात में कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं व विष्णु साक्षात् को जाते हैं ॥८॥ जो वय में चार मास पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं व बुद्धी पर समस्त तापयात्रात्रा

आस्ते यश्चतुरो मासान्वापिकान्पुरुषोत्तमे । पृथिव्यास्तोथयात्राया फल प्राप्नोति चाधिकम् ॥१॥
 ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनोषिण । जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस फलम् ॥१०॥
 तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर । यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११॥
 तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् । तत्फलं सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनोषिण ॥१२॥
 सवतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् । तत्फलं सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनोषिण ॥१३॥
 'सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्तं व्रतेन नियमेन च । तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं प्रयत शुचि ॥१४॥
 यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं सयतेन्द्रिय ॥१५॥
 वेहं त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे । कल्पवृक्ष समासाद्य मुक्तास्ते नात्र सशय ॥१६॥
 वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते कुलंभं पर मोक्षं प्राप्नुवन्ति न सशय ॥१७॥
 अनिच्छन्तपि यस्तत्र प्राणास्त्यजन्ति मानव । सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो भुक्तिं प्राप्नोति कुलंभाम् ॥१८॥
 कुमिकीटपतङ्गाद्यास्तियोग्योनिगताश्च ये । सत्र वेहं परित्यज्य ते यान्ति परमा गतिम् ॥१९॥
 भ्रान्तिं लोकस्थं पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजा । पुरुषारथेन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०॥
 सकृत्पश्यति यो मत्स्यं श्रद्धया पुरुषोत्तमम् । पुरुषाणां सहस्रेषु न भवेदुत्तमं पुमान् ॥२१॥
 प्रकृते न परो यस्मात्पुरुषावपि चोत्तमः । तस्माद्देवे पुराणे च लोकोऽस्मिन्पुरुषोत्तम ॥२२॥

के फल से अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१॥ जो विद्वान् श्रेष्ठ तथा इन्द्रिया को जीतकर सब समय वही वास करते हैं वे तपस्या का फल प्राप्त करते हैं ॥१०॥ अन्य तीर्थों में वस हजार वर्षों तक व्यर्थ करने ॥ जितना फल प्राप्त होता है उतना एक पुरुषात्तम में एक मास तक व्यर्थ करने से होता है ॥११॥ तपस्या ब्रह्मचर्य तथा आसक्ति त्याग से जो फल मिलता है वह फल उस क्षेत्र में विद्वान् का सतत प्राप्त होता है ॥१२॥ सत्र तीर्थों में स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है वह फल वही सतत विद्वान् का प्राप्त होता रहता है ॥१३॥ शीघ्र व्रत तथा नियम करने से जो फल मिलता है वह फल प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक वही रहन से प्राप्त होता है ॥१४॥ अनेक यज्ञ करने में मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल वही प्रतिदिन इन्द्रिय संयम करने से मिलता है ॥१५॥ जो मनुष्य पुरुषात्तम क्षेत्र में कल्पवृक्ष का समीप देहायग करते हैं वे निःसन्देह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१६॥ वटवृक्ष तथा सागर का मध्य जो गरीरदायग करते हैं वे दुःख मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसमें संशय नहीं ॥१७॥ न चाहते हुए भी जो मनुष्य वही प्राणदायग करता है वह भी दुःख से रहित होकर कुलभ भुक्ति का प्राप्त करता है ॥१८॥ इमि कीट पतंग आदि तिमिर मानि वाक् जीव आ वही देहायग करने से परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥ द्विजगण 'हूगरे तीर्थों का प्रति जो लागे में थड़ा है उस भ्रान्ति समझिए । क्योंकि अन्य समस्त तीर्थों का फल तो एक पुरुषात्तम से प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ जो मनुष्य थड़ापूर्वक एक बार भी पुरुषात्तम का दान करता है वह हजारों पुण्या में उत्तम पुरुष हारकर जग लेता है ॥२१॥ जिमनिय प्रवृत्ति तथा पुण्य से भी वह उत्तम है इमानिय इस लाल में वेद और पुराण में वह उत्तम माना गया है ॥२२॥ जो पुराण तथा वेदान्त में परमात्मा नाम से पुकारा जाता है

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः । 'आस्ते विश्वोपकाराय सेनासौ' पुरुषोत्तमः ॥२३॥
 पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
 इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं, संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः । देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यग्मोक्षाभिकाङ्क्षिभिः ॥२५॥
 पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२६॥
 गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः । कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्णयति तत्र ॥२७॥
 यदिदं नृभिरेष्टा मोक्षमिच्छन् शश्वतम् । तस्मिन्क्षेत्रे वरे पुण्ये निवसध्वमतग्रिताः ॥२८॥

ध्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽन्यक्तजन्मनः । निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९॥
 तस्माद्युध प्रयत्नेन निवसध्व द्विजोत्तमाः । पुरुषाख्ये चरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सव ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मण्यसिंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधि-
 कशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

विश्व के उपकार के लिये पुरुषोत्तम कहलाता है ॥२३॥ पुरुषोत्तम क्षेत्र में मार्ग, श्मशान गृहमण्डप तथा गलियों में या जहाँ-वहीं भी चाहते हुए या बिना चाहते हुए भी जो मनुष्य देहत्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इसलिय मास के इच्छुवा को अखिल प्रयत्न करके उस क्षेत्र में शरीरत्याग करना चाहिये ॥२५॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य की समता करने वाला न कोई तीर्थ हुआ है न होगा । वहाँ देहत्याग करने से मानव दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२६॥ यह तो उस क्षेत्र के गुणा का एकदेशी वर्णन ही मैंने किया है । क्योंकि उसके निखिल गुणों का वर्णन तो कोई सबको वर्णों में भी नहीं कर सकता ॥२७॥ मुनिवर ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष चाहते हैं तो आलस्य से रहित होकर उस पवित्र तथा उत्तम क्षेत्र में वास कीजिये ॥२८॥

ध्यास ने कहा—अन्यक्तजन्मा ब्रह्मा के वचना को सुनकर मुनिवृन्द ने वहाँ निवास करके परमपद को प्राप्त किया । द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये यदि आप लोग भी मोक्ष चाहते हों तो प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में निवास कीजिए ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवादप्रकरण में क्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सत्सहस्रवर्ष अध्याय समाप्त ॥१७७॥

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डुचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः । सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः । अवाप परमा सिद्धिमाराध्यः पुरुषोत्तमम् ॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः सशितव्रताः । सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४॥

मुनय ऊचुः

कौण्डी कण्डुः कथं तत्र जगाम परमा गतिम् । ओतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलाः कथा तस्य मनोहराम् । प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६॥
'पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे । कन्दमूलफलः पूर्णं पश्मिपुष्पकुशान्वितः ॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभिते । नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८॥

अध्याय १७८

कण्डुनृपि के चरित्र का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर ! समस्त जीवा ने लिय सुखदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल देने वाले उस पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में महातेजस्वी, परमधर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र, दान्त, अलिल प्राणिया के हित में निरत, जितेन्द्रिय, जितक्राव तथा वेद-वेदाङ्ग-पारगत कण्डु नामक ऋषि ने पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की । फिर पूणव्रती, अशेष मृता के हित में निरत, इन्द्रियो का दमन करने वाले, प्रीति को जीतने वाले तथा बाहु से रहित दूसरे मुनिबन्धु भी वही सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! कण्डु कौन थे ? कैसे उन्होंने परम गति प्राप्त की ? उनका चरित्र वर्णन कीजिए, हम सुनना चाहते हैं ॥५॥

व्यास बोले—मुनिवर ! उनकी मनोहर कथा को सुनिये । मैं संक्षेप में उनकी क्रिया का वर्णन करूँगा । मुनिश्रेष्ठो ! पवित्र, विजय, मनोहर, कन्द-मूल फलों से परिपूर्ण, लकड़ी, पुष्प, तथा कुसों से युक्त, अनेक वृक्ष-लताओं से प्रपूर्ण, नाना पुष्पों से सुशोभित विविध पक्षियों से शान्तायमान, रमणीय तथा नाना मृगगणों से युक्त गोदा-

१क. स. ०द्विमाप्य पु० । २क. स. सयतेन्द्रियाः । ३स. ०य यदिमां । ४क. प्रतिदे । ५क. य.

०फलैर्मध्ये स० । ६स. ०पक्षरजः कुपे । ना० ।

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः । सर्वतुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम् ॥९॥
 तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम् । व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमीनसुसंयमैः ॥१०॥
 ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तपे सुमहतपः ॥११॥
 दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं भुनेस्तस्य सुविस्मिताः । बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२॥
 भूमिं तयाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः । कण्डुः सतापयामास त्रैलोक्य तपसो बलात् ॥१३॥
 अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः । इत्यनुवंस्तवा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४॥
 मन्त्रयामासुरव्यघ्राः शक्रेण सहितास्तदा । भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५॥
 ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शकस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगविताम् ॥१६॥
 सुमध्यां चारुजह्नुयां तां धीनभोगिण्योधराम् । सर्वलक्षणसपन्नां प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं त्वं यदाप्सौ तप्यसे मुनिः । विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयस्वा (स्याऽऽ) शु सुप्रभे ॥१८॥

प्रम्लोचोवाच

तव वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं प्रभो । किंतु शङ्का मर्मबाज जीवितस्य च सशयः ॥१९॥
 विभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम् । अत्युग्रं दीप्ततपस ज्वलनाकंसमप्रभम् ॥२०॥
 ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपायताम् । कण्डुः परमतेजस्वी ज्ञाप दास्यति दुःसहम् ॥२१॥

वरी ने तब पर कण्डु का आश्रम था, जो सब ऋतुओं में होने वाले फल-पुष्पों से सुसम्पन्न एवम् कदली वृक्षों से शोभित था । उस आश्रम में मुनि व्रत, उपवास, नियम, स्नान मीन तथा समय के द्वारा परम अद्भुत तप करते थे । ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चवागिन-सेवन, वर्षा में भूमिशयन और हेमन्त में गीले वस्त्रों का धारण करके वे महान् तप करते थे । मुनि भी तपश्चरित को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधर अत्यन्त विस्मित हुए । मुनिश्रेष्ठो ! कण्डु ने तप के बल से भूमि, आकाश, स्वर्ग—तीनों लोक—को तपा डाला । तपस्या में निरत मुनि को देखकर देवताओं ने कहा— 'अहा ! इसका महान् वीर्य तथा महान् तप आश्चर्यजनक है ।' तब मुनि ने त्रय से उद्विग्न होकर तप में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र सहित देवगण परस्पर भन्वणा करने लगे । देवता के अग्निप्राय की समझ कर तीनों भुवन के ईश्वर तथा फल देने वाले इन्द्र ने वनिताओं में श्रेष्ठ, रूप तथा यौवन से गवित, मुन्दर कटि वाली, मुन्दर जघा वाली, रूपूल नितम्ब तथा स्तन वाली और सर्वलक्षण सम्पन्न प्रम्लोचा नामक अप्सरा से कहा ॥१६-१७॥

इन्द्र बोले—प्रम्लोचा ! तुम शीघ्र जाओ ! मुन्दर कान्ति वाली ! ये जो मुनि तपस्या कर रहे हैं, उनमें तप में विघ्न डालकर उन्हें शीघ्र विचलित करो ॥१८॥

प्रम्लोचा बोली—सुरश्रेष्ठ ! मैं आप के वचन को सतत पूरा करती हूँ । किन्तु इस बार निश्चित रूप से मेरे जीवन में सन्देह है । ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, अत्यन्त उग्र, प्रदीप्त तप से युक्त तथा आनन्द्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले उन मुनिवर से मैं डरती हूँ । परम तेजस्वी कण्डु मुनि मुझे विघ्न डालने के लिये आयी हुई समझकर

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला । विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२॥
 अलम्बुषा मिथकेशी शशिलेखा च वामना । अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगविताः ॥२३॥
 सुमध्याश्चावदनाः पीनोन्नतपयोधराः । कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः । तिष्ठन्तु नाम चाग्न्यास्तास्त्वं चान्न कुशला शुभे ॥२५॥
 कामं वसन्त वायु च सहायार्थं ददामि ते । तं सार्धं गच्छ सुभोगि यथाऽस्ते स महामुनिः ॥२६॥
 शनस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चाहलोचना । जयामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धं चाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७॥
 गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम् । मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकलमयम् ॥२८॥
 अपश्यत्सा वन रम्य तैः सार्धं नन्दनोपमम् । सर्वतुर्वरपुष्पाढर्यं शालामृगगणाकुलम् ॥२९॥
 पुण्यं पद्मबलोपेतं सपल्लवमहाबलम् । शीघ्ररम्भान्सुमधुराञ्जशब्दान्मृगमुखेरितान् ॥३०॥
 सर्वतुल्यभारादघान्सर्वतुल्यकुसुमञ्जलान् । अपश्यत्पादपादशैव बिहङ्गं रनुनादितान् ॥३१॥
 आश्रमान्मातृकाभ्यामृगारिकेरान्सतिन्वुकान् । अथ बिल्वास्तथाजीवान्बाह्मिन्बोधिपूरकान् ॥३२॥
 पनसालिकुचाश्रोपाञ्जिरीवान्सुमनोहरान् । पारावतास्तथा कोलानरिमेवाम्लवेतसान् ॥३३॥
 भल्लातकानामलकाञ्जशतपण्डिच किशुकान् । इक्षुद्वान्करवीराश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४॥

हु सह शाप देंगे । उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अल-
 म्बुषा, मिथकेशी, शशिलेखा, वामना तथा दूसरी भी रूप-यौवन-गविता, सुन्दर बटि वाली, सुन्दर मुख वाली, स्पूल
 एवम् उन्नत स्तन वाली और कामसाधन अनिपुण अप्सरायें हैं । उन्हीं को इस कार्य के लिये नियुक्त करें ॥१९-२४॥

ब्रह्मा बोले—उसके वचन को सुनकर पुन इन्द्र ने कहा—‘दूसरी अप्सरायें मही जाएंगी । कामिनी ! तुम्ही
 इस काम में कुछ हो । कामदेव वसन्त तथा वायु को तुम्हारी सहायता के लिये देता है । सुन्दर बटि वाली !
 उनके साथ तुम उम महामुनि के पास जाओ ।’ दक्ष की बात सुनकर वह मनोहर नेत्र वाली अप्सरा उनके साथ आवाश-
 भागं से मुनि के आश्रम के लिये चल पड़ी । वहाँ जाकर उसने उत्तम वन तथा आश्रमवासी निष्पाप एवम् अत्यन्त
 तपस्वी मुनि को देखा ॥२५-२८॥ उसने नन्दनवन तुल्य रमणीय वन को देखा, जो सब ऋषुओं में होने वाले उत्तम
 पुष्पा में समग्र शाखाओं तथा मृगगणों से परिपूर्ण, पवित्र और कमलों तथा पल्लवों से युक्त था । वहाँ शगवृन्द
 शक्यमुषद तथा अपल्ल मयूर शब्द कर रहे थे । उस वन में ऐसे वृक्ष योग्यमान थे, जो सब ऋषुओं में फलते-
 पड़ते थे और जिन पर पड़ियों का समूह मधुरालाप करता रहता था । आम आमला, सुन्दर नारियल, तिन्दुर
 (तेंदू), विन्ध जीव, (वरायन), दाडिम, बीरपूर, बटहल, बडहूर, नन्दम्व शिरीष, मनोहर पारावत, कोल (बेर),
 अरिमेर (सैर), अम्लनेत्र (अम्लबैर), भल्लातक (मिलावा), छतिवन, पलाश, इष्टुद (हिणोट), करवीर, हड़,
 बहेरा—इन वृक्षों तथा अन्य वृक्षों को भी उस विनाशाली अप्सरा ने वहाँ देखा ॥२९-३४॥ उसी तरह अशोक

एतान्न्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना । तथैवाशोकपुन्नामकेतकीवकुलानथ ॥३५॥
 पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्द्रीवरांस्तथा । पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुमास्तथा ॥३६॥
 शालांस्तालास्तमालाश्च निचुलोल्लोमकांस्तथा । अन्याश्च पादपघ्नेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान् ॥३७॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविज्जुश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८॥
 प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्विविधैः खगैः । धोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्विश्वाप्यधिष्ठितम् ॥३९॥
 सरासि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदं पुण्डरीकैश्च तथा मीलोत्पलैः शुभैः ॥४०॥
 कल्लारैः कमलैश्चैव आधितानि समन्ततः । कादम्बैश्चकवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥४१॥
 कारण्डवैवंकहैसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च । एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताञ्जलचारिभिः ॥४२॥
 क्रमेणैव तथा सा तु यत्नं बभ्राम तैः सह । एवं वृष्ट्वा धनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३॥
 विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना । प्रोवाच वार्युं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४॥

प्रम्लोचोवाच

कुरुष्व मम साहाय्यं ध्रुवं सर्वे पुण्यपुण्यक

॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथैत्युक्ता सुरद्विजा । प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनि ॥४६॥
 अद्य त वैहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशस्त्रगलद्विभं करिष्यामि क्रुसारयिम् ॥४७॥
 ब्रह्मा जनावनो वाऽपि यदि वा मीललोहितः । तथाऽप्यद्य करिष्यामि कामवाणक्षतान्तरम् ॥४८॥

पुन्नाग, केतकी, मीलसिरी, पारिजात, कचदार, मन्दार, नीलकमल, पाटला देवदारु, शाल शाल तमाल निचुल (बैत), लोमक तथा ब्रूसरे भी पञ्च-पुष्पों से युक्त वृक्षा को उसने देखा । चकोर, मयूर भृङ्गराज तीले, कोमल गौरदे हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक तथा अन्य विविध पक्षीगण मनोरम एवम् सुमधुर शब्द बहाकर रहे थे ॥३५-३९॥
 वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ जल से युक्त अनेक सरोवर थे, जो कुमुद, कमल, नील कमल, रक्तकमल, कलहस, चक्रवाक जलकुवकुट, कारण्डव वक, हंस, बल्लुए, मद्गु तथा अन्य जलचरन्तुओं से व्याप्त थे । काम आदि के साथ प्रम्लोचा ने तमसा वन में भ्रमण किया । इस प्रकार परम आश्चर्यजनक मनोरम वन का देखकर उस बराणता के नेत्र विस्मय से प्रदुल्लित हो गये । द्विजधेनूँ ! तब उसने वार्यु काम तथा वसन्त से कहा ॥४०-४४॥

प्रम्लोचा बोली—तुम सब अलग अलग मेरी सहायता करो ॥४५॥

ब्रह्मा बोली—द्विजगण ! उन्होंने उमका वचन स्वीकार किया । तब उसने कहा—'आज मैं मुनि के पास जाऊँगी । देह का समयन करने वाले इन्द्रिय रूपी घोड़ी को जीतने वाले तथा क्रुसारयि से युक्त मुनि के घोडों की शरी को आज मैं कन्दर्प रूपी शस्त्र से काट डालूंगी । ब्रह्मा या विष्णु या महेश ही क्यों नहीं, उन्हें भी आज मैं काम-

इत्युक्त्वा प्रययो^१ साऽय यत्रासौ तिष्ठते मुनिः । मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाधमम् ॥४९॥
 सा पुंस्कोकिलमाधुर्यं नदीतीरे व्यवस्थिता । स्तोकेमात्र स्थिता तस्मादगायत वराऽन्तराः ॥५०॥
 ततो वसन्तः सहसा^२ बल समकरोत्तदा । कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१॥
 वदो गन्धवहश्चैव मलयार्द्रनिकेतनः । पुष्पाणुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ॥५२॥
 पुष्पवाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः । मुनेश्च क्षोभयाभास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३॥
 ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः । 'अगाम यत्र सा सुभ्रूः कामवाणप्रपीडितः ॥५४॥
 दृष्ट्वा तामाह संदृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचन' । ऋण्डोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५५॥

ऋषिरुवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चातहासिनि । मनो हरसि मे सुभ्रू ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६॥

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं 'पुष्पायंमहमागता । आदेशं वेदि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७॥

व्यास उवाच

श्रुत्वां वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः । आवाप हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८॥

बाग से क्षत विक्षत कर दूरी, इतना कहकर वह वहाँ के लिए चल पड़ी, जहाँ मुनि रहते थे । मुनि के तप प्रभाव से आश्रमस्थ हितैष जीव भी शान्त हो गये थे । नर कोयली के मधुरालाप से युक्त नदी तट पर यह रव गई । मुनि से पौड़ी ही दूर पर स्थित होकर वह वरायणा गाने लगी । तब सहसा वसन्त ने आकर असमय में ही कोकिलों के आलाप को मनोहर तथा मधुर बना दिया । मलयजल स्थित मुगन्धित वायु भी धीरे-धीरे धरते हुए छोटे-बड़े मुल्लित पुष्पा को गिराने लगे । स्वयं बन्धुपं पुष्पो वा बाण लेकर मुनि के समीप जाकर उनके मन को विचलित करने लगा । गीतध्वनि सुनकर मुनि आश्चर्यान्वित हो गये और काम-बाण से पीडित होकर उसी सुन्दर मौह वाली अप्सरा के पास पहुँचे । उसे देखकर विस्मय से मुनि के नेत्र उत्फुल्ल हो गये, उत्तरीय बन्ध नीचे गिर पड़ा और शरीर में रोमाञ्च हो आया ॥४९-५५॥

ऋषि बोले—सुन्दर नितम्ब वाली ! मनोहर हास्य करने वाली ! सुन्दरि ! तुम कौन हो ! किसकी हो ? सुन्दर गति वाली ! सुन्दर गी वादी ! तब-तब नतलाओ । तुम मेरे मन का हृण कर रही हो ॥५६॥

प्रम्लोचा बोली—मैं आपकी अनुचरी हूँ । पूछो के लिए मैं यहाँ आई हूँ । क्षीप्र आप आदेश करें । मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कर सकती हूँ ॥५७॥

व्यास ने कहा—उसकी बातों को सुनकर मृग्य मुनि ने धैर्य का पटित्वाप कर उस कामिनी का हाथ पकड़-कर अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥५८॥ (विजयेष्टो) । तदनन्तर काम, वायु तथा वसन्त ने कृतकृत्य होकर स्वर्ग

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः । जग्मुर्ययागतं सर्वं कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९॥
 शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम् । श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०॥
 स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम् । आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृतिं ॥६१॥
 रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम् । दिव्यालंकारसंयुक्तं ॥६॥ [योऽश्वत्थराकृतिं ॥६२॥
 दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्त्रगन्धभूषितम् । सर्वोपभोगसंपन्नं सहस्रं तपसो बलात् ॥६३॥
 दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता । अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ॥६४॥
 स्नानं संध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम् । व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५॥
 त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमर्हनिशम् । मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःश्रमम् ॥६६॥
 संध्यारात्रिदिवापश्रमास्तर्चयन्हायनम् । न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७॥
 सा च तं कामजर्भावं विदग्धा रहसि द्विजा । वरयामास सुधोनिः 'प्रलापकुशला तदा ॥६८॥
 एषं कण्डुस्तया सार्धं वर्पाणामधिकं शतम् । अतिष्ठन्मन्वरद्वीप्या ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९॥
 सा तं प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम् । प्रसादसुमुखो ब्रह्मसन्नुवातुं त्वमर्हसि ॥७०॥
 तपैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः । विनानि कतिचिद्भूदे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१॥

आकर इन्द्र से अप्सरा तथा मुनि की चेष्टाओं का वर्णन कर दिया । यह सुनकर इन्द्र तथा देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९-६०॥ उस कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेव जैसा बना लिया । मुनि तपस्या के बल से एकाएक सोलह वर्ष का युवक रूप-यौवन से सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर दिव्य आभूषणों से विभूषित, दिव्यवस्त्रधारी, कमनीय दिव्य माला तथा सुगन्ध से युक्त और सब प्रकार के उपभोग से सम्पन्न हो गया । अप्सरा उसकी वह विमृति देखकर परम आश्चर्यित हुई और यह कहकर प्रसन्न हुई कि 'अहा ! मैंसा इसके तप का प्रभाव है । मुनिवर ! तत्पश्चात् वह मुनि स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत उपवास, नियम तथा ध्यान छोड़कर दिनरात अप्सरा के साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगा । काम से व्यथित हृदय वाले मुनि ने तपस्या के क्षय को नहीं समझा । विषय में आसक्त बित्त वाले मुनि ने सन्ध्या, रात, दिन, पक्ष मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष तक को भी नहीं समझा । द्विजगण ! तदनन्तर वातपीत करने में चतुर एवम् हाव-भाव दिखाने में प्रवीण उस बरागना ने मुनि का वरण कर लिया । इस प्रकार सौ वर्षों से अधिक काल तक कण्डु मुनि ग्राम्यधर्म में निरत होकर उसके साथ मन्दराचल की झील में पड़ा रहा ॥६१-६९॥ (एक दिन) अप्सरा ने महामाणशाली मुनि से कहा— मैं स्वर्ग जाना चाहती हूँ । ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न पूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये । उसके इतना कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा— 'मद्रे ! कुछ दिन और ठहरो ।' तदनन्तर पुनः सौ वर्षों से अधिक समय तक अप्सरा ने उस महात्मा

एवमुक्ता ततस्तेन साधं वर्षशतं पुनः । ब्रुभुजे विषयास्तन्वो तेन साधं महात्मना ॥७२॥
 अनुज्ञा देहि भगवन्ब्रजामि त्रिदशालयम् । उक्तस्तथेति स पुनः स्वीयतामित्यभाषत ॥७३॥
 पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना । याम्यह त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४॥
 उक्तस्तथैवं स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणम् । इहाऽऽस्यता मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५॥
 तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनषिणा पुनः । शतद्वय किंचिदूनं वर्षाणा समतिष्ठत ॥७६॥
 गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम् । प्रोक्तः प्रोक्तस्तथा तन्व्या स्वीयतामित्यभाषत ॥७७॥
 तस्य शापभयाद्भोर्दक्षिण्येन च वक्षिणा । प्रोक्ता प्रणयभङ्गातिवेदिनी न जह्री मुनिम् ॥७८॥
 तया च रमतस्तस्य परमर्षेर्हनिशम् । नवं नवमभूत्प्रेम मग्मयास्तक्तचेतसः ॥७९॥
 एकदा तु ह्वरायुक्तो निश्चक्रामोदजान्मुनिः । निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०॥
 इत्युक्त ततया प्राह परिवृत्तमहः क्षुभे । संध्योर्पास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽप्यथा भवेत् ॥८१॥
 ततः प्रहस्य मुविता सा स प्राह महामुनिम् । किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
 गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कस्यते ॥८२॥

मुनिस्वाध

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदं शुभम् । मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽभयम् ॥८३॥

के साथ विषय का उपभोग किया ॥७०-७२॥ तब उसने मुनि से कहा—‘मयक्’ आता बीजिये । मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ उसके कहने पर फिर मुनि ने कहा—‘नहीं, अभी ठहरो ।’ पुनः सौ वर्ष से अधिक समय तक ठहर कर अन्तरा प्रेम से मुहुरताते हुए कहा—‘ब्रह्मन् । मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ तब मुनि ने दीर्घ नेत्र वाली उस अन्तरा से कहा—‘मुन्दर भी वाली । चिरकाल तक मेरे साथ और रहे तब जाना ।’ मुनि के साथ के डर से वह दो सौ वर्षों से कुछ कम बाल तक मुनि के साथ चिरठहर गई । तत्पश्चात् उसने इन्द्रपुरी जाने के लिये मुनि से आज्ञा मागी । पुनः मुनि ने कहा—‘अभी ठहरो ।’ मुनि ने घाय के डर में प्रणयमगन्त्य पीडा को समझन वाली उस चतुर अन्तरा ने मुनि का त्याग नहीं किया । उसका साथ रातदिन रमण करते हुए विषयलोभुष मुनि के हृदय में नवीन-नवीन प्रेम का संचार होन लगा । एक दिन आश्रम से पीछेनापूर्वक निवृत्त हुए मुनि से अन्तरा पूछ बैठी—‘कहाँ जा रहे हैं ?’ मुनि ने उत्तर दिया—‘कल्याणि । दिनान्त हो रहा है मैं सन्ध्यासामन रहूँगा, अन्यथा क्रिया का लाप हो जायगा ।’ तब हँसकर अन्तरा ने महामुनि से कहा—‘असल घमों के ज्ञाना । क्या आज ही दिनान्त हो रहा है ? इनने दिन बीत गये । आप क्या करते थे ?’ ॥७३-८२॥

मुनि धोले—भद्रे । प्रातःकाल तुम पवित्र नदी-तट पर आई । मुन्दर नितम्ब वाली । मैंने तुम्हें देखा

‘इयं च यतंते संध्या परिणाममहो गतम् । अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यता मम ॥८४॥

प्रम्लोचोवाच

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा । किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५॥
ततः संसाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेषाणाम् । कथ्यता भोर कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६॥

प्रम्लोचोवाच

‘सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च । भासाश्च षट्सहस्रान्यस्मत्पतीतं दिनत्रयम् ॥८७॥

ऋषिरुवाच

सत्यं भोर धदस्येतत्परिहासोऽप्यवा शुभे । दिनमेकमह मन्ये त्वया सार्धमिहोपितम् ॥८८॥

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनुतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके । विशेषादद्य भवता पुष्टा मार्गानुगामिना ॥८९॥

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः^१ । धिग्धिदमामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०॥

भोर तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुईं । यह सन्ध्याकाल है । दिन का अवसान हो गया है । क्यों तुम उपहास कर रही हो ? सच्ची बात बतलाओ ॥८३-८४॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् ! प्रातःकाल में आई—यह कहना आपका ठीक है । किन्तु उस प्रातःकाल को बीते आज सैंकड़ों वर्ष हो गये हैं । तब अययुक्त मुनि ने लम्बी आँखों वाली प्रम्लोचा से पूछा—‘कहो, तुमसे रमण करते मुझे कितने समय हो गये ?’ ॥८५-८६॥

प्रम्लोचा बोली—जी सौ वर्ष, छ मास, तीन दिन व्यतीत हुए ॥८७॥

ऋषि बोले—कल्याणि ! क्या यह सत्य कह रही हो या उपहास कर रही हो ? मैं तो समझ रहा हूँ कि तुम्हारे साथ एक ही दिन बीता है ॥८८॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् ! विशेष करके जब आपने अन्वेषण की दृष्टि से पूछा है तब मैं आपके समीप बसत्य क्यों बोलूँ ? ॥८९॥

व्यास बोले—द्विजधेष्ठो ! उसका वचन सुनकर मुनि आचारानुसृत अपने आपको चिक्कारने अगे तथा निन्दा करने लगे ॥९०॥

१ स सप्तान्युनान्यती० । २ स. ० एव षोडशीवात्र सम० । ३ क ० माः विदित्वा इत्य० ।

मुनिरुवाच

तपासि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां घनम् । हृतो विवेकः केनापि' योषित्मोहाय निर्मिता ॥९१॥
ऊर्मिपट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे । गतिरेषा कृता येन धिवतं काममहाग्रहम् ॥९२॥
घतानि' सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च । नरकग्राममार्षेण कामेनाद्य' हतानि मे ॥९३॥
'विनिन्देत्यं स घर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना । तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४॥

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकाम यत्कार्यं तत्त्वया कृतम् । देवराजस्य' यत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावघेष्टितैः ॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतोत्रेण वह्निना । सता' साप्तपदं' भञ्ज्यमुपितोऽहं त्वया सह ॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा' बुयमिहं तव । ममैव' दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७॥
यथा शक्रप्रियायिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः । त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८॥

ध्यास उवाच

यावदित्यं स विप्रपिस्ता ब्रवीति सुमध्यमां । तावत्स्वलस्त्वेदजला सा भूभवातिवेपथुः ॥९९॥
प्रवेपमाना स च तां स्विन्नगान्त्रतां सतीम् । गच्छ गच्छेति सार्धोद्यमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००॥

मुनि बोले—मेरे तप नष्ट हो गये, ब्रह्मवेत्ताओं का घन नष्ट हो गया, किसी ने विवेक का अपहरण कर लिया। अहो! मोह भ डालने के लिये ही स्त्रिया की रचना हुई है। वहाँ तो मैं इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्म को प्राप्त करने वाला था और वहाँ मेरी यह दशा? उस महाग्रह रूपी काम को धिक्कार है जिसने मेरी यह दशा की है। नरकसमूह में पहुँचाने वाले काम ने आज मेरे व्रत समस्त वेद तथा अतिक्रूरणों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार घर्मज्ञ मुनि ने अपने से अपनी निन्दा करने बँटी हुई उस अप्सरा से कहा ॥९१-९४॥

ऋषि बोले—वापिनी! तुम स्वेच्छा से चली जाओ। इन्द्र का जो काम तुम्हें करना था वह तुमने हाव-भाव दिलाकर कर दिया। तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से मैं तुम्हें जलाऊँगा नहीं। सज्जनों की जो सत्परी मित्रता होती है वह तुमसे हो गई, क्योंकि सात सौ वर्षों से ऊपर मैं तुम्हारे साथ रह चुका हूँ। अथवा तुम्हारा दोष ही क्या है या मैं ही तुम्हारा क्या कर लूँगा? यह मेरा ही दोष है कि मैं इन्द्रियों को न जीत सका। इन्द्र के बल्याण करने की इच्छा से तुमने मेरे तप का नाश किया। तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही मैं महामोह में पड़कर निन्दा का पात्र बन गया ॥९५-९८॥

ध्यास बोले—इस प्रकार अब वे शाह्यण अप्सरा से कह रहे थे तब वह पत्नीने से तर-बतर होकर भाँप रही थी। उनी अवरया म मुनि ने जोरपूर्वक उससे कहा—'जाओ जाओ।' पटवार साकर उस अप्सरा ने आधम में

सा तु निर्भत्सिता तेन विनिष्कम्प्य तदाश्रमात् । आकाशगामिनी स्वेदं ममार्जं तरुपल्लवैः ॥१०१॥
 वृक्षाद्भक्षं ययौ बाला उदग्राहणपल्लवैः । निर्ममार्जं च गात्राणि शलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२॥
 ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः । निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपो तदञ्जतः ॥१०३॥
 तं वृक्षा जगृह्णर्भमेकं चक्रे च मारुतः । सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा धवृधे शनैः ॥१०४॥
 मारिष्या नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना । प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५॥
 स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः । पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६॥
 ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम् । दक्षिणस्योदघेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७॥
 सुरम्यं बालुकाकीर्णं केतकोवनशोभितम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिहतं शिवम् ॥१०८॥
 सर्वत्र सुखसंचारं सर्वतुकुसुमान्वितम् । सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९॥
 भृगवाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा । गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥११०॥
 ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम् । ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्यैर्निषेवितम् ॥१११॥
 दृष्ट्वैव तत्र तवा' क्षेत्रं देव च पुरुषोत्तमम् । कृतकृत्यमिवाऽग्रमान भवे स मुनिसत्तमः ॥११२॥
 तत्रैकाग्रमना' भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः । ब्रह्मपारमयं कुर्वन्जनपमैकाग्रमानसः ॥
 अर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३॥

निखिल कर आकाश-मार्ग से गमन करती हुई तर पल्लवा से पसीने की पोछ बाला । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर होती हुई वह जाती थी और गर्भजल को वृक्ष पल्लवों से पोछ देती थी । ऋषि ने उससे शरीर में जो गमाधान किया था वह गर्भ पसीना बन कर उसके लया से निखल गया । वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया और बाधु ने उसे एकत्रित कर दिया । चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसे पालने लगे । तब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा । उसी गर्भ से वृक्षा की चारुनेत्रा मारिष्या नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेतात्रा की पत्नी तथा दक्ष की माता बनी । भगवान् कण्डु भी तब के क्षम हो जाने पर पुरुषोत्तम नामक विष्णु-क्षेत्र को चले गये ॥९९-१०६॥ दक्षिण समुद्र के तट पर उन्होंने मोक्षदायक, पृथ्वी पर दुर्लभ, अखिल कामनाओं के फल को देने वाले, मनोहर, बालुका से परिपूर्ण केतकीवन से सुशोभित, अनन्त वृक्ष-लताओं से व्याप्त, नाना पक्षियों से शब्दित तथा कल्याणकारी क्षेत्र को देखा । वहाँ सर्वत्र सुख का साक्षात्कार था । सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प खिले हुए थे । मनुष्यों को समस्त सुख प्राप्त थे । वह क्षेत्र माना निखिल गुणों की निधि था । पहले भृगु आदि मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्य मोक्षामिलायिका ने उस क्षेत्र की सेवा की थी । वहाँ पर कण्डु ने देवगणा से अलंकृत तथा ब्राह्मण आदि वर्णों एवं आश्रमवासियों से सुसेविन हरि को देखा । पुरुषोत्तम देव तथा क्षेत्र को देखते ही वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे । वहाँ एकाग्रचित्त होकर हरि की आराधना करने लगे । उन्होंने मुखात्रा को उठाकर एकाग्र मन से ब्रह्मपारम्य का जप करते हुए योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया ॥१०७-११३॥

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं 'मुने श्रोतुमिच्छामः परमं' शुभम् । जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशवः ॥११४॥

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः 'परमात्मरूपः' ।

॥ ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः ॥११५॥

स कारणं 'कारणसंघितोऽपि, तस्यापि हेतुः' परहेतुहेतुः ।

'कार्योऽपि चैष सह कर्मकर्तुः . . . 'रूपैरनेकैरवतीह 'सर्वम्' ॥११६॥

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।

ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः ॥११७॥

ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः । तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥११८॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य 'मुनेर्जायं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमः । भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदुर्लभां पुरुषोत्तमः ॥११९॥

प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भवतवत्सलः । गत्वा तस्य 'समीपं' तु प्रोवाच मधुसूदनः ॥१२०॥

मेधगम्भीरया वाचा विद्वाः संनादयन्निव । आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलमन्वनम् ॥१२१॥

मुनियों ने कहा—मुने ! हम परम पवित्र ब्रह्मपार मन्त्र के विषय में सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए बण्डु ने वेदाद्य की आराधना की थी ॥११४॥

व्यास बोले—विष्णु पारपर, अपारपार, परो से भी परे तथा परमात्मा स्वरूप हैं । वे ब्रह्मपार, परपार-भूत, परो से भी परे तथा पारपार हैं ॥११५॥ वे कारण, कारणों के आश्रय, कारणों के कारण तथा दूसरों के कारणों के कारण हैं । वे कार्य, कर्म, कर्ता होते हुए भी अनेक रूपों से सब की रक्षा करते हैं । वे ब्रह्म, प्रभु, सर्वभूतमय तथा प्रजामो के स्वामी हैं । वे जगिनासी, निरय, अजन्मा, विष्णु तथा क्षय आदि से रहित हैं । जैसे पुरुषोत्तम भगवान् ब्रह्म, अधिनासी, अजन्मा तथा नित्य हैं वैसे मेरे राग आदि दोष धान्त हो जायें ॥११६-११८॥

व्यास बोले—द्विजवर ! मुनि ने ब्रह्मपार मन्त्र का जप सुनकर तथा अत्यन्त दुष्ट भक्ति जानकर भक्तवत्सल भगवान् परम प्रसन्न हो गये । सब विनता के वंश की बढ़ाने वाले गरुड पर चढ़कर मधुसूदन मुनि ने समीप जाकर मेध के समान गम्भीर वाणी से विद्वांसों को सम्बोधित करते हुए कहने लगे ॥११९-१२१॥

१ मुने । २४ स स्तवम् । ३४ परमाचरणी । ४४. ०गतस्ततो० । ५४ ०रपादो० । ६४ ग कार्येषु चैव स० । ७४. स ०रूपैरे० । ८४ विष्णु । ९४. ०नेवर्त्ति य० । १० ०नेत्रेय । १०४ समीपे ।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते । वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुवत ॥१२२॥
 श्रुत्वं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः । चक्षुस्मीत्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम् ॥१२३॥
 अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् । शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४॥
 चतुर्बाहुमुदारङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम् । शीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥१२५॥
 सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम् । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यमिभूषितम् ॥१२६॥
 ततः ॥ विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूः ॥ दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७॥
 अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । इत्युक्त्वा 'मुनिशार्दूलास्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८॥

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण शीवत्साङ्ग जगत्पते । 'जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९॥
 अव्यक्त जिष्णो' प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम । पुण्डरीकाक्ष गोविन्द' लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०॥
 हिरण्यगर्भं श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन । भूगर्भं ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१॥
 अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर । अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२॥
 पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित । बुद्धातिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३॥

श्री भगवान् बोले—मुने! तुम्हारे मन में जो हो सो बोलो। मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। मुवर्ती! वर मागो। देवों के देव तथा चक्रधारी विष्णु के वचन को सुनकर मुनि ने जब आँखें खोली तो सामने अलसी-पुष्प के समान वर्ण वाले, कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, हाथों में शस्त्र चक्र तथा गदा धारण करने वाले मुकुट तथा अगद पहिने वाले, चार भुजा वाले, मुडीज अंग वाले, पीतवस्त्रधारी, पवित्र, शीवत्स चिह्न से युक्त, वनमाला से विभूषित, सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त रत्नों से आभूषित दिव्य चन्दन से लिप्ताङ्ग और दिव्य माला से सुशोभित हरि को देखा। मुनि पर दण्ड की तरह गिर कर मुनि ने वेशव को प्रणाम किया और 'आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ' यह कहकर उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥१२२-१२८॥

कण्डु बोले—नारायण! हरे! शीवत्सचिह्न से युक्त! जगत्पते! जगद्बीज! जगद्धाम! जगत्-साक्षिन्! आपको नमस्कार है ॥१२९॥ अव्यक्त! जयशील! आदिकारण! प्रधान! पुरुषोत्तम! कमल-लोचन! गोविन्द! लोचनाथ! आपको नमस्कार है ॥१३०॥ हिरण्यगर्भ! लक्ष्मीनाथ! पद्मनाथ! सनातन! भूगर्भ! ध्रुव! ईशान! हृषीकेश! आपको नमस्कार है ॥१३१॥ अनादि! अनन्त! अपर! अजेय! विजे-ताओ मे थेष्ट! आपकी जय हो! अजित! अखण्ड! श्रीकृष्ण! श्रीनिवास! आपको नमस्कार है ॥१३२॥ मेघ के धर्मों के कर्ता! दुष्पार! दुराधम! दुःख तथा आर्ति के नाशक! हरे! अलशायिन्! आपको नमस्कार

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वरनाकुल । भूताधिवास भूतात्मन्भूतघर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३४॥
 यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञघाताभयप्रद । यज्ञगर्भं हिरण्याङ्ग पृथिनगर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३५॥
 क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभूक्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृदक्षी । क्षेत्रात्मक्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६॥
 गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह । गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७॥
 त्व विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्व जिष्णुस्त्व जनादेन । त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्व भवत्प्रभुः ॥१३८॥
 त्व भूतकृत्यमव्यक्तस्थ भवो भूतभूद्भवान् । त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमोदिवरम् ॥१३९॥
 त्वमनन्त कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि । त्वं रुद्रस्त्वं दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वरः ॥१४०॥
 त्व विश्वकर्मा जिष्णुस्त्व त्व शंभुस्त्व वृषाकृतिः । त्व शंकरस्त्वमशनात्वं सत्यं त्वं तपो जनः ॥१४१॥
 त्व विश्वजेता त्व शर्म त्व शरण्यस्त्वमक्षरम् । त्वं शंभुस्त्वं स्वयंभूश्च त्वं श्रेष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२॥
 त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्वं तमिस्रहा । त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३॥
 त्वमुग्यजु सामवेद त्वमात्मा समतो भवान् । त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४॥
 त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः क्रतुः । त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५॥
 त्व सर्वदर्शन श्रीमांस्त्व सर्वदमनोऽरिहा । त्वमहस्त्व तथारात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः ॥१४६॥
 त्व कालस्त्व कला काष्ठा त्वं मूर्ध्नः क्षणा लवा । त्व बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७॥
 त्व विश्वयोनिस्त्व चक्षुस्त्व वेदाङ्ग त्वमव्ययः । त्वं वेदेवेदस्त्वं धाता विधाता त्व समाहितः ॥१४८॥

हे ॥१३३॥ भूतक्षर । अव्यक्त । भूतेश । पञ्चमहाभूतो वे तत्त्वो से अव्यय । भूताधिवास । भूतात्मन् । भूत-
 गर्भं । आपको नमस्कार है ॥१३४॥ यज्ञघर्भं । यज्ञधर । यज्ञघाता । अमयदाता । यज्ञगर्भं । हिरण्याङ्ग ।
 पृथिनगर्भं । आपको नमस्कार है ॥१३५॥ क्षेत्रज्ञ । क्षेत्रगर्भं । क्षेत्री । क्षेत्रत्वापी । क्षेत्रवर्त्ता । वशी । क्षेत्रात्मा ।
 क्षेत्ररहित । क्षत्रस्रष्टा । आपको नमस्कार है ॥१३६॥ गुणालय । गुणावास । गुणाश्रय । गुणावह । गुण-
 भोक्ता । गुणाराम । गुणत्यागी । आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु है । आप हरि हैं । आप चक्षुधारी
 हैं । आप जयशील हैं । आप जनादेन हैं । आप भूत, वषट्कार, भव्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतमर्ता तथा
 भूतो वे कारण हैं । आपको अजन्मा तथा ईश्वर कहा गया है ॥१३८-१३९॥ आप अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषा-
 कपि, रुद्र, अत्युग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शंकर, शुक, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, नृत्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयम्, श्रेष्ठ
 परायण, आदित्य, ओकार प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि,
 वायु, जल पृथ्वी, स्रष्टा भोक्ता, होता, हवि, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन,
 शत्रुनाशन, दिन तथा रात्रि हैं । पण्डितो ने आपको वर्ष कहा है ॥१४०-१४६॥ आप काल, कला, काष्ठा, मूर्ध्नं,
 क्षण, लव बालक वृद्ध, पुष्प, स्त्री, नपुंसक, विश्वयोनि, नेत्र, स्थान, सुचिन्धवा, आश्वत्थ, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व

१ख पृथ्वीग० । २क ०ध्नुस्त्वमस्मिन्नो त्व जनादेन । त्व । ३क ख ०श्वरेतास्त्व श० । ४ख त्वमा-
 नाशस्त्व । ५ख द्विजा । ६ग ०दान्यस्त्वम० ।

त्व जलनिधिरामूल त्व धाता त्व पुनर्वसु । त्व वैद्यस्त्व घृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४९॥
 त्वमप्रणीर्ग्रामिणीस्त्व त्व सुपर्णस्त्वमादिमान । त्व सग्रहस्त्व सुमहत्त्व घृतात्मा त्वमच्युत ॥१५०॥
 त्व यमस्त्व च नियमस्त्व प्रागुस्त्व चतुर्भुज । त्वमेवानान्तरात्मा त्व परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१॥
 त्व गुरुस्त्व गुरुतमस्त्व वामस्त्व प्रदक्षिण । त्व पिप्पलस्त्वमगमस्त्व व्यक्तस्त्व प्रजापति ॥१५२॥
 हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति । अनिर्देश्यवपुस्त्व वै त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३॥
 त्व च सकपणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातन । त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित ॥१५४॥
 त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माघव । सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्त सहस्रदूक ॥१५५॥
 सहस्रपादस्त्व द्वेष्टस्त्व विराट्स्त्व सुरप्रभु । त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६॥
 यदभूत तत्त्वमबोक्त पुरुष शक्र उत्तम । यदभाष्य तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृत ॥१५७॥
 त्वत्तो रोहृत्पथ लोको महोयास्त्वमनुत्तम । त्व ज्ञायामनुरूपस्त्व च त्व दव वशाथा स्थित ॥१५८॥
 विश्वभूतश्चतुर्भागी नवभागोऽमृतो दिवि । नवभागोऽन्तरिक्षस्थ 'पौरुषेय' सनातन ॥१५९॥
 भागद्वय च भूतस्य चतुर्भागोऽयमभूदिह । त्वत्तो यज्ञा सभर्वाति जगतो' वृष्टिकारणम् ॥१६०॥
 त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि य पुमान् । सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तजसा यज्ञसा भ्रिय ॥१६१॥
 त्यक्त सुराणामाहार पृषदाज्यमजायत । धाम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त पशुमृगादय ॥१६२॥
 ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि चौषधी । त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्या दीप्तिविग्रह ॥१६३॥

को मुख देने वाले वेदाग अव्यय वेदो के वेद धाता विधाता समाहित समुद्र पुनर्वसु नक्षत्र वय घृतात्मा इन्द्रियो से परे अग्रनेता ग्रामनेता सुपर्ण आदिमान् सग्रह अतिमहान् यम नियम पागु चतुर्भुज अन्न अन्तरात्मा परमात्मा गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल अगम व्यक्त प्रजापति हिरण्यनाभ देव चद्रमा अनिर्दिष्ट शरीर वाले राक्षस नाशन बलराम कर्ता सनातन वासुदेव अमितात्मा गुणवर्जित ज्येष्ठ वरिष्ठ सहिष्णु माघव सहस्र गिर वाले सहस्र नेत्र वाले सहस्र पर वाले विराट तथा देवो के प्रभु हैं । देवदेव । दशाङ्गुल परिमित देव भी आप ही हैं ॥१४७-१५७॥ भूत आप ही हैं । पुरुषोत्तम 'शक्र' आप ही को कहा गया है । भविष्य ईशान तथा अमृत मा आप ही हैं । आप से इस लोक की उत्पत्ति होती है । आप अमृत महान तथा सबसे उत्तम हैं । हे देव । आप ज्येष्ठ पुरुष तथा दत्त प्रकार से स्थित हैं ॥१५८-१५९॥ आप विश्व में चार भागो से त्वय में नौ भागो से आकाश में भा नौ भागो से और पृथ्वी पर दो एवम चार भागो से भी अवस्थित है । आप सनातन पुरुष हैं । ससार में वृष्टि के कारण यज्ञ आप से उत्पन्न होते हैं । आप से ही विराट उत्पन्न हुए हैं, जो ससार के हृदय में पुरुष रूप से विद्यमान हैं । वे तेज यज्ञ तथा सोमा में भूतो से बढ़कर हैं । आपसे देवताओं का आहार—दधिसिक्त घृत—उत्पन्न हुआ । धामाण एवम् आपधिया तथा पशु मृग आदि आपसे उत्पन्न हुए । आप ध्येय तथा ध्यानपरायण हैं । ओषधिया का निर्माण आपने

जङ्गमाजङ्गम सर्वं जगदेतच्चराचरम् । त्वत्त सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६४॥
 अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा । देव सर्वसुरध्येष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५॥
 ग्राहि मामरघिन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते । नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६॥
 नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते कमलालय । गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर ॥१६७॥
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम । जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८॥
 नमस्ते योगिना गन्ध योगावास नमोऽस्तु ते । गोपते शोपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९॥
 जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते । दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महोपते ॥१७०॥
 नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षणे । कंटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
 नमोऽस्तु ते महामोने श्रुतिपूठधराभ्युत । समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लावकारिणे ॥१७२॥
 अश्वशीर्षं महायोणं महापुरुषविग्रह । मधुकंटभहन्त्रे च नमस्ते सुरगानन ॥१७३॥
 महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च । विधृताद्विस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः ॥१७४॥
 नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे । नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वैद्यसे ॥१७५॥
 नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च । परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः ॥१७६॥

ही किया । देवों के देव ! आप देदीप्यमान शरीरधारी काल पुरुष हैं । स्थावर जगम या चराचर रूप यह सम्पूर्ण जगत् आपसे उत्पन्न हुआ है तथा आप में प्रतिष्ठित है । आप अनिरुद्ध माधव प्रद्युम्न तथा राक्षसनाशन हैं ॥१६०-१६५॥ देव ! सबल देवों में श्रेष्ठ ! समस्त-लोक परायण ! मेरी रक्षा करें ! कमलाक्ष ! नारायण ! आपको नमस्कार है । मगधन् ! विष्णो ! पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है । समस्त लोकों के ईश्वर ! आपको नमस्कार है । कमलालय ! आपको नमस्कार है । गुणालय ! आपको नमस्कार है । गुणाकर ! आपको नमस्कार है ॥१६६-१६८॥ वासुदेव ! आपको नमस्कार है । सुरोत्तम ! आपको नमस्कार है । जनार्दन ! आपको नमस्कार है । सनातन ! आपको नमस्कार है ॥१६९॥ योगियों के प्राप्य ! आपको नमस्कार है । योगावास ! आपको नमस्कार है । इन्द्रियपते ! लक्ष्मीपते ! विष्णो ! आपको नमस्कार है । मरुत्पते ! जगत्पते ! जगदुत्पादक ! आपको नमस्कार है । ज्ञानियों के स्वामी ! स्वर्ग के स्वामी ! आपको नमस्कार है । पृथ्वीपते ! आपको नमस्कार है ॥१७०-१७१॥ मधुनाशन ! आपको नमस्कार है । कमललोचन ! आपको नमस्कार है । कंटभ के मारने वाले ! आपको नमस्कार है । सुब्रह्मण्य ! आपको नमस्कार है ॥१७२॥ महामत्स्य ! आपको नमस्कार है । वेदों की पीठ पर धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है । समुद्र के जल को सङ्कुच करने वाले ! ब्रह्मा की प्रसन्न करने वाले ! आपको नमस्कार है । अश्व के समान शिर वाले ! महानासिका वाले ! महापुरुष का शरीर धारण करने वाले ! मधु-कंटभ-नाशन ! आपको नमस्कार है । अश्व के समान मुख वाले ! महाकण्ठ्य का रूप धारण करने वाले ! पृथिवी के उद्धारक ! पवतस्वरूप ! महाकूर्मस्वरूप ! आपको नमस्कार है । महावराहस्वरूप ! आपको नमस्कार है । आदिवराहस्वरूप ! विश्वरूप ! ब्रह्मन् ! आपको नमस्कार है । अनन्त ! सूक्ष्म ! मुख्य ! श्रेष्ठ !

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुविदाय ।

क्षीराणवाभितमहाहिसुतल्पगाय, सुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय

॥१७७॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच भागवः । शिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मतो यदभिवाञ्छसि ॥१७८॥

कण्डुरुवाच

संसारोऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरं लोमहर्षणे । अनित्ये दुःखयुक्ते कदलीदलतनिभे ॥१७९॥

निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले । सर्वोपद्रवसंपुक्ते दुस्तरं शक्तिभरवे ॥१८०॥

श्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव । न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१॥

त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः । यतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२॥

गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम् । प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३॥

श्रीभगवानुवाच

भवतोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः । भद्रप्रसादाद्भुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥१८४॥

मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्यजातिजाः । प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किंपुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५॥

इयपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्भक्त्या समन्वितः । प्राप्नोत्यभिमतं सिद्धिमन्यथा तत्र का कथा ॥१८६॥

परमानुस्त्वहम् । योगियम् । आपको नमस्कार है ॥१७३-१७७॥ कारणों के कारण । योगीन्द्रों की वृत्ति के आश्रय । अत्यन्त दुर्गोप । क्षीरसमुद्रस्वित महासर्पकी शय्या पर सोने वाले । सुवर्ण एवम् रत्न के कुण्डल पहिने वाले । आपको नमस्कार है ॥१७८॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर भागव प्रसन्न होकर कहने लगे—‘मुनिश्रेष्ठ । तुम जो चाहते हो, वह शीघ्र मुझसे मागो ॥१७९॥

कण्डुरु बोले—जगन्नाथ ! दुष्पार, रोमाञ्चकारी, अनित्य, विविध दुखों से युक्त, बेलों के पत्तों के समान स्थित, निराश्रय, निरालम्ब, पानी के बुलबुले के समान चञ्चल, अस्थिर उपद्रवों से युक्त तथा अति भयंकर इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर मैं चिरकाल से चक्कर काट रहा हूँ । मन के विषय में आसक्त होने के कारण मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूँ । देवेश ! संसार के भय से पीडित होकर आज मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । कृष्ण ! संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये । देवों के स्वामी ! आपकी कृपा से मैं अपने सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ से फिर लौटना न पड़े ॥१८०-१८४॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर ! तुम मेरे भक्त हो । निय मेरी आराधना करो । मेरी कृपा से तुम निश्चय अमिलपित मोक्ष को प्राप्त करोगे । मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चाण्डाल तक भी परा सिद्धि को प्राप्त करते

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु त विप्रा स देवो भवतवत्सल । दुर्विजयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीमत ॥१८७॥
 गत तस्मिन्निध्रेष्ठा कण्डु सहृष्टमानस । सर्वान्कामापरित्यज्य स्वस्थचित्तोऽभवत्पुन ॥१८८॥
 सर्वेन्द्रियाणि सम्यग् निमग्नो निरहङ्कृति । एकाग्रमानस सम्यग्ध्यात्वा त पुरुषोत्तमम् ॥१८९॥
 निर्लेप निर्युग्म शान्त सत्तामात्रव्यवस्थितम् । अवाप परम मोक्षं सुराणामपि दुर्लभम् ॥१९०॥
 य पठच्छृणुयाद्वापि कथा कण्डोर्महात्मन । विमुक्त सवपापस्य स्वर्गलोकः स गच्छति ॥१९१॥
 एव मया मुनिध्रेष्ठा कमभूमिरुदाहृता । भोक्षसत्र च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२॥

य पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरदध्यायन्ति मुक्तिप्रद
 भक्त्या श्रोपुरुषोत्तमाख्यमजर सत्तारदुःखापहम् ॥१९३॥
 ते भुक्त्वा मनुजैर्द्रव्यभोगममला इदं च दिव्यं सुखं
 पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता स्थान हररम्यम् ॥१९४॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म स्वयभुवृषिसवावे कण्डोरुपाख्याननिरूपण नामाष्ट
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७८॥

है। तुम तो फिर ब्राह्मण हो। गूण थडालु भक्त बाण्डाल भी जमिमत मिटि को प्राप्त करता है भीरो की तो
 क्या ही क्या? ॥१८५-१८७॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द । भक्तसत्त्वलाल तथा दुर्विजय विष्णु इतना बहुर बड़ी अन्तर्धान हो गए। उनके
 चल जाने पर अत्यन्त प्रसन्न चित्त वाले कण्डु गमस्त कामो को छोड़कर पुन स्वस्थचित्त हो गए। निर्लेप इन्द्रियो
 का समग्र निमग्न निरहङ्कृत तथा एकाग्रचित्त होकर निर्लेप निर्युग्म शान्त तथा सत्तामात्र से अवस्थित पुरुषोत्तम
 व सम्यक् ध्यान करने उन्नी देवदुःख मोक्ष को प्राप्त किया। महात्म कण्डु की कथा को जो पढ़ना या सुनना
 वह समस्त पापों का मुक्ति हाथर स्वयं जायगा। मुनिवर! इस प्रकार मैंने कमभूमि भोग-मग्न तथा पुरुषोत्तम
 देव का वर्णन कर दिया। जो सत्तामात्र ब्रह्म-वैश्वानर भोग-मग्न अजर तथा सत्तार-दुःखनाशन श्री पुरुषोत्तम के
 प्रतिपूजा ध्यान शान्त तथा स्तुति करते हैं व मनुजैर्द्रव्य भोग तथा समग्र दारों से रहित होकर स्वर्ग में दिव्य
 सुख का उपभोग करके पश्चात् हरि व अविनाश स्थान का प्राप्त करते हैं ॥१८८-१९४॥

श्रीमहापुराण में ब्रह्मा और शिवों के महाप्रकरण में कण्डु का उपनिषद्-निरूपण नामक
 एक ही अष्टादश अध्याय समाप्त ॥१७८॥

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वादेरायणं प्रति श्रीकृष्णावतारविषयका मुनीनां प्रश्नः

लोमहर्षण उवाच

व्यासस्य वचनं श्रुत्वा मुनयः सत्यतन्द्रियाः प्रीता बभूवुः सहृष्टा विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥१॥

मुनय ऊचुः

अहो भारतवर्षस्य स्वयां सकीर्तिता गुणाः । तद्वच्छ्रीपुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम ॥२॥
'विस्मयो हि न चैकस्य श्रुत्वा माहात्म्यगुत्तमम् । पुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदता घरः ॥३॥
चिरात्प्रभृति चास्माकं सशयो हृदि यतते । त्वद्वत् सशयस्यास्य छेत्ता न तद्योऽस्ति भूतले ॥४॥
उत्पत्तिं बलदेवस्य कृष्णस्य च महोत्तले । भद्रायाश्चैव कास्त्र्येन पृच्छामस्त्वां महामुने ॥५॥
किमयं तो समुत्पन्नो कृष्णसकर्मणावुभौ । वसुदेवसुतो वीरौ स्थितौ मन्वगूहे मुने ॥६॥
नि सारे मृत्युलोकेऽस्मिन् दुःखप्रायेऽतिचञ्चले । जलबुद्बुदवत्तकाशे भैरवे लोमहर्षणे ॥७॥
विष्णुप्रपिच्छल कष्ट सकट दुःखदायकम् । कथं घोरतरं तेषां गर्भवासमरोक्षतः ॥८॥

अध्याय १७६

श्रीकृष्णावतार के सबध मे व्यास जी से मुनियों का प्रश्न

सूत बोले—व्यास ने वचन को सुनकर जितेन्द्रिय मुनिगण परम हर्षित तथा आश्चर्य चकित हुए ॥१॥

मुनियो ने कहा—पुरपुणव ! अहा ! भारतवर्ष का और उसी तरह श्रीपुरुष नामक क्षेत्र का गुण वगन आपने कर दिया ॥२॥ पर वक्ताजा मे थप्ट एक पुरुषक्षेत्र के ही उत्तम माहात्म्य को सुनकर हमे सतीव तथा विस्मय नहीं हो रहा है ॥३॥ क्योंकि चिरकाल से हमारे हृदय मे अनेक सन्ध हो रहे हैं जिनका निराकरण बिना आपके पृथ्वी पर कोई नहीं कर सकता है ॥४॥ महामुने ! बलदेव कृष्ण तथा सुमद्रा की उत्पत्ति के विषय मे हम विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं ॥५॥ किसलिये कृष्ण तथा बलराम उत्पन्न हुए और क्यों दोनों वीर वसुदेव के पुत्र होकर नन्द के घर मे पाले-पामे गये ? ॥५॥ साररहित दुःखयुक्त अत्यन्त चञ्चल पाना के बुद्बुदों के समान अस्थिर भयंकर तथा रोमाञ्चकारी इस मृत्युलोक में गर्भवास विष्णु तथा मूत्र से युक्त सकटमय दुःखदायक और महा भयंकर माना गया है ! तब फिर यह कृष्ण को कैसे अच्छा लगा ? वक्ताजा मे थप्ट ! उन्हुनि पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन से कम किये ? उन क्यों की विस्तरपूर्वक हम बतल-इये ॥६८॥ उनके अदभुत तथा लोकोत्तर सम्पूर्ण

१ ग सजिते० । २ ग विस्मये । ३ क ०री स च न० । स ०री स च तत्र ग० । ४ स ०रुते
पापेऽति० ।

यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले । विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो' वदतां वर ॥१॥
 समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम् । कथं स भगवान्देवः सुरेशः सुरसत्तमः ॥१०॥
 वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागत । अमरंश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृदिभरलंकृतम् ॥११॥
 देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगत । देवमानुषयोर्नेता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः ॥१२॥
 किमयं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत् । यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥१३॥
 स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः । गोपादन यः कुरुते जगतः सार्वभौतिकम् ॥१४॥
 स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः । महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥१५॥
 श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः । येन लोकान्त्रमजित्वा त्रिभिर्वै त्रिदशोत्सया ॥१६॥
 स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिदशाश्चाभवत्प्रयः । योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥१७॥
 लोकमेकार्णवं चक्रे दुःखादुद्ध्येन' चाऽऽग्रमना । यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥१८॥
 विद्याणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदन । यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१९॥
 ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः । येन संहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः ॥२०॥
 पूर्वर्द्धयो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हन्तः । यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ॥२१॥
 पातालस्योर्गणवरसं पयो तोयमयं हरिः । सहस्रचरणं ग्रहा सहस्रांशुसहस्रवम् ॥२२॥

चरित को सुनाइये । देवताओं ने धेष्ट, धीमान् तथा देवों के स्वामी भगवान् ने वसुदेव के कुल में वसुदेवत्व को कैसे प्राप्त किया अर्थात् जन्म लिया ? देवताओं से आवृत, पवित्र तथा वसुदेवताओं से अलंकृत देवलोक को छोड़कर क्यों वे मृत्युलोक में आये ? देवता तथा मनुष्यों के नायक, स्वर्ग, मर्त्य के आधिकारण तथा अविनाशी होकर किसलिये उन्होंने दिव्य आराम को मनुष्य-शरीर में स्थापित किया ? जो चक्र-गदा-धारी भगवान् अकेले मनुष्यमान के चक्र को चलाते हैं, उन्हें मनुष्य-योगी में आने की इच्छा कैसे हुई ? ओ प्रभु विष्णु सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, वे पृथ्वी पर आकर गोपाल कैसे बने ? ॥१-१४॥ आ असिलाम्ता पञ्चममहाभूतों का धारण करते हैं, उनकी भूमि पर चलने वाली एक सामान्य स्त्री ने कैसे गर्भ में धारण किया ? देवताओं की इच्छा से उन्होंने तीन ङा में तीनों लोको को जीत कर सत्तार के मार्गों को मुख्यवस्थित कर दिया । तब त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम भी व्यवस्थित हुए । वे अन्तकाल में जगत् को पीकर जलमय शरीर धारण कर दुःख तथा अदुःख आत्मा से लोभ को एवार्णव अर्थात् जलप्लावित कर देते हैं ॥१५-१७॥ पुराण, पुराणात्मा तथा वायवहर्ष धारण कर उन्होंने दण्डा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार किया । पूर्वकाल में इन्द्र के लिये तीनों लोक का जीतकर देवधेष्ट विष्णु ने देवताओं को पृथ्वी दे दी । उन्होंने सिंह का शरीर धारण कर पुनः उसने दो भाग करके महाबली हिरण्यकशिपु को निहत् किया ॥१८-२०॥ प्राचीन समय में उन्होंने और्व तथा संवर्तक नामक अग्नि होकर पाताल में रहकर समुद्र के जलमय रस को पी लिया । उनका सहस्र चरण तथा सहस्र किरण हैं । वे ब्रह्म हैं तथा सहस्रा के दाता हैं ॥२१-२२॥ प्रतिपुन में वे सहस्र शिर धारण करते हैं । उनकी नामि हैं कमल की उत्पत्ति हुई, जो ग्रहा

सहस्रशिरसं देवं यमाहर्षं ध्रुवे ध्रुवे। नाम्नां पद्मं समुद्भूतं यस्य पंतामहं गृहम् ॥२३॥
एकाग्रं नागलोके सद्विरण्मयपद्भुजम्। येन ते निहता देव्याः संप्राप्ते तारकामये ॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वापघर्षं वपुः। युहासंस्थेन चोत्सिक्तः कालनेर्मिनिपातितः ॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शोते शाश्वतं योगमास्याय तिमिरं महत् ॥२६॥

सुरारणो^१ गर्भमस दिव्यं तपः^२ प्रकर्षावदितिः 'पुराणम्

शक्रं च यो देत्यगणावरुद्धं,^३ गर्भाविधानेन कृतं चकार ॥२७॥

पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार देत्यान्तल्लेशयस्यान् ।

कृत्वा स देवास्त्रिदशेश्वरीस्तु, चक्रे सुरेशं पुनरुद्भूतमेव ॥२८॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहर्षेण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेद दीक्षा समिद्धुबम् ॥२९॥

प्रोक्षणोपं स्रुवं चैव आवभुष्यं तयं च। अवावपाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा ॥३०॥

हव्यादीश्च सुराश्चक्रे कव्याद्याश्च पितृन् च। भोगार्थं यज्ञविधिनाऽयोजयद्यज्ञकर्मणि ॥३१॥

पात्राणि दक्षिणां दीक्षां चरुश्चोषूलूखलानि च। यूपं समित्स्त्रुव सोम पवित्रान्परिधीनपि ॥३२॥

यज्ञियानि च द्रव्याणि चमसाश्च तथाऽपरान्। सदस्याग्न्यजमानाश्च मेधादीश्च क्रतूतमान् ॥३३॥

विषभाज पुत्रा यस्तु पारमेष्ठ्येन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराकमात् ॥३४॥

क्षणं निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं सवस्तरस्तथा ॥३५॥

ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं^४ त्रिविधं त्रिषु। आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षण रूपसौष्ठवम् ॥३६॥

वा पर ब्रह्मा गया है। वह कमल एवार्णव रूप नागलोक में सुन्दर सुवर्णमय ब्रह्मा जाता है। उन्होंने तारकामय नामक संप्राप्त में देवों को निहृत किया। उन्होंने देवमय तथा समस्त आपधों से युक्त शरीर धारण कर गुफा में स्थित होकर कालनेर्मि का सहार दिया। वे क्षीरसमुद्रद्वीपी अमृतसमुद्र के उत्तरी भाग में महान् अचकार कर्षा शाश्वत योग में स्थित होकर प्रायण करते हैं ॥२३-२६॥ जब तप की प्रवर्धता से देवमाता अदिति ने इन्द्र को गर्भ में धारण किया तब उन्होंने ही देत्यगणों से गर्भ को वचाया ॥२७॥ उन्होंने यौगिक चरणों की रचना कर देवों को जल में सुला दिया और देवताओं की स्वर्ण लीटाकर इन्द्र को ही स्वर्ण का अधिनायक बनाया ॥२८॥ बिना वाणी और हाथ के ही, उन्होंने गार्हपत्य (गृहस्थोचित) विधान से अन्वाहर्षे कर्म के द्वारा अग्नि, आहवनीय, वेद, दीक्षा, समिधा, ध्रुव, प्रोक्ष-णीपात्र, स्रुव, आवभुष्य तथा हव्य-भाग भोक्ताओं का निर्माण किया। यज्ञकर्म में यज्ञविधि से भाग के लिये देवताओं को हव्यभोक्ता और पितरों को काव्यभोक्ता बनाया। पात्रों, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, ओषली, यूप, समिधा, ध्रुव सोम पवित्री, परिधि, यज्ञिय द्रव्य, चमस, सदस्य, यजमान तथा यज्ञों में उत्तम मेधा आदि का निर्माण करके उन्होंने ब्रह्मा आदि के कर्मों का भी विभाग किया। युग के अनुरूप ही उन्होंने लोकों को बनाया ॥२९-३४॥ उन्होंने अनन्त कर्मों द्वारा क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, तीनों काल, मुहूर्त, तिथि, मास, दिन, वर्ष, ऋतु, कालयोग तथा तीनों प्रकार के प्रमाण बनाये। आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप-सौन्दर्य, तीनों लोक, तीनों देव, तीनों विद्या, तीनों अग्नि, तीनों बाल,

भावा रसानुगाश्चैषा बीजे च शशिपादवी । कफवर्षे भवेच्छुक्र पित्तवर्षे च शोणितम् ॥५२॥
 कफस्य हृदय स्थान नान्या पित्तं प्रतिष्ठितम् । देहस्य मध्ये हृदय स्थान तन्मनस स्मृतम् ॥५३॥
 नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हृताशन । मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५४॥
 पित्तमग्नि स्मृत स्वेष्टमग्निहोमक जगत । एव प्रवर्तिते गर्भे वर्धितश्चूदसनिभे ॥५५॥
 वायु प्रवेश सचक्रे सगत परमात्मन । स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्तते पुन ॥५६॥
 प्राणपानी समानद्व उदानो ध्यान एव च । प्राणोऽस्य परमात्मान वर्धयपरिवर्तते ॥५७॥
 अपान पश्चिम वायुमुदानोऽर्धं शरीरेण । ध्यानस्तु व्याप्यते येन समान सनिवर्तते ॥५८॥
 भूतावाप्तिस्तत्तत्तस्य जायेतेन्द्रियगोचरा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५९॥
 तस्यैन्द्रियनिधिष्ठानि स्थ स्थ भाग प्रचक्रिरे । पार्थिव देहमाहुस्तु प्राणात्मान च भारतम् ॥६०॥
 छिद्राण्याकाशयोनिनि जगत्त्राव प्रयतंते । ज्योतिश्चक्षुषि तेजश्च आत्मा तेषा मन स्मृतम् ॥६१॥
 ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य धीर्यतिप्रवर्तिता । इत्येतान्पुरुष सर्वांस्र्जैल्लोकान्समाता ॥६२॥
 नैषनेऽस्मिन्त्य लोके मत्स्य विष्णुरागत । एष न सद्यो ब्रह्मज्ञेय नो विस्मयो गृहान् ॥६३॥
 कथ गतिगतिमतामापनो मानुषी तनुम् । आश्चर्य परम विष्णुर्देवैर्देव्यश्च कथ्यते ॥६४॥
 विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने । प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजस ॥६५॥

और पित्तवर्ष म वाग्नि ॥५०-५२॥ कफ वा स्थान हृदय है और पित्त वा नाभि । देह क मध्य म हृदय रहता है और उमम मन । नाभिकोष्ठ के बीच अग्नि वा स्थान है । मन प्रजापति कहलाता है और कफ चन्द्रमा । पित्त अग्नि कहलाता है और अग्नि तथा चन्द्रमा स्व ही जगत् माना जाता है । इस प्रकार मामपिञ्ज क आकार म गम उत्पन्न होने पर परमात्मा से मिलकर वायु प्रवाह करता है । शरीर म वायु पाँच प्रकार से विभक्त हो जाता है । जैसे—प्राण अपान समान ज्ञान और ध्यान । प्राण परमात्मा को बनाता है अपान शरीर क पिछले भाग को और ज्ञान आध शरीर का । ध्यान सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त रहता है और समान लीन जाता है ॥५०-५८॥ तब भूता की प्राप्ति उस की इन्द्रियगोचर होती है । वहाँ पृथिवी वायु आकाश जल तथा अग्नि अपन-अपने भाग का रचना करते हैं । शरीर पृथिवी का भाग है और प्राणात्मा वायु का । शरीर के समस्त छिद्र आकाशमूलक हैं और शोणित आग्नि का प्रसवण जल स होता है । नेत्र तब तथा अन्तरात्मा अग्नि का भाग माना गया है । विषयमह म उन्ही विष्णु के वायु से उत्पन्न हुए हैं । इन तेषा का सञ्जन करते हुए सन्तत पुरुष मत्परा म मनुष्यव को कैसे प्राप्त हुए ? ब्रह्मन् । यह हमारा मन्त्र है और यह महान् आश्चर्य है ॥५०-६२॥ गतिमाना की गति कह जान का विष्णु मानव-शरीर म कैसे आय ? देव और दैत्य विष्णु को परम आश्चर्य का वस्तु बतलाते हैं । महामुने । विष्णु की आश्चर्यजनक उत्पत्ति के बारे म कहिये । प्रसिद्ध विष्णुमाली अत्यन्त तबस्वी तथा आश्चर्यजनक कम

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् । कथं स देवो देवानामातिहा पुरुषोत्तमः ॥६६॥
 सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः । सर्वस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः ॥६७॥
 अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविर्वाजितः । निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः ॥६८॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः । अविकारो विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः ॥६९॥
 अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः । 'विशुद्धं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे ॥७०॥
 वैकुण्ठस्थं च देवेषु कृष्णत्वं भानुषेधु च । ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम् ॥७१॥
 समतीतां भविष्य च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्यो य एष भगवान्प्रभुः ॥७२॥
 नारायणो ह्यनन्तत्मा प्रभवोऽध्यय एव च । एष नारायणो भूत्वा हरीरासीत्सनातनः ॥७३॥
 ब्रह्मा शकश्च रुद्रश्च धर्मः शुको बृहस्पतिः । प्रधानात्मा पुरा हृष्ये ब्रह्माणमनुजत्रभुः ॥७४॥
 सोऽनुजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् । एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
 किमर्थं मत्पंलोकेऽस्मिन्पातो यदुकुले हरिः ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे ऋषिप्रदशनिरूपणं नामोनाशी-
 त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

करने वाले विष्णु ने तत्त्व को बतलाइये । देवों के दुःख निवारण करने वाले, पुरुषों में उत्तम, सर्वव्यापक, जगन्नाथ, समस्त लोकों के महान् ईश्वर, उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने वाले अखिल लोकों के सुखदायक, अविनाशी, नित्य, अनन्त, ज्ञास तथा वृद्धि स रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, निखिल उपाधियों से रहित, सत्तामात्र से अवस्थित, विनाशरूप्य, विभु परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय देव ने कैसे मृत्युलोक में जन्म लिया ॥६४-७०॥ देवों में वैकुण्ठ तथा मनुष्यों में कृष्णत्व उनका प्रसिद्ध है । ऐसे ईश्वर के बीते हुए तथा होने वाले नमों की गहन गति को हम सुनना चाहते हैं । वे अव्यक्त, व्यक्त विह्वों में स्थित, नारायण, अनन्तात्मा, आदिवारण तथा अन्य हैं । वे नारायण होकर सनातन हरि हैं । ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, धर्म शुक तथा बृहस्पति भी वे ही हैं । पहिले प्रधानात्मा प्रभु ने ब्रह्मा की सृष्टि की । उस पूर्वपुरुष ब्रह्मा ने प्रजापतियों की रचना की । इस प्रकार भगवान् विष्णु सबल लोकों के महेश्वर है । वे जिसलिये मृत्युलोक तथा यदुकुल में उत्तराए हुए ? ॥७१-७५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद-व्यकरण में ऋषिप्रदशनिरूपण नामक एक तो
 उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९॥

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरिताराम्भ.

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायव्याय च ॥१॥
 चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च । वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय च ॥२॥
 यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरोपसिताय च । यस्मादणुतरं नास्ति यस्माद्भास्ति बृहत्तरम् ॥३॥
 येन विश्वमिव व्याप्तमजेन सवराचरम् । आधिर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टयिलक्षणम् ॥४॥
 बदन्ति यत्सृष्टमिति तयैवाप्युपसहृत्म् । ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥५॥
 अधिकाराय ज्ञादाय नित्याय परमात्मने । सर्वैकस्वरूपाय विष्णवे विष्णवे नमः ॥६॥
 नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥७॥
 एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः । अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्षितहेतवे ॥८॥
 सर्गस्थितिबिनाशानां जगतो यो जगन्मयः । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥९॥
 आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित का आरम्भ

व्यास ने कहा—सुरेश, विष्णु, प्रभविष्णु, पुरुष, पुराण, शाश्वत, अव्यय, चतुर्व्यूहरूप, निर्गुण, सगुण, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अप्रमेय, यज्ञान, अखिलाय तथा देवता आदि से अभीप्सित विष्णु को नमस्कार है। जिससे कोई छोटा या बड़ा नहीं है (उन्हें नमस्कार है), जिन अजन्मा हृदिने चराचर विश्व की सृष्टि की, (उन्हें नमस्कार है), आविर्भाव, तिरोभाव तथा दृष्ट, अदृष्टरूपक अणु की जिन्होंने सृष्टि की तथा सहार किया (उन्हें नमस्कार है), ओ ब्रह्मा, आदिदेव, विकाररूप, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकल, जयशील तथा विष्णु हैं उन्हें नमस्कार है ॥१-६॥ हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर, वासुदेव, ताराने वाले, सृष्टि-स्थिति प्रलय करने वाले, एक तथा अनेक स्वरूप वाले, स्थूल तथा सूक्ष्म रूप वाले, अव्यक्त एवं व्यक्त रूप वाले तथा मोक्ष के कारण विष्णु को नमस्कार है। ससार की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश के कारण, जगन्मय, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व के आधार, अणु से भी अणु, सर्वभूतस्थित, पुरुषोत्तम विष्णु को नमस्कार है। ज्ञान के स्वरूप, तत्त्वतः अत्यन्त निर्मल तथा पदार्थ-

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः । तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥११॥
 विष्णु प्रसिष्णु विदवस्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम् । अनादि जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥१२॥
 कथयामि यथा पूर्वं यसाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥१३॥
 ऋक्सामान्युद्दिगरत्नवन्नैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् । प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम् ॥१४॥
 यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम् । प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१५॥
 येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्मस्थाः प्रकटीकृताः । आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वर्दाशभिः ॥१६॥
 अयनं तस्य ता. पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥१७॥
 चतुर्धा सस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा । एका भूतिरनुद्देश्या शुक्ला पश्यन्ति सा बुधाः ॥१८॥
 'ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिना परा । दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा' ॥१९॥
 चासुदेवाभिधानाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते । रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः 'कल्पनामयाः ॥२०॥
 आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठंकरूपिणी । द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥२१॥
 तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता । तृतीया कर्म कुस्ते प्रजापालनतत्परा ॥२२॥
 सत्त्वोद्भिता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी । चतुर्थी जलमध्यस्था शक्ते पन्नगतत्परा ॥२३॥

रूप से भासित विष्णु को नमस्कार है । ससार को ग्रसने वाले, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति करने में समर्थ, अनादि, ससार के स्वामी, अजन्मा, अक्षय तथा अव्यय विष्णु को नमस्कार है ॥७-१२॥ पूर्वकाल में यक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछे जाने पर कमल्योनि ब्रह्मा ने जैसे बतलाया था वैसे मैं कहूँगा । जो ऋग्वेद तथा सामवेद के उच्चारण करने तीनों लोकों को पवित्र करते हैं तथा एवार्णव से निःसृत हैं, उन ईश्वर को प्रणाम है । जिनके याजकों के यज्ञों को राक्षस-गण नष्ट नहीं कर पाते हैं, उनको प्रणाम करने अव्यक्तब्रह्मा ब्रह्मा के सम्पूर्ण मत का मैं वर्णन करूँगा । विष्णु ने सृष्टि के उद्देश्य से धर्म आदि को प्रकट किया । तत्त्वदर्शी मुनियों ने जल का नाम 'नार' बतलाया है । पहिले विष्णु का अयन (घर) जल था । इसलिए उनका नाम नारायण पडा । वे विभु नारायण भगवान् सबको व्याप्त करके चार प्रकार से अवस्थित ब्रह्मा कहलाते हैं । वे सगुण तथा निर्गुण भी हैं । उनकी एक अनुद्देश्य शुक्ल मूर्ति है, जिसे विद्वान् लोग देखते हैं ॥१३-१८॥ वह योगियों की, ज्वाला-माला से बद्ध अथ वाली परा निष्ठा है । वह दूरस्थ, समी-पस्थ तथा त्रिगुणातीत है । उसी की ममतारहित बहुदेव सत्ता नहीं गई है । उसके कल्पनामय रूप, वर्ण, माव आदि नहीं होते । वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित एवम् एकरूपिणी है । दोष नामक दूसरी मूर्ति नीचे पृथ्वी को धारण करती है । वह तामसी कहलाती है । और वक्र बनी रहती है । तीसरी मूर्ति प्रजापालन में निरत होकर कर्म करती है । उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है । वह धर्म की स्थापना करती है । चौथी मूर्ति जल के बीच सर्पाख्या पर सोती है । उसका

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि । या तृतीया हरेर्भूतिः प्रजापालनतत्परा ॥२४॥
 सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि । प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मं च्छित्तिकारिणः ॥२५॥
 पाति^१ देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षापरायणान् । यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते ॥२६॥
 अमृत्यान्ममधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ । भूत्वा पुरा घराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥२७॥
 एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलीनीव वसुंधरा । कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हन्तः ॥२८॥
 विप्रचित्तिमुखाश्चाप्ये दानवा विनिपातिताः । वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य^२ मायया ॥२९॥
 प्रलोक्य^३ क्रान्तबानेव विनिजित्वा दितेः सुतान्^४ । भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३०॥
 जघान क्षत्रियाग्रामः पितुर्बन्धमनुस्मरन् । तयाऽन्नितनयो भूत्वा दत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥३१॥
 योगमष्टाङ्गमास्त्रव्यावलोकय महात्मने । रामो दशशरयिभूत्वा स तु देवः प्रतापवान् ॥३२॥
 जघान रावणं संख्ये प्रलोक्यस्य भयंकरम् । यदा चंकारण्ये सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः ॥३३॥
 सहस्रयुगपर्यन्तं नागपर्वङ्गगो विभुः । योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः ॥३४॥
 प्रलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम् । जनलोकगर्तः^५ सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३५॥
 तस्य नाभौ समुत्पन्नं पदं^६ दिक्पत्रमण्डितम्^७ । महत्किञ्चकसंयुक्तं गृहं पंतामहं वरम्^८ ॥३६॥
 यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः । तदा कर्णमलोद्भूतो बानवो मधुकण्ठभौ ॥३७॥

गुण रज है। वह सदा ही सृष्टि करती रहती है। हरि की जो तीसरी प्रजापालन में निरत रहने वाली मूर्ति है वह पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था करती है, धर्मसंहारक उद्धत अनुरो को मारती है और धर्म-रक्षा-परायण देव गणधर्मों का पालन करती है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब वह अपनी सृष्टि करती है ॥१९-२६॥ पूर्वकाल में उसने वराह का रूप धारण कर भूवर्ग से पानी को हटाकर एक ही दाँत से बन्दलिनी की तरह पृथ्वी को उखाड़ डाला। नृसिंह रूप धार कर उसने हिरण्यकशिपु को निहत्त किया और विप्रचित्ति आदि दानवों का सहार किया। वामन रूप धारणकर उसने माया से बलि को बाधा और दैत्यो को जीतकर तीनों लोक का भाग लिया। भृगुवश में उत्पन्न होकर प्रतापी परशुराम ने पिता के वैर का स्मरण करके क्षत्रियों का सहार दिया ॥२७-३०॥ उसी तरह अग्नि-मुनि तैत्तिरी दत्तात्रेय होकर उसने महात्मा अर्जुन को अष्टांग योग का उपदेश दिया। दशरथ पुत्र ओजस्वी राम होकर उसने युद्ध में प्रलोक्य भयंकर रावण का सहार किया। जब एकाग्रवै देवदेव जगत्पति अपनी महिमा में व्यवस्थित तथा योगनिद्रा में अवस्थित हुंकर हजारों युवा तक तीनों लोक (चराचर जगत्) को अपने पैर में रखकर सर्पग्रम्या पर सो रहे थे तब जनलोकवासी महर्षियों एवम् सिद्धों ने उनकी स्तुति की ॥३१-३५॥ तदनन्तर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जो दिया रूपी पद्मे से अलङ्कृत तथा वायुरूपी विज्ज्वल (बमल-पराग) से युक्त था। वह ब्रह्मा का उत्तम गूढ़ हुआ। उसी से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् के कर्णमल से मधु और अँटम नामक दो महाबली तथा महापराक्रमी दानव उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिए

१९ ०न्तरचात्यान्प० । २० सयाप्य । ३० ०व्य कृपता तेन निजिताश्च दि० । ४० मुता । ५० ०गर्णं सि० । ६० दिव्यमखण्ड० । ७० ०म् । ज्वलनार्चप्रतीचाय शैल्वैरारण्यमण्डितम् । ८० वैदिकिञ्ज० । ८० ०व्य धुमम् ।

महाबली महावीरो ब्रह्माण हतुमुद्यतौ । जघान तौ दुराधर्षो^१ उत्थाय^२ शयनोदधे ॥३८॥
 एवमार्दोस्तथवायानसत्पातुमिहोत्सह । अवतारो ह्यजस्यह मायुर साप्रतस्त्वयम ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी भूतिरवतार करोति च । प्रचम्नति समाख्याता रक्षाकमण्यवस्थिता ॥४०॥
 दवत्वऽथ मनुष्यत्व त्रिगम्योनौ च सस्थिता । गूहणाति तत्स्वभावश्च वासुदवच्छया सदा ॥४१॥
 ददायभिमताकामा पूजिता सा द्विजोत्तमा । एव मया समाख्यात कृतकृत्योऽपि य प्रभु ॥
 भानुघत्सु गतो विष्णु शृणुष्व चोत्तर पुन ॥४२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म व्यासश्रुतिसिवाद् चतुर्व्यूहवर्णन
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशालू प्रबक्ष्यामि समासत । अवतार हरश्चान्भारावतरणच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधमस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धमश्च ह्यासमम्यति तदा दवो जनादन ॥२॥

सवार हो गये । तब शयन-समय से उठकर विष्णु ने दोनों प्रबुद्ध दासों को मार डाला । इस प्रकार भगवान् ने जितने अवतार हो गये हैं उनकी सख्या में नहीं बता सकता । पर अब मा के इस अवतार का नाम मायुर है ॥३९॥
 ३९ भगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विक भूति जो रक्षाकम मण्य रहता है अवतार लेता है । वासुदेव य इच्छा से यह देवयानि मनुष्ययानि तथा त्रिगम्योनि मे मा अवतार होकर उस उस यानि का स्वभाव ग्रहण करती है । द्विज गणों पूजित होने पर वह अमीक्षित कामनाओं का प्रदान करता है । इस प्रकार इच्छा य होते हुए मा विष्णु मनुष्य-योनि मे जैसे अवतीर्ण हुए वह मैं बतला दिया । अब इससे आगे सुनिये ॥४०॥४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और श्रुतिया ने सब प्रकार के चतुर्व्यूहवर्णन
 नामक अस्सर्ग अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर । मार उठा देने का इच्छा से हरि ने जो अवतार लिया उसके विषय मे मैं सारा ग बतलाऊंगा सुनिये । द्विजगण । जब-जब अधम का वृद्धि और धम का ह्रास होता है सब-सब जनादन साधुओं की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽमनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरो समाजे त्रिदिवोकसाम् ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरा सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

घरण्यावाच

अग्निं सुवर्णस्य गुरुर्वा सूर्योऽपरो गुरुः । ममाप्यखिललोकानां वन्द्यो नारायणो गुरुः ॥७॥
तत्ताप्रतमिमे देव्या कालनेमिपुरोगमा । भर्त्यलोकं समागम्य वाधन्तेऽहनिश प्रजा ॥८॥
कालनेमिहंतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उग्रसेनसुतं कसं सभूतं सुमहासुरं ॥९॥
अरिष्टो धेनुकं केशो प्रलम्बो भरकस्तथा । सुन्दोऽसुरस्तथाऽप्युग्रो बाणश्चापि बलं सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महाबोर्धा नृपाणां भयनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्तां सख्यातुमुत्तरे ॥११॥
अक्षौहिण्यां हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुराः । महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां मनोपरि ॥१२॥
तव भूरिभारपीडातां न शक्नोम्यमरेदधरा । विभर्तुं भात्मानमहमिति विज्ञापयामि घ ॥१३॥
क्रियता तन्महाभागा मम भारवतारणम् । यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिबिह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमक्षौर्षस्त्रिदशस्ततः । भुवो भारवतारार्यं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुजोही दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने 'शरीर' को दिया विभक्त करके अवतार लेते हैं । प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पादित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समक्ष में गई । ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करने के बाद से करुणभाषिणी धरणा अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि हैं गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकवाच नारायण हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्य भृत्यलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पन्न करते हैं । जिस कालनेमि का विष्णु ने नाश था वहीं उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है । अरिष्ट धेनुक केगा प्रलम्ब भरक सुन्द बलि-मुत्र अत्यन्त भयंकर बाण तथा भय जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण हैं उनमें तो मैं सख्या ही नहीं बतला सकता । सुरगण ! मद से खूब महाबली दैत्यों की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणा सेना भी किसी तादाद में मेरे ऊपर भार लाग रही है । अमरवृन्द ! इस महाभार से पादित होकर मैं अपने को नहीं समाल सती । यहाँ निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ । महाभागा ! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न काविये ताकि मैं अत्यन्त बिह्वल होकर पाताल में चली जाऊँ ॥७१४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

महाबली महावीर्यो ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतो । जघान तो दुराघर्षो उत्थाय^१ शयनोदधेः ॥३८॥
 एवमादीस्तथैवान्यानसंख्यातुमिहोत्सहे । अवतारो ह्यजस्येह मायुरः सांप्रतस्त्वयम् ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च^२ । प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
 देवत्वेऽयं मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च सस्थिता । गृह्णाति तत्त्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा ॥४१॥
 बदात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमा । एवं भया समाख्यातः कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः ॥
 मानुषस्य गतो विष्णुः शृणुष्वं चोत्तरं पुनः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल^१ प्रवक्ष्यामि समासतः । अवतारं हरेश्चात्र भारवतरणेच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः ॥२॥

तैयार हो गये । सब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनों प्रचण्ड दानवों को मार डाला । इस प्रकार नगवान् ने
 जितने अवतार हो गये हैं, उनकी संख्या मैं नहीं बता सकता । पर अञ्जना के इस अवतार का नाम मायुर है ॥३९-
 ३९॥ नगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विकी मूर्ति, जो रक्षाकर्म में लगी रहती है, अवतार लेती है । वामुदेव की इच्छा
 से वह देवयानि, मनुष्ययानि तथा तिर्यग्यानि में भी अवतरण होकर उस उस योनि का स्वभाव ग्रहण करती है ।
 द्विजधेष्ठो^२ पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओं को प्रदान करती है । इस प्रकार इतदृश्य होते हुए भी विष्णु
 मनुष्य-योनि में जैसे अवतीर्ण हुए, वह मैंने बतला दिया । अब इससे आगे सुनिये ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों ने संवाद प्रकरण में चतुर्व्यूहवर्णन
 नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर ! मार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिये, उसके विषय में मैं सशेष
 से बतलाऊँगा, मुनिये ! अव-जव अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन सायुजा की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टाना निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजाना रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल महो विप्रा भूरभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरो समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरान्सर्वाग्रजिपत्याय मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं सेदात्करुणभाविणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्गदा सूर्योऽपरो गुरु । भमाप्यखिललोकानां धन्वो नारायणो गुरु ॥७॥
तत्ताप्रतमिमे दैत्या कालनेमिपुरोगमा । मर्त्यलोकं समागम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजा ॥८॥
कालनेमिर्हन्तो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उग्रसेनसुत कसं सभूतं सुमहासुर ॥९॥
अरिष्टो धेनुक कोशी प्रलम्बो नरकस्तथा । सुन्वोऽसुरस्तयाऽयुग्रो बाणश्चापि बले सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्ताम्र सख्यानुमत्सहे ॥११॥
असौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुरा । महाबलानां दृष्टानां दैत्येन्द्राणां मनोपरि ॥१२॥
तदभूरभारपीडार्ता न क्षणनोम्यमरेश्वरा । विभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि य ॥१३॥
त्रियता तमहाभागा मम भारवतारणम् । यथा रसातलं नाह गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्यार्षं धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्ततः । भुवो भारवतारार्यं ब्रह्म प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुरद्रोह दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने शरीर को द्विधा विभक्त करने अवतार लेते हैं । प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पाडित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समक्ष आई । ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करने के बाद से नरुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त करने लगी ॥१५॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि है गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकेश्वर नारायण हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पादन करते हैं । जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है । अरिष्ट धेनुक वेशा प्रलम्ब नरक सुद बलि-युग अत्यन्त मयकर बाण तथा अय जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण हैं उनकी तो मैं संख्या ही नहीं बताना सकता । सुरगण ! मद से चूण महाबली दैत्येन्द्रा की दिव्य मूर्तिधारी असौहिणी सेना भी काफी तादाद में मेरे ऊपर भार लाद रही है । अमरबुद्ध ! इस महामार से पाडित होकर मैं अपने को नहीं समाल सकता । वही निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ । महामागो ! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७-१४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी ने भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम् ॥१६॥
 विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥१७॥
 तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्। तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥१८॥
 सर्वदेव जगत्पथं स सर्वात्मा जगन्मयः। स्वल्पाशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः। समाहितमना भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रभूतं, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
 नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशस्थानपराप्रमेय ॥२१॥
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाणं गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
 प्रधानबुद्धीन्द्रियबाधप्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
 एषा मही देव महीप्रसूतंमहासुरैः पीडितशैलबन्धा ।
 परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतरार्यमपारपारम् ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द ! पृथ्वी ने जो कहा, सब ठीक है। 'मैं, शिव तथा आप लोग सब नारायण हैं'
 अथ है। उनकी जो विभूतियाँ हैं, उन्हीं में परस्पर बाध्यबाधक भाव से कमी-बढ़ती होती है। इसलिये आप
 हमें लाग क्षीरसमुद्र के तट पर चले। वहाँ हरि की आराधना करने उनसे सब निवेदन करेंगे। जगत् के लिए वे
 अस्तिगत्वा तथा जगन्मय प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेकर सदा धर्म की स्थापना करते हैं ॥१६-१९॥

व्यास बोले—इतना कहकर देववृन्द सहित ब्रह्मा वहाँ जाकर एकाग्र चित्त से भगवान् की स्तुति करने
 लगे ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र रूप वाले ! सहस्र भुजा वाले ! बहुत मुख तथा चरण वाले ! आपको नमस्कार है।
 जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले ! अप्रमेय ! आपका नमस्कार है। सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म !
 महान् से भी अत्यन्त महान् ! बुद्धि, इन्द्रिय, वाणी तथा प्रवृत्ति रूप ! परात्मन् ! भगवन् ! प्रसन्न होइये। यह
 पृथ्वी, अपन पर उत्पन्न हुए महापक्षियों द्वारा पीडित होकर मार उतरवाने के लिये आपकी धारण में आई है।
 अथ समार न रहता है। आपका कोई पार नहीं पा सकता। सुरताप ! हम सब—इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण,

एते चयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं, नास्त्यदस्ती वरुणस्तथैवः ।
 इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये ॥२४॥
 सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
 आत्मापयाऽऽत्मां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोयाः ॥२५॥

व्यास उवाच

एवं सस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः । उज्जहाराऽऽत्मनः केशी सितकृष्णी द्विजोत्तमाः ॥२६॥
 उवाच च सुरानेतो मत्केशो वसुधातले । अवतीर्य भुवो भारवलेऽहानि करिष्यतः ॥२७॥
 सुराश्च सकलाः स्यादश्वतोर्व्यं महोत्तले । कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तः पूर्वोत्पन्नमहामुरः ॥२८॥
 ततः क्षयमशेषास्ते देवेषा धरणीतले । प्रयास्यन्ति न सवेहो नानायुधबिचूणिताः ॥२९॥
 वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा । तस्या गर्भोऽष्टमोज्य तु मत्केशो भविता सुरा ॥३०॥
 अवतीर्य च तप्राय कस धातयिता भुवि । कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥३१॥
 अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने । मेरुपृष्ठं सुरा जगमुरवतैरुच्चैः भूतले ॥३२॥
 कसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतले । भविष्यतीत्यावक्षते भगवान्नारदो मुनिः ॥३३॥
 कसोऽपि तदुपभृत्य नारदात्कुपितस्ततः । देवकीं वसुदेव च गृहे गुप्तावधारयत् ॥३४॥
 जातं जातं च कसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा । तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमपितयान्दिवा ॥३५॥

रघु, वसु, सूर्य, वायु, अग्नि आदि देवगण—सदा दोषो से रहित होकर आपही के आशापालन में निरत रहते हैं ।
 इसलिये, ईश ! हमे आशा कीजिये ॥२१-२५॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने दो सकेद तथा
 काले केशो को उखाड़ कर देवताओं से कहा—‘मिरे दोनो केश पृथ्वी पर अवतार लेकर धरती के मारजन्म केशो
 को दूर करेगे । सकल देवगण भी अपने अशो से भूतल पर अवतीर्ण होकर पूर्वोत्पन्न मदमत महाराक्षसो से युद्ध करे ।
 तत्पश्चात् अनेक अस्त्र शस्त्रो से चूर-चूर होकर अधोष देव विनष्ट हो जायेंगे, इससे सदेह नही । देवगण ! वसुदेव
 की देवतुल्य देवकी नामक पत्नी के आठवें गर्भ से मेरा केश अवतीर्ण होकर अपर वालनेमि कस को मारेगा ।’ इतना
 कहकर हरि अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर अदृश्य भगवान् को प्रणाम कर समस्त देवगण सुमेरु पर्वत पर चले गये
 और पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए । (इधर) नारद मुनि ने कस से आकर कह दिया—‘पृथ्वी पर ‘देवकी का आठवाँ गर्भ
 तुम्हारे लिए पातक होगा ।’ नारद की बात सुनकर कस कुपित हो गया । उसने देवकी तथा वसुदेव को जेल में
 भेज दिया । द्विजगण ! वसुदेव भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होता वैसे-वैसे लाकर कस को
 समर्पित कर देते थे । द्विजगणविषु के छ गर्भवस्थित पुत्रो को विष्णु की भेजी हुई योगनिद्रा क्रमशः देवकी के गर्भ में

हिरण्यकशिपो पुत्रा षड्गर्भा इति विभ्रुता । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत् ॥३६॥
योगनिद्रा महामाया ब्रह्मणो मोहित यया । अविद्या जगत्सर्वं तामाह भगवान्हिर ॥३७॥

विष्णुरुवाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसध्रयान् । एकंकश्येन षड्गर्भादेवकीजठरे नय ॥३८॥
हृतेषु तपु कसेन शेषारयोऽशस्ततोऽनघ । अशाशेनोदरे तस्या सप्तमं सभविष्यति ॥३९॥
गोकुञ्चे वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता । तस्या प्रसूनिसमये गर्भो नैयस्त्वयोदरम् ॥४०॥
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोषोपरोधत । देवक्या पतितो गर्भ इति लोको वविष्यति ॥४१॥
गभसकपणात्सोऽथ लोके सकर्षणेति ब । सन्नामवाप्स्यते वीर श्वेताद्रिशिखरोपम् ॥४२॥
ततोऽहं सभविष्यामि देवकीजठरे क्षुभे । गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥४३॥
प्र वृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निजि । उत्पत्स्यामि नवम्या च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥४४॥
यशोदाशयने मा तु देवक्यास्त्वामनिन्विते । मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो भविष्यति ॥४५॥
कसच्च त्वामुपादाय वधि क्षौलशिलातल । प्रक्षेप्यत्यन्तरिक्षे च त्वं स्थानं समवाप्स्यसि ॥४६॥
ततस्त्वा घातधा' शक्र प्रणम्य मम गौरवात् । प्रणिपातानतश्चिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥४७॥
तत क्षुम्भनिशुम्भादीन्हृत्वा दैत्यान्सहस्रश । स्थानैरनेकै पृथिवीमशेषा मण्डयिष्यसि ॥४८॥

ला-लाकर रख छोडती थी। विष्णु ने अपनी महाविद्या योगनिद्रा से जो अविद्या से ससार को मोहित करती है कहा ॥२६ ३७॥

विष्णु बोले—निद्रा । तुम जाओ और मेरी आज्ञा से पातालस्थित छहो गर्भों को एक एक करके देवकी के पेट में रख छोडो। कस द्वारा उनके निहृत हो जाने पर मेरा शेष सगक अथ अशो के अश से देवकी के पेट में सातवाँ गम होकर अवस्थित होगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में रहती है। प्रसव समय उस गम को लेकर तुम रोहिणी के पेट में रख छोडना। तब कस के अथ से या कैद के कारण देवकी का सातवा गम गिर पडा— इस तरह लोक में जनभ्रति पैल जायगा। गर्भ से खिप जाने के कारण लोक में उस श्वेतपवततुल्य वीर की सजा सपण हो जायगी। तदुपरान्त मैं देवकी के पवित्र उदर से उत्पन्न हूँगा। तुम शश्र यशोदा के गम में चली जाओ। वर्षाक्षुभु मे भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की रात्रि में मैं जन्म लूँगा और नवमी में तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३८ ४४॥ मेरी शक्ति से प्रेरणा पाकर वसुदेव जा मुझ ले आकर यशोदा की पवित्र शय्या पर छोड आएँगे और तुम्हें लाकर देवकी के बिछोने पर रख दये। तब कस तुम्हें उठाकर पवत के शिलातल पर पटक देगा पर तुम वहाँ से उडकर आकाश में अपना स्थान प्राप्त कर लोगी। वहाँ इन्द्र मेरी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें माया देक कर सैकडो बार प्रणाम करके अपनी बहन बनायमे। तदनंतर तुम अनेक स्थानो पर गुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रो दैत्यो को मारकर

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी घृतिः । लज्जापुष्टिरुपा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥४९॥
ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च । भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमकरोति च ॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्यः । तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥५१॥
सुरामांसोपहारंस्तु भक्ष्यभोज्यंश्च पूजिता । नृणामशेषकामास्त्य प्रसन्नाया प्रदास्यसि ॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसशयम् । असदिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि ययोदितम् ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपण
नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्

व्यास उवाच

ययोक्तं सा जगद्वात्री देवदेवेन वै पुरा । 'षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भं ततो हरिः । लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वै ॥२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूयित करोगी । भूति, सनति, कीर्ति कान्ति, पृथिवी, घृति, लज्जा, पुष्टि, उपा और जो कोई दूसरी है, सब तुम ही हो । जो प्रातः काल तथा सायंकाल मस्तक झुकाकर आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमकरी आदि नामों से तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त अभिलाषायें मेरी कृपा से पूरी होगी । जो मनुष्य मद्य, मांस, मक्ष्य, भोज्य तथा उपहारों से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हें तुम प्रसन्न होकर अशेष कामठाएँ प्रदान करोगी । वे सब मेरी कृपा से निःसन्देह कल्याण प्राप्त करेंगे । देवी ! अब तुम मेरे वचनानुसार जाओ ॥४५-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विष्णु का अवतारनिरूपण नामक
एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

व्यास बोले—विष्णु के वचनानुसार जगद्वात्री ने छहों गर्भों का वैशा ही विन्यास किया और सातवें गर्भ को रोहिणी के उदर में स्थित कर दिया । सब छीनों लोक के उपकार के लिये गयवान् ने देवकी के उदर में प्रवेश

योगनिद्रा यमोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने । समूता जठरे तद्वद्योक्त परमपिना ॥३॥
 ततो ग्रहगण सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजा । विष्णोरशे महीं यात ऋतवोऽप्यभवञ्जुभा ॥४॥
 नोत्सहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितजसा । जाज्वल्यमाना ता दृष्ट्वा मनासि क्षोभमाययु ॥५॥
 अदृष्टा पुरुषं स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणा । बिम्बाणा वपुषा विष्णुं तुष्टुमुस्तामहर्निशम् ॥६॥

देवा ऊचुः

त्वं स्वाहा त्वं स्वषा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरेव च । त्वं सर्वलोकरक्षार्यमवतीर्णा महीतले ॥७॥
 प्रसीद देवि सर्वस्य जगतस्त्वं शुभं कुरु । प्रीत्यर्थं धारयेशान धृतं प्रेनाखिल जगत् ॥८॥

ध्यास उवाच

एव सस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत् । गर्भेण पुण्डरीकाक्ष जगतां नाणकारणम् ॥९॥
 ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाप्युतभानुना । देवक्या पूर्वसध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥१०॥
 मध्यरात्रिऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने । मन्द जगर्ज्जलदा पुष्पवृद्धिमुख सुरा ॥११॥
 फुल्लन्दीवरपनाभं चतुर्बाहुमुदोक्ष्य तम । धीवत्सवक्षसं जातं तुष्ट्वादाऽऽनकदुन्दुभि ॥१२॥
 अभिष्टूप च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिमहामतिः । विज्ञायापमास तदा कसाद्भूतो द्विजोत्तमा ॥१३॥

ब्रह्मा के कथनानुसार योगनिद्रा भी उसा दिन यमोदा के उदर में प्रविष्ट हुई। द्विजगण । पृथ्वी पर विष्णु के अश के जाने पर ग्रहगण सुचारु रूप से विचरण करने लगे। ऋतुएँ भी सुखदायिनी हो गई। अत्यन्त तेज के कारण देवकी को देखने का किसी को साहस नहीं होता था। तेज से देखीप्यमान देवकी को देखकर लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते थे। (अतएव) देवकी पुरुष तथा स्त्रियो से अदृश्य रहती थी। देवगण शरीर में विष्णु को धारण किये हुई देवकी की रातदिन स्तुति किया करते थे ॥१६॥

देवो ने कहा—सुम स्वाहा स्वषा विद्या सुधा तथा ज्योति हो। अखिल लोको की रक्षा के निमित्त तुम पृथ्वी पर अवतान हुई हो। देवि! तुम प्रसन्न होओ और ससार का कल्याण करो। अपनी प्राति के लिये तुम उस ईश्वर को धारण करो जिसने सम्पूर्ण जगत् का धारण किया है ॥७८॥

ध्यास बोल—देवो द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर देवकी ने ससार की रक्षा के कारण कमललोचन भगवान को गर्भ में धारण किया। तदनन्तर सम्पूर्ण जगत्स्वी कमल को खिलाने के लिये सूर्यरूपी महाराम हरि रात्रि के प्रथम प्रहर में देवकी से प्रादुर्भूत हुए। सबसे आचारभूत जनार्दन के अवतीर्ण हो जाने पर मध्यरात्रि में मेघ मन्द-मन्द गरजने लगे और सुरवृन्द पुष्प-वृद्धि करने लगे। विकसित कमलपत्र के समान कान्ति वाले चतुर्भुज तथा वक्ष पर श्रवत्स नामक चिह्न धारण करने वाले भगवान को देखकर वसुदेव स्तुति करने लगे। द्विजपण्डो! सुन्दर वाणी से उनकी स्तुति करके कस से डरे महाबुद्धिमान वसुदेव ने निवेदन किया ॥९१३॥

१क ०भा । चित्राभि स्तुतिमिचिष्णु । २ख देवदेव० । ३ख स ऽगद्वक्षणा० । ४ख ०ति ।
 चित्पावा० । ५ख ०स कसाय उदा भीतो द्वि० ।

वसुदेव उवाच

ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । दिव्य रूपमिदं देव प्रसादेनोपसहर ॥१४॥
अद्यैव देव कसोऽयं कुरते मम यातनाम् । अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दिरं मम ॥१५॥

देवदयुवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भोऽपि लोकान्वपुषा विभक्ति ॥
प्रसीदतामेष स देवदेव, स्वमाययाऽऽविष्कृतबालरूप ॥१६॥

उपसहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानातु माऽवतारं ते कसोऽयं दितजान्तक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुनाधिण्या तदद्य ते । सफलं देवि सजातं जातोऽहं यत्तबोदरात् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवास्तूर्ण्णीं बभूव मुनिसत्तमा । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहि ॥१९॥
मोहिताश्चाभवत्तत्र रक्षिणो 'योगनिद्रया' । मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानवदुग्धुभौ ॥२०॥
धर्मता जलदाना च तत्तोयमुत्सृज्य निशि । सद्याद्य तं ययौ शेषं कर्णरानकदुग्धुभिः ॥२१॥
यमुनां चातिगम्भीरां नानावतंसताकुलाम् । वसुदेवो बहन्विष्णुं जानुमानबहा ययौ ॥२२॥

वसुदेव बोले—देवो के देव ! शङ्ख चक्र गदा धारी ! मैं आपको पहचान गया । देव ! हुपा करने इस दिव्य रूप को बदल दीजिये । मेरे घर में आप अवतीर्ण हुए हैं—यह जानकर कस आज ही मुझ महाकण्ठ देगा ॥१४॥
१५॥

देवकी बोलों—जो अनन्तरूप तथा अखिल विश्वरूप होते हुए गम में भी लोको का धारण करते हैं और जो अपनी माया से बाल रूप में प्रकट हुए हैं वे देवों के स्वामी प्रसन्न हो । सर्वात्मन् ! इस चतुर्भुज रूप को हटा दिये, ताकि महादैत्य कस आपका अवतार न समझ पाए ॥१६ १७॥

श्रीभगवान् बोले—देवि ! पहिले जो तुमने पुत्र की अभिलाषा से मेरी स्तुति की थी वह प्रापना आज कुम्हारी सफल हुई । मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ ॥१८॥

व्यास बोले—मुनिवर ! इतना कहकर भगवान् चुप हो गए । वसुदेव भी रात्रि में ही उन्हें लेकर बाहर निकल गये । वसुदेव के जाते समय वहाँ के रक्षकगण तथा मथुरा के द्वारपाल योगनिद्रा से मोहित हो गये । रात में बरसते हुए बादलों के जल से बचाने के लिये गायनाग ने वसुदेव को अपनी पगाली से प्रपन्नता दर्श दिया । अत्यन्त गम्भीर तथा अनेक आवर्तों (मँवर) से व्याप्त यमुना विष्णु को बोते हुए वसुदेव की जघा बराबर

कसस्य परमादाय त्रैजागमतास्तदे । नदादीगोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥२३॥
 तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया । तामव कन्या मुनय प्रासूत मोहिते जन ॥२४॥
 वसुदेवोऽपि त्रिजस्य दाशपशय दारिकाम । यशोदाशयन तूष्णमाजगामामितद्युति ॥२५॥
 ददग च विबुधध्वा सा यशोदा जातमामजम । नीलोपलदलश्याम ततोऽत्यर्थं मुद ययौ ॥२६॥
 आदाय वसुदेवोऽपि दारिका निजमन्दिरम् । दवकीशयन न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२७॥
 ततो यालध्वनि श्रुत्वा रक्षिण सहस्रोत्थिता । कसमावदयामासुर्देवकीप्रसव द्विजा ॥२८॥
 कसस्तूष्णमुपत्यना ततो जग्राह बालिकाम । मुञ्च मुञ्चति दवक्याऽऽसन्नकण्ठ निवारित ॥२९॥
 चिक्षप च शिलापृष्ठ सा क्षिप्ता विपति स्थितिम् । अवाप रूप च महत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥
 प्रजहास तथैवोष्ण कस च रुषिताऽन्नधीत ॥३०॥

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कस जातो यस्त्वा हनिष्यति । सवस्वभूतो दयानामासीमृत्यु पुरा स त ॥
 तवतस्तप्रधार्याऽऽशु क्रियता हितमात्मन ॥३१॥

बहने लगी। कस क ब बकाने के लिये आये नद आदि बद्ध गोपों को वसुदेव ने वही यमना के तट पर देखा। उस समय यशोदा म यागनिद्रा से मोहित हो गई थी। मनिवद । मोहित व्यक्तियों के सामने यशोदा ने उसी कस को प्रसव किया था। अपरिमित वांस्ति वाले वसुदेव म बक को यशोदा की शय्या पर मुला कर और कन्या क लेकर ग प्रत से चल पड़। जगने पर यश दा म ल कमल के समान श्यामवर्ण पुत्र को देखकर आनन्द विमोद हो गई। वसुदेव ने अपने घर में बालिका को देवका का शय्या पर रखकर पहिले की तरह अवस्थित हो गये। द्विजगण तदनंतर बाल ध्वनि सुनकर रक्षकगण सहसा उठ पड़ और जाकर कस से देवकी के प्रसव का समाचार सुनने लगे। तब कस ने श प्र देवकी के पास जाकर कन्या को पकड़ लिया। देवकी छोड़ दो छोड़ दो कहती ही रह गई। पर उसने बालिका को शिलापृष्ठ पर पटक दिया। हाथ से छूटते ही वह आकाश में उड़ गई और महान अस्त्र गत्तों से सुसज्जित अष्टभजाधारिण बन गई। अष्टाहास करके उसने प्रोचपूर्वक कस से कहा। १९३०॥

योगमाया बोली—कस! मझ पटक कर तुम्हे क्या मिता? जो देवों के सवस्वभूत देव तुम्हे मोत के घट उतरने के तो पहिले ही जन्म ले चके। यह जानकर तुम शीघ्र अपने कयाण के लिये उपाय करो ॥३१॥

व्यास उवाच

इष्टवत्या प्रपयो देवो दिव्यस्रगन्धभूषणा । पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धं विहायसा ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदि ब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नाम
द्वयशोत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८२॥

अथ त्र्यशोत्यधिकशततमोऽध्याय

कसविचारकथनम्

व्यास उवाच

कसस्तथोद्धिन्नमना प्राह सर्वा महासुरान । प्रलम्बकशिप्रमुखानाहूयासुरपुंगवाम ॥१॥

कस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो कशिधनुक पूतन । अरिष्टार्थस्तथा चार्थं श्रूयता वचन मम ॥२॥
मा हतुममरंयस्व कृत किल दुरात्मभि । मत्प्रेयतापिता बोरस्य स्वता गणयाम्यहम् ॥३॥

व्यास बोले—इतना बहू कर निम्न भाला गंध तथा आभूषणा से युक्त एवम सिद्धगणों से स्तुत भगवता/ कस क देखते ह देखते आना म विमान हो गई ॥३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नामक
एक सौ व्यास वा अध्याय समाप्त ॥१८२॥

अध्याय १८३

कस का अपना विचार कहना

व्यास न कहा—एतदुपयन्त कस उद्धिन्न मन से प्रलम्ब नेगी आदि महामुरा को बुला कर कहने लगा । १॥

कस बोला—महाभक्तिगाली प्रलम्ब । नेगी । धनुक । पूतने । तुम कोय तथा अरिष्ट आदि दूसरे सब मा मेरे वचन वा सुन । दुष्ट दवताओं ने मेरे मारने का उपाय किया है । परंतु मेरे प्रताप से सतप्त इन दवता का मैं परकाह नहीं करता । दत्तधत्तो । कन्या का वात से मुझ आश्रय होता है और उन यन्त्राल देव

१ म ० म । घरावाक्नेन देवैः प्ररितो वासवानुत्र । म० । २ स ० पितैर्बारा मन्वेतान्मूदया० ।
३ म ० म । अमरेषु भगवाना जा० ।

आश्चर्यं कल्पया चोक्तं जायते दैत्यपुंगवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥४॥
 तथाऽपि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥५॥
 उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभव्यभवत्प्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसंभवा ॥६॥
 तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले। यत्रोद्विक्तं बलं बाले सहन्तव्यः प्रयत्नतः ॥७॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुराङ्कसं प्रविश्याऽऽत्मगृहं ततः। उवाच वसुदेवं च देवकीमविरोधतः ॥८॥

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवंते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाज्ञाय बालो मम समुद्गतः ॥९॥
 तबल परितापेन नूनं यद्वाविनो हि ते। अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कसस्तीं परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविशेश पुनः स्वकम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णबालचरिते कंसविचारकथनं नाम

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

राशो के प्रति हँसो भी जाती है। तो भी उन दुरात्मा देवों का अब अधिक अपवार हमें करना है। दैत्यपुंगवों !
 इसने लिये कठिबद्ध हो जाओ। देवकी के गर्भ से उत्पन्न कुमारिका ने बतलाया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान
 के असीश्वर ने तुम्हें मारने के लिये जन्म के लिया है। इसलिये पृथ्वी-तल के बालको पर हमें खास करने
 ध्यान रखना है। जिस बालक में बल का आधिक्य दीख पड़े, उसे यत्नपूर्वक मार दिया जाय ॥२-७॥

व्यास ने कहा—असुरों को इस प्रकार आज्ञा देकर कंस अपने घर में प्रविष्ट हुआ और बिना विरोध के
 वसुदेव तथा देवकी के कहने लगा ॥८॥

कंस बोला—तुम दोनों के बालको को मैंने व्यर्थ ही मार डाला। मेरे नाश के लिये कोई दूसरा ही बालक
 उत्पन्न हुआ है। इसलिये अब तुम सोच मत करो। ओ तुम्हारे भाग्य, मे था, वह होकर रहा। आदु के अन्त हो
 जाने पर कौन नहीं मरता है ? ॥९-१०॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इस प्रकार उन दोनों को सान्त्वना दे बन्धन से मुक्त करके वसु ने पुन अपने
 अन्तर्गृह में प्रवेश किया ॥११॥

श्रीब्रह्महमपुराण में श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र वर्णन प्रसंग में कंस विचार-वचन नामक एक सौ
 तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः । प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्द पुत्रो जातो ममेति च ॥१॥
वसुदेशोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्टयेति सादरम् । वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥२॥
वत्तो हि वार्षिकं सर्वो भवद्भिर्गुणैः पते करः । यदर्थमागतस्तस्मान्नात्र स्थेयं महात्मना ॥३॥
यदर्थमागतं कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते । भवद्भिर्गुण्यता नन्दं तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः । स रक्षणयो भवता यथाऽयं तनयो निजः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्पुक्ता प्रयमूर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः । शकटारोपितैर्भाण्डं करं दत्त्वा महाबला ॥६॥
घसता गोकुले सेवां पूतना बालघातिनी । सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रवदौ स्तनम् ॥७॥
यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सप्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यत ॥८॥
कृष्णस्तस्या स्तनं गाढं कराम्प्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहितं पपो ब्रोधसमन्वित ॥९॥

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन

व्यास बोले—विमुक्त होने पर वसुदेव भी नन्द की गाड़ी के पास पहुँचे । उन्होंने पुत्रोत्सव से नन्द को प्रसन्न देखकर आदरपूर्वक कहा—आनन्द की बात है कि बुढ़ापे में भी आपको अब पुत्र होने गया । आप लोग ने राजा को वार्षिक कर अदा कर दिया । जिसके लिये आप लोग यहाँ आये थे वह वाय सम्पन्न हो गया । नन्द ! अब आप यहाँ न ठहरें । शीघ्र अपने गाँव लौट चले जाय । मेरा भी बालक जो राहिणी से उत्पन्न हुआ है वहीं पर है । उसकी भी आप अपने पुत्र की तरह रक्षा करेंगे ॥१-५॥

व्यास बोले—यह बड़े जान पर नन्द आदि महाबलवान् गाँव कर देकर वतनों का गाँवियों पर लाद कर प्रस्थित हो गये । गोकुल में उन लोगों के रहते ही रात्रि में बालघातिनी पूतना ने साथे कृष्ण को उठाकर उनका मुँह में अपना स्तन दे दिया । रात्रि में जिस जिस बालक के मुँह में पूतना अपना स्तन डालता था उस उस बालक की तत्काल मृत्यु हो जाती थी । कृष्ण ने जोध से उसने स्तन को दोनों हाथों से बसकर दबा दिया और प्राण सहित

सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना । पपात पूतना भूमौ श्रियमाणाऽतिभोग्या ॥१०॥
 तन्नादधुतिसत्रासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकस । ददृशु पूतनोत्सङ्गे कृष्ण ता च निपातिताम् ॥११॥
 आदाय कृष्ण सत्रस्ता यशोदा च ततो द्विजा । गोपुच्छग्रामणार्थश्च बालदोषमपाकरोत् ॥१२॥
 गोपुरीषमुपादाय मन्दगोपोऽपि मस्तके । कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्निदमुदरयत् ॥१३॥

‘नन्दगोप उवाच

रक्षते त्वामशोषाणा भूताना प्रभवो हरि । यस्य नाभिसमुद्भूतात्पञ्चजावभवज्जगत् ॥१४॥
 येन दृष्टाप्रविभूता धारयत्यवनी जगत् । वराहपध्मदेव स त्वा रक्षतु केशव ॥१५॥
 गुह्य स जठर विष्णुकंठ्या पादौ जनार्दन । वामनो रक्षतु सदा भवन्त ऽ क्षणादभूत् ॥१६॥
 त्रिविक्रममक्रान्तश्रैलोक्यस्फुरदायुध । शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशव ॥१७॥
 मुखबाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च । रक्षत्वय्याहर्तृश्वर्यस्तव नारायणोऽयम् ॥१८॥
 त्वा विभु पातु वंकुण्ठो विदिभु मधुसूदन । हृयोर्केशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥१९॥

ध्यास उवाच

एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक । शायित शकटस्याधो बालपर्यङ्किकाले ॥२०॥
 ते च गोपा महद्दृष्ट्वा पूतनाया कलेश्वरम् । मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२१॥

स्तन को पी लिया । स्तन को छोड़ देने पर अतिमयकरी पूतना के समस्त स्नायु-बन्धन छिन्न मिट हो गये और वह महान्द्व वरती हुई निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसने शब्द से समस्त व्रजवासी जाग पड़ और बड़ मममीत हुए । उन्होंने गिरी हुई पूतना तथा उसकी गोद में कृष्ण को देखा । द्विजगण । तब अत्यन्त त्रास यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गो-पुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बाल-दोष का निराकरण किया । नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह कहते हुए रक्षा की ॥१३॥

नन्द गोप बोले—समस्त मूलों के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें । जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होंने वराह रूप बनाकर द्रष्टा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर सत्कार धारण किया वे केशव तुम्हारी रक्षा कर । केशव तुम्हारे गुह्य स्थान की विष्णु जघाओं की और जनार्दन पैरों की रक्षा करें । वे वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें जा एक ही क्षण में तीन पगों में तीनों लोक को आघात कर क्षम-कते हुए अस्त्र शस्त्रों से गुस्तेज्वल हो गये थे । गोविन्द तुम्हारे शिर की केशव कण्ठ की और अत्रिहृत शनित वाले अविनाशी नारायण मुख बाहू भग्न तथा समस्त इन्द्रियों की रक्षा करें । विश्वाओं में वंकुण्ठ तथा विदिशाओं में मधुसूदन तुम्हारी रक्षा करें । आकाश में हृषिकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें ॥१४ १५॥

ध्यास बोले—इस प्रकार रक्षा करके नन्दगोप ने बालक को माटी के नीचे बच्चों के पंथ पर मुला दिया । मृतक पूतना के महावाय को देखकर गोपगण परम त्रास तथा विस्मित हुए । निशा समय गवट के नीचे सोये मधु

यशोदोवाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित

॥३६॥

ध्यास उवाच

इत्युत्त्वा च निजकर्म सा चकार^१ कुटुम्बिनो। व्यग्रायामय तस्यां स कर्ममाण उलूखलम् ॥३७॥
 यमलाजुनयोर्मध्ये जगाम कमलेशण। कर्पता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यगेवमूलखलम् ॥३८॥
 भग्नानुत्तुङ्गशाखाप्रो तेन तो यमलाजुनो। तत^२ कटकटाशब्दसमाकर्णनवातर ॥३९॥
 आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्भुतो। भग्नस्वन्धो निपतितो भग्नशाखो महीतले ॥४०॥
 वदन् चाल्पदन्तस्य स्मितहास च बालकम्। तयोमध्यगत बद्ध दाम्ना गाढ तयोदरे ॥४१॥
 ततश्च दामोदरता स ययौ दामवन्धनात्। गोपबुद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ॥४२॥
 मन्त्रयामासुः कृष्णाना महोत्पातातिभीरव^३। स्थानेनेह न न कार्यं व्रजानोऽयम् महावनम् ॥४३॥
 उत्पाता बहवो ह्यप्य दृश्यन्ते नाशहेतव^४। पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्यय ॥४४॥
 बिना दातादिदोषेण हुमयो पतनं तथा। बन्दावनमित् स्थानासस्माद्गच्छाम मा चिरम् ॥४५॥
 यावद्भूमिमहोत्पातदोषो^५ नाभिभवेद्वधम्। इति कृत्वा मति सर्वे गमने ते व्रजोक्त ॥४६॥
 ऊचुः स्व स्व कुल शीघ्र गम्यता मा विलम्ब्यताम्। तत क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोपनस्तथा ॥४७॥

यशोदा बोली—नटखट^१ अब यदि तुझमें शक्ति है तो जा ॥३६॥

ध्यास बोले—इतना बहुर कुटुम्ब वाली यशोदा अपने काम में लग गई। जब वह काम में व्यस्त हो गई तब ओखली को खींचते हुए कमलेश्वर कृष्ण यमलाजुन (नाम से प्रसिद्ध दो वृक्षों) के मध्य में चले गये और वृक्षों के बीच ही ओखली को तिरछी करके खींचने लगे। इससे उत्तुंग शाखा वाले दोनों यमलाजुन टूट कर गिर पड़े। तदनन्तर उनकी धड़के की आवाज से सगस्त व्रजवासी भूँईं आये। उन्होंने देखा कि टूटे स्कंध तथा टूटी शाखा वाले दोनों वृक्ष भूमि पर गिरे पड़े हैं और अल्प दातों से युक्त मूल वाला बालक मुक्त रह चुका है जो उन्होंने वृक्षों के बीच में खड़ा है और जिसके पेट में रस्सी से ओखली बँधी हुई है। उसी दिन से रस्सी से बँध जाने के कारण भगवान् दामोदर कहलाने लगे ॥३७-४१॥ नन्दगोप आदि बुद्धगोप महान् उत्पात के बारे में उद्दिष्ट होकर परस्पर परामर्श करने लगे—इस स्थान में अब हमें नहीं रहना चाहिये। दूसरे महावन में चलना चाहिए। क्योंकि बहुत-से नाग के कारण रूप उपद्रव यहाँ देखे जाते हैं। पूतना का विनाश गाँदी का उलटना बिना आधी-सूफान के ही वृक्षों का गिरना आदि उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये अब तक बड़-बड़ भौतिक उत्पात अब पर आश्रय न कर उससे पहिले शरीर ही हम लोग इस स्थान से बन्दावन को बल दें। इस प्रकार समस्त व्रजवासी जाने के लिए एकमत्य करके अपने अपने परिवार से बहने लगे—शीघ्र तैयार हो जाओ विलम्ब मत करो। तत्पश्चात् क्षण में ही व्रजवासी शकट

१ख निरतिम्बिनो। २ख तयो। ३क ०पमुख्यास्त०। ४ख ०तिगजिकता। स्था०। ५ख दो भगवचोदमव। ६०।

यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकसः^१ । सर्वाविषयनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तदा ॥४८॥
 काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजा । वृन्दावन भगवता कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ॥४९॥
 शुभेन मनसा ध्यात^२ गत्वा वृद्धिमभीप्सता । ततस्तथातिरुक्तेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तमा ॥५०॥
 प्रावृट्काल इवाभूच्च नवशष्प समन्तत । स सभावासित सर्वो^३ व्रजो वृन्दावने तत ॥५१॥
 शकटोदाटप्येन्तचन्द्रार्धाकारसंस्थिति । वत्सबालौ च सर्ववृत्तौ रामदामोदरौ तत ॥५२॥
 तत्र^४ स्थितौ तौ गोष्ठे चेरतुर्बालीलया । बहिपत्रकृतापोढौ^५ 'वन्यपुष्पावतसकौ ॥५३॥
 'गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ । काकपक्षधरौ बालौ कुमारविष पावकौ ॥५४॥
 हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुस्तन्महद्वनम् । स्वचिद्धसन्तापन्योन्य श्रीडमानौ तथा परं ॥५५॥
 गोपपुत्रं सम वत्साश्चारयन्तौ विचरेतु । कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षा बभूवतु ॥५६॥
 सर्वस्य जगत पाली वत्सपाली महाव्रजे । प्रावृट्कालस्ततोऽप्रीव मधौघस्थगिताम्बर ॥५७॥
 बभूव भारिधाराभिर्द्वय कुर्वन्दिशामिव । 'प्ररुद्धनघपुष्पाडघा' शकनोपवृता मही ॥५८॥
 यथा मारकते वाऽऽसित्यदमरागविभूषिता । ऊहुरुन्मार्गगामोनि निम्नगाम्भासि सर्वत ॥५९॥

गोपन बछड आदि अपनी समस्त चीजों को लेकर विदा हो गये। द्विजगण^१ क्षणमात्र में व्रज मनुष्यविहीन हो गया। वहां कौए चारों ओर छा गये। महाव्रजशाली भगवान् कृष्ण ने गौओं की वृद्धि करने का इच्छा से गुन मन से वृन्दावन का ध्यान किया। द्विजधष्टो^२ तदनंतर अत्यंत स्वस्थ ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ वर्षा ऋतु का तरह नयी घास-पीछ चारों तरफ उग गई। समस्त व्रजवासी वृन्दावन में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥४२-५१॥ गाड़ी के भाग पयन्त उन लोगों का आवास अथवा द्वाकार-सा प्रतीत होता था। राम और कृष्ण बछड़ों को चराने जाते थे। गोष्ठ में रहकर वे दोनों बाल-लीला करते थे। वे भयूर-मल्ल के शिरोमूषण तथा बय पुष्पों के कणमूषण बनाते थे। बाँसुरी बजाते चरवाहे की लाठी रखते और बालों का सिंगार करते थे। इस प्रकार दोनों अग्नि के समान तेजस्व। कुमार हैंते खेलते और महावन में विचरण करते थे। वही परस्पर हैंते कही दूसरों के साथ हैंते और कही गोप पुत्रों के साथ बछड़ों को चराते हुए विचरण करते थे। इस तरह समय बीतते हुए उन्हें सात वर्ष हो गये। जो समस्त संसार के पालक हैं वे महाव्रज में बछड़ों के पालक बने। तदनन्तर वर्षा ऋतु का आषमन हुआ। आकाश में बादल छा गये। माना वे जलपात्र से दिशाओं को एक करने लगे हो। नवीन पुष्पों तथा द्रव्यगो से आच्छादित होकर पृथ्वी इस तरह सुशोभित हो रही थी मानो वह मरुतमणि तथा पथरागमणि से विभूषित हो गई हो। नदा का जल स्व प्रकार उत्पन्न होकर बहने लगा जैसे दुष्ट जनों का मन नया धन पाकर (उत्पन्नपामी हो जाता है।) तब

१क ख ०स। द्रव्याव०। २क ख व्याप्त। ३य ०त्र स्थानाच्छ्रुतौ। ४क युञ्जहारविभूषितौ।

५क ०ताम्यासी नानावाद्यविशारदौ। का०। ६क प्रभूतन०। ७क ॥ ०वन्यपुष्पाडघा।

मनासि दुर्विनोताना प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव । विकाले च यथाकाम व्रजमेत्य महाबली ॥
गोपे समाने सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥६०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णनं नाम
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीयदमनारयानम्

व्यास उवाच

एकदा तु विना राम कृष्णो वृन्दावनं गयो । विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्टगुञ्ज्वल ॥१॥
स जगानाय कालिं दीं लोलकल्लोलशालिनीम् । तीरसलग्नफनौघैर्हंसस्तीमिव सर्वत ॥२॥
तस्या चातिमहाभीम विषाग्निकणवृषितम् । हृद् कालीयनागस्य ददर्शातिविभीषिणम् ॥३॥
विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातमम् । वाताहतान्बुविर्क्षोपस्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥४॥

दोनों महाबली बालक स्वेच्छा से असमय में ही व्रज में आकर समबयस्क गोपों के साथ देवों की तरह खेलने लग ॥५९६०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बाल चरित्र-वर्णन प्रसंग में वृन्दावनप्रवेश निरूपण
नामक एक सौ चौरासवाँ अध्याय समाप्त ॥१८४॥

अध्याय १८५

कालीय दमन का आख्यान

व्यास बोले—एक समय विना राम के ही कृष्ण वृन्दावन चले गये और वन्य पुण्डों की उ० बल माला पहन कर गोपों के साथ विचरण करने लगे । वे चञ्चल तरंगों से व्याप्त यमुना नदी के तट पर गये जो मानो तीर सलग्न फन-समूहों से हास्य करती-सी दीखती थी । उसमें उन्होंने अत्यन्त भयंकर तथा विषाग्नि के वृणों से दूषित कालीय नाग वा हृद (कुण्ड) देखा जो विषाग्नि से तट पर वे वक्षों की जला रहत था । उसके ऊपर से उड़ने

तमतीव महारौद्र मृत्युवक्त्रमिवापरम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदन ॥५॥
 अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुध । यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्ट पयोनिधौ ॥६॥
 तेनेय दूषिता सर्वा यमुना सागरगमा । न नरैर्गोधनैर्वापि तृषार्तैरपभुज्यते ॥७॥
 तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया । नित्यव्रस्ता सुख येन चरेयुर्दण्डवातिन ॥८॥
 एतदयं नूलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृत । यदेयामृत्युस्यस्थाना कार्या शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥
 तवेतन्नातिदूरस्य कदम्बमुरुशाखिनम् । अधिरुहधोत्पतिप्यामि हृदेऽस्मिञ्जीवनाशिन ॥१०॥

ध्यास उवाच

इत्य विचिन्त्य बद्ध्वा च गाढ परिकरं तत । निपपात हृदे तत्र सर्पराजस्य वेगत ॥११॥
 तेनापि पतता तत्र क्षोभित स महाहृद । अत्यर्धद्वरजाताश्च ताञ्चासिञ्चन्महीशहान् ॥१२॥
 तेऽहिबुष्टविषज्वालातप्ताम्बुतपनोक्षिता । अञ्चल पादपा सख्यो ज्वालाव्याप्तविगततरा ॥१३॥
 आस्फोटयामास तदा कृष्णो मागहृदं भुजं । तच्छब्दधवणाच्चाय नागराजोऽभ्युपागमत ॥१४॥
 आताम्रनयन कोपाद्विज्वालाकुलं फणं । वृत्तो महाविषैश्चान्यैरुर्ध्वरजैर्निलाशमै ॥१५॥
 नागपत्न्यश्च शतशो हारिहरोपशोभिता । प्रकम्पिततनूत्क्षोपचलत्कुण्डलास्तप ॥१६॥

बाले पक्षियों को कहीं वायु के झोंके से जल के छोटे पड़ जाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। उस महामयानक तथा मृत्यु-मुक्ष के समान हृद को देखकर भगवान् मधुसूदन सोचने लगे—इसमें वह दुष्टात्मा तथा विषरूप अस्त्र वाला कालीय नाग रहता है जो बुष्ट मेरे द्वारा जीतकर छोड़ दिया जाने पर समुद्र में भाग गया था। उसने समुद्रगामिनः यमुना को दूषित कर दिया है। मनुष्य या गोधन प्यासे होने पर भी इसका जल नहीं पीते हैं। इसलिये मुझ इस नाग राज को दण्ड देना चाहिये ताकि नित्य डरने वाले वज्रवासी मुखपूर्वक विवरण कर सकें। इसीलिये तो मैंने मृत्यु रोग में अबतार भी लिया है ताकि उत्सवगामी दुरात्माओं को दण्ड दे सकूँ। विपुल शाखाओं से युक्त यह कदम्ब वृक्ष भी कोई दूर नहीं है। इसी पर चढ़कर जीवनाशी कालीय के हृद में कूद पड़ूँगा ॥११॥

ध्यास बोले—एसा विचार कर के दृढ़ता से काष्ठ बाँधकर सपरान्त के हृद में वेग से कूद पड़ा। उनके गिरने से हृद में अत्यन्त क्षीम पैदा हुआ जिससे अत्यन्त दूरस्थ वृक्षों के ऊपर भी जल के छोटे पड़ गये। बुष्ट विष रूपी ज्वाला से सतप्त जल ने पढ़ने से वृक्षों में सद्य इतनी ज्वाला धक्क जड़ी कि चारों ओर ज्वाला ही ज्वाला दालने लगी। तब वृष्ण ने अपनी भुजाओं से नाग हृद में ताल ठोका या आघात किया। वह शब्द सुनते ही नागराज दौड़ पड़ा। क्रोध से आँख लाल कर विष की ज्वाला से व्याप्त फणाओं से कालीय ने कृष्ण को आ-आदत कर दिया। लाल रंग वाले तथा महाविष वाले दूसरे सर्पों ने भी कृष्ण को घेर लिया। वहाँ सँकड़ा मनोहर हरो से सुगोमित नाग-मलिन्याँ थी जिनके शरीर-वस्त्र होने से चञ्चल कुण्डलों की छटा देखते ही बनती थी। तब फणाओं

१ख सागराङ्गना। २क सपरान्तस्य। ३ग नित्यावस्था मु०। ४ग शान्ति०। ५ख स।
 ६ग ०हरे भुजम्। त०। ७ख ०ता। यमु प्र०। ८ख ०मितस्तत्र च०। ९ख ०लजातय।

ततः प्रवेष्टितः सर्पः ॥ कृष्णो भोगबन्धनः । ददंशुश्चापि ते कृष्णं विपञ्चालाविलम्बुलः ॥१७॥
त तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम् । गोपा व्रजमुपागत्य चक्रुः शोकलालसाः ॥१८॥

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नो वै कालिये हृदे । भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१९॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः । गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्गोदाप्रमुखा व्रदम् ॥२०॥
हा हा वजासाविति जनो गोपीनामसिंहवलः । यशोदया समं आगतो द्रुतः प्रस्खलितो ययौ ॥२१॥
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः । त्वरितं यमुना जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥
वदंशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशंगतम् । निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम् । यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
गोप्यस्तवग्न्या वदत्यश्च ददंशुः शोककातराः । प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५॥
सर्वा यशोदया सार्धं विशामोऽत्र महाहृदे । नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥२६॥
दिवस को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा । विना वुग्धेन का रात्रौ विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ॥२७॥

से कृष्ण को वेष्टित कर सर्पगण विष की धवाला से व्याप्त मुखों से उगड़े काटने भी लगे । नाग की कणाओं से पीडित कृष्ण को देखकर गोप शोकविह्वल हो व्रज आकर आश्रीत करने लगे ॥११-१८॥

गोप बोले—कालिय नाग के हृद मे कृष्ण मोहवश चले गये । सर्पराज उगड़े खा रहा है । इसलिये जल्दी आओ ॥१९॥

व्यास बोले—तदुपरांत वज्रपात के सदृश वचन सुनकर गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ दौड़ते हैं। वहाँ गईं। गोपियाँ अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगी— हाय ! हाय , कहीं कृष्ण पड़े है ।।' नन्दगोप यशोदा के साथ गिरते-मड़ते जलदी अन्दी वहाँ पहुँचे । अन्य गोप तथा अद्भुत पराक्रमी राम भी कृष्ण-दर्शन की लालसा, से सीधे ही यमुना के किनारे पहुँच गए । उन लोगों ने देखा—'कृष्ण सर्पराज के पश मे आ गये हैं । अपनी पणाओं से वेष्टित करके उसने कृष्ण को निश्चेष्ट बना दिया है ।' पुत्र के मुख को देखते ही नन्दगोप भी अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये । मुनिथेण्डो । यशोदा की भी वही दशा हुई । अन्य गोपियाँ ओर से वातर हो रोने लगी और मय से विह्वल होकर कृष्ण से प्रेमपूर्वक कहने लगी—'यशोदा सहित हम सब नागराज के महाहृद मे प्रवेश करत है । यो व्रज मे जाना हम लोगों के लिये उचित नहीं । जैसे विना सूर्य के दिन, विना चन्द्रमा के रात और विना दूध के रात्र कुत्तिन है, उसी तरह विना कृष्ण के व्रज निन्द है । विना कृष्ण के हम गोकुल नहीं जायेंगे ॥२०-२७॥

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रोहिणेयो महाबलः । उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः ॥२८॥
नन्द च दीनमत्ययं न्यस्तदृष्टि सुतानने । मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ॥२९॥

वलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं भानुपस्त्वया । व्यप्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्व न वेत्ति यत् ॥३०॥
त्वमस्य जगते नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः । कर्ताऽपिहर्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमय ॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि धान्यदाः । गोप्यश्च सोदतः कस्मात्सर्वं बन्धून्समुपेक्षसे ॥३२॥
दर्शितो भानुपो भावो दर्शित बालचेष्टितम् । तवयं दम्पता कृष्ण दुरात्मा वशनायुध ॥३३॥

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिध्रौष्ठसंपुटः । आस्फाल्य मोचयामास स्वं देहं भोगबन्धनात् ॥३४॥
आनाम्य चापि हस्ताभ्यामुभ्याम् । मध्यमं फणम् । आरुह्य भुग्नशिरसः प्रनततोद्विक्कम ॥३५॥
प्रणाः फणोऽभस्तस्य कृष्णस्याद्विधिविकृष्टनैः । यत्रोत्प्रति च कुरुते ननामास्य ततः शिरः ॥३६॥
मूर्च्छानुपाययो भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य कृष्टनैः । दण्डपातनिपातेन वयाम रुधिर बहू ॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोप्रोवमास्यप्रवृत्तशोणितम् । विलोक्य शरणं जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥३८॥

व्यास बोले—गोपियो वा वचन सुनकर महाबलशाली तथा निनिमेष नेत्रा से देखने वाले राम ने दुर्गा गोपो को, पुत्र के मुख पर दृष्टि गड़ाये अत्यन्त दीन नन्द को तथा मूर्च्छा से आकुल यशोदा को देखकर कृष्ण के माहात्म्य की ओर सकेत करके कहा ॥२८-२९॥

वलराम बोले—देवदेवेश ! क्या आप यह मनुष्य-भाव प्रवृत्त कर रहे हैं ? क्या आप अपनी उस दूसरी आत्मा को नहीं जानते हैं । आप त्रैलोक्य के नर्ता, हर्ता तथा रक्षक हैं । आप वेदमय हैं । कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण हुए हम दोनों के गोप-गोपियो ही बन्धु हैं । सीदित होते हुए बन्धुओं की क्यों आप उपेक्षा कर रहे हैं ? आपने मनुष्य-भाव दिला दिया । बाल चेष्टायें भी दिला दी । कृष्ण ! अब इस दुरात्मा सर्प का दमन कीजिए ॥३०-३३॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्मरण दिलाने पर मुस्कराते हुए कृष्ण ने कणाओ को तोड़कर तरूप बन्धन से अपने शरीर को मुक्त कर दिया । (दोनों हाथों से बीच की कणाओ को झुका कर टूटे हुए शिर पर चढ़कर महापराक्रमी कृष्ण नाचने लगे ।) कृष्ण के चरणप्रहार से सर्प की कणा भ घाव हो गये । जहाँ वह शिर उगाता वही पर मगवान कुचल देते । कृष्ण के कुचलने से नाग अत्यन्त मूर्च्छित हो गया । दण्डप्रहार से यह शोणित वमन करने लगा । भग्न-शिर तथा ग्रीवा से युक्त और शोणित से लय-यथ वाक्यीय को देखकर नाग-पत्नियाँ मधुसूदन की शरण में गई ॥३४-३८॥

१. संज्ञान् । न० । २. ०तो योनिश्चरणामपि सद्यः० । ३. त्रैलोक्ये । ४. त्वं आस्फोट्य ।

५. त्वं ग० ह्य मज्ज० । ६. रेषकं ।

नागपत्न्य ऊचुः

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम । पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदंशः परमेश्वरः ॥३९॥
न समर्थाः सुर स्तोतु यमनन्यभव प्रभुम् । स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति ॥४०॥
यस्याखिलमहोद्योगजलान्निपवनात्मकम् । ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥४१॥
ततः कुर्व' जगत्स्वामिन्' प्रसादमवसोदत' । प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तु'भिक्षा प्रदीयताम् ॥४२॥

ध्यास उवाच

ह्ययुक्ते' ताभिराश्वास्य क्लान्तवेहोऽपि पन्नगः । प्रसौद देवदेवेति प्राह वाच्यं शनैः शनैः ॥४३॥

कालीय उवाच

तथाष्टगुणमंशवयं' नाथ स्वाभाविक परम् । निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किञ्चहम् ॥४४॥
एव परस्व परस्याऽऽद्यः पर त्व तत्परात्मकम् । परस्मात्परमो' यत्स्वं तस्य स्तोष्यामि किञ्चहम् ॥४५॥
यथाऽहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः । स्वभावेन च संपुष्टस्तत्पदे' चेटितं मया ॥४६॥
यद्यन्यथा प्रथर्तय देवदेय ततो मयि । न्याय्यो दण्डनिपातस्ते सर्वे वचनं यथा ॥४७॥
तथाऽपि य जगत्स्वामी दण्डं यातितवान्मयि । स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वतो नाग्योऽस्तु मे वरः ॥४८॥
हतवीर्यो हतविद्यो दमितोऽहं स्वयाऽभ्युत । जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि हिम् ॥४९॥

नाग-पत्नियों बोलों—देवदेवेश ! हमने आपको पहिचान लिया । आप सबके स्वामी तथा सबसे उत्तम हैं । परम ज्योति तथा अचिन्त्य रूप जो हैं, वे भी आप ही के अंश हैं । आप परमेश्वर हैं । जिन स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रभु की स्तुति करने में देवता भी समर्थ नहीं होते हैं, उनका स्वरूप-वर्णन मला रत्नी कैसे करेगी ? पृथ्वी, आकाश, जल अग्नि तथा वायु रूप अखिल ब्रह्माण्ड जिनके अल्प अंश का अंश है, उनका स्तुति हम कैसे करेंगी ? इसलिये, जगन्नाथ ! हम दुर्निमो पर कृपा कीजिये । नाग प्राणत्याग कर रहा है । स्वामि भिक्षा हमें दीजिये ॥३९-४२॥

ध्यास बोले—स्तुति के बाद यद्यपि सर्व का घरीर खिल था, तो भी उनसे धीरे-धीरे कहा—देवाधिदेव ! प्रमन्न हाइये । ॥४३॥

कालीय बोला—नाथ ! आठ प्रकार के ऐश्वर्य आपने स्वाभाविक गुण हैं । आप अनिर्वचनीय हैं । आपकी मैं क्या स्तुति करूँगा ? आपने जैंगी जाति, जैसा रूप और जैसा स्वभाव देकर मेरी सृष्टि की वेंगा ही मैंने व्यपहरा दिया । देवदेव ! यदि मैं कृपा व्यपहार करने तो आप मुझे उचित दण्ड दें । यह वा आश्वासन ही है । जगन्नाथ ! मैंने मुझे या दण्ड दिया, उमका मैंने गलत किया । मेरे लिये आपसे बड़कर दूसरा कौन थोड़ा है ? ब्रह्मण ! आपने मेरा दमन किया । मैं हताश तथा हतविद्य हो गया । आप मुझे वैयक्त जीवन प्रदान करें । आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ॥४४-४९॥

१४ ७४ कृपा नाथ प्रसादः । २४ ०प्रसौद न मयः । प्रा० । ३९ ०को वाप्यया तस्य । ४९ ०माज्ञापय ।

श्रीभगवानुवाच

नात्र ह्येय त्वया सर्पं कदाचिद्यमुनाजले । 'सभृत्यपरिवारस्त्व समुद्रसलिलं व्रज ॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्पं दृष्ट्वा मूर्धनि सागरे । गरुडं पत्रगर्पुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥५१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजान् मुमोक्ष भगवान्ह्रि । प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसानिधिम ॥५२॥
पश्यता सर्वभूतानां सभृत्यापत्यवान्धव । समस्तभार्यासहितं परित्यज्य स्वकं हृदम् ॥५३॥
गम्य सर्वपरिष्वज्य भूतं पुनरिवाऽऽगतम् । गोपां मूर्धनि गोविन्दं सिपिचुर्नैत्रजंलं ॥५४॥
कृष्णमबिलषट्कर्माण्मन्ये बिस्मितचेतसः । तुष्टुबुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा 'शिवजला नदीम् ॥५५॥
गीयमानोऽथ गोपीभिश्चरितंश्चाश्चेष्टितं । सस्तूयमानो गोपालं 'कृष्णो व्रजमुपागतम् ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालीयदमननिरूपणं नाम
पञ्चाशोत्तराधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

श्री भगवान् बोले—सर्प ! तুম यहा यमुना जल मे कम्हा भी मत ठहरो । अपने नौकर तथा परिवार सहित तूम समुद्र के जल में चले जाओ । सर्प ! समुद्र में तुम्हारे मस्तक पर मेरे पदचिह्नों को देखकर गरुड तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगा ॥५०-५१॥

व्यास बोले—सर्पराज ! से इतना बहूकर भगवान् हरि ने उसे छोड़ दिया । वह भी कृष्ण को प्रणाम कर समस्त भूता के देखते ही देखते अपने नौकर वच्चे बच्चे तथा अस्त्र पत्नियां समेत अपने हृद को छोड़कर समुद्र में चला गया । सर्प के चले जाने पर गोपा ने भरखर पुन लौट आये की तरह कृष्ण का आलिंगन कर नेत्रजल से उनके मस्तक को मिगो दिया । दूसरे गोप नदी के जल को निदुष्ट देखकर आश्चर्यचकित हो हृष से महापराक्रमी कृष्ण की स्तुति करने लगे । गोपियां उनके सुन्दर चरित्र का गान करने लगी और गोपाल उनकी प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार कृष्ण व्रज में आये ॥५२-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्रवर्णन प्रसंग मे कालीयदमन निरूपण नामक
एक सौ पचासीवां अध्याय समाप्त ॥१८५॥

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुकवधाख्यानम्

व्यास उवाच

गाः पालयन्ती च पुनः सहितौ^१ रामकेशवौ । अममाणौ बने तत्र रम्यं तालवनं गती ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः । नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः ॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम् । दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽद्भुतवचः ॥३॥

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्ष्यते । भूप्रदेशो^२ यतस्तस्मात्पक्वानामानि सन्ति वै ॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै । धयमेतान्यभीप्तामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥५॥
इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा संकर्षणो वचः । कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ॥६॥
तालानां पतता शब्दमाकर्ण्यसुरराट् ततः । आजगाम तत्र कुण्डात्मा कोपाहूतेयगर्बभः ॥७॥
पञ्चधामुभाभ्यां स तदा पश्चिमाम्यां च तं बली । जयानोरसि ताम्यां च स च तेषाम्पगूहृत ॥८॥
गूहीत्वा ग्रामणेनैव चाम्बरे गतजीवितम् । तस्मिन्नेव प्रविक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९॥

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

व्यास बोले—गुन राम और कृष्ण एक साथ वन में गौओं को चरते हुए इधर-उधर घूमते हुए एक रमणीय तालवन में प्रविष्ट हो गए । उस तालवन का रक्षक धेनुक नामक दानव था । जो मनुष्यों तथा गौओं के मांस का भोजन करता था । फलस्वरूप उस रमणीय तालवन को देखकर गोपों को फल लेने की इच्छा हुई । तब उन्होंने यह वचन कहा ॥१-३॥

गोप बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भूमि-प्रदेश की रक्षा धेनुक करता है । इसलिये ये फल लोगो से परित्यक्त हैं । तुम इन सुगन्धित फलपत्रों को देखो । हमें ये चाहिए । यदि तुम्हें पसन्द आए तो इन्हें तोड़ दो । गोप-नात्या का यह वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण ने भूमि पर फलपत्रों को गिरा दिया । गिरते हुए पला था पाण्डु सुनकर गर्दमरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोष से वहाँ आ पहुँचा । उस बलवान् ने अपने पिछले दोनों पैरों से राम की छाती पर मारा, पर उन्होंने उसकी टाँगें धक्क कर धुमाते धुमाते आकाश में ही उसे निष्प्राण कर दिया और उसी क्षण वेच स तालवृक्ष ने ऊपर फेंक दिया । ताल के ऊपर से गिरते हुए उस गधे ने अनेकों पत्तों

ततः फलान्यनेकानि तालाग्रात्रिपतन्धरः । पृथिव्यां पातयामास महावातोऽम्बुदानिव ॥१०॥
 अन्यानप्यस्य धं ज्ञातोनागतान्दैत्यगर्दभान् । कृष्णदिक्क्षेप तालाग्रे बलमद्रश्च लीलया ॥११॥
 क्षणेनालंकृता पृथ्वी पक्वस्तालफलस्तदा । दैत्यगर्दभदेहैश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम् ॥१२॥
 ततो गावो निरावाघास्तस्मिस्तालवने द्विजाः । नवशर्पं सुखं चैर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा ॥१३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम
 पञ्चशोत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्णकृतबहुविधलीलावर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्नासभदैतेये सानुजे विनिपातिते । सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं धर्मौ ॥१॥
 ततस्ती जातहर्षो तु वसुदेवसुताधुमौ । शुशुभाले महात्मानो बालशृङ्गाविवर्धभौ ॥२॥

को उसी तरह पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे आँधी बादलों को छित्त-मिन्न कर देती है। वहाँ आये हुए गर्दभरूपधारी अन्य दैत्यों को भी, जो धेनुक के भाई-बन्धु थे, कृष्ण तथा बलमद्र ने सहज ही में तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। मुनिगण ! क्षण भर में पृथ्वी पक्व तालफलों से अलङ्कृत हो गई तथा गर्दभरूपधारी दैत्यों की देहों से वह विशेष रूप से घोरित हुई। द्विजबृन्द ! तब से उस तालवन में मार्ये निर्वाणपूर्वक नवीन पातों को सुख से चरने लगी, जहाँ वे पहले खाती थी ॥४-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र-कथन प्रसंग में धेनुक-वर्णन नामक
 एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

व्यास बोले—कथुर्वगंसंहित उस राजस के विनष्ट हो जाने पर समस्त गोप-गोपियों के लिये तालवन रम-णीय स्थान बन गया। तदनन्तर वसुदेव के दोनों महात्मा पुत्र हर्ष से उसी तरह मुगोमित हुए, जैसे नये सींग

चारयन्ती च गा दूरे व्याहरन्ती च नामभिः । नियोगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ॥३॥
 सुवर्णाञ्जनचूर्णम्या तदा तौ भूषिताम्बरी । महेन्द्रायुधसंकाशी श्वेतकृष्णाविवाम्युदौ ॥४॥
 चेरतुलोकसिद्धाभिः श्रीडाभिरितरेतरम् । समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥५॥
 मनुष्यधर्माभिरतो मानयन्तौ मनुष्यताम् । तज्जातिगुणयुक्ताभिः श्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥६॥
 ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च निपुद्वंश्च महाबली । व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयंस्तथाऽश्मभिः ॥७॥
 तल्लिप्सुरसुरस्तश्च उभयो रममाणयोः । आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेपतिरोहितः ॥८॥
 सोऽयमाहत निःशङ्कं तेषां मध्यममानुषः । मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥९॥
 तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरतिशोघममन्यत । कृष्णं ततो रोहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥१०॥
 हरिणा क्रीडन नाम बालक्रीडनकं ततः । प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पन्नौ ॥११॥
 श्रीदाम्ना सह गोविन्द प्रलम्बेन तथा बलः । गोपालरपरंश्चान्ये गोपालाः सह पुप्लुधुः ॥१२॥
 श्रीदामान् ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणोस्तुतः । जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥१३॥
 ते बाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेरय यैः । पुनर्निवृत्तास्ते सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१४॥
 संकर्षणं तु स्कन्धेन शोघामुत्क्षिप्य दानवः । न तस्यौ प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥१५॥
 अशक्तो बहूने तस्य संरम्भाद्दानवोत्तमः । बबूधे सुमहाकायः प्रावृषीय बलाहकः ॥१६॥

वाले बछड़े । वनमाला से विभूषित तथा कंधे पर हाकिने की रस्ती रखे हुए कृष्ण एवम् राम गोमो को दूर ले जाकर चराते थे तथा उनके नामा से पुकारते थे । सुवर्ण तथा अञ्जनचूर्ण से भूषित वस्त्रधारी, (अर्थात् पीताम्बर और मीनाम्बर), इन्द्रधनुष के सुस्थ और बादल की तरह श्वेत एवम् कृष्ण दोनों माई परस्पर लोक-प्रसिद्ध श्रीदात्रा से खेल करते थे । समस्त लोकनाथों के नाम तथा महाबली कृष्ण-राम पृथ्वी पर आकर मनुष्य-धर्म-निरत होकर मनुष्यत्व का परिचय देने हुए मनुष्य जाति के अनुरूप ही बन में क्रीडा करते थे । वे हिडोले पर झूलते, मुड़ करते और फेंकने योग्य पत्थर के टुकड़ा से व्यायाम करते थे । (एक दिन) खेल करते हुए कृष्ण और राम से मदना लेने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर गोप-वेश में अपने को छिपाकर वहाँ उपस्थित हुआ । वह उन दाना का छिद्रान्वेषण करने लगा । अत्यन्त शीघ्र ही उसे अवसर मी मालूम हो गया । तब वह कृष्ण और बलमद्र को मार देने की कामना करने लगा ॥१-१०॥ हरि ने बालक्रीडनक नामक खेल आरम्भ किया । उसमें दो-दो वालक एक ही बार दौड़ने थे । श्रीदामा के साथ गोविन्द, प्रलम्ब के साथ बजराम और अन्य गोपालों के साथ दूसरे गागात्र दौड़ने लग । कृष्ण ने श्रीदामा को और बलमद्र ने प्रलम्ब को जीत लिया । कृष्ण ने पक्ष के गापाला न अन्य गागात्रों को जीत लिया । पराजित पक्ष वाले विजयी पक्ष वालों को कन्ये पर दोनर नियत वस्त्र तथा तब क जाते थे और पुन लौट आते थे । उस समय दैत्य बजराम को पूर्वी से कन्ये पर उछार कर उनी तरह भागने लगा जैसे चन्द्रमा के साथ बादल । बलमद्र के मार के कारण जब वह बहने बरने ॥ अगमयं दृष्टा तब उगने वर्षास्त्रु म बादल की तरह अपने शरीर को बहुत बिलगुन कर दिया । जले पर्वत

सकपणस्तु ॥ दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम् । स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१७॥
रोद्र शकटचक्राक्ष 'पादग्यासचलत्सितिम् । ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत् ॥१८॥

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेय पर्वतोदग्रमूर्तिना । केनापि पश्य दंत्येन गोपालच्छदमरूपिणा ॥१९॥
यदत्र साप्रत कार्यं मया मधुनिषूदन । तत्कथ्यता प्रयात्येय दुरात्माऽतित्वरान्वित ॥२०॥

व्यास उवाच

तमाह राम गोविन्द स्मितभिक्षौष्ठसपुट । महात्मा रीहिण्यस्य बलवीर्यप्रमाणयित् ॥२१॥

कृष्ण उवाच

किमय मानुषो भावो व्यक्तमेवायलम्ब्यते । सर्वात्मन्सर्वगुह्याना गुह्याद्गुह्यात्मना खया ॥२२॥
स्मराशेषजगदीश कारण कारणाग्रज । अस्मानमेक तद्वच्च जगत्पकार्षवे च य ॥२३॥
भवानह च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम् । जगतोऽस्य जगत्पर्यं भवेनाऽऽवा व्यवस्थितौ ॥२४॥
तस्मर्यताममेयात्मस्वरूपाऽऽत्मा जहि दानवम् । मानुष्यमेवमालम्ब्य बन्धूना क्रियता हितम् ॥२५॥

व्यास उवाच

इति सस्मारितो विप्रा कृष्णेन सुमहात्मना । विहस्य पीडयामास प्रलम्ब बलबान्बल ॥२६॥
मुष्टिना चाहन्मुग्धन कोपसरवतलोचन । तेन चास्य प्रहारेण बहिर्यति विलोचने ॥२७॥

के समान आकृति वाले पुष्पमाता तथा अभयपणा से युक्त मस्तक पर मुकुट धारण किये भयकर गाड़ी के चक्र के समान नेत्र वाले और पाद प्रलय से पूर्यवा को कँपाने वाले उस दानव को देखकर अपहृत किय जाते हुए बलराम ने दृष्ट्वा से कहा ॥११ १८॥

बलराम बोले—कृष्ण ! कृष्ण ! गोपालवेशधारी किसी पर्वताकार दानव के द्वारा मैं अपहृत किया जा रहा हूँ । मधुसूदन ! इस समय मुझ क्या करना चाहिये ? कहिये । यह दुरात्मा तेजी से भाग रहा है ॥१९ २०॥
व्यास बोले—यद्यत्र दानव की पराक्रम की हयता को जानने वाले महात्मा गोविन्द ने मुस्करा कर उनसे कहा ॥२१॥

कृष्ण बोले—अलिलाम् । गुप्त से भी गुप्त को समझने वाले ! आप क्या इस स्पष्ट मनव्य भाव का अवलम्बन कर रहे हैं ? सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ! एक आत्मा का स्मरण कीजिये । किसी निमित्त से अग्रज होने वाले वारण का स्मरण कीजिये । विश्वात्मन । जगत् के एकाग्र होने में भी हम और आप एक ही कारण हैं । सत्कार के लिये ही हम दोनों भिन्नतया अवस्थित होते हैं । अप्रमेयामन् ! इसलिये आत्मा का स्मरण कीजिये । दानव का नाश कीजिये । इस प्रकार मनुष्य का अवलम्बन कर धनुषों का हित कीजिये ॥२२ २५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! महात्मा कृष्ण के इस प्रकार स्मरण दिलाने पर बलवान् बलराम हँसकर प्रलम्ब को पीटा देने लगे । क्रोध से आँखें लाल कर उन्होंने मुट्ठी से उसके मस्तक पर दे मारा । इस प्रहार से उसकी आँखें

स निष्कासितमस्तिष्को मूखाच्छोणितमुद्गमन् । निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्योममार च ॥२८॥
 प्रलम्ब निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा । प्रहृष्टास्तुष्टुवृगोपां साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२९॥
 सस्तूयमानो 'रामस्तु गोपेदैत्ये निपातिते । प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययो ॥३०॥

व्यास उवाच

तयोविहरतोरेव रामकेशवयोर्ब्रजे । प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥३१॥
 विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाम्यागते व्रजम् । 'द्वदर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्ताग्रजवासिन ॥३२॥
 कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् । कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धाग्रमहामति ॥३३॥

कृष्ण उवाच

कोऽयं शक्रमहो नाम येन यो हर्षं आगत' । प्राह तं नन्दगोपश्च पुच्छन्तमतिसादरम् ॥३४॥

नन्द उवाच

मेघाना 'पयसामीशो देवराज शतक्रतुः । येन संचोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥३५॥
 तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहिन । वर्तयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥३६॥
 क्षीरवत्य इमा गावो घृतसवत्यश्च निर्वृता' । तेन संवर्धितैः सस्यै' पुष्टास्तुष्टा भवन्ति यै ॥३७॥
 नासत्या नामृणा भूमिर्न बुभुक्षादितो जन । दृश्यते यत्र दृश्यन्ते दृष्टिमन्तो यत्नाहवा' ॥३८॥

निष्कल गई शिर टूट गया और मुख से शोणित बहने लगा । इस प्रकार वह दानव थोड़ा पृथ्वी पर गिर कर मर गया ।
 अद्भुत-कर्म-कारी बलमद्ग द्वारा प्रलम्ब के मारे जाने पर गोपगण 'ठीक ठीक' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ।
 प्रलम्ब ने गिर जाने पर गोपो द्वारा स्तुत होते हुए बलराम कृष्ण के साथ पुन गोकुल आ गये ॥२९-३०॥

व्यास बोले—व्रज में राम और केशव ने इस प्रकार विहार करते हुए वर्षा ऋतु धीत गई और शरद का प्रारम्भ हुआ निर्मल आकाश में तारे सुशोभित होने लगे । व्रजवासी इन्द्रपूजा की तैयारी में लग गये । उत्सव मनाने की लालसा से दौड-धूप करते हुए गोपो को देखकर महाबुद्धिमान् कृष्ण में उत्सुकतापूर्वक बढ़ते से पूछा ॥३१-३३॥

कृष्ण बोले—इन्द्र कौन है जिससे आप लोगो को इतना हर्ष हो रहा है । इस प्रकार पूछते हुए कृष्ण ने नन्दगोप अत्यन्त आदरपूर्वक बहने लगे ॥३४॥

नन्द बोले—देवराज इन्द्र मेघा के स्वामी हैं । उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जन्ममय रस वृष्टि करते हैं । उसी वृष्टि से अन्न पैदा होता है, जिसे खाकर हम तथा दूसरे प्राणी जीते हैं और देवताओ को तृप्त करते हैं । उसी अन्न से गाँव हृष्ट-मुष्ट होकर दूध तथा बछड़े देती हैं । जहाँ मेघ बरसते हैं, वहाँ भूमि सस्यसम्पन्न होती है, ऋण नहीं लेने पड़ते और प्राणी भूखा नहीं मरते हैं । बादल पृथ्वी पर से जल को सूर्य की चिरणों द्वारा खींच लेते हैं और

भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः । पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि धर्पति ॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः । महे सुरेशमर्धन्ति वयमन्ये च देहिनः ॥४०॥

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्यं शक्रपूजने । कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥४१॥

कृष्ण उवाच

न वयं कृपिकर्तारो वणिज्याजीविनो न च । गावोऽस्मद्वैवर्तं तात वयं वनचरा यतः ॥४२॥
आन्वीक्षिकी त्रयी ।वार्ता दण्डनीतिस्तयाऽपरा । विद्याचतुष्टयं त्वेतादृतामित्र शृणुष्व मे ॥४३॥
कृपिर्बणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम् । विद्या ह्येता (या) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्रया ॥४४॥
कर्मकाणां कृपिवृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम् । अस्माकं गाः परा वृत्तिवार्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा देवता महत् । सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥४६॥
योज्यस्याः फलमश्नन्वै पूजयत्यपरा नरः । इह च प्रेत्य जंवासी तात माऽऽप्नोति शोभनम् ॥४७॥
पूज्यन्ता प्रथिताः सीमाः सीमान्तं च पुनर्बनम् । वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं परा गतिः ॥४८॥
गिरिपञ्चस्तव्यं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम् । किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥४९॥
मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञाश्च कर्मकाः । गिरिगोयज्ञशैलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः ॥५०॥

समस्त लोक के हित के लिये पुन भूमि पर बरस देते हैं । इसलिये बर्षाकृत्तु मे (?) समस्त नृपगण, हम तथा ब्रूसरे लोग भी हर्षपूर्वक इन्द्र की पूजा करते हैं । ॥३५-४०॥

व्यास बोले—शक्रपूजन के बारे मे नन्द का यह वचन सुनकर इन्द्र को क्रुपित करने के लिये दामोदर ने कहा ॥४१॥

कृष्ण बोले—तात ! हम न तो कृषक हैं न व्यापारी ही । हम लोग वनवासी हैं । इसलिए गीएँ हमारी देवता हैं । चार प्रकार की विद्यायें होती हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति । इनमे वार्ता के विषय मे मुझसे सुनिये । कृषि, व्यापार और पशुपालन—इन्ही तीन वृत्तियों के आवृत्त वार्ता मानी जाती है । किसानों की वृत्ति खेती, धनियों की व्यापार और हमारी पशुपालन वृत्ति ही कही गई है । वार्ता के यही तीन भेद हैं । जो जिस विद्या से युक्त है, उसका वही देवता है । उसी की पूजा करनी चाहिए । वही उसका उपकार करता है । तात ! जो मनुष्य पद प्राप्त करता है किसी देवता से और पूजा करता है किसी और की, उसका इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण नहीं होता है । हम लोग विस्तृत सीमाओं की पूजा करें, फिर सीमान्त वन की और वनान्त पर्वतों की पूजा करें । समस्त पर्वत ही हमारे रक्षक हैं । इसलिये पर्वतयज्ञ और गोयज्ञ हम लोग बारम्बार करें । हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन ? हमारे देवता तो गायें तथा पर्वत हैं । ब्राह्मणों को मन्त्रयज्ञ, किसानों को हलयज्ञ और हम वनवासियों को पर्वतों तथा

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिर्विविधाहर्षः । अर्च्यतां पूज्यतां मेघ्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥५१॥
 सर्वघोषस्य संदोहा गृह्यन्तां माविचार्यताम् । भोज्यन्तातेनवै विप्रास्तथाऽन्ये चापि वाञ्छकाः ॥५२॥
 तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु । शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥५३॥
 एतन्मम मतं गोपाः संप्रीत्या क्रियते यदि । ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥५४॥

ध्यास उवाच

इति शस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते ब्रजौकसः । प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्ययाब्रुवन् ॥५५॥
 शोभनं ते मत वरस तदेतद्भूषतो वितम् । तत्करिष्याम्यहं सर्व गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥५६॥
 तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञ ब्रजौकसः । दधिपायसमासाद्यैर्दुः शैलर्षाल ततः ॥५७॥
 द्विजाश्च भोगयामासुः शतशोऽप्य सहस्रशः । गावः शैलं ततश्चकुरर्घितास्तं प्रदक्षिणम् ॥५८॥
 धूपभाश्चाभिनन्दन्तः सतोया जलदा इव । गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान् ॥५९॥
 युभुजोऽग्रे बहुविध गोपवर्षाहतं द्विजाः । कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ॥६०॥
 अधिरहृषार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् । अन्तर्धनि कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो धरान् ॥६१॥
 कृत्वा गिरिमह गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

गौत्रा का यज्ञ करना चाहिए। इसलिये आप लोग विधानपूर्वक पवित्र पशु की बलि देकर गोवर्धन पर्वत की विविध पूजा कीजिये। सब गांव वालों को सूचना दे दीजिये। अब इसमें सोचिये नहीं। ब्राह्मणा को तथा अपेक्षितों को भोजन कराइय। गोवर्धन की पूजा, हवन तथा ब्राह्मण भोजन करने के उपरान्त गो-समूह को घाटदे पशु मे होने वाले पुण्या से सुश्रुजित कीजिये। यह मेरा विचार है। यदि वापगण प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करेंगे तो गौत्रा तथा पर्वत को और मुझे भी परितोष होगा ॥४२-४५॥

ध्यास बोले—विश्वरुद्र ! कृष्ण ने वचन सुनकर, नन्द आदि ब्रजवासी प्रेम से गद्गद होकर कहने लगे — 'दीव-दीव ! बन्म ! तुमने जो कहा, सब अच्छा है। हम बैस ही करेंगे। अब हम पर्वतपूजा आरम्भ करें।' तदनन्तर समस्त ब्रजवासियों ने पवन-यज्ञ किया। पर्वत का दही, खीर, मांस, आदि की बलि दी गई। सैनिकों-हजारों ब्राह्मण सिलाय गये। सुश्रुजित गाथा तथा जन्मपूर्व बादल की तरह शब्द करते हुए बैला ने पवन की प्रदक्षिणा की। द्विवरुद्र ! पर्वत के चिखर पर प्रतिमा की आहुति में अपन का पवन बलान्ते हुए गोविन्द ने गोत्रा के चढ़ाये हुए अनेक प्रकार के अन्न का खाया। कृष्ण ने उसी रूप से गात्रा के मांस पर्वत के चिखर पर चढ़ाकर अपने दूधरे शरीर की पूजा की। मूर्ति के अन्तर्ध्यात हो जान पर गोगण उत्तम करवान प्राप्त कर तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न कर पुन गात्रुल आ गये ॥५५-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बालचरित-वचन-प्रसंग में गोवर्धनगिरि-यज्ञ-प्रवर्तनं

नामक एव ही सप्ताशीर्वा अध्याय समाप्त ॥१८७॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धनास्थानवर्णनम्

व्यास उवाच^१

महे प्रतिहृते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः । संवत्सकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्येतद्वक्तो वचनं मम । आज्ञानन्तरमेवाऽऽनु कियतामविचारितम् ॥२॥

नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान् । कृष्णाश्वयबलाध्मातो महभङ्गमचीकरत् ॥३॥

आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम् । ता गावो वृष्टिपातेन पीडयन्तां वचनान्मम ॥४॥

अहमप्यत्रिभृज्ज्ञानं तुङ्गमारुह्य वारणम् । साहाय्यं चः करिष्यामि वायूनां संगमेन च ॥५॥

व्यास उवाच

इत्यानृताः सुरेन्द्रेण भुमुचुस्ते बलाहकाः । घातव्यं महाभीममभावाय गावां द्विजाः ॥६॥

ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च । एक धारामहासारपूरणेनाभवद्द्विजाः ॥७॥

गायस्तु तेन पतता वर्यवातेन वेगिना । धृताः प्राणाञ्जहुः सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः ॥८॥

अध्याय १८८

गोवर्धन का आस्थान

व्यास बोले—उत्सव नष्ट हो जाने पर (अर्थात् इन्द्र की पूजा रुक जाने पर) इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ । तब बावलो मे से सवत्सक नामक गण को बुला कर उन्होंने कहा ॥१॥

इन्द्र बोले—बादलो ! मेरी बात सुनो और आज्ञा के बाद बिना विचारे शीघ्र ही उस कार्यरूप मे परिणत कर ढालो । दुष्टबुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपों की सहायता से तथा कृष्ण के बल से मेरे उत्सव का मग किया । जो गौएँ उनकी पीविका हैं तथा गायत्व वा कारण हैं, उन्हें ही तुम मेरे वचनानुसार वृष्टिपात से पीडित करो । मैं भी पर्वतशिखर के तुल्य उत्तुंग हस्ती पर चढकर वायु के साथ तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२-५॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इन्द्र की आज्ञा पाकर बादल गौओं के नाश के लिये घुसलघार वृष्टि करने लगे । तदगन्तर क्षण मे ही पृथ्वी, दिग्गयें तथा आकाश अनन्त धाराओं से भरकर एक-से बन गये । उस मीषण वृष्टिपात से समस्त गौएँ मुख और ग्रीवा को तिरछा करके प्राणत्याग करने लगी । द्विजधैर्यो ! कितनी गौएँ बछड़ो को क्रोड-

१. च ० च—यने च प्रह० । २. च ० जा पर मयैवाऽऽ० । ३. च ० बलोल्लेखो म० । ४. च ० वायुमुत्सर्ग-योजितम् । व्या० ।

क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्युरन्या द्विजोत्तमा । गवो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥१॥
 वत्साश्च दीनवदना 'पवनाकम्पिकधरा । त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूर्चुरिवाऽस्तका ॥१०॥
 ततस्तद्गोकुल सर्व 'गोपोगोपोगोपसकुलम् । अतीवाऽस्तं हरिदृष्ट्वा त्राणायचिन्तयत्तदा ॥११॥
 एतच्छ्रुत महोद्रेण महमङ्गविरोधिना । तदतदखिल गोष्ठ त्रातव्यमधुना मया ॥१२॥
 इममद्रिमह वीर्यादुत्पाटन्नोरुशिलातलम् । धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१३॥

ध्यास उवाच

इति कृत्वा मति कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् । उत्पाटयैककरेणैव धारयामास लीलाया ॥१४॥
 गोपाश्चाऽऽह जगन्नाथ समुत्पाटितभूधर । विशष्यमत्र सहिता कृत वपनिवारणम् ॥१५॥
 सुनिर्वासेषु वेशेषु ययायोग्यमिहाऽऽस्यताम् । प्रविश्य नान भेदव्य गिरिपातस्य निर्भये ॥१६॥
 इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनं सह । शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽऽसारपीडिता ॥१७॥
 कृष्णोऽपि स वधारंश्च शैलमत्यन्तनिश्चलम् । स्रजौकोवासिभिर्हृवयिस्मिताक्षीनिरीक्षित ॥१८॥
 गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः । सस्तूयमानचरित कृष्ण शैलमधारयत ॥१९॥
 सप्तरात्र महानेघा ववर्पुनन्दगोकुले । इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपाना नाशकारिणा ॥२०॥
 सतो धृते महाशैल परित्राते च गोकुले । मिथ्याप्रतिज्ञो यत्रभिद्वारयामास तान्घनान ॥२१॥

प्रदेग म डिपावर छडा हो गइ और कितनी गीजो को तो जलघारा ने वत्सरहित ही कर दिया । बायु रा धरपराते हुए कप बाज दीन मुख आले एवम् भयपीडित बड्ड कृष्ण से रक्षा करो रक्षा करो की तरह कुछ अल्प शब्दों में कहने लगे । तब गोप-गाथा समेत रामस्त गोत्रुत को अत्यन्त पीडित देखकर कृष्ण रक्षा वा उपाय सोचने लगे— उसका क्या भय हुआ जाने स इन्द्र ने ऐसा किया है । इसलिये सम्पूर्ण गात्रुत की रक्षा इस समय मुझ धरती चाहिये । मैं अपनी शक्ति से इस विस्तृत गिरिमय पर्वत को उखाड़ कर गोकुल के ऊपर बिगान छत्र की तरह उसका धारण करूँगा ॥११॥

ध्यास बोले—एसा निश्चय करने सहज ही मैं गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर कृष्ण में एक ही हाथ से उठवा धारण कर दिया । पर्वत का उखाड़कर जगन्नाथ ने गोपा से कहा— हमने अन्दर सब चीजें आगे की वज्र आभोगे । यहाँ बायु भी नहीं है मुख पूर्ववत् रहे । निभय हानर यहाँ प्रवेश करो पर्वत का गिरने की कोई रास्ता न करो । कृष्ण ने बहुत पर व गांध गांधिया भर बाणों को लाज कर बाधा सहित उसमें प्रविष्ट हो गये । जगन्धारा से पीडित गांधिया भी वहीं गई । कृष्ण ने अत्यन्त निश्चयता से पर्वत का धारण किया । प्रववासा आनन्द ॥ विस्मित नेमा ॥ उनका और दमन गग । गांध-गांधिया प्रम से आस पाड-पाड कर उनका भार सारन और प्रसन्नतापूर्वक उनके परित्रा की प्रशंसा करने लगा । गांधा का नाश करने का क्रिय इन्द्र स प्रति महामय सात राता तब नन्द का गात्रुल में मूर्च्छित करने रहे । कृष्ण द्वारा महापर्वत के धारण रिय जान पर और गोत्रुत की रक्षा हो जाने पर इन्द्र की

व्यत्रे नभसि देवेन्द्रे क्तिये शकमन्त्रिते । निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम् । स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैर्ब्रजवासिभिः ॥२३॥

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले । रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥२४॥
सोऽधिहृष्टा महानागभेरावतममित्रजित् । गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः ॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गावश्च गोपवपुर्धरम् । वृत्सन्स्य जगतो गोपं घृतं गोपकुमारकैः ॥२६॥
गवडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः । कृतच्छायां हरेर्धूमि पक्षाम्यां पक्षिपुगवम् ॥२७॥
अवहृष्टा स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम् । शक्रः सस्मितमाहृदं प्रीतिविस्कारितेक्षणः ॥२८॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण क्षुण्णैर्बद्धं यदयंमहमागतः । त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं ॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम् । अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥३०॥
महभङ्गविह्वलेन मया गोकुलनाशकाः । समादिष्टा महानेघास्तैश्चैतत्कदनं कृतम् ॥३१॥
नातास्तापास्त्वया गावः समुत्पादय महामिरिम् । तेनाहं तोषितो वीरः कर्मणाऽप्यद्भुतेन ते ॥३२॥

प्रतिना असत्य हुई। तब उन्होंने मेघों को रोक दिया। इन्द्र के विचार निष्फल हो जाने पर वे गोकुल को छोड़कर पुनः अपने स्थान पर चले गये। आकाश स्वच्छ हो गया। तब कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया। राजवासियों ने विस्मित मुखों से कृष्ण का अवलोकन किया ॥१४-२३॥

व्यास बोले—गोवर्धनपर्वत के धारण तथा गोकुल की रक्षा करने के कारण इन्द्र को कृष्ण-दर्शन की सालसा हुई। तब देवों ने अभीश इन्द्र ने ऐरावत नामक महाहस्ती पर आरुढ़ होकर गोवर्धन गिरि पर कृष्ण का दर्शन किया। उस समय अखिल जगत् के राजा महाबलशाली कृष्ण गोप-क्षरीर धारण कर गोपकृमादों के साथ गायें करा रहे थे और ऊपर से छिपे-छिपे पक्षिश्रेष्ठ गवड अपने पखा से भगवान् के मस्तक पर छाया कर रहे थे। तब एकान्त में हाथी पर से उतर कर इन्द्र प्रेम से आँखें पाङ्ग-पाङ्ग कर कृष्ण की ओर ताकते हुए मुस्कराकर उनसे कहने लगे ॥२४-२८॥

इन्द्र बोले—कृष्ण ! कृष्ण ! मैं जिसलिए आप के समीप आया हूँ, वह सुनिये। महाबाहो ! उसे आप अन्यथा न समझेंगे। पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप मूलतः पर अवतीर्ण हुए हैं। आप सबके आधार हैं। आप ही परमेश्वर हैं। उत्सव के भग होने के कारण मैंने गोकुल को नष्ट करने के लिये महामेघों को आदेश दिया था। यह मैंने अपराध किया। आपने गहापर्वत को उखाड़कर गाँवों को बचत कर लिया। वीर ! आपके अत्यन्त आश्चर्य-

१क. ०गा गोपै सहित सदा। क०। २क ०क्षणम्। इ०। ३क ०च्चित्र विभो त्वयि। भा०।

४क. देव।

साधित कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम् । त्वयाऽयमद्रिप्रवर करेणैकेन चोद्धत ॥३३॥
 गोभिश्च नोदित कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽऽगत । त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्कारणवारणात् ॥३४॥
 स त्वा कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवा वाक्यप्रचोदित । उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥३५॥
 अयोपवाह्यादादाय घण्टामैरावतादगजात । अभियेक तया चक्रे पवित्रजलपूण्या ॥३६॥
 क्रियमाणेऽभियेके तु गाव कृष्णस्य तत्क्षणतः । प्रक्षबोदभूतदुग्धाद्वा सद्यश्चकुर्वन्सुधराम् ॥३७॥
 अभियिष्य गवा वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनावनम् । प्रीत्यासप्रश्रय कृष्ण पुनराह शचोपति ॥३८॥

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृत वाक्यास्तथाऽयमपि मे शृणु । यदब्रवीमि महाभाग भारवतरणेच्छया ॥३९॥
 ममाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर । अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा ॥४०॥
 भारवतरणे सख्य श ते वीर करिष्यति । स रक्षणीयो भवता यथाऽऽत्मा मधुसूदन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वशे जात पार्थ तवाशत । तमह पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले ॥४२॥
 यावमहीतले शक स्वास्याम्यहमरिदम । न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥४३॥
 कसो नाम महाबाहुर्ह्योऽरिष्टस्तथा पर । केशो कुयलयापीडो नरकाद्यास्तथाऽपरे ॥४४॥

जनक वचन से मैं प्रसन्न हूँ । कृष्ण ! आज मैं मानता हूँ कि आपने देवताओं का वाय सिद्ध कर दिया । आपने एव ही हाथ से इस पवतभट्ट का घारण किया । कृष्ण ! आपसे अभिरक्षित गौओं द्वारा प्ररित होकर मैं आपके ही के कारण आप के पास आया हूँ । मैं गौओं की वाता से प्ररित होकर आपकी उपेन्द्र के पद पर अभियिष्य कहूँगा । आप गोविन्द तथा गौओं के स्वामी बहुराएँगे । इसक बाद एरावन हाथी से घण्टा उतारकर इन्द्र ने पवित्र जल से कृष्ण का अभिषेक किया । कृष्ण के अभिषेक के समय गौओं ने दूध से पृथ्वी को सद्य आप्णुत कर दिया । गौओं के वचन से जनात्मन का अभिषेक करने गवापति ने पुन कृष्ण से प्रम तथा विनयपूर्वक कहा ॥३९-३८॥

इन्द्र बोल—महाभाग ! गौओं के वचन से जैसे आपने यह किया वैसे और भी जो मैं कहता हूँ वह सुनिये । पृथ्वीधर ! भार उतारने की इच्छा से मर्य अग पुरुषपुरुष होकर अवतीर्ण हुआ है जिसका नाम अर्जुन है । उसकी आप सदा रक्षा करेंगे । भार उतारने में वह वीर आपकी सहायता करेगा । मधुसूदन ! आमा की तरह आप उसकी रक्षा करेंगे ॥३९-४१॥

श्री भगवान् बोलें—मैं जानता हूँ भारतवर्ष में आपने अग से पाप उत्पन्न हुआ है । मैं जब तक पृथ्वी पर रहूँगा तब तक उसका पालन कहूँगा । शक ! धनु का दमन करने बाल ! मैं जब तक भूतन पर रहूँगा तब तक मुझ में अर्जुन का कोई नहीं पराजित कर सकगा । वय नामक एक महागिरिगाल दैत्य है । उसी तरह अरिष्ट वेणी कुवल्यापाइ नरक आदि भी हैं । देवेन्द्र ! उनसे निहत होने के बाद महासंग्राम होगा जिसमें पृथ्वी

हेतुषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः^१। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारवतरण कृतम् ॥४५॥
स त्वं गच्छ न संतापं पुत्रार्थं कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपु-^२कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥
अर्जुनार्थं^३ त्वहं सर्वान्मुषिष्ठिरपुरोगमान्। निवृत्ते भारतेयुद्धे कुन्त्यं दास्यामि विक्षतान् ॥४७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः सपरिष्वज्य देवराजो जनार्दनम्। आरुह्यैरावतं नागं पुनरेव दिव गमौ ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालेऽथ पुनर्व्रजम्। आजगामाय गोपीनां दृष्ट्वापूतेन वर्त्मना ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मो बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं

नामाष्टाशोत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

यत्ने शक्ने तु गोपाला, कृष्णमविलष्टकारिणम्। ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥

का भार उठर जायगा। सहस्राक्ष^१ इत्यादि आप जाइये। पुन के लिए सोच न कीजिये। मेरे सामने अर्जुन का कोई धनु नहीं होगा। अर्जुन के कारण मैं युधिष्ठिर आदि सबको बिना अत हुए ही महामारुत युद्ध के अन्त में कुन्ती को समर्पित कर दूँगा ॥४२-४७॥

व्यास बोले—एतदुपरांत देवराज जनार्दन का आलिङ्गन करते-ऐरावत हाथी पर चढ़कर पुन स्वर्ग चले गये। कृष्ण भी गौड़ा तथा गोपाला के साथ गोपियों के दृष्टिपात से पवित्र हुए माग से पुन व्रज में आ गये ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्महपुराण में बालचरित वचन-प्रसन में गोविन्दाभिषेक वर्णन नामक एक सौ

अष्टासीसो अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

व्यास बोले—इन्द्र के चले जाने के उपरान्त गोवर्धनपर्वत का धारण करने वाले एवं बिना बलेन ने-
मं करने वाले कृष्ण से गोपालो ने प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात् । गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥
 बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम् । दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३॥
 कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः । धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनासि नः ॥४॥
 सत्यं सत्यं हरेः पादो श्रयामोऽमितविक्रम । यथा त्वद्दीर्घमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५॥
 देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा । किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽस्ति नमोऽस्तु ते ॥६॥
 प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव । कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥७॥
 बालत्वं चातिदीर्घं च जन्म चास्मास्वशोभनम् । चिन्त्यमानममेयात्मजं शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥८॥

व्यास उवाच

क्षणं भूत्या त्वसौ तूष्णीं किञ्चित्प्रणयकोपवान् । इत्येवमुक्तस्तर्गोर्वेराह कृष्णो द्विजोत्तमाः ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्संबन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते । इलाप्यो वाऽहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०॥
 यदि योऽस्ति मयि प्रीतिः इलाप्योऽहं भवतां यदि । तदर्घा बन्धुसदृशो बान्धवाः क्रियतां मयि ॥११॥
 नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः । अहं वो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥१२॥

गोप बोले—महाभाग ! तुमने श्वेत धारण कर इस महाभय से हमे तथा गौओं को बचाया। यह बाल-
 क्रीडा तो अनुपमेय है। तुम्हारा कर्म दिव्य है पर गोपालत्व तो निन्दित है। तात ! यह वैसी बात है, बतलाओ।
 जल में तुमने पान्थि का दमन किया, प्रलम्बानुर को मारा और गोवर्धन का धारण किया। इससे हमारे मन में घृणा
 हो रही है। अमितपराक्रमी ! हम सत्य कह रहे हैं, हमारा आशय हरिचरण ही है। तुम्हारी पवित्र देखकर हम
 तुम्हें मनुष्य नहीं मान रहे हैं। हमारे विचार से तुम देव या दानव, या यक्ष या गन्धर्व हो। फिर भी हमारे बन्धु
 हो। तुम्हें नमस्कार है। केसव ! यक्ष के स्त्री बच्चे तब तुमसे प्रेम करते हैं। तुमने जो नाम लिया है, उसे अश्विन
 देव भी नहीं कर सकते। यहाँ बचपन और यहाँ अतिपराक्रम ! हम लोगों के बीच तुम्हारा जन्म ठीक नहीं हुआ।
 क्षमयात्मन् ! यह सोच विचार कर हमें सजा होती है ॥२-८॥

व्यास बोले—द्विजोत्तम ! गोपा से इस प्रकार बड़े जाने पर कृष्ण सच कह चुके, फिर कुछ प्रणय-
 कोर दिताते हुए बोले ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—गोपमुन्द ! यदि मेरे सम्बन्ध से तुम्हें लज्जा न मान्द पड़े तो मुझसे स्नेह करो।
 तुम्हें विचार से क्या प्रयोजन ? बान्धवो ! यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है और तुम मेरी प्रशंसा करते हो तो मुझसे
 बन्धुसदृश व्यवहार करो। मैं न देव न गन्धर्व न यक्ष न दानव ही हूँ। मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। इससे दूरता कुछ
 मेरे विषय में मत सोचो ॥१०-१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो बलम् । ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥
 कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् । तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥
 धनराज्ञीं तथा कूजदभृङ्गमालामनोरमाम् । विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
 सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् । जगौ 'कमलपादोऽसौ नाम तत्र' कृतव्रतः ॥१६॥
 रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा संत्यज्यावसथास्तदा । आजगमुस्त्वरिता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः ॥१७॥
 शनैः शनैर्जंगो गोपी काचित्तस्य पदानुगा । दत्तावधाना काचिच्च तमेव यनसाऽस्मरत् ॥१८॥
 काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपाययौ । ययौ च काचित्प्रेमान्धा 'सत्पाश्वर्मयिलज्जिता' ॥१९॥
 काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा वृष्ट्वा बहिर्मुखम् । तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
 गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् । मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२१॥
 गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टाभ्यायसमूतयः । 'अन्यदेशगते कृष्णे चेष्टवु'न्दायनान्तरम् ॥२२॥
 बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः । कृष्णस्य चरणं रात्रौ वृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ॥२३॥
 एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च । गोप्यो व्यग्राः सम चेष्ट रम्यं वृन्दायन वनम् ॥२४॥
 निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने । यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः ॥२५॥

व्यास बोले—महाभागो ! हरि के बचन सुनकर गोप चुप हो गये और उनका प्रणय-कोप देखकर वहाँ में घले गये । तब कृष्ण ने स्वच्छ, आवाश, शरच्चन्द्र की चन्द्रिका, विकसित तथा दिशाओं को आमोदित करती हुई कुमुदिनी, वनपङ्क्ति और मनोरम शब्द करती हुई भ्रमरावलि को देखकर गोपियों के साथ रमण करना चाहा । बाद में व्रतधारी तथा कमलचरण कृष्ण राम के साथ वनिताओं को माहने वाली मधुधुर तान छबने लगे । मनोरम गीत-ध्वनि सुनकर गोपियाँ गृहा को छोड़कर वीथी मधुसूदन के पास आ गईं ॥१३-१७॥ कोई गोपी उन्हीं के पदों का अनुसरण करती हुई मन्द-मन्द माने लगी, कोई सावधानतापूर्वक मन से उन्हीं का स्मरण करने लगी, कोई कृष्ण-कृष्ण कह कर लज्जा करने लगी, कोई प्रेमान्ध होकर निर्लज्जतापूर्वक उनके पास जाने लगी, कोई घर के बाहर गुरुजन को देखकर उसने अन्दर ही आँखें मूँद कर तन्मयता से गोविन्द का ध्यान करने लगी । रास आरम्भ करने के इच्छु गोविन्द ने गोपियों से वेष्टित होकर मनोरम शरच्चन्द्रयुक्त रात्रि को ही इसके लिये उपयुक्त समझा । कृष्ण की क्रीलाभा से वशीभूत होकर गोपियाँ अपने को मूल गईं । कृष्ण के छिप जाने पर वे वृन्दावन के बाहर भी उनकी दृष्टि-उत्प्रेरण करने लगीं । द्विजवृन्द ! कृष्ण के दर्शन की लालसा करने वाली भ्रमणशील गोपियों ने वृन्दावन में ही रात्रि में कृष्ण के चरण को देखा । इस प्रकार कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आसक्त होकर गोपियों ने रमणीय वृन्दावन में विचरण किया । ॥१८-२४॥ द्विजवर्ण ! कृष्ण के दर्शन से निराश होकर गोपियाँ यमुनातीर पर आकर उनके चरित्रों का गान करने लगीं । तदनन्तर गोपियों ने विकसित वनल के समान मुख वाले, प्रेमीकपयशक तथा

ततोददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम् । गोप्यस्त्रेलोक्यगोप्तारं* कृष्णमविलष्टकारिणम् ॥२६॥
 काचिदालोवय गोविन्दमायान्तमतिहृषिता । कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना ॥२७॥
 काचिदभ्रभङ्गुर कृत्वा ललाटफलक हरिम् । विलोक्य नेत्रमृङ्गाभ्या पपी तन्मुखपङ्कजम् ॥२८॥
 काचिदालोवय गोविन्दं निमोलितविलोचना । तस्यैव रूप ध्यायन्ती योमाहृदेव सा बभौ ॥२९॥
 ततः* काचित्प्रियालापे* काचिदभ्रभङ्गवीक्षितः* । निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥३०॥
 ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम् । रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥३१॥
 रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपादवर्मनूदगता । गोपीजनो न चेद्बाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥३२॥
 हस्ते प्रगृह्य चक्रेका गोपिका रासमण्डलम् । चकार च करस्पर्शनिमोलितदृशं हरिः ॥३३॥
 ततः प्रघवृते* रम्या चलद्वलयनिस्वनैः । अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुकामा ॥३४॥
 कृष्ण* शरच्चन्द्रमस* कौमुदीकुमुदाकरम् । जगौ गोपीजनस्त्येक* कृष्णनाम पुनः पुनः ॥३५॥
 परियुता* । "श्रेमेणका चलद्वलयतापिनी । इदौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी "मधुविधातिनः ॥३६॥
 काचित्प्रयिलसद्याहुः परिरम्य चुचुम्ब तम् । गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥३७॥
 गोपीकपोलसदलेपमभिपद्य हरेर्भुजौ । पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुधनता गतौ ॥३८॥

अद्भुत कार्यकर्ता कृष्ण को आते देता । गोविन्द को आते देतकर कोई गोपी अत्यन्त आनन्दित होकर 'कृष्ण, कृष्ण' कहने लगी, हर्ष से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये । कोई भ्रू-मयी से हरि की ओर देखती हुई अपने नेत्र रूपी मीरा द्वारा उनका मुख-जमल वा पान करने लगी । कोई गाविन्द को देखकर आँखें मूढ़ कर गोपी की तरह उन्हीं के रूप का ध्यान करने लगी ॥२५-२९॥ तब किसी को प्रिय बचना से, किसी को भ्रू-मगिमापूर्वक देखने से तथा किसी को करस्पर्श से माधव ने मना लिया । (रास-लीला में उपस्थित उन प्रसन्नचित्त गोपियों के साथ उदार चरित्र वाले हरि रमन करते लगे । रास-लीला में मठली भंगाकर कृष्ण की बगल में स्थित गोपियाँ एक स्थान में स्थिर नहीं रहनीं थीं । एक-एक गोपी का हाथ पकड़ कर हरि रास करते थे । गलवान् के शर-स्पर्श होने ही गोपियों आत्मविभोर हो आँखें मूढ़ होती थीं । रास करते समय गोपियों के चल-चरणों के शब्द बहुत ही मनोहारी होते थे । वे जमना शरत्कालीन वायु तथा गीत गाती थीं । कृष्ण शरद्-ऋतु के चन्द्रमा एवम् उत्तरी अर्धरात्रि का वर्णन करते थे और गोपियाँ एक कृष्ण-नाम का ही बार-बार गाती थीं । किसी गोपी ने चञ्चल चरणा से पीड़ा तथा परिधम से घनावट का अनुभव कर कृष्ण के नयने पर अपनी बाहु-रता डाल दी और गान तथा स्तुति करने में निपुण किसी दूसरी गोपी ने मधुसूदन का बाहु-नाम मजबूतकर धूम किया ॥३०-३७॥ गोपी के चरण-स्पर्श से हरि की मुद्राओं में रोमाञ्च हो आया तथा पगीन टाँवने लग । कृष्ण राग के गीता का गाने से । जब गोपियाँ 'बाहू कृष्ण, बाहू कृष्ण' कहकर

१* ०३४३॥ गो० । २* ०४४३॥ ३* ०४४३॥ ४* ०४४३॥ ५* ०४४३॥
 विपामां गमयामास रासपतेन मानिनी । ता० । १* प्रसन्नचित्ताभिर्मण्डल० । ७* ०नुयातशरत्काव्य गायत्री-
 निर० । ८* कृष्ण । ९* शरच्चन्द्रनिम । १०* ०नुयात० । ११* ०सदेव रास कृष्ण पु० ।
 १२* ०रिवांश० । १३* ०नैव काचित्० । १४* ०धुनिगति० ।

रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः । साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥३९॥
 गतेऽनुगमनं चक्रुर्बलने संमुखं ययुः । प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥४०॥
 तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः । स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत् ॥४१॥
 ता वायंमाणाः पितृभिः पतिभिर्भातृभिस्तथा । कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥४२॥
 सोऽपि केशोरफवया मानयन्मधुसूदनः । रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥४३॥
 तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः । आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४४॥
 यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम् । वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासी व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४५॥

व्यास उवाच

प्रदोषार्धे कदाचित् रासासवते जनार्दने । प्रासत्यन्तमदो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः ॥४६॥
 सतोयतोपदाकारस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः । खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥४७॥
 लेलिहानः सनिष्पेयं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः । संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥४८॥
 उदप्रककुवाभोगः प्रमाणाद्बुरतिक्रमः । विष्णून्नालिप्तपुच्छाङ्गो गवामुद्ग्रेकारकः ॥४९॥
 प्रलम्बकण्ठोऽभिमुलस्तलघाताङ्गुताननः । पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५०॥

साक्षिणी बजाती सब कृष्ण और द्विगुण माना मे माने लगते । कृष्ण चलते तो वे भी उनके पीछे चल देती, कृष्ण मुँह घुमाते तो वे उनके सामने आ जाती । इस प्रकार प्रतिलोम-अनुलोम भाव से गोपागनार्थे कृष्ण के साथ केलि करती थी । मधुसूदन गोपियों के साथ रमण करते थे । बिना कृष्ण के गोपियों के लिये एक क्षण भी बरोबो वर्ष के समान मालूम पड़ता था । पिता, पति तथा भाइयो के रोकने पर भी रतिप्रिय गोपिण्यां रात मे कृष्ण से रमण कराती थी । किशोर मधुसूदन भी, जिनकी शक्ति अप्रमेय थी, उनका आदर करते हुए रात मे उनसे रमण करते थे । क्योंकि उनके पतियों मे उनमे तथा समस्त भूतो मे आत्मस्वरूप से व्याप्त होकर कृष्ण ही तो अवस्थित थे । जैसे सकल भूतो मे आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु अवस्थित हैं उसी तरह परमात्मा कृष्ण भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं ॥३८-४५॥)

व्यास बोले—जिसी समय अर्ध प्रदोषकाल मे जब कृष्ण रास मे आसक्त थे तब एक (वृषभरूपधारी) मदमत्त रासस गौओ को रास दिखाते हुए ब्रज मे आया । उसकी आकृति जलपूर्ण बादल की-सी थी, सींग तीक्ष्ण थे, आँखें सूर्य के समान चमकती थीं । वह अपने खुरों के बब्रमाण से धरती को विदीर्ण कर रहा था, जिह्वा से होठों को बार-बार सघर्षपूर्वक चाट रहा था, पुच्छ को बड़े वेग से ऊपर-ऊपर फेंकता था । उसके कन्धे का बन्धन बड़ा बठोर था । उसके ककुद का विस्तार असाधारण था । उसका पुच्छभाग विष्ठा-मून से क्लिप्त था । वह गौओ को

१क. ग ० नृचल० । २ख ० लोमेन मार्गेण ययुर्गो० । ३ख ० प्य चाऽऽत्मन्यवस्थि० । ४ख ० च ।
 परेऽङ्गि च क० । ५क सनिष्कण्ठो । ६क कपिलस्क० । ७क. स ० बन्धुत् । उ० । ८क ० रपाता० ।
 ९क. ० न । घात० ।

सूदयस्तरसा सर्वान्विनाशयति ॥ सदा । ततस्तमतिधोराभमवेक्ष्यातिभयातुरा ॥५१॥
 गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृणति चुक्रुशु । सिंहनाद ततश्चक्रे तलशब्द च केशव ॥५२॥
 तच्छब्दश्चवणाच्चासौ दामोदरमुख ययौ । अग्रन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ॥५३॥
 अम्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपधृक् । आपान्त दैत्यवृषभ दूष्टवा कृष्णो महाबलम् ॥५४॥
 न चचाल तत स्यानादवशास्मितलीलया । आसन्न चैव जप्राह प्राहवन्मधुसूदन ॥५५॥
 जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् । तस्य दर्पबल हत्वा गृहीतस्य विषाणयो ॥५६॥
 आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं विलसन्निषाम्बरम् । उत्पाद्य शुक्लमेकं च तेनैवाताडयत्तत ॥५७॥
 ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्भ्रमन् । तुष्टुधुनिहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम् ॥
 जम्भे हते सहस्राक्ष पुरा देवगणा यया ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवधनिरूपण
 नामोऽनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८९॥

उद्भिन्न बर रहा था । उसका गण्ड बहुत लम्बा था । उसके मुख पर वृक्षों के आधात करने का चिह्न था । वह
 वृषभरूपधारी दैत्य गायी के गर्भों को गिरा रहा था । वेग से बनो को गण्ड भ्रष्ट करता हुआ वह घूम रहा था ।
 उस अत्यन्त मर्यादक और बाल वृषभ को देखकर गीश गोपियाँ भयातुर होकर 'कृष्ण-कृष्ण' चिल्लाने लग । तब
 केवल ने सिंहनाद करते हुए ताल ठावा ॥५१ ५२॥ उनसे शत्रु सुनते ही दाय सीमा के अग्रभाग को सामने करते
 कृष्ण की बुद्धि की ओर पुरत हुए दामोदर के सम्मुख जाने लगा । वृषभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोर स बोल रहा
 था । महाबली दैत्यरूपी वृषभ न आत देखकर कृष्ण तिरस्कारपूर्वक मुस्कारते हुए अपने स्थान से विचलित न हुए ।
 मधुसूदन ने समाप्त आने पर उस ब्राह्म की तरह पकड़ लिया । सीमा को पकड़ कर घुटने से उसकी कुर्ति में भार
 दिया । सीमा को पकड़त ही दाय के गव तथा बग को धूर धूर कर उससे गल को गीले पपड़ की तरह निचोड़ दिया ।
 फिर एक सीमा को उखाड़ कर उसा स उसरो मारन लग । वह महादैत्य मुख से नागिन धमन करते हुए मर गया ।
 उस दैत्य न मर जाने पर गीश ने कृष्ण की उसा तरह स्तुति की जिस तरह जम्भामुर के मरने पर देवगणों ने ईश्वर
 की स्तुति की था ॥५३ ५८॥

श्रीमहापुराण में बालचरित-रचन प्रमाण में अरिष्ट-वध निरूपण
 नामक एर सी नवासीवा अध्याय समाप्त ॥१८९॥

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते । प्रलम्बे निधन नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१॥
 दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्वन्द्वये । हताया भूतनाया च शकटे परिवर्तिते ॥२॥
 कसाम नारद प्राह ययावत्तमनुत्तमात् । यशोदादेवकीगर्भपरिवर्तितशेषतः ॥३॥
 ध्रुवा तत्सकल कसो नारदादेवदर्शनात् । वसुदेव प्रति तदा कोप 'चक्रे ॥ दुर्मति ॥४॥
 सोऽतिकोपावुपारम्भ्य सर्वयादवससवि । जगहँ यादवाश्चापि कार्यं र्वतवधित्तमत् ॥५॥
 यावन्न बलमालङ्घौ बलकृष्णौ सुबालकौ । तावदेव मया बध्यायसाध्यौ लङ्घनीयौ ॥६॥
 चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबल । एताभ्या मल्लयुद्धे तौ धातयिष्यामि । दुर्मदौ ॥७॥
 धनुर्महामहापागव्याजैनाऽऽनीय तौ धजतः । तथा तथा करिष्यामि यास्यत सक्षय मया ॥८॥

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कसो रामजनादनी । हतु कृतमतिर्वीरमक्रूर बावयमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय १६०

केशी नामक असुर का वध

व्यास बोले—यूपमासुर धनुक तथा प्रलम्ब ने मारने पर गोवधनपत्र के धारण करने पर कालिय के ध्वन करने पर दोनों अत्युच्च वृक्षों के तोड़ने पर भूतना के निहत करने पर और शकट के जलटाने पर नारद ने कस से आकर क्रमशः सम्पूर्ण वृक्षात् कह दिया । यशोदा तथा देवकी के गर्भ-परिवर्तन का भी अक्षिप्त वर्णन कर दिया । देवों पर नारद से सक्त् वृक्षात् मुनकर दुर्मति कस वसुदेव के प्रति कोप करने लगा । वह अत्यन्त क्रोध में आकर समस्त यादवा की समा में यादवा की भी निन्दा करने लगा । उसने सोचा—यावत् बलमन्न तथा वृष्ण सबल नहीं होते हैं उससे पहले ही उनको समाप्त कर देना चाहिये अन्यथा पूर्ण जीवन प्राप्त करने पर तो ये दोनों असाध्य हो जायेंगे । चाणूर और मुष्टिक महाबलवान् हैं । मल्लयुद्ध में इन्हीं के द्वारा उन दोनों अस्मिमानियों को मरवाऊंगा । धनुष-जसव रूपी महायन्त्र के व्याज से उनको यहां भँगवाकर मैं वसा ही उपाय करूँगा जिससे वे विनष्ट हो जायेंगे ॥१८॥

व्यास बोले—यह सोचकर राम तथा कृष्ण को मारने की इच्छा से दुष्टात्मा कस ने चाणूर से यह ध्वन कहा ॥१॥

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम । इतः स्थन्दनमाह्वय गम्यतां^१ नन्दगोकुलम् ॥१०॥
 वसुदेवसुतो तत्र विष्णोर्दासमुद्भवौ । नाशाय किल संभूतौ मम दुष्टौ प्रवर्धतः ॥११॥
 'घनमंहमहायागश्चतुर्दश्या'^२ भविष्यति । आनेयौ भवता तौ तु मल्लयुग्नद्वयं तत्र वै ॥१२॥
 चाणूरमुष्टिको मल्लो निधुदकुशलो मम । ताम्बां सहानयोर्धुदं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१३॥
 नागः कुबलपापीडो महामात्रप्रचोदितः । स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१४॥
 तौ हृत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् । हनिष्ये पितरं चैव उपसेनं च दुर्मतिम् ॥१५॥
 ततः समस्तगोपानां गोघनान्यखिलान्यहम् । क्लिप्तं चापहरिण्यामि दुष्टानां मद्दुर्धयिणाम् ॥१६॥
 स्वामृतं^३ यादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम । एतेषां च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमत् ॥१७॥
 ततो निष्कण्टक सर्वं राज्यमेतदयादवम् । प्रसाधिष्ये स्वया तस्मान्मत्प्रिया वीर गम्यताम् ॥१८॥
 यया च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै । गोपाः समानयन्त्याशु स्वया वाच्यास्तथा तथा ॥१९॥

ध्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽशूरो महाभागवतो द्विजाः । प्रीतिमानभक्तकृष्णं श्वो ब्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२०॥
 तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः^४ । निश्चक्राम तदा पुष्यं मयुराया मधुप्रियः ॥२१॥

कंस बोला—दानवेश्वर ! मेरे परितोष के लिये मेरी बात मानो । यहाँसे रथ पर चढ़कर नन्द के गोकुल में जाओ । विष्णु के अश से समुत्पन्न वसुदेव के दो दुष्ट पुत्र मेरे नाश के लिये ही बढ़ रहे हैं । घनुष-महामत्स्य चतुर्दशी को होगा । उसमें मल्लयुद्ध के लिये उन दोनों को तुम ले आना । मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक युद्ध-प्रयोग हैं । उन्हीं के साथ उन दोनों का युद्ध होगा, सब शोभ देखेंगे । कुबलपापीड नामक हाथी महावत की प्रेरणा से वसुदेव के दोनों पापी वालकों को मारेगा । उनको मारकर वसुदेव, दुष्टबुद्धि नन्दगोप तथा दुर्मति पिता उपसेन को मैं मारूँगा । तब मेरे वध के इच्छुर समस्त गोपों के अखिल गोघन का मैं अपहरण करूँगा । दानवपते ! केवल तुम्हें छोड़कर इन दुष्ट यादवों के भी श्रमस वध करने के लिये मैं बल करूँगा । तदनन्तर यादवरहित सम्पूर्ण निष्कण्टक राज्य का मैं उपभोग करूँगा । इसलिये वीर ! तुम मेरी सतुष्टि के लिये जाओ । तुम उस ढग से बातचीत करोगे, जिससे कि गोपगण यही धी भी लेते आवेंगे ॥१०-१९॥

ध्यास बोले—द्विजवृन्द इस प्रकार आज्ञा पाकर महामगवद्भवत अशूर 'चल कृष्ण का दर्शन होगा' यह सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा से 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त रथ पर आरुढ़ होकर मयुरापुरी से बाहर निकल गया ॥२०-२१॥

१. ग ०. तौ गोपगो० । २. ०. महो मयाप्यत्र चतु० । ३. ०. वरत्रयोदश्यां । ४. द. वा. सर्वे दु० ।
 ५. क. तत्तमम् ।

व्यास उवाच

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः । कृष्णस्य निघनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपघुताम्बुदः । पुनर्विक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत् ॥२३॥
तस्य ह्येपितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः । गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥२४॥
ग्राहि ग्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः । सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥२५॥

गोविन्द उवाच

अलं प्राप्तेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः । भयद्विर्गोपजातीयर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥२६॥
किमनेनाल्पसारेण ह्येपितारोपकारिणा । दैत्यबलबाहुधेन वल्गता वुष्टवाजिना ॥२७॥
एहोहि वुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक् । पातयिष्यामि दशनान्बदनादखिलांस्तथ ॥२८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः संमुखं ययौ । विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैत्यश्च उपाव्रजत् ॥२९॥
बाहुभामोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः । प्रवेशयामास तदा केशिनो वुष्टवाजिनः ॥३०॥
केशिनो वचनं तेन विशता कृष्णबाहुना । शातिता दशनास्तस्य सितान्भाषयथा इव ॥३१॥
कृष्णस्य वयुधे बाहुः केशिवेहगतो द्विजाः । विनाशाय यया व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः ॥३२॥

व्यास बोले—कंस का दूत बलोन्मत्त केशी भी प्रेरित होकर कृष्ण को मारने की इच्छा से वृन्दावन पहुँचा । वह अश्व का रूप बना कर अपने खुरो से भूपृष्ठ को क्षत-विक्षत करते हुए, सटा (घर्दन पर के बाल) के प्रक्षेप से बाहुन को कँपाते हुए और सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को अवरोध करते हुए गोपों के पास आया । दैत्य रूपी अश्व के हिन-हिनाने से गोप-गोपियाँ भय से उद्विग्न होकर गोविन्द की शरण में गयीं । उनके 'बचाओ बचाओ' यह वचन सुनकर जलपूर्ण मेघ की तरह गम्भीर वाणी से सगवान् ने कहा ॥२२-२५॥

गोविन्द बोले—गोपालो ! क्यों मयातुर हो रहे हो ? केशी से क्या डरता है ? तुम लोग गोप जाति के होकर वीर-शक्ति को मूल जाते हो ? इस वुष्ट दैत्य रूपी अश्व के सारहीन हिनहिटाने से क्यों डरते हो ? वुष्ट ! भाओ । जैसे शिव ने ध्रुवा के दाँतो को तोड़ा था उसी तरह मैं भी तुम्हारे बदन से अखिल दाँता को गिरा देता हूँ ॥२६-२८॥

व्यास बोले—इतना कहकर गोविन्द केशी के सामने गये । दैत्य भी मुँह खोलकर इन पर दृढ़ पड़ा । तब मुजा को फैला कर कृष्ण ने केशी नामक उस वुष्ट अश्व के मुख में घुसेड़ दिया । केशी के मुख में कृष्ण की मुजा के प्रवेश होते ही उसके दाँत स्वच्छ बादल के अवयव की तरह उखड़ने लगे । द्विजगण ! केशी के देह में प्रविष्ट होने पर कृष्ण की बाँह उसको विनष्ट करने के लिए उसी तरह बढ़ने लगी जैसे रीतियों से उपेक्षित होने पर व्याधि ।

विपाटितौष्ठो बहुलं सक्केनं रुधिरं वमन् । सुक्कणी विवृते चक्रे विदिलष्टे मुक्तबन्धने ॥३३॥
 जगाम धरणीं पादः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् । स्वेदाद्रगात्रः श्रान्तश्च 'निर्यतः' सोऽभवत्ततः ॥३४॥
 व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना । निपपात द्विघाभूतो वंद्युतेन यथा द्रुमः ॥३५॥
 द्विपादपृष्ठपुच्छार्धभ्रवणेकाक्षनासिके । केशिनस्ते द्विघा भूते शकले च विरेजतुः ॥३६॥
 हत्वा तु केशिन कृष्णो मुदितगोपकंबूतः । अनापस्ततनुः स्वस्यो हंसस्तत्रैव 'संस्थितः' ॥३७॥
 सतो गोपादश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः । तुष्टुबुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥३८॥
 आपयौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थितः । केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयायैव यवच्युत । निहृतोऽयं त्वया केशो बलेशदस्त्रिविधैकसाम् ॥४०॥
 सुकर्माण्यवतारे तु कृतानि मधुसूदन । यानि वै विस्मित चेतस्तोपमेतेन मे गतम् ॥४१॥
 तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च विस्मयि । धृतकेसरजालस्य ह्येपतोऽन्नावलोकितः ॥४२॥
 यस्मात्त्वयैव दुष्टात्मा हतः केशो जनार्दन । तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गयो भविष्यसि ॥४३॥
 स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यमि कंसयुद्धेऽधुना पुनः । परश्वोहं समेष्ट्यामि त्वया केशिनिपूदन ॥४४॥
 उपसेनसुते कंसे सानुये विनिपातिते । आरावतारकर्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर ॥४५॥

उसने हाँठ पाद दिये गये, मुख से फेन सहित रुधिर प्रचुर भाषा में बहने लगा, गलफड़ चीर दिये गये, नत्तें तोड़ दी गईं । तब वह मल-मूत्र त्याग करता हुआ पैरों से धरती को खुरचने लगा । उसने अगो से पसीना टपकने लगा । वह श्रान्त होकर निश्चेष्ट हो गया । कृष्ण की भुजा ने उस महामयगर राक्षस के मुख की विदीर्ण कर दिया । तब वह विद्युत् से आहत वृक्ष की तरह दो दुकड़े होकर गिर पड़ा । उसने पैर, पीठ, पुच्छ, वान, आँख, नाक सब वै दो-दो दुकड़े हो गए । इस प्रकार बेसी ने अगा वै दो-दो दुकड़े विराजमान हुए । बेसी को भारकर प्रमुदित गोपी वै साय कृष्ण हैंमते हुए वही अवस्थित हुए । उनके शरीर में कोई आयास नहीं हुआ । वे स्वस्त्य ये । शतपक्षात् बेसी की मृत्यु से विस्मित गोप-गोपियाँ मनोहर कृष्ण की स्तुति करने लगे । बेसी को निहत देखकर मेघ-स्थित विप्र नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आये ॥२९-३९॥

नारद बोले—जगन्नाथ ! आपन समुचित हो लिया जो जि देवा को कैस देने वाले बेसी को सहज ही मे मार डाला । मधुसूदन ! इस अवतार में आपने जो-जो आश्चर्यजनक कुरम किये, उनसे मुझे बड़ा सतोष हुआ । केसरजाल (अयाल) को टिगने वाले तथा हिनहिनाने से बादल की तरह प्रतीत होने वाले इस अश्व से देवगण तथा इन्द्र भी डरते थे । जनार्दन ! जिसने आपने इस दुष्टात्मा बेसी को मारा इसलिए केसव नाम से आप लोग में पुकारे जायेंगे । आपका बल्गाण हो । इस समय मैं जाता हूँ । बेजिनायन ! फिर परसो वस के युद्ध में मैं आपसे

१४ निरपण । २४ ००० गोसावैर्दुमिबे० । ३३ तस्थियान् । ४४ ॥ ०म् । अयाद् त्व० । ५५ लदे०रिप० ।

तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम् । द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनावन ॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम् । त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु धन्याम्यहम् ॥४७॥

व्यास उवाच

नारदं तु गते कृष्ण सह गोपैरविस्मित । विवेश गोकुल गोपीनेत्रपानकभाजनम् ॥४८॥
इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते कशिवधनिरूपण नाम
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूरगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि विनिष्कम्य स्यन्वनेनाऽऽशुगामिना । कृष्णसदशनासकत प्रययौ मन्दगोकुले ॥१॥
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया । योऽहम् शशवतीर्षस्य मुखं द्रक्ष्यामि चरिण ॥२॥
अथ मे सफलं जन्म सुप्रभातां च मे निशा । यदुन्निद्राञ्जपन्नाक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३॥

मिकूना । घरणीघर । उग्रसेन के पुत्र मसको वधुवग सहित नष्ट कर देने पर आप पक्षी का मार हल्का करगे ।
जनावन । तब आपके रचाये हुए राजाजा ने अनेक प्रकार के युद्ध का मैं देखना गोविन्द । अब मैं जाऊंगा ।
आपने देवताजा का महान् कार्य किया । आपका नृत्याण हो मैं चलता हूँ ॥४० ४७॥

व्यास बोले—नारद ने चले जाने पर गोपिया के मनना के पीने व एकमात्र पात्र कृष्ण गोपा के साथ बिना
किसी आरक्ष्य के गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में कृष्ण के बालचरित-कथन प्रसंग में केशिवधनिरूपण नामक एक ही
नवत्यो अध्याय समाप्त ॥१९०॥

अध्याय १६१

अक्रूर के जान का वर्णन

व्यास बोले—कृष्ण-दत्तन के लिए स्थापित अक्रूर भी श्रीमन्नामी रथसे नन्द-गोकुल के निकट प्रस्थित हुए ।
अक्रूर सोचने लगे—“मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है क्योंकि अभावतार विष्णु का मैं मन्द-दत्तन नहूँगा । आज मेरा
जन्म सफल हुआ आज मेरी रात सुप्रभात हुई जो मैं विकसित कमल-पत्र के सदृश नेत्र वाले विष्णु का मुखावलीकन

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम् । तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रदयाम्यहं मुखम् ॥४॥
 निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च । द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥५॥
 यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः । इज्यते योऽखिलाधारस्त द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥
 इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् । अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥
 न ब्रह्मा मेन्द्रब्रह्माशिवस्वादित्यमरुद्गणाः । यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः ॥८॥
 सर्वात्मा सर्वंग, सर्वं सर्वभूतेषु सस्थितः । यो भक्त्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते भयाद्य ह ॥९॥
 मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम् । चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥१०॥
 सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यंजाते व्रजे स्थितिम् । कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्येच्छादेहधुगव्ययः ॥११॥
 योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम् । सोऽवतीर्णो जगरयथे भामकूरेति वक्ष्यति ॥१२॥
 पितृबन्धुसहोद्भातमातृबन्धुमयोमिमाम् । यन्मायां नालमुद्धतुं जगत्सस्मै नमो नमः ॥१३॥
 तरल्यविद्या वितता हृदि यस्मिन्निवेक्षिते । योगमायादिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥
 यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः । वेदान्तवेदिभिर्यिष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥
 तथा यत्र जगद्वाग्नि धार्यते च प्रतिष्ठितम् । सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसी यातु सौम्यताम् ॥१६॥
 स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते । पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७॥

बहेगा। स्मरण तथा चिन्ता करने से जो मनुष्यो ने पापो का भट्ट करते हैं, उस पुण्डरीकाक्ष विष्णु के मुख को मैं देखूंगा। जिस मुख से वेद तथा वेदों के अखिल अंग नि सृत् हुए और जो देवों का परम धाम है, उस भगवन्मुख का मैं दर्शन करूँगा। जा यज्ञा में यज्ञपुरुष, पुरुषा य उत्तम तथा सब के आधार हैं, उन जगत्पति का मैं दर्शन करूँगा। सौ यज्ञा से जिसकी आराधना करने इन्द्र न देवराजत्व का प्राप्त किया, उन्हीं आदि-अन्त-रहित वेदाव का मैं दर्शन करूँगा ॥१-३॥ ब्रह्मा इन्द्र, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन्हीं हरि का आज मैं स्पर्श करूँगा ॥८॥ जा सर्वात्मा, सर्वव्यापी, सब, समस्त भूतो में अवस्थित, अव्यय तथा व्यापक हैं, उन्हीं को आज मैं देखूंगा ॥९॥ जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, बराह, सिंह आदि का रूप धारण किया और योग का मार्ग दिलाया मे मुझे समापन करेंगे ॥१०॥ इस समय कार्य उपस्थित होने पर जगत्स्वामी, अव्यय तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर व्रज में अवस्था हैं। जो अनन्त भगवान् पर्वतादिविदिष्ट पृथिवी का धारण करते हैं वे ही जगन्ने निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। वे मुझे 'अकूर' कहेंगे जिनके पिता, बन्धु मित्र, भाई तथा माता रूपी माया का पार सप्सार नहीं पाना है, उनको नमस्कार है। हृदय में जिनके प्रविष्ट होने से मनुष्य विस्तृत अविघारुणी योगमाया को पार कर जाते हैं उन विद्यात्मा को नमस्कार है। जिनको यज्ञार्ता यज्ञपुरुष ब्रह्मर तथा ब्रह्मन्वसा विष्णु ब्रह्मर पुकारते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो गगार का धारण करते हैं अर्थात् जिनके तंत्र में सत् अस्तु रूप अवन् प्रतिष्ठित होता है, वे मेरे प्रति मौम्य हों। जिनके स्मरण करने से सब प्रकार का कल्याण होता है, उन्हीं पुरुषप्रवर हरि की शरण में जा रहा हूँ ॥११-१७॥

ध्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्निष्कृणु भवितुमर्थात्ममानसः । अकूरो गोकुलं प्राप्तः किञ्चित्सूर्ये विराजति ॥१८॥
 स ददर्श तदा तत्र कृष्णमादोहने गवाम् । वत्समप्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१९॥
 'प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रोवत्साङ्खितवससम् । प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गरोत्थलमुन्नतम् ॥२०॥
 सवित्रासस्मिताधारं विभ्राणं मुखपङ्कजम् । तुङ्गरवतनक्षं पद्म्यां धरण्यां सप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
 विभ्राणं वाससी पीते क्षयपुष्पविभूषितम् । सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
 हंसेन्दुकुम्भधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः । तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३॥
 प्राशुमुत्सृज्याहुं च विकशिमुखपङ्कजम् । मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिनिवापरम् ॥२४॥
 सौ दृष्ट्वाविकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः । 'पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽकूरोऽभयद्विजाः' ॥२५॥
 य एतत्परमं धाम एतत्स्वपरमं पदम् । अभवद्वसुदेवोऽसौ द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६॥
 साफल्यमक्षणोर्युगपन्ममास्तु, दृष्टे जगद्धातरि हासमुच्चैः (?) ।
 अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादाद्वात्ताङ्गसङ्गे फलवर्धनं तत्स्यात् ॥२७॥
 अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।
 यस्याङ्गलिस्पर्शं हस्तालिलाघोरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा मरैः ॥२८॥

ध्यास बोले—इस प्रकार विष्णु का ध्यान करते हुए भक्ति से विनम्र चित्त वाले अकूर गोकुलिलेला में गोकुल पहुँच गये ॥१८॥ वहाँ उन्होंने गायों के दोहन-काल में बछड़ों के बीच अवस्थित कृष्ण को देखा । कृष्ण की छवि प्रफुल्लित नील कमल के पत्र जैसी थी, उनकी आँखें विकसित कमल-दल के समान थी, हृदय पर शीवत्स नामक चिह्न था, बाँहें लम्बी थी, छाती चौड़ी थी नासिका उन्नत थी, मुखकमल सुन्दर हास्य से युक्त था, नख उत्तुंग तथा लाल थे, पैर पृष्ठी पर सुप्रतिष्ठित थे । वे पीतवस्त्र पहने हुए थे और वनमाला से विभूषित थे । सघननीललता के समान उनके हाथ थे और उज्ज्वल कमल के आभूषण थे । उनके वाद अकूर ने हस, चन्द्रमा तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ, नीलवस्त्रधारी, आजानवाहु, विकसित कमल के समान मुख वाले, मेघमाला से परिवृत तथा कैलासपर्वत के तुल्य षवल यदुनन्दन बलभद्र को देखा । द्विजबृन्द । उनको देखते ही महाबुद्धिमान् अकूर के सर्वांग शरीर में (आनन्द के मारे) रोमाञ्च हो आया और मुखकमल खिल उठा । उन्होंने कहा—'ये ही परमधाम तथा ये ही परमपद हैं । ये अपने को दो करके वासुदेवकृप से व्यवस्थित है ॥१९-२६॥ जगद्धाता के दर्शन करके मेरे दोनों नेत्र एक ही काल में सफल हो । मेरे अंग भी भगवान् की कृपा से उनके जग-स्पर्श करके सफल हो । आज ही मेरे हस्तकमल का स्पर्श करके अनन्तमूर्ति भगवान् मुझे कृपायें करेंगे । जिन मनुष्यों को उनकी अङ्गुलि का स्पर्श होता है, वे निष्पाप हो जाते हैं, उत्तम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और अश्विन रुद्र, इन्द्र तथा वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं ।

१क. ०न्त क्रियत्सू० । २क. स दक्ष । ३ग. प्रस्पष्टप० । ४क. ०काङ्क्षितपाशोऽसौ तदाऽऽ ।

५स. ०तरोमाऽसौ तदाऽऽ ।

तथाऽऽश्विचक्रेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः ।

चक्रं धनता दैत्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि ॥२९॥

यत्र (तोऽ)म्बु विन्यस्य बलिर्मनोग्याम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः ।

तथाऽमरेशस्त्रिदशधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप क्षनः ॥३०॥

अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम् ।

कर्ता न भानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?) ॥३१॥

ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वरशेव्यावृत्तबोयस्य सदाऽऽफुटस्य ।

किं वा जगत्पत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ॥३२॥

तस्माद्बह्वं भक्तिधिनृगाग्रो, व्रजामि विश्वेद्वरमीश्वराणाम् ।

अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अन्दादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णकीडायामक्रूरायमनवर्णनं

नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

दैत्यराज की सेवा को विनष्ट करते हुए उन्होंने दैत्य बनिताओं के भयनों को अपनी ओर खींच लिया था। उनको खान देकर धनि ने पाताल में रहकर भी सबल भोगों को प्राप्त किया। उनकी कृपा से इन्द्र ने पूरे मन्वन्तर तक देवताओं का आधिपत्य प्राप्त किया। ऐसे भगवान् को मैं कंस की आशा से लेने आया हूँ। अतएव मैं निर्दोष होता हुआ भी दोषी हूँ। ऐसे मानविर्गहित मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैं मन से साधु-समाज से बहिष्कृत हो गया हूँ। ये भगवान् ज्ञानस्वरूप, अतिरूपसात्त्विक वृत्तियों के पुञ्ज, दोषों से रहित, सदा अस्पृष्ट तथा सबने हृदय में वास करने वाले हैं। पसार में समस्त पुरुषों की ऐसी कौन सी बात है, जो उन्हें अविदित हो? इसलिये मैं भक्ति से नत शरीर होकर पुरुषोत्तम, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् अत्रन्ता विष्णु के अन्त से अवतीर्ण विश्वेद्वर के समीप जाता हूँ ॥२७-३३॥

श्रीमहापुराण में कृष्ण-कीडा-वर्णन प्रसंग में अक्रूरायमनवर्णन नामक एक छो

इत्यानवेवै अध्याय समाप्त ॥१९१॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अकूरप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव । अकूरोऽस्मीति 'धरणीं ननाम शिरसा हरे ॥१॥
 सोऽप्येन ध्यजद्यश्नाहजकृतचिह्नेन पाणिना । सस्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परिपृक्वजे ॥२॥
 'कृतसखवनो' तेन यथावद्वलकेशवौ । ततः प्रविष्टौ सहसा तमदायाऽऽममन्दिरम् ॥३॥
 सह तान्या तदाऽकूरं कृतसखन्नादिक । भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचक्षते ततस्तपो ॥४॥
 ययानिर्भस्तिस्तस्तेन कसेनाऽऽनकहुन्दुभिः । ययाच देवको देवी दानवेन दुरात्मना ॥५॥
 उपसेने यया फस स दुरात्मा च वतंते । य चंवार्यं समुद्दिश्य कसेन ॥ विसर्जितः ॥६॥
 तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्केशिसूदन । 'उवाचाक्षिलमेतत् ज्ञात दानपते' मया ॥७॥
 करिष्ये च महामांशं यवप्रीपायिकं मतम् । त्रिचिन्तयं नान्यर्पयत्ते विद्धि कस हृत मया ॥८॥
 अहं रामश्च मथुरा इवो यास्याव सम त्वया । गोपवृद्धश्च यास्पति आदायोपापनं बहु ॥९॥
 निशेधं नोपता धीर न चिन्ता कर्तुमर्हसि । त्रिरात्राम्यन्तरे कस हनिष्यामि सहानुगम् ॥१०॥

अध्याय १६२

अकूर के लौटने का वर्णन

व्यास बोले—इस तरह सोचते हुए यह यदुवशी अकूर गोविन्द के पास जाकर उनके चरणों पर शिर झुकाकर प्रणाम करने लगे । हुण्ण ने भी ध्वजा, दश तथा कमल के चिह्नों से युक्त हस्त से उनका स्पर्श करते हुए अपनी ओर खींच कर प्रेम से गाढ़ आलिंगन किया । बलश्रद्ध तथा कृष्ण व्यवहारपूर्वक अकूर से मिलकर उन्हें पकड़े हुए अपने घर ले गये । उन्होंने अकूर को विधिपूर्वक भोजन कराया । तब अकूर ने उन दानों से जैसे दुरात्मा दानव कस वसुदेव देवता तथा उपसेन को सताता था और जिस उद्देश्य से उसने अकूर को गोकुल भेजा था वह सब समाचार वह सुनाया । विस्तरपूर्वक अक्षिल वृत्तान्त सुनकर नैशिनारज भगवान् ने कहा—'दानपते ! यह सब तो मुझे मालूम ही था । महामांश ! जो उपाय मैंने सोच रखा है वह तो कहींपा ही, वह अन्यथा नहीं हो सकता । तुम कस को मेरे द्वारा निहत ही समझो । बल मैं और राम तुम्हारे साथ मथुरा जायेंगे । गोपवृद्ध भी बहुत-से उपहार लेकर जायेंगे । धीर ! इस रात को सोतने दो । चिन्ता मत करो । तीन रात के अन्दर ही अनुयायियों सहित कस को मैं मार दूँगा' ॥१-१०॥

व्यास उवाच

समाविश्य ततो गोपानकूरोऽपि सकेशव । सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गत ॥११॥
 तत प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबलौ । अकूरेण सम गन्तुमुद्यतौ मथुरा पुरीम् ॥१२॥
 दृष्ट्वा गोपीजन सात् श्लयद्वल्यबाहुक । निश्वसश्चातिदुःखार्तं प्राह चेद परस्परम् ॥१३॥
 मथुरां प्राप्य गोविन्द कथं गोकुलमेव्यति । नागरस्त्रीकलालापमधु धोत्रेण पात्यति ॥१४॥
 विलासिवाक्यजातेषु नागरीणा कृतास्पदम् । चित्तमस्थं कथं ग्राम्यगोपगोपीषु दात्यति ॥१५॥
 सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् । प्रहृत गोपयोपित्सु निघृणेन दुरात्मना ॥१६॥
 भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति । नागरीणामतीवतत्काटाक्षेक्षितमेव तु ॥१७॥
 ग्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिपड्यंत । भवतीनां पुन पादौ कथा मुकथा समेव्यति ॥१८॥
 एषो हि रयमाहूय मथुरा याति केशव । अकूरकूरकेणापि 'हताशेन प्रतारित ॥१९॥
 किं न वेति नृशतोऽयमनुरागपर जनम्' । येनेममक्षराह्लाद नयत्यन्ध्र नो हरिम् ॥२०॥
 एष रामेण सहित प्रयात्यत्यन्तनिघृण । रयमाहूय गोविन्दस्त्वयं तामस्य धारणे ॥२१॥
 गुरुणामप्रतो वधतु किं त्वदीयं न न क्षमम् । गुरुव किं करिष्यन्ति वधधाना विरहाग्निना ॥२२॥
 मन्दपोपमुजा गोपा गन्तुमेते समुद्यता । मोक्षम कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

व्यास बोले—तदुपरान्त गोपों को आदेश करके अकूर भी केशव और बलभद्र के साथ नन्दगोप के घर में जाकर सोये ॥११॥ सुप्रभात होने पर महाबली राम और कृष्ण अकूर के साथ मथुरापुरी जाने के लिये तैयारी करने लगे ॥१२॥ यह देखकर रागिणियों के आँसू बहने लगे और बाँहे डीली पड़ गईं जिनसे कणन निकलने लगे । उन्होंने शोरगुल होकर 'बी साँस ली और परस्पर कहा—मथुरा जान पर कृष्ण याकुल क्या आयगे ? वहाँ नगर की बनिताओं का मथुरा-गप सुनेंगे । नगर-नारियों के विलासपुस्त बचन। मैं चित्त बैठ जान पर ग्राम्य गाप-नारियों की बातों को सुनने के लिये मला बौन आया ? हरि को ले जाते हुए विषादात् न समस्त प्रज वा सार हर लिया । गोपांगना भी वा सो उत निष्ठुर दुरात्मा ने सबस्व ही छीन लिया । नगर की महिलाओं का बचन सारगमित एवम् हास्यपुन हाता है गति सविगास एवम् सुललित होती है और अवलाइन अत्यन्त बटाझपूण होता है ॥१३-१७॥ ये हरि गाँव के हैं । उन लोगों के विलास रूप। पाग म जंगलर य फिर लुप्त लाया के पास बैठे आयेगे ? यह देखो रथ पर चढ़कर बैंगव मथुरा जा रहे हैं । निगोशा एवम नूर अकूर इन्हें टग कर ले जा रहा है । क्या यह हथारों इनकी प्रमिया को नहीं जानता है जा निच आह लान देते बाल हथार हरि का लिय जा रहा है ? यह अत्यन्त निम्न अकूर रथ पर चढ़कर कृष्ण राम को लिये जा रहा है जल्दी करो इनको रोता दें ॥१८-२१॥ क्या कहती हो कि गुरुजना ने सामने हम ऐसा करने म असमर्थ हैं । अरे ! विरहाग्नि का जल वा गुरुजन क्या करेंगे ? नन्दगोप प्रभृति गाग सो जा हैं। रहे हैं मला गाधिद का निवारण बौन करे ? आज मथुरा की रमणियाँ के लिये सुप्रभात हुआ जो

११ ०५५५५५५५ २४ ०५ ५५५५५५५५५५ २५ न निघाणेन ४४ ०५। दोष्य पाति दागे-
 नैवमुक्त्वा सर्वं सतीव्रनम् । ५५ मन्नामिना ।

सुप्रभाताञ्छ रजनी मयुरावासिषोयिताम् । यासामच्युतववत्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम् ॥२४॥
 धन्यास्ते पयि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः । उद्धहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५॥
 मयुरानगरीषोरनयनानां महोत्सवः । गोविन्दधनालोकादतीवाद्य भविष्यति ॥२६॥
 को नु स्वप्नः समाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरघोक्षजम् । विस्तारिफान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम् ॥२७॥
 अहो गोपोजनस्यास्य वसंयित्वा महानिधिम् । उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकृष्णात्मना ॥२८॥
 अनुरागेण संविल्यमस्मासु व्रजतो हरेः । संविल्यमुपयान्पाशु करेपु बलयाम्यपि ॥२९॥
 अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान् । एवमार्तासु धीयित्सु घृणा कस्य न जायते ॥३०॥
 हे हे कृष्ण रयस्योच्चैश्चक्षुरेणनिरीक्ष्यताम् । दूरोद्धृतो हरिर्धेन सोऽपि रेणुनं लक्ष्यते ॥३१॥
 इत्येवमतिहासेन गोपोजननिरीक्षितः । तस्याज व्रजभूभागं सह रामेण वेशयः ॥३२॥
 गच्छन्तो जवनादवेन रथेन यमुनातटम् । प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः ॥३३॥
 अयाऽह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम् । यावत्करोमि कालिन्ध्यामाह्निकार्हणमभिसि ॥३४॥
 तथैतमुक्ते ततः स्नातः स्वाद्यान्तः स महामतिः । बध्यो ग्रहापरं विप्राः प्रविश्य यमुनाजले ॥३५॥
 फणासिहस्रमालाढयं बलभद्रं ददशं सः । कुन्दामलाङ्गभृन्निद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६॥
 वृत्तं 'वासुकिङ्किभौघंमहद्भि' पयनाशिभिः । 'सस्तूपमानसद्वन्धवनमालाविभूषितम् ॥३७॥

उत्तरे नेत्र रूपी भौरे कृष्ण के मुख रूपी कमल का रत्नास्वादन करेंगे । ये व्यक्ति धन्य हैं, जो मार्ग में कृष्ण का दर्शन करते आनन्द से सरीर को रोमाञ्चित करेंगे ॥२२-२५॥ आज गोविन्द के मुखावलोकन से मयुरावासियों को अपार हर्ष होगा । उन लोगों ने बौन सा सुस्वप्न देखा था जो आज प्रफुल्लित नेत्रों से कृष्ण का सदर्शन करेंगे । हाय ! गोरीजनो को महानिधि दिसाकर आज निर्दय विधाना ने उनसे नेत्रों को निवाल लिया । ' हम लोगों में अपने अनुराग को सिधिल करने हरि के चले जाने पर हमारे हाथों के क्या भी सिधिल हो रहे हैं । इस प्रकार आते अय-रामों ने प्रति बिसे दया उत्पन्न नहीं होगी ? किन्तु यह क्रूरहृदय अक्रूर सेवी से घोंघो को हाँक रहा है । हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! वह बहुत ऊपर रथ के चक्र की धूलि देखो । अब तो त्रिस धूलि ने कृष्ण को अलक्षित कर दिया, वह भी दिखाई नहीं देती ॥२३-३१॥ इस प्रकार अत्यन्त अनुराग से शोषियां तावती ही रही कि राम सहित कृष्ण व्रज के भू-भाग को पार कर गये । शीघ्रगामी अन्धयुवन रथ से दोघहर के समय राम, अक्रूर और कृष्ण यमुना-तट पर पहुँचे । वर अक्रूर ने कृष्ण-राम में कहा—'सबतक आप दोनों आराम करें जब तक मैं यमुना-जल में नित्यवर्धं (सध्या-वदन करि) मग्न रहूँगा । विप्रबुद्ध ! उनही स्वोद्धृति मिल जाने पर महाबुद्धिमान् अक्रूर यमुना-जल के स्नान कर आश्रमन करने परब्रह्म का ध्यान करने लगे ॥३२-३५॥ उन्होंने जल के भीतर सहस्र पद्माओं से युक्त, बुन्दयुक्त के तट्ठ रत्नोप, विरगिन कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, वासुकि के बच्चों से आवृत, महान् शरीर से स्तूपमान, वनमाला से विभूषित, नीलवस्त्रधारी, मनीह्र आमूषणों से युक्त, चार बुच्छलों से सुशोभित और मद से झूमते हुए

दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम् । चारुकुण्डलिनं मत्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥
 तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताग्रायतलोचनम् । चतुर्बाहुमुदारार्ज्जुं चनाद्यायुधभूषणम् ॥३९॥
 पोते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम् । चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥
 श्रीवत्सवक्षसं चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम् । ददर्श कृष्णमविलष्टं पुण्डरीकावतंसयम् ॥४१॥
 सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः । 'सच्चिन्त्यमानं मनसा नासाग्रयस्तलोचनं' ॥४२॥
 बलकृष्णो तदाऽकूरं प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः । अचिन्त्ययदयो शीघ्रं कथमत्रागताविति ॥४३॥
 विवक्षो स्तम्भयामास वाचं तस्य जनाह्वनः । ततो निष्क्रम्य सलिलाग्रयमन्यागतं पुनः ॥४४॥
 ववर्श तत्र चंबोभौ रयस्योपरि सस्यितौ । रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽऽवसितौ ॥४५॥
 निम्नगण्डश्च पुनस्तोमे दृष्टो स तथैव तौ । सस्तूयमानौ गण्डर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः ॥४६॥
 ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तदा । तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमक्षुप्तमीश्वरम् ॥४७॥

अकूर उवाच

तन्मात्ररूपिणोऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने । व्यापिने नैकरूपैस्त्वक्षररूपाय नमो नमः ॥४८॥
 शब्दरूपाय तैराचिन्त्यहर्भिर्भूताय ते नमः । नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रवृत्ते प्रभो ॥४९॥
 भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् । आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थितः ॥५०॥

बलमद्र को देता । उनके जोड़ प्रदेश में मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, लाल तथा दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, सुन्दर अव-
 यवा से युक्त, चक्र आदि आयुधों से विभूषित पीताम्बर, विचित्र मालाभा से सुशोभित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा मेघ
 के सदृश दीप्तने वाले, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त, सुन्दर केयूर तथा उज्ज्वल मुकुट से आभूषित, कमल-मुखा के
 आभूषण धारण करने वाले, प्रसन्न और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करने निष्पन्न एवम् सिद्ध सनन्दन आदि
 मुनिवा द्वारा ध्यान विय जाते हुए कृष्ण का भी देता ॥३९-४२॥ तब अकूर 'य ही बलमद्र और कृष्ण हैं' यह जानकर
 आश्चर्यान्वित हुए और साचन लगे—'इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये । वे बोला ही चाहते थे कि कृष्ण ने उनका
 वास्तव्यन कर दिया । तब वे जल से बाहर निकल कर पुनः रथ के पास आये । वहाँ भी पहिले की तरह मनुष्य-
 पत्नीरूपी राम-कृष्ण का रथ पर बैठे देता । पुनः वे जल में डूबे तो उनका उत्तीरण करने देता कि गण्डर्व, मुनि,
 सिद्ध तथा महाकाँ उन्हीं स्तुति कर रहे हैं । तब यथार्थभाव को समझकर अकूर ने सर्वविज्ञानमय ईश्वर कृष्ण
 की स्तुति प्रारम्भ की ॥४३-४७॥

अकूर बोले—पञ्चतन्मात्ररूप, अचिन्त्य महिमा से युक्त, व्यापक और एव तथा अनन्त रूपा से परे पर-
 मात्मा का नमस्कार है । पञ्चरूप तथा अचिन्त्यहर्भिर्भूत आपका नमस्कार है । प्रभो ! विज्ञानरूप तथा प्रवृत्ति से
 परे आगमो नमस्कार है । आप भूतात्मा इन्द्रियात्मा प्रधानात्मा, आत्मा तथा परमात्मा हैं । आप एव होकर हुए
 भी उपर्युक्त पाँच प्रकार से स्थित हैं ॥४८-५०॥ सर्वमार्तम् । क्षराक्षर ! महेश्वर ! प्रसन्न हृदये । ब्रह्मा,

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्सराक्षर' महेश्वर। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिर्द्वीरितः' ॥५१॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्नाख्येयप्रयोजन। अनाख्येयानिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वरम् ॥५२॥
न यत्र नाय विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः। तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३॥
न कल्पनामृतोऽयस्य सर्वस्याधिगमो यतः। ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरोद्धयसे ॥५४॥

सर्वात्मस्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं त्वमेव विद्वम् ।
विश्वात्मस्त्वमतिविकारभेदहीनः, सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदग्न्यत् ॥५५॥
त्वं ब्रह्म पशुपतिरयमा विधाता, त्वं पाता त्रिदशपतिः समीरणोऽग्निः ।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिन्नात्मा जगदपि पाति शक्तिभेदैः ॥५६॥
यिश्यं भवान्सृजति हन्ति गमस्तिरूपो, विद्वं च ते गुणमयाऽयमज प्रपञ्चः ।
रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥

ओं नमो वासुदेवाय नमः सकर्षणाय च। प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिच्छदाय ते नमः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमन्तर्जले कृष्णमभिर्द्वय स यादवः। अर्धयामास सर्वज्ञं धूपपुष्पमनोमयं ॥५९॥
परित्यज्याग्न्यधिपयं मनस्तत्र निवेद्य सः। 'ब्रह्मभूते चिर स्थित्वा विरराम समाधितः ॥६०॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः। आजगाम रथं भूयो निर्गम्य' यमुनाम्भसः ॥६१॥

विष्णु, शिव आदि नामों से आप ही पुकारे जाते हैं। आपने स्वरूप, प्रयोजन तथा सत्ता भी अनिर्वचनीय हैं। पर-
मेश्वर। आपको नमस्कार है। नाथ! जहाँ नाम, जाति आदि की कल्पना नहीं होती है, वह नित्य, अविकारी,
अगत्या परब्रह्म आप ही हैं। जिसलिये बिना कल्पना (सत्ता) के अर्थ (वस्तु) का अवबोध नहीं होता है इसलिये
ब्रह्म, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि सत्ताओं से आपकी स्तुति की जाती है ॥५१-५४॥ अखिलात्मन! अज! इन
विनाशनाशों से मुक्त आप ही हैं, देव, सम्पूर्ण जगत् तथा विश्व भी आप ही हैं। विद्वात्तम्! आप विनाश तथा भेद
से अत्यन्त रहित हैं। आप सब मे हैं। आपने अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आप ब्रह्म, शिव, अर्धमा, विधाता, धाता,
इन्द्र, शायु, अग्नि, वरुण, कुवेर तथा यम हैं। आप एक होने हुए भी त्रिधात्मा हैं। आप शक्तिभेदों से सत्ता का
पालन करते हैं ॥५५-५६॥ गमस्ति (मृषं?) रूप से आप विद्वत्ता सृजन तथा नाश करते हैं। विद्वत्ता आपका गुण-
मय है। यह आप ही का प्रपञ्च है। 'सत्' यह आकार, परम रूप तथा ज्ञानात्मा है। आपने उन सत्-असत् रूप
को प्रणाम है। वामुदेव का नमस्कार है। सकर्षण को नमस्कार है, प्रद्युम्न को नमस्कार है तथा अनिच्छदा को
नमस्कार है ॥५७-५८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जब वे भीतर कृष्ण की स्तुति करके यादव ने मनोमय धूप-पुष्पों से परमेश्वर को
अर्पित किया। अन्य विषयों का परित्याग कर ब्रह्मभूत कृष्ण ने मन को स्थावर चिरवाले तब के वही समाधि में डूबे

रामकृष्णी ददर्शाय यथापूर्वमवस्थितौ। विस्मितास्त तदाऽक्रूर त च कृष्णोऽभ्यभाषत॥६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले। विस्मयोत्फुल्लनयनो भवासलक्ष्यते यतः॥६३॥

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदादचर्यं दृष्टं तत्र मयाऽच्युत। सदर्शं हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम्॥६४॥
जगदेत महाश्चर्यरूप यस्य महात्मन। तेनाऽऽश्चर्यपरेणाह भवता कृष्ण सगत॥६५॥
तत्किमेतेन मथुरा प्रयामो मधुसूदन। विभेमि 'कसाद्विज्जन्म परपिण्डोपजीविन'॥६६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा श्रोत्रयामास सान्द्रह्यान्धातरहस। सप्राप्तश्चापि सायान्ते सोऽक्रूर मथुरा पुरीम्॥
विलोक्य मथुरा कृष्ण राम छाऽह स यादव॥६७॥

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यात महावीर्यो रघवेनको विज्ञाम्यहम्। गन्तव्यं वसुदेवस्य भो भवद्भ्यां तथा गृहे॥
युवयोर्हि वृत्ते बृद्ध कसेन स निरस्यते॥६८॥

रहे। द्विजश्रेष्ठो! अपने को वृत्तवृत्त समझते हुए वे यमुना जल से निराश कर पुन रथ पर आये। वहाँ राम-कृष्ण को यथापूर्व अवस्थित देखकर उन्होंने विस्मय से आँखें मूढ़ ली। तब कृष्ण ने उनसे कहा॥५९-६२॥

श्रीकृष्ण बोले—अक्रूर! यमुना-जल में तुमने क्या आश्चर्य देखा है जोकि तुम्हारे नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो रहे हैं? ॥६३॥

अक्रूर बोले—अच्युत! जल के भीतर जो मैंने आश्चर्य देखा वह यहीं पर मेरे सामने मूर्तरूप में अवस्थित है। कृष्ण! जिन महारामा का यह निराल सत्कार ही आश्चर्यरूप है उन्हीं आश्चर्यों से भी पर वे साथ में हैं। मधुसूदन! तो क्यों हम लोग मथुरा जायें? वस से मुझ डर लगता है। डूगरे का पिण्ड खाकर जाने वाले के जन्म को विस्मय है॥६४-६६॥

व्यास बोले—दूतता बहुरात्रायु के समान तीव्र चलने वाले घोड़ा का हीन कर सायरात्र अक्रूर मथुरा पुरी पहुँचे। मथुरा को देखकर यादव ने कृष्ण तथा राम से कहा॥६७॥

अक्रूर बोले—महापराक्रमी! आप दानो पैदल चल और मैं आत्मा ही रथ से वसुदेव जी के घर जाता हूँ। आप लोग वहाँ अभी न जायें। एसा करने से वस वसुदेव जी को निराश बाहर कर देगा॥६८॥

व्यास उवाच

पुत्रत्वा प्रविवेशासावकूरो भयुरां पुरीम् । प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥६९॥
 भिन्नरैश्च सानन्द्बोचनैरभिवोक्षितौ । जग्मतुर्लोकया घोरी प्राप्यौ बालगजाविव ॥७०॥
 ममाणी तु तौ वृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् । अयाचेतां स्वरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥७१॥
 तस्य रजकः सोऽय प्रसादारूढविस्मयः । बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चं रामकेशवौ ॥७२॥
 इत्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः । पातयाभास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि ॥७३॥
 वाऽऽवाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः । कृष्णरामौ मुदायुवतौ मालाकारगूह गतौ ॥७४॥
 कासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मितः । एतौ कस्य कुतो यासौ मनसाऽचिन्तयत्तत ॥७५॥
 तनीलाम्बरधरो वृष्ट्वाऽतिस्मनोहरौ । स तर्कयामास तदा भुव देवायुपागतौ ॥७६॥
 काशिमुजपद्मान्यां ताम्बा पुष्पाणि धाञ्चितः । भुवं विष्टम्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम् ॥७७॥
 तावत्सुमुखौ नाथो मम नेहमुपागतौ । धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ मातृयजीविकः ॥७८॥
 तः प्रहृष्टदन्तस्तयोः पुष्पाणि कामतः । चारुभ्येतानि चैतानि प्रवदौ स विलोभयन् ॥७९॥
 नः पुनः प्रणम्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ । पुष्पाणि ताम्बां चारुणि गन्धधन्यमलानि च ॥८०॥

व्यास बोले—इतना कहकर अकूर भयुरापुरी में प्रविष्ट हुए और राम-कृष्ण भी राजमार्ग पर चलने लगे । र-नारियों आनन्दित नेत्रों से उनको देखने लगी । वे दोनों वीर बालगज की तरह लीला करते हुए चलते थे । मग करते हुए उन्होंने एक रम्येज घोड़ी को देखा । उससे अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्रों की याचना की । वह तब वा घोड़ी पा । इसलिये विस्मित होकर उसने राम-केशव से उच्चस्वर में बहुत व्यययुक्त वचन कहे । तब ण ने त्रोध से उस दुरात्मा घोड़ी के शिर को हस्त प्रहारसे भूमि पर गिरा दिया । उसे मारकर पीले तथा नीले रंगों को लेकर हर्षित कृष्ण तथा राम माली के घर की ओर बड़े । माली पीत-नीलाम्बरवारी दोनों माद्यों को देखकर तन्त्र आश्चर्यान्वित हुआ और प्रफुल्लित नेत्रों से उनकी ओर टाकते हुए मन में सोचने लगा—‘ये दोनों किसके ?’ कहाँ आ रहे हैं ?’ ॥६९-७५॥ उसने अनुमान किया कि ये देव हैं । अपने मुखवमल को खोकर दोनों ने इससे पुष्पो की याचना की । माली ने पृथ्वी पर दोनों हाथों को रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया और कहा—‘नाथ ! प्रसन्न मुख वाले ! आप दोनों मेरे घर आये, इसी से मैं अपने को धन्य समझता हूँ । मैं आप दोनों की पूजा दूँगा ।’ इतना कहकर वह प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर-सुन्दर फूलों से उन दोनों को लुभाते हुए पुष्प समर्पित करने लगा । पुन पुन प्रणाम करने मालाकार ने उन्हें मनोहर, सुगन्धित तथा स्वच्छ पुष्प दिये । कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर माली को वरदान दिया—‘मद ! मेरी आशित लक्ष्मी तुम्ह कभी भी न छोड़ेगी । सोम्य ! जब तक पृथ्वी

१क ०णो ततो ८० । २य सुष्पाणि । ३. स. य. ०गलो मा० । ४क स जीवन । त० ।
 ५स. ०दन स्वय पु० । ६क. हृष्टात्मा ।

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रवदौ वरम् । श्रीस्त्वांभत्संधया भद्रं न कदाचिरप्यजिह्यति ॥८१॥
 बलहानिनं ते शौम्यं धनहानिरयापि वा । यावद्वरणिस्सूर्यो च संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥८२॥
 भुक्त्वा च विपुलाभोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः । ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि ॥८३॥
 धर्मो 'मनश्च ते भद्रं सर्वकालं भविष्यति । युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥८४॥
 नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्संततिसंभवः । अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥८५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गुहात्कृष्णो बलवैवसहायवान् । निजंगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः ॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिबाहोऽकूरप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जोद्धारवर्णनम्

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सामुलेपनभाजमाम् । श्वर्शं कुब्जामायाःतीं नवदीपतगोदशम् ॥१॥
 तामाह ललित कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् । भवत्या नीयते सत्यं श्वदेदीवरलोचने ॥२॥

तथा सूर्य रहेगे तब तक तुम्हारी बलहानि, तथा धनहानि नहीं होगी। पुनःपुनः आदि सन्तानें होगी। विपुल भोगों को भोगकर अन्त में तुम मेरी कृपा से मेरे स्मरण करते हुए दिव्यलोक को जाओगे। मद्र ! धर्म में तुम्हारा मन सदा धरेगा। तुम्हारी सन्तानों की लक्ष्मी आयु होगी। महाभाग ! जब तक सूर्य रहेगे तब तक तुम्हें किसी प्रकार के उत्पात आदि दोष नहीं होंगे ॥७६-८५॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठी ! इतना बहुर मालाकार द्वारा पूजित कृष्ण बलराम के साथ उसके घर से बाहर निकल गए ॥८६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अकूर-प्रत्यागमन नामक एक सी वानवेदी अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १६३

कुब्जा का उद्धार-वर्णनं

व्यास बोले—तदुपरान्त कृष्ण ने राजमार्ग पर अनुलेप (चन्दन, बैसर आदि) के पात्र को लिये आती हुई नवदीपना कुब्जा को देखा। उसको देखकर कृष्ण ने कहा—'वमल्लोचने ! जिसने लिये तुम यह कुल्लित

सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरि प्रति । प्राह सा ललित कुब्जा ददर्श च बलात्तत ॥३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान्न जानासि कसेनापि नियोजिता । नैकवक्त्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४॥
नान्यपिष्ट हि कसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम् । भवत्यहमतीवास्य प्रसादपतभाजनम् ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धमेतद्राजाहं रुचिर रुचिरानने । आबधोगात्रसदृश दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा समाह सा कृष्ण गृह्यतामिति सादरम् । अनुलेप च प्रवदौ गात्रयोग्यमयोभयो ॥७॥
भविष्येद्वेदानुलिप्ताङ्गी ततस्तौ पुरुषपंभौ । सैन्द्रचापौ विराजन्तौ सितकृष्णाविषाम्बुदौ ॥८॥
ततस्तां चिदुक्ते 'शौरिहस्तापनविधानवित । उल्लाप्य तोलयामास 'द्वयङ्गुलेनाप्रपाणिना ॥९॥
ष्वर्यं पञ्जुष्या च तदा शृजुत्व केशयोऽनयत् । तत सा शृजुता प्राप्ता योयितामभवद्वरा ॥१०॥
विलासललित प्राह प्रेमगर्भभरालसम् । वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्द व्रज येह ममेति वै ॥११॥
आपास्ये भवतीगेहमिति ता प्राह केशव । विसर्जनं जहासोच्चै रामस्याऽऽलोक्ष्य चाऽऽननम् ॥१२॥

अनुलेपन लिय जा रही हो ? सब बोले । कुब्जा भी सकाम भाव से कृष्ण की ओर देखकर सुन्दर बचन बोली ॥१३॥

कुब्जा ने कहा—भान्त ! क्यों नहीं आप जानते कि कुब्जा कस के अनुलेपन कम के लिये रखी गई है । दूसरे का पिता हुआ चपन कर को नहीं गहाता है । मैं उसकी अत्यन्त वृषापात्र हूँ ॥४५॥

श्रीकृष्ण बोले—ममूति ! राजा के योग्य यह सुगन्धित अनुलेप हम दोनों के अंगों में लगाने योग्य है । यह हम दे दो ॥६॥

व्यास बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से आदरपूर्वक कहा—स्त्रीव्रिये । बाद में उसने उन दोनों के पीरों में योग्य अनुलेप दे दिया । चित्रकारीपूर्वक अनुलेप के अंगाने पर दोनों मरुपुत्रव इन्द्रधनुष तथा गुरु-कृष्ण बालों की तरह गोपीमित्र हुए । तत्पश्चात् उगने के विधान को जानने वाले कृष्ण ने अपनी हाथ की दो अंगुलियाँ को कुब्जा की ठुड्डी में लगाकर ऊपर की उठा दिया और पीरों से छीका (अर्थात् अपने पीरों से उसकी पीरों को दबाकर बिजुन को उग्रा दिया ।) इस प्रकार कृष्ण ने उसको सीखा कर दिया । सीधी होने पर वह अर्ध रमणी बन गई । तब गोविन्द ने वस्त्र पहनकर उसने प्रेम से स्नायुत्व भरी होने के कारण अस्त्रापी हुई तथा हाव भाव से सुन्दर वात कृष्ण से बोली कि मरे घर चलिये । 'मैं आऊँगा' ऐसा कृष्ण ने भी उससे कह दिया । राम का मुग देगतर जात से

भक्षितच्छेदानुलिप्ताङ्गी नीलपीताम्बरावुभौ । धनु शाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१३॥
 अध्यास्य च धनूरत्न ताम्बा पृष्ठस्तु रक्षिभि । आरयात सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनु ॥१४॥
 तत पूरयता तेन भज्यमान बलाद्धनु । चकारातिमहाशब्द मधुरा तन पूरिता ॥१५॥
 अनुपुवतौ ततस्ती च भग्ने धनुषि रक्षिभि । रक्षिसन्य निकृत्योभौ निष्क्रान्तौ कामुकालयात ॥१६॥
 अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनु । भग्न श्रुत्वाऽप्य कसोऽपि प्राह चापूरमुष्टिकौ ॥१७॥

कम उवाच

गोपालद्वारकी प्राप्ता भवदूषा तौ ममाग्रत । मल्लयुद्धेन हतयो मम प्राणहरौ हि तौ ॥१८॥
 निपुद्धे सद्भिनाशन भवदग्ना तोषितो ह्यहम् । वास्याम्यभिमता कामाक्षा यथैतमहादलै ॥१९॥
 म्यायतोऽयायतो वाऽपि भवदग्ना तौ ममाहितौ । हन्तव्यौ तद्वधाद्वाप्य सामा य यो भविष्यति ॥२०॥

व्यास उवाच

इत्यादिष्य स तौ मल्लौ ततश्चाऽह्य हस्तिपथ । प्रोवाचोच्चैस्त्वया मत्त समाजद्वारि कुञ्जर ॥२१॥
 स्याप्य कुवलयापोडस्तेन तौ गोपद्वारकौ । घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२२॥
 तमाशाप्याय दृष्ट्वा च मञ्जान्सवानुपाहृतान । आसन्नमरण कस सूर्योदयमुर्वक्षत ॥२३॥

हंसते हुए कृष्ण ने उसको विद्या किया । तदुपरांत भक्तिपूर्वक समर्पित अनुलेप से ग्निपात्र नील-पीत-वस्त्रधारी तथा विचित्र मालाओं से सुशोभित राम और कृष्ण धनुष-शाला की ओर प्रस्थित हुए । वहां रक्षा से धनुष के बारे में पूछा । उनके बतलाने पर कृष्ण ने सहसा धनुष को उठाकर खींचा । बलपूर्वक खींचने से धनुष टूट गया । उसने महाशब्द से मधुरापुरी गूज उठी । धनुष के टूट जाने पर रक्षकों ने उनके ऊपर आक्रमण किया । पर रक्षक-सैनिकों को मार-पीट कर दोना कीर धनुषाल्य से निकल गये । अक्रूर के आगमन का वृत्तान्त एवम धनुष भग का समाचार सुनकर कस ने चापूर और मुष्टिक से कहा ॥३१७॥

कस बोला—दोनों गोपा-कुमार मेरे पास आ गये हैं । वे मेरे प्राणा के ग्राहक हैं । तुम उनको मारदुद्ध म मार दो । युद्ध में उनके मार दन से मैं प्रसन्न हूँ और तुम दोनों महाबलवानों को मुह माग मारा दूँगा । ऐसे असाय न रामगो । साथ से वा जन्वाय से उन दोनों मेरे गुरुओं की अवय मारना । उनके वध करने से शत्रु पर तुम्हारा समामाधिनार होगा ॥३१८२०॥

व्यास बोले—उन महत्वानों को एगा आगे देवर कस महावत को बुगवर जार से बहन ग्या—कुवलयापी नामक मतवाले हाथी को तुम द्वार पर रचना । युद्ध के लिये वे दोनों गोपराज्य ग्याही सपर-द्वार पर आय ल्योही हाथी से उड़ करवा डारना । उसको आना देवर समस्त रग-भवाको देखकर धूमपू कम ने सूर्योदय को देता ।

तत समस्तमञ्चेषु नागर स तवा जन । राजमञ्चेषु चाऽऽहृता सह भूयैर्महीभूत ॥२४॥
मल्लप्राशिनकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपग । कृत कसेन कसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थित ॥२५॥
अन्त पुराणा मञ्चाश्च यथाऽप्ये परिकल्पिता । अन्ये च वारमुत्पानामन्ये नगरयोपिताम् ॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिता । अक्रूरवसुदेवो च मञ्चप्रान्ते ध्यवस्थितौ ॥२७॥
नगरोप्योपिता मध्ये देवको पुत्रपार्थिनी । अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुख स्थिता ॥२८॥
वाद्यमानेषु तूष्णेषु चाणूरे चातिवल्गति । हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिके ॥२९॥
हृत्वा ध्रुवलयपीड हस्त्यारोहप्रचोदितम् । मदासृगन्तुलिप्ताङ्गी गजदन्तवराधुधी ॥३०॥
गृगमध्ये यथा सिंहौ गर्बलोलाचलोचिनौ । प्रविष्टौ सुमहारङ्ग यलदेवजनादनौ ॥३१॥
हाहाकारो महाङ्गजे सर्वरङ्गेष्वनन्तरम् । कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात् ॥३२॥
सोऽयं येन हता घोरा धृतना सा निशाचरो । प्रसिप्त शकटं येन भग्नौ च यमलार्जुनौ ॥३३॥
सोऽयं य कालिय नाग नमताऽऽहृष्ट बालक । धृतो गोवर्धनो येन सप्तराज महागिरि ॥३४॥
अरिष्टो धनुष केशी लीलयां महात्मना । हतो येन च बुधंस्तौ वृश्यते सोऽयमच्युत ॥३५॥
अथ चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽग्रजोऽग्रत । प्रयाति लीलया योपिन्मनोनयननन्दन ॥३६॥
अथ स' वक्ष्यते प्राज्ञे पुराणार्थावलोकनि । गोपालो यादव वंश मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥३७॥

तब समस्त मञ्चों पर नागरिक लोग बैठ गये । राज मञ्चों पर अनुचरो समेत राजगण भी बैठ गये । पहलवाना
वा समुदाय रंगमञ्च के समीप ही अवस्थित हुआ । वृक्ष अमुञ्च मञ्च पर विराजमान था । अन्त पुरवासिनी रङ्गमञ्चों
के बन्पाया व तथा नागरिक महिलाओं के मञ्च पुष्क-पुष्क बनाये गये थे । नन्दगोप आदि गोप भी अथ मञ्चों
पर बैठ थे । अनूर तथा वसुदेव भी मञ्चप्रान्त में अवस्थित हुए । अन्तकाल में भी पुत्र वा मुख देवगी इस लालसा
स देवरी नगर-नाटिका के बीच जा बैठे । नगाइ बजने लगे । चाणूद अत्यन्त वागाडम्बर कर रहा था । मष्टिक
ताल ठान रहा था । लोग म हाहाकार मच रहा था ॥२१ २९॥ महावत द्वारा प्ररित ध्रुव-यापीड को मारकर
उमक दौना को अस्त्र रूप म धारण कर तथा वध से तमाशा देखने वाले मय एवम घोषित सेलिप्त अग बाल बन्धेव
और कृष्ण रंगमूमि म जसी तरह प्रविष्ट हुए जैसे सिंह मृगा के मध्य म । समस्त रंगमूमि म महान् कोयहल मच
गया । यह कृष्ण है यह बलराम है इस प्रकार कहते हुए लोग आश्चर्य के साथ एक दूसरे से पूछने लगे— य धही है
जिन्होंने धृतना नामक मयकर राक्षसी को मारा शकट को फका मगलार्जुन को तोना कालिय नाग के ऊपर चढ़कर
नृत्य किया सात रात्रि तक गोवधन पर्वत का धारण किया और दुश्मनारी अरिष्ट धनुष तथा बेगी को सहज ही म
मार डाला । य अभ्युन आज हमारे सामने है । ये महा-भक्तिगाली बलदेव इनके ज्येष्ठ भाई हैं । य सहज ही म
वनिताया व चित्त तथा मवना को मुप्त कर देत है । इनके विषय म पुराणा के सखवेत्ता विद्वान् कहत हैं कि ये

अथ ॥ सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मन । अवतीर्णो' महीमशो नून भारहरो भुव ॥३८॥
इत्येव वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् । उरस्तताप देवक्या स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्य पुनावेव विलोकयन् । युवेव' वसुदेवोऽमूढिहायाम्यागतो जराम् ॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्तपुरयोपित । नागरस्त्रोसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तो ॥४१॥

स्त्रिय ऊचु

सत्य पश्यत कृष्णस्य मुखमप्यम्बुजेषणम् । गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम् ॥४२॥
विकासीव सरोम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् । परिभूताक्षर जन्म सफल क्रियता दृश ॥४३॥
श्रीवत्साङ्ग जगद्धाम धालस्यंतद्विलोकयताम् । विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्म च भामिनि ॥४४॥
धलगता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परं । क्रियते बलभद्रस्य हास्यनीपद्विलोकयताम् ॥४५॥
सत्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि । समुपति न सत्यत्र किं वृद्धा युक्तकारिण ॥४६॥
एव यौवनोन्मुखीभूत सुकुमारतनुहरि । वव वज्रकठिनाभोयशरीरोऽय महासुर ॥४७॥
इमौ सुललितौ रङ्गे घतंते नवयौवनौ । दंत्यमस्ताश्चाणूरप्रमुखास्वतिदाहणा ॥४८॥
नियुद्धप्रादिकाना तु महानेव व्यतिक्रम । यद्वालयलिनोर्युद्ध मध्यस्थं समुपेक्षते ॥४९॥

हूबे हुए मादव वगै का उद्धार करने । ये सबजना तथा सबभूत विष्णु के अङ्ग से पृथ्वी के भार उतारने के लिये धरती पर अवतीर्ण हुए हैं ॥३८॥ इस प्रकार पुरवासी लोग राम और कृष्ण के वर्णन कर रहे थे और देवकी की छाती सतप्त होकर स्नेह से दूध बहा रही था । अमुनेब महान् उत्सव की तरह दोनों पुत्रों को ही देखते थे । वे जानी आई हुई वृद्धता का त्याग कर मुक्त हो गये थे । राजा के अन्तपुर की रमणियाँ तथा नगर की ललनाय आस पाड-काड कर उनकी ओर अचिरन्त गति से देख रही थी ॥३९॥ ४१॥

स्त्रियो ने कहा—ममियो ! कृष्ण के मुखवमल का देखो । गजयुद्धजय प्रस्वेत-जल की वृद्धा से व्याप्त इनका मुख जैसे मुगोमित हो रहा है जैसे हिम-जल से सींचा हुआ विवस्त्रित कमल । इनका दग्गन करने आज जन्म सफल करो । त्रिलासिनिया ! इनके यौवन चिह्न 'प्रभुओं को दलन करने वाले भुजाओं तथा छाती को देखो । बाचाल मुष्टिन तथा चाणूर वज्रमद्र रा उपहास कर रहे हैं जरा देखो तो । ममियो ! चाणूर को देखो यह कृष्ण से लड़ने जा रहा है । क्या यहाँ न्याय करने वाले बद्ध लोग नहीं हैं ? वहाँ यौवन को प्राप्त करते हुए ये मुगोमल-तनु कृष्ण और वहाँ यह वज्र के गमान कठोर तथा मन्त्रावध महामुर ? रममुनि भ वे दोनों नवयुवक सुकुमार हैं और चाणूर प्रमृति दीय पहलवान अत्यन्त दारुण है । यद्यपि परीक्षा का यह महान् अयाय है जो य वाच्य तथा वगै वानों को रडा रहे हैं ॥४२॥ ४९॥

व्यास उवाच

इत्थं पुरस्त्रोलोकस्य ब्रतदत्तवाल्यन्भुवम् । ववर्ष हर्षोत्कर्षं च जनस्य भगवान्हरिः ॥५०॥
 बलभद्रोऽपि चाऽऽस्फोटय धवलम् ललितं यदा । पदे पदे तदा भूमिर्न शीर्णा यत्तदद्भुतम् ॥५१॥
 चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः । निपुणकुशलो दैत्यो बलदेवेन मुष्टिकः ॥५२॥
 सन्निपातावधूतश्च चाणूरेण समं हरिः । क्षेपणंमुष्टिभिश्चैव कीलीवञ्चनिपातनैः ॥५३॥
 पादोद्धूतः प्रमृष्टाभिस्तयोर्युद्धमभून्महत् । अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुबाष्पम् ॥५४॥
 स्वबलप्राणनिष्पाद्यं समाजोत्सवसन्निधौ । याधद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह ॥५५॥
 प्राणहानिमवापाम्यां तावत्तावन्न बाण्यधम् । कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः ॥५६॥
 खेदाध्वालयता कोपाग्निजशेषकरे करम् । बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्या चाणूरकृष्णयोः ॥५७॥
 वारयामास तूर्धाणि कंसः कोपपरायणः । मृदङ्गादिषु बाधेषु प्रतिपिड्डेषु तत्क्षणात् ॥५८॥
 असंगतान्यवाद्यन्तु दैवतूर्थाभ्यनेकजः । जय गोविन्द चाणूर जहि' केशव दानवम् ॥५९॥
 इत्यर्क्षधिगता देवास्तुष्टुध्वजते प्रहृषिताः । चाणूरेण चिर कालं शिरसा मधुसूदनः ॥६०॥
 उत्पाटय भ्रामयामास सङ्घाथ वृत्तोद्यमः । भ्रामयिषा' शतगुण दैत्यमरश्चमिश्रजित् ॥६१॥
 भूमावास्फोटयामास भगने गतजीवितम् । भूमावास्फोटितरतेन चाणूरः शतधा भवन् ॥६२॥

व्यास बोले—इस प्रकार नगर-नारियाँ पृथ्वी को काँपाती हुई बोल रही थी और भगवान् हरि लोगो को प्रमुदित कर रहे थे। जब बलभद्र भी ताल ठोक कर लटकारते लग तब पक्ष्मण पर पृथ्वी जो नहीं पटी, वह महान् आश्चर्य समझिये। तब चाणूर के साथ अमितपराक्रमी कृष्ण और युद्धकुशल मुष्टिक के साथ बलदेव लड़ने लगे। चाणूर के साथ कृष्ण टकराकर आक्रमण कर पक्कर बख के समान कठोर मुक्के मारकर और पैर चलाकर महान् युद्ध करने लगे। चाणूर और कृष्ण का युद्ध बिना अस्त्र-शस्त्र के भी महामयकर था ॥५०-५४॥ समाजोत्सव में अपने बल तथा प्राणों की आहुति देती थी। जब-जब चाणूर हरि से मित्रता था तब-तब उसे प्राणहानि भालूम पड़ती थी। कोई वाद्य नहीं दीनता था। जगन्मय कृष्ण भी लीलापूर्वक उससे लड़ते थे और कभी खेद से तो कभी क्रोध से उससे हाथ की अपन हाथ म पकड़ लेत थे। चाणूर के बलक्षय और कृष्ण की वीर्यवृद्धि की देखकर कोपपरायण कंस ने तत्क्षण तुरही, मृदंग आदि बाजा का बोलना रोक्वा दिया। परन्तु आकाश में देवताओं की अनेक तुरहियाँ बोलने लगीं—‘गोविन्द की जय हो। केशव ! दानव को मारिये।’ इस प्रकार अन्तर्हित हुए देवगण हृष्यपूर्वक कृष्ण की स्तुति करने लगे। चाणूर न साथ बिरवाल तक श्रीदा करने मधुसूदन उसने वष से निमित्त उसे उठाकर घुमान लगे। अनुविजयी कृष्ण ने दैत्य पहलवान को सी वार घुमान आकाश में ही उठे निष्पाण कर भूमि पर गिरा दिया। घरती पर मिरते ही चाणूर के सी टुकड़े हो गये ॥५५-६२॥ तब चले, चले-संलग्न, के पृथ्वी, पर कीलक ही, कीलक कर दिया, उल, मयम मयहृत्ती, बलदेव भी,

रक्तस्त्रायमहापङ्कजा चकार स तदा भुवम । बलदेवस्तु' तत्काल मुष्टिकेन महाबल ॥६३॥
 युयुधे दत्तमल्लेन चाणूरेण यथा हरि । सोऽप्यन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥६४॥
 पातयित्वा घरापृष्ठे निष्पिपेय गतायुपम । कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम ॥६५॥
 वाममुष्टिप्रहारण पातयामास भूतल । चाणूरे निहत मल्ल मुष्टिके च निपातिते ॥६६॥
 नोत क्षय तोशलक सर्वे मल्ला प्रबुद्धवु । धवलगतुस्तदा रङ्ग कृष्णसकणायुभौ ॥६७॥
 समानवयसो गोपाबलादावृष्य हृषितौ । कसोऽपि कोपरस्तास 'प्राहोर्चव्यायितान्नरान' ॥६८॥
 'गोपाबलौ' 'समाजोधाभिः क्रम्यता बलादित । मन्दोऽपि गृह्यता पापो निगडैराशु ग्रथ्यताम ॥६९॥
 अबुद्धाह्णेण वण्डन वसुदयोऽपि 'बध्यताम । बलन्ति गोपा कृष्णेन ये चमे सहिता पुन' ॥७०॥
 गावो ह्रियन्तामपा च यच्चास्ति वसु किंचन । एवमाज्ञापयत स प्रहस्य मधुसूदन ॥७१॥
 उत्पत्त्याऽऽरुह्य तन्मञ्च कस जघाह 'वगित । केशोत्पाकुट्य विमर्शकरीटश्चर्मतले ॥७२॥
 स कस पातयामास तस्योपरि क्षपात च । नि शयजगदाधारगुह्या पतसोपरि ॥७३॥
 कृष्णन त्वाजित प्रण द्वादसेनाऽजो नृप । रूस्य वश्यु तदा गृहीत्वा मधुसूदन ॥७४॥

मुष्टिके के साथ बैसै ही उठ रहे थे जैसे दैत्य-मल्ल चाणूर के साथ हरि । उन्होंने भी उसने मस्तक पर मुष्टिप्रहार कर पुनः स उसकी छाती पर मारा । इस प्रकार गतजीवित कर घराशायी करने उसे पीस दिया । कृष्ण ने दूसरी बार तागल्ल नामक महाबली मल्लराज को वाम मुष्टिप्रहार से घरागायी किया । पहलवान चाणूर मुष्टिके तथा तागल्ल के निहत हो जाल पर लगे मल्ल माग गये । तब जलाहक म कृष्ण और राम हुए न अपन समवयस गापा को हठपूर्वक खींच कर उनका साथ लपटन लगे । वसु जोय स आग-बबूला हार, अपन अनुचर स कहन लगा— इन क्षात्र गोपा का बगल समाज स निरास दा पापी नद को भी कैद कर लो और बुद्धा को न दन माय्य दण्ड स धनुष का बंध करो । कृष्ण के साथ जो गण लपट रहे हैं उनको पकड़ आ और उनका घन तथा गापा का अट्टारण कर ला ॥६९॥ ७०॥ इस प्रकार उसका आगा गुनवर मधुसूदन हसन लगे और तक्षण छलाय मार कर मन्त्र पर पड़ गये । वहाँ उन्मान कम के बगल का पकड़ लिया । उसका मुठुट घरता पर गिर पड़े । तत्पश्चात् उत परता पर गिरा कर भगवान् भा उगा उगा गिर पड़े । आग जगत् का आधार कृष्ण के गिरन स उग्रमन का पुत्र निर्भीक हो गया । तब मृता वग के बगल का पकड़ कर मर्यादा कृष्ण घसीटत हुए उग रथमय के मध्य में आये । यद्यपि वसु का गरार बहुत भारी था तो भी महामा कृष्ण वग से उस घसीट ल गये । कृष्ण द्वारा वसु के पकड़ जान पर उत्तरा भार्द

१४ रा ००कोर्जित० । २४ ०वसो गो० । ३४ ०ध्यावृत्तान्० । ४४ ०तान्तरा० । ५४ ०पारिमो
 द्वा रत्नानिपटराभायिह । ६० । ६४ ०भी दुनवर निपटराभायिह । अत्राहं । ७४ ०यथायाम् । ८४ पुन ।
 ९४ वयस । १४ वेगा ।

चक्षुषं देहं कसस्य रङ्गमध्ये महाबल । गौरवेणातिमहता परिपातेन' कृत्यता ॥७५॥
 कृता कसस्य देहेन वेगितेन महात्मना । कसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्रमताम्यागतो रूपा ॥७६॥
 सुनामा बलभद्रेण लीलयेव निपातित । ततो हाहाकृत सर्वमासोत्तद्रङ्गमण्डलम् ॥७७॥
 अवज्ञया' हत दृष्ट्वा कृष्णेन मयुरेश्वरम् । कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरम् ॥७८॥
 देवव्याश्च महापादुर्बलदेवसहायवान् । उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम् ॥
 स्मृतजन्मोस्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥७९॥

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवानां प्रवर प्रभो । तयाऽऽवयो प्रसादेन कृताभ्युद्धारः केशव ॥८०॥
 आराधितो' यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम । दुर्वृत्तनिघनार्थाय तेन न पाथितं कुलम् ॥८१॥
 त्वमन्त सर्वभूतानां सर्वभूतेष्ववस्थित । वर्तते च समस्तारमस्त्वत्तो भूतमविध्यती ॥८२॥
 यो त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाध्युत । त्वमेव यज्ञो' यज्ञा' च यज्ञानां परमेश्वर ॥८३॥
 सापह्नुष मम मनो यदेतत्त्वयि जायते । देवव्याश्चाऽऽमजप्रोत्था तदत्यन्तविडम्बना ॥८४॥
 त्वं वर्ता सर्वभूतानामनादिनिघनो भवान् । क्व च मे मानुषस्येषा जिह्वा पुत्रेति यदपति ॥८५॥
 जगदेतज्जगन्नाम सभूतमखिल यत' । कया युक्त्या विना भाया सोऽस्मत्त सभविष्यति ॥८६॥

सुनामा श्रीप करते हुए वहाँ आया किन्तु बलभद्र ने सहज ही म उठे मार डाला । तब सम्पूर्ण रंग भूमि में हाहाकार मच गया । किरदारपूर्वक वसु को मारकर महाबली बन्धेव सहित कृष्ण शीघ्र ही जाकर वसुदेव तथा देवकी के करणा पर गिर । दबका तथा वसुदेव जनार्दन को उठाकर जमनांगन बचना का स्मरण कर उन्हा को प्रणाम करते हुए छोड़े हुए ॥७१-७९॥

वसुदेव बोले—दबदबत । दबा म अष्ट । प्रभो । प्रसन्न होइय । केशव । आपन कृपा करने हम दोनों का उद्धार कर दिया । मेरी आराधना करने पर दुष्टचारिण के बंध के निमित्त जा आपने मेरे पर म अवतार लिया वसंत हमारा कुल पवित्र हो गया । आप समस्त भूता व अन्तःकरण म वास करने हैं । आप अति भूतो म अवस्थित हैं । अखिलात्मन् । आप ही से भूत भविष्य वतमान उत्पन्न हुए हैं । अचिन्त्य । निर्गलदेवमय । अजन्म । यम म आप ही की उपासना की जाता है । परमेश्वर । आप ही यम तथा यज्ञवर्ता हैं । मरा और दबी का मन जा पुत्र-पुत्र-पुत्र आप म लगता है वह विडम्बनाभाष है । आप समस्त भूता के वर्ता तथा जम मरण स रटित हैं । म मनुष्य हैं । मेरी जिह्वा पुत्र कैं कही ? जगन्नाथ । यह सम्पूर्ण जगन् जिनम उत्पन्न हुआ है व विना भाया के किम प्रता ? हमस उत्पन्न होय ? जिनम स्थावर-जगम रूप निर्गल बिन्व प्रतिष्ठित है वे रंग मनुष्य स उत्पन्न

१९ परिव्रासन । २० परिवानेन । २१ वनयाऽऽह । २२ स ० नाऽपि मयः । २३ यम । २४ स मया । २५ मरेत् । २६ ० यो सादुस्य सः ।

यस्मिन्प्रतिष्ठित सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम् ॥८७॥
 स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमशावतारकरणं ममासि पुत्र
 आब्रह्मपादपमय जगदोश सर्वं, चित्ते विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन् ॥८८॥
 मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कसाद्भय कृतवता तु मयाऽतितीव्रम्
 नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धिं गतोऽसि मम चैव गवामधोश ॥८९॥
 कर्माणि रुद्रमरुदशिवशक्ततूना, साध्यानि यानि न भवन्ति निरोक्षितानि
 त्वं विष्णुरीशजगतामुपकारहेतोः, प्राप्तोऽसि न परिगत परमो विमोहः ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आविर्वाहो बालचरिते कसवधकथन नाम

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकीवसुदेवाभ्या सह कृष्णसंवाद

व्यास उवाच

सौ समुत्पन्नयिज्ञानी भगवत्कर्मदर्शनात् । देवकीवसुदेवौ तु बुद्ध्या माया पुनर्हरिः ॥१॥

होकर गोव म सोयने ? ॥८० ८७॥ परमेश्वर ! वह आप प्रसन्न होइये विश्व की रक्षा कीजिये। आप अग से अवतीर्ण हुए हैं मेरे पुत्र नहीं हैं। जगदीश ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ पयन्त सब आप ही हैं। परमेश्वरात्मन् ! क्यो चित्त को मोह म डाल रहे हैं ? माया-मोहित चक्षु से मैंने आपको पुत्र रूप म देखा। फिर कस के अत्यन्त भय से मैंने आपको गोकुल पहुँचाया। गवेन्द्र ! शत्रु-भय से मैं व्याकुल था। आपने मेरा उद्धार किया। जो काल रुद्र मरत् अश्विन तथा इंद्र के साथ नहीं हैं जिन्हें वे देख भी नहीं सकते उन्हीं कार्यों को आपने सत्कार के कल्याण के लिये किया। ईश ! आप विष्णु हैं। हम महामोह म प्राप्त हैं ॥८८ ९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म बालचरित-कथन प्रसंग म कसवध-कथन नामक

एव सौ तिरानवेर्वा अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

व्यास बोले—भगवान् कीजिया देखने स दबकी तथा वसुदेव को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यह देखकर यादवों को मोह म डालने के लिये हरि न पुन अपनी वैष्णवी माया को पैला दिया और कहा— तात ! अम्ब ! कस से

मोहाय 'यदुचक्रस्य विततान् य वंष्णवीम् । उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु' ॥२॥
 भवन्तो' कंसभीतेन' दृष्टौ संकर्षणेन च । कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ॥३॥
 स' वृथा क्लेशकारी वं साधूनामुपजायते । गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ॥४॥
 कुर्वतः सफलं जन्म देहिनस्तात जायते । तत्सन्तव्यमिव सर्वमतिक्रमकृतं पितः ॥
 'कंसवीर्यप्रतापाम्पामावयोः परवश्ययोः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽप्य प्रणम्योभौ यदुबुद्धाननुक्रमात् । पावानतिभिः सन्नेहं चक्रतुः पौरमानसम् ॥६॥
 कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्यं हतं भुवि । बिलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुता' ॥७॥
 बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः । ताः समाश्वासयामास स्वयमप्यविलेक्षणः ॥८॥
 उपसेनं ततो बन्धन्मुमोच मधुसूदनः । अम्यपिञ्चत्तयर्वनं निजराज्ये हतात्मजम् ॥९॥
 राजपेडंभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः । चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः ॥१०॥
 कृतौर्ध्वदैहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः । उवाचाऽऽज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्कया ॥११॥
 यथातिशापाद्वंशोऽयमराग्याहोऽपि सांप्रतम् । ममि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपे ॥१२॥
 इत्युक्त्वा चोपसेनं तु वामुं प्रतिजगाद ह । नृवाचा चैव भगवान्कोशयः कार्यमानुषः ॥१३॥

इरे हुए बलराम का तथा मुझे चिरकाल से आपके दर्शन करने की उत्कण्ठा थी । सो आज पूरी हुई । जिसका मनय माता-पिता के पूजन किये बिना ही बटता है, वह व्यर्थ है, केवल सामुओं को क्लेश देने के लिये वह उत्पन्न होता है । तात ! गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले भनृष्य का जन्म सफल है । पिता जी ! अतः आप क्षमा करेंगे । कंस के पराजय तथा प्रताप से पराधीन होकर हम दोनों ने इन राव का अतिक्रमण किया ॥१-५॥

व्यास बोले—इतना कहकर दोनों ने कमलश यदुवशी बूढ़ों ने शरण धूकर प्रणाम किया । पुरवासियों के मन में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह हो गया । भूमि पर निहत्त कंस को देखकर कंस की पत्नियाँ तथा मातायें शोकादुर होकर विलाप करने लगीं । परभासाप बरती हुई उन अस्वस्थ अवस्थाओं को स्वयम् आँखों से धाँसू बहाते हुए कृष्ण ने बहुत प्रकार से आश्वासन दिया । तब मधुसूदन ने उपसेन को बन्धन से उन्मुक्त किया और पुत्र के भर जाने पर अपने राज्य में उन्हीं को अभिषिक्त किया । कृष्ण द्वारा राज्य में अभिषिक्त होकर उपसेन ने पुत्र के तथा वहाँ जितने मारे गये थे, उन सबके धाद किये । और्ध्वदैहिक जिया करने के बाद उपसेन ने सिंहासनासीन होने पर कृष्ण ने उनसे कहा—'प्रभो ! आप नि सकोच मुझे आज्ञा कीजिये । ययाति के शाप के कारण यदुवशी तो राजा हो नहीं सकते । फिर भी मेरे जैसे मृत्यु के रहते आप देवराजों का भी आज्ञा दीजिये । राजाओं की तो बात ही क्या ।' उपसेन से इतना कहकर वामर्य मनुष्यशरीरधारी भगवान् नेशव ने वामुं से मनुष्यवाणी भीही कहा ॥६-१३॥

१. वसुदेवस्य । २. क. ग. मे । ३. भवतो । ४. न न हत सेवन गया । कु० । ५. तु दुस्त्ययो-
 अर्थं ता० । ६. ० कीर्वाप्रवसतोराव० ।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव । दोषतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा ॥१४॥
कृष्णो ब्रवीति राजाहंमेतद्रत्नमनुत्तमम् । सुधर्माख्या सभा युवतमस्यां यदुभिरासितुम् ॥१५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् । ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरंदरः ॥१६॥
वायुना चाऽऽहृता दिव्या ते सभा यदुपुंगवाः । बभूवुः सर्वरत्नादृषां गोविन्दभुजसंभवाः ॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि । शिष्याचार्यनमं वीरौ व्यापयन्तौ यद्वत्समौ ॥१८॥
ततः सादीपनि काश्यपमवन्तिपुरवासिनम् । अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेवजनार्दनौ ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरी हि तौ । दर्शयाचक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंग्रहमधीयताम् । अहोरात्रंश्चतुःपट्पथा तदद्भुतमभूद्विजाः ॥२१॥
सादीपनिरसंभाय्य तयोः कर्मातिमानुपम् । विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तां चन्द्रदिवाकरौ ॥२२॥
अस्त्रप्राममशेषं च प्रोवतमायवाप्य तौ । ऊचतुर्नयितां या ते वातप्या गुरुदक्षिणा ॥२३॥
सोऽप्यतीन्द्रियमालोच्य तयोः कर्म महामतिः । अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे रुवणार्णवे ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—जाओ और इन्द्र से सर्वपूर्वक कहो—‘आप उग्रसेन को सुधर्मा नामक देवसभा दे दीजिये ।
कृष्ण कहते हैं कि यह उत्तम रत्न राजा के योग्य है । सुधर्मा नामक सभा मे यादवों का बैठना उचित है ॥१४-१५॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त पवन ने इन्द्र से जाकर सब समाचार कह दिये । उन्होंने भी वायु को सुधर्मा नामक सभा दे दी । वायु देवसभा को ले आये । गोविन्द के भुजबल से यदुपुंगव अखिल रत्नों से सुसम्पन्न देवसभा का उपयोग करने लगे । निखिल विज्ञान को जानने वाले, सर्वज्ञानमय तथा वीर यादवश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम शिष्य तथा आचार्य के श्रम को विख्यात करने के निमित्त अवन्तिपुरवासी सादीपनि से अस्त्र विद्या सीखने के लिये गये । उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर के गुरुसेवापरायण होकर दोनों वीर लोगों को आचार दिखलाने लगे । द्विज-गण ! यह आश्चर्य की बात है कि चौंसठ अहोरात्र मे ही उन्होंने संग्रह तथा रहस्य सहित धनुर्वेद को सीख लिया ॥१६-२१॥ सादीपनि ने उन दोनों के असंग्रह तथा लोकोत्तर कर्म को देखकर उन्हें सूर्य तथा चन्द्रमा समझा । अस्त्र समूह का प्रयोग तो बताते ही उन्होंने सीख लिया । तब उन्होंने गुरु से कहा—‘आप दक्षिणा के लिये हमें आदेश करें ।’ महानुद्दिमान् सादीपनि ने भी उनके अतीन्द्रिय कर्म को देखकर प्रमास नामक क्षार समुद्र मे मरे हुए अपने पुत्र के लिये याचना की । तब अस्त्र लेकर वे दोनों रुवण समुद्र को गये और समुद्र से कहा—‘गुरु-पुत्र को दे दो । द्विजश्रेष्ठो ।’

१क वाहिता । २क ख ता । ३क यदुवन्दना । ४क शिष्टाचारक्याचार्यो व्या० ।
५क शम्भार्य । ६ शिष्यार्य । ६ख ०णा । असाधारणमा० ।

गृहीतास्तौ ततस्तौ तु गत्वा त लवणोदधिम् । ऊचतुश्च गुरो पुत्रो दीयतामिति सागरम् ॥२५॥
 वृताञ्जलिपुटदश्चाब्धिस्तावथ द्विजसत्तमा । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति ॥२६॥
 दंत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूप स बालकम् । जप्राह सोऽस्ति सलिले मर्मवासुरसूदन ॥२७॥
 इत्युक्तोऽन्तर्जल गत्वा हत्वा पञ्चजनं तथा । कृष्णो जप्राह तस्यास्थिप्रभव शङ्खमुत्तमम् ॥२८॥
 यस्य भादेन दैत्याना बलहानि प्रजायते । देवाना वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च सक्षयम् ॥२९॥
 त पाञ्चजन्यमापूर्वं गत्वा धमपुरीं हरि । बलदेवश्च बलवान्जित्वा वैयस्वत धमम् ॥३०॥
 त बाल यातनास्य यथापूर्वंशरीरिणम् । पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना धर ॥३१॥
 मयूरा च पुन प्राप्तावुप्रसेनेन पालिताम् । प्रहृष्टपुरयस्त्रीकाबुभौ रामजनार्दनौ ॥३२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिवाहो बालचरिते चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९४॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासधेन सह रामजनार्दनयुद्धवर्णनम्

ध्यास उवाच

जरासन्धसुते कस उपयेमे महाबल । अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोभंतृह्ण हरिम् ॥१॥

समुद्र ने हाथ जोड़कर कहा—असुरसूदन ! सादीपनि के पुत्र का अपहरण मैंने नहीं किया है बल्कि शख का रूप धारण कर पञ्चजन नामक राक्षस मेरे जल में रहता है। उसी ने बालक को पकड़ रखा है। यह सुनकर कृष्ण ने जल के भीतर घुसकर पञ्चजन को मारकर उसकी हड्डियों के बने उत्तम शख को ले लिया जिसके शङ्ख में दैत्यों की बलहानि देवा की तेजोवृद्धि तथा अयम का क्षय होता है। उस पाञ्चजय नामक शख को बजाते हुए कृष्ण और बलदेव धमपुरी को गए। कृष्ण तथा बलवान् बलराम ने वहाँ वैयस्वत धम को भीत कर यातना भोगते हुए उस बालक को यथापूर्वं शरीर में प्राप्त करके पिता (सादीपनि) को दे दिया। पुन राम और जनार्दन उपसेन द्वारा प्रतिपालित मयूरा पुत्री में आकर नर-नारियों को प्रमुदित करते लगे। ॥२२ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुरुष में बालचरित-अथन प्रसंग में एक सी चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥१९४॥

अध्याय १६५

जरासध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

ध्यास बोले—जरासध को अस्ति और प्राप्ति नामक दो बन्ध्याओं के साथ कस का विवाह हुआ था।

१५ तु ऊचतुश्च महोदधिम् । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति । ६० । २४ बहुरूपी । ३१ ० न च तम् । ४० । ४४ ० स्वाद्वयम् ।

महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली। हन्तुमम्यग्रयौ कोपाञ्जरासंधः सयादवम् ॥२॥
 उपेत्य मयुरां सोऽय रुरोध मगधेदवरः। अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्बृत् ॥३॥
 निष्कम्पाल्पपरीवाराबुभौ रामजनार्दनौ। युयुधाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकं ॥४॥
 ततो चलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः। आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तमा ॥५॥
 अनन्तरं चक्रशाङ्गं तूष्णो चाप्यक्षयौ शरैः। आकाशादागतौ धीरौ तदा कौमोदकी गदा ॥६॥
 हलं च बलभद्रस्य गगनादागमस्करम्। बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मृशलं तथा ॥७॥
 ततो युद्धे पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम्। पुरीं विवशतुर्वीराबुभौ रामजनार्दनौ ॥८॥
 जिते तस्मिन्सुबुद्धौ जरासंधे द्विजोत्तमाः। जीवमाने गते तत्र कृष्णो मेने न तं जितम् ॥९॥
 पुनरप्याजगामाप जरासंधो बलान्वितः। जितश्च रामकृष्णाम्भ्यामपकृत्य द्विजोत्तमा ॥१०॥
 दश चाट्टी च संप्रामानेबमत्यन्तदुर्बलः। यदुभिमर्गयो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमः ॥११॥
 सर्वेऽप्येव च युद्धेषु यदुभिः ॥ पराजितः। अपकान्तौ जरासंधः स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥१२॥
 तद्बलं यादवाना धै रक्षितं यदनेकशः। तत्तु सनिधिमाहात्म्यं विष्णोरशस्य धनिणः ॥१३॥
 मनुष्यधर्मशीलस्य लोला सा जगतः पते। अस्त्राप्यनेकरूपाणि यदरातिपु मुञ्चति ॥१४॥
 मनसंब जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः। तस्यारिपक्षक्षणे कियानुद्यमवित्तरः ॥१५॥

कृष्ण द्वारा वस के निहत् हो जाने पर बनी मगधेदवर जरासन्ध कोच से विचाल सेना को लेकर यादव सहित कृष्ण को मारने के लिये आया। मयुरा पहुँच कर मगधपति ने तेईस अक्षौहिणी सेनाओं से उसको घेर लिया। घोड़ों-सी सेना लेकर बलशाली राम-जनार्दन निकल आये और जरासन्ध के सैनिकों के साथ जुझ पड़े। मुनिप्रेष्टा! पहिले तो महाबली बलराम तथा कृष्ण ने प्राचीन आयुधों का ग्रहण किया, फिर बाद में आकाश से समागत चक्र, शाङ्ख नामक धनुष बाणा से परिपूर्ण अक्षय तरवस तथा कौमोदकी नामक गदा को ग्रहण किया। बलभद्र का हल भी आकाश से हाथ में आ गया। विप्रगण! बलराम का प्रिय सुनन्द नामक मुशल भी उनके पास आ गया। तब युद्ध में सेना सहित मगधेदवर का जीतकर दोनों धीर राम और कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए। विप्रवर! दुराधारी जरासन्ध के जीत लिये जाने पर तथा उगने जीवित रहने जाने पर कृष्ण ने उसको पराजित न माना। पुन बनी जरासन्ध आया और बलराम तथा कृष्ण ने द्वारा अपकार करने जीता गया ॥१-१०॥ द्विजप्रेष्टो! इस प्रकार अग्र्यन्त दुर्बल राजा जरासन्ध ने अट्टारह बार कृष्ण आदि यादवों से युद्ध किया। शत्रुर्धे युद्ध में यदुओं से पराजित होकर अन्य सेनाओं के साथ वह भाग जाता था। यादवों की अनेक सेनाओं की जो रक्षा हो जाती थी, वह तो विष्णु के अग्रमूर्त कृष्ण के सामीप्य का माहात्म्य था। मनुष्यधर्मशीलनी जगत्सिने जो रात्रियों के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया, वह तो उनकी लीला थी। जो केवल मन में ममार की सृष्टि का महार कर देने हैं, उन्हें रात्रियों के नाश करने में

तयाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम् । कुर्वन्बलवतां संधिं हीनपुंश्च करोत्यसौ ॥१६॥
सामं चोपप्रदानं च तया भेदं च दर्शयन् । करोति दण्डपातं च बवचिदेव पलायनम् ॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते । लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः संप्रवर्तते ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवनोपाख्यानम्

अ्यास उवाच

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो [ज] श्यालः पण्ड [ष] इत्युक्तवान्द्विजाः । यदूनां सनिधौ सर्वे जहसुर्वाविधास्तथा ॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापयमेत्य सः । सुतमिच्छस्तपस्तेपे यदुधकभयावहम् ॥२॥
'आराधयन्महादेवं' 'सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् । इदौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हरः ॥३॥
'संभावयामास स त यवनेशो' ह्यनात्मजम् । 'तद्योपित्संगमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलितप्रभः' ॥४॥

कितना उद्यम करना पड़ता ? तो श्री मनुष्य-धर्म वा जवलम्बन करते हुए उन्होंने जरासन्ध के साथ युद्ध किया । वे साम, दान, भेद, दण्ड तथा बर्ही पलायन भी करते थे । मनुष्यों जैसी चेष्टा करते हुए जगत्पति की लीला स्वच्छन्द तथा प्रवृत्त होती है ॥११११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन प्रसंग मे एक सौ पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

अ्यास बोले—द्वेजगण ! (एक कार) समा मे यादवों ने द्विज गार्ग्य की साले, नपुंसक आदि कहकर गालियाँ दी । तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षिणापय में आकर यदुवसियों के लिए मयावह पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से तप करने लगे । उन्होंने शिव की आराधना करते हुए लोहे का चूर्ण मगध लिया । बारहवें वर्ष में शक्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया । तब वे पुत्र विहीन यवनेश (म्लेच्छों के राजा) से आकर मिले । यवनेश ने उनका सम्मान किया । अनन्तर उन्होंने उसकी स्त्री से संयम करके भार्ये के समान नान्दि वाले पुत्र को उत्पन्न किया । उसका नाम कालयवन

१५. ०४ । शालोऽयं द्विजशार्दूलं पण्डित्यु० । ३३ ०देवा स्थिता । त० । ३३ ०त्रमुखाव० । ४४ ०देवमोजस्तीक्ष्णममृतदा । द० । ५६. सोऽयं प्रत्यक्षता गत । द० । ६३ समोत्रया० । ७३ ०शो जना० । ८३ ०मातस्य । ९३ ०दसमञ्जस । त ।

त कालयवन नाम राज्ञे स्वे यवनेश्वर । अभिषिच्य वन यातो वज्राग्रकठिनोरसम् ॥५॥
 स तु दीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान । पप्रच्छ नारदश्चास्मं कथयामास यादवान् ॥६॥
 म्लेच्छकोटिसहस्राणा सहस्रं सोऽपि सवत् । गजाश्वरयसपन्नंश्चकार परमोद्यमम् ॥७॥
 प्रययौ चाऽस्तव(प)ञ्चिदं प्रयाणं स दिने दिने । यादवान्प्रति सामर्थ्यं मुनयो मथुरा पुरीम् ॥८॥
 कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादव 'बलम्' । यवनेन समालोक्य मागध' सप्रयास्यति ॥९॥
 मागधस्य धल क्षोण स कालयवनो बली । हन्ता तदिदमायात यदूना द्यसन द्विधा ॥१०॥
 तस्माददुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम् । स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयु किं पुनर्दृष्टिमायदा ॥११॥
 मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितोऽपि वा । यादवाभिभव दुष्टा मा कुर्वन्व(मुंवे) रिणोर्धक्म ॥१२॥
 इति सचिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोवधिम् । ययाचं द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३॥
 महोद्याना' महावप्रा तडागशतशोभिताम् । प्रकारशतसंवापामि द्रव्येयामरावतीम् ॥१४॥
 मथुरावासिन लोक तत्राऽ नये जगार्दम् । अस्मिन् वासुदेवे' मथुरा च रव्य दयी ॥१५॥
 बहिरायासित सैये मथुराया निरायुध । निजगाम स गोविन्दो द्वादश यवनैश्च तम् ॥१६॥
 स ज्ञात्वा वासुदेव वाहुप्रहरणो नृप । अनुयातो महायोनिर्धत्तोभि प्रायते त य ॥१७॥
 तेनानुयात कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम् । यत्र जते महादीर्यो मुचुकुदो नरेश्वर ॥१८॥

पडा । वज्र के अग्रभाग के समान कठोर छाती वाले कालयवन को राज्य में अभिषिक्त करके यवनेश्वर वन को चले गये ॥१५॥ बल के मद से उन्मत्त कालयवन बली राजाओं के बारे में पूछ-ताछ करने लगा । नारद ने उससे यादवों का नाम बताना दिया । तब वह हाथी घोड़े से सुसज्ज हुआगे करीब सेनाओं से युक्त होकर यादवों के प्रति कोप करते हुए मथुरा के लिये प्रस्थित हुआ । प्रयाण करती हुई उसकी सेनाओं के चरण रज से सूय आ-छादित हो गये । कृष्ण भी सोचने लगे—यवन द्वारा यादवों के बल का क्षय होते देखकर जरासा घट पड़गा । मगधस्य की क्षीय सेना तथा बली कालयवन दोनों लड़गे । तब तो यादवों के लिये दो सकट उपस्थित हो जायेंगे । इसलिये यदुवर्गियों के निमित्त मैं अजैय दुग की रचना करूंगा जहाँ से स्त्रिया भी युद्ध कर सकेंगी । युष्णि और यादवों की तो बात ही क्या ? ॥६॥ ११॥ एस। सोचकर गोविन्द ने समुद्र से कोसी लवे-चौडै स्थान की य चन की ओर वहाँ द्वारका पुरी का निर्माण किया । उसने बडे-बड उद्यान तथा मिट्टी के टीले से सैकड़ों तालाब से और सैकड़ों चहा।रदीवारियों से आवृत होकर बहु नगरी इन्द्रावती की शोभा प्राप्त कर ली थी । जगदान ने मथुरावासियों को लाकर वहाँ रख दिया । कालयवन के मथुरा पहुँचने पर वे स्वयं वहाँ चले गये ॥१२॥ १५॥ मथुरा के बाहर ही सेनाओं को रखकर गोविन्द नि दायत्र होकर जाने लगे । यवन ने उनको देख लिया । तब कृष्ण को पहचान कर गुजाओं से प्रहार करने वाले राजा ने उनका पीछा किया जिहे महायोर्गियों के चित भी नहीं प्राप्त करते हैं । कृष्ण आगे आने मागते हुए महागुहा में प्रविष्ट होकर वहाँ पहुँच गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुद शयन कर रहे थे । दुर्मति यवन ने भी गुफा में पैठ कर

१ख ०म चक स य० । २ख वज्रवत्कठि० । ३ख स ०हृत्स्वापि । ४ख कुलम् । ५क ०म । पवते नगरे रम्ये मागधस्य भविष्यति । ६ग ०गधस्य भविष्यति । न मा० । ७ख त्वाऽऽ० सुसमा० । ८ख बहूना । ९ख भद्रोन्नता । १०ख क द्वारकामानपद्वरि । उमत्त का० । ११ख ०वनी मथुराया स्व० ।

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागतं नरम् । पादेन ताडयामास कृष्णं मत्वा तं दुर्मति ॥१९॥
 दृष्ट्वा तत्रैव तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना । तत्क्रोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२०॥
 ॥ हि देवासुरे युद्धे मत्वा जित्वा महासुरान् । निद्रार्तं सुमहाकालं निद्रां वयं वरं सुरान् ॥२१॥
 प्रोक्तश्च देवं ससुप्तं यस्त्वामुत्पापयिष्यति । देहेज्जनाग्निना सद्यः स तु भस्मीभविष्यति ॥२२॥
 एव दग्ध्या स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् । कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनं कुले ॥२३॥
 वसुदेवस्य तनयो यदुवशसामुद्भव । मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा बृहदार्ग्यदव स्मरन् ॥२४॥
 सस्मृत्यं प्रणिपत्येनं सर्वं सर्वेश्वर हरिम् । प्राह ज्ञातो भयान्निष्णोऽरिस्तस्य परमेश्वर ॥२५॥
 पुरा गातव्यं कथितमप्यर्थावशतिमे युगे । द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति ॥२६॥
 स त्वं प्राप्तो न सदेहो मर्त्यानामुपकारकृत् । तथा हि सुमहत्तेजो मालं सोऽमुहं तव ॥२७॥
 तथा हि सुमहाम्भोवध्वनिधोरत्तरं तत । वाच्यं तमिति होवाच मुष्मत्पादसुलालितम् ॥२८॥
 देवासुरे महायुद्धे दैत्याश्च सुमहाभटा । न शक्नुस्ते महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम् ॥२९॥
 ससारपतितत्पैको जन्तोस्तस्य क्षरणं परम् । सप्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हरि ममाशुभम् ॥३०॥
 त्वं पयोनिधय शैल सरितश्च वानि च । मेदिनी गणनं वायुरापोऽग्निस्तस्य तथा पुमान् ॥३१॥

सोये हुए मनुष्य को देखकर उसे कृष्ण समझ कर पैर से मार दिया । मुनिवृन्द । मुचुकुन्द की दृष्टि पड़ते ही उनके श्रोत्र जप अग्नि से यवन तत्क्षण जलकर भस्मसात् हो गया ॥१९-२०॥ मुचुकुन्द देवासुर सप्राप्त म गये थे । वही उहनि असुरा जो ज तब निद्रा से पीडित होकर देवताओं से यही वरदान मागा था कि मैं चिरन्ता तक साया रहूँ । देवों ने उनका कहा था कि जा अग्नि सोये हुए तुमको उठावेगा वह देहोत्पन्न अग्नि से सद्यः भस्म हो जायगा । इस प्रकार उस पापी को जगकर मधुसूदन को देखकर उहाने पूछा—तुम क्यों हो ? कृष्ण ने उत्तर दिया । 'मेरी उत्पत्ति चन्द्रकु' म हुई है । मैं वसुदेव का पुत्र हूँ । यदुआ न वग म मैं उत्पन्न हुआ हूँ । यह सुनकर मुचुकुन्द मा गात्र के वचन का स्मरण करके सर्वेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए बहने लगे—मैंने आपको जान लिया । आप विष्णु के अंग स अवतार परमेश्वर हैं । पहिले माग्य ने कहा था कि अट्ठाईसव युग म द्वापर के अंत म यदुवग मे हरि का जन्म होगा । मनुष्या न उपकार करने वाले ब आप ही पधार हैं । मुझे इसमे तनिष भी सदेह नहीं है । मैं आपके सज को सहन करने म समर्थ नहीं हूँ । आपके गडासमुद्र के समान घोर वचन भी मुझ असह्य ही रहा है । देवासुर सप्राप्त म महावीर दैत्यगण भी आपके तेज को नहीं सह सके थे वही महान् तेज मुझ सह्य नहीं हो रहा है ॥२१-२९॥ ससार म पतित जीव के लिये आप ही एक ारण हैं । ारणागत की आति हरण करने वाले ! प्रसन्न होइये । मेरे अंगुन का नाग कीजिय । आप समुद्र पवत गनी बन पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि तथा पुरुष हैं । आप पुरुष

१ व घातयामास । २ क ंडवातयगनुस्म० । ३ रा गणैः । ४ अ ंहो यादवानुप० । ५ स ंनुमम पते० । ६ स वायुः पयोनिश्च त० । ७ छ ंनु । त्वयापि युगपत्सर्वं व्याप्त ज० ।

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पयत् । शब्दादिहीनमजरं वृद्धिर्वायविवर्जितम् ॥३२॥
 त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः । सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३३॥
 सरोसुषा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महोरुहाः । यच्च भूतं भविष्यद्वा किञ्चिदत्र घराचरे ॥३४॥
 अमृतं मूर्तमयवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा । तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तृनास्ति किञ्चित्त्वया विना ॥३५॥
 मया संसारचक्रेऽस्मिन्ममता भगवन्सदा । तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३६॥
 दुःखान्येव सुखानीति भृगतृष्णा जलाशयः । मया नाय गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३७॥
 राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तयाऽऽत्मजाः । भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥३८॥
 सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमय्यय । परिणामे च देवेश तापात्मकमभून्मम ॥३९॥
 देवलीकगतिं प्राप्तो नाय देवगणोऽपि हि । मत्तः साहाय्यकामोभूच्छाश्वतो कुत्र निर्वृतिः ॥४०॥
 त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम् । शाश्वतो प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४१॥
 त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजराविकान् । अवाप्य पापान्यश्नन्ति प्रेतराजाननन्तरा ॥४२॥
 ततः पादाशतैर्बद्धा नरकेष्वसिदारुणम् । प्राप्नुवन्ति महबुद्धं विश्वरूपनिधं तव ॥४३॥
 अहमत्पन्तविधयी मोहितस्तव मायया । भगवन्मायाधगतान्ते भ्रमामि परमेश्वर ॥४४॥

ऐ भी परे है । सब मे व्याप्त होकर आप स्थित हैं । आपका जन्म वैकल्पिक, शब्दादि से हीन, अजर तथा ह्रास और क्षय में विवर्जित है । आप ही से देव, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष उत्पन्न हुए हैं । इस घर-घर जगत् में जो कुछ भी भूत, भविष्य, अमृत, मूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, वह सब आप ही हैं । जगत्कर्ता । बिना आपके कुछ भी नहीं है । भगवन् । इस संसारचक्र मे भ्रमण करते हुए मैंने तापत्रय से अनिमृत् होकर बही प्राप्ति नहीं पायी ॥३०-३६॥ नाय । भृगतृष्णा मे पकवर मैंने दुःख ही को सुख समझा । पर उससे मुझे सताप ही मिला । प्रभो । राज्य, पुर्वी, सेना, कोप, मित्रसमूह, पुत्र, स्त्री, मृत्यु तथा शब्द आदि जितने विषय हैं, उन सबको मैंने सुख समझकर ग्रहण किया । परन्तु परिणाम मे मुझे ताप ही हुआ । देवेश । मैं देवलीक को गया । वहाँ देवगण मे मुझसे सहायता मागी, फिर नित्य सुख वहाँ है ? परमेश्वर । संसार के आदि-कारण रूप आपकी आराधना किए बिना शाश्वत सुख वहाँ से मिल सकता है ? आपकी माया से मुग्न होकर प्राणी जन्म, मृत्यु, जरा आदि को प्राप्त कर बिना यमराज के ही और प्राणियों को देखते हैं । तब सैकड़ों पाशो मे बद्ध होकर नरको मे अत्यन्त भयकर दुःख पाते है । यह आपका विश्वरूप है । परमेश्वर । मैं अत्यन्त विषयी हूँ । आपकी माया से मोहित होकर भगवत्प्राप्ति अथाध गत मे भ्रमण कर रहा हूँ । वही मैं ईश तथा स्तुत्य प्रभु की धारण मे प्राप्त

१ख. ०त् । सुष्ट्यादि० । २ख ०र जगत्स० । ३ख. ०र्वकिनरा । सि० । ४ख. तापत्रययुतेन
 मो । रा० । ५ख ०दिकै । शतवत्याया प्रपद्य० । ६ख ०गन तदा । त० । ७ख. ०क्ष स्वक्षप
 निन्दतस्तव ।

सोऽह त्वा शरणमपारमोक्षमोक्षय, सप्राप्त परमपद यतो न किञ्चित् ।
ससारथमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाष

॥४५॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे काल्यवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपण
नाम पण्णवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९६॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच'

इत्थं स्तुतस्तवा तेन मुचुकुन्देन धीमता । प्राहेश सर्वभूतानामनादिनिधनो हरि ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

यथाऽभिवाञ्छिताल्लोकादिद्व्यान्गच्छ नरेश्वर । 'अव्याहृतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहित ॥२॥
भुक्त्या दिव्यान्महाभोगाभविष्यसि महाकुले । जातिस्मरो मत्प्रसादासतो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥

हूँ । आपके अतिरिक्त कोई परमपद नहीं है । सासारिक त्राप से परितप्त होकर मैं विरक्त एवं रूपान्तर को प्राप्त
पाम वाले आपकी अभिलाषा करता हूँ । ॥३७४५॥

धीमहापुराण में काल्यवन वध कथन प्रसंग में मुचुकुन्द स्तुति निरूपण
नामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लौटवा

व्यास बोले—इस प्रकार धीमान् मुचुकुन्द द्वारा प्रस्तुत होने पर सपस्त प्राणियों के ईश तथा जय मरण
से रहित कृष्ण ने कहा ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! तुम मेरे कृपापात्र होने पर अभिवाञ्छित निव्य लोको को जाओ । वहाँ समस्त
ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर दिव्य महामोर्ग को भोग कर महान् कुल में उत्पन्न होगे । मेरी कृपा से तुम्हें पूव जर्मों
का स्मरण रहेगा । इससे बाद तुम मोक्ष पाओगे ॥२३॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येवं जगतामच्युतं नृप । गुहामुखाद्विनिष्क्रान्ता ददृशे सोऽल्पकान्नरान् ॥४॥
 ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तु ततो नृप । नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥
 कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम् । जग्राह मयुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६॥
 आनीय चोदसेनाय द्वारकत्या न्यवेदयत् । पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च यदोः कुलम् ॥७॥
 बलदेवोऽपि विप्रेन्द्राः प्रशान्ताखिलविग्रहः । ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥
 ततो गोपाश्च गोप्यश्च ययापूर्वमभिजित् । तथैवाम्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥९॥
 कैश्चापि संपरिष्यक्तः काञ्चित्स परित्यज्जे । हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनस्तथा ॥१०॥
 प्रियाण्यनेकान्यवदन्नोपास्तन हलायुधम् । गायश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सेष्यमयापराः ॥११॥
 गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनबल्लभः । काञ्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः ॥१२॥
 अस्मच्छेदोपहसतं न कश्चिपुरयोषिताम् । सौभाग्यमागमधिक करोति क्षणसौहृदः ॥१३॥
 कश्चित्स्मरति नः कृष्णो गोतानुगमनं कृतम् । अप्यसौ मातरं ब्रध्दं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४॥

व्यास बोले—यह बड़े जाने पर राजा जगत्पति कृष्ण को प्रणाम करके गुफा से बाहर हो गये। उन्होंने षोडे ही मनुष्यों को देखा। तब कलियुग जानकर वे तप करने के लिये निमित्त गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के स्थान के लिये प्रस्थित हो गये। कृष्ण ने युक्ति से शत्रु को भरवा कर मयुरा आकर उसकी सेना को वितण्ट किया, फिर उसने हाथी, घोड़े तथा उज्ज्वल रथ को लेकर द्वारका में उग्रसेन का दे दिया। तब मनुवशी पराजय की आशंका से रहित हो गये। द्विजप्रेम्णे । अखिल युद्ध के शान्त हो जाने पर वन्धुओं के दर्शन करने की उत्कंठा से बलदेव नन्द के गोकुल गये ॥४-८॥ वहाँ शत्रुजित् बलराम ने गोप-गोपियों तथा अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रेम से वार्तालाप किया। किसी ने उनका आलिंगन किया और किसी का आलिंगन उन्होंने ही किया। किन्तु गोप-गोपियों के साथ उन्होंने हास्य किया। गोपों ने बलराम से अनेक प्रिय बातें कही। गोपियों ने प्रेम से विचार होकर ईर्ष्यामुक्त वचन कहा। कुछ गोपियों ने पूछा—नगर नारियों के प्रिय तथा प्रेमलम्पट कृष्ण कुशल से तो हैं? क्षणिक स्नेह करने वाले हरि नागरिक रमणियों के सौभाग्य तथा मान को खूब बढ़ाते होंगे और हम लोभों का उपहास करते होंगे। कभी कृष्ण हम लोगों के गीतों का स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी माता के दर्शन करने के लिये आयेगे? अथवा उनके बारे में बातचीत करने से क्या लाभ? दूसरी कथा कीजिये, जो हमसे और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं

१ क ०तामीश्वर नृ० । २ ग ०ज्ज्वलाम् । ३ क क्ष यदोर्बलम् । ४ क मुनय । ५ मुनिमि ।

५ क ०दगोपास्त० । ६ क ०युध । गो० । ७ क कलम् ।

अथवा किं तदालापं क्रियन्तामपरा कथा । यदस्माभिविना तेन (तस्य) विनाऽस्माकं भविष्यति ॥१५॥
पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च क' । न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि स ॥१६॥
तथाऽपि 'कच्चिदात्मोयमिहाऽऽगमनसश्चयम् । करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता' वचनामृतम् ॥१७॥
दामोदरोऽसौ गोविन्द पुरस्त्रोऽसक्तमानस । अपेतप्रोतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति न ॥१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रितः स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च । अहसु सुस्वर गोप्यो हरिणाऽकृष्टचेतसः ॥१९॥
सर्वेशः सौम्यमधुरं प्रेमगर्भरगवितं । रामेणाऽऽश्वासिता गोप्य कृष्णस्यातिमधुस्वरं ॥२०॥
गोपंश्च पूर्ववद्ब्राम परिहासमनोहरं । कथाश्चकार प्रेम्णा च सह तर्जन्भूमिषु ॥२१॥
इति श्रीमहापुराणे आविस्त्राहो गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलिक्रीडावर्णनम्

व्यास उवाच

वने 'विहरतस्तस्य सह गोपमहात्मनः' । भानुपच्छदमरूपस्य शेषस्य धरणीभूत ॥१॥

रखती हो। उनके निमित्त हमने पिता माता माई स्वामी बन्धुजन तथा किसका परिचाय नहीं किया ? इसलिये वे अहतश है। तो भी आप बतलाइए कि क्या वे नमी यहाँ आने के लिये आत्म यता दिखलायेगे ? नागरिक राम गिया म आसक्त मन वाले तथा हम लोवा की प्राति की उपेक्षा करने वाले दामोदर गोविन्द का दान तो हम लोगो के लिये असम्भव है ॥१९-१८॥

व्यास बोले—कृष्ण द्वारा अकृष्ट चित्त वाल गोपियाँ कृष्ण' दामोदर' इस प्रकार सम्बोधन करती हुई मधुर स्वर में हँसने लगा। तब राम ने अत्यन्त मधुर स्वर से कृष्ण के सौम्य मधुर प्रेमगन्धित और निरमिमान सदेवा की सुनाकर गापियो को आवासन दिया। ब्रज में गोपा ने राम के साथ पहले की तरह प्रेम से मनोहर परिहास तथा वातालाप किये ॥२१॥

श्रीब्रह्मपुराण में गोकुल में बलराम के प्रत्यागमन वर्णन नामक एक सप्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अध्याय १६८

बलराम की क्रीडा का वर्णन

व्यास बोले—गोपो के साथ वन में विहार करते हुए अजोषधरणी का धारण करने वाले महान् रावों को

१क ग किम् २क स ०दालापमि०। ३क ०ता कृष्ण हृदगत०। ख ०ता कृष्णपूवज। दा०।
४क ०दो मन्दनागिनाम्। व्या०। ५स ०र्धं सामम०। ६ स विवर०। ७स ०त्ममि। मा०।

निष्पादितोरुकायस्य कार्येणैवावतारिण । उपभोगार्थमत्ययं वरुण प्राह वारुणीम् ॥२॥

वरुण उवाच

अभोष्टां सर्वं ह्यस्य मदिरं त्व महोजस । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३॥

ध्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सनिधानमयाकरोत् । वृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतलकोटरे ॥४॥
 विचरन्बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुद्धतम् । आध्राय मदिराहर्षमवापाय पुरातनम् ॥५॥
 ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारा झ लाङ्गली । पतन्तीं वीक्ष्य मुनय प्रमथौ परमा मुदम् ॥६॥
 पथौ च गोपगोपीभि समवेतो मुवाञ्छित । उपगोयमानो ललित गीतवाद्यविशारदः ॥७॥
 श्रमतोऽश्रयन्तधर्माग्भ कणिकामोषितकोज्ज्वल । आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामोत्याह विह्वल ॥८॥
 तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामयमन्य वै । नाऽऽजगाम तत क्रुद्धो हलजप्राह लाङ्गली ॥९॥
 गृहीत्वा तां तटेनैव चकार मदविह्वल । पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यत ॥१०॥
 सा कृष्टा तेन सहसा मार्गं सत्यज्य निम्नया । यत्राऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११॥
 शरीरिणी तयोपेत्य त्रासविह्वललोचना । प्रसीदेत्यश्वीद्राम मुञ्च मा मुशालयुष ॥१२॥
 सोऽश्वीद्वज्रजानासि मम शौर्यबल यदि । सोऽह त्वा हलपातेन नयिष्यामि सहजया ॥१३॥

सम्पन्न करने वाले कायवर्ग अकर्तार्थ होने वाले तथा अनुप्यशरीरधारी महात्मा बलराम के अत्यन्त उपभोग के लिए वरुण ने वारुणी मदिरा से कहा ॥१२॥

वरुण बोले—वत्याणि । मदिरं । महातजस्वी बलमद्र के उपभोग के लिये तुम जाओ ॥३॥

ध्यास बोले—इसके बाद वृन्दावन में यमुनातट पर उत्पन्न कदम्बवृक्ष के कोटर में बलमद्र को वारुणी मदिरा प्राप्त हुई । विचरण करते हुए बलदेव ने मदिरा की अत्युत्कट गंध को सूँघ कर अपने पुत्रात्तन मदिराज्य हृष्य प्राप्त किया । मुनिवृन्द । तदनंतर सहसा कदम्ब से गिरती हुई मद्यधारा को देखकर बलमद्र परम हर्षित हुए । बाद में उन्होंने गोप-गोपियों के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा का पान किया । गाने-बजाने में प्रवीण ध्वनितियों ने उनको स्वागत किया । श्रीहज्ज्य श्रम से उनके धबल शरीर पर पसीने की बूँदें मोतियों की तरह सुशोभित होने लगीं । तब उन्होंने विह्वल होकर कहा—यमुने ! आओ मैं स्नान करना चाहता हूँ । उनकी वाणी को प्रमत्त की उर्ध्व समझकर यमुना नहीं आई । तब क्रुद्ध होकर उन्होंने हल उठाया और तट पर से ही नदी को लोचते हुए कहा—पापे ! नहीं जाती हो तो मृत जाओ । इच्छापूर्वक दूसरी तरफ चली जाओ । बिचो जाने पर यमुना अपने माथ को त्याग कर जहाँ बलदेव थे वहाँ के कन को बाष्पावित कर दिया । शरीरधारण करने के त्रय से कातरलप्य यमुना राम से आवर्ण करने लगी—मुशालयुष ! प्रपन्न होइये मुझे छोड़ दीजिये । बलमद्र ने कहा—यदि तुम मेरे शौर्यबल का अपमान करती हो तो हल के प्रहार से मैं तुम्हारे सहस्र टुकड़ कर दूँगा ॥४॥ १३॥

व्यास उवाच

इत्युक्तयाऽतिसन्ततया नवा प्रसादित । भूभागे प्लाविते तत्र भूमेच यमुना बल ॥१४॥
तत स्नातस्य^१ वै कान्तिराजयाम महावने । अवतसोत्पल चारु गृहीत्वैक च कुण्डलम् ॥१५॥
वरुणप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् । समुद्राहो^२ तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६॥
वृतावतस स तदा चारुकुण्डलभूषित । नीलाम्बरधर सखी शुशुभे कातिसयुत ॥१७॥
इत्थ विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा व्रजे । मासद्वयेन यातश्च पुन स मथुरा पुरीम् ॥१८॥
रैवतीं चैव तनया रैवतस्य महोपते । उपयेमे बलस्तस्या अजाते निशठोत्सुकौ ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राह्मे हलित्रीडावर्णन नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९८॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

भीष्मक कुण्डिने राजा विदमं विषयेऽभवत् । रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुतो द्विजा ॥१॥
रुक्मिणीं चक्रे कृष्ण सा च त चारुहासिनो । न बबौ धाचते चैवा रुक्मी द्वेपेन ध्वनि ॥२॥

व्यास बोले—इतना कहने पर यमुना अत्यन्त डर कर उनको मनाने लगी । अन्त में वहाँ के भू प्रदेय के जंगलादिन हा जाने पर बलराम न नदी को मुक्त कर लिया । तब महावन में स्नान करने पर बलमन्द की कान्ति बढ गई । उन्होंने आभूषण के लिए सुन्दर कमल तथा एक कुण्डल ग्रहण किया । वरुण ने उनका स्नान न होने बाल कमला की भांति थी । लक्ष्मी ने समुद्र के योग्य दाम्नील वस्त्र उन्हें प्रदान किये । तब भूषणों से युक्त मनोहर कुण्डल से विभूषित नीलवस्त्रधारी मालाधारी तथा कान्ति से युक्त होकर बलदेव सुगोमित हुए । इस प्रकार विभूषित होकर राम व्रज में दा महीना तब रमण करते रहे । पुन वे मथुरा आय । रैवत नामक राजा की रैवती नामक बन्धा से बलमन्द ने विवाह किया और उससे निगठ तथा उत्सुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१४ १५॥

श्रीब्रह्मपुराणे म हलित्रीडा वर्णन नामक एव सौ अठ्ठानववेर्वा अध्याय समाप्त ॥१९८॥

अध्याय १९६

रुक्मिणी के विवाह का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर ! बिष्म राज्य के कुण्डिन नगर में भीष्मक नामक राजा हुए । उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामक बन्धा थी । कृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और मनोहर हास्य करने वाली रुक्मिणी

ददौ स शिशुपालाय जरासंधप्रचोचितः। भीष्मको रुक्मिणा साधे रुक्मिणीमुद्यविक्रमः॥३॥
 विवाहाय ततः सर्वे जरासंधमुखा नृपाः। भीष्मकस्य पुरं जम्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम्॥४॥
 कृष्णोऽपि धलमद्राष्ट्रं दुर्भिमः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चंचभूपते॥५॥
 श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्या हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्येष्वेव बन्धुषु॥६॥
 ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवरो विदूरथः। शिशुपालो जरासंधः शात्वाद्याश्च महीभूतः॥७॥
 कुपितास्ते हरि हन्तुं बभ्रुदुस्त्रोगमुत्तमम्। निजिताश्च समागम्य रामाद्यैर्दुर्गुणैः॥८॥
 कुण्डिनं न प्रवेशयामि अहत्वा युधि केशवम्। कृत्वा प्रतिज्ञां स्वमी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः॥९॥
 हत्वा बलं स नापादवपतिस्त्वनसंकुलम्। निजितः पातितश्चोर्ध्वा लील्यथ स चन्निना॥१०॥
 निजित्य रुक्मिणं सम्पुण्ययेमे स रुक्मिणीम्। राक्षसेन विधानेन संप्राप्तो मधुसूदनः॥११॥
 तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनाशः। स वीर्यवान्। जहार शम्बरं यं वै यो जघान च शम्बरम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥

उनको चाहती थी। ईर्ष्यावश स्वमी ने आचना करते हुए कृष्ण को रुक्मिणी नहीं दी। जरासंध के कहने से पराक्रमी भीष्मक ने स्वमी के साथ रुक्मिणी को शिशुपाल को दे दिया। तब विवाह के निमित्त जरासंध आदि राजा तथा शिशुपाल भी भीष्मक के कुण्डिन नगर में पहुँचे। कृष्ण भी बलमद्र आदि यादवों सहित शिशुपाल का विवाह देखने के लिये कुण्डिन में पधारे। विवाह कल होता विष्णु आज ही हरि ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। राम आदि बन्धुओं ने ही शत्रु-भाव को देखकर पौण्ड्रक, श्रीमान्, दन्तवध, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शात्वा आदि नृप-गण कुपित होकर हरि को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। पर राम आदि यदुपुत्रों द्वारा वे पराजित हो गये। तब मुद्ध में बिना केशव को मारे मैं कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा, इस तरह प्रतिज्ञा करने स्वमी कृष्ण को मारने के लिए दौड़ पड़ा। पर कृष्ण ने सहज ही में हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही तथा रथों से युक्त सेना को मारकर स्वमी को जीत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। स्वमी को जीतकर मधुसूदन ने राक्षस विधि से रुक्मिणी के साथ नली भाँति विवाह किया। इससे कन्दर्प क अशमूत धनितशाली प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, जिसका शम्बर ने अपहरण किया और जिसने शम्बर को मार दिया॥१-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्ण-चरित्र वर्णन-प्रसंग मे एक सी नित्यानबेदा

अध्याय समाप्त॥१९९॥

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

शम्बरं हतो योः प्रद्युम्नं स कथं पुनः । शम्बरश्च महावीर्यं प्रद्युम्नेन वधे हतः ॥१॥

व्यास उवाच

पठेऽह्नि जातमात्रे प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् । ममैव हन्तेति द्विजा हतवाङ्कालशम्बरः ॥२॥
नीत्वा चिक्षेप चबेन प्राहोऽग्रे लवणार्णवे । कल्लोलजनितावर्ते सुघोरे मकरालये ॥३॥
पतितं चैव तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम् । न भमार च तस्यापि जठरानलदीपितः ॥४॥
मत्स्यबन्धेऽथ मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यै सह द्विजा । घातितोऽसुरवर्षाय शम्बराय निवेदितः ॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेऽवरो । कारयामास सुदानामाधिपत्यमनिन्दितः ॥६॥
वारिते मत्स्यजठरे बबूधे साप्तिशोभनम् । कुमार भग्नयतरोदङ्गस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥७॥
कोऽप्य कथमय मत्स्यजठरे समुपागतः । इत्येव कौतुकाविष्टा सा तन्वी प्राह नारदः ॥८॥

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

मुनियो ने कहा—वैसे शम्बर ने बीर प्रद्युम्न का अपहरण किया और कैसे फिर प्रद्युम्न ने महाशक्ति-
शाली शम्बर को मारा ? ॥१॥

व्यास बोले—विप्रवर ! उत्पत्ति के छठे दिन भूमे यह मारेगा यह सोचकर सूतिकागृह से ही बाल
शम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया और उसे ले जाकर लवणसमुद्र में फेंक दिया । अत्यन्त मयबूर तथा हिलचोरो
द्वारा उत्पन्न आबती से युक्त समुद्र में पतित बालक को एक मत्स्य निगल गया । वहाँ भी वह जठरान्नि से दान
होकर नहीं मरता । द्विजगण । मद्युम्नो ने अन्य मत्स्यो के साथ उस मत्स्य को भी मारकर असुरवर शम्बर से निब
दन कर दिया । शम्बर की मायावती नामक पत्नी गृहस्वामिनी थी । वही अनिन्द्य रमणी रसाई घर का देव माल
किया करती थी । मत्स्य के पेट फाड़ने पर उसने दग्धममय रूप बाल के प्रथम अङ्कुर रूप अतिमुन्दर कुमार को
देखकर कहने लगी—यह बाल है ? वैसे मत्स्य के पेट में क्या था ? इस प्रकार कुतूहल करती हुई उस वनिता
स नारद ने कहा ॥२॥

१ ग शम्बरं । २ ग ० न । सम्ब० । ३ ग ० लसम्ब० । ४ क ० प जलघी मत्स्योऽग्रे । ५ ग ० ठरेऽन० ।

६ ग ० पिते । म० ।

नारद उवाच

अथ समस्तजगता सृष्टिस्तहारकारिणा । शम्बरं हृत कृष्णतनय सूक्तिकामूहात ॥९॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्येन निगोणस्त वश गत । नररत्नमिदं सुभ्रुविश्रद्धा परिपालय ॥१०॥

व्यास उवाच

नारदेनैव मुक्ता सा पालयामास त शिशुम् । बाल्यादवातिरागण रूपातिशयमोहिता ॥११॥
त यदा यौवनाभोगभूयितोऽभूद्विजोत्तमा । साभिलाषा तदा सा तु यभूव गजगामिनी ॥१२॥
मायावती बबौ चास्म माया सर्वा महत्तमने । प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तन्वस्तद्बदयेक्षणा ॥
प्रसज्यन्ती तु तामाह त्र कार्त्तण कमललोचना ॥१३॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभाय विहायैव किमर्थं धत्तेऽयथा ॥१४॥

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्व ममेति च । तनय त्वामय विष्णोर्हृत्वा कालशम्बर ॥१५॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्यस्य सप्राप्तो जठरान्मया । सा तु रोषिति ते माता कान्ताऽद्याप्यतिवत्सला ॥१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाह्वयत । क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबल ॥१७॥

नारद बोले—सम्पूर्ण जगत् के सह र करने वाले शम्बर ने सूक्तिकामूह से कृष्ण के पुत्र का अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया । उसे एक मत्स्य निषल गया । वह बालक तुम्हें प्राप्त हुआ है । सुचर भी बाली । इस नरपत्न को दिश्वानुवक तुम पाल ॥९ १०॥

व्यास बोले—नारद ने इस प्रकार कहने पर वह बालक के अतिशय रूप पर मोहित होकर अत्यन्त अनुराग से उसका पालन करने लगी । द्विजश्रेष्ठो । बालक जब युवावस्था से परिपूर्ण हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति अमिताषा करने लग । आत्मा की तरह प्रिय बने हुए प्रद्युम्न से मन तथा नेत्रों को लगाकर मायावती ने उसका समस्त मामा दे दी (अर्थात् उससे हाना भाव करने लग) । इस प्रकार व्यवहार करत हुई मायावती से कमललोचना प्रद्युम्न ने कहा ॥११ १३॥

प्रद्युम्न बोले—तुम मातृ भाव को छाड़कर और तुरह से क्यों बरतत हो ? ॥१४॥

व्यास बोले—उसने उससे कहा—तुम मेरे पुत्र नहीं हो । तुम विष्णु के पुत्र हो । कालशम्बर ने तुम्हें अपहृत करने समुद्र में फेंक दिया था । तब मत्स्य के जठर से मैंने तुम्हें प्राप्त किया । तुम्हारी अतिवत्सला माता तो आज भी रा रही है ॥१५ १६॥

व्यास बोले—यह कहे करने पर क्रोध से व्याकुल बिल गले महाबल प्रद्युम्न ने शम्बर को युद्ध के लिये

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माघवि । सप्त माया व्यतिश्रम्य माया संयुजोऽष्टमीम् ॥१८॥
तया जघान त दैत्य मायया 'बालशम्बरम्' । उत्पत्य च तथा सार्धमाजगाम पितु पुरम् ॥१९॥
अन्त पुरे च पतितं मायावत्या समन्वितम् । त दृष्ट्वा हृष्टसकल्या बभूव कृष्णयोषित ॥
रविमणो चाश्रवोत्प्रेम्णाऽऽसक्तदृष्टिरनिन्दता ॥२०॥

रविमण्युवाच

पन्थाया खल्वप्यं पुत्रो वर्तते नवयौवने । अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ॥२१॥
सभाया जननी वत्स स्वया काशपि विभूषिता । अथवा मादृश स्नेहो मम यादुवपुत्रे च ते ॥
हरेरपत्य सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२२॥

ध्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त सह कृष्णेन नारद । अन्त पुरधरा देवी रविमणीं ग्राह हयित ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

एव ते तनय सुधु हत्वा शम्बरमागत । हतो येनाभवत्पूर्वं पुनस्ते सूतिकागृहम् ॥२४॥
इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती । शम्बरस्य न भार्येय श्रूयतामत्र कारणम् ॥२५॥

आह्वान किया । सधाम म दैत्य की समस्त सेनाआ वा नाश करने प्रद्युम्न ने सात मायाआ वा अतिश्रमण कर
आठवीं माया (मायावती) के उपयोग किया । उस माया के द्वारा शालशम्बर का मारकर उस के साथ उठकर वह
पिता के घर में आया । अन्त पुर म मायावती, समस्त प्रद्युम्न को घिरे हुए देखकर कृष्ण की स्त्रियाँ प्रमुदित हुईं ।
अभिहित रविमणी उसकी ओर टपटपी लगाकर देखतीं, हुई प्रेम से बोली ॥१७-२०॥

रविमणी बोली—बिना मायाशक्ति, वा यह पुत्र नवयौवन म संप्राप्त है । वास ! यदि इस अवस्था
म मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता । वत्स ! तुमने किस मायावती, माता को विमूषित किया है ? अथवा मेरा जैन
स्नेह है और तुम्हारा जैसा घटीर है, इससे तुम स्पष्ट ही हरि के पुत्र होगे ॥२१-२२॥

ध्यास बोले—इसी बीच कृष्ण ने साथ नारद वहाँ आ पहुँचे । कृष्ण ने अन्त पुर म श्रेष्ठ रमणी रविमणी त
बहा ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—मुन्दर भौ बाल ! यह तुम्हारा पुत्र उम, शम्बर को मारकर आया है त्रिगुणे द्वारा
तुम्हारा पुत्र मूर्तिवा-मूह से अपहृत हुआ वा । यह मायावती, तुम्हारे पुत्र की, गर्न, भार्या है । यह शम्बर की, पत्नी, नहा है

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा । शम्बर' मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणि' ॥२६॥
 विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामय' शुभम् । दशयामास दैत्यस्य तस्येय मदिरक्षणा ॥२७॥
 कामोऽवतीर्णं पुनस्ते तस्येय दयिता रति । विशङ्कानान् कर्तव्या स्नुषेय तव शोभना' ॥२८॥

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टो रुक्मिणीकेशवो तदा । नगरो च समस्ता सा साधु साधिवशभापत ॥२९॥
 चिर' नष्टेन पुत्रेण सगत प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् । अवाप विस्मय सर्वो द्वारवर्त्या जनस्तदा ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

अयंकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

चारुदेण सुदेण च चारुदेह च शोभनम् । सुपेण (विचारं) चारुमुप्त च भद्रचार तथाऽपरम् ॥१॥
 चारुविन्द (चन्द्र) सुचार च चारु च बलिना वरम् । रुक्मिण्यजनपत्युत्पन्नकन्या चारुमती तथा ॥२॥

इसका कारण सुनो । रुक्मिणी, 'मन्मथ के दिनष्ट हो जाने पर उत्तर्क, उत्पत्ति के लिए प्रयत्नशील रति ने माया रूप से शम्बर को मोह लिया । इस सुनयना ने विवाह जाति उपभोगों में दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखा दिया । काम तुम्हारा पुत्र होकर अवतीर्ण हुआ । उसी की पत्नी रति यह है । इससे सारा मत बग । यह तुम्हारी पति पुत्र वधू है ॥२४-२८॥

व्यास बोले—तदुपरान्त रुक्मिण और शेषव हर्षित हुए । नगर के समस्त लोग बाह बाह कहने लगे । चिरकाल से नष्ट पुत्र के साथ रुक्मिण की देखकर अखिल द्वारकावासी आश्चर्य करने लगे ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शम्बर द्वारा अपहृत प्रद्युम्न के आगमन वर्णन नामक ।
 दो तीनों अध्याय समाप्त ॥२००॥

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

व्यास ने कहा—रुक्मिण ने—चारुदेण, सुदेण सुन्दर चारुदेह सुपेण चारुमुप्त भद्रचार चारुविन्द सुचार और बलिष्ठ चारु—इन पुत्रों का वध; चारुमती नामक नया को उत्पन्न किया । कृष्ण की दूसरी भी सात
 १ ग सुम्बर । २ ग रुक्मिणी । ३ स मायावह । ४ क शोभने । ५ स पुत्र ।

अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः । कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नामजितौ तथा ॥३॥
 देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा नृ रोहिणी । मद्राजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डला ॥४॥
 सत्राजितौ सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनौ । षोडशात्र सहस्राणि स्त्रोणामन्यानि चक्रिणः ॥५॥
 प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो हविर्मणस्तनया शुभाम् । स्वयवरस्यां जग्राह साऽपि त तनय हरेः ॥६॥
 तस्यामस्याभवत्पुत्रो - महाबलपराक्रमः । अनिरुद्धो रणे रद्धो वीर्योदधिररिदम ॥७॥
 तस्यापि हविर्मण पौत्रो वरयामास केशवः । दौहित्राय ददौ स्वमी स्पर्धयन्नपि शीरिणा ॥८॥
 तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह । हविर्मणो नगरं जम्मुर्नाम्ना भोजकट द्विजाः ॥९॥
 विवाहे तत्र निवृत्ते प्राद्युम्ने सुमहात्मनः । कलिङ्गराजप्रमुखा हविर्मणं श्रावयामनुवम् ॥१०॥

कलिङ्गादय ऊचुः

अनसतो हलो धृते तयाऽस्य व्यसनं महत् । तत्र (ज्ज) यामो बलं तस्माद्धृतेनैव महाधृते ॥११॥

ध्यास उवाच

तथेति तानाह नृपान्बभूवौ बलसमन्वितः । सभाया सह रामेण चक्रे धृतं च वै तदा ॥१२॥
 सहस्रमेक निष्काणाः हविर्मणा विजितो बलः । द्वितीये विवसे धान्यत्सहस्र हविर्मणा जितः ॥१३॥

सुन्दरी भार्यायै—कालिन्दी कः, पुत्री, मित्रविन्दा नामजित कः, पुत्री, सत्या, देवी, जाम्बवती, सदा प्रसन्न रहने वाली, रोहिणी मद्रराज कः, बन्दा सुन्दर स्वभाव वाली, नृ लक्ष्मण, सत्राजित कः, पुत्री, सत्यभामा और मनारम हास्य करने वाली, लक्ष्मणा, अक्षरधारी (कृष्ण) कः, अन्य सौ, लहू हजार स्त्रियाँ थीं। महापराक्रमः, प्रद्युम्न न रत्नम्, कः, पक्षि बन्दा कः, स्वयंवर से ग्रहण किया। बन्दा ने भी, कृष्ण ने पुत्र कः, स्वर्गार किया। प्रद्युम्न ने महा बलशाली, युद्ध करने में समर्थ, पावित या समुद्र और समुद्र का समन करने वाला अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। स्वमी, कः, पौत्री नृ उदया करण किया। स्वमी, यद्यपि कृष्ण से स्पर्धा करता था, तः, कः, दौहित्र करे, उसने दोनो, व्याह की। द्विजगण ! उसने विवाह में बन्दा आदि मोदक कृष्ण क साथ स्वमी क भोजकट नामक नगर में मय। मद्राज, अनिरुद्ध की विवाह सम्पन्न होने पर मल्लिग नरैत आदि (राजाओं) ने रत्नम् से यह वाक्य कहा ॥१-१०॥

बलिय आदि ने कहा—महाबलान्तिम् । मन्द्र पाता चलाना नहीं जानता फिर भी, जुए में इसका बड़ा व्यसन है। इसलिए जुए में हूँ, इसे पराजित किया आय ॥११॥

ध्यास ने कहा—वर्त, स्वमी, ने उन राजाओं से कहा—ऐसा हूँ, रही और सम मे बलराम के नाम जुआ, खेलना प्रारम्भ भी, कर दिया। (पहले दिन) स्वमी, ने बलराम से एक हजार निष्क (सकने था एक प्राचीन

१४ स ०पि रो० । २४ स ०भी कामरूपिणी० । ३० । ३३ मन्त्रराजमुता । ४ मद्राजमुता । ४४ ०नी । तथा षोडश स । ५४ ०येऽपि ५४ चा० ।

ततो दश सहस्राणि निष्काणां पणमादद । बलभद्रप्रपन्नानि स्वमी द्युतविदा वर ॥१४॥
ततो जहासाय बल कलिङ्गाधिपतिद्विजा । दन्ताविदशयन्मूढो स्वमी चाऽऽह मदोद्धत ॥१५॥

स्वम्युवाच

अविद्योऽय महायूत बलभद्र पराजित । मूर्खवाक्षावलपत्वाद्योऽय मेनेऽक्षकोविदम् ॥१६॥
दण्ड्या कलिङ्गराज तु प्रकाशदशनाननम् । स्वमिण चापि दुर्वावियकोप चक्र हलामुध ॥१७॥

व्यास उवाच

तत कोपपरीतात्मा तिष्णकोटि हलामुध । ग्लह जग्राह स्वमी च ततस्त्वक्षानपातयत ॥१८॥
अजयदबलद्वयोऽय प्राहोच्चस्त जित मया । ममति स्वमी प्राहोर्त्वरलीकोवर्त्तरल बलम् ॥१९॥
स्वयोक्तोऽय ग्लह सत्य न ममेषोऽनुभोवित । एव त्वया चेद्विजित न मया विजित कथम् ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्ष बाणुच्च प्राह गम्भीरनादिनी । बलदेवस्य त कोप यद्यपती महात्मन ॥२१॥

आकाशबाणुवाच

जित तु बलद्वय स्वमिणा भाषित मया । अनुपत्वा वचन किञ्चित्कृत भवति कमणा ॥२२॥

व्यास उवाच

ततो बल समुत्थाय क्रोधसरवतलोचन । जघानाष्टापदनेत्र स्वमिण स महाबल ॥२३॥

सिंहजो प्राय १६ मासे बा हुआ था) जते। दूसरे दिन भी स्वमी ने एक सहस्र निष्क जते। तदनंतर जुआ खेले में म चतुर स्वमी ने बलमन् से दस हजार क बाज जत। द्विजगण तब कलिगराज बलमन् की हस उठने लगे। मद से उद्धत मूख स्वमी ने दांत दिखाते हुए बालने लगा ॥१२ १५॥

स्वमी ने कहा—जए म ग्लह म पराजित हुआ है। व्यस ही पासे के अमिमान से हारने अपने को जए के विपक्ष मान बठा है। हारते हुए कलिगराज तथा दुर्वाविय बलते हुए स्वमी को देखकर बलमन् क कथि आ गया ॥१६ १७॥

व्यास ने कहा—तब क्रोध से आग-बबूके होकर स्वमी ने एक करोड़ निष्कों की बाज लगाई। स्वमी ने म स्व पार किया। पास कथ पर विजय बलदेव का हुई। बलदेव ने उच्च स्वर से कहा—मेरी विजय हुई। स्वमी ने भी ओर से कहा—मेरी विजय हुई। तुम मिथ्या बोलते हो। तुमने गत रात ठाक पर मैने उसका समर्थन नहीं किया। अगर इस तरह तुमन जीता था मैने क्यों नहीं जीता? ॥१८ २१॥

आकाशवाणी न कहा—बलदेव का विजय हुई। स्वमी असत्य बाला। बिना कुछ बोले काम करना म समर्थन करना है ॥२२॥

व्यास ने कहा—तदनंतर क्रोध से आग लाल विषे महाबलवान् बलमन् ने उठकर आठ गालों (के प्रहार) सह स्वमी को मार दिया। क्षमवत हुए कलिगराज को भी पकड़कर बलमन् ने उससे उन दांतों को तोड़ दिया

कलिङ्गराज चाऽऽदाय विस्फुरन्त बलादबल । बभञ्ज दन्ताकुपितो यं प्रकाश जहास स ॥२४॥
आवृण्व च महास्तम्भ जातरूपमय बल । जघान ये तत्पक्षास्तान्भूभृत कुपितो बल ॥२५॥
ततो हाहाकृत सर्वं पलायनपर द्विजा । तद्राजमण्डल सर्वं बभूव कुपित बल ॥२६॥
बलेन निहत ध्रुत्वा रुक्मिण मयसूदन । नोवाच वचनं विचित्रकिमणीबलयोभयात् ॥२७॥
ततोऽनिहृदमादाय कृतोद्वाह द्विजोत्तमा । द्वारकामाजगामाय यदुच्य सकशवम ॥२८॥

इति श्रीमहापुराण अनिरुद्धविवाह रुक्मिवधनिरूपण
नामैकाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०१॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवधवर्णनम्

व्यास उवाच

दारवत्या तत् शीरि शक्रस्त्रिभुवनेश्वर । आजगामाय मुनयो मत्तरावतपृष्ठग ॥१॥
प्रविश्य द्वारका सोऽय समीपे च हरेस्तदा । कथयामास वैत्यस्य नरकस्य विचष्टितम् ॥२॥

जिहें निवाल कर रह हूँ रहा था । स्वर्णमय महास्तम्भ को उखाड़ कर कुपित बलराम ने स्वाम के पक्ष में और
जा राजा पे उहे म मार दिया । द्विजगण । तदनंतर कुपित बलराम को देखकर स्वाम के पक्ष का राज मंडल
हाहाकार करते हुए नौ दो ग्यारह होने लगी । बलराम द्वारा निहत वर्ष्म के विषय में सुनकर रुक्मिणा और बलराम
के मय से कृष्ण कुछ भी नहीं बोले । शिवदेव । तदनंतर विवाहित अनिरुद्ध को लेकर कृष्ण सहित सुमस्तु यादव
गण द्वारका चले गये ॥२३ २८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अनिरुद्ध विवाह प्रसंग मे स्वाम का वध निरूपण
नामक दो सौ एन अध्याय समाप्त ॥२०१॥

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिव्रत । तदुपरात त्रिभुवन के स्वाम इन्द्र मत्त एरावत का पंठ पर चढ़कर कृष्ण से
मिलने के लिए द्वारका आये । द्वारका मे प्रवेश कर हरि के सम प इन्द्र ने नरक नामक दण्डक त्रियाशो का वर्णन
किया ॥१ २॥

इन्द्र उवाच

त्वया नायेन देवाना मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता। प्रशम सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३॥
 तपस्विजनरक्षायं सोऽरिष्टो धेनुकस्तया। प्रलम्बाधास्तया केशी ते सर्वे निहतास्तवया ॥४॥
 कस कुबलापोड पूतना बालघातिनी। नाश नीतास्तवया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवा ॥५॥
 युष्मद्दोषं दसवृद्धिपरित्राते जगत्त्रये। यज्ञे यज्ञहवि प्राश्य तृप्तिं याति दिवौकस ॥६॥
 सोऽह साप्रतमायातो यन्निमित्तं जनादेन। सच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमहसि ॥७॥
 भीमोऽयं नरको नाम प्राग्व्योतिषपुरेऽम्बर। करोति सर्वभूतानामपघातमरिदम ॥८॥
 देवसिद्धसुरादीना नृपाणां च जनादेन। हत्वा तु सोऽसुरं कन्यां हरोथ निजमन्त्रिणे ॥९॥
 छत्रं यत्सलिलत्वावि तज्जहार प्रचेतस। मन्दरस्य तया भृङ्गं हृतवान्मणिपर्वतम् ॥१०॥
 अमृतत्वाविणीं दिव्ये मातुर्ममृतकुण्डले। जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छयैरावतं द्विपम् ॥११॥
 'दुर्नोतमेनदगोविन्द भया तस्य तबोदितम्। यदत्र 'प्रतिकर्तव्यं तत्स्वयं परिमृश्यताम् ॥१२॥

ध्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत। गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्यौ वरासनात् ॥१३॥
 सचिन्तिमपराहृष्ट गेरुड गगनेष्वरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्व्योतिष पुरम् ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—'नाथ' मधुसूदन! मनुष्यों के भी व रहते हुए भी आपने देवताओं के समस्त वृष्टा का निवारण कर लिया। तपस्वियों के रक्षा के निमित्त अरिष्ट धेनु के वश तथा प्रलम्ब आदि सब को आपने निहृत किया। कस कुबलापोड पूतना आदि जितने सत्कार व उपद्रव, जब ये उन सबका आपने नाश किया। आपने बाहु-बल तथा वृद्धिबल से तभी लोगों के रक्षा होने पर ही देवता लोग यन्म हविष्य मोहन कर चुके होते हैं। जनादेन! इस समय मैं जिसलिए आया हूँ वह सुनकर आप उसका प्रतिकार करें। हे वासु के दमन करने वाले! प्राग्व्योतिषपुर का राजा नरक नाम के दैत्य समस्त प्राणियों का अपघात करता है। भगवन्! उसने देव सिद्ध सुर आदि का तथा राजाओं को मारकर उनको कन्याओं को अपने घर में रोक रखा है। वरुण का जो जल बहान काटा छाता था उसे अपहृत कर लिया है। मन्दराचल के मणिमय पित्तल का अपहरण कर लिया है। मेरी माना के अमृत टपकाने वाले दिव्य अमृतकुण्डला का तथा एरावत हाथ को भी हरण करके वह राक्षस ले गया। गतिविन्द उसका यह दुर्नीति मैं आपसे बचन के। अब इसका जो प्रतिकार हो वह आप स्वयं सोच ल ॥३॥ १३॥

ध्यास ने कहा—यह सुनकर मुखराते हुए भगवान् कृष्ण इन्द्र का हाथ पकड़ कर अपने उत्तम आसन पर से

आहूँरावत नाग शक्रोऽपि त्रिदशालयम् । ततो जगाम सुमना पश्यता द्वारकौकसाम् ॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम् । आचित भैरवं^१ पाशं परसंन्यनिवारणे ॥१६॥
तादिवच्छेद हरि पाशान्क्षिप्त्वा चक्र सुदर्शनम् । ततो मुर समुत्तस्थौ त जधान च केशव ॥१७॥
मुरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्ता (सा ता) स्ततो हरि । चक्रधारान्निनिर्दंघ्राश्चकार^२
शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुरं हयग्रीव तथा पञ्चजन द्विजा । प्राग्ज्योतिषपुर धीमास्त्वरावांसमुपाद्रवत् ॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैन्येन सयुग । कृष्णस्य यत्र गोविन्दो अग्ने दैत्यांसहृद्वा ॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्ष मुञ्चन्त स भीम नरक बली । क्षिप्त्वा चक्र द्विजाचक्रे चक्री दैतेयचक्रा ॥२१॥
हते तु नरके भूमिगुंहीत्वाऽवितिकुण्डले । उपतस्थे जगन्नाथ वाक्य चेदमथाब्रवीत् ॥२२॥

धरण्युवाच

यथाऽहमुद्धता नाथ त्वया शूकरमूर्तिना । त्वत्स्पर्शभयं पुत्रस्तबाऽयं मध्यजायत ॥२३॥
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातित । गूहाण कुण्डले खेमे पालयास्य च सततिम् ॥२४॥
भारावतरणार्याय ममैव भगवानिमम् । अशेन लोकमायात प्रसादसुमुख प्रभो ॥२५॥

उठ गये और ध्यान मात्र से उपस्थित आकाशविहारी गड पर सत्यनामा सहित स्वयं चढकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थित हो गये । तब इन्द्र भी प्रसन्न मन से ऐरावत हस्ती पर आरुढ़ होकर द्वारकावासियों को देखते हु। देखते देवलोक को चले गये । प्राग्ज्योतिषपुर का चारो तरफ सात योजन तक शत्रु सेना के निवारणार्थ भयंकर जाल बिछ हुए थे । उन जालो को सुदर्शन चक्र से कृष्ण ने काट डाला । तदनन्तर मुर नामक राक्षस उठ खड़ा हुआ । उस कृष्ण ने मार डाला । मुर के सात हजार पुत्र थे । उनकी हरि ने अपने चक्र के धारानि से पतनों की तरह जला डाला । द्विजपण । मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन को मारकर बुद्धिमान् कृष्ण ने शीघ्रता से प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण कर दिया । वहाँ वडी सेना से युक्त नरक के साथ कृष्ण का सन्नाम छिड़ गया । गोविन्द ने हजारों दैत्यो को विनष्ट किया । दैत्या के चक्रसमूह को नष्ट करने वाले चक्रधारी बली कृष्ण ने अपना चक्र चला कर शस्त्र-अस्त्रो की वर्षा करते हुए नरक के दोर्दुबड कर दिये । नरक के मर जाने पर पृथ्वी अदिति के कुण्डलो को लेकर मगदान ने पास जाकर यह बात कहने लगी ॥१३ २२॥

पृथ्वी ने कहा—नाथ ! जब बराह रूप धारण कर आपने मेरा उद्धार किया था तर्न आपके स्पश से यह पुत्र मुझमे उत्पन्न हुआ था । सो आपने ही इसको दिया था और आपने ही इसे नष्ट भी किया । अब य कुण्डल कीजिये और इसकी सतानो वा पाञ्जन कीजिये । मेरे ही मार उतारने के लिए आप एक अश से इस लोक मे आये

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः । जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२६॥
 व्यापो व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा । सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२७॥
 परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्यपो भवान् । यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम् ॥२८॥
 प्रसोद सर्वभूतात्मन्नरकेन कृतं च यत् । तत्सम्यक्तमदोषाय^१ भक्तुतः स निपातितः ॥२९॥

व्यास उवाच

तथेति श्रोत्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः । रत्नानि^२ नरकावासाञ्जग्राह^३ मुनिसत्तमा ॥३०॥
 कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविभ्रमः । शताधिकानि ददुशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः^४ ॥३१॥
 चतुर्दशान्जानां शोषान्पट्टसहस्राणि दृष्टवान् । काम्बोजानां तथाऽऽयानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥
 कन्यास्ताश्च तथा नागास्तान्द्वान्द्वारकां पुरीम् । प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरकाककरैः ॥३३॥
 ददुशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् । आरौपयामास हरिर्गण्डे पतगोदधरे ॥३४॥
 आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान् । अदित्याः कुण्डले शतं जुगाम त्रिवसासयम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

हुए हैं । प्रभो ! सुन्दर मूल वाले । प्रसन्न होइये । आप कर्ता, विशिष्टकर्ता, संहर्ता, प्रभु, अव्यय तथा जगत्स्वरूप हैं । अच्युत । मैं क्या आपकी स्तुति क्यों ? आप जब परमात्मा, आत्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं, तब तो आपकी स्तुति ही नहीं हो सकती, फिर कैसे की जाय । हे समस्त प्राणियों के आत्मा ! कृपा कीजिये । नरक ने जो अपराध किया, उसे दोष हटाने की दृष्टि से क्षमा कर दीजिये । वह मेरा पुत्र था, जिसे आपने मारा ॥२९-२९॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । (पृथ्वी से) ऐसा ही होगा, इतना बहुर प्राणियों के उत्पादन भगवान् ने नरक के घर से रत्नों को ले लिया । द्विजोत्तमी । अतुल पराक्रमी कृष्ण ने कन्यापुर (रतिधारा) में सोलह हजार एक सौ कन्याओं को देखा । चार दौड़ वाले छह हजार भयंकर हाथियों की तथा इक्कीस लाख बम्बोजी (अफगान) घोड़ों को भी देखा । गोविन्द ने सुरन्त जन कन्याया, हाथियों एवं घोड़ों को नरक के तीवरो द्वारा डारवा पहुँचा दिया । भगवान् कृष्ण वरुण के छत्र तथा मणिपर्वत को पक्षि-राज गरुड के ऊपर रखकर सत्यभामा के साथ स्वयं चढ़कर अदिति को कुण्डल देने के लिए देखकर गये ॥३०-३५॥

श्रीमहामहापुराण के कृष्णचरित-वर्णनोपक्रम में नरकवध नायक

को सो दूसरा अध्याय समाप्त ॥२०२॥

१. ०१. सम्यः । २. ०२. यदा स यं दोष स त्वया विनिः । ३. ०३. ०४. नाटकीयानि यथा ।

४. ०५. उग्रहार मु० । ५. स. महामति ।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदितिकृता भगवत्स्तुति

व्यास उवाच

गण्डो वारुण छत्रं तथैव भणिपर्वतम् । सभायं च हृषीकेशं लीलम्यैव वह्न्ययी ॥१॥
ततः शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरिः । उपतस्थुस्ततो देवा सार्धपात्रा जनार्दनम् ॥२॥
स देवैरचितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् । सिताम्बशिखराकार प्रविश्य बद्धशोऽदितिम् ॥३॥
स ता प्रणम्य शक्रेण सहितः कुण्डलोत्तमे । बद्धौ नरकनाश च शशंसास्यं जनार्दन ॥४॥
ततः प्रीता जगन्माता धातार जयता हरिम् । सुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवर्ण मन ॥५॥

अदितिरुवाच

ममस्ते पुण्डरीकाक्ष भवतानामभयकर । सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभाषण ॥६॥
प्रणेतमनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक । मितवीर्याविनि शेषकल्पनापरिवर्जित ॥७॥
जन्मादिभिरसम्बुद्ध स्वप्नादिपरिवर्जित । सध्या रात्रिरहर्भूमिर्निर्गुण धापुरम्बु च ॥८॥
हृन्नाशने मतो बुद्धिर्भूतादिस्त्व तथाऽन्युत । सुष्टिस्थितिबिनाशाना कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ॥९॥

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

व्यास ने कहा—गण्ड वरुण के छत्र, भणि-पर्वत तथा पत्नी सहित कृष्ण को बड़ी आसानी से बोला हुआ जा रहा था । स्वर्ग-द्वार पर पहुँचने पर माधव ने शङ्ख-ध्वनि की । अर्धपात्र लिए समस्त देवगण जनार्दन के पास उपस्थित हुए । देवताओं से पूजित होने पर कृष्ण ने देवमाता के स्वच्छ वेशों से आवृत पर्वत-शिखरतुल्य भवन में प्रवेश कर अदिति को देखा । इन्द्र-सहित उपेन्द्र ने उनको प्रणाम कर उत्तम कुण्डल दे दिये और नरक का नाश भी उन्हें कह सुनाया । तत्पश्चात् जगन्माता प्रसन्न होकर चित्त को व्यग्रता से रहित करके जगद्भाता हरि में ही मन को लगा कर उनकी स्तुति करने लगी ॥१५॥

अदिति ने कहा—ममल्लोचन ! मक्तो को विजय करने वाले ! आपको नमस्कार है । सनातनात्मन् ! मूलात्मन् ! सर्वात्मन् ! भूतोत्पादक ! मन बुद्धि और इन्द्रियों के निर्माता ! त्रिषुषात्मक ! शुक्ल, दीर्घ आदि सबल कल्पनाओं से रहित ! आप जन्म आदि से अस्पृष्ट तथा स्वप्न आदि से वर्जित हैं । आप सध्या, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणियों के आदि हैं । आप सुष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्ता, कर्ता

'ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर । मायाभिरेतद्व्याप्त ते जगत्स्यावरजङ्गमम् ॥१०॥
 अनात्मन्यात्मविज्ञानं सा ते माया जनादेन । अहं ममेति भावोऽत्र यथा समुपजायते ॥११॥
 सत्सारमध्ये मायायास्तवेतन्नायं चेष्टितम् । ये स्वधर्मपरैर्नायं नरैराराधितो भवान् ॥१२॥
 ते तरन्त्यखिलामेता मायामात्मविमुक्तये । ब्रह्माद्या सकला देवा मनुष्या पशवस्तथा ॥१३॥
 विष्णुमायामहावर्ते मोहान्धतमसाऽऽवृता । आराध्य स्वामभ्योपान्ते कामानात्मभवक्षये ॥१४॥
 पदे ते पुण्या बद्धा मायया भगवस्तव । मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षधाय यः ॥१५॥
 आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् । कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ॥१६॥
 ज्ञायते यदपुण्यानां सोऽपराध स्वदोषजः । तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराद्ययः ॥१७॥
 अज्ञानं ज्ञानसङ्गाव भूतभूतेशं नाशय । नमस्ते चक्रहस्ताय' शाङ्गहस्ताय ते नमः ॥१८॥
 गदाहस्ताय ते विष्णोः शाङ्गहस्ताय' ते नमः । एतत्प्रस्थापि ते रूपं स्थूलचिह्नोपशोभितम् ॥
 न जानामि परं यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

व्यास उवाच

अदित्यैव स्तुतो विष्णुः प्रहस्याऽहं सुरारणिम्

॥२०॥

के पति और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव सगर्भ अपनी मूर्तियों से ईश्वर कहलाते हैं । आपकी माया से यह स्थावर
 जगम रूप जगत व्याप्त है । जनादेन । अनात्मा मे आत्मा का ज्ञान ही माया है जिससे मैं और मेरा यह नाव
 उत्पन्न होता है । नाव । ससार मे आपका माया की यह चेष्टा है । जिन धर्मपराधण मनुष्यों ने आपकी आरा
 धना की । वे आत्ममूर्ति के लिए इस अखिल माया को पार कर दये । ब्रह्मा आदि सकल देवता मनुष्य तथा
 पशु विष्णु माया रूपा महान् अवसर मे मोहरूपी तिमिर से आवृत हो आपकी उपासना कर अपने तथा सत्सार के नाश
 के लिये अभिप्रायों करते हैं ॥१-१४॥ मयवन् ! पुरुष आपकी माया से आपने चरणा म बद्ध हैं । मैंने
 पुत्र का कामना से तथा धनु-यज्ञ के नाश की इच्छा से आपकी आराधना का परन्तु मोक्ष के लिए नहीं की । यह
 भी माया का (ही) खेल है । पापिया को जो कल्पद्रुम से भी वैवल कौपान तथा आच्छादन-वस्त्र का इच्छा होती
 है यह उसका निज दापजय अपराध है । इसलिए अखिल जगत् को माया-मोह मे डालन बाल । अद्वय ।
 प्राणिमा के अर्थात् । ज्ञानपूज । आप प्रसन्न हृदये और मेरे अनान का नाश करजिय । चक्र धनुष मया तथा दाश
 हाथो मे धारण करने वाले । आपको नमस्कार है । स्थूल चिह्नो से मुशान्वित आपका इह रूप का मैं देखती हूँ पर
 इससे भी परे जो आप का रूप है उसे नहीं देख पा रही हूँ । परमेश्वर । इत्यादि ॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु हँसकर देवमाया से बहने लगे ॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

माता दधि त्वमस्माक प्रसीद वरदां भव

॥२१॥

अदितिरुवाच

एवमस्तु ययच्छा त त्वमश्वसुराक्षर । अजय पुरुषव्याघ्र मत्पलोक भविष्यसि ॥२२॥

व्यास उवाच

ततोऽन तरमशस्य शकाणीसहिता दितिम् । सत्यभाषा प्रणम्याऽऽह प्रसीवति पुन पुन ॥२३॥

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान त सुभ्रु जरा बरुष्यमव च । भविष्यत्यनवच्छाङ्गि सवकामा भविष्यसि ॥२४॥

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो दवराजो जनादनम् । यथावपूजयामास बहुमानपुर सरम् ॥२५॥

ततो वदश कृष्णोऽपि सत्यभाषासहायवान् । दबोद्यानानि सर्वाणि नवनादीनि सत्तमा ॥२६॥

वदश च सुगन्धाढ्य मञ्जरीपुञ्जधारिणम् । शत्याह्लावकर दिव्य ताम्रपल्लवशोभितम् ॥२७॥

मण्यमान स्मृत जात जातरूपसमप्रभम् । पारिजात जयध्वाथ वक्ष्य कशिसूदनम् ॥२८॥

त वृष्टया प्राह गोविन्द सत्यभामा द्विजोत्तमा ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—देवी तुम हमारी माता हो कृपा करो वर दो ॥२१॥

अदिति न कहा—एवमस्तु ! तुम्हारी जसी इच्छा । पुरुषव्याघ्र ! मत्पलोक मे तुम अजय देव-दैत्य से अजय हुने २२

व्यास न कहा—तदनंतर इक्ष्वाणी सहित सत्यभामा दिति को बार बार प्रणाम कर कहने लगी—प्रसा होइये ॥२३॥

अदिति न कहा—सुन्दर नौ बाली ! अनिन्द्य अग्रे बाली मेरी कृपा से तुम्हें शहाया तथा कुरुपत्त नहीं ग्यायेगी तुम्हारी सारी कामनाय पूरी होगी २४ ।

व्यास न कहा—अदिति की आज्ञा पाकर इंद्र ने बहुत आदर से जनादनक विधिपूर्वक पूजा की । त सत्यभामा सहित कृष्ण दैवताओं के नन्दन आदि समस्त उद्यानों को देखने लगे । वेशी नामक राक्षस के मारने वाले जयध्वाथ वक्ष्य ने सुगन्धित परिपूर्ण मञ्जरीयों से सुशोभित शीतलता तथा आह्लावकता से सम्पन्न दिव्य ताम्रपल्लव बालों से विभूषित स्वर्णपुष्प कान्तिमान् और अमृत-मधन से उत्पन्न वरुणवत् को देखा । द्विजवर ! उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा ॥२५ २८॥

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेव नीयते कृष्ण पादपः^१ । यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याश्रयं प्रियेति मे ॥२९॥
 मद्गृहे निष्कुटार्याय तदयं नीयतां तवः । न मे जाम्बवती तादृगभोष्टा न च रुक्मिणी ॥३०॥
 सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् । सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं वचः^२ ॥३१॥
 तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम् । बिभ्रतो पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम् ॥
 सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं स प्रहस्येनं पारिजातं गृह्णन्ति । आरोपयामास हरिस्तमूचुर्यनरक्षिणः^३ ॥३३॥

वनपाला ऊचुः

भोः 'शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम् । पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम् ॥३४॥
 श्रीविभूषणार्याय देवैरभूतमन्यने । उत्पारितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वेनं गमिष्यसि^४ ॥३५॥
 रौढघातप्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वेनं च को व्रजेत्^५ । अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं^६ कृष्ण यास्यति ॥३६॥
 ज्योत्सुकर शक्रमनुयास्यन्ति चामराः । तवलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ॥
 पाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः ॥३७॥

सत्यभामा बोली—कृष्ण ! यदि आपका यह वचन—सत्या ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो—सत्य है तो
 उ वृक्ष को द्वारका क्यों नहीं ले चलते हैं ? अन्तर्पुर में रखने के लिए इसे मेरे घर ले चलिए । कृष्ण ! आपने
 उ प्रिय वचन अनेक बार कहा था, कि सत्या ! तुम मुझे जितनी प्रिय हो उतनी न जाम्बवती न रुक्मिणी ही मुझे
 मीष्ट है । गोविन्द ! यदि आपका यह वचन सत्य है, केवल मुखमुत्तार्य नहीं कहा गया था, तो यह वल्ग्वृक्ष
 देवराजा भूषण बने । कल्पवृक्ष की मजरी को मैं अपने बालों पर धारण कर सपत्नियों ने बीच शोभा प्राप्त
 होगी ॥२९-३२॥

व्यास ने कहा—इतना बहने पर हरि ने हँस कर वल्ग्वृक्ष को गड्ढ के ऊपर रख दिया । तब वन-रक्षकों
 उनसे कहा ॥३३॥

वनरक्षकों ने कहा—हे गोविन्द ! इन्द्र की महारानी इन्द्राणी का यह वल्ग्वृक्ष है । इसका आप हरण न
 हैं । अमृतमन्यन ने समय शची के भूषण ने निमित्त देवताओं ने इसे उत्पन्न किया था । आप इसे ले जाने में
 र्थ नहीं हो पायेंगे । वृष्ण ! आप मूर्खतावश प्रार्थना कर रहे हैं । वीन सामर्थ्यान् पुरुष इसे ले जायेगा ?
 ले जाने से इन्द्र बहुत दुःख होगा । जब इन्द्र हाथ में वज्र धारण कर तैयार हो जायेंगे तब समस्त देवपण उनका
 गुमन करेगा । अच्युत ! सबल देवबन्दा से आपका बलह करना व्यर्थ है । जिस वाम ना परिणाम, नष्ट हो,
 पण्डित लोग अच्छा नहीं बहते हैं ॥३४-३७॥

१स. मू० ६ । २स. तव । ३क. ०पुस्तक० । ४स. वृष्ण । ५क. ०सि । मोहोत्सवा० । स. ०सि ।
 वा प्रार्थ० । ६स. ग. ०यते से० । ७स. ०त् । वचनेनास्य । ८क. स. निष्कृति ।

व्यास उवाच

॥३८॥

इत्युक्ते तैरुवाचैतान्सत्यभामाप्रतिकोपिनी

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को या शक्र सुराधिप । सामान्य सर्वलोकाना यद्येषोऽमृतमन्यते ॥३९॥
समुत्पन्न पुरा कस्मादेषो गृह्णाति वासव । यया सुरा यया चेन्दुर्यया श्रीर्बनरक्षण ॥४०॥
सामान्य सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम । भर्तृबाहुमहागर्वाद्गुणद्व्येनमयो शची ॥४१॥
तत्कथ्यता हृत गत्वा पोलोम्या वघन मम । सत्यभामा वदत्येव भर्तृगर्वोद्धृताक्षरम् ॥४२॥
यवि त्व वपिता भर्तुर्वि तस्य प्रिया ह्यसि । मञ्जुर्तुर्हरतो वृक्ष तत्कारय नियारणम् ॥४३॥
जानामि ते पति शक्र जानामि त्रिदशेश्वरम् । पारिजात तथाऽप्येन मानुषो हारयामिते ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा प्रोचन् प्रोच्यंयोदितम् । शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपति पतिम् ॥४५॥
तत समस्तदेवाना संन्यै परिषृतो हरिम् । प्रवृत्त पारिजातार्यमिन्द्रो योपयितु द्विजा ॥४६॥
तत परिधर्निस्त्रिशगदाशूलधरामुघा । बभूवुस्त्रिदशा सज्जा शक्रे वर्यकरे स्थिते ॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो भागराजोपरि स्थितम् । शक्र देवपरीवार युद्धाय समुपस्थितम् ॥४८॥

व्यास ने कहा—यह सुन कर कोष से तनवतापी हुई सत्यभामा उनसे कहने लग ॥३८॥

सत्यभामा बोली—कल्पवृक्ष का इद्राणी कौन होती है या देवस्वामी इद्र ही कौन होता है ? यह तो सब लोगों के लिये समान है । यदि यह अमृतमन्य न समय उत्पन्न हुआ तो अनेक इन्द्र ने क्या इसे ग्रहण किया ? बन रक्षको ! सब लोगों के लिये जैसे सुरा (अमृत) चद्रमा तथा लक्ष्मी सामान्य है वैसे कल्पवृक्ष भी है । यदि अपने स्वामी के बाहु-बल के गर्व से शची इसे राखता है तो चाग्र जानकर उससे मेरी बात कहा—स्वामी के गव से उड़ता सत्यभामा इस प्रकार कहती है कि यदि तुम अपने पति की प्रयत्नी हो तो कल्पवृक्ष का हरण करते हुए मरे स्वाम का निवारण कराओ । मैं तुम्हारे पति इद्र को जानती हूँ देवताओं के ईश्वर को भी जानता हूँ तो मैं मानुषा होकर कल्पवृक्ष का हरण करवाती हूँ ॥३९-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर रत्नगण शची के पास जाकर जोर-जोर से सब वृत्तांत कहने लग । शची ने देवताओं के पति इद्र को उत्साहित किया । द्विवर्ण । तदुपरान्त जस्रिल देवों की सेना से युक्त इद्र कल्पवृक्ष के लिये वृष्ण से युद्ध करने का तैयार हो गये । इद्र ने हाथ में कज्र लिया और अतिरिक्त देवगण न मुद्गर तलवार, गदा, धूल आदि अस्त्र-शस्त्रों का धारण किया । तब गोविन्द ने युद्ध के लिये उपस्थित तथा हस्तिराज पर स्थित

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन् । 'मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसंमितम् ॥४९॥
 ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम् । मुमुचुस्त्रिदशः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः ॥५०॥
 एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा । चिच्छेद लीलयेवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५१॥
 पाशं सलिललराजस्य समाकृष्योरगाशनः । चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५२॥
 यमेन प्रहितं वण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम् । पृथिव्या पातयामास भगवादेवकीसुतः ॥५३॥
 शिविको च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः । चकार शौरिरकन्दू दृष्टिपातहतौजसौ ॥५४॥
 नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्ब्राम्हिता वसवो दिशः । चक्रविच्छिन्नशूलाघ्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥५५॥
 साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः । शार्ङ्गिणा प्रेरिताः सर्वेभ्योऽग्निं शास्मलितूलवत् ॥५६॥
 'गण्डश्चापि धवत्रेण पक्षाम्यां च नखाङ्कुरैः । भक्षयन्नहन् देवान् दानवाश्च सदा खग ॥५७॥
 ततः शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ । परस्परं ववर्षति धाराभिरिव तोयबौ ॥५८॥
 ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र सकुले । देवैः समेतैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥५९॥
 छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेण्वस्त्रेषु सत्वरम् । जग्राह वासवो यज्जं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६०॥
 ततो हाहाकृतं सर्वं प्रेलोभय सचराचरम् । वज्रचक्रधरो दृष्ट्वा देवराजजनार्दनी ॥६१॥
 क्षिप्तं वज्रमयेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः । न मुमोच तदा चक्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥६२॥

इन्द्र को देव-परिवारो ने साथ देखा । उन्होंने पाक्ष्मिनी की । चारो दिशाएँ शब्द से गूँज उठी । एक लाख की सख्या में बाण छोड़े गए । दिशा एवम् आवास सैकड़ों बाणों से भर गये । तब देवताओं ने भी अनेकों अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया । जगत्सामी मधुसूदन ने लीला से ही देवताओं द्वारा छोड़े गए एव-एव अस्त्र-शस्त्रों के हजार टुकड़े कर दिये । गरुड ने बाल सर्पों की देह के समान वरुण के पाश को पीच कर उसके खण्ड खण्ड कर दिये ॥५५-५९॥ भगवान् देवकी-भुज ने यम के द्वारा प्रक्षिप्त गदा को तोड़ कर पृथ्वी पर गिरा दिया । कुबेर की पाण्की को वज्र से तिल के बराबर काट-काट कर रख दिया, सूर्य-चन्द्रमा की दृष्टिपात से ही तेजोहीन बना दिया । अग्नि को सैकड़ों बाणों से बिड़ल कर दिया । वसुधाय चारो दिशाओं में माग गये । चक्र से कटे भिगूल के अप्रमाण बाले रुद्रगण पृथ्वी पर गिर पड़े । शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले कृष्ण के बाणों से आहत साध्य, विश्वेदेव, मरुत् तथा गन्धर्वगण समस्त की रई वीं तरह आवास में दीखने लगे । गरुड भी मुह, पक्ष तथा नखों से देव दानवों को मारने तथा खाने लगे । तब देवेन्द्र और मधुसूदन परस्पर वादल की तरह हजारों बाणों की दृष्टि करने लगे । उस युद्ध में ऐरावत के साथ गरुड और देवी तथा इन्द्र के साथ जनार्दन युद्ध करते थे ॥५३-५९॥ शीघ्र ही सब अस्त्र-शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किये । वज्र-वज्रधारी इन्द्र-जनार्दन को देखकर अचानक सहित सीनों को हाहाकार करने लगे । भगवान् हरि ने इन्द्र द्वारा प्रक्षिप्त वज्र को पकड़ लिया, पर अपना चक्र नहीं छोड़ा ।

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतबाहनम् । सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम् ॥६३॥

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर नो युक्त शचीभर्तुः पलायनम् । पारिजातस्रग्नाभोगात्त्वामुपस्थास्यते शची ॥६४॥
कोदृश देव राज्य ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम् । अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाम्यागता शचीम् ॥६५॥
अल शक्र प्रपासेन न शोडा यातुमर्हसि । नीयता पारिजातोऽप्य देवा सन्तु गतव्यया ॥६६॥
पतिगर्वाधलेपेन घट्टमानपुर सरम् । न ददर्श गृहायातामुपचारेण मा शची ॥६७॥
स्त्रीत्वाद्गुरुचिन्ताऽहं स्वभर्तुः श्लाघनापरा । सत कृतयती शक्र भयता सह बिप्रहम् ॥६८॥
तदल पारिजातेन परस्त्वेन हृतेन वा । रूपेण यशसा चैव भयेत्स्त्री कान गर्विता ॥६९॥

व्यास उवाच

हृत्पुत्रे च निववृत्ते देवराजस्तया द्विजा । प्राह चैनामल घण्टि सखि खेदातिविस्तरं ॥७०॥
न चाऽपि सर्गसंहारस्थितिकर्ताऽखिलस्य य । जितस्य तेन मे शोडा जायते विदधस्त्वणि ॥७१॥
यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्यं, यस्माद्यतदच न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन, शोडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७२॥

कथं नष्ट होने के साथ ही ऐरावत भी गरुड द्वारा क्षत विनष्ट हो गया । इन्द्र भागन लगे । हरि न कहा — ठहरो ठहरो । सब सत्यभामा इन्द्र से कहने लगी ॥६०-६३॥

सत्यभामा बोली—तीना लाका के ईश्वर तथा शची के स्वामी हाकर आपका भागना नहीं चाहिय । कल्प-वृक्ष के पुरषों की माला पहनकर शची आपसे पास जायगी । पहले की तरह कल्पवृक्ष की उज्ज्वल माला धारण कर प्रेम से आमी हुई शची क बिना देखे आपका राज्य कैसा ? इन्द्र ! आप व्यय प्रयास कर रहे हैं । आपको लज्जा नहीं बननी चाहिय । आप कल्पवृक्ष ले आइये । देवगण व्यावहारिक हो जाय । पति के सब से शची ने गृह में आयी हुई मुझे बहुत आदर के साथ नहीं देया । स्त्री होने के कारण मेरा हृदय विखल नहीं है । अब अपने पति से हठ करने मैंने आपसे बिप्रह किया । अब मुझे कल्पवृक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं दूसरे वा बन हरण नहीं करना चाहती । रूप तथा यश (भिलने) से जिस स्त्री को गर्व नहीं होता ॥६४-६९॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर चुप हो जाने पर देवराज ने उससे कहा—चण्डिके ! सखि ! वेद का अतिविस्तार करना व्यय है । सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता विद्यात्मा से पराजित होने पर मृग लज्जा क्यों हली ? देख ! निम आदिमध्य-रहित (परमात्मा) में सपूर्ण जगन लीन हो जाता है तथा जिससे उत्पन्न होता है उस उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के कारण (ब्रह्म) से हारने पर लज्जा कैसे ? जिस अधिल जगत् रूप मूर्ति वाले (परमात्मा) की मूर्ति अल्प एवम् अति सूर्य है और जिसे समस्त वेदा ने ज्ञाता ही जानते हैं दूसरे नहीं उत अजन्मा,

१क ग ० बीटोर प० । २क स ० भर्तुं प० । ३क स प्रतापेन । ४य ० य गर्विता सा तु मर्ता स्त्री कालग० । ५क ० यस्त्रयायुत । ६ग० । ६क ० सि वरेण नेबलम् । न । ७क ० पारिजा मे श्री० ।

सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरल्पा सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदेर्ज्ञायते यस्य नान्यः
तमजमकृतमोक्ष शाश्वतं स्वेच्छयैनं, जगदुपकृतिमाद्य को विजेतुं समर्थः

॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रकृष्णसवादवर्णनम्

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्यं देवराजेन केशवः । प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं द्विजोत्तमाः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते । क्षन्तव्यं भवतीवैतदपराधकृतं मम ॥२॥
पारिजाततृक्षार्यं नीयतामृषितास्पदम् । गृहीतोऽप्य मया शक्र सत्यावघनकारणात् ॥३॥
वज्रं खेवं गृहाण त्वं यद्व्यथं प्रहितं स्वया । तवैवैतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम् ॥४॥

अथ, ईश, नित्य, आद्य तथा ससार के उपकारी को कौन व्यक्ति स्वेच्छा से जीतने में समर्थ (हो सकता) है ? ॥७०-७१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कल्पवृक्ष के हरण-प्रसंग में इन्द्रस्तुति निरूपण
नामक दो सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥२०३॥

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के सवाद का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजर । इन्द्र से इस प्रकार स्तुत होने के उपरान्त केमव ने हँसकर सारगमित बातें कहा ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—जगत्स्वामी । आप देवताओं के राजा इन्द्र हैं और मैं मनुष्य हूँ । इसलिए आप ही मेरे अपराध को क्षमा करें । इस कल्पवृक्ष को उचित स्थान पर रखा दें । शक्र ! मैंने तो केवल सत्या के घन के कारण इसे ग्रहण किया । इस वज्र का भी आप के लीजिए । आपसे छोटा क्या यह पुनर्नीय है । शत्रुओं का विदारण करने वाला यह वज्र आप ही का है ॥२-४॥

शक्र उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् । जानीमस्त्वां भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम् ॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृत्तो नाथ सस्थितः । जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥
नोपता पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवर्तो पुरीम् । मर्त्यलोके त्वया मुक्ते नाम संस्थास्यते भुवि ॥७॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः । प्रयुक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तुयमानस्त्वय्यपिभि ॥८॥
जगाम कृष्ण सहस्रा गृहीत्वा पादपोतमम् । ततः शङ्खमुपाध्माप द्वारकोपरि सस्थितः ॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजां । अवतीर्यथि गरुडात्सत्यभामासहायवान् ॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजात महातरुम् । यमम्येत्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥११॥
यास्यते यस्य पुष्पाणां गन्धेनोर्वो त्रियोजनम् । ततस्ते यादवाः सर्वे देवगन्धानमानुषान् ॥१२॥
वृषां पादपे तस्मिन्नुवतो मुखदशनम् । किंकरं समुपानीतं हस्त्यश्वारवि ततो धनम् ॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात् । ततः काले शुभे प्राप्य उपयमे जनावनं ॥१४॥
ताः कन्या नरकाभासात्सर्वतो या समाहृताः । एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽस्ता द्विजोत्तमाः ॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीन्यूषागवेहे स्वधर्मतः । पौंड्रश्च स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तयाऽधिकम् ॥१६॥

शक्र ने कहा—ईश । 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर क्यों आप मुझे मोह में डाल रहे हैं ? मैं आपको जानता हूँ । आप ही से हम सब अनन्त सुखों को प्राप्त करते हैं । जगन्नाथ । 'राक्षसों के संहारक' । आप जो हैं सो हैं, पर आप पृथ्वी पर स्थित होकर ससार का सब कुछ करते हैं । कृष्ण । इस कल्पवृक्ष को आप द्वारका में लायें । आपने मर्त्यलोक छोड़ देने पर यह पृथ्वी पर नहीं ठहरेगा ॥५-७॥

व्यास ने कहा—इन्द्र से 'एवमस्तु' कहकर भगवान् कृष्ण उत्तम वृक्ष को लेकर सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए धीमे मृत्युलोक आ गये । विप्रवृन्द । द्वारका पहुँचकर उन्होंने शल्यध्वनि से द्वारकावासियों को आनन्दित किया और गरुड़ पर से सत्यमामा सहित उतर कर अन्त पुर में महातरु कल्पवृक्ष को स्थापित कर दिया । उसको देखकर मनुष्य को पूर्वं जाति का स्मरण हो आता था और उसकी सुगंध से पृथ्वी तीन पावन तन्त्र सुवासित रहती थी । यादवगण उस अलौकिक गन्ध को सूँघते थे, उस वृक्ष में अपना मुखदर्शन करते थे । सेवकगण उससे हार्थी-धाढ़े आदि धन प्राप्त करते थे । नरक नामक राक्षस के बन्धन से उन्मुक्त स्त्रियों को कृष्ण ने स्वीकार किया । शुभकाल प्राप्त होने पर अनावन ने उन सब कन्याओं से विवाह कर लिया, जो नरक के गृह से लाई गई थी । विप्रवर । गोविन्द ने पुष्पक-पुष्पक शरीर धारण कर एक ही समय सब कन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया । सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थी । भगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बनाये । उन कन्याओं में मधुसूदन को

तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्द. कृतवानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशव. ॥
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धचरित्रवर्णनम्

उवास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्या 'कयिता द्विजाः। भान्वाविकाशश्च वै पुत्रान्सत्यभामा ध्यजापत ॥१॥
द्वीप्तिमन्तः प्रपक्षाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः। बभूवुर्जान्म्वत्पाशश्च 'साम्बाद्या बाहुशालिनः ॥२॥
तनया भद्रबिन्वाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः। संप्रामजित्प्रधानास्तु शैब्यायां चाभवन्सुताः ॥३॥
बृकाद्यास्तु सुता 'माद्री गान्धर्वप्रमुखास्तान्। अवाप रुक्मण्या पुत्रान्कालिन्द्याश्च क्षुतादयः ॥४॥
अग्यासा चैव भार्वाणां समुत्पन्नानि चक्रिणः। अष्टापुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥५॥

एक-एक करके माना और समझा कि गोविन्द ने मुझसे ही पाणिग्रहण किया है। द्विजगण। रात्रि में जगत्स्रष्टा केशव विद्वरूप धारण कर उन सबके घरो में वास करते थे ॥८-१८॥

श्रीमहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में दो सी चौथा अध्याय समाप्त ॥२०४॥

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

उवास ने कहा—द्विजवृन्द! हरि के रुक्मिणी, से उत्पन्न प्रद्युम्न आदि पुत्रों के बारे में मैंने कहा। (अब और सुनिये) भानु आदि पुत्र सत्यभामा से उत्पन्न हुए। हरि के रात्रिणी से प्रपक्षा आदि दीप्तिमात् पुत्र हुए। जाम्बवती से साम्ब आदि प्रतापी पुत्र हुए। नाग्नजिनी के भद्रविन्द आदि महानरवान् पुत्र हुए। संप्रामजित् आदि पुत्र शैब्या के हुए। माद्री के वृक आदि पुत्र हुए। रुक्मण्या ने गान्धर्वान् आदि पुत्रों को प्राप्त किया। कालिन्दी के क्षुन आदि पुत्र हुए। कृष्ण की दूगरी स्त्रिया में आठ करोड़ एवं सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न

प्रद्युम्नः 'प्रमुखस्तेषां रुक्मिण्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत ॥६॥
अनिरुद्धो रणे रद्धो बलः पौत्रो महाबलः। बाणस्य तनयाम् (मु) पामुपयमे द्विजोत्तमाः ॥७॥
यत्र युद्धमभूदधोरं हरिदांकरयोर्महतु। छिन्नं सहस्रं बाहूना यत्र बाणस्य चक्रिणा ॥८॥

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूदब्रह्मद्विपायं हरकृष्णयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां हृतबाहुरिः ॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग वस्तुमर्हसि नोऽखिलम्। महत्कौतूहलं जातं धीतुमेतां कथां शुभाम् ॥१०॥

व्यास उवाच

उपा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शंभुना सह। कीडन्तोऽमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा स्वयम् ॥
ततः सकलचित्ता गौरी तामाह भामिनीम् ॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्ता त्वमपि रस्यसे ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे वदेति मतिमात्मनः। को वा भर्ता ममेत्येतां पुनरप्याह पार्वती ॥१३॥

प्रधान था। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की उत्पत्ति हुई। द्विजधेष्ठो। रणयुद्ध महाबली अनिरुद्ध ने केलि की पीत्री तथा बाण की पुत्री उपा से विवाह किया। उस विवाह में हरि और शरर के बीच महायुद्ध हुआ। कृष्ण ने बाण की हजारी भुजाओं का काट डाला ॥१-८॥

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन्। उपा के लिये क्यों शिव तथा कृष्ण में युद्ध हुआ? क्यों हरि ने बाण की बांह काट डाली? महाभाग। यह सब सविस्तार हमें बतलाइये। इस शुभ कथा को सुनने के लिय हम बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥९-१०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द। बाण की वर्या उपा ने शरर के साथ रीझा करती हुई पार्वती को देखकर इन्डा की, वि वाश। मैं भी ऐसा करती। तब उसके पिता को जानने वाली गौरी ने उससे कहा ॥११॥

गौरी घोली—तुम व्यर्थ ही अनुताप कर रही हो, पति के साथ तुम भी रमण करोगी ॥१२॥

व्यास ने कहा—पार्वती क इतना कहने पर उपा मन में सोचने लगी, कि जब कौन मेरा स्वामी होगा। फिर पार्वती ने उससे कहा ॥१३॥

पार्वत्युवाच

वैशाख शुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभव तव । करिष्यति ॥ ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

व्यास उवाच

तस्या त्रियो पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरित । तथैवाभिभव चक्रे राम चक्रे च तत्र सा ॥
'सत प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ॥१५॥

उषोवाच

यव गतोऽसीति निलंज्जा द्विजाश्चोक्तवती सखीम । बाणस्य भग्नौ कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ॥१६॥
तस्या सत्पुत्रवत्सा च प्राह कोऽप्य त्वयोच्यते । यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी ॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सबमेवान्ववेदयत । विविताया तु तामाह पुनरुपा ययवितम् ॥
दद्या तथैव सत्प्राप्तौ योऽभ्युपाय कुरुष्व तम ॥१८॥

व्यास उवाच

सत पट सुरान्दत्यान्गर्धर्वाश्च प्रधानत । भनुष्याश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत ॥१९॥
अपास्य सा तु गन्धर्वास्तथोरगसुरासुरान । भनुष्येषु वदौ वृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्टिण्यु ॥२०॥

पार्वती ने कहा—राजकुमारी । वैशाख शुक्ल द्वादशी तिथि में जो व्यक्ति स्वप्न में तुमसे प्रसंग करेगा वही तुम्हारा पति होगा ॥१४॥

व्यास ने कहा—पार्वती के बचनानुसार उसी तिथि को एक पुरुष ने स्वप्न ॥ उपा से रमण किया और उपा को उसके साथ प्रसंग भी हो गया । तब आग्ने पर उस पुरुष को न देखती हुई उपा (उसके लिए) उत्पलित हो गई ॥१५॥

उपा बोली—द्विजगण । नहीं गये हो यह बात उपा निलज्ज होकर अपनी सखी से पूछ बैठी । बाण ने भग्नौ कुम्भाण्ड के चित्रलेखा नामक कहा थी । यह उपा की सखी होने के नाते बोली—तिसरे बारे में तुम यह रही हो ? जब उपा ने लज्जा के बारे में कुछ नहीं कहा तब चित्रलेखा उस विवाह अंगीने के लिये सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी । यह सब समझ गयी । ऐसा जानकर उपा न उससे कहा—उसकी प्राप्ति के लिए गौरी ने जो उपाय बतलाया है वह करो ॥१६ १८॥

व्यास ने कहा—उदन्तर चित्रलेखा ने चित्रलेख पर देव राक्षस गन्धर्व और मुख्य मुख्य भनुष्यों को चित्रित कर दिखलाया । उपा ने गन्धर्व राक्षस तथा देवों को छोड़कर भनुष्या के ऊपर दृष्टि दीशानी उनमें भी गन्धर्व और वृष्टि का बालों के ऊपर छास तीर से दृष्टिपात किया । गुदर भी गायी उपा दृष्ट्य राम को देखकर

कृष्णरामो विलोकयाऽऽसीत्सुभ्रूलंज्जायतेक्षणा । प्रद्युम्नदर्शने त्रीडादृष्टिं निन्द्ये ततो द्विजा ॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिच्छदं च ततो लज्जां ववापि निराकृता । सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तथा सा योगयामिनी ॥
ययौ द्वारवतीम् (मु)या समाश्वास्य ततः सखी ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

अथ षडधिकद्विंशततमोऽध्यायः

बाणयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

बाणोऽपि प्रणिपत्याश्रे ततश्चाऽहं त्रिलोचनम् ॥१॥

बाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निविण्णोऽहं विनाऽहवम । कच्चिन्ममैवा बाहूनां साफल्यकरणो रण ॥
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजं ॥२॥

शकर उवाच

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति । पिशिताग्निजनानं च श्राप्स्यसि त्वं तदा रणम् ॥३॥

काज्जत हा गई। द्विजवृत् । उसने प्रद्युम्न ऊपर लज्जापूष दृष्टि शली। अनिच्छद का देखकर वह यग नाम से चलने वाली उपा लज्जा दूर करके बोल उठी—यही है मेरा यही है। तब उपा को सारवना देकर सखी द्वारा रखा गयी ॥१९ २२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बाण-युद्ध प्रसंग मे दो सौ पचिसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०५॥

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

व्यास ने कहा—बाण की शिव के सामने माया देव बर बहने लग्य ॥१॥

बाण ने कहा—देव । मैं हजार मुजावों से युक्त होकर विना युद्ध के दुखी हूँ रहा हूँ। यदि कोई ऐसा युद्ध हो जो मेरी बाँहों को चरितम कर सके तो ठीक है अन्यथा विना युद्ध ने मुजावें भारमात्र हैं ॥२॥

शकर ने कहा—बाण । जब तुम्हारी मयूर-पताका मन्न होगी तब माताहारी जीवों को आनन्द देने वाला रण तुम्हें प्राप्त होगा ॥३॥

व्यास उवाच

ततः प्रणम्य मुदितः शुभमभ्यागतो गृहात् । भग्नं ध्वजमयाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षं परं ययौ ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्यायलेन तम् । अनिरुद्धमयाऽऽनित्ये चित्रलेखा यया सखी ॥५॥
 कन्यान्तःपुरमध्ये तं रममाणं सहोदया । विज्ञाय रक्षिणो गत्वा दशसुदंत्यभूपते ॥६॥
 व्यादिष्टं किकराणां तु सैन्यं तेन महात्मना । जघान परिघं लोहमादाय परवीरहा ॥७॥
 हतेषु तेषु बाणोऽपि रयस्यस्तद्वधोद्यतः । युध्यमानो ययाशक्तिं यया वीरेण निजितः ॥८॥
 मायया युयुधे तेन ॥ तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पद्मगास्त्रेण बलबन्धं यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारवत्या वयं यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् । यदूनामाचचक्षे तं बद्धं बाणेन भारव ॥१०॥
 तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतं विद्याविदग्धया । योषिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गच्छमावृद्धं स्मृतमात्रां गतं हरिः । बलप्रद्युम्नसहितो याणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्या तान्प्रक्षयं हरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थमत्ययं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शं भूततापं' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समं समीलितैक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकल और पताके को भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या ने बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध की ले आई ॥५॥ कन्या पुर में उपा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महाराम ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर वीर शत्रुओं के ताशकृता अनिरुद्ध ने कोहे का मुँहपर लेकर सैनिकों को नष्ट कर दिया । सेनाओं को निहत्त हो जाने पर अनिरुद्ध का बंध करने के लिए उद्यत बाण भी रथावृद्ध होकर शक्तिमत् युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब मनसिद्ध बाण मर्या से युद्ध करने लगा और अतत सपरिज से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में मादवण बोलने लगे—अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) भारव ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बाधे गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या ने निपुण स्त्री, अनिरुद्ध की शोणितपुर ले गईं यह सुनकर यादवी की विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गच्छ पर चढ़कर कृष्ण बलप्रद्युम्न और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए गुरुरत प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथयणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करने बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शकर का तीन पीर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव की भी महा ज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आर्क्षें भूद ली । तब वीणव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शाङ्गिणा । वंणवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहाग्निराकृतः ॥१६॥
 नारायणभुजायातपरिपीडनविह्वलम् । तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वंणवं ज्वरम् । आत्मन्येव लयं नित्ये भगवान्मधुसूदनः ॥१८॥
 मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः ॥१९॥
 ततोऽग्नीनभगवान्पृथ्वीं जित्वा नीत्वा क्षयं तया । दानवानां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलाया ॥२०॥
 ततः समस्तसंन्येन देतेयानां बलैः सुतः । युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशंकरयोर्युद्धमतोबाऽऽसीत्सुबाक्षयम् । अशुभः सकला लोकाः क्षत्रास्त्रैर्बहुधाऽद्विताः ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः । मेनिरे त्रिवशा यत्र वर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जम्भनास्त्रेण गोविन्दो जम्भयामास शंकरम् । ततः प्रणेशुर्दत्तेयाः प्रमयाश्च समन्ततः ॥२४॥
 जम्भाभिभूतश्च हरो रयोपत्यमुपाविशत् । न शशाक तवायोद्धं कृष्णेनामिल्लट्कर्मणा ॥२५॥
 गण्डक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः । कृष्णहृङ्कारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६॥
 जम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसंन्ये गुहे जिते । नीते प्रमयसंन्ये च सक्षय शाङ्गधन्वना ॥२७॥
 नन्दीशसंगृहीताश्वमधिरुद्धा महारथम् । बाणस्तत्राऽऽपयौ योद्धं कृष्णकार्णिकबलैः सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमनेकधा । विध्याथ बाणैः प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलापतः ॥२९॥

इष्ट माहेस्वर पवर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५-१६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपीडित माहेस्वर पवर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—‘क्षमा कर दीजिये’ । विष्णु ने कहा—‘क्षमा ही है ।’ तब भगवान् मधु-सूदन ने वंणव पवर को अपने में लीन कर लिया और माहेस्वर पवर से कहा—‘जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करे, वे विज्वर हो जायेंगे ।’ इसका कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७-१९॥ तब भगवान् ने पाँच अग्नियो को जीतकर दानवों की सेना को आसानी से धूर-धूर कर दिया । तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण, शंकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे । हरि और शिव ने बड़ा मयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पीडित सकल लोक वापने लगे । उस युद्ध की विद्यमानता ने देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपूर्ण जगत् में प्रलय मंच जायगा । गोविन्द ने जम्भनास्त्र का प्रयोग किया, जिससे शंकर को जैमाई आने लगी । तब चारों ओर दैत्य और प्रमयगण नष्ट होने लगे ॥२०-२४॥ जैमाई से अभिभूत शिव, महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये । गण्ड ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत-विक्षत कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुंकार से उसकी पश्चित नष्ट कर दी । फिर वह टिक नहीं सका । जब शंकर जम्भास्त्र के वशीभूत हो गये, दानव सेनायें नष्ट हो गईं, कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमय-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथि के रूप में शिव को लेकर रथावृद्ध बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया । बलराय ने हल के अग्रभाग तथा मुसल

ततः प्रणम्य मुदितः शम्भुमभ्यागतो गृहात् । भग्नध्वजमयाऽऽलोच्य हृष्टो हर्षपरयः ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम् । अनिरुद्धमयाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
 कन्यान्तपुरमध्ये ॥ रममाणसहोपया । विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुन्दर्यभूषते ॥६॥
 व्यादिष्ट किकराणां तु संन्यतेन महात्मना । जघान परिघं लोहमादाय परवीरहा ॥७॥
 हृतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्यस्तद्वयोद्यत । युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जित ॥८॥
 मायया युयुधे तेन ॥ तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पद्मगात्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारयत्या कथं यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् । यद्वनामाचक्षते तं बद्धं बाणेन नारद ॥१०॥
 तं शोणितपुरे धृत्वा नीतविद्याविदग्धया । योषिता प्रत्ययजन्मुर्यादिव नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गच्छमाकृष्ट स्मृतमात्रा गत हरिः । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धभासीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्यासमीत्या तान्सक्षय हरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपावस्त्रिशिराज्वरो महेश्वरो महान् । बाणरक्षार्यमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शं भूतताप' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समसमौलितेक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तुपुरान्त शहर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताने का भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के धन से उतमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ वन्या पुर में उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षकों ने वैत्यरात्र से आकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महारमा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर वीर शत्रुओं के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुद्गर लेकर सैनिकों को नष्ट कर दिया । सेनाओं को निहृत हो जाने पर अनिरुद्ध का बंध करने के लिए उद्यत बाण भी खाक होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब मन्त्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्ततः सर्पास्त्र से यदुकुमार को बांध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में यादवगण बोलने लगे—'अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बांध गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या में निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई यह सुनकर यादवों को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गच्छ पर चढ़कर कृष्ण बलमद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए सुरत प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शहर का तीन पैंर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महाज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आखें मूंद लीं । तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१४ ०म तैरि० । २४ ०मात्र य० । ३६ तद्वन्ध कृष्णस० । ४४ ०तस्ताप० कृ० । ५ अत्यजह्व० ।
 ६४ ०पि अममुनीलि० ।

तत सपुण्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा । ध्वंशवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्तराकृत ॥१६॥
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् । त बोध्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त ध्वंशव ज्वरम् । आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८॥
 मम त्वया मम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैन यधौ हरि ॥१९॥
 ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षय तथा । दानधानां बल विष्णुश्चूर्णयामास लोलया ॥२०॥
 तत समस्तसंन्येन देतेयाना बले सुत । युयुधे शकरश्चैव कातिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशकर्पयोर्पुद्गमतीवाऽऽसौत्सुदाश्नम् । धुक्षुभु सकला लोका शस्त्रास्त्रैर्वहुधाऽर्दिता ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो भूतमागत । मेनिरे त्रिदशा यत्र धर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शकरम् । तत प्रणेशुर्दत्तेया प्रमयाश्च समन्तत ॥२४॥
 जृम्भाभिभूतश्च हरो रयोपस्यमुपाविशत । न शशक तदा योद्ध कृष्णेनाविलष्टकमणा ॥२५॥
 गण्डक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडित । कृष्णहृकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुह ॥२६॥
 जृम्भिते शकरे नष्टे देत्यसंन्ये गुहे जिते । नीते प्रमयसंन्ये च सक्षप शाङ्गधन्वना ॥२७॥
 नवीशसगृहीताश्वमधिरुद्धा महारथम् । बाणस्तत्राऽऽययौ योद्ध कृष्णकार्पण्यबलं सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमनेकधा । विव्याध बाणं प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायत ॥२९॥

॥॥ माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५ १६॥ हरि की मुकाबो के आघात से परिपाडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा— क्षमा कर दीजिये ! विष्णु ने कहा— क्षमा हुआ है । तब भगवान् मधु सूदन ने ध्वंशव ज्वर को अपने मे लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा— आ मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध वा स्मरण करोगे थे विज्वर हुआ आयेगे । इतना कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७ १९॥ तब भगवान् ने पांच अग्निमो को जीतकर दानवो की सेना का आसना से चूर-चूर कर दिया । तब समस्त सैनिको से युक्त बाण शकर और कातिकेय कृष्ण से युद्ध करोगे लगे । हरि और शिव मे बड़ा मयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रो से पाडित सबल लाक कानने लगे । उस युद्ध का विद्यमानता मे देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपुर्ण जगत मे प्रलय मच जायगा । गावित्र ने जृम्भणास्त्र वा प्रयोग किया जिससे शक्वर को जैमाई आने लगी । तब चारो आर दैत्य और प्रमयगण नष्ट हुाने लगे ॥२० २४॥ जैमाई से अभिमूत शिव महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने मे असमय होकर रथ पर बैठ गय । गण्ड ने कातिकेय की बाहुओ को क्षत विस्तार कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुकार से उसका शक्ति नष्ट कर दा । फिर वह टिक नहीं सका । अब शकर जृम्भास्त्र के कर्षिभूत हो गये दानव सेनाय नष्ट हा गय कातिकेय पराजित हो गये और प्रमय-सेना को मा कृष्ण बाण कर चुके तब सारथि के रूप मे शिव को लेकर रथाल्म बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए नहीं आ पहुँचा ॥ २५ २८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न मारने वाले प्रद्युम्न ने बाणो से बाण की सेना को कई बार बाहुत किया । बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम् । वलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः ॥३०॥
 ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धभासीत्समासतः । परस्परं तु संदीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१॥
 कृष्णश्चिच्छेद बाणंस्तान्बाणेन प्रहिताञ्जरैः । बिभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥
 मुमुचाते तयाऽस्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीषया । परस्परक्षतिपरो परिघांश्च ततो द्विजा ॥३३॥
 छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सोदति । प्राचुर्येण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः ॥३४॥
 ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदशयुतिः । जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५॥
 मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः । नम्रा दैतेयविद्याभूकोटरी पुरतो हरेः ॥३६॥
 तामग्रतो हरिर्बुध्या भीलिताक्षः सुदर्शनम् । मुभोच बाणमुद्विष्य छेतुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥
 क्रमेणास्य तु बाहूनां बाणस्याव्युत्तरोदितम् । छेवं चक्रेऽसुरस्याऽऽसु शस्त्रास्त्रक्षेपणाद्बुद्धम् ॥३८॥
 छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्वं मधुसूदनः । मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥
 स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुभापतिः । विलोक्य बाणं बोर्दण्डच्छेदासुवस्त्राववर्षिणम् ॥४०॥

रत्न उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् । परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥
 देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका । लीलेय तव चेष्टा हि दैत्याना यधलक्षणा ॥४२॥
 तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य भया प्रभो । तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं यच्च ॥४३॥

से और कृष्ण ने बाणों से शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया । तब कृष्ण और बाण ने घोर युद्ध होने लगा । बाण के द्वारा प्रक्षिप्त कवचभेदी बाणों को कृष्ण अपने शरीरों से काट देते थे । बाण केशव को वेष करता था और केशव बाण को । वे दोनों विजय की इच्छा से अस्त्रों को छोड़ते थे । तब परस्पर क्षति पहुँचाने में व्याकुल दोनों व्यक्ति मुक्तो का प्रयोग करने लगे । समस्त अस्त्र-बास्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हरि ने बाण को मार देने का विचार किया । अनन्तर दैत्य-समूह नाशन हरि ने सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को उठा लिया । ॥२९-३५॥ बाण ने नाश के लिये चक्र छोड़ते हुए मधुसूदन के आगे कोटरी नामक राक्षसी विद्या नग्न होकर खड़ी हो गई । उसे सामने देखकर हरि ने नेत्रों को बंद कर लिया और शत्रु की मुजा रूपी वन को काटने के लिए बाण को उद्देश्य करके सुदर्शन छोड़ दिया । कृष्ण के छोड़े हुए चक्र ने क्रमशः बाण की सारी मुजाओं को शस्त्रास्त्र फेंकने से भी पहले द्रुत गति से काट डाला । बाहु समूह के विच्छिन्न हो जाने पर शर-ग्रोह-आता मधु-सूदन ने बाण-नाश के लिए छोड़े हुए चक्र को अपने हाथ में ले लिया । बाँहों के भट जाने से शोणित-वर्षा करते हुए बाण को देखकर महादेव गोविन्द के पास जाकर प्रार्थना करने लगे ॥३६-४०॥

रत्न ने कहा—कृष्ण, कृष्ण ! जगन्नाथ ! मैं जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम, परमात्मा, ईश्वर तथा जन्म-मरण से रहित हैं । दैत्यों का वध करने के लिए देव, पक्षी तथा मनुष्य का शरीर जो आप धारण करते हैं, यह तो आपकी लीला है । प्रभो ! प्रसन्न होइये । मैंने बाण को अमयदान दिया है । मेरे वचन को मिथ्या मत कीजिए ।

अस्मत्सश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्ययः। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम्। प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्वत्तवरो बाणो जीवतायेष शकरः। स्वद्वैतव्यगोरावादेतन्मया चक्र निवर्तितम् ॥४६॥

त्वया यद्वभय दत्तं तद्वत्तमभय मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं ब्रष्टुमर्हसि शकर ॥४७॥

योऽहं स त्वं जगन्नेदं सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानं पुण्या भिन्नवर्तिनः ॥४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्या प्रययौ कृष्ण प्राद्युम्निर्मत्रं तिष्ठति। तद्वन्धकपिनो नेशुर्गहडानिलोपिता ॥४९॥

सतोऽनिद्वन्द्वमारोप्य सपत्नीकं गच्छति। आजग्मुर्द्वारका रामकार्णिकामोदरा पुरीम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राज्ञे बाणपुत्रे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

यह मेरे आश्रय में रहकर समुद्र हुआ है। आपका कोई अपराध नहीं है। मैंने इस दैत्य को बरदान दिया था। इस लिए क्षमा कर दे रहा हूँ ॥४१-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर गोविन्द राक्षस के प्रति क्रोध त्याग कर प्रसन्नमुख हो शूल पाणि उमापति से कहने लगे ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—शकर! आपने जब इसे बरदान दिया है सब यह भीषित रहे। आपके बचन की प्रतिष्ठा के कारण मैंने चक्र को निवृत्त कर लिया है। आपने जो अमय दान दिया वह (मानो) मैंने अमय दान दिया। आप भूख अपने से बलग न समझें। शिव! जो मैं हूँ वहीं आप तथा देव राक्षस मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत है। अविद्या से मोहित चित्त वाले पुरुष भिन्नवर्त्ती होते हैं ॥४६-४८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कृष्ण वहाँ गये जहाँ अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध को बाँधे हुए सर्पगण गरुड के वायु से शापित होकर नष्ट हो गये। तदनंतर पत्नी सहित अनिरुद्ध को गरुड पर चढ़ाकर कृष्ण राम अपनी द्वारिकापुरी आ गये ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्महापुराण में बाण-युद्ध प्रसंग में दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रकवधवर्णनम्

मुनय ऊचुः

यत्ने कर्ममहच्छोरीर्विश्रयो मानुषीं तनुम् । जिषाय शक्र शर्वं च सर्वदेवाश्च लीलया ॥१॥
यत्प्रान्यदकरोत्कर्म 'दिव्यचेष्टाविधातकृत् । कथ्यतां तन्मुनियेष्ठ पर कौतूहल हि न ॥२॥

व्यास उवाच

गवतो मे मुनिश्रेष्ठा श्रूयतामिदमावरात् । नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३॥
पौण्ड्रको वासुदेयश्च वासुदेवोऽभवद्भुवि । अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितं ॥४॥
स भेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महोत्तले । नष्टस्मृतिस्तत सर्वं विष्णुचिह्नमचोकरत् ॥
दूत च प्रेषयामास स कृष्णाय द्विजोत्तमा ॥५॥

दूत उवाच

एतश्च चक्रादिक चिह्नं भरीष नाम माऽऽत्मन । वासुदेवात्मक भूढ मुक्त्वा सर्वमशेषत ॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणति नमः ॥७॥

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णनं

मुनियो ने कहा—कृष्ण ने मनुष्य-शरीर धारण कर महान् काय किया जा कि इन्द्र शिव तथा अखिल देवों को सहज ही ने जीत लिया । मुनिश्रेष्ठ ! दिव्यचेष्टानागन कृष्ण ने और जा काय किया वह हमें बतलाइये हमें बड़ा उत्कण्ठा है ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! आदरपूर्वक मुनिये मैं कहता हूँ । नरावतार मे कृष्ण ने काशीपुरी को जलाया । पौण्ड्रक और वासुदेव—दो कृष्ण पृथ्वी पर हो गये । अर्थात् अज्ञानमाहित व्यक्तियों ने पौण्ड्रक से कहा—तुम अवतार पुरुष हो । उसने स्वयं भी अपने को समझा कि मैं वासुदेव हूँ पृथ्वी पर अवतार हूँ । द्विजश्रेष्ठ ! पदचात जैसे सब कुछ मूलकर अपने शरीर मे विष्णु के चिह्नों का धारण किया और कृष्ण के पास एक दूत भेजा ॥३ ५॥

दूत ने कहा—गुरु ! तू मेरे चक्र आदि चिह्नों को तथा वासुदेव नाम को त्याग दे और यदि जीने की इच्छा है तो मुझ आकर प्रणाम कर ॥६ ७॥

व्यास उवाच

इत्युक्त स प्रहर्ष्य च दूतं प्राह जनार्दन

॥८॥

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमह चक्रं समुत्सृज्य त्वयोति वै । चाच्यञ्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूतं यचो मम ॥९॥
 ज्ञातस्त्वद्वाक्यसदभावो यस्कार्यं तद्विधीयता । गृहीतचिह्नं एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ॥१०॥
 उत्सृज्यामि च ते चक्रं निजचिह्नमसशयम् । आश्रापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ॥११॥
 सपादयिष्ये इवस्तुन्य तदप्येषोऽविलम्बितम् । शरणं ते समभ्येत्य कर्ताऽस्मि नृपते तथा ॥
 यया त्वत्तो भयं भूयो नैव किञ्चिद्भविष्यति ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगतं दूतं सस्मृत्याम्यागतं हरिः । गत्स्मन्तं समाकृष्टं त्वरितं तत्पुरं ययौ ॥१३॥
 तस्यापि केशवोद्योगं ध्रुवा काशिराजस्तदा । सर्वसैन्यपरीवारपार्ष्णिप्राह्नुपाययौ ॥१४॥
 ततो बलेन महता काशिराजबलेन च । पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुखं ययौ ॥१५॥
 तं ददर्श हरिर्वूराडुदारस्यन्वने स्थितम् । चक्रशङ्खगदापाणि पाणिना विधृताम्बुजम् ॥१६॥
 शङ्खधरं धृतशङ्खं च सुपर्णरचनाम्बुजम् । वक्षःस्थलकृतं चास्य श्रीवत्सं ददृशे हरिः ॥१७॥
 किरीटकुण्डलधरं पीतवासं समन्वितम् । दृष्ट्वा तं भावगम्भीरं जहास 'मधुसूदन' ॥१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर जनार्दन हँसकर दूत से कहने लगे ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत 'तुम जाकर पौण्ड्रक से कहना कि मैं उनके सामने अपने चिह्न-चक्र का परि-
 त्याग कर दूँगा । उनके वाक्य का आशय मैं समझता हूँ । मैं अपना काय करूँ । मैं चिह्न सहित उनके नगर में आऊँगा ।
 यदि तुम्हारे कहने पर वे मुझ आने के लिए आशा देंगे तो निःसन्देह मैं अपने चिह्न चक्र को छाड़ दूँगा । उसका
 कल्याण हो । मैं शीघ्र ही यह कार्य करूँगा । उनकी शरण में जाकर मैं सब कुछ करूँगा जिससे फिर मुझ उनसे
 कोई भय न रहे ॥९-१२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर दूत चला गया । हरि आगतुक का स्मरण कर तुरन्त गहड़ पर चढ़कर
 पौण्ड्रक के नगर के लिए प्रस्थित हो गये । कृष्ण के प्रयत्न के बारे में सुनकर काशीनरेश समस्त सैनिका से युक्त होकर
 शत्रु से सघर्ष करने के लिए चल पड़ा । तब अपनी बड़ी सेना तथा काशीपति की सेना के साथ वासुदेव रूपधारी
 पौण्ड्रक भी केशव के सामने गया । हरि ने विशाल रथ पर स्थित मालाधारी शत्रुपधारी गरुडचित्रित पताका से
 युक्त, वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित मुकुट-कुण्डलधारी पीतवस्त्रसम्बित तथा हाथों में शङ्ख,
 चक्र, गदा पथ लिये पौण्ड्रक को दूर से ही देखा । भावगम्भीर पौण्ड्रक को देखकर मधुसूदन हँसने लगे । द्विजगण ।

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निर्विघ्नशष्टिपदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना ॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्वलम् ॥२०॥
काशिराजबलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोवर्तं त्वया यत्तद्वृत्तवचनेन मा प्रति। समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम् ॥२२॥
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गहस्ताम्रेण निविष्टः समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥
इत्युवाचायं विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः। 'पौयितो गदया भग्नो गहस्तांश्च गहस्ता ॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके 'काशीनामधिपस्तदा। युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्वा तस्य शरैः शिरः। काशिपुर्या स चिक्षेप कुर्वल्लोकस्य विमत्स्यम् ॥२६॥
हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराज च सानुगम्। रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यया ॥२७॥
तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥२८॥
शात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः। धरं धृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वद्रे भगवन्कुर्या पितुर्हन्तुर्वधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य स्वत्प्रसादागमहेस्वरः ॥३१॥

तलवार, गदा, शूल, शक्ति, धनुष तथा हाथी-घोडों से युक्त सैनिकों से कृष्ण युद्ध करने लगे। क्षण में ही जनार्दन ने अपने अग्निवर्षी बाणों से तथा गदा-चक्र से उसकी सेना को विनष्ट कर दिया। काशीपति की सेना का भी सहार करके कृष्ण ने निजचिह्न से युवन मूर्ख पौण्ड्रक से कहा ॥१३-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—पौण्ड्रक ! तुमने दूत के मुख से जो मुझे चिह्न त्याग देने को कहा था, उस काम को मैं कर रहा हूँ। इस चक्र को मैंने छोड़ दिया। तुम्हारे लिए इस गदा को भी छोड़ दिया, यह गदह तुम्हारी पताका धारण करे। इतना कहकर कृष्ण ने चक्र छोड़ दिया। चक्र ने पौण्ड्रक की पाठ डाला, गदा ने उसे धूर-धूर कर डाला, गदह ने उसकी ध्वजा का नाश कर दिया। तब लोगी में हाहाकार मच गया। मित्र-शत्रु होने पर काशीपति वासुदेव से युद्ध करने लगा। तब लोगी को आश्चर्यित करते हुए कृष्ण ने अपने बाणों से उसका शिर काट कर काशी-पुरी में फेंक दिया। वासुदेव काशिराज सहित पौण्ड्रक को मार कर द्वारका में उसी प्रकार रमण करने लगे, जैसे स्वर्ग में देवता। काशीपुरी में गिरे हुए उसके शिर को देखकर लोग 'यह क्या' कहकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'वासुदेव ने मारा' यह जानकर काशीपति का पुत्र पुरोहित सहित धार को सतुष्ट करने लगा। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र में राज पुत्र से प्रसन्न होकर धारक ने उससे वर मागने को कहा। उसने वर मागा—'महेस्वर ! आपकी कृपा से मेरे पिता के वचनकर्ता कृष्ण को मारने के लिए कृत्वा उत्तम हो ॥२२-३१॥

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम् । महाकृत्या समुत्तस्यौ तस्यैवाग्निनिवेशनात् ॥३२॥
ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकलापिका । कृष्ण कृष्णेति कुपिता कृत्वा द्वारवतीं ययौ ॥३३॥
तामवेश्य जन सर्वो रौद्रा विकृतलोचनाम् । ययौ शरण्यं जगता शरणं मधुसूदनम् ॥३४॥

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य धूमध्वजम् । उत्पादिता महाकृत्या यथाय तथ चन्निनः ॥
जहि कृत्यामिमामुप्रां वह्निज्वालाजटाकुलाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

चक्रमुत्सृष्टमशेषं क्रीडासमयेन लीलया । तदग्निभालाजटिलं ज्वालोलूभारातिभीषणम् ॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम् । ततः सा चरन्विध्वस्ता कृत्या माहेदवरो तदा ॥३७॥
जगाम वैगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम् । कृत्या धाराणसीमेव प्रविवेश स्वराग्निता ॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः । ततः काशियलं भूरि प्रमथयन्ती तथा बलम् ॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ । शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्वयलमोजसा ॥४०॥
कृत्वाऽनेमानमोया सा पुरीं वाराणसीं ययौ । प्रभूतभूत्यपौरा सा साश्वमातङ्गमानयाम् ॥४१॥

व्यास ने कहा—सिधने कहा—‘ऐसा ही होगा ।’ वधवात् अग्निकुण्ड से महाकृत्या उत्पन्न हुई, जिसने
मूँह और नेत्र ज्वालाओं से भयवर हो रहे थे । वह जोश से ‘कृष्ण-कृष्ण’ बोली हुई द्वारवा पहुँची । खर की उस
विकृत नेत्र वाली कृत्या को देखकर लोग अखिल्लोकरक्षक मधुसूदन की शरण में गये ॥३२-३४॥

लोगों ने कहा—काशिराज के पुत्र ने शर की आराधना करके आपने वध के निमित्त महाकृत्या को
उत्पन्न कराया है । अग्निज्वाला से व्याप्त जटा वाली इस भीषण कृत्या को आप मारिये ॥३५॥

व्यास ने कहा—यूत-क्रीडा में आसक्त कृष्ण ने लीला करने के लिए अपना चक्र छोड़ दिया । अग्नि-
पुञ्ज से व्याप्त तथा ज्वालाओं से अतिभयानक सुदर्शन चक्र क्षीघ्रता से कृत्या का पीछा करने लगा । चक्र की
चोट सावर शिव की कृत्या वेग से गमन करने लगी । चक्र ने भी वेग से उड़वा अनुसरण किया । विष्णु चक्र ने
उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया । वह क्षीघ्रता से वाराणसी में प्रविष्ट हुई । मुनिवर ! तब काशीपति की सेना
और प्रमथयण समस्त शस्त्र-अस्त्रा से युक्त होकर चक्र के सामने आये । चक्र ने शस्त्र-अस्त्र छानने में व्यस्त
साथी सेना को दग्न कर संपूर्ण वाराणसी पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । प्रचुर सेवकों तथा पुरवासियों से युक्त-

अशेषदुर्गकोष्ठां ता बुनिरीक्ष्यां सुरैरपि । ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम् ॥४२॥
 ददाह' ता पुरीं चक्र सकलामेव सत्वरम्' । अक्षीणामर्षमत्यल्पसाध्यसाधनानिस्पृहम्' ॥४३॥
 तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्तिं विष्णोरभ्यापयौ करम् ॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पौण्ड्रकवासुदेववधे काशीदाहवर्णनं नाम
 सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

धोतुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमत । मुने पराक्रम शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
 यमुनाकर्षणादोनि भुताग्न्यस्माभिरद्र वं । तत्कथ्यता महाभाग यदग्न्यत्कृतवान्बल ॥२॥

व्यास उवाच

भृशुष्य मुनय कर्म यद्रानेनाभयत्कृतम् । अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभृता ॥३॥
 दुर्योधनस्य तनया स्वयवरकृतेक्षणात् । बलादावतवाग्वीर साम्बो जाम्बवतीसुत ॥४॥

परकोटे तथा तोरणा से युक्त उस समय पुरी को शाव ही चक्र ने जला दिया । अन्तर प्राचीन से नि स्पृह अक्षीण
 कोष बाला वह कातिमान् चक्र विष्णु ने हाथ में आ गया ॥३६४॥

श्री ब्रह्महापुराण में श्रीकृष्णचरितोपक्रम में पौण्ड्रक वासुदेव ने वध प्रसंग में काशीदाह-वर्णन
 नामक दो ही सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—मुने । पुन हम धीमान बलभद्र की वीरता तथा पराक्रम के बारे में सुनना चाहते हैं
 आप वर्णन करें ॥१२॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द । अनन्त अप्रमेय शेष तथा धरणीधर राम ने जा किया वह आप मुनिये ।
 जाम्बवतापुत्र वीर साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयवर में बलात् पकड़ लिया । तब क्रुद्ध बलबाली कर्ण दुर्योधन

१ग ०६ तद्वरेक्षक । २ख ०म् । सुधीणसारा कृत्वेमा सा० । ३ख ०नकरकम् ।

ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव बलवन्पुंसि निजितम् ॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु। मुनयः प्रतिचक्षुश्च ताविवहन्तुं महोद्यमम् ॥६॥
तान्निवार्यं बलः प्राह मदलोककुलाक्षरम्। मोक्षयन्ति ते मद्रचनाद्यास्याभ्येको हि कौरवान् ॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाहचर्यम्। बाह्योपवनमध्येऽभूत् विवेश च तत्पुरम् ॥८॥
बलमागतमाजाय तदा दुर्योधनादयः। गामर्धमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ॥९॥

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाज्ञां विमृञ्चत ॥१०॥

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः ॥११॥
ऋषयश्च क्रुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजार्हं यदोर्वशमवेक्ष्य मुशलायुधम् ॥१२॥

कौरवा ऊचुः

भो भोः किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्पाना यादवः कः प्रदास्यति ॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञा कौरवाणां प्रदास्यति। तदलं पाण्डुरं दृष्ट्वा नृपयोग्यैरलङ्कृतैः ॥१४॥
तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायवेष्टितम्। विमोक्षयामो न भवतो मोघसेनस्य शासनात् ॥१५॥

भीष्म, द्रोण आदि ने युद्ध में पराजित साम्ब की बाँध दिया। मुनिगण। यह सुनकर यादवा को दुर्योधन आदि के ऊपर क्रोध हुआ। वे उनकी मारने के लिए तैयारी करने लगे। पर बलभद्र ने उन्हें रोक कर अभिमानपूर्ण वाक्य कहा—'मेरे कहने से वे लोग छोड़ देंगे। मैं अकेला ही कौरवों के पास जाऊँगा।' तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर पहुँच कर नगर के उपवन में ही ठहरे, पुरी में प्रविष्ट नहीं हुए। बलराम के आगमन को जानकर दुर्योधन प्रभृति ने राम को धर्म-जल-पाद समर्पित किये। राम ने विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण कर कौरवों से कहा ॥३-९॥

बलदेव बोले—उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोग शीघ्र साम्ब को छोड़ दो ॥१०॥

व्यास ने कहा—द्विजगण। राम के वचन को सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि क्रुद्ध हो गये। बाह्लिक आदि समस्त नृपगण 'यदुवश राजवश' नहीं है' यह सोचकर बलदेव की ओर लक्ष्य करने लगे ॥११-१२॥

कौरवों ने कहा—बलभद्र जी। यह आपने क्या कह दिया। कौरवों को आज्ञा देने वाला यादव कौन होता है? यदि उग्रसेन भी कौरवों को आज्ञा दे तो नृपयोग्य अलंकृत श्वेतच्छत्र धारण करने से क्या लाभ? बलभद्र। इसलिये आप चले जायें। न आपने कहने से न उग्रसेन की आज्ञा से हम इस अन्यायी साम्ब को छोड़ेंगे।

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकः । न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥१६॥
 गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनं । को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता ॥१७॥
 अस्माभिरर्च्यो भवता योऽयं बल निवेदितः । प्रेम्णं न तदस्माकं कुलाद्युपेतुलोचितम् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरेः सुतम् । कृतंकनिश्चया सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम् ॥१९॥
 मत्तः कोपेन चाऽऽपूर्णं ततोऽधिपेजन्मना । उत्थाय पाण्ड्यां यसुधां जघान स हलायुधः ॥२०॥
 सतो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः । आस्कोटयामास तदा विशः शब्देन ध्रुवम्
 उवाच चातिताम्राक्षो भ्रुकुटोऽकुटिलाननः ॥२१॥

बलदेव उवाच

अहो महाबलेपोऽयमसारणां कुरात्मनाम् । कौरवाणामधिपत्यमस्माकं किल कालजम् ॥२२॥
 उपतेनस्य ये नाऽज्ञां मन्यन्ते चाप्यलङ्घनाम् । आज्ञा प्रतीच्छेद्धर्मण सह देवः शचीपति ॥२३॥
 सबाध्यास्ते सुपर्मा तामुग्रसेनः शचीपते । धिक्मनुष्यज्ञतोच्छिष्टे तुष्टिरेया नृपासने ॥२४॥
 पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वेनितानजम् । निर्भति यस्य भृत्याना सोऽप्येषा न महोपति ॥२५॥
 समस्तभूभुजां नाथ उपसेनः स तिष्ठतु । अद्य निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा यास्यामि तापुरीम् ॥२६॥
 कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सथाह्विकम् । दुःशासनादीन्मूर्ध्नि च भूरिभ्रवसमेव च ॥२७॥
 सौमवत्तं शलं भीममर्जुनं समुभिष्ठिरम् । धमजी कौरवाश्चान्यान्हन्या साध्वरपद्विपान् ॥२८॥

जिन कुकुर-अन्धक घस वालो ने हमे प्रणाम किया, वे हमे आज्ञा दें । सेवक स्वामी पर शासन करे । हमने आप लोगों को समान आसन-भोजन देकर अभिमानी बना दिया । आपना दोष ही क्या है ? यह तो नीति है । बल ! हम जो आपकी पूजा करते हैं, वह केवल प्रेम के कारण । हमारे कुल का यह घम मही है कि हम आपके कुल की प्रतिष्ठा करें ॥१३-१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कौरवों ने साम्ब को नहीं छोड़ा । सब एक निश्चय करके हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए । आक्षेपजन्य क्रोध से मत्त होकर बलदेव ने उठकर ऐंडी से पृथ्वी पर ठोकर मारी । महात्मा की ऐंडी के प्रहार से विदारित पृथ्वी दिशाओं को शब्द-पूर्ण करती हुई फटने लगी । आँखें लाल कर तथा मुँह-मौह की कुटिल कर (अर्थात् त्योरी चलाकर) बलदेव बोले ॥१९-२१॥

बलदेव ने कहा—अहो ! तुच्छ दुरात्माओं को महान् गर्व हो गया है । हमारे ऊपर कौरवों का अधिपत्य हो गया है । उपसेन की अलक्षणीय आज्ञा को कौरव नहीं मानेंगे । देवर्षि सहित इन्द्र धनुर्पूर्वक उपसेन की आज्ञा चाहते हैं । उपसेन इन्द्र की देवसभा के अध्यक्ष हैं । सैकड़ों मनुष्यों के उच्छिष्ट राजसिंहासन से सत्पथ करने वाले इन (कौरवों) को धिक्कार है । जिन (उपसेन) के वासों की स्त्रियाँ नल्पवृक्ष के पुष्पो तथा मज्जरियाँ वारण करती हैं, वे इनके शासक नहीं हैं ? उपसेन समस्त राजाओं के अधिपति हो । आज ही मैं पृथ्वी को कौरव विहीन करके उस पुरी में जाऊँगा । आज ही हाथी, घोड़े तथा रथ सहित कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक तत पुरीम । द्वारकामुप्रसेनादीन्वात्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९॥
अथवा कौरवादीना समस्त कुरुभि सह । मारावतरणे शीघ्र देवराजेन चोदित ॥३०॥
भागोरम्या क्षियाम्याशु नगर नागसाह्वयम् ॥३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा 'कोपेरक्ताक्षस्तालाङ्गोऽधोमुप हलम्' । प्राकारवप्रे 'विन्यस्य चकर्वं मुशलायुध ॥३२॥
आधूणित तत्सहसा ततो वै हस्तिनापुरम् । वृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चक्रुः सर्वकौरवा ॥३३॥

कौरवा ऊचु

राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यतात्वया । उपसंह्रियता कोप प्रसीद मुशलायुध ॥३४॥
एव साम्ब सपत्नीकस्तव निर्वोत्तितो बल । अविज्ञातप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो निर्वतिदामासु साम्ब पत्न्या समन्वितम् । निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्णं कौरवा मुनिसत्तमा ॥३६॥
भीष्मद्रोणकृपादीना प्रणम्य वदता प्रियम् । क्षान्तमेव मयेत्याह बल्लो बलवता वर ॥३७॥
अद्याप्याधूणिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विजा । एष प्रभावो शमस्य बलशायिवतो द्विजा ॥३८॥

भीष्म बाह्लिक दुःशासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शल भीम अञ्जन युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा अन्य कौरवो
को मैं मार दूँगा । फिर पत्नी सहित वीर साम्ब को लेकर द्वाका जाऊँगा और माई-बापुओं से मिलूँगा । अथवा
इस की प्रणया से पृथ्वी का मार उतारने के लिये समस्त कौरवो सहित हस्तिनापुर को गया मे दूबो दूँगा ॥२९ ३१॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर क्रोध से आल लाल किये मुशलचारी बलदेव ने हल को अधोमुख करके प्राचीर
और स्तूप का विन्यास करके हल को खींचा । जिससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर एकाएक धूमने लगा । यह देखकर समस्त
कौरव व्याधिसहृदय होकर चिल्लाने लगे ॥३२ ३३॥

कौरवो ने कहा—महाबाहो ! राम ! राम ! क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये । मुशलायुध ! कृपा कीजिये
क्रीध को हटाइये । बल ! पत्नी सहित साम्ब प्रस्थान कर चुके । हमने आपके प्रयाच को नहीं जाना । हम अपराधियो
को क्षमा कीजिये ॥३४ ३५॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कौरवो ने शीघ्रतापूर्वक अपनी गरी से निकल कर पत्नी सहित साम्ब को
विदा किया । बलवानो मे श्रेष्ठ बलदेव ने माप्य द्रोण कृप आदि को प्रणाम करके कहा—क्षमा ही है ।
द्विजगण ! आज भी हस्तिनापुर घूमा हुआ सा प्रतीत होता है । बल-वीरतावाली बलराम का यह प्रभाव

ततस्तु कौरवा साम्ब सपूज्य हलिना सह। प्रेपयामासुद्धाहपनभार्यासमन्वितम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राज्ञे श्रीकृष्णचरिते बलदेवमाहात्म्यनिरूपण
नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०८॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्याय.

द्विविदवानरवधवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनय सर्वे बलस्य बलशालिन। कृत यदन्यदेवाभूतवपि श्रूयता द्विजा ॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः। सखाऽभयन्महावीर्यो द्विविदो नाम वानरः ॥२॥
वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ॥३॥

द्विविद उवाच

नरक हतश्राकुऽग्नौ धनशर्पसमावृतम्। करिष्ये सर्वदेवाना तस्मादेव प्रतिक्रियाम् ॥४॥

है। तबुनरान्त कौरवो ने बलराम सहित साम्ब की पूजा कर दान-दहेज देकर भार्या सहित साम्ब को बिदा किया ॥३९॥३९॥

श्रीकृष्णमहापुराण में श्रीकृष्णचरित प्रसंग में बलदेव-माहात्म्य निरूपण
नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०६

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द। शक्तिशाली बलदेव ने और मैं जो वाय किये वे भी आप लोग सुन लीजिये। देवताओं के विरोधी राजसुराज नरक का मित्र द्विविद नामक बन्दर था। बल देविविद अपने मित्र के कारण देवताओं से वैर करने लगा ॥१॥३॥

द्विविद बोला—कृष्ण ने बल तथा ग्व से युक्त नरक को धार दिया है। इसलिए मैं समस्त देवों से इसका बदला लूंगा ॥४॥

व्यास उवाच

पतविध्वसन कुर्वन्मर्त्यलोकक्षय तथा । ततो विध्वसयामास यज्ञानज्ञानमोहित ॥५॥
 विभेद साधुमर्यादा क्षय चक्रे च देहिनाम् । ददाह चपलो देश पुरग्रामान्तराणि च ॥६॥
 बवचिच्च पर्वतक्षेपाद्ग्रामादीन्समचूर्णयत् । शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा ॥७॥
 पुनश्चाण्डवमध्यस्थ क्षोभयामास सागरम् । तेनातिक्षोभितश्चाण्डिच्छेदो जायते द्विजा ॥८॥
 'ध्नावपस्नोरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान् । कामरूप महारूप कृत्वा सस्याग्न्यनेकश ॥९॥
 लुठन्ममणसमद' सचूर्णयति धानर । तेन विप्रकृत सर्वं जगदेतद्दुद्रात्मना ॥१०॥
 निस्त्राघ्रायश्चटकार द्विजश्चाऽऽसीत्सुदुःखितम् । कदाचिद्वैवतोद्याने' ययौ पान हलामुध ॥११॥
 रेवती च महामागा तपेजान्या यरस्त्रिय । उदयोपमानो विलसत्ललनामौलिमध्यग ॥१२॥
 रने यदुवरध्रेष्ठ कुबेर इव मन्दरे' । तत स यानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ॥१३॥
 मुक्तं च चकारास्य समुक्ष स विडम्बनान् । तथैव योषिता तासा जहासाभिमुख कपि ॥१४॥
 पानपूर्णाश्च करकाश्चिन्नेषाऽऽहृत्य वै तदा । तत कोपपरोतात्मा भर्त्सयामास त बलम् ॥१५॥
 तयापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम् । तत समुत्थाय बलो जगृहे मुशलं यथा ॥१६॥
 सोऽपि शैलतिक्ता भोमा जग्राह प्लवगोत्तम । क्षिप्रं च स ता क्षिप्त्वा मुशलेन सहस्रधा ॥१७॥

व्यास ने कहा—अज्ञानमोहित द्विविद यज्ञो का विध्वस तथा लोपो का नाश करने लगा । वह साधु-मर्यादा का भग करता प्राणियों का विनाश करता गाँवों तथा देशों को जला डालता वही पहाड़ों को फेंककर प्रायः आदि को बुर-बुर कर देता पहाड़ों को उखाड़ कर जल में तथा समुद्र में फेंक देता और पुन सागर के बीच में पैठकर समुद्र को सधुध्व कर डालता था । द्विजगण ! उससे अति लुब्ध समुद्र बचल हो उठता और अत्यन्त वेग से तट पर के गाँवों तथा नगरों को बहा डालता । वह बदर मनुमाना रूप तथा विशालकाय धारण करके सस्यो पर लोट जाता और भ्रमण-समयन से उहूँ कुचल डालता । उस दुष्ट ने सम्पूर्ण ससार में उपद्रव मचा रखा ॥५॥ १०॥ ब्राह्मण लोग स्वप्न य तथा यज्ञ अदि से वंचित होकर बड़े दुखी हो गए । किसी समय रेवत के उद्यान में बलराम (सुरा) पान कर रहे थे । महामागा रेवती तथा दूसरी स्त्रियाँ भी थीं । ललनाओं के बीच में यदुवर बलदेव गाने-यजाने के साथ उसी तरह विलास कर रहे थे जैसे मन्दराचल पर कुबेर । तब वह बदर सभीप आकर बलदेव के हल और मुशल लेकर उनके सामने ही खेल बूद करने लगा । वह स्त्रियों के सामने हँसता और पान-पानों को ककड़ों से भर देता । फिर अत्यन्त क्रोध से उसने बलराम की भर्त्सना की और उनकी अवहेलना करते हुए किलकिला शब्द किया । तदनन्तर बलदेव ने क्रोध से उठकर मुशल धरुण किया ॥११॥ १६॥ उस श्रेष्ठ बदर ने भी मयकर पर्वत-गिला को उड़ान कर फेंका । यादव-श्रेष्ठ बल ने मुशल से उसने हजार टुकड़े कर दिये । शिला छिन्न भिन्न होकर

१क च पुरोदेश । २क तथा । ३क ०जानुसानरा० । ४क ०म् । एकदा रेव० ।
 ५क ०यान ययो न डेहला० । ६ मन्दरे ।

विभेदं यादवश्रेष्ठं सा पपात महीतले । अपतन्मुशलं चासीं समुल्लङ्घ्य प्लवंगमः ॥१८॥
 वेगेनाऽऽयम्य रोपेण बलेनोरस्यताडयत् । ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ॥१९॥
 पपात रुधिरोग्दगारो द्विविदः क्षीणजीवितः । पतता तच्छरीरेण गिरिः शृङ्गमशीर्यत ॥२०॥
 मुनयः क्षतघा वञ्चिबज्रेणेव हि ताडितम् । पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः ॥२१॥
 प्रशशांसुस्तदाऽभ्येत्य साध्येतत्ते महत्कृतम् । अनेन दुष्टकपिना दैत्यक्षोपकारिणा ॥
 जगन्निराकृतं बीर दिष्टघा ॥ क्षयमाणतः ॥२२॥

ध्यास उवाच

एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धोमतः । कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभूतः ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदयानरवधवर्णनं नाम
 नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०९॥

पूर्वा । पर गिर पड़ी और मुगल भी गिर गया । बन्दर ने वेग से छाना मार कर और से बलराम की छाती पर मारा । तब बल ने कोप से मुठ्ठी बीचकर बन्दर के गिर पर मारा । द्विविद लिप्याग होकर रुधिर बमर करते हुए गिर पड़ा । मुनिवृन्द ! गिरते हुए उसी गरीर से पर्वत का गितर उसी तरह सीखा । राशों में परिणत हुआ गया जैसे इन्द्र के बच से आहत होने पर हुआ था । तब देवताओं ने बलराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की और शर्माग आकर (इस प्रकार) प्रशंसा की—“यह आने महान् कार्य किया, बहुत ही अच्छा किया । बीर ! देव ! बलराम करने वाले इस दुष्ट बन्दर न गन्धर्व का क्षिप्ट किया था । आर्य से, यह गष्ट हो गया है ॥१७-२२॥

ध्याता में ब्रह्मा—भीमान्, वरकोपर तथा देवावतार बन्दर के लगे अनेक कार्य हैं, जो अनुयायी से पूरे हैं ॥२३॥

श्रीऽहमहापुराण मे बलदेव-माहात्म्य-वचन प्रमाण मे द्विविद-आरव-वध-वर्णन नाम
 वा सो नवा अध्याय समाप्तः ॥२०९॥

२. अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भूमिभारावतरणकथनम्

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् । चक्रे दुष्टक्षितिशानां तयैव जगतः कृते ॥१॥
क्षितेव भारं 'भयवान्काल्पनेन समं विभुः । अवतारयामास हरिः समस्ताक्षीहिणीवधात् ॥२॥
कृत्वा भारावतरणं भूधो हत्वाऽखिलान्पान् । शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः । स्वांशो विष्णुभयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम् ॥४॥

मुनय ऊचुः

स विप्रशापव्याजेन संजह्ने स्वकुलं कथम् । कथं च मानुषं वेहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५॥

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः । पिण्डारके महातीर्थे वृष्टा यदुकुमारकैः ॥६॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः । साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यया ॥७॥
प्रसूतास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरः सरम्

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार बलदेव की सहायता से कृष्ण ने ससार के लिए दुष्ट राजाओं का वध किया ।
कर्जुन के साथ सर्वशक्तिमान् हरि ने समस्त अक्षीहिणी सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार उतारा । अखिल
राजाओं को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् ने ब्राह्मणों के साथ वे बहाने कुल का सहार किया । द्वारका
को छोड़कर मनुष्य-शरीर त्याग कर कृष्ण अपने अश्व से पुनः अपने विष्णुभय स्थान पर चले गये ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—जनार्दन ने विप्र-शाप के व्याज से कैसे अपने कुल का सहार किया ? कैसे उन्होंने
मनुष्य-शरीर को त्यागा ? ॥५॥

व्यास ने कहा—पिण्डारक नामक महातीर्थ में यदुवर्षी कुमारों ने विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद
को देखा । तदनन्तर यौवन से उन्मत्त तथा भावी घटना से प्रेरित कुमारों ने जाम्बवती-पुत्र साम्ब को स्त्रियों की
तरह सज-धज कर मुनियों को प्रणाम करके कहा ॥६-७॥

कुमारा ऊचु

इय स्त्री पुनकामा तु प्रभो कि जनयिष्यति

॥८॥

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्त विप्रलब्धा कुमारकं । शापदुस्तदा विप्रास्तथा नाशाय सुवता ॥९॥
 मुनयः कुपिता प्रोचुर्मुशल जनयिष्यति । यनाखिलकुलोत्सादो यादवाना भविष्यति ॥१०॥
 इत्युक्तास्तः कुमारास्त आचक्षुषयातयम् । उपसनाय मुशल जज्ञ साम्बस्य घोदरात् ॥११॥
 तदुपसना मुशलमयश्चूणमकारयत् । जज्ञ तच्चरका, चूर्णं प्रक्षिप्तं च महोदधौ ॥१२॥
 मुसलस्याय लोहस्य चूर्णितस्यायकद्विजा । खण्डं चूर्णयितुं शकुनव ततोमराकृति ॥१३॥
 तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः । घातितस्योदरात्तस्य सुब्धो जग्राह तज्जरा ॥१४॥
 विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवानभयसूदन । नैच्छत्तदयया कतु विधिना यत्समाहृतम् ॥१५॥
 देवैश्च प्रहिता दूत प्रणिपत्याऽऽह कशवम् । रहस्यमहं दूत प्रहितो भगवत्सुर ॥१६॥
 यत्स्वशिवमरुदादि परब्रह्माध्यादिभिः सह । विज्ञापयति च शनस्तदिदं श्रूयतां प्रभो ॥१७॥

देवा ऊचु

भारावतरणार्थाय यर्याणामधिकं शतम् । भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदश सप्रसादितः ॥१८॥
 दुर्बुद्धा निहता दत्त्वा भुयो भारोऽयतारितः । त्वया सनायास्त्रिदश व्रजन्तु त्रिदिवशताम् ॥१९॥

कुमार धील—यह क्या पुत्रामिलापिणा है। बतलाइय यह क्या जनवा ? ॥८॥

व्यास ने कहा—कुमारो ने दिव्यज्ञानी मुनिवो से छल किया। अतः सुवती विप्रो ने उनके नाश के लिए शाप दे दिया। क्रुद्ध मुनिया ने कहा—यह मुगल पदा करेगी जिससे यादवों का संपूर्ण नाश हो जायगा। तदुपरांत कुमार ने उपसने से यह घटना निवेदन की। साम्ब ने पेट से मुगल उत्पन्न हुआ। उपसने ने उस लोह मय मुगल का चूर चर करवा दिया। समुद्र में फका जाने पर वह चूर्ण एरका (तुल बिरोप) होकर उत्पन्न हुआ। द्विजगण! उस चूर्णित मुगल के तोमर (रायवांग) के रमान एण्ड को अयन का बाले चूर चूर नहीं कर सक। समुद्र में फका जाने पर एक मछला ने उसे खा लिया। मत्स्योदरा द्वारा मारी गई उस मछला का पेट से मुगल-चूर्ण निकल निकल आया जिसका नामक व्यास ने ले लिया। वस्तुस्थिति का जानते हुए मा भयसूदन ने विधि विधान का अन्तर्गत्त करना कहा। देवताओं का भेजा हुआ दूत एवान्त मा भयसूदन को प्रणाम करने बोला—भगवन्! मैं देवा का भेजा हुआ दूत हूँ। प्रभो! वसु अर्चनीकुमार भस्व आदिय साम्ब आदि देवगण सहित द्रष्टु ने आपसे जो निवेदन किया है वह आप सुन ॥९॥ १७॥

देयताभा ने कहा—पृथ्वी का भार उतारने का यह देवताओं से स्तुत होकर आपने मूलोचन में अवतार लिया। सो क्यों से अधिग्रह गया। दुर्गचारी दैत्य गण मार गये। पृथ्वी का भार भी आपने उतार दिया। आपने

१५ वामस्य वधा कि। २४ लोच्छदो। ३४ ०मि। न्यातित चाद०। ४४ ०पि। सवसन्निस्तदा हटि। न०। ५४ ०मावत। दे०। ६४ विभो।

तदतीत जगन्नाथ घर्षाणामधिक शतम् । इदानीं गम्यता स्वर्गो भवते यदि रोचते ॥२०॥
देवैर्विनाशितो देवोऽप्ययात्रैव रतिस्तव । तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभि ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वमात्माखिल द्रुत वेदमि चैतदह पुन । प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षय ॥२२॥
भुवो 'नामातिभारोऽयं यादवैरनिर्वाहित' । अवतारं करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वर ॥२३॥
यथागृहीत चाम्भोर्धो हृत्वाऽह द्वारकां पुन । यादवानुपसहृय यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मनुष्यवेहमुत्सृज्य सकपणसहायवान् । प्राप्त एवास्मि भन्तव्यो देवेन्द्रेण तया मरं ॥२५॥
जरासथादयो येऽप्ये निहता भारहेतव । क्षितेस्तेभ्य 'सुभारो' हि 'यदूना' समधीयत ॥२६॥
तदेतस्मिन्महाभारमबलार्थं क्षितेरहम् । यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो यासुदेवेन देवदूत प्रणम्य तम् । द्विजा स दिव्यया गत्या देवराजान्तिक ययौ ॥२८॥
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यान्भीमान्तरिक्षगान् । बवर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय विद्वानिदम् ॥२९॥
ताबुद्ध्वा यादवानाह पश्यध्वमतिवारुणान् । महोत्पातान्दशमार्यपा प्रभास याम माचिरम ॥३०॥

साय-नाथ देवता लोग स्वर्ग पधारें । जगन्नाथ । सौ वर्षों से अधिक ही चुका है । अब यदि आपकी इच्छा हो तो स्वर्ग को प्रस्थान करें । देवताओं का निवेदन सुनकर यदि श्रीमान् को अच्छा लगता हो तो अपने अनुचरों समेत यथाकाल यहीं रहें । इतना ही हम कहना है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—द्रुत । जो तुमने कहा है वह सब मुझे मालूम है । मैंने यादवों का क्षय करना भी आरम्भ कर दिया है । असंख्य यादवों से पृथ्वी का भार बहुत बढ़ गया है । मैं 'गीद्र' ही सात रात के अन्दर इसको दूर कर दूंगा । द्वाखा को समुद्र में स्थापित कर यादवों का संहार करने में स्वयं च आऊंगा । मनुष्य-शरीर का त्याग कर बलराम के साथ मैं 'इन्द्र' तथा देवनागा के पास पहुँचा ही हूँ—यही समझो । मार के कारण जो जरा सय आदि मारे गये हैं उनसे बचकर यदुओं का भार पृथ्वी पर हो गया है । इसलिए इस महाभार को पृथ्वी पर से उतार कर मैं अमरलोक का पालन करने के लिए आऊंगा । तुम उनसे कह देना ॥२२ २७॥

व्यास ने कहा—द्विजगण । यासुदेव ने इतना कहते पर देवदूत उन्हें प्रणाम कर दिव्यगति से 'इन्द्र' के पास चला गया । भगवान् भी सातदिन द्वारकापुरी में विनाश-मूकच अलौकिक उत्पातों को पृथ्वी तथा आकाश के बीच देखने लगे । उन्हें देखकर भगवान् न यादवों से कहा—'इन्द्र' महाभयकर उत्पातों को देखो । इनकी शान्ति करने के लिए हम शीघ्र ही प्रमास (तीर्थस्थान) को जाना है ॥२८ ३०॥

१ ग नापाणि भा० । २ क ० रतिव० । ३ ग ० निवाहित । ४ य ० एकानुवम् । ५ या० । ६ ग ० म् कुमारोऽपि य० । ७ स ० दूनामवधौ । ८ ग ० नां भारवीपते । य० ।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम्

॥३१॥

उद्धव उवाच

‘भगवन्मया कार्यं तदाज्ञापय सांप्रतम् । मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति ॥
नाशायस्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं विषया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया । बदरीमाश्रमं पुन्यं गन्धमादनपर्वते ॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहोत्तले । मन्मना मत्प्रसादेन सत्र सिद्धिं भवाप्स्यसि ॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वं कुलम् । द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥३५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येनं जगाम स तदोद्धवः । नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः ॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे रयनारुह्य धीघ्नान् । प्रभातं प्रययुः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः ॥३७॥
प्राप्य प्रभातं प्रयता प्रीतास्ते कुक्कुरान्धकाः । चक्रुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः ॥३८॥
विब्रता तत्र वं तेषां सघर्षेण परस्परम् । यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः ॥३९॥
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दंष्ट्रालाकृताः । क्षीणशस्त्रास्तु जगुहुः प्रत्यासन्नामधैरकाम् ॥४०॥

व्यास ने कहा—महाभक्त उद्धव ने प्रणाम करके हरि से कहा ॥३१॥

उद्धव ने कहा—भगवन् ! मुझे जो इस समय करना है, वह आप आज्ञा दें । मैं समझता हूँ कि भगवान्
समस्त कुल का संहार करेंगे । अभूत ! कुल के विनाश के कारणों को मैं देख रहा हूँ ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरी कृपा से प्राप्त दिव्यगति से तुम गन्धमादन पर्वत पर स्थित पवित्र बदरिमाश्रम
में चले जाओ । उस पवित्र भूमि पर नर नारायण के स्थान में मेरी कृपा से मुझमें मन लगाकर सिद्धि प्राप्त करेंगे ।
मैं कुल का नाश करके स्वर्ग चला जाऊँगा । मुझसे परित्यक्त द्वारका की समुद्र दुबो देगा ॥३३-३५॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर उद्धव केशव से आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करते नरनारायण के स्थान पर
चले गये । द्विजगण । तदनन्तर समस्त यादवों ने कृष्ण, राम आदि के साथ धीघ्नगामो रघो पर चढ़ कर प्रभात
के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर कुक्कुर और अन्धक वध वाले बड़े प्रसन्न हुए । वासुदेव की आज्ञा पाकर
वे लोग मदिरापान करने लगे । पीते ही पीते उन लोगों में परस्पर सघर्ष हो गया । यादवों ने बीच संहारकारी कल-
हाग्नि उत्पन्न हो गया । दौर्भाग्य से वे एक दूसरे को मारने लगे । घटन क्षीण हो जाने पर उन्होंने समीपवर्ती
एखा (तुण विशेष) को ले लिया । एखा वन में समान दीवता था । उससे वे लोग परस्पर भयकर प्रहार

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेष्व लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारेः सुदारुणः ॥४१॥
 प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माज्य सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुविपृथुरेव च ॥४२॥
 चारुवर्मा सुचारुश्च तयाऽकूरादयो द्विजाः। एरकारूपिभिर्वज्रंस्ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४३॥
 निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४४॥
 कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाय तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूतदा ॥४५॥
 अधान सेनं नि शेषानातततायी ॥ यादवान्। जघ्नुश्च सहसाऽज्येत्य तयाऽन्ये तु परस्परम् ॥४६॥
 ततश्चार्णवमध्येन जंघ्रोऽसौ चक्रिणो रयः। पश्यतो दारुकस्याऽऽशु हृतोऽश्वद्विजसत्तमाः ॥४७॥
 चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं सूणो शङ्खोऽसिरेव च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥४८॥
 क्षणमात्रेण वै तत्र याववानामभूत्सयः। श्रुते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः ॥४९॥
 चद्रकस्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम्। ददृशाते मुक्ताञ्चास्य निष्कामतं महोरगम् ॥५०॥
 निष्कस्य स मुक्तात्तस्य महाभोगो भुजंगमः। प्रयातश्चार्णवं सिद्धं पूज्यमानस्तयोर्गः ॥५१॥
 तमर्घ्यमावाय तदा जलधिः संमुखं ययौ। प्रविवेश च तत्तोयं पूजितः पद्मगोतमैः ॥
 बुद्ध्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ॥५२॥

करने लगे ॥३६-४१॥ प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अकूर आदि एरका कपी वधो से एक दूसरे को मारने लगे। कृष्ण उनका निवारण करना चाहते थे। पर उन्होंने कृष्ण को अपना सहायक समझ लिया। वे मार-पीट करने में डटे ही रहे। तब कृष्ण ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका के लिया। यादवों के विनाश के निमित्त एरका मुशलरूप में परिणत हो गया। उससे कृष्ण ने आततायी बनकर अशेष यादवों का संहार कर दिया। दूसरे भी सहसा आकर परस्पर वध करने लगे। विप्रवर। तब कृष्ण का जयशील रय दारुक (कृष्ण के सारथि) के देखते ही देखते समुद्र के बीच से अरवों के द्वारा अपहृत हो गया। चक्र, गदा, वन्य, तरफस, शख तथा शङ्ख कृष्ण की प्रदक्षिणा करके सूर्य-मार्ग से चले गये। द्विजश्रेष्ठी महाशक्तिशाली कृष्ण तथा दारुक को छोड़कर समस्त यादवों का क्षण भर में क्षय हो गया। फुर्ती से चलते हुए कृष्ण तथा दारुक ने देखा कि एक वृक्ष की जड़ में आसन जमाए हुए बलराम के मुख से एक महासर्प निकल रहा है। महती पण। बाला वह सर्प उनके मुख से निकल कर समुद्र की ओर चल पड़ा। सिद्ध तथा सर्प-समूह उसकी पूजा करने लगे। अर्घ्य लेकर समुद्र उसके सम्मुख आया। उत्तम सर्पों से पूजित होकर वह समुद्रजल में प्रविष्ट हो गया। बलराम का महा-प्राण देखकर केशव ने दारुक से कहा ॥४२-५२॥

श्रीभगवानुवाच

इदं सर्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवोऽप्रसन्नो । निर्याण वलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम् ॥५३॥
 योगं स्थित्वाऽहमप्यतत्परित्यज्य कलवरम् । वाच्यश्च द्वारकावासी जनः सवस्तथाऽऽहुक ॥५४॥
 ययमां नगरीं सर्वां समुद्रं प्लावयिष्यति । तस्माद्रथ सुसज्जस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागम ॥५५॥
 न स्थय द्वारकामध्यं निष्क्रान्ते तत्र पाण्डव । तनव सह गतव्यं यत्र याति स कौरव ॥५६॥
 गत्वा च ब्रूहि कौन्तयमजुन वचनमम । पालनीयस्त्वया शक्या जनोऽयं मत्परिग्रह ॥५७॥
 इत्यजुनः सहितो द्वारकत्या भवाञ्जनम् । गृहीत्वा धातुं वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥५८॥

इति श्रीमहापुराण आदिपार्व्य श्रीकृष्णचरित श्रीकृष्णनिजधाममननिरूपण नाम
 दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१०॥

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्याय

कृष्णमानुषोत्सर्गकथनम्

ध्यास उवाच

इत्युक्तो शारकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः । प्रदक्षिणं च बहुश कृत्वा प्रयाद्यथोदितम् ॥१॥
 स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकायां तथाऽऽजुनम् । आनिनाय महाबद्धिं वज्रं चक्र तथा नृपम् ॥२॥

श्रीभगवान् न कहे—ये सब बातें—वलदेव का प्रयाण तथा यादवों का क्षय—तुम वसुदेव तथा उग्रसेन से निवेदन कर देता। याग में स्थित होकर मैं भी इस शरीर का त्याग कर दूँगा। तुम समस्त द्वारिकावासियों तथा आहुक से भी कह देता कि सम्पूर्ण नगर को समुद्र अग्न्यावृत कर देगा। इसलिये तुम लोग रथों पर चढ़कर तैयार हो जाओ और अजुन के आने का प्रतीक्षा करो। अजुन के प्रयाण करने पर द्वारका में कोई न रहता। उसी के साथ चल देना चाहिये जहाँ वह जाय। फिर तुम जाकर अजुन से मेरा वचन कहना—तुम्हें यमागिन मेरी पत्नियों का पालन करना चाहिये। अजुन के साथ वज्र द्वारका में भवाञ्जन के कर जायगा और बड़ी यदुओं का राजा होगा ॥५३-५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण चरित्र-वर्णन प्रसंग में श्रीकृष्ण के निज धाम-मनन निरूपण

नामक दो सो दसवीं अध्याय समाप्त ॥२१०॥

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

ध्यास न कहे—इसके बाद दाक्ष कृष्ण का बार-बार प्रणाम कर तथा अनेक बार उनकी प्रदक्षिणा कर चला गया। उसने जाकर कृष्ण का वचन सब को सुनाया तथा द्वारका में अजुन को साबर महाबुद्धिमान वयस को

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् । ब्रह्मात्मनि समारोप्य 'सर्वभूतेष्वधारयत्' ॥३॥
 स मानयन्निजवचो दुर्वासा यदुवाच ह । योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः ॥४॥
 संप्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र ॥ सुम्बकः । मुशलशेपोहृत्स्य' सायकं' धारयन्परम् ॥५॥
 स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य व्यवस्थितः । ततो विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः ॥६॥
 गतश्च हृदशे तत्र चतुर्बाहुधरं भरम् । प्रणिपत्याऽह चैवं प्रसीदति पुनः पुनः ॥७॥
 अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कुया । क्षम्यतामात्मपापेन द्वयं मा दधुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमन्वपि । गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध' स्वर्गद्वारात्पदम् ॥९॥

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् । आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥१०॥
 गते तस्मिन्स भगवान्त्संयोग्याऽऽमानमात्मनि । ब्रह्मभूतेऽप्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥११॥
 अजन्मन्यजरऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि । त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिविधां गतिम् ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नामका-
 दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

राजा बनाया । भगवान् गोविन्द ने भी अपने में वासुदेव रूप परब्रह्म को अधिष्ठित करके अखिल प्राणियों का धारण किया । दुर्वासा के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने योग युक्त होकर घुटने के ऊपर पैर को रखा । तब उसी मुशल ने शेष काहे से बने धनुष को धारण नित्य वह जरा नामक व्यास वहाँ आ पहुँचा । उसने भगवान् के पैर को मृग समझ कर उसी तोमर (सायबाँस) से बंध कर दिया । समीप जाते पर उसने चार मुजा वाले मनुष्य को देखा । उसको बार-बार प्रणाम करते कहा—'कृपा कीजिये । मैंने अज्ञानता से हरिण समझ कर ऐसा किया । क्षमा कीजिये । मैं अपने ही पाप से जल रहा हूँ । मुझ मत जलाइये' ॥१-८॥

व्यास बोले—सब भगवान् ने कहा—'व्यास' तुम्हे जरा भी भय नहीं है । तुम मेरी कृपा से स्वर्ग चले जाओ ॥९॥

व्यास ने कहा—कृष्ण के वाक्य समाप्त होते ही एक विमान आ गया, जिस पर चढ़कर व्यास उनकी कृपा से स्वर्ग चला गया । उसके जाने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मभूत, अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवमय, निर्मल, जन्म-रहित, अजर, अमर, अक्षिसात्मा तथा अप्रमेय आत्मा में आत्मा को मिला कर मनुष्य देह का त्याग कर त्रिविध गति (देव-गति) को प्राप्त हुए ॥१०-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास तथा ऋषियों के संवाद में कृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण के मनुष्य-स्वीर-त्याग निरूपण नामक चौथी स्मारकवाँ अध्याय समाप्त ॥२११॥

१व ०जकार० । २व ०त् । चकार भगवान्सर्व दु० । ३क. ०लोहेन सा० । ४ ०लोहेकसा० । ५क ०परुण्यजोमरः । स । ५ल ०इव ह्यव० । ६क य तले । ७ल हरियु । ८ल. ०व सर्वमिरास्य० । ९क. निदरा । स. निदिव ।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रविमण्यादीना परलोकगमनम्

व्यास उवाच

येऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेबरे । सत्कार लम्भयामास तयाऽन्येषामनुक्रमात् ॥१॥
महिष्य कथिता रविमणोप्रमुखास्तु या । उपगृह्य हरेर्देहं विविशुस्ता द्रुताशनम् ॥२॥
चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा । विवेश ज्वलितं बर्हि तत्सङ्गाद्द्वादशीतलम् ॥३॥
नस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवाऽऽनकदुग्धुभिः । देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४॥
नूनं प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां ययाविधिः । निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा वयमेव च ॥५॥
तया विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रजः । वयं जन च कौन्तेय पालयऽशनकैर्ययौ ॥६॥
सुधर्मा कृष्णेन मत्पलोके समाहृता । स्वयं जगाम भो विप्रा परिजातश्च पादप ॥७॥
दिने हरिर्पातो दिव सःपश्य मेदिनीम् । तस्मिन्दिनेऽयतीर्णोऽयं कालकायः कलिः किल ॥८॥
यामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः । यदुधेष्टगृहं त्वेकमाऽऽप्लावयत सागरः ॥९॥
कामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधिः । नित्यं सनिहितस्तत्र भगवान्केदावोद्यत ॥१०॥
यं महापुण्यं सर्वपतकनाशनम् । विष्णुकीडावित स्थानं वृष्टया पापात्प्रमुच्यते ॥११॥

अध्याय २१२

रविमणी आदि का परलोक-गमन

व्यास ने कहा—अजुन ने भी कृष्ण तथा राम के गरीर को बूझकर दाह-संस्कार किया और जमना दूतों के भी जताया । कृष्ण की रविमणी आदि आठ स्त्रियों को मैं बतला चुका हूँ । वे हरि के गरीर को प्रणि में प्रविष्ट हो गईं । उज्जयो । राम ने गरीर का आश्लिष्य बरके देवकी ने प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश दिया । स्त्री-मुरा से अग्नि पीतल हो गया । यह सुनकर देवकी, रोहिणी उषसेन तथा यमुने ने भी अग्नि में प्रवेश । तदुरात अजुन ने स्वयं आश्रय दिया और वयं तथा समस्त द्वारवासीयों को लेकर वहाँ से प्रयाण । कृष्ण की हजारों पत्नियाँ भी द्वारका छोड़ कर चली गईं । अजुन वयं तथा द्वारवासीयों का पालन हुए पीरे-पीरे प्रस्थान करने लगे । विश्वरूढ । सुधर्मा नामक देवसमा तथा बलवृण के कृष्ण मत्पलोके में वे थे । वे दोनों अथ स्वर्ग को चले गये ॥१॥ ७॥ जिस दिन हरि पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले गये उसी दिन लक्ष्मण रविमुक्त अवतीर्ण हुआ । शून्य द्वारका को समुद्र ने प्लावित कर दिया । केवल एक यदुधेष्ट के घर वृद्ध ने नहीं दुःखाया । द्वितीय । आज भी समुद्र उलका अधिकतम नहीं करता, जिसलिए वहाँ भगवान् केसर

पार्यः' पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः॥१२॥
ततो लोभः समभवत्पार्येनैकेन धन्विना। वृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः॥१३॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्मदाः॥१४॥

आभीरा ऊचुः

अपमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानतिक्रम्य धिमेतिक्रयता बलम्॥१५॥
हृत्वा सर्वतदाच्छ्रो भोगमद्रोणजयद्रयान्। कर्णादिंश्च न जानाति कलं ग्रामनिवासिनाम्॥१६॥
बभ्रुःशशान्नान्यान्प्राप्त्याश्चैव विशेषतः। सर्वनिवावजानाति किं वो बहुभिरुत्तरैः॥१७॥

व्यास उवाच

ततो मष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः। सहस्रशोऽग्नयथायन्त तं जनं निहतेश्वरम्॥
ततो निवृत्तः कौन्तेय प्राहोऽऽभीराहसन्निव

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा प्रवीतो न ममूर्खवः॥१९॥

व्यास उवाच

अवनाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विध्वसेनपरिग्रहम्॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्विध्य गाण्डीवमजर मुधि। आरोपयितुमारभे न शशाक स बौर्यवान्॥२१॥

का नित्य साभिध्य रहता है। उस महापवित्र, सर्वपापनाशन तथा विष्णु-कीड़ा से युक्त स्थान के दण्ड से पाप दूर हो जाते हैं। मुनिधेष्ठो। धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद देश में पार्य ने सबको बसा दिया। मृत पति वाली स्त्रियों को ले जाते हुए अनेक धनुषधारी पार्य को देखकर चोरों को लोभ हुआ। लोभ से मष्ट चित्त वाले पापी अहीर अत्यन्त मदान्ध होकर परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥८-१४॥

अहीरों ने कहा—यह अनेक धनुषधारी अर्जुन हम लोगों की अवहेलना कर विषयाओं को ले जा रहा है। ऐसे साहस को धिक्कार है। हम बल प्रयोग करें। इस अभिमानी ने नीच, द्रोण, जयद्रथ तथा कर्ण आदि को छोड़ा। पर इसे ग्रामवासियों की शक्ति का परिचय नहीं है। यह बलशाली मनुष्यों का विशेष कर ग्रामीणों का तथा सबका अपमान करता है। इस सब में बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर करने से क्या लाभ ॥१५-१७॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त हजारों की सख्या में चोरालय लाली-ढेले लेकर विषयाज्रा के पीछे दौड़ने लगे। अब निश्चित कौन्तेय ने हँसकर अहीरों से कहा ॥१८॥

अर्जुन ने कहा—पापियों! यदि भरना नहीं चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ ॥१९॥

व्यास ने कहा—अर्जुन की अवहेलना कर अहीरों ने धन के अिया और इष्ट की चिन्तों का भी अपहरण किया। तब अर्जुन ने दिव्य तथा अजर गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, पर वह बली ऐंठा में भर

चकार सज्जं कृच्छ्रात् तदभूच्छियलं पुनः । न सस्मार तयाऽत्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥
 शरान्मुमोच चेतोषु पार्थः शोयान्स हृषितः । न भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वना ॥२३॥
 वह्निना चाक्षया दत्ताः शरास्तोऽपि क्षयं ययुः । युध्यतः सह गोपालं रजुनस्याभवत्क्षयः ॥२४॥
 अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्वलम् । यन्मया शरसंघातैः सबला भूमृतो जिताः ॥२५॥
 म्रियतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः । अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः कामाच्चात्याः प्रवदन्तुः ॥२६॥
 ततः शरोषु क्षीणेषु धनुष्कोटेषा घनंजयः । जघान वस्युंस्ते चास्य प्रहारारब्धहसुद्विजाः ॥२७॥
 पश्यतस्तत्वेव पार्थस्य वृण्यन्धकवरस्त्रियः । जम्बुरादाय ते स्नेहेच्छाः 'समस्तान्मुनिसत्तमाः ॥२८॥
 ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् । अहो भगवता तेन मुषतोऽस्मीति हरोदधै' ॥२९॥

अर्जुन उवाच

तदनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च बाजिनः । सर्वमेकपदे नष्टं दानमधोत्रिये यथा ॥३०॥
 अहो घाति बलं देवं विना तेन महात्मना । यदसामर्ध्यमुबतोऽहं नीचैर्नीतः पराभवम् ॥३१॥
 तौ बहू स घ मे मुष्टिः* स्थानं ततोऽस्मि चार्जुनः । पुण्येनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥
 ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम् । विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा ॥३३॥

सका । कष्ट करने पर धनुष बढ़ा भी तौ बहू पुन मिमिल हो गया । ध्यान करने पर भी पाण्डव अस्त्रों का स्मरण नहीं कर पाया । हर्ष से पाण्डव ने अपने अवशिष्ट बाणों को चोरो के ऊपर छोड़ा । निम्नु गाण्डीव धनुष से छूटे हुए वे बाण अहीरो के कुछ नहीं बिगाड़ सके । अग्नि ने अर्जुन को अक्षय बाण दिये थे । वे भी नष्ट हो गये । अहीरो के साथ युद्ध करते हुए अर्जुन ना क्षय हो गया । पाण्डव ने सोचा—'मैंने जो बाण-समूहों से बली राजाओं को जीता वह वृष्ण का ही प्रताप था । 'अहीरो ने पाण्डुपुत्र से बलपूर्वक अवलाओं को छीन लिया । कुछ महिलायें स्नेहेच्छा से भाग गईं । तब बाण क्षीण हो जाने पर घनजय धनुष के अग्रभाग से चोरो को मारने लगे । चोरण इसके प्रहारा को देखकर हँसने लगे । मुनिघेष्टो ! पार्थ के देखते ही देखते स्नेहेच्छागण चारों ओर से वृष्णि तथा अन्यत्र घस वालों की स्त्रियों को लेकर भाग गये । तब दुःखी अर्जुन 'नष्ट, कष्ट ! अहो ! भगवान् ने मुझे छोड़ दिया' यह बोलते हुए रोते लगे ॥२०-२९॥

अर्जुन ने कहा—वही धनुष, वही रथ, वे ही अस्त्र, वे ही घोड़े—सब एव ही पग में नष्ट हो गये, जैसे अधोत्रिय को दिया हुआ धान (नष्ट हो जाता है) । अहो ! भाग्य प्रबल है । विना उस महात्मा ने मैं असमर्थ होकर नीचों से पराजित हुआ । वे ही मेरी बर्हि हैं, वही मेरी मुट्ठी है, वही स्थान है, ओर वही अर्जुन मैं हूँ । निम्नु जैसे विना पुण्य के त्रिमार्गे निष्फल होती है उसी तरह वृष्ण के बिना मेरा सब कुछ निष्फल हो गया । मेरा अर्जुनत्व तथा भीम का भीमत्व निश्चय ही वृष्ण का किया हुआ था । अन्यथा उनसे बिना क्यों मैं अहीरो से पराजित हुआ ? ॥३०-३३॥

१क. ०भीरैस्ते शराः प्रययुः क्षयम् । त० । २क. ०मस्ता मुनि० । इत. ह । ४क. प्रष्ट । ५स. ग. ०होप्रतिबलवदेव । ६स. ग. ०युक्तेऽपि नीचवर्गं जपदम् । ७क. ०ष्टिः सोऽस्मि चाहं तथाऽर्जुन० ।

७ व्यास उवाच ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इत्थं घटन्ययो जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् । चकार तत्र राजानं यच्चं यावदवन्दनम् ॥३४॥
 स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनं काननाश्रयम् । तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५॥
 तं वन्दमानं चरणपावलोक्ष्य सुनिश्चितम् । उवाच पार्थ विच्छाद्यः कथमत्यन्तमीदृशः ॥३६॥
 अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याऽथवा कृता । जयाशामभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साप्रतम् ॥३७॥
 सात्त्वतानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः । अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः ॥३८॥
 भुङ्क्ते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमथो भवान् । किं वा कृषणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन ॥३९॥
 कच्चिन्नं सूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन । दुष्टचक्षुर्हृतो वाऽपि नि श्रीकं कथमन्यथा ॥४०॥
 स्पृष्टो नलान्भसा वाऽपि घटान्भ प्रोक्षितोऽपि वा । तेनातोवासि विच्छाद्यो न्यूनं वा युधि निर्जितः ॥४१॥

व्यास उवाच

ततः पार्थो विनि ह्वस्य श्रूयता भगवन्निति । प्रोक्तो यथावदाचष्ट विप्राः आत्मपराभयम् ॥४२॥

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यदीयं यत्पराक्रमः । या औदछाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥४३॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार कहता हुआ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में पहुँचा । वहाँ उसने यादव-
 पुत्र वध की राजा बनाया । तदनन्तर अर्जुन वन में व्यास से मिला । उसने विनयपूर्वक महाभागा व्यास का अभि-
 वादन किया । चरणपावला करते हुए पार्थ को देखकर व्यास ने पूछा—एसे अत्यन्त शान्तिहीन क्यों हो गये हो ? क्या
 तुमने अजारज (मर्ग में बर्बर-वक्रियों के चलने से जो घृण उठती है वह 'अजारज' है) । उसने पढ़ने से
 पाप लगता है) का अनुगमन किया है ? अथवा ब्रह्महत्या की है ? या तुम विजय की आशा के मग्न हो जाने से
 दुःखी हो ? या इस समय तुम निराश्रय हो गये हो ? या तुम्हारे पुत्र आदि याचना करते हुए निराश्रय बने
 गये हैं या तुम अगम्य स्त्री में अनुरक्त हो गये हो जिससे तुम्हारी शान्ति नष्ट हो गई है ? क्या तुमने ब्राह्मणों
 को मिष्टान्न देकर स्वयं खा लिया है ? अर्जुन । क्या तुमने कृषणा वा वित्त हरण किया है ? वही तुम भूय-बापू
 के धामने तो मही पढ़ गये ? दूषित दुष्टि तो नहीं लग गई है ? अथवा तुम (इतना) हतधीन क्या होते ?
 तुम्हें तब डाले गये जल का स्पर्श हो गया है या (ऐसे) घड़े के जत्र से तुमने स्नान कर लिया है । या नीचा से तुम
 घुड़ में हार गये हो । इसलिए तुम अत्यन्त शान्तिहीन आत्मा पड़ते हो ॥३४-४१॥

व्यास ने कहा—विप्रवन्द । आह भरकर पार्थ ने कहा—'भवन् ! सुनिये !' तब उसने अपने पराजय
 का एवं समाचार सुनाया ॥४२॥

अर्जुन ने कहा—हमारे जो बल, तेज, धक्ति, पराक्रम, पन तथा ऐश्वर्य थे, वे हरि हम छोड़ कर गये

१ ग ० मागो वि० । २ ग तं दुष्ट्वा वै मुनिप्रेष्टा पुष्टवानहमर्जुनम् । अहो विपार्थ वि० । ३ घ ० ग ।
 पुरज्योप्र० । ग ० ग । इव राजानुः । ४ क घ ० पो नीचैर्वा । ५ क घ. ० प्रापाय्यवः ।

इतरेणेव महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा । हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥
 अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम । सारता याऽभवन्मूर्तां स गत पुरयोत्तम ॥४५॥
 यस्यावलोकनादस्माञ्छीर्जय सपदुन्नति । न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गत ॥४६॥
 भौष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः । यत्प्रभावेण निर्दग्धा स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥
 तिर्योर्वना हतश्रीका गृष्टच्छायेव मे महो । विभाति तात नैकोऽह विरहे तस्य चम्रिण ॥४८॥
 यस्यानुभावाद्भौष्माद्यैर्मग्न्यग्नौ शलभायितम् । विना तेनाद्य कृष्णेन मोषालरस्मि निजित ॥४९॥
 गाण्डीव त्रिषु लोकेषु ख्यात यदनुभावत । मम तेन विनाऽऽभोरलंगुष्ठंस्तु तिरस्कृतम् ॥५०॥
 स्त्रीसहस्राप्यनेकानि हृषनायानि महामुने । यततो मम नीतानि वस्युभिलंगुडायुधं ॥५१॥
 आनीयमानमाभीरं सर्वं कृष्णावरोधनम् । हृत यष्टिप्रहरणं परिभूय बल मम ॥५२॥
 नि श्रीकृता न मे चित्र यज्जीवामि तदद्भुतम् । नीचावमानपङ्कज्जी निलम्बोऽस्मि पितामह ॥५३॥

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽह तस्य सद्भावयमम्रव द्विजसत्तमा । दुःखितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मन ॥५४॥
 अल ते व्रीडया' पार्थ न त्व शोचितुमर्हसि । अवेहि' सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५५॥

गये । मुने । मुसकराकर बोल्ने वाले उस महान् महात्मा ने इतर व्यक्ति की तरह हमें छोड़ दिया । उससे हम तृण के बराबर हो गये । मेरे अस्त्रों बाणों तथा गाण्डीव धनुष का जो मूर्तरूप तत्त्व था वे पुरयोत्तम चले गये । जिनके ध्वज स लक्ष्मी दिव्य सपत्ति तथा उन्नति हम नहीं छूटते हैं वे भगवान् गोविन्द हम त्याग कर चले गये । जिनके प्रभाव से भौष्म द्रोण अमराज आदि तथा दुर्योध आदि दग्ध हुए उन कृष्ण ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया । तात । मुझे पृथ्वी यौवनहीन श्रीहीन तथा छायाहीन दीखती है । अवेला मैं ही कृष्ण के विरह में नहीं घुलता । जिनके प्रताप से भौष्म आदि मुझ रूपी अग्नि में पनगो की तरह गिर पड़े थे, उन कृष्ण के बिना आज मैं स्वान्ते से हार गया । जिनके सामर्थ्य से मेरा गाण्डाव धनुष तीनों लोकों में प्रख्यात हुआ उन कृष्ण के बिना वही धनुष ग्वालों की लाठियों से तिरस्कृत हुआ । महामुने । मेरे बल करने पर भी हजारों अनाय स्थियाँ लट्ठ-धर चोरा द्वारा अपहृत कर ली गई । गंठी चलाने वाले अहीरा ने मेरे बल को पराजित कर कृष्ण की सारी दलिया को हार लिया । मुझ अपनी श्रीविहीनता से उन । आश्चर्य नहीं होता है जितना कि मैं जो रहा हूँ इससे आश्चर्य होता है । पितामह । मैं नीचा के अपमान रूपी कबड म पेटा हूँ, मैं निलम्ब हूँ ॥४३-५३॥

व्यास ने कहा—द्विजवर । मैं दुःखी दीन महात्मा पाण्डव की बात सुनकर बहने लगा—'पार्थ ! तुम व्यर्थ गिज हो रहे हो । तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये । समस्त प्राणिमान् म बाल की गति ऐसी हो होती है ।

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव । कालमूलमिदं ज्ञात्वा बुद्ध स्यैर्यमतोऽर्जुन ॥५६॥
 नद्यः समुद्रा गिरयः^१ सकला च वसुंधरा । देवा मनुष्याः पद्मावस्तरवश्च सरोसूयाः ॥५७॥
 सुष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम् । कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५८॥
 ययाऽऽस्य कृष्णमाहात्म्यं तत्तयैव धनंजय । भारवतारकार्यार्यमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥५९॥
 भाराकान्ता धरा याता देवानां संनिधौ पुरा । तदर्यमवतीर्णोऽसी कामरूपी जनार्दनः ॥६०॥
 तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभूतो हताः । वृष्ण्यन्धकुलं सर्वं तथा पार्योपसंहृतम् ॥६१॥
 न किञ्चिद्व्यक्तं तन्मस्य भूमितलेऽर्जुन । ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो धयेच्छया ॥६२॥
 सृष्टिं सर्गं करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ । अन्ते^२ ताप(ल्यं)समर्थोऽयं सांप्रतं वै यया कृतम् ॥६३॥
 तस्मात्प्रायं न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात्^३ । भवन्ति भवकालेषु पुष्ट्याणां पराक्रमाः ॥६४॥
 यतस्त्वयंकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः । सेवामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६५॥
 विष्णोस्तत्त्वानुभावेन यथा तेषां पराभवः । त्वत्तस्तयैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्धवः ॥६६॥
 स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् । करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः ॥६७॥
 भयोद्धवे च क्रौन्तेय सहायस्ते जनार्दनः । भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनायलौकिकाः ॥६८॥
 क. भद्ध्यत्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्व सर्वकौरवान् । आभीरोभ्यश्च भवतः कः अद्ध्यत्पराभवम् ॥६९॥

पाण्डव । काल ही प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश करता है । ससार को बालमूलक जानकर स्वस्थ होओ ।
 काल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सपूर्ण पृथ्वी, देव मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्प की सृष्टि की और ये सब पुन काल ही ने
 विलीन हो जायेंगे । सपूर्ण जगत् को कालरूप जानकर घान्ति धारण करो ॥५४-५८॥ धनजय^१ जैसे तुमने कृष्ण
 का माहात्म्य-वर्णन किया है, वैसे ही वे भार उतारने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकाल में भार से आश्रान्त
 होकर पृथ्वी देवताओं के पास गई थी । इसी निमित्त कामरूपी जनार्दन ने अवतार लिया । उन्होंने कार्य सम्पन्न
 किया, अशेष राजाओं को मारा और वृष्णि-अन्यत्र कुल का सहार किया ॥५९-६१॥ अर्जुन । मूल पर उनका कोई
 कर्त्तव्य नहीं शेष नहीं रहा । भगवान् कृतकृत्य होकर स्वेच्छा से चले गये । देवों के देव समर्थ भगवान् सृष्टिकाल
 में सृष्टि, स्थितिकाल में स्थिति तथा प्रलयकाल में प्रलय करते हैं, जैसे इस समय उन्होंने किया है । पार्य^२ । इसलिए
 तुम्हें पराभव से संताप नहीं करना चाहिये । ससार में रहने के समय पुरुषों में पराक्रम होते हैं, जिसलिए तुमने
 अपने ही भीष्म, द्रोण आदि राजाओं को निहल किया । क्या यह उनका कालजन्म पराभव कम हुआ ? ॥६२-६५॥
 उसी विष्णु के प्रताप से जैसे तुमसे उनका पराजय हुआ उसी तरह अन्त में भोरा से तुम्हारा भी हुआ । वह जग-
 त्पति अन्य शरीरों में प्रवेश कर ससार की स्थिति करते हैं और अन्त में समस्त प्राणियों का नाश कर देते हैं । बुद्धी-
 पुत्र । तुम्हारे उद्भव-रज्जु में जनार्दन सहाय^३ थे और अन्तकाल में केशव ने तुम्हारे दात्रों को देखा था । कौन
 विश्वास करता कि तुम भीष्म सहित अशेष कौरवों, भारीयों और अहीरों से तुम्हारा पराजय होगा ? शायं ।

पार्थतत्सर्वभूतेषु हरेर्लोलाविषेष्टितम् । त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरर्भवाञ्जितः ॥७०॥
 गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रियः । तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवाजुन ॥७१॥
 अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत् । बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्नह्य सनातनम् ॥७२॥
 जितेष्वसुरसंधेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः । बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः ॥७३॥
 रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव ॥७४॥
 आकण्ठमनः सलिले जटाभारधरं मुनिम् । विनयावनताश्चैव प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः ॥७५॥
 यया यया प्रसन्नोऽभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा । सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम् ॥७६॥

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते । मत्तस्तद्व्रियतां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम् ॥७७॥

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च दिव्याश्चाप्सरसोऽभवन् ॥७८॥

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वय्यसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः ॥७९॥

इतरास्तन्नुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्पदि । तदिच्छाम पतिं प्राप्तुं विव्रेन्द्र पुण्योत्तमम् ॥८०॥

प्राणि-भाग मे यह सब तो हरि की लीला है । अर्जुन ! तुमने जो कौरवों को मारा, अहीरो ने जो तुम्हें जीता और तुमसे रक्षित स्त्रियों का जो जोरो ने हरण किया, वह सब वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥६६-७१॥ पार्थ ! प्राचीन-काल मे विप्र अष्टावक्र सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए बहुत वर्षों तक जलवास मे निरत रहे । असुरसमूह के पराजय होने के उपलक्ष्य मे तुमेश्वरत्व पर महान् उत्सव हो रहा था । उसी मे सम्मिलित होने के लिये जाती हुई सैकड़ों हजारों देवायनायें तथा रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें महारत्ना अष्टावक्र को देखकर उनकी स्तुति तथा प्रशंसा करने लगी । पाण्डव ! स्तुति करने मे तत्पर बनितार्यों जल मे कण्ठ तक तिमिल तथा जटामारधारी मुनि को विनय से झुक कर प्रणाम करने लगी । कौरवश्रेष्ठ ! जैसे जैसे मुनि प्रसन्न होते जाते थे वैसे वैसे दिव्यां उनकी स्तुति करती जाती थीं ॥७२-७६॥

अष्टावक्र ने कहा—महाभागा ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम लोगों को जो इच्छा हो, वह सब मुझसे बर माग लो, मैं दुर्लभ वस्तु भी दूँगा ॥७७॥

व्यास ने कहा—रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सरायें बोली ॥७८॥

अप्सरारों ने कहा—आपके प्रसन्न होने पर हम क्या मही मिला । द्विजपण ! इतर स्त्रियों ने कहा—विव्रेन्द्र ! भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह बर दीजिये कि पुण्योत्तम हमारे पति हों, ॥७९-८०॥

१ ख प्रसन्नोऽहं ब्रह्मन् । आ० । २ क ० कर्म० । ३ कं ख ० टाचीर० । ४ क. प. ० ५ व वैदिस्यो-
 ज्ज० । ५ ख. ग. द्विज ।

ध्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः । तमुत्तीर्णं च ददुशुविह्वलं यत्रमष्टधा ॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूढमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत् । ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य क्रुहन्न्दनः ॥८२॥

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विह्वलरूपं मां भत्वा हासावमानना । भवतीभिः कृता तस्मादेव शापं ददामि यः ॥८३॥
मग्नसावेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुर्योत्तमम् । मच्छापोपहृताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥८४॥

ध्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः । पुनः सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य कोदावम् । भर्तारं प्राप्य कृताः प्राप्ता दस्युहस्तं वराङ्गनाः ॥८६॥
तदृश्या नात्र कर्तव्यः शीतोऽप्येवमपि हि पाण्डव । तेनैवास्त्रिलनायेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८७॥
भवतां चोपसंहारमासनं तेन कुर्वता । बलं तेजस्तथा वीर्यं माहात्म्यं चोपसंहृतम् ॥८८॥
जातस्य निपतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः । विप्रयोगावसानं तु संयोगः संचयः ॥ (पारश्व) यः ॥८९॥
विज्ञाय न युषाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये । तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति सावृणाः ॥९०॥
तस्मात्तद्व्या नरप्रेष्ठ शार्वयंतद्भातुभिः सह । परित्यज्यास्त्रिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय नियोजतद्ब्रह्मो मम । परश्वो ब्रातुभिः साथं गतिं शीघ्रं यथा कुरु ॥९२॥

ध्यास ने कहा—'ऐसा होगा' यह कह कर मुनि जल से बाहर निकले । स्त्रियों ने देखा कि मुनि कुरूप तथा माठ स्थलों में बक हैं । उन्हें देखकर जिन स्त्रियों का हास्य छिगने पर भी स्फुट हो गया, उनकी मुनि ने श्राप से शाप दे दिया ॥८१-८२॥

अष्टावक्र ने कहा—'निराश्रित्ये मुनें कुरूप ममन्तर मेरा अपमान करते हुए तुम हँसी इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ—'मेरी कृपा से पुर्योत्तम का पतिकरु ने प्राप्त करते तुम सब मेरे शाप से चौरों के हाथ में पड़ी ॥८३-८४॥

ध्यास ने कहा—इतना बचन सुनकर स्त्रियों ने मुनि को प्रव्रत किया । पुनः मुनि ने कहा—'तुम लोग फिर देशलोक आओगी ।' इस प्रकार अष्टावक्र मुनि के शाप से वे स्त्रियाँ वैराग्य को स्वामी के रूप में प्राप्त कर चौरों के हाथों में पड़ीं । पाण्डव । इसलिए तुम्हें जरा भी घीरा नहीं करना चाहिये । उन्नी अपमान से तबरा उन-सहार दिया है । तुम्हारा भी सहार निरव्यवर्ती है । बल-तुम्हारे बल, तेज, वीर्य तथा माहात्म्य को उन्होंने समेट लिया है । उनपर प्राणी का मरण, पतन, उन्नति, विनाश, ममापि, संयोग, सबय तथा धार निश्चिन्ता है—यह जानकर जो बिना दुर्-योग नहीं करते हैं, उन्हीं का चेष्टाओं से इतर व्यक्ति शिवा प्रहा, करते हैं । नरप्रेष्ठ ! इसलिए यह जानकर तुम अशिक्ष राज्य का परित्याग कर माइयों के साथ तपस्या करने के लिए वन में चले जाओ । ममः धर्मराज से बाहर मेरा बचन यह देना और परलों माइयों के साथ प्रसाद कर देना ॥८५-९२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तुं समम्येत्य तयोक्तवान् । दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः ॥१३॥
 व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाऽर्जुनसमीरितम् । राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम् ॥१४॥
 इत्येवं धो मुनिधेष्ठा विस्तरेण भयोदितम् । जातस्य च यदोर्वशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम
 द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारवर्णनम्

भुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं घातिमानुवम् । रामस्य च मुनिधेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१॥
 न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम् । तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२॥
 प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतामेव वराह इति नः श्रुतम् ॥३॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त अर्जुन ने मुनिष्ठिर के पास जाकर दृष्ट, अनुभूत, कथित—सारी बातें कह सुनायी । अर्जुन द्वारा कथित व्यास-वाक्य को सुनकर वे सब पाण्डु-युव राज्य में परीक्षित को निपुक्त करके वन में चले गये । मुनिधेष्ठो ! इस प्रकार मैंने यदुवस में उत्पन्न वासुदेव की लीला का वर्णन कर दिया ॥१३-१५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित-समाप्तिकथन नामक दो ओ
 वारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१२॥

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुनिधेष्ठ ! अहो ! आपने कृष्ण-राम का अद्भुत, अलौकिक तथा पृथ्वी पर दुर्लभ माहात्म्य सुनाया । पर भगवान् की कथा को सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती । महाभाग ! इसलिये फिर भगवान् की लीला सुनायें । सत्पुरुषों ने मुंह से हमने सुना है कि पुराणों में अमिट तेजस्वी विष्णु का वराह अवतार माना गया

न जानामीत्य चरितं न विधिं च च विस्तरम् । न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनीपितम् ॥४॥
किमात्मको वराहोऽसौ का भूतिः का च देवता । किमाचारप्रभावो वा किंवा तेन तदा कृतम् ॥५॥
यज्ञायै समवेतानां मियतां च द्विजन्मनाम् । महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६॥
यया नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्यामुज्जहारारिमर्दनः ॥७॥
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुपातिनः । श्योतुं नो वर्तते बुद्धिहरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८॥
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाच्च ये विभोः । या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मांस्ताश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९॥

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेप भवद्भिः समुदाहृतः । ययाज्ञकत्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यथा ॥१०॥
विष्णोः प्रभावश्चरणे दिष्ट्या धो मतिरुत्थिता । तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुष्वं याः प्रवृत्तयः ॥११॥
सहस्राक्षं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमध्ययम् ॥१२॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् । सहस्रं सहस्रादिं सहस्रभुजमध्ययम् ॥१३॥
हवनं सवनं चैव होतारं हव्यमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदिं वीक्षां समित्स्त्रुवम् ॥१४॥
क्षुरसोमसूर्यमृशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम् । अश्वयुं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सतः ॥१५॥
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वां चरुं चोत्सृज्य लालानि च । प्रावृत्तं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६॥

है। परन्तु हम लोग न उसका चरित्र, न वित्तुत विधान, न कर्म-गुण और न अन्येपण-रहित कारण ही जानते हैं। वराह का क्या स्वरूप है? कैसी भूति है? कौनसा देवता है? वीसा आचार क्या प्रभाव है? जिस समय यज्ञ करने के लिए द्विजातिगण एकत्रित हुए थे, उस समय उसने क्या किया? महावराह का चरित्र सब लोगों को सुख देने वाला है। कैसे शत्रुमर्दन नारायण ने वराह का रूप धारण कर शैतो से समुद्र-स्थित पृथ्वी का उद्धार किया? रिपुनाशन धीमान् कृष्ण के सारे कर्मों को विस्तार से हम सुनना चाहते हैं। ब्रह्मन् । हरि के कर्म, प्रादुर्भाव तथा प्रवृत्ति के बारे में हम जमका बतलाइये ॥१-९॥

व्यास ने कहा—यह तो आपने ब्रह्मन् प्रश्न कर दिया। मैं यथास्तमित बूझूँगा। विष्णु के यथा को सुनिये। माय से विष्णु के प्रताप सुनने की इच्छा आपको हुई है। इसलिए विष्णु की सपत्त प्रवृत्तियाँ को सुन लीजिये। ॥१-१०-१॥ जो सहस्र मुख वाले, सहस्र चरण वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र शिर वाले, सहस्र हाथ वाले अव्यय, सहस्र जिह्वा वाले, प्रसाधमान, सहस्र मुकुट वाले, समर्व, सहस्रो देने वाले, सहस्रो के आदि, सहस्र भुजा वाले, हवन, सोमपान, होडा, देनाम, पात्र, पवित्री, वेदि, वीक्षा, समिधा, सुब, चन्द्रमा, सूर्य, मृशल, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अश्वयु, साम गाने वाले विप्र, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, धुरी, चरु, ओलली, प्रावृत्त (यज्ञशाला में हविर्गृह के पूरक का घर जिसमें यज्ञमान आदि रहते हैं), यज्ञभूमि, सत्रसे परे, हस्त, अतिदीर्घ, स्थावर, जगम, प्रापरिचर, अधे, स्वगिडन, (समस्तल मंदर), कुप, मन्त्र तथा यज्ञवाहव अग्नि, प्राण, प्राणवाहव, आगे बैठने वाले, सोममोक्षा, अग्नि में हवन करने वाले

हृस्वाप्यतिप्रमाणानि स्यावराणि चराणि च । प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७॥
 'मन्त्रयज्ञवहं बलिं भागं भागवहं च यत् । अप्राप्तितं सोमभुजं हृताचिषमुदायुधम् ॥१८॥
 आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम् । तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्गस्य धीमतः ॥१९॥
 प्रादुर्भासहस्राणि समतीतान्यनेकशः । भूयश्चैव भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः ॥२०॥
 यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमं कथाम् । प्रादुर्भावाभितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१॥
 शुगुध्वं सा महाभागस्तद्गतेनान्तरात्मना । प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं ममानघाः ॥२२॥
 वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः । हितार्थं सुरमत्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३॥
 बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति शीर्यवान् । प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिध्यागुणान्वितान् ॥२४॥
 सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्यतः । पूर्णं युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पतिः ॥२५॥
 ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिवशस्तथा । देवाः सप्तपयश्चैव नामाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६॥

सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।

पुराणदेवोऽयं पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरसुत्यतेजाः ॥२७॥

योऽज्ञो चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्यावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरनरे अनष्टोऽरगराक्षसे ॥२८॥
 योऽङ्गकामो बुराधयो तावुभौ मधुकंदभौ । ह्यौ भगवता सेन तयोर्वैत्स्वात्मितं चरम् ॥२९॥
 पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि । पुष्करे तत्र देवाः सपिणशास्तथा ॥३०॥

धारण तथा अस्त्र बरने वाले हैं और जिनको वेदेवेता ब्राह्मण यज्ञ में 'नित्य' कह कर पुकारते हैं, उन देवों, श्रीवत्स बलि से मुक्त, धीमान् विष्णु के हजारों अवतार हो चुके हैं और फिर होये—ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१२-२०॥ महामाग । जो आप विष्णु की संज्ञापनाशिनी, कल्याणमयी, दिव्य, पवित्र तथा अवतार से सम्बन्ध रखने वाली कथा पूछते हैं, वह कृष्ण में मन लगाकर सुनिये । निष्पाप । देव-मनुष्यों के हित के लिए तथा लोगों की उत्पत्ति के लिए मैं महाबुद्धिमान् वासुदेव का माहात्म्य तथा चरित्र अक्षरशः यज्ञार्थक ॥२१-२३॥ अखिल प्राणिमा के आत्मा शक्ति-शाली कृष्ण के अनेक अवतार हुए हैं, उन दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र अवतारों के विषय में मैं कहूँगा ॥२४॥ देवदेव जगत्पति हजार युग तक धायन करते हैं और सद्युग्युग पूर्ण होते पर कार्यवश अवतार लेते हैं ॥२५॥ अनन्तर प्रख्यात अग्निमुल्य तेजस्वी पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, शिव, देवता, संपत्ति, नाम, अप्सरा, महानुभाव सनत्कुमार, महात्मा मनु, भगवान् प्रजापति तथा पुरो की सृष्टि करते हैं ॥२६-२७॥ जो हरि स्वानर, जगम, देव, अयुध, मरु, सर्प तथा राक्षस के नष्ट हो जाने पर समुद्र-मध्य में विराजमान थे, उन्होंने अतिरक्षणी तथा बुद्धिमिलयी मधुकंदम के अपरिमित वर देकर निहृत किया था ॥२६-२९॥ पूर्वं बाल में जब कमलनाम भगवान् समुद्र में धायन कर रहे थे उस समय उस कमल से त्रिपिण्ड सहित देवता उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ महारथा हरि वा यह पीनर

१३. ०यत् बहिर्यत् मा० । २३. अप्राप्तितं । ३३. ०ध्व मूनीश्वरा । पा० । ४१. कार्यवान् । ५३. ०वि अनश्वरेयुगा० । ६३. श. शीर्यवान् । ७३. ०त्र्यमा० । ८३. ०के सप्राणि यं० । ९३. ०ती प्रम० । १०३. ०ताप्तेन । ११३. ०सा वरं ततः । पु० । १२ ३. यत् ।

एष पीष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मन । पुराण कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१॥
 धाराहस्तु श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन । यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो धाराह रूपमास्थित ॥३२॥
 वेदपादो यूपदष्ट ऋतुदन्तश्चितीमुख । अग्निजिह्वो धर्मरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ॥३३॥
 अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वदाङ्ग श्रुतिभूषण । आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वरो महान ॥३४॥
 सत्यधर्ममय श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृत । प्रायश्चित्तनखो घोर पशुजानुर्मुखाकृति ॥३५॥
 उद्गाता त्रो होमलिङ्गो श्रीजोषधिमहाफल । वाद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६॥
 वैविस्कर्णो हविर्गन्धो हव्यकथ्यातिवेगवान् । प्राग्वशाक्यो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ॥३७॥
 दक्षिणाहवयो योगी महासन्नमयो महान् । उपाकर्माष्टदक्षक प्रवर्गवर्तभूषण ॥३८॥
 नानाच्छ योगतिपयो गुह्योपनिषदासन । छायापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थित ॥३९॥
 महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् । एकार्णवजलश्रुष्टामेकार्णवगत प्रभु ॥४०॥
 दृष्ट्वा य समुद्रस्य लोकानां हितकाम्यया । सहस्रशीर्षो लोकाविश्वकार जगतीं पुन ॥४१॥
 एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२॥

प्रादुर्भाव है जहाँ देवतालोक समाहितचित्त होकर पुराणध्वज करते हैं ॥३१॥ महात्मा (विष्णु) के वराह अवतार का मुख वेद है जहाँ सुरश्रेष्ठ विष्णु वराह रूप से स्थित है ॥३२॥ वेद उनके चरण हैं यूप दष्टा है यज्ञ दात है चिति (अग्नि-सत्वार) मुख है अग्नि जिह्वा है कुश रोम है ब्रह्म शिर है दिन और रात आँखें हैं वेदांग कण-भूषण हैं श्री नाक है स्रुव भूषण है और सामगान नायि स्वर है ॥३३-३४॥ वे महातपस्वी सत्यधर्ममय श्रीमान तथा पराक्रम द्वारा सत्कृत हैं । प्रायश्चित्त उनका मयकर गज है और पशु के घुटने उनके मुख की आकृति है ॥३५॥ उद्गाता उनकी अंतर्दा है । होम उनका लिंग है । महाफलशाली जोषधियाँ बीज हैं । अन्तरात्मा बाजा है मन्त्र विद्वत् वृत्त है सोम शोणित है वैदि कथा है हविष्य गन्ध है, हव्य-कथ्य अत्यन्त वेग है और प्राग्वश (मगवाला मे हविगृह के पूरव का घर) गारर है । वे वातिमान् तथा नाता दीक्षाओं से युक्त हैं ॥३६-३७॥ दक्षिणा उनका हृदय है । वे योगी महान् तथा महासन्नमय हैं । उपावम उनके कुण्डल हैं प्रवर्ग (होमानि का भेद) आवर्त-भूषण (कनकरदार आभूषण विशेष) है नाना छन्द मार्ग हैं उपनिषद् आसन है और छाया पत्नी है । वे मणि पवत भी तरह उठे हुए हैं । ॥३८-३९॥ जब पवत वन तथा कानन सहित समुद्र पयस्त पृथिवी एकाग्र हो गई तब लोको के आदि तथा सहस्र शिर वाले प्रभु ने लोको के हित के निमित्त एकाग्र मे प्राप्त होकर दष्टा से पृथ्वा का उद्धार कर पुन ससार बसाया ॥४०-४१॥ इस प्रकार प्राचीन काल मे प्राणियों के पल्याण के दृष्ट्युक्त मगवान् ने मगवराह होकर सागर के जल का धारण करने वाली पृथ्वी देवी का उद्धार किया ॥४२॥ द्विजगण ।

१ग यत्र । २क य ० वेदस्तुति० । ३क ०स्तु यतो जात प्रा० । ३ग ०तुहस्तादिनीमु० ।
 ४क महात्मन । ५क ०समुखो । ६क ०पुष्पमु० । ७क ०लिङ्ग फलजीवमहोपधि । वा० ।
 ८क मस्तिष्कविक्र० । ९क ०महम० । १०य उपाक० । ११क ०कर्मोष्ठ० । १२क ०वर्मावलमु० ।

ह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः । यत्र भूत्वा मृगन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥४३॥
 कृतयुगे नाम सुरारिर्बलदपितः । दैत्यानामाविपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥४४॥
 वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । 'जपोपवासनिरतस्तस्यौ' मौनव्रतस्थितः ॥४५॥
 शमदमाम्ना च ब्रह्मचर्येण चैव हि । प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६॥
 वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः । विमानेनाकं वर्णेन हसयुवतेन भास्वता ॥४७॥
 इत्ययं सुभिः सार्धं भरद्वाजैर्व्यतस्तथा । छद्मैर्विश्वसहार्थैश्च यक्षराक्षसकिमरैः ॥४८॥
 भिः प्रविशामिश्च नक्षोभिः सागरेस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च क्षेत्रैश्च महाग्रहैः ॥४९॥
 पंभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरैव च । राजर्षिभिः पुण्यतर्मगन्धर्वैरप्सरारोगणैः ॥५०॥
 चरगुह भीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

॥५२॥ तव भवत्तस्य तपसाग्नेन सुप्रत । वरं वरय भद्रं ते ययेष्टं काममानुहि ॥५२॥

हिरण्यकशिपुर्वाच

वेजासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । ऋषयो याज्य मा शर्पः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३॥
 युस्तपसा युक्ता इव एष वृत्तो भया । न शस्त्रेण न वाऽऽस्त्रेण गिरिणा पावपेन वा ॥५४॥
 शुष्केण न चाऽऽर्द्धेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः । पाणिग्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥५५॥

। ब्राह्मणवतार है । इसके बाद नरसिंह अवतरा हुआ था, जिसमें सिंह शीर्ष < भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था ॥५३॥ पहले सत्ययुग में दैत्यों के आदिपुरुष बलाभिमानों राक्षस (हिरण्यकशिपु) ने महान् तप किया ॥५४॥ ग्यारह
 र पाँचसौ वर्षों तक वह मौनव्रत में स्थित होकर जप-उपवास करता रहा ॥५५॥ उसने शप, दम, ब्रह्मचर्य, तपस्या
 र नियम से भगवान् प्रसन्न हुए ॥५६॥ द्विबुन्द । इस से युक्त, दीप्यमान तथा सूर्य के समान वर्ण वाले विमान
 जय ब्रह्माजी आदित्य, वसु, मरुत, देवता, इन्द्र, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, निम्बर, दिसा, प्रविशामि, नदी, सागर, नक्षत्र,
 तं आकाशचर, महाग्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध मिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यतम, गन्धर्व तथा अप्सरायण से आवृत होकर
 के समीप आये । चराचर के गुह तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दैत्य से कहा ॥५७-५९॥

ब्रह्मा बोले—हे सुजती । तुम्हारे इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा वल्याण हो । तुम ययेष्ट वर
 पा ॥५२॥

हिरण्यकश्यप ने कहा—हे नरसिंह ! मैं यही वर माँगता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस
 ऋषि तपस्या से युक्त होकर नष्ट स भुञ्ज पाय - दैत्यों न शस्त्र से, न अस्त्र से न ध्वज से, न वृक्ष से, न मूल
 नीले पदार्थ से, न ऊपर और न नीचे ही मेरी मृत्यु हो । जो एक ही हस्त-ग्रहण से सेवक, सेना तथा बाहन समेत

यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति । भवेयमहमेवाकंः सोमो वायुर्हताशनः ॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः । अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणोऽधातवो यमः ॥५७॥
घनदश्च घनाघ्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या शरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः । सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्जगामाऽऽनु पितामह । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मपिणगसेवितम् ॥५९॥
अतो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा । वरप्रदानं धृत्वं पितामहमुपस्थिताः ॥६०॥

देवा ऊचुः

वरणेनेन भगवन्त्याधिप्यति स नोऽसुरः । तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्बन्धोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयम्भूरादिकृत्प्रभु । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२॥

व्यास उवाच

ततो लोकहितं धार्यं धृत्वा देवः प्रजापतिः । श्रोवाच भगवान्बाव्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽन्ते च भगवान्बन्धं विदणुः करिष्यति ॥६४॥

मुझे मारने में समर्थ होया, उसी से मेरी मृत्यु हो । मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, प्राण, वाम, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर और यक्ष होऊँ ॥५३-५७॥

१. ब्रह्मा ने कहा—तात । ये आश्चर्यकारी दिव्य वर मैं देता हूँ । तुम्हारी समस्त कामनायें पूरी होगी, इममें कोई संशय नहीं ॥५८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर शीघ्र ही भगवान् पितामह ब्रह्मपिणगो से सेवित वैराज नामक ब्रह्मसदन में चले गये । तदनन्तर देव, नाग, गन्धर्व और मुनिकुन्द वरदान सुनकर ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए ॥५९-६०॥

देवों ने कहा—भगवन् । इस वर से यह राक्षस हम कष्ट देगा । अतः कृपा करके उत्तम वर का भी उपाय सोचिये । भगवन् । आप अति-प्रणिया के आदिवर्ता स्वयम्भू, हव्य-कव्या के स्रष्टा, अव्यक्त, प्रकृति तथा ध्रुव हैं ॥६१-६२॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त आका के कल्याणकारी वाक्य को सुनकर भगवान् प्रजापति ने समस्त देवगणा से कहा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवकुन्द । यह तपस्या का फल अवश्य पायेगा । तप के अन्त में भगवान् विदणु उक्ता वर करेगे ॥६४॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पञ्चजन्मनः । स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५॥
 लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः । हिरण्यकशिपुर्दंत्यो वरदानेन दपितः ॥६६॥
 आश्रमेयु महाभागान्मुनिन्वं संशितव्रतान् । सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्पितवांस्तथा ॥६७॥
 त्रिदिवस्यांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः ॥६८॥
 यदा वरमदोन्मत्तो विचरन्दानवो भुवि । यज्ञोपानकरोहंत्यानयज्ञोयाश्च देवताः ॥६९॥
 आदित्या वसवः साध्या विश्वे च भरतस्तथा । शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्युर्महाबलम् ॥७०॥
 देवब्रह्मण्यं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् । मृतं भय्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
 नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१॥

देवा ऊचुः

प्रायस्व मोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् । त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२॥
 त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम । उत्कृष्टालमलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयकर ॥
 'क्षमाय वितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३॥

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं यो दद्याम्यहम् । तमेव त्रिविवं देवाः 'प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४॥
 एषोऽहं सगण दंत्यं वरदानेन दपितम् । 'अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५॥

व्यास ने कहा—पितामह ना बचन सुनकर देवगण प्रसन्नता से अपने-अपने दिव्य स्थानों पर चले गये । वर प्राप्त करते ही दंत्य हिरण्यकशिपु वरदान के भव से प्रजा को पीड़ित करने लगा । आश्रमों में व्रतनिष्ठ, सत्य-धर्मपरायण, इन्द्रियों के दमन करने वाले महाभाग मुनियों को बहू बघ्ट देने लगा । स्वर्गस्थ देवों को जीतिवर तीनों लोकों को बस में लाकर बहू महाबली राजस स्वर्ग में वास करने लगा । जब बर के मद से उन्मत्त होकर उस दानव ने पृथ्वी पर विचरण करके दंत्यों की यज्ञ-भाग-भोक्ता तथा देवताओं को यज्ञ से वंचित कर दिया तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और भरत-गण महाबली, शरणदाता, देव-ब्रह्मण्य, यज्ञरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, मृत, भय्य, भविष्य, प्रभु, लोगों से नमस्कृत, नारायण तथा व्यापक विष्णुदेव ने समीप उपस्थित हुए ॥६५-७१॥

देवों ने कहा—देवताओं के स्वामी ! हिरण्यकशिपु ने भय से बचाइये । सुरोत्तम ! आप हमारे परमदेव हैं, परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता (धारण करने वाले) हैं । विवशित कमल के समान नेत्र-वाले ! शत्रुपक्ष का क्षय करने वाले ! दंत्यों के नाश के लिये हम आपकी शरण में आये हैं ॥७२-७३॥

वासुदेव ने कहा—देववृन्द ! भय त्यागो । मैं तुम्हें अभय देता हूँ । पीछे ह्रीं तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे । अभी मैं वरदान में गविन तथा देवताओं से अवध्य दानवेन्द्र को गणसहित मार डालता हूँ । ॥७४-७५॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य 'त्रिविशेश्वरान् । हिरण्यकशिपोः स्यानभाजगाम महाबलः ॥७६॥
नरस्मार्यतनुं कृत्वा सिंहस्मार्यतनुं प्रभुः' । नारसिंहेन वपुषा पाणिं संपृश्य पाणिना ॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः । घनजीमूतदीप्तोजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा द्रुप्तशार्दूलविक्रमः । द्रुप्तदैत्यमर्षगुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९॥
नृसिंह एष कथितो 'भूयोऽयं वामनः' परः । यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०॥
बलैर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा । विक्रमेस्त्रिभिरसोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१॥
विप्रचित्तिः शिवः शङ्खुरयः शङ्खुस्तथैव च । अयः शिरा अश्वशिरा हयप्रोवश्च वीर्यवान् ॥८२॥
वेगवान्केतुमान्पुः 'सोऽप्रव्यग्रो महासुरः' । पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३॥
'प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो गमनप्रियः । अनुह्लादो हरिहयो वाराहः' 'संहरोजुजः ॥८४॥
शरभः शलभश्चैव कुपयः' क्रोधनः क्रयः । बृहत्कीर्तिर्बृहजिह्वः शङ्खुकर्णो महास्वनः ॥८५॥
वीर्यजिह्वोऽर्कनयनो 'भृगुपादो भृगुप्रियः । वायुर्गण्डो नमुचिः' 'सम्बरो विलकरो महान् ॥८६॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च । कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोपो विरोचनः ॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभो । इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलवपितः ॥८८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर देवताओं को विदा करके महाबलशाली भगवान् आधा शरीर मनुष्य का और आधा शरीर सिंह का बनाने ह्राय से ह्राय को छूते हुए हिरण्यकशिपु के स्वान पर आये ॥७६-७७॥ मेघ के समान वर्ण वाले, मेघतुल्य शब्द वाले, मेघतुल्य क्रान्ति वाले, मेघतुल्य वेग वाले और सिंह के समान पराक्रमी हरि ने अतिबलशाली दैत्य को देखकर अभिमानी दैत्यगणों से रक्षित हिरण्यकशिपु को एक ही हाथ से मार डाला ॥७९॥ यह नृसिंह-अवतार बतला दिया । अब दूसरा वामन-अवतार आता है, जिसमें दैत्यविनाशकारी वामन रूप धर कर बली विष्णु ने बलवान् बलि के यज्ञ में महाराक्षसों को सम्बन्ध कर दिया था ॥८०-८१॥ (जैसे—) विप्रचित्ति, शिव, शङ्खु, अयःशङ्खु, अयःशिरा, अश्वशिरा, हयप्रोव, वीर्यवान् ॥८२॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोऽप्रव्यग्र, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, शा (सा)श्वः, अश्वपति ॥८३॥ प्रह्लाद, कुम्भ, सह्रद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय वाराह, सह्रद, अनुज, ॥८४॥ शरभ, शलभ, कुपय, क्रोधन, क्रय, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शङ्खुकर्ण, महास्वन ॥८५॥ वीर्यजिह्व, अर्कनयन, भृगुपाद, भृगुप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विलकरो, महान् ॥८६॥ चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोय, विरोचन ॥८७॥ गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापी, केतुमान्, बल-

१श त्रिविशेषः २क ख हरि । ३क भूयोऽयो वा० । ४क भनस्तत । य० । ५क सोऽप्रयो
हि म० । ६क ०ह्लाद स्व० । ७क गमन० । ८क ०हरो वा० । ९ग वाराह । १०ग ०होरजः ।
११क कुग । १२क मुद्रा० । १३क मुद्रि० । १४क ख सम्बरो । १५क ख विष्टरो ।

असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः । 'स्वमिथः' कालवदनः करालः केशिरेव च ॥८९॥
 एकाक्षश्चन्द्रमा' राहुः संह्लादः' सम्बरः' 'स्वनः । शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः ॥९०॥
 अश्वमन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तया । शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधरास्तया ॥९१॥
 पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः । महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ॥९२॥
 नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबला । कूर्मकुवकुटववत्राश्च शशोलूकमुखास्तया ॥९३॥
 खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तया । मार्जारशिखिववत्राश्च महाववत्रास्तया परे ॥९४॥
 तन्त्रमेघाननाः शूरा गोत्राविमहिषाननाः गोघाशल्लकिववत्राश्च* क्रोष्टुववत्राश्च दानवाः ॥९५॥
 आलुबर्बुरववत्राश्च घोरा वृकमुखास्तया । भीमा मकरववत्राश्च क्रौञ्चववत्राश्च दानवाः ॥९६॥
 'अश्वाननाः खरमुखा मयूरवदनास्तया । गजेन्द्रचर्मवसनास्तया कृष्णाजिनाम्बराः ॥९७॥
 चोरसंवृतगात्राश्च तथा' नीलकवाससः । उष्णोपिणो मुकुटिनस्तया कुण्डलिनोऽसुराः ॥९८॥
 किरीटिनो लम्बशिखाः 'कम्बुघ्रीवा सुवर्चसः । नानावेशधरा दंत्या मानामाल्यानुलेपनाः ॥९९॥
 स्वान्ध्यापुधानि संपृह्य प्रदीप्तानि' च तेजसा । 'जममाणं' 'हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥१००॥

वर्णित ॥८८॥ असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिथ, कालवदन, कराल, केशि ॥८९॥ एकाक्ष, चन्द्रमा, राहु, संह्लाद, सम्बर, स्वन, एवम् शतघ्नी तथा चक्रहाय मे रखने वाले, मुशल हाथ मे रखने वाले ॥९०॥ अश्व, यन्त्र तथा आयुधो से युक्त, भिन्दिपाल, अस्त्र से युक्त, शूल तथा ऊलखल हाथ मे रखने वाले, परशुधारी ॥९१॥ पाश तथा मुद्गर धारण करने वाले, परिघ हाथ मे रखने वाले, महाशिला के आयुध वाले, हाथ मे शूल लिये हुए दानव, ॥९२॥ नाना अस्त्रों से युक्त, नमानव, अनेक वेशधारी, महाबली, कछुए तथा मृगों के समान मुंह वाले, खरगोश तथा उलूक के समान मुंह वाले ॥९३॥ गधे तथा ऊँट के सदृश मुख वाले, मयूर के समान मुंह वाले, बिलड तथा मयूर के समान मुंह वाले, महामुख वाले ॥९४॥ परिवाल तथा भेड़ के समान मुंह वाले, वीर, बैल, धरारे तथा मैसे के समान मुंह वाले, गह तथा साही के समान मुंह वाले, सियार के समान मुंह वाले दानव ॥९५॥ बूहे तथा मेढर के समान मुंह वाले, भेड़िये के समान मुख वाले, ग्राह के समान मुंह वाले, वरांकुल पक्षी के समान मुंह वाले ॥९६॥ पाड़े के समान मुंह वाले गजचर्मधारी, कृष्णमृगचर्मधारी ॥९७॥ वस्त्र से ढके घरीर वाले, नीलवस्त्रधारी, पगड़ीधारी, मुकुटधारी, कुण्डधारी राक्षस ॥९८॥ लम्बा चौटी वाले, दाँत के समान घ्रीवा वाले, बलितेजस्वी, अनेक मालाओं तथा लेप से युक्त राक्षसवृन्द ने अपने चमकते हुए दाँत-अस्त्रा को लेकर पीर से पृथ्वी को नापते हुए भगवान् के ऊपर आक्रमण कर दिया ॥९९-१००॥ विष्णु ने अपने वीर-हथियों के प्रहार से दैत्यसमूह को नष्ट कर महामयानव रूप बनाकर शीघ्र

१ स्व स्थितिम् । २ स समुप । ३ क कालदमन । ४ वाल्मनामच । ५ अन्द्रहा रा० । ४ व ० ह, राक्षो ह्राद एव च । ६ ० । ५ व धमर । ६ ग स्वम । ७ व स ० द्य वीष्टु० । ८ य स गच्छानना । ९ व स ० धा पट० । १० व. कम्बुवष्टा । ११ क ० पान्तिव से । १२ व ० माणै हृषी० । १३ व ० वेश उपा० ।

प्रमथ्य सर्वान्वेदेयान्पादहस्ततर्लंबिभु । हृष्य कृत्वा महाभीम 'जहारोऽऽशु स मेदिनीम् ॥१०१॥
 तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । नभ प्रक्रममाणस्य नाम्ना किल तया स्थितौ ॥१०२॥
 'परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ । विष्णोरभितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥१०३॥
 हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्ना हृत्वा चासुरपुगवान् । ददौ शक्राय वसुधा' विष्णुर्बलवता वर ॥१०४॥
 एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मन । वेदविद्विद्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णव यश ॥१०५॥
 भूयो भूतात्मनो' विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन । दत्तात्रेय इति रयात् अमया परया युत ॥१०६॥
 तेन नष्टेषु 'वेदेषु प्रक्रियासु' मल्लेषु च । चातुर्वर्ण्ये च सक्तीर्णे धर्मे श्रियिलता गते ॥१०७॥
 'अतिवर्षति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शोयमाणान्सु धर्मे चाऽऽकुलतागत ॥१०८॥
 सयमा सक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यमसक्तीर्णं कृत तेन महात्मना ॥१०९॥
 तेन हंह्यराजस्य फातवीर्यस्य धीमत । वरदेन वरो वत्तो वत्तात्रेयेण धीमता ॥११०॥
 एतदबाहुद्वय यत्ते तत्ते मम कृते' नृप । शतानि दश वारूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११॥
 पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेश्वर । दुर्निरीक्ष्योऽरिबृन्दाना युद्धस्यैव भविष्यसि ॥११२॥
 एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शुभ । भूयश्च जामवन्त्योऽप्य प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३॥
 यन बाहुसहस्रेण द्विपता बुर्जय रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्य जघान नृपति प्रभु ॥११४॥

पृथ्वी का हरण कर लिया ॥१०१॥ विद्वानो वा बहूना हि वि पृथ्वा नापने के समय सूर्यचन्द्रमा आत्मन गतिनाला विष्णु का स्तना का बाध स्थित हुए आकाश नापने के समय व उनकी नाभि में और उससे ऊपर नापन का समय वे उनका जानुदेश में अवस्थित हुए ॥१०२ १०३॥ संपूर्ण पृथ्वी का हरण कर असुरपुंगवों को मारकर बलवाना म शब्द विष्णु ने हृत्वा का पृथ्वी दे दी ॥१०४॥ यह महामा विष्णु का वामन अवतार का वरदान आपस किया गया है । ब्रह्मेता ब्राह्मण इस विष्णु का यग कहत है ॥१०५॥ पुन अखिलामा विष्णु का दत्तात्रेय नाम स प्रख्यात 'य' अर्थात् क्षमा स मुक्त अवतार हुआ ॥१०६॥ जिस समय वे 'यम'मात्र तथा यग नष्ट हो रहे थे चारों वर्णों में साक्ष्य हो गया था धर्म में श्रियिलता आ गई थी अधम बढ़ रहा था सत्य नष्ट हो रहा था अधर्म फैल रहा था प्रजा छिन्न भिन्न हो रहा था और धर्म अस्त-व्यस्त हो गया था उस समय उन्होंने यग तथा यम'मात्र सहित वेदा का पुन स्थापित किया । महामा ने चातुर्वर्ण्य का साक्ष्यरहित किया ॥१०७ १०९॥ वरदायक 'यम'मात्र दत्तात्रेय ने हंह्यराज वत्तय यग वरदान दिया—नृप । मर जाये से तुम्हारा दोनों बांह एव सहस्र भुजाओं में परिणत हो जायगा इसमें नई सत्य नहीं ॥११० १११॥ पृथ्वीपति । तुम समस्त वसुधा का पालन करोगे और युद्ध में 'अनु-मम'हो से दुर्निरीक्ष्य होये ॥११२॥ यह वैष्णव अवतार अद्भुत तथा 'गुमना'र' हुआ । पुन महामा का परागुण अवतार हुआ जिसमें शक्तिमान राम ने रण में सहस्र भुजाओं के कारण 'अनु'ओं से अत्रेय राजा अनुन (नामवय) का मार दिया ॥११३ ११४॥ राम ने रण में स्थित अनुन को पृथ्वी पर गिरा दिया । आश्रय करते

१' ०रास्य तु मे० । २' स ०रमृ० । ३' ०वा दिव बल० । ४' स ०त्मनो वि० ।
 ५' देवेषु । ६' प्रयातपु । ७' अमिब० । ८' वृत्ता वर । ९' ० ।

रूपिणी तस्य पादर्वस्या सीतेति प्रयिता 'जने । पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥
जनस्याने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार स । तस्यापकारिण क्रूर पौलस्त्य' मनुजपंभ ॥१३०॥
सीताया पदमन्विच्छन्निजधान महायशा । देवासुरगणानां च यक्षराक्षसभोगिनाम् ॥१३१॥
यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि' दुजयम् । युक्त राक्षसकोदीर्भर्त्ताञ्जनचयापमम् ॥१३२॥
श्रंलाव्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम् । दुजय दुर्धर' दृप्त शार्दूलसमविक्रमम् ॥१३३॥
दुर्निरीक्ष्य सुरगणेश्वरदानेन दपितम् । जघान सचिवै' सार्धं ससंय रावण युधि ॥१३४॥
महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम् । रावण निजधानाञ्जु रामो भूतपति पुरा ॥१३५॥
सुग्रीवस्य कृते येन खानरेन्द्रो महाबल । बाली विनिहृत सख्ये सुग्रीवश्चाभिपक्षित ॥१३६॥
मयोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम शनव । हतो मधुवने कीरो वरमत्तो महासुर ॥१३७॥
यज्ञविघ्नकरी येन मुनीनां भावितात्मनाम् । मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना बरो ॥१३८॥
निहृता च निराशौ च कृतो तेन महात्मना । समरे युद्धशौण्डेन तथाऽप्ये चापि राक्षसा ॥१३९॥
विरामश्च कवचश्च राक्षसो भीमविश्रभौ । जघान पुरुषय्याघ्रो गघर्बो' शापमोहिता ॥१४०॥
हृताशनाकाशितडिदगुणार्भं प्रतप्तजाम्बूनवचित्रपुङ्गवं ।
महेन्द्रब्रह्माशानितुल्यसारं' रिपून्स राम समरे निजघ्ने ॥१४१॥

तथा सुदरी थी । लक्ष्मी की तरह वह स्वामी का अनुगमन करती थी ॥१२७ १२९॥ जनस्यान म निवास करते हुए उन्होंने देवताओं का काम किया । ॥ ता का अपेक्ष करते हुए महायशस्वी राम ने अपकारी तथा क्रूर रावण का वध किया । युद्ध म लक्ष्मि राम ने देव अथवा यक्ष राक्षस तथा सर्पों से अवध्य युद्ध मे दुर्जय, श्रंलाव्य के सतारक क्रूर महाभिमान व्याघ्र के समान पराक्रम' देवगणों से दुर्निरीक्ष्य बरदान से दपित करोड़ों राक्षसों से युक्त नील अञ्जन की राशि युग्म महाभ्रगण के सङ्ग महाकाय तथा महाबली रावण की सेना तथा मन्त्रीगण सहित निहृत किया ॥१३० १३४॥ सुग्रीव के लिये उन्होंने युद्ध मे बंदरों के स्वामी महाबलशाली बाली को मारा और सुग्रीव की अभिपक्षित किया ॥१३५ १३६॥ मधुवन में वीर राम ने मधु के पुत्र लवण नामक महाभिमान शनव को विनष्ट किया ॥१३७॥ उस महात्मा ने सयतात्मा मुनियों के यज्ञ मे विघ्न करने वाले अयन्त बलशाली मारीच और सुबाहु को मारा तथा निहृत किया । युद्धदमद राम ने समर में अन्य अनेक राक्षसों को भी विध्वस्त किया ॥१३८ १३९॥ पुरुषपुत्र राघव ने भयंकर पराक्रम' बिराघ और नवव नामक राक्षसों को जो शापमोहित गघर्ब से मार गिराया ॥१४०॥ रण म राम ने अग्नि सूयविरण तप्त सुवर्ण तथा विद्युत् के समान प्रमा वाले और हृदय के दम से समान सारमुक्त बाणों से पाण्डवों को निहृत किया ॥१४१॥ देवताओं से भी अनेक देवानुओं

१४ मुहिनी । २४ रामस्य । २४ न जने । ४क ०स्त्य पुरुषय्याः सी० । ५त ०यमा । सी० ।
१४ मुनि । ७४ दमद । ८ ०पविशतो । ९ग ०सार छरं । छरीरेण विभोत्रितो बलात् । त० ।

तस्मै दत्तानि 'शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२॥
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः । भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लोलया पुरा ॥१४३॥
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः । दशाश्वमेधाञ्जारूप्यानाजहार निरगंलान् ॥१४४॥
नाभ्रूपन्ताशुभा वाचो' नाऽऽकुलं माह्वतो बवौ । न वित्तहरणं चाऽऽसीदामे राज्यं प्रशासति ॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्याश्च कदाचन । 'सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६॥
न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलान्मनिलघातजम् । न चापि बृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७॥
'ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं 'विशस्तु क्षत्रिये रताः । शूद्राश्चैव हि वर्णास्त्रीञ्शुभ्रूपन्त्यनहंकृताः ॥१४८॥
नार्यो नात्यचरन्भर्तुंभार्थं' नात्यचरत्पतिः । सर्वमासीज्जगद्दान्त' निर्वस्मुरभवन्मही ॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भूतां रामः पालयिताऽभवत् । आसनव्यसहस्राणि तया पुत्रसहस्रिणः ॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्नामे राज्यं प्रशासति । देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१॥
पृथिव्यां 'समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति । पायामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२॥
रामे निबद्धतरवार्या माहात्म्यं तस्य धीमतः । श्यामोयुवा लोहिताक्षो दीप्तास्थो मितभाषितः ॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाबाहुः । दश धर्मसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४॥
श्रद्धासामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः । जय्यच्छिन्नोऽभवद्वाष्ट्रे दीयतां भुजयतामिति ॥१५५॥

के वध के लिए धीमान् विश्वामित्र ने राम को शस्त्र दिये ॥१४२॥ महात्मा जनक के यज्ञ में राम ने खेलते-खेलते सहज ही मे शिव के धनुष को तोड़ डाला ॥१४३॥ इतने कर्मों को करके धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने विघ्न-बाधाओं से रहित जाक्ष्म्य नामक दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥१४४॥ राम के राज्य-काल में अचुम बाणी मही सुनी जाती थी, व्याकुल करने वाला वायु नहीं बहता था, वित्तों का हरण नहीं होता था, विधवायें अनूताप नहीं करती थी और अनर्थ बर्मी नहीं होते थे । राम-राज्य में सब कुछ कल्याणमय होते थे, प्राणियों को जल, अग्नि तथा वायु के आघात-जग्य मय नहीं होता था, बूढ़ों को बालकों का श्राद्ध नहीं करता पड़ता था, क्षत्रिय ब्राह्मणों की वैश्य क्षत्रियों की और शूद्र क्षत्रियों वर्णों की सेवा अभिमानरहित भाव से किया करते थे, पत्नियों पतियों को और पति पत्नियों को नहीं छोड़ते थे, सम्पूर्ण जगत् नियंत्रित एवम् चोररहित था, एक राम ही सबके स्वामी तथा पालन-वर्ता थे, प्राणी नीरोग तथा सहस्रो पुत्रों से युक्त होकर हजारों वर्षों तक जीते थे ॥१४५-१५०॥ राम के तत्त्व को जानने वाले पुराणवेत्ता लोग बुद्धिमान् राम के माहात्म्य तथा इस विषय में एक गाथा में गते हैं कि राम के राज्य-नाशन के समय पृथिवी, पर देवता, ऋषि तथा मनुष्यों का मिलन होता था । श्यामवर्ण, युष्क, लालनेत्र, प्रदीप्तमुख, मितभाषी, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध तथा महाबाहु राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया था ॥१५१-१५४॥ उस महात्मा के राष्ट्र में श्रद्धा, साम तथा यजुर्वेदों का घोष, धनुष का घोष एवम् 'दान करो और उपमोग करो' का शब्द

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरयिवर्भो ॥१५६॥
 ईजे ऋतुशतं पुण्यं समाप्तवरदक्षिणं । हित्वाऽप्योध्या दिवं यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७॥
 एवमेव महाबाहुरिक्वाकु कुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥१५८॥
 अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः । विख्यातो मायुरेकल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९॥
 यत्र शाल्वं च चैद्यं च कंसं द्विविदमेव च । अरिष्टं वृषभं केजि पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१६०॥
 नामं कुबलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा । दैत्यान्मानुषदेहेन सूदयामास धीर्यवान् ॥१६१॥
 छिन्नं बाहुसहस्रं च घाणस्याद्भुतकर्मणः । मरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१६२॥
 हतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा । 'दुराचाराश्च निहिता' पार्ष्णिवा ये महीतले ॥१६३॥
 एष लोकहितार्याय प्रादुर्भावो महात्मनः । कल्की विष्णुयज्ञा नाम शम्भलप्राप्तसंभवः ॥१६४॥
 सर्वलोकहितार्याय भूयो देवो महामत्स्यः । एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणवृन्दः ॥१६५॥
 प्रादुर्भाव पुराणेषु धीयन्ते ब्रह्मवादिभिः । यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ॥१६६॥
 पुराणं धर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् । एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ॥१६७॥
 कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः । पीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ॥१६८॥
 विष्णोरभितवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥१६९॥

निरन्तर होता ही रहता था । सार्विक, गुणसंपन्न तथा अपने तेज से देदीप्यमान दशरथ-पुत्र राम सूर्य-चन्द्र से भी अधिप सुशामित थे ॥१५५-१५६॥ महाबलशाली राघव ने सैबहो पवित्र यज्ञ किये, उत्तम दक्षिणा दी और (अन्त में) अयोध्या छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की । इसी प्रकार इक्वाकु कुलमूयण महाबाहु राम गणसहित रावण को मार-
 कर स्वर्ग पयारे थे ॥१५७-१५८॥ असिललोवहित के लिये महात्मा विष्णु का दूसरा (वृज्ज) अवतार माधुर
 बल में प्रसिद्ध ही है, जिसमें शाल्व, शिशुपाल, कस द्विदि अरिष्ट, वृषभ, केजि, दैत्य-बन्ध्या, पूतना, कुबल्यापीड
 नामक हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा दैत्यो को मनुष्यनारी से शक्तिशाली बगवान् ने विनष्ट किया था । उन्होंने
 अनुभूत कर्म करने वाले बाण की सहस्र मुञ्जाओ को बाटा, युद्ध में मरने तथा महाबली बाल्यवन को मारा तेज से
 राजाओ के अखिल रत्नो का अपहरण किया और पुष्पीतल पर निवने दुराचारी राजा थे, उन समूह निहत किया
 ॥१५९-१६३॥ महात्मा का यह अवतार लोच-नल्याण ने निमित्त हुआ था । पुनः महायज्ञस्त्री (विष्णु) देव निखिल-
 लोच-हित के निमित्त शम्भलप्राप्त में विष्णुयज्ञस् नाम से कल्की अवतार लिये ॥१६४॥ ये और दूसरे भी बहुत से
 रस्य तथा देवताओ से आवृत अवतार पुराणों में ब्रह्मवादिनों द्वारा गाये जाते हैं । अवतारों के वर्णन करने में देवगण
 भुण्य हो जाते हैं । वेद और श्रुति से सम्मत पुराण इस विषय में प्रमाण है । यह अखिल लोको के गुरु परमात्मा
 के अवतार का वर्णन संक्षेप में किया गया है । अमित शक्तिशाली विष्णु के अवतारों का वर्णन जो मनुष्य अखिल-
 बद्ध होकर सुनता है, उसके पितर सुप्त हो जाते हैं । योगेश्वर की इस योगभाषा को सुनकर मनुष्य सब पापा से मुक्त

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।

ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात्

॥१७०॥

एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

मत्पुत्रमधिगच्छामः पुण्यधर्मात्मस्य च । मुने त्वन्मुख्यगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । धेरित सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वा महामतिम् ॥२॥

धूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः । दुःखकलेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥

कथं तेन नरा यांति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो धवतां वर ॥४॥

मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुयन्ति नरान्मुने ॥५॥

हो जाता है और वही ही भगवत्प्राप्ति से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५-१७०॥

मुनिवर ! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निष्सृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत के पान करने से हमें सुप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है। आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं नि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, चट्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है। वक्ताओं में श्रेष्ठ ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का वितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ ! मुने ! हम पूछते हैं। आप पूर्णतः सब बतलाइये। मुने ! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च । मानुषस्य च ग्राम्यस्य लाकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
 'कयं च स्वर्गाति यान्ति नरकं केन कर्मणा । स्वर्गस्यानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
 कयं सुकृतिनो यान्ति कयं दुष्कृतकारिणः । किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
 जीवस्य नोद्यमानस्य यमलोके' ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शूण्धं मुनिशार्दूल बद्धो मम सुव्रताः । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
 सोऽहं ब्रह्मिणः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम् । उत्क्रान्तिकालादारम्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
 स्वर्गं चैव मार्गस्य यन्मां पुच्छस्य सत्तमाः । यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
 योजनानां सहस्राणि यदशोतिस्तदन्तरम् । तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
 तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जैवसंज्ञकैः । पुण्यापुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमा ॥१३॥
 द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः । येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
 नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च । कुम्भीपाको महाघोरः शास्मलोऽय विमाहुरः ॥१५॥
 कौटोवः कुम्भिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा । नद्यः पूषवद्वाश्चान्या रुधिराग्भस्तथैव च ॥१६॥
 अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः । घोरा वैतरणी चैव असिपत्रधनं तथा ॥१७॥
 न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागा सरांसि च । न वाप्यो वीथिका वाऽपि न कूपो न प्रया सभा ॥१८॥

यमलोक मे कितना अन्तर है ? कैसे स्वर्ग मिलता है ? किस कर्म से नरक प्राप्य होता है ? स्वर्गस्थान कितने है ? नरक कितने हैं ? घर्मरमा कैसे जाते हैं ? पापी कैसे जाते हैं ? उनका क्या रूप है ? क्या प्रमाण है ? दानों का वर्ण कैसे होना है ? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियों ! मुनिश्रेष्ठो ! मुझसे सुनिये । संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है । इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ । यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है । यमलोक का माग तपे तबि वे समान सतप्त बहता गया है ॥११-१२॥ जीव सत्त्व प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं । पुण्यात्मा पावित्र्य लाभ को जाते हैं और पापी पापलोक को । यम के राज्य में बाईस नरक हैं, जिनमें पूषक, नृपक, दुष्प्रभो जीव सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शास्मल, विमाहुर, कौटोव, कुम्भिभक्ष, लालभक्ष, भ्रम, पाप बहाने वाली नदियाँ, शाणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाला, महाघोर, संदश, शुनभोजन, भयंकर वैतरणी तथा असिपत्रधन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न बाँकलियाँ, न सरोंवर, न तालाव, न कुआँ, न प्याऊ, न समा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ, न पर्वतही हैं । यम के मार्ग में कोई विश्राम स्थान

१। कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजानां मुने । २। स्व नियमात्तस्य । ३। लोके व्र० ।
 ४। न न एव मार्ग उदाहृत । ५। पृ. ० सत्ये । ६। महाघोरः । ७। न नदी प्लवाः । न ।

एताश्च योगेश्वरयोगमाया, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापं ।

ऋद्धि समृद्धि विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्र भगवत्प्रसादात्

॥१७०॥

एव मया मुनिधेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहरा पुण्या प्रादुर्भावा प्रकीर्तिता ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णो प्रादुर्भावानुकीर्तन नाम

अथोदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छान् पुण्यधर्मान्तस्य च । मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि न ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्ति सर्वं मुने तेन पृच्छामस्तथा महामतिम् ॥२॥

श्रूयते यमलोकस्य मार्गं परमदुर्गमं । दुःखकलेशकरं शब्दवत्सर्वभूतभयावहं ॥३॥

कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो ववता वर ॥४॥

मुने पृच्छाम सर्वज्ञं ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकबुद्धानि माऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हा जाता है और वा द्र हा भगवत्कृपा से ऋद्धि समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५ १७०॥

मुनिवर । इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवा अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निश्चित पवित्र तथा यममय वचनामृत का पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती प्रत्युत उन्मुखता बढ़ती ही जा रहा है । आप उत्पत्ति प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों का गति को जानते हैं । इसलिये आपसे पूछ रहे हैं । मुने हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम वण्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है । शक्ताओं में श्रद्धा कैसे उस मार्ग से प्राणा यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का कितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये । सर्वज्ञ ! मुने ! हम पूछते हैं । आप प्रणत सब बतलाइये । मुने ! किस उपाय दान धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लाकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
‘कयं च स्वर्गाति यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्यानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कयं सुकृतिनो यान्ति कयं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य नोयमानस्य यमलोकं ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

मनुष्यं मुनिशार्दूला धवतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नाग्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छय सत्तमा। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि यदशोतिस्तदन्तरम्। तप्तताम्रमिवाऽऽप्तं तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः। पुण्यापुण्यकृती यान्ति पापान्पापकृतोऽधमाः ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपश्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽय विमाहन ॥१५॥
कोटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभशो भ्रमस्तथा। नद्यः पूषवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदशः क्षुत्तमोजनः। घोरा वंतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीपिका वाऽपि न कूपो न प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक में कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दानों का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियों! मुनिश्रेष्ठो! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जिसका कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे क्षत्रि के समान सतप्त रहा गया है ॥११-१२॥ जीव सत्रक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लाल को जाते हैं और पापी पापलोक का। यम के राज्य में बाँट स नरक हैं, जिनमें पृथक्-पृथक् दुष्टार्थों की व सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमाहन, कोटाद, कृमिभक्ष, लालामक्ष, भ्रम, पीप वहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाल, महाघोर, संदश, क्षुत्तमोजन, मयकर वंतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न नृसों की छाया, न बाधलियाँ, न सरोवर, न तालाव, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ न पर्वतही हैं। यम के मार्ग में कोई विश्राम-स्थान

१ग कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा अनुवा मुने। स्व०। २ख ०स्य नियमास्तस्य। ३ख ०लोके प्र०।
४क ०न न एत-मार्ग उदहृतः। त०। ५ग. ०सस्ये। पु०। ६क. महारौद्रः। ७क न नदी प्लवा। न।

न मण्डपो नाऽऽयतनं न नद्यो न च पर्वताः। न किञ्चिदस्थमस्थानं विद्यते तत्र वर्तन्ति ॥११॥
 यत्र विश्रमते भ्रान्तः पुण्योऽतीव कषितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वेऽस्तु महापथः ॥२०॥
 प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुघनादिकम्। धरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्चोद्भिजास्तथा ॥२१॥
 जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च वैवस्वतवशानुगैः ॥२२॥
 स्त्रीपुनपुंसकेश्चैव पृथिव्यां जिवसंज्ञितैः। पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः ॥२३॥
 संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमैर्वाऽपि यौवनस्यैस्तथैव च ॥२४॥
 गर्भवासेऽप्य बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः। प्रवासस्यैर्गृहस्यैर्वा पर्वतस्यैः स्थलेऽपि वा ॥२५॥
 क्षेत्रस्यैर्वा जलस्यैर्वा गृहमप्यगतैस्तथा। आसीर्नैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा ॥२६॥
 जाप्रवृत्तिर्वा प्रसृप्तैर्वा गन्तव्यः ॥ महापथः। इहानुभूय निदिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा ॥२७॥
 तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्रव्याधिः पतनं गिरेः ॥२८॥
 निमित्तं किञ्चिदासाद्य बेही प्राणैर्विमुच्यते। विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥२९॥
 अन्यच्छरीरमावत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। वृद्धं शरीरमाप्नोति सुखदुःखोपभुक्तये ॥३०॥
 तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भुशम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो यमक्षये ॥३१॥
 ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमो रितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि क्षीप्यमानो निराधनः ॥३२॥
 उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुज्यता (क्ताना) मम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत ॥३३॥

मही है, जहाँ अत्यन्त चलने से भ्रान्त जीव आराम नरे। उस महापथ से सबको प्रयाण करना ही पड़ता है ॥१८-२०॥
 बाल पहुँचने पर मित्र, बन्धु, धन आदि को छोड़कर जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्वावर, जगन-समी महापथ से जाते हैं ॥२१॥ वैवस्वत (मनु) के अनुयायी देव, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नृपसक तथा पृथ्वी पर जितने जीव-सत्त्व प्राणी हैं, वृद्ध या मध्यमवयस्क या युध्वं या गर्भवासी या बालक होकर वे सब पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में या मध्याह्ण में या संध्याकाल या आधी रात को या प्रातःकाल उस महापथ पर जाते हैं। प्रवास में, गृह में, पर्वत पर, स्थल में, क्षेत्र में, जल में तथा गृह-मध्य में रहते, बैठते, खड़े होते, शय्या पर जाते, जागते तथा सोते हुए प्राणी उस महापथ पर जाते हैं ॥२२-२६॥ यहाँ निर्धारित वायु तक भ्रमण करके स्वयं वाहता हुआ भी प्राणी प्राणी से मुक्त हो जाता है। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, मूख, व्याधि, पर्वत-पतन—इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर जीव प्राणी से मुक्त हो जाता है और अति महान् पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अपने कर्मों से उत्पन्न अन्य यातना-शरीर को प्राप्त करता है। सुख-दुःख के उपभोग के लिए वृद्ध शरीर प्राप्त होता है ॥२७-३०॥ उसी से पापी मनुष्य यमालय में लाया जाने पर अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्न होकर सुख भोगता है ॥३१॥ शरीर में तीव्र वायु द्वारा प्रेरित गर्मी बढ़ जाती है और जलते हुए अग्नि की तरह मर्मस्थानों को पकाने लगती है ॥३२॥ तब साये-पिये हुए मक्ष तथा जल की अधोगति को रोककर उदान नामक वायु ऊपर की ओर बढ़ता जाता

ततो येनान्बुदानानि कृतान्यध्वरसास्तथा । दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥३४॥
 अत्रानि येन दत्तानि श्रद्धापूर्वेन चेतसा । सोऽपि तुष्टिमवानोति विनाऽप्यध्वेन च तदा ॥३५॥
 येनानूतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च । आस्तिकः श्रद्धाधानश्च सुखमृत्युं स गच्छति ॥३६॥
 देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः । शुक्ला वदान्या ह्योमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥३७॥
 यः कामात्रापि संरम्भात् द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् । यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमुच्छति ॥३८॥
 शारिदास्तृषितानां ये क्षुधिताभ्रप्रदायिनः । प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम् ॥३९॥
 शीतं जपन्ति धनवास्तापंचन्दनवायिनः । प्राणघ्नीं वेवनां कष्टां ये चान्योद्वेगधारिणः ॥४०॥
 मोहं शानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः । कूटसाक्षी मृषावादी यो गुरुर्ननुशास्ति वै ॥४१॥
 ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेवनिन्दकाः । विभोविषाः प्रीतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ॥४२॥
 आगच्छन्ति वुरात्मानो धमस्य पुरुषास्तथा । प्राप्तेषु दूषणं तेषु जायते तस्य वेषयुः ॥४३॥
 कन्दत्यविरतः सोऽय भ्रान्तमातृपितृस्तथा । सा तु वागस्फुटा विप्रा एकवर्णा विभाव्यते ॥४४॥
 वृष्टिर्विभ्राम्यते प्रासात्कासावृष्टपत्य (विष्टम) थाऽजनम् । सतः स वेवनाविष्टं तच्छरीरं
 विमुञ्चति ॥४५॥

है । जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति में आनन्द देता है । जिसने पवित्र चित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय सुप्ति मिलती है ॥३३-३५॥ जो असत्य नहीं बोलता, प्रीतिभेद नहीं करता तथा आस्तिक एवम् श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है ॥३६॥ जो मनुष्य देव-ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहता है, किसी से डाह नहीं करता तथा स्वच्छ, दानी एवम् लज्जाशील है उसकी मृत्यु सुखपूर्व होती है ॥३७॥ जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित नर्न करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है ॥३८॥ जो नर व्यासे को जल तथा मूत्र को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है ॥३९॥ धन देने वाले सबों को जीतते हैं, चन्दन देने वाले धनी को जीतते हैं और दूसरे के उद्वेग को दूर करने वाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं । ॥४०॥ शानदाता मोह के, तथा दीपदाता अंधकार को पार करता है । मिथ्या गवाही देने वाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह में मृत्यु प्राप्त करते हैं । मयकर, दुर्गन्ध तथा मुद्गर हाथों में लिये धर्म के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते हैं, जिन्हें देखते ही वे चारोंपे लगते हैं ॥४१-४३॥ तब वे माई, माता, पिता आदि के नाम लेकर बिल्लाने लगते हैं । विप्रवृन्द उनकी वह अस्फुट वाणी एकाक्षर-सी प्रतीत होती है ॥४४॥ डर से आँखें धूमने लगती हैं और भूँह लारों की वृष्टि करने लगता है, तब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड़ देते हैं और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं । वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नहीं होता । वह केवल कर्म-भोग के लिये

१ग समुच्छ० । २क ०५ पवन० । ३क प्राणितो । ४क प्राणिनो । ५क धान्योद्वेगधारि०
 ५ग ०गकारि० । ६क योऽध्वर्मनु० । ७ग ०च्छन्तो दु० । ८क ०स्तदा । प्रा० । ९क ०भ्रान्तनेत्रा सा
 कासोच्छ्वासेन वेषितम् । १०क ०म् । अन्तश्च वै ।

वाय्वप्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते । तत्कर्मयातनार्थं च न मातृपितृसंभवम् ॥४६॥
 'तत्प्रमाणवयोवस्यासंस्थानेः' प्राप्यते व्यथा । ततो दूतो यमस्याथ पाशं बध्नाति दारुणः ॥४७॥
 जन्तोः संप्राप्तकालस्य वेदनातंस्य' व' भृशम् । भूतैः संत्यक्तदेहस्य कष्टप्राप्तानिलस्य च ॥४८॥
 'शरीराच्छ्वावितो जीवो रोरवीति तयोत्खणम् । निर्गतो वायुभूतस्तु' पाट्कोशिककलेवरे ॥४९॥
 मातृभिः पितृभिश्चैव भ्रातृभिर्मातुलैस्तथा' । दारैः पुत्रैर्वयस्यैश्च' गुरुभिस्त्यज्यते भुवि ॥५०॥
 वृद्धयमानश्च तैर्वीरैरधुपूणैर्लणभृशम् । स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति ॥५१॥
 अन्धकारमपारं च' महाघोरं तमोवृत्तम् । सुखदुःखप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम् ॥५२॥
 दुःसहं च दुरन्तं' च दुर्निरीक्षं दुरासदम् । दुरापमस्तिदुर्मं' च पापिष्ठानां सदाऽहितम् ॥५३॥
 कृष्यमाणान्धच' तैर्भूतैर्याम्यैः पाशैस्तु सयताः । मुद्गरैस्ताड्यमानाश्च नीयन्ते 'तं महापथम् ॥५४॥
 क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽऽयुषक्षये । निनीयवः समायान्ति यमद्वृता भयद्वराः ॥५५॥
 आरुढा यानकाले तु श्वास्तय्याध्वखरेषु च । उद्धृष्टेषु बानरेष्वन्ये वृद्धिष्वकेषु वृषेभ्यु च ॥५६॥
 उलूकसर्पमार्जारं तथाऽन्ये गृध्रवाहनाः । श्वेनशृगालमालुढाः' सरघाकञ्जवाहनाः ॥५७॥
 वराहपशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे । नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयंकराः ॥५८॥

मिलता है ॥४५-४६॥ उस शरीर में भी कर्मनुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कष्ट भोगते हैं । सब समय पूर्ण होने पर वेदना से पीड़ित जीव के शरीर को पञ्चभूत छोड़ देते हैं और प्राणवायु ब्रूणगत हो जाता है । उसी समय यमदूत उसे भयकर जाल में बाँध देता है । शरीर से मुक्त जीव बहुत जोर से रोने लगता है । छह कला से युक्त शरीर से वायुभूत जीव के निकल जाने पर माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा गुरु उसका पृथ्वी पर छोड़ देते हैं ॥४७-५०॥ वे लोग दीन होकर अधुपूण नेत्रों से देखते ही रहते हैं, पर वह वायुभूत जब अपने शरीर को छोड़कर चल पड़ता है ॥५१॥ तिमिराच्छादित, पाररहित, महाघोर, सुखदुःखदाता, पापियों के लिए दुर्गम, दुःसह, दुष्पार, दुर्निरीक्ष्य, भीषण, अतिदुर्गं तथा पापिष्ठों के लिये सदा अहितकर उस महापथ पर यमदूत जीव को जाल में दृढ़ता से बाँध कर मुद्गर से पीटते हुए ले जाता है । आयु के क्षय होने पर रक्ष, नायु प्राण, को देखकर उसे ले जाने की इच्छा से भयकर यमदूत आते हैं ॥५२-५५॥ रीछ, बाघ, गधा, ऊँट, बिच्छू, भेड़िया, उल्लू, साँप, बिल्ला, गीध, बाज, शिपार, मधुमक्खी, सफेद बाल आदि वाहनों पर चढ़कर समस्त प्राणियों के लिये भयानक, नागरूप-घारी, सूखर पशु वेताल तथा महिष के समान मुख वाले, लंबे अटकोश वाले, विकराल मँह वाले, टेढ़ी नाब वाले, तीन नेत्र वाले, महान् ठूढ़ी, कपोल तथा मुख वाले, लंबे दाँत वाले, अकुर के सदृश निचले तथा विज्रत आकार के

१क० ममाणा व० । २क० स्व्याशरीटं प्रा० । ३क० ख० अनास्तरस्य । ४क० ख० अयवनीतोऽप्यो जीवो
 रोति त० । ५ग० ण्टकोषिक० । ६क० ख० गुलादिभि । दा० । ७क० अथ र्ददिमस्थ० । ८ग० त । ९क० ख०
 मुद्गर । १०ख० तैर्दृष्ट्यै० । ११क० अन्ते यमसादनम् । १२ग० अडाः शम्भरीक० ।

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्रनासास्त्रिलोचनाः । 'महाहनुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः ॥५९॥
निर्गतविकृताकारदंशनैरट्कुरोपमैः । मांसशोणितदिग्वाङ्गा दंष्ट्राभिर्भृशमुत्पन्नैः ॥६०॥
मुखैः पातालसदृशज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः । नेत्रैः सुविकृताकारज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः ॥६१॥
'मार्जारोलूकखद्योतशम्भोपबहुदन्तैः । केकरैः संकुलेस्तम्पैर्लोचनैः पावकोपमैः ॥६२॥
भृशमाभरणभौमैराबद्धैर्भुजगोपमैः । शोणासरलगान्धश्च मुण्डमालाविभूषितैः ॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पश्च फूत्कारारयभोषणैः । वह्निज्वालोपमैः केशैस्तद्वधरूपैर्भयंकरैः ॥६४॥
बभ्रुपिङ्गललोर्लश्च कटुश्मश्रुभिरावृताः । भुजवण्डमहाघोरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः ॥६५॥
केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाज्ये च चतुर्भुजाः । द्विरष्टबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा ॥६६॥
असंख्यातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः । आयुर्धैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः ॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीर्घैर्विषयायुधैः । पाशाशृङ्खलदण्डैश्च भोषयन्तो महाबलाः ॥६८॥
आगच्छन्ति महारात्रौ मर्त्यानामायुधः श्ये । 'ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वं यमस्याञ्ज्ञाकरास्तथा ॥६९॥
यत्तच्छरीरमावसे यातनीयं स्वकमंजम् । तवस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति ॥७०॥
यद्यप्या तत्कालपाशैश्च निगडैर्वज्रभृङ्गलैः । ताडयित्वा भृशं कुट्टेर्नीयते यमकिंकरैः ॥७१॥
प्रसलन्तं ददन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः । हा तासं मातं पुत्रेति वदन्तं कमन्दूयितम् ॥७२॥

दांतो बाले, मांस तथा शोणित से बड़े अंगो बाले, अत्यन्त तीक्ष्ण दंष्ट्रा बाले, पाताल सदृश मुख बाले, जलती हुई जिह्वा बाले, चञ्चल, पीत तथा विकृताकार नेत्र बाले, विलाड, उल्लू, जुगनू, तथा वीर बहूटी के समान उन्नत आँखो बाले, अग्नि के समान धमकीले, ऐंसे, सर्काण तथा निर्दिशेप नेत्रा बाले सर्प के समान भौषण भूषणो से आवद्ध, लाल तथा कर्कश शरीर बाले, मुण्ड-मालाओ से विभूषित, भयंकर 'फूत्कार' शब्द करने बाले, कृष्ण सर्पों को गले में धारण करने बाले, अग्निज्वाला तुल्य, रुक्ष, भयंकर तथा अचल वेश बाले, चञ्चल तथा भूरे एश्य पीत रंग की दाढ़ी मूछो से आवृत और महामयंकर तथा भाले के समान लम्बी भुजा बाले यमदूत आते हैं ॥५९-६९॥ उनमें कोई दो बाँहें बाले, कोई चार भुजा बाले, कोई सातह भुजा बाले, कोई तीस (या दस) भुजा बाले, कोई हजार भुजा बाले और कोई असंख्य भुजा बाले होते हैं ॥६६॥ आज्ञाव्यमान, मयानव तथा विविध आचार के अस्त्र-शस्त्रो से, वैदित्यमान शक्ति, तोमर, चक्र आदि विविध आयुधो से पाशा, शृङ्खल तथा दण्डो से डराते हुए महादारुण यमदूत मृत्युलोकवासियो के आयु क्षय होने पर प्राणियो को पकड़ने के लिये आते हैं ॥६७-६९॥ जब अपने कर्मी से उत्पन्न यातना-शरीर को प्राप्त करता है और वह यमालय ले जाया जाता है ॥७०॥ सर्पिलो तथा बाल-पाशो से बाँध कर अत्यन्त क्रुपित यमकिंकर पीटते हुए उसे ले जाते हैं ॥७१॥ निरते, रोते, बार-बार चिल्लाते और 'हा पिता, माता, पुत्र' बोलते हुए दुष्कर्मी जब का तीक्ष्ण, शूल, मुद्गर, अत्यन्त तेज तलवार तथा शक्ति के प्रहारो से एवम्

१क. ०कपाला०। २क ख ०त्रापरिवोदगै। ३क ०भूपणै। ४०। ४क ख आपहस्ता।
५क ख गृहीत्वा। ६क ख तदाज्यय। ७क ०रै। इत्वा वचनय कायमाशो०। ८क मुहुर्मंदे। ९ग ०त
पुन भातेति। हा बलतेति चासकृत्। आ०।

'उल्लिखद्भिः शूकरैश्च गन्तव्यं मांसखादकैः। सूचीममरकाकोलमक्षिकामिश्च' संधशः ॥८७॥
 भुज्यमानैश्च गन्तव्यं पापिष्ठमंबुधातकैः। विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥८८॥
 शस्त्रैर्निकृत्यमानैश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूस्ताडयन्ति निरागसः ॥८९॥
 राक्षसैर्भक्ष्यमानास्ते यान्ति याम्यपयं नराः। ये हरन्ति परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च ॥९०॥
 ते यान्ति विद्रुता नग्नाः प्रेतीभूता यमालयम्। वासोऽन्य हिरण्यं वा गृहक्षेत्रनद्यापि वा ॥९१॥
 ये हरन्ति कुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पायाणैर्लगुडैर्वण्डैस्ताड्यमानस्तु जजरैः ॥९२॥
 हृद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्। ब्रह्मस्य ये हरन्तीह नरा नरकनिर्भयाः ॥९३॥
 ताडयन्ति तथा विप्रानाक्रोशन्ति नराधमाः। शुष्ककाष्ठनिबद्धास्ते छिन्नकर्णाक्षिनासिकाः ॥९४॥
 पूषशोणितदिग्धास्ते कालगृधैश्च जम्बुकैः। किकरैर्भोयणैश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दाहणं ॥९५॥
 विक्रोशमाना गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एव परमबुधैर्ममज्जानं ज्वलनप्रभम् ॥९६॥
 रौरव दुर्गन्धियम निर्दिष्टं मानुषस्य च। प्रनप्तताम्रवर्णाभिं वस्त्रिज्वालात्कुलिङ्गवत् ॥९७॥
 कुरण्डकण्टकाकोर्णैः 'पृथुविकटताडनैः। शक्तिवशैश्च सप्तोर्गैर्मुग्धैश्च तीव्रकण्ठकम् ॥९८॥
 अङ्गारवालुकामिध वह्निं कीटककुर्ममम्। ज्वालामालाकुलं रीडं' सूर्यरश्मिप्रतापितम् ॥९९॥

है तथा सूअर भीरते हैं ॥८६॥ मधुघाती (मधुमक्खि ययो को मारने वाले) पापिष्ठ जीवो कः सूई, मीरे, कौए तथा मक्खियो से आहत होकर जाना पडता है ॥८७॥ विश्वस्त स्वामी, मित्र तथा स्त्री का वा मारता है, उसे शस्त्रो से आहत होकर जाना पडता है ॥८८॥ जो मनुष्य निरपराध जीवो को मारता है, उसे यमपय पर राक्षस खाते हैं ॥८९॥ जो मनुष्य परस्त्रियो को आकनी चुरा लेता है। वह मरने पर नग्न होकर यमलोके जाता है ॥९०॥ जो कुरात्मा पापिष्ठ कपडे, धान्य, सोने तथा वासस्वान का अपहरण करता है, वह पत्थर, हाँडी तथा डको से जर्जरयात्र होकर प्रचुर शोणित बहाते हुए यमालय जाता है ॥९१-९२॥ जो नर नरक से निर्गम होकर ब्राह्मणा वा घन हरण करता है और दिनों की पीडता है, वह नरायम सूखी लकड़ी म बीम दिया जाता है, उसकी आँख, नाक, नाभ वाट दी जाती है, पीप तथा शोणित से उसका सर्वांग क्षरीर लिप्त हो जाता है, गंध तथा विषाक उसे खाते हैं, प्रचण्ड तथा मयकर यमदूत उसे पीटते हैं, तब वह पापा आकाश करता हुआ यमसदन जाता है ॥९३-९५॥ इस प्रकार वह महापय मनुष्य के लिए परम बहिम, अग्नितुल्य प्रभावा वाला, विषम, भयंकर तथा रौरव नरक तुल्य बतलाया जाता है। तबे तबि के तुल्य, अग्नि ग्वालाओ के वण के सदृश कुरण्ड वृक्ष के नाँटा से व्याप्त दिवाल तथा दिकट लाडनी (चानुका), दक्षिता तथा वज्रो से मरे हुए, जज्ज्वल, तीखी, नाँटो से युक्त, अगार सदृश, बालू से मिश्रित, अक्षिताया कीडो के चारण दुर्गम, ज्वालाओ से परिपूर्ण, मयानव तथा सूर्य किरणो से सतप्त मांस पर प्राणी अत्यन्त निष्ठुर यमदूता द्वारा पक्षीटता हुआ ले जाया जाता है ॥९६-९९॥ जर्म, दुःखपीडित जीव वही फिर नर राने रुडता है

१क ख उत्तिष्ठद्भि। २क ख ०कामि सहस्रस। ३ग ०मंघपा०। ४क ०न्ति घन स्त्री०। ५क मन्ना। ६ग गावो। ७क ०म्। देवद्रव्य ह०। ८क ख ०ह शुद्धमूत्रि तयैव च। ता०। ९क ०र्ण वृषा वि०। ग ०र्ण वृषावि०। १०ख ०टरङ्कुरै। श०। ग ०टमङ्कुर। श०। ११क ख ०द दीप्तसूर्य प्र०।

अध्यायान नीयते देहो कृष्यमाण सुनिष्ठुरं । यदेव ऋन्दते जतुर्दुष्कातं पतितं^१ । यच्चित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽह्न्यते सर्वैरामुधैर्यमकिंकरं । एव सताड्यमानश्च लुब्ध पापेषु योऽनय ॥१०१॥
 अवशो नीयते जन्तुर्दुधैर्यमकिंकरं । सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्यायान तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया । नीत्वा सुदारुण भागं प्राणिन यमकिंकरं ॥१०३॥
 प्रवेक्ष्यते पुरीं घोरा साध्यायसमयीं द्विजा । सा पुरी विपुलाकारा^२ लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्रा विनिबिष्टा चतुर्द्वारयती शुभा । प्रकारा काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिता ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपद्मरामोपशोभिता । सा पुरी विविधं सधैर्घोरा घोरं समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । पूर्वद्वारं शुभ तस्या पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 यच्च 'त्रनीलवैदूर्यैर्युक्ताफलविभूषितम् । शीतनुस्ये समाकोर्णं गन्धर्वोत्तरां गणैः ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामुषीणा योगिना तथा । ग यर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तरं नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम् । छत्रचामरविन्यास नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 धीमारेणुरवं रम्यैर्गोमयङ्गजनादित^३ । 'श्रृग्यम् ताननिर्घोषमुनिबुधस्तमाकुलम् ॥१११॥
 विशन्ति येन धर्मज्ञा सत्यजनवरायणा । शीघ्रे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदानरा ॥११२॥
 ध्यान्तसवाहका य च प्रियवावरताश्च ये । ये च दानरता शूरा भ्रातापितृपराश्च ये ॥११३॥

१. तम यमदूत विविध आयुजा से उसे आहन कर देते हैं ॥१००॥ २. इस प्रकार पापी और अनैतिक जैद को ताड़ते हुए यमकिंकर ले जाते हैं । उस अयत दुर्गम भाग पर सबको जाना पड़ता है । द्विबन्ध । अनेक यमकर यमदूत प्राणी को दारुण भाग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अन्तर उसे ताम्र-नीलमय पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१॥ ३. यह पुरी विस्तृत तारार काठी एवं गत योजन लम्बी चौकीर चार द्वार पाली तथा गुरर है । उत्तरी मुख मय चहार बारी दी हनार यजन विस्तृत है ॥१०४॥ ४. यह पुरी इन्द्रपुरी महान् तथा पद्मराम गणि से युक्त निविध सधो से यमकर और देव दानय गन्धर्व दक्ष राक्षस तथा राक्षों से परिपूर्ण है । उत्तरा पूर्वद्वार पवित्र शैवको पताका से गमित यय इन्द्र नर वैदूर्य आदि नृपिया तथा मोतिया से विभूषित नृप-मूर्तियों तथा गन्धर्व और अन्तराभा के गणा से प्रपूर्ण है ॥१०६॥ ५. उम द्वार से देव श्रृगि योर्न यमर्क सिद्ध, पदा तथा विद्याधरा वा प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित छत्र तथा नाना रत्नों से अलंकृत रीणा बाँसुरी वा दण्डा तथा वाता-मण्डल से रम्य श्रृग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनि-मुन से परिब्रज्जता है ॥११०॥ ६. उत गण से धर्मन तथा सत्यजनवरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं । जो मनुष्य धर्म-न्याय म ज्ञान और नीतिज्ञा से अभिज्ञान करते हैं वे उत भाग से जान हैं ॥११२॥ ७. ज यम मारे री सेया करते हैं वा प्रियदाता हैं वा दान हैं जो वीर हैं वा मानु णि मन्त्र हैं वा पित्रसभा म रिण हैं और जो अग्निपूजक हैं वे उत भाग से जाते हैं ॥११३॥ नन्दी वा पश्चिमद्वार रत्ना से विभूषित विविध मणिमय

१. ग पत्तये । २. विविधायता । ३. ग ० गुणवति । ४. ग ० रं तु वर । ५. ग ० तं । यदु ।

६. ग ० मायः वराशोः । ७. ग ० मन्त्रविशारदपणा । ८. ० ।

द्विजशुभ्रपणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पूर्वा रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
 विविधमणिशोपानं तोमरैः समलकृतम्। भेरोमूढङ्गसंनद्धैः शङ्खकाहलनावितम् ॥११५॥
 सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनावितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
 सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेयै च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरी ॥११७॥
 अग्नौ विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थं गोघ्रे संकुले हताः ॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पूर्वा तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
 हाहाकारसमाद्भुतं दक्षिणं द्वारमोदयम्। अन्यकारसमायुक्तं लोक्षणशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
 कण्ठकैर्बृश्चिकैः सप्तैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलम्बदभिवृत्कैर्घ्रातृशैः सिंहैः सज्ज्युक्तं ॥१२१॥
 श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्जालकबलेर्मूलैः। प्रवेशस्तेन ये नित्यं स्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
 ये घातयन्ति विप्राणां बालं बृद्धं तथाऽनुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुषम् ॥१२३॥
 येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहरिणः। निक्षेपस्यापहृतांरो विषवहिनः प्रबाधकं ये ॥१२४॥
 परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राङ्गकारहारिणः। पररज्ज्वे बुधे क्रूरा ये सदाऽनुसवादिनः ॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महाबुधप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदावातारः 'कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
 अमव्ययमक्षयता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये' वशिनः च पौत्रवम् ॥१२७॥

सीधियों से युक्त, सीमरों से अलङ्कृत, डोल, मृदङ्ग, घाल तथा डमरू से सज्जित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुशोभित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ ज, समस्त तीर्थ-
 स्नार्थी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो वारज्ज्वर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गो तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तत्पर्वत तथा वीर मनुष्य पश्चिम-
 द्वार से जाते हैं ॥११८॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयकर, हाहाकार शब्दों से
 व्याप्त, विमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, कीटों, विच्छू, साँप, बज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम, मुहं फैलाने उपद्रवी
 भेड़ियों, बाघ, चीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिलाल तथा गंधों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता
 है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण, गौ, बालक, बृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री, मित्र तथा निराश्रय व्यक्ति
 को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ़, दूसरों के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने
 वाले हैं ज, दूसरों के भूमि, गृह, शय्या वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरों के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-
 वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरों में उपद्रव भजाने वाले, मिथ्या भवाह्वी, देने दाते, बन्धा वेचने वाले तथा अमव्ययमक्षण

१४ ०५नमम०। २५ ०६ शङ्खकाहलना०। ३६ ख मृता ये पतने गि०। ४७ जले। ५६ ग
 ०४र निराश्रय सी०। ६६ ख ०७षा पापका०। ७७ ग्रामे पुरे निवसता। ८०। ८६ ०२त्रासम०।
 ९६ ०प्रवर्धका। १००। १०६ ग ०न्यावादे च येज्जुता। १०७। १११ ०२ दुहित०। १२२ ये गच्छन्ति
 स्वगामिनि। १०७।

अध्वानं नीयते देहो कृष्यमाणः सुनिष्ठुरः। यदेव क्रन्दते जन्तुर्दुःखार्तः पतितः। स्वचित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽह्वयते सर्वैराधुर्धर्मकिकरैः। एव संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योजनपः ॥१०१॥
 अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धर्यमकिकरः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्धर्यमदूतरवज्रया। नीत्वा सुदारुण मार्गं प्राणिनं यमकिकरः ॥१०३॥
 प्रवेक्ष्यते पुरीं घोरां ताप्रायसमयीं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्या विनिदिष्टा चतुर्द्वारयती शुभा। प्राकाराः काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुन्मिताः ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सपैर्घोरा घोरैः समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैर्धर्यक्षराक्षसपन्नयैः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 यज्ज्येष्ठनीलैर्ब्रह्मयन्त्राफलविभूयितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वान्सरसां गणैः ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामुद्योगो योगिनो तथा। गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तर मगरद्वारं षष्ठाचामरभूयितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 घोगारेभुतं रम्भैर्गोत्रमङ्गलनाशितं।' 'ऋष्यशु सामनिषीर्षैर्ब्रह्मविद्वत्समाकुलम् ॥१११॥
 विशन्ति येन धर्मज्ञाः सत्यव्रतपरायणाः। घोष्णे चारिप्रशाये च शीते चाग्निप्रशान्ताः ॥११२॥
 धान्तसवाहुका ये च प्रियवादरताश्च ये। ये च दानरताः शूरा भक्तापितृपराश्च ये ॥११३॥

तमः यमदूत विविध आयुषो से उसे आहन कर देते हैं ॥१००॥ इस प्रकार वापी और अनैतिव जीव को ताड़ते हुए यमकिंकर ले जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सज्जो जाना पड़ता है। द्विगण। अनेक भयकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अद्वन्द्व उसे ताप-नीडमयी पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१-१०३॥ यह पुरी विस्तृत आधार वाली, एक लाख योजन लम्बी, चौकोर, चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उत्तरी सुवर्ण-मयी, चहार दीपारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४-१०५॥ यह पुरी इन्द्रपुरी, महानील तथा पद्मराग रंग से सुशोभित, विविध सजा से भयकर और देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पों से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र, शीतलोपताशी से शोभित, यज्ज्येष्ठ, नील, ब्रह्म, वैदूर्य आदि रंगिया तथा शीतलोप से विभूयित, नृत्य-गीतों तथा मयूर और अन्तराक्षों के गणों से प्रपूर्ण है ॥१०६-१०८॥ उग द्वार से देव, ऋषि, यामी, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा दिवापरोषा प्रवेश होता है ॥१०९॥ उत्तर वा उत्तरद्वार षष्ठा तथा चामरों से भूयित, छत्र तथा नाना रत्नों से अलङ्कृत, रंग, वायुवी के रंगों तथा रीत-भग्न से रम्भ, ऋषेय, यजुर्वेद तथा सामवेद के विषयों एवम् मुनि-युग्म से परिष्कृत है ॥११०-१११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य धर्म-भक्त से अज्ञान और अविज्ञान से अन्विष्ट रहते हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ य. धर्म-मार्ग की सेवा करते हैं, जो प्रियदत्ता हैं, जो दानी हैं, जो वीर हैं, जो मानु-गि-युक्त हैं, जो पित्रोपा से मिले हैं और जो अनिष्टिपूजा हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३॥ नदरी वा पतिषमद्वार रत्नों से विभूयित, विविध रंगमय

१४ ग पत्ने। २४ विविधा। ३४ ग. ०२ तु वर०। ५४ ग. ०१। ५५ ग. ०१।

५४ ग. ०१। ५५ ग. ०१। ५६ ग. ०१। ५७ ग. ०१। ५८ ग. ०१।

द्विजशूद्रपणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पूर्वा रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
 विचित्रमणिमोयानं तोमरैः समलंकृतम्। भरोमूदङ्गसंनदः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
 सिद्धवन्देः सदा हृष्टमङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
 सर्वनोर्यल्लुता ये च पञ्चाम्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता बीरा मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
 अग्नी विपद्ना ये चीराः साधितं वरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थं गोपहे संकुले हताः ॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन सपोधनाः। पूर्वा तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
 हाहाकारसगान्धुष्टं दक्षिणं द्वारमोदशम्। अन्धकारसमायुक्तं तोक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
 कण्टकैर्विचकैः सपञ्चक्रीडैः सुतुर्गमैः। विलम्बद्विभूर्कैर्व्याघ्रैर्हंसैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
 श्वानमार्जारगुण्डैश्च सज्जालकवर्त्मभुजैः। प्रवेशस्तेन च नित्यं सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
 ये धातयन्ति विप्रान्ना बालं वृद्धं तथाऽनुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
 येऽगम्यागामिनौ मूढाः परद्वयपहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारौ विषवह्निप्रवाहच ये ॥१२४॥
 परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राङ्कहारहारिणः। पररज्ज्वेषु ये क्रूरा ये सवाऽनुत्तवादिनः ॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महादुःखप्रदा' हि ये। कूटसाक्षिप्रवादातारः 'कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
 अमक्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पित्रं च शत्रुं च पौषवम् ॥१२७॥

सीढियों से युक्त, सीमरी से अलङ्कृत, डोल, मृदंग शङ्ख तथा डमरू से शक्तिशाली और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धबन्धुओं से सुषेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिदमकन मनुष्यों वा प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-स्नार्थी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो बीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो बालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, भोक्तृ तथा दूसरा के लिये प्राण देते हैं वे तत्पर्वी तथा बीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८॥ उस पुरी वा दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयकर, हाहाकार शब्दों से श्याप्त, तिमिरावृत, तोक्ष्ण शृङ्गों से समन्वित, बटि बिच्छू, साँप दन्त तथा कौड़ों से अतिदुर्गम मुह पैंताये उपद्रवी भेडिये, बाघ, रीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, विलाड तथा गी, घो से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों वा प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण गौ, बाल्क वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, रुकी विप्र तथा नि शस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ दूसरे के धन हरण करने वाले, घरोंहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं, जो दूसरे के भूमि, गृह शय्या, वस्त्र तथा आभूषणों वा हरण करते हैं, जो दूसरे के उद्धान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरी में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या मदीह देने वाले, बन्धु वेषने वाले तथा अमक्यभक्षण

१११ ०पागमम०। १२ ०दे दृष्टकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४क जल। ५क ग ०कार निरालोच ती०। ६क ख ०वेषा पापना०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०रत्रासम०। ९क ०श्रवर्धका। १०। १०क ग ०न्यावादे च येजूता। १०। ११ ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वामिनि। १०।

अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिण । दक्षिण तु ते सर्वे द्वारण प्रविशन्ति वै ॥१२८॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपुत्रस्यैव यमलोकस्य भागस्वरूपपर्यायानिरूपण
नाम चतुदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्याय

दक्षिणमार्गवर्णनम्

मुनय ऊचु

कथं दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापि पुरम् । श्रोतुमिच्छाम तदब्रूहि विस्तरण तपोधन ॥१॥
व्यास उवाच

सुघोर तन्महाघोर द्वार वक्ष्यामि भोवर्णन । नानाशेषपदसंकीर्ण शिवाशतनिनावितम् ॥२॥
फेकाररवसमुत्तमगम्य लोमहृषणम् । भूतप्रतपिशाचश्च घृत आर्यैश्च राक्षसैः ॥३॥
एव दृष्ट्वा सुदूरान्त द्वार दुष्कृतकारिण । मोहं गच्छन्ति सहस्राः त्रासाद्विप्रलपन्ति च ॥४॥
ततस्ताञ्जुह्वल पादौघदध्वा कथमपि निभया । ताडयन् च दण्डश्च भूतसर्पिन पुन पुन ॥५॥

करने वाले हैं जो पुत्र तथा पुत्रव्य से गर्म करते हैं जो माता पिता को कट वचन कहते हैं और जो महापातक कारा हैं वे निश्चय ही दक्षिण द्वार से प्रवेश करते हैं ॥१२९॥ १२८॥

आ ब्रह्ममहापुराण में व्यास जी ने श्रुतियों के बाद प्रकरण में यमलोक के भागस्वरूप व्याख्यान नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

मुनियो न कथा—कथं घन । पाप जिन दक्षिण मार्ग से कते पुर में प्रवेश करते हैं ? हमें यह सुनने का इच्छा है, विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥१॥

व्यास न कथा—मैं उस महाघोर तथा भयानक द्वार के बारे में बतूंगा । अनेक हितवर्जित जानवरों से प्रपूर्ण सैन्धव दिपावर्तियों से भरी फेनार शब्दा से संयुक्त अगम्य र मार्गवर्ती भूत प्रत पिशाच तथा राक्षसों से आवृत दक्षिणद्वार का दूरह से देखकर दुष्कर्मी जो इस सहसा घबरा जाते हैं आ डर से विलाप करने लगते हैं ॥२॥ ४॥
तब भयानक यमदूत साँवला तथा शस्त्र से लदे बाधकर दूतों से घेर लेते हैं और धार-धार, गाला देते हैं ॥५॥

लब्धसंज्ञास्ततस्ते च रश्मिरेण परिप्लुताः । व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्वलन्तः पदे पदे ॥६॥
 तीव्रकण्टकयुक्तेन शकंरानिचितेन च । क्षुरधारानिभंस्तोदणं पापार्णमिचितेन च ॥७॥
 बवचित्पञ्चने निचिता निस्तारंश्च खातकं । लोहसूचीनिभंरन्तः संक्षेपेन बवचित्पञ्चचित् ॥८॥
 तदप्रपातविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखितः ॥९॥
 बवचिद्विषमगतीभिः बवचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः । सुतप्तवालकाभिश्च तथा तीक्ष्णंश्च शङ्कुभिः ॥१०॥
 अयःशृङ्गादकंस्तप्तेः बवचिद्वाग्निना युनम् । बवचित्सप्तशिलाभिश्च बवचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥११॥
 बवचिद्वालकेया व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया । बवचिद्वुष्टान्धुना व्याप्तं बवचित्कर्पाणिना पुनः ॥१२॥
 बवचित्सिंहवृक्षैर्वाग्निप्रवेशकीटैश्च वारुणैः । बवचिन्महाजलोकाभिः बवचिद्वज्रैः पुनः ॥१३॥
 मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः बवचित्सर्पविपोल्वणैः । बवचिद्वुष्टगजैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१४॥
 पत्न्याममुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्नहायुवैः । महाशृङ्गैश्च महिर्वरुणैर्मत्तैश्च खादनैः ॥१५॥
 शक्तिनीभिश्च रौद्राभिविकरालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महारौद्रैः पीडयमाना व्रजन्ति ते ॥१६॥
 महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना । महापापाणवर्षेण हृष्यमाना निराश्रयाः ॥१७॥
 बवचिद्विद्युन्निपातेन क्षीर्यमाणा व्रजन्ति ते । महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः ॥१८॥
 पतद्भिर्वज्रनिघातिरत्नकापातैः सुदारुणैः । प्रवोप्ताङ्गारवर्षेण दहयमाना विशन्ति च ॥१९॥

धेतना आने पर वे जीव रस्त से लयपथ होकर पग-पग पर गिरते हुए दक्षिणद्वार की जाते हैं ॥६॥ तीव्र वादों से युक्त, कबडों से व्याप्त, अस्तुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्थरो से समन्वित, वही कबडों से युक्त वही खाद्यो से युक्त, वही-वही लोहे की सूई के समान दाँता से युक्त, तप्त-प्रवेश में विषम पर्वता तथा बुझों से संकुल और जाज्वल्यमान अपारो से युक्त मार्ग से दुर्लभ होकर जीव जाते हैं ॥७-९॥ वही विषम बूझों से, वही फिसलने वाले पत्थरो से, तप्त बालुओं से, तीक्ष्ण छुरियों से, लोहे की तप्त की लो से वही दादागियों से, वही तप्त शिलाओं से वही पाले से, वही बण्ड के भीतर घुसने वाली बालुओं से, वही वृषित जल से वही अग्नि से, वही दाहण सिंह, मेढिये, बाघ तथा इंसने वाले कौबों से, वही बड़े-बड़े जौकों से, वही अजगरों से, वही मयवर मन्त्रियों से वही विष धमन करने वाले सर्पों से, वही दुष्ट, बलोन्मत्त तथा कुचलने वाले हाथियों से, तीव्र शीमो से मार्ग का उखाड़ने वाले साँडों से, विशाल सीम वाले महिषों से, खा जाने वाले मन्त्राले ऊँटों से, मयवर डाकिनियों से विहराल राक्षसों से और महान् मयवर व्याधियों से पीडित होते हुए जीव जाते हैं ॥१०-१६॥ बहुत धूलि मिश्रित प्रचण्ड वायु से तथा मयवर पत्थरो की वृष्टि से आहत, निराश्रय और वही विजली के गिरने से विदीर्ण होते हुए जीव जाते हैं ॥१७॥ महान् वाणों की वृष्टि से छिन-भिन्न दाहण उल्हापात तथा बज्रप्रहारों से आहत और जाज्वल्यमान शृङ्गारों की वृष्टि से दण्ड होते हुए जीव प्रवेश करते हैं ॥१८-१९॥ महान् धूलि-वृष्टि से भर-भर जीव रते हैं और मयवर मेघ-वर्जन

महता पांशुवर्षेण पूर्वमाणा रुदन्ति च । मेघारवंः सुघोरंश्च वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२०॥
 निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः । महाक्षाराम्बुधाराभिः सिध्यमाना व्रजन्ति च ॥२१॥
 महाशीतेन महता रुक्षेण परुषेण च । समन्ताद्दीर्घमाणाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च ॥२२॥
 इत्थं मार्गेण पुरुषाः^१ पाथेयरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥२३॥
 अतिश्रमेण महता निर्गतेनाऽश्रमाय वं । नीयन्ते देहिना सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥२४॥
 यमदूतमहाघोरंस्तदाकारिभिर्वलात् । एकाकिनः पराधीना मित्रघण्डुविर्वाज्जताः ॥२५॥
 शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः । प्रेतीभूता निषिद्धारते शुष्ककण्ठीष्ठतालुकाः ॥२६॥
 कृशाङ्गा भीतभीताश्च बहुचमानाः क्षुधाग्निना । बद्धाः शृङ्खलया^२ कंचित्कोविदुत्तानपादयोः ॥२७॥
 आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलेकटैः । नरा अधोमुखाश्चान्ये कृष्यमाणाः सुदुःखिताः ॥२८॥
 अन्नपानीयरहिता याचमाना पुनः पुनः । देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा ॥२९॥
 कृताञ्जलिपुटा दीनाः क्षुत्प्लावरिपोडिताः । भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा^३ भोज्यान्पेयाश्च पुष्कलान् ॥३०॥
 सुगन्धद्रव्यसमुक्तान्याचमाना पुनः पुनः ।^४ वैश्वीरघूतोन्मिथं दष्ट्वा शाल्योवभं तथा ॥३१॥
 पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च । तान्याचमानास्ते यान्या^५ भर्त्सयन्तस्तदाऽब्रुवन् ॥
 षष्ठोभिः पर्यर्भोमाः^६ क्रोधरक्तान्तलोचनाः ॥३२॥

से बार-बार नस्त होते हैं ॥२०॥ बाणों के वर्षों से नि शेषतया बुर-बुर होते हुए तथा अत्यन्त खारे जल के, बार-बार से सींगते हुए जीव जाते हैं ॥२१॥ बहुत ठंडी, रुई, तथा कठोर वायु से प्राणी फट जाते हैं, सूख जाते हैं तथा संकुचित हो जाते हैं ॥२२॥ इस प्रकार पाथेयरहित, निरालम्ब, निर्जल तथा दुर्गम मार्ग से पारदर्मी भूख जीव अत्यन्त पृष्ठ से महामयवर यमदूतों द्वारा बलपूर्वक यमाश्रम को ले जाये जाते हैं ॥२३-२४॥ अबले, पराधीन तथा मित्र-घण्डुआ से रहित जीव अपने बर्भों को सावते हुए बार-बार राते हैं । प्रेत होने पर जीव दूषित हो जाते हैं; उनके कण्ठ, होठ तथा तालु सूख जाते हैं शरीर रक्षण हो जाते हैं । बलान्त यमदूत क्षुधाग्नि से दम्ब, भयो से प्रत्त, सारिलो से बद्ध तथा शुष्क जीवों को उत्तानपाद करने लगे होते हैं, कियने जीवों को अधोमुख करके अत्यन्त दुःख देते हुए खींचते हैं ॥२५-२८॥ अन्न-जल से रहित जीव 'दा दा' बहते हुए अश्रुपूर्ण स्वर से बार-बार याचना करते हैं ॥२९॥ भूय प्यास से परिणत तथा दीन जीव प्रचुर मात्रा से सुगन्धित हव्य मिथित भोज्य तथा पेय पदार्थों को देखकर अञ्जलिबद्ध हाकर बार-बार याचना करते हैं । दर्हा, दूध, रीं, चावल, भात, सुगन्धित पान पदार्थ, तथा शीतल जल—इन चीजों का देखकर जब जीव मारते हैं तब मयवर यमदूत आँखें लाल कर बटुवचन बहते हुए पटवारते हैं ॥३०-३२॥

१ व विजन्ति । २ दुर्गेण । ३ अंगता ये यमालयम् । नी० । ४ लज्जे के० । ५ व विदुताना पादचारिण । आ० । ६ व भोज्यराशीश्च पु० । ७ व स विषखण्डम् । ८ व न्या निपेयन्त० ।

याम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेभ्य च । प्रसभं दीयमानं च वारितं च द्विजातिषु ॥३३॥
तस्य पापस्य च फलं भवतां समुपायतम् । नाम्नो दग्धं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करं ॥३४॥
हुतो वा सोप्रांतं विभ्रे यन्न दत्तं पुराश्रमाः । यदेतानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु ॥३५॥
तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः । भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोष्याश्च संवृताः ॥३६॥
न यूयमभिलप्स्यथ्ये न दत्तं च कथंचन । यस्तु दत्तं हृतं खेप्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥३७॥
तेषामन्नं समानीय इह निक्षिप्यते सदा । परस्वं कथमस्माभिर्दातुं शक्येत नारकाः ॥३८॥

ध्यास उवाच

किंकराणां वचः श्रुत्वा निःस्पृहाः क्षुत्तृषादिताः । ततस्ते दारुणंश्चात्मैः पीडयन्ते यमकिंकरैः ॥३९॥
मुद्गरालोहदण्डैश्च क्षविततोमरपट्टिभिः । परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः ॥४०॥
पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः । अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः ॥४१॥
न प्रवेष्टुं न निर्गन्तुं लभन्ते दुःखिता भूशम् । स्वकर्मोपहृताः पापाः क्लृप्तमानाः सुबादणाः ॥४२॥
तत्र संपीड्य सुभुजं प्रवेशं यमकिंकरैः । नोपन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्स्वयं यमः ॥४३॥
धर्मात्मा धर्मकृद्देवः सर्वसंयमनो यमः । एवं यथास्तिकपटेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः ॥४४॥

यमकिंकर बोले—समय पर न तुमने हवन किया न ब्राह्मणों को दान दिया, प्रत्युत विभ्रो को दाने जाने वाले दान को तुमने हठात् रोक दिया । उसी पाप का फल तुम्हें मिला है । नीचों ! तुम्हारा घन अग्नि में नहीं जला था, जल में नष्ट नहीं हुआ था और राजा तथा बौद्धों ने भी नहीं लिया था, फिर भी तुमने ब्राह्मणों को नहीं दिया । इसलिए अभी वहाँ से मिलेगा ? जिन साधुओं ने सात्त्विक दान दिये थे, उनके लिये ये अन्नपर्वत, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य (चादने योग्य) तथा वाय्य (पूसने योग्य) पदार्थ तैयार हैं । तुमने कर्मों का दान नहीं किया । इसलिये पाने की इच्छा मत करो । मिर्दूनि दान दिया, हवन किया, यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों की पूजा की, उनके लिए अन्न लाकर यहाँ रखा जाना है । नरक में जाने वालों ! हम दूसरे का घन तुम्हें कैसे देगे ? ॥३३-३८॥

ध्यास ने कहा—यमदूतों के वचन सुनकर जब भूय-ध्यास से व्याकुल तथा इच्छारहित हो जाते हैं । तब यमकिंकर दारुण अस्त्रों से उन्हें बप्ट देते हैं ॥३९॥ भुगरे, सड़े के डंटे, दाकिन, तामर, पट्टिम, परिष, मिन्दिपात्र, गदा, फरसे, तथा बाणों से निर्दय यमदूत जब वा का पीछे से मारते हैं ॥४०॥ पापकारी जैसी की अग्रभाग से सिंह, बाघ आदि खाते हैं । अमाये दुर्ख अतिमयवर तथा पार्थ जैव न प्रवेश कर पाते हैं न निकट ही पाते हैं । वहाँ यमदूत पापिया का अत्यन्त बप्ट देकर वहाँ ले जाते हैं, जहाँ धर्मात्मा, धर्मवर्ता तथा सर्वनियामक यम स्वयं रहते हैं । इस प्रकार अति बप्टदायक मार्ग से मनुष्य प्रेतपुरं जान ॥४१-४४॥

प्रज्ञापितास्तथा दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः । ततस्ते पापकर्मणस्त पश्यन्ति भयानकम् ॥४५॥
 पापापविद्वन्मना विपरीतात्मबुद्धयः । दष्टाकरालवदन भुवट्टीकुटिलेक्षणम् ॥४६॥
 ऊर्ध्वकेश महाश्मश्रु प्रस्फुरदधरोत्तरम् । अष्टादशभुज नृद नोलाञ्जनचयोपमम् ॥४७॥
 सर्वायुधोद्यतकर तोव्रदण्डेन सयुतम् । महामहिषमारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥४८॥
 रक्तमाल्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम् । प्रलयाम्बुदनिर्घोष पिबन्निव महोदधिम् ॥४९॥
 प्रसन्नमिव ब्रह्ममुदगिरन्तमिवानलम् । मृत्यु च तत्समीपस्थ कालानलसमप्रभम् ॥५०॥
 प्रलयानलसकाश कृतात च भयानकम् । मारीबोघा महामारी कालरात्री च दाहणा ॥५१॥
 विविधा व्याधय कण्ठा नानारूपा भयावहा । शक्तिशूलाङ्कुशधरा पाशचक्रासिधारिण ॥५२॥
 यज्रवण्डधरा रौद्रा सुरतूणधनुर्धरा । असंख्याता महावीर्या क्रूराश्चाञ्जनसप्रभा ॥५३॥
 सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका । अनेन परिवारेण महाघोरेण सवृतम् ॥५४॥
 यम पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त विभोषणम् । निभर्त्सयन्ति चाज्ययर्थं यमस्तान्पापकारिण ॥५५॥
 चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मवाक्यं प्रबोधयन् ॥५६॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो पुष्कृतकर्मणि परद्रव्यापहारिण । गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दका ॥५७॥
 यत्स्वयं कियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्वुष्कृत कृतम् ॥५८॥

तब यमदूत उहे यम क सामने उपस्थित करते हैं। पापा स अ थ ज्ञा मा क विपरीत प्रकार से समझने वाले पापकर्मी ज न मयानक दष्टाओ से भिकराल मुख वाले श्री टैड करक देखने वाले ऊपर उठ केश वाले लम्ब दाढ़ मछ वाले फड़कते होठ वाले अठारह भजा वाले नृद न ल अञ्जन का राशि के तुल्य समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हस्त वाले सत्र दण्डधारि किंाल महिष पर आरूढ प्रज्वालत अग्नि के समान तत्र वाले लाल माला तथा वस्त्र धारण किये हुए महामेघ के समान उच्च और प्रलयकाल न बादल के समान शब्द करने वाले यम क देखते हैं। यम देखने में ऐसा लगता है मान, समग्र क, प रहा ह और अग्नि क, उगल रहा ह ॥४५ ४९३॥ उनके सम प वालाग्नि के समान दाढ़ि-माल तथा प्रज्वालि तुल्य महामयानक मृत्यु रहत ह मार का उग्र महामार कालरात्र दाहणा तथा विविध प्रकार क व्याधिया रहता हैं। नानारूपधारी भयानक शक्ति शूल अकुश पाश चक्र तलवार वज्र दण्ड छूरे तरकस तथा धनुष धारण करने वाले अञ्जन के समान शक्ति वाले महापराक्रमा तथा समस्त अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हस्त वाले यमदूत रहते हैं। ऐसे महामयानक परिवार से युक्त यमराज तथा म धम चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। उन पापियों को यमराज बहुत फटकारते हैं और भगवान चित्रगुप्त धर्मवाक्यों से समझाते हैं ॥५० ५६॥

चित्रगुप्त ने कहा—पुष्कर्मियों! दूसरे का धन हरण करने वालों! रूप तथा शक्ति का अस्मिमान करने वालों! दूसरे का स्त्री का सताव लूटने वालों! जा जैसा कर्म करता है वह वैसा फल प्राप्ता है। तुम लोग ने

इदानीं किं नु शोचध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः । भुञ्जध्व स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः । स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगविताः ॥६०॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिण । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः । 'यद्वण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् । तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥६३॥
'यस्यामो म बलं सर्वं' येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमदूतैः पाटयमाना अधुना कीदृशं फलम् ॥६४॥

ध्यास उवाच

एवं बह्विधैर्विषैरुत्पालयन् यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पाथिवाः ॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां 'धर्मराट्स्वयम् । सत्पातकविशुद्धयर्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६६॥

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान् । विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निम् ॥६७॥

ध्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः । ग्रामयित्वा तु वेगेन क्षिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च ॥६८॥

आत्महत्या के लिये क्यों दुष्कर्म किया ? अब तुम अपने कर्मों से पीड़ित होकर क्या साच रहे हो ? अपने दुःखों को भोगो, इससे किसी का दोष नहीं है । ओ ये मूर्ख बलाभिमानों राजा लोग मेरे पास आये हैं, य अपने समय के कर्मों के कारण आये हैं । प्रजा का नाश करने वाले दुराचारी राजाओ ! थोड़े समय के लिये राज्य पाकर क्यों तुमने दुष्कर्म किया ? राज्यलाल से तथा मांहे से जो तुमने अन्याय किया तथा बलपूर्वक प्रजा को दण्ड दिया, उसका फल भोगो । जिसके लिये तुमने पाप किया, वह राज्य तथा स्त्री वहाँ है ? क्यों उन सब का परित्याग कर तुम अकेले यहाँ हो ? हम तुम्हारे उस बल को नहीं देख रहे हैं, जिससे तुमने प्रजा का विध्वंस किया था । यमदूतों से पंटे जाने पर अब तुम्हें कैसा फल मिल रहा है ? ॥५७-६४॥

ध्यास ने कहा—इस प्रकार यम द्वारा अनेक श्रावकों में उलाहना सुनकर राजा लोग अपने कर्मों का साचते हुए चुप रहते हैं । स्वयं धर्मराज, राजाओं के लिये कर्मों का आदेश देकर उनके पापों का शुद्धि के लिये ये वचन कहते हैं ॥६५-६६॥

यम कहते हैं—चण्ड ! महाचण्ड ! इन राजाओं को पकड़ कर क्रमशः नरकाग्नियों में डालकर पापों का प्रायश्चित्त कराओ ॥६७॥

ध्यास ने कहा—तदनन्तर यमदूत ऊँध उठकर राजाओं के दानों पीरों को पकड़कर वेग से धुमने लगते हैं और ऊपर पेंच कर फिर पकड़ लेते हैं । पदचात् शिला-खण्ड पर इस प्रकार पटकते हैं मानों बज्र से आहत महावृक्ष

१. मत्पीडिता । २. क. पश्यत । ३. ख. ०म् । सर्वपापवि० । ४. ग. च । सर्वपापेन महता मुयतते चि० ।

तत्तत्पापप्रमाणेन यमदूता - शिलातले । 'आस्फोटयति तरता वज्रेणेव महाद्रुमम् ॥६९॥
ततस्तु रक्त स्रोतोभिः खवते जवंरोरुत । निसज्ज' स तदा देही निदचेष्टश्च प्रजापते ॥७०॥
ततः स धातुना स्पृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः । ततः पापविशुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकाणवे ॥७१॥
अन्याश्च ते तदा दूता पापवर्मरताप्ररान् । निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भूशतु खितान् ॥७२॥

यमदूता ऊचुः

एष देव तवाऽऽदेशादस्माभिर्मोहितो भूशम् । आनीतो धर्मविमुखः सदा पापरतः परः ॥७३॥
एष लुब्धो दुराचारो महापातकसयुतः । उपपातककर्ता च सदा हिसारतः' शुचिः ॥७४॥
'अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारकः । कन्याश्रयी कूटसासी कृतघ्नो मित्रवञ्चकः ॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दितः' । पापमाचरितं वर्म मर्त्यलोके दुरात्मना ॥७६॥
'इदानीमस्य देवेश निग्रहानुग्रहौ वर्त' । प्रभुरस्य क्रियायोगे वयं वा परिपन्थिनः ॥७७॥

ध्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेश न्यस्याग्रे पापकारिणम् । नरकाणां सहस्रेषु' लसकोटिशतेषु" च ॥७८॥
किंकरास्ते सती यान्ति" ग्रहीतुमपरान्नरान् । प्रतिपत्ते कृते दोषे यमो वै पापकरिणाम् ॥७९॥
समाविशति सान्धोराग्निग्रहाय स्वर्गिकरान् । यथा यस्य विनिर्विष्टो वसिष्ठार्थविनिग्रहः ॥८०॥

गिरा हो । उनका गिरा जजर हो जाता है । वन क धारमें फूट निकलती हैं । वे सत्ताहन तथा निष्पट हो जाते हैं । वायु का स्पर्श होने से पुनः प्राण संचार होता है । तब पाप-शुद्धि कराने के लिये यमदूत उन्हें मरक समुद्र में फेंक देते हैं । विप्रवर ! तब तब अथ दूत दूसरे अत्यन्त दुःखी तथा पापवर्मों में निरत मनुष्यों को यम राज के सामने उपस्थित कर निवेदन करते हैं ॥६८-७२॥

यमदूत कहते हैं—देव ! आपकी आज्ञा से मैं अत्यन्त मोहित धर्मविमुख तथा सदा पापा में रत इस मनुष्य को ले आया हूँ । यह लोभ दुराचारी महापार्थ उपपार्थ सदा हिंसा में निरत अपवित्र अगम्यागामी दुष्टात्मा दूसरे का शनहर्ता तथा निन्दक है । इस दुरात्मा ने मर्त्यलोक में पापाचरण किया है । देवेश ! अब इस पर आप जा दण्ड या कृपा करें कह बतलाइये । इसने जघन्य आप हैं । हम ती केवल आज्ञाकारी हैं ॥७३-७७॥

ध्यास ने कहा—यमराज से इतना निवेदन कर यमदूत उनके सामने पापा का छेद देते हैं और सैकड़ों हजारों लाखों और करोड़ों नरकों से दूसरे मनुष्यों को पकड़ने के लिये चला पड़ते हैं ॥७८॥ पापियों के पाप प्रमाणित हो जाने पर धर्मराज उन्हें पकड़ने के लिये अपने सब नरक अनुचरों को आज्ञा देते हैं । वसिष्ठ आदि मुनियों ने

१क आस्फालयन्ति । ख आपोषयन्ति । २य निसज्जम् । ३ख ०सापरोज्जु० । ४क ग ०गम्यागामी० ।
५क ग कन्याश्रयी । ६ख विनाशितः । ७क ख ०दानीं तस्य । ८ख ग तव । ९क ०क्षण ल० ।
१०क ०तेन च । ११क ०न्ति गृहीत्वा चाप० ।

पापस्य' तद्भु (तं भू) शं क्रुद्धाः कुर्वन्ति यमार्ककराः । अङ्गुशर्मद्वरदण्डैः शकचैः शविततोमरैः ॥८१॥
'सैङ्गशूलनिपातेश्च भिद्यन्ते पापकारिणः । नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च ॥८२॥
स्वकर्मापाजितदोषैः पोडघन्ते यमार्ककरैः । शृणुष्व नरकाणां च स्वरूपं च भयकरम् ॥८३॥
नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नराश्च तान् । महावाचीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम् ॥८४॥
वज्रकण्टकसंमिश्रं योजनायुतविस्तृतम् । तत्र संपीडयते मन्यो भिद्यते वज्रकण्टके ॥८५॥
वर्षलक्षं महाघोरं गोघातो नरके नरः । योजनानां शतं लक्षं कुम्भोपाकं सुदाहणम् ॥८६॥
ताम्रकुम्भवती दीप्ता बालुकाङ्गारसंवृता । ब्रह्महा 'भूमिहर्ता' च निक्षेपस्यापहारकः ॥८७॥
दहपन्ते सत्र संक्षिप्ता यावदाभूतसंप्लवम् । रौरवो वज्रनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः ॥८८॥
योजनानां सहस्राणि षष्टिरायामविस्तरैः । भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालनरके नराः ॥८९॥
इष्वत्तत्र पीडयन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः । अयोमयं प्रज्वलितं मञ्जूर्यं नरकं स्मृतम् ॥९०॥
निक्षिप्तास्तत्र दहपन्ते यन्दिग्राहकृताश्च ये । अग्रसिष्ठेति नरकं पूयमूत्रपुरोपकम् ॥९१॥
अयोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः । लाक्षाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम् ॥९२॥

जिस पाप का जो दण्ड बतलाया है, श्रुत्य यमभूत वही दण्ड देते हैं। अकुसुम, मुषारे, डडे, आरे, शक्ति, तीमर, तलवार तथा शूल—इनके प्रहारों से पापी लोग सताये जाते हैं। सैकड़ों, हजारों, लाखों और बराबरी नरकों में अपने-अपने अन्य दोषों से जीव यमभूतो द्वारा पीडित किये जाते हैं॥७८-८२॥ नरकों के अथर्वर स्वरूप, नाम तथा प्रमाण सुनिम्न, जिससे मनुष्य वहाँ जाते हैं। महाधात्री नाम से विख्यात नरक शोणित से परिपूर्ण, दस्य तुल्य बौंदों से मिश्रित एवम् दस हजार याजन विस्तृत है। उसमें दूब कर जीव बौंदों से छिन्न मिश्र होकर व्यधित होता है॥८३-८५॥ शुम्भोपाव नामक नरक जलमय दारुण तथा सौ लाख योजन विस्तृत है। गहिरा करने वाला मनुष्य उस नरक में एक लाख वर्षों तक शष्ट मांसता है॥८६॥ ताम्रकुम्भकर्त्री नामक नरक सतप्त बालुभा से प्रपूर्ण है। गहिरा करने वाला, भूमिहरण करने वाला तथा धरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य उसी नरक में पलायन एवं दण्ड होता है। शीतल नामक नरक जलते हुए लोहे के बाणों से आवृत है॥८७-८८॥ यह साठ हजार याजन व्याप्त-बौद्ध है। उस नरक में ज्वलित लोहे के बाणों से मनुष्यों को वेध किया जाता है। जो मनुष्य निम्न्या एवाही देते हैं, वे उसी नरक में गये की तरह पेडे जाते हैं॥८९॥ मञ्जुष नामक नरक प्रज्वलित, लाहमय है। निरसराग व्यक्तिको दर्श, बगाने वाले मनुष्य उसी नरक में पककर दण्ड होते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीप भूत तथा विष्टा से भरा है। ब्राह्मण के पाँदा देने वाले मनुष्य उसी नरक में नीचे मुह करके गिरते हैं॥९०-९१॥ विलेपक नामक नरक भयकर तथा प्रज्वलित लाहो से प्रपूर्ण है। दिनचेष्टो मद्यपान में निरत मनुष्य उस नरक में दण्ड होते हैं॥९२॥ महाप्रभ नामक नरक प्रदीप्त शूलों से युक्त तथा बहुत ऊँचा है। पति-पत्नी, मे भेद कराने

निमग्नास्तत्र दहन्ते मलयाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम् ॥९३॥
 तत्र शूलेन भिद्यन्ते पतिभार्योपभेदिनः। नरकं च महाघोरं जयन्तो चाऽऽयसो शिला ॥९४॥
 तथा चाऽऽम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शालमलार्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम् ॥९५॥
 तथा (दा) लिङ्गति दुःखार्ता नारी बहूनरंगमा। ये वदन्ति सदाऽस्त्य परमार्थवर्तनम् ॥९६॥
 जिह्वा चोच्छ्रय (च्छिद्य) तेतेपा सदस्यैर्यमार्थकरैः। ये तु रागं वटाक्षैश्च वोक्षन्ते परयोपितम् ॥९७॥
 तेषां चक्षुषि नाराचैर्विध्यन्ते यमार्थकरैः। मातर येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम् ॥९८॥
 स्त्रीबालबृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। 'ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंजितम् ॥९९॥
 मरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश'। पुरंक्षेत्रगृहं ग्रामं यो दीपयति बलिना ॥१००॥
 स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिनरः। तामिस्रमिति विख्यातं सद्योजनविस्तृतम् ॥१०१॥
 'निपतद्भि' सदा रौद्रः खड्गपटितशमुद्वगैः। तत्र चौरानराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते' यमार्थकरैः ॥१०२॥
 शूलशक्तिगदाखड्गपार्श्वकल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्दिगुण प्रोक्तं महातामिस्रसंजितम् ॥१०३॥
 जलौकासपत्तंपूर्णं निरालोकं सुदुःखम्। मातृहा पितृहा च यं मित्रविलम्बघातकः ॥१०४॥
 तिष्ठन्ति' तक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनो। अतिपत्रवनं नाम नरकं भूरिवृक्षदम् ॥१०५॥
 योजनानामुतविस्तारं ज्वलत्खड्गैः समाकुलम्। पातितस्तत्र तैः खड्गैः शतधा तु समाहतः ॥१०६॥

बाले मनुष्य वहाँ शूलों से बिड़ होते हैं। जयन्तो नामक महामयकर नरक लोहमिश्रित पत्थर का है ॥९३-९४॥ दूसरे की स्त्री से सम्भोग करने वाले पार्श्व, मनुष्य उस, नरक में पड़ते हैं। शास्त्रमाल नामक नरक जलते हुए दृढ़ कटकों से युक्त है। बहुत पुरानों के साथ सम्भोग करने वाली नारी उस नरक में पड़ती है। जो मनुष्य दूसरे के मनो को बतारने वाले वचन बोलते हैं, उनकी भीम क, यमदूत काट देते हैं। जो अनुराग भरी चितवन से दूसरे की स्त्री को देखते हैं, उनकी आँखों क, यमदिवर लहने के बाणों से काट डालते हैं ॥९५-९७॥ जो मनुष्य माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-पौत्र से सम्भोग करते हैं और जो स्त्री, बालक तथा वृद्ध की हत्या करते हैं, वे चौदह इन्द्र जब तक रहते हैं तब तक, ज्वालामयी के समूह से व्याप्त, चौदह हजार योजन विस्तृत तथा भयकर महारौरव नामक नरक में पड़ते हैं। नगर, क्षेत्र घर तथा ग्राम में जो आग लगता है, वह मूर्ख उस नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता रहता है। तामिस्र नामक नरक एक लाख याजन विस्तृत है जहाँ तलवार पट्टिश (पटा) तथा भुदरों का सदा प्रहार होता रहता है। चार मनुष्य वहाँ फँके जाते हैं और यमदूतों द्वारा पीठित होते हैं ॥९८-१०२॥ तीन सौ कल्पों तक उनके ऊपर शूल, शक्ति, गदा तथा तलवारों का प्रहार होता रहता है। महातामिस्र नामक नरक तामिस्र से दूना है, जो जोर तथा सापो से परिपूर्ण, प्रवासरहित तथा अत्यन्त दुःखदायी है ॥१०३॥ मातृहत्या करने वाले, पितृहत्या करने वाले तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले मनुष्य उस नरक में डूँले जाते हुए तब तक रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है ॥१०४॥ अति दुःखदायी अविपत्रवन नामक नरक दश हजार याजन विस्तृत तथा जलते हुए तलवारों से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में तलवारों से सैकड़ों जगह आहत होते हुए कल्पान्त तक

मित्रघ्न कृत्यते तावद्यावदाभूतसप्लवम् । करम्भबालुका नाम नरक योजनायुतम् ॥१०७॥
 कूपाकार वृत दीप्तैर्बालुकाङ्गारकण्डर्बं । दह्यत भिद्यत वपलक्षायुतशतत्रयम् ॥१०८॥
 यन दग्धो ज्ञानो निच मिष्योपायं सुदारणं । काकोल नाम नरक कृमिपयपरिप्लुतम् ॥१०९॥
 भिष्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्गनर । कुडमल नाम नरक पूष विष्मन्तशोणितं ॥११०॥
 पञ्चपत्रप्रियाहीना क्षिप्यते तत्र वै नरा । सुदुग्ध महाभीम मासशोणितसकुलम् ॥१११॥
 'अभक्ष्यान्ने रतास्तज्ज निपतन्ति मराधमा । त्रिमिकीटसमाकीण शवपूष महावटम् ॥११२॥
 अधोमुख पतेत्तत्र कर्म्याविप्रयकूपर । भाग्ना वै तिलपाकति नरक दारण रमूतम् ॥११३॥
 तिलवत्तत्र पीडयत परपोडारताश्च य । नरक तलपाकति ज्वलत्तलमहीप्लवम् ॥११४॥
 पच्यत तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम् । नाग्ना वज्रकपाटति वज्रभृङ्गलक्ष्म्यान्वितम् ॥११५॥
 पीडयत निदय तत्रय कृत शीरयित्रय । निरच्छवास इति प्रोक्त्वा तमोऽध वातवर्जितम् ॥११६॥
 निष्वट क्षिप्यत तत्र विप्रदाननिरोधकृत । अङ्गारोपचय नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम् ॥११७॥
 दहपते तत्र यनोक्त हान विप्राय नापितम् । महापापीति नरक लक्षयोजनमायतम् ॥११८॥

रहता है ॥१०५ १०६॥ करम्भबालुका नामक नरक का हृत्कार याजन विस्तृत प्रज्वलित बालू कूपा अगार
 तथा कण्डका से व्याप्त और कुएँ के आकार का है । जो भयकर मिष्या प्रपञ्च करने नित्य लागू का जलते हैं
 वे एक लाख बाहुजार तान ली सर्पों तब उस नरक में जलाये जाते हैं तथा बाटे जाते हैं ॥१०७ १०८॥ बाकल
 नामक नरक का तब पय पस आप्लुत है । अकते म ठा खान वाला दुष्टात्मा मनुष्य वहाँ पका जाता है ॥१०९॥
 कुडमल नामक नरक विष्टा मूत्र तथा गाणित से परिपूर्ण है । पञ्चपत्रप्रिया से ह न मनुष्य उस नरक में पके जाते
 हैं ॥११०॥ एक नरक अत्यन्त दुग्ध महाभयकर तथा मास-शोणित स प्रपूष है । अभक्ष्य अन्न खान में निरत
 मनुष्य उस नरक में गिरते हैं ॥१११॥ महावट नामक नरक कीड कृतिसे तथा 'गवो से आत प्रात है । कर्म्या बेचने
 वाले मनुष्य अपामुल होकर उस नरक में गिरते हैं ॥११२॥ तिलपाक नामक नरक भयकर है । दूधरे का उत्प डन
 करने वाले मनुष्य वहाँ तिल का तरह पेठ जाते हैं ॥११३॥ तलपाक नामक नरक जलते हुए तल से प्रपूष है ।
 मित्रहत्या करने वाले तथा शरणागत का मारने वाले मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥११४॥ वज्रकपाट नामक
 नरक वज्र की तरह दृढ़ सींखों से युक्त है । दूध विप्रता मनुष्य वहाँ दिव्यतापूत्रक प डित नित्ये जाते हैं ॥११५॥
 निरच्छवास नामक नरक अपकारायुत तथा वायुरहित है । बाह्याणा का दान र रन वाला मनुष्य वहाँ सनाह न करने
 पके जाते हैं ॥११६॥ अंगारोपचय नामक नरक जाज्वल्यमान अगारा से पूष है । जो बाह्याणा का वह कर दान
 नहीं देना है वह वहाँ दग्ध किया जाता है ॥११७॥ महापापी नामक नरक एक लाख याजन म्भा है । जो
 मनुष्य सग मिष्या भाषण करत हैं व अपामुल नरक वहाँ गिराये जाते हैं ॥११८॥ गृहाग्वाल नामक नरक

'पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम् । महाज्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम् ॥११९॥
 दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृमरः । नरकं ऋक्वास्यात पीडयन्ते तत्र ये नराः ॥१२०॥
 ऋक्चर्वेच्छधारीप्रंरगम्यागमने रताः । नरकं गुहपाकेति ज्वलद्गुह्यद्वैतम् ॥१२१॥
 निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसंकरकृमरः । क्षुरधारति नरकं तीक्ष्णक्षुरसमावृतम् ॥१२२॥
 छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहरा नराः । नरकं 'चाम्बरीपात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥
 कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः । नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं यज्ञसंकुलम् ॥१२४॥
 छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः । नरकं परितापात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२५॥
 गरदो मधुहर्ता च पश्यते तत्र पापकृत् । नरकं कालसूत्रं च वज्रसूत्रयिनिर्मितम् ॥१२६॥
 अमन्तस्तत्र च्छिद्यन्ते परसस्योपलुण्ठकाः । नरकं कश्मलं नाम इलेधमशिङ्घाणकावृतम् ॥१२७॥
 तत्र सक्षिप्यते 'कल्पं सदा मांसहचिर्नरः । नरकं चोद्यगन्धेति ललामूत्रपुरीषवत् ॥१२८॥
 क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः । नरकं दुर्धरं नाम जलोकावृद्धिकाकुलम् ॥१२९॥
 'उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते धर्षकायुतम् । यच्च वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम् ॥१३०॥
 तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीडयन्ते यमकिंकरैः । धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये ॥१३१॥

भीषण ज्वालाओं से व्याप्त है । जो मनुष्य पाप में बुद्धि लगाते हैं, वे वहाँ चिरवाह तब जलाये जाते हैं ॥११९॥
 ऋक् नामक नरक में अगम्यागमन करने वाले मनुष्य वज्र के समान उग्र धार वाले धारे से पीरे जाते हैं ।
 ॥१२०॥ गुहपाक नामक नरक जलते हुए गुहों की झीलों से युक्त है । वर्णसंकर उत्पन्न करने वाले मनुष्य वहाँ दग्ध
 किये जाते हैं ॥१२१॥ क्षुरधार नामक नरक तीक्ष्ण अस्तुरी से आवृत है । श्रावण की भूमि हरण करने वाले मनुष्य वहाँ
 कल्पान्त तक बाटे जाते हैं ॥१२२॥ अम्बरीष नामक नरक प्रलयाम्नि के समान प्रचलित है । सोना चुराने वाले
 मनुष्य वहाँ बराबा कल्पो तब जलाये जाते हैं ॥१२३॥ वज्रकुठार नामक नरक वज्रो से व्याप्त है । धूर्तों के बाटने
 वाले पापी मनुष्य वहाँ बाटे जाते हैं ॥१२४॥ परिताप नामक नरक प्रलयाम्नि के समान प्रदीप्त है । विष देने
 वाले तथा मधु हरण करने वाले पापी मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥१२५॥ कालसूत्र नामक नरक वज्र तुल्य सूत्रों
 से निर्मित है । दूसरे की कसलो को लूटने वाले मनुष्य वहाँ भ्रमण करते हुए बाटे जाते हैं ॥१२६॥ कश्मल नामक
 नरक वक्त्र तथा नासिकाफल (नकटी) से आवृत है । सदा मांस की अमिलाषा रखने वाला मनुष्य एक कल्प तक
 वहाँ फँका जाता है ॥१२७॥ उद्यगन्ध नामक नरक लार, मूत्र तथा विष्णु से युक्त है । पितरों को पिण्ड देने
 वाले मनुष्य वहाँ फँके जाते हैं ॥१२८॥ दुर्धर नामक नरक जोको तथा बिज्जुओं से व्याप्त है । घुस लेने वाला
 व्यक्ति वहाँ दश हजार वर्षों तक रहता है ॥१२९॥ वज्रमहापीडा नामक नरक वज्रो का बनाया हुआ है । जो
 दूसरे के धन धान्य तथा सुवर्ण का अपहरण करते हैं, वे वहाँ यमदूता द्वारा जलाये जाते हैं और उत्प्रेक्षित होते
 हैं ॥१३०-१३१॥ जो मूर्ख प्राणियों को मारकर कोए तथा मेष की तरह खाते हैं, उन्हें कल्पान्त तक यमव्रत अपना

यमदूतंश्च चोरास्ते छिद्यन्ते लवशः सुरैः । ये हत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृध्रवत् ॥१३२॥
 भोज्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिंकरैः । आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये ॥१३३॥
 यमदूतंश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः । फलं पत्रं नृणां वाञ्छि हृतं यस्तु बुबुद्धिभिः ॥१३४॥
 यमदूतंश्च ते क्रुद्धं देहधन्ते तृणवह्निभिः । परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा द्रुष्टधीनरः ॥१३५॥
 यमदूतंस्त्वलक्तस्य हृदि शूलं निखन्यते । कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः ॥१३६॥
 यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः । एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥१३७॥
 नरकाणि नरैस्तत्र भुज्यन्ते पापकारिभिः । इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम् ॥१३८॥
 प्राप्नोति नरके धरे यमलोकेषु यातनाम् । न भृश्यन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम् ॥१३९॥
 दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं प्रत्युक्त्यैव वदन्ति ते । विवा राज्ञी प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः ॥१४०॥
 नाऽऽचरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः । इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये ॥१४१॥
 ते पतन्ति सुषोरेषु नरकेषु नराधमा । दास्यन्ते नरके यासः स्वर्गवासः सुखप्रदः ॥
 नरैः संप्राप्यते तत्र कर्म कृत्वा शुभाशुभम् ॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये व्यासपिंसवादे नरकपतपृथग्भातनाकीर्तनं नाम
 पञ्चदशाधिकद्विशतमोऽध्यायः ॥२१५॥

मान गिराते हैं ॥१३२॥ जो दूसरे के आसन, चाय्या तथा वस्त्र का अपहरण करते हैं उन मूर्खों को यम दूत शक्ति
 और तामर से खाते हैं ॥१३३॥ जो मनुष्यों के फल तथा पत्र का भी बुबुद्धिपूर्वक अपहरण करते हैं उन्हें
 दूत यमदूत तृणवह्नि से जगाते हैं ॥१३४॥ जो नर दूसरे के द्रव्य तथा स्त्री के प्रति कुमाश् रखते हैं यमदूत उससे
 हृष्य मे जलता हुआ शूल गाड़ते हैं ॥१३५॥ जो मानव धर्म, मन तथा वाणी से धर्मविमुख हैं, उन्हें यमलोका
 में घोर यातनायें मिलती हैं ॥१३६॥ इस प्रकार पापकारी मनुष्य सैबड़ी, हथारो, एल्लो तथा बरोडो नरकों का
 भाग मीगते हैं ॥१३७॥ इस लीक में वाडा भी पाप करने वाला मनुष्य यमलोका में घोर नरक की यातना प्राप्त
 करता है ॥१३८॥ मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं, बलि प्रतिपाद करते हुए
 करते हैं—'प्रत्येक विमन देसा है?' जो मनुष्य दिन रात यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर मूल स भी
 धर्मवर्णन नहीं करते हैं । जो परलोका को नहीं मानते हैं और 'यही फल का भाग होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम
 घोर नरक में गिरते हैं । नरक का वास्तव्यवर है और स्वर्गवास सुखप्रद है । मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करने स्वर्ग-
 नरक प्राप्त करते हैं ॥१३९-१४२॥

श्रीब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में नरको में पृथक्-पृथक् यातना-कीर्तन
 नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

१ग ०५३ ते मूढा । २क स सेन्यन्ते । ३क स प्रत्यक्षेण ।

१४०

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गे त्वयोदितम् । नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सप्तम् ॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे । ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इह ये धर्मसद्वृत्तास्त्विहसानिरता नरा । गुरुशुश्रूषणे युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः ॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससुतास्तया । तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः ॥४॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः काञ्चनध्वजशोभितैः । धर्मराजपुरं यान्ति सेवमानाप्तरोगणैः ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्षितः । ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखैर्नैव महापथे ॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम् । श्रोत्रियेभ्यो विशेषेण भक्ष्या परमया पुतः ॥७॥
तक्षणीभिरंरक्षत्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः । धर्मराजपुरं यान्ति विमानैर्म्यलंकृतैः ॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च निर्मलाः । तेषां यान्त्यमरप्रक्षया विमानैर्यममन्दिरम् ॥९॥

अध्याय २१६

नारकीय दुःख निवारण करने वाले धर्माचरण का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सज्जनों मे श्रेष्ठ ! आपने यममार्ग का महान् कष्ट, सबकर नरक तथा यम-द्वार भी बतलाये । ब्रह्मन् ! अतिभीषण यममार्ग के बारे मे ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जा सकें ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—इस लोक मे जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु सेवा मे रत, देव-ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकधारी हैं, वे पर्ल-पुत्र समेत यममार्ग मे जैसे जाते हैं, वह मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । ॥३-४॥ सुवर्ण पताकाओं से शोभित विविध दिव्य विमानों से वे यमपुरी जाते हैं, जहाँ अप्सरायें उनको सेवा किया करती हैं ॥५॥ जो भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान देते हैं, वे सुख से ही महापथ पर जाते हैं ॥६॥ जो ब्राह्मणों को विशेष करके श्रोत्रियो को परम भक्तिपूर्वक पवित्र अन्न देते हैं, वे उत्तम युक्ती स्त्रियो से सेवित तथा अलंकृत होकर विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥७-८॥ जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर भीतर से निर्मल हैं, वे भी देवतुल्य होकर विमानों से यममन्दिर जाते हैं ॥९॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य कृष्णराज, तपस्वी साधुओं को विष्णु के उद्देश से पवित्र

गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु । ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु ॥१०॥
 ते यान्ति दिव्यवर्णान् विमानैर्मणिचित्रितैः । धर्मराजपुरं श्रीमान्तेव्य (व) मानाप्सरोगणैः ॥११॥
 उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमयापि वा । ये प्रयच्छन्ति यस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च ॥१२॥
 ते यान्त्यश्वे रथेऽश्वे कुञ्जरैश्चाप्यलंकृताः । धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सौवर्णराजतैः ॥१३॥
 ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपानकमचितम् । 'ओदनं च द्विजाभ्येभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१४॥
 ते यान्ति 'काञ्चनैर्नैविधिघेस्तु यमालयम् । वरस्त्रीभिर्नयकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
 ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं' मधु । ब्राह्मणेभ्यः 'प्रयत्नेन 'शुद्धयोपेतं सुसंस्कृतम् ॥१६॥
 घनवाकप्रयुक्तं च विमानंस्तु हिरण्यमयैः । यान्ति गन्धर्ववादिनैः सेव्यमाना यमालयम् ॥१७॥
 ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च । हंसयुक्तविमानंस्तु यान्ति 'धर्मपुरं' मराः ॥१८॥
 ये तिलास्तिलधेनुं च घृतधेनुमयापि वा । ओषधेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यः श्रद्धयाऽन्विताः ॥१९॥
 सोममण्डलसंकाशैर्मनस्ते यान्ति निर्मलैः । गन्धर्वैरुपगोपन्ते पुरे ब्रह्मचरस्य ते ॥२०॥
 येषां वाप्यश्व कूपाश्च तडागानि सरांसि च । दीधिकाः पुष्करिण्याश्च शीतलाश्च जलाशयाः ॥२१॥
 यान्स्ते हेमचन्द्रार्भद्विधघण्टानिनादितैः । व्यजनंस्तालवृन्तैश्च धोष्यमाना महाप्रभाः ॥२२॥
 'येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यायतनानि च । रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च ॥२३॥

गार्ग्य देते हैं, वे अष्टराश्री से सेवित होकर मणिलचित दिव्य वर्ण वाले विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥१०-११॥ जो जोडा जूता, छप्पा, शय्या, आसन, वस्त्र तथा मूषण दान करते हैं, वे घोड़े, हाथी, रथ तथा सोने-बादी के दिव्य छत्रों से अलङ्कृत होकर यमालय जाते हैं ॥१२-१३॥ जो पवित्र हृदय से भक्तिपूर्वक गुड, पान तथा भात ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णमय विमानों से यम-अवन जाते हैं और दिव्याङ्गनायें उनकी पूर्ण सेवा करती हैं ॥१४-१५॥ जो पवित्र तथा सुसंस्कृत दूध, घी, दही, गुड और मधु यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को देते हैं, वे चक्रवाकयुक्त सोने के विमानों से यमालय जाते हैं और गन्धर्वगण सगीत द्वारा उनकी सेवा करते हैं ॥१६-१७॥ जो सुगन्धित पुष्प तथा फल दान करते हैं, वे नर हंसयुक्त विमानों से धर्मपुर जाते हैं ॥१८॥ जो तिल, तिलधेनु (तिलो की बनी गाय) तथा घृत धेनु (घी की बनी गाय) श्रद्धापूर्वक ओषधियों को देते हैं, वे चन्द्रमण्डल के समान निर्मल विमानों से यमालय जाते हैं और यमपुरी में गन्धर्वगण उनकी सेवा करते हैं ॥१९-२०॥ जो बावली, कुआँ, पोखरा, सरोवर, दीधिका, पुष्करिणी तथा तालाब दान करते हैं, वे महातेजस्वी होकर दिव्य घण्टा-पादों से युक्त, सुवर्ण तथा चन्द्रमा के समान वान्ति वाले विमानों से यमालय जाते हैं और उनके ऊपर पक्षे झेले जाते हैं ॥२१-२२॥ इस लोक में जिन्होंने ब्रिय विचित्र रत्नवटित, मनोहर तथा पवित्र देवालय बनवाये हैं, वे लोकपालों के साथ पवनतुल्य वेगवाले विमानों से नाता

१५ दक्षिणा। २४ अयने। २४ ० विमानैर्वीर्यमा०। ३४ स तथा। ४४ पुण्यदिने। ५४ श्रद्धो-
 पेन। स शुद्ध मन्त्रसु०। ६४ धर्मपुरी। ७४ स निर्मल। ८४ ये च कुर्वन्ति मूलोके दिव्यान्याय०।

ते यान्ति लोकपालेस्तु विमानैर्वतिरंहसः। धर्मराजपुरं 'दिव्यं नानाजनसमाकुलम् ॥२४॥
 पानीय ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजोषितम्'। ते' वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानंस्तं महापथम् ॥२५॥
 काष्ठपादुकयानानि पीठकान्यासनानि च। येदेतानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्वानं यान्ति वै सुखम् ॥२६॥
 सोवर्णमणिपीठेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानंस्तु अप्सरोगणमण्डितं ॥२७॥
 आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढधानीह भानवाः। रोषयन्ति कलाढयानि मराणामुपकारिणः ॥२८॥
 बृहच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलकृताः। वरस्त्रोगीतवाद्यैश्च सेव्यमाना व्रजन्ति ते ॥२९॥
 सुवर्णं रजतं चाऽपि विद्रुमं भौक्षितं तथा। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानः कनकोज्ज्वलैः ॥३०॥
 भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामंस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसंकाशं विमानं भृशनावितं' ॥३१॥
 कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलंकृताम्। दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानंस्ते यमालयम् ॥३२॥
 सुगन्धामुहकपूरान्पुष्पधूपान्द्विजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयाऽन्विताः ॥३३॥
 ते सुगन्धा सुवैशादश्च सुप्रभाः सुविभूषिताः। यान्ति धर्मपुरं यानैर्विचित्रैरभ्यलंकृताः ॥३४॥
 दीपदा यान्ति यानैश्च दीपयन्तो दिशो व्रज। आदित्यसवृंशयनिर्दीप्यमाना यथाऽनयः ॥३५॥
 गृहावसथदातारो गृहं काञ्चनमण्डितं। व्रजन्ति नालार्कनिर्भयं धर्मराजगृहं नराः ॥३६॥
 जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरकप्रदा'। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति वृष्टा महागजैः ॥३७॥

प्राणियो से परिपूर्ण दिव्य यमपुरी को जाते हैं ॥२३-२४॥ जो समस्त प्राणियो के जीवन स्वरूप जल दान करते हैं, वे प्यास रहित होकर विमानों से उस महापथ पर जाते हैं ॥२५॥ जो रुकड़ी की सवारी, पीडा तथा आसन ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णवत् उस मार्ग में जाते हैं ॥२६॥ वे सुवर्ण तथा मणि के उत्तम आसनों पर बैठकर अप्सराओं से मण्डित होकर विमानों से प्रयाण करते हैं ॥२७॥ जो लोगों के उपकार के लिये मनोहर तथा कल-गुप्ती से सम्पन्न उपवन लगाते हैं, वे सुन्दर तथा शीतल वृक्षों की छाया में अलङ्कृत एवम् उत्तम बनिता, गीत तथा वाद्यों से सुवैजित होकर जाते हैं ॥२८-२९॥ जो सोना, चादी, मूया तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल विमानों से जाते हैं ॥३०॥ भूमिदान करने वाले मनुष्य कान्तिमान् तथा समस्त वामनाओं से तृप्त होकर महानादों से युक्त तथा उदयकालीन सूर्य के समान विमानों से जाते हैं ॥३१॥ जो अलंकृता कन्या ब्राह्मणों को देते हैं, वे दिव्य कन्याओं से आवृत होकर विमानों से यमालय जाते हैं ॥३२॥ द्विजप्रेम्णो' जो परम भक्ति से सुगन्धित द्रव्य, अगर, कपूर, पुष्प तथा धूप ब्राह्मणों को देते हैं, वे अत्यन्त कान्तिमान्, सुविभूषित तथा सुन्दर गन्धो एवम् वैशो से युक्त होकर विभिन्न विमानों से यमलोक जाते हैं ॥३३-३४॥ दीप दान करने वाले मनुष्य दशा दिशाओं को आलोचित करते हुए तथा सूर्य सदृश विमानों से अग्नि की तरह प्रदीप्त होते हुए धर्मपुर जाते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य गृहदान करते हैं, वे बालसूर्य के समान सुवर्णमण्डित गृहों से युक्त होकर यममघ्न जाते हैं ॥३६॥ जलपाथ देने वाले तथा वामण्डल देने वाले मनुष्य अप्सराओं से पूजित होते हुए गजराज पर चढ़ कर जाते हैं ॥३७॥ जो पैर तथा शिर का उवटन

पादाम्पङ्गं शिरोम्यङ्गं स्नानपानोदकं तथा । ये प्रयच्छन्ति विप्रैर्म्यस्ते यान्त्यश्वयंमालयम् ॥३८॥
 विधामयन्ति ये विप्राञ्छान्तानध्वनि कशितान् । चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम् ॥३९॥
 स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च । स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं परमनिवृतः ॥४०॥
 नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत् । गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पयम् ॥४१॥
 अनन्तराशिनो ये च दम्भानृतविजिताः । तेऽपि सारसयुक्तेस्तु यान्ति यानेश्च तत्पयम् ॥४२॥
 घर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविजिताः । हंसयुक्तेर्विमानेस्तु सुखं यान्ति यमालयम् ॥४३॥
 घृतुर्धनैकभक्तेन घर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः । ते यान्ति धर्मनगरं यानेश्वहिनयोजितः ॥४४॥
 तुतोये विषसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः । तेऽपि हस्तिरयैर्दिव्यैर्यान्ति यानेश्च तत्पयम् ॥४५॥
 यत्वेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः । स याति कुञ्जरस्यस्तु शघीपतिरिव स्वयम् ॥४६॥
 धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिबिभूषितम् । नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवेर्युतम् ॥४७॥
 पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शाङ्खयोजितैः । पुरं तद्वर्भराजस्य सेव्यमानाः ॥ सुरासुरैः ॥४८॥
 ये च मासोपवासं तु कुर्वते संयतेन्द्रियाः । तेऽपि सूर्यप्रदीप्तस्तु यान्ति यार्मयमालयम् ॥४९॥
 'महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः । सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्यान्ति यानैर्मालयम् ॥५०॥

और नहाने तथा पीने के लिये जल ब्राह्मणों को देते हैं, वे घोड़ों पर चढ़कर यमालय जाते हैं ॥३८॥ जो रास्ते के पथे हुए तथा दु ली चित्रों को धियाम देते हैं, वे चक्रवाक युक्त विमान से सुखपूर्वक यमपुरी जाते हैं ॥३९॥ जो स्वागत तथा आसन से द्विज की पूजा करते हैं, वह परम सुख से उस मार्ग में जाते हैं ॥४०॥ जो 'नमो ब्रह्मण्यदेव' कहकर विष्णु की तथा 'पापहरे' कहकर माय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं ॥४१॥ जो दूसरी (को लिलाने) के बाद मोजन करते हैं और दम्भ-मिथ्या से रहित हैं, वे सारस पक्षी स युक्त रथों से उस मार्ग में जाते हैं ॥४२॥ जो एक ईश्वर के भक्त हैं, तथा दम्भ मिथ्या से शून्य हैं, वे हंस युक्त विमानों से यमालय जाते हैं ॥४३॥ जो ईश्वरभक्त तथा जितेन्द्रिय हैं, वे मयूरयुक्त रथों से धर्मनगर जाते हैं ॥४४॥ जो नियमपूर्वक व्रत करते हुए तीसरे दिन मोजन करते हैं, वे भी दिव्य गजयुक्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४५॥ जो जितेन्द्रिय तथा नित्य शुचि होकर छठे दिन मोजन करते हैं, वे साक्षात् इन्द्र की तरह हाथा पर चढ़ कर माना मणियों से विभूषित, अनेक स्वरों से युक्त तथा जयशब्दों से समन्वित धर्मराजपुरी को जाते हैं ॥४६-४७॥ जो पक्षिण उपवास करते हैं वे शाङ्खों (परी या बाघ) से युक्त रथा से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा असुर उनकी सेवा करते हैं ॥४८॥ जो द्भिप्र सयम पूर्वक मासिक उपवास करते हैं, वे भी सूर्य के समान प्रदीप्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४९॥ जो दुःश्रुती होकर एकाग्रचित्त से शरीर त्याग करते हैं वे गन्धर्वों से सेविन हाते हुए विमानों से यमालय जाते

११ ०५। ये तोययन्ति पवित्रानासने स्वागतेन । २१ च । ते गच्छन्ति महाध्वानं । ३१ ०५॥ त ।
 ५२० । ३१ ०५॥ गाव सर्वं सहैत्यु० । ५१ तत्पुरम् । ६१ ०५॥ हंससमायु० । ७१ ०५॥ नैविमानैर्यान्ति त० ।
 ८१ स ०२२५॥ ९१ पावमयवि० । १०१ ०मान सु० । १११ स सुममाहिता । १२१ ०नसमये
 हरि स्मरति मानव । से० ।

'शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना । स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम् ॥५१॥
 अग्निप्रवेशं यः कुर्यान्नारायणपरायणः । स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम् ॥५२॥
 प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम् । यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥५३॥
 प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः । सोममण्डलक्षत्पेन याति यानेन वै 'सुखम् ॥५४॥
 स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति । स याति रथमुत्थेन काञ्चनेन यमालयम् ॥५५॥
 स्त्रीग्रहे गोपहे वाऽपि युद्धे मृत्युमुपैति यः । स यात्यमरकन्याभिः सैव्यमानो रविप्रभः ॥५६॥
 वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तोयधात्रा जितेन्द्रियाः । सत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानरलंकृताः ॥५७॥
 ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठाः क्रतुभिर्भूरिदर्शिनः । तप्तहाटकसंकाशैर्विमानैर्मान्ति ते सुखम् ॥५८॥
 परपीडामकुर्वन्तो भृत्यानां भरणादिकम् । कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः जनकोज्ज्वलैः ॥५९॥
 ये क्षान्ताः सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः । शोभमोहविनिर्मुक्ता निर्मदाः संपतेन्द्रियाः ॥६०॥
 पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः । यान्ति वैवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः ॥६१॥
 एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं ध्यम्बकं रविम् । पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः ॥६२॥
 ये च मास न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः । तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः ॥६३॥

है ॥५०॥ जो विष्णु के चित्त लगाकर शरीर की साधना करते हैं, वे अग्नि के समान वर्ण वाले रथों से यमालय जाते हैं ॥५१॥ जो नारायणपरायण होकर अग्नि-प्रवेश करते हैं, वे अग्नि तुल्य प्रकाश वाले विमानों से यमालय जाते हैं ॥५२॥ जो मनुष्य सनातन विष्णु का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले रथ से धर्मपुर जाता है ॥५३॥ जो मानव जल के अन्दर प्रवेश कर प्राणत्याग करता है, वह चन्द्रमण्डल तुल्य रथ से सुखपूर्वक यमलोक जाता है ॥५४॥ जो विष्णु-भक्त गीधों को अपना शरीर दे देता है, वह सुवर्ण के उत्तम रथ से यमालय जाता है ॥५५॥ जो स्त्री के लिये या गाय के लिये युद्ध में मरता है, वह रवि तुल्य कान्तिमान् होकर देव-गन्धर्वों से सेवित होते हुए धर्मपुर जाता है ॥५६॥ जो वैष्णव जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे अलंकृत होकर विमानों से सुखपूर्वक उस मार्ग पर जाते हैं ॥५७॥ द्विजश्रेष्ठो ! जो बहुत दक्षिणाओं से युक्त होते हैं वे सुवर्ण सदृश विमानों से सुखपूर्वक यमालय जाते हैं ॥५८॥ जो दूसरे को बप्ट नहीं देते तथा नौकरों को उचित पारितोषिक देते हैं, वे जनक समान उज्ज्वल विमानों से सुखपूर्वक जाते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, शोभ माह तथा अभिमान से रहित और प्राणीमात्र को अभयदान देने वाले हैं, वे देव-गन्धर्वों से सेवित तथा अति-कान्तियुक्त होकर पूर्णचन्द्र के समान प्रकाश वाले विमानों से यमपुर जाते हैं ॥६०-६१॥ जो एकभाव से विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा दिनकर की पूजा करते हैं, वे सूर्यतुल्य प्रभा वाले विमानों से जाते हैं ॥६२॥ जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा भासमक्षण नहीं करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं ॥६३॥ अथ तथा गोज्य पदार्थों से मांस से बचकर

मांसांश्चिच्छेदयन् नृणां भक्ष्यभोज्यादिकेषु च । तस्मान्मांसं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टं सुखोदयः ॥६४॥
 गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं न भक्षयेत् । समावेतो पुरा प्राह ब्रह्मा वेदेविदा वरः ॥६५॥
 सर्वतोयं यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्तामम् ॥६६॥
 एव सुखेन ते यान्ति यमलोकां च धार्मिकाः । दानव्रतपरा यानैर्यत्र देवो रवेः सुतः ॥६७॥
 दृष्ट्वा तान्धारमिकान्देवः स्वयं संमानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण तु ॥६८॥
 धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृत कृतम् ॥६९॥
 इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषिताः । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥७०॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिक्षयात् । यत्किंचिदल्पमशुभं फलं तदिह भोक्ष्यथ ॥७१॥
 ये तु तं धर्मराजानं भराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥७२॥
 'तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा भुक्तिफलप्रदः । धर्मावर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥७३॥
 धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा । धर्मः स्वामी सखा गोप्ता' तथा धाता च पोषकः ॥७४॥
 धर्मादर्थोऽर्ज्यत, कामः कामाद्भोगः सुखानि च । धर्मादिद्वर्धर्मकाग्र्य धर्मात्स्वर्गगतिः परा ॥७५॥
 धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात् । देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्तोत्पन्नसप्तमम् ॥७६॥
 यदा च क्षीयते पाप नराणां पूर्वसंचितम् । तदैवां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमा' ॥७७॥

मीठा कोई नहीं है। इसलिये मांस नहीं खाता चाहिये, क्योंकि मनुष्य से सुख नहीं होता है ॥६४॥ जो हजार गायें दान करेगा और जो मांस नहीं लायेगा, वे दोनों समान हैं—ऐसा वेदेवेत्ताओं ने थोड़ा ब्रह्मा ने पहले ही कहा है ॥६५॥ विप्रबृन्द ! समस्त तीर्थों (के सवन) और अखिल यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो पुण्य फल मिलता है, वह फल मांस का भक्षण न करने से प्राप्त होता है ॥६६॥ इस प्रकार धार्मिक तथा दान व्रतपरायण मनुष्य सुख से यमलोक जाते हैं, जहाँ सूर्यपुत्र यम स्वयं रहते हैं ॥६७॥ उन धार्मिकों को देखकर स्वयं यम आसन, पाद्य तथा अर्घ्य से स्वागत करते हैं और प्रियवचन बहते हैं (वि)—'हे महात्माओं ! अपना बल्पाण करने बागों ! आप धन्य हैं ! जिसलिये आपने दिव्यसुख के निमित्त पुण्य किया, अतः इस विमान पर चढ़कर दिव्य-स्त्री-नगा से मूषित तथा अतोप वामनाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाइये। वहाँ विपुल मोगा के भोगकर अन्त म पुण्य क्षय होान पर जा कुछ पंडित-आ अनुम भर्म आपका किया हुआ है, उसका फल यहाँ भोगिये ॥६८-७१॥ पुण्य के प्रताप से मनुष्य धर्मराज का अपने बल्पाणमय पिता के रूप में देखते हैं ॥७२॥ इसलिये मोक्ष-फल-दायक धर्म की उपामना सदा करना चाहिये। धर्म से अर्थ, काम, और मोक्ष (का मिलना) भी कहा गया है। ॥७३॥ धर्म ही माता, पिता, माई, स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख होता है। धर्म से ऐश्वर्य, मन की एवाग्रता और स्वर्ग मिलता है ॥७४-७५॥ विप्रबृन्द ! सुरक्षित धर्म महान् मय से बपाता है। धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व नि सन्देह प्राप्त होता है ॥७६॥ द्विजप्रेक्षो ! जब मनुष्या के पूर्वसंचित पापों का क्षय हो जाता है तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है ॥७७॥ हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् । यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः ॥७८॥
 कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा । परप्रेयाश्च भूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविराजिताः ॥७९॥
 ये हि दीर्घायुः शूरा पण्डिता भोगिनोऽयिनः । अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः ॥८०॥
 एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिभुक्तमाप्नुयन् । अधर्मं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते ॥८१॥
 ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुयता । ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा ॥८२॥
 अनादिनिधनं देवं दैत्यदानवदारणम् । ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम् ॥८३॥
 कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युत शरणं गताः । न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥८४॥
 ये जना जगता नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः । नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानाद्व्यग्र गामिनः ॥८५॥
 न ते द्रुतास्त तन्मार्गं न यमं न च सा पुरीम् । प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि 'कथंचन' ॥८६॥
 कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः । न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम् ॥८७॥
 शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम् । तेऽपि यान्ति तनुं स्यक्त्या विष्णुलोकमनामयम् ॥८८॥
 अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम् । सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चचेद्विपतिर्यथा ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिबाह्ये व्यासपिस्वादे धामिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

पापक' जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाभ से) वञ्चित ही रहता है ॥७८॥ जो निन्दित, दरिद्र, कुलूप, रोगी, दूत तथा भूर्ख हैं, उन्हें धर्मविराजित समझना चाहिये ॥७९॥ जो दीर्घायु, वीर, पण्डित, भोगी, धनवान्, भीरवी तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पहले धर्म लिया है (ऐसा समझना चाहिए) ॥८०॥ विप्रवृन्द ! इस प्रकार धर्म-परायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अधर्मसेवी नर पशु-पक्षी योनि में जाते हैं ॥८१॥ जो मनुष्य नरकनाशन कृष्ण वे भक्त हैं, वे स्वप्न में भी यम या नरको का नहीं देखते हैं ॥८२॥ जो मनुष्य दैत्य-दानवी वा दलन करने वाले आदिअन्तरहित मगयान् को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं ॥८३॥ जो मन, कर्म तथा वाणी से मगयान् वे शरणगत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफल-भागी हो जाते हैं ॥८४॥ द्विजवृन्द ! आ मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते ॥८५॥ विष्णु को प्रणाम करने वाले मनुष्य न यमदूतों को, न यममार्ग को, न यमको, न यमपुरी को, न नरको को कभी देखते हैं ॥८६॥ अखिलपापहारी हरि को प्रणाम कर मोहयुक्त मनुष्य अनेक पाप करके भी नरक नहीं जाते ॥८७॥ जो नर शाठ्य से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥८८॥ यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है, जैसे विष्णुपाल ने किया था ॥८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में धर्मात्माओं के गतिनिरूपण नामक दो सो

सौलहर्वा अध्याय समाप्त ॥२१६॥

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मश्चेष्टयवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वं यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम् । पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासि सशय मुनिसत्तमा ॥१॥

मुनय ऊचु-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । मर्त्यस्य क सहायो वै पिता माता सुतो गुरु ॥२॥

ज्ञातिसवन्धिबर्गश्च मित्रबर्गस्तथैव ॥ गृह शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जन ॥

गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्च ताननुपच्छति ॥३॥

व्यास उवाच

एक प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति । एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् ॥४॥

असहाय पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरु । ज्ञातिसवन्धिबर्गश्च मित्रबर्गस्तथैव च ॥५॥

मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जना । भूहर्तृमिव रोबित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखा ॥६॥

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्ट धर्म एकोऽनुगच्छति । तस्माद्धर्मं सहायश्च सेवितव्यं सदा नृभि ॥७॥

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर । इस प्रकार यममार्ग तथा नरको की यातना के बारे में सुनकर मुनियो ने फिर व्यास से अपना सशय पूछा ॥१॥

मुनियो ने कहा—भगवन् ! असेय धर्मों के ज्ञाता । सर्वशास्त्रविशारद । मनुष्य का कौन सहायक होता है—पिता या माता या पुत्र या गुरु या बन्धुवर्ग या मित्रवर्ग ? मनुष्य लकड़ी तथा ढले के समान घर एवं गरीर को छोड़कर चले जाते हैं । मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है ? ॥२ ॥

व्यास ने कहा—विप्रबुद्ध । मनुष्य अकेला जन्म लेता है अकेला मरता है अकेला बठिनाइयो को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है । पिता माता, भाई पुत्र गुरु बन्धुवर्ग तथा मित्रवर्ग—कोई उसका साथ नहीं देता है । लोग लकड़ी-ढले के समान उससे मृत शरीर को त्याग कर दो घड़ी रो घी कर निवृत्त हो जाते हैं । उन लोगों से परित्यक्त शरीर का अनुगमन एवं धर्म ही करता है । इसलिए मनुष्यों का अपने सहायक धर्म की सदा

१य यातनम् । २य मृत । ३य स्वगतिम् । ४य अतमपि रो० । ५य स एवानु० ।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गं गतिं पराम् । तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥८॥
 'तस्मात्वापागतैरर्थे नानुरज्येत' पण्डितः । धर्म एको' मनुष्याणां महायः परिकीर्तितः ॥९॥
 'लोभान्मोहादनुनोदाद्भयदाह्राज्य' बहुभूत । नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ॥१०॥
 धर्मश्चाधर्मश्च कामश्च त्रिनय जीवतः' फलम् । 'एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

भूतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् । शरीरनिश्चयं ज्ञातुं बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते ॥१२॥
 मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् । 'अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ॥१३॥

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तरम् । बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा' ॥१४॥
 प्राणिनामिह सर्वेषां 'साक्षिभूता दिवानिशम् । एतंश्च सह धर्मो हि तं जीवमनुगच्छति ॥१५॥
 त्वगस्थि मांसं शुनं च शोणितं च द्वितोत्तमा । 'शरीरं 'वर्जयन्त्येते जीवितेन' विवर्जितम् ॥१६॥
 ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेपते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि व ॥१७॥

मुनय ऊचुः

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत् ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते ॥१८॥

सेवा करनी चाहिये । धर्मात्मा प्राणी उत्कृष्ट स्वर्ग को प्राप्त करता है और पापी नरक में जाता है । जत पण्डित-जन को चाहिये कि वे अधर्मों से प्राप्त धन में अनुरक्त न हों । मनुष्यों का एक धर्म ही सहायक माना गया है । बहुभूत मनुष्य भी लोभ से, मोह से, दया से या भय से अधर्म कर बैठते हैं । धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही जीवन के फल हैं । इन तीनों की प्राप्ति अधर्म पूर्वक नहीं करनी चाहिए ॥४-११॥

मुनियो ने कहा—आपका धर्मयुक्त तथा परमवत्यागकारी वाक्य हमने सुना । जब शरीर के विषय में हम मृतता चाहते हैं । मनुष्यों का मृत शरीर सूक्ष्म तथा अव्यक्त वहाँ गया है । वह बुद्धिगोचर नहीं होता है । फिर धर्म कैसे उसका अनुगमन करता है ? ॥१२-१३॥

व्यास ने कहा—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब नित्य धर्म को देखते हैं । ये दिग्गतात् समस्त प्राणियों के साक्षी बने रहते हैं । इन्हीं के साथ धर्म जीव का अनुगमन करता है । द्विजवर ! प्राणी के छोड़ देने पर त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और शोणित रूप शरीर को ये भी छोड़ देते हैं । तदनन्तर धर्मयुक्त जीव इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है । अब फिर आप लोगों से क्या कहूँ ? ॥१४-१७॥

मुनियो ने कहा—यह तो अज्ञाने बतलाया कि धर्म कैसे अनुगमन करता है । अब हम यह जानना चाहते हैं कि वीर्य कैसे बनता है ॥१८॥

१ख ०स्मान्याम० । २ख ०धर्मं सेव्यस्तु प० । ३ख । पण्डितं ४ख एषः । ५ग ०द्राज्यव० ।

६क ग जीविते । ख जीविन । ७क ०तत्तु धर्मवाक्य मे अध० । ८ख अतिनिवि० । ९क ख ०दा ।

सर्वधात्वह । १०ग ०गति चानि० । ११ख ०रीरं वर्तते सर्वं जी० । १२क वर्तय० । १३ख. ०तेनाऽऽभूते पुन । १० ।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवा शरीरस्या द्विजोत्तमा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥१९॥
ततस्तृप्तोऽपि भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चबु । मनः पृष्ठेषु शुद्धात्मा रतः सपद्यत महतः ॥२०॥
ततो गर्भं स भवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजा । एतद्भवत्समाप्तात् किं भूय श्रोतुमिच्छस्य ॥२१॥

मुनय ऊचुः

आस्थात भो भगवता गमः सजायत यथा । यथा जातस्तु पुरयः प्रपद्येत तदुच्यते ॥२२॥

व्यास उवाच

'जासन्नमात्रपुरुषस्तभूतैरभिभूयते' । विप्रयुक्तगुणं तंभूतं पुनर्यात्यपरा गतिम् ॥२३॥
'स च भूतसमायुक्तः प्राप्नोति जीवमव हि । ततोऽस्य कमः पश्यन्ति गुणं वा यदि याऽगुणम् ॥
इवता 'पञ्चभूतस्या किं भूय' श्रोतुमिच्छस्य ॥२४॥

मुनय ऊचुः

स्वर्गस्य मासमुत्सृज्य तंस्तु भूतैर्विवाजितः । जीवः स भगवत्स्वस्थः सुखदुःखं समश्नुतः ॥२५॥

व्यास उवाच

जीवः कमसमायुक्तः शीघ्रं रतः समागच्छ । स्त्रीणां पुंस्यं समासाद्य ततः कालेन भो द्विजा ॥२६॥

व्यास ने कहा—विप्रवर । शरीरस्व देव जा अन्नमक्षण करते हैं उससे पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि और मन तत्प होते हैं । पञ्च महाभूता तथा छठ मन के तत्प हो जाने पर गुण आता है महान् बन्धन जाता है । तब स्व-पुरुषा का रज-व-य गम रूप में परिणत होता है । यह सब मैंने आपसे बतला दिया । अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥१९ २१॥

मुनियों ने कहा—गम जैसे उत्पन्न होता है वह ता आपने बतला दिया । अब पुरय कैसे उत्पन्न होता है—यह कहिये ॥२२॥

व्यास ने कहा—पुरय उत्पन्न होते हैं पञ्चमहाभूत से आवाप्त हो जाता है । पुनः उन भूतों से विद्युत् होने पर वह दूसरी गति को प्राप्त करता है । भूतों से युक्त होने पर वह जीवभाव को प्राप्त करता है । तदुपरात्पञ्चभूतों में रहने वाले देवता उससे गुण-अगुण दोनों को देखते हैं । फिर आप क्या सुनना चाहते हैं ॥२३ २४॥

मुनियों ने कहा—मगधन् । भूतों से परित्यक्त जब जब त्वचा हट्ट तथा मांस का छ- देता है तब वह वहां रह कर सुत-दुःखों का भोग करता है ? ॥२५॥

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द । क्योंकि ये युक्त जब धर्म बन्ध का प्राप्त करता है । तब समय पाकर स्त्रियां वे रज में समाविष्ट हस्ता है ॥२६॥ मनुष्य सप्तराज्य में पदवर पुंस्य कर्णे धमदूता द्वारा कर्णे तथा

१९ ० सप्तमातु पु० । २० स ० पृथ्वी स्वर्गवैरनुम० । २१ स ० त्तु त सर्वे पु० । २२ स ० सवम० । २३ स ० पञ्च वि० । २४ स ० भूयो भुवध-या० । २५ स ० त-प्रकटते । स्त्री० ।

यमस्य पुरुषः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वेधः । दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च त्रिन्दति ॥२७॥
 इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः । सुकृतं कर्म च भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥२८॥
 यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते । ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥२९॥
 अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते । सुखस्यानन्तरं दुःखं ॥ जीवोऽप्यधिगच्छति ॥३०॥
 अधर्मेण समाप्यतो यमस्य विषयं गतः । महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥३१॥
 कर्मणा येन येनेह यस्या योनौ प्रजायते । जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत सांप्रतम् ॥३२॥
 यदेतदुच्यते शास्त्रं, सेतिहासंश्च छन्दसि । यमस्य विषयं घोरं 'मर्त्यलोकं' प्रवर्तते ॥३३॥
 इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः । तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥३४॥
 यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः । 'कर्मभिर्नियतैर्बद्धो' जन्तुर्वृक्षान्मुपादनुते ॥३५॥
 येन येन हि भावेन येन च कर्मणां गतिम् । प्रयाति पुरुषो घोरं तथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥३६॥
 अधीत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः । पतितात्प्रतिगृह्याय खरयोनौ प्रजायते ॥३७॥
 खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । खरो मृतो बलीवर्धः सप्त वर्षाणि जीवति ॥३८॥
 बलीवर्धो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः । ब्रह्मराक्षसु मातास्त्रीस्ततो जायेत ब्राह्मणः ॥३९॥
 पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः ॥४०॥

ममब्रूतो द्वारा वध को प्राप्त करता है ॥२७॥ विप्रगण । इस लोक में वह प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है और धर्म का फल भोगता है ॥२८॥ यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है ॥२९॥ बीच बीच में वह धर्म-अधर्म दोनों करता है । वह जीव सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है ॥३०॥ अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है । फिर घोर दुःख पाकर पक्षीयोन में जाता है ॥३१॥ जिस-जिस कर्म के करने से मोह-बद्ध जीव जिस योन में उत्पन्न होता है, वह अनी मुलसे सुनिये ॥३२॥ वेद, शास्त्र तथा इतिहास बतलाते हैं कि जीव यम के भयवर राज्य को छोड़कर मर्त्यलोक में आता है ॥३३॥ यहाँ अनेको देवतुल्य पवित्र स्थान हैं, जहाँ पशु-पक्षी योन के अतिरिक्त योनियाँ जाती हैं ॥३४॥ यमराज के ब्रह्मलोक से समान गुणों वाले दिव्य भवन में जीव अपने कर्मों से बद्ध होकर दुःख भोगता है ॥३५॥ जिस माव से या जिस कर्म से मनुष्य घोर गति को प्राप्त करता है, वह मैं इसके बाद बतलाऊँगा ॥३६॥ जो ब्राह्मण चारों वेदों को पढ़कर मोहवश पतितो से दान लेता है, वह मरने पर गधा होता है ॥३७॥ द्विजगण । गधा होकर वह पन्द्रह वर्ष जीता है । फिर मरने पर वह बैल होकर सात वर्ष जीता है ॥३८॥ बैल की देह त्यागने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है । तीन महीनों तक ब्रह्मराक्षस रह कर बाद में ब्राह्मण हो जाता है ॥३९॥ पतितों के श्राव्य करने से कीड़े की योनि में जाना पड़ता है । वहाँ पन्द्रह वर्ष रहने पर कीटयोन में मुक्ति मिल जाती है । तब गधे की योनि में जाना पड़ता है । वहाँ भी

१ख ०मास्थित । २ग मर्त्यो लोक प्रजायते । ३ख ०त्रिभियते बद्धो । ४ग ०तान्प्रति । ५ख

०सः । राक्षसत्वं समासाद्य ततो । ६क ०ह्युराससमासाशी ततो । ७क ख राक्षसः ।

त्रिमिभावाद्भिनिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः । गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः ॥४१॥
 कुबकुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः । श्वः चर्यमेकं भवति ततो जायेत मानवः ॥४२॥
 उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् । स जन्मानोह संसारे त्रीनाप्नोति न संशयः ॥४३॥
 प्रावश्वः भवति भो यिप्रास्ततः कृत्यास्ततः खरः । प्रेत्य च परिमिलष्टेषु पञ्चाग्न्यायेत ब्राह्मणः ॥४४॥
 मतसापि गुरोर्भावा यः शिष्यो याति पापकृत् । उदघान्प्रति संसारानघर्मेणैह चेतसा ॥४५॥
 श्वयोनी तु स संभूतस्त्रोणि वर्षाणि जीवति । तत्रापि निघनं प्राप्तः त्रिमियोनी प्रजायते ॥४६॥
 कृमिभावमनुप्राप्तो चर्यमेकं तु जीवति । ततस्तु निघनं प्राप्य यत्तयोनी प्रजायते ॥४७॥
 यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्त्यादकारणम् । आत्मनः कामकारेण सोऽपि हितः प्रजायते ॥४८॥
 दिनरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽभवन्त्यते । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥४९॥
 गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति । संवत्सरं तु कुम्भोरस्ततो जायेत मानवः ॥५०॥
 पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रष्टावुभावपि । गुह्यपद्याननः सोऽपि मृतो जयेत गर्दभः ॥५१॥
 यरो जीवति मासाश्च दश चापि चतुर्दश । विडालः सप्त मासास्तु ततो जायेत मानवः ॥५२॥
 मातापितराबाधुष्य सारोकः । सप्राजयते । ताडयित्वा तु तापेव जायते कच्छपो द्विजाः ॥५३॥
 कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः । ध्यालो भूत्वा तु यन्मासास्ततो जायेत मानुषः ॥५४॥
 भर्तृपिण्डमुपाप्नोतीति राजद्विष्टानि सेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः ॥५५॥

५१ वषों तक रहकर जीव सूकर हुआ कर जन्म लेता है ॥४०-४१॥ फिर पाँच वर्षों तक मुर्गा और पाँच वर्षों तक गिपार होता पड़ता है । फिर एक वर्ष तक कुत्ते की योगि में रहकर जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४२॥ जो मुर्ग शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस संसार में निःसन्देह तीन योगियों में जाता है । पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा । फिर मरने पर अनेकविध बप्टी को सहकर पचवाह वह ब्राह्मण होता है ॥४३-४४॥ जो शिष्य मन से भी गुरु-पत्नी के प्रति पापाचरण करता है, वह अथमपुनः जित केर समार में जन्म लेता है, और कुत्ते की योगि में तीन वर्षों तक जीवर मर जाता है । फिर कीड़े की योगि में जन्म होता है ॥४५-४६॥ वही भी एक वर्ष जीता है । तदनन्तर ब्राह्मण-योगि में उत्पन्न होता है ॥४७॥ यदि पुत्र कुल्य शिष्य को गुरु अवधारण ही या अपने स्वार्थवश हार देता है तो वह भी हितक योगि में उत्पन्न होता है ॥४८॥ किम्वदु ! जा पुत्र माता-पिता की अवहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है ॥४९॥ गर्दभ-योगि में वह दश वर्षों तक रहता है । तब एक वर्ष तक मगर होकर रहता है । तदनन्तर मनुष्य योगि में उत्पन्न होता है ॥५०॥ जिस पुत्र ने ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है ॥५१॥ तदनन्तर खोबीस मास तक गधा और सात मास तक बिलाह होकर फिर मनुष्य होता है ॥५२॥ माता-पिता की निन्दा करने वाला मनुष्य सारोक (पक्षी विशेष) होता है और उनकी ताडना करने वाला कच्छपा होता है ॥५३॥ कच्छपायोगि में दश वर्षों तक रहकर सही होता है । फिर छह महीनों तक खीर हावर बाद में मनुष्य होता है ॥५४॥ स्वामी ने अन्न का सागर उसने धनुओं की सेवा करने वाला मोहपुनः मनुष्य मरने पर बदर होता है ॥५५॥ दश वर्षों तक बदर, सात वर्षों तक बूढ़ा और छह मासों तक कृत्ता रह कर वह मनुष्य होता है ।

वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूपकः । इवा च भूत्वा तु धम्मासांस्ततो जायेत मानवः ॥५६॥
 न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥५७॥
 तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । दुष्कृतस्य सय कृत्वा ततो जायेत मानुषः ॥५८॥
 असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शाड्गकः । विश्वामहर्ता च नरो भोनो जायेत दुर्मतिः ॥५९॥
 भूत्वा मोनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायेत भो द्विजाः । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥६०॥
 छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णं सवत्सरे ततः । कीटः सजायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः ॥६१॥
 धान्याग्न्यावांस्तिलान्मापान्कुलित्यामस्यपाश्विधान् । कलापानय मुद्गाश्च गोधूमानतसोस्तथा ॥६२॥
 सस्याग्न्यानि हृतां च मर्त्यो मोहावचेतनः । सजायते मुनिधेष्ठा भूषिको निरपन्नपः ॥६३॥
 ततः प्रेत्य मुनिधेष्ठा मृतो जायेत शूकरः । शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण त्रिपते पुनः ॥६४॥
 इवा तनो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः । भूत्वा इवा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानवः ॥६५॥
 परदारभिमर्शं तु कृत्वा जायेत वै वृकः । इवा शृगालस्ततो गुध्रो व्यालः कडको बकस्तथा ॥६६॥
 भ्रातृभार्या तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः । पुस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि सवत्सरं द्विजाः ॥६७॥
 'सन्निभायां गुरोर्भायां राजभायां तथैव च । प्रथर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः ॥६८॥
 शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वै वृकः । पिपीलिकस्तु मासास्त्रयोन्कीटः स्यान्मासमेव च ॥६९॥

॥५६॥ परोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य यम के राज्य में पहुँचता है। सौ बार जन्म-मरण पाकर (या नरको का भोगकर) इमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥५७॥ वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर पापी वा क्षय करने मनुष्य-योनि में जाता है ॥५८॥ निन्दक मनुष्य मरने पर शाड्गक (सीप वाला जीव) होता है। विषवास-घाती दुष्टदुष्टि मनुष्य मछली होता है ॥५९॥ आठ वर्षों तक मछली रह कर हरिण होता है चार महीनों तक हरिण रहकर बकरा होता है ॥६०॥ एक वर्ष तक उस योनि में रहकर कौबड़ा होता है। तदनन्तर मनुष्य होता है ॥६१॥ मुनिधेष्ठो धान, यव, तिल, उड़द, कुलर्षी, सरसो, चने, मूग, गेहूँ, लीसी तथा दूसरे अन्ना को चुराने वाला मूर्ख मनुष्य निर्लज्ज बूढ़ा होता है ॥६२-६३॥ फिर मरने पर सूअर होता है। शूकर-योनिमें वह उत्पन्न होते हैं। रोग से भर जाता है ॥६४॥ तब वह मृगा कुत्ता होता है। पीव वर्षों तक उस योनि में रहकर मनुष्य होता है ॥६५॥ दूसरे की पत्नी के साथ समोग करने वाला मनुष्य भेडिया होता है। तदनन्तर वह कुत्ता, छिपार, गीध, साँप, सफेद चील और बगला होता है ॥६६॥ जो मूर्ख मनुष्य भ्रातृ-पत्नी के साथ समन करता है, वह भी एक वर्ष तक पुस्कोकिल (कोयल वा नर) होता है ॥६७॥ मित्र-पत्नी, गुरु-पत्नी तथा राज-पत्नी के पास जाने वाला कामी मनुष्य सूअर होता है ॥६८॥ पीव वर्षों तक सूअर, दश वर्षों तक बगला, तीन महीनों तक पीटी और एक मास तक वह बौद्ध होता है ॥६९॥ इतनी योनियों में

एतानासाद्य ससारान्कृमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ॥७०॥
 नरोऽयमक्षय कृत्वा ततो जायत मानुष । पूर्वं दत्त्वा तु य कया द्वितीये दातुमिच्छति ॥७१॥
 सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु क्रिमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमा ॥७२॥
 अधमसक्षये मुक्तस्ततो जायत मानुष । देवकायमकृत्वा तु पितकायमयापि वा ॥७३॥
 अनिर्याप्य पितुर्देवामृतो जायत वायस । वायस शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुट ॥७४॥
 जायत व्यालकदवापि मास तस्मात्तु मानुष । ज्येष्ठ पितुस्तम चापि भ्रातर योऽयमयत ॥७५॥
 सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायत । क्रौञ्चो जीवति वर्षाणि द्वात्रिंशत् जीवक ॥७६॥
 ततो निधनमाप्नोति मानुषश्चमवानुयात । वृषलो ब्राह्मणो गवा कृमियोनौ प्रजायते ॥७७॥
 तत सप्राप्य निधन जायत शूकर पुन । शूकरो जातमात्रस्तु रोगण म्रियत द्विजा ॥७८॥
 इवा च बं जायते मूढ कमणा तन भो द्विजा । इवा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुपरतत ॥७९॥
 तत्रापत्य समुत्पाद्य मृतो जायत मूषिक । कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषय गत ॥८०॥
 यमस्य विषय क्रूरबद्ध प्राप्नोति वदनाम । दण्डक मुदगर गूलमग्निदण्ड च बाधणम् ॥८१॥
 असिपत्रवन घोर बालका कटशा मलीम । एतादृशायाश्च ध्रुवो यमस्य विषय गता ॥८२॥
 यातना प्राप्य घोरान्तु ततो याति च भो द्विजा । ससारचक्रमासाद्य क्रिमियोनौ प्रजायते ॥८३॥

आकर फिर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । कृमि योनि में वह चौदह मास तक जीवित रहता है ॥७०॥ वहाँ जीव पाप-क्षय करने लग्य मनुष्य होता है । जो व्यक्ति पहले एक को कया देकर फिर दूसरे को देना चाहता है वह भी मरने पर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥७१॥ वहाँ तेरह वर्षों तक वह जीता है और पाप-क्षय हो जाने पर फिर मनुष्य हो जाता है ॥७२॥ जो मनुष्य देवकर्म पितृकर्म या देव पितरों का सर्वण बिना क्रिये ही मर जाता है वह कौआ होता है । शी वषों तक कौआ होकर फिर मूर्षा होता है ॥७३॥ तदनन्तर साँप होकर फिर मनुष्य होता है । जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है वह भी मरने पर बर्राकुल पक्षी होता है । द्वा वर्षों तक बर्राकुल होकर फिर चकोर होता है । तदनन्तर मनुष्य-योनि में जाता है ॥७४॥ ब्राह्मणा के पास जाने वाला गूढ़ कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । वहाँ से मरने पर फिर शूकर होता है । गूकर-योनि में उत्पन्न होते ही वह रोव से मर जाता है ॥७५॥ उस कर्म से वह मूष हो जाता है । उस योनि में अपना वम समाप्त कर वह मनुष्य होता है । वहाँ भी सतान उत्पन्न कर मरने के बाद घूहा होता है ॥७६॥ कृतघ्न व्यक्ति मरने पर यमलोच जाता है । वहाँ वह पूर यमदूता द्वारा बद्ध होकर बन्ध पाता है । दण्डक मुदगर गूल मयकर अग्निदण्ड मयकर असिपत्रवन बालुका तथा कूटशाल्मली नामक नरकों की यातनायें तथा दूसर भी बहुत-स मयानव यातनायें पाकर वह फिर ससारचक्र को प्राप्त कर कृमि योनि में उत्पन्न होता है ॥८०॥ ८३॥ पंद्रह वर्षों तक उस योनि में रहकर फिर गम में जाते ही वहाँ मर जाता है ।

क्रिमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते नरः ॥८४॥
 ततो गर्भं शतं जन्तुर्बहुशः संप्रपद्यते । संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक् प्रजायते ॥८५॥
 ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै । स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥८६॥
 वधिं हत्वा वक्रदवापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान् । चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुंशः प्रजायते ॥८७॥
 कलं वा मूलकं हत्वा पुप वापि पिपोलिकः । चोरयित्वा तु निष्पावं जायते पलमूषकः ॥८८॥
 पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरस्वमवाप्नुयात् । हत्वा पिष्टमयं पुपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥८९॥
 अपो हत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः । कांस्यं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ॥९०॥
 राजतं भाजनं हत्वा कपोतः संप्रजायते । हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं क्रिमियोनी प्रजायते ॥९१॥
 पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कुरुरत्वं निवर्षति । कोशकारं ततो हत्वा नरो जायते नर्तकः ॥९२॥
 अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायते मानवः । चोरयित्वा कुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥९३॥
 श्रीञ्च काप्यसिकं हत्वा मृतो जायते मानवः । चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं ध्वं भो द्विजाः ॥९४॥
 क्षौमं च वस्त्रमाहुत्य शशो जन्तुः प्रजायते । भूर्णं तु हत्वा पुरयो मृतो जायते ब्रह्मिणः ॥९५॥
 हत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः । वर्णकादींस्तथा गन्धाश्चोरयित्वेह मानवः ॥९६॥
 चुचुन्वगित्यभाप्नोति विप्रो लोभपरायणः । तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥९७॥
 अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायते मानवः । चोरयित्वा पयदवापि बलाका संप्रजायते ॥९८॥

तदनन्तरं सैकडों गर्भों में वह इसी प्रकार जाता है । अनेको बार जन्म लेकर वह पक्षीयों में उत्पन्न होता है ।
 वहाँ बहुत वर्षों तक दुःख भोगकर फिर कछुआ होता है ॥८४-८६॥ वही चुराने वाला मनुष्य बगला होता है ।
 असह्यत मछलियों चुराने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य मधुमक्खी होता है ॥८७॥ कल-मूल या पूआ चुराने वाला
 चीटी होता है । सेम चुराने वाला गिलहरी होता है ॥८८॥ खीर चुराने वाला तीतर होता है । मालपुआ चुराने-
 वाला खलू होता है ॥८९॥ जल चुराने वाला मूख मनुष्य कौआ होता है । कांसा चुराने वाला मूख मनुष्य हारीत
 पक्षी होता है ॥९०॥ चाँदी वा पात्र चुराने वाला बबुतर होता है । सुवर्णपात्र चुराने वाला इमियोनिग
 उत्पन्न होता है ॥९१॥ रेशमी वस्त्र चुराने वाला कुरुर पक्षी होता है । रेशम वा कीडा चुराने वाला नर्तक होता है ॥
 ९२॥ महीन वस्त्र चुराने वाला मनुष्य तोता होता है । कुकूल (चिक्का और महीन वस्त्र) चुराने वाला व्यक्ति
 मरने पर हंस होता है ॥९३॥ मृतीवस्त्र चुराने वाला मनुष्य मरने पर करीकुल पक्षी होता है । ऊर्नीवस्त्र तथा
 रेशमीवस्त्र चुराने वाला शरणांग होता है । पूर्ण हरण करने वाला पुष्य मरने पर मयूर होता है ॥९४-९५॥ लाल-
 वस्त्र चुराने वाला मनुष्य चकोर होता है । गन्ध, चन्दन आदि चुराने वाला लोभी मनुष्य छद्मर होता है । वहाँ
 पन्द्रह वर्षों तक रहकर अपर्मसाय करने मनुष्य होता है ॥९६-९७॥ दूध चुराने वाला बगली होता है ॥९८॥ जा

१ग शिगु । २क ०ते । आदिर्भूत्वा ब० । ख ०ते । अहिर्भूत्वा ब० । ३व ०पि ततो जायेत मानवः ।
 चो० । ४क तु वै मत्स्यान्नुप्यदन्त प्र० । ५क पलपोषकः । ग हल्मोलकः । ६ब० त्वा पुप्य च पत्र च
 दु० । ७ग पुप्यमयः । ८क ०द्विर्वक- योनी प्रजायते । रा० । ९ग स कुकुटत्वः । १०ग मोशिता० । ११त
 मर्वटः । १२क कोयोः । ख हसो । १३ग बक्षः ।

यन्तु चोरपते तंलं नरो मोहसमन्वितः । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायो प्रजापते ॥९९॥
 अशस्त्रं पुरुष हृत्वा शस्त्रः पुरपाधमः । अर्यायं यदि वा वरी मृतो जायेत वै खरः ॥१००॥
 परो जीवति ययं द्वे तनः शस्त्रेण बध्यते । स मृतो भृगयोनी तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥१०१॥
 मृतो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे ततः । हतो मृगस्ततो भोनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥१०२॥
 मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते । श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपो वर्षाणि पञ्च च ॥१०३॥
 ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायोदितः । अधर्मस्य क्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात् ॥१०४॥
 बाधं हृत्वा तु पुरुषो ह्योमशः संप्रजायते । तथा पिण्याकसंमिश्रमग्नं यश्चोरेयंनरः ॥१०५॥
 स जायते यभ्रुतदो दारुणो मूषिको नरः । दशन्यं मानुषान्तिथं पापात्मा ॥ द्विजोत्तमाः ॥१०६॥
 घृतं हृत्वा तु बुधुद्विः बाको मदगुः प्रजायते । मत्स्यमांसमयो हृत्वा काको जायेत मानवः ॥१०७॥
 लवणं घोरयिन्या तु चिरिकाकः प्रजायते । विश्वासेन तु निजिप्तं योऽपनिह्नोति मानवः ॥१०८॥
 स गतापुर्नरस्तेन मत्स्ययोनी प्रजायते । मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः ॥१०९॥
 मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुश्चजायते । पापानि तु नरः कृत्वा तिर्यग्जायेत भो द्विजाः ॥११०॥
 न चाऽऽत्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किंचन । ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतं सदा ॥१११॥

मनुष्य मोहवश तेल चुटाता है, वह भी तेज पीन वाजा जीव होता है ॥९९॥ घन की इच्छा से या शत्रुता से जो नीच मनुष्य शस्त्र लेकर शस्त्रविहीन पुरुष को मारता है, वह मरने पर गया होता है ॥१००॥ वा वर्षों तक गया होकर शस्त्र द्वारा मारा जाता है और मरने के बाद भृगयोनि में जन्म लेकर नित्य उद्विग्न बना रहता है ॥१०१॥ एक वर्ष बीतने पर वह शस्त्र से मारा जाता है। तदनन्तर मछली होकर जाल में पँचना है ॥१०२॥ चार मास भ्रूवीत होने पर बुत्ता होता है। दश वर्षों तक बुत्ता होकर पाँच वर्षों तक बाध होता है ॥१०३॥ तब काल की प्रेरणा से मृत्यु प्राप्त कर पापों का क्षय कर मनुष्य होता है ॥१०४॥ वाजा चुटाने वाला बहुत रोएँ वाला जीव होता है। हाँग निश्रित अन्न चुटाने वाला मनुष्य भूरे रंग के राफटों से युक्त भयंकर घृहा होता है। वह पापी मनुष्यों को नित्य बाटना रहता है ॥१०५-१०६॥ घी चुटाने वाला बौजा तथा मागुर मछली होता है। मत्स्य-मांस चुटाने वाला भी बौजा होता है। नमक चुटाने वाला चिरकाल तक कोजा होता है। जो मनुष्य विश्वाचपूर्वक रहे गये घराहट को छिपा लेता है वह गतायु होकर मत्स्यपानि में जन्म लेता है। मत्स्यपानि के बाद मनुष्य होता है ॥१०७-१०९॥ मनुष्यत्व प्राप्त कर क्षीणायु होता है। पाप करने वाला मनुष्य पक्षी-पानि में जाता है और आत्मा के प्रमाण किसी धर्म को नहीं जानता है। जो नर पाप करता है तथा वना से विमुख रहता है, वह गुण-शुद्धता का योग करते हुए रोमी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करने वाले

१ग मयन चोरः। २य ०समो दा०। ३व ०र। दशको मरको नित्य। ४व क्षीणद्रव्य प्रजा०।

५क पानीय तु। ६क नरो हृत्वा। ७य ०त्वा निद्रतापाय मो।

सुखदुःखसमायुक्ता ध्याधिमन्तो भवन्त्युत' । 'असवीता प्रजायन्ते' श्लेच्छाश्चापि न सञ्जय ॥११०॥
 नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विता । वजयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नरा ॥११३॥
 अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत । स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयु ॥११४॥
 एतेषामेव पापानां भार्यात्वमुपयान्ति ता । प्रायण हरणे दोषा सब एव प्रकीर्तिता ॥११५॥
 एतद्वै लेशमात्रेण कथितं खो द्विजयथा । अपरस्मिन्कायोऽयं भूय श्रोध्यथ भो द्विजा ॥११६॥
 एतन्मया महाभाग ब्रह्मणो वदत पुरा । सुरर्षोणा श्रुतं मध्ये पृष्टं चापि यथा तथा ॥११७॥
 मयाऽपि तुभ्यं कात्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् । एतच्छ्रुत्वा मुनिश्चष्टा धर्मं कुदत मानसम् ॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिस्वादे सप्तारचक्रनिरूपण नाम
 सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१७॥

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदानप्रशसावर्णनम्

मुनय ऊचुः

अधर्मस्य गतिब्रह्मकथिता नस्त्वयाऽनघ । धर्मस्य च गतिं श्रोतुमिच्छामो वदता वर ॥१॥

मनुष्य मर्यादा के उल्लंघन करने वाले श्लेच्छ होते हैं ॥११० ११२३॥ जो मनुष्य जन्म से लेकर पाप नहीं करते हैं वे नारोग सुन्दर तथा धनी होते हैं । स्त्रिया भी इस प्रकार नरके पापमागी बनती हैं ॥११३ ११४॥ प्राय इन्हीं पापियों की स्त्री वे बनती हैं । प्राय करके ये दोषहरण के प्रकरण में बतलाये गये हैं ॥११५॥ द्विज-श्रेष्ठो ! यह तो दिग्दानमान करा दिया गया है । दूसरे क्या प्रवर्णन भ फिर आप सुनेंगे । महामागो ! देव-पियों के बीच ब्रह्म के मुख से मीने यह क्या सुनी थी । मीने भी उसी प्रकार आप लोगों से नि-पेतया वगन कर दी । मुनिश्चष्टा । इसे सुनकर आप लोग धर्म में मन को लगायें ॥११६ ११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद प्रवर्णन में सप्तारचक्रनिरूपण नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१७॥

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

मुनियों ॥ कहा—ब्रह्मन् ! निष्पाप । आपने पाप की गति ब्रह्म बतला दी । अब हे धर्मात्मी मे श्रेष्ठ ।

कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यशुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह येन यान्ति शुभां गतिम् ॥२॥

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि 'कर्माणि त्वधर्मवशागतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥३॥

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुत्पद्यते । मनःसमाधिसंयुक्तो न ॥ एवेतं दुष्कृतम् ॥४॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गृह्यते । तथा तथा शरीरं तु सेनाधर्मेण मुच्यते ॥५॥

'यदि विप्राः कथयन्ते विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मवृत्तात्प्रमपराधात्प्रमुच्यते ॥६॥

यथा यथा नरः 'सम्यग्धर्ममनुभाषते । समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा ॥७॥

भुजंग इव निर्मोकान्पूर्वंभूयताञ्जहाति तान् । दस्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥८॥

मनःसमाधिसंयुक्तः 'स्वर्गात् प्रतिपद्यते' । दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दस्वा द्विजोत्तमाः ॥९॥

नरः 'दृष्ट्वाऽप्यकार्याणि' ततो धर्मेण युज्यते । सर्वपापेभ्य दानानामग्रं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥१०॥

सर्वमग्नं प्रदातव्यमृजुना धर्मनिच्छता । प्राणा ह्यग्नं मनुष्याणां तस्माञ्जगुः प्रजायते ॥११॥

अग्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादग्रं प्रशस्यते । 'अग्नमेव प्रशंसन्ति देवयदितृमानवाः' ॥१२॥

अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानवः । न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिन्योऽन्नमुत्तमम् ॥१३॥

धर्म की गति हुन मुनना चाहते है । किन पापकर्मों के करने से जीव को अशुभ गति मिलती है और किन धर्म के करने से शुभ गति प्राप्त होती है ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—उलटे मन से पाप कर्मों को करने अधर्म के वश होकर मनुष्य नरक जाता है ॥३॥ जो मोहवश पाप करते मन की एवाग्रतापूर्वक परचासाप करता है, वह पापमायी नहीं होता ॥४॥ जैसे-जैसे उसका मन पाप की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर अधर्म से मुक्त होता है ॥५॥ विप्रद्वन्द्व ! यदि वह धर्म-वादी ब्राह्मणों से अपना पाप बतला देता है तो अधर्मवृत्त अपराधों से वह शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥६॥ जैसे-जैसे मनुष्य एवाग्र मन से ठीक-ठीक अपना अधर्म बतलाता है वैसे-वैसे पाप छूट जाता है ॥७॥ जैसे हाथ बँबूली को छोड़ता है वैसे वह पापों को छोड़ देता है । ब्राह्मण को अनेक दान देकर मन की समाधि लगाकर वह स्वर्ग जाता है । द्विजश्रेष्ठो ! मैं उन दानों को बतलाऊँगा, जिन्हें देकर मनुष्य दुर्धर्म करने पर भी धर्मात्मा हो जाता है ॥८-९॥ सन दानों में अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है । धर्म के इच्छुके व्यक्ति को निष्पट नाव से अन्न-दान करना चाहिये । अन्न ही मनुष्या का प्राण है । उसी से जीव की उत्पत्ति होती है ॥१०-११॥ अन्न में समस्त शास्त्र प्रतिष्ठित है । इसलिये अन्न प्रशस्त माना गया है । देव, ऋषि पितर तथा मनुष्य अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ अन्नदान करने से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है । वेदवादी ब्राह्मणों को प्रसन्नचित्त से न्याय-प्राप्त उत्तम अन्न देना चाहिये ॥१३॥ हर्षित मन से जो दस ब्राह्मणों को एक बार भी खिलाता है, वह पशुघोनि में

१ ग णि स्वर्गम् । २ ग ंदि वाक्प चरेद्विप्रा विप्राणाः । ३ ग त्त्व म्यमुषः । ४ ग स गुणति ।

५ ग स ०ते । प्रशानानि प्रवः । ६ ग स ंप्यवर्माणि । ७ ग णि नहि पापन सुः । ८ स अन्न चव ।

९ ग स ०व । नायलब्ध प्रः ।

सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते ॥२७॥
 तस्मादन्नं 'प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् । यस्तु' प्राणाहृतीपूर्वमन्नं भुङ्क्ते गृही सदा ॥२८॥
 अयन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः । भोजयित्वा अन्नं नित्यं नरो वेदविदां वरम् ॥२९॥
 न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा । न याति नरकं धीरं संसारं न च सेवते ॥३०॥
 सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं कर्मसमायुक्तो रमते विगतज्वरः ॥३१॥
 हृषिकान्तीतिमांश्चैव धनवांश्चोपजायते । एतद्वः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ॥
 मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ध्यासपितृवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं
 नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम् । तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः ॥१॥

मरने पर भी सुख मिलता है । इस प्रकार धर्म से मुक्त मनुष्य पापों से मुक्त होता है ॥२७॥ इसलिये अन्याय से रहित अन्न दान करना चाहिये । गृहस्थ को अग्नि में आहुति डाल कर अन्न खाना चाहिये ॥२८॥ मनुष्य जनदान से दिन को अवन्ध्य (सफल) बनाये । जो मानव वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, धर्मवेत्ता तथा इतिहास-वेत्ताओं में श्रेष्ठ हो मनुष्यों को नित्य भोजन कराता है, वह न तो धीर नरक में जाता है न जन्म ही लेता है ॥२९-३०॥ उसकी समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं । वह मरने के बाद भी सुख प्राप्त करता है । इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य व्यवहारहित होकर रमण करता है और रूपवान्, कीर्तिमान् तथा धनवान् होता है । अन्नदान का यह महाफल मैंने वर्णन कर दिया । द्विजगण ! यह धर्मों तथा दानों का मूल है ॥३१-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवादप्रवरण में संसारचक्र में अन्नदान-प्रशंसा वर्णन नामक दो ही अद्वारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१८॥

अध्याय २१६

श्राद्धविधि का वर्णन

मुनियों ने कहा—मृत्यु के उपरान्त अपने कर्मों से प्राप्त स्थानों में वास करने वाले जीवों का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुवर्ग कैसे करें ? ॥१॥

१४ स ० न्यायेन वि० । २४ ० स्तु श्राद्धपूर्व हि भोक्तुमन्नं शू० । ३४ ० व नर स० । ४ ० व सल्लु स० । ४४. ० पपयने ।

व्यास उवाच

नमस्तृप्य जगन्नाथ वाराह लोवभावनम् । शृणुष्व सप्रवक्ष्यामि श्राद्धवत्स्य यथोदितम् ॥२॥
पुरा कौकाजल 'मग्नापितुनुद्धूतवाचिभु । श्राद्ध कृत्वा तदा ददौ यथा तत्र द्विजोत्तमा ॥३॥

पितर ऊचु

किमथ त तु कोकाया निमग्ना पितरोऽभसि । कथं तनोदतास्त व वाराहेण द्विजोत्तम ॥४॥
तस्मिन्कोकामुक्ष सौथे भुक्तिमुक्तिफलप्रद । श्रोतुमिच्छामह वूहि पर बौसूहव हि न ॥५॥

व्यास उवाच

नेताद्वापरयो सधी पितरो दिव्यमानुषा । पुरा मेरुगरे पृष्ठ विन्देद्वेवं सह स्थिता ॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितॄणां सोमसम्भवा । कथा कात्तिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलि स्थिता ॥७॥
तामचु पितरो दिव्या य तत्राऽऽससमागता ॥७॥

पितर ऊचु

कासि भद्रे प्रभु को वा भवत्या वयनुमहसि ॥८॥

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितॄदेवान्यला चाद्रमसीति ह । प्रभुत्वे भयतामेव वरयामि यदीच्छथ ॥९॥

व्यास न पहा—लोकलप्ता जगत्पति तथा वाराह (सूअर) रूप धारण करने वाले भगवान् को ममस्कार कर सुनिये । मैं यथावधि-श्राद्धरूप वतलाता हूँ । द्विजपटो ! प्राचीन काल में कोका नामक तप के जल में निमग्न पितरों का श्राद्ध कर भगवान् ने उत्तर उद्धार किया था ॥२३॥

मुनिपौ न कहा—द्विजपट ! क्यों पितरलोक कोका के जल में निमग्न हुए ? जैसे धाराह रूप धारण कर भगवान् ने उस भुक्ति मुक्ति परलोक्य कानातीष से पितरों का उद्धार किया ? हम सुनना चाहते हैं । कहिय हमें यही उत्तर ही हो रही है ॥४५॥

व्यास न कहा—पहले नेता और द्वार युग के अधिपाल में दिव्य मानव पितर सुमेरुवन के पृष्ठ पर विन्देवों के साथ बैठ हुए थे । उन बैठ हुए पितरों के समक्ष चन्द्रमा की कात्तिमती नामक कथा अजिबाद कर लगी हो गई । वहाँ आ पितर आये हुए थे उन्होंने उससे पूछा ॥६॥

पितरा न कहा—यह ! तुम क्यों हो ? क्यों तुम्हारा स्वाया है ? कहो ॥८॥

व्यास ने कहा—नन्दा कहते भी—मैं चन्द्रमा की कथा हूँ । स्वामी के विषय में यदि आप लोग चाहें तो मैं आप ही योग्यता वरण करूँ ॥९॥ मेरा पहला नाम ऊर्जा है दूसरा स्वधा और तृतीय नाम तो

उर्जा 'नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम् । भवद्भिश्चाद्यैव कृतं नाम कोकेति भाषितम् ॥१०॥
 ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषाः । तस्या मुख निरोक्षन्तो न तृप्तिमधिगमिरे ॥११॥
 विश्वेदेवाश्च ता उजास्वा कन्यामुखनिरोक्षकान् । योगध्युताग्निरीक्ष्येव विहाय त्रिदिव्यं गताः ॥१२॥
 भगवानपि शीतोत्प्लुङ्गोर्जां नापश्यदात्मजाम् । समाकुलमना दध्यौ वर गतेति महायशाः ॥१३॥
 स जिवेद तदा सोमः प्राप्ता पितृंश्च कामतः । तैश्चावलोकिता हार्दात्स्वीकृता च तपोबलात् ॥१४॥
 ततः श्रोतरोऽपि तात्मा पितृञ्चाश्रयो द्विजाः । शशाप निपतिप्यध्वं योगभ्रष्टा विचेतसः ॥१५॥
 यस्मादस्ता मत्कन्यां कामयाव सुवाल्लिशाः । यम्मादृतवती चेयं पतीन्पितृमती सती ॥१६॥
 स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा । कोकेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाधिता ॥१७॥
 इत्य शप्ताश्चन्द्रमसा पितरो दिव्यमानुषाः । योगभ्रष्टा निपतिता हिमवन्पादभून्ले ॥१८॥
 उर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य रिस्तुने । प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम् ॥१९॥
 कोरा नाम ततो वेणाप्रदी तीर्थं शताकुला । प्लावयन्ती गिरेः शृङ्गं सर्पणात्तु सरितस्सुता ॥२०॥
 अयं ते पितरो विष्ठा योगहीना महानदीम् । ददुशुः शीतसलिलां न विदुस्तुं सुलोचनाम् ॥२१॥
 ततस्तु गिरिराजदुष्ट्वा पितृंस्तास्तु क्षुधादितान् । यदरीमाविदेशाय धेनुं धेनून् मधुस्रवान् ॥२२॥

आज ही आर कौंगो ने रण दिया है ॥१०॥ वे दिव्यमानुष्यसरीरगारी पिता उसका वचन सुनकर उसने मुखकी ओर धारने लगे, पर मुक्त नहीं हुए ॥११॥ विश्वेदेव कन्या-मुख निरीक्षण करते हुए पितरों का योगभ्रष्ट समझ कर उन्हें छोड़ कर स्वर्ग चले गये ॥१२॥ भगवान् चन्द्रमा भी अपनी पुत्री ऊर्जा को न देखकर चिन्तित हो गये और धारने लगे, कि यह वहाँ चली गई ॥१३॥ तब चन्द्रमा ने जान लिया, कि वह वामदेव पितरों के पास गई है । पितरा ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है और तपोबल से स्वीकार भी कर लिया है ॥१४॥ तब श्रोत्र से आग-बबुला होकर चन्द्रमा ने पितरों को धाप दिया—'भूषों ! जिस लिये तुम मेरी असमर्पित कन्या की कामना करते हो इसलिये तुम योगभ्रष्ट तथा हृदयहीन होकर गिर पड़ोगे ॥१५॥ जिस लिये इस सती कन्या ने पिता पाली होनी हुई थी स्वतन्त्र होकर धर्म का उत्लपन करने पतिया का वरण किया इसलिय यह नदी हो जाय । हिमालय की आश्रित होकर यह लोका में कोरा नाम से प्रख्यात हों ॥१६-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा से अभिप्राय दिव्य मानव-पितर योग-भ्रष्ट होकर हिमालय की तराई में आ गिरे ॥१८॥ वहीं पर ऊर्जा भी गिरी । गिरिराज के दितुन तटप्राय में वह शांता समुद्रा से जल लेकर उत्तम तीर्थ का रूप में परिणत हो गई । कोरा नामक यह नदी तीर्थका दीपों से मुक्त तथा वेगवती हुई । पर्वत के शिखरों का प्लावित करत हुए बहने के कारण यह सरित कहलायी ॥१९-२०॥ तदनन्तर उन योगभ्रष्ट पितरों ने सीकल जल वाली मृदानदी का देखा पर मुन्वावना चन्द्रपुत्री को पहचाना नहीं । ॥२१॥ तब हिमालय ने मूस से पीठिन उन पितरा को देगनरवेर के वन तथा मधु समान दूध देने का एरा पाव उद्घ दी ॥२२॥ गिरिराज ने उनका पापण के निमित्त दिव्य मधुस्रव दूध, कोरा का जल तथा

शीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम् । इदं गिरिवरेण्यं पोषणाय निरूपितम् ॥२३॥
 तथा घृत्या तु यस्तां पितृणा मुनिसत्तमाः । दश वर्षसहस्राणि ययुरेकमहो यथा ॥२४॥
 एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे । दंत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः ॥२५॥
 ते तान्पितृगणान्दंत्या यातुधानाश्च वेगिताः । विश्वेर्देवैरहितान्सर्वतः समुपाद्रवन् ॥२६॥
 दंत्यान्यातुधानाश्च दृष्ट्वेवाऽऽपततो द्विजाः । कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगूह रुपा ॥२७॥
 गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितृन् । छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम् ॥२८॥
 पितृनन्तर्हिताद्दंत्या दंत्या राक्षसास्तथा । विभीतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिता ॥२९॥
 सलिलेन क्षिपीदन्तं पितरं क्षुब्धमातुरा । क्षिपीदमानमात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः ॥
 'जगुर्जनार्दनं देवं पितरः शरणं हरिम् ॥३०॥

मुनय ऊचुः

जयस्व गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः 'वेगद' ते प्रसादात् ।
 जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्यानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रनाप' ॥३१॥
 निशाचरैर्दारुणदंशैः प्रभो वरेण्य वकुण्ठ वराह विष्णो ।
 नारायणाशेषमहेश्वरेश' प्रयाहि भीताञ्जय पचनाभ ॥३२॥

बदरीफल का प्रयोग कर दिया ॥२३॥ मुनिभेष्टो । उस वृत्ति से निर्वाह करते हुए पितरो के दस हजार वर्ष एक दिन के समान बीत गए ॥२४॥ इस प्रकार लोक में पितरों तथा स्वधा के न रहने से दंत्या तथा राक्षस बलवान् हो गये ॥२५॥ बली राक्षसों ने विश्वेदेवों से रहित पितरों के ऊपर सब धोर से आश्रमण कर दिया ॥२६॥ राक्षसों को देखते ही पितर गिर पड़े । कोका के तट पर स्थित एक उत्तुंग शिला को उन्होंने क्रोध से पकड़ लिया ॥२७॥ शिला को पकड़ लेने पर हिमालय की प्लावित करती हुई वेगवती कोका में जल से पितरों को डूब दिया ॥२८॥ पितरों को विहीन जानकर राक्षसबुन्द एक बहेड़े के पेड़ के ऊपर चढ़ गये और बिना भोजन के छिप कर रहने लगे । जल में भूख से आतुर तथा सींचित होते हुए जलाधार पितर अपने को चपट में देखकर भयवान् जनार्दन की शरण में गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

पितरों ने कहा—गोविन्द । ससार में निवास करने वाले । आपकी जय हो ! वेगद । आपकी कृपा से हमारी भी जय हो । जनार्दन । निपाट्य प्रताप वाले । जल के भीतर से हमारा उद्धार करें । मयवर दीप्तने वाले राक्षसों ॥ हमें बचायें । प्रभो । वकुण्ठ । वराह । विष्णो । नारायण । सचने प्रभु ! महेश्वर ।

१ ग जगुर्जं० । २ स्व ते । ३ य ० व सप्रसीद । जं० । ४ ग ० प्रसादात् । नि० । ५ य स प्रनाह्वार्यं यय ।

उपेन्द्र योगिन्मधुकुण्डमध्न विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव ।

भीमाङ्गचक्राम्बुजशङ्खपाणे रक्षस्व देवेश्वर राक्षसेभ्यः ॥३३॥

त्वं पिता' जगतः शंभो नान्यः शक्तः प्रबाधितुम् । निशाचरगणं भोममतस्त्वां शरणं गताः ॥३४॥

त्वन्नामसंकीर्तनतो निशाचरा ब्रवन्ति भूतान्यपयान्ति' चारयः ।

नाशं तथा संप्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्य' भवतोह भुव्यम् ॥३५॥

व्यास उवाच

इयं स्तुतः स पितृभिर्घरणीघरस्तु गुप्टस्तदाऽऽविष्कृतविष्यमूर्तिः ।

कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्न देवो बर्षा शिरसाऽथ शिलां धृत्वा ॥३६॥

तं दृष्ट्वा सलिले भग्नं क्रोडरूपी जनार्दनः । भीतं पितृगणं विष्णुरुद्धतु' मतिरादधे ॥३७॥

दृष्ट्वाप्रेण समाहृत्य शिलां चिक्षेप झूकरः । पितृनादाय च विभूरुज्जहार' शिलातलात् ॥३८॥

'वराहवन्द्यासंलग्ना, पितरः कनकोऽज्वलाः । कोकामुखे गतभयाः 'कृता देवेन विष्णुना ॥३९॥

उद्धृत्य च पितृदेवो विष्णुतीर्थं' तु झूकरः । बर्षा समाहितस्तेभ्यो' विष्णुलोहागले' जलम् ॥४०॥

प्रमाण कीजिये तथा डरे हुए (राक्षसों) को जीतिये । नामि मे कमल धारण करने वाले । इन्द्र के छोटे भाई । योगी ! मधु-कूटम नामक राक्षसों को मारने वाले । विष्णु । अनन्त । अच्युत । वासुदेव । धनुष, चक्र, कमल तथा शङ्ख हाथों मे धारण करने वाले । देवों के ईश्वर । राक्षसों से हमारी रक्षा करें । कल्याण करने वाले । आप ससार के पिता हैं । बिना आपके कोई नहीं मयानव' राक्षस-समूह को मार सकता है । अतः हम लाग आपकी शरण मे आये हैं । आपके नाम लेने से ही दैत्यगण भाग जाते हैं, (गुप्ट) प्राणी अलग हो जाते हैं तथा शत्रुसमूह विनष्ट हो जाते हैं । विष्णो ! यहाँ धर्म आदि सत्य ही मल्य हैं ॥३१-३५॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पितरों द्वारा स्तुत होने पर घरणीघर भगवान् सतुष्ट हो गये और दिव्यमूर्ति धारण कर कोक ने जल मे डूबे हुए तथा शिर पर शिला को बोधे हुए पितरों की ओर देखने लगे ॥३६॥ वराह-रूपी जनार्दन भगवान् पितरों को जल मे निमग्न देखकर उन्हें उसमे से निकालने के लिए सोचने लगे ॥३७॥ झूकर रूपी भगवान् ने अपने दाँतों से अन्नमाय से शिला को तोड़कर शिलातल से पितरों को निकाला ॥३८॥ वराह ने दाँतों मे सलग्न एवं मुचुर' के समान चमकने वाले पितरों को भगवान् विष्णु ने कोवार्तीर्थ मे मथरहित कर दिया ॥३९॥ झूकर रूपधारी विष्णु ने पितरों का उद्धार कर विष्णुतीर्थ मे सावधान होकर लोहे के बर्षल मे उन्हें जल दिया ॥४०॥ तब अपने रोखों से उत्पन्न कुशों को लेकर नेशव ने अपने पक्षियों से तिल उत्पन्न किया,

१ ग पाता । २ क स. ० न्यपि या० । ३ ग सर्व भ० । ४ ग ० द्रुतमुपवचने । ५ ल ॥ ० र रसात० । ६ ग. ० हरेहस० । ७ ग. हृता । ८ ग. ० येन धू० । ९ ख ० स्तेभ्यस्तिरलोमायते ज० । १० ग ० हाकुल ज० ।

तत स्वरोमसभूतान्कुशानादाय केशव । स्वेदोद्भूवास्तिलाश्चैव चक्रे' चोल्मुकमुत्तमम् ॥४१॥
 ज्योति सूर्यप्रभं कृत्वा पात्र तोयं च कामिकम् । स्थित 'कोटिवटस्याधो वारि गङ्गाधर शुचि' ॥४२॥
 तुङ्गकूटास्तमादाय यज्ञीयानोषधीरसान् । मधुक्षीररसान्धान्यान्युष्पधपानुलेपनान् ॥४३॥
 आदाय धेनु सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात् । दष्ट्रयोल्लिरय धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च ॥४४॥
 धर्मोद्भवनेपोलिप्य कुशैरल्लिरय ता पुन । 'परिणीयोल्मुकेनैनामभ्युक्ष्य च पुन पुन ॥४५॥
 कुशानादाय प्रागप्रातलोमकूपांतरस्थितान् । ऋषीनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम् ॥४६॥
 रैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्वेवास्ततो विभु । आहूय मन्त्रतस्तेषां विष्टराणि ददौ प्रभु ॥४७॥
 आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदेवतविधिना हरि । अक्षतैर्वेतारक्षा चक्रे चक्रगदाधर ॥४८॥
 अक्षतास्तु' यवौषध्य सर्ववेद्याशसभवा । रक्षन्ति सर्वत्र' दिशो रक्षाय निर्मिता हि ते ॥४९॥
 देवदानवदैत्येषु यक्षरक्षसु चैव हि । नहि कश्चित्क्षय तेषां कतु श्वतश्चराचरे ॥५०॥
 'न कैनचित्कृत (क्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षता कृता । देवानां ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा ॥५१॥
 'कुशान्धयवै पुष्परर्घ्यं कृत्वा च शूकर । विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्ताप्यर्घ्यं पृच्छत ॥५२॥

एक उत्तम अगार को सूर्य के समान प्रभा से युक्त किया इच्छानुसार तीर्थ को पात्र बनाया और कोटि बट वृक्ष के नाभे स्थित हाकर गया को धारण करने वाला पवित्र जल उत्पन्न किया । फिर वे पवत के शिखरो पर से प्रसीय ओषधियाँ मधु दूध गन्ध पुष्प, धूप तथा कन्दन ले आए ॥४१॥४३॥ सरोवर से धनु तथा समुद्र से रत्न ले आए । शतो से पुष्पी पर रेखा खींच कर जल से उसे अभिषिक्त किया फिर उसे लीपकर कुशो से रेखा खींच कर पत्तीने से उत्पन्न प्रणीता-पात्र न जल से उसे बार-बार अभिषिक्त किया ॥४४॥४५॥ अपने होम-नूप के मातर स्थित पुत्रो के अग्रभाग को पूर्वाभिमुख कर ऋषियो को बुलाकर उनसे कहा कि मैं पितृतपण न करूँगा ॥४६॥ उन्होंने भी कहा कि कीजिए । तब विश्वेदेवो को बुलाकर विभु ने मात्र पदकर उन्हें आसन दिया ॥४७॥ वेदोक्त विधि से मनोच्चारण पूवक उन्हें बुलाकर चक्रगदा धारी हरि ने अक्षतो से देवताओ क रक्षा की ॥४८॥ यव तथा ओषधियाँ अक्षत हैं । निखिल देवो के अक्ष से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥४९॥ सब जगह दिशाया की रक्षा निमित्त इनका निर्माण हुआ है ॥४९॥ देव दानव दैत्य यक्ष राक्षस तथा चराचरो में इनका नाश कोई नहीं कर सकता ॥५०॥ किसी ने इनका नाश नहीं किया इसलिये इनका नाम अक्षत पडा । पहले देवताओ की रक्षा के लिए विष्णु ने द-हे नियुक्त किया था ॥५१॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने कुश गन्ध यव पुष्प तथा अर्घ्य लेकर विश्वेदेवो से कहा कि मैं जितने दिव्य देह धारी तथा मनुष्य-शरीर धारी पितर ॥ उन सबको बुझाऊँगा ? उन्होंने

१ ख ० क प्रलोक ० । २ क ० तितट ० । ३ ख स ० चि । उपकूटे समा ० । ४ ख ० नैव तान्म्यु ० ।
 ५ ख ० तास्त्वय यौप ० । ६ ख ० देवारिष्यस ० । ७ ख ख निदशा र ० । ८ ख न तेन चाक्षित । ख ० न तेन वाशत ।
 ९ ग ० यमये पु ० ।

पितृनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः । आवाहयस्वेति च तैस्वतस्त्वावाहये (य) च्छुचिः ॥५३॥
 श्लिष्टमूलाग्रदभास्तु 'सतिलान्वेद वेदवित् । जानावारोप्य हस्तं तु 'ददौ सव्येन चाऽऽसनम् ॥५४॥
 तयैव जानुसंस्थेन करेणकेन तान्पितॄन् । 'वाराहः पितृविप्राणामायान्तु' न इतीरयन् ॥५५॥
 अपहृतेत्युधाचैव रक्षणं चापसव्यतः । कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितॄणां नामगोत्रतः ॥५६॥
 तत्पितरो (पितरोऽत्र) मनोजरानां वा आ (गच्छत इतीरयन् (?)) । संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु
 विन्यसेत् ॥५७॥

यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो 'यन्मेति' च पितुः पितुः । यन्मे 'पितामहेत्येवं दद्यादर्थ्यं' पितामहे ॥५८॥
 यन्मे प्रपितामहेति' ददौ च प्रपितामहे' । कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः ॥५९॥
 तद्वन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनार्दनः । तानर्घ्यं भूयो गन्धाद्यैर्घृणं दत्त्वा तु 'भक्षिततः ॥६०॥
 आदित्या वसवो वदन्ना इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः । ततश्चात्र समादाय 'सर्पिस्तिलकुशाकुलम् ॥६१॥
 विधाय' पात्रे' सचैव पर्यपृच्छस्ततो मुनीन् । 'अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुष्वेति च घोषितः ॥६२॥
 'आहुतित्रितयं' 'दद्यात्सोमायान्येयमाय च । ये मामकैति च अपेक्षजुः सप्तकमच्युतम् ॥६३॥

बह्—'बृलाजो' । तब वेदवेत्ता हरि ने पवित्र होकर धुटने पर हाथ रखकर तिलयुक्त कुशो के मोटक (मोड़े)
 पितरों को आसन रूप में दिये । धुटने पर एक हाथ रखे ही वाराह ने 'आयान्तु न.' यह मन्त्र पढ़कर 'अपहृता' यह
 मन्त्र भी जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पढ़ा । तब पितरों के नाम-गोत्र उच्चारण कर 'तत्पितरो मनोजरा-
 नागच्छत, सवत्सरै.' यह पढ़कर आवाहन किया । 'यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितुः' इस मन्त्र से पिता को
 अर्घ्य दिया । 'यन्मे पितामहे' इस मन्त्र से पितामह को अर्घ्य दिया ॥५२-५८॥ 'यन्मे प्रपितामहे' इस मन्त्र से प्रपिता-
 मह को दिया । अपसव्य होकर (जनेऊ दाहिने कंधे पर रखकर) कुश, गन्ध, तिल तथा पुष्प दिये ॥५९॥ इसी
 प्रकार मातामह आदि की भी जनार्दन ने सब कुछ दिया । पुनः गन्ध आदि से उनकी पूजा कर भक्तिपूर्वक घृण
 देकर जगत्स्वामी विष्णु ने 'आदित्या वसवो वदन्ना' इस मन्त्र का उच्चारण किया । तब एक पात्र में अन्न, घी, तिल
 तथा कुश रखकर मुनियों से निवेदन किया कि मैं अग्नि में आहुति दूंगा । उन्होंने कहा—'वीजिये' ॥६०-६२॥
 तब वाराह ने चन्द्रमा, अग्नि तथा यम के लिये तीन आहुतियाँ डाली । 'ये मामक' इस मन्त्र का अप किया । हवन

१४. ०चिः शिष्टः । २४. ०सलिलावेदवाचिनः । जा० ख सलिलावेन वेदवित् । ३४. ०दौ चाऽऽवाहनास० ।
 ख ०दौ वय्य सनातन० । ४४. ख ०नृ। आप्याययन्तु पितरः सयवास्तिलवह्निषा । वा। ५४. ०राहोपि त्रिवि० ।
 ६४. ख ०माप्याययन्तिवती० । ७४. ०नृ। सवत्सरैति दत्त्वायं ततोऽर्घ्यं चा० । ख नृ। सवत्सरे ततो दीर्घं तेषु
 तेषु च स० । ८० न्ये पितुस्तदित्युच्यत । तन्मे । ९४. ०ति पितुस्तिलपु । १०४. ०महीत्ये० । ११४. ०हेऽप्येव
 दद्यादर्थ्यं समाहित । कु० । १२४. ०महीति । १३४. ०महम् । कु० । १४४. ख. भक्षिततः । १५४. ०सान्वितम् ।
 १६४. गिषाय । १७४. ग ०येणान्येन य० । १८४. ०तिमिरवद० । १९४. ०मायेति यया० ।

हुतावशिष्टं च ददौ नामगोत्रसमन्वितम् । त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजा ॥६४॥
 अतोऽवशिष्टमन्नाद्य पिण्डपात्रे तु निक्षिपेत् । ततोऽन सरस स्वादु ददौ पायसपूर्वकम् ॥६५॥
 प्रत्यग्रमेकदा स्विन्नमपर्युषितमुत्तमम् । अल्पशाक बहुफल यद्वसममृतोपमम् ॥६६॥
 यद्ब्राह्मणेषु प्रददौ पिण्डपात्रे पितृस्तथा । वेद (देव) पूर्वेपितृस्व (प्व) ब्रमाज्यप्लुत मधूक्षितम् ॥६७॥
 मन्त्रित पृथिवीत्येव 'मधुवातातृच जगो । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वं मन्त्रपञ्चकम् ॥६८॥
 'यत्ते प्रकारमारभ्य 'नाधिक' ते ततो जगो । त्रिमधु त्रिसुपर्णं च बृहदारण्यक तथा ॥६९॥
 जजाप यथा जाप्य तु सूक्त सौर सपोरुषम् । भुक्तवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ता स्य 'इत्युत ॥७०॥
 तृप्ता स्मेति 'सकृत्तोय ददौ भौनविमोचनम् । पिण्डपात्र 'समादाय 'छायायै प्रवदौ तत ॥७१॥
 'सा तवन्न द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमयाकरोत् । वाराहो भूमयोऽल्लिख्य समाच्छाद्य' कुशोरपि ॥७२॥
 दक्षिणाग्राङ्कुशान्कृत्वा' तेषामुपरि चाऽऽसनम् । सतिलेषु समूलेषु कुशोर्व्वेव तु सभय ॥७३॥
 गन्धपुष्पादिक कृत्वा तत पिण्डं तु भक्तित । पृथिवी 'वधीरित्युक्त्वा तत पिण्ड (पित्रे) प्रदत्तवान् ॥७४॥

पितामहा 'प्रपितामहास्तथेति (?) चान्तरिक्षत । मातामहानामप्येव ददौ पिण्डान्स श्कर ॥७५॥

वे अवशिष्ट पदार्थ भी पितरों के नाम गोत्र उच्चारण करके दे दिये । एक एक पितर के प्रति तीन-तीन आहुतिर्मा दी । तब अवशिष्ट अन्न आदि की पिण्डपात्र में रख कर सरस तथा सुस्वादु सौर एवं अन्न दिये ॥६३-६५॥
 नया, ताजा तथा उत्तम शाक, अनेक फल, अमृत के समान छद्मों प्रकार के रस ब्राह्मणों को खिलाये तथा पिण्डपात्र में पितरों को प्रदान किये । अन्न को भी तथा मधु से सिकत एवं 'पृथिवी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दिया । 'मधुवाता' इस ऋचा का भी पाठ किया ॥६६-६७॥ ॥ ब्राह्मणों को भोजन कराते समय 'यत्ते प्रकारम्, नापित्रम्' त्रिमधु, त्रिसुपर्णम् बृहदारण्यकम् इन पाँच मंत्रों का जप किया ॥६८-६९॥ फिर 'सहस्र शीर्षा इत्यादि पुरुष सूक्त का पाठ किया । ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनसे पूछा—आप तृप्त तो हुए ?' 'हम तृप्त हैं—ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर उन्हें जल दिया और पिण्डपात्र उठाकर छाया को दे दिया ॥७०-७१॥ छाया ने उस अन्न के दो भाग किये और फिर एक-एक के तीन भाग किये । वाराह ने भूमि पर रेखा खीचकर कुशा से उसे आच्छादित कर दिया ॥७२॥ कुशा के अन्न भागों को दक्षिण की ओर करने उनके ऊपर आसन दिया । मूख तथा तिल से युक्त कुशों के ऊपर गन्ध, पुष्प आदि रखकर भक्ति से पिण्ड दिया । 'पृथिवी वधी' यह पढ़ कर पिता को पिण्ड दिया ॥७३-७४॥ पितामह तथा प्रपितामह को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया । वाराह ने मातामह आदि को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया ॥७५॥ पिण्ड के उच्छिष्ट अन्न को लेप माग खाने वाले पितरों को दिया ।

१क स ०नेपु नि० । २क ०दाऽप्यत्रमासास समपूलि० । ३क ०वात सतो ज० । ४ग यत । ५ग नाविनेन त० । ६स ०विधान्ते त० । ७ग इत्यत्र । ८स ग ०इहेवो द० । ९क ०य मधुवाता जगो त० । १०क स स । ११स ॥ समुत्पूज्य । १२क ०धा दत्त्वा । १३स दस्मिन् । १४स ०हास्तुप्येचान्तरिक्षत ।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमग्नं लेपभुजेष्वदात् । एतद्वः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भविततः ॥७६॥
 'द्वयङ्गुलजानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि' च । गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
 आचम्याऽऽचमयेद्भिद्रान्पत्रानादौ ततः सुराम् । ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोऽक्षतान् ॥७८॥
 सतिलाभ्यु पितृव्यादौ दत्त्वा देवेषु साक्षतम् । अक्षय्यं नस्त्विति पितृन्प्रीयतामिति देवताः ॥७९॥
 प्रीणयित्वा परावृत्य त्रिजंषेच्चाघमर्पणम् । ततो निवृत्य तु 'जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्' ॥८०॥
 गृहाप्तः पितरो दत्त धनधान्यप्रपूर्तिरान् । अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरं स'पवित्रकान्' (?) ॥८१॥
 निशिष्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमयोऽजपत् । हिमक्षीरं मधुतिलान्पितॄणां तर्पणं ददौ ॥८२॥
 स्वस्तीत्युक्ते पंतुर्कस्तु सोराह्णे प्लावतर्पयन् (?) । रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः ॥८३॥
 सविभाग मनुष्येभ्यो ददौ त्वदिति' चान्नुवन् । कश्चि (चि) रत्नपत्रमि (त्यु) क्त्वा प्रत्युक्तरत्नैर्द्विजोत्तमाः ॥८४॥

अभिरम्यतामिर्युधाद्यः प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै । शिष्टमग्नं च पप्रच्छ तैरिष्टं सह चोदितः ॥८५॥
 पाणावादाय तान्विप्रान्कुर्यादनुगतस्त' (सं त) वा । वाजे वाजे इति 'पठन्यहर्वेदि विनिर्गत ॥८६॥
 कोदितोर्ध्वजलेनासायपसध्यं समुत्क्षिपन् । 'अलान्त्विपुलान्वालाग्नार्थयामास चाशिपम् ॥८७॥
 दातारो भौगभिवर्धन्तां तैस्तयेति समोरित । प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम् ॥८८॥

'एतद् पितृ' इस मंत्र से मन्त्रितपूर्वक दो अंगुल प्रमाण स्वच्छ तथा नवीन वस्त्र दिये । फिर गन्ध, पुष्प आदि देकर प्रदक्षिणा की ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्वयं आचमन किया और ब्राह्मणों तथा देवताओं को आचमन कराया । तब भूमि को जल से सिक्त कर पितरों तथा देवताओं को जल पुष्प, अक्षत तथा तिल दिया । फिर 'अक्षय्य न भस्तु' इससे पितरों को और 'प्रीयताम्' इससे देवताओं को जल दिया ॥७८-७९॥ जल देकर तीन बार 'अभिमर्पण' मंत्र का जप किया । तदनन्तर 'पन्मे' इसका पाठ किया ॥८०॥ 'गृहाप्त कोकातोयम्' इसका भी जप किया । दूध, मधु तथा तिल से पितरों का तर्पण किया ॥८१-८२॥ गदाधारी हरि ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में चाँदी देकर उनसे स्वस्तिवाचन करवाया । 'स्वत्' यह पठकर मनुष्यों को भाग दिया । भाग्य से संपन्न हो गया यह कहकर हरि ने ब्राह्मणों से निराम करने को कहा । उन्होंने उत्तर दिया—'हम विराम कर रहे हैं । तब अर्वाशिष्ट अन्न को हाथ में उठाकर ब्राह्मणों की दे दिया । 'वाजे वाजे' यह पढ़ते हुए हरि वेदी के पास से उठकर बाहर भागे । बरौंको तीर्षाँ को जल में अपने किपुल वालों को पंच कर अपसव्य होते हुए आसीर्वाद के लिये 'दातारो' इस मन्त्र से पितरों की प्रार्थना की । फिर प्रदक्षिणा करने उनकी वरणबन्धना की ॥८३-८८॥ बाराह ने उन्हें

१' स द्विगुणेषानि । २' स अन्यपूजितानि । ३' तत सुप्रीक्षिताः । ४' स ०म् । आशिपमिति । ५' स ०तुर्व प्रीयः । ६' ०नेद्येन मेनामिती । ७' ०न् । पाराशरपितरौ दत्तपाराश्रमदौ तत । ८' ० । ग ०न् । वीरायः । पितरौ द्वावीराश्रमदौ तत । ९' ० । ८' ०नामिदरे । १०' समवित्रकान् । राजर्त । १०' ०न् । राजर्त । ११' ०दितमीरयन् । १२' स ०नुमत् । १३' ०ठप्रन्तर्वा । १४' ०लाग्यानाम्नाः ।

आसन्नानि ददौ चेषां छादयामास शूकरः । विश्राम्यतां प्रविश्याथ पिण्डं जग्राह मध्यमम् ॥८९॥
 छायामयी महौ पत्नी तस्य पिण्डमदात्प्रभुः । आघत पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रपिणो ॥९०॥
 पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां च त्रे पादभिर्वन्दनम् । विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः ॥९१॥
 कोका च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थंकरं वचः । शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना ॥९२॥
 योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वं एव दिवश्च्युताः । तदेव भवता प्राताः प्रविशन्ती रसातलम् ॥९३॥
 योगभ्रष्टाश्च विद्वेशस्तस्यज्योतिरक्षिणः । तस्ते भूयोऽभिरसन्तु विश्वे देवा हि नः सदा ॥९४॥
 स्वर्गयास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर । सो (य) भोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक् ॥९५॥
 योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन । विवि भूमौ सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः ॥९६॥
 अन्तरिक्षे च केयाचिन्मासं पुष्टिस्तथास्तु नः । ऊर्जां चैवं हि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विभ्रुता ॥९७॥
 भवत्वैवैव योगाद्या योगमाता च खेचरी । इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः ॥९८॥
 प्रोवाचाय पितृन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम् । यदुक्तं तु भवद्भिर्न सर्वमेतद्विष्यति ॥९९॥
 यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः । अधिपज्ञस्तयंवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम् ॥१००॥
 अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूषाः ॥१०१॥

आसन्न देव विश्राम करने की कहा । तदनन्तर प्रभु ने गृह में प्रवेश कर बीच के पिण्ड को उठा लिया और अपनी स्त्री छायामयी पृथ्वी को दे दिया । सुन्दरी छाया ने भी 'आघत पितरो गर्भम्' यह कहकर पिण्ड को ग्रहण किया और ब्राह्मणों की चरणवन्दना की । तब बराह ने पितरों का विसर्जन करना चाहा ॥८९-९१॥ उस समय कोका और पितर स्वार्थयुक्त बचन कहने लगे—'भगवन्' पहले स्वर्ग में रहने वाले चन्द्रमा ने हमें शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट होकर स्वर्गच्युत हो जाओगे । सो इस प्रकार पाताल में प्रवेश करने से हमें आपने बचा लिया । योगरक्षक विद्वेदेव ने हमें योगभ्रष्ट समझकर छोड़ दिया था सो अब विद्वेदेव पुनः सतत हमारी रक्षा करें ॥९२-९४॥ विभो ! आपकी कृपा से फिर हम स्वर्ग जायें । अच्युत ! योगधारण करने वाले चन्द्रमा हमारे अधिनामक हो । योग के आधार चन्द्रमा सतत हमारी रक्षा करें । योगवत् से सदा हम पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में वार करें ॥९५-९६॥ कुछ मासों तक आवास में हमारा पोषण हो । स्वर्गा नाम से प्रख्यात यह ऊर्जा हमारी पत्नी है । यही योग से सम्पन्न होकर आवाज्ञाचारिणी योगमाता हो ॥९७३॥ पितरों के इतना कहने पर सृष्टिवर्ता वराहरूपधारी विष्णु पितरों तथा महानदी कोका से कहने लगे—'आपने जो कुछ मुझसे कहा है, यह सब होगा ॥९८-९९॥ आप ने यम देवता, चन्द्रमा स्वाध्याय और अग्नि यज्ञ होये । आपकी कल्पना सो यही है न ? ॥१००॥ अग्नि, वायु तथा सूर्य आपका स्थान होये । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पूर्वपुत्र्य कहलायेंगे ॥१०१॥ सूर्य, वसु तथा रुद्र आपकी भृत्यी कहलायेंगे । आप योगी, योगशरीरधारी, योगाधार तथा सुवर्ता

आदित्या वसवो रुद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः । योगिनो योगदेहाश्च योगधाराश्च सुव्रताः ॥१०२॥
 कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजनतुषु । स्वर्गस्थान्नरकस्थाश्च भूमिस्थाश्च चराचरान् ॥१०३॥
 निजयोगबलेनैवाऽऽप्स्यथयिष्वध्वमुत्तमाः । इयमूर्जा शशिसुता कीलालभधुविग्रहा ॥१०४॥
 भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा । तत्रैवं भवतां पत्नी भविष्यति वरानना ॥१०५॥
 'कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता । तीर्थकोटिब्रह्मपुण्या मद्रूपपरिपालिता ॥१०६॥
 अस्यामद्य प्रभृति च निवत्स्याम्यघनाशकृत् । वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०७॥
 कोकासतिलपानं च महापातकनाशनम् । तीर्थेष्वप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः ॥१०८॥
 दानमक्षय्यमुदितं जन्ममृत्युजरापहम् । माघे मास्यतिथे पक्षे भवति ह्युपपन्नये ॥१०९॥
 कोकामुखमुपागम्य स्यात्तस्य दिनपञ्चकम् । तस्मिन्काले शुभः श्राद्धं पितृणां निर्वपिष्यति ॥११०॥
 प्रागुक्तफलभागी ॥ भविष्यति न संशयः । एकादशीं द्वादशीं च स्येयमत्र मया सदा ॥१११॥
 यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत् । तद्ब्रजध्वं महाभागाः स्थानमिष्टं यथेष्टतः ॥११२॥
 अहमप्यत्र वत्स्यामीत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत । गते वराहे पितरः कोकामागम्य ते ययुः ॥११३॥

होकर स्वेच्छा से विचरण करेंगे और समस्त जीवों को फल देंगे ॥१०२॥ आप सूर्य में, पृथ्वी पर तथा नरक में रहने वाले समस्त चराचरों को अपने योगबल से समृद्ध करेंगे। यह चन्द्रमा की पुत्री कर्जा, जिसका शरीर जल तथा मधु का है, दक्ष की महामाग्यवती तथा स्वधा नाम से प्रख्यात बन्धी होगी। वही पर यह सुमुखी आपकी पत्नी होगी ॥१०३-१०५॥ यह हिमालय के अधीन होकर कोकनदी नाम से विख्यात होगी और क्योंकि तीर्थ के समान पुण्यदायक एवम् मेरे रूप से सुरक्षित होगी ॥१०६॥ आज से लेकर मैं इसमें निवास करूँगा और लोगों के पापों का नाश करूँगा। वराह के दर्शन तथा पूजन पुण्यकारक तथा शोक-मोक्ष-दायक हैं ॥१०७॥ कौवा का जल पान करने से महापापी का नाश होता है। तीर्थों में स्नान पुण्यकारक एवम् उपवास स्वर्गदायक माना जाता है। ॥१०८॥ कभी मष्ट न होने वाला दान तो अक्षय्य तथा जन्म, मृत्यु एवम् बुढ़ापे का नाश करने वाला होता है। माघ मास के कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के क्षय होने पर आप लोग कौवा तीर्थ में आकर पाँच दिन ठहरेंगे ॥१०९॥ उन दिनों जो यहाँ पितरों का श्राद्ध करेगा, वह निःसन्देह पूर्वकचित फल का भागी होगा ॥११०॥ एकादशी और द्वादशी तिथि को मैं यहाँ सदा रहूँगा। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन तिथियों में यहाँ उपवास करेंगे, वह पूर्वकचित फल प्राप्त करेगा ॥१११॥ महाभागी! इस लिये आप लोग स्वेच्छा से अपने वाञ्छित स्थान को जाइय। मैं भी यहाँ निवास करूँगा। इसका बहुर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥११२॥ वराह के विलीन हो जाने पर पितर लोग कौवा से विशद लेकर चले गये। कौवा भी तीर्थों के साथ हिमालय पर रहने लगी। पृथ्वीमयी छमा ने, जिसने धूबरी का

१०० पा। आनेयदुहिता ५०। २४ दुहिता। ३४ ०५ नाम्ना ५ वि०। ४५ ०टिवहा। ५५ पूरया। ५६ पुजाया नु विमु०। ६५ ०षट्पत्य तथा दानम्०। ७५ यास्येति०। ८५ मासि ति० ८५ स. नरोत्तम. ए०।

कोकाऽपि तीर्थसंहिता सस्थिता गिरिराजनि । छाया महीमयी कोढो पिण्डप्राशनवृहिता ॥११४॥
 'गर्भमादाय सधद्धा वाराहस्यैव सुन्दरी । ततोऽस्या ' प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुर ॥'
 प्राग्व्योतिष च नगरमस्य दत्त च विष्णुना ॥११५॥

एव मयोक्त वरदस्य विष्णो कोकामुखे दिव्यवराहरूपम् ।

भुत्वा नरस्थवतमलो विषाम्ना दशाश्वमेधेष्टिफल लभेत ॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसवादे श्राद्धविधिनिरूपण

नामकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१९॥

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय.

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मुनय ऊचु

भूय प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । कथं वच च कदा केयु कंस्तदब्रूहि तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्ङ्गला श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । यथा यत्र यदा ययु यत्र येस्तद्वाम्यहम् ॥२॥

कल्प बनाकर पिण्ड का भक्षण किया था श्राद्धपूर्वक वाराह ही का गर्भ धारण किया । तदनन्तर छाया के नरकासुर भौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विष्णु ने उसे प्राग्व्योतिष नामक नगर (आधुनिक गोहाटा) दिया । इस प्रकार मैंने वरदायक विष्णु के कोकातीर्थ में दिव्यवराह रूप धारण करने का कारण बतला दिया । जो इस आख्यान को सुनेगा वह निमल तथा पापरहित होकर दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करेगा ॥११३ ११६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के सवाद प्रवरण में श्राद्धविधिनिरूपण नामक दो सौ उनीसवीं अध्याय समाप्त ॥२१९॥

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प वा वर्णन

मुनियों ने कहा—भगवन ! पुन श्राद्धकल्प को विस्तार से बतलाइये । तपोधन ! कैसे वहाँ जिस समय जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह बताइए ॥१॥

व्यास ने कहा—मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग श्राद्धकल्प को विस्तारपूर्वक सुनिये । जिस प्रकार जहाँ जब जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह मैं बतलाता हूँ ॥२॥ कुत्रघर्षों को मानने वाले ब्राह्मण

१ ग ०५ सस्पृशद्वि० । २ ध ०स्यायव० । ३ य ०रकोऽमु० । ४ क कंस्तु ब्रूहि । ५ क येन ।

ब्राह्मणः धन्विष्वेयैः 'आढं स्ववर्णोदितम् । 'कुलधर्ममनुसिष्टिष्ठिदतित्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥३॥
 स्त्रीभिर्वर्णवरैः 'शूद्रैर्विप्राणामनुशासनात् । अमन्त्रकं विधिपूर्वं 'वह्निपागविवाजितम् ॥४॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च । शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः ॥५॥
 सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च । संगमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु ॥६॥
 स्वनलितेषु गेहेषु स्वेष्टवनुज्ञापितेषु च । दिव्यपादपमूलेषु यज्ञिष्वेषु हृदेषु च ॥७॥
 आढमतेषु दातव्यं वज्रमतेषु चोच्यते । किरातेषु कलिङ्गेषु कोटकणेषु कृमिष्वपि ॥८॥
 दशार्णेषु कुमार्येषु तङ्गणेषु क्रयेष्वपि । सिन्धोरुत्तरकूलेषु मर्मदायाञ्च दक्षिणे ॥९॥
 पूर्वेषु करतोयायां न देयं आढमुच्यते । आढं देयमुशन्तीह मासि मास्यद्वयभये ॥१०॥
 पौर्णमासेषु (?) आढं च 'कर्तव्यमृग्योच्चरे । नित्यआढमर्दवं च 'मनुष्यैः सह गोप्यते ॥११॥
 नैमित्तिकं सुरैः सार्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा । 'काम्याग्न्यानि आढानि प्रतिसंवत्सरं द्विजैः ॥१२॥
 वृद्धिआढं च कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु च । तत्र 'युष्मान्दिजानाहुर्मन्त्रपूर्वं तु वै द्विजाः ॥१३॥
 कर्मा गते सवितरि दिनानि दश पञ्च च । पूर्वर्णवेह विधिना आढं तत्र विधीयते ॥१४॥

धन्विष्वेयः तया वैद्यः अपने वर्णधर्मानुसार मन्त्रपूर्वक आढ करें ॥३॥ स्त्री तथा वर्णों में नीच शूद्र ब्राह्मणों की आत्मा से बिना मन्त्र के आति तथा यज्ञ से रहित विधिपूर्वक आढ करें ॥४॥ द्विवचन । पुष्कर आदि तीर्थों में, पवित्र मवनों में, पर्वतों के शिखरों पर, पवित्र देशों में, पवित्र जलवाली नदियों, नवों, सरोवरों, नदियों के संगमों, सातों समुद्रों के किनारे, अच्छी तरह लीये-पीते हुए अपने घरों में या आत्मा केवर दूसरे के घरों में, दिव्य वृक्षों के मूलों में, यज्ञिय स्थानों में तथा झीलों के पास आढ करना चाहिये । अब वहाँ नहीं करना चाहिये, वह वतलता है ॥५-७॥ निरातदेश, कलिङ्गदेश, कोकनदेश, कृमिदेश, दशार्णदेश, कुमार्यदेश, तण्डणदेश, जवदेश, सिन्धु नदी से उत्तर, नर्मदा से दक्षिण तथा वरतीया से पूर्व देशों में आढ नहीं देना चाहिये ॥८-९॥ प्रत्येक मास में चन्द्रमास होने पर आढ देना चाहिये । पूणिमा की नक्षत्रगोचर हान पर आढ करना चाहिये । मनुष्यों के साथ जो किया जाता है । वह नित्यआढ तथा अर्द्ध आढ बहलाता है ॥१०-११॥ देवताओं के साथ हान वाला आढ नैमित्तिक बहलाता है । अन्य जो प्रतिवर्ष आढ निये जाते हैं, वे काम्य बहलाते हैं । द्विजाओं जातकर्म आदि सत्सारा में वृद्धिआढ अर्थात् मासीआढ करना चाहिये । वहाँ दो-दो ब्राह्मणों को बुलाना चाहिये ॥१२-१३॥ बन्ध्यारात्रि में सूर्य के प्रवेश करने पर पञ्च दिनो तक पूर्ववर्षित विधान से ही आढ करना चाहिये ॥१४॥ प्रतिपदा में आढ करने से घन

१क ०६ नायं मयोदि० । २ग ०धर्माण (य) मनुर्जर्दा० । ३क ग ०द्वेदेय विप्रानु० । ४क ०तु । समन्त्रविधिं वापि व० । य. ०तु । वह्निवर्जं तु पूर्ववद्वि० । ५क ग ०ह्निपागवि० । ६ग वा । ७य. ०मु । अनु० । ८स. ०पु त्रमिष्व० । ९ग कुपेष्वापि । १०क. स. ०यामा नः । ११क स मासे मासे च पशयो । १० । प० । १२स. ०र्तव्य चतुस्रो० । १३स ०नुना पारिणी० । १४य. ०म्याग्नेयानि । १५क. स वै । १६स ०हर्मातुपू० । १७ग. य पावर्णेह ।

प्रतिपद्धन्ताभाय द्वितीया द्विपदप्रदा । पुत्रार्थिनो तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥१५॥
 भियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः । गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम् ॥१६॥
 त्रितीयो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् । वेदांस्तथाऽऽप्नुयात्सर्वानेकादश्यां त्रियापरः ॥१७॥
 द्वादश्यां जयलामं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजावर्द्धि पशुं मेघां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥१८॥
 दीर्घायुर्यवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न संवेहः श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः ॥१९॥
 यथासंभविनाऽग्नेन श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः । युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥२०॥
 तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता । श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥२१॥
 सर्वाङ्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमश्नुते । अतः परं मुनिश्रेष्ठाः शृणुष्व यदतो मम ॥२२॥
 पितॄणां प्रीतये यत्र यद्देयं प्रीतिकारिणम् । मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्याग्नेन जायते ॥२३॥
 मासद्वयं मास्यमासैस्तृप्तिं दान्ति पितामहाः । त्रीन्मासान् हारिणं मासं विजिघं पितृतृप्तये ॥२४॥
 पुष्ट्याति चतुरो मासाञ्जशस्य पिशितं पितॄन् । शाकुनं पञ्च वै मासान्यभ्यासाञ्ज्जकरामियम् ॥२५॥
 छागलं सप्त वै मासानैण्यं चाष्टमासकान् । करोति तृप्तिं नव वै रुहमासं न संशयः ॥२६॥

काम होता है, द्वितीया में सन्तान, तृतीया में पुत्र, चतुर्थी में शत्रुनाश, पञ्चमी में स्वामी-प्राप्ति, षष्ठी में सम्मान, सप्तमी में गणों का आधिपत्य, अष्टमी में उत्तम बुद्धि, नवमी में स्त्री और दशमी में मन्वोरप पूर्ण होता है। एकादशी को श्राद्धक्रिया में तत्पर व्यक्ति समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है ॥१५-१७॥ द्वादशी में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति विजय प्राप्त करता है। त्रयोदशी में श्रद्धा से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति निःसन्देह प्रजा, पशु, बुद्धि, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥१८-१९॥ जिसका पितर युवावस्था में ही मर गया हो या शस्त्री से आहत होकर मर गया हो, वह यदि पितर की तृप्ति चाहे तो यथासमर्थ अन्न से चतुर्दशी में श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे ॥२०॥ अमावास्या में पवित्र होकर यज्ञपूर्वक श्राद्ध करने से मनुष्य की समस्त अमिलापायें पूरी होती हैं और वह अनन्त काल तक स्वर्ग में सुख करता है। मुनिधेय्यो! अब इससे बाद प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करने वाले मनुष्य को पितरों की तृप्ति के लिये क्या देना चाहिये, वह मुझसे सुनिये ॥२१-२२॥ हविष्याग्न से पितरों को एक मास तक तृप्ति मिलती है। मत्स्य-मासों से दो मासों तक तृप्ति मिलती है। हिरण्य के मास से पितरों को तीन मास तक तृप्ति मिलती है। शरणांग के मास से पितरों को चार मास तक तृप्ति मिलती है ॥२३-२४॥ पक्षी के मांस से पाँच मास तक और शूकर के मांस से छह मास तक तृप्ति मिलती है ॥२५॥ बकरे के मांस से सात मास तक और हरिण के मांस से आठ मास तक तृप्ति मिलती है। कृष्णमृग का मांस निःसन्देह भी मास तक तृप्ति देता है

१श. त्रिप। २क. येष्टो। ३श. ०म्। सप्तम्यां धियमाप्नोति कार्यप्रदाष्टमी मता। त्रि०। ४त. ०म्यां पनुमानो०। ५स. पुत्रलाम। ६क. स. श्राद्धे। ७क. स. ०दापरो नटः। य०। टक. य. पञ्च प्रदेश। ९क. ग. ०शरणम्। मा०। १०क. छागुन्त।

'गव्यं' मांसं पितृवृत्तिं करोति दशमासिषीम् । तयंकादश मासांस्तु ओरध्रं पितृवृत्तिदम् ॥२७॥
 संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च । याधोनमा(धींणसा) मियं लोहं कालशार्कं तथा मधु ॥२८॥
 रोहितामिदमन्नं च दत्तान्पातमनुलोद्भवैः । अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतास्तथा ॥२९॥
 पितृणां नात्र संदेहो गयाध्राद्वं च भो द्विजाः । यो ददाति गुहोन्मिधांस्तिलान्या धाद्वकर्मणि ॥३०॥
 मधु या मधुमिश्रं या अक्षयं सयमेव तत् । अपि नः स कुले भूपाद्यो नो दद्याज्जलाज्जलिम् ॥३१॥
 पायसं मधुमंदुक्कं यथास्तु च मघासु च । एष्टव्या ध्रुवः पुत्रा यद्येवौजपि गयां व्रजेत् ॥३२॥
 गौरो वाऽप्युदहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । वृत्तिवत्सु पितृवृत्त्यं स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥३३॥
 मयःश्वामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत् । शौर्यमाह्वसु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसो ॥३४॥
 पुष्ये तु धनमक्षय्यमादलेपे चाऽऽप्युदत्तमम् । मघासु च प्रजां पुष्टिं सौभाग्यं काल्मुनीषु च ॥३५॥
 प्रधानशीलो भवन्ति सापत्यद्वयोत्तरासु च । प्रयाति ध्येष्टतां शास्त्रे हस्ते धाद्वप्रदो नरः ॥३६॥
 रूपं तेजश्च चित्रासु तथाऽऽप्ययमवाप्नुयात् । याजिज्यलाभदा स्याती विदासा पुत्रशामदा ॥३७॥

कुवता चानुराधासु ता दद्युश्चश्र्वर्तिताम । आधिपय च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ॥३८॥
 आपादासु यश प्राप्तिरुत्तरासु विशोक्ता । श्रवणेन शुभाल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ॥३९॥
 घदवित्त्वमभिजिति भिषक्तिर्द्वि च वारुणे । अजाविक प्रोष्ठपद्या विददगावस्त (श्च त) योत्तरे ॥४०॥
 रयतोपु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान । आद्य कुर्वेत्स्थाऽऽप्नोति भरणीध्वायुस्तमम् ॥४१॥
 एव फलमवाप्नोति ऋक्षस्वतषु तस्ववित् । तस्मात्काम्यानि आद्यानि देयानि विधिवद्विजा ॥४२॥
 कयाराशिगत मूर्धे फलमत्यन्तमिच्छता । यायान्कामानभिष्याय कन्याराशिगत रवौ ॥४३॥
 आद्य कुर्वन्ति मनुजास्तास्ता कामास्तलभन्ति ते । नादोमुखाना कतय्य कयाराशिगते रवौ ॥४४॥
 पौणमास्यां तु फलव्य धाराहवचन यया । दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्यावराणि चराणि च ॥४५॥
 पिण्डमिच्छन्ति पितरः कन्याराशिगते रवौ । कया गते सवितरि यान्यहानि तु योऽश ॥४६॥
 ऋतुभिस्तानि तुल्यानि ववो नारायणोऽब्रवीत् । राजसूयाश्वमेधाम्या य इच्छेदुलभ फलम् ॥४७॥
 अप्यम्बुशाकमलाद्य पितुः कयागतऽचयेत् । उत्तराहस्तनक्षत्रगत तीक्ष्णाशुमालिनि ॥४८॥
 योऽचयः स्वपितृभवाया तस्य वासस्त्रिविष्टपे । हस्तक्षग दिनकर पितुराजानुशासनात् ॥४९॥

मे स्वामित्व तथा मूल मे उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है । पूर्वाषाढ में यग की प्राप्ति तथा उत्तराषाढ में धौमनाग होता है । श्रवणा में शुभलोक तथा घनिष्ठा में बहुत धन मिलता है ॥३८-३९॥ अभिजित् में धाढ करने से मनुष्य वेदवेत्ता होता है । गतमिया में वधक की सिद्धि होत है । पूषमात्रपद में भेदे तथा बवरे का लाभ होता है । उत्तरमात्रपद में गौ का लाभ होता है । रेवती में दस्ते (घातु) की प्राप्ति होती है । अश्विनी में घोडा की प्राप्ति होता है । भरणी में आद्य करनेवाला व्यक्ति उत्तम आयु प्राप्त करता है ॥४०-४१॥ इन नक्षत्रों में धाढ करनेवाला तत्त्ववेत्ता मनुष्य इस प्रकार फल प्राप्त करता है । द्विजवद । इसलिये काम्य धाढ करना चाहिये ॥४२॥ अत्यन्त फल के इच्छुः मनुष्य सूर्य के कयाराशि में प्रवेग करने पर धाढ करे । कया राशि में सूर्य के जाने पर मनुष्य (मन म) जो ज्ञा कामनाय रखकर धाढ करता है वह सब कामनायें उसका पूरी होती हैं ॥४३॥ सूर्य के कयाराशि में जाने पर पौणमासी को नाग/मुख धाढ करना चाहिये जैसा कि धाराह में कहा है ॥४४॥ सूर्य के कयाराशिगत होने पर स्वयं मे पृथ्वी पर स्वावर जन्म—जित जितों भा रूप में रहत हुए पितर पिण्ड चाहते हैं । नारायण भगवान् का कहना है कि सूर्य के कयाराशिगत होने पर जो सोलह दिन होते हैं वे यग तुय हैं । जो राजसूय तथा अश्वमेध के दुलभ फल की इच्छा करता है वह सूर्य के कयाराशिगत होने पर जत्र धारा मूल आदि से पितरों की पूजा करे ॥४५-४७॥ उत्तराषाढ तथा हस्त में सूर्य के प्रवेग करने पर जो मन्त्र से पितरों की पूजा करता है उसका वास स्वयं मे होता है ॥४८॥ हस्त नक्षत्र में सूर्य के प्रवेग करने पर यमराज की आगा से पितरों का नगर तब तब धूम रहता है जब तब धुरिचक राशि का दर्शन नदी

१स विनेपन । २स स ०मान्नामाच० । ३स विद्रिपस्तु तयो । ४ विद्रिपस्तु तयो० । ५क स ०नि कनव्यानि द्विजोत्तमा । क० । ५स ०येच वि० ।

तावन्निपुणो शूया यावद्वृद्धिचक्षुर्दर्शनम् । वृद्धिचक्षे समतिव्राते पितरो देवतं सह ॥५०॥
 'निन्दस्य प्रतिगच्छन्ति दातव्यं दत्त्वा सुदुःखम्' । अष्टकासु च कर्तव्यं आढ मन्वन्तरासु यै ॥५१॥
 अन्वष्टकासु ऋमशो मातृपूर्वं सद्विध्यते । ग्रहणे च व्यतीपाते 'रविचन्द्रसमागमे ॥५२॥
 जन्मने ग्रहपोषायां आढ पार्वणमुच्यते । अयनद्वितये आढ विषुवद्वितये तथा ॥५३॥
 तार्क्ष्णिषु च कर्तव्यं आढ विधिवदुत्तमम् । एषु कार्ये द्विजा आढ पिण्डनिर्वापणायते ॥५४॥
 वैशाखस्य सृतीपायां नवम्यां कर्तव्यस्य च । आढ कार्यं तु शुक्लायां सत्रान्तिविधिना नरैः ॥५५॥
 प्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे च दशमेऽहनि । आढ कार्यं पापसेनं दक्षिणायनवच्च तत् ॥५६॥
 यथा च श्रोत्रियोऽप्येति गृह्येदविदग्निमान् । तैर्नरेण च कर्तव्यं आढ विधिवदुत्तमम् ॥५७॥
 आढौषधस्यसंप्राप्तियंवा" स्यात्तापुसमना । पार्वणेन विधानेन आढ कार्यं तथा द्विजैः ॥५८॥
 प्रतिपद्यन्तर कार्यं "मानापिप्रोमृतेऽहनि । पितृष्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातृश्वेष्टस्य सैव हि ॥५९॥
 पार्वणं वैष्णवं स्यादेवोद्दिष्टं सुरैर्यना । द्वौ दंये "पितृकार्ये प्रीनेर्षकमुभयत्र या ॥६०॥
 मानामहानामप्येव सत्यमूहेन कीर्तितम् । प्रेतीभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा ॥६१॥

सतिलं सकुशं दद्याद्बर्हिर्जलसमीपतः । तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं प्रेतास्थिचयनं द्विजैः ॥६२॥
 दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६३॥
 'सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्विष्टं प्रचक्षते' । द्वादशेऽह्नि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम् ॥६४॥
 मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः । ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं यमात् ॥६५॥
 कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं प्रोच्यते पुनः । ततः प्रभृति निर्भुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः ॥६६॥
 अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः । नान्दोमुखास्त्वमूर्ताः स्युर्मूर्तिमन्तोऽय पार्वणाः ॥६७॥
 एकोद्विष्टाशिनः प्रेताः पितृणां निर्णयस्त्रिधा ॥६७॥

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम । प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर ॥६८॥

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुष्वं वदतो भम । तच्चापि देवरहितमेकार्थकपविप्रकम् ॥६९॥
 नैबानौकरणं तत्र तद्ब्रह्माऽऽवाहनवर्जितम् । अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदमुजो द्विजान् ॥७०॥
 विशेपस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासत्रयादिकः । तं कथ्यमानमेकाद्याः शृणुष्वं मे द्विजोत्तमाः ॥७१॥

बाहुर मे देना चाहिए । द्विजातियो को तीसरे दिन प्रेत वा अस्थिसंचय करना चाहिये ॥६१-६२॥ दस दिन पर ब्राह्मण, बारह दिन पर क्षत्रिय, पन्द्रह दिन, पर वैश्य और एव मास मे शूद्र शुद्ध होता है ॥६३॥ अर्थात् वा अन्न होने पर घर मे एकोद्विष्ट श्राद्ध करना चाहिये । बारहवें दिन एव मास मे, तीन पक्ष मे और उसके बाद प्रत्येक मास मे एक वर्ष तक श्राद्ध करना चाहिये । उसके बाद त्रम से सपिण्डीकरण करना चाहिये ॥६४-६५॥ सपिण्डीकरण के हो जाने पर पार्वण हो जाता है । तब से जीव प्रेतत्व से मुक्ति पाकर पितर हो जाता है ॥६६॥ पितर-को प्रकार के होते हैं—एक स्वरूपवान् और दूसरे स्वरूपरहित । उनमे नान्दीमुख श्राद्ध वाले पितर स्वरूप-रहित कहलाते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले स्वरूपवान् कहलाते हैं । एकोद्विष्ट श्राद्ध के पिण्ड खाने वाले प्रेत कहलाते हैं—यह तीन प्रकार का निर्णय पितरो के विषय मे किया गया है ॥६७॥

मुनियो ने कहा—द्विजवर ! प्रेत वा सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये, वह हमे विस्तार से बतलाइये ॥६८॥

व्यास ने कहा—विप्रबुद्ध ! सपिण्डीकरण के बारे मे मुझसे सुनिये । वह एक अर्थ से तथा एक पवित्री से देवरहित करना चाहिये ॥६९॥ वहाँ हवन न हो तथा आवाहन किया जाये । वहाँ भी आसव्य करना चाहिये और अयुम (जोड़ नही) ब्राह्मणों को खिलाना चाहिये ॥७०॥ द्विजप्रेतो ! उसमे प्रतिमास कर्म आदि करने की दूसरी विधेयता है । उस वही जाने वाली विधेयता को आप लोग एवाप्र मन से सुनें ॥७१॥ वहाँ तिल-अन्न्यों से

१क. व्य प्रत्यगावाहन । २ व्य प्रत्यगाहवनी द्वि० । २क. भूमिष । ३म. ०न्ते मृतप्रा० । ४क. प्रशस्यते । ५क. घ. ०ये चैव मा० । घ. ०ये चैवमा० । ६क. घ तदा । ७क. घ. ०ण प्राप्तेत्युन । ८म. पार्वणे । ९घ. ०णाः प्रेतत्वान्पितृतां गताः । क० ।

'तिलगन्धोदकैर्युक्तं' तत्र पात्रचतुष्टयम् । कुर्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः ॥७२॥
पात्रत्रये प्रेतपात्रादर्थं चैव प्रसेचयेत् । ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥७३॥
स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम् । सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥७४॥
प्रीतसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि च तत्कार्यं पितॄणां विधिचोदितम् ॥७५॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः । कुर्युरेतं विधिं सम्यक्पुत्रस्य च सुताः सुताः ॥७६॥
कुर्यान्मातामहानां तु पुत्रिकातनयस्तथा । च्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥७७॥
पूजयेद्युष्याग्न्यायं श्राद्धेनैमित्तिकैरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ॥७८॥
तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुम्बिनाम् । तज्जातीयंनरैः सम्यग्वाहाद्याः सकलाः त्रियाः ॥७९॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः । एसा च कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥८०॥
वक्ष्ये श्राद्धाश्रयामग्न्या नित्यनैमित्तिकां श्रियाम् । दशंस्त (दशं स) अ नितिमत्तं तु विद्यादिन्दुक्षयाग्वित् (तम्) ॥८१॥

निश्च्यस्तु नियतः कालस्तस्मिन्कुर्याद्यथोदितम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ॥८२॥
स तु लेपभजं याति प्रलूतः पितृपिण्डतः । तेषां हि यश्चतुर्योऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत् ॥८३॥

पुत्र बार बार होने चाहिये, जिनमें तीन तो पितरों के लिये और एक प्रेत के लिये होता चाहिये ॥७२॥ 'ये समाना' इष्टा जप करते हुए तीनों धानो में प्रेतधान से जल छेड़ना चाहिये और अवशिष्ट विधान पूर्ववत् करना चाहिये। स्त्रियो का भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध इसी प्रकार होगा। पर पुत्र के अभाव में उनका सपिण्डीकरण नहीं हो सता ॥७३-७४॥ मनुष्य स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष किया करे। पितरों का एकाद्दिष्ट उनकी मृत्यु-तिथि पर विधिपूर्वक करना चाहिए ॥७५॥ पुत्र के अभाव में सपिण्ड (पिंड देने के अधिकारी) और उनके अभाव में सहोदर माई एकोद्दिष्ट करें। पुत्र के पुत्र और उनके भी पुत्र विधान पूर्वक कर सकते हैं ॥७६॥ मातामह का श्राद्ध दोहिन कर सता है। दोनों की सन्तान नहलाने वाले मनुष्य मातामह दोनों के नैमित्तिक श्राद्ध न्याय-पूर्वक करें। सय के अभाव में पत्नी पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के ही करे ॥७७-७८॥ स्त्री के अभाव में कुटुम्ब-पुत्र्य व्यक्ति का श्राद्ध राजा कराये। उसकी जाति-बिरादरी के लोगी द्वारा उसकी सारी क्रियायें राजा द्वारा सम्पन्न की जानी चाहिये, जिसलिये 'नि' राजा समस्त वर्षों का वधू नहलता है ॥७९॥ विप्रवृद्ध। य नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध देने बतला दिये। अब श्राद्ध सम्बन्धी नित्य-नैमित्तिक क्रिया को भी मैं बतलाऊंगा ॥८०॥ उसमें चन्द्रशय-पुत्र अमावस्या ही कारण है। नित्य तो निश्चित समय का नाम है। उसमें जैसे बताया गये हैं वैसे करना चाहिये। सपिण्डीकरण से आगे पिता का जो प्रपितामह है, वह लेपमुत्र मण्डूक खाता है। अनएव पितरों का पिण्ड उसे नहीं पटना है। मातामह के पक्ष में भी जो पोषा पडता है, वह भी लेपमुत्र है। इसलिये वह भी सम्बन्ध से हीन

१४. ० लदभोद० । २६. ० क्त कुर्यादप्रव० । ३६. ० म् । मित्राणां तव० वि० । ४४ यै स्त्रीणां तद्विधि० ।

५क. ०पा। आमु०। ६क. ०येज्ज कु०। ७ग. ०म्यग्दायायाः। ८क. सप्राप्ये।

सोऽपि संबन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८४॥
 पिण्डसंबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः । लेपसंबन्धिनश्चाप्ये पितामहपितामहात् ॥८५॥
 प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः । इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः साप्तपौष्ट्यः ॥८६॥
 यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा । ततोऽप्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकोक्तः ॥८७॥
 येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः । तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्मयाविधि ॥८८॥
 स समाप्यायते विप्रा येन येन वदामि तत् । अन्नप्रक्रिरणं यत्तु मनुष्यैः विद्यते भुवि ॥८९॥
 तेन तृप्तिमुपापान्ति ये पिशाचस्त्वमागताः । यदम्बु स्नानवद्भोज्यं भूमौ पतति भो द्विजाः ॥९०॥
 तेन ये तरता प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते । यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥९१॥
 ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गताः । उद्धृतेऽप्यपि पिण्डेषु यादवाम्बुकणिका भुवि ॥९२॥
 ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः । ये चादन्ताः कुले वालाः विद्यायोगाद्बहिष्कृताः ॥९३॥
 विपन्नास्त्वन्धिकाराः समार्जितजलाशिनः* । भुक्त्वा चाऽऽचामता यच्च यज्जलं चाद्विज्ञेयौचजम् ॥९४॥
 ब्राह्मणानां तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति यैः । एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥९५॥
 'कश्चिज्जलाभविशेषः क्षुधिरच्छिष्ट एव वा । सेनाभ्रं* कुले तत्र ये च योग्यस्तरं गताः ॥९६॥

होने के कारण पिण्ड नहीं पाता है । पिता, पितामह, प्रपितामह—ये ही तीन पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहलाते हैं । पितामह के पितामह से लेकर तीन पुरुष तब लेप सम्बन्धी कहलाते हैं और सातवां यजमान कहलाता है । यही सात पुरुषों का सम्बन्ध मुनिया ने बतलाया है ॥८१-८६॥ यजमान से लेकर ऊपर अनुलेप-भुज कहलाते हैं और उनसे अतिरिक्त सब पूर्वज कहलाते हैं । जो नरक में रहते हैं, जो पर्यायों में प्राप्त हैं तथा जो मृत आदि के योनि में स्थित हैं, उन सबका श्राद्ध यजमान विधान पूर्वक करे ॥८७-८८॥ विप्रबृन्द ! अब जो-जो करने से जीव को तृप्ति मिलती है, वह मैं कहता हूँ । भूमि पर जो अन्न बिखरा जाता है, उससे पिशाच-योनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥८९॥ स्नान करने से जो जल पृथ्वी पर गिराया जाता है, उससे वृक्षयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९०॥ जो मुग्धित जल के फुहारे मूल पर गिराये जाते हैं, उनसे देवकुल में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९१॥ पिण्डों के उठा देने पर पृथ्वी, पर जो जल-विन्दु गिरता है, उससे पर्यायों में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९२॥ ब्राह्मणों को जो जल पिलाया जाता है उससे उन लोगों को (मृत्यु के बाद) तृप्ति मिलती है, जो निर्जंत वालन क्रियायोग से कुलज्युत कर दिये गए हों, जो विपत्ति-भ्रस्त होकर अविचार-वर्चित कर दिये गए हों, जिन्होंने मर्त्यजल पी लिया है, और जिन्होंने खाकर चरण पोने के बाद बचे जल से आचमन किया है । इस प्रकार (आदित्यल में) जो यजमान और उन ब्राह्मणों का पवित्र या जूटा जल और अन्न गिरता है, उससे उस (यजमान के) कुल में मरकर अन्य योनिया में गये हुए जीव तृप्ति को प्राप्त करते हैं । ९३-९६॥ द्विजपण ! लोग मर्त्य, भौतिक श्राद्धक्रिया में सम्पन्न व्यक्तियों का अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो आद

१४ • मन्त्र ले० । २४ • वाक्यवा । ३४ • योग्यप्रास्थिता । ४४ • मार्जनान्पताति० । ५४ • वाक्ये तेन । ६४ • परिचितला० । ७४ • तेन तेन ।

प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् । अन्यायोपाजितैर्यैश्चछादं त्रियते नरैः ॥१७॥
तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुत्कसाद्यासु योनिषु । एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवै ॥१८॥
श्राद्धं कुर्वद्भिरग्राम्बुविक्षेपैः संप्रजग्यते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाक्रेनापि यथाविधि ॥१९॥
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कृत्ते कश्चिन्न सौदति । श्राद्धं देयं तु विप्रेषु सयतेष्वग्निहोत्रिषु ॥२०॥
अवदत्तेषु विद्वत्सु श्रोत्रियेषु विशेषतः । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णं षडङ्गवित् ॥२१॥
मातापितृपरब्रह्मैव स्वस्तीयः सामवेदवित् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्याय च भोजयेत् ॥२२॥
मातुल, इवशुरः श्यालः सञ्जयी द्रोणपाठकः । मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः ॥२३॥
अकल्पः कल्पसंतुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः । एते श्राद्धे नियोक्तव्या ब्राह्मणा, षड्विक्तपादनाः ॥२४॥
निमग्नयेत पूर्वेषु पूर्वोक्ताङ्गिजसत्तमान् । देवे नियोगे पित्र्ये च तास्तयैवोपकल्पयेत् ॥२५॥
तैश्च संयमिभिर्भायं यस्तु श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽपिगच्छति ॥२६॥
पितरस्तस्य ये मासं तस्मिन्नेतसि शेरसे । गत्वा च योपितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु ॥ (य) न्छति ॥२७॥
रौतौमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः । तस्मात्स्व (सु) प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमग्नघ्नम् ॥२८॥
अप्राप्तौ तद्विद्वने धासि कर्ष्या योषितप्रसङ्गिनः । भिसार्थमागतांश्चापि कालेन सयताम्यतीन् ॥२९॥

करते हैं, उस श्राद्ध से चाण्डाल-व्याधि आदि योनियों में भी वे व्यक्ति तृप्त नहीं होते हैं। विप्रवृन्द । इस प्रकार श्राद्ध करने हुए बन्धुओं द्वारा जो जल दिया जाता है, उससे बहुतों को तृप्ति होती है। इसलिये मनुष्य श्राद्ध लेकर भी भक्ति से विधान पूर्वक श्राद्ध करे ॥१७-१९॥ श्राद्ध करने से कुल में किसी का षण्ट नहीं होता है। सयमी, शनिहीनी, शुद्ध, विद्वान् तथा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणों को श्राद्धीय द्रव्य देना चाहिये ॥२०॥ षड्विक्तपद सेवन करने वाले, 'मधुघाता' इत्यादि मन्त्रों के ज्ञाता, छोहो अग्नौ के ज्ञाता, मातृ पितृ-अक्त, भागिनेय, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा उपाध्याय का मानन करना चाहिए ॥२१-२२॥ मामा इवशुर, साला, सम्बन्धी, पुपणार्थ विशारद, मण्डलब्राह्मण, द्रोणपाठक, सशयरहित, सतुष्ट, प्रतिग्रह-रहित—ये पणित-यजिन करने वाले ब्राह्मण श्राद्ध में नियुक्त होने चाहिये ॥२३-२४॥ श्राद्ध से पहले ही दिन पूर्वोक्त उत्तम ब्राह्मणों को निमग्नण दे देना चाहिये। देवधम तथा पितृवर्गदोगों में उसी प्रकार से करना चाहिये ॥२५॥ जो श्राद्ध करे उसे सयमी होता चाहिये। श्राद्ध करके तथा श्राद्धाग्न सावर जा मैथुन करता है, उसके पितर को उसी वीथ में एक मास तक साना पड़ता है ॥२६॥ स्त्री ने पास जाकर जो श्राद्ध में भोजन करता है और जो भोजन करके स्त्री के पास जाता है, उन दोनों ने पितरों को एक मास तक वीथ तथा मूत्र खाना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह पहले ही निमग्नण दे दे ॥२७-२८॥ पता लग जाने पर उस दिन भी स्त्री-प्रसन्न करने वालों को छोड़ देना चाहिये। समय से भिसा के लिए आये हुए सयमी सन्यासियों को अनुनय-विनय पूर्वक यत्न से मानन कराये।

भोजयेत्प्रणिपाताद्यः प्रसाद्य यतमानसः । योगिनश्च तदा ध्यादे भोजनीया विपश्चिता ॥११०॥
 योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा । ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि ॥१११॥
 यजमानं च भोक्तृं च नौरिवाम्भसि तारयेत् । पितृगाथा तथैवात्र गोयते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
 या गीता पितृभिः पूर्वमेलस्याऽऽसीन्महीपतेः । कदा नः संततावगम्यः कस्यचिद्भूविता सुतः ॥११३॥
 यो योगिभुवतशोपासो भुवि पिण्डान्प्रदास्यति । गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः ॥११४॥
 कालशाक तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः । वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥११५॥
 विद्याणवर्जं शिरस आ पादाबाशिषामहे । दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥११६॥
 मधुसपि समायुक्तं पायसं दक्षिणायने । तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या स्वपितृन्विधियग्नरः ॥११७॥
 कामानभीप्सन्तकलान्पापादात्मविमोचनम् । वसूषु ब्राह्मण्याऽऽदिस्पाश्र्वाक्षत्रप्रहृत्तारकाः ॥११८॥
 प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतृपिताः । आयुः प्रजा धर्मं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥११९॥
 प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतृपिताः । तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णस्त्पितृणामतिरिच्यते ॥१२०॥
 संपूज्य स्वागतैर्नतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥१२१॥
 श्राद्धं कृत्वा विधानेन संभोज्य च द्विजोत्तमान् । विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भविततः ॥१२२॥

विद्वान् व्यक्ति यागियों को श्राद्ध में भोजन कराये । जिस लिए पितर योग के आधार माने जाते हैं इसलिए सदा योगियों का सम्मान करे ॥१०९-११०॥ हजारों ब्राह्मणों में यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान तथा भोजन करने वालों को जल में नाव की तरह तार देते हैं ॥१११॥ इस विषय में ब्रह्मवादियों ने एक पितृ-गान्ना गायी है कि राजा ऐल के पितरों ने कहा था—‘हमारी सन्तानों में जिसको पहले पुत्र होगा, जो योगियों के खाने से बचे अन्न के पिण्ड पृथ्वी पर देगा अथवा गया में पिण्ड देगा और दूसरी तृप्ति से लिय गड़े का मांस, घी, कालशाक, तिलमिश्रित धी तथा शिषडी देगा । सींग को छोड़कर शिर से पैर तक गड़े का मांस विश्वदेव तथा सोम को प्रिय है, उसे हम चाहते हैं ॥११२-११५॥ त्रयोदशी, मघा नक्षत्र तथा दक्षिणायन में मधु तथा घी से युक्त क्षीर श्राद्ध में देना चाहिये । इसलिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक अपने पितरों की पूजा करे । श्राद्ध में शुद्ध लिये गये पितर मनुष्यों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं, उन्हें पाप से मुक्त करते हैं और उनसे प्रति वसुओं, एन्द्रो, आदित्यों नक्षत्रों, ग्रहों और तारों को अनुकूल बना देते हैं । श्राद्ध से सन्तुष्ट पितर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष तथा राज्य तथा सुख प्रदान करते हैं । पितरों का समय पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण उत्तम माना जाता है । गृह में आये हुए द्विजों का स्वागत करने पवित्र हाथों से उन्हें जल दे और आचमन कराकर आसनो पर बैठाये ॥११६-१२१॥ विद्यापूर्वक श्राद्ध करने और उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय-जातो से उन्हें बिदाई दे ॥१२२॥ द्वार तक उनसे पीछे-पीछे चलकर पुनः उनकी आज्ञा से

आधारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः । ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ॥१२३॥
 नित्यक्रिया पितृणां च केचिदिच्छन्ति सतमा । न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१२४॥
 पृथक्त्वेन वदन्त्यप्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरैः ॥१२५॥
 एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः । यथा च विप्रमुह्यमानां परितोपोऽभिजायते ॥१२६॥
 इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्जनीयाग्निराधयाम् । मित्रघ्नवकुलसौ क्लीबः क्षयी शुक्लो वणिजपयः ॥१२७॥
 श्यावदन्तोऽय खलवाटः कानोऽप्यो बधिरो जडः । मूकः पद्भुः कुणिः पण्डो दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरो ॥१२८॥
 कुण्डो रवसेक्षणः कुञ्जो वामनो विकटोऽलसः । मित्रशत्रुदुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः ॥१२९॥
 परिबिम्बि परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः । बृषलीपतिस्तत्पुत्रश्च न भवेच्छ्राद्धभुङ्गिजः ॥१३०॥
 बृषलीपुत्रस्तंस्कृतां अनुदो विधिपूषतिः । भूतकाध्यापको यस्तु भूतकाध्यापितश्च यः ॥१३१॥
 सूनकाश्रोपजीवी च मृगयुः सोमविक्रयो । अभिशस्तस्तथा स्तौनः पतितो वार्युधिः शठः ॥१३२॥
 पित्रो वेदस्त्यागो वानाग्नित्यागनिष्ठुरः । राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽय मत्सरो ॥१३३॥
 मृद्विद्वदुधरः क्रूरो मूढो देवलकस्तथा । नक्षत्रमूचकश्चैव पर्वकारश्च गार्हितः ॥१३४॥

लौट जाये। तब नित्यक्रिया करने अतिथियों को भोजन कराये ॥१२३॥ मुनिबुद्ध । कोई तो पितरो की नित्य-
 क्रिया करते हैं और कोई नहीं भी करते हैं। शेष क्रिया तो पहले ही की तरह करनी चाहिये ॥१२४॥ कोई कहते
 हैं, पितरो की पृथक्-पृथक् क्रिया होनी चाहिये, कोई कहते हैं नहीं, पहले की तरह ही सब कर्म करने
 चाहिये। श्राद्ध का अन्न से-क आदि के साथ खाना चाहिये ॥१२५॥ धर्मज्ञ यन्त्रप्य सावधान होकर पितरो
 का इस प्रकार श्राद्ध करें जिससे ब्राह्मणों को सन्तोष हो जाय ॥१२६॥ अब मैं श्राद्ध में निषिद्ध ब्राह्मणों के
 बारे में बतलाऊँगा। मित्र के साथ शत्रुता करने वाला, खराब नस्ब वाला, नपुंसक, शय रोग वाला, श्वेत कुष्ठ
 वाला, व्यापार करने वाला, मद्य पीने वाला, गजे शिर वाला, बाना, अग्न्या, बह्म, जड, गुणा, लपटा, विहृत
 वाला, चर्म वाला, ऐंसाताना, कुष्ठरोगी, लाल नेत्र वाला, बीना, दन्तुल, आलसी, दुष्कुलीन, पशु पालने वाला,
 परिबिम्बि, (जिसका छाटा माई उससे पहले विवाह करले), परिवेत्ता, (जो बड़े माई से पहले विवाह कर ले)
 परिवेदनिका (जिसे १३ स विवाह करने पर परिवदन शेष ल्ये) का पुत्र, शूद्रा का पति और उसका पुत्र
 श्राद्ध श्राद्ध में वर्जनीय है ॥१२६-१३०॥ शूद्रा के पुत्र का सत्कार करने वाला, भूतक के अन्न से जीने वाला,
 करने वाला, स्त्री का पति, वेतन लेकर पढ़ाने वाला, वेतन लेकर पढ़ने वाला, सूनक के अन्न से जीने वाला,
 शिकार खेलने वाला, मद्यविभेता, कलकी चार, पतित, मूढतोर, दुष्ट, कुलक्षोर वेदत्यागी, दान तथा अग्नि
 का त्याग करने वाला निष्ठुर, राजा का पुरोहित, मृत्यु, विद्याहीन, ग्राह रखने वाला, बूढ़ों से द्वेष करने वाला,
 उदत, क्रूर, मूर्ख, पुजारी, गृह बताने वाला, पर्वकार, निन्दित और यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ कराने वाला,

१क स ०णा प्राक्वेचि०। २ग ०न च नित्यत्वे के०। ३य स्वित्री। ४क पण्ड कुकर्मा। ५क कुक्षि-
 दुप्ये रत्नादुत्पातनो। स कुक्षिकुण्डो रत्न दृष्टिर्वाय०। ६क ०नुदुस्त्रागोल प०। ७य ०स्तत्पुत्रश्च तथा
 उच्छा०। ८क ०र्ताजुतवाग्नि०। ९स सुतिका निष्ठकतां च। १०क णी होताग्नि०।
 १स ०द्रिग्मिधुनश्चैव पतितस्यैव पोषकः। न०।

अयाज्ययाजक पण्डो गृहिता ये च येऽधमा । न ते श्राद्धे नियोज्यव्या दृष्ट्वाऽमी पडिक्तदूपकाः ॥१३५॥
 असता प्रग्रहो यत्र सता चवावमानना । दण्डो देवदृष्टस्तत्र सद्य पतति दारुणः ॥१३६॥
 हित्वाऽऽगम सुबिहित बालिश यस्तु भोजयेत् । आदिधर्मं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥१३७॥
 यगत्वाधित द्विज त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत् । तत्रि श्वासान्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति ॥१३८॥
 वस्त्राभावे त्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च । तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः ॥१३९॥
 कौशेय क्षौमकार्पासं दुकूलमहत तथा । श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानामनोति चोत्तमान् ॥१४०॥
 यथा गोषु प्रभूतासु धत्सो धिन्दति मातरम् । 'तथाऽऽप्त' तत्र विप्राणां जग्नुर्धनं प्रावतिष्ठते ॥१४१॥
 नामगोत्रं च मन्त्राश्च वस्त्रमन्नं भयन्ति ते । अपि ये नियत्र प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते ॥१४२॥
 देवताभ्यं पितृभ्यश्च महायोगिन्य एव च । अन्नं स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव भवन्ति ॥१४३॥
 आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या अपेक्षदा । पिण्डनिर्वपणे चाऽपि जपेदेव समाहितः ॥१४४॥
 क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः प्रद्वन्ति च । 'प्रोयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽप्त' तारयन्तु ॥१४५॥
 क्षौमसूत्रं तव दद्याच्छा (च्छो) ण कार्पासिकं तथा । 'पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत् ॥१४६॥

नपुंसक तथा अधम—ये ब्राह्मण श्राद्ध में त्याग्य हैं। ये पण्डित को दूषित करने वाले हैं ॥१३१-१३५॥ जहाँ अष्टद्व
 पुण्य का सम्मान और सत् पुण्य का अपमान होता है वहाँ धीम्र ही सयकर वैदिक दण्ड मिलता है ॥१३६॥ जो
 परम्परागत धर्म का उल्लंघन कर शास्त्रविहित ब्राह्मण का छोड़कर मूर्ख को खिलाता है, उसका नाश हो
 जाता है ॥१३७॥ जो आश्रित द्विज का परित्याग कर दूसरे को लाबर खिलाता है, वह उसने द्वास क्षणी अग्नि
 से दग्ध होकर नष्ट हो जाता है ॥१३८॥ वस्त्र के अभाव में त्रिया, यज्ञ, वेद तथा तपस्या नहीं होती है। इसलिये
 श्राद्धकाल में विशेष करके वस्त्र देना चाहिये ॥१३९॥ जो रोगी वस्त्र, पट्ट-वस्त्र, सूती वस्त्र तथा महीन वस्त्र
 श्राद्ध में देता है वह उत्तम वामनार्जों को प्राप्त करता है ॥१४०॥ जैसे अनेक रावों के बीच बछड़ा अपनी माँ
 के पास पहुँच जाता है उसी तरह ब्राह्मण को खिलाया अन्न जीव के पास पहुँच जाता है ॥१४१॥ नाम गोत्र
 उच्चारण कर मन्त्रपूजक जो अन्न दिया जाता है वह मृत्यु के बाद भी जीव का प्राप्त होता है ॥१४२॥ श्राद्ध
 के आदि तथा अन्त में देयभाग्य 'इस मन्त्र का जप तीन बार करे। पिण्डदान व समय भी सावधान होकर
 समता जप करे। इससे पितर र्शं ध्र आ जाने हैं और राक्षस भाग जाते हैं। इस मन्त्र से तीनो लार में पितर प्रसन्न
 होते हैं। यह सब का कारण करने वाला है ॥१४३-१४५॥ नवीन रोगी भूत्र देना चाहिये, पर बचाव, ऊन,
 पट्ट तथा कौशेय वस्त्र का सूत्र नहीं देना चाहिये ॥१४६॥ यदि वस्त्र पूरा हो किन्तु उसमें किनारी न हो तो वह

१४ ंण्डो देव। ४ ंण्डा दैत्यः० २४ ंति जपवे० ३४ ंथाऽप्रमेति तत्रैव ज०। ४४
 ंप्र नये विप्रो ज०। ५४ यान्ति। ६४ ंम स्वधायै स्वाहायै नि०। ७४ ंव नमो नमः। आ०। ८४
 ंवन्तु न। आ०। ९४ चापि। १०४ प्रयन्ते। ११मन्त्रास्तास्तार०। १२४ पितृणां।

'वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यत्पुण्यव्याहृतं भवेत् । न प्रीणयन्त्ययंतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत् ॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति । इष्टेनाग्नेन भक्ष्येण भोजयेत्सं यथाविधि ॥१४८॥
पिण्डमनो सदा दद्याद्भोगार्थो सतन नरः । पत्न्यै दद्यात्प्रजाप्यो च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥१४९॥
'उत्तमा द्युतिमन्विच्छन्पिण्ड गोपु' प्रयच्छति । प्रज्ञां चैव यशः कीर्तिमप्यु' चैव' निवेदयेत् ॥१५०॥
प्रायपन्दीर्घमापुश्च धायतेभ्यः प्रयच्छति । कुमारशालामन्विच्छन्कुटुम्भ्यः प्रयच्छति ॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमध्वतः । अनुजातस्तु विप्रैस्तैः काममुद्दिध्रयतामिति ॥१५२॥
तस्माच्छृणु तया' कार्यं यथोक्तमृषिभिः पुरा । अन्यथा तु भवेद्दोषः पितॄणां नोपतिष्ठति ॥१५३॥
यवैर्ग्राहितैर्लघुभिर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत्पितॄन्मुद्गैः श्यामार्कैः सर्षपैश्चैः ॥१५४॥
नीवारैर्हस्तिश्यामार्कैः प्रियङ्गुभिस्तथाऽध्वयेत् । प्रसातिकां (असतिकाः) सतूलिकां च (तिलकान्व)
द्याच्छृणु विवक्षणः ॥१५५॥
आन्नमान्नतकं शिल्पं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं श्रीरं नारिकेलं परुषकम् ॥१५६॥
नारङ्गं च सखजूरं ब्राह्मणोत्कृष्टपितृकम् । पटोलं च प्रियालं च कर्कण्णूद्वराणि च ॥१५७॥
'विकटकृतं धत्सक च' कस्तूरी (काह) धारकानपि । एतानि फलजातानि ध्याद्ये देयानि यस्ततः ॥१५८॥
गुडशर्करामस्यण्डो देयं पाणितमूर्धुरम्' । गव्यं पयो वधि धृतं तैलं च तिलसंभवम् ॥१५९॥

नहीं देना चाहिये । ये वर्जनीय चीजें पितरो को तृप्ति नहीं देतीं । दाता के लिये भी ये हानिकारक हैं ॥१४७॥
पितरों ने जो जीवित हैं, उसे पिण्ड नहीं देना चाहिये, बल्कि विधानपूर्वक उसे सुन्दर भोजन कराना चाहिये ।
॥१४८॥ भोगार्थो मनुष्य सदा अग्नि में पिण्ड बढाये । प्रजा वा इच्छुक मनुष्य मन्त्रपूर्वक पत्नी को पिण्ड दे
॥१४९॥ उत्तम कान्ति वा इच्छुक व्यक्ति भी को पिण्ड दे । बुद्धि यस्य तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला मनुष्य जल में
पिण्ड दे ॥१५०॥ दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति कीर्ति को पिण्ड दे । कुमार-शाला चाहने वाला मुर्गों को दे ॥१५१॥
कुछ विद्वानो वा कहना है कि अन्नमात्र से पिण्ड को उठाना चाहिए । जैसे धियो की आज्ञा लेकर जैसे चाहें जैसे
उठा सकते हैं ॥१५२॥ इसलिये जिस प्रकार अध्वियो ने बतलाया है उसी प्रकार ध्याद्ये करना चाहिये । अन्यथा
दोष होता है और पितरो को भी तृप्ति नहीं मिलती है ॥१५३॥ यव, ग्रीहि, तिल, उडद, गेहूँ तथा जने से पितरों
वा तर्पण करना चाहिए । मूग श्यामार्क, (साई), सरसो, नीवार, हस्तिश्यामर्क (सामा) तथा प्रियंगु (कपनी)
से पितरो को अर्घ्य देना चाहिये । विद्वान् मनुष्य धाढ में साधकरण शय्या दान करें ॥१५४-१५५॥ आम, आमला,
बेल, दाडिम, विजोटा नींबू, पानीयामलक नारियल, नारंगी, खजूर, दाख, कटवेल, पटोल, प्रियाल (पियासाह),
वेर, विकटक, कत्थक, कस्तूर ? , शारक ?—ये फल ध्याद्ये देने चाहिये ॥१५६-१५८॥ गुड, शर्करा, खाँड,
राख, गोवा दूध, दही, घी, तिल वा तेल, सैन्धव नमक, पवित्र गन्ध, चन्दन, अगर, कुकुम, बालशाक, तन्दुलीय, चास्तुक,

१क स ०येदोद्ग। २क ०मां गति०। ३क ०ति। आप्नोति च य०। ४ ०कीर्ति यस्तु नित्य नि०।
५स नित्य। ६ग सदा। ७स तीक्ष्ण। ८स ०त बीजपूर वीकामपि च पूरकम्। ए०। ९क च सर्वादिचक्र०।
१०स ०तशूम्०।

मैन्धवं सागरोत्थं च लवणं सारसं तथा । निवेदयेच्छुचीनागन्धाश्चन्दनागुरुकुङ्कुमान् ॥१६०॥
 कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ॥१६१॥
 जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिकाबाणवर्बरो । वृन्ताशोकाटहयं च तुलसी तिलकं तथा ॥१६२॥
 'पावन्ती' शतपत्रा च गन्धशोफालिकामपि । कुब्जकं तगरं चैव मृगमारण्यकैतकीम् ॥१६३॥
 यूयिकामतिमुक्तं च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजा । कमलं कुम्भं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः ॥१६४॥
 इन्दीवरं कोकनदं शङ्खारं च नियोजयेत् । कुष्ठं मासी बालकं च कुक्कुटो जातिपत्रकम् ॥१६५॥
 नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्थिपर्णी च सुन्दरी । पुनरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि चक्षते ॥१६६॥
 गुग्गुलु चन्दनं चैव श्रीवासममुरु तथा । धूपानि पितृयोग्यानि श्रृपिगुग्गुलमेव च ॥१६७॥
 राजमायाश्च चणकामसूरतन्कोरद्वृषकान् । विप्रयाम्मर्कटांश्चैव कोदवांश्चैव वर्जयेत् ॥१६८॥
 माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवं । अत्रंणमौष्ट्रमाधिकं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत् ॥१६९॥
 तालं वरुणकाकोलीं बहुपत्रार्जुनीफलम् । जम्बीरं रक्तवित्थं च शालस्यापि फलं त्यजेत् ॥१७०॥
 मत्स्यसूकरकूर्माश्च गायो वज्रं विशोपत । पूतिकं भृगुनाभिं च रोचनीं पद्मचन्दनम् ॥१७१॥
 कालेयकं तूप्रगन्धं तुरष्कं चापि वर्जयेत् । पालङ्कं च कुमारीं च किरातं पिण्डमूलकम् ॥१७२॥
 गृञ्जनं चित्रिकां 'तुत्रं' वरुणा चनपत्रिकाम् । 'जीवं' च 'ज्ञानपुष्पां' च नालिकां गन्धशकरम् ॥१७३॥

(वपुई) मूली तथा वन्य शाकं देना चाहिये और ये फूल भी देने चाहिये—॥१५९-१६१॥ मालती, चम्पा, लोभ मल्लिका बाण वर्बरी, वृन्त, अशाक, अटहय, तुलसी, तिलक, शतपत्रा गन्धशोफालिका कुब्जक तगर, मृग जगली नेतवी, जूही तथा अतिमुक्त—ये पुष्प श्राद्ध के योग्य हैं ॥१६२-१६३॥ कमल, कुम्भ इवेतकमल, नीलकमल तथा बहूलार श्राद्ध में देना चाहिये। कुष्ठ जटामासी बालक, कुक्कुटी जातिपत्रक मल्लिक, उज्जीर (बस) मुस्त ग्रन्थिपर्णी—ये पितरों के लिये गन्धयोगी वतलाये जाते हैं ॥१६४-१६६॥ गुग्गुलु, चन्दन, श्रीवास अगर श्रृपिगुग्गुल—ये पितरों के धूपयोग माने गये हैं। राजमाय, चणक, मसूर, कोरद्वृषक, विप्रुष, मर्कट, कोदो—ये श्राद्ध में त्याग्य हैं ॥१६७-१६८॥ मैस, चमरी गाय हरिणी, मंड एव खुर वाले जानवर, स्त्री, ऊँट—इतना दही दूध और घी त्याग्य हैं ॥१६९॥ ताल, वरुण वाकल, बहुपत्र अर्जुनीफल, जम्बीर, लालवित्त्व तथा शाक का भी पत्र त्याग्य है ॥१७०॥ मण्डी, मूजर, बहुजा तथा विदोष करने वाले गायें त्याग्य हैं। पूतिक, वस्तूरी, गरीवन, पद्मचन्दन, कालेयक तथा सीसण मय वाले लोवान का भी परित्याग करे ॥१७१॥ पालक, कुमारी, किरात, पिण्डमूल, पाजर, चित्रिका, शुक वरुणा, चनपत्रिका जीव, शतपुष्पा, नालिका, गन्धसूकर, हृन्मूल, सरसो, प्याज तथा लड्डु का परित्याग करे ॥१७२-

१५ निमोजये० । २४ पारधि । स पारधी । ३३ सुखता । ४४ गन्धयोग्यानि । स श्राद्धयोग्यानि । ५३ ०माप पन र्वय मसू० । ग ०मापानलुचैव मसू० । ६३ ०टीरचोपान्नोद० । ७४ ०ष्टमत्राधीक द० । स ०ष्टमत्रोद्भूतं द० । ८४ करम्म । ग करण्ड । ९५ ०क वुक्कावरपोतिका० । १०५ जीवक द० । ११५ ०तपत्रा च । १२४ गन्धसूतकीम् । स गन्धसूचकम् ।

हलभृत्यं सर्पपं च पलाण्डुं लघुनां त्यजेत् । मानकन्दं^१ विषकन्दं^२ वज्रकन्दं^३ गदास्थिकम् ॥१७४॥
 'पुष्यात्वं सपिण्डालु' आढकर्मणि वर्जयेत् । अलावुं^४ तिक्तपर्णां^५ च कृष्णालं कटुकत्रयम्^६ ॥१७५॥
 वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि घटानि च । 'कालीयं' रक्तवाणां च बलाकां लघुचं तथा ॥१७६॥
 आढकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा । आरनालं च शुक्लं च शोणं पर्युषितं तथा ॥१७७॥
 नोग्रगन्धं च दातप्यं^७ 'कोविदारकशिपुकी' । अत्यम्लं पिच्छिलं सूक्ष्मं यातयामं च सतमाः ॥१७८॥
 न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यदुचेत् । 'हिद्वगूग्रगन्धं' फणिशं भूनिम्बं निम्बराजिकं ॥१७९॥
 कुस्तुम्बुरु कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लघेतसम् । दाडिमं मागधीं चैव नागराद्वर्कतित्तिहीः ॥१८०॥
 आघ्रातकं जीबकं च तुम्बुरुं च निधोजयेत् । पायसं शात्मलीमुद्गान्मोदकावींश्च भविततः ॥१८१॥
 पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेद्येत् । यानि चाम्यवहार्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजा ॥१८२॥
 ईषदम्लकटून्वेद्ये वेद्यानि आढकर्मणि । अत्यम्लं 'चातिलवणमतिरिवतकदंति' च ॥१८३॥
 आसुराणीह भोज्यानि ताम्र्यतो दूरतस्म्यजेत् । मृदस्निग्धानि यानि स्युरीयकद्वयम्लकानि च ॥१८४॥
 स्वादूनि देवभोज्यानि तानि आढे नियोजयेत् । 'छागमासं' वार्तिकं च तैत्तिरि ज्ञाकामियम् ॥१८५॥

१७३३॥ मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुष्यात्वं तथा पिण्डालु को भी आढकर्म म छोड दे । अलावु (भीही), तिक्तपर्णा (कैला) कुम्हडा, निकटुक, (सोठ, पीपर और चिच) बैंगन शिवजात, लोमश, घट, कालीय, रक्तवाण, बलाका, बडहर—य आढकर्म म वर्जनीय है । बहेडा आरनाल शुक्ल फटा हुआ बासी तथा तीक्ष्ण गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये । अत्यन्त खट्टा पिसलने वाला सूक्ष्म बहुत देर का, रसहीन तथा मद्य समान गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये ॥१७४-१७८॥ हींग से समान तीक्ष्ण गन्ध वाला फल फणिश भूनिम्ब, निम्बराजिक, कलिङ्ग देश का कुस्तुम्बुरु तथा अमलतास को छोड दे ॥१७९॥ दाडिम मागधी नागर, अदरक, इमली, बावला, जीबक, तुम्बुरु—ये देने चाहिये । खीर, शात्मली मूग, मोदक पानक, आम तथा गी का दूध भवितपूर्वक देना चाहिये ॥१८०-१८१॥ जो भोज्य सुस्वादु, स्निग्ध तथा विभिन्न खट्टा एवम् कडवा पदाय हो, वह आढ कर्म में देना चाहिये ॥१८२॥ अत्यन्त खट्टा, अधिक नमकीन और अधिक कडवा भोज्य पदार्थ राक्षसी भोज्य कहलाता है, उसे दूर ही त्याग दे ॥१८३॥ जो मधुर स्निग्ध तथा बाँडा कडवा एवम् खट्टा हा वह देव भोज्य कहलाता है, उसे रखे ॥१८४॥ बन्दरे का मांस, बंदरे पक्षी का मांस, तीतर का मांस, खरहे का मांस, और शिवा, लावक तथा सर्पिष का मांस आढ में देना चाहिए ॥१८५॥ वाघ्रीणस, (बैडा) रक्तशिव, त्वचा से युक्त, लोह (?), सिंहपुण्ड

१४ नरकन्द । २४ वृषस्वन्द । ३क बक्रकन्द । ४क पुरपाल । ५क तिक्तपर्ण । ६ क कटुपत्रिका । ७क कालिङ्ग रक्तवाण च वीणाजाति कुबालुकम् । था० । ग कालिन्द रक्तदार च वीणाका वृत्ताक्षम् । था० । ८क कविचुरी । ९क कवित्वरी । १० हिद्वगुग्रा पाणिश च मू० । १०क ०तितिकन० । ११क ०स च वार्ताकत० ।

शिवालावकराजीवमास आढे नियोजयेत् । 'वाघ्रोणस रवतशिव लोह शल्कसर्मा वतम् ॥१८६॥
 'निहतुण्ड' च खडग च आढे योग्य तथोच्यते । 'यद्यप्युक्त हि मनुना रोहित प्रतिभोजयत् ॥१८७॥
 योक्तव्य 'हृष्यकव्येषु तथा न विप्रयोजयेत् । एवमुक्त मया' विप्रा वाराहणावलोकितम् ॥१८८॥
 मया निषिद्ध भुञ्जानो रौरव नरक व्रजेत् । 'एतानि च निषिद्धानि वाराहण तपोधना ॥१८९॥
 अमक्ष्याणि द्विजातीना न देयानि पितृष्वपि । रोहित शूकर कूर्म गोघ्राहस' च 'व्रजयत् ॥१९०॥
 चक्रवाक च मयू च शल्कहीनाश्च मत्स्यकान् । कुरुर च निरस्थि च वासहात च (?) कुक्कुटान् ॥१९१॥
 कलविड्कमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शाङ्गकान् । 'नकुलोलकमार्जाराल्लोपान'या सुद्रुप्रहान् ॥१९२॥
 'टिटिडभा'सार्धजम्बूका'य्याध्रश्चक्षतरक्षुकान् । एतान'याश्च 'सदृष्टा'यो भक्षयति दुमति ॥१९३॥
 स महापापकारी तु रौरव नरक व्रजत । पितृष्वतास्तु यो दद्यात्पापात्मा गहितामिषान् ॥१९४॥
 स स्वगस्थानपि पितृभरक पातयिष्यति । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारकम् ॥१९५॥
 पिण्याक विप्रुष' 'चैव मसूर' 'गुञ्जन शणम । कोद्व च कोकिलाक्ष च चक्र कम्बुकपयस्कम्' ॥१९६॥
 चकोरश्चनमास च वर्तुलालाबुतालिनीम् । कल तालतद्वणा च भुवत्या नरकमुच्छति ॥१९७॥

तथा खड्ग का मास आढ मे देना चाहिए ॥१८६॥ मनु के कथनानुसार रेहू मछल च देना चाहिए । हृष्यकव्यो की तयारी मे इन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए पर इनका दुस्रप्रयोग न होने पाए । विप्रवृ' । वाराह द्वारा निर्मित माग को मैंने आप लोगों से बतला दिया ॥१८७॥ मैंने जिनका नियम बतलाया है उनका व्यवहार करने वाला मनुष्य रौरव नरक मे जाता है । तपस्विना । इनका नियम तो वाराह ने दिया है ॥१८९॥ पितृ काम मे भी अमक्ष्य वस्तु ब्राह्मणों को नहीं देनी चाहिये । रेहू मछली, शूकर वज्रभा गो' तथा हस्त आढ मे निषिद्ध है ॥१९०॥ चक्रवाक मयू (पनिडुम्बी) खचाहीन मत्स्य कुरुरपक्षा अस्थिविहीन वासहात ? मूर्गा गौरया मयूर भारद्वाज शाङ्ग नेवला उल्लू बिलाक टिटिहरी सिया बाघ रीछ उरुदवग्या—इन दुष्ट जातों को जो दुमति मनुष्य खाता है वह महापाप का माग होकर रौरव नरक मे जाता है ॥१९१॥ जो पार्थी मनुष्य पितरों को यह निर्दिष्ट मास खिलाता है उसके पितर स्वगन्वुत हो जाते हैं । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारक पिण्याक विप्रुष मसूर शणम कोदो कोकिलाक्ष चक्र कम्बुक पयस्क चकार तथा वाज का मास गोल लौदी और ताल मूश का फल जो खाता है वह नरक मे जाता है ॥१९७॥ पितरों को ये चार्जे देकर मनुष्य उनके साथ पाल से भरे नरक मे जाता है । इसलिये सुधीजन यत्न करके इन चीजों को न चढाये । वाराह मगयान ने पितरों के सम्मान के लिये स्वयं इन चीजों का नियम कर दिया है । मुनिवद । मनुष्य अपना मास भक्षण करे वह उचित

१ व' वादिनत्रिगुलाणेह'गा'गा' ० । २ व' सिंह तु ० । ३ क' ० तुन्दिवर ० । ४ व' ० यद्युक्त । ५ यद्यप्युक्त । ५ ग' ० युकापिल न नियो ० । ६ व' प्रिय । ७ ग' पुरा । ७ ग' ० त्रिना । ८ ० । ८ ग' थाद्वानि । ९ व' ० यामास । १० क' व' चन्द्रमू । ११ ग' जौर नोपकाय'वचवतान् । १२ क' मान्गय । १३ क' ० धगोमुच्छमर्कटान् । १४ व' सद्रूपान्यो । १५ क' च गुञ्जन । १६ क' ० र' वितुष मतम् । १७ व' वञ्जुव' ० ।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं ब्रजेत्पूयवहं नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः ॥१९८॥
 निषिद्धानि वराहेण स्वयं पित्र्यमादरात् । वरमेवाऽऽत्ममांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम् ॥१९९॥
 न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुंभिरादरात् । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः ॥२००॥
 भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् । फलमूलदधिशीरतन्त्रगोमूत्रयावकैः ॥२०१॥
 'भोग्यान्नभोग्यसंभुक्ते' प्रत्येकं दिनसप्तकम् । एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः ॥२०२॥
 शुद्धिं नेयं शरीरं तु विष्णुभक्तेर्विशेषतः । निषिद्धं वर्जयेद्ब्रह्मं यद्योस्तं च द्विजोत्तमाः ॥२०३॥
 सामाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः । एवं विधानतः श्राद्धं कृत्या स्वविभजोचितम् ॥
 आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः ॥२०४॥

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याय मृतो द्वौ पितरौ पितुः । कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद ॥२०५॥

व्यास उवाच

यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम् । एवं न होयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा ॥२०६॥

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः । ॥ हि श्राद्धं कथं कुर्यादितर्यं वक्तुमर्हसि ॥२०७॥

हे विन्तु निषिद्ध वस्तुओं का सेवन न करे ॥१९८-१९९॥ मनुष्य अज्ञान से या असावधानी से एक बार भी निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण कर ले तो सात दिनों तक प्रत्येक दिन भोज्य अन्न के साथ फल, मूल, दही, दूध, तक्र, गामूत्र तथा यावको (कुलथी) से प्रायश्चित्त करे ॥२००-२०१॥ ब्राह्मणवर्ग यदि एक बार भी इस प्रकार का निषिद्ध भक्षण कर ले तो उन्हें शरीर-शुद्धि करनी चाहिये । विष्णुभक्तों को विशेष करने प्रायश्चित्त करना चाहिये । निषिद्ध द्रव्यों का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री जुटाकर श्राद्ध करना चाहिये । इस तरह विधानपूर्वक भर्त्सना शक्ति के अनुसार श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा से लेकर तृण तक संपूर्ण जगत् को क्षुप्त करता है ॥२०२-२०४॥

मुनियों ने कहा—जिसका पिता जीवित है और पिता के माँ-बाप मर चुके हैं, वह कैसे श्राद्ध करे, यह हमें विस्तार से बतलाइये ॥२०५॥

व्यास ने कहा—पिता जिसका श्राद्ध करे पुत्र भी उसी का श्राद्ध करे । ऐसा करने से लौकिक तथा वैदिक धर्म की हानि नहीं होती है ॥२०६॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् । जिसका पिता मर चुका है और पितामह जीवित है, वह कैसे श्राद्ध करे, यह वन आइये ॥२०७॥

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः ॥२०८॥
 मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । अपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिध्यते ॥२०९॥
 'आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः । आयुषा घनपुत्रैश्च वर्धेत्याशु न संशयः ॥२१०॥
 'पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत् । तदन्नमस्य पितरोऽन्नमन्ति च त्रियुगं द्विजाः ॥२११॥

एवं मयाततः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च ।

श्रोतव्य एष प्रयत्नैरंशश्च, श्राद्धेषु चैवाप्यनुकीर्तयेत्

॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासविसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम

विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवता पितरस्तथा । संपूज्या हव्यकम्याभ्यामन्नेनातिथिद्वान्धवाः ॥१॥

व्यास ने कहा—वह पिता और प्रपितामह को पिण्ड दे तथा पितामह को भोजन कराये—यही शास्त्रों का निर्णय है। वह भरे हुए को पिण्ड दे और जीवित को भोजन दे। उसे सपिण्डीकरण तथा पार्वण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुसार आचरण करता है, वह शीघ्र ही आयु, धन तथा पुत्रों से सम्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं। द्विजगण। जो श्राद्धकाल में पितरों के इस अध्याय का पाठ करता है, उसका भक्ष पितर तीन युगी तब खाते हैं। पापों को दूर करने वाले तथा पुण्य बढ़ाने वाले इस पितृमेधकल्प का दर्शन मैंने कर दिया। मनुष्य को यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। श्राद्धों में भी इसका पाठ होना चाहिये ॥२०८-२१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में श्राद्धकल्प-निरूपण

नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार गृहस्थ लोग हव्य-कम्यो से देवता और पितरों की पूजा करें और अन्न से अतिथि

१ ग वै श्राद्धेषु निर्णयः कृतः । मृ० । २ स ० शास्त्रेषु पुत्रं स्थापितुं ग्रीणाति श्राद्धतः । आ० । ३ व ० धामतः पुण्यं प्रातः का० ।

भूतानि भूत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः । भिखवो याचमानाश्च ये चान्ये पात्यका गृहे ॥२॥
सदाचारता विप्राः सधुना गृहमेधिना । पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः त्रियाः ॥३॥

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥४॥
सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव । यं कुर्वन्सुखमानोति परत्रेह च मानव ॥५॥

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्^१ । न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥६॥
यत्तदानतपासीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते^२ ॥७॥
दुराचारी हि पुण्यो^३ नेहाऽऽयुर्विन्दते महत् । कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम् ॥८॥
'तस्य' स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य^४ भो द्विजाः । आत्मनःकमना भूत्वा^५ तयैव परिपालयेत् ॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्नं कर्तव्यो गृहमेधिना । नस्ससिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०॥
पादेनाप्यस्य^६ पारः^७ युर्याच्छ्रेयः^८ स्वमात्मवान् । अर्थेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च ॥११॥

तथा माई-बन्धुओं को सतुष्ट करें। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह घर पर आये हुए समस्त प्राणी, सेवक, पशु, पक्षी, चीटी, मनुज, पक्षि तथा दूसरे भी याचको का सत्कार करे। जो नित्य तथा नैमित्तिक त्रिया का उल्लंघन करता है, वह मानो पाप खाता है ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—विप्र! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म बतला दिये। पुरुष के तीन प्रकार के कर्म होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। मुने! अब हम सदाचार के बारे में सुनना चाहते हैं, जिसके करने से मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है ॥४-५॥

व्यास ने कहा—गृहस्थ को सदा आचार की रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्य का कल्याण न यहाँ होता है, न परलोक में ॥६॥ जो सदाचार का उल्लंघन करता है, उसके यज्ञ, दान और तप ऐश्वर्यवर्षक नहीं होते ॥७॥ दुराचारी पुरुष की आयु बड़ी नहीं होती है। सदाचारयुक्त धर्म करता चाहिये। द्विजगण! सदाचार का स्वरूप मैं बतलाऊँगा, जिसका पालन मनुष्य एकचित्त होकर करे। गृहस्थ को धर्म, काम और अर्थ के साधन में यत्नशील रहना चाहिये। उनकी सिद्धि होने पर यहाँ और परलोक में भी सिद्धि मिलती है ॥८-१०॥ विचारवान् व्यक्ति उनके चतुर्धा साधन करने से भी पारलौकिक श्रेय प्राप्त करता है और अर्थ साधन करने से अपना भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कर्म कर लेता है ॥११॥ फिर भी चतुर्धा साधन

१क छ ०रिपालनम्। २ख ०ते। सदाचार स पु०। ३ख ०यो ब्रह्मदे विन्द०। ४क ग ०चारो हृत्यल०। ५क तथा च व प्रव०। ६ख तथा। ६ख स्वपन्न। ७क ०चार तु भो। ८ख ०त्वा त यैव। ९ख पाविष्य।

पादेनैव तथाऽध्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत् । एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमुच्छति ॥१२॥
 तद्वत्पापनिवेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थस्तयैवान्यः 'कार्योऽर्थः' फलप्रदः ॥१३॥
 प्रत्यवायभयात्कामस्तयाऽन्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गपाविरोधकृत् ॥१४॥
 'परस्परानुबन्धांश्च' सर्वान्नितान्विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यर्ध्वं सान्द्रिजोत्तमाः ॥१५॥
 धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो' नाऽऽत्मार्यपीडकः । उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६॥
 ब्राह्मो मूर्ते बुध्येत धर्मार्थानुचिन्तयेत् । समुत्थाय तयाऽऽचम्य प्रस्तातो नियतः शुचिः ॥१७॥
 पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सद्विवाकराम् । उपासीत यथाऽन्यायं नैतां जह्यादनापदि ॥१८॥
 'असत्प्रलापमनृतं वायुपारण्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसह्यादमतस्तेषां च यै द्विजाः ॥१९॥
 सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०॥
 केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥२१॥
 'द्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव 'व्रतमिति । न विभूधूमनुष्ठेयं न च कृष्टे न गोपजे ॥२२॥

करते हुए ही उनकी जड़ को दूढ़ बनाना चाहिये । विप्रबृन्द । इस प्रकार आचरण करने से धन सफल होता है ॥१२॥
 उसी प्रकार पाप मिटाने के लिये विद्वान् को धर्म करना चाहिये । परलोक के लिये तथा इहलोक के लिये धर्म करना चाहिए, जो यही फलदायक होता है ॥१३॥ धर्म, काम और अर्थ का विरोधी काम भी दो प्रकार का भला कपट है—एक पाप से डरने वाला और दूसरा सबका अविरोधी । द्विजश्रेष्ठो । ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं, पर तीनों एक दूसरे के विपरीत हैं । धर्म वा सहायक अर्थ भी धर्म ही है और आत्मा तथा धन का नाश करने वाला धर्म भी धर्म नहीं है । धर्म और अर्थ के भेद से काम दो प्रकार का होता है और काम-भेद से धर्म-अर्थ भी दो-दो प्रकार के होते हैं ॥१४-१६॥ ब्राह्म मूर्त में उठकर धर्म-अर्थ का चिन्तन करना चाहिये । उसी प्रकार उठने के बाद शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके विप्रतापूर्वक आचमन कर प्रातः कालीन सन्ध्या सारो के रहते हुए ही कर लेनी चाहिये, और सायंकाल की सन्ध्या सूर्य के रहते करनी चाहिये । ठीक समय पर इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये । आपत्तिकाल में भी इसका परि त्याग न करे ॥१७-१८॥ असत्य भाषण तथा वाणी की बढोरता को त्यागना चाहिये । असत् शास्त्र, असत् विवाद तथा असत् सेवा का त्याग कर देना चाहिए । सायंकाल तथा प्रातः काल हवन करे । उदय एवम् अस्त होने के समय सूर्य को न देखे ॥१९-२०॥ घावों का परिष्कार, दन्तधावन तथा अञ्जन करे । पूर्वाह्ण में ही देवताओं का तर्पण करे ॥२१॥ गौं, घट, सैंध, खेत, धर्म, जोती हुई भूमि तथा रोष्ठ में मल-मूत्र का त्याग न करे ॥२२॥ नमन स्वी तथा अपनी विष्ठा को न देखे । रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श एवम् समाषण न करे । जल में मल-मूत्र-त्याग तथा मँघुन न करे । मल, मूत्र, केश, अस्म, कपाल, मूती, कोदला, रस्ती

१क. न काम्योर्जः । २क. ख. ०रस्य चातुः । ३क. ०बन्धार्थं सः । ४. ०बन्धान्व सः । ४क. ०मो वाज्यार्थपादव । ५क. प्राङ्मुखे । ६क. ख. ०मत्पर्यं वाः । ७क. पूजनम् । ८क. ०मावासे च तीः । ९क. ०नि । विष्णामूत्र न कर्तव्य नः ।

नानां परस्त्रियं नेक्षेत्र पश्येदात्मनः शकृत् । 'उदवयादर्शनस्पर्शमेवं संभाषणं तथा ॥२३॥
नाप्नु मूत्रं पुरीयं वा मैथुनं वा समाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः ॥२४॥
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च । नाधितिष्ठेतथा प्राज्ञः पथि^१ वस्त्राणि^२ वा भुवि ॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथाऽर्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चादमृहस्यो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्वावान्तो वाग्यतः शुचिः । भुञ्जीत चाऽन्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२७॥

'उपघातान्ते दोषाघ्राप्तस्योदीरयेद्बुधः' । प्रत्यक्षालक्षणं 'वर्ज्यमन्नमुच्छिष्टमेव च ॥२८॥
 न गच्छन्न च तिष्ठन्नं जिष्मन्तोत्तमात्मवान् । कुर्वीत 'चैवमुच्छिष्टं न किंचिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
 उच्छिष्टाटो नालपेटिकश्चित्स्वाध्यायं न विवर्जयेत् । न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०॥
 मित्रासनं च शय्या च भोजनं च विवर्जयेत् । गुरुणामन्नं 'क्षेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१॥
 अनुकूलं तथाऽऽलापमभिपुर्वीत बुद्धिमान् । तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२॥
 नैकयत्रश्वं भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्जनम् । नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नौ होमं कुर्यात् बुद्धिमान् ॥३३॥
 न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन । न पाणिभ्यामुभभ्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
 न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं बुधः । शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदुपस्पृशेत् ॥३५॥

तथा (केवल) वस्त्र आदि धार न बैठे। विद्वान् मनुष्य मार्ग मे भूमि पर वस्त्र बिछा कर न बैठे ॥२३-२५॥ वितर देवता, मनुष्य तथा पशुमृतो की पूजा करने के उपरान्त गृहस्थ भोजन करे ॥२६॥ पूर्व या उत्तर मुंह बैठकर आचमन करने पवित्र हो मौन होकर भोजन करे। मनुष्य अन्न खाते समय उसी मे मन लगाये और जयों को न बोलें बरने भक्ति हो मौन होकर भोजन करे। मनुष्य अन्न खाते समय उसी मे मन लगाये और जयों को न बोलें बरने भक्ति हो मौन होकर भोजन करे। भयार्त पक्षासन लगा कर बैठे ॥२७॥ विद्वान् व्यक्ति उपपात या क्षति के बिना भोजन की निन्दा न करे। जिस भोजन मे अधिक नमक हो, उसको त्याग दे ॥२८॥ चलते हुए तथा खड़ा होकर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। ठूठा कुछ भी नहीं खाना चाहिए। जूठे मुंह से कुछ भी न बोले, स्वाध्याय न करे, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों को भी स्वेच्छा से न देखे। फटा आसन, फटी धाया तथा फटा बरतन नहीं रखना चाहिये। गुरु को उठकर मलमत्रों को भी स्वेच्छा से न देखे। फटा आसन, फटी धाया तथा फटा बरतन नहीं रखना चाहिये। गुरु को उठकर सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥२९-३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य गुरु के अनुकूल समापण करे उनका अनुगमन करे और उनके प्रतिकूल कुछ भी न करे ॥३२॥ बुद्धिमान् व्यक्ति एक वस्त्र धारण कर भोजन, देवपूजा, ब्राह्मणों का आह्वान तथा अग्नि मे हवन न करे ॥३३॥ नम्र होकर मनुष्य कभी भी स्नान तथा शयन न करे। दाना हाथों से शिर को न झुजलाये ॥३४॥ विद्वान् बार-बार तथा निष्कारण स्त्रि से स्नान न करे। मिर से स्नान करने अग्न मे तेल न लगाये ॥३५॥ अनध्यायो मे वेदाध्ययन न करे। कभी भी ब्राह्मण, अग्नि, माय तथा सूर्य का

१५. ०स्पृशं सहस्र० । २५ परबन्वाणि । ३५ पत्राणि । ४५ ०पि कुर्याद्वाप्यं च वा० । ५५ उच्चार-
येत्सा दो० । ६५ ०ग्रस्य भोजने बृधः । ७५ ०मयूढ तत्रकीर्तितम् । न । ८५ वैवाञ्चमन न । ९५ स.
०सर्भेत्कि० । १०५ ०मत्यन्त्र चाति० ।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत्^१ । ब्राह्मणानलग्नोसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६॥
 उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखं । आवावासु मयाकामं कुर्यान्मूनपुरीषयो ॥३७॥
 दुष्कृतं न गुरोर्धन्यात्तद्वृद्धं चैनं प्रसादयेत् । परिवादं न भृश्यादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८॥
 पन्था देवो द्वाभ्यानां राजो दुःखातुरस्य^२ च । विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगातंस्य महोयत ॥३९॥
 मूकान्धबधिराणां च भर्तार्योन्मत्तकस्य च । देवालयं चैतत्तत्तथैव च सतुष्यम् ॥४०॥
 विद्याधिकं गुरुं चैव दुष्टं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । उपानहस्तत्रमात्स्यादि^३ घृतमर्ग्यं^४ धारयेत् ॥४१॥
 चतुर्दश्या तथाऽष्टम्या पञ्चदश्या च पर्वसु । तैलाम्यङ्गं तथा भोगं योऽपि सद्यः विवर्जयेत् ॥४२॥
 नोत्क्षिप्तवाहुजटपश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन^५ । न चापि विसृपेत्पावो पादं पावेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३॥
 पुद्बल्या कृतकार्यस्य चान्नस्य पतितस्य च । मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥४४॥
 दम्भाभिमानं तैक्ष्ण्यं च न कुर्वीत विचक्षणः^६ । मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५॥
 'मूनाङ्गाश्चाधनाश्चैव मोषहासेन दूषयेत् । परस्य दण्डं प्रोद्यच्छेच्छिष्यार्थं शिष्यपुत्रयो ॥४६॥
 तद्भ्रमोपविशेत्प्राज्ञः पावेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम् । सयाव कृशर मासं नाऽऽसार्धंमुपसाधयेत् ॥४७॥
 साथं प्रातश्च भोजतव्यं कृत्वा घातिभिर्पूजनम् । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि बाग्यतो^७ दत्तधावनम्^८ ॥४८॥

अपमान न करे ॥३६॥ दिन में उत्तर मुहू तथा रात में दक्षिण मुहू बैठकर मल मूत्र त्याग करे । सड़क बाल में किसी भी मुहू होकर त्याग न कर सक्ता है ॥३७॥ गुरु को कटुवचन न रहे । क्षुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे । गुरु की निन्दा दूसरे के मुहू से भी न सुने ॥३८॥ ब्राह्मणों की राजाओं की दुःखातुरा की अधिक विद्या वालों की गर्भिणियों की महान् रात्रि यो की मृगों की बहुरों की अधो की तथा पागलों की रास्ता दे देना चाहिये । पण्डित लीय देवालय गाँव का सीमा पर के वृक्ष चौराहे अधिक विद्या वाले तथा गुरु का प्रदक्षिणा करे । दूसरे के धारण किये हुए जूते धरन, माला आदि न पहने ॥३९४१॥ चतुर्वर्षी अष्टमी, अथावास्या तथा त्योहारों में तैल तथा स्त्री-सन्मग्न का परित्याग करे ॥४२॥ बाँहों तथा जाँघों को ऊपर उठा कर अवस्थित नहीं होना चाहिये । पैरों को झटकारना नहीं चाहिये । एक पैर को दूसरे पैर से मलना नहीं चाहिए ॥४३॥ पुश्चली स्त्री अपना कार्य दिये हुए बालक तथा पतित व्यक्ति के प्रति ममवेधी आक्रुष तथा पिशुनता का व्यवहार नहीं करना चाहिये । विद्वान् मनुष्य दम्भ अभिमान तथा तीक्ष्णता को छोड़ दे ॥४४३॥ मुख पागल दुष्यसत्ता कुरूप तथा कम-अधिक अंग वाले व्यक्ति का उपहास न करे । शिष्य तथा पुत्र का शिक्षा के निमित्त दूसरे कड़व को न उठाये ॥४५४६॥ पैर से आसन छींच कर न बैठे । (केवल) अपने लिए हलुआ तिल का लड्डू तथा मांस नहीं बनाना चाहिए । सायकाल और प्रातः काल (अर्थात् दिन और रात्रि में) अतिवि-सत्कार करके भोजन करना चाहिए । पूव या उत्तर मुहू बैठकर मीन

१ स्तं ०तः । भिक्षाटनं सदा कुर्याद्ब्राह्मणानां च स सु । ७० । २कं दुःखादितस्य । ३कं ०मास्यं तु पु० । ४कं ०न । नापि सक्षिपेत्पावः । ५कं ०दवाधिका-मास्यं नो० । ६कं ०चच्छदपन्न मित्रपुत्रयो । ७कं ०म् । ध्यान सं० ।

यादृश पुरुषस्येह 'परदारभिमशनम् । देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२॥
 कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अपेनशब्दगन्धाभिरिन्द्रिन्द्रिण्याभिरावरात ॥६३॥
 'आचामचचैव तद्वच्च प्राड्मुखोददमुखोऽपि वा । अतजलादावसयाद्दत्मीवा मूपिकास्त्यलात ॥६४॥
 कृतशौचावशिष्टाश्च वज्रयेत्पञ्च वै मूढ । प्रक्षाय हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहित ॥६५॥
 अतर्जनिस्तस्याऽऽचामेस्त्रिज्जनुर्वाऽपि' ये नर । परिमुञ्च्य द्विरावृत्य क्षान्तिं मर्धानमव च ॥६६॥
 सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचि । क्षुत्तपस्वीदेष्वाते च तथा निष्ठीयनादिपु ॥६७॥
 कुर्यादाचमनं स्पर्शं वाऽस्पृष्टस्याकदशनम् । कुर्वीताऽऽलम्भनं चापि दक्षिणध्वजस्य च ॥६८॥
 यथाविभवतो ह्यतस्पूर्वाभावे तत परम् । न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९॥
 न कुर्मोदवन्तसर्पणं नाऽऽत्मनो देहताडनम् । स्वागच्छन्ति तथा भुञ्जन्त्याध्यायं च विवजयत ॥७०॥
 सध्याया मयुनं चापि तथा प्रस्थानमव च । तथाऽपराह्णं कुर्वीत श्रद्धया पितृतपणम् ॥७१॥
 शिरस्नानं च कुर्वीत देवं पित्र्यमयापि च । प्राड्मुखोददमुखौ वाऽपि श्मश्रुकम च कारयत ॥७२॥
 ध्यङ्गिनीं वज्रयकं या 'कुलजा' वाऽप्यरोगिणीम् । उद्धहेत्पितृमानोऽथ सप्तमीं 'पञ्चमीं' तथा ॥७३॥
 रक्षद्वारास्त्यजवीर्घ्यां तयाऽङ्गि स्वधर्मयुने । परोपतापकं कम जतुपीडां च सवदा ॥७४॥

है । लोक में परस्त्री प्रसंग से बढ़कर आपुण्य करने वाली कोई चीज नहीं है ॥६१॥ देव अग्नि तथा पितरो का कर्म और गुरु की वन्दना करके अन्न खाना चाहिये । फल शब्द तथा शब्दों से रहित एवम् स्वच्छ जल से पूव या उत्तर मुह होकर वे आचमन करे । जल के भीतर की तथा गृह व मीक एव वृहों के स्थान की और शीघ्र की अवशिष्ट मत्तिका—इन पाँचों मत्तिकाओं का त्याग करे । मनुष्य हाथ-पद धोकर जल शरीर पर छिड़के ॥६२ ६५॥ फिर सावधान होकर पश्चात्तन लगाकर तीन या बार बार आचमन करे । याजन करने आस कान नाक मुह तथा मस्तक का स्पर्श करे ॥६६॥ अच्छी तरह जल से आचमन कर पवित्र होकर क्रिया करे । छीकने पर घूबने पर तथा वायु त्याग आदि करने पर आचमन करे या सूर्य का दशन करे और दाहिने कान को उमेटे । इनमें शक्ति के अनुसार सब करे अथवा पूर्व-पूव के अमावस्य उत्तर-उत्तर क्रिया करे । अर्थात् पहला यदि विद्यमान न हो तब पिछला विधान करे । ६७ ६९ । दंतों को न बटकटाने शरीर को न ठीने सोकर रास्ते में चलते हुए तथा जाते हुए नहीं पडना चाहिये ॥७०॥ सध्याकाल में मयुन तथा प्रस्थान नहीं करना चाहिये । अपराह्ण में श्रद्धा से पितरो का तर्पण करना चाहिये ॥७१॥ पूव या उत्तर मुह होकर शिर से स्नान देव पितरो का कम तथा दाढ़ी मुछ कटाना चाहिये ॥७२॥ कम-अधिक अन्न वाली कन्या कुलीन तथा नीरीय होने पर भी त्याग्य है । जो कन्या अपने पिता-माता की सातवीं या पाचवीं सन्तान हो उससे विवाह न करे ? स्त्री की रक्षा करे । ईर्ष्या का त्याग करे । दिन में शयन तथा भयन करना छोड़ दे । दूसरे को शताप देने वाला तथा जीवों को पीछा देने वाला कर्म न करे ॥७३

१क ०दारोपसेवन० । २क ०वमदमिश्च प्रा । ३क ०तुर्वा पितेन्नर । ४ ०तुर्वापि वेदप । ५० । ४क वान्ते । ५क ०म् । स्वप्नाध्ययनयोग्यानि स्वाध्या० । ६क ०लटा चातिरो० । ७क ०जा चातिरो० । ८क ०पत्नी ५० । ९ ०ञ्चमी तु या । २० ।

उदक्या मध्वर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् । स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमौ चापि वर्जयेत् ॥७५॥
तनः पट्यां वज्रेद्राग्रां ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु । युग्मासु पुनः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६॥

विधार्मिणो वै 'पर्वदी मंघ्याकालेषु 'पण्डकाः' । क्षुरकर्मणि रिचतां वै वर्जयेत् विचक्षणः ॥७७॥
शुवनामविनीतानां न भोतध्यं कदाचन । न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८॥
क्षुरकर्मणि घा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः । स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः बटभूमिमुपेत्य च ॥७९॥
देववेदद्विजातीना माधुसत्यमहामनाम् । गुरोः पतिव्रतानां च 'ग्रहपञ्चतपस्विनानाम् ॥८०॥
परिवादं न कुर्यात् परिहासं च भो द्विजाः । घयलाभ्वरसंवेत' सितपुष्पविभूषितः ॥८१॥
सदा मागल्पवेषः स्यात्त घाऽमाङ्गल्यवान्भवेत् । मोद्धतोन्मत्तमूर्धश्च' नाविनीतश्च पण्डितः ॥८२॥
'गच्छेमन्मोमशोभेन न ययोजातिदूषितः । न चातिथ्यपशोलंश्च पुरुषेन' च वैरिभिः ॥८३॥
वार्याक्षमं निन्दितं न चैव' विटसङ्गिभिः' । निन्दनं चाद्वैकर्पणैर्नरैश्चागमैस्तथाऽधमैः ॥८४॥
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्चशूरः मह । उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैवानचयेद्बुधमागतान् ॥८५॥

७५॥ चार रात सब वर्णों को रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए । कन्या का जन्म अमिश्रित न हो तो पांचवीं रात में स्त्री-असंग नहीं करना चाहिये । छठी रात में स्त्री-असंग करे । युग्म रातों में स्त्री-असंग करने से पुत्र होता है और अयुग्म में कन्या ॥७५-७६॥ चतुर्दशी आदि पूर्वकाल में स्त्री-असंग करने से विधर्मी पुत्र होता है और सप्तमाकाल में करने से नपुंसक । चतुर्थी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथि में शौरवम नहीं करना चाहिये ॥७७॥ अर्जित व्यक्ति की बात कभी न सुने । नीच मनुष्य को आदर से उच्चासन न दे । शौरवम तथा स्त्री-संभोग के बाद तेल लगाकर स्नान करना चाहिये । अपवित्र जगह पर जान से भी सबैल स्नान करना चाहिये ॥७८-७९॥ द्विगन्ध । देवता वेद, ब्राह्मण, साधु, सत्यमहात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ तथा सपत्निया की निन्दा तथा परिहास नहीं करना चाहिए । स्वच्छ वस्त्र पहन । शुक्ल पुष्पा से विभूषित हो ॥८०-८१॥ सदा मंगलमय वेश धारण करे । अमंगलकारी वेश बन्दापि धारण न करे । उजड़, पागल, मूर्ख, अविनयी, घालीहान, अवस्था तथा जानि स दूषित, अपवर्ण्य तथा शत्रुता करने वाल पुरुषों के साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिए । कार्य करने में अपटु निन्दित, बेव्यागामी, दष्टि निन्द्य तथा दूसरे की अपम व्यक्तिता के साथ मित्रता न करे ॥८२-८४॥ घर पर आये हुए मित्र, दीक्षित व्यक्ति, राजा, स्नातक तथा दशरु को देखकर उठ जाय और सयागर्जित उगरी पूजा करे । विप्रवन्द । सपति के अनुसार, प्रतिकर्ष जाय हुए इन लोगों की अच्छी तरह पूजा करे ।

१स ज्येष्ठा० । २क स पूर्वादी । ३क षष्ठका १०य षण्डका । ४स ०का । अपवादोद्वेष्टः
५. ०का । स्थान र्ववानि० । ६स ०तप्य' व० । ६क ०ह्यचारित० । ७क ०द्वतनं च नीर्वन्त्र २६
मूर्धश्च ५० । ८क. ०न्मंश न शीलूर्ध्वं च वा जा० । ९य ०व सर्वस० । १०क स ०मि । न १०००
समुन्मिर्ननं च देवपरी सह । शु० ।

यथाविभवतो विप्रा प्रतिशक्तसरोपितान् । सम्पङ्गुहोऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६॥
 सपूजयेत्तथा यज्ञी प्रदद्याच्चाऽहुतो क्रमात् । प्रथमा ब्रह्मणे दद्यात्प्रजापतये ततः ॥८७॥
 तृतीया चैव गृहोऽभ्य 'कश्यपाय तयाऽपराम् । ततोऽनुमतये दद्याद्दद्याद्बहु (द्वगृह) बलिं ततः ॥८८॥
 पूर्वं दद्याता मया या तु नित्यक्रमविधौ क्रिया । वैश्वदेव ततः 'कुप्यद्विदत्त शृणुत द्विजा ॥८९॥
 यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् । 'पजन्यापोधरित्रीणां दद्यात् 'मणिके त्रयम् ॥९०॥
 'वायवे च प्रतिदिनं दिग्भ्यः प्राच्यादिषु क्रमात् । ब्रह्मणे चात्तरिणाय सूर्याय च यथाक्रमम् ॥९१॥
 विश्वेभ्यश्चैव देवभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । 'उपसे भतपतये दद्याद्गोत्तरतः शुचि ॥९२॥
 स्वधा च गम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे । कृत्वाऽपसव्यं वायव्या 'व्यसंतस्तेति रावदन् ॥९३॥
 अन्नावशपमिभ्य वै तोयं दद्याच्छाविधि । देवानां च ततः कुप्यद्राहणानां नमस्त्रियाम् ॥९४॥
 'भङ्गुष्ठोत्तरतो रक्षा पाणेषां दक्षिणस्य च । एतदसाह्यमिति द्यात तीर्थमाचमनाय वै ॥९५॥
 तज्यङ्गुष्ठोत्तरतः 'पिय तीथमुदाहृतम् । पितृणां तेन तोयानि दद्यान्नान्वीमुखादृते ॥९६॥
 अङ्गुल्यप्र सया देवं तेन दिव्यनिर्याविधि । तीर्थे कनिष्ठिकामले कायं तत्र 'प्रजापते ॥९७॥
 एवमेभि सदा 'तीर्थे विधानं पितृभि सह । सदा, कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थे कदाचन ॥९८॥

पूजा करने अर्चन म प्रथम आहुतियाँ दे ॥८६॥ ८९१॥ पहिली आहुति ब्रह्मा का दूसरा प्रजापति च । तसरा गृह वालों को और चौथी कश्यप को दना चाहिए । तब बहुत-सी बलियाँ चढ़ाये ॥८७-८८॥ पहला नित्यक्रम के विधान म जो क्रिया मीने दत्तलायी थी उसका अनुसार विश्वेदेव का नम करना चाहिए । द्विजगण । अब मुझसे सुनिये ॥८९॥ देवताओं को उद्दय करने पवन-पथक स्थान की रचना करे । मेघ जल तथा पृथ्वी को बलि दे । प्रत्येक दिशा म वायु को बलि दे । पूर्व आदि दिशाओं को भी क्रम बलि दे । ब्रह्मा आकाश तथा सूर्य को प्रथम बलि चढ़ाय ॥९०॥ ९१॥ विश्वेदेव तथा विश्वभूत का भी बलि दे । भूतपति उषा को उत्तर दिशा म पवित्रता पूर्वक बलि दे ॥९२॥ 'स्वधा च नम यह पढ़कर दक्षिण दिशा मे पितरो का बलि दे । अपसव्य हुकर 'व्यसं तत यह पढ़ते हुए वायव्य कोण मे अवशिष्ट अन्नमिश्रित जल पितर को समर्पित करे तब देवताओं और ब्राह्मणों को नमस्कार करे ॥९३॥ ९४॥ दाहिने हाथ मे अंगुष्ठ से उत्तर की रेखा ब्राह्मणों की गहलाती है । इससे आचमन करना चाहिये । तजनी तथा अंगुष्ठ व न च पित्रय त माना गया है । उससे पितरों को जल दे केवल नान्दी मुख आदम नही दे ॥९५॥ ९६॥ अंगुलियों के अग्रभाग मे देवत का माना जाता है । उससे देवकर्म करे । कनिष्ठिका के मूल मे प्रजापति का कायार्थ माना जाता है ॥९७॥ पितरम मे इहा तीर्थों का विधान है । इहा तीर्थों से सदा काय करे । अन्यतीर्थों से कभी म न करे ॥९८॥ ब्राह्मण से आचमन प्रशस्त है । पित्रयता से पितृकर्म

१म गृहोऽभ्य । २स च व्योदबलय नृ० । ३स न्यायोष० । ४ न्याय घ० । ४क कुपोतु ।
 ५क दिनके । ६ग दीयते । ७ग तपसे । ८स यमे त से विभोजनात् । अ० । १ यस्मै तत्तज्जिमोजयेत् । अ०
 १ख ंष्टोत्तर० । १०क स प्रजापते । ११क तीर्थे कुप्यद्राह यथोचितम् । ना० ।

ब्राह्मणेऽऽचमनं शस्तं पंच्यं पित्र्येण सर्वदा । देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं जिते (त्यजले) न च ॥१९॥
 नान्दोमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापते ॥१००॥
 युगपज्जलमग्निं च द्विभूयान्नं विचक्षणः । गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१॥
 नाऽऽचक्षीत धपन्तो गा जलं नाञ्जलिना पिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषु गुरुध्वत्पेषु वा पुनः ॥
 न विलम्बेत मेधावी न मुखेनानलं धमेत् ॥१०२॥
 तत्र विप्रान् वस्तव्यं यत्र नास्ति क्षतुष्टयम् । ऋणप्रवाता बंछश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥१०३॥
 जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः । तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम् ॥१०४॥
 पीरा सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः । शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥१०५॥
 यस्मिन्कुपीबला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः । यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥१०६॥
 तत्र विप्रान् वस्तव्यं यत्रैतस्त्रितयं सदा । जिगीयुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥१०७॥
 यसेप्रितयं सुशीलेषु क्षहचारिषु पण्डितः । यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सत्सुप्रदा महौ ॥१०८॥
 इत्येतत्कथितं विप्रा मया वो हितकाम्यया । अतः परं प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम् ॥१०९॥
 भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसभृतम्* । अस्नेहा अपि गोधूमपक्वगोरसवित्रिया ॥११०॥

सदा करना चाहिये । देवतीर्थ से देवतानो का और आपत्यीर्थ से प्रजापति का वर्म करना चाहिये ॥१९॥
 विद्वान् मनुष्य मान्दीमुख आदि में पिण्डदान तथा अल क्रिया करे । प्राजापत्य तीर्थ से प्रजापति का वर्म करे । पण्डितजन एक समय अल तथा अग्नि का धारण न करे । गुरुदेव पितर तथा ब्राह्मणों के ऊपर पैर न उठाये । बच्चे का पिलाती हुई या स्वयं अल पीती हुई गाय को न गहे (अर्थात् दूसरे का बताकर साय के अल पीने में बाधा न डाले) । अजलि से अल न लिये । छोटे बड़े सभी प्रकार के शौच के कार्यों में विलम्ब न लगाये । मेधावी व्यक्ति मुँह से आग को न फूँके ॥१००-१०२॥ विप्रवृन्द । वहाँ मही वास करना चाहिये, जहाँ ऋणदाता वैद्य, श्रोत्रिय, जलवाली नदी—ये चार चीजें न हों ॥१०३॥ सेवकों को वश में रखने वाला बलवान तथा धर्मपरायण राजा वहाँ (के राज्य में) रहता है, वही विद्वान् व्यक्ति नित्य वास करे । निश्च राजा के राज्य में सुख वहाँ ? जहाँ पुरातनी आपस में मिल-जुल कर रहते हों तथा सदा म्यायानुगामी, शान्त एवम् ईर्ष्यामुन्य हो वहाँ का निवास सुखदायी होता है ॥१०४-१०५॥ जिस राष्ट्र में विद्वान् अभिमान्नी न हो और ओषधियाँ पर्याप्त मिलती हों वहाँ विद्वान् व्यक्ति वास करे ॥१०६॥ विप्रवृन्द । वहाँ वास नहीं करना चाहिये जहाँ लोग विवश के इच्छु, वैर करने वाले एवम् सदा उत्सवकारी हों । पण्डित व्यक्ति सदा सुशील सहवासिया के साथ रहे । जहाँ राजा धुष्ट न हो और पृथ्वी सत्यसम्पन्ना हो वहाँ वास करना चाहिये । विप्रगण । आप लोगों के हित के निमित्त मैंने इतना कहा । अब भव्य माज्य के विधान को बतलाऊँगा ॥१०७-१०९॥ स्निग्ध माज्य अन्न वाली हो, चिरकालीन हो, फिर भी ग्राह्य है । स्नेह से रहित गेहूँ, मक्ख तथा गोरस के विकार—पी, मट्ठा आदि—ग्राह्य हैं ॥११०॥ खरगोश, कछुआ, गेहूँ साही तथा मत्स्य

१क ०तुमरे न च । २ख ०तवयो जन्तोर्जल । ३ग ०लक्षेत वात च न । ४ ग सज्जला । ५त ०श्च तथा न स । ६ग ०हवासिपु । ७क ०सचित ० ।

शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽय शल्यकः । भट्ट्याश्चेते तथा वज्र्यो ग्रामशूकरबुबकुटी ॥१११॥
 पितृदेवादित्ये च 'श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया । प्रोक्षितं चोपधार्यं च खादन्मास न दुष्यति ॥११२॥
 शङ्खाश्मत्स्वर्णहृष्याणां 'रज्जुनामय वाससाम् । शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३॥
 मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मयताफलस्य च । पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते ॥११४॥
 तथाऽऽमकानां तोयेन अश्मसंघर्षणेन च । सम्नेहानां च पात्राणां शुद्धिर्हृष्येन धारिणा ॥११५॥
 शूर्पाणामजिनानां च मुशलोल्बलस्य च । संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सचयस्य च ॥११६॥
 'वल्कलानामशोषाणामम्बुमूच्छौचमिष्यते । आविकानां समस्तानां केशानां चैवमिष्यते ॥११७॥
 सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । शोधनं चैव भवति उपघातघनां सदा ॥११८॥
 तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्यान्नलभस्मना । दारुदन्तास्थिभृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥
 पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानामभेद्यता । शुद्धं भक्ष्यं 'कारुहस्तः 'पण्यं प्रोपिन्मुखं 'तथा ॥१२०॥
 'रघ्यागमनविज्ञान 'दासवर्गण 'सस्मृतम् । प्राक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१२१॥
 अन्तः प्रभूतं बालं च 'वृद्धान्तरविचेष्टितम् । कर्मान्तागारभालाश्च स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः ॥१२२॥

मस्य हैं । गाय वै सूरज तथा मुर्गे अमस्य हैं ॥१११॥ श्राद्ध में पितृ-देव कर्म के अवशिष्ट मास तथा ब्राह्मण और औषध के निमित्त लाये गये मास को सस्मृत करने खाने में कोई दोष नहीं ॥११२॥ जल, परपर, सोना तथा चाँदी के पात्रों एवं चर्मको काँजल से धो देने पर उनकी शुद्धि हो जाती है । रस्सी, वस्त्र, शाक, वस्त्र, फल, बाँस का पात्र, मृग आदि का चर्म, मणि, मृगा तथा मोती जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं । परपर जल से या परपरी की रगड़ से शुद्ध होता है । स्नेह (तेल आदि) से युक्त पात्र गरम जल से शुद्ध होता है । मृग चर्म-वस्त्र, मुकल, ओखली, तिला हुआ वस्त्र तथा वल्कल (छाल) जल से शुद्ध होता है । भेड़ का बाल भी जल से शुद्ध हो जाता है ॥११३-११७॥ सरसो या तिल की छली से चाटिलो या पाथ वालो की शुद्धि होती है ॥११८॥ वपास का वस्त्र जल तथा मसम से शुद्ध होता है । लवड़ी, दाँत, हड्डी तथा सींगों की शुद्धि छीलने से होती है । मिट्टी का बरतन पुनः पाक करने से अपवित्र हो जाता है । मिश्रा, दुकानदार व हाथ, दुकान में रखी चीजे तथा रस्ती का मुख शुद्ध होता है ॥११९-१२०॥ सेवकी द्वारा साध सुचरा किया गया राजमार्ग शुद्ध होता है । पहले जिसकी प्रशंसा की गई हो, ऐसी वस्तु बहुत दिना के बाद भी शुद्ध रहती है । अनेक वस्तुओं से ढकी हुई छोटी चीज शुद्ध होती है । शरीर में सलग्न वेस और वृद्ध की चेष्टा शुद्ध होती है (?) । जहाँ सलम किये गये हो ऐसी शालायें तथा स्त्रिया के दोनों स्तन शुद्ध होते हैं ॥१२१-१२२॥ गन्वरहित बहता जल शुद्ध होता है । मूषि जलाने, झाड़ू देने, गोष्ठ बनाने

१क ग श्राद्ध । २क देवतार्ता । ३क रज्जुनामय च वा० । ४क ०णा च फलाना । ५ ०णा वसनानां । ६क ०स्मृतस्य । ६क च । कल्कानामगयशे० । ७क ०म्बुमूच्छौ० । ८क ०न्ता चाप्यभेद्यता । सि० । ९क ल साधूना । १०क ०हस्तात्पण्य । ११क पण्ययो० । १२क ०वा गतमविज्ञात दा० । १३क ०गतम-विज्ञात दा० । १४क ०वर्गण्य तत्कृत० । १५क ०म् । वासुस० । १६क ०दातुर० ।

शुचयश्च तथेवाऽऽपः स्ववन्त्यो 'गन्धर्वजिताः । भूमिविशुद्धते कालाद्दाहमार्जनगोकुलं' ॥१२३॥
 लेपादुल्लेखनास्तेकाद्वेदम' संमार्जनादिना । केशकीटावपन्ने च गोघ्राते 'मक्षिकान्विते' ॥१२४॥
 मृदम्बु भस्म चाप्यपने प्रलेप्तव्यं विशुद्ध्यते । औदुम्बराणामम्लेन वारिणा 'त्रपुसीतयोः' ॥१२५॥
 भस्मान्बुभिश्च कास्थानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च । अमेघ्यावतस्य 'मृत्तोयर्गन्धापहरणेन' च ॥१२६॥
 अन्येषां चैव द्रव्याणां धर्षणगन्धाश्च हारयेत् । शुचि मांसं तु चाण्डालव्यादर्निनिपातितम् ॥१२७॥
 रथ्यागतं च तैलादि शुचि मोतृप्तिदं पयः । रजोऽग्निरश्वगोलायारक्ष्मय' पवनो मही ॥१२८॥
 बिम्बुयो मक्षिकाद्याश्च दुरटमङ्गाददोषिणः । अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोवर्तस्य चाऽऽननम् ॥१२९॥
 मातुः प्रसवणे (जं) मेध्यं शकुनिः फलपातने । आसनं शयनं दानं' तटौ नद्यास्तृणानि च ॥१३०॥
 'सीमसूयांशुपवने' 'शुध्यन्ते तानि यण्डवत् । रथ्यापसर्पणे स्नाने 'भुत्पानानां च वर्मसु ॥१३१॥
 आचामेत यथान्यायं घातसः 'परिधापने । स्पृष्टानामय 'सस्पर्शं द्विरथ्याकर्ममाभसि' ॥१३२॥
 पव्वेदकचित्तानां च मेधता दायुसंश्रयात् । प्रभूतोपहृतादन्नावप्रमुदृत्य सत्यजेत् ॥१३३॥

कीपने, कुडेवने, तथा सिक्त करने से शुद्ध होती है । घर साबू-जहाडू आदि करने से शुद्ध होता है । अस में केश तथा
 कंठ पद जाय, गाय सूय ले या मक्खी बैठ जाय, तो उसे मिट्टी या जल या मसम से शुद्ध करना चाहिए । ताँबा,
 रौंगा तथा झींसा जटारयुक्त जल से शुद्ध होता है । वींसा भस्म तथा जल से शुद्ध होता है । अपवित्र वस्तु से
 युक्त द्रव्य मिट्टी या जल तथा गन्ध को मिटा देने से शुद्ध होता है ॥१२३-१२६॥ दूसरे की द्रव्य वर्ण गन्धो को
 मिटा देने से शुद्ध हो जाते हैं । चाण्डाल तथा हिसक जीवो द्वारा गिराया हुआ मांस शुद्ध होता है । राजमार्ग
 पर गिरे हुए तेल आदि शुद्ध होते हैं । गाय का तृप्ति देने वाला दूध शुद्ध होता है । बालू, अग्नि, घाड़ी, गाय, छाँह,
 गिरण, पवन और पृथ्वी शुद्ध होती है ॥१२७-१२८॥ बिन्दु तथा मक्खी आदि चीजे दुष्टसग से दूषित नहीं होती ।
 शरीर तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है । गाय तथा बछड़े का मुख शुद्ध नहीं होता है । माता के स्तन से निकलता
 दूध तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है । गाय तथा बछड़े का मुख शुद्ध नहीं होता है । माता के स्तन से निकलता
 दूध तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है । फल गिराने के समय पत्ती शुद्ध होता है ॥१२९॥ आसन, शय्या, सवारी और नदी-
 तट वा तृण सूर्य चन्द्रमा की चिरणों से तथा वायु से शुद्ध हो जाता है जैसे दुक्कन म रक्ती हुई चीजे ॥१३०॥
 गली में चलने पर, स्नानकाल में साने-पीने के समय तथा वस्त्र पहनने के समय विविध के अनुसार आचमन करना
 चाहिए ॥१३१॥ घुरे रास्ते और कंकड़ सने हुए जल वा स्पर्श हो जाने पर वायु लगने से शुद्ध होती है । पत्ती
 ईंटों से बनी हुई वस्तुआ की शुद्धि भी वायु से होती है । बहुत गन्ध हुए अन्न के आगे से निराल कर कर दे और

१ अन्यवृद्धा । २ व गोत्रम् । ले० । ३ ख ०कादमरमना मा० । ४ क ०ते । मसम वायु तु विद्विष
 प्र० । ५ व ०ये । उडु० । ६ क ०थो । तस्मात् माधकान्गानां शु० । ७ व ०तोयं शुद्धिमर्ग० । ८ क.
 ०पचपणात् । ९ क ख ०य । राजान्निव्यगो० । १० ख पान । ११ म ०सूर्याम्बुप० । १२ क धन्यपन्नानि ।
 १३ क श्रुत्वा वातादि० । १४ व ०ने । घुट्टा० । १५ ख ०स्पर्शो द्विर० । १६ व. ममाम् । प० ।

शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताग्निनो भवेत् ॥१३४॥
 अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोषोपशमे न तु । 'उदवयां' वावलम्नां च सूक्तिकान्त्पावसाग्निनः ॥१३५॥
 स्पृष्ट्वा स्नायीत शोचार्थं तथैव मृतहारिणः । नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विमुच्यति ॥१३६॥
 आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालम्ब्यार्कमोक्ष्य वा । न लङ्घयेत्तथैवायं प्योवनोद्वर्तनानि च ॥१३७॥
 गृहादुच्छिष्टविष्मन् पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः । पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न म्नायात्परवारिणि ॥१३८॥
 स्नायीत देवसातेषु गङ्गाह्रदसरिस्तु च । 'नोद्यानादौ विकालेषु' प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३९॥
 नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्धोरहीनास्तथा स्त्रियः । देवतापितृसच्छास्त्रपञ्चसंन्यासिनिवर्कः ॥१४०॥
 कृत्वा तु स्पर्शनालाप शुष्यत्यर्कवलोकनात् । अधलोच्य तथोदवयां संन्यस्तं पतितं शवम् ॥१४१॥
 'विधर्मसूतिकापण्डविवस्त्रान्त्यावसाग्निनः । मृतनिर्यातकाश्चैव परवाररताश्च ये ॥१४२॥
 एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः । अभोज्यभिर्भुषास्त्रण्डमाज्जरत्नैरुक्कुटान् ॥१४३॥
 पतितापविद्वद्वाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित् । सम्पृश्य शुष्यते स्नानादुदवयाग्रामशूकरी ॥१४४॥
 तद्वच्च 'सूतिकाशोचद्वयितौ पुरथावपि । यस्य चतुर्विं हानिगृहे नित्यस्य कर्मणः ॥१४५॥

बचे को जल से सिक्त करे । जानकर या बिना जाने दूषित मात खाने से दोषग्रान्ति के लिये तीन रात उपवास करे ॥१३२-१३४॥ रजस्वला तथा नवप्रसूता स्त्री वा स्पर्श हो जाने पर पवित्रता के लिये स्नान करे । शव-वाहक व्यक्तियों का स्पर्श होने पर भी स्नान करे । मनुष्य की हड्डी छू जाने पर ब्राह्मण तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होता है ॥१३५-१३६॥ जपवा बिना सबैल स्नान किये ही गाय को छू लेने से, सूर्य को देख लेने से तथा आचमन कर लेने से बह पवित्र हो जाता है । शूक, उवटन, उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र तथा चरण घोल से बचे जल को नहीं लाधना चाहिये । दूसरे के जल में बिना पाँच पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान नहीं करना चाहिये ॥१३७-१३८॥ जलाशय, गंगा, झील तथा सरोवरो में स्नान करना चाहिये । विद्वान् व्यक्ति कुसमय में धर्मादि आदि में न रहे ॥१३९॥ मनुष्यों से द्रोह करने वाले व्यक्ति से तथा गुलटा स्त्री से समापण नहीं करना चाहिये । देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ-वर्ता तथा सन्यासियों के निन्दक से स्पर्श तथा समापण करने मनुष्य सूर्य के दर्शन से शुद्ध होता है ॥१४०॥ रजस्वला, स्वक्त, पतित, शव, विधर्मी नवप्रसूता नपुंसक, दम्बहीन स्त्री, चाण्डाल, शव-वाहन तथा परस्त्रीग्रामी को देखकर विद्वान् मनुष्य यही प्रायश्चित्त करे (अर्थात् सूर्य का दर्शन कर ले) ॥१४१-१४२॥ अभोज्य वस्तु, मिश्रक, पाषण्डी, विलाड, गधे, गुर्घे, पतित, चाण्डाल तथा शव डोने वाले वर स्पर्श कर धर्मवेत्ता मनुष्य स्नान से शुद्ध होता है । रजस्वला, शव के शूलर तथा नवप्रसूता के अशौच से दूषित पुरुषों का स्पर्श करने पर मनुष्य स्नान करे । जो प्रतिदिन नित्यकर्म से वंचित रहता है, जो ब्राह्मणों से परित्यक्त है और जो पापाशी (बिना मंग-

यश्च ब्राह्मणसंत्यक्तः कित्त्विषाशी नराधमः । नित्यस्य कर्मणो हानि न कुर्वीत कदाचन ॥१४६॥
 तस्य त्यकरणं वश्ये केवलं मृतजन्मसु । दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविजितः ॥१४७॥
 सत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्धमेव च । शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविजितः ॥१४८॥
 ततः परं निजं कर्म कुर्युः यथै यथोचितम् । प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकं ॥१४९॥
 प्रथमेऽह्नि क्षतुर्ये च सप्तमे नवमे तथा । तस्यास्थिसंचयः कार्यदक्षतुर्येऽह्नि गोत्रकं ॥१५०॥
 ऋष्यं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते । गोत्रकंस्तु त्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१॥
 'स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ।' अन्वयमिच्छया 'शस्त्ररज्जुबन्धनत्रिह्रिषु ॥१५२॥
 विप्रप्रतापाविमृते' प्रायानाशकधोरपि । बाले देशान्तरस्ये च तथा प्रवर्जिते मृते ॥१५३॥
 सद्यः शीतं भन्व्याणां त्र्यहम्भुवत्प्रमशौचकम् । सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽप्यस्मिन्मृतौ यदि ॥१५४॥
 पूर्वशौचं समाख्यानं कार्यास्तत्र दिनत्रियाः । एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सत्के ॥१५५॥
 सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च । पुत्रे जाते पितुः स्नानं मर्चलस्य विधीयते ॥१५६॥
 तत्रापि यदि वाऽऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः परम् । तत्रापि शुद्धिरुचिता पूर्वमभ्यवृत्तौ दिनेः ॥१५७॥

मान् को समर्पित किये भोजन करने वाला) है, उनसे स्पर्श करने पर भी स्नान करे। नित्यवर्ग को कभी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१४६-१४६॥ सगौत्र में किसी के मरने पर तथा अन्न लेने पर नित्यवर्ग छोड़ दे। अर्थात् अशौच में ब्राह्मण दस दिनो तक दान-होम छोड़ दे ॥१४७॥ शत्रिय बारह दिनो तक, वैश्य पन्द्रह दिनो तक और शूद्र एक मास तक अपने-अपने नित्यवर्गों से वंचित रहे ॥१४८॥ इससे बाद सब अपने-अपने यथोचित कर्म करें। सगौत्र के शौच बाहर जाकर पहले दिन, चौथे दिन, सातवें दिन तथा नवें दिन प्रेत को जल दें और चौथे दिन उसका अस्थि-संचय करें। अस्थि-संचय के बाद श्रगस्पर्श वा विधान है। गोत्र वाले अस्थि-संचय के बाद सारी क्रियाएँ करें ॥१४९-१५१॥ मृत्यु के दिन सपिण्डों द्वारा स्पर्श करता ही विहित है मले ही वह व्यक्ति स्वेच्छा से मरा हो या शस्त्र से या पौंसी से या अग्नि से या विष से या अनशन के द्वारा मरा हो। विदेश में बालक के मर जाने तथा संयासी के मर जाने पर मनुष्यों को तीन दिनो का सद्य अशौच लगता है ॥१५२-१५३॥ सगौत्र बालो में एक के मर जाने के बाद दूसरे दिन दूसरा भी कोई मर जाय तो पहले के अनुसार ही अशौच माना जाता है। उसमें वैवल दैनिक क्रियाएँ करनी चाहिए। यही विधान जन्माशौच में भी लागू होता है ॥१५४-१५५॥ किन्तु यह नियम सपिण्डों के प्रति तथा जिनके मरने पर जल दिया जाय उनके सम्बन्ध में है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता सर्वल स्नान करे। वहाँ भी यदि दूसरे दिन दूसरा (बालक) जन्म ले ले तो पहले जो उत्पन्न हुआ हो, उसी के दिनो के अनुसार शुद्धि होगी। समस्त वर्ण दक्ष, बारह, पन्द्रह तथा एक मास के हिसाब से विधिपूर्वक

१४. ०ते। सोदरैस्तु। ग. ०ते। सोदकं०। २ग सर्वं। ३ग अन्विच्छति०। ४य ०रनेषोदतं०।

५क. स. ०पप्रमतायुते। दक्ष. ०नुष्यस्य त्व०। ग ०नुष्यश्च त्व०। ७ग ०स्मिञ्जाते जायेदपाप०।

दशद्वादशमासाधर्माससह्येदिनेर्गने । स्वा स्वा कर्मत्रिण क्रुयं सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८॥
 प्रेतमुद्दिश्य वतव्यमेकोद्दिष्टमन परम् । दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनोयिभि ॥१५९॥
 यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे । तत्तदगुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०॥
 पूर्णंस्तु दिवसं स्पृष्टया सलिल बाह्नायुधं । दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णा कृतप्रिया ॥१६१॥
 कुर्यु समग्रा दुचिन्त परत्रेह च भतये । अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥१६२॥
 धर्मतो धनमाहार्ये यष्टव्य चापि यत्नत । येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजा ॥१६३॥
 तत्कर्तव्यमशङ्कतेन यत्र गोप्य महाजनं । एवमाचरतो विप्रा पुरणस्य गृहे सतः ॥१६४॥
 धर्मार्थिकाम सप्राप्य परत्रेह च शोभनम् । इव रक्ष्यमायुष्य धनं बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५॥
 सर्वपापहर पुण्य धीपुष्ट्यारोग्यद शिवम् । यज्ञ वीतिप्रद नृणा तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६॥
 अनुष्ठय सदा पुंभि स्वयणसाधनमुत्तमम् । ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैश्च मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 ज्ञातव्य सुप्रयत्नेन सम्यक्क्षेपोभिकाङ्क्षिभि । ज्ञातव्यं य सदा बालमनुष्ठान करोति यः ॥१६८॥
 सर्वपापयिनिर्मुक्त स्वर्गलोके महीयते । सारात्सारतर चेदमारयात द्विजसत्तमा ॥१६९॥

अपनी-अपनी धन त्रिया करें ॥१५९-१५८॥ इसने बाद प्रत को उद्दिश्य करके एकतद्दिष्ट करना चाहिये । विद्वान्
 व्यक्ति ब्राह्मणा को दान भी दें ॥१५९॥ लोग म जो सबसे प्रिय हो और अपने गृह म सुन्दर हो उसी काज को
 अक्षय बनाने के इच्छा से गुणवान् को देना चाहिये ॥१६०॥ दिन पूरे होने पर काहुन तथा दास्य-अस्त्रा से युक्त
 होकर समस्त धन जत्र ना स्पर्श करें और प्रत को जल तथा पिण्ड देकर त्रिया सम्पन्न करें ॥१६१॥ इस लोग मे
 तथा परलोक मे कल्याण व लिय मनुष्य पवित्र होकर त्रिया सम्पन्न करें । विद्वान् व्यक्ति नित्य वेदो वा अध्ययन करें
 ॥१६२॥ धनपूर्वक धन बनाना चाहिये और यत्नपूर्वक यज्ञ करना चाहिये । द्विजपण । जिससे आत्मा कुण्ठित
 हो तथा निर्दिष्ट न बने, वह निश्चय होकर करना चाहिये ॥१६३॥ जो गृहान् व्यक्तिया से गोपनीय न हो, वह
 भी करना चाहिये । इस प्रकार आचरण करते हुए गृहस्थ मनुष्य धन अर्थ और काम की प्राप्ति कर इस लोग म
 तथा परलोक म सुख होते हैं । यह रहस्य धन आयु तथा बुद्धि बढ़ाने वाला, समस्त पापा वा नाश करने वाला
 पुण्य, लक्ष्मी पुष्टि तथा आरोग्य देने वाला, कल्याणकारक, यस प्रतिष्ठा दायक और तेजावन्वितवर्धक है ॥१६४-
 १६६॥ पुरपा को स्वयं व इस उत्तम साधन वा अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये । मुनिधेष्टो । कल्याण पाहने
 वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रो को यत्नपूर्वक इसे जानना चाहिये ॥१६७॥ इसे जानकर जो सबदा इसका
 अनुष्ठान करता है वह सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग म पूजित होता है । द्विजधेष्टो ! सार से भी सार (सब से

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् । न नास्तिकाय दातव्यं न दुष्टमतये द्विजाः ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न वृत्कं प्रलापिने ॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्याससिंहादे सदाचारनिरूपणं
नामैकाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मवर्णधर्मान्विशेषतः । चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्यं श्रोहि तान् ॥१॥

व्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाश्रमम् । शृणुध्व संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२॥
'दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परं' । नित्योदकं भवेद्विप्रः कुर्याच्चान्निपरिग्रहम् ॥३॥
'वृत्त्यर्थं' याजयेत्तन्मन्त्रिजानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिग्रहादानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः ॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्याद्ग्राहितं कस्यचिद्विद्वज्जा । मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तम धनम् ॥५॥

उत्तम) यह रहस्य मैंने बतला दिया । श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित यह धर्म जिस किसी को नहीं देना चाहिए । नास्तिक,
दुष्टबुद्धि, दाम्भिक, मूर्ख तथा असत्य बोलने वाले को यह नहीं देना चाहिए ॥१६८-१७०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सदाचार निरूपण नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन् ! द्विजवर्य ! हम चारो आश्रमों के धर्मों को तथा विशेष कर वर्ण-धर्मों को

सुनना चाहते हैं, आप बतलाएँ ॥१॥

व्यास बोले—जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के वर्णधर्मों को आप लोग ध्यान से सुनिये, मैं कहता हूँ ॥२॥ ब्राह्मण दान, दया, तप देवयज्ञ तथा स्वाध्याय में तत्पर होकर नित्य जलधर्म और अग्निहोत्र किया करे ॥३॥ जीविता के लिये अन्य द्विजा को पढ़ाये एवम् यज्ञ कराये । जान-बूझ कर यज्ञ के लिये प्रतिग्रह न स्वीकार करे ॥४॥ सब का बल्याण करे, अहित किसी का न करे । समस्त प्राणियों से मित्रता ही ब्राह्मण का उत्तम

१व प्रयत्न । २व दान दयातपोदेवान्यज्ज० । ३व ०र्यान्च प्रयत्न गृह० । ४व ०र्थ सेवयेत्त्व० ।
५व ०ग्रह दान शूलार्थं न्यायते । स ग्रह दान सत्त्वर्थं न्यायते ।

गवि रत्ने च पारवये समबुद्धिर्भवेदद्विजा । ऋतावभिगम पत्न्या अस्यते वाऽस्य भो द्विजा ॥६॥
 दानानि दद्याद्विच्छातो द्विजेभ्य क्षत्रियोऽपि हि । यजेन्व विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजा ॥७॥
 शस्त्राजीवो महोरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तस्यापि प्रथमे 'कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८॥
 धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या वराधिपा । भवन्ति नृपते रक्षा यतो यत्तादिकर्मणाम् ॥९॥
 दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताल्लोकान्त्वर्णसंस्थापको नृप ॥१०॥
 पाशुपाल्य घणिक्या च कृषि च मुनिसत्तमा । वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११॥
 तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च इत्यस्ते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठान च वर्मणाम् ॥१२॥
 द्विजातिसंश्रय कर्म 'तदयं तेन पोषणम् । कपविश्रयैर्याऽपि धनं कारुभवंस्तु वा ॥१३॥
 दान दद्याच्च क्षुद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिक च यै सर्वं क्षुद्र कुर्वत तेन वै ॥१४॥
 भुक्ष्यादभिरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहा । ऋतुकालाभिगमन स्वदारेषु द्विजोत्तमा ॥१५॥
 दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता । सत्य औघमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥१६॥
 मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्य द्विजोत्तमा । अनमूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणा ॥१७॥
 आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणास्तयोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजा ॥१८॥
 क्षात्र वर्मं द्विजस्योक्त वैश्यकर्म तथाऽऽपदि । राजन्यस्य च वैश्योक्त शूद्रकर्माणि चैतयो ॥१९॥

घन है ॥५॥ गो, रत्न तथा परलोक के निमित्त कर्मों में समबुद्धि रखे । ब्राह्मणों के लिये ऋतुपालन म मार्गगमन करना प्रशस्त है ॥६॥ क्षत्रिय इच्छापूर्वक ब्राह्मणों को दान दे, विविध यज्ञ करे तब अघमन करे ॥७॥ शस्त्र धारण करना और पृथ्वी की रक्षा करना उसकी उत्तम जीविका है । प्रथम कल्प में पृथिवी का परिपालन ही क्षत्रिय का धर्म बतलाया गया है ॥८॥ धरित्रीपालन से ही क्षत्रिय कृतकृत्य हो जाते हैं, जिसलिये कि इससे यज्ञ आदि कर्मों की रक्षा होती है ॥९॥ दुष्टों को दण्ड देने से सज्जनों का परिपालन करने से वन संस्थापक राजा वाञ्छित लोक में जाते हैं ॥१०॥ मुनिवर ! लोकपितामह ब्रह्मा ने वैश्यों को पशुपालन, खेती तथा व्यापार जीविका में दिये हैं ॥११॥ वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान, धर्म और नित्य, नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान करे ॥१२॥ द्विजातियों के कर्म से या खरीद बित्री आदि व्यापार से वह अपना पोषण करे ॥१३॥ क्षुद्र भी दान दे और पाव-यज्ञ करे । वह पितृ-धर्म आदि सब कुछ करे ॥१४॥ द्विजधण्डो ! नौकर आदि के भरण के लिये सबका दान लेना, ऋतुपालन में स्त्राप्रसंग करना, समस्त प्राणियों पर दया करना, सहनशीलता अभिमान न करना सत्य, शौच अनायास, मङ्गल, प्रियवादिता मैत्री अस्पृहा, अवापण्य, अनमूया—ये गुण सब वर्णों के लिये सामान्य हैं ॥१५-१७॥ समस्त आश्रमों के लिये ये गुण सामान्य लक्षण हैं । द्विजगण ! ब्राह्मण आदि के लिये ये उपधर्म हैं । आपतिपालन म ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का वर्म नर सत्ता है और क्षत्रिय वैश्य एवम् शूद्र का वर्म नर सत्ता है ॥१८-१९॥ सामर्थ्य

॥ (अ) सामर्थ्यं सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः । तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०॥
इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै । धर्ममाथमिणां सम्यग्बुधतोऽपि निबोधत ॥२१॥
बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः । गुरोर्मेहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
शोषाचाररतस्तत्र कार्यं श्रुभूषणं गुरोः । व्रतानि चरता 'ग्राह्यो वेदश्च' कृतबुद्धिना ॥२३॥
उभे संध्ये रवि विप्रास्तथैवाग्निं समाहितः । उपतिष्ठेत्तथा कुर्याद्गुरोरप्यभिवादनम् ॥२४॥
स्थिते तिष्ठेद्भजेद्याति मोचेरासीत चाऽऽसिते । शिष्यो गुरो द्विजयेष्टः प्रतिकूलं च संत्यजेत् ॥२५॥
तेनैवोक्तं पठेद्देवं नान्यचित्तः पुरस्थितः । अनुज्ञातं च भिक्षाद्रमश्नोयाद्गुरुणा ततः ॥२६॥
अवगाहेवपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः । समिञ्जलादिकं चास्य कल्पकल्पमुपानयेत् ॥२७॥
'गृहीतग्राह्यवेदश्च सतोऽनुज्ञामवाप्य वै । गार्हस्थ्यमाकसेत्प्राप्नो निष्पन्नगुहिरकृतिः ॥२८॥
विधिनाऽवाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा । गृहस्थकार्यमखिलं 'कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९॥
निर्वापेण पितृनर्घ्यं यज्ञैर्देवास्तयाऽतिथीन् । अश्वैर्मुनोश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०॥
बलिकर्मणा भूतानि यावत्सत्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति 'लोकान्पुरयो निजकर्मसमाजितान् ॥३१॥
भिक्षाभुञ्जश्च ये केचित्परिक्राड्ब्रह्मचारिणः । सेऽप्यत्र' प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥३२॥
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः । अटन्ति बसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ॥३३॥

रहने पर उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, परन्तु आपत्तिबाल में पड़ने से कोई दोष नहीं। दूसरे का कर्म दूसरा प करे ॥२०॥ विप्रवृद्ध। आपको वर्णधर्म मैंने बतला दिये। अब आश्रमों के धर्म भी आप मुझसे सुन लें ॥२१॥ द्विजगण। बालक का उपनयन हो जाने के बाद वह वेदाध्ययन करने के लिये गुरु के गृह में वास करे। ब्रह्मचर्य, शाक्यपनी, शीघ्र तथा आचार रखते हुए वह गुरु-युग्म में निरत रहे, व्रत करे, ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे, दोनों सन्ध्या समाहित होकर सूर्य का उपस्थान, अग्निहोत्र एवम् गुरु का अग्निवादन करे। ॥२२-२४॥ द्विजप्रेष्ठो। शिष्य गुरु के छात्रा होने पर सदा ही जाग्रत, चलने पर चले, बैठने पर नीचे बैठे और उनसे प्रतिकूल बर्तन न हो ॥२५॥ गुरु के कथनानुसार अनन्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनकी आज्ञा लेकर भिक्षाल भोजन करे ॥२६॥ आचार्य को स्नान करा कर तब स्वयम् स्नान करे। नित्य प्रातः काल गुरु के लिये समिधा, जल आदि का प्रणय करने रखे ॥२७॥ वेदाध्ययन करने के उपरान्त गुरु का दक्षिणा देकर अपनी आज्ञा से बुद्धिमान व्यक्ति गृहस्थाश्रम में वास करे ॥२८॥ विधिपूर्वक विवाह कर अपने कर्म से धन प्राप्ति कर शक्यनुसार गृहस्थाश्रम के अतिथि भाग्यो का सम्पन्न करे ॥२९॥ श्राद्ध आदि से पित्रों को, यज्ञों से देवों को जनों से अतिथियां करो, स्वाध्यायो से मुनियों को, सन्तान से प्रजापति को, वलिधर्म से भूता को तथा सत्यवाणी से अतिथि जगत् को सन्तुष्ट करने मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपाजित लोगों को प्राप्त करते हैं ॥३०-३१॥ भिक्षाजीवी सन्ध्याशी तथा ब्रह्मचारी भी गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते हैं। इसलिये गार्हस्थ्य सभसे श्रेष्ठ है ॥३२॥ द्विजगण। वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के

१क स प्राप्ता। २क स अद्विती सनातनी उ। ३स अद्व च त०। ४स अद्वि स्व०।
५स अनुपदव नि०। ६स अप्यनैवावतिष्ठन्ते वा०।

अनिकेता ह्यनाहारा' ये तु साय गृहास्तु ते । तेषा गृहस्थ' सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४॥
 तेषा स्वागतदानानि चवत्थ मधुर सदा । गृहागताना दद्याच्च शयनासनभोजनम् ॥३५॥
 अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृत तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६॥
 अवज्ञानमहकारो दम्भश्चापि गृहे सत । पवित्रादोपघातो च पाह्य च न शस्यते ॥३७॥
 यश्च सम्पक्करोत्येव गृहस्थ 'परम विधिम् । सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाम्प्रोति चोत्तमान् ॥३८॥
 'वय परिणतो विप्रा कृतकृत्यो गृहाश्रमो । पुत्रेषु भार्या' निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा' ॥३९॥
 पर्णमूलपलाहार केशमश्रुजटाधर । भूमिशायी भवेत्तत्र मुनि सर्वातिथिद्विजा ॥४०॥
 धर्मकाशकुशं कुयत्परिधानोत्तरीयके । तद्वस्त्रिषवण स्नान शस्तमस्य द्विजोत्तमा ॥४१॥
 देवताभ्यर्चनं होम सर्वाभ्यागतपूजनम् । भिक्षा धनप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्यते ॥४२॥
 वन्यस्नेहेन गानाणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते । 'तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥४३॥
 यस्त्वेता' नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनि । ॥ दहत्यग्निवद्दोषा'ज्येस्लोकान् शश्वतान् ॥४४॥
 घतुर्पश्चादस्यभो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभि । तस्य स्वरूप गदतो बुध्यध्व मम सत्तमा ॥४५॥
 पुत्रव्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेह द्विजोत्तमा । 'चतुर्थमाश्रमस्थान गच्छेन्निर्धूतमत्सर ॥४६॥

लिये तथा पृथिवी-दान के लिये जो धन पर तथा भोजन के पृथ्वी पर पर्वटन करते हैं, उनका आश्रम गृहस्थ ही है ॥३४-३५॥ मधुर वाणी से सदा उनका स्वागत करना चाहिये। गृह पर आने पर उन्हें शय्या, आसन तथा भोजन देना चाहिये ॥३५॥ अतिथि निराश होकर जिसके घर से लौट जाते हैं, उसे वे पाप देकर तथा (उसका) पुण्य लेकर चले जाते हैं। गृहस्थ के लिये तिरस्कार अभिमान, दम्भ, निन्दा यात तथा बहोरता प्रशस्त नहीं है ॥३६-३७॥ जो गृहस्थ सम्पक् प्रकार से गृहस्थ-जीवन बिताता है वह समस्त बन्धनों से निर्मुक्त होकर उत्तम लोकों को प्राप्त करता है ॥३८॥ विप्रबृद्ध । परिपक्व अवस्था होने पर कृतकृत्य हो पुत्रों के उपर पत्नी का भार सौंप कर गृहाश्रमी अकेले वन जाय या भार्या के साथ जाय ॥३९॥ वहाँ पर पत्र, मूल, फल का जाहार कर भूमि पर सोये, मदन करे, सबका आतिथ्य स्वीकार करे, चर्म, वाद्य तथा कुशा के परिधान (पहिनने के वस्त्र) तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे विवाह स्नान करे, शान्ति रखे, देवपूजन, हवन, अभ्यागतता का सत्कार, भिक्षा तथा धनप्रदान करे। वह कर्नाय स्निग्ध पदावीं का उबटन धारीर में लया साता है। सर्दी गर्मी आदि का सहन उसने लिये तपस्या है ॥४०-४३॥ जो वानप्रस्थ मुनि इस प्रकार नित्यचर्या करते हैं वे अग्नि की तरह दायो को जलाकर शाश्वत लानों को प्राप्त करते हैं ॥४४॥ मुनिबृद्ध । मर्न पियों ने भिक्षु के जिस चतुर्थ आश्रम का निर्देश किया है, उसका भी स्वरूप मुनस मुन लीजिये ॥४५॥ मनुष्य पुत्र, स्त्री तथा द्रव्य की ममता छोड़कर राह से रहित होकर चतुष आश्रम में प्रवेश करे ॥४६॥ वहाँ तीनों वर्णों के समस्त नशों का त्याग करे, मित्र आदि अति

१२ निराहारा । ३ ह्यनाहारा । २५ गृह गता । विधा नृ० । ३६ समये । ४० गतो वि० । ५२ या । वन्द मृ० । ५३ ऽपस्तस्य च वि० । ५४ ऽपस्तस्य वि० । ५५ य एव नि० । ५६ ऽप्यपारो वा० । १४ स ऽनुयाश्रमसंस्था० ।

धैर्वाण्यस्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमा । मित्रादिषु समो मैत्राः श्वसन्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७॥
जरायुजाण्डजादीना वादमन.कर्मभिः क्वचित् । युक्तः कुर्वान न 'द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वज्रयेत् ॥४८॥
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । 'तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु' द्वेपो वा नात्य जायते ॥४९॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्ग्यारेऽमुक्तवज्जने । काले 'प्रशस्तवर्णानां भिसार्थी पर्यटङ्गहान् ॥५०॥
अलभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१॥
अतिपूजितकामास्तु जुगुप्सं चै (प्सेच्चं) व सर्वतः । अतिपूजितलाभेस्तु 'यतिर्मुक्तोऽपि दध्यते ॥५२॥
कामः क्रोधस्तथा हर्षो लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य 'परित्राज्निर्ममो भवेत् ॥५३॥
अभयं सर्वसहैभ्यो वत्त्वा यश्चरते महीम् । तस्य ब्रह्माद्विमुक्तस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥

कुन्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसस्यं, शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतं हर्षं विभिक्षिताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५॥
मोक्षार्थं यश्चरते श्रयोक्त, शुद्धिश्च संकल्पितबुद्धियुक्त ।
अनिन्द्यं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजातिः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मणे व्यासविंशत्वादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम
द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

प्राणिमो मे समान भाव से व्यवहार करे, मन, वाणी, तथा कर्म से जरायुज अण्डज आदि का द्रोह न करे, सर्वस्य का परित्याग न करे, एक रात रात्रि मे घास करे सो पाँच रात नगर में रहे । इस तरह सन्यासी किसी से प्रीति तथा द्वेष न करे ॥४७-४९॥ केवल प्राणरक्षा के निमित्त वह प्रशस्त वर्णों के घर मे भिक्षाटन करे, नहीं मिलने पर दुःख न करे और मिलने पर हर्षित न हो । आसक्ति से रहित होकर वह केवल प्राणयात्रा के लिये कर्म करे, अत्यन्त सम्मान तथा लाभ से भयः रहे । क्योंकि अतिमान तथा लाभ से मुक्त यदि भी बद्ध हो जाता है ॥५०-५२॥ सन्यासी काम, क्रोध, हर्ष, लोभ, मोह आदि दोषों का त्याग कर निर्मम हो जाय । जो निर्विक्र प्राणिमो को अभय-दान देकर घरीरी पर चिचरण करता है, वह शरीर से मुक्त हो जाता है, उसे कहीं भय नहीं होता है ॥५३-५४॥ जो विप्र इस तरह अग्निहोत्र करता है, जिसमे कि अपने शरीरस्य अग्नि को अपने मुख मे डालता है अर्थात् उस अग्नि में भिक्षा से प्राप्त घृत से हुवन करता है और कृताग्नि से शरीर को जलाता है, वह (उत्तम) लोना को प्राप्त करता है । जो द्विजाति संकल्पित बुद्धि से युक्त होकर पवित्रतापूर्वक मोक्षार्थम मे जीवन व्यतीत करता है, वह इष्टतमीन अग्नि की तरह प्रशान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥५५-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नामक दो सो बार्हस्पती अध्याय समाप्त ॥२२२॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकरजातिलक्षणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

सर्वजस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतं । भूत भग्यं भविष्यं च न तेऽस्त्यर्थादितं मुने ॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः । उत्तमा च भवेत्केन 'सूहि' तेषां महामने ॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति । श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३॥

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविभूषिते । नानाद्रुभलताकीर्णे 'नाना'इत्येवमन्विते ॥४॥
तत्र स्थित महादेवं त्रिपुरघ्न त्रिलोचनम् । शंकराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम् ॥५॥
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्छारलोचना । तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्व मम सत्तमाः ॥६॥

उमोवाच

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन । दक्षत्रनुहर् श्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा । केन कर्मविपाकेन वेदयो गच्छति शूद्रताम् ॥८॥

अध्याय २२३

संकरजाति ना लक्षण-वर्णन

मुनियो ने कहा—महाभाग ! आप सर्वज्ञ तथा प्राणीमात्र के बल्ल्याण से निरत हैं। मुने ! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं। आपसे कुछ अविदित नहीं है। महाबुद्धिमान् ! किस कर्म से वर्णों की नीच गति होती है और किस कर्म से उत्तम—यह हमें बतलाइये। शूद्र किस कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और ब्राह्मण किससे शूद्रत्व का—यह हम मुनना चाहते हैं ॥१-३॥

व्यास ने कहा—विप्रबुद्ध ! पहले हिमालय के मनोरम, नाना प्रकार की धातुओं से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त तथा आश्चर्यजनक बस्तुओं से युक्त शिखर पर स्थित, देवों के ईश्वर, त्रिपुर नामक राक्षस को मारते वाले तथा तीन नख वाले शर को प्रणाम कर मुन्दर नयन वाली गिरिधुत्री उमा ने उनसे यह प्रश्न पूछा था। मुनिबुद्ध ! उसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग मुने ॥४-६॥

उमा ने कहा—भगवान् ! मम नामक देवता के नेत्र छोड़ने वाले। पूषा के दाँत तोड़ने वाले ! दक्ष के यन्त्र का विनाश करने वाले ! तीन नख वाले ! यह मुझे भवान् मन्द है कि भगवान् ब्रह्मा ने पढ़ते पारों वर्णों

वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमे कथं देव' शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनीं प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०॥
एतं मे संजयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११॥

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप नितर्गाद्ब्राह्मणः 'शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा नितर्गादिति मे मतिः ॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यसि स द्विजः । श्रेष्ठं' वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति । क्षत्रियो वाय्य वैश्यो' वा 'ब्रह्मभूय' ॥ गच्छति ॥१४॥
पञ्च विप्रस्त्वमुत्सृज्य' क्षत्रधर्माभिपेक्षेन' । ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनीं प्रजायते ॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहद्वयपाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७॥
तत्रासी निरयं प्राप्तो 'वर्णभ्रष्टो' बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनीं' प्रजायते ॥१८॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माभ्युपाकृत्य शूद्रकर्म निपेक्षते ॥१९॥

को सुष्टि की । फिर जिस कर्म के फल से वैश्य शूद्रत्व को प्राप्त करता है ? अथवा वैश्य किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है या ब्राह्मण किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है ? देव ! विपरीत होने पर धर्म कैसे निवृत्त हो जाता है ? जिस कर्म से ब्राह्मण शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है ? विभो ! क्षत्रिय किस कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त करता है ? भूतपते ! निष्पाप ! देव ! इस लोभ से तीनों वर्ण स्वभाव से कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे ? मेरे इस शब्द का निराकरण कीजिए ॥७-११॥

शिव ने कहा—देवी ! ब्रह्माणभयी ! ब्राह्मणत्व पाना बहुत कठिन है । मेरा तो यह विचार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वभावसिद्ध हैं । ॥१२॥ दुष्कर्म करने से ब्राह्मण स्वान्च्युत होता है । फिर सुकर्म करने से वह श्रेष्ठ वर्ण में आ जाता है ॥१३॥ ब्राह्मणधर्म में स्थित क्षत्रिय या वैश्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है ॥१४॥ जो विप्रस्व को त्याग कर क्षत्रधर्म को ग्रहण करता है, वह ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रिय-योनि में जन्म लेता है ॥१५॥ जो शूद्रवृद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोभ-मोह में पड़कर वैश्य का धर्म करता है, वह वैश्य बन जाता है । वैश्य शूद्र का धर्म करने से शूद्र बन जाता है । स्वधर्मच्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है ॥१६-१७॥ वह जाति-बहिष्कृत तथा वर्णभ्रष्ट होकर नरक में गिरता है, ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनि में जन्म लेता है ॥१८॥ महामाये ! धर्मचिरण करने वाली ! जो क्षत्रिय या वैश्य अपने धर्मों का परि-त्याग कर शूद्र का धर्म करता है, वह अपने स्वान् से भ्रष्ट होकर वर्णसत्वर हो जाता है । इस तरह करने वाले

१क. ०व वर्णधर्मविवक्षिते । के० । २ख शुभ । ३ग ज्येष्ठ । ४ग शूद्रो । ५क. ०भूत स । ६ख. ख ०ज्य क्षत्र धर्म निपे ० । ७क. ख. ०ते । तस्य क्षत्रत्वमापन्न क्षत्रियो प्र० । ८ख वर्णाचारव० । ९ख. ग. ०द्वत्त्वमुपजा० ।

स्वस्थानात्स परिश्रष्टो वर्णसंकरतां गतः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥२०॥
 यस्तु 'शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्छुचि' । धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥२१॥
 इदं चेवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् । अध्यात्म नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकर्मनिषेधते ॥२२॥
 उपान्न गृहितं देवि गणान् आदिसूतकम् । घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा वचिष्यत् ॥२३॥
 शूद्रान्न गृहितं देवि सदा देवेर्महात्मभिः । पितृमहमुल्लोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४॥
 शूद्राग्नेनावशेषेण जठरे त्रियते द्विजः । अहिताग्निस्तथा यज्या स शूद्रगतिभाग्यवेत् ॥२५॥
 तेन शूद्राग्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः । ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६॥
 यस्याग्नेनावशेषेण जठरे त्रियते द्विजः । तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७॥
 ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते । अभोज्यान्नानि वाऽश्नानाति स द्विजत्वात्पतेत धै ॥२८॥
 'सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरौ' भग्नव्रतोऽशुचिः । स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२९॥
 अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयो । विहीनसंखी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः ॥३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र हो जाते हैं ॥१९-२०॥ जो शूद्र स्वधर्मपूर्वक ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करता है तथा पवित्र, धर्मेत और धर्मेनिरत है, वह धर्मफल वा भोग करता है ॥२१॥ देवी ! वह तथा दूसरा भी अध्यात्म-विषय ब्रह्म द्वारा वर्णित है । धर्माभिलाषियों को परा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये ॥२२॥ देवी ! उपजति वा अन्न, गणो वा अन्न, आदिसूतक वा अन्न, निन्दित अन्न और शूद्रान नहीं खाना चाहिये ॥२३॥ देवी ! देव-महात्माओं ने सदा शूद्रान्न को निन्दित बतलाया है । ब्रह्मा के मुख से निबला हुआ वचन प्रमाण है—यह मेरा विचार है ॥२४॥ जो अन्यायान तथा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण पेट में शूद्रान्न वा अवशेष रखकर मरता है, वह शूद्र की गति को प्राप्त करता है ॥२५॥ उस शूद्रान्न के शेष रहने के कारण ब्रह्मस्थान से व्युत् ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥२६॥ जिसके अन्न वा अवशेष पेट में रखकर ब्राह्मण मरता है, उसकी योनि में वह शूद्राण्य जन्म लेता है । जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व को मुखपूर्वक प्राप्त कर इसका अपमान करता है तथा अभोज्य अन्न भक्षण करता है, वह द्विजत्व से गिर जाता है ॥२७-२८॥ मद्य पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, चोर, व्रतभग्न करने वाला, अपवित्र, स्वाध्याय से रहित, पापी, लोभी, दाम्भिक, दुष्ट, अव्रती, शूद्रापति, जार-युव के साथ खाने वाला, मद्यविनेता, तथा नीच की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है ॥२९-३०॥ गुरु-पत्नीगामी, गुरु से द्वेष करने वाला, गुरु की निन्दा करने वाला तथा ब्राह्मणों से द्वेष्ट करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म-

१ग बुद्ध । २ख ०त स्वयं० । ३ग ब्राह्मण्य । ४क ०ष्ठिकीं बुद्धि धर्मचामे निषेध मे । उ० ।
 ५क. घुष्टान्न । न पिष्टान्न । ६०क ०दा प्रोक्त यनोपिनि । ख ०दा प्रोक्त यद्वा० । ७क. ०ज्या गृह्योनी
 प्रदा ते । ते० । ८ग ०पाहृत । ९ ०पो ब्राह्मण स्ते० । १०क चौरस्त्यजन० । ११क. वृषापी । १२. क. ०मी ।
 हीनाचारो शुचिर्नित्य ५० ।

गुह्यतपो गुरुद्वेषो गुरुकुत्सारतिश्च यः । ब्रह्मद्विद्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥३१॥
 एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा । शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्द्वैश्यः क्षत्रियतां यजेत् ॥३२॥
 शूद्रः कर्माणि सर्वाणि ययान्यायं ययाविधि । सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्छोपाद्रकृतभोजनः ॥३३॥
 शुभ्रूपां परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णं प्रयत्नतः । कुर्यादविमनाः श्रेष्ठः सततं सत्पथे स्थितः ॥३४॥
 देवद्विजातिस्तत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः । ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५॥
 दक्षः शिष्टजनान्वेषी शोषाद्रकृतभोजनः । ब्रूया मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ॥३६॥
 ऋतवागनहवादी निर्द्वन्द्वः सामकोविदः । यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ॥३७॥
 दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णान्सूयकः । गृहस्थव्रतमातिष्ठन्दिवाकालकृतभोजनः ॥३८॥
 शोषाशी विजिनाहारी निष्कामो निरहंवदः । अग्निहोत्रमुपासीनो जुह्वानश्च ययाविधि ॥३९॥
 सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्छोपाद्रकृतभोजनः । श्रेताग्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः ॥४०॥
 स वैश्य क्षत्रियकुले क्षुचिर्मेहति जायते । स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ॥४१॥
 उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति संस्कृतः । देवाति यजते यज्ञं समुद्धैराप्तदक्षिणः ॥४२॥
 अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंश्श्रेताग्निशरणः सदा । आर्द्रहस्तप्रबो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३॥

योनि से च्युत हो जाता है ॥३१॥ देवी । इन (ब्राह्मण-) कर्मों से तथा शुभ आचरणों से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और वैश्य क्षत्रिय हो जाता है ॥३२॥ म्यामपूर्वक तथा विधानपुरस्सर समस्त कर्मों की करने वाला, सब का स्वागत करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, यत्न से श्रेष्ठ वर्णों की सेवा करने वाला, मनोमालिन्य को हटा कर सदा सत्य पर दृढ़ रहने वाला, देव-ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, सबका आतिथ्य करने वाला, ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाला, नियमपूर्वक भोजन करने वाला, श्रवीण, सम्य मनुष्यों का अनुगमन करने वाला और व्यर्थ मांस न खाने वाला शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है ॥३३-३६॥ सत्यवादी, अभिमानसून्य, इन्द्ररहित, सामवेद का पण्डित, नित्य यज्ञकर्ता, स्वाध्याय में निरत, पवित्र, इन्द्रियों का दमन करने वाला, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, किसी वर्ण की निन्दा न करने वाला, गृहस्थों का व्रत धारण करने वाला, दो समय भोजन करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, भोजन पर नियन्त्रण रखने वाला, कामनारहित, अभिहोत्री, विधानपूर्वक हवन करने वाला, सब का आतिथ्य करने वाला और मार्हपत्य आदि तीनों अग्निषों की उपासना करने वाला वैश्य ब्राह्मण हो जाता है ॥३७-४०॥ वह वैश्य महान् क्षत्रिय-कुल में जन्म लेता है । वह वैश्य जन्मप्रभृति संस्कारों से युक्त क्षत्रिय होता है ॥४१॥ वह उपनयन संस्कार से युक्त व्रतपरायण ब्राह्मण होता है और पूर्ण दक्षिणा देकर यज्ञ करता है ॥४२॥ वेदाध्ययन करने स्थान की कामना से तीनों अग्निषों की उपासना करता है । सदा दानशील होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है । सत्यव्यवहार करते हुए पवित्र विचार रखता है । धर्म, काम और अर्थ का साधन करते हुए धर्म-

१क. ०रतश्च । २क. ०ति । सुभाषतान् ० । ३क. ०द्र दाम ० । ४क. दीनो । ५क. य ०वर्णवृम्पकः ।

६क. ०समन्विच्छन्दि ० । ७क. ०न्दिमन्त्रवि ० । ८क. ०न्दिमन्त्रवि ० । ९क. तदापि । १०क. आर्द्रहं ।

सत्य सत्यानि कुरुते नित्य य शुद्धिदर्शन । धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधक ॥४४॥
 यन्नित कार्यकरणं षड्भागकृतलक्षण । ग्राम्यधर्मात्त सेवेत 'स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५॥
 ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा । सदोपवासी नित्य स्वाध्यायनिरत शुचि ॥४६॥
 वहिस्कान्तरिते (?) नित्य श्यानोऽस्ति सदा गृहे । सर्वातिम्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण सुमना सदा ॥४७॥
 शत्राणा 'चापन्नकामाना नित्य 'सिद्धमिति ब्रुवन । स्वार्थाद्वा यदि वा कामात् किंचिदुपलक्षणेन ॥४८॥
 पिनदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत । स्वयेष्टमनि यथान्यायमुपास्ते भक्ष्यमेव च ॥४९॥
 द्विकालमग्निहोत्र च जुह्वानो वै यथाविधि । गोब्राह्मणहिताथयि रणे च अभिमुखो हत ॥५०॥
 त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत् । ज्ञानविज्ञानसंपन्न सस्कृतो वेदपारग ॥५१॥
 वेदयो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेन कर्मणा । एतं कमफसंदेवि ग्न्यनजातिकुलोद्भव ॥५२॥
 शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति सस्कृत । ब्राह्मणो वाग्यसद्वृत्त सबसकरभोजन ॥५३॥
 स ब्राह्मण्य रामुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश । कर्मभि शुचिभिर्देवो शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ॥५४॥
 शूद्रोऽपि द्विजवत्सम्प इति ब्रह्माश्रयीत्त्वयम् । 'स्वभावकर्मणा चैव यत् (इव) 'शूद्रोऽपि निष्ठति ॥५५॥
 विशुद्ध स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मति । न योनिर्नापि सत्वारो न धृतिर्न च 'सतति ॥५६॥

दण्ड धारण करता है । कार्यों के अनुसार दण्ड (राजनीति) को (सधि विग्रह) आदि छह भागा में विभक्त कर देता है । अर्थात्स न शता मनुष्य स्वतन्त्रता से ग्राम्य-धर्मों की सेवा न करे ॥४२-४५॥ धर्मात्मा व्यक्ति सदा ऋतुषाठ म पत्नीगमन करे । नियमपूर्वक उपवास करने वाला स्वाध्याय में निरत पवित्र सदा दीप रहित (?) घर में गपन करने वाला सब का अतिम्य करने वाला सदा प्रसन्न मन से धर्म अर्थ और काम का साधन करने वाला अप्रामाण्यो घृष्टा से नित्य सिद्ध ही है यह नहने वाला स्वार्थ से या काम से किसी की हानि नहीं करने वाला पितर देव तथा अतिथिया का पूजन अपने घर में न्यायपूर्वक भिगावृत्ति से रहने वाला दोनों समय दियाय पूर्वक अग्निहोत्र करने वाला गो-ब्राह्मण क निर्मित युद्ध न मरने वाला तीनों अग्निषो की उपसन्ना से पवित्र ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न सत्कारयुक्त और वेदपारग धर्मात्मा वैश्य अपने धर्म से क्षत्रिय हो जाता है ॥४६-५१॥ देवी ! इन धर्मों के फल से नीच कुल न उत्पन्न युद्ध भी वेदसम्पन्न सस्कृत ब्राह्मण हो जाता है । अतद्वृत्ती तथा सबन साय भाजन करने वाला ब्राह्मण या ब्रह्मणत्व को त्याग कर बैसा युद्ध बन जाता है । पवित्र धर्मों से युक्त शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रिय युद्ध भी ब्राह्मण की तरह पूज्य है—यह साक्षात् ब्रह्मा ने कहा है । स्वमादित्य धर्मों से युक्त युद्ध द्विजातियों से पवित्र है—यह मेरा मत है ॥५२-५५॥ ब्राह्मणत्व का कारण न योनि है न सत्वार है, न धृति है और न सन्तान ही है । वृत्त (आचरण) ही इसका कारण है । जो न य आचरण से ब्राह्मण माना

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७॥
 वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति । ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८॥
 निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः । एने ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९॥
 मयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः । ब्रह्मणो हि महत्त्वेन लोके चरति पादवत् ॥६०॥
 यस्तत्र बीजं पतति सा कृपिः प्रेत्य भाविनी । संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१॥
 ब्राह्मं हि मार्गमाश्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता । संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वं गृहमेधिना ॥६२॥
 नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना । एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥६३॥
 आहिताग्निरधोयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रश्मितव्यं यतारमना ॥६४॥
 योनिप्रतिग्रहावानः कर्मभिश्च शुचिस्मिते । एतत्ते गृह्यमाख्यात यथा शूद्रो भवेद्विजः ॥
 ॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उग्रामहेडवरसंवादे संकरजातिलक्षणवर्णनं नाम
 त्रयोविंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

जाना है ॥५६-५७॥ वृत्त में स्थित शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है । सुन्दर कटि वाली । ब्राह्मण का स्वभाव
 सब जगह समान है—यह मेरा मत है ॥५८॥ निर्गुण, निर्मल ब्रह्म जिसमें वास करता है, वह ब्राह्मण है । देवी ।
 प्रजा की सृष्टि करने वाले स्वयं वरदायक ब्रह्मा ने कहा है कि स्थानाभाव के उदाहरणस्वरूप निर्मलचिरा वाले जो
 हैं वे ब्राह्मण हैं । लोक में ब्रह्मा का महान् क्षेत्र पैर की तरह चलता है ॥५९-६०॥ उसमें जो बीज डाला जाता है,
 वही कृपि के रूप में उत्पन्न होता है । मनुष्य को सदा संतुष्ट एवम् सत्पथालम्बी होना चाहिये ॥६१॥ होन-
 वरी कृपि के रूप में उत्पन्न होता है । मनुष्य को सदा संतुष्ट एवम् सत्पथालम्बी होना चाहिये ॥६२॥ जो
 ब्राह्मण नित्य स्वाध्याय से युक्त, अध्ययन द्वारा जीविका न कमाने वाला सदा सत्पथ पर स्थित, वेदाध्ययन करने वाला
 और अग्न्याधान करने वाला है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥६३॥ देवी । ब्राह्मणत्व प्राप्त कर चल-
 पूर्व उसकी रक्षा करनी चाहिये । पवित्र हास्य करने वाली । योनि के आदान-प्रदान (परिवर्तन) से तथा कर्मों
 से जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है या ब्राह्मण धर्मच्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, वह रहस्य तुमसे
 खला दिया ॥६४-६५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में संकरजातिलक्षणवर्णनं नामक
 दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२३॥

१ व स ०ति । ब्राह्मणत्व भवेच्छूद्रोऽप्येववृत्तश्च मे । २ व. ०भाषा निरूपका । ३ व पुरा । ४ व
 दावत् । ५ व. बुभूषता । ६ व. योनि प्र० ।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत । 'धर्माधर्मं नृणां देव ब्रूहि मे सशय विभो ॥१॥
 कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहि न सदा । बध्यन्ते बन्धनं कर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद ॥२॥
 केन शीलेन च देव कर्मणा कोदुशेन वा । समाचारैर्गुणं कर्वा भव्यं यावन्तोह मानवा ॥३॥

शिव उवाच

देवि धर्मार्यतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा । सर्वप्राणहितं प्रश्नं श्रूयतां बुद्धिवर्धन ॥४॥
 सत्यधर्मरता शान्ता सर्वलिङ्गविवाजिता । नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसशया ॥५॥
 प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञा सर्वज्ञा सर्वदर्शिनः । बीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषा कर्मबन्धनं ॥६॥
 कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन । ये न भगजन्ति कस्मिंश्चित्ते न च धनन्ति कर्मभिः ॥७॥
 'प्राणातिपाताद्विरता' शीलयन्तो दयान्विता । तुल्यद्वेष्यप्रिया बान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनं ॥८॥

अध्याय २२४

मनुष्यो को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा बोली—भगवन् ! अखिल प्राणियों के ईश्वर । देवराक्षसों से नमस्कृत । देव । सर्वशक्तिमान् । मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय मैं मुझे सदेह है उसे दूर कीजिये । वायविक, वाचिक, मानसिक—इन तीन प्रकार के कर्मों में किस कर्म का द्वारा प्राणी सदा बद्ध होता है और किस कर्म के द्वारा उसकी मुक्ति होती है—यह मुझे बतलाइये । देव । किस स्वभाव से या किस काम से या किस तरह के आचरण से या किन गुणों से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ? ॥१॥ ३॥

शिव बोले—देवी । धर्म-अधर्म के तत्त्व को जानने वाली । सदा धर्म में निरत रहने वाली । तुम्हारा प्रश्न समस्त प्राणियों का कल्याणकारक तथा बुद्धिवर्धक है ॥४॥ सुनो । सत्य और धर्म में रत शांत, सब प्रकार के लाछनों से रहित तथा सदेहपूर्ण पुरुष धर्म या अधर्म से बद्ध नहीं होते हैं ॥५॥ उत्पत्ति तथा प्रलय के तत्त्व को जानने वाले सबग, सर्वदर्शी तथा रागद्वेष पुरुष धर्म-बन्धनों में नहीं पड़ते हैं ॥६॥ जो धर्म से मन से तथा वाणी से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी में आसक्त नहीं होते हैं, वे कर्मों से बद्ध नहीं होते हैं ॥७॥ जो जीव हिंसा से परे शीलवान् दयावान् शान्ति मित्र में सम बुद्धि वाले तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं वे कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥८॥ जो अखिल प्राणियों पर दया करने वाले, समस्त जीवों का विश्वासपात्र

१० धर्मो नृ० । २० बुद्धिवर्धनि । ३० य वनन्त । ४० य सर्वान्ति । ५० य बध्यन्ति ।
 ६० प्राणनिग्रहकुण्ड । ७० भाविना० ।

सर्वभूतदयावन्तो विश्वाम्याः सर्वजन्तुषु । 'त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१॥
 परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः । घर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०॥
 मातृवत्स्वस्वस्त्वेव नित्यं दुहितृवच्च ये । परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११॥
 स्वदारनिरता ये च श्रुतुकालाभिगामिनः । अप्राप्त्यसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२॥
 स्तन्याग्निवृत्ताः सततं सतुष्टाः स्वधनेन च । स्वभाग्यान्पुपजीवन्ति ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१३॥
 परदारेषु ये नित्यं चरित्वावृत्तलोचनाः । जितेन्द्रियाः शीलपरारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१४॥
 एष वैष्णुकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः । अकथयितृकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा धर्मैः ॥१५॥
 अथवापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा धर्मैः । दानकर्मतपोयुक्तः शीलशीलवदयात्मकः ॥
 स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेध्यस्तथ उत्तरः ॥१६॥

उमोवाच

वाचा तु 'वध्यते येन' मुच्यते ह्यथवा पुनः । तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥१७॥

शिव उवाच

आमहेतोः परार्थे वा अधर्माश्रितमेव च । ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१८॥

तथा हिंसायुक्ति से निवृत्त है, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१॥ दूसरे वे धन मेममतान करने वाले, परस्त्री-प्रसंग से रहित तथा धर्मपूर्वक प्राप्त धन के भोक्ता मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता, बहन तथा बेटी की तरह देखते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥११॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री में निरत, ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले तथा प्राम्य-मुल्ल-भोग से रहित है, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१२॥ जो चोरी से रहित सदा अपने धन से सतुष्ट और और अपने माय के भरोसे जीते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देनकर चरितरसा के लिये अर्धे मूढ लेते हैं और जितेन्द्रिय एवम् शीलवान् हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१४॥ मनुष्य इस देवमार्ग का सदा अनुसरण करे । विद्वान् मनुष्य सिष्टसम्मत मार्ग का सदा सेवन करे । पण्डित जन सदा निरुद्ध मार्ग का अवलम्बन करें ॥१५॥ दान, कर्म, तपस्या, शील, शीघ्र तथा दया से युक्त एवम् स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य इससे निरत मार्ग को बन्नी न अपनार्यें ॥१६॥

उमा बोली—भूतपते ! निष्पाप ! जिन वाचिव कर्मों से मनुष्य बद्ध होता है अथवा मुक्त होता है, वे मुझे बतलाइये ॥१७॥

शिव बोले—जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिये असत्य नहीं बोलते, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य

१क पा ०हिमास० । २ब ०या शीघ्र० । ३ग युष् । ४र ०च । ५मर्मिर्भयश्च वध्यत यैर्वा मुच्यत पूर्य । ता० । ५क बदते । ६क ये तु मृषस्ते । ७प वा माहृत्यप्रवणातया । य ।

वृत्रयं धर्महेतोर्वा कामकारास्तथैव च । अनृतं ये न भाषन्ते ते* नराः स्वर्गगामिनः ॥१९॥
 श्लक्ष्णां वाणं* मिश्रच्छवर्णां* मधुरां पापवर्जिताम् । स्वर्गतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२०॥
 पश्य ये न भाषन्ते कटुवं* निष्ठुरं तथा । न शैश्वर्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१॥
 पिशुनं न प्रभाषन्ते मिश्रभेदकरं* तथा । परपोडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२॥
 ये वर्जयन्ति* पश्यं परद्रोहं च मानवा* । सर्वभूतसमा* धान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३॥
 शठप्रलापाद्विरताः* त्रिरुद्धपरिवर्जनाः । सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४॥
 न कोपाद्व्याह्वरस्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् । शान्तिं विन्दति ये वृद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५॥
 एष वाणीकृतो वेदि धर्मः सेव्यः सदा नरैः । शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया भूया बुधैः ॥२६॥

उभोवाच

मनसा बध्यते धेन कर्मणा पुरुषः सदा । तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिताकधूक् ॥२७॥

महेश्वर उवाच

मानसेतेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा । स्वयं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे वीर्तयतः । शृणु ॥२८॥
 बुध्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः । नरो बध्येत धेनेह शृणु वा तं शुभानने ॥२९॥
 अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा । मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३०॥

जीविका के लिये या धर्म के निमित्त या स्वेच्छा से असत्य भाषण नहीं करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कोमल, स्फीत, मधुर तथा पाप-रहित वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य बड़ो तथा बटु बचन नहीं बोलते हैं तथा बुगली नहीं करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य मित्रों से फूट नहीं डालते हैं और दूसरे को पीडा नहीं देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दूसरे से द्रोह नहीं करते हैं, समस्त प्राणियों से समान भाव रखते हैं और हृदियों का दमन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दुष्टभाषण से रहित, विरोध-शून्य तथा मधुरभाषी हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य शत्रु से हृदयविदारक बचन नहीं बोलते हैं और मृदु होने पर भी दुष्ट शान्त हो जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। देवी ! मनुष्य सदा इस वाचिक धर्म का पालन करे। विद्वान् मनुष्य धूम तथा सत्यगुणों से युक्त होकर असत्य या परित्याग करे ॥१८-२६॥

उमा बोलीं—महाभाग ! धनुषधारी ! देवों के देव ! जिस मानसिक धर्म से मनुष्य बद्ध होता है, वह मुझे बतलाइये ॥२७॥

महेश्वर ने कहा—वत्प्राणमयी ! मानसिक धर्म से युक्त पुरुष स्वर्ग जाते हैं—इसके बारे में मुझसे सुनो । पवित्र मुख वाली ! जिस मनुष्य का मन तथा अन्तरात्मा दूषित है, वह बद्ध होता है। जो धन में तथा एवान्त स्थान में दूसरे के पडे हुए धन को देखकर मनसे भी उसे ग्रहण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य एवान्त में दूसरे की स्त्री का देखकर मन से भी उगते साथ पापाचरण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो

तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोमताः । मनसाऽपि न हिसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३१॥
 शत्रु मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः । भजन्ति मेऽत्र्यं संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
 श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः । स्वैरयैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३॥
 अवेरा ये त्वनापासा मंत्रचित्तरताः । सदा । सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३४॥
 ज्ञातवन्तः श्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः । धर्मधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
 शुभानामशुभानां च कर्मणा फलसंग्रहे । निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६॥
 'पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपरा' सदा । 'समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७॥
 शुभं' कर्मफलं देवि मयंते परिकीर्तिताः । स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८॥

उमोवाच

महाम्ने संशयः 'कश्चिच्चमर्त्यान्प्रति भृहेश्वर । तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९॥
 केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरयः प्रभो' । तपसा वापि हेयेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०॥
 क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः । विपाकं कर्मणां देव 'ववतुमर्हस्यनिन्दित ॥४१॥
 अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे । अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तया परे ॥४२॥

मनुष्य शत्रु तथा मित्र के साथ समान भाव से व्यवहार करता है, वह स्वर्ग जाता है । जो मनुष्य वेदों के ज्ञाता, दयावान्, पवित्र, सत्यात्मा तथा अपने धन से संतुष्ट हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो शत्रुता से रहित, अनायास ही सदा सबसे मैत्री करने वाला तथा प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वह नर स्वर्ग जाता है । जो ज्ञानी, क्रियाशील, क्षमावान्, वन्द्यो वा प्रिय तथा धर्म-अधर्म का ज्ञाता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! जो मनुष्य धूम-अधूम कर्मों का फल नहीं चाहता है, वह स्वर्ग जाता है । जो पापियों से अलग रहता है, देव-आह्वानों की सेवा करता है और अपने धर्म में निरत रहता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! धूम कर्मों के द्वारा जैसे क्षीण स्वर्ग जाते हैं, वह मैत्रे वतल दिया । अब फिर क्या सुनना चाहते हो ? ॥२८-३८॥

उमा ने कहा—महेश्वर ! मनुष्यों के बारे में मुझे एक सदेह है । दसतापूर्वक आप उसका निराकरण कीजिए । प्रभो ! किस कर्म से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है ? देवेश ! किस तप से मनुष्य भी आयु बढ़ जाती है ? पृथ्वी पर मनुष्य किस धर्म से क्षीणायु होता है ? देव ! निन्दा से रहित । कर्मों का परिणाम आप बतलायें । कोई मनुष्य महाभाग्यवान् होते हैं तो कोई भाग्यहीन होते हैं । कोई कुलीन होते हैं तो कोई अकुलीन होते हैं ।

१क ०न । श्रद्धावन्तो न ये । ख न । श्रद्धावन्तश्च ये । २क मैत्री । ३ख मैत्रीचित्तरा० । ४ग ०न । श्रद्धावन्तो दयावन्त सौख्या सौख्यजनप्रिया । ५ख य ०चयम् । विपाकज्ञाश्च । ६ख ख पापापेता ये देवि दे० । ७ख ०नपरा ये च ते न० । ८ख ०चित्तसत्त्वान्त्र० । ९ख ०यो । यतापुरपि । १०ख ०स्थपेयतः । अ० ।

दुर्दर्शा केचिदाभान्ति' नराः काष्ठमया इव । प्रियदर्शस्तिया चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥४३॥
दुःप्रज्ञा केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः । महाप्रज्ञास्तया चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥४४॥
अल्पवाचास्तया केचिन्महावाचास्तथा परे । दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हन्ति ॥४५॥

शिव उवाच

हन्त तेहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् । मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वं कलमश्नुते ॥४६॥
प्राणतिपातौ योगोन्मो दण्डहस्तौ नरः सदा । नित्यमुद्यतशस्त्रश्च' हन्ति भूतगणान्नरः ॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः । अपि 'कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते । विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९॥
निरयं प्राति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः । यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्छ्वा लभते नरः ॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्सस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् । मनुष्यं लभते वापि होनायुस्तत्र जायते ॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्घतः । अहितः सर्वभूतानां होनायुक्पजायते ॥५२॥
दुष्मेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः । निष्पिण्डाश्च न निर्दण्डो' न हिंसति कदाचन ॥५३॥
न घातयति नो हन्ति धनन्तं भवानुमोदते । सर्वभूतेषु मस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४॥

कोई लव की की तरह देखने में बठोर मालूम पड़ते हैं तो कोई देखने में श्रिय (बोमल) मालूम पड़ते हैं। कोई मूर्ख है तो कोई पण्डित है। कोई ज्ञान-विज्ञान-रसमय महापण्डित है। कोई भितमापी है तो कोई बहुमापी। देव ! ऐसे पुरुष देखे जाते हैं। इसका कारण आप बतलायें ॥३९-४५॥

शिव ने कहा—देवी ! अच्छा, तो मैं कर्मफल बतलाऊँगा। मृत्युलोक में मनुष्य बर्गों के फल भोगते हैं। प्राण देने वाला योगीन्द्र, दण्ड धारण करने वाला, सदा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहने वाला मनुष्य भूतगणों को मारता है। प्राणीमात्र पर दया न करने वाला, सब को उद्विग्न करने वाला, कीटपतंग पर्यन्त किसी को भी धारण न देने वाला तथा अत्यन्त घृणा करने वाला मनुष्य नरक जाता है। इससे विपरीत धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग जाता है। हिंसक मनुष्य नरक जाता है और अहिंसक स्वर्ग जाता है। नरक में मनुष्य भयानक यातना प्राप्त करता है। जो कोई बर्ग उस नरक से निवृत्त जाता है, वह अत्यायु होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है। देवी ! जिसलिये मनुष्य हिंसा आदि पापकर्म करता है और समस्त प्राणियों का अहित करता है, इसलिये वह अत्यायु होता है। देवी ! जो धर्म बर्गों से युक्त, जीव-हिंसा से रहित तथा शास्त्र एवम् दण्ड से दूष्य होकर न किसी को मारता है, न मारने वालों का अनुमोदन करता है और अपने आत्मा की तरह अखिल प्राणियों से प्रेम करता है, वह देवत्व को

१४ ॥ नित्यमुद्यतशस्त्रश्च । प्रि० २४ स ० लघवास्त० । ३४. ० मूलद्रव्य शास्त्र च ह० ।
४४ ॥ ० अंगीलानाम० । ५४ मुहृच्छ्वा । ६१ ० ते । यन्मु दुश्चमिजानीय प्राणघातविवर्जः । निति० ।
७१ निर्दग्मा ।

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते । उपपन्नान्सुखान्मोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः ॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते । एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम्

उमोवाच

किंलोलः किसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः । स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१॥

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु । भक्षभोग्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२॥
प्रतिभयान्सभा कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा । नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३॥
आसनं शयनं धानं गृहं रत्नं धनं तथा । सत्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यप्य प्रीयितः ॥४॥

प्राप्त करता है । यदि कदाचित् यह मनुष्यलोक में उत्पन्न होता है तो हर्ष से समस्त सुखों का भोग करता है । सुकर्मों, सदाचारी तथा जीवहिंसारहित दीर्घायु, मनुष्यों का यह मार्ग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट है ॥४६-५६॥
श्रीब्रह्महपुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२४

शिव-पार्वती के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

पार्वती बोलीं—कैसे स्वभाव तथा आचरण वाला पुरुष किन कर्मों से या किस दान से स्वर्ग-प्राप्ति करता है ? ॥१॥

शिव बोले—देवी ! जो मनुष्य ब्राह्मणों का आदर करता है, दीन-दुखियों को भक्ष्य-भोग्य आदि अन्न, पान तथा वस्त्र देता है, लोगों को आश्रय देता है, प्याऊ, पोखरा आदि खुदवाता है, पवित्रतापूर्वक नित्यकर्म आदि करता है और शान्त चित्त से लोगों को आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, धान्यसम्पन्न भेत तथा स्त्रियाँ

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः । एवंभूतो नरो देवि देवलोकोऽभिजायते ॥५॥
 'तत्रोप्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् । सहासरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥६॥
 तस्माच्छ्रुतो महेशानि मानुषेऽप्यजायते । महाभागकुले देवि 'धनधान्यसमाचिते ॥७॥
 तत्र कामगुणे सर्वैः समुपेतो भूदाऽन्वितः । 'महाकार्यो महाभागो धनो भवति मानवः ॥८॥
 एते देवि महाभागा प्राणिनो दानशालिनः' । ब्रह्मणा च पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥९॥
 अपरे भानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः । घेऽश्वानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥१०॥
 दीनान्धकृपणान्बुद्ध्या भिक्षुकानस्तिथीनपि । याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोलभसमन्विताः ॥११॥
 न धनानि न धासांसि न भोगान्न च काञ्चनम् । न ग्राह्यं नाप्रविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२॥
 अप्रलुब्धाश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः । एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥१३॥
 ते धै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् । धनरिवत्ते कुले जन्म लभन्ते त्यक्त्यबुद्धयः ॥१४॥
 सुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकवर्हिष्कृताः । निराशाः सर्वभाग्येभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः ॥१५॥
 अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः । अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६॥
 अपरे दम्भिनो नित्यं भानिनः परतो रताः । आसनार्हस्य ये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतसाः ॥१७॥
 मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः । अर्थार्हस्य च संस्कारैरच्यन्ति यमाविधि ॥१८॥

देता है, वह देवलोक में जन्म लेता है ॥३-५॥ प्रिये ! वह देवलोक में चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोगकर नन्दन दान आदि स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण कर स्वर्गभूत होने पर मनुष्ययोनि में जाता है ॥६॥ देवी ! यहाँ भी वह किसी धनधान्यसम्पन्न महामाण्यवान् के कुल में जन्म लेकर समस्त गुणों से युक्त, महावार्धील, महायोगी तथा धनी मनुष्य होता है ॥७-८॥ देवी ! ब्रह्मा ने कहा है कि वे दानवीर महामाण्यवान् प्राणी सब के प्रिय होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य दान करने में कृपण है, जो दुर्बुद्धि मनुष्य अन्न खाने पर भी दान नहीं करते हैं, जो दीन, अन्धे, दुर्ली, भिखुव तथा अतिधियों के भोगने पर भी उनकी रसनेन्द्रिय को तृप्त नहीं करते हैं, जो धन, वस्त्र, भोग-मदार्थ, सुदर्शन, गाय तथा अन्न नहीं देते हैं, जो लोभी, नास्तिक तथा दानवर्जित हैं, वे सब बुद्धिहीन मनुष्य नष्ट जाते हैं ॥१०-१३॥ वे जब बाल की वृत्ति से मनुष्य-योनि में जाते हैं तब उन अल्पबुद्धियों का जन्म दरिद्रकुल में होता है । यहाँ के भूधन्यास से व्याकुल, लोभ से बहिष्कृत, समस्त भोगों से वंचित तथा अपमूर्ख व जीवन बिताने वाले होते हैं ॥१४-१५॥ देवी ! ऐसे कर्मों के द्वारा मनुष्य अल्पभोग भोगने वाले कुल में जन्म लेकर दरिद्रता से जीवन बिताने हैं ॥१६॥ जो मनुष्य दम्भ तथा अमिमान करते हैं, जो दुर्बुद्धि आसन देने योग्य पुरुष को आसन नहीं देते हैं, जो बुद्धिहीन मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग नहीं देते हैं, जो अर्थ चढ़ाये जाने योग्य व्यक्ति को पाद-आचमनीय नहीं देते हैं तथा उनकी पूजा नहीं करते हैं, जो श्रेय से मुक्त की वन्दना नहीं करते हैं, जो लोभ

उपक्रामति जन्तूश्च उद्वेगजननं सदा । एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३॥
 स चेन्मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्यायात् । बह्वाधाधापरिविलष्टे कुले जयति सोऽयमेव ॥३४॥
 'लोकद्विष्टोऽयमः पुतां स्वयं कर्मकृते फलेः । एष देवि मनुष्येषु ब्रह्मद्वयो ज्ञातिबन्धुषु ॥३५॥
 अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति । मैत्रो दृष्टिः पितृसमो निर्वरो नियतेन्द्रियः ॥३६॥
 मोद्वेजयति भूतानि न च हन्ति दयापरः । हस्तपादौश्च नियतेर्विद्वत्स्य सर्वजन्तुषु ॥३७॥
 न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टेनोऽऽयुधेन च । उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८॥
 एवं शीलसमाचारः स्वर्गं समुपजायते । सनासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देवयत् ॥३९॥
 स 'चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते । अल्पायासो निरातद्रक्तः स जातः सुखमेधते ॥४०॥
 सुखभागी निरायासो निष्द्वेगः सदा नरः । एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥४१॥

उमोवाच

इमे मनुष्या दुश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः । ज्ञानविज्ञानसंपन्ना प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥४२॥
 दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः । केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत् ॥४३॥
 अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानव । एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभूतां वर ॥४४॥

उद्विग्न करता है तथा जन्तुओं का दमन करता है, वह स्वभाव तथा आचरण से दूषित व्यक्ति नरक जाता है ॥३१-३३॥ यदि बालक से यह मनुष्ययोगि में आता है तो अनेक बाधाओं से परिपीडित नीच कुल में जन्म लेता है। लोग उससे द्वेष करते हैं। इस प्रकार वह अयम मनुष्य अपने बर्णों का फल पाता है। देवी! मनुष्यों को सबके साथ नाई-यन्त्रुओं की तरह व्यवहार करना चाहिये ॥३४-३५॥ जो समस्त प्राणियों पर दया करता है, पिता के समान माव रखता है, सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, किसी से बैर नहीं करता है, इन्द्रियों को दया में रखता है। प्राणियों को उद्विग्न नहीं करता है, हाथ-पैरों से किसी का बचट नहीं देता है, सबका विश्वासपात्र बनकर रहता है, रस्सी, लाठी, डेले तथा हथियारों से किसी को हानि नहीं पहुँचाता है और दमामुक्त होकर गुप्त धर्म करता है, वह सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाला व्यक्ति स्वर्ग जाता है ॥३६-३८॥ वहाँ वह दिव्य मवन में देवता की तरह हर्ष से रहता है। यदि वह मनुष्य स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोगि में आता है तो बिना बचट-परिश्रम से सुखपूर्वक जीवन बिताता है ॥३९-४०॥ उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती, परिश्रम नहीं करता पढ़ता, बलि सुख ही सुख मिलता रहता है। देवी! यही सज्जनों का मार्ग है, जहाँ कोई बाधा नहीं होती ॥४१॥

उमा बोलीं—देव! कोई मनुष्य तो तर्क-वितर्क करने में विस्तारद, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, बुद्धिमान् तथा सत्त्व के जाता हाते है और कोई ज्ञान-विज्ञान से रहित मूर्ख होते है। तीन नेत्र वाले! (अब कहिये) जिस धर्म के परिणाम से पुरुष विद्वान् होता है और जिस धर्म के फल से मूर्ख होता है? समस्त धर्मपारिवा में देखें!

१९ • देवनपर स० । २९ • ज्येष्ठदाजित्वाला० । ३९ • ब्रह्मयोग० । ४९ विमतेन्द्रिय । ५९ न वै हेऽपने सदा । ह० । ६९ चेच्छया मर्त्यलोके मर्त्याः । ७९ वन्धो । ८९ • नै ब्रह्मसारा महावत् । ९० ।

जात्यन्धाश्चापरे देव रोगातश्चापरे तथा । नराः बलीबाधे दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥४५॥

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा । परिपृच्छन्त्यहुरहः कुशलाकुशलं सदा ॥४६॥
वर्जयन्तोऽङ्गुष्ठं कर्म सेवमानाः शुभं तथा । समन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम् ॥४७॥
स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते । श्रुतं यज्ञानुभं यस्य कल्याणमुपजायते ॥४८॥
परदारेषु ये चापि 'अक्षुर्दुष्टं' प्रयुज्जते । तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ॥४९॥
मनसाऽपि प्रवृष्टेन नन्वा पश्यन्ति ये स्त्रियम् । रोगातास्ते भवन्तोह' नरा दुष्कृतकारिणः ॥५०॥
ये तु मूढा दुराचारा विप्रीना मयुने रताः । पुण्येषु सुदुष्प्रज्ञाः बलीबन्धमुपयान्ति ते ॥५१॥
पशून्ध ये वै घ्नन्ति ये चैव गुरुस्तपगाः । प्रकीर्णमयुना ये च बलीबा जायन्ति वै नराः ॥५२॥

उमोवाच

अवधं किं तु वै कर्म निरवधं तथैव च । भयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥५३॥

महेश्वर उवाच

भेषासं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् । धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४॥

इस सद्यः को आप पूर कीजिये । कोई मनुष्य तो जन्मान्ध होते हैं और कोई रोगी तथा नपुंसक होते हैं । इसका क्या कारण है ? मुझे बतलाइये ॥४२-४५॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणों, सिद्धों तथा धर्मज्ञों से प्रतिदिन कुशल-समाचार पूछते हैं और अपने कर्मों का त्याग कर शुभ कर्म करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस लोक में सुख भोगते हैं । वे यदि मनुष्य-भोगों में जन्म लेते हैं तो मेधावी, यज्ञकर्ता तथा श्रुतिवेत्ता होते हैं । उन्हें सुख सामान्य प्राप्त होता है । जो परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं, वे दुष्टस्वभाव के कारण जन्मान्ध होते हैं । जो मनुष्य दूषित मन से भीत स्त्रियों को देखते हैं, वे पापी तथा रोगी होते हैं । जो मूर्ख तथा दुराचारी मनुष्य मनुष्येतर योगों में मग्न करते हैं, वे नपुंसक होते हैं । जो मनुष्य पशुओं को बाधते हैं, जो गुरुस्त्रीममन करते हैं, जो अत्यधिक मग्न करते हैं, वे नपुंसक होते हैं ॥४६-५२॥

उमा बोलीं—देवों में खेष्ट ! कौन ऐसा अनिष्ट तथा उतम कर्म है, जिसके करने से मनुष्य का बल्याण होता है ? ॥५३॥

महेश्वर ने कहा—जो धर्मान्वेषी तथा गुणाकांक्षी मनुष्य सदा ब्राह्मणों से कल्याण का मार्ग पूछते रहते हैं,

यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्सनियच्छति । मेधावी धारणायुक्तः । प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५॥
एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः । नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६॥

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेयिणो नराः । बाह्याणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसंपितुम् ॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः । अव्रता भ्रष्टनियमास्तयाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्मोहाश्च तथा परे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९॥

महेश्वर उवाच

आयमालोकधर्माणा मर्यादा, पूर्वनिर्मिताः । प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः ॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्धे च मोहवशं गताः । अव्रता भ्रष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्संभवन्तोह मानवाः । निर्होमा निर्वण्टकारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आश्विब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

वे स्वर्ग का भोग करते हैं । देवी ! यदि कदाचित् वह मनुष्य-योनि में जन्म लेता है तो धारणायुक्त विद्वान् होता है । देवी ! यही सज्जनों का कल्याणकारक धर्म है । मनुष्यों के हित के लिये मैंने यह बतला दिया ॥५४-५९॥

उमा बोलीं—कोई मनुष्य अल्पज्ञानी, धर्मविद्वेयी तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणों के अपमान करने वाले होते हैं । कोई मनुष्य व्रती, श्रद्धालु तथा इन्द्रियो वा दमन करने वाले होते हैं । कोई व्रत तथा नियमों से च्युत होकर राक्षस के समान होते हैं । कोई यज्ञवर्ता तथा निर्मोही होते हैं । किस धर्म के परिणाम से ये ऐसे होते हैं ? मुझे बतलाइये । ॥५७-५९॥

महेश्वर बोले—वेद, शास्त्र एवं धर्मों की मर्यादा पहिले से ही निर्मित है । दृढव्रती मनुष्य इसी के अनुसार व्रतते है । जो मनुष्य मोह में पड़कर अधर्म को धर्म मानता है और व्रत तथा मर्यादा को भग्न करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है । जो मनुष्य काल की प्रेरणा से निर्मोही तथा वपट्वार (यज्ञ) से धृष्य होते हैं, वे नराधम होते हैं । देवी ! तुम्हारा संशय मिटाने के लिये मनुष्यों के कल्याण-अवल्याण रयी धर्म-समुद्र का वर्णन किया गया ॥६०-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सौ पचीसवां अध्याय समाप्त ॥२२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिमहेश्वरसवादे वासुदेवमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

भूखवं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः । हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः ॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः । तीर्थयानाप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजाः ॥२॥
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च । पप्रच्छुः संशयं खं व लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षप्रभुयिनाशन । पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हवि संस्थितम् ॥४॥
संसारोऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे । भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चाल्पमेधसः ॥५॥
येनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात् । ब्रूहि तच्छ्रेतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि मः ॥६॥

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम् । नान्योपायं प्रपश्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं बाह्यध्वजगदाधरम् । बाह्यध्वजगदाधरः संप्रवर्ते यान्ति परमां गतिम् ॥८॥
किं तेषां जीविनेनेह पशुबन्धेऽदितेन च । येषां न प्रवर्णं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९॥

अध्याय २२६

शिव और मुनियों के सवाद में वासुदेव की महिमा का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजगण । स्वामी के वचन को आदि से सुनकर जगन्माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न तथा विस्मित हुई । उस समय शिव के पास बैठे हुए मुनिवृन्द, जो तीर्थ-यात्रा की कामना से उस पर्वत पर गये हुए थे, त्रिशूलधारी शंकर को प्रणाम करके लोचो वे कल्याण के निमित्त उनसे सदेह पूछने लगे ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—तीन नेत्र वाले । दक्षप्रभुविनाशन । आपको नमस्कार है । जगन्नाथ । हम अपने हृदय का सदेह आपसे पूछते हैं । महाभयकर तथा रोमाञ्चकारी इस दारुण संसार में अल्प बुद्धि वाले पुरुष बिचर बालक भ्रमण करते हैं । वे किस उपाय से जन्मरूपी संसारबन्धन से मुक्त होंगे, यह बतलाइये । उसे सुनने के लिये हमें बड़ी उत्प्रेक्षा हो रही है ॥४-६॥

महेश्वर ने कहा—द्विजवृन्द । कर्म-जाल में फँसे दुःखी मनुष्यों के लिये वासुदेव से बढ़कर दूसरा उपाय तो मुझे नहीं दीखता है । जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा उस बाह्य-ध्वज-गदाधारी देव की पूजा करते हैं, वे परम गति को पाते हैं । जिस मनुष्य का चित्त संसार रूप वासुदेव में नहीं लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी सारी क्रियायें पशु की तरह होती हैं ॥७-९॥

ऋषय ऊचुः

पिताकिम्भगनेत्रघ्न सर्वलोचनमस्कृत । माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामः शकर ॥१०॥

महेश्वर उवाच

पितामहादपि वर शाश्वतं पुरुषो हरिः । कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदित ॥११॥
 दशबाहुर्महातेजा 'देवतारिनिपूदन । श्रीवत्साङ्को हृषीकेश 'सर्वदेवतयूयप ॥१२॥
 ब्रह्मा तस्योदग्भवस्तस्याहं च शिरोभव । शिरोरुहेभ्यो ज्योतीषि रोमम्यङ्च सुरासुरा ॥१३॥
 ऋषयो वेहसभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः । पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च स ॥१४॥
 सोऽस्यां पृथिव्यां कृत्स्नायां स्रष्टा त्रिभुवनेश्वर । सहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च ॥१५॥
 स हि 'वेद्यवेद्य साक्षाद्देवनाथ परतप । सर्वज्ञ सर्वस्रष्टा सर्वग सर्वतोमुख ॥१६॥
 न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । सनातनो महाभागो गोविन्द इति विभूत ॥१७॥
 स सर्वान्पार्थिवान्तरप्ये घातयिष्यति भानव । सुरकार्यार्यमुत्पन्नो मानुष्यं वपुरास्थित ॥१८॥
 न हि देवगणः शक्तास्त्रिविधमविनाशकृताः । भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जित ॥१९॥
 नायकं सर्वभूतानां सर्वभूतनमस्कृत । एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०॥
 ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मविशरणस्य च । ब्रह्मा वसति नाभिस्त्व' शरीरेऽहं च सस्थित ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—विनाक नामक धनुषपाती । जय देवता के नेत्र को बने वाले । सब लोगों के भगवन्तीय ।
 शकर । वासुदेव का माहात्म्य हम सुनना चाहते हैं ॥१०॥

महेश्वर ने कहा—नित्य पुरुष वह हरि ब्रह्मा से श्री श्रेष्ठ हैं । सुदर्शन के समान कान्ति वाले कृष्ण उदयनालीन
 सूर्य व' समान सुशोभित होते हैं ॥११॥ उनकी दस भुजायें हैं । वे महातेजस्वी तथा देवताओं के धनुओं के नाशक
 हैं । उनके दश स्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित हैं । इन्द्रियो पर उनका अधिकार है । वे समस्त देवों के
 अधिनायक हैं ॥१२॥ ब्रह्मा उनका पैर से उत्पन्न हुए हैं । मैं उनके शिर से उत्पन्न हुआ हूँ । उनके शिर के बालों में
 नक्षत्रगण तथा रोगों से सुर-असुर उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ उनकी देह से ऋषि-समूह की उत्पत्ति हुई है । उनके लोंक
 नित्य हैं । वे ब्रह्मा तथा समस्त देवों के आश्रय हैं ॥१४॥ वे तीनों भुवन के ईश्वर हैं तथा सब पृथ्वी के सृष्टिकर्ता
 हैं । स्थावर-जगम क नाशकर्ता भी वे ही हैं ॥१५॥ वे देवों के देव, देव-नाथ धनुषों के तपाने वाले, सर्वज्ञ, सब के
 स्रष्टा, सर्वगामी और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ तीनों लोक में उनसे बढ़कर कोई या कुछ नहीं है । वे सनातन,
 महामाग तथा गार्ग्यद नाम से प्रख्यात हैं ॥१७॥ वे सम्मान-दाता पुरुष देव-कार्य के लिये मनुष्य-शरीर धारण
 कर युद्ध में राजाओं को मारते हैं ॥१८॥ बिना उनके देवगण कुछ नहीं कर पाते हैं देवताओं के कार्य के निमित्त
 उन्हें किसी नायक की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१९॥ वे समस्त प्राणियों के नायक तथा सबगुण्य हैं । वे देवताओं
 के स्वामी ब्रह्मभूत तथा ब्रह्मपियों के रक्षक हैं । उनकी नाभि में ब्रह्मा तथा शरीर में मैं वास करता हूँ । उनके शरीर
 में समस्त देवगण सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥२०-२१॥ वे देव नमललोचन श्रीगम, लक्ष्मीरमण, पद्म-धनुष-सङ्ग-

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः । स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोदितः ॥२२॥
 शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुष्पजः । उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च ॥२३॥
 पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च । आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४॥
 'आनुशंस्येन रूपेण घलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वोद्व्येष्टस्तददर्शनः ॥२५॥
 योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः^१ । वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६॥
 क्षमावांस्रजानहंवासी स देवो ब्रह्मदायकः^२ । भयहर्ता भयातनां^३ 'मित्रानन्वविवर्धनः ॥२७॥
 शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः । श्रुतवानथ संपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८॥
 समाश्रितानामुपकृच्छन्ना^४ भयकृत्तया । भीतिशो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२९॥
 'भवार्यमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः । प्राजापत्ये क्षुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥३०॥
 समुत्पत्त्यति गोविन्दो मनोवंशे महात्मनः । 'अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१॥
 अन्तर्धाम्नि हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनवर्हिर्भविता हविर्धाम्निः सुतो द्विजाः ॥३२॥
 तस्य प्रचेत प्रमुखा भविष्यन्ति वंशाऽऽत्मजाः^५ । प्राचेतसस्तथा दशो भवितेह प्रजापतिः ॥३३॥
 वाक्षायप्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यस्ततः । मनोश्च अंशज इला सुशुम्नश्च भविष्यति ॥३४॥
 बुधात्पुरुषवाङ्मायि तस्मादायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५॥
 यदुत्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति । 'क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६॥

धारी और गहवर्धज कहलाते हैं । वे उत्तम धील, धौल, दम, पराक्रम, शक्ति, दर्शनीय शरीर, अपरिमित वीर्य, ऋजुता, (सीधापन) सीम्न रूप तथा बल से युक्त हैं । उन्हें सब प्रकार के आश्चर्यजनक दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं । योगमाया वे वे आश्रय हैं । वे महामना सहस्रनेत्रधारी तथा विरूपाक्ष कहलाते हैं । वाणी से वे मित्रों के श्लाघनीय हैं तथा मार्ग-बन्धुओं के प्रिय हैं । वे देव क्षमावान्, अमिमानशून्य, ज्ञानदाता, भयपीडितों के भयहर्ता, मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाले, सबके रक्षक, दीनों के पालन में निरत, वेदवेत्ता, संपन्न, समस्त प्राणियों से नमस्कृत, आश्रितों के उपकारी, शत्रुओं के लिए भयकारी, नीतिज्ञ, नीतिसंपन्न, ब्रह्मवादी तथा जितेन्द्रिय हैं ॥२२-२९॥ देव-कार्य के लिये परम बुद्धि से युक्त होकर गोविन्द मनु सम्बन्धी प्रजापति के धर्मयुक्त क्षुब्ध मार्ग का अनुगमन करते हुए महात्मा मनु के वश में उत्पन्न होगे । मनु के अंश नामक पुत्र होगा । अक्ष के अन्तर्धाम और अन्तर्धाम के अनित्य प्रजापति हविर्धाम उत्पन्न होगा । हविर्धाम का पुत्र प्राचीनवर्हिस् होगा ॥३०-३२॥ उसके प्रचेता आदि दस पुत्र होंगे । प्रचेता का पुत्र दस प्रजापति होगा । दस के आदित्य और आदित्य के मनु नामक पुत्र होगा । मनु के वंशज इला और सुशुम्न होंगे । बुध से पुरुरवा और उससे आयु की उत्पत्ति होगी । आयु से नहुष और उससे ययाति की उत्पत्ति होगी ॥३३-३५॥ उससे महापराक्रमी यदु और यदु से क्रोष्टा उत्पन्न होगा । क्रोष्टा का महापुत्र वृजिनीवान् होगा ॥३६॥

१ ग अनुशसेन । २ क ०ना । वचो मि० । ३ क ग ०हनाय० । ४ क ०नाया तद्विनाशन । ५ क ०नूनाममि धर्मवित् । नी० । ६ क भवनाशकर श्रीमान्बुद्ध्या । ७ क अशून्यामि । ८ क अज्ञो । ९ क ०ना । प्रचे० । १० क व क्रोष्टोदय० ।

वृजिनीवतश्च भविता 'उपङ्गुरपराजितः' । 'उपङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररयस्तथा ॥३७॥
 तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति । तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८॥
 यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः । स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशः ॥३९॥
 स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम् । वसुदेवमिति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०॥
 तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति । दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१॥
 राज्ञो घटान्स सर्वावे भोक्षयिष्यति यादवः । जरासंधं तु राजानं निजित्य गिरिगह्वरे ॥४२॥
 सर्वपाथिवरत्नादयो भविष्यति स वीर्यवान् । पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३॥
 बिभ्रमेण च संपन्नः सर्वपाथिवपाथिवः । शूरः 'संहननो' भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः ॥४४॥
 पालयिष्यति गां देवीं विनिजित्य दुराशयान् । स भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हण्वरैः ॥४५॥
 अर्चयन्तु यथान्याय ब्रह्माणमिय शश्वतम् । यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६॥
 द्रष्टव्यस्तेन भगवान्यासुदेवः प्रतापवान् । द्रष्टे तस्मिन्नहं द्रष्टो न मेऽप्राप्तिं विचारणा ॥४७॥
 पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः । स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतिमुक्तो भविष्यति ॥४८॥
 तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति । यस्तु त मानवो लोके संभयिष्यति केशवम् ॥४९॥
 तस्य कीर्तयंशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति । धर्माणां 'देशिकः' साक्षाद्भविष्यति स 'धर्मवान् ॥५०॥
 धर्मबिद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः । धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नन्याचिते विभौ ॥५१॥

वृजिनीवान् के उचगु नामक बिजयी पुत्र होगा । उचगु के चित्ररथ नामक वीर पुत्र होगा ॥३७॥ चित्ररथ का कनिष्ठ शूर नाम से विख्यात होगा । द्विजश्रेष्ठो प्रसिद्ध पराक्रमी, सच्चरित्रगुणशाली, यज्ञकर्ता तथा पवित्र राजाओं के वंश में महापराक्रमी तथा महायशस्वी क्षत्रियश्रेष्ठ शूर अपने वंश को बढ़ाने वाले तथा प्रतिष्ठा वाले वसुदेव एवम् आनन्ददुन्दुभि नाम से ख्यात पुत्र को उत्पन्न करेंगे । उसने पुत्र चतुर्भुज वासुदेव हावे । वासुदेव ब्राह्मणों के सम्मान करने वाले, ब्रह्मभूत तथा द्विजप्रिय होंगे ॥३८-४१॥ वे समस्त बड़े राजाओं को उन्मत्त करेंगे । पर्वत की गुफा में राजा जरासन्ध को जीतकर दक्षिणपाली कृष्ण समस्त पृथ्वी के रत्नों से सम्पन्न होंगे । वे पृथ्वी पर अजेय होंगे ॥४२-४३॥ वे पराक्रमी से सम्पन्न तथा सब राजाओं के राजा होंगे । द्वारका में शास करते हुए सर्वशक्तिमान् कृष्ण द्रष्टुं चित्त वाले राजाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करेंगे । उत्तम ब्राह्मणों के साथ आप लोग उनसे समीप जाकर नित्य ब्रह्मा की तरह उनकी उचित सेवा करेंगे ॥४४-४५॥ जो मुझे तथा पितामह ब्रह्मा को देखना चाहता है, उसे प्रतापी मगवान् वासुदेव को देखना चाहिये । उनसे देख लेने पर मैं भी द्रष्टुं (देख दूँगा) हो जाता हूँ, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं है ॥४६-४७॥ जिस परबमललोचन मगवान् प्रसन्न होते हैं, वही तपस्वी सब कुछ वासुदेवमय है, ऐसा समझता है । जो मनुष्य मगवान् केशव का आश्रय लेता है, उस पर ब्रह्मा सहित देवगण प्रसन्न होते हैं । उसका यश बढ़ता है । उसे स्वर्ग प्राप्त होता है । वह धर्मात्मा साक्षात् धर्म का रूप हो जाता है । धर्मदेताओं को सदा अच्युत मगवान् को नमस्कार करने का चाहिये । कृष्ण की पूजा से सदा धर्म ही धर्म होता है ॥४८-५१॥ उन महा-

१४ ०ता श्रप० । २५ ०पद्मुर० । ३५ ०त । श्रप० । ४५ ०पद्मोर्म० । ५५ पाता । ६५ पुरा० । ७५ सनहो । ८५ भूपान्द्रा० । ९५ पोषक । १०५ पर्यन्त ।

यो राम स हृषीकेशोऽयुत सर्वधराधरः । तावुभौ पुष्पव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६॥
 द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ । एष वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधना ॥
 तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नतः ॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसवादे
 षडविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिव्याससवादे विष्णुपूजाकथनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यं श्रुतमस्माभिरद्भुतम् । सर्वपापहर पुण्यं धन्यं सत्सारनाशनम् ॥१॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने । का गतिं यांति मनुजा वासुदेवार्चने रता ॥२॥
 किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्षं किं वा स्वर्गं महामुने । अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ॥३॥
 छेतुमहंति सर्वज्ञ सशय नो हवि स्थितम् । छेत्ता नाप्योऽस्ति लोकेऽस्मिन्स्वदृते मुनिसत्तम ॥४॥
 व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्गुडाहृतम् । शृणुध्वमानुपूष्येण वंशवानां सुखावहम् ॥५॥

पराक्रमी, तथा चक्र हृषारी के दोना श्रेष्ठ पुरुष दर्शनीय एवं माननीय हैं। मुनिवन्द । यह भगवान् का अनुग्रह समक्षिये जो आपने इस रहस्य को मुझसे प्राप्त किया। इसलिये आपलोग यत्नपूर्वक कृष्ण की पूजा करें ॥६६-६७॥
 श्रीब्रह्म महापुराण में मुनि-महेश्वर के सवाद में दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२६॥

अध्याय २२७

मुनियो और व्यास के सवाद में वासुदेव-पूजन का वर्णन

मुनियों ने कहा—अहा! हमन कृष्ण का अद्भुत, सर्वपापहारी, पवित्र, धन्यवादार्ह तथा सत्सारनाशन माहात्म्य सुन लिया। महामुन! भक्ति से विधिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके वासुदेव की उपासना में निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त हाते है? उन्हें क्या मिलता है? स्वर्ग या मोक्ष या दानो? सर्वज्ञ! मेरे हृदय ने सदेह को आर मिटा सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ! आपके अतिरिक्त इस लोक में कोई भी सत्य का छछेद करने वाला नहीं है ॥१-३॥
 व्यास ने कहा—मुनिवर! आपने जा कहा खब ठीक है। अब आप साथ विष्णु-भक्ता को सुख देने वाग उत्तर मुने। कृष्ण की दीक्षामात्र लेन से मनुष्य माय प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जा सदा भक्तिपूर्वक

भुक्त्वा ययेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तरं ततः । दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते ॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते । गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६॥
मन्वन्तरशतं यापयज्जन्ममृत्युविर्वाजताः । गच्छन्ति भुवनं पञ्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमाः ॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः । श्रोष्ठन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् ॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः । तिष्ठन्ति शश्वते भावे 'सर्वदेवंमस्कृताः' ॥३९॥
[ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः । श्रोष्ठन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०॥
तदन्ते वैष्णव यान्ति पुरं सिद्धिनियेवितम् । श्रोष्ठन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः । तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्यहम् ॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वरा । भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्ययुतानि च ॥४३॥
अनिरुद्धपुरं पञ्चादिव्यरूपा महाबलाः । गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः ॥४४॥
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश । तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरण्यजिताः ॥४५॥
'प्रद्युम्नस्य पुरं पञ्चाद्वगच्छन्ति विगतज्वराः । तत्र तिष्ठन्ति' ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम् ॥४६॥
स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा' बलशक्तिसमन्विताः । गच्छन्ति योगिन पञ्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः ॥४७॥
ततोऽपि त्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रशः । विजान्ति वासुदेवेति विरूपाक्ष्ये निरञ्जने ॥४८॥

पूरे हो जाते हैं तब वे ब्रह्मलोक से विष्णूलोक में जाते हैं। वहाँ जन्म-मरण से रहित होकर सौ मन्वन्तरो तक सर्वगुण-सम्पन्न अक्षय भोगों को भोगकर पश्चात् बाराहलोक में जाते हैं। निम्नर । वहाँ कुण्डलयुक्त दिव्य देह धारण कर महाकाय, महाबलवान् तथा चतुर्भुज होकर दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त जीवा करते हैं और ब्रह्मभूत होकर सब देवा से नमस्कृत होते हैं ॥३४-३९॥ तदनन्तर वे धीर पुरुष नरसिंहलोक में जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त हर्षपूर्वक जीवा कर अन्त में सिद्धयणों से सुखवित विष्णूलोक में जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त सुख से जीवा कर उत्तम साधक पुन ब्रह्मलोक में जाते हैं। वहाँ करोड़ों वर्ष तक रहकर श्रेष्ठ साधक नारायणपुर जाते हैं। वहाँ करोड़ा ऋतव वर्ष पर्यन्त विविध भोगों को भोगकर श्रेष्ठ साधक पश्चात् अनिरुद्धपुर जाते हैं। वहाँ वे जन्म-मरण से रहित, दिव्यकाय तथा महाबलवान् होकर सुर-असुरों से स्तुत होते हुए चौदह सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त रहते हैं। तदनन्तर वे सुखपूर्वक प्रद्युम्नपुर जाते हैं। वहाँ स्वेच्छाधारी, हृष्ट तथा बलशक्ति-समन्वित होकर नरोडा वर्ष पर्यन्त रहते हैं ॥४०-४६॥ पश्चात् वे योगी पुरुष बलमद्रलोक में जाते हैं। वहाँ चिरकाल तक हजारों भोगों को भोगकर स्फुररहित निरञ्जन वासुदेव में प्रवेश करते हैं। फिर

१क सर्वलोकानाम् । २क ०घकोत्तमा । मु० । ३क स प्राद्युम्नेय । ४क ०न्ति वर्षाणि ल० ।

५क स ०तदय० । ६क विप्रा ।

विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते । तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशय ॥४९॥
एव क्रमेण भुक्ति ते प्राप्नुवन्ति मनोयिण । भुक्तिं च मुनिशार्दूला वासुदेवाचने रता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाहो वैष्णवाना गतिस्थापन नाम

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२७॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुपूजाकथनम्

व्यास उवाच

एकावश्यामुभे पक्षे निराहार^१ समाहित । स्नात्वा सम्पद्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय ॥१॥
सपूज्य विधिवद्विष्णु भद्रया सुसमाहित । पुष्पगन्धैस्तथा दीपधूपैर्नैवद्यैर्कस्तथा ॥२॥
उपहारबहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः । स्तोत्रैर्नानाविधैर्विष्णोर्गौतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः । एव सपूज्य विधिवद्वाग्री कृत्वा प्रजागरम् ॥४॥
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायण । याति विष्णो पर स्थान नरो नास्त्यत्र सशय ॥५॥

तो जरा-मरण-वर्जित परम सत्त्व को प्राप्त कर वे नि सन्देह मुक्त हो जाते हैं । मुक्तिश्रद्धो ! वासुदेव की उपासना में निरत भिद्वान् लोग इस प्रकार क्रमशः मुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥४७-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुरुषाय न विष्णु भक्तता की गति निरूपण नामक दो सौ सत्ताईसवा अध्याय समाप्त ॥ २२७॥

अध्याय २२८

व्यास और मुनियो के सवाद मे विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

व्यास ने कहा—(विष्णु भक्त मनुष्य) दली पक्षी की एकादली में निराहार तथा सावधान होकर रहे। विधानपूर्वक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहन और इन्द्रियो को बन्ध म रखे। पुष्प, वाघ, दीप, धूप, नैवेद्य, अनेक उपहार, जप होम प्रदक्षिणा विधिष दिव्य स्तोत्र मनोहर, धौत-वास, दण्डवत्प्रणाम तथा उत्तम जयशब्दों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विष्णु की पूजा करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके रात्रि में जाग्रत करे और विष्णु की कथा या गीत गाये। ऐसा करने से विष्णुपरायण मनुष्य नि सन्देह विष्णुलोक में जाता है ॥१-५॥

प्रातर्भोदयसि कल्याण सत्यमेव्याम्यहं पुनः । अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८॥
 इवः सत्येन समेप्यामि ततः खादसि मामिति । विष्णुशुभ्रयुषार्थाय रात्रिजागरणं मया ॥
 कार्यं न यत्तविष्णुं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९॥

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम् । ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०॥
 न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भूशम् । निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ॥
 सान्त्वययश्चलक्षणया वाचा स सत्यवचनेन्दुः ॥२१॥

मातङ्ग उवाच

'सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु । सत्येनाहं जपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२॥
 आवित्यश्चन्द्रमा बह्निर्वायुर्भूद्यौर्जलं मनः । अहोरात्रं यमः संप्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३॥
 परवारेण यत्पापं यत्परद्रव्यहारिण्यु । यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे गुह्यतल्पे ॥२४॥
 'बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पाप वृषलीपतेः । यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५॥
 क्रोडमांसाशिनो यच्च' कूर्ममांसाशिनश्च यत् । यथा मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६॥
 कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं विधिपूर्वतः । भूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७॥

मैं सत्य कहता हूँ । फिर मैं आज्ञाया । राक्षस । आज मुझे बड़ा कार्य है, इसलिये छोड़ दो । बल मैं अवश्य आज्ञाया, तब खा लेता । विष्णु की पत्नियों ने लिये मुझे रात में जागना है । तुम्हें मेरे व्रत में विघ्न नहीं डालना चाहिये । ॥१५-१९॥

। ॥ व्यास ने कहा—राक्षस ने उसको उत्तर दिया—'चाण्डाल । मैं दस रात से मूखा हूँ । आज तुमको पाया हूँ । मैं नहीं छोड़ूँगा । क्षुधा से पीडित हूँ । अतः अवश्य खाऊँगा ।' राक्षस की बात सुनकर चाण्डाल गोमल बाणी से उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ तथा सत्य बचन बोलने लगा ॥२०-२१॥

चाण्डाल ने कहा—ब्रह्मराक्षस ! सुनो, सत्यमूलक ही सम्पूर्ण जगत् है । उसी सत्य को लेकर मैं पुनः आने के लिये शपथ करता हूँ ॥२२॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, मन, दिन, रात, यम तथा दोनों सन्ध्यायें मनुष्यों की नियामों को जानती हैं । परस्त्री-गमन में जो पाप होता है, दूसरे के घन चुराने में जो पाप होता है, ब्रह्महत्या में जो पाप होता है, मदिरापन तथा गृह-पत्नी-गमन में जो पाप होता है ॥२३-२४॥ बन्ध्यापति तथा शूद्रापति होने से जो पाप होता है, पुजारी होने में जो पाप होता है । मत्स्य-मांस खाने में जो पाप होता है शूकर का मांस खाने में जो पाप होता है ॥२५॥ कछुए का मांस, श्वर्ष्य मांस तथा पीठ का मांस खाने में जो पाप होता है, कृतघ्नता तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने में जो पाप होता है, पुनर्विवाहिता स्त्री के पति बनने में जो पाप होता है, भूतव, क्रूरकर्मों तथा कृपण होने में जो पाप होता है, बन्ध्या स्त्री के अतिथि होने में जो पाप होता है,

कृष्णस्य च यत्पापं यच्च' वन्द्यातिथेरपि । अमावास्याज्जटमी पष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी ॥२८॥
 'तासु' यद्गमनात्पापं 'यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् । रजस्वलां तथा पद्मच्छादं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत् ॥२९॥
 'सर्वस्वस्नातभोग्यानां यत्पापं' भलभोजने । मित्रभार्या गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च ॥३०॥
 दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं 'मधुधातिनः । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः ॥३१॥
 यच्च कम्पानूते पापं यच्च गोदन्तरानूते' । स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः ॥३२॥
 'देवदेद्विजनपुत्रमित्रसतीस्त्रियः । यच्च भिन्दयतां पापं' 'गृहमिथ्यापचारतः ॥३३॥
 अग्नित्यागियु यत्पापमग्निदायियु यद्वन' । गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोष्णे यद्विजाधमे ॥३४॥
 यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः । तयोर्दत्तप्रहीनोश्च यत्पापं भ्रूणधातिनः ॥३५॥
 किं वात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तथ राजसः । श्रूयता शपथं भीमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६॥
 विक्रम्याजीविनः पापं 'भूतसत्येन सालिणः । अयाज्ययाजको यष्टे यत्पापं' 'अवगोष्ठमे ॥३७॥

अमावास्या, अष्टमी, पष्ठी तथा उमय पक्ष की चतुर्दशी में स्त्रीपूजन करने से जो पाप होता है, रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने से जो पाप होता है, धाद करने के बाद स्त्री प्रसंग करने से जो पाप होता है ॥२८-२९॥ बिना स्नान किये भोजन करने से जो पाप होता है, भल-भोजन करने से जो पाप होता है, मित्रपत्नी-नामन से जो पाप होता है, पिशुनता, दम्भ तथा छल करने से जो पाप होता है, मधु दक्षिणों के मारने से जो पाप होता है, ब्राह्मण के साथ प्रतिज्ञा करके फिर न देने से जो पाप होता है ॥३०-३१॥ असत्यता से कन्या, गाय एवम् अवध नाम करने से जो पाप होता है, स्त्री तथा बालक की हत्या करने से जो पाप होता है मिथ्यामापण करने से जो पाप होता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, वाहन, मित्र तथा सती स्त्री की निन्दा करने से जो पाप होता है, गुरु के साथ मिथ्या व्यवहार करने से जो पाप होता है, अग्निहोत्र त्यागने से वन से अग्नि लगाने से तथा गृह में याग करने से जो पाप होता है, गोहत्या करने से जो पाप होता है, अवध ब्राह्मण को जो पाप होता है परिवित्ता (बहू बहा भाई जिसने छोटे भाई से उससे पहले ही विवाह कर लिया है) परिवेदी, (बहू छोटा भाई जिसने अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह कर लिया है) तथा जनको (दान) देने वाले एवम् (उनसे दान की वस्तु) ग्रहण करने वाले को जो पाप होता है, गर्भघात करने वाले को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३२-३५॥ राजसः । तुम से अधिक शपथ मैं क्या करूँ? सुनी, भयकर तथा दुर्वाच्य शपथ भी मैं तुमसे करता हूँ । अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने वाले को जो पाप होता है, सत्य पर पर्दा डालकर गवाही देने वाले को जो पाप होता है, यज्ञ के अधिकारी के यज्ञ कराने वाले को तथा नपुंसक को जो पाप

१क यत्पाप ग्रामयाजके । अ० । २ग ०कलत्रयोद्धी । ३क तेषु । ४व यच्छरणात्ता० । ५क ०द्विप्रा ध्यायत स्त्रि० । ६ख ०स्वप्रान्तमोज्या० । ७क शत्यमोजिनाम् । ८क ०धुगन्यन । ९ख ० ५वजरा० । १०क ०पयज्ञसधिस० । ११ग ० ५ सुरा मिथ्यापचयंत । १२ख ० मिथ्योपरेतत । १३ख ० ने । गृहेष्टेयु यत्पाप यच्च गोष्णे द्विजा । १४ग कूटसत्येन । १५ख ० वषाष० ।

प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिण कामुके । एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८॥

व्यास उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः । प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९॥

इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु । समादापागमच्चैव विष्णोः ॥ नित्यं गतः ॥४०॥

तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाग्निभासा । विष्णुमभ्यर्च्य नित्यं अगाम स तपोधनाः ॥४१॥

सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम् । गायन् हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२॥

प्रभातायां तु शर्वर्यं स्नात्वा देवं नमस्य च । सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्ये यत्र 'राक्षस' ॥४३॥

तं व्रजन्तं पथि नरः प्राह भद्रं वव गच्छसि । स तयाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत् ॥४४॥

धर्मयिकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः । महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः ॥४५॥

जीवधर्मयिसुखं नरस्तयाऽप्नोति मोक्षगतिमग्याम् ।

जीवन्मोक्षमपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६॥

मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाय हेतुमतु ॥४७॥

मातङ्ग उवाच

भद्रं सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः

॥४८॥

होता है, निम्न बात ध्वज करने में जो पाप होता है, सम्पास लेकर गृहस्थी करने वाले को तथा कामी ब्रह्मचारी को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हों, यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३९-३८॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस विस्मित हुआ और बोला—‘जो, सत्य की शपथ का ध्यान रखना।’ राक्षस के कहने के बाद चाण्डाल ने फूल लेकर विष्णु-मन्दिर में जाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण भी फूल को जल से धोकर विष्णु की पूजा कर अपना घर चला गया ॥३९-४१॥ चाण्डाल उस दिन उपवास करके रात में विष्णु प्रीत्यर्थ गीतों को गाते हुए बाहरी भूमि में रह कर जागरण करने लगा। प्रभात होने पर स्नान करके देवता को नमस्कार करके वचन पूरा करने के लिये राक्षस ने पास चल पड़ा। रास्ते में एक व्यक्ति ने उससे पूछा—‘भद्र! कहाँ जा रहे हो?’ उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस व्यक्ति ने फिर कहा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है ॥४२-४५॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य महान् प्रयत्न करके इसका पालन करते हैं ॥४२-४५॥ जीवित मनुष्य धर्म, धन, सुख तथा अन्तिम मोक्षगति को प्राप्त करते हैं। जीवन रहने पर ही यज्ञ भी मिलता है। मृतक की तो इस लोक में बात ही क्या है?’ चाण्डाल उसका वचन सुनकर सारगमित वाक्य बोला ॥४६-४७॥

चाण्डाल ने कहा—भद्र! मैंने सत्य को आगे करके शपथ की है।

व्यास उवाच

तं भूयः 'प्रत्युवाचाय किमेवं भूदधीर्भवान् । किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना यदुदीरितम् ॥४९॥
 गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं, विवाहकाले 'सुरतप्रसङ्गे ।
 प्राणात्यये 'सर्वधनपहारे, पञ्चानूतान्याहुरपातकानि ॥५०॥
 धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपो । वञ्चने चार्थहानौ च स्वनाशेऽनृतके तथा ॥
 एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह ॥५१॥

मातङ्ग उवाच

मवं वदस्य भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते । सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥५२॥
 सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽग्ने रसात्मिकाः । ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मासत ॥५३॥
 धर्मार्थकामसंप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च कुलं भा । सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥५४॥
 सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम् । सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽयं मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम् । जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस ॥५६॥
 तमागतं समीक्ष्य सौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षसः । विस्मयोत्कुलनयनं शिर कम्पं तमब्रवीत् ॥५७॥

व्यास ने कहा—उस व्यक्ति ने फिर चाण्डाल से कहा—‘तुम मूर्ख हो । क्या तुमने मनु का वचन नहीं सुना है ? उनका कहना है—‘गाय, स्त्री तथा ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, विवाहकाल में, रतिप्रसंग में, प्राण-संकट में और सर्वत्र अपहरण में मिथ्या बोलने से पाप नहीं लगता है । स्त्रियों के साथ बातलाप करने में, विवाह में, शत्रु को ठगने में, और घननाश तथा प्राणनाश के समय धर्मवाक्य नहीं माना जाता है ।’ उसका वचन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया ॥४८-५१॥

चाण्डाल ने कहा—‘तुम्हारा कल्याण हो । ऐसा मत नहो । तीनों लोक में सत्य की पूजा होती है । सत्कार में जो कुछ भी सुख है, वह सत्य से प्राप्त होता है । सत्य से सूर्य प्रकाशित होता है, सत्य से जल रसरूप होता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होता है, सत्य से वायु बहता है । पुरुषों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दुर्लभ प्राप्ति सत्य से ही होती है । इसलिये सत्य का परित्याग नहीं करना चाहिये । लोक में सत्य परब्रह्म है, सत्य यज्ञों में सबसे उत्तम है, सत्य से स्वर्ग-प्राप्ति होती है । इसलिये सत्य को नहीं छोड़ना चाहिए ॥५२-५५॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर उस मनुष्य को छोड़कर वह चाण्डाल वहाँ से लिये चल पड़ा, जहाँ वह जीवहंसक ब्रह्मराक्षस रहता था । आये हुए चाण्डाल ने देखकर ब्रह्मराक्षस परमविस्मित होकर शिर कंपाते हुए बोला ॥५६-५७॥

१क ख ०चासो कि० । २क ख ०दुदाहृत० । ३ख सुसदे च धर्मो । प्रा० । ग सुहृदा च धर्मो । प्रा० । ४ग ०र्वजनो० । ५ग ०क्षे कुलक भवेत् । ए० । ६ख ०समस्ताव त० ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक । न मातङ्गमह मये भवत सत्यलक्षणम् ॥५८॥
 कर्मणाऽनेन मन्ये त्वां ब्राह्मण शुचिमध्ययम् । यत्किंचित्त्वा भद्रमुख प्रवक्ष्ये धर्मसंशयम् ॥
 किं तत्र भवता रात्रौ कृत विष्णुगृहे वद ॥५९॥

व्यास उवाच

तमम्युवाच मातङ्ग शृणु विष्णुगृहे मया । यत्कृत रजनीभागे यथातथ्य वदामि ते ॥६०॥
 विष्णोर्देवकुलस्याध स्थितेनाऽनम्रमूर्तिना । प्रजागर कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम ॥६१॥
 तब्रह्मराक्षस ग्राहं कियत् कालमुच्यताम् । प्रजागरो विष्णुगृहे कृत (तो) भक्तिमता वद ॥६२॥
 तमम्युवाच प्रहसन्विशत्येवमानि राक्षस । एकादश्या मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागर ॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचन श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षस ॥६३॥
 यदद्य त्वा प्रवक्ष्यामि तदभवावचतुमहति । एकरात्रिभृत साधो मम दहि प्रजागरम् ॥६४॥
 एव त्वा मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नायथा । त्रि सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह ॥६५॥

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाय मयाऽप्रमा ते निशाचर । निवेदित किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम् ॥६६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—महाभाग ! सत्य वचन के पालन-कर्ता ! ठीक ठीक ! तुम इतने सत्यात्मा हो कि मैं बन्धी नहीं मान सकता कि तुम चाण्डाल हो। इस काम से मैं तुम्हें पवित्र तथा नाशरहित ब्राह्मण मानता हूँ। तुम अतीव परमात्मा हो वक्ष्याम्यहम् । मैं जो कुछ पूछता हूँ वह बतलाओ। रात्रि में तुमने विष्णु मन्दिर में क्या सब किया ? ॥५८-५९॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने उससे कहा—तुमों रात्रि में मैंने विष्णु मन्दिर में जो किया वह यथापत्त बतला देता हूँ। विष्णु के नीचे नतमस्तक होकर मैं रात्रि भर विष्णु-गीत गाते हुए जागता रहा। (इस पर) ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा—जितने दिनों से तुम विष्णु मन्दिर में जागरण करते हो ? कहो। चाण्डाल ने हसते हुए कहा—राक्षस ! वीस वर्ष से मैं प्रत्येक मास की एकादशी को जागरण करता हूँ। चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला ॥६०-६३॥

ब्रह्मराक्षस बोला—आज जो मैं तुमसे पूछ रहा बतलाओ। साधो ! तुम अपना एक रात्रि के जागरण का फल मुझ दे दो। ऐसा करने से मैं तुम्हें छोड़ दूँगा अथवा नहीं छोड़ूँगा। महाभाग ! मैं तीन बार सत्य का साक्षी करके कहता हूँ। इतना कहकर राक्षस चुप हो गया ॥६४-६५॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चाण्डाल ने कहा—राक्षस ! मैंने अपने को समर्पित कर दिया। तुम स्वेच्छा से खा डालो। फिर राक्षस ने कहा—अच्छ तो दो घड़ी भर के सपीत के फल देने की कृपा करो।

तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् । सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसंबद्धमुच्यते । खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् । धर्पयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणः ॥६९॥
दीनस्य पापप्रस्तस्य विषयेर्मोहितस्य च । नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०॥
तन्मम त्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् । यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१॥

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् । न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
तं प्रहस्याय चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

राज्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया । तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्तमुद्धर ॥७३॥

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह

॥७४॥

चाण्डाल बोला—'क्यों धर्म की बात करते हो ? तुम यथेच्छ खाओ । मैं जागरण का फल नहीं दूंगा ।'
चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा ॥६९-७८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—कौन ऐसा दुष्टमति होगा, जो तुम्हें घटकारने या पीडा देने के लिये तुम्हारी ओर
दृष्टिपात करेगा ? तुम अपने दुःख धर्मों के द्वारा सुरक्षित हो । दीन, पापप्रस्त, विषयान्ध, नरक-पीडित तथा मूर्ख
पर साधु लोग दया करते हैं । महाभाग ! इसलिये कृपा करके तुम एक धर्मी का जागरण मुझे दे दो अथवा अपने
घर चले जाओ ॥६९-७१॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने फिर उससे कहा—'मैं अपने घर नहीं जाऊँगा और तुम्हें एक धर्मी का जाग-
रण भी नहीं दूँगा ।' तब ब्रह्मराक्षस ने हँसकर उससे कहा ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—अच्छ तो रात के अन्त थे जो तुमने गीत गाया, उल्टी का फल देकर मुझे पाप से
बचाओ ॥७३॥

व्यास ने कहा—इतना नहने पर चाण्डाल ने उससे कहा ॥७४॥

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विवृतं कृतमञ्जसा । येन त्वं दोषजातेन 'सभूतो' ब्रह्मराक्षसः ॥७५॥

व्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रोवाच दुःखसततं सस्मृत्य स्वकृतं कृतम् ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

'धूयता योऽहमास वै पूर्वं यच्च मया कृतम् । यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७॥

सौमशर्म इति एषात पूर्वमासमहं द्विज । पुनोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वनः ॥७८॥

कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबाह्यकृत । नृपस्य 'कर्मसत्तेन' यूपकर्मसुनिष्ठितः ॥७९॥

आग्नीध्रं चाकरोद्यते लोभमोहप्रपीडित । तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्ष्याद्दम्भमनुष्ठितः ॥८०॥

यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाहं महाश्रुतम् । प्रवर्तमाने 'तस्मिन्स्तु' कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१॥

'संपूर्णे' दशरात्रे तु न समाप्ते तथा क्रतोः । विटपाक्षस्य दोषान्त्वामाहुस्या राक्षसे क्षणे ॥८२॥

भूतोऽहं तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षसः । 'मूर्खेण' मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३॥

अज्ञानता यद्यविद्या यद्यिष्टं याजितं च यत् । तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥८४॥

तन्मा पापमहाम्भोधौ निमग्नं त्वं समुद्धर । प्रजागरे गीतिकां पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५॥

चाण्डाल बोला—तुम्हारे पहले बौन सा कुत्रम किया था, जिसके दोष से तुम ब्रह्मराक्षस हो गये ? ॥७५॥

व्यास न कहा—उसकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी ब्रह्मराक्षस ने अपने कर्मों का स्मरण कर चाण्डाल से कहा ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—पहले जो मैं था जो कर्म किया और जिसके करने से इस पापी राक्षस-योनि में आ गया हूँ वह सब वम मुनो ॥७७॥ पहले मैं सोमशर्मा नामक ब्राह्मण था । अध्ययनशील तथा यज्ञकर्ता देवशर्मा का मैं पुत्र था । मैं सूत्र-मन्त्र कुछ नहीं जानता था । फिर भा एक यज्ञमान के यज्ञकर्म में मैंने भाग ले लिया । लोभ मोह में फँसकर मैंने होता का वायमार ग्रहण किया । यज्ञ समाप्त होने पर भूलता तथा दम्भ के कारण मैंने १२ दिनों में सम्पन्न होने वाला महायज्ञ पूरा कर दिया । यज्ञारम्भ में ही मेरे पेट में पीड़ा होने लगी । दश रात बात जानि पर जब मैं गिर को आहुति दे रहा था तभी मेरा देहान्त हो गया । उसी दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । मूल मन्त्रहीन तथा सूत्र-स्वर से रहित होकर यज्ञविद्या को न जानते हुए भी जो मैंने यज्ञ किया तथा कराया उसी कर्म के दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । इसलिये मैं पापसमुद्र में निमग्न हूँ मेरा उद्धार करो । जागरण काल में पिछले एक गीत का भी फल मुझ दे दो ॥७८ ८५॥

१क प्राप्नो । २क राक्षसयोनिताम । ३क अता हि महाबुद्ध पू० । ४क न । किंचिच्च यज० । ५क न । किंचितो यज० । ६क अस्य बुद्धमत्तवहि० । ७क अस्य शूद्रस्याश्रव० । ८क कमशक्तेन । ९ सूयशाकतस्तु । १० न पूर्वक० । ११ क अस्यनुष्ठि० । १२ कमणि । १३ न । अपूर्ण । १४ मुनेन ।

॥ 'तेनाधर्मदोयेण चाण्डालो योनिमागतः । पापप्रमोचने स्नातः स भूतो नमंदातटे' ॥१९॥
 मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः । तत्रास्य वसतोऽबंस्तु त्रिशङ्खः सिद्धपुरुषः ॥१००॥
 विरूपरूपो बभ्राम योगमायाबलान्वितः । तं दृष्ट्वा सोपहासार्यमभिवाद्यामुवाच ह ॥१०१॥
 कुशलं सिद्धपुरुषं कुतस्त्वामम्यते त्वया ॥१०२॥

व्यास उवाच

एवं संभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु । प्रत्युवाचाय स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३॥
 तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे । नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४॥
 सिद्धस्तमाह तां वेत्सि क्षत्र्यामरधारिणीम् । स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसंभ्राम् ॥१०५॥
 विप्रः सिद्धमुवाचाय श्रुजुमार्गं विवर्जितः । तन्मित्र मत्कृतं वार्तामुर्वश्या भवंताऽऽबरात् ॥१०६॥
 कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादास्यास्यते भवान् । धाढमित्यल्लवोत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७॥
 बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम् । समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८॥
 सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम् । जानामि सत्प्रभुवतं ते न चेत्तसि मम स्थितम् ॥१०९॥
 इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः । वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण व पुनः ॥११०॥

के तट पर जाकर मर गया ॥१८-१९॥ तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख होकर जन्म लिया। वहाँ तीस वर्ष के बाद एक दिन कोई सिद्ध योगी उसे मिले। उन्हें देखकर उपहास करने के लिये उसने प्रणाम करके उनसे पूछा—'कहिये, कुशल है? वहाँ से आ रहे हैं?' ॥१००-१०२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पूछे जाने पर योगी ने समझा कि इसने मुझे पहचान लिया। इसलिये उन्होंने कहा कि मैं स्वर्गलोक से आ रहा हूँ। तब मूर्ख ने फिर उनसे प्रश्न किया—'स्वर्ग में भगवान् की जथा से उत्पन्न उर्वशी नामक श्रेष्ठ अप्सरा को आप जानते हैं?' ॥१०३-१०४॥ सिद्ध ने उत्तर दिया—'हाँ, ईश्वर को चामर डुलाने वाली, स्वर्ग-भूषण तथा महात्मा से उत्पन्न उर्वशी को मैं जानता हूँ ॥१०५॥' ब्राह्मण ने सरल मार्ग को छोड़ कर सिद्ध से कहा—'मित्र! मेरी बात आप उर्वशी से आदरपूर्वक कह देंगे। तब वह जो वृद्धे तो मुझे भी बतला देंगे।' सिद्ध ने कहा—'अच्छ।' ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥१०६-१०७॥ सिद्ध सुमेरुपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने उर्वशी से ब्राह्मण का निवेदन कह सुनाया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'मैं काशी के ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ। मैं सत्य कहती हूँ। मेरा उससे कोई परिचय नहीं है।' इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर सिद्ध पुनः वाराणसी गये। फिर उस मूर्ख ने उन्हें देख लिया। देखते ही पूछा—'उर्वशी ने क्या कहा?' सिद्ध ने उत्तर

१क तेन ब्रह्मदी० । ख तेन ममदी० । २ग मुदो । ३क ०टे । मुख्योऽमू० । ख ०टे । मुक्तोऽमू० ।
 ४क ख विशदिम । ५क ख बलवान्योग० । ६क ०रुप कु० । ७ख ग विरात् । ८ख वन्त त स्व० ।
 ९ग. ०गप्रपवितम् । त० ।

दृष्ट पृष्टः किल भूय किमाहोस्मया तव । सिद्धोऽब्रवीत्प्र जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११॥
 सिद्धवाक्य ततः श्रुत्वा स्मितमिन्नोऽष्टसपुटः । पुनः प्राह कथं चेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२॥
 बाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिव गतः । बदशं शक्रमवनातिष्ठकामन्तीमयोर्वशीम् ॥११३॥
 प्रोवाच तां सिद्धवरः सा च तं सिद्धमब्रवीत् । नियमं कचिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४॥
 येनाहं जमंगा सिद्ध तं जानामि न चान्यथा । तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५॥
 वयमामास सिद्धस्तु सोऽप्योमं नियमं जगौ । तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया ॥११६॥
 म भोक्ष्येऽद्यप्रभृति चैव शकटं सत्यमीरितम् । इत्युक्तं प्रययौ सिद्धः स्वर्गं दृष्ट्वोर्वशीमय ॥११७॥
 प्राहासी 'शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित् । तं सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसी साप्रतं मया ॥११८॥
 नियमप्रहणादेव 'मूर्खो मां (ज्य) मुपहासक । इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं वासं नारायणात्मजा ॥११९॥
 सिद्धोऽपि विचचारासी कामचारी महोत्तलम् । उर्वशीयपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०॥
 मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा । अयासावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं 'मुने ॥१२१॥
 जगामाय बदशसी स्नायमानामयोर्वशीम् । तां दृष्ट्वा बभूधेऽयास्य मनस्य शोभकृवृद्धम् ॥१२२॥
 चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेकोर्वशी स्वयम् । तं मूर्खं सिद्धगवित ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३॥

दिमा—'उर्वशी ने कहा—'मैं उसे नहीं जानती हूँ ॥१०८-१११॥ सिद्ध के वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए ब्राह्मण ने कहा—'जब की आज उर्वशी से कहिएगा—'तुम कैसे जान सकती हो ॥११२॥ ?' 'अच्छा' कहकर सिद्ध स्वर्ग चले गये । चन्द्रमवन से निकलती हुई उर्वशी को देखकर सिद्ध ने ब्राह्मण का कथन सुना दिया । उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'यदि वह ब्राह्मण मुझसे कोई प्रतिज्ञा करे तो मैं उसे जान जाऊँगी । अन्यथा तो जान ही नहीं सकती ।' उर्वशी की बात सिद्ध ने आकर मूल ब्राह्मण से कह दी । ब्राह्मण बोला—'सिद्धपुरष । आपक सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शकट (तिनिघ या घन वज्र वा फल या गाड़ी) नहीं खाऊँगा ।' ॥११३-११६॥ इसके बाद सिद्ध ने स्वर्ग में आकर उर्वशी से कहा—'उसने प्रतिज्ञा की है कि आज से लेकर मैं कभी शकट नहीं खाऊँगा ।' तब उर्वशी ने कहा—'हाँ, अब मैं जान गयी । प्रतिज्ञा करने से ही मैं समझ गयी कि यह मूर्ख मेरा उपहास करने वाला है ।' इतना कहकर वह शीघ्र ही अपने वासस्थान पर चली गयी ॥११७-११९॥ स्वेच्छावारी सिद्ध भी पृथ्वी पर विचरण करने लगे । तब सुन्दरी उर्वशी वाराणसी आकर दिव्य शरीर धारण कर मत्स्योदरी नामक नदी के जल में स्नान करने लगी । वह मूर्ख ब्राह्मण भी स्नान करती हुई उर्वशी को देखने के लिये मत्स्योदरी के तट पर पहुँचा । उर्वशी को देखते ही उसका कामवेग बढ़ गया । वह अपनी चेष्टा भी प्रकट करने लगा । उर्वशी उस मूर्ख के बारे में सिद्ध के मुख से सुन चुकी थी । इसलिये स्वयं उसे पहचान कर मुस्कगती हुई चली ॥१२०-१२३॥

उर्वश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्त शीघ्रमिहोच्यताम् । करिष्यामि यच्चस्तुभ्य त्वं विधव्य करिष्यसि ॥१२४॥

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणाग्रक्ष श्रुचिस्मिते

॥१२५॥

व्यास उवाच

त प्राहायोर्वशी विप्र नियमस्याऽस्मि साप्रतम् । त्वं तिष्ठस्व क्षणमय प्रतीक्षस्वाऽऽगतं मम ॥१२६॥

स्थितोऽस्मीत्यब्रवीद्विप्र साऽपि स्वर्गं जगाम ह । मासमात्रेण साऽऽयाता यवर्षं तं कृशं वृजम् ॥१२७॥

स्थित मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना । तं दृष्ट्वा निश्चययुत भूत्वा बृद्धवपुस्ततः ॥१२८॥

सा चकार नदीतीरे शकटं शर्करावृतम् । धृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता ॥१२९॥

स्नात्वाऽप्य भूमौ वसती शकटं च ययार्थं । तं ब्राह्मणं समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०॥

उर्वश्युवाच

मया तीव्रं व्रतं विप्रं चोर्णं सौभाग्यकारणात् । व्रतान्ते निष्कृतिं दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१॥

व्यास उवाच

स प्राह किमिदं लोके धीयते शर्करावृतम् । क्षुत्क्षामकण्ठं पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२॥

उर्वशी बोली—महाभाग ! मुझसे क्या चाहते हो ? शीघ्र बतलाओ । तुम विश्वास करो । मैं तुम्हारी बात मानूंगी ॥१२४॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—पवित्र हास्य करने वाली ! तुम आनन्दान् देख कर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥१२५॥

व्यास ने कहा—तब उवशी ने उससे कहा—इस समय मैं नियम-पालन कर रही हूँ । तुम क्षण भर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करो । ब्राह्मण ने कहा—मैं ठहरता हूँ । उवशी स्वयं चली गई । एक महीने के बाद लौटी । तब तक वह ब्राह्मण नदी तट पर निराहार रहकर कुजवाय हो गया था । उसका दण्ड निश्चय देखकर उवशी शकट में शककर धी और मधु मिलाकर मत्स्योदरी में स्नान करके तट पर उस ब्राह्मण को बुलाकर कहने लगी ॥१२६॥ १३०॥

उर्वशी ने कहा—विप्र ! मैंने सौभाग्य मे उग्र व्रत को सम्पन्न किया । अब मैं तुम्हें बदला दूंगी । इसे स्वीकार करो ॥१३१॥

व्यास ने कहा—ब्राह्मण ने पूछा—भद्रे ! यह गृहमिथित कौन सी चीज तुम दे रही हो ? मैं मृता-व्यासा हूँ । सब बतलाओ । १३२॥ उर्वशा ने कहा—विप्र ! यह गृहमिथित शकट है । इसे शीघ्र सावर तुम आत्म

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः । इमं त्वं समुपादाय प्राणं तपय मा चिरम् ॥१३३॥
 स तच्छ्रुत्वाऽयं संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन् । प्राहं भद्रे न गृह्णामि' नियमो हि कृतो मया ॥१३४॥
 पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति । परिज्ञानार्थमुर्वश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५॥
 साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया । नासौ काष्ठमयो भृङ्क्ष्व क्षुधया चातिपीडितः ॥१३६॥
 तां ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् । कृतं भद्रेऽयं नियमः सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७॥
 तं भूय प्राह सा तन्वी न खेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण । गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति ॥१३८॥
 स तामुवाच सुवति न तावद्योमि भन्दिस्व । इहाऽऽयाता वरारोहा श्र्लोष्येऽप्यधिका गुणः ॥१३९॥
 सा मया भद्रे नार्थितोऽऽश्वासितस्तथा । स्वीयतां क्षणमित्येवं स्थास्यामीति मयोदितम् ॥१४०॥
 मासमानं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च । मम सत्यानुरक्तस्य संयमाय धृतव्रते ॥१४१॥
 तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्थं रूपमुत्तमम् । विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२॥

उयंश्युवाच

साधु सत्यं त्वया विप्र प्रतं निष्ठितचेतसा । निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३॥
अहमेवोर्दशी विप्र' त्यां जिज्ञासार्थमागता । परोक्षितो निश्चितवान्भवान्स्थितपरा ऋषिः ॥१४४॥
गण्ड' शकरबोद्धेशं रूपतीर्थेति विश्रुतम् । सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि ॥१४५॥

पूजित करो।' यह सुनते ही उसे स्मरण हो आया। तब धृष्टा से पीड़ित होते हुए भी उसने कहा—'मद्रे ! मैंने मिथ्यपुत्र के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं शकट नहीं लाऊँगा। इसलिये तुम दूसरे किसी को दे दो ॥१३३-१३५॥
उर्वशी ने कहा—'मद्रे ! तुमने लकड़ी के बाड़े में प्रतिज्ञा की है। यह तो लकड़ी का नहीं है। तुम अत्यन्त भूखे हो। इसलिये खा लो ॥१३६॥ ब्राह्मण ने कहा—'मद्रे ! मैंने सामान्यतया प्रतिज्ञा की थी, विशेष करने नहीं।' उर्वशी ने कहा—'ब्राह्मण ! यदि खाओगे नहीं तो इसे घर में जाओ, तुम्हारे कुटुम्ब खा लेंगे ॥१३७-१३८॥ ब्राह्मण ने कहा—'मनोहर दात वाली ! मैं घर नहीं जाऊँगा। तीनों लोक में सबसे अधिक गुणवती कामिनी यहाँ आई है—यह जानकर मैं तुम्हारे पास आया और कामपीडित होकर मैंने तुमसे प्रार्थना की। तुमने भी आववास्त दिया कि क्षण भर ठहरो। मैंने उत्तर दिया कि ठहरता हूँ ॥१३९-१४०॥ मद्रे ! तुम एक भास तक गई हो रही। मैं तब से यही हूँ।—मुझे तुमसे सच्चा प्रेम है।' उमने बचन सुनकर उर्वशी उत्तम स्वरूप बनाकर हँसती हुई गम्भीरतापूर्वक उससे कहने लगी ॥१४१-१४२॥

उर्वशी बोली—विप्र ! तुमने सत्य कहा। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने श्रद्धाघुस्त जित से हठपूर्वक प्रत सम्पन्न किया। मैं ही उर्वशी हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा करने के लिये आई हूँ। मैंने परीक्षा की। तुम निश्चयी तथा सत्य तपस्वी ऋषि हो। विप्रेन्द्र ! तुम तोते के शब्द के अनुसार रूपतीर्थ में जाओ। वहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुम मुझे पा जाओगे ॥१४३-१४५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा । स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६॥
 तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि । देहोत्सर्गं जगामासी गान्धर्वं लोकमुत्तमम् ॥१४७॥
 तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा यथार्थम् । बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८॥
 ॥ यज्वा विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । पुत्रेषु राज्यं निक्षिप्य ययौ शौकरव पुनः ॥१४९॥
 रूपतीर्थं मृतो भूय जल्लोकमुपागतः । तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥१५०॥
 प्रतिष्ठाने पुरवरे वृधपुत्रं पुरुरवा । बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१॥
 एव पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थं प्रसिद्धे स हि रूपसन्ने ।
 आराध्य जन्मयथ चाचर्य विष्णुमवाप्य भोगानथ मुषितमेति ॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे प्रजागरे गीतिकाया प्रशस्तानिरूपण
 नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२८॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर उवचा आकाश में उड़ गई। वह सत्यतपस्वा ब्राह्मण रूपतीर्थ के लिये प्रस्थित हुआ। ॥१४६॥ वहाँ शान्ति नियम तथा व्रत धारण कर पवित्रतापूर्वक उसने देहत्याग किया। मृत्यु के पश्चात् वह गन्धर्वलोक में गया। वहाँ ही भवतरो तक उत्तम भागों को भोग कर सदाश्री राजा होकर उत्पन्न हुआ। उसने प्रजापालन में निरत रहकर उत्तम दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये। पश्चात् पुत्रों को राज्य सौंप कर रूपतीर्थ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर शरीर त्यागकर वह इंद्रलोक पहुँचा। वहाँ ही मन्वन्तरों तक मोक्षों को भोगकर वहाँ से व्यत होने पर प्रतिष्ठान नामक अष्टपुरी में वृध का पुत्र पुरुरवा होकर उत्पन्न हुआ। मुनिवृन्द ! वहाँ उवचा के साथ उसका संगम हुआ। इस प्रकार पूर्वकाल में सत्यतपा नामक ब्राह्मण ने प्रसिद्ध रूपतीर्थ में विष्णु की आराधना कर जन्म के पश्चात् अनेक भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त किया ॥१४७ १५२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के सवाद प्रकरण में जागरण-गीत प्रशंसा निरूपण नामक दो सौ अठ्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

अयेकोनविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम् -

मुनय ऊचुः.

श्रुतं कल गोतिकाया अस्माभि सुप्रजागरे । कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमा गतिम् ॥१॥
यथा विष्णो भवेद्भक्तिस्ततो ब्रूहि महामते । तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वं । यथा कृष्णे भवेद्भक्तिं पुरुषस्य महाफला ॥३॥
सत्तारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे । 'महामोहकरे' नृणां नानादुःखशताकुले ॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमान पुन पुन । कथंचित्स्थिते जन्म वेहो मानुष्यक द्विजा ॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रस्य विप्रत्वेऽपि विवेकिता । विवेकाद्विमुक्तिस्तु बुद्ध्या तु श्रेयसा ग्रह ॥६॥
यावत्पापक्षयं पुसा न भवेज्जन्मसंचितम् । तावत्त जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७॥
तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्तिं कृष्णे यथा भवेत् । अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते ॥८॥

अध्याय २२६

व्यास और मुनियों के सवाद में विष्णुभक्ति का कारण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाबुद्धिमान ! हमने जामरण-कालीन कृष्ण गीत के फल तथा चाण्डाल के परम गति प्राप्त करने के विषय में सुना । अब विष्णु से जिस प्रकार भक्ति हो वह बतलाइये । जिस तप या कर्म से विष्णु भक्ति होती है वह हम सुनना चाहते हैं ॥१२॥

व्यास ने कहा—मुनिवय ! जिस प्रकार पुरुष को कृष्ण से महाफलदायिनी भक्ति होगी वह मैं अक्षरशः बतलाऊँगा ॥३॥ द्विजगण ! महामयकर समस्त प्राणियों के लिये भयावह महामोहकारी तथा अनेक प्रकार के दुःखा से परिपूर्ण इस सत्सार में प्राणी हजारों नीचयोनियों में बार-बार उत्पन्न होकर कभी मनुष्य-वारीर प्राप्त करता है ॥४॥ मनुष्ययानि में भी ब्राह्मण होना और ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर भी विवेक होना परम दुर्लभ है । विवेक से घमबुद्धि होती है और उससे ब्रह्मण्य होता है ॥५॥ पुरुषों का पूर्वजन्माजित पाप जब तक नष्ट नहीं होता है तब तक विश्वात्मा वासुदेव से भक्ति नहीं होती है ॥६॥ विप्रबुद्ध ! इसलिये जिस उपाय से कृष्ण तथा अय देवी में पुरुष को भक्ति होगी वह मैं बतलाऊँगा ॥८॥ मुनिश्रेष्ठो ! ब्रह्म मन, वाणी से उसी देव से

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना । तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥९॥
 न करोति ततो जिघ्रा भक्तिं 'चान्नेः समाहितः । तुष्टे हृताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥१०॥
 पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः । प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥११॥
 पूजां करोति विधिवत्स 'तु शम्भोः प्रयत्नतः । तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ॥१२॥
 संपूज्य तं जगन्नाथं वामुदेवायमव्ययम् । ततो भक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ॥१३॥

मुनय ऊचुः

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने । किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज ॥१४॥

व्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः । आसुरश्च तथा दैवः पुरा सृष्टः स्वयंभुवा ॥१५॥
 दैवौ प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽप्युतम् । आसुरौ योनिमापन्ना द्रुपयन्ति नरा हरिम् ॥१६॥
 मायया हतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः । अप्राप्य सं हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमा गतिम् ॥१७॥
 'तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः । महामोहकरो नृणां दुस्तरा चादृतात्मभिः ॥१८॥

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम् । धक्तुमर्हसि धर्मज परं कौतूहलं हि न ॥१९॥

चित्त लगाकर यज्ञ करने से भक्ति होती है । रावमान होकर अग्नि की भक्ति करनी चाहिये । अग्नि से सतुष्ट होने पर सूर्य में भक्ति होती है ॥९-१०॥ गतत सूर्य की पूजा करने से उनसे प्रसन्न होने पर शंकर में भक्ति होती है । यज्ञ करके विधिपूर्वक शंकर की पूजा करने से उनसे प्रसन्न होने पर ब्रह्म में भक्ति होती है । वामुदेव समस्त अविनाशी जगन्नाथ की पूजा करने से मुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥११-१३॥

मुनियों ने कहा—महामुने । जो मनुष्य अवैष्णव देखे जाते हैं, क्या वे विष्णु की पूजा नहीं करते हैं ? विप्र । इत्यादि कारण बतलाइये ॥१४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । इस सीरे में ब्रह्मा ने प्राणियों की दो प्रकार की सृष्टि की है—एक आसुरी सृष्टि और दूसरी दैवी । दैवी प्रकृति के मनुष्य वामुदेव की पूजा करते हैं और आसुरी योनि वाले मनुष्य हरि की निन्दा करते हैं । ये नराधम विष्णु की माया से हतबुद्धि होकर हरि को न जाने में अधम गति को प्राप्ति करते हैं । विष्णु की जा बटिटा माया है, उसे देवता तथा राक्षस नहीं जानते हैं । वह मनुष्य को महामोह में डालती है । वह भक्तिविरोध प्रकृतियाँ से दुर्जय है ॥१५-१८॥

मुनियों ने कहा—हम विष्णु को दुर्जय माया को जानना चाहते हैं । धर्मज । बतलाइये । हमें बड़ी उत्पत्ति हो रही है ॥१९॥

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्षणी । क द्रव्योति हरेर्माया ज्ञातु ता केशवादृते ॥२०॥
 या वृत्ता 'ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायायै' नारदस्य च । विडम्बना तु ता विप्रा शृणुष्व गदतो मम ॥२१॥
 प्राणासीन्नृपति धीमानाम्नोऽग्न इति विभ्रुत । नगरे कामदमनस्तस्याय तनय शुचि ॥२२॥
 धर्माराम क्षमाशील पितृशुभूपणे रत । प्रजानुरञ्जको दत्त श्रुतिशास्त्रकृतधम ॥२३॥
 पिताऽस्य स्वकरोद्यत्न विद्याहाय न चञ्छत । त पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४॥
 सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति ममजा किल । सुखमूला हि दाराश्च तस्मात् त्व समाधर ॥२५॥
 स पितुर्बन्धनं धृत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात् । मुहुर्मुहुस्त च पिता चोदयामास भो द्विजा ॥२६॥
 धयातो पितर प्राह तात मामानुरूपता । मया समाभिता ध्यक्ता वंष्णवी परिपालनी ॥२७॥
 त पिता प्राह सगम्य नैव धर्मोऽस्ति पुनः । न 'विचारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ॥२८॥
 कुप मद्बन्धनं पुन प्रभुरस्मि पिता तव । मा निमज्ज कुलं मह्य नरके सततिस्रयात् ॥२९॥
 स हि स पितुरादेशं धृत्वा प्राह सुतो वशी । प्रीत सस्मृत्य वीराणीं ससारस्य विचित्रताम् ॥३०॥

पुन उवाच

शृणु तात वचो मह्य तत्त्ववानय सहैतुकम् । मामानुरूपं वर्तय्य सत्यं भवति पार्थिव ॥३१॥

व्यास ने कहा—लोगों को मोहित करने वालो वह माया स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है । बिना मग-
 धान के उसे कौन जान सकता है ? विप्रबृद । उस माया के कारण विप्र नारद की जो दशा हुई उसे मुझसे सुन
 लीजिये ॥२०-२१॥ प्राचीन समय में आत्माग्र नामक राजा था । उसका पुत्र कामदमन पवित्र धर्माराम क्षमा-
 शील, प्रजाप्रमी निपुण तथा वेदशास्त्रवेत्ता था । पिता ने पुत्र के विवाह के लिये यत्न किया पर पुत्र ने अस्वी-
 कार कर दिया । तब पिता ने पुत्र से पूछा— क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते हो ? मनुष्य सब कुछ सुख
 ही के लिये चाहते हैं । स्त्री सुख की जड़ है । इसलिये तुम विवाह कर लो ॥२२-२५॥ पुत्र पिता का वचन
 सुनकर चुप हो गया । पिता ने बार-बार उससे पूछा ॥२६॥ तब उसने पिता से कहा— तात । मैंने विष्णु के
 मामानुरूप उनकी लोकपालिना माया का अध्ययन किया है । पिता ने फिर उससे कहा— पुत्र । यह धम नहीं है ।
 विद्वान् पुरुष को विष्णु माया का धारण नहीं करना चाहिये । पुत्र । मेरी बात मानो । मैं तुम्हारा अभ्यस्त तथा
 पिता हूँ । सत्तान-लय करने के कुल को नरक में मत डालो ॥२७-२९॥ पिता की आज्ञा सुनकर वस्यात्मा पुत्र समार
 की पुरातनी विचित्रता का स्मरण करके प्रसन्न हुआ ॥३०॥
 पुत्र ने कहा— तात । मेरे हेतुपूण तत्त्ववचन को आप सुनें । राजन् । विष्णु की माया के अनुरूप वाय

१क ०णध्रष्टा माया० । २ख ०स्यायै माया० । ३ग अत । म० । ४घ व्यून स्वदाज्ञा० । ५ग
 ०इ प्रहस्यमान्य नाम च पू० । ६घ विचारयितव्य । ७न ०त् । पितुरादेशं श्रु० । ८घ कृत्वा ।

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च ॥ प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२॥
 तृणगुल्मलतावल्लोसरीसुपमगृह्णिजाः ॥ पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया ॥३३॥
 गणकिनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४॥
 नदीदवरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः ॥ सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहतः ॥३५॥
 दारसंयोगयुवतस्य तातेद्दमे विडम्बना ॥ इतस्तृतीये यदुत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
 कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६॥

अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, मूढबगन्धर्वमहोरगाणाम् ॥
 विद्याधराणां खगकिनराणां, जातो हि वंशे सुतया महर्षिः ॥३७॥
 ततो महाभूदबला हि भवितर्जनादने लोकपती मधुघ्ने ॥
 प्लतोपवासं विविधैश्च भक्त्या, संतोषतश्चक्रगदास्त्रपारो ॥३८॥
 दुष्टोऽभ्ययात्पक्षिपतिं महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे ॥
 प्राहोच्चशब्दं श्रित्यतो द्विजाते, वरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९॥
 ततोऽहमूचे हरिमोक्षितारं, तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमिं ॥
 या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०॥
 अयात्रवीन्मे मधुकंदभारिः, किं ते तया ब्रह्मनामया वै ॥
 धर्मार्थकामानि वदानि तुभ्यं, पुत्राणि मुख्यानि निरामयत्वम् ॥४१॥

ही सत्य है। मैंने हजारों जन्म, सैंकड़ों वृद्धत्व तथा मरण प्राप्त किये। स्त्रियों से संयोग तथा वियोग भी प्राप्त किये। सैंकड़ों तृण, गुल्म, लता, मृग आदि प्राप्त किये। पशु, स्त्री, पुरुष, गण, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महाक्षर, यक्ष, गुह्यकर, राक्षस, दानव, अप्सरा, देवता तथा सहस्रो नर्तिकां प्राप्त की। अनेकों बार मेरा सर्वत्र तथा संहार हुआ। तात। इसलिये मेरी समस्त से स्त्री-संयोग करना विडम्बनामान है। इससे पिछले तीसरे जन्म में तीर्थ के माहात्म्य ॥ उत्पन्न जो मेरा वृत्तान्त हुआ वह संक्षेप में कहता हूँ ॥३१-३६॥ तात। मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महा-सर्प, विद्याधर, पक्षी, किन्नर आदि अनेक जन्मों के बाद मैं गुह्य नामक महर्षि-द्वारा ॥३७॥ उस समय मधु नामक राक्षस के मारने वाले लोकपति जनार्दन मे भेरी अचल भक्ति हुई। विविध व्रत, उपवास तथा भक्ति से मैंने वक्र, गदा तथा अस्त्र धारण करने वाले विष्णु को सतुष्ट किया ॥३८॥ अतः होने पर महात्मा विष्णु गरुड़ पर चढ़-कर मुझे वरदान देने के लिये आये। उच्च स्वर में विष्णु ने कहा—'विप्र! वर मांगो। तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह मैं दूँगा ॥३९॥ तब मैंने सर्वशक्तिमान् हरि से कहा—'केशव! यदि आप अक्षय हैं तो मैं वर मांगता हूँ। जनार्दन! आपकी जा परमा माया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ ॥४०॥ तब मधु-कंदम के दानु भगवान् ने मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! माया से तुम्हें क्या करना है? मैं तुम्हें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र तथा आरोग्य प्रदान करता हूँ ॥४१॥ तब फिर मैंने मुर नामक राक्षस के दानु भगवान् से कहा—'अर्थ, धर्म, काम की जीतने वाली जो

ततो मुरारि पुनरुक्तवानहं, भूपोऽयं धर्मार्यं जिगीषितं वत् ।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२॥
ततोऽभ्युवाचाय नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुविष्णुरिदं वचो मे ॥

विष्णुरुवाच

मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चिन्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३॥
पूर्वं सुरपिद्विज नारदाख्यो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः ।
तेनापि पूर्वं भवता यथैव, संतोषितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४॥
वरं च इतं (वातुं) गतवानहं च, स चापि वरमेतदेव ।
निवारितो मामतिमूढभावाद्भवाम्ययं वृत्तवान्वरं च ॥४५॥
ततो मयोक्तोऽभूत् नारद त्वं, मायां हि मे वेत्स्यति संनिभः ।
ततो निमग्नोऽभूत् नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला ॥४६॥
तां यौवनाद्यामय चारुधर्मिणे, विदर्भराजस्तनयाय वं ददौ ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तथा समेत, सिषेव कामानतुलान्महोदयः ॥४७॥
स्वर्गे गतेऽसौ पितरि प्रतापवाग्राज्यं क्रमापरातमवाप्य हृष्टः ।
विदर्भराट् परिपालयान्, पुत्रः सप्तोऽबन्धुभिर्द्युतोऽभूत् ॥४८॥
अयाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः, काशीश्वरेणाय समं सुयुद्धम् ।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुन्योत्रं, विदर्भराट्काशिपतिश्च युद्धे ॥४९॥

काशी माया है, उसी को मैं जानना चाहता हूँ। कनकाक्ष ! आज मुझे उसका दर्शन कराइये। तदनन्तर नृसिंह, कश्मीपति, प्रभु, विष्णु आदि नाम वाले भगवान् ने मुझसे यह वचन कहा ॥४२॥

विष्णु बोले—मेरी माया को न कोई जानता है न जानेवा। द्विज ! पहले ब्रह्मा के पुत्र भक्तिमान् देवर्षि नारद ने तुम्हारी ही तरह अपनी भक्ति से मुझे सतुष्ट किया। जब मैं वर देने के लिये गया तो उसने भी यही वर मागा। मेरे यत्न करने पर भी उसने अत्यन्त मूर्खता से तुम्हारी ही तरह हठ किया ॥४३-४५॥ तब मैंने कहा—‘नारद ! जल में डूबकर तुम मेरी माया का जानोगे।’ तदनन्तर वह नारद जल में निमग्न होने पर काशी-नरेश की सुशीला नामक बालिका वन गया ॥४६॥ उस पूर्ण युवती बन्धा को काशीपति ने चारुधर्मो नामक विदर्भपति ने पुत्र को ब्याह दिया। सुधर्मा ने उसका साथ अतुलनीय वामा का उपभोग किया ॥४७॥ पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रतापी सुधर्मा क्रमागत राज्य को प्राप्त कर तुष्ट हुआ। विदर्भ राज्य का परिपालन करते हुए सुधर्मा के अनेको पुत्र-पौत्र हुए ॥४८॥ तत्पश्चात् पृथ्वीपति सुधर्मा की काशीपति ने युद्ध हुआ। उस युद्ध में विदर्भराज तथा काशीनरेश दोनों ने सब पुत्र-पौत्र मारे गये ॥४९॥ तब सुशीला पुत्र-पौत्र सहित अपने

तत सुशीला पितर सपुत्र, ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्	।
पुराद्विनि सृत्य रणार्वाणि गता, दृष्ट्वा सुशीला कदन महान्तम्	॥५०॥
भर्तृबले तत्र पितुर्बले च, दुःखान्विता सा सुचिर विलम्ब	।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातृन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान्	॥५१॥
भर्तारमेया पितर च गृह्य, महाश्मशाने च महार्चिति सा	।
कृत्वा कृताश प्रददौ स्वयं च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव	॥५२॥
तदा सुशीला प्रविश शवेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति वृवाणा	।
तदा पुन सा मुनिर्नारदोऽभून्, स चापि वल्लि स्फटियामलाभ	॥५३॥
पूर्णं सरोऽभूदय चोत्तार, तस्याप्रतो देववरस्तु केशव	।
प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम्	॥५४॥
कस्ते तु पुत्रो यद मे महर्षे भूत च क शोचसि नष्टबुद्धि	।
वीडान्वितोऽभूदय नारदोऽसौ, ततोऽहमेन पुनरेव चाऽह	॥५५॥
इतीवृशा नारद कष्टरूपा, माया भदीया कमलासनाद्यं	।
शयया न वेत्तु समहेन्द्ररुद्रं, यच्च भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम	॥५६॥
त वाचयमाकण्य महामहर्षिरुवाच भक्तिं मम देहि विष्णो	।
प्राप्तेऽय काले स्मरणं तथैव, सदा च सदशनमीश तेऽस्तु	॥५७॥
यनाहमार्तं विचिन्ति मया हृदस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपापहन्त्रा	।
अधिष्ठित केशव नित्यमेव त्वया सहाऽऽस (हेव) कमलोद्भवेन	॥५८॥

पिता तथा पति की मृत्यु का समाचार पाकर नगर से बाहर निकल कर मुद्राक्ष मे चली गई। पति सेना तथा पितृ सेना दाला तरफ महान दुःख देखकर बह बड़ी सोझातर हुई और चिर बाग्न सन विनाश करने अपनी माता के पास गेट आई। फिर उसने महर्षिमान मजावर आई पुत्र पौत्र पति पिता सजने लिये। वता बनाकर अग्नि प्रदान किया। अब अग्नि प्रज्वलित हुआ तब मुनीन् हा पुत्र हा पुत्र बोली हुई नेत्र से अग्नि मे प्रक्षिप्त हो गई। प्रवेश करते ही वह मुनि नारद के रूप मे परिणत हो गई। अग्नि भी स्फटिक के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के रूप मे परिणत हो गया। तदनंतर देवश्रेष्ठ नेत्र नारद के सामने आकर हँसते हुए कहने लगे ॥५०॥ ५४॥ महर्षे! तुम्हारा वीर पुत्र या? रहो। मृत्युद्धि की तरफ किस मृत्यु के लिये गीत कर रहे हो? यह सुनकर नारद बहुत रुजित हुआ। तब फिर मैंने उससे कहा—नारद! मेरी माया एसी ही बध्तरूपा है। ब्रह्मा इन्द्र महेन्द्र आदि देवता भी इसे नहीं जान सकते हैं। तब तुम न से इस अचित्य माया को जानोगे ॥५५॥ ५६॥ यह बात सुनकर महामहर्षि नारद ने कहा—विष्णो! अब मुझ अपनी भक्ति दीजिये। और समय पर आपका स्मरण तथा स्तवन होते रहें ॥५७॥ अभ्युत। आज जहाँ पर मैंने बिना बनाई है वहाँ पापहरी तीर्थ हो जाय। ब्रह्मा सहित आप भी वहाँ रहा करें ॥५८॥ तब मैंने कहा—द्विज नारद! आपकी रबी हुई चिता स्वच्छत्रपूज

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (६) हि चितिस्तवास्तु ।
 स्यास्याम्यहं चान् सदैव विष्णुर्महेश्वर स्यात्स्यति चोत्तरेण ॥५९॥
 नदा विरञ्चवेदनं त्रिनेत्रं स च्छेत्यतेयं च मम (त्वय चो) प्रवाचम् ।
 तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिदं त्वदीयम् ॥६०॥
 स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम् ।
 ततस्तु तोर्येति कपालमोचनं, रयात् पुष्यध्या च भविष्यते तत् ॥६१॥
 तदा प्रभृत्यम्बुदयाह्नोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थंवर सुपुण्यम् ।
 न चैवं तस्मिन्निज सप्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्र त्वय ब्रह्मध्या ॥६२॥
 यदा न मोक्षयमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुष्य महदात्पुण्यम् ।
 तदा विमुक्ततेति सुरं रहस्यं, तोर्यं स्तुत पुण्यदम्यपाह्वयम् ॥६३॥
 कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्टं शुचिरप्रमादी ॥६४॥
 यदा तु मा चिन्तयते स शुद्धः, प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादात् ।
 भूत्वा तस्मिन्नुद्रपिशाचसन्नो योयन्तरे दुःखमुपाश्रनुतेऽसौ ॥६५॥
 विमुक्ततापापो बहुवर्षपूर्वस्तपस्वितापास्याति विप्रगोहे ॥६६॥
 शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽस्तकाले, द्रवो हित तारकमस्य कीर्तयेत् ॥६७॥
 इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्यं नारदः, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगोहम् ।
 स चापि विप्रस्त्रिदिव चचारः, गन्धर्वराजेन समर्च्यमान ॥६८॥
 एतस्मिन्नेव ननु बोधनाय माया मदीया नहि क्षम्यते सा ॥६९॥

तीर्थं हो जायगी। मैं यहाँ सदा वास करूँगा। बाद में शंकर भी रहेंगे। जब शंकर ब्रह्मा के मुख को काटेंगे तब शोषणी को निकालने के लिये वे इस तीर्थ में आयेंगे। शंकर जब इसमें स्नान करेंगे तब कपाल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। तब से यह तीर्थ कपालमोचन नाम ॥ पुष्यध्या पर प्रसिद्ध होगा ॥५९६१॥ तब से लेकर द्वादश इस पवित्र तीर्थ का नाम नहीं छोड़ेंगे। द्विज ! इस उग्र क्षेत्र में ब्रह्माहत्या भी नहीं रह पाएगी (अर्थात् इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्माहत्या का पाप नष्ट हो जायगा।) जब द्वादश इस परम पवित्र तीर्थ की न छूँगे तब देवता लोग विमुक्त नाम रख कर इस पुण्यदायक तथा श्रविनाशी तीर्थ की स्तुति करेंगे। जो दमपुत्र महान् पाप करके भी पवित्रता तथा सावधानतापूर्वक इसमें प्रवेश कर भेरा ध्यान करेगा वह भेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६२६३॥ सावधानतापूर्वक इसमें प्रवेश कर भेरा ध्यान करेगा वह भेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६२६३॥ जो भयंकर पिशाच है या किसी योनि में क्लेश पाता है वह भी इसमें स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के घर में जन्म लेगा ॥६५॥ वह पवित्र तथा सखी होना। अतःकाल में शंकर उस तारक भक्त सुना देंगे। द्विजवर्य ! तारक से इतना कहकर मैं अपना घर क्षारसमुद्र चला गया ॥६६॥ वह ब्राह्मण भी गन्धर्वराज ने सम्मानित होते हुए स्वर्ग में विचरण करने लगा। इतना मैंने तुम्हें बोल कराने के लिये कह दिया। भेरी माया को नहीं जान सकते हो ॥६७॥ यदि तुम जानन ही चाहते हो तो जल में प्रवेश करो जिससे जान पाओगे।' इस प्रकार

ज्ञातु भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एव विशस्वाप्सु च वेत्ति येन ।
 एष द्विजातिर्हंरिणा प्रबोधितो, भाव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये ॥६८॥
 कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेशमन्यभवदद्विज स ।
 रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाव ॥६९॥
 चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
 पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चैवाभिमता बभूव ॥७०॥
 पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव, कन्या च पश्चादबधिरा तयाऽया ।
 पतिदरिद्रस्त्वय साऽपि मुग्धा, नदीगता^१ रोषिति तत्र नित्यम् ॥७१॥
 गता कदाचित्कलश गृहीत्वा, साऽतर्जल स्नातुमय प्रविष्टा ।
 यावदद्विजोऽस्तौ पुनरेव तावज्जात त्रियायोगरत सुशील ॥७२॥
 तस्या स भर्ताऽय चिरगतेति, द्रष्टु जगामाय नदीं सुपुण्याम् ।
 ददश कुम्भ न च ता तटस्था, सतोऽस्तितु स्वात्प्ररोद नादयन ॥७३॥
 ततोऽन्ययुग्म बधिरा च कन्या, दुस्त्वान्विताऽस्तौ समुपाजगाम ।
 ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा, दुस्त्वान्विता वै द्रुवुर्भूशार्ता ॥७४॥
 तत स पप्रच्छ नदीतटस्थान्द्विजा-भवदभिर्पयि योपिवेका ।
 दृष्टा तु तोमार्थमुपाव्रवन्ती आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५॥
 नदीं न भूयस्तु समुत्तार, एतावदेवेह समीहित म ।

भगवान् द्वारा समझाया जाने पर भी वह ब्राह्मण भावीवश कोकामुख नामक तीर्थ के जल में डूब गया ॥६८॥
 तात ! तब वह द्विज चाण्डाल के घर में कया होकर उत्पन्न हुआ । वह कया रूपवती शील गुण सम्पन्ना तथा
 युवती हुई ॥६९॥ सुबाहु नामक एक कुल्ल चाण्डाल-पुत्र से उसका विवाह हुआ । पति उसके मन के अनुरूप
 नहीं हुआ पर वह पति की इच्छानुकूल हुई ॥७०॥ उसके दो अर्ध पुत्र हुए और एक बहरी कया हुई । पति दरिद्र
 था । और वह मूर्खों प्रतिदिन नदीतट पर जाकर रोती थी ॥७१॥ किसी समय घडा लेकर वह भीतर जल में स्नान
 करने के लिये प्रविष्ट हुई । प्रवेश करते ही वह योग त्रिया निरत सुशील ब्राह्मण बने गई । उसका पति बहुत देरी
 हुई यह सोच कर पवित्र नदीतट पर देखने को गया । उसने तट पर घड को देखा पर पत्नी को नहीं देखा । तब
 वह जोर से रोने लगा । पश्चात् जघ पुत्र तथा बहरी कया उसके पास आई । वे सब रोते हुए पिता की देखकर
 अत्यन्त शोकविह्वल होकर रोने लगे ॥७२७४॥ तब चाण्डालपुत्र ने सर्पपस्थ ब्राह्मणों से पूछा—जल नग्ने
 के लिए आई हुई एक स्त्री को आपने देखा हो तो बतलाय । द्विजो ने कहा—एक स्त्री इस नदी में प्रविष्ट हुई

तद्वचो धीरतरं निशम्य, हरोद शोकाद्युपरिप्लुताः	॥७६॥
तं वं रुदन्तं ससृतं सकयं, दृष्ट्वाऽहमार्तं सुतरां बभूव	।
आर्तिश्च मेऽभूदयं सम्प्रतिश्च, चाण्डालयोषाऽहमिति क्षितोऽश	॥७७॥
ततोऽग्नयं तं नृपते मतङ्ग, किमयं मार्तेन हि रुद्यते त्वया	।
तस्या न त्राभो भविताऽतिमोऽर्थोदान्दितनेह वृथा हि किं ते	॥७८॥
स मामुवाचाऽऽत्मजयुग्ममन्त्र, कन्या चैका बधिरेयं सर्वव	।
कयं द्विजाते अधुनाऽऽत्मेतमाश्वासयिष्येऽयं योषयिष्ये	॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतश्च सार्धं, पूतृभ्य पूतृभ्य च रोदिति स्म	।
यया यया रोदिति स श्वपाकस्तया तया' मे ह्यभवत्कृताऽपि	॥८०॥
ततोऽहमार्तं तु निवार्यं तं वं, स्ववशावृत्ता तमथाऽऽचक्षते	।
ततः स दुःखात्सह पुनरकं सविशेषं कोकामुलमार्तरूपं	॥८१॥
प्रविष्टमाने सलिले मतङ्गस्तीक्ष्णप्रभावाच्च विमुक्तपाप	।
विमानमावृष्टाऽशिशुप्रकाशः, ययौ विष तातं ममोपपश्यत	॥८२॥
तस्मिं प्रविष्टे सलिले मृते च, भर्मातिरासोदतिमोऽहं कर्त्री	।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्यं कोकाजले प्रविष्टस्त्रिविधं गतश्च	॥८३॥

पर फिर निवली महा । वस इतना ही हम जानत हैं । ब्राह्मणी या यवन मुनिकर सुबाहु रान लया । उसकी आँखें गोकायु से परिप्लुत हो गई । वया-मुन सहित उसे राते हुए देखकर मैं भी दुखी हो गया । राजन ! मुझ दुख हुआ और यह स्मरण भी हुआ कि मैं ही इस चाण्डाल की स्त्री हूँ ॥७६-७७॥ पुनः पात ! तब मैं चाण्डाल म कहा—क्यों दुख से रो रहे हो ? वह नहीं मिलेगा । अब रात अत्यन्त मुखर है । तब उसने मुझसे कहा—विप्र ! मेरे दो पुत्र जन्म हैं तथा एक कन्या बहरी है । उन्हें मैं किस आशयान दूँ ? कैसे उनका पालन करूँ ? इतना कहकर वह पुत्रों के साथ सिसक मिसक कर राने उठा । जैसे-जैसे वह चाण्डाल रातों या बैसे बैसे मुझ उस पर दया आती थी ॥७८-८०॥ तब मैंने उसे रोक् कर अपने वश का वसात सुना दिया । पदचात उसने पुत्रों समेत काजामुल साथ में प्रवेश किया । जल में प्रवेश करते ही चाण्डाल तीक्ष्ण के प्रभाव से पापमुक्त हो गया । तब वह चन्द्रमुख प्रकाशमान विमान पर चढ़कर मेरे देखते ही स्वर्ग चला गया ॥८१-८२॥ उसके जल में प्रवेश करने पर तथा मर जाने पर मुझ अत्यन्त माहकांरज दुःख हुआ । नपवय ! तब मैं भी काजामुल में प्रवेश कर स्वर्ग का चला गया ॥८३॥ पुन मेरी उत्पत्ति वैश्वकुल में हुई । वहाँ मैं परम दुखी था । पर तीक्ष्णराज की

भूयोऽभवं वैश्यकुले व्यथातो, 'जातिस्मरस्तोयंवरप्रसादात्	।
ततोऽतिनिविण्णमना गतोऽहं, कोकामुखे' संयतवाक्यचित्त-	॥८४॥
यत समास्थाय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारोह	।
तस्माच्छ्रुतस्त्वद्भुवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात्	॥८५॥
सोऽहं समाराध्य 'मुरारिदेव, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुमेच्छ-	।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमप्रतीर्यम्'	।
विष्णु समाराध्य बराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजर्षभोऽसौ	॥८६॥
इत्थं स कामदमन' सहपुत्रपौत्र', कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये	।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, यतो दिवं सूर्यसर्गविमानः	॥८७॥
एव भयोक्ता परमेश्वरस्य, भाया सुराणामपि दुर्वचिन्त्या	।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेयया जगन्मोहमुपति विप्रा-	॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णुधर्मनिकीर्तने मायाप्रादुर्भावनिरूपणं नामकोन-
विंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥

कृपा से मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण था। तब मैं अत्यन्त सिद्ध मन से बोरामुख तीर्थ में गया। वहाँ वास्तव्य
रूपा चित्तसंयम करके शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँचा। वहाँ से श्रुत होने पर आपने घर में मेरा जन्म हुआ है।
सात ! हरि की कृपा से मुझे पूर्व जन्मों का स्मरण है। इसलिये शुभ-अशुभ कामनाओं का परित्याग कर मैं कोक-
मुख में विष्णु की आराधना करने लगा।' इतना कहकर पिता की प्रणाम करने राजपुत्र तीर्थराज बोरामुख की
चला गया। वहाँ बराहरूषी विष्णु की उपासना करने नरपुङ्गव राजपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ॥८४-८९॥ इस प्रकार
पुत्र-पौत्र सहित कामदमन अत्यन्त पवित्र बोरामुखतीर्थ में दोषमयी शरीर का त्याग कर सूर्यसर्ग विमानों से स्वर्ग
चला गया ॥८७॥ विप्रवृन्द ! देवताओं से भी अचिन्त्य इस परमेश्वर की भाया के बारे में मैंने बतला दिया।
यह स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। इसी से सत्तार मोह में पड़ता है ॥८८॥

श्रीब्रह्महृदपुराण ॥ विष्णु धर्म-नीति-प्रसंग में मायाप्रादुर्भाव निरूपण नामक दो सौ उन्नीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥२२९॥

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु भुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् । प्रादुर्भावाधितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा ॥१॥
भोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२॥

व्यास उवाच

भूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः । कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३॥
अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽहं त्रिदिवौकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहद्विजोत्तमाः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । देवैर्वर्षसहस्रेस्तु सद्द्वादशभिश्च्यते ॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सद्दशानि स्वरूपतः । आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम् ॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः । त्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७॥

मुनय ऊचुः

कलः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हति । धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्पस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८॥

२३० अध्याय

व्यास और मुनियों के संवाद में महाप्रलय का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे व्यास जी ! विष्णु के अवतार तथा दुर्लभ माया के बारे में आपने जो कहा, उसे हम सुन चुके । महामुनि ! अब कल्पान्त में जो महाप्रलय नामक उपसंहार होता है, उसके विषय में हम सुनना चाहते हैं ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कल्पान्त में तथा प्राकृतिक प्रलय में जैसा (जगत् का) संहार होता है, उसे आप यथार्थतः सुन लीजिए । पितरों के अहोरात्रों का जो एक वर्ष होता है वही देवताओं का एक मास हुआ करता है । द्विज-श्रेष्ठो ! जब चारों युग एक सहस्र बार बीत जाते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । त्रेता, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं । देवताओं के बारह हजार वर्षों के ये युग होते हैं । समस्त युग स्वरूपतः समान हैं । मुनिवन्द ! पहला कृतयुग है और अन्तिम कलियुग है । क्योंकि आद्य कृतयुग में ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और अन्त्य कलियुग में संहार करते हैं ॥३-७॥

मुनियों ने महा—भगवन् ! कलियुग के स्वरूप का वर्णन विस्तार से कीजिये, जिसमें चार चरण वाले भगवान् धर्म की हानि होती है ॥८॥

व्यास उवाच।

कलिस्वरूप भो विप्रा यत्पुच्छध्व ममानघा । निबोधध्व॥ सभासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९॥
 वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर कलौ नृणाम् । न सामन्त्रग्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुकी ॥१०॥
 विवाहान् कलौ धर्मान् न शिष्या गुरुसत्स्थिता । न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च बह्विश्रियाक्रम ॥११॥
 यत्र तत्र कुले जातो यलौ सर्वेश्वर कलौ । सर्वेभ्य एव वर्णभ्यो नर कन्योपजीविन ॥१२॥
 यन् सन्नेव पोतन द्विजातिर्दक्षित कलौ । येव संव च विप्रेन्द्रा प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३॥
 सवमव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विजा । दवताश्च कलौ सर्वा सव सवस्य चाऽऽश्रम ॥१४॥
 'उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सगस्तथा कलौ । धर्मो यथाभिरुचिर्तरनुष्ठानैरनुष्ठित ॥१५॥
 वित्तन भविता पुसा स्वल्पनेव' मद कलौ । स्त्रीणा रूपमवश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
 सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्र चापस्य गते । कलौ स्त्रिया भविष्यन्ति तवा केशैरलंकृता ॥१७॥
 परित्यज्यन्ति भर्तार वित्तहीन तथा स्त्रिय । भर्ता भविष्यति कलौ 'वित्तवानेव प्रीयिताम् ॥१८॥
 यो यो वदाति बहुल स स स्वामी तदा' नृणाम् । स्वामित्वहतुसबन्धो भविताऽभिजनस्तदा ॥१९॥
 गृहान्ता द्रव्यसपाता द्रव्याता च तथा मति । अर्थाश्चायोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०॥

व्यास ने कहा—निष्पाप विप्रवृद्ध । कलि का जो स्वरूप आप पूछ रहे हैं वह बहुत विस्तृत है । उसे संक्षेप में सुन लीजिए ॥९॥ बलिपुंगव मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम के आचार की ओर नहीं होगी । साम, ऋक् तथा यजुर्वेद का स्वाध्याय नहीं होगा ॥१०॥ बलि में धार्मिक विवाह नहीं होगा । शिष्यों में गुरु भक्ति नहीं होगी । धार्मिक पुत्र नहीं होंगे । अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कोई कद नहीं होगा ॥११॥ जिस किसी कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य बलवान् होने पर सब का नामक बन जाएगा । सभी वर्णों में मनुष्य रूप से जीविका उपार्जन करेगा ॥१२॥ बलि में द्विजाति जिस किसी योग से दीक्षित होगा । विप्रवर । कलि में प्रायश्चित्त का कोई ठिकाना नहीं रहेगा । बलि में जिस किसी का वचन ही शास्त्र माना जाएगा । बलि में सब देवता माने जायेंगे । सब के लिए सब आश्रम होंगे ॥१३॥ १४॥ उपवास परिश्रम तथा मन का त्याग करना पड़ेगा । धर्म का अनुष्ठान मनमाना होगा । धौढ ही धर्म में पुरुषों की अभिमान हो जायगा । स्त्रियों की केवल बालों से ही रूप का अभिमान होगा । सुवर्ण मणि रत्न वस्त्र आदि वस्त्र हो जाने पर कलि में स्त्रियाँ केवल वेगो से ही अलंकृत होंगी ॥१५॥ १६॥ धनहीन पति को स्त्रियाँ छोड़ देंगी । धनवान् व्यक्ति ही बलि में स्त्रिया का पति होगा ॥१७॥ १८॥ जो बहुत देगा वही मनुष्या का स्वामी होगा । स्वामित्व तथा वस्तुत्व केवल स्वायत्ति के लिये होगा । द्रव्य पर करने के लिये बुद्धि द्रव्य बचाने के लिये और धन केवल उपयोग करने के लिये होगा ॥१९॥ २०॥ बलि

१ग ०न हेतु० । २ग न दास्यत्यनमेगव । ३स ०भ्यो ज्येष्ठ ब्यापरोपनी । ४० । ४न ०पा यतो वि० । ५क म ०त्पेनाऽऽद्यम० । ६न ०ते । नाभिपत्तिनयो । ७न चिन्तितरपेव । ८व सदा ।

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिष्यो ललितस्पृहाः । अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः ॥२१॥
 अमर्यादोऽपि सुहृदा स्वार्थहर्तिनस्तु मानवः । पणस्यार्थाधिमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः ॥२२॥
 सदा सपौरुष्यं चेतो भावि विप्र तदा कलौ । क्षीरप्रदानसंबन्धि भाति गोप च गौरवम् ॥२३॥
 'अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुब्धयकातराः । भविष्यन्ति तदा सर्वा यगनासक्तदृष्टयः ॥२४॥
 'मूलपणकलाहारास्तापसा इव मानवाः । आत्मानं घातयिष्यन्ति तदाऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः ॥२५॥
 दुर्भिक्षमेव सततं सदा क्लेशमनोश्वराः । प्राप्स्यन्ति व्याहृतसुखं प्रमादानमानवाः कलौ ॥२६॥
 अस्नातभोजिनो माग्निदेवतातिथिपूजनम् । करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७॥
 लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बहुभ्रातृवनतपराः । बहुप्रजात्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८॥
 उभाम्यामय पाणिभ्यां शिरःकण्ड्यनं स्त्रियः । कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञां भेतस्पन्त्यनावृताः ॥२९॥
 स्वपोषणपराः क्रुद्धा बेहसंस्कारवर्जिताः । पर्यानुतभापिष्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०॥
 दुःशीला बुद्धशीलेषु कुर्वन्त्यः सततं स्पृहाम् । असदृशा भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१॥
 वेदादानं करिष्यन्ति वडवाश्च तथाऽग्रताः । गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ॥३२॥
 भवेद्युर्वनवासा वै ग्राम्याहारपरिग्रहाः । भिक्षवश्चापि 'पुत्रा हि स्नेहसंबन्धयन्त्रकाः' ॥३३॥

मैं स्त्रियाँ स्वेच्छा से विहार करने वाली तथा ललित कला की इच्छुक होंगी। पुरुष अन्याय से उपाजित धन के इच्छुक होंगे? वधूओ की प्रार्थना करने पर भी मनुष्य एक पैसे के आधे की प्राप्ति होने पर भी उनकी स्वार्थ-हर्ति करेगा ॥२१-२२॥ चित्त में सदा कठोरता विद्यमान रहेगी। दूध देने तक ही गायों का आदर होगा ॥२३॥ प्रायः अनावृष्टि का भय होगा। प्रजा मूल-मय से कातर होगी। सब आकाश की ओर दृष्टि लगाये रहेंगे। मनुष्य मूल, पत्र, फल खाकर तपस्वी की तरह रहेगे। अनावृष्टि से अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य आत्महत्या करेंगे ॥२४-२५॥ सतत अशान्त ही होगा। मनुष्य अनाथ होकर सदा क्लेश ही पाते रहेगे। कलि में मनुष्यों को प्रमाद से बाधित मुक्त मिलेगा ॥२६॥ (प्राय) विना स्नान किये ही लोग भोजन करेंगे। अग्नि, देवता तथा अतिथियों का पूजन नहीं होगा। कलि में मनुष्य पिण्डदान नहीं करेंगे ॥२७॥ मनुष्य शैमी, ह्रस्वकाय तथा आशक्त अन्न खाने का पूजन नहीं होगा। कलि में मनुष्य बहुत सन्तान वाली तथा अल्पभाग्य वाली होगी ॥२८॥ सोनो हाथों से धार की बाले होंगे। कलि में स्त्रियाँ बहुत सन्तान वाली तथा अल्पधन करेंगी। कलिवृग की स्त्रियाँ अपने पोषण में क्षुब्ध होती हुई स्त्रियाँ गुरु तथा स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करेंगी। कलिवृग की स्त्रियाँ अपने पोषण में निष्ठ, क्रुद्ध, बेहसंस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या मापण करने वाली होगी। कुललग्नायें स्वभाव से दुष्ट, निष्ठ, क्रुद्ध, बेहसंस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या मापण करने वाली होगी ॥२९-३०॥ व्रतशून्य ब्राह्मणवृद्ध वेद तथा शालसा से युक्त तथा पुरुषों के प्रति असत् आचरण करने वाली होगी ॥३१-३२॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य नहीं पढ़ावेगे। गृहस्थ लोग हवन नहीं करेंगे तथा उचित दान भी नहीं देंगे ॥३३॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य भोजन तथा भोग-सामग्री ग्रहण करेंगे। सन्यासियों को पुत्र आदि से स्नेह रहेगा। राजा अरक्षक तथा कर के

१३ ०जा। न सदा पी०। २४ भावि। ३० मया प्राय। ४० ख ०लकन्दक०। ५० ख ०न पात०। ६० ०न्ति अमसाञ्चापि दु०। ७० तदा। ८० प्रमोदा मान०। ९० ०लो केविप्र च प्रेयोद०। १०० ०पि। वनवासिनो भविष्यन्ति त्रा०। ११० मित्रा। १२० ०न्यपाणय १ अ०।

अरक्षितारो हतारिः शुल्कव्याजेन पायिवाः । हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४॥
 यो योऽश्वरथनागादयः स राजा भविष्यति । यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५॥
 वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत् । शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारकर्मोपजीविनः ॥३६॥
 भक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालङ्घनोऽधमाः । पाषण्डसंभ्रयां द्यूतिमार्थमिष्यन्त्यसंस्कृताः ॥३७॥
 दुर्भिक्षकरपोडाभिरतोवापद्रुता जनाः । गोघृमान्नयवाग्नादान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८॥
 वेदमार्गे प्रलोने च पाषण्डादयः सतो जने । अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥
 अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु च तपः । नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०॥
 भवित्रो योषितां स्तिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी । नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥
 पलिनोद्गमइव भविता तदा द्वावशवार्षिकः । न जीविष्यति च कश्चिदकलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२॥
 अल्पप्रज्ञां व्यालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ । यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३॥
 यदा यदा हि पाषण्डवृत्तिरन्योल्लसते । तदा तदा कलैर्बद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥
 यदा यदा सतां हानिवेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलैर्बद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५॥
 प्रारम्भाद्वावसीदन्ति यदा धर्मकृतां मृणाम् । तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलैर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६॥
 यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः । इज्यते पुरुषैर्मनैस्तदा ज्ञेयं कलैर्वलम् ॥४७॥

यहाने मनुष्यों के घन अपहरण करने वाले होंगे । जिसके पास घोड़े-हाथी होंगे, वह राजा माना जायगा । जो अबल होगा, वही मृत्यु (परिचर्या करनेवाला) होगा ॥३३-३५॥ वैश्य अपने कर्म खेती और व्यापार को छोड़कर शिल्प आदि, शूद्रों का कर्म करेंगे । अधम शूद्र मिश्रावृत्ति तथा मन्यास धारण करेंगे । वे असंस्कृत होते हुए पाषण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३६-३७॥ मनुष्य दुर्भिक्ष, कर तथा अनेक पीडाओं से दुःखी होंगे । मनुष्य दुःखी होकर उन देशों में जाएँगे, जहाँ गेहूँ, यव आदि अन्न होंगे । वेदमार्ग के लुप्त हो जाने पर और लोगों में घूर्तता के आ जाने पर अधर्म की वृद्धि होगी और मनुष्य अल्पायु होंगे ॥३८-३९॥ लोप शास्त्रविहित मार्ग को छोड़कर घोर तप करने लगेंगे तब राजा के दोष से बालमृत्यु होने लगेगी । पुरुषों के नीचे, आठ तथा दश वर्ष के होने पर तथा स्त्रियों के पाँच, छ तथा सात वर्ष की होने पर ही सत्त्वानोत्पत्ति होने लगेगी । बारह वर्षों में ही बुढ़ापा आ जायगा । कल में कोई बीस वर्ष तथा जीवित नहीं रहेगा ॥४०-४२॥ मनुष्य अल्पज्ञ, धर्म चिह्न धारण करने वाले तथा दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे । अल्पकाल में ही वे नष्ट हो जायेंगे ॥४३॥ जब-जब पाषण्डवृत्ति का प्रचार हो तब-तब विद्वान् लोग कलि की वृद्धि का अनुमान करें ॥४४॥ जब-जब वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले सत्पुरुषों की हानि हो तब-तब विद्वान् लोग कलि वृद्धि का अनुमान करें ॥४५॥ जब धर्मात्मा मनुष्यों के कार्य में विघ्न पड़े तब विद्वान् लोग कलि की प्रयत्नता का अनुमान करें ॥४६॥ यज्ञ करने वाले पुरुष जब यज्ञों के स्वामी विष्णु की पूजा न करें तब पण्डित लोग कलि की प्रवृत्ता का अनुमान करें ॥४७॥ जब वेदों में विरति तथा पाषण्डी में रति

१ग प्रवृत्त्यन्ति । २क षण्डीघोषिते ज० । ३न. षण्ठाष्टवा० । ४ध षः । नातजीवति । ५स. न तु जीवति । ६क छ षः । प्रजा वृ० ।

मुनय ऊचु

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति 'सुमहाफलम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०॥

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पवलेर्जमहत्फलम् । तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१॥
 प्रकृते दशभिवर्षेऽनेताया हाथनेन सत् । द्वापरे सच्च मासेन अहोरात्रेण सत्कलौ ॥६२॥
 तपसो ब्रह्मचर्यस्य अपादेश्च फल द्विजा । प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ साध्विति भापितुम् ॥६३॥
 ध्यायन्कृते धन्यश्चेत्प्रेताया द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥६४॥
 धर्मोत्कर्षमतीवान् प्राप्नोति पुरुष कलौ । स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यह कलौ ॥६५॥
 व्रतचर्यापरंप्राप्त्या वेदा पूर्वं द्विजातिभिः । ततस्तु धर्मसंप्राप्त्यर्थं पठ्य विधिवद्धनैः ॥६६॥
 वृथा कथा वृथा भोग्यवृथा स्व च द्विजन्मनाम् । पतनायूतया भाष्य तस्तु 'सम्यतिभिः' सह ॥६७॥
 असन्त्यवरुणे दीपास्तेषा सर्वेषु वस्तुषु । भोग्यपेयादिक चैवा नेच्छाप्राप्तिकर द्विजा ॥६८॥
 पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषा कार्येषु वै ततः । लोकान्कलेशेन महता यजन्ति विनयान्विता ॥६९॥
 द्विजशुभूपणनेव पाकपक्षाधिकारवान् । निज जपति यं लोक शूद्रो धन्यतरस्ततः ॥७०॥

मुनियों ने कहा—जिस समय अल्प धर्म करने से भी महान फल होता है उसे हम विस्तार से सुनना चाहते हैं । बतलाइये ॥६०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द ! इस दृष्टि से यह कलियुग धन्य है कि इसमें थोड़ा ही कलेश को सहन करने से बड़ा भारी फल प्राप्त हो जाता है । इसमें स्त्री और शूद्र भी धन्य हो जाते हैं इससे सिवा और भी सुनो ॥६१॥ जो फल सत्ययुग में दण वर्षों में जता में एक वर्ष में और द्वापरे में एक मास में मिलता है वह कलियुग में एक अहोरात्र में मिल जाता है ॥६२॥ द्विजगण ! इसी हिसाब से कलियुग में मनुष्य तब ब्रह्मचर्य तथा जप आदि का फल प्राप्त करता है । ॥६३॥ इतयुग में भगवान् के स्थान से जता में यज्ञों से और द्वापरे में उपासना से जो फल प्राप्त होता है वह फल कलियुग में केवल मगवलीतन से मिल जाता है ॥६४॥ धर्मशौरी ! कलियुग में मनुष्य अल्प आध्यात्म से ही महान धर्म प्राप्त कर लेता है । इसलिये मैं कलियुग से स्तुष्ट हूँ । ब्राह्मण लोग पहले धन धारण कर वेदों का स्वाध्याय करते हैं । तब गाय से प्राप्त धन से विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥६५॥ दूधित वचा दूधित भोग्य तथा दूधित धन ब्राह्मणा ने पतन के लिये होता है । ब्राह्मणों की सखी होना चाहिये । समस्त वस्तुओं की विपरीत प्रचार में ग्रहण करने से उन्हें दोष लगता है । भोग्य वेध आदि पदार्थ उन्हें दृष्टा का अनुसार प्राप्त नहीं होते हैं (अर्थात् राज-धान में उन्हें समय बरतना पड़ता है) । आसन्न कार्यों में उन्हें परत-परा का अनुभव होता है । वे विनयी होकर महान कलेश से बच करते हैं । (किन्तु) पातक्य का अधिकारी मूढ़ केवल द्विजाति की सेवा करने से ही अपने लोक की जीत सेता है । अतएव अथ द्विजातियों की अपेक्षा वह शूद्र अधिक धन्य है ॥६७॥ मुनिप्रह्लाद ! मद्य और अम या म जिह पाप लगने की जागा नहीं की जाती है और न कोई

१' स ० महत्फलः । २' स कालः । ३' स कलः । ४' स मासयान् । ५' स वपने । ६' स पविमि । ६' स ० । ७' स ० । यजन्ति ये द्विजा लोः । ८' स ० द्विजा द्विः ।

भक्ष्यामक्ष्येषु' नाशा (त्रा) स्तिथेया पापेषु वायतः । नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितोरितम् ॥७१॥
 स्वधर्मस्थाविरोधेन नरलंभ्यं धनं सदा । प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥७२॥
 तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः । तथा सद्भिन्नियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ॥७३॥
 एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः । निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४॥
 योपिच्छद्भूषणाद्भूतः कर्मणा मनसा गिरा । एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोच्यं यतो द्विजाः ॥७५॥
 मातृक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा । तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति शोषितम् ॥७६॥
 एतद्दः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः । तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि वः स्फुटम् ॥७७॥
 अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वैकलौ । नररात्मगुणान्मोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८॥
 शूद्रैश्च द्विजशुभ्रयात्स्परं मुनिसत्तमाः । तथा स्त्रीभिरनयासात्पतिशुभ्रयैव हि ॥७९॥
 ततश्चित्तयमप्येतन्मम धन्यतम भूतम् । धर्मसराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥८०॥
 तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः । धन्याधर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः ॥८१॥

नियम ही करना पड़ता है ऐसे शूद्रों को इसी कारण अच्छा कहा गया है। पुरुषों को सदा अपने धर्म के
 बावरीय से धन का उपार्जन करना, पात्रों को दान देना और विधानपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है ॥७१-
 ७५॥ फिर ग्याय से धन कमाने में तथा उसके पालन करने में महान् क्लेश होता है। द्विजधेष्ठो। उस धन
 का सुपयोग करना तो और भी कठिन है ॥७३॥ द्विजवर। इन कष्टों से तथा दूसरे प्रकार के कष्टों से पुरुष
 अपने लोक को तथा क्रमशः ब्रह्मलोक आदि को जीत लेता है। किन्तु मन, कथ तथा वाणी से पति की शुभ्रपा
 करने मात्र से स्त्री इस विषय की अर्थात् पुरुष के समान लोकों को प्राप्त कर लेती है, पुरुष जिन लोकों
 को महान् क्लेश से भी नहीं प्राप्त कर पाता है, उनको स्त्री पतिसेवा से ही प्राप्त कर लेती है, इसीलिये स्त्री
 को यह तीसरा साधुवाद मैंने दिया है। विप्रवृन्द। आप लोग जिस निमित्त यहाँ आये हैं, वह तो मैंने
 बतला दिया। अब पूछिये, क्या पुछना चाहते हैं? मैं स्पष्ट बतलाऊँगा ॥७४-७७॥ कलि मे अल्प प्रयास से
 ही धर्म सिद्ध हो जाता है। आरमगुण रूपी जल से अखिल पाप रूपी कीबड़ को भी डालने से मनुष्य सिद्ध हो
 जाते हैं। द्विज सेवा मे निरत शूद्र और पति-सेवा मे उत्तर स्त्री अनायास ही सिद्ध हो जाती है। इसीलिये
 स्त्री, शूद्र और द्विज तीनों इस युग म धन्य हैं—ऐसा मेरा मत है। सत्ययुग आदि मे धर्म की आराधना करने
 मे महान् क्लेश होता है, पर कलियुग मे मनुष्य अल्प तप से ही सिद्ध हो जाते हैं। इस युग म जो धर्मचरण

१ ग नास्यास्ति ये पापे येषु । २ ग तन्वात० । ३ ग ० तद्धि समवाप्नोति शत्रुलोकं ततो । ४ ग योपिताम् ।

५ क ० म् । कर्म० ।

भवदभिर्यदभिप्रेत तदेतत्कथितं मया । अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥८२॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे भविष्यकथन
नाम त्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

व्यास मुनिसवादे द्वापरयुगान्तकथनम्

मुनय ऊचुः

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विवमहे । ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे ॥१॥
प्राप्ता वयं हि तत्कालमनया धमतृणया । आब्रह्म^१ परं धर्मं^२ सुखमल्पेन कमणा ॥२॥
सत्रासोद्वेगजननं युगात् समुपस्थितम् । प्रनष्टधर्मं^३ धमज्ञं^४ निमित्तैर्बबुमहसि ॥३॥

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पाथिवा । युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा ॥४॥

करते हैं वे धर्म हैं । मुनि-ज्यों । आप लोगों का जो अभिप्राय था वह बिना श्रुत भी मैंने बतला दिया । धर्मज्ञों !
कहिये अब (मैं आप लोगों के लिये) और क्या करूँ ? ॥७८-८२॥

श्रीब्रह्मसंह्यपुराण में व्यास और मुनियों के सवाद प्रकरण में भविष्यकथन नामक
दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

२३१ अध्याय

व्यास और मुनियों के सवाद में द्वापर युग के अन्त का वर्णन

मुनियों ॥ कहा—हम लोग समीप तथा दूर के काल को नहीं जानते हैं । इसलिये द्वापर का विध्वंस
करने वाले कलियुग की इच्छा करते हैं । (इसमें) थोड़ा ही कर्मों के करने से हम बहुत धर्म तथा सुख प्राप्त
करेंगे—इसी धमतृण^१ से हम इस समय तक आ पहुँचे हैं । मय तथा उद्वेग^२ जन्मारी कलियुग उपस्थित है जिससे
धर्मों का नाश होता है । धमज्ञ^३ ! अब आप इस युग के अन्त को लक्षणों द्वारा बतलायें ॥१-३॥

व्यास ने कहा—इस युग के अन्त में अपनी रक्षा में निरत राजा लोग अरक्षक तथा बलिभाग के अप
हरण करने वाले होंगे ॥४॥ क्षत्रियेतर राजा होंगे ब्राह्मणों की जीविता शूद्रा में प्राप्त होगी । युगात्त में शूद्र

'अक्षत्रिपादश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः । शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५॥
 श्रोत्रियाः । 'काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च । एकपक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः' ॥६॥
 अशिष्टवन्तोऽयं परा नरा मद्यामिपप्रिया । मित्रभायां भविष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७॥
 राजवृत्तिस्थिताश्चोरा 'राजानश्चौरशोलिनः । भृत्या ह्यनिदिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये' ॥८॥
 घनानि श्लाघनीयानि सता वृत्तमपूजितम् । अकुत्सना च पतिते भविष्यन्ति युगक्षये ॥९॥
 प्रनष्टनासाः । 'पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः । ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसोष्यन्ति तथा स्त्रिय ॥१०॥
 अट्टशूला जनपदाः । शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदा केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥११॥
 सर्वे ब्रह्म भविष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः । शूद्राभा घादिनश्चैव 'ब्राह्मणाश्चान्यवासिनः ॥१२॥
 शुक्लवन्ताः' जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः । शूद्राः' धर्मं भविष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीवितः' ॥१३॥
 स्वापदप्रचुरत्वं च गवाः खेवं परिक्षयः । साधूना 'परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४॥
 अन्त्यामध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्यनिवासिनः । निर्होकाश्च प्रजाः' सर्वा नष्टास्तत्प्रयुगक्षये ॥१५॥
 तपोयज्ञफलानां च विभेदारो द्विजोत्तमा । ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६॥

ब्राह्मणो का आचरण करेंगे ॥५॥ कहीं कर्म त्रिया तथा हवन आदि नहीं होये । मुनिश्रेष्ठो । श्रोत्रिय तथा क्षत्र-
 जीवी (स्लेच्छ आदि) एक ही पक्ति में भोजन करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्ट, घन कमाने में व्यस्त तथा मद्य-
 मास्तेवी होंगे । युगान्त में नोच मनुष्य मित्रभावनामी होंगे ॥७॥ चोर राजाओं की वृत्ति में रहेंगे और राजा
 चोरो का आचरण करेंगे । युगक्षय होने पर मृत्युगण अनधिकृत वस्तुओं का उपभोग करेंगे । केवल घन का महत्त्व
 होगा । सज्जनों का सम्मान नहीं होगा । पतितों की नगदा नहीं होगी ॥८-९॥ पुण्य नासिका विहीन, क्रूर
 तथा कटे भेष वाले होंगे । सोलहवें वर्ष से पहले ही स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करेंगी । देशों में अन्न का विक्रय
 होगा । चौराहों पर अर्थात् यत्र तत्र वेदो का विक्रय होगा । स्त्रियाँ भय विक्रय करेंगी ॥१०-११॥ सब
 यजुर्वेदी ब्राह्मण ब्रह्मवादी होंगे । ब्राह्मण शूद्र के समान तेजीहीन तथा विवाही होंगे ॥ १२॥ चाण्डाल
 स्वच्छ दाँत वाले, माला धारी, मुण्डी तथा काषायवस्त्रधारी होंगे । शठबुद्ध से जीविका उपार्जन करने
 वाले शूद्र घम का ध्यायमान करेंगे ॥१३॥ हिंसक जन्तुओं की अधिकता तथा गायों का लय होगा ।
 युगान्त में साधुओं की निन्दा होगी ॥१४॥ अन्तिम वर्ण वाले (शूद्र) मध्य वर्ण (क्षत्रिय आदि)
 ही जायेंगे और मध्य वर्ण वाले अन्तिम वर्ण के ही जायेंगे । युगक्षय में सधरत प्रजा निर्लज्ज तथा
 विनाशशील होगी ॥१५॥ ब्राह्मण लोग तपस्या तथा यज्ञों का फल विक्रय करेंगे । ऋतुर्वै विपरीत होंगे ॥१६॥

१ख कृतपापाश्च । २ख ऽण्डस्पृहाश्च । ग ऽण्डस्पृष्टाश्च । ३ख ऽमा । शदा साधुदोहप० । ४क
 च हरिष्यन्ति । ५ क ऽरूपिण । म० । ६क कली युगे । ७ग ऽष्टयेतना पुंसो म० । ८क
 ऽशुल्लिङ्गो म० । ९ख ऽणाश्चैत्यवा० । १०ख ऽनलदीक्षाञ्जितोप्याश्च । ११क ऽन्तादिनासा च म० ।
 १२क ऽद्यधर्मोप० । १३ग विनिवृत्तिश्च ।

तथा द्विहायना 'दम्भा कलौ लाङ्गलधारिणः' । चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७॥
 सर्वे शूरकुले जाताः क्षमानाया भवन्ति हि । यथा निम्ना प्रजा सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८॥
 पितृवेद्यानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुता । न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१९॥
 ऊपरा बहुला भूमिः पन्नानस्तस्करावृता । सर्वे वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०॥
 पितृदायान्यदत्तानि विभजन्ति तथा सुताः । हरणे यत्नयन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिनः ॥२१॥
 सौकुमार्यं तथा रूपे रत्ने चोपक्षयः गते । भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यः केशरलकृता ॥२२॥
 निर्धायस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति । युगान्ते समनुप्राप्ते मान्या भार्यासिमा रति ॥२३॥
 कुशिलानार्यभूयिष्ठा वृषारूपसमन्विता । पुरुषात्प बहुस्त्रीक तदयुगान्तस्य लक्षणम् ॥२४॥
 बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् । राजचौराग्निवण्डादिकीर्णः क्षयमुपैष्यति ॥२५॥
 अफलानि च सस्यानि तरुणा बृद्धशोलिनः । अशोला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६॥
 वर्षासु परया वाता नीचा शर्करवर्षिणः । सदिग्ध परलोकद्वयः भविष्यति युगक्षये ॥२७॥
 बंश्या इव च राजन्या धनधान्योपजोविनः । युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवा ॥२८॥
 अप्रवृत्ता प्रपश्यन्ति समया क्षपयास्तथा । ऋण सविनयभ्रष्टा युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९॥
 भविष्यत्यफलो हयं क्रोपश्च सफलो नृणाम् । अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये ॥३०॥

कालि मे दो वष ॥ बछड हल मे जोते जायगे । युगांत मे मेघ विचित्र ढग से बरसेगा । धीर के कुटु मे उत्पन्न पुष्य समायाचक होंगे । युगक्षय मे सारी प्रजायें बड़ी अधम होगी । पुत्र पिता को जो कुछ दैंगे उसे दान समझेंगे और युगांत मे मनुष्य धर्माचरण नहीं करेंगे ॥१७-१९॥ अधिकतर भूमि ऊसर होगी । माघ धीरो से आवृत होंगे । सब मनुष्य ऋण्युक्ति करेंगे ॥२०॥ पुत्र पिता के बिना दिये हुए धन का बँटवारा करेंगे । उसे हरण करने मे यत्नशील होंगे हुए भी लोभ आदि के कारण वे परस्पर विरोधी बने रहेंगे । सुबुधारा, रूप तथा दान के लक्ष्य हो जाने पर स्त्रियाँ केशो से ही अलकृत होगी ॥२१-२२॥ शक्तिविहीन गृहस्थ को स्त्रियो मे अनुदास होगा । युगांत होने पर स्त्री के समान दूसरी रति नहीं होगी (अपल लोग स्त्री प्रसन्न बड़कर कुछ नहीं मानेंगे) । लक्ष्मी दुःशील अनायश्राय तथा व्यर्थ के रूप मे व्यक्त होगी । पुरुषो भी सदा कम और स्त्रियो की अधिक होगी । वही युगांत का लक्षण है । भागने वाले बहुत होंगे । लोग परस्पर दान आदान नहीं करेंगे । राजा, धीर, अग्नि दण्ड आदि मे लोभ लक्ष्य होगा । सत्य फलहीन होगा । युवक बृद्धब्रह्मचर्य के होंगे । दुःशील लोग सुखी होंगे ॥२३-२६॥ वर्षाऋतु मे तीक्ष्ण वायु बहेगी और बालकान्धन या क्वड की वृष्टि होगी । युगक्षय मे परलोक सदेहास्पद हो जायगा ॥२७॥ वैश्यो की तरह क्षत्रिय भी धन धान्य से जीविका उपाजन करेंगे । युगांत मे वन्धुता किसी से नहीं होगी ॥२८॥ नियम-क्षपय का पालन कोई नहीं करेगा । ऋण बहुत अविनयपूवक मिलेगा ॥२९॥ मनुष्यो का हृष अफल होगा और क्रोष सफल होगा । युग न अवसान न दूष के लिए बरखायी भी

१क वत्सा । २ग ०लवपका । चि० । ३स ग ०र्वे चौर० । ४स ता स्वलेनाया म० । ५व हि । जना यथानारयुता म० । ६स ग भविष्यन्ति । ७स ग ०रथाय भजिष्यति लो० । ८स ग ०धिता । सी० । ९क ०शाना तीक्ष्णयात्वाय० । १०स नीरा । ११ग प्रविष्यति ।

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति । अप्रमाण करिष्यन्ति नरा पण्डितमानिन ॥३१॥
शास्त्रोक्तस्याप्रयक्तारो भविष्यन्ति न सशय । सर्वे 'सर्वे विजानाति' यद्भानुपसेष्य धं ॥३२॥
न कश्चिदकथितानि युगान्ते समुपस्थिते । नक्षत्राणि विद्योयानि न कर्मस्था द्विजातय ॥३३॥
चोरप्रायाश्च' राजानो युगान्ते समुपस्थिते । कुण्डीवृषा नैकृतिका सुरापा ब्रह्मवादिन ॥३४॥
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमा । याजयिष्यन्त्ययाज्यास्तु 'तथाऽभ्यस्य भक्षिण ॥३५॥
ब्राह्मणा' धनसूचनां युगान्ते समुपस्थिते । भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६॥
एकशब्दास्तथा नार्यो गवेषुकपिनद्धका (?) । नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो वश ॥३७॥
सप्यारागो विदग्धाङ्गो' भविष्यति युगक्षये । प्रेषयन्ति पितृन्पुत्रा वधू श्वभू स्वकर्मसु ॥३८॥
युगेष्वेव' निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा । 'अवृत्ताऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नय ॥३९॥
भित्ता धलिमदत्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा स्वयम् । यञ्चयित्वा पतोन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽप्यत ॥४०॥
न अधाधिताभ्राप्यरूपाधोद्यताभ्राप्यसूयकान् । कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१॥

मुनय ऊचुः

एष विलम्बिते धर्मे मानुषा करपोडिता । कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिण ॥४२॥

बीषी जायेंगी । अशास्त्रविहित यज्ञ होगा । अपने को पण्डित मानने वाले व्यक्ति बिन प्रमाण के सब कुछ
करेंगे ॥३०-३१॥ शास्त्रीय वचनो के बचना नहीं मिलेंगे इसमें शाय वी बात नहीं है । बिना विद्वानो की
सेवा रिये ही सब अपने को सज्ज समझेंगे । कोई भी अपने को अविद्वान नहीं मानेगा । नक्षत्र आदि का शात । कोई
न दगा । द्विजानिगन कमठ नहीं होंगे । युगात उपस्थित होने पर राजा की व-की व चोर ही होंगे । द्विजप्रष्टो ।
युगात में शारज पूर कर्म करने वाले तथा मद्यपायी लोग ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध यग करेंगे । वे अनपि-
कारिया को यज्ञ करायेंगे तथा अश्वमेध यग करेंगे ॥३२-३५॥ युगावसान में धन की लूणा से पीडित ब्राह्मण
'मा शब्द का उच्चारण करेंगे (अर्थात् अनभिज्ञानरिये समन करायेंगे) पर पढ़ा कोई नहीं (अर्थात् ब्राह्मण लोग
मूर्ख होंगे) । स्त्रियाँ एक गल बाली तथा लूण पाय रखने वाली होंगी । नरात्र विवर्ण मालूम पड़ेंगे । दगा दियें
विपरीत दीरेंगे । सध्या समय का रम विचित्र सा दीखेगा । पुत्र पिता का तथा बहू साग का अपने नाम के लिये
भेजेंगी । इस प्रकार युगावसान में स्त्री-पुरुष रहा करेंगे । द्विजगण बिना अग्नि में अहुतियाँ डाल ही मोत्रन करेंगे ।
पुरुष स्वयम् बिना निशा तथा मून-बलि दिय ही रायेंगे । साय पतिया का टण्डर स्त्रियाँ अयत्र चली जायेंगी ।
युग क्षय-का म रोगी कुम्प उपद्रवी तथा निदरा का कोई प्रतीकार करने वाला नहीं होगा ॥३६-४१॥

मुनियो ने कहा—इस प्रकार धर्म का नाश होन पर कर का भार स दबे हुए मनुष्य किस देश में
निवास करेंगे ? उनका आहार विहार कैसा होगा ? क्या काम करेंगे ? क्या पाटन ? उनकी लबाई-चोलाई

१४ ० व न जा० । २४ ० नत्र प्रसे० । ३५ ० रत्रिया० । ४५ ० तया-म० । ५५ ० ना ऋण० ।
६५ ० ता-गृह । ७५ ० नप्यव । ८५ ० ग ० हुनाया० । ९५ ० वृत्ती० ।

किं कर्माणः किमोहन्तः किं प्रमाणाः किमायुषः । कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति' कृतं युगम् ॥४३॥

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा । शूलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्यसमायुषः ॥४४॥
आयुर्हान्यावलग्नानिर्वलग्नान्या विवर्णता । वैवर्ण्याद्ब्याधिसपीडा निर्वेदो ब्याधिपीडनात् ॥४५॥
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशोभता । एवं गत्वा परा काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृत युगम् ॥४६॥
उद्देशतो' धर्मशोलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः । 'किं धर्मशोलाः' केचित्सु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिताः । अप्रमाणं' करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे' जनाः ॥४८॥
नास्तिव्यपपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः । भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९॥
तदात्ममात्रभ्रष्टेया शास्त्रज्ञानयहिष्कृताः । दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः ॥५०॥
तथा' विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः । शुभान्तमाचरिष्यन्ति दानशोलपरायणाः ॥५१॥
सर्वभक्ताः स्वयंगुप्ता निर्घृणा निरपन्नपाः । भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२॥
कषायोपप्लवे काले 'ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने । सिद्धिमन्येन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३॥
विप्राणां शाश्वतौ वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः । 'संभविष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य' लक्षणम् ॥५४॥

का कितन प्रमाण होगा उनकी आयु कितनी होगी ? कितने समय के बाद पुन वे किस सीमा तक पहुँचकर सत्ययुग में प्रवेश करेंगे ? ॥४२-४३॥

व्यास ने कहा—धर्म का ह्रास होने पर प्रजा गुणविहीन होगी और दुर्बल्यसन के कारण उसरी आगु अल होगी ॥४४॥ आयु की हानि होने से बल की हानि होगी । बलहानि से नीचता होगी और नीचता से ब्याधियाँ होगी । ब्याधिया से अत्यन्त वेद और उससे आत्मबोध होगा । आत्म-जागृति के बाद धर्मशीलता होगी । इस प्रकार पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुँचकर प्रजा सत्ययुग में पहुँचेगी ॥४५-४६॥ कोई मनुष्य कार्यवच धर्मात्मा बनेगा, कोई न धार्मिक न अपार्थक्य अर्थात् मध्य कोटि में रहेगा, कोई शुद्ध धर्म को अपनायेगा; कोई धर्म के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करेगा । प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने जायेंगे । कोई तो प्रमाण को बिल्कुल ही नहीं मानेगा ॥४७-४८॥ कोई महानास्तिक होगा तो कोई धर्मों का सहारण होगा । द्विजगण ! मूर्ख मनुष्य भी अपने को पण्डित समझेंगे ॥४९॥ वे वर्तमान समय में होने वाले पदार्थों में थड़ा रतने वाले और शास्त्रज्ञान से शून्य हो जायेंगे । मनुष्य ज्ञानशून्य तथा धर्मी होंगे । इस प्रकार धर्म के छिन्न-भिन्न हो जाने पर श्रेष्ठ व्यक्तियों से पुरस्कृत लोग दान के स्वभाव में परायण होकर धूम धर्मों का समाचरण करेंगे । बलिभुग में मनुष्य सर्वभक्षी, चोर, घृणा करने वाले तथा निर्लज्ज होंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५०-५२॥ बलि के उपद्रवकाल में मनुष्यों की ज्ञाननिष्ठा नष्ट हो जायेगी । पर धर्मों की सिद्धि अल्पकाल की ज्ञाननिष्ठा में ही हो जायेगी । ब्राह्मणों की वृत्ति नीच वर्ण के लागू करेंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५३-५४॥ बलिभुग

१ सु ०परमन्ति । २ क उद्देशिनो । ३ कि धर्म० । ४ व ०चित्तव । स ०चित्तोदू० ५ व ०ग धरि० । ६ स ०परा प्रजा । ना० । ७ व ०चातिले गते य० । ८ स ०नविप्रा० । ९ ग ०ना । निशिलेन धरीप्य० । १० व ०न्ति तत्त० । ११ स ०भुवना निष्ठा कले स्मृता । म० ।

महापुङ्गव महावयं महावातं महातपः। भविष्यति युगे क्षीणे तत्कपायस्य लक्षणम् ॥५५॥
 विप्ररूपेण यक्षासि राजानः कणवेदिनः। पृथिवीमुपमोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६॥
 नि स्वाध्यायवपट्काराः कुनेतारोऽभिमानिनः। ऋग्वेदा ग्रहारूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७॥
 'मूर्खाश्चायं परा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः'। व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च शाश्वतात् ॥५८॥
 हर्तारः पररत्नानां परदारप्रथमकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९॥
 तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः। अभाविनो भविष्यन्ति मनुष्यो बहुवृषिणः ॥६०॥
 बलौ युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये। न्यायोपेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१॥
 सत्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः। भोक्ष्यभोज्यहाराश्चैव करण्डाना च हारिणः ॥६२॥
 चोराश्चोरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति। चौरैश्चोरस्ये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥६३॥
 नि.सारेक्षुभिते काले निद्रिये संध्यवस्थिते। नरा वनं ध्रियिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४॥
 यत्कर्मण्युपरते रक्षांसि द्वापदानि च। कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५॥
 क्षेमं सुभिसमारोग्यं सामग्यं चैव वन्धुषु। उद्देशेपु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगस्ये ॥६६॥

के अवसान में महापुङ्गव होया, अत्यन्त वृष्टि होगी, वायु बहुत जोर से बहेगी और धूप अत्यन्त तीक्ष्ण होगी।
 यही बलि का लक्षण समझिए ॥५५॥ युगान्त उपस्थित होने पर यक्षराज ब्राह्मण का रूप धारण कर और राजा
 लोग कणवेदी होकर (अर्थात् केवल मुनी हुई बातों पर चलने वाले) पृथिवी का उपमोक्ष करेंगे ॥५६॥ वे स्वाध्याय
 तथा वपट्कार से रहित, अभिमानि, पुद्गल पर लोभा को ले जाने वाले, सर्वभक्षी, निध्याव्रती, मूर्ख, धनलोभुप,
 लोभी, क्षुद्र, तुच्छ साधनो में युक्त, लोकव्यवहार को बिगाड़ने वाले, धर्मछष्ट, दूसरे के रत्नों के अपहर्ता,
 परस्त्री-प्राप्ति, कामी, दुरात्मा, छली तथा दुःसाहसी होंगे। उनके आधिपत्य हो जाने पर घूर्त मनुष्य अनेक
 रूप बनाकर मुनि कहलायेंगे ॥५७-६०॥ कलियुग में जो प्रधान पुरुष उत्पन्न होंगे, उन सबकी मनुष्य क्या के
 योग से (अर्थात् क्या रचकर) पूजा किया करेंगे ॥६१॥ बलि में मनुष्य सत्य-हर्ता, तेल हर्ता, भक्ष्य-भोज्य-हर्ता
 करण्ड (हाली) के अपहर्ता, चोरा के चोर तथा हत्यारा के हत्यारे होंगे। चोरो के द्वारा चोरो का सब कर दिये
 जाने पर सत्ययुग में जाकर मनुष्या का कल्याण होगा ॥६२-६३॥ सारहीन, विद्यावान्य तथा उद्देशकारी बाल
 उपस्थित होने पर मनुष्य कर के भार से पीडित होकर वन का आश्रय लेंगे ॥६४॥ यज्ञ के नष्ट हो जाने पर
 राक्षस, हिसक पशु कीड़े, चूहे तथा साँप मनुष्या का नाश साधेंगे ॥६५॥ युग समाप्त हो जाने पर फिर से कल्याण,
 सुमित्र, आरोग्य तथा सब ल साधन मनुष्या का प्राप्त होंगे ॥६६॥ कलियुग में मनुष्य स्वयं रक्षक, स्वयं चोर

१. कर्मवादि०। २. कुनरा लोभमा०। ३. स मूर्ता स्वाय०। ४. स ०रिप्रहा। व्य०। ५. ०रपायना। ६. अभिमानिनो। ७. वृते। ८. स लोभे। ९. स नरये०।

स्वयंपालाः स्वयं चौराः प्लवसंभारसंभृताः। मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक्॥६७॥
 स्वदेशेभ्यः परिगृष्टा नि.साराः सह बन्धुभिः। नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात्॥६८॥
 ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रदृता भयात्। कोशिकीं संतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः॥६९॥
 'अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गान् च काश्मीरान् 'कोशलान्। ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः 'संश्रयिष्यन्ति मानवाः॥७०॥
 कृत्स्नं च हिमवत्पार्वतं कूलं च लवणाम्भसः। विविध जीर्णपत्रं च वल्कलान्यजिनानि च॥७१॥
 स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगस्ये। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा भ्लेच्छगर्णः सह॥७२॥
 नैव शून्या नवारण्या भविष्यति बसुंधरा। अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति 'नराधिपाः॥७३॥
 मृगमेतस्यैविहङ्गैश्च स्वापवैः सपंकीटकैः। मधुशाकफलैर्मूलैर्वंतपिष्यन्ति मानवाः॥७४॥
 शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यदा मुनिजनस्तथा॥७५॥
 'बीजानामकृतस्नेहा' आहताः 'काष्ठशङ्कुभिः। अजंडक' खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः॥७६॥
 नबीलोतासि रीतस्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः। पक्ववातस्यवहारेण विपणन्तः परस्परम्॥७७॥
 'तनूवर्ह्यथाजातैः 'समलान्तरसंभृतैः। बह्वधृत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविवाजिताः॥७८॥
 एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधमंजीविनः। हीना' हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति॥७९॥

तथा उपश्रवो तं कातर होकर देश-देश में पृथक्-पृथक् अपना-अपना सय बनायेंगे। युग के अन्त्य होने पर भाई-
 बन्धुओं सहित समस्त मनुष्य सारहीन तथा स्वदेश-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब सब लोग भय के मारे अपने बाल-
 बच्चों को लेकर कौशिकी नदी के पार करके भाग जायेंगे॥६७-६९॥ शुषा और भय से पीडित मनुष्य अग,
 बग, कलिंग, कश्मीर तथा कोशल देश में जाकर वास करेंगे। हिमालय की तराई में तथा क्षारसमुद्र के तटप्रान्त
 में मनुष्य अनेक प्रकार की जीर्ण पत्तियाँ लाकर वृक्ष के छाल तथा चर्म पहन कर किसी तरह दिन काटेगे। वनों
 में भ्लेच्छों के साथ मनुष्य निवास करेंगे॥७०-७२॥ पृथ्वी पर नये-नये वन होंगे। यह लोगो से शून्य नहीं होगी।
 रक्षक राजा लोग ही मक्षक हो जायेंगे॥७३॥ मृग, मत्स्य, पक्षी, हिंसक जीव, सर्प तथा कीड़ों के साथ मनुष्य
 मधु, शाक, फल तथा वन्य लाकर रहेंगे। सड़े-गले पत्र तथा फल खाकर बत्तल तथा चर्म पहन कर मनुष्य मुनि
 की तरह रहेंगे। मनुष्य बीज नहीं बोयेंगे, बल्कि बकरे, भैंसे, गधे तथा ऊँट पालेंगे। वे जल के लिये बाँध बाँधकर
 नदियों की धाराओं को रोकेंगे, वाजारों में बने-बनाये भोजन का खय विक्रय करेंगे। उनके शरीर बड़े-बड़े रोओं
 से तथा मल से दाँछाधित रहेंगे। वे बहुत सन्तान वाले, सन्तानहीन तथा कुलमर्यादा से शून्य होंगे॥७४-७८॥
 उस समय ऐसे अधमजीवी मनुष्य होंगे। दीन प्रजा तुच्छ धर्म को अनायेंगी। मनुष्यों की आयु की अवधि

१४ चौरा युगस०। २४ समुता। ३४ संश्रयिष्य०। ४४ अश्च तथा मगधमेवला०। ५४ मेर-
 लान्। ६४ ऋषीक ते मि०। ७४ ऋषीसत्त्वा मि०। ८४ निक्षुगणै। ९४ न चार०। १४ नरा वृता। म०।
 १०४ बीजना०। ११४ कृतस्नेहा हन्तु वा०। १२४ कृष्टजन्तुभिः। १३४ अजाण्डजान्तर०।
 १४४ पायातममलान्तर०। १५४ समूलोत्तर०। १६४ नानाधीन।

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिशद्भविष्यति । दुर्बला विषयग्लाना 'जराशोकरं भिप्लुताः ॥८०॥
 भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः । आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषयादु (यह) परं स्यते ॥८१॥
 शुभ्रपयो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः । सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति' व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२॥
 भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशोलिनः । करिष्यन्ति च' संस्कारं' स्वयं' च क्षयपीडिताः ॥८३॥
 एवं शुभ्रपयो दाने 'सत्ये' 'प्राण्यभिरक्षणे' । ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मं श्रेयो 'निपत्स्यते ॥८४॥
 तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् । स्यादु किञ्चित् विज्ञाय धर्मं एव च वृश्यते ॥८५॥
 यथा हानिकर्म प्राप्तास्तथा ऋद्धिकर्म गताः । प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति' कृत युगम् ॥८६॥
 साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते । एक 'एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशो ॥८७॥
 छन्नदध तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा । मुवतश्च तमसा सोम एवं कृतयुगं च तत् ॥८८॥
 अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति त विदुः । 'अविबिक्तमविज्ञातं' 'दायाद्यमिह' धामते ॥८९॥
 इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्वविरोधकः । गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिगुणैः' शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०॥
 आशीस्तु पुरुषं वृद्ध्वा देवकालानुवर्तिनो । युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता' ॥९१॥

तीस तक होगी । वे दुर्बल, विषयग्लान तथा बुढ़ापा और शोक से आज्ञान्त होंगे ॥७९-८०॥ रोगों से उनकी इन्द्रियां क्षीण हो जायेंगी । आयु-क्षय होने के कारण वे विषय से विरत हो जायेंगे । तथा साधुओं की शुभ्रपया एवं दर्शन में निरत होंगे । व्यवहार का क्षय होने पर उनमें सत्यता का उदय होगा । वानों की अप्राप्ति हैं उनमें एव दर्शन में निरत होंगे । व्यवहार का क्षय होने पर उनमें सत्यता का उदय होगा । वानों की अप्राप्ति हैं उनमें धर्म-जागरूकता होगी । तब वे अमाव से पीडित होकर स्वयं अपना संस्कार करेंगे ॥८१-८३॥ इस प्रकार सेवा, दान, सत्य तथा जीवन्मत्ता में उनकी रुचि होगी । तब चारों चरण लेकर धर्म के प्रादुर्भूत होने पर उनका कल्याण होगा ॥८४॥ उनके गुणों में भी परिवर्तन होगा । तब वे अनुमान करेंगे कि धर्म ही ठीक है । पश्चात् जैसे उनकी हानि हुई थी वैसे फिर समृद्धि होगी । धर्म को ग्रहण कर लेने पर वे सत्ययुग का दर्शन करते हैं ॥८५-८६॥ सत्ययुग में मनुष्यों की साधु-वृत्ति होती है और कलियुग में हानि होती है । यही एक काल है, जो चन्द्रमा की तरह मन्दवर्ण है ॥८७॥ जैसे चन्द्रमा अंधकार से आच्छन्न होता है उसी तरह कलियुग भी पापों से आवृत होता है । अन्धकार से मुक्त होने पर चन्द्रमा की तरह कलियुग भी पापों से मुक्त होकर सुशोभित होता है । अर्थवाद परब्रह्म है और वेदार्थ भी उसी को जानना चाहिये । वह अपने से अपृथक् तथा अविशेष सृष्टि का कारण करता है । इष्टवाद तप का नाम है और तप को इसी ने सर्वधित किया है । गुणों से कर्मों की निष्पत्ति होती है और गुण कर्मों से शुद्ध होते हैं ॥८८-९०॥ युग-युग में समय-समय पर मनुष्यों को देखकर स्वर्ण लोण देश-काल के अनुसार उन्हें आशीर्वाद देते हैं । प्रति युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा देवताओं की प्रतिजिया होती है और

१व ० राक्षसेश्वर ० । २स पर्यन्ति । ३ग न । ४ग सकोच । ५क स्वपक्षत्रय ० । ६ स्वपक्षत्र ० ।
 ६क सत्यप्रा ० । ७क ० रक्षिण । ८ग ० ने । ९चतुष्पदे प्र ० । १०क विपत्स्यति । १०ल
 ० पत्स्यन्ति । ११क स ० व चतुष्कालो ही ० । १२व स ० विमुक्त ० । १३ग व्यादमि ० । १४ल ० मित्रघा ०
 १५ग ० गुणैस्तप्येन क ० । १६व ० हृतम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां' च प्रतिश्रिया। आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तयैवाऽऽयुर्गुणे गुणे ॥९२॥
 तथा युगानां परिवर्तनानि,^१ चिरप्रवृत्तानि विधित्वभावात्
 क्षणं न सतिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाम्नां परिवर्तमानः ॥९३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्याससंवादे भविष्यकथनं नाम
 एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे प्राकृतप्रतिसंवरकथनम्

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां' त्रिविधः प्रतिसंवरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः ॥१॥
 ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंवरः। आत्यन्तिको च मोक्षश्च प्राकृतो द्विपराधिकः ॥२॥

मुनय ऊचुः

'परार्थसंख्यां भयसंस्वभावाच्च ययोद्विषताम्। द्विगुणीकृतपञ्चमेयः प्राकृतः प्रतिसंवरः ॥३॥

कल्याणमय एवम् पवित्र आशीर्वाद दिये जाते हैं। विधिवत्तात् युगों का परिवर्तन होता रहता है। उत्पत्ति तथा प्रलय से युक्त जीवलोक क्षण भर भी एक रूप में नहीं रहता है ॥९१-९३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में भविष्यकथन नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

अध्याय २३२

प्राकृत प्रलय का वर्णन

व्यास ने कहा—समस्त प्राणिमों का प्रलय तीन प्रकार का माना गया है। एक नैमित्तिक दूसरा प्राकृतिक और तीसरा आत्यन्तिक। (बल ने अन्त में होने वाला) ब्राह्मप्रलय नैमित्तिक कहलाता है और मोक्ष को आत्यन्तिक कहते हैं। दो परार्थ सख्या तीन जाने पर होने वाला प्रलय प्राकृतिक कहलाता है ॥१-२॥

मुनियों ने कहा—मगबन्! परार्थ सख्या हमें बतलाइये, जिसने द्विगुण कर देने से प्राकृत प्रलय का बोध होता है ॥३॥

ततो यान्यन्पसाराणि तानि सत्त्वान्यनेकशः । क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः । पार्थिवान्यतिपीडनात् ॥१५॥
 ततः स भगवान्कृष्णो रुद्ररूपो तयाऽव्ययः । क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥१६॥
 ततः स भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु । स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तमाः ॥१७॥
 पीत्वाऽभ्रांसि समस्तानि प्राणिभूतगतानि वै । शेषं नयति भो विप्राः समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८॥
 समुद्रान्तरितः शैलाऽशैलप्रख्यगणानि च । पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥
 'सतस्तस्याप्यभावेन' सोयाहारोपबृंहितः । सहस्ररश्मयः सप्त जायते तत्र भास्कराः ॥२०॥
 अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त विवाकराः । बहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विजाः ॥२१॥
 बहुपमानं तु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः । साद्विनगार्णवाभोग्नि स्नेहमभिजायते ॥२२॥
 ततो निर्दग्धबुक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजाः । भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥
 ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतसर्गहरो हरः । शेषाह्निश्वाससतापात्पातालानि बहत्यधः ॥२४॥
 पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान् । भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम् ॥२५॥
 भुवो लोकं ततः सर्वं स्वर्गलोकं च दाहयन् । ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥
 अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा । ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणबलास्ततः ॥२७॥
 ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः । हृतावकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा ॥२८॥

रहती है ॥१४॥ उससे जितने अल्प सार घाले जीव हैं, नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठी । पार्थिवी के जितने पदार्थ हैं, उनका नाश हो जाता है ॥१५॥ तब रुद्र रूपी अविनाशी भगवान् विष्णु समस्त प्रजा को विनष्ट करने के लिये यत्न करते हैं ॥१६॥ तब भगवान् विष्णु सूर्य की सातों रश्मियों में स्थित होकर अशेष जल को सोख लेते हैं ॥१७॥ प्राणियों में व्याप्त समस्त जल का पीकर भगवान् सम्पूर्ण पृथ्वी को सुखा देते हैं। समुद्र, नदियों, पर्वतों, झरनों तथा पातालों में जो जल रहता है, उस सम्पूर्ण जल को सोख लेते हैं। सर्वत्र जल के अभाव हो जाने पर जल पीकर परिपुष्ट हुए सूर्य सात हो जाते हैं। तब ऊपर-नीचे सर्वत्र सूर्य तपाने लगते हैं, पाताल महित तीनों लोक का जला डालते हैं ॥१८-२१॥ पर्वत और समुद्र भी निर्दग्ध हो जाते हैं। बुध, जल आदि वस्तुओं के जल जाने पर पृथ्वी की आकृति बहुरूप की पीठ के समान हो जाती है ॥२२-२३॥ तब प्राणियों की सृष्टि के सर्वांग रुद्र कालाग्नि का रूप धारण करते हैं। शेषभाग के श्वास की उष्णता में पाताल जल आता है। समस्त पातालों का जलाकर वह भवकर लपटे सम्पूर्ण पृथ्वीतल को जला डालती है ॥ २४-२५॥ तब वह दाहण ज्वाला समूह भूलोक और स्वर्गलोक का निदग्ध कर देता है। तीनों लोक आग (माद) की तरह मादूम पड़ते हैं। दोनों लोक (भूलोक और स्वर्गलोक) में निवासी प्राणी ज्वालाओं से सतप्त होकर महर्लोक का जात हैं ॥२६-२८॥ वहाँ से भी अत्यन्त सतप्त होकर जललोक को जाते हैं। तब रुद्ररूपी विष्णु सम्पूर्ण जगत् को जला कर

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम् । गच्छन्ति जनलोकं ते' दशावृत्या परंपिणः ॥२९॥
 ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं स्वरूपो 'जनादेनः । मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 ततो गजकुलप्रस्थास्तडिद्वन्तो निनादिनः । उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः ॥३१॥
 केचिदञ्जनसंकाशाः केचित्कुमुदसंनिभाः । घूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२॥
 केचिद्वरिद्रावर्णाभाः । लासारसनिभास्तथा । केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभास्तथा ॥३३॥
 शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा । इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनःशिलनिभास्तथा ॥३४॥
 पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः । केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसंनिभाः ॥३५॥
 'कूटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः । महाकाया महारावा 'धूरयन्ति नभस्तलम् ॥३६॥
 वर्पन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम् । शम्भयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यघान्तरिक्षस्तृतम् ॥३७॥
 नष्टे चाग्नी शतं तेषां वर्षाणामधिक घनाः । प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्पन्ति मुनिसत्तमाः ॥३८॥
 धाराभिरक्षमात्राभिः प्लावयित्वाऽखिला भुवम् । भुवो लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिव द्विजाः ॥३९॥
 अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्यावरजङ्गमे । वर्पन्ति ते 'महामेघा वर्षाणामधिक शतम् ॥४०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिस्वादे महारत्नक्षणकथन नाम
 द्वाविंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

अपने मुख के निःश्वास से मेघों का उत्पन्न करते हैं ॥२९-३०॥ फिर हाथी के समान नाद करने वाले भयंकर प्रलयकालीन मेघ अनेक विधुलताजा से युक्त होकर आकाश में उठते हैं ॥३१॥ उनमें से किसी मेघ का वण अञ्जन के समान होता है, किसी का कुमुद के समान होता है, किसी का घूम वर्ण होता है, किसी का पीत वण होता है, किसी का वर्ण हल्दी के समान होता है, किसी का लाह के समान होता है किसी का वैदूर्य मणि के समान होता है, किसी का इन्द्रनील मणि के समान होता है किसी का शख के समान होता है, किसी का कुन्द पुष्प के समान होता है, किसी का जाती पुष्प के समान होता है, किसी का इन्द्रगोप के समान होता है, किसी का मन शिला के समान होता है और किसी का पद्मपत्र के समान होता है । किसी मेघ की आकृति महानगर के समान होती है, किसी की पर्वत के समान होती है, किसी की त्रीडामूह के समान होती है, और किसी की पृथ्वी के समान होती है । वे महाशरीर वाले तथा महाबल करने वाले मेघ आकाश को सर देते हैं ॥३२-३६॥ अत्यन्त भोषण वृष्टि करते हैं, जिससे वैशाल्य में किला हुआ अग्नि शान्त हो जाता है ॥३७॥ मुनिश्रेष्ठा अग्नि के नष्ट हो जाने पर भी सौ वर्ष तक मेष सम्पूर्ण जगत् का प्लावित करने हुए बरसते रहते हैं ॥३८॥ वृद्धाश के समान बूंदों से अखिल पृथ्वी को प्लावित करके भूलाक तथा ऊष्वलाक को प्लावित कर देते हैं ॥३९॥ सम्पूर्ण लोक के तिमिरावृत हो जाने पर और स्यावर-जगम के नष्ट हो जाने पर सौ वर्षों से अधिक काल तक महामेघ बरसते रहते हैं ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषिया के संवाद-प्रकरण में महारत्नक्षण कथन नामक दो सौ अक्षरीसर्वा अध्याय समाप्त ॥२३२॥

१क. ते देशा भूत्या । २ग. ०न । अथनि ० । ३स. कृपाणा ० । ४स. धूरयन्तो । ५घ. ०हामागा व० ।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्राकृतलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

सप्तपिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमा । एकाग्रं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं तत् ॥१॥
 अयं निश्वासाजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदास्तत् । नाशं नयति भो विप्रा वर्णानामधिकं शतम् ॥२॥ तत्
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन । अनादिरादिविद्यस्य पीत्वा वायुमशेषतः ॥३॥
 एकाग्रत्वे ततस्तस्मिन् शेषशय्यास्थितः प्रभु । ब्रह्मरूपधरं शोते भगवानादिकृद्धरि ॥४॥
 जनलोकगतं सिद्धं सनकाद्यैरभिष्टुतम् । ब्रह्मलोकगतं ईशं चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ॥५॥
 आत्ममायामयीं दिव्या योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्त्यन्परमेश्वर ॥६॥
 एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्रा प्रतिसत्वरः । निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः ॥७॥
 यदा जायते सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् । निमोलयेतवखिलं मायाशय्याशयेऽच्युते ॥८॥
 पदमयोनेदिनं यस्तु चतुर्युगसहस्रवत् । एकाग्रवक्रुते लोके तावती रात्रिर्हस्यते ॥९॥
 तत् प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यपज । ब्रह्मस्वरूपपृथिव्यणुर्व्यासं कथितं पुरा ॥१०॥

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

ध्यान ने कहा—द्विजवर । सप्तपिथा के स्थान से लेकर अखिल जगत् एकाग्र अर्थात् जलमय हो जाता है ॥१॥ तदनन्तर विष्णु का श्वासवायु मयो को नष्ट कर देता है और सी वर्षों से अधिक काल तक बहता रहता है ॥२॥ तब सबजीवमय अचिन्त्य प्राणियों के उत्पादक अनादि तथा विद्य के आदि भगवान् अग्रेष वायु को पीकर उसी एकाग्र में गैपशय्या पर स्थित होते हैं ॥३॥ जब ब्रह्मरूपपात्री आदिकर्ता भगवान् हरि रात्रि में रहते हैं तब जनलोक निवासी सनक आदि सिद्धवृन्द उनकी स्तुति करते हैं । ब्रह्मलोकवासी मुमुक्षु जन भी उनकी ध्यान करते हैं । परमेश्वर भगवान् आत्ममायामयी दिव्य योगनिद्रा में स्थित होकर वासुदेव रूप अपने आत्मा की चिन्ता करता है । विप्रधन्वा । इसी का नाम नैमित्तिक लय है जिसमें ब्रह्मरूपधारी हरि ही निमित्त हैं । जब अखिलात्मा भगवान् जागते हैं तब ससार में त्रिपातिलता जाती है । माया रूपी गय्या पर जब वही जनादन सो जाते हैं तब जगत् भी निद्रिय हो जाता है । एक सप्ताह चतुर्युग का बराबर जो ब्रह्मा का दिन होता है उसी दिन का अनुसार उनकी रात्र होती है जिसमें अखिल लोक एकाग्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है ॥४॥ ९॥ तब रात्रि का अन्त में प्रबुद्ध ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं । यह तो पहले ही कहा गया है कि ब्रह्मा का रूप में विष्णु ही होते हैं ॥१०॥ द्विप्रगण ।

इत्येष' कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः । नैमित्तिको च' कथितः शृणुष्व' प्राकृतं परम् ॥११॥
 अवष्टुष्यन्त्यादिभिः सम्यक्कृते शय्यालये' द्विजाः । समस्तोष्येण लोकेषु पातालैष्वखिलेषु च ॥१२॥
 महादेविकारस्य विशेषात्त्र' संसये' । कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते' प्रतिसंचरे ॥१३॥
 आपो प्रसन्ति वं पूर्वं 'भूमेर्गन्धादिकं गुणम् । 'जातगन्धा ततो भूमिः प्रलयाय'" प्रकल्पते ॥१४॥
 प्रमृष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका । आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५॥
 सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति" विचरन्ति च । सलिलेर्नद्योमिमता लोकालोकः समन्ततः ॥१६॥
 अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा'" पीयते तु सः । नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मानसक्षयात् ॥१७॥
 ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा'" ज्योतिष्द्वयं प्राप्नुवन्ति वं । अग्न्यवस्थे सुसलिले तेजसा सर्वतो वृत्ते ॥१८॥
 स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आद्यत्ते तज्जलं तदा । सर्वमापूर्यतो चाभि(रयत्यग्नि)स्तदा जगविद शनैः ॥१९॥
 अग्निभिः संतते तस्मिंस्तिर्यग्ध्वंमवस्तथा । ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरिति प्रभाकरम् ॥२०॥
 प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मके । प्रमृष्टे ह्यतन्मात्रे कृतहृषो विभावसु ॥२१॥
 प्रशान्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोध्यते महान् । निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि ॥२२॥
 तत' प्रलयमासाद्य 'वायुसंभवमात्मनः । 'ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च दोषधीति विशो वद ॥२३॥

इमी का नाम अन्तरप्रलय, कल्पसंहार तथा नैमित्तिक लय है। अब आप लोग प्राकृत रूप के बारे में सुनिये ॥११॥ विप्रबुद्ध । अवष्टि तथा अग्नि आदि से समुद्र, समस्त लोक तथा अखिल पाताल के मध्य ही जाने ॥१२॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत रूप होने लगता है पर महत् आदि विकारों का भी क्षय हो जाता है ॥१३॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत रूप होने लगता है जिसमें जल भूमि के गन्ध आदि गुणों को विनष्ट कर देता है ॥१४॥ तब गन्धशून्य पृथिवी प्रलय मचाने लगती है। गन्ध के मध्य ही जाने पर पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है। जल बहुत वेग से महाशब्द करते हुए बहने लगता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। तीनों लोकों में तरंगयुक्त जल ही जल दीखता है। जल के गुण को भी अग्नि पी जाता है। रस के मध्य ही जाने पर अत्यन्त तप्त जल भी विनष्ट हो जाता है ॥१५॥ तब अमृत रूप रस काला जल ज्योति रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब जल अग्निरूप में परिणत हो जाता है और सब ओर तेज से ढक जाता है तब वह अग्नि सब ओर फैलकर उस जल को ग्रहण कर लेता है। तब वह सम्पूर्ण जगत् धीरे धीरे भर जाता है। तिरछे, ऊपर और नीचे ज्वालाओं के फैल जाने पर वायु अग्नि व परम मास्वर रूप की भी निगल जाता है ॥१६-२०॥ जब अग्नि वायुरूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका रूप मध्य ही जाता है तब प्रकाश वृद्ध जाता है और 'ह्रस्व' करने बड़े जल से वायु बहने लगता है। अग्नि के वायु रूप में परिणत हो जाने पर समस्त लोक प्रकाशहीन हो जाते हैं। तब वायु प्रलय मचाते हुए दशो दिशाओं को ऊपर, नीचे तथा तिरछे बड़े ओर से कोंपाने लगता है ॥२१-२३॥ वायु के भी स्पर्श गुण का आकाश प्रस

१क ०श्वेव क० । २ख ०त्तिकवच क० । ३ग य । ४ग सस्कानले । ५ग ०तस्य स० । ६ख सनुले । ७क ०प्रकृते प्र० । ८ख ०न्यात्मक रसम् । ९ग शान्तगन्धा । १०क ग लयत्वाय क० । ११ग ०न्ति च रमन्ति । १२क. ०तिपि लीय० । १३ग ०पो हृत० । १४ग वायु स० । १५क य ०र्ध्वं वायव्य तिर्य० ।

वायोऽस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं प्रसते ततः । प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥
 अरूपमरसस्पर्शमन्धवदमूर्तिमत् । सर्वमापूरयन्नेऽ समहन्तप्रकाशते ॥२५॥
 'परिमण्डलतस्तत्तु आकाशं शब्दलक्षणम् । शब्दमात्रं तयाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥
 ततः शब्दगुण तस्य भूतादिप्रसते पुनः । भूतेन्द्रियेषु युगपदभूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७॥
 अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः । भूतादि प्रसते चापि 'महाबुद्धिर्विचक्षणा ॥२८॥
 उर्वी महाश्च जगत् प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा । 'एवं सप्तमहाबुद्धिः (?) त्रमात्प्रकृतयस्तथा ॥२९॥
 प्रत्याहारैस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् । येनेदमावृतं सर्वमण्डमस्तु प्रलीयते ॥३०॥
 सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोकं सपर्यंतम् । उदकावरणं ह्यत्र ज्योतिषा पीयते तु तत् ॥३१॥
 ज्योतिर्वायौ लयं याति धात्याकाशे समोरणः । आकाशं चैव भूतादिप्रसते तं तथा महान् ॥३२॥
 महान्तमेभिः सहितं प्रकृतिप्रसते द्विजाः । 'गुणसाम्यमनुद्विक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः ॥३३॥
 प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम् । इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३४॥
 व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते । एकः बुद्धोऽक्षरो' नित्यः सर्वव्यापी तथा पुनः ॥३५॥
 सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः । नश्यन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः ॥३६॥
 सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे । स' ब्रह्म' सत्त्वं धाम परमात्मा' परेश्वरः ॥३७॥

लेता है। तब वायु आकाशरूप में परिणत हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्ति से रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र प्रकाशित होता है। आकाशमण्डल में केवल शब्द ही होता है। शब्दमान करने वाला वह आकाश सबको आवृत कर स्थित होता है। तब आकाश में शब्द गुण को भी अट्कार प्रस लेता है ॥२४-२६॥ यह अट्कार सभी प्राणियों में अभिमान रूप से रहता है और यह तामस है। इस अट्कार को भी विचक्षण महाबुद्धि खा डालती है। महाबुद्धि, उर्वी, महान्, जगत् का आम्पन्तरायाग, बाह्य प्राप तथा प्राप्त और प्रहनियाँ ये सात महाबुद्धि हैं। प्रलय के समय वे परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाती हैं, जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल में प्रलीन हो जाता है (??)। जल के आधार समुद्र पर्यन्त सातों द्वीप तथा पर्वत सहित सातों लोक को आन पों जाता है ॥२७-३१॥ अग्नि का लय वायु में और वायु का आकाश में हो जाता है। आकाश को भूतादि और उनकी महान् प्रस लेता है ॥३२॥ भूतादि सहित महान् को प्रकृति बस लेती है। द्विज्येन्दो । गुणा की साम्यावस्था—न कम न अधिक—को प्रकृति कहते हैं। इसी में नाम हेतु, प्रधान, कारण तथा पर है। यह प्रकृति व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली है ॥३३-३४॥ विप्रबुद्ध । इसका व्यक्त रूप अव्यक्त रूप में लीन हो जाता है। जो एक, बुद्ध, अक्षर, नित्य, तमा सर्वव्यापी है, वह भी सर्वभूतस्वरूप परमात्मा का अंग है। आत्मा के पर रूप में, जो ज्ञेय तथा सत्तामान है नाम, जाति आदि की समस्त कल्पनायें लीन हो जाती हैं ॥३५-३६॥ वहीं ब्रह्म, परम धाम, परमात्मा, परेश्वर तथा विष्णु है, जिसमें विलीन होकर यह ससार पुन लीनता नहीं है। जो मैं

१ग ०खल तच्छुषिरमात्रा० । २ग ०द्यान । उ । ३स ०बं मुष्टे महायुद्धे ० । ४न ०जा । स्वगुणे सा० । ५क ०म्यमुद्रि० । ६न ०शयो नि० । ७न ०ह्यज परोवात ० । ८स ०र वात ० । ९क म ०मा स ये १६० ।

स विष्णुः सवमेवेदं यतो नाऽऽवर्तते पुनः । प्रकृतिर्या मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३८॥
 पुरुषश्चाप्युभावेतो लीयेते परमात्मनि । परमात्मा च सर्वेषामाधार परमेश्वर ॥३९॥
 विष्णुनाम्ना ॥ वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते । प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कम धेदिकम् ॥४०॥
 ताम्यामुभ्याम् पुरुषयंशमूर्ति ॥ इज्यते । ऋग्यजु सामभिर्मार्गं प्रवृत्तेरिज्यते ह्यसौ ॥४१॥
 यज्ञेश्वरो यज्ञपुमापुरुषं पुरुषोत्तम । ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्ति ॥ इज्यते ॥४२॥
 निवृत्तयोर्गमार्गश्च विष्णुर्मुक्तिफलप्रद । ह्रस्वदीर्घप्लुतयत्तु किंचिद्वस्त्वभिधीयते ॥४३॥
 यच्च वाचामविषयस्तत्सर्वं विष्णुरव्यय । व्यक्तं स एवमव्यक्तं स एव पुरुषोऽव्यय ॥४४॥
 परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः । व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन् प्रकृति सा विलीयते ॥४५॥
 पुरुषश्चापि भो विप्रा यस्तदव्याकृतात्मनि । द्विपरार्धात्मकं कालं कथितो यो मया द्विजा ॥४६॥
 तदहस्तस्य विप्रेन्द्रा विष्णोरीशस्य कथ्यते । व्यक्तं तु प्रकृतौ लीने प्रकृत्या पुरुषे तथा ॥४७॥
 तत्राऽऽस्थितं निशा तस्य तत्प्रमाणा तपोधना । नैवाहस्तस्य च निशा नित्यस्य परमात्मन ॥४८॥
 उपचारात्तथाऽप्यतत्तत्स्यशस्य तु कथ्यते । इत्येव मुनिशार्दूल कथितं प्राकृतो लय ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्माह्य प्राकृतलयनिरूपण नाम

अथस्त्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३३॥

[illegible]

प्राज्ञद्वयमहापुराण म प्राकृत लय निरूपण नामक दो सौ तनीसवीं अध्याय समाप्त ॥२३३॥

१ गति । २ क न्यस्मिन् यी० । ३ प्रवृत्ति । ४ स मान्यश्रमुत्पु० । ५ क वत्त यो० ।
६ माग तु वि० । ७ क स तत स्थि० । ८ द्विजोत्तमा ।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा ज्ञात्वा तापत्रयं बुध । उत्पन्नज्ञानवैराग्यं प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥१॥
 आध्यात्मिकोऽपि द्विविधा शरीरो मानसस्तथा । शरीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते धूमता च स ॥२॥
 शिरोरोगप्रतिशयाज्वरकुलभगदरं । गुल्माशं श्वययुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३॥
 तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसजकं । भिद्यते बहेजस्तापो मानसं श्रोतुमर्ह्यम् ॥४॥
 कामबोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः । शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्याभिभवस्तथा ॥५॥
 मानसोऽपि द्विजधेष्ठास्तापो भवति नैकधा । इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्यध्यात्मिकः स्मृतः ॥६॥
 मृगयक्षिमनुष्याद्यं पिशाचोरगराक्षसं । सरोसृपाद्यं च नृणां जन्यते चाऽऽधिभौतिकं ॥७॥
 शीतोष्णवातवर्षाम्बुबद्ध्युतादिसमुदभवः । तापो द्विजवरधेष्ठा कथ्यते चाऽऽधिदैविकः ॥८॥
 गर्भजन्मजरान्तानमृत्युनारकजः तथा । बुद्ध सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमा ॥९॥
 सुकुमारतनुर्गर्भं जन्तुर्बहुमलावृते । उत्पन्नवेष्टितो भग्नपुण्ड्रिवास्त्यसहति ॥१०॥

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

व्यास ने कहा—विप्रवद । विद्वान् लोग को आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापो के जानने से ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है जिससे वे आत्यन्तिक लय का प्राप्त करते हैं ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के भी दो भेद हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक । शारीरिक ताप के भी बहुत से भेद हैं सुनिये ॥२॥ शिराभ्यधा सर्पों ज्वर मूत्र मगदर फोटा कबज्जार हाथीपाँव खाँसी नेत्ररोग अतीसार कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप के हूँ त हैं ॥३॥ अब मानस ताप के भेद सुनिये । काम वाप भय द्वेष लाभ माह विषाद वाद अमूया अपमन ईर्ष्या मात्सर्य तथा परामव—इन भेदों से मानस ताप भी अनेक प्रकार के होते हैं । द्विजधेष्ठो । इस प्रकार आध्यात्मिक ताप अनेक भेदों से युक्त है ॥४॥ ५॥ मनुष्यों को मृग पक्षी मनुष्य पिशाच तदि राक्षस तथा रक्षने वाले जीवा म जा ताप होता है उसका नाम आधिभौतिक है ॥७॥ विप्रवर । सर्पों गर्मों वायु वर्षा जल विजली आदि म जा ताप होता है उसका नाम आधिदैविक है ॥८॥ गन्ध जम्ब जरा अग्निता मृत्यु तथा नरक से जा दुःख होता है उसका नामा भेद है । अनेक प्रकार के मला से युक्त गन्ध म कामल शरीर वाला जीव उत्पन्न म वेष्टित रहता है जिसको पीठ श्रीवा तथा हृदिर्ह्या मुद्री रहती है ॥९॥ १०॥ माता जा अत्यन्त

१ ग ०को वै द्वि० । २व ०रोगम० । ३व ०रक्ष्याम० । ४क ०नुष्योपि पि० । ५रा ०न ।
 ६रा ०न । ६क ०ता मुन० । ७व ०वात्सर्य० ।

को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तते वै कथम् । किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३॥
 एवं पशुसमैर्मर्दंरजानप्रभवं महत् । अवाप्यते नरैर्दुःखं शिशनोदरपरामणैः ॥२४॥
 अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः । अज्ञानिना प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः ॥२५॥
 नरक कर्मणां लोपात्फलमहुर्महर्षयः । तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ॥२६॥
 जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान् । विचलच्छोर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः ॥२७॥
 दूरप्रनष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः । नासाविवरनिर्यातिरोमपुञ्जश्चलद्दृषुः ॥२८॥
 प्रकटीभूतसर्वास्थिरनतपृष्ठास्थिसहस्रिः । उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽपचेष्टितः ॥२९॥
 कृच्छ्रचक्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः । मन्दीभ्रवच्छ्रोत्रनेत्रमलस्लालाधिलाननः ॥३०॥
 अनायत्तः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः । तत्क्षणोऽप्यनुभूतानामस्मर्त्ताऽखिलवस्तुनाम् ॥३१॥
 सत्तुष्टुञ्चारिते वाक्ये 'समुद्भूतमहाश्रमः । श्वासकासामयायाससमुद्भूतप्रजागरः ॥३२॥
 अयोनोत्थाप्यतेऽयेन तथा संवेद्यते जरी । भृत्यात्मपुत्रदाराणामपमानपराकृतः ॥३३॥
 प्रक्षोणाखिलशौचश्च विहाराहारस्तस्पृहः । हास्य परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४॥
 अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम् । संस्मरन्धीवने दीर्घं निःश्वसित्यतितापितः ॥३५॥

चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, कौन गुणयुक्त है तथा कौन दोषयुक्त है ॥२१-२३॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा उदर की पूर्ति में निरत पशुतुल्य मूख मनुष्य अज्ञानता से उत्पन्न दुःख का भोगता है । द्विजगण ! अज्ञानियों को अज्ञानता रूप तामस भाव कार्यारम्भ-काल में हो जाता है, जिससे वे कर्मों को गही कर पाते । अहर्षियों ने कर्मों के लाल हो जाने का फल नरक बतलाया है । इसलिये अज्ञानियों का इस लोक में तथा परलोक में दुःख ही दुःख होता है ॥२४-२६॥ बुढ़ावस्था में मनुष्य के सब अण जर्जर तथा शिथिल हो जाते हैं, दाँत गगन हट जाते हैं, स्नायु तथा शिरा उग जाती है, आँखों की शक्ति कम हो जाती है, आँखा की पुतली घँस जाती है, नाक के रन्ध्र में राम-पुञ्ज दोखने लगता है, शरीर बर्षने लगता है, हृदिमय जलकने लगती हैं, पीठ की हड्डी मुग्न जाती है, जठराग्नि मग्न पड़ जाती है, माजन तथा शारीरिक चेष्टा कम हो जाती है, उठने, सोने तथा बैठने तक में भी बहुत कष्ट का अनुभव होता है, कानों तक नेत्रों की शक्ति क्षीण हो जाती है, लार टपकने से मुख दलित हो जाता है । समस्त इन्द्रियाँ तथा वे बाहर हो जाती हैं । सब वह मरणोन्मुख हो जाता है । उस समय अनुभूत वस्तुओं का भी स्मरण नहीं होता है । एक बार बोलने में भी महान् व्यायास करना पड़ता है ॥२७-३१॥ खाँसी तथा द्यास-आयु की तीब्रता से नींद खल जाती है । दूसरे ही क्षण उस बुढ़ को उठाते-बैठाते हैं । नौकर, पुत्र तथा स्त्री भी उसकी अवहेलना करती है । शरीर की दुष्टियाँ भी वह नहीं कर पाता है । विहार तथा आहार को इच्छा भी नष्ट हो जाती है । परिजनों का भी वह हास्यास्पद बन जाता है । उसके समस्त बान्धव उससे तप आ जाते हैं ॥३२-३४॥ यह युवावस्था का स्मरण करने अत्यन्त सन्ताप से लम्बी साँस लेता है जैसे कि माना वह दूसरे जन्मा की

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च । मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६॥
 श्लयप्रोवाद्ग्रहस्तोऽयं 'प्राप्तो वेपथुना नरः । मुहुर्लानिपरश्चासौ मुहुर्ननिबलान्वितः ॥३७॥
 'हृत्पथघान्तनयभार्याभूत्यगृहादिषु । एते कथं भविष्यन्तीत्यतोयममताकुलः ॥३८॥
 मर्मविद्भिर्महारोगः क्रकचैरिव दारुणैः । शरैरिवान्तकस्योर्ध्वं विष्टमनारिष्वन्यथ ॥३९॥
 परित्यक्तमानतारासिहस्तपादं मूढः क्षिपन् । संशुष्यमाणतात्वेऽच्छकण्डो घुरघुरायते ॥४०॥
 निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उद्धानश्यासपीडितः । तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तथा भुषा ॥४१॥
 बलेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति धाम्यकिकरपीडितः । ततश्च यातनादेहं बलेशेन प्रतिपद्यते ॥४२॥
 एतान्यन्यानि चोप्राणि दुःखानि मरणे नृणाम् । शृणुध्वं नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषंमृतं ॥४३॥
 धाम्यकिकरपाशादिवह्णं दण्डताडनम् । यमस्य दर्शनं चोपमुपमार्गविलोकनम् ॥४४॥
 कर्मभवालुकावह्निपद्मशस्त्रादिभोषणे । प्रत्येकं यातनायाश्च यातनादि द्विजोत्तमाः ॥४५॥
 क्रकचैः पीडयमानानां मू(मू)षायां चापि ध्याप्यताम् । कुठारैः पाटयमानानां भूमौ चापि निक्षण्यताम् ॥४६॥
 शूलैश्चारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रं प्रवेक्ष्यताम् । गुर्ध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभूज्यताम् ॥४७॥
 वधपतां तैलमध्ये च विलयतां क्षारकर्मणे । उच्चाग्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥

अपनी मियाजी वा अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ इस प्रकार मनुष्य बुद्धावस्था में दुःखों का अनुभव करके मरण के समय जिन दुःखों का अनुभव करता है, वह सुनिये ॥३६॥ उस समय उसकी बीबा, पैंर तथा हाथ शिथिल पड़ जाते हैं तथा कर्पण लगते हैं । बारम्बार ग्लानि होती है और बेतना भी होती है ॥३७॥ सोना, अन्न, पुत्र, स्त्री, नीकर तथा घर की क्या स्थिति होगी—यह सोचकर वह ममसा से व्याकुल हो जाता है ॥३८॥ आरे क समय मयकर तथा मर्मवेधी महान् रोगों से उसकी हड्डियों का बन्धन टूटने लगता है जैसे कि मानो यमदूतों के बाणों से काटा जा रहा हो ॥३९॥ आँखों की पुतली उलटने लगती है । हाथ-पैंर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । तालू, मोष्ठ और कण्ठ सूख कर घुरघुराने लगता है ॥४०॥ कण्ठप्रदेश अवरुद्ध हो जाता है । उद्धान बायुपीडा देने लगती है । गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है । भूख-प्यास सताने लगती है ॥४१॥ यमदूतों के द्वारा अत्यन्त पीडित होकर वह कष्टपूर्वक प्राण त्याग करता है । तब उसे यातना-शरीर प्राप्त होता है ॥४२॥ मृत्यु-समय में तथा अग्न्य भी तीव्र कष्ट मनुष्यों को होते हैं । अब सुनिये कि नरक में मृतात्मा की कौन कौन सी कष्ट होती है ॥४३॥ यमदूत उसे बाल म बोध देता है और लाठी से पीटता है । एक तो यमदण्डनही नभकर दूसरा यममार्ग तो और भी भयकर है ॥४४॥ तप्त वालुका, अग्नि, यन्त्र, घस्त्र आदि से यममार्ग में कष्ट दिया जाता है ॥४५॥ जीवों को यमदूत बारी से चीरते हैं, कड़ाह में भूनते हैं, कुल्हाड़ी से काटते हैं, भूमि में गाड़ते हैं शूलों पर चढ़ाते हैं, चाप के मूह में डालते हैं, गोधों से भोचकाते हैं, सतप्त तेल में डाल कर काड़ा बनाते हैं, कीचट में डुबो देते हैं, ऊपर से जाकर नीचे गिरा देते हैं, पक्षीगणयन्त्रा द्वारा फेंक देते हैं ॥४६-४८॥ विप्रबुद्ध ! पापी मनुष्य नरक में जो पापजन्य

१ख प्राप्नोति यातना तत । मु० । २ख ०यातयु० । ३क ०पणं । प्र० । ख. ०पणम् । प्र० । यण रच पातानां हि द्वि० । ५क. ०म् । यन्त्रेष्व्वा० ।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै। प्राप्यन्ते नारकविप्रास्तेषां सख्या न विद्यते ॥४९॥
 न केवलं द्विजप्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः। स्वर्गेषु पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥५०॥
 पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः। गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥५१॥
 जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने। यद्यत्प्रीतिकरं पुंसा वस्तु विप्राः प्रजायते ॥५२॥
 तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति। 'कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः ॥५३॥
 क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम्। इति ससारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ॥५४॥
 विमुक्तिपादपच्छायायाम्ते कुत्र सुखं नृणाम्। तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ॥५५॥
 गर्भजन्मजरारोगेषु स्थानेषु प्रभविव्यतः। 'निरस्तातिशयह्लादं' सुखभावंकलक्षणम् ॥५६॥
 भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽयन्तिकी मता। तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ॥५७॥
 तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमा। आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥५८॥
 शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। अर्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चैन्द्रियोद्भवम् ॥५९॥
 यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम्। मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः ॥६०॥
 तवेतच्छ्रयतामत्र 'संबन्धे' गदतो मम। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥६१॥
 शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। द्वे विद्ये च वेदितव्ये इति चाऽऽपर्वणो भूतिः ॥६२॥

दुःख पाते हैं, उन दुःखों की सख्या मही हो सकती है ॥४९॥ द्विजप्रेष्ठा! पापियों के लिये केवल नरक में ही दुःखों का बाहुल्य नहीं है। अपितु स्वर्ग में भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती है। ॥५०॥ जीव पुन गर्भ में वास करता है और पुन जन्म लेता है। वह फिर गर्भ में विलीन होता है और फिर जन्म लेकर समाप्त होता है ॥५१॥ कभी तो जन्म लेते ही मर जाता है और कभी बचपन में या युवावस्था में पञ्चत्स को प्राप्त करता है। विप्रवृन्द! मनुष्यों की जो म्रिय वस्तु होती है वही दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती है। फिर तो स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, क्षेत्र तथा धन आदि उतना अधिक सुख नहीं देते हैं जितना कि दुःख देने लगते हैं। इसलिये ससार रूपी मूर्ख के ताप से सतापित चित्त वाले मनुष्यों के लिये मोक्ष रूपी वृक्षच्छाया को छोड़ कर सुख कहाँ है? ॥५२-५४॥ इस कारण विद्वानों ने बतलाया है कि गर्भ जन्म, वृद्धता आदि स्थानों में होने वाले त्रिविध तापों को मिटाने के लिये अनिशय आह्लादजनक तथा आनन्दरूप भगवत्प्राप्ति ही एक औपय है। इसलिये ज्ञानी मानव भगवत्प्राप्ति के लिये यत्न करें ॥५५-५७॥ द्विजप्रेष्ठा! भगवत्प्राप्ति का कारण ज्ञान तथा कर्म माना गया है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का विवेकजन्य। अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान दीप के समान है ॥५८-५९॥ विप्रगण! विवेकजन्य ज्ञान सूर्य के समान है। इस सम्बन्ध में वेदार्थ का स्मरण करने मनु ने जो कहा है, उसे आप मुनिये। दो ब्रह्म जानने योग्य हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म ॥६०-६१॥ शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। अर्धवेद का भी कहना है कि दो विद्याओं को जानना चाहिये ॥६२॥ परा विद्या से ब्रह्म की प्राप्ति होती

'परमा हृषक्षरप्राप्तिश्च वेदादिमयाऽपरा । यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ॥६३॥
 अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् । वित्तं सर्वगतं नित्य भूतयोनिमकारणम् ॥६४॥
 व्याप्य व्याप्तं यतः सर्वं तद्वै पश्यन्ति सूरयः । तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६५॥
 'भृतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम् । उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् ॥६६॥
 वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाक्यो भगवानिति । ज्ञानशक्तिबलैर्वर्षवीर्यतेजास्पशेषतः ॥६७॥
 भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयं गुणादिभिः । सर्वाणि तत्र 'भूतानि निवसन्ति परमात्मनि ॥६८॥
 भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः । उवाचेदं महर्षिभ्यः पुरा पृष्टः प्रजापतिः ॥६९॥
 नामव्याख्यामनन्तरं वासुदेवस्य तत्त्वतः । भूतेषु वसते योऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत् ॥
 धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥७०॥
 'सत्सर्वभूतप्रकृतिर्गुणाश्च, 'दोषाश्च' 'सर्वांस (न) गुणो हृषतीति ।
 अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा, तेनाऽऽवृतं यद्भववान्तरालम्'
 समस्तकल्याणगुणात्मको हि, स्वशक्तिलेशादुत्भूतसर्गं ।
 इच्छामुहोताभिमतोरुदेहः, संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥७१॥

है और अपरा विद्या ऋग्वेदादि स्वरूप है । जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अजम-मरण-रहित, अनिर्देश्य, अरूप, हाथ
 पैर आदि से रहित, सर्वत्र प्राप्त, नित्य, भूतयोनि तथा अकारण है, जिससे व्याप्य वस्तु व्याप्त है, उसे ही विवेकी
 लोग देखते हैं । वही ब्रह्म तथा परम धाम है । मोक्षामिलायी व्यक्ति उसी का ध्यान करें ॥६३-६५॥ वह वेद वाक्या
 से प्रतिपादित, सूक्ष्म तथा विष्णु का परमपद है । वह पंचभूतों की उत्पत्ति, प्रलय, अपनि तथा गति को जानता
 है ॥६६॥ वह विद्या तथा अविद्या को भी जानता है । उसी का नाम भगवान् है । त्याग्य गुण आदि को छोड़कर
 समस्त भूत निवास करते हैं और भूतों में वह वासुदेव सत्त्व अखिलात्मा वास करता है । पूर्व काल में पूछे जाने
 पर ब्रह्मा ने यही रहस्य महर्षियों को बतलाया था । उन्होंने तत्त्वतः अन्तः वासुदेव के नामा की व्याख्या की थी ।
 वह वासुदेव प्राणियों में वास करता है और प्राणी उसमें वास करते हैं । वही प्रभु वासुदेव ससार का धाता और
 विधाता है ॥६७-७०॥ वह समस्त भूतों की प्रकृति है । वह त्रिगुणातीत होते हुए भी सब के गुण-दोषों को जानता
 है । वह समस्त आवरणों से परे तथा अखिलात्मा है । उसी से ससार व्याप्त है ॥७१॥ वह निखिल कल्याण
 रूप तथा गुणरूप है । वह अपनी शक्ति के लेश मात्र से भूतों की सृष्टि करता है । वह स्वेच्छा से देह धारण
 करता है तथा संपूर्ण जगत् का कल्याण करता है ॥७२॥ वह तेज, बल तथा ऐश्वर्य का महासमुद्र है । वह वीर्य,

१ग ०यादुष्कर० । २क ०तिबाहोचित । ३क ०तिच विपत्तिच भू० । ४क ०निब० ।

५व परमात्म० । ६ग कृतेविकार गुणा० । ७ख ०तिविकारान्गुणा० । ८ख ०इच स गुणेष्वती० । ९ग स
 वत्पथे ततः । १० ख यज्ञव० ।

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्वधीर्यशक्त्यादिगुणकराशिः ।

'परः पराणां सकला न यत्र, क्लेशादयः सन्ति परापरेशे'

॥७३॥

स ईश्वरो 'व्यष्टिसमष्टिरूपो'ऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।

सर्वेश्वरः 'सर्वदृक् सर्ववेत्ता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः

॥७४॥

संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।

संद्ध्यते वाऽऽप्यय गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम्

॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवाद आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यासनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेदजम् । यं विदित्वाऽप्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा । 'अबबीत्परमप्रीतो योगी' योगविदा वरः ॥२॥

शक्ति आदि गुणों की राशि है। यह परे से भी परे है। उस परात्पर को क्लेश आदि नहीं होते हैं ॥७३॥
यह ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप; अव्यक्त रूप तथा व्यक्त रूप है। वह सर्वेश्वर, सर्वद्रष्टा, सर्ववेत्ता, सर्वशक्ति-
मान्, तथा परमेश्वर है ॥७४॥ जिसके द्वारा दोषरहित, शुद्ध, पर, निर्मल तथा एकरूप परमात्मा का दर्शन
तथा प्राप्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अज्ञान भाता जाता है ॥७५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और भृगुओं के संवाद-प्रकरण में आत्यन्तिक लय
निरूपण नामक दो सी चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३४॥

अध्याय २३५

योगाभ्यास का निरूपण

मुनियों ने कहा—अब दुःखों के संयोग के मिटाने में औषधिरूप योग का वर्णन आप करें, जिसे जानकर
हम अविनाशी पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं। उनका वचन सुनकर योगवेत्ताओं में थोड़ा योगी व्यास परम
हर्ष से कहने लगे ॥१-२॥

१क. स. परावरा०। २ख. ०रावरे०। ३क. व्यस्तस०। ४क. ०मस्तरु०। ५ख. ०वर्जनप्रद्रष्टा स०।

६ख. ०प्रीतस्त्वदा योगवि०। ७न. योनं।

व्यास उवाच

योग वक्ष्यामि भो विप्रा भृशुष्य भवनाशनम् । यमम्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३॥
 श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तितः । इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण ॥४॥
 आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान् । ज्ञात्वा 'समम्यसंयोगो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रह' ॥५॥
 भुञ्जन्सक्तु यवागू च' तत्क्रमूलफल पय । यावक कणपिण्याकमाहार योगमाधनम् ॥६॥
 न मनोविकल्हे ध्याते न ध्यान्ते क्षुधिते तथा । न द्वन्द्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७॥
 तप्तशदे न जलाभ्यासे जीर्णयोष्ठे चतुष्पथे । सरोसूषे श्मशाने च न मद्यन्तेऽग्निसनिधौ ॥८॥
 न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसनिधौ । न शुष्कपणनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ॥९॥
 देशानेताननादुरथ मूढस्याद्यो युनक्ति च । प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका ॥१०॥
 धार्म्यं जडता लोप स्मृतेर्भूकत्वमन्धता । ज्वरश्च जायते 'सद्यस्तद्वदजनसम्भव ॥११॥
 तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा । धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन मत ॥१२॥
 आश्रमे विजने गृहघ्ने नि शब्दे निर्भये नगे । शून्यागारे शुचौऽरम्ये चकान्त देवतालये ॥१३॥
 रजःपा पश्चिमे 'धामे पूर्वे च सुसमाहित । पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि' युक्ताहारो जितेन्द्रिय ॥१४॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! सुनिये । मैं ससारलेशन याग वा व्रणन करूँगा जिसका अभ्यास कर यानी पुरुष परमदुर्लभ मोक्ष का प्राप्त करता है ॥३॥ पहले भक्तिपूर्वक गुरु का आराधना करके विद्वान् पुरुष यागशास्त्र इतिहास पुराण तथा वेदों का श्रवण करे ॥४॥ पश्चात् आहार योग के दोष तथा देश-काल का ज्ञान कर द्वन्द्व (सुख दुःख आदि) तथा परिग्रह (दान या सुख साधन) से रहित हाकर याग का अभ्यास करे ॥५॥ सत्तु यवागू (गन्धी) तक मूल, फल दूध यावक (जो की बनी वस्तु या साठा चावल) चावल का कण (छुरी) पिण्याक (भस्तर)—इनका आहार करे ॥६॥ भन की विकलता की अवस्था में यागभ्यास न करे। श्रात तथा क्षुधित होने पर भी यागभ्यास न करे। द्वन्द्वावस्था में यागभ्यास न करे। सर्दी गर्मी तथा वायु की तत्त्वावस्था में यागभ्यास न करे। शब्दाद्यमान स्थान में अल के समाप पुराने पाष्ठ में चारों पर भाग पर श्मशान में तथा नदी और अग्नि के सन्निध्य में यागभ्यास न करे। जन तथा म वल्मीक पर भयावह स्थान में कूप के सम प तथा शुष्क पना के ढग पर नभ। में यागभ्यास न करे ॥७॥ ९॥ इन स्थानों में जा भूततावा यागभ्यास करता है उमने विघ्नकारक वा का बतलाता है ॥१०॥ इस व्यक्ति का बहुरापन जडता स्मृतिभूयता अधापन ज्वर तथा शानशून्यता है। जाता है ॥११॥ इन्द्रिये याग व्यक्ति का सदा शरीर का रक्षा करने चाहिये। न्यायिक धर्म अथ काम और मय का साधन शरीर है ॥१२॥ एकांत आश्रम में गुप्त तथा निशब्द स्थान में भयभूय पर्वत पर शून्य नवन में पवित्र तथा रमणीय स्थान में और एकांत देवालय में रात्रि के प्रथम प्रहर में तथा अन्तिम प्रहर में अत्यन्त साधन में यागभ्यास करना चाहिए। जितेन्द्रिय तथा समुचितहाराहकर पूर्वाह्ण में तथा मध्याह्न में भा रम्य

१० योगी नि० । २४ ०६ । भैक्ष सक्तु । ३० च पत्र मू० । ४० ०८ शुद्धविज्ञानयोगिन । १० ।
 ५४ स भागे । ६० स बाह्नि ।

आसीन 'प्राडमुखो' रम्य आसने सुखनिश्चले । नातिनीचे न चोच्छिन्ने निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५॥
 'युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत । सर्वद्वन्द्वसहो घोर समकायाडघ्नमस्तक ॥१६॥
 नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पदमासने स्थित । सस्याप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७॥
 समाहृत्यैद्र्यग्राम मनसा हृदये मुनि । प्रणव दीर्घमुद्यम्य सवृतास्य ' सुनिश्चल ' ॥१८॥
 रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा । सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सवृतलोचन ॥१९॥
 हृत्पदमकोटरे स्त्रीन सर्वध्यापि निरञ्जनम । युञ्जोत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत् । क्षेत्रज्ञश्च परे योग्यस्ततो युञ्जति योगवित् ॥२१॥
 मनो धस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम् । सत्यज्य विषयास्तस्य योगसिद्धि प्रकाशिता ॥२२॥
 यदा निविष्य चित्त परे ग्रहाणि लीयते । समाधौ योगयुक्तस्य तदाभ्यस्यति पर पदम् ॥२३॥
 'अससवत यदा चित्त योगिन सर्वकर्मसु । भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमुच्छति ॥२४॥
 शुद्ध धामत्रयातीत तुर्यास्य पुरुषोत्तमम् । प्राप्य योगयलाद्योगो मुच्यते नान सशय ' ॥२५॥

निश्चल तदा न अधिक उच्च न अधिक नाभ आसने पर पूरयमुह बैठकर निस्पृह सत्यवादी एवं परिश्रम होकर योग
 भास करे ॥१५॥ योग व्यक्त को उचित मात्रा में सोना चाहिये । उसे अशोभी समस्त प्राणियों के हित में
 निरत भुल दुःखों का सहन करने वाला तथा घोर बनना चाहिये । वह शरीर चरण और मस्तक को समान स्थिति
 में रखे ॥१६॥ वह नाभि प्रदेश में योगी हाथों को रखकर शांत होकर पश्चासन लगाये । नासिका के अग्रभाग में
 दृष्टि को स्थिर कर वातसयम पूर्वक प्राणायाम करे ॥१७॥ मन से इन्द्रिय समूह का निरोध करने हृदय में प्रणव
 (आ) का ध्यान करे । उस समय वह अपना मुख बन्द कर ले और निश्चल रहे ॥१८॥ राजस वृत्ति से तामस वृत्ति का
 और सार्विक वृत्ति से राजस वृत्ति को आच्छान्ति करने को बन्द करने निमल तथा शांत हृदय कमल की कणिका में
 ल न सर्वध्यापी निरञ्जन तथा मुक्तिदाता पुरुषोत्तम का योगी सदा ध्यान करे ॥१९॥ योगवेत्ता पुरुष पहले अन्त
 करण सहित इन्द्रियों और पञ्चभूतों को दृष्टि में स्थापित करे और क्षेत्रज्ञ को परमात्मा में नियुक्त करने योगी
 भास करे । जिसका चञ्चल मन विषया का परिग्रह करने परमात्मा में लग जाता है उसकी योगसिद्धि हो जाती
 है ॥२१॥ जब योग का चित्त निविषय होकर समाधि अवस्था में ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह आनन्द परमात्मा
 को प्राप्त करता है ॥२३॥ जब योग का चित्त अखिल कर्मों में अनासक्त हो जाता है तब वह आनन्द परमात्मा
 को प्राप्त करने मुक्त हो जाता है ॥२४॥ शुद्ध त्रिगुणातीत तुरीय ब्रह्मलाने वाले तथा पुरुषोत्तम विष्णु को योगबल
 से प्राप्त करने योगी जिस देह मुक्त हो जाता है ॥२५॥ समस्त कामनाओं से निस्पृह सब का प्रिय एवम राज

१४ ० द्रमुस देव आ० । २४ ० सादवा आ० । ३४ युक्तनिद्रो । ४४ सवतास्य । ५४ ०८ । सोमपा
 योगयुक्तस्य युञ्जन्त परम पदम् । बाह्यामा सपरित्यज्य यो ऽन्तर्धानरतः सन् । अन्तः सुतोऽन्तराराम त मोक्ष
 लभत ध्रुवम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ता च त्वय वा स्थानत्रयं बुध । तुरीय पदमासाद्य न शोचति न कादशति । मनो ।
 ६४ केवलम् । ७४ स असाद्य । ८४ भगवत्पादमा० । ९४ स ०८ सुद्ध मुक्त त्रिगुणातीत सत्त्वात्म्य ।
 १०४ ०५ । बटप० ।

निस्पृह सर्वकामेभ्य सर्वत्र प्रियदर्शन । सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६॥
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित । सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र सशय ॥२७॥
न च 'पदमासनाद्योगो न नासन्ननिरोधनात् । मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८॥
एव मया मुनिष्येष्ठा योग प्रोक्तो विमुक्तितद । ससारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छीतुमिच्छत्य ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचन तस्य साधुसाध्विति चाबुवन । 'भ्यास प्रशस्य संपूज्य' पुन प्रष्टुं समुद्यता ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे योगाभ्यासनिरूपण नाम

पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

साख्ययोगनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

तव वक्त्राग्निमभूतममृतं वाङ्मयं मुने । पिबता नो द्विजधेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१॥
तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तितमम् । साख्यं च द्विपदां श्रष्ट श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

अनित्य बुद्धि रखने वाला योगी नि सदेह मुक्त होता है । इन्द्रियो की सेवा से विरल तथा सदा वैराग्य एवं योगाभ्यास में निरत योगी नि सदेह मोक्ष प्राप्त करता है । पचासन कपाना तथा नासिकाप्रमाण का निरीक्षण करना योग नहीं कहलाता है । प्रत्युत मन तथा इन्द्रियो का संयोग (एकाग्रता) ही योग कहलाता है । मुनिधेष्ठो ! इस प्रकार ससार से मोक्ष पाने का कारण तथा मुक्तिरामक योग मैंने बतला दिया । अब क्या तुमना चाहते हैं ? ॥२६ २९॥

लोमहर्षण ने कहा—भ्यास के वचन सुनकर श्रोतागणों ने साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा की और पुन उनसे प्रश्न किया ॥३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भ्यास और श्रुतियों के संवाद प्रकरण में योगाभ्यासनिरूपण नामक दो सौ पत्तिसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

साख्ययोग का निरूपण

मुनियो ने कहा—मुने ! द्विजधेष्ठ ! आपके मुखरूपी समुद्र से उत्पन्न वाङ्मयरूपी अमृत का पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं हो रही है । इसलिये मुक्तिदायक योग का विस्तृत वर्णन कीजिये । हम मनुष्यों के

'प्रज्ञावाञ्छोत्रियो यज्वा ख्यात प्राज्ञोऽनसूयक' । सत्यवर्ममतिर्ब्रह्मकय ब्रह्माधिगच्छति ॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वं त्यागेन मेधया । साह्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व न ॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणां च ययैकाग्रमवाप्यते । यनोपायेन पुरुषस्तत्त्व व्याख्यातुमर्हति ॥५॥

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नायत्रन्द्रियनिग्रहात् । नान्यत्र सर्वं संत्यागात्सिद्धिं विन्दति वश्चन ॥६॥
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टि स्वयंभुव । भूयिष्ठ प्राणभृदग्रामे निविष्टानि शरीरेषु ॥७॥
भूमर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषोऽस्मृते । प्राणापानाश्रयो वायु कोष्ठाकाश शरीरिणाम् ॥८॥
क्रांती विष्णुबले शक्र कोष्ठेऽग्निर्भोस्तुमिच्छति । कर्णयोऽग्निश्च श्रोत्रं जिह्वा वाक्सरस्वती ॥९॥
कणो ह्रस्वचक्षुषो जिह्वा नासिका चंच पञ्चमी । दश तानीन्द्रियोवतानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूप रस गन्धश्च पञ्चमम् । इन्द्रियार्थान्पुनर्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यवा ॥११॥
इन्द्रियाणि मनो युद्धवते अवज्ञया (शा) निव राजिन (रु) । मनश्चापि सबायुद्धवते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२॥

इन्द्रियाणां तर्पणैवैषा सर्वेषामीश्वर मन । नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनस्तथा ॥१३॥
'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना' मन । प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु बहिनाम् ॥१४॥

साह्य-दशन के बारे में भी सुनना चाहते हैं । प्रज्ञावान् श्रोत्रिय यशकर्ता देवावी अनिन्दक तथा सत्य धर्म निष्ठ मनुष्य कैसे ब्रह्म का प्राप्त करता है ? तपस्या से या ब्रह्मचर्य से या सवयाय से या मेधा से या साह्य से या योग से या जैसे ब्रह्म की प्राप्ति हो वह हमें बतलाइये । जिस उपाय से मन की एकाग्रता प्राप्त हो वह भी बतलाइये ॥१५॥

व्यास बोले—विना ज्ञान तपस्या इन्द्रियनिग्रह तथा संत्याग क कोई सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है ॥६॥ ब्रह्मा ने पहले महाभूतों की सृष्टि की । फिर उनका प्राणियों के शरीरों में निविष्ट किया ॥७॥ भूमि से शरीर जल से स्निग्धता अग्नि से नेत्र वायु से प्राण-अपान तथा आकाश से बृष्ट (न प वायु क दि न छ) उत्पन्न हुए ॥८॥ शरीर की क्रियाओं का देवता विष्णु बल का इन्द्र वायु का अग्नि कण वा विष्णु तथा जिह्वा का वाक्सरस्वती है । कण तबका नेत्र जिह्वा य पाँच पादोन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आहारसिद्धि के द्वार धानी जाती हैं । शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध—ये पाँच इन्द्रियों में विषय कहलाते हैं जिन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिये । चञ्चल पादों का तरह इन्द्रियों का मन युक्त होता है और मन को भी हृदयाश्रित भूतात्मा युक्त करता है ॥११॥ नियम तथा उत्सर्ग म समस्त इन्द्रियों का ईश्वर मन है । उसी तरह मन का ईश्वर भूतात्मा ॥१३॥ देहपारिया व देह में इन्द्रियाँ इन्द्रियों में विषय स्वभाव चेतना मन प्राण अपान तथा जीव नित्य रहते हैं ॥१४॥ सत्त्व का न

१क प्रज्ञावा० । २ग ख्यातप्रज्ञो० । ३स ०क । अभ्यासेन सदा ब्रह्म० । ४ य ०क । अनगतमनिर०
५स वायुश्चेष्टाकाश च० । ६क शक्त । स सत्त्वा । ६क ०र्थाय स्व० । ७क ०नाथय । प्रा० ।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः । सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वे कथंचन ॥१५॥
 एव सप्तदशं देहं 'युतं षोडशभिर्गुणैः' । मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६॥
 न ह्यप्यं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वरूपोन्द्रियैः । मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७॥
 अशब्दस्पर्शरूपं तत्त्वं (चा) रसागन्धमव्ययम् । अशरीरं 'शरीरे' स्वे निरोक्षते निरिन्द्रियम् ॥१८॥
 अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमाचितम् । योज्युपपश्यति स' प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत' ॥१९॥
 'विद्याविनयसंपन्नब्राह्मणे' यच्च हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समवशिनाः ॥२०॥
 सहि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च । वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥२१॥
 सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि । यदा पश्यति भूतात्मा' ब्रह्म संपद्यते तदा ॥२२॥
 यावानात्मनि देवाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि । य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३॥
 सर्वभूतात्मभूतस्य 'सर्वभूतहितस्य' च । देवापि मामं मुह्यन्ति अपदस्य पदैविणः ॥२४॥
 शकुन्तानामिवाऽऽकाशो भस्त्वानामिव चोदके । यथा 'गतिनं' दृश्येत तथा 'ज्ञानविदां गतिः ॥२५॥
 कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि । यस्मिन्स्तु पच्यते कालस्तत्र वेदेह कश्चन' ॥२६॥

आश्रय है, न गुण है, न शब्द है और न चेतना है । सत्त्वं तेज का सञ्जन करता है, पर गुणों का कमी नहीं ॥१५॥
 इस प्रकार सप्तदश शरीर सोलहों गुणों से युक्त है । विप्रवृन्द । विद्वान् पुरुष मन से आत्मा को आत्मा में
 देखता है ॥१६॥ आत्मा को नेत्र से तथा इन्द्रियों से नहीं देखा जा सकता है । मन रूपी दीप से यह महान् आत्मा
 प्रकाशित होता है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित, जड़विनाशी एवम् अशरीरी आत्मा को अपने
 शरीर में देखना चाहिए ॥१८॥ जो समस्त देहों में उस परम पूज्य आत्मा को देखता है, वह मनुष्य के बाद
 ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥१९॥ पण्डित लोग विद्या-विनय-संपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को
 समान भाव से देखते हैं ॥२०॥ वही एक महान् आत्मा समस्त भूतों में तथा स्थावर-जगमा में वास करता है
 जिससे संपूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है ॥२१॥ जब मनुष्य समस्त भूतों में अपने को तथा अपने में समस्त भूतों
 को देखने लग जाता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२२॥ अपने शरीर के मातर जैसा आत्मा है वैसे ही
 दूसरों के शरीर में भी है, जो ऐसा निरन्तर समझता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२३॥ समस्त प्राणिया
 को अपना आत्मा समझने वाला, समस्त प्राणियों के हित में निरत तथा अपद (परमात्मा) के पद का हृच्छुव जा
 शक्ति है उसने मार्ग में देवता भी माहित हो जाते हैं ॥२४॥ (सुदूर) आकाश मण्डलों की और (अगाध)
 जल मत्स्यों की गति जैसे नहीं दिखाई पड़ती, वैसे जानियों की गति भी समझ में नहीं आती है ॥२५॥ बाल
 मनस्त भूतों को अपने से अपने में पचाता है । पर काल जिसमें पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नहीं जानता
 है । उसने ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य में कोई कुछ नहीं ग्रहण कर सकता है । ये समस्त लोक उसी

१क. वृत् । २क. ०त्मना । न । ३क. स ०रेषु नि० । ४क. सर्वेभ्य कल्पान्ते न तु म्रियते । वि० ।
 ५ग. ०द्याभिजनस० । ६क. ०नि । एव च स० । ७ग. सर्वात्मा । ८ख. ०तस्य देहिनि । ९० । १स.
 ०विनिनस्ये० । १०ख. ०तस्य चोदय । का० । ११क. ०न । नैवोर्ध्वं न ।

न तद्वर्धं न तिर्यक्च' नाधो न च पुनः पुनः। न 'मध्ये प्रतिगृह्णीते' नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७॥
 सर्वे तत्स्या इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन। यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८॥
 नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः। तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा ॥२९॥
 सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृणुतिष्ठति ॥३०॥
 तदेवाणोरणुतरं तन्महद्म्यो महत्तरम्। तदन्तं सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१॥
 अक्षरं च क्षरं चैव द्वेषा भावोऽयमात्मनः। क्षरं सर्वेषु भूतेषु दिव्यं त्वमृतमक्षरम् ॥३२॥
 नवद्वारं पुरं कृत्वा हंसो हि नियतो वशी। इन्द्रजः सर्वभूतस्य स्यादक्षरस्य चरस्य च ॥३३॥
 हानेनाभिर्विकल्पानां नराणां संचयेन च। शरीराणामजस्याऽऽहुर्हंसत्वं पारदर्शिनः ॥३४॥
 हंसोक्तं च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५॥

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावद्विह तत्त्वतः। सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया ॥३६॥
 योगकृत्यं तु भो विप्राः कीर्तयेयिष्याम्यतः परम्। एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७॥
 आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन शान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८॥

मे वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भाँति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की ओरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अंत तक प्राप्त नहीं हो पाता है। क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नहीं है। उसने सब ओर हाथ-पैर, अक्ष-सिर तथा मुख-कान हैं। यह सब को आवृत करके स्थित है ॥२६-३०॥ यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। समस्त भूतो के भीतर बहू स्मित होते हुए भी अदृश्य है ॥३१॥ आत्मा के दो भाग हैं—अक्षर और क्षर। समस्त भूतो मे रहने वाला क्षर बहुलात्मा है और दिव्य तथा अमृत स्वरूप चेतन आत्मा अक्षर है ॥३२॥ नियत तथा वशी हंस (आत्मा) नव द्वारयुक्त शरीर रूपी गृह मे वास करता है। इसी प्रकार वह समस्त स्यादक्षर-जगमो मे वास करता है ॥३३॥ पारदर्शी लोग भिक्वो की हानि तथा मनुष्या के सचय से ब्रह्म के शरीरों को ही हंस कहते हैं ॥३४॥ हंस को क्षर कहा जाता है और कूटस्थ अक्षर बहुलात्मा है। ज्ञानी पुरुष उसी अक्षर को प्राप्त करके प्राण और जन्म का परित्याग करते हैं ॥३५॥

व्यास ने कहा—निप्रबन्ध। आपने जो ज्ञानयुक्त साख्य के बारे मे पूछा, उसका वर्णन तत्त्वतः मैंने कर दिया ॥३६॥ अब योग-क्रिया का वर्णन मैं करूँगा। बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम ही एकता है ॥३७॥ व्यापक आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। यही ज्ञान शम, दम, अध्यात्म-परिशीलन तथा

१क ०र्यगधो न च भाति पु०। २ख मन्वे। ३ग ०हृणीतो नै०। ४घ ०त्वा सोऽथ वै नियत वतेन।
 ६०। ५ङ च। हीनेनापतक०। ६क ०रीर हि नरस्येह नि सर्व पा०। ७घ य ०प्रा वर्त०।

‘आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा। योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च’ यान्कवयो विदुः ॥३९॥
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्। क्रोध शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ॥४०॥
सत्त्वसंसेवनाद्दीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१॥
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा। अप्रमादाद्भूयं जह्याद्भ्रमं प्राप्नोपसेवनात् ॥४२॥
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेद्भ्रित्यमर्तन्द्रितः। अर्गोश्च ब्राह्मणाश्चाय देवतः प्रणमेत्सदा ॥४३॥
‘वर्मयेदुद्धता वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम्’। श्रुत्यतेजोमयं ह्येकं यस्य सर्वमिदं जगत् ॥४४॥
एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीराजवं क्षमा ॥४५॥
शीघ्रं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः। एतैर्विवर्धन्ते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥४६॥
‘समः सर्वेषु भूतेषु’ ‘लभ्यालभ्येन वर्तयन्’। धृतपाप्मा तु तेजस्वी लब्धाहरो जितेन्द्रियः ॥४७॥
कामक्रोधौ बशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मण पदम्। मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वाकाप्रयं समाहितः ॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्थे च धारयेन्मन आत्मनः। जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यथेकं क्लृप्तमिन्द्रियम् ॥४९॥
ततोऽस्य ‘लवति प्रज्ञा गिरेः पादाविबोदकम्’। मनसः ‘पूर्वमादद्यात्कूर्मानामिव’ मत्स्यहः ॥५०॥

पवित्र कर्मों के द्वारा आत्मा में रमण करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त होता है। विद्वान् व्यक्ति योग के पाँच दोषों—काम, क्रोध, लोभ, मय तथा मूढत्व स्वप्न रूप दोषों को, जिन्हें विद्वानों ने बताया है, छोड़ दे। काम से क्रोध को तथा सकल्प-त्याग से काम को जीते। घोर पुरुष सार्विक वृत्ति के सेवन से निद्रा का जीन लेते हैं। धैर्य से इन्द्रिय तथा उदर की रक्षा करे, नेत्र से हाथ-पीर की रक्षा करे, मर से नेत्र तथा कर्ण की रक्षा करे और कर्म से मन तथा वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय का त्याग करे विद्वान् की सेवा से दम्भ को छोड़े ॥३८-४२॥ इस प्रकार इन योग-दोषों को निरालस्य पूर्वक त्याग दें। सदा अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुयायी उदर, तथा हिसायाकृत वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय धैर्य का को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुयायी उदर, तथा हिसायाकृत वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय धैर्य का को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुयायी उदर, तथा हिसायाकृत वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय धैर्य का को प्रणाम करे ॥४३॥

१ग ०रागेण । २क ख ०ज्व तान्क० । ३ख ०वेदु खदा वा० । ग ०येकुश्रिता वा० ।
४क ०नोजवाम् । ५ख ०म् । ब्राह्म ते० । ६क शकल । ७ग रस । ८क ०त्व श्रीडाऽऽर्जे० । ९ग
सम्यक्सर्वे० । १०ख ग लब्धा लब्धेन । ११ख च उत्तैका० । १२ख क्षरति । १३क ख मनसा । १४क
०घात्कर्मणा ।

तत्र श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राणं च योगवित् । तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१॥
 तथैवापोह्य सकल्पान्मनो हृषात्मनि धारयेत् । पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सत्स्थापयेद्यदि ॥५२॥
 यदेतान्यवतिष्ठन्ते मनःपठानि चाऽऽत्मनि । प्रसीदन्ति च 'सत्स्याया तदा ब्रह्म' प्रकाशते ॥५३॥
 विधुम् इव 'दीप्ताचिरामत्य' इव दीप्तिमान् । बंधुतोऽग्निरिवाऽऽकाशे' पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४॥
 'सर्वे तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते । त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५॥
 धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सधभूतहिते रता । एष परिमितं कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६॥
 आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम् । प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदशने ॥५७॥
 अबभूतानि रसं स्पर्शं शीतोष्णमास्ताकृति । प्रतिभानुपसर्गाच्च प्रतिसंगूह्य योगत ॥५८॥
 तास्तत्त्वविद्वन्नादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत् । कुर्यात्परिचयं योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनि ॥५९॥
 गिरिभृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत् । सनियम्येन्द्रियग्रामं 'कोष्ठे' भाण्डमना इव ॥६०॥
 'एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं' योगाग्नोद्विजते मनः । येनोपयेन शक्येत नियन्तुं चञ्चलं मनः ॥६१॥
 तत्र युक्तो निरपेक्षः न चैव विचलेत्ततः । शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमते ॥६२॥
 नातिव्रजेत्परवाचा कर्मणा 'मनसाऽपि वा । उपेक्षको 'यताहारे' 'लब्धालम्बसमो भवेत् ॥६३॥

बरे। इसके अनन्तर कान और जिह्वा और नासिका का समय करके मन में इनकी स्थापना करे ॥५०॥ ५१॥
 उसी तरह चक्षुष से मन को हटाकर आत्मा में धारण करे। पाँचों इन्द्रियों को मन में स्थापित करे ॥५२॥
 जब मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है ॥५३॥ आकाश में
 दीप्तिमान् सूक्ष्म की तरह तथा विद्युत् अग्नि की तरह मन या आत्मा का दखन होता है। स्थापन होने के कारण
 आत्मा में अखिल वस्तुएँ तथा अखिल वस्तुता में आत्मा दीक्षता है। उस आत्मा को महात्मा धीरे महापण्डित
 तथा समस्त भूतों के हित में निरत मनीषी ब्राह्मण देख पाते हैं ॥५४॥ ५५॥ दुःखप्रती मनुष्य अनेके एवान्त में
 बैठकर षोडश समय तक ही इस प्रकार आचरण करते हुए ब्रह्म समानता को प्राप्त कर लेते हैं। महामोह
 भ्रम तथा चक्कर ही नान बान तथा आँख है। रस सदाँ गर्मी तथा वायु अवमृत रस हैं। प्रतिमा तथा
 बाषाओ का वाग द्वारा राजकर उत्तवेत्ता व्यक्ति समता से ही उनको अनारपूर्वक निवृत्त करे। इस प्रकार
 ब्रह्मेन्द्रिय तीनों लोक में योग का परिचय प्राप्त करे। पवन विस्तर पर देहालय में तथा वृक्षमूल में इन्द्रिय
 समूह का समय करके योगाभ्यास करे। नित्य मन को एकाग्र करे। योग से मन को उद्विग्न न होना दे।
 जिस उपाय से चञ्चल मन को वशीभूत कर सके उसी का अवलम्बन करने यागाम्यास करना चाहिए। उससे
 विचलित नहीं होना चाहिये ॥५६॥ ६१॥ निवास करने योग्य मवन दृढ़ और एकाग्र होकर रहे। मन बचन
 और बम से कभी भी आसक्त न हो। उपेक्षा करने वाले नियमित भोजन करने वाले तथा हानि लाभ में समान भाव
 रखने वाले व्यक्ति योगाभ्यास करे ॥६२॥ ६३॥ अपने निदक तथा प्राणन दोनों का प्रति समान व्यवहार करे।

१क सच्छाया। २ख अन्तानिरा०। ३ग ०१ दृश्य०। ४ख सवतत्र च स०।
 ५ख बाष्पे। ६ख तादृक्मना। ७ख एकान्ते। ८ख भाषाया चिन्तयन्तर। ९ख स ०१। १०ख स ०१। ११ख नाभिष्वज्येते बाल वा क०। १२ख भाषा गिरा। १३ख जिताहारे। १४ख लम्बालम्बस०।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत् । समस्तयोश्चाप्यभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु 'सधर्मा मातरश्चन' ॥६५॥
एवं स्वस्थामनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः । यन्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६॥
'वेदनात्तिगिरान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकान्चनः । एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः ॥६७॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारो वा धर्मकादृक्षिणी । तावप्येतेन भार्गवेण गच्छेतां परमा गतिम् ॥६८॥
अजपुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजः ।

अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्प्रतां, 'प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनोविणः ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपुत्रेवादे साख्ययोगनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

'यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च । कां 'दिशं विद्याया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥१॥

मुनः अशुभं वा व्याप्तं न करे ॥६४॥ लाभ होने पर प्रसन्न न हो और हानि होने पर चिन्ता न करे । आयु के समान समस्त प्राणियों के तुल्य व्यवहार करे ॥६५॥ इस प्रकार स्वस्थामा और सर्वत्र समदर्शी होकर छह मास तक निरभ्यास करने वाला कोई शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जिसका चित्त वेदनाओं से पीड़ित व्यक्ति या न । वेत्तक, मी उद्विग्न नहीं होता है तथा जो डेले, पत्थर एवम् सीने में समान साथ रखता है, वही योगयुक्त बहुलता है । इस प्रकार योगमार्ग पर आरुढ़ होना चाहिये, मोहद्वय उससे भ्रष्ट नहीं होना चाहिये । वह नीच वर्ण का व्यक्ति हो । अथवा धर्म काहन वाली स्त्री हो, वे दोनों ही इस मार्ग के चलने पर परम गति को प्राप्त करते हैं ॥६७॥ द्विजगण । अज, पुराण, अजर, सनातन, इन्द्रिया के परे तथा अगोचर परमात्मा का धर्म करते विशाल लोग ब्रह्म-समानता रूप अपरिचर्तनशील गति का प्राप्त करते हैं ॥६९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और कवियों के संवाद प्रकरण में साख्ययोगनिरूपण नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

ज्ञानियों की मोक्षप्राप्ति का निरूपण

मुनियो ने कहा—यदि ऐसा वेद का वचन है कि कर्म करो और त्याग भी करा तो मनुष्य ज्ञान के द्वारा

१. ० मार्त्ता मुनीश्वर । ए० । २. ० नार्ता प्रजा ह० । ३. ० तिष्ठत म० । ४. ० ग यदि वे० । ५. ० गति ।

एतद्वं श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु न । एतदन्योन्यवैरूप्य वर्तते प्रतिकूलत ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दला यत्पृच्छस्व समासत । 'कर्मविद्यामयो चोभो ध्यास्यास्यामि' क्षराक्षरो ॥३॥
 या दिश विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा । शृणुष्व साप्रत विप्रा गहन हृषेतदुत्तरम् ॥४॥
 अस्ति धर्म इति युक्त नास्ति तत्रैव यो धवेत् । यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदय ॥५॥
 द्वाविमात्र्य पन्थानी यत्र वेदा प्रतिष्ठिता । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषित ॥६॥
 कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते । तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतय पारदर्शिन ॥७॥
 कर्मणा जायते प्रत्य मूर्तिमान्योऽज्ञात्मक । विद्यया जायते नित्यमव्यक्त हृषक्षरात्मकम् ॥८॥
 कर्म त्वेके प्रशसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नरा । तेन ते देहजालेन रमयन्त उपासते ॥९॥
 ये तु बुद्धि परा प्राप्ता धमनंपुण्यदर्शिनः । न ते कर्म प्रशसन्ति कूप नद्या पिबन्निव ॥१०॥
 कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ । विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥११॥
 न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते । न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥१२॥
 यत्र तदब्रह्म परममव्यक्तमचल ध्रुवम् । अव्याकृतमनायामममृत 'बाधिमोगवित ॥१३॥

(धर्म याग देन से) जिस गति का प्राप्त होते हैं और कर्म से जिस गति को प्राप्त करते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं आप बताइय। यह परस्पर वैरूप्य प्रतिकूल भाव रखता है ॥१२॥

व्यास बोले—मुनिवर! जा आप पूछते हैं उसे संक्षेप से सुनिय। मैं कर्म तथा ज्ञानमय दाता शर और अक्षर का ध्यान करूँगा। विप्रबन्धु! ज्ञान से मनुष्य जिस गति का प्राप्त करते हैं और कर्म से जिसका प्राप्त करते हैं इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी अब सुनिय। धर्म है और धर्म नहीं है—यह कहना बँसा ही हाया जब यह एक यक्ष का सादृश्य है और यह यक्ष का सादृश्य नहीं है यह कथन। वेदा माय हैं जिनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। एक प्रवृत्तिलक्षण धर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण धर्म है ॥३॥ ६॥ कर्म से जीव बद्ध होता है और ज्ञान से मुक्त होता है। इसलिये पारदर्शी समासा लय कर्म नहीं करते हैं ॥७॥ कर्म से जीव देहात्त का बार सोचूँ विचार से मुक्त मूर्तिमान होता है अर्थात् जन्म लेना है और ज्ञान से अजरारतम् इत्य अव्यक्त हो जाता है ॥८॥ स्वल्प बुद्धि वाले मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं। इसलिये वे देहजाल से रमण करते हुए कर्म की उपासना करते हैं ॥९॥ जा परा बुद्धि का प्राप्ति है तथा धर्म की निपुणता का देखत है वे कर्म की प्रशंसा उसी तरह नहीं करते हैं जैसे नदी का जल पीन बाल हुए की ॥१०॥ कर्मों का फल उत्पत्ति मरण रूप गुण-दुःख हान है। ज्ञान से जीव बंधा जाता है जहाँ ज्ञान पर साक्ष नहीं होता है मृत्यु नहीं होती उत्पत्ति नहीं होती जहाँ तथा बुद्धि नहीं होती जहाँ परम अव्यक्त अचल ध्रुव नामरूप से रहित अनामय अमृत तथा यागवत्ता ब्रह्म का प्राप्ति होती है और जहाँ मानसिक कर्म तथा (नीत उष्ण अग्नि) ब्रह्म

१३ ० पावनो व्या० । २३ चराचरी । ३३ जालानि २० । ४ ० जानानि २० । ४४ ० मज्जा गुण्य० । ५४ बाधयागत । ६४ बाधियागिता ।

द्वन्द्वेन यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा । समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥१४॥
विद्यामयोऽग्न्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः । विप्राश्चन्द्रसमस्पर्शः' सूक्ष्मया कलया स्थितः' ॥१५॥
तदेतद्विष्णोः प्रोक्तं विस्तरणानुगोप्यते । न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं चक्रतन्तुमिदाम्बरे ॥१६॥
एकादशविस्तरात्मा कलासंभारसंभूतः । मूर्तिमानिति तं विद्याहिप्रः कर्मगुणात्मकम् ॥१७॥
देवो यः सन्निवृत्तस्मिन्बुद्धौन्दुरिव' पुष्करे । क्षेत्रज्ञं तं विज्ञानीयाप्रित्यं योगजितात्मकम् ॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं 'जीवगुणात्मकम् । जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः ॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, स'चेष्टते' जीवगुणं च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति', प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०॥

व्यास उवाच

प्रवृत्त्यास्तु विकारा ये "क्षेत्रज्ञास्ते" परिश्रुताः । ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१॥
तैश्चैव कृष्टे कार्ये 'मनः पृष्ठैरिहेन्द्रियैः । सुदार्तास्त्विव संयन्ता दूढः' परमवाजिभिः ॥२२॥
इन्द्रियैर्मयः' परा ह्यर्था अर्थैर्मयः परमं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्वरः ॥२३॥

बाधा नहीं आते हैं ॥११-१३॥ वहाँ जीव समभाव में स्थित, सर्वत्र मित्रतायुक्त एकम् समस्त मूर्तों के हित में निरत रहते हैं ॥१४॥ द्विजगण । कोई पुरुष ज्ञानमय होता है तो कोई कर्ममय । विप्रबुद्ध । कोई चन्द्रमा के समान शीतल स्वर्ण धाता तथा सूक्ष्म कला (गुण) से युक्त होता है । यह रहस्य ऋषि ने बतलाया है । उसका विस्तार से मैं वर्णन कर रहा हूँ । वह आकाश में चक्रतन्तु के समान देला या सजता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है । विप्रगण । कर्म-गुण काले की व्यापक दिवारों से युक्त तथा कलाओं से सम्पन्न मूर्तिमान् समन्विते ॥१५-१७॥ तालाब में चन्द्र-प्रतिबिम्ब की तरह शरीर में जो देह अवस्थित है, उसे क्षेत्रज्ञ, नित्य तथा योग-प्रितारमा समन्विते । तब, सत्त्व तथा रज की जीव का गुण समन्विते, जीव को आत्मा का गुण और आत्मा को परमात्मा का गुण मानिये । जीव का गुण सचेतन है, वह समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है और सार्ता मुपना की कल्पना करते हुए क्षेत्रवेत्ता उससे परे की बतलाते हैं ॥१८-२०॥

व्यास बोले—प्रवृत्ति के जो विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं । वे पुरुष को नहीं जानते हैं और पुरुष उन्को नहीं जानता है । जैसे सुशासित अर्यों के दूत सारथि कार्य लेता है उसी तरह मन सहित छोटी इन्द्रियों से पुरुष कार्य लेता है ॥२१-२२॥ इन्द्रियों के परे उन्को विषय हैं, विषयों के परे मन है, मन के परे बुद्धि है और बुद्धि के परे महान् आत्मा है ॥२३॥ महान् के परे अक्षय है, अक्षय के परे अमृत और अमृत के परे कुछ भी नहीं

१स विप्रदच० । २स ०न्द्रमस स्पर्शात्स सूक्ष्मो सोनसत्तवि० । ३ ०न्द्रमस स्प० । ३व स्थितम् ।
४म न वक्र दायिन दृष्ट्वा चक्रत० । ५क चक्रतन्तुमिवापरे । ६क ०स्मिन्नस्मिन् । ७स जीवात्मकगुणम् ।
८म ॥ विष्टेन चेतयते सु स० । ९ व ० ते चिन्तयन्तीह स० । १०ग ०न्ति प्राक्कल्पयन्तो मु० । ११व
०वज्ञे ते प० । १२स ०जादय प० । १३व मनसस्तेन्द्रिये सह । मु० । १४स दूढे । १५व स. अनर्थम् ।

महत परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम् । अमृतात् परं किञ्चित्सा काष्ठा परमा गति ॥२४॥
 एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्ध्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिनः ॥२५॥
 अन्तरात्मनि सलीय मनः पष्ठानि मेधया । इन्द्रियैरिन्द्रियार्थाश्च बहुचित्तमचित्तयन् ॥२६॥
 ध्यानेऽपि परमं कृत्वा विद्यासंपादित मनः । अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्परपदम् ॥२७॥
 इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृतिः । आत्मनः संप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाप्नुते ॥२८॥
 विहृत्य सर्वसकल्पान्तरत्वे चित्तं निवेशयेत् । सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालजरो भवेत् ॥२९॥
 चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् । प्रमत्तात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमप्नुते ॥३०॥
 लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुखं भवेत् । विवर्ति वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१॥
 एव पूर्वापरे राज्ञे युञ्जन्नात्मानमात्मना । लब्ध्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२॥
 रहस्यं सववेदानामनैतिह्यमनागमम् । आत्मप्रत्यायकं शास्त्रमिव पुत्रानुशासनम् ॥३३॥
 धर्मावधारणेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु । दशवर्षसहस्राणि निर्ममामृतमुद्धृतम् ॥३४॥
 नयनीत यथा दध्म काष्ठादग्निमथैव च । तथैव विदुषा ज्ञानं मुक्तिहेतोः समुद्धृतम् ॥३५॥

है। वह पराकाष्ठा तथा परमगति है ॥२४॥ इस प्रकार समस्त भूतों में प्रच्छन्न आत्मा प्रकाशित नहीं होता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति धृष्ट एव सूक्ष्म बुद्धि से उसको देख लेते हैं ॥२५॥ बुद्धि त मन सहित छोटी इन्द्रियो को अन्तरात्मा में विलीन करके इन्द्रिया से इन्द्रिया के विषया का ध्यान न करके हुए तथा ध्यान हो जाने पर भी मन को विद्या से सुसजत करके अनीश्वर तथा प्रशान्तात्मा व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है ॥२६-२७॥ समस्त इन्द्रियो के बन्ध में रहने वाला तथा विचलित ध्यान वाला मनुष्य आत्मा का हनन करके मृत्यु को प्राप्त करता है ॥२८॥ जो समस्त सकल्पा को निष्कृत करके सत्त्व में चित्त का निश्चिन्त करता है वह काल को जीत लेता है ॥२९॥ चित्त की प्रसन्नता से सत्याशी शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके आत्मस्थित होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ प्रसन्नता का लक्षण यह है कि जैसे स्वप्न में सुख होता है और निर्वर्ति स्थान में प्रज्वलित दीप कम्पित नहीं होता है उसी तरह पूरव रात्रि में तथा अरर रात्रि में आत्मा से मन का संयोग (ध्यान) बंदे और अल्पभोजन करते हुए विशुद्धात्मा होकर आत्मा में आत्मा को देखे ॥३१-३२॥ यह शास्त्र अक्षिल वेदों का रहस्य है इतिहास तथा आगम से मिश्र है आत्मा का ज्ञान कराने वाला है और पुत्रानुशासन है अर्थात् जैसे पिता पुत्र के ऊपर अनुशासन करता है वैसे यह भी सावक के ऊपर शासन करता है ॥३३॥ धर्म के आख्याना में तथा सत्य के आख्याना में जो सार है, वही यह है। दश सहस्र वर्षों तक वेदों का मथन करने यह अमृत निकाला गया है। जैसे दही से नखनीव और कण्ठ से अग्नि निकलता है उसी प्रकार मोक्ष के कारण से विद्वाना का ज्ञान निःसृत हुआ है। यह पुत्रानुशासन शास्त्र शिष्या को बनाना चाहिये।

१क स ०तात्त्व ५०। २क ०नेनोप०। ३स ०स्मृत। आ०। ४ग ०सचरो। ५प स्वयम्।
 ६स ०तु। ७नैर्वर्ति य०। ७स ०भनौपम्यमनायमयम्। ८क यद्वन्तु। स चरतुपु। ९ग ०नु। १०
 दध्म०। १०क ०या दुष्पात्काष्ठा०। ११स ०हेती स०।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् । तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने ॥३६॥
 नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च । नास्यकायान्जवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७॥
 न तर्कशास्त्रदधाय तथैव पिशुनाय च । श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ॥३८॥
 इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु । रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मिन् तु कथयन् ॥३९॥
 यदप्यस्य महो दद्याद्रत्नपूर्वमिमां नरः । इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥४०॥
 'अतो गृह्यतराय तदध्यात्ममतिमानुषम् । यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१॥
 तद्युष्मस्य 'प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः । यन्मे मनसि वर्तत यस्तु वो हृदि सशयः ॥
 श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि च' ॥४२॥

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः । यदध्यात्मं यथा विद्मो भगवन्मुपसितम् ॥४३॥

ध्यास उवाच

अध्यात्मं यद्विदं विप्राः पुरुषस्येह पठन्ते । युष्मस्य कथयिष्यामि तस्य व्याख्याप्रवर्धयताम् ॥४४॥
 भूमिरापस्तया ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । 'महाभूतानि यद्वैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥४५॥

अशान्त और अदात तनस्वी को नहीं बतलाना चाहिये ॥३६-३६॥ जो वेदा को नहीं जानता है, उस भी नहीं बतलाना चाहिये । जो अनुगमन न करे, उसे नहीं बतलाना चाहिये । निन्दक, कुटिल, बिना निर्देश किये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दण्ड तथा पिशुन का नहीं बतलाना चाहिये । प्रशंसक, प्रशंसनीय, प्रशान्त तथा तनस्वी को यह बतलाना चाहिये । यह रहस्यधर्म प्रिय पुत्र को तथा अनुधधन करने वाले शिष्य को बतलाया जा सकता है और अन्य को तो कभी भी नहीं ॥३७-३९॥ यदि मनुष्य रत्नपरिपूर्ण सकल पृथ्वी को देता भी तत्त्ववेत्ता जन इसी को उससे श्रेष्ठ समझे । अतः अत्यन्त गोप्य तथा लोकोत्तर जो अध्यात्म विद्या है उस महर्षियों न प्राप्त किया । उसी की कर्वा वेदान्तो मे की जाती है । मुनिगण ! आप लोग न जो मुझसे पूछा वह मैंने बतला दिया और जा मेरे मन मे था तथा जो आपके हृदय मे सन्देह था वह भी आप मुन चुके हैं । अब और क्या कहूँ ? ॥४०-४२॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! पुनः अध्यात्म को विस्तार से बतलाइये, ताकि अध्यात्म को हम समझ जाय ॥४३॥

ध्यास बोले—विप्रवन्द ! पुरुष का जो अध्यात्म कहा जाता है, वह मैं आपसे बतलाऊंगा । उसकी व्याख्या सुनिये । भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँचो महाभूत सभी प्राणियों मे स्थित हैं ॥४४-४५॥

१ ग ० ने । २ इ प्रियाय पुत्राय शिष्यायानु० । २ ग ० ने । २० । ३ इ । ४ क स ततो । ५ क यत्र गृह समुद्दिष्ट । ६ क स प्रवक्ष्यामि । ७ क स विप्र । ८ स इष्यते । ९ ग तच्छृणुष्वमतन्द्रिता ।
 मू० । १० ख ग ० नि पञ्चैव ।

मुनय ऊचुः

आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देह न पश्यति। आकाशाद्य शरीरेषु कथं तदुपवर्णयेत् ॥
'इन्द्रियाणां' गुणा कचित्कथं तानुपलक्षयेत् ॥४६॥

व्यास उवाच

एतद्वो वणपिप्यामि यथावदनुवर्शनम्। शृणुष्व तद्विहंकाभ्यां यथातत्त्वं यथा च तत् ॥४७॥
शब्द श्रोत्र तथा स्पर्श त्रयमाकाशलक्षणम्। प्राणश्चक्षुः तथा स्पृश एते वायुगुणास्त्रय ॥४८॥
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते। रसोऽयं रसन स्वेदो गुणास्त्रयं त्रयोऽम्भसाम् ॥४९॥
ध्रुव घ्राण शरीर च भूमरत्त गुणास्त्रय। एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यात पाञ्चभौतिक ॥५०॥
वायो स्पर्शो रसोऽवभ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते। आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुण स्मृत ॥५१॥
मनो बुद्धि स्वभावश्च गुणा एते स्वयोजिजाः। ते गुणानतिवर्तते गुणेश्च परमा मता ॥५२॥
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसाय सनियच्छति। एवमेबेन्द्रियग्राम बुद्धिर्धेच्छो नियच्छति ॥५३॥
यदूर्ध्वं पादतलयोरवार्कोर्द्धं च (गणश्च) पश्यति। एतस्मिन्नव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४॥

मुनियों ने कहा—जिसका आकार तो होता होगा किंतु जिससे कोई देह को नहीं देखता है वह आकाश और शरीर में कैसे विद्यमान रहते हैं इसका वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हें भी बतलाइए ॥४६॥

व्यास बोले—गात्रानुसार मैं ठीक-ठीक इसका वर्णन करूंगा। आप लोग एकाग्रचित्त होकर उत्पन्न सुनिये ॥४७॥ गन्ध श्रवणश्च तथा शून्य प्रदेह—ये तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण चक्षुः तथा स्पर्श—ये तीन वायु के गुण हैं ॥४८॥ रूप नेत्र तथा परिणाम—ये तीन अग्नि के गुण हैं। रस जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल के गुण हैं ॥४९॥ सूयने योग्य वस्तु, नाक और शरीर—ये तीन गुण पृथ्वी के हैं। पाँच मूला के विकार इन्द्रिय समूह का वर्णन कर दिया। वायु से स्पृश जल से रस अग्नि से रूप आकाश से शब्द तथा पृथ्वी से गन्ध उत्पन्न होता है। मन बुद्धि तथा स्वभाव—ये स्वयोजिज गुण हैं। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे गुणा से ये धृष्ट माने जाते हैं ॥५०॥ ५२॥ जैसे कच्छप अर्कों को फँसाकर फिर सवेद लेता है उसी तरह ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों का नियमन कर लेता है। जो या तो ऊपर आकाश की ओर या नीचे चरणतल की ओर देखे उसकी बुद्धि उत्तम है (कारण बीच में इतर-ऊपर देखने से बुद्धि भ्रान्त होती है अतएव योगी पुरुष को ऊपर नीचे ही देखना चाहिए) ॥५३॥ ५४॥ गुण बुद्धि का बहान करते हैं और बुद्धि छत्र मन सहित पाँच इन्द्रिया का

१ग ०कारात्तात वै यस्य। स ०काशस्तु म०। २क ०गन्धम्। इ०। ३न इन्द्रियाणि। ४न य ०णां विचरतां यय। ५क स ०वस्तुपासन०। ६क ०सोऽवस्तथा स्वे०। ७व ०जा। एते त्रयोऽम्बिव०। ८स न। ९स ०ति। नतूर्ध्वं।

'गुणस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि । मन यष्टानि सर्वाणि 'बुद्ध्या 'मावात्कुतो गुणाः ॥५५॥
इन्द्रियाणि नरैः पठ्य चष्टे तन्मन उच्यते । सप्तमीं बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६॥
'चक्षुरालोकनार्यं संशयं कुस्ते मनः । बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७॥
रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिरजाः । 'समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलभयेत् ॥५८॥
तत्र यत्प्रेतिसंयुक्तं किञ्चिदस्मिन् लक्षयेत् । प्रज्ञान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥५९॥
यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् । प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलभयेत् ॥६०॥
यत्तु 'संमोहसंयुक्तमध्यक्तं' विषयं भवेत् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥६१॥
प्रह्वयः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्ता । 'अकस्माद्यदि वा कस्माद्ददन्ति सात्त्विकान्गुणान् ॥६२॥
'अभिमानो मृषावादी लोभो मोहस्तथा क्षमा । लिङ्गानि रजस्तानि 'वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३॥
तथा मोहः प्रमादश्च तन्त्रो निन्द्राऽप्रबोधिता । कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणा ॥६४॥
मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी । हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मबोधना ॥६५॥
इन्द्रियेभ्यः परा हृद्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः' स्मृत ॥६६॥
बुद्धिरात्मा मन्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका । यदा विकुपते भावं' तदा भवति सा मनः ॥६७॥

बहुन करती है। बुद्धि के अन्तर्गत में गुण क्या कर सकते हैं (?)। पाँच इन्द्रियाँ तथा छठा मन कहलाता है। पाँचवीं बुद्धि की और आठवीं आत्मा को समझिये ॥५५-५६॥ क्षेत्र अवलोकन के लिये हैं। मन सहाय करता है। बुद्धि निश्चय करती है ॥५७॥ क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी कहलाता है। रज, तम, सत्त्व—ये तीनों स्वयोनिरज गुण समस्त भूतो में समान हैं। इन गुणों का परिदर्शन करें। वहाँ प्रीति-संयुक्त जो कुछ भी आत्मा में देख पड़े, उस सत्त्व का शान्तिपूर्वक धारण करे ॥५८-५९॥ सरीर में या मन में सतारपुक्त जो कुछ मालूम पड़े, उसे रजोगुण समझना चाहिए ॥६०॥ जो मोहसंयुक्त, अव्यक्त, विषय, अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण समझना चाहिये ॥६१॥ महान् हर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य तथा स्वस्थचित्ता यदि अकस्मात् मालूम पड़े तो उन्हें सात्त्विक गुण समझिये ॥६२॥ अभिमान, मिथ्यावाद, लोभ, मोह, क्षमा—ये रजोगुण के चिह्न हैं। मन भाव का सर्जन करता है, बुद्धि निश्चय करती है और हृदय प्रिय ही करता है। यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणाएँ हैं ॥६३-६५॥ इन्द्रियो से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। बुद्धि मन्यस्य का आत्मा है, बुद्धि ही आत्मा की नेत्री है। बुद्धि जब भाव को अमन्यक्त करती है तब वह मन कहलाती है ॥६६-६७॥ इन्द्रियो के पृथक्-पृथक् व्यापार को बुद्धि ही करती है। व्यवण करती हुई वह कर्ण

१क गुणान्ते नी० । २ग गुणानुवाच० । ३क बुद्धिमात्र कृता गु० । ३ग भावे ततो । ४ग ०लोचना० ।
५क स सम । ६ख ०त्तु व्यासो० । ७ग ०व्यक्तविषय म० । ८क अस्माक यदि । ९ख ०नो विषयो
या लो० । १०ग ०न्ते देहत० । ११ग ०नी । कृत्य प्रियाप्रिये चैन वि० । १२ख परो मत । १३ख भाव ।

इन्द्रियाणां पृथग्भावादबुद्धिविक्रुस्ते 'हृजनु। भृष्वती भवति श्रोत्र स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥६८॥
 पश्यन्ति च भवेददृष्टो रसन्ती रसना भवेत्। जिघ्रन्ती भवति घ्राण बुद्धिविक्रुते पृथक् ॥६९॥
 इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति। तिष्ठति पुरुषे 'बुद्धिर्बुद्धिभाष्यवस्थिता ॥७०॥
 कदाचित्त्वमते प्रीति कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह मुह्यते ॥७१॥
 स्वयं भावात्मिका भावास्त्रोनेतानतिवर्तते। सरिता सागरो भर्ता महाबेलामिवोमिमान ॥७२॥
 यदा प्राययते किञ्चित्वा भवति सा मनः। अधिष्ठाने च यं बुद्ध्या पृथगतानि सत्स्मरेत् ॥७३॥
 इन्द्रियाणि च मध्यानि बिभेत्तद्व्यानि कुत्सन्शः। सर्वाण्येवाम्नुपूर्वेण यदावां च विधीयते ॥७४॥
 अभिभागमना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवर्तमानस्तु रज सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५॥
 ये च भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्थासप्रवर्तन्ते रयनेमिमरा इव ॥७६॥
 'प्रदीपार्थं मनः कुर्याद्विन्द्रियेर्बुद्धिसत्त्वम्। निश्चरन्निर्गुणयोगमुदासीनर्यं बुद्ध्या ॥७७॥
 एष स्वभावभेदेवमिति बुद्ध्या' न मुह्यति। असौघसन्प्रहृष्यच्च निरप विगतमत्सर ॥७८॥
 न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियं कामणोच्चरैः। प्रवर्तमानैरनेकैर्बुधैरैरकृतात्मभिः ॥७९॥

कहलाती है स्पर्श करती हुई स्वभा कहलाती है, देखती हुई नेत्र कहलाती है रसास्वाद करती हुई जिह्वा कहलाती है और सूघती हुई नासिका कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही सब इन्द्रियों के पृथक् पृथक् काम को करती है ॥६८॥ ६९॥ बुद्धि को इन्द्रियां समझिए। उनकी वृत्ति से वह अवस्थित होती है। पुरुष ने बुद्धि अद्वैतर है और बुद्धि ने भाव अवस्थित है ॥७०॥ बुद्धि कभी प्रीति लभ करती है और कभी शोक। यह सुख तथा दुःख से कभी भी मुग्ध नहीं होती है ॥७१॥ अहं नित्यो वा स्वामी समुद्र तट वा उत्सवचन करता है उसी तरह भावात्मिका बुद्धि तीनों भावा का अतिक्रमण करती है ॥७२॥ भव किसी चीज के लिये प्राप्ति की जाती है तब बुद्धि मन कहलाती है। स्थान विषय ने बुद्धि द्वारा इन्द्रिया का पृथक्-पृथक् स्मरण किया जाता है। सरल इन्द्रिया को क्रमशः पवित्र बनाना चाहिये और सत्त्वानी सत्त्वानी उपहार करना चाहिये। बुद्धि मन से अतिरिक्त नहीं है। भाव मन में रहता है। उदीयमान मान रज तथा सत्त्व का भी अतिक्रमण करता है ॥७३॥ ७४॥ ज इन तीन गुणों में भाव से विद्यमान रहते हैं (अर्थात् इनकी भावना करते रहते हैं) वे विषय से उसी तरह निरत जाते हैं जैसे रथ के पहिये के आगे नमि रुकित रहते हैं ॥७५॥ प्रकाश पाने के लिये निरवल तथा उन्मत्त इन्द्रियों द्वारा मन को वा भे करे। शब्द रूप तथा रीत्या सत्त्व मनुष्य मन का ऐसा ही स्वभाव है यह जान कर मोह में नहीं पड़ता है। कामचारी उद्वेग तथा अज्ञ इन्द्रिया द्वारा इस आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता है।

१क मन २स ०स्तेषु दुष्योचति०। ग ०स्तेषु दुष्ये च ति०। ३क ०दि सग मा०। ४स ग ० नमिब०। ५क सगर। विष्ट विनिवर्त भर्ता पू०। स सगर। अविष्ट मित्र ये बुद्ध्या पू०। ६क ०ग। मृतायेवा०। ७क यथावदमिषी०। ८स ०मतो बु०। ९क ०मानोचर०। स ०मानं तु र०। १०ग ०ते। ११क भावा वर्तन्ते भावा सर्वेषु तेषु च। अ०। ११क प्रदीप्यर्थः। १२क निश्चरन्निर्गुण०। १३क ग बुद्ध्या।

'तेषां तु मनसा रश्मोन्यदा सम्यद्भनियच्छति । तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०॥
सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा । प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१॥
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् । विमुक्तात्मा तया योगी गुणदोषेन लिप्यते ॥८२॥
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन् । असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३॥
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतियस्य सदाऽऽत्मनि । सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः ॥८४॥
स्वयमात्मा 'प्रसयति गुणेष्वपि' कदाचन । न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५॥
परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम् । सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेदमन्तरं लक्ष्येन्नरः ॥८६॥
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् । पृथग्भूतौ प्रकृत्यंते संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७॥
यथाऽश्मना हिरण्यस्य संप्रयुक्तौ तथैव तौ । भशकौडुम्बरी याऽपि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥८८॥
इपिना वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह । तथैव सहितावेतौ अन्योग्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवावे

सप्तत्रिंशदधिकद्विंशतसमोऽध्यायः ॥२३७॥

मन द्वारा जब इन्द्रियो का सम्यक् प्रकार से नियमन होता है तब आत्मा उसी तरह प्रकाशित होता है जैसे दीप
द्वारा रूप । ॥७७-८०॥ अन्धकार के नष्ट होने पर जैसे समस्त भूतों का स आत्मा होता है वैसे आत्मा का भी
समस्त अजिमे । जैसे जलचर पक्षी जल में विचरण करते हुए भी लिपन नहीं होता है उसी प्रकार मुक्तारमा
योगी गुण-दोषों से लिपित नहीं होता है ॥८१-८२॥ इसी प्रकार प्रजावान् व्यक्ति विषयो का उनमोग करते हुए
भी समस्त विषयो में अनासक्त रहने के कारण लिपित नहीं होता है ॥८३॥ जो पूर्वकृत कर्म का त्याग करके सदा
आत्मा में निरत रहता है और सबके आत्मा को अपना आत्मा समझता है वह गुण-दोषों से रहित हो जाता है ।
कदाचित् गुणों में भी स्वयम् आत्मा उत्पत्ति करता है । गुण आत्मा को नहीं जानते हैं पर आत्मा गुणों को सदा
जानता है ॥८४-८५॥ द्रष्टा आत्मा गुणों का धारण करता है । मनुष्य प्रकृति और आत्मा में यही अन्तर समझे
कि एक (प्रकृति) गुणों का सर्जन करती है और दूसरा (आत्मा) नहीं करता है । य दोनों स्वरूप से पृथक् होते हुए
भी सदा साथ रहते हैं । जैसे पत्थर स सुवर्ण वा समीग कीड़ों से उडुम्बर (पूलर) का समीग और इपिना
(सीक) से भूँज का समीग होता है उसी तरह ये दोनों प्रकृति पुरुष परस्पर प्रतिष्ठित (अर्थात् एक दूसरे से समुत्पन्न
रहते) हैं ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियो ने सवाव-प्रकरण में
दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३७॥

१ख ०पा मुम० । ग२ ०त । मूर्तिमा० । ३ग प्रसरति । ४ग गुणानपि । ५क स कथचन ।
६क स तद्रूपः ।

अथाष्टाविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसर्जनकथनम्

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्स्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति । गुणान्विक्रियतः^१ । सर्वानुदासीनवदोऽश्वरः ॥१॥
 स्वभावयुक्तं तत्सर्वं^२ यद्विमान्मृजते गुणान् । ऊर्णनाभिर्यया सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा ॥२॥
 'प्रयुक्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते । एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३॥
 उभयं संप्रधार्येतदध्यवस्येद्यथामति । अनेनैव विधानेन भवेद्दे संशयो महान् ॥४॥
 अनादिनिधनो हृषात्मा सं बुद्ध्या 'विहरेन्नरः । अकृष्यन्नप्रहृष्यश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५॥
 इत्येषं हृदये सर्वो 'बुद्धिचिन्तामयं' दृढम् । अनित्यं सुखमासीनमशौच्यं^३ छिन्नसंशयः ॥६॥
 तरयेत्प्रच्युता पृथ्वी यया पूर्णा नदी नराः । अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा ॥७॥
 न तु तप्पति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् । एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं^४ केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८॥
 तां(त) तु बुद्ध्या नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम् । समचेष्टश्च वै सभ्यगल्भते शममुत्तमम् ॥९॥
 एतद्बुद्धिजन्मसामर्थ्यं^५ ब्राह्मणस्य विशेषतः । आत्मज्ञानसमस्नेहपरां^६ तत्परायणम् ॥१०॥

अध्याय २४८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

ध्यास धोले—प्रकृति गुणों का सर्जन करती है और आत्मा उदया उपनोद करता है । ईश्वर या परमात्मा
 विद्वत् होते हुए सभी गुणों को उदासीन^१ की तरह देखता रहता है । प्रकृति जो गुणों की सृष्टि करती है, वह स्वभावयुक्त
 है । जैसे मक्खंडा सूत्र का सर्जन करता है वैसे प्रकृति गुणों का सर्जन करती है ॥१-२॥ किन्हीं का मत है कि
 तत्त्वज्ञान से जब गुणों का नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा नाश हो जाता है ।
 इस प्रकार वे भ्रम यः अविद्या वे निवारण की ही मुक्ति मानते हैं । दूसरों के मत में विविध दुखों की आत्यंतिक
 निवृत्ति ही मोक्ष है ॥३॥ दोनों (मतों) को समझकर अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चय करना चाहिये । अल्पया
 इत्ती विधान के महान् संशय उत्पन्न हो जाएगा ॥४॥ आत्मा को अनादि और अश्वर-अमर जानकर मनुष्य श्रेष्ठ,
 हर्ष तथा ईर्ष्या के शून्य होकर विहार करे । इस प्रकार हृदय में बुद्धिपूर्वक दृढता रखकर अनित्य सुख,
 शोक तथा संशय का त्याग करे ॥५-६॥ जैसे मनुष्य तीर कर नदी को पार करता है उसी तरह ज्ञानी
 मनुष्य संसार का सतरण करे । तत्त्ववेत्ता जन संसार में विचरण करते हुए भी सतृप्त नहीं होते
 हैं । ऐसा सोचकर मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये । ज्ञानी जन सृष्टि में रहस्य तथा मृत्यु
 की गति और अगति सब कुछ समझ कर उत्तम ज्ञान्ति को प्राप्त करते हैं ॥७-९॥ आत्मज्ञान
 प्राप्त करना द्विकारियों का कार्य है, विशेष करने ब्राह्मण का । तत्त्व को जानकर मनुष्य बुद्ध हो

१सं ०यते सं० । २क यदात्मा सृज० । ३ग प्रयुक्ता । ४एनमेव व्य० । ५ व. विरहेण० । ६क. बुद्धि
 वि० । ६क ०मया दृढाम् । ७क सं ०मसाध्य छि० । ९क ०या । नानुलिप्येत वै । १०क. सं ०म् । एतद्बुद्ध्या ।

त्वं बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् । विज्ञायंतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११॥
 न भवति विदुषां महद्भूयं, यद्विदुषां सुमहद्भूयं परत्र
 न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भूवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२॥
 लोके मातरमसूयते नरस्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते
 तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३॥
 यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम्
 यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४॥

मुनय ऊचुः

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन । यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भूवाग्रजवीतु नः ॥१५॥

व्यास उवाच

धर्मं च सप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम् । विशिष्टं सर्वधर्मस्य शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥१६॥
 इन्द्रियाणि प्रमायीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः । सर्वतः प्रसूतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७॥
 मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः । विज्ञेयः सर्वधर्मस्य स धर्मः पर उच्यते ॥१८॥
 तानि सर्वाणि संधाय मनःपठानि मेधया । आत्मतृप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥

जाता है और इसने अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जानकर मनीषी लोग कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०-११॥ परलोक में अबिद्वान् को जो महामय होता है, वह विद्वान् को नहीं होता है। विद्वान् को जो सनातनी गति प्राप्त होती है, उससे अधिक किसी को नहीं मिलनी है। ससार में मनुष्य माता पिता की भी निन्दा कर बैठता है, किन्तु वहाँ देवता को न देखकर ऐसा सोचता है या करता है। जो वर्तव्य और अकर्तव्य दोनों को जानता है, जो निष्पट होकर कर्म करता है, जो पहले के किये कर्म की निन्दा करता है, जो प्रिय अश्रिय दोनों को उत्पन्न करता है, वह कुछ व्यक्ति लोक में नहीं पड़ता है ॥१२-१४॥

मुनियों ने कहा—जिस धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और जो भूतो से विशिष्ट है, उसे आप बतलायें ॥१५॥

व्यास बोले—मुनिवर ! प्राचीन, धर्मापयो द्वारा स्तुत तथा समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म को मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये ॥१६॥ जैसे पिता शिशुपुत्रों का नियमन करता है उसी तरह मनुष्य बुद्धि से बलवान् इन्द्रिया का सयम करे ॥१७॥ मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है, यह समस्त धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है ॥१८॥ बुद्धि से मन सहित समस्त इन्द्रियों का सयम करके अनेक प्रकार की चिन्ता न करते हुए सदा आत्मतृप्त रहना चाहिये ॥१९॥ जब इन्द्रियों विषयों से विनिवृत्त होकर आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब नित्य आत्मा का

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्यास्यन्ति धेऽमनि । तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मान पर इक्ष्यय शाश्वतम् ॥२०॥
 सर्वात्मान महात्मान विधूममिव पावकम् । प्रपश्यन्ति महात्मान ब्राह्मणा य मनोयिण ॥२१॥
 यया पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः । आत्मनो नाभिजानीते यव मे पुष्प यव मे फलम् ॥२२॥
 एषमात्मा न जानीते यव गमिष्ये कुतोऽन्वहम् । अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति य सवमनुपश्यति ॥२३॥
 ज्ञानदोषेन दोष्टेन पश्यत्यात्मानमात्मना । दृष्ट्वाऽऽत्मान तथा यूय विरगा भवत द्विजा ॥२४॥
 विमुक्ता सवपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगा । परा बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वरा ॥२५॥
 सवत स्रोतस घोरा नदीं लोकप्रवाहिणीम् । पञ्चद्विप्राह्वतीं मन सकल्परोधसम् ॥२६॥
 लोभमोहतुणच्छन्ना कामक्रोधसरीसृपाम् । सत्यतीर्थानृतक्षोभा क्रोधपङ्कजा सरिद्वराम ॥२७॥
 अव्यक्तप्रभया क्षीप्रा कामक्रोधसमाकुलाम् । प्रतरप्य नदीं बुद्धया' दुस्तरामकृतात्मभि ॥२८॥
 ससारसागरगमा योनिपातालुस्तराम् । आत्मजन्मोदभवा ता तु जिह्वायतदुरासवाम् ॥२९॥
 या तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनोयिण । ता सीण सवतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाङ्मुचि ॥३०॥
 उत्तमा बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूषाम् कल्पते । उत्तीण सवसकलज्ञाप्रसन्नात्मा विकल्मष ॥३१॥
 भूयिष्ठानीव 'भूतानि सवस्थानानिरोक्ष्य च । अकुप्यन्नप्रसीदश्च ननु'समतिस्तथा ॥३२॥

दाँन होता है । विद्वान् ब्राह्मण अपने आत्मा को तथा सब आत्मा को घूमरहित अग्नि की तरह देखते हैं ॥२०॥
 २१॥ जब पुष्प फला से युक्त बहुत गाँवा वाला महावृक्ष अपने को नहीं जानता है कि वहाँ मेरा पुण है और
 कहाँ मेरा फल उसी प्रकार जीव नहीं जानता है कि वहाँ से मैं आया हूँ और कहाँ जाऊँगा । इसके अतिरिक्त
 अन्तरात्मा है जो सब कुछ देखता है ॥२२॥ २३॥ द्विजगण । ज्ञान रूपी दीप से दीप्त आत्मा द्वारा आत्मा को
 देखकर आप लोग वैराग्य धारण कीजिए ॥२४॥ जैसे सप कबुली से निमुक्त होता है उसी तरह आप लोग
 समस्त पापों से विमुक्त होकर परा बुद्धि को प्राप्त कर चिता तथा ज्वर से रहित हो जाइये ॥२५॥ अप लय
 बुद्धि द्वारा सब और सोन वाली मयकर खेगा को बहाने वाली बाँचो इन्द्रिय रूपी प्राइव की मनःसकल रूपी
 तट वाली लोभ-मोह रूपी तुणा से आ-ऊदित काम क्रोध रूपी रेंगने वाले जीवों से मुक्त सप्तरूपी तीर्थ धारी
 मिथ्या रूपी तरंगवाली श्रौषरूपी कीचड़ वाली अव्यक्त स उत्पन्न होने वाली 'ग्रीधर्तामिनी' अन्ध-यात्राया स न
 पार होने योग्य ससाररूपी सागर से सगम करने वाली येनिरूपी पाताल तब गभीर अपने जन्म से उत्पन्न होने
 वाली तथा बिहूषा रूपी मधरा से बंझिन नदी को पार कीजिये । उस नदी को धीर धनोपी जन पार करते हैं ।
 ॥२६॥ २७॥ उससे पार कर मुक्त निष्पाप जया तत्त्ववेत्ता मनुष्य परा बुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म म लीन हो
 जाते हैं । निष्पाप प्रसन्नामा और क्रोध हृष तथा क्रूरता से रहित मनुष्य समस्त भूतों में व्यापक आत्मा का दाँन
 करने समस्त बनेधों से उत्तीण हो जाता है । एसा करने से आप लाभ भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय की भी देखेंगे ।

ततो द्रक्ष्यम सर्वेषां भूतानां प्रमवाप्सयात् । एतद्धि सर्वधर्म्यो विधिष्टं मेनिरे बुधाः ॥३३॥
धर्मं धर्मभूतां श्रेष्ठा मुनयः 'सत्यदर्शिनः । आत्मानो व्यापिनो विप्रा इति पुत्रानुशासनम् ॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च । आत्मज्ञानमिदं गृह्यं सर्वगृह्यतमं महत् ॥३५॥
अथर्वं यदहं विप्रा 'आत्मसाक्षिकमञ्जसा । नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६॥
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यमवात्मकम् । नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७॥
यथा भूतानि सर्वाणि तथेतानि यथा तथा । कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८॥
तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन
बुद्ध्वा हितं प्रीतमना यदर्थं, भूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९॥

मुनय ऊचुः

मोक्षः वितामहेनोक्त उपायाप्रानुपायतः । तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०॥

व्यास उवाच

अस्मात् सगमहाप्राज्ञा 'युक्तं निपुणदर्शनम् । यदुपायेन 'सर्वार्थान्मुगयष्वं सबाधनघाः ॥४१॥
घटोपकरणे 'युद्धिर्घटोत्पत्ती न सा मता । एवं धर्माद्युपायार्थं 'नान्यधर्म्यु कारणम् ॥४२॥
पूर्वं समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पदिक्षमम् । एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुष्वं समानघाः ॥४३॥

विद्वानो ने इसी को अस्मिन् धर्मों से विधिष्ट माना है ॥३०-३३॥ विप्रवृन्द! धर्मात्माओं ने श्रेष्ठ, उत्तमवर्गी तथा महात्मा मुनिवा ने इस धर्म को पुत्रानुशासन (पुत्र को उपदेश करने योग्य) बतलाया है ॥३४॥ अत्यन्त गोपनीय यह आत्मज्ञान सपत्नी, द्विष्ट तथा अनुगमन करने वाले को देना चाहिये ॥३५॥ द्विजपण! जिस आत्मा के बारे में मैंने कहा है, वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है ॥३६॥ वह दुःख-सुख-से परे तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों में नही है। इसकी जान लेने से पुरुष या स्त्री का पुनर्जन्म नहीं होता है। विप्रपण! इस प्रकार के जो मत हैं, वे सब मैंने बता दिये। वे होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ॥३७॥ इसलिए प्रीतिपुक्त, गुणों से युक्त तथा सत्पु-नोक्ति तथा से युक्त पुत्र को जानकर प्रसन्न मन से पूर्वोक्त आत्मज्ञान देना चाहिये।

मुनियों ने कहा—मुने! ब्रह्मा ने कहा है कि मोक्ष उपाय से मिलता है बिना उपाय के नहीं। उस उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं ॥३९-४०॥

व्यास बोले—महापण्डितो! समीचीन दर्शन को ही हम लोग इसका उपाय कह सकते हैं, जिससे समस्त पदार्थों का अन्वेषण किया जा सकता है ॥४१॥ घट की सामर्थियों में जो कारण होता है, वही घटो-त्पत्ति में नहीं होता। इसी तरह धर्म के उपाय का जो कारण होता है, वह धर्म का नहीं होता है ॥४२॥ पूर्व समुद्र को जो मार्ग जाता है, वह परिचय समुद्र को नहीं जाता है। निष्पापो! मोक्ष का एक ही मार्ग है, वह

१क स सत्यवादिनः । २ग इदं विप्रानु० । ३क ०त्तद्व्याप्तिवर परम् । ४० । ४ग पतानि ।

५. मुक्त । ६ग ०र्थाप्राप्नुवष्व । ७क ०घटोत्पत्ते न । ८स. भागाय० ।

समया क्रोधमुच्छिन्नात्कामं संकल्पवर्जनात् । सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४॥
 अप्रमादाद्भुयं रक्षेद्रक्षेत्रं च सविदम् । इच्छा द्वेषं च कामं च धर्मेण विनिवर्तयेत् ॥४५॥
 निद्रां च प्रतिभा चैव ज्ञानाम्यासेन तत्त्ववित् । उपद्रवास्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६॥
 लोभं मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् । अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७॥
 आपत्या' च जयेदाज्ञां' सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात् । अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधा योगेन पण्डितः ॥४८॥
 कारणेनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तूष्णां च परितोषत' । उत्पानेन' जयेत्तन्द्रां' बितर्कं निश्चयाज्जयेत् ॥४९॥
 मौनेन बहुभाषा च शौर्येण च भयं जयेत् । यच्छेद्वाङ्मनसो बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०॥
 ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः । तवेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥५१॥
 योगदोषान्तमुच्छिद्य पञ्च यान्त्वयो विदुः । कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२॥
 परित्यज्य निषेवेत यथावसोगसाधनात् । ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीराजवंक्षमा ॥५३॥
 शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः । एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहृति च ॥५४॥
 सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते । धूतपापं स तेजस्वीलघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५॥
 कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशोद्बल्यः पदम् । अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६॥

मुक्तसे सुनिय ॥४३॥ धीर पुरुष समा से क्रोध को नष्ट करे, सकल त्याग से काम को नष्ट करे और सत्त्व गुण के संसेवन से निद्रा का उच्छेद करे ॥४४॥ सावधानता से मम को जीते और शरीर तथा बुद्धि की रक्षा करे । धर्म से इच्छा, द्वेष तथा काम को निवृत्त करे ॥४५॥ तत्त्ववेत्ता व्यक्ति ज्ञान के अभ्यास से निद्रा को जीते और प्रतिभा को बढ़ाये । योगी हितकारक सुषुप्त एवम् अल्प मोहन से उपद्रवों को दूर करे ॥४६॥ सतोष से लोभ-मोह का तथा तत्त्वदर्शन से विषयों का त्याग करे । अधर्म को निन्द्या से तथा धर्म को उपेक्षा से जीते ॥४७॥ उत्तरकाल से आत्मा को तथा सगत्याग से सामर्थ्य को जीते । अनित्यत्व से स्नेह को तथा योग से भूल को जीते ॥४८॥ कारण से आत्मा को तथा सतोष से तूष्णा को जीते । उत्पान से तन्द्रा को तथा निश्चय-से वि-तर्क को जीते ॥४९॥ मौन से बहुत बोलने को तथा वीरता से भय को जीते । बुद्धि से बाणी तथा मन को समझे । ज्ञानचक्षु से बुद्धि को समझे, ज्ञान को महान् आत्मा समझे, उसको आत्मा की शान्ति समझे और उसको शान्त एव पवित्र नर्म के द्वारा समझना चाहिये ॥५०-५१॥ विद्वानो ने काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न रूप जिन पाँच पाप-दोषों का बतलाया है, उनका उच्छेद करे ॥५२॥ योगसाधन द्वारा दोषों का परित्याग करने आत्मस्थित होना चाहिये । ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, संज्ञा, श्रजुता, क्षमा, शौच, आचार तथा इन्द्रिया का संयम—इनसे तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥५३-५४॥ योगी के समस्त सकल सिद्ध होते हैं और विज्ञान बढ़ता है । निष्पाप, तेजस्वी, लघ्वाहारी तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्म पद को प्राप्त करता

अदंग्यमनुदीर्णत्वमनुद्देशो ह्यवस्थितिः । एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः ॥
तथा वाक्कायमनसा नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम
अष्टात्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

योगविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सांख्यं योगस्य नो विप्र विशेष्यं वक्तुमर्हसि । तव धर्मज्ञ सर्वे हि विदितं मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच

सांख्या. सांख्यं प्रशंसन्ति 'योगान्योपविदुस्तमाः । वदन्ति कारणः श्रेष्ठः स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२॥
अनौप्यरः कथं मूढ्येदित्येव मुनिसत्तमा । वदन्ति कारणः श्रेष्ठ योगं सम्यग्दमनीयिणः ॥३॥
वदन्ति कारणं वेद सांख्य सम्यग्द्विजातयः । विज्ञायेह गतो सर्वा विरक्तो विपश्येयु यः ॥४॥

वाहिये । अमूर्खता, असम्यक्त्व, काम-अध-न्याय, अदंग्य, अनुद्देश, वाणी, शरीर तथा मन का समय—ये मोक्ष के निर्मल मार्ग बतलाये गये हैं ॥५५-५७॥

श्रीब्रह्मपुराण में सांख्य-योग निरूपण नामक दो सौ अठ्ठीसवी अध्याय समाप्त ॥२३८॥

अध्याय २३६

योगविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्र । सांख्य और योग की विशेषता हम बतलाइये । धर्मज्ञ । मुनिश्रेष्ठ । आप सब कुछ जानते हैं ॥१॥

व्यास बोले—सांख्यवेत्ता सांख्य की प्रशंसा करते हैं और यागवेत्ता याग की । दोनों अपने-अपन पक्ष की पुष्टि के लिये उत्तम प्रमाण भी बतलाते हैं । मुनियेच्छो । ईश्वर की न मानने वाला व्यक्ति कैसे मुक्त होगा यह कह कर मनीषी लोग योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं । परन्तु सांख्यवेत्ता द्विजाति वेद की कारण बतलाकर सांख्य

ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा । एतद्ब्रह्मंहाप्रज्ञाः सांख्यं च मोक्षदर्शनम् ॥५॥
 स्वपक्षे कारणं ग्राह्य समर्थं वचनं हितम् । शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतं ॥६॥
 'प्रत्यक्षं हेतवो योगाः सांख्याः शास्त्रविनिश्चयाः । उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमा ॥७॥
 उभे चैते मते ज्ञाते भुनीन्द्रा' शिष्टसमते । अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमांगतिम् ॥८॥
 तुल्यं शौचं तयोर्युक्तं दया भूतेषु चानघा ॥ व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वसमं तयोः ॥९॥

मुनय उचुः

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया घात्र महामुने । तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं श्लेष च केवलम् । योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्चैतां प्राप्नुवन्ति तान् ॥११॥
 यथा वाग्निमिषाः स्थूल जाल छित्वा पुनर्जलम् । प्राप्नुवन्ति तथा योगास्तत्पदं धीतकल्मषाः ॥१२॥
 तथैव वागुरां छित्वा बलवन्तो मया मृगाः । प्राप्नुयुविमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३॥
 लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्वित । छित्वा योगात्परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम् ॥१४॥
 'अबलास्त्वाविना विप्रा पागुरासु तथाऽऽपरे । विनश्यन्ति न संदेहस्तद्ब्रह्मयोगबलादृते ॥१५॥

को ही श्रेष्ठ कहते हैं । समस्त क्रियाओं को जानकर जो मनुष्य विषयों से विरक्त होता है वही मुक्त होता है । महापठिता ने इस सांख्य को मोक्षदर्शन बतलाया है । अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये वेदवचन तथा शिष्टा का मत ग्रहण करना चाहिये । योग का प्रत्यक्ष प्रमाण है और सांख्य का शास्त्र प्रमाण है । मुनिश्रेष्ठो ! दोनों के शिष्टसंमत मत ज्ञात होने पर और शास्त्रानुसार उनके अनुष्ठान करने पर परम सति की प्राप्ति होती है । दोनों ॥ शौच, दया, तथा व्रतों का धारण तुल्य है, परन्तु दर्शन एक जैसा नहीं है ॥२-९॥

मुनियों ने कहा—महामुने ! यदि दोनों में व्रत, शौच और दया तुल्य है तो दर्शन क्या नहीं तुल्य है ? द्विजश्रेष्ठ ! यह हमें बतलाइये ॥१०॥

व्यास बोले—मनुष्य योग में बाधा डालने वाले राग, मोह, स्नेह, काम तथा श्लेष रूपी पाँच दोषों का प्राप्त करता है ॥११॥ जैसे मत्स्य स्थूल जाल को छेदकर पुनः जल में बल जाता है वैसे मनुष्य योग से निष्ठाप होकर सादरत पर को प्राप्त कर लेते हैं ॥१२॥ जैसे बलवान् मृग जाल को तोड़कर विरक्त होते हैं वैसे योगी समस्त बन्धा का मुक्त होकर विमल मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ विप्रबन्ध । बलान्वित योगी लाभजन्य बन्धनों का साहकर निर्मल तथा शुभ मार्ग को प्राप्त करते हैं ॥१४॥ योगबल के बिना मनुष्य मात्र में अबल तथा व्याकुल होकर विनष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥१५॥ बलहीन ब्राह्मण जाल में फँसते हैं । परन्तु निष्ठाप

बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः। वन्यं न गच्छन्त्यनघायोगास्ते तु सुदुर्लभाः॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः। तत्राश्रयता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः॥१७॥
कर्मजंबन्धनैर्वद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अवला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः॥१८॥
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्पति 'दुर्बलः। आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबल. स्मृतः॥१९॥
स एष च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः। समोरणगतः कृत्स्नां दहेत्सिद्धं महोमिमाम्॥२०॥
'तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः। अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोपयेज्जगत्॥२१॥
दुर्बलश्च यथा विप्राः श्रोतसा ह्लियते नरः। बलहीनस्तथा योगी विपर्यह्यते च सः॥२२॥
तदेव तु यथा श्रोतो घिष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विपर्यह'त.॥२३॥
विशन्ति वा 'वशाद्वाऽय योगाद्योगबलान्विताः। प्रजापतीन्मनुस्सर्वान्महाभूतानि चेश्वरा.॥२४॥
न यमो नागतकः 'क्रुद्धो न मृत्युर्भोमविक्रम.'। विशन्ते तद्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजस'॥२५॥
'आत्मना च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्वलं प्राप्य तंश्च सर्वमर्हो चरेत्॥२६॥
प्राणुपाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोभ्रं तपश्चरेत्। सक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव॥२७॥
बलस्यस्य हि योगस्य बलाय' मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभव विष्णुमुपपन्नमज्ञायम्'॥२८॥
बलानि योगप्रोप्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः। निदर्शनाय सूदमाणि यस्यामि च पुनर्द्विजा.॥२९॥

योगी बन्धन से नहीं पड़ते ॥१६॥ जैसे पक्षी सूक्ष्म जाल से फँसकर अशक्त होने के कारण विपत्ति में पड़ जाता है वैसे निर्बल मनुष्य भी बद्ध हो जाता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१७॥ द्विजाणः। कर्मजन्म बन्धना से बद्ध होकर बलहीन मनुष्य मुक्त नहीं होता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१८॥ विप्रबन्ध। जैसे अल्प तथा दुर्बल अग्नि स्थूल इन्धनों से आक्रान्त होने पर वृक्ष जाता है वैसे निर्बल योगी भी नष्ट हो जाता है ॥१९॥ पुनः जैसे वही बलप्राप्त अग्नि बाघ की सहस्रता से शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देने की क्षमता रखता है वैसे तपस्वि तथा महाबली योगी प्रलयालीन सूर्य की तरह निश्चित अपने को सुखा बालने की क्षमता रखते हैं ॥२०-२१॥ जैसे दुर्बल मनुष्य धारा में बह जाता है वैसे बलहीन योगी विषयों में बह जाता है ॥२२॥ जैसे छड़ी धारा की हाथी सहज में पार कर जाता है उसी तरह योगबल प्राप्त मनुष्य विषयों की आसानी से पार कर जाता है ॥२३॥ योगबल से मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त कर प्रजापति, मनु तथा मनुष्य विषयों की आसानी से पार कर जाता है ॥२४॥ कोई योगी विषयों में फँस जाय तो वह पुनः तपस्या करके सूर्य की तरह तेज का विचरण करता है ॥२५॥ कोई योगी विषयों में फँस जाय तो वह पुनः तपस्या करके सूर्य की तरह तेज का विचरण करे ॥२६॥ कोई योगी विषयों में फँस जाय तो वह पुनः तपस्या करके सूर्य की तरह तेज का विचरण करे ॥२७॥ मुनिश्रेष्ठो! योगबल प्राप्त करने के लिये मोक्ष के कारण विष्णु की शरण में जाना चाहिये ॥२८॥ द्विजश्रेष्ठो! योग-प्रतिपादित ऐश्वर्यों के बारे में मैंने इतना कहा, अब योग के सूक्ष्म रहस्य को

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः । निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः । युक्तः सम्यक्तया योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥
 स्नेहपात्रे यथा पूर्णं मन आधाय निश्चलम् । पुरुषो युक्तः आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥३२॥
 मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम् । करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने ॥३३॥
 यथा च नावं विप्रेन्द्राः कर्णधारः समाहितः । महार्णवगता शीघ्रं नयेद्विप्रास्तु पत्तनम् ॥३४॥
 तद्वत्मात्मसाधानं युक्तो योगेन योगवित् । दुर्यमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः ॥३५॥
 सारथिश्च यथा युक्तः सदस्वान्सुसमाहितः । देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभम् ॥३६॥
 तथैव च द्विजा योगी धारणासु समाहितः । प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः ॥३७॥
 आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानोऽवतिष्ठति सोऽचलः । पाशं बह्वेवं मोनानां पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥३८॥
 नान्याः शीघ्रं च कुक्षौ च हृदि वसति पारययोः । दर्शने भवने वाऽपि घ्राणे चामितविभ्रमः ॥३९॥
 स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः । आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्पद्विजोत्तमाः ॥४०॥
 सुशीघ्रमचलप्रस्थं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् । उत्तमं योगमास्थाय पवीच्छति विमुच्यते ॥४१॥

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च सत्तम । योगी बलमवाप्नोति तद्ब्रह्मवाक्वतुमर्हति ॥४२॥

मुनिये ॥३९॥ आत्मा की समाधि तथा धारणा के प्रति सूक्ष्म विचारो को सुनिये ॥३०॥ जैसे सावधान धनुर्धारी अपने लक्ष्य को बेश कर देता है उसी तरह सम्यक् योगाभ्यास करने वाला योगी नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३१॥ जैसे तैलपान को लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय मन को निश्चल रखना पड़ता है उसी तरह मनुष्य मन को सावधान करने योगाभ्यास करे ॥३२॥ इस प्रकार योगाभ्यास से मन को निश्चल करके मुक्त होकर मनुष्य सूर्य की तरह अमल आत्मा का दर्शन करता है ॥३३॥ जैसे सावधान नाविक महानुद्रे मे पड़ी नाव को शीघ्र निरुपस्थान पर ले जाता है उसी तरह योगी पुरुष आत्म-समाधान करने देहत्याग के बाद दुर्यम स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३४-३५॥ जैसे पूर्ण सावधान सारथि अच्छे घोड़ा को शीघ्र अभिमत स्थान पर ले जाते हैं और उत्तम तीर चलाने वाले के हाथ से मुक्त तीर लक्ष्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार धारणाओं से समाहित योगी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३६-३७॥ जो आत्मा मे आत्मा को प्रसिद्ध करके निश्चल हो जाता है वह जाल फाड़कर मछली की तरह अपने स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ नाभि, मस्तक, कुक्षि, हृदय, पार्व, नेत्र, कान, तथा नाक—इन स्थानों मे महाव्रतधारी, अभिततेजस्वी योगी अच्छी तरह आत्ममन सयोग करने अत्यन्त चञ्चल शुभाशुभ कर्म को दग्ध कर उत्तम योग मे स्थित हो इच्छानुसार भिमुक्त हो जाता है ॥३९-४१॥

मुनिपौ ने कहा—योगी को बलप्राप्ति के लिये जिस तरह का भोजन करना चाहिये और जिस तरह का नहीं करना चाहिये, यह हम बतलादिये ॥४२॥

॥ व्यास उवाच ॥

कणानां भक्षणं युक्तं पिण्याकस्य च भो द्विजा । स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवान्मुयात् ॥४३॥
 भुञ्जानो यावत् रुजं दोषकालं द्विजोत्तमा । एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवान्मुयात् ॥४४॥
 पशूनामांसांस्तु श्विजान्सर्वश्च गृहास्तथा । अपि पोत्वा पयोमिथा योगी बलमवान्मुयात् ॥४५॥
 अवगुणं पिब्या मासं सततं मुनिसत्तमा । उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवान्मुयात् ॥४६॥
 कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णं यथैव च । भयं शोकं तथा स्वापं पौरुषान्विषयास्तथा ॥४७॥
 अरतिं दुर्जया चैव घोरं दृष्ट्वा च भो द्विजा । 'स्पर्शं निद्रां तथा' तन्नां दुर्जया मुनिसत्तमा ॥४८॥
 दौषयन्ति' महात्मानं सूक्ष्ममात्मानमात्मना । भीतरागा महाप्राप्ता ध्यानाभ्ययनसपदा' ॥४९॥
 दुर्गस्तथैव मत्तं पन्था ब्राह्मणानां विपरिचिताम् । यः कश्चिद्ब्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुंगवा ॥५०॥
 यथा कश्चिद्ब्रजं घोरं बहुसंपत्तरोत्सुपम् । श्वध्वजतोयहीनं च दुर्गमं बहुकण्टकम् ॥५१॥
 अभवत्तमदवीप्रायं दावदग्धमहोरुहम् । पन्थानं तत्स्करावीणं क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥५२॥
 योगमार्गं समासाद्य यः कश्चिद्ब्रजते द्विज । 'क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुबोपोऽपि' सतत ॥५३॥

॥ व्यास बोले—पिण्या (हीन या कसर) तथा कणों (बावल आदि के महीन टुकड़ा) के भक्षण और स्निग्ध पदार्थों के व्रजन से योगी की बल प्राप्ति होती है ॥४३॥ चिरकाल तक रुज पच का भक्षण करने से और एक ही बार भोजन करने से विशुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४४॥ पशु, मांस, ऋतुआ तथा अपीं तक मुकाआ म बास करने से और दूध मिश्रित जल पीने से योगी बल प्राप्त करता है ॥४५॥ मुनिपण्डितों ! महीना तक अलण्ड उपवास करने शुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४६॥ काम क्रोध सर्दी, गर्मी, भय, घोर, स्थान, पुरुष सम्बन्धी विषय, दुर्गम एवं भयकर भिन्नुणा स्पष्ट निद्रा तन्ना को जीतकर भीतराग महाप्राप्ति पुरुष ध्यान और अभ्ययन के बल से सूक्ष्म आत्मा का दशन करते हैं ॥४७-४९॥ मुनिपुंगवों ! विश्वात् ब्राह्मणा का यह मार्ग अत्यन्त कठिन है । जो कोई कुचलता से इस मार्ग को पार कर जाता है, वह वन्द्य है ॥५०॥ जैसे समयकर, अनेक रूप तथा द्विचक्र जीवा से व्याप्त, जलहीन, दुर्गम, कण्टकाकीर्ण, दावानि से दृष्ट वृक्षा से युक्त तथा घोर से आमान्त वन के मार्ग पर चलना कठिन है उसी तरह योगमार्ग पर भी चलना दुस्तर है । जो कोई द्विज योगमार्ग पर आरुढ़ होकर चल पड़ता है, उसे बड़ी कुचलता से उस मार्ग को तय करना चाहिए, क्योंकि वह मार्ग बहुत दोषों से युक्त होने पर भी नित्याणप्रद है ॥५१-५३॥ तीक्ष्ण दूर धार पर उहरना जैसे दुःसाध्य है वैसे योग की

१ख दवाह। २ख भय। ३क ०न्ति तथोऽस्मा०। ४क छ ०संपुता। दु० १५ख ०गदिदो०।
 ६क ०दुपोष्यो हि स०।

[आस्थेय] क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमा । धारणा सा तु योगस्य दुर्गममकृतात्मभि ॥५४॥
 विपमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् । नेतृहीना यथा नाव पुरुषाणा तु वै द्विजा ॥५५॥
 यस्तु तिष्ठति 'योगायौ' धारणासु यथाविधि । 'मरण' जन्मदुःखित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥५६॥
 ॥ 'नानाशास्त्रेषु नियत' नानामुनिनिषेवितम् । पर योगस्य पन्थान निश्चित' त द्विजातिषु ॥५७॥
 । पर हि' तद्ब्रह्ममय मुनोन्मा, ब्रह्माणमोश वरद' च विष्णुम् ।
 ॥ 'भव' च धर्मे च महानुभाव', यद्ब्रह्मपुत्रान्तु महानुभावान् ॥५८॥
 । तमश्च कष्ट सुमहद्वज्रश्च, सत्त्व च शुद्ध प्रकृति परा च ।
 । सिद्धि च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्न सुमहच्च धैर्यम् ॥५९॥
 । ताराधिप स्त्रे विमल 'सुतार, विश्वाश्च देवानुरगान्पितृश्च ।
 । शैलाश्च कृत्स्नानुदधीश्च वाञ्छलाग्रदोश्च सर्वा सनगाश्च नागात् ॥६०॥
 । साध्यास्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
 । परस्पर प्राप्य महान्महात्मा विशते योगो नचिराद्विमुक्त ॥६१॥
 । कथा च या विप्रवरा प्रसवता, ह्ये महावीर्यमतो शुभयम् ।
 । योगान्स सर्वान्भूय' मर्त्या, नारायण त इतमान्बन्ति ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे योगविधिनिर्णय

नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३९॥

धारणा भी अवस्थात्मिका स कठिन है ॥५४॥ विप्रबुद्ध । धारणा में विपमता जानें ॥ नाविक बिहीन नौका की तरह पुरुषों की शुभ गति नहीं होती है ॥५५॥ जो विपानपूवक धारणा में स्थित होता है वह जन्म-मरण रूप दुःख में मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥५६॥ योग का मार्ग माना शास्त्रों में निर्णीत अनेक मुनियों द्वारा सुसंविष्ट तथा द्विजातियों के लिए सुनिश्चित है ॥५७॥ मुनिवर । परब्रह्म, ब्रह्मा, देव, ब्रह्मायक विष्णु धर्म, महानुभाव ब्रह्मपुत्र, तम, कष्ट, रज, सत्त्व, शुद्ध, पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण-पत्नी तेज, धैर्य, ब्रह्मा, सूर्य विश्वदेव, देव, सप्त, पितर, पवत, समुद्र, नदी, नाग, साध्य, यक्षगण, दिता, गन्धर्व, सिद्ध, पुरुष तथा स्त्रियाँ को परस्पर प्राप्त कर महारमा योगी धीमन् मुक्त हो जाते हैं । विप्रप्रष्टो ! महामाणिगाली दैव के सम्बन्ध में जो कथा प्राप्त है, वह शुभ है । अनुप्य समस्त योगों का अनुभव करने धीमन् नारायण को प्राप्त करते हैं ॥५८-६२॥

श्रीब्रह्महपुराण में व्यास और श्रियया व संवाद प्रकरण में योगविधिनिर्णय

नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३९॥

१क ०गान् वै ०। २क ०रणा तु य०। ३क ०न दुश्चिन्तित्य च सु०। ४क ॥ ०पु निष्पन्न योगेष्वेवमुदाहृतम्। ५क ०त तद्द्विजा०। ६क हित ब्रह्म०। ७क ०द वरिष्ठम्। ८ग महानर। ९क सुभाव। १०ग ०नसिम् ०।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसंमता । योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितविणा ॥१॥
'सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः । त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विवर्तितं' हि ते ॥२॥

व्यास उवाच

भृगुष्वं मुनयः 'सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम् । विहितं यतिभिर्बृद्धैः कपिलादिभिरीश्वरैः ॥३॥
यस्मिन्सुविग्रमाः केचिद्बुद्ध्यन्ते मुनिसत्तमाः । गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥४॥
ज्ञानेन परिसंख्याय सदोपान्विषयान्विजाः । मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पेशान्विषयांस्तथा ॥५॥
विषयानौरगाञ्जात्वा गन्धर्वविषयांस्तथा । पितॄणां विषयाञ्जात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः ॥६॥
सुपर्णविषयाञ्जात्वा मरुतां विषयांस्तथा । मर्हपविषयांश्चैव राजपविषयांस्तथा ॥७॥
आसुरान्विषयाञ्जात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च । देवपविषयाञ्जात्वा 'योगानामपि वै परान् ॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तथा । आयुषश्च परं कालं लोकैर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥९॥

अध्याय २४०

सांख्यविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्रेन्द्र ! आपने शिष्ट-समत क्रिया का सम्यक् वर्णन किया । जैसे हितचिन्तक गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं उसी तरह आपने हमें योगमार्ग का यथोचित उपदेश दिया । अब सांख्यदर्शन के अनुसार तत्त्वतः धर्म की विधि बतलाइये । तीनों लोक में जो ज्ञान है, वह सब आपको विदित है ॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवृन्द ! ज्ञानियों के समस्त आख्यान को आप लोग सुनें, जिसका विधान बुद्ध कपिल आदि यतियों ने किया है, जिसमें कितने ही लोग विभ्रान्त हो जाते हैं और जिसमें गुण बहुत-से हैं तथा दोषों की हानि बताई गई है ॥३-४॥ द्विजगण ! ज्ञान के द्वारा दोषयुक्त विषयों को समझना चाहिये । मनुष्य सबन्धी तथा पिशाच सबन्धी सकल दुर्जय विषयों का ज्ञान करना चाहिये ॥५॥ सर्प के विषय, गन्धर्वों के विषय, पितरों के विषय, तिर्यग्योनि में प्राप्त जीवों के विषय, गरुडविषय, वामुविषय, मर्हपविषय, राजपविषय, असुर-विषय, विश्वेदेवों के विषय, देवविषयों के विषय, योवों के विषय, प्रमाण के विषय, ब्रह्म के विषय तथा आयु से परे काल को तत्त्वतः समझना चाहिये ॥६-९॥ मुनिश्रेष्ठो ! सुख के उत्तरकाल को समझना चाहिये । विषया-

सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः। प्राप्तकाले च यद्दुःखं पततां विपर्ययिणाम् ॥१०॥
 तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्। स्वर्गस्य च गुणाञ्ज्वात्वा दोषान्सर्वाश्च भो द्विजाः ॥११॥
 वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वेदिकाः। ज्ञानयोगे च ये दोषा 'ज्ञानयोगे' च ये गुणाः ॥१२॥
 सांख्यज्ञाने च ये दोषास्तथैव च गुणा द्विजाः। सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा ॥१३॥
 तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा। षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत् ॥१४॥
 द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन 'प्रलयप्रेक्षण'ेन तु ॥१५॥
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणैर्भावितात्मभिः। प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥१६॥
 रूपेण दृष्टि संयुक्ता ध्यानं गन्धगुणेन च। 'शब्दप्राहृषं' तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च ॥१७॥
 स्पर्शं स्पर्शं तथा शब्दं वायुं चैव तदाश्रितम्। मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहेषु संश्रितम् ॥१८॥
 विषयं क्रान्ते बले शक्ते कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्। अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि सञ्चिताः ॥१९॥
 तेजो वायो तु संयुक्तं वायुं नभसि चाऽश्रितम्। नभो महति संयुक्तं तमो महसि सस्यितम् ॥२०॥
 रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽमनि। सवतमात्मानमोक्षे च देवे नारायणे तथा ॥२१॥
 देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न वचित्। ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृत्तं पण्डितभिर्गुणैः ॥२२॥

मिलायी जीव के वर्तमानकालीन दुःख, तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हुए जीवों के दुःख तथा नरकों के दुःख को समझना चाहिये ॥१०॥ द्विगुण। स्वर्ग के समस्त गुण तथा दोषों को समझना चाहिये। वैदिक गुण-दोष, ज्ञानयोग के गुण-दोष तथा सांख्यज्ञान के गुण-दोषों को समझना चाहिये ॥११॥ सत्त्व के दश गुण, रज के नौ गुण, तम के आठ गुण, बुद्धि के सात गुण, आकाश के छह गुण, और पुनः तम के तीन गुण रज के दो गुण तथा सत्त्व के एक गुण को समझना चाहिए। प्रलय-दशानपूर्वक तत्त्वतः मार्ग की जानकर ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कारणों के द्वारा पवित्र मोक्ष को उसी तरह प्राप्त कर लेते हैं जैसे सूक्ष्म वस्तु आकाश को ॥१२-१६॥ रूप से संयुक्त दृष्टि को, गन्धगुण से युक्त श्रुति को, शब्दप्राहृष कर्ण को, रस-गुण से युक्त जिह्वा को, स्पर्शयुक्त त्वचा को, तदाश्रित वायु को, तमोयुक्त मोह को, मोहयुक्त लोभ को, प्रक्रान्त बल में विष्णु को, कोष्ठ में इन्द्र तथा अग्नि को, जल में देवी को, तेज से युक्त जल को, वायु में संयुक्त तेज को, आकाश के आश्रित वायु को, महत्त्व से जुड़े हुए आकाश को, तेज में स्थित तम को, रज में आश्रित सत्त्व को तथा आत्मा में आश्रित सत्त्व को, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में आश्रित आत्मा को और मोक्ष से संयुक्त देव को समझना चाहिए। मोक्ष को किसी में भी आश्रित नहीं समझना चाहिए ॥१७-२१॥ सोलह गुणा से घिरे हुए सत्त्वगुण-सम्पन्न शरीर को तथा स्वमान एव देहाश्रित यावना को जानकर मध्यस्थ की तरह आत्मा को समझना

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम् । मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यत ॥२३॥
 द्वितीयं कर्म ये ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विषयेपिणाम् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च सर्वानात्मनि संश्रितान् ॥२४॥
 दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम् । प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः ॥२५॥
 आद्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभव चानिलं पुनः । सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः ॥२६॥
 प्रजापतीन्परीक्षेच्च सर्गाश्च सुबहून्वरान् । सप्तर्षीश्च बहूञ्ज्ञात्वा राजर्षीश्च परंतपान् ॥२७॥
 सूर्योन्मस्रतश्चाग्न्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसंनिभान् । ऐश्वर्याञ्ज्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजाः ॥२८॥
 महतां भूतसंघानां श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः । गतिं चाद्यां शुभां ज्ञात्वा अर्चार्हाः पापकर्मणाम् ॥२९॥
 वैतरण्यां च यद्दुष्कृतं पतितानां यमक्षये । योनिषु च विचिन्तासु संचारानशुभांस्तथा ॥३०॥
 जठरे चाशुभे वासं शोणितोवकभाजने । श्लेष्मन्मूत्रपुरीये च तीव्रगन्धसमन्विते ॥३१॥
 शुक्रशोणितसंघाते मज्जास्नायुपरिग्रहे । शिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽयं वै ॥३२॥
 विनाय' हितमात्मानं योगीश्च विविधान्द्विजाः । तामसानां च जन्तूनां रमणोयान्तात्मनाम् ॥३३॥
 सार्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं मुनिसत्तमाः । गंहितं महतामयं सांख्यानौ विदितात्मनाम् ॥३४॥
 उपप्लवास्तथा घोराऽश्विनस्तेजसस्तथा । साराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ॥३५॥

चाहिये, जिसमें पाप नहीं है ॥२२-२३॥ द्विजवेष्टो ! विषयामिलायी व्यक्तियों के द्वितीय कर्म को जानकर इन्द्रिया तथा आत्माश्रित इन्द्रिय-विषयों को समझना चाहिये ॥२४॥ वेदानुसार मोक्ष के दुर्लभत्व को जानकर प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान को तत्त्वत जानना चाहिये ॥२५॥ आद्यबायु, कारणबायु और पुन उनबासा धाम्य को विधिपूर्वक जानकर प्रजापति, ऋषि, सर्ग (सृष्टि), सप्तर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मन्त्र, सूर्यसदृश ब्रह्मर्षि तथा ऐश्वर्यव्युत व्यक्तियों को समझना चाहिये ॥२६-२८॥ द्विजगण ! महान् भूतसंघों के नाश को सुनकर पापजनों की गति तथा शुभ वाणी को जानना चाहिये । पतितों को यममार्ग में वैतरणी में जो बुझ होता है, उस जानना चाहिय तथा विचित्र योनियों में जो उनके संचरण एवं अमगल होते हैं उन्हें जानना चाहिये ॥२९-३०॥ रक्त तथा जल के पात्र, वक्त्र, मूत्र तथा विद्या से युक्त तीव्रगन्धसमन्वित धीर्य, शोणित, मज्जा तथा स्नायु से संयुक्त, संहता शिराओं से समाकीर्ण तथा नवद्वारयुक्त शरीर के अशुभ उदर में वास का जानना चाहिये ॥३१॥ आत्मा, हिन, विविध याग, रमणीय एवं अनुतात्मा तामस जन्तुओं को जानना चाहिये ॥३३॥ सार्विक जन्तुओं के कुत्सित कर्म का तथा विदितात्मा सार्विका के गंहित कर्म का जानना चाहिये ॥३४॥ चार उपद्रवा, चन्द्रमा के तेज, सारो के पतन, नक्षत्रों के विपर्यय, सुख-दुःख आदि के विप्रवास तथा कृष्ण का जानना चाहिये ॥३५॥

१ख सत्यितान् । २क स ०व मागश्चैव वल्लुधराम् । स० । ३क स ०मो प्राप्ता पापाश्च क० ।

४ख ०सायाहि० ।

'द्विजानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं द्विजा । 'अन्योन्यमक्षणं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥३६॥
 बाल्ये मोहं च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम् । रागं मोहं च संप्राप्तं क्वचित्सत्त्वं समाश्रितम् ॥३७॥
 सहस्रेषु नरैः कश्चिन्मोक्षबुद्धिः समाश्रितः । दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञानं श्रुतिपूर्वकम् ॥३८॥
 'बहूमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थता पुनः । विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय च पुनर्द्विजा ॥३९॥
 गतासूनां च सत्त्वानां देहान्मिच्छां तथा शुभान् । वासं कुलेषु 'जन्तूनां मरणाय धृतात्मनाम् ॥४०॥
 सात्त्विकानां च जन्तूनां बुद्धिं विज्ञाय भो द्विजा । ब्रह्मघ्नानां गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम् ॥४१॥
 सुरापाने च सत्त्वानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम् । गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम् ॥४२॥
 'जननीयुः च वर्तन्ते येन सम्पद्भिर्जोत्सवा । 'सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवा ॥४३॥
 तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम् । तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय च गतीं पुष्पकं ॥४४॥
 वेदवादास्तथा 'चित्रान्तूनां' पर्ययास्तथा । तस्य सवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा ॥४५॥
 पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसतानां च सक्षयम् । क्षयबुद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥४६॥
 बुद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः । क्षयघनानां दृष्ट्वा च पुनर्बुद्धिं तथैव च ॥४७॥
 सयोगानां तथा दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः । देहैर्वैकल्यतां 'चैव सम्पत्तिवित्तं तत्त्वतः ॥४८॥
 आत्मदोषाश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि सन्धितान् । स्वदेहावुत्थितान्धान्मास्तथा विज्ञाय चाशुभाम् ॥४९॥

प्राणियों के परस्पर अंगुल मक्षण, बाल्यावस्था के मोह देह के अवल्याण और जीवसमाश्रित राग-मोह को जानना चाहिये ॥३६-३७॥ हजारों मनुष्य में किसी को मोक्षबुद्धि होती है। श्रुतिपूर्वक विज्ञान तथा मोक्ष के दुर्लभत्व को जानना ॥३८॥ अलब्धता में बहुमान तथा लब्धों में मध्यस्थता को देखना चाहिये। विषयों के दौरात्म्य को जानना चाहिये ॥३९॥ गतप्राण नरिरिया के पवित्र देहों को छोड़कर मरण के लिए शरीर धारण किये हुए (अन्य) जंतुओं के कुलों में निवास व तथा सात्त्विक जन्तुओं के कुल को जानना चाहिये चाहिये ॥४०॥ पतित ब्रह्मघातियों की मदिरापान में आसक्त दुरात्मा ब्राह्मणों की और गुरुपत्नीयामियां की दारुणगति को जानना चाहिये ॥४१॥ ४२॥ द्विजपत्नी । मनुष्य जिस ज्ञान में मातृ आ देवता आ तथा लोका के साथ व्यवहार करते हैं उस ज्ञान से अंगुल वनों की गति को जानना चाहिये ॥४३॥ तिर्यग्योनिया में गये जीवा की पुष्पक-पुष्पक गतियों को समझना चाहिये। वेदवादा का, श्रुतिविषयों को वर्ष मास पक्ष तथा दिन के क्षय को, चंद्रमा के प्रत्यक्ष क्षय तथा बुद्धि को, समुद्र व क्षय तथा बुद्धि को और घन के क्षय एवम् पुनर्बुद्धि को जानना चाहिये। युगों के सयोग को विशेष करके जानना चाहिये। शरीर की विषयता को अच्छी तरह जानना चाहिये। आत्मा में सन्धित दोषों को जानना चाहिये। अपने शरीर से उत्पन्न अंगुल गणों को जानना चाहिये ॥४४-४९॥

मुनय ऊचुः

कानुत्पातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम् । एतं नः संशयं कृत्स्नं ब्रवतुमर्हस्यशेषतः ॥५०॥

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः । मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥५१॥
 कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते । एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
 छिन्दन्ति क्षमया श्रेयं कामं संकल्पवर्जनात् । सत्त्वसंसेवनाग्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ॥५३॥
 छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमत्पाहारतया द्विजः । गुणान्गुणशतैर्जात्वा दोषान्दोषशतैरपि ॥५४॥
 हेतूहेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः । अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैः कृतम् ॥५५॥
 'चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनयंकम् । तमःसग्नमित्थं दृष्ट्वा वर्पद्बुद्बुदसनिभम् ॥५६॥
 नाशप्राप्य 'सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम् । रजस्तमसि समानं पद्मे द्विपमिवावशम् ॥५७॥
 साक्ष्यां विप्रा 'महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम् । ज्ञानज्ञेयेन साक्ष्येन व्यापिना महता द्विजाः ॥५८॥
 राजज्ञानशुभान्गन्धास्तामसांश्च तवाविधान् । पुण्याश्च सात्त्विकान्गन्धान्स्पृशेज्जान्देहसंभ्रितान् ॥५९॥
 छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन सत्तमाः । ततो दुःखादिकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्वयम् ॥६०॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मवेत्ताजा म थोड़े । आप जिन उत्पत्तजन्य दोषों का दखत हैं ? हमारे इस संशय का पूर्ण रूप से समाधान कर दीजिये ॥५०॥

व्यास बोले—मुनिवर ! मार्गों के ज्ञाता, कपिलमतानुयायी, सांख्यशास्त्र के विद्वान् शरीर में पाँच प्रकार के दोषों को बतलाते हैं ॥५१॥ काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास—ये पाँच दोष समस्त प्राणियों के शरीरों में देखे जाते हैं ॥५२॥ काम से क्रोध का उच्छेद करे, संकल्पत्याग से काम का, सत्त्वसंसेवन से निद्रा का और अप्रमाद से भय का नाश करे ॥५३॥ द्विजगण ! अल्पाहार से श्वास का उच्छेदन करे । सैकड़ा गुणा से गुणों को, सैकड़ा दोषों से दोषों को और सैकड़ों कारणों से कारणों को उत्पन्न जानकर विष्णु की सैकड़ा मायाओं से रचित लोक को जल के फेन सदृश समझे ॥५४-५५॥ बीमार के चित्र तुल्य साहीन, अनर्थक, तिमिरावृत, वर्षा के बुलबुले के समान, मृष्टप्राप्य, सुखाधान, नाशोत्तर महामय ॥ युक्त, रज तथा तमोगुण से निर्मल और पृक्-मग्न हस्ती की तरह दिव्य सत्तार का त्याग करना चाहिये ॥५६-५७॥ विप्रबुद्ध ! साक्ष्यवेत्ता महापठित ज्ञान से ज्ञानन योग्य साध्यदर्शन का बल से छत्तान-सिद्ध का परित्याग करते हैं ॥५८॥ राजस अनुमा नौ, तामस गन्धा को, सात्त्विक पुण्या को तथा स्पृशजन्म गन्धा को आत्मज्ञान रूपी शस्त्र से तथा तप रूपी दण्ड से उच्छिन्न कर देना चाहिये ॥५९॥ तदनन्तर महामय रूपी महाहर्ष के युक्त, तम रूपी वच्छप से समन्वित और रजरूपी मत्स्य से सबलित,

१क. ०ते । पञ्च विध्वंसकर्तारो वर्तन्ते । ख. ०ते । योगविध्वंसकर्तारो वर्तन्ते । २क. व्योमपर । ३ख. चिन्तामि० । ४ख. सुखासीन । ५क. ख. ०स्यान्विप्रा० । ६क. ख. ०ज्ञानं तानाह प्रजापति । अनेन दोषान्साक्ष्ये० ।

व्याधिमृत्युमहाघोर । महाभयमहोरमम् । तत कूर्मं रजोभोज प्रज्ञया सतरन्त्युत ॥६१॥
 स्नेहपङ्क्तु जरावुगं, स्पर्शद्वीप द्विजोत्तमा । कर्मापाधः सत्यतीरः स्थित व्रतमनोषिण ॥६२॥
 हवसधमहावेगः । नानारससमाकुलम् । नानाप्रीतिमहारत्नं दुःखज्वरसमीरितम् ॥६३॥
 शोकतृष्णामहावर्तं तोक्ष्यव्याधिमहारुजम् ॥ अस्थिसघातसघट्टं श्लेष्मयोगं द्विजोत्तमा ॥६४॥
 दानमुवताकरः । घोर ओणितोद्गारविद्रुमम् । हसितोरुकुष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुष्करम् ॥६५॥
 रोदनाश्रुमलसारः । सङ्गयोगपरायणम् । प्रलब्ध्वा जन्मलोको य पुत्रपान्धवपत्नम् ॥६६॥
 अहिंसासत्यमर्यादः । प्राणयोगमयोमिलम् । बुद्धानुगामिन क्षीरं सबभूतपयोदधिम् ॥६७॥
 मोक्षदुर्लभविषयः । वाडवासुखसागरम् । तरन्ति यतय सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघा ॥६८॥
 तीव्रा च दुस्तरजन्म विशान्ति विमल नभः । ततस्तान्सुकृतोष्मात्वा सूर्पो वहति रश्मिभिः ॥६९॥
 पद्मसन्तुवदाविषयः प्रबहन्विषयान्द्विजा । तत्र तान्प्रवहो वायु प्रतिगृह्णाति चानघा ॥७०॥
 धीतरागान्धतोन्तिद्वान्धीयंयुक्तास्तपोधनान् । सूक्ष्मं शीतं सुगन्धश्च सुखरसश्च भो द्विजा ॥७१॥
 सप्तानां महता श्रेष्ठो लोकान्गच्छति य शुभान् । सप्तान्वहति विप्रेन्द्रा नभस परमा गतिम् ॥७२॥

महाघातः दुःखं चित्तांशकं व्याधिः तथा मृत्युः कर्पी महाहृदयं कां ज्ञानं स पारं करो ॥६०॥ ६१॥ स्नेहकूपी
 कीचदं बाले, बुद्धताकूपी दुःखं बाले, स्पर्शकूपी द्वीपं बाले, कर्म कूपी अतिगम्भीरतां स युक्तः सत्यकूपी तट
 बाले, हर्षसमूहकूपी महावेगः स युक्तः, नाना रसाः ॥ आकुलः, प्रीति कूपी महारत्नाः स युक्तः, दुःख कूपी श्वार
 भाटः स युक्तः, शोक और तृष्णा कूपी आधर्ताः स युक्तः, तीक्ष्णव्याधि तथा महारोगः भालः, अस्थिसमूहः स युक्तः,
 रक्तः स युक्तः, दान कूपी मुक्तालोकां आकर, भयकर, शान्ति कूपी मृगो स युक्तः, हास्य कूपी शब्दाः स युक्तः,
 अनन्त प्रकारं न भक्षणाः स दुःख्यः, रोदनं च अश्रुमलः स सारः, संग-योग मं निरतः, पुत्र भार वधु रूपं भगवत्पति (?)
 अहिंसा तथा सत्यरक्षा भयंदा (सीमा) स युक्तः, प्राण-वायुमय तरया स युक्तः समूहः अनुगामी, क्षीरं प्राणी रूप
 दूध पराजितं स समुद्रः, महत्कूपी दुःखं पदार्थं स युक्तः और सुख कूपी चन्द्रभागलः स युक्तः ससार कूपी सागरको
 सिद्ध एव निष्ठाप स यासी ज्ञानयोग स पारं करोति है ॥६२॥ ६८॥ दुस्तर जन्म वा सतरण करने सिद्धपुरुष निर्मल
 अविश म प्रवेश करोति है । द्विजगण ! तब सुख उन्हे पुष्पात्मा समझ कर अपनी निरणा न द्वारा ऊपर को
 उठाते है और प्रवहनाम न वायु पक्षतन्तु ने सीतल प्रविष्ट होकर, मोक्षपदार्थों को जनक पास पहुंचाता है ॥६९॥
 ७०॥ विप्रमुद । धीतराग, उपोषन, धर्म्मिशास्त्री सिद्ध यांतया को सूक्ष्म धीत तथा सुगन्धित वायु वा सुधस्तर
 होता है ॥७१॥ विप्रन्द्रो । सात महतो म सबसे श्रेष्ठ वायु, जो पवित्र लोकां म जाता है, उन सिद्धा को आकाश
 की परम सीमा पर पहुंचा देता है ॥७२॥ आकाश उनके रजोगुण की चरम सीमा पर पहुंचाता है और रजो-

नमो' वहति लोकेशाग्रजसः परमां गतिम् । रजोवहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्थ परमां गतिम् ॥७३॥
सत्त्व वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम् । प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः । अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः ॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्वेन्द्वानां महात्मनाम् । सत्याजंवरतानां वै सर्वभूतदयावताम् ॥७६॥

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः । आजन्ममरणं वा ते रमन्ते तत्र वा न वा ॥७७॥
यद्यत्र तत्त्वं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि । त्वद्वृत्ते मानवं नाग्यं प्रष्टुमर्हामि सत्तम ॥७८॥
'मोक्षदोषो महानेय प्राप्य सिद्धिं भतानुपीन् । यद्वि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज' । मानस्य हि परे जाने किंतु दुःखान्तरं भवेत् ॥८०॥

व्यास उवाच

यथान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टश्च संकटः । बुधानामपि समोहः । प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमः ॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुष्व यच्च न मम । बुद्धिश्च परमायत्र कपिलानां महात्मनाम् ॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेहे' देहिना द्विजाः । करुणान्यात्मनस्तानि सूक्ष्म' पश्यन्ति तैस्तु तः ॥८३॥

गुण सत्त्वगुण की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७३॥ शुद्धात्मा सत्त्वगुण उन्हे प्रभु नारायण के पास पहुँचाता है और शुद्धात्मा प्रभु परमात्मा के पास पहुँचा देता है ॥७४॥ परमात्मा को प्राप्त करने निर्मल यति लग्नय हो जाते हैं । द्विजगण ! सब वे अमृतल का प्राप्त कर वहाँ से निवृत्त नहीं होते हैं ॥७५॥ विप्रबुद्ध ! निर्वेन्द्र, सत्य तथा ऋजुता से निरत और समस्त भूतों पर दया करने वाले महात्माओं की वह परमगति है ॥७६॥

मुनिमों ने कहा—स्थिरव्रती सन्यासी उत्तम स्थान को प्राप्त कर वहाँ जन्म-मरण तक तमन करते हैं कि नहीं ? इसने जो तत्त्व बात है, वह हमें बतलाइये । मूने ! आपको छोड़कर हम दूसरे व्यक्ति से नहीं पूछ सकते । यदि यति लोग वही पर विज्ञान से निरत रहते हैं तो सिद्ध ऋषियों के लिए यह महान् मोक्षदोष है । द्विज ! यह दो प्रवृत्ति-लक्षण धर्म हैं जो कि परम ज्ञान से निगमन व्यक्ति के लिए एक दूसरे प्रकार का दुःख है ॥७७-८०॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो ! यह तो बड़ा कठिन प्रश्न आपने पूछ दिया । ऐसे प्रश्न से तो विद्वान् लोग भी धवरा जाते हैं ॥८१॥ यहाँ भी परमवृत्त को आप मुखसे सुन लीजिए, जिसका निरवयव महात्मा कपिल की उत्कृष्ट बुद्धि ने किया है ॥८२॥ द्विजवण ! प्राणियों की इन्द्रियों भी अपनी देह को जानती हैं । मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आत्मा के सूक्ष्म कारणों का देखते हैं ॥८३॥ जगदी पर बनाये चित्र जैसे लकड़ी के नष्ट होते ही नष्ट हो

१ध समो। २य. ते स्मरन्त्यत्र सदोपनया । य०। ३य. मोक्षलानो। ४ध. ०ज। यस्य दिवापरं ज्ञान कि०। ५क. न० जायते हि य०। ६क स्वदेहे। ७ध सूक्ष्म।

॥ आत्मना विप्रहीणानि 'काष्ठकुड्यसमानि तु। विनश्यन्ति न सदेहो चेला इव महान्वे।।८४॥
 ॥ इन्द्रियं सह सुप्तस्य देहिनो' द्विजसत्तमा'। सूक्ष्मश्चरति सत्र नभसीव समोरण ॥८५॥
 ॥ स पश्यति 'यथान्याय स्मृत्वा स्पृशति चानथा। बुध्यमानो यथापूर्वमखिलनह भो द्विजा ॥८६॥
 ॥ इन्द्रियाणि ॥ सर्वाणि स्वे स्व स्थान यथाविधि। अनीशत्वात्प्रलीयन्त सर्पा विपहता इव ॥८७॥
 ॥ इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सवज्ञ। आश्रम्य गतय सूक्ष्माव (श्च) रथात्मा न सशय ॥८८॥
 ॥ सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नाग्रजसश्च गुणान्पुन। गुणाश्च तमस सर्वान्गुणान्बुद्धश्च सत्तमा ॥८९॥
 ॥ गुणाश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणास्तथा। गुणान्वायोश्च सवज्ञा स्नह्याश्च गुणान्पुन ॥९०॥
 ॥ अपा गुणास्तथा विप्रा पाथिवाश्च गुणानपि। सर्वानेव 'गुणव्याप्य' क्षत्रज्ञपु द्विजोत्तमा ॥९१॥
 ॥ आत्मा 'चरति क्षत्रज्ञ कमणा च 'शुभाशुभ। शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च त द्विजा ॥९२॥
 ॥ प्रकृति चाप्यतिक्रम्य क्षुब्ध सूक्ष्म परात्परम्। नारायण महात्मान निर्विकार परात्परम् ॥९३॥
 ॥ विमुक्त सवपापेभ्य प्रविष्ट च हृद्यनामयम्। परमात्मानमगुण नियुत त च सत्तमा ॥९४॥
 ॥ येषु तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भो द्विजा। आगच्छन्ति यथाकाल गुरो सदेशकारिण ॥९५॥
 ॥ शष्य वाऽल्पन कालन 'क्षान्तिं प्राप्तु' गुणास्तथा। एवमुक्तेन विप्रन्द्रा साख्ययोगन मोक्षिणीम् ॥९६॥

जाते हैं उसी तरह आत्मा से विमुक्त होते ही इन्द्रियाँ समुद्र में तरङ्ग की तरह विनष्ट हो जाती हैं, इसमें समय नहीं ॥८४॥ द्विजश्रेष्ठो! प्राणी की सुपुत्तावस्था में जब इन्द्रियाँ भी सुप्त रहती हैं तब सूक्ष्म वायु जैसे आकाश में सबत्र संचरण करता है वैसे उसने शरीर में भी संचरित होता है ॥८५॥ प्राणी जागने पर पहले की तरह देखता है स्मरण करता है और स्पृश करता है। आत्मा के चले जाने पर शास्त्रविहीन होन के कारण इन्द्रियाँ उसी तरह विनष्ट हो जाती हैं जैसे दिप नष्ट होन पर तप ॥८६॥ ८७॥ इन्द्रियाँ के अपन अपन स्थानों में ही उनका अतिशयन कर आत्मा के सदेह सूक्ष्म गति से चल देता है ॥८९॥ विप्रबुद्ध! शरत् के अखिल गुणों पुन राज व गुणा का तम व गुणा की बुद्धि के गुणा को मन व गुणा को आकाश व गुणा को वायु व गुणा को स्नह व गुणा को जल के गुणा का तथा पृथ्वी व सव गुणा की व्याप्त करने क्षम आत्मा बुन भुन सभी को करता है। द्विजम्न! जैसे शिष्य महात्मा वा कर्तुगमन करते हैं उसी तरह इन्द्रियाँ आत्मा का अनुसरण करती हैं ॥८९॥ ९२॥ प्रकृति का भी अतिशयन करने बुद्ध सूक्ष्म परात्पर, नारायण महात्मा निर्विकार समस्त पापों से विमुक्त क्लामय निगुण शास्त्र परमात्मा में मन तथा इन्द्रियाँ प्रविष्ट होती हैं ॥९३॥ गुरु के आशानादी शिष्य जैसे यथासमय आ जाते हैं वैसे वे भी उपस्थित होती हैं ॥९३॥ ९५॥ विप्रवर! साख्य-योग से कल्पवाच में ही मात रूप शान्ति प्राप्त हो जाती है। साख्यवेत्ता महापदित परमपति को प्राप्त करते हैं।

१क स पापकर्महतानि। २क ०ना व्यापूरय तु। सु०। ३क ०मा। मनो भ्रमति।

४ग ०य स्थानान्पुन। ५न गुणाव्याप्य। ६य च क्षति। ७त ०मागुणा। गि०। ८र रा ० देहता०।

९क ०न प्राप्तव्यऽप्यनु०। ख ०न प्राप्तुं प्राप्ता गुणमनाम्। ए०। १०ग प्राप्ति गुणादिना। ए०। ११न स

०म। धीतोणादि परिचय य०।

सांख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम् । ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥१७॥
 अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् । असरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥१८॥ ३
 अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तुं शाश्वतम् । कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥१९॥
 यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते संगमप्रलयविक्रियाः । एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः ॥२०॥
 सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामयिदो जनाः । ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमाच्युतम् ॥२१॥
 प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा ब्रह्मन्ति 'गुणबुद्धयः । सम्यगुक्तास्तथा योगाः' 'सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥२२॥
 अमूर्तस्तस्य विप्रेन्द्राः सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः । अभिज्ञानानि तस्याऽऽहुर्महान्ति' मृनिसत्तमाः ॥२३॥
 द्विविधानि हि भूतानि पृथिव्या द्विजसत्तमाः । अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते ॥२४॥ ५
 ज्ञानं महद्वै महत्तच्च विप्रा, वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे
 यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, सांख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः ॥२५॥
 यच्चेन्निहासेषु महत्सु दृष्टं, ययार्थशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम्
 ज्ञानं च लोके यदिहान्ति किञ्चित्संख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः ॥२६॥
 समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम्
 तथापि सूक्ष्माणि च यानि चैव, सांख्ये यथावद्विहितानि विप्राः ॥२७॥
 विपर्ययं तस्य हितं सदैव, गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन
 तांश्चापि संपार्यं ततः कृतार्थाः, पतन्ति विप्रायतनेषु भूयः ॥२८॥

इस ज्ञान के समान दूसरा ज्ञान नहीं है ॥१६-१७॥ इसमें आप सत्य न करें। सांख्य का ज्ञान महान् है। यह असर, ध्रुव, ब्रह्म, सनातन आदि-मध्य तथा अन्त से रहित, निर्द्वन्द्व, कर्ता, शाश्वत, कूटस्थ तथा नित्य है। प्रवक्ता महर्षि शास्त्रा में ऐसा कहते हैं कि इसीसे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं ॥१८-१९॥ समस्त ब्राह्मण, वेद तथा सामवेत्ता जन, ब्रह्मण्य, परमदेव, अनन्त तथा परम अच्युत की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा को सगुण समझने वाले लोग ऐसा कहते हैं। योग तथा सांख्य वा सम्यक् वर्णन हो गया। विप्रयेष्ठो! सांख्य अमूर्त परमात्मा की मूर्ति है, ऐसा मुता जाता है। उनमें अभिज्ञान महान् है ॥२०-२१॥ पृथिवी पर दो प्रकार के भूत होते हैं—एक अगम्यसम्यक् और दूसरा गम्यसम्यक्। उनमें गम्य येष्ठ है ॥२२॥ मुनीन्द्रो! महत्तत्त्व ज्ञान है और महत्तत्त्व से वेद, सांख्य, योग तथा पुराणों में जो कुछ देखा जाता है, वह सांख्य से प्राप्त है। महान् इतिहासी में जो कुछ देखा जाता है, ययार्थशास्त्रों में जो विशेषता देखी जाती है और लोक में जो कुछ ज्ञान है वह सांख्य से प्राप्त है। विप्रबुद्ध! समस्त दर्शन, परम बल, ज्ञान, मोक्ष, तप और सूक्ष्म पदार्थ—ये सब सांख्य में वर्तलाये गये हैं। सांख्य का अस्तित्ववाद सदैव हितकर है। सांख्यवेत्ता सतत सुख प्राप्त करते हैं। सांख्य-ज्ञान का धारण करने वाले व्यक्ति कृतार्थ होकर ब्राह्मण-शरीर को प्राप्त करते हैं। फिर उस देहत्याग के बाद योगी तथा सांख्यक

१क ०५ । अम्युक्ता० । २क योगे । ३क. ०ख्यातन जात० । ४क ख. अंत द्वि मृ० । ५घ विप्रेषु भवन्ति । मू० ।

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसांख्याः ।
 अतोऽधिकं तेऽभिरता महाहं, सांख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे ॥१०९॥
 तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दृष्टं, नाघो गतिः पापकृतां निवासः ।
 न वा प्रध्याना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ताः ॥११०॥
 'सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
 कृत्स्नं हि सांख्या मुनया महात्मनारायणे धारयताप्रमेयम् ॥१११॥
 एतन्मयोक्तं परमं हि तत्त्वं, नारायणावृष्वभिदं पुराणम् ।
 स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च' हरेत्, भूयः ॥११२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं
 नामकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्माद्भाज्यवर्तते पुनः । किंस्वित्स्वरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुन ॥१॥
 अक्षराक्षरयोग्यं किं पृच्छामस्त्वौ महामुने । उपलब्धं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिपुंगव ॥२॥

मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्विजगण । महापूज्य तथा शिष्ट-जन-सेवित सांख्य में जो व्यक्ति निरत रहते हैं वे नीच-
 योनि में नहीं जाते, उनकी कथोगति नहीं होती और पापियों के यहाँ उनका निवास नहीं होता। मुनिवृन्द
 वे द्विजाति उत्तम नहीं कहलते हैं जिन्हें सांख्य का ज्ञान नहीं है। सम्पूर्ण सांख्य विशाल, परमपुराण, महार्णव,
 विमल, उदार तथा सुन्दर है। हे सांख्य जानने वाले मुनियो । महात्मा नारायण ने अप्रमेय ज्ञान का धारण करो।
 यह परम तत्त्व मैंने बतला दिया। नारायण से इस पुराणन विश्व की उत्पत्ति है। वे ही सृष्टिकाल में सृष्टि
 करते हैं और संहार काल में संहार करते हैं ॥१०५-११२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियो ने संवाद प्रकरण में सांख्यविधिनिरूपण
 नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

मुनियो ने कहा—वे अक्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर जीव की पुनरुत्पत्ति नहीं होती है और वे क्षर कौन
 है, जिसे प्राप्त कर पुनरुत्पत्ति होती है । महामुने । अक्षर और क्षर की अभिव्यक्ति को तत्त्वत उपलब्ध करने

१९ सांख्या। २५. च तदति भू०।

त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारगः । ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥३॥
तवेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते । न तृप्तिमधिगच्छाम- शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥४॥

व्यास उवाच

अत्र यो वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥५॥
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषोणां भास्करद्युतिम् । पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैऋत्यं परम् ॥६॥
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम् । भ्राववर्णिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७॥
'स्वच्छन्दं' 'सुकृतं' चैव मधुरं चाप्यनुत्तरणम् । पप्रच्छपिबन् राजा करालजनकः पुरा ॥८॥

करालजनक उवाच

भगवन्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् । यस्मिन्न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥९॥
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत् । यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीव यथा जगत् । यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्ययम् ॥११॥
युगं द्वादशशतह्रस्वं कल्पं विद्धि चतुर्युगम् । दशकल्पशतावर्तमहस्तं ब्राह्ममुच्यते ॥१२॥
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते । सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतमप्रजम् ॥१३॥

कैसे लिये हम आपसे पूछते हैं। वेदपारगत महाभाग ऋषि और महात्मा यति आपको ज्ञानियों में श्रेष्ठ बतलाते हैं। महामते! हम लोग इस बात को आपसे तत्त्वपूर्वक समझना चाहते हैं। आपके बचनानुसार का पान करते हुए हमें तृप्ति नहीं मिल रही है ॥१-४॥

व्यास बोले—इस विषय में मैं आपको एक पुरातन इतिहास बतलाऊँगा, जिसमें वसिष्ठ तथा कराल-जनक का संवाद है। ऋषियों में श्रेष्ठ, सूर्य तुल्य कान्ति वाले और आसन पर निराकृष्ट वसिष्ठ स राजा जनक ने मौखिक सम्बन्धी ज्ञान के बारे में प्रश्न किया। पूर्वकाल में, परमात्मा में कुशल तथा अध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाले, समासीन वसिष्ठ को प्रणाम कर राजा करालजनक ने अञ्जलि बौधकर स्वच्छन्द, पवित्र, मधुर तथा अल्पतः तत्त्व के बारे में उनसे पूछा ॥५-८॥

करालजनक बोले—भगवन्! मैं सनातन परब्रह्म के बारे में सुनना चाहता हूँ, जिस प्राप्ति कर मनीषी लोग फिर नहीं झोटते हैं। क्षरतो उसे कहते हैं, जहाँ यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो जाता है और अक्षर वह है, जो शिव, कल्याण तथा अनामय (स्वस्थ) रूप है ॥९-१०॥

वसिष्ठ बोले—पृथिवीपाल! यह जगत् जैसे, जहाँ और जितने कालमें नष्ट होता है, यह धुनिये ॥११॥ बार हजार युग का एक रूप होता है और वसती कल्पों से युक्त चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन्! (ब्रह्मा की) रात्रि भी इसी परिमाण से होती है, जिसके अन्त में आगकर ब्रह्मा अनन्त कर्मों का सर्जन करते हैं। निराकार

मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः । यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम ॥१४॥
 अणिमा लघिमा प्राप्तिरोज्ञानं ज्योतिरव्ययम् । सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशरोमुखम् ॥१५॥
 सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतिः ॥१६॥
 महानिति च योगेयुर्विरिञ्चिरिति चाप्यय । सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ॥१७॥
 विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः । धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ॥१८॥
 तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः । एष वै 'विक्रियापन्नः सुज्योत्पत्तमानमात्मना ॥१९॥
 प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्पुरुषम् । अहंकारं महातेजाः प्रजापतिमस्कृतम् ॥२०॥
 'अव्यक्तादव्यक्तमापन्नं विद्यासर्गं धरन्ति तम् । महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्गं एष च ॥२१॥
 अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नी तथैकतः । विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रानुचितकैः ॥२२॥
 भूतसर्गमहंकारास्तृतीयं विद्धि पार्थिव । अहंकारेण नृपते चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥२३॥
 वायुर्ज्योतिरवाऽऽकाशमापोऽय पृथिवी तथा । शब्दस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥२४॥
 एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् । पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमयंकृतम् ॥२५॥
 श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् । बाहस्तौ चैव पादौ च पायुर्महं तथैव च ॥२६॥
 शुद्धोन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च । संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥२७॥

तथा कल्याणकारी ब्रह्मा ने पहिले पञ्चमूर्तियों की सृष्टि करके सातार विषय का निर्माण किया। नृपश्रेष्ठ ! उत्तकी उत्पत्ति मैं आदि से बतलाऊंगा ॥१२-१४॥ हिरण्यगर्भ भगवान् अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति रूप हैं। वे धाम्, ज्योति तथा अव्यय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख तथा कर्ण हैं। वे सबको आवृत कर स्थित हैं। योग में वे महान् बड़े गये हैं। विरिञ्चि भी उनका नाम है। सांख्यशास्त्र में वे बहुत नामों से पुकारे गये हैं। वे विचित्ररूप विश्वात्मा तथा एकाक्षर (ओं) है ॥१५-१७॥ जिसलिये उन्होंने अनेक रूपों से एवात्मरूप त्रैलोक्य का धारण किया इसलिये वे विश्वरूप कहलाये ॥१८॥ वे विचारयुक्त होकर आत्मा से अत्मा का सर्जन करते हैं। उनमें संयोग से प्रधान उत्पन्न हुआ। तब महातेजस्वी तथा प्रजापति द्वारा नमस्कृत अहंकार उत्पन्न हुआ। वे अव्यक्त से व्यक्त हुए। इसका नाम विद्यासृष्टि है। महान्, अहंकार तथा अविद्यासृष्टि को भी उन्होंने पूरा किया। एक हिरण्यगर्भ से अक्षर और चर दोनों उत्पन्न हुए। वेद और शास्त्र के चिन्तकों ने विद्यासृष्टि तथा अविद्यासृष्टि दोनों नाम बताये हैं ॥१९-२२॥ राजन् ! भूतसृष्टि को अहंकार से तृतीय समझिये। अहंकारों में षोडश वैकृत-सृष्टि है ॥२३॥ वायु, अग्नि, आकाश, जल, पृथिवी, घन्ध, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये दसों एक ही बाल में उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! पञ्चम भौतिकसृष्टि को समझिये ॥२४-२५॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ और बाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग—ये कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ एक ही बाल में उत्पन्न

एषा तत्त्वचतुर्विंश 'सर्वाऽऽकृतिः' प्रवर्तते । यां ज्ञात्वा नाभिश्चोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥२८॥
 एषमेतत्तन्मूलं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम् । वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सर्वं 'नरकाणंवे' ॥२९॥
 समक्षभूताग्न्यर्वं सर्किनरमहोरगे । सचारणपिशाचे वै सदेवपिनिशाचरे ॥३०॥
 सर्वशकोटिमशके संपूर्तिकृमिमूषके । शूनि 'श्वपाके चण्डे' 'सचाण्डाले सपुलकस्ते' ॥३१॥
 हस्तमदक्षरशार्दूले सर्वके यवि चैव ह । या च मूर्तिश्च यत्किञ्चित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम् ॥३२॥
 जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः । स्थानं बहेवतामासीदित्येवमनुशुभ्रम् ॥३३॥
 'कृत्स्नमेतावत्तस्तास क्षरते' 'व्यक्तसंज्ञकः । अहन्यहनि भूतात्मा' 'यच्चाक्षर इति स्मृतम्' ॥३४॥
 ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत् । जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्ययताद्व्ययतसंज्ञकम्' ॥३५॥
 'महादधैवाक्षरो नित्यमेतत्क्षरविजयनम्' । कथितं ते महाराज यस्मान्प्राऽऽवर्तते पुनः ॥३६॥
 'पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः' 'स नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः । सत्त्वसंभयणात्तत्त्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः' ॥३७॥
 यवमूर्तिः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमधिपतिष्ठति । 'चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यधमूर्तिः पञ्चविंशकः' ॥३८॥
 स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्व्यासिष्ठताऽऽत्मवान् । चेतयश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥३९॥
 सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः । गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणो गुणसंज्ञितः ॥४०॥
 'एवमेव महात्मा च सर्गप्रलयकोटिदाः । विकुर्वाणः प्रकृतिमात्राभिपन्येत बुद्धिमान् ॥४१॥

हुई ॥२६-२७॥ ये चौबीस प्रकार के तत्त्व हैं, जिन्हें जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण धोच नहीं करते हैं । नरश्रेष्ठ । इस प्रकार ये उत्तम तीनों लोक उत्पन्न हुए, जिनकी स्थिति नरक, समुद्र, वन, भूत, यन्त्र, विश्व, महासर्प, धारण, पिशाच, देवपि, राक्षस, वन (डीस), कीट, मशक, कृमि, मूषक, कुत्ते, श्वपाक, कृष्णमूषकर्म, चाण्डाल, पुलकस, हाथी, घोड़े, शर्प, बाघ, भेड़िया तथा गाय आदि मे है । सरीसृपारिया की स्थिति जल, पृथ्वी तथा आकाश मे है अन्यत्र नहीं—ऐसा निदयपूर्वक हमने सुना है । जिसलिए यह जगत् विनष्ट होगा है इसलिये इसका नाम क्षर पड़ा । ससारको मोहात्मक बतलाया गया है । अव्यक्त से नि सृज होकर इसने व्यक्त सत्ता धारण की ॥२८-३५॥ महाराज । यह तो मैं कह ही चला हूँ कि अक्षर महान्, नित्य तथा क्षरहित है । इसको प्राप्त कर जीव फिर लीटता नहीं है ॥३६॥ यह पचीसवीं निराकार तथा नित्य सत्त्व है । मनीषियों ने सत्त्व के संशयण से तत्त्व को सत्त्व कहा है ॥३७॥ निराकार जिस व्यक्त की सृष्टि करता है, वह व्यक्त साकार होता है । वह चौबीसवीं तत्त्व है और अव्यक्त पचीसवीं तत्त्व है ॥३८॥ वहीं आत्मवान्, चेतन, नित्य, सर्वमूर्ति तथा अन्यक्त सब हृदयों मे वास करता है । वह सृष्टि तथा प्रलयरूप है । वह गोचर मे सदा विद्यमान रहता है और वह निर्गुण तथा समुण्ण भी है ३९-४० प्रकृतिमान् वह महात्मा करोड़ों सृष्टि-प्रलयोंको करते हुए भी अविमान नहीं करता ॥४१॥

१क ०वीं प्रवर्तते । २ग ०कृतिपु व० । ३ख ०र्णवात् । स० । ४क ०के कृपणे पशुचा० । ५ख ०ण्डालपु० । ६क ह । यच्च मूर्तं च य० । ७क सज्जितम् । अ० । ८ख ०त्मा तदक्षरमिति । ९ग ०म् । एत-
 दक्षर० । १० ०वताम्यक्त० । ११क य ०वाग्रजो नि० । १२ख य ०रनिदर्शन० । १३ख ०विमो मू० ।
 १४ग विण्णो । १५क ०तिको व्य० । १६ख ०न् । अचेतास्त्वे० । १७क एष एव य० ।

तम सत्त्वरजोगुणवृत्तासु तास्विह। योनिषु। १. लीयते। प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥४२॥
 सहवासनिवासत्वाद्बालोऽहमिति। म्रन्यत। योऽह न सोऽहमित्युक्तो गुणानेवानुयतंते ॥४३॥
 तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते। रजसा राजसाश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंभवात् ॥४४॥
 शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि ध्रौणि तु। सर्वाण्येतानि रूपाणि जनोहि प्राकृतानि तु ॥४५॥
 तमसा निरय यान्ति राजसा मानुषानय। सात्त्विका देवलोकस्य गच्छन्ति सुखभागिन ॥४६॥
 निष्कवलेन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। पुण्यपापेषु मानुष्य पुण्यमात्रेण देवता ॥४७॥
 'एवमव्ययतविषय मोक्षमाहुर्मनोषिण। पञ्चविंशसिंभो योऽय ज्ञानादेव प्रयतंते ॥४८॥'
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपण
 नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

'एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुयतंते। वेहाहेहसहस्राणि तथा च ॥ स भिद्यते ॥१॥

अज्ञानी एव अविद्वान् की सेवा करने संजीव, तम, सत्त्व तथा रज से युक्त होकर सत्तत् योनि में लीन होता है ॥४२॥
 सत्तत् योनि में उत्पन्न व्यक्तियों के सहवास से जीव अपने को कहता है— मैं बालक हूँ, जो मैं था वह अब नहीं हूँ।
 इस प्रकार वह गुणों का ही अनुसरण करता है ॥४३॥ तमोगुण से जीव तामस भावों को प्राप्त करता है रजोगुण
 से राजस भाव। की और सत्त्व के सध्रमण से सात्त्विक भावों को प्राप्त करता है ॥४४॥ शुक्ल, लोहित, कृष्ण—
 इन तीन रूपाँ की तथा समस्त रूषों की प्रकृति से उत्पन्न समग्रियाँ ॥४५॥ तामस भाव वाले नरक जाते हैं राजस
 भाव वाले मनुष्य-यानि म जाते हैं और सात्त्विक भाव वाले सुखप्राप्ती जीव देवलोक को जाते हैं ॥४६॥ बल
 पाप रहने से जीव तिर्यग्योनि में जाता है, पुण्य-पाप दोनों रहने से मनुष्य-योनि में जाता है और बल पुण्य रहने
 से देवयोनि में जाता है। इस प्रकार विद्वान् लोग अव्यक्त में विषय को मोक्ष कहते ॥ जो पक्षीसर्प तत्त्व हैं और
 मान से ही प्राप्त होता है ॥४७-४८॥

श्रीब्रह्मपुराण म वसिष्ठ तथा करालजनक के संवाद म क्षराक्षर विचार निरूपण
 नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४१॥

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ बोले—इस प्रकार जीव अज्ञानता से मूढयोनि में ही जाता है। सहस्रो घटीर उसे मिलते हैं

तिपंग्योनिःसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्त्वपि । उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात् ॥२॥
 मनुष्यत्वाद्विषयं याति, देवो मनुष्यमेति च ॥१॥ मनुष्याभिरयस्थानमालयः प्रतिपद्यते ॥३॥
 कोपकारो यथाऽऽत्मानं कीदृशः समभिरुन्वति । सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथाऽग्रमगुणो गुणैः ॥४॥
 द्वन्द्वमेति च निद्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु । शीर्षरोगोऽक्षरोगे च बन्तशूले गलग्रहे ॥५॥
 जलोदरेऽतिसारे च मण्डमालाविचर्चिके । शिवकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिन्ध्यापस्मारयोरेपि ॥६॥
 यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरेण्याम् । उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमन्यते ॥७॥
 अभिमानातिमानानां तथैव सुकृतान्यपि । एकवासाश्चतुर्वर्त्ताः क्षायी नित्यमधस्तथा ॥८॥
 मण्डूकशायी च तथा धीरासनगतस्तथा । धीरमासनमाकाशे तथा शयनमेव च ॥९॥
 इष्टकाप्रस्तरे चैव चक्रप्रस्तरे तथा । भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ॥१०॥
 धीरस्थानाम्बुषाके च शयनं फलकेषु च । विविधास्तु च शय्यास्तु फलगृह्यान्वितास्तु च ॥११॥
 उद्याने जलजलेषु तु क्षौमकृष्णाजिनान्वितः । मणिवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ॥१२॥
 सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च । फलक(?) परिधानश्च तथा कटकवस्त्रयुक् ॥१३॥
 कटकवसनश्चैव धीरयासास्तथैव च । वस्त्राणि चान्यानि बहून्पभिमन्य च बुद्धिमान् ॥१४॥
 भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च । एकराप्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ॥१५॥

पर बहू निद्रा नहीं होता है ॥१॥ हजारोनीच योनिओं में धीर कदाचित् देवयोनि में भी वह तपोबल से गुणा के साथ उत्पन्न होता है ॥२॥ गुणों की शृङ्खला तथा क्षय से जीव मनुष्यत्व से देवत्व की ओर देवत्व से मनुष्यत्व की प्राप्ति करता है । धीर मनुष्यत्व से प्रत्यक्ष तब तक मरक को भी प्राप्ति करता है ॥३॥ जैसे मकरा सूत्र-तन्तु रूप गुणा से अपने को अवलम्ब कर लेता है वैसे यह निर्गुण जीव गुणों से अपने को कैसा लेता है ॥४॥ यह निद्वन्द्व होते हुए भी तत्तत्परीनियों में द्वन्द्व को प्राप्ति करता है । शरीररोग, मेजरोग, बन्तपीडा, बलव्याधि, जलोदर, अतिसार, कण्डमाला, चंचल, श्वेतकुष्ठ, पाप, जुगली, मिरगी और जो दूसरे प्राकृत द्वन्द्व हैं, वे शरीर में उत्पन्न होते हैं, परन्तु जीव उन्हीं अपना मान बैठता है ॥५॥ ७॥ जीव द्वन्द्वों की तरह पुण्यों की भी भानता है । मनुष्य सिद्धि की अकाक्षा से विविध कण्डों की भोगता है । वह एक वस्त्र तथा चार वस्त्र को धारण करता है, भेडक की तरह घोंटा है, धीरासन लगाता है, आकाश में धीरासन लगाकर दायन भी करता है । ईद १ आकार के पत्थर, मण्डलाकार पत्थर तथा अस्थामृत पत्थर पर सोता है, भूमि शय्या पर अवस्थित होकर लेप लगाता है । धीरो के स्थान में जल पीता है पाक बनाता है और सत्त्वों पर तथा फला व मुच्छो से मुक्त अनेक प्रकार की शय्याओं पर जाता है । सलिलहान स लगे हुए उद्यान में रेशमी वस्त्र तथा कृष्ण मृगचर्म से युक्त होकर भणि तथा पूँछ के बाल धारण करता है । व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, पट्टवस्त्र, फलक (?), स्वर्ण-वस्त्र धारण करता है ॥८-१३॥ (कभी) एकमात्र स्वर्णवस्त्र तो कभी खड्गवस्त्र धारण करता है । कभी अन्य प्रकार के बहुत से वस्त्रों को पहनता है, अनेक प्रकार के भोजन करता है, विविध रत्नों को धारण

१क ०हयुगल० । २य ०मानुष्य प्र० । ३ख ०विषयच्छति । ख० । ४ख ०एव दुर्वा० । ५क ०म वृषस्य प्र० । ६य. ०त । धालिवान प्र० । ७ख० पटवा० । ८ख. तपोदकसुव० ।

'चतुर्थाष्टमकालः' च । 'पण्डकालिकमेव' च । 'यद्वात्रभोजनश्चैव' तथा चाष्टाहभोजन ॥१६॥
 मासोपवासो मूलाशी फलाहारस्तथैव च । वायुभक्षश्च^१ पिण्याकदधिगोमयभोजन ॥१७॥
 गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा । शवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन् ॥१८॥
 वर्तयञ्चोर्णपणं^२ श्व प्रकीर्णफलभोजन । विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकाष्ठशया ॥१९॥
 चान्द्रायणानि विधिवत्लिङ्गानि विविधानि च । 'चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्मधर्माध्यायण्यपि ॥२०॥
 उपाध्यायनप्यपरान्पाखण्डान्विविधानपि । विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रस्त्रवणानि च ॥२१॥
 पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च । काननेषु विविक्ताश्च शैलाना महतीर्गुहा ॥२२॥
 नियमान्विविधाश्चापि विविधानि तपासि च । यज्ञाश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा ॥२३॥
 धनिकपथ द्विजक्षत्रवैश्यशूद्रास्तथैव च । दानं च विविधाकारं वीनान्धकृपणाविषु ॥२४॥
 'अभिमन्येते सधातु तथैव विविधान्पुणान् । सत्त्व रजस्तनश्चैव धर्मार्थो^३ काम एव च' ॥२५॥
 प्रकृत्याऽऽश्मानमेवाऽऽत्मा एव प्रविभज्यते^४ । स्वाहाकारवपट्कारौ स्वधाकारनमस्त्रिये ॥२६॥
 यजनाध्ययने दानं तथैवाऽऽहु प्रतिग्रहम् । याजनाध्यापने चैव तयाऽन्यदपि किञ्चन ॥२७॥
 जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनन च । शुभाशुभस्य सर्वमेतदाहु सनातनम्^५ ॥२८॥
 प्रकृतिं कुर्वते देवो भय प्रलयमेव च । दिवसान्ते गुणानेतानतीत्येकोऽवतिष्ठते ॥२९॥

करता है बीच में एक रात को छोड़कर भोजन करता है एक ही समय भोजन करता है चाये आठव तथा छठ प्रहर में भोजन करता है महीने में छह रात भोजन करता है आठ दिन भोजन करता है महीने तक उपवास करता है कंद-मूल फल खाना है वायुभक्षण करता है तिलकल्क दही तथा गोबर खाता है गोमूत्र तथा काशपुष्प भोजन करता है सिवार भोजन करता है जण होकर खड़े हुए फल-पत्ते खाता है चात्रायण व्रत करता है विविध विह्वो को धारण करता है चारों आश्रम व धर्म अधम को करता है, अनेक प्रकार के पाखण्डो को करता है एकांत स्थान में शिला-खण्ड पर तथा छाया व नीचे विश्राम करता है पुलिनी पर विविध वनों में कानना में पर्वतो पर तथा गुफाओं में रहता है विविध नियम तथा यज्ञ करता है अनेक विद्याओं को पढ़ता है ब्राह्मण सत्रिय वैश्य और शूद्र जातिया में उत्पन्न होत है दोन अध तथा कृपणा को दान देता है रज सत्त्व तथा तमोगुण को धारण करता है धर्म अर्थ और काम का साधन करता है ॥१४-२५॥ इस प्रकार आत्मा प्रकृति से आत्मा का विभाग करता है । स्वाहाकार वपटकार स्वधाकार नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह याजन अध्यापन जन्म मृत्यु, गुण अशुभ—ये सब आत्मा ही है ॥२६-२८॥ प्रकृतिदेवी भय और प्रलय करती है । दिवसान्त (प्रलय) में इन गुणा का अतिक्रमण करने एव आत्मा ही अवस्थित रहता है । जैसे सूर्य रश्मिजाल को समेट लेता है, वैसे आत्मा काठ का नियमन करता है । इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् आत्मा की क्रीडा में लिखे माना जाता है । आत्मा विविध गुणा को धारण करके सृष्टि तथा प्रलय करता है । नर्म के भाग पर आसक्त होकर त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणाधिप आत्मा कर्म एवम्

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्कलं संनिषच्छति । एवमेवैष तत्सर्वं श्रीद्वार्यमभिमन्यते ॥३०॥
 आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्दृश्यप्रियां । एवमेतां प्रकुर्वाणः सर्वप्रलयधर्मीणाम् ॥३१॥
 क्रियां क्रियापये रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः । क्रियाक्रियापयोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥३२॥
 प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदग्धीकृतं विभो । रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥३३॥
 एवं द्वंद्वान्यतोतानि मम वर्तन्ति नित्यशः । मत्त एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि ॥३४॥
 निस्तर्तव्याप्ययंतानि सर्वाणीति नराधिप । मन्यते पक्षमुद्वित्यासयैव सुकृतान्यपि ॥३५॥
 भोक्तव्यानि ममेतानि देवलोकगतेन वै । इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम् ॥३६॥
 सुप्तमेव तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम । यावदेव तु भेत्तौह्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥३७॥
 भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम् । सुखदुःखं हि मानुष्यं निरपे चापि मज्जनम् ॥३८॥
 निरयाश्चापि मानुष्यं कालेनेष्याम्यहं पुनः । मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुष्यं पुनः ॥३९॥
 मनुष्यत्वाच्च 'निरयं' पर्यायेणोपगच्छति । एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गृण्यंतः ॥४०॥
 तेन देवमनुष्येभ्यः निरयं चोपगच्छते । ममत्वेनाऽऽवृत्तो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥४१॥
 सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु । य एवं कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४२॥
 स एष फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान् । प्रकृतिः कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४३॥
 प्रकृतिश्च तयाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामया । तिर्यग्योनिमनुष्यत्ये देवलोकं तथैव च ॥४४॥

कर्ममार्ग से युक्त होकर कर्म करता है ॥३९-३२॥ परमात्मा की प्रकृति ने सम्पूर्ण जगत् को जन्मा बना दिया है । रजोगुण तथा तमोगुण से सब कुछ व्याप्त है ॥३३॥ इस प्रकार जीव के द्वन्द्व नित्य वर्तमान रहते हैं । जीव से ही इनकी उत्पत्ति होती है और प्रलय में ये जीव को ही प्राप्त होते हैं ॥३६॥ राजन् ' ये समस्त द्वन्द्व दुष्पार हैं । उसी तरह पुण्यो को भी समझिये । देवलोक जाने पर भी इनका भोग करना पड़ता है । शुभ और अशुभ कर्मों का फल— सुख और दुःख—तब तक भोगना पड़ता है, जब तक जन्म-मरण होते रहते हैं । जीव को सुख, दुःख, मनुष्यता तथा नरक-भोग भी प्राप्त होता है । समय पाकर जीव पुन नरक से मनुष्य-योनि में भी जाता है । वह मनुष्यत्व से देवत्व को, देवत्व से मनुष्यत्व को और मनुष्यत्व से नरक को भी कालक्रम से प्राप्त करता है । इस प्रकार द्विजातीयों का आत्मा गुणों से आवृत है ॥३५-४०॥ इसलिये जीव देवयोनि में, मनुष्योनि में तथा नरक में भी जाता है । ममता से युक्त होकर जीव सहस्रो करोड़ सृष्टियों में सुख-दुःख भोगता रहता है ॥४१॥ जो इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करता है, वह शुभ-अशुभ फल पाता है । तीनों लोक में जाने वाली प्रकृति शुभ-अशुभ कर्म करती है और तदनुरूप फल पाती है । तिर्यग्योनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि—ये तीन स्थान प्रकृति के माने जाते हैं ।

त्रोणि स्यान्तानि चेत्तानि जानीयात्प्राकृतानि ह । अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गरप्यनुमोयते ॥४५॥
 तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते । स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमवर्णम् ॥४६॥
 षण्ढाराप्यधिष्ठाय 'कर्माण्यात्मनि मन्यते । श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाप्यथ ॥४७॥
 रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह । गुणः सह । अहमेतानि ये कुर्वन्ममेतानीन्द्रियाणि ह ॥४८॥
 निरिन्द्रियो हि मन्येत षण्ढवानस्मि निर्व्रणः । अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः ॥४९॥
 असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः । अमृत्युं । मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः ॥५०॥
 अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः । अतत्त्वं सत्त्वमात्मानमभयं भवमात्मनः ॥५१॥
 अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते । एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥५२॥
 सगंकोटिसहस्राणि षतमान्तानि गच्छति । जन्मन्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ॥५३॥
 त्रिदंशोऽपि नमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च । चन्द्रमा इव 'कोशानां पुनस्तत्र सहस्रदाः ॥५४॥
 नोयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेव बुद्धिमान् । कला पञ्चदशी योनिस्तद्दाम 'इति पठ्यते ॥५५॥
 'निरामेव विजानीहि सोम वे 'षोडशोऽक्षरैः । 'कलया जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान् ॥५६॥
 धीर्मांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते । षोडशो तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ॥५७॥

जीव अलिपप्रकृति कहते हुए भी लिंगों द्वारा समझा जाता है ॥४२-४५॥ उसी तरह पौरुषलिङ्ग अनुमान से माना जाता है । वह अक्षर प्राकृत लिङ्ग को प्राप्त कर षण्ढार को अधिष्ठित करने अपने में कर्मों को मानता है ॥४६॥ श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा रागआदि, गुणों में गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं । जीव इन्द्रिय-रहित होते हुए भी अज्ञानता से तमस बैठता है कि मैं यह कार्य करता हूँ और मेरी ये इन्द्रियाँ हैं ॥४७-४८॥ वह अलिङ्ग (अरूप) को लिङ्ग, असत्त्व को सत्त्व, अमृत को मृत, अमृत्यु को मृत्यु, अक्षर को चर, अक्षेत्र को क्षेत्र, अक्षय को सग, अतत्त्व को तत्त्व, अभय को भय और अक्षर को क्षर मान लेता है ॥४९-५१॥ इस प्रकार अविद्वानों की सेवा से सहस्रकोटि सृष्टि पर्यन्त जीव का अप पतन होता रहता है । सहस्रो बार उसने जन्म-मरण होते हैं ॥५२-५३॥ त्रिदंशोनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि में भी वह जाता है । जैसे चन्द्रमा कोलो(लोकों में ?) जाता है वैसे मूर्त मनुष्य अक्षो के कारण तत्सत् योनिमा भ जाता है ॥५४॥ चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला योनि कहलाती है । उसका नाम घात भी है । सोलह बरों में युक्त चन्द्रमा को नित्य ही समझिये । अबुद्धिमान् मनुष्य बार-बार कला से उत्पन्न होता है । नृप । वह ऐसे ही उत्पन्न होता रहता है, पर बुद्धिमान् नहीं होता । सोलहवीं कला सूक्ष्म है । उसे चन्द्रमा समझिये ॥५५-५७॥

१स ०म् । प्राणाण्डारः । २न ग कर्मजातः । ३स ०ति । धाम्ना धामसः । ४न. सोमना । ५ग कनः । ६न ग दः । ७न पयते । ८स ग ०येन्द्रियाः । ९न ०दुष्टात्मनम् । क० । ग. ०इष्टी कनम् । १० । १०८ कन पचदशी तेवत्ये पुनरबुद्धिः । ११न. ०न् । धाम तस्योपपन्नानि भूय एव तु जा० ।

न तूपयुज्यते देवदेवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपतत्तम ॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणो भवेत् ॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठं प्रति मोक्षधर्मविषयको जनकप्रश्नः

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेव द्वयोः सम्बन्ध इष्यते। स्त्रीपुरुषयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते ॥१॥
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भधारयत्युत। ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तते तथा ॥२॥
अन्योन्यस्याभिसंयन्त्यादन्योन्यगुणसंभवात्। रूपं निर्वर्तयेदेतदेवं सर्वासु योनिषु ॥३॥
रसपर्यमसितसंयोगाद्यन्योन्यगुणसंभवात्। ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातुर्गुणास्तथा। अस्थि स्नायु च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज ॥५॥

सीम देवताओं से उपयुक्त नहीं होते, पर वे देवताओं को उपयुक्त करते हैं। वे ममत्व का नाश करके उत्पन्न होते हैं। वे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुण हैं ॥५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद-प्रकरण में
दो सी ब्यालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४२॥

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

जनक बोले—अक्षर और क्षर (पुरुष और प्रकृति) दोनों का सम्बन्ध होता है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पुरुष कहलाता है ॥१॥ पुरुष के बिना स्त्री गर्भ-धारण नहीं करती है और स्त्री के बिना पुरुष रूप धारण नहीं करता है ॥२॥ परस्पर के सम्बन्ध नवा गुणों के आदान प्रदान से समस्त योनियों में रूप की निष्पत्ति होती है ॥३॥ रविकालिन्ध अत्यन्त सयोग से तथा परस्पर गुणाधान से ऋतुभयी होने के पश्चात् रूप का निष्पादन किया जाता है। यह मैं सदाहरण के लिये बतलाऊँगा ॥४॥ कुछ गुण पुरुष के होते हैं और कुछ माता के।

१ न मूयवेत्य० २ त्रिगुणो ३ योर्भगवत्सम्बन्धस्तु तदुच्य० ४ क ० य प्रतिनिवर्तते। ख०।
५ य. ० य। गत्ययानिचि०। ६ क च याति न पि०।

त्वद्भासिशोणितं चेति - मातृजान्यनुशुश्रुम् । एवमेतद्विज्यश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते ॥६॥
 प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते । वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम् ॥७॥
 एवमेवाभिसम्बन्धो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ । यच्चापि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो न विद्यते ॥८॥
 'अथवाऽनन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम् । तन्ममाऽऽश्चक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा ॥९॥
 मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम् । अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम् । एवमेतद्यथा वक्ष्ये तत्त्वग्राही यथा भवान् ॥११॥
 धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः । न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्व नरेश्वर ॥१२॥
 यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः । न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य सद्धारणं वृथा ॥१३॥
 भार स बहुते तस्य ग्रन्थस्यायं न चेति यः । यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥१४॥
 ग्रन्थस्यायं स पृष्टस्तु मादृशो बबतुमर्हति । यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति ॥१५॥
 न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् । स कथं मन्दबिज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात् ॥१६॥
 अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि धार्य यः कुर्वते नरः । लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत् ॥१७॥

द्विज ! अस्मि, स्नापु तथा मग्ना—ये पिता से प्राप्त होते हैं और त्वचा, मांस तथा शोणित—ये माता से प्राप्त होते हैं । वेद-शास्त्रों में ऐसा ही बतलाया गया है ॥५-६॥ वेदों और शास्त्रों में जो प्रमाण पठित है तथा वेद-शास्त्रों का जो प्रमाण है, वह सनातन प्रमाण है ॥७॥ प्रकृति-पुरुष का ऐसा ही नित्य सम्बन्ध है । भगवन् ! उससे बढ़कर कोई मोक्षधर्म नहीं है । अथवा इसके बाद कोई उदाहरण हो तो वह मुझे बतलाइए । आपने तत्त्व का प्रत्यक्ष किया है ॥८-९॥ मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ । अनामय, अजेय, अजर, नित्य, अतीन्द्रिय तथा ईश्वर से मैं परे ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१०॥

वसिष्ठ बोले—आपने वेद-शास्त्रों का उदाहरण देकर कहा है । आप तत्त्वग्राही हैं । मैं उसी प्रकार बतलाऊंगा जैसा आप चाहते हैं ॥११॥ राजन् ! आप वेद-शास्त्रों के ग्रन्थों को धारण करते हैं, पर उनके मयार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥१२॥ जो व्यक्ति वेद-शास्त्रों के ग्रन्थ-धारण में निरत रहता है, वह ग्रन्थों से तत्त्व को नहीं जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण करना व्यर्थ है ॥१३॥ जो ग्रन्थ के अर्थ को नहीं जानता है, वह केवल मारवाही है । जो ग्रन्थ के तत्त्व को जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण व्यर्थ नहीं है ॥१४॥ उससे ग्रन्थ का अर्थ पूछने पर वह मेरी तरह बतला सकता है । क्योंकि वह तत्त्व को समझने के कारण उससे अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो स्थूलबुद्धि वाला व्यक्ति ग्रन्थ के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक नहीं रहता है, वह जलज जन निर्णयपूर्वक ग्रन्थ को कैसे बतलाएगा ॥१६॥ ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर जो व्यक्ति लोभ से अथवा दम्भ से विवाद करता है, वह पापी

निर्णय चापि चिद्ब्रह्मात्मन न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः । सोऽप्योहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्नैवाऽऽत्मवानपि ॥१८॥
तस्मात्त्व शृणु राजन्द्र यथेतदनुद्दिश्यते । यथा तत्त्वेन साख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥१९॥
यदेव योगा पश्यन्ति साख्यः तदनुगम्यते । एक साख्य च योग च य पश्यति स बुद्धिमान् ॥२०॥
त्वदमास रुधिरमेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । एतदेन्द्रियक तात यदमवानित्यमात्थ माम् ॥२१॥
द्रव्यादद्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियादिन्द्रिय तथा । देहाददेहमवानोति बीजादबीज तथैव च ॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निद्रव्यस्यापि देहिनः । कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मन ॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च । एव गुणा प्रकृतिजा जायन्ते न च याप्ति च ॥२४॥
त्वदमास रुधिरमेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । अण्डो तान्यय शुरुण जानीहि प्रावृत्तन यं ॥२५॥
पुमाश्चैवापुमाश्चैव स्त्रीलिङ्ग प्राकृत स्मृतम् । वायुरेव पुमाश्चैव रस इत्यभिधीयते ॥२६॥
अलिङ्गा 'प्रकृतिर्लिङ्गं रूपमस्यति' साऽऽत्मजः । यथा पुष्पफलानि स्य मूलं चामतपस्तथा ॥२७॥
एवमप्यनुमानेन स लिङ्गमुपलभ्यते । पञ्चविंशतिकस्तात लिङ्गेषु नियतात्मक ॥२८॥
अनादिनिधनोऽजन्तः सवदर्शनकेवलः । केवलः स्वभिमानीत्वादगुणेषु गुण उच्यते ॥२९॥
गुणा गुणवत् सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणा । तस्मादेव विज्ञानन्ति ये जना गुणदर्शिनः ॥३०॥

नरक को जाता है ॥१७॥ छिद्रा-वेपी व्यक्ति तत्त्वतः विनय भी नहीं कर पाता है । राजन् ! आप जिसलिए तत्त्व को नहीं जानते हैं इसलिये सुनिये । साख्य और योग में तत्त्वतः कुछ भी अंतर नहीं है । योग जो यतशक्ता है साख्य भी वहीं यतशक्ता है । जो साख्य और योग को एक समझता है वही बुद्धिमान् है ॥१८॥ 'वचा मास रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि तथा स्नायु—ये इन्द्रियसम्बन्ध' हैं । द्रव्य से द्रव्य को इन्द्रिय से इन्द्रिय को देह से देह की ओर व 'अ' से बीज की निर्वृत्ति होती है । निरिन्द्रिय निर्बीज तथा निद्रव्य प्राणी से गुणों की उत्पत्ति नसे होगी ॥२१॥ २३॥ गुण गुणों से उत्पन्न होते हैं और वही विराम करते हैं । इस प्रकार प्रकृति से गुण उत्पन्न होते हैं विष्णु के लिये नहीं जाते हैं ॥२४॥ त्वचा मांस रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि स्नायु—ये आठों वीजों से उत्पन्न होते हैं । पुंलिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक—ये तीनों प्राकृतिक हैं । यह वायु पुरुष ही है और इसको रस कहते हैं ॥ २५ २६॥ प्रकृति अलिङ्ग है । आत्मजन्य लिंगों से वह उपलब्ध होती है । जैसे पुष्पा और फलों के लिये मूल रूप तथा अमूल रूप की उपलब्धि होती है इसी प्रकार अनुमान से वह लिंग उपलब्ध होता है ॥२७॥ तात ! पञ्चविंशता तत्त्व जो आदि, अन्त तथा मरण से रहित है और सम्स्त दाना में एक है वह लिङ्गा म नियतलिङ्ग है । वह केवल अविमान से गुणों के बीच गुण बहलता है ॥२८॥ २९॥ गुणवान् वे गुण होते हैं निगुण के गुण बहना से होंगे ? इसलिये जो व्यक्ति गुणदर्शी हैं वे ऐसा जानते हैं ॥३०॥ जब वह गुणवान् आत्मा इन प्राकृतिक गुणा का अविमान करता है

१क ०ते । याथातथ्येन । २ग साख्यैस्तदमिकथ्यते । ३न जायन्ते । ४क छ शृणुम् । ५क रेत । ६क ०लिङ्ग उप० । ७ग ०ति चात्म० । ८ग ०त्यकम् । ९० । १ग ०वलम् । के० । १०क ०ल वलवानीयगुणे० । ११क ०गुणश्च कु० ।

यदा त्वेय गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते । तदा स 'गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति ॥३१॥
 यत्तदबुद्ध पर प्राहु साध्ययोग च सर्वश ' । बुध्यमान महाप्राज्ञा प्रबुद्धपरिवर्जनात् ॥३२॥
 अप्रबुद्ध यथा व्यक्त स्वगुणं प्राहुरीश्वरम् । निर्गुण चश्वर नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥३३॥
 प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधा । साध्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमैपिण ॥३४॥
 यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात (प) ननी (भी) रव । 'बुध्यमान न 'बुध्यन्तःप्रवच्छन्ति सम' तदा ॥३५॥
 एतन्निर्दर्शनं 'सम्यग्ज्ञानं सम्यगनुद्शनम् । बुध्यमान प्रबुध्यन्ते द्वाभ्यां पृथग्वरिदम् ॥३६॥
 परस्परगतदुवत् क्षराक्षरनिर्दर्शनम् । एकस्वमक्षरं प्राहुर्नामत्वं क्षरमुच्यते ॥३७॥
 'पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं तदा सम्यक्प्रचक्षते । एकत्वदर्शनं चास्य मानात्वं चास्य दर्शनम् ॥३८॥
 'तत्त्ववित्तत्त्वयोरव पृथग्वत्तिर्निर्दर्शनम् । पञ्चविंशतिभिस्तत्त्व तत्त्वमाहुर्मनीपिण ॥३९॥
 निस्तत्त्व पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीपिण । धर्मस्य 'वर्ज्यमाचार' तत्त्व तत्त्वात्सनातनम् ॥४०॥

करालजनक उवाच

नानात्वं कत्वमित्युक्तं त्वयैतद्विजसत्तम । पश्यतस्तद्वि सविषमेतयोर्ध्वं निर्दर्शनम् ॥४१॥
 तथा 'बुद्धप्रबुद्धाभ्यां' बुध्यमानस्य धानघ । स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमतं सशय' ॥४२॥
 अक्षरक्षरयोर्वत् त्वया यदपि कारणम् । तदप्यस्मिन्बुद्धित्वात्प्रनष्टमिव भेज्जघ ॥४३॥

तब यह गुण भेदों को देखता है। महापंडितों ने कहा है कि साक्ष्य और योग बुद्धि से परे होत हुए भी समझे जाते हैं। साक्ष्य और योग में प्रवीण विद्वान् अप्रबुद्ध अव्यक्त ईश्वर निर्गुण नित्य तथा अधिष्ठाता परमात्मा को जो प्रकृति तथा गुणों का पक्षीसर्पों तत्त्व है जानते हैं। जब प्रबुद्ध और अव्यक्त आत्मा को अवस्थित करने से भी पुरुष जाने जाते हुए आत्मा को नहीं जानते हैं तब वे सम भाव को जानते हैं। यह सम्यक् बुद्धान्त है न कि सम्यक् निरीक्षण। हे धनुजा का दमन करने वाले! तत्त्ववेत्ता जन इन दोनों से पृथक् बुद्धिमान् आत्मा को जानते हैं ॥३१-३६॥ क्षर और अक्षर का निदान परस्पर बतलाया गया है। एवम् अक्षर को ब्रह्म है और मानात्वं क्षर को कहते हैं। जीव पक्षीसर्पों तत्त्व में प्रविष्ट होने पर एवम् तथा नानात्वं का दान करता है। तत्त्ववेत्ता और तत्त्व के बारे में ही यह बुद्धान्त बतलाया गया है। मनीषिया ने पक्षीसर्प तत्त्व बतलाये हैं परंतु पक्षीसर्पों तत्त्व को निस्तत्त्व कहा गया है। यजनीय का यजनीय आचार तत्त्व से बढकर सनातन तत्त्व है ॥४०॥

करालजनक बोले—द्विषथ १। आपने नानात्वं तथा एवत्वं न बोले भक्ता है। परंतु दोनों के बुद्धान्त में मूढ सदेह है। मैं मन्दबुद्धि होने के कारण इस तत्त्व को नहीं समझ रहा हूँ। निन्ताप। अक्षर और क्षर का कारण जो आपने बतलाया वह भी पञ्चलबुद्धि होने के कारण मैं नहीं समझ सका। इसलिये नानात्वं तथा एवत्वं

१ग ० व परमेनावप। २ग ० य। प्रबुद्धिमा महाप्राज्ञ प्र०। ३ग ० माने न। ४ग ० न्ते न। ५ग मय। ६ग ० म्यग्ग पदशब्द०। ७ग ० विविष्णोऽयं। ८ग तद्विस्तृतत्वं। ९ग वमस्य। १० व सर्वमात्मनः०। ११ क बुद्ध प्र०। १२ क ० द्वाभ्यां बु०।

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्यक्तददर्शनम् । इदं, चैवानिदं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥४४॥
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च । सांख्ययोगं च कृत्स्नेन बुद्ध्याबुद्धिं पृथक्पृथक् ॥४५॥

वसिष्ठ उवाच ।

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि । योगकृत्यं महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥४६॥
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम् । तच्चापि द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जनाः ॥४७॥
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च । प्राणायामस्तु सगुणो निर्गुणो मानसस्तथा ॥४८॥
मूर्धोत्तरो पुरीषे च भोजने च नराधिप (?) । द्विकालं नोपभुञ्जीत शेषं भुञ्जीत तत्परः ॥४९॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः । वशाद्वाप्यभिर्यापि चतुर्विंशत्परं यतः ॥५०॥
स चोदनाभिर्मतिमान्नास्त्मानं चोदयेदयः । सिष्ठन्तमजरं तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभिः ॥५१॥
विद्यात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुभम् । इयं ह्यहोनीमनसो नान्यथेति विनिश्चयः ॥५२॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो लबाहरो जितेन्द्रियः । पूर्वरात्रे परार्धे च धारयित्वा मनो हवि ॥५३॥
स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा स्थित्वेश्वर । मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पापाण इव निश्चलः ॥५४॥

११ दर्शन मुने बतलाइये । भगवन् । इदं, अनिदं, बुध्यमानं, विद्या, अविद्या, अक्षर, क्षर, सांख्य योग, बुद्धि और अबुद्धि को पृथक्-पृथक् बतलाइये ॥४१-४५॥

वसिष्ठ बोले—अच्छा । जो आपने पूछा है, वह मैं बतलाऊँगा । महाराज । योग-कार्य को अलग ही बात खोजिए ॥४६॥ योग का ध्यान ही परम बल है । विद्वानों का कहना है कि ध्यान दो प्रकार के होते हैं—एक मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम । प्राणायाम सगुण होता है और मानसिक एकाग्रता निर्गुण होता है ॥४७-४८॥ नराधिप । मल-मूत्र त्यागने के समय तथा भोजन-काल में (?) प्राणायाम नहीं करना चाहिये । प्रातः-सायंकाल में भोजन नहीं करना चाहिये । अन्य काल में सावधान होकर भोजन करे ॥४९॥ मुनि विषयो से इन्द्रियो को मन से रोककर दस, बारह या चौबीस वर्षों तक व्यास का मनन करे । यह बुद्धिमान् वर्तमान तथा अजर व्यस्य को त्रेणामों (शास्त्रोद्देशों) से उत्तरेति (तर्क-वितर्क-बोल) न करे ऐसा मनीषियों ने कहा है । (?) विद्यात्मा का ज्ञान सतत रहना चाहिये, ऐसा हमने सुना है ॥५०-५१॥ यह निश्चित बात है कि मन को बस में करने पर ही आत्मज्ञान होता है । सब प्रकार की आत्मकिया से विमुक्त तथा जितेन्द्रिय होकर अल्प आहार करते हुए पूर्वरात्रि में एकम् अपर रात्रि में हृदय में मन का धारण करे ॥५२-५३॥ स्थित्वेश्वर । मन से इन्द्रिय-समूह को स्थिर करके बुद्धि से मन को पापाण की तरह स्थिर करते हुए निश्चल हो जाय ॥५४॥ स्थाणु की तरह निष्कम्प और दास ने समान अवल होना चाहिये । इस प्रकार बुद्धि से विधि-

११-०५। बुद्धि जहात्यबुद्ध च दुः । २८ च सांख्ये पृथक्त्वेन पृथक्स्थिति । ३० । ३८. ०८५ तु योगेन ध्यात० । ४५. ०५। उद्विगताञ्च आह० । ५८ ०५। सत्सगु० । ६५ तत्त्वतः । ७४ ०५। पृथक्विद्या० । ८५ ०८५। सवासदिभिः । ९५ ०८५। तु । १०५ ह्यदीन० । ११५ लघुवागभिः । १२५ वाचयित्वा

[स्याणुवच्चाप्यकम्प्यः 'स्याद्वाक्वच्चापि' निश्चल । बुद्ध्या विधिविधानशस्ततो युक्तं 'प्रचक्षते' ॥५५॥
 न शृणोति न चाऽऽद्याति 'न च पश्यति किंचन । न च स्पर्शं विजानाति न च सकल्पते मनः' ॥५६॥
 न चापि' मन्यते किंचिन्न च बुध्येत' काष्ठवत् । तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिण ' ॥५७॥
 न भाति ह्रियया दीपो' दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते । निलिङ्गश्चाघश्चोर्ध्वं च तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥५८॥
 तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कम्प्यते । हृदयस्योन्तरात्मेति श्रेयो ज्ञस्तात मद्विष्ये ॥५९॥
 निर्धूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् । वैद्युतोऽग्निरियाऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥६०॥
 य पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः । ब्राह्मणा ब्रह्मयोगिनस्था हृद्ययोगिन्ममूतात्मकम् ॥६१॥
 तवेवाऽऽह्वरणभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् । सर्वत्र सर्वभूतेषु ध्रुव सिंघ्रत दृश्यते ॥६२॥
 'बुद्धिद्वयेण दृश्येन मनोदीपेन लोकवृत् । महत्तममसस्तात धारं तिष्ठन्न' तामसः ॥६३॥
 तमसो दूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञेर्वेदपारगं । विमलो विमलश्चैव निलिङ्गोऽलिङ्गसप्तकः ॥६४॥
 योग एव हि लोकानां किमन्यद्योलक्षणम् । एव पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजर परम् ॥६५॥
 योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया । "साध्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसह्यानिदर्शनम् ॥६६॥

विधान को जानने वाला योगाभ्यास करे ॥५५॥ जब यात्री न सुनता है न सूँघता है न देखता है न स्पर्श को जानता है न शब्द रूप करता है न मानता है और न काष्ठ की तरह कुछ समझता ही है तब वह प्रकृति का प्राप्त कर लेता है ऐसा विद्वान् ने कहा है ॥५७॥ जैसे दीपक यदि बर्षिया नहीं है तो उसका प्रकाश भी अच्छा नहीं होगा । दीप की ऊपर नीचे तथा अघर में बड़ी भी रसिए, उसकी ली भी गति सदा ठही रहेगी । उसी तरह स्वच्छ अन्तःकरण में आत्मा प्रकाशित होता है (?) तात ! ज्ञात रूप जो आत्मा है उसी को हम लोग हृदयस्थित अन्तरात्मा समझ ॥५९-५९॥ निर्धूम अग्नि के समान, रश्मियुक्त आदित्य व समान और आवास में विद्युलता का अग्नि के समान आत्मा में आत्मा को देखना चाहिए ॥६०॥ धीर मवापी, ब्रह्मज्ञ तथा महात्मा ब्राह्मण जिस अवाजिज तथा अमूर्तरूप आत्मा को देखते हैं वही आत्मा सूक्ष्म स भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है । वह समस्त भूता में निवचल होता रहता हुआ भी देखा नहीं जाता है ॥६१-६२॥ बुद्धि रूपा द्रव्य के सहयोग से मन रूपी दीप व द्वारा आत्मा को देखना चाहिये । आत्मा महान् तम स परे रहने व कारण तामस नहीं बह-लाता है ॥६३॥ वेदधारणत तत्त्वज्ञान में आत्मा को तम स दूर, तथा निलिप्त कहा है ॥६४॥ लोग मंथी माय का लक्षण है । दूसरा क्या को सगता है ? यह विचार कर अजर तथा पर आत्मा को देखना चाहिये ॥६५॥ इतना योगदर्शन मने आपको तत्त्वपूर्वक बतला दिया, अब परिसह्याविधि (विस्म विहित विधि व अतिरिक्त अन्य पस्तु का निषेध हो जाता है) व प्रमाण व साक्ष्यदर्शन का प्रवचन करेगा ॥६६॥ नृपश्रेष्ठ ! साध्य में आत्मा को परा प्रकृति को

१क निरय । २ग न रस्यति न पश्यति । न । ३क धावम० । ४ग बुध्यति । ५ग ०ण । निवाते हि । ६ग दीप्यदीप्तो दीप प्रद० । ७न ०दिदृश्येत मानादि येन सत्त्वोर्वावृत्तम् । म० । ग ०दि-द्व्ये० । ८न ०धनामय । ० । ९क योगानां । १०न साध्ययोग ।

अन्यस्तमाहुः 'प्रस्थानं परां प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥६७॥
 अहंकारस्तु महत्स्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूतान्यहंकारादाहुः 'सांख्यमात्मदर्शनः ॥६८॥
 एताः प्रकृतयस्त्वष्टो विकाराश्चापि षोडश। पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥६९॥
 एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः। सांप्ये सांख्यविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे स्थिताः ॥७०॥
 यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते। स्त्रीयन्ते प्रतिलोमानि 'मूह्यन्ते चान्तरात्मना ॥७१॥
 अनुलोम्येन जायन्ते स्त्रीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥७२॥
 सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्व प्रलये चास्य बहुत्वं च तथा' सृजि ॥७३॥
 एवमेव च राजेन्द्र भिक्षेयं ज्ञानकोविदः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ॥७४॥
 एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुत्तरत्वान्। एकत्व प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तमात् ॥७५॥
 बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्। 'सर्व्व क्षेत्रं महानात्मा पञ्चांशोऽपि तिष्ठति ॥७६॥
 अधिष्ठानेन राजेन्द्र प्रोच्यते यनिसत्तमं। अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति न'श्रुतम् ॥७७॥
 क्षेत्रं जानानि चाद्यवर्त' क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तं पुरे क्षेत्रे पुरुषश्चेति कथ्यते ॥७८॥
 अन्यदेव च क्षेत्रं स्यान्न्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रमव्यक्त इत्युक्तं ज्ञातार पञ्चविंशकम् ॥७९॥

अव्यक्त पुरुष कहा गया है। उससे महत्तर की उत्पत्ति हुई जो द्वितीय है ॥६७॥ भूतान् में अहंकार उत्पन्न हुआ जो तृतीय है ऐसा हमने सुना है। और अहंकार से पञ्चभूतों की सृष्टि हुई, ऐसा सांख्यमात्रदर्शियों का कहना है ॥६८॥ ये आठ प्रकृतिपां हैं और सोलह विकार हैं। पाँच विशेष (पदार्थभेद) और पाँच इन्द्रियां हैं ॥६९॥ मनीषियों ने सांख्य मतस्वरूप की इतनी ही संख्या बतायी है। सांख्य के विधान को जानने वाले व्यक्ति नित्य सांख्य-पथ पर बृद्ध रहते हैं ॥७०॥ जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसका लय होता है। प्रतिलोम लगे हो जाते हैं और अन्तरात्मा द्वारा उनका ग्रहण किया जाता है ॥७१॥ सागर की लहरों की तरह गुण गुणा में अनुलोम भाव से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम भाव से लय को प्राप्त करते हैं ॥७२॥ महाराज ! प्रकृति का यही सगुणप्रलय है। प्रलय में इसका एकत्व और सृष्टि में बहुत्व जाना गया है ॥७३॥ राजेन्द्र ! इस प्रकार जानिये की समझना चाहिये कि इसका अधिष्ठाता अव्यक्त का भी यही निदर्शन है ॥७४॥ प्रकृति की एकता और अनेकता होती है। एकता प्रलय में और अनेकता सृष्टिकाल में होती है ॥७५॥ बहुधा आत्मा प्रकृति से प्रसव करता है। उस क्षेत्र को पञ्चांशवां तत्त्व—महान् आत्मा—व्याप्त करने स्थित होता है ॥७६॥ नृपेन्द्र ! यतिवर्गों ने महान् आत्मा को अधिष्ठाता कहा है। क्षेत्र का अधिष्ठान करने से यह अधिष्ठाता वर्द्धमान है, ऐसा हमने सुना है ॥७७॥ अव्यक्त क्षेत्र के जानने से इसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा। अव्यक्त पुरुष सोने से इसका नाम पुरुष है ॥७८॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में अन्तर है। क्षेत्र अव्यक्त का नाम है और क्षेत्रज्ञ पञ्चांशवां तत्त्व कहलाता है ॥७९॥ ज्ञान और ज्ञय में भी अन्तर

१ग प्रकृति । २ग •विवादिव । ३क सांख्यविचारदा । ए० । ४ग सूचयन्ते । ५क प्रीतये । ६क. •सांख्य तए । ए० । ७ग उत्सृज्ये० । ८क स •कत क्षेत्रो वै पञ्चविंशक । अ० ।

अन्यदेव च ज्ञान स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते । ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशक ॥८०॥
 अव्यक्त क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तयैश्वरम् । अनैश्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम् ॥८१॥
 साक्ष्यदर्शनमेतावत्परिसख्या न विद्यते । सख्या प्रकृते चैव प्रकृति च प्रवक्ष्यते ॥८२॥
 चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसख्याय तत्त्वतः । सख्या सहस्रकृत्यां तु निस्तत्त्वं पञ्चविंशक ॥८३॥
 पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा बुध्यमान इति श्रुतं । यदा बुध्यति आत्मानं तदा भवति वैवल ॥८४॥
 सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषितं तब सत्त्वतः । एवमेतद्विज्ञानस्तं साम्यता प्रतिपाद्यते ॥८५॥
 सम्यग्दर्शनं नाम प्रत्यक्ष प्रकृतेस्तथा । गुणवत्त्वाद्यर्थानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत् ॥८६॥
 न त्वेव धर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुनः । विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम् ॥८७॥
 भ्रमपक्षमन्तयो ये न सम्यक्तेषु च दर्शनम् । ते व्यक्तित्वं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनरारब्धम् ॥८८॥
 सर्वमेतद्विज्ञानान्तो न सर्वस्य प्रबोधनात् । व्यक्तित्वं भावित्वं भविष्यति ॥ व्यक्तित्वं भावित्वं ॥८९॥
 "सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसत्त्वं पञ्चविंशकं" । य एवमभिजानन्ति न भयं तेषु विद्यते ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिनाहो वसिष्ठकथनसंवादे
 त्रिचत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

है। ज्ञान अव्यक्त है और ज्ञेय पचीसवाँ तत्त्व है ॥८०॥ क्षेत्र अव्यक्त कहलाता है और सत्त्वं ईश्वर कहलाता है। साक्ष्यदर्शन अनैश्वरवादी और तत्त्वं से रहित है। अथवा उत्तम पचीस तत्त्वं माने गये हैं। अथवा उसकी गिनती नहीं है। अथवा यह गिनता करता ही है और प्रकृति को बतलाता है। अथवा चौबीस या बीबीस सख्या है। अथवा तत्त्वतः सहस्रों सख्या हैं अथवा निस्तत्त्वं पचीस सख्या है (?) ॥८१-८३॥ पचासवाँ प्रबुद्धात्मा बुध्यमान कहलाता है। जब वह आत्मा को जानता है तब एक हो जाता है ॥८४॥ इस दर्शन को तत्त्वपूर्वक आरस बतला दिया। इससे जानने वाले सभता को प्राप्त करते हैं ॥८५॥ प्रकृति का प्रत्यक्ष होना अच्छा उदाहरण है। जैसे ये गुण स होते हैं वैसे निर्गुण से भा। किन्तु इस प्रकार वतमान रहने वालों की आवृत्ति पुन नहीं होती है। और उसका परस्पर नाश भी होता है। वे अविनाशी नहीं हैं। (?) ॥८६-८७॥

राजन् ! जाग्रताहानि अनुभूय इस दर्शन को नहीं जानता है वह बार-बार क्षरमात्र को प्राप्त करता है ॥८८॥ व्यक्त से जानने वाले व्यक्त भाव को ही प्राप्त करते हैं। 'सकल पदार्थ अव्यक्त है वैवल पचीसवाँ तत्त्वं ही व्यक्त है—एसा जो जगते हैं उह मय नहीं होता ॥८९-९०॥

श्रीमहापुराणे वसिष्ठ और कथनसंवादे
 दो सो तीतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

१क स ०कत तथा वै । २स तन्तृत्वमेकविं । ३य प्रचसते । ४स ०सप्रकृत्या नि० ।
 ५ग ०बुद्धया यो बु० । ६स स्मृत । ७य वैवलम् । ८ग ०णतत्त्वायर्थ० । ९ग ०त्यर्थकम्० ।
 १०स ० तो मयान्धवंप्र० । ११स प्रविशति । १२य ०वात्स्यदर्शना० । १३स ०व्यक्त च सर्वं य० ।
 १४स ०कम् । य ;

विद्याविद्ये' तु तत्त्वेन मयोक्ते' वै विशेषतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥१०॥
 उभावेतौ क्षराद्युक्तौ उभावेतावन् (या) क्षरौ। कारणं तु प्रवक्ष्यामि' यथाज्ञानं तु ज्ञानतः ॥११॥
 अनादिनिधनावेतौ उभावेवेक्ष्यौ मतौ। 'तत्त्वसंज्ञावुभावेव प्रोच्यते ज्ञानचिन्तकं' ॥१२॥
 सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्त प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय' विकुर्वाणं पुनः पुनः ॥१३॥
 गुणानां महदादीनामृत्पद्यति परस्परम्। अधिष्ठानं क्षेत्रमाहुरेतदं पञ्चविंशकम् ॥१४॥
 'प्रवर्तगुणजालं' तु तदव्यक्तात्मनि सतिषेत्। तदहं तद्गुणंस्तत्तु पञ्चविंशे विलीयते ॥१५॥
 गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि सदा 'सायत्क्षेत्रज्ञः' संप्रणीयते ॥१६॥
 यदाक्षरं प्रकृतिर्यं गच्छते गुणसंज्ञिता। निर्गुणत्वं यं वै देहे गुणेषु परिवर्तनात् ॥१७॥
 एवमेव च क्षेत्रज्ञ क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम् ॥१८॥
 क्षरो भवत्येव यदा गुणवती गुणेश्वरः। प्रकृतिं त्वय जनाति निर्गुणत्व तयात्मनः ॥१९॥
 तथा' विशुद्धो भवति प्रकृते परिवर्जनात्। अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति युद्धिमान् ॥२०॥
 तदेवोऽव्ययतामेति न च भिन्नत्वमाप्नोते। प्रकृत्या चैव राजेन्द्र 'मिथोऽग्नोऽग्नयस्य दृश्यते ॥२१॥

प्रकार से मैंने विद्या और विद्या के विषय में तत्त्वतः कहा विद्या। अब जो क्षर और अक्षर के विषय में मैं कह रहा हूँ, उसका सुना। य दोनों ज्ञान और ज्ञाप (प्रकृति पुरुष) (विद्या, अविद्या) क्षर और अक्षर दोनों कहाँ गये हैं, इसका कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रहा हूँ। ये दोनों अनादि और निधन (नाश-शील) एव दोनों ही ईश्वर (समर्थ) माने गये हैं। इसी प्रकार तत्त्वचिन्तका ने दोनों को तत्त्व नाम से कहा है ॥१-१२॥ सग और प्रलय धर्मी होने के कारण अव्यक्त को अव्यक्त कहा गया है। यह अव्यक्त गुण सृष्टि के लिये बार-बार विहृत (विकार को प्राप्त) होता है ॥१३॥ महदादि गुणों की उत्पत्ति परस्पर के संयोग से होती है। इन पचीस प्रकार के गुणों को ही अधिष्ठान क्षेत्र कहा गया है ॥१४॥ ओ अन्तर्गुणों का समूह है वह उस अव्यक्त आत्मा के सन्निहित हो जाता है। वह अहं उन गुणों के साथ पचीस तत्त्वा में विलीन हो जाता है ॥१५॥ जब गुण अन्य गुणों में लीन हो जाते हैं तब एक प्रकृति के हो जाते हैं। उस समय क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ के रूप में उत्पन्न हो जाता है। जब अक्षर में गुण सत्ता से प्रसिद्ध प्रकृति लीन हो जाती है तब क्षर शरीर में गुणों के परिवर्तन होने से निर्गुणत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेत्र ज्ञान के क्षय होने से क्षेत्रज्ञ प्रकृति निर्गुण हो जाता है ऐसा सुना गया है। यह क्षेत्रज्ञ २५ गुणवती प्रकृति के गुणों में विलीन होना है तब क्षर हो जाता है, यद्यपि वह प्रकृति और अपने निर्गुणत्व को भली भाँति जानता है। जब युद्धिमान् पुरुष में अन्य है, वह प्रकृति अन्य है' इस बात को जान लेता है तब वह प्रकृति (माया) के परित्याग से शुद्ध हो जाता है ॥१६-२०॥ यह पान्ति का अनुभव करता है और पुनः सर्वत्र नहीं आता है। राजेन्द्र! वह प्रकृति से अय-अय के साथ मिला हुआ सा दीव्य पदवत् है ॥२१॥ जब वह उस प्राज्ञत्व गुण-समूह से मूढ़ पेर होता

१य ० विद्यार्थतः। २य ० योक्तान्त्ववि०। ३य ० धाविज्ञानज्ञा। ४य ० शार्दूमावेन प्री०।
 ५य ० सप्राप। ६य ० टानात्तोत्र०। ७य ० यद्यन्तः। ८य ० ल तदव्यक्ता०। ९य ० वाततले क्षेत्र०। १०य ०
 ० ज्ञानं परिसरेत्। १०। ११य ० वृत्तिस्त्वय०। १२य ० वाजनिनु०। १३य ० मिथ्याऽग्नौ य दृ०।

यदा तु गुणजाल तत्प्राकृत विजुगुप्सते । पश्यते च पर पश्यस्तदा पश्यन् 'ससृजेत्' ॥२२॥
किं मया कृतमेतदयोऽहं कालनिमज्जन । यथा मत्स्यो ह्यभिज्ञानादनुवर्तितयाञ्जलम् ॥२३॥
अहमेव हि समोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् । मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानिह ॥२४॥
'मत्स्योऽप्यत्वमयाज्ञानादुदकाभ्राभिमन्यते' । आत्मान 'तदवज्ञानादन्य' चैव न वेदम्यहम् ॥२५॥
ममास्तु धिक्कुण्डस्य योऽहं भग्न इमं पुनः । अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् ॥२६॥
'अयमनुभवेद्वन्धुरनेन सह मे क्षयम् । साम्यमेकत्वता यातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै । अथ हि विमलो व्यक्तमहमोदृशकस्तदा ॥२८॥
योऽहमज्ञानसमोहादज्ञया 'सप्रवृत्तवान् । 'सर्गादितिसर्गादित्यतः कालमिमं त्वहम् ॥२९॥
सोऽहमेव वशीभूतः कालमेतं न बुद्धवान्' । उत्तमाधममध्यानां तामहं कथमावसे ॥३०॥
समानमायया चेहं सहवास्तमहं कथम् । गच्छाम्यबुद्धभावत्वादिहेतूनां स्थिरो भव ॥३१॥
सहवासं न यास्यामि कालमेतं विवञ्चनात् । वञ्चितो ह्यनया यदि निर्विषयो विकारया ॥३२॥
न तत्तदपराद्धं स्यादपराधो हृष्य मम । योऽहमज्ञाभवः सक्तः पराद्धमुखमुपस्थितः ॥३३॥

है तब वह पर-स्वरूप का स्वरूप स्वता है और तब वह उस मत्स्य की भाँति जो जल को ही केवल जानता है और उसी में इधर उधर घूमता रहता है। सृष्टि भी करने लगता है क्योंकि वह सोचने लगता है कि क्या मैंने समय के बराबर होकर अब तक इतना ही काम किया है। मैं भी मोहवश मत्स्य की भाँति केवल भ्रान्त्यागतिक काम करता रहा। जिस प्रकार मछली जल व अतिरिक्त और किसी पदार्थ को नहीं जानती है उसी प्रकार मैंने भी भ्रम-अज्ञान के कारण अथ पदार्थों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया ॥२३ २५॥ मेरे समान कुबुद्धि को विकार है कि अब तक मैं केवल इसी में मग्न रहा इस (प्रकृति) का अनुशासी बना रहा। अब इस अज्ञान व साथ ही मेरी वस्तुता हो गई, इसके साथ मेरा लय भ होगा। इसके साथ मेरा साम्य और एकत्वानुभूति हो गई, जैसा यह है वैसा मैं भी हो गया। मुझ तो अब इसी की समानता दिखाई देती है प्रतीत होता है कि इसके सत्ता से मैं भी इसी क समान हो गया ॥२६ २८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहवश प्रकृति के पीछे बाड़ता रहा और इसके अनिच्छित सत्ता हो गया ॥२९ ३०॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहवश प्रकृति के पीछे बाड़ता रहा और इसके अनिच्छित सत्ता हो गया ॥२९ ३०॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहवश प्रकृति के पीछे बाड़ता रहा और इसके अनिच्छित सत्ता हो गया ॥२९ ३०॥

१३ पदयन्त्र । २४ ० हुकारनि । ३१ ० ह्रादयमयज्जलाज्जलम् । म० । ४८ ० यत्त यथान्यद्वा
जदक नायम० । ५१ ० दक नाभि० । ६१ ० दमिता० । ७३ ग ० दन्यत्त वैव ये० । ८३ ० मत्र मवेदेव
दुराननसहस० । ९८ ग ० ह्रादास० । १० ० गह्विस्तु निःसङ्ग स्थित । ११८ ० नू । मध्यमोऽह हीनतरंस्तानह ।

ततोऽस्मिन्बहुह्योऽयं स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान् । अमूर्तिश्चाप्यमूर्तिमा ममत्वेन प्रधायित ॥३४॥
 प्रकृत्वा च तया तेन तासु तास्विह योनिषु । निर्ममस्य ममत्वेन विकृत तासु तासु ॥३५॥
 योनिषु यतमानेन नष्टसन्नेन चेतसा । समता न मया काचिदहंकारे कृता मया ॥३६॥
 आत्मानं बहुधा कृत्वा सोऽयं भूयो युनक्ति माम् । इदानीमवबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहंकृतः ॥३७॥
 ममत्वं मनसा नित्यमहंकारकृतात्मकम् । अपलग्नामिमां हित्वा सश्रमिष्ये निरामयम् ॥३८॥
 अनेन साम्यं यास्यामि नानयाऽहमचेतसा । क्षमं मम सहानेन सर्वकमनया सह ॥३९॥
 एव परमसंशोधात्पञ्चविंशोऽज्ञोऽनुबुद्ध्यान् । अक्षरत्वं निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ॥४०॥
 अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तया । निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा सादृशं भवति मथिल ॥४१॥
 अक्षरक्षरयोरेतदुक्तं तव निदर्शनम् । मयेह ज्ञानसंपन्नं मया श्रुतिनिर्वाणम् ॥४२॥
 निःसंदिग्धं च सूक्ष्मं च विशुद्धं विमलं तया । प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध ययाश्रुतम् ॥४३॥
 साध्ययोगो मया प्रोक्तः शास्त्रद्वयनिर्देशनात् । यदेव साध्यशास्त्रोक्तं योगदर्शनमयं तत् ॥४४॥
 प्रबोधनपरं ज्ञानं साध्यानामवनीपते । विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया ॥४५॥
 'बृहच्चैवमिदं शास्त्रमिदं पाठ्यं विदुषो जना । अस्मिन् च शास्त्रे योगानां पुनर्भवपुरःसरम् ॥४६॥

अहो ! अमूर्तिमा अमूर्ति का इस प्रकार समता द्वारा पराभव ? ॥३४॥ उस प्रकृति के साथ उन योनिमां मैं ममता रहा जिनमे निर्मम मुझको यह ममता पुमाती रही ? मैं समझाहीन हो चेतना छोड़कर अनेक योनियो में मटकता रहा। इस अहंकार मे अज्ञान मे मेरी कोई समता नहीं कर सकता ॥३५॥ देखाता हूँ पुन बड़ी अज्ञान अपने को बहुत रूपों मे बाँट कर मुझको कुपय की ओर लगाना चाहता है पर तु अब मैं भाषातीत हूँ प्रबुद्ध हूँ और अहंकार विजेता हूँ ॥३७॥ अब मैं अहंकार पर खड़ी हुई ममता को धन से हटाकर इस अनुचित माया को छोड़कर निर्विकार रूप का जाग्रत ग्रहण करूँगा ॥३८॥ अब उसी निरामय की समता प्राप्त करूँगा अज्ञानवश इस माया का नहीं। उस निरामय के साथ ही मेरा एकमात्र वस्त्रान सबद्ध है इस प्रकृति मे साथ नहीं—इस परमज्ञान के उदबुद्ध होने से पञ्चविंशारमक अव्यक्त प्राप्त हो जाता है और अपने क्षर भाव को छोड़कर अनाम्य अक्षरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३९॥ मैं मथिल ! इस प्रकार अव्यक्त व्यक्त धर्मां सगुण और निर्गुण को देखकर (अनुभव कर) पुन अपने पूर्वरूप (निर्गुण) को श्रयस्कर समझ कर बैसा ही (निरामय) हो जाता है ॥४१॥ मैंने इस प्रकार तु, को अक्षर और क्षर का स्वरूप ज्ञान कराया जैसा कि श्रुतियों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त किया था ॥४२॥ अब पुन दयाश्रुत ज्ञान के अनुरूप अज्ञादिगण सूक्ष्म विशुद्ध और विमल ज्ञान को तुमसे कह रहा हूँ उसको सुनो ॥४३॥ दो शास्त्रों के उदाहरणों के द्वारा साध्ययोग का प्रवचन कर दिया जो साध्यशास्त्र में कहा गया है कि बड़ी योग-दान भी है ॥४४॥ मुनिपति ! उन दोनों में अब शिष्यों के हित के लिये साध्य मे मोक्ष प्रद ज्ञान को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ ॥४५॥ विद्वान् जना मे इस शास्त्र को अति बृहत् बताया है। नरपाल ! इस शास्त्र मे योग का पुनर्भव के साथ साथ पंच-

पञ्चविंशत्परं तत्त्वं पठ्यते च नराधिप । साध्यानां तु परं तत्त्वं यथावदनुवर्णितम् ॥४७॥
बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः । बुध्यमानं च बुद्धत्वं प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अजस्यापि विक्रिया नानाभवनम्

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाध्यवृत्तमिह । गुणनिधि सदा । गुणानां धार्यता तत्त्वं सृजत्यासिपते तथा ॥१॥
अजो हि श्रीश्या भूप विधिया प्राप्त इत्युक्त । आत्मानं बहुधा कृत्वा मानेन प्रतिचक्षते ॥२॥
एतदेव विकुर्वणो बुध्यमानो न बुध्यते । गुणानाचरते हृषेयं सृजत्यासिपते तथा ॥३॥
अध्यवृत्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्यपि । न त्वेव बुध्यतेऽध्यवृत्तं सगुणं ततः निर्गुणम् ॥४॥

विचारक तत्त्व से उत्पद्यते तत्त्व भी ५ हुआ गया है । साक्ष्य न परत्त्व को तो यथावद कह चुका हूँ । बुद्ध अप्रतिबुद्ध
और बुध्यमान भा तत्त्वरूप से योग के कहे गये हैं परन्तु बुध्यमान और बुद्धत्व ही योग के परमतत्त्व निदिष्ट कि ये
गये हैं ॥४६-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में
दो ती चौअर्धसर्ग अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४४

ब्रह्म भी विकार को प्राप्त कर अनेक हो जाते हैं

वसिष्ठ बोले—भूप । अब मा ब्रह्म न हृदय में कीडा की इच्छा से विकार उत्पन्न हो जाता है । उस
समय वह अपने को बहुत रूपों में विभक्त कर देता है तब वह नाना रूपों में विभक्त के समान अपने को समझने
लगता है । अप्रबुद्ध (सुप्त) अव्यवृत्त गुण समूह की और गुणों के उत्पादक तत्त्वों की सृष्टि और विस्तार
करने लगता है । उस समय इस प्रकार अनेक रूपों में विभूत होने पर भी वह अपने इस रूप की (बहुधा विभक्त)
अनंता गद्दी है यद्यपि बुद्धिपूर्वक ही (जानकर ही) सृष्टि (विकार) गुणों की सृष्टि योग और आक्षेप करता है ।

१स ०म । बुद्धयः । २स ०तिबुद्धत्वं प्रा० । ३क ०व्यक्तं निबुधानां नि० । ४ग ०भानाधाय
ते ह्येव सु० । ५स ग अनक्ष द्विजकीर्णं विकुर्वन्ति जनाधिप । आ० । ६क ग तान्येव । ७ग ०वक्ष्यते ।
८क स ०दत्तमपि ।

कदाचित्स्वेव खल्वेतत्तदाहु प्रतिबुद्धकम् । बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥५॥
 बुध्यमानो भवत्येष 'ममात्मक' इति श्रुतः । अन्येभ्यः प्रतिबुद्धन वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥६॥
 अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्युत । पञ्चविंश महात्मान न चासावपि बुध्यते ॥७॥
 षड्विंश विमल बुद्धमप्रमेय सनातनम् । सतत पञ्चविंश तु चतुर्विंश विबुध्यते ॥८॥
 दृश्यादृश्ये 'हृद्यगुणतत्त्वभावे' महाद्युते । अव्यक्त चैव तदब्रह्म बुध्यते 'तात' केवलम् ॥९॥
 पञ्चविंश 'चतुर्विंशमात्मानमनुपश्यति । बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्याऽहमिति मन्यते ॥१०॥
 तदा प्रकृतिमानेव भवत्यव्यक्तलोचन । बुध्यते च परा बुद्धिं विशुद्धाममला' यया (या) ॥११॥
 षड्विंश राजशार्ङ्ग तदा बुद्ध 'कृतो ब्रजेत् । ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसंगप्रलयधर्मिणम् ॥१२॥
 'निर्गुणा प्रकृति' वेद गुणयुक्तामचेतनाम् । तत केवलधर्माज्ञो भवत्यव्यक्तदर्शनात् ॥१३॥
 कबलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात् । एतसु तत्त्वमित्याहुर्नित्यमजरामरम् ॥१४॥
 तत्त्वसम्प्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप । पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रववन्ति मनोपिण ॥१५॥
 न चैव तत्त्ववास्तात्' ससारेषु निमज्जति । एषामुपैति 'तत्त्व हि क्षिप्रं बुध्यस्व' लक्षणम् ॥१६॥

अव्यक्त ज्ञान व कारण है। उसको पंडितजन ब्रह्मज्ञान (जानने योग्य) कहते हैं। सात । इस प्रकार वह अव्यक्त सगुण या निर्गुण किसी भा रूप में नहीं जाना जाता है। बुद्धचित ही इसे प्रतिबुद्ध कहते हैं। यदि यह अव्यक्त जाना जाता है तो वह पचासवां है ॥१५॥ यह बुध्यमान होता है और मेरा आत्मा है—इस प्रकार प्रसिद्ध है। परस्पर ज्ञान होने के कारण इसको अव्यक्त और अच्युत कहते हैं ॥६॥ अव्यक्त जानने व कारण ही उसे बुध्यमान कहते हैं। 'तु वह भा पचीसवें ब्रह्म आत्मा को नहीं जानता है ॥७॥ निमल बुद्ध अत्रयेय और सनातन चोबेसवें पचीसवें और छब्बीसवें आत्मा को वह सतत जानता है ॥८॥ ब्रह्मकान्तिगाली । दृश्य और अदृश्य सब परदाय उसने स्वभाव का अनुगमन करते हैं। सात । केवल अव्यक्त ब्रह्म है उसको जानता है ॥९॥ वह चौबेसवें और पचीसवें आत्मा को देखता है। जो अब जाने को उसने अलग मानता है अब वह प्रकृति युक्त एवम अव्यक्त न वाला होता है ॥१०॥ हे नृपवर । अब वह परा, विशुद्ध एवं निमल बुद्धि को और छब्बीसवें आत्मा या तत्त्व को जान लेता है तब वह बुद्ध होकर परिब्रजन करता है। तदनंतर सुख और प्रसन्न करने वाले अव्यक्त को वह स्थापन देता है और निर्गुण तथा गुणयुक्त अचेतन प्रकृति को जान जाता है ॥११॥ १२॥ तत्त्वज्ञान अव्यक्त के द्वारा से वह केवलधर्माज्ञ हो जाता है। फिर केवल (ब्रह्म) व साथ समागम करने वह विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है। इतना ही तत्त्व ब्रह्मगया है और तत्त्व स परे ब्रह्म अजर-अमर है ॥१३॥ राजन । तस्मात् स सम्यक् ध्वज से ही मन्थ्य तत्त्व जाता हो जाता है। विद्वान् लोग पचास प्रकार व तत्त्व वतलाते हैं ॥१५॥ तात् । तत्त्व का जानकार व्यक्ति ससार में बिलकुल नहीं डूबता है। जो तत्त्व का लक्षण जानते हैं उनके पास तत्त्व शीघ्र पहुँच जाता है ॥१६॥

१ ग 'ममात्मक' २ व ०श ॥ बुध्यते । ३ क स ०तमुभावेव म० । ४ क महद्विंशते । ५ क स ०ते भावके० । ६ ग ०विशच्छ्रु० । ७ ग ०ग आत्मना च न प० । ८ क स बुद्धिमन्० । ९ क स ०मलो य० । १० ग बुद्धिज्ञो । ११ ग निर्गुण । १२ स ०त निरस्तस्त्वबुद्धिमान् । ए० । ग ०त निरस्तस्त्वबुद्धिमान् । ए० । १३ बुद्धि । १४ क बुध्यस्व ।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै। विशुद्धधर्माद्बुद्धेन नाशुद्धेन च बुद्धिमान् ॥२७॥
 विमुक्तधर्मा बुद्धेन समेत्य मुख्यवर्णम्। वियोगधर्माणां चैव विमुक्तात्मा भवत्ययम् ॥२८॥
 विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्। शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान् ॥२९॥
 विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना। केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ॥
 स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते ३०॥

एतावदेतत्कथितं ममा ते, सध्य महाराज ययार्थतत्त्वम् ।
 अमत्सरस्त्व' प्रतिगृह्य' बुद्ध्या, सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्' ॥३१॥
 तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्, प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत् ।
 विधित्समानाय निबोधकारक, प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम् ॥३२॥
 न देयमेतच्च ययाऽनृतात्मने, शठाय क्लोबाय न जिह्वासुख्ये ।
 न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देयं तथा शिष्यविबोधनाय ॥३३॥
 श्रद्धान्वितायाय गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
 विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽय क्षमिणे हिताय ॥३४॥

सत्यता है अन्यथा नहीं यह ध्रुव सत्य है। यह विशुद्ध धर्म वाला जीव पर-धर्म को ग्रहण करने वाला है और
 अय के उपयोग से यह शुद्ध या अशुद्ध हो जाता है अतः इसको शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध ज्ञान का ही साहचर्य
 आवश्यक है न कि अशुद्ध का। हे पुरुषप्रभ! विमुक्त धर्मा (मुक्ति-सामी) वियोगधर्मा (मुक्त) का साहचर्य
 पाकर ही मुक्तात्मा होता है। अमित बुद्धिमान विमुक्त ब्रह्म के सान्निध्य से ही मुक्त होता है और शुचि धर्म
 करने वाला ही अपने शुचि (पवित्र) कर्मा के प्रभाव से पवित्र होता है। विमल आत्मा वाले के साहचर्य से
 जीव विमलात्मा होता केवल्य ज्ञान प्राप्त के सतस्य से केवल्य-ज्ञानी एव स्वतन्त्र की सगति से ही जीव
 स्वतन्त्र ही स्वतन्त्रत्व को प्राप्त करता है ॥२५-३०॥ महाराज! मैंने निष्पक्ष भाव से सनातन, विशुद्ध
 आद्यब्रह्म के ययार्थतत्त्व और तत्त्व को इस प्रकार तुमसे कह दिया ॥३१॥ राजन्! इस परमतत्त्व को तुम
 वेदों में श्रद्धा रखने वाले जनो को ही देना। क्योंकि आर्य ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक जनो के लिये उपदेश या
 शासन ज्ञान-बद्धक होता है एक विनम्र व्यक्ति के प्रति किया हुआ शासनोपदेश उसके उत्थान का कारण
 बनता है ॥३२॥ यह विमल ज्ञान असत्यवादी शठ नपुंसक कुटिल और अपने पांडित्य से दूसरे के आत्मा को
 पीडा पहुँचाने वाले व्यक्ति को नहीं देना चाहिए किन्तु ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो विज्ञासु हो श्रद्धालु
 गुण प्रेमी, नित्य दूसरे की निन्दा करने या मुनसे से दूर रहता हो जो विशुद्धयोग प्रेमी, बुद्धिमान् कृपालु, धर्माशील
 और परहित में निरत रहने वाला हो, जो विद्विक्तासेवी (एकांत प्रेमी), अनुशासन प्रिय विवाद में विरक्त रहने वाला,

१क ० धर्मयुक्तेन। २क विशुद्धात्मा। ३क अतदीप्तिमा०। ४क न ० रत्न प्र०। ५क स चार्थ।
 ६क ० प। देवकनि०।

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विवाहहीनाय बहुश्रुताय	।
विनीतवेशाय नहंतुकात्मने, सदैव गृहस्थं त्विदमेव देयम्	॥३५॥
एतेगुणैर्होनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः	।
न धेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रवानात्	॥३६॥
पृथ्वीमिमं वा यदि रत्नपूर्णं, दद्याददेयं त्विदमत्रताय	।
जितेन्द्रियाय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र	॥३७॥
कराल वा ते भयमस्ति किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य	।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम्	॥३८॥
अगाधमेतदजरामरं च, निरामयं वीतभयं शिवं च	।
समीक्ष्य 'मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा	॥३९॥
अवाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्विरभ्यगर्भाद्धि ततो नराधिप	।
प्रसाद्य यत्नेन तमुपजेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा त्वयैतत्	॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमन्यत्	।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविद्या परायणम्	॥४१॥

बहुश्रुत, विनीत वेश वाला और जो तर्क करने वाला न हो, ऐसे भद्राप्रिय शिष्य की ज्ञान-बुद्धि के लिये इस रहस्यमय ज्ञान को देना चाहिये ॥३५-३६॥ उपर्युक्त गुणों से शून्य व्यक्ति को यह विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान नहीं देना चाहिये। अपात्र को ज्ञान देने से (ज्ञान-दान से) धर्म-प्रवक्ता बनीं भी उस ब्रह्मज्ञान को श्रेयस्कर पथ पर नहीं ला सकता ॥३६॥ यदि कोई अनुपयुक्त व्यक्ति रत्नों से परिपूर्ण इस पृथ्वी को भी दे देत वा वीत-हीन व्यक्ति को वह ज्ञान नहीं देना चाहिये। नरेन्द्र ! यह ज्ञान जितेन्द्रिय प्रयत (पवित्र) और तत्त्वज्ञानी को देना चाहिये ॥३७॥ ऋषिवर ! तुमको अब कराल काल का कुछ भी भय नहीं होगा क्योंकि आज तुमने पर ब्रह्म (ज्ञान) को सुन लिया है। मैंने उस परम-नविक्रम, अगाध वीर को दूर करने वाले, आदिमध्यरहित, अनंत, अजर, अमर, निर्विकार, वीर-प्रय और कल्याणमय ज्ञान को मध्याय रूप से कहा है। नराधिप ! मोह की व्यापकता को साथ ही इसके निवारक ज्ञान के तत्त्वार्थ (धर्म) को समझ बैठ ही इस ज्ञान को उद्यत् देखी, सनातन ब्रह्म की यत्नपूर्वक प्रसन्न कर उस सनातन हिरण्यगर्भ से आज्ञा से बहुत पहले प्राप्त किया। जिस प्रकार आज तुमने सम्पन्न और यदा के साथ मुझसे पूछा है और जिस प्रकार तुमसे आज मैंने कहा है, हे नरेन्द्र ! इस प्रकार अन्य किसी ने नहीं कहा। नरेन्द्र ! जिस प्रकार मैंने मोक्ष-ज या मुमुक्षुजनों के परमलक्ष्य इस ज्ञान को ब्रह्म से प्राप्त किया उसी प्रकार तुमने यह दिया ॥३९-४१॥

व्यास उवाच

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्माद्भाऽऽवर्तते पुनः । पञ्चविंश मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा ॥४२॥
 पुनरावृत्तिमाप्नोति परमं ज्ञानमव्ययम् । नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ॥४३॥
 एतन्नि श्रेयसकरं ज्ञानं भो परमं भया । कथितं तत्त्वतो विप्रा श्रुत्वा देवर्षितो द्विजा ॥४४॥
 हिरण्यगर्भाद्विष्णो वसिष्ठेन समाहृतम् । वसिष्ठाद्विष्णो नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥४५॥
 नारदाद्विदितं महद्यमेतदुक्तं सनातनम् । मा शुचध्वं मुनिश्रेष्ठा श्रुत्वा तत्परमपदम् ॥४६॥
 येन क्षराक्षरे भिन्ने न भयं तस्य विद्यते । विद्यते तु भयं यस्य यो नैनं वेत्ति तत्त्वतः ॥४७॥
 अविज्ञानाच्च' मूढात्मा पुनः पुनश्च पश्यन् । प्रेत्य जातिस्सहस्राणि मरणान्तान्युपाश्रुते ॥४८॥
 देवलोकं तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाश्नुते । यदि वा भुज्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात् ॥४९॥
 अज्ञानसागरे घोरे हृद्यव्यक्तामाध उच्यते । अहन्यहनि मञ्जति यत्र भूतानि भो द्विजा ॥५०॥
 तस्मादगाधादव्यक्तादुपशोणात्सनातनात् । तस्माच्छूय विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजा ॥५१॥
 एवमया मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतरं परम् । कथितं परमं मोक्षं यः श्रुत्वा न निवर्तते ॥५२॥

व्यास बोले—श्रुत्वा मुनियो । जिस प्रकार पहले वसिष्ठ ने इस पञ्चविंशत्क परब्रह्म के विषय में जिसको पाकर कोई पुनः आशङ्कन के बंधन में नहीं पड़ता है कहा है उसको मैंने कह दिया । इस प्रकार उस वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मेग्येशावक्त ज्ञान की आज पुनरावृत्ति हो गई । इसशास्वत अमर ज्ञान को तत्त्वतः समझकर कोई भी बद्धिमान जगत या माया के पाश में नहीं फँस सकता है । हे विप्रगण ! हे द्विजवय ! इस परम निःशयस्कर ज्ञान को देवर्षि (नारद) के मुख से सुनकर मैंने अध्यायत कह दिया ॥४५॥ इस ज्ञान को ऋषि वसिष्ठ ने हिरण्यगर्भ ब्रह्म से प्राप्त किया । ज्ञानी वसिष्ठ से इसको ऋषि गार्ग्य नारद ने प्राप्त किया ॥४५॥ नारद से इस सनातन ज्ञान को जान कर मैंने आप लोगों से कहा । मुनिश्रेष्ठो ! अब तो इस परम पद को सुनकर आप लोगो को लग्न मात्र भी भय या काँच नहीं करना चाहिये ॥४६॥ जिसने क्षर और अक्षर का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया उसको अब किस बात का भय रह गया भयता उसको होना चाहिये जिसको इस परम ज्ञान का तत्त्व ज्ञात नहीं है ॥४७॥ मूढात्मा ही इस विज्ञान का ज्ञान के कारण बार बार सकटा में फँसकर सहस्रा योनियो में मटक कर मृत्यु कष्ट का अनुभव करता है ॥४८॥ यदि कश्चित् उस अज्ञानसागर से किसी प्रकार मुक्त भी होते हैं तो भी वे वर्मानुसार देवलोक त्रियग और मनुष्य यानि का भोग करते हैं ॥४९॥ द्विजगण ! जिस घोर अज्ञान सागर में प्राणी रातदिन डूबते रहते हैं जिसको अव्यक्त और अगाध कहा जाता है उस अगाध अव्यक्त सनातन और उपशान (क्षयशील) अज्ञान से तुम लोग सदा अछूते हो उससे राजसू एव समागुणाभक्त रूप से सदा परे हो । मुनिवर ! इस प्रकार मैंने तत्त्वों के तत्त्व परम मोक्ष ज्ञान को कह दिया जिसको जानकर मनुष्य पुनः जन्म

१क ग पञ्चविंशो । २क ते न जरामरयो एतद्वति । ३व षष्ठ्य भोद्वाह्यं पु० । ४व पदा भवति कालेन त० । ५क ते मोक्षसागरं यं यद्वत्त्वा ।

न नास्तिकाय दत्तव्यं नाभक्ताय कदाचन । न दुष्टमत्यये विप्रा न श्रद्धाविमुखाय च ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिरूपणं नाम
पञ्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अस्य श्रवणपठनकर्तृणां फलप्राप्तिकथनम्

लोमहर्षण उवाच

एष पुरा मुनीन्ध्यास पुराण इत्युच्यते गिरा । दशाष्टदशपरिहर्तिर्व्यासं सारतरङ्गिजा ॥१॥
पूर्णमस्तमलं 'शुद्धैर्नाशास्त्रसमुच्चयं । जातिशुद्धसमायुक्तं' 'साधुशब्दोपशोभितम् ॥२॥
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धातपरिनिष्ठासमन्वितम् । श्रावयित्वा यथान्याय विरराम महामति ॥३॥
तैऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा पुराण वेदसमितम् । आद्य ब्राह्माभिधानं च सर्वबाञ्छाफलप्रदम् ॥४॥
हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिताश्च पुन पुन । प्रशशंसुस्तवा श्यास कृष्णद्वैपायन मुनिम् ॥५॥

भरण के व धन म नहा फँसता है । विप्रमण । इस परमतत्व को किसी नास्तिक भक्त दुष्टमति और श्रद्धाहीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ॥५०-५१॥

श्रावयित्वा महापुराणं वसिष्ठकरालजनकसंवाद समाप्ति निरूपणं नामक
शे सौ पैंतालीसवा अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

इस पुराण के सुनने और पढ़ने का फल-वर्णन

लोमहर्षण बोले—द्विजगण 'पूज का' म महाभारत व्यास जी न इस प्रकार मुनियों को अट्ठशतों दोषों से रहित अत्यन्त मारमूल निमल विगुण्ड नामा धारणा के तत्त्व से पूर्ण साधु शस्त्रों से सुगोमिन सहन गुण और पूज्यगणधन एवं मिष्टान्तवचन के समन्वय से युक्त पुराण को व्यक्तानुक्त रीति से सुना कर मीन हो गये । वे श्रेष्ठमुनि भी सब मनीषियों की पूर्ण करने वाले तथा वे—तुल्य आद्य ब्रह्मपुराण को सुनकर विस्मित और आनन्दमग्न हो गये । प्रशंसा से मुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास की बार बार प्रशंसा करने लगे ॥१-५॥

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसंमितम् । सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं 'परम् ॥६॥
 प्रोक्तं श्रुतं तयाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम् । न तोऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वं प्रभो ॥७॥
 सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेश्विव बृहस्पतिः । नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वं महामुनिम् ॥८॥
 येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः । कः शक्नोति गुणान्ववर्तुं तव सर्वान्महामुने ॥९॥
 अधीत्य चतुरो वेदान्ताङ्गान्व्याकरणानि च । 'कृतवान्भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥१०॥

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्रं

येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः

॥११॥

अज्ञानतिमिरान्धानां 'आमितानां कुदृष्टिभिः । ज्ञानाभ्यन्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२॥
 'एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यासं ते चैव पूजिताः । जन्ममृत्यागतं सर्वं कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३॥
 तया मया मुनिश्रेष्ठा कथितं हि सनातनम् । पुराणं सुमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
 यया भवद्भिः पृष्टोऽहं संप्रज्ञं द्विजसत्तमाः । व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५॥

मुनियो ने कहा—अहो ! मुनिश्रेष्ठ ! आपने सब प्रकार की अमिप्रेत वस्तुओं को देने वाले, सब पापों को दूर करने वाले, विचित्र पदों वाले और श्रुति मुख्य इस उत्तम पुराण को सुनाया, तथा हम लोगों ने इसे अक्षरशः सुना । प्रभो ! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो । महामाग ! आप सर्वज्ञ हैं, देवों में बृहस्पति के समान आप का (इस लोक में) स्थान है, आप ऐसे महाविवेकशील, ब्रह्मज्ञानी महामुनि हैं हम सब नमस्कार करते हैं । आपने इस भारतवर्ष में वेदों के अर्थ प्रवट किये हैं । महामुने ! आपने सब गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६-९॥ आपने अग (पंडप) सहित वेदों और सम्पूर्ण व्याख्यान शास्त्रों का अध्ययन कर महाभारत शास्त्र की रचना की है, ऐसे ज्ञानीपुरुष को नमस्कार है ॥१०॥ हे विशाल (व्यास) बुद्धि वाले, विकसित कमल की पसुडियों के समान आयत नेत्र वाले व्यास ! आपको नमस्कार है, आप जैसे जहामानव को नमस्कार है जिन्होंने महाभारत रूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानदीपक को जला दिया है ॥११॥ आपने अज्ञान के गहन अन्धकार में अपनी भ्रान्त दृष्टि के कारण भूले हुये व्यक्तियों की आँखों में ज्ञान की अञ्जन-मालिका की रंगावर उनकी आँखें खोल दी हैं ॥१२॥ इस प्रकार अपनी वृत्तज्ञता प्रवट कर और महामुनि उस व्यास की पूजाकर वे सब मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गये ॥१३॥

सोमहर्षण बोले—द्विजवर ! जिस प्रकार आप लोगों ने मुझसे पूछा, उसी प्रकार मैंने भी व्यास की हया से पाये हुये अत्यन्त पुण्यप्रद तथा सब पापों को दूर करने वाले सनातन पुराण को आप लोगों से कह दिया । इस पुराण

१३ शिवम् । २८ महामते । ३१ च । रक्षित मार० । ४२ वृत्त हि मार० । ५२ य येन ।
 ६८ योगारमने । ७८ स्ने० । ८१ सर्वज्ञान । ९२ पारायण ।

आवयेद्ब्राह्मणो' यस्तु सदा पबंसु संयतः । एकादश्यां द्वादश्या च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
 इदं यशस्यमाप्नुय्य सुखदं कीर्तिवर्धनम् । बलपुष्टिप्रदं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥२९॥
 त्रिसध्वं यः पठेद्विद्वाञ्छ्रद्धया सुसमाहितः । इदं चरिष्ठमाख्यानं न सर्वमोप्सितं लभेत् ॥३०॥
 रोगातो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् । भयाद्विमुच्यते भीतः आपदापन्न आपदः ॥३१॥
 जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेघा' पशून्धृतिम् । धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२॥
 याग्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः । तांस्तान्त्वर्तानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥३३॥

यश्चेदं सततं शृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रदं,
 विष्णु लोकगुरुं प्रणम्य वरदं भक्त्येकचित्तः शुचिः ।
 भुक्त्वा चात्र सुखं विमुक्तकलुषः स्वर्गं च दिव्यं सुखं,
 पञ्चाद्याति हरेः पदं सुविमलं मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४॥
 तस्माद्विप्रवरैः स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेण सुभि-
 स्तद्वत्सन्निधयपुगवंस्तु' नियतैः श्रेयोविभिः सर्वदा ।
 धैर्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूत्रैस्तथा धार्मिकैः
 श्रोतव्यं' त्विदमुत्तमं बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५॥

हे । जो ब्राह्मण सर्वदा पर्वों के दिन तथा एकादशी और द्वादशी के दिन यह पुराण गुनाता है वह विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥२८॥ यह पुराण मनुष्यों का यश बढ़ाने वाला, आयु सुख और कीर्ति बढ़ाने वाला, यश-पुष्टि प्रद, धर्म और दुःस्वप्न के प्रमाद का दूर करने वाला है ॥२९॥ जो व्यक्ति तीव्रों वाल (श्रुत, मध्याह्न एवं सायम्) एकाप मन से श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ आख्यान (पुराण) को पढ़ता है वह सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ इस पुराण के पाठ से रोगी मनुष्य रोग से और बन्दी कारागार से छूट जाता है । इसी प्रकार मयमीत मय से तथा आपत्तिप्रस्त आपत्तियां से छूट जाता है ॥३१॥ मनुष्य इससे प्रभाव से जातिस्मरत्वं (पूर्वजन्म का ज्ञान) विद्या, पुत्र, मेघा वसुधन, धैर्य धर्म, अर्थ काम यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३२॥ जिन जिन इष्ट वस्तुओं को मन से लेकर सततवित्त से मनुष्य इस पुराण का पाठ करता है उन सबको वह प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥ जो मनुष्य पौरुष वरदानां विष्णु को प्रणाम कर भक्तिभाव से ध्यानपूर्वक पवित्र हो, इन स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाले पुराण का नित्य ध्यान करता है, वह पापमुक्त होकर इगलोक में गुण और स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगन के बाद अपन प्राकृत सुखों से भी मुक्त होकर विष्णु के विमल और चारका पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ इसलिये मुक्ति-प्राप्ति के इच्छुक तथा अपने धर्म में निरत रहने वाले धेष्ठ रिष, सर्वदा अभ्युदय की इच्छा करने वाले एवं नियम पालन करने वाले उत्तम क्षत्रिय, विमुद्ध कृत्स्न उत्तरप्र वैश्य और धर्मप्रेमी गूढ प्रतिदिन अधिक कर देने वाले एवं धर्म अथ और मोक्ष देने वाले उत्तम पुराणधर ध्यान करें ॥३५॥ आप पुराण

१४ स्यान्मनुः । २४ सा ० तद्वीरान्मुच्येन्महापुनः । जा० । ३४ ० धां यशो पुरि० । ४४ ० अपेता पु० । ५४ ० मर्मकंद० । ६४ ० यत्पुष्टिस्तु । ७४ ० अथ तदनुत्त० ।

धर्मं मतिर्भवतु' च पुरुषोत्तमाना, स हृद्येक एव परलोकपतस्य वन्द्यः ।
 अयां स्त्रियश्च निपुणैरपि सेध्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६॥
 धर्मेण राज्यं लभते मनुष्य, स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
 आयुश्च कीर्ति च तपश्च धर्म, धर्मेण' मोक्षं लभते मनुष्य ॥३७॥
 धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्मः सखा चात्र परे च लोके ।
 प्राता च धर्मस्त्वह मोक्षदश्च, धर्मादिते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥३८॥
 इदं रहस्यं ध्येष्ट च पुराण वेदसमितम् । न देय' दुष्टमस्ये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९॥
 इदं मयोक्त प्रवर पुराणं, पापापह धर्मविवर्धनं च ।
 धृतं भवद्भिः परम रहस्यमाज्ञापयस्व मुनयो मज्जामि ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशस्तनं नाम
 षट्चत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२४६॥

समाप्तमिदमादिब्राह्माभिध महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्माप' णमस्तु

धर्म की धर्म की ओर सदा अनिरवि हो गया कि वही परलोक' म गय हुये जीवा (मृत) का एकाग्रता सहायक है।
 परम पुण्य व्यक्ति भी यदि अथ और स्त्री की सेवा करे अर्थात् उनका प्रेमी बने तो भी वे न तो कुछ महापता ही
 कर तपस और न स्थिर ही रहते हैं ॥३६॥ मनुष्य धर्म म ही राज्य प्राप्त करता, धर्म से ही स्वर्ग प्राप्त करता
 और धर्म से ही आयु, कीर्ति तप और धर्म यही तब कि मोक्ष या प्राप्त करता है ॥३७॥ इस लोक म धर्म ही
 मनुष्य की माता और पिता है धर्म ही इस लोक तथा परलोक का गुरु है धर्म ही इस लोक का रक्षक और
 मोक्षदाता है धर्म का अनिरवि और कोई तार पडाथ संगार म नहीं है ॥३८॥ यह ध्येष्ट पुराण परम मोक्षदाय
 तथा वेदगुह्य है। इसकी दुष्ट-दुष्टि विशेषकर भास्विक व्यक्ति को बनी भी नहीं गुप्तता चाहिये ॥३९॥
 मुनिगण! मैंने यह पाप-नाशक उत्तम तथा परम मोक्षदाय पुराण बत दिया और आप लोगों न भी इसे गुप्त
 किया। अब आता दीत्रिये, मैं जाता हूँ ॥४०॥

श्रीब्रह्मपुराण म रोमहर्षण और मुनिसंवादे न संवाद प्रकरण म पुराण
 प्रशंसा नामक दो सी छियासीवर्ग अध्याय समाप्त ॥२४६॥

॥ ब्रह्मपुराण समाप्त ॥

(ब्रह्मपुराण के सम्मत श्लोको की मर्यादा १३७८३)

ॐ तत्सद्ब्रह्माप' णमस्तु

परिशिष्ट

ब्रह्मपुराण में आय व्यक्तिकाची सत्ता शब्दों की अनुक्रमणी

अ

अ—१६ १२०१।

अनुमान—५५ ४४९।

अनीकानु—३३।

अनन्य—१४६।

अन्या—४८।

अन्य—९३ ९५ १०६ १०८ १०९ ११० ९९१

९९३ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ १००० १००१

१००२ १००४ १००५ १०६७।

अन्यथा—३४०।

अन्यथा—९३

अन्यथा—४०८ ४१४ ४५२ ४२० ४६३ ४८५

६४१ ६४२ ६०० ६०५ ६९६ ६९७ ७४१

७४२ ८२८ ८२० १०० ८९६ ९०१।

अन्यथा—९६।

अन्यथा—३० ३४० ३६१ ३७८ ४१५ ४८५ ५०९

५१३ ५१७ ५३८ ५६० ५७३ ५८५ ६००

७०१ ७३४ ७१९ ७०० ७२० ७२० ७५

७८९ ७९० ७९४ ८०२ ८३० ८३१ ८३८

९५१ ९९९ १०४० १०७२ १०८१ १०१०

१२१० १२०४ १६६१।

अन्यथा—३५।

अन्यथा—१०१।

अन्यथा—८।

अन्यथा—८६।

अन्यथा—८ २४।

अन्यथा—८१७ ८१९ ९१७।

अन्यथा—१९१।

अन्यथा—८७।

अन्यथा—५ ८ १४ ३० ३३ ७१ ८२ १९५

२०३ ३०८ ५१६ ७८९ ८२० ८२८ ९०१।

अन्यथा—९६८ १०३४।

अन्यथा—५६।

अन्यथा—६२ ८२।

अन्यथा—८६।

अन्यथा—८२ ८३।

अन्यथा—३४।

अन्यथा—१५।

अन्यथा—८।

अन्यथा—५४४ ५४५।

अन्यथा—८०६।

अन्यथा—१५।

अन्यथा—४३१ ४३२।

अन्यथा—१८ ८३।

अन्यथा—३३।

अन्यथा—८९१।

अन्यथा—८००।

अन्यथा—१०२।

अन्यथा—८१०३

अन्यथा—१०

अन्यथा—८।

अन्यथा—१ ७ ४ ३० ३४ ५८ ७३ १८९ १८०

१९५ ३७८, ५२२, ६३७ ६३८, ७८८, ७८९,	अभिमन्यु—८ ८५ ९५।
७९२, ८७२, ९०१।	अभिष्टुत—८७१ ८७३।
अदिनि—१६, १७८, १७९ १८० १८१ १९७	अमात्रसु—६१।
३७८, ४१९ ६८५, ८९४, ९४१, १०३३, १०३४,	अम्बरीष—४२, ५६ ४०८।
१०३५, १०३६, १०३७।	अम्बर्य—८०४।
अदि—४७२।	अम्बष्ठ—७८।
अद्रिका—४७१, ४७२।	अम्बिका—५५७।
अघुष्ट—३४।	अय सक्तु—१०८५।
अम्बरीषान्—३४।	अय सिरा—१०८५।
अनय—८०।	अयुताजित—५६, १००।
अनश्न—३६८।	अयोमुख—१७।
अनमित्र—५६, ९४, १०३।	अरिक्षप—१०६।
अनरण्य—५६।	अरिन्दम—४०८।
अनल—१४।	अरिमर्दन—९३ १०६।
अनाघुष्टि—९४।	अरिमेजय—८४, ९३ १०६।
अनाघुष्टि—१०२।	अरिष्ट—३४, ९४९ ९५७, ९८०, १००५, १०३२,
अनिष्ट—३५२, ३६७, १०२८, १०२९ १०३१	१०९१।
१०४४, १०४५ १०४७, १०४८, १०५१, १०६७।	अरिष्टनेमि—१४, १६, ५५, ९३।
अनिल—१४।	अरिष्टा—१६ १९।
अनु—७२, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४ ७९७।	अरुण—१९ ४९५ ८३२, ८६६, ८६७।
अनुज—१०८५।	अरुण्वर्त—१४, १९७, ४०३, ४१३ ४६६ ६०३,
अनुहृदि—१७ ७०० १०८५।	८९६।
अनेना—४५ ६६, ६८।	अर्चनयव—१०८५।
अन्तर—९७।	अर्जुन—८८ ८९ ९० ९४, ९५, ९८० ९८१
अन्तर्धानि—८।	१०५९, १०६३, १०६८, १०७०, १०७१, १०७२,
अन्तर्धानि—१२०१।	१०७३, १०७५, १०७६ १०७८, १०८८।
अन्तर्धानि—८।	अर्धया—१६, ३७८, ९९९।
अन्तर्धानि—१२ १०० १०१, १०३ ४०८ ७३३।	अष्टिपेण—५६०।
अन्तर्धानि—१२।	अलम्बुषा—३९९, ९२४।
अन्तर्धानि—१२२।	अलर्न—७०, ८१, २०२, ९४०।
अपराजित—१५।	अवलि—९१, १०१।
अपरा—२०१।	अविशिन—८६ ९३।
अभयद—७६।	अविज्ञान गनि—१५।
अभिजिज—१०१।	अव्यय—३३।

अमन्य—९४।
 अमन्य—९३ १०६।
 अमन्यव—९३ १०६।
 अमन्यर—१९।
 अमन्यय—६४१।
 अमन्ययामा—३४।
 अमन्यपति—१०८५।
 अमन्यवाहु—९३ १०७।
 अमन्यगिरा—१०८५।
 अमन्यहनु—९५।
 अमन्यनू—३२८ ५१३ ५८५ ९९३ १०१०।
 अमन्यनीकुमार—३४ ४० २१२ २२५ २३३ २३४
 २७२ २०९ ४९५ ४९६ ५३८ ६८० ८३८
 ९५० ९९२ १०६४।
 अमन्यव—६५ ६६ ८३।
 अमन्यारय—८१।
 अमन्यवक्र—१०७६ १०७७।
 अमन्यगज—४४८ ४४९।
 अमन्यभीजा—१०३।
 अमन्यकनी—१२ ९३।
 अमन्यन—१४६।
 अमन्यगिरामा—१०८६।
 अमन्यति—१०१३।
 अमन्यपा—४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७
 ४८८ ५७९ ६५६ ६७२।
 अमन्यि—८२८।
 अमन्यिष्य—१५।
 अमन्यनगु—५७।
 अम
 अमन्यीप्र—३२ १२२५।
 अमन्येया—८।
 अमन्यरुग—७८९।
 अमन्यपति—५६।

अमन्यय—७७४ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९।
 अमन्यया—७८८ ७८९ ७९१।
 अमन्यविना—८७६ ८७७ ८७८।
 अमन्यय—३४ २२५ ४९२ ५१३ ५८० ५८५
 ६८० ८२० ८२१ ८३१ ९०२ ९९२ १०६४
 १०८२ १२०१।
 अमन्यकुटुम्भि—१२०२।
 अमन्यद—११९।
 अमन्यत—४३ ७१ ८२।
 अमन्य—१४ ३२।
 अमन्यव—५ ६।
 अमन्यस्तम्भ—७३६ ७४० ७४१ ७४२ ७४३।
 अमन्यति—७१।
 अमन्यु—६१ ६६ ६५२ १००१।
 अमन्युष्मान्—७।
 अमन्यरय्य—३३।
 अमन्यद्र—४५।
 अमन्यिष्य—६९ ७११ ७१३ ७१६ ७१७।
 अमन्यि—९९।
 अमन्यि—०३ १०६।
 अमन्यिदिव—८६७ ८६८।
 अमन्युरि—१४६।
 अमन्युह—१०१ १०६८।
 अमन्यिद—८७।
 अम
 अमन्यव—४१ ४२ ४४ ४५ ४६।
 अमन्य—२१ २२ २० ४९ ६२ ६३ ६८ ७१ ७२
 ८२ ९४ ११० १४९ १५८ १७४ १८० १८६
 १९१ १९३ १९७ २१० २१३ २१५ २२४
 २३७ २४३ २६३ २६५ २७१ ३१० ३३१
 ३६८ ३७८ ३८१ ३८८ ४०९ ४१९ ४२३
 ४३७ ४४६ ४५३ ४५९ ४६४ ४७२ ४७७
 ४७८ ४७९ ४८० ४८२ ४८३ ४८४ ४८५
 ४८६ ४८७ ४८८ ५०९ ५१० ५१३ ५२०

५२१ ५३१ ५३८ ५४१ ५५० ५८० ५८२
 ५८५ ६५३, ६५९ ६५७ ६५८ ६६१ ६६२
 ६६३ ५८८ ६८६ ६९० ६९१ ६९२ ६९३
 ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९९ ७२१ ७२८
 ७२८, ७२९ ७३० ७३१ ७३५ ७३५ ७३६
 ७३७ ७५५ ७५५ ७५७ ७५८ ७५९ ७५९
 ७९४ ७९९ ८०० ८११ ८३५ ८३८ ८४४
 ८४९ ८७४ ८९० ८९१ ८९४ ९०० ९०२
 ९०३ ९१४ ९१५ ९२३ ९२४ ९२७ ९४०
 ९४१ ९४४ ९५० ९५२ ९५२ ९७४ ९७५
 ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९९१ ९९२
 ९९३ ९९४ ९९९ १०१० १०१२ १०३२
 १०३३ १०३५ १०३७ १०३८ १०३९ १०४०
 १०४१, १०४२ १०५२ १०५८ १०५९ १०६४
 १०६५ १०८३ १११७ १२२८ १२२९ १२६६।

हन्त्रावित्—१७।

हन्त्रतापन—१०८५।

हन्त्रधुम्न—२६६, २७१, २७२, २८४, २९०, २९२,
 २९४, २९६, २९८, ३०९ ३१०, ३१५, ३८५।

हन्त्रसेना—८३।

हन्त्राणी—७२८, ७३१ ७३२, ७३६, १०३७ १०३८,
 १०३९।

हरा—१६, १९।

हृत्—३२, ५६५, ५६६ ५६७, ५७१, ५७७ ५७८।

हृत्ता—४१, ४२, ४३, ६०, ८०, ४१५ ५७०, ५७१,
 ५७२, ५७३, ५७४, ५७५ ५७६, ५७७ १२०१।

हृत्तल—१७ १८।

हृत्

हृत्तान—३२८, ३६८।

हृत्तवत्—८६६।

हृत्तवरी—५५७।

हृत्

हृत्तय—५७।

उग्र—१०८५।

उग्रसेन—१०१, १०२, ९४९, ९८८, ९९१ ९९५
 १००८, १०१२, १०१३ १०५७, १०५८, १०६४।

१०६८, १०७०।

उग्रसेना—९३, १०६।

उर्ध्वं श्रवा—२२।

उत्तल—४२।

उत्तला—४२।

उत्तलक—४६ ४७, ४८।

उत्तम—३१।

उत्तानपाद—७।

उदव—९४, १०६६।

उपदानवी—८०।

उपदेव—९३, १०१, १०६।

उपदेवी—९५, १०१।

उपवाहारा—१००।

उपमद्यु—९३ १०६।

उपमन्यु—७१६।

उपेक्ष—१०६।

उमा—२०१, २०४, २०५, २०६, २०९, २१३
 २२३, २३०, ३७९ ४१६, ४२६, ४३४, ४३८,
 ५६८, ५७५, ५७६, ६०५, ७३४, ७९१, ११८२,
 ११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९६, ११९७।
 ११९८।

उर्वेती—६० ६१, १८७, २५६ ३९९, ५३४, ५३५,
 ७९९ ८०९, ८१०, ८११, ८९०, ८९१, ८९२,
 ९२४, १२१८, १२१९ १२२०, १२२१ १२२२।

उर्वू—१४६, ७००।

उत्तम—१०२३।

उत्तीनर—७७, ९५।

उपङ्गु—१२०२।

उपत्—९७।

उपदगु—९७।

उपदय—७८।

उषा—१९७, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, १०४५.

१०४६, १०४७, १०४८।

उष्ण—१२२।

ऊ

ऊर्ज—३२।

ऊर्जा—११३४, ११३५, ११४२, ११४३।

ऊर्ध्वबाहु—३३।

शू

शूक्ष्म—८४।

शूचीव—३४, ६३, ६४।

शूद्रवृ—७६।

शूद्रवृका—८०।

शूद्राब्ज—५६०।

शूद्रुपर्ण—५६।

शूद्र्यगृमे—७९।

ए

एकचक्र—१७।

एकपणा—२०१, २०२।

एकपाटला—२०१।

एकलब्ध—९४।

एकान्त—१०८६।

एलापत्र—१९।

ऐ

ऐक्यकी—९९।

ऐरावत—१९, २२, २९, १०३३, १०४०, १०४१।

ऐशान्य—८६।

ओ

ओर्व—३२, ३४, ५२, ५३, ५५।

व

वस—१०१, ९१७, ९४९, ९५१, ९५२, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९८७, ९८८, ९८९, ९९१, ९९४, ९९५, १०००, १००१, १००३, १००४, १००५, १००७, १००८, १०१०, १०११, १०१३, १०१४, १०३२, १०९१।

वसन्ती—१०२।

वसा—१०२।

वसुत्सव—४५, ७१।

वसुधी—४३।

वसोवान्—५२९, ५३०।

वसोयु—७६, ७७।

वस्तव—१०२।

वस्तु—१०२।

वस्तुवाहिनी—८६९।

वच—५१९।

वच्छप—६५।

वट—६४९, ६५०।

वटु—९२२, ९२३, ९२७, ९३१, ९३३, ९३७, ९३८।

वटु—१४६, ४७३, ४७४, ४७५, ८०१, १०६३।

वलि—६५।

वट्ट—१६, १९, ५३३, ८३२, ८३३, ८३५, ८३६।

वनव—८७।

वनसल—४०८।

वनधव—९४, ९५।

वन्द्य—१०२४।

वपरी—१५।

वपालवीतव—३४९।

वपारी—१५।

वपित—१७, १९, ५४, ८०, १४६, ४०२, ४४७, ४४८, ४४९, ८११, ७८०, ७८१, ७८३, १०८०।

वपिलाव—४८।

वपीवान्—३३।

वपानरोमा—१०१।

ववन्ध—१०८९।

वमगा—४९९।

वम्बल—१९।

वम्बलवह्नि—९८, १०३।

करघम—८६।

करम्म—९९।

कराल—१०८६।

करालजनक—१३०१, १३१२।

करप—४१, ४३, ४४।

करुरीम—८७।

ककि—७४०।

कर्कोटक—१९, ८९।

कर्ण—१०५६, १०५७, १०५८ १०७१।

कदम—७, २२।

कलिङ्ग—१०२९।

कलिन्द—१०२९।

कलमायपाद—५६।

कदय—७७२, ७७३।

कनि—८, ५१६।

कवयप—१२, १४, १५, १६ १७ १९ २० ३२
३४, ३६ १४६, १७८, १८१, १८२, १९७ १९८,
१९९, २००, २११, २६३, २७८ ३७८, ४०४, ४०८,
४६८ ४६९ ४९२ ५२२, ५३१ ५३२, ५३३,
५३४, ९७०, ६८६ ६८७ ६८८, ६९१ ६९४,
६९५ ६९६, ८६६ ९०३, १०८८।

काल्चनप्रम—६१।

काण्व—८०२।

काम—९२५, ९२६।

कामदमन—१२२५।

कामदम्भ—१०३।

कामदेव—२२१।

कामली—६४।

काम्या—६ ७।

कारुष—४३।

काव्यक—६५।

कार्त—८७।

कार्तवीर्य—९१ १०८७।

कारि—७२०।

कार्तियेय—१५ २५२, २६०, ३२८, ४६४, ४६६

५१२ ५६८ ५९७ ७१९ १०४९।

काल—१५, १७ ८७।

काश्व—१०८५।

काशकोष—१०८५।

काशनाम—१७ १८।

कालनेमि—९४१, ९४९।

कालयवन—९६ १०१५, १०१६ १०१९, १०९१।

कालरानि—५५७।

काशवदन—१०८६।

कालानल—७७।

कालिका—१८।

कालिन्दा—१०४४।

कालिय—९८२, ९८७, १००५।

का—८५।

काशीय—९६४ ९६५ ९६७ ९६८ ९६९।

कावेरी—६२ ८२।

काव्य—३३।

काश—६९।

कासिक—८१।

कासिकन्या—९५।

काशिप—६९।

काश्य—१०१।

काश्यप—३४, ६९।

काश्या—८५, १०१।

कीर्ति—५९ १९७ ४१४।

कीर्तिमान्—७।

कुतुर—१०१, १०२।

कुलि—७, १७।

कुण्डल—८८१, ८८५।

कुत्स—८।

कुन्ति—९४, ९९।

कुपथ—१०८५।

कुवेर—२१२ २३३, ३२८, ३६८, ४०२, ४१५

कैटभ—३०, ६४१, ६५५, ६४७, ११३७।

कैशिक—९९।

कोका—११४३।

कोत्तासुर—४०८।

कोष्ठ—९७।

कोशल्या—९९ ६६३, ६७१।

कौशिक—३४, ५०, ८६, ९४ १४६, ९०१।

कौशिकी—६४।

क्रतु—५, ८, ३२, १९५, ३७८, ९०१।

क्रतुस्यला—३९९।

क्रय—९९, १०८५।

क्रमण—१००।

त्रिमि—१००।

क्रोञ्ची—१९१।

क्रोध—१०८५।

क्रोधन—८६३ १०८५।

क्रोधवर्द्धन—१०८५।

क्रोधवशा—१६।

क्रोधहन्ता—१०८५।

क्रोष्टा—८७, १२०१।

क्राष्टु—९, १०३।

क्षत्रबुद्ध—६९।

क्षमाधान्—१५।

क्षान्ति—४१४।

क्षेम—०।

क्षेमक—६९ ७०, ८१, ११९।

क्षेमयन्त्रा—५७।

क्ष

क्षट्वाङ्ग—५५।

क्षल्दा—७६।

क्षसा—१६, १९।

क्ष

क्षन्ता—४०९, ४२६ ४४१, ४४२, ६०९, ६४७, ७३८,

७७०, ७८४, ८०८, ८१०, ८९४, ८९६, ११३८।

गणनायक—४३०।

गणपति—४२९।

गणेश—२२७, २६०, ३२८, ४२८, ४३३, ५६८,

५७६, ५९७, ६२८, ६३१, ९०८, ९०९ ९११।

गणेश्वर—९११।

गण्ड—८६३।

गण्डूय—९४।

गद्ग—९६।

गन्धर्वगण—१०४०।

गमस्तिनी—५८५, ५८८।

गमनमित्र—१०८५।

गम्भीरा—८००।

गय—८, ४२, ८०, ४०८।

गया—४२।

गरिष्ठ—१०८५।

गवड—१९, २२, ३५५, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,

८३१, ८३२, ८३४, ८३५, ८३६, ८६६, ८६७,

९३२, ९६९, १०३३, १०३४, १०३५, १०४०,

१०४१, १०४३, १०४८, १०४९, १०५३, १०५४,

१२२६।

गर्ग—७२, ८०, ९६, १२८, ९६१।

गर्दभाक्ष—१७।

गवय—९१७।

गवाक्ष—९१७।

गवेयण—९३, १०७।

गानवान्—१०४४।

गाधि—६३, ६५, ८३।

गान्दिनी—९३, १०६।

गान्धार—८७।

गान्धारी—८५, ९२, १०३।

गायत्री—३६१।

गायत्र्य—९६, १४६, १०१५, १०१७।

गाल्य—३४, ५०, ६५, १४६, ५०२, ५०३, ५०,

५०५, ५०६, ६७०, ९०१।

ज

जटासु—८६६।

जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७२, १०९० १३०९।

जनमेजय—७२, ७७, ८४।

जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१ १०१३

१०१४, ११३६।

जन्तु—८३।

जप्य—६५।

जमुदमि—३४, ६४, ६५। १४६।

जय—६५, ६९।

जयस्तेन—६९।

जयद्रथ—१०७१।

जयध्वज—९१।

जयन्त—७७५।

जया—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,

४३१, ४३३, ५८०, ७११।

जरा—१०६४, १०६९।

जरातन्त्र—७२, १०१३ १०१४, १०१५, १०१६

१०२४, १०६५, १२०२।

जलज—१२३।

जलसु—७६।

जह्नु—३३, ६१, ६२ ८२।

जातवेदसु—५२७ ५२८।

जानकी—९१७।

जाबाला—७५८, ७५९।

जाबालि—५०१ ६७० ७९२, ९०१।

जाम्बवती—१०५ १०२९ १०४४।

जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९ ९१७।

जाह्नव्य—१०९०।

जागति—८०७।

जीमूत—९९।

जीध—५१६।

जैगीषव्य—२०२।

जैमिनि—१४६।

जगामय—९८।

ज्योति—३२।

ज्योतिष्यान्—३२।

त

तसु—८०।

तक्षक—१९, २२ २९।

तत्त्वदर्पा—३३।

तनूजं—३२।

तन्त्रिज—९५।

तन्त्रिपाल—९५।

तन्वी—३३।

तद—३३।

तपती—६०९।

तपस्य—३३।

तपस्वी—८।

तपोभूत—३३।

तम—६५२, ६५३, ६५८।

ताडना—६७२।

तापी—४९५ ४९६।

तामस—३३।

ताम्रा—१६ १९।

तारक—१७ ४६४, ४६६, ७१९।

ताय—५९, ८१२, ८१४।

ताड्य—८६६।

तालव्य—९१।

तितिक्षु—७७ ७८।

तिष्ठि—१०१।

तिलोत्तमा—१८७, २५६, ३९९, ७९९, ९२४, १०७६।

तुम्बुह—१८७, २१६ ९०१।

तुर्कसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७ ७९४, ७९७।

तुपित—३२।

तूणयज—१४६।

तोषालव—१००८।

तौण्डिकेर—९१।

ज	ज्यामघ—१८।
जटायु—८६६।	ज्योति—३२।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।	ज्यानिष्पान्—३२।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।	त
जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१, १०१३,	तसु—८०।
१०१४, ११३६।	तद्यत—१९, २२, २९।
अन्तु—८३।	तत्त्वदर्शी—३३।
अप्य—६५।	तनुजं—३२।
अमदगि—३४, ६४, ६५। १४६।	तन्निज—९५।
अय—६५, ६९।	तन्निपाल—९५।
अयत्तन—६९।	तन्वी—३३।
अयत्रय—१०७१।	तप—३३।
अयध्वज—९१।	तपती—६०९।
अयन्त—७७५।	तपस्य—३३।
अपा—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,	तपस्वी—८।
४३१, ४३३, ५८०, ७११।	तपाभूत—३३।
अरा—१०६४, १०६९।	तम—६५२, ६५३ ६५८।
अरासन्ध—७२, १०१३, १०१४, १०१५, १०१६,	ताडन—१७२।
१०२४, १०६५, १२०२।	तापी—४९५, ४९६।
अलङ्—१२३।	तामस—३१।
अलेयु—७६।	ताम्रा—१६ १९।
अल्ल—३३, ६१, ६२, ८२।	तारक—१७, ४६४, ४६६, ७१९।
आतिषदसु—५२७ ५२८।	तारा—५९, ८१२, ८१४।
आनकी—९१७।	तार्क्य—८६६।
आबाला—७५८, ७५९।	तारुण्य—९१।
आबालि—१०१, ६७० ७९२, ९०१।	तिक्तिभु—७७ ७८।
आम्बवती—१०५, १०२९ १०४४।	तिन्त्रि—१०१।
आम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९, ९१७।	तिलोत्तमा—१८७ २५६, ३९९ ७९९ ९२४, १०७६।
आरुघ्य—१०९०।	तुम्बु—१८७ २१६, ९०१।
औगति—८०७।	तुर्वसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९७।
औमूत—९९।	तुपिन—३२।
ओद—५१६।	तृणयज्ञ—१४६।
औगीषका—२०७।	तोगल्व—१००८।
ऐमिनि—७	तोचिडयेर—९१।

देवघाट—३३।

देवभाग—९४, ९४।

देवमीदुप—९२, ९३, १०३।

देवयानी—७२, ७९४, ७९५।

देवरक्षित—१०१।

देवरक्षिता—९५, १०१।

देवरात—६५, ६५, ६६ ९९ ९०१।

देवरा—१५, ६५, १४६ २०६।

देववान्—१०१।

देवव्रत—८५।

देवशर्मा—१२१६।

देवशर्मा—९४, ९४।

देवस्थान—१४६।

देवानोव—५७।

देवान्त—१०३।

देवाधि—८४, ७११, ७१२, ७१३ ७१४, ७१५,

७१६, ७१७, ७१७।

देवाधुप—९९, १००।

देवेन्द्र—४६५।

द्युति—३३, ५९।

द्युतिमान्—३२, १२२।

द्युत—८७।

द्रविण—१५।

द्रुपद—८३।

द्रुस—७२, ७६, ७४, ८६, ८७, १९४, ७९७।

द्रोण—१०५७, १०५७, १०५८, १०७१, १०७४,

१०७५।

द्रोणाचार्य—३४।

द्रिमीड—८२।

द्रिमुर्धा—१७।

द्रिपिद—१०६०, १०६२, १०९१।

ध

धनेजय—१९, ८५।

धनु—६९।

धनेयु—७६।

धन्वन्तरि—६९, ८१ ६५२, ६५४, ६५६, ६५८

धन्वी—३३।

धर्म—८७, १०७, ७२१, ७२४, ७२५ ९४४।

धर्मवेतु—७०।

धर्मधृक्—९३।

धर्मनेत्र—८०, ८७।

धर्ममृत्—९३ १०६, १०७, ५४।

धर्मरथ—७९।

धर्मराज—४०।

धर्मा—१०६।

धर्मोक्त—९३।

धन—१४, १५।

धातवि—१२४।

धाता—१६, ३३।

धाट्टेन—४३।

धिपणा—८।

धुन्धु—४५, ४६, ४८।

धुन्धुमार—४५।

धूमिनी—८२, ८३।

धूम—१४६।

धृतराष्ट्र—१७, १९, ८५।

धृतरात्र—५०२, ५०३, ५०५, ५०६।

धृति—५९।

धृतिमान्—३३, ३४।

धृष्ट—४१, ४३, ८३, ९९, १००।

धृष्टवेतु—७१।

धनुन—९४६, ९५७, ९७०, ९७१, ९८७, १००५,

१०३२।

धोम्य—१४६।

ध्या—६५।

धुर—७, १४, १५, ११९।

न

नहु—१०५९।

नदान—१४।

नमजित्—१०२९।

नमिक्ता—४०८।

नद्वला—७।

नदीन—६९।

नन्द—९५६, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,

९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९८८, ९८८,

९९१, ९९६, १००५, १००८, १०२०।

नन्दिदेवदर—४९७।

नन्दी—४१५, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५१२,

५१५, ५६८, ७१७, ८१५।

नन्दिदेवदर—२५२।

नन—३२, ३३, ५७।

नमस्य—३२, ३२।

नमुचि—१८, ४०८, ६६५, ६८९, ७२७, ७३०, ८३८,

९१४, १०८५।

नन्य—१८, ९४९, ९८०, १०३१, १०३२, १०३३,

१०३५, १०४३, १०६०, १०८५।

नरनारायण—४०८।

नरसिंह—३४२, ३४४, ३४५, ३४७, ३६७।

नयान्त—१०३।

नयामक—९१७।

नयिष्यन्त—४१, ४६।

नर्मदा—६०९।

नल—१८, ५९, ५७, ५७, ९१७।

नलदा—७६।

नन—७७, ७८।

नवरय—९९।

नवा—७७।

नक्षत्र—१९, ६६, ७१, ६५६, १२०१, ७९३, ७९७।

नाम्नजिनी—१०४४।

नामाग—४१, ४३, ४३, ५६।

नामागार्पित—४४।

नारद—१२, १३, ८८, १४९, १७०, १७३, १८७,

२१६, २३३, ४०३, ४०४, ४०६, ४०७, ४०९,

४१५, ४१७, ४२५, ४३४, ४४१, ४४४, ४४५,

४४८, ४५२, ४५३, ४५४, ४६४, ४६६, ४६७,

४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,

५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६४१,

६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८३,

४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,

५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६१०,

६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८४,

६८६, ६८९, ७१०, ७१७, ७२७, ७४३, ६५०,

७५४, ७७२, ७८०, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,

७९२, ८०१, ८११, ८१८, ८२३, ७२४, ८३७,

८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८५०,

८६६, ८९०, ८९५, ८९७, ९०२, ९०४, ९०५,

९०६, ९०६, ९०७, ९१३, ९५१, ९८७, ९९०,

९९१, १०१६, १०२५, १०२६, १०२६, १०४८,

१०६३, १२२७, १२२८, १२२९, १२२९।

नारायण—३७१, १३२, १९७, ३५९, ३६७, ४११,

८५४, ८७०, ११४८।

नावेय—१०६।

नास्त्य—४०।

नास्त्यीना—१०३।

निवास्य—१०३।

निष्ठुम्भ—४८, ७०, ९१७।

निघ्न—५६, १०३।

निम्नोपा—३९९।

निस्तुष्ट—३३।

निवातवचन—१८।

निबुल्लानु—९४।

निघ्न—९५, १०२३।

निघ्न—५६।

नाल—८७, ९१७।

नीलवेला—३९९।

नीली—८२, ८३।

नृग—७७, ७७।

नृगा—७७।

नृसिंह—३४३, ८०४।

नैगमेय—१५।

नैमिषारण्य—१।

नैऋत—७८५।

नैऋत्य—३६८।

न्यग्रोध—१०१।

प

पञ्चजन—५५, ८३, १०१३, १०३३।

पञ्चनद—५४।

पञ्चाल—९४

पञ्च—९१७

पयाद—८७

परजित्—९८

परस्तप—३३

परमन्यु—७७

परशु—१०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५

पराजिता—७२७

परावती—३९९।

परीशित्—८४, ८५, ७२।

पर्वण्य—२२, ३३।

पर्वत—१४६, २३३, ५३९, ५४०, ९०१।

पथमान्—८५६, ८५८, ८५९, ८६०।

पाटीन—९१७।

पाणिन—६५।

पाण्डु—८५, ९४।

पाण्डु—८७।

पातालवेणु—४०८।

पानित्—८।

पारिणि—८५।

पापि—६५।

पार्वती—२०३, २०४, २०७, २११, २१५, २१९।

२२०, २२२, २२८, २३६, २५१, २५२, २६०,

३५०, ३५१, ४१४, ४६४, ५२५, ५७०, ५७७,

५९७, ६४५, ७२०, ९०८, १०४६, ११९३।

पालित—९८।

पिण्डारण्य—९५।

पिण्ड—६४१।

पिण्डा—७५०।

पिण्डाद—१४६, ५९४, ५९५, ५९६, ५९६, ५९७,

५९८, ५९९, ६००, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५,

६०७, ६०८, ९०१

पीवर—१२२

पुञ्जित्यला—९२४

पुण्डरीक—५७।

पुत्र—३२।

पुनर्वसु—१०१।

पुत्रजप—७७, १००।

पुत्र—८, ७२, ७३, ७४, ७६।

पुत्रुत्तम—४८।

पुत्राति—८३।

पुत्रान्—९९।

पुत्रमीढ—८२।

पुत्रा—४२, ४३, ६०, ६१, ५३४, ५३६, ५७१,

५७४, ५७४, ५७६, ५७७, ५७८, ८०९, १२२२।

पुत्रस्त्य—५, ३२, ९०, १४६, १९५, ३७८, ५२४,

५२५, ५२६, ७८६।

पुत्रह—५, ३२, १४६, १८९, १९५, ३७८।

पुत्रामा—१७, १८, १०८६।

पुत्रार—४०९, १०८५।

पुत्रारिणी—७।

पुष्टि—५९, ४१४।

पुष्टिमान्—१०२।

पुष्टाद्व—१९।

पुष्टा—९५९, ९५७, ९६०, ९६२, ९८७, १००५,

१०१२, १०११।

पूरण—१४६।

पूरु—७९४, ७९७, ७९८।

पूरुगमद—७९।

पूरुचिन्ति—३९९, ९२४।

पूरा—१६, ३७८, ५८०, ८३८, ९८९।

पूरा—९४, ९४।

पुर्विकी—२८, ७८३।

पुष्ट—२०, २३, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३,

४५, ९३, १०६, ७८१, ७८२, १०६७।

पुष्टकीर्ति—९४, ९४।

पुष्टकम—१८।

पुष्टलाज—७९।

पुष्टमवा—९७, ५२९, ५३०।

पुष्टी—७०८, ७८२, ९४९, १०३३।

पुष्टीनदी—७५१।

पुष्टलादि—८६।

पुष्ट—१४६।

पुष्ट—७७२, ७७३।

पुष्टक—१०२४, १०५२, १०५२, १०५३, १०५४,

१०५६।

पुष्ट—६३।

पुष्टक—४१४।

पुष्टा—३३।

पुष्टा—९, १०, १३, ८७, १९६, १९७, ३७८,

९३१, १२०१।

पुष्टाति—४१, ४५९ ९८६, ९४३, १०८०, १०८३।

पुष्टाति—७०, ७०, ८८ ८१।

पुष्टाति—१८ १०२।

पुष्टारप—८०।

पुष्टाति—९३ १०६।

पुष्टाति—३३।

पुष्टाति—८४।

पुष्टाति—१४, १५।

पुष्टाति—३५२, १०२४, १०२५, १०२६, १०२७,

१०२७, १०२९, १०४९, १०४९, १०४७, १०४८,

१०४९, १०६७।

पुष्टाति—१०४४।

पुष्टाति—१८, ५९, ६७।

पुष्टाति—७६।

पुष्टाति—१५, ४०८।

पुष्टाति—८९०, ८९१, ८९२, ८९४।

पुष्टाति—१०८६।

पुष्टाति—२५६, ३९९ ९२३, ९२५, ९२६, ९२९।

पुष्टाति—९४९, ९५७, ९७२, ९७४, ९८२, ९८७,

१०३२, १०८५।

पुष्टाति—८०।

पुष्टाति—९३, १०३, १०४, १०५।

पुष्टाति—४८।

पुष्टाति—१०६।

पुष्टाति—९१७।

पुष्टाति—१७, २२, ४०३, १०८५।

पुष्टाति—६, ५३९।

पुष्टाति—८३।

पुष्टाति—४१, ४४।

पुष्टाति—४१, ४३।

पुष्टाति—१८, १९६, १९७, ७५१, ८१६,

८१७, १२०१।

पुष्टाति—१५, ३२।

पुष्टाति—५९२, ५९३, ५९४, ५९९।

पुष्टाति—१०१३।

क

क

क

क

क

क

क

क

मल—१८, १०५८।

मलदमित—१०८५।

मलदेव—४३, १०५, २८४, ३०८, ९३९, १००५,
१०१३, १०२०, १०५६, १०५८, १०५९, १०६०,
१०६३।

मलबहिष्—१०१।

मलमद्र—१०५, १०८, २६५, ९७१, ९७४, ९८७,
९९३, ९९५, ९९६, ९९८, १००६, १००७, १००९,
१०२४, १०३०, १०४८, १०४९, १०५७।मलराम—४३, १०९, २८५, ३१४, ३४२, ३७३,
३७९, ३८२, ३८४, ३८५, ३८६, ३८८, ९१७,
९१९, ९६७, ९७०, ९७३, १००२, १००१२,
१०१४, १०१९, १०२२, १०२३, १०२९, १०३१,
१०६०, १०६१, १०६२, १०६५, १०६७,

१२०३।

मलाकाश्व—६२, ८२।

मलाहक—१९।

मलि—१७, ७८, ७८, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१,
४२२, ४२३, ६६३, ८३८, ९९४, १०४५-

मल्लुन—१५, १६।

मल्लबाहु—९३, १०७।

मल्लवप—१५।

मल्लवायु—६१।

माल—१७, ५९७, ९४९, १०४५, १०४६, १०४७,
१०४८, १०४९, १०५०, १०९१।मालविरय—१४४, १६७, १८७, २६३, २७८, ३२८,
३८१, ४१५, ५३१, ५३२।

माप्पल—६५, १०८६।

माह—५२।

माह्यता—१००।

माह्याश्व—८३।

माहिलव—८४, १५७, १०५९।

मिन्दुमती—४८।

मुष—४२, ६०, १११, ५७१, ५७२, ५७३, ५.
५७६, ५७७, १२०१, १२२२।

मूहत्—८२।

मूहती—७।

मूहलमर्मा—७९।

मूहलीति—८६८, १०८५।

मूहदस्व—४५, ४६, ४७।

मूहविष्—८३।

मूहर्म—७९।

मूहदय—७२, ५३५।

मूहमना—७९।

मूहमति—२९, ३२, ५९, ८०, १६१, २४३, २९२,
४१२, ५१९, ५५४, ५५५, ५७३, ६५६, ६५७,
६५८, ६५९, ७४५, ८०३, ८११, ८१२, ९०३,

९१२।

मूहवव—८३।

मूह्या—२६, ५८, ५९, १४७, १४८, १५०, १५५,
१५६, १६१, १६७, १७०, १७३, १७४, १७६,
१७८, १७९, १८०, १८१, १८३, १८४, १८५,
१८६, १८८, १९१, १९१, १९३, १९४, १९५,
१९७, १९८, २००, २०२, २०३, २०४, २०५,
२०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २१३, २१६,
२२३, २२४, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०,
२३१, २३२, २३३, २३५, २३६, २३७, २३८,
२४०, २४८, २४३, २४३, २४४, २५०, २५१,
२६१, २६४, २६६, २७२, २७८, २७९, २८०,
२८१, २८४, २८५, २८८, २८९, २९०, २९१,
२९२, २९५, २९६, ३०२, ३०४, ३०६, ३०७,
३०८, ३१०, ३११, ३१४, ३१५, ३१७, ३१९,
३२१, ३२२, ३२३, ३२६, ३२६, ३२९, ३३०,
३३१, ३३४, ३३५, ४३३६, ३४२, ३४३, ३४९,
३५०, ३५१, ३५५, ३५७, ३५८, ३६०, ३६३,
३६६, ३६९, ३७१, ३७२,

३७४, ३७६, ३७९, ३७२, ३७४, ३७६, ३७८,
 ३८१, ३८५, ३८६, ३८८, ३९५, ४०२, ४०४,
 ४०६, ४०७, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३,
 ४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२,
 ४२३, ४२५, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१,
 ४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०,
 ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७,
 ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७,
 ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
 ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७,
 ४७८, ४७९, ४८०, ४८२, ४८६, ४८९, ४९०,
 ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७,
 ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०४, ५०६, ५०७,
 ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१४, ५१५,
 ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,
 ५२३, ५२४, ५२५, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०,
 ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७,
 ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६,
 ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३,
 ५५४, ५५५, ५५६, ५५८, ५६०, ५६१, ५६२,
 ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०,
 ५७१, ५७२, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९,
 ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९,
 ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९८, ५९९,
 ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,
 ६०७, ६०८, ६०९, ६११, ६१२, ६१३, ६१४,
 ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१,
 ६२२, ६२४, ६२५, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०,
 ६३१, ६३२, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८,
 ६४०, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७,
 ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५३, ६५४, ६५६,
 ६५७, ६५८, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४,
 ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२,
 ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,

६८०, ६८१, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८८,
 ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३,
 ६९४, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, ७०२, ७०३,
 ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०,
 ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७,
 ७१८, ७१९, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४,
 ७२६, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३३, ७३४,
 ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४,
 ७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३,
 ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६०, ७६१,
 ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६७, ७६८, ७६९,
 ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७६, ७७८, ७७९,
 ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
 ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३,
 ७९४, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०४, ८०६,
 ८०८, ८०८, ८१०, ८११, ८१५, ८१६, ८१७,
 ८२०, ८२२, ८२३, ८२४, ८२७, ८२८, ८२९,
 ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६,
 ८३७, ८३८, ८४०, ८४०, ८४२, ८४४, ८४५,
 ८४७, ८४८, ८४८, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३,
 ८५४, ८५५, ८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२,
 ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६९,
 ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९,
 ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६,
 ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३,
 ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९०१,
 ९०५, ९०६, ९०८, ९०९, ९१०, ९१२, ९१४,
 ९१६, ९१७, ९१९, ९२१, ९२४, ९२५, ९०४०,
 ९४४, ९४४, ९४६, ९४६, ९४७, ९४९, ९५०,
 ९५४, ९५२, ९५८, १०१०, १०३६,
 १०४९, १०८०, १०८०, १०८२, १०८२,
 १०८३, १०८४, १११८, १११९, ११४२,
 ११८७, ११९३, ११९४, ११९५, १२५२, १२६६,
 १२९२।

भ

भग—१६, २११, २१४, २४२, ३७८, ५८१।

भगीरथ—५६, ४२५, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२।

भद्रगकाट—१०६।

भजमान—९९, १००, १०१, १०२ १०२।

भद्रवागी—५५७ ५८०।

भद्रवाह—१०२८।

भद्ररथ—७९, १०४४।

भद्रधर—७० ८१, ८७, ७६।

भद्रा—७६, ९५।

भद्रादगी—३९९।

भद्रासव—४०८।

भर—७११, ७१२, ७१३।

भर—८० ९१, ६७१, ६७३। ६७१।

भराल—३४, ६९, ८०, ८४, १४६, ६४९, ६५०,

७५१, ७५२, ७५३।

भर—७०१।

भरभूमि—८२।

भरभर—१७।

भरभर—२२९, ७१९।

भरभर—७।

भरभर—९९।

भरभर—७५८।

भरभर—१४ १०४४।

भरभर—३४, ४०८, ७९२।

भरभर—७१।

भरभरभूमि—७१।

भरभर—८१, ८२, १४६ ४०८, ९०१।

भरभर—१९।

भरभर—८६२, ८६३।

भरभर—१४६।

भरभरभूतल—१०३।

भरभर—६१, ९९, १०५९, १०७२।

भरभर—६९, ८१, ८१, ९९।

भरभर—८४, ९४।

भरभर—८५, १०५७, १०५७, १०५९, १०७१ १०७४,
१०७५।

भरभर—१०२३, १०२४, १०२४।

भरभरभूतल—१७।

भरभर—३५।

भरभर—८४, १०५९।

भरभरभूतल—८४, १०५९।

भरभर—३३, ६४, ६५, १८९, १९५, ३७८ ४०२ ५१६
९०१, ९११।

भरभरभूतल—६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२२।

भरभर—९१, ९६, १०१।

भरभर—९३।

भरभर—३५।

भरभर—४६८, ४६९, ४७०, ८७९।

भर

भरभरभूतल—१७।

भरभर—१९।

भरभरभूतल—८८०, ८८२, ८८८।

८८९।

भरभरभूतल—८०।

भरभरभूतल—३४९, ४५७।

भरभर—१०८६।

भरभर—४१२।

भरभर—९५।

भरभर—९३, १०६।

भरभर—७८।

भरभर—७६।

भरभर—२९, ३०, ३२, ४६, ९१, ९९, ५२७ ९४७
१०८९, ११३७, १२२६।भरभरभूतल—६५, ७६७, ७६८, ७६९ ७७० ७७१,
८९२, ८९३, ८९४।

भरभरभूतल—९१।

भरभरभूतल—३६६, ९६५, १०३२, १०४०, १०६४।

मित्रविन्दा—१०२९।

मित्रसद—५६।

मित्रावरुण—४१, ४२।

मियु—७११, ७१२, ७१६, ७१७।

मिश्रवेणी—३९९, ९२४।

मुक्कवेणी—७५४।

मुक्कुन्द—४८, १०१६, १०१७, १०१९।

मुञ्जिकल्पला—३९९।

मुद्द—१०६।

मुद्गल—६५, ८३, ७५८।

मुनि—१४, १६, १९, १२२।

मुद—१०३३ १२३६।

मुष्टिक—९८७, ९८८, १००४ १००५, १००६,

१००७, १००८, १०९१।

मूहर्त—१४।

मूहर्ता—१४।

मूर्ति—३२।

मूर्तिमाम्—६२।

मृगपाद—१०८५।

मृगमिय—१०८५।

मृगव्याघ—१५।

मेघनाद—९१५, ९१७।

मेघहास—७८४, ७८५।

मेदुर—९३।

मेघातिथि—३२, ११९, १४६।

मेघ—३२।

मेनका—१८७, २५६, ३९९, ४७९, ९२४।

मेना—१९७, २३०, ४११, ७९९।

मेरुतावरुण—३२।

मेघेय—१४६।

मोदाकि—१२३।

मोहिनी—७५४।

मोद्गल्य—८३, १४६, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१,

७६२।

य

यत्तज्ज—७५१, ७५२।

यति—७१।

यतिधर्मा—१३।

यद्गु—७२, ७३, ७५, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९६

१२०१।

यद्गुध—३३।

यम—२२, २९, ३७, ३८, ४०, १२९, १८४, २८३,

२८४, ३६८, ४०८, ४७६ ४८०, ४८१, ४९३,

४९५, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५३८,

५८५, ७०२, ७०३, ७०५ ७४७, ८६४, ८७३,

९९९, १०४०, १०८३, १०९३, १०९५, ११०५,

११०६, ११०७, १११९, ११२०, १२१०।

यमवृत्त—६५।

यमराज—२११, ११०८, ११२४, ११४८।

यमहस्त—९१७।

यमानक—९१७।

यमुना—३३, ४०, १८३, ४९२, ४९५ ४९६ ६०९,

१०२२, १०२३।

ययाति—७१, ७२, ७३, ७४ ७५, ८६, ८७, ७९३,

७९४, ७९५, ७९६, ७९७, १२०१।

यवन—१०१७।

यवीनर—८३।

यथादा—९५२, ९५६, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,

९६७८, ९८७।

याज्ञवल्क्य—४८९, ४९०, ४९१, ७९२, ९०१।

यानि—७१।

यामी—१४।

युक्त—३३।

युधाजित्—९२ १०३, १०६।

युधिष्ठिर—९४, ०८१, १०५९ १०७८।

युवनाश्र—४५, ४८, ६२ ८२।

योगपरायण—९०१।

योगमाया—९५६।

लक्ष्मणा—१०२९, १०४४।

लक्ष्मी—५९, १९७, २७८, २८४, ३५३, ३९८, ४०२,
४१४, ४५९, ७११, ७३५, ७५९, ७६०, ७६३,
७६५, ७६६, ७९१, ८६८, ९०२, १०२३, १०८९।

लम्बा—१४।

लव—८१८।

लवण—४०८, १०८९।

लिखित—२०२।

लोकपाल—८४९, ९०२।

लोपामुद्रा—७०, ८१, ५८५, ६४१।

लोमपाद—७९।

लोमश—१४६, ४१४।

लोमहर्षण—६, ११, १६, २३, २८, ३१, ३६, ३७,
४१, ४४, ४५, ४७, ५०, ५३, ५५, ६०, ६१, ६६,
६८, ६७१, ७६, ९२, ९७, ९९, १०२, १०७, १०८,
११२, ११९, १२६, १२९, १३३, १३७, १४०,
१४५, २५३, ११२१, १२६५, १३२७, १३३८।

लोहित—६५।

लोहि—६६, ८३।

व

वशा—१८।

वक्ष—१०६८, १०७०, १०७३।

वक्षनाभ—१७, ५७।

वडवा—९५, ५८५।

वरस—७७, ८१, ८२।

वत्सभूमि—७१, ८२।

वत्सवान्—९४।

वनबुद्ध—८७।

वनानु—६१।

वनेयु—७६।

वय—५४४।

वरागी—३९९।

वरिष्ठ—१०८५।

वरीदास—८८।

वर्ण—१६, २२, ९०, २४३, ३१०, ३२८, ३६८,
३७८, ४०३, ४१५, ४६४, ४८२, ४८९, ४९०,
४९१, ४९५, ५१३, ५४१, ५४२, ५४३, ५४६,
५४८, ७२१, ६२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७९४,
८३८, ८४९, ८९४, ९००, ९५०, ९९९, १०२२,
१०२३, १०३२, १०३४, १०३५, १०४०, १०८३।

वर्षकेतु—८१।

वशाति—४५।

वसन्त—९२५, ९२६।

वसिष्ठ—५, ३२, ३४, ४५, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३,
५४, १४६, १८६, १९५, १९७, ४०८, ४१३, ४१४,
४४६, ५२२, ५३८, ५३९, ५४७, ५६२, ५६६,
५७४, ५७८, ५८०, ६६३, ६७०, ६७२, ६७३,
७५४, ७९२, ७९९, ८०९, ८७२, ९०१, ११०८,
१३०१, १३०४, १३१०, १३१३, १३१७, १३२१।

वसु—७, १४, ३२, ३४, ५९, २२५, ५८०, ९०२,
९५१, ९९२, ९९३, १०६४, १०८२।

वसुगण—१०४०।

वसुदेव—९४, ९५, १०१, १०६, २२८, ९१७,
९४०, ९५१, ९५२, ९५४, ९५५, ९५६, ९५८,
९५९, ९६१, ९८७, ९८८, ९९५, १०००, १००५,
१००६, १००८, १००९, १०१०, १०१७, १०६८,
१०७०।

वसुन्धरा—१०६।

वसुमेध—१०६।

वसुरोध—८०।

वह्नि—८६।

वाञ्छी—३४।

वानपति—१०६।

वातापि—१८, १०८५।

वात्स्य—१४६।

वामदेव—५४७, ५६२, ६७०, ७८०, ९०१।

वामन—१७, १९, ४१९, ४२०, ४२१।

वामना—९२४।

वायु—१४६ ३९८ ३७८ ६६४ ६६५ ७०८ ७२१
 ८७४ ९२५ ९२६ ९५१ ९९९ १०८३ १०८५
 १२१०।
 वाराह—१०८५।
 वारिष्णव—३३।
 वालि—९१७।
 वाला—१०८९।
 वाल्मकि—१४६ ८१८।
 वासुकि—१९ २२ ९९७।
 वासुदेव—७३ १०५ १०६ ३५२ १०५४ १०५६
 ११९९ १२०२ १२०७ १२०८ १२२४ १२६१।
 बाह्यलोक—८०१।
 विक्रम—७९।
 विकृति—४४ ४५।
 विकृति—९९।
 विज्ञान—१७।
 विज्ञानमण—१७।
 विष्णुराज—४३१ ४३२ ४३३ ६३०।
 विचित्रवाय—८५।
 विजय—५२ ६९ ९६ ६१५ ६१८।
 विजया—५८०।
 वित्तय—८०।
 विद्वज्—९९।
 विद्वज्—८५।
 विद्वज्—८४ १०२ १०२४।
 विद्रावण—१७।
 विद्याना—९९९।
 विनता—१६ १९ १७८ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५
 ८३६।
 विनताव—४२।
 विनायक—४२६ ४२७ ५१२ ५२५ ६२९।
 विन्तावज्—६४१।
 विष्णुलाना—३९९।
 विष्णु—९३ १०६ १०६७।

विप्रचित्ति—१७ १८ २५६ ९४७ १०८५।
 विष्णुण्ड—१४६।
 विष्णुपण—५२३ ८१८ ८१९ ८२३ ८२४ ८२५
 ८८५ ८८६ ९१५ ९१६ ९१७।
 विष्णु—७१ ८१ ८२।
 विरजा—३३ ७१ २६१।
 विराट्—५ ७।
 विराट्—१०८९।
 विरोचन—१७ २९ १०८५।
 विवस्वान्—१६ ३३ ५३७।
 विन्ताव—१५।
 विध्वज्—५२३ ५२६।
 विश्वकर्मा—१५ १८३ १८५ १८७ ३०६ ३०८
 ३१४ ४१४ ४६८ ४७० ५९० ६०२ ७६१
 ९१४।
 विश्वजित्—७९।
 विश्वचर—४७६।
 विश्वरूप—८६२ ८७३ ८९८ ८९९ ९००।
 विश्वा—१४।
 विश्वाच—७४ १८७ २५६ ३९९ ९२४।
 विश्वामित्र—३४ ४९ ५१ ५२ ६५ ६६ ८३ १४६
 ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५३९ ५४७ ५४८
 ६७१ ६७२ ६७३ ७६७ ७७० ७९९ ८०७
 ८९२ ८९८ ८९९ १०६३ १०९०।
 विश्वायु—६१।
 विश्वावसु—२३३ ७५० ८९१ ८९२।
 विश्वेदेव—१४ ३४ १०४० १०८२ ११३५।
 विषद्वज्—९९।
 विष्टरात्र—४५।
 विष्टि—४९३ ८६१ ८६२ ८६३ ८६५।
 विष्णु—१६ ३२२ ४० ४६ ४७ ५४ ९२ ११५
 ११८ १२७ १३६ १५८ १६७ १७४ १८९
 १९१ १९७ २१२ २१४ २२८ २४४ २३५
 २४३ २४८ २७१ २७८ २८७ २९० २९६

३०६	३०७	३०८	३१०	३११	३१५	३२०	वारसेन—५७।
३३१	३३६	३३८	३४१	३५२	३५३	३६०	वह—९५।
३६४	३६८	३७८	३८६	३८८	३८९	३९२	वृक—५२ १०४४।
४०२	४०७	४०९	४१३	४१४	४१५	४१८	वृकदव—९६।
४१९	४२२	४२४	४२८	४५३	४५४	४५९	वृषदेवा—९५ ९६ १०१।
४६३	४७१	४७७	४९८	४९९	५००	५१३	वृकत्र—७।
५१४	५१५	५२२	५३८	५४६	५५५	५६३	वृषल्लेजा—७।
५७३	५७९	५८०	५८१	५८२	५८३	५८४	वृषिन—९००।
५८५	५९६	६२८	६२९	६५५	६५७	६५१	वृषिनावान—९७ १२०१।
६५२	६५६	६५८	६६२	६६४	६८९	७०८	वृष—४०८ ६५६ ८३८ ९०० ९१४ १०८५।
७१६	७२५	७२७	७२८	७३२	७३६	७३७	वृषहा—७३०।
७३८	७३९	७४०	७४२	७४६	७४७	७४८	वृद्धकौणिक—८८०।
७४९	७५५	७५६	७५९	७६०	७६१	७६२	वृद्धदाव—९९।
७६५	७८८	७९१	७९२	८०८	८१०	८२१	वृद्धगर्मा—६६ ९४।
८२२	८२९	८३०	८३१	८४१	८४२	८४४	वृष—९१।
८४५	८४६	८५३	८५५	८५९	८६०	८६५	वृषण—९१।
८६६	८६७	८६८	८७२	८७४	८८९	८९४	वृषदभ—७८।
८९६	९०३	९०४	९०५	९११	९२२	९२५	वृषपर्वी—१७ १८ ७२।
९३२	९३३	९३८	९४०	९४२	९४३	९४४	वृषभ—१०९१।
९४५	९४६	९४८	९४९	९५२	९५३	९५४	वृषभासुर—९८७।
९५५	९८८	९९२	९९३	९९४	९९९	१००६	वृषल—१४।
१०१०	१०२६	१०३६	१०५६	१०७५	१०८०		वृषपवा—७९४।
१०८१	१०८३	१०८४	१०८७	१०८८	१०९२		वृषाक्षि—१५ ४०८ ७३६ ७३७७, ७३८।
१११४	१११७	१११८	११३७	११४२	१२०९,		वृष्टि—१०१।
१२२३	१२२६	१२२७	१२३५	११३३	१२३६		वृष्णि—९२ १००।
१२३७	१२५२	१२५४	१२५५	१२६४	१२६६		वृषवान्—१०८९।
१२९२।							वृष—२३ २४ २५।
विष्णुपाश—१०९१।							वेषुहृय—८७।
विज्जगन्—९४।							वेषुहात्र—७१।
विह्वर—१०८५।							व—८७१ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९।
वर्गतिहात्र—९१।							वग्ग्याग—८५।
वट—६ ७।							वट्टिया—३३१
वारण—७ १५।							वेर—८ ७८० ७८१ ७८३।
वारमद—२३८ २३९ २४० २५२ ५८० ५८१।							वैवध—७९।

वैतण्ड्य—१४।

वैदर्भी—९९।

वैदेही—८१७।

वैभागडि—७९।

वैभीषणि—८८५।

वैष्णो—१३, १४८८६, ८८७।

वैराज—७, २२।।

वैरिणी—७।

वैरी—३४।

वैवस्वत—२०, २३, ३२, ३५, ४१, १९६, १९७,

४९२, १०१३, १०९४।

वैशम्पायन—१४६।

वैशाखी—९५।

वैश्वानर—१७, १८।

वैश्रवण—१९१, ३३१, ५२६।

व्यय—८६३।

व्यास—३४, १४६, १४७, १४८, २५३, २५४, ४०२,

९२१, ९२२, ९२६, ९२९, ९३०, ९३२, ९३७,

९३८, ९३९, ९४५, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१,

९५३, ९५४, ९५५, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०,

९६२, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९,

९७०, ९७१, ९७२, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७,

९७८, ९७९, ९८१, ९८२, ९८३, ९८५, ९८७,

९८८, ९८९, ९९१, ९९३, ९९५, ९९६, ९९९,

१०००, १००१, १००२, १००३, १००४, १००७,

१०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१५, १०१९,

१०२०, १०२१, १०२२, १०२३, १०२५, १०२६,

१०२७, १०२८, १०२९, १०३०, १०३१, १०३२,

१०३४, १०३५, १०३६, १०३७, १०३८, १०३९,

१०४१, १०४२, १०४३, १०४४, १०४५, १०४६,

१०४७, १०४८, १०५१, १०५२, १०५३, १०५५,

१०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६१,

१०६२, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६८,

१०६९, १०७०, १०७१, १०७३, १०७४, १०७६,

१०७७, १०७८, १०७९, १०८३, १०८४, १०८५,

१०९३, ११०२, ११०५, ११०७, ११०८, १११४,

११२१, ११२२, ११२३, ११३१, ११३४, ११३७,

११४४, ११५०, ११६१, ११६२, ११६३, ११७७,

११८२, ११९९, १२०४, १२०८, १२०९, १२१०,

१२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१६, १२१७,

१२१८, १२२०, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५,

१२३३, १२३४, १२३८, १२४४, १२४८, १२४९,

१२५२, १२५६, १२६३, १२६६, १२६८, १२७२,

१२७३, १२७५, १२७६, १२८०, १२८१, १२८३,

१२८५, १२८६, १२८९, १२९१, १२९५, १२९७,

१३०१, १३२६, १३२७।

व्योमा—९९।

व्रज—८।

वृष

शरीमा—पृ० १९।

शकुनि—१७, ४५, ९९।

शक्ति—७३५।

शक्र—२३९।

शक्र—९६, १५८, १८९, १९६, २०२, २०४, २०६,

२१०, २१२, २१६, २२२, २२६, २२९, २३२,

२३७, २५२, २५३, २८४, ३५०, ३५१, ४०२,

४११, ४१२, ४१४, ४१६, ४२३, ४२४, ४२६,

४३३, ४३७, ४३९, ४४९, ४५०, ४५१, ४५३,

४६३, ४६६, ४८३, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,

५०१, ५१२, ५१३, ५१७, ५१८, ५१९, ५२५,

५२६, ५३१, ५३३, ५३६, ५५६, ५५८, ५६४,

५६८, ५७०, ५७५, ५७६, ५७९, ५८०, ५८२,

५८३, ५८४, ५९६, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४,

६०५, ६०७, ६१०, ६११, ६२२, ६२३, ६२४,

६२६, ६२७, ६२९, ६३३, ६३५, ६३७, ६४०,

६४५, ६५०, ६५६, ६५८, ६६१, ६६४, ६८२,

६९६, ६९७, ६९८, ७१६, ७१७, ७२०, ७२२,

७२३, ७२५, ७२६, ७३४, ७३७, ७४७, ७५०,

७५५ ७६०, ७७३, ७८७, ७८८, ७९२, ७९८, ८००, ८०८, ८१०, ८१३, ८१६, ८२६, ८३८, ८४९, ८५०, ८५३, ८६७, ८७५, ८७६ ८७७, ८७८, ८९४, ८९५, ९०२, ९०५, ९०८, ९१०, १०४५, १०४७, १०४८, १४९, १०५१, १०५४।	५५७, ५६३, ५७५, ५७८, ५८५, ६२०, ६८४, ७२०, ७२४, ७३३। शरण्या—९५। शरङ्गान्—३४। शरम—१०८५। शर्मिष्ठा—१८, ७२, ७९४। शर्यावि—४१, ४३, ४४, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०। शर्व—१५। शल—५७, ६९, ८४, १०५९। शलदा—७६। शलम—१०८५। शल्य—१८। शशबिन्दु—४८, ९७। शयाद—४५। शशिकेता—३९९, ९२४। शाकल्य—८५०, ८५१, ८५२, ८५४। शाख—१५। शशिद्वय—१४६। शातानप—९०१। शातानु—८४, ८५। शातनमय—११९। शात्या—७९। शान्तिदेवा—९५, १०१। शार्दूल—७२४, ७२५। शास्त्रहाय—६५। शालावती—६५। शाल्व—१०२४, १०९१। शिवशिङ्गो—८। शिवी—९४। शिवेयु—९७। शिवि—७७। शिव—१७, ५९, ११९, १६७, १९४, १९५, २०१, २०२, २०४, २०५, २१४, २१५, २१७, २२२,
७५५ ७६०, ७७३, ७८७, ७८८, ७९२, ७९८, ८००, ८०८, ८१०, ८१३, ८१६, ८२६, ८३८, ८४९, ८५०, ८५३, ८६७, ८७५, ८७६ ८७७, ८७८, ८९४, ८९५, ९०२, ९०५, ९०८, ९१०, १०४५, १०४७, १०४८, १४९, १०५१, १०५४। शङ्करदेव—१९३। शङ्कु—१०८५। शङ्कुवर्ण—१७, १०८५। शङ्ख—१९। शङ्खपद—२२। शङ्खपाल—१९। शर्षा—१९७, ३७९, ४८०, ७३०, ७३७, ७७५, ७६६, ७७८, १०४१। शठ—९५। शतसुम्न—८। शतधन्वा—१०३, १०७, १०८। शतप्रसव—९८ शतकथा—६। शतहृद—१७। शतामिन्—१००। शतानन्द—१४६। शमुष्ण—९३, ६९४, ७१, ६७३ ९१७। शमुजिन्—१०२। शमुहा—१०६। शनि—४९३, ४९५ ६४२ ६४३। शनिदधर—३८ ४०, १९१, ८६१। शक्लाश्व—१३। शमन—३४। शमो—१०२। शमोव—९४, ९५। शम्बर—१७, ७५४, ८३८, १०२४, १०२५ १०२६, १०२७, १०२८। शम्भु—१५, २५९, ४१३, ४४२, ४६५, ५३७, ५५५,	

२२३, २२४, २२७, २२८, २३४, २३६, २४१, २४२, २४३, २४८, २५०, २५२, २५७, २५८, २६०, २६९, २७०, ३१०, ३३१, ३३५, ३३७, ४१५, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४४०, ४४३, ४४४, ४४५, ४५०, ४५१, ४५७, ५११, ५१४, ५१५, ५३८, ५४७, ५७७, ५९७, ५९८, ६००, ६०१, ६०५, ६०७, ६१२, ६२०, ६२१, ६२५, ६३६, ६३७, ६३९, ६५१, ६५२, ६६, ६७४, ६८१, ६९५, ६९६, ७१६, ७१७, ७३५, ७३६, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४३, ७४९, ७५०, ७५७, ७६४, ७६५, ७७३, ७८४, ७८६, ७९१, ७९३, ८०१, ८१४, ८१५, ८२४, ८३१, ८७४, ८७९, ८८९, ८९७, ९००, ९०२, ९०३, ९०४, ९०९, ९११, ९१२, ९५०, ९८९, ९९९, १०१५, १०३६, १०५२, १०५५, १०८०, १०८५, १०९०, १११८, ११४२, ११८३, ११८८, ११८९, ११९१, ११९३, १२१६, १२९२।	गुप्त—९५। गुप्त—९०। गुर—९१, ९३, ९५, १००, १२०२। गुरखेन—९१, ६१२, ६१३, ६१४, ६१६, ६१७। गुल्फा—७६। गुह्यव—४०८। घेप—१९, ६३२। घेपनाग—१२५०। घैव्या—९८, १०४४। घोषाव—१०२। घोनव—६९, ७२, ९०१। गीरि—९५। दयाम—९४, ९५। दयेनी—१९ धम—१४। धवणा—९३, १०२, १०७। धविष्ठा—८६, ९३, १०२, १०७। धान्त—१४। धाम—४५। धाम्नाव—४५। धाहुक—१०१। धीदामा—९७२। धीदेवी—९५। धुन—५६, १०४४। धुनदेवी—९४। धुनसेन—८४। धुतायु—१। धिलिटि—७। धक्कल—९२, ९३, १०६। ध्वेत—३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५६, ५१०, ५११, ५१२, ५१३। ध्वेतकर्ण—८५। ध्वनमायव—३४९, ३५१, ३५२, ३५३। ध्वेतवाहन—१०२।
सिक्कत—५३८। सिवा—१५, ७५०। सिसिर—१५, ११९। सिसिरायणि—९६। सिधुपाल—७२, ९४, १०२४। १०९१, १०२९। सुक—१६७। सुक—८, ३२, १९१, २०२, २३३, ४०२, ४२०, ४२१, ५१७, ५१८, ५१९, ७९४, ७९५, ७९६, ८१३, ८१४, ९४४, १०४३। सुकाचार्य—५९। सुचि—१९, ३२। सुन पुच्छ—६५, ५४५। सुन सेप—६५, ५३९, ५४५, ५४७, ५४८, ८०६, ८०७। सुनक—६९। ४। सुमाना—३९९।	

स

सयता—८६, ८७।

सयाति—७१।

सवरण—८४।

सवर्त—८६ १४६, ४६९।

सहतादव—४८।

सहृद—१०८५।

सहृद—१०८५।

सहृद—१७ १८, १०८६।

सहा—३७, ३८ १८३ १८४, १८५।

सगर—५२ ५३ ५४ ५५ ४०८ ४४६ ४४७ ४४८, ४४९, ४५२।

सङ्कर्षण—३३८ ३५२ ९५२।

सङ्कल्पा—१४ ७२१ ७२४।

सङ्कृति—६९।

सङ्क्रामजित्—१०४४।

सञ्जय—६८।

सखी—१९४, १९५, १९७, १९८।

सखान्—९९।

सत्यक—९४।

सत्यवर्णक—८५।

सत्यवैतु—७०, ८२ ९५।

सत्यतपा—१२२२।

सत्यनेत्र—३३।

सत्यभामा—१०६ १०७, १०८ १०२९ १०३३,
१०३४, १०३७ १०३८, १०३९, १०४१, १०४३,
१०४४।

सत्यरथा—५२।

सत्यवर्ती—६३, ६५।

सत्यवान्—८, ३३।

सत्यव्रत—४८, ५०, ५१ १०२९, १०४२।

सत्ताजित्—१०२ १०३, १०४, १०६ १०७ १०२९।

सत्त—७३३।

सत्तुसार—५, १४६, २३३ १०८०, १२०३।

सन्न्दन—१३४।

सनाज्वात—५०२ ५०४, ५०५।

सनातन—३३।

सन्देव—१०१।

सत्तति—७०।

सत्ततेषु—७६।

सत्तल—३२।

सभास—१०६।

सभावर—७७।

सभा—५६६, ५६९।

समुद्र—८९५ ८९६ १०१३।

सम्पाति—८६६।

सम्बर—१०८५ १०८६।

सम्भूत—४९।

सम्नात्—७।

सरमा—७४४, ७४५।

सरमान—१८।

सरस्वती—३७८, ५३५ ५६२
६०९ ६१०, ६५९
८५४, १२६६।

सरस्वान्—५३५।

सर्वकर्मा—५६।

सर्वजित्—१७।

सवन—१२४।

सवर्णा—९, ३७, ३८।

सविता—१६।

ससक—१०१।

सत्त—३२।

सहवन्था—१८७, ३९९, ९२४।

सहदेव—६९, ८३, १०५९।

सहदेवा—९५।

सहस्रजित्—१००।

सहस्रजित्—८७।

सहिष्णु—३३।

साङ्गति—६५।
 साल्यति—१४, १०८, १०६७।
 साध्य—१४, ३४, १०४०, १०६४।
 साध्या—१४।
 सान्दीपनि—१०१२, १०१३।
 साम्ब—१०४४, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९,
 १०६०, १०६३, १०६४, १०६५।
 सात्तिवावत—१००।
 सावर्ण—३४, ३८, ४०।
 सावणि—३२, ४९३।
 सावित्री—२६०।
 साहज्य—८।
 सिद्धिवा—१७, १८, ७८४।
 सिनीवाल—५९।
 सिन्धु—८७६।
 सिन्धुद्वीप—५६, ८७५।
 सिन्धुसेन—४५३, ४५६।
 सीता—५०७, ६७३, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
 ६८०, ६८१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८५,
 ९१६, १०८८, १०८९।
 सुक्या—८२।
 सुकुमार—७१, ८२, १२३।
 सुकृति—३२।
 सुकेतु—५४, ७०।
 सुकेरी—३९९।
 सुसोदय—११९।
 सुप्रीव—८१९, ९१७, १०८९।
 सुप्रीवी—१९।
 सुपाद—८५, १०३, १०२८, १०६७।
 सुचेता—८७।
 सुच्छाया—७।
 सुजात—९१।
 सुतनु—९५, १०५।
 सुतपा—३३, ७८, १२२६।

मुदयु—१०३।
 मुदान्त—१०३।
 मुदास—५६।
 मुदेवा—१०१।
 मुदेण—९४, १०२८।
 मुद्युम्न—८, ४३, १२०१।
 मुयनु—८४।
 मुयन्वा—२२, ५७, ७६, ८४।
 मुयर्मा—९३, १२२७।
 मुषामा—३३।
 मुतस—६२।
 मुतहीन—६९।
 मुतामा—९६, १०२, १००९।
 मुताम्नी—९५, १०१।
 मुनीय—७०।
 मुनीया—८, २४।
 मुन्द—९४९।
 मुन्दरी—९३।
 मुनर्मा—५३१।
 मुपावर्क—१०७।
 मुप्रगा—७११।
 मुवाहु—८०, ९३, १०७, १०८९, १२३०,
 १२३१।
 मुमद्रा—९५ २६५, २६६, २७८, २८४, ३०८, ३१४,
 ३३८, ३४१, ३४२, ३६९, ३७३, ३७४, ३७५,
 ३७६, ३७८, ३७९, ३८१, ३८२, ३८१, ३८२,
 ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८ ३९७ ४००,
 ४०५, ९१९, ९३९।
 मुमूषण—१०२।
 मुमति—३४, ८९२ ८९३, ८९४।
 मुमनयु—५।
 मुमनु—१४६।
 मुमयु—५६६।
 मुपात्री—२९।

सुमित्रा—६६३, ६७१, ६७३।

सुमुख—१९।

सुमन—९७।

सुमव—८०६।

सुयति—७१।

सुरप्य—८४।

सुरभि—१६, १९, १५।

सुरसा—१९, १६ ७६।

सुरधि—३०।

सुरेश—७३४।

सुवर्ण—७२१, ७२४।

सुवर्णा—७२१ ७२४, ७२५।

सुवीर—७८, ७६।

सुवत—७८, ७७।

सुशान्ति—८३।

सुशीला—१२२७, १२२८ १२३०।

सुश्यामा—५६०।

सुपेण—१०२८।

सुष्मन्त—८०।

सुहोतार—८०।

सुहोन—६१, ८०, ८१।

सूत—२, ३, १०, १३, २६ २७ १४६, ९३९।

सूदन—९६१।

सूनुता—७।

सूयं—१७, २९, ३६, ३८, ३९, ४०, ५७, ७६, ७७,

१५८, १५९, १६२, १६४, १६५, १६६ १६८,

१७३, १७४, १७६ १७७, १७८, १७९, १८०,

१८१ १८२ १८३ १८४, १८५, १८६ १८७,

१८८, १८९, १९१ १९२ १९७ २१२ २४३

२४५ २४९, २५८, २५९ २७० २७२, ३७८,

४७८ ४८०, ४८१ ४९५, ४९६, ५३८ ५६२

५८१, ६०२, ६०१, ६११, ६८०, ७४७, ७४८,

७५६, ७७०, ८१०, ८२९ ८३०, ८३४ ८४५,

८४४, ८६१, ८६२, ८६६ ८६७, ८७२, ९०३

९५१, ९५४, ९७४, १०१२, १०४०, १०८३,

१०८७, १०९१, १२१०, १२२४।

सूर्यापीठ—८५।

सूज्यय—७७ ८३ १००।

सोपव्यग्र—१०८५।

सोम—१०, १४, १४, ३३, ५८, ७६, १९१, ५३८,

५९४, ५९५, ५८९, ९०२, ९०३।

सोमव—८३।

सोमदत्त—८३, ८४, १०५९।

सोमशर्मा—१२१६।

सौदास—५६।

सौमद्र—८५।

सौमाम्पवती—३९९।

स्मृ—५ १९१, ४०२, ४२६, ४२७, ४२९, ४६५

४६७, ५१२, ५७६।

स्नीरत्नकूटा—७६।

स्पण्डिलेयु—७६।

स्पविष्ठा—७६७।

स्वन—१०८६।

स्वपाश्वक—९३।

स्वमिथ—१०८६।

स्वयम्भोज—१०२।

स्वरकल्प—१८।

स्वर्मानु—१७ १८।

स्वसा—११०।

स्वसुम—१७ १८।

स्वाति—८।

स्वायम्भुव—६, २९, ३१, १३१।

स्वारोचिष—२०, ३१, ३२।

स्वाहा—३७८ ७१८ ७२१।

स्वाहि—९७।

ह

हनुमान्—४७२, ७२७, ८१७, ८१९, ८२४, ८२६

८८५ ८८६, ९१७।

हृष—८७।

हृषीकेश—१०३३, १०८५।

हृषमूर्षा—४०८।

हृषगिरा—१७, १८।

हृष—१५, ३७८, ८३९।

हृषि—२० ९८, ३३५, ४२३, ६७४, ८०५, ८१९,
८३९, ९०२, ९३१, ९४७, ९५१, ९६९, १०४१,
१०४५, १०५३, १०७९, १०८५।

हृषि—५२, १४६।

हृषिदत्त—६५।

हृषिदत्त—५२, ४०८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२,
५४३, ५४६, ५४७, ५४८।

हृषिहृष—१०८५।

हृषिहृष—६६०, ६६१।

हृषग—७९।

हृषत्वत्—६९।

हृषदत्त—१२, १३, ४८।

हृषण—८६३, ८६४, ८६५।

हृषपर—३३९।

हृषिन्—३२।

हृषिर्मान—८।

हृषिर्मान—१२०१।

हृष्य—३२।

हृषित—६५।

हृषा—१८७, २१६।

हृषवान्—२००।

हृषालय—१९७, १९८।

हृषण्य—७२७, ७२८।

हृषण्य—५३८।

हृषण्यवसिष्ठ—१७, ९४, ३४२, ८०४, ९४०, ९४७,
९५१, १०८२, १०८४, १०८५।

हृषण्यगर्भ—३२।

हृषण्यरोमा—२२, ३३।

हृषण्यल—१७।

हृषण्यवाह—१५।

हृष—१८७, २१६।

हृषि—७००, ७०१।

हृषवर्त्ता—४८।

हृष्य—८७।

हृष—१७।

हृष—१७।